हिंदी शब्दसागर

हिंदी शब्दसागर

प्रथम भाग

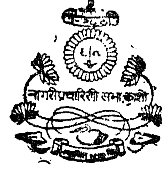
["अ" से "ईहित" तक, शब्दसंख्या—१८०००]

मूल संपादक

श्यामसुंदरदास, बी० ए०

मूल सहायक संपादक

बालकृष्ण भट्ट	रामचंद्र शुक्ल
अमीरसिंह	जगन्मोहन वर्मा
भगवानदीन	रामचंद्र वर्मा



संपादकमंडल

संपूर्णानंद	कमलापति त्रिपाठी
मंगलदेव शास्त्री	धीरेंद्र वर्मा
कृष्णदेवप्रसाद गौड़	रामधन शर्मा
हरवंशलाल शर्मा	शिवनंदनलाल दर
शिवप्रसाद मिश्र	सुधाकर पांडेय
भोलाशंकर व्यास	करुणापति त्रिपाठी
(सह० संयो०)	(संयोजक, संपादकमंडल)

सहायक संपादक

त्रिलोचन शास्त्री	विश्वनाथ त्रिपाठी

नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी

हिंदी शब्दसागर के संपादन का संपूर्ण तथा इसके प्रकाशन का पचहत्तर प्रतिशत व्ययभार भारत सरकार के शिक्षामंत्रालय ने वहन किया ।

परिवर्धित, संशोधित, नवीन संस्करण **(दूसरी बार)**

शकाब्द १९०७ सं० २०४२ वि० १९८६ ई०

मूल्य १००) ; संपूर्ण ग्यारह भागों का-

शंभुनाथ वाजपेयी द्वारा
नागरी मुद्रण, वाराणसी
में मुद्रित

प्रथम संस्करण की भूमिका

किसी जाति के जीवन में उसके द्वारा प्रयुक्त शब्दों का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। आवश्यकता तथा स्थिति के अनुसार इन प्रयुक्त शब्दों का आगम अथवा लोप तथा वाच्य, लक्ष्य एवं द्योत्य भावों में परिवर्तन होता रहता है। अतएव और सामग्री के अभाव में इन शब्दों के द्वारा किसी जाति के जीवन की भिन्न भिन्न स्थितियों का इतिहास उपस्थित किया जा सकता है। इसी आधार पर आर्यजाति का प्राचीनतम इतिहास प्रस्तुत किया गया है और ज्यों ज्यों सामग्री उपलब्ध होती जा रही है, त्यों त्यों यह इतिहास ठीक किया जा रहा है। इस अवस्था में यह बात स्पष्ट समझ में आ सकती है कि जातीय जीवन में शब्दों का स्थान कितने महत्व का है। जातीय साहित्य को रक्षित करने तथा उसके भविष्य को सुचारु और समुज्वल बनाने के अतिरिक्त वह किसी भाषा की संपन्नता या शब्दबहुलता का सूचक और उस भाषा के साहित्य का अध्ययन करनेवालों का सबसे बड़ा सहायक भी होता है। विशेषत: अन्य भाषा भाषियों और विदेशियों के लिये तो उसका और भी अधिक उपयोग होता है। इन सब दृष्टियों से शब्दकोश किसी भाषा के साहित्य की मूल्यवान् संपत्ति और उस भाषा के भंडार का सबसे बड़ा निदर्शक होता है।

जब अँगरेजों का भारतवर्ष के साथ घनिष्ठ संबंध स्थापित होने लगा, तब नवागंतुक अँगरेजों को इस देश की भाषाएँ जानने की विशेष आवश्यकता पड़ने लगी; और फलत: वे देशभाषाओं के कोश, अपने सुभीते के लिये बनाने लगे। इस प्रकार इस देश में आधुनिक ढंग के और अकारादि क्रम से बननेवाले शब्दकोशों की रचना का सूत्रपात हुआ। कदाचित् देशभाषाओं में से सबसे पहले हिंदी (जिसे उस समय अँगरेज लोग हिंदुस्तानी कहा करते थे) के दो शब्दकोष श्रीयुक्त जे० फर्गुसन नामक एक सज्जन ने प्रस्तुत किए थे, जो रोमन अक्षरों में सन् १७७३ में लंदन में छपे थे। इनमें से एक 'हिंदुस्तानी अँगरेजी' का और दूसरा 'अँगरेजी हिंदुस्तानी' का था। इसी प्रकार का एक कोश सन् १७९० में मदरास में छपा था जो श्रीयुक्त हेनरी हेरिस के प्रयत्न का फल था। सन १८०८ में जोसफ टेलर और विलियम हंटर के संमिलित उद्योग से कलकत्ते में एक 'हिंदुस्तानी अँगरेजी कोश' प्रकाशित हुआ था। इसके उपरांत १८१० में एडिनबरा में श्रीयुक्त जे० बी० गिलक्राइस्ट का और सन् १८१७ में लंदन में श्रीयुक्त जे० शेक्सपियर का एक 'अँगरेजी हिंदुस्तानी' और एक 'हिंदुस्तानी अँगरेजी' कोश निकला था, जिसके पीछे से तीन संस्करण हुए थे। इनमें से अंतिम संस्करण बहुत कुछ परिवर्धित था। परंतु ये सभी कोश रोमन अक्षरों में थे और इनका व्यवहार अँगरेज या अँगरेजी पढ़े लिखे लोग ही कर सकते थे। हिंदीभाषा या देवनागरी अक्षरों में जो सबसे पहला कोश प्रकाशित हुआ था, वह पादरी एम० टी० एडम ने तैयार किया था। इसका नाम 'हिंदी कोश' था और यह सन् १८२९ में कलकत्ते से प्रकाशित हुआ था। तब से ऐसे शब्दकोश निरंतर बनने लगे, जिनमें या तो हिंदी शब्दों के अर्थ अंगरेजी में और या अँगरेजी शब्दों के अर्थ हिंदी में होते थे। इन कोशकारों में श्रीयुक्त एम० डब्ल्यू० फैलन का नाम विशेष रूप से उल्लेख करने योग्य है, क्योंकि इन्होंने साधारण बोलचाल के छोटे बड़े कई कोश बनाने के अतिरिक्त, कानून और व्यापार आदि के पारिभाषिक शब्दों के भी कुछ कोश बनाए थे। परंतु इनका जो 'हिंदुस्तानी अँगरेजी कोश' था उसमें यद्यपि अधिकांश शब्द हिंदी के ही थे, फिर भी अरबी फारसी के शब्दों की कमी नहीं थी; और कदाचित् फारसी के अदालती लिपि होने के कारण ही उसमें शब्द फारसी लिपि में, अर्थ अँगरेजी में और उदाहरण रोमन में दिए गए थे। सन् १८८४ में लंदन में श्रीयुक्त जे० टी० प्लाट्स का जो कोश छपा था, वह भी बहुत अच्छा था और उसमें भी हिंदी तथा उर्दू शब्दों के अर्थ अँगरेजी भाषा मे दिए गए थे। सन् १८७३ में मु० राधेलालजी का शब्दकोश गया से प्रकाशित हुआ था जिसके लिये सरकार से उन्हें यथेष्ट पुरस्कार भी मिला था। श्रीयुक्त पादरी जे० डी० बेट ने पहले सन् १८७५ में काशी से एक हिंदी कोश प्रकाशित किया था, जिसमें हिंदी के शब्दों के अर्थ अँगरेजी में दिए गए थे। इसी समय के लगभग काशी से कलकत्ता स्कूल बुक सोसायटी का हिंदी कोश प्रकाशित हुआ था, जिसमें हिंदी के शब्दों के अर्थ हिंदी में ही थे। बेट के कोश के भी पीछे से दो और संशोधित तथा परिवर्धित संस्करण प्रकाशित हुए थे। सन् १८७५ में ही पेरिस में एक कोश का कुछ अंश प्रकाशित हुआ था, जिसमें हिंदी या हिंदुस्तानी शब्दों के अर्थ फ्रांसीसी भाषा में दिए गए थे। सन् १८८० में लखनऊ से सैयद जामिन अली जलाल का 'गुलशने फैज' नामक एक कोश प्रकाशित हुआ था, जो था तो फारसी लिपि में ही, परंतु शब्द उसमें अधिकांश हिंदी के थे। सन् १८८७ में तीन महत्व के कोश प्रकाशित हुए थे, जिनमें सबसे अधिक महत्व का कोश मिरजा शाहजादा कैसरबख्त का बनाया हुआ था। इसका नाम 'कैसर कोश' था और यह इलाहाबाद से प्रकाशित हुआ था (दूसरा कोश श्रीयुक्त मधुसूदन पंडित का बनाया हुआ था जिसका नाम 'मधुसूदन निघंटु' था और जो लाहौर से प्रकाशित हुआ था। तीसरा-कोश श्रीयुक्त मुन्नीलाल का था जो दानापुर में छपा था और जिसमें अँगरेजी शब्दों के अर्थ हिंदी में दिए गए थे। सन् १८८१ और १८९५ के बीच में पादरी टी० केपन के बनाए हुए कई कोश प्रकाशित हुए थे, जो प्राय: स्कूलों के विद्यार्थियों के काम के थे। १८९२ में बाँकीपुर से श्रीयुक्त बाबा बैजूदास का 'विवेक' कोश निकला था। इसके उपरांत 'गौरीनागरी कोश', 'हिंदीकोश', 'मंगलकोश' 'श्रीधरकोश' आदि छोटे छोटे और भी कई कोश निकले थे, जिनमें हिंदी शब्दों के अर्थ हिंदी में ही दिए गए थे। इनके अतिरिक्त कहावतों और मुहावरों आदि के जो कोश निकले थे, वे अलग हैं।

इस बीसवीं शताब्दी के आरंभ से ही मानों हिंदी के भाग्य ने पलटा खाया और हिंदी का प्रचार धीरे धीरे बढ़ने लगा। उसमें निकलनेवाले सामयिक पत्रों तथा पुस्तकों की संख्या भी बढ़ने लगी और पढ़नेवालों की भी संख्या में उत्तरोत्तर वृद्धि होने लगी। तात्पर्य यह कि दिन पर दिन लोग हिंदी साहित्य की ओर प्रवृत्त होने लगे और हिंदी पुस्तकें चाव से पढ़ने लगे। लोगों में प्राचीन काव्यों आदि को

पढ़ने की उत्कंठा बढ़ने लगी। उस समय हिंदी के हितैषियों को हिंदी-भाषा का एक ऐसा बृहत् कोश तैयार करने की आवश्यकता जान पड़ने लगी, जिसमें हिंदी के पुराने पद्य और नए गद्य दोनों में व्यवहृत होनेवाले समस्त शब्दों का समावेश हो; क्योंकि ऐसे कोश के बिना आगे चलकर हिंदी के प्रचार में कुछ बाधा पहुँचने की आशंका थी।

काशी नागरीप्रचारिणी सभा ने जितने बड़े बड़े और उपयोगी काम किए हैं, जिस प्रकार प्रायः उन सबका सूत्रपात या विचार सभा के जन्म के समय, उसके प्रथम वर्ष में हुआ था, उसी प्रकार हिंदी का बृहत् कोश बनाने का सूत्रपात नहीं तो कम से कम विचार भी उसी प्रथम वर्ष में हुआ था। हिंदी में सर्वांगपूर्ण और बृहत् कोश का अभाव सभा के संचालकों को १८९३ ई० में ही खटका था और उन्होंने एक उत्तम कोश बनाने के विचार से आर्थिक सहायता के लिये दरभंगानरेश महाराजा सर लक्ष्मीश्वर सिंह जी से प्रार्थना की थी। महाराजा ने भी शिशु सभा के उद्देश्य की सराहना करते हुए १२५) उसकी सहायता के लिये भेजे थे और उसके साथ सहानुभूति प्रकट की थी। इसके अतिरिक्त आपने कोश का कार्य आरंभ करने के लिये भी सभा से कहा था और यह भी आशा दिलाई थी कि आवश्यकता पड़ने पर वे सभा को और भी आर्थिक सहायता देंगे। इस प्रकार सभा ने नौ सज्जनों की एक उपसमिति इस संबंध में विचार करने के लिये नियुक्त की; पर उपसमिति ने निश्चय किया कि इस कार्य के लिये बड़े बड़े विद्वानों की सहायता की आवश्यकता होगी और इसके लिये कम से कम दो वर्ष तक २५०) मासिक का व्यय होगा। सभा ने इस संबंध में फिर श्रीमान् दरभंगानरेश को लिखा था, परंतु अनेक कारणों से उस समय कोश का कार्य आरंभ नहीं हो सका। अतः सभा ने निश्चय किया कि जबतक कोश के लिये यथेष्ट धन एकत्र न हो तथा दूसरे आवश्यक प्रबंध न हो जाँय तबतक उसके लिये आवश्यक सामग्री ही एकत्र की जाय। तदनुसार उसने सामग्री एकत्र करने का कार्य भी आरंभ कर दिया।

सन् १९०४ में सभा को पता लगा कि कलकत्ते की हिंदी साहित्य सभा ने हिंदी भाषा का एक बहुत बड़ा कोश बनाना निश्चित किया है और उसने इस संबंध में कुछ कार्य भी आरंभ कर दिया है। सभा का उद्देश्य केवल यही था कि हिंदी में एक बहुत बड़ा कोश तैयार हो जाय, स्वयं उसका श्रेय प्राप्त करने का उसका कोई विचार नहीं था। अतः सभा ने जब देखा कि कलकत्ते की साहित्य सभा कोश बनवाने का प्रयत्न कर रही है, तब उसने बहुत ही प्रसन्नतापूर्वक निश्चय किया कि अपनी सारी संचित सामग्री साहित्य सभा को दे दी जाय और यथासाध्य सब प्रकार से उसकी सहायता की जाय। प्रायः तीन वर्ष तक सभा इसी आसरे में थी कि साहित्य सभा कोश तैयार करे। परंतु कोश तैयार करने का जो यश स्वयं प्राप्त करने की उसकी कोई विशेष इच्छा न थी, विधाता वह यश उसी को देना चाहता था। जब सभा ने देखा कि साहित्य-सभा की ओर से कोश की तैयारी का कोई प्रबंध नहीं हो रहा है, तब उसने इस काम को स्वयं अपने ही हाथ में लेना निश्चित किया। जब सभा के संचालकों ने आपस में इस विषय की सब बातें पक्की कर लीं, तब २३ अगस्त, सन् १९०७ को सभा के परम हितैषी और उत्साही सदस्य श्रीयुक्त रेवरेंड ई० ग्रीव्स ने सभा की प्रबंधकारिणी समिति में यह प्रस्ताव उपस्थित किया कि हिंदी के एक बृहत् और सर्वांगपूर्ण कोश बनाने का भार सभा अपने ऊपर ले; और साथ ही यह भी बतलाया कि यह कार्य किस प्रणाली से किया जाय। सभा ने मि० ग्रीव्स के प्रस्ताव पर विचार करके इस विषय में उचित परामर्श देने के लिये निम्नलिखित सज्जनों की एक उपसमिति नियत कर दी—रेवरेंड ई० ग्रीव्स, महामहोपाध्याय पंडित सुधाकर द्विवेदी, पंडित रामनारायण मिश्र बी० ए०, बाबू गोविंददास, बाबू इंद्रनारायण सिंह एम० ए०, छोटेलाल, मुंशी संकटाप्रसाद, पंडित माधवप्रसाद पाठक और मैं।

इस उपसमिति के कई अधिवेशन हुए जिनमें सब बातों पर पूरा विचार किया गया। अंत में ९ नवंबर, १९०७ को इस उपसमिति ने अपनी रिपोर्ट दी, जिसमें सभा को परामर्श दिया गया कि सभा हिंदी-भाषा के दो बड़े कोश बनवावे जिनमें से एक में तो हिंदी शब्दों के अर्थ हिंदी में ही रहें और दूसरे में हिंदी शब्दों के अर्थ अँगरेजी में हों। आजकल हिंदी भाषा में गद्य तथा पद्य में जितने शब्द प्रचलित हैं उन सबका इन कोशों में समावेश हो, उनकी व्युत्पत्ति दी जाय और उनके भिन्न भिन्न अर्थ यथासाध्य उदाहरणों सहित दिए जायँ। उपसमिति ने हिंदी भाषा के गद्य तथा पद्य के प्रायः दो सौ अच्छे अच्छे ग्रंथों की एक सूची भी तैयार कर दी थी और कहा था कि इनमें से सब शब्दों का अर्थसहित संग्रह कर लिया जाय; कोश की तैयारी का प्रबंध करने के लिये उसकी एक स्थायी समिति बना दी जाय और कोश के संपादन तथा उसकी छपाई आदि का सब प्रबंध करने के लिये एक संपादक नियुक्त कर दिया जाय।

समिति ने यह भी निश्चित किया कि कोश के संबंध में आवश्यक प्रबंध करने के लिये महामहोपाध्याय पंडित सुधाकर द्विवेदी, लाला छोटेलाल, रेवरेंड ई० ग्रीव्स, बाबू इंद्रनारायण सिंह एम० ए०, बाबू गोविंददास, पंडित माधवप्रसाद पाठक और पंडित रामनारायण मिश्र बी० ए० की प्रबंधकर्तृ समिति बना दी जाय, और उसके मंत्रित्व का भार मुझे दिया जाय। समिति का प्रस्ताव था कि उस प्रबंधकर्तृ समिति को अधिकार दिया जाय कि वह आवश्यकतानुसार अन्य सज्जनों को भी अपने में संमिलित कर ले। इस कोश के संबंध में प्रबंधकर्तृ समिति को संमति और सहायता देने के लिये एक और बड़ी समिति बनाई जाने की संमति भी दी गई जिसमें हिंदी के समस्त बड़े बड़े विद्वान् और प्रेमी संमिलित हों। उस समय यह अनुमान किया था कि इस काम में लगभग ३००००) का व्यय होगा जिसके लिये सभा को सरकार तथा राजा महाराजाओं से प्रार्थना करने का परामर्श दिया गया।

सभा की प्रबंधकारिणी समिति ने उपसमिति की ये बातें मान लीं और तदनुसार कार्य भी आरंभ कर दिया। शब्दसंग्रह के लिये, उपसमिति ने जो पुस्तकें बतलाई थीं, उनमें से शब्दसंग्रह का कार्य भी आरंभ हो गया और धन के लिये अपील भी हुई, जिससे पहले ही वर्ष २३३२) के वचन मिले, जिसमें से १९०२) नगद भी सभा को प्राप्त हो गए। इसमें से सबसे पहले १०००) स्वर्गीय माननीय सर सुंदरलाल सी० आई० ई० ने भेजे थे। सत्य तो यह है कि यदि प्रार्थना करते ही उक्त महानुभाव तुरंत १०००) न भेज देते तो सभा का कभी इतना उत्साह न बढ़ता और बहुत संभव था कि कोश का काम और कुछ समय के लिये टल जाता। परंतु सर सुंदरलाल से १०००) पाते ही सभा का उत्साह बहुत अधिक बढ़ गया और उसने और भी तत्परता से कार्य करना आरंभ किया। उसी समय श्रीमान् महाराज ग्वालियर ने भी १०००) देने

को वचन दिया। इसके अतिरिक्त और भी अनेक छोटी मोटी रकमों के वचन मिले । तात्पर्य यह कि सभा को पूर्ण विश्वास हो गया कि अब कोश तैयार हो जायेगा।

इस कोश के सहायतार्थ सभा को समय समय पर निम्नलिखित गवर्नमेंटों, महाराजों तथा अन्य सज्जनों से सहायता प्राप्त हुई—

संयुक्त प्रदेश की गवर्नमेंट	१३०००)
भारत गवर्नमेंट	५०००)
मध्यप्रदेश की गवर्नमेंट	१०००)
श्रीमान् महाराज साहब नेपाल	२०००)
,, स्वर्गवासी महाराज साहब रीवाँ	१८००)
,, महाराज साहब छत्रपुर	१५००)
,, महाराज साहब बीकानेर	१५००)
,, महाराजाधिराज बर्दवान	१५००)
,, महाराज साहब अलवर	१०००)
,, स्वर्गवासी महाराज साहब ग्वालियर	१०००)
,, स्वर्गवासी महाराजा साहब काश्मीर	१०००)
,,महाराज साहब काशी	१०००)
डाक्टर सर सुंदरलाल	१०००)
स्वर्गवासी राजा साहब भिनगा	१०००)
कुँवर राजेंद्रसिंह	१०००)
श्रीमान् महाराज साहब भावनगर	५००)
,, महाराज साहब इंदौर	५००)
,, स्वर्गवासी राजा साहब गिद्धौर	५००)
डाक्टर सर जार्ज ग्रियर्सन	१५०)

इनके अतिरिक्त और बहुत से महानुभावों से १००) अथवा उससे कम की सहायता प्राप्त हुई।

शब्दसंग्रह करने के लिये जो पुस्तकें चुनी गई थीं, उन पुस्तकों को सभासदों में बाँटकर उनसे शब्दसंग्रह कराने का सभा का विचार था। बहुत से उत्साही सभासदों ने पुस्तकें तो मँगवा लीं पर कार्य कुछ भी न किया। बहुतों ने तो महीनों पुस्तकें अपने पास रखकर अंत में ज्यों की त्यों लौटा दीं और कुछ लोगों ने पुस्तकें भी हजम कर लीं। थोड़े से लोगों ने शब्दसंग्रह का काम किया था, पर उनमें भी संतोषजनक काम इने गिने सज्जनों का ही था। इसमें व्यर्थ बहुत सा समय नष्ट हो गया, पर धन की यथेष्ट सहायता सभा को मिलती जाती थी, अतः दूसरे वर्ष सभा ने विवश होकर निश्चित किया कि शब्दसंग्रह का काम वेतन देकर कुछ लोगों से कराया जाय। तदनुसार प्रायः १६-१७ आदमी शब्दसंग्रह के काम के लिये नियुक्त कर दिए गए और एक निश्चित प्रणाली पर शब्दसंग्रह का काम होने लगा।

आरंभ में कोश के सहायक संपादक पंडित बालकृष्ण भट्ट, पंडित रामचंद्र शुक्ल, लाला भगवानदीन और बाबू अमीरसिंह के अतिरिक्त बाबू जगन्मोहन वर्मा, बाबू रामचंद्र वर्मा, पंडित वासुदेव मिश्र, पंडित रामवचनेश मिश्र, पंडित ब्रजभूषण ओझा, श्रीयुत वेणी कवि आदि अनेक सज्जन भी इस शब्दसंग्रह के काम में संमिलित थे। शब्दसंग्रह के लिये सभा केवल पुस्तकों पर ही निर्भर नहीं रही। कोश में पुस्तकों के शब्दों के अतिरिक्त और भी अनेक ऐसे शब्दों की आवश्यकता थी जो नित्य की बोलचाल के, पारिभाषिक अथवा ऐसे विषयों के शब्द थे जिनपर हिंदी में पुस्तकें नहीं थीं। अतः सभा ने मुंशी रामलगनलाल नामक एक सज्जन को शहर में घूम घूमकर अहीरों, कहारों, लोहारों, सोनारों, चमारों, तमोलियों, तेलियों, जोलाहों, भालू और बंदर नचानेवालों, कूचेबंदों, धुनियों, गाड़ीवानों, कुश्तीबाजों, कसेरों, राजगीरों, छापेखानेवालों, महाजनों, बजाजों, दलालों, जुआरियों, महावतों, पंसारियों, साईसों आदि के पारिभाषिक शब्द तथा गहनों, कपड़ों, अनाजों, पेड़ों, बरतनों, देवताओं, गृहस्थी की चीजों, पकवानों, मिठाइयों, विवाह आदि की रस्मों, तरकारियों, सागों, फलों, घासों, खेलों और उनके साधनों, आदि आदि के नाम एकत्र करने के लिये नियुक्त किया। पुस्तकों के शब्दसंग्रह के साथ साथ यह काम भी प्रायः दो वर्ष तक चलता रहा। इस संबंध में यह कह देना आवश्यक जान पड़ता है कि मुंशी रामलगनलाल का इस संबंध का शब्दसंग्रह बहुत संतोषजनक था। इसके अतिरिक्त सभा ने बाबू रामचंद्र वर्मा को समस्त भारत के पशुओं, पक्षियों, मछलियों, फूलों और पेड़ों आदि के नाम एकत्र करने के लिये कलकत्ते भेजा था जिन्होंने प्रायः ढाई मास तक वहाँ रहकर इंपीरियल लाइब्रेरी से 'फ्लोरा और फॉना आफ बृटिश इंडिया सीरिज' की समस्त पुस्तकों में से नाम और विवरण आदि एकत्र किए थे। हिंदी भाषा में व्यवहृत होनेवाले अँगरेजी, फारसी, अरबी तथा तुर्की आदि भाषाओं के शब्दों, पौराणिक तथा ऐतिहासिक व्यक्तियों की जीवनियों, प्राचीन स्थानों तथा कहावतों आदि के संग्रह का भी बहुत अच्छा प्रबंध किया गया था। पुरानी हिंदी तथा डिंगल और बुंदेलखंडी आदि भाषाओं के शब्दों का भी अच्छा संग्रह किया गया था। इसमें सभा का मुख्य उद्देश्य यह था कि जहाँ तक हो सके, कोश में हिंदी भाषा में व्यवहृत होने या हो सकनेवाले अधिक से अधिक शब्द आ जायँ और यथासाध्य कोई आवश्यक बात या शब्द छूटने न पावे। इसी विचार से सभा ने अँगरेजी, फारसी, अरबी और तुर्की आदि भाषाओं के शब्दों, पौराणिक तथा ऐतिहासिक व्यक्तियों और स्थानों के नामों आदि की एक बड़ी सूची भी प्रकाशित कराके घटाने बढ़ाने के लिये हिंदी के बड़े बड़े विद्वानों के पास भेजी थी।

दो ही वर्ष में सभा को अनेक बड़े बड़े राजा महाराजाओं तथा प्रांतीय और भारतीय सरकारों से कोश के सहायतार्थ बड़ी बड़ी रकमें भी मिलीं, जिससे सभा तथा हिंदीप्रेमियों को कोश के तैयार होने में किसी प्रकार का संदेह नहीं रह गया और सभा बड़े उत्साह से कोश का काम कराने लगी। आरंभ में सभा ने यह निश्चित नहीं किया था कि कोश का संपादक कौन बनाया जाय, पर दूसरे वर्ष सभा ने मुझे कोश का प्रधान संपादक बनाना निश्चित किया। मैंने भी सभा की आज्ञा शिरोधार्य करके यह भार अपने ऊपर ले लिया।

सन् १९१० के आरंभ में शब्दसंग्रह का कार्य समाप्त हो गया। जिन स्लिपों पर शब्द लिखे गए थे, उनकी संख्या अनुमानतः १० लाख थी, जिनमें से आशा की गई थी कि प्रायः १ लाख शब्द निकलेंगे, और प्रायः यही बात अंत में हुई भी। जब शब्दसंग्रह का काम हो चुका, तब स्लिपें अक्षरक्रम से लगाई जाने लगीं। पहले वे स्वरों और व्यंजनों के विचार से अलग अलग की गईं और तब स्वरों के प्रत्येक अक्षर तथा व्यंजनों के प्रत्येक वर्ग की स्लिपें अलग अलग की गईं। जब स्वरों की स्लिपें अक्षरक्रम से लग गईं, तब व्यंजनों के वर्गों के अक्षर अलग अलग किए गए और प्रत्येक अक्षर की स्लिपें क्रम से लगाई गईं। यह कार्य प्रायः एक वर्ष तक चलता रहा।

जिस समय कोश के संपादन का भार मुझे दिया गया था, उसी

समय सभा ने यह निश्चित कर दिया था कि पंडित बालकृष्ण भट्ट, पंडित रामचंद्र शुक्ल, लाला भगवानदीन तथा बाबू अमीर सिंह कोश के सहायक संपादक बनाए जायँ और ये लोग कोश के संपादन में मेरी सहायता करें। अक्टूबर, १९०९ में मेरी नियुक्ति काश्मीर राज्य में हो गई जिसके कारण मुझे काशी छोड़कर काश्मीर जाना आवश्यक हुआ। उस समय मैंने सभा से प्रार्थना की कि इतनी दूर से कोश का संपादन सुचारु रूप से न हो सकेगा। अतः सभा मेरे स्थान पर किसी और सज्जन को कोश का संपादक नियुक्त करे। परंतु सभा ने यही निश्चय किया कि कोश का कार्यालय भी मेरे साथ आगे चलकर काश्मीर भेज दिया जाय और वहीं कोश का संपादन हो। उस समय तक स्लिपें अक्षरक्रम से लग चुकी थीं और संपादन का कार्य अच्छी तरह आरंभ हो सकता था। अतः १५ मार्च, १९१० को काशी में कोश का कार्यालय बंद कर दिया गया और निश्चय हुआ कि चारों सहायक संपादक जंबू पहुँचकर १ अप्रैल, १९१० से वहीं कोश के संपादन का कार्य आरंभ करें। तदनुसार पंडित रामचंद्र शुक्ल और बाबू अमीर सिंह तो यथासमय जंबू पहुँच गए, पर पंडित बालकृष्ण भट्ट तथा लाला भगवानदीन ने एक एक मास का समय माँगा। दुर्भाग्यवश बाबू अमीर सिंह के जंबू पहुँचने के चार पाँच दिन बाद ही काशी में उनकी स्त्री का देहांत हो गया, जिससे उन्हें थोड़े दिनों के लिये फिर काशी लौट आना पड़ा। उस बीच में अकेले पंडित रामचंद्र शुक्ल ही संपादन कार्य करते रहे। मई के आरंभ में पंडित बालकृष्ण भट्ट और बाबू अमीर सिंह जंबू पहुँचे और संपादनकार्य करने लगे। पर लाला भगवानदीन कई बार प्रतिज्ञा करके भी जंबू न पहुँच सके; अतः सहायक संपादक के पद से उनका संबंध छूट गया। शेष तीनों सहायक संपादक महाशय उत्तमतापूर्वक संपादन कार्य करते रहे। कोश के विषय में संमति लेने के लिये आरंभ में जो कोश कमेटी बनी थी, वह १ मई, १९१० को अनावश्यक समझकर तोड़ दी गई।

कोश का संपादन आरंभ हो चुका था और शीघ्र ही उसकी छपाई का प्रबंध करना आवश्यक था, अतः सभा ने कई बड़े बड़े प्रेसों से कोश की छपाई के नमूने मँगाए। अंत में प्रयाग के सुप्रसिद्ध इंडियन प्रेस को कोश की छपाई का भार दिया गया। इस कार्य के लिये आरंभिक प्रबंध करने के लिये उक्त प्रेस को २०००) पेशगी दिए गए और लिखापढ़ी करके छपाई के संबंध में सब बातें तै कर ली गईं।

अप्रैल, १९१० से सितंबर, १९१० तक तो जंबू में कोश के संपादन का कार्य बहुत उत्तमतापूर्वक और निर्विघ्न होता रहा; पर पीछे इसमें एक विघ्न पड़ा। पंडित बालकृष्ण भट्ट जंबू में दुर्घटनावश सीढ़ी पर से गिर पड़े और उनकी एक टाँग टूट गई, जिसके कारण अक्टूबर, १९१० में उन्हें छुट्टी लेकर प्रयाग चले आना पड़ा। नवंबर में बाबू अमीर सिंह भी बीमार हो जाने के कारण छुट्टी लेकर काशी चले आए और दो मास तक यहीं बीमार पड़े रहे। संपादन कार्य करने के लिये जंबू में फिर अकेले पंडित रामचंद्र शुक्ल बच रहे। जब अनेक प्रयत्न करने पर भी जंबू में सहायक संपादकों की संख्या पूरी न हो सकी, तब विवश होकर १५ दिसंबर, १९१० को कोश का कार्यालय जंबू से काशी भेज दिया गया। कोश विभाग के काशी आ जाने पर जनवरी, १९११ से बाबू अमीर सिंह भी स्वस्थ होकर उसमें संमिलित हो गए और बाबू जगन्मोहन वर्मा भी सहायक संपादक के पदपर नियुक्त कर दिए गए। दूसरे मास फरवरी में बाबू गंगाप्रसाद गुप्त कोश के सहायक संपादक बनाए गए। जंबू में तो पहले सब सहायक संपादक अलग अलग शब्दों का संपादन करते थे और तब सब लोग एक साथ मिलकर संपादित शब्दों को दोहराते थे। परंतु बाबू गंगाप्रसाद गुप्त के आ जाने पर दो दो सहायक संपादक अलग अलग मिलकर संपादन करने लगे। नवंबर, १९११ में जब बाबू गंगाप्रसाद गुप्त ने अपने पद से इस्तीफा दे दिया, तब पंडित बालकृष्ण भट्ट पुनः प्रयाग से बुला लिए गए और जनवरी, १९१२ में लाला भगवानदीन भी पुनः इस विभाग में संमिलित कर लिए गए तथा मार्च, १९१२ से सब सहायक संपादक संपादन के कार्य के लिये तीन भागों में विभक्त कर दिए गए। इस प्रकार कार्य की गति पहले की अपेक्षा बढ़ तो गई, पर फिर भी उसमें उतनी वृद्धि नहीं हुई जितनी वांछित थी। जब मई, सन् १९१० में 'अ' 'आ' 'इ', और 'ई' का संपादन हो चुका, तब उसकी कापी प्रेस में भेज दी गई और उसकी छपाई में हाथ लगा दिया गया। उस समय तक मैं भी काश्मीर से लौटकर काशी आ गया था, जिससे कार्यनिरीक्षण और व्यवस्था का अधिक सुभीता हो गया।

सन् १९१३ में संपादनशैली में कुछ और परिवर्तन किया गया। पंडित बालकृष्ण भट्ट, बाबू जगन्मोहन वर्मा, लाला भगवानदीन तथा बाबू अमीर सिंह अलग अलग संपादन कार्य पर नियुक्त कर दिए गए। सब संपादकों की लेखशैली आदि एक ही प्रकार की नहीं हो सकती थी, अतः सबकी संपादित स्लिपों को दोहराकर एक मेल करने के कार्य पर पंडित रामचंद्र शुक्ल नियुक्त किए गए और उनकी सहायता के लिये बाबू रामचंद्र वर्मा रखे गए। उस समय यह व्यवस्था थी कि दिनभर तो सब सहायक संपादक अलग अलग संपादन कार्य किया करते थे और पंडित रामचंद्र शुक्ल पहले की संपादित की हुई स्लिपों को दोहराया करते थे, और संध्या को चार बजे से पाँच बजे तक सब संपादक मिलकर एक साथ बैठते थे और पंडित रामचंद्र शुक्ल की दुहराई हुई स्लिपों को सुनते तथा आवश्यकता पड़ने पर उसमें परिवर्तन आदि करते थे। इस प्रकार कार्य भी अधिक होता था और प्रत्येक शब्द के संबंध में प्रत्येक सहायक संपादक की संमति भी मिल जाती थी।

मई, १९१२ में छपाई का कार्य आरंभ हुआ था और एक ही वर्ष के अंदर ९६—९६ पृष्ठों की चार संख्याएँ छपकर प्रकाशित हो गईं, जिनमें ८६९६ शब्द थे। सर्वसाधारण में इन प्रकाशित संख्याओं का बहुत अच्छा आदर हुआ। सर जार्ज ग्रियर्सन, डाक्टर रुडाल्फ हार्नेली प्रोफेसर सिलवान लेवी, रेवरेंड ई० ग्रीव्स, पंडित मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या, महामहोपाध्याय डाक्टर गंगानाथ झा, पंडित महावीरप्रसाद द्विवेदी, मिस्टर रमेशचंद्र दत्त, पंडित श्यामबिहारी मिश्र आदि अनेक बड़े बड़े विद्वानों, पंडितों तथा हिंदीप्रेमियों ने प्रकाशित अंकों की बहुत कुछ प्रशंसा की और अँगरेजी दैनिक लीडर तथा हिंदी साप्ताहिक बंगवासी आदि समाचारपत्रों ने भी समय समय पर अच्छी प्रशंसात्मक आलोचना की। ग्राहकसंख्या भी दिन पर दिन बहुत ही संतोषजनक रूप में बढ़ने लगी।

इस अवसर पर एक बात और कह देना आवश्यक जान पड़ता है। जिस समय मैं पहले काश्मीर जाने लगा था, उस समय पहले यही निश्चय हुआ था कि कोशविभाग काशी में ही रहे और मेरी

अनुपस्थिति में स्वर्गवासी पंडित केशवदेव शास्त्री कोशविभाग का निरीक्षण करें। परंतु मेरी अनुपस्थिति में पंडित केशवदेव शास्त्री तथा कोश के सहायक संपादकों में कुछ अनबन हो गई, जिसने आगे चलकर और भी विलक्षण रूप धारण किया। उस समय संपादक लोग प्रबंधकारिणी समिति के अनेक सदस्यों तथा कर्मचारियों से बहुत रुष्ट और असंतुष्ट हो गए थे। कई मास तक यह झगड़ा भीषण रूप से चलता रहा और अनेक समाचारपत्रों में उसके संबंध में कड़ी टिप्पणियाँ निकलती रहीं। सभा के कुछ सदस्य तथा बाहरी सज्जन कोश की व्यवस्था और कार्यप्रणाली आदि पर भी अनेक प्रकार के आक्षेप करने लगे, और कुछ सज्जनों ने तो छिपे छिपे ही यहाँ तक उद्योग किया कि अबतक कोश में जो व्यय हुआ है, वह सब सभा को देकर कोश की सारी सामग्री उससे ले ली जाय और स्वतंत्र रूप से उसके संपादन तथा प्रकाशन आदि की व्यवस्था की जाय। यह विचार यहाँ तक पक्का हो गया था कि एक स्वनामधन्य हिंदी विद्वान् से संपादक होने के लिये पत्रव्यवहार तक किया था। साथ ही मुझे उस काम से विरत करने के लिये मुझपर प्रत्यक्ष और प्रच्छन्न रीति से अनेक प्रकार के अनुचित आक्षेप तथा दोषारोपण किए गए थे। इस आंदोलन में व्यक्तिगत भाव अधिक था। पर थोड़े ही दिनों में यह अप्रिय और हानिकारक आंदोलन ठंढा पड़ गया और फिर सब कार्य सुचारु रूप से पूर्ववत् चलने लगा। 'श्रेयांसि बहुविघ्नानि' के अनुसार इस बड़े काम में भी समय समय पर अनेक विघ्न उपस्थित हुए पर ईश्वर की कृपा से उनके कारण इस कार्य में कुछ हानि नहीं पहुँची।

सन् १९१३ में कोश का काम अच्छी तरह चल निकला। वह बराबर नियमित रूप से संपादित होने लगा और संख्याएँ बराबर छपकर प्रकाशित होने लगीं। बीच बीच में आवश्यकतानुसार संपादनकार्य में कुछ परिवर्तन होता रहा। इसी बीच में पंडित बालकृष्ण भट्ट, जो इस वृद्धावस्था में भी बड़े उत्साह के साथ कोशसंपादन के कार्य में लगे हुए थे, अपनी दिन पर दिन बढ़ती हुई अशक्तता के कारण अभाग्यवश नवंबर, १९१३ में कोश के कार्य से अलग होकर प्रयाग चले गए और वहीं थोड़े दिनों बाद उनका देहांत हो गया। उस समय बाबू रामचंद्र वर्मा उनके स्थान पर कोश के सहायक बना दिए गए और कार्यक्रम में फिर कुछ परिवर्तन की आवश्यकता पड़ी। निश्चित हुआ कि बाबू जगन्मोहन वर्मा, लाला भगवानदीन तथा बाबू अमीरसिंह आगे के शब्दों का अलग अलग संपादन करें और पंडित रामचंद्र शुक्ल तथा बाबू रामचंद्र वर्मा संपादित किए हुए शब्दों को अलग अलग दोहराकर एक मेल करें। इस क्रम में यह सुभीता हुआ कि आगे का संपादन भी अच्छी तरह होने लगा और संपादित शब्द भी ठीक तरह से दोहराए जाने लगे; और दोनों ही कार्यों की गति में भी यथेष्ट वृद्धि हो गई। इस प्रकार १९१७ तक बराबर काम चलता रहा और कोश की १५ संख्याएँ छपकर प्रकाशित हो गईं तथा ग्राहकसंख्या में बहुत कुछ वृद्धि हो गई। इस बीच में और कोई उल्लेख योग्य बात नहीं हुई।

सन् १९१८ के आरंभ में तीन सहायक संपादकों ने 'ला' तक संपादन कर डाला और दो सहायक संपादकों ने 'बि' तक के शब्द दोहरा डाले। उस समय कई महीनों से कोश की बहुत कापी तैयार रहने पर भी अनेक कारणों से उसका कोई अंक छपकर प्रकाशित न हो सका जिसके कारण आय रुकी हुई थी। कोश विभाग का व्यय बहुत अधिक था और कोश के संपादन का कार्य प्रायः समाप्ति पर था अतः कोश विभाग का व्यय कम करने की इच्छा से विचार हुआ कि अप्रैल, १९१८ से कोश का व्यय कुछ घटा दिया जाय। तदनुसार बाबू जगन्मोहन वर्मा, लाला भगवानदीन और बाबू अमीरसिंह त्यागपत्र देकर अपने पद से अलग हो गए। कोश विभाग में केवल दो सहायक संपादक--पंडित रामचंद्र शुक्ल और बाबू रामचंद्र वर्मा--तथा स्लिपों का क्रम लगानेवाले और साफ कापी लिखनेवाले एक लेखक पंडित ब्रजभूषण ओझा रह गए। इस समय आगे के शब्दों का संपादन रोक दिया गया और केवल पुराने संपादित शब्द ही दोहराए जाने लगे। पर जब आगे चलकर दोहराने योग्य स्लिपें प्रायः समाप्त हो चलीं, और आगे नए शब्दों के संपादन की आवश्यकता प्रतीत हुई तब संपादनकार्य के लिये बाबू कालिकाप्रसाद नियुक्त किए गए जो कई वर्षों तक अच्छा काम करके और अंत में त्यागपत्र देकर अन्यत्र चले गए। परंतु स्लिपों को दोहराने का कार्य पूर्ववत् प्रचलित रहा।

सन् १९२४ में कोश के संबंध में एक हानिकारक दुर्घटना हो गई थी। आरंभ में शब्दसंग्रह की जो स्लिपें तैयार हुई थीं, उनके २२ बंडल कोश कार्यालय से चोरी चले गए। उनमें 'विव्वोक' से 'शं' तक की और 'शय' से 'सही' तक की स्लिपें थीं। इसमें कुछ दोहराई हुई पुरानी स्लिपें भी थीं जो छप चुकी थीं। इन स्लिपों के निकल जाने से तो कोई विशेष हानि नहीं हुई, क्योंकि सब छप चुकी थीं। परंतु शब्दसंग्रहवाली स्लिपों के चोरी जाने से अवश्य ही बहुत बड़ी हानि हुई। इसके स्थान पर फिर कोशों आदि से शब्द एकत्र करने पड़े। यह शब्दसंग्रह अपेक्षाकृत थोड़ा और अधूरा हुआ और इसमें स्वभावतः ठेठ हिंदी या कविता आदि के उतने शब्द नहीं आ सके, जितने आने चाहिए थे, और न प्राचीन काव्यग्रंथों आदि के उदाहरण ही संमिलित हुए। फिर भी जहाँ तक हो सका, इस त्रुटि की पूर्ति करने का उद्योग किया गया और परिशिष्ट में बहुत से छूटे हुए शब्द आ भी गए हैं।

सन् १९२५ में कार्य शीघ्र समाप्त करने के लिये कोश विभाग में दो नए सहायक अस्थायी रूप से नियुक्त किए गए--एक तो कोश के भूतपूर्व संपादक बाबू जगन्मोहन वर्मा के सुपुत्र बाबू सत्यजीवन वर्मा एम० ए० और दूसरे पंडित अयोध्यानाथ शर्मा, एम० ए०। यद्यपि ये सज्जन कोश विभाग में प्रायः एक ही वर्ष रहे थे, फिर भी इनसे कोश का कार्य शीघ्र समाप्त करने में और विशेषतः व, श, ष तथा स के शब्दों के संपादन में अच्छी सहायता मिली। जब ये दोनों सज्जन सभा से संबंध त्यागकर चले गए तब संपादन कार्य के लिये श्रीयुत् पंडित वासुदेव मिश्र, जो आरंभ में भी कोशविभाग में शब्दसंग्रह का काम कर चुके थे और जो इधर बहुत दिनों तक कलकत्ते के दैनिक भारतमित्र तथा साप्ताहिक श्रीकृष्णसंदेश के संपादक रह चुके थे, कोश विभाग में सहायक संपादक के पद पर नियुक्त कर लिए गए। इनकी नियुक्ति से संपादन कार्य बहुत ही सुगम हो गया और वह बहुत शीघ्रता से अग्रसर होने लगा। अंत में इस प्रकार सन् १९२७ में कोश का संपादन आदि समाप्त हुआ।

इतने बड़े शब्दकोश में बहुत से शब्दों का अनेक कारणों से छूट जाना बहुत ही स्वाभाविक था। एक तो यों ही सब शब्दों का संग्रह करना बड़ा कठिन काम है, जिस पर एक जीवंत भाषा में नए शब्दों का आगम निरंतर होता रहता है। यदि किसी समय समस्त शब्दों का संग्रह किसी उपाय से कर भी लिया जाय और उनके अर्थ आदि भी लिख लिए जायँ, तथापि जबतक यह संग्रह छपकर प्रकाशित हो सकेगा तबतक और नए शब्द भाषा में संमिलित हो जायँगे। इस विचार से तो किसी जीवित भाषा का शब्दकोश कभी भी पूर्ण नहीं माना जा सकता। इन कठिनाइयों के अतिरिक्त यह बात भी ध्यान में रखनी चाहिए कि हिंदी भाषा के इतने बड़े कोश को तैयार करने का इतना बड़ा आयोजन यह पहला ही हुआ है। अतएव इसमें अनेक त्रुटियों का रह जाना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। फिर भी इस कोश की समाप्ति में प्रायः २० वर्ष लगे। इस बीच में समय समय पर बहुत से ऐसे नए शब्दों का पता लगता था जो शब्दसागर में नहीं मिलते थे। इसके अतिरिक्त देश की राजनीतिक प्रगति आदि के कारण बहुत से नए शब्द भी प्रचलित हो गए थे जो पहले किसी प्रकार संगृहीत ही नहीं हो सकते थे। साथ ही कुछ शब्द ऐसे भी थे जो शब्दसागर में छप तो गए थे, परंतु उनके कुछ अर्थ पीछे से मालूम हुए थे। अतः यह आवश्यक समझा गया कि इन छूटे हुए या नवप्रचलित शब्दों और छूटे हुए अर्थों का अलग संग्रह करके परिशिष्ट रूप में दे दिया जाय। तदनुसार प्रायः एक वर्ष के परिश्रम में ये शब्द और अर्थ भी प्रस्तुत करके परिशिष्ट रूप में दे दिए गए हैं। आजकल समाचारपत्रों आदि या बोलचाल में जो बहुत से राजनीतिक शब्द प्रचलित हो गए हैं, वे भी इसमें दे दिए गए हैं। सारांश यह कि इसके संपादकों ने अपनी ओर से कोई बात इस कोश को सर्वांगपूर्ण बनाने में उठा नहीं रखी है। इसमें जो दोष, अभाव या त्रुटियाँ हैं उनका ज्ञान जितना इसके संपादकों को है उतना कदाचित् दूसरे किसी को होना कठिन है, पर ये बातें असावधानी से अथवा जान बूझकर नहीं होने पाई हैं। अनुभव भी मनुष्य को बहुत कुछ सिखाता है। इसके संपादकों ने भी इस कार्य को करके बहुत कुछ सीखा है और वे अपनी कृति के अभावों से पूर्णतया अभिज्ञ हैं।

कदाचित् यहाँ पर यह कहना अनुचित न होगा कि भारतवर्ष की किसी वर्तमान देशभाषा में उसके एक बृहत् कोश के तैयार कराने का इतना बड़ा और व्यवस्थित आयोजन दूसरा अबतक नहीं हुआ है। जिस ढंग पर यह कोश प्रस्तुत करने का विचार किया गया था, उसके लिये बहुत अधिक परिश्रम तथा विचारपूर्वक कार्य करने की आवश्यकता थी। साथ ही इस बात की भी बहुत बड़ी आवश्यकता थी कि जो सामग्री एकत्र की गई है उसका किस ढंग से उपयोग किया जाय और भिन्न भिन्न भावों के सूचक अर्थ आदि किस प्रकार दिए जायँ क्योंकि अभी तक हिंदी, उर्दू, बँगला, मराठी या गुजराती आदि किसी देशीभाषा में आधुनिक वैज्ञानिक ढंग पर कोई शब्दकोश प्रस्तुत नहीं हुआ था। अबतक जितने कोश बने थे, उन सबमें वह पुराना ढंग काम में लाया गया था और एक शब्द के अनेक पर्याय ही एकत्र करके रख दिए गए थे। किसी शब्द का ठीक ठीक भाव बतलाने का कोई प्रयत्न नहीं किया गया था। परंतु विचारवान् पाठक समझ सकते हैं कि केवल पर्याय से ही किसी शब्द का ठीक ठीक भाव या अभिप्राय समझ में नहीं आ सकता, और कभी कभी तो कोई पर्याय अर्थ के संबंध में जिज्ञासु को भी और भ्रम में डाल देता है। इसी लिये शब्दसागर के संपादकों को एक ऐसे नए क्षेत्र में काम करना पड़ा था जिसमें अभी तक कोई काम हुआ ही नहीं था। वे प्रत्येक शब्द को लेते थे, उसकी व्युत्पत्ति ढूँढ़ते थे; और तब एक या दो वाक्यों में उसका भाव स्पष्ट करते थे; और यदि यह शब्द वस्तुवाचक होता था, तो उस वस्तु का यथासाध्य पूरा पूरा विवरण देते थे; और तब उसके कुछ उपयुक्त पर्याय देते थे। इसके उपरांत उस शब्द से प्रकट होनेवाले अन्यान्य भाव या अर्थ, उत्तरोत्तर विकास के क्रम से, देते थे। उन्हें इस बात का बहुत ध्यान रखना पड़ता था कि एक अर्थ का सूचक पर्याय दूसरे अर्थ के अंतर्गत न चला जाय। जहाँ आवश्यकता होती थी, वहाँ एक ही तरह के अर्थ देनेवाले दो शब्दों का अंतर भी भली भाँति स्पष्ट कर दिया जाता था। उदाहरण के लिये 'टँगना' और 'लटकना' इन दोनों शब्दों को लीजिए। शब्दसागर में इन दोनों के अर्थों का अंतर इस प्रकार स्पष्ट किया गया है--'टँगना' और 'लटकना' इन दोनों के मूल भाव में अंतर है। 'टँगना' शब्द में ऊँचे आधार पर टिकने या अड़ने का भाव प्रधान है और 'लटकना' शब्द में ऊपर से नीचे तक फैले रहने या हिलने डोलने का।'

इसी प्रकार दर्शन, ज्योतिषः वैद्यक, वास्तुविद्या आदि अनेक विषयों के पारिभाषिक शब्दों के भी पूरे पूरे विवरण दिए गए हैं। प्राचीन हिंदी काव्यों में मिलनेवाले ऐसे बहुत से शब्द इसमें आए हैं जो पहले कभी किसी कोश में नहीं आए थे। यही कारण है कि हिंदीप्रेमियों तथा पाठकों ने आरंभ में ही इसे एक बहुमूल्य रत्न की भाँति अपनाया और इसका आदर किया। प्राचीन हिंदी काव्यों का पढ़ना और पढ़ाना, एक ऐसे कोश के अभाव में, प्रायः असंभव था। इस कोश ने इसकी पूर्ति करके वह अभाव बिल्कुल दूर कर दिया। पर यहाँ यह भी निवेदन कर देना आवश्यक जान पड़ता है कि अब भी इसमें कुछ शब्द अवश्य इसलिये छूटे हुए होंगे कि हिंदी के अधिकांश छपे हुए काव्यों में न तो पाठ ही शुद्ध मिलता है और न शब्दों के रूप ही शुद्ध मिलते हैं।

इन सब बातों से पाठकों ने भली भाँति समझ लिया होगा कि इस कोश में जो कुछ प्रयत्न किया गया है, बिल्कुल नए ढंग का है। इस प्रयत्न में इसके संपादकों को कहाँ तक सफलता हुई है। इसका निर्णय विद्वान् पाठक ही कर सकते हैं। परंतु संपादकों के लिये यही बात विशेष संतोष और आनंद की है कि आरंभ से अनेक बड़े बड़े विद्वानों ने जैसे, सर जार्ज ग्रियर्सन, डाक्टर हार्नली, प्रो० सिल्वन् लेवी, डा० गंगानाथ झा आदि ने इसकी बहुत अधिक प्रशंसा की है। इसकी उपयोगिता का यह एक बहुत बड़ा प्रमाण है। कदाचित् यहाँ पर यह कह देना भी अनुपयुक्त न होगा कि कुछ लोगों ने किसी किसी जाति अथवा व्यक्तिविषयक विवरण पर आपत्तियाँ की हैं। मुझे इस संबंध में केवल इतना ही कहना है कि हमारा उद्देश्य किसी जाति को ऊँची या नीची बनाना न रहा है और न हो सकता। इस संबंध में न हम शास्त्रीय व्यवस्था देना चाहते थे और न उसके अधिकारी थे। जो सामग्री हमको मिल सकी उसके आधार पर हमने विवरण लिखे। उसमें भूल होना या कुछ छूट जाना कोई असंभव बात नहीं है। इसी प्रकार जीवनी के संबंध में मतभेद या भूल हो सकती है। इसके कारण यदि किसी का हृदय दुखा हो या किसी प्रकार का क्षोभ हुआ हो तो उसके लिये हम दुःखी हैं और क्षमा के प्रार्थी हैं। संशोधित संस्करण में ये त्रुटियाँ दूर की जायँगी।

इस प्रकार यह बृहत् आयोजन २० वर्ष के निरंतर उद्योग, परिश्रम और अध्यवसाय के अनंतर समाप्त हुआ है। इसमें सब मिलाकर ९३,११५ शब्दों के अर्थ तथा विवरण दिए गए हैं और आरंभ में हिंदी भाषा और साहित्य के विकास का इतिहास भी दे दिया गया है। इस समस्त कार्य में सभा का अबतक १०, २७, ३५।) ८६॥ व्यय हुआ है, जिसमें छपाई आदि का भी व्यय संमिलित है। इस कोश की सर्वप्रियता और उपयोगिता का इससे बढ़कर और क्या प्रमाण (यदि किसी प्रमाण की आवश्यकता है) हो सकता है कि कोश समाप्त भी नहीं हुआ और इसके पहले ही इसके खंडों को दो दो और तीन तीन बेर छापना पड़ा है और इस समय इस कोश के समस्त खंड प्राप्य नहीं हैं। इसकी उपयोगिता का दूसरा बड़ा भारी प्रमाण यह है कि अभी यह ग्रंथ समाप्त भी नहीं हुआ था, वरन् यों कहना चाहिए कि अभी इसका थोड़ा ही अंश छपा था जब कि इससे चोरी करना आरंभ हो गया था और यह काम अबतक चला जा रहा है; पर असल और नकल में जो भेद संसार में होता है वही यहाँ भी दीख पड़ता है। यदि इस संबंध में कुछ कहा जा सकता है तो वह केवल इतना ही है कि इन महाशयों ने चोरी पकड़े जाने के भय से इस कोश के नाम का उल्लेख करना भी अनुचित समझा है।

जो कुछ ऊपर लिखा जा चुका है, उससे स्पष्ट है कि इस कोश के कार्य में आरंभ से लेकर अंत तक पंडित रामचंद्र शुक्ल का संबंध रहा है, और उन्होंने इसके लिये जो कुछ किया है, वह विशेष रूप से उल्लिखित होने योग्य है। यदि यह कहा जाय कि शब्दसागर की उपयोगिता और सर्वांगपूर्णता का अधिकांश श्रेय पंडित रामचंद्र शुक्ल को प्राप्त है, तो इसमें कोई अत्युक्ति न होगी। एक प्रकार से यह उन्हीं के परिश्रम, विद्वत्ता और विचारशीलता का फल है। इतिहास, दर्शन, भाषाविज्ञान, व्याकरण, साहित्य आदि के सभी विषयों का समीचीन विवेचन प्राय: उन्हीं का किया हुआ है। यदि शुक्ल जी सरीखे विद्वान् की सहायता न प्राप्त होती तो केवल एक या दो सहायक संपादकों की सहायता से यह कोश प्रस्तुत करना असंभव ही होता। शब्दों को दोहराकर छपने के योग्य ठीक करने का भार पहले उन्हीं पर था। फिर आगे चलकर थोड़े दिनों बाद उनके सुयोग्य साथी बाबू रामचंद्र वर्मा ने भी इस काम में उनका पूरा पूरा हाथ बँटाया और इसलिये इस कोश को प्रस्तुत करनेवालों में दूसरा मुख्य स्थान बाबू रामचंद्र वर्मा को प्राप्त है। कोश के साथ उनका संबंध भी प्राय: आदि से अंत तक रहा है और उनके सहयोग तथा सहायता से कार्य को समाप्त करने में बहुत अधिक सुगमता हुई है। आरंभ में उन्होंने इसके लिये सामग्री आदि एकत्र करने में बहुत अधिक परिश्रम किया था; और तदुपरांत वे इसके निर्माण और संपादित की हुई स्लिपों को दोहराने के काम में पूर्ण अध्यवसाय और शक्ति से संमिलित हुए। उनमें प्रत्येक बात को बहुत शीघ्र समझ लेने की अच्छी शक्ति है, भाषा पर उनका पूरा अधिकार है और वे ठीक तरह से काम करने का ढंग जानते हैं; और उनके इन गुणों से इस कोश को प्रस्तुत करने में बहुत अधिक सहायता मिली है। इसकी छपाई की व्यवस्था और प्रूफ आदि देखने का भार भी प्राय: उन्हीं पर था। इस प्रकार इस विशाल कार्य के संपादन का उन्हें भी पूरा पूरा श्रेय प्राप्त है और इसके लिये मैं उक्त दोनों सज्जनों को शुद्ध हृदय से धन्यवाद देता हूँ। इनके अतिरिक्त स्वर्गीय पंडित बालकृष्ण भट्ट, स्वर्गीय बाबू जगन्मोहन वर्मा, स्वर्गीय बाबू अमीर सिंह तथा लाला भगवानदीन जी को भी मैं बिना धन्यवाद दिए नहीं रह सकता। उन्होंने इस कोश के संपादन में बहुत कुछ काम किया है और उनके उद्योग तथा परिश्रम से इस कोश के प्रस्तुत करने में बहुत सहायता मिली है। जिन लोगों ने आरंभ में शब्दसंग्रह आदि या और कामों में किसी प्रकार से मेरी सहायता की है वे भी धन्यवाद के पात्र हैं।

इनके अतिरिक्त अन्य विद्वानों, सहायकों तथा दानी महानुभावों के प्रति भी मैं अपनी तथा सभा की कृतज्ञता प्रकट करता हूँ जिन्होंने किसी न किसी रूप में इस कार्य को अग्रसर तथा सुसंपन्न करने में सहायता की है, यहाँ तक कि जिन्होंने इसकी त्रुटियों को दिखाया है उनके भी हम कृतज्ञ हैं, क्योंकि उनकी कृपा से हमें अधिक सचेत और सावधान होकर काम करना पड़ा है। ईश्वर की परम कृपा है कि अनेक विघ्न बाधाओं के समय समय पर उपस्थित होते हुए भी यह कार्य आज समाप्त हो गया। कदाचित् यह कहना कुछ अत्युक्ति न समझा जायगा कि इसकी समाप्ति पर जितना आनंद और संतोष मुझको हुआ है उतना दूसरे किसी को होना असंभव नहीं तो कठिन अवश्य है। काशी नागरीप्रचारिणी सभा अपने इस उद्योग की सफलता पर अपने को कृतकृत्य मानकर अभिमान कर सकती है।

काशी
३१-१-१९२९

श्यामसुंदरदास
प्रधान संपादक



संपादकीय प्रस्तावना

निघंटु: आर्यभाषा का प्रथम शब्दकोश (समाम्नाय)

वैदिक (विरल या क्लिष्ट) शब्दों के संग्रह को 'निघंटु' कहते थे। 'यास्क' का निरुक्त वैदिक निघंटु का भाष्य है। यास्क से पूर्ववर्ती निघंटुओं में एकमात्र यही निघंटु उपलब्ध है। पर 'निरुक्त' से जान पड़ता है कि 'यास्क' के पूर्व अनेक निघंट बन चुके थे। इस विषय की संक्षिप्त चर्चा आगे होगी। यहाँ 'यास्क' द्वारा व्याख्यात 'निघंटु' का परिचय दिया जा रहा है।

यह 'निघंटु' पंचाध्यायी कहा जाता है। इसके प्रथम तीन अध्यायों को 'नैघंटुक कांड' कहा गया है। इन कांडों के शब्दों की निरुक्त के द्वितीय और तृतीय अध्यायों में 'यास्क' ने व्याख्या की है। इनमें १३४१ शब्द हैं, यद्यपि व्याख्या २३० शब्दों की हुई है। निघंटु के परिगणित शब्दों में संज्ञा अर्थात् नाम और आख्यात एवं अव्यय पदों का संकलन है। सबसे प्रथम पृथ्वी के बोधक २१ पर्यायवाची शब्दों का परिचय दिया गया है तदनंतर ज्वलनार्थक अग्नि के ११ पर्याय दिए गए हैं। इसी रीति से पूरे तीनों अध्यायों में पर्यायवाची अथवा समानार्थ-बोधक शब्दों का समूह है। इनमें भी अनेक शब्द ऐसे है जो अनेकार्थक हैं। 'निघटु' में तो उनका संग्रह पर्यायरूप में ही हुआ है, पर 'निरुक्त' के निर्वचन में उनके अनेक अर्थ सोदाहरण बताए गए है। 'गो' शब्द की निरुक्त व्याख्या में इस शब्द के अनेक अर्थों का निर्देश है। चतुर्थ अध्याय में २७८ स्वतंत्र पदों का (जो किसी के पर्याय नहीं हैं) एकत्रीकरण दिया गया है। इनमें मुख्यत: दो प्रकार के शब्द है-- (१) वे शब्द जिनके अनेक अर्थ हैं और (२) वे शब्द जिनका व्याकरणमूलक संस्कार (व्युत्पत्ति) अवगत नहीं है। अंतिम पंचम अध्याय को दैवतकांड कहा गया है जिसमें वैदिक-देवता-बोधक १५१ नाम मिलते हैं।

इस 'निघंटु' के निर्माता का नामनिर्णय विवादास्पद है। इतना ही नहीं, इनमें कुछ विद्वान् अनेक पुरुषों की रचना मानते हैं। डा० लक्ष्मणस्वरूप इनमें प्रमुख है। डा० कोल्ड ने भी हस्तलिखित ग्रंथों के आधार पर निर्णय दिया है कि 'निरुक्त' के पूर्वषड्क और उत्तरषड्क-- दोनों की शैलियाँ भिन्न हैं और दोनों के निर्माता भी संभवत भिन्न रहे होंगे। परंतु राजवाड़े ने डा० लक्ष्मणस्वरूप के मत का अनेक तर्कों के आधार पर खंडन किया है। ऐसे भी पंडित हैं जो 'यास्क' को ही निघटु और निरुक्त—दोनों का रचयिता मानते हैं। स्कंद दुर्ग तथा माहेश्वर आदि प्राचीन आचार्य 'निघटु' को किसी ऐसे वेदज्ञ ऋषि का ग्रंथ मानते हैं जिसका नाम अब तक ज्ञात नहीं है।

कोशविद्या के विचार से 'निघंटु' ग्रंथ को विकासक्रम का आरंभिक और प्रथम उपलब्ध रूप कहा जा सकता है। इसमें विशिष्ट वैदिक ग्रंथ के शब्दों का संग्रह तो है पर वह समस्त शब्दों का न होकर कतिपय कठिन और दुर्बोध शब्दों का संकलन है। इस कोश में नाम, आख्यात और अव्यय शब्दों का संकलन किया गया है। यह गद्य माध्यम से हुआ है, छंदोबद्ध नहीं है। पर्यायसंकलन या अन्यसंग्रहण द्वारा इसका उद्देश्य वेद के शब्दों का अर्थ स्पष्ट करना था। इसमें तिङंत (आख्यात), सुबंत (नामपद) और अव्यय हैं।

शब्द-संकलन-पद्धति की दृष्टि से इसमें पर्यायवाची, अनेकार्थक और विरल शब्दों का संग्रह मिलता है। इन्हें हम चार विभागों में बाँट सकते हैं :-- (१) समानार्थक धातुरूप, (२) एकार्थक अथवा पर्यायवाची भिन्न भिन्न शब्दों का संग्रह, (३) अनेकार्थ शब्दों का संग्रह और (४) देवताओ के प्रमुख और अप्रमुख नामों का संग्रह। अज्ञात-व्याकरण-संस्कारवाले शब्द भी संगृहीत हैं।

उपलब्ध 'निघंटु' के अतिरिक्त अन्य अनेक 'निघंटु' भी अवश्य ही रहे होंगे। 'यास्क' के 'निरुक्त' से भी इतना स्पष्ट है कि उनसे पूर्व जिस प्रकार अनेक वैयाकरण एवं अनेक निरुक्तकार हो चुके थे उसी प्रकार उपलब्ध 'निघंटु' के अतिरिक्त अन्य 'निघंटु' भी वर्तमान थे। 'यास्क' के निर्देश (१।२० तथा ७ १५) से संकेत मिलता है कि 'निघंटु' शब्द अनेक निघंटुओं का बोधक है। आचार्य भगवद्दत्त के वक्तव्य से अनुमान किया जा सकता है कि निघंटु अनेक थे। अथर्व परिशिष्ट का ४८वाँ अंश भी कौत्सव्य द्वारा संकलित 'निघंटु' ही है। 'यास्क' ने 'शाकपूणि' का उल्लेख किया है। बृहद्देवता में भी 'यास्क' के साथ साथ अनेक बार उनका नाम देखकर अनुमान किया जाता है कि दोनों ही ग्रंथ--'निघंटु' और 'निरुक्त'— उन्हीं के रचित थे। इधर पूना से 'शाकपूणि' का एक निघंटु भी प्रकाशित किया गया है। इन सबके आधार पर यह कहना कदाचित् असंगत न हो कि 'यास्क' के समय तक बहुत से निघंटु ग्रंथ निर्मित हो चुके थे।

'यास्क' के कथनानुसार 'निघंटु' का अर्थ है--वह शब्दसमूह जो वेदों से चुनकर एकत्र किए हुए शब्दों का अर्थद्योतन करे। इस अर्थद्योतन में अनेक शब्दों का अर्थद्योतन कभी एक साथ होता है और कभी पृथक् पृथक्। इसमें सामान्यत: शब्द-संकलन-विधान की निम्नलिखित विधि की संयोजना मिलती है, चाहे वे सभी विधियाँ एक निघंटु में हों अथवा न हों--(१) समानार्थक धातुओं का संग्रह, (२) किसी एक सत्व अथवा पदार्थ के नाना नामधेयों एवं अव्ययपदों का संग्रह, (३) एक शब्द के अनेक अर्थों का अभिधान और (४) देवताओं के नाम।

प्रोफेसर 'राजवाड़े' का कथन है कि अनेक अर्थों का एक अभिधान द्वारा कथन--इस उपलब्ध 'निघंटु' में नहीं है। फिर भी ऐकपदिक कांड में कुछ अनेकार्थक शब्द भी ढूँढ़ जा सकते हैं और व्याकरण की दृष्टि से अव्युत्पन्न शब्द भी। 'ऐकपदिक' कांड में तथा कथित अव्युत्पन्न शब्द लक्षण संबंधी उपर्युक्त अंगों में नहीं आते। अत: कह सकते हैं कि निरुक्तोक्त अंगों की अपेक्षा यहाँ कुछ अधिकता

है। इसका संकेत यह भी हो सकता है कि 'यास्क' के पूर्ववर्ती आचार्यों ने 'निघंटु' के लिये उपर्युक्त चतुरंग लक्षण आवश्यक मान लिया था; और उस प्रकार के अनेक ग्रंथ उस समय वर्तमान थे।

निश्चय ही १००० ई० पू० के पहले से लेकर ई० पू० ८०० या ७०० तक अनेक वैदिक निघंटु निर्मित हो चुके थे। विरल और कठिन शब्दों तथा पर्यायवाची नामों और आख्यातों एवं अव्ययों का बड़े श्रम के साथ आचार्यों ने अर्थनिर्देशपूर्वक संग्रह किया था। भारतीय कोशविद्या का यह प्राचीनतम उपलब्ध रूप यद्यपि गद्यबद्ध था, तथापि परवर्ती पद्यबद्ध कोशों के लिये—विशेषतः पर्यायवाची कोशों का—पथप्रदर्शक और प्रेरणादायक रहा। 'अमरकोश' जैसे ग्रंथ पर भी जहाँ एक ओर निघंटुकार की पर्यायवाची शैली का व्यापक प्रभाव दिखाई देता है वहाँ दूसरी ओर 'निरुक्त' के कांडत्रय का प्रभाव भी 'त्रिकांडकोश' या 'अमरकोश' पर कदाचित् पड़ा। विषय की दृष्टि से न सही, पर कांड शब्द और 'तीन की संख्या' इन दोनों अंशों में अमरसिंह ने प्रभाव ग्रहण किया हो तो आश्चर्य नहीं।

निरुक्त के आरंभ में ही कहा गया है—'समाम्नायः समाम्नात स व्याख्यातव्यः। तदिमं समाम्नायं निघण्टव इत्याचक्षते।' अर्थात् समाम्नाय की (जो गुरुपरंपरा से वैदिकों द्वारा प्राप्त किया गया है उसकी) व्याख्या आवश्यक है। इसी को 'निघंटव': (निघंटु) कहते हैं। इस शब्द का विकास 'निगंतवः' से हुआ है। संभवतः अनेक 'निघंटु' थे, इसी से बहुवचन में प्रयोग है। प्रथम तीन अध्यायों में 'नामपदों' और 'आख्यातपदों' की पर्यायबद्ध सूची है। चौथे अध्याय में क्लिष्ट वैदिक शब्द हैं अपने तत्सम रूप में और ५वें में देवतावाचक शब्दों का संग्रह है।

लगभग दो सहस्र वर्षों बाद १८वीं शती में 'भास्करराय' नामक एक महाविद्वान् ने 'वैदिक कोश' का निर्माण किया था। उक्त कोश में वैदिक 'निघंटु' के शब्दों और उनके अर्थों का पद्यबद्ध संयोजन किया गया है।

वैदिक निघंटुओं की परंपरा—कदाचित् आगे चलकर लुप्त हो गई। परंतु अथर्ववेद के उपवेद—आयुर्वेद—में इस नाम के ग्रंथों की परंपरा चलती रही। आयुर्वेद के परंपराकथित अवतारी आचार्य 'धन्वंतरि' द्वारा विरचित एक 'धन्वंतरि निघंटु' है। किंवदंती-अनुसारी श्लोक में 'विक्रमादित्य' के नवरत्नों में इनका नाम सर्वप्रथम आता है। 'अमरकोश' की क्षीरस्वामीकृत टीका (वनोषधिवर्ग-श्लोक ५०) के अनुसार धन्वंतरि को 'अमरसिंह' से प्राचीन माना जाता है। संभवतः चतुर्थ शतक से पूर्व इनका काल रहा होगा। नौ अध्याय के इस ग्रंथ में पारिभाषिक शब्दों के अर्थ के साथ साथ उनके गुण दोष का भी इसमें वर्णन है: श्लोकबद्ध यह 'वैद्यकनिघंटु'—संभवतः परवर्ती तद्वर्गीय ग्रंथों का प्रेरणाधार रहा। 'माधवनिदान' (प्रसिद्ध वैद्यक ग्रंथ) के निर्माता 'माधवकर' (लगभग आठवीं नवीं शती) द्वारा 'पर्यायरत्नमाला' नाम से एक वैद्यक कोश भी रचित माना जाता है। 'हेमचंद्र ने भी 'निघंटुशेष' नामक ग्रंथ का निर्माण किया था। १८वीं शती के उत्तरार्ध में अनेकशास्त्रविद्याविशारद काष्ठा नगरीराज 'मदनपाल' ने १७७४ ई० में 'मदनपाल निघंटु' (या 'मदनपाल विनोद' नामक विशाल ग्रंथ बनाया था। इसमें मराठी के भी अनेक पर्यायशब्द उपलब्ध हैं।)

संस्कृत कोश: प्राचीन (अमरकोश पूर्ववर्ती)

वैदिक निघंटुकोशों और 'निरुक्त ग्रंथों' के अनंतर संस्कृत के प्राचीन और मध्यकालीन कोश हमें उपलब्ध होते हैं। इस संबंध में 'मेक्डानल्ड' ने माना है कि संस्कृत कोशों की परंपरा का उद्भव (निघंटु ग्रंथों के अनंतर) धातुपाठों और गणपाठों से हुआ है। पाणिनीय अष्टाध्यायी के पूरक परिशिष्ट रूप में धातुओं और गणशब्दों का व्याकरणोपयोगी संग्रह—इन उपर्युक्त पाठों में हुआ। पर उनमें अर्थनिर्देश न होने के कारण उन्हें केवल धातुसूची और गणसूची कहना अधिक समीचीन होगा।

आगे चलकर संस्कृत के अधिकांश कोशों में जिस प्रकार रचना-विधान और अर्थनिर्देश शैली का विकास हुआ है वह धातुपाठ या गणपाठ की शैली से पूर्णतः पृथक् है। निघंटु ग्रंथों से इनका स्वरूप भी कुछ भिन्न है। निघंटुओं में वैदिक शब्दों का संग्रह होता था। उनमें क्रियापदों, नामपदों और अव्ययों का भी संकलन किया जाता था। परंतु संस्कृत कोशों में मुख्यतः केवल नामपदों और अव्ययों का ही संग्रह हुआ।

'निरुक्त' के समान अथवा पाली के 'महाव्युत्पत्ति' कोश की तरह इसमें व्युत्पत्तिनिर्देश नहीं हैं। वैदिक निघंटुओं में संगृहीत शब्दों का संबंध प्रायः विशिष्ट ग्रंथों से (ऋग्वेदसंहिता या अथर्वसंहिता का अथर्वनिघंटु) होता था। इनकी रचना गद्य में होती थी। परंतु संस्कृत कोश मुख्यतः पद्यात्मक हैं और प्रमुख रूप से उनमें अनुष्टुप् छंद का योग (अभिधानरत्नमाला आदि को छोड़कर) हुआ है। संस्कृत कोशों द्वारा शब्द और अर्थ का परिचय कराया गया है: 'धनंजय', 'धरणी' और 'महेश्वर' आदि कोशों के निर्माण का उद्देश्य था संभवतः महत्वपूर्ण विरलप्रयुक्त और कविजनोपयोगी शब्दों का संग्रह बनाना।

संस्कृत कोशों का ऐतिहासिक सिंहावलोकन करने से हमें इस विषय की सामान्य जानकारी प्राप्त हो सकती है। इस संबंध में विद्वानों ने 'अमरसिंह' द्वारा रचित और सर्वाधिक लोकप्रिय—'नामलिंगानुशासन' (अमरकोश) को केंद्र में रखकर उसी के आधार पर संस्कृत कोशों को तीन कालखंडों में विभाजित किया है—(१) अमरकोश-पूर्ववर्ती संस्कृत कोश, (२) अमरकोशकाल तथा (३) अमरकोश-परवर्ती संस्कृत कोश।

'अमरसिंह' के पूर्ववर्ती कोशों का उनके नामलिंगानुशासन' में उल्लेख नहीं मिलता है। परंतु 'समाहृत्यान्यतन्त्राणि' के ध्वन्यार्थ का आधार लेकर 'अमरकोश' की रचना में पूर्ववर्ती कोशों के उपयोग का अनुमान किया जा सकता है। 'अमरकोश' की एक टीका में लब्ध 'कात्य' शब्द के आधार पर 'कात्य' या 'कात्यायन' नामक 'अमर'-पूर्ववर्ती कोशकार का और पाठांतर के आधार पर व्याडि नामक कोशकार का अनुमान होता है। 'अमरकोश' के टीकाकार 'क्षीरस्वामी' के आधार पर 'धन्वंतरि' के 'धन्वंतरिनिघंटु' नामक वैद्यक निघंटु (कोश) का संकेत मिलता है। 'महाराष्ट्र शब्दकोश' की भूमिका में 'भागुरि' के

कोश को भी—जिसका नाम 'त्रिकांडकोश' था—'अमर'-पूर्ववर्ती बताया गया है। यह कोश दक्षिण भारत की एक ग्रंथसूची में आज भी उल्लिखित है। 'रंति' या 'रंतिदेव' और 'रसभ' या 'रसभपाल' को भी (महाराष्ट्र शब्दकोष की भूमिका के आधार पर) 'अमर'-पूर्ववर्ती कोशकार कहा गया है।

'सर्वानंद' ने 'अमरकोश की अपनी टीका में बताया है कि 'व्याडि' और 'वररुचि' आदि के कोशों में केवल लिंगों का संग्रह है और 'त्रिकांड' एवं 'उत्पलिनी' में केवल शब्दों का। परंतु 'अमरकोश' में दोनों की विशेषताएँ एकत्र संमिलित हैं। इस प्रकार 'व्याडि', 'वररुचि' (या कात्य) 'भागुरि' और 'धन्वंतरि' आदि अनेक कोशकारों का क्षीरस्वामी ने अमर-पूर्ववर्ती कोशकारों और 'त्रिकांड', 'उत्पलिनी', 'रत्नकोश' और 'माला' आदि अमर-पूर्ववर्ती कोशग्रंथों का परिचय दिया है।

अमरकोशकाल (रचनाकाल—लगभग चौथी पाँचवी शती)

अमरकोश की महत्ता के कुछ कारण हैं। यद्यपि तत्पूर्ववर्ती कोश ('धन्वंतरिनिघंटु' तथा पांडुलिपिसूची में उल्लिखित एकाध अन्य ग्रंथ को छोड़कर) आज उपलब्ध नहीं हैं तथापि यह अनुमान किया जाता है कि प्राचीन कोशों में दो प्रकार की शैलियाँ (कदाचित्, प्रचलित थीं—(१) कुछ कोश (संभवतः) नामों (सज्ञाओं) का ही और कुछ लिंगों का ही निर्देश करते थे। (कदाचित् दो एक कोश धातुसूची भी प्रस्तुत करते थे।) इन्हें नामतंत्र (नामपारायणात्मक) तथा लिंगतंत्र (लिंगपारायणात्मक) कहा जाता था। द्वितीय विधा के कोशों में लिंगों का विवेचनात्मक निर्देशन ही मुख्य विषय रहता था। पर 'अमरसिंह' ने अपने कोश में दोनों का एक साथ अत्यंत प्रौढ़ संयोजन और विवेचन किया है। प्रारंभ में ही उन्होंने तीसरे से पाँचवें श्लोक तक अपने कोश में प्रयुक्त नियमों और पद्धति का स्पष्ट निर्देश किया है। इनके आधार पर शब्दार्थ के साथ ही साथ लिंग का निर्णय भी होता है।

तीन कांडों के इस ग्रंथ में क्रमशः दस, दस और पाँच वर्ग हैं। उपक्रम भाग में निर्दिष्ट पद्धति के अनुसार नामपदों के लिंग का आद्यंत निर्देश किया गया है। इसी कारण इसका अभिधान 'नामलिंगानुशासन' है। इसकी विशिष्टता का परिचय देते हुए स्वयं ग्रंथकार ने बताया है कि अन्य तंत्रों से विवेच्य विषय का समाहार करते हुए संक्षिप्त रूप में और प्रतिसंस्कार द्वारा उत्कृष्ट रूप से वर्गों में विभक्त—इस 'नामलिंगानुशासन' को पूर्ण बनाने का प्रयास हुआ है। यही इसकी विशेषता है।

सुव्यवस्थित पद्धति के अनुसार कांडों और वर्गों का विभाजन किया गया है। वस्तुतः देखा जाय तो प्रथम दो कांड इस कोश का पर्यायवाची स्वरूप प्रस्तुत करते हैं और तृतीय कांड में नाना प्रकृति के इतर नामपदों का संग्रह है। विशेष्यनिघ्न वर्ग में विशेष्यानुसारी लिंगादि में प्रयुक्त होनेवाले नामपदों का संग्रह है। 'संकीर्ण' वर्ग में प्रकृति प्रत्यादि के अर्थ द्वारा लिंग की ऊहा का विवेचन हुआ है। 'नानार्थ' वर्ग में नानार्थ नामों का 'कांत, खांत' आदि क्रम के अनुसार संग्रह किया गया है। चतुर्थ वर्ग अव्यय शब्दों को संकलित करनेवाला है, और अंतिम वर्ग लिंगादिसंग्रह कहा गया है एवं उसमें शास्त्रीय और व्याकरणनियमानुसारी आधार को लेकर लिंग का अनुशासन मुख्य रूप से तथा गौण रूप से अन्य अनुक्त-लिंग-निर्देश की क्रमबद्ध पद्धति बताई गई है।

यह कोशग्रंथ मुख्यतः पर्यायवाची ही है। फिर भी तृतीय कांड के द्वारा, जिसे हम आधुनिक पदावली में परिशिष्टांश कह सकते हैं, इस कोश को पूर्ण और व्यापक तथा उपयोगी बनाया गया है।

अमरकोशपरवर्ती अमरपरवर्ती काल में संस्कृत कोशों की अनेक विधाएँ लक्षित होती हैं—कुछ कोश मुख्यतः केवल नानार्थ कोश के रूप में हमारे सामने आते हैं, कुछ को समानार्थक शब्दकोश और कुछ को अंशतः पर्यायवाची कोश कह सकते हैं।

इन विधाओं के अतिरिक्त ऐसे कोश भी मिलते हैं जिनमें क्रमशः एकाक्षर, द्व्यक्षर, त्र्यक्षर और नानाक्षर शब्दों का योजनाबद्ध रूप से संकलन हुआ है। 'द्विरूप' कोश भी बने हैं।

इनके अरिरिक्त 'पुरुषोत्तमदेव' का ग्रंथ 'वर्णदेशना' है, जिसमें लिखावट में स्वल्पाधिक भेदों के कारण होनेवाले वर्णविन्यास संबंधी वैरूप्य का परिचय मिलता है। इन्हीं का एक कोश 'त्रिकांडकोष' भी है जिसमें अमरसिंह के कोश में छूटे हुए, पर तद्युगीन भाषा में प्रचलित, शब्दों का संग्रह है। 'पुरुषोत्तमदेव' की ही एक रचना 'हारावली' भी है, जिसमें विरल प्रयोगवाले 'एकार्थ' और 'अनेकार्थ' शब्दों के दो भाग हैं। स्वयं लेखक ने लिखा है कि इस ग्रंथ में अत्यंत विरल शब्दों का संग्रथन हुआ है।

'अमरसिंह' के अनंतर कोशकारों और कोशग्रंथों पर अमरकोश का पर्याप्त प्रभाव दिखाई देता है। पर्यायवाची कोश बहुत कुछ अमरकोश से प्रभाव ग्रहण कर लिखे गए। 'नानार्थ' या 'अनेकार्थ' कोश भी अमरकोश के नानार्थ वर्ग के आधार पर प्रायः बहुमुखी विस्तारमात्र रहे हैं। 'विश्वप्रकाश' कोश में अवश्य कुछ अधिक वैशिष्टय दिखाई देता है। वह विलक्षण 'नानार्थकोश' है जो अनेक अध्यायों में विभक्त है। प्रत्येक अध्याय में एकाक्षर, द्व्यक्षर आदि क्रम से सप्ताक्षर शब्दों तक का संकलन है। 'कंकक', 'कद्विक', आदि भी अध्यायों के नाम हैं। 'अमरकोश' की तरह ही शब्द के अंतिम वर्णानुसार कांत, खांत आदि रूप में शब्दों का अनुक्रम है। उनका 'शब्द-भेद-प्रकाशिका' नामक ग्रंथ भी वस्तुतः इसी का अन्य परिशिष्ट है। इसके चार अध्यायों में क्रमशः 'शब्दभेद', 'वकारभेद', 'ऊष्मभेद' और 'लिंगभेद' नामक चार विभिन्न भेद हैं। ऐतिहासिक क्रम से संस्कृत कोशों का निर्देश नीचे किया जा रहा है :

शाश्वत का अनेकार्थसमुच्चय नामक नानार्थ कोश है। समय पूर्णतः निश्चित न होने पर भी ६०० ई० के आसपास के काल में इसकी रचना मानी जाती है। इसी को शाश्वतकोश भी कहते हैं। 'अमरकोश' के संक्षिप्त नानार्थ वर्ग का यह विस्तार जान पड़ता है। ८०० अनुष्टुप छंदों के इस कोश को छह भागों में विभक्त किया गया है। आद्य तीन भागों में क्रमबद्ध रूप से शब्द के अर्थ क्रम से चार चरणों (पूरे श्लोक), दो चरणों (आधे श्लोक), और एक चरण में दिए गए हैं।

चौथे भाग में एक एक चरण में नानार्थबोधक शब्द हैं और पंचम तथा षष्ठ विभागों में अव्यय हैं।

भट्ट हलायुध (समय लगभग १० वीं शताब्दी ई०) के कोश का नाम **अभिधानरत्नमाला** है, पर हलायुधकोश' नाम से यह अधिक प्रसिद्ध है। इसके पाँच कांड (स्वर, भूमि, पाताल, सामान्य और अनेकार्थ) हैं। प्रथम चार पर्यायवाची कांड हैं, पंचम में अनेकार्थक तथा अव्ययशब्द संगृहीत हैं। इसमें पूर्वकोशकारों के रूप में **अमरदत्त, वररुचि, भागुरि और वोपालित** के नाम उद्धृत हैं। रूपभेद से लिंग-बोधन की प्रक्रिया अपनाई गई है। ९०० श्लोकों के इस ग्रथ पर **अमरकोश** का पर्याप्त प्रभाव जान पड़ता है। 'पिंगलसूत्र' की टीका के अतिरिक्त 'कविरहस्य' भी इनका रचित है जिसमें 'हलायुध' ने धातुओं के लट्लकार के भिन्न भिन्न रूपों का विशदीकरण भी किया है।

यादवप्रकाश (समय १०५५ से १३३७ के मध्य) का **वैजयंती-कोश** अत्यंत प्रसिद्ध भी है और महत्वपूर्ण भी। इसकी कुछ अपनी विशेषताएँ हैं। यह बृहदाकार भी है और प्रामाणिक भी माना गया है। इसकी सर्वप्रमुख विशेषता है। नानार्थ भाग की आदिवर्ण-क्रमानुसारी वर्णक्रमयोजना जिसमें आधुनिक कोशों की अकारादि-वर्णानुक्रमपद्धति का बीज दृष्टिगोचर होता है। परंतु कठोरता और पूर्णता के साथ इस नियम का पालन नहीं है। केवल प्रथमाक्षर का आधार लिया गया है--द्वितीय, तृतीय आदि अक्षर या ध्वनि का नहीं। इसके दो भाग हैं--(१) पर्यायवाची और (२) नानार्थक। दोनों ही भाग—**अमरकोश** की अपेक्षा अधिक संपन्न हैं। नानार्थभाग के तीन कांडों में द्व्यक्षर, त्र्यक्षर और शेष शब्दों को संकलित किया गया है। नानार्थभाग के कांडों का अध्यायविभाग—उपप्रकरणों में लिंगानुसार (पुल्लिंगाध्याय, स्त्रीलिंगाध्याय, नपुंसक-लिंगाध्याय, अर्थवल्लिंगाध्याय और नानालिंगाध्याय) हुआ है। अंतिम चार अध्यायों में और भी अनेक विशेषताएँ हैं। अमरकोश की परिभाषाएँ संक्षेपीकृत रूप से गृहीत हैं। इसमें कुछ वैदिक शब्द भी संगृहीत हैं।

हेमचंद्र--संस्कृत के मध्यकालीन कोशकारों में हेमचंद्र का नाम विशेष महत्व रखता है। वे महापंडित थे और 'कालिकालसर्वज्ञ' कहे जाते थे। वे कवि थे, काव्यशास्त्र के आचार्य थे, योगशास्त्रमर्मज्ञ थे, जैनधर्म और दर्शन के प्रकांड विद्वान् थे, टीकाकार थे और महान् कोशकार भी थे। वे जहाँ एक ओर नानाशास्त्रपारंगत आचार्य थे वहीं दूसरी ओर नाना भाषाओं के मर्मज्ञ, उनके व्याकरणकार एवं अनेकभाषाकोशकार भी थे (समय १०८८ से ११७२ ई०)। संस्कृत में अनेक कोशों की रचना के साथ साथ प्राकृत-अपभ्रंश-कोश भी (देशीनाममाला) उन्होंने संपादित किया। **अभिधानचिंतामणि** (या 'अभिधान-चिंतामणिनाममाला) इनका प्रसिद्ध पर्यायवाची कोश है। छह कांडों के इस कोश का प्रथम कांड केवल जैन देवों और जैनमतीय या धार्मिक शब्दों से संबद्ध है। देव, मर्त्य, भूमि या तिर्यक्, नारक और सामान्य—शेष पाँच कांड हैं। 'लिंगानुशासन' पृथक् ग्रंथ ही है। 'अभिधानचिंतामणि' पर उनकी स्वविरचित 'यशोविजय' टीका है--जिसके अतिरिक्त, व्युत्पत्तिरत्नाकर' (देवसागरगणि) और 'सारोद्धार' (वल्लभगणि) प्रसिद्ध टीकाएँ हैं। इसमें नाना छंदों में १५४२ श्लोक हैं। दूसरा कोश 'अनेकार्थसंग्रह' (श्लो० सं० १८२९) है जो छह कांडों में है। एकाक्षर, द्व्यक्षर, त्र्यक्षर आदि के क्रम से कांडयोजना है। अंत में परिशिष्ट कांड अव्ययों से संबद्ध है। प्रत्येक कांड में दो प्रकार की शब्दक्रमयोजनाएँ हैं—(१) प्रथमा-क्षरानुसारी और (२) 'अंतिमाक्षरानुसारी'। 'देशीनाममाला' प्राकृत का (और अंशतः अपभ्रंश का भी) शब्दकोश है जिसका आधार 'पाइयलच्छी नाममाला है।'

महेश्वर (११११ ई०) के दो कोश (१) विश्वप्रकाश और (२) शब्दभेदप्रकाश हैं। प्रथम नानार्थकोश है। जिसकी शब्दक्रम-योजना **अमरकोश** के समान 'अंत्याक्षरानुसारी है। इसके अध्यायों में एकाक्षर से लेकर 'सप्ताक्षर' तक के शब्दों का क्रमिक संग्रह है। तदनुसार 'कैकक' आदि अध्याय भी हैं। अंत में अव्यय भी संगृहीत हैं। 'स्त्री', 'पुम्' आदि शब्दों के द्वारा नहीं अपितु शब्दों की पुनरुक्ति द्वारा लिंगनिर्देश किया गया है। इसमें अनेक पूर्ववर्ती कोशकारों के नाम—भोगींद्र, कात्यायन, साहसांक, वाचस्पति, व्याडि, विश्वरूप, अमर, मंगल, शुभांग, शुभांक गोपालित (वोपालित) और भागुरि—निर्दिष्ट हैं। इस कोश की प्रसिद्धि, अत्यंत शीघ्र हो गई थी क्योंकि 'सर्वानंद' और 'हेमचंद्र' ने इनका उल्लेख किया है। इसे 'विश्वकोश' भी अधिकतः कहा जाता हैं। **शब्दभेदप्रकाशिका** वस्तुतः **विश्वप्रकाश** का परिशिष्ट है जिसमें शब्दभेद, बकारभेद, लिंगभेद आदि हैं।

मंख पंडित (१२ वीं शती ई०) का अनेकार्थ--१००७ श्लोकों का है और **अमरकोश** एवं **विश्वरूपकोश** के अनुकरण पर बना है। 'भागुरि', 'अमर', 'हलायुध', 'शाश्वत' और 'धन्वंतरि' के आधारग्रहण का उसमें संकेत है। शब्दक्रमयोजना अंत्याक्षरानुसारी है।

अजयपाल (लगभग १२वीं-१३वीं शती के बीच) के नानार्थसंग्रह नामक कोश में १७३० श्लोक हैं। इसे देखने से जान पड़ता है कि **शाश्वतकोश** या **अनेकार्थसमुच्चय** के आधार पर इसकी रचना की गई है। उन्हीं का अनुकरण भी इसमें आभासता है। प्रत्येक अध्याय के अंत में अव्यय शब्द हैं। **धनंजय** (ई० १२ वीं शताब्दी उत्तरार्ध के आसपास अनुमानित) की **नाममाला** नामक कोशकृति है। यह लघुकोश है। **नाममाला** नाम के अनेक कोशग्रंथ मिलते हैं। इसमें केवल २०० श्लोक हैं। कुछ पांडुलिपियों में नानार्थ शब्द नहीं हैं पर एक में तत्संबद्ध ५० श्लोक हैं।

पुरुषोत्तमदेव (समय ११५९ ई० के पूर्व)—संस्कृत में पाँच कोशों के निर्माता माने गए हैं—(१) त्रिकांडकोश, (२) हारावली, (३) वर्णदेशना, (४) एकाक्षरकोश और (५) द्विरूपकोश। 'अमरकोश' के टीकाकार 'सर्वानंद' ने अपनी टीका में इनके चार कोशों के वचन उद्धृत किए हैं जिससे इनका महत्वपूर्ण कोशकर्तृत्व प्रकट है। ये बौद्ध वैयाकरण थे। 'भाषावृत्ति' इनकी प्रसिद्ध रचना है। इन्होंने 'वाचस्पति' के 'शब्दार्णव', 'व्याडि' की 'उत्पलिनी' 'विक्रमादित्य' के 'संसारावर्त' को अपना आधार घोषित किया है। 'आफ्रेक्त ग्रंथसूची में नौ अन्य (व्याकरण और कोश के) ग्रंथों का

पुरुषोत्तमदेव के नाम से संकेत मिलता है। इनका 'त्रिकांडकोश'—नाम से ही 'अमरकोश' का परिशिष्ट प्रतीत होता है। फलतः वहाँ अप्राप्त शब्दों का इसमें संकलन है। ('अमरकोश' से पूर्व का भी एक 'त्रिकांडकोश' बताया जाता है। पर उससे इसका संबंध नहीं जान पड़ता।) इसमें अनेक छंद हैं और इसकी टीका भी हुई है। हारावली में पर्याय शब्दों और नानार्थ शब्दों के दो विभाग हैं। श्लोकसंख्या २७० है। पर्यायवाची विभाग का तीन अध्यायों—(१) एकश्लोकात्मक (२) अर्धश्लोकात्मक तथा (३) पादात्मक—में उपविभाजन हुआ है। नानार्थ विभाग में भी—(१) अर्धश्लोक, (२) पादश्लोक और एक शब्द में अर्थ दिए गए हैं। इसमें प्रायः विरलप्रयोग और अप्रसिद्ध शब्द हैं जबकि त्रिकांडकोश में प्रसिद्ध शब्द। ग्रथकार की उक्ति के अनुसार १२ वर्षों में बड़े श्रम के साथ इसकी रचना की गई है। (१२ मास भी एक पाठ के अनुसार)। वर्णदेशना अपने ढंग का एक विचित्र और गद्यात्मक कोश है। देशभेद, रूढ़िभेद और भाषाभेद से ख, क्ष या ह, ड अथवा ह, घ में होनेवाली भ्रांति का अनेक ग्रंथों के आधार पर निराकरण ही इसका उद्देश्य जान पड़ता है—'अत्र हि प्रयोगे बहुदृश्वानां श्रुतिसाधारण्यमात्रेण गृहणतां खुरक्षुरप्रादौ खकारक्षकारयोः सिंहशिघानकादौ हकारघकारयोः······ तथः गौडादिलिपि साधारण्याद् हिण्डीरगुडाकेशादौ हकार-डकारयोः भ्रांतय उपजायन्तो। अतस्तद्विवेचनाय क्वचिद्धातुपरायणे धातुवृत्ति-पूजादिषु प्रव्यक्तलेखनेन प्रसिद्धोऽग्देशेन धातुप्रत्ययोणादिव्याख्यालेखनेन क्वचिदाप्तवंचनेन श्लेषादिदर्शनेन वर्णदेशनेयमारभ्यते। (इंडिया आफिस केटेलाग, पृ० २६५)। 'महाक्षपणक', 'महीधर' और 'वररुचि' के बनाए 'एकाक्षर' कोशों के समान 'पुरुषोत्तमदेव' ने भी एकाक्षर कोश बनाया जिसमें एक एक अक्षर के शब्दों के अर्थ वर्णित हैं। द्विरूपकोश भी ७५ श्लोकों का लघुकोश है। नैषधकार 'श्रीहर्ष' ने भी एक द्विरूपकोश लिखा था।

केशवस्वामी (समय १२ वीं या १३वीं शताब्दी) एक का **नानार्थार्णव-संक्षेप** को अपनी शैली के कारण बड़ा महत्व प्राप्त है। एक एक लिंग के एकाक्षर से षडक्षर तक के अनेकार्थक शब्दों का क्रमशः छह कांडों में संग्रह है और प्रत्येक कांड के भी क्रमशः स्त्रीलिंग, पुंल्लिंग, नपुंसकलिंग, वाच्यलिंग तथा नानालिंग पाँच पाँच अध्याय हैं। प्रत्येक अध्याय की शब्दानुक्रमयोजना में अकारादिवर्णक्रम की सरणि अपनाई गई है। 'अमरकोश' में अनुपलब्ध शब्द ही प्रायः इसमें संकलित हैं। ५८०० श्लोकसंख्यक इस बृहन्नानार्थकोश में कुछ वैदिक शब्दों का और ३० प्राचीन कोशकारों के नामों का निर्देश है।

मेदिनिकर का समय लगभग १४ वीं शताब्दी के आसपास या उससे कुछ पूर्ववर्ती काल माना गया है। एक मत से ११७५ ई० के पूर्व भी इनका समय बताया जाता है। इनके कोश का नाम **नानार्थशब्द-कोश** है। पर **मेदिनिकोष** नाम से वह अधिक विख्यात है। इसकी पद्धति और शैली पर 'विश्वकोश' की रचना का पर्याप्त प्रभाव है। उसके अनेक श्लोक भी यहाँ उद्धृत हैं। ग्रंथारंभ के परिभाषात्मक अंश पर 'अमरकोश' की इतनी गहरी छाप है कि इसमें 'अमरकोश' के श्लोक तक शब्दशः ले लिए गए हैं। इसमें कोई खास विशेषता नहीं है।

मेदिनी के अनंतर के लघुकोश न तो बारंबार उद्धृत हुए हैं और न पूर्वकोशों के समान प्रमाणरूप में मान्य हैं। परंतु इनमें कुछ ऐसे प्राचीनतर और प्रामाणिक कोशों का उपयोग हुआ है जो आज उपलब्ध नहीं हैं अथवा और अशुद्ध रूप में अंशतः उपलब्ध हैं। (१) 'जिनभद्र सूरि' का कोश है **अपवर्गनाममाला**—जिसका नाम 'पंचवर्गपरिहारनाममाला भी है। इनका काल संभवतः १२वीं शताब्दी के आस पास है। (२) **'शब्दरत्नप्रदीप'**—संभवतः यह **कल्याणमल्ल** का **शब्दरत्नप्रदीप** नामक पाँच कांडोंवाला कोश है। (समय लगभग १२९५ ई०)। (३) **महीप** का **शब्दरत्नाकर**—कोश है जिसके नानार्थभाव का शीर्षक है—अनेकार्थ या नानार्थतिलक; समय है लगभग १३७४ ई०। (४) **पद्मरागदत्त** के कोश का नाम 'भूरिक-प्रयोग' है। इसका समय लगभग वही है। इस कोश का पर्यायवाची भाग छोटा है और नानार्थ भाग बड़ा। (५) **रामेश्वर शर्मा** की **शब्दमाला** भी ऐसी ही कृति है। (६) १४ वीं शताब्दी के विजयनगर के राजा हरिहरगिरि की राजसभा में भास्कर अथवा दंडाधिनाथ थे। उन्होंने **नानार्थरत्नमाला** बनाया। (७) **अभिधानतंत्र** का निर्माण जटाधर ने किया। (८) 'अनेकार्थ' या नानार्थकमंजरी'—**'नामांगदसिंह'** का लघु नानार्थकोश है। (९) **रूपचंद्र** की **रूपमंजरी—नाममाला** का समय १६वीं शती है। (१०) **शारदीय नाममाला** 'हर्षकीर्ति' कृत है (१६२४ ई०)। (११) **शब्दरत्नाकर** के कर्ता **'वामनभट्ट बाण'** है। (१२) **नामसंग्रहमाला** की रचना अप्पय दीक्षित ने की है। इनके अतिरिक्त (१३) **नामकोश** (सहजकीर्ति का (१६२७) और (१४) **पंचतत्व प्रकाश** (१६४४) सामान्य कोश हैं।

कल्पद्रु कोश केशवकृत है। नानार्थार्णवसंक्षेपकार 'केशवस्वामी' से ये भिन्न हैं। यह ग्रंथ संस्कृत का बृहत्तम पर्यायवाची कोश है। इसमें नानार्थ का प्रकरण या विभाग नहीं है। इसमें पर्यायों की संख्या सर्वाधिक है, यथा—पृथ्वी के १६४ तथा अग्नि के ११४ पर्याय इत्यादि। 'मल्लिनाथी' टीका में उद्धृत वचन के आधार पर 'केशव नामक' तृतीय कोशकार भी अनुमानित हैं। तीन स्कंधों के इस कोश की श्लोकसंख्या लगभग चार हजार है। स्कंधों के अंतर्गत अनेक प्रकांड हैं। लिंगबोध के लिये अनेक संक्षिप्त संकेत हैं। पर्यायों की स्पष्टता और पूर्णता के लिये अनेक प्रयोग तथा प्रतिक्रियाएँ दी हुई हैं। इसमें कात्य, वाचस्पति, भागुरि, अमर, मंगल, साहसांक, महेश और जिनांतिम (संभवतः हेमचंद्र) के नाम उल्लिखित हैं। चतुर्थ श्लोक से नवम श्लोक तक—कोश में विनियुक्त पद्धति का निर्देश किया गया है। रचनाकाल १६६० ई० माना जाता है। **केशवस्वामी** के **नानार्थार्णव कोश** से यह भिन्न है।

(१६) **शब्दरत्नावली** के निर्माता **मथुरेश** हैं (समय १७वीं शताब्दी)। इनके अतिरिक्त कुछ और भी साधारण परवर्ती कोश हैं। (१७) **कोशकल्पतरु—विश्वनाथ**; (१८) **नानार्थपदपीठिका** तथा **शब्दलिंगार्थचंद्रिका—सुजन** (दोनों ही नानार्थकोश हैं)। इनमें प्रथम में—अंत्यव्यंजनानुसारी क्रम है और द्वितीय में तीन कांड हैं जिसमें क्रमशः एक, दो और तीन लिंगों के शब्द हैं)। (२०) **पर्यायपदमंजरी** और **शब्दार्थमंजूषा**—प्रसिद्ध कोश है। (२१) **महेश्वर** के कोश का नाम **'पर्यायरत्नमाला'** है—संभवतः पर्यायवाची कोश **'विश्वप्रकाश'** के निर्माता

महेश्वर से ये भिन्न हैं। **पर्यायशब्दरत्नाकर** के कर्ता **धनंजय भट्टाचार्य** हैं। (२३) विश्वमेदिनी--सारस्वत मिश्र का है। (२४) **विश्वकवि** का **विश्वनिघंटु** है। (२५) १७८६ और १८३३ के बीच बनारस में संस्कृत-पर्यायवाची शब्दों की एक 'ग्लासरी' 'एथेनियन' ने अपने एक ब्राह्मण मित्र द्वारा अपने निर्देशन में बनवाई थी। इसमें मूल शब्द सप्तमी विभक्ति के थे और पर्याय--कर्ता कारक (प्रथमा) के। परंतु संभवतः इसमें बहुत सा अंश आधारहीनता अथवा दोषपूर्ण विनियोग के कारण संदिग्ध रहा। 'बोथलिक' का संक्षिप्त शब्दकोश भी 'ग्यलनास' के अनेक उद्धरणों से युक्त है।

इनके अलावा **क्षेमेंद्र** का **लोकप्रकाश, महीप** की **अनेकार्थमाला** का **हरिचरणसेन** की **पर्यायमुक्तावली, वेणीप्रसाद** का **पंचतत्वप्रकाश, अनेकार्थतिलक, राघव खांडेकर** का **कोशावतंस**, 'महाक्षपणक की **अनेकार्थध्वनिमंजरी** आदि साधारण शब्दकोश उपलब्ध हैं। **भट्टमल्ल** की **आख्यातचन्द्रिका** (क्रियाकोश), हर्ष का **लिंगानुशासन, अनिरुद्ध** का **शब्दभेदप्रकाश** और **शिवदत्त वैद्य** का **शिवकोश** (वैद्यक), **गणितार्थ** नाममाला, नक्षत्रकोश आदि विशिष्ट कोश हैं। लौकिक न्याय की सूक्तियों के भी अनेक संग्रह हैं। इनमें **भुवनेश** की **लौकिकन्यायसाहसी** के अलावा **लौकिक न्यायसंग्रह, लौकिक न्याय मुक्तावली, लौकिकन्यायकोश** आदि हैं। दार्शनिक विषयों के भी कोश--जिन्हें हम पारिभाषिक कहते हैं--पांडुलिपि की सूचियों में पाए जाते हैं।

संस्कृत कोशों की टीकाओं का महत्व

संस्कृत में टीका, व्याख्या और भाष्य की प्रणाली विशेष महत्व रखती है। प्रायः सभी प्रकार के ग्रंथों में इन टीकाओं का विशेष महत्व है। इसका कारण यह है कि अनेक टीकाओं में मूल की अपेक्षा अधिक बातें, नूतन व्याख्या तथा खंडन मंडन द्वारा नव्य मतों की भी स्थापना की गई है। कोशग्रंथों के टीकाकारों का कृतित्व भी बड़े महत्व का है। उनमें जहाँ एक ओर नए शब्द, नवीन अर्थ और नई व्याख्याएँ हैं वहीं दूसरी ओर अनेक कोशकारों और कोशग्रंथों के नाम भी मिलते हैं। अनेक तो ऐसे टीकाकार हैं जो स्वयं ग्रंथकार हैं और स्वयमपि जिन्होंने अपने ग्रंथ की टीकाएँ भी लिखी हैं। अधिकांश ने केवल टीकाएँ बनाई हैं। 'अमरकोश' की टीकाएँ सर्वाधिक और कदाचित् सर्वप्राचीन भी हैं। उनका अनुवादात्मक हिंदी आदि भाषाओं में कोशीकरण भी किया गया है। इन टीकाओं में अनेक पूर्ववर्ती कोशों या कोशकारों के नाम और कभी कभी उद्धरण भी मिलते हैं। अमरकोश के टीकाकार 'क्षीरस्वामी' तथा 'हेमचंद्र' ने 'काव्य' कोश के नानार्थ और पर्यायवाची कोशों का संकेत दिया है। इनसे यह भी लक्षित होता है कि कभी कभी शब्द की अर्थबोधक व्याख्याएँ भी वहाँ थीं--यथा--'क्षुद्रछिद्रसमोपेतं चालनं तितउः पुमान्।' अथवा 'स्कंधादूर्ध्वं तरोः शाखा कटप्रो विटपो मतः।' हेमचंद्र ने ३० कोशकारों या कोशों का उल्लेख किया है। टीका आदि के आधार पर--तारपाल, दुर्ग, धरणीधर धर्ममुनि, रंतिदेव, रुद्र, विश्वरूप, बोपदेव, शुभांग (शुभांक), वोपालित (गोपालित), कृष्णकवि (वैभाषिक शब्दकोश) आदि नाना नाम मिलते हैं। 'राक्षस' या 'रभस' के षडर्थकोश का भी उल्लेख है।

इन कोशटीकाओं में शब्दों की व्युत्पत्तियाँ भी हैं। 'अमरकोश' की 'रामाश्रयी' टीका में प्रत्येक शब्द की पाणिनीय व्याकरणानुसारी व्युत्पत्ति दी गई है। कभी कभी किसी टीका में त्रुटियाँ और कभी कभी प्रयोग भी बताए गए हैं। सब मिलाकर इन टीकाओं को कोशवाङ्मय का महत्वपूर्ण अंग कहा जा सकता है। वस्तुतः ये कोशों के पूरक अंग हैं। इनमें 'उक्त, अनुक्त और दुरुक्त' विषयों का विचार और विवेचन किया गया है। अतः संस्कृत कोशों के इतिहास में इनका महत्व और योगदान--हमें कभी नहीं भूलना चाहिए।

पाली, प्राकृत और अपभ्रंश का कोशवाङ्मय

मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषाओं का वाङ्मय भी कोशों से रहित नहीं था। पालि भाषा में अनेक कोश मिलते हैं। इन्हें **बौद्धकोश** भी कहा गया है। उनकी मुख्य उपयोगिता पालि भाषा के बौद्ध-साहित्य के समझाने में थी। उनकी रचना पद्यबद्ध संस्कृतकोशों की अपेक्षा गद्यमय निघंटुओं के अधिक समीप है। बहुधा इनका संबंध विशेष ग्रंथों से रहा है। पालि का **महाव्युत्पत्ति** कोश २८५ अध्यायों में लगभग नौ हजार श्लोकों का परिचय देनेवाला है। बौद्ध संप्रदाय के पारिभाषिक शब्दों का अर्थ देने के साथ साथ पशु पक्षियों, वनस्पतियों और रोगों आदि के पर्यायों का इसमें संग्रह है। इसमें लगभग ६००० शब्द संकलित हैं। दूसरी ओर मुहावरों, नामधातु के रूपों और वाक्यों के भी संकलन हैं। पाली का दूसरा विशेष महत्वपूर्ण कोश **अभिधान** प्रदीपिका (अभिधानप्पदीपिका) है। यह संस्कृत के अमरकोश की रचनाशैली की पद्धति पर तथा उसके अनुकरण पर छंदोबद्ध रूप में निर्मित है। 'अमरकोश' के अनेक श्लोकों का भी इसमें पालिरूपांतरण है। इसी प्रकार भिक्षु सद्धर्मकीर्त्ति के एकाक्षर कोश का भी नामोल्लेख मिलता है।

प्राकृत भाषा में उपलब्ध कोशों को संख्या कम है। जैन भांडागारों से कुछ प्राकृत और अपभ्रश के कोशों की विद्यमानता का पता चला है। परंतु जब तक उन्हें देखने का अवसर नहीं मिलता, तब तक उनका विवरण देना ठाक नहीं है।

धनपाल (समय ९७२ ई० से ९९७ ई० के बीच) विरचित 'पाइअलच्छीनाममाला' कदाचित् प्राकृत का सर्वप्राचीन उपलब्ध कोश है। इनके गद्यकाव्य--'तिलकमंजरी'--के उल्लेखानुसार 'मुंजराज' ने इन्हें 'सरस्वती' उपाधि दी थी। गाथाछंद में रचित, अध्यायविरहित इस कोश म क्रम से श्लोक, श्लोकार्ध और पद (चरण) एवं शब्द में पर्यायवाची शब्द निर्दिष्ट हैं। 'हेमचंद्र' ने अपने 'देशीनाममाला' में इसकी सहायता लेने का टीका में उल्लेख किया है।

हेमचंद्र रचित **देशीनाममाला** नाम से प्रसिद्ध प्राकृत का महत्वपूर्ण और विख्यात कोश कहा जाता है। देशी शब्द वस्तुतः प्राकृत का पर्याय नहीं है, उसकी सीमा में प्राकृत और अपभ्रंश का--जो हेमचंद्र के समय तक उक्त भाषाओं के ग्रंथों में मिलते थे उन्हींका--संग्रह है। देशी से सामान्यतः आभास यह होता है कि जो शब्द संस्कृत तत्सम शब्दों से व्युत्पन्न न होकर तत्तत् देश की लौकिक भाषाओं के अव्युत्पन्न शब्द थे उन्हीं को देशी कहा गया है। देशज भी उन्हीं का परिचायक है। परंतु तथ्य यह नहीं है। देशी नाममाला के बहुत से शब्द देशज अवश्य हैं। परंतु जिन तद्भव शब्दों की व्युत्पत्ति संस्कृत तत्सम शब्दों

से हेमचंद्र संबद्ध न कर सके उन्हें अव्युत्पन्न देशज शब्द मान लिया। प्राकृत के व्याकरण नियमों के अनुसार जिनकी तद्भवसिद्धि नहीं दिखाई जा सकी, उन्हीं को यहाँ देशी कहकर संकलित किया गया। परंतु 'देशीनाममाला' में ऐसे शब्दों की संख्या बहुत बड़ी है जो संस्कृत के तद्भव व्युत्पन्न शब्द हैं। चूँकि प्राकृत व्याकरणानुसार हेमचंद्र उनका संबंध, मूल संस्कृत शब्दों से जोड़ने में असमर्थ रहे, अतः उन्हें देशी कह दिया। फलतः हम कह सकते हैं कि देशी शब्द का यहाँ इतना ही अर्थ है कि उन शब्दों की व्युत्पत्ति का संबंध जोड़ने में हेमचंद्र का व्याकरणज्ञान असमर्थ रहा।

इनके अतिरिक्त दो देशी कोशों का भी--एक सूत्ररूप में और दूसरा गोपाल कृत छंदोबद्ध--उल्लेख मिलते हैं। द्रोणकृत एक देशी कोश का नाम भी मिलता है। इसी तरह शिलांग का भी कोई देशी कोश रहा होगा। हेमचंद्र ने देशीनाममाला में अपना मतभेद और विरोध--उक्त कोशकार के मत के साथ--प्रकट किया। हेमचंद्र के प्राकृत शब्दसमूह में उपलब्ध अनेक तत्पूर्ववर्ती देशी शब्दकोशकारों का उल्लेख मिलता है। हेमचंद्र ने ही जिन कोशकारों को सर्वाधिक महत्व दिया है उनमें राहुलक की रचना और पादलिप्ताचार्य का 'देशीकोश' कहा जाता है। 'जिनरत्नकोश' में भी अनेक मध्यकालीन कोशग्रंथों के नाम मिलते हैं। अभिधानचिंतामणिमाला संभवतः वही ग्रंथ है जिसे हेमचंद्र विरचित अभिधानचिंतामणि कहा गया और यह संस्कृत कोश है।

विजयराजेंद्र सूरि (१९१३-१९२५ ई०) द्वारा संपादित, संकलित और निर्मित--अभिधानराजेंद्र--भी प्राकृत का एक बृहद् शब्दकोश है। पर तत्वतः यह जैनों के मत, धर्म और साहित्य का आधुनिक प्रणाली में रचित--सात जिल्दों में ग्रथित--महाकोश है। पृष्ठ संख्या भी इसकी लगभग दस हजार है। यह वस्तुतः विश्वकोशात्मक ज्ञानकोश की मिश्रित शैली का आधुनिक कोश है।

निष्कर्ष

(१) जहाँ तक संस्कृत कोशों का संबंध है। शब्दप्रकृति के अनुसार उसके तीन प्रकार कहे जा सकते हैं--(१) शब्दकोश, (२) लौकिक शब्दकोश और (१) उभयात्मक शब्दकोश।

(२) वैदिक निघंटुओं की शब्द-संग्रह-पद्धति क्या थी इसका ठीक ठीक निर्धारण नहीं होता, पर उपलब्ध निघंटु के आधार पर इतना कहा जा सकता है कि उसमें नाम, आख्यात, उपसर्ग और निपात चारों प्रकार के शब्दों का संग्रह रहा होगा। परंतु उनका संबंध मुख्य और विरल शब्दों से रहता था और कदाचित् वेदविशेष या संहिताविशेष से भी प्रायः वे संबद्ध थे। वे संभवतः गद्यात्मक थे।

(३) लौकिक संस्कृत की कोशपरंपरा में 'अमरपूर्व' कोशकारों की दो पद्धतियाँ थीं, एक 'नामतंत्र' और दूसरा 'लिंगतंत्र'। इस द्वितीय विधा के कोशों में संस्कृत शब्दों के प्रयोगों में स्वीकार्य लिंगों का निर्देश होता था। एकलिंग, द्विलिंग, त्रिलिंग शब्दों के विभाग के अतिरिक्त अर्थवत्‌लिंग और नानालिंग के प्रकरण भी इनमें हुआ करते थे। ये कोश अनुमान के अनुसार गद्यात्मक थे।

(४) नामतंत्रात्मक कोशों की भी दो विधाएँ होती थीं--एक समानार्थक शब्दसूचीकोश (जिसे आज पर्यायवाची कोश कहते हैं) और दूसरा अनेकार्थ या नानार्थ कोश।

(५) 'अमरसिंह' के कोशग्रंथ में 'नामतंत्र' और 'लिंगतंत्र' दोनों का समन्वय होने के बाद जहाँ एक ओर कोश उभयनिर्देशक होने लगे वहाँ कुछ कोश 'अमरकोश' के अनुकरण पर ऐसे भी बने जिनमें समानार्थक पर्यायों और अनेकार्थक शब्दों--दोनों विधाओं की अवतारणा एकत्र की गई। फिर भी कुछ कोश (अभिधान चिंतामणि और कल्पद्रु आदि) केवल पर्यायवाची भी बने, और कुछ कोश--विश्वप्रकाश, मेदिनी, नानार्थार्णवसंक्षेप'--आदि नानार्थकोश ही हैं। 'वर्णदेशना' सदृश कोशों को छोड़कर संस्कृत कोश प्रायः पद्यात्मक हैं। इनमें मुख्य छंद अनुष्टुप् है। कभी कभी बहुछंदवाले कोश भी बने।

(६) अमरकोश' की पद्धति पर कुछ कोशों में शब्दों का वर्गीकरण स्वर्ग, द्यौः, दिक्, काल आदि विषयसंबद्ध पदार्थों के आधार पर कांडों, वर्गों, अध्यायों आदि में हुआ और आगे चलकर कुछ में वर्णानुक्रम शब्दयोजना का भी आधार लिया गया। इनमें कभी सप्रमाण शब्दसंकलन भी हुआ।

(७) अनेकार्थकोशों में विशेष रूप से वर्णक्रमानुसारी शब्द-संकलन-पद्धति स्वीकृत हुई। उसमें भी अंत्याक्षर (अर्थात् अंतिम स्वरांत व्यंजन) के आधार पर शब्दसंकलन का क्रम अपनाया गया और थोड़े बहुत कोशों में आदिवर्णानुसारी शब्द-क्रम-योजना भी अपनाई गई। अंत्यवर्णानुसारी कोशों की उक्त योजना का आधार कहीं कहीं निर्दिष्ट वर्ग या उच्चारणस्थान होता था। इनमें कभी कभी अक्षर संख्यानुसार भी एकाक्षर, द्व्यक्षर, त्र्यक्षर आदि के क्रम से शब्दवर्गों का विभाजन भी किया गया है।

(८) इन विशेषताओं के अतिरिक्त एकाक्षरकोशमाला और द्विरूपकोश नामक शब्दकोशों की दो विधाओं का उल्लेख मिला है। एकार्थनाममाला, 'द्व्यर्थनाममाला' आदि ग्रंथ आज उपलब्ध नहीं हैं तथापि कोशकार 'सौहरि' के नाम से निर्मित वे कोश कहे गए हैं। 'राक्षस' कवि का 'षडर्थनिर्णयकोश' भी उल्लिखित है। 'षड्मुखकोश'-वृत्ति भी संभवतः ऐसा ही टीकाग्रंथ था। 'वर्णदेशना' गद्यात्मक कोश है। वैकल्पिक रूपों का भी एकाध कोशों में निर्देश किया गया है।

(९) कुछ कोशटीकाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि संस्कृतकोश के युग में बड़े कोशों के संक्षेपीकरण द्वारा व्यवहारोपयोगी लघु रूप के निर्माण की पद्धति भी प्रचलित थी। संस्कृत के वैयाकरणों में भी 'बृहत्' और 'लघु' संस्करणों के संपादन की प्रवृत्ति मिलती है जैसे--'लघुशब्देंदुशेखर' 'बृहच्छब्देंदुशेखर' 'बालमनोरमा' 'प्रौढ़मनोरमा' तथा 'लघु-सिद्धांत-कौमुदी'। 'रायमुकुट' कृत अमरकोश टीका में 'बृहत्‌अमरकोश,' सर्वदानंद द्वारा 'बृहानंद अमरकोश' और 'भानुदीक्षित' द्वारा 'बृहत् हारावली' के नाम उल्लिखित हैं। ऐसा मालूम होता है कि इन्हीं ग्रंथों के संक्षिप्त संस्करण के रूप में 'हारावली' और 'अमरकोश' आदि निर्मित हुए हैं।

(१०) आनुपूर्वीमूलक वैकल्पिक शब्दों के संकल भीन कहीं

कहीं मिल जाते है। 'शब्दार्णवसंक्षेप' में पर्यायों की प्रवृत्तिमूलक सूक्ष्म अर्थच्छाया की भेदपरक व्याख्या भी मिलती है। 'कल्पद्रुकोश' में लिखित म० म० रामावतार शर्मा के कथन से यह भी पता लगता है कि अतिप्राचीन 'व्याडि' के कोश में कभी कभी अर्थनिर्देशन के लिये व्युत्पत्तिपरक सूचना भी दी जाती रही है।

(११) पाली, प्राकृत और अपभ्रंश कोशों में कुछ नवीनता लक्षित नहीं होती। इतना अवश्य है कि पाली कोशों में बौद्धमत के पारिभाषिक शब्दों का काफी परिचय मिल जाता है और पाली के बहुत से शब्दों का अर्थज्ञान भी हो जाता है। 'पाली' का महाव्युत्पत्यात्मक कोश गद्यात्मक है।

(१२) प्राकृत कोशों में अधिकतः देशी शब्दकोश, और देशी नाममालाएँ हैं। इनमें अव्युत्पन्न माने गए देशी शब्दों का संकलन है। कुछ में जैन प्राकृत ग्रंथों के संपर्क से जैन मत के पारिभाषिक शब्दों का आंशिक परिचय मिल जाता है। 'पइअलच्छीनाममाला' नामक ग्रंथ में संभवतः सामान्य प्राकृत नामपदों का अत्यंत लघु शब्द संग्रह रहा होगा।

(१३) अपभ्रंश के कोश संभवतः पृथक् उपलब्ध नहीं हैं। प्राकृत के देशी शब्दकोशों अथवा देशी नाममालाओं में ही उनका अंतर्भाव समझना चाहिए।

मध्यकालीन हिंदी कोश

मध्यकाल में विरचित हिंदी कोशों का उल्लेख मिलता है और उनका स्वरूप सामने आता है। हिंदी ग्रंथों के खोजविवरणों में पचासों कोश ग्रंथों के नाम मिलते हैं। इनके अतिरिक्त पोद्दार अभिनंदन ग्रंथ में श्री जवाहरलाल चतुर्वेदी ने १४-१५ ऐसे कोशों के नाम दिए हैं जो खोजविवरणों में नहीं मिल पाए हैं। इससे ऐसा लगता है कि हिंदी साहित्य के मध्यकाल में और उसके बाद भी छोटे बड़े सैकड़ों कोश बने थे। उनमें अनेक संभवतः लुप्त हो गए। जिनके नाम ज्ञात हैं उनमें भी अनेक लुप्त या नष्ट होते जा रहे हैं। हिंदी ग्रंथों की खोज करनेवालों को जो कोश उपलब्ध हुए हैं उनमें कतिपय प्रसिद्ध कोशों का संक्षिप्त परिचय दिया जा सकता है।

ऐसा जान पड़ता है, इनपर संस्कृत के कोशों से संकलित विषय और उनकी पद्धति का पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। अधिकांश कोशों ने मुख्य आधार के रूप में 'अमरकोश' का सहारा लिया। उसकी उपजीव्यता का उन्होंने उल्लेख भी किया है। कभी कभी (जैसे उमराव कोश में) अमरकोश का नाम भी उल्लिखित है। पर कुछ कोशकारों ने (यथा कर्णाभरण के लेखक हरिचरण दास) मेदिनी हेमकोश आदि से भी सहायता ली है।

मध्यकालीन कोश-रचना-पद्धति की झलक अग्रेनिर्दिष्ट कुछ प्रसिद्ध कोशों के नाम देखने से मिल जाती है। 'नाममाला' और 'अनेकार्थमंजरी' 'नंददास' के दो कोश मिलते हैं। पद्यनिर्मित इन कृतियों के नाममात्र से इनके स्वरूप का बोध हो जाता है। 'गरीबदास' का 'अनगप्रबोध' १६१५ ई० की रचना कही जाती है। 'रत्नजीत' (१७१३ ई०) के दो शब्द कोश (क) भाषाशब्दसिंधु और (ख) भाषाधातुमाला——बताए गए हैं। इनके नाम भी स्वरूपपरिचायक हैं। 'मिर्जा खाँ' का 'तुहफत् उल-हिन्द (तुहफतुल हिंद) 'खुसरो' की 'खालिकबारी'—अत्यंत प्रसिद्ध कोश हैं। एक 'डिंगल कोश' भी बहुत पहले बन चुका है। इनके अतिरिक्त भी अनेक कोश बने। 'नंददास' के नाम से 'नामचिंतामणि' नामक भी एक कोश कहा गया है। 'अमरकोश' के भी संभवतः अनेक पद्यानुवाद हुए हैं।

इन ग्रंथों के परिदर्शन से ज्ञात होता है कि जैसा ऊपर कहा जा चुका है, 'अमरकोश' के तथा कभी कभी अन्य कोशों के आधार पर हिंदी के मध्यकालीन पद्यात्मक कोश बने जो पर्यायवाची, समानार्थी या अनेकार्थक कोश थे। धातुसंग्रह का भी एक कोश——उपर्युक्त धातुमाला —अंतिम वर्णक्रमानुसारी सकलन है। मिर्जा खाँ का कोश अनेक दृष्टियों से नूतन पद्धतियों का निदर्शन उपस्थित करता है। अपने ढंग का यह प्रथम प्रयास कहा गया है। जियाउद्दीन और सुनीतकुमार चाटुर्ज्या ने इसकी बड़ी प्रसंशा की है। मध्यकालीन हिंदी भाषा के कोशों में शब्दों के क्रमसंयोजन में नूतन और भाषा-वैज्ञानिक दृष्टि का इसमें परिचय दिया गया है; साथ ही साथ शब्दों की विस्तृत व्याख्या भी दी गई है। इसके अतिरिक्त उच्चारण में——लिखित रूप की अपेक्षा बोलचाल के स्वरूप का अधिक ध्यान रखा गया है। 'गरीबदास' का कोश संत साहित्य के अनेक पारिभाषिक शब्दों का अर्थकोश है। हिंदी में 'खुसरो' का कोश भी यद्यपि विशाल नहीं है तथापि द्विभाषी कोश की प्राचीनरूपता के कारण महत्व रखता है। इसी तरह 'लल्लूलाल' का परवर्ती (१८६७ ई०) अंग्रेजी-हिंदी-फारसी कोश भी उल्लेखनीय है। 'एकाक्षरी कोश', 'ओषधिवरदनाममाला' आदि अनेक प्रकार के शब्द संग्रहात्मक कोशों का भी निर्माण हुआ है।

हिंदी के मध्यकालीन कोशों में प्राचीन वर्गानुसारी विभाजन के अतिरिक्त केवल शीर्षकानुसारी विभाजन भी मिलता है, जैसे—— 'अथ गो शब्द', 'अथ सदृश शब्द' इत्यादि। 'मुरारिदान' के डिंगल कोश के अंतर्गत वर्गपद्धति के साथ साथ अन्य शीर्षक भी दिए गए हैं। उक्त कोश में शीर्षकों के रूप हैं — (१) अथ वनस्पतिकायमाह, (२) दोहा, (३) वननाम इत्यादि। इसकी एक अन्य विशेषता भी है——इंद्रियों के अनुसार उपशीर्षक जैसे—'अथ द्वीद्रियानाह, त्रीद्रियानाह, चतुरिंद्रियानाह, पंचेंद्रियानाह।' पुनश्च 'जलचरान् पंचेंद्रियानाह' ——इत्यादि। 'वायुकायमाह' कहकर वायु से संबद्ध नाना पदार्थों का संकलन है। कहीं कहीं 'पीड़ा', 'पाताल' आदि उपशीर्षक के अंतर्गत भी उन शब्दों का संग्रह है जो अन्यत्र समाविष्ट नहीं किए जा सके। कहीं कहीं ऐसा भी है कि पर्यायों और जातिभेदों के लिये दूसरी पद्धति अपनाई गई है, जैसे, 'व्रिख' के अंतर्गत तो वृक्षों के पर्याय दिए गए हैं और 'सुरव्रिख' नाम के अंतर्गत वृक्षों के प्रकार गिनाए गए हैं—— 'सुरतर गोरक, सिसण, देवदार, मंदार' इत्यादि। इसी क्रम में वे नाम भी हैं जिनमें चौबीस अवतार, अष्टसिद्धि, नवनिधि, सत्ताईस नक्षत्र, छत्तीस शस्त्रों आदि के नाम दिए गए हैं।

हिंदी के मध्यकालीन कोशग्रंथों में शब्दसंकलन का कार्य मुख्यतः संस्कृत के अन्य कुछ प्रसिद्ध कोशों के आधार पर हुआ है। इसके अतिरिक्त 'भिखारीदास' आदि के साहित्यिक भाषाग्रंथों से भी शब्द संकलित हुए हैं। 'खुसरो' और उनसे प्रभावित कोशों के समय से ही

जनजीवन या बोलचाल के शब्दों को भी संगृहीत करने की चेष्टा मिलती है। संस्कृत कोशों की पद्धति भी—जिसके अनुसार 'घनसार-श्चंद्रसंवः' कहकर चंद्र की सभी संज्ञाओं को कपूर का पर्याय भी संकेतित कर दिया गया है—'उमराव' कोश आदि में मिलती है। परंतु 'अमरकोश' आदि के समान हिंदी कोशों में लिंगनिर्देश की व्यवस्था नहीं हो पाई। शिवसिंह कायस्थ के 'भाषा अमरकोश' (अमरकोश की टीका) में स्पष्ट ही उसे बिना प्रयोजन समझकर छोड़ देने का निर्देश किया गया है। कभी कभी अवश्य एकाध कोश में यह कह दिया गया है कि दीर्घ रूप स्त्रीलिंग हैं और ह्रस्व पुल्लिग। अव्ययों का समावेश भी प्रायः नहीं के बराबर उपलब्ध है यद्यपि अनेक कोशों में संस्कृत के परिनिष्ठित पदरूपों को तत्सम भाव से भी कभी कभी निर्दिष्ट किया गया है तथापि संस्कृत अव्ययों के संकलन में यह प्रक्रिया छोड़ दी गई है। जहाँ तक ध्वनियों में विकसित परिवर्तन को निर्दिष्ट करने का प्रश्न है—'तुहफतुलहिंद' आदि कोशों को छोड़कर अन्यत्र इसका अभाव है। 'भिखारीदास' ने अवश्य ही एक स्थल पर य, ज, री, रि, श, ष, स, और ज्ञ आदि का समस्यात्मक उल्लेख मात्र कर दिया है। पर्याय शब्द और नानार्थ के विभिन्न अर्थों की गणना भी कुछ कोशकारों ने या तो अंत में पर्याय-संख्या-सूचना से अथवा प्रत्येक पर्याय के साथ अंक देकर की है।

संक्षेप में कह सकते हैं कि (१)—मध्यकालीन हिंदीकोश अधिकतः पद्य में ही बने जो संस्कृत कोशों से—मुख्यतः 'अमरकोश' से—या तो प्रभावित अथवा अनूदित हैं। अधिकतः ये पर्यायवाची कोश हैं। कुछ अनेकार्थक कोश भी हैं तथा दो एक 'एकाक्षरीकोश' भी मिल जाते हैं। कुछ 'निघंटु' ग्रंथ भी—जो वैद्यक से संबंधित थे,—संस्कृत से प्रभावित होकर बने। (२)—इन कोशों में नामसंग्रह अधिक है। कभी कभी धातुकोश भी मिल जाते हैं। (गूढ़ार्थ कोश भी बना था।) इसी कारण अधिकतः 'नाममाल', 'नाममंजरी', 'नामप्रकाश', 'नामचिंतामणि', आदि कोशपरक नामों का अधिक प्रयोग हुआ है। (३)—'आतमबोध' या 'अनल्पप्रबोध' आदि में पारिभाषिक-शब्दकोश-पद्धति भी मिलती है। (४)—शब्दक्रम में अधिकतः अंत्य वर्ण आधार बने हैं। शब्दविभाजन या तो वर्गानुसारी है या शीर्षकानुसारी। 'तुहफतुलहिंद' में अवश्य ही वर्णवर्गों का विभाजनक्रम मिलता है। कुछ कोशों में उच्चारण और वर्णानुपूर्वी का सामान्य निर्देश भी दिखाई पडता है। (५)—डिंगल के कुछ कोशों में नामपदों के साथ क्रियाओं का संकलन भी दिखाई देता है। (६)—कभी कभी पर्यायगणना भी है और परिभाषाएँ भी।

लिंगव्यवस्था आदि अनावश्यक समझे जानेवाले तत्वों का त्याग करने के अतिरिक्त कोश-विद्या-संबंधी कोई ऐसी नवीन बात—जो कोश-विज्ञान के विकास में विशिष्ट महत्व रखती हो—इन कोशों में आविर्भूत नहीं हुई। उच्चारण आदि के संबंध में कभी कभी कोशकार की पैनी दृष्टि अवश्य आकृष्ट हुई। दूसरी ओर भाषा में प्रयुक्त होनेवाले और महत्वपूर्ण साहित्यकारों के विशिष्ट साहित्यग्रंथों में प्रयोगागत तद्भव, देशी और विदेशी शब्दों के संकलन का प्रयास उतना नहीं हुआ जितना होना आवश्यक था।

मध्यकालीन हिंदी कोशकार अपने सामने उपलब्ध संस्कृत कोशों के आधार पर हिंदी कोश का कदाचित् निर्माण कर देना चाहते थे। इसका एक और भी अत्यंत महत्वपूर्ण एवं संभावित कारण कहा जा सकता है। कोश का सर्वप्रमुख प्रयोजन होता है वाङमय के ग्रंथों का पाठकों को अर्थबोध कराना। परंतु संस्कृत कोशों और तदाधारित हिंदी कोशों के निर्माताओं की मुख्य दृष्टि थी ऐसे कोशों के संपादन पर जो विशेषतः कवियों और सामान्यतः अन्य ग्रंथकारों के प्रयोगार्थ पर्यायवाची शब्दभांडार को सुलभ बना दें। निघंटुभाष्य अर्थात् निरुक्त में वेदार्थ-व्याख्या पर ही सर्वाधिक ध्यान दिया गया है।

संस्कृत साहित्य के रचनात्मक ग्रंथों के टीकाकारों ने अर्थ बोधन के लिये ही कोश वचनों के उद्धरण दिए हैं। फिर भी संस्कृत के अधिकांश कोशकारों की दृष्टि में कविता के निर्माण में सहायता पहुँचाना—पर्यायवाची कोशों का कदाचित् एक अति महत्वपूर्ण लक्ष्य था। इसी प्रकार श्लेष, रूपक आदि अलंकारों में उपयुक्त शब्दनियोजन के लिये शब्दों को सुलभ बनाना अनेक नानार्थ शब्द-संग्राहकों का मुख्य कोशकर्म था। हिंदी के कोशकारों ने भी संभवतः इस प्रेरणा को अपना प्रियतर उद्देश्य समझा। इसी कारण गतानुगतिक और संस्कृतागत शब्द-कोश की निधि को असंस्कृतज्ञों के लिये सुलभ करने की इतिकर्तव्यता हिंदी कोशों में भी हुई। थोड़े से कोशकारों ने आरंभ में पर्याय या अनेकार्थ शब्दों में नए शब्द जोड़े। पर उससे बहुत आगे बढ़ने का स्वतंत्र प्रयास कम हुआ। फिर भी कुछ कोशकारों ने तद्भव आदि शब्दों की थोड़ी बहुत वृद्धि करने का प्रयास किया। कुल मिलाकर कह सकते हैं कि मध्यकालीन हिंदी शब्दकोशों में कोशविद्या के किसी भी तत्व की प्रगति नहीं हो पाई। संस्कृत कोशों की प्रामाणिक प्रौढ़ता में उसी प्रकार कुछ ह्रास ही हुआ जैसे, रीतिकालीन साहित्यशास्त्र के हिंदी-लक्षण-ग्रंथों में संस्कृत के तद्विषयक विशिष्टग्रंथों की प्रौढ़ता का। व्युत्पत्ति का पक्ष हिंदी के मध्यकालीन कोशों में पूर्णतः परित्यक्त था। संस्कृत कोशों में भी यह पक्ष उपेक्षित ही रहा पर कोश के अनेक टीकाकारों ने व्युत्पत्ति पर ध्यान दिया। 'अमरकोश' की 'व्याख्यासुधा' या 'रामाश्रयी' टीका (भानुजी दीक्षितकृत) में 'अमरकोश' के प्रत्येक नामपद की व्युत्पत्ति दी गई है। हिंदी के मध्यकालीन कोशों की न तो वैसी टीकाएँ लिखी गईं और न तद्भव शब्दों की व्युत्पत्ति का अनुशीलन ही हुआ। अतः कोशविद्या के वैकासिक कौशल की दृष्टि में कोई प्रगति नहीं मिलती।

संस्कृत के आधुनिक महाकोश

भारत में आधुनिक पद्धति पर बने संस्कृत कोशों को दो वर्गों में रखा जा सकता है। इनमें एक विधा वह थी जिसमें अंग्रेजी अथवा जर्मन आदि भाषाओं के माध्यम से संस्कृत के कोश बने। इस पद्धति के प्रवर्तक अथवा आदि निर्माता पाश्चात्य विद्वान् थे। कोशविद्या की नूतन दृष्टि से संपन्न नवकोश की रचनाशैली के अनुसार ये कोश बने। इनकी चर्चा आगे की जायगी। दूसरी और नवीन पद्धति के अनुसार नूतन प्रेरणाओं को लेकर संस्कृत में ऐसे कोश बने जिनका माध्यम भी

संस्कृत ही था। इस प्रकार के कोशों में विशेष रूप से दो उल्लेखनीय हैं : (१) 'शब्दकल्पद्रुम' और (२) 'वाचस्पत्य'।

प्रथम कोश--स्यार राजा **'राधाकांतदेव बाहादुर'** द्वारा निर्मित "शब्दकल्पद्रुम" है। इसका प्रकाशन १८२८--१८५८ ई० में हुआ। इसमें पाणिनिव्याकरण के अनुसार प्रत्येक शब्द की व्युत्पत्ति दी गई है, शब्दप्रयोग के उदाहरण उद्धृत हैं तथा शब्दार्थसूचक कोश या इतर प्रमाणों के समर्थन द्वारा अर्थनिर्देश किया गया है। पर्याय भी दिए गए हैं। धातुओं से व्युत्पन्न क्रियापदों के उदाहरण भी दिए गए हैं। पदोदाहरण आदि भी हैं। कुछ थोड़े अतिप्रचलित वैदिक शब्दों के अतिरिक्त शेष नहीं हैं। शब्दों की विस्तृत व्याख्या में दर्शन, पुराण, वैद्यक, धर्मशास्त्र आदि नाना प्रकारों के लंबे लंबे उद्धरण भी दिए गए हैं। तंत्र मंत्र, शास्त्र, स्तोत्र आदि से उद्धृत करते हुए अनेक संपूर्ण स्तोत्र, तांत्रिक मंत्र आदि के भी विस्तृत अंश उद्धरित हैं। ज्योतिषशास्त्र और भारतीय विद्याओं के पारिभाषिक शब्दों का भी तद्विद्याविशेषज्ञों के सहयोग से सप्रमाण विवरण दिया गया है। इस कोश की रचनापरिपाटी के विषय में भी विस्तृत वक्तव्य दिया गया है। उन कोशों की सूची भी दी गई है जो उपलब्ध थे और जिनसे शब्दसंग्रह किया गया है। साथ ही विभिन्न कोशों में उल्लिखित पर अनुपलब्ध कोशों अथवा कोशकारों के नाम भी भूमिका में दिए गए हैं। लेखक स्वयमपि संस्कृत वैदुष्य के अतिरिक्त बँगला, हिंदी, अरबी, फारसी, अंग्रेजी आदि अनेक भाषाओं का अच्छा जानकार था।

कहने का तात्पर्य यह है कि इस कोश में--जो सात खंडों में विरचित है--यथासंभव समस्त उपलब्ध संस्कृत साहित्य के वाङमय का उपयोग किया गया है। इसके अतिरिक्त अंत में परिशिष्ट भी दिया गया है जो अत्यंत महत्वपूर्ण है। इस प्रकार ऐतिहासिक दृष्टि से भारतीय-कोश-रचना के विकासक्रम में इसे विशिष्ट कोश कहा जा सकता है। यह पूर्णतः संस्कृत का एकभाषीय कोश है। परवर्ती संस्कृत कोशों पर ही नहीं, भारतीय भाषा के सभी कोशों पर इसका प्रभाव --व्यापक रूप से--पड़ता रहा है।

यह कोश विशुद्ध शब्दकोश नहीं है, वरन् अनेक प्रकार के कोशों का--शब्दार्थकोश, पर्यायकोश, ज्ञानकोश और विश्वकोश का--संमिश्रित महाकोश है। इसमें बहुविधीय उद्धरण, उदाहरण, प्रमाण, व्याख्या और विधिविधानों एवं पद्धतियों का परिचय दिया गया है। इसमें गृहीत शब्द 'पद' हैं, सुबंततिङंत हैं, प्रातिपदिक या धातु नहीं।

सुखानंदनाथ ने भी चार जिल्दों में एक बृहदाकार संस्कृतकोश आगरा और उदयपुर से (ई० १८७३-८३ में) प्रकाशित किया जिसपर 'शब्दकल्पद्रुम' का पर्याप्त प्रभाव है।

इस प्रकृति का दूसरा शब्दकोश **'वाचस्पत्यम्'** है, जिसका निर्माण अनेक वर्षों में संपन्न हुआ। पूर्व कोश की अपेक्षा संस्कृत कोश का यह एक बृहत्तर संस्करण है। इसके संकलयिता थे तर्कवाचस्पति तारानाथ भट्टाचार्य, जो बंगाल के राजकीय संस्कृत महाविद्यालय में अध्यापक थे।

एच. उडरों ने अपनी 'वाचनिका' में इस कोश की विशेषता बताते हुए कहा है कि "विल्सन" की 'संस्कृत डिक्शनरी' और 'शब्दकल्पद्रुम' की अपेक्षा इसका क्षेत्र विस्तृत और गंभीरतर है। साथ ही तंत्र, दर्शनशास्त्र, छंदःशास्त्र और धर्मशास्त्र के ऐसे जाने कितने शब्द हैं जो 'राथ बोथलिंगक्' की संस्कृत-जर्मन-डिक्शनरी में नहीं हैं। इसमें यह भी बताया गया है कि 'शब्दकल्पद्रुम' का प्रथम संस्करण बँगला लिपि में हुआ था। उस समय के उपलब्ध कोशों में अनुपलब्ध सैकड़ों हजारों शब्द इसमें संकलित हैं। सामान्य वैदिक शब्द तो हैं ही साथ ही ऐसे भी अनेक वैदिक शब्द हैं जो तत्कालीन शब्दकोशों में अप्राप्य हैं। षड्दर्शनों के अतिरिक्त चार्वाक, माध्यमिक, योगाचार, वैभाषिक, सौत्रांतिक, अर्हत, रामानुज, माध्व, पाशुपत, शैव, प्रत्यभिज्ञा, रसेश्वर आदि अल्पलोकप्रिय दर्शनों के पारिभाषिक शब्दों का भी इसमें समावेश मिलता है। पुराणों और उपपुराणों से संगृहीत पुरातन राजाओं का इतिहास तथा प्रत्नयुगीन भारतीय भूगोल का भी इसमें निर्देश हुआ है। चिकित्साशास्त्र के पारिभाषिक शब्दों और अन्य विवरणों का भी विस्तृत निर्देश किया गया है। ज्योतिष--गणित, और फलित--के पारिभाषिक शब्द भी हैं। यद्यपि वैदिक शब्दों के संकलन संपादन को कोशकार ने अपने इस कोश की विशेष महत्ता बताई है तथापि बहुत से वैदिक शब्द छूट भी गए हैं और बहुसंख्यक वैदिक शब्दों की व्युत्पत्ति और उनके अर्थ स्वकल्पित भी हैं। 'राथबोथलिंगक्' के बृहत्संस्कृत' शब्दकोश' के उपयोग का भी काफी प्रयत्न किया गया है।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि 'वाचस्पत्यम्' की रचना द्वारा पूर्वोक्त 'शब्दकल्पद्रुम' का एक ऐसा परिवर्धित और अपेक्षाकृत बृहत्तर संस्करण सामने आया जो कि रचनापद्धति की दृष्टि से अधिकांश बातों में 'शब्दकल्पद्रुम' के आयाम को व्यापक और पूर्ण बनाने की चेष्टा करता है। 'तर्कवाचस्पति' ने निश्चय ही जितना परिश्रम किया वह असामान्य है। उनके गंभीर ज्ञान, तलस्पर्शी मनीषा और व्यापक वैदुष्य का इसमें अद्भुत उन्मेष दिखाई देता है। 'शब्दकल्पद्रुम' की आधारपीठिका पाकर भी ग्रंथकार ने कोशकला को 'शब्दकल्पद्रुम' की शैली में काफी व्यापक बनाया।

'शब्दकल्पद्रुम' की अपेक्षा इसमें एक और विशेषता लक्षित होती है। 'शब्दकल्पद्रुम' में 'पद' सुबंत तिङंत दिए गए हैं। प्रथमा एकबचन के रूप को कोश में व्याख्येय शब्द का स्थान दिया गया है। परंतु 'वाचस्पत्यम्' में दिए गए शब्द 'पद' न होकर 'प्रातिपदिक' अथवा 'धातुरूप' में उपन्यस्त हैं। वैसे सामान्य दृष्टि से--रचनाविधान की पद्धति के विचार से--'वाचस्पत्यम्' को 'शब्दकल्पद्रुम' का विकसित रूप कहा जा सकता है। 'विल्सन' और 'मोनियर विलियम्स' के कोशों द्वारा अर्थबोध, शब्दार्थज्ञान एवं शब्दप्रयोग की सूचना तथा व्याख्यापरक परिचय संक्षिप्त है, पर उपयोगी रूप में कराया गया है। परंतु 'शब्दकल्पद्रुम' और 'वाचस्पत्यम्' द्वारा उद्धरणों की विस्तृत पृष्ठभूमि के संपर्क में उभरे हुए अर्थचित्र यद्यपि संश्लिष्टबोध देने में सहायक होते हैं तथापि उद्धरणों के माध्यम से संबद्धज्ञान का आकार विश्वकोशीय

हो गया है । उपयोगितासंपन्न होकर भी सामान्य संस्कृतज्ञों के लिये--यह व्यावहारिक सौविध्य से रहित हो गया है ।

संस्कृत के माध्यम से छोटे बड़े अनेक संस्कृतकोश बने । परंतु कोश-विकास के इतिहास में उनका कोई महत्व नहीं माना जा सकता । संस्कृत के अनेक कोश ऐसे भी बने जो भारतीय भाषाओं के माध्यम से संस्कृत शब्दों का अर्थपरिचय देते हैं । परंतु उनमें कोई अपनी स्वतंत्र विशेषता नहीं दिखाई देती । 'विल्सन' अथवा 'विलियम्स', 'मेक्डानल्ड', 'आप्टे' के कोशों का या तो इन्होंने आधार लिया अथवा थोड़ी बहुत सहायता 'शब्दकल्पद्रुम' और 'वाचस्पत्यम्' से ली । मराठी-संस्कृत-कोश संस्कृत-तमिल-कोश, संस्कृत-तेलगू-कोश, संस्कृत-बँगला-कोश, संस्कृत-गुजराती-कोश, संस्कृत-हिंदी-कोश आदि भारतीय आधुनिक भाषाओं के तत्तत् नामवाले--सैकड़ों की संख्या में कोश बने हैं और आज ये कोश उपलब्ध भी हैं । यहाँ पर ध्यान रखने की एक और बात यह है कि संस्कृत के उक्त दोनों महाकोश बंगाल की भूमि में ही बने ।

बँगला विश्वकोश भी संभवतः उसी परंपरा से प्रभावित--'शब्दकल्पद्रुम' और 'वाचस्पत्यम्' का ही एक रूप है । इसमें यद्यपि आधुनिक विश्वकोश की रचनापद्धति को अपनाने की चेष्टा हुई है तथापि वह भी मिश्रित शैली का ही विश्वकोश है । उसका एक हिंदी संस्करण भी हिंदी विश्वकोश के नाम से प्रकाशित किया गया है । बंगला विश्वकोश का पूरा पूरा आधार लेकर चलने पर भी हिंदी का यह प्रथम विश्वकोश नए सिरे से तैयार किया गया ।

शब्दकोश और विश्वकोश के मिश्रित रूप की यह पद्धति केवल संस्कृत और बँगला के कोशों में ही नहीं अपितु भारतीय भाषा के अन्य कोशों में भी लक्षित होती है । अंग्रेजी आदि भाषा के अनेक बड़े कोशों में यह सरणि है--विशेषतः प्राचीन संस्करणों में । पूर्णचंद्र का उड़िया कोश भी इसी पद्धति का एक ग्रंथ है । 'हिंदी शब्दसागर' भी अपने प्रथम संस्करण में आंशिक रूप से इसी पद्धति पर चला । द्वितीय संशोधित और परिवर्धित संस्करण में भी उसके पूर्वरूप को सुरक्षित रखने की चेष्टा हुई है । परंतु लंबे लंबे पौराणिक, शास्त्रीय अथवा दार्शनिक उद्धरणों का भार इसमें न आने देने की चेष्टा हुई है । संबद्ध वस्तु अथवा पदार्थज्ञान के लिये उपयोगी विवरण को यथासंभव देने की चेष्टा की गई है ।

आधुनिक कोशविद्या : पश्चिम में

आधुनिक कोशरूप का उद्भव और विकास

पश्चिमी विद्वानों के संपर्क से भारत में जिस कोश-रचना-पद्धति का १८वीं शती में विकास हुआ, पश्चिम में पहले से ही वह प्रचलित हो चुकी थी । अतः योरप की कोश-रचना-पद्धति के विकास का ऐतिहासिक सिंहावलोकन यहाँ देना अनुचित न होगा ।[क]

ग्लॉस--रोमन धर्म और साम्राज्य की धार्मिक एवं राजनीतिक महत्ता के कारण समस्त पश्चिमी योरप में लातिन (लैटिन) सर्वप्रमुख भाषा बन गई थी । उस भाषा के ग्रंथों का अध्ययन अत्यंत महत्वपूर्ण मान लिया गया था । वह भाषा समस्त विद्या और ज्ञान की प्राप्ति का एक प्रकार से प्रवेशद्वार समझी जाने लगी थी । पाश्चात्य कोशविद्या का अंकुरण भी इन्हीं लातिन-शब्द-सूचियों से हुआ था, जिन्हें ग्लासेज कहते थे । 'ग्लासरी' शब्द भी इसी मूल से व्युत्पन्न है । ग्लासेज का अर्थ होता था शब्दसूचियाँ । 'लातिन' ग्रंथों के पढ़ने-वाले--ग्रंथों के हाशिए पर उनके दुर्बोध्य और कठिन शब्दों को लिख दिया करते थे । अपनी स्मृति द्वारा अथवा अन्य विज्ञों की सहायता से--कभी सरल 'लातिन' में और कभी तदितर स्वभाषा में--इन शब्दों का अर्थ भी हलके अक्षरों में लिख लेते थे । इसी शब्द को "ग्लास" कहते हैं ।

'रोमानिक' भूमिवासियों के लिये प्राचीन रोमन भाषा (लातिन) बहुत कठिन नहीं थी । पर दूरस्थों के लिये वह भाषा दुर्बोध्य थी । अतः 'केल्टिक' और 'टयूटानिक' प्रदेशों के दूरस्थों की दृष्टि में उपर्युक्त 'ग्लास पद्धति' अधिक उपयोगी हुई । व्यापक रूप से और अपेक्षाकृत अधिक विस्तृत आयाम में इस प्रकार की शब्दसूचियाँ बनीं । इनके माध्यम से सैक्सन, इंग्लिश, 'आयरिश', 'प्राचीन जर्मन (गाथिक)' आदि भाषाओं के ऐसे प्राचीन शब्दरूप बहुत बड़ी मात्रा में सुरक्षित रह गए हैं जिनमें तत्तद्भाषाओं के बहुत से शब्द आज अन्यत्र दुर्लभ हैं ।

कहा जाता है कि इंग्लैंड में उत्पन्न 'जोन्स दी गार्लैंडिया' ने लातिन के एक डिक्शनेरियस का निर्माण--१२२५ ई० में किया था । लातिन

क--शब्दकोशों के आरंभिक अस्तित्व की चर्चा में अनेक देशों और जातियों के नाम जुड़े हुए हैं । भारत में पुरातनतम उपलब्ध शब्दकोश वैदिक 'निघंटु' है । उसका रचनाकाल कम से कम ७०० या ८०० ई० पू० है । उसके पूर्व भी 'निघंटु' की परंपरा थी । अतः कम से कम ई० पू० १००० से ही निघंटु कोशों का संपादन होने लगा था । कहा जाता है कि 'चीन' में ईसवी सन् के हजारों वर्ष पहले से ही कोश बनने लगे थे । पर इस श्रुतिपरंपरा का प्रमाण बहुत बाद--आगे चलकर उस प्रथम चीनी कोश में मिलता है, जिसकी रचना 'शुओ वेन' (एस-एच-यू-ओ-डब्ल्यू-ई-एन) ने पहली दूसरी शती ई० के आसपास की थी (१२१ ई० को इसका निर्माणकाल कहा गया है) । चीन के 'हान' राजाओं के राज्य-काल में भाषाशास्त्री 'शुओ वेन' के कोश को उपलब्ध कहा गया है । यूरेशिया भूखंड में एक प्राचीनतम 'अक्कादी-सुमेरी' शब्दकोश का नाम लिया जाता है जिसके प्रथम रूप का निर्माण--अनुमान और कल्पना के अनुसार--ई० पू० ७वीं शती में बताया जाता है । कहा जाता है कि हेलेनिस्टिक युग के यूनानियों ने भी योरप में सर्वप्रथम कोशरचना उसी प्रकार आरंभ की थी जिस प्रकार साहित्य, दर्शन, व्याकरण, राजनीति आदि के वाङ्मय की । यूनानियों का महत्व समाप्त होने के बाद और रोमन साम्राज्य के वैभवकाल में तथा मध्यकाल में भी बहुत से 'लातिन' के कोश बने । 'लातिन' का उत्कर्ष और विस्तार होने पर लातिन तथा लातिन + अन्यभाषा कोश, शनैः शनैः बनते चले गए । 'लातिन' ग्लास-कोशों की चर्चा में इसका कुछ वर्णन किया गया है । सातवीं-आठवीं शती ई० में निर्मित एक विशाल 'अरबी शब्दकोश' का उल्लेख भी उपलब्ध है ।

शब्दों का यह लघु संग्रहकोश था। विषयवर्गानुसार वाक्यों में प्रयोग निदर्शन के रूप में भाषा के आरंभिक सीखनेवालों की उपयोगिता के निमित्त इसका निर्माण किया गया था। 'डिक्शनरी' शब्द का भी कदाचित् सर्वप्रथम प्रयोग इसी शब्दसूची में हुआ था। १४वीं शती के उत्तरार्ध में भी ऐसे कुछ कोश बने।

कालांतर में अलग पत्रों पर उक्त शब्दों-अर्थों की प्रतिलिपियाँ की जाने लगीं। उन्हें एकत्र भी किया जाने लगा। 'लातिन' भाषा के क्लिष्ट शब्दों का अर्थबोध कराने के लिये शब्दार्थसंग्रह का यह कार्य अत्यंत उपयोगी हो गया है। तत्तत् सूचियों में समाविष्ट शब्दों को आगे चलकर ग्लासेरियम कहने लगे, जिसका अर्थ है शब्दार्थसूची। १६वीं १७वीं— में इन्हीं 'ग्लासेरियम' के आधार पर वर्णक्रमानुसारी शब्दसारिणियाँ (टेबुल्स अल्फाबेटिकल) और क्लिष्ट-शब्दार्थ-बोधक संग्रहों का निर्माण हुआ।

अकारादिक्रम—१५वीं शती से भी दो तीन सौ वर्ष पूर्व योरप की विभिन्न भाषाओं में अनेक प्रकार के विभिन्न वर्गों के शब्दों की सूचियाँ संगृहीत होने लगी थीं।

इन शब्दसूचियों में शब्दसंकलन वर्गीकृत होता था। जिस प्रकार संस्कृत के अमरकोश आदि ग्रंथों में अपनी दृष्टि से पर्यायवाची शब्दों का वर्गाश्रित संग्रह मिलता है उसी प्रकार इन शब्दसूचियों में शरीर के अंगों, पारिवारिक संबंधों, मनुष्य के पदों और श्रेणियो, घरेलू एवं पालित जानवरों, जंगली पशुओं, मछलियों, वृक्षों, व्यवसायों, वस्त्राभूषणों, अस्त्रशस्त्रों, चर्च की सामग्रियों, रोग आदि के नामों की अर्थसहित सूचियाँ संगृहीत होती थीं।

इन्हें 'वोकैब्युलेरियम्' कहा जाता था। अंग्रेजी का 'वोकैब्युलरी' शब्द भी इसी से निर्गत है। कागज के अतिरिक्त चमड़े पर भी इनका संग्रह होता था। मूलत: भिन्न दृष्टि से संकलित होने पर भी 'ग्लॉस' और 'वोकैब्युलरी' दोनों का व्यावहारिक उपयोग भाषाज्ञान में सहायता देनेवाले उपकरण के रूप में होने लगा था। अतः इन दोनों प्रकार की शब्दार्थसूचियों का प्रायः एकत्र संयोजन कर दिया जाने लगा।

स्वज्ञान से अथवा दूसरों की 'ग्लॉसरी' और 'वोकैब्युलरी' से नए शब्दों को लेकर शब्दसूचियों के स्वामी उनमें नए शब्द जोड़ते रहते थे। इनकी प्रतिलिपि करके अन्य व्यक्ति भी समय समय पर इनका संग्रह प्राप्त कर सकता था। प्रतिलिपि परंपरा द्वारा इनका प्रसार और विस्तार होता चल रहा था।

सर टामस् ईलियट (१५३८ ई०) का निर्मित शब्दकोश (डिक्शनेरियम) विशेष महत्व भी रखता है और नूतनपथ का भी प्रदर्शक है। जे० डब्ल्यू० विदाल्स् द्वारा अंग्रेजी के आरंभिक लातिन पाठकों की सुविधा के लिये रचित 'अंग्रेजी-लातिन' का लघुशब्दकाश भी विषयानुसारी वर्गों में ही ग्रथित है। परंतु 'अंग्रेजी में लातिन' का कोश होने के कारण विशेष महत्व रखता है।

इससे भी अधिक महत्व का एक बहुभाषी लातिन शब्दकोश—१३३६ ई० में आर एस्टीम ने बनाया था जिसमें लातिन शब्दों के समानार्थक अंग्रेजी शब्दों के अलावा यूरप की अनेक नव्यभाषाओं के भी पर्याय दिए गए थे।। १५४७ ई० के बाद अंग्रेजी और नव्ययूरोपीय भाषा के भी कोश बनने लगे।

प्रतिलिपीकरण के माध्यम से प्रसारित इन सूचियों में शब्दों और वाक्यांशों को उपयोगिता की दृष्टि से अकारादि क्रमानुसार व्यवस्थित करना अधिक लाभकर जान पड़ा। यहीं से इनमें अकारादि क्रमानुसारी संग्रहपद्धति का आरंभ होता है। शब्द या वाक्यांश के आरंभिक प्रथमाक्षर को क्रमबद्ध सूची में लिपिक संगृहीत कर देता था। उसमें द्वितीयाक्षर अथवा आनुपूर्वी नहीं देखी जाती थी। अतः इस पद्धति को वर्णमालानुसारी प्रथमाक्षर क्रम कह सकते हैं। यह व्यवस्था सहस्रों शब्दोंवाली सूची में अनुभूत कठिनाई को दूर कर, सुविधाजनक पद्धति को ढूंढ़ निकालने के सायास व्यवस्था द्वारा प्रचलित हुई। फलतः धीरे-धीरे उसमें विकास होता गया और प्रथमाक्षर के साथ साथ द्वितीय, तृतीय अक्षरों पर भी ध्यान दिया जाने लगा। फिर धीरे धीरे वर्णानुपूर्वी के अनुसार आधुनिक युग मे प्रचलित पद्धति से शब्दार्थसग्रह होने लगा।

अंग्रेजी कोश का उद्भव

'लातिन' की इन शब्दसूचियों ने आधुनिक कोश-रचना-पद्धति का जिस प्रकार विकास किया, अंग्रेजं कोशों के विकास क्रम में उसे देखा जा सकता है। आरंभ में इन शब्दार्थसूचियों का प्रधान विधान था क्लिष्ट 'लातिन' शब्दों का सरल 'लातिन' भाषा में अर्थ सूचित करना। धीरे धीरे सुविधा के लिये रोमन भूमि से दूरस्थ पाठक अपनी भाषा में भी उन शब्दों का अर्थ लिख देते थे। 'ग्लॉसरी', और 'वोकैब्युलरी' के अंग्रेजी भाषी विद्वानों की प्रवृत्ति में भी यह नई भावना जगी। इस नवचेतना के परिणामस्वरूप 'लातिन' शब्दों का अंग्रेजी में अर्थनिर्देश करने की प्रवृत्ति बढ़ने लगी। इस क्रम में 'लैटिन अंग्रेजी' कोश का आरंभिक रूप सामने आया।

दसवीं शताब्दी में ही 'आक्सफोर्ड' के निकटवर्ती स्थान के एक विद्वान् धर्मपीठाधीश 'एफ्रिक' ने 'लैटिन' व्याकरण का एक ग्रंथ बनाया था। और उसी के साथ वर्गीकृत 'लातिन' शब्दों का एक 'लैटिन-इंग्लिश', लघुकोश भी जोड़ दिया था। संभवतः उक्त ढंग के कोशों में यह प्रथम था। १०६६ ई० से लेकर १४०० ई० के बीच की कोशात्मक शब्दसूचियों को एकत्र करते हुए 'राइट व्यूलर' ने ऐसी दो शब्दसूचियाँ उपस्थित की हैं। इनमें भी एक १२ वीं शताब्दी की है। वह पूर्ववर्ती शब्दसूचियों की प्रतिलिपि मात्र है। दूसरी शब्दसूची में 'लातिन' तथा अन्य भाषाओं के शब्द हैं।

इंगलैंड में सांस्कृतिक और राष्ट्रीय चेतना के उद्‌बुद्ध होने पर अंग्रेजी राजभाषा हुई। शिक्षा-संस्थाओं में फ्रांसीसी के स्थान पर अंग्रेजी का पठन पाठन बढ़ा। अंग्रेजी में लेखकों की संख्या भी अधिक होने लगी। फलतः अंग्रेजी के शब्दकोश की आवश्यकता भी बढ़ गई। १५वीं शती में 'राइट व्यूलर' ने छह महत्वपूर्ण पुरानी शब्दार्थसूचियों को मुद्रित किया। अधिकतः विषयगत वर्गों के आधार पर वे बनाई गई थीं। केवल एक शब्दसूची ऐसी थी जिसमें अकारादिक्रम से २५००० शब्दों का संकलन किया गया था।

एम० एम० मैथ्यू ने 'अंग्रेजी कोशों का सर्वेक्षण' नामक अपनी रचना में १५वीं शती के दो महत्वपूर्ण ग्रंथों का उल्लेख किया है। प्रथम 'ओरटस्' का 'वोकाब्युलरियम्' था जो पूर्व 'मेड्डला' व्याकरण पर आधारित था। दूसरा था 'ग्लाफेड्स' या 'ज्याफरी' व्याकरण पर आधारित इंग्लिश-लैटिन कोश। इसका पिंसिन द्वारा १४४० ई० में प्रथम मुद्रित संस्करण प्रकाशित किया गया। उसका नाम था प्रोंपटोरियम परव्यूलोरम सिनक्लेरिकोरम्' (अर्थात् बच्चों का भांडार या संग्रहालय)। इसका महत्व--६-१० हजार शब्दों के संग्रह के कारण न होकर इसलिये था कि इसके द्वारा शब्दसूची के रचनाविधान में नए प्रयोग का संकेत दिखाई पड़ा। इसमें संज्ञा और क्रिया के मुख्यांश से व्यतिरिक्त अन्य प्रकार के शब्द (अन्य पार्टस् ऑव स्पीच) भी संकलित हैं। यह 'मेड्डला ग्रामाटिसिज' कदाचित् प्रथम 'लातीन-अंग्रेजी' शब्दकोश था। लोकप्रियता का प्रमाण मिलता है--उसकी बहुत सी उपलब्ध प्रतिलिपियों के कारण। १४८३ ई० में 'केथोलिग्रम ऐंग्लिकन्' नामक शब्दकोश संकलित हुआ था। परंतु महत्वपूर्ण कोश होकर भी पूर्वोक्त कोश के समान वह लोकप्रिय न हो सका।

इसके पश्चात् १६वीं शताब्दी में 'लैटिन अंग्रेजी' और 'अंग्रेजी लैटिन' की अनेक शब्दसूचियाँ निर्मित एवं प्रकाशित हुई। 'सर टामस ईलियट' की डिक्शनरी ऐसा सर्वप्रथम ग्रंथ है जिसमें 'डिक्शनरी' अभिधान का अंग्रेजी में प्रयोग मिलता है। मूल शब्द लातिन का 'डिक्शनरियम्' है जिसका अर्थ था कथन (सेइंग)। पर वैयाकरणों द्वारा 'कोश' शब्द के अर्थ में उसका प्रयोग होने लगा था। इससे पूर्व--आरंभिक शब्दसूचियों और कोशों के लिये अनेक नाम प्रचलित थे, यथा--'नॉमिनल', 'नेमबुक', मेडुला ग्रामेटिक्स, 'दी आर्ट्स वोकाब्युलेरियम्, गार्डन आफ़ वर्डस, दि प्रोम्प्टारियम पोरवोरम, कथालिकम् ऐंग्लिकन्, मैनुअलस् वार्कैब्युलरम्, हैंडफुल आव वोर्कब्युलरियस्, 'दि एबेसडेरियम्, बिबलोथिका, एल्वारिया, लाइब्रेरी, दी टेबुल अल्फाबेटिकल, दी ट्रेजरी या ट्रेजरर्स आफ वर्ड्स, 'दि इंग्लिश एक्सपाजिटर, दि गाइड टु दि टंग्स, दि ग्लासोग्राफिया, दि न्यू वर्ल्ड्स आव वर्ड्स, 'दि इटिमालॉजिकम्, दि फाइलॉलॉजिकम्' आदि। इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका के अनुसार १२२५ ई० में कंठस्थ की जानेवाली 'लातिन' शब्दसूची के हस्तलेख के लिये जान गारलैंडिया ने इस (डिक्शनरी) शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग किया गया था। परंतु लगभग तीन शताब्दी बाद सर टामस् ईलियट द्वारा प्रयुक्त यह शब्द क्यों और कैसे लोकप्रिय हो उठा यह कहना सरल नहीं है।

१६वीं शती में पूर्वार्ध के व्यतीत होते होते यह विचार स्वीकृत होने लगा कि शब्दकोश में शब्दार्थ देखने की पद्धति सुविधापूर्ण और सरल होनी चाहिए। इस दृष्टि से कोश के लिये वर्णमालाक्रम से शब्दानुक्रम की व्यवस्था उपयुक्ततर मानी गई। पश्चिम का इस पद्धति को महत्वपूर्ण उपलब्धि और कोशविद्या के नूतन विकास की नई मोड़ माना जा सकता है। एकाक्षर और विश्लेषणात्मक पदरचना वाली चीनी भाषा में एकाक्षर शब्द ही होते हैं। प्रत्येक 'सिलेबुल' स्वतंत्र, सार्थक और विश्लिष्ट होता है। वहाँ के पुराने कोश अर्थानुसार तथा उच्चारणमूलक पद्धति पर बने हैं। वैसी भाषा के कोशों में उच्चारणानुसारी शब्दों का ढूँढ़ना अत्यंत दुष्कर होता था। परंतु योरप की भाषाओं में अकारादि क्रमानुसारी एक नई दिशा की ओर शब्दकोशरचना का संकेत हुआ। पूर्वोक्त प्रोम्पटोरियम के अनंतर १५१९ में प्रकाशित विलियम हार्मन का शब्दकोश अंग्रेजी लैटिन कोशों में उल्लेख्य है। इसमें कहावतों और सूक्तियों का प्राचीन पद्धति पर संग्रह था। मुद्रित कोशों में इसका अपना स्थान था। १५७३ ई० में रिचार्ड हाउलेट का 'एबेसेडेरियम' और 'जॉन वारेट' का 'लाइब्रेरिया'--दो कोश प्रकाशित हुए। प्रथम में लैटिन पर्याय के साथ साथ अंग्रेजी में अर्थकथन होने से अंग्रेजी कोशों में--विशेषत: प्राचीन काल के--इसे उत्तम और अपने ढंग का महत्वशाली कोश माना गया है। इससे भी पूर्व--ई० १५७० में 'पीटर लेविस' ने एक 'इंगलिश राइमिंग डिक्शनरी' बनाई थी जिसमें अंग्रेजी शब्दों के साथ लैटिन शब्द भी हैं और सभी खास शब्द तुकांत रूप में रखे गए थे।

हेनरी अष्टम की बहन, मेरी ट्यूडर, जब फ्रांस के १२वें लुई की पत्नी बनी तब उन्हें फ्रांसीसी भाषा पढ़ाने के लिये जान पाल ग्रे ने एक ग्रंथ बनाया जिसमें फ्रांसीसी के साथ साथ अंग्रेजी शब्द भी थे। १५३० ई० में यह प्रकाशित हुआ। इस कोश को 'आधुनिक' फ्रांसीसी और आधुनिक अंग्रेजी भाषाओं का प्राचीनतम कोश कहा जा सकता है। गाइल्स दु गेज ने लेडी मेरी को फ्रांसीसी पढ़ाने के लिये १५२७ में व्याकरणरचना की जो पुस्तक प्रकाशित की थी उसमें भी चुने हुए अंग्रेजी और फ्रांसीसी शब्दों का संग्रह जोड़ दिया गया था।

रिचर्ड हाउलेट का एबेसेडिरियम १५५२ ई० में प्रकाशित हुआ; जिसे सर्वप्रथम अंग्रेजी (+ लैटिन) 'डिक्शनरी' कह सकते हैं। जान वारेट का कोश (एल्वीरिया) भी १५७३ ई० में प्रकाशित हुआ। रिचार्ड के कोश में अंग्रेजी भाषा द्वारा अर्थव्याख्या की गई है। अतः उसे प्रथम अंग्रेजी कोश—लैटिन अंग्रेजी डिक्शनरी--कह सकते हैं। १६वीं शताब्दी में ही (१५९९ ई० में) रिचार्डस परसिवाल ने स्पेनिश अंग्रेजी-कोश मुद्रित कराया था। फ्लोरियो ने भी दि वर्ल्ड्स आव दि वर्ड्स नाम से एक इताली-अंग्रेजी-कोश बनाकर मुद्रित किया। उसका परिवर्धित संस्करण १६११ ई० में प्रकाशित हुआ। इसी वर्ष रैंडल काटग्रेव का प्रसिद्ध फ्रेंच-अंग्रेजी-कोश भी प्रकाशित हुआ जिसके अति लोकप्रिय हो जाने के कारण बाद में अनेक संस्करण छपे। केवल अंग्रेजीकोश के अभाववश 'फ्लोरियो' और 'काटग्रेव' के अंग्रेजी शब्दसंग्रहों का अत्यंत महत्व माना गया और 'शेक्सपियर' के युग की भाषा समझने-समझाने में वह बड़ा उपयोगी सिद्ध हुआ।

इसी के आस-पास 'बाइबिल' का अंग्रेजी संस्करण भी प्रकाश में आया। १७वीं शताब्दी के प्रथम चरण (१६१० ई० में) में जॉन मिन्श्यू ने 'दि गाइड इंटु टंग्स' नामक एक नानाभाषी कोश का निर्माण किया जिसमें अंग्रेजी के अतिरिक्त अन्य दस भाषाओं के (वेल्स, लो डच्, हाई डच्, फ्रांसीसी, इताली, पुर्तगाली, स्पेनी, लातिन, यूनानी और हिब्रू शब्द दिए गए थे।

इन कोशों में अंग्रेजी कोश के लिये आवश्यक और उपयोगी सामग्री के रहने पर भी केवल अंग्रेजी के एकभाषी कोश की ओर अधिक ध्यान नहीं दिया गया। प्राचीन अध्ययन के प्रति पुनर्जागृति के कारण अंग्रेजी में लातिन, यूनानी, हिब्रू, अरबी आदि के सहस्रों शब्द और प्रयोग प्रचारित होने लगे थे। ये प्रयोग 'इंक हार्ड्स टर्म्स्' कहे जाते थे। वे परंपरया आगत नहीं थे। इन क्लिष्ट शब्दों की वर्तनी और कभी कभी अर्थ बतानेवाले ग्रंथों की तत्कालीन अनिवार्य आवश्यकता उठ खड़ी हुई थी। मुख्यतः इसी की पूर्ति के लिये—न कि अपनी भाषा के शब्दों और मुहावरों का परिचय कराने की भावना से—आरंभिक अंग्रेजी-कोशों के निर्माण की कदाचित् मुख्य प्रेरणा मिली। सर्वप्रथम 'टेबल अल्फाबेटिकल आव हार्ड वर्ड्स' शीर्षक एक लघु पुस्तक राबर्ट काउड्रे ने प्रकाशित की जो १२० पृष्ठों में रचित थी। इसमें तीन हजार शब्दों की शुद्ध वर्तनी और अर्थों का निर्देश किया गया था। यह इतना लोकप्रिय हुआ कि आठ वर्षों में इसके तीन संस्करण प्रकाशित करने पड़े। १६१६ ई० में 'ऐन इंगलिश एक्सपोजिटर' नामक—जॉन बुलाकर का—कोश प्रकाशित हुआ जिनके न जाने कितने संस्करण मुद्रित किए गए। १६२३ ई० में 'एच० सी० जेट' द्वारा रचित 'इंगलिश डिक्शनरी' के नाम से एक कोशग्रंथ प्रकाशित हुआ जिसकी रचना से प्रसन्न होकर प्रशंसा में 'ब्रॉन फोर्ड' ने प्रमाणपत्र भेजा था। तीन भागों में विभक्त इस कोश की निर्माणपद्धति कुछ विचित्र सी लगती है। इसकी विभाजनपद्धति को देखकर 'यास्क' के निरुक्त में निर्दिष्ट नैगमकांड, नैघंटुककांड और दैवतकांडों में लक्षित वर्गानुसारी पद्धति की स्मृति हो आती है। प्रथम अंश में क्लिष्ट शब्द सामान्य भाषा में अर्थों के साथ दिए गए हैं। द्वितीय अंश में सामान्य शब्दों के अर्थों का क्लिष्ट पर्यायों द्वारा निर्देश हुआ है। देवी देवताओं, नरनारियों, लड़के लड़कियों, दैत्यों-राक्षसों, पशु पक्षियों आदि की व्याख्या द्वारा तीसरे भाग के इस अंश में वर्णन किया गया। इसमें शास्त्रीय, ऐतिहासिक, पौराणिक तथा अलौकिक शक्तिसंपन्न व्यक्तियों आदि से संबद्ध कल्पनाओं का भी अच्छा सकलन है। २० साल परिश्रम करके 'ग्लासोग्राफिया' नामक एक ऐसे कोश का 'टामस ब्लाउंडर' ने संग्रह किया था जिसमें यूनानी, लातिन, हिब्रू आदि के उन शब्दों की व्याख्या मिलती है जिनका प्रयोग उस समय की परिनिष्ठित अंग्रेजी में होने लगा था। एस० सी० काकरमैन का कोश भी बड़ा लोकप्रिय था और उसके जाने कितने संस्करण हुए। प्रसिद्ध कवि मिल्टन के भतीजे एडवर्ड फिलिप्स ने १५४५ ई० में 'दि न्यू वर्ल्ड आव इंगलिश वर्ड्स्, या 'ए जेनरल डिक्शनरी' नामक लोकप्रिय कोश का निर्माण किया था।

१६६० तक के प्रकाशित कोशों की निर्माण संबंधी आवश्यकताओं में कदाचित् तात्कालिक प्रयोजन का सर्वाधिक महत्व था विशिष्ट महिलाओं या अध्ययनशील विदुषियों को सहायता देना। बाद में चलकर कोशनिर्माण को इस प्ररणा का निर्देश नहीं मिलता। १७०२ ई० से १७०७ तक 'ग्लासोग्राफिया' के अनेक संस्करण छपे। एडवर्ड फिलिप्स का कोश भी बाद के संस्करणों में अधिक महत्वपूर्ण हो गया। एशिसाकोत्स और एडवर्ड पार्कर के कोश भी इसी समय के आसपास छपे जिनका पुनर्मुद्रण बीसवीं शती तक भी होता रहा। जॉन करेन्सी ने भी 'डिक्शनेरियम एंग्लोब्रिटेनिकन' या 'जनरल इंगलिश डिक्शनरी' निर्मित की जिसमें पुराने (प्रयोगलुप्त) शब्दों की पर्याप्त संख्या थी।

नैथन बेली—सौ वर्षों तक अंग्रेजी की कोशरचना का यही क्रम चलता रहा जिनके शब्दसंकलन में विशिष्ट शब्दों की ही मुख्यता बनी रही। भाषा में प्रयुक्त समस्त—सामान्य और विशिष्ट—शब्दों का कोश बनाने में विद्वान् प्रवृत्त नहीं हुए थे। 'नैथन बेली' ने सर्वप्रथम ऐसे कोशके निर्माण की योजना बनाई जिसमें अंग्रेजी के समस्त शब्दों के समावेश का प्रयास किया गया। इसका नाम था 'युनिवर्सल इटिमॉलाजिकल इंगिलिश डिक्शनरी'। इसमें अनेक विशेषताएँ थी। संकलित शब्दों के विकासक्रम का संकेत दिया गया था। साथ ही इसमें व्युत्पत्ति देने की भी चेष्टा की गई। १७२१ में इसका प्रथम संस्करण प्रकाशित हुआ। १७३१ में प्रकाशित दूसरे संस्करण में शब्दों के उच्चारणबोधक संकेत भी इसमें दिए गए। अंग्रेजी के कोशज्ञ विद्वानों द्वारा यह कोश अत्यंत महत्वपूर्ण अंग्रेजी डिक्शनरी माना जाता है। पहला कारण यह था कि डा० जानसन द्वारा निर्मित ऐतिहासिक महत्व के अंग्रेजी कोश की यह आधारशिला बनी। दूसरा कारण यह था कि इसमें समस्त अंग्रेजी शब्दों के यथाशक्ति संकलन का लक्ष्य पहली बार रखा गया। तीसरा कारण व्युत्पत्ति निर्देश करने और उच्चारणसंकेत देने की पद्धति के प्रवर्तन का प्रयास था।

जॉनसन के अंग्रेजी कोश का महत्व (१७४७–१७५५ई०)

इटली और फ्रांस एकेडमीशियनों द्वारा ऐसे प्रामाणिक कोशों की रचना का कार्यक्रम प्रवर्तित हो गया था जिनमें परिनिष्ठित भाषा के मान्यताप्राप्त प्रयोगरूपों का स्थिरीकरण और प्रमाणीकरण किया जा सके। जर्मन, स्पेनी, फ्रांसीसी और इतालो भाषाओं में ऐसे कोशों की रचना का प्रयास चल रहा था।

अंग्रेजी भाषा का साहित्यिक स्वरूप—पुष्ट, विकसित, मान्य एवं परिनिष्ठित होता चल रहा था। पद्य या छंदोबद्ध भाषा के अतिरिक्त गद्य की रचनाओं को साहित्यिक आदर प्राप्त होने लगा था। फलतः अंग्रेजी भाषा का तत्कालीन स्वरूप परिनिष्ठित भाषा के स्तर पर ग्राह्य और मान्य हो गया था। अतः साहित्यकार, पुस्तक प्रकाशक और प्रचारक यह महसूस करने लगे थे कि परिनिष्ठित अंग्रेजी कोश का निर्माण अत्यंत आवश्यक हो गया है। अनेक पुस्तक प्रकाशकों और विक्रेताओं के उत्साह और सहयोग से पर्याप्त धनराशि व्यय करके जॉनसन द्वारा अनेक वर्षों के अथक प्रयास से अंग्रेजी की डिक्शनरी १७४७ से १७५५ ई० के बीच तैयार कर प्रकाशित की गई। इसी बीच 'कन्साइज डिक्शनरी' भी १७५३ ई० में जान वेसली द्वारा प्रस्तुत होकर सामने आई। आजतक जानसन का उक्त कोश अपने आप में अत्यंत ऐतिहासिक महत्व का माना जाता है। इसमें मूल शब्दों से अंग्रेजी के व्युत्पन्न शब्दों का विकासक्रम दिखाने के साथ साथ उनके विभिन्न अर्थप्रयोगों को भी उदाहरणों द्वारा स्पष्ट

किया गया है। अंग्रेजी के उत्कृष्ट लेखकों से उदाहरणों के उद्धरण लिए गए हैं।

उनके इस कार्य का अंग्रेजी भाषी जनता ने बड़े हर्ष और उल्लास के साथ स्वागत किया। इसमें शब्दों का अर्थ परिभाषा के रूप में भी दिया गया है। नवकोशविद्या के इतिहास में यह उपलब्धि सर्वप्रथम और अत्यंत महत्वशाली कही गई। इसी समय चालीस विद्वान् व्यक्ति एक साथ मिलकर फ्रांस में फ्रांसीसी भाषा का कोश बना रहे थे। उसकी चर्चा करते हुए जेन्टिलमैन्स मैगजीन' नामक पत्र ने कहा था कि फ्रांस के चालीस विद्वान् लगभग आधी शती में जो कार्य न कर सके उसे अकेले जॉनसन ने सात वर्षों में कर दिखाया। अंग्रेज जनता ने उस कोश को राष्ट्र और भाषा दोनों के उत्कर्ष की दृष्टि से अत्यंत महत्व का बताया। अंग्रेजी शब्दों के उच्चारण, भाषाशुद्धता की रक्षा और प्रयोग का स्थिरीकरण करने में इस कोश की बहुत बड़ी देन मानी जाती है। परंतु इसमें दिए गए साहित्यिक उद्धरण--ग्रंथों से संदर्भ निर्देशपूर्वक न लेकर--कोशकार ने अपनी स्मृति से दे दिए हैं। फलतः अनेक स्थलों में उद्धरणों की अशुद्धि इस कोश की एक त्रुटि बन गई। परंतु त्वरित गति से स्वल्प समय में कार्य समाप्त करने की आकांक्षा के कारण त्रुटि रह गई। पुस्तक एकत्र करना, उद्धरण प्रतिलिपि करना और उनका संयोजन करना, आदि कार्य इतना श्रम-समय-साध्य था जो सात वर्षों में एक व्यक्ति के द्वारा सर्वथा असंभव था।

इसके बाद १८वीं शती के अंत तक अंग्रेजी में अनेक कोश बने। विलियम कनिक, विलियम पेरी, टामस शेरिडन और जान वाकर ने उच्चारण आदि की समस्या को सुलझाने का प्रयत्न किया। इन कोशों को 'जॉनसन' के कोश का संक्षिप्त या लघु संस्करण कहा गया है। उच्चारण का ठीक ठीक स्वरूप बताने का कार्य समस्यात्मक था। उसका पूर्णतः समाधान करने की चेष्टा 'जॉनसन' या बाद के कोशकारों ने की। जॉन वाकर ने उक्त दिशा में विशेष प्रयत्न किया। इन कारणों से 'जॉनसन' के कोश की कुछ आलोचना भी होती रही। पर १९ वीं शती के पूर्वार्ध से उसका संमान बढ़ गया, उसकी महत्ता स्वीकृत हो गई। उसमें नए शब्दों, अर्थों, उद्धरणों आदि के परिवर्धनकारी परिशिष्टों को, अनेक विद्वानों की सहायता से जोड़कर, उक्त कोश के संशोधित और संवर्धित संस्करण प्रकाशित होते रहे। १८१८ई० में ऐसा ही एक संस्करण प्रकाशित हुआ जो अब तक मान्य बना हुआ है।

इंग्लिस्तानितों के अंग्रेजी प्रयोगों से अमेरिकनों की अंग्रेजी को स्वतंत्र देखकर वेब्स्टर ने अमेरिकी अंग्रेजी का एक महत्वपूर्ण कोश बनाया। परंतु उनके कोश की बहुत सी व्युत्पत्तियाँ ऐतिहासिक प्रमाणों पर आधारित न होकर निज की स्वतंत्र कल्पना से आविष्कृत थीं। बाद के संस्करणों में भाषाविज्ञों ने उनका संशोधन कर दिया। आज भी वेब्स्टर के इस कोश का दो जिल्दों में 'इन्टरनैशनल' संस्करण प्रकाशित होता है और कुछ दृष्टियों से इसका आज भी महत्व बना हुआ है। इस युग का दूसरा कोशकार रिचर्डसन था। उसके कोश में उद्धरणों के द्वारा शब्दार्थबोध की युक्ति महत्वपूर्ण मानी गई और अर्थबोधक परिभाषाओं को हटाकर केवल उद्धरणों से अर्थ-प्रत्यायन की पद्धति अपनाई गई। जॉनसन से भी आगे बढ़कर--१३०० ईस्वी के पूर्ववर्ती चासर, गोवर आदि कलाकारों के लेखखंडों को उसने उद्धृत किया। परंतु उद्धरणों की तिथि उन्होंने नहीं दी। व्यावहारिक दृष्टि से श्रमसाध्य, अधिक व्यय-समय-साध्य यह पद्धति--शब्दकोश से अर्थज्ञान की कामना करनेवाले पाठकों के लिये उपयोगी और सुविधाजनक न हुई। सामान्य पाठकों के लिये यह अति क्लिष्ट भी थी तथा अर्थ तक पहुँचने में समय भी बहुत लगता था। फिर भी कभी-कभी अनिश्चय रह ही जाता था। जनता में अधिक उपयोगी और लोकप्रिय न होने पर भी इस कोश से एक बड़ा भारी लाभ हुआ। प्राचीन और प्रसिद्ध लेखकों के अत्यधिक उद्धरणों का इसमें संकलन हो गया और वे स्थायी रूप में सुरक्षित भी हो गए।

आक्सफोर्ड डिक्शनरी : योजना और निर्माण

१९वीं शताब्दी के मध्य लंदन की फिलालाजिकल सोसाइटी में स्वपठित निबंधों द्वारा आर्कबिशप डा० आर० सी० ट्रेंच ने अंग्रेजी के तत्कालीन कोशों की कुछ कमियों की ओर विद्वानों का ध्यान आकृष्ट किया। उन्होंने यह भी कहा कि नाथनवेली, जानसन तथा उनके उत्तराधिकारियों के कोश महत्वपूर्ण हैं। पर उन कोशों द्वारा शब्दों के पारिवारिक-ऐतिहासिक-विकास, अर्थ और तात्पर्य में परिवर्तन एवं विकास तथा रूपविचार के विषय में विशेष ध्यान नहीं दिया गया। शब्दों और अर्थों के प्रयोग एवं ऐतिहासिक विकास की दिशा का कोश द्वारा पूर्ण परिचय मिलना चाहिए। संक्षेप में भाषाविज्ञान और साहित्य के वैकासिक प्रयोगक्रम के साथ अर्थविकास (सिमेंटिक चेंजेज) और उत्पत्तिमूलक विकास की--कोश में वैज्ञानिक और साहित्यिक--उभयविध संगति और पूर्णता अत्यंत अपेक्षित है। इन त्रुटियों के साथ साथ पूर्वोक्त कोशों में विरल और अप्रचलित शब्दों का संकलन भी अपूर्ण था।

उन्होंने यह भी निर्देश किया कि कोशनिर्माण के वैज्ञानिक लक्ष्य की पूर्ति के लिये भाषा के प्राचीन साहित्य और वैज्ञानिक दृष्टिपद्धति का सम्यग्विनियोग और उपयोग किए बिना कोश की सर्वांगीण पूर्णता संभव नहीं होगी। यह भी संकेत किया कि इस कार्य की विशालता को देखते हुए जो अध्ययन, अनुशीलन और श्रम अपेक्षित है उसका संपादन एक दो व्यक्तियों द्वारा संभव भी नहीं है। अनेक भाषाविज्ञ, भाषावैज्ञानिक और साहित्य के मर्मज्ञ विद्वानों के संमिलित प्रयास से ही अभीप्सित कोश का निर्माण हो सकता है।

लंदन की फ़िलालाजिकल सोसाइटी के संमुख उन्होंने अंग्रेजी का विशाल और पूर्ण कोश बनाने का प्रस्ताव उपस्थित किया। उन्होंने सुझाव दिया कि वेली, जानसन, रिचर्डसन, वेब्स्टर आदि के कोशों को पूर्ण करने के लिये निर्धारित कोशपद्धति के आधार पर सामग्री का संकलन किया जाय, उनके परिशिष्ट बनाए जायँ। शब्दप्रयोग, रूपविकास, अर्थविकास, प्रयोगमूलक नाना अर्थच्छायाओं का, शब्दार्थनिर्देश के संदर्भ में, सोदाहरण उपन्यास करना चाहिए। शब्द और उससे द्योतित अर्थ के विकास का कोश में पूर्ण इतिहास दिखाना चाहिए। उक्त संस्था द्वारा संकलित सामग्री के आधार पर और

डा० ट्रेंच के निर्देशों का आधार लेकर अनेक विद्वानों द्वारा अनेक वर्षों में संकलित सामग्री की सहायता से आक्सफोर्ड इंग्लिश डिक्शनरी का प्रथम रूप और संस्करण प्रकाशित हुआ।

आठ सौ वर्षों के अंग्रेजी साहित्य में प्रयुक्त लिखित रूपों, अर्थों आदि का यथासंभव विकास इस कोश में दिखाया गया। प्रथम प्रयोग से लेकर उनके प्रमुख प्रयोगक्रम की जीवनी दिखाई गई। भाषा के प्रचलित अप्रचलित--प्रायः सभी शब्दरूपों और उनके अर्थांश का वैकासिक एवं ऐतिहासिक विवरण भी यथासंभव दिया गया है। अप्रचलित शब्दों के उपलब्ध अंतिम प्रयोग की सूचना देने का भी प्रयास हुआ। भाषावैज्ञानिक अध्ययन और अनुशीलन के आधार पर शब्दों की व्युत्पत्तियों का भी संयोजन किया गया। इस ऐतिहासिक कोश का महत्व था इसकी यथासंभव संपूर्णता। इसी आधार पर उस युग के भाषाविज्ञों ने इस कोश को समादर दिया और इसकी प्रशंसा हुई। इसकी सामग्री के संकलन में पचास लाख शब्द चिटें एकत्र हुई थीं और उनके संकलन का कार्य लगभग दो सहस्र उत्साही पाठकों ने किया था। इस संदर्भ में कुछ विस्तार से विवरण देने का तात्पर्य इतना ही है कि हम हिंदी के सबसे बड़े वर्तमान कोश--हिंदी-शब्द-सागर--के संपादन में भी समस्त आवश्यक एवं अपेक्षित साधनों और उपकरणों को एकत्र करने में सर्वथा समर्थ नहीं हो पाए हैं। इस विषय की चर्चा अन्यत्र की जा रही है।

इसी संबंध में यह भी ध्यान रखने की बात है कि उक्त कोश के पुनः संशोधित और परिवर्धित संस्करण का संपादन कार्य निरंतर चला आ रहा है। सौ सवा सौ वर्षों से इंग्लैंड के कोशविज्ञान-विशारद विद्वानों की मंडली सर्वदा कार्यरत रहती है। अपार धनराशि का निरंतर व्यय किया जाता है। इन समस्त साधनों के योग से और संस्थाविशेष के निर्देशन में विशेष विभाग द्वारा उक्त कोश के परिष्कार, विस्तार और पुनः संपादन का अखंड यज्ञ चल रहा है। ज्ञान विज्ञान की सभी शाखाओं के कोशप्रेमी विद्वानों की अबाध सहायता भी सदा प्राप्त होती रहती है। कोशविज्ञान, भाषाविज्ञान, साहित्यविद्या और भाषा एवं साहित्य के धुरंधर और ऐतिहासिक सुधियों द्वारा उसके पुनः संपादन में सभी आवश्यक प्रयत्न होते चल रहे हैं। इतना ही नहीं, उक्त कार्य में देश के बहुसंख्यक जागरूक पाठकों का भी बिना पारिश्रमिक के स्वल्पाधिक सहयोग मिलता रहा है।

'फिलालाजिकल सोसाइटी' की योजना के साथ साथ अनेक अन्य छोटे बड़े कोश भी बनते रहे जो कोशविद्या की सर्वांगीणता के विचार से अपूर्ण भी थे तथा उनमें अन्य प्रकार की त्रुटियाँ या इसी ढंग से मिलते जुलते कोश बनते रहे।

उपर्युक्त अंग्रेजी कोश के आरंभिक विकास का त्वरित सिंहावलोकन करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि (१)--अंग्रेजी कोशों में सर्वप्रथम लिखित लैटिन शब्दसूचियों का सरल लैटिन और अंग्रेजी में अर्थ देने से कोशकला का प्रारंभ हुआ। यह प्रथम रूप था। (२)--दूसरे सोपान पर अंग्रेजी शब्दसूचियों का तथा लैटिन और अंग्रेजी शब्दसंग्रहों का विस्तार हुआ। (३)--तीसरे चरण में इंगलिश-लैटिन के शब्दसंग्रह का कार्य हुआ। (४)--चतुर्थ अवस्था में अंग्रेजी और इतर भाषाओं के कोश बने। (५)--पाँचवें चरण में अंग्रेजी के क्लिष्ट शब्दों के शब्दसंग्रहवाले और कोश बने। बेल्ली द्वारा इनमें सामान्य शब्दों को जोड़ने के साथ साथ व्युत्पत्तिनिर्देश की भी चेष्टा की गई। अब शब्दप्रयोगों के उदाहरण भी संगृहीत होने लगे। (६)--छठी अवस्था में उच्च कोटि के कोशनिर्माण की चेष्टा और अर्थस्पष्टीकरण के लिये साहित्य में प्रयुक्त उद्धरणों का उपयोग प्रारंभ हुआ। (७)--इसी के साथ साथ या कुछ पहले से ही अंग्रेजी कोशों में प्रयुज्यमान भाषाशब्दों के उच्चारणसंकेत देने की भावना प्रारंभ हुई। (८)--अष्टम स्थिति वह है जब रिचर्डसन द्वारा शब्दव्याख्या छोड़कर केवल उदाहरणमाध्यम से अर्थबोध का प्रयास हुआ। और आगे चलकर अंतिम रूप से इन सबकी परिणति डा० ट्रेंच की प्रेरणा से निर्मित महाकोश में दिखाई देती है। शब्दोच्चारण, शब्द, अर्थ शब्द-प्रयोग और व्युत्पत्ति संबद्ध शब्दप्रयोग के इतिहासक्रम आदि को विस्तृत और ऐतिहासिक आयामों के साथ कोश में अनुस्यूत करने की चेष्टा हुई है।

कोशविज्ञान की आरंभिक स्थिति में पश्चिम के कोश भी पर्याय सूचित करते हैं। धीरे धीरे विभिन्न अर्थों का भी निर्देश होने लगा। पर व्याकरण, उच्चारणसंकेत, शब्दार्थप्रयोग का इतिहास, व्युत्पत्तिनिर्देश और उदाहरण द्वारा तात्पर्यविवरण का उनमें अभाव था। संस्कृत कोशों में भी यह नहीं था। क्योंकि वे ऐसे छंदोबद्ध शब्दसंग्रह थे जो पर्यायों के माध्यम से एक या अनेक अर्थों का परिचय देते थे। परंतु संस्कृत के प्रसिद्ध वैयाकरण 'भानुजी दीक्षित' द्वारा निर्मित अमरकोश की 'व्याख्यासुधा' नामक टीका में सभी शब्दों की व्याकरणानुसारी व्युत्पत्ति देने का स्तुत्य प्रयास किया गया है।

पश्चिम में ऐतिहासिक और भाषावैज्ञानिक अनुशीलन की दृष्टि ने कोश के आधुनिक रूप को पूर्ण बनाने का प्रयास किया। प्रथमतः फिलिप्स के कोश में शब्दमूल का व्युत्पत्ति के प्रसंग में निर्देश-मात्र हुआ। शब्दसागर के तत्सम और अनेक तद्भव शब्दों की व्युत्पत्ति इसी रूप में संकेतित मात्र है। यहीं से अंग्रेजी कोशों में व्युत्पत्तिप्रदर्शन का अति सामान्य आरंभ होता है। इससे कुछ पहले या इसी के आसपास शब्दार्थबोध के लिये पर्याय मात्र देने के स्थान पर अर्थसूचक व्याख्या लिखने की पद्धति आरंभ हो गई थी। जॉनसन से एकाध ही वर्ष पूर्व प्रकाशित मार्टिन के कोश में अर्थच्छायाओं को यद्यपि विस्तृत संदर्भ में देखने का प्रयास हुआ, तथापि व्युत्पत्तिसंकेत वहाँ लुप्त हो गया। जॉनसान के कोश में नाना अर्थच्छायाओं और उदाहरणों के साथ साथ शब्दप्रयोग के स्मृतिमूलक उदाहरण भी दिए गए। संकेतरूप में मूल शब्द के निर्देश मात्र से व्युत्पत्तिसंबंध का सूचन किया जाता था। समानार्थक फ्रांसीसी पर्याय भी दिए गए। शेरिडन और वाकर के कोश, जॉनसन की अपेक्षा अल्प महत्व के होने पर भी उच्चारणसंकेत की दिशा में अधिक प्रयत्नशील रहे। वेब्स्टर के कोश में छोटे पैमाने पर कोशकला की रचनाविधानसंबंधी पूर्वमान्यताओं के उपयोग का सर्वाधिक प्रयास हुआ। दूसरी ओर पूर्वोक्त विशेषताओं

के अतिरिक्त डा० रिचर्डसन' के कोश में लातिन के साथ फ्रांसीसी, इतालो, स्पेनी भाषा के शब्दों का उपन्यास यह सूचित करता है कि उस युग के कोशकारों की चेतना उद्‌बुद्धतर हो रही थी और तुलनात्मक दृष्टि का विकास होने लगा था। एक अन्य कोश में तुलनात्मक रूपों की प्रवृत्ति तो लुप्त हो गई पर अर्थव्याख्या में कुछ कुछ विश्वकोशीय पद्धति का प्रभाव लक्षित होने लगा था। १८६० के 'वेब्स्टर' के कोश में पुनः लातिन, इतालो, स्पेनी और फ्रांसीसी शब्दरूपों से भी तुलनात्मक बोध का आभास मिलता है पर अंग्रेजी कोशों की यह सीमा इन्हीं भाषाओं के घेरे में पड़ी रही।

धीरे धीरे कोशकला के आदर्श-रचना-विधान की उपादान सामग्रियों का प्रयोग--थोड़ी या बहुत मात्रा में--आक्सफोर्ड इंग्लिश डिक्शनरी की रचना के पहले से भी होने लगा था। पर उनमें वैज्ञानिक और ऐतिहासिक आधार सर्वथा पुष्ट और सुव्यवस्थित नहीं थे। वे उपादान किसी एक कोश में योजनाबद्ध क्रम से संयोजित न होकर भिन्न भिन्न कोशों में विकीर्ण थे। फिर भी उनसे कोशनिर्माण के आवश्यक उपादानों की उपयोगिता सूचित और निर्देशित हो चुकी थी। पूर्व कोशों की अपेक्षा परवर्ती कोशों में प्रायः अर्थप्रतिपादन की पूर्णता, यथार्थता और शुद्धता के साथ-साथ ऐतिहासिक और भाषावैज्ञानिक प्रौढ़ता बढ़ती गई। डा० ट्रेंच की मनीषा ने समस्त पूर्वसंकेतिक उपादानों के समुचित विनियोग एवं समावेश का लिंगनिर्देश किया। उन्होंने सुव्यवस्थित ढंग से और योजनाबद्ध रूप में उनके उपयोग की महत्ता को ठीक ठीक समझा और उनके समुचित एवं व्यवस्थित विनियोग और प्रयोग से कोशरचना के कार्य को पूर्णता की दिशा में बढ़ाने का प्रयास किया।

आक्सफोर्ड इंग्लिश डिक्शनरी के निर्माण में उपयोजित रचना-विधान ने कोशनिर्माण की एक ऐसी भूमिका प्रतिष्ठित की जो क्रमशः विकास की ओर बढ़ती चल रही है। साहित्य और भाषा के ऐतिहासिक एवं वैज्ञानिक अध्ययन, अनुशीलन और अर्थविचार अथवा शब्दार्थविचार का कुशल परिशीलन उसमें लक्षित होता है। उसको पूर्णता की ओर अग्रसर करने के लिये शक्ति, सामर्थ्य, सहयोग और धन का व्यापक साधन जहाँ अपेक्षित है वहाँ विभिन्न शास्त्रज्ञों, विद्यावेत्ताओं, शब्दव्यवहार के मर्मज्ञ मनीषियों, भाषा तथा साहित्य के ऐतिहासिक परिशीलकों और शोधकर्ताओं की मेधा, मनीषा, सूक्ष्म बोध और प्रतिभा भी अपेक्षित है। यह कार्य स्वल्प समय में साध्य भी नहीं है। इसके निर्माण और विस्तार का कार्य व्यापक परिवेश और बड़े पैमाने पर अखंड रूप से चलते रहना चाहिए। आक्सफोर्ड इंग्लिश डिक्शनरी का कार्य निरंतर चलता रहता है। उसके संशोधन, परिष्करण, संवर्धन आदि की प्रक्रिया और नवीनतम संस्करण की प्रकाशनसामग्री का संचालन होता चलता है। संपादकों की अनेक पीढ़ियों ने वहाँ कार्य किया। इतना ही नहीं--उसके आधार पर अनेक उपयोगी 'संक्षिप्त', 'लघु', 'पाकेट', आदि संस्करण छपते और लाखों की संख्या में बिकते रहते हैं। अन्य सैकड़ों हजारों अंग्रेजी कोशों को--जिनमें बड़े छोटे सभी प्रकार के कोश हैं--रचना में वहाँ से सामग्री और सहायता मिलती है। उसे प्रामाणिक और आप्त मान लिया गया है।

यह प्रसंग यहीं समाप्त किया जा रहा है। यहाँ इस चर्चा का उद्देश्य केवल इतना ही संकेत करना था कि भारत में जो आधुनिक कोश बने वे इन्हीं पाश्चात्य कोशों की पद्धति पर चले। उनके निर्माण में पूरी सफलता चाहे न भी मिल सकी हो पर उनकी पद्धति भी वही थी जिसे हम आधुनिक कोशविज्ञान की रचनाशैली कहते हैं।

पाश्चात्य विद्वानों का योगदान

संस्कृत तथा भारतीय भाषाओं के कोश

भारत में विदेशी विद्वानों, धर्मप्रचारकों और सरकारी शासकों द्वारा आधुनिक ढंग से कोशनिर्माण का कार्य प्रारंभ हुआ--यह कहा जा चुका है। ये कोश मुख्यतः दो रूपों में बने--(१) विदेशी भाषाओं में (विशेषतः अंग्रेजी में) और (२) अंग्रेजी तथा भारतीय भाषाओं में। विदेशी भाषाओं के माध्यम से भारतीय भाषाओं के जो कोश बने उनमें संस्कृत के कोशों का स्थान महत्वपूर्ण है। इनके अलावा दूसरे वे कोश हैं जो अंग्रेजी आदि के माध्यम से बने। वे या तो हिंदुस्तानी, हिंदी और उर्दू के कोश हैं या अन्य भारतीय भाषाओं के।

१८१९ में डा० 'विलसन' का 'संस्कृत इंगलिश कोश' प्रकाशित हुआ। अंग्रेजी के माध्यम से प्रकाशित होनेवाले इस संस्कृत कोश को प्रस्तुत दिशा में महत्वपूर्ण पर आरंभिक कार्य कहा जा सकता है। इस कृति की भूमिका से पता चलता है कि उस समय पुरानी पद्धति के कुछ संस्कृत कोश वर्तमान थे। कोलब्रुक द्वारा अनूदित अमरकोश भी वर्तमान था। वस्तुतः 'विलसन' का यह ग्रंथ पर्यायवाची द्विभाषी कोश कहा जा सकता है। मोनियर विलियम्स की दो कृतियाँ--संस्कृत अंग्रेजी कोश और इंगलिश संस्कृत कोश महत्वपूर्ण कोश हैं। उनका प्रकाशन १८५१ ई० में हुआ। इस कोश की प्रेरणा विलसन के ग्रंथ से मिली। विलसन ने अपने कोश के नवीन संस्करण की भूमिका में अपना मंतव्य प्रकट किया है। वे यह चाहते थे कि संस्कृत के सभी शब्दों का वैज्ञानिक ढंग से ऐसा आकलन हो जिससे संस्कृत की लगभग दो हजार धातुओं के अंतर्गत समस्त संस्कृत शब्दों का समावेश हो जाय। इस दिशा में उन्होंने थोड़ा प्रयत्न भी किया। इन दोनों के बाद महत्वपूर्ण ग्रंथ आप्टे का कोश आता है जो संस्कृत अंग्रेजी और अंग्रेजी संस्कृत दोनों रूपों में संपादित किया गया। विलियम्स के कोश में धातुमूलक व्युत्पत्ति के साथ साथ शब्दप्रयोग का संदर्भ-संकेत भी दिया गया। परंतु आप्टे के कोश में संकेतमात्र ही नहीं, उद्धरण भी दिए गए हैं। पूर्व कोश की अपेक्षा वह अधिक उपयोगी दिखाई पड़ा। कुछ वर्षों पूर्व तीन खंडों में उनके कोश का संशोधित संवर्धित और विस्तृत संस्करण प्रकाशित हुआ है जो कदाचित् तबतक के समस्त 'संस्कृत अंग्रेजी कोशों में सर्वाधिक प्रामाणिक एवं उपयोगी

कहा जा सकता है। इनके अतिरिक्त भी अल्प महत्व के अनेक संस्कृत-अंग्रेजी-कोश बनते रहे जिनमें कुछ प्रसिद्ध कोशों के नाम आगे दिए जा रहे हैं—(१) संस्कृत अंग्रेजी कोश (संपादक—डब्ल्यू० यीट्स—१८४६) (२) संस्कृत अंग्रेजी डिक्शनरी (लक्ष्मण रामचंद्र वैद्य—१८८९), (३) संस्कृत डिक्शनरी (थियोडोर बेन्फे—१८६६), (४) ग्रासमैन लेक्सिकन टु दि ऋग्वेद और (५) प्रैक्टिकल संस्कृत डिक्शनरी—विद ट्रान्स्लिटरेशन, एक्सेंचुएशन ऐंड एटिमालाजिकल एनालसिस थ्रू आउट—मैक्डानल्ड, १९२४ ई०।

पूना में केंद्रीय सरकार द्वारा प्रदत्त आर्थिक अनुदान से डा० कत्रे के निदेशन में संस्कृत का एक विशाल कोश बन रहा है। उसकी आधारभूत सामग्री का भी स्वतंत्र रीति से वैज्ञानिक और आलोचनात्मक पद्धति पर आलोचन और पाठनिर्धारण किया जा रहा है। उक्त कोश के लिये शब्दों का जो प्रामाणिक संकलन हो रहा है वह प्रायः सर्वांशतः यथासंभव आलोचनात्मक ढंग से संपादित या संकलित है। डा० 'कत्रे' संस्कृत के साथ साथ आधुनिक भाषाविज्ञान के बड़े विद्वान् हैं। इस कोश के शब्दसंकलन और अर्थनिर्धारण में तत्तत विषयों के संस्कृतज्ञ, प्रौढ़ पंडितों की पूरी सहायता लेने का प्रयत्न हो रहा है। संपादनविज्ञान की पद्धति पर संपादित प्रामाणिक और आलोचित आधारग्रंथों से ही यथा-संभव शब्दसंकलन की चेष्टा हो रही है। भारतीविद्या (इंडोलाजी) में अबतक जो भी महत्वपूर्ण अनुशीलन विश्व की किसी भाषा में हुआ है उसके सर्वांशतः उपयोग और विनियोग का प्रयास हो रहा है। १७-१८ वर्षों से यह प्रयास चल रहा है जिसमें काफी समय, श्रम और धनराशि व्यय हो रही है तथा विषयज्ञ विद्वज्जनों का अधिक से अधिक सहयोग पाने की चेष्टा की जा रही है। भाषाविज्ञान की न्यूनतम उपलब्धियों का सहारा लेकर व्युत्पत्तिनिर्धारणादि की व्यवस्था हो रही है। अतः आशा है, यह कोश निश्चय ही उच्चतर स्तर का होगा। अंग्रेजी, जर्मन, फ्रांसीसी, रूसी आदि भाषाओं के समस्त संपन्न संस्कृत कोशों की विशाल सामग्री का परीक्षापूर्वक ग्रहण हो रहा है। अतः निश्चय ही उक्त कोश, अबतक के समस्त संस्कृत-अंग्रेजी-कोशों में श्रेष्ठतम होगा। क्या ही अच्छा होता यदि उक्त संस्कृत कोश के हिंदी तथा अन्य सभी आधुनिक भारतीय भाषाओं में भी संस्करण छापे जाते;

मोनियर विलियम्स के बाद अनेक संस्कृत अंग्रेजी कोश बने। परंतु विलसन के नवीन संस्करण और विलियम्स के कोश के सामने उनका विशेष प्रचार नहीं हो पाया। विलसन के कोश का एक संक्षिप्त संस्करण भी १८७० ई० में रामजसन ने संपादित किया जिसका काफी प्रचार हुआ। मेक्डानल की प्रैक्टिकल संस्कृत-इंगलिश-डिक्शनरी अवश्य ही अत्यंत महत्वपूर्ण कोश है। इसमें संस्कृत शब्दों के अर्थ का कालावधिक परिचय भी दिया गया है, शब्द के अधिक प्रचलित और स्वल्प प्रचलित अर्थों को सूचित करने का भी प्रयास हुआ है। 'बेन्फे' की भी 'संस्कृत-इंगलिश-डिक्शनरी' प्रकाशित हुई। और भी अनेक छोटे बड़े संस्कृत कोश निर्मित हुए। परंतु विलसन विलियम्स और आप्टे—इनकी संस्कृत इंगलिश कोशत्रयी को सर्वाधिक सफलता एवं प्रसिद्धि मिली।

यहाँ राथ और बोथलिंक्ग् द्वारा प्रकाशित संस्कृत-जर्मन-कोश के उल्लेख के बिना समस्त विवरण अपूर्ण ही रह जायगा। ओटो बोथलिक्ग् तथा 'रुडोल्फ राथ' के संयुक्त संपादकत्व में संस्कृत का जर्मनभाषी यह कोश—संस्कृत वोर्तेरबुख—१८५८ ई० से प्रारंभ होकर १८७५ ई० में पूर्ण हुआ। यह कोश भारतीविद्या का महाज्ञान-कोश है। अत्यंत विशाल और सात जिल्दों के इस कोश में प्रभूत सामग्री भरी पड़ी है। इसका एक संक्षिप्त संस्करण भी १८७९ से लेकर १८८९ ई० तक प्रकाशित होता रहा। वह भी सात जिल्दों में है पर उसकी पृष्ठसंख्या—आधी से भी कम है। सेंट पीटरस्बर्ग से प्रकाशित यह संस्कृत-जर्मन-कोश व्यावहारिक उपयोगिता से पूर्ण होकर भी अत्यंत प्रामाणिक है। इसके पहले अनेक छोटे बड़े संस्कृत कोश जर्मन, फ्रांसीसी, इताली आदि भाषाओं में बन चुके थे। १८४६ ई० में 'थियोडोर बेन्फ' का कोश बना था जिसका अंग्रेजी रूपांतर १८५६ में मैक्सम्यूलर के संपादकत्व में प्रकाशित हुआ।

इनमें से अनेक कोश ऐसे थे जो भारत में और अनेक विदेशों में प्रकाशित हुए।

हिंदुस्तानी, हिंदी, उर्दू के कोश

हिंदुस्तानी, हिंदी और उर्दू के आधुनिक कोशों का निर्माणकार्य भी पाश्चात्य विद्वानों ने व्यापक पैमाने पर किया। इन भाषाओं एवं अन्य भारतीय भाषाओं के कोशों का निर्माण जिन प्रेरणाओं से पाश्चात्य विद्वानों ने किया उनमें दो बातें कदाचित् सर्वप्रमुख थीं :

(क) धर्म का प्रचार करनेवाले ख्रीष्ट मतावलंबी धर्मोपदेशक चाहते थे कि यहाँ की जनता में घुलमिलकर उनकी भाषा बोल और समझकर उनकी दुर्बलताओं को समझा जाय और तदनुरूप उन्हीं की बोली में इस ढंग से प्रचार किया जाय जिसमें सामाजिक रूढ़ियों और बंधनों से पीड़ित वर्ग, इसाई धर्म के लाभों के लालच में पड़कर अपना धर्म-परिवर्तन करे। फलतः यह आवश्यक था कि हिंदी या हिंदुस्तानी, उर्दू तथा बँगला, तमिल, मराठी, मलयालम्, कन्नड़, तेलगू, उड़िया, असमिया आदि भाषाभाषियों के बीच ख्रीष्टीय मत के प्रचारक, उनकी भाषाएँ सीखें और उनमें धड़ल्ले से व्याख्यान दे सकें तथा ग्रंथरचना कर सकें। परिणामतः इन भाषाओं के अनेक छोटे मोटे व्याकरण और कोशों की विदेशी माध्यम से रचना हुई।

(ख) दूसरा प्रमुख वर्ग था शासकों का। शासनकार्य की सुविधा और प्रौढ़ता के लिये, शासित की भावना, संस्कृति, धार्मिक विचार, भाषा और उनके धर्मशास्त्र तथा साहित्य की जानकारी भी अनिवार्य थी। एतदर्थ भी इन भाषाओं के कोश बने।

इन दोनों के अतिरिक्त भारतीविद्या भारतीय दर्शन, वैदिक तथा वैदिकेतर संस्कृत साहित्य के विद्याप्रेमी और भाषावैज्ञानिक प्रायः निःस्वार्थ भाव से संस्कृत एवं अन्य भारतीय भाषाओं के अनुशीलन में प्रवृत्त हुए तथा तत्तत् विषयों के ग्रंथों की रचना की। इसी संदर्भ में महत्वपूर्ण कोशग्रंथ भी बने। संस्कृतकोशों की चर्चा की जा चुकी है। 'ए डिक्शनरी आव् मोहमडन लॉ ऐंड बंगाल रेवेन्यू टर्म्स्' (४ भाग—ई० १७९५), 'ए ग्लासरी आव् इंडियन टर्म्स्' (८ भाग—१७९७ ई०), बंगाली सिविल सर्विस टर्म्स्' (एच्. एम्. इलियट—

१८४५ ई०), 'ए ग्लासरी ग्राव् जुडिशल ऐंड रेवेन्यू टर्म्स्' इत्यादि ग्रंथों का निर्माण किया गया। इनसे एक ओर तो शासनकार्य में सुविधा प्राप्त हुई और दूसरी ओर पाश्चात्य विद्वानों को भी भारतीय भाषा या संस्कृत के ग्रंथों का अपनी अपनी भाषाओं में अनुवाद करने में सहायता मिली।

इन कोशों के अलावा पाश्चात्य विद्वानों अथवा उनकी प्रेरणा से भारतीय सुधियों द्वारा उसी पद्धति पर पाली, प्राकृत आदि के कोश भी बने और बन रहे हैं। राबर्ट सीजर ने पाली-संस्कृत-डिक्शनरी का १८७५ ई० में प्रकाशन कराया था। १९२१ ई० में पाली टैक्स्ट सोसाइटी के निर्देशन में पाली-अंग्रेजी-डिक्शनरी बनकर सामने आई। शतावधानी जैनमुनि श्रीरत्नचंद ने 'अर्धमागधी डिक्शनरी' का निर्माण किया। उसमें संस्कृत, गुजराती, हिंदी और अंग्रेजी का प्रयोग उपयोग होने से उसे बहुभाषी शब्दकोश कहना संगत है। 'पाइयसद्दमहण्णव' निश्चय ही प्राकृत का अत्यंत विशिष्ट कोश है जिसका पुनः प्रकाशन किया गया है 'प्राकृत टेक्स्ट सोसाइटी' की ओर से।

भारतीय आधुनिक भाषाओं में हिंदी के विशिष्ट स्थान और महत्व की घोषणा किए बिना भी पाश्चात्य विद्वानों ने उसे हिंदुस्तान की राष्ट्रभाषा मान लिया तथा हिंदी या हिंदुस्तानी--दोनों ही नामों का उसके लिये—मेरी समझ में--प्रयोग किया। उर्दू को भी उसी की शैली समझा। अतः हिंदुस्तानी और हिंदी के कोशों की ओर उन्होंने विशेष ध्यान दिया। नीचे इसकी चर्चा हो रही है।

हिंदी-हिंदुस्तानी के कोश

हिंदी या हिंदुस्तानी या उर्दू के कोशों का निर्माण भी इसी क्रम में हुआ। जानसन का लघुकोश 'ए लिस्ट ग्राव वन थाउजंड इंपार्टेंट-वर्ड्स' आरंभिक प्रयास था। इस दिशा में सबसे महत्वपूर्ण कार्य था विलियम हंटर की हिंदुस्तानी-इंग्लिश-डिक्शनरी (१८०८ ई०)। इसका मुख्य आधार था कैप्टन जोसफ टेलर की 'ए डिक्शनरी ग्राव हिंदुस्तानी ऐंड इंग्लिश'। टेलर ने अपने उपयोग के लिये इसका निर्माण किया था। हंटर का कोश निरंतर संशोधित और परिवर्धित संस्करणों में क्रमशः १८१९, १८२० और १८३४ ई० में प्रकाशित होता रहा। जान शेक्सपियर भी कोश का कार्य करते रहे। पर उनके कोश से पूर्व हंटर का कोश तथा एम० टी० आदम की कृति 'दि डिक्शनरी ग्राव हिंदी ऐंड इंग्लिश' प्रचलित था। डा० गिलक्राइस्ट की डिक्शनरी 'इंग्लिश ऐंड हिंदुस्तानी' १७८६-९६ में प्रकाशित हो चुकी थी। उसका संक्षिप्त रूप उन्होंने ही रोबुक के सहसंपादकत्व में १८१० ई० में प्रकाशित किया था। डा० रोजेरी ने उसी को ए डिक्शनरी ग्राव 'इंग्लिश बंगला ऐंड हिंदुस्तानी' नाम से संक्षिप्ततर रूप में कलकत्ता से १८३७ ई० में प्रकाशित कराया था। जे० बी० थामसन की उर्दू-अंग्रेजी डिक्शनरी १८३८ ई० में प्रकाशित हुई। १८१७ ई० में शेक्सपियर द्वारा लंदन से 'अंग्रेजी हिंदुस्तानी, और हिंदुस्तानी अंग्रेजी' कोश प्रकाशित हुआ परंतु इन सबमें रोमन या फारसी लिपि का प्रयोग मुख्यतः होता रहा। इसी बीच १८२९ ई० में पादरी एम० टी० आदम का महत्वशाली कोश भी सामने आया, जो—जैसा प्रथम संस्करण की भूमिका के पृ० १ में बताया गया है--हिंदी कोश के नाम से कलकत्ता में प्रकाशित हुआ। इसे नागरी का प्रथम कोश कह सकते है जिसमें हिंदी भाषा और देवनागरी लिपि का व्यवहार किया गया। डा० हरकोट्स ने भी 'ए डिक्शनरी इंग्लिश ऐंड हिंदुस्तानी' बनाई थी। मद्रास के डा० हैरिस ने बड़े व्यापक पैमाने पर एक हिंदुस्तानी-अंग्रेजी कोश का संपादन-कार्य आरंभ किया था। वे बहुत काफी कार्य कर भी चुके थे। पर इसके पूर्ण होने से पहले ही वे दिवंगत हो गए। यह बहुत ही प्रामाणिक ग्रंथ था। सामान्य संदर्भ की भी इसमें सहयोजना थी। इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि इसमें दक्खिनी हिंदी के शब्दों का उपयोग हुआ था।

जान शेक्सपियर ने अपने कोश के निर्माण में इसकी पांडुलिपियों का पूर्ण उपयोग किया। उन्हें इसका हस्तलेख मिला था इंडिया हाउस के आफिस में। इसके शब्दों और अर्थों के संकलन में डा० हैरिस ने भारतीय विद्वानों की पूरी सहायता ली थी।

इसके आधार पर और संकलित भाग का पूर्ण उपयोग करते हुए अपने कोशों का शेक्सपियर ने परिवर्धित संस्करण १८४८ ई० में और दूसरा संशोधित संस्करण १८६१ ई० में प्रकाशित कराया। इस विशाल शब्दकोश के दोनों अंशों में बहुत परिवर्धन संशोधन हुआ। दोनों अंश 'हिंदुस्तानी ऐंड इंग्लिश डिक्शनरी' तथा 'इंग्लिश ऐंड हिंदुस्तानी डिक्शनरी' एक साथ प्रकाशित किए गए। यह शब्दकोश विशेष महत्व का है। इसमें सबसे पहले रोमन वर्णों द्वारा शब्दनिर्देशन है, तदनंतर यथा, एस् = संस्कृत, एच् = हिंदी या हिंदुस्तानी, पी = फारसी संकेतों द्वारा कोश के शब्द से संबद्ध मूलभाषास्रोत का निर्देश हुआ है और हिंदी, हिंदुस्तानी, फारसी, अरबी, अंग्रेजी, पुर्तगाली, तुर्की, ग्रीक, लातिन, तामिल, तेलगु, मलयालम, कन्नड, बंगला, मराठी, गुजराती आदि के संकेत हैं। तदनंतर फारसी में कोशशब्द यथास्थान दिए हुए हैं। यदि आवश्यक हुआ तो नागरी रूप भी दिया गया है। रोमन में फिर वही शब्द है और अंत में अंग्रेजी पर्याय।

इसी युग में डंकन फोर्ब्स का कोश--डिक्शनरी हिंदुस्तानी (१८४८ ई०) का भी प्रकाशन किया गया। इसमें कोशशब्दों को फारसी और रोमन में तथा अर्थपर्याय अंग्रेजी में दिया गया है।

'ए न्यू हिंदुस्तानी इंग्लिश डिक्शनरी' का फैलन ने बड़े श्रम के साथ संपादन किया और उसे प्रकाशित कराया। उसका महत्व इस वर्ग के कोशों में सर्वाधिक माना गया। आधुनिक कोशविद्या की पद्धति से निर्मित यह ऐसा कोश है जिसमें पर्यायवाची शैली का भी योग है। इसमें उदाहृत अंश एक ओर तो हिंदुस्तानी साहित्य से गृहीत हैं दूसरी ओर लोकगीतों के उदाहरण भी दिए गए हैं। इतना ही नहीं, बोलचाल की भाषा और महिलाओं की शुद्ध बोलियों का पहली बार उदाहरण के रूप में यहाँ उपयोग किया गया है। हिंदुस्तानी शब्दों के अर्थों को बोलचाल की भाषा से ही संकलित करके देने का प्रयास हुआ है। व्युत्पत्तिमूलक अर्थों को पुराने रूपों के आधार पर दिया गया है और कुछ हिंदी शब्दों के धातुओं का भी निर्धारण हुआ है। यह कोश व्युत्पत्ति की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है तथा उदाहरणों और तदाधारित अर्थनिर्देश की दृष्टि से भी अत्यंत महत्व रखता है। इसका कारण यह

है कि इसमें बोलचाल की भाषा का मंथन और निकट से सूक्ष्मदर्शन किया गया है। इन्होंने इंग्लिश हिंदुस्तानी का भी कोश तैयार किया। इन कोशों का विवरण संक्षेप में नीचे दिया जा रहा है।

गिलक्राइस्ट की हिंदुस्तानी इंगलिश डिक्शनरी, जो अपनी प्राचीनता के कारण बड़े महत्व की है, १७८६ में बनी थी। इसमें भूमिका देने के अलावा भाषासंबंधी कुछ आवश्यक बातें तथा युद्ध की कहानियाँ भी संगृहीत हैं। संज्ञा, सर्वनाम, क्रियाविशेषण, अव्यय आदि के शब्द हैं। इसमें संस्कृत तत्सम शब्दों को छोड़ दिया गया है परंतु तद्भव, देशज एवं भारत में प्रचलित अरबी फारसी के शब्दों को ले लिया गया है। रोमन वर्णमाला के अनुसार शब्दक्रम है। शब्दों की व्याख्या कम की गई है और अंग्रेजी पर्याय अधिक हैं।

जे० टी० थामसन ने दो शब्दकोश--(१) उर्दू और अंग्रेजी तथा (२) हिंदी और अंग्रेजी--बनाए। फ्रांसिस ग्लेडविड ने परशियन, हिंदुस्तानी और अंग्रेजी की डिक्शनरी निर्मित की। जे० डी० बेट्स ने ए डिक्शनरी आव हिंदी लैंग्वेज (१८७५ ई० में) बनाई।

कैप्टन टेलर का शब्दकोश (हिंदुस्तानी अंग्रेजी) बना था अपने व्यक्तिगत उपयोग के निमित्त। हंटर ने उसी का आधार लेकर विस्तत कोश बनाया था। कोशकार के कथनानुसार उसका शब्दसंकलन जनता से हुआ था। संस्कृत के तत्सम, तद्भव और देशज शब्दों के साथ साथ अरबी, फारसी, ग्रीक, अंग्रेजी, पुर्तगाली के तद्भव शब्द भी और कभी कभी तत्सम और देशज शब्द भी उसमें लिए गए हैं। दक्खिनी हिंदी और बँगाली के शब्द भी नहीं छोड़े गए हैं। शब्दों की वैकल्पिक और भूगोलमूलक भिन्नताओं का स्थान स्थान पर संकेत भी किया गया है। रीति रिवाजों का भी अनेक स्थानों पर काफी विवरण मिलता है। कुछ व्यक्तिवाचक संज्ञाओं के प्रयोग में पौराणिक और प्राचीन कथाओं का वर्णन भी मिल जाता है।

१८१७ में निर्मित शेक्सपियर की हिंदुस्तानी-अंग्रेजी डिक्शनरी में पर्याप्त शब्दों की व्युत्पत्ति देने का प्रयत्न लक्षित होता है। शब्दों के पूर्व ही संकेताक्षरों द्वारा भाषाओं का निर्देश हुआ है। शब्दक्रम की योजना में फारसी लिपिमाला का अनुसरण है परंतु संस्कृत से व्युत्पन्न शब्द नागरी लिपि में हैं। इस कोश के अनेक संस्करण हुए। चतुर्थ संस्करण में दक्खिनी भाषा के अनेक कवियों से भी शब्द संकलित हुए हैं।

इन कोशों की रचना में धर्मप्रचार के अतिरिक्त मुख्य उद्देश्य था विदेशी शासन के अधिकारी वर्ग को भारतीय भाषा सिखाना। अतः शब्दसंकलन के क्रम में बोलचाल के शब्दों को इन कोशकारों ने प्रमुखता दी और अप्रचलित या अल्पप्रचलित तत्सम या तद्भव शब्दों के अनावश्यक संकलन से कोशकलेवर को विस्तार से बचाने का उन्होंने प्रयत्न किया। हिंदुस्तानी के इन कुछ कोशों में अधिकतः उर्दू शब्दों का प्राधान्य है और बेट्स तथा एकाध और कोशकारों के कोशों को छोड़कर प्रायः सबमें शब्द-क्रम-योजना का आधार फारसी वर्णमाला है। फैलन के कोश में चूंकि मुख्य रूप से बोलचाल की भाषा का आधार गृहीत हुआ था, अतः जॉन टी० प्लाट्स ने उर्दू और हिंदी के साहित्यिक ग्रंथों में प्रयुक्त शब्दों के संकलन की ओर विशेष ध्यान दिया। पादरियों और अंग्रेजी शासकों ने निश्चय हिंदी या हिंदुस्तानी के एकभाषी, द्विभाषी, कोशों और नवीन कोश-रचना-पद्धति का प्रवर्तन किया। लल्लू जी लाल जैसे लोगों ने भी त्रिभाषी कोश बनाए। श्रीराधेलाल का शब्दकोश (१८७३ ई०), पादरी बेट्स का काशी से (१८७५ ई० में) प्रकाशित हिंदीकोश और मुं० दुर्गाप्रसाद का अंग्रेजी उर्दू कोश (१८९० ई०)--इस दिशा के अनवरत चलते रहनेवाले प्रयास के उदाहरण हैं। १८७३ ई० से लेकर और उन्नीसवीं शती के अंत तक--भारत और बाहर (पेरिस आदि में) इस दिशा के कार्यों का सिंहावलोकन प्रथम संस्करण की भूमिका (पृ० १.२) में दिया गया है। अतः यहाँ इतना ही कहना है कि हिंदी के नव-कोशों की आद्य रचना और प्रेरणा--पश्चिम के कोशकारों द्वारा ही प्राप्त हुई। फलतः हिंदी ही नहीं, उसकी बोलियों के भी अनेक कोश बने। ब्रजभाषा का कदाचित् सर्वप्रसिद्ध कोश है श्री द्वारकाप्रसाद चतुर्वेदी द्वारा निर्मित--शब्दार्थपारिजात। सूर-ब्रजभाषा-कोश भी डा० टंडन ने बनाया है। अवधी का प्रसिद्ध नवकोश--श्री रामाज्ञा द्विवेदी द्वारा संपादित कराकर हिंदुस्तानी एकाडमी ने प्रकाशित किया है। उदयपुर से इधर एक विशाल राजस्थानी सबद कोश भी प्रकाश में आ रहा है। इसी प्रकार मैथिली कोश भी प्रकाशित हो चुका है।

हिंदीतर भाषाओं में कोश

(क) द्रविड़ भाषाएँ

भारतीय हिंदीतर भाषा के कोशों का निर्माण भी प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल तक बराबर चल रहा है।

तमिल भाषा में कोशनिर्माण की परंपरा बहुत प्राचीन कही जाती है। उनका प्रसिद्ध व्याकरण ग्रंथ 'तोलकाप्पियम्' कहा जाता है। उसी व्याकरण ग्रंथ में ग्रंथकार ने सूत्र शैली में शब्दकोश तैयार किया था। ग्रंथ के लेखक ने तमिल भाषा के शब्दों को चार वर्गों में विभक्त किया है--(१) सामान्य देशी शब्द, (२) साहित्यिक शब्द, (३) विदेशी भाषाओं से व्युत्पन्न शब्द और (४) संस्कृत से व्युत्पन्न शब्द। इसमें शब्दसंग्रह वर्णानुक्रम से रखा गया है। इसका प्रकाशन यद्यपि अट्ठारहवीं शताब्दी का है तथापि इसकी रचना ईसा की प्रथम द्वितीय शताब्दी में बताई जाती है। तमिल का दूसरा कोश 'तिवाकरम' है। १२ खंडों का यह कोश अमरकोश के आधार पर बना है। इसमें दस खंडो में वर्गमूलक शब्दसंचय है, ११वाँ खंड नानार्थ शब्दों का और १२वाँ समूहवाचक शब्दों का है।

१६७६ ई० में प्रथम तमिल-पुर्तगाली-कोश बना और १७१० ई० में फादर वेशली ने पूर्णतः अकारादि क्रम पर निर्मित 'कतुर अकाराति' नामक कोश तैयार किया। तमिल का प्रथम अंग्रेजी कोश लूथर के अनुयायी धर्मप्रचारकों द्वारा १७७९ ई० में 'मलाबार ऐंड इंग्लिश डिक्शनरी' नाम से प्रकाशित हुआ। उसी का दूसरा संस्करण संशोधित रूप से तमिल में 'इंग्लिश डिक्शनरी' के नाम से १८०९ ई० में मुद्रित हुआ। १८५१ ई० में एक त्रिभाषी कोश (अंग्रेजी, तेलगू और तमिल का) प्रकाशित हुआ। इनकी सहायता से अनेक तमिल कोश बनते आ रहे हैं। इस संपन्न और प्राचीन भाषा में व्याकरण

और कोशों की संपन्न परंपरा है। मद्रास विश्वविद्यालय द्वारा तमिल का एक विशाल कोश तैयार हुआ है जो अनेक जिल्दों में प्रकाशित है। इसकी शब्दयोजना तमिल वर्णमाला के अनुसार है। इसकी भूमिका में तमिल-कोश-परंपरा के विकास का विस्तृत विवरण दिया गया है।

इनके अतिरिक्त प्राचीन और अर्वाचीन कालों में अनेक तमिल कोश निर्मित हुए। इनमें अनेक नवीन कोश ऐसे हैं जिनमें तमिल में अर्थ दिया गया है; कुछ में अंग्रेजी द्वारा शब्दार्थ बताया गया है—जैसे 'तमिल लेक्सिकन' और कुछ नए कोश ऐसे भी है जिनमें भारतीय भाषाओं का अर्थबोधन के लिये आश्रय लिया गया है। इन्हीं में एकाध तमिल हिंदी कोश भी हैं।

दक्षिण की अन्य द्रविड भाषाओं में भी १६वीं शती के पूर्वार्ध से ही कोशों की रचना चली आ रही है। इन भाषाओं में आज अनेक उत्तम और विशाल कोश प्रकाशित हैं या हो रहे हैं। तेलगू के त्रिभाषी कोश की ऊपर चर्चा हुई है। चार्ल्स फिलिप्स ब्राउन द्वारा १८५२ ई० में अंग्रेजी तेलगू कोश निर्मित होकर छापा गया। ए तेलगू-इंग्लिश डिक्शनरी का १६०० ई० में निर्माण पी० शंकरनारायण ने किया। १६१५ ई० में आक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस से भी एक तेलगू कोश प्रकाशित किया गया। विलियम ऐंडर्सन ने इससे भी बहुत पहले ही, अर्थात् १८१२ ई० में अंग्रेजी-मलयालम का कोश बनाया था। जान गैरेट का अंग्रेज़ी कर्नाटकी (कनारी) कोश १८६५ ई० में प्रकाशित हुआ। बाद में भी एफ़० कितल द्वारा संपादित (१८६४ ई० में) कन्नड़ का भी एक कोश छपा।

(ख) आर्यभाषाएँ

हिंदी के अतिरिक्त आधुनिक आर्यभाषाओं के कोशों में बँगला और मराठी का कोशसाहित्य कदाचित् अत्यंत संपन्न कहा जा सकता है। इन भाषाओं के अलावा अन्य आर्यभाषाओं में भी आधुनिक कोशों की कमी नहीं है। पंजाबी में बहुत से पुराने कोश हैं। उड़िया, गुजराती, नेपाली, काश्मीरी, असमिया आदि में भी कोश बने हैं। पर बँगला, मराठी और पंजाबी की चर्चा ही यहाँ उदाहरण रूप में की जा रही है।

बँगला कोश

बँगला के कोशों की परंपरा—बँगला भाषा का विकास होने के बाद से—बरावर चल रही है। आधुनिक ढंग के कोशों में प्रकृतिवाद अभिधान नामक विशाल बँगला कोश उल्लेखनीय है जिसका संपादन राधाकमल विद्यालंकार ने किया। १८११ ई० में यह प्रकाशित हुआ। यह शब्दकोश वस्तुतः संस्कृत बँगला शब्दकोश है। इसका पूर्णतः परिशोधित और परिवर्धित संस्करण १६११ ई० में श्रीशरच्चंद्र शास्त्री द्वारा संपादित होकर प्रकाशित हुआ। इसका षष्ठ संस्करण तक देखने को मिला है। कदाचित् इससे भी पहले बंगला पुर्तगाली डिक्शनरी बन चुकी थी। पादरी मेनुअल ने बँगला व्याकरण के साथ बंगला-पुर्तगाली तथा पुर्तगाली-बँगला कोश (संभवतः) बनाए थे। कहा जाता है कि रामपुर के पादरी केरे साहब ने १८२५ ई० बहुत विशाल बँगला-इंगलिश-कोश बनाला था। ईस्ट इंडिया कंपनी की ओर से १८३३ ई० में बँगला-संस्कृत-इंगलिश-डिक्शनरी तैयार करवाई गई थी। हाउंटर और रामकमल सेन का 'बँगला-इंगलिश कोश भी अत्यंत प्रसिद्ध है। पादरी केरे के बँगला अंग्रेजी कोश में ८०००० शब्द थे। इनके अतिरिक्त भी अनेक छोटे बड़े बँगला अंग्रेजी कोश भी बने। केवल बँगला लिपि और भाषा में ही ज्ञानेंद्रमोहन दास का बँगला भाषार अभिधान (द्वितीय संस्करण १६३७) और पाँच जिल्दोंवाला हरिचरण बंद्योपाध्याय द्वारा निर्मित बंगीय शब्दकोश दोनों उत्कृष्ट रचनाएँ मानी जाती हैं। बँगला में उन्नीसवीं शताब्दी से आजतक छोटे बड़े शब्दकोशों के निर्माण की परंपरा चली आ रही है। छोटे कोशों में चलंतिका अत्यंत लोकप्रिय है। सैकड़ों अन्य कोश भी आज तक रचे गए और प्रकाशित हो चुके हैं। श्री योगेशचंद्र राय का बँगला शब्दकोश भी प्रसिद्ध रचना है। इस ग्रंथ में अनेक आधारिक और सहायक ग्रंथों की चर्चा है। उनमें बँगला से संबद्ध निम्नांकित कोशों के नाम उपलब्ध हैं—

(१) डिक्शनरी आव् बंगाली लैंग्वेज (सं० केरे—१८२५ ई०)

(२) ए डिक्शनरी आव् बंगाली लैंग्वेज (सं० जॉन सी० मार्शमैन—१८२७ ई०)

(३) बंगाली वोकैब्यूलरी (सं० एच्० पी० फास्टर—१७६६ ई०)

(४) बंगाली वाकैब्यूलरी (मोहनप्रसाद ठाकुर—१८१० ई०)

(५) डिक्शनरी आव् बंगाली लैंग्वेज (सं० डब्ल्यू० मार्टन—१८२८ ई०)।

(६) ए डिक्शनरी आव् बंगाली ऐंड इंगलिश (सं० ताराचंद चक्रवर्ती—१८२७ ई०)।

(७) शब्दसिंधु (अमरकोश के संस्कृत शब्दों की आकारादिवर्णानुक्रमानुसार योजना तथा बँगला व्याख्या—१८०८ ई०)

ग्लासरी ऑव जुडिशल ऐंड रेवेन्यू टर्म्स नामक जानसन के अंग्रेजी बँगला कोश का टाड संस्करण १८३४ ई० में प्रकाशित हुआ एच्० एच्० विलसन का जो कोश १८५५ ई० में प्रकाशित हुआ उसमें अरबी फारसी, हिंदी, हिंदुस्तानी, उड़िया, मराठी, गुजराती, तेलगू, कर्नाटकी (कनारी), मलयालम् आदि के साथ साथ बँगला के शब्द भी थे। श्रीतारानाथ का शब्दस्तोममहानिधि भी अच्छा कोश कहा जाता है।

मराठी कोश

मराठी भाषा में कोशनिर्माण की परंपरा संभवतः उस यादवकाल से प्रारंभ होती है जब महाराष्ट्री प्राकृत के अनंतर आधुनिक मराठी का स्वतंत्र भाषा के रूप में विकास हुआ और वह प्रौढ़ हो गई। उस युग में कुछ कोश बनाए गए थे। हेमाद्रि पंडितों द्वारा रचित अनेक कोशों का उल्लेख मिलता है। संत ज्ञानेश्वर ने अपनी कृति ज्ञानेश्वरी के क्लिष्ट शब्दों की—अकारादि क्रम से अनुक्रमणिका बनाते हुए उसी के साथ सरल मराठी में पर्याय शब्द दिए हैं। उसी के द्वारा मराठी से संबद्ध १२वीं शती के उन कोशों का संकेत मिलता है जो आज अनुपलब्ध हैं। शिवाजी द्वारा भी उनके समय में 'राज

व्यवहार-कोश' बना था जिसमें मराठी, फारसी और संस्कृत--तीनों भाषाओं की सहायता ली गई थी। रघुनाथ पंडितराव द्वारा ३८४ पद्यों का यह छंदोबद्ध कोश ऐसा त्रिभाषी कोश है जो अपने ढंग का विशेष कोश कहा जा सकता है। संस्कृत और फारसी के भी अर्थपर्यायसूचक ऐसे कोश संस्कृत माध्यम से मुगल शासनकाल में बने थे।

आगे चलकर पाश्चात्यों के संपर्क और प्रभाव से 'मराठी इंगलिश' के अनेक कोश बने। चीफ कैप्टन गोल्सवर्थ ने अंग्रेजी-मराठी का एक विशाल कोश १८३१ ई० में बनाया था। थामस कैंडी के सहयोग से उस कोश के संशोधित और परिवर्धित अनेक संस्करण छपे। मराठी के इन कोशों की परंपरा १६वीं शताब्दी के आरंभ से अबतक चली आ रही है। कोशों की दृष्टि से मराठी भाषा अत्यंत संपन्न है। अंग्रेजी कोशों में केरी, कर्नल केनेडी और गोल्सवर्थ कैंडी के मराठी इंगलिश कोश महत्वपूर्ण कृतियाँ हैं। इनके अतिरिक्त १६वीं शती के कुछ प्रमुख मराठी कोश हैं--(१) महाराष्ट्र भाषे चा कोश (इसके प्रथम भाग का प्रकाशन १८२६ ई० से प्रारंभ हो गया था); (२) रघुनाथ भास्कर गाडबोले का हंसकोश (१८६३ ई०); (३) बोडकर का रत्नकोश (१८६६ ई०) और (४) मराठी भाषा का नवीन कोश (१८६० ई०)। बीसवीं सदी के कोशों में--वा० गो० आप्टे का--मराठी शब्दरत्नाकर और विद्याधर का सरस्वती कोश अधिक प्रसिद्ध है। सामान्य शब्दार्थ कोशों के अतिरिक्त मराठी-व्युत्पत्तिकोश (कृष्णाजी पांडुरंग कुलकर्णी--१६४६ ई०) अत्यंत प्रसिद्ध व्युत्पत्ति-कोश है। इसमें मराठी भाषा का पूर्ण प्रयोग हुआ है। मराठी में विश्वकोश, लोकोक्तिकोश, वाक्संप्रदायकोश, (अनेक) ज्ञानकोश और शब्दार्थकोश हैं। गोविंदराव काले का एक पारिभाषिक शब्दकोश भी है जिसमें अंग्रेजी सैनिक शब्दों का शब्दार्थ संग्रह मिलता है। मराठी हिंदी कोश भी अनेक बने हैं। इनमें कुछ उत्तम कोटि के भी कोश हैं।

पंजाबी, काश्मीरी, नेपाली

लोदियन मिशन द्वारा १८५४ ई० में पंजाबी शब्दकोश बना था जिसमें गुरुमुखी और रोमन में मूल शब्द थे तथा अंग्रेजी में अर्थ था। इसके बाद पंजाबी कोशों का सिलसिला चलता है तथा पंजाबी के कोश बनने लगे।

इधर २०वीं शती में भाई विशनदास पुरी के संपादकत्व में प्रकाशित (१६२२ ई०) और पंजाब सरकार के भाषा विभाग, पटियाला से प्रकाश्यमान पंजाबी कोश अत्यंत महत्व के हैं। द्वितीय कोश कदाचित् पंजाबी का सर्वोत्तम कोश है।

काश्मीरी भाषा के अपने मैनुअल में डा० ग्रियर्सन ने व्याकरण बनाया और फ्रेजबुक के साथ साथ शब्दकोश भी संपादित (१६३२ ई०) किया था। इसके मूलकर्ता ईश्वर कौल थे और संभवतः १८६० ई० के पूर्व इसकी रचना हो चुकी थी। इसके पूर्व भी १८८५ ई० में इस दिशा का कुछ कार्य हो चुका था। टर्नर की नेपाली डिक्शनरी यद्यपि बहुत बाद की है, तथापि उसमें कोशविज्ञान और भाषाविज्ञान का विनियोग जिस महत्ता के साथ हुआ है वह अत्यंत प्रशंसनीय है।

उर्दू कोश

उन उर्दू के कोशों की चर्चा ऊपर हुई है जिन्हें विदेशियों ने बनाया। हिंदी या हिंदुस्तानी कोशों के साथ या इनका मिश्रित रूप ही प्रायः रहा। कभी कभी वे अलग भी थे। इनके पूर्व और बाद में बहुत से ऐसे कोश भी बने जो फारसी लिपि में निर्मित थे। इनमें फरहंगे अस-फिया, तब्मीरसुल्लुगात, लुगात किसोरी अधिक महत्व के और प्रसिद्ध माने जाते हैं। तत्वतः इनमें हिंदी के शब्दों की संख्या बहुत ज्यादा है। पर लिपिभेद के कारण हिंदी मात्र जाननेवाले इनका उपयोग और प्रयोग नहीं कर पाते। 'फरहंगे-ए-इस्तलाहात--वस्तुतः मौ० अब्दुलहक की योजना और प्रेरणा से रचित उर्दू का विशाल कोश है। इनके अतिरिक्त भी अमीर मीनाई का अमीरुल् लुगात तथा करीमुल्लुगात उर्दूकोशों में प्रसिद्ध हैं। श्रीरामचंद्र वर्मा, श्रीहरिशंकर शर्मा आदि ने नागरी लिपि में भी कोश बनाए। उत्तर प्रदेश सरकार ने मद्दाह द्वारा संपादित उर्दू हिंदी कोश प्रकाशित किया है जिसे अच्छा कोश कहा जाता है।

गुजराती, उड़िया, और असमिया में भी अनेक आधुनिक कोश बन चुके हैं और निरंतर बनते जा रहे हैं। नवजीवन प्रकाशन मंदिर का सार्थ गुजराती मंडणी कोश, तथा शापुरजी दरालजी का गुजराती इंग्रेजी कोश प्रसिद्ध हैं। असमिया में १८३७ ई० में ब्राउन्सन (अमेरिकी मिशनरी) ने असमिया-इंग्लिश डिक्शनरी बनाई थी। हेमचंद्र बरुआ द्वारा निर्मित 'असमिया-अंग्रेजी कोश', विशेष प्रसिद्ध है। उड़िया में भी ऐसे अनेक कोश बन चुके हैं। कहने का सारांश यह है कि भारत की सभी प्रमुख भाषाओं में आधुनिक कोशों की प्रेरणा पाश्चात्यों से मिली और भारतीयों ने उस कार्य को निरंतर आगे बढ़ाने में योगदान किया।

आधुनिक कोश की विधाएँ :

आधुनिक कोशरचना के विविध प्रकारों की संक्षिप्त चर्चा यहाँ अनावश्यक न होगी। वर्तमान युग ने कोशविद्या को अत्यंत व्यापक परिवेश में विकसित किया। सामान्य रूप से उसकी दो मोटी मोटी विधाएँ कही जा सकती हैं--(१) शब्दकोश और (२) ज्ञानकोश। शब्दकोश के स्वरूप का बहुमुखी प्रवाह निरंतर प्रौढ़ता की ओर बढ़ता लक्षित होता रहा है। आज की कोशविद्या का विकसित स्वरूप भाषाविज्ञान, व्याकरणशास्त्र, साहित्य, अर्थविज्ञान, शब्दप्रयोगीय, ऐतिहासिक विकास, संदर्भसापेक्ष अर्थविकास और नाना शास्त्रों तथा विज्ञानों में प्रयुक्त विशिष्ट अर्थों के बौद्धिक और जागरूक शब्दार्थ संकलन का पुंजीकृत परिणाम है।

शब्दकोश

हमारी परिचित भाषाओं के कोशों में आक्सफोर्ड-इंग्लिश-डिक्शनरी के परिशीलन में उपर्युक्त समस्त प्रवृत्तियों का उत्कृष्ट निदर्शन देखा जा सकता है। उसमें शब्दों के सही उच्चारण का संकेत-चिह्नों से विशुद्ध और परिनिष्ठित बोध भी कराया है। योरप के उन्नत और समृद्ध देशों की प्रायः सभी भाषाओं में विकसित स्तर की कोशविद्या के आधार पर उत्कृष्ट, विशाल, प्रामाणिक और संपन्न कोशों का निर्माण हो चुका है और उन देशों में कोशनिर्माण के लिये ऐसे स्थायी संस्थान प्रतिष्ठापित किए जा चुके हैं जिनमें अबाध गति से सर्वदा कार्य चलता

रहता है। लब्धप्रतिष्ठ और बड़े बड़े विद्वानों का सहयोग तो उन संस्थानों को मिलता ही है, जागरूक जनता भी सहयोग देती रहती है। अंग्रेजी डिक्शनरी तथा अन्य भाषाओं में निर्मित कोशकारों के रचना-विधान-मूलक वैशिष्टयों का अध्ययन करने से अद्यतन कोशों में निम्ननिर्दिष्ट बातों का अनुयोग आवश्यक लगता है—

(क) उच्चारणसूचक संकेतचिह्नों के माध्यम से शब्दों के स्वरों व्यंजनों का पूर्णतः शुद्ध और परिनिष्ठित उच्चारण स्वरूप बताना और स्वराघात बलाघात का निर्देश करते हुए यथासंभव उच्चार्य अंश के अक्षरों की बद्धता और अबद्धता का परिचय देना; (ख) व्याकरण-संबद्ध उपयोगी और आवश्यक निर्देश देना; (ग) शब्दों की इतिहास-संबद्ध वैज्ञानिक-व्युत्पत्ति प्रदर्शित करना; (घ) परिवार-संबद्ध अथवा परिवारमुक्त निकट या दूर के शब्दों के साथ शब्दरूप और अर्थरूप का तुलनात्मक पक्ष उपस्थित करना; (ङ) शब्दों के विभिन्न और पृथक्कृत नाना अर्थों को अधिक-न्यून-प्रयोग क्रमानुसार सूचित करना, (च) अप्रयुक्त शब्दों अथवा शब्दप्रयोगों की विलोपसूचना देना; (छ) शब्दों के पर्याय बताना; और (ज) संगत अर्थों के समर्थनार्थ उदाहरण देना; (झ) चित्रों, रेखाचित्रों, मानचित्रों आदि के द्वारा अर्थ को अधिक स्पष्ट करना। 'आधुनिक कोश की सीमा और स्वरूप' उपशीर्षक के अंतर्गत इन बातों की कुछ विस्तृत चर्चा की गई है।

'आक्सफोर्ड इंग्लिश डिक्शनरी' का नव्यतम और बृहत्तम संस्करण आधुनिक कोशविद्या की प्रायः सभी विशेषताओं से संपन्न है। पर भारतीय भाषाओं के कोशों में अभी उपर्युक्त समस्त सामग्री का पुष्ट एकत्रीकरण नहीं हो पाया है। नागरीप्रचारिणी सभा के हिंदी शब्दसागर के अतिरिक्त हिंदी साहित्य संमेलन द्वारा प्रकाश्यमान मानक शब्दकोश (जिसके चार खंड प्रकाशित हो चुके हैं) एक विस्तृत आयास है। हिंदी कोशकला के लब्धप्रतिष्ठ संपादक श्रीरामचंद्र वर्मा के इस प्रशंसनीय कार्य का उपजीव्य भी मुख्यतः शब्दसागर ही है। उसका मूल कलेवर तात्विक रूप में शब्दसागर से ही अधिकांशतः परिकलित है। हिंदी के अन्य कोशों में भी अधिकांश सामग्री इसी कोश से ली गई है। थोड़े बहुत मुख्यतः संस्कृत कोशों से और यदा कदा अन्यत्र से शब्दों और अर्थों को आवश्यक अनावश्यक रूप में ठूँस दिया गया है। ज्ञानमंडल के बृहद् हिंदी शब्दकोश में पेटेवाली प्रणाली शुरू की गई है। परंतु वह पद्धति संस्कृत के कोशों में जिनका निर्माण पश्चिमी विद्वानों के प्रयास से आरंभ हुआ था, सैकड़ों वर्ष पूर्व से प्रचलित हो गई थी। पर आज भी, नव्य या आधुनिक भारतीय भाषाओं के कोश उस स्तर तक नहीं पहुँच पाए हैं जहाँ तक आक्सफोर्ड इंग्लिश डिक्शनरी अथवा रूसी, अमेरिकन, जर्मन, इताली, फ्रांसीसी आदि भाषाओं के उत्कृष्ट और अत्यंत विकसित कोश पहुँच चुके हैं।

कोशरचना की ऊपर वर्णित विधा को हम साधारणतः सामान्य भाषा शब्दकोश कह सकते हैं। इस प्रकार शब्दकोश एकभाषी, द्विभाषी, त्रिभाषी और बहुभाषी भी होते हैं। बहुभाषी शब्दकोशों में तुलनात्मक शब्दकोश भी यूरोपीय भाषाओं में ऐतिहासिक और तुलनात्मक भाषाविज्ञान की प्रौढ़ उपलब्धियों से प्रमाणीकृत रूप में निर्मित हो चुके हैं। इनमें मुख्य रूप से भाषावैज्ञानिक अनुशीलन और शोध के परिणामस्वरूप उपलब्ध सामग्री का नियोजन किया गया है। ऐसे तुलनात्मक कोश भी आज बन चुके हैं जिनमें प्राचीन भाषाओं की तुलना मिलती है। ऐसे भी कोश प्रकाशित हैं जिनमें एक से अधिक मूल परिवार की अनेक भाषाओं के शब्दों का तुलनात्मक परिशीलन किया गया है।

शब्दकोशों के और भी नाना रूप आज विकसित हो चुके हैं और हो रहे हैं। वैज्ञानिक और शास्त्रीय विषयों के सामूहिक और तत्तद्-विषयानुसारी शब्दकोश भी आज सभी समृद्ध भाषाओं में बनते जा रहे हैं। शास्त्रों और विज्ञानशाखाओं के पारिभाषिक शब्दकोश भी निर्मित हो चुके हैं और हो रहे हैं। इन शब्दकोशों की रचना एक भाषा में भी होती है और दो या अनेक भाषाओं में भी। कुछ में केवल पर्याय शब्द रहते हैं और कुछ में व्याख्याएँ अथवा परिभाषाएँ भी दी जाती हैं। विज्ञान और तकनीकी या प्राविधिक विषयों से संबद्ध नाना पारिभाषिक शब्दकोशों में व्याख्यात्मक परिभाषाओं तथा कभी कभी अन्य साधनों की सहायता से भी बिलकुल सही अर्थ का बोध कराया जाता है। दर्शन, भाषाविज्ञान, मनोविज्ञान, समाजविज्ञान और समाजशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, अर्थशास्त्र आदि समस्त आधुनिक विद्याओं के कोश विश्व की विविध संपन्न भाषाओं में विशेषज्ञों की सहायता से बनाए जा रहे हैं और इस प्रकृति के सैकड़ों हजारों कोश भी बन चुके हैं। शब्दार्थकोश संबधी प्रकृति के अतिरिक्त इनमें ज्ञानकोशात्मक तत्वों की विस्तृत या लघु व्याख्याएँ भी संमिश्रित रहती हैं। प्राचीन शास्त्रों और दर्शनों आदि के विशिष्ट एवं पारिभाषिक शब्दों के कोश भी बने हैं और बनाए जा रहे हैं। इनके अतिरिक्त एक एक ग्रंथ के शब्दार्थ कोश (यथा मानस शब्दावली) और एक एक लेखक के साहित्य की शब्दावली भी योरप, अमेरिका और भारत आदि में संकलित हो रही है। इनमें उत्तम कोटि के कोशकारों ने ग्रंथसंदर्भों के संस्करणात्मक संकेत भी दिए हैं। अकारादि वर्णानुसारी अनुक्रमणि-कात्मक उन शब्दसूचियों का—जिनके अर्थ नहीं दिए जाते हैं पर संदर्भसंकेत रहता है—यहाँ उल्लेख आवश्यक नहीं है। योरप और इंगलैंड में ऐसी शब्दसूचियाँ अनेक बनीं। शेक्सपियर द्वारा प्रयुक्त शब्दों की ऐसी अनुक्रमणिका परम प्रसिद्ध है। वैदिक शब्दों की और ऋक्संहिता में प्रयुक्त पदों की ऐसी शब्दसूचियों के अनेक संकलन पहले ही बन चुके हैं। व्याकरण महाभाष्य की भी एक एक ऐसी शब्दानुक्रमणिका प्रकाशित है। परंतु इनमें अर्थ न होने के कारण यहाँ उनका विवेचन नहीं किया जा रहा है।

ज्ञानकोश

कोश की एक दूसरी विधा ज्ञानकोश भी विकसित हुई है। इसके बहत्तम और उत्कृष्ट रूप को इन्साइक्लोपिडिया कहा गया है। हिंदी में इसके लिये विश्वकोश शब्द प्रयुक्त और गृहीत हो गया है। यह शब्द बँगला विश्वकोशकार ने कदाचित् सर्वप्रथम बँगला के ज्ञानकोश के लिये प्रयुक्त किया। उसका एक हिंदी संस्करण हिंदी विश्वकोश के नाम से नए सिरे से प्रकाशित हुआ। हिंदी में यह शब्द प्रयुक्त होने लगा है। यद्यपि हिंदी के प्रथम किशोरोपयोगी

ज्ञानकोश (अपूर्ण) को श्री श्रीनारायण चतुर्वेदी तथा पं० कृष्ण वल्लभ द्विवेदी द्वारा विश्वभारती अभिधान दिया गया तो भी ज्ञान कोश, ज्ञानदीपिका, विश्वदर्शन, विश्वविद्यालयभंडार आदि संज्ञाओं का प्रयोग भी ज्ञानकोश के लिये हुआ है। स्वयं सरकार भी बालशिक्षोपयोगी ज्ञानकोशात्मक ग्रंथ का प्रकाशन 'ज्ञानसरोवर' नाम से कर रही है। परंतु इन्साइक्लोपीडिया के अनुवाद रूप में विश्वकोश शब्द ही प्रचलित हो गया। उड़िया के एक विश्वकोश का नाम शब्दार्थानुवाद के अनुसार ज्ञान मंडल रखा भी गया। ऐसा लगता है कि बृहद् परिवेश के व्यापक ज्ञान-का पारिभाषिक और विशिष्ट शब्दों के माध्यम से ज्ञान देनेवाले ग्रंथ का इन्साइक्लोपीडिया या विश्वकोश अभिधान निर्धारित हुआ और अपेक्षाकृत लघुतरकोशों को ज्ञानकोश आदि विभिन्न नाम दिए गए। अंग्रेजी आदि भाषाओं में बुक आफ नालेज, डिक्शनरी आव जनरल नालेज आदि शीर्षकों के अंतर्गत नाना प्रकार के छोटे बड़े विश्वकोश अथवा ज्ञानकोश बने हैं और आज भी निरंतर प्रकाशित एवं विकसित होते जा रहे हैं। इतना ही नहीं इन्साइक्लोपीडिया आफ रिलीजन ऐंड एथिक्स आदि विषयविशेष से संबद्ध विश्वकोशों की संख्या भी बहुत ही बड़ी है। अंग्रेजी भाषा के माध्यम से निर्मित अनेक सामान्य विश्वकोश और विशेष विश्वकोश भी आज उपलब्ध हैं।

इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटानिका, इन्साइक्लोपीडिया अमेरिकाना अंग्रेजी के ऐसे विश्वकोश हैं। अंग्रेजी के सामान्य विश्वकोशों द्वारा इनकी प्रामाणिकता और संमान्यता सर्वस्वीकृत है। निरंतर इनके संशोधित, संवर्धित तथा परिष्कृत संस्करण निकलते रहते हैं। इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटानिका के दो परिशिष्ट ग्रंथ भी हैं जो प्रकाशित होते रहते हैं और जो नूतन संस्करण की सामग्री के रूप में सातत्य भाव से संकलित होते रहते हैं। इंगलैंड में इन्साइक्लोपीडिया के पहले से ही ज्ञानकोशात्मक कोशों के नाना रूप बनने लगे थे।

ज्ञानकोशों के भी इतने अधिक प्रकार और पद्धतियाँ हैं जिनकी चर्चा का यहाँ अवसर नहीं है। चरितकोश, कथाकोश, इतिहासकोश, ऐतिहासिक कालकोश, जीवनचरितकोश पुराख्यानकोश, पौराणिक-ख्यातपुरुषकोश आदि आदि प्रकार के विविध नामरूपात्मक ज्ञानकोशों की बहुत सी विधाएँ विकसित और प्रचलित हो चुकी हैं। यहाँ प्रसंगतः ज्ञानकोशों का संकेतात्मक नामनिर्देश मात्र कर दिया जा रहा है। हम इस प्रसंग को यहीं समाप्त करते हैं और शब्दार्थकोश से संबद्ध प्रकृत विषय की चर्चा पर लौट आते हैं।

हिंदी कोशों की सीमा और उनके रूप

अद्यतन शब्दकोशों की विशेषताओं और उनकी विभिन्न विधाओं की चर्चा अन्यत्र हुई है। आज के कोशों में भाषावैज्ञानिक, व्याकरणिक और भाषा के ऐतिहासिक शब्दरूपों और अर्थरूपों से संबद्ध व्युत्पत्ति-निर्देश और अर्थ-विकास-क्रम का कोश में समावेश उसका अत्यंत अनिवार्य अंग हो गया है, यह अन्यत्र कहा गया है। भाषा के शब्दों का भाषावाङमय में आद्य प्रयोग और क्रमशः उत्तरवर्ती प्रयोगों के उदाहरण भी आवश्यक होते हैं। व्युत्पत्तिलभ्य यौगिक और रूढ़--नाना अर्थों के भी सोदाहरण निर्देश--कोश की प्रामाणिकता सूचित करने के लिये समाविष्ट किए जाते हैं। एक शब्द के शब्दार्थबोध की प्रयोगसीमा में आनेवाले सूक्ष्म अर्थों की नाना अर्थच्छायाओं का पार्थक्य और विस्तार भी सोदाहरण उपस्थित किया जाता है। शब्द के नाना अर्थों और आवश्यक उदाहरणों द्वारा तत्तदर्थबोधकता का समर्थन भी कोश में रहता है। आवश्यक व्याख्याएँ दी जाती हैं। इन सबके अतिरिक्त आधुनिक प्रयोगों के नव्यतम अर्थों का निर्देश किए बिना कोश पूर्ण और अद्यतन नहीं होता।

शब्दार्थकोश का पूर्ण और नूतनतम रूप ऐसे कोश को ही कहा जा सकता है। परंतु ऐसे कोश संपन्न और विकसित देशों की साधना द्वारा ही बन पाते हैं। इनके अतिरिक्त छोटे बड़े अनेक ऐसे साधारण कोश भी हैं जो पूर्ण साधनों के अभाव में समस्त वैशिष्ट्यों से संपन्न न होकर भी व्यावहारिक उपयोग के लिये बनाए जाते हैं और यथासंभव और यथाशक्ति या आंशिक रूप में उत्कृष्ट कोशों की घटक सामग्रियों से सहायता लेते हैं। संभवतः भारत के अधिकांश बड़े कोश भी शब्दार्थकोश की अद्यतनतम पूर्णता से अभी दूर ही हैं। हिंदी के शब्दार्थकोशों में शब्द और अर्थ के प्रयोग और विकाससंबंधी प्रामाणिक उदाहरणों द्वारा ऐतिहासिक क्रम का नियोजन अभी नहीं हो पाया है। इनके अतिरिक्त शब्दों के उच्चारण-संबंधी यथार्थ निर्देश की कमी प्रायः सभी छोटे बड़े हिंदी कोशों में वर्तमान है। प्राचीन राजस्थानी, पिंगल, डिंगल, प्राचीन और मध्यकालीन ब्रजभाषा, अवधी, मैथिली और दक्खिनी हिंदी, खड़ी बोली तथा हिंदी प्रदेश के विस्तृत क्षेत्र में प्रचलित आधुनिक परिनिष्ठित हिंदी के उच्चारणों का निर्देश अत्यंत आवश्यक है। हिंदी पढ़नेवाले हिंदीतर भाषाभाषियों के लिये उच्चारणनिर्देश बिना शुद्ध और सही उच्चारण करना नितांत कठिन हो जाता है। पर अबतक के बृहत् हिंदी कोशों में, यहाँ तक कि इस हिंदी शब्द-सागर के नवीन संस्करण में उच्चारणनिर्देश की योजना कार्यान्वित नहीं हो सकी।

इसके अतिरिक्त एक और बड़ी भारी कमी हिंदी कोशों में रह गई है। उसका संबंध ऊपर निर्दिष्ट शब्दप्रयोगों के ऐतिहासिक क्रमनिर्देश से है। भाषा में अनेक शब्द ऐसे भी मिलते हैं जिनका पहले तो प्रयोग होता था पर कालपरंपरा में उनका प्रयोग लुप्त हो गया। आज के उत्कृष्ट कोशों में यह भी दिखाया जाता है कि कब उनका प्रयोग आरंभ हुआ और कब उनका लोप हुआ। पर हिंदी कोशों में इसका अभाव है। नागरीप्रचारिणी सभा का यह कोश इस दिशा में थोड़ा प्रयत्नशील है। व्यवहारलुप्त शब्दों के आरंभ और समाप्ति के प्रयोगसंपृक्त ऐतिहासिक क्रम को सूचित किए बिना भी पुरातन-प्रयोग-संबंधी संकेत-बोधक चिह्न के द्वारा लुप्तप्रयोग शब्दों का निर्देश कर दिया गया है।

इन सब कमियों को दूर करने की ओर कोशनिर्माण में प्रवृत्त संस्थाओं और व्यक्तियों के विचार काम कर रहे हैं। पर अभी साधनाभाव के कारण प्रगति संतोषजनक नहीं है।

व्यावहारिक उपयोगिता की दृष्टि से सामान्य पाठकों के लिये बने हुए सामान्य कोशों के अतिरिक्त हिंदी में कुछ कोश और हैं जिन्हें हम शब्दार्थकोश मात्र कहते हैं। इनमें व्याकरणसंबद्ध निर्देश और

प्रचलित अर्थमात्र दिए गए हैं। हिंदी में एकाध पर्यायवाची कोश भी बनाए गए हैं। विशिष्ट विषयों के पारिभाषिक शब्दों के अर्थकोश भारत की अनेक भाषाओं और हिंदी में भी बन रहे हैं। इनमें बहुत से ऐसे कोश हैं जो ज्ञानकोश की सीमा के अंतर्गत आ जाते हैं। इनमें विस्तृत व्याख्या और कभी कभी ऐतिहासिक परिचय भी रहता है। परंतु कुछ कोश शब्दार्थ मात्र का बोध कराते हैं कभी पर्यायों द्वारा और कभी संक्षिप्त व्याख्या द्वारा। इस विधा को हम विषय शब्द-कोश कह सकते हैं। इनके अतिरिक्त जैसा ऊपर संकेत किया गया है, विभिन्न कवियों लेखकों के ग्रंथों अथवा विशिष्ट ग्रंथों के भी कोश अर्थसहित बनाए जाते हैं। प्रथम प्रकार के कोशों में हिंदी के सूर ब्रजभाषा कोश (डा० टंडन), प्रसाद काव्यकोश (श्रीसुधाकर पांडेय) आदि को रखा जा सकता है और द्वितीय कोटि में मानस शब्द कोश आदि को। बड़े शब्दार्थ कोशों में कभी कभी विश्वकोशीय पद्धति का अनुसरण करते हुए ऐतिहासिक और विवरणात्मक, परिचय भी स्थान स्थान पर दे दिया जाता है। शब्दकल्पद्रुम, वाचस्पत्य, हिंदी शब्दसागर आदि इसी प्रकार के शब्दकोश हैं। वेब्स्टर की न्यू इंगलिश डिक्शनरी भी इसी प्रकार का शब्दकोश है जिसमें विश्व-कोशीय पद्धति की रचनाशैली बहुत दूर तक अंतर्नियोजित है। यहाँ यह संकेत भी कर देना अनुचित न होगा कि हिंदी के शब्दार्थ कोशों में यौगिक, सामासिक शब्दों और लोकोक्तियों, मुहावरों आदि का भी उसी प्रकार अंतर्योग लक्षित होता है जिस प्रकार संस्कृत कोशों अथवा अंग्रेजी कोशों में। क्रियाप्रयोग भी हिंदी शब्दसागर में दिखाए गए हैं। यहाँ अथवा सामान्य कोशों में लोकोक्तियों और मुहावरों का अर्थबोध अथवा क्रियाप्रयोग शब्दविशेष के अंतर्गत दिखाया गया है। परंतु कुछ कोश ऐसे भी बने हैं जो केवल लोकोक्तिकोश' या मुहावराकोश कहे जाते हैं।

सामान्य शब्दार्थकोश एकभाषी या अनेकभाषी होते हैं। एकभाषी कोशों में व्याख्यात्मक अर्थकोश होते हैं, पर्यायवाची कोश होते हैं और कभी कभी विपर्यायवाची कोश भी मिल जाते हैं। कहने का तात्पर्य यह कि शब्दकोशों की अनेक विधाएँ विकसित हो रही हैं और उनके अनुसार अनेक प्रकार के छोटे बड़े कोश निर्मित होते जा रहे हैं। शब्दानुक्रमणिकाओं को जो मात्र शब्दों की अर्थरहित सूचियाँ होती हैं, छोड़ देने पर भी अनेक ग्रंथ के साथ सार्थक शब्दा-नुक्रमणिकाएँ भी मिलती हैं। इन्हें हम ग्रंथविशेष के क्लिष्ट या विरल पदों का शब्दकोश कह सकते हैं।

आधुनिक कोशविद्या : तुलनात्मक दृष्टि

मध्यकालीन हिंदी कोशों की मान्यता और रचनाप्रक्रिया से भिन्न उद्देश्यों को लेकर भारत में कोशविद्या के आधुनिक स्वरूप का उद्भव और विकास हुआ। पाश्चात्य कोशों के आदर्श, मान्यताएँ, उद्देश्य, रचनाप्रक्रिया और सीमा के नूतन और परिवर्तित आयामों का प्रवेश भारत की कोश रचनापद्धति में आरंभ हुआ। संस्कृत और इतर भारतीय भाषाओं में पाश्चात्य तथा भारतीय विद्वानों के प्रयास से छोटे बड़े बहुत से कोश निर्मित हुए। इन कोशों का भारत और भारत के बाहर भी निर्माण हुआ। आरंभ में भारतीय भाषाओं के मुख्यतः संस्कृत के, कोश अंग्रेजी, जर्मन, फ्रेंच आदि भाषाओं के माध्यम से बनाए गए। इनमें संस्कृत आदि के शब्द भी रोमन लिपि में रखे गए। शब्दार्थ की व्याख्या और अर्थ आदि के निर्देश कोश की भाषा के अनुसार जर्मन, अंग्रेजी, फारसी पुर्तगाली आदि भाषाओं में दिए गए। बँगला, तमिल आदि भाषाओं के ऐसे अनेक कोशों की रचना ईसाई धर्मप्रचारकों द्वारा भारत और आसपास के लघु द्वीपों में हुई। हिंदी के भी ऐसे अनेक कोश बने। इनकी चर्चा की जा चुकी है। प्रथम संस्करण की भूमिका में पृष्ठ १-२ पर हिंदी के आधुनिक कोशों की आरंभिक रचना का निर्देश किया गया है। सबसे पहला शब्दकोश संभवतः फरग्युसन का 'हिंदुस्तानी अंग्रेजी' (अंग्रेजी हिंदुस्तानी) कोश था जो १७७३ ई० में लंदन में प्रकाशित हुआ। इन आरंभिक कोशों को हिंदुस्तानी कोश कहा गया। ये कोश मुख्यतः हिंदी के ही थे। पाश्चात्य विद्वानों के इन कोशों में हिंदी को हिंदुस्तानी कहने का कदाचित् यह कारण है कि हिंदुस्तान भारत का नाम माना गया, और वहाँ की भाषा हिंदुस्तानी कही गई। कोशविद्या के इन पाश्चात्य पंडितों की दृष्टि में हिंदी का ही अपर पर्याय हिंदुस्तानी था और वही सामान्य रूप से हिंदुस्तान की राष्ट्रभाषा थी। पश्चिम में विकसित नूतन पद्धति पर बने हुए संस्कृत तथा अन्य भारतीय भाषाओं के कोशों और उनकी उपलब्धियों के वैशिष्ट्य का रूपरेखात्मक परिचय दिया जा चुका है।

भारत की आदिमध्यकालीन कोशविद्या के ऐतिहासिक विकास की रूपरेखा से स्पष्ट हो चुका है कि आरंभिक क्रम में कोशनिर्माण की प्रेरणात्मक चेतना का बहुत कुछ सामान्य रूप भारत और पश्चिम में मिलता जुलता था। भारत का वैदिक निघंटु विरल और क्लिष्ट शब्दों के अर्थ और पर्यायों का संक्षिप्त संग्रह था। योरप में भी ग्लासेरिया से जिस कोशविद्या का आरंभिक बीजवपन हुआ था, उसके मूल में भी विरल और क्लिष्ट शब्दों का पर्याय द्वारा अर्थबोध कराना ही उद्देश्य था। लातिन की उक्त शब्दार्थसूची से शनैः शनैः पश्चिम की आधुनिक कोशविद्या के वैकासिक सोपान आविर्भूत हुए। भारत और पश्चिम दोनों ही स्थानों में शब्दों के संकलन में वर्गपद्धति का कोई न कोई रूप मिल जाता है। पर आगे चलकर नव्य कोशों का पूर्वोक्त प्राचीन और मध्यकालीन कोशों से जो सर्वप्रथम और प्रमुखतम भेदक वैशिष्ट्य प्रकट हुआ वह था वर्णमालाक्रमानुसारी शब्दयोजना की पद्धति।

इसके अतिरिक्त आधुनिक और पाश्चात्य कोशों की अन्य भेदकताएँ मुख्यतः निम्ननिर्दिष्ट हो सकती हैं--

(१) योरप में विशेष रूप से और भारत में आंशिक रूप से-- आदिमध्यकालीन कोशकर्म में कठिन शब्दों का सरल शब्दों या पर्यायों द्वारा अर्थज्ञापन होता था। योरप में सामान्यतः एक पर्याय दे दिया जाता था और भारत में वैदिक निघंटुकाल से ही पर्यायशब्दों का अर्थबोधकपरक एकत्रीकरण होता था। इनमें दुर्बोध्य और कठिन शब्दों के संग्रह की मुख्य प्रेरणा थी। भारतीय कोशों में बहुपर्याय संग्रह के

कारण अनेक क्लिष्ट शब्दों के साथ पर्यायवाची कोशों में सरल शब्द भी समाविष्ट रहते थे। निघंटु का शब्दसंकलन भी वैदिक वाङमय के समग्र शब्दनिधि का संग्रह न होकर अधिकतः दुर्बोध्य और विवेच्य शब्दों की संकलन प्रेरणा से प्रभावित है।

(२) भारत के प्राचीन कोश पर्यायवाची या समानार्थक थे। आरंभिक अवस्था में नानार्थक शब्दों का इनमें परिशिष्ट जुड़ा रहता था। आगे चलकर नानार्थक या अनेकार्थक शब्दलिपि का विस्तार से आकलन होने लगा। फलतः संस्कृत के अनेक नानार्थ कोशों में मुख्यतः नामसंग्रह होता था और आगे चलकर लिंगनिर्देश भी होने लगा। पर्यायवाची कोशों की संग्रहयोजना वर्गपरक हो गई थी। नानार्थ शब्दों की क्रम-योजना में अंत्य व्यंजनाक्षर का क्रम (मूलतः) अपनाया गया। पर कभी कभी आदिवर्ण का आधार लेकर वर्णमालानुसारी शब्द-क्रम-योजना का प्रयास भी किया गया। पर दूसरी ओर आधुनिक कोशों में लघु कोशों के अतिरिक्त पर्याय के साथ साथ अर्थबोधक व्याख्याएँ भी दी जाती हैं। संस्कृत में यह नहीं था। टीकाएँ अवश्य यह कार्य करती थीं। संस्कृत के समानार्थक कोशों की भाँति आधुनिक कोशों में पर्याय रखने पर अधिक बल देने की चेष्टा नहीं होती। कभी कभी अवश्य ही संस्कृत कोशों के प्रभाव से हिंदी आदि में भी पर्यायवाची कोश बन जाते हैं! पर वस्तुतः ये कोश संस्कृत कोशों के अवशेषमात्र हैं, आधुनिक कोश नहीं।

(३) संस्कृत के प्राचीन कोशों में मुख्यतः नामपदों, अव्ययशब्दों तथा कभी कभी धातुओं का भी संग्रह होता था। व्याकरण-प्रभावित संग्रहदृष्टि का मूल कदाचित् पाणिनि के धातुपाठ और गणपाठों में दिखाई पड़ता है। आरंभ में, अमरकाल और उसके बाद, संस्कृत कोशों का मुख्य रूप नामलिंगानुशासनात्मक हो गया। आधुनिक कोशों में रचनाविधान की भिन्नता के कारण इसे अनुपयोगी मानकर सर्वथा त्याग दिया गया। परंतु व्याकरणमूलक ज्ञान और प्रयोग के लिये उपयोगी निर्देश प्रत्येक शब्द के साथ लघुसंकेतों द्वारा निर्दिष्ट होते हैं।

(४) आज के शब्दकोशों का निर्माण उन समस्त जनों के लिये होता है जो तत्तद्भाषाओं के सरल या कठिन किसी भी शब्द का अर्थ जानना चाहते हैं। संस्कृत कोशों का मुख्य रूप पद्यात्मक होता था। इस कारण उसका अधिकतः उपयोग वे ही कर पाते थे जो कोशपद्यों को कंठस्थ कर रखते थे। प्रयोग और अर्थज्ञान के साथ साथ कोशों को कंठस्थ करना भी एक उद्देश्य समझा जाता था पर आज के नवीन कोशों का यह प्रयोजन बिल्कुल ही नहीं है।

(५) संस्कृत के प्राचीन कोशों का प्रयोजन होता था कवियों, साहित्यनिर्माताओं और काव्यशास्त्रादि के पाठकों के शब्दभंडार की वृद्धि करना। परंतु आधुनिक कोशों का मुख्य प्रयोजन है शब्दों के अर्थ का ज्ञान कराना और तत्संबंधी अन्य बातों की जानकारी देते हुए उनके समीचीन प्रयोग की शक्ति बढ़ाना।

(६) इनके अतिरिक्त शब्दोच्चारण, व्युत्पत्तिसूचन, शब्दप्रयोग का प्रथम प्रयोग और यदि कोई शब्द लुप्तप्रयोग हो गया हो तो उसका सप्रमाण ऐतिहासिक वर्णन, नाना अर्थों का सामान्य एवं विशेष संदर्भ-संयुक्त विविक्त विवरण, यौगिक एवं मुहावरों के शब्दयोगों तथा धातुयोगों आदि के अर्थवैशिष्ट्य का सोदाहरण निरूपण भी आधुनिक कोशों में रहता है। यह सब प्राचीन कोशों में नहीं था। कोशटीकाओं में अवश्य इनमें से अनेक बातें अंशतः और प्रसंगतः निर्दिष्ट कर दी जाती थीं।

आधुनिक कोश : सीमा और स्वरूप

योरप में आधुनिक कोशों का जो स्वरूप विकसित हुआ, उसकी रूपरेखा का संकेत किया जा चुका है। योरप, एशिया और अफ्रिका के उस तटभाग में जो अरब देशों के प्रभाव में आया था, उक्त पद्धति के अनुकरण पर कोशों का निर्माण होने लगा था। भारत में व्यापक पैमाने पर जिस रूप में कोश निर्मित होते चले, उनकी संक्षिप्त चर्चा की जा चुकी है। इन सबके आधार पर उत्तम कोटि के आधुनिक कोशों की विशिष्टताओं का आकलन करते हुए कहा जा सकता है :

(क) आधुनिक कोशों में शब्दप्रयोग के ऐतिहासिक क्रम की सरणि दिखाने के प्रयास को बहुत महत्व दिया गया है। ऐसे कोशों को ऐतिहासिक विवरणात्मक कहा जा सकता है। उपलब्ध प्रथम प्रयोग और प्रयोगसंदर्भ का आधार लेकर अर्थ और उनके एकमुखी या बहुमुखी विकास के सप्रमाण उपस्थापन की चेष्टा की जाती है। दूसरे शब्दों में इसे हम शब्दप्रयोग और तद्बोध्यार्थ के रूप की आनुक्रमिक या इतिहासानुसारी विवेचना कह सकते हैं। इसमें उद्धरणों का उपयोग दोनों ही बातों (शब्दप्रयोग और अर्थविकास) की प्रामाणिकता सिद्ध करते हैं।

(ख) आधुनिक कोशकार के द्वारा संगृहीत शब्दों और अर्थों के आधार का प्रामाण्य भी अपेक्षित होता है। प्राचीन कोशकार इसके लिये बाध्य नहीं था। वह स्वतःप्रमाण समझा जाता था। पूर्व तंत्रों या ग्रंथों का समाहार करते हुए यदाकदा इतना भी कह देना उसके लिये बहुधा पर्याप्त हो जाता था। पर आधुनिक कोशों में ऐसे शब्दों के संबंध में जिनका साहित्य या व्यवहार में प्रयोग नहीं मिलता, यह बताना भी आवश्यक हो जाता है कि अमुक शब्द या अर्थ कोशीय मात्र हैं।

(ग) आधुनिक कोशों की एक दूसरी नई धारा ज्ञानकोशात्मक है जिनका उत्कृष्ट रूप विश्वकोश के नाम से सामने आता है। अन्य रूप पारिभाषिक शब्दकोश, विषयकोश, चरितकोश, ज्ञानकोश, अब्दकोश आदि नाना रूपों में अपने आभोग का विस्तार करते चल रहे हैं।

(घ) आधुनिक शब्दकोशों में अर्थ की स्पष्टता के लिये चित्र, रेखा-चित्र, मानचित्र आदि का उपयोग भी किया जाता है।

(ङ) विशुद्ध शास्त्रीय वाङमय (शास्त्र) के प्राचीन स्तर से हटकर आज के कोश वैज्ञानिक अथवा विज्ञानकल्प रचनाप्रक्रिया के स्तर पर पहुँच गए हैं। ये कोश रूपविकास और अर्थविकास की ऐतिहासिक प्रामाणिकता के साथ साथ भाषावैज्ञानिक सिद्धांत की संगति ढूंढ़ने का पूर्ण प्रयत्न करते हैं। आधुनिक भाषाओं के तद्भव, देशी और विदेशी शब्दों के मूल और स्रोत ढूंढ़ने की चेष्टा की जाती है। कभी कभी

प्राचीन भाषा या भाषाओं के मूलस्रोतों की गवेषणा के व्युत्पत्तिदर्शन के संदर्भ में महत्वपूर्ण प्रयास होता है। बहुभाषी पर्यायकोशों में ऐतिहासिक और तुलनात्मक भाषाविज्ञान के सहयोग और सहायता द्वारा स्रोतभाषा के कल्पनानिर्दिष्ट रूप अंगीकृत होते हैं। उदाहरणार्थ प्राचीन भारत-योरोपीय–आर्यभाषा के बहुभाषी तुलनात्मक कोशों में मूल आर्यभाषा (या आर्यों के 'फादर लैंग्वेज') के कल्पित मूलरूपों का अनुमान किया जाता है। दूसरे शब्दों में इसका तात्पर्य यह है कि आधुनिक उत्कृष्ट कोशों में जहाँ एक ओर प्राचीन और पूर्ववर्ती वाङ्मय का शब्दप्रयोग के क्रमिक ज्ञान के लिये ऐतिहासिक अध्ययन होता है वहाँ भाषाविज्ञान के ऐतिहासिक, तुलनात्मक और वर्णनात्मक दृष्टिपक्षों का प्रौढ़ सहयोग और विनियोग अपेक्षित रहता है। कोशविज्ञान की नूतन रचनाप्रक्रिया आज के युग में भाषाविज्ञान के नाना अंगों से बहुत ही प्रभावित हो गई है। इस प्रभाव की दूरगामी व्याप्ति का नीचे की पंक्तियों में संक्षेपतः संकेत किया जा रहा है।

कोशरचना की प्रक्रिया और भाषाविज्ञान

कोशनिर्माण का शब्दसंकलन सर्वप्रमुख आधार है। परंतु शब्दों के संग्रह का कार्य अत्यंत कठिन है। मुख्य रूप में शब्दों का चयन दो स्रोतों से होता है--(१) लिखित साहित्य से और (२) लोकव्यवहार और लोकसाहित्य से। लिखित साहित्य से संग्राह्य शब्दों के लिये हस्तलिखित और मुद्रित ग्रंथों का सहारा लिया जाता है। परंतु इसके अंतर्गत प्राचीन हस्तलेखों और मुद्रित-ग्रंथों के आधार पर जब शब्दसंकलन होता है तब उभयविध आधारग्रंथों की प्रामाणिकता और पाठशुद्धि आवश्यक होती है। इनके बिना गृहीत शब्दों का महत्व कम हो जाता है और उनसे भ्रमसृष्टि की संभावना बढ़ती है।

हिंदीकोश में शब्दसंकलन : शुद्धपाठ

मुद्रित या हस्तलिखित ग्रंथों से जो शब्दसंकलन होता है उसमें पाठ की शुद्धि नितांत अपेक्षित है। ऐतिहासिक दृष्टि से उनका महत्व तभी स्थापित हो सकता है जब पाठालोचन विज्ञान के अनुसार ग्रंथ के आलोचनात्मक (क्रिटिकल) संस्करण संपादित हों और उनके माध्यम से प्राचीनतम शुद्ध पाठ उपलब्ध हो। शुद्ध और मूल पाठ तभी निर्धारित हो सकता है जब यह ज्ञात हो कि भाषा में प्रयुक्त कौन से शब्द का कब क्या रूप था और उसके अर्थविकास का क्या क्रम था?

पूना से प्रकाशिष्यमाण संस्कृत कोश के आधारित ग्रंथों के ऐसे समालोचित पाठ का निर्धारण किया जा रहा है जो पाठालोचन के वैज्ञानिक सिद्धांतों से विवेचित हो। प्रसंगवश यहाँ इतना कह देना आवश्यक है कि हिंदी में आदि और मध्य कालों के हिंदी ग्रंथों के ऐसे संस्करण अत्यंत दुर्लभ हैं जिनके पाठों का संपादन पाठालोचनविज्ञान के आधार पर हुआ हो। रामचरितमानस के पाठालोचन की चेष्टा कुछ अधिक हुई है, और उसके अपेक्षाकृत कुछ अच्छे संस्करण प्रकाशित हुए और हो रहे हैं। परंतु अनेक महत्वपूर्ण साहित्यिक ग्रंथ अभी जिस रूप में उपलब्ध हैं, उनमें पाठालोचनविज्ञान की संपादनपद्धति का प्रायः अभाव है। पृथ्वीराज रासो, सूरसागर, कबीर साहित्य आदि के पूर्णतः संतोषदायक संस्करण आज भी अनुपलब्ध हैं। शुद्ध पाठ तो अप्राप्य है ही। तत्तद् ग्रंथों में कितना अंश क्षेपक है एवं कितना मूल है, इसका असंदिग्ध प्रमाण भी अनुपलब्ध है। 'रासो' जैसे महाग्रंथ के प्रामाणिक और मूल रूप का प्रश्न अत्यंत विवादास्पद है। उसे जाली ग्रंथ भी कह दिया जाता है और उसके निर्माणकाल का भी निर्धारण अभी नहीं हो पाया है। ऐसी स्थिति में प्रकाशित ग्रंथों के आधार पर संकलित शब्दसमूह और उनके प्रयोग का इतिहास विवादास्पद और प्रमाणहीन रह जाता है।

हस्तलेखों में शुद्ध पाठ की प्राप्ति स्वतः दुःसाध्य कार्य है। इसके अतिरिक्त उनसे हिंदी कोशकारों का शब्दसंग्रह करना और भी दुष्कर है। अपेक्षित आर्थिक साधन के अभाव में अप्रकाशित हस्तलेखों से शब्द संग्रह करना प्रायः उपेक्षित ही रहा है। कहने का तात्पर्य केवल यह कि हिंदी-कोश के पूर्ण विकसित स्वरूप का निर्माण आज की परिस्थिति में भी असंभवप्राय जान पड़ता है।

कोश के लिये संकलित शब्दसमूह के आधार ऐसे शब्द होते हैं जो आलोचनात्मक और वैज्ञानिक पद्धति से विवेचित एवं शुद्ध पाठवाले संस्करणों से संगृहीत हों। भाषाविज्ञान के ऐतिहासिक और तुलनात्मक दृष्टियों से पाठविज्ञान का घनिष्ठ संबंध है। शब्दरूप और तद्बोध्य अर्थ का निर्णयात्मक स्वरूप भी भाषाविज्ञान की दृष्टि की--बहुत दूर तक--अपेक्षा करता है।

लोकभाषा से शब्दसंकलन

व्यावहारिक लोकभाषा से शब्दसंग्रह करना श्रमसाध्य कार्य अवश्य है परंतु असंभव नहीं है। इनके रूप का स्रोत ढूँढ़ने और अर्थविकास की शृंखला निर्धारित करने में भाषाविज्ञान की अत्यधिक सहायता अपेक्षित होती है।

लोकसाहित्य का आज एक स्वतंत्र अध्ययनक्षेत्र लोक-साहित्यविज्ञान के रूप में विकसित हुआ है। परंपरागत लोकगीतों में लोकसाहित्य का काफी पुराना अंश चला आ रहा है। लोककथाओं आदि के पद्यात्मक रूपों में शब्दरूपों की परंपरा सुरक्षित मिल जाती है। परंतु प्राचीन बोलियों से गद्यरूप काफी दूर हो जाता है। लोकबोलियों से एक ओर तो तत्तद् बोलियों के शब्दकोशों का निर्माण करने में शब्दों का संकलन सहायक होता है, दूसरी ओर शब्द के रूपविकास और अर्थविकास की कड़ी के रूप में भी उनकी उपयोगिता होती है। हिंदी के कोशों में तो बोलियों के बहुत से शब्दों का संकलन और भी आवश्यक हो जाता है। मध्यकालीन हिंदी के अंतर्गत राजस्थानी, व्रजभाषा, दक्खिनी हिंदी, सधुक्कड़ी, बुंदेली, अवधी, बिहारी, मैथिली, उर्दू आदि अनेक प्रांतीय या क्षेत्रीय भाषाओं और बोलियों के ग्रंथ समाविष्ट किए गए हैं। भाषावैज्ञानिक दृष्टि से वाक्यगठन के आधार पर पूर्वी और पश्चिमी हिंदी की भाषाओं और बोलियों में स्पष्ट अंतर होने पर भी, साहित्यिक दृष्टि से, विशाल हिंदीक्षेत्र की भाषा, विभाषाओं और बोलियों के शब्दरूपों और बोध्यार्थों का आकलन और संकलन हिंदी कोशों में अनिवार्य हो जाता है। रूपविकास और अर्थविकास की ऐतिहासिक और तुलनात्मक प्रतिपत्ति के लिये बोलियों के शब्दों का संकलन भी हिंदी और इस श्रेणी की अन्य भाषाओं के कोशों में बहुत सहायक होता है। कहने की आवश्यकता नहीं कि बोलियों और लोकसाहित्य के

ग्रंथों के प्रकाशित वाङमय की अल्पता के कारण कोशकार की चेष्टा पूर्ण सफल नहीं हो पाती है। साहित्यिक भाषा के शुद्ध रूप और ज्ञान और अर्थबंधन में लोक-साहित्य-विज्ञान का सहयोग अत्यंत लाभकर होता है। लोकसाहित्य-विज्ञान का पूर्ण उत्कर्ष तभी हो पाता है जब उसकी अनुशीलना में समाजशास्त्र, संस्कृतिविज्ञान, पुराणविज्ञान और भाषाविज्ञान के साहाय्य से विवेचन हो।

व्युत्पत्ति (निरुक्ति)

यह अन्यत्र कहा जा चुका है कि वर्तमान शब्दों अथवा कोश में संगृहीत शब्दरूपों का विकासक्रम और मल शब्द से सबंध बताने में व्युत्पत्ति विज्ञान अत्यधिक सहायक होता है। कहने की आवश्यकता नहीं कि इसका घनिष्ठ संबंध भाषाविज्ञान से है। ध्वनिविज्ञान, ध्वनि-विकास-विज्ञान, ध्वनि-तत्व-विज्ञान, पद-रचना-विज्ञान और अर्थविज्ञान आदि के द्वारा व्युत्पत्तिनिर्देश का वैज्ञानिक पक्ष पुष्ट होता है।

कोशकार शब्दों के जिन मानीकृत (मानक अथवा स्टैंडर्ड) रूपों का संग्रह करता है उसके निर्धारण का कार्य भाषाविज्ञान की सहायता से होता है। वैकल्पिक रूपों के परिचयन में भी भाषा-विज्ञान और तदंगभूत व्याकरणशास्त्र अत्यंत सहायक होते हैं। कोशरचना में वह प्रत्यक्ष सहायता देता है। एक ही शब्दरूप प्रयोगगत अर्थबोध की भिन्नता के कारण विशेषण और संज्ञा आदि के व्याकरणिक भेद का परिचय देता है। अतः कोश के प्रयोग की अर्थकारिता के प्रभाव से शब्दभेद का निर्धारण व्याकरण से उपजीवित होता है।

उच्चारणस्वरूप

मानीकृत कोश में संगृहीत शब्द के उच्चारणरूप की चर्चा हुई है। आधुनिक कोशों में शब्द के उच्चारणरूप की सही जानकारी कराना अत्यंत आवश्यक समझा जाता है। इसके अंतर्गत ध्वनियों के सही सही उच्चारण में भाषाविज्ञान के एक अंग ध्वनिग्रामविज्ञान—द्वारा बड़ी सहायता मिलती है। नूतन उच्चारणसंकेतों के माध्यम से उच्चरित शब्द का परिशुद्ध रूप निर्दिष्ट होता है। ध्वनिलेखन के पूर्णतः शुद्ध रूप का परिचय देने के लिये ध्वनिग्रामों का विभिन्न परिवेशों और पूर्वापर ध्वनियों के संदर्भ में उच्चरित रूप का निर्धारण आज अनेक वैज्ञानिक यंत्रों के माध्यम से किया जाता है। ध्वनियों के सूक्ष्मतर और सूक्ष्मतम वैशिष्ट्य का बोध कराने में इन यंत्रों का विशेष योगदान है। इनके द्वारा अक्षरों पर पड़नेवाले स्वराघात की बलात्मक न्यूनाधिकता और आरोहावरोहात्मक चढ़ाव उतार भी यंत्रों से पूर्ण रूप में परिज्ञात हो जाते हैं। तदनुसार निर्मित उच्चारण-वैशिष्ट्य-बोधक संकेतचिह्नों के द्वारा कोश के शब्द का विशुद्ध उच्चारणरूप अंकित होता है। कहने की आवश्यकता नहीं कि भाषाविज्ञान की इस क्षेत्र में नई नई उपलब्धियों और आविष्कृतियों से कोशरचना का कार्य पुष्ट हो रहा है।

अर्थविकास

कोशों का कदाचित् सर्वाधिक महत्वशाली प्रयोजन है शब्दार्थ का ज्ञान कराना। भाषाविज्ञान का इस अंश में अत्यधिक प्रभाव पड़ता है। यद्यपि सिमांटिक्स अर्थात् अर्थविज्ञान को भाषाविज्ञान की अंगशाखा के रूप में महत्व अपेक्षाकृत अर्वाचीन है, और साथ ही अनेक आधुनिक विचारक इस शाखा का भाषाविज्ञान से पृथक् भी बताने लगे हैं, तथापि अभी अनेक लोगों द्वारा इसे भाषाविज्ञान का ही एक पक्ष माना जाता है। कोश के प्रौढ़ और सूक्ष्म अर्थबोधन में इस शाखा की उपजीव्यता बहुत अधिक है।

शब्दव्युत्पत्ति के निर्देशक्रम में भी केवल ध्वनिसाम्य अथवा ध्वनि-विकास-संबंधी नियमों की प्रयोगयोग्यता ही पर्याप्त नहीं है। अर्थपक्ष को छोड़कर केवल ध्वनि या रूपपक्ष का आधार लेकर चलने से कभी कभी व्युत्पत्तियाँ अत्यंत भ्रामक और अशुद्ध हो जाती हैं। अतः कोशनिर्माण में व्युत्पत्ति के द्वारा परंपरा या अर्थविज्ञान का विनियोग बड़ा ही महत्व रखता है।

इन कुछ मुख्य तथ्यों के आधार पर कहा जा सकता है कि भाषा-विज्ञान का आधुनिक कोशविज्ञान पर व्यापक प्रभाव है। कुछ बातों को छोड़कर प्रायः कोशविज्ञान के समस्त आधारिक तत्वों पर साक्षात् या परंपरया आधुनिक भाषाविज्ञान का व्यापक प्रभाव है। निघंटु के निरुक्तात्मक भाष्यकाल से ही भारतवर्ष में कोशविद्या के क्षेत्र में प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से व्याकरण, भाषाविज्ञान और व्युत्पत्ति शास्त्र की उपजीव्यता का संकेत मिलने लगा था। आज वह प्रभाव अधिक स्पष्टतर और व्यापकतर बन गया है।

निष्कर्ष

हिंदी शब्दसागर से पूर्व

भारत में पाश्चात्य कोशों और कोशकारों के संपर्क और प्रभाव से आधुनिक ढंग के कोशों का निर्माण प्रचलित और विकसित हुआ। हिंदी के आधुनिक कोशों की चर्चा की जा चुकी है। प्रथम संस्करण की भूमिका में भी इसका सिंहावलोकन किया गया है। इन्हें देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि पहले के हिंदी कोशों में प्रथम था 'पादरी-आदम' का हिंदी कोश जो १८२९ में 'कलकत्ता' से छपा। इसके पूर्व के कोश पाश्चात्यों द्वारा पाश्चात्य लिपि और भाषा के माध्यम से बने। गिलक्राइस्ट, जान शेक्सपियर, टेलर, विलियम हंटर आदि पाश्चात्यों द्वारा निर्मित कोश सामान्यतः हिंदुस्तानी कोश कहे गए हैं। उनमें संगृहीत शब्दों को प्रायः फारसी, नागरी और रोमन लिपियों में रखा गया है। फैलन का कोश विशेष महत्व रखता है। क्योंकि इसमें हिंदुस्तानी साहित्य, लोकगीतों और बोलचाल की भाषा से उदाहरण उपस्थित किए गए हैं। परंतु प्लाट्स का कोश हिंदी और उर्दू के अंशों को पृथक् कर देता है। पादरी आदम का कोश ही शब्दसागर के प्रथम संस्करण की भूमिका के अनुसार हिंदी का ऐसा सर्वप्रथम शब्दकोश बताया गया है जो देवनागरी लिपि और हिंदी भाषा में प्रकाशित हुआ। इसके अलावा शब्द-सागर की भूमिका में ही बाद के हिंदी कोशों की एक सूची दी गई है। १८७३ में श्री राधेलाल हेडमास्टर का काशी से प्रकाशित हिंदी कोश पाया जाता है। इन सबकी विस्तृत चर्चा ऊपर हो चुकी है।

इन कोशों में यद्यपि पाश्चात्य-कोश-विद्या के सिद्धांतों का प्रौढ़ता

से पालन नहीं हुआ है तथापि उसी पद्धति पर चलने का आरंभिक प्रयास शुरू हो गया था। अकारादिवरणानुक्रम इनकी सर्वप्रथम विशेषता है। परंतु वह क्रम भी पुराने कोशों में पूर्णतः व्यवस्थित नहीं था।

हिंदी शब्दसागर के पूर्व निर्मित हिंदी कोशो में शब्दसंग्रह का मुख्याधार संस्कृत शब्द ही थे। व्यवहार की भाषा में प्रयुक्त शब्दों का भी संकलन हुआ; परंतु वह अपेक्षाकृत कम ही रहा। इन कोशों में व्याकरणपरक निर्देश और शब्दार्थबोध के लिये प्रायः पर्याय दिए जाते थे। व्याख्या कहीं कहीं दे दी जाती थी; परंतु बहुधा संक्षिप्त और अपूर्ण रहती थी। किसी किसी कोश में व्युत्पत्ति देने की चेष्टा है पर वह प्रामाणिक और भाषावैज्ञानिक नहीं है, और न उस युग में इसकी आशा ही की जा सकती थी। उदाहरण उद्धृत करने की ओर सर्वथा उपेक्षाभाव लक्षित होता है।

इन सब कारणों से हिंदी शब्दसागर से पूर्व की कोशरचना का स्वरूप और स्तर बाल्यावस्था का ही कहा जा सकता है। प्रायः एक व्यक्ति के प्रयास से निर्मित इन कोशों में विशेष प्रौढ़ता तत्कालीन कोशचेतना के हिंदी विद्वानों में युगबोध के अनुरूप ही था। इनका प्रयोजन मुख्यतः शब्दार्थज्ञान कराना था; और वह भी पर्याय द्वारा। इनमें संकलित अधिकांश शब्द संस्कृत, हिंदी आदि के पूर्ववर्ती कोश से ही ले लिए जाते थे और एक जिल्द में व्यवहारोपयोगी कोश तैयार करना ही इन कोशकारों और कोशों का मुख्य प्रयोजन था।

हिंदी शब्दसागर के द्वारा हिंदी में जिस प्रकार का महत्वपूर्ण और नूतन कोश विज्ञान की रचनादृष्टि से समन्वित भाषा के महाकोश बनाने की प्रेरणा मिली और तदनुकूल प्रयास किया गया, उसका संकेत प्रथम संस्करण की भूमिका में प्रधान संपादक बाबू श्यामसुंदरदास द्वारा किया गया है। यहाँ उनकी उद्धरणी अनावश्यक है। इस संबंध में इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि डा० श्यामसुंदरदास के नेतृत्व में और आचार्य रामचंद्र शुक्ल जैसे मर्मज्ञ आलोचक और हिंदी साहित्यविज्ञ के सहायकत्व में तथा बालकृष्ण भट्ट, श्री अमीर सिंह, श्री जगन्मोहन वर्मा, श्री (लाला) भगवानदीन और श्री रामचंद्र वर्मा के संपादकत्व में तथा अनेक विद्वानों, कार्यकर्ताओं के सहयोग से संपादित और निर्मित यह कोश एक महान् प्रयास। साधन और परिस्थितियों के विचार से उक्त महाकोश के संपादन में सभा के कर्णधारों और कोश के कार्यकर्ताओं को महान् सफलता प्राप्त हुई। यह ठीक है कि पाश्चात्य भाषा के प्रौढ़ कोशों की तुलना में इसमें अनेक कमियाँ रह गई हैं। फिर भी इसकी कुछ उपलब्धियाँ हैं जो स्तुत्य और अभिनंदनीय हैं। यह भी कहा जा सकता है कि हिंदी शब्दसागर के अनंतर बने हिंदी के सभी छोटे बड़े कोशों का यही महाकोश उपजीव्य और आधार रहा। आक्सफोर्ड इंगलिश डिक्शनरी के प्रथम संस्करण की रचना का कार्यारंभ हो गया था। १८५७ ई० से १८७९ ई० तक उसकी तैयारी आदि होती रहीं; और १८८४, (१८ १।१८८४) ई० में उसका प्रथम अग्रिम संपादित प्रारूपांश छपकर सामने आया। १८८५ ई० से लेकर १९२८ ई० तक संपादन और प्रकाशन के कार्य चलते रहे। लगभग ४४ वर्षों में उसका प्रकाशन हुआ। उसके तैयार होने में ७३ वर्ष लगे। पर उसकी बहुत सी आधारिक सामग्री उससे पूर्व ही डा० जानसन, रिचर्डसन और वेब्स्टर के कोशों में संकलित हो चुकी थीं। उनकी सहायता मिली, यद्यपि उसे भी व्यवस्थित और सुनियोजित करने में बहुत बड़ा श्रम करना पड़ा। हिंदी शब्दसागर का संपादन साधन और आधारिक सामग्री को देखते हुए अपने आपमें स्तुत्य और सफल प्रयास था। नव्यकोशविज्ञान की दृष्टि में आक्सफोर्ड इंग्लिश डिक्शनरी के स्तर से नीचे होने पर भी वह उपलब्धि बहुत बड़ी रही।

पूर्ववर्ती अधिकांश हिंदी कोशों की भाँति यह कोश एक व्यक्ति द्वारा निर्मित न होकर भाषा और साहित्य के मर्मज्ञ अनेक सुधियों द्वारा तैयार किया गया है। शब्दसंकलन के लिये केवल पुराने कोशों का ही आधार न लेकर ग्रंथों और व्यवाहरयुक्त भाषा और बोलियों के प्रायः समस्त उपलब्ध सामान्य और विशेष शब्दों के संग्रह का उसमें प्रयास हुआ है। प्रायः प्रत्येक शब्द का मूल स्रोत देखने के प्रयास के साथ साथ विभिन्न भाषामूलक स्रोतों का निर्देश करने की चेष्टा हुई है। व्युत्पत्तियाँ यद्यपि बहुत सी ऐसी हैं जो संदिग्ध और भ्रामक अथवा कहीं कहीं अशुद्ध भी हैं तथापि उसके लिये यथासाधन और यथाशक्ति जो प्रयास है वह भी अपने आपमें बड़ा महत्व रखता है। व्युत्पत्तिनिर्देश का स्वरूप भी विकासक्रम के विभिन्न स्तरों में उपस्थित नहीं किया जा सका है। फिर भी पूर्ववर्ती हिंदी कोशों की तुलना में शब्दसागर की व्युत्पत्ति विषयक अग्रगति पर्याप्त महत्व की है। हिंदी के कोशकार आज भी इस दिशा में बहुत आगे नहीं बढ़ पाए हैं।

हिंदी शब्दसागर में अनेकत्र उदाहरणों का सहयोग लिया गया है; परंतु प्रथम शब्द के प्रयोग का ऐतिहासिक कालनिर्देश नवीन संस्करण में भी संभव नहीं हो सका। इस संबंध की असमर्थता का निर्देश किया जा चुका है। पर दूसरी ओर व्याकरणमूलक व्यवस्था और तदनुसार शब्द एवं अर्थ के व्यवस्थित निर्देश का हिंदी शब्दसागर मे अत्यंत प्रौढ विनियोजन दिखाई देता है। पर्यायनिर्देशन पर जहाँ एक ओर संस्कृत कोशों का व्यापक प्रभाव है और प्रायः अधिकाधिक यौगिक पदो का उल्लेख भी संस्कृत व्याकरण पर अधिकतः आधारित है वहाँ दूसरी ओर हिंदी की प्रकृति और प्रयोगपरंपरा का आकलन और संकलन भी बड़े यत्न और मनोयोग के साथ किया गया है। हिंदी के मुहावरों और लोकोक्तियों या प्रयोगों अथवा क्रियाप्रयोगों की प्रयोगपरंपरा से आगत अर्थों की व्याख्या भी--इसमें पर्याप्त प्रौढ़ है।

अर्थनिर्धारण में व्याख्यात्मक पद्धति अपनाई गई हैं। पर साथ ही मुख्य शब्दों के अंतर्गत अधिकतः पर्याय भी रख दिए गए हैं। इस कारण कभी कभी ऐसा भी लगता है कि यह कोश आधुनिक ढंग का पर्यायवाची और नानार्थक कोश एक साथ बन गया है। व्याख्यात्मक पद्धति के अंतर्गत व्यक्ति, विषय, वस्तु आदि का पौराणिक, ऐतिहासिक, शास्त्रीय और परंपरागत अनेक प्रकार के परिचय एवं विवरण यथास्थान दिए गए हैं। इस कारण यह कोश विश्वकोश, ज्ञानकोश चरितकोश और पारिभाषिक कोश के परिवेश का भी यत्र तत्र स्पर्श करता दिखाई देता है। कुछ कुछ यही दशा है आक्सफोर्ड इंग्लिश डिक्शनरी के प्रथम संस्करण की।

शब्दों की प्रयोगसपृक्त अर्थच्छायों (शेड्स ग्राव मीनिंग) की भिन्नता को भी अनेक स्थलों पर स्पष्ट करने का प्रयास लक्षित होता है। फिर भी इस दिशा का कार्य अभी और श्रम अपेक्षित करता है। शब्दों के समस्त अर्थों की प्रयोगपुष्टि और प्रामाणिकता के निमित्त सर्वत्र उदाहरण नहीं हैं। जहाँ हैं वहाँ भी बहुधा ग्रंथों के नाममात्र ही निर्दिष्ट हैं। उनके प्रसंगस्थल और संस्करण का उल्लेख नहीं है। अनेक स्थलों पर बोलचाल के स्वनिर्मित उदाहरण भी नियोजित किए गए हैं। सब मिलाकर इसमें शब्दसंग्रह और अर्थविवृति दोनों की परिधि को यथासंभव व्यापक और विस्तृत बनाया गया है। इस क्षेत्र में विभिन्न देशों और वर्ग के जनजीवन से संगृहीत शब्दभंडार की संयोजना से इस कोश का महत्व बहुत बढ़ गया है।

हिंदी शब्दसागर के अनंतर

हिंदी शब्दसागर के प्रथम संस्करण का प्रकाशन जब हुआ तब हिंदी में अंग्रेजी आदि न जाननेवालों के सामने कोशविज्ञान के अपेक्षाकृत प्रौढ़ और विकसित रूप का प्रतिमान उद्भासित हुआ।

संक्षिप्त हिंदी शब्दसागर को हम हिंदी कोशों का प्रथम व्यावहारिक और प्रामाणिक संस्करण कह सकते हैं। इसमें मुख्यतः संक्षेपीकरण हो किया गया है। बाद के संस्करणों में थोड़ा बहुत शोधन-वर्धन होता रहा। षष्ठ संस्करण में अवश्य ही व्युत्पत्ति के निर्देश में कुछ नई पद्धति अपनाई गई है। स्वल्प कुछ ही विशेष उपलब्धि है। अन्य अनेक कोश भी इस समय बने परंतु ज्ञानमंडल का बृहद् हिंदी शब्दकोश कुछ दृष्टि से नवीनता लेकर सामने आता है। इस कोश में संस्कृत कोशों से लेकर हजारों शब्द—मूल और यौगिक—बढ़ाए गए हैं। इनमें बहुधा ऐसे दिखाई पड़ते हैं जो हिंदी में अप्रयुक्त हैं। इस कोश की नवीनता है संस्कृत कोशों के अनुकरण पर पेटेवाली पद्धति को यथाशक्ति अपनाने की चेष्टा। इस पद्धति के अनुसार एक मूल शब्द के अंतर्गत उससे बने अनेक व्युत्पन्न रूपों और यौगिक पदों का समावेश किया गया है। इसमें पूर्णता न होने पर भी इस सरणि का, जहाँ तक हमें ज्ञात है, कदाचित् व्यापक रूप से पहली बार हिंदी के कोश में प्रयोग हुआ है। अंगरेजी, संस्कृत आदि के कोशों का यह पद्धति हिंदी में लाकर इस कोश ने हिंदी कोशों के निर्माण में नवीनता पैदा की। पर इसके अनुसरण में हिंदी कोशों के लिये अनेक कठिनाइयाँ आ जाती हैं। व्युत्पन्न और समासयुक्त यौगिक पदों के मूल शब्द के अंतर्गत समावेशन से आनुपूर्वी के अनुसार शब्दक्रम के स्थापन में पूर्ण व्यवस्था कठिन हो जाती है। व्याकरणिक ध्वनिविकारों और संधिमूलक ध्वनिपरिवर्तनों के कारण शब्द-क्रम-योजना अस्तव्यस्त होने लगती है। उदाहरण के लिये वचन शब्द के अंतर्गत यदि 'वाचन' भी रखा जाय और इतिहास के अंतर्गत 'ऐतिहासिक', 'व्याकरण' के अंतर्गत 'वैयाकरण' शब्द समाविष्ट हों, 'सर्व' के अंतर्गत 'सार्वदेशिक', 'सार्वभौम' आदि शब्द रख दिए जायँ तो शब्द-क्रम-स्थापना की जो पूर्वापर अस्तव्यस्तता उत्पन्न होती है वह एक समस्या बन जाती है। उसका सर्वमान्य निश्चय और स्वीकरण किए बिना हिंदी कोशों में उक्त पद्धति का अपनाना कुछ कठिन हो जाता है। फिर भी ज्ञानमंडल के कोश में यह प्रयास नवीन ही कहा जायगा। ऐसी या अन्य कठिनाइयों का प्रश्न भी उक्त कोश के संपादकों के सामने आया था, और उसके समाधान की एक पद्धति भी उन्होंने अपनाई है। पर जब तक वह स्वीकृत न हो तब तक उसका ग्रहण सर्वत्र नहीं हो सकता। कोशों से गृहीत या नवसमाविष्ट शब्दों के अतिरिक्त अधिकतः हिंदी शब्दसागर का ही व्यापक उपयोग किया गया है।

शब्दसागर के सहायक संपादकों में श्री रामचंद्र वर्मा जी भी थे। संक्षिप्त हिंदी शब्दसागर के बाद अतिरिक्त प्रामाणिक हिंदी कोश के नाम से उन्होंने एक ग्रंथ संपादित और प्रकाशित किया। संक्षिप्त-शब्दसागर के आरंभिक अनेक संस्करणों का उन्होंने संपादन भी किया था। हिंदी कोश से संबद्ध अनेक प्रश्न और संक्षिप्त शब्दसागर की अनेक कमियों की ओर उनका ध्यान जाता रहा। उनके निराकरण की चेष्टा में भी वे यथासाध्य प्रामाणिककोश के संपादन के पूर्व तक लगे रहे। प्रामाणिक हिंदी कोश के वस्तुतः सभा के संक्षिप्त शब्दसागर का कुछ सुधरा हुआ रूप मात्र था। कोशकला की दृष्टि से उसमें नूतन विकास नहीं हो पाया। नालंदाविशाल शब्द-सागर नामक—दिल्ली से प्रकाशित एक हिंदी कोश—बड़े विज्ञापन और बड़े प्रचार के साथ सामने आया। हिंदी शब्दसागर को पूर्णतः लेकर और मनमाने ढंग से उसके अंगों, अंशों को काट छाँटकर यत्रतत्र कुछ अनावश्यक नए शब्दों को जोड़कर इसका ढाँचा खड़ा किया गया। पर शब्दसंख्या की दिखावटी वृद्धि के अतिरिक्त इस एक जिल्द के 'विशाल' विशेषणवाले शब्दसागर में कोई भी ऐसी खास बात नहीं है, जो कोशरचना के स्तर को ऊपर उठा सके। ऐसी अव्यवस्थाएँ अवश्य हैं जिनके कारण हिंदी की कोश-रचना-विद्या उस स्तर से कुछ नीचे खिसक आई जिसे शब्दसागर द्वारा निर्धारित और अधिगत किया गया था।

हिंदी साहित्य संमेलन द्वारा प्रकाशित और श्री रामचंद्र वर्मा के संपादकत्व एवं निर्देशन में निर्मित मानक हिंदी कोश—इस दिशा में एक महत्वपूर्ण दूसरा और नवीन विशाल ग्रंथ है। इसके आरंभिक निवेदन में संपादक ने उक्त कोश की अनेक विशेषताओं का निर्देश किया है जिन्हें उन्होंने (१) शब्दों के रूप और अक्षरी, (२) निरुक्ति या व्युत्पत्ति, (३) शब्दों के अर्थ और विवेचन, (४) अर्थों का क्रम, (५) अर्थों का वर्गीकरण, (६) अर्थों के सूक्ष्म अंतर, (७) मुहावरे, (८) उदाहरण, (९) अन्यान्य संशोधन और (१०) अँगरेजी पर्याय, इन शीर्षकों के अंतर्गत निर्दिष्ट किया है। पर स्वयं इन्होंने कहा है कि मानक हिंदी कोश भी सभी आधुनिक हिंदी कोशों की तरह हिंदी शब्दसागर की भित्ति पर ही आधारित है। फिर भी बहुत सी बातों और विवरणों में अनेक परिवर्तनों के कारण उक्त कृति में कोशरचना का ढाँचा बदल गया है। इसके कारण वे अपने संपादन पर गौरव का भी अनुभव करते हुए कहते हैं—'उसको बिल्कुल नया, युक्तिसंगत, वैज्ञानिक तथा व्यवस्थित रूप दिया गया है'। उनका कथन है कि शब्दार्थविवेचन में केवल अन्य कोशों का आधार न लेकर उनके प्रयोगों के प्रचलित पक्ष का भी सहारा लिया गया है।

आधुनिक कोश : नियोज्य उपादान और पद्धति

आधुनिक शब्दकोशों के बहुत से कार्य वैज्ञानिक पद्धति से होते हैं। भाषाविज्ञान के प्रयोगात्मक विज्ञान के रूप में इसमें श्रम करना पड़ता है। उत्तम कोश के लिये विषयगत वर्णन के पद्धतिसिद्धांत का सामान्यीकरण और निरंतर प्रतिसंशोधन अपेक्षित रहता है। भाषा-विज्ञान के वर्णनात्मक पक्ष की उपयोगिता यहाँ प्रत्यक्ष है। संकलित शब्द के विषय में निम्नलिखित बातों की सही जानकारी देना आवश्यक होता है। (१) वर्णानुपूर्वी, (२) उच्चारण रूप, (३) व्याकरणिक शब्दभेद की सूचना, (४) प्रकृति-प्रत्यय-विवेक, (५) व्युत्पत्ति, (६) वर्तमान एक या अनेक अर्थ, (७) प्राचीन शब्दार्थ, (८) अपर-शब्द-संनिधि-मूलक शब्दयोग और उसका अर्थ, (९) अव्युत्पन्न शब्द, (१०) पर्याय और (११) अर्थों के भेद पर आधारित अर्थच्छायाएँ।

इनके अतिरिक्त शब्दार्थ की आवश्यक व्याख्या और संदर्भसंपृक्त सूचनाओं का विवरण भी दिया जाता है। यहाँ शब्दकोश द्वारा ज्ञानकोशात्मक और विश्वकोशात्मक पद्धति की विशेषता का स्पर्श हो जाता है। कभी पर्याय से, कभी लंबे कथनों द्वारा शब्दबोध्य अर्थ का भावधारा या संयुक्त भावना सूचित करना आवश्यक हो जाता है। इसके लिये अन्य शब्दों, विवरणों या चित्रों और रेखाकृतियों द्वारा ज्ञान कराया जाता है। इसी प्रकार प्रसंगगर्भित अर्थ भी व्यक्त करना पड़ता है, कभी कभी अर्थप्रकाशक उद्धरणों का उपयोग भी आवश्यक हो जाता है।

हिंदी कोश में शब्दसंकलन---कुछ समस्याएँ

निर्मेय कोश के अनुरूप शब्दसंकलन भी बड़ी सावधानी से और विवेकपूर्वक करना पड़ता है। साथ ही अर्थसंकलन भी करना पड़ता है। इसका तात्पर्य यह है कि भाषा में नवीन अर्थचित्रों और अभिव्यक्ति-दृष्टियों का आयात होता रहता है। कभी पुराने ही शब्दों से और कभी नए शब्दों या शब्दयोगों द्वारा इनका अभिव्यंजन होता है। अतः शब्दसंकलन के साथ साथ भाषा में नवागत अर्थचित्रों, विचार-बिंबों और अर्थबोध के रूपों का संकलन, शब्दसंकलन के साथ साथ भी उत्तम कोशों में संयोजित करना आवश्यक होता है। इसलिये संकलयिता और संपादक के लिये प्रबुद्धता, जागरूकता और भाषाप्रयोग के विस्तृत क्षेत्र की गहरी जानकारी अत्यंत अपेक्षित होती है, उनके लिये तत्तद्विषयों का प्रौढ़ ज्ञान और ताटस्थ्यबोध भी आवश्यक है। कोशोपयोगी शब्द और अर्थ के संग्रह और त्याग की शक्ति और उस क्षेत्र में गहरी पैठ नितांत उपयोगी होती है। तत्तद्विषय के मर्मज्ञ और कोशकार्य की बोधचेतना से समन्वित पुरुष ही अच्छे कोश के उत्तम शब्दसंकलन में सहायक हो सकते हैं। वे ही इस क्षेत्र के संग्रह और त्याग का मर्म ठीक ठीक पहचान सकते हैं। जो नए एवं विलक्षण--- शब्द और अर्थ के प्रयोग भाषा में काफी चल पड़े हों, उनका संग्रह होना चाहिए। यदि वे मान्य हो गए हों तो उनका संग्रह अनिवार्य हो जाता है।

हिंदी कुछ विलक्षण भाषा है। यह राष्ट्रभाषा है और बड़े भारी भूभाग की व्यवहारभाषा भी है। किसी अंचल की पूर्णरूपेण मातृभाषा न होते हुए भी लगभग २० करोड़ जनता के व्यवहार में इसका प्रयोग होता है। इसके अंतर्गत अनेक आंचलिक बोलियाँ हैं, विभाषाएँ हैं, मातृभाषाएँ हैं। ऐसी भाषा का जब व्यापक भूभाग में शिष्ट और साहित्यिक भाषा के रूप में व्यवहार होता है तब आंचलिक और सीमावर्ती क्षेत्रों की बोलियों और भाषाओं के शब्दार्थों का संग्रह और त्याग दुष्कर समस्या बन जाती है। इसका समाधान कठिनतर हो जाता है। फिर भी कोशसंपादकों के लिये अपने अनुभव और ज्ञान के आधार पर रास्ता निकालने की चेष्टा करना आवश्यक हो उठता है।

संख्यावृद्धि

शब्दसंग्रह का ही दूसरा पहलू है शब्दसंख्या की वृद्धि। इसमें कभी तो वैकल्पिक विकसित तद्भव या अपभ्रष्ट रूपों के कारण संख्या-वृद्धि होती है, और कभी भाषा में नवोद्भूत, नवागत, नवोद्भावित और नवायातित शब्दों के सहयोग से शब्दवृद्धि होती है। किसी भी जीवित भाषा में सामाजिक, वैज्ञानिक, औद्योगिक, शैक्षणिक तथा प्राविधिक आदि ज्ञान-विज्ञान का विकास और विस्तार होने पर नित्य नए नए शब्द आते रहते हैं। विचार के नए कोण, नई शैली और बोध्यार्थ की अभिव्यक्ति की नूतन बोधचेतना के कारण कुछ प्रचलित या पुराने शब्दों से भी परंपरागत अर्थ के अतिरिक्त कथ्य और वाच्य का बोध कराया जाता है। कभी नए शब्द, नए यौगिक-समस्त पद अथवा नवकाथित (न्यूकाएंड) शब्दों के माध्यम से तद्भाषाभाषी समाज की अभिव्यंजनीय विवक्षा की पूर्ति का प्रयास होता है।

नवीन शब्दों-अर्थों का प्रश्न

हिंदी जीवंत भाषा है। राष्ट्रभाषा हो जाने के बाद देश और काल की संपूर्ण परिस्थितियों के अनुरूप उसकी बोधसीमा और वाच्यशक्ति के आयामों का विस्तार अपेक्षित भी है, अवश्यंभावी भी। उद्योग, व्यवसाय, ज्ञान विज्ञान आदि के क्षेत्र में वर्तमान युग के समस्त आवश्यक अर्थरूपों और अर्थबिंबों की पूर्ण अभिव्यक्ति के लिये---इसी कारण हिंदी प्रयत्नशील है। ज्ञान विज्ञान की सैकड़ों शाखाओं से पारिभाषिक, प्राविधिक और नव्य अर्थबोध के अभिधेय अथवा प्रतीकबोध्य, अर्थरूपों की अभिव्यंजना का वह प्रयास कर रही है। अतः हिंदी का कोशकार्य भविष्य में भी सर्वदैव तब तक निर्माण प्रक्रिया के क्रम में ही रहेगा जब तक वह जीवंत भाषा बनी रहेगी। अतः यथाशक्ति शब्द-संख्या-वृद्धि भी सर्वदैव अत्यंत आवश्यक रहेगी।

पारिभाषिक, वैज्ञानिक, प्राविधिक एवं नानाशास्त्रीय शब्दकोशों के निर्माण में भारत सरकार की ओर से बड़े विशाल पैमाने पर कार्य हो रहा है। तत्तद्विषयों के विशेषज्ञों और हिंदीविज्ञों के सहयोग से अंग्रेजी हिंदी के शब्दसंग्रहात्मक कोश बन रहे हैं। 'पारिभाषिक शब्दसंग्रह,' 'विज्ञान शब्दावली' (साइंस ग्लासरी) और 'पदनाम-शब्दावली' आदि बन चुके हैं। डा० रघुबीर ने भी ऐसे अनेक कोश बनाए हैं।

शब्दसागर के अनंतर बननेवाले निर्दिष्ट कोशों में प्रायः सर्वत्र संख्यावृद्धि की चर्चा हुई है। परंतु यह कार्य इसलिये अत्यंत कठिन है कि पूर्वोक्त शब्दार्थ के संग्रह और त्याग का प्रश्न बड़ा ही वैदुष्य-

साद्ध, साधनसाद्धच और श्रमसाद्धच है। शब्दसागर के नवीन संस्करण में संगृहीत नवीन शब्द अतीत के हिंदी साहित्य के स्रोत से ही अधिकांश लिए गए हैं। आधुनिक हिंदी वाङमय के अपेक्षाकृत नव्य ग्रंथों से कम शब्द ही जोड़े गए हैं। पारिभाषिक, वैज्ञानिक और प्राविधिक प्रकृति के नवप्रयुक्त शब्दों का इसलिये संग्रह नहीं किया जा सका है कि उसका सर्वसंमत और प्रामाणिक रूप अभी निश्चित नहीं हो पाया है। वैज्ञानिक, प्राविधिक आदि संबंधी हिंदी ग्रंथों के विभिन्न लेखकों द्वारा जो शब्द प्रयुक्त हुए हैं या हो रहे हैं उनमें अत्यधिक अनेकरूपता है, सर्वमान्य एकरूपता का अभाव है। अंग्रेजी शब्दों के अर्थानुवाद की भावना से लेखकों द्वारा एक अर्थ के लिये अनेक शब्द चल रहे हैं। विभिन्न ज्ञान विज्ञान और तकनीकी क्षेत्रों की पारिभाषिक और प्राविधिक शब्दावली भारत सरकार तैयार कर रही है। कुछ विषयों के शब्दों के रूप और अर्थ का निर्धारण होने के बाद कुछ शब्दावलियों का प्रकाशन भी किया जा चुका है।

यहाँ कथ्य इतना है कि जीवित भाषा के कोशों की शब्दसंख्या में वृद्धि और तदनुरूप अर्थविस्तार एक ऐसी क्रिया है जिसकी निरंतर गतिशीलता नितांत अपेक्षित है। पदार्थों के संग्रह और त्याग के मर्म को पहचान कर ही यह कार्य होना चाहिए। नवीन संस्करणों या नवीन परिशिष्टों द्वारा शब्दसंख्या की वृद्धि सदा होती रहनी चाहिए। पेटेवाली पद्धति के उपायों से यद्यपि अनावश्यक शब्द-संख्या-वृद्धि से बचा जा सकता है तथापि हिंदी कोशो में उसका प्रयोग तभी समीचीन होगा जब हिंदी के प्रौढ़ कोशकारों द्वारा कोई व्यवस्था सर्वमान्य हो जाय।

मानक रूप

शब्दों के ग्राह्य, मानक या परिनिष्ठित रूप के स्थिरीकरण की भी एक विशिष्ट समस्या है। वैकल्पिक अथवा तद्भव शब्दों के नाना रूप भी शब्दार्थनियोजन में कठिनाई उपस्थित करते हैं। संज्ञा और क्रिया के नाना रूपों में विशेष रूप का मानकत्व और मानकीकरण विवाद का विषय है। आंचलिक बोलियों के प्रभाव से और काल, वाच्य, वचन, भाव, विधि आदि के कारण क्रियापदों के नाना रूप सामने आ जाते हैं। अतः उनका ग्रहण संभव नहीं हो पाता। हिंदी में सामान्य अथवा क्रियार्थीक्रिया के नाकारांत रूपों द्वारा क्रिया पदों की निर्मापक धातु का निर्देश किया जाता है। इन समस्याओं पर विचार करते हुए एक ओर तो सभा का कोशोपसमिति ने क्रियार्थीक्रिया के रूपों को मूल मानकर उनका ग्रहण किया है; दूसरी ओर ऐतिहासिक, भौगोलिक, भाषाशास्त्रीय अथवा तद्भवता से प्रभावित संज्ञारूपों को अपनाया है। परंतु व्याकरण के कारण सामान्य रूपावली को छोड़ देना पड़ा है। संज्ञाओं और विशेषणों के प्रसंग में स्त्रीलिंग के विशिष्ट रूपों का निर्देश तत्सम या तत्समाभास रूपों के कारण भी कभी कभी शब्दवृद्धि की समस्या सामने आती है। 'इतिहास', 'भूगोल' से व्युत्पन्न ऐतिहासिक, भूगोलिक शब्दों के बजाय कुछ लोग 'इतिहासिक,' भौगोलिक आदि शब्द प्रयोग करते हैं। यहाँ तत्सम रूप को ही परिनिष्ठित मानने का पक्ष प्रबल है। इसी तरह से विदेशी शब्दों के उच्चारणमूलक विभिन्न रूप प्रचलित हैं जैसे, 'इटली, इतली, इताली' अथवा 'योरप, यूरोप' आदि। हिंदी कोशकारों के लिये इनमें भी मानकीकरण करना कठिन हो जाता है।

इस प्रकार के अनेक प्रश्न कोशसंपादन उपसमिति के समक्ष समय समय पर आते हैं। उपसमिति के सदस्यों ने विचार विनिमय के अनंतर जो निश्चय किए हैं उसी पद्धति पर संपादन का कार्य चलता रहा। उसकी यथाशक्ति परिणति ही परिवर्धित संशोधित हो कर शब्दसागर के नवीन संस्करण के रूप में प्रस्तुत हो रहा है।

१८।१२।६५
नागरी प्रचारिणीसभा, काशी।

करुणापति त्रिपाठी
[संयोजक, संपादक मंडल]

प्रकाशिका

'हिंदी शब्दसागर' अपने प्रकाशन काल से ही कोश के क्षेत्र में भारतीय भाषाओं के दिशानिर्देशक के रूप में प्रतिष्ठित है। तीन दशकों तक हिंदी की मूर्धन्य प्रतिभाओं ने अपनी सतत तपस्या से इसे सन् १९२८ ई० में मूर्त रूप दिया। तबसे निरंतर यह ग्रंथ इस क्षेत्र में गंभीर कार्य करनेवाले विद्वत्समाज में प्रकाशस्तंभ के रूप में मर्यादित हो हिंदी की गौरवगरिमा का आख्यान करता रहा है। अपने प्रकाशन के कुछ समय बाद ही इसके खंड एक एक कर अनुपलब्ध होते गए और अप्राप्य ग्रंथ के रूप में इसका मूल्य लोगों को सहस्र मुद्राओं से भी अधिक देना पड़ा। ऐसी स्थिति में अभाव की उपयोगिता द्वारा लाभ उठाने की दृष्टि से अनेक कोशों का प्रकाशन हिंदी जगत् में हुआ, पर वे सारे प्रयत्न इसकी छाया के बल जीवित थे। इसलिये निरंतर इसकी पुनः अवतारणा का गंभीर अनुभव हिंदी जगत् और इसकी जननी नागरीप्रचारिणी सभा करती रही। किंतु साधन के अभाव में अपने इस कर्तव्य के प्रति सजग रहते हुए भी वह अपने इस उत्तरदायित्व का निर्वाह न कर सकने के कारण मर्मांतक पीड़ा का अनुभव कर रही थी। दिनोत्तर उसपर उत्तरदायित्व का ऋण चक्रवृद्धि सूद की दर से इसलिये और भी बढ़ता गया कि इस कोश के निर्माण के बाद हिंदी की श्री का विकास बड़े व्यापक पैमाने पर हुआ। साथ ही हिंदी के राष्ट्रभाषा पद पर प्रतिष्ठित होने पर उसकी शब्दसंपदा का कोश भी दिनोत्तर गतिपूर्वक बढ़ते जाने के कारण सभा का यह दायित्व निरंतर गहन होता गया।

सभा की हीरक जयंती के अवसर पर, २२ फाल्गुन, २०१० वि० को, उसके स्वागताध्यक्ष के रूप में डा० श्री संपूर्णानंद जी ने राष्ट्रपति राजेंद्रप्रसाद जी एवं हिंदी जगत् का ध्यान निम्नांकित शब्दों में इस ओर आकृष्ट किया—'हिंदी के राष्ट्रभाषा घोषित हो जाने से सभा का दायित्व बहुत बढ़ गया है। ...हिंदी में एक अच्छे कोश और व्याकरण की कमी खटकती है। सभा ने आज से कई वर्ष पहले जो हिंदी शब्दसागर प्रकाशित किया था उसका बृहत् संस्करण निकालने की आवश्यकता है। ...आवश्यकता केवल इस बात की है कि इस काम के लिये पर्याप्त धन व्यय किया जाय और केंद्रीय तथा प्रादेशिक सरकारों का सहारा मिलता रहे।'

उसी अवसर पर सभा के विभिन्न कार्यों की प्रशंसा करते हुए राष्ट्रपति ने कहा—'वैज्ञानिक तथा पारिभाषिक शब्दकोष सभा का महत्वपूर्ण प्रकाशन है। दूसरा प्रकाशन हिंदी शब्दसागर है जिसके निर्माण में सभा ने लगभग एक लाख रुपया व्यय किया है। ...आपने शब्दसागर का नया संस्करण निकालने का निश्चय किया है। जब से पहला संस्करण छपा, हिंदी में बहुत बातों में और हिंदी के अलावा संसार में बहुत बातों में बड़ी प्रगति हुई है। हिंदी भाषा भी इस प्रगति से अपने को वंचित नहीं रख सकती। इसलिये शब्दसागर का रूप भी ऐसा होना चाहिए जो यह प्रगति प्रतिबिंबित कर सके और वैज्ञानिक युग के विद्यार्थियों के लिये भी साधारणतः पर्याप्त हो। ...मैं आपके निश्चयों का स्वागत करता हूँ। भारत सरकार की ओर से शब्दसागर का नया संस्करण तैयार करने के सहायतार्थ एक लाख रुपए, जो पाँच वर्षों में बीस-बीस हजार करके दिए जाएँगे, देने का निश्चय हुआ है। मैं आशा करता हूँ कि इस निश्चय से आपका काम कुछ सुगम हो जायगा और आप इस काम में अग्रसर होंगे।'

राष्ट्रपति डा० राजेंद्रप्रसाद की इस घोषणा ने शब्दसागर के पुनःसंपादन के लिये नवीन उत्साह तथा प्रेरणा दी। सभा द्वारा प्रेषित योजना पर केंद्रीय सरकार के शिक्षामंत्रालय ने अपने पत्र सं० एफ। ४–३।५४ एच० दिनांक ११।५।५४ को एक लाख रुपया पाँच वर्षों में प्रति वर्ष २०–२० हजार रुपए करके देने की स्वीकृति दी।

इस कार्य की गरिमा को देखते हुए एक परामर्शमंडल का गठन किया गया जिसमें सर्वश्री डा० संपूर्णानंद, डा० सुनीतिकुमार चटर्जी, आचार्य बदरीनाथ वर्मा, राहुल सांकृत्यायन, अमरनाथ झा, शिवपूजन सहाय, मो० सत्यनारायण, रामचंद्र वर्मा, डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल, मुनि जिनविजय, डा० तारापोरवाला, डा० सुब्रह्मण्य अय्यर, किशोरीदास वाजपेयी, बाबूराव विष्णु पराड़कर, आचार्य नरेंद्रदेव, नंददुलारे बाजपेयी, डा० सैयद हफीज, डा० रामअवध द्विवेदी तथा डा० सिद्धेश्वर वर्मा थे। साथ ही, इस संबंध में देश के विभिन्न क्षेत्रों के अधिकारी विद्वानों की भी राय ली गई; किंतु परामर्शमंडल के अनेक सदस्यों का योगदान सभा को प्राप्त न हो सका और जिस विस्तृत पैमाने पर सभा विद्वानों की राय के अनुसार इस कार्य का संयोजन करना चाहती थी, वह भी नहीं उपलब्ध हुआ। फिर भी, देश के अनेक निष्णात अनुभवसिद्ध विद्वानों तथा परामर्शमंडल के सदस्यों ने गंभीरतापूर्वक सभा के अनुरोध पर अपने बहुमूल्य सुझाव प्रस्तुत किए। सभा ने उन सबको गंभीरतापूर्वक मथकर निम्नांकित सिद्धांत शब्दसागर के संपादन हेतु स्थिर किए जिनसे भारत सरकार का शिक्षामंत्रालय भी सहमत हुआ।

(१) इस कोश में जहाँ आवश्यक हो, वहाँ परिभाषाओं और व्याख्याओं में संगत संशोधन किए जायँ, जिससे यह वैज्ञानिक और वैयुत्पत्तिक कोश हो सके।

(२) वे शब्द, जो भाषा के अंग बन चुके हैं, चाहे जहाँ से भी आए हों, मूलस्थान का बिना विचार किए रखे जायँ। पूर्वसंस्करण में

गृहीत शब्द निकाले न जायँ, प्रत्युत नए शब्द अथवा यूरोपीय और भारतीय भाषाओं और बोलियों के प्रयोग, जो प्रथम संस्करण के बाद प्रचलन में आए हों, समाविष्ट किए जायँ।

(३) विभिन्न व्यावसायिक धंधों के जनसाधारण में प्रचलित विशिष्ट शब्दों को ग्रहण किया जाय और यथासंभव उनके उद्‌गम स्रोतों का निर्देश किया जाय।

(४) जहाँ कहीं आवश्यक और संभव हो, अर्थ को स्पष्ट करने के लिये विशेष विवरण दिए जायँ।

(५) हिंदी के उन पुराने शब्दों को भी ग्रहण किया जाय जो कभी प्रचलन में थे।

इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिये विभिन्न पुस्तकालयों, कोशशालाओं एवं संदर्भग्रंथों का गंभीरतापूर्वक अध्ययन किया गया तथा अपने साधन एवं सामर्थ्य की सीमा को परखा गया और शब्दसागर के पुनः संपादन के लिये निम्नांकित तत्वों को आधार बनाकर कार्य आरंभ किया गया :

शब्द मुख्य शब्द, उप शब्द, समस्त पद तीन वर्गों में विभक्त किया गया। मुख्य शब्द के अंतर्गत (क) सभी स्वतंत्र शब्द, मूल या व्युत्पन्न, (ख) वे सभी समस्त पद, जो अर्थगत या इतिहासगत वैशिष्ट्य के कारण पृथक् स्थान के अधिकारी हैं (जैसे, अन्नपूर्णा, अग्निवर्ण आदि)। उपशब्द के अंतर्गत (क) मुख्य शब्द के विविध और (आब्सोलीट) रूप, बिगड़े या बिगाड़े हुए शब्द, संदिग्ध शब्द या कुप्रयुक्त शब्द, और समस्त पद के अंतर्गत वे समस्त शब्द या पद जिनके अर्थों में कोई वैशिष्ट्य हो, और इनका स्थान मुख्य शब्द के अंतर्गत रहे, अंतर्भूत किए गए। मुख्य शब्द का अर्थ समाप्त होने पर समस्त पद देने की व्यवस्था की गई।

शब्दसंग्रह में निम्नांकित नियमों का पालन किया गया :

(क) व्यक्तिवाचक और स्थानवाचक संज्ञाओं में से वे ही दिए गए हैं जिनका अर्थसंबंधी ऐतिहासिक महत्व है।

(ख) क्रियाओं के विभिन्न रूप न देकर केवल धातु रूप दिए गए हैं।

(ग) ग्रंथों में व्यवहृत शब्दों का ही संग्रह किया गया है, सामान्यतया कोशों से शब्दसंग्रह बहुत कम किया गया है।

(घ) संज्ञा के विकारी रूप दिए गए हैं।

(ङ) रासो, विद्यापति आदि के ग्रंथों में अनेक स्थल ऐसे हैं जहाँ पाठदोष के कारण अर्थनिर्धारण में बाधा पहुँचती है। ऐसे स्थलों में, जहाँ संभव हुआ है, संदिग्ध पाठ के साथ प्रश्नचिह्न देकर नवीन या उचित पाठ का निर्देश कर दिया गया है और यथास्थान अर्थ दे दिया गया है।

(च) दादू, दरिया आदि के ग्रंथों में फारसी अरबी के शब्दों की बहुतायत है। इनका प्रयोग दो प्रकार से हुआ है—

(१) हिंदी शब्दों के साथ मिश्रित रूप में।

(२) पूरी पंक्ति या पूरे छंद में अविकल रूप में।

शब्दसागर में इनमें से प्रथम प्रकार के शब्द ही व्यावहारिक दृष्टि से परिगृहीत दिए गए हैं।

(छ) विदेशी भाषा के उन शब्दों का संकलन भी किया गया है जो हिंदी में पर्याप्त प्रचलित हो गए हैं। वर्तनी के संबंध में परिनिष्ठित या मुख्य रूप प्रायः सर्वत्र शब्दसागर में प्रयुक्त किया गया है पर यथावश्यकता जहाँ एक से अधिक वर्तनी प्रचलित हैं, वहाँ अति आवश्यक होने पर उन्हें भी दे दिया गया है।

व्याकरणनिर्देश के प्रसंग में शब्दप्रकार या उसका उपभाग दिया गया है, जैसे, उप० (उपसर्ग), सर्व० (सर्वनाम)। शब्दों के अल्पप्रचलित या बहुप्रचलित विशिष्ट अर्थों में वैशिष्ट्यनिर्देशन के लिये भी व्यवस्था की गई है; जैसे संगीत शास्त्र के लिये (संगीत) और वनस्पतिशास्त्र के लिये (वन०)। प्राचीन शब्दरूपों, मुख्यतया अपभ्रंश में शब्द के पूर्वापर रूपक्रम का उल्लेख है तथा विकारी रूपों, बहुवचन आदि का निर्देश भी किया गया है।

रूपविज्ञान, जिसके अंतर्गत निरुक्ति या व्युत्पत्ति है, बड़े कोष्ठ [ ] में देने की व्यवस्था की गई है और जहाँ शब्द की व्युत्पत्ति निश्चित है वहाँ मूल रूप का निर्देश किया गया है। अन्य भाषाओं के रूपांतरित शब्दों के व्युत्पत्तिनिर्देश के संबंध में ध्वनिपरिवर्तन, वर्णलोप, विकार, विरुद्ध अर्थ या भ्रांतिमूलक योजना के आधार पर उसके मूल शब्द का उल्लेख किया गया है।

इसके साथ ही यह भी उल्लेख कर दिया गया है कि वह संस्कृत के किस शब्द का तत्सम या तद्भव रूप है। यदि वे शब्द फारसी, अरबी, अँगरेजी, फ्रांसीसी, पुर्तगाली, चीनी आदि भाषाओं के हैं तो उनका भी तत्सम या तद्भव रूप निर्दिष्ट कर दिया गया है। ऐसे शब्दों के संबंध में, जो रचे या निर्मित किए हुए कोशों से लिए गए हैं, जैसे, ज्योतिर्विज्ञान आदि कोश (नागरीप्रचारिणी सभा), आंग्ल हिंदी महाकोश (डा० रघुवीर), इस्तलाहाते पेशेवाराँ (डा० जफर रहमान) आदि का उल्लेख कर दिया गया है। देशज शब्दों के संबंध में उनके मूल और समस्त पदों का भी निर्देश है।

यह तो मुख्य शब्दों की बात हुई। उप शब्दों के संबंध में शब्द का विलुप्त या अमुख्य रूप या उसके विविध रूप प्रस्तुत किए गए हैं। यदि उनके वर्तमान रूपों के कारण उनका प्राचीन रूप अज्ञात या अपरिचित है तो व्याकरणनिर्देश और व्युत्पत्ति देने के बाद 'दे०' लिखा गया है। प्रचलित मुख्य शब्द में ऐसे शब्दों का अर्थ देखना चाहिए। जहाँ उप शब्द मुख्य शब्द के अनियमित और विकृत रूप में ग्रहण किया गया है और यदि अर्थ में परिवर्तन नहीं है तो ऐसे उप शब्दों के लिये भी 'दे०' का ही प्रयोग किया गया है। लेखकों या कोशों के संदिग्ध और अशुद्ध, भ्रांतिमूलक शब्द जिनका क्वचित् प्रयोग ही हुआ हो, उनके अर्थ के लिये भी 'दे०' देकर मूल शब्द के साथ ही अर्थ देखने की व्यवस्था की गई है।

समस्त पदों के अंतर्गत सामान्य शब्दों के समस्त रूप यथासंभव गृहीत किए गए हैं। उनमें प्रत्येक शब्द की वर्तनी पृथक् दी गई है, चाहे वे रूप समासचिह्नों अथवा अर्थसंबंधों से संयुक्त हों। अति सामान्य समस्त पद, विशेष आवश्यक न होने पर, नहीं लिए गए हैं।

ऐसे समस्त पदों का वर्गीकरण निम्नांकित तीन रूपों में किया जा सकता है :

(क) वे समस्त पद जिनमें प्रत्येक शब्द का पूरा पूरा अर्थ निश्चित है।

(ख) वे जिनमें अर्थगत विशेषता संपृक्त है, पर संयुक्त शब्दों द्वारा जिनकी व्याख्या की जा सकती है।

(ग) वे समस्त पद, जो अपना प्रशस्त इतिहास होने के कारण विशेष अर्थ के बोधक हो गए हैं और विशेष व्याख्या की अपेक्षा करते हैं। ये सभी समस्त पद मूल शब्द के अंतर्गत अकारादि क्रम से शब्दसागर में प्रस्तुत किए गए हैं।

मुहाविरों की स्वतंत्र सत्ता स्वीकार की गई है और उन्हें मूल या प्रधान शब्द के रूप में ग्रहण किया गया है।

व्युत्पत्तिनिर्देश के संबंध में सामान्यतया जिन सिद्धांतों का परिपालन किया गया है, वे निम्नांकित है :

(क) जो शब्द संस्कृति में उपलब्ध हैं, उनकी व्युत्पत्ति संस्कृत तक ही रखी जाय। संस्कृतेतर शब्दों का मूल स्रोत निर्दिष्ट किया जाय।

(ख) हिंदी में कहाँ से शब्द आया, इसका उल्लेख हो। यदि वह फारसी आदि से आया हो और फारसी ने संस्कृत आदि से ग्रहण किया हो तो दोनों का उल्लेख हुआ करे। उनकी सीधी व्युत्पत्ति के साथ यह लिखा जाय कि हिंदी में यह शब्द इस अर्थ में सबसे पहले कब से प्रयुक्त हो रहा है।

(ग) भिन्न स्रोत (मूलधातु) से आए हुए एकार्थवाचक ऐसे शब्दों की व्युत्पत्ति में प्रायः सभी स्रोत दिए जायँ।

(घ) एक शब्द के कई अर्थ हों तो उनकी विभिन्न व्युत्पत्तियों की खोज की जाय।

(ङ) व्युत्पत्ति स्पष्ट करने के लिये अपेक्षित उदाहरण संक्षेप में दिए जायँ।

(च) शब्दों की व्युत्पत्ति मुख्यतः संस्कृत से दी जाय।

शब्दसागर की व्युत्पत्ति भी विचारणीय और परिवर्तनीय मानी गई है और निर्देश के पहले हिंदी या संस्कृत या अन्य का निर्देश किया गया है। उन शब्दों को, जिनकी व्युत्पत्ति अप्राप्य है और जो भिन्न उद्‌गम के हैं, भूखंडों के संबंधवशात् देशी निर्दिष्ट किया गया है।

अप्रचलित और प्राचीन शब्दों के अर्थलेखन में केवल निर्देश करके अर्थ आदि की व्यवस्था की गई है। अर्थों में अनावश्यक विस्तार को रोका गया है और उसकी पुष्टि साहित्य के प्रयोगों से की गई है। ऐसे तद्‌भव शब्दों का भी निर्देश किया गया है, जिनका अर्थ परिवर्तित हो गया है। संशोधन के संबंध में यथासाध्य उदाहरण दिया गया है। शब्दों के विविध, नवीन, अर्थ रखे गए हैं और विभिन्न ग्रंथों से पूरे संकेत के साथ उदाहरण दिए गए हैं।

जो अर्थ मूल में अस्पष्ट हैं उन्हें अधिक स्पष्ट किया गया है तथा अर्थ की भाषा सरल रखी गई है। शब्दार्थ में व्याख्या के साथ अत्यंत आवश्यक होने पर अंगरेजी शब्द भी देवनागरी लिपि में रखे गए हैं। उन शब्दों के उदाहरण यथाशक्ति दे दिए गए हैं जिनके प्रयोग में रूपगत अथवा अर्थगत विशेषता है। मुहावरों के उदाहरण भी, जहाँ आवश्यक हैं, दिए गए हैं। पुरानी हिंदी के ग्रंथों, यथा रासो आदि से, शब्द और अर्थ के साथ उदाहरण भी दिए गए हैं। सभा के स्वीकृत नियमों के अनुसार मूल विदेशी शब्दों की वर्तनी भी दी गई है और व्युत्पत्ति में शीघ्र उच्चारण सूचित करने के लिये अक्षरों के नीचे बिंदी आदि भी लगाई गई है। जिन ग्रंथों से शब्दचयन किया गया है, उदाहरण भी उन्हीं से लिए गए हैं। शब्दसागर के अर्थों के उदाहरण संक्षिप्त किए गए हैं, परंतु ध्यान रखा गया है कि ऐसा करने में संदर्भ की पूर्णता खंडित न होने पाए। प्रसिद्ध एवं प्रचलित शब्दों के नए उदाहरण प्रायः नहीं रखे गए हैं, पर इस बात का ध्यान रखा गया है कि उदाहरण अर्थच्छाया के विशदीकरण के लिये ही हों।

समितियों और मंडलों द्वारा स्वीकृत इन तत्वों के आधार पर शब्दसागर की रचना हुई। इस कार्य में सभा को ११ वर्ष का समय लगा है तथा सैकड़ों व्यक्तियों ने सहयोग प्रदान किया है। इसकी अपनी एक कहानी है।

मूल संस्करण की प्रस्तावना भी इस नवीन संस्करण में दे दी गई है जिससे मूल संस्करण का संक्षिप्त इतिहास है। इस नवीन संस्करण का संपादन सरकारी अनुदान पर आधारित था। सरकार के अपने अलग विधि विधान होते हैं और सभा का अपना विधि विधान भी है। इसलिये दोनों के ताल मेल के माध्यम से कार्य का आरंभ और संचालन हुआ। यद्यपि इस कोश के संपादन कार्य को पाँच वर्ष में ही पूरा करना था, तो भी यह कार्य लगभग ११ वर्षों में पूरा हुआ। सभा को इस बात का खेद है कि वह निश्चित समय में कार्य पूरा न कर सकी। किंतु उसे इस बात का संतोष है कि विलंब से ही सही, यह महत्वपूर्ण कार्य संपन्न हुआ। इस कार्य की प्रगति का कुछ विस्तृत विवरण यहाँ उपस्थित करना अप्रासंगिक न होगा।

१५ जून. १९५४ को कोश कार्य आरंभ हुआ और उसके कार्यालय की व्यवस्था की गई। यह कार्य १३ अप्रैल, १९५९ तक चलता रहा इस अवधि के प्रथम वर्ष मूल हिंदी शब्दसागर के ६००० शब्दों पर व्युत्पत्तिसशोधन तथा अपभ्रंश, डिंगल, राजस्थानी, हिंदी आदि के नए पुराने ग्रंथों स ७२,९०० शब्दों का संकलन किया गया।

दूसरे वर्ष प्रथम वर्ष के संकलित शब्दको अक्षरक्रम से संयोजित किया गया तथा ३३,३६८ नए सगृहीत शब्दों का अर्थलेखन किया गया। सगृहीत शब्दों में ५,०६८ शब्द अनावश्यक होने के कारण निकाल भी दिए गए और १०,००० शब्दों पर व्युत्पत्तिशोधन का कार्य हुआ। मूल हिंदी शब्दसागर के ६,५११ शब्दों पर व्युत्पत्ति तथा अर्थसंशोधन कार्य भी किया गया। इस वर्ष से विभागीय समस्याओं पर विचारार्थ साप्ताहिक बैठकों की व्यवस्था आरंभ की गई।

तीसरे वर्ष, अर्थात् संवत् २०१३ विक्रमी में, पुराने संगृहीत शब्दों पर अर्थलेखन कार्य चलता रहा। व्युत्पत्ति के क्षेत्र म १२,०३८ व्युत्पत्तियाँ पूरी की गई। इस अवधि तक पं० करुणापति त्रिपाठी

संयोजक रहे, फिर अस्वस्थतावश पद से विलग हो गए। श्री कृष्णानंदजी कोश के नए संयोजक हुए। इस वर्ष पंडित विश्वनाथप्रसाद जी मिश्र अवैतनिक रूप से सर्वनिरीक्षक रहे। डा० सुभद्र झा ने भी इस वर्ष एक मास तक अवैतनिक रूप से व्युत्पत्तिकार्य में सहायता पहुंचाई। व्यक्तिगत कारणों से डा० सुभद्र झा और सर्वनिरीक्षक पं० विश्वनाथप्रसाद जी मिश्र सं० २०१३ से अलग हो गए। इस वर्ष आधुनिक साहित्य के विभिन्न ग्रंथों से शब्द संकलित किए गए और उनका अर्थलेखन भी हुआ। प्रथम वर्ष के संगृहीत शब्दों का संनियोजन किया गया जिससे शब्दों के पुनरावृत्त एवं विकारी रूप होने के कारण लगभग चौथाई संकलित शब्द छाँट देने पड़े और उनकी संख्या ५५,३१७ बची।

चौथे वर्ष अर्थात् संवत् २०१४ में ३,००० और नए शब्दों का संग्रह और अर्थलेखन किया गया। इस अवधि में २०,००० उदाहरण भी एकत्र किए गए और मूल शब्दसागर के लगभग २५,००० शब्दों पर व्युत्पत्तियाँ संशुद्ध की गईं। शब्दसागर के संशोधन एवं संपादन का कार्य भी इस वर्ष आरंभ किया गया। इस वर्ष लगभग ५,००० शब्द तैयार हुए।

पाँचवें वर्ष मूल हिंदी शब्दसागर के ८,००० और शब्दों की व्युत्पत्तियाँ की गईं, और कोश कार्य को अंतिम रूप देने के लिये १३ श्रावण, २०१५ विक्रमी को भाषा और पद्धति संबंधी निम्नांकित निश्चय किया गया।

(१) रचना और व्याकरण की दृष्टि से पश्चिमी हिंदी की खड़ी बोली का क्षेत्र इस कोश के लिये क्षेत्र माना जाएगा। हिंदी की साहित्यिक परंपरा के अनुसार इनकी उपभाषाओं यथा ब्रज, अवधी, राजस्थानी (डिंगल छोड़कर), और मैथिली के हिंदी साहित्य में स्वीकृत ग्रंथों से शब्द लिए जायँ।

(२) प्राकृत, अपभ्रंश और डिंगल के शब्द इस कोश में ग्राह्य नहीं हैं।

(३) अर्थ प्रयोगों के आधार पर ही हों।

(४) जिन संस्करणों से शब्द लिए गए हैं भविष्य में उन्हीं से लिए जायँ। नए शब्द प्रामाणिक ग्रंथों से लिए जायँ। इनमें सभा के ग्रंथों को वरीयता दी जाय।

(५) शब्दों में क्रियाओं के धातु रूप दिए जायँ। (उनमें सर्वप्रथम खड़ी बोली की क्रिया का रूप रखा जायगा। उसके अनंतर ब्रज तदनंतर अवधी और राजस्थानी के रूप दिए जायँ। जिन रूपों के उदाहरण न मिले उन्हें छोड़ दें।)

(६) पुराने अर्थ मुख्यतः प्रयोग के आधार पर रखे जायँ।
(७) कहावतें, मुहावरे और यौगिक शब्द अलग अलग रखे जायँ।
(८) इस कोश का विश्वकोशीय अंश हटा दिया जाय।
(९) अनावश्यक पर्याय न रखे जायँ।

इस निश्चय के प्रकाश में इस वर्ष के अंत तक कार्य होता रहा। ये निश्चय मूल निश्चय के अनेक अर्थों में विलोम थे और शब्दगसार की तात्विक गरिमा तथा पूर्वनिश्चयों के अनुकूल भी नहीं थे। योजना की पाँच वर्ष की अवधि तथा निश्चत धन की समाप्ति के कारण किए गए इन निश्चयों के मूल में कार्य की शीघ्र समाप्ति की चिंता ही मानी जा सकती है। इस पद्धति पर कार्य किया गया और पुराने किए हुए कार्यों में लगे श्रम का तात्कालिक लाभ की कामना से एक सीमा तक उत्सर्ग कर दिया गया। प्रचलित खड़ी बोली के शब्दों का इसमें विशेष गरिमा दी गई किंतु पूर्वनिश्चयों में इस महिमा को अक्षुण्ण रखते हुए अतीत की भी संपदा का ध्यान मान रखा गया था जो किसी भी जीवंत भाषा के कोश के लिये परम आवश्यक है। देर से ही सही, बाद में सभा ने उन नए निश्चयों को त्याग भूतपूर्व निश्चयों के आधार पर यह कार्य किया है।

हिंदी शब्दसागर के लिये प्रथम २०,००० का अनुदान ५ अगस्त सन् १९५४ को, दूसरा २०,००० का अनुदान १५ नवंबर सन् १९५५ को, तीसरा अनुदान १८ फरवरी सन् १९५७ को और चौथा अनुदान २८ फरवरी सन् १९५८ का प्राप्त हुआ। इन्हीं वर्षों में सभा क्रमश: १६ हजार ५ सौ ७३ रुपए, १९ हजार ३ सौ ९ रुपए ७।। आने, १५ हजार ६ सौ ५२ रुपए ।। आने तथा २७ हजार ५ सौ ४६ रुपए ८३/४ आने व्यय कर चुकी थी; अर्थात् उसे कुल ८० हजार रुपए प्राप्त हुए थे जिसमें ९ सौ १८ रुपए ९७ पैसे मात्र शेष बचे थे। योजना के पाँचवें वर्ष में सरकार से कोई भी अनुदान प्राप्त नहीं हुआ अपितु सभा ने अपने पास से १९ हजार ६ सौ ८१ रुपए ३७ पैसे व्यय किए। सवत् २०१५ में भी इस कार्य पर २० हजार ६ सौ ८ रुपए १४ न० पैसे व्यय हुए। सरकार को २० हजार रुपए सभा का अनुदान स्वरूप दे देना चाहिए था किंतु वह न मिला, कारण चाहे जो भी रहा हो। अंततोगत्वा कोश संपादनकार्य सं० २०१५ के अंत में १३ अप्रैल १९५९ को बंद कर दिया गया।

अवैतनिक कार्यकर्ताओं के अतिरिक्त वैतनिक कार्य कर्ताओं ने हिंदी शब्दसागर में संमुखांकित पद से अग्रांकित अवधि तक कार्य किया।

सर्वश्री १ डा० हेमचंद्रजोशी, निरीक्षक संपादक १-११-५४–१३-४-५९, ४ वर्ष ५।। माह, २. त्रिलोचन शास्त्री, सहायक संपादक १५-६-५४–१७-१-५६; १५-३-५७–१३-४-५९ (स्थानांतरण) ४ वर्ष १ माह, ३. उदयशंकर शास्त्री, सहायक संपादक १५-६-५४–२८-२-५७, २ वर्ष ८ माह, ४. विश्वनाथ त्रिपाठी, सहायक संपादक, १५-६-५४–१३-४-५९, ५ वर्ष, ५. रामबली पांडेय, लेखक, १६-६-५४–१५-५-५६ (स्थानांतरण), १ वर्ष ११ माह, ६. पूर्णगिरि गोस्वामी उपनिरीक्षक, १५-३-५८–१३-४-५९. १ वर्ष ९ माह; ७ स्व० चंद्रशेखर शुक्ल सहायक संपादक, ७-३-५६–१५-३-५८, १५-५-५६–१३-४-५९ (स्थानांतरण), १ वर्ष ३ माह, ८. युगेश्वर पांडेय, लेखक, १८-६-५५–१५-३-५८, १५-३-५६–१३-४-५९ (स्थानांतरण) १ वर्ष १० माह, ९. बलदेवप्रसाद दत्त, सहायक संपादक, १५-२-५५–१३-४-५६, १ वर्ष २ माह, १०. बसंतूराम यादव, चपरासी, १७-६-५४–१३-४-५९, ५ वर्ष; ११. श्यामनारायण तिवारी, सहायक संपादक, ५-१-५६-१-८-५७, २१-५-५७–१५-४-५८, २ वर्ष; १२. भर्ग्यनाथ दूबे, सहायक संपादक, १५-१-५७–२-८-५७,

२१-५-५७–१५-४-५८, १ वर्ष; १३. शालग्राम उपाध्याय, सहायक संपादक, १५-१-५७–२-८-५७, २१-५-५७–१५-४-५८, १ वर्ष; १४ श्यामसुंदर शुक्ल, सहायक, संपादक, ८-१-५७–२१-५-५७ ४½ मास, १५. हरिमोहन श्रीवास्तव, सहायक संपादक, १५-१-५७–२-८-५७, २१-५-५७-१-१२-५७, ८ माह, १६. बद्रीप्रसाद मिश्र, सहायक संपादक, २८-२-५७–२१-५-५७ ३ माह, १७. लक्ष्मणस्वरूप त्रिपाठी, सहायक संपादक, २८-२-५७–२१-५-५७, ३ मास, १८ रामकुमार राय, सहायक संपादक, २८-२-५७–२१-२-५७, ३ मास, १९. तिलकधारी पांडेय सहायक संपादक, ११-३-५८–२१-५-५७, २½ मास २०. किशोरीदास वाजपेयी, सहायक संपादक, २४-२-५७–१५-४-५८, १ वर्ष २ मास; २१. दयाशंकर द्विवेदी, सहायक संपादक, ६-३-५७–२१-५-५७, २½ मास; २३. छन्नूराम गुप्त, टंकक, २-८-५७–१६-१०-५७, २½ मास; २४. नागेंद्रनाथ उपाध्याय, सहायक संपादक, १-८-५७–१५-४-५८, ८½ मास, २५. विष्णुचंद्र शर्मा, सहायक संपादक, १-१०-५७–१५-४-५८, ६½ मास; २६. ब्रजेंद्रनाथ पांडेय, सहायक संपादक' १५-११-५७–१५-४-५८, ५ मास; २७. हरिहरसिंह, लेखक, १५-३-५८–१३-४-५९, १ वर्ष, १ मास, २८. जयशंकर मिश्र, टंकक, २-७-५४–१०-२-५५, ७½ मास।

ता० १३।४।१९५९ को विभाग समाप्त हो गया।

अपनी अपनी क्षमता और शक्ति के अनुसार इन सभी कार्यकर्ताओं ने कार्य किया, इसके लिये ये धन्यवाद के पात्र हैं।

कोश के कार्य का यह चरण यद्यपि सं० २०१५ में समाप्त हो गया, तो भी धीरे धीरे सभा इस कार्य को अग्रसारित कर रही थी और, कार्य की शृंखला बनी रहे, इसलिये स्वयं अपने पास से व्यय कर रही थी। बाकी बचे २० हजार के स्वीकृत अनुदान में से अनेक प्रयत्न करने पर भी १९ जून, १९५९ को केवल १० हजार रुपए केंद्रीय सरकार से प्राप्त हुए। सं० २०१६ में सभा वेतन पर १६२६ रुपया ४३ पैसा और व्यय कर चुकी थी तथा कोश के लिये संदर्भ ग्रंथ क्रय करने पर १०१४ रुपया ५६ पैसा लगा चुकी थी। इस प्रकार संवत् २०१६ के अंत तक १२३३० रुपया ३९ पैसा व्यय कर चुकी थी। इसी बीच श्री डा० रामधन शर्मा, विशेष अधिकारी शिक्षा मंत्रालय द्वारा ३१ जनवरी सन् १९५९ से ४ फरवरी सन् १९५९ तक अब तक किए गए कोश कार्य की जाँच की गई तथा उनका महत्वपूर्ण विवरण प्राप्त हुआ। निश्चय ही इसमें वर्णित तथ्य विचारणीय थे, तथा अनेक सुंदर सुझावों से पूर्ण भी। सभा ने इस पर गंभीरतापूर्वक विचार किया और इस संकल्प पर दृढ़ रही कि उसे शब्दसागर का संशोधन और परिवर्धन करना है और इस रूप में करना है कि भले ही वह संसार का सर्वोत्तम कोश न बन सके तो भी हिंदी के सर्वोत्तम कोश की उसकी मर्यादा सुरक्षित रहे और तब तक के कोश-रचना-शिल्प से आधार पर शेष कार्य को उसको मूल सिद्धांतों के आधार पर अग्रसारित किया जाय। इसी प्रकार वह शब्दसागर की पुरानी मर्यादा का संरक्षण कर सकेगी।

सरकार ने सभा की इस चिंता में हाथ बटाया और सहानुभूतिपूर्वक सहायता के लिये वह पुनः आगे बढ़ी। वह १४ फरवरी सन् १९६२ तक का समय इसमें बीत गया, उसने १०००० रुपए सभा को अनुदानस्वरूप प्रदान किया। इस प्रकार १४ फरवरी सन् १९६२ तक सरकार ने अपना पूर्वस्वीकृत एक लाख रुपया का अनुदान सभा को दे दिया।

संवत् २०१८ के अंत तक इतस्ततः जो कार्य इस संबंध में सभा कर रही थी उसमें एक लाख के अतिरिक्त ६५७३ रुपया ७३ पैसा सभा और व्यय कर चुकी थी। तब तक सरकार इस कार्य की गुरुता को पहचान चुकी थी और उसे अधूरा छोड़ना उचित न समझ कर उसने ६५००० का नया अनुदान स्वीकार किया और ४ मार्च सन् १९६३ को उसने उसमें से ३२५०० रुपए सभा को एतदर्थ सहायता की। यहीं से सभा में कार्य की पुनः नई चेतना उत्पन्न हुई।

फिर से पुराने कार्य का पुनरावलोकन और पुनर्मूल्यांकन आरंभ किया गया और पुराने काम को, जिसमें से बहुत अस्तव्यस्त और जीर्ण सा हो गया था, सुव्यवस्थित और सुनियोजित करने में लगभग दो वर्ष व्यतीत हो गए थे। सभा ने यह बड़ा मूल्यवान् समय केवल पुनर्मूल्यांकन में तथा योजनाबद्ध रूप से कार्य करने की योजना बनाने में व्यय किया। फिर भी जिस उत्साह, निष्ठा और लगन से यह कार्य संवत् २०२१ से आरंभ किया गया उसकी गति निश्चय ही संतोषप्रद रही है। निश्चित अवधि के भीतर अब संपादन का कार्य ३१ दिसंबर, सन् ६५ तक समाप्त होने जा रहा है। नई कार्यविधि में शब्दसागर के आरंभ के अंश से ही संकलन, संशोधन, संपादन के साथ ही साथ निरीक्षण, व्युत्पत्तिनिर्देशन, अर्थचिंतन. संशोधन तथा प्रेस कापी तैयार करने का कार्य वैतनिक अवैतनिक, दोनों प्रकार के कार्यकर्ता, अधिकारी और कर्मचारी का भेद भूलकर एकरस हो हिंदी हितचिंतन को आदर्श मान प्राणपण से सचेष्ट होकर इस अवधि में कार्य करते रहे। जिन वैतनिक कार्यकर्ताओं ने कार्य किया है या कर रहे हैं उनको सूची, पद तथा कार्यावधि के साथ नीचे दी जा रही है।

१. श्रीत्रिलोचन शास्त्री, सहायक संपादक १-११-५९–३१-१२-६५, ६ वर्ष २ माह; २. श्रीविश्वनाथ त्रिपाठी, सहायक संपादक १-११-५९–१-१-६४, २-५-६०–३१-१२-६५ (स्थानांतरण) २ वर्ष ७ मास; ३. श्रीहरिहर सिंह शास्त्री, सहायक संपादक १४-२-६४–१५-४-६५, १ वर्ष १।। मास; ४. स्व० श्रीरघुनंदनप्रसाद शुक्ल 'अटल', सहायक संपादक, १-२-६४–३०-९-६५, १ वर्ष ८ मास; ५. श्री लालधर त्रिपाठी प्रवासी; सहायक संपादक, २३-९-६४–३१-१२-६५, १ वर्ष ३ मास; ६. श्रीप्रसाद, सहायक संपादक, २३-९-६४–३१-१२-६५, १ वर्ष ३ मास; ७. श्रीराधाविनोद गोस्वामी, सहायक संपादक, १५-९-६४–३१-१२-६५ १ वर्ष ३।। मास; ८. श्रीशारदाशंकर द्विवेदी, सहायक संपादक, ९-३-६५–३१-१२-६५, ९ मास; ९, श्रीराजाराम त्रिपाठी, सहायक संपादक, २७-७-६५–१९-११-६५, ३।। मास १०. श्रीरामबली पांडेय, सहायक संपादक, ७-७-६४–३०-१-६५, ६ मास; ११. श्रीविजयबली मिश्र, लेखक, ४-२-६३–३१-१२-६५, २ वर्ष ११ मास; १२. श्रीरामेश्वरलाल, लेखक, १५-६-६४–१२-८-६४, २ मास; १३. श्रीकेशरीनारायण त्रिपाठी, लेखक १०-१०-६४–

३१-१२-६५, १ वर्ष ३ मास; १४. श्रीजितेंद्रनाथ मिश्र, लेखक, १० १०-६४–३१-१२-६५. १ वर्ष ३ मास; १५. श्री राम मेहरोत्रा,लेखक ११-१०-६४–३०-९-६५, १वर्ष; १६. रामदयाल कश्यप, लेखक, ५-१-६५-३१-१२-६५,१ वर्ष; १७.लज्जाशंकर लाल,लेखक १६-३-६५-३१-१२-६५-९।।मास; १८. श्रीमनोरंजन ज्योतिषी, लेखक, २३-४-६५-२०-७-६५, ३ मास; १९. श्रीगुबाबलाल श्रीवास्तव, लेखक, १०-५-६५-३१-१२-६५, ७।। मास; २०. श्रीवशिष्टनारायण त्रिपाठी, लेखक, १-६-६५-३०-६-६५, १ मास; २३. श्रीउदयशंकर दूबे, लेखक, २०-७-६५-३१,१२-६५, ५।। मास; २४. श्रीकिशोरीरमण मिश्र, लेखक, १-६-६५-३१-१२-६५, ७ मास; २५. श्री अशर्फीराम मिश्र,लेखक,१८-९-६५-३१-१२-६५,३।मास २६. श्रीश्यामाकांत पाठक, लेखक, १८-९-६५-३१-१२-६५, ३।। मास; २७. श्रीसदानंद शास्त्री, लेखक, १८-९-६५-३१-१२-६५, ३।। मास; २८. श्रीबद्रीनारायण उपाध्याय, लेखक, ११-११-६५-३१-१२-६५, २ मास। चपरासी.–स्व. राम सुंदर. १-११-५९ से; रघुनाथ ८-८-६४-३१.१२. ६५, १।। वर्ष। बुद्धू राम (लगभग २ मास)। ३१-१२-१९६५ को विभागसमाप्ति।

यद्यपि इन वैतनिक कार्यकर्ताओं की योग्यता और क्षमता के अनुसार उन्हें वृत्ति नहीं दी जा सकी है तो भी अपनी क्षमता भर उन्होंने अपने घर की तरह जिस भाँति दत्तचित्त होकर कार्य किया हैं उसके प्रति कृतज्ञता न प्रकाश करना कृतघ्नता होगी। हमें इस बात का खेद है कि हम अपनी साधनहीनतावश हिंदी की सेवा सभा के माध्यम से उनसे आगे ले सकने की स्थिति में नहीं हैं। तो भी सभा के प्रत्येक पदाधिकारी की मंगलकामना उनके साथ है।

संवत् २०१९ में ३२,५००) के प्राप्त अनुदान में से जो व्यय किया गया उसके उपरांत भी २०,६४३)३३ और सं० २०२० में उसी में से व्यय करने के उपरांत १६,१२९) ८९ पैसे सरकारी अनुदान का बचा रहा। संवत् २०२१ में हिंदी शब्दसागर पर सभा ने जो व्यय किया वह अनुदान से प्राप्त रुपये के अतिरिक्त ५,६३१)७७ था। १५ दिसंबर सन् १९६५ तक सभा अपने पास से ३०,६७१)६१ व्यय कर चुकी थी और इसके अतिरिक्त ३१ दिसंबर तक १,८२८, रुपया और व्यय होने का अनुमान है। इधर सरकार ने स्वीकृत अनुदान शेष ३२,५००)में से १०.०००) भेजा है। इस प्रकार सरकार से स्वीकृत ६५,०००) के इस अनुदान से शब्दसागर का संपादन कार्य समाप्त हो जायगा। केवल 'स' और 'ह' अक्षरों की प्रतिलिपि मात्र शेष रह जायगी।

इस अवसर पर सभा के भूतपूर्व प्रधान मंत्री श्री डा० राजबली पांडेय और डा० जगन्नाथप्रसाद शर्मा को भी धन्यवाद देते हैं, क्योंकि उनका प्रयत्न भी स्मरणीय है। कोश कार्य का पर्यालोचन तथा निरीक्षण यथावश्यकता बराबर श्रीकृष्णदेवप्रसाद गौड़, पं० शिवप्रसाद मिश्र 'रुद्र', डा० भोलाशंकर व्यास और मैं करता रहा हूँ, और पंडित करुणापति त्रिपाठी संयोजक के रूप में गंभीरता और गुरुतापूर्वक अपने इस उत्तरदायित्व का वहन। एक साथ बैठकर सभा के अतिथि-भवन के कक्ष में कोश के वरिष्ठ कार्यकर्ताओं के साथ हम सबने एक एक शब्द पर चिंतन एवं मनन तो किया ही है, अनेक उलझनों को यथाशक्ति सुलझाते भी रहे हैं। इस कार्य के लिये हम सबने सभा की सेवा में अपने को अर्पित कर बल भर कार्य पूरा करने का यत्न किया है। इस प्रसंग में संपादकमंडल में सरकार के शिक्षा मंत्रालय के प्रतिनिधि डा० रामधन शर्मा का मार्मिक सहयोग एवं सुझाव बहुत अधिक सहायक हुआ है। इस अवसर पर सभा के भूतपूर्व सभापति स्वर्गीय आचार्य नरेंद्रदेव, डा० अमरनाथ झा एवं पं० गोविंद वल्लभ पंत की स्मृति भी जाग्रत हो उठती है। जिन्होंने शब्दसागर के नवीन संस्करण के प्रति उनकी चिंता देखी है वे ही अनुमान लगा सकते हैं कि वे आज इस कार्य से कितने तुष्ट होते। सभा के संरक्षक तथा राष्ट्रपति स्वर्गीय डा० राजेंद्रप्रसाद इस कार्य के लिये कितने व्यग्र थे, यह ऊपर दिए गए उसके भाषण के अंश से सहज ही जाना जा सकता है। उनका सभा पर ऋण है और वह ऋण हिंदी के हित में किए गए ऐसे कार्यों द्वारा ही चुकाया जा सकता है।

सभा के संरक्षक डा० संपूर्णानंद जी उसके प्रत्येक सुंदर कार्य के मूल में आत्मा की भाँति हैं, उनके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करने का साहस नहीं है। हमारे वर्तमान सभापति पं० कमलापति त्रिपाठी का स्नेह और उद्बोधन ही सभा की आज की गति के मूल में है। यद्यपि देश और समाज के कार्य में वे व्यस्त रहते हैं, तो भी सभा की चिंता उन्हें बनी रहती है, और राजनीतिक हानि उठाकर भी सभा के प्रत्येक कार्य में रुचि लेते हैं। इस कोश के कार्य में उन्होने जो रुचि ली और जो योग दिया है उसकी प्रेरणा के परिणामस्वरूप ही इस कार्य का संपन्न होना संभव हुआ है।

भारत के प्रधान मंत्री माननीय श्री लालबहादुर जी शास्त्री का सभा से संबंध बड़ा पुराना है। वे सदैव अपनी व्यस्तता में भी सभा को उन्नत करने में योगदान करते रहते हैं। इस सभा के वे संरक्षक हैं, और उन्होंने शब्दसागर के प्रथम खंड का उद्घटन करने की स्वीकृति देकर हमें जो प्रोत्साहन दिया है, सभा निश्चय ही उसके प्रति हृदय से कृतज्ञ है और उसके कार्यकर्त्ता और अधिक उत्साह से हिंदी की सेवा करने के लिये कृतसंकल्प।

भारत सरकार के भूतपूर्व शिक्षामंत्री श्री के० एल० श्रीमाली और वर्त्तमान उपशिक्षामंत्री श्री भक्तदर्शन जी ने समय समय पर इस कार्य में जो रुचि दिखाई है, और सभा की जैसी सहायता की है उसके प्रति सभा और उसके कार्यकर्ता हृदय से कृतज्ञ हैं।

हो सकता है इस कार्य के संपन्न होने में कभी कभी कुछ अप्रिय भी हुआ हो। इस अप्रियता का कारण स्वप्न में भी किसी को कष्ट पहुँचाना नहीं रहा है, अपितु कार्य की त्वरित गति और निश्चित अवधि तक समाप्ति की भावना ही हमारे प्रत्येक कार्य के मूल में थी। फिर भी यदि इस संबंध में कहीं कुछ अप्रिय हुआ तो उसका उत्तरदायित्व सहज

ही मेरे मित्रों पर, विशेषकर मुझ पर, ही है। मैं उसके लिये उन सबसे हृदय से क्षमाप्रार्थी हूँ जिनको जरा भी मुझसे ठेस पहुँची हो।

इस कोश के नवीन संस्करण के लिये जिन संदर्भ ग्रंथों से सहायता ली गई है उनके लेखकों, संपादकों तथा प्रकाशकों के प्रति सभा कृतज्ञ है। इन ग्रंथों में से कुछ विशेष सहायक ग्रंथों के नाम यहाँ दिए जा रहे हैं :

ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी (१३ खंड)। शार्टर ऑक्शफोर्ड डिक्शनरी (२ खंड)। कन्साइज ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी। थार्नडाइक इंग्लिश डिक्शनरी। चेंबर्स ट्वेंटिएथ सेंचुरी डिक्शनरी। संस्कृत वोर्टेरबुख, ग्राटो बोथलिंग रुडोल्फ राथ। संस्कृत इंग्लिश डिक्शनरी : सर एम० मोनियर विलियम्स, प्रैक्टिकल संस्कृत इंग्लिश डिक्शनरी : वी० एम० आप्टे। आप्टे कृत प्रैक्टिकल संस्कृत इंग्लिश डिक्शनरी (३ खंड), संपादक—पी० के० गोडे तथा सी० जी० कर्वे। मैकडानेल प्रैक्टिकल संस्कृत इंग्लिश डिक्शनरी। पर्शियन इंग्लिश डिक्शनरी : स्टाइनगास। ऐंग्लो हिंदुस्तानी डिक्शनरी : फैलन। हिंदुस्तानी प्रोवर्ब्स : फैलन। नेपाली डिक्शनरी : टर्नर। शब्दार्थ कल्पतरु : मामिडि वेंकटार्य। अल्फरायद उल् दुर्रियत उल-तुलाब (अरबी अंग्रेजी डिक्शनरी), फरहंग आसफिया (४ खंड)। नूर उल् लुगात (४ खंड)। करीम उल् लुगात। तखमीस उल् लुगात। लुगात किशोरी। अमरकोश। हलायुधकोश। मेदिनी कोश। शब्दकल्पद्रुम (५ खंड)। वाचस्पत्यम् (८ खंड)। पूर्णचंद्र ओड़िया महाकोश (७ खंड)। बाङगला भाषार अभिधान : ज्ञानेंद्रमोहन दास (२ भाग)। चलंतिका : राजशेखर वसु। विनीत जोडणी कोश : (गुजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद), मराठी व्युत्पत्ति कोश : कृष्णाजी पांडुजी कुलकर्णी। इस्तेलहाते पेशेवारां (आठ खंड)। राजस्थानी सबद कोश : सीताराम लालस। अवधी कोश : रामाज्ञा द्विवेदी 'समीर'। बिहार पीजेंट्स लाइफ, कृषिकोश : बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्। कृषि जीवन संबंधी ब्रजभाषा शब्दावली (२ खंड), अंबाप्रसाद सुमन। ब्रजभाषा सूरकोश (पाँच खंड)। तुलसी शब्दसागर : हरगोविंद तिवारी। मानस शब्दसागर : बद्रीदास अग्रवाल। संस्कृत इंग्लिश डिक्शनरी : डॉ० विलसन। अंग्रेजी संस्कृत डिक्शनरी : सर एम० मोनियर विलियम्स। संस्कृत : थियोडोर बेन्फे। पाली इंग्लिश डिक्शनरी : सोसायटी। अर्धमागधी कोश : मुनि श्री रत्नचंद्र। जॉन शेक्सपियर हिंदुस्तानी इंग्लिश डिक्शनरी ऐंड इंग्लिश हिंदुस्तानी डिक्शनरी। प्रसाद काव्यकोश : श्री सुधाकर पांडेय। बृहत् अंग्रेजी हिंदी कोश : ज्ञानमंडल। उर्दू हिंदी शब्दकोश : मद्दाह। पाइय सद्द महण्णवो : हरगोविंद सेठ। अभिधान राजेंद्र (५ खंड)। पाली हाइब्रिड डिक्शनरी। रूपनिघंटु, नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी। शालिग्राम निघंटुभूषणम्। अश्ववैद्यक। अश्वशास्त्र। रंगीनामा। डिंगल कोश। इन्साक्लोपीडिया ऑव् रिलीजन ऐंड एथिक्स—हेस्टिंग्ज। विश्वकोश (हिंदी तथा बँगला) संपादक—नगेंद्रनाथ बसु। तेलुगू डिक्शनरी : गैलेटी। पोर्चुगीज ऐंड इंग्लिश डिक्शनरी (२ खंड)। इन्फ्लुएंस ऑव पोर्चुगीज वोकेबुल्स इन एशियाटिक लांग्वेज : वी० भट्टाचार्य। पर्शियन वोकेबुलरी : लेंबर्टन। वर्ल्ड गजेटियर ऐंड जियोग्रैफिकल डिक्शनरी। डिक्शनरी ऑव् वर्ल्ड लिटरेरी टर्म्स : टी० शिप्ले। लटाइनिशेज एटिमोलोगाशेज वोर्टेरबुख रिलींफ उंट इन्सख्रिप्ट (२ खंड)। मुंडारी इंग्लिश डिक्शनरी। ऐटिमालागिशेल वोर्टेरबुख डेस आल्टिडिशेन : मानफ्रेड मायर होफर (६ खंड)। आल्टिडिशे ग्रामाटीक (५ खंड), वाकरनागेल। गुरु-शब्दरत्नाकर (४ खंड)। हिंदी राष्ट्रभाषा कोश। वैद्यक शब्दसिंधु। आयुर्वेदीय विश्वकोश (३ खंड)। वनौषधि चंद्रोदय (८ खंड)। इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका (३४–३५)।

नागरीप्रचारिणी सभा के प्रकाशन तथा कोश विभाग में पूर्ण सहयोग के कारण ही यह कोश इतने शीघ्र प्रकाशित हो सका है और विश्वास है कि शेष खंड प्रत्येक छह छह महीने पर प्रकाशित होते रहेंगे। सभा के सहायकमंत्री श्री शंभुनाथ वाजपेयी, श्री विश्वनाथ त्रिपाठी तथा श्री वल्लभाशरण पांडेय ने प्रूफ संशोधन के कार्य में जो सहयोग दिया है मैं तदर्थ आभारी हूँ। हमने इस बात का प्रयत्न किया है कि प्रूफ संबंधी तथा अन्य त्रुटियाँ इसमें स्थान न पा सकें किंतु कहीं कहीं संभव है कुछ प्रूफ संबंधी भूलें आ गई हों जिसका हमें आंतरिक क्लेश है। हम इसे अगले संस्करण में दूर करने का प्रयत्न करेंगे और ध्यान रखेंगे कि इस प्रकार की त्रुटियाँ भविष्य में न हों। फिर भी नागरीमुद्रण के व्यवस्थापक श्री विष्णुचंद्र शर्मा तथा उनके सहयोगियों ने जिस तत्परता के साथ काम किया है वह सराहनीय है।

इस ग्रंथ के संपादन का ही नहीं, उसके प्रकाशन के व्ययभार का ६० प्रतिशत बोझ भारत सरकार ने वहन किया है। इसलिये ही यह ग्रंथ इतना सस्ता निकालना संभव हो सका है। उसके लिये शिक्षा मंत्रालय के अधिकारियों का प्रशंसनीय सहयोग हमें प्राप्त है और उसके लिये हम उनके आभारी भी हैं।

जिस रूप में यह ग्रंथ हिंदी जगत् के संमुख प्रस्तुत किया जा रहा है, उसमें अद्यतन विकसित कोशशिल्प का यथासामर्थ्य उपयोग और प्रयोग किया गया है किंतु हिंदी की ओर हमारी सीमा है। यद्यपि हम अर्थ और व्युत्पत्ति का ऐतिहासिक क्रमविकास भी प्रस्तुत करना चाहते थे, परंतु साधन की कमी तथा हिंदी के ग्रंथों के कालक्रम के प्रामाणिक निर्धारण के अभाव में वैसा कर सकना संभव न था। फिर भी यह कहने में हमें संकोच नहीं कि अद्यतन प्रकाशित कोशों में शब्दसागर की गरिमा आधुनिक भारतीय भाषाओं के कोशों में अतुलनीय है, और इस क्षेत्र में काम करनेवाले इससे आधार ग्रहण करते रहेंगे। इस अवसर पर हिंदी जगत् को यह भी नम्रतापूर्वक सूचित करना चाहते हैं कि सभा ने शब्दसागर के लिये एक स्थाई विभाग का संकल्प किया है जो बराबर इसके प्रवर्धन और संशोधन के लिये अद्यतन कोशशिल्प विधि से यत्नशील रहेगा।

मूल शब्दसागर से इसकी शब्दसंख्या में दुगुनी से अधिक की वृद्धि हुई है और नए शब्द हिंदी साहित्य के आदिकाल, संत एवं सूफी साहित्य (पूर्व मध्यकाल), आधुनिक काल, काव्य, नाटक, आलोचना, उपन्यास आदि के ग्रंथ, इतिहास, राजनीति, अर्थशास्त्र, समाज शास्त्र, वाणिज्य आदि और अभिनंदन एवं पुरस्कृत ग्रंथ, विज्ञान के सामान्य प्रचलित शब्द और राजस्थानी तथा डिंगल, दक्खिनी हिंदी और प्रचलित

उर्दू शैली आदि से संकलित किए गए हैं। परिशिष्ट खंड में प्राविधिक एवं वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दों की व्यवस्था की गई है।

शब्दचयन सामान्यतः सन् १९५६ तक प्रकाशित ग्रंथों से तथा सन् १९६० तक प्रकाशित महत्वपूर्ण ग्रंथों से किया गया है, उनके प्रयोग के उदाहरण भी प्रस्तुत किए गए हैं। शब्दसागर में दी गई व्युत्पत्तियों या अर्थों तथा दृष्टांतों में व्यापक रूप से संशोधन भी किया गया है, तथा उसमें एतत्संबंधी लगे प्रश्नचिह्नों का यथासाध्य समाधानपूर्वक प्रामाणिक परिष्कार भी किया गया है।

अंत में शब्दसागर के मूल संपादक तथा सभा के संस्थापक डा० श्यामसुंदरदास को अपना प्रणाम निवेदित करते हुए, यह सकल्प हम पुनः दुहराते है कि जब तक हिंदी रहेगी तब तक सभा रहेगी और उनका यह शब्दसागर अपने गौरव से कभी न गिरेगा, और इस क्षेत्र में वह नित नूतन प्रेरणादायक रहकर हिंदी का मानवर्धन करता रहेगा और उसका प्रत्येक नया संस्करण और भी अधिक प्रभोज्ज्वल होता रहेगा।

नागरीप्रचारिणी सभा, काशी
सौर ३ पौष, सं० २०२२ वि०।

सुधाकर पांडेय
प्रकाशन मंत्री

—o—

संकेतिका

[उद्धरणों में प्रयुक्त संदर्भ ग्रंथों के इस विवरण में क्रमश: ग्रंथ का संकेताक्षर, ग्रंथनाम, लेखक या संपादक का नाम और प्रकाशन के विवरणदिए गए हैं ।]

अँधेरे०	अँधेरे की भूख, डा० रांगेय राघव, किताब महल, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण
अकबरी०	अकबरी दरबार के हिंदी कवि, डा० सरजूप्रसाद अग्रवाल, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ, सं० २००७
अग्नि०	अग्निशस्य, नरेंद्र शर्मा, भारती भंडार, इलाहाबाद, प्र० सं०
अजात०	अजातशत्रु, जयशंकर प्रसाद, १६ वाँ सं०
अणिमा	अणिमा, पं० सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', युग-मंदिर, उन्नाव
अतिमा	अतिमा, सुमित्रानंदन पंत, भारती भंडार, इलाहाबाद, प्र० सं०
अनामिका	अनामिका, पं० सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', प्र० सं०
अनुराग०	अनुरागसागर, संपा० स्वामी युगलानंद बिहारी, वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई, प्र० सं०
अनेक (शब्द०)	अनेकार्थ नाममाला (शब्दसागर)
अनेकार्थ०	अनेकार्थमंजरी और नाममाला, संपा० बलभद्रप्रसाद मिश्र, युनिवर्सिटी ऑफ इलाहाबाद स्टडीज, प्र० सं०
अपरा	अपरा, पं० सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग
अपलक	अपलक, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', राजकमल प्रकाशन, प्र० सं०, १९५३ ई०
अभिशप्त	अभिशप्त, यशपाल, विप्लव कार्यालय, लखनऊ, १९४४ ई०
अतीत०	अतीत स्मृति, महावीरप्रसाद द्विवेदी, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, १९३०
अमृतसागर (शब्द०)	अमृतसागर
अयोध्या (शब्द०)	अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'
अरस्तू०	अरस्तू का काव्यशास्त्र, डा० नगेंद्र, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, प्र० सं० २०१४
अर्चना	अर्चना, पं० सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', कला-मंदिर, इलाहाबाद
अर्थ०	अर्थशास्त्र (५ खंड), संपा० आर० शाम शास्त्री, गवर्नमेंट ब्रांच प्रेस, मैसूर, प्र० सं०, १९१९
अर्ध०	अर्धकथानक, संपा० नाथूराम प्रेमी, हिंदी ग्रंथ रत्नाकर कार्यालय, बंबई, प्र० सं०
अष्टांग (शब्द०)	अष्टांग योगसंहिता
आँधी	आँधी, जयशकर प्रसाद, भारती भंडार इलाहाबाद, पंचम सं०
आकाश०	आकाशदीप, जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार इलाहाबाद, पं० सं०
आचार्य०	आचार्य रामचंद्र शुक्ल, चंद्रशेखर शुक्ल, वाणी वितान, वाराणसी, प्र० सं०
आदि०	आदिभारत, जुँन चौबे काश्यप, वाणी विहार, बनारस, प्र० सं० १९५३
आधुनिक०	आधुनिक कविता की भाषा
आनंदघन (शब्द०)	कवि आनंदघन
आराधना	आराधना, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', साहित्य-कार संसद, इलाहाबाद, प्र० सं०
आर्द्रा	आर्द्रा, सियारामशरण गुप्त, साहित्य सदन, चिरगाँव, झाँसी, प्र० सं०, १९८४ वि०
आर्य भा०	आर्यकालीन भारत
आर्यों०	आर्यों का आदिदेश, संपूर्णानंद, भारतीभंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, १९९७ वि०, प्र० सं०
इंद्र०	इंद्रजाल, जयशंकर प्रसाद, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, प्र० सं०
इंद्रा०	इंद्रावती, संपा० श्यामसुंदरदास, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०
इंशा०	इंशा उनका काव्य तथा रानी केतकी की कहानी, संपा० ब्रजरत्नदास, कमलमणि ग्रंथ-माला, बुलानाला, काशी, प्र० सं०
इतिहास	हिंदी साहित्य का इतिहास, पं० रामचंद्र शुक्ल, ना० प्र० सभा, वाराणसी, नवाँ सं० ।
इत्यलम्	इत्यलम्, 'अज्ञेय', प्रतीक प्रकाशन केंद्र, दिल्ली,
इरा०	इरावती, जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार, इलाहाबाद, चतुर्थ सं०
उत्तर०	उत्तर रामचरितनाटक अनु० पं० सत्यनारायण कविरत्न, रत्नाश्रम, आगरा, पंचम सं०
एकांत०	एकांतवासी योगी, अनु० श्रीधर पाठक, इंडियन प्रेस प्रयाग, प्र० सं०, १८८६ वि०
कंकाल	कंकाल, जयशंकर प्रसाद, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, सप्तम सं०

कठ० उप० (शब्द०)	कठवल्ली उपनिषद्
कढ़ी०	कढ़ी में कोयला, पांडेय बेचन शर्मा उग्र, गऊघाट, मिर्जापुर, प्र० सं०
कबीर ग्रं०	कबीर ग्रंथावली, संपा० श्यामसुंदरदास, ना० प्र० सभा, काशी
कबीर० बानी०	कबीर साहब की बानी
कबीर	कबीर बीजक, संपा० हंसदास, कबीर ग्रंथ प्रकाशन समिति, बाराबंकी, २००७ वि०
कबीर मं०	कबीर मंसूर (२ भाग), वेंकटेश्वर स्टीम प्रिंटिंग प्रेस बंबई, सन् १९०३
कबीर रे०	कबीर साहब की ज्ञानगुदड़ी व रेख्ते, बेलवेडियर स्टीम प्रिंटिंग प्रेस, इलाहाबाद
कबीर श०	कबीर साहब की शब्दावली (४ भाग)
कबीर (शब्द०)	कबीरदास
कबीर सा०	कबीरसागर (४ भा०), संपा० स्वा० श्री युगलानंद विहारी, वेंकटेश्वर स्टीम प्रिंटिंग प्रेस, बंबई
कबीर सा० सं०	कबीर साखी संग्रह, बेलवेडियर स्टीम प्रिंटिंग प्रेस, इलाहाबाद, १९१२ ई०
करुणा०	करुणालय, जयशंकर प्रसाद, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, तृ० सं०
कर्ण०	सेनापति कर्ण, लक्ष्मीनारायण मिश्र, किताब महल, इलाहाबाद, प्र० सं०
कविता कौ०	कविता कौमुदी [१-४ भा०], संपा० रामनरेश त्रिपाठी, हिंदी मंदिर, प्रयाग, तृ० सं०
कवित्त०	कवित्तरत्नाकर, संपा० उमाशंकर शुक्ल, हिंदी परिषद्, विश्वविद्यालय, प्रयाग
कानन०	काननकुसुम, जयशंकरप्रसाद, भारती भंडार लीडर प्रेस, इलाहाबाद, पंचम सं०
कामायनी	कामायनी, जयशंकरप्रसाद, नवम सं०
काया०	कायाकल्प, प्रेमचंद, सरस्वती प्रेस, बनारस, ९वाँ सं०
काले०	काले कारनामे, 'निराला', कल्याण साहित्य मंदिर, प्रयाग २००७ वि०
काव्य० निबंध	काव्य और कला तथा अन्य निबंध, जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार, लीडरप्रेस, इलाहाबाद, चतुर्थ सं०
काव्य० य० प्र०	काव्य, यथार्थ और प्रगति, डा० रांगेय राघव, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, प्र० सं०, २०१२ वि०
काश्मीर०	काश्मीर सुषमा, पं० श्रीधरपाठक, इंडियन प्रेस, इलाहाबाद
किन्नर०	किन्नर देश में, राहुल सांकृत्यायन, इंडिया पब्लिशर्स, प्रयाग, प्र० सं०
कीर्ति०	कीर्तिलता, सं० बाबूराम सक्सेना, ना० प्र० सभा, वाराणसी, तृ० सं०
कुकुर०	कुकुरमुत्ता, 'निराला', युगमंदिर, उन्नाव
कुणाल	कुणाल, सोहनलाल द्विवेदी
कृषि०	कृषिशास्त्र
केशव (शब्द०)	केशवदास
केशव ग्रं०	केशव ग्रंथावली, संपा० सं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, प्र० सं०
केशव० अमी०	केशवदास की अमीघूट
कौटिल्य अ०	कौटिल्य का अर्थशास्त्र
क्वासि	क्वासि, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', राजकमल प्रकाशन, बंबई, १९५३ ई०
खानखाना (शब्द०)	अब्दुर्रहीम खानखाना
खालिक०	खालिकबारी, संपा० श्रीराम शर्मा, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०, २०२१ वि०
खिलौना	खिलौना (मासिक)
खुदाराम	खुदाराम और चंद हसीनों के खतूत, पाँडेय बेचन शर्मा उग्र, गऊघाट, मिर्जापुर, आठवाँ सं०
गंग ग्रं०	गंग कवित्त [ग्रंथ वली], संपा० बटेकृष्ण, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०
गदाधर०	श्रीगदाधर भट्ट जी की बानी
गबन	गबन, प्रेमचंद, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद, २६ वाँ सं०
गि०दा०गि०दास(शब्द०)	गिरिधरदास (बा० गोपालचंद्र)
गिरिधर (शब्द०)	गिरिधर राय (कुंडलियावाले)
गीतिका	गीतिका, 'निराला', भारतीभंडार, इलाहाबाद, प्र० सं०
गुंजन	गुंजन, सुमित्रानंदन पंत, भारतीभंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, प्र० सं०
गुमान (शब्द०)	गुमान मिश्र
गुलाल०	गुलाले बानी, वेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, १९१० ई०
गोदान	गोदान, प्रेमचंद, सरस्वती प्रेस, बनारस, प्र० सं०
गोपाल० (शब्द०)	गिरिधर दास (गोपालचंद्र)
गोरख०	गोरखबानी, डा० संपा० पीतांबरदत्त बड़थ्वाल, हिंदी साहित्य संमेलन, प्रयाग, द्वि० सं०
ग्राम्या	ग्राम्या, सुमित्रानंदन पंत, भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, प्र० सं०
घट०	घट रामायण [२ भाग], सतगुरु तुलसी साहिब, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, तृ० सं०
घनानंद	घनानंद; संपा० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, प्रसाद परिषद, वाणीवितान, ब्रह्मनाल, वाराणसी
घाघ०	घाघ और भड्डरी, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद।

चँद०	चंद हसीनों के खतूत, हिंदी पुस्तक एजेंसी, कलकत्ता, प्र० सं०
चंद्र०	चंद्रगुप्त, जयशंकर प्रसाद, लीडर प्रेस, प्रयाग, नवाँ सं०
चक्र०	चक्रवाल, रामधारी सिंह दिनकर, उदयाचल, पटना, प्र० सं०
चरणचंद्रिका (शब्द०)	चरणचंद्रिका
चरण० बानी	चरणदास की बानी, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, प्र० सं०
चाँदनी०	चाँदनी रात और अजगर, उपेंद्रनाथ अश्क, नीलाभ प्रकाशन गृह, प्रयाग, प्र० सं०
चिंता	चिंता, अज्ञेय, सरस्वती प्रेस, प्र० सं०, १९४० ई०
चिंतामणि	चिंतामणि [२ भाग], रामचंद्र शुक्ल, इंडियन प्रेस, लि० प्रयाग।
चिंतामणि (शब्द०)	कवि चिंतामणि त्रिपाठी
चित्रा०	चित्रावली, सं० जगन्मोहन वर्मा, ना० प्र० सभा, प्र० सं०।
चुभते०	चुभते चौपदे, अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध', खड्गविलास प्रेस, पटना, प्र० सं०
चोखे०	चोखे चौपदे; ,, ,, ,,
चोटी०	चोटी की पकड़, 'निराला', किताबमहल, इलाहाबाद, प्र० सं०
छंदः०	छंदः प्रभाकर, भानुकवि, भारतजीवन प्रेस काशी, प्र० सं०
छत्र०	छत्रप्रकाश, संपा० विलियम प्राइस, एजुकेशन प्रेस, कलकत्ता, १८२९ ई०
छिताई	छिताई वार्ता, संपा० माताप्रसाद गुप्त, ना० प्र० सभा, वाराणसी, द्वि० सं०
छीत०	छीत स्वामी, संपा० व्रजभूषण शर्मा, विद्या विभाग, अष्टछाप स्मारक समिति, कांकरोली, प्र० सं० २०१२ वि०
जग० बानी	जगजीवन साहब की बानी, बेलवेडियर प्रेस इलाहाबाद, १९०६, प्र० सं०
जग० श०	जगजीवन साहब की शब्दावली
जय० प्र०	जयशंकर प्रसाद, नंददुलारे वाजपेयी, भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, प्र० सं०, १९९५ वि०
जायसी ग्रं०	जायसी ग्रंथावली, संपा० रामचंद्र शुक्ल, ना० प्र० सभा, द्वि० सं०
जायसी ग्रं० (गुप्त)	जायसी ग्रंथावली, संपा० माताप्रसाद गुप्त, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, प्र० सं० १९५१ ई०
जायसी (शब्द०)	मलिक मुहम्मद जायसी।
जिप्सी	जिप्सी, इलाचंद्र जोशी, सेंट्रल बुक डिपो, इलाहाबाद, प्र० सं०, १९५२ ई०
ज्ञानदान	ज्ञानदान यशपाल, विप्लव कार्यालय, लखनऊ, १९४२ ई०
ज्ञानरत्न	ज्ञानरत्न, दरिया साहब, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद।
झरना	झरना, जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, सातवाँ सं०
झाँसी०	झाँसी की रानी, वृंदावनलाल वर्मा, मयूर प्रकाशन, द्वि० सं०
टैगोर०	टैगोर का साहित्यदर्शन, अनु० राधेश्याम पुरोहित, साहित्य प्रकाशन, दिल्ली, १९५६ ई० प्र० सं०
ठंडा०	ठंडा लोहा, धर्मवीर भारती, साहित्य भवन लि०, प्रयाग, प्र० सं०, १९५२ ई०
ठाकुर०	ठाकुर शतक, संपा० काशीप्रसाद, भारतजीवन प्रेस, काशी, प्र० सं०, संवत् १९६१
ठेठ	ठेठ हिंदी का ठाठ, अयोध्या सिंह उपाध्याय, खड्गविलास प्रेस, पटना, प्र० सं०
ढोला० दू०	ढोला मारू रा दूहा, संपा० रामसिंह, ना० प्र० सभा, काशी, द्वि० सं०
तितली	तितली, जयशंकर प्रसाद, लीडर प्रेस, प्रयाग, सातवाँ सं०
तुलसी	तुलसीदास, 'निराला', भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, चतुर्थ सं०
तुलसी ग्रं०	तुलसी ग्रंथावली, संपा० रामचंद्र शुक्ल, ना० प्र० सभा, काशी तृतीय सं०
तुलसी श०	तुलसी साहब की शब्दावली (हाथरस वाले), बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, १९०९, १९११
तेग० (शब्द०)	तेगबहादुर
तेज०	तेजबिंदूपनिषद्
तोष (शब्द०)	कवि तोष
त्याग०	त्यागपत्र, जैनेंद्रकुमार, हिंदी ग्रंथ रत्नाकर कार्यालय, बंबई, प्र० सं०
द० सागर	दरिया सागर, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, १९१० ई०
दक्खिनी०	दक्खिनी का गद्य और पद्य, संपा० श्रीराम शर्मा, हिंदी प्रचार सभा, हैदराबाद, प्र० सं०
दरिया० बानी	दरिया साहब की बानी, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, द्वि० सं०
दश०	दशरूपक, डा० भोलाशंकर व्यास, चौखंबा विद्याभवन, वाराणसी, प्र० सं०
दशम० (शब्द०)	भाषा दशम स्कंध भागवत
दहकते०	दहकते अंगारे, नरोत्तमदास नागर, अभ्युदय कार्यालय, इलाहाबाद

दादू०	(श्री) दादूदयाल की बानी, संपा० श्री सुधाकर द्विवेदी, ना० प्र० सभा, वाराणसी
दादूदयाल ग्रं०	दादूदयाल ग्रंथावली
दादू० (शब्द०)	दादूदयाल
दिल्ली	दिल्ली, रामधारी सिंह दिनकर', उदयाचल, पटना प्र० सं०
दिव्या	दिव्या, यशपाल, विप्लव कार्यालय, लखनऊ, १९४५ ई०
दीन० ग्रं०	दीनदयाल गिरि ग्रंथावली, संपा० श्याम सुंदरदास, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०
दीनदयालु (शब्द०)	कवि दीनदयालु गिरि
दीप०	दीपशिखा, महादेवी वर्मा, किताबिस्तान, इलाहाबाद, प्र० सं०, १९४२ ई०
दी० ज०	दीप जलेगा, उपेंद्रनाथ अश्क, नीलाभ, प्रकाशन गृह प्रयाग
दूलह (शब्द०)	कवि दूलह
देव० ग्रं०	देव ग्रंथावली, ना० प्र० सभा, प्र० सं०
देव (शब्द०)	देवकवि (मैनपुरीवाले)
देशी०	देशी नाममाला
दैनिकी	सियारामशरण गुप्त, साहित्य सदन, चिरगाँव, झाँसी, प्र० सं०, १९९९ वि०
दो सौ बावन०	दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता [दो भाग], शुद्धाद्वैत एकेडमी, काँकरौली प्रथम सं०
द्वंद्व०	द्वंद्वगीत, रामधारी सिंह दिनकर, पुस्तक भंडार, लहेरिया सराय, पटना, प्र० सं०
द्वि० अभि० ग्रं०	द्विवेदी अभिनंदन ग्रंथ, ना० प्र० सभा, वाराणसी
द्विवेदी (शब्द०)	महावीरप्रसाद द्विवेदी
धरनी० बा०	धरनी साहब की बानी, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, १९११ ई०
धरम० शब्दा०	धरमदास की शब्दावली
धूप०	धूप और धूआँ, रामधारीसिंह 'दिनकर', अजंता प्रेस लि०, पटना ४
नंद० ग्रं० नंददास ग्रं०	नंददास ग्रंथावली, संपा० ब्रजरत्न दास, ना० प्र० सभा, प्र० सं०
नई०	नई पौध, नागार्जुन, किताब महल, इलाहाबाद, प्र० सं०, १९५३
नट०	नटनागर विनोद, संपा० कृष्णबिहारी मिश्र, इंडियन प्रेस, इलाहाबाद, प्र० सं०
नदी०	नदी के द्वीप, 'अज्ञेय', प्रगति प्रकाशन, दिल्ली, प्र० सं०, १९५१ ई०
नया०	नया साहित्य : नए प्रश्न, नंददुलारे वाजपेयी, विद्यामंदिर; वाराणसी, २०११
नागयज्ञ	जनमेजय का नागयज्ञ, जयशंकर प्रसाद, लीडर प्रेस, प्रयाग, सप्तम सं०
नागरी (शब्द०)	नागरीदास
नील०	नीलकुसुम, रामधारी सिंह 'दिनकर', उदयाचल, पटना, प्र० सं०
नेपाल०	नेपाल का इतिहास, पं० बलदेवप्रसाद, वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई, १९६१ वि०
पंचवटी	पंचवटी मैथिलीशरण गुप्त, साहित्य सदन, चिरगाँव, झाँसी, प्र० सं०
पजनेस०	पजनेस प्रकाश, संपा० रामकृष्ण वर्मा, भारत जीवन यंत्रालय, काशी, प्र० सं०
पदमावत	पदमावत, संपा० वासुदेवशरण अग्रवाल, साहित्य सदन, चिरगाँव, झाँसी, प्र० सं०
पदु०, पदुमा०	पदुमावती, संपा० सूर्यकांत शास्त्री, पंजाब विश्वविद्यालय, लाहौर, १९३४ ई०
पद्माकर ग्रं०	पद्माकर ग्रंथावली, संपा० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०
पद्माकर (शब्द०)	पद्माकर भट्ट
प० रा० प० रासो	परमाल रासो, सं० श्यामसुंदरदास, ना० प्र० सभा, प्र० सं०
परमानंद०	परमानंद सागर
परिमल	परिमल, 'निराला', गंगा ग्रंथागार, लखनऊ, प्र० सं०
पर्दे०	पर्दे की रानी, इलाचंद्र जोशी, भारती भंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, प्र० सं०, १९९९ वि०
पलटू०	पलटू साहब की बानी, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, १९०७ ई०
पल्लव	पल्लव, सुमित्रानंदन पंत, इंडियन प्रेस लि०, प्रयाग, प्र० सं०
पाणिनि०	पाणिनिकालीन भारतवर्ष, वासुदेवशरण अग्रवाल, मोतीलाल बनारसी दास, प्र० सं०, २०१२
पारिजात०	परिजातहरण
पार्वती	पार्वती, रामानंद तिवारी शास्त्री, भारतीनंदन, मंगल भवन, नयापुरा, कोटा (राजस्थान), प्र० सं०, १९५५ ई०
पा० सा० सि०	पाश्चात्य साहित्यालोचन के सिद्धांत, लीलाधर गुप्त, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, प्र० सं०, १९५२ ई०
पिंजरे०	पिंजरे की उड़ान, यशपाल, विप्लव कार्यालय, लखनऊ, १९४६ ई०
पूर्व० म० भा०	पूर्वमध्यकालीन भारत, वासुदेव उपाध्याय, भारती भंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, प्र० सं०, २००९ वि०
पृ० रा०	पृथ्वीराज रासो [५ खंड], संपा० मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या, श्यामसुंदर दास, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०

पृ० रा० (उ०)	पृथ्वीराज रासो [४ खंड], संपा० कविराज मोहनसिंह, साहित्य संस्थान, राजस्थान विश्वविद्यापीठ, उदयपुर, प्र० सं०
पोद्दार अभि० ग्रं०	पोद्दार अभिनंदन ग्रंथ, संपा० वासुदेवशरण अग्रवाल, अखिल भारतीय ब्रज साहित्यमंडल, मथुरा, सं० २०१० वि०
प्रताप ग्रं०	प्रतापनारायण मिश्र ग्रंथावलो, संपा० विजयशंकर मल्ल, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०
प्रताप (शब्द०)	प्रतापनारायण मिश्र
प्रबंध०	प्रबंध पद्म, 'निराला', गंगा पुस्तकमाला, लखनऊ, प्र० सं०
प्रभावती	प्रभावती, 'निराला', सरस्वती भंडार, लखनऊ, प्र० सं०
प्राण०	प्राणसंगली, संपा० संत संपूरण सिंह, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, प्र० सं०
प्रा० भा० प०	प्राचीन भारतीय परंपरा और इतिहास, डा० रांगेय राघव, आत्माराम एंड संस, दिल्ली प्र० सं०, १९५३ ई०
प्रिय०	प्रियप्रवास, अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध, हिंदी साहित्य कुटीर, बनारस, षष्ठ सं०
प्रिया (शब्द०)	प्रियादास
प्रेम०	प्रेमपथिक, जयशंकर प्रसाद भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, तृ० सं०
प्रेम० और गोर्की	प्रेमचंद और गोर्की, संपा० शचीरानी गुर्टू, राजकमल प्रकाशन लि०, बंबई, १९५५ ई०
प्रेमघन०	प्रेमघन सर्वस्व, हिंदी साहित्य संमेलन, प्रयाग, प्र० सं०, १९९६ वि०
प्रे० सा० (शब्द०)	प्रेमसागर
प्रेमांजलि	प्रेमांजलि, ठा० गोपालशरण सिंह, इंडियन प्रेस लि०, प्रयाग, १९५३ ई०
फिसाना०	फिसाना ए आजाद [चार भाग], पं० रतननाथ 'सरशार', नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, चतुर्थ सं०
फूलो०	फूलो का कुर्ता, यशपाल, विप्लव कार्यालय, लखनऊ, प्र० सं०
बंगाल	बंगाल का काल, हरिवंश राय बच्चन, भारती भंडार, इलाहाबाद, प्र० सं०, १९४६ ई०
बाँको० ग्रं० / बाँकीदास ग्रं०	बाँकीदास ग्रंथावली [चार भाग], संपा० रामनारायण दूगड़, ना० प्र० सभा, प्र० सं०
बंदन०	बंदनवार, देवेंद्र सत्यार्थी, प्रगति प्रकाशन, दिल्ली, १९४९ ई०
बद०	बदमाश दर्पण, तेगअली, भारत जीवन प्रेस, बनारस, प्र० सं०
बाँगेदरा	बाँगेदरा
बिल्ले०	बिल्लेसुर बकरिहा, निराला, युगमंदिर, उन्नाव, प्र० सं०
बिहारी र०	बिहारी रत्नाकर, संपा० जगन्नाथदास रत्नाकर, गंगा ग्रंथागार, लखनऊ, प्र० सं०
बिहारी (शब्द०)	कवि बिहारी
बीजक	कबीर बीजक, कबीर ग्रथप्रकाशन समिति, बाराबकी, २००७ वि०
बी० रासो	बीसलदेव रासो, संपा० सत्यजीवन वर्मा, ना० प्र० सभा, प्र० सं०
बीसल० रास०	बीसलदेव रास, संपा० माताप्रसाद गुप्त, प्र० सं०
बी० श० महा०	बीसवीं शताब्दी के महाकाव्य, डा० प्रतिपाल सिंह, ओरिएंटल बुकडिपो, देहली, प्र० सं०
बुद्ध च०	बुद्धचरित, रामचंद्र शुक्ल, ना० प्र० सभा, वाराणसी; प्र० सं०
बृहत्संहिता (शब्द०)	बृहत्संहिता
बेनी (शब्द०)	कवि बेनी प्रवीन
बेला	बेला, 'निराला', हिंदुस्तानी पब्लिकेशंस, इलाहाबाद, प्र० सं०
बेलि०	बेलि क्रिसन रुकमणी, संपा० ठाकुर रामसिंह, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, प्र० सं०, १९३१ ई०
ब्रज०	ब्रजविलास, संपा० श्री कृष्णदास, लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई, तृ० सं०
ब्रज० ग्रं०	ब्रजनिधि ग्रंथावली, संपा० पुरोहित हरिनारायण शर्मा, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
ब्रजमाधुरी०	ब्रजमाधुरी सार, सं० वियोगीहरि, हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, तृ० सं०
भक्तमाल (प्रि०)	भक्तमाल, टीका० प्रियादास, वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई, १९५३ वि०
भक्तमाल (श्री०)	भक्तमाल, श्री भक्ति सुधाबिंदु स्वाद, टीका० सीतारामशरण, नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, द्वि० सं०, १९८३ वि०
भक्ति०	भक्ति सागरादि, स्वामी चरणदास, वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई, संवत् १९६० वि०
भक्ति प०	भक्ति पदार्थ वर्णन, स्वामी चरणदास, वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई, संवत् १९६०
भस्मावृत०	भस्मावृत चिनगारी, यशपाल, विप्लव कार्यालय लखनऊ, १९४६ ई०
भा० इ० रू०	भारतीय इतिहास की रूपरेखा, जयचंद्र विद्यालंकार, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, प्र० सं०, १९३३ ई०
भा० प्रा० लि०	भारतीय प्राचीन लिपिमाला, गौरीशंकर हीराचंद ओझा, इतिहास कार्यालय, राज मेवाड़, प्र० सं०, १९५१ वि०

भारत०	भारतभारती, मैथिलीशरण गुप्त, साहित्यसदन, चिरगांव, झाँसी, नवम् सं० ।
भारत० नि० भा० भू०,	भारत भूमि और उसके निवासी, जयचंद्र विद्यालंकार, रत्नाश्रम, आगरा, द्वि० सं०, १९८८ वि०
भारतीय०	भारतीय राज्य और शासनविधान
भारतेंदु ग्रं०	भारतेंदु ग्रंथावली [४ भाग], संपा० ब्रजरत्नदास, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
भा० शिक्षा	भारतीय शिक्षा, राजेंद्रप्रसाद, आत्माराम ऐंड संस, दिल्ली, १९५३ ई०
भाषा शि०	भाषा शिक्षण, सीताराम चतुर्वेदी
भिखारी ग्रं०	भिखारीदास ग्रंथावली [दो भाग], सं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
भीखा श०	भीखा शब्दावली
भूषण ग्रं०	भूषण ग्रंथावली, सं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, साहित्य सेवक कार्यालय, काशी, प्र० सं०
भूषण (शब्द०)	कवि भूषण त्रिपाठी
भोज० भा० सा०	भोजपुरी भाषा और साहित्य, डा० उदयनारायण तिवारी, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, प्र० सं०
मति० ग्रं०	मतिराम ग्रंथावली, कृष्णबिहारी मिश्र, गंगा पुस्तक माला, लखनऊ, द्वि० सं०
मतिराम (शब्द०)	कवि मतिराम त्रिपाठी
मधु०	मधुकलश, हरिवंश राय बच्चन, सुषमा निकुंज, इलाहाबाद, द्वि० सं०, १९३९
मधुज्वाल	मधुज्वाल, सुमित्रानंदन पंत, भारती भंडार, इलाहाबाद, द्वि० सं०, १९३९ ई०
मधु मा०	मधुमालती वार्ता, संपा० माताप्रसाद गुप्त, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०
मधुशाला	मधुशाला, हरिवंश राय बच्चन, सुषमा निकुंज, इलाहाबाद, प्र० सं०
मन विरक्त०	मन विरक्त करन गुटका सार (चरणदास) चरणदास
मनु०	मनुस्मृति
मलूक० (शब्द०)	मलूकदास
महा०	महाराणा का महत्व, जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार, इलाहाबाद, चतुर्थ सं०
महाभारत (शब्द०)	महाभारत
माधव०	माधवनिदान, लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई चतुर्थ सं०
माधवानल०	माधवानल कामकंदला, बोधा कवि, नवल किशोर प्रेस, लखनऊ, प्र० सं०, १८६४ ई०
मान०	मानसरोवर, प्रेमचंद, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद
मानव०	मानवसमाज, राहुल सांकृत्यायन, किताब महल, इलाहाबाद, द्वि० सं०
मानस	रामचरितमानस, संपा० शंभुनारायण चौबे, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
मिट्टी०	मिट्टी और फूल, नरेंद्र शर्मा, भारती भंडार, इलाहाबाद, प्र० सं०, १९९९ वि०
मिलन०	मिलनयामिनी, हरिवंश राय बच्चन, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, प्र० सं०, १९५० ई०
मुंशी अभि० ग्रं०	मुंशी अभिनंदन ग्रं० संपा० डा० विश्वनाथप्रसाद, हिंदी तथा भाषा विज्ञान विद्यापीठ, आगरा विश्वविद्यालय, आगरा
मृग०	मृगनयनी , वृंदावन लाल वर्मा ,मयूर प्रकाशन, झाँसी
मैला०	मैला आँचल, फणीश्वर नाथ रेणु, समता प्रकाशन , पटना – ४ , प्र० सं०
मोहन०	मोहनविनोद, सं० कृष्णबिहारी मिश्र, इलाहाबाद लॉ जर्नल प्रेस, प्र० सं०
यशो०	यशोधरा, मैथिलीशरण गुप्त, साहित्य सदन, चिरगाँव, झाँसी, प्र०सं०
यामा	यामा, महादेवीवर्मा, किताबिस्तान, प्रयाग, प्र० सं०
युग०	युगवाणी, सुमित्रानंदन पंत, भारती भंडार, इलाहाबाद, प्र० सं०
युगपथ०	युगपथ ,, ,, ,, ,,
युगांत	युगांत, सुमित्रानंदन पंत, इंद्र प्रिंटिंग प्रेस, अल्मोड़ा, प्र० सं०
रंगभूमि	रंगभूमि, प्रेमचंद, गंगा ग्रंथागार, लखनऊ, प्र० सं०, १९८१ वि०
रघु० रू०	रघुनाथ रूपक गीताँरो, सं० महताबचंद्र खारैड़ ना० प्र० सभा०, काशी, प्र० सं०
रघु० दा० (शब्द०)	रघुनाथदास
रघुनाथ (शब्द०)	रघुनाथ
रघुराज (शब्द०)	महाराज रघुराजसिंह, रीवाँनरेश
रजत०	रजत शिखर, सुमित्रानंदनपंत, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, २००८ वि०
रज्जब०	रज्जब जी की बानी, ज्ञान सागर प्रेस, बंबई १९७५ वि०
रतन०	रतनहजारा, संपा० श्री जगन्नाथ प्रसाद श्रीवास्तव, भारतजीवन प्रेस, काशी, प्र० सं०, १८९२ ई०
रति०	रतिनाथ की चाची, नागार्जुन, किताब महल, इलाहाबाद, द्वि० सं०,१९५३ ई०
रत्न० (शब्द०)	रत्नसार
रत्नाकर	रत्नाकर [दो भाग], ना० प्र० सभा काशी, चतुर्थ और द्वि० सं०
रस०	रसमीमांसा, सं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, ना० प्र० सभा, काशी, द्वि सं०

रस क०	रसकलश, अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' हिंदी साहित्य कुटीर, बनारस, तृतीय सं०
रसखान०	रसखान और घनानंद, सं० बा० अमीरसिंह ना० प्र० सभा, द्वि० सं०
रसखान (शब्द०)	सैयद इब्राहिम
रस र०	रसरतन, संपा० शिवप्रसाद सिंह, ना० प्र० सभा वाराणसी, प्र० सं०
रसनिधि (शब्द०)	राजा पृथ्वीसिंह
रहीम०	रहीम रत्नावली
रहीम (शब्द०)	अब्दुर्रहीम खानखाना
राज० इति०	राजपूताने का इतिहास, गौरीशंकर हीराचंद ओझा, अजमेर, १९९७ वि०, प्र० सं०
रा० रू०	राजरूपक, संपा० पं० रामकर्ण, ना० प्र० सभा, प्र० सं०
रा० वि०	राजविलास, सं० मोतीलाल मेनारिया, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०
राज्यश्री	राज्यश्री, जयशंकर प्रसाद लीडर प्रेस, इलाहाबाद, सातवाँ सं०
राम चं०	संक्षिप्त रामचंद्रिका, सं० लाला भगवानदीन, ना० प्र० सभा, वाराणसी षष्ठ सं०
राम० धर्म०	रामस्नेह धर्मप्रकाश, संपा० मालचंद्र जी शर्मा, चौकसराम जी (सिंहथल) बड़ारामद्वारा, बीकानेर।
राम० धर्म० सं०	रामस्नेह धर्म संग्रह, सं० मालचंद्र जी शर्मा, चौकसराम जी (सिंहस्थल) बड़ारामद्वारा, वीकानेर।
रामरसिका०	रामरसिकावली [भक्तमाल]
रामानंद०	रामानंद की हिंदी रचनाएँ, संपा० पीतांबरदत्त बड़थ्वाल, ना० प्र० सभा, प्र० सं०
रामाश्व०	रामाश्वमेध, ग्रंथकार: मन्नालाल द्विज, त्रिपुरा भैरवी, वाराणसी, १९३९ वि०
रेणुका	रेणुका, रामधारी सिंह 'दिनकर', पुस्तकभंडार, लहेरिया सराय, पटना, प्र० सं०
रै० बानी	रैदास बानी, बेलवेडियर प्रेस इलाहाबाद
लक्ष्मणसिंह (शब्द०)	राजा लक्ष्मणसिंह
लल्लू (शब्द०)	लल्लू लाल
लहर	लहर, जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार, इलाहाबाद, पंचम सं०
लाल (शब्द०)	लालकवि (छत्रप्रकाशवाले)
वर्णरत्नाकर	वर्णरत्नाकर
विद्यापति	विद्यापति, सं० खगेंद्रनाथ मित्र, यूनाइटेड प्रेस लि०, पटना
विनय०	विनयपत्रिका, टी० पं० रामेश्वर भट्ट, इंडियन प्रेस लि०, प्रयाग, तृ० सं०
विशाख	विशाख, जयशंकर प्रसाद, लीडर प्रेस, प्रयाग, तृ० सं०
विश्राम (शब्द०)	विश्राम सागर
वीणा	वीणा, सुमित्रानंदन पंत, इंडियन प्रेस, लि० प्रयाग, द्वि० सं०
वेनिस (शब्द)	वेनिस का बाँका
वैशाली० या वै० न०	वैशाली की नगरवधू, चतुरसेन शास्त्री, गौतम बुकडिपो, दिल्ली प्र० सं०
वो दुनिया	वो दुनिया, यशपाल, विप्लव कार्यालय, लखनऊ, १९४१ ई०
व्यंग्यार्थ (शब्द०)	व्यंग्यार्थ कौमुदी
व्यास (शब्द०)	अंबिकादत्त व्यास
शं० दि० (शब्द०)	शंकरदिग्विजय
शंकर०	शंकरसर्वस्व, संपा० हरिशंकर शर्मा, गयाप्रसाद ऐंड संस, आगरा, प्र० सं०
शकु०	शकुंतला, मैथिलीशरण गुप्त, साहित्य सदन, चिरगाँव, झाँसी
शकुंतला	शकुंतला नाटक, अनु० राजालक्ष्मण सिंह, हिंदी साहित्य संमेलन, प्रयाग, चतु० सं०
शार्ङ्गधर सं०	शार्ङ्गधर संहिता, टी० सीताराम शास्त्री, मुंबई वैभव मुद्रणालय, सं० १९७१
शिखर०	शिखर वंशोत्पत्ति, सं० पुरोहित हरिनारायण, ना० प्र० सभा, प्र० सं०, सं० १९८५
शुक्ल० अभि० ग्रंथ	शुक्ल अभिनंदन ग्रंथ, मध्यप्रदेश हिंदी साहित्य संमेलन,
शृं० सत० (शब्द०)	शृंगार सतसई
शेर०	शेर ओ सुखन
शैली	शैली, करुणापति त्रिपाठी
श्यामा०	श्यामास्वप्न, सं० डा० श्रीकृष्णलाल, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
श्रीनिवास ग्रं०	श्री निवास ग्रंथावली, संपा० डा० श्रीकृष्णलाल, ना० प्र० सभा, प्र० सं०
संतति०	चंद्रकांता संतति, देवकी नंदन खत्री, वाराणसी
संत तुरसी०	संत तुरसीदास की शब्दावली, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद।
सं० दरिया, संत दरिया	संत कवि दरिया सं० धर्मेंद्र ब्रह्मचारी, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् पटना, प्र० सं०
संत र०	संत रविदास और उनका काव्य, स्वामी रामानंद शास्त्री, भारतीय रविदास सेवासंघ, हरिद्वार प्र० सं०
संतवाणी०, संत० सार०	संतवाणी-सार-संग्रह [२ भाग] बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद
संन्यासी	संन्यासी, इलाचंद्र जोशी, भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, प्र० सं०
संपूर्णा० अभि० ग्रं०	संपूर्णानंद अभिनंदन ग्रंथ, संपा० आचार्य नरेंद्र देव, ना० प्र० सभा, वाराणसी

स० दर्शन	समीक्षादर्शन, रामलाल सिंह, इंडियन प्रेस, प्रयाग, प्र० सं०
सबल (शब्द०)	सबलसिंह चौहान।
सभा० वि० (शब्द०)	सभाविलास
स० शास्त्र	समीक्षाशास्त्र, सीताराम चतुर्वेदी, अखिल भारतीय विक्रम परिषद्, काशी, प्र० सं०
स० सप्तक	सतसई सप्तक, सं० श्यामसुंदरदास, हिंदुस्तानी एकेडमी, प्रयाग, प्र० सं०
सहजो०	सहजो बाई की बानी, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, १६०८ वि०
साकेत	साकेत, मैथिलीशरण गुप्त, साहित्यसदन, चिरगाँव, झाँसी, प्र० सं०
सागरिका	सागरिका, ठा० गोपालशरण सिंह, लीडर प्रेस प्रयाग, प्र० सं०,
साम०	सामधेनी, रामधारी सिंह दिनकर, उदयाचल, पटना, द्वि० सं०
सा० दर्पण	साहित्यदर्पण, संपा० शालिग्राम शास्त्री, श्री मृत्युंजय औषधालय, लखनऊ, प्र० सं०
सा० लहरी,	साहित्यलहरी, सं० रामलोचन शरण बिहारी, पुस्तक भंडार, लहेरिया सराय, पटना, प्र० सं०
सा० समीक्षा	साहित्य समीक्षा, कालिदास कपूर, इंडियन प्रेस, प्रयाग
सुंदर० ग्रं०	सुंदर दास ग्रंथावली [दो भाग], सं० हरिनारायण शर्मा, राजस्थान रिसर्च सोसायटी, कलकत्ता, प्र० सं०
सुखदा	सुखदा, जैनेंद्रकुमार, पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली, प्र० सं०
सुधाकर (शब्द)	सुधाकर द्विवेदी
सुजान०	सुजानचरित (सूदनकृत), संपा० राधाकृष्ण, नागरीप्रचारिणी सभा, काशी, प्र० सं०, १६०२
सुनीता	सुनीता, जैनेंद्रकुमार, साहित्यमंडल, बाजार सीताराम, दिल्ली, प्र० सं०।
सूत०	सूत की माला, पंत और बच्चन, भारती भंडार, इलाहाबाद, प्र० सं०
सूदन (शब्द०)	सूदन कवि (भरतपुरवाले)
सूर०	सूर सागर, [दो भाग], ना० प्र० सभा, द्वितीय सं०
सूर० (शब्द०)	सूरदास
सूर (राधा०)	सूरसागर, संपा० राधाकृष्ण दास, वेंकटेश्वर प्रेस, प्रथम सं०
सेवासदन	सेवासदन, प्रेमचंद, हिंदी पुस्तक एजेंसी, कलकत्ता, द्वि सं०

सैर कु०	सैर कुहसार, पं० रतननाथ 'सरशार' नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, च० सं०, १६३४ ई०
स्कंद०	स्कंदगुप्त, जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, प्र० सं०
स्वर्ण०	स्वर्ण किरण, सुमित्रानंदन पंत, लीडर प्रेस, प्रयाग, प्र० सं०
हंस०	हंसमाला, नरेंद्र शर्मा, भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, प्र० सं०
हकायके०	हकायके हिंदी, ले० मीर अब्दुल वाहिद, संपा० 'रुद्र' काशिकेय, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
हनुमान (शब्द)	हनुमन्नाटक
हम्मीर०	हम्मीरहठ, संपा० जगन्नाथदास रत्नाकर, इंडियन प्रेस लि०, प्रयाग
ह० रासो] हम्मीर रा०]	हम्मीर रासो, संपा० डा० श्यामसुंदर दास ना० प्र० सभा काशी, प्र० सं०
हरिदास (शब्द०)	स्वामी हरिदास
हरिश्चंद्र (शब्द०)	भारतेंदु हरिश्चंद्र
हरी घास०	हरी घास पर क्षण भर, अज्ञेय, प्रगति प्रकाशन, नई दिल्ली, १६४६ ई०
हर्ष०	हर्षचरित : एक सांस्कृतिक अध्ययन, वासुदेव शरण अग्रवाल, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् पटना, प्र० सं०, १६५३ ई०
हालाहल	हालाहल, हरिवंश राय बच्चन, भारती भंडार प्रयाग, १६४६ ई०
हिंदी आ०	हिंदी आलोचना,
हिंदी आं० प्र०	हिंदी काव्य पर आंग्ल प्रभाव, रवींद्र सहाय वर्मा, पद्मजा प्रकाशन, कानपुर, प्र० सं०
हिं० क० का०	हिंदी कवि और काव्य, गणेशप्रसाद द्विवेदी, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, १६३६ ई०
हिं० प्रेमा०] हिंदी प्रेमा०]	हिंदी प्रेमाख्यानक काव्यसंग्रह; संपा० डा० कमल कुलश्रेष्ठ, चौधरी मानसिंह प्रकाशन, कचहरी रोड
हिं० प्र० चि०	हिंदी काव्य में प्रकृतिचित्रण, किरण कुमारी गुप्त, हिंदी साहित्य संमेलन, प्रयाग
हिं० सा० भू०	हिंदी साहित्य की भूमिका, हजारीप्रसाद द्विवेदी, हिंदी ग्रंथ रत्नाकर कार्यालय, बंबई, तृ० सं० १६४८
हिंदु० सभ्यता	हिंदुस्तान की पुरानी सभ्यता, बेनीप्रसाद, हिंदुस्तान एकेडमी, प्रयाग, प्र० सं०
हिम कि०	हिम किरीटिनी, माखनलाल चतुर्वेदी, सरस्वती प्रकाशन मंदिर, इलाहाबाद, तृ० सं०
हिम त०	हिमतरंगिणी, माखनलाल चतुर्वेदी, भारती भंडार, लीडर प्रेस इलाहाबाद, प्र० सं०

हिम्मत०	हिम्मतबहादुर विरुदावली, लाला भगवानदीन, ना० प्र० काशी, सभा, द्वि० सं०	हुमायू	हुमायूँनामा, अनु० ब्रजरत्नदास, ना० प्र० सभा, वाराणसी, द्वि० सं०
हिल्लोल	हिल्लोल, शिवमंगल सिंह 'सुमन', सरस्वती प्रेस, बनारस, द्वि० सं०		

[व्याकरण, व्युत्पत्ति आदि के संकेताक्षरों का विवरण]

अं०	अंग्रेजी	दे०	देखिए
अ०	अरबी	देश०	देशज
अनु०	अनुकरण शब्द	देशी०	देशी
अनुध्व०	अनुध्वन्यात्मक	धर्म०	धर्मशास्त्र
अप०	अपभ्रंश	नाम०	नामाधातु
अर्द्ध मा०	अर्द्धमागधी	ना० धा०	नामधातुज क्रिया
अल्पा०	अल्पार्थक	ने०	नेपाली
अव०	अवधी	न्याय	न्याय या तर्कशास्त्र
अव्य०	अव्यय	पं०	पंजाबी
इब०	इबरानी	परि०	परिशिष्ट
उ०	उदाहरण	पा०	पाली
उच्चा०	उच्चारण सुविधार्थ	पुं०	पुंलिंग
उड़ि०	उड़िया	पुर्त०	पुर्तगाली
उप०	उपसर्ग	पु० हिं०	पुरानी हिंदी
उभ०	उभयलिंग	पू० हिं०	पूर्वी हिंदी
एकव०	एक वचन	पृ०	पृष्ठ
कहावत	कहावत	प्रत्य०	प्रत्यय
काव्यशास्त्र	काव्यशास्त्र	प्र०	प्रकाशकीय या प्रस्तावना
[को०], (को०)	अन्य कोश	प्रा०	प्राकृत
कोंक०	कोंकणी	प्रे०	प्रेरणार्थक रूप
क्रि०	क्रिया	फ०	फरासीसी भाषा
क्रि० अ०	क्रिया अकर्मक	फकीर०	फकीरों की बोली
क्रि० प्र०	क्रिया प्रयोग	फा०	फारसी
क्रि० वि०	क्रिया विशेषण	बंग०	बंगाली भाषा
क्रि० स०	क्रिया सकर्मक	बरमी०	बरमी भाषा
क्व०	क्वचित्	बहुव०	बहुवचन
गीत०	लोकगीत	बुं० खं०	बुंदेल खंड की बोली
गुज०	गुजराती	बोल०	बोलचाल
ची०	चीनी भाषा	भाव०	भाववाचक संज्ञा
छं०	छंद	भू०	भूमिका
जापा०	जापानी	भू० कृ०	भूत कृदंत
जावा०	जावा द्वीप की भाषा	मरा०	मराठी
जी०, जीवन०	जीवन चरित	मल०	मलयाली या मलयालम भाषा
ज्या०	ज्यामिति	मला०	मलायम भाषा
ज्यो०	ज्योतिष	मि०	मिलाइए
डिं०	डिंगल	मुसल०	मुसलमानों द्वारा प्रयुक्त
त०	तमिल	मुहा०	मुहावरा
तर्क०	तर्कशास्त्र	यू०	यूनानी
तु०	तुर्की	यौ०	यौगिक
दू०	दूहा या दूहला	राज०	राजस्थानी
		लश०	लशकारी

ा०	लाक्षणिक	सर्व०	सर्वनाम
ै०	लैटिन	स्पे०	स्पेनी भाषा
ा० कृ०	वर्तमान कृदंत	स्त्रि०	स्त्रियों द्वारा प्रयुक्त
वे०	विशेषण	स्त्री०	स्त्रीलिंग
वे० द्वि० मू०	विषमद्विरुक्तिमूलक	हिं०	हिंदी
ै०	वैदिक	ⓟ	काव्यप्रयोग, पुरानी हिंदी
या०	व्याकरण	>	व्युत्पन्न
ाब्द	शब्दसागर	†	प्रांतीय प्रयोग
ं०	संस्कृत	‡	ग्राम्य प्रयोग
ंयो०	संयोजक अव्यय	√	धातुचिह्न
ंयो क्रि०	संयोजक क्रिया	*	संभाव्य व्युत्पत्ति
ा०	सकर्मक		
ाधु०	सधुक्कड़ी भाषा		

हिंदी शब्दसागर

अ

अ— संस्कृत और हिंदी वर्णमाला का पहला अक्षर। इसका उच्चारण कंठ से होता है इससे यह कंठ्य वर्ण कहलाता है। व्यंजनों का उच्चारण इस अक्षर की सहायता के बिना अलग नहीं हो सकता इसी से वर्णमाला में क, ख, ग आदि वर्ण अकार-संयुक्त लिखे और बोले जाते हैं।

विशेष——अक्षरों में यह सबसे श्रेष्ठ माना जाता है। उपनिषदों में इसकी बड़ी महिमा लिखी है। गीता में श्रीकृष्ण ने कहा है——'अक्षराणामकारोस्मि'। वास्तव में कंठ खुलते ही बच्चों के मुख से यह अक्षर निकलता है। इसी से प्रायः सब वर्णमालाओं में इसे पहला स्थान दिया गया है। वैयाकरणों ने मात्राभेद से इसे तीन प्रकार का माना है, ह्रस्व जैसे—अ; दीर्घ जैसे——आ; प्लुत जैसे—अ३। इन तीनों में से प्रत्येक के दो दो भेद माने गए हैं; सानुनासिक और निरनुनासिक। सानुनासिक का चिह्न चंद्रबिंदु ँ है। तंत्रशास्त्र के अनुसार यह वर्णमाला का पहला अक्षर इसलिये है कि यह सृष्टि उत्पन्न करने के पहले सृष्टिकर्ता की अकुल अवस्था को सूचित करता है।

अंक— **संज्ञा पुं०** [**सं० अङ्क**] [**वि० अङ्कित, अङ्कनीय, अङ्क्य**] १ संख्या। अदद। २ संख्या का चिह्न, जैसे १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९। उ०—रामनाम को अंक है सब साधन है सून। —तुलसी ग्रं०, पृ० १०४। ३ चिह्न। निशान। छाप। आँक। उ०——सीय राम पद अंक बराए। लखन चलहिं मग दाहिन लाए। —मानस, २।१२३। ४. दाग। धब्बा। उ०—जहाँ यह श्यामता को अंक है मयंक में। —भिखारी ग्रं०, भा० १, पृ० ४६। ५. काजल की बिंदी जिसे नजर से बचाने के लिये बच्चों के माथे पर लगा देते हैं। डिठौना। अनखौं। ६. अक्षर। उ०—अद्भुत रामनाम के अंक। ——सूर०, १।६०। ७. लेख। लिखावट। उ०——खंडित करने को भाग्य अंक। देखा भविष्य के प्रति अशंक। ——अनामिका, पृ० १२३। ८. भाग्य। लिखन। किस्मत। उ०— जो बिधना ने लिखि दियो छठी रात को अंक। राई घटै न तिल बढ़ै रहु रे जीव निसंक। —किरसा०, पृ० ८०। ९ गोद। क्रोड। कोली। उ०—जिस पृथिवी से निकली सदोष वह सीता—अंक में उसी के आज लीन। ——तुलसी०, पृ० ४४। १०. बार। दफा। मर्तबा। उ०——एकहु अंक न हरि भजेसि रे सठ सूर गँवार। —सूर (शब्द०)। ११. नाटक का एक अंश जिसकी समाप्ति पर जवनिका गिरा दी जाती है। १२. दस प्रकार के रूपकों में से एक जिसकी इतिहासप्रसिद्ध कथा में नाटककार उलटफेर कर सकता है। इसके रसयुक्त आख्यान में प्रधान रस करुण और एक ही अंक होता है। इसकी भाषा सरल और पद छोटा होना चाहिए। १३. किसी पत्र या पत्रिका की कोई सामयिक प्रति। १४. नौ की संख्या (क्योंकि अंक नौ ही तक होते हैं)। १५. एक की संख्या। को०)। १६. एक संख्या। शून्य (को०)। १७ पाप। दुःख। १८. शरीर। अंग। देह। जैसे——'अंकधारिणी' में 'अंक'। १९. बगल। पार्श्व। जैसे—— 'अंकपरिवर्तन' में 'अंक'। २०. कटि। कमर। उ०——सहं सूर सामंत बंधेति अंकं। ——पृ० रा०, ५१।१२०। २१. वक्र रेखा। उ०——भृकुटि अंक बंकुरिय। ——पृ० रा०, ६१।२४५७। २२. हुक या हुक जैसा टेढ़ा औजार (को०)। २३. मोड़। झुकाव (को०)। २४. कंठ। गला। गर्दन। उ०—अंबरमाला इक्क अंक पहिराइ वह्यौ इह। ——पृ० रा०, ७।२६। २५. विभूषण (को०)। २६ स्थान (को०) २७. चित्रयुद्ध। नकली लड़ाई (को०)। २८. प्रकरण (को०)। २९ पर्वत (को०)। ३०. रथ का एक अंश या भाग (को०)। ३१. पशु को दागने का चिह्न (को०)। ३२. सहस्थिति (को०)।

मुहा०——अंक देना = गले लगाना। आलिंगन देना। अंक भरना = हृदय से लगाना। लिपटाना। गले लगाना। दोनों हाथों से घेरकर प्यार से दबाना। परिरंभण करना। आलिंगन करना। उ०——उठी परजंक ते मयंक बदनी को लखि, अंक भरिबे को फेरि लाल मन ललकै। —भिखारी ग्रं०, भा० १ पृ० २४५। **अंक मिलाना**=दे० 'अंक भरना'। उ०- नारी नाम बहिन जो आही। तासो कैसे अंक मिलाही। ——कबीर सा० पृ० १०१०। **अंक लगना** = दे० 'अंक देना'। **अंक लगाना** = दे० 'अंक भरना।' उ०—बावरी जो पै कलंक लग्यौ तौ निसंक ह्वै क्यों नहिं अंक लगावती। ——इति०, पृ० २६३। **अंक में समाना** = लीन होना। सायुज्य मुक्ति प्राप्त करना। उ०——जैसे कनिका काटि कीआ है राई। ऐसे हरिजन अंकि समाई। ——प्राण०, पृ० १५८।

अंकक——**संज्ञा पुं०** [सं० **अङ्कक**] [**स्त्री० अङ्किका**] १. गिनती करनेवाला। २. हिसाब रखनेवाला। ३. चिह्न करनेवाला।

अंककरण——**संज्ञा पुं०** [**सं० अङ्ककरण**] चिह्न या छाप लगाने का कार्य। अंकन [को०]।

अंककार——**संज्ञा पुं०** [**सं० अङ्ककार**] वह योद्धा जिसकी हार या जीत उसके पक्ष की हार जीत का निर्णय कराए।

अंकगणित--संज्ञा पुं० [सं० अङ्कगणित] संख्याओं का हिसाब। संख्या की मीमांसा। वह विद्या जिससे संख्याओं का जोड़, घटाव, गुणा, भाग आदि किया जाता है। हिसाब।

अंकगता--वि० स्त्री० [अङ्क+गता] पार्श्व में स्थित। उ०--अंकगता तुम करो विश्वमंगल सदा।--पार्वती, पृ० १४३।

अंकज--संज्ञा पुं० [सं० अङ्कज] पुत्र। संतान। उ०--बिधि अंकज उपदेस दिय रघुपति गुन जस गाव।--प० रा०, ११२।

अंकतंत्र--संज्ञा पुं० [सं० अङ्कतन्त्र] संख्याओं की विद्या। अंकगणित और बीजगणित।

अंकति--संज्ञा पुं० [सं० अङ्कति] १. ब्रह्मा। २. वायु। ३. अग्नि। ४. अग्निहोत्री [को०]।

अंकधारण--संज्ञा पुं० [सं० अङ्कधारण] तप्त मुद्रा के चिह्नों का दगवाना। शंख, चक्र, त्रिशूल आदि के सांप्रदायिक चिह्न गरम धातु से छपवाना।

क्रि० प्र०--करना।

अंकधारणा--संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्कधारणा] शरीर या अंक को धारण करने की स्थिति [को०]।

अंकधारिणी--वि० स्त्री० [सं० अङ्कधारिणी] १. शरीर में धारण करनेवाली। उ०--असंख्य पत्रावलि अंकधारिणी।--प्रिय प्र०, पृ० १०२। २. तप्त मुद्रा के चिह्न धारण करनेवाली। दे० 'अंकधारी'।

अंकधारी--वि० [सं० अङ्कधारिन्] [स्त्री० अङ्कधारिणी] तप्त मुद्रा के चिह्न धारण करनेवाला। शंख, चक्र, त्रिशूल आदि के सांप्रदायिक चिह्नों को गरम धातु से अपने शरीर पर छपवानेवाला।

अंकन--संज्ञा पुं० [सं० अङ्कन] [वि० अङ्कनीय, अङ्कित, अङ्क्य] १. चिह्न करना। निशान करना। २. लेखन। लिखना। जैसे--'चित्रांकन', 'चरित्रांकन' में 'अंकन'। ३. शंख, चक्र, गदा, पद्म या त्रिशूल आदि के चिह्न गरम धातु से बाहु पर छपवाना।

विशेष--वैष्णव लोग शंख, चक्र, गदा, पद्म आदि विष्णु के चार आयुधों के चिह्न छपवाते हैं और दक्षिण के शैव लोग त्रिशूल या शिवलिंग के। रामानुज संप्रदाय के लोगों में इसका चलन बहुत है। द्वारिका इसके लिये प्रसिद्ध स्थान है।

४. गिनती करना। ५. श्रेणीनिर्धारण (को०)।

क्रि० प्र०--करना।--होना।

अंकना(पु)--क्रि० स० [सं० अङ्कन] १. निश्चित करना। ठहराना। आँकना। उ०--इहै बात साँची सदा देव अंकी।--पृ० रा०, २।२११। २. ढकना। मुद्रित करना। मूँदना। उ०--समभि दासि सिरवर तिन ढंक्यो। करपल्लव तिन द्रग बर अंक्यो।--पृ० रा०, ६१।७१६।

अंकनीय--वि० [सं० अङ्कनीय] १. अंकन के योग्य। चिह्न करने योग्य। २. छापने लायक। ३. चित्रण करने योग्य।

अंकपट्टी--संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्क+हिं० पट्टी] काठ की लंबोतरी चिकनी पटिया जिसपर बालक आरंभ में अक्षर लिखना सीखते हैं। पाटी। उ०--यहीं पर भगवान् कृष्ण अंकपट्टी पर लिखना सीखे थे।--प्रेमघन०, भा० १, पृ० १३४।

अंकपरिवर्तन--संज्ञा पुं० [सं० अङ्कपरिवर्तन] १. एक ओर से दूसरी ओर पीठ करके सोना। करवट लेना। करवट बदलना। करवट फिरना। २. गोद के बच्चे को एक बगल से दूसरी बगल करना। ३. एक अंक की समाप्ति के बाद दूसरे अंक का आरंभ (नाटक)।

क्रि० प्र०--करना।--होना।

अंकपलई--संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्कपल्लव] वह विद्या जिसमें अंकों को अक्षरों के स्थान पर रखते हैं और उनके समूह से उसी प्रकार अभिप्राय निकालते हैं जैसे शब्दों और वाक्यों से। इसमें इकतीस अक्षर लेकर उनकी संख्याएँ नियत कर दी गई हैं। जैसे १ से 'प' अक्षर समझते हैं।

अंकपालिका--संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अंकपाली'।

अंकपाली--संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्कपाली] १. दाई। धाय। २. आलिंगन (को०) ३. वेदिका नाम का गंधद्रव्य (को०)।

अंकपाश--संज्ञा पुं० [सं० अङ्कपाश] गणित ज्योतिष में संख्याओं को विशिष्ट ढंग से रखने की एक क्रिया [को०]।

अंकमाल--संज्ञा पुं० [सं० अङ्क+माला] आलिंगन। भेंट। परिरंभण। गले लगना। उ०--भगति हेत भगता के चले, अंकमाल ले बीठल मिले।--रै० बानी, पृ० ५७।

मुहा०--अंकमाल देना = आलिंगन करना। भेंटना। गले लगाना। उ०--आजु आए जानि सब अंकमाल देत हैं।--तुलसी ग्रं०, पृ० १७०।

अंकमालिका--संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्कमालिका] १. आलिंगन। भेंट। २. छोटा हार। छोटी माला।

अंकमुख--संज्ञा पुं० [सं० अङ्कमुख] नाटक का आरंभिक अंश जिसके द्वारा सभी अंक तथा बीज रूप में कथानक सूचित किया जाता है, जैसे--भवभूति के मालतीमाधव नाटक का प्रथम अंक (सा० दर्पण)।

अंकविद्या--संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्कविद्या] दे० 'अंकगणित'।

अंकशायी--वि० पुं० [सं० अङ्कशायिन्] [स्त्री० अङ्कशायिनी] अंक या गोद में सोनेवाला। उ०--अंकशायी तुम बनोगे दूर होंगे नैश संशय।--क्वासि, पृ० ११६।

अंकस[1]--संज्ञा पुं० [सं० अङ्कस] १. शरीर। देह। जिस्म। तन २. चिह्न। निशान [को०]।

अंकस[2]--वि० चिह्नयुक्त [को०]।

अंकांक--संज्ञा पुं० [सं० अङ्काङ्क] जल। पानी [को०]।

अंकावतार--संज्ञा पुं० [सं० अङ्कावतार] नाटक के किसी अंक के अंत में कथा को विच्छिन्न किए बिना आगामी अंक के आरंभिक दृश्य तथा पात्रों की सूचना या आभास देनेवाला अंश (सा० दर्पण)।

क्रि० प्र०--होना।

अंकास्य--संज्ञा पुं० [सं० अङ्कास्य] अंक के अंत में प्रविष्ट किसी पात्र के द्वारा विच्छिन्न अतीत कथा का आगामी संसूचक अंश (सा० दर्पण, दश०)।

अंकिका--संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्किका] १. चिह्न रखनेवाली। १. गिनती करनेवाली। ३. हिसाब रखनेवाली।

अंकित—वि० [सं० अङ्कित] १. निशान किया हुआ। दागदार। चिह्नित। उ०—भूमि बिलोकु राम पद अंकित बन बिलोकु रघुबर बिहार थलु।—तुलसी ग्रं०, पृ० ४६६। २. लिखित। खचित। उ०—तब देखी मुद्रिका मनोहर। राम नाम अंकित अति सुंदर। —मानस, ५।१३। ३. वर्णित। उ०—सब गुन रहित कुकबि कृत बानी। राम नाम जस अंकित जानी।—मानस, १।१०। ४. गिना हुआ (को०)।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

अंकिनी[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्किनी] १. चिह्नों का समूह। चिह्नराशि। २. चिह्नयुक्त स्त्री [को०]।

अंकिनी[2]—वि० अंकन करनेवाली। उ०—होकर भी वह चित्र अंकिनी आप रंकिनी आशा है।—साकेत, पृ० ३६६।

अंकिल†—संज्ञा पुं० [सं० अङ्क + हिं० इल (प्रत्य०)] बछड़ा जिसे हिंदू वृषोत्सर्ग में दागकर छोड़ देते हैं। दागा हुआ साँड़। साँड।

अंकी—संज्ञा पुं० [सं० अङ्की] एक प्रकार का मृदंग [को०]।

अंकुट—संज्ञा पुं० [सं० अङ्कुट] कुंजी। ताली [को०]।

अंकुडक—संज्ञा पुं० [सं० अङ्कुडक] १. कुंजी। ताली। २. नागदंत। खूँटी [को०]।

अंकुर[1]—संज्ञा पुं० [सं० अङ्कुर] [वि० अङकुरित, हिं० अंकुरना] १. अँखुआ। गाभ। अंगुसा। उ०—पाइ कपट जल अंकुर जामा। —मानस, २।२३। २. डाभ। कल्ला। कनखा। कोपल। आँख। ३. यव का नया नया अँखुआ जो मांगलिक होता है। उ०— अच्छत अंकुर रोचन लाजा। मंजुल मंजरि तुलसि बिराजा। —मानस, १।३४६।

क्रि० प्र०—आना। उगना।—जमना।—निकलना।—फूटना। —फोड़ना।—फेंकना।—लेना।

४. कली। ५. संतति। संतान। उ०—(क) 'हमारे नष्ट कुल में ये एक अंकुर बचा है, इससे हमारा वंश चलेगा।'—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० १४६। (ख) ये अंकुर हितकर कलश पयोधर पावन। —साकेत, पृ० २०३। ६. नोक। ७. जल। पानी। ८. रुधिर। रक्त। खून। ९. रोम। रोआँ।

अंकुर[2]—संज्ञा पुं० [फा० अंगूर] मांस के बहुत छोटे लाल लाल दाने जो घाव भरते समय उत्पन्न होते हैं। भराव। अंगूर।

अंकुरक—संज्ञा पुं० [सं० अङ्कुरक] घोंसला। खोता [को०]।

अंकुरण—संज्ञा पुं० [सं० अङ्कुरण] अंकुर निकलना। बीज आदि का अंकुरयुक्त होना [को०]।

अंकुरना—क्रि० अ० [सं० अङ्कुरण] अंकुर फोड़ना। उगना। जमना। निकलना। पैदा होना। उत्पन्न होना। उ०—उर अंकुरेउ गर्ब तरु भारी।—मानस, १।२१९।

अंकुराना—क्रि० अ० दे० 'अंकुरना'।

अंकुरित—वि० [सं० अङ्कुरित] १. जिसमें अंकुर हो गया हो। अँखुआ आया हुआ। उगा हुआ। जमा हुआ। उ०—सृष्टि बीज अंकुरित प्रफुल्लित सफल हो रहा हरा भरा।—कामायनी, पृ० १८२। २. उत्पन्न। निकला हुआ। उ०—अंकुरित तरु पात उकठि रहे जे गात, बनबेली प्रफुलित कलिनी कहर के।—सूर०, १०।३०।

क्रि० प्र०—करना।

अंकुरितयौवना—वि० [सं० अङ्कुरितयौवना] वह बालिका जिसके यौवनावस्था के कुच आदि चिह्न प्रकट हो गए हों। किशोरी।

अंकुरी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० अंकुर + ई] चने की भिगोई हुई घुँघनी।

अंकुल—संज्ञा पुं० [सं० अङ्कुर] दे० 'अंकुर'—१। उ०—अंकुल बीज नसाय कै भए बिदेही थान।—कबीर बी०, पृ० १३। (ख) बीज बिन अंकुल पेड़ बिनु तरिवर, बिनु फूले फल फरिया। —कबीर बी०, पृ० ३५।

अंकुश—संज्ञा पुं० [सं० अङ्कुश] १. एक प्रकार का छोटा शस्त्र या टेढ़ा काँटा जिसे हाथी के मस्तक में गोदकर महावत उसे चलाता या हाँकता है। हाथी को हाँकने का दोमुहाँ काँटा या भाला जिसका एक फल झुका होता है। आँकुस। गजबाग। सृणि।

क्रि० प्र०—देना।—मारना।—लगाना।

२. प्रतिबंध। रोक। दबाव। नियंत्रण। जैसे, अंकुश में रखना = प्रतिबंध में रखना। ३. अंकुश के आकार की हाथ पैर की रेखा। उ०—अंकुश बरछी शक्ति पबि गदा धनुष असि तीर। आठ शस्त्र को चिह्न यह धारत पद बलबीर।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० २१।

अंकुशग्रह—संज्ञा पुं० [सं० अङ्कुश ग्रह] महावत। हाथीवान। निषादी। फीलवान।

अंकुशदंता—संज्ञा पुं० [सं० अङ्कुशदन्त] एक प्रकार का हाथी जिसका एक दाँत सीधा और दूसरा पृथिवी की ओर झुका रहता है। यह अन्य हाथियों से बलवान् और क्रोधी होता है तथा झुंड में नहीं रहता। इसे गुंडा भी कहते हैं।

अंकुशदुर्धर—संज्ञा पुं० [सं० अङ्कुशदुर्धर] अंकुश से भी जल्दी वश में न आनेवाला मतवाला हाथी। मत्त हाथी।

अंकुशधारी—संज्ञा पुं० [सं० अङ्कुशधारी] महावत। फीलवान [को०]।

अंकुशमुद्रा—संज्ञा स्त्री० [सं० अङकुशमुद्रा] तंत्र शास्त्र में अंगुलियों को अंकुश के आकार की बनाई आकृति [को०]।

अंकुशा—संज्ञा स्त्री० [सं० अङकुशा] २४ जैन देवियों में एक। चौदहवें तीर्थंकर श्री अनंतनाथ की शासनदेवी का नाम [को०]।

अंकुशित—वि० [सं० अङकुशित] अंकुश के प्रयोग द्वारा आगे बढ़ाया हुआ [को०]।

अंकुशी[1]—वि० [सं० अङकुशी] १. अंकुशवाला। अंकुश से युक्त। २. अंकुश से वश में करनेवाला [को०]।

अंकुशी[2]—संज्ञा स्त्री० दे० 'अंकुशा'।

अंकुस[1]—संज्ञा पुं० [सं० अङकुश; प्रा० अंकुस] १. दे० 'अंकुश'[1]। उ०—महामत्त गजराज कहुँ बस कर अंकुस खर्ब।—मानस, १।२५६।

मुहा०—अंकुस देना = ठेलना। जबरदस्ती करना। उ०—क्रोध गजपाल के ठठकि हाथी रह्यो देत अंकुस मसकि कह सकान्यो। —सूर०, १०।३०५४।

२. दे० 'अंकुश'-२। उ०—कुल अंकुश आरज पथ तजि के लाज सकुच दई डेरै। सूर स्याम कैं रूप लुभाने कैसेहुँ फिरत न फेरे।—सूर०, (परि०) २, पृ० ७४।

३. दे० 'अंकुश' ३.। उ०—याको सेवक चतुरतर गननायक सम होइ। या हित अंकुस चिह्न हरि चरनन सोहत सोइ।—भारतेंदुग्रं०, भा० २, पृ० ८।

अंकुसा--संज्ञा पुं० [सं० अङ्कुश] एक प्रकार का अस्त्र। उ०--सूल अंकुसा छूरीं सुधारी तिष्ष कुठारी।--सुजान०, पृ० १५७।

अंकूर--संज्ञा पुं० [सं० अङ्कूर] दे० 'अंकुर'। उ०--(क) तब भा पुनि अंकूर, दीपक सिरजा निरमला।--जायसी (शब्द०)। (ख) सौ सामंत प्रमान, उग्गि अंकूर बीर रस।--पृ० रा०, ३१।६३।

अंकूरी(पु)--वि० [सं० अङ्कूर + ई (प्रत्य०)] अंकुरवाला। ज्ञान के अंकुर-वाला (पूर्वजन्म के संस्कार से)। उ०--अंकूरी जिव मेटे निज गेहा। नूबा नाम जो प्रथम सनेहा।--कबीर सा०, पृ० ८१।

अंकूलना(पु)--क्रि० अ० [सं० अङ्कुरण, हिं० अँकुरना] जनमना। पैदा होना। उ०--सालिग्राम गंडक अंकूला। पाहन पूजत पंडित भूला।--कबीर सा०, पृ० १८।

अंकूष--संज्ञा पुं० [सं० अङ्कूष] १. अंकुश। २. नेवले की जाति का एक जानवर। घूस [को०]।

अंकोट--संज्ञा पुं० [सं० अङ्कोट] दे० 'अंकोल'।

अंकोटक--संज्ञा पुं० [सं० अङ्कोटक] दे० 'अंकोल'।

अंकोल--संज्ञा पुं० [सं० अङ्कोल] एक पेड़ जो सारे भारतवर्ष में प्रायः पहाड़ी जमीन पर होता है।

विशेष--यह शरीफे के पेड़ से मिलता जुलता है। इसमें बेर के बराबर गोल फल लगते हैं जो पकने पर काले हो जाते हैं। छिलका हटाने पर इसके भीतर बीज पर लिपटा हुआ सफेद गूदा होता है जो खाने में कुछ मीठा होता है। इस पेड़ की लकड़ी कड़ी होती है और छड़ी आदि बनाने के काम में आती है। इसकी जड़ की छाल दस्त लाने, वमन कराने, कोढ़ और उपदंश आदि चर्मरोगों को दूर करने तथा सर्प आदि विषैले जंतुओं के विष को हटाने में उपयोगी मानी जाती है।

पर्या०--अंकोटक। अंकोट। ढेरा। अकोला।

अंकोलसार--संज्ञा पुं० [सं० अङ्कोलसार] अंकोल के वृक्ष से तैयार किया गया विष [को०]।

अंकोलिका--संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्कोलिका] आलिगन। अँकवार [को०]।

अंक्य१--वि० [सं० अङ्क्य] १. चिह्न करने योग्य। निशान लगाने लायक। अंकनीय। २. गिनने योग्य। [को०]।

अंक्य२--संज्ञा पुं० १. दागने योग्य अपराधी।

विशेष--प्राचीन काल में राजा लोग विशेष प्रकार के अपराधियों के मस्तक पर कई तरह के चिह्न गरम लोहे से दाग देते थे। इसी से आजकल भी किसी घोर अपराधी को, जो कई बेर सजा पा चुका हो, 'दागी' कहते हैं।

२. मृदंग, तबला, पखावज आदि बाजे जो अंक में रखकर बजाए जायँ।

अंख(पु)--संज्ञा स्त्री० [सं० अक्षि; प्रा० अक्ख] आँख। नेत्र। उ०--आज नीरालइ सीय पडचो। च्यारि पहूर माँहीं नू मीली अंख।--बी० रासो, पृ० ४८।

अंखि(पु)--संज्ञा स्त्री० [सं० अक्षि; प्रा० अक्खि] दे० 'अंख'। उ०--करि क्रोध अंखि सुरत्त, हवि जानि लग्गिय लत्त।--पृ० रा०, ९।१०४।

अंखिका(पु)--संज्ञा स्त्री० [सं० अक्षि] आँख। नेत्र। उ०--लजं भजै मनं गतीयपुव्वता कबी कहै। सु अंखिका कुरंग गत्ति भांन देषिता रहै।--पृ० रा०, ११ ५४।

अंखे--क्रि० वि० [सं० अक्षि; (लाक्ष०)] आगे। समक्ष। आँख में। उ०-- न अंखे है, न पछे है, न तले है, न ऊपर है।--दक्खिनी, पृ० ४४८।

अंग१--संज्ञा पुं० [सं० अङ्ग] १. शरीर। बदन। देह। गात्र। तन। जिस्म। उ०--अभिशाप ताप की ज्वाला से जल रहा आज मन और अंग।--कामायनी, पृ० १६२। २. शरीर का भाग। अवयव। उ०--भूषन सिथिल अंग भूषन सिथिल अंग--भूषण ग्रं०, पृ० १२६।

मुहा०--अंग उभरना= युवावस्था आना। अंग करना= स्वीकार करना। ग्रहण करना। उ०--(क) जाको मनमोहन अंग करै।--सूर (शब्द०) (ख) जाको हरि दृढ़ करि अंग करयो।--तुलसी (शब्द०)। अंग छूना= शपथ खाना। माथा छूना। कसम खाना। उ०--सूर हृदय से टरत न गोकुल अंग छुवत हौं तेरो।--सूर (शब्द०)। अंग टूटना= जम्हाई के साथ आलस्य से अंगों का फैलाया जाना। अँगड़ाई आना। अंग तोड़ना--अँगड़ाई लेना। अंग धरना= पहनना। धारण करना। व्यवहार करना। अंग में मास न जमना= दुबला पतला रहना। क्षीण रहना। उ०--नैन न आवै नींदड़ी, अंग न ज मै मासु।--कबीर सा० सं०, भा० १, पृ० ४३। अंग मोड़ना= (१) शरीर के भागों को सिकोड़ना। लज्जा से देह छिपाना। (२) अँगड़ाई लेना। उ०--अंगन मोरति भोर उठी छिति पूरति अंग सुगंध झकोरन।--व्यंगार्थ (शब्द०)। (३) पीछे हटना। भागना। नटना। बचना। उ०--रे पतंग निःशंक जल, जलत न मोड़ै अंग। पहिले तो दीपक जलै पीछे जलै पतंग (शब्द०)। अंग लगना= (१) आलिंगन करना। छाती से लगाना। (२) शरीर पुष्ट होना। उ०--'वह खाता तो बहुत है पर उसके अंग नहीं लगता' (शब्द०)। (३) काम में आना। उ०--'किसी के अंग लग गया, पड़ा पड़ा क्या होता' (शब्द०)। (४) हिलना। परचना। उ०--'यह बच्चा हमारे अंग लगा है' (शब्द०)। अंग लगाना या अंग लाना(पु)= (१) आलिंगन करना। छाती से लगाना। परिरंभण करना। लिपटाना। उ०--पर नारी पैनी छूरी कोउ नहि लाओ अंग। (शब्द०) (२) हिलाना। परचाना। (३) विवाह देना। विवाह में देना। उ०--'इस कन्या को किसी के अंग लगा दे' (शब्द०)। (४) अपने शरीर के आराम में खर्च करना।

३. भाग। अंश। टुकड़ा। ४. खंड। अध्याय। जैसे--'गुरुदेव कौ अंग', 'चितावनी कौ अंग', 'सूषिम मारग कौ अंग'।--कबीर ग्रं०। ५. ओर। तरफ। पक्ष। उ०--सात स्वर्ग अपवर्ग सुख धरिय तुला इक अंग।--तुलसी (शब्द०)। ६. भेद। प्रकार। भाँति। तरह। उ०--(क) को कृपालु स्वामी सारिखो, राखै सरनागत सब अंग बल बिहीन को।--तुलसी ग्रं०, पृ० ५६४। (ख) अंग अंग नीके भाव गूढ़ भाव के प्रभाव, जानै को सुभाव रूप पचि पहिचानी है।--केशव (शब्द०)। ७. आधार। आलंबन। उ०--राधा राधारमन को रस सिंगार

में अंग।--भिखारी० ग्रं०, भा० १, पृ० ४। ८. सहायक। सुहृद। पक्ष का। तरफदार। उ०--रौरे अंग जोग जग को है।--मानस, २।२८४। ९. एक संबोधन। प्रिय। प्रियवर। उ०--यह निश्चय ज्ञानी को जाते कर्ता दीखै करै न अंग।--निश्चल (शब्द०)। १०. जन्मलग्न (ज्यो०)। ११. प्रत्यययुक्त शब्द का प्रत्यय रहित भाग। प्रकृति। (व्या०)। १२. छह की संख्या। उ०--बरसि अचल गुण अंग ससी संवति, तवियो जस करि श्रीभरतार।--वेलि, दू० ३०५। १३ वेद के ६ अंग; यथा-शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष और छंद। दे० 'वेदांग'। १४. नाटक में शृंगार और वीर रस को छोड़कर शेष रस जो अप्रधान रहते हैं। १५. नाटक में नायक या अंगी का कार्यसाधक पात्र; जैसे--'वीरचरित' में सुग्रीव, अंगद, विभीषण आदि। १६. नाटक की ५ संधियों के अंतर्गत एक उपविभाग। १७. मन। उ०--सुनत राव इह कथ्थ फुनि, उपजिय अचरज अंग। सिथिल अंग धीरज रहित, भयो दुमति मति पंग।--पृ० रा०, ३।१८। १८. साधन जिसके द्वारा कोई कार्य संपादित किया जाय। १९. सेना के चार अंग वा विभाग; यथा--हाथी, घोड़े रथ और पैदल। दे० 'चतुरंगिणी'। २०. राजनीति के सात अंग; यथा--स्वामी, अमात्य, सुहृद्, कोष, राष्ट्र, दुर्ग और सेना। २१. योग के आठ अंग; यथा--यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा और समाधि। दे० 'योग'। २१. बंगाल में भागलपुर के आसपास का प्राचीन जनपद जिसकी राजधानी चंपापुरी थी। कहीं कहीं इसका विस्तार वैद्यनाथ से लेकर भुवनेश्वर (उड़ीसा, उत्कल) प्रदेश तक लिखा है। २३. ध्रुव के वंश का एक राजा। २४. एक भक्त का नाम। २५. उपाय। २६. लक्षण। चिह्न (को०)।

अंग[2]--वि० १. अप्रधान। गौण। २. उलटा। प्रतीप। ३. प्रधान। ४. निकट। समीप (को०)। ५. अंगोंवाला (को०)।

अंग[3]Ⓟ--संज्ञा स्त्री० [सं० **आज्ञा**] आज्ञा। आदेश। उ०--सो निज स्वामिनि अंग सुनि ऋमिय सुग्रथ्थह कब्ब।--पृ० रा०, ६१।७६६।

अंगकर्म--संज्ञा पुं० [सं० **अङ्गकर्म**] शरीर को सँवारना या मालिश करना।

क्रि० प्र०--करना।--होना।

अंगक्रिया--संज्ञा स्त्री० [सं० **अङ्गक्रिया**] अंगकर्म (को०)।

अंगग्रह--संज्ञा पुं० [सं० **अङ्गग्रह**] १. एक रोग जिससे देह में पीड़ा होती है। २. स्थापत्य में पत्थरों के एक दूसरे के ऊपर फिसल न जाने अथवा उनके जोड़ों को अलग होने से रोकने के लिये उनके बीच बैठाया जानेवाला कबूतर की पूँछ के आकार का लोहे या ताँबे का एक टुकड़ा। पाहू।

अंगचालन--संज्ञा पुं० [सं० **अङ्गचालन**] हाथ पैर हिलाना। अंग डुलाना।

अंगच्छवि--संज्ञा स्त्री० [**अङ्ग + छवि**] अंगों की शोभा। उ०--'अंगच्छवि से होते थे स्वयं अलंकृत।--पार्वती, पृ० २००।

अंगच्छेद--संज्ञा पुं० [सं० **अङ्ग + छेद**] अंग कटना। अंगभंग। उ०--शरीर छोटे से बड़ा होता है, उसका कभी कभी **अंगच्छेद हो जाता है।--चिद्०, पृ० २०७।**

अंगज[1]--वि० [सं० **अङ्गज**] शरीर से उत्पन्न। तन से पैदा। उ०--कु अंगजों की बहु कष्टदायिता बता रही थी जन नेत्रवान को।--प्रिय० प्र०, पृ० १०३।

अंगज[2]--संज्ञा पुं० [स्त्री० **अंगजा**] १. पुत्र। बेटा। लड़का। उ०--कृष्ण गेह कै काम, काम अंगज जनु अनुरध।--पृ० रा०, १।७२७। २. पसीना। ३ बाल। केश। रोम। ४. काम, क्रोध आदि विकार। ५. साहित्य में स्त्रियों के यौवन संबंधी जो सात्विक विकार हैं उनमें हाव, भाव और हेला ये तीन 'अंगज' कहलाते हैं। कायिक। ६. कामदेव। ७. मद। ८ रोग। ९. रक्त। खून (को०)।

अंगजा--संज्ञा स्त्री० [सं० **अङ्गजा**] कन्या। पुत्री। बेटी।

अंगजाई--संज्ञा स्त्री० [सं० **अङ्ग** + हिं० **जाई**] पुत्री। बेटी। कन्या।

अंगजात--संज्ञा पुं० दे० 'अंगज'।

अंगजाता--संज्ञा स्त्री० दे० 'अंगजा'।

अंगज्वर[1]--संज्ञा पुं० [सं० **अङ्गज्वर**] राजयक्ष्मा। क्षय रोग (को०)।

अंगज्वर[2]--वि० ज्वरोत्पादक (को०)।

अंगड़ खंगड़[1]--वि० [**अनुध्व०**] १. बचा खुचा। गिरा पड़ा। इधर उधर का। २ टूटा फूटा। उ०--'अयोध्या की अंगड़ खंगड़ बीहड़ और बेढंगी बस्ती।--प्रेमघन०, भा० २, पृ० १७४।

अंगड़ खंगड़[2]--संज्ञा पुं० काठकबाड़। टूटा फूटा सामान।

अंगड़ाⓅ--संज्ञा पुं० [सं० **अङ्ग** + हिं० ड़ा (प्रत्य०)] दे० 'अंग' १। उ०--तेरा अंगड़ा पैखों रै, तेरा मुखड़ा देखों रे।--दादू०, पृ० ५०४।

अंगढंग--संज्ञा पुं० [सं० **अङ्ग** + हिं० **ढंग**] अंगों की बनावट या रचना। उ०--अंगढंग औ रंग भूरि भँवरी सुभ लच्छन।--रत्नाकर, भा० १, पृ० ११३।

अंगण--संज्ञा पुं० [सं० **अङ्गण**] १. घर के बीच का खुला हुआ भाग। आँगन। सहन। चौक। अजिर। उ०--(क) संदेसे ही घर भरयउ कई अंगणि कई वार।--ढोला०, दू० ८००। (ख) आबी द्वार तजे ग्रह अंगण।--राज०, पृ० १८।

विशेष--शुभाशुभ निश्चय के लिये इसके दो भेद माने गए हैं, एक 'सूर्यवेधी' जो पूर्व पश्चिम लंबा हो, दूसरा 'चंद्रवेधी' जिसकी लंबाई उत्तर दक्षिण हो। चंद्रवेधी आँगन अच्छा समझा जाता है।

२. यान। सवारी (को०)। ३. संचरण। गमन (को०)।

अंगति--संज्ञा पुं० [सं० **अङ्गति**] १. अग्निहोत्री। २. विष्णु। ३. ब्रह्मा। ४. अग्नि। ५. जिसके द्वारा गमन किया जाय। वाहन (को०)।

अंगत्राण--संज्ञा पुं० [सं० **अङ्गत्राण**] १. शस्त्रास्त्रों से अंग की रक्षा के निमित्त पीतल या लोहे का पहिनावा। कवच। बख्तर। वर्म। जिरह। २. अँगरखा। कुरता।

अंगद--संज्ञा पुं० [सं० **अङ्गद**] १. बालि नामक बंदर का पुत्र जो रामचंद्र की सेना में था। २. बाहु पर पहनने का एक गहना। बिजायट। बाजूबंद। उ०--उर पर पदिक कुसुम बनमाला अंगद खरे बिराजैं।--सूर०, १०।४५१। ३. लक्ष्मण के **दो पुत्रों में से एक। ४. दुर्योधन के पक्ष का एक योद्धा।**

अंगदा[१]--संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गदा] दक्षिण दिशा के दिग्गज की पत्नी।

अंगदा[२]--वि० स्त्री० अंगदान करनेवाली (स्त्री)।

अंगदान--संज्ञा पुं० [अङ्ग + दान] १ पीठ दिखलाना। युद्ध से भागना। लड़ाई से पीछे फिरना। २. तनुदान। अंगसमर्पण। सुरति। रति। (स्त्रियों के लिये प्रयुक्त)।

क्रि० प्र०--करना = (१) पीठ दिखलाना, भागना, पीछे फिरना। (२) रति करना, संभोग करना।

अंगदीया--संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गदीया] कारुपथ नामक देश की नगरी जो लक्ष्मण के पुत्र अंगद को मिली थी।

अंगद्वार--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गद्वार] शरीर के मुख, नासिका आदि दस छेद।

अंगद्वीप--संज्ञा पुं० [अङ्गद्वीप] छह द्वीपों में से एक।

अंगधारी--संज्ञा पुं० [सं० अङ्ग + धारिन्] शरीर धारण करनेवाला। शरीरी। प्राणी।

अंगन--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गन] १. आँगन। सहन। चौक। उ०--घर अंगन गायन षिरकि जमुना जल बन कुज।--पृ० रा०, २।५५६।

अंगना--संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गना] १. सुंदर अंगवाली स्त्री। २. स्त्री। कामिनी। उ०--बीच परी अगना अनेक आँगननि के।--केशव ग्रं०, भा० १, पृ० १८३। ३. सार्वभौम नामक उत्तर के दिग्गज की स्त्री। ४. कन्या राशि (को०)। ५. वृष, कर्क, कन्या, वृश्चिक, मकर और मीन राशियाँ (को०)।

अंगनाप्रिय[१]--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गनाप्रिय] १ अशोक का पेड़। २. उत्तर दिशा का हस्ती [को०]।

अंगनाप्रिय[२]--वि० स्त्रियों का प्यारा [को०]।

अंगन्यास--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गन्यास] तंत्रशास्त्र के अनुसार मंत्रों को पढ़ते हुए एक एक अंग छूना। संध्या, जप पाठ आदि के पूर्व की जानेवाली एक विधि।

अंगपाक--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गपाक] अंगों का पकना या सड़कर उनमें मवाद भरना। अंग पकने का रोग।

अंगपालिका--संज्ञा स्त्री० दे० 'अंकमालिका' [को०]।

अंगपाली--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गपाली] १. आलिंगन। अँकवार। २. वेदिका नामक गंधद्रव्य [को०]।

अंगप्रायश्चित्त--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गप्रायश्चित्त] स्मृतियों में कथित अशौच में दान के रूप में किया जानेवाला प्रायश्चित्त जो शरीर की शुद्धि के लिये किया जाता है [को०]।

अंगप्रोक्षण--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गप्रोक्षण] अंग पोंछना। देह पोंछना शरीर को गीले कपड़े से मलकर साफ करना।

अंगफुरन--संज्ञा पुं० [सं० अङ्ग + स्फुरण, प्रा० अप० फुरण] अंग का फड़कना। उ०--अंगफुरन तें निज मतंग मन रंग पिछानत।--रत्नाकर, भा० १, पृ० ११७।

अंगबीं--संज्ञा पुं० [फा०] मधु। शहद। उ०--ताअत में ता रहे न मय ओ अंगबीं की लाग।--शैर०, भा० १, पृ० ५२७।

अंगभंग[१]--संज्ञा सं० [सं० अङ्गभङ्ग] १. किसी अवयव का खंडन या नाश। अंग का खंडित होना। शरीर के किसी भाग की हानि। २. मोहित करने की स्त्रियों की चेष्टा। स्त्रियों की कटाक्ष आदि क्रिया। अंगभंगी।

अंगभंग[२]--वि० जिसके शरीर का का कोई भाग खंडित हो या टूटा हो। जिसके हाथ पैर टूटे हों। अपाहज। लँगड़ा लूला। लुंज।

क्रि० प्र०--करना। उ०--अंगभंग करि पठवहु बंदर।--तुलसी (शब्द०)। --होना। जैसे--उसका अंगभंग हो गया। --(शब्द०)।

अंगभंगि--संज्ञा स्त्री० दे० 'अंगभंगी'। उ०--अंगभंगि में व्योम मरोर, भौंहों में तारों के भौंर।--पल्लव, पृ० ३३।

अंगभंगिमा--संज्ञा स्त्री० दे० 'अंगभंगी'। उ०--संमोहन विभ्रम अंगभंगिमा में अपठित।--ग्राम्या, पृ० २०।

अंगभंगी--संज्ञा पुं० [सं० अङ्ग + भङ्गी] स्त्रियों की मोहित करने की चेष्टा। स्त्रियों की चेष्टा। अदा। उ०--वह अनंगपीड़ा अनुभव सा अंगभंगियों का नर्तन।--कामायनी, पृ० ११।

अंगभाव--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गभाव] संगीत में नेत्र, भृकुटि और हाथ आदि अंगों से मनोविकार का प्रकाशन। गाने में शरीर की विविध मुद्राओं द्वारा चित्त के उद्वेगों की अभिव्यक्ति।

अंगभू[१]--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गभू] १. पुत्र। २. कामदेव [को०]।

अंगभू[२]--वि० शरीर या मन से उत्पन्न [को०]।

अंगभूत[१]--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गभूत] पुत्र। बेटा।

अंगभूत[२]--वि० १. अंग से उत्पन्न। देह से पैदा। २. अंतर्गत। भीतर। अंतर्भूत। ३. गौण। अप्रधान।

अंगभंग(पु)--संज्ञा पुं० [सं० अङ्ग + मङ्ग या अङ्ग, प्रा० अंगभंग] अंग प्रत्यंग। हर एक अवयव। उ०--कुंदन ओपति अंगभंग जनु चंद किरनि सिर।--पृ० रा०, १४,७४।

अंगम(पु)--संज्ञा पुं० [सं० आगम] आगम। आना। अवाई। उ०--तिन रिषि पूछी ताहि कवन कारन इत अंगम।--पृ० रा०, १।२६४।

अंगमना(पु)--क्रि० स० दे० 'अंगवना'। उ०--(क) पायान राय जयचंद को बिगरि पिथ्थ कुन अंगमै।--पृ० रा०, ६१।१०६०। (ख) को अंगमै सु जम्म अम्म को करै सँघारन।--पृ० रा०, ६१।१०६०।

अंगमर्द--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गमर्द]। १. अंग मलनेवाला या हाथ पैर दबानेवाला नौकर। संवाहक। सेवक। २. एक प्रकार का बातरोग। हड्डियों का दर्द। हड़फूटन रोग।

अंगमर्दक--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गमर्दक] अंगमर्द। संवाहक [को०]।

अंगमर्दन--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गमर्दन] अंगों की मालिश। देह दबाना। हाथ पैर दबाना।

अंगमर्दी--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गमर्दी] संवाहक। अंगमर्दक।

अंगमर्ष--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गमर्ष] अंगों की पीड़ा। वातरोग [को०]।

अंगयज्ञ--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गयज्ञ] प्रधान यज्ञ का अंगीभूत यज्ञ [को०]।

अंगयष्टि--संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गयष्टि] शरीर की पतली आकृति [को०]।

अंगरक्षक--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गरक्षक] [स्त्री० अङ्गरक्षिका] शासक या विशेष अधिकारी की रक्षा के लिये नियुक्त सैनिक। बाडीगार्ड। शरीर रक्षक [को०]।

अंगरक्षणी--संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गरक्षिणी] शरीर की रक्षा के लिये लोहे की बनी पोशाक। वर्म। कवच [को०]।

अंगरक्षा--संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गरक्षा] शरीर की रक्षा। देह का बचाव। बदन की हिफाजत।

अंगरक्षिणी--संज्ञा स्त्री० दे० 'अंगरक्षणी'।

अंगरस--संज्ञा पुं० [सं० अङ्ग+रस] किसी पत्ती या फल का कूटकर निचोड़ा हुआ रस। स्वरस। रांग।

अंगराग--सं० पुं० [सं० अङ्गराग] १. चंदन, केसर, कपूर, कस्तूरी आदि सुगंधित द्रव्यों का मिला हुआ लेप जो अंग में लगाया जाता है। उबटन। बटना। २. वस्त्र और आभूषण। ३. शरीर की शोभा के लिये महावर आदि रँगने की सामग्री। ४. स्त्रियों के शरीर के पाँच अंगों की सजावट--माँग में सिंदूर, माथे पे रोली, गाल पर तिल की रचना, केसर का लेप, और हाथ पैर में मेहँदी वा महावर। ५. एक प्रकार की सुगंधित देशी बुकनी जिसे मुँह पर लगाते हैं। चौंसठ कलाओं में से एक।--वर्ण०।

अंगराज--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गराज] १. अंग देश का राजा कर्ण। २. राजा सोमपाद जो दशरथ के परम मित्र थे। इनकी कन्या शांता ऋष्यशृंग को ब्याही गई थी। इसी नाते ऋष्यशृंग ने दशरथ से पुत्रेष्टि यज्ञ कराया था।

अंगरुह--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गरुह] १. शरीर के रोएँ, केश आदि। २. ऊन [को०]।

अंगरेजी[1]--संज्ञा स्त्री० [फा० पुर्त० अंग्लेज, इंगलेज] अँगरेज लोगों की भाषा। इंग्लैंड और अमेरिका के निवासियों की भाषा।

अंगरेजी[2]--वि० अँगरेजों की। विलायती।

अंगरेजीबाज--वि० [हिं० अंगरेजी+फा०बाज] कुछ कुछ अँगरेजी जाननेवाला। उ०--'बहुतेरे अंगरेजीबाज साँवले साहित्य लोग'।--प्रेमघन०, भा० २, पृ० २५२।

अंगलिपि--संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गलिपि] अंग देश में लिखी जानेवाली लिपि [को०]।

अंगलेप--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गलेप] दे० 'अंगराग'--१ [को०]।

अंगलोड्य--संज्ञा पुं० सं० [अङ्गलोड्य] १. एक प्रकार की घास। चिचिड़ा। २. अदरक या उसकी जड़ [को०]।

अंगवना--क्रि० सं० दे० 'अँगवना'--३। उ०--एक कोटि अंगवन धरत हर उर सुध्यान वर।--पृ० रा०, ६१।१६०।

अंगवस्त्र--संज्ञा पुं० [सं० अङ्ग+वस्त्र] पहनने का वस्त्र। पोशाक। उ०--जो जो अंग ऊपर अंगवस्त्र पहिरे हते सो तो रहे।--दो सौ बावन०, भा० १, पृ० ११३।

अंगवारा--संज्ञा पुं० [सं० अङ्ग=भाग, सहायता+कार] १. गाँव के एक छोटे भाग का मालिक। २. खेत की जोताई में एक दूसरे की सहायता।

अंगविकल--वि० [सं० अङ्गविकल] १. मूर्छायुक्त। मूर्छित। २. विकलांग [को०]।

अंगविकृति--संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गविकृति] अपस्मार। मृगी या मिरगी रोग। मूर्छा रोग।

अंगविक्षेप--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गविक्षेप १. अंग हिलाना। चमकाना। मटकाना। बोलते, वक्तृता देते वा गाते समय हाथ पैर, सिर आदि का हिलाना। २. नृत्य। नाच। ३. नृत्यकालीन अंग-संचालन। कलाबाजी।

अंगविद्या--संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गविद्या] १. शरीर के लक्षणों और रेखाओं को देखकर जीवन की घटनाओं को बताने की विद्या। शरीर की रेखाओं से मनुष्य के शुभाशुभ फल कहने की कला। सामुद्रिक विद्या। २. छह वेदांग।

अंगविभ्रम--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गविभ्रम] १. रोग जिसमें रोगी अंगों को और का और समझता है। अंगभ्रांति। २. शृंगार रस में नायिका की विभ्रम नामक चेष्टा।

अंगवैकृत--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गवैकृत] हृदय या मन के भाव को अंगों की चेष्टा से व्यक्त करना। आकार [को०]।

अंगशः--क्रि० वि० [सं० अङ्गशः] अंग या विभाग के अनुसार [को०]।

अंगशुद्धि--संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गशुद्धि] स्नानादि द्वारा शरीर स्वच्छ करना [को०]।

अंगशैथिल्य--संज्ञा पुं० [सं० अङ्ग शैथिल्य] बदन की सुस्ती। अंग का ढीलापन। थकावट।

अंगशोष--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गशोष] एक रोग जिसमें शरीर क्षीण होता या सूखता है। सुखंडी रोग।

अंगसंग--संज्ञा पुं० [सं० अङ्ग+सङ्ग] रति। संयोग। मैथुन। संभोग।

अंगसंधि--संज्ञा स्त्री० दे० 'संध्यंग'

अंगसंपेख--संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्ग+सम्प्रेक्ष] अंग नामक देश (डिं०)।

अंगसंवाहन--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गसंवाहन] अंगमर्दन। मालिश। देह दबाना। उ०--'चार सेवक आबनूस के बेलन से उसका अंग-संवाहन करते थे'।--चंद्र० (भू०), पृ० २२।

अंगसंस्कार--संज्ञा पुं० [अङ्गसंस्कार] अंगों का सँवारना। देह का बनाव सजाव। उबटन, स्नान या सुगंधित द्रव्यों आदि से शरीर की सजावट।

अंगसंस्क्रिया--संज्ञा स्त्री० दे० 'अंगसंस्कार' [को०]।

अंगसंहति--संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गसंहति] अंगों का गठन। अंगों की रचना या बनावट। अंगों का सुढारपन [को०]।

अंगसंहिता--संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गसंहिता] किसी शब्द में व्यंजन और स्वर के मध्य का ध्वनिसंबंध [को०]।

अंगसख्य--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गसख्य] अभिन्न मैत्री। गाढ़ी मित्रता। गहरी दोस्ती।

अंगसिहरी--संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्ग=शरीर+हर्ष=कंप] १. ज्वर आने के पहले देह की कँपकँपी। कंप। कँपकँपी। २. जूड़ी।

अंगसुप्ति--संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गसुप्ति] शरीर का सुप्त होना [को०]।

अंगसेवक--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गसेवक] शरीर की रक्षा करनेवाला निजी सेवक। अंगरक्षक [को०]।

अंगस्कंध--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गस्कन्ध] रूप, वेदना, विज्ञान, संज्ञा और संस्कार नामक शरीर के पाँच स्कंध (बौद्ध)।

अंगस्पर्श--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गस्पर्श] दाहकर्म करनेवाले का अशौच के चौथे दिन अस्थि संचयन के बाद दूसरों के द्वारा छूने के योग्य होना [को०]।

अंगहानि--संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गहानि] दैव, भ्रम या अनवधानता से मुख्य कार्य के उपकारक अवांतर का कार्यों में हुई असावधानी या त्रुटि [को०]।

अंगहार--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गहार] १. अंगविक्षेप। चमकना। मटकना। हाथ पैर हिलाना। २. नृत्य। नाच।

अंगहारि--संज्ञा पुं० १ दे० 'अंगहार'। २. रंगमंच। रंगस्थल [को०]।

अंगहीन[1]--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गहीन] अनंग। कामदेव [को०]।

अंगहीन[2]--वि० जिसको कोई एक वा अनेक अंग न हों। जिसके शरीर का कोई भाग खंडित वा टूटा हो। लूला लँगड़ा। लुंज आदि। अवयवरहित।

अंगांगिता--संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गाङ्गिता] दे० 'अंगांगिभाव' [को०]।

अंगांगिभाव--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गाङ्गिभाव] १. अवयव और अवयवी का परस्पर संबंध। उपकारक उपकार्य-संबंध। अंश का संपूर्ण के साथ आश्रय और आश्रयी रूप संबंध अर्थात् ऐसा संबंध कि उस अंश का अवयव के बिना संपूर्ण वा अवयवी की सिद्धि न हो; जैसे त्रिभुज की एक भुजा का सारे त्रिभुज के साथ संबंध। २. गौण और मुख्य का परस्पर संबंध। ३. अलंकार में संकर का एक भेद। जहाँ एक ही पद्य में कुछ अलंकार प्रधान रूप आएँ और उनके आश्रय या उपकार से दूसरे और भी आ जाएँ। उ०--अब ही तो दिन दस बीते नाहिं नाह चले अब उठि आई कहँ कहाँ लौं बिसरिहैं। आओ खेलें चौपर बिसारैं मतिराम दुख खेलन को आई जानि बिरह को चूरि हैं। खेलत ही काहू कह्यो जुग जिन फूटौ प्यारी। न्यारी भई सारी को निवाह होनो दूर है। पासे दिए डारि मन साँसे ही में बूड़ि रह्यो बिसरयो न दुख, दुख दूनो भरपूर है। यहाँ 'जुग जनि फूटौ' वाक्य के कारण प्रिय का स्मरण हो आया इससे स्मरण अलंकार और इस स्मरण के कारण बिरहनिवृत्ति के साधन से उलटा दुःख हुआ अर्थात् 'विषम' अलंकार की सिद्धि हुई। अतः यहाँ स्मृति अलंकार विषम का अंग है।

अंगांगीभाव--संज्ञा पुं० दे० 'अंगांगिभाव।'

अंगा[1]--संज्ञा पुं० [सं० अङ्ग] १. पहिनावा जो घुटनों के नीचे तक लंबा होता है और जिसमें बंद लगे रहते हैं। अंगरखा। चपकन।

अंगा[2]--संज्ञा पुं० [सं० अङ्ग] दे० 'अंग'। उ०--देवी गंगा लहर तुरंगा। तुहरे लहर परभू, भीजे आठो अंगा।--शुक्ल० अभि० ग्रं०, पृ० १३८।

अंगाकड़ी--संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गार + हिं० कड़ी] अंगारों पर सेंकी हुई मोटी रोटी। लिट्टी। बाटी।

क्रि० प्र०--करना।--लगाना = बाटी तैयार करना या पकाना।

अंगाकर(पु)--संज्ञा स्त्री० दे० 'अंगाकड़ी'। उ०--कोस पयांण उ पारणियो जाहि। सात अंगाकर बैठो हो खाय।--बी० रासो, पृ० ७८।

अंगाकरी (पु)--संज्ञा स्त्री० दे० 'अंगाकड़ी'। उ०--रवा केरु आमोदनै दे बनाए। घने घृत्त अंगाकरी खोभि लाए।--पृ० रा० ६३।८६।

अंगार[1]--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गार] १. दहकता हुआ कोयला। आग का जलता हुआ टुकड़ा। बिना धुएँ की आग। निर्धूम अग्नि। उ०--धवनि धवंती रहि गई बुझि गए अंगार।--कबीर ग्रं०, पृ० ५७। २. स्फुलिंग। चिनगारी। उ०--अति अगिनि झार भंभार धुंधार करि उचटि अंगार झंझार छायौ।--सूर०, १०।५९६।

मुहा०--अंगार उगलना = कड़ी कड़ी बातें मुँह से निकालना। ऐसी बात बोलना जिससे सुननेवाले को अत्यंत क्रोध उत्पन्न हो। अंगार बनना = (१) खा पीकर लाल होना। मोटा ताजा होना। (२) क्रोध में भरना। अंगार बरसना = (१) अत्यंत अधिक गर्मी पड़ना। (२) दैवी आपत्ति आना।

३. कोयला (को०)। ४ मंगल। उ०--चर आए ढिल्लिय नगर, दसमि सुदिन अंगार।--पृ० रा०, ६६।१६१८। ५. लाल रंग (को०)। ६. हितावली नाम का पौधा (को०)।

अंगार[2]--वि० लाल रंगवाला [को०]।

अंगारक--संज्ञा पुं० [सं० अंगारक] १ दहकता हुआ कोयला। आग का जलता हुआ टुकड़ा। २. चिनगारी (को०)। ३. मंगल ग्रह। ४. भृंगराज। भँगरैया। भँगरा। ५. कटसरैया का पेड़। कुरंटक। पियाबासा। ६. एक प्रकार का तेल जो सभी ज्वरों का नाश करनेवाला होता है (को०)।

अंगारकमणि--सं० पुं० [सं० अङ्गारकमणि] मूँगा। प्रवाल।

अंगारकवार--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गारकवार] मंगल का दिन। भौमवार [को०]।

अंगारकारी--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गारकारी] काठ को जलाकर बेचने के लिये कोयला तैयार करनेवाला व्यक्ति [को०]।

अंगारकित--वि० [सं० अङ्गारकित] दग्ध। जला हुआ। भुना हुआ। [को०]।

अंगारकृत--संज्ञा पुं० दे० 'अंगारकारी' [को०]।

अंगारधानी--संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गारधानी] आग रखने का बरतन। अँगीठी। बोरसी [को०]।

अंगारधानिका--संज्ञा स्त्री० दे० 'अंगारधानी' [को०]।

अंगारपरिपाचित--संज्ञा पुं० दे० 'अंगारपरिपाचित' [को०]।

अंगारपर्ण[1]--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गारपर्ण] चित्ररथ गंधर्व का एक नाम।

अंगारपर्ण[2]--वि० दे० 'चित्ररथ'

अंगारपाचित--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गारपाचित] अंगार या दहकती हुई आग पर ही रखकर पकाया हुआ खाना, जैसे कबाब, नानखताई इत्यादि।

अंगारपात्री--संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गारपात्री] अँगीठी। अंगारधानी [को०]।

अंगारपुष्प--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गारपुष्प] इंगुदी वृक्ष जिसके फूल अंगार के समान लाल होते हैं। हिंगोट का पेड़।

अंगारमंजरी--संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गारमञ्जरी] वह करंज जिसकी मंजरी लाल होती है। लाल करंज की बेल [को०]।

अंगारमंजी--संज्ञा स्त्री० दे० 'अंगारमंजरी' [को०]।

अंगारमणि--संज्ञा पुं० दे० 'अंगारकमणि'।

अंगारमती--संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गारमती] कर्ण की स्त्री।

अंगारवल्लरी--संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गारवल्लरी] दे० 'अंगारवल्ली' [को०]।

अंगारवल्ली--संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गारवल्ली] गुंजा की लता। घुँघची की बेल। चिरमटी की बेल।

अंगारवेणु--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गारवेणु] लाल रंग का बाँस। बाँस का एक भेद [को०]।

अंगारशकटी--संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गारशकटी] अँगीठी। अंगारपात्री। गोरसी। बोरसी [को०]।

अंगारा--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गारक, प्रा० अंगारअ] दे० 'अंगार'।

मुहा०--अंगारा बनना = क्रोध के कारण मुँह लाल होना। गुस्से में होना। अंगारा हो जाना = दे० 'अंगारा बनना'। अंगारा होना = क्रोध से लाल होना। अंगारे उगलना = कटु वचन कहना। जली कटी सुनाना। अंगारे फाँकना = असह्य फल देनेवाला काम करना। अंगारे बरसना = (१) अत्यंत अधिक गर्मी पड़ना। आग बरसना। (२) दैवी कोप होना। अंगारों पर पैर रखना = (१) जान बूझकर हानिकारक कार्य करना या अपने को संकट में डालना। (२) जमीन पर पैर न रखना। इतराकर चलना। अंगारों पर लोटना = (१) अत्यंत रोष प्रकट करना। आग बबूला होना। झल्लाना। (२) डाह से जलना। ईर्ष्या से व्याकुल होना। उ०--'वह मेरे बच्चे को देखकर अंगारों पर लोट गई' (शब्द०)। (३) तड़पना। व्याकुल होना। उ०--शाम से ही लोटना है मुझको अंगारों पै आज। --शेर०, भा० १, पृ० ६५६। अंगारों पर लोटाना = (१) जलाना। दाह करना। (२) तड़पाना। दुखी करना। लाल अंगारा = (१) बहुत लाल। खूब सुर्ख। उ०--'काटने पर तरबूज लाल अंगारा निकला' (शब्द०)। (२) अत्यंत क्रुद्ध। उ०--'यह सुनते ही वह लाल अंगारा हो गई' (शब्द०)।

अंगारावक्षपण--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गारावक्षेपण] अंगार या जलता हुआ कोयला निकालने और बुझाने का एक पात्र। चिमटा [को०]।

अंगारि--संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गारि] अँगीठी। बोरसी।

अंगारिका--संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गारिका] १. अँगीठी। २. इक्षु। ईख। ३. ईख का छोटा टुकड़ा। ४. कली। ५. पलाश की कली [को०]।

अंगारिणी--संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गारिणी] १. अँगीठी। बोरसी। आतिशदान। २. वह दिशा जिसपर डूबे हुए सूर्य की लाली छाई हो। ३. एक लता (को०)।

अंगारित[1]--वि० [सं० अङ्गारित] १. भुना हुआ। २. दग्ध (एक प्रकार का भोजन जो जैन मुनियों के लिये त्याज्य है)। ३. जला हुआ [को०]।

अंगारित[2]--संज्ञा पुं० पलाश की ताजी कली [को०]।

अंगारिता--संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गारिता] १. अँगीठी। २. कली। ३. पलाश की ताजी कली। ४. एक लता। ५. एक नदी का नाम [को०]।

अंगारी[1]--संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गारी] १. दहकते हुए कोयले का छोटा टुकड़ा। २. चिनगारी। ३. अंगार या दहकती हुई बिना लपट की आग पर पकाई हुई रोटी। लिट्टी। बाटी। ४. अँगीठी। बोरसी।

अंगारी[2]--वि० [सं० अङ्गारिन्] सूर्य द्वारा प्रतप्त (दिशा)।

अंगारीय--वि० [सं० अङ्गारीय] अंगार या कोयला बनाने के योग्य (काष्ठादि) [को०]।

अंगार्या--संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गार्या] कोयले की ढेरी [को०]।

अंगिका--संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गिका] १ स्त्रियों की कुरती। अँगिया। चोली। कंचुकी। छोटा कपड़ा। २ सर्प की केंचुल (को०)।

अंगित(पु)--संज्ञा पुं० दे० 'इंगित'। उ०--की कीरति अंगित काजे। --विद्यापति०, पृ० ५३३।

अंगिन्--वि० [सं० अङ्गिन्] दे० 'अंगी'।

अंगिनी--वि० [सं० अङ्गिनी] अंगवाली।

विशेष--इसका प्रयोग प्रायः समस्तरूप में ही मिलता है, जैसे, अर्धांगिनी।

अंगिया(पु)--संज्ञा स्त्री० दे० 'अंगिका'--१।

अंगिर--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गिर] १. दे० 'अंगिरस'। २. तीतर पक्षी [को०]।

अंगिरस्--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गिरस्] १. एक प्राचीन ऋषि का नाम जो दस प्रजापतियों में गिने जाते हैं।

विशेष--ये अथर्ववेद के प्रादुर्भावकर्ता कहे जाते हैं। इसी से इनका नाम अथर्वा भी है। इनकी उत्पत्ति के विषय में कई कथाएँ हैं। कहीं इनके पिता को उरु और माता को आग्नेयी लिखा है और कहीं इनको ब्रह्मा के मुख से उत्पन्न बतलाया गया है। स्मृति, स्वधा, सती और श्रद्धा इनकी स्त्रियाँ थीं जिनसे ऋचस् नाम की कन्या और मानस् नामक पुत्र हुए। इनकी बनाई एक स्मृति भी है।

२ बृहस्पति का नाम। ३. ६० संवत्सरों में छठे संवत्सर का नाम। ४. कटीला। कटीला गोंद। कतीरा।

अंगिरस--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गिरस्] १. परशुराम का एक शत्रु २. दे० 'अंगिरस'--२ [को०]।

अंगिरसी--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गिरसी] शरीर विज्ञान का ज्ञाता [को०]।

अंगिरा--संज्ञा पुं० दे० 'अंगिरस्'।

अंगिर्--संज्ञा पुं० [सं० अंगिर्] एक ऋषि जिन्होंने अथर्वण ऋषि से ब्रह्मविद्या प्राप्त की थी। अंगिरस् के गुरु सत्यवाह इनके शिष्य थे [को०]।

अंगी[1]--वि० [सं० अङ्गी] १. शरीरी। देहधारी। शरीरवाला। २. अवयवी। उपकार्य। अंशी। समष्टि। ३. प्रधान। मुख्य।

अंगी[2]--वि० स्त्री० अंग वाली (केवल समास में प्रयुक्त, जैसे, तन्वंगी, कोमलांगी आदि)।

अंगी[3]--संज्ञा पुं० १. नाटक का प्रधान नायक, जैसे सत्यहरिश्चंद्र में हरिश्चंद्र। २. प्रधान रस। नाटकों में शृंगार और वीर ये दो रस अंगी (प्रधान) कहलाते हैं और शेष रस अंग (अप्रधान)।

अंगी[4]--संज्ञा स्त्री० [डिं०] चौदह विद्याएँ।

अंगी(पु)[5]--संज्ञा स्त्री० दे० 'अंगिया'।

अंगीकति(पु)--संज्ञा स्त्री० [सं० अंगीकृत, प्रा० अंगीकत, हिं० अंगीकति] दे० 'अंगीकृति'। उ०--जो चाचा जी में श्रीनाथ जी गुसाईं जी की अंगीकति को संबंध दृढ़ है।--दो सौ बावन०, भा० १, पृ० ६५।

अंगीकरण--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गीकरण] १. दे० 'अंगीकार'। उ०--

अस्वीकरण और अंगीकरण दोनों की क्षमता अपने प्राणों में जगानी होती है।--सुनीता, पृ० २३७।

अंगीकार--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गीकार] स्वीकार। मंजूर। कबूल। ग्रहण।

क्रि० प्र०--करना। उ०--जाकौं हरि अंगीकार कियौ।--सूर०, १।३७।--होना।

अंगीकृत--वि० [सं० अङ्गीकृत] स्वीकार किया हुआ। ग्रहण किया हुआ। अपनाया हुआ। लिया हुआ। स्वीकृत। मंजूर। उ०--जौं न अंगीकृत करें वे होइ हौं रिन दास।--सूर०, १०।३४३१।

अंगीकृति--संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गीकृति] स्वीकृति। मंजूरी। अंगीकरण।

अंगीय--वि० [सं० अङ्गीय] १. शरीर या अंग संबंधी। २. अंग देश का [को०]।

अंगुण--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गुण] बैंगन। भंटा [को०]।

अंगुर(पु)--संज्ञा पुं० दे० 'अंगुल'--१। उ०--अंगुर द्वै घटि होत सबनि सौं पुनि पुनि और मँगावै।--सूर०, १०।३४२।

अंगुरि(पु)--संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गुरि] उँगली। उ०--मुँह अंगुरि दै दै मुसुकावति।--नंद ग्रं०, पृ० २४३।

अंगुरी--संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गुरी] उँगली। उ०--(क) भरंति नीर सुंदरी। सु पानि पत्त अंगुरी। पृ० रा०, ६१।३३६। (ख) जो कोई ब्रज के रूखन के पतौआ तथा डार तोरेगो ताके हाथ की अंगुरी हों तोरूँगो।--दो सौ बावन०, भा० १, पृ० ३००।

अंगुरीय--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गुरीय] अँगूठी। मुँदरी [को०]।

अंगुरीयक--संज्ञा पुं० दे० 'अंगुरीय' [को०]।

अंगुल--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गुल] १. लंबाई की एक नाप। एक आयत परिमाण। आट जौ के पेट की लंबाई। आठ यवोदर का परिमाण। उ०--साठि सु अंगुल लेहय किल्ली।--पृ० रा०, ३।२२।

विशेष--१२ अंगुल का एक बित्ता और दो बित्ते का एक हाथ होता है।

२. ग्रास या बारहवाँ भाग (ज्यो०)। ३. उँगली। अंगुलि। ४. अँगूठा। ५. चाणक्य या वात्स्यायन का एक नाम [को०]।

अंगुलक--वि० [सं० अङ्गुलक] अंगुल संबंधी। जो अंगुल के परिमाणवाला हो [को०]।

अंगुलप्रमाण[1]--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गुलप्रमाण] अंगुलियों की लंबाई या चौड़ाई [को०]।

अंगुलप्रमाण[2]--वि० अंगुली की लंबाईवाला [को०]।

अंगुलमान--संज्ञा पुं०, वि० दे० 'अंगुलप्रमाण' [को०]।

अंगुलि--संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गुलि] १. दे० 'अंगुली'। उ०--तड़ित करिग अंगुलि धरम बान भरिग प्रथिराज।--पृ० रा०, ५७।८७।

मुहा०--**अंगुलि करना** = बदनामी करना। अंगुल्यानिर्देश करना। उ०--जिहि प्रियजन अंगुलि करै तिहि प्रियजन किहि काज।--पृ० रा०, ६१।१२७३।

२. दस की संख्या (को०)।

अंगुलिका--संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गुलिका] १. उँगली। एक प्रकार की चींटी [को०]।

अंगुलिगण्य--[सं० अङ्गुलिगण्य] उँगलियों पर गिनने योग्य। बहुत कम। बिरला। उ०--गोपाल का सच्चा भक्त अंगुलिगण्य ही हो सकता है।--संपू० अभि० ग्रं०, पृ० ३१२।

अंगुलितोरण--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गुलितोरण] त्रिपुंड तिलक। तीन पतली अर्द्धचंद्राकार समानांतर रेखाओं का तिलक जिसे शैव लोग माथे पर लगाते हैं।

अंगुलित्र--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गुलित्र] १. वह तत या तारों वाला बाजा जो कमानी से नहीं बल्कि उँगली में मिजराब पहनकर बजाया जाता है, जैसे--सितार, बीन, एकतारा आदि। २. दे० 'अंगुलित्राण' (को०)।

अंगुलित्राण--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गुलित्राण] गोह के चमड़े का बना हुआ दस्ताना जिसे बाण चलाते समय उँगलियों को रगड़ से बचाने के लिये पहनते हैं। उँगलियों की रक्षा के निमित्त गोह के चमड़े का एक आवरण। गोह के चमड़े का दस्ताना।

अंगुलित्रान(पु)--संज्ञा पुं० दे० 'अंगुलित्राण'। उ०--अंगुलित्रान कमान बान छबि सुरनि सुखद असुरनि उर सालति।--तुलसी ग्रं०, पृ० ४१५।

अंगुलिनिर्देश--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गुलिनिर्देश] १. उँगली से संकेत करने का कार्य। २. बदनामी। निंदा [को०]।

अंगुलिपंचक--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गुलिपञ्चक] हाथ की पाँच उँगलियाँ जिनके नाम ये हैं--अंगुष्ठ, प्रदर्शनी या तर्जनी, मध्यमा, अनामिका और कनिष्ठिका।

अंगुलिपर्व--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गुलिपर्वन्] उँगलियों की पोर। उँगली की गाँठ या जोड़।

अंगुलिमुख--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गुलिमुख] उँगली का सिरा या नोक [को०]।

अंगुलिमुद्रा--संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गुलिमुद्रा] १. अँगूठी जिसपर नाम खुदा हो। नामांकित अँगूठी। २. मुहर लगाने के लिये नाम खुदी अँगूठी।

अंगुलिमुद्रिका--संज्ञा स्त्री० दे० 'अंगुलिमुद्रा' [को०]।

अंगुलिमोटन--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गुलिमोटन] अँगुली चटकाने या फोड़ने का काम। उँगली पुटकाना [को०]।

अंगुलिवेष्ट--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गुलिवेष्ट] दस्ताना [को०]।

अंगुलिवेष्टक--संज्ञा पुं० दे० 'अँगुलिवेष्ट' [को०]।

अंगुलिवेष्टन--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गुलिवेष्टन] १. दस्ताना। हथेली और उँगलियों को ढाँकने का आवरण। २. अंगुलित्राण।

अंगुलिसंगा--संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गुलिसङ्गा] उँगलियों में लिपट जाने वाली लपसी। यवागू [को०]।

अंगुलिसंज्ञा--संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गुलिसंज्ञा] उँगली का इशारा [को०]।

अंगुलिसंदेश--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गुलिसन्देश] उँगली की मुद्रा से या उँगली चुटकाकर संकेत करना [को०]।

अंगुलिसंभूत--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गुलिसम्भूत] नख [को०]।

अंगुलिस्फोटन--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गुलिस्फोटन] उँगलियों को फोड़ना या पुटकाना [को०]।

अंगुली--संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गुली] १. उँगली। उ०--अरुन चरन अंगुली मनोहर।--तुलसी ग्रं०, पृ० ३२५। २. हाथ का अँगूठा (को०)। ३. पाँव की उँगली (को०)। ४. पाँव का अँगूठा (को०)। ५. अंगुल का परिमाण (को०)। ६. हाथी के अगले सूँड़ का उँगलीनुमा सिरा या भाग। ७. एक नदी का नाम।

अंगुलीक--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गुलीक] अँगूठी [को०]।

अंगुलीपंचक--संज्ञा पुं० दे० 'अंगुलिपचक' [को०]।

अंगुलीपर्व--संज्ञा पुं० दे० 'अंगुलिपर्व' [को०]।

अंगुलीमुख--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गुलीमुख] उँगली का सिरा या अगला भाग [को०]।

अंगुलीय--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गुलीय] अँगूठी। उ०--जैसे अंगुलीय में मरकत।--कुकुम, पृ० ६४।

अंगुलीयक--संज्ञा पुं० दे० 'अंगुलीय' [को०]।

अंगुलीसंभूत--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गुलिसम्भूत] नख। नाखून [को०]।

अंगुल्यग्र--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गुल्यग्र] उँगली का सिरा या अगला भाग [को०]।

अंगुल्यादेश--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गुलि + आदेश] उँगली का इशारा। उँगली से अभिप्राय प्रगट करना। इशारा। संकेत।

क्रि० प्र०--करना।--होना।

अंगुल्यानिर्देश--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गुल्यानिर्देश] बदनामी। कलंक। लांछन। अंगुश्तनुमाई। बुराई। दोषारोपण।

क्रि० प्र०--करना।--होना।

अंगुश्त--संज्ञा पुं० [फ़ा०] उँगली। अंगुली। उ०--अपने के हई अह्वादत अंगुश्त आह बस है।--कविता को०, भा०, ४, पृ० १६।

अंगुश्तनुमा--वि० [फ़ा०] निदर्नीय। बदनाम। कुख्यात [को०]।

क्रि० प्र०--करना--निंदा करना।--होना = निंदित होना। बदनाम होना।

अंगुश्तनुमाई--संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] बदनामी। कलंक। लांछन। दोषारोपण।

क्रि० प्र०--करना।--होना।

अंगुश्तरी--संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] अँगूठी। मुँदरी। मुद्रिका। उ०--जब सुलेमाँ पाय वो अंगुश्तरी।--दक्खिनी०, पृ० १८४।

अंगुश्ताना--संज्ञा पुं० [फ़ा०] १. उँगली पर पहनने की पीतल वा लोहे की एक छोटी टोपी जिसमें छोटे छोटे गड्ढे बने रहते हैं। इसे दरजी लोग कपड़ा सीते समय एक उँगली में पहन लेते हैं जिससे सूई न चुभ जाय। इसी से वे सूई को उसका पिछला हिस्सा दबाकर आगे बढ़ाते हैं। २. सोने वा चाँदी की एक प्रकार की मुँदरी जो हाथ के अँगूठे में पहनी जाती है। ३. उँगली की रक्षा के लिये उसमें पहनने का धातु, चमड़े, सींग आदि का खोल। अंगुलित्राण (को०)

अंगुश्तेनर--संज्ञा पुं० [फ़ा०] अँगूठा [को०]।

अंगुष्ट(पु)--संज्ञा पुं० दे० 'अंगुष्ठ'। उ०--अंगुष्ट दक्ष उपजे सु ब्रह्म।--हम्मीर रा०, पृ० ५।

अंगुष्ठ--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गुष्ठ] १. हाथ वा पैर की सबसे मोटी उँगली। अँगूठा। २. अँगूठे की चौड़ाई जो उँगली के पोरों की लंबाई के बराबर मानी जाती है (को०)।

अंगुष्ठमात्र--वि० [सं० अङ्गुष्ठमात्र] अँगूठे की लंबाईवाला या अँगूठे जैसा [को०]।

अंगुष्ठमात्रक--वि० [स्त्री० अङ्गुष्ठमात्रिका] दे० 'अंगुष्ठमात्र' [को०]।

अंगुष्ठा(पु)--संज्ञा पुं० दे० 'अंगुष्ठ'। उ०--जंघ पिंडुरी पग अंगुष्ठा शोभा अधिक अपार।--कबीर सा०, पृ० ६६।

अंगुष्ठिका--संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गुष्ठिका] एक पौधे का नाम [को०]।

अंगुष्ठय--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गुष्ठ्य] अँगूठे का नाखून [को०]।

अंगूठा--संज्ञा पुं० दे० 'अँगूठा'। उ०--उदयाचल पर दीखते प्रात, अगूठे के बल हुए खड़े।--युगांत, पृ० ४१।

अंगूर¹--संज्ञा पुं० [फ़ा०] एक लता और उसके फल का नाम। द्राक्षा। दाख।

विशेष--यह भारत के उत्तरपश्चिम और पंजाब तथा कश्मीर आदि प्रदेशों मे बहुत लगाया जाता है। हिमालय के पश्चिमीय भागों में यह आपसे आप भी होता है। उत्तर प्रदेश के कुमाऊँ, कनावर और देहरादून तथा आंध्र और महाराष्ट्र प्रदेश के अहमदनगर, औरंगाबाद, पूना और नासिक आदि स्थानों में भी इसकी उपज होती है। बंगाल में पानी अधिक बरसने के कारण इसकी बेल वैसी नहीं बढ़ सकती। बिहार प्रदेश में तिरहुत और दानापुर में इसकी कुछ टट्टियाँ तैयार की जाती हैं।

अंगूर की बेल होती है जो टट्टियों पर फैलती है। इसकी पत्तियाँ कुम्हड़े वा नेनुए की पत्तियों से मिलती जुलती होती हैं। इसके फल हरे और बैंगनी रंग के तथा छोटे, बड़े, गोल और लंबे कई आकार के होते हैं। कोई नीम के फल की तरह लंबोतरे और कोई मकोय की तरह गोल होते हैं और गुच्छों में लगते हैं। अंगूर की मिठास तो प्रसिद्ध ही है। भारतवासी इसे 'द्राक्षा' और 'मृद्वीका' के नाम से जानते हैं। चरक और सुश्रुत में इसका उल्लेख है। पर भारतवर्ष में इसकी खेती कम होती थी। फल प्रायः बाहर से ही मँगाए जाते थे। मुसलमान बादशाहों के समय अंगूर की ओर अधिक ध्यान दिया गया। आजकल हिंदुस्तान मे सबसे अधिक अंगूर काश्मीर में होते है जहाँ ये क्वार के महीने में पकते हैं। वहाँ इनकी शराब बनती है और सिरका भी पड़ता है। महाराष्ट्र देश में जो अंगूर लगाए जाते हैं उनके कई भेद हैं, जैसे--आबी, फकीरी, हबशी, गोलकली साहेबी इत्यादि। अफगानिस्तान, बिलूचिस्तान और सिंध में अंगूर बहुत अधिक और कई प्रकार के होते हैं--जैसे, हेटा, किशमिशी, कमलक, हुसैनी इत्यादि। किशमिशी में बीज नहीं होता। कंधारवाले हेटा अंगूर को चूना और सज्जीखार के साथ गरम पानी में डुबाकर 'आबजोश' और किशमिशी को धूप में सुखाकर किशमिश बनाते हैं।

मुनक्का, जो दवा के काम में आता है, सुखाया हुआ अंगूर है। यह दस्तावर है और ज्वर की प्यास को कम करता है। खाँसी के लिये भी अच्छा है। 'द्राक्षारिष्ट' आदि कई आयु-

वैदिक ओषधियाँ इससे तैयार होती हैं। हकीमों में इसका बहुत व्यवहार है।

अंगूर का मड़वा वा अंगूर की टट्टी = (१) अंगूर की बेल के चढ़ने और फैलने के लिये बाँस की खपचियों का बना हुआ मंडप। (२) एक प्रकार की आतिशबाजी जिससे अंगूर के गुच्छे के समान चिनगारियाँ निकलती हैं।

मुहा०—**अंगूर खट्टे होना** = प्रयत्न करने पर भी प्राप्त न होनेवाली अच्छी चीज को बुरा बताना। उ०—अंत में यह कह चलती हुई अरे ये खट्टे हैं अंगूर।—खिलौना १९२७।

अंगूर²—संज्ञा पुं० मांस के छोटे छोटे लाल दाने जो घाव भरते समय दिखाई पड़ते हैं। दे० 'अंकुर'²।

मुहा०—**अंगूर आना** = घाव के ऊपर चमड़े की पतली झिल्ली पड़ना। घाव पुरना। घाव भरना। **अंगूर तड़कना** = भरते हुए घाव पर बंधी हुई मांस की झिल्ली का फट जाना। **अंगूर फटना** = दे० 'अंगूर तड़कना'। **अंगूर बँधना** = घाव के ऊपर मांस की नई झिल्ली चढ़ना। घाव भरना। **अंगूर-भरना** = दे० 'अंगूर बँधना'।

अंगूर³—संज्ञा पुं० [सं० अंकुर] अंकुर। अँखुआ।

अंगूरशेफा—संज्ञा पुं० [फ़ा०] एक जड़ी जो हिमालय पर शिमले से लेकर काश्मीर तक होती है। इसे संग अंगूर, सूची, जबराज तथा गिरबूटी कहते हैं। इसकी जड़ और पत्तियाँ दमे और वायु के दर्द को दूर करती हैं।

अंगूरी¹—वि० [फ़ा०] १. अंगूर से बना हुआ। २. अंगूरी रंग का।

अंगूरी²—संज्ञा पुं० कपड़ा रँगने का एक हरा रंग जो नील और टेसू के फूल को मिलाकर बनाया जाता है।

अंगूरी³—संज्ञा स्त्री० [अंगूर की शराब का संक्षिप्त रूप] शराब।

अंगूरी बेल—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० अंगूरी + हिं० बेल] कपड़े आदि पर काढ़ी जानेवाली या छापी जानेवाली अंगूर की लता की आकृति।

अंगूष—संज्ञा पुं० [सं० अङ्गूष] १. घूस नाम का जंतु। २. बाण। तीर (को०)।

अंगोंच—संज्ञा पुं० [सं० अङ्गोञ्च] अंगोछा (को०)।

अंगोंचन—संज्ञा पुं० [सं० अङ्गोचन] दे० 'अंगोंच' (को०)।

अंगोछना(पु)—क्रि० सं० दे० 'अँगोछना'। उ०—करि मंजन अंगोछि तन धूप बासि बहु अंग। —पृ० रा०, १४।५३।

अंगोट—संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्ग + वर्त्म, प्रा० वट्ट] अंग का गठन। शरीर की बनावट।

अंगौटी—संज्ञा स्त्री० दे० 'अंगोट'।

अंग्य—वि० [सं० अङ्ग्य] अंग का। अंग संबंधी (को०)।

अंग्रेज—संज्ञा पुं० दे० 'अँगरेज'।

अंग्रेजियत—संज्ञा स्त्री० [हिं० अंग्रेज + फा० इयत (प्रत्य०)] अंग्रेजों अथवा अंग्रेजी का प्रभाव। अंग्रेजीपन। उ०—अंग्रेजियत ने हमारा दिमाग ऐसा बिगाड़ दिया है। —प्रेमघन०, भा० १, (भू०)।

अंग्रेजी—संज्ञा स्त्री० दे० 'अँगरेजी'। उ०—अंग्रेजी पढ़िके जदपि सब गुन होत प्रवीन। पै निज भाषा ज्ञान बिनु रहत हीन के हीन।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ७३२।

अंघ—संज्ञा पुं० [सं० अङ्घ] अघ। पाप (को०)।

अंघस—संज्ञा पुं० [सं० अङ्घस्] पाप। पातक। अपराध।

अंघारि—संज्ञा पुं० [सं० अङ्घारि] १. पाप का शत्रु। २. सोम के रक्षक का नाम। ३. दीप्तिशील ज्योति से युक्त (को०)।

अंघ्रि—संज्ञा पुं० [सं० अङ्घ्रि] १. पैर। चरण। पाँव। २. पेड़ की जड़। मूल (को०)। ३. छंद का चतुर्थ चरण (को०)।

अंघ्रिकवच—संज्ञा पुं० [अङ्घ्रिकवच] जूता। उपानह (को०)।

अंघ्रिज—संज्ञा पुं० [सं० अङ्घ्रिज] क्षुद्र। निम्न (को०)।

अंघ्रिनाम—संज्ञा पुं० [सं० अङ्घ्रिनाम] १. वृक्ष की जड़। २. पैर। पाँव (को०)।

अंघ्रिनामक—संज्ञा पुं० दे० 'अङ्घ्रिनाम' (को०)।

अंघ्रिप—संज्ञा पुं० [सं० अङ्घ्रिप] पादप। वृक्ष। पेड़।

अंघ्रिपर्णिका—संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्घ्रिपर्णिका] सिंहपुच्छी नाम की लता (को०)।

अंघ्रिपर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्घ्रिपर्णी] दे० 'अङ्घ्रिपर्णिका' (को०)।

अंघ्रिपान—संज्ञा पुं० [सं० अङ्घ्रिपान] पैर का अँगूठा चूसने का कार्य (को०)।

अंङ्घ्रिवल्लिका—संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्घ्रिवल्लिका] सिंहपुच्छी लता। अंघ्रिपर्णी (को०)।

अंघ्रिवल्ली—संज्ञा स्त्री० दे० 'अंघ्रिवल्लिका' (को०)।

अंघ्रिस्कंध—संज्ञा पुं० [सं० अङ्घ्रिस्कन्ध] टखना। गुल्फ (को०)।

अंच¹—वि० [सं० अञ्च] घुंघराला। घूमा हुआ। (को०)।

विशेष—केवल 'रोमांच' में प्राप्त तथा समास का अंतिम शब्द।

अंच²—संज्ञा स्त्री० [सं० अर्चि, प्रा० अच्चि, अच्च, अप० अंच] १. स्फुलिंग। चिनगारी। उ०—तन सट्टं सटि मुकति बोल भारथ्थी बोलै। लोह अंच उड्डंत पत्त तरवर जिमि डोलै।—पृ० रा०, २७।२४। २. दे० 'आँच'। उ०—जा ते अंतर गुरुमति आई। ताँ कौं अंच न लागै काई।—प्राण०, पृ० ३।

अंचति—संज्ञा पुं० [सं० अञ्चति] १. वायु। २. अग्नि। ३. वह व्यक्ति जो गतिशील हो (को०)।

अंचती—संज्ञा पुं० दे० 'अंचति' (को०)।

अंचन—संज्ञा पुं० [सं० अञ्चन] झुकाने या घुमाने की स्थिति अथवा कार्य।

अंचना(पु)—क्रि० स० दे० 'ऐंचना'। उ०—(क) गहै इत उत्त सु गिद्धनि गिद्ध। मरालिय अंचि सिवाल अतिद्ध।—पृ० रा०, ६६।१४०३। (ख) चौतेगी सहबाज बान अरि प्रान सु अंचै। —पृ० रा०, २७।४३।

अंचर(पु)—संज्ञा पुं० दे० 'अंचल'। उ०—कौन निरासी दीठि लगाई लै लै अंचर झारै।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ९३४। २. दुपट्टा। उपरना। उ०—राजन अंचर छोरु करि जैत प्रसंसन काज। दिल्ली धर अग्गर इहै जुज्झ परयो धर आज।—पृ० रा०, ६६।१२४७।

अंचल—संज्ञा पुं० [सं०] साड़ी वा ओढ़नी का वह भाग जो सिर अथवा कंधे पर से होता हुआ सामने छाती पर फैला हुआ हो। साड़ी का छोर। आँचल। पल्ला। छोर। अँचरा। उ०—बहुरि बदन बिधु अचल ढाँकी।—मानस, २।११७। २. दुपट्टा। उपरना। उ०—लोचन सजल प्रेम पुलकित तन गर अंचल कर माल। —सूर०, १।१८९। ३. किसी प्रदेश या स्थान आदि का एक भाग। उ०—वन गुहा कुंज मरु अंचल

में हूँ खोज रहा अपना विकास ।--कामायनी पृ० १५८ । ४. किनारा । तट । ५ छोर । किनारा । ६. कोर, जैसे 'नयनांचल' में अंचल। ७ तलहटी। घाटी। उ०--उसकी वह जलन भयानक फैली गिरि अंचल में फिर ।--कामायनी, पृ० २८१ ।

मुहा०--**अंचल जोरना** = दीनता व्यक्त करना उ०-अंचल जोरे करत बीनती मिलिबे को सब दासी ।--सूर० (शब्द०)। **अंचल-देना** = आँचल की ओट करना। लज्जा व्यक्त करना। परदा करना। उ०--पीतांबर वह सिर से ओढ़त अंचल दै मुसकात । --सूर०, १०।३३८। **अंचल पसारना** = दे० 'अँचरा पसारना'। उ०-- पुर नारि सकल पसारि अंचल बिधिहि बचन सुनावहीं । --मानस, १।३११। **अंचल (में) गाँठ देना** = याद रखने के लिये आँचल में ग्रंथि देना। बराबर स्मरण रखना। कभी न भूलना। उ०--अंचल गाँठि दई दुख भाज्यौ, सुख जु आनि उर पैठ्यौ।--सूर०, ९।१६४। **अंचल रोपना** = दीनता और विनय प्रदर्शन के साथ प्रार्थना करना। अँचरा पसारकर याचना करना। निहोरा करना। उ०--चरन नाइ सिर अंचल रोपा।--मानस, ६।६। **अंचल लेना** = दे० 'अंचल देना'। उ०--रुद्र कौ देखि कै मोहिनी लाज करि लियौ अंचल रुद्र तब अधिक मोह्यौ।--सूर०, ८।१०। **अंचल भरना** = (१) मंगलाशंसा के साथ वधू या पुत्री के आँचल में अन्न, दूब, हल्दी आदि डालना। एक मंगल कृत्य। (२) कामना पूरी होने का आशीर्वाद। (३) गोद भरना।

अंचला(पु)--**संज्ञा स्त्री० दे०** 'अँचरा'। उ०--मन बंधे अंचला मिसि । --बेलि, दू० १५८ ।

अंचित(पु)--वि० [सं० **अचिन्त्य**, प्रा० **अचिंत**] चिंतन से परे। अचिंत्य। उ०--अंचित पुरुष को मंगल हंसा गावै हो।--धर्म० श०, पृ० ५४।

अंचित--वि० [सं० **अञ्चित**] १. पूजित। आराधित। संमानित। २. विशिष्ट। प्रधान। ३. झुका हुआ। घुमावदार। ४. धनुषाकार। ५. सुंदर। ६. गत। गया हुआ। ७. ग्रथित। गूँथा हुआ [को०]।

अंचितपत्र--**संज्ञा पुं०** [सं० **अञ्चितपत्र**] टेढ़े दलवाला कमल [को०]।

अंचितपत्राक्ष--वि० [सं० **अञ्चितपत्राक्ष**] कमल की तरह नेत्रवाला [को०]।

अंचितभ्रू--वि० स्त्री० [सं० **अञ्चितभ्रू**] वक्र भौहोंवाली या धनुषाकार भौहोंवाली [को०]।

अंचितलांगूल--वि० [सं० **अञ्चितलाङ्गूल**] टेढ़ी दुमवाला (जैसे बंदर) [को०]।

अंची(पु)--**संज्ञा स्त्री० दे०** 'अंच'। उ०--जिने लोहचीं लग्गि अंची न कब्बं।--पृ० रा०, २४।२६१।

अंचुता(पु)--वि० [सं० **अच्युत**] जो विचलित न हो। अडिग। उ०--पारब्रह्म वारे एह लटका अंचुता चुत में लूटा।--संत दरिया, पृ० ११३।

अंचुर(पु)--**संज्ञा पुं०** [सं० **अनुचर**] सेवक। दास। उ०--फुलवारी मों कीजे बासा। अंचुर भेज देहिं तेहि पासा।--इंद्रा०, पृ० १२७।

अंच्छया(पु)†--**संज्ञा स्त्री०** [सं० **इच्छा**] कामना। इच्छा। उ०--मन अंच्छया पूरन भई सबकी मिट्यो री मदन दुख दंद।--ब्रजनिधि ग्रं०, पृ० १६६।

अंछ(पु)--**संज्ञा स्त्री०** [सं० **अक्ष**] आँख।--उ० इंछिनि अंछ बखानि कै मोंहि सुनावह एह।--पृ० रा०, १४।१३७।

अंछर--**संज्ञा पुं०** [सं० **अक्षर**] १. मुँह के भीतर का एक रोग जिसमें काँटे से उभर आते हैं। २. अक्षर। ३. मंत्र। टोना। जादू।

मुहा०--**अंछर मारना** = जादू करना। टोना करना। मंत्रप्रयोग करना। उ०--मेरे अंछर मारि परान लिए, सुध लाग रही भइ बावरिया।--गीत (शब्द०)।

अंछि(पु)--**संज्ञा स्त्री०** [सं० **अक्षि**, प्रा० **अच्छि**] आँख। नेत्र। उ०--इच्छइ जु अंछि बंकै करन, संका लज्ज बसंकरी।--पृ० रा०, ५८।१२३।

अंछया--**संज्ञा पुं०** [सं० **इच्छा**, गु० **इंछा**] लोभ। लालच। इच्छा। कामना। लालसा।--डिं०।

अंज¹--**संज्ञा पुं०** [सं० **अब्ज**, प्रा० ॐ **अज्ज**, > अप० ॐ **अंज**] कमल। कमल का फूल।--अनेकार्थ०।

अंज²--**संज्ञा पुं०** [सं० **अञ्जस**] क्रोध। उ०--मंजु काम सब रूप, अंज गजबंध महाबल।--पृ० रा०, १।२३०।

अंजन¹--**संज्ञा पुं०** [सं० **अञ्जन**] [क्रि० अँजवाना, अँजाना] १. श्यामता लाने या रोग दूर करने के निमित्त आँख की पलकों के किनारे पर लगाने की वस्तु। काजल। आंजन। उ०--अंजन रंजन हूँ बिना खंजन गंजन नैन।--बिहारी० र०, ४६। २. सुरमा। उ०--अंजन आड़ तिलक आभूषण सचि आयुधि बड़ छोट।--सा० लहरी, (उ०, १६)।

क्रि० प्र०--करना।--देना।--लगाना।--सारना।

३. सोलह श्रृंगारों में एक। ४. स्याही। रोशनाई। ५ रात। रात्रि। उ०--उदित अंजन पै अनोखी देव अगिन जराय।--सा० लहरी, ३२। ६. सिद्धांजन जिसके लगाने से कहा जाता है कि जमीन में गड़े खजाने आदि दीख पड़ते हैं। उ०--यथा सुअंजन अंजि दृग साधक सिद्ध सुजान।--मानस, १।१।७ लेप। उ०--निरंजन बने नयन अंजन।--परिमल, पृ० १५८। ८ माया। ९. अलंकारों में प्रयुक्त व्यंजना वृत्ति का एक भेद जिसमें कई अर्थोंवाले किसी शब्द का प्रयोग किसी विशेष अर्थ में हो और वह अर्थ दूसरे शब्द या पद के अर्थ से स्पष्ट हो। अभिधामूलक व्यंजना वृत्ति। १० पश्चिम दिशा का दिग्गज। ११. एक पर्वत का नाम। कृष्णांजनगिरि। सुलेमान पर्वत श्रृंखला। १२. कद्रु से उत्पन्न एक सर्प का नाम। १३. छिपकली। बिस्तुइया। १४. अग्नि (को०)। १५. पश्चिम दिशा (को०)। १६. एक देश का नाम। १७. एक जाति का बगला जिसे नटी भी कहते हैं। आंजन। १८. एक पेड़ जो मध्य प्रदेश, बुंदेलखंड, मद्रास, मैसूर आदि में बहुत होता है। इसकी लड़की श्यामता लिए हुए लाल रंग की और बड़ी मजबूत होती है। यह पुलों और मकानों में लगती है। इससे अन्य सामान भी बनते हैं। १९ एक पार्थिव खनिज द्रव्य जिसका सुरमा बनता है (को०)। २०. आँख में अंजन लगाने का कार्य (को०)।

अंजन²--वि० काला। सुरमई। उ०--उड़त फूल उड़गन नभ अंतर अंजन घटा घनी।--सूर० २।२८।

यौ०--**अंजनकेश। अंजनकेशी। अंजनशलाका। अंजनसार। अंजनहारी।**

अंजन३—संज्ञा पुं० [अं० एंजिन दे० 'इंजन' । उ०—जो जान देना हो अंजन से कट मरो एक दिन ।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ६३२ ।

अंजन४—संज्ञा पुं० [सं० अर्जन, प्रा० अज्जरा] उपार्जन । कमाना ।

अंजनक—संज्ञा पुं० [अञ्जनक] सुरमा [को०] ।

अंजनकेश—संज्ञा पुं० [सं० अञ्जनकेश] दीपक । दीया । चिराग ।

अंजनकेशी१—संज्ञा स्त्री० [सं० अञ्जनकेशी] नख नामक सुगंधद्रव्य जिसके जलाने से अच्छी महक उठती है। हट्टविलासिनी । नखी ।

अंजनकेशी२—वि० स्त्री० अंजन सदृश काले बालवाली स्त्री [को०] ।

अंजनगिरि—संज्ञा पुं० [सं० अञ्जनगिरि] नीलगिरि पर्वत ।

अंजनता—संज्ञा स्त्री० [सं० अञ्जनता] पहचान [को०] ।

अंजननामिका—संज्ञा स्त्री० [सं० अञ्जननामिका] पलकों पर होनेवाली फुंसी । बिलनी ।

अंजनशलाका—संज्ञा स्त्री० [सं० अञ्जनशलाका] आँजन या सुरमा लगाने के लिये जस्ते वा सीसे की सलाई । सुरमचू ।

अंजनसार—वि० [सं० अंजन + हिं० सारना] सुरमा लगा हुआ । अंजनयुक्त । आँजा हुआ । जिसमें अंजन सारा या लगाया गया हो । उ०—एक तो नैना मद भरे दूजे अंजनसार । ए बौरी कोउ देत है मतवारे हथियार (शब्द०) ।

अंजनहारी—संज्ञा स्त्री० [सं० अञ्जन + कारिन्] १. आँख की पलक के किनारे की फुंसी । बिलनी । गुहांजनी । गुहाई । अंजना । एक कीड़ा । भृंगी । २. एक प्रकार का उड़नेवाला कीड़ा । भृंग नामक एक कीड़ा ।

विशेष—इसे कुम्हारी या बिलनी भी कहते हैं। यह प्रायः दीवार के कोनों पर गीली मिट्टी से अपना घर बनाता है। कहते हैं, इस मिट्टी को घिसकर लगाने से आँख की बिलनी अच्छी हो जाती है। इसी कीड़े के विषय में यह प्रसिद्ध है कि वह दूसरे कीड़ों को पकड़कर अपने समान कर लेता है, जैसे, भइ गति कीट भृंग की नाईं । जहँ तहँ मैं देखौं रघुराई ।—तुलसी० (शब्द०) ।

अंजना१—संज्ञा स्त्री० [सं० अञ्जना] १. कुंजर नामक बंदर की पुत्री और केसरी नामक बंदर की स्त्री जिसके गर्भ से हनुमान उत्पन्न हुए थे । हनुमान की माता । कहीं कहीं अंजना को गौतम की पुत्री भी लिखा है । २. आँख की पलक के किनारे पर होनेवाली एक लाल छोटी फुंसी जिसमें जलन और सूई चुभने के समान पीड़ा होती है । बिलनी । गुहांजनी । ३. दो रंग की छिपकली । ४. उत्तर पूर्व के दिग्गज सुप्रतीक की स्त्री (को०) ।

अंजना२—संज्ञा पुं० १. एक जाति का मोटा धान जो पहाड़ी प्रदेशों में होता है । २. एक पहाड़ ।

अंजना३(पु)—क्रि० स० [सं० अञ्जन] दे० 'आँजना' । उ०—(क) कालिंदी न्हावहिं न नयन अंजै न मृगमद ।—पृ० रा०, २।३४६ । (ख) जथा सुअंजन अंजि दृग साधक सिद्ध सुजान ।—मानस, १।१ ।

अंजनागिरि—संज्ञा पुं० दे० 'अंजनगिरि' [को०] ।

अंजनाद्रि—संज्ञा पुं० [सं० अञ्जनाद्रि] अंजन नामक पर्वत जिसका उल्लेख संस्कृत ग्रंथों में है। यह पश्चिम दिशा में माना जाता है ।

अंजनाधिका—संज्ञा स्त्री० [सं० अञ्जनाधिका] एक प्रकार की छिपकली [को०] ।

अंजनानंदन—संज्ञा पुं० [सं० अञ्जनानंदन] अंजना के पुत्र । हनुमान ।

अंजनावती—संज्ञा स्त्री० [सं० अञ्जनावती] १. उत्तरपूर्व के दिग्गज की स्त्री । २. कालांजन नामक एक वृक्ष [को०] ।

अंजनिका—संज्ञा स्त्री० [सं० अञ्जनिका] १. एक प्रकार की छिपकली । २. छोटी चुहिया । ३. दे० 'अंजनावती' [को०] ।

अंजनी—संज्ञा स्त्री० [सं० अञ्जनी] १. हनुमान की माता अंजना । उ०—दूत राम राय को सपूत पूत पौन को तू, अंजनी को नंदन प्रताप भूरि भानु सो ।—तुलसी ग्रं०, पृ० २४८ । २. माया । ३. वह स्त्री जिसने चंदनादि वा लेप लगाया हो । ४. एक काष्ठौषधि । कुटकी । ५. कालांजन नामक वृक्ष (को०) । ६ आँख की पलक की फुंसी । बिलनी ।

अंजनीकुमार—संज्ञा पुं० [सं० अञ्जनी + कुमार] अंजनी के पुत्र । हनुमान । उ०—बिगरी सवार अंजनीकुमार कीजै मोहि जैसे होत आए हनुमान के निवाजे हैं ।—तुलसी० ग्रं०, पृ० २५१ ।

अंजबार—संज्ञा पुं० [फ़ा०] मध्य एशिया की फरात नदी के किनारों पर होनेवाला एक पौधा जिसकी जड़ का काढ़ा और शर्बत हकीम लोग सर्दी और कफ के रोगों में एवं रक्तस्राव बंद करने के लिये देते हैं । इंद्राणी ।

अंजर(पु)—वि० [सं० उज्ज्वल] । उज्ज्वल । उजला उ०—सित अंजर रजनीय पुरनि गंध्रव पग धारिय ।—पृ० रा०, १।३४८ ।

अंजरपंजर—संज्ञा पुं० [अनुध्व० सं० पञ्जर] देह का बंद । शरीर का जोड़ । ठठरी । पसली । हड्डी पसली ।

मुहा०—अंजर पंजर ढीला होना = शरीर के जोड़ों का उखड़ना वा हिल जाना । देह का बंद बंद टूटना । शिथिल होना । लस्त होना । अंजर पंजर तोड़ देना = अंग भंग करके बेकाम कर देना ।

अंजरपंजर—क्रि० वि० अगल बगल । पार्श्व में ।

अंजरि—संज्ञा स्त्री० दे० 'अंजलि' ।

अंजल१—संज्ञा पुं० [सं० अञ्जलि] दोनों हथेलियों को मिलाकर बनाया हुआ संपुट वा गड्ढा जिसमें पानी वा और कोई वस्तु भर सकते हैं । उ०—अंजल भर आँटा साईं का । बेटा जीवै माई का ।—(फकीरों की बोली) ।

अंजल२—संज्ञा स्त्री० दे० 'अंजली' ।

अंजल(पु)—संज्ञा पुं० दे० 'अन्नजल' । उ०—जब अंजल मुँह सोवा समुद न सँवरा जागि । अब धरि काढ़ मच्छ जिमि पानी काढ़त आगि ।—जायसी (शब्द०)

अंजला—संज्ञा पुं० दे० अंजल ।

अंजलि—संज्ञा स्त्री० दे० 'अंजली' ।

अंजलिक—संज्ञा पुं० [सं० अञ्जलिक] अर्जुन के बाणों में से एक का नाम [को०]

अंजलिकर्म—संज्ञा पुं० [सं० अञ्जलिकर्म] जुड़े हाथों से नमस्कार करने का कार्य [को०] ।

अंजलिका—संज्ञा स्त्री० [सं० अञ्जलिका] १. एक प्रकार की छोटी चुहिया । २. लजाधुर । छुईमुई [को०] ।

अंजलिकारिका—संज्ञा स्त्री० [सं० अञ्जलिकारिका] १. नमस्कार करने की मुद्रावाली मिट्टी की छोटी मूर्ति (को०)। २. लजाधुर लता।

अंजलिगत—वि० [सं० अञ्जलि+गत] १. अंजली में आया हुआ। हाथ में पड़ा हुआ। दोनों हथेलियों पर रखा हुआ। उ०—अंजलिगत सुभ सुमन जिमि सम सुगंध कर दोउ।—मानस, १।३।

अंजलिपुट—संज्ञा पुं० [सं० अञ्जलिपुट] दोनों हथेलियों को मिलाने से बना हुआ खाली स्थान जिसमें पानी वा कोई और वस्तु भर सकते हैं। अँजली।

अंजलिबंधन—संज्ञा पुं० [सं० अञ्जलिबन्धन] माथे तक उठाई हुई अंजलि से प्रणमन (को०)।

अंजलिबद्ध—वि० [सं० अञ्जलिबद्ध] हाथ जोड़े हुए।

अंजली—संज्ञा स्त्री० [सं० अञ्जली] १. दोनों हथेलियों को मिलाकर बनाया हुआ संपुट। दोनों हथेलियों को मिलाने से बना हुआ खाली स्थान वा गड्ढा जिसमें पानी वा और कोई वस्तु भर सकते हैं। उ०—निज बिस्तार समेटि अंजली आनि समानी।—रत्नाकर, भा० १, पृ० २१७। २. उतनी वस्तु जितनी एक अंजलि में आए। प्रस्थ। कुडव। दो प्रसृति। एक नाप जो बीस मागधी तोले या सोलह व्यावहारिक तोले अथवा एक पाव के बराबर होती है। दो पसर। ३. अन्न की राशि में से तौलते समय दोनों हथेलियों से दान के लिये निकाला हुआ अन्न।

अंजस्—संज्ञा पुं० [सं० अञ्जस्] मलहम [को०]।

अंजस—वि० [सं० अञ्जस] १. सीधा। सरल। २. निश्छल। ईमानदार [को०]।

अंजसा—क्रि० वि० [सं० अञ्जसा] १. शीघ्रता से। तुरत। २. ठीक ठीक। यथावत्। ३. सीधे से। साक्षात् [को०]।

अंजसायन—वि० [सं० अञ्जसायन] सीधी गतिवाला। ऋजुगामी [को०]।

अंजहा†—वि० [हिं० अनाज+हा (प्रत्य०)] (स्त्री० अंजही) अनाज का। अन्न के मेल से बना हुआ।

अंजही†¹—संज्ञा स्त्री० [देश०] वह बाजार जहाँ अन्न बिकता है। अनाज की मंडी।

अंजही†²—वि० अनाज की। अनाज से बनी हुई।

अंजाम—संज्ञा पुं० [फा०] १. समाप्ति। पूर्ति। अंत। आखीर। उ०—अंजाम की मंजिल है बड़ी देखिए क्या हो।—कविता कौ०, भा ४, पृ० ५७५। २. परिणाम। फल। नतीजा।

क्रि० प्र०—करना।—देना।—पर पहुँचना या पहुँचाना = पूरा करना। समाप्त करना। निपटाना। प्रबंध करना। उ०—काम क्या अंजाम देगा दूसरा। जब नहीं सकते हमीं अंजाम दे।—चोखे०, पृ० ६६।

अंजारना(पु)—क्रि० स० [सं० अर्जन] कमाना। संचित करना।

अंजि¹—संज्ञा पुं० [सं० अञ्जि] १. प्रेरक। भेजनेवाला। २. आदेशदाता। ३. त्रिपुंड [को०]।

अंजि²—संज्ञा स्त्री० १. अंगराग। २. रंग। ३. जननेंद्रिय [को०]।

अंजिक—संज्ञा पुं० [सं० अञ्जिक] सूर्य। रवि [को०]।

अंजित¹—वि० [सं० अञ्जित] १. अंजन लगाए हुए। अंजनसार। आँजे हुए। उ०—रज रंजित अंजित नयन घूँटन डोलत भूमि।—पृ० रा०, १।७१८।

अंजित²—वि० [सं० अञ्चित] पूजित। आराधित (डिं०)।

अंजिबार—संज्ञा पुं० दे० 'अंजबार'

अंजिव—वि० [सं० अञ्जिव] पिच्छिल। चिकना। फिसलाहट [को०]।

अंजिष्ठ—संज्ञा पुं० [सं० अञ्जिष्ठ] सूर्य [को०]।

अंजिष्णु—संज्ञा पुं० दे० 'अंजिष्ठ'।

अंजिसना(पु)—क्रि० अ० [सं० अञ्जसा] शीघ्रता करना। उ०—अंजिसिय हँसिय अंतर गसिय ससिय सद्ध उद्धर धँसिय।—पृ० रा०, ६७।३५७।

अंजिहिषा—संज्ञा स्त्री० [सं० अञ्जिहिषा] जाने की इच्छा [को०]।

अंजी—संज्ञा स्त्री० [सं० अञ्जी] १. पीसने का एक यंत्र। २. आशिष आशीर्वाद [को०]।

अंजीर¹—संज्ञा पुं० [सं० अञ्जीर, फा० अंजीर] एक प्रकार का पेड़ तथा उसका फल।

विशेष—यह गूलर के समान होता है और खाने में मीठा होता है। यह भारतवर्ष में बहुत जगह होता है। पर अफगानिस्तान, बिलूचिस्तान और काश्मीर इसके मुख्य स्थान हैं। इसके लगाने के लिये कुछ चूना लगी हुई मिट्टी चाहिए। लकड़ी इसकी पीली होती है। इसके कलम फागुन में काटकर दूर दूर क्यारियों में लगाए जाते हैं। क्यारियाँ पानी से खूब तर रहनी चाहिएँ। लगने के दो ही तीन वर्ष बाद इसका पेड़ फलने लगता है और १४ या १५ वर्ष बराबर फल देता रहता है। यह वर्ष में दो बार फलता है। एक बार जेठ-असाढ़ में और फिर फाल्गुन में। माला में गूथे हुए इसके सुखाए हुए फल अफगानिस्तान आदि से हिंदुस्तान में बहुत आते हैं। सुखाते समय रंग चढ़ाने और छिलके को नरम करने के लिये या तो गंधक की धूनी देते हैं अथवा नमक और शोरा मिले हुए गरम पानी में फलों को डुबाते हैं। भारतवर्ष में पूना के पास खेड़-शिवापुर नामक गाँव के अंजीर सबसे अच्छे होते हैं। पर अफगानिस्तान और फारस के अंजीर हिंदुस्तानी अंजीरों से उत्तम होते हैं। सुखाया हुआ अंजीर का फल स्निग्ध, पुष्टिकर और रेचक होता है। यह दो तरह का होता है, एक जो पकाने पर लाल होता है और दूसरा काला।

अंजीर²(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अजिर] आँगन। उ०—ऐन अंजीर एक करु मेला।—संत दरिया०, पृ० ३।

अंजु(पु)—वि० [सं० ऋजु, प्रा० अंजु] सरल। स्पष्ट। उ०—पहुपंजलि अंजु सुरंग बनं।—पृ० रा०, २।३४४।

अंजुबार—संज्ञा पुं० दे० 'अंजबार' (को०)।

अंजुमन—संज्ञा पुं० [फा०] सभा। समाज। मजलिस। मंडली।

अंजुल(पु)—संज्ञा पुं० दे० 'अंजली'। उ०—सायर मध्य सुठाम करन त्रिभुवन तन अंजुल।—पृ० रा०, २।६२

अंजुलि—संज्ञा स्त्री० दे० 'अंजलि'। उ०—मंजुल अंजुलि भरि भरि पिय कों तिय जल मेलत।—नंद० ग्रं०, पृ० २४।

मुहा०—अंजुलि करना = प्रणाम करना। उ०—दंडव्रत अंजुलि करिय मम आनंद सधीर।—पृ० रा०, ६।३४। अंजुलि जोरना = हाथ

जोड़ना। उ०--अंजुलि जोरि डरात डरात। कहन लगे बिप्रनि सौं बात।--नंद० ग्रं०, पृ० ३०१।

अंजुली--संज्ञा स्त्री० दे० 'अंजली'। उ०--अंजुली जल घटत जैसें तैसें हीं तन यह गयौ।--सूर०, १०।३८६५।

मुहा०--अंजुली करना=आचमन करना। उ०--हरि चरन अंब अंजुली कीन।--पृ० रा०, १।४३९।

अंजू--संज्ञा पुं० [सं० अश्रु] आँसू। उ०--समंदर एक आँख के अंजू में।--दक्खिनी०, पृ० १६६।

अंझा--संज्ञा पुं० [सं० अनध्याय प्रा० अणज्झा, अणज्झाअ] नागा। तातील। छुट्टी। काम न करने का दिन। उ०--(क) मन को मसूसि मनभावन सों रूसि सखी दासिन को दूसि रहीं रंग भुकि भंझा सी। सोवैं, सुख मोचैं, सुक सारिका लचावैं चोंचैं न रुचिर बानि मानि रहै अंझा सी।--देव (शब्द०)। (ख) अंझा सी दिन की भई संझा सी सकल दिसि गगन लगन रही गरद छवाय है--भूषण (शब्द०)। (ग) काम में चार दिन का अंझा हो गया (शब्द०)।

अंझू--संज्ञा पुं० दे० 'अंजू'।--दक्खिनी०, पृ० ७६।

अंटसंट--वि० दे० 'अट्ट सट्ट'।

अंटा--संज्ञा पुं० [सं० अण्ड, प्रा० अंडअ] १. बड़ी गोली।

विशेष--इसका प्रयोग अफीम और भंग के संबंध में अधिक होता है। जैसे अफीम का अंटा चढ़ा लिया, अब क्या है?

२. सूत वा रेशम का लच्छा। ३ बड़ी कौड़ी। ४. एक खेल जिसे अँगरेज लोग हाथीदाँत की गोलियों से मेज पर खेला करते हैं। बिलियर्ड।

यौ०--अंटागुड़गुड़। अंटाघर। अंटाचित। अंटाबंधू।

अंटागुड़गुड़--वि० [हिं० अंटा+गुड़गुड़] नशे में चूर। संज्ञाशून्य। बेहोश। बेसुध। अचेत।

क्रि० प्र०--होना।

अंटाघर--संज्ञा पुं० [हिं० अंटा+घर] वह कमरा जिसमें गोली का खेल खेला जाय। इस खेल को अँगरेजी में बिलियर्ड कहते हैं।

अंटाचित--क्रि० वि० [हिं० अंटा+चित] पीठ के बल। सीधा। पीठ जमीन पर किए हुए। पट और औंधा का उलटा।

क्रि० प्र०--गिरना। पड़ना--।--होना।

मुहा०--अंटाचित होना=(१) स्तंभित होना। अवाक् होना। (२) पीठ के बल गिर पड़ना, जैसे, इस खबर को सुनते ही वह अंटाचित हो गया (शब्द०)। (३) बेकाम होना। बरबाद होना। किसी काम का न रह जाना, जैसे, व्यापार में उसे ऐसा घाटा आया कि वह अंटाचित हो गया (शब्द०)। ४. नशे में बेसुध होना। बेखबर होना। अचेत होना। चूर होना। उ०--वह भंग पीते ही अंटाचित हो गया (शब्द०)।

अंटाधार--संज्ञा पुं० दे० 'बंटाधार' उ०--'फैशन ने तो बिल और टोटल के इतने गोले मारे कि अंटाधार कर दिया और सिफ़ारिश ने भी खूब ही छकाया।--भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ४७६।

अंटाबंधू--संज्ञा पुं० [सं० अण्ड+बन्धक] जुए में फेंकनेवाली कौड़ी जिसे जुआरी सब कुछ हारने पर दाँव पर रख देता है।

अंटी--संज्ञा पुं० [सं० अण्ड] [क्रि० अँटियाना] १. उँगलियों के बीच का स्थान। अंतर। घाई। २ धोती की वह लपेट जो कमर पर होती है और जिसमें पैसा भी रखते हैं। गाँठ। मुर्री।

मुहा०--अंटी करना--किसी का माल उड़ा लेना। धोखा देकर कोई वस्तु ले लेना। अंटी चढ़ाना=अपने मतलब पर लाना। वश में करना। अपने दाँव पर लाना। अंटी पर चढ़ाना=अपने दाँव में लाना। अंटी मारना=(१) जुवा खेलते समय कौड़ी को उँगलियों के बीच में छिपा लेना (२) आँख बचाकर धीरे से दूसरे की वस्तु खिसका लेना। धोखा देकर कोई चीज उड़ा लेना। (३) तराजू की डाँड़ी को इस ढंग से पकड़ना कि तौल में चीज कम चढ़े। कम तौलना। डाँड़ी मारना। अंटी रखना=छिपा रखना। दबा रखना। प्रगट न होने देना।

३. एक दूसरे पर चढ़ी हुई एक ही हाथ की दो उँगलियाँ। तर्जनी के ऊपर मध्यमा को चढ़ाकर बनाई हुई मुद्रा। डड़ैया। डड़ोइया।

विशेष--इसका चलन लड़कों में है। जब कोई लड़का किसी अपवित्र वस्तु वा अंत्यज से छू जाता है तब उसके साथ के और लड़के उँगली पर उँगली चढ़ा लेते हैं जिसमें यदि वह उन्हें छ ले तो छूत न लगे और कहते है कि दो बाल की अंटी काला वाला छू ले'।

क्रि० प्र०--चढ़ाना।--बाँधना। लगाना।

४ लच्छा। अट्टी। सूत वा रेशम की लच्छी।

क्रि० प्र०--करना=अटेरना। लछियाना। लपेटना। लच्छा बाँधना।

५. अटेरन। वह लकड़ी की वस्तु जिसपर सूत लपेटते हैं। ६. विरोध। बिगाड़। लड़ाई। शरारत। ७. कान में पहनने की छोटी बाली जिसे धोबी, काछी, कहाँर आदि नीच जाति के मर्द पहनते हैं। मुरकी। छोटी बाली। ८. जेब। खलीता (को०)।

अंटीबाज--वि० [हिं० अंटी+फा० बाज] धूर्त। चालाक [को०]।

अंठ--संज्ञा स्त्री० [सं० अण्ठ=गमन] गति। चाल। उ०--धवै अंठ भारी--पृ० रा०, ३१। ११२।

अंठी--संज्ञा स्त्री० [सं० अस्थि, प्रा० अट्ठि, अंठि] १. चीयाँ। गुठली। बीज। २. गाँठ। गिरह। ३ नवोढ़ा के निकलते हुए स्तन। अँठली। ४. गिलटी। कड़ापन।

अंठुल (पु)--संज्ञा स्त्री० [हिं० अंठी] खुर। सुम। उ० -है अंठुल दल पंग बीर अवरत्त हलाइस।--पृ० रा०, ६१।२१४५।

अंड--संज्ञा पुं० [सं० अण्ड] १. अंडा। उ०--अललपच्छ वा अंड ज्यों उलटि चले असमान।--रतन०, पृ० ६१। २. 'अंडकोश'। फोता। २. ब्रह्मांड। लोकपिंड। लोकमंडल। विश्व। उ०--जिअन मरन फल दसरथ पावा। अंड अनेक अमल जस छावा।--मानस, २।१५६। ४ वीर्य। शुक्र। ५. कस्तूरी वा नाफा। मृगनाभि। नाफा। ६. पंच आवरण। दे० 'कोश'। ७. कामदेव। उ०--अति प्रचंड वह अंड महाभट जाहि सबै जग जानत। सो मदहीन दीन ह्वै बपुरो कोपि धनुष शर तानत।--सूर (शब्द०)। ८. मकानों की छाजन के ऊपर के गोल कलश जो शोभा के लिये बनाए जाते हैं। उ०--(क) अंड टूक जाके भसमति सौ ऐसा राजा त्रिभुवनपति।--दक्खिनी, पृ० ३०। (ख) बटे बर षग्ग बमद्ध निसार। तुटै बर देवल अंड अधार।--पृ० रा०, २४।२३९। १०. शिव का एक नाम (को०)।

अंडक--संज्ञा पुं० [सं० अण्डक] १. अंडकोश। २. छोटा अंडा [को०]

अंडककड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० अण्डकर्कटी] दे० 'अंडकर्कटी' [को०]।

अंडकटाह—संज्ञा पुं० [सं० अण्डकटाह] ब्रह्मांड। विश्व। लोकमंडल। उ०—एहि विधि देखत फिरउँ मैं अंडकटाह अनेक।—मानस, ७।८०।

अंडकर्कटी—संज्ञा स्त्री० [सं० अण्डकर्कटी] पपीता। अंड खरबूज [को०]।

अंडकोटरपुष्पा—संज्ञा स्त्री० [सं० अण्डकोटरपुष्पा] दे० 'अंडकोटरपुष्पी' [को०]।

अंडकोटरपुष्पी—संज्ञा स्त्री० [सं० अण्डकोटरपुष्पी] नील अपराजिता। नीलवृह्ला। नीलपुष्पी। अजांत्री [को०]।

अंडकोश—संज्ञा पुं० [सं० अण्डकोश] १. लिंगेंद्रिय के नीचे चमड़े की वह दोहरी थैली जिसमें वीर्यवाहिनी नसें और दोनों गुठलियाँ रहती हैं। दूध पीकर पलनेवाले उन समस्त जीवों को यह कोश वा थैली होती है जिनके दोनों अंड वा गुठलियाँ पेड़ू से बाहर होती हैं। फोता। खुशिया। आँड़। बैजा। बृषण। २. ब्रह्मांड। लोकमंडल। संपूर्ण विश्व। उ०—जा बल सीस धरत सहस्रानन। अंडकोश समेत गिरि कानन।—तुलसी (शब्द०)। ३. सीमा। हद। ४. फल का छिलका। फल के ऊपर का बोकला। ५. फल (को०)।

अंडकोष—संज्ञा पुं० [सं० अण्डकोष] दे० 'अंडकोश' [को०]।

अंडकोषक—संज्ञा पुं० [सं० अण्डकोषक] दे० 'अंडकोश–१' [को०]।

अंडकोस—संज्ञा पुं० दे० 'अंडकोश–२'। उ०—अंडकोस प्रति प्रति निज रूपा। देखेउँ जिनस अनेक अनूपा।—मानस, ७।८१।

अंडज[1]—संज्ञा पुं० [सं० अण्डज] अंडे से उत्पन्न होनेवाले जीव, जैसे सर्प, पक्षी, मछली, कछुआ इत्यादि। ये चार प्रकार के जीवों में से हैं।

अंडज[2]—वि० [सं० अण्डज] अंडे से उत्पन्न [को०]।

अंडजराय—संज्ञा पुं० [सं० अण्डज + प्रा० राय] पक्षियों के राजा। गरुड़। उ०—उदर माँझ सुनु अंडजराया। देखेउँ बहु ब्रह्मांड निकाया।—मानस, ७।८०।

अंडजा—संज्ञा स्त्री० [सं० अण्डजा] कस्तूरी।

अंडजात[1]—संज्ञा पुं० [सं० अण्डजात] अंडे से उत्पन्न जीव, जैसे सर्प, मछली, छिपकली, पक्षी इत्यादि [को०]।

अंडजात[2]—वि० दे० 'अंडज' [को०]।

अंडजेश्वर—संज्ञा पुं० [सं० अण्डजेश्वर] पक्षिराज। गरुड़ [को०]।

अंडदल—संज्ञा पुं० [सं० अण्डदल] अंडे का छिलका या खोल [को०]।

अंडधर—संज्ञा पुं० [सं० अण्डधर] शिव [को०]।

अंडबंड—संज्ञा पुं० [सं० अकाण्डविकाण्ड, प्रा० अंड विअंड] १. असंबद्ध प्रलाप। बेसिर पैर की बात। ऊटपटाँग। अनाप शनाप। अगड़बगड़। व्यर्थ की बात। २. गाली। बुरी बात। अपशब्द।
क्रि० प्र०—कहना।—बकना।—बोलना।

अंडबंड[2]—वि० असंबद्ध। बे सिर पैर का। इधर उधर का। अस्तव्यस्त। व्यर्थ का। प्रयोजन रहित। उ०—'जब उसने उन प्रश्नों के उत्तर अंडबंड दिए तो उसपर...।'—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० १६७।

अंडर सेक्रेटरी—संज्ञा पुं० [अं०] वह मंत्री जो मुख्य मंत्री के अधीन हो। सहकारी सचिव। सहायक मंत्री। जैसे, अंडर सेक्रेटरी फार इंडिया (सहकारी भारत सचिव)।

अंडवर्धन—संज्ञा पुं० [सं० अण्डवर्धन] दे० 'अंडवृद्धि' [को०]।

अंडवृद्धि—संज्ञा पुं० [सं० अण्डवृद्धि] एक रोग जिसमें अंडकोश वा फोता फूलकर बहुत बढ़ जाता है। फोते का बढ़ना।

विशेष—शरीर की बिगड़ी हुई वायु या जल नीचे की ओर चलकर पेड़ू के एक ओर की संधियों से होता हुआ अंडकोश में जा पहुँचता है, और उसको बढ़ाता है। वैद्यक में इसके वातज, पित्तज आदि कई भेद माने गए हैं।

अंडस†—संज्ञा पुं० [सं० अन्तस् प्रा० ✻ अंडस् = बीच में, दाब में] कठिनता। कठिनाई। मुश्किल। संकट। असुविधा।

अंडसू—वि० [सं० अण्डसू] अंडे से पैदा होनेवाला। अंडज [को०]।

अंडा[1]—संज्ञा पुं० [सं० अण्डक, प्रा० अंडअ] [वि० अंडैल] १. बच्चों को दूध न पिलानेवाले जंतुओं के गर्भाशय से उत्पन्न गोल पिंड जिसमें से पीछे से उस जीव के अनुरूप बच्चा बनकर निकलता है। वह गोल वस्तु जिसमें से पक्षी, जलचर और सरीसृप आदि अंडज जीवों के बच्चे फूटकर निकलते हैं। बैंजा। उ०—अंडा पालै काछुई बिनु थन राखै पोक।—कबीर सा० सं०, भा० १, पृ० ८१।

मुहा०—अंडा उड़ाना=(क) बहुत झूठ बोलना। बे पर की उड़ाना। (ख) असंभव को संभव कर दिखाना। अंडा खटकना = अंडा फूटने के करीब होना। जब अंडे से बच्चा निकलने में एक आध दिन रह जाता है तो उसके भीतर के बच्चे का अंडे के छिलके पर चोंच मारना। अंडा ढीला होना = (क) नस ढीली होना। थकावट आना। शिथिल होना। जैसे, यह काम सहज नहीं है, अंडा ढीला हो जायगा (शब्द०)। (ख) खुक्ख होना। निर्द्रव्य होना। दिवालिया होना। जैसे, खर्च करते करते अंडे ढीले हो गए (शब्द०)। अंडा सरकना = (क) दे० 'अंडा ढीला होना'। (ख) हाथ पैर हिलाना। अंग डोलाना। उठना। जैसे, बैठे बैठे बताते हो, अंडा नहीं सरकता (शब्द०)। अंडा सरकाना = हाथ पैर हिलाना। अंग डोलाना। उठना। उठकर जाना। जैसे, अब अंडा सरकाओ तब काम चलेगा (शब्द०)। प्रायः मोटे या बड़े अंडकोशवाले आदमी को लक्ष्य कर यह मुहावरा बना है। अंडे लड़ाना = जुवारियों का एक खेल जिसमें दो आदमी अंडे के सिरे लड़ाते हैं। जिसका अंड़ा फूट जाता है वह हारा समझा जाता है। अंडे का मलूक = सीधा सादा आदमी। अनुभवहीन व्यक्ति। अंडे का शाहजादा = वह व्यक्ति जो कभी घर से बाहर न निकला हो। वह जिसे कुछ अनुभव न हो। अंडे सेना = (क) पक्षियों का अपने अंडे पर गर्मी पहुँचाने के लिये बैठना। (ख) घर में बैठ रहना। बाहर न निकलना। जैसे, क्या घर में पड़े पड़े अंडे सेते हो (शब्द०)।

अंडा[2]ⓤ—संज्ञा पुं० [सं० अण्डक] शरीर। देह। पिंड। उ०—आसन बासन मानुष अंडा। भए चौखंड जो ऐस पखंडा।—जायसी (शब्द०)।

अंडाकर्षण—संज्ञा पुं० [सं० अण्डाकर्षण] नपुंसक बनाना [को०]।

अंडाकार—वि० [सं० अण्डाकार] अंडे के आकार का। बैजावी। उस परिधि के आकार का जो अंडे की लंबाई के चारों ओर रेखा खींचने से बने। लंबाई लिए हुए गोल।

अंडाकृति¹—संज्ञा स्त्री० [सं० अण्डाकृति] अंडे का आकार। अंडे की शकल।

अंडाकृति²—वि० अंडे के आकार का। अंडाकार। अंड इव।

अंडालु—संज्ञा पुं० [सं० अण्डालु] अंडे से भरी हुई मछली [को०]।

अंडिका—संज्ञा स्त्री० [सं० अण्डिका] चार यव के परिमाण की एक तौल [को०]।

अंडिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० अण्डिनी] स्त्रियों का एक योनिरोग जिसमें कुछ मांस बढ़कर बाहर निकल आता है। इसे योनिकंद रोग भी कहते हैं।

अंडी¹—संज्ञा स्त्री० [सं० एरण्ड] १. रेंड़ी। रेंड़ के फल का बीज। २. रेंड़ या एरंड का पेड़।

अंडी²—संज्ञा स्त्री० [सं० अण्डक या अण्डिका] एक प्रकार का रेशमी कपड़ा जो रद्दी रेशम और छाल आदि से बनता है।

अंडीर¹—संज्ञा पुं० [सं० अण्डीर] १. वयस्क पुरुष। युवक। जवान व्यक्ति। २. दृढ़ व्यक्ति [को०]।

अंडीर²—वि० बली। समर्थ [को०]।

अंडल—वि० स्त्री० दे० 'अंडैल'।

अंडैल—वि० स्त्री० [हिं० अंडा + ऐल (प्रत्य०)] जिसके पेट में अंडे हों। अंडेवाली।

अंतः—अव्य० [सं० अन्तः] 'अंतर्' के अर्थ में समस्त पदों में कुछ स्थितियों में प्रयुक्त 'अंतर्' शब्द का एक रूप जो पहले आता है, जैसे अंतःशल्य, अंतःसार आदि आदि [को०]।

अंतःकक्ष—संज्ञा पुं० [सं० अन्तःकक्ष] घर के भीतर का कमरा जहाँ प्रसाधन, शयन, आदि की व्यवस्था हो। उ०—'देवी अंतःकक्ष में अभ्यागत के अकस्मात् प्रवेश से स्तब्ध हो गई'''।' —दिव्या, पृ० २१४।

अंतःकरण—संज्ञा पुं० [सं० अन्तःकरण] १. वह भीतरी इंद्रिय जिसके विषय संकल्प, विकल्प, निश्चय, स्मरण आदि हैं तथा जो सुख दुःखादि का अनुभव करती है।

विशेष—कार्यभेद से इसके चार विभाग हैं—(क) मन, जिससे संकल्प विकल्प होता है। (ख) बुद्धि जिसका कार्य है विवेक वा निश्चय करना। (ग) चित्त, जिससे बातों का स्मरण होता है। (घ) अहंकार, जिससे सृष्टि के पदार्थों से अपना संबंध देख पड़ता है।

२. हृदय। मन। चित्त। बुद्धि। उ०—अंतःकरण में तीव्र अभिमान के साथ विराग है।—स्कंद०, पृ० ५६। ३. नैतिक बुद्धि। विवेक, जैसे—हमारा अंतःकरण इस बात को कबूल नहीं करता (शब्द०)।

अंतःकरन(पु)—संज्ञा पुं० दे० 'अंतःकरण'। उ०—'जो आजहू तेरो अंतःकरन सुद्ध भयो नहीं है।—दो सौ बावन०, भा० २, पृ० १८।

अंतःकलह—संज्ञा पुं० [सं० अन्तःकलह] दे० 'गृहकलह'।

अंतःकुटिल¹—वि० [सं० अन्तःकुटिल] भीतर का कपटी। खोटा। धोखेबाज। छली।

अंतःकुटिल²—संज्ञा पुं० शंख [को०]।

अंतःकोण—संज्ञा पुं० [संज्ञा अन्तःकोण] भीतरी कोना। भीतर की ओर का कोण।

विशेष—जब एक रेखा दो रेखाओं को स्पर्श करती या काटती हैं तब उन रेखाओं के मध्य में बने हुए कोण को अंतःकोण कहते हैं।

अंतःकृमि¹—संज्ञा पुं० [सं० अन्तःकृमि] शरीरस्थ कीटाणुओं से उत्पन्न होनेवाला एक रोग [को०]।

अंतःकृमि²—वि० जिसमें कीड़े हों (फलादि) किनहा [को०]।

अंतःकोटरपुष्पी—संज्ञा स्त्री० [सं० अन्तःकोटरपुष्पी] दे० 'अण्डकोटरपुष्पी' [को०]।

अंतःकोप—संज्ञा पुं० [सं० अन्तःकोप] प्रकट न होनेवाला क्रोध। भीतरी गुस्सा [को०]।

अंतकोश—संज्ञा पुं० [सं० अन्तःकोश] कोशागार या भांडार का भीतरी हिस्सा (को०)।

अंतःक्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं० अन्तःक्रिया] १. भीतरी व्यापार। अप्रगट कर्म। २. अंतःकरण को शुद्ध करनेवाला आंतरिक कर्म।

अंतःपट—संज्ञा पुं० [सं० अन्तःपट] १. वह आवरण पट जो दो व्यक्तियों (वर वधू या गुरु शिष्य) को समुचित मुहूर्त के पूर्व संयुक्त करने के पहले डाला जाता है। वह परदा जो विवाह के अवसर पर वर और वधू के बीच उनको मिलाने के पहले डाला जाता है। अंतरपट। २. अंतर्वस्त्र। अँतरौटा (को०)।

अंतःपटल—संज्ञा पुं० [सं० अन्तःपटल] १. आँखों के भीतर का अव्यक्त जालीदार परदा। २. भीतरी परदा [को०]।

अंतःपटी—संज्ञा स्त्री० [सं० अन्तःपटी] १. किसी चित्रपट द्वारा नदी, पर्वत, वन, नगर आदि का दिखलाया हुआ दृश्य। २. नाटक का परदा।

अंतःपद—अव्य० [सं० अन्तःपदम्] विकारी शब्द के मध्य में [को०]।

अंतःपदवी—संज्ञा स्त्री० [सं० अन्तःपदवी] सुषुम्णा नाड़ी के मध्य की राह [को०]।

अंतःपदे—अव्य० दे० 'अंतःपदम्' [को०]।

अंतःपरिधान—संज्ञा पुं० [सं० अन्तःपरिधान] अंतर्वस्त्र। अँतरौटा [को०]।

अंतःपरिधि—संज्ञा स्त्री० [सं० अन्तःपरिधि] १. किसी परिधि वा घेरे के भीतर का स्थान। २. यज्ञ की अग्नि को घेरने के लिये जो तीन हरी लकड़ियाँ रखी जाती हैं, उनके भीतर का स्थान।

अंतःपवित्रा¹—वि० स्त्री० [सं० अन्तःपवित्रा] शुद्ध अंतःकरणवाली। शुद्ध चित्त की।

अंतःपवित्रा²—संज्ञा स्त्री० सोमरस जब वह छानने के लिये छनने में रखा हो।

अंतःपशु—सं० पुं० [सं० अन्तःपशु] पशुओं की गोशाला या बथान पर रहने का सायंकाल से प्रातःकाल तक का समय [को०]।

अंतःपात—संज्ञा पुं० [सं० अन्तःपात] १. यज्ञशाला का मध्यवर्ती स्तंभ या खंभा (को०)। २. व्याकरण में किसी अक्षर का मध्य में आना [को०]।

अंतःपातित—वि० [सं० अन्तःपतित] दे० 'अन्तःपाती' [को०]।

अंतःपाती—वि० [सं० अन्तःपातिन्] १. मध्यवर्ती। बीच में। २. संमिलित [को०]।

अंतःपाल—संज्ञा पुं० [सं० अन्तःपाल] १. अन्तःपुर या रनिवास का रक्षक। २. कंचुकी [को०]।

अंतःपुर—संज्ञा पुं० [सं० अन्तःपुर] घर के मध्य या भीतर का भाग जिसमें रानियाँ या स्त्रियाँ रहती हों। जनानखाना। जनाना या भीतरी महल। रनिवास। हरम। उ०—'दुर्ग का तो नहीं, अंतःपुर का भार तुम्हारे ऊपर है'।—स्कंद० पृ० ५६।

अंतःपुरचर--संज्ञा पुं० [सं० अंतःपुरचर] अंतःपुर में आने जाने के अधिकारी, कंचुकी आदि [को०] ।

अंतःपुरचारिणी--संज्ञा स्त्री० [सं० अन्तःपुरचारिणी] [संज्ञा पुं० अन्तःपुरचारिन्] अंतःपुर या हरम में निवास करनेवाली स्त्री। उ०--'एक समय कुलवधु की संज्ञा थी अंतःपुरचारिणी'।--टैगोर सा०, पृ० ३६ ।

अंतःपुरजन--संज्ञा पुं० [सं० अन्तःपुरजन] अंतःपुर में रहनेवाली स्त्रियाँ आदि [को०]।

अंतःपुरप्रचार--संज्ञा पुं० [सं० अन्तःपुरप्रचार] औरतों की गप्प-बाजी [को०]।

अंतःपुररक्षक--संज्ञा पुं० [सं० अन्तःपुररक्षक] दे० 'अंतःपाल' [को०]।

अंतःपुरवर्ती--संज्ञा पुं० [सं० अन्तःपुरवर्तिन्] अंतःपाल [को०]।

अंतःपुरसहाय--संज्ञा पुं० [सं० अन्तःपुरसहाय] अंतःपुर में कार्य करनेवाले खोजा, नपुंसक, माणवक, विदूषक आदि [को०]।

अंतःपुराध्यक्ष--संज्ञा पुं० [सं० अन्तःपुराध्यक्ष] अंतःपुर का रक्षक। रनिवास का अध्यक्ष [को०]।

अंतःपुरिक--संज्ञा पुं० [सं० अन्तःपुरिक] अंतःपुर का रक्षक। कंचुकी [को०]।

अंतःपुरिका--संज्ञा पुं० [सं० अन्तःपुरिका] अंतःपुर में रहनेवाली नारी [को०]।

अंतःपुष्प--संज्ञा पुं० [सं० अन्तःपुष्प] वह रज जो १२ वर्ष की रजस्राव की निश्चित अवधि के बीत जाने पर भी प्रगट नहीं होता [को०]।

अंतःपूय--वि० [सं० अन्तःपूय] पीब या मवाद से भरा हुआ। जिसके भीतर मवाद हो [को०]।

अंतःप्रकृति--संज्ञा स्त्री० [सं० अन्तःप्रकृति] १. आंतरिक प्रकृति। भीतरी या मन का स्वभाव। अंतर्वृत्ति। मूल स्वभाव। उ०--उसी प्रकार अंतःप्रकृति में दया, दाक्षिण्य, श्रद्धा, भक्ति आदि वृत्तियों की स्निग्ध, शीतल आभा में सौंदर्य लहराता हुआ पाते हैं।-- रस०, पृ० ३२। २. आत्मा। ३. राज्यांग। राजा के समीपवर्ती अमात्य, सुहृद् आदि। ४. राजधानी की प्रजा [को०]।

अंतःप्रज्ञ--संज्ञा पुं० [सं० अन्तःप्रज्ञ] जिसकी आंतरिक अथवा आत्मविषयिणी प्रज्ञा प्रबुद्ध हो। आत्मज्ञानी। तत्वदर्शी।

अंतःप्रतिष्ठित--वि० [सं० अन्तःप्रतिष्ठित] हृदय में बसा हुआ [को०]।

अंतःप्रवाह--संज्ञा पुं० [सं० अन्तःप्रवाह] वह धारा या प्रवाह जो भीतर ही भीतर बहता हो [को०]।

अंतःप्रविष्ट--वि० [सं० अन्तःप्रविष्ट] १. भीतर घुसा हुआ। २. हृदगत। मनोगत [को०]।

अंतःप्रांतीय--वि० [सं० अन्तः+प्रांतीय] किसी भी देश के दो या उससे अधिक विभागों या प्रदेशों में संबंध रखनेवाला अथवा उनसे अवस्थित।

अंतःप्राचीर--संज्ञा पुं० [सं० अन्तःप्राचीर] प्राचीर के भीतर की दीवाल। भीतरी दीवार [को०]।

अंतःप्रादेशिक--वि० [सं० अन्तःप्रादेशिक] दे० 'अंतःप्रांतीय'।

अंतःप्रेरणा--संज्ञा स्त्री० [सं० अन्तःप्रेरणा] भीतरी या स्वाभाविक प्रेरणा।

अंतःराष्ट्रीय--वि० [सं० अन्तः+राष्ट्रीय] जिसका दो या अधिक राष्ट्रों से संबंध हो। भिन्न भिन्न राष्ट्रों से संबंधित।

अंतःशर[1]--संज्ञा पुं० [सं० अन्तःशर] १. वनभूमि का भीतरी भाग जहाँ शर (बेंत) उगे हों। २. एक रोग [को०]।

अंतःशर[2]--वि० दे० 'अंतःशल्य' [को०]।

अंतःशरीर--संज्ञा पुं० [सं० अन्तःशरीर] वेदांत और योग के अनुसार स्थूल शरीर के भीतर का सूक्ष्म शरीर। लिंगशरीर।

अंतःशल्य[1]--वि० [सं० अन्तःशल्य] भीतर चुभे काँटे की तरह सालनेवाला। गाँसी की तरह मन में चुभनेवाला। मर्मभेदी।

अंतःशल्य[2]--संज्ञा पुं० शत्रु के वश में पड़ी हुई सेना।

अंतःशुद्ध--वि० पुं० [सं० अन्तःशुद्ध] [स्त्री० अन्तःशुद्धा] जिसका अंतःकरण, मन या चित्त शुद्ध हो।

अंतःशुद्धि--संज्ञा स्त्री० [सं० अन्तःशुद्धि] अंतःकरण की पवित्रता। चित्त की स्वच्छदता। दिल की सफाई। चित्तशुद्धि।

अंतःसंज्ञ--वि० पुं० [सं० अन्तःसंज्ञ] जो जीव अपने सुख दुख का अनुभव करते हुए भी उन्हें स्पष्ट प्रगट न कर सके, जैसे वृक्ष, तृण आदि।

अंतःसत्व--वि० [सं० अन्तःसत्व] जिसके भीतर शक्ति या गुरुता हो। अंतःसार [को०]।

अंतःसत्वा[1]--वि० स्त्री० [सं० अन्तःसत्वा] गर्भवती। गर्भिणी।

अंतःसत्वा[2]--संज्ञा स्त्री० भिलावाँ। भल्लातक।

अंतःसलिला--संज्ञा स्त्री० [सं० अन्तःसलिला] दे० 'अंतस्सलिला'। उ०--क्या हो सूने मरु अंचल में अंतःसलिला की धारा सी।--कामायनी, पृ० ६७।

अंतःसाक्षी--संज्ञा स्त्री० [सं० अन्तः+साक्षिन्] भीतरी प्रमाण। आंतरिक गवाही। उ०--सूत्रों की अंतःसाक्षी इसी पक्ष में है।--पाणिनि०, पृ० ४।

अंतःसार[1]--संज्ञा पुं० [सं० अन्तःसार] भीतरी तत्व। गुरुता। भीतरी सार। उ०--'ऐसे मामलों का अंतःसार हिंदुस्तानी ही लोग जानते हैं'। --भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ३६२।

अंतःसार[2]--वि० जिसके भीतर कुछ तत्व हो। जो भीतर से पोला न हो। जो सारयुक्त हो। जिसके भीतर कुछ प्रयोजनीय या महत्व की वस्तु हो।

अंतःसारवान--वि० पुं० [सं० अन्तःसारवत्] १. जिसके भीतर कुछ तत्व या सार हों। जो पोला न हो। जिसके भीतर प्रयोजनीय वस्तु हो। २. तत्वपूर्ण। सारगर्भित। प्रयोजनीय। काम का।

अंतःसुख[1]--संज्ञा पुं० [सं० अन्तःसुख] बाह्य सुख से रहित आत्मानुसंधान रूपी सुख। आंतरिक सुख [को०]।

अंतःसुख[2]--वि० जिसे आंतरिक सुख प्राप्त हो [को०]।

अंतःसौंदर्य--संज्ञा पुं० [सं० अन्तः+सौन्दर्य] भीतरी सौंदर्य। हृदय की अच्छाई। उ०--'जहाँ कोई सौंदर्य नहीं वहाँ अंतःसौंदर्य देखा जाता है'। --जय० प्र०, पृ० ३६।

अंतःस्थ--संज्ञा पुं०, वि० [सं० अन्तःस्थ] दे० 'अंतस्थ' [को०]।

अंतःस्थित--वि० [सं० अन्तःस्थित] मध्य में स्थित या बैठा हुआ। भीतर बैठा हुआ [को०]।

अंतःस्वर--संज्ञा पुं० [सं० अन्तः+स्वर] आंतरिक ध्वनि। भीतरी आवाज। हृदय का स्वर। दिल की आवाज। उ०--'गूंजते से तप्त अंतःस्वर तुम्हारे तरल कूजन में'।--हरी घास०, पृ० ३२।

अंतःस्वेद--संज्ञा पुं० [सं० अन्तःस्वेद] वह जीव जिसके भीतर स्वेद या मदजल हो। मदस्रावी हाथी।

अंत[1]--संज्ञा पुं० [सं० अन्त] [वि० अंतिम, अंत्य] १. वह स्थान जहाँ से किसी वस्तु का अंत हो। समाप्ति। आखीर। अवसान। इति। उ०--बन कर अंत कतहुँ नहिं पावहिं।--तुलसी (शब्द०)। २. वह समय जहाँ से किसी वस्तु की समाप्ति हो। उ०-- दिन के अंत फिरी दोउ अनी'।--तुलसी (शब्द०)।

विशेष--इस शब्द में 'में' और 'को' विभक्ति लगने से 'आखिरकार', 'निदान' अर्थ होता है।

क्रि० प्र०--करना।--होना।

३. शेष भाग। अंतिम भाग। पिछला अंश। उ०--'रजनी सु अंत महुरत्त बंभ'।--पृ० रा०, ६६।१६६२।

मुहा०--अंत बनना = अंतिम भाग का अच्छा होना। अंत बिगड़ना = अंतिम वा पिछले भाग का बुरा होना]

४. पार। छोर। सीमा। हद। अवधि। पराकाष्ठा। उ०--'अस अँवराउ सघन बन, बरनि न पारौं अंत'।--जायसी (शब्द०)।

क्रि० प्र०--करना = हद करना। उ०--तुमने तो हँसी का अंत कर दिया (शब्द०)।--पाना।--होना।

५. अंतकाल। मरण। मृत्यु। उ०--(क) 'जान्यौ सु अंत प्रथिराज अप्प। चित्तौ जुगति द्रुग्गा सु जप्प'।--पृ० रा०, ६७। ४५७। (ख) 'अंत राम कहि आवत नाहीं'।--तुलसी (शब्द०)। ६ नाश। विनाश। उ०--'कहै पदमाकर त्रिकूट ही को ढाहि डारौं डारत करेई जातुधानन को अंत हौं।--पद्माकर (शब्द०)।

क्रि० प्र०--करना।--होना।

७. परिणाम। फल। नतीजा। उ०--(क) अंत भले का भला।--कहावत (शब्द०)। (ख) 'बुरे काम का अंत बुरा होता है' (शब्द०)। ८. प्रलय (डिं०) ९. सामीप्य। निकटता। (को०) १० प्रतिवेश। पड़ोस (को०)। ११. निबटारा। निबटाव (को०)। १२. किसी समस्या का समाधान या निर्णय (को०)। १३. निश्चय (को०)। १४. समास का अंतिम शब्द (को०)। १५. शब्द का अंतिम अक्षर (को०)। १६. प्रकृति। अवस्था (को०)। १७. स्वभाव (को०)। १८. पूर्ण योग या राशि (को०)। १९. वह संख्या जिसे लिखने में १२ अंक लिखने पड़ें। एक खरब या सौ अरब की संख्या।--भा० प्रा० लि०, पृ० १२। २०. भीतरी भाग (को०)।

अंत[2]--वि० १ समीप। निकट। २. बाहर। दूर। ३. अंतिम (को०)। ४. सुंदर। प्यारा (को०)। ५. सबसे छोटा (को०)। ६. निम्न। भ्रष्ट (को०)।

अंत(पु)[3]--क्रि० वि० अंत में। आखिरकार। निदान। उ०--(क) उघरे अंत न होहि निबाहू।--तुलसी (शब्द०)। (ख) कोटि जतन कोऊ करौ परै न प्रकृतिहिं बीच। नल बल जल ऊँचौ चढ़ै अंत नीच को नीच।--बिहारी (शब्द०)।

अंत(पु)[4]--संज्ञा पुं० [सं० अन्तस्] १. अंतःकरण। हृदय। जी। मन। जैसे, 'तुम अपने अंत की बात कहो'; 'मैं तुम्हें अंत से चाहता हूँ' (शब्द०)। २. भेद। रहस्य। छिपा हुआ भाव। मन की बात। उ०--'काहू को न देती इन बातन को अंत, लै इकंत कंत मानि कै अनंत सुख ठानती'।--भिखारी० ग्रं०, भा० १, पृ० १५६।

मुहा०--अंत पाना = भेद पाना। पता पाना। अंत लेना = भेद लेना। मन का भाव जानना। मन छूना। उ०--हे द्विज मैं हौं धर्म लेन आयों तव अंता।--विश्राम० (शब्द०)।

अंत(पु)[5]--संज्ञा पुं० [सं० अन्त्र, प्रा० अंत] आँत, अँतड़ी। उ०--(क) जिमि जिमि अंत रुलंत लष्ष दल तिन गनि तिम तिम।--पृ०रा०, ६१।२२७३। (ख) भरै श्रोन धारा परे पेट ते अंत।--सुजान (शब्द०)।

अंत(पु)[6]--क्रि० वि० [सं० अन्यत्र, प्रा० अण्णत्त, अन्नत, हिं० अनत--अंत] और जगह। और ठौर। दूसरी जगह। और कहीं। दूर। अलग। जुदा। उ०--(क) कुंज कुंज में क्रीडा करि करि गोपिन को सुख देहौं। गोप सखन सँग खेलत डोलौं ब्रज तजि अंत न जैहौं--सूर (शब्द०)। (ख) एक ठाँव यहि थिर न रहाहीं। रस लै खेलि अंत कहुँ जाहीं--जायसी (शब्द०)। (ग) धनि रहीम गति मीन की जल बिछुरत जिय जाय। जियत कंज तजि अंत बसि कहा भौंर को भाय।--रहीम (शब्द०)।

अंतक[1]--संज्ञा पुं० [सं० अन्तक] १. मृत्यु जो प्राणियों के जीवन का अंत करती है मौत। २. यमराज। काल। उ० गिरा रहित बृक ग्रसित अजा लौं अंतक आनि गह्यौ।--सूर०, १।२०१।३. सन्निपात ज्वर का एक भेद जिसमें रोगी को खाँसी, दमा और हिचकी होती है और वह किसी वस्तु को नहीं पहचानता। उ०--व्याकुल सखा गोप भए व्याकुल। अंतक दसा भयौ भय आकुल।--सूर०, १०।३११५। ४. ईश्वर जो प्रलय में सबका संहार करता है। ५ शिव। परमेश्वर। ६. सीमा। हद्द (को०)।

अंतक[2]--वि० अंत करनेवाला। नाश करनेवाला।

अंतकर--वि० [सं० अन्तकर] अंत या नाश करनेवाला। संहार करनेवाला।

अंतकरण--वि० [सं० अन्तकरण] दे० 'अंतकर' [को०]।

अंतकर्ता--वि० [सं० अन्तकर्ता] दे० 'अंतकर'।

अंतकर्म--संज्ञा पुं० [सं० अन्तकर्म] मरण। मृत्यु। [को०]।

अंतकारी--वि० [सं० अन्तकारिन्] स्त्री० [अन्तकारिणी] अंत या नाश करनेवाला। विनाश करनेवाला। संहार करनेवाला। मार डालनेवाला। उ०--भक्त भय हरन असुरंऽतकारी।--सूर०, १०।४१९४।

अंतकाल--संज्ञा पुं० [सं० अन्तकाल] १. अंतिम समय। मरने का समय। आखिरी वक्त। उ०--घर घर मंतर देत फिरत हैं महिमा के अभिमाना। गुरू सहित सीष सभ बूड़े अंतकाल पछिताना।--कबीर बी०, पृ० ३०।

अंतकृत[1]--संज्ञा पुं० [सं० अन्तकृत] यमराज। धर्मराज। काल। उ०--भूमिजा दुःख संजात रोषांतकृत (रोष + अंतकृत) यातना जंतुकृत यातुधानी।--तुलसी (शब्द०)।

अंतकृत[2]--वि० अंत या विनाश करनेवाला। अंतकर।

अंतक्क--संज्ञा पुं० [सं० अन्तक, प्रा० अंतक्क] यमराज। काल। उ०--प्रथिराज सब्ब देष्यौ सु आब। अंतक्क रूप सब गुन सहाब।--पृ० रा०, ६७।४६०।

अंतक्रिया--संज्ञा स्त्री० [सं० अन्तक्रिया] अंत्येष्टि कर्म। क्रिया कर्म। मरने के पीछे मृतक की आत्मा की भलाई या सद्गति के लिये किए जानेवाले दाह और पिंडदान आदि कर्म। हिंदुओं के षोडश संस्कारों में अंतिम।

अंतग--वि० [सं० **अन्तग**] १ जानकारी में पूरा। पारंगत। पारगामी निपुण। अंतगामी। २ मृत। मरा हुआ (को०)।

अंतगत--वि० [सं० **अन्तगत**] १ सीमा पर गया हुआ। २. समाप्ति को पहुँचा हुआ (को०)।

अंतगति[1]--संज्ञा स्त्री० [सं० **अन्तगति**] अंतिम दशा। मृत्यु। मरण। मौत।

अंतगति[2]--वि० अंत को प्राप्त होनेवाला। नाश होनेवाला (को०)।

अंतगमन--संज्ञा पुं० [सं० **अन्तगमन**] १ अंत तक पहुँचने या पूर्ण करने का कार्य। २. जीवन के अंत तक जाने की स्थिति। मौत। मृत्यु [को०]।

अंतगामी--वि० [सं० **अन्तगामिन्**] [स्त्री० **अन्तगामिनी**] १. दे० 'अंतग'। २. मरणशील (को०)।

अंतगुरु--संज्ञा पुं० [सं० **अन्तगुरुः**] वह शब्द जिसके अंत में दो मात्राएँ या गुरु हों। उ०--गज अभरन प्रहरन असनि चकल अंतगुरु नाम।--भिखारी० ग्रं०, भा० १, पृ० १६६।

अंतघाई--वि० [सं० **अन्त+घाती**, प्रा० **अंत+घाइ**] अंत में धोखा देनेवाला। विश्वासघाती। दगाबाज। उ०--साँझ ही समै तें दूरि बैठी परदानि देके संक मोहि एकै या कलानिधि कसाई की। कंत की कहानी सुनि श्रवन सोहानी रैनि रंचक बिहानी या बसंत अंतघाई की।--कोई कवि (शब्द०)।

अंतघाती--वि० [सं० **अंत+घातिन्**] धोखा देनेवाला। वंचक। दगाबाज।

अंतचर--वि० [सं० **अन्तचर**] १. सीमा पर जाने या चलनेवाला। २. कोई भी कार्य पूरा करनेवाला [को०]।

अंतच्छद--संज्ञा पुं० [सं० **अन्तच्छद**] भीतरी आच्छादन। अंदरूनी परदा।

अंतज--वि० [सं० **अन्तज, अन्त्यज**] जो अंत में उत्पन्न हो। सबसे बाद में उत्पन्न होनेवाला [को०]।

अंतजा--वि० स्त्री० [सं० **अन्तजा, अन्त्यजा**] अंत में पैदा होनेवाली। सबसे पीछे की। उ०--अत मरि सो गरि अंतजा मत्ति अमत्तिय।--पृ० रा०, ३१।१०१।

अंतजाति[1]--वि० [सं० **अन्तजाति, अन्त्यजाति**] अंतिम जाति का। निम्न जाति का [को०]।

अंतजाति[2]--संज्ञा पुं० जातिविभाजन में अंतिम जाति [को०]।

अंततः--अव्य० [सं० **अन्ततः**] १. अंत में। आखिरकार। निदान। सबसे पीछे। उ०--मिला परमार्थ मुझको अंततः इस वृद्ध वय में।--पार्वती, पृ० ३१८। २. कम से कम। अंशतः (को०)। ३. भीतर (को०)। ४. निचले या निम्न मार्ग में। मुख्य एवं मध्य के बाद में (को०)।

अंतत(पु)--अव्य० [सं० **अन्ततः**] अंत में। आखिरकार। उ०--जाति स्वभाउ मिटे नहिं सजनी अंतत उबरी कुबरी।--सूर० (राधा०), पृ० ५३२।

अंततर--वि० [सं० **अन्ततर**] अंतिम के बाद का। अंत के बादवाला [को०]।

अंततम--वि० [सं० **अन्ततम**] सबसे बाद का। सबसे बादवाला [को०]।

अंतता--क्रि० वि० दे० 'अंततः'। उ०--दूध भात घृत सकरपारे। हरते भूक नहि अंतता रे।--दक्खिनी०, पृ० १०५।

अंततोगत्वा--क्रि० वि० [सं० **अन्ततस्+गत्वा**] अंत में जाकर। आखिरकार। निदान। उ०--'शोकार्त हृदयवाले का अंततोगत्वा ईश्वर में अनन्य प्रौढ़ प्रेमप्रदर्शन उत्तम है'।--प्रेमघन०, भा० २, पृ० ४४२।

अंतदीपक--संज्ञा पुं० [सं० **अन्तदीपक**] काव्यों में प्रयुक्त दीपकालंकार का एक भेद [को०]।

अंतपाल--संज्ञा पुं० [सं० **अन्तपाल**] १. द्वारपाल। ड्योढ़ीदार। पौरिया। दरबान। २. सीमा की रक्षा करनेवाला अधिकारी। सरहद का पहरेदार। उ०--'सरहदों का प्रबंध अंतपाल करते थे'।--हिंदु० सभ्यता, पृ० ३२६।

अंतपुर(पु)--संज्ञा पुं० दे० 'अंतःपुर'। उ०--अंतपुर पैठि भानु आतुर कढ़ै न बेगि, चिर निसि अंक मैं निसापति डरे रहैं।--रत्नाकर, भा० २, पृ० १२८।

अंतबर(पु)--संज्ञा पुं० [सं० अन्त्र+अवलि] आँतों का समूह। उ०--मंस हड्ड रद गूद अतबर बाच गज्ज नर।--पृ० रा०, ७।१५२।

अंतभव--वि० [सं० **अन्तभव**] अंत में उत्पन्न होनेवाला [को०]।

अंतभाक्--वि० [सं० **अन्तभाज्**] किसी शब्द के अंत का या अंत में होनेवाला [को०]।

अंतभूत--वि० [सं० **अन्तर्भूत**] दे० 'अंतर्भूत'।

अंतभेदी--संज्ञा पुं० [सं० **अन्तभेदी**] एक प्रकार का व्यूह। मध्यभेदी व्यूह का विपरीत या उलटा व्यूह।

अंतम--वि० [सं० **अन्तम**] अति समीप का। घनिष्ठ (मित्र) [को०]।

अंतमन--संज्ञा पुं० [सं० **अन्तर्मन**] आभ्यंतर मन। भीतरी मन। उ०--सुनि आनंदयौ कब्बि जिय धरिय अंतमन ध्यान।--पृ० रा०, ६७।२७४।

अंतमान(पु)--संज्ञा पुं० दे० 'अंतमन'। उ०--लोयन राखौं घूंघट हेरी। अंतमान कौ राखे फेरी।--चित्रा०, पृ० १५४।

अंतरंग[1]--वि० [सं० **अन्तरङ्ग**] १. अत्यंत समीपी। आत्मीय। निकटस्थ। दिली। जिगरी। उ०--'वह अपने अंतरंग लोगों का परिचय भी नहीं बताती'।--स्कंद०, पृ० ११६। २. मानसिक। ('बहिरंग' इसका उलटा है)।

अंतरंग[2]--संज्ञा पुं० १. मित्र। दिली दोस्त। आत्मीय। स्वजन। उ०--'अनवरी आज इतनी अंतरंग बन गई है'।--तितली' पृ० १२४। २. हृदय। उ०--बरदान आज उस गत युग का कंपित करता है अंतरंग।--कामायनी, पृ० १६२। ३. राजाओं के अंतःपुर में जानेवाले अधिकारी।--वर्ण०, पृ० ६। ४. भीतरी अंग। प्रच्छन्न अंग। उ०--फुनि पुच्छति इंछिनि सु वहि सौंत रूप मनि साल। नौ पुच्छौ कैसी कहै अंतरंग सु बिसाल।--पृ० रा०, ६२।१०४।

यौ०--**अंतरंग मंत्री**=निजी सचिव। **अंतरंग सचिव**=प्राइवेट सेक्रेटरी। **अंतरंग मित्र**=दिली दोस्त। **अंतरंग सभा**=सब कमेटी छोटी कमेटी या प्रबंधकारिणी सभा जिसमें मुख्य सभा से चुने हुए लोग रहते हैं और जिनकी संख्या नियत रहती।

अंतरंगिनी--वि० स्त्री० [सं० **अन्तरङ्गिणी**] अत्यंत समीप की। आत्मीया। उ०--'यह सुनत ही श्री गुसाईं जी कहे, जो मेरी

अंतरंगिनी सेववि नी के घर सखड़ी महाप्रसाद क्यों नाहीं लियो ?'--दासौ बावन०, भा० १, पृ० १० ।

अंतरंगी[1]--वि० [सं० **अन्तरङ्गिन्**] दिली । भीतरी । जिगरी । उ०--'हे अतरंगी जन आज तक जो पुस्तकें प्रकाशित हुईं, वह दूसरे को समर्पित हुई थीं' ।--भारतेंदु ग्रं०, भा० ३, पृ० ६४६ ।

अतरंगी[2]--संज्ञा पुं० गहरा मित्र । दिली दोस्त । उ०--वही अंतरंगी सुरंगी निनारं । वहे राज राजीव लोचन्न सारं ।--पृ० रा०, २।७७६ ।

अंतरंस--संज्ञा पुं० [सं० **अन्तरंस**] वक्षस्थल । सीना । छाती [को०] ।

अंतर[1]--संज्ञा पुं० [सं० **अन्तर**] १. फर्क । भेद । विभिन्नता । अलगाव । फेर । उ०--(क) संत भगवंत अंतर निरंतर नहीं किमपि मति-मलिन कह दास तुलसी ।-तुलसी ग्रं०, भा० २, पृ० ४८८ । (ख) इसके और उसके स्वाद में कुछ अंतर नहीं है (शब्द०) ।

क्रि० प्र०--करना=फर्क या भेद करना । उ०--मोहि चंद बरदाय सु अतर मति करयौ ।-पृ० रा० ५८।१२६ ।--**देना** । --**पड़ना** ।--**रखना**=भेदभाव रखना । उ०--ब्रजवासी लोगन सों मैं ता अंतर कछू न राख्यो ।--सूर (शब्द०) ।--**होना** ।

२. बीच । मध्य । फासला । दूरी । अवकाश । उ०--'यह विचारो कि मथुरा और वृंदावन का अंतर ही क्या है' ।--प्रेमसागर (शब्द०) । ३. दो घटनाओ के बीच का समय । मध्यवर्ती काल । उ०--(क) इहिं अंतर मधुकर इक आयौ ।--सूर०, १० ३४६७ । (ख) 'इस अतर में रतन दूध से भर जाते हैं' । --वनिताविनोद (शब्द०) । ४. दो वस्तुओं के बीच में पड़ी हुई चीज । ओट । आड़ । परदा । उ०--काठन बचन सुनि स्रवन जानकी सकी न हिये सँभारि । तृन अंतर दै दृष्टि तरौंधी दई नयन जल ढारि ।--सूर०, ९।७९ ।

क्रि० प्र०--करना=आड़ करना । उ०--अपने कुल को कलह क्यों देखहिं रबि भगवंत । यहै जानि अंतर कियो मानो मही अनंत ।--केशव (शब्द०) ।--**डालना** । --**देना**=ओट करना । उ०--पट अंतर दै भोग लगायौ आरति करी बनाइ । --सूर०, १०।२६१ ।--**पड़ना** ।

५. छिद्र । छेद । रंध्र । दरार । ६. भीतर का भाग । उ०--'दास' अँगिराति जमुहाति तकि झुकि जाति, दीने पट, अंतर अनत आप झलकै ।--भिखारी० ग्रं०, भा० १, पृ० १४३ । ७. प्रवेश । पहुँच (को०) । ८. शेष । बाकी । गणित मे शेषफल (को०) । ९. विशेषता । उ०--अंतरौ एक कैमास सुनि मरन तुच्छ मारन बहुल ।--पृ० रा०, १२।१६८ । १०. निर्बलता (को०) । ११. दोष । त्रुटि (को०) । १२. अभाव (को०) । १३. प्रयोजन (को०) । १४. लिहाज (को०) । १५. छिपाव (को०) । १६. निश्चय (को०) । १७. प्रतिनिधि (को०) । १८. वस्त्र (को०) । १९. हृदय । अंतःकरण । जी । मन । चित्त । उ०--जिहि जिहि भाइ करत जन सेवा अंतर की गति जानत ।--सूर०, १।१३ । (ख) अंतर प्रेम तासु पहिचाना । मुनि दुरलभ गति दीन्हि सुजाना ।--तुलसी (शब्द०) । २०. आत्मा (को०) । २१. परमात्मा (को०) । २२. स्थान (को०) । २३. आशय (को०) ।

अंतर[2]--वि० १. अंतर्धान । गायब । लुप्त । उ०--कृपा करी हरि कुँवरि जिमाई । अंतर आप भए सुरराई ।--महाभारत (शब्द०) ।

क्रि० प्र०--करना--होना=अदृश्य होना । उ०--मोहीं ते परी चूक अंतर भए हैं जातें तुमसों कहति बातैं मैं ही कियो द्वंदन ।--सूर (शब्द०) ।

२. दूसरा । अन्य । और ।

विशेष--इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग प्रायः यौगिक शब्दों में मिलता है; जैसे, ग्रंथांतर, स्थानांतर, कालांतर, देशांतर, पाठांतर, मतांतर, यज्ञांतर इत्यादि ।

३. समीप । आसन्न । निकट (को०) । ४. आत्मीय । प्यारा (को०) । ५. समान (स्वर या शब्द); (को०) । ६. भीतरी । भीतर का (को०) ।

अंतर[3]--क्रि० वि० १. दूर । अलग । जुदा । पृथक् । विलग । उ०--कहाँ गए गिरिधर तजि मोकौं ह्याँ मैं कैसे आई । सूर श्याम अंतर भए मोते अपनी चूक सुनाई ।--सूर (शब्द०) ।

क्रि० प्र०--करना=दूर करना । पृथक् करना । उ०--सूरदास प्रभु को हियरे तें अंतर करी नहीं छिनहीं ।--सूर (शब्द०) ।--**होना** ।

२. भीतर । अंतर । उ०--(क) मोहन मूरति स्याम की अति अद्भुत गति जोइ । बसत सुचित अंतर तऊ प्रतिबिंबित जग होइ ।--बिहारी (शब्द०) । (ख) चिता ज्वाल शरीर बन दावा लगि लगि जाइ । प्रगट धुआँ नहिं देखिए उर अंतर धुधुआइ ।--दीनदयाल (शब्द०) । (ग) बाहर गर लगाइ राखौंगी अंतर करौंगी समाधि ।--हरिश्चंद्र (शब्द०) ।

क्रि० प्र०--करना--भीतर करना । ढाँकना । छिपाना । उ०--फिरि चमक चोप लगाइ चंचल तनहिं तब अंतर करै (शब्द०) ।

अंतर[4] (पु)--संज्ञा पुं० दे० 'अतर' । उ०--जवादि केसरं सुरं । पलं सु सत्त अंतरं ।--पृ० रा०, ६६।६० ।

अंतर[5] (पु)--संज्ञा पुं० [सं० **अन्त्र**, प्रा० अंत; अप० **अंतड़ी**] आँत । अँतड़ी । उ०--(क) करंत हक्क हुक्कयं । कमंत धक्क धक्कयं । चढंत देत दंतरं । अरू अभंत अंतरं ।--पृ० रा०, ९।१७५ । (ख) बहंत सार बार पार ता हरंत अंतरं । ग्रहंत दंत दंत एक कंठ कंठ मंतरं ।--पृ० रा०, ५८।२४३ ।

अंतर अयण--संज्ञा पुं० [सं० **अन्तर+अयण**] नीचे जाना । विलोपन [को०] ।

अंतर अयन--संज्ञा पुं० [सं० **अन्तर+अयन**] १. तीर्थों की एक परिक्रमा विशेष अंतर्गृही । २. एक देश का नाम । ३. काशी का मध्य भाग । उ०--अंतर अयन अयन भल, थन फल, बच्छ बेद बिस्वासी ।--तुलसी ग्रं०, पृ० ४६४ ।

अंतरकालीन--वि० [सं० **अन्तर+कालीन**] दो कालविभागों के बीच का । किन्हीं दो स्थितियों का मध्यवर्ती [को०] ।

अंतरख (पु)--संज्ञा पुं० [सं० **अन्तरिक्ष**, प्रा० **अंतरिक्ख**] अंतरिक्ष । शून्य । अंतर । आकाश । उ०--रूप न होता तब अकुलान रहिता सबद । गगन न होता तब अंतरख रहिता चंद ।--गोरख०, पृ० १८९ ।

अंतरगत[1] (पु)--संज्ञा पुं० [सं० **अन्तर्गत**] मन । हृदय । अंतःकरण । उ०--(क) ज्यौं गूँगै मीठे फल रस को अंतरगत ही भावै ।--सूर०, १।२ । (ख) जानराय जानत सबै अंतरगत की बात ।--घनानंद, पृ० ५६ ।

अंतरगत[2]--वि० अंतर्गत । भीतर आया हुआ । उ०--जैसे जननि जठर अंतरगत सुत अपराध करै ।--सूर०, १।११७ ।

अंतरगति(पु)--संज्ञा स्त्री [सं० अन्तर्गति] चित्तवृत्ति । भावना । उ०--अंतरगति राँचै नहीं बाहर करै उजास । ते नर जमपुर जाहिंगे सत भाषै रैदास ।--संत रै०, पृ० ९५ ।

अंतरग्नि--संज्ञा स्त्री [सं० अन्तरग्नि] पेट की अग्नि। पेट की गरमी जिससे खाई हुई वस्तु पचती है। जठराग्नि।

अंतरचक्र--संज्ञा पुं० [सं० अन्तरचक्र] १. दिशाओं और विदिशाओं के बीच में अंतर को चार चार भागों में बाँटने से बने हुए ३२ भाग। २. दिशाओं के ऊपर कहे हुए भिन्न भिन्न विभागों में चिड़ियों की बोली सुनकर शुभाशुभ फल बताने की विद्या। जिस दिशा में पक्षी बैठकर बोले उसका विचार करके शकुन कहने की विद्या। ३. तंत्र के अनुसार शरीर के भीतर माने हुए मूलाधार आदि कमल के आकार के छह चक्र। षट्चक्र। ४. आत्मीय वर्ग। स्वजन वर्ग। भाई बंधुओं की मंडली।

अंतरछाल--संज्ञा पुं० [सं० अन्तर+हिं० छाल] छाल के नीचे की कोमल छाल या झिल्ली। बोकले के भीतर का कोमल भाग।

अंतरजातीय--वि० दे० 'अंतर्जातीय'।

अंतरजानी--वि० [सं० अन्तर्+ज्ञानी, प्रा० अंतर+जाणि] भीतर की बात जाननेवाला। अंतर्यामी। उ०--नैन स्रवन मुख नासिका तुम अंतरजानी हो।--केशव० अमी०, पृ० ७।

अंतरजामी[1](पु)--वि० [सं० अंतर्यामी] १. भीतर की बात जाननेवाला। उ०--तुम उदार उर अंतरजामी।--मानस ७।८४। २. अंतःकरण स्थित प्रेरक। उ०--अंतरजामिहुँ ते बड़ बाहरजामी हैं राम जो नाम लिए तें।--तुलसी ग्रं०, भा० २।

अंतरजामी[2](पु)--संज्ञा पुं० दे० 'अंतर्यामी'। उ०--दया करी गुरु पूरन स्वामी। मैं नहिं जाना अंतरजामी।--कबीर सा०, पृ० १०१४।

अंतरजाल--संज्ञा पुं० [हिं०] कसरत करने की एक लकड़ी।

अंतरज्ञ--वि० [सं० अन्तरज्ञ] १. भीतर की बात जाननेवाला। अंतःकरण का आशय जाननेवाला। हृदय की बात जाननेवाला। अंतर्यामी। २. भेद या फर्क जाननेवाला।

अंतरण--संज्ञा पुं० [सं० अन्तरण] व्यवधान डालना। अंतरित करना। निगूहन [को०]।

अंतरतः--क्रि० वि० [सं० अन्तरतः] बीच में। मध्य में। बीचो बीच।

अंतरत--वि० [सं० अन्तरत] विनाश में आनंद से रहनेवाला। नाश में आनंद माननेवाला [को०]।

अंतरतम--संज्ञा पुं० [सं० अन्तरतम] सबसे भीतर का भाग या हिस्सा। अंतस्तल। उ०--छिपी रहेंगी अंतरतम में सबके तू निगूढ़ धन सी।--कामायनी, पृ० ६।

अंतरतर[1]--वि० [सं० अन्तरतर] अति समीपी। अत्यंत घनिष्ट [को०]।

अंतरतर[2]--संज्ञा पुं० १. अंतस्तल। उ०--अपनी अलख झलक आभा से मम अंतरतर भर दो।--अपलक। २. ईश्वर (को०)। पृ० १६।

अंतरदंद(पु)--संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्द्वन्द्व] दे० अंतर्द्वंद। उ०--अंतरदंद चंद मनि सज्जिय।--पृ० रा०, ६७।१८५।

अंतरद--वि० [सं० अन्तरद] हृदय को कष्ट पहुँचानेवाला [को०]।

अंतरदाह--संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्दाह] भीतरी जलन या दुःख। मानसिक ताप। उ०--अंतर्दाह जु मिट्यौ ब्यास को इक चित ह्वै भागवत किऐं।--सूर०, १।८९।

अंतरदिशा--संज्ञा स्त्री० [सं० अन्तरदिशा] दो दिशाओं के बीच की दिशा। कोण। विदिशा।

अंतरदीठि--संज्ञा स्त्री० [सं० अन्तर्दृष्टि, प्रा० अंतरदिट्ठि] अंतर्दृष्टि। विवेक।

अंतरद्वार--संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्द्वार] छिपा हुआ या भीतरी दरवाजा। अंतःपुर का दरवाजा। उ०--अंतरद्वार आइ भए ठाढ़े सुनत तिया की बातैं।--सूर०, १०।२६६९।

अंतरदृष्टि--संज्ञा स्त्री० [सं० अन्तर्दृष्टि] ज्ञानचक्षु। हिए की आँख। उ०--यह अंतरदृष्टि से भली भाँति निगाह कर लेता है कि मैं अपने कर्मों का कर्ता नहीं।--कबीर सा०, पृ० ९६७।

अंतरदेशीय--वि० [सं० अन्तर+देशीय] १. दो या अधिक देशों से संबद्ध। २. राष्ट्र या देश के सभी राज्यों या प्रदेशों से संबंधित, जैसे--'अंतरदेशीय पत्र'।

अंतरधन--संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्धन] छिपाकर बचाया हुआ धन। उ०--बिछु अंतरधन हुतौ जु साथ। सो दीनौ माता के हाथ।--अर्ध०, पृ० ७।

अंतरधान(पु)--वि० दे० 'अंतर्द्धान' उ०--पुनि पुनि अस कहि कृपानिधाना। अंतरधान भए भगवाना।--मानस, १।१५२।

अंतरध्यान[1](पु)--वि० [सं० अन्तर्ध्यान] आंतरिक मन या चिंतन। उ०--अंतरध्यान नाम निज केरा जिन भजिया तिन पाई।--कबीर श०, भा० १, पृ० ७८।

अंतरध्यान[2](पु)--वि० [सं० 'अन्तर्द्धान' का विकृत रूप] अंतर्हित। लुप्त। उ०--(क) षटमास निसानिसि नृत्य किय। तब गोबिंद अंतरध्यान हुयं।--पृ० रा०, २।३४५। (ख) भए अंतरध्यान बीते पाछिली निसि जाम।--सा० ल०, पृ० ११४।

अंतरपट--संज्ञा पुं० [सं० अन्तःपट] १. परदा। आड़। ओट। उ०--उघरेहूँ अंतरपट राखत अगने गुनहि गही।--घनानंद, पृ० ५४७। २. विवाहमंडप में यम की आहुति के समय अग्नि और वर कन्या के बीच में एक परदा डाल देते हैं जिसमें वे दोनों उस आहुति को न देखें। इस परदे को अंतरपट कहते हैं।

क्रि० प्र०--करना।--डालना।--देना।

मुहा०--अंतरपट साजना=छिपकर बैठना। सामने न होना। ओट में रहना।

३. परदा। छिपाव। दुराव। भेद। ४. धातु या औषध को फूँकने के पहले उसकी लुगदी या संपुट पर गीली मिट्टी के लेव के साथ कपड़ा लपेटने की क्रिया। कपड़मिट्टी। कपड़ौरी। कपरौटी।

क्रि० प्र०--करना।--होना।

५. गीली मिट्टी का लेव देकर लपेटा हुआ कपड़ा।

अंतरपतित आय--संज्ञा पुं० [सं० अन्तरपतित आय] सौदा पटाने की दस्तूरी। दलाली।

अंतरपाट--संज्ञा पुं० [सं० अन्तर+पट] परदा। ओट। आड़। उ०--गुप्त रसोई मासु रँधायेसि। बहुबिधि अंतरपाट दिखायेसि।--कबीर सा०, पृ० ४३२।

अंतरपुरुष--संज्ञा पुं० [सं० अन्तरपुरुष] १. आत्मा। २. परमात्मा। अंतर्यामी। परमेश्वर।

अंतरपूरुष--संज्ञा सं० [सं० अन्तरपूरुष] दे० 'अंतरपुरुष'।

अंतरप्रकाश--संज्ञा पुं० [पुं० अन्तःप्रकाश] भीतरी प्रकाश। आत्मज्ञान। उ०--'यह भी बिना अंतरप्रकाश के जाना नहीं जा सकता कि भोगनेवाला कौन है और मैं कौन हूँ।--कबीर सा०, पृ० ६७१।

अंतरप्रतीहार--संज्ञा पुं० [सं० अन्तरप्रतीहार] राजप्रासाद के भीतर आने जानेवाले प्रतीहार। अभ्यंतर परिजन [हर्ष०]।

अंतरप्रभव--संज्ञा पुं० [सं० अन्तरप्रभव] जो दो भिन्न भिन्न वर्णों के माता पिता से उत्पन्न हो। वर्णसंकर।

अंतरप्रश्न--संज्ञा पुं० [सं० अन्तरप्रश्न] वह प्रश्न जो पूर्ववर्णित प्रसंग में निहित हो [को०]।

अंतरप्रांतीय--वि० [सं० अन्तर+प्रान्तीय] दे० 'अन्तरप्रादेशिक'।

अंतरप्रादशिक--वि० [सं० अन्तरप्रादेशिक] १. जिसका संबंध अपने प्रदेश या प्रांत से हो। अपने प्रांत में होनेवाला। जैसे, अंतरप्रादेशिक अपराध। २. देश या राष्ट्र के सभी प्रदेशों या राज्यों से संबंध रखनेवाला।

अंतरवरन--संज्ञा पुं० [सं० अन्तर+वर्ण] बीच के अक्षर। उ०--या कबित्त अंतरबरन लै तुकंत द्वै छंडि।--भिखारी ग्रं०, भा० १, पृ० १६।

अंतरबल--संज्ञा पुं० [सं० अन्तर+बल] भीतरी शक्ति। आंतरिक बल। उ०--रथ विभंजि हति केतु पताका। गरजा अति अंतरबल थाका।--मानस, ६। ९१।

अंतरबाधा--संज्ञा स्त्री० [सं० अन्तर+बाधा] मानसिक कष्ट। उ०--खेलौं जाइ स्याम संग राधा। यह सुनि कुँवरि हरष मन कीनी मिटि गई अंतरबाधा।--सूर०, १०। ७०५।

अंतरबानी--संज्ञा स्त्री० [सं० अन्तर्वाणी] अंतर की वाणी। आत्मा की आवाज। उ०--सुनु हिरदे यह अंतरबानी।--रत्न०, पृ० ७।

अंतरबास(पु)--संज्ञा पुं० [सं० अन्तः+वास] अंतःपुर। रनिवास। उ०--दुरग चीतौड़ पहूँचो राइ। अंतरबासइ गम कियो।--बीसल० रा०, पृ० ११२।

अंतरबासी--वि० [सं० अंतर्+वासी] भीतर रहनेवाला। उ०--उरगाना उर अंतरबासी। जाका नाम कहैं अबिनासी।--रत्न०, पृ० १६५।

अंतरबेद--संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्वेद] दे० 'अंतर्वेद'।

अंतरभाव(पु)--संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्+भाव] भावांतर। भिन्न भाव। उ०--कछु पुनि अंतरभाव तें कही नायिका जाहि।--भिखारी० ग्रं०, भा० १, पृ० १६।

अंतरभेद(पु)--संज्ञा पुं० [सं० अंतर्+भेद] आंतरिक तत्व या रहस्य। भीतरी भेद। उ०--ए रस अंतरभेद प्रीय जानै त्रिय जौ रस।--पृ० रा०, ६२।१०३।

अंतरमंतर--संज्ञा पुं० [सं० यंत्र मंत्र] जादू टोना। झाड़ फूँक। जंतर मंतर।

अंतरमत--संज्ञा पुं० [सं० अन्तर+मत] आंतरिक विचार। निगूढ़ या गुह्य मत। उ०--बवन पच्छिला मिट्टया अंतरमत खोला।--पृ० रा०, पृ० २९।

अंतरमुख(पु)--वि० [सं० अन्तर्मुख] भीतर की ओर उन्मुख। आंतरिक ध्यानयुक्त। उ०-बरनै दीनदयाल मिलै नहिं बाहर टेरे। अंतरमुख ह्वै ढूंढ़ सुगंध सबै घट तेरे।--दीन० ग्रं०, पृ० २३०।

अंतरय--संज्ञा पुं० [सं० अन्तरय] दे० 'अंतराय' [को०]।

अंतरयण--संज्ञा पुं० [सं० अन्तरयण] अयनों [मार्गों] के सान्निध्य में सूर्य की स्थिति का काल। उ०--सूत्र 'अयनञ्च' में अंतरयण का उल्लेख है।--पाणिनि०, पृ० १७८।

अंतरयन--संज्ञा पुं० दे० 'अंतरयण'। उ०--अयनांशों के बीच के देशों के लिये पाणिनि ने 'अंतरयन' शब्द का प्रयोग किया है।--पाणिनि०, पृ० ४१।

अंतररति--संज्ञा स्त्री० [सं० अन्तर्+रति] संभोग के सात आसन, यथास्थिति, तिर्यक्, संमुख, विमुख, अध, ऊर्ध्व और उत्तान।

अंतरराष्ट्रीय--वि दे० 'सार्वराष्ट्रीय'। उ०-'हिंदुस्तानी उस अंतरराष्ट्रीय सेना से मिलकर लड़ रहे हैं जिसने मैड्रिड की रक्षा खूबी के साथ की है।'--'आज', १९३९।

अंतरवर्तिनि, अन्तरवर्तिनी--वि० [सं०अन्तर्वर्तिन्] मध्यस्थ। बीच की। उ०--तिय पिय की हितकारिनी अंतरवर्तिनि होई।--भिखारी० ग्रं०, भा० १, पृ० ३३।

अंतरवासक--संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्वासक] कपड़े के नीचे पहना जानेवाला कपड़ा। भीतरी वस्त्र। अंतरौटा। उ०--अंबपाली ने तीन डुबकियाँ लगाईं; महीन अंतरवासक उसके स्वर्णगात्र से चिपक गया।--वै० न०, पृ० ४।

अंतरविश्वविद्यालय--वि० [सं० अन्तर्+हिं० विश्वविद्यालय] (अं० इंटर युनिवर्सिटी) एकाधिक विश्वविद्यालयों से संबंध रखनेवाला। उ०--'इस साल अंतरविश्वविद्यालय फुटबाल टूर्नामेंट काशी में हुआ।'--'आज', १९५१।

अंतरशायी--संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्शायी] अंतरस्थ जीव। जीवात्मा।

अंतरसंचारी--संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्संचारी] वे अस्थिर मनोविकार जो बीच बीच में आकर मनुष्य के हृदय के प्रधान और स्थिर (स्थायी) मनोविकारों में से किसी की सहायता वा पुष्टि करके रस की सिद्धि करते हैं। इसे केवल संचारी भी कहते हैं। ['अंतर' शब्द इस कारण भी लगाया गया कि किसी किसी ने अनुभाव के अंतर्गत सात्विक भाव को तनसंचारी लिखा है।] ये ३३ माने गए हैं। दे० 'संचारी'।

अंतरसाखी--संज्ञा स्त्री० [सं० अन्तःसाक्षी] अंतःसाक्ष्य। गुप्त गवाही। साक्षी। उ०--सीता प्रथम अनल महु राखी। प्रगट कीन्हि चह अंतरसाखी।--मानस, ६।१०७।

अंतरस्थ--वि० [सं० अन्तःस्थ] भीतर का। भीतरी। अंदर का। भीतर रहनेवाला (जीवात्मा)।

अंतरस्थायी--वि० [सं० अन्तःस्थायी] दे० 'अंतःस्थ'।

अंतरस्थित--वि० [सं० अन्तरस्थित] दे० 'अंतरस्थ'।

अंतरबेध(पु)--संज्ञा पुं० [सं०अन्तर्वेध] गंगा और यमुना का मध्यवर्ती भूभाग। अन्तर्वेद। उ० अंतरबेध कूरंभ आइ। सब मेर जेर होइ लगे पाय।--पृ० रा०, १।२११।

अंतरहित(पु)--वि० [सं० अन्तर्हित] दे० 'अंतर्हित'। उ०--अंतरहित सुर आसिष देहीं।--मानस, १।३५१।

अंतरहीन--वि० सं० [अन्तर+हीन] जिसमें फासला न हो। व्यवधान रहित। उ०--उस अंतरहीन सामीप्य में किसी न्यूनता और अवसाद की अनुभूति के लिये स्थान नहीं रह गया।--वो दुनिया, पृ० १३।

अंतरहेत(पु)--वि० दे० 'अंतर्हित'। उ०--तुम तहँ एता सिरजा आपकै अंतरहेत।--जायसी ग्रं०, पृ० ३५७।

अंतरांस--संज्ञा पुं० [सं० अन्तरांस] स्कंध और वक्षस्थल के बीच का भाग [को०]।

अंतरा[१]--क्रि० वि० [सं० अन्तरा] १. मध्य। बीच। २. इसी बीच (को०)। ३ समीप। निकट। ४ अतिरिक्त। सिवा। ५. पृथक्। ६. बिना। ७. मार्ग में (को०)। ८. लगभग। प्रायः (को०)। ९. यदातदा। जब तब (को०)। १०. कुछ काल के लिये (को०)।

अंतरा[२]--संज्ञा पुं० १. किसी गीत में स्थायी या टेक के बाद का दूसरा चरण। २. किसी गीत में स्थायी या टेक के अतिरिक्त बाकी और पद या चरण। †३. प्रातःकाल और संध्या के बीच का समय। दिन।

अंतरा(पु)[३]--[सं० अन्तर] मध्यवर्ती। बीच का। उ०--जब लगि हरत निमेष अंतरा युग समान पल जात।--सूर० (राधा०), १३४७।

अंतरा(पु)[४]--संज्ञा पुं० [सं० अन्तर] फर्क। भेद। अंतर उ०--सब्द सब्द बहु अंतरा सार सब्द मन लीजै।--कबीर बी०, पृ० ९२।

अंतराइ(पु)--संज्ञा पुं० [सं० अन्तराय, प्रा० अंतराइ] विघ्न। अंतराय। बाधा। उ०--'तब श्री चंद्रावली जी कह्यौ, जो तैंने श्री ठाकुर जी के मिलन में अंतराइ कियो।--दो सौ बावन०, भा० १, पृ० १०९।

अंतराकाश--संज्ञा पुं० [सं० अन्तराकाश] १. मध्य भाग या स्थान। २. हृदय में स्थित ब्रह्म [को०]।

अंतराकूत--संज्ञा पुं० [सं० अन्तराकूत] गुप्त उद्देश्य। गुप्त आशय अभिप्राय [को०]।

अंतरागार--संज्ञा पुं० [सं० अन्तरागार] भीतरी गृह। घर का भीतरी हिस्सा [को०]।

अंतरात्मा--संज्ञा स्त्री० [सं० अन्तरात्मा] १. जीवात्मा। जीव। २. आत्मा। प्राण। उ०--'वह मेरी स्त्री जिसके अभावों का कोष कभी खाली नहीं,''''''उससे मेरी अंतरात्मा काँप उठती है'।--स्कंद०, पृ० ३२। ३. अंतःकरण। मन।

अंतरादिक्--संज्ञा स्त्री० [सं० अन्तरादिक्] दो दिशाओं के बीच की दिशा। विदिशा [को०]।

अंतरापण--संज्ञा पुं० [सं० अन्तरापण] नगर के मध्य भाग में स्थित बाजार। उ०--'श्रेणियों का माल अंतरापण में बिकता था'।--वै० न०, पृ० २।

अंतरापत्या--संज्ञा स्त्री० [सं० अन्तरापत्या] गर्भिणी। गर्भवती। हामिला।

अंतराभवदेश--संज्ञा पुं० [सं० अन्तराभवदेश] दे० 'अंतराभवदेह' [को०]।

अंतराभवदेह--संज्ञा पुं० [सं० अन्तराभवदेह] मृत्यु और पुनर्जन्म के मध्य स्थित आत्मा [को०]।

अंतराय--संज्ञा पुं० [सं० अन्तराय] १. विघ्न। बाधा। अड़चन। २. ओट। आड़ [को०]। ३. ज्ञान का बाधक। ४. योग की सिद्धि के विघ्न जो नौ प्रकार के हैं, यथा--(क) व्याधि। (ख) स्त्यान = संकोच। (ग) संशय। (घ) प्रमाद। (च) आलस्य (छ) अविरति = विषयों में प्रवृत्ति। (ज) भ्रांतिदर्शन = उलटा ज्ञान, जैसे जड़ में चेतन और चेतन में जड़ बुद्धि। (झ) अलब्ध भूमिकत्व = समाधि की अप्राप्ति। (ट) अनवस्थितत्व = समाधि होने पर भी चित्त का स्थिर न होना। ५. जैन दर्शन में दर्शनावरणीय नामक मूल कर्म के नौ भेदों में से एक, जिसका उदय होने पर दानादि करने में अंतराय वा विघ्न होते हैं। ये अंतराय कर्म पाँच प्रकार के माने गए हैं--दानांतराय, लाभांतराय, भोगांतराग, उपभोगांतराय और वीर्यांतराय।

अंतरायाम--संज्ञा पुं० [सं० अन्तरायाम] एक रोग जिसमें वायुकोप से मनुष्य की आँखें ठुड्डी और पसली स्तब्ध हो जाती है और मुँह से आप ही आप कफ गिरता है तथा दृष्टिभ्रम से तरह तरह के आकार दिखाई पड़ते हैं।

अंतराराम--वि० [सं० अंतराराम] हृदय में आनंद का अनुभव करनेवाला [को०]।

अंतराल--संज्ञा पुं० [सं० अन्तराल] १. घिरा हुआ स्थान। आवृत स्थान। घेरा। मंडल। उ०--तुम कनक किरण के अंतराल में लुक छिपकर चलते हो क्यों।--चंद्र०, पृ० ६३। २. मध्य। बीच। उ०-वह देखो वन के अंतराल से निकले, मानो दो तारे क्षितिज पटी से निकले।--साकेत, पृ० २२१। ३. भीतर। ओट। उ०--'कुलपुत्रों को चुप देखकर किसी ने साल के अंतराल से सुकोमल कंठ से कहा'।--इंद्र०, पृ० १३२।

अंतरालक--संज्ञा पुं० [सं० अन्तरालक] दे० 'अंतराल' [को०]।

अंतरालदिक्--संज्ञा [सं० अन्तरालदिक्] दो दिशाओं के बीच की दिशा। विदिशा। कोण। कोना।

अंतरालदिशा--संज्ञा स्त्री० [सं० अन्तरालदिशा] दे० 'अंतरालदिक्'।

अंतरावेदी--संज्ञा स्त्री० [सं० अन्तरावेदी] खंभों पर बनी हुई ओसारी या मंदिर [को०]।

अंतरिंद्रिय--संज्ञा स्त्री० [सं० अन्तरिन्द्रिय] आंतरिक इंद्रियाँ, मन बुद्धि आदि [को०]।

अंतरिका--संज्ञा स्त्री० [सं० अन्तरिका] दो घरों के मध्य की गली।

अंतरिक्ख(पु)--संज्ञा पुं० [सं० अन्तरिक्ष, प्रा० अंतरिक्ख] दे० 'अंतरिक्ष'। उ०--भुइँ उड़ि अंतरिक्ख मृतमंडा। खंड खंड धरती बरम्हंडा।--जायसी ग्रं०, पृ० २।

अंतरिक्ष[१]--संज्ञा पुं० [सं० अन्तरिक्ष] १. पृथिवी और सूर्यादि लोकों के बीच का स्थान। कोई दो ग्रहों वा तारों के बीच का शून्य स्थान। आकाश। अधर। रोदसी। शून्य। उ०--सौरभ से दिगंत पूरित था अंतरिक्ष आलोक अधीर।--कामायनी, पृ० ११। २. स्वर्ग लोक। ३. प्राचीन सिद्धांत के अनुसार तीन प्रकार के केतुओं में से एक जिसके घोड़े, हाथी, ध्वज, वृक्ष आदि के समान रूप हों। ४. एक ऋषि का नाम। ५. पृथिवी की आकर्षण शक्ति की परिधि से बाहर का आकाश में स्थान।

यौ०--अंतरिक्षयान = हवाई जहाज। वायुयान। एयरप्लेन (अं०)।

अंतरिक्ष[२]--वि० अंतर्धान। गुप्त। अप्रकट। उ०--(क) भखे ते अंतरिक्ष रिक्ष लक्ष लक्ष जात हीं।--केशव (शब्द०)। (ख) पलोडो

आडों अंतरिक्ष अर्थात् लोप हो गया। (ग) अविलाइनो इतने समय में अंतरिक्ष था।—अयोध्यासिंह (शब्द०)।

अंतरिक्षक्षित—वि० [सं० अन्तरिक्षक्षित] अन्तरिक्षवासी। अंतरिक्ष में रहनेवाला [को०]।

अंतरिक्षग[1]—वि० [सं० अन्तरिक्षग] अंतरिक्ष या आकाश में गमन करनेवाला [को०]।

अंतरिक्षग[2]—संज्ञा पुं० पक्षी। विहग। खग [को०]।

अंतरिक्षचर[1]—वि० [सं० अन्तरिक्षचर] दे० 'अंतरिक्षग' [को०]।

अंतरिक्षचर[2]—संज्ञा पुं० पक्षी [को०]।

अंतरिक्षचारी[1]—वि० [सं० अंतरिक्षचारी] दे० 'अंतरिक्षग' [को०]।

अंतरिक्षचारी[2]—संज्ञा पुं० पक्षी [को०]।

अंतरिक्षजल—संज्ञा पुं० [पुं० अन्तरिक्षजल] ओस। अवश्याय नीहार [को०]।

अंतरिक्षसत्[1]—वि० [सं० अन्तरिक्षसत्] अंतरिक्ष या शून्य आकाश में गमन करनेवाला। आकाशचारी।

अंतरिक्षसत्[2]—संज्ञा पुं० १. आत्मा। २. पक्षी।

अंतरिक्षायतन[1]—स्त्री० पुं० [सं० अन्तरिक्षायतन] अंतरिक्ष में निवास करनेवाले देवता [को०]।

अंतरिक्षायतन[2]—वि० आकाशवासी। क्षंतरिक्षवासी (को०)।

अंतरिख(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अन्तरिक्ष; प्रा० अंतरिक्ख] १. दे० 'अंतरिक्ष'। २. (ला०) झूला। उ०—रसदायिनी सुंदरी रमताँ सेज अंतरिख भूमि सम।—बेलि०, दू० २६७।

अंतरिच्छ(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अन्तरिक्ष; प्रा० अंतरिक्ख] १. आकाश। उ०—जोजन बिस्तार सिला पवनसुत उपाटी। किंकर करि बान, लच्छ अंतरिच्छ काटी।—सूर०, ९।९८। २. अधर। ओठ। उ०—अंतरिच्छ श्री बंधु लेत हरि त्यों ही आप आपनी घाती।—सा० लहरी; पृ० ५६।

विशेष—अंतरिक्ष का पर्याय 'अधर' = ओठ है और अधर का अंतरिक्ष है; अतः पर्यायसाम्य से अर्थपरिवर्तन हुआ।

अंतरित[1]—[वि० अन्तरित] १. भीतर किया हुआ। भीतर रखा हुआ। भितराया हुआ। छिपाया हुआ।

क्रि० प्र०—करना = भीतर करना। भीतर ले जाना। छिपाना।—होना = भीतर होना। अंदर जाना। छिपना।

२. अंतर्धान। गुप्त। गायब। तिरोहित।

क्रि० प्र—करना। होना।

३. आच्छादित। ढका हुआ।

क्रि० प्र०—करना।-होना।

४. बीच में आया हुआ (को०)। ५. अलग किया हुआ। पृथक्कृत (को०)। ६. तुच्छ समझा हुआ या तुच्छ समझा हुआ या तुच्छ किया हुआ (को०)। ७. नष्ट किया हुआ।

अंतरित[2]—संज्ञा पुं० १. शेष। बाकी। २. स्थापत्य कला का एक पारिभाषिक शब्द [को०]।

अंतरिम—वि० [अं० इंटेरिम] १. मध्यवर्ती। दो समय के बीच का। २. अस्थायी।

यौ०—अंतरिम सरकार = मध्यवर्ती वा अस्थायी सरकार [अं० इंटेरिम गवर्नमेंट]।

अंतरीक(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अन्तरिक्ष, प्रा० अंतरिक्ख, अंतरिक्क] आकाश। अंतरिक्ष।—डिं०।

अंतरीक्ष—संज्ञा पुं० [सं० अन्तरीक्ष] दे० 'अंतरिक्ष' [को]।

अंतरीछ(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अन्तरीक्ष] आकाश। गगन। उ०—पारस, मनि नृप नंखियौ, करि कंचन के ग्राम। अंतरीछ उड़िके गयौ, नरवाहन के धाम।—परमाल रा०, पृ० ३४।

अंतरीप—संज्ञा पुं० [सं० अन्तरीप] १. द्वीप। टापू। २. पृथिवी का वह नोकीला भाग जो समुद्र में दूर तक चला गया हो। रास।

अंतरीय—संज्ञा पुं० [सं० अन्तरीय] कमर में पहनने का वस्त्र। अधोवस्त्र। धोती।

अंतरीय[2]—वि० भीतर का। अंदर का। भीतरी।

अंतरु(पु)†—संज्ञा पुं० दे० अंतर'। उ०—अत अंत रु के डंबर।—रघु० रू० पृ० २४१।

अंतरैक्य—सं० पुं० [सं० अन्तर् + ऐक्य] हार्दिक एकता। आंतरिक एकत्व। उ०—लोकतंत्र की सुदृढ़ नीव रख अंतरैक्य पर।—रजतशि०, पृ० ११३।

अंतर्—वि० [सं० अन्तर्] भीतर। बीच में।

विशेष—समस्त पदों में इस शब्द के अंतः; अंतर्, अंतश् और अंतस् रूप यथानियम हो जाते हैं।

अंतर्कथा[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० अन्तःकथा] प्रसंग द्वारा या संदर्भ में संकेतित कथा।

अंतर्कथा[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० अन्तर् + कथा] गुप्त कथा। भीतरी बात। उ०—'साहित्यकार का जीवन, अंतर्कथा आदि के प्रश्न कभी न पूछना चाहिए, नहीं तो रसधारा भंग हो जाती है'।—भा० शिक्षा, पृ० १२६।

अंतर्गंगा—संज्ञा स्त्री० [सं० अन्तर्गङ्गा] गुप्त गंगा। छिपी हुई या लुप्त गंगा [को०]।

अंतर्गडु—वि० [सं० अन्तर्गडु] व्यर्थ। निष्प्रयोजन। बेकार। निरर्थक। वृथा [को०]।

अंतर्गत[1]—वि० [सं० अन्तर्गत] १. भीतर आया हुआ। समाया हुआ। शामिल। अंतर्भूत। अंतर्गृहीत। सम्मिलित। उ०—(क) 'और यह भी ध्यान हुआ कि ऐसे बड़े-बड़े वृक्ष इन्हीं छोटे बीजों के अंतर्गत हैं'।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० १२५। (ख) 'इस समय इतना भूभाग मलाबार के अंतर्गत है'।—सरस्वती (शब्द०)। २ भीतरी। छिपा हुआ। गुप्त। उ०—'यह फोड़ा कभी प्रत्यक्ष, कभी अंतर्गत रहता है'।—अमृतसागर (शब्द०)। ३. हृदय के भीतर का। अंतःकरणस्थित। उ०—'उनके अंतर्गत भावों को कौन जान सकता है' (शब्द०)।

अंतर्गत[2]—संज्ञा पुं० मन। जी। हृदय। चित्त। उ०—(क) रुक्म रिसाइ पिता सों कह्यो। सुनि ताको अंतर्गत दह्यो।—सूर०, (शब्द०)। (ख) तुलसिदास जद्यपि निसि बासर छिन छिन प्रभु मूरतिहिं निहारति। मिटति न दुसह ताप तउ तन की यह बिचारि अंतर्गत हारति।—तुलसी (शब्द०)।

अंतर्गति—संज्ञा स्त्री० [सं० अन्तर्गति] मन का भाव। चित्तवृत्ति। भावना। चित्त की अभिलाषा। हार्दिक इच्छा। मनकामना। उ०—(क) रही आन चहुँ बिधि भगतन की जनु अनुराग भरी

अंतर्गति ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) 'श्री पार्वती जी ने ऊषा की अंतर्गति जानि उसे अति हित से निकट बुलाय प्यार कर समझाय के कहा' ।—प्रेमसागर (शब्द०) ।

अंतर्गर्भ—वि० [सं० अन्तर्गर्भ] गर्भयुक्त [को०] ।

अंतर्गांधार—संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्गान्धार] संगीत में तीसरे स्वर के अंतर्गत एक विकृत स्वर जो प्रसारिणी नामक श्रुति से आरंभ होता है और जिसमें चार श्रुतियाँ होती हैं ।

अंतर्गृह—संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्गृह] भीतर का घर । भीतर की कोठरी । घर का भीतरी खंड ।

अंतर्गृहगता—संज्ञा स्त्री० [सं० अन्तर्गृह + गता] भक्तिमार्ग में ठाकुर जी को कामबुद्धि से भजनेवाली सेविका । उ०—'और लीला के भाव में हू देखें तो प्रभु की ईच्छा होइ तब अंतर्गृहगतान के साथ प्रभु रमन करत हैं ।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० ४४६ ।

अंतर्गृही—संज्ञा स्त्री० [सं० अन्तर्गृह + ई (प्र०)] तीर्थस्थान के भीतर पड़नेवाले प्रधान स्थलों की यात्रा ।

अंतर्गेह—संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्गेह] घर या मकान का भीतरी खंड [को०] ।

अंतर्घट—संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्घट] शरीर के भीतर का भाग । अंतःकरण । हृदय । मन ।

अंतर्घन—संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्घन] मुख्य द्वार और घर के बीच का स्थान [को०] ।

अंतर्घात—संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्घात] दे० 'अन्तर्घन' [को०] ।

अंतर्ज—वि० [सं० अन्तर्ज] अंतर या भीतर उत्पन्न (जैसे, शरीर में कीड़ा) [को०] ।

अंतर्जगत्—संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्जगत्] अंतस्तल । भीतरी जगत् । मन का संसार । उ०— अंधकार का आलोक से, असत् का सत् से, जड़ का चेतन से, और बाह्य जगत् का अंतर्जगत् से संबंध कौन कराती है ? कविता ही न ?—स्कंद०, पृ० २१ ।

अंतर्जठर—संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्जठर] कोख । पेट [को०] ।

अंतर्जलन—संज्ञा पुं० [सं० अन्तर् + हिं० जलन] भीतरी जलन । अंतर्दाह । उ०—जानती अंतर्जलन क्या कर नहीं, दाह से आराध्य भी सुंदर नहीं ।—रेणुका, पृ० १०० ।

अंतर्जात—वि० [सं० अन्तर्जात] भीतर उत्पन्न । उ०—'कला उच्चता की अंतर्जात प्रवृत्ति की शोधिका है' ।—पा० सा० सि०, पृ० ६७ ।

अंतर्जातीय—वि० [सं० अन्तर् + हिं० जातीय] भिन्न वर्णों अथवा जातियों संबंधी । दो या दो से अधिक जातियों के बीच का । उ०—'इन सब कथनों से सिद्ध होता है कि अंतर्जातीय ब्याह अवश्य होते थे' ।—हिंदु० सभ्यता, पृ० १५६ ।

अंतर्जानी(पु)—वि० दे० 'अंतरजानी । उ०—आए तुम समर्थ हो अंतर्जानी सत्य कहो हम निश्चय मानीं ।—कबीर सा०, पृ० २२३ ।

अंतर्जानु—वि० [सं० अन्तर्जानु] हाथों को घुटने के बीच किए हुए ।

अंतर्जामी(पु)—वि० दे० 'अंतरजामी' ।

अंतर्जीवन—संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्जीवन] आंतरिक जीवन । बौद्धिक या वैचारिक जीवन । उ०—अंतर्जीवन सत्य कर दिया तुमने ज्योतित ।—स्वर्ण०, पृ० ६० ।

अंतर्जीवी सं० [सं० अन्तर्जीवी] आंतरिक जीवनवाला । जिसकी वृत्ति आंतरिक हो । विचारप्रधान । उ०—आज मुझे है महत्प्रेरणा मिली 'मनुज अंतर्जीवी है ।—रजत शि०, पृ० ७० ।

अंतर्ज्ञान—संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्ज्ञान] । १. अंतःकरण की बात का जानना । दूसरे के दिल की बात जानना । परोक्षदर्शन । २. परिज्ञान । अंतःकरण का अनुभव । अंतर्बोध ।

अंतर्ज्योति[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० अन्तर्ज्योतिस्] अंतर्यामी । परमेश्वर

अंतर्ज्योति[2]—वि० जिसकी आत्मा प्रकाशित हो । [को०]

अंतर्ज्वलन—संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्ज्वलन] भीतरी ताप । आभ्यंतर अग्नि [को०] ।

अंतर्ज्वाला—संज्ञा स्त्री० [सं० अन्तर्ज्वाला] १. भीतरी आग । भीतर की अग्नि । २. चिंता । संताप [को०] ।

अंतर्दग्ध—वि० [सं० अन्तर्दग्ध] भीतर भीतर जला हुआ [को०] ।

अंतर्दधन—संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्दधन] शराब चुआने का कार्य या स्थिति [को०] ।

अंतर्दधान—वि० [सं० अन्तर्धान] गुप्त । छिपा हुआ [को०] ।

अंतर्दर्शक—वि० [सं० अन्तर्दर्शक] दे० 'अंतर्दर्शी' । उ०—पहले प्रकार के मनुष्य को हम मननशील कहते हैं और दूसरे प्रकार के मनुष्य को अंतर्दर्शक कहते हैं । —पा० सा० सि०, पृ० १८९ ।

अंतर्दशा—संज्ञा स्त्री० [सं० अन्तर्दशा] १. फलित ज्योतिष के अनुसार मनुष्य के जीवन में जो ग्रहों के भोगकाल नियत हैं उन्हें दशा कहते हैं । मनुष्य की पूरी आयु १२० वर्ष की मानी गई है । इस १२० वर्ष के पूरे समय में प्रत्येक ग्रह के भोग के लिये वर्षों की अलग अलग संख्या नियत है जिसे महादशा कहते हैं, जैसे सूर्य की महादशा ६ वर्ष, चंद्रमा की १० वर्ष इत्यादि । अब इस प्रत्येक ग्रह के नियत भोगकाल वा महादशा के अंतर्गत भी नवग्रहों के भोगकाल नियत हैं जिन्हें अंतर्दशा कहते हैं । जैसे सूर्य के ६ वर्ष में सूर्य का भोगकाल ३ महीने १८ दिन और चंद्रमा का ६ महीने इत्यादि । कोई कोई अष्टोत्तरी गणना के अनुसार अर्थात् १०८ वर्ष की आयु मानकर चलते हैं । २. मनःस्थिति । चित्त की वृत्ति । उ०—अनेक भाव तथा अंतर्दशाएँ उसके संचारी के रूप में आती हैं ।—रस०, पृ० ६५ ।

अंतर्दशाह—संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्दशाह] मरने के पीछे दस दिन तक मृतक की आत्मा वायु रूप में रहती है और प्रेत कहलाती है । इन दस दिनों के भीतर हिंदू शास्त्र के अनुसार जो कर्मकांड किए जाते हैं उन्हें अंतर्दशाह कहते हैं ।

अंतर्दर्शी—वि० [सं० अन्तर्दर्शी] १. अंतःकरण की वृत्ति समझनेवाला । मन के भाव जाननेवाला । दिल की बात जाननेवाला । २. आत्मनिरीक्षक । तत्ववेत्ता । ३. भीतर देखने या परखनेवाला [को०] ।

अंतर्दाह—संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्दाह] १. आंतरिक दुःख । मानसिक वेदना । उ०—अंतर्दाह स्नेह का तब भी होता था उस मन में । —कामायनी, पृ० ११६ । २. एक प्रकार का सन्निपात ।—माधव, पृ० २० ।

अंतर्दृष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं० अन्तर्दृष्टि] १. ज्ञानचक्षु । प्रज्ञा । हिए की आँख । उ०—बिना नवीन अभ्यास और अंतर्दृष्टि के साहित्यिक कृतियों का अनुशीलन करना, प्रति दिन कठिन होता

जा रहा है।—जय० प्र०, पृ० ८६। २. आत्मचिंतन। आत्मा का ध्यान।

अंतर्देशीय—वि० [सं० अन्तर्देशीय] १. देश के भीतर का। जैसे अंतर्देशीय पत्र। २. दो या दो से अधिक देशों के मध्य का। दो या अधिक देश संबंधी।

अंतर्द्धान[1]—संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्द्धान] लोप। अदर्शन। छिपाव। तिरोधान।

अंतर्द्धान[2]—वि० गुप्त। अलक्ष्य। गायब। अदृश्य। अंतर्हित। अप्रकट। लुप्त। छिपा हुआ।

क्रि० प्र०—करना = छिपाना। दूर हटाना। = नजर से गायब करना। उ०—ताते महा भयानक भूप। अंतर्द्धान करो सुर भूप। —सूर (शब्द०)।—होना = छिपना। लोप होना। उ०—भई मुनि की खोज पै सो भए अंतर्द्धान।—बुद्ध० च०, पृ० १६।

अंतर्द्वंद्व—संज्ञा, पुं० [सं० अन्तर्द्वन्द्व] १. चरित्रविकास की दृष्टि से नाटक के प्रधान पात्र का आंतरिक संघर्ष। मन में उठनेवाले भावों अथवा विचारों का संघर्ष। उ०—मानवीय प्रेम के उद्भव, उत्थान, विकास, अंतर्द्वंद्व, ह्रास आदि की कहानी कहने का यत्न किया गया है।—हिं० आ० प्र०, पृ० २४५। २. घर या देश का आपसी झगड़ा [को०]।

अंतर्द्वार—संज्ञा, पुं० [सं० अन्तर्द्वार] घर के भीतर का गुप्त द्वार। घर में आने जाने के लिये प्रधान द्वार के अतिरिक्त एक और द्वार। पीछे का दरवाजा। खिड़की। चोर दरवाजा।

अंतर्धा—संज्ञा स्त्री० [सं० अन्तर्धा] १. अपवारण। २. संगोपन। आच्छादन [को०]।

अंतर्धान—वि० [सं० अन्तर्धान] गुप्त। अदृश्य। अंतर्हित। उ०—कै हरि जू भए अंतर्धान। मोसौं कहि तू प्रगट बखान।—सूर०, १।२८६।

अंतर्धापन—संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्धापन] संगोपन। छिपाने या तिरोहित करने का कार्य [को०]।

अंतर्धापित—[सं० अन्तर्धापित] संगोपित। छिपाया हुआ [को०]।

अंतर्धारा—संज्ञा स्त्री० [सं० अन्तर्धारा] वह प्रवाह जो बाह्य लक्षणों से व्यक्त न हो। आंतरिक धारा। उ०—वन जीवन के विषम देश की निर्मल अंतर्धारा। जीवन का मृदु मर्म सींचती रही अमृत रस द्वारा।—पार्वती०, पृ० २१।

अंतर्धि—संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्धि] १. दो संघर्षशील राज्यों के बीच में पड़नेवाला राज्य। २. दे० 'अंतर्धा' [को०]।

अंतर्ध्यान—संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्ध्यान] आंतरिक एवं गंभीर समाधि [को०]।

अंतर्नगर—संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्नगर] राजा का प्रासाद या रईस का महल [को०]।

अंतर्नयन—संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्नयन] दे० 'अंतर्दृष्टि'। उ०—खोल अंतर्नयन करती नित्य शिव का ध्यान।—पार्वती०, पृ० ८३।

अंतर्नाद—संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्नाद] अंतरात्मा की पुकार। हृदय की आवाज।

अंतर्निर्भरता—संज्ञा पुं० [सं० अंतर् + निर्भरता] पारस्परिक निर्भरता। एक दूसरे का भरोसा या सहारा। उ०—स्वाधीनता ध्येय नहीं, साधन मात्र है, ध्येय है अंतर्निर्भरता तथा एकता।—रजत शि०, पृ० १२१।

अंतर्निविष्ट—वि० [सं० अन्तर्निविष्ट] १. भीतर बैठा हुआ। अंदर रखा हुआ। २. अंतःकरण में स्थित। मन में जमा हुआ। हृदय में बैठा हुआ।

क्रि० प्र०—करना = (१) भीतर बैठना। अंदर ले जाना। भीतर रखना। (२) मन में रखना। जी में बैठाना। हृदयगत करना। दिल में जमाना।—होना = (१) भीतर बैठना। भीतर जाना। भीतर पहुँचना। (२) मन में धँसना। चित्त में बैठना। दिल में जमना। हृदयंगत होना।

अंतर्निष्ठ—वि० [सं० अन्तर्निष्ठ] आत्मीय या विषयीगत (सब्जेक्टिव)। उ०—प्रेमचंद के लिये सब कुछ अपना ही है, जैनेंद्र का जो कुछ है अपना है। एक बहिर्निष्ठ और दूसरा अंतर्निष्ठ।—प्रेम० गोर्की, पृ० २१७। २ आंतरिक चिंतन में लगा हुआ [को०]।

अंतर्निहित—वि० [सं० अन्तर्निहित] विलीन। समाविष्ट। उ०—उधर पराजित कालरात्रि भी जल में अंतर्निहित हुई।—कामायनी, पृ० २३।

अंतर्बाष्प[1]—संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्बाष्प] दबाए गए अश्रु। रोका हुआ आँसू। निरुद्ध बाष्प [को०]।

अंतर्बाष्प[2]— वि० अश्रुमय [को०]।

अंतर्बोध—संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्बोध] १ आत्मज्ञान। आत्मा की पहचान। २. आंतरिक अनुभव।

अंतर्भवन—संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्भवन] घर का भीतरी भाग। अंतर्गृह। अंतरभवन। उ०—छोड़ सभा विलास औ अंतर्भवन निज किस विजन में।—पार्वती०, पृ० १५१।

अंतर्भाव—संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्भाव] [वि० अन्तर्भावित; अन्तर्भूत, संज्ञा अन्तर्भावना] १. मध्य में प्राप्ति। भीतर समावेश। अंतर्गत होना। शामिल होना।—उ० अन्य अर्थालंकारों का उपमा, दीपक और रूपक में अंतर्भाव है। (अर्थात् अन्य अलंकार उपमा दीपक आदि के अंतर्गत हैं)—(शब्द०)। २. तिरोभाव। विलीनता। छिपाव। ३ नाश। अभाव। ४. आर्हत या जैन दर्शन में आठ कर्मों का क्षय जिससे मोक्ष होता है।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

५. भीतर का भाव। आंतरिक अभिप्राय। आशय। मंशा।

अंतर्भावना—संज्ञा स्त्री० [अन्तर्भावना] १. ध्यान। सोच विचार। चिंता। चिंतन। २ गुणनफल के अंतर से संख्याओं को ठीक करना।

अंतर्भावित—वि० [सं० अन्तर्भावित] १. अंतर्भूत। अंतर्गत। शामिल। भीतर। २. भीतर किया हुआ। छिपाया हुआ। लुप्त।

अंतर्भुक्त—वि० [सं० अन्तर्भुक्त] शामिल। समाविष्ट। उ०—इन जातियों और इनकी समस्त आचार परंपरा को धीरे धीरे इन टीकाओं तथा ऋषियों के नाम पर लिखे गए नए नए स्मृति और पुराणग्रंथों में अंतर्भूत किया गया।—हिं० सा० भू०, पृ० १३।

अंतर्भूत[1]—वि० [सं० अन्तर्भूत] अंतर्गत। शामिल। उ०—जिनके अंतर्भूत हैं मुद्राबंध समस्त।—सुंदर ग्रं०, भा० १, पृ० ३२।

अंतर्भूत²--संज्ञा पुं० जीवात्मा। प्राण। जीव।

अंतर्भूमि--संज्ञा स्त्री० [अन्तर्भूमि] पृथ्वी का भीतरी भाग। भूगर्भ।

अंतर्भेद--संज्ञा पुं० [अन्तर्भेद] भीतरी मनमुटाव [को०]।

अंतर्भेदिनी -वि० [सं० अन्तर्भेदिनी] हृदय का भेदन करनेवाली। भीतर तक पहुँचनेवाली। उ०--उसकी सर्वदर्शिनी अन्तर्भेदिनी आँखों से छिपी न रह सकी।--प० रानी, पृ० ८।

अंतर्भौम--वि० [सं० अन्तर्भौम] जमीन के अंदर का। भूगर्भ में स्थित [को०]।

अंतर्मन--संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्मन] भीतरी मन। मन की भीतरी चेतना अवचेतन। उ०--(क) उस भरे पूरे वातावरण में रहने पर भी मेरा अंतर्मन वास्तव में भयंकर सूनेपन का अनुभव करता रहता था।--प० रानी, पृ० ३६। (ख) अंतर्मन के भूमिकंप से ध्वंस भ्रंश हो' '। शिखर सनातन शिखर रहे हैं मर्त्य धूलि पर --युगपथ, पृ० ११०।

अंतर्मना--वि० [सं० अन्तर्मनस्, अन्तर्मनाः] १ व्याकुलचित्त। घबड़ाया हुआ। विकल। २. उदास। रंजीदा। ३. अतर्मुखी।

अंतर्मल--संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्मल] १. भीतर का मल। पेट के भीतर का मैला। पेट के अंदर की अलाइश। २. चित्त-विकार। मन का दोष। हृदय की बुरी वासना।

अंतर्मुख¹--वि० [सं० अन्तर्मुख] [स्त्री० अन्तर्मुखी] १. जिसका मुख भीतर की ओर हो। भीतर मुँहवाला। जिसका छिद्र भीतर की ओर हो। उ०--यह फोड़ा अति कठोर और अंतर्मुख होता है।--अमृतसागर (शब्द०)। २. जिसकी वृत्ति बहिर्मुख न हो। अपने ही विचारों और कल्पनाओं में तल्लीन रहनेवाला। उ०--'वह अंतर्मुख और आत्मरत था'।--भस्मा० चि०, पृ० १०।

अंतर्मुख²--क्रि० वि०, भीतर की ओर प्रवृत्त। जो बाहर से हटकर भीतर ही लीन हो।

क्रि० प्र०--करना=भीतर की ओर ले जाना या फेरना। भीतर नियुक्त करना। उ०--अकामी पुरुष इंद्रियों को हटाय अंतर्मुख कर उनके द्वारा अपनी महिमा का साक्षात् अनुभव करता है--कठ० उप० (शब्द०)।

अंतर्मुद्र¹--संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्मुद्र] भक्ति का एक प्रकार [को०]।

अंतर्मुद्र²--वि० भीतर से मुहरबंद [को०]।

अंतर्मृत--वि० [सं० अन्तर्मृत] गर्भ के भीतर मरा हुआ (शिशु) [को०]।

अंतर्य--वि० [सं० अन्तर्य] भीतर का। बीच का [को०]।

अंतर्यज्ञ--संज्ञा पुं० दे० 'अंतर्याग' [को०]।

अंतर्यच्छद--संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्यच्छद] भीतर का आवरण [को०]।

अंतर्याग--संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्याग] मानस यज्ञ या मानसिक पूजा [को०]।

अंतर्यामी¹--वि० [सं० अन्तर्यामिन्, अन्तर्यामी] [वि० स्त्री० अन्तर्यामिनि] १. भीतर की बात जाननेवाला। हृदय की बात का ज्ञान रखनेवाला। उ०--(क) जो अंतर्यामी, वही इसे जानेगा।--साकेत, पृ० २३३। (ख) किसने तुमको अंतर्यामिनि! बतलाया उसका आना ?--वीणा, पृ०, ५८। २. अंतःकरण में स्थित होकर प्रेरणा करनेवाला। चित्त पर दबाव या अधिकार रखनेवाला। ३. भीतर तक पैठनेवाला। भीतर पहुँच रखनेवाला। उ०--बाण के सांस्कृतिक अध्ययन का अंतर्यामी सूत्र कुछ गहराई तक उनके शास्त्र में पैठने पर हमारे हाथ आया --हर्ष० पृ० २।

अंतर्यामी²--संज्ञा पुं० ईश्वर। परमात्मा। चैतन्य। परमेश्वर। पुरुष।

अंतर्योग--संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्योग] ध्यान। अखंड ध्यान [को०]।

अंतर्राष्ट्रीय--वि० दे० 'अंतरष्ट्रीय', 'अंतःरराष्ट्रीय'। उ०--उनके काम करने के घंटे और काम करने के नियम, भारत की आर्थिक व्यवस्था पर ध्यान रखते हुए, अंतर्राष्ट्रीय ढंग पर हों।--भा० वि०, पृ० ३६।

विशेष--यह शब्द संस्कृत व्याकरण की दृष्टि से शुद्ध नहीं है।

अंतर्लंब--संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्लम्ब] वह त्रिकोण क्षेत्र जिसके भीतर लंब गिरा हो।

अंतर्लापिका--संज्ञा स्त्री० [सं० अन्तर्लापिका] वह पहेली जिसका उत्तर उसी पहेल के अक्षरों में हो। उ०-- (क) कौन जाति सीता सती, दई कौन वहँ तात। कौन ग्रंथ बरण्यो हरी, रामायण अवदात।--केशव (शब्द०)। इस दोहे में पहले पूछा है कि सीता कौन जाति थीं ? उत्तर--रामा=स्त्री। फिर पूछा कि उनके पिता ने उन्हें किसको दिया ? उत्तर 'रामाय=राम को'। फिर पूछा किस ग्रंथ में हरण लिखा गया है। उत्तर हुआ 'रामायण'। (ख) चार महीने बहुत चलै औ आठ महीने थोरी। अमीर खुसरो यों कहैं तू बूझ पहेली मोरी।-- (शब्द०)। इसमें 'मोरी' शब्द ही उत्तर है।

अंतर्लीन--वि० [सं० अन्तर्लीन] १. मग्न। भीतर छिपा हुआ। डूबा हुआ। गर्क। विलीन। २. तन्मय। ध्यान में मग्न (को०)।

अंतर्वंश--संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्वंश] अंतःपुर [को०]।

अंतर्वंशिक--वि० [अन्तर्वंशिक] अंतःपुर या अंतर्वंश का निरीक्षक [को०]।

अंतर्वण--वि० सं० [अन्तर्वण] वन के भीतर बसा हुआ [को०]।

अंतर्वती--वि० [सं० अन्तर्वती] १. गर्भवती। अंतर्वत्नी। गर्भिणी। हामिला। २. भीतरी। भीतर की। अंदर रहनेवाली। अंतरस्थित।

अंतर्वत्नी--वि० स्त्री० [सं० अन्तर्वत्नी] गर्भवती। गर्भिणी। हामिला। उ०--निज प्रिय पति के दिव्य तेज से अंतर्वत्नी रानी।--पार्वती, पृ० ५१।

अंतर्वमि--संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्वमि] अजीर्ण [को०]।

अंतर्वर्ग--पुं० [सं० अन्तर्वर्ग] किसी वर्ग या समूह के भीतर का वर्ग [को०]।

अंतर्वर्ती--वि० [सं० अन्तर्वर्ती] [वि० स्त्री० अंतर्वर्तिनी] भीतरी। भीतर का। अंदर रहनेवाला [को०]।

अंतर्वस्तु--संज्ञा स्त्री० [सं० अन्तर्वस्तु] किसी पुस्तक, पात्र, पेटी आदि के भीतर की वस्तु [को०]।

अंतर्वस्त्र--संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्वस्त्र] ऊपरी वस्त्र के अंदर पहनने का कपड़ा [को०]।

अंतर्वाणी--संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्वाणी] शास्त्रज्ञ। पंडित। शास्त्रवेत्ता शास्त्रों का जाननेवाला। विद्वान।

अंतर्वायु--संज्ञा स्त्री० [सं० अन्तर्वायु] हृदयस्थ वस्तु । प्राणवायु । उ०--अंतर्वायु निरोध पूर्णतः कर रत अविरत तप, में ।--पार्वती०, पृ० १२१ ।

अंतर्वाष्प[1]--संज्ञा पुं० [अंतर्वाष्प] दे० 'अंतरवाष्प' ।

अंतर्वाष्प[2]--वि० आँसू से भरा । अश्रुपूरित [को०] ।

अंतर्वास--संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्वास] दे० 'अंतर्वस्त्र' [को०] ।

अंतर्वासक--संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्वासक] भीतर पहना जानेवाला वस्त्र । अँतरौटा । उ०--(क) फिर चाहे आप त्रिपिटक से ही प्रमाण क्यों न दें कि बिना अंतर्वासक, चीवर इत्यादि के भारत का कोई भी भिक्षु नहीं रहता था, पर वे कब माननेवाले ।--आँधी, पृ० ८ । (ख) तरुणी का घुटने तक लटकनेवाला अंतर्वासक हवा में फड़फड़ा रहा था ।--वै० न०, पृ० १३६ ।

अंतर्विकार--स्त्री० पुं० [सं० अन्तर् + विकार] शरीर का धर्म । मन का शरीर संबंधी अनुभव, जैसे भूख, प्यास, पीड़ा इत्यादि ।

अंतर्विद्रोह--संज्ञा पुं० [सं० अन्तर् + विद्रोह] विद्रोह । गृहयुद्ध । उ०--तात ! विपत्तियों के बादल घिर रहे हैं, अंतर्विद्रोह की ज्वाला प्रज्वलित है; इस समय मैं केवल एक सैनिक बन सकूँगा, सम्राट् नहीं ।--स्कंद० पृ०, ७६ ।

अंतर्विरोध--संज्ञा पुं० [सं० अन्तर् + विरोध] आंतरिक विरोध । भीतरी झगड़ा । उ०--आर्य साम्राज्य के अंतर्विरोध और दुर्बलता को आक्रमणकारी भली भाँति जान गए हैं ।--स्कंद०, पृ० ७० ।

अंतर्वृत्ति--संज्ञा स्त्री० [सं० अन्तर् + वृत्ति] मनोवृत्ति । आंतरिक प्रवृत्ति । उ०--जो कविता रमणी के रूपमाधुर्य से हमें तृप्त करती है वही उसकी अंतर्वृत्ति की सुंदरता का आभास देकर हमें मुग्ध करती है ।--रस०, पृ० ३१ ।

अंतर्वेग--संज्ञा पुं० [सं० अन्तर् + वेग] मनोवेग । मनोविकार । [अं० इमोशन] उ०--परंतु मनोविज्ञान में कलामीमांसा संबंधी अंतर्वेग जैसे मानसिक तत्व का कोई स्थान नहीं है ।--पा० सा० सि०, पृ० २०० । २. भीतरी ज्वर (वैद्यक) ।

अंतर्वेगी ज्वर--संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्वेगी ज्वर] एक प्रकार का ज्वर जिसमें भीतर दाह, प्यास, चक्कर, सिर में दर्द और पेट में शूल होता है । इसमें रोगी को पसीना नहीं आता और न दस्त होता है । इसे कष्टज्वर भी कहते हैं ।

अंतर्वेद--संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्वेदि] [वि० अंतर्वेदी] १. देश जिसके अंतर्गत यज्ञों की वेदियाँ हों । २. गंगा और यमुना के बीच का देश । गंगा यमुना के बीच का दोआब । ब्रह्मावर्त देश । उ०--तुम आज से अंतर्वेद के विषयपति नियत किए गए ।--स्कंद०, पृ० ८१ । ३. दो नदियों के बीच का देश या भूखंड । दोआब ।

अंतर्वेदना--संज्ञा स्त्री० [सं० अन्तर्वेदना] आंतरिक व्यथा । भीतरी दुःख या पीड़ा । उ०--क्या यह सारी अंतर्वेदना इसी विलासप्रेम के कारण है ।--काया०, पृ० ५२० ।

अंतर्वेदि--वि० [सं० अन्तर्वेदि] दे० 'अंतर्वेदी' [को०] ।

अंतर्वेदी[1]--वि० [सं० अन्तर्वेदीय] अंतर्वेद का निवासी । गंगा यमुना के बीच के देश में रहनेवाला । गंगा यमुना के दोआब में बसनेवाला ।

अंतर्वेदी[2]--संज्ञा स्त्री० गंगा यमुना के बीच की भूमि या देश । ब्रह्मावर्त देश ।

अंतर्वेध--संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्वेध] शरीर की गाँठ या जोड़ में होनेवाला दर्द [को०] ।

अंतर्वेशिक--संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्वेशिक] अंतःपुर का रक्षक । जनानखाने की रखवाली करनेवाला । ख्वाजासरा ।

अंतर्वेश्म--संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्वेश्म] भीतरी घर । गृह का भीतरी हिस्सा [को०] ।

अंतर्वेश्मिक--संज्ञा पुं० [अन्तर्वेश्मिक] अंतःपुर का निरीक्षक । अंतर्वेशिक [को०] ।

अंतर्व्याधि--संज्ञा स्त्री० [सं० अन्तर्व्याधिः] भीतर की व्याधि । आंतरिक रोग [को०] ।

अंतर्व्रण--संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्व्रण] शरीर के भीतर होनेवाला फोड़ा [को०] ।

अंतर्हस्त--क्रि० वि० [सं० अन्तर्हस्त] हाथों में । हाथ की पहुँच के भीतर [को०] ।

अंतर्हस्तीन--वि० [सं० अन्तर्हस्तीन] जो हाथों की पहुँच के भीतर हो या जो हस्तगत हो [को०] ।

अंतर्हास--संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्हास] भीतरी हँसी । भीतर ही भीतर हँसना । मन ही मन की हँसी । अप्रकट हास । गूढ़ हास ।

अंतर्हित--वि० [सं० अन्तर्हित] तिरोहित । अंतर्द्धान । गुप्त । गायब । छिपा हुआ । अदृश्य । अलक्ष्य । लुप्त ।

क्रि० प्र०--करना ।--होना = अंतर्द्धान होना । उ०--यहि विधि हित तुम्हार मैं ठयऊ । कहि अस अंतर्हित प्रभु भयऊ ।--तुलसी (शब्द०) ।--रहना = गायब या गुप्त रहना । छिपा हुआ रहना । उ०--'कुछ प्रवृत्तियाँ अंतर्हित रहती हैं' ।--रस०, पृ० १७५ ।

अंतर्हृदय--संज्ञा पुं० [सं० अन्तर्हृदय] हृदय का भीतरी हिस्सा [को०] ।

अंतलघु--संज्ञा पुं० [सं० अन्तलघु] १. छंद का वह चरण जिसके अंत में लघुवर्ण या मात्रा हो । २. वह शब्द जिसका अंतिमवर्ण लघु हो ।

अंतलीन--वि० [सं० अन्तलीन] छिपा हुआ [को०] ।

अंतलोप--वि० [सं० अन्तलोप] (शब्द) जिसका अंतिम अक्षर लुप्त हो (व्या०) [को०] ।

अंतवंत--वि० [सं० अन्तवत्, अन्तवन्तः] नष्ट या समाप्त होनेवाला । मरणधर्मा । विनाशी । उ०--अंतवंत तम की माया यह संतत क्यों ठहरे ।--अपलक, पृ० १०४ ।

अंतवर्ण[1]--संज्ञा पुं० [सं० अन्तवर्ण] ? वर्ग का अंतिम अक्षर । पंचम वर्ण, जैसे, ङ, ञ, ण, न, म आदि [को०] । २. शूद्र ।

अंतवर्ण[2]--वि० अंतिम वर्ण का । चतुर्थ वर्ण का ।

अंतवह्नि--संज्ञा पुं० [सं० अन्तवह्नि] प्रलय की अग्नि [को०] ।

अंतवासी[1]--संज्ञा पुं० [सं० अन्तेवासी] दे० 'अंतेवासी' [को०] ।

अंतवासी[2]--वि० १. सीमांत पर रहनेवाला । २. समीप रहनेवाला [को०] ।

अंतविदारण--संज्ञा पुं० [सं० अन्तविदारण] सूर्य और चंद्रग्रहण के जो दस प्रकार के मोक्ष माने गए हैं उनमें से एक।

विशेष--इसमें चंद्रमा के बिंब के चारों ओर निर्मलता और मध्य में गहरी श्यामता होती है। इससे मध्य देश की हानि और शरद् ऋतु (कुआर) की खेती का विनाश वराहमिहिर ने माना है।

अंतवेला--संज्ञा स्त्री० [सं० अन्तवेला] अंतकाल। अंत समय [को०]।

अंतव्याप्ति--संज्ञा स्त्री० [अन्तव्याप्ति] किसी शब्द के अंतिम प्रकार का परिवर्तन, जैसे--'मिह' का 'मेघ' [को०]।

अंतशय्या--संज्ञा स्त्री० [सं० अन्तशय्या] १. भूमिशय्या। २. मृत्युशय्या। मरनसेज। मरनखाट। ३. श्मशान। मसान। मरघट ४. मरण। मृत्यु। ५ चिता [को०]।

अंतश्--'अंतर' वि० [सं०] शब्द का कुछ स्थितियों में परिवर्तित रूप।

अंतश्चेतन¹--संज्ञा पुं० [सं० अन्तस् + चेतन) मन का वह भाग (मुख्यतः दबी हुई इच्छाओं आदि से युक्त) जो बाह्य अनुभूति में न आ सके। उ०--जब से चेतन मनोविज्ञान से आगे बढ़कर उपचेतन और अंतश्चेतन मनोविज्ञान की शोधें हुई हैं, तब से साहित्यिकों के लिये नई कृतियाँ प्रस्तुत करने का बहुत बड़ा क्षेत्र खुल गया है।--न० सा० न० प्र०, पृ०, १८।

अंतश्चेतन²--वि० आत्म चेतना या दिव्य प्रेरणा से युक्त। उ०--ऊर्ध्व मुक्त, अंतश्चेतन बन जाता जन मन।--रजत शि०, पृ० ७०।

अंतश्चेतना--संज्ञा स्त्री० [सं० अन्तस् + चेतना] अंतश्चेतन की अनुभूति। आत्मचेतना। दिव्य प्रेरणा। उ०--रजत शिखर मनुष्य की अंतश्चेतना का शुभ्र प्रतीक है।--रजत शि०, (भू०) पृ० ३।

अंतश्छद--संज्ञा पुं० [सं० अन्तस् + छद] १. भीतरी तल। २. भीतरी आच्छादन। ३. मिहराब के नीचे का तल।

अंतश्छिद्र--संज्ञा० पुं० [सं० अन्तश्छिद्र] भीतरी छेद या अंदरूनी सूराख [को०]।

अंतश्छिन्न--वि० [सं० अन्तश्छिन्न] भीतर कटा हुआ [को०]।

अंतस्¹--संज्ञा पुं० [सं० अन्तस्] अंतःकरण। मन। हृदय। चित्त। मानस। उ०--(क) तुहीं मानवं देव दानं सिधानं। तुही कोटि ब्रह्मादि अंतस् समानं।--पृ० रा०, २। २०५। (ख) काया की न छाया यह केवल तुम्हारी, द्रुम! अंतस् के मर्म का प्रकाश यह छाया है।--रस०, पृ० १६।

अंतस्²--वि० 'अंतर्' शब्द का समासगत रूप, जैसे, अंतस्तल, अंतस्तप्त आदि में।

अंतसंश्लेष--संज्ञा पुं० [सं० अन्त:संश्लेष] संधि। जोड़ [को०]।

अंतसत्क्रिया--संज्ञा स्त्री० [सं० अन्तसत्क्रिया] अंतिम सत्कार। अंतिम संस्कार [को०]।

अंतसद्--संज्ञा पुं० [सं० अन्तसद्] शिष्य। चेला।

अंतसमय--संज्ञा पुं० [सं० अन्तसमय] मृत्युकाल। मरणकाल।

अंतस्तप्त--वि० [सं० अन्तस्तप्त] १ भीतर भीतर तपा हुआ। २. खिन्न। संतप्त [को०]।

अंतस्तल--संज्ञा पुं० [सं० अन्तस् + तल] १. मन। हृदय। चित्त। उ०--उठती अंतस्तल से सदैव दुर्ललित लालसा जो कि कांत।--कामायनी, पृ० १४०। २. मन का भीतरी तल या भीतरी तह। उ०--पर जो हृदय के अंतस्तल पर मार्मिक प्रभाव चाहते हैं, किसी भाव की स्वच्छ निर्मल धारा में कुछ देर अपना मन मग्न रखना चाहते हैं, उनका संतोष बिहारी से नहीं हो सकता।--इतिहास, पृ० २५१।

अंतस्ताप--संज्ञा पुं० [सं० अन्तस्ताप] मानसिक व्यथा। आधि। चित्त का संताप। आंतरिक दुःख। भीतरी खेद। उ०--असुरों के धोता पद सागर निज मर्यादा छोड़। अंतस्ताप दग्ध बड़वा सा करता करुणाम क्रोड़।--पार्वती, पृ० १०१।

अंतस्तुषार--संज्ञा पुं० [सं० अन्तस्तुषार] ओस की बूंद से युक्त [को०]

अंतस्तोय--वि० [सं० अन्तस्तोय] जल से भरा हुआ (बादल) [को०]।

अंतस्त्य--संज्ञा पुं० [सं० अन्तस्त्य] आँत। अँतड़ी [को०]।

अंतस्थ¹--वि० [सं० अन्तस्थ] १. भीतर स्थित। भीतरी। २. बीच में स्थित। मध्य का। मध्यवर्ती। बीचवाला। ३ 'य, र, ल, व' ये चारों वर्ण अंतस्थ कहलाते हैं क्योंकि इनका स्थान स्पर्श और ऊष्म वर्णों के बीच में है।

अंतस्थ²--संज्ञा पुं० स्पर्श और ऊष्म वर्णों के बीच रहनेवाले 'य, र, ल, व' वर्ण।

अंतस्थल--संज्ञा पुं०, [सं० अन्तस्थल] अंतःकरण। उ०--आज उन्होंने विवेक के प्रकाश में अपने अंतस्थल को देखा।--काया०, पृ० १६६।

अंतस्था--संज्ञा पुं० [सं० अन्तस्था] दे० 'अंतस्थ'²।

अंतस्थित--वि० [सं० अन्तस् + स्थित] १ भीतर स्थित। भीतरी। २. हृदयस्थित। हृदय का। चित्त के भीतर का। अंतःकरण का।

अंतस्नान--संज्ञा पुं० [सं० अन्तस्नान] अवभृथ स्नान। वह स्नान जो यज्ञ समाप्त होने पर किया जाता है।

अंतस्संज्ञा--संज्ञा स्त्री० [सं० अन्तस् + संज्ञा] मन या बुद्धि की वह क्रिया जो अभी तक प्रत्यक्ष अनुभव में स्पष्ट न हुई हो। उ०--उदय से अस्त तक भावमंडल का कुछ भाग तो आश्रय की चेतना के प्रकाश (कांशस) में रहता है और कुछ अंतस्संज्ञा के क्षेत्र (सब कांशस रीजन = अवचेतन) में छिपा रहता है।--रस०, पृ० ६५।

अंतस्सत्ता--संज्ञा स्त्री० [सं० अन्तस् + सत्ता] आंतरिक सत्ता। अंतःकरण। चेतना। उ०--हमारी अंतस्सत्ता की यही तदाकार परिणति सौंदर्य की अनुभूति है।--रस०, पृ० २६।

अंतस्सलिल--वि० [सं० अन्तस्सलिल] [स्त्री० अन्तःसलिला] जिसके जल का प्रवाह बाहर न दिखाई पड़े, भीतर हो। उ०-- अंतस्सलिला सरस्वती (शब्द)।

अंतस्सलिला--संज्ञा स्त्री० [सं० अन्तस्सलिला] १. सरस्वती नदी। २ फल्गू नदी।

अंतस्साधना--संज्ञा स्त्री० [सं० अन्तस् + साधना] आंतरिक साधना। गुप्त साधना। उ०--हृदयपक्षशून्य सामान्य अंतस्साधना का मार्ग निकालने का प्रयत्न नाथपंथी कर चुके थे, यह हम कह चुके हैं।--इतिहास, पृ० ६४।

अंतस्सार--संज्ञा पुं० [सं० अन्तस्सार] १. आंतरिक सार। तत्व। २. ठोसपन। ३. मन, बुद्धि और अहंकार का योग। ४. अंतरात्मा [को०]।

अंतहकर्ण(पु)--संज्ञा पुं० दे० 'अंतःकरण'। उ०--सुंदर हरि के भजन तैं निर्मल अंतहकर्ण।--सुंदर ग्रं०, पृ० ६७६।

अंतहपुर(पु)--संज्ञा पुं० दे० 'अंतःपुर'। उ०--(क) पूछत पूछत य्यौ अंतहपुरि। हुओ सुदरसण तणौ हरि।--बेलि, दू० ५२। (ख) उठिव नृपति दीवान तें, अंतहपुर में जाय।--प० रासो, पृ० ६८।

अंतहार(पु)--संज्ञा पुं० [सं० अन्त्र + हार] आँतों की माला। आँत का हार। उ०--करि अंगराग चरबी बसा अंतहार आभार दिय।--सुजान च०, पृ० २३।

अंताराष्ट्रिय--वि० [सं० अन्तर् + राष्ट्रिय] दो या दो से अधिक राष्ट्रों से संबंध रखनेवाला।

अंताराष्ट्रीय--वि० [सं० अन्ताराष्ट्रीय] दो या दो से अधिक राष्टों से संबंध रखनेवाला।

अंताल--संज्ञा पु० [सं० अन्ताल] आँत। अँतड़ी।--परि कूक सु कूकं, डक्किन ढूकं, गिद्ध गहूकं अंतालं।--पृ० रा०, २।२६०।

अंतावरि--संज्ञा स्त्री० दे० 'अंतावरी'।

अंतावरी--संज्ञा स्त्री० [सं० अन्त्र + अवली] अँतड़ियाँ। आँतों का समूह।--अंतावरी गहि उड़त गीध पिसाच कर गहि धावहीं।--मानस, ३।१४।

अंतावशायी--संज्ञा पुं० [सं० अन्तावशायी] १. ग्राम की सीमा के बाहर बसनेवाला। २. प्राचीन काल मे अस्पृश्य कहे जानेवाले वर्ण जैसे- चांडाल।

अंतावसायी--संज्ञा पुं० [सं० अन्तावसायी] १. नाई। हज्जाम। २. हिंसक। चांडाल।

अंतित(पु)--वि० [सं० अत्यन्त] दे० 'अत्यन्त'। उ०--पुच्छन सु बाल बुल्यो बलिय। करि सु चित अंतित चित। पृ० रा०, १।६७५।

अंति[१]--संज्ञा स्त्री० [सं० अन्ति] बड़ी बहन [को०]।

अंति[२](पु)--वि० [सं० अन्तिक, प्रा० अंतिअ] १. समीप। निकट। उ०--खड़े अंति चहुवान के बैन बोले।--प० रा०, पृ० ८५। २. अंत में। उ०--जु कछु तंत को मंत अति कहि कहि समझायो।--पृ० रा०, ६७।४५५।

अंति[३](पु)--दे० 'अत्यंत'। उ०--सहस सात हय षेत रहि परे पंच से दंति, लुथ्थि कोस पंचह प्रचर परे सु पाइल अति।--पृ० रा०, १६।२४४।

अंतिक[१]--संज्ञा पुं० [सं० अन्तिक] १. पड़ोस। २. निकटता। सामीप्य [को०]।

अंतिक[२]--वि० १. पास। २. निकट। समीप [को०]।

अंतिकता--संज्ञा स्त्री० [सं० अन्तिकता] सामीप्य। निकटता [को०]।

अंतिकस्थ--वि० [सं० अन्तिकस्थ] निकटस्थ। पास या समीप पहुँचा हुआ [को०]।

अंतिका--संज्ञा स्त्री० [सं० अन्तिका] १. अंति। बड़ी बहन। २. चूल्हा। भट्ठी। ३. एक पौधा। शातला [को०]।

अंतिकाल(पु)--संज्ञा पुं० दे० 'अंतकाल'। उ०--गुर परसादैं भिष्या षाइबा, अंतिकालि न होइगी भारी।--गोरख०, पृ० ३७।

अंतिकाश्रय--संज्ञा पुं० [अन्तिकाश्रय] समीपस्थ का सहारा या अवलंबन [को०]।

अंतिज(पु)--संज्ञा पुं० दे० 'अंत्यज'। उ०--वहि जो अहं देह अभिमानी। चारि वर्ण अंतिज लौं प्रानी।--सुंदर ग्रं०, भा० १, पृ० ३७४।

अंतिम--वि० [सं० अन्तिम] १. जो अंत में हो। अंत का। आखिरी। सबसे पिछला। सबके पीछे का। २. चरम। सबसे बढ़ के। हद दरजे का।

अंतिम यात्रा--संज्ञा स्त्री० [सं० अन्तिम यात्रा] महायात्रा। महाप्रस्थान। आखिरी सफर। अंतकाल। मृत्यु। मरण। मौत। मृत्यु के पीछे उस स्थान तक जीवात्मा की यात्रा जहाँ अपने कर्मानुसार उसे रहकर कर्मों का फल भोगना पड़ता है।

अंतिमांक-- स्त्री० पुं० [सं० अन्तिमाङ्क] नौ की संख्या [को०]।

अंतिमेत्थम्--[अं० 'अल्टिमेटम्' का हिंदीकरण] आखिरी चेतावनी।

अंती(पु)--संज्ञा स्त्री० [सं० अन्त्र] आँत। उ०--ढरै सूर अंती गजं सोमदंती कहै भूमि छत्ती सु भारथ्थ बत्ती।--पृ० रा०, ६६। १०४७।

अंते(पु)--क्रि० वि० [सं० अन्ते] दे० 'अनत'। उ०--अधर महल पर बैठक पायों, अंते जाय बलाय।--गुलाल०, पृ० ३८।

अंतेउर(पु)--संज्ञा पुं० [सं० अन्तःपुर, प्रा० अंतेउर; अंतेवर] घर के भीतर का भाग जिसमें स्त्रियाँ रहती हैं। अंतःपुर। जनानखाना। रनिवास। उ०--भीजइ फेरइ फेरियउ राय। सगलउ अंतेउर लीयउ रे बुलाइ।--बीसल० रा०, पृ० ७५।

अंतेवर(पु)--संज्ञा पुं० दे० 'अंतेउर'। उ०--दूजइ फेरी जब फेरइ राय, सहु अंतेवर लियो बोलाइ।--बी० रा०, पृ० २३।

अंतेवासि(पु)--संज्ञा पुं० दे० 'अंतेवासी'। उ०--गोपालाचारज भजौ पुनि उन अंतेवासि।--घनानंद, पृ० ६०८।

अंतेवासी--संज्ञा पुं० [सं० अन्तेवासी] १. गुरु के समीप रहनेवाला। शिष्य। चेला। २. ग्राम के बाहर रहनेवाला। चांडाल। अंत्यज। उ०--आचार्य और अंतेवासी अर्थात् पढ़ाने और पढ़नेवाले दोनों ही उस आदर्श से प्रेरित होते हैं।--पाणिनि०, पृ० २६८।

अंत्य[१]--वि० [सं० अन्त्य] अंत का। अंतिम। आखिरी। सबसे पिछला।

यौ०--अंत्यजन्मा, अंत्यजाति, अंत्यजातीय = अंतिम वर्ण का।

अंत्य[२]--संज्ञा पुं० वह जिसकी गणना अंत में हो, जैसे--१. लग्नों में मीन। २. नक्षत्रों में रेवती। ३. वर्णों में शूद्र और ४. अक्षरों में 'ह'। ५. एक संख्या। पद्म की संख्या। दस सागर की संख्या (१०००,०००,०००,०००,०००) दस करोड़ करोड़। ६. यम [को०]।

अंत्यक--संज्ञा पुं० [सं० अन्त्यक] अंतिम वर्ण का मनुष्य। अंत्यज [को०]।

अंत्यकर्म--संज्ञा पुं० [सं० अन्त्यकर्मन्] अंत्येष्टि क्रिया।

अंत्यक्रिया--संज्ञा स्त्री० [सं० अन्त्यक्रिया] अंत्यकर्म। अंत्येष्टि [को०]।

अंत्यगमन--संज्ञा पुं० [सं० अन्त्यगमन] सवर्ण जाति की स्त्री का असवर्ण जातिवाले पुरुष के साथ सहवास [को०]।

अंत्यज--संज्ञा पुं० [सं० अन्त्यज] [वि० स्त्री० अंत्यजा] वह व्यक्ति जो अंतिम वर्ण में उत्पन्न हुआ हो। वह शूद्र जो प्राचीन युग में छूने के योग्य नहीं माना जाता था या जिसका छुआ हुआ जल द्विज उन दिनों ग्रहण नहीं करते थे, जैसे--धोबी, चमार, नट, बसड, डोम, मेद, भिल्ल इत्यादि।

यौ०--**अंत्यजगमन** = सवर्ण जाति की स्त्री का असवर्ण जातिवाले पुरुष के साथ यौन संबंध।

अंत्यजन्मा--वि० [सं० **अन्त्यजन्मा**] अंत्य जाति का। निम्न जातीय [को०]।

अंत्यजा--संज्ञा स्त्री० [सं० **अन्त्यजा**] शूद्रा। अंतिम वर्ण में उत्पन्न स्त्री [को०]।

यौ०--**अंत्यजागमन** = सवर्ण जाति के पुरुष का असवर्ण जाति की स्त्री के साथ यौन संबंध।

अंत्यजाति--वि० [सं० **अन्त्यजाति**] अंतिम जाति का। निम्न जाति का [को०]।

अंत्यजातीय--वि० [सं० **अन्त्यजातीय**] दे० 'अंत्यजाति' [को०]।

अंत्यधन--संज्ञा पुं० [सं० **अन्त्यधन**] गणना की अंतिम राशि [को०]।

अंत्यपद--स्त्री० पुं० [सं० **अन्त्यपद**] अंतिम या सबसे बड़ा वर्गमूल। अंत्यमूल (गणित) [को०]।

अंत्यभ--संज्ञा पुं० [सं० **अन्त्यभ**] १. अंतिम नक्षत्र अर्थात् रेवती। २ मीन राशि।

अंत्यमद--संज्ञा पुं० [सं० **अन्त्यमद**] मदात्यय रोग का एक भेद।

विशेष--इसमें रोगी बड़ों का तिरस्कार करता है, न खाने योग्य चीजों को खाता है और उसके मन में जो गुप्त बातें होती हैं उन्हें प्रकट करने लगता है। मदात्यय तीन प्रकार का होता है। पूर्वमद, मध्यमद और अंत्यमद। --मा० नि०, पृ० ११५।

अंत्यमूल--संज्ञा पुं० [सं० **अन्त्यमूल**] दे० 'अंत्यपद'।

अंत्ययुग--संज्ञा पुं० [सं० **अन्त्ययुग**] गणनाक्रम से युगों अंत में आनेवाला युग। कलियुग।

अंत्ययोनि¹--संज्ञा स्त्री० [सं० **अन्त्ययोनि**] अंतिम या निम्न योनि [को०]।

अंत्ययोनि²--वि० निम्न योनि का [को०]।

अंत्यलोप--संज्ञा वि० [सं० **अन्त्यलोप**] किसी शब्द के अंतिम वर्ण या अक्षर का लोप (भा० वि०)।

अंत्यवर्ण--संज्ञा पुं० [सं० **अन्त्यवर्ण**] १. अंतिम वर्ण। शूद्र। २. अंत का वर्ण 'ह'। ३. पद के अंत में आनेवाला कोई भी वर्ण या अक्षर।

अंत्यविपुला--संज्ञा स्त्री० [सं० **अन्त्यविपुला**] आर्या छंद का एक भेद।

विशेष--इसके दूसरे दल के प्रथम तीन गणों तक चरण पूर्ण नहीं होता और दोनों दलों में दूसरा और चौथा गण जगण होता है। इसे अंत्यविपुला महाचपला, अंत्यविपुला जघनचपला या अंत्यविपुला मुखचपला भी कहते हैं।

अंत्यविराम--संज्ञा पुं० [सं० **अन्त्यविराम**] अंत का या अंतिम विराम। उ०--गिरजाकुमार माथुर अंत्यविराम रहित पंक्तियों के मुक्त छंद को काव्य के लिये बहुत उपयुक्त मानते हैं।--हिं० का० आँ० प्र०, पृ० २६१।

अंत्या--संज्ञा स्त्री० [सं० **अन्त्या**] चांडाली। चांडाल की स्त्री। चांडालिनी।

अंत्याक्षर--संज्ञा पुं० [सं० **अन्त्याक्षर**] १. किसी शब्द या पद के अंत का अक्षर। २. वर्णमाला का अंतिम वर्ण 'ह'।

अंत्याक्षरी--संज्ञा स्त्री० [सं० **अन्त्य** + हिं० **अक्षरी**] किसी कहे हुए श्लोक या पद्य के अंतिम अक्षर से आरंभ होनेवाला दूसरा श्लोक या पद्य पढ़ना। किसी श्लोक या पद्य के अंतिम पद के अंत्य अक्षर से दूसरे श्लोक या पद्य का आरंभ।

विशेष--विद्यार्थियों में इसकी चाल है। एक विद्यार्थी जब एक श्लोक या पद्य पढ़ चुकता है तब दूसरा उस श्लोक के अंतिम अक्षर से आरंभ होनेवाला दूसरा श्लोक या पद्य पढ़ता है। फिर पहला उस दूसरे विद्यार्थी के कहे हुए पद्य का अंतिम अक्षर लेता है और उससे आरंभ होनेवाला एक तीसरा पद्य पढ़ता है। यह क्रम बहुत देर तक चलता है। अंत में जो विद्यार्थी श्लोक या पद्य न पाकर चुप हो जाता है उसकी हार मानी जाती है।

अंत्यानुप्रास--संज्ञा पुं० [सं० **अन्त्यानुप्रास**] पद्य के एक चरण के अंतिम अक्षर और पूर्ववर्ती स्वर का किसी अन्य चरण के अंतिम अक्षर और पूर्ववर्ती स्वर से मेल। पद्य के चरणों के अंतिम अक्षरों का मेल। तुक। तुकबंदी। तुकांत। उ०--श्रुतिकटु मानकर, कुछ वर्णों का त्याग, वृत्तविधान, लय, अंत्यानुप्रास आदि नाद-सौंदर्य-साधन के लिये ही है।--रस०, पृ० ४६।

विशेष--जैसे, सिय सोभा किमि कहौं बखानी। गिरा अनयन नयन बिन बानी।--तुलसी (शब्द०)। इस चौपाई के दोनों चरणों का अंतिम अक्षर 'नी' है। हिंदी कविता में ५ प्रकार के अंत्यानुप्रास मिलते हैं। (१) सर्वांत्य, जिसके चारों चरणों के अंतिम वर्ण एक हों। उ०--न ललचहु। सब तजहु। हरि भजहु। यम करहु। (शब्द०)। (२) समांत्य विषमांत्य, जिसके सम से सम और विषम से विषम के अंत्याक्षर मिलते हों। उ०--जिहि सुमिरत सिधि होइ, गणनायक करिवर बदन। करहु अनुग्रह सोइ, बुद्धिराशि शुभ गुणसदन।--तुलसी (शब्द०)। (३) समांत्य जिसके सम चरणों के अंत्याक्षर मिलते हों विषम के नहीं। उ०--सब तो। शरणा। गिरिजा। रमणा (शब्द०)। (४) विषमांत्य, जिसके विषम चरणों के अंत्याक्षर एक हों, सम के नहीं। उ०--लोभिहि प्रिय जिमि दाम, कामिहि नारि पियारि जिमि। तुलसी के मन राम, ऐसे ह्वै कब लागिहौ।--तुलसी (शब्द०)। (५) समविषमांत्य, जिसके प्रथम पद का अंत्याक्षर द्वितीय पद के अंत्याक्षर के समान हो। उ०--जगो गुपाला। सुभोर काला। वहैं यसोदा। लहै प्रमोदा (शब्द०)।

अंत्यावसायी--संज्ञा पुं० [सं० **अन्त्यावसायिन्**] [स्त्री० अंत्यावसायिनी] १. हिंदुओं की प्राचीन जातिव्यवस्था के अनुसार अत्यंत नीच जाति का व्यक्ति। चांडाल। मनु के अनुसार निषाद स्त्री और चांडाल पुरुष से उत्पन्न व्यक्ति। २. अंगिरा के अनुसार चांडाल, श्वपच, क्षत्ता, सूत, वैदेहक, मागध और अयोगव ये सात जातियाँ।

अंत्याश्रम--संज्ञा पुं० [सं० **अन्त्याश्रम**] अंतिम आश्रम। ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास--इन चारों आश्रमों में अंतिम। संन्यासाश्रम [को०]।

अंत्याश्रमी[1]--वि० [सं० अन्त्याश्रमिन्] अंतिम आश्रम में स्थित। संन्यास आश्रमवाला [को०]।

अंत्याश्रमी[2]--संज्ञा पुं० अंतिम आश्रम का व्यक्ति। संन्यासी [को०]।

अंत्याहुति--संज्ञा स्त्री० [सं० अन्त्याहुति] यज्ञ या चिता की अंतिम आहुति [को०]।

यौ०--अंत्याहुति क्रिया = अंत्येष्टि कर्म।

अंत्येष्टि--संज्ञा पुं० [सं० अन्त्येष्टि] मृतक का शवदाह से सपिंडन तक कर्म। क्रिया कर्म। अंत्यक्रिया। उ०--अंतिम समय में यमुना और घंटी रूपी सौभाग्य देवयाँ विजय की अंत्येष्टि का प्रबंध करती हैं।--कंकाल, पृ० १०५।

यौ०--अंत्येष्टि क्रिया = मृतक का शवदाह आदि कर्म। अंत्येष्टि। उ०--महादेवी की अंत्येष्टि क्रिया राजसंमान से होनी चाहिए। --स्कंद०, पृ० ११५।

अंत्रंधमि--संज्ञा स्त्री० [सं० अन्त्रन्धमि] अजीर्ण। अपच। पेट का फूलना। वायु के कारण पेट का फूलना [को०]।

अंत्र[1]--संज्ञा पुं० [सं० अन्त्र] आँत। अँतड़ी। रोधा।

अंत्र[2]ⓟ--संज्ञा पुं०, कहीं कहीं 'अंतर' का अपभ्रंश। जैसे 'अंत्रध्यान' में 'अंत्र'।

अंत्रकूज--संज्ञा पुं० [सं० अन्त्रकूज] दे० 'अंत्रकूजन' [को०]।

अंत्रकूजन--संज्ञा पुं० [सं० अन्त्रकूजन] आँतों का शब्द। अँतड़ियों की गुड़गुड़ाहट अँतड़ियों की कुड़कुड़ाहट।

अंत्रध्यानⓟ--संज्ञा पुं० दे० 'अंतर्धान'। उ०--इम कहिय ईस हुअ अंत्रध्यान, जगग्यौ राज भौ बर बिहान।--पृ० रा०, ६६।१६६६।

अंत्रपाचक--संज्ञा पुं० [सं० अन्त्रपाचक] एक औषधोपयोगी क्षुप जिसके छाल, सार और निर्यास का प्रयोग होता है [को०]।

अंत्रवल्लिका--संज्ञा स्त्री० [सं० अन्त्रवल्लिका] महिषवल्ली [को०]।

अंत्रवल्ली--संज्ञा स्त्री० [सं० अन्त्रवल्ली] सोमवल्ली लता [को०]।

अंत्रविकूजन--संज्ञा पुं० [सं० अन्त्रविकूजन] दे० 'अंत्रकूजन' [को०]।

अंत्रवृद्धि--संज्ञा स्त्री० [सं० अन्त्रवृद्धि] आँत उतरने का रोग। आँत का उतरकर अंडकोश में चले जाना।

अंत्रस्रज--संज्ञा स्त्री० [सं० अन्त्रस्रज्] आँतों की माला, जो नरसिंह ने धारण की थी [को०]।

अंत्रांडवृद्धि--संज्ञा स्त्री० [सं० अन्त्राण्डवृद्धि] एक रोग जिसमें आँत उतरकर अंडकोश में चली आती हैं और फोता फूल जाता है।

अंत्राद--संज्ञा पुं० [सं० अन्त्राद] आँत का कीड़ा। अँतड़ियों में रहकर उसे खानेवाला कृमि [को०]।

अंत्रालजी--संज्ञा स्त्री० [सं० अन्त्रालजी] पीब से भरी एक प्रकार की ऊँची गोल फुंसी जो वैद्यक के अनुसार कफ और वात के प्रकोप से होती है।

अंत्रि--संज्ञा स्त्री० [सं० अन्त्र] अँतड़ी। आँत।

अंत्री[1]--संज्ञा स्त्री० [सं० अन्त्री] एक वनौषधि का नाम। उदरशूल या पेट की बाई में दी जानेवाली औषधि का पौधा।

अंत्री[2]--संज्ञा स्त्री० दे० 'अंत्रि'।

अंथवनाⓟ--क्रि० अ० दे० 'अथवना'। उ०--जौ पच्छिम दिसि उयं पुब्ब अंथवै दिनंकर।--पृ० रा० ६१।१००६।

अंदरसाⓟ--संज्ञा पुं० दे० 'अँदरसा'। उ०--लौंग कपूर खाँड़घृत धारे। अंदरसे खटमिठे सिधारे।--सूर० परि० १, पृ० ५०।

अंदरी--वि० [फा०, अन्दर + हिं० ई] भीतरी अंदरूनी।

अंदरूनी--वि० [फा० अंदरूनी] भीतरी। भीतर का। आभ्यंतरिक।

अंदलीब--संज्ञा स्त्री० [अ०] बुलबुल। उ०--पूछे हैं फूलो फल की खबर अब तो अंदलीब। टूटे झड़े खिजाँ हुए फूले फले गए।--क० कौ०; भा० ४, पृ० १०८।

अंदाज--संज्ञा पुं० [फा० अंदाज] १. अटकल। अनुमान। उ०--गुप्त जी एक युग पहले का मध्यवर्गीय संतोष हमें सिखाते हैं, उन्हें आज की आग का अंदाज नहीं है।--जय० प्र०, पृ० ८। २. मान। नापजोख। कूत। तखमीना। ३. ढब। ढंग। तौर। तर्ज। उ०--इससे यह बात नहीं निकलती कि बिलकुल मेहनत न करो सब काम अंदाज सिर करने चाहिए।--श्रीनिवास ग्रं०, पृ० १८५।

क्रि० प्र०--करना।--लगाना।--होना।

मुहा०--अंदाज उड़ाना = दूसरे की चाल ढाल पकड़ना। पूरी पूरी नकल करना।

४. मटक। भाव नाज। चेष्टा। ठसक। उ०--अंदाज अपना देखते हैं आइने में वोह। और ये भी देखते हैं कोई देखता न हो।--शेर०, भा० १, पृ० ६०६।

अंदाजन--क्रि० वि० [फा० अंदाज् + अ० अन् (प्रत्य०)] १. अंदाज से। अटकल से। तखमीनन। २. लगभग। करीब।

अंदाजपट्टी--संज्ञा पुं० [फा० अंदाज् + हिं० पट्टी (भूभाग)] खेत में लगी हुई फसल के मूल्य कूतना। कनकूत।

अंदाजपीटी--संज्ञा स्त्री० [फा० अंदाज + हिं० पिटना (हैरान होना)] वह स्त्री जो अपने बनाव सिंगार में लगी रहे। अपनी सुंदरता और चालढाल पर इतरानेवाली स्त्री।

अंदाजा--संज्ञा पुं० [फा० अंदाजह्] १. अटकल। अनुमान। २. कूत। नापजोख। परिमाण तखमीना। उ०--उपनिषद में तो ब्रह्मानंद के सुख के परिमाण का अंदाजा कराने के लिये उसे सहवास सुख से सौगुना कहा था।--इतिहास, पृ० ११।

अंदिका--संज्ञा स्त्री० [सं० अन्दिका] १. बड़ी बहन। अंतिका। २. अँगीठी। बोरसी [को०]।

अंदु--संज्ञा पुं० [सं० अन्दु] १. पैर में पहनने का स्त्रियों का एक गहना। पाजेब। पैरी। पैंजना। २. साँकड़ा। हाथी को बाँधने की साँकल। अलान। उ०--छुटे अंदु हस्ती मदंजा जरानं। --पृ० रा०, १२।३२१। ३. बाँधने की रस्सी या जंजीर।

अंदुक--संज्ञा पुं० [सं० अन्दुक] दे० 'अंदु'।

अंदू--संज्ञा पुं० [सं० अन्दू] बेड़ी। निगड़। उ०--(क०) बिरदावलि बिरदाई पाय अंदू कर ढीले। तामस बुझवन काज बोलि मधु बचन रसीले।--पृ० रा०, ६६।१६२८। (ख) क्रीड़ा समंदू गज्ज अंदू ग्राह फंदू रच्चए। --राम० धर्म०, पृ० २६।

अंदूक--संज्ञा पुं० [सं० अन्दूक] दे० 'अंदू' [को०]।

अंदेश[1]--संज्ञा पुं० [फा० अंदेशह्] सोच। चिंता। फिक्र। उ०--सिय अंदेश जानि प्रभु सूरज लियो करज की ओर। टूटत धनु नृप लुके जहाँ तहँ ज्यों तारागन भोर।-- (शब्द०)।

अंदेश²--प्रत्य० [फा० अंदेश] सोचनेवाला। अभिलाषी। देखनेवाला। द्रष्टा। जैसे, बद अंदेश। खैर अंदेश। दूर अंदेश आदि [को०]।

अंदेशा--संज्ञा पुं० [फा० अंदेशह्] १. सोच। चिंता। फिक्र। उ०--मोमिन ये असर सियाह मस्ती का न हो। अंदेशा कभी बलंद व पस्ती का न हो।--कविता कौ०, भाग ४, पृ० ४८७। २. संशय। अनुमान। संदेह। शक। ३. खटका। आशंका। भय। डर। ४. हर्ज। हानि। ५. दुबिधा। असमंजस। आगापीछा। पसोपेश।

अंदेस(पु)--संज्ञा पुं० दे० 'अंदेशा'। उ०--(क) कितक रूप गुन आगरो सुनत मोहिं अंदेश।--पृ० रा०, १४।७। (ख) सो अंदेश होत मन मांरें कब धौं मिलिबौं आनंद रे।--जग० बानी, भा० २, पृ० ३।

अंदेसड़ा(पु)--संज्ञा पुं० [हिं० अंदेशा > अंदेस + ड़ा (प्रत्य०)] दे० 'अंदेशा'। उ०--अंदेसड़ा न भाजिसी संदेसौ कहियाँ। कै हरि आयाँ भाजिसी, कै हरि ही पासि गयाँ।--कबीर ग्रं०, पृ० ८।

अंदेह(पु)--संज्ञा पुं० दे० 'अंदेस'। उ०--पुम्म प्रगट्ट न कीजिये। मो तिय इय अंदेह।--पृ० रा०, १।१५३।

अंदोअन(पु)--संज्ञा पुं० [सं० आन्दोलन] हलचल। अंदोर। उ०--सुनि अंदोअन राव दिठ। रिझ्झाए सब सोइ।।--पृ० रा०, ६१।१२१६।

अंदोर--संज्ञा पुं० [सं० अन्दोल=हलचल] हलचल। शोर। हल्ला। कोलाहल। हुल्लड़। हल्लागुल्ला। उ०--भहरात झहरात दवानल आयो। घेरि चहुं ओर करि सोर अंदोर बन धरनि आकास चहुँ पास छायो।--सूर०, १०।५९६।

क्रि० प्र०--करना=शोर मचाना। उ०--चीन्हों रे नर प्रानी याको निस दिन करत अंदोर।--कबीर श०, पृ० ११६।--मचना या होना=कोलाहल होना। उ०--बहु लौलीन होइ संख धुन करत है, घंट घनघोर अंदोर ह्वै।--कबीर० रे०, पृ० २५।

अंदोरा(पु)--संज्ञा पुं० दे० 'अंदोर'।

अंदोल--वि० [सं० अन्दोलन] कंपित। हिलती डुलती। उ०--सुभं उच्च अदाल बीचं बिराजं। मनो सुग्ग आरोह सोपान साजं।--पृ० रा०, ६।८३।

अंदोलना(पु)--क्रि० स० [सं० अन्दोलन] हिलाना। डुलाना। उ०--सुष पाय पानि अंदोलि वारि। अच्चयौ अप्प आतम अधारि।--पृ० रा०, ६१।१६१७।

अंदोलित--वि० [सं० आन्दोलित] आंदोलित। हिली डुली। उ०--जल अंदोलित सो भई उदै होत बर भान।--पृ० रा०, २।६०।

अंदोह--संज्ञा पुं० [फा०] १. शोक। दुःख। रंज। खेद। उ०--सिध बिनास्यौ बनिक सुत कन्या किय अंदोह।--पृ० रा०, १।३४८। २. तरद्दुद। खटका। असमंजस। संदेह।

अंद्रससत्र(पु)--संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रशस्त्र] वज्र [डिं०]।

अंद्रि(पु)--संज्ञा पुं० [सं० अद्रि] अद्रि। पर्वत। उ०--अंबर बरषै धरती निपजै, अंद्रि बरषंदाई।--रामानंद०, पृ० १३।

अंध¹--वि० [सं० अन्ध] १. नेत्रहीन। बिना आँख का। अंधा। जिसकी आँखों में ज्योति न हो। जिसमें देखने की शक्ति न हो। उ०--गुर सिष अंध बधिर कइ लेखा। एक न सुनै एक नहिं देखा।--मानस, ७।९९। २. अज्ञानी। अजानकार। अनजान। मूर्ख। बुद्धिहीन। अविवेकी। उ०--तव आक्षिप्त तव विषम माया, नाथ ! अंध मैं मंद व्यालादगामी।--तुलसी ग्रं०, पृ० ४८१। ३. असावधान। अचेत। गाफिल। ४. उन्मत्त। मतवाला। मस्त। उ०--ठौर ठौर झौंरत झँपत भौंर भौंर मधु अंध।--बिहारी र०, ४६६। ५. प्रखर। तीव्र (को०)।

विशेष--समस्त पदों में ही प्रायः प्रयुक्त, जैसे कामांध, मोहांध, क्रोधांध, जन्मांध दिवांध, रात्र्यंध, मदांध आदि।

यौ०--अंधकूप। अंधखोपड़ी।

अंध²--संज्ञा पुं० १. वह व्यक्ति जिसे आँखें न हों। नेत्रहीन प्राणी। अंधा। २. जल। पानी। ३. उल्लू। ४. चमगादड़। ५. अंधकार। अँधेरा। ६. कवियों के बाँधे हुए पथ के विरुद्ध चलने का काव्य संबंधी दोष। ७. ज्योतिष के अनुसार एक योग (को०)। ८. परिव्राजकों का एक भेद (को०)।

अंधक--संज्ञा पुं० [सं० अन्धक] १. नेत्रहीन मनुष्य। दृष्टिरहित व्यक्ति। अंधा। २. कश्यप और दिति का पुत्र एक दैत्य।

विशेष--इसके सहस्र सिर थे। मद के मारे अंधों की नाईं चलने के कारण यह अंधक कहलाता था। स्वर्ग से पारिजात लाते समय यह शिव द्वारा मारा गया। इसी से शिव को अंधकारि वा अंधकरिपु कहते हैं।

३. क्रोष्टी नामक यादव के पौत्र और युधाजित् के पुत्र।

विशेष--अंधक नाम की यादवों की शाखा इन्हीं से चली। इनके भाई वृष्णि थे जिनसे वृष्णिवंशी यादव हुए जिनमें कृष्ण थे। ४. वृहस्पति के बड़े भाई उतथ्य ऋषि के पुत्र महातपा नामक ऋषि। इनकी माता का नाम ममता था।

अंधकघाती--संज्ञा पुं० [सं० अन्धकघाती] अंधक नामक असुर को मारनेवाले शिव [को०]।

अंधकरिपु--संज्ञा पुं० [सं० अन्धकरिपु] १. अंधक नामक दैत्य के शत्रु शिव। २. अंधकार का नाश करनेवाले सूर्य। ३. चंद्रमा। ४. अग्नि। प्रकाश। रोशनी।

अंधकशत्रु--संज्ञा पुं० [सं० अन्धकशत्रु] शिव [को०]।

अंधकार--संज्ञा पुं० [सं० अन्धकार] १. अँधेरा।

विशेष--महा अंधकार को अंधतमस, सर्वव्यापी वा चारों ओर के अंधकार को संतमस और थोड़े अंधकार को अवतमस कहते हैं।

२. अज्ञान। मोह। ३. उदासी। कांतिहीनता। जैसे--उसके चेहरे पर अंधकार छाया है (शब्द०)।

अंधकारमय--वि० [सं० अन्धकारमय] अंधकार से युक्त [को०]।

अंधकारसंचय--संज्ञा पुं० [सं० अन्धकारसञ्चय] घना अंधकार। महा अंधकार [को०]।

अंधकारि--संज्ञा पुं० [सं० अन्धकारि] शिव। शंकर [को०]।

अंधकारी--संज्ञा स्त्री० [सं० अन्धकारी] भैरव राग की पाँच स्त्रियों में से एक। एक रागिनी। दे० 'रागिनी'।

अंधकाल(पु)--संज्ञा पुं० दे० 'अंधकाला'।

अंधकाला(पु)--संज्ञा पुं० [सं० अन्धकार] अंधकार। अँधेरा। उ०--ऐसे बादर सजल, करत अति महाबल, चलत घहरात करि अंधकाला।--सूर०, १० ८५५।

अंधकासुहृद्--संज्ञा पुं० [सं० अन्धकासुहृद्] अंधकारि शिव [को०]।

अंधकूप--संज्ञा पुं० [सं० अन्धकूप] १. वह कूआँ जिसका जल सूख गया हो और मुँह घासपात से ढका हो। अंधा कूआँ। सूखा कूआँ। अँधेरा कूआँ। उ०--यह कूप कूप भव अंधकूप, वह रंक हुआ जो यहाँ भूप निश्चय रे।--तुलसी०, पृ० २८। २. अँधेरा। अंधकार। उ०--जैसे अंधौ अंधकूप में गनत न खाल पनार। तैसेहि सूर बहुत उपदेसैं सुनि सुनि गे कै बार।--सूर०, १।८४। ३. धनांधकार। निबिड़ तम। अंधागुप्प। उ०--अंधकूप भा आवैं, उड़त आव तस छार। ताल तलावा पोखर, धूरि भरी जेवनार।--जायसी ग्रं०, पृ० २२७। ४. एक नरक का नाम।

अंधकूपता--संज्ञा स्त्री० [सं० अन्धकूपता] अँधेरापन। मूर्खता। अज्ञान। उ०--उन्हें जगत् की अनेकरूपता और हृदय की अनेक भावात्मकता के सहारे अंधकूपता से बाहर निकलने की फिक्र करनी चाहिए।--चिंतामणि, भा० २, पृ० ५१।

अंधकोठरी--संज्ञा स्त्री० [सं० अन्ध + हिं० कोठरी] अँधेरा और तंग कमरा (बोल०)।

अंधखोपड़ी--वि० [सं० अन्ध + हिं० खोपड़ी] जिसके मस्तिष्क में बुद्धि न हो। मूर्ख। गाउदी। भोंदू। अज्ञानी। नासमझ।

अंधड़--संज्ञा पुं० [सं० अन्ध + हिं० ड़ (प्रत्य०)] गर्द लिए हुए कड़े झोंके की वायु। वेगयुक्त पवन। आँधी। तूफान। उ०--अंधड़ था बढ़ रहा प्रजादल सा झुँझलाता।--कामायनी, पृ० २००।

अंधतम--संज्ञा पुं० [सं० अन्धतमस्] घना अँधेरा। अँधेरागुप्प। उ०--जग के निद्रित स्वप्न सजनि सब इसी अंधतम में बहते।--पल्लव, पृ० ५७।

अंधतमस--संज्ञा पुं० [सं० अन्धतमस्] दे० 'अंधतम'। उ०--अंधतमस है किंतु प्रकृति का आकर्षण है खींच रहा।--कामायनी, पृ० २२७।

अंधता--संज्ञा स्त्री० [सं० अन्धता] अंधापन। दृष्टिहीनता। उ०--चल न सकै चाल लागे दुख देन बाल बैन, लटपटे भए नैन अंधता छई।--दीन० ग्रं०, पृ० १३८।

अंधतामस्--संज्ञा पुं० [सं० अन्धतामस्] दे० 'अंधतमस' [को०]।

अंधतामिस्र--संज्ञा पुं० [सं० अन्धतामिस्र] १. घोर अंधकारयुक्त नरक। बड़ा अँधेरा नरक। २१ बड़े नरकों में से दूसरा या १८ वाँ। २. जीने की इच्छा रहते हुए भी मरने का भय (सांख्य)।

विशेष--सांख्य में इच्छा के विघात अर्थात् जो इच्छा में आए उसे करने की अशक्ति को विपर्यय कहते हैं। इस विपर्यय के पाँच भेद हैं जिनमें से अंतिम को अंधतामिस्र या अभिनिवेश कहते हैं।

३. योगशास्त्र के अनुसार पाँच क्लेशों में से एक। मृत्यु का भय। अभिनिवेश। ४. मृत्यु के बाद आत्मा का अनस्तित्व [को०]।

अंधत्व--संज्ञा पुं० [सं० अन्धत्व] अंधापन [को०]।

अंधधी--वि० [सं० अन्धधी] मूर्ख। नासमझ। मंदबुद्धि [को०]।

अंधधुंध[1]--संज्ञा पुं० [सं० अन्ध = अन्धकार + धूम = धूआँ अथवा अन्ध + धूनन (कंपन, हलचल), सं० अन्ध + हिं० धुंध] १. अंधकार। अँधेरा। उ०--(क) अति विपरीत तृणावर्त आयो। बातचक्र मिस ब्रज के ऊपर नंद पँवरि से भीतर आयो। अंधधुंध भयो सब गोकुल जो जहाँ रह्यो सो तहाँ छपायो।--सूर०, (शब्द०)। (ख) काउ लै ओट रहत वृक्षन की अंधधुंध दिसि बिदिसि भुलाने।--सूर०, १०। ८६०। २. अंधाधुंध। अँधेर। अनरीति। दुराचार। अनियमित व्यापार। उच्छृंखल कर्म। उ०--समुझि न परै तिहारी मधुकर, हम ब्रजनारि गँवार। सूरदास ऐसी क्यों निबहै अंधधुंध सरकार।--सूर०, १०।३९०९।

अंधधुंध[2]--वि० विशाल। अपार। उ०--देखत मदंध दसकंध अंधधुंध दल बंधु सों बलकि बोल्यों राजा राम बरिबंड।--भिखारी० ग्रं०, भा० २, पृ० ३२।

अंधधुंध[3]--क्रि० वि० बहुत। अत्यधिक। उ०--अंधधुंध माँ बाप, रुवै रे, बहुरि नहीं अस अवसर पाय।--जग० श०, भा० २ पृ० ११०।

अंधधू--संज्ञा पुं० [देश०] कूप। कूआँ [को०]।

अंधपरंपरा--संज्ञा स्त्री० [सं० अन्धपरंपरा] बिना समझे बूझे पुरानी चाल का अनुकरण। एक को कोई काम करते देख दूसरे का बिना किसी विचार के उसे करना। लीक पिटौअल। भेड़ियाधँसान।

अंधपूतना--संज्ञा स्त्री० [सं० अन्धपूतना] दे० 'अंधपूतना ग्रह'।

अंधपूतनाग्रह--संज्ञा पुं० [सं० अन्धपूतनाग्रह] बालकों का रोगविशेष।

विशेष--इसमें वमन, ज्वर, खाँसी, प्यास आदि की अधिकता होती है। बालक के शरीर से चरबी की सी गंध आती है और वह बहुत रोता है। दे० 'पूतना'।

अंधप्रभंजन--संज्ञा पुं० [सं० अन्धप्रभंजन] ऐसी तेज हवा जिसमें कुछ न सूझ पड़े। आँधी। तूफान। उ०--बहता अंधप्रभंजन ज्यों, यह त्योंही स्वरप्रवाह, मचल कर दे चंचल आकाश।--अनामिका, पृ० ६७।

अंधबाई(पु)--संज्ञा स्त्री० [सं० अन्धवायु] धूल लिए हुए वेगयुक्त पवन। ऐसी तेज हवा जिसमें गर्द के कारण कुछ सूझ न पड़े। आँधी। तूफान।

अंधमति--वि० [सं० अन्धमति] उलटी बुद्धिवाला। नासमझ। मूर्ख। उ०--रे दसकंध अंधमति तेरी आयु तुलानी आनि।--सूर०, ९।७९।

अंधमूषिका--संज्ञा स्त्री० [सं० अन्धमूषिका] 'देवताड़' नामक पौधा।

विशेष--वैद्यक में माना गया है कि इसके सेवन से अंधापन चला जाता है।

अंधर(पु)--वि० [सं० अन्धकार, अंधार] अँधेरा। अंधकारमय। प्रकाश रहित। उ०--नखत चहूँ दिसि रोवहिं, अंधर धरति अकास।--जायसी (शब्द०)।

अंधराजा--पुं० [सं० अंधराजा] शास्त्र और नीति आदि से अनभिज्ञ अविवेकी राजा।

विशेष--चाणक्य ने अर्थशास्त्र में राजा के दो भेद किए हैं-- एक अंधराजा दूसरा चलितशास्त्र राजा। चलितशास्त्र वह है जो जान बूझकर शास्त्र की मर्यादा का उल्लंघन करता हो। इन दोनों में चाणक्य ने अंधराजा को ही अच्छा कहा है, जो योग्य मंत्रियों के होने पर अच्छा शासन कर सकता है।

अंधरात्री--संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ अन्धरात्री] अँधेरी रात। अंधकार से काली रात [को॰]।

अंधरोष--संज्ञा पुं॰ [सं॰ अन्ध + रोष] भीषण क्रोध। अतिक्रोध। उ०--भृकुटि के कुंडल वक्र मरोर, फुहुँकता अंधरोष फन खोल।--पल्लव, पृ० १२१।

अंधल[1]--वि॰ [सं॰ अन्ध, प्रा॰ अंधल] अंधा। नेत्रहीन।

अंधल[2]--संज्ञा पुं॰ अंधकार। अँधेरा।

अंधली--संज्ञा स्त्री॰ [प्रा॰ अंधल] [पुं॰ अंधला] अंधी स्त्री। अंधी। उ०--अँधली आखिन काजल कीया। मुडली माँग सँवारे।--सुंदर ग्रं०, भा० १; पृ० ८७३।

अंधविंदु--संज्ञा पुं॰ [सं॰ अन्धविन्दु] आँख के भीतरी पटल पर का वह स्थान जो प्रकाश को ग्रहण नहीं करता और जिसके सामने पड़ी हुई वस्तु दिखाई नहीं देती।

विशेष--नेत्रपटल पर ज्ञानतंतु पीछे से आकर शिराओं के रूप में फैले हुए हैं और मुड़कर शंकु और छड़ियों के आकार में हो गए हैं। मनुष्य की आँख में इन शंकुओं की संख्या ३३,६०,००० मानी गई है। ये छड़ियाँ वा शंकु आकार और रंग का परिज्ञान कराने में काम देते हैं। यदि प्रकाश ऐसे स्थान पर पड़े जहाँ कोई शंकु न हो तो कुछ देख नहीं पड़ता। यही स्थान अंधबिंदु कहलाता है।

अंधविश्वास--संज्ञा पुं॰ [सं॰ अन्धविश्वास] बिना विचार किए किसी बात का निश्चय। बिना समझे बूझे किसी बात पर प्रतीति। संभव-असंभव विचाररहित धारणा। विवेकशून्य धारणा।

अंधश्रद्धा--संज्ञा पुं॰ [सं॰ अन्धश्रद्धा] बिना विचार की श्रद्धा। विवेकहीन आस्था। उ०--अंधश्रद्धा और अश्रद्धा आदि इसी के परिणाम हैं।--जय० प्र०, पृ० ५३।

अंधस--संज्ञा पुं॰ [सं॰ अन्धस] १. पका हुआ चावल। भात। २. भोजन (को॰)। ३. जड़ी बूटी (को॰)। ४. सोम नामक लता (को॰)। ५. सोमरस (को॰)। ६ रस (को॰)। ७. घृत (को॰)।

अंधसैन्य--संज्ञा पुं॰ [सं॰ अन्धसैन्य] अशिक्षित सेना। दे॰ 'भित्रकूट'।

अंधा[1]--संज्ञा पुं॰ [सं॰ अन्धक, प्रा॰ अन्धअ] [स्त्री॰ अंधी] बिना आँख का जीव। वह जिसको कुछ सूझता न हो। वह जीव जिसके आँखों में ज्योति न हो। दृष्टिरहित जीव। उ०--जानता बूझा नहीं बूझि किया नहीं गौन। अंधे को अंधा मिला राह बतावै कौन।--कबीर सा० सं०, भा० १, पृ० १४।

अंधा[2]--वि॰ १. बिना आँख का। दृष्टिरहित। उ०--अंधा बाँटे रेवड़ी फिर फिर अपने देय (कहावत)। २. विचाररहित। अविवेकी। अज्ञानी। उ०--ज्ञानी से कहिए कहा कहत कबीर लजाय। अंधे आगे नाचते कला अकारथ जाय।--कबीर सा० सं०, पृ० ८६।

क्रि० प्र०--करना।--बनना।--बनाना।--होना। भले बुरे का विचार खो बैठना। उ०--क्रोध में मनुष्य अंधा हो जाता है। (शब्द०)।

मु०--अंधा करना = (१) दे॰ 'अंधा बनाना' (२) शोक और जोश या आवेश से विवेकहीन बना देना। अंधा बनना = जान बूझकर किसी बात पर ध्यान न देना। अंधा बनाना = आँख में धूल डालना। बेवकूफ बनाना धोखा देना। अंधा मुल्ला टूटी मस्जिद = बुरे को बुरी चीज का मिलना। जैसे को तैसा मिलना। अंधा क्या चाहे दो आँखें = जरूरतमंद की अपनी जरूरत पूरी होने की कांक्षा करना। अंधे की लकड़ी या लाठी = (१) एकमात्र आधार सहारा। आसरा। (२) वह लड़का जो कई लड़कों में बचा हो। इकलौता लड़का। अंधे के हाथ बटेर लगना = किसी वस्तु का अयोग्य व्यक्ति को अप्रत्याशित रूप से प्राप्त होना। उ०--समझ लो कि तुम अपनी मिहनत से नहीं पास हुए, अंधे के हाथ बटेर लग गई।--मान०, भा० १, पृ० ८२। अंधों में काना राजा या सरदार = थोड़ी सी जानकारी से मूर्खों या अनजान लोगों के बीच श्रेष्ठ बनना। अंधों का राज = विवेकहीन शासन। उ०--राव रंक अंधा सबै फिर अंधों ही का राज।--दरिया, बानी, पृ० ६।

३. मतवाला। उन्मत्त। जैसे--आदमी अपने मतलब में अंधा है। ४. जिसमें कुछ दिखाई न दे। अँधेरा। प्रकाशशून्य।

यौ०--अंधा आइना = वह दर्पण जिसमें चेहरा साफ दिखाई न दे। धुंधला शीशा। अंधा कूआँ = (१) दे॰ 'अंधकूप' १। (२) लड़कों का एक खेल जो चार लकड़ियों से खेला जाता है। अंधा कूप = दे॰ अंधकूप'। उ०--तन में जो अंधा कूप है। वोही तुम्हारा रूप है।--संत तुरसी, पृ० २५। अंधा घर = वह मकान जिसकी बाहरी रौनक खतम हो चुकी हो। अंधा घोड़ा = उपानह। जूता (साधु फकीर)। अंधा चिराग = वह चिराग जिसकी ज्योति में प्रसार न हो। धुंधली ज्योति का दीपक। अंधा तारा = नेपचून नामक तारा। अंधा दरबार = दे॰ 'अंधाराज'। अंधा दीया = दे॰ 'अंधा चिराग'। अंधा भैंसा = लड़कों का एक खेल जिसमें एक लड़का दूसरे लड़के की पीठ पर चढ़कर उसकी आँखें बंद कर लेता है और दूसरे लड़के उस भैंसा बने हुए लड़के के बीच से एक एक करके निकलते हैं। सवार लड़का ऊपर से प्रत्येक निकलनेवाले लड़के का नाम पूछता जाता है। भैंसा बना हुआ लड़का जिसका नाम ठीक बता देता है उसे फिर वह भैंसा बनाकर उसकी पीठ पर सवारी करता है। अंधा राज = वह राज्य जिसका प्रबंध बुरा हो। अन्यायी राज्य। अंधा शीशा = दे॰ 'आइना'।

कहा०--अंधा गाए बहरा बजाए = जब किसी काम के करने में अयोग्य व्यक्ति एक साथ लगे हों। अंधी पीसे कुत्ता खाय = निष्प्रयोजन काम को बड़े परिश्रम से करना। अंधे के आगे रोए, अपनी आँखें खोए = अरण्यरोदन। अंधे को दूर की सूझना = असमर्थ होते हुए भी समर्थ से बढ़कर काम करना या अनजान होकर भी जानकारों से भी अधिक समझ की बात बताना।

अंधाई--संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ अंधा + ई] अंधापन। विवेकहीनता। उ०--भेष रता अंधा सबै अंधाई का राज।--दरिया बानी, पृ० ३६।

अंधाधुंध¹--संज्ञा स्त्री० [हिं० अंधा + धुंध] १. बड़ा अँधेरा। घोर अंधकार। उ०--अंधाधुंध भयौ सब गोकुल, जो जहँ रम्यो सो तहीं छपायौ।--सूर० १०।७७। २. अँधेर। अविचार। अन्याय। गड़बड़। धींगाधींगी। कुप्रबंध। भौंसा। उ०--वहाँ कोई किसी को पूछनेवाला नहीं, अंधाधुंध मची है (शब्द०)।

अंधाधुंध²--वि० बिना सोच विचार का। विचाररहित। बेधड़क। बेहिसाब। बेअंदाज। बेठिकाने। उ०--वह किसी कोरे स्वप्नद्रष्टा की काल्पनिक अंधाधुंध उड़ान नहीं है।--जय० प्र०, पृ० ४।

अंधाधुंध³--क्रि० वि० १. बिना सोचे बिचारे। बेरोकटोक। बेतहाश। मारामार। उ०--अंधाधुंध धर्म के मारग सब जग गोते खाता।--संत तुरसी०, पृ० २२३। २. अधिकता से। बहुतायत से, जैसे--वह अंधाधुंध दौड़ा आता है। वह अंधाधुंध खाए चला जाता है। (शब्द०)।

अंधानुकरण--संज्ञा पुं० [सं० अन्ध + अनुकरण] बिना विचारे अनुकरण करने का कार्य।

अंधानुवृत्ति--संज्ञा स्त्री० [सं० अन्ध + अनुवृत्ति] दे० 'अंधानुकरण'। उ०--'भारतीय इतिहास की कुछ समस्याएँ नामक लेख में अपनी अंधानुवृत्ति और अनर्गलता से 'न भूमिः स्यात्-सर्वान् प्रत्यविशिष्टत्वात्' का अनुवाद यों दिया है--भूमि व्यक्तिगत संपत्ति नहीं है।--काव्य य० प्र०, पृ० ४०।

अंधानुसरण--संज्ञा पुं० [सं० अन्ध + अनुसरण] दे० 'अंधानुकरण'। उ०--उन्होंने भारतीय परंपरा को मानते हुए भी अंधानुसरण' कहीं नहीं किया है--रस०, पृ० ५।

अंधार(पु)--संज्ञा पुं० [सं० अन्धकार, प्रा० अंधआर, अंधार] दे० 'अंधकार'। उ०--गिरद्द उड़ी भांन अंधार रैनं।--पृ० रा०, २०।६५।

अंधारी¹(पु)--वि० [प्रा० अन्धार + हिं० ई (प्रत्य०)] अंधकारयुक्त। अँधेरी। अँधेरिया। उ०--अंधारी दारुन निसा, भू सपनंतर आइ।--पृ० रा०, १७।७१।

अंधारी²--संज्ञा स्त्री० घोड़े, हाथी अथवा बैलों की आँखों पर डालने का पर्दा। अँधेरी। उ०--इभ कुंभ अंधारी कुच सु कंचुकी, कवच संभु काम क कलह।--बेलि, दू० ६०।

अंधालजी--संज्ञा स्त्री० [सं० अन्धालजी] अंतर्मुख फोड़ा। अंधा फोड़ा। अंतर्मुख पिटक [को०]।

अंधाहि¹--संज्ञा पुं० [सं० अन्धाहि] विषहीन सर्प [को०]।

अंधाहि²--संज्ञा स्त्री० एक प्रकार की मछली। कूचिका [को०]।

अंधाहिक--संज्ञा पुं० [सं० अन्धाहिक] एक विषरहित सर्प [को०]।

अंधाहुली--संज्ञा स्त्री० [सं० अधःपुष्पी] चोरपुष्पी नामक क्षुप। दे० 'चोरपुष्पी'।

अंधिका--संज्ञा स्त्री० [सं० अन्धिका] १. रात। रात्रि। २. द्यूत। जूआ का खेल। ३. एक विशेष प्रकार का खेल या क्रीड़ा। ४. आँख का एक रोग। ५. सर्षपी जिसके अत्यंत सेवन से दृष्टिक्षय होता है (को०)। ६. स्त्रियों का एक भेद (को०)।

अंधियारी--संज्ञा स्त्री० [सं० अन्धकार प्रा० अन्धआर, अन्धयार + हिं० ई (प्रत्य०)] १. अंधकार। अंधेरा। २. वह पट्टी जो उपद्रवी घोड़ों, शिकारी पक्षियों और चीते आदि की आँखों पर इसलिये बँधी रहती है कि किसी को देखकर उपद्रव न करें।

अंधी¹--संज्ञा स्त्री० [हिं० पुं० अंधा; स्त्री० अंधी] बिना आँख की स्त्री। जो स्त्री देख न सके।

अंधी²--वि० स्त्री० १. दृष्टिरहित। विवेकशून्य। विचाररहित।

यौ०--अंधी सरकार = १. राज्य जिसका प्रबंध बुरा हो। २. मालिक जो नौकरों की तनख्वाह ठीक समय पर न देता हो।

मुहा०--अंधी बैठना = बिना अंदाज के कही बात का ठीक होना। बिना अंदाज के फेंकी चीज का ठीक लक्ष्य पर बैठना। उ०--एक बार उसकी अंधी बैठ गई तो सब जगह उसे काई ही दिखाने लगी।--अंधेरे०; पृ० १४०।

३. प्रकाशहीन। अंधकारपूर्ण। उ०--जहाँ युगानयुग की एक बड़ी अंधी गुफा थी।--प्रेमसागर (शब्द०)। ४. मतवाली। उन्मत्त।

अंधु¹--संज्ञा पुं० [सं० अन्धु] १. कूआँ। कूप। २. शिश्न। पुरुष की जननेंद्रिय [को०]।

अंधु²--वि० अँधेरा। प्रकाश का अभाव। प्रकाशहीन। उ०--सुखदाता सुतपति गृह बंधु। तुम्हारी कृपा बिनु सब जग अंधु।--सूर०, १०।१८०।

अंधुल--संज्ञा पुं० [सं० अन्धुल] शिरीष वृक्ष। सिरस का पेड़।

अंधुला(पु)--वि० दे० 'अंधला'। उ०--पाँधे मिस्सर अंधुले, काजी मुल्ला कोरु। तिनौं पास न भिटीयै, जो सबदे दे चोरु।--संतबानी०, पृ० ७०।

अंधेर--संज्ञा पुं० [सं० अन्धकार (अन्ध इव करोति-इति); प्रा० अंधयार < अन्धइयार, अप०; पुं० हिं० अंधेर, अंधियार] १. अन्याय। अविचार। अत्याचार। जुल्म। २. उपद्रव। गड़बड़। कुप्रबंध। भौंसा। अंधाधुंध। धींगाधींगी। अनर्थ।

क्रि० प्र०--करना।--मचाना।--होना = अविचार या गड़बड़ होना। धींगाधींगी होना। उ०--इनकी फिरंगिनें बैठी हैं किसी की जबान तक न हिली और हम आपस में कटे मरते हैं, क्या अंधेर है।--फिसाना०, भा० ३, पृ० ३।

अंधेरखाता--संज्ञा पुं० [हिं० अंधेर + खाता] १. हिसाब किताब और व्यवहार में गड़बड़ी। व्यतिक्रम। २. अन्यथाचार। अन्याय। अविचार। कुप्रबंध। ३. अविचारपूर्ण या अन्यायपूर्ण व्यवहार।

अंधेरगर्दी--संज्ञा स्त्री० [हिं० अंधेर + फा० गर्दी] बेहद अंधेर। अनाचार (बोल०)।

अंधेरनगरी--संज्ञा स्त्री० [हिं० अंधेर + सं० नगरी] १. वह स्थान, संस्थान या स्थिति जहाँ कोई नियम या कानून न हो। अन्यायपूर्ण राज्य। २. अशांति या अव्यवस्थापूर्ण स्थान। उ०--अंधेर नगरी अनबूझ राजा। टका सेर भाजी टका सेर खाजा।--भारतेंदु ग्रं०, भा० १; पृ० ६७०।

अंधेरा--संज्ञा पुं० [हिं० अंधेर + आ (प्रत्य०)] गड़बड़। अंधेर। अनर्थ। अन्याय। उ०--महामत्त बुधिबल कौ हीनौ देखि करै अंधेरा।--सूर० १।१८६।

अंधेरी[1]--संज्ञा स्त्री० दे० 'अँधेरी'।

अंधेरी[2]--संज्ञा स्त्री० [?] दक्षिण भारत का एक स्थान।

अंध्यार(पु)†--संज्ञा पुं० [सं० अन्धकार; प्रा० अंधयार] अँधियार। अँधेरा।

अंध्यारी(पु)†--संज्ञा० स्त्री० दे० 'अँधियारी'[1]।

अंध्र--संज्ञा पुं० [सं० अन्ध्र] १. बहेलिया। व्याधा। शिकारी। २. वैदिहिक पिता और कारावर माता से उत्पन्न नीच जाति के मनुष्य जो गाँव के बाहर रहते और शिकार करके अपना निर्वाह करते थे। ३. दक्षिण का एक देश जिसे अब तिलंगाना कहते हैं। इसके पश्चिम की ओर पश्चिम घाट पर्वत, उत्तर की ओर गोदावरी और दक्षिण में कृष्णा नदी है। आंध्र देश। ४. अंध्र देश के निवासीजन ५. मगध का एक राजवंश जिसे एक शूद्र ने अपने मालिक कन्न वंश के अंतिम राजा को मारकर स्थापित किया था। अंध्र वंश का अंतिम राजा पुलोम था।

अंध्रभृत्य--संज्ञा पुं० [सं० अन्ध्रभृत्य] मगध देश का एक राजवंश।
विशेष--अंध्रवंश के अंतिम राजा पुलोम के गंगा में डूब मरने के पीछे उसका सेनापति रामदेव फिर रामदेव का सेनापति प्रतापचंद्र और फिर प्रतापचंद्र के पीछे भी अनेक सेनापति राजा बन बैठे। इन सेनापतियों का वंश अंध्रभृत्य कहलाया।

अंन(पु)--संज्ञा पुं० [सं०अन्न] दे० 'अन्न'। उ०--(क) अंन का मास अग्नि का हाड तत का भषिवा बाई'--गोरख० पृ० ४१। (ख) पंच दिवस च्यारी बरन भुंजत अंन अपार।--पृ० रा०, १४।१२०।
यौ०--अंनदान=अन्न दान करने का कार्य। उ०--करि सनान गंगोदकह दिय सु गाइ दस दान। दस तोला तुलि हेम दिय अंनदान अ [प्र] मान।--पृ० रा०, ६।१३१।

अंननास(पु)--संज्ञा पुं० दे० 'अनन्नास'। उ०--सु अंननास जीरयं। सतूतयं जँभीरयं।।--पृ० रा०, ५६।६।

अंनी(पु)--संज्ञा स्त्री० दे० 'अनी'। उ०--दिसा बाइयं साद हुस्सेन अंनी। --पृ० रा० ९ १४०।

अंनेक(पु)--वि० दे० 'अनेक'। उ०--अंनेक भाव दिष्षहि सु दिव, दिव दिवान दुंदुभि बजइ।--पृ० रा०, १४।७३।

अंन्य(पु)--वि० दे० 'अन्य'। उ०--और बधाई ऊंमरा करी आइ सुरतान। अंन्य सबन कीनी षयर पुजिय पीर ठटांन।--पृ० रा०, ६।२१०।

अंन्योअन्य(पु--सर्व दे० 'अन्योन्य'। उ०--अंन्योअन्य सहैं नाम।--पृ० रा०, ६।८६।

अंब[1](पु)--संज्ञा स्त्री० [सं० अम्बा] अंबा। माता। उ०--कबहुँक अंब अवसर पाइ।--तुलसी ग्रं०, पृ० ४७५।

अंब[2](पु)--संज्ञा पुं० [सं० आम्र, प्रा० अम्म, अंब] दे० 'आम्र'। आम का पेड़ या फल। उ०--अंब सुफल छाँड़ि कहाँ सेमर को धाऊँ। --सूर० १।१६६।

अंब[3]--संज्ञा पुं० [सं० अम्ब] १. पिता। २. स्वर। ३. स्वर करनेवाला। ४. आँख। वेद। ५. ताँबा [को०]। ६. आकाश। उ०--ग्रीखम भाजै गात अंब बरसात उलट्टाँ।--रा० रू, पृ० ३४३। ७. जल। उ०--हरिचरन अंब अंजुली कीन।--पृ० रा०, १।३६६।

अंब[4](पु)--संज्ञा पुं० [सं० अम्बु] रक्त। खून। रुधिर। उ०--अरि अंब अचन अगथि करार।--पृ० रा०, ६१।२२३।

अंबक--संज्ञा पुं० [सं० अम्बक] १. आँख। नेत्र। उ०--नव अंबुज अंबक छबि नीकी --मानस १।१४७।
यौ०--त्र्यंबक=शिव।
२ पिता। ३. ताँबा। ४. शिवनेत्र [को०]।

अंबखास(पु)--संज्ञा पुं० दे० 'आमखास'। उ०--साबक नैं साहि अंबषास में बुलाया। हाजिर उमराव मीर सों तमाम आया --शिखर०, पृ० ९२।

अंबजा(पु)--संज्ञा स्त्री० [सं० अम्बुजा] कमलिनी। उ०--अलीन जुथ्थ आवरं। मनो बिहंग सावरं। चुवंत पत्त रत्त जा। उवंत जानि अंबजा'--पृ० रा० २५।३२४।

अंबड़ि(पु)--संज्ञा पुं० [सं० अम्बर] अंबर। आकाश। उ०--तिस अंबड़ि कोय न सकई उहु ऊँचा अपरु अपार।--प्राण०, पृ० २०८।

अंबमौर--संज्ञा पुं० [सं० अम्ब + मुकुर; प्रा० अंब + मउर] आम्र की मंजरी। बौर। उ०--बन उपबन फुल्लहिं अति बठौर। रहे जोर मौर रस अंबमौर।।--ह० रा०, पृ० १८।

अंबया--संज्ञा स्त्री० [सं० अम्बया] १. माता (कौषी०)।

अंबर[1]--संज्ञा पुं० [सं० अम्बर] १. आकाश। आसमान। शून्य। उ०-- अंबर कुंजा कुरलियाँ गरजि भरे सब ताल।--कबीर ग्रं०, पृ० ७।

मुहा०--अंबर के तारे डिगना=आकाश से तारे टूटना। असंभव बात का होना। उ०--अंबर के तारे डिगैं, जूआ लाडैं बैल। पानी में दीपक बलै, चलै तुम्हारी गैल (शब्द०)।
यौ०-अंबरचर=(१) पक्षी। (२) विद्याधर। अंबरचारी=ग्रह। अंबरद=कपास। अंबरपुष्प=आकाशकुसुम। अंबरशैल= ऊँचा पहाड़। अंबरस्थली=पृथ्वी।
२. बादल। मेघ (क्व०)। उ०--आषाढ़ में सोवैं परी सब ख्वाब देखैं कामिनी। अंबर नवै, बिजली खवै, दुख देत दोनों दामिनी-- (शब्द०)। ३. वस्त्र। कपड़ा। पट। उ०--नभ पर जाइ बिभीषन तबही। बरषि दिए मनि अंबर सबही।--मानस, ७।११६। ४. स्त्रियों की पहनने की एक प्रकार की एकरंगी किनारेदार धोती। उ०--करषत सभा द्रुपद तनया को अंबर अछय कियौ। --सूर० १।१२१। ५. कपास। ६. अभ्रक धातु। अबरक। ७ राजपूताने का एक पुराना नगर (संभवतः जयपुर की राजधानी आमेर)। ८. प्राचीन ग्रंथों के अनुसार उत्तरी भारत का एक देश। ९. शून्य (को०)। १०. गंध द्रव्य। कश्मीरी केशर। उ०--पचीस छाव अंबरं, असीस मुक्कली भरं।--पृ० रा०, ६६।५८। ११. परिधि। मंडल (को०)। १२. पड़ोस। सामीप्य। पास का देश (को०)। १३. ओष्ठ। ओठ (को०)। १४. दोष। बुराई (को०) १५. हाथियों का नाश करने- वाला (को०)।

अंबर²--संज्ञा पुं० १. एक सुगंधित वस्तु।

विशेष--यह ह्वेल मछली की तथा कुछ और समुद्री मछलियों की अँतड़ियों में जमी हुई चीज है जो भारतवर्ष, अफ्रीका और ब्राजील के समुद्री किनारों पर बहती हुई पाईजाती है। ह्वेल का शिकार भी इसके लिये होता है। अंबर बहुत हल्का और शीघ्र जलनेवाला होता है तथा आँच दिखाते रहने से बिलकुल भाप होकर उड़ जाता है। इसका व्यवहार औषधियों में होने के कारण यह नीकोबार (कालापानी का एक द्वीप) तथा भारत समुद्र के और और टापुओं से आता है। प्राचीन काल में अरब, यूनानी और रोमन लोग इसे भारतवर्ष से ले जाते थे। जहाँगीर ने इससे राजसिंहासन का सुगंधित किया जाना लिखा है। उ०--जिनन पास अंबर है इस शहर बीच। खरीद करनहार है सब वही च।--दक्खिनी०, पृ० ७६। २. एक इत्र। उ०--तेल फुलेल सुगंध उबटनों अंबर अतर लगावै रे।--भक्ति०, पृ० ३६०।

अंबर³(पु)--संज्ञा पुं० [सं० अमृत, प्रा० अमरित, अमरिअ, अप० [अंबरि] अमृत। सुधा।--अनेकार्थ०, पृ० ११४।

अंबर⁴(पु)--संज्ञा पुं० [अ० अमारी, हिं० अंबारी] हाथी की पीठ पर का हौदा जिसपर छज्जेदार मंडप होता है। अंबारी। उ०--चढ़ी चौडोल अंबरं। मनो कि मेघ घुम्मरं।--पृ० रा०, ६६।५७।

अंबरग--वि० [सं० अम्बरग] आकाशगामी [को०]।

अंबरचर¹--वि० [सं० अम्बरचर] आकाशगामी [को०]।

अंबरचर²--संज्ञा पुं० १. पक्षी। खग। २ विद्याधर [को०]।

अंबरचारी--वि० [स० अम्बरचारी] ग्रह [को०]।

अंबरडंबर--संज्ञा पुं० [सं० अम्बर + हिं० डंबर] वह लाली जो सूर्य के अस्त होने के समय पश्चिम दिशा में दिखाई देता है। उ० --बिनसत बार न लागई ग्रंछे जन की प्रीति। अंबर डंबर साँझ के ज्यौं बारु की भींति।--स० सप्तक, पृ० ३१२।

अंबरद--संज्ञा पुं० [सं० अम्बरद] कपास [को०]।

अंबरपुर--(पु) संज्ञा पुं० [सं० अम्बरपुर] आकाश। उ०--आरोपि प्रथ्थि अंबरपुरह सन साइर संसै परिय। कहि चंद दंद करि दंत सों धरनिधार अद्धर धरिय।--पृ० रा०, २।१५३।

अंबरपुष्प--संज्ञा पुं० [सं० अम्बरपुष्प] आकाशकुसुम। असंभव बात। खपुष्प। अस्तित्वहीन पदार्थ। [को०]।

अंबरबानी--संज्ञा पुं० [सं० अम्बर (= मेघ) + बानी] मेघगर्जन। बादलों का गर्जन। उ०--अंबरबानी भई सजल बादर दल छए।--सूर० (राधा०), ४८०६।

अंबरबारी--संज्ञा स्त्री० [सं० अमरवल्लरी, प्रा० अम्मर वाली] एक झाड़ी।

विशेष--यह हिमालय और नीलगिरि पर होती है। इसकी जड़ और छाल से बहुत ही अच्छा पीला रंग निकलता है जिससे कभी कभी चमड़ा भी रँगते हैं। इसके बीज से तेल निकलता है। इसकी लकड़ी, जिसे दारुहल्द वा दारुहल्दी कहते हैं, औषधियों में काम आती है तथा इसकी जड़ और लकड़ी से एक प्रकार का रस निकालते हैं जो रसवत या रसौत कहलाता है। पर्या०--चित्रा। दारुहल्द। आँबाहरदी (अमाहरदी)।

अंबरबेल--संज्ञा स्त्री० [सं० अम्मरवल्ली] दे० 'अम्बरबेलि'।

अंबरबेलि--संज्ञा स्त्री० [सं० अम्मरवल्ली प्रा०; अमरबल्ली] आकाश बेल। आकाश बौर। अमरबेल।

विशेष--हकीमी नुसखों में इसे इफतीमून कहते हैं। सूत के समान पीली एक बेल जो प्रायः पेड़ों पर लिपटी मिलती है जिसकी जड़ पृथ्वी में नहीं होती और इसमें पत्ते और कल्खे भी नहीं निकलते। जिस पेड़ पर यह पड़ जाती है उसे लपेटकर सुखा डालती है। यह बाल बढ़ाने की एक औषधि है। हकीम लोग इसे वायुरोगों में देते हैं।

अंबरमणि--संज्ञा पुं० [सं० अम्बरमणि] आकाश के मणि अर्थात् सूर्य।

अंबरमाला--संज्ञा स्त्री० [सं० अम्बरमाला] मोतियों की विशेष प्रकार की माला। उ०-- अंबरमाला इकक अंक पहिराइ कह्यौ इह।--पृ० रा०, ७।२६।

अंबरयुग--संज्ञा पुं० [सं० अम्बरयुग] स्त्रियों का ऊपर और नीचे पहनने का वस्त्र [को०]।

अंबरलेखी--वि० [सं० अम्बरलेखिन्] आकाशस्पर्शी। गगनचुंबी [को०]।

अंबरशैल--संज्ञा पुं० [सं० अम्बरशैल] अति उच्च पर्वत। बहुत ऊँचा पहाड़ [को०]।

अंबरसारी--संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का कर वा टैक्स जो पहले घरों के ऊपर लगता था।

अंबरस्थली--संज्ञा स्त्री० [सं० अम्बरस्थली] पृथ्वी [को०]।

अंबरांत-- संज्ञा पुं० [सं० अम्बरान्त] १. कपड़े का छोर। २. वह स्थान जहाँ आकाश पृथ्वी से मिला हुआ दिखाई देता है। क्षितिज।

अंबराधिकारी--संज्ञा पुं० [सं० अम्बराधिकारी] अंबर या परिधान का अध्यक्ष [को०]।

अंबरीक(पु)--संज्ञा पुं० [सं० अम्बरीष; देश० अंबरीख > अंबरीक] दे० 'अंबरीष'। उ०--माफ करे अंबरीक बचौगे तब दुर्वासा।--पलटू०, ११६।

अंबरीष--संज्ञा पुं० [सं० अम्बरीष] १. भाड़। २. वह मिट्टी का बरतन जिसमें भड़भूजे लोग गरम बालू डालकर दाना भूनते हैं। ३. विष्णु। ४. शिव। ५. सूर्य। ६. किशोर अर्थात् ११ वर्ष से छोटा बालक। ७. एक नरक। ८. अयोध्या के एक सूर्यवंशी राजा।

विशेष--ये प्रशुश्रक के पुत्र थे और इक्ष्वाकु से २८वीं पीढ़ी में हुए थे। पुराणों में ये परम वैष्णव प्रसिद्ध हैं जिनके कारण दुर्वासा ऋषि का विष्णु के चक्र ने पीछा किया था। महाभारत, भागवत और हरिवंश में अंबरीष को नाभाग का पुत्र लिखा है जो रामायण के मत के विरुद्ध है।

९. आमड़े का फल और पेड़। १०. अनुताप। पश्चात्ताप। ११. समर। लड़ाई। १२. छोटा जानवर। बछड़ा [को०]।

अंबरीसक--संज्ञा पुं० [सं० अम्बरीष] भाड़। भरसायँ (डिं०)।

अंबरौक--संज्ञा पुं० [सं० अम्बरौक] देवता।

अंबरौकस्--संज्ञा पुं० [सं० अम्बरौक] दे० 'अंबरौक [को०] ।

अंबल--संज्ञा पुं० [सं० अम्ल, हिं० अंबल] १. मादक पदार्थ । अमल। २. खट्टा रस । अंबल ।

अंबला--संज्ञा स्त्री० दे० 'अबला' । उ०--साँझ समय राइ बोलसी। हँसि हँसि बोल (ई) अंबला मूंध ।--बी० रासो०, पृ० १६।

अंबली--संज्ञा स्त्री० दे० 'अमली'--२ । उ०--'आब अंबली रे अंबली, बबूर चढ़ी नग बेली रे ।--कबीर ग्रं०, पृ० ११२ ।

अंबष्ठ--संज्ञा पुं० [सं० अम्बष्ठ] [स्त्री० अम्बष्ठा] १. एक देश का नाम पंजाब के मध्य भाग का पुराना नाम । २. अंबष्ठ देश में बसनेवाला मनुष्य । ३. ब्राह्मण पुरुष और वैश्य स्त्री से उत्पन्न एक जाति । इस जाति के लोग चिकित्सक होते थे । ४. महावत । हाथीवान । फीलवान । हस्तिपक । ५. कायस्थों का एक भेद ।

अंबष्ठकी--संज्ञा स्त्री० [सं० अम्बष्ठकी] दे० 'अंबष्ठा' ।

अंबष्ठा--संज्ञा स्त्री० [सं० अम्बष्ठा] १. अंबष्ठ जाति की स्त्री । २. एक लता का नाम । पाढ़ा । ब्राह्मणी लता । ३. जूही (को०) । ४. अंबाड़ा (को०) । ५. चूक (को०) ।

अंबष्ठिका--संज्ञा स्त्री० [सं० अम्बष्ठिका] ब्राह्मी लता [को०] ।

अंबहर--संज्ञा पुं० [सं० अम्बर; डिं० अंबहर] मेघ बादल । उ०--चातक रटै बलाहकि चंचल । हरि सिणगारै अंबहर । बेलि०, दू० १९४ ।

अंबा¹--संज्ञा स्त्री० [सं० अम्बा] १. माता । जननी । माँ । अम्मा । उ०--जौं सिय भवन रहइ कह अंबा । मोहि कहँ होइ बहुत अवलंबा ।--मानस, १।६० । २. गौरी । पार्वती । देवी । दुर्गा । ३. अंबष्ठा । पाढ़ा । ४. काशी के राजा इंद्रद्युम्न की तीन कन्यायों में सबसे बड़ी कन्या ।

विशेष--काशिराज की तीन कन्याओं को भीष्म पितामह अपने भाई विचित्रवीर्य के लिये हरण कर लाए थे। अंबा राजा शाल्व के साथ विवाह करना चाहती थी । इससे भीष्म ने उसे शाल्व के पास भिजवा दिया । पर राजा शाल्व ने उसे ग्रहण न किया और वह हताश होकर भीष्म से बदला लेने के लिये तप करने लगी । शिव जी इसपर प्रसन्न हुए और उसे वर दिया कि तू दूसरे जन्म में बदला लेगी। यही दूसरे जन्म में शिखंडी हुई जिसके कारण भीष्म मारे गए ।

५. ससुर खदेरी नदी ।

विशेष--यह नदी फतेहपुर के पास निकलकर प्रयाग से थोड़ी दूर पर यमुना में मिली है । ऐसी कथा है कि यह वही काशिराज की बड़ी कन्या अंबा है, जो गंगा के शाप से नदी होकर भागी थी ।

अंबा²--संज्ञा पुं० [सं० आम्र, प्रा० अंब] आम । रसाल । उ०--मारू अंबा मउर जिम, कर लग्गइ कुँमलाइ ।--ढोला०, दू० ४७१ ।

यौ०--अंबाझोर=तीखी और लगातार चलनेवाली हवा जिससे पेड़ों से आम के फल गिर जायँ (बोल०) ।

अंबाडा--संज्ञा स्त्री० [सं० अम्बाडा] माता । जननी [को०] ।

अंबापोली--संज्ञा स्त्री० [सं० यौ० आम्र + पौलि > प्रा० अंबा + पोली= रोटी, पोतला] अमावट । अमरस ।

अंबाबन--संज्ञा पुं० [सं० अंबा + वन] इलावृत खंड का एक स्थान जहाँ जाने से पुरुष स्त्री हो जाता था । उ०--पुनि सुद्युम्न बसिष्ठ सौं कह्यौ । अंबाबन मैं तिय ह्वै गयौ ।--सूर०, ९।२।

अंबायु--संज्ञा स्त्री० [सं० अम्नायु] १. माता । जननी । २. भद्र या शिष्ट महिला [को०] ।

अंबार--संज्ञा पुं० [फा०] ढेर । समूह । राशि । अटाला । उ०--रीढ़ बंकिम किए निश्चल किंतु लोलुप खड़ा वन्य बिलार, पीछे, गोयठों के गंधमय अंबार ।--इत्यलम् ।

अंबारखाना--संज्ञा पुं० [फा०] गोदाम । भंडार । कबाड़खाना [को०] ।

अंबारी¹--संज्ञा स्त्री० [अ० अमारी] १. हाथी के पीठ पर रखने का हौदा । २. (ऊँट के पीठ का) मोहमिल जिसके ऊपर एक छज्जेदार मंडप बना रहता है। उ०--कुंदन नगन जटित अंबारिय ।--प० रा०, पृ० ११२ । ३. छज्जा । मंडप ।

अंबारी²--संज्ञा स्त्री० पटसन । (दक्षिण) ।

अंबालय--संज्ञा पुं० [सं० अम्बालय] अंबाला शहर । उ०--सो रूपमुरारीदास अंबालय में एक खत्री के जन्मे ।--दो सौ बावन०, भा० १, पृ० १४१ ।

अंबाला--संज्ञा स्त्री० [सं० अम्बाला] माता [को०] ।

अंबालिका--संज्ञा स्त्री० [सं० अम्बालिका] १. माता । माँ । जननी । २. अंबष्ठा लता । पाढ़ा । पाठा । ३. काशी के राजा इंद्रद्युम्न की तीन कन्यायों में सबसे छोटी ।

विशेष--इसे भीष्म अपने भाई विचित्रवीर्य के लिये हरण कर लाए थे । विचित्रवीर्य के मरने पर जब व्यास जी ने इससे नियोग किया तब पांडु उत्पन्न हुए ।

अंबाली--संज्ञा स्त्री० [सं० अम्बाली] माता [को०] ।

अंबिका--संज्ञा स्त्री० [सं० अम्बिका] १. माता । माँ । उ०--अंबिका माता कों कहिये, धाकर नीच ब्राह्मन कों कहिये तातें विरुद्ध मतिकृत भयो ।--भिखारी ग्रं०, भा० २, पृ० २२५। २. दुर्गा। भगवती। देवी। पार्वती । उ०--बासी नरनारि ईस अंबिका सरूप हैं ।--तुलसी ग्रं०, पृ० २४१ । ३. जैनों की एक देवी । ४. कुटकी का पेड़ । ५. अंबष्ठा लता । पाढ़ा । ६. काशी के राजा इंद्रद्युम्न की तीन कन्याओं में मझली ।

विशेष--भीष्म अपने भाई विचित्रवीर्य के लिये इन कन्याओं को हर लाए थे । विचित्रवीर्य के मरने पर जब व्यास जी ने इससे नियोग किया तब धृतराष्ट्र उत्पन्न हुए ।

अंबिकापति--संज्ञा पुं० [सं० अम्बिकापति] शिव [को०]।

अंबिकापुत्र--संज्ञा पुं० [सं० अम्बिकापुत्र] काशिराज की मझली कन्या अंबिका के पुत्र धृतराष्ट्र [को०] ।

अंबिकावन--संज्ञा पुं० [सं० अम्बिकावन] १. इलावृत खंड में एक पुराणप्रसिद्ध स्थान जहाँ जाने से पुरुष स्त्री हो जाते थे । उ०--एक दिवस सो अखेटक गयौ । जाइ अंबिकाबन तिय भयौ ।--सूर०, ९।२ । २. ब्रज के अंतर्गत एक वन ।

अंबिकालय--संज्ञा पुं० [सं० अम्बिकालय] देवी का मंदिर । उ०--पूजा मिसि आनिसि पुरखोतम अंबिकालय नगर आरात ।--बेलि०, दू० ६६ ।

अंबिकासुत--संज्ञा पुं० [सं० अम्बिकासुत] धृतराष्ट्र। अंबिकापुत्र [को०]

अंबिकेय--संज्ञा पुं० [सं० अम्बिकेय] अंबिका के पुत्र--१. गणेश। २. कार्तिकेय। ३. धृतराष्ट्र।

अंबिष्टा--संज्ञा स्त्री० [सं० अम्बष्ठा + 'जूही'] राजबल्ली।--नंद० ग्रं०, पृ० १०५।

अंबु[1]--संज्ञा पुं० [सं० अम्बु] १. जल। पानी। उ०--अंबु तू हौं अंबुचर, अंब तू हौं डिंभ।--तुलसी ग्रं०, पृ० २६६। २. आँसू। अश्रु। उ०--सारंगमुख ते परत अंबु ढरि मनु सिव पूजति तपति विनास।--सा० लहरी, पृ० १७३। ३ रक्त का जलीय तत्व (को०)। ४. सुगंधबाला। ५. कुंडली के बारह स्थानों या घरों में चौथा। ६. चार की संख्या, क्योंकि जल तत्वों की गणना में चौथा है। ७. एक छंद (को०)।

अंबु[2]--संज्ञा पुं० [सं० आम्र] आम। रसाल। उ०--जंबू वृक्ष कहौ क्यों लंपट फलवर अंबु फरै।--सूर० (राधा०), ३३११।

अंबुअ(पु)--संज्ञा पुं० [सं० अम्बुक, प्रा० अंबुअ] जल। पानी। उ०--उतपति प्रेम अगिन उपजावा। बहुरि पवन अंबुअ उपजावा।--हिं० प्रेमा०, पृ० २२६।

अंबुकंटक--संज्ञा पुं० [सं० अम्बुकण्टक] जलजंतुविशेष। मगर।

अंबुक[1](पु)--संज्ञा पुं० [सं० अम्बुक ?] मछली। मांस। उ०--सुरा पान अंबुक भखे, नित्त कर्म बिभिचार।--दया० बानी, पृ० २८।

अंबुक[2]--संज्ञा पुं० [सं० अम्बक] आँख। नयन। उ०--पहिले धन के अंबुक माहीं। अंजन स्याम रहा है नाहीं।--इंद्रा०, पृ० ७१।

अंबुकण--संज्ञा पुं० [सं० अम्बुकण] जलविंदु। पानी का छींटा [को०]।

अंबुकिरात--संज्ञा पुं० [सं० अम्बुकिरात] एक जलजंतु। मगर।

अंबुकीश--संज्ञा पुं० [सं० अम्बुकीश] एक जलजंतु। सूस। शिशुमार।

अंबुकूर्म--संज्ञा पुं० [सं० अम्बुकूर्म] दे० 'अंबुकीश' [को०]।

अंबुकेशर--संज्ञा पुं० [सं० अम्बुकेशर] नीबू का पेड़ [को०]।

अंबुकेशी--संज्ञा पुं० [सं० अम्बुकेशी] एक जलजंतु। ऊद। ऊदबिलाव।

अंबुक्रिया--संज्ञा स्त्री० [सं० अम्बुक्रिया] पितृतर्पण [को०]।

अंबुग[1]--वि० [सं० अम्बुग] पानी में निवास करनेवाला। जलचर [को०]।

अंबुग[2]--संज्ञा पुं० जलचर प्राणी [को०]।

अंबुघन--संज्ञा पुं० [सं० अम्बुघन] उपल। ओला। बनौरी [को०]।

अंबुचत्वर--संज्ञा पुं० [सं० अम्बु + चत्वर] झील [को०]।

अंबुचर--संज्ञा पुं० [सं० अम्बुचर] जलचर। उ०--अंबु तू हौं अंबुचर, अंब तू हौं डिंभ।--तुलसी ग्रं०, भा० २, पृ० २५६।

अंबुचामर--संज्ञा पुं० [सं० अम्बुचामर] शैवाल। सेवार।

अंबुचारी[1]--वि० [सं० अम्बुचारिन्] जलचर [को०]।

अंबुचारी[2]--संज्ञा पुं० जलचर प्राणी [को०]।

अंबुज[1]--वि० [सं० अम्बुज] जल में उत्पन्न होनेवाला [को०]।

अंबुज[2]--संज्ञा पुं०, १. जल से उत्पन्न वस्तु या जंतु। २. कमल। जलज। उ०--नव अंबुज अंबक छबि नीकी।--मानस १।१४७। ३, पानी के किनारे होनेवाला एक पेड़। हिज्जल। ईजड़। पनिहा। ४. बेत। ५. वज्र। ६. ब्रह्मा। ७. शंख। ८. चंद्रमा (को०)। ९. सारस नाम का पक्षी (को०)।

अंबुजतात--संज्ञा पुं० [सं० अम्बुजतात] ब्रह्मा। उ०--मुनि के बोल्यो अंबुज तात। सुनहु अमरगन मों तैं बात।--नंद० ग्रं०, पृ० २२०।

अंबुजन्मा--संज्ञा पुं० [सं० अम्बुजन्मन्] कमल [को०]।

अंबुजसुत--संज्ञा पुं० [सं० अम्बुजसुत] ब्रह्मा। अंबुज तात। उ०--अंबुज सुत उमया बिलोकि, वेद पढ़तं खलि बीरज।--पृ० रा०, ६१।३१५।

अंबुजा--संज्ञा स्त्री० [सं० अम्बुजा] १. एक रागिनी जिसे संगीतशास्त्र वाले मेघ राग की पुत्रवधू कहते हैं। २ सरस्वती। उ०--तु ही अंबुजा अंबुकामिन्नि कामं।--पृ० रा०, २।४। ३. कमलिनी। उ०--ढरंत रत्त एड़ियं। उपम्म कब्बि टेरियं। मनौ कि रत्त रत्तजा। चिकंत पत्र अंबुजा।--पृ० रा०, २५।३३०।

अंबुजाक्ष[1]--वि० [सं० अम्बुजाक्ष] कमल के समान नेत्रवाला।

अंबुजाक्ष[2]--संज्ञा पुं० विष्णु।

अंबुजाक्षी--वि० स्त्री० [सं० अम्बुजाक्षी] कमल जैसी आँखवाली [को०]।

अंबुजात[1]--वि० [सं० अम्बुजात] जल से उत्पन्न।

अंबुजात[2]--संज्ञा पुं० कमल। दे० 'अंबुज'।

अंबुजासन--संज्ञा पुं० [सं० अम्बुजासन] वह जिसका आसन कमल पर हो। ब्रह्मा।

अंबुजासना--संज्ञा स्त्री० [सं० अम्बुजासना] वह स्त्री जिसका आसन कमल पर हो। लक्ष्मी। कमला। सरस्वती।

अंबुजिनी--संज्ञा स्त्री० [सं० अम्बुजिनी] कमलिनी [को०]।

अंबुतस्कर--संज्ञा पुं० [सं० अम्बुतस्कर] सूर्य [को०]।

अंबुताल--संज्ञा पुं० [सं० अम्बुताल] शैवाल सेवार।

अंबुद[1]--संज्ञा पुं० [सं० अम्बुद] १. जल देनेवाला--बादल मेघ। उ०--विधि महेस मुनि सुर सिहात सब देखत अंबुद ओट दिये।--तुलसी ग्रं०, भा० २, पृ० २७२। २. मोथा। नागरमोथा।

अंबुद[2]--वि० जल देनेवाला। जो जल दे।

अंबुदेव--संज्ञा पुं० [सं० अम्बुदेव] १. वे लोग जो जल को देवता मानते हैं। २. ज्योतिष के अनुसार पूर्वाषाढ़ का एक विभाग [को०]।

अंबुदैव--संज्ञा पुं० [सं० अम्बुदैव] दे० 'अंबुदेव' [को०]।

अंबुधर[1]--संज्ञा पुं० [सं० अम्बुधर] जल को धारण करनेवाला--मेघ। बादल। उ०--नव अंबुधर बर गात अंबर पीत सुर मन मोहई।--मानस, ५।१२।

अंबुधर[2]--वि० जल को धारण करनेवाला।

अंबुधार--संज्ञा स्त्री० [सं० अम्बुधार] जलधारा। उ०--कुंतल चिहुर चुवहि ज्यों घाला। अंबुधार कैधों अलिमाला।--माधवानल०, पृ० १९०।

अंबुधि--संज्ञा पुं० [सं० अम्बुधि] १. समुद्र। सागर। २. चार की संख्या (को०)। ३. जलपात्र (को०)।

अंबुधिकामिनी--संज्ञा स्त्री० [सं० अम्बुधिकामिनि] समुद्र की स्त्री या नदी [को०]।

अंबुधिस्रवा--संज्ञा स्त्री० [सं० अम्बुधिस्रवा] घृतकुमारी। घीकुआँर। ग्वारपाठा।

अंबुनाथ--संज्ञा पुं० [सं० अम्बुनाथ] १. समुद्र। सागर। २. वरुण देवता।

अंबुनिधि—संज्ञा पुं० [सं० अम्बुनिधि] समुद्र। सागर।

अंबुनिवह[1]—वि० [सं० अम्बुनिवह] जल ले जानेवाला [को०]।

अंबुनिवह[2]—संज्ञा पुं० बादल [को०]।

अंबुनेत्रा—वि० स्त्री० [सं० अम्बुनेत्रा] आँसू भरी आँखोंवाली। अश्रुपूरित नेत्रोंवाली। उ०—आसीना थीं निकट पति के अंबुनेत्रा यशोदा।—प्रिय प्र०, (सर्ग १०)।

अंबुप[1]—वि० [सं० अम्बुप] पानी पीनेवाला।

अंबुप[2]—संज्ञा पुं० १. समुद्र। सागर। २. बरुण। ३. शतभिषा नक्षत्र। ४. चकवड़ का पौधा। चक्रमर्द। चकौंड़।

अंबुपक्षी—संज्ञा पुं० [सं० अम्बुपक्षिन्] जल में रहनेवाले पक्षी [को०]।

अंबुपति—संज्ञा पुं० [सं० अम्बुपति] १. समुद्र। उ०—आनन अनल अंबुपति जीहा।—मानस, ६।१५। २. बरुण।

अंबुपत्रा—संज्ञा स्त्री० [सं० अम्बुपत्रा] नागरमोथा। मोथा। उच्चटा।

अंबुपद्धति—संज्ञा स्त्री० [सं० अम्बुपद्धति] जलमार्ग। धारा। जल प्रवाह। जलप्रपात [को०]।

अंबुपात—संज्ञा पुं० [सं० अम्बुपात] दे० 'अंबुपद्धति' [को०]।

अंबुपालिका—संज्ञा स्त्री० [सं० अम्बुपालिका] पनिहारिन। पानी भरनेवाली लड़की उ०—भरे हुए पानी मृदु आती थी पथ पर, अंबुपालिका।—अनामिका, पृ० १७७।

अंबुप्रसाद— संज्ञा पुं० [सं० अम्बुप्रसाद] निर्मली। निर्मली का पौधा। गँदले पानी को साफ करनवाली ओषधि। कतक।

अंबुप्रसादन—संज्ञा पुं० [सं० अम्बुप्रसादन] दे० 'अंबुप्रसाद' [को०]।

अंबुबसा(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० अम्बुवासा] पाटल। पाडर।—नंददास ग्र०, पृ० १०२।

अंबुभव—संज्ञा पुं० [सं० अम्बुभव] कमल [को०]।

अंबुभृत्—संज्ञा पुं० [सं० अम्बुभृत्] १. बादल। २. मोथा। ३. समुद्र। ४. अभ्रक।

अंबुमत्—वि० [सं० अम्बुमत्] जलयुक्त [को०]।

अंबुमती—संज्ञा स्त्री० [सं० अम्बुमती] एक नदी का नाम [को०]।

अंबुमात्रज[1]—वि० सं० अम्बुमात्रज] जल में ही उत्पन्न होनेवाला। जलीय [को०]।

अंबुमात्रज[2]—संज्ञा पुं० घोंघा। शंख। शंबूक [को०]।

अंबुर—संज्ञा पुं० [सं० अम्बुर] दरवाजे का काष्ठ। चौखट [को०]।

अंबुरय—संज्ञा पुं० [सं० अम्बुरय] धारा। प्रवाह [को०]।

अंबुराज—संज्ञा पुं० [सं० अम्बुराज] दे० 'अंबुपति' [को०]।

अंबुराशि—संज्ञा पुं० [सं० अम्बुराशि] जल की राशि अर्थात् समुद्र। सागर।

अंबुरुह—संज्ञा पुं० [सं० अम्बुरुह] कमल।

अंबुरुहा—संज्ञा स्त्री० [सं० अम्बुरुहा] स्थल कमलिनी [को०]।

अंबुरुहिणी—संज्ञा स्त्री० [सं० अम्बुरुहिणी] कमल। कमलिनी। कुईं कोईं [को०]।

अंबुरोहिणी—संज्ञा स्त्री० [सं० अम्बुरोहिणी] दे० 'अंबुरुहिणी'।

अंबुल[1]—संज्ञा पुं० [सं०अम्ल>प्रा० अमम्ल> अंबल,] १. अम्ल। अम्बल। खट्टा रस। उ०—पनं बहु अंबुल जंबुअ मेलि।—पृ० रा०, ६३।१०६। २. आम।

अंबुल[2]—संज्ञा पुं० [सं०आमलक, प्रा० आमलय] आमला [को०]।

अंबुवाची—संज्ञा स्त्री० [सं० अम्बुवाची] आषाढ़ में आर्द्रा नक्षत्र का प्रथम चरण अर्थात् आरंभ के तीन दिन और २० घड़ी जिनमें पृथ्वी ऋतुमती समझी जाती है और बीज बोने का निषेध है।

यौ०—अंबुवाची त्याग = आषाढ़ कृष्णपक्ष त्रयोदशी का दिन [को०]। अंबुवाची पद = आषाढ़ कृष्णपक्ष का दशम दिन [को०]।

अंबुवासिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० अम्बुवासिनी] पुष्पविशेष। पाडर का फूल। पाटला [को०]।

अंबुवासी—संज्ञा स्त्री० [सं० अम्बुवासिन्] दे० 'अंबुवासिनी' [को०]।

अंबुवाह—संज्ञा पुं० [सं०अम्बुवाह] १. बादल। मेघ। २. मोथा। नागरमोथा। ३. जलवाहक व्यक्ति (को०)। ४. अभ्रक (को०)। ५.सत्रह की संख्या (को०)। ६. झील (को०)।

अंबुवाहक[1]—वि० [सं० अम्बुवाहक] जल ले जानेवाला [को०]।

अंबुवाहक[2]—संज्ञा स्त्री० १ बादल। २. मोथा। नागरमोथा (को०)।

अंबुवाहिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० अम्बुवाहिनी] १. नाव का जल उलीचने या फेंकने का बरतन जो प्रायः काठ या कछुए के खोपड़े का होता है। २. जल लानेवाली स्त्री० [को०]।

अंबुवाही—संज्ञा पुं० [सं० अम्बुवाहिन्] १. मेघ। बादल। २. मोथा। मुस्तक [को०]।

अंबुविस्रवा—संज्ञा स्त्री० [सं० अम्बुविस्रवा] घृतकुमारी। ग्वारपाठा। घीकुआँर [को०]।

अंबुविहार—संज्ञा पुं० [सं० अम्बुविहार] जलक्रीड़ा। जलविहार [को०]।

अंबुवेतस—संज्ञा पुं० [सं० अम्बुवेतस] एक प्रकार का बेत जो पानी में होता है। बड़ा बेत।

विशेष—यह बेत पतला पर बहुत दृढ़ होता है। इसकी छड़ियाँ बहुत उत्तम बनती हैं। दक्षिण बंगाल, उड़ीसा, करनाटक, चटगाँव, वर्मा आदि में यह पाया जाता है।

अंबुशायी—संज्ञा पुं० [सं० अम्बुशायिन्] जल या समुद्र में शयन करने वाले, विष्णु। नारायण।

अंबुशिरीषिका—संज्ञा स्त्री० [सं० अम्बुशिरीषिका] एक विशेष पेड़। जलशिरीष। ढाटोन। टिटिनी। [को०]।

अंबुशिरीषी—संज्ञा स्त्री० [सं० अम्बुशिरीषी] दे० 'अंबुशिरीषिका' [को०]।

अंबुसर्पिणी—संज्ञा पुं० [सं० अम्बुसर्पिणी] जोंक।

अंबुसेचनी—संज्ञा स्त्री० [सं० अम्बुसेचनी] जल सींचने या उलीचने का पात्र [को०]।

अंबूक—संज्ञा पुं० [सं० अम्बूक] लकुच। बड़हर [को०]।

अंबूकृत—वि० [सं० अम्बूकृत] निष्ठीवनयुक्त उच्चरित (भाषा या कथन) [को०]।

अंबूज(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अम्बुज] कमल। अंबूज। उ०—परे सीस भारं चहूआन धारं। मनों इम्भ झंकोर अंबूज झारं।—पृ० रा०, २५।७६१।

अंबूजी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० अम्बुज + हिं० ई (प्रत्य०) कमलिनी। कुमुदिनी। उ०—अनुदिन काम बिलास बिलासिनि, वै अलि तू अंबूजी।—सूर०, १०।२८२६।

अंबूदीप(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अम्बुद्वीप, प्रा० अंबूदीअ] कबीर साहित्य में वर्णित एक द्वीप का नाम। उ०—अंबूदीप हंस को थाना।—कबीर सा०, पृ० ५।

अंबोह—संज्ञा पुं० [फा०] भीड़भाड़। जमघट। झुंड। समाज। समूह। उ०—इक दम की पैठ लगी है यह अंबोह मजा चरचा कहिये।—राम० धर्म०, पृ० ९३।

अंब्रित(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अमृत] सुधा। अमृत। उ०—पुहुप पंक रस अंब्रित साँधे। केइँ ये सुरँग खरौरा बाँधे।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० १९२।

अंभः--संज्ञा पुं० [सं० अम्भः] अंभस् का समासगत रूप, जैसे, अंभः-पति, अंभःसार में।

अंभःपति--संज्ञा पुं० [सं० अम्भःपति] जलपति। वरुण [को०]।

अंभःसार--संज्ञा पुं० [सं० अम्भःसार] मोती [को०]।

अंभःसू--संज्ञा पुं० [सं० अम्भःसू] दे० 'अंभसू' [को०]।

अंभःस्थ--वि० [सं० अम्भःस्थ] जल में स्थित [को०]।

अंभ--संज्ञा पुं० [सं० अम्भस्] १.जल। पानी। उ०--नौ तत्वनि को लिंग पुनि माँहि भरयौ है अंभ।--सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ७८१। २.पितृलोक। ३.पितर। ४.लग्न से चौथी राशि। ५. चार की संख्या। ६. सांख्य में आध्यात्मिक तुष्टि के चार भेदों में से एक। दे० 'अंभस्तुष्टि'। ७ देव। ८. असुर। ९. एक राक्षस या असुर (को०)। १०. शक्ति (को०) ११. तेज (को०)। १२. मनुष्य। मानव (को०) १३.एक वैदिक छंद (को०)। १४. आकाश। उ०--करि मंत साह गोरी अचंभ। आरंभ चक्क भुजदंड अंभ।--पृ० रा०, १६।८४।

अंभनिधि--संज्ञा पुं० [सं० अम्भस् + निधि] दे० 'अंभोनिधि'।

अंभस्--संज्ञा पुं० [सं० अम्भस्] पानी [को०]।

अंभसार--संज्ञा पुं० [सं० अम्भःसार] मोती :

अंभसू--संज्ञा पुं० [सं० अम्भस्+सु] १.धूआँ। २. भाप।

अंभस्तुष्टि--संज्ञा पुं० [सं० अम्भस् + तुष्टि] सांख्य में चार आध्यात्मिक तुष्टियों में से एक। जब कोई व्यक्ति माया के प्रपंच में फँसकर यह संतोष करता है कि उसे होते होते प्रकृति की गति के अनुसार विवेक आदि की अवस्था प्राप्त हो ही जाएगी तब उनकी इस तुष्टि को अंभस्तुष्टि कहते हैं।

अंभस्सार--संज्ञा पुं० [सं० अम्भस्सार] मोती। मुक्ता [को०]।

अंभु(पु)--संज्ञा पुं० [सं० अम्बु] पानी। ओप। तेज। कांति। उ०--सदा दान किरवान मैं, जाके आनन अंभु।--भूषण ग्रं०, पृ० ६।

अंभो-- संज्ञा पुं० [सं० अम्भस्] 'अंभस् का समासगत रूप।

अंभोज¹--संज्ञा पुं० [सं० अम्भोज] १. कमल। पद्म। २. सारस पक्षी। ३. चंद्रमा। ४. कपूर। ५. शंख।

अंभोज²--वि० जल में उत्पन्न।

अंभोजखंड--संज्ञा पुं० [सं० अम्भोजखंड] कमल समूह [को०]।

अंभोजजनि--संज्ञा पुं० [सं० अम्भोज+जनि] अंभोजजन्मा ब्रह्मा। चतुरानन [को०]।

अंभोजजन्म--संज्ञा पुं० [सं० अम्भोजजन्मन्] ब्रह्मा [को०]।

अंभोजजन्मा--संज्ञा पुं० [सं० अम्भोजजन्मन्] ब्रह्मा [को०]।

अंभोजयोनि--संज्ञा स्त्री० [सं० अम्भोजयोनि] ब्रह्मा [को०]।

अंभोजा--संज्ञा स्त्री० [सं० अम्भोजा] १. कमलिनी। २. जेठी मधु। मुलेठी [को०]।

अंभोजिनी--संज्ञा स्त्री० [सं० अम्भोजिनी] १. कमल का पौधा। कमलिनी। पद्मिनी २. कमल का समूह। ३.वह स्थान जहाँ पर बहुत से कमल हों।

अंभोद--संज्ञा पुं० [सं० अम्भोद] १. बादल। मेघ। २. मोथा। नागरमोथा।

यौ०--अंभोदनाद = मेघनाद। रावण का पुत्र। अंभोदनादघ्न = अंभोदनाद को मारनेवाले लक्ष्मण।

अंभोधर--संज्ञा पुं० [सं० अम्भोधर] १. बादल। २. मोथा।

अंभोधि--संज्ञा पुं० [सं० अम्भोधि] अंबुधि। समुद्र। उ०--जयति अंजनी गर्भ अंभोधि संभूत विधु विबुध कुल कैरवानंदकारी।--तुलसी ग्रं०, या. २, पृ० ३९०।

अंभोधिपल्लव--संज्ञा पुं० [सं० अम्भोधिपल्लव] विद्रुम मूँगा। प्रवाल [को०]।

अंभोधिवल्लभ--संज्ञा पुं० [सं० अम्भोधिवल्लभ] मूँगा। प्रवाल।

अंभोनिधि--संज्ञा पुं० [सं० अम्भोनिधि] समुद्र। सागर।

अंभोयोनि--संज्ञा पुं० [सं० अम्भोयोनि] ब्रह्मा [को०]।

अंभोराशि--संज्ञा पुं० [सं० अम्भोराशि] समुद्र।

अंभोरुह--संज्ञा पुं० [सं० अम्भोरुह] १. कमल। उ०-- बदन इंदु, अंभोरुह लोचन, स्याम गौर सोभा सदन सरीर।--तुलसी ग्रं०, पृ० २६६। २ सारस पक्षी।

अंम(पु)--सर्व० [सं० अस्मत्; प्रा अम्ह] हमारा। मेरा। उ०--जै जंपि तांम पेरंभ राव। बूझै न मंत को अंम ठाव।-- पृ० रा०, १२।१९८।

अंमर¹(पु)--संज्ञा पुं० [सं० अम्बर] आकाश। नभ। उ०--चालुक्क राह चालंत दल अंमर घुंमर घुमर वर।--पृ० रा०, १२।७६।

अंमर²(पु)-- संज्ञा पुं० [सं० अमर] देवता। उ०--संभरि सौं लग्गे समर अंमर कौतिग एव।--पृ० रा०, १२।३२६।

अंमर³†--वि० दे० 'अमर'।

अंमर⁴†--संज्ञा पुं० [सं० अमृत, अम्मरअ] अमृत।

अंमर डंमर--संज्ञा पुं० दे० 'अंबर डंबर' उ०--धनं अंमरं डंमरं दिसि प्रमानं। उठै जत्र तीनौ निधानं। पृ० रा०, १४।६१।

अंमरी(पु)--संज्ञा स्त्री० [सं० अमरी = देवांगना] देवांगना। अप्सरा। उ०--अंमरिय रहसि दल दुअ बिहसि। करसि बीर लग्गे सु बर।--पृ० रा०, ३१।१५४।

अंमह(पु)--सर्व० [सं० अस्मत्; प्रा० अम्मह] हमें। उ०--अंमह एत्ता दुख्ख सुनि।--कीर्ति०, पृ० ७२।

अंमृत(पु)†--संज्ञा पुं० [सं० अमृत] अमृत। सुधा। उ०--गगन मंडल में औंधा कूधा तहाँ अमृत का बासा।--गोरख०, पृ० ९।

अंमृत्त(पु)--संज्ञा पुं० दे० 'अंमृत'। उ०--अंमृत्त आवहि जाहि, पप्पील रंगहि चाहि।--पृ० रा, भा० २, पृ० ५६४।

अंमोल(पु)--वि० [हिं० अनमोल] दे० 'अमोल'। उ०--इसे अस्व अंमोल लिये पुंडीर चंद कहि।--पृ रा०, ६४।४२०।

अंम्रित(पु)--संज्ञा पुं० दे० अमृत। उ०--मनहुँ कला ससि भान, कला सोलह सोबन्निय। बाल बेस ससिता सभीप अंम्रित रस पिन्निय।--पृ० रा०, २०।५।

अंवटना(पु)†--क्रि० स० दे० 'औटना'। उ०--अंवटि छीर अनल पर जाई। जोरन दे तब दही जमाई।--सं० दरिया, पृ० ६।

अंश--संज्ञा पुं० [सं०] १. भाग। खंड। अवयव। अंग। २. दाय या उत्तराधिकार का भाग। हिस्सा। बखरा। बाँट। ३. भाज्य अंक। ४. भिन्न की लकीर के ऊपर की संख्या। ५. चौथा भाग। ६. सोलहवाँ भाग। ७. वृत्त की परिधि का ३६० वाँ भाग जिसे इकाई मानकर कोण या चाप का प्रमाण बताया जाता है।

विशेष—पृथ्वी की विषुवत् रेखा को ३६० भागों में बाँटकर प्रत्येक विभाजक बिंदु पर से एक एक लकीर उत्तर दक्षिण को खींचते हैं। इसी प्रकार इन उत्तर दक्षिण लकीरों को ३६० भागों में बाँटकर विभाजक बिंदुओं पर से पूर्व पश्चिम लकीर खींचते हैं। इन उत्तर दक्षिण और पूर्व पश्चिम की लकीरों के परस्पर अंतर को अंश कहते हैं। इसी रीति से राशिचक्र भी ३६० अंशों में बाँटा गया है। राशियाँ १२ हैं, इससे प्रत्येक राशि प्रायः ३० अंश की होती है। अंश के ६०वें भाग को कला और कला के ६०वें भाग को विकला कहते हैं। ८. कंधा। ९. सूर्य। १२ आदित्यों में से एक, जैसे—अंशसुता=अर्थात् सूर्य की पुत्री यमुना। १० किसी कारबार का हिस्सा। ११. फायदे का हिस्सा। १२. राग का मुख्य स्वर (संगीत)। १३. एक यदुवंशी राजा (को०)। १४ दिन (को०)।

यौ०—अंशवंश=धन परिवार।

अंशक¹—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० अंशिका] १. भाग। टुकड़ा। २. दिन। सौर दिवस। ३. हिस्सेदार। साझीदार। पट्टीदार। उ०—दाय या उत्तराधिकार में कई व्यक्ति हिस्सा बाँटनेवाले हों तो प्रत्येक का भाग अंश और पानेवाला अंशक कहलाता था।—पाणिनि०, पृ० ४१३।

अंशक²—वि० १. अंश धारण करनेवाला। अंश रखनेवाला। अंशधारी। २. बाँटनेवाला। विभाजक।

अंशकरण—संज्ञा पुं० [सं०] विभाजन। बँटवारा या विभाग करने का कार्य [को०]।

अंशकल्पना—संज्ञा स्त्री० [सं०] अंश या विभाग प्रदान करने का कार्य [को०]।

अंशतः—क्रि० वि० [सं० अंशतस्] किसी अंश तक। कुछ हद तक। आंशिक रूप में। खंडों में। टुकड़ों में। खंडशः। असंपूर्ण रूप से।

अंशतीसु—संज्ञा पुं० [देश०] एक तीर्थ का नाम।

अंशधारी—वि० [सं०] अंश धारण करनेवाला। अंशक। उ०—प्रगट्यो कवींद्र अंशधारी नरहरि तहाँ दिल्लीपति मान्यो तिन्हें गुण की प्रभाते हैं।—अकबरी०, पृ० ७५।

अंशन—संज्ञा पुं० [सं०] विभाजन। विभाग या बँटवारा करने का कार्य [को०]।

अंशपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] वह कागज जिसमें पट्टीदारों का अंश या हिस्सा लिखा हो।

अंशप्रकल्पना—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अंशकल्पना' [को०]।

अंशप्रदान—संज्ञा पुं० [सं०] हिस्सा या अंश देने का कार्य। अंशकल्पना [को०]।

अंशभागी—वि० [सं०] दे० 'अंशभाग'।

अंशभाग्—वि० [सं०] अंशी। दायाद। हिस्सेदार। [को०]।

अंशभू—वि० [सं०] पट्टीदार। साझीदार [को०]।

अंशभूत—वि० [सं०] अंशरूप। अंशमय। अंश [को०]।

अंशयिता—वि० [सं० अंशयितृ, अंशयिता] हिस्सा बाँटनेवाला दायाद। हिस्सेदार।

अंशल—वि० [सं०] १. हिस्सेदार। दायाद। २. पुष्ट कंधोंवाला। बलवान्। शक्तिसंपन्न [को०]।

अंशवत्—संज्ञा पुं० [सं०] अंशुमत्। सोम का एक भेद [को०]।

अंशसुता—संज्ञा स्त्री० [सं०] यमुना नदी।

अंशस्वर—संज्ञा पुं० [सं०] संगीत में मुख्य स्वर [को०]।

अंशहर—वि० [सं०] हिस्सेदार। हिस्सा पानेवाला [को०]।

अंशहारी—वि० [अंशहारिन्] दे० 'अंशधारी' [को०]।

अंशांश—संज्ञा पुं० [सं०] १. अंश का भाग (किसी देवता को)। २. अमुख्य, अपूर्ण या गौण अवतार। अंशावतार [को०]।

अंशांशि—क्रि० वि० [सं०] विभागशः। विभागानुक्रम से [को०]।

अंशावतरण—संज्ञा पुं० [सं०] १. दे० 'अंशावतार'। २. महाभारत के आदि पर्व के ६४ से ६७ अध्यायों का अभिधान [को०]।

अंशावतार—संज्ञा पुं० [सं०] वह अवतार जिसमें परमात्मा की शक्ति का कुछ भाग ही आया हो। पूर्णावतार से भिन्न।

अंशी¹—वि० [सं० अंशिन्] [वि० स्त्री० अंशिनी] १. अंशधारी। अंश रखनेवाला। २. शक्ति या सामर्थ्य रखनेवाला। ३. अवतारी।

अंशी²—संज्ञा पुं० १. हिस्सेदार। साझीदार। २. अवयवी।

अंशु—संज्ञा पुं० [सं०] १. किरण। प्रभा।

यौ०—अंशुधर, अंशुपति, अंशुभर्ता, अंशुभृत् अंशुस्वामी, अंशुहस्त = सूर्य।

२. लता का कोई भाग। ३. सूत। सूत्र। तागा। धागा। पतली रस्सी। ४. तागे का छोर। छोर। ५. लेश। बहुत सूक्ष्म अंश या भाग। ६. लता और विशेष रूप से सोमलता का सुतरा (को०)। ७. सूर्य। ८. एक ऋषि या राजा का नाम। ९. वेग (को०)। १०. वेश (को०)। ११. आमंडन वस्त्र (को०)।

अंशुक—संज्ञा पुं० [सं०] १. कपड़ा। वस्त्र। २. पतला कपड़ा। महीन कपड़ा। ३. किरन। अल्प प्रकाश। किरणसमूह। ४. रेशमी कपड़ा। ५. उपरना। उत्तरीय। दुपट्टा। ६. धोती या अधोवस्त्र। ७ ओढ़ना। ओढ़नी। ८. मुखवस्त्र। घूँघट (को०) ९. तेजपात।

अंशुकोष्णीषपट्टिका—संज्ञा स्त्री० [सं० अंशुक+उष्णीषपट्टिका] उष्णीष पर बाँधी जानेवाली अंशुक नामक महीन वस्त्र की पट्टी।—हर्ष०, पृ० १७।

अंशुजाल—संज्ञा पुं० [सं०] १. किरणसमूह। प्रकाशपुंज। २. प्रकाश की दीप्ति या चमक [को०]।

अंशुनाभि—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह बिंदु जिस पर समानांतर प्रकाश की किरणें तिरछी और संकुचित होकर मिलें।

विशेष—सूर्यमुखी शीशे को जब सूर्य के सामने करते हैं तब उसकी दूसरी ओर इन्हीं किरणों का समूह गोल वृत्त या बिंदु बन जाता है जिसमें पड़ने से चीजें जलने लगती हैं।

अंशुपट्ट—संज्ञा पुं० [सं०] वस्त्रविशेष। एक प्रकार का रेशमी कपड़ा [को०]।

अंशुमंत—संज्ञा पुं० [सं०] १. सूर्य। २. अंशुमान राजा।

अंशुमती—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. एक नदी। यमुना। कालिंदी २. सालपर्णी [को०]।

अंशुमत्फला--संज्ञा स्त्री० [सं०] केले का वृक्ष और उसका फल [को०]।

अंशुमर्दन--संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष में ग्रहयुद्ध के चार भेदों में से एक। इस ग्रहयुद्ध में राजाओं से युद्ध, रोग और भूख की पीड़ा आदि होती है। दे० 'ग्रहयुद्ध'।

अंशुमान[1]--वि० [सं०] १. रेशेदार। २. सोम से संपन्न। सोमरस से भरा हुआ। ३. चमकीला। दीप्तिमान्। ४. नुकीला [को०]।

अंशुमान[2]--संज्ञा पुं० [सं० अंशुमत्] १. सूर्य। २. चंद्रमा (क्व०)। ३. अयोध्या के सूर्यवंशी राजा सगर के पौत्र, असमंजस के पुत्र और दिलीप के पिता। सगर के अश्वमेध का घोड़ा ये ही ढूँढ़कर लाए थे और सगर के ६०,००० पुत्रों के शव को इन्हीं ने पाया था।

अंशुमाला--संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिर्वलय। प्रकाश का घेरा। तेजोवलय [को०]।

अंशुमाली--संज्ञा पुं० [सं० अंशुमालिन्] १. सूर्य। २. बारह की संख्या [को०]।

अंशुल[1]--संज्ञा पुं० [सं०] १. चाणक्य मुनि। २. मुनि [को०]।

अंशुल[2]--वि० प्रकाशपूर्ण [को०]।

अंशुविमर्द--संज्ञा पुं० [सं०] किरणों के मंद या धुँधली होने की स्थिति [को०]।

अंशूदक--संज्ञा पुं० [सं०] धूप या चाँदनी में रखा हुआ जल [को०]।

अंश्य--वि० [सं०] १. बाँटने योग्य। विभाजनीय। २. विभाग। प्राप्य [को०]।

अंस[1]--संज्ञा पुं० [सं०] १. भाग। अंश। खंड। अवयव। उ०--ईश्वर अंस, जीव अविनासी।--मानस, ७।११७। २ स्कंध। कंधा। उ०--अभयद भुजदंड मूल, अंस पीन सानुकूल, कनक मेखला दुकूल दामिनि धरखी री।--सूर०, १०।१३८४। ३. चतुर्भुज का कोई कोण (को०)। ४. वेदी के कोई दो स्कंध या कोण (को०)।

अंस[2]Ⓟ--संज्ञा पुं० [सं० अंश] १. कला। उ०--तापर उरग ग्रसित तव सोभित पूरन अंस ससी।--सूर०, १०।११६६। २. सूर्य। जैसे 'अंससुता' में। ३. अपनत्व। संबंध। अधिकार। उ०--अब इन कृपा करी ब्रज आए जानि आपनो अंस।--सूर०, १०।३५८७।

अंस[3]Ⓟ--संज्ञा स्त्री० [सं० अंशु] किरण। उ०--सित कमल बंस सी सीतकर अंस सी।--भिखारी० ग्रं०, भा०, १, पृ० २३४।

अंसⓅ[4]--संज्ञा पुं० [सं० अश्र या अश्रु] आँसू। अश्रु। उ०--भुज फरकनि तरकनि कंचुकि कच छुरि जु रहे ढुरि अंस।--पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ३८३।

अंसकूट--संज्ञा पुं० [सं०] साँड़ के कंधों के बीच का ऊपर उठा हुआ भाग। कूबड़। कुब। ककुद।

अंसटपाटी‡--संज्ञा स्त्री० [सं० अनशन + हिं० पाटी] दे० 'खटपाटी'।

क्रि० प्र०--लेना = खटपाटी लेना। क्रोध या हठ के कारण कामकाज न करना। काम धाम से विरक्त होना। उ०--तो बाकी मा अंसटपाटी लै के परि गई।--पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० १००६।

अंसत्र--संज्ञा पुं० [सं०] १. स्कंधत्राण। कंधों की रक्षा के लिये धारण किया जानेवाला लौहपट्ट। २. धनुष [को०]।

अंसधन--संज्ञा पुं० [सं० अंशधन] हिस्से का धन। उ०--जु कछु अंसधन हुतो जो साथ। सो दीनो माता के हाथ।--अर्ध०।

अंसपुरसांⓅ--संज्ञा पुं० [सं० अंश + पुरुष] अंशपुरुष। बलवान् व्यक्ति। उ०--तदवार अंसपुरसां तणी, आय वणी जग ऊपरा।--रा० रू०, पृ० २३।

अंसफलक--संज्ञा पुं० [सं०] रीढ़ का ऊपरी भाग [को०]।

अंसभार[1]--वि० कंधों पर बोझा ढोनेवाला। बहँगीदार [को०]।

अंसभार[2]--संज्ञा पुं० [सं०] कंधों का बोझ। बोझ जो कंधे पर ढोया जाय [को०]।

अंसभारिक--वि० [सं०] कंधों पर बोझ ढोनेवाला [को०]।

अंसभारी--वि० [सं०] दे० 'अंशभारिक' [को०]।

अंसरⓅ--संज्ञा पुं० [अ० उनसुर] तत्व। उ०--के हैं पाँच अंसर सू फला यो तन, के माटी होर पानी व बारा तू गिन।--दक्खनी०, पृ० २०८।

अंसल--वि० [सं०] पुष्ट कंधोंवाला। दृढ़स्कंध। बलवान् [को०]।

अंससुताⓅ--संज्ञा स्त्री० [सं० अंशु (= सूर्य) + सुता] कालिंदी। जमुना। सूर्यतयना। उ०--सूरदास प्रभु अंससुता तट क्रीड़त राधा नंदकुमार।--सूर०, १०।१८०२।

अंसिकⓅ--[सं० अंशक] अंश धारण करनेवाला। अंशसंभूत। उ०--सुर अंसिक सब कपि अरु रीछा। जिए सकल रघुपति की ईछा।--मानस, ६।११३।

अंसीⓅ-- वि० [सं० अंशी] अंशवाला। अंशधारी। उ०--द्वारपाल इहै कही, जोधा कोउ बचे नहीं, काँधे गजदंत धरे सूर ब्रह्म अंसी।--सूर०, १० ।३०७४।

अंसु[1]Ⓟ--संज्ञा पुं० [सं० अंशु, प्रा० अंसु] किरण। उ०--सरद निसि को अंसु अगनित इंदु आभा हरनि।--सूर०, १०।३५१।

यौ०--अंसुपति, अंसुमान, अंसुमाल = सूर्य।

अंसु[2]Ⓟ--संज्ञा पुं० [सं० अंस] भाग। अंश। उ०--लोभा लई नीचे ज्ञान चलाचल हीं को अंसु अंत है क्रिया पाताल निंदा रस ही को खानि।--भिखारी० ग्रं०, भा० २, पृ० २१२।

अंसु[3]Ⓟ--संज्ञा पुं० [सं० अंस] स्कंध। कंधा। उ०--सखा अंसु पर भुज दीन्हें लीन्हें मुरलि अधर मधुर विश्व भरन।--सूर०, १०।६२४।

अंसु[4]Ⓟ--संज्ञा पुं० [सं० अश्रु; प्रा० अस्सु, अंसु] आँसू। अश्रु। उ०--गहत बाल पिय पानि सु गुरु जन संभरे। लोचन मोचि सुरंग सु अंसु बहे खरे।--पृ० रा०, २५।२७५।

अंसु[5]Ⓟ--संज्ञा पुं० [सं० अश्व, प्रा० अस्स] अश्व। घोड़ा। उ०--पय मंडिहि अंसु धरै उलटा। मनो विटय देषि चलै कुलटा।--पृ० रा०, २७।३५।

अंसुक--संज्ञा पुं० [सं० अंशुक, प्रा० अंसुक, अंसुग] वस्त्र। कपड़ा। उ०--औ अंसुक जिमि फूल सलोना।--इंद्रा०, पृ० १२८।

अंसुगⓅ--संज्ञा पुं० दे० 'अंसुक'। उ०--कासमीर अंसुग दए सब जोधन पहिराय।--प० रा०, पृ० १६४।

अंसुमालⓅ--संज्ञा स्त्री० [सं० अंशु, प्रा० अंसु + सं० प्रा० माल] किरण समूह। उ०--जागिये गोपाललाल, प्रगट भई अंसुमाल मिटचौ अंधकाल, उठौ जननी सुखदाई।--सूर०, १०।६१६।

अंस्य[1]--वि० [सं० अंस्य] विभाज्य ।

अंस्य[2]--वि० [सं०] कंधा संबंधी [को०]।

अंह--संज्ञा पुं० [सं० अंहस्] १. पाप। दुष्कर्म। अपराध। २. दुःख। चिंता। कष्ट। व्याकुलता। ३. विघ्न। बाधा।

अंहति--संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दान। त्याग। परित्याग। ३. रोग। ४. कष्ट। दुःख [को०]।

अंहती--संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अंहति' [को०]।

अंहद(पु)--वि० [हिं० अन + अ० हद] जिसकी हद न हो। असीम। अनंत। अनहद। उ०--नाद अनाहद अंहद, सुनै अनाहद कौन। --इंद्रा०, पृ० १२१।

अंहस्पति--संज्ञा पुं० [सं०] क्षय मास [को०]।

अंहिति--संज्ञा स्त्री० [सं०] दान [को०]।

अंहिती--संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अंहिति' [को०]।

अंह्रि--संज्ञा पुं० [सं०] १. पाँव। पैर। २. वृक्ष की जड़ या मूल [को०]।

अंह्रिप--संज्ञा पुं० [सं०] पादप। पेड़ [को०]।

अंह्रिशिर--संज्ञा पुं० [सं०] 'अंह्रिस्कंद' [को०]।

अंह्रिस्कंध--संज्ञा पुं० [सं०] गुल्फ। घुट्ठी टखना [को०]।

अँकखरी†--संज्ञा स्त्री० [हिं०] कंकड या पत्थर का महीन टुकड़ा या चूरा। अँकटी। अँकरी। अँकरौरी।

अँकटा†--संज्ञा पुं० [सं० कर्कर, प्रा० कक्कर या सं० अंकुर, हिं० अंकुर > अँकड़ अथवा सं० अंक + काण्ड, > प्रा० *अंक + अंड = अंकड, या देश] १ कंकड़ का छोटा टुकड़ा। २ कंकड़ पत्थर आदि का महीन टुकड़ा या चूरा जो अनाज में से चुनकर निकाल दिया जाता है।

अँकटी†--संज्ञा स्त्री० [अँकटा शब्द का अल्पार्थक प्रयोग] छोटा अँकटा।

अँकड़(पु)--संज्ञा स्त्री० [सं० हुङ्कार > प्रा० उंकड > अँकड़] अकड़। ऐंठ। उ०--अँकड़ जीव लब सुक सु किया था जुल्लाब। --दक्खिनी०, पृ० १४६।

अँकड़ा†--संज्ञा पुं० दे० 'अँकटा' (बोल०)।

अँकड़ी--संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्कुर = अँखुआ = टेढ़ी नोक; अथवा सं० अङ्कुटक, प्रा० अंङ्कुडग, अंकुडय] १. अँकटी। २. हुक। कँटिया। ३. तीर का मुड़ा हुआ फल। टेढ़ी गाँसी। ४. बेल। लता। ५. लग्गी। फल तोड़ने का बाँस का डंडा जिसके सिरे पर फँसाने के लिए एक टेढ़ी छोटी लकड़ी बँधी रहती है।

अँकना[1](पु)--क्रि० स० [सं० अङ्कन] दे० 'आँकना'।

अँकना[2](पु)--क्रि० अ० १ आँका जाना या कूता जाना। २. लिखा जाना या अंकित होना।

अँकना[3](पु)--क्रि० स० [सं० आकर्णन] सुनना। श्रवण करना। उ०--अवध सकल नर नारि बिकल अति अँकनि बचन अनभाए। --तुलसी ग्रं०, भा० २, पृ० ३६२।

अँकमाल(पु)--संज्ञा पुं० दे० 'अंकमाल'। उ०--सूर स्याम बन तै ब्रज आए जननि लिए अँकमाल। --सूर०, १०।१३६०।

अँकरवरी(पु)†--संज्ञा स्त्री० [हिं० अंकर + बरी या औरी (प्रत्य०)] अँकड़ी। कंकड़ी। उ०--काँट न चुभै न गड़ै अँकरवरी। --जायसी ग्रं० (गुप्त), छंद १३७।

अँकरा--संज्ञा पुं० [सं० अङ्कुर] [स्त्री० अँकरी] १. एक खर वा कुधान्य।

विशेष--यह रबी की फसलों में गेहूँ के पौधों के बीच जमता है। इसे काटकर बैलों को खिलाते हैं और इसका साग भी खाते हैं। इसका दाना या बीज काला, चिपटा, छोटी मूँग के बराबर होता है और प्रायः गेहूँ के साथ मिल जाता है। इसे गरीब लोग खाते भी हैं। खेसारी इसी का एक रूपांतर है।

२. कंकड़।

अँकरास†--संज्ञा पुं० दे० 'अकरास'।

अँकरी--संज्ञा स्त्री० [अँकरा का अल्पार्थक प्रयोग] छोटा अँकरा या कंकड़ी।

यौ०--अँकरी + पथरी = कंकड़ी। अँकटी।

अँकरोरी†--संज्ञा स्त्री० [देश०] कंकड़ी। सिटकी। कंकड़ या खपड़े का बहुत छोटा टुकड़ा। अँकरवरी।

अँकरौरी(पु)†--संज्ञा स्त्री० दे० 'अँकरोरी'। उ०--अँकरौरी सम गनौं पहारा, लेखौं समुद हिये महँ नारा। --चित्रा०, पृ० २१५।

अँकवरी†--संज्ञा स्त्री० दे० 'अँकरोरी'।

अँकवाई--संज्ञा स्त्री० [हिं० + आँकना + वाई (प्रत्य०)] १. अँकवाने की क्रिया या स्थिति। २. आँकने का पारिश्रमिक या मजदूरी। अँकाई (बोल०)।

अँकवाना--क्रि० स० [हिं० आँकना का प्रेरणार्थक] १. मूल्य निर्धारित करना। २. कुतवाना। अंदाज कराना। ३ परीक्षा कराना। जँचवाना। परखवाना। ५. चिह्न, छाप आदि लगवाना।

अँकवार--संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्कपालि, अङ्कमाल, प्रा० अंकवालि, अंकवाल] १ गोद। अंक। २. छाती। वक्षस्थल।

मुहा०--देना = गले लगना। छाती से लगना। आलिंगन करना। भेंटना --भरना = आलिंगन करना। भेंटना। गले मिलना। उ०--बनमाला पहिरावत स्यामहि बार बार अँकवार भरत धरि। --सूर०, १०।४०६। --भरी होना = गोद में बच्चा रहना। संतानयुक्त होना। उ०--बहू तुम्हारी अँकवार भरी रहे, (आशीर्वाद) (शब्द०)।

३. आलिंगन। भेंट। मिलना। जैसे--चिट्ठी में हमारी भेंट अँकवार लिख देना। --(शब्द०)।

अँकवारना†--क्रि० स० [हिं० अंकवार + ना] गले लगाना। भेंटना। आलिंगन करना।

अँकवारि(पु)--संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्कपालि, प्रा० अंकवालि] उ०--खेलत तैं मोहि बोलि लियौ इहि दोउ भुज भरि दीन्हीं अँकवारि। --सूर०, १०।३०४।

अँकवारी[1](पु)--संज्ञा स्त्री० १. दे० 'अँकवार'। उ०--अब के गौना बहुरि नहिं औना करि ले भेंट अँकवारी। --संतबाणी, भा० २, पृ० ६। २. हाथाबाँही। हाथापाई। मुठभेड़। संघर्ष (लाक्षणिक प्रयोग)। उ०--बीर अगमने भुजा पसारी। दुइ दल माँह भई अँकवारी। --चित्रा०, पृ० १४३।

अँकस†--संज्ञा पुं० दे० 'अकस'।

अँकसदीया†--संज्ञा पुं० दे० 'अकासदीया'।

अँकाई--संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्क, हिं० अंक (आँक, आँकना, अंकना) + आई (प्रत्य०)] १. कूत। अंदाजा। अटकल। तखमीना। २. फसल में से जमींदार और काश्तकार के हिस्सों का ठहराव। मूल्य लिखा जाना।

क्रि० प्र०--करना। --होना।

३. आँकने का पारिश्रमिक या मजदूरी।

अँकाना--क्रि० स० [सं० अंकन] [संज्ञा--अँकाई, अँकाव] १. अंदाज कराना। कुतवाना। २. परीक्षा कराना। परखाना। ३. मूल्य निर्धारित कराना। उ०--मन आग्रह करने लगा, लगा पूछने दाम। चला अँकाने के लिये वह लोभी बेकाम।--झरना, पृ० ७४। ४. चिह्न छापा आदि लगवाना।

अँकाव--संज्ञा पुं० [सं० अङ्क + हिं० आव (प्रत्य०) [क्रि०--अँकाना] कूतने वा आँकने का काम। कुताई। अंदाज वा तखमीना करने का काम।

क्रि० प्र० --होना।

अँकावना(पु)†--क्रि० स० दे० 'अँकवाना', 'अँकाना'। उ०--यह प्रेम बजार के अंतर सो पर नैन दलाल अँकावने हैं।--ठाकुर०, पृ० २५।

अँकिया(पु)†--संज्ञा स्त्री० [हिं० आँख, अँखिया] आँख। नेत्र। उ०--अँकिया के नहर सूँ दीदे का पानी कर ऐसे लागे गम की बागबानी।--दक्खिनी०, पृ० २३७।

अँकुड़ा--संज्ञा पुं० [सं० अङ्कुर] १. लोहे का झुका हुआ टेढ़ा काँटा। २. लोहे का झुका हुआ टेढ़ा छड़ जिससे चुड़िहार लोग भट्ठी से गला हुआ काँच निकालते हैं। ३. टेढ़ी झुकी हुई कील वा कँटिया जिसमें तागे अँटकाकर पटवा वा पटहार काम करते हैं। ४. लोहे का एक टेढ़ा काँटा जो लकड़ी आदि तौलनेवाली बड़ी तराजू की डाँड़ी के बीचोबीच लगा रहता है। ५. कुलाबा। पायजा। ६. लोहे का एक गोल पच्चड़ जो किवाड़ की चूल में ठोंका रहता है। ७. लोहे का एक छड़ जिसका एक सिरा चिपटा होता है और दूसरा टेढ़ा और झुका हुआ। चिपटे सिरे को काँटे से किवाड़ के पल्ले में जड़ देते हैं और झुके हिस्से को साह के कोंढ़ों में डाल देते हैं। इसी पर पल्ला घूमता है अर्थात् खुलता और बंद होता है। ८. रेशमी कपड़ा बुननेवालों का मछली के आकार का काठ का एक औजार जिसके सिरे पर एक छेद होता है। इस छेद में एक खूँटी गड़ी रहती है जिसमें दलथंभन से बँधी हुई रस्सी लपेटी रहती है। ९. गाय बैल के पेट का दर्द या मरोड़ जिसे ऐंचा भी कहते हैं। १०. खूँटी। नागदंत।--(को०)।

अँकुड़ी--संज्ञा स्त्री० [हिं० अँकुड़ा का अल्पार्थक प्रयोग] [वि० अँकुड़ीदार] १. छोटा अँकुड़ा। टेढ़ी कँटिया। हुक। २. लोहे का एक छड़ जिसका सिरा कुछ झुका रहता है और जिससे लोहार लोग भट्ठी की आग खोदते हैं। ३. हल की वह लकड़ी जिसमें फाल लगाया जाता है। ४. एक्के के पहिए के जोड़ों पर लगी हुई लोहे की कील या जोंकी।

अँकुड़ीदार--वि० [हिं० अँकुड़ी + फा० दार] १. जिसमें अँकुड़ी वा कँटिया लगी हो। जिसमें अँटकाने के लिये हुक लगा हो। हुकदार। २, एक प्रकार का कसीदा जिसे गड़ारी भी कहते हैं।

अँकुर(पु)--संज्ञा पुं० [सं० अङ्कुर] अंकुर। अँखुआ। उ०--अदभुत राम नाम के अंक। धर्म अँकुर के पावन द्वै दल मुक्ति-वधू ताटंक॥ --सूर०, ११९०।

अँकुरना(पु)--क्रि० अ० [सं० अङ्कुरण] अंकुरित होना। अंकुर का उत्पन्न होना या निकलना। किसी वस्तु की आरंभिक उत्पत्ति या उत्पन्न होना।

अँकुराना¹(पु)--क्रि० स० [सं० अङ्कुरण] पानी में भिगोकर चने आदि को अँकुरयुक्त होने में प्रवृत्त करना। अंकुर उत्पन्न कराना।

अँकुराना²(पु)--क्रि० अ० दे० 'अँकुरना'।

अँकुराना³(पु)--क्रि० अ० [सं० आकुल] आकुल होना। व्याकुल होना। उ०--माइ बापे दय हलु नेपुर गढाइ। नेपुर भँगवइते जिव अँकुराई।--विद्यापति, पृ० २०३।

अँकुरी†--संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्कुर + ई (हिं०)] १. भिगोकर अंकुरित किए गए चने, मूंग, गेहूँ आदि की घुँघनी। २. वंश में एकमात्र बची हुई संतान।

अँकुवार--संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्कुर, हिं० अँखुआ + आर (प्रत्य)] अंकुर। अँखुआ। उ०--प्रेम बिना नही उपज हिय, प्रेम बीज अँकुवार--रसखान०, पृ० १।

अँकुसा--संज्ञा पुं० दे० 'अंकुश'।

अँकुसी--संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्कुश, हिं० अंकुस + ई (प्रत्य०)] १. टेढ़ी करके झुकाई हुई लोहे की कील जिसमें कोई चीज लटकाई या फँसाई जाय। हुक। कँटिया। २. पीतल वा लोहे का एक लंबा छड़ जिसका एक सिरा घुमावदार होता है। इससे ठठेरे भट्ठी की राख निकालते हैं। ३. लोहे का टेढ़ा छड़ जिसको किवाड़ के छेद में डालकर बाहर से अगरी या सिटकिनी खोलते हैं। यह कुंजी का काम देता है। ४. वह छोटी लकड़ी जो फल तोड़ने की लग्गी के सिरे पर बँधी रहती है। ५. लोहे का एक बित्ता लंबा सूजा जिसका सिरा झुका होता है। इससे नारियल के भीतर की गरी निकालते हैं।

अँकूर--संज्ञा पुं० [सं० अङ्कुर] १. अंक। भाग्य। उ०--जथा जोग सब मिलत है जो विधि लिख्यो अँकूर। खल गुर भोग गवारनी रानी पान कपूर।--स० सप्तक, पृ० ३४१। २. अंकुर। अँखुवा। उ०--जु बंकिय भौंह न तुच्छ गरूर। उठे मन मच्छ धनंक अँकूर।--पृ० रा०, २१।२२।

अँकोड़ा--संज्ञा पुं० [सं० अङ्कुर या प्रा० अंकुडग] १. एक प्रकार का लोहे का काँटा जो पाल की रस्सी खींचने में काम आता है। २. एक प्रकार का लंगड़। बड़ी कँटिया। कोंढ़ा।

अँकोर¹(पु)--संज्ञा पुं० [सं० अङ्कमाल या अङ्कपालि, हिं० अँकवार] १. अंक। गोद। छाती। उ०--खेलत रहौं कतहु मैं बाहिर चितै रहति सब मोरी ओर। बोलि लेति भीतर घर अपने मुख चूमति भरि लेति अँकोर।--सूर० (शब्द)। २. दे० 'अँकवार'। ३. भेंट। नजर। उपहार। उ०--सूरदास प्रभु के जो मिलन को, कुच श्रीफल सौं करति अँकोर।--सूर (शब्द)। ३. घूस। रिशवत। उ०--(क) लीन्ह अँकोर हाथ जेहि जीउ दीन्ह तेहि हाथ।--जायसी ग्रं०, पृ० २८७। (ख) विथुरित सिररुह बरूथ, कुंचित बिच सुमन जुथ मनि जुत सिसु फनि

अनीक, ससि समीप आई। जनु सभीत दै अँकोर, राखे जुग रुचिर मोर, कुंडल छबि निरखि चोर सकुचत अधिकाई।--तुलसी ग्रं०, पृ० ४०५।

अँकोर[२]†--संज्ञा पुं० [सं० कवल; हिं० कौर अथवा कोर (देश०)] खोराक या कलेवा जो खेत में काम करनेवालों के पास भेजा जाता है। छाक। कोर। दुपहरिया। जलपान।

अँकोरी--संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्कपालि प्रा० अंकवालि, अथवा सं० अङ्कोलिका] १. गोद। अंक। २. आलिंगन। अँकवार। कौली। उ०--गावत हँसत रिझावत हिलिमिलि पुनि पुनि भरत अँकोरी।--भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ४६७।

अँकौर--संज्ञा पुं० [सं० अंङ्कपालि या अङ्कोलिका, प्रा० अंकवालि] आलिंगन। अँकवार। उ०--मुख चूमत ललचाइ कबहुँ पुनि कबहूँ भरत अँकोर।--भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ५६६।

अँकौल(पु)--संज्ञा पुं० दे० 'अंकोल'।

अँखड़ी†--संज्ञा स्त्री० [सं० अक्षि; प्रा० अक्खि, अक्ख; डिं० और पं० अंख + ड़ी (प्रत्य०); अथवा हिं० आँख + ड़ी (प्रत्य०)] १. आँख। नेत्र। उ०--मेरी इन दुखिया अँखड़ियों के सामने।--लहर, पृ० ७२। २. चितवन। उ०--तुझ अँखड़ियाँ के देखे आलम खराब होगा।--कविता कौ०, भा० ४, पृ० ८।

अँखमीँचनी(पु)†--संज्ञा स्त्री० [हिं० आँख + मींचनी] दे० 'आँख-मिचौली'।

अँखमूदन(पु)--संज्ञा पुं० दे० 'अँखमूदनो'।

अँखमूदनो--संज्ञा पुं० [हिं० आँख + मूँदना] आँखमीचनी। आँख-मिचौली।

अँखाना(पु)--क्रि० अ० दे० 'अनखाना'।

अँखि(पु)--संज्ञा स्त्री० दे० 'अखि'। उ०--जिम सुकिया दुति बचन, दूत तरिय अँखि अग्गी।--पृ० रा०, ६१।१०११।

अँखिया‡--संज्ञा स्त्री० [सं० अक्षि, प्रा० अक्खि, हिं० आँखि, अँखिया, पं० अंख] १. आँख। नेत्र। उ०--अँखिया निरखि स्याम मुख भूलीं।--सूर०, १०।२४०१।

विशेष--दुलार या स्नेहयुक्त अभिव्यक्ति के प्रसंग में प्रायः इस रूप का प्रयोग होता है।

२. लोहे का एक ठप्पा या कमल जिससे बरतन पर हथौड़ी से ठोंक ठोंककर नक्काशी बनाते हैं।

अँखियारा‡--वि० [हिं० अँखिया + रा (प्रत्य०)] आँखवाला (अंधा का विलोम)।

अँखुआ--संज्ञा पुं० [सं० अङ्कुरक] १. बीज से फूटकर निकली हुई टेढ़ी नोक जिसमें से पहली पत्तियाँ निकलती हैं। अंकुर। उ०--खोल खेत में आँख वही अँखुआ कहलाता मिट्टी मुह में डाल फूल अंगों न समाता।--बुद्ध० च०। २. बीज से पहले पहल निकली हुई मुलायम बँधी पत्ती। डाभ। कल्ला। कनखा। कोपल। फुनगी।

क्रि० प्र०--आना। --उगना। --जमना। --निकलना।--फूटना। --फेंकना। --फोड़ना। --लाना। --लेना।

अँखुआना--क्रि० अ० [हिं० अँखुआ से नाम०] १. अंकुर फोड़ना या फेंकना। उगना। जमना। अंकुरित होना। २. उभड़ना। उठाना।

अँग--संज्ञा पुं० [सं० अङ्ग] १. शरीर। देह। अवयव। अंग। उ०--फूले अँग न समात, सबन को भाग उघरि रह्यो।--नंद० ग्रं०, पृ० ३३३। २. पक्ष। तरफ। उ०--अपने अँग के जानि कै जोबन-नृपति प्रवीन।--बिहारी र०, दो० २।

अँगऊँ†--संज्ञा पुं० दे० 'अँगौंगा'।

अँगऊ†--संज्ञा पुं० [सं० अग्रिम] दे० 'अँगौंगा'।

अँगड़ाई--संज्ञा स्त्री० [हिं० अँगड़ाना + ई (प्रत्य०)] [क्रि० अँगड़ाना] आलस से जम्हाई के साथ अंगों को फैलाना, मरोड़ना या तानना। देह के बंद या जोड़ के भारीपन को हटाने के लिये अवयवों को पसारना या तानना। शरीर के लगातार एक स्थिति में रहने के कारण जोड़ों या बंदों के भर जाने पर अवयवों को फैलाना। अँगड़ाने की क्रिया या भाव। देह टूटना। ! न टूटना। उ०--जलधि लहरियों की अँगड़ाई बार बार जाती सोने।--कामायनी, पृ० २३।

विशेष--सोकर उठने पर या ज्वर आने के कुछ पहले यह प्रायः आती है।

क्रि० प्र०--आना।--लेना। उ०--खुदा के वास्ते तनकर न ले तू अँगड़ाई। कि बंद बंद बुते बेहिजाब चटकेगा (फ़ै०)।

मुहा०--अँगड़ाई तोड़ना = (१) आलस्य में बैठे रहना। कुछ काम न करना। (२) किसी के कंधे पर हाथ रखकर अपने शरीर का भार उसपर देना।

अँगड़ाना--क्रि० अ० [सं० अङ्ग + अद्] शरीर के बंद या जोड़ों के भारीपन को हटाने के लिये अंगों को पसारना या तानना। शरीर के लगातार एक स्थिति में रहने के कारण जोड़ों या बंदों के भर जाने पर अवयवों को फैलाना या तानना। देह तोड़ना। सुस्ती से या थकावट से ऐंठना वा ऐंडाना।

अँगधातु(पु)--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गधातु] प्रस्वेद। पसीना। उ०--मुकुट उतारि धर्‌यौ लै मंदिर पोंछति है अँगधातु।--सूर० १०।५११।

अँगन(पु)--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गण, अङ्गन] आँगन। चौक। उ०--डहडहे बदन निरखि सिसु भूले। कंचन जलज अँगन जनु फूले॥ --नंद० ग्रं०, पृ० ३०२।

अँगनई--संज्ञा स्त्री० दे० 'अँगनाई'। उ०--और अब तरक्की करते करते सेक्रेटरियट की अँगनई में दाखिल हो बैठे थे।--नई पौ०, पृ० ८।

अँगनवाँ(पु)†--संज्ञा पुं० [हिं० अँगन + वाँ (प्रत्य०)] दे० 'अँगन'। उ०--खेलत रहलू अँगनवाँ सखी सँग साथी हो।--धरम० शब्दा०, पृ० ६४।

अँगना[१]†--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गण, अङ्गन] आँगन। चौक। उ०--घर अँगना करि डार्‌यौ मो घर सब छिन जोरे हाथ।--भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ३८४।

अँगना[२](पु)--संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गना] स्त्री। नारी। उ०--उड़त गुड़ी लखि ललन की अँगना अँगना माँह।--बिहारी र०, दो० ३७३।

अँगनाई†--संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गन; हिं० आँगन, अँगना + ई (प्रत्य०)] आँगन। अजिर। अँगना। उ०--बरनि न जाइ रुचिर अँगनाई।--मानस ७।७६।

अँगनैत‡--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गन, हिं० आँगन, अँगना + ऐत (प्रत्य०)] आँगन का स्वामी। घर का मालिक। गृहस्वामी। गृहपति।

अँगनैया‡--संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गन; हिं० आँगन--अँगन + ऐया (प्रत्य०)] आँगन। अँगना। उ०--मनि खंभनि प्रतिबिंब झलक, छबि छलकिहैं भरि अँगनैया। --तुलसी ग्रं०, पृ० २७३।

अँगबंदनⓅ--संज्ञा पुं० [सं० अङ्ग + बन्धन; तु० फा० बंद] अंगबंधन। शरीर का बंधन। उ०--ज्यों अहिपति केंचुरि की लघु लघु छोरत है अँगबंदन। --सूर०, १०।११५८।

अँगबलित--वि० [सं० अङ्गवलित] अंगों से लिपटा हुआ। उ०--ब्रज अधिप अंगबलित सुरति समय सोहती बाला'--भिखारी ग्रं०, भा० १, पृ० १३१।

अँगरँग--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गरङ्ग] शरीर की कांति या दीप्ति। उ०--तेरेही नव-जोबन के अँगरँग सुभ लागत परम सुहाए।--नंद० ग्रं०, पृ० ३४६।

अँगरखा--संज्ञा पुं० [सं० अङ्ग = देह + रक्षक = बचानेवाला, प्रा० रक्खअ, हिं० रखा] एक पुराना मर्दाना पहिनावा जो घुटनों के नीचे तक लंबा होता है और जिसमें बाँधने के लिये बंद टँके रहते है। बंददार अंगा। चपकन।

विशेष--इसे हिंदू और मुसलमान दोनों बहुत दिनों से पहनते आते हैं। इसके दो भेद हैं--(१) छहकलिया, जिसमें छह कलियाँ होती हैं और चार बंद लगे रहते हैं। इसके बगल के बंद भीतर या नीचे की ओर बाँधे जाते हैं, ऊपर नहीं दिखाई पड़ते, अर्थात् इसका वह पल्ला जिसका बंद बगल में बाँधा जाता है भीतर या नीचे होता है, उसके ऊपर वह पल्ला होता है जिसका बंद सामने छाती पर बाँधा जाता है। (२) बालावर, जिसमें चार कलियाँ होती है और छह बंद लगे रहते हैं। इसका बगल में बाँधनेवाला पल्ला नीचे रहता है और दूसरा उसके ऊपर छाती पर से होता हुआ दूसरी बगल में जाकर बाँधा जाता है। अतः उसके सामने के और एक बगल के बंद दिखाई पड़ते हैं।

अँगरखी†--संज्ञा स्त्री० दे० 'अँगरखा'।

अँगरनाⓅ†--क्रि० अ० दे० 'अँगराना'।

अँगरा†--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गार] १. अँगार। अँगारा। दहकता हुआ कोयला। २. कोयला।

मुहा०--अँगरा दरना = अनुचित कार्य की हद करना। अशोभन या अशुभ कार्य करना।

विशेष--स्त्रियाँ परस्पर कलह में सोहागिनों के प्रति अशुभ भाव व्यक्त करती हुई 'माँग में अँगरा दर दूँगी', प्रायः ऐसा कहती हैं।

३. बैल के पैर टपकने या रह रहकर दर्द करने का एक रोग। इस रोग में बैल बार बार पैर उठाया करता है।

अँगराई†--संज्ञा स्त्री० दे० अँगड़ाई'। उ०--है रात घूम आई मधुबन यह आलस की अँगराई है। --लहर, पृ० २०।

अँगरागⓅ--संज्ञा पुं० दे० 'अंगराग'--१। उ०--नृप द्वार कुमारि चलीं पुर की, अँगराग-सुगंध उड़ैं गहरी।--बुद्ध च०, पृ० २४।

अँगरानाⓅ†--क्रि० अ० दे० 'अँगड़ाना'। उ०--(क) बारबधू पिय पंथ लखि अँगरानी अँग मोरि।--मति० ग्रं०, पृ० ३०६। (ख) पलक अधखुली दृगनि सों अँग अंगरात जम्हात। --ब्रज० ग्रं०, पृ० ६३।

अँगरी[1]Ⓟ†--संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्ग + री] कवच। झिलम। बखतर। बक्तर। उ०--अँगरी पहिरि कूँड़ी सिर धरहीं। फरसा बाँस सेल सम करही। --मानस, २।१९१।

अँगरी[2]--संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गुरीय] उँगलियों को धनुष की रगड़ से बचाने के लिये गोह के चमड़े का दस्ताना। अंगुलित्राण।

अँगरेज--संज्ञा पुं० [फ्रें० आंगलेज, पुर्त० इंगलेज, अं० इंगलिश] [वि० अँगरेजी] इंगलैंड देश का निवासी। इंगलिस्तान का रहनेवाला आदमी। उ०--असिबर अँगरेजैं घलि घलि तेजैं अरिगन भेजैं सुरपुर को। --हिम्मत०, पृ० ४२।

अँगरेजियत--संज्ञा स्त्री० [हिं० अंगरेज + फ़ा० इयत (प्रत्य०)] अंगरेजीपन। अँगरेजी रंगढंग की। उ०--हमसे तो भाई यह अँगरेजियत नहीं देखी जाती '--गबन, पृ० ११२।

विशेष--कभी कभी शासक और शासित के बीच अँगरेज शासकों की अकड़ या अपने को श्रेष्ठ समझने का अभिमान भी इस अर्थ में मिला रहता है।

अँगरेजी[1]--संज्ञा स्त्री० [हिं० अँगरेज + ई (प्रत्य०)] अंगरेजों की भाषा। इंगलिश भाषा।

अँगरेजी[2]--दे० अँगरेज संबंधी। अंगरेजों का।

अँगलेट--संज्ञा पुं० [सं० अङ्ग, हिं० अंग + लेट ?] शरीर की गठन। काठी। उठान। देह का ढाँचा। अँगेट।

अँगवनाⓅ†--क्रि० स० [सं० अङ्ग से नाम०] १. अंगीकार करना स्वीकार करना। उ०--दाप पतँग होइ अँगएउ आगी।--जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० ३२८। २. ओढ़ना। अपने सिर पर लेना। ३ सहना। बरदाश्त करना। उ०--अपना घर सुख छाड़ि के अँगवै दुख को भार।--कबीर श०, भा० ४, पृ० २७। ४. उठाना। उ०--धरती भार न अँगवै पाँव धरत उठ हाल। कूर्म टूट मुँह फाटी तिन हस्तिन की चाल।--जायसी (शब्द०)।

अँगवनिहारा--वि० हिं० अँगनवा + हारा (प्रत्य०)] सहनेवाला। सहन करनेवाला। बरदास्त करनेवाला। उ०--सूल कुलिस असि अगवनिहारे। ते रतिनाथ सुमन सर मारे। --मानस, २।२५।

अँगवानाⓅ--क्रि० स० [हिं० अँगवना। अंग में लगाना या मलना। उ०--चंदन और अरगजा आन्यौ अपने कर बल के अँगवान्यौ। --सूर०, १०।१२१३।

अँगवारा†--संज्ञा पुं० [सं० अङ्ग = भाग, सहायता + कार या हिं० वारा = वाला] १. गाँव के एक छोटे भाग का मालिक या हिस्सेदार। २. खेत की जुताई में एक दूसरे की सहायता।

अँगसँगⓅ--संज्ञा पुं० दे० 'अंगसंग'। उ०--यह जग अँगसँग में मतवारा, चावे विषय भोग अनुसारा। --रतन०, पृ० ६०।

अँगाकरिⓅ†--संज्ञा स्त्री० दे० 'अगाकड़ी'। उ०--अबहीं अँगाकरि तुरत बनाई। जे भजि भजि ग्वालिनि सँग खाई।--सूर०, १०।१२१३।

अँगाना ⓟ—क्रि० स० [सं० अङ्ग] अंगीकार करना। स्वीकार करना। उ०—मनहुँ एक कौ रंग एक निज अंग अँगाए।—रत्नाकर, भा० १, पृ० १८२।

अँगार ⓟ—संज्ञा पुं० दे० 'अंगार'। उ०—जनु अँगार रासिन्ह पर मृतक धूम रह्यो छाइ।—मानस, ६।५२।

अँगारा ⓟ—संज्ञा पुं० [सं० अङ्गारक, प्रा० अंगारअ] आग का जलता टुकड़ा। अंगार। उ०—नभ चढ़ बरषै बिपुल अँगारा।—मानस, ६।५१।

विशेष—'अंगारा' शब्द के मुहावरों का प्रायः 'अँगारा' शब्द के साथ भी प्रयोग होता है।

अँगारी—संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गारिका प्रा० अंगालिय, इंगाली] १ ईख के सिर पर की हरी पत्ती जिसे काटकर पशुओं को खिलाते हैं। २ गड़ाँसे कटे हुए ईख के छोटे छोटे टुकड़े जो पत्थर के कोल्हू में पेरने के लिये तैयार किए जाते हैं गँडेरी। गेंड़ी। ३. चिनगारी। अग्निकण। उ०—खुले घाव पै ताके मानो परी अँगारी।—बुद्ध च०, पृ० १५१। दे० 'अंगारी'।

अँगाली ⓟ—वि० [सं० अग्रणी, प्रा० अग्गणी, हिं० अगाड़ी, अगारी] आगे। प्रथम। उ०—मुअज्जम इसम अँगाली हमेशा।—दक्खिनी०, पृ० ११८।

अँगिया¹—संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गिका; प्रा० अंगिआ] स्त्रियों का एक पहिनावा जिससे केवल स्तन ढंके रहते है, पेट और पीठ खुली रहती है। इसमें चार बंद होते हैं जो पीछे बाँधे जाते हैं। छोटा कपड़ा। चोली। कंचुकी। काँचली। उ०—अँगिया नील, माँड़नी राती, निरखत नैन चुराई।—सूर०, १०।१०५३।

यौ०—**अँगिया का कंठा या अँगिया की कटी**= दे० 'अँगिया का घाट'। **अँगिया की कटोरी या मुलकट**= अँगिया का वह भाग जो स्तनों के ऊपर पड़ता है। **अँगिया की खवासी या खसी**= वह सीवन जो कटोरियों को आस्तीन से मिलाती है। **अँगिया का घाट**=अँगिया का गला या गरेबान, गले के नीचे का खुला हिस्सा। **अँगिया की चिड़िया**=दोनों कटोरियों के बीच की सीवन। **अँगिया का ठर्रा**=वह बटा हुआ धागा जो अँगिया के नीचे की गोट मे लगाया जाता है। **अँगिया की डोरी**= कंठे और पुट्ठे में शोभा के लिये टाँकी जानेवाली डोरी। **अँगिया की दीवार**= दे० 'अँगिया का पान'। **अँगिया का पछुआ**=अँगिया की पीठ की ओर के टुकड़े। **अँगिया का पान**=अँगिया की कटोरी का छोटा टुकड़ा। **अँगिया का पुट्ठा**=अँगिया की आस्तीन की चौड़ी गोट। **अँगिया के बंद**=पीठ की ओर का ठर्रा जिससे अँगिया कसी जाती है। **अँगिया का बँगला**=कटोरी की कली या फाँक जो जोड़ों पर गोखरू टाँकने से बन जाता है। दो कलियाँ होने पर बँगला और दस बारह होने पर खरबूजा कहते हैं। **अँगिया के बाजू**=अँगिया का वह भाग जो दोनों बगल छिपाता है। **अँगिया की लहर**=कटोरियों पर तिकोनी कटी हुई सज्जा।

अँगिया²—संज्ञा स्त्री० [हिं० अँधिया] झीने कपड़े से मढ़ी हुई चलनी।

अँगिरना ⓟ†—क्रि० स० [सं० अङ्गीकरण ?] स्वीकार करना। उ०—जे अँगिरिअ तो न होइअ उदास।—विद्यापति, पृ० ४४।

अँगिराना—दे० 'अँगड़ाना'। उ०—लागि गरें अँगिरात जँभात हैं, आरस गात भरे गिरि जात हैं।—भिखारी ग्रं०, भा० १, पृ० ४२।

अँगीठ ⓟ—संज्ञा पुं० [सं० अग्निष्ठ; पा०, प्रा० अग्गिट्ठ] दे० 'अँगीठा'। उ०—या मन को बिसमिल करूँ दीठ करूँ अदीठ। जो सिर राखूँ आपना पर सिर जलौ अँगीठ।—कबीर (शब्द०)।

अँगीठा—संज्ञा पुं० [सं० अग्नि=आग+स्था=ठहरना >अग्निस्था, अग्निष्ठा, प्रा० अग्गिट्ठा अथवा सं० अग्निष्ठिका, प्रा० अग्गिट्ठिआ] बड़ी अँगीठी। बड़ा आतिशदान। बड़ी बोरसी। आग रखने का बरतन।

अँगीठि ⓟ—संज्ञा स्त्री० दे० 'अँगीठी'। उ०—सुंदर एक अचंभा हूवा पानी माँहिं जरै अँगीठि।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ५२१।

अँगीठी—संज्ञा स्त्री० [सं० अग्निष्ठिका, प्रा० अग्गिट्ठिआ] आग रखने का छोटा बरतन। आतिशदान। उ०—धरी अँगीठी स्वच्छ धूम बिन गावत अपने रंग।—भारतेंदु ग्रं०, भाग २, पृ० ८३०।

विशेष—यह मिट्टी और लोहे की गोल, चौखूँटी अठपहली आदि कई आकारों की बनती है।

मुहा०—**अँगीठी होना**=अँगीठी के समान तप्त होना। उ०—सूरदास प्रभु तुम्हरे दरस बिनु जरि बरि भई अँगीठी।—सूर०, १०।३६७२।

अँगु ⓟ—संज्ञा पुं० दे० 'अंग'। उ०—सैल सँभार्‌यो लला अँगुरी धरि पै अबला अँगु री न सँभार्‌यौ।—देव ग्रं०, पृ० ११।

अँगुछा ⓟ†—संज्ञा पुं० दे० 'अँगोछा¹'। उ०—'तब वा माली ने याकौ अँगुछा तो फेरि दियौ'।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० २२६।

अँगुछाना—क्रि० स० [सं० अँगुछा से नाम०] दे० 'अँगोछना' उ०—मनन सुनीर अन्हवाय अँगुछाय दया, नवनि बसन प्रन सोधी ले लगाइये।—भक्तमाल (प्रि०), छं० ३।

अँगुठा—संज्ञा पुं० दे० 'अँगूठा'। उ०—कर पग गहि अँगुठा मुख मेलत।—सूर०, १०।६४।

मुहा०—**अँगुठा चटाना**= दे० 'अँगूठा चटाना'। उ०—अँगुठा चटाय दफादार के रे साँवलिया।—प्रेमघन० भा० २, पृ० ३४०।

अँगुठी—संज्ञा स्त्री० [स० अङ्गुष्ठिका, प्रा० अँगुट्ठी] १. काँसे का ढालकर बनाया हुआ एक गहना जो पैर के अँगूठे में अनवट के स्थान पर पहना जाता है। इसका व्यवहार नीच जाति की स्त्रियों में है। २. दे० 'अँगूठी'।

अँगुरि ⓟ—संज्ञा स्त्री० दे० 'अँगुरी'। उ०—कानन कुंडल चलत अँगुरि दल ललित कपोलन मैं कछु झलकैं।—नंद० ग्रं०, पृ० ३५२।

अँगुरिया†—संज्ञा स्त्री० [सं०अङ्गुरिका, प्रा० अंगुरिया] छोटी उँगली। उ०—गहे अँगुरिया ललन की नँद चलन सिखावत।—सूर०, १०।१२२।

अँगुरियाना—क्रि० सं० [हिं० अँगुरी से नाम०] हैरान करना। तंग करना। परेशान करना (बोल०)।

अँगुरिया बेल--संज्ञा पुं० [फा० अंगूर] कालीन या गलीचे के किनारे पर की एक बेल या नक्काशी जो अंगूर की लता के ढंग पर बनाई जाती है।

अँगुरी†--संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गुरी] १ उँगली। उ०--तीजे मास हस्त पग होहिं चौथ मास कर अँगुरी सोहि। --सूर०, ३।३। क्रि० प्र०--चटकाना = दे० 'उँगली चटकाना'। उ०--योवन के मद संग ढरे अँग अंग मुरे अँगुरी चटकावै।--देव ग्रं०, पृ० १२।

२. वरक पीटने की चाँदी। यौ०--अँगुरी की चाँदी = यह चाँदी सिल की चाँदी को खूब साफकरके बनाई जाती है। इसी को पीटकर चाँदी का वरक बनाते हैं।

अँगुली--संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गुली; प्रा० अंगुली] †१. अँगुली। उँगली। २. हाथी की सूँड़ का अगला भाग। ३ एक नदी का नाम।

अँगुष्ठ(पु)--संज्ञा पुं० दे० 'अंगुष्ठ'। उ०--सुभग अँगुष्ठ अंगुली अबिरल, कछुक अरुन नखज्योति जगमगति।--तुलसी ग्रं०, पृ० ४१५।

अँगुसा†--संज्ञा पुं० [सं० अङ्कुश = टेढ़ी नोक, प्रा० अंकुसय] अंकुर। अँखुआ।

अँगुसाना†--क्रि० अ० [हिं० 'अँगुसा से नाम०] बोए हुए अनाज का अँखुआ फोड़ना। जमना। अंकुरित होना। अँखुआना।

अँगुसी--संज्ञा स्त्री० [हिं० अँगुसा + ई (प्रत्य०)] १. हल का फाल। २. सोनारों की बकनाल या टेढ़ी नली जिससे दिए की लौ को फूंककर टाँका जोड़ते हैं।

अँगूठा--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गुष्ठ; प्रा० अंगुट्ट] १. मनुष्य के हाथ की सबसे छोटी और मोटी उँगली। पहली उँगली जिससे दूसरा स्थान तर्जनी का है। तर्जनी की बगल में छोर पर की वह उँगली जिसका जोड़ हथेली में दूसरी उँगलियों के जोड़ों के नीचे होता है। उ०--हथफूल पीठ पर करके धर, उँगलियाँ मुंदरियों से सब भर, आरसी अँगूठे में देकर।--ग्राम्या, पृ० ४०।

विशेष--मनुष्य के हाथ में दूसरे जीवों के हाथों से इस अँगूठे की बनावट में बड़ी भारी विशेषता है। यह बड़ी सुगमता से इधर उधर फिरता है और शेष चार उँगलियों में से प्रत्येक पर सटीक बैठ जाता है। इस प्रकार यह पकड़ने में चारों उँगलियों को एक साथ भी और अलग अलग भी सहायता देता है। बिना इसकी शक्ति और सहायता के उँगलियाँ कोई वस्तु अच्छी तरह नहीं पकड़ सकतीं।

मुहा०--अँगूठा चूमना = १. आदर करना। विनय प्रकट करना। २. अधीन होना। ३. खुशामद करना। सुश्रूषा करना। अँगूठा चूसना = बड़ा होकर बच्चों की सी नासमझी करना। अँगूठा दिखाना = १. किसी वस्तु को देने से अवज्ञापूर्वक नहीं करना। २. किसी कार्य को करने से हट जाना। किसी कार्य को करने से अस्वीकार करना। ३. अवज्ञा करना। ४. चिढ़ाना। उ०--ऐसी उपाय गई निमुकाय, चितै मुसुकाय दिखाय अँगूठो।--सुधानिधि, पृ०। अँगूठा नचाना = चिढ़ाना। अँगूठे पर मारना = तुच्छ समझना। परवाह न करना।

२. मनुष्य के पैर की सबसे मोटी उँगली।

अँगूठी--संज्ञा स्त्री० [हिं० अँगूठा + ई (प्रत्य०)] १. उँगली में पहनने का एक गहना। एक प्रकार का छल्ला। मुँदरी। मुद्रिका। अँगुश्तरी। उ०--औ पहिरे नगजरी अँगूठी।--पदु०, पृ० ५०।

यौ०--अँगूठी का नगीना = महत्वपूर्ण व्यक्ति या वस्तु। उ०--देखो, जैसा ईश्वर ने यह सुंदर अँगूठी के नगीने सा नगर बनाया है।--भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० २८२।

२. उँगली में लपेटा हुआ राछ में जोड़ने का तागा।

विशेष--जुलाहे जब पाई को राछ में जोड़ने लगते हैं तब पाई के थोड़े थोड़े तागों को ऐंठकर उँगली में लपेट लेते हैं और फिर उँगली में से एक एक तागा निकालकर राछ में जोड़ते हैं। इस उँगली में लपेटे हुए तागे को अँगूठा या अँगूठी कहते हैं।

अँगूर¹(पु)--संज्ञा पुं० दे० 'अंगूर'। उ०--चूसे अधर अँगूर दोउ गालन पै प्रगट निसानी सी।--भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ८६३।

अँगूर²(पु)--संज्ञा पुं० [सं० अङ्कुर] अंकुर। अँखुवा। उ०--सो पै जानै नैन रस, हिरदै प्रेम अँगूर।--जायसी (शब्द०)।

अँगे(पु)--क्रि० वि० [सं० अग्रे; प्रा० अग्गे] आगे। भविष्य में। उ०--के जैसा अँगे होनेहारा है काम।--दक्खिनी०, पृ० ७९।

अँगेजना(पु)--क्रि० स० [सं० अङ्ग = शरीर + एज = हिलना, कँपना] १ सहना। बरदाश्त करना। उठाना। उ०--रह सका काम का सुखी सुंदर, कौन सा अंग दुख अँगेजे पर।--चोखे०, पृ० २१। २. अंगीकार करना। स्वीकार करना। उ०--इक मरिबै कौं छाड़ि कहा जौ नाहिं अँगेज्यौं।--रत्नाकर, भा० १, पृ० ८०।

अँगेट(पु)--संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्ग] अंगों की दीप्ति या कांति। उ०--(क) एड़ी तें सिखा लों है अनूठिए अँगेट आछी।--रसखान०, पृ० १२०। (ख) साँवरे छैल की आछी अँगेट पै काम करोरिक वारियै जोहि कै।--घनानंद०, पृ० ४७।

अँगेठा†--संज्ञा स्त्री० दे० 'अँगीठी'।

अँगेठी†--संज्ञा स्त्री० दे० 'अँगीठी'।

अँगेरना(पु)--क्रि० स० [सं० अङ्ग = देह + ईर = जाना; अथवा सं० अङ्ग = स्वीकार या सं० अङ्गीकरण, प्रा० अंगीअरण या अंगीरण] १. अंगीकार करना। स्वीकार करना। मंजूर करना। २. सहना बरदाश्त करना।

अँगोछना--क्रि० स० [सं० अङ्गोञ्छन] गीले कपड़े से देह पोंछना। शरीर पर गीला या भीगा वस्त्र रखकर मलना। गीला कपड़ा फेरकर बदन साफ करना। उ०--पीत पट लै लै के अँगोछत सरीर करु कंजन सौं पोछत भुसुंड गजराज कौ।--रत्नाकर, भा० २, पृ० १००।

अँगोछा--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गोच्छ] [स्त्री० अँगोछी] [पू० गमछा-गमछी] १. देह पोंछने का कपड़ा। तौलिया। २. ऊपर रखने के लिये एक कपड़े का टुकड़ा। इसे प्रायः लोग कंधे पर रखते हैं। उपरना। उपवस्त्र। उ०--बासन ढाँकि अँगोछा डारा। ह्वाँ से भोजन काढ़ि निकारा। --रत्न०, पृ० १९८।

क्रि० प्र०--लेना = पोंछना। उ०--चरन पखारि अँगोछा लीन्हा।--कबीर सा०।

अँगोछी--संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गोछा + हिं० ई (प्रत्य०)] १. देह पोंछने के लिये छोटा कपड़ा २. बच्चों की छोटी धोती जिससे कमर से आधी जाँघ तक ढक जाय। यह प्रायः छोटे लड़के लड़कियों के लिये होती है।

अँगोजना(पु)--क्रि० स० दे० 'अँगेजना'।

अँगोट(पु)--संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्ग + वर्त्म, प्रा० अंग + वट्ट] शरीर की गठन। देह की बनावट।

अँगोटना(पु)--क्रि० स० दे० 'अगोटन'। उ०--देखि री देखि अँगोटि कै नैननि कोटि मनोज मनोहर मूरति।--भिखारी० ग्रं०, भा० १, पृ० १३७।

अँगोरा[1]†--संज्ञा पुं० [देश०] मच्छर। भुनगा।

अँगोरा[2]--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गार] अँगारा। अँगार। उ०--भयउ अदग सो लाल अँगोरा। कहे आगि में अगिनि अँजोरा।--सं० दरिया, पृ० २३।

अँगोरी--संज्ञा स्त्री० दे० 'अँगारी'।

अँगौंगा--संज्ञा पुं० [सं० अग्र = अगला + अंग = भाग] अन्न या और किसी वस्तु का वह भाग जो धर्मार्थ पहले निकाल लिया जाय। धर्मार्थ बाँटने या देवता को चढ़ाने के लिये अलग निकाला हुआ अंश। अँगऊँ। पुजौरा।

अँगौछना(पु)†--क्रि० स० दे० 'अँगोछना'। उ०--उत्तम विधि सौं मुख पखरायौ, ओदे बसन अँगौछि।--सूर०, १०।६०६।

अँगौछा†--संज्ञा पुं० दे० 'अँगोछा'। उ०--अँगौछे में मांस और पोथी के चोंगे में मद्य छिपाई जाती है।--भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ८२।

अँगौछी†--संज्ञा स्त्री० दे० 'अँगोछी'। उ०--एक अँगौछी अपने अपने गले में डाले आकर सत्यगुरु के चरणों पर गिरे।--कबीर मं०, पृ० ५०६।

अँगौटी†--संज्ञा स्त्री० [सं० अङ्गाकृति या अङ्गवर्त्म ?] अंग का गठन। आकृति। बनावट। अँगोट।

अँगौड़ा†--संज्ञा पुं० [?] किसी देवता को अर्पण करने के लिये निकाला गया पदार्थ। देवांश।

अँगौरिया--संज्ञा पुं० [सं० अङ्ग = भाग] १. वह हलवाहा जिसे कुछ मजदूरी न देकर हल बैल देते हैं जिनसे वह अपने खेत भी जोत लेता है। २. मजदूरी के स्थान पर हल बैल मँगनी देना।

अँग्रेज--संज्ञा पुं० दे० अँगरेज।

अँघड़ा†--संज्ञा पुं० [सं० अंघ्रि] काँसे का एक प्रकार का छल्ला जिसे एक वर्ग की स्त्रियाँ पैर के अँगूठे में पहनती हैं।

अँघराई†--संज्ञा स्त्री० [देश०] एक कर जो पहले पशुओं पर लगाया जाता था।

अँघिया--संज्ञा स्त्री० [देश०] झीने कपड़े से मढ़ी हुई आटा या मैदा चालने की चलनी। अँगिया। आखा

अँचना(पु)--क्रि० स० दे० 'अँचवना'। उ०--पुट एकै इत मद उत अमृत आपु अँचै अँचवावै।-- सूर०, १०।१२४६।

अँचर(पु)--संज्ञा पुं० दे० 'अँचरा'। उ०--गज गति चाल अँचर गति धुजा।--जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० ३४७।

यौ०--अँचर धरैया = दे० 'अँचरा पकड़ाई'।

अँचरा(पु)†--[सं० अञ्चल] १. साड़ी का वह छोर जो छाती पर रहता है। साड़ी या ओढ़नी का वह भाग जो सिर पर होता हुआ सामने छाती पर फैला हो। पल्ला। २. दुपट्टे या दुशाले के दोनों छोर। छीर। उ०--कब मेरो अँचरा गहि मोहन जोइ सोइ कहि मोसौं झगरै।--सूर०, १०।७६।

यौ०--अँचरा पकड़ाई = विवाह की एक प्रथा जिसमें वर कन्या की माता तथा उसके कुटुंब की और स्त्रियों का अंचल पकड़ता है और कुछ लेने पर छोड़ता है। इस रीति को तथा उस वस्तु को जो वर को मिलती है, अँचरा पकड़ाई या अँचर धरैया कहते हैं।

मुहा०--अँचरा पसारना = (१) किसी बड़े या देवता से कुछ माँगते समय (स्त्रियों का) अपने अंचल को आगे फैलाना जिससे दीनता और उद्वेग सूचित होता है। विनती करना। दीनता दिखाना। उ०--ए विधिना तो सों अँचरा पसारि माँगों जनम जनम दीजो या ही ब्रज बसिबो--छीतस्वामी (शब्द०)। (२) भीख माँगने की एक मुद्रा। कोई वस्तु लेने के लिये देनेवाले के सामने अंचल रोपना। (३) दीनता और विनय के साथ माँगना।

अँचल(पु)--संज्ञा पुं० दे० 'अंचल--१'। उ०--अँचल ध्वज अवलोकि नाहीं धरत पिय मन धीर।--सूर०, १०।२४४६।

अँचला--संज्ञा पुं० [सं० अञ्चल] १. दे० 'अँचरा'। २. कपड़े का एक टुकड़ा जिसे साधु लोग नाभि के ऊपर धोती के स्थान पर लपेटे रहते हैं।

अँचली(पु)--संज्ञा स्त्री० [हिं० अंचल + ई (प्रत्य०)] दे० 'अँचरा', 'अँचला'। उ०--उलटत पलटत जग की अँचली। जैसे फेरै पान तमोली।--मलूक०, पृ० १३।

अँचवन(पु)†--संज्ञा पुं० दे० 'अचवन'। उ०--हंसन को विश्राम; पुरुष दर्श अँचवन सुधा।--कबीर सा०, पृ० १५।

अँचवना(पु)†--क्रि० स० दे० 'अचवना'। उ०--परिहरि चारिउ मास जो अँचवै जल स्वाति को।--तुलसी ग्रं०, पृ० १०७।

अँचवनी(पु)--संज्ञा स्त्री० [सं० आचमनी] आचमन करने का छोटा पात्र। आचमनी।

अँचवाना(पु)†--क्रि० स० दे० 'अचवाना'। उ०--अँचवाइ दीन्हे पान गवने वास जहँ जाको रह्यो।--मानस, १।९९।

अँचार(पु)†--संज्ञा पुं० दे० 'अचार[1]'।--उ०--पापर, बरी, अँचार परम सुचि। अदरख अरु निबुअनि ह्वै है रुचि।--सूर०, १०।१२१३।

अँचुली(पु--संज्ञा स्त्री० दे० अंजली १'। उ०--जनम यहि धोखे बीता जात, जस जल मै अँचुली में भल सीझै।--कबीर श०, भा० ३, पृ० ३७।

अँजना(पु)--क्रि० अ० [सं० अञ्ज, प्रा० अंज] स्निग्ध होना। उ०--देखत रूप निरंजन अँजेऊ।--द० सागर, पृ० ६४।

अँजली†--संज्ञा स्त्री० दे० 'अंजली'।

अँजवाना--क्रि० स० [हिं० आँजना का प्रेर०] अंजन लगवाना। सुरमा लगवाना।

अँजाना--क्रि० स० दे० 'अँजवाना'। उ०--आँख अँजाइ पहिरि कर चूरी, हारे मोहन गिरधारी।--भारतेंदु ग्रं०, भा २, पृ० ३८१।

अँजीर(पु)--संज्ञा पुं० [सं० अजिर] अजिर। आँगन। उ०--अमृत बुंद तहँ झरै निकंदा। नैन अँजीर मगन मन चंदा।----द० सागर, पृ० ६८।

अँजुरी(पु)†--संज्ञा स्त्री० दे० 'अंजली'। उ०--जोबन मेरा जात है ज्यों अँजुरी का नीर।--सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ६८५।

अँजुली(पु)†--संज्ञा स्त्री० दे० 'अँजली'। उ०--जैसे मोती ओस की, पानी अँजुली माहिं।--संतबानी०, भा० २, पृ० १६३।

अँजोर(पु)†--संज्ञा पुं० [सं० उज्ज्वल] उजाला। उजेला। प्रकाश। रोशनी। चाँदनी। उ०--मारग हुता अँधेर असूझा। भा अँजोर सब जाना बूझा।--पदु०, १।१३६।

अँजोरना(पु)†[1]--क्रि० स० [हिं० अंजुरी से नाम०] १. बटोरना। समेटना। उ०--करौं जो कछु धरौं रुचि पचि सुकृत सिला बटोरि। पैठि उर बरबस दयानिधि दंभ लेत अँजोरि।--तुलसी (शब्द०)। २ छीनना। हरण करना। ले लेना। मूसना। उ०--ठाढ़ी भई बिथकि मारग में माँझ हाट मटकी सो फोरि। सूरदास प्रभु रसिक शिरोमणि चित चिंतामणि लियो अँजोरि।--सूर (शब्द०)।

अँजोरना[2]†--क्रि० स० [सं० उज्ज्वलन; हिं० 'अँजोर' से नाम०] जलाना। प्रकाशित करना। बालना। जैसे--'दीपक अँजोरना' (शब्द०)।

अँजोरवा(पु)†--संज्ञा पुं० [हिं० अँजोर + वा (प्रत्य०)] उजाला। प्रकाश। उ०--जब लगि तेल दिया में बाती, ये ही अँजोरवा बिछाय घलतू।--संतबानी०, भा० २, पृ० २३।

अँजोरा[1]†--वि० [सं० उज्ज्वल, हिं० अँजोर] उजेला। प्रकाशमान।
यौ०--अँजोरा पाख = शुक्ल पक्ष।

अँजोरा[2](पु)†--संज्ञा पुं० प्रकाश। रोशनी। उ०--दिया मंदिर निसि करै अँजोरा। दिया नाहिं घर मूसहि चोरा।--जायसी (शब्द०)।

अँजोरिया[1](पु)†--संज्ञा स्त्री० [हिं० अँजोर + इया (प्रत्य०)] चाँदनी। ज्योत्स्ना।

अँजोरिया[2](पु)†--वि० उजेली। शुक्ल पक्ष की।
यौ०--अँजोरिया रात = शुक्ल पक्ष की रात।

अँजोरी[1](पु)†--संज्ञा स्त्री० [हिं० अँजोर + ई (प्रत्य०)] १. प्रकाश। रोशनी। चमक। उजाला। उ०--महिमा अमित मोरि मति थोरी रबि सनमुख खद्योत अँजोरी।--मानस, ३१५ (क)। २. चाँदनी। चंद्रिका। चंद्रमा का प्रकाश।

अँजोरी[2](पु)--वि० स्त्री० उजियाली। उजेली। प्रकाशमय। उज्ज्वल। देदीप्यमान। उ०--(क) अँजोरी रात आने दो (शब्द०)। (ख) पदिक पदारथ लिखी सो जोरी। चाँद सुरुज जस होइ अँजोरी।--जायसी (शब्द०)।

अँजौरना(पु)--क्रि० स० दे० 'अँजोरना[1]'। उ०--सूर स्याम की बुधि चतुराई लीन्ही सबै अँजौरी।--सूर०, १०।१२४३।

अँट(पु)--संज्ञा स्त्री० [हिं० आँट] लागडाँट। हठ। जिद। उ०--निकसे स्याम सदन मेरे तैं इनि अँट करि पहिचानी।--सूर०, १०।२०४३।

अँटकना--क्रि० अ० [देश०] १. रुकना। अड़ना। उ०--गोरख अँटके कालपुर कौन कहावै साहु।--कबीर बी०, पृ० ९५। २. फँसना। उलझना। उ०--सूर सनेह ग्वालि मन अँटक्यो अंतर प्रीति जाति नहिं तोरी।--सूर०, १०।३०५। दे० 'अटकना'।

अँटकाना†--क्रि० स० दे० 'अटकाना'।

अँटना--क्रि० अ० [देश०] १. समाना। किसी वस्तु के भीतर आना। उ०--(क) दूध इस बरतन में न अँटेगा (शब्द०)। (ख) आनंद हृदय मे अँटता नहीं था। --भक्तमाल (श्री०) पृ० ५५०। २ किसी वस्तु के ऊपर सटीक बैठना। ठीक चपकना। उ०--यह जूता मेरे पैर में नहीं अँटता है (शब्द०)। ३. भर जाना। ढंक जाना। छा जाना। उ०--कूड़े से कूआँ अँट गया (शब्द०)। ४. पूरा पड़ना। काफी होना। बस होना। चलना। उ०--(क) इतना कमाते हैं पर अँटता नहीं (शब्द०)। (ख) अकेले हम इतने कामों को नहीं अँट सकते (शब्द०)। ५(पु). पूरा होना। खपना। लग जाना।

अँटिया--संज्ञा स्त्री० [प्रा० अट्टा, 'आँट', हिं० अंटी + इया (प्रत्य०)] घास, खर या पतली लकड़ियों आदि का बँधा हुआ मुट्ठा। छोटा गट्ठा। गठिया। पूली।

अँटियाना--क्रि० स० [हिं० 'अँटिया' से नाम० या अंटी] १. उँगलियों के बीच में छिपाना। हथेली में छिपाना। २. चारों उँगलियों में लपेटकर डोरे की पिंडी बनाना। ३. घास, खर या पतली लकड़ियों का मुट्ठा बाँधना। ४. अंटे में रखना। अंटी में रखना। ५. गायब करना। हजम करना।

अँटौतल--संज्ञा पुं० [देश०] ढक्कन जिन्हें तेली लोग कोल्हू में जोतने के समय बैल की आँखों पर चढ़ा देते हैं।

अँठई†--संज्ञा स्त्री० [सं० अष्टपदी प्रा० अट्ठअई, अंठई] छोटे छोटे कीड़े जो प्रायः कुत्तों के बदन में चिपटे रहते हैं। किलनी। चिचड़ी।

अँठली--संज्ञा स्त्री० [सं० अष्ठि = गुठली, गाँठ, अष्ठीलिका] नवयुवती के निकलते हुए स्तन।

अँठियाना‡--क्रि० स० [सं० अष्ठि प्रा० अट्ठि, 'अंठि' से नाम०] १. गुठली पड़ना। गिलटी पड़ना। गाँठ पड़ना। २. दही का थक्का जमना।

अँड(पु)--संज्ञा पुं० [सं० अण्ड] अंडा। बैजा। उ०--जिन सब्द सोध सिहार सोचे अलल अँड उलटे सही।--रत्न०, पृ० ६।

अँडखँड--संज्ञा पुं० दे० 'अंड खंड'। उ०--कस कुरम सेस अकार अँडखँड नो निरंजन कस रह्यौ।--रत्न०, पृ० १।

अँड़दार--वि० [हिं० अड़ना + दार (प्रत्य०)] रुकनेवाला। अड़नेवाला। उ०--ज्यौं मतंग अँड़दार को लिये जात गँडदार।--मति० ग्रं०, पृ० ३१२।

अँड़रना†--क्रि० अ० [देश०] धान के पौधे का उस अवस्था में पहुँचना जब बाल निकलने पर हो। रेंड़ना। गरभाना।

अँडलाना‡--क्रि० अ० [हिं० अड़ना] इठलाना। शोखी दिखाना।

अँडवाई‡--संज्ञा स्त्री० [हिं० अंड या अंडा + वाई (प्रत्य०)] मुर्गी या कोई अन्य चिड़िया जो अंडा देनेवाली हो।

अँड़ाना--क्रि० स० दे० 'अड़ाना'। उ०--माया जाल में बाँधि अँड़ाया क्या जानै नर अंधा।--मलूक०, पृ० २०।

अँड़िया†--संज्ञा स्त्री० [देश०] १. बाजरे की पकी हुई बाल। २. परेते पर लपेटा हुआ सूत। कुकड़ी।

अँड़ुआ[1]--संज्ञा पुं० [सं० अण्ड, हिंदी **अँड़+उआ** (प्रत्य०)] वह पशु जो बधिया न किया गया हो। आँड़ू।

अँड़ुआ[2]--वि० जो बधिया न किया गया हो। आँड़ू।

अँड़ुआना--क्रि० स० [सं० **अण्ड से नाम०**] बैल के अंडकोश को कुचलना जिसमें वह नटखटी न करे और ठीक चले। बधियाना। बधिया करना।

अँड़ुआ बैल--संज्ञा पुं० [हिं० **अड़ुआ+बैल**] १. बिना बधिया किया हुआ बैल। साँड़। २. बहुत बड़े अंडकोशवाला आदमी जो उसके बोझ से चल न सके। ३. सुस्त आदमी।

अँड़ुवा†--वि० दे० 'अँड़ुआ'।

अँड़ुवारी--संज्ञा स्त्री० [सं० **अण्डज > अंडअ > अंडव > अँडउ + वारी** > एक प्रकार की बहुत छोटी मछली।

अँतड़ी--संज्ञा स्त्री० [प्रा०, अप० **अन्तडी**] आँत। नली। दे० 'आँत'।

मुहा०--**अँतड़ी टटोलना**=१. भूख को समझना। उ०--जोरू टटोले गठड़ी, माँ टटोले अँतड़ी (कहावत)। २ रोग की पहचान के लिये पेट को दबाकर देखना। **अँतड़ी जलना**=पेट जलना। बहुत भूख लगना। **अँतड़ी गले में पड़ना**=किसी आपत्ति में फँसना। संकटग्रस्त होना। **अँतड़ियों का बल खोलना**=बहुत दिन के बाद भोजन मिलने पर खूब पेट भर खाना। **अँतड़ियों को मसोसकर रह जाना**=भूख की कठिन तकलीफ सहना। **अँतड़ियों में आग लगना**=दे० 'अँतड़ी जलना'। **अँतड़ियों में बल पड़ना**=अँतड़ियों का ऐंठना या दुखना। पेट में दर्द होना। उ०--हँसते हँसते अँतड़ियों में बल पड़ गए। (शब्द०)।

अँतर[1]--संज्ञा पुं० [हिं० **अंतर**] दूरी। अंतर। उ०--आरोपित हार घणो थियो अँतर उरस्थल कुंभस्थल आज।--बेलि० दू०, ९४।

अँतर[2]‡--संज्ञा पुं० दे० 'इत्र'।

अँतरजामी(पु)--वि० दे० 'अंतरजामी'। उ०--कमल नैन करुनामय सकल अँतरजामी। विनय कहा करै सूर कूर कुटिल कामी।--सूर०, १।१२४।

अँतरधान(पु)--वि० दे० 'अंतरधान'। उ०--ह्वै अंतरधान हरि मोहिनी रूप धरि जाइ बन माँहि दीन्हें दिखाई।--सूर०, ८।१०।

अँतरपट(पु)--संज्ञा पुं० [सं० **अन्तरपट**] १. ओट। आड़। उ०--सीय भीख रावन कहँ दीन्हीं। तूं असि निठुर अँतरपट कीन्हीं।--जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० ३२९। २. छिपाव। दुराव। उ०--तासौं कौन अँतरपट जो अस पीतम पीउ।--जायसी ग्रं०, पृ० १३८। ३. कपड़मिट्टी। कपड़ौटी। उ०--का पूछौ तुम धातु निछोही, जो गुरु कीन्ह अँतरपट ओही।--जायसी (शब्द०)।

अँतरा[1]†--संज्ञा पुं० [सं० **अन्तरा**] १. अंभा। नागा। अतर। बीच।

क्रि० प्र०--**करना**। --**डालना**। --**पड़ना**।

२. वह ज्वर जो एक दिन नागा देकर आता है। क्रि० प्र०--उ०--आना उसे अँतरा आता है। ३. कोना।

अँतरा[2]†--वि० एक बीच में छोड़कर दूसरा।

विशेष--विशेषण में इसका प्रयोग साधु भाषा में केवल 'ज्वर' शब्द के साथ और प्रांतीय भाषाओं में कालसूचक शब्दों के साथ होता है; जैसे, अँतरा ज्वर। अँतरे दिन।

यौ०--**अँतरे खोतरे**=बीच में नागा करते हुए। दूसरे तीसरे। उ०--अँतरे खोतरै डंडै करै, तालु नहाय ओस माँ परै। दैव न मारै अपुइ [न] इ मरै।--घाघ०, पृ० ४७।

अँतराना[1](पु)†--क्रि० स० [सं० **अन्तर से नाम०**] १. अलग करना। जुदा करना। २. भीतर करना। भीतर ले जाना।

अँतराना[2](पु)--क्रि० अ० अंतर या भेद डालना। फर्क डालना। उ०--हौं हौं कहत धोख अँतराहीं। ज्यौं भा सिद्ध कहाँ परिछाहीं।--जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० २८४।

अँतरिख(पु)--संज्ञा पुं० दे० 'अंतरिख'। उ०--चंद सुरुज औ नखत तराईं। तेहि उर अँतरिख फिरै सवाईं।--जायसी ग्रं०, पृ० २२९।

अँतरिछ(पु)--संज्ञा पुं० दे० 'अंतरिच्छ'। उ०--जाकी कुरिया अँतरिछ छाई। सो हरिचंद देखल नहि जाई।--कबीर बी०, पृ० १८।

अँतरी†--संज्ञा स्त्री० दे० 'अँतड़ी'।

मुहा०--**अँतरी का बल खोलना**=जी भर खाना। पेट भर खाना। कड़ी भूख मिटाना। **अँतरियाँ जलना**=जोरों की भूख लगना। **अँतरियों में आग लगना**= दे० 'अँतरियाँ जलना'।

अँतरीखा(पु)†--संज्ञा पुं० दे० 'अंतरिक्ष'--१'। उ०--बहुतक फिरा करहिं अँतरीखा। अहे जो लाख भए ते लीखा।--पदु०, पृ० १२०।

अँतरौटा--संज्ञा पुं० [सं० **अन्तरपट**] महीन साड़ी के नीचे पहनने का कपड़ा। वह कपड़े का टुकड़ा जिसे स्त्रियाँ इसलिये कमर में लपेट लेती हैं जिसमें महीन साड़ी के ऊपर से शरीर न दिखाई दे। अस्तर। छनना। उ०--चोली चतुरानन ठग्यो अमर उपरना राते। अँतरौटा अवलोकि कै असुर महा मद माते (हो)।--सूर०, १।४४।

अँतहकरण(पु)--संज्ञा पुं० दे० 'अंतहकरण'। उ०--वर नारि नेत्र निज वदन विलासा, जाणियौ अँतहकरण जई।--बेलि दू० १७२।

अँत्रिख(पु)† --संज्ञा पुं० [सं०**अन्तरिक्ष**] आकाश। अंतरिक्ष। उ०--दूजी अमर बेलि जग आई। जहाँ तहाँ अँत्रिख लपटाई।--चित्रा०, पृ० १४२।

अँथऊ†--संज्ञा पुं० दे० 'अथऊ'।

अँथवना(पु)--क्रि०अ०दे० 'अथवना'। उ०--केइँ यह बसत बसंत उजारा। गा सो चाँद अँथवा लै तारा।--जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० २५५।

अँदरसा--संज्ञा पुं० [फ़ा० **अंदर**+सं० **रस**, अथवा सं० **अन्न**+**रस**] एक प्रकार की मिठाई। उ०--सुंदर अति सरस अँदरसे। ते घृत दधि मधु मिलि सरसे।--सूर०, १०।१८३।

विशेष--यह मिठाई चौरेठे या पिसे हुए चावल की बनती है। चौरेठे को चीनी के कच्चे शीरे में डालकर थोड़ा घी देकर पकाते हैं। जब वह गाढ़ा हो जाता है तब उतारकर दो दिन तक रखकर उसका खमीर उठाते हैं। फिर उसी की छोटी छोटी टिकिया बनाकर उनपर पोस्ते का दाना लपेटकर उन्हें घी में निकालते हैं।

अंदली†—वि० [प्रा० अंधल] अंधा। उ०—यहाँ बी अँदली आखिर कुँ बी अँदले।—दक्खिनी० पृ० ४३३।

अँदाज(पु)—संज्ञा पुं० दे० 'अंदाज'। उ०—एकै जीव जीवत हैं उमर अँदाज भर एकै जीव होतै हिंसु होत चटपट है।—ठाकुर० पृ० १३।

अँदाना(पु)—क्रि० स० [सं० अंद या अदि = बाँधना, बंधन करना] बचाना। बरकाना। उ०—परिवा नवमी पुरुब न भाए। दूइज दसमी उतर अँदाए।—जायसी (शब्द०)।

अँदुआ—संज्ञा पुं० [सं० अन्दुक, प्रा० अंदुया] हाथियों के पिछले पैरों में डालने के लिये लकड़ी का बना एक काँटेदार यंत्र।

विशेष—यह दो धनुषाकार लकड़ियों का बना होता है जिनके मुँह एक ओर कील से मिले रहते हैं। इसे हाथी के पैर में डालकर दूसरे छोरों को भी बाँध देते हैं।

अँदेशा—संज्ञा पुं० [फा० अंदेशह्] आशंका। खटका। उ०—मोह कैसा ? छोह कैसा ? गुप्त पथ का क्या अँदेशा।—क्वासि, पृ० १०।

अँदेस(पु)†—संज्ञा पुं० दे० 'अँदेशा'। उ०—जिस करमनि करि अधिक कलेस। फल अति तुच्छ मिटै न अँदेस।—नंद० ग्रं०, पृ० ३०१।

अँदेसवा†—संज्ञा पुं० दे० 'अँदेशा'। उ०—तुम बिन प्रान रहै वा नाहीं यह जिय मंहि अँदेसवा रे।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ३७४।

अँदोरा(पु)†—संज्ञा पुं० दे० 'अँदोर'। उ०—घरी एक सुठि भयउ अँदोरा। पुनि पाछे बीता होइ रोरा।—जायसी (शब्द०)।

अँदोल(पु)—संज्ञा पुं० [प्रा० अंदोल = झूलना] आनंद। प्रसन्नता। उ०—चहल पहल सी देखि कैं मान्यो बहुत अँदोल।—सुंदर० ग्रं०, भा० १, पृ० ३१६।

अँदोलना(पु)—क्रि० स० [सं० अन्दोलन] हिलाना। डुलाना। उ०—लगि पिपास स्रम अंग वारि पिन्नो अँदोलि कर।—पृ० रा०, ११५५६।

अँधकाल(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अन्ध + काल] अंधकार। अँधेरा। उ०—सूर कंचन गिरि बिचनि मनु रह्यो है अँधकाल।—सूर०, १०। १०८३।

अँधबाई(पु)—संज्ञा स्त्री० दे० 'अँधबाई'

अँधबाई(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० अन्धवायु] धूल लिए हुए वेगयुक्त पवन। ऐसी तेज हवा जिसमें गर्द के कारण कुछ सूझ न पड़े। आँधी तूफान। उ०—श्याम अकेले आँगन छाँड़े आपु गई कछु काज घरै। यहि अंतर अँधबाई उठी इक गरजत गगन सहित घहरै।—सूर (शब्द०)।

अँधरा[1](पु)†—संज्ञा पुं० [सं० अन्ध, प्रा० अंधरअ] अंधा। नेत्रविहीन प्राणी। दृष्टिरहित जीव।

अँधरा[2](पु)†—वि० अंधा। बिना आँख का। दृष्टिरहित।

अँधरी[1]†—संज्ञा स्त्री० [हिं० अँधरा + ई (प्रत्य०)] अंधी। अंधी स्त्री।

अँधरी[2]†—संज्ञा स्त्री० [सं० आधारित, प्रा० आधारिअ > आधरी > अँधरी] पहिए की पुट्टियों अर्थात् गोलाई को पूरा करनेवाली धनुषाकार लकड़ियों की चूल जो दूसरी पुट्टी के भीतर ऐसे घुसी रहती है कि ऊपर से मालूम नहीं देती।

अँधला(पु)—संज्ञा पुं० [प्रा० अंधल] दे० 'अँधरा'—१। उ० (क) तिवैं उद्र महि दुख सहै अँधलउ कालि ग्रसीतु।—प्राण०, पृ० २१०। (ख) कौने भ्रम भूले अँधला।—सुंदर० ग्रं०, भा० २, पृ० ६०६।

अँधवायु(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अन्धवायु] आँधी। उ०—तेरो सुत अँधवायु उठायो।—ब्रज०, पृ० ३८।

अँधवाह(पु)—संज्ञा पुं० दे० 'अँधबाई'। उ०—धावहु नंद गोहारि लगौ किन तेरौ सुत अँधवाह उड़ायौ।—सूर०, १०।७७।

अँधार[1](पु)†—संज्ञा पुं० [सं० अन्धकार, प्रा० अंधार] अंधकार। तम। अँधेरा। अँधियारा। उ०—मृगनैनी कामिनि बिना लागत सबै अँधार।—ब्रज० ग्रं०, पृ० ६६।

अँधार[2](पु)†—संज्ञा पुं० [सं० आधार = सहारा] रस्सी का जाल जिसमें घास भूसा आदि भरकर बैल की पीठ पर लादते हैं।

अँधारी(पु)—संज्ञा स्त्री० आँधी। तेज हवा। तूफान (डिं०)।

अँधिअर(पु)—वि० [सं० अन्धकार, प्रा० अंधयार] अँधेरा। अंधकारमय। उ०—हिएँ की जोति दीप वह सूझा। यह जो दीप अँधिअर भा बूझा।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० २०४।

अँधिआरा(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अंधकार, प्रा० अंधयार] अंधकार। अँधेरा। उ०—बरषि धूरि कीन्हेसि अँधियारा।—मानस, ६।५१।

अँधिआरी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० अन्ध + कारी] आँख बंद करने का आवरण या पट्टी। अँधेरी। उ०—छलि आँखिन्ह अँधिआरी मेली। धक्कारहिं गडदार सहेली।—चित्रा०, पृ० २०२।

अँधियरवा(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं० अँधियर + वा (प्रत्य०)] दे० 'अँधियार'। उ०—अँधियरवा में ठाढ़ि गोरी का करलू। जब लगि तेल दिया में बाती, ये हीं अँजोरवा बिछाय घलतू।—संत वानी०, भा० २, पृ० २३।

अँधियरिया(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं० अँधियर + इया (प्रत्य०)] १. अँधेरी रात। २. अँधेरा। तम। उ०—खुली किवरिया मिटि अँधियरिया।—धरम०, पृ० ३३।

अँधियार[1]†—संज्ञा पुं० [सं० अन्धकार; प्रा० अंधयार] [स्त्री० अँधियारी] अँधेरा। अंधकार। तम। उ०—पसरि परयौ अँधियार सकल संसार घुमड़ि घिरि।—नंद ग्रं०, पृ० ४।

अँधियार[2]—वि० प्रकाशरहित। अँधेरा। तमाच्छादित। दे० 'अँधेरा'। उ०—भय उदधि जमलोक दरसै निपट ही अँधियार।—सूर०, १।८८।

अँधियारक टोला—संज्ञा पुं० [सं० अँधियारक + हिं० टोला] अंधक नामक यदुवंशियों की एक शाखा का निवासस्थान। अंधकों का निवास।

अँधियारा[1](पु)†—संज्ञा पुं० [सं० अन्धकार, प्रा० अंधयार] १. अँधेरा। अंधकार। तम। २. धुंधलापन धुंध।

अँधियारा[2](पु)†—वि० १. प्रकाशरहित। अँधेरा। तमाच्छादित। उ०—पक्ष अँधियारा जगत का जब मनुज अघ में निरत था।—हंस०, पृ० ११। २. धुंधला। ३. उदास। सूना।

मनहूस ।उ०—बीर कीर, सिय राम लखन बिनु लागत जग अँधियारो ।—तुलसी ग्रं०, भा० २, पृ० ३५९ ।

अँधियारी¹ ⓟ†—संज्ञा स्त्री० [हिं० अँधियार] १. अंधकार । उ०—जब करि थक्यों सरलौं नहिं एकों नाहिं मिटी अँधियारी ।—जग० श०,भा० २, पृ० १०८ । २. अधकार फैला देनेवाली आँधी । उ०—अँधियारो आई तहँ भारी । दनुज सुता तिहि तें न निहारी ।—सूर०, ६।१७४ । ३. दे० 'अंधिआरी' । उ०—जोबन गज अपसर मद कीन्हें । अब न रहै अँधियारी दीन्हें । चित्रा०, पृ० १६४ ।

अँधियारी²—वि० स्त्री० अंधकारपूर्ण । उ०—अँधियारी भादौं की रात ।—सूर०, १०।१२ ।

अँधियारी कोठरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० अँधियारी+कोठरी] १. अँधेरा छोटा कमरा । २. पालकी का अगला कहार जब रास्ते में पानी देखता है तब पीछेवाले कहारों को सावधान करने के लिये 'अँधियारी कोठरी' कहता है । ३. पेट । उदर । गर्भस्थान । कोख । धरन ।

अँधियाली—वि० दे० 'अँधियारी'² ।—उ०—आधी रात का समा, बड़ी अँधियाली रात, सब ओर सन्नाटा, इसपर बादलों की घेरघार, पसारने पर हाथ भी न सूझता ।—ठेठ, पृ० ३२ ।

अँधुला ⓟ—वि० दे० 'अँधरा' । उ०—जैसे अँधुले भ्रमत खै कालु । —प्राण०, पृ० १८० ।

अँधेर—संज्ञा पुं० दे० अँधेरा¹ । उ०—वहि देसवा में नित्त पूर्निमा, कबहु न होइ अँधेर ।—कबीर० श०,भा० २, पृ० ६४ ।

अँधेरना ⓟ—क्रि० स० [अंधेर+ना] अँधेरा करना । अंधकारमय करना । तमाच्छादित करना । उ०—अरी, खरी सटपट परी, बिधु आधै मग हेरि । संग लगैं मधुपनु लई भागन गली अँधेरि ।—बिहारी र०, दो० ४५६ ।

अँधेरा¹—संज्ञा पुं० [सं० अन्धकार, प्रा० अंधयार] १. अंधकार । तम । प्रकाश का अभाव । उजाले का विलोम । उ०—मौन, नाश, विध्वंस, अँधेरा शून्य बना जो प्रकट अभाव ।—कामायानी, पृ० १८ । २. धुंधलापन । धुंध । उ०—उसकी आँखों में अँधेरा छाया रहता है (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—करना ।—छाना ।—दौड़ना ।—पड़ना ।—फैलना । —होना ।

मुहा०—अँधेरा छोड़ना = प्रकाश के सामने से हट जाना । उजाला छोड़ना ।

३. छाया परछाईं । उ०—चिराग के सामने से हट जाओ, तुम्हारा अँधेरा पड़ता है (शब्द०) । ४. उदासी । शोक । उ०—उसके मरते ही समाज में अँधेरा छा गया (शब्द०) ।

अँधेरा²—वि० अंधकारमय । प्रकाशरहित । तमाच्छादित ।

यौ०—अँधेरा कुप = कूएँ की तरह अँधेरा । बहुत गहरा अँधेरा । अँधेरा पाख, अँधेरा पक्ष = कृष्ण पक्ष । बदी । अँधेरे उजाले, अँधेरे उजेले = अबेर सबेर । समय कुसमय । वक्त बेवक्त । उ०—अच्छा जमादार अँधेरे उजाले समझ लूँगा ।—फिसाना०, पृ० ४८६ । अँधेरे मुहँ,मुँह अँधेरे = सूर्योदय के पहले जब मनुष्य एक दूसरे का मुँह अच्छी तरह न देख सकते हों । बड़े तड़के । बड़े सबेरे ।

मुहा०—अँधेरे घर का उजाला = (१) अत्यंत कांतिमान । अत्यंत सुंदर । (२) शुभ लक्षणवाला । सुलक्षण । कुलदीपक । वंश की मर्यादा बढ़ानेवाला । (३) इकलौता बेटा । अँधेरे घर का चिराग या दिया = दे० 'अँधेरे घर का उजाला' ।

अँधेरा उजाला—संज्ञा पुं० [हिं० अँधेरा + उजाला] एक खिलौना जो श्वेत और रंगीन कागजों से बनता है । रात दिन का खिलौना ।

विशेष—कागज को एक विशेष प्रकार से कई तहों में लपेटकर बनाया हुआ एक प्रकार का खिलौना जिसके भीतरी दो भाग सादे और दो भाग रंगीन होते हैं और जो हाथ की चारों उँगलियों की सहायत से खोला और मूँदा जाता है । इससे कभी तो उसका सादा अंश दिखाई पड़ता है और कभी रंगीन ।

अँधेरा गुप—संज्ञा पुं० [हिं० अँधेरा + कूप] इतना अधिक अंधकार कि कुछ दिखाई न दे । घोर अंधकार, जैसे—इस कोठरी में तो बिलकुल अँधेरा गुप है (शब्द०) ।

अँधेरिया†—संज्ञा स्त्री० [सं० अन्धकार] १. अंधकार । अँधेरा । उ०—झलकि चमकि तहँ रूप बिराजै मिटिगै सकल अँधेरियाँ री ।—जग० श०, भा० २, पृ० १०६ ।

अँधेरी¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० अँधेरा + ई] [पु० अँधियरिया] १. अंधकार । तिमिर । प्रकाश का अभाव । तम । अंधियारी । उ०—मालती कुंज में मिलती चंद्रिका अँधेरी जैसे ।—आँसू, पृ० ४८ । २. काली रात । अंधकार भरी रात्रि ।

क्रि० प्र०—छाना ।—झुकना ।—दौड़ना ।—फैलना ।

३. आँधी । अंधड़ । ४. घोड़ों और बैलों की आँख पर डाला जानेवाला पर्दा । अंधारी ।

क्रि० प्र०—डालना ।—देना ।

मुहा०—अँधेरी डालना, अँधेरी देना = (१) किसी की आँखों को मूँदकर उसकी दुर्गति करना । इसी को कंबल ओढ़ाना भी कहते हैं । (२) आँख में धूल डालना । धोखा देना ।

अँधेरी²—वि० प्रकाशरहित । अंधकारयुक्त । बिना उजेले की । उ०—रजनी अँधेरी है न सूझति हथेरी रंच चोर करे फेरी लखि सुख ना लुकोवै तूँ ।—दीन० ग्रं०, पृ० १३८ ।

यौ०—अँधेरी कोठरी = १. पेट । गर्भ । कोख । धरन । २. गुप्त भेद । रहस्य ।

मुहा०—अँधेरी कोठरी का यार = गुप्त प्रेमी । जार ।

अँधोटी—संज्ञा स्त्री० [सं० अन्ध + पटी, प्रा० अंधवटी, अँधोटी, अँधोटी] बैल या घोड़े की आँख बंद करने का ढक्कन या परदा ।

अँधौटा—संज्ञा पुं० [सं० अन्ध + पट्टक, प्रा० अंधवट्टअ] दे० 'अँधोटी' । उ०—रहट बिसह एह मूढ़ मन दिएँ अँधौटा बैल ।—चित्रावली, पृ० १७५ ।

अँधौरी†—संज्ञा स्त्री० दे० 'अम्हौरी' ।

अँध्यार ⓟ†—संज्ञा पुं० दे० अँधियार । उ०—दीपक हजारन अँध्यार लुनियतु हैं ।—ब्रजमाधुरी० पृ० ३०८ ।

अँध्यारी—¹ ⓟ†—संज्ञा स्त्री० दे० 'अँधियारी' । उ०—भई एक बार अपारं अँध्यारी ।—हम्मीर रा०, पृ० २० ।

अँध्यारी२--वि० अंधकारयुक्त। अँधेरी। उ०--भादौं की अधराति अँध्यारी।--सूर०, १०।११।

अँब(पु)--संज्ञा पुं० [सं० आम्र, प्रा० अंब] आम। उ०--तहाँ सु अँब तर रिष्ष इक क्रम तम अंग सुरंग।--पृ० रा०, ६।१७।

अँबराई†--संज्ञा स्त्री० [सं० आम्र=आम+राजी=पंक्ति, प्रा० अंब+राई] आम का बगीचा। आम की बारी।

अँबराउँ(पु)--संज्ञा पुं० दे० 'अँबराई'। उ०--घन अँबराउँ लाग चहुँ पासा।--जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० २७।

अँबराव(पु)--संज्ञा पुं० दे० 'अँबराई'। उ०--अस अँमराव सघन बन, बरनि न पारौं अंत।--जायसी (शब्द०)।

अँबली--संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की गुजराती कपास जो ढोलेरा नामक स्थान में होती है।

अँबवा†--संज्ञा पुं० [सं० आम्र, प्रा० अंब हिं० अँब+वा (प्रत्य०)] आम। आम्र। उ०--यहाँ अँबवा तरे रुक एक पल विश्राम लेना।--ऊंडा०, पृ० १६।

अँबा(पु)--संज्ञा पुं० दे० 'आँवा'। उ०--ब्रज करि अँबा जोग ईंधन करि सुरति आगि सुलगाए।--सूर०, १०।३७८१।

अँबाड़ा--संज्ञा पुं० दे० 'आमड़ा'।

अँबारी--संज्ञा स्त्री० [अ० अमारी] दे० 'अंबारी--१'। उ०--कलित करिवरन्हि परी अँबारीं।--मानस, १।३००।

अँबिया--संज्ञा स्त्री० [सं० आम्र; प्रा० अंब+इया (प्रत्य०)] आम का छोटा कच्चा फल जिसमें जाली न पड़ी हो। टिकोरा। केरी। अमिया।

विशेष--इसकी खटाई कुछ हल्की होती है। इसे लोग दाल में डालते तथा चटनी और अचार भी बनाते हैं।

अँबिरती(पु)--संज्ञा स्त्री० [सं० अमृतिका, प्रा० अमिरितिआ] तार का एक पुराना बाजा। अमृत कुंडली। उ०--बीन पिनाक कुमाइच कही। बाज अँबिरती अति गहगही।--पदमावत, पृ० ५६२।

अँबिरथा(पु)†--वि० [सं० वृथा+अँ (उच्चा०) (पु) बिरथा] वृथा। व्यर्थ। बेफायदा। फजूल। उ०--प्रेम कि आगि जरै जो कोई। ताकर दुख न अँबिरथा होई।--जायसी (शब्द०)।

अँबिलि(पु)--संज्ञा स्त्री० [सं० अम्लिका; प्रा० अंबिलिया] इमली का वृक्ष। उ०--कोइ अँबिलि कोई महुव खजूरी।--जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० २४७।

अँबुआ(पु)†--संज्ञा पुं० [हिं० अंब+उवा (प्रत्य०)] आम्र। आम। उ०--मौरे अँबुआ अरु द्रुम बेली मधुकर परिमल भूले।--सूर० (राधा०), २३६१।

अँभौरी†--संज्ञा स्त्री० दे० 'अम्हौरी'।

अँमर(पु)--संज्ञा पुं० दे० 'अंबर--६'। उ०--दाहिने अतर और अँमर तमोर लीन्हें। सामुहे लपेटे लाज भोजन के थार गहें।--भिखारी० ग्रं०, भा० १, पृ० १६८।

अँवदा(पु)--†वि०--[सं० *अवाध; (पु)अँवधा] १. नीचे की ओर मुँहवाला। उ०--आकाशे अँवदा कुआ पाताले पनिहार।--कबीर (शब्द०)। २. औंधा। उलटा।

अँवधाना(पु)--क्रि० स० [(पु) अँवधा से नाम०] औंधा करना। उलटा करना। उ०--सुरत मनोज देखि कै हारा। निज अँवधाय सो रख्यौ नगारा।--हिं० प्रेमा०, पृ० २५५।

अँवरा†--संज्ञा पुं० दे० 'आँवला'। उ०--कोई अँवरा कोई बेर करौंदा।--जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० २४७।

अँवराई(पु)†--संज्ञा स्त्री० दे० 'अँबराई'। उ०--संत सभा चहुँ दिसि अँवराई।--मानस, १।३७।

अँवलउ--वि० [सं० प्रा० अबल] अस्वस्थ। व्यथित। उ०--सज्जण चाल्या हे सखी पड़हउ वाज्यउ ढ्रंग। काँही रली बधामणाँ, काँही अँवलउ अंग।--ढोला०, दू० ३५१।

अँवला†--संज्ञा पुं० दे० 'आँवला'।

अँवली१--संज्ञा स्त्री० [सं० आमलकी, प्रा० आमलई] छोटा आँवला। उ०--पक गये सुनहले मधुर बेर, अँवली से तरु की डाल जड़ीं।--ग्राम्या, पृ० ३६।

अँवली--(पु)२ वि० [?] उलटी। उ०--लगन लगी जब और प्रीत छी, अब कुछ अँवली रीति।--संत० सार०, भा० २, पृ० ७४।

अँवहलदी--संज्ञा स्त्री० दे० 'आमाहल्दी'। उ०--आलूचा अमिली अँवहलदी, आल आँवरा लाल अफलदी।--सुजान०, पृ० १६१।

अँवा--(पु)†--संज्ञा पुं० दे० 'आँवा'। उ०--अँवा अगिनि जिमि अंतर जरै।--नंद० ग्रं०, पृ० १३३।

अँवारना(पु)--क्रि० स० [हिं० वारना] न्योछावर करना। वारना। उ०--आय रामियो शरण तुम्हारी। पल पल ऊपर प्राण अँवारी।--राम० धर्म०, पृ० ३२२।

अँविरथा--(पु)†--वि० दे० 'अँबिरथा'। उ०--उघर न नैन तुमहिं बिनु देखे। सबहि अँविरथा मोरे लेखे।--जायसी ग्रं०, पृ० ३५७।

अँस(पु)--संज्ञा पुं० [सं० अंस] स्कंध। कंधा। उ०--वाम भजहिं सखा अँस दीन्हें, दच्छिन कर द्रुम डरियाँ।--सूर०, १०।४७०।

अँसुआ(पु)‡--संज्ञा पुं० [सं० अश्रु, प्रा० अंसु, अंसुय] आँसू। अश्रु। उ०--तन काँपे लोचन भरे अँसुआ झलके आय।--श्यामा०, पृ० १२८।

अँसुपात(पु)--संज्ञा पुं० [सं० अश्रुपंक्ति] आँसुओं की कतार। आँसू की पंक्ति या पाँत। उ०--इतनी सुनत सिमिटि सब आये, प्रेम सहित धारे अँसुपात।--सूर०, ६।३८।

अँसुवा(पु)†--संज्ञा पुं० दे० 'अँसुआ'। उ०--यह छवि निरखि रही नँदरानी अँसुवा ढरि ढरि परत करोटनि।--सूर०, १०।१८७।

अँसुवाना(पु)--क्रि० स० [हिं० आँसू से नाम०] अश्रुपूर्ण होना। डबडबा आना। आँसू से भर जाना। उ०--उनहीं बिन ज्यों जलहीन ह्वै मीन सी आँखि मेरी अँसुवानी रहैं।--रसखान (शब्द०)।

अँहड़ा†--संज्ञा पुं० [देश०] तौलने का बटखरा।

अँहस--संज्ञा पुं० [सं० अंहस्] दे० 'अंह'।

अँहुड़ी--संज्ञा स्त्री० [देश०] एक लता जिसमें छोटी छोटी गोल पेटे की फलियाँ लगती हैं। इन फलियों की तरकारी बनती है और इनके बीज दवा में पड़ते हैं। बाकला।

अ¹—उप० संज्ञा और विशेषण शब्दों के पहले लगकर यह उनके अर्थों में फेरफार करता है। जिस शब्द के पहले यह लगाया जाता है उस शब्द के अर्थ का प्रायः अभाव सूचित करता है; जैसे, अकर्म, अन्याय, अचल। कहीं कहीं यह अक्षर शब्द के अर्थ को दूषित भी करता है जैसे—अभागा, अकाल, अदिन। स्वर से आरंभ होनेवाले शब्दों के पहले जब इस अक्षर को लगाना होता है तब उसे 'अन्' कर देते हैं; जैसे, अनंत, अनेक अनीश्वर। पर हिंदी में कभी कभी व्यंजन के पहले भी 'अन्' के 'न्' को सस्वर 'न' करके 'अन' लगा देते हैं; जैसे, अनबन, अनरीति, अनहोनी आदि।

संस्कृत वैयाकरणों ने इस निषेधसूचक उपसर्ग का प्रयोग इन छह अर्थों में माना है: (१) सादृश्य; यथा—अब्राह्मण = ब्राह्मण के समान आचार रखनेवाला अन्य वर्ण का मनुष्य। (२) अभाव; यथा—अफल = फलरहित; अगुण = गुणरहित। (३) अन्यत्व; यथा—अघट = घट से भिन्न, पट आदि। (४) अल्पता; यथा—अनुदरी कन्या = कृशोदरी कन्या। (५) अप्राशस्त्य। बुरा; यथा—अभाग। अधन = बुरा धन। (६) विरोध; यथा—अधर्म = धर्म के विरुद्ध आचरण। अन्याय, आदि। हिंदी में इसका प्रयोग कुछ लोग स्वार्थिक रूप में भी मानते हैं, जैसे अलोप = लोप।

अ²—संज्ञा पुं० [सं०] १. विष्णु। २. शिव (को०)। ३. ब्रह्मा। ४. विराट। ५. इंद्र। ६. वायु। ७. कुबेर। ८. अग्नि। ९. विश्व। १०. सरस्वती। ११. अमृत। १२. कीर्ति। १३. ललाट। १४. प्रणव (को०)। १५. यम (को०)। १६. प्राण (को०)।

अ³—वि० १. रक्षक। २. उत्पन्न करनेवाला।

अइ(पु)—सर्व० [सं० एतत्; अप० एइ, एअ] ये। उ०—करि कइराँ ही पारणउ अइ दिन यूँहीं ठेलि।—ढोला०, दूहा०, ४३०।

अइपन(पु)†—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'ऐपन'। उ०—पउअनाल अइयपन भल भेल।—विद्यापति, पृ० २२१।

अइया†—संज्ञा स्त्री० दे० 'ऐया'।

अइल†—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'अइला'।

अइला†—संज्ञा पुं० [देश०] चूल्हे का मुँह या छेद।

अइस(पु)†—वि० [सं० ईदृश, अप० अइस] ऐसा। इस प्रकार का।

अइसइ(पु)†—क्रि० वि० [सं० ईदृशो हि] ऐसे ही। इस प्रकार ही।

अइसन†—वि० [सं० ईदृश्; अप० अइस] ऐसा। इस प्रकार का।

अइसना(पु)†—वि० [अप० अइश] दे० 'अइसन'। उ०—अइसना देह गेह ना सोहावये।—विद्यापति, पृ० ११०।

अइसा†—वि० दे० 'ऐसा'।

अइसिउँ(पु)—वि० [सं० ईदृशी अपि] ऐसी भी। इस प्रकार का भी

अइहइ(पु)†—वि० [अप०] [सं० ईदृश] ऐसा। इस प्रकार का। उ०—मृगरिपु कटि सुंदर वणी, मारू अइहइ घाट।—ढोला०, दू० ४६६।

अईगई(पु)†—वि० [हिं० अई + गई] दे० 'आई गई'।

मुहा०—अई गई करना = 'आई गई करना'। उ०—चित आन की आन कहीं चहै पै हित जान अई गई कीजतु हैं।—ठाकुर०, पृ० ३।

क्रि० प्र०—करना।

अउँध†—वि० दे० 'औंधा'। उ०—फिरहु का फूले फूले फूले। जब दस मास अउँध मुख होते सो दिन काहे भूले।—कबीर बी०, पृ० ५४।

अउँरा(पु)†—संज्ञा पुं० दे० 'औंरा'। उ०—कोइ अउँरा कोइ राइ करउँदा।—पदुमा०, पृ० ८५।

अउ¹—संयो० अव्य० [सं० अपर या अवर] और। तथा। उ०—जस हथ्थ भुगुति अउ मुकुति दोउ कहि नरहरि नित संभरिय।—अकबरी०, पृ० ७४।

अउ—²(पु)—सर्व १. वह। उ०—सारीखी जोड़ी आ जुड़ी नारी अउ नाह।—ढोला०, दू० ६। २. यह। उ०—राजा राणी सूँ कहइ कीजइ अउ वीमाँह।—ढोला०, दू० ६।

अउखतु(पु)—संज्ञा पुं० दे० 'औषध'। उ०—ऐसा अउखतु खाहु गवाँरा। जितु खाधे तेरे जाँहि बिकारा।—प्राण०, पृ० २७४।

अउगाह(पु)†—संज्ञा पुं० दे० 'अवगाह'। उ०—नयनहिं जानउँ नीअरे कर पहुँचत अउगाह।—पदुमा०, पृ० ५४।

अउगुण(पु)—संज्ञा पुं० दे० 'अवगुण'। उ०—सजण मिल्या मण ऊमग्यउ, अउगुण सहि गलियाह।—ढोला०, दू० ५६०।

अउझक(पु)†—क्रि० वि० दे० 'औझक'। उ०—मारू दीठी अउझकइ जाणि खिवी घण संझ।—ढोला०, दू० ८६।

अउठा—संज्ञा पुं० [देश०] नापने की दो हाथ की एक लकड़ी जिसे जुलाहे लिए रहते हैं।

अउत¹(पु)—वि० दे० 'अऊत'। उ०—नानक लेखै माँगीऐ अउत जणेंदी जाय।—प्राण०, पृ० २१८।

अउत²(पु)—वि० [सं० अयुक्त] अनुचित। अयुक्त। उ०—अउत होइ घरि छोड़हे राय।—बी० रा०, पृ० ४९।

अउधान(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० अवधान] गर्भाधान। गर्भस्थिति।

अउधू(पु)†, अउधूत(पु)†—संज्ञा पुं० दे० 'अवधूत'।

अउपन(पु)†—संज्ञा पुं० [प्रा० ओप्पा] सान पर घिसना। सान देना।

अउर(पु)†—अव्य० दे० 'और'। उ०—मकरध्वज वाहणि चढ्यौ अहिमकर उत्तर वाउ वाए अउर।—बेलि०, दू० २२२।

अउरउ(पु)†, अउरौ(पु)†—क्रि० वि० [सं० अपर + अपि] और भी।

अउलग(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० *अपालग प्रा० *अवलग्ग, अप० *अउलग] प्रवास। दूर गमन।

अउलगना(पु)†—क्रि० सं० [अउलग से नाम०] प्रवास करना। यात्रा करना। उ०—ईडर की घर अउलगउँ, जइ तूँ कहइ तु जाँह।—ढोला०, दू० २२४।

अउहेर†, अउहरी†—संज्ञा स्त्री० [सं० अवहेला] अवहेलना। अपमान।

अउहेरना†—क्रि० अ० [हिं० अवहेर से नामधातु] अपमान करना। तिरस्कार करना।

अऊत¹(पु)—वि० [सं० अपुत्र, प्रा० अपुत्त, अउत्त] निपूता। बिना पुत्र का। निःसंतान। उ०—(क) धन्य सो माता सुंदरी, जिन जाया वैष्णव पूत। राम सुमिरि निर्भय भया, और सब गया अऊत।—कबीर (शब्द०)। (ख) गये हुये माँगन को पूत। यहु फल दीनो सती अऊत।—अर्ध०, पृ० ६।

अऊत²(पु)—संज्ञा पुं० अपुत्रत्व। निपुत्रता। उ०—यह ताकौं निस्तारिहै, इनते जाइ अऊत।—सुंदर ग्रं०, भा० १, पृ० १८३।

अऊलना[1]—क्रि० अ० [सं० उल् = जलना] १. जलना। गरम होना। २. गरमी पड़ना। दे० 'औलना'।

अऊलना[2]—क्रिया अ० [सं० आ = अच्छी तरह + शूल, प्रा० सूल, हिं० हूलना] छिलना। छिदना। चुभना। उ०—छत आजु की देखि कहौंगी कहा, छतिया नित ऐसे अऊलति है।—रघुनाथ (शब्द०)।

अऋण—वि० [सं०] बिना कर्ज का। जिसपर कर्ज न हो। ऋणमुक्त।

अऋणी—वि० [सं०] जिसपर कर्ज न हो। ऋणमुक्त।

अएरना(पु)—क्रि० स० [सं० अङ्गीकरण; प्रा० अंगीअरण, हिं० अँगेरना] अंगीकार करना। अँगेरना। स्वीकार करना। धारण करना। उ०—दियौ सु सीस चढ़ाइ लै आछी भाँति अएरि। जापै सुखु चाहतु लियौ ताके दुखहिं न फेरि।—बिहारी०, पृ० ३८।

अओंध(पु)—वि० दे० 'औंधा'। उ०—अधर मंगइते अओंध कर माथ। सहए न पार पयोधर हाथ।—विद्यापति, पृ० २८३।

अओंधा(पु)—वि० दे० 'औंधा' उ०—अओंधा कमल कांति नहि पूरए हेरहू त जुग बहि जाइ।—विद्यापति, पृ० ३६।

अकंटक—वि० [सं० अकण्टक] १. बिना काँटे का। कंटकरहित। २. बाधारहित निर्विघ्न। बिना रोक टोक का। बेधड़क। उ०—समुझि काम सुख सोचहिं भोगी। भये अकंटक साधक जोगी।—मानस, १।८७। ३. शत्रुरहित। उ०—जानहिं सानुज रामहिं मारी। करौं अकंटक राज सुखारी।—मानस, २।१८६।

अकंठ—वि० [सं० अकण्ठ] १. कंठरहित। जिसे कंठ न हो। स्वरहीन। कर्कश [को०]।

अकंड—वि० [हिं० अकड़] तेज। अकड़दार। उ०—'इंशा' बदल के काफिये रख खेड़छाड़ के, चढ़ बैठ एक और बछेड़े अकंड पर।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० २७८।

अकंप—वि० [सं० अकम्प] न काँपनेवाला। स्थिर। उ०—सत्य भी शव-सा अकंप कठोर।—साकेत, पृ० १६१।

अकंपत्व—संज्ञा पुं० [सं० अकम्पत्व] १. काँपने का अभाव। न काँपने की दशा। कंपहीनता। २. बंशी बजाने में उँगलियों का एक गुण। अकंपत्व। न काँपना।

अकंपन[1]—वि० [सं० अकम्पन] [वि० अकम्पित, अकम्प्य; संज्ञा अकम्पत्व] न काँपनेवाला। स्थिर।

अकंपन[2]—संज्ञा पुं० रावण का अनुचर एक राक्षस जिसने खर के वध का वृत्तांत उससे कहा था।

अकंपित[1]—वि० [सं० अकम्पित] जो कँपा न हो। अटल। निश्चल।

अकंपित[2]—संज्ञा पुं० बौद्ध गणाधिपों का एक भेद।

अकंप्य—वि० [सं० अकम्प्य] न काँपनेवाला। हिलने या डिगनेवाला। अटल स्थिर। अचल।

अक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. पाप। पातक।

यौ०—अकहीन = पापहीन। उ०—बरबस करत विरोध हठि होन चहत अकहीन।—स० सप्तक, पृ० ४७। अकबस = पापवश। उ०—तुलसी सठ अकबस बिहठि दिन दिन कद मलीन।—स० सप्तक, पृ० ४७।

२. दुःख। ३. सर्प (को०)। ४. चिह्न (को०)।

अक[2](पु)—वि० दे० 'एक'। उ०—कहौं फकीर अक खुदा गुसाई। —घट०, पृ० ८५।

अकच[1]—वि० [सं०] बिना बाल का। गंजा। खल्वाट।

अकच[2]—संज्ञा पुं० केतुग्रह।

अकचकाना—क्रि० अ० [सं० (अक० अकस्मात्) + चक् = चकितहोना] विस्मित होना। हक्काबक्का होना। उ०—(क) युवक के कहने पर बालक भी अकचकाता हुआ बैठ गया।—छाया, पृ० १०७। (ख) वह अकचकाकर अंबपाली की ओर ताकता रह गया।—वै० न०, पृ० २५५।

अकच्छ—वि० [सं० अ = रहित + कच्छ या कक्ष = धोती, परिधान] १. नग्न। नंगा। २. व्यभिचारी। परस्त्रीगामी।

अकटुक—वि० [सं०] १. जो कटु न हो। मधुर। २. अश्रांत। अक्लांत [को०]।

अकटोटा—संज्ञा पुं० [सं० अङ्क = छाप, तिलक + देश० टोटा = कंकड़, ढेला] कंकड़, मिट्टी से तैयार किया हुआ चंदन। उ०—अकटोटा को घसि तिलक, लंबी लिये लगाया।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० १५२।

अकठोर—वि० [सं०] जो कठोर न हो। मुलायम। कोमल [को०]।

अकडम—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का तांत्रिक चक्र [को०]।

अकडमचक्र—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अकडम' [को०]।

अकडोड़ा—संज्ञा पुं० [सं० अर्क + तुंड, प्रा० अक्क + तोंड] मदार का फल। मदार की ढोंढ़ी। उ०—आँवन की हौस कैसे अकडोड़े जात है।—सुंदर०, ग्रं, भा० २, पृ० ४५७।

अकड़ंत—संज्ञा स्त्री० [हिं० अकड़ + अंत (प्रत्य)] अकड़। दर्प। घमंड। उ०—तकले की तरह बल निकल जावे। तेरे आगे जो दो करे अकड़ंत।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ६४।

अकड़[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० आ = अच्छी तरह + काण्ड = गाँठ, पोर, > अकड़ = गाँठ की तरह कड़ा] ऐंठ। तनाव। मरोड़। बल।

अकड़[2]—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. घमंड। अहंकार। शेखी।

मुहा०—अकड़ दिखाना = घमंड या शेखी दिखाना। उ०—मार खाव तो बदन झाड़कर फिर भी अकड़ दिखाओ।—प्रेमघन०, भा० २, ३०८।

२. धृष्टता। ढिठाई। ३. हठ। अड़। जिद।

अकड़ तकड़—संज्ञा स्त्री० [हिं० अकड़ + तकड़ < तगड़ा] १. ऐंठन। २. तेजी। ताव। घमंड। अभिमान। उ०—'अकड़ तकड़ उसमें बहुत सारी थी'।—इंशा०, पृ० ६१।

अकड़ना[1]—क्रि० अ० [हिं० 'अकड़ से नाम०] १. सूखकर सिकुड़ना और कड़ा होना। खरा होना। ऐंठना। जैसे, पटरियाँ धूप में रखने से अकड़ गईं (शब्द०)। २. ठिठुरना। स्तब्ध होना। सुन्न होना, जैसे—सरदी से अकड़ जाओगे (शब्द०)। ३. छाती को उभाड़कर डील को थोड़ा पीछे की ओर झुकाना। तनना, जैसे—वह अकड़कर चलता है (शब्द०)

अकड़ना[2]--क्रि० अ० [देश०] १. शेखी करना। घमंड दिखाना। अभिमान करना, जैसे--वह इतने ही में अकड़ा जाता है (शब्द०)। २ ढिठाई करना। ३. हठ करना। जिद करना। अड़ना। जैसे--सब जगह अकड़ना ठीक नहीं, दूसरे की बात भी माननी चाहिए (शब्द०)। ४. फिर पड़ना। मिजाज बदलना। चिटकना, जैसे--तुम तो जरा सी बात पर अकड़ जाते हो (शब्द०)।

अकड़फों--वि० [हिं० अकड़ + फों = फुफकारना] ऐंठ और अभिमान से भरा हुआ [को०]

अकड़बाई--संज्ञा स्त्री० [हिं० अकड़ + बाई = वायु] शरीर की नसों का पीड़ा के सहित एकबारगी खिंचना। ऐंठन। कुड़ल।

अकड़बाज--वि० [हिं० अकड़ + फा० बाज = वाला] अकड़ दिखनेवाला। अपने को लगानेवाला। नोंक झोंकवाला। ऐंठदार। शेखीबाज। अभिमानी।

अकड़बाजी--संज्ञा स्त्री० [हिं० अकड + फा० बाजी] अकड़ने की प्रवृत्ति। ऐंठ। अभिमान। शेखी।

अकड़ा[1]--संज्ञा पुं० [सं० *अकाण्डक या हिं० अकड़] चौपायों का एक छूतवाला रोग।

विशेष--जब चौपाए तराई की धरती में बहुत दिनों तक चरकर सहसा किसी जोरदार धरती की घास पा जाते हैं तब यह बीमारी उन्हें हो जाती है।

अकड़ा[2]--वि० [हिं० अकड़] अकड़ से भरा। ऐंठ भरा। उ०--हिंसा गर्वोन्नत हारों में ये अकड़े अणु टहल रहे।--कामायनी, पृ० २६६।

अकड़ाव--संज्ञा पुं० [हिं० अकड़ + आव (प्रत्य०)] ऐंठन। खिंचाव।

अकड़ू†--वि० [हिं० अकड़ + ऊ (प्रत्य०)] अकड़बाज। अकड़ दिखानेवाला।

अकड़ैत--वि० [हिं० अकड + ऐत। (प्रत्य०)] अकड़बाज। अकड़ू।

अकत[1]†--वि० [सं० अक्षत; प्रा० अप० अक्खत अथवा सं० अकृत, प्रा० अकत्त, हिं० अकत] समग्र। समूचा। आखा। सारा।

अकत[2]--† क्रि० वि० बिलकुल। सरासर।

अकती--संज्ञा स्त्री० दे० 'अखती'। उ०--अकती की तीज तजबीज के सहेली जुरीं।--ठाकुर (शब्द०)।

अकत्थ(पु)‡--वि० सं० अकथ्य; प्रा० अकत्थ] जो कहा न जा सके। न कहने योग्य। अकथनीय। उ०--मसि नैना लिखनी बरुनि रोई रोई लिखा अकत्थ।--जायसी (शब्द०)।

अकत्थन--वि० [सं०] जो डींग न हाँके। अविकत्थन [को०]।

अकथ--वि० [सं० अकथ्य, प्रा० अकत्थ] जो कहा न जा सके। कहने की सामर्थ्य के बाहर। अकथनीय। अवर्णनीय। अनिर्वचनीय। उ०--नाम रूप दुई ईस उपाधी। अकथ अनादि सुसामूझि साधी।--मानस, १।२१।

यौ०--अकथ कथा; अकथ कहानी = अनिर्वचनीय आख्यान।

अकथनीय--वि० [सं०] न कहे जाने योग्य। जो कहने में न आ सके। अनिर्वचनीय। अवर्णनीय। वर्णन के बाहर। जिसका वर्णन न हो सके। उ०--एहि बिधि दुखित प्रजेसकुमारी। अकथनीय दारुन दुखु भारी।--मानस, २।६०।

अकथह[1]--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अकडम' [को०]।

अकथह[2](पु)--वि० दे० 'अकथ'। उ०--नानक गुर मिल अकथह कथ।--प्राण०, पृ० ५३।

अकथित--वि० [सं०] जो न कहा गया हो।

अकथ्थ(पु)--वि० दे० 'अकत्थ'। उ०--बाल वच पुन आल्ह सी आनंद कियव अकथ्थ।--प० रा०, पृ० १३६।

अकथ्य--वि० [सं०] न कहने योग्य। अवर्णनीय। अनिर्वचनीय।

अकद--संज्ञा पुं० [अ० अक्द] इकरार। प्रतिज्ञा। वादा।

अकदन[1]--क्रि० वि० दे० 'कदन'।

अकदन[2]--वि० [सं० अ + कदन] विनाशरहित। उ०--कदन बिदन अकदन तुदा गहन ब्रजन क्लेशाहि। दुख जनि दे अब जानि दे कत बैठी अनखाहि।-- नंददास (शब्द०)।

अकदबंदी--संज्ञा स्त्री० [अ० अक्द + फा० बंदी] करारनामा। प्रतिज्ञपत्र।

अकबक(पु)†--संज्ञा पुं० [देश० अनु०] आशंका। आगा पीछा। सोच विचार। भय। डर। उ०--ह्वै कै लोभी लोभ बस, छवि मुकुताहल लैन। कूदत रूप समुद्र में अकबक करत न नैन।--रतन०, दो० ४५२।

अकनना†--क्रि स० [सं० आकर्णन प्रा० आकण्णण] १ सुनना। कर्णगोचर करना। उ०-- पुरजन आवत अकनि बराता। मुदित सकल पुलकावलि गाता।--मानस १।३४४। २ आहट लेना। उ०--नगर सोर अकनत सुनत अति रुचि उपजावत। --सूर० (राधा०), २५६१। ३. कान लगाकर सुनना। चुपचाप सुना। उ०--आलस गात जानि मनमोहन बैठे छाँह करत सुख चैन। अकनि रहत कहुँ सुनत नहीं कछू नहिं गौ रंभन बालक बैन।--सूर० (शब्द०)।

अकना[1]†--क्रि अ० [सं० या देश०] ऊबना। उकताना। घबराना। उ०--दौड़ दौड़ आने से जुअरत के अकोमत क्या करे। उस बिचारे की तबियत तुम पे है आइँ हुई।--जुअरत (शब्द)।

अकना[2]--संज्ञा पुं० [सं० अङ्कुरण] ज्वार की वह बाल जिसके दाने निकाल लिये गए हों।

अकनिष्ठ[1]--वि० [सं०] १. जो कनिष्ठ न हो। कनिष्ठ भिन्न। २. जिससे कोई कनिष्ठ न हो। सबसे छोटा [को०]।

अकनिष्ठ[2]--संज्ञा पुं० १. गौतम बुद्ध का एक नाम। २. बौद्ध देवगणों का एक वर्ग [को०]।

अकनिष्ठग--संज्ञा पुं० [सं०] बुद्ध [को०]।

अकन्या--संज्ञा स्त्री० [सं०] वह कन्या जो कुमारी न हो [को०]।

अकपट--वि० [सं०] कपट से रहित। निष्कपट। उ०--हरी डाल के सुखद हिंडोले में परिवर्धित होकर, जो अकपट विकसित भाव दिखाती है कैसी आनंदमयी।--प्रेम०, पृ०७।

अकबक¹—संज्ञा पुं० [हिं० अनु० अक + बक = असंबद्ध बकना] [क्रि० अकबकाना] १ निरर्थक वाक्य । असंबद्ध प्रलाप । अंड बंड । अनाप शनाप । उ०—जैसे कछु अकबक बकत हैं आज हरि, तैसई जानि नावैं मुख काहू को निकसी जाय ।—केशव (शब्द०) । २. घबड़ाहट । चिंता । धड़क । खटका । उ०—इंद्र जू के अकबक, धाता जू के धकपक, शंभु जू के सकपक, केसोदास को कहै । जब जब मृगया लोक को राम के कुमार चढ़ैं, तब तब कोलाहल होत लोक है ।—केशव (शब्द०) । ३ होश हवाश । छक्का पंजा । अक्की बक्की । चतुराई । सुध । उ०—सकपक होत पंकजासन परम दीन, अकबक भूलि जात गरुडनसीन के ।—चरणचंद्रिका (शब्द०) ।

अकबक²—वि० [सं० अवाक्] भौचक्का । चकित । निस्तब्ध, जैसे—'यह वृत्तांत सुन वह अकबक रह गया' (शब्द०) ।

अकबकाना—क्रि० अ० [हिं० अकबक से नाम०] चकित होना । भौचक्का होना । घबराना । उ०—(क) सकसकात तन, धकधकात उर, अकबकात सब ठाढ़े । सूर उपँग सुत बोलत नाहीं अति हिरदै ह्वै गाढ़े ।—सूर (शब्द०) । (ख) 'रामेसरी अकबका गई, कौन सी ऐसा बात उसके मुंह से निकली जिससे बीसों के जी को आघात पहुँचा है' ।—नई पौध, पृ० ६६ ।

अकबत—संज्ञा स्त्री० दे० 'आकबत' । उ०—अकबति अलह सों जानि सुबुक सों बोलना ।—गुलाल०, पृ० ६२ ।

अकबर¹—वि० [अ०] श्रेष्ठतम [को०] ।

अकबर²—संज्ञा पुं० मुगल सम्राट् अकबर जिसने भारत में १५५५ ई० से १६०५ ई० तक शासन किया ।

अकबरी¹—संज्ञा स्त्री० [अ० अकबर + फा० ई० (प्रत्य०)] १. एक फलाहारी मिठाई । तीखुर और उबाली अरुई का घी के साथ फेंटकर उसकी टिकिया बनाकर, घी में तलकर चाशनी में पाग देते है । कहीं कहीं इसे चौरेठे से भी बनाया जाता है । २. एक प्रकार की लकड़ी पर की नक्काशी जिसका व्यवहार पंजाब में बहुत है । सहारनपुर के कारखानों में भी इसका चलन है ।

अकबरी²—वि० अकबर संबंधी ।

यौ०—**अकबरी अशरफी** = सोने का एक पुराना सिक्का जिसका मूल्य पहले १६ रुपए था, पर अब २५ रुपए हो गया है । **अकबरी मोहर** = १. एकाक्ष व्यक्ति । एक आँख का आदमी । २. अकबरी असरफी ।

अकबार†—संज्ञा पुं० दे० 'अखबार' । उ०—'बालदेव भी अकबार पढ़ता हैं' ।—मै० आँ०, पृ० २५४ ।

अकबाल—संज्ञा पुं० दे० 'इकबाल' ।

अकर¹—वि० [सं०] १. हस्तरहित । बिना हाथ का । उ०—अकर कहावत धनुख धरे देखियत परम कृपाल पै कृपान कर पति है ।—केशव ग्रं०, भा० १, पृ० १५१ । २. बिना कर या महसूल का । जिसका महसूल न लगता हो । ३. दुष्कर । न करने योग्य । कठिन । विकट । उ०—भारथ अकर करतूतिन निहारि लही, यातें घनस्याम लाज तोते बाज आयें री ।—भिखारी ग्रं०, भा० २, पृ० १६० । ४. क्रियारहित । निष्क्रिय ।

अकर²—संज्ञा पुं० [सं० आकर] १. खान । आकर । २. समूह । राशि । उ०—हिमकर सोहै तेरे जस के अकर सो ।—भूषण ग्रं०, पृ० १० ।

अकरकरा—संज्ञा पुं० [सं० आकरकरभ] एक पौधा जो अफ्रिका के उत्तर अलजीरिया में बहुत होता है । इसकी जड़ पुष्ट और कामोद्दीपक औषधि है । इससे मुंह में थूक आता है और दाँत की पीड़ा भी शांत होती है ।

पर्या०—आकल्लक ।

अकरखन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० आकर्षण] दे० 'आकर्षण' । उ०—कियो अकरखन मंत्र सो वंशी धुनि बृजराज । उठि उठि दौरीं बाल सब तजे लाज गृहकाज ।—भिखारी० ग्रं०, भा० १, पृ० ७६ ।

अकरखना—(पु) क्रि० सं० [हिं० अकरखन से नाम०] १. खींचना आकर्षण करना । तानना । २. चढ़ाना ।

अकरण¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. कर्म का न किए हुए के समान होना । कर्म का फल रहित होना । कर्म का अभाव ।

विशेष—सांख्य के अनुसार सम्यक् ज्ञानप्राप्ति हो जाने पर फिर कर्म अकरण अर्थात् बिना किए हुए के समान हो जाते हैं और उनका कुछ फल नहीं होता ।

२. इंद्रियों से रहित । ईश्वर । परमात्मा ।

अकरण²—वि० १. न करने योग्य । कठिन । २. इंद्रियरहित [को०]

अकरण³(पु)—वि० [सं० अकारण] बिना कारण । अकारण बेसबब ।

अकरणि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. नैराश्य । असफलता । अपूर्णता २. आक्रोश विशेष । शाप [को०] ।

अकरणीय—वि० [सं०] न करने योग्य । न करने लायक । करने के अयोग्य ।

अकरन¹(पु)—वि० [सं० अकारण] बिना कारण । बेसबब । उ०—कर कुठार मैं अकरन कोही । आगे अपराधी गुरुद्रोही ।—तुलसी (शब्द०) ।

अकरन²(पु)—वि० [सं० अ + करण = कर्म] न करने योग्य । जिसका करना कठिन या असंभव हो । उ०—दयानिधि तेरी गति लखि न परै । धर्म अधर्म अधर्म, धर्म करि अकरन करन करै ।—सूर०, १।१०४ ।

अकरना(पु)—क्रि० अ० दे० 'अकड़ना' । उ०—मिथ्यावाद आपजस सुनि सुनि मूर्छहि पकरि अकरतौ ।—सूर०, १०।२०३ ।

अकरनीय(पु)—वि० दे० 'अकरणीय' ।

अकरब—संज्ञा पुं० [अ० अकरब] १. घोड़ा जिसके मुँह पर सफेद रोएँ होते हैं । और उन सफेद रोओं के बीच बीच में दूसरे रंग के भी रोएँ होते हैं । यह घोड़ा ऐबी समझा जाता हैं । २. बिच्छू (को०) । ३. वृश्चिक राशि (को०) ।

अकरम(पु)—संज्ञा पुं० दे० 'अकर्म १' । उ०—अकरम करम करै मन आपहि पीछे जिव दुख पावै ।—कबीर श०, भा० ४, पृ० २६ ।

अकरमी(पु)—संज्ञा पुं० दे० 'अकर्मी'। उ०—महा अकरमी जीव हम सबहि लेहु मुकुताय।— कबीर सा०, पृ० ५५०।

अकरा¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] आमलकी। आँवला [को०]।

अकरा²†—वि० [सं० अक्रय्य प्रा० अकरय्य, अकरय] [स्त्री० अकरी] १. न मोल लेने योग्य। महँगा। अधिक दाम का। कीमती। उ०—लै आये हो नफा जानि कै सबै वस्तु अकरी।—सूर०, १०।३१०४। २. खरा। श्रेष्ठ। उत्तम। अमूल्य। उ०—आरतपालु कृपालु जो राम, जेही सुमिरे, तेहि को तहँ ठाढ़े। नाम प्रताप महा महिमा, अकरे किये खोटेउ, छोटेउ बाढ़े।— तुलसी ग्रं०, भा० २, पृ० २२६।

अकराथ(पु)—वि० [सं० अकार्य्यार्थ; पा० अकारियत्थ] अकारथ। व्यर्थ। निष्फल। उ०—आपा राखि प्रबाधिए, ज्ञान सुनै अकराथ।—कबीर (शब्द०)।

अकराम—संज्ञा पुं० [अ० करम का ब० व०] बख्शिश। कृपा। अनुग्रह [को०]।

अकरार(पु)—वि० [हिं० अकराल] भयानक। उ०—कह्यौ प्रिया एकंत सुपन पायौ अकरारिय।—पृ० रा०, ६६।२१०५।

अकरार²†—संज्ञा पुं० [अ० इकरार या करार] कौल। प्रतिज्ञा इकरार।

अकराल¹—वि० [सं०] जो भयंकर न हो। सौम्य। सुंदर। अच्छा।

अकराल²(पु)—वि० [सं० कराल] भयंकर। भयानक। डरावना। [डिं०]।

अकरास¹—संज्ञा पुं० [हिं० अकड़ + आस (प्रत्य०)] अँगड़ाई। देह टूटना।

अकरास²—संज्ञा पुं० [सं० अकर] आलस्य। सुस्ती। कार्यशिथिलता।

अकरासा†—संज्ञा पुं० दे० 'अकरास²'। उ०—छुट्टी में आपउ चली गई रहीं। हमका बहुत अकरासा लागत रहा।—भस्मा० चि०, पृ० ६१।

अकरासू†—वि० स्त्री० [सं० अकर = आलस्य] गर्भवती। जो हमल से हो।

अकरी¹—संज्ञा स्त्री० [सं० आ = भलीभाँति + किरण (√कृ) बिखेरना] बीज गिराने के लिये हल में जो पोला बाँस लगा रहता है उसके ऊपर का लकड़ी का चोंगा जिसमें बीज डाला जाता है।

अकरी²—संज्ञा स्त्री० [?] असगंध की जाति का एक पौधा या झाड़ी जो पंजाब सिंध और अफगानिस्तान आदि देशों में होती है।

अकरी³(पु)—वि० [हिं० अकर + ई] न करनेवाला। अकर्ता। अक्रिय। उ०—अकरी अलख अरूप अनादी तिमिर नहीं उजियारा।—चरण०, भा० २, पृ० १४०।

अकरुण—वि० [सं०] करुणाशून्य। निर्दयी। निष्ठुर। कठोर। उ०—अकरुण वसुधा से एक झलक। वह स्मित मिलने को रहा उ०—ललक।—लहर, पृ० ३४।

अकरुर(पु)—संज्ञा पुं० दे० 'अक्रूर'। उ—लै अकरूर चले मधुबन कौ, सब ब्रज अति भै भोत।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० २३७।

अकर्कश—वि० [सं०] जो कठोर न हो। मृदु। मुलायम। नरम [को०]।

अकर्ण¹—वि० [सं०] १. कान से रहित। कर्णहीन। उ०—जो अकर्ण अहि को भी सहसा कर दे मंत्रमुग्ध नतफन।—प्रबंध०। २. छोटे कानोंवाला। लघुकर्ण (को०)। ३. सुनने की शक्ति से रहित। बधिर। बहिरा (को०)। ४. पतवार विहीन। बिना पतवार का।

अकर्ण²—संज्ञा पुं० सर्प। साँप [को०]।

अकर्णक—वि० [सं०] कान से रहित। कर्णहीन [को०]।

अकर्णधार—वि० [सं०] पतवार चलानेवाले से रहित। चालकविहीन [को०]।

अकर्ण्य—वि० [सं०] वह जो कानों न सुना जाय। अश्राव्य [को०]।

अकर्तन—वि० [सं०] १. बौना। २. जो न काटे [को०]।

अकर्तव्य¹—वि० [सं०] न करने योग्य। करने के अयोग्य। जिसका करना उचित न हो।

अकर्तव्य²—संज्ञा पुं० न करने योग्य कार्य। अनुचित कर्म। उ०—सिद्ध होत बिनहू जतन मिथ्या मिश्रित काज। अकर्तव्य से स्वनहू मन न धरो महराज।—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० २६७।

अकर्ता¹—वि० [सं०] कर्म का न करनेवाला। कर्म से अलग। उ०—चेतन ज्यों को त्यों सदा सदा अकर्ता होय।—भक्ति०, पृ० २८०।

अकर्ता²—संज्ञा पुं० सांख्य के अनुसार पुरुष का नाम जो कर्मों से निर्लिप्त रहता है।

अकर्तृक—संज्ञा पुं० [सं०] बिना कर्ता का। जिसका कोई कर्ता या रचयिता न हो। जो किसी के द्वारा रचा न गया हो। कर्ता-विहीन।

अकर्तृत्व—संज्ञा पुं० [सं०] १. कर्तृत्व का अभाव। २. कर्तृत्व का अभिमान न होना [को०]।

अकर्तृभाव—संज्ञा पुं० [सं०] कुछ न करने का भाव। कर्म से पृथक्ता।

अकर्म—संज्ञा पुं० [सं०] १. न करने योग्य कार्य। दुष्कर्म। बुरा काम। उ०—यह अकर्म शास्त्र के विरुद्ध है।—कबीर सा०, पृ० ६६४। २ कर्म का अभाव।

अकर्मक¹—वि० [सं०] [वि० स्त्री० अकर्मिका] व्याकरण में क्रिया के दो मुख्य भेदों में से एक। यह उस क्रिया को कहते हैं जिसे किसी कर्म की आवश्यकता न हो, कर्ता तक ही क्रिया का कार्य समाप्त हो जाय; जैसे—'लड़का दौड़ता है,' इस वाक्य में 'दौड़ता है' अकर्मक क्रिया है।

अकर्मक²—संज्ञा पुं० परमात्मा [को०]।

अकर्मण्य—वि० [सं०] कुछ काम न करनेवाला। बेकाम। निकम्मा। आलसी। उ०—संघ ऐसे अकर्मण्य युवक को आर्य साम्राज्य के सिंहासन पर नहीं देखना चाहता।— स्कंद० पृ० १४०।

अकर्मण्यता—संज्ञा स्त्री० [सं०] अकर्मण्य होने का भाव। निकम्मापन। आलसीपन [को०]।

अकर्मभोग—संज्ञा पुं० [सं०] कर्मफल के भोगने से मुक्ति या स्वातंत्र्य [को०]।

अकर्मशील—वि० [सं०] काम न करनेवाला। आलसी। सुस्त [को०]।

अकर्मा--वि० [सं०] १. काम न करनेवाला। निकम्मा। बेकाम। कार्य के लिये अनुपयुक्त। २. कुकर्मी। बुरा काम करनेवाला (को०)। ३. स्वेच्छाचारी (को०)।

अकर्मान्वित--वि० [सं०] १ दुष्कर्मी। अपराधी। २. अयोग्य। बेकार (को०)।

अकर्मिणी--संज्ञा स्त्री० [सं०] पाप करनेवाली। पापिन। अपराधिनी।

अकर्मी--वि० [सं० अकर्मिन्] [स्त्री० अकर्मिणी] बुरा काम करनेवाला। पापी। दुष्कर्मी। अपराधी। उ०--राजा वेश्या जात शिकारी। म्हा अकर्मी विषय बिकारी।--कबीर मं०, पृ० ४५६।

अकर्षण(पु)--संज्ञा पुं० दे० 'आकर्षण'।

अकर्षना(पु)--क्रि० अ० [सं० आकर्षण] आकर्षण करना। खींचना। आकर्षना। उ०--देवकि गर्भ अकर्षि रोहिनी आप बास करि लीनौ। सूर०, १०।६२२।

अकलक[१]--वि० [सं० अकलङ्क] [संज्ञा अकलंकता, वि० अकलंकित] निष्कलंक। दोषरहित। बेऐब। निर्दोष। बेदाग। उ०--अस बिचारि सब तजहु असंका। सबहि भाँति संकरु अकलंका।--मानस, १।७२।

अकलंक[२]--संज्ञा पुं० एक जैन लेखक जिनका नाम भट्ट अकलंक देव था (को०)।

अकलंक[३]†--संज्ञा पुं० [सं० अकलङ्क] दोष। लांछन। ऐब। दाग। उ०--ठाने अठान जेठानिन हूँ सब लोगन हूँ अकलंक लगाए।--काई कवि (शब्द०)।

अकलंकता--संज्ञा स्त्री [सं० अकलङ्कता] निर्दोषता। सफाई। कलंकहीनता। उ०--लोभी लोलुप कल कीरति चहई। अकलंकता कि कामी लहई।--तुलसी (शब्द०)।

अकलंकित--वि० [सं० अकलङ्कित] निष्कलंक। निर्दोष। बेदाग। साफ। शुद्ध। बेऐब। उ०--तामहँ पंठि जो नीकसै, अकलंकित सो साधु।--रामचं०, पृ० १५०।

अकलंकी--वि० [सं० अकलङ्किन्] जिसपर कोई कलंक न हो। निर्दोष। बेऐब (को०)।

अकल[१]--वि० [सं० अ + कल] १. जिसके अवयव न हों। अवयवरहित। उ०--ब्रह्म जो व्यापक बिरज अज अकल अनीह अभेद।--मानस १।५०। २. जिसके खंड न हों। सर्वांगपूर्ण। अखंड। उ०--अकल कला को खेल बनिया, अनत रूप दिखाइया।--गुलाल०, पृ० ३८। ३. जिसका अनुमान न लगाया जा सके। परमात्मा का एक विशेषण। उ०--व्यापक अकल अनीह अज निरगुन नाम न रूप।--मानस, १।२०५। ४. (पु) बिना गुण या चतुराई का। कलाहीन।

अकल--[२](पु)--वि० [सं० अ + हिं० कल = चैन] विकल। व्याकुल। बेचैन। उ०--कामिनी के अकल नूपुर, भामिनी के हृदय में भय।--अर्चना, पृ० ६३।

अकल[३](पु)--संज्ञा स्त्री० दे० 'अक्ल'। उ०--मरदूद तुझे मरना सही। काइम अकल करके कही।--संत तुरसी०, पृ० १४।

मुहा०--अकल गुद्दी में होना = बुद्धि का काम न करना। अक्ल का छिप रहना। उ०--'इन्होंने सब कुछ कहा। आपकी अकल क्या गुद्दी में थी? आपको क्या हो गया था?'--सैर०, पृ० ४१। अकल घास चरने जाना = दे० 'अक्ल का चरने जाना'। उ०--'यहाँ प्लेग का बड़ा प्रकोप है, इसलिये अकल घास चरने चली गई है'।--पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ८६७। अकल गुजर जाना = बुद्धि खत्म होना। समझ का न रह जाना। उ०--अकल जाती है इस कूचे में अय 'जामिन' गुजर पहले।--कविता कौ०, भा० ४ पृ० ६६२।

अकलखुरा--वि० [हिं० अकेल + फा० खोर = खानेवाला] १. अकेले खानेवाला। स्वार्थी। मतलबी। लालची। २. जो मिलनसार न हो। रूखा। मनहूस। ३. ईर्ष्यालु। उ०।--'अकलखुरा किसी को देख नहीं सकता'। 'अकलखुरा जग से बुरा (शब्द०)।

अकलना(पु)--क्रि० स० [सं० अकलन] जानना। समझना। उ०--बीसल नरिंद इह भय अकलि, लहै न कहु निस दिन चयन।--पृ० रा० १।२०४।

अकलप[१](पु)--वि० [सं० अकल्प्य] जिसकी कल्पना न की जा सके। कल्पनातीत। उ०--मैमंता अविगत रता अकलप आसा जीति। राम अमलि माता रहै जीवत मुकति अतीति।--कबीर।

अकलप[२](पु)--संज्ञा पुं० [सं० आकल्प] कल्प पर्यंत। अनेक युगों तक। उ०--आसन तजि अनत जिनि जावो। अकलप भिछ्या बैठा खावो।--गोरख०, पृ० २३६।

अकलबर--संज्ञा पुं० दे० 'अकलबीर'।

अकलबीर--संज्ञा पुं० [सं० करवीर] भाँग की तरह का एक पौधा।
विशेष--यह हिमालय पर काश्मीर से लेकर नैपाल तक होता है। इसकी जड़ रेशम पर पीला रंग चढ़ाने के काम में आती है।
पर्या०--कलबीर। बज्र। भंगजल।

अकलीम--संज्ञा स्त्री० [अ० इक्लीम] १. महाद्वीप। उ०--साह तणा खूनी सबल आय बचै इण ठार। औ सांतू अकलीम में चावो गढ़ चीतोड़।--बाँकी० ग्रं०, भा० ३, पृ० ६२। २. बादशाहत। राज्य। उ०--आवै जो अकलीम सात हेक सुरताँणरै। नहीं जिका दे नीम ईछै लेवा आठमी।--बाँकी ग्रं०, भा० ३ पृ० ५८।

अकलुष--वि० [सं०] कलुषता से रहित। निर्मल। शुद्ध। साफ। उ०--स्नेह सुख मे बढ़ सखि चिरकाल, दीप की अकलुष शिखी समान।--गुंजन, पृ० ३१।

अकलुषित--वि० [सं०] जो कलुषित न हुआ हो। पवित्र। उ०--फिर न चाहौं धरा पै मैं धरि अकलुषित पाँव। धरि ह्वैहै सेज मेरी, बास सूनो ठाँव।--बुद्ध० च०, पृ० ८६।

अकलेस(पु)--वि० [सं० अखिलेश] समग्र विश्व के स्वामी। उ०--ॐ नामो सिव सकल। नमो अकलेस अकल मति।--पृ० रा०, १।१८४।

अकलैमूल(पु)--वि० [प्रा० एक्कलइ = एक ही + सं० मूल] जिसके आगे पीछे कोई न हो। अकेला। तनहा उ०--मचला अकलैमूल पातर खाउँ खाउँ करै भूखा।--सूर०, १।१८६।

अकल्क--वि० [सं०] [स्त्री० अकल्का] १. बिना तलछट का। शुद्ध। २. पापरहित। निष्पाप [को०]।

अकल्कक –वि० [सं०] दे० 'अकल्कल' [को०]।

अकल्कन--वि० [सं०] दे० 'अकल्कल' [को०]।

अकल्कल--वि० [सं०] १. विनम्र। सरल। २. अहंकारशून्य। दंभ रहित। ३. ईमानदार [को०]।

अकल्कता--संज्ञा स्त्री० [सं०] ईमानदारी। शुद्धता [को०]।

अकल्का--संज्ञा स्त्री० [सं०] ज्योत्सना। चाँदनी। [को०]।

अकल्प--वि० [सं०] १. जो नियम और प्रतिबंध का विषय न हो। अनियंत्रित। निर्बंध। २. दुर्बल। कमजोर। ३. जिसकी तुलना न की जा सके। अतुलनीय। ४. अयोग्य। अक्षम [को०]।

अकल्पनीय- वि० [सं०] जिसकी कल्पना न की जा सके। कल्पना से परे। उ०--द्विपुर अलौकिक कलान ते कलित बनि, रेल तार काज क्यों अकल्पनीय करते।--रसक०, पृ० ३१६।

अकल्पित--वि० [सं०] १. कल्पनारहित। अकल्पनीय। उ०--बीर-कुल बाल ह्वै न सहिहौं त्रिकाल माँहि, लोक प्रतिकूल की अकल्पित कुचाली को।--रसक०, पृ० ३२३। २. अकृत्रिम। स्वाभाविक (को०)। ३. प्राकृतिक। नैसर्गिक (को०)।

अकल्मष--वि० [सं०] पापरहित। निर्दोष। निर्विकार। बेऐब।

अकल्य--वि०[सं०] १. अस्वस्थ। रुग्ण। २. सत्य। सच [को०]।

अकल्याण¹--संज्ञा पुं० [सं०] अमंगल। अहित।

अकल्याण²--वि० १. कल्याणरहित। अशुभ। २. असुंदर [को०]।

अकव--वि० [सं०] १. अवर्णनीय। २. अतुच्छ। ३. अकृपण। जो कृपण न हो [को०]।

अकवच--वि० [सं०] बिना कवच का। कवचरहित [को०]।

अकवन(पु)†--संज्ञा पुं० [हिं० आक] आक का पेड़। मदार।

अकवाम--संज्ञा पुं० [अ० अकवाम कौम का बहुवचन] जातियाँ। उ०--'दोनों अकवाम मिस्ल शीर व शकर के मिल जायँ।--प्रेमघन०, भा० २, पृ० ६०।

अकवार†--संज्ञा स्त्री० दे० 'अँकवार'। उ०--धरमदास से छुटल भव-सागर, सब सों भेंटि अकवार हो।--धरम० शब्दा०, पृ० ५१।

अकवारि--वि० [सं०] दे० 'अकवारी' [को०]।

अकवारी¹--वि० [सं०] १. निस्स्वार्थ। स्वार्थहीन। २. अकृपण। जो कंजूस न हो। ३. जिसे शत्रु तुच्छ न समझे। ४. प्रबल शत्रुवाला [को०]।

अकवि--वि० [सं०] जो बुद्धिमान या सुबुद्ध न हो। मूर्ख [को०]।

अकस¹--संज्ञा पुं० [अ० अक्स] १. बैर। अदावत। विरोध। शत्रुता। उ०--काम कोह लाई कै देखाइयत आँखि मोहि, एते मान अकस कीबे को आपु आहि को।--तुलसी ग्रं०, पृ० २२२। २. लाँगडाँट। होड़। स्पर्धा। उ०--हानि लाहु अनखु उछाहु बाहुबल कहि, बंदी बोले बिरद अकस उपजाइकै।--तुलसी ग्रं०, पृ० ३१२। ३. ईर्ष्या। डाह। उ०--मोर मुकट की चंद्रि-कनु यों राजत नँद नंद। मनु ससि सेखर की अकस किय सेखर सतचंद।--बिहारी र०, दो० ४१६।

अकस²(पु)--संज्ञा पुं० [सं० आकाश] नभ। आकाश। उ०--सकसे का जैतवार अकसे का वाई।--रा० रू०, पृ० ६७।

क्रि० प्र०--ठानना।--दिलाना।--पड़ना।--मानना --रखना।

यौ०--अकसदीया। अकसदियता।

अकसना--क्रि० स० [हिं० अकस से नाम०] १. अकस रखना। बैर रखना। शत्रुता रखना। २. लाँगडाँटरखना। बराबरी करना। आँट रखना। उ०--साहनि सौं अकसिबो हाथिन को बकसिबो, राव भाव सिंह जू को सहज सुभाव है।--मतिराम ग्रं०, पृ० ४३५।

अकसमात(पु)--क्रि० वि० दे० 'अकस्मात्'। उ०--(क) असे में इह भावई अकसमात हुअ आइ।--पृ० रा०, ६।२८। (ख) जे द्रुम नभ सों बातें करैं। ते तरु अकसमात भुंई परैं।--नंद० ग्रं०, पृ० २७६।

अकसर¹--क्रि० वि० [अ०] प्रायः। बहुधा। अधिकतर। बहुत करके। विशेष करके. उ०--बदन पर अक्सर गाते, भौं मिहदी से रँगते हैं।--भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० २४६।

अकसर²(पु)†--[सं० एक + सर (प्रत्य०)] अकेले। बिना किसी को साथ लिए। तनहा। उ०--धनि सो जीव दगध इमि सहा। अकसर जरइ न दूसर कहा।--जायसी (शब्द०)।

अकसर³(पु)†--वि० अकेला। एकाकी। उ०--करि पूजा मारीच तब सादर पूछी बात। कवन हेतु मन व्यग्र अति अकसर आयहु तात।--मानस, ३.१८।

अकसरुआ†--वि० [हिं० अकसर] अकेला। बिना साथ का।

अकसवा†--संज्ञा पुं० [हिं० अकास] दे० 'आकाश'। उ०--ना हुवाँ धरती न पौन अकसवा।--कबीर श०, भा० १, पृ० ४७।

अकसी†--वि० [हिं० अकस] अकस रखनेवाला। बैरी।

अकसीर¹--संज्ञा स्त्री० [अ० इक्सीर] १. वह रस या भस्म जो धातु को सोना या चाँदी बना दे। रसायन। कीमिया। उ०--हमसे हो जरो सीम की तदबीर सो क्या खाक? दुनियाँ में बड़ी चीज है अकसीर सो क्या खाक।--कविता कौ०, भा० ४, पृ० ४४। २. वह औषधि जो प्रत्येक रोग को नष्ट करे। वह औषधि जिसके खाने से मनुष्य कभी बीमार न हो। उ०--अगर अक-सीर बिन रोगी दर्द कबहूँ न जावेगा --संत तुरसी०, पृ० ३३।

अकसीर²--वि० अव्यर्थ। अत्यंत गुणकारी। अत्यंत लाभकारी।

अकसीरगर--वि० [हिं० अकसीर + फा० गर] कीमिया बनानेवाला। रसायनी [को०]।

अकस्मात्--क्रि० वि० [सं०] १. अचानक। एकबारगी। यकायक। उ०--सब उतरना चाहते हैं, कुभा में अकस्मात् जल बढ़ जाता है, सब बहते हुए दिखाई देते हैं।--स्कंद०, पृ० १०७। २. संयोगवश। दैवयोग से। उ०--महादेवी! आज मैंने अपने हृदय के मार्मिक रहस्य का अकस्मात् उद्घाटन कर दिया है।--स्कंद०, पृ० २८।

अकस्मात--क्रि० वि० [सं० अकस्मात्] १. अचानक। अनायास। एकबारगी। यकायक। सहसा। तत्क्षण। बैठे बिठाए। औचक। अतर्कित। अनचित्ते में। २. दैवात्। दैवयोग से। संयोगवश। हठात्। आपसे आप। अकारण।

अकह¹--वि० [सं० अकथ; प्रा० अकह] न कहने योग्य। जो कही न जा सके। अकथनीय । अनिर्वचनीय । अवर्णनीय। उ०--नहीं ब्रह्म, नहिं जीव, न माया ज्यों का त्यों वह जाना। मन, बुधि, गुन, इंद्रिय, नहिं जाना अलख अकह निर्वाना।--कबीर (शब्द०)।

यौ०--अकह कहानी = अनिर्वचनीय कथा। उ०--निज दल जागै ज्योति पर दल दूनी होति, अचला चलति यह अकह कहानी है। पूरण प्रताप दीप अंजन की राजै रेख राजत श्री रामचंद्र पानिन कृपानी है।--केशव (शब्द०)।

अकह²(पु)--वि० [सं० अकथ्य] मुँह पर न लाने योग्य। बुरी। अनुचित। उ०--शील सुधा वसुधा लहिकै अकहै कहिकै यह जीभ बिगारिए।--देव (शब्द०)।

अकहन‡--वि० [हिं०] कहना न माननेवाला। बेकहला।

अकहनी--वि० [हिं० अकह] न कहने योग्य। उ०--'जो सब कहनी अकहनी थी'।--प्रेमघन०, भा० २, पृ० १६४।

अकहुआ(पु)†--वि० दे० 'अकहुवा'।

अकहुवा(पु)†--वि० [सं० अकथ; प्रा० अकह + उवा (प्रत्य०)] जो कहा न जा सके। अकथनीय। उ०--जाकर नाम अकहुवा भाई। ताकर कहाँ रमैनी भाई।--कबीर (शब्द०)।

अकांड¹--वि० [सं० अकाण्ड] बिना डाली या शाखा का।

अकांड²--क्रि० वि० अकस्मात्। सहसा। बिना कारण।

अकांडजात--वि० [सं० अकाण्डजात] होते ही मर जानेवाला। जन्मते ही मर जानेवाला।

अकांडतांडव--संज्ञा पुं० [सं० अकाण्ड + ताण्डव] १. असामयिक उद्धत नृत्य। आकस्मिक उद्धत नृत्य। उ०--हरिऔध हर के अकांड तांडवों के भये, भांड के समान सारो ब्रह्मांड फूटैगो।--रसक०, पृ० ३५१ २. व्यर्थ की उछल कूद। व्यर्थ की बकवाद। वितंडा।

अकांड पात--वि० [सं० अकाण्डपात] होते ही मर जानेवाला। जन्मते ही मर जानेवाला।

अकांडपातजात--वि० [सं० अकाण्डपातजात] जन्म लेते ही मरनेवाला [को०]।

अकांडशूल--संज्ञा पुं० [सं० अकाण्डशूल] आकस्मिक तीव्र पीड़ा या वेदना [को०]।

अकांत--वि० [सं० अकान्त] जो कांत न हो। जो सुंदर न हो। उ०--हरिऔध कांत को अकांत अवलोकिहै तो, मृदुल करेजो कुल-कामिनी को छिलिहै।--रसक०, पृ० २६५।

अकाउंट--संज्ञा पुं० [अं०] हिसाब। लेखा। हिसाब किताब।

अकाउंटबुक--संज्ञा पुं० [अं०] हिसाब की किताब। बही खाता। लेखा।

अकाउंटेंट-- संज्ञा पुं० [अं०] हिसाब जाँचनेवाला। निरीक्षक। मुनीम। लेखा लिखनेवाला।

अकाज¹--संज्ञा पुं० [सं० अकार्य; प्रा० अकज्ज] १. कार्य की हानि। नुकसान। हर्ज। विघ्न। बिगाड़। उ०--हरि हरजस राकेस राहु से। पर अकाज भट सहसबाहु से।--तुलसी (शब्द०)। २. बुरा कार्य। दुष्कर्म। खोटा काम (क्व०)।

अकाज²--क्रि० वि० [हिं० अ + काज] व्यर्थ। बिना काम। निष्प्रयोजन। उ०--बीति जैहै बीति जैहै जनम अकाज रे।--तेगबहादुर (शब्द०)।

अकाजना¹(पु)--क्रि० अ० [हिं० अकाज से नामधातु] १ हानि होना। खो जाना। २ गत होना। जाता रहना। मरना। उ०--सोक विकल अति सकल समाजू। मानहुँ राज अकाजेउ आजू।--तुलसी (शब्द०)।

अकाजना²--क्रि० स० अकाज करना। हर्ज करना। हानि करना। विघ्न करना। नकसान करना।

अकाजी(पु)--वि० [हिं० अकाज + ई (प्रत्य०)] [स्त्री० अकाजिन अकाजिनी] अकाज करनेवाला। हर्ज करनेवाला। कार्य की हानि करनेवाला। नुकसान करनेवाला। बाधक। विघ्नकारी। उ०--लाज न लागति लाज अहै तुहि जानी मैं आज अकाजिनि एरी।--देव (शब्द०)।

अकाट--वि० [हिं० अ + काटय] जिसकी काट न हो। जिसका खंडन न हो। अखंडनीय (युक्ति तर्क इत्यादि)।

अकाटय--वि० [सं० अ + काटय] न काटने योग्य। जिसका खंडन न हो सके। दृढ़। मजबूत। अटल। उ०--भाई कहने को तर्क अकाटय तुम्हारा। पर मेरा ही विश्वास सत्य है सारा।--साकेत पृ० २१६।

यौ०--अकाटय युक्ति।

अकातर--वि० [सं०] जो कायर न हो। जो भयभीर न हो। उ०--गति अनाहत तू सखा मत सहज संयत रे अकातर।--अर्चना, पृ० ८८।

अकाथ¹(पु)-- क्रि० वि० [सं० अकृतार्थ प्रा० अकअत्थ] अकारथ। व्यर्थ। निष्फल। निरर्थक। वृथा। फजूल। उ०--रह्यो न परै प्रेम आतर अति जानी रजनी जात अकाथ।--सूर (शब्द०)।

अकाथ²(पु) - वि० [सं० अकथ्य] न कहने योग्य। अकथनीय। अनिर्वचनीय। उ०--आपनों त्यौं हीरा सो परयो हाथ व्रजनाथ। दै कै तौं अकाथ हाथ मैंने ऐसो मन लेहु।--केशव ग्रं०, भा० १, पृ० ७४।

अकादर†--वि० [सं० अकातर] जो कादर न हो। शूरवीर। साहसी। हिम्मतवर।

अकाम¹--वि० [सं०] बिना कामना का। कामनाविहीन। इच्छा-रहित। निस्पृह। उ०--हमरें जान सदा सिव जोगी। अज अनवद्य अकाम अभोगी।--मानस, १।८६।

अकाम²(पु)--क्रि० वि० [सं० अ + हिं० काम] बिना काम के। निष्प्रयोजन व्यर्थ। उ०--बिना मान नर जगत में धावत फिरे अकाम।--(शब्द०)।

अकाम³--संज्ञा पुं० दुष्कर्म। बुरा काम (क्व०)। उ०--गज परचौ धरनि साहन सिंगार। किन्नी अकाम परताप पार--पृ० रा०, ५।२४।

अकामत--क्रि० वि० [सं०] अनिच्छापूर्वक। अनचाहे [को०]।

अकामत--संज्ञा पुं० [अ० इकामत] ठहरने का स्थान। निवास। आवास। उ०--उम्र अपनी रवाँ है तो इकामत से सरोकार। समझे अगर इंसान तो दिन रात सफर है।--कविता कौ०, भा० ४, पृ० ५७४।

अकामता—संज्ञा स्त्री० [सं०] काम या इच्छा का अभाव [को०]।

अकामनिर्जरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] जैन मत के अनुसार तपस्या से जो निर्जरा या कर्म का नाश होता है उसके दो भेदों में से एक। यह निर्जरा सब प्राणियों को होती है क्योंकि उन्हे बहुत से क्लेशों को विवश होकर सहना पड़ता है।

अकामहत—वि० [सं०] जो काम से प्रभावित न हो। अक्षुब्ध। शांत [को०]। जो काम से आहत न हो। [को०]।

अकामा¹—वि० स्त्री० [सं०] (स्त्री) जिसमें काम का प्रादुर्भाव न हुआ हो। यौवनावस्था के पूर्व की।

अकामा²—संज्ञा स्त्री० कामचेष्टा से रहित स्त्री।

अकामी—वि० [सं० अकामिन्] [स्त्री० अकामिनी] १. कामनारहित। इच्छाविहीन। निस्पृह। जिसे किसी बात की आकांक्षा न हो। निःस्वार्थ। उ०—भजामि ते पदांबुजम्। अकामिनां स्वधामदम्। —तुलसी (शब्द०)। २. जो कामी न हो। जितेंद्रिय।

अकाय—वि० [सं०] १. बिना शरीरवाला। देहरहित। उ०—सत्त पुरुष एक रहै अकाया। अंस तास सोइ निरगुन माया।—घट०, पृ० २७४। २. अशरीर। शरीर न धारण करनेवाला। जन्म न लेनेवाला। ३. रूपरहित। निराकार। उ०—माँगत वामन रूप धरि परबत भयौ अकाय। सत्त धर्म सब छाँड़ि के धरयौ पीठ पै पाय।—नंद० ग्रं०, पृ० १८१।

अकायिक—वि० [सं० अ + कायिक] शरीर से संबंध न रखनेवाला। उ०—आज अव्यभिचारिणी निज भक्ति का वरदान दो तो, निज अपार्थिव अति अकायिक स्नेह का स्मरदान दो तो।—अपलक, पृ० ४६।

अकार¹—संज्ञा पुं० [सं०] अक्षर 'अ'।

अकार²—संज्ञा पुं० [सं० आकार] आकार। स्वरूप। आकृति। उ०—बिना अकार रूप नहिं रेखा कौन मिलेगी आय।—कबीर श०, भा० १, पृ० ७४।

अकार³—वि० [सं० अ + हिं० कार = कार्य] क्रियारहित [को०]।

अकारक मिलाव—संज्ञा पुं० [सं० अकारक + हिं० मिलाव] ऐसा रासायनिक मिश्रण या मिलावट जिसमें मिली हुई वस्तुओं के पृथक् गुण बने रहें और ये अलग की जा सकें।

अकारज(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अकार्य] कार्य की हानि। हानि। नुकसान। हर्ज। उ०—(क) आप अकारज आपनो करत कुसंगत साथ। पायँ कुल्हाड़ी देत है मूरख अपने हाथ।—सभाबिलास (शब्द०)। (ख) ताते न मान समान अकारज जाको अयानु बड़ो अधिकारी, देव कहै कहिहौं हित की हरि जू सो हितू न कहूँ हितकारी।—देव (शब्द०)।

अकारण¹—वि० [सं०] १. बिना कारण का। हेतुरहित। बिना वजह का; जैसे, 'संसार में अकारण प्रीति दुर्लभ होती है'।—(शब्द०)। उ०—'तात! कहाँ थे? इस बालक पर अकारण क्रोध करके कहाँ छिपे थे' ?—स्कंद०, पृ० ७८। २. जिसकी उत्पत्ति का कोई कारण न हो। जो किसी से उत्पन्न न हो। स्वयंभू।

अकारण²—क्रि० वि० बिना कारण के। बेसबब। व्यर्थ। अनायास। निष्प्रयोजन; जैसे—'क्यों अकारण हँसते हो ?' (शब्द०)।

अकारत†—वि० दे० 'अकारथ'।

अकारथ¹†—वि० [सं० अकार्यार्थ प्रा० अकारयत्थ, अकारअत्थ] बेकाम। निष्फल। व्यर्थ। निष्प्रयोजन। फजूल। उ०—बिना ब्याह यह तपस्या अकारथ होती है।—सदल मिश्र (शब्द०)।

क्रि० प्र० करना।—होना।

अकारथ²—क्रि० वि० व्यर्थ। बेकार। निष्प्रयोजन। फजूल। बेफायदा। उ०—स्वारथ हू न कियो परमारथ यों ही अकारथ बैस बिताई।—पद्माकर (शब्द०)।

क्रि० प्र०—खोना।—गारना = व्यर्थ ही गलाना या नष्ट करना। उ०—आछो गात अकारथ गारयो। करी न प्रीति कमललोचन सो जन्म जुआ ज्यों हारयो।—सूर (शब्द०)।—जाना उ०—ते दिन गये अकारथै संगति भई न संत।—कबीर (शब्द०)।

अकारन(पु)—वि० दे० 'अकारण'। उ०—जिमि चह कुशल अकारन कोही।—मानस, १।२६७।

अकारना(पु)—क्रि० स० दे० 'करना'। उ०—करि साधन इह साज, व्याधि नासत फल धारिय। गुरु उपदेसह पाइ, सकल आधीन अकारिय।—पृ० रा०, ६।२६।

अकारांत—वि० [सं० अकारान्त] जिसके अंत में 'अ' अक्षर हो [को०]।

अकारादि—वि० [सं०] 'अ' वर्ण से आरंभ होनेवाला [को०]।

अकारी(पु)—वि० [सं० अ + कारिन्] १. अनर्थ करनेवाला। अनर्थकारी। उ०—गौर मुष्प वपु स्याम गिरन सम नख्य अकारिय। —पृ० रा०, २।२८७। २. तीक्ष्ण (डिं०)। उ०—आरंभ अति फौज अकारी दिल्लीपति पूगो रहबारी।—राज रू०, पृ० ५६।

अकार्पण्य¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. कृपणता का अभाव। २. दीनता का अभाव [को०]।

अकार्पण्य²—वि० जो निम्नता या दीनता दिखाए बिना प्राप्त हो [को०]

अकार्य¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. कार्य का अभाव। अकाज। हर्ज। हानि। २. बुरा कार्य। कुकर्म। दुष्कर्म।

अकार्य²—वि० १. जिसका कोई परिणाम न हो। फलरहित। २. अकरणीय। न करने लायक।

अकार्यचिंता—संज्ञा स्त्री० [सं० अकार्यचिन्ता] अनुचित कार्य करने का सोचविचार। अपराध करने की मनोवृत्ति [को०]।

अकाल¹—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अकालिक] १. अनुपयुक्त समय। अनवसर। अनियमित समय। ठीक समय से पहले या पीछे का समय। उ०—तूँ रहि, हौं हीं सखि! लखौं, चढ़ि न अटा, बलि बाल। सबहिनु बिनु ही ससि उदय, दीजतु अरघु अकाल।—बिहारी र०, दो० २६८।२. दुष्काल। दुर्भिक्ष। महँगी। कहत। जैसे—'भारतवर्ष में कई बार अकाल पड़ चुका है।'—(शब्द०)।

क्रि० प्र०—पड़ना।

३. घाटा। अत्यधिक कमी। न्यूनता। जैसे—'यहाँ कपड़ों का अकाल नहीं है।'—(शब्द०)। ४. अशुद्ध समय (ज्यो०)।

अकाल२--वि० १. जो काला न हो। श्वेत। २. अनवसर का। असामयिक [को०]।

अकालकुसुम--[सं०] १. बिना समय या ऋतु में फूला हुआ फूल। उ०--भयदायक खल के प्रिय बानी। जिमि अकाल के कुसुम भवानी।--मानस, ३।१८।

विशेष--यह दुर्भिक्ष या उपद्रवसूचक समझा जाता है। २. असमय में किसी वस्तु की प्राप्ति या दिखाई पड़ना (लाक्ष०)। ३. बेसमय की चीज।

अकाल कुष्मांड--संज्ञा पुं० [सं० अकाल कुष्माण्ड] १. असमय या बेमौसम का कुम्हड़ा। २. वह कुम्हड़ा जो बलिदान के काम न आए। ३. बेकार वस्तु। ४. व्यर्थ या निरर्थक जन्म [को०]।

अकाल कूष्मांड--संज्ञा पुं० [सं० अकालकूष्माण्ड] दे० 'अकाल कुष्मांड' [को०]।

अकालज--वि० [सं०] दे० 'अकालजात' [को०]।

अकालजलद--संज्ञा पुं० [सं०] असामयिक मेघ। असमय के बादल। उ०--सुखदेव चौबे ने अकालजलद की तरह उसके संयम के दिन को मलिन कर दिया था।--तितली, पृ० १५३।

अकालजलदोदय--संज्ञा पुं० [सं०] १. असमय मेघों का छा जाना। २. कुहरा [को०]।

अकालजात--वि० [सं०] जो नियत समय पर उत्पन्न न हो [को०]।

अकालज्ञ--वि० [सं०] काल या समय के ज्ञान से रहित। कालज्ञानविहीन [को०]।

अकालपक्व--वि० [सं०] समय से पूर्व पका हुआ [को०]।

अकालपुरुष--संज्ञा पुं० [सं० अकाल+पुरुष] परमात्मा। ईश्वर (सिख)।

अकालभृत्--संज्ञा पुं० [सं०] स्मृति के अनुसार १५ दासों में से एक। दास बनाने के लिये जिसकी रक्षा दुर्भिक्ष में की गई हो। अकाल में मिला हुआ दास।

अकालमूर्ति--संज्ञा स्त्री० [सं०] पुरुष जिसकी स्थापना काल या समय में न हो सके। नित्य। अविनाशी।

अकालमृत्यु--संज्ञा स्त्री [सं०] बेसमय की मृत्यु। ठीक समय से पहले की मृत्यु। थोड़ी अवस्था का मरना। अनायास मृत्यु। असामयिक मृत्यु। उ०--अकालमृत्यु सो मरे। अनेक नर्क मों परें।--रामचं०, पृ० १६६।

अकालमेघोदय--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'कालजलदोदय' [को०]।

अकालवृद्ध--वि० [सं०] समय से पूर्व वृद्ध होनेवाला [को०]।

अकालवेला--संज्ञा स्त्री० [सं०] १, उचित या नियत समय का अभाव। २. बुरा समय [को०]।

अकालसह--वि० [सं०] १. जो देर या बिलंब न सह सके। अधीर। २. जो अधिक समय तक आक्रमण न सह सके [को०]।

अकालिक--वि० [सं०] असामयिक। बिना समय का। बेमौके का।

अकाली--संज्ञा पुं० [सं० अकाल+ई (प्रत्य०)] नानकपंथी साधु जो सिर में चक्र के साथ काले रंग की पगड़ी बाँधे रहते हैं।

अकालोत्पन्न--वि० [सं०] जो समय से पूर्व उत्पन्न हुआ हो [को०]।

अकाल्य--वि० [सं०] असामयिक। असमय का [को०]।

अकाव--संज्ञा पुं० [सं० अर्क; प्रा० अक्क] आक। मदार।

अकाश(पु)--संज्ञा पुं० दे० 'आकाश'। उ०--हरि कर तू गमने महि माहीं। मैं आकाश ह्वै चलौं तहाँहीं --रामरसिका०, पृ० ८५६।

अकास--संज्ञा पुं० दे० 'आकाश'। उ०--रामचरन अवलंबन बिनु परमारथ की आस। चाहत वारिद बुंद गहि तुलसी चढ़न अकास।--स० सप्तक, पृ० ४।

मुहा०--अकाश गहना = अनहोनी या असंभव बात करना। उ०--बातनि गहौ अकास, सुनहि न आवैं साँस। बोली तौ कछू न आवै ताते मौन गहिये।--सूर (राधा०), १२७३। अकास बाँधना = असंभव काम करने की कोशिश करना।

अकासकृत--संज्ञा पुं० [सं० आकश+कृत] बिजली (अनेका०)।

अकासदीया--संज्ञा पुं० [सं० आकाशदीपक] वह दीपक या लालटेन जो बाँस के ऊपर आकाश में लटकाया जाता है। आकाशदीप।

अकासनदी(पु)--संज्ञा स्त्री० दे० 'आकाशनदी'। उ०--उछलै जल उच्च अकास चढ़ै जल जोर दिसा बिदिसान मढ़ै। जनु सिंधु अकासनदी अरिकै, बहु भाँति मनावत पाँ परिकै।--राम चं०, पृ० १०६।

अकासनीम--संज्ञा पुं० [सं० आकाशनिम्ब] एक पेड़ जिसकी पत्तियाँ बहुत सुंदर होती हैं। उ०--कुहरा झीना और महीन, झर झर पड़े अकासनीम।--हरी घास०, पृ०।

अकासबानी(पु)--संज्ञा स्त्री० दे० 'आकाशवाणी'। उ०--गगन जबहिं लाग महिपाला। भै अकासबानी तेहि काला।--मानस, १।१७३।

अकासबेल--संज्ञा स्त्री० [सं० आकाश+वेल्लि] अंबरबेलि। अमरबेल। अकासबौर।

अकासवादी(पु)--संज्ञा स्त्री० दे० 'अकासबानी'। उ०--दस हत्थी सुबिहान साहि गोरी मुख किन्नौ। कर अकासवादी ततार चवकोद सदिन्नौ।--पृ० रा०, २७।१२५।

अकासी--संज्ञा स्त्री० [सं० आकाश] १. चील नामक पक्षी।

यौ०--धोरी अकासी या सफेद अकासी = एक प्रकार की चील जिसे क्षेमकरी भी कहते हैं। इसका सिर सफेद और शेष सारे अंग लाल होते हैं इसका दर्शन शुभ माना गया है। उ०--बाएँ अकासी धौरी आई।--जायसी (शब्द०)।

२. ताड़ के वृक्ष या फलों का रस। ताड़ी।

अकाह(पु)--वि० दे० 'अकाथ२'। उ०--कबहूँ यौ बियोग बिथा को सहै जोउ जोगिन हूँ कौं अकाह सी है।--ठाकुर०, पृ० १०।

अकिंचन१--वि० [सं० अकिञ्चन] १. जिसके पास कुछ न हो। निर्धन। धनहीन। दीन। कंगाल। दरिद्र। गरीब। मुहँताज। उ०--देख अकिंचन जगत लूटता तेरी छवि भोली भाली --कामायनी, पृ० ४०। २. आवश्यकता से अधिक धन का संग्रह न करनेवाला। परिग्रहत्यागी। ३. जिसे भोगने के लिये कुछ कर्म न रह गए हों। कर्मशून्य।

अकिंचन२--संज्ञा पुं० १. निर्धन मनुष्य। गरीब आदमी। दरिद्र मनुष्य। २. जैन मत के अनुसार परिग्रह का त्याग या ममता से निवृत्ति जो दस प्रकार के साधुधर्मों में से एक है। ३. वह वस्तु जिसका कुछ मूल्य न हो (को०)।

अकिंचनता--संज्ञा स्त्री० [सं० अकिञ्चनता] १. दरिद्रता। गरीबी। निर्धनता। उ०--हरिग्रीध कसे अकिंचनता तृनावली मैं लसति हरीतिमा विभूतिवती महती।--रस क० पृ० ३३१। २. परिग्रह का त्याग जो योग का एक यम है।

अकिंचनत्व--संज्ञा पुं० [सं० अकिञ्चनत्व] १. निर्धनता। गरीबी २. अपरिग्रह (जैन) [को०]।

अकिंचिज्ज्ञ--वि० [सं० अकिञ्चिज्ज्ञ] जो कुछ न जानता हो। ज्ञानशून्य [को०]।

अकिंचितकर--वि० [सं० अकिञ्चित्कर] १. जिसका किया कुछ न हो। असमर्थ। २. तुच्छ। अशक्त। उ०--'जो अकिंचितकर था वह भी अपरूप हो गया।'--टैगोर०, पृ० २४।

अकि (पु)†--अव्य [हिं० कि] या। अथवा। कि। उ०--(क) पातक शत्रु विनाशकरी अकि राघव की उघरी तरवार है।--श्री भक्त०, पृ० ५७६। (ख) आगि जरौं अकि पानी परौं अब कैसी करौं हिय का बिधि धीरौं।--घनानंद, पृ० १२७।

अकितव--वि० [सं०] १. जो जुआरी न हो (को०)। २. निश्छल। सरल [को०]।

अकिति (पु)--संज्ञा स्त्री० [सं० अकीर्ति] अपयश। अकीर्ति। उ०--क्रम बड्ढत बड्ढै अकिति। अकिति बड्ढहि त्रक दिज्जै।--पृ० रा०, ६१।१५६२।

अकिन (पु)--संज्ञा दे० 'यकीन'। उ०--आरति बुंद अकिन जब वारा। सुरति बिसुरति गयो सब भारा।--गुलाल०, पृ० १२९।

अकिल (पु)--संज्ञा स्त्री० दे० 'अक्ल'। उ०--(क) अकिल आरसी लै के सजनी पिया को रूप निहार हो।--कबीर श०, पृ० १३५। (ख) 'मियाँ साहब ने उत्तर दिया, भाई बात तो सच है, खुदा ने हमें भी अकिल दी है'।--भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ६७७।

यौ०--अकिल अजीरन = बुद्धि का अजीर्ण। बुद्धिहीनता। उ०--चूरन खाते लाला लोग, जिनको अकिल अजीरन रोग।--भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ६६३।

अकिलदाढ़--संज्ञा स्त्री० [हिं० अकिल + दाढ़] वह दाँत जो मनुष्यों के वयस्क होने पर ३२ दाँतों के अतिरिक्त निकलता है।

विशेष--कहते हैं इस दाँत के निकलने पर मनुष्य का लड़कपन जाता रहता है और वह समझदार हो जाता है।

अकिलबहार--संज्ञा पुं० [अ० अकीलकुल बह्र] वैजयंती का पौधा या दाना

अकिलवान (पु)†--वि० [हिं० अकिल + वान] बुद्धिमान्। अक्लवाला। अक्लमंद। उ०--सखा दरद को री हरी, हरी को दरद खास। सदा अकिलवानै गनै गनै बाल किम्र दास।--भिखारी ग्रं०, भा० २, पृ० २०७।

अकिला (पु)--वि० [स्त्री० अकिली] दे० 'अकेला १'। उ०--(क) अकिले घूमत तर अस अंधे।--नंद० ग्रं० पृ० १४०। (ख) अकिली बन घन बसि न डेराई।--नंद० ग्रं० पृ० १४०।

अकिल्विष[१]--वि० [सं०] १. पापशून्य। निष्पाप। पवित्र। २. निर्मल। शुद्ध।

अकिल्विष[२]--संज्ञा पुं० पापशून्य मनुष्य। शुद्ध प्राणी।

अकीक--संज्ञा पुं० [अ० अकीक] एक प्रकार का प्रायः लाल बहुमूल्य पत्थर या नगीना।

विशेष--इसपर मुहरें भी खोदी जाती हैं। यह बंबई, बाँदा और खंभात से आता है। इसकी कई किस्में यमन और बगदाद से भी आती हैं।

अकीदत--संज्ञा स्त्री० [अ० अकीदत] श्रद्धा। आस्था। उ०--'मौलाना ने कृष्ण से अपनी अकीदत का इजहार किया था।'--गोदान, पृ० २५।

अकीदतमंद--वि० [अ० अकीदत + फा० मंद] श्रद्धावान्। श्रद्धायुक्त। श्रद्धालु [को०]।

अकीदा--संज्ञा पुं० [अ० अकीदह्] श्रद्धा। विश्वास। उ०--दर्द दिवाने बावरे अलमस्त फकीरा। एक अकीदा लै रहे ऐसे मन धीरा।--मलूक०, पृ० ९।

अकीधा (पु)--वि० [सं० अकृत] बिना किया हुआ। न किया हुआ। उ०--जिम सिणगार अकीधै सोहति प्रो आगमि जाणियै प्रिया।--वेलि० दू० २२८।

अकीन (पु)†--संज्ञा पुं० [अ० यकीन] विश्वास। श्रद्धा। उ०--अकीन इमान जौहर जाहीर दोजक सवाल ना डारियै रे।--सं० दरिया, पृ० ६८।

अकीरति (पु)--संज्ञा स्त्री० दे० 'अकीर्ति'।

अकीर्ति--संज्ञा स्त्री० [सं०] अयश। अपयश। बदनामी।

अकीर्तिकर--वि० [सं०] अकीर्ति करनेवाला। अपयश देनेवाला। बदनाम करनेवाला। अपयश का भागी बनानेवाला। जिससे बदनामी हो।

अकीर्ति--संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अकीर्ति'।

अकुंठ--वि० [सं० अकुण्ठ] १. जो कुंठित या गुठला न हो। तेज। चोखा। २. तीव्र। तीक्ष्ण। खरा। उ०--गएउ गरुड़ जहँ बसइ भुसुंडी। मति अकुंठ हरि भगति अखंडी।--तुलसी (शब्द०)। ३. उत्तम। श्रेष्ठ। उ०--जीवत ही त्रिलोक जीवत हो शिवलोक जीवत बैकुंठ लोक जो अकुंठ गायो है।--सुंदर० ग्रं०, भा० २, पृ० ६२३। ४. कार्यक्षम। शक्तिशाली (को०)। ५. नवीन। शाश्वत। नित्य (को०)

अकुंठधिष्ण्य--संज्ञा पुं० [सं० अकुण्ठधिष्ण्य] नित्य निवास। स्वर्ग [को०]।

अकुंठि--वि० [सं० अकुण्ठ] दे० 'अकुंठ'।

अकुंठित--वि० [सं० अकुण्ठित] १. जो कुंठित न हो। तेज। उ०--परम अकुंठित विरोधिनी सकंठता की, कुलिस सी कठिन कठोरता मैं ढाली है।--रसक०, पृ० ३१३। २. जिसे टाला न जा सके। अटल। उ०--हैं दानव दल दंडन खल खंडन ए। अरि-कुल कंठ-कुठार-अकुंठित व्रत धरे।--पारिजात, पृ० ७।

अकुचना (पु)--क्रि० अ० [सं० आकुञ्चन] आकुंचित होना। संकुचित होना। उ०--काहे कौं पीय संकुचत हौ। अब ऐस जिनि काम करो कहुँ जो अति हीं जिय अकुचत हौ।--सूर०, १०।२७३२।

अकुटिल--वि० [सं०] १. जो कुटिल या टेढ़ा न हो। सीधा। सरल। २. साफ दिल का। निष्कपट। निश्छल। भोला भाला। सीधा साधा।

अकुटिलता--संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कुटिलता का अभाव। सिधाई। २. सादापन। निष्कपटता।

अकुठाना ⓟ—[सं० कुण्ठन] शिथिल होना। सुस्त होना। उ०—का सों कहों कहे को मानै अंग अंग अकुठाई।—धरनी० बा०, पृ० ५।

अकुताना ⓟ—क्रि० अ० दे० 'उकताना'। उ०—पलटू कीनो कछु कहै तनिको ना अकुताहिं।—पलटू०, भा० १, पृ० १२।

अकुतोभय—वि० [सं०] जिसे किसी से अथवा कहीं भय न हो। निर्भय। निडर [को०]।

अकुत्सित—वि० [सं०] जो निंदित वा निम्न न हो [को०]।

अकुप्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. जो धातु निम्न श्रेणी की न हो, सोना या चाँदी। २. कोई भी साधारण धातु, ताँबा, पीतल आदि [को०]।

अकुप्यक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अकुप्य' [को०]।

अकुमार[1]—वि० [सं०] जो कुमार या बालक न हो। वयस्क। प्राप्तवय [को०]।

अकुमार[2]—संज्ञा पुं० इंद्र [को०]।

अकुल[1]—वि० [सं०] १. जिसके कुल में कोई न हो। कुलरहित। परिवारविहीन। उ०—निर्गुन निलज कुबेष कपाली। अकुल अगेह दिगंबर ब्याली।—मानस, १।७९। २. बुरे कुल का। नीच कुल का। अकुलीन। उ०—अकुल कुलीन होत, पाँवर प्रवीन होत, दिन होत चक्कवै चलत छत्रछाया के।—देव, (शब्द०)।

अकुल[2]—संज्ञा पुं० १. बरा कुल। नीच कुल। बुरा खानदान। २. परम तत्व। शिव। उ०—अकुल शरनि पूरी मति होय।—प्राण०, पृ० १८१।

अकुलता—संज्ञा स्त्री० [सं०] कुल की निम्नता [को०]।

अकुला—संज्ञा स्त्री० [सं०] गिरिजा। पार्वती [को०]।

अकुलात ⓟ—वि० [सं० आकुल] अकुलता से युक्त। व्याकुल। उ०—गज्जि भग्ग प्रथिराज चित्त करयौ अकुलातं।—पृ० रा०, २७।१२७।

अकुलाना—क्रि० अ० [सं० आकुलन] १. ऊबना। जल्दी करना। उतावला होना। उ०—(क) 'चलते हैं, क्यों अकुलाते हो' (शब्द०)। (ख) पुनि पुनि मुनि उकसहिं अकुलाहीं।—मानस, १।१३५। २. घबड़ाना। व्याकुल होना। व्यग्र या बेचैन होना। दुखी होना। उ०—(क) अतिसै देखि धर्म कै ग्लानी। परम सभीत धरा अकुलानी।—मानस, १।१८३। (ख) इन दुखिया अँखियानु कौं सुख सिरजौई नाँहि। देखैं बनै न देखतै अनदेखे अकुलाँहि।—बिहारी र०, दो ६६३। ३. बिह्वल होना। मग्न होना। लीन होना। आवेग में आना। उ०—बोलि गुरु भसुर समाज सो मिलन चले, जानि बड़े भाग अनुराग अकुलाने हैं।—तुलसी ग्रं०, पृ०, २६६।

अकुलिनी ⓟ—वि० स्त्री० [सं० अकुलीना] जो कुलवती न हो। कुलटा। व्यभिचारिणी।

अकुलीन—वि० [सं०] १. बुरे कुल का। नीच कुल का। तुच्छ वंश में उत्पन्न। कमीना। क्षुद्र। उ०—कोऊ कहौ कुलटा कुलीन अकुलीन कहौ कोऊ कहौ रंकिनि कलंकिनी कुनारी हौं।—ब्रजमाधुरी०, पृ० ३१४। २. धरती से असंबद्ध। अपार्थिव (को०)।

अकुशल[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. अमंगल। अशुभ। बुराई। अहित। २. बुरा शब्द। अपशब्द (को०)।

अकुशल[2]—वि० १. जो दक्ष न हो। अनिपुण। अनाड़ी। २. भाग्यहीन। अभागा (को०)। ३. अप्रिय (को०)।

अकुशलधर्म—संज्ञा पुं० [सं०] बौद्ध धर्मानुसार प्राणियों का पाप करने का स्वभाव।

अकुसल ⓟ—वि० दे० 'अकुशल-१' उ०—कबि या भाँति, चितेरनि लौं लिखिबै मैं अकुशल।—रत्नाकर, भा० १, पृ० ३१।

अकुसीद—वि० [सं०] सूद न लेनेवाला। लाभ न लेनेवाला [को०]।

अकुसुम—वि० [सं०] पुष्पहीन। बिना फूल का [को०]।

अकुह—संज्ञा पुं० [सं०] वह व्यक्ति जो धोखा नहीं देता। ईमानदार व्यक्ति [को०]।

अकुहक—वि० [सं०] दे० 'अकुह' [को०]।

अकूज—वि० [सं०] चुप। कूजन रहित। शांत [को०]।

अकूट—वि० [सं०] [स्त्री० अकूटा] १. जो प्राकृतिक हो। अकृत्रिम। दिव्य। अलौकिक। उ०—उतर को देइ देव मगि गएऊ। सतद अकूट मँडप मह भएऊ।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० २५०। २. जो व्यर्थ न हो। अमोघ (शस्त्र) (को०)। ३. जो खोटा या नकली न हो (सिक्का) (को०)।

अकूत—वि० [सं० अ + हिं० कूतना] जो कूता न जा सके। जिसकी गिनती या परिमाण न बतलाया जा सके। बेअंदाज। अपरिमित। अगणित। उ०—धन्य भूमि, ब्रजबासी धनि धनि, आनंद करत अकूत।—सूर०, १०।३६।

अकूपार[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. समुद्र। २. वह कच्छप जो पृथ्वी के नीचे माना जाता है। बड़ा कछुआ। ३. पत्थर या चट्टान। ४. सूर्य (को०)।

अकूपार[2]—वि० १. अच्छे परिणाम या फल से युक्त। शुभ परिणाम वाला (को०)। २. असीम। अपरिमित (को०)।

अकूफ—ⓟ संज्ञा पुं० [अ० वुकूफ़] ज्ञान। बुद्धि। समझ। उ०—तिल में बास केहु नहि जाना। कोई अकूफ ही सो पहचाना।—संत० दरिया, पृ० ४१।

अकूर ⓟ—संज्ञा पुं० दे० 'अंकुर'। उ०—पुनि यहै अकूरं नाही ऊगं प्रेम हिलूरं बरषाशी।—सुंदर० ग्रं०, भा० १, पृ० २४१।

अकूर्च[1]—वि० [सं०] १. कपट या धोखा न करनेवाला। अकपटी। २. गंजा। खल्वाट। ३. जिसे दाढ़ी न हो [को०]।

अकूर्च[2]—संज्ञा पुं० बुद्ध [को०]।

अकूल—वि० [सं० अ + कूल] १. जिसका किनारा या ओर छोर न हो। उ०—आकुल अकूल बनने आती, अब तक तो है वह आती।—लहर, पृ० १३। २. अनंत। असीम। उ०—सखी मैं हो गया अकूल वा, भूल गया निज सीमा।—अनामिका, पृ० ६६।

अकूवार—संज्ञा पुं०, वि० [सं०] दे० 'अकूपार' [को०]।

अकूहल ⓟ—वि० [देश०] बहुत अधिक। असंख्य। उ०—खेलत हँसत करत कौतूहल। जुरे लोग जहँ तहाँ अकूहल।—सूर (शब्द)।

अकृच्छ्र¹—संज्ञा पुं०, [सं०] १. क्लेश का अभाव। २. आसानी। सुगमता। असंकोच।

अकृच्छ्र²—वि० १. क्लेशशून्य। जिसे किसी प्रकार का संकोच या कष्ट न हो। २. आसान। सुगम।

अकृच्छ्री—वि० [सं०] कठिनाई और भय या घबराहट से मुक्त। क्लेश-विहीन [को०]।

अकृत¹—वि० [सं०] १. बिना किया हुआ। असंपादित। २. अन्यथा किया हुआ। अंडबंड किया हुआ। बिगड़ा हुआ। ३. जो किसी का बनाया न हो। नित्य। स्वयंभू। ४. प्राकृतिक। ५ जिसकी कुछ करनी या करतूत न हो। निकम्मा। बेकाम। कर्महीन। बुरा। मंद। उ०—नाहीं मेरे और कोउ बलि, चरन कमल बिनु ठाउँ। हौं असौच, अकृत, अपराधी संमुख होत लजाउँ।—सूर (शब्द०)। ६. कच्चा। अपक्व (भोजन) (को०)। ७. अविकसित। जो विकसित न हो (को०)।

अकृत²—संज्ञा पुं० १. कारण। २. मोक्ष। ३. स्वभाव। प्रकृति। ४. जो पूर्ण न किया गया हो। अधूरा या अपूर्ण कार्य (को०)।

अकृतकार—क्रि० वि० ऐसे ढंग से जो पहले न किया गया हो [को०]।

अकृतकार्य—वि० [सं० अ + कृतकार्य = सफल] असफल। विफल। उ०—'चाबी मुझे कहीं मिली नहीं। अकृतकार्य होकर मैं बेचैन हो आई'।—सुखदा, पृ० १६६।

अकृतकाल—वि० [सं०] आधि या गिरवी के दो भेदों में से एक। जिसके लिये काल नियत न हो। जिसके लिये कोई समय या मियाद न बाँधी गई हो। बेमियाद।

विशेष—धर्मशास्त्र में आधि या गिरवी के दो भेद किए गए गए हैं जिनमें एक अकृतकाल है अर्थात् जिसका रखनेवाला वस्तु के छुड़ाने के लिये कोई अवधि नहीं बाँधता। गैरमियादी (रेहन)।

अकृतचिकीर्षा (संधि)—संज्ञा स्त्री० [सं०] साम आदि उपायों से नई संधि करना तथा उसमें छोटे, बड़े और समान राजाओं के अधिकारों का उचित ध्यान रखना।

अकृतज्ञ—वि० [सं०] १ जो कृतज्ञ न हो। किए हुए उपकारों को जो न माने। कृतघ्न। नाशुकरा। २ अधम। नीच।

क्रि० प्र०—होना।

अकृतज्ञता—संज्ञा स्त्री० [सं०] उपकार न मानने का भाव। कृतघ्नता। नाशुकरापन।

क्रि० प्र०—करना—होना।

अकृतधी—वि० [सं०] अपरिपक्व बुद्धिवाला [को०]।

अकृतबुद्धि—वि० [सं०] अनजान। अज्ञ। अपरिपक्व बुद्धि। उ०—असहाय (सहायकों—मंत्रियों—से रहित), मूढ़, लुब्ध, अकृतबुद्धि और विषयासक्त (राजा) उस (दंड) का न्याय में संचालन नहीं कर सकता'।—भा० इ० रू०, पृ० ६६५।

अकृतबुद्धित्व—संज्ञा पुं० [सं०] अज्ञान। अज्ञता [को०]।

अकृतव्रण—वि० [सं०] जिसे घाव या व्रण न हो [को०]।

अकृतशुल्क—वि० [सं०] १. जिसने महसूल या चुंगी न दी हो। २. जिसपर महसूल न लगा हो (माल)।

अकृता—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह लड़की जो पुत्र के अधिकारवाली मान ली गई हो।

अकृतात्मा—वि० [सं०] अपरिपक्व मतिवाला। अज्ञ। असंयत। उ०—'दंड का बड़ा तेज है, अकृतात्मा उसे धारण नहीं कर पाते'।—भा० इ० रू०, पृ० ६६५। २. ब्रह्म को न जाननेवाला। जो ब्रह्मज्ञ न हो (को०)।

अकृताभ्यागम—संज्ञा पुं० [सं०] बिना किए हुए कर्मफल की प्राप्ति।

विशेष—न्याय या तर्कशास्त्र में यह दोष माना गया है।

अकृतार्थ—वि० [सं०] १. जिसका कार्य न हुआ हो। जिसका कार्य पूरा न हुआ हो। अकृतकार्य। २. जिसको कुछ फल न मिला हो। फल से वंचित। फलरहित। ३. कार्य में अदक्ष। अपटु। अकुशल।

अकृतार्थता—संज्ञा स्त्री० [सं०] असफलता। विफलता। उ०—'असतर्कता कलालक्ष्मी का अपमान करती है और कलालक्ष्मी उसका बदला अकृतार्थता देकर लेती है।'—टैगोर०, पृ० ४१।

अकृतास्त्र—वि० [सं०] जो अस्त्र का प्रयोग करने में कुशल न हो [को०]।

अकृतित्व—संज्ञा पुं० [सं०] अकर्मण्यता [को०]।

अकृती¹—वि० [सं० अकृतिन्] [स्त्री० अकृतिनी] काम न करने योग्य। निकम्मा। उ०—कहाँ जायँ, क्या करें, अभागे अकृती अब ये?—साकेत, पृ० ४०५।

अकृती²—संज्ञा पुं० वह आदमी जो किसी काम लायक न हो। निकम्मा मनुष्य।

अकृतैनस्—वि० [सं०] निष्पाप। निरपराध [को०]।

अकृतोद्वाह—वि० [सं०] अविवाहित [को०]।

अकृत्त—वि० [सं०] जो कटा न हो। जिसमें कोई काट छाँट न की गई हो [को०]।

अकृत्य¹—संज्ञा पुं० [सं०] बुरा काम। अपराध।

अकृत्य²—वि० जो करने योग्य न हो। अकरणीय [को०]।

अकृत्यकारी—वि० [सं०] अकृत्य करनेवाला। दुष्कर्मी [को०]।

अकृत्रिम—वि० [सं०] १. अपने आप उत्पन्न। प्रकृतिसिद्ध। बे बनावटी। प्राकृतिक। नैसर्गिक। स्वाभाविक। २. असली। सच्चा। यथार्थ। वास्तविक। ३. हार्दिक। आंतरिक। जैसे—'हमारा उसके ऊपर अकृत्रिम प्रेम है।' (शब्द०)।

अकृत्स्न—वि० [सं०] जो पूरा या समग्र न हो। अपूर्ण [को०]।

अकृप—वि० [सं०] कृपारहित। निर्दय। निष्ठुर [को०]।

अकृपण—वि० [सं०] जो कृपण या कंजूस न हो। उदार [को०]।

अकृपणता—संज्ञा स्त्री० [सं०] कृपणता का अभाव। उदारता [को०]।

अकृपा—संज्ञा स्त्री० [सं०] कृपा का अभाव। कोप। क्रोध। नाराजी। उ०—'पश्चिमोत्तर प्रदेश पर अधिकतर परमेश्वर की अकृपा प्रतीत होती है।'—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ५१।

अकृपालु—संज्ञा पुं० [सं० अ + कृपालु] जो कृपालु न हो। कृपारहित। निर्दय। उ०—दीनबंधु दूसरो कहँ पावों? प्रभु अकृपालु,

कृपाल, अलायक जहँ जहँ चितहिं डोलावों ।––तुलसी ग्रं०, पृ० ५४७ ।

अकृश––वि० [सं०] कृशतारहित । स्वस्थ । भरापूरा । उ०––जीवन में पुलकित प्रणय सदृश, यौवन की पहली कांति अकृश ।––झरना, पृ० १० ।

अकृशलक्ष्मी[1]––वि० [सं०] प्रभूत लक्ष्मीवाला । समृद्ध । संपन्न । वैभवशाली [को०] ।

अकृशलक्ष्मी[2]––संज्ञा स्त्री० अत्यधिक समृद्धि या ऐश्वर्य [को०] ।

अकृषीवल––वि० [सं०] जो खेतिहर न हो । गैर किसान । कृषकेतर [को०] ।

अकृष्ट[1]––वि० [सं०] १. जो जुता न हो । जो खींचा न गया हो । जो जाता न गया हो [को०] ।

अकृष्ट[2]––संज्ञा पुं० वह भूमि जो जोती न जाती हो । परती भूमि [को०] ।

अकृष्टपच्य––वि० [सं०] [स्त्री० अकृष्टपच्या] बिना जोती हुई भूमि में पैदा होने और पक जानेवाला । जो बिना जोते पैदा हो । उ०––फसलें दो प्रकार की थीं, कृष्टपच्य जो खेत से उत्पन्न हों, अकृष्टपच्य जैसे नीवार आदि जंगली धान्य ।––पाणिनि०, पृ० २०५ ।

अकृष्टपच्या––वि० [सं०] १. (विशेषतः भूमि) जो बिना जोते हुए धान्य, फल आदि पैदा करे । २. अत्यधिक उपजवाली । बहुत उपजाऊ [को०] ।

अकृष्टरोही––वि० [सं०] अकृष्ट या परती भूमि में स्वतः उगने या अंकुरित होनेवाला [को०] ।

अकृष्ण[1]––वि० [सं०] १. जो कृष्ण या काला न हो । श्वेत । सफेद २. शुद्ध । निर्मल [को०] ।

अकृष्ण[2]––संज्ञा पुं० निष्कलंक चाँद [को०] ।

अकृष्णकर्मा––वि० [सं०] काला (पाप) कर्म न करनेवाला । निर्दोष । निरपराध । निष्पाप । पुण्यात्मा [को०] ।

अकेतन––वि० [सं०] बिना घरबार का । खानबदोश । बेठिकाना ।

अकेतु––वि० [सं०] १. जिसका कोई चिह्न न हो । आकारशून्य । २. अपरिचेय । जिसकी पहचान न हो सके [को०] ।

अकेल(पु)––वि० दे० 'अकेला' । उ०––रिपु तेजसी अकेल अपि लघु करि गनिअ न ताहु ।––मानस, १।१७० ।

अकेला[1]––वि० [सं० एकल; प्रा० अक्केल्लय, एकल्लय] [स्त्री० अकेली] जिसके साथ कोई न हो । बिना साथी का । दुकेले का उलटा । एकाकी । तनहा; जैसे––'वह अकेला आदमी इतनी चीजें कैसे ले जायेगा' (शब्द०) । उ०––मैं अकेला, देखता हूँ आ रही मेरे दिवस की सांध्य वेला ।––अणिमा, पृ० २० ।

मुहा०––**अकेला चना भाड़ नहीं फोड़ता** = एकाकी या अकेले व्यक्ति द्वारा बड़ा काम न होना । **अकेला हँसता भला न रोता** = एकाकी या तनहा किसी प्रकार बात न बन पड़ना ।

२. अद्वितीय । यकता । निराला; जैसे––'वह इस हुनर में अकेला है ।'––(शब्द) ।

यौ०––**अकेला दम** = एक ही प्राणी । बिलकुल एकाकी । जैसे––'हमारा तो अकेला दम है, जब तक जीते हैं खर्च करते हैं ।'––(शब्द०) । **अकेला दुकेला** = (१) एक या दो । इक्का दुक्का । (२) एकाकी ।

अकेला[2]––संज्ञा पुं० निराला । एकांत । शून्य स्थान । निर्जन स्थान; जैसे––'वह तुम्हें अकेले में पावेगा तो जरूर मारेगा' (शब्द०) ।

अकेली––वि० स्त्री० १. दे० 'अकेला–१' । उ०––अकेली भूलि परी बन माहिं ।––सूर०, १०।११०४ । २. केवल । सिर्फ । मात्र । उ०––इंद्रिन सहित चित्त हू लै गइ रही अकेली हमहीं ।––सूर०, १०।२०९६ ।

मुहा०––**अकेली लकड़ी भी नहीं जलती** = अकेले कोई भी काम नहीं हो सकता ।

यौ०––**अकेली कहानी** = एक पक्ष की ओर से किसी ऐसे समय कही गई बात जब उसको काटनेवाला दूसरे पक्ष का कोई न हो । एकतरफा बात । एकपक्षीय वार्ता; जैसे––'अकेली कहानी गुड़ से मीठी' (शब्द०) । **अकेली दुकेली** = दे० 'अकेला दुकेला', जैसे––'कोई अकेली दुकेली सवारी मिले तो बैठा लेना (शब्द०) **अकेली जान** = दे० अकेला दम' ।

अकेले––क्रि० वि० [हिं० अकेला] १. किसी साथी के बिना । एकाकी । आप ही आप । तनहा । उ०––अदेखे अकेले किते दिन ह्वै गए, चाह गई चित सो कढ़ि सोऊ ।––ठाकुर०, पृ०७ । २ मात्र । सिर्फ । केवल; जैसे––'अकेले चिट्ठी लिखने से काम न चलेगा' (शब्द०) ।

यौ०––**अकेले अकेले** = अलग अलग । उ०––बिना समाजबद्ध हुए देश की दशा सुधारने का प्रयत्न अकेले अकेले व्यर्थ होगा' ––प्रेमघन० भा० २, पृ० २७१ । **अकेले दम** = दे० 'अकेला दम'; जैसे––'हम तो अकेले दम हैं, चाहे जहाँ रहें' (शब्द०) । **अकेले दुकेले** = दे० अकेला दुकेला' । उ०––किंतु जहाँ अकेले दुकेले या थोड़े आदमी कोई नया धंधा अख्तियार करते····' ––भा० इ० रू०, पृ० १०२१ ।

अकेश––वि० [सं०] १. बिना केश का । केशरहित । २ अल्पकेश । थोड़े केशवाला । ३. बुरे या असुंदर बालोंवाला [को०] ।

अकेहरा†––वि० दे० 'एकहरा' ।

अकैतव[1]––संज्ञा पुं० [सं०] कपट का अभाव । निष्कपटता । सिधाई ।

अकैतव[2]––वि० कपटरहित । सीधा । छलहीन [को०] ।

अकैया†––संज्ञा पुं० [सं० अक्ष = प्रा० अक्ख, अक्क, हिं० अक + ऐया (प्रत्य०)] वस्तु लादने के लिये थैला या टोकरा । खुरजी । गोन । कजावा ।

अकोट[1](पु)––वि० [सं० कोटि] करोड़ों । असंख्य । उ०––बाजे तबल अकोट जुझाऊ । चढ़ा कोप सब राजा राऊ ।––जायसी (शब्द०) ।

अकोट[2]––संज्ञा पुं० [सं०] पुंगीफल का वृक्ष या सुपारी [को०] ।

अकोढ़ई†––संज्ञा स्त्री० [सं० अकठोर = सरल, + ई (हिं० प्रत्य०)] वह भूमि जो सींचने से बहुत जल्दी भर जाती है । वह भूमि जिसमें पानी ठहरा रहता है ।

अकोतरसौ[1](पु)––वि० [सं० एकोत्तरशत] सौ के ऊपर । एक सौ एक । उ०––खँड़रा खाँड जो खड़े खंडे । बरी अकोतर सौ कह हंडे ।––जायसी (शब्द०) ।

अकोतरसौ[2](पु)––संज्ञा पुं० एक सौ एक की संख्या––१०१ ।

अकोप––संज्ञा पुं० [सं०] १. कोप का अभाव । प्रसन्नता । खुशी । २. राजा दशरथ के आठ मंत्रियों में से एक ।

अकोपन—वि० पुं० [सं०] [स्त्री० अकोपना] क्रोध से रहित। अक्रोधी [को०]।

अकोप्यापरायाता—संज्ञा स्त्री० [सं०] सिक्कों का चलन। सिक्के के चलने में किसी प्रकार की रुकावट न होना।

अकोबिद(पु)—वि० दे० 'अकोविद'। उ०—अज्ञ अकोबिद अंध अभागी। काई बिषय मुकुर मन लागी।—मानस, १।११५।

अकोर(पु)—संज्ञा पुं० [सं० क्रोड, प्रा० कोड>हिं० अकोर अथवा सं० अङ्कक्रोड, प्रा० अंककोड, अंककोर>हिं० अँकोर, अकोर] १ आलिंगन। अँकवार। उ०—पान करत कहूँ तृप्ति न मानत पलकनि देत अकोर।—सूर०, १०। १७६१। २. भेंट। नजर। उपहार। उ०—माया प्रान अकोर देकर सतगुरु पूरा।—कबीर श०, भा० ३, पृ० ३७। ३. रिश्वत। घूस। उ०—फूले फिरत दिखावत औरन निडर भये दे हँसनि अकोर।—सूर० (राधा०), २१३१।

अकोरना(पु)—क्रि० स० [हिं० अकोर से नाम०] आलिंगन करना। उ०—मौन भली कहि कौन सकै घन आनंद जान सु नाक सकोरैं। रीझ बिलोइए डारति हैं हिय, मोहति टोहति थारी अकोरैं।—घनानंद, पृ० ५७।

अकोरी(पु)—संज्ञा स्त्री० दे० 'अँकवारी'। उ०—यहि ते जो नेक लबुधियाँ री। गहत सोई जो समात अकोरी।—सूर० (राधा०), ३३४५।

अकोल(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० अकोर] भेंट। नजर। उपहार। उ०—अछै रंग में रंगिया दीन्ह्यो प्रान अकोल।—संतबानी०, भा०१, पृ० १४०।

अकोला¹—संज्ञा पुं० [सं० अङ्कोल] अँकोल का पेड़।

अकोला²—संज्ञा पुं० [सं० अग्र, प्रा० अगर, अकर>हिं० अकोर अथवा सं० कोटि प्रा० कोर> हिं० अकोर, अकोला] ऊख के सिरे पर की पत्ती। अँगारी। अकोला। अगौला। गेंड़ा।

अकोविद—वि० [सं०] जो जानकार न हो। मूर्ख। अज्ञानी। अनाड़ी।

अकोसना†(पु)—क्रि० स० [सं० आक्रोशन; प्रा० अक्कोस] बुरा भला कहना। गालियाँ देना। कोसना।

अकौआ†—संज्ञा पुं० [सं० अर्क; प्रा० अक्क+औआ (वा) (प्रत्य०)] १. मदार। आक। २. ललरी। घंटी। कौआ।

अकौटा†—संज्ञा पुं० [सं० अक्ष, प्रा० अक्ख, अक्क, अक=धुरा+अटन=घूमना] डंडा जिस पर गड़ारी घूमती है। धुरा।

अकौटिल्य—संज्ञा पुं० [सं०] कुटिलता का अभाव। निष्कपटता। सिधाई। सरलता।

अकौता†—संज्ञा पुं० [हिं० उकवत] दे० 'उकवत'।

अकौवा†—संज्ञा पुं० [हिं० अकौवा] दे० 'अकौआ'।

अकौशल—संज्ञा पुं० [सं०] कुशलता या दक्षता का अभाव। अदक्षता [को०]।

अक्क¹(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अर्क प्रा० अक्क] १. सूर्य। रवि। उ०—गतिधीर धीर वह चली सेन, रजरंजित अंबर अक्क ऐन।—सुजान०, पृ० १८। २. आक। मदार। उ०—दहिसी गात कुवाँरियाँ, थल जाली बलि अक्क।—ढोला०, दू० २८६।

अक्क²—संज्ञा पुं० [सं०] घर का कोना [को०]।

अक्क³—संज्ञा स्त्री० [सं०] अक्का (माँ) का संबोधन रूप; जैसे—'हे अक्क।'

अक्का¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] माता। माँ।

अक्का²—संज्ञा स्त्री० [देश०] बहन [को०]।

अक्कास—संज्ञा पुं० [अ०] चित्रकार। फोटोग्राफर [को०]।

अक्कासी¹—वि० [अ०] चित्रकारी। चित्र उतारना [को०]।

अक्कासी²†—संज्ञा स्त्री०] [हिं० अकास] वह डाल जो नीचे झुकी हुई हो। उ०—अक्कासी आती हुई देखकर, रामलाल बोले एक डंडे से टेककर।—कुकुर०, पृ० ५५।

अक्कित्त(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० अकीर्ति] अकीर्ति। अपयश। उ०—अक्कित्त राह पच्छै फिरग। चक्र तेग सद्धिय सुबुधि।—पृ० रा०, २५। ३३५।

अक्किल†—संज्ञा स्त्री० [अ० अक्ल, हिं० अकिल] दे० 'अक्ल'। उ०—मेरी बिटिया के कुछ अक्किल नहीं है। बड़ी सीधी है।—दहकते०, पृ० ७६।

अक्के दुक्के†—क्रि० वि० दे० 'इक्के दुक्के'।

अक्ख(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० अक्ष; प्रा० अक्ख] आँख। नेत्र। उ०—जो कोई मेरे बच्चे को तक्के। उसकी फूटें दोनों अक्खे (शब्द०)।

अक्खड़—वि० [सं० अक्षर=न टलनेवाला। डटा रहनेवाला; प्रा० अक्खड़] १. न मुड़नेवाला। अड़नेवाला किसी का कहना न माननेवाला। उग्र। उद्धत। उच्छृंखल। २. बिगड़ैल। झगड़ालू। ३. निःशंक। निर्भय। बेडर। उ०—'वहीं बनारसी गुंडे और अक्खड़ों की बोली ठोलियाँ उड़तीं'।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ११४। ४. असभ्य। अशिष्ट। दुःशील। ५. उजड्ड। अनगढ़। जड़ मूर्ख। ६. जिसे कुछ कहने या करने में संकोच न हो। स्पष्टवक्ता। खरा।

अक्खड़पन—संज्ञा पुं० [हिं० अक्खड़+पन(प्रत्य०)] १ अक्खड़ होने का भाव। अशिष्टता। असभ्यता। दुःशीलता। उच्छृंखलता। २. जड़ता। उजड्डपन। अनगढ़पना। ३. उग्रता। कड़ाई। उद्धतपन। कलहप्रियता। ४. निःशंकता। निर्भयता। स्पष्टवादिता। खरापन।

अक्खना(पु)—क्रि० स० [सं० आख्यान, प्रा० अक्खाण, पं० आखना] कहना। बोलना। उ०—जो उपजै यहि बार सोई प्रभु आपनु अक्खिय—हम्मीर रा०, पृ० ६४।

अक्खर(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अक्षर; प्रा० अक्खर] अक्षर। हरफ। वर्ण। उ०—अक्खर आवै जाय अखर को ताहि ठिकाना।—पलटू० पृ० ११०।

अक्खरिका(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० अक्षरिका] एक प्रकार की क्रीड़ा या खेल। उ०—'बौद्धों के 'शील' ग्रंथ में बौद्ध साधुओं के लिये जिन जिन बातों का निषेध किया गया है, उनमें अक्खरिका नामक खेल भी शामिल है'।—भा० प्रा० लि०, पृ० ४।

अक्खा--संज्ञा पुं० [सं०√अक्ष=संग्रह करना] टाट या कंबल का दोहरा थैला जो अनाज आदि लादने के लिये घोड़ों या बैलों की पीठ पर रखा जाता है। खुरजी। गोन। अकैया।

अक्खोमक्खो--संज्ञा पुं० [सं० अक्षि+मुख, प्रा० अक्ख+मुख, (पु)अक्खोमक्खो] दीपक की लौ तक हाथ ले जाकर बच्चे के मुँह पर फेरना ताकि उसे कुदृष्टि न लगे।

विशेष--बुरी नजर से बचाने के लिये स्त्रियाँ संध्या के समय छोटे बच्चों के चेहरे पर इस प्रकार हाथ फेरती हुई कहती हैं--'अक्खो मक्खो दिया बरक्खो। जो कोई मेरे बच्चे को तक्के उसकी फूटें दोनों अक्खें,' इत्यादि।

अक्टोबर--संज्ञा पुं० [अं०] अंग्रेजी वर्ष का दसवाँ महीना जो कुआर में पड़ता है।

विशेष--पहले यह वर्ष का आठवाँ मास था। रोमन सम्राटों के नाम से जुलाई और अगस्त के दो मास और जुड़ जाने से यह दसवाँ महीना हुआ।

अक्त--वि० [सं०] १. व्याप्त। संकुल। २. लिप्त। लिया हुआ। ३. भरा हुआ। परिपूर्ण। ४. संयुक्त। युक्त। सहित। ५. सफल। ६. रँगा हुआ। ७. गत (को०) ८. अंजनयुक्त (को०)। ९. स्पष्ट किया हुआ (को०)। १०. चलने के लिये प्रेरित किया हुआ। चलाया हुआ (को०)।

विशेष--यह शब्द प्रत्यय की भाँति शब्दों के पीछे जोड़ा जाता है; जैसे, विषाक्त, रक्ताक्त।

अक्ता--संज्ञा स्त्री० [सं०] रात्रि [को०]।

अक्तूबर--संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अक्टोबर'।

अक्तु--संज्ञा स्त्री० [सं०] १. अंधकार। २. रात्रि। ३. प्रकाश। किरण। ४. मलहम [को०]।

अक्त्र--संज्ञा पुं० [सं०] कवच। वर्म [को०]।

अक्द--संज्ञा पुं० [अ० अक्द] १. विवाह। पाणिग्रहण। २. गाँठ। ग्रंथि। ३. वचन। प्रतिज्ञा। इकरार [को०]।

अक्दनामा--संज्ञा पुं० [अ० अक्द+फा० नामा] १. विवाह का प्रतिज्ञापत्र। इकरारनामा [को०]।

अक्दबंदी--संज्ञा स्त्री० [अ० अक्द+फा० बंदी] विवाहसूत्र में बँधना [को०]।

अक्र[1]--वि० [सं०] १. स्थिर। निष्क्रिय। अकर्मण्य। २. अहितकर। अलाभकर [को०]।

अक्र[2]--संज्ञा पुं० १. झंडा। पताका। २. प्राचीर। प्राकार [को०]।

अक्रतु--वि० [सं०] १. क्रतु से रहित। यज्ञविहीन। २. शक्तिहीन। बलरहित। ३. मूर्ख। अज्ञ। ४. इच्छारहित। संकल्प रहित [को०]।

अक्रम[1]--वि० [सं०] १. क्रमरहित। बिना क्रम का। अंडबंड। उलटा सीधा। बेतरतीब। बेसिलसिले। २. गतिहीन। पादशून्य (को०)

अक्रम[2]--संज्ञा पुं० १. क्रम का अभाव। व्यतिक्रम। विपर्यय। अव्यवस्था। बेतरतीबी। २. गति का अभाव। गतिहीनता [को०]।

अक्रम[3](पु)--संज्ञा पुं० दे० 'अकर्म'।

अक्रमसंन्यास--संज्ञा पुं० [सं०] दो प्रकार के संन्यासों में से एक। वह संन्यास जो क्रम से ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ के पीछे न लिया गया हो वरन् बीच ही में धारण किया गया हो।

अक्रमातिशयोक्ति--संज्ञा स्त्री० [सं०] अतिशयोक्ति नामक अलंकार का एक भेद जिसमें कारण के साथ ही कार्य हो; जैसे--उठयो संग गज कर कमल चक्र चक्रधर हाथ। कर तें चक्र सु नक्र सिर धरतें बिलग्यो साथ (शब्द०)।

अक्रव्याद--वि० [सं०] १. निरामिष भोजी। जो मांसाहारी न हो। २. राक्षसेतर [को०]।

अक्रांत- वि० [सं० अक्रान्त] १. अपराजित। अविजित। २. जो दुहरा न हो [को०]।

अक्रांता--संज्ञा स्त्री० [सं० अक्रान्ता] कंटकारी। बृहती। भटकटैया का पौधा [को०]।

अक्रित(पु)--वि० [सं० अकृत] दे० 'अकृत'।

अक्रिय--वि० [सं०] १ क्रियारहित। जो कर्म न करे। व्यापाररहित। २. चेष्टारहित। निश्चेष्ट जड़। स्तब्ध। ३. निकम्मा। बेकार (को०)।

क्रि० प्र०--करना --होना।

अक्रियता--संज्ञा स्त्री० [सं०] १. क्रिया या कर्म का अभाव। २. कर्मकांड का अभाव [को०]।

अक्रियवाद--संज्ञा पुं० [सं० अक्रिय+वाद] यज्ञादि क्रियाओं का कुछ फल न माननेवाला सिद्धांत। उ०--'मैं तो तीर्थंकर पूरण कश्यप के सिद्धांत अक्रियवाद को मानता हूँ।--इंद्र०, पृ० १३०।

अक्रिया--संज्ञा स्त्री० [सं०] १. निष्क्रियता। कर्मशून्यता २. कर्तव्य या कार्य की उपेक्षा [को०]।

अक्रियावाद--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अक्रियवाद'। उ०--वे अक्रियवाद मत या अकर्म के प्रचारक थे।'--हिंदु० सभ्यता, पृ० २१६।

अक्री(पु)--वि० [सं० अक्रिय] दे० 'अक्रिय'।

अक्रूर[1]--वि० [सं०] जो क्रूर न हो। सरल। दयालु। सुशील कोमल।

अक्रूर[2]--संज्ञा पुं० श्वफल्क और गांदिनी का पुत्र एक यादव।

विशेष--यह श्रीकृष्ण का चाचा लगता था। इसी के साथ कृष्ण और बलदेव मथुरा गए थे। सत्राजित का स्यमंतक मणि लेकर यह काशी चला गया था।

अक्रोध[1]--वि० [सं०] क्रोधविहीन। कोपरहित [को०]।

अक्रोध[2]--संज्ञा पुं० १. क्रोध का अभाव। २. धर्म के १० लक्षणों में एक [को०]।

अक्रोधन[1]--वि० [सं०] क्रोध न करनेवाला। कोपरहित [को०]।

अक्रोधन[2]--संज्ञा पुं० आयुतायु का पुत्र एक राजा [को०]।

अक्ल--संज्ञा स्त्री० [अ० अक्ल] बुद्धि। समझ। सूझबूझ। ज्ञान। प्रज्ञा। उ०--मैं तो दीवाना था उसकी अक्ल को क्या हो गया।--शेर०, भा० १, पृ० ४५१। २. चतुरता। होशियारी (को०)। ३. विवेक। तमीज (को०)।

क्रि० प्र०--आना।--खोना।--गँवाना।--जाना।--देना।--पाना।--रहना।--होना।

मुहा०--अक्ल आना=(१) समझ का आना। (२) सही रास्ते पर आना। अक्ल उड़ जाना=(१) समझ में न आना।

अक्ल काम न देना। (२) घबरा जाना। **अक्ल उड़ाना**=(१) हैरान करना। (२) त्रस्त करना। **अक्ल उलटी होना**=(१) मूर्ख या नासमझ होना। (२) कुछ का कुछ समझना। **अक्ल औंधी होना**=दे० 'अक्ल उलटी होना'। **अक्ल का अंधा**=अत्यंत मूर्ख। **अक्ल का काम न करना**=समझ में न आना। कर्तव्य-ज्ञान-शून्य होना। उ०—'मेहरी, हुजूर अक्ल नहीं काम करती'।—फिसाना०, भा० ३, पृ० १। **अक्ल का चक्कर में आना**=(१) घबराना। (२) विस्मित होना। **अक्ल का चरने जाना**=(१) समझ जाती रहना। (२) बदहवास होना। **अक्ल का चिराग गुल होना**=समझ में फर्क आना। **अक्ल का दुश्मन**=अत्यंत मूर्ख। बुद्धिविरोधी काम करनेवाला। **अक्ल का पुतला**=बहुत बुद्धिमान या ज्ञानी। उ०—बस, सारी बात यह है कि यह लोग अक्ल के पुतले हैं। कोई शै दुनियाँ के पर्दे पर ऐसी नहीं जिससे यह वाकिफ न हों।—फिसाना०, भा० ३, पृ० १७। **अक्ल का पूरा**=बूढ़ू। मूर्ख। (व्यंग्य)। **अक्ल का मारा**=बहुत ही मूर्ख। **अक्ल की कोताही**=बुद्धिहीनता। मूर्खता। **अक्ल की मार**=बेवकूफी। **अक्ल के घोड़े दौड़ाना**=(१) बहुत सोचना या विचार करना। (२) खयाली पुलाव पकाना। **अक्ल के तोते उड़ना**=होश ठिकाने न रहना। घबरा जाना। **अक्ल के पीछे लट्ठ लिए फिरना**=बुद्धिविरोधी काम करना। **अक्ल के बखिए उधेड़ना**=अक्ल गँवा देना। **अक्ल के होश उड़ना**=दे० 'अक्ल के तोते उड़ना'। उ०—'और मुकाम बुलंद इस कदर कि अक्ल के होश उड़ते हैं'।—फिसाना०, भा० ३, पृ० २१३। **अक्ल को रोना**=नासमझी पर अफसोस करना। उ०—'अक्ल को तो हुस्नआरा रो चुकी'।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ३२०। **अक्ल खर्च करना**=सोचने समझने की कोशिश करना। **अक्ल गुम होना**=होशहवाश जाते रहना। **अक्ल गुद्दी में होना**=बेवकूफ या कमअक्ल होना। **अक्ल छू जाना**=थोड़ी सी समझ होना। **अक्ल जाती रहना**=दे० 'अक्ल जाना'। **अक्ल जाना**=(१) समझ न रहना। (२) घबरा जाना। **अक्ल ठिकाने रहना**=होशहवास दुरुस्त होना। उ०—अब मैं, उसको समझाऊँ कि बहन अक्ल ठिकाने किसकी है'।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ३२०। **अक्ल ठिकाने न रहना**=होश दुरुस्त न रहना। **अक्ल ठीक करना**=शक्ति या नीति द्वारा किसी का गर्व तोड़ना। **अक्ल दंग होना**=दे० 'अक्ल हैरान होना'। उ०—'बेगम' अक्ल दंग है'।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ५। **अक्ल देना**=सीख देना समझाना बुझाना। **अक्ल दौड़ाना**=सोच विचार करना। जुगत बैठाना। **अक्ल पर झाड़ू फेरना**=नासमझी का व्यवहार करना। **अक्ल पर पत्थर पड़ना**=निहायत बेअक्ल होना। **अक्ल पर पर्दा पड़ना**=समझ जाती रहना। उ०—पूछा जो उनसे आपका पर्दा वो क्या हुआ, कहने लगीं कि अक्ल पै मर्दों के पड़ गया।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ६४१। **अक्ल भिड़ाना**=दे० 'अक्ल दौड़ाना'। **अक्ल मारी जाना**=बुद्धि का बेकार होना। **अक्ल रफूचक्कर होना**=अक्ल का काम न करना। **अक्ल लड़ाना**=दे० 'अक्ल दौड़ाना'। **अक्ल सठियाना**=बुद्धि भ्रष्ट हो जाना; जैसे—'इस बुड्ढे की अक्ल तो सठिया गई है'।—(शब्द०)।

विशेष—ऐसा कहते हैं कि साठ वर्ष बाद मनुष्य की बुद्धि जीर्ण या बेकाम हो जाती है।

अक्ल से दूर होना=समझ या बुद्धि से बाहर होना। **अक्ल से बाहर होना**=दे० 'अक्ल से दूर होना'।

यौ०—**अक्ले इंसानी**=मनुष्य की बुद्धि। **अक्ले कुल**=(१) देवदूत। फरिश्ता। (२) मूर्ख। घामड़ (व्यंग्य)। **अक्ले सलीम**=संतुलित बुद्धि। सद्बुद्धि। **अक्ले हैवानी**=पशुतुल्य बुद्धि। पशुबुद्धि।

अक्लमंद—वि० [अ० **अक्ल**+फा० **मंद**] बुद्धिमान्। चतुर। सयाना। विज्ञ। समझदार। होशियार।

मुहा०—**अक्लमंद की दुम**=मूर्ख (व्यंग्य)।

अक्लमंदी—संज्ञा स्त्री० [अ० **अक्ल**+फा० **मंदी**] बुद्धिमानी। समझदारी। चतुराई। सयानापन। विज्ञता।

अक्लम[1]—वि० [सं०] जो थका न हो। अक्लांत। उ०—लाज का आज भूषण, अक्लम नारी का।—तुलसी०, पृ० ५०।

अक्लम[2]—संज्ञा पुं० क्लम या थकावट का अभाव [को०]।

अक्लांत—वि० [सं०] १. जो थका न हो। क्लांतिरहित। उ०—'भाभी की अक्लांत परिचर्या से प्रायः एक सप्ताह बाद मैं ज्वरमुक्त हो गया'।—जिप्सी, पृ० ५५३। २. अम्लान. जो मुरझाया न हो (को०)।

अक्लिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] नील का पौधा [को०]।

अक्लिन्न—वि० [सं०] जो गीला या नम न हो [को०]।

अक्लिन्नवर्त्म—संज्ञा पुं० [सं०] एक नेत्ररोग जिसमें पलकें चिपक जाती हैं।

अक्लिष्ट—वि० [सं०] १. बिना क्लेश का। कष्टरहित। २. सुगम। सहज। आसान। सरल। सीधा। ३. विवादरहित। निर्विवाद (को०)। ४. क्लांतिरहित। जिसे थकान न हो (को०)।

अक्लिष्टकर्मा—वि० [सं०] जो कार्य करते हुए न थके [को०]।

अक्लिष्टकारी—वि० [सं०] [स्त्री० अक्लिष्टकारिणी] दे० 'अक्लिष्टकर्मा' [को०]।

अक्लिष्टवर्ण—वि० [सं०] जो संदेहास्पद न हो। प्रामाणिक [को०]।

अक्लिष्टव्रत—[सं०] जो व्रत करने में न थके [को०]।

अक्ली—वि० [अ०] १. अक्ल की। बुद्धिसंगत। २. बुद्धिसंबंधी [को०]।

मुहा०—**अक्ली गद्दा या गुद्दा लगाना**=अटकल से बात करना।

अक्लीब[1]—वि० [सं०] १. जो नपुंसक या नामर्द न हो। २. जो कायर या कम हिम्मतवाला न हो। ३. सच्चा। जो झूठा न हो [को०]।

अक्लीब[2]—क्रि० वि० निर्भयतापूर्वक [को०]।

अक्लेद[1]—वि० [सं०] जो आर्द्र या गीला न हो। २. अलिप्त (ला०)। उ०—'अरूप अंश, वर्णनाभेद के रखने पर भी पूर्ववत् अक्लेद रहा'।—प्रबंध०, पृ० १६४।

अक्लेद[2]—संज्ञा पुं० गीलेपन या आर्द्रता का अभाव [को०]।

अक्लेद्य—वि० [सं०] जो भिगोया न जा सके [को०]।

अक्लेश[1]--संज्ञा पुं० [सं०] क्लेश का अभाव। क्लेशहीनता [को०]।

अक्लेश[2]--वि० क्लेशरहित [को०]।

अक्षंतव्य--वि० [सं० अक्षन्तव्य] क्षमा न हो सकने योग्य। जिसे क्षमा न किया जा सके। क्षमा न करने योग्य। अक्षम्य। उ०--यह सुंदर ग्रंथावली टीका टिप्पणी, जीवनचरित्र, भूमिका, चित्रादि सहित अक्षंतव्य विलंब और दीर्घसूत्रता के साथ सामने आई है'।--सुंदर० ग्रं०, भा० १, (भू०), पृ० २०२।

अक्ष--संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० अक्षा] १ खेलने का पासा। २. पासों का खेल। चौसर। ३. छकड़ा। गाड़ी। ४. किसी गोल वस्तु के बीचोंबीच पिरोया हुआ वह छड़ या दंड जिसपर वह वस्तु घूमती है। धुरी। ५ पहिए की धुरी। ६ वह कल्पित स्थिर रेखा जो पृथिवी के भीतरी केंद्र से होती हुई, उसके आर पार दोनों ध्रुवों पर निकलती है और जिसपर पृथिवी घूमती हुई, मानी गई है। ७. तराजू की डाँड़ी। ८. व्यवहार। मामला। मुकदमा। ९. इंद्रिय। १०. तूतिया। ११ सोहागा। १२. आँख। नेत्र। उ० एक कह्यो अनुमानि करि एक देखिए अक्ष। सुंदर अनुभव होइ जब तब देखिए प्रत्यक्ष।--सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ८१४। १३. बहेड़ा। १४. रुद्राक्ष। १५ साँप। १६. गरुड़। १७. आत्मा। १८. कर्ष नाम की १६ माशे की एक तौल। १९. जन्मांध। २०. रावण का पुत्र अक्षयकुमार। उ० --रूख निपातत खात फल रक्षक अक्ष निपाति।--तुलसी ग्रं०, पृ० २८। २१. सौवर्चल या सोचर नमक (को०)। २२. कानून (को०)। २३. द्यूत (को०)। २४. ज्ञान (को०)। २५. नाप का एक मान (को०)। २६. किसी मंदिर का निचला हिस्सा (को०)। २७. शिव (को०)।

अक्षक--संज्ञा पुं० [सं०] तिनिश का वृक्ष [को०]।

अक्षकर्ण--संज्ञा पुं० [सं०] समकोण त्रिभुज में समकोण के सामने की भुजा, विशेषतया धूपघड़ी के लिये बनी त्रिभुजाकृत कर्ण रेखा, जिसकी छाया से समय का पता लगता है (ज्यौ०)।

अक्षकाम--वि० [सं०] जिसे द्यूतक्रीड़ा प्रिय हो। द्यूतप्रिय [को०]।

अक्षकितव--वि० [सं०] द्यूत कुशल [को०]।

अक्षकुमार--संज्ञा पुं० [सं०] रावण का एक पुत्र जिसे हनुमान ने लंका का प्रमोदवन उजाड़ते समय मारा था।

अक्षकुशल--वि० [सं०] जुआ खेलने में प्रवीण। द्यूतकुशल [को०]।

अक्षकूट--संज्ञा पुं० [सं०] आँख की पुतली। अक्षितारा [को०]।

अक्षकोविद--वि० [सं०] दे० 'अक्षकुशल' [को०]।

अक्षक्रीड़ा--संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पासे का खेल। चौसर। चौपड़। २. द्यूतक्रीड़ा (को०)।

अक्षचक्र--संज्ञा पुं० [सं०] इंद्रियों का समूह [को०]।

अक्षज--संज्ञा पुं० [सं०] १. हीरा। २. वज्र। ३. प्रत्यक्ष ज्ञान। ४. विष्णु [को०]।

अक्षण--वि० [सं०] असमय। अनवसर [को०]।

अक्षणा--क्रि० वि० [सं० अक्ष्णा (अक्षि का तृतीया एक व०)] आँख द्वारा। उ०--सुनै न कान और की दृशै न और अक्षणा।--सुंदर० ग्रं०, भा० १, पृ० २५।

अक्षणिक--वि० [सं०] १. दृढ़। स्थिर। स्थायी। २. जो क्षणिक न हो [को०]।

अक्षत[1]--वि० [सं०] क्षत या घाव से रहित। व्रणशून्य। उ०--'ब्राह्मण को कभी नहीं मारना पर सब धन को बचाकर अक्षत केवल राज से बाहर कर देना चाहिये'।--श्रीनिवास ग्रं०, पृ० १०। २ बिना टूटा हुआ। अखंडित। सर्वांगपूर्ण। समूचा।

अक्षत[2]--संज्ञा पुं० १. बिना टूटा हुआ चावल जो देवताओं की पूजा में चढ़ाया जाता है। २. धान का लावा। ३. जौ। ४. कोई भी धान्य (को०)। ५. हानि या अशुभ का अभाव। कल्याण (को०)। ६. शिव (को०)। ७. हिजड़ा (को०)।

अक्षततत्व--संज्ञा पुं० [सं० अक्षततत्त्व] द्यूत। द्यूत विद्या। जुआ [को०]।

अक्षतयोनि[1]--वि० स्त्री० [सं०] जिसका पुरुष से संसर्ग न हुआ हो।

अक्षतयोनि[2]--संज्ञा स्त्री० १. वह कन्या जिसका पुरुष से संसर्ग न हुआ हो। २. वह कन्या जिसका विवाह हो गया हो किंतु पति से समागम न हुआ हो।

अक्षतवीर्य[1]--वि० [सं०] जिसका वीर्यपात न हुआ हो। जिसने स्त्री-संसर्ग न किया हो।

अक्षतवीर्य[2]--संज्ञा पुं० १. शिव। २. क्षयाभाव। ३ नपुंसक। पुंस्त्व-विहीन (व्यंग्य) [को०]।

अक्षता[1]--वि० [सं०] जिसका पुरुष से संयोग न हुआ हो।

अक्षता[2]--संज्ञा स्त्री० १. वह स्त्री जिसका पुरुष से संयोग न हुआ हो। २. धर्मशास्त्र के अनुसार वह पुनर्भू स्त्री जिसने पुनर्विवाह तक पुरुषसंयोग न किया हो। ३. काकड़ासींगी।

अक्षत्र--वि० [सं०] १. क्षत्रियरहित। २. राजाहीन [को०]।

अक्षदंड--संज्ञा पुं० [सं० अक्षदण्ड] धुरी [को०]।

अक्षदर्शक--संज्ञा पुं० [सं०] १. धर्माध्यक्ष। न्यायाधीश। न्यायकर्ता। २. द्यूत क्रीड़ा का निरीक्षक (को०)।

अक्षदाय--संज्ञा पुं० [सं०] पासे को दूसरे के हाथ में देना [को०]।

अक्षदृक्--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अक्षदर्शक' [को०]।

अक्षदेवी--वि० [सं०] जूआ खेलनेवाला। जुआरी।

अक्षद्यू--संज्ञा पुं० [सं०] द्यूत। जुआ [को०]।

अक्षद्यूत--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अक्षद्यू' [को०]।

अक्षद्यूतिक--संज्ञा पुं० [सं०] द्यूतक्रीड़ा में होनेवाला झगड़ा [को०]।

अक्षदग्ध--वि० [सं०] १. जुए के कारण तिरस्कृत। २. जुए में असफल रहनेवाला। ३. जुए द्वारा ठगनेवाला [को०]।

अक्षद्वार--संज्ञा पुं० [सं०] धुरी का सूराख [को०]।

अक्षधर[1]--वि० [सं०] चक्र या धुरा को धारण करनेवाला [को०]।

अक्षधर[2]--संज्ञा पुं० १. पहिया। २. एक वृक्ष। शाखोट। सिहोर। ३. विष्णु। ४. चक्र या पासे को धारण करनेवाला व्यक्ति [को०]।

अक्षधुर--संज्ञा पुं० [सं०] पहिए की धुरी।

अक्षधूर्त--वि० [सं०] दे० 'अक्षकुशल' [को०]।

अक्षधूर्तिल--संज्ञा पुं० [सं०] वृष। बैल [को०]।

अक्षनपुण--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अक्षनंपुण्य [को०]।

अक्षनैपुण्य--संज्ञा पुं० [सं०] अक्षकुशलता। अक्षकौशल [को०]।

अक्षपटल--संज्ञा पुं० [सं०] १. न्यायालय। २. न्यायसंबंधी कागज पत्र रखने का स्थान। ३. न्यायकर्ता। न्यायाधीश। ४. अभिलेखों (रेकार्ड्स) को सुरक्षित रखने का स्थान। ५ वह कार्यालय या स्थान जहाँ आय व्यय आदि का विवरण रखा जाय [को०]।

अक्षपटलाधिकृत--संज्ञा पुं० [सं०] राजकीय अभिलेख पत्रादि का तथा आय व्यय आदि का निरीक्षण करनेवाला प्रधान अधिकारी [को०]।

अक्षपटलिक--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अक्षपटलाधिकृत' [को०]।

अक्षपराजय--संज्ञा पुं० [सं०] जुए की हार। जुए में हार [को०]।

अक्षपरि--संज्ञा पुं० [सं०] हार का पासा। पासे की वह स्थिति जिससे हार सूचित हो।

अक्षपाट--संज्ञा पुं० [सं०] १. जुआखाना। द्यूतगृह। २. अखाड़ा। मल्लशाला [को०]।

अक्षपाटक--संज्ञा पुं० [सं०] न्यायाधीश। धर्माध्यक्ष [को०]।

अक्षपात--संज्ञा पुं० [सं०] पासा फेंकने या डालने का कार्य [को०]।

अक्षपातन--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अक्षपात' [को०]।

अक्षपाद--संज्ञा पुं० [सं०] १. सोलह पदार्थवादी। न्यायशास्त्र के प्रवर्तक गौतम ऋषि।

विशेष--ऐसा कहा जाता है कि गौतम ने अपने मत का खंडन करनेवाले व्यास का मुख न देखने की प्रतिज्ञा की थी। पीछे से जब व्यास ने इन्हें प्रसन्न किया तब इन्होंने अपने चरणों में नेत्र करके उन्हें देखा अर्थात् अपने चरण उन्हें दिखलाया। इसी से गौतम का नाम अक्षपाद हुआ।

२. तार्किक। नैयायिक।

अक्षपीड़ा--संज्ञा स्त्री० [सं०] १. इंद्रियों की वा शरीर की पीड़ा। २. एक लता। यवतिक्त लता [को०]।

अक्षप्रिय--वि० [सं०] जुआरी। जुआबाज [को०]।

अक्षबंध--संज्ञा पुं० [सं०] वह विद्या जिससे आसपास के लोग कुछ देख नहीं सकते। नजरबंदी।

अक्षभा--संज्ञा स्त्री० [सं०] अक्षांश की छाया [को०]।

अक्षभाग--संज्ञा पुं० [सं०] अक्षांश का विभाग [को०]।

अक्षभार--संज्ञा पुं० [सं०] गाड़ी का बोझ [को०]।

अक्षभूमि--संज्ञा स्त्री० [सं०] जुआ खेलने का स्थान [को०]।

अक्षम--वि० [सं०] १. क्षमारहित। असहिष्णु। २. असमर्थ। अशक्त। लाचार। ३. ईर्ष्यालु (को०)।

अक्षमता--संज्ञा स्त्री० [सं०] १. क्षमा का अभाव। असहिष्णुता। २. ईर्ष्या। डाह। ३. असामर्थ्य।

अक्षमद--संज्ञा पुं० [सं०] जुआ खेलने का व्यसन या उत्साह [को०]।

अक्षमा¹--संज्ञा स्त्री० [सं०] १. अधैर्य। अधीरता। २. क्रोध। रोष। ३. ईर्ष्या। डाह। ४. असमर्थता। लाचारी [को०]।

अक्षमा²--वि० क्षमारहित [को०]।

अक्षमात्र--संज्ञा पुं० [सं०] निमेष। निमिष [को०]।

अक्षमापक--संज्ञा पुं० [सं०] ग्रह नक्षत्रों के निरीक्षण का यंत्र [को०]।

अक्षमाला--संज्ञा स्त्री० [सं०] १ रुद्राक्ष की माला। २. 'अ' से 'क्ष' तक अक्षरों की वर्णमाला। ३. वशिष्ठ की पत्नी अरुंधती।

अक्षमाली¹--वि० [सं०] जो रुद्राक्ष की माला धारण करे।

अक्षमाली²--संज्ञा पुं० शिव [को०]।

अक्षम्य--वि० [सं०] जिसे क्षमा न किया जाय। क्षमा के अयोग्य। उ०--'यह तुम्हारा अक्षम्य अपराध है'।--स्कंद०, पृ० ८२।

अक्षय¹--वि० [सं०] १. जिसका क्षय न हो। अनश्वर। सदा बना रहनेवाला। कभी न चुकनेवाला। २. कल्पांतस्थायी। कल्प के अंत तक रहनेवाला। उ०--दिवा रात्रि या मित्र वरुण की बाला का अक्षय शृंगार।--कामायनी, पृ० ३६।

अक्षय--संज्ञा पुं० १ परमात्मा। २. संन्यासी। ३. दरिद्र। ४. एक योग जिसमें किया हुआ पाप या पुण्य का नाश नहीं होता [को०]।

अक्षयकुमार(पु)--संज्ञा पुं० दे० 'अक्षकुमार'।

अक्षयगुण¹संज्ञा--पुं० [सं०] शिव [को०]।

अक्षयगुण²--वि० क्षय न होनेवाले गुणों से युक्त [को०]।

अक्षयता--संज्ञा स्त्री० [सं०] नाश या क्षय का अभाव [को०]।

अक्षयतूणीर--संज्ञा पुं० [सं०] ऐसा तरकस जिसके बाण कभी समाप्त नहीं होते। उ०--'अक्षय तूणीर, अक्षय कवच सब लोगों ने सुना होगा, परंतु इस अक्षय मंजूषा का हाल मेरे सिवा कोई नहीं जानता।--स्कंद०, पृ० १७।

अक्षयतृतीया--संज्ञा स्त्री० [सं०] वैशाख शुक्ल तृतीया। आखा तीज। सतयुग के प्रारंभ की तिथि।

विशेष--इस तिथि को लोग स्नान, दान आदि करते हैं। सतयुग का आरंभ इसी तिथि से माना जाता है। यदि इस तिथि को कृत्तिका वा रोहिणी नक्षत्र पड़े तो वह बहुत ही उत्तम समझी जाती है।

अक्षयत्व--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अक्षयता' [को०]।

अक्षयधाम--संज्ञा पुं० [सं०] १. वैकुंठ। २. मोक्ष [को०]।

अक्षयनवमी--संज्ञा स्त्री० [सं०] कार्तिक शुक्ल पक्ष की नवमी।

विशेष--इस तिथि को लोग स्नान, दान आदि करते हैं। त्रेता युग की उत्पत्ति इसी तिथि से मानी गई है।

अक्षयनीवी--संज्ञा स्त्री० [सं०] स्थायी दान वा निधि। वह मूल संपत्ति जिसका ब्याज मात्र व्यय किया जाय। उ०--साथ ही श्रीमती ने यह इच्छा प्रकट की कि इस संबंध में हिंदी में उत्तमोत्तम ग्रंथों के प्रकाशन के लिये एक अक्षय नीवी की व्यवस्था का भी सूत्रपात हो जाय।--मु० द०, परिचय, पृ० २।

अक्षयपद--संज्ञा पुं० [सं०] मोक्ष [को०]।

अक्षयपुरुहूत--संज्ञा पुं० [सं०] शिव का एक नाम [को०]।

अक्षयलोक--संज्ञा पुं० [सं०] स्वर्ग। वैकुंठ [को०]।

अक्षयवट--संज्ञा पुं० [सं०] प्रयाग और गया में एक बरगद का पेड़।

विशेष--यह अक्षय इस लिये कहलाता है कि पौराणिक लोग इसका नाश प्रलय में भी नहीं मानते।

अक्षयवृक्ष--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अक्षयवट'।

अक्षया--संज्ञा स्त्री० [सं०] एक पुण्य तिथि [को०]।

अक्षयिणी¹--संज्ञा स्त्री० [सं०] उमा। पार्वती [को०]।

अक्षयिणी²--वि० स्त्री० क्षय न होनेवाली [को०]।

अक्षयी--वि० [सं०] जिसका नाश न हो। अनश्वर [को०]।

अक्षय्य--वि० [सं०] १. अक्षय, अविनाशी। २. सदा बना रहनेवाला। समाप्त न होनेवाला।

अक्षय्यनवमी--संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अक्षयनवमी' [को०]।

अक्षय्योदक--संज्ञा पुं० [सं०] श्राद्ध में पिंडदान के अनंतर ब्राह्मण के हाथ पर 'अक्षय्य हो' कहकर छोड़ा जानेवाला मधु-तिल-युक्त जल।

अक्षर¹--वि० [सं०] १. अच्युत। स्थिर। अविनाशी। नित्य। २. क्रियाशून्य [को०]।

अक्षर²--संज्ञा पुं० १. अकारादि वर्ण। हरफ। मनुष्य के मुख से निकली हुई ध्वनि को सूचित करने का संकेत या चिह्न।

क्रि० प्र०--जाना।--जोड़ना।--टटोलना।--पढ़ना।--लिखना।

मुहा०--अक्षर घोंटना = अक्षर लिखने का अभ्यास करना। **अक्षर से भेंट न होना** = अपढ़ रहना। मूर्ख रहना। **विधना के अक्षर** = कर्मरेख। भाग। लिखन।

२. ओंकार। ॐ। उ०--बिन अक्षर कोई न छूटे अक्षर अगम अगाध।--कबीर सा०, पृ० ९६०। ३. आत्मा। ४. ब्रह्म। चैतन्य पुरुष। ५. आकाश। ६. जल। ७. धर्म। ८. तपस्या। ९. मोक्ष। १०. अपामार्ग। चिचड़ा। ११. शिव (को०)। १२. विष्णु (को०)। १३. जीव (को०)। १४. परमात्मा (को०)। १५. खड्ग (को०)। १६. स्वर (को०)। १७. शब्द (को०)। १८. समय का एक परिमाण। काष्ठा का पाँचवाँ हिस्सा (को०)।

अक्षरक--संज्ञा पुं० [सं०] अक्षर। स्वर [को०]।

अक्षरकर--संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का धार्मिक ध्यान [को०]।

अक्षरक्रम--संज्ञा पुं० [सं०] अक्षरों का अनुक्रम। वर्णानुक्रम [को०]।

अक्षरगणित--संज्ञा पुं० [सं०] बीजगणित [को०]।

अक्षरचंचु--संज्ञा पुं० [सं० **अक्षरचञ्चु**] साफ और स्पष्ट लिखनेवाला व्यक्ति। सुलेखक [को०]।

अक्षरचट्टा(ु)--वि० [सं० **अक्षर + देश० चट्ट = चाटना**] अक्षर चाटनेवाला। कोरा पढ़ा लिखा। पठित मूर्ख। उ०--'तब रूपचंद नंदा ने अपने मन में विचारी, जो यह बात परमानंद सोनी कहा जाने? यह तो अक्षरचट्टा है'।--दो सौ बावन०, भा० १, पृ० १९०।

अक्षरचण--संज्ञा पुं० [सं०] सुलेखक [को०]।

अक्षरचन--संज्ञा पुं० दे० 'अक्षरचण' [को०]।

अक्षरचुंचु--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अक्षरचंचु' [को०]।

अक्षरच्युतक--संज्ञा पुं० [सं०] किसी अक्षर को हटा देने से भिन्न अर्थ देनेवाला अक्षरों का एक प्रकार का खेल [को०]।

अक्षरछंद--संज्ञा पुं० [सं० **अक्षरछन्द**] वर्णिक छंद। वर्णवृत्त (को०)।

अक्षरजननी--संज्ञा स्त्री० [सं०] लेखनी। कलम (को०)।

अक्षरजीवक--संज्ञा पुं० [सं०] लिखकर जीविका कमानेवाला व्यक्ति। लेखक। लिपिकार [को०]।

अक्षरजीविक--संज्ञा पुं० [सं०] अक्षरजीवक। लेखक [को०]।

अक्षरजीवी--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अक्षरजीवक' [को०]।

अक्षरज्ञान--संज्ञा पुं० [सं०] लिखने और पढ़ने की योग्यता। अक्षरबोध [को०]।

अक्षरतूलिका--संज्ञा स्त्री० [सं०] अक्षर जननी। लेखनी [को०]।

अक्षरधाम--संज्ञा पुं० [सं०] १. मोक्ष। निर्वाण। २. ब्रह्मलोक [को०]।

अक्षरन्यास--संज्ञा पुं० [सं०] १. लेख। लिखावट। २. तंत्र की एक क्रिया जिसमें किसी मंत्र के एक एक अक्षर को पढ़कर हृदय, नाक, कान, आँख आदि छूते हैं। ३. वर्ण। अक्षर (को०)।

अक्षरपंक्ति--संज्ञा स्त्री० [सं० **अक्षरपङ्क्ति**] पंक्ति नामक वैदिक छंद का एक भेद जिसके चार पादों के वर्णों का योग २० होता है।

अक्षरपूजक--वि० सं० [सं०] पुराण आदि प्राचीन धर्मग्रंथों में लिखी बातों को पूरी तौर से माननेवाला [को०]।

अक्षरबंध--संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का वर्णवृत्त [को०]।

अक्षरभूमिका--संज्ञा स्त्री० [सं०] लिखने की वस्तु। पटिया। पाटी [को०]।

अक्षरमाला--संज्ञा स्त्री० [सं०] वर्णमाला [को०]।

अक्षरमुख¹--वि० [सं०] जो अक्षरों का अभ्यास करता हो। अक्षर सीखनेवाला।

अक्षरमुख²--संज्ञा पुं० १. शिष्य। छात्र। २. अक्षरों का आरंभ अर्थात् 'अ' (को०)।

अक्षरमुष्टिका--संज्ञा स्त्री० [सं०] चौंसठ कलाओं में से एक कला। मुष्टिका के विशेष आकार से अक्षरों को जानने की कला। उँगलियों के संकेत द्वारा भावव्यंजना की पद्धति। उ०--'अक्षर मुष्टिका देशभाषा ज्ञान दोहदकरण'।--वर्ण०, पृ० २०।

अक्षरयोजना--संज्ञा स्त्री० [सं०] वर्णों की योजना। अक्षरविन्यास [को०]।

अक्षरवर्जित--वि० [सं०] १. अपढ़। निरक्षर। २. परमात्मा का एक विशेषण [को०]।

अक्षरविन्यास--संज्ञा पुं० [सं०] १. लिपि। लिखावट। २. हिज्जे। वर्णविन्यास। वर्णक्रम [को०]।

अक्षरवृत्त--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'वर्णवृत्त' [को०]।

अक्षरव्यक्ति--संज्ञा स्त्री० [सं०] अक्षर का स्पष्ट उच्चारण [को०]।

अक्षरशः--क्रि० वि० [सं०] अक्षर अक्षर। एक एक अक्षर। लफ्ज ब लफ्ज। संपूर्णतया। बिलकुल। सब। उ०--'उसका कहना अक्षरशः सत्य है (शब्द०)।

अक्षरशत्रु¹--संज्ञा पुं० [सं०] निरक्षर या मूर्ख व्यक्ति। अनपढ़ और जाहिल आदमी।

अक्षरशत्रु²--वि० जिन्हें अक्षर का ज्ञान न हो। निरक्षर। अक्षरशून्य। उ०--हमारा संगीत अक्षरशत्रु अपढ़ व्यक्तियों के हाथ में चला गया।--संपूर्णा० अभि० ग्रं०, पृ० २३२।

अक्षरसंस्थान--संज्ञा पुं० [सं०] लिखावट। लिखन। लिपि [को०]।

अक्षरसमाम्नाय--संज्ञा पुं० [सं०] 'अ' से 'ह' तक के वर्णों का समूह। वर्णमाला [को०]।

अक्षरांग--संज्ञा पुं० [सं० अक्षराङ्ग] १. लिखावट। लिपि। २. लिखने का साधन। [को०]।

अक्षरा--संज्ञा स्त्री० [सं०] १. भाषा। २. शब्द [को०]।

अक्षराक्षर--संज्ञा पुं० [सं०] ध्यान का एक प्रकार या प्रक्रिया [को०]

अक्षराज--संज्ञा पुं० [सं०] द्यूत क्रीड़ा में आसक्त व्यक्ति [को०]।

अक्षरारंभ--संज्ञा पुं० [सं० अक्षरारम्भ] एक संस्कार जिसमें पहले पहल बालकों को अक्षर लिखना सिखाया जाता है [को०]।

अक्षरार्थ--संज्ञा पुं० [सं०] वर्णों का अभिप्राय। शब्दों का अर्थ। वाच्यार्थ वा यौगिक अर्थ [को०]।

अक्षरी[१](पु)--वि० [सं० अक्षर+ई] अक्षरयुक्त। वर्णवाली उ०--द्वै अक्षरी दूजी नाड़ी। दोय पष पांन अमन।--गोरख०, पृ० २५१।

अक्षरी[२]--संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बरसात। वर्षा ऋतु (को०)। २. किसी शब्द के लिखने या उच्चारण करने में अक्षरों का क्रम। हिज्जे।

अक्षरेखा--संज्ञा स्त्री० [सं०] वह सीधी रेखा जो किसी गोले पदार्थ के भीतर केंद्र से होती हुई दोनों पृष्ठों पर लंब रूप से गिरे। धुरी की रेखा।

अक्षरौटी--संज्ञा स्त्री० [सं० अक्षरावर्त्तन, प्रा० अक्खरावट्टन] १. वर्णमाला। २. लेख लिपि का ढंग। अछरौटी। ३. सितार पर गीत निकालने या बोल बजाने की क्रिया।

अक्षर्य[१]--वि० [सं०] वर्ण या अक्षर से संबद्ध [को०]।

अक्षर्य[२]--संज्ञा पुं० साम का एक भेद [को०]।

अक्षवती--संज्ञा स्त्री० [सं०] द्यूत क्रीड़ा। पासों का खेल [को०]।

अक्षवाट--संज्ञा पुं० [सं०] १. जुआ खेलने का स्थान। पासे का फलक। द्यूतगृह। जुआखाना। २. वह वस्तु जिसपर पासा खेला जाय (को०)। ३. कुश्ती लड़ने की जगह। अखाड़ा।

अक्षवाम--संज्ञा पुं० [सं०] बेईमान जुआड़ी। वह जो द्यूतकर्म में कपट करे [को०]।

अक्षविक्षेप--संज्ञा पुं० [सं० अक्ष+विक्षेप] कटाक्ष। अपांग दृष्टि [को०]।

अक्षविद्--वि० [सं०] [स्त्री० अक्षवेत्री] १. जुआ खेलने के ढंग को जाननेवाला। द्यूतकुशल। २. व्यवहारकुशल [को०]।

अक्षविद्या--संज्ञा स्त्री० [सं०] १. द्यूतकला। २. जुआ [को०]।

अक्षवृत्त[१]--संज्ञा पुं० [सं०] राशिचक्र रूपी कोणविहीन क्षेत्र [को०]।

अक्षवृत्त[२]--वि० १. जुआ खेलने का आदी। द्यूतासक्त। २. जुए के समय घटित [को०]।

अक्षशाला--संज्ञा स्त्री० [सं०] द्यूतक्रीड़ागृह। जुआखाना [को०]।

अक्षशालिक--संज्ञा पुं० [सं०] जुआघर का प्रधान अधिकारी [को०]।

अक्षशाली--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अक्षशालिक' [को०]।

अक्षशौंड--संज्ञा पुं० [सं० अक्षशौण्ड] दे० 'अक्षकुशल [को०]।

अक्षसूक्त--संज्ञा पुं० [सं०] ऋग्वेद के अंतर्गत अक्ष या द्यूत संबंधी सूक्त [को०]।

विशेष--यह अक्षसूक्त ऋग्वेद मंडल १०, अध्याय ३ का ३४ वाँ सूक्त है जिसमें १४ ऋचाएँ हैं। इनमें १, ७, ६ और १२ वीं ऋचा पासे की स्तुतिपरक हैं और १३ वीं कृषि की स्तुति में है। शेष ऋचाओं में जुए का खेल और जुआड़ियों की स्थिति का अंकन किया गया है।

अक्षसूत्र--संज्ञा पुं० [सं०] १. रुद्राक्ष की माला। २. जपमाला जिसमें गूँथी जाय वह सूत (को०)।

अक्षसेन--संज्ञा पुं० [सं०] भारत वर्ष का एक प्राचीन राजा जिसका नाम मैत्र्युपनिषद् में आया है।

अक्षस्तुष--संज्ञा पुं० [सं०] बहेड़ा [को०]।

अक्षहीन--वि० [सं०] नेत्ररहित। अंधा।

अक्षहृदय--संज्ञा पुं० [सं०] १. जुए के खेल की दक्षता। २. जुए की भीतरी बातें या चालें [को०]।

अक्षहृदयज्ञ --वि० [सं०] जुए में पूरी तौर से दक्ष [को०]।

अक्षांति--संज्ञा स्त्री० [सं० अक्षान्ति] १. ईर्ष्या। डाह। जलन। हसद। २. दे० 'अक्षमा' (को०)।

अक्षांश--संज्ञा पुं० [सं०] १ भूगोल पर उत्तरी और दक्षिणी ध्रुव से होती हुई एक रेखा मान कर उसके ३६० भाग किए गए हैं। इन ३६० अंशों पर से होती हुई ३६० रेखाएँ पूर्व पश्चिम भूमध्यरेखा के समानांतर मानी गई हैं जिनको अक्षांश कहते हैं। अक्षांश की गिनती विषुवत् या भूमध्यरेखा से की जाती है। २ वह कोण जहाँ पर क्षितिज का तल पृथ्वी के अक्ष से कटता है। ३. भूमध्यरेखा और किसी नियत स्थान के बीच में याम्योत्तर का पूर्ण झुकाव या अंतर। ४. किसी नक्षत्र का क्रांतिवृत्त के उत्तर या दक्षिण की ओर का कोणांतर। ५. कोई स्थान जो अक्षांशों के समानांतर पर स्थित हो।

अक्षाग्र--संज्ञा पुं० [सं०] धुरा या धुरे का सिरा [को०]।

अक्षाग्रकील--संज्ञा स्त्री० [सं०] १. जुए और लट्ठे को जोड़नेवाली खूँटी। २ पहिए को रोकने के लिये लगाई हुई खूँटी या कील [को०]।

अक्षाग्रकीलक--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अक्षाग्रकील' [को०]।

अक्षार[१]--वि० [सं०] क्षारशून्य। जिसमें क्षार न हो।

अक्षार[२]--संज्ञा पुं० प्राकृतिक लवण या नमक [को०]।

अक्षारलवण--संज्ञा पुं० [सं०] १. वह लवण जिसमें क्षार न हो। वह लवण जो मिट्टी से न निकला हो।

विशेष--कोई कोई सेंधा और समुद्री लवण को अक्षार लवण मानते हैं और व्रतादि में उसको ग्राह्य समझते हैं।

२. वह हविष्य भोजन जिसमें नमक न हो और जो अशौच और यज्ञ में काम आता हो; जैसे--दूध, घी, चावल, तिल, मूँग जौ आदि।

अक्षावपन--संज्ञा पुं० [सं०] वह फलक जिसपर पासा फेंका जाय [को०]।

अक्षावली--संज्ञा स्त्री० [सं०] रुद्राक्ष की जपमाला [को०]।

अक्षावाप--संज्ञा पुं० [सं०] १. जुआरी। जुआ खेलनेवाला। २. द्यूतगृह का स्वामी या निरीक्षण। ३. द्यूत का निरीक्षण करनेवाला सरकारी कर्मचारी [को०]। ४. आय व्यय का गणनाध्यक्ष।--हिंदु० स०, पृ० १०५।

अक्षावापन--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अक्षपटल' [को०]।

अक्षि--संज्ञा स्त्री० [सं०] १. आँख। नेत्र। २. दो की संख्या।--भा० प्रा० लि०, पृ० १२०।

अक्षिकंप--संज्ञा पुं० [सं० अक्षिकम्प] पलकों के काँपने की स्थिति। आँख की फड़कन। आँख चमकाना [को०]।

अक्षिक--संज्ञा पुं० [सं०] १. एक वृक्ष। आल का पेड़। २. दे० 'अक्षक' (को०)।

अक्षिकूट--संज्ञा पुं० [सं०] १. आँख के ऊपर का ललाट का मुख्य भाग। २. आँख की पुतली। ३. नेत्रगोलक [को०]।

अक्षिकूटक--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अक्षिकूट' [को०]।

अक्षिगत--वि० [सं०] १. देखा हुआ। दृष्ट। २. विद्यमान। उपस्थित। ३. द्वेष का पात्र। द्वेष्य [को०]।

अक्षिगोल--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अक्षिगोलक' [को०]।

अक्षिगोलक--संज्ञा पुं० [सं०] आँख का डेला। आँख की पुतली।

अक्षिणी--संज्ञा स्त्री० [सं०] गैरमनकूला जायदाद या अचल संपत्ति से संबद्ध आठ प्रकार की शर्तों या सुविधाओं में से एक [को०]।

अक्षित[1]--वि० [सं०] १ क्षय न होनेवाला। जिसका क्षय न हुआ हो। २. अघट। न घटनेवाला। ३. जिसे चोट आदि न लगी हो [को०]।

अक्षित[2]--संज्ञा पुं० १. जल। २. दस लाख की संख्या [को०]।

अक्षितर--संज्ञा पुं० [सं०] पानी। जल [को०]।

अक्षितवसू--संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र का एक नाम [को०]।

अक्षितारक--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अक्षितारा' [को०]।

अक्षितारा--संज्ञा स्त्री० [सं०] आँख की पुतली।

अक्षितावसु--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अक्षितवसू'। [को०]।

अक्षिति[1]--संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० अनश्वरता [को०]।

अक्षिति[2]--वि० अनश्वर। नाश न होनेवाला [को०]।

अक्षिनिमष--संज्ञा पुं० [सं०] १. आँख की चमक। २. क्षण। पल [को०]।

अक्षिपक्ष्म--संज्ञा पुं० [सं०] आँख की पलकों के अग्रभाग के बाल। बरौनी [को०]।

अक्षिपटल--संज्ञा पुं० [सं०] १ आँख के कोए पर की झिल्ली। आँख का परदा। २. आँख का एक रोग। माँड़ा (को०)।

अक्षिपाक--संज्ञा पुं० [सं०] आँख की सूजन [को०]।

अक्षिब--संज्ञा पुं० वि० [सं०] दे० 'अक्षीब' [को०]।

अक्षिभू--वि० [सं०] १. प्रत्यक्ष। दृश्य। प्रगट। २. सत्य। वास्तविक [को०]।

अक्षिभेषज--संज्ञा पुं० [सं०] १. आँख की दवा। २. पट्टिकालोध्र नामक वृक्ष [को०]।

अक्षिमत्--वि० [सं०] आँखवाला [को०]।

अक्षिलोम--संज्ञा पुं०, [सं०] दे० 'अक्षिपक्ष्म' [को०]।

अक्षिव--संज्ञा पुं० वि० [सं०] दे० 'अक्षीब' [को०]।

अक्षिविकूणित--संज्ञा पुं० [सं०] कटाक्ष [को०]।

अक्षिविकूशित--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अक्षिविकूणित' [को०]।

अक्षिविक्षेप--संज्ञा पुं० [सं०] कटाक्ष [को०]।

अक्षिश्रवा--संज्ञा पुं० [सं० अक्षिश्रवस्] सर्प। चक्षुश्रवा [को०]।

अक्षिस्पंदन--संज्ञा पुं० [सं० अक्षिस्पन्दन] आँख फड़कना।

अक्षीक--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अक्षक' या 'अक्षिक' [को०]।

अक्षीण--वि० [सं०] १. जो न घटे। क्षीण न होनेवाला। जो कम न हो। २. अविनाशी। नाशरहित।

अक्षीब[1]--वि० [सं०] जो मतवाला न हो। चैतन्य। धीर। शांत।

अक्षीब[2]--संज्ञा पुं० १. सहिजन का पेड़। २ समुद्री नमक।

अक्षीव--संज्ञा पुं०, वि० [सं०] दे० 'अक्षीब' [को०]।

अक्षु[1]--वि० [सं०] शीघ्र। तुरंत। [को०]।

अक्षु[2]--संज्ञा पुं० एक प्रकार का जाल [को०]।

अक्षुण--वि० [सं०] दे० 'अक्षुण्ण' [को०]।

अक्षुणता--संज्ञा स्त्री० [सं०] १ अक्षयता। २. अनुभवहीनता [को०]।

अक्षुण्ण--वि० [सं०] १. बिना टूटा हुआ। अभग्न। उ०--अक्षुण्ण अतुलता रहे सदैव अतुल की।--साकेत, पृ० २१९। २. अकुशल। अनुभवशून्य। अनाड़ी। ३. अपराजित। सफल (को०)। ४. समूचा। अन्यून (को०)। ५. लगातार। व्यवधानरहित (को०)।

अक्षुद्र[1]--वि० [सं०] १. जो क्षुद्र या छोटा न हो। २. जो नीच या तुच्छ न हो [को०]।

अक्षुद्र[2]--संज्ञा पुं० शिव का एक नाम [को०]।

अक्षुध्य--वि० [सं०] १. जिससे क्षुधा न लगे। भूख मिटानेवाला, भूख नष्ट करनेवाला। २ जिसको भूख न लगती हो। क्षुधारहित [को०]।

अक्षुब्ध--वि० [सं०] क्षोभरहित। जिसे क्षोभ न हो [को०]।

अक्षेत्र[1]--वि० [सं०] १. क्षेत्रशून्य। बिना क्षेत्र का। २. परती। अकृष्ट [को०]।

अक्षेत्र[2]--संज्ञा पुं० १. निकृष्ट या बुरी भूमि। २. ज्यामिति की विकृत आकृति। मंद बुद्धि का छात्र। उपदेश के अयोग्य शिष्य [को०]।

अक्षेत्रज्ञ--वि० [सं०] १ पथभ्रांत। भटका हुआ। २. आध्यात्मिक ज्ञान से शून्य। ३. क्षेत्र या शरीर के तत्व को न जाननेवाला। देहाभिमानी [को०]

अक्षेत्रविद्--वि० [सं०] दे० 'अक्षेत्रज्ञ' [को०]।

अक्षेत्री--वि० [सं०] बिना क्षेत्र का। बिना खेतवाला [को०]।

अक्षेम--संज्ञा पुं० [सं०] अमंगल। अशुभ। अकुशल। बुराई।

अक्षै(पु)--वि० [सं० अक्षय] दे० 'अक्षय'। उ०--अक्षै वृक्ष एक राशि बनाई। अग्रवास तहाँ रही समाई।--कबीर सा०, पृ० १५३४।

अक्षोट--संज्ञा पुं० [सं०] अखरोट का वृक्ष या फल।

पर्या०--कर्पराल। कंदराल। अक्षोड। आक्षोट। आक्षोड।

अक्षोड--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अक्षोट' [को०]।

अक्षोडक--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अक्षोट' [को०]।

अक्षोधुक--वि० [सं०] जो भूखा न हो। क्षुधारहित। क्षुधाहीन [को०]।

अक्षौनि(पु)--संज्ञा स्त्री० [सं० अक्षौहिणी] दे० 'अक्षौहिणी'। उ०--जुरे नृपति, अक्षौनि अठारह, भयो युद्ध अति भारी।--सूर (शब्द०)।

अक्षोभ¹--संज्ञा पुं० [सं०] १. क्षोभ का अभाव। अनुद्वेग। शांति। दृढ़ता। धीरता। स्थिरता। २. हाथी बाँधने का खूँटा।

अक्षोभ²--वि० १. क्षोभरहित। चंचलता से रहित। उद्वेगशून्य। २. शांत। स्थिर गंभीर।

अक्षोभ्य¹--वि० [सं०] धीर। शांत। गंभीर [को०]।

अक्षोभ्य²--संज्ञा पुं० १. तंत्रोक्त एक ऋषि। २. बुद्ध का एक नाम। ३. बौद्धों के मत से एक बहुत बड़ी संख्या [को०]।

अक्षोभ्यकवच--संज्ञा पुं० [सं०] तंत्रशास्त्रोक्त एक प्रकार का कवच [को०]।

अक्षौरिम--संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष शास्त्रोक्त वे नक्षत्र जिनमें क्षौर-कर्म वर्जित है [को०]।

अक्षौहिणी--संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पूरी चतुरंगिनी सेना। सेना का एक परिमाण। सेना की एक नियमित संख्या। इसमें १०९३५० पैदल, ६५६१० घोड़े, २१८७० रथ और २१८७० हाथी होते थे। २. ग्यारह की संख्या।--भा० प्रा० लि०, पृ० १२०।

अक्ष्ण¹--वि० [सं०] अखंड। व्यापक [को०]।

अक्ष्ण²--संज्ञा पुं० काल। समय [को०]।

अक्स--संज्ञा पुं० [अ०] १. प्रतिबिंब। छाया। परछाईं। उ०--नाजुक है, न खिचवाऊँगा तस्वीर मैं उसकी। चेहरा न कहीं अक्स के बदले उतर आए।--कविता को०, भा० ४, पृ० ६९२।

क्रि० प्र०--आना।--डालना।--पड़ना।--लेना।

२. तसवीर। चित्र।। उ०--आईनए दिल में है तेरा अक्स। दिन रात मैं तुझको देखता हूँ।--शेर०, भा० १, पृ० ३०९।

क्रि० प्र०--उतारना।--खींचना।

३. फोटो [को०]।

अक्सर--क्रि० [अ०] वि० दे० 'अकसर'। उ०--आँखों से अक्सर उनकी आँसू निकल गए हैं। क्या क्या भरे गुलिस्ताँ सावन में जल गए हैं।--शेर०, भा० ४, १८२।

अक्सी--वि० [फा०] १. प्रतिबिंब या छाया संबंधी। २. अक्स संबंधी। अक्स से बना [को०]।

अक्सी तसबीर--संज्ञा पुं० [फा०] फोटो। आलोक चित्र।

अक्सीर¹--वि० [अ०] अव्यर्थ। अकसीर। उ०--जाहिद शराबे नाब की तासीर कुछ न पूछ। अक्सीर है जो हल्क के नीचे उतर गई।--कविता को०, भा० ४, पृ० ५५५।

अक्सीर²--संज्ञा पुं० कीमिया। अकसीर। एक दवा [को०]।

अखंग(पु)--वि० [सं० अखण्ड] न खँगनेवाला। न चुकनेवाला। कम न होनेवाला। अविनाशी।

अखंड--वि० [सं० अखण्ड] १. जिसके खंड या टुकड़े न हों। अटूट। अविच्छिन्न। संपूर्ण। समूचा। पूरा। उ०--ज्ञान अखंड एक सीतावर। मायाबस्य जीव सचराचर।--मानस, ७।७८। २. जिसका क्रम या सिलसिला न टूटे। जो बीच में न रुके। लगातार। अनवरत। उ०--जहाँ अखंड शांति रहती है वहाँ सदा स्वच्छंद रहें।--प्रेम०, पृ० ३२। ३. निर्विघ्न। बेरोक। उ०--रावन क्रोध अनल निज स्वास समीर प्रचंड। जरत बिभीषन राखेउ दीन्हेउ राज अखंड।--मानस ५।४९।

यौ०--**अखंड ऐश्वर्य। अखंड कीर्ति। अखंड पुण्य। अखंड प्रताप। अखंड यश। अखंड राज्य। अखंड वृष्टि।**

अखंड द्वादशी--संज्ञा स्त्री० [सं० अखण्डद्वादशी] अगहन सुदी द्वादशी। मार्गशीर्ष मास के शुक्ल पक्ष की बारहवीं तिथि [को०]।

अखंडधार--संज्ञा पुं० [सं० अखण्डधार] न टूटनेवाली धार। झड़ी। लगातार वृष्टि। उ०--सलिल अखंडधार धर टूटत किए इंद्र मन सादर।--सूर० १०।८५८।

अखंडन¹--वि० [सं० अखण्डन] १. खंडित न होनेवाला। अखंडनीय। २ समग्र। पूर्ण। ३ अखंडित। अविच्छिन्न [को०]।

अखंडन²--संज्ञा पुं० १. विरोध का अभाव। अविरोध। २. काल। समय। ३. परमात्मा। ४. खंडन न करना [को०]।

अखंडनीय--वि० [सं० अखण्डनीय] १. जिसके टुकड़े न हो सकें। जिसका खंड न हो सके। जो काटा न जा सके। २. जिसके विरुद्ध न कहा जा सके। पुष्ट। अकाट्य।

अखंडपाठ--संज्ञा पुं० [सं० अखण्ड+पाठ] वह पाठ जो बिना क्रम टूटे लगातार चले।

अखंडर(पु)--संज्ञा पुं० [सं० आखण्डल] इंद्र। सुरपति। उ०--नहिं सुमंत कैमास राय गोयंद अखंडर।--पृ० रा०, ६६। २३८।

अखंडल¹(पु)--वि० [सं० अखण्ड+हिं० ल (प्रत्य०)] १. अखंड। अटूट। अविच्छिन्न। उ०--नभ नखत मंडल में अखंडल पूर्ण चंद्र सुहाय।--रघुनाथ (शब्द०) २. समूचा। संपूर्ण। पूरा। उ०--तवा सो तपत धरा मंडल अखंडल औ मारतंड मंडल ह्वा सो होत भोर तें।--बेनी (शब्द)।

अखंडल²(पु)--संज्ञा पुं० [सं० आखण्डल; प्रा० अखंडल] इंद्र। सुरपति। उ०--जाय बृजमंडल के बीच मैं अखंडल ह्वाँ मरजी तिहारी मानि रह्यो बहु भाँति हैं।--दीन० ग्रं०, पृ० ६०।

अखंड सौभाग्य--संज्ञा पुं० [सं० अखंड+सौभाग्य] जीवन पर्यंत स्त्रियों के अविधवा होने का सौभाग्य। जीवन पर्यंत अविधवा रहने की स्थिति [को०]।

अखंड सौभाग्यवती--वि० [सं० अखण्ड+सौभाग्यवती] जीवन पर्यंत सुहागिनी रहनेवाली [को०]।

अखंडा द्वादशी--संज्ञा स्त्री० [सं० अखण्डा द्वादशी] अगहन सुदी द्वादशी दे० 'अखंडद्वादशी' [को०]।

अखंडानंद--वि० [सं० अखंड+आनंद] पूर्ण आनंदस्वरूप। उ०--जदपि अखंडानंद नंदनंदन ईश्वर हरि।--नंद० ग्रं०, पृ० ४६।

अखंडित--वि० [सं० अखण्डित] जिसके टुकड़े न हो। विभाग-रहित। अविच्छिन्न। उ०--सोइ सर्वज्ञ तज्ञ सोइ पंडित। सोइ गुन गृह विज्ञान अखंडित।--मानस, ७।४९। २. संपूर्ण। समूचा। पूरा। परिपूर्ण। उ०--वे हरि सकल ठौर के बासी। पूरन ब्रह्म अखंडित मंडित पंडित मुनिन बिलासी।--सूर०, १०।३०६६। जिसमें कोई रुकावट न हो। बाधा-रहित। निर्विघ्न; जैसे--उसका व्रत अखंडित रहा (शब्द०)।

उ०--सुआ असीस दीन्ह बड़ साजू। बड़ परताप अखंडित राजू।--जायसी ग्रं०, पृ० ३२। ४. लगातार। अनवरत। सिलसिलेवार। उ०--(क) धार अखंडित बरसत झर झर। कहत मेघ धावहु ब्रज गिरिवर।--सूर०, १०।९३६। (ख) उमड़ी अँखियान अखंडित धार।--कोई कवि (शब्द०)।

अख--संज्ञा पुं० [देश०] बाग। बगीचा (डिं०)।

अखगर--संज्ञा पुं० [फा० अख्गर] चिनगारी। अग्निकण। स्फुलिंग। उ०--अखगर को छिपा राख में मैं देख के समझा। 'ताबाँ' तो तहे खाक भी जलता ही रहेगा।--कविता कौ०, भा० ४, पृ० २१८।

अखगरिया--संज्ञा पुं० [फा० अख्गर+हिं० इया (प्रत्य०)] वह घोड़ा जिसके बदन से मलते वक्त चिनगारी निकलती है।

विशेष--अश्वशास्त्र या शालिहोत्र के अनुसार ऐसा घोड़ा ऐब्री समझा जाता है।

अखज(पु)--वि० [सं० अखाद्य; प्रा० अखज्ज] १. न खाने योग्य। अभक्ष्य। उ०--भख मारत ततकाल ध्यान मुनिवर सो धारत। बिहरत पंख फुलाय नहीं खज अखज बिचारत।--दीन० ग्रं०, पृ० २०६। २. निकृष्ट। बुरा। खराब। उ०--बैरागी अस चाल बताऊँ। तजे अखज तब हंस कहाऊँ।--कबीर सा०, पृ० २२१।

अखटट--संज्ञा पुं० [सं०] प्रियाल का पेड़ [को०]।

अखट्टि--संज्ञा स्त्री० [सं०] १. अशिष्ट व्यवहार। २. बचपन की बात [को०]।

अखड़ा†--संज्ञा पुं० [सं० अखात] ताल के बीच का गड़हा जिसमें मछलियाँ पकड़ी जाती हैं। चँदवा।

अखड़ैत[1](पु)†--संज्ञा पुं० [हिं० अखाड़ा+ऐत (प्रत्य०)] मल्ल। पहलवान। बलवान पुरुष। उ०--जंगा जीत तपोबल जालम ओप बड़े अखड़ैत।--रघु० रू०, ६२।

अखड़ैत[2]†--वि० अखाड़ा में कुश्ती लड़नेवाला जोर करनेवाला। अखाड़िया।

अखत--वि० [सं० अक्षत] बिना टूटा हुआ। अक्षत। संपूर्ण। समग्र। उ०--गिणजै सद ज्यारी जिंदगाणी, उभै विरद धरियाँ अखत।--रघु० रू०, पृ० २४।

अखतियार (पु)†--संज्ञा पुं० [अ० इख्तयार] दे० 'इख्तियार' उ०--अब नाटक करनेवालों को अखतियार है कि सब नाटक हिंदी भाषा में करें चाहे हिंदी, उर्दू, मारवाड़ी और ब्रजभाषा में करें।--श्रीनिवास ग्रं० (नि०), पृ० १०।

अखती ‡--संज्ञा स्त्री० [सं अक्षय तृतीया; प्र० अक्खय--तइया; तं य] अक्षय तृतीया। उ०--अखती की तीज तजबीज कै सहेली जुरीं, वर के निकट ठाढ़ी भावते को घेर के। ठाकुर०, पृ० १७।

अखतीज--संज्ञा स्त्री० [सं० अक्षय तृतीया; प्रा० अक्खय-तइया; तीय] अक्षय तृतीया; । आखातीज।

अखत्यार†--संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'इख्तियार'। उ०--'हम तो आज्ञाकारिणी दासी ठहरी, हमारो का अखत्यार है'।--भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ४४७।

अखनकुमारी(पु)†--वि० स्त्री० [सं० अक्षत, अक्षय+कुमारिका] अक्षत कुमारी। जिसका कौमार्य भंग न हुआ हो। उ०--सुंदर सबही सौं मिली कन्या अखनकुमारि। वेश्या फिरि पतिब्रत लियौ भई सुहागनि नारि।--सुंदर० ग्रं०, भा० २, पृ० ७५५।

अखना(पु)--क्रि० स० [हिं०] दे० 'आखना'। उ०--आद चरण की कला अठारह अरट गीत कवि मंझ अखैं।--रघु० रू०, प० ६२।

अखनी--संज्ञा स्त्री० [अ० यखनी] मांस का रसा। शोरबा। उ०--अखनी दटि वासति मांस परे। हठिवास सुवासिनी आभ भरे।--पृ० रा०, ६३।१००।

अखबार--संज्ञा पुं० [अ० खबर का बहु०] १. समाचारपत्र। संवाद पत्र। उ०--खींचो न कमानों को न तलवार निकालो। जब तोप मुकाबिल है तो अखबार निकालो।--कविता कौ० भा० ४, पृ० ६२०। २. दे० 'खबर'। उ०--हैंगे इस नाव में बहुत अखबार। कुछ मैं लिखता हूँ उनसते यार।--दक्खिनी०, पृ० २१८।

अखबारनवीस--संज्ञा पुं० [अ० अखबार, फा०+नवीस] वह जो समाचार लिखता हो। समाचारलेखक। समाचारपत्र संपादक। पत्रकार।

अखबारनवीसी--संज्ञा स्त्री० [अ० अखबार+फा० नवीसी] अखबारनवीस का काम। पत्रकारिता [को०]।

अखबारी--वि० [अ० अखबार+हिं० ई (प्रत्य०)] अखबार संबंधी। अखबार का [को०]।

अखय(पु)--वि० [सं० अक्षय; प्रा० अक्खय] जिसका क्षय न हो। न छीजनेवाला। अविनाशी। नित्य। चिरस्थायी। उ०--खसमहि छोड़ि छेम ह्वै रहई। होय अखीन अखय पद गहई।--कबीर (शब्द०)।

अखयकुमारी(पु)--वि० स्त्री० [सं० अक्षयकुमारी] दे० 'अखनकुमारी'। उ०--माह मास सीय पड़े अति सार। समजती धन अखयकुमारि।--बी० रासो०, पृ० २१।

अखयबट(पु)--संज्ञा पुं० [सं० अक्षयवट] दे० 'अक्षयवट'। उ०--संगम सिंघासन सुठि सोहा। छत्र अखयबट मुनि मन मोहा।--मानस, २।१०५।

अखर[1](पु)--संज्ञा पुं० [सं० अक्षर; पा०, प्रा० अक्खर] अक्षर। वर्ण। हरफ। उ०--म द प अखर ए मध्य तज भ ट क अंत मत आण।--रघु० रू०, पृ० ८।

अखर[2](पु)--वि० दे० 'अक्षर'।

अखर[3]--संज्ञा स्त्री० [हिं० अखरना] अखरने का भाव या स्थिति। उ०--'हाँ, संदूक खोलकर लाना कोई कठिन काम नहीं। अखर तो उसे होती है जिसे कुआँ खोदना पड़ता है।--काया०, पृ० ३०।

अखरताली†--संज्ञा स्त्री० [सं० अक्षर+तल] हस्ताक्षर। हस्तलेख।

अखरना--क्रि० अ० [सं० खर=तीव्र, कटु] १. दुखदाई होना। कष्टकर होना। उ०--चहचह चिरी धुनि कहकह केकिन की घहघह घनसोर सुनतै अखरिहै।--भिखारी ग्रं०, भा० १, पृ० २२६। २. बुरा लगना। खलना। उ०--'चिट्ठी लगाना सत्तीदीन की स्त्री को अखरता।'--बिल्ले०, पृ० १६।

अखरा[1]Ⓟ--वि० [सं० अ=नहीं+खरा=सच्चा] जो खरा या सच्चा न हो। झूठा। कृत्रिम। बनावटी। उ०--बार बिलासिनी ती के जपे अखरा अखरा नखरा अखरा के।--पद्माकर (शब्द०)।

अखरा[2]Ⓟ--संज्ञा पुं० [सं० अक्षर] वर्ण। अक्षर। हरफ। उ० (क)--जीते कौन, कौन अखरा की रेफ, कैकै, कहा कहै करू मीत राखै कहा कहि दोष दस।--भिखारी० ग्रं०, भा० २, पृ० १६६। (ख) रसवंत कवितन को रस ज्यों अखरान के ऊपर ह्वै झलके।--कोई कवि (शब्द०)।

अखरा[3]†--संज्ञा पुं० [देश०] बिना कुटे हुए जौ का भूसी मिला आटा जिसे गरीब लोग खाते हैं।

अखरावट--संज्ञा पुं० [सं० अक्षरावलिः; अक्षरावर्त] १. वर्णमाला। अक्षरसमूह। २. वर्णानुक्रम के आधार पर निर्मित पद्यसमूह; जैसे जायसी का अखरावट।

अखरावटीⓅ--संज्ञा स्त्री० [हिं० अखरावट+ई (प्रत्य०)] दे० 'अक्षरौटी'-१। उ०--पंडित पढ़ अखरावटी टूटा जोरेहु देखि।--जायसी ग्रं०, ३०३।

अखरावलिⓅ--संज्ञा स्त्री० [सं० अक्षरावलि] अक्षरपंक्ति। उ०--प्रकटित पृथिमी पृथु मुख पंकज अखरावलि मिसि थाइ एकत्र।--बेलि०, दू० २९३।

अखरोट[1]Ⓟ--संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अखरावट'-१। उ०--पुराजै, सुध अखरोट पिए अै दस दोष अगाध।--रघु० रू०, पृ० १३।

अखरोट[2]--संज्ञा पुं० [सं० अक्षोट; प्रा० अक्खोड़] एक बहुत ऊँचा पेड़ जो हिमालय पर भूटान से लेकर कश्मीर और अफगानिस्तान तक होता है।

विशेष--खासिया की पहाड़ियों तथा अन्य स्थानों पर भी यह लगाया जाता है इसकी लकड़ी बहुत ही अच्छी, मजबत और भूरे रंग की होती है और उसपर बहुत सुंदर धारियाँ पड़ी होती है। इसकी मेज, कुरसी, बंदूक के कुंदे, संदूक आदि बनते हैं। इसकी छाल रंगने और दवा के काम में भी आती है। इसका फल अंडाकार, बहेड़े के समान होता है। सूखने पर इसका छिलका बहुत कड़ा हो जाता है जिसके भीतर से टेढ़ा मेढ़ा गूदा व मीठी गरी निकलती है। गूदे में से तेल भी बहुत निकलता है। डंठल और पत्तियों को गाय बैल खाते हैं। अखरोट बहुत गर्म होता है।

अखरोट जंगली--संज्ञा पुं० [हिं०] जायफल।

अखरौटी†--संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अखरावटी'।

अखर्ब--वि० [सं०] १. जो छोटा न हो। बड़ा। लंबा। २. जो क्षुद्र या बौना न हो [को०]।

अखर्वा--संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का पौधा [को०]।

अखल--संज्ञा पुं० [सं०] गुणी एवं अच्छा वैद्य या डाक्टर [को०]।

अखलाक--संज्ञा पुं० [अ० अखलाक] १. सदाचार। उत्तम आचार। २. सुजनता। शिष्टता [को०]।

अखलि--वि० [देश० अक्खलिय] आकुल व्याकुल। उ०--दुतिया द्वै कुल उधरन धीर, उनमन मनवाँ अखलि सरीर।--गोरख०, पृ० १८१।

अखसत--संज्ञा पुं० [सं० अक्षत] चावल (डिं०)।

अखाँगना[1]Ⓟ--क्रि० स० [हिं० खाँगना] मारना। उ०--कहै पदमाकर अखाँग्यों तुम लंकपति।--पदमाकर ग्रं०, पृ० २४८।

अखाँगना[2]Ⓟ--क्रि० स० [सं० अ=नहीं+हिं० खाँग=कमी, त्रुटि] त्रुटि न करना। कोताही या कमी न करना। उ०--हमहूँ कलंकपति ह्वैबोई अखाँग्यो है।--पद्मकार ग्रं०, पृ० २४८।

अखा†--संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आखा'।

अखाजⓅ--वि० [हिं०] दे० 'अखाद्य'। उ०--गम्य अगम्य बिचार न करहीं, खाज अखाज नहीं चित धरहीं।--कबीर सा०, पृ० ४६४।

अखाड़Ⓟ--संज्ञा पुं० दे० 'अखाड़ा'। उ०--छुद्र घंटि मोहहि नर राजा। इंद्र अखाड़ आइ जनु साजा।--जायसी ग्रं०, पृ० ४७।

अखाड़ा--संज्ञा पुं० [सं० अक्षवाट; प्रा० अक्खाडय] १. वह स्थान जो मल्लयुद्ध के लिये बना हो। कुश्ती लड़ने या कसरत करने के लिये बनाई हुई चौखूँटी जगह जहाँ की मिट्टी खोदकर मुलायम कर दी जाती है। मल्लशाला। उ०--'चौदह पंद्रह साल के लड़के अखाड़ा गोड़ चुके थे छप्पर की थूनियाँ पकड़े हुए बैठक कर रहे थे'।--काले०, पृ० ३। २. साधुओं की सांप्रदायिक मंडली। जमायत; जैसे--निरंजनी अखाड़ा, निर्वाणी अखाड़ा, पंचायती, अखाड़ा। ३. साधुओं के रहने का स्थान। संतों का अड्डा। ४. तमाशा दिखानेवालों और गाने-बजाने वालों की मंडली। जमायत। जमावड़ा। दल; जैसे--'आज पटेबाजों के दो अखाड़े निकले' (शब्द०)। ५. सभा दरबार। मजलिस। ६. रंगभूमि। रंगशाला। परियों का अखाड़ा। नृत्यशाला। उ०--लड़ते हैं परियों से कुश्ती पहलवाने इश्क हैं, हमको नासिख राजा इंदर का अखाड़ा चाहिए।--कविता को०, भा० ४, पृ० ३५४। ७. आँगन। मैदान।

मुहा०--अखाड़ा उखाड़ना = अखाड़े के काम में लोगों द्वारा रुचि न लेना। अखाड़ा न जमना। अखाड़ा गरम होना=अखाड़े में काफी लोगों का आना या भीड़भाड़ होना। अखाड़ा जमना= १. अखाड़े का काम ठीक ढंग से होना। २. अखाड़े में शामिल होनेवाले और दर्शकों की चहल पहल होना। ३. किसी जगह बहुत से आदमियों का इकट्ठा होना। ४. किसी मजलिस, सभा या गोष्ठी में चहल पहल रहना। अखाड़ा न लगना=अखाड़े का काम न होना। अखाड़ा बंद रहना। उ०--'और लड़कों को समझा दिया कि कोई आवे तो कह दें कि अखाड़ा न लगेगा'।--काले०, पृ० २७। अखाड़ा निकलना=अखाड़े से संबद्ध लोगों का सामूहिक रूप में निकलना। अखाड़ा बदना= चुनौती देना। ललकारना। अखाड़ा लगना= दे० 'अखाड़ा जमना'। अखाड़े का जवान=कुश्ती या कसरत से पुष्ट शरीर का व्यक्ति। अखाड़े में आना=लड़ने के लिये सामने आना। अखाड़े में उतरना= दे० 'अखाड़े में आना'।

अखाड़िया[1]--वि० [हिं० अखाड़ा+इया (प्रत्य०)] १. अखाड़े के कामों में सधा हुआ। दंगली पहलवान। २. केवल खाड़ अखाड़े में ही लड़नेवाला। दंगल में न लड़नेवाला। ३. किसी विषय के ज्ञान में बेजोड़।

अखाड़िया[2]--संज्ञा पुं० कुश्ती लड़नेवाला पहलवान।

अखाढ़Ⓟ†--संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अषाढ़'। उ०--मास अखाढ़ उन्नत नवमेघ।--विद्यापति, पृ० १३१।

अखात¹--संज्ञा पुं० [सं०] १. बिना खोदा हुआ स्वाभाविक जलाशय। ताल। झील। २. खाड़ी। ३. मनुष्य द्वारा निर्मित जलाशय [को०]।

अखात²--वि० बिना खोदा हुआ [को०]।

अखादⓅ--वि० [हिं०] दे० 'अखाद्य'। उ०--खाद अखाद न छाँड़े अब लौं सब मैं साधु कहावै।--सूर०, १।१८६।

अखाद्य--वि० [सं०] १. न खाने योग्य। अभक्ष्य; जैसे, गोमांस आदि। २. खाने की वस्तु से भिन्न (को०)।

अखाधिⓅ--वि० [अखाद्य, प्रा० अखादिम] दे० 'अखाद्य'। उ०--की ब्रह्म ज्ञान होये मैथुन मथन करे खाधि अखाधि सनचारा।--सं० दरिया, पृ० १२१।

अखानी--संज्ञा स्त्री० [सं० अखान+हिं० ई (प्रत्य०)] एक टेढ़ी छड़ी या लकड़ी जिससे दँवरी या गल्ला पीटने के समय खेत से कटकर आए हुए डंठलों को बीच में करते जाते हैं।

अखार¹--संज्ञा पुं० [सं० अक्ष; पा०, प्रा० अक्ख=धुरी+हिं० आर (प्रत्य०)] मिट्टी का छोटा सा लोंदा जिसे कुम्हार लोग चाक के बीच में रख देते हैं और जिसपर थोथा रखकर नरिया उतारते है।

अखार²Ⓟ--संज्ञा पुं० [हिं० अखाड़ा] दे० 'अखाड़ा' उ०--नट नाटक पतुरिन औ बाजा। आनि अखार सबै तहँ साजा।--पदमावत, पृ० ६०१।

अखारना†--क्रि० स० [सं० अक्षालन] चारों ओर से अच्छी तरह धोना; जैसे अखारना, पखारना।

अखाराⓅ--संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अखाड़ा'। उ०--तहाँ देखि अप्सरा अखारा। नृपति कछू नहिं बचन उचारा।--सूर०, ६।४।

अखितⓅ--संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अक्षत'। उ०--दिय अखित सीस केदार साज।--पृ० रा०, ५८।६१।

अखिद्र--वि० [सं०] जो थका न हो। खेदरहित [को०]।

अखिन्न--वि० [सं०] १. खिन्नतारहित। खेदविहीन। उ०--संकेत किया मैंने अखिन्न जिस ओर कुंडली छिन्न भिन्न।--अनामिका, पृ० १२५। २. क्लेशरहित। दुःखरहित। ३. प्रसन्न। विमल। उ०--तेहिं प्रौढोक्ति कहैं सदा जिन्ह की वुद्धि अखिन्न।--भिखारी० ग्रं०, भा० २, पृ० ४६।४. अश्रांत। अक्लांत (को०)।

अखियात¹Ⓟ--संज्ञा पुं० [सं० आख्यात] आश्चर्य। अचंभा। उ०--ए अखियात जु आउधि आउध, सजे रुकम हरि छेदं सोजि।--बेलि०, दू० १३३।

अखियात²Ⓟ--वि० १. प्रसिद्ध। आख्यात। उ०--अखियातां बातां बचै जरा काल डर छड्ड।--बाँकीदास ग्रं०, भा० ३, पृ० ४६। २. समग्र। सब। संपूर्ण। उ०--रिण पड़िया भ्रम राख अभंग अखियात उबारे।--रा रू०, पृ० ३८। ३. दे० 'अक्षय' उ०--पात सुजस अखियात पयंपै दातव असमर बात दुवै।--रघु० रू०, पृ० १६।

अखिरⓅ--वि० [सं० अक्षर, प्रा० अक्खर, Ⓟअखिर+हिं० ई (प्रत्य०)] अक्षरवाला। आखर। उ०--प्यंड ब्रह्मांड सम तुलि व्यापीले, एक अषिरी हम गुरमुषि जांणीं।--गोरख०, पृ०१०१।

अखिल--वि० [सं०] १. संपूर्ण। समग्र। बिलकुल। पूरा। सब। उ०--अखिल विश्व यह मोर उपाया।--मानस, ७।८७। २. सर्वांगपूर्ण। अखंड। उ०--तुमही ब्रह्म अखिल अबिनासी भक्तन सदा सहाय।--सूर (शब्द०)। ३. जो अकृष्ट या बिना जोता हुआ न हो। खेती के योग्य (को०)।

यौ०--अखिल विग्रह = समग्र विश्व जिसका शरीर हो, ईश्वर।

अखिलात्मा--संज्ञा पुं० [सं०] समग्र विश्व जिसकी आत्मा हो। विश्वात्मा। ब्रह्म [को०]।

अखिलिका--संज्ञा स्त्री० [सं०] एक वनस्पति। करैली [को०]।

अखिलेश--संज्ञा पुं० [सं०] समग्र सृष्टि का स्वामी। ईश्वर [को०]।

अखिलेश्वर--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अखिलेश'। उ०--संग सती जग जननी भवानी। पूजे रिषि अखिलेश्वर जानी।--मानस, १।४८।

अखीनⓅ--वि० [सं० अक्षीण; अक्खीण] न छीजनेवाला। न घटनेवाला। चिरस्थायी। अविनाशी। नित्य। स्थिर। उ०--खसमहिं छोड़ि छेम ह्वै रहई। होय अखीन परमपद गहई।--कबीर (शब्द०)।

अखीर¹--संज्ञा पुं० [अ० अखीर] १. अंत। छोर। २. समाप्ति।

अखीर²--वि० खतम। समाप्त। उ०--अखीर हो गए गफलत में दिन जवानी के, बहारे उम्र हुई कब खिजाँ नहीं मालूम।--कविता को०, भा० ४, पृ० ३८०।

अखीरी¹--वि० [अ० अखीर+ई (प्रत्य०)] दे० 'आखिरी'।

अखीरी²Ⓟ--वि० [हिं०] दे० 'अखिरी'। उ०--एक अखीरी एकंकार जपीला, सुंनि अस्थूल दोइ वांणीं।--गोरख०, १०१।

अखुटनाⓅ--क्रि० अ० [सं० *आ+√क्षोट (क्षेपे), प्रा० *खोट खुट (ला०) अथवा देश०] लड़खड़ाना। उ०--अखुटत परत सु बिहवल भयौ, डरत डरत सूती गृह गयौ।--नंद० ग्रं०, पृ०२३१।

अखुटितⓅ--वि० [सं० अ+कुण्ठ, प्रा० *अखुंट,>अखुंट; अथवा सं० अ=नहीं+√क्षोट=क्षय, प्रा० *अखोट >अखुट+इत (प्रत्य०)] लगातार। अनवरत। निरंतर। उ०--अखुटित रटत सभीत ससंकित, सुकृत शब्द नहिं पावै।--सूर०, १।४८।

अखूट--वि० [सं० अ+√खुड्=तोड़ना अथवा सं० *अखोड्य, प्रा० *अखुड्, अखुड्ड>अखूट] १. जो तोड़ा या खंडित न किया जा सके। अटूट। उ०--सात दीप सात सिंधु थरक थरक करै जाके डर टूटत अखूट गढ़ राना के।--अकबरी०, पृ० १४३। २. जो न घटे या न चुके। अखंड। अक्षय। बहुत। अधिक। उ०--(क) नैना अतिहीं लोभ भरे। संगहिं संग रहत वै जहँ तहँ बैठत चलत खरे। काहू की परतीति न मानत जानत सबहिनि चोर। लूटत रूप अखूट दाम को स्याम बस्य यौं भोर।--सूर०, १०।२८८४। (ख) झूठ न कहिए साँच को साँच न कहिए झूठ। साहब तो मानै नहीं लागै पाप अखूट।--दादू (शब्द०)।

अखेटⓅ--संज्ञा पुं० [सं० आखेट] दे० 'आखेट'। उ०--मंत्री कहै अखेट सो करै, विषय भोग जीवन संहरै।--सूर०, ४।१२।

अखेटकⓅ--संज्ञा पुं० [सं० आखेटक] दे० 'आखेटक'। उ०--(क) एक दिवस को अखेटक गयौ, जाइ अंबिका बन तिय भयौ।--सूर०, ६।२। (ख) इक दिन राव अखेटक चढ्यौ, बिरही मृग मारन रिस भरयौ।--नंद० ग्रं०, पृ० १४०।

अखेटकी(पु)--वि० [हिं० अखेटक + ई (प्रत्य०)] शिकारी। अहेरी। आखेटी। उ०--पेट को पढ़त, गुन गढ़त, चढ़त गिरि, अटत गहन बन अहन अखेटकी।--तुलसी ग्रं०, पृ० २२०।

अखेटिक--संज्ञा पुं० [सं० आखेटिक] १. शिक्षित शिकारी कुत्ता। २. कोई भी वृक्ष [को०]।

अखेद¹--संज्ञा पुं० [सं०] दुःख का अभाव। प्रसन्नता। निर्द्वंद्वता।

अखेद²--वि० दुःखरहित। प्रसन्न। हर्षित। उ०--है हरता करतार प्रभु कारण करन अखेद। यह बिचारि चहुँआन के मन उपज्यौ निरबेद।--हम्मीर०, पृ० ६४।

अखेदित्व--संज्ञा पुं० [सं०] जैन मत में लगातार भाषण देने का वाणी का एक गुण [को०]।

अखेदी--वि० [सं०] क्लांतिरहित। अथकित [को०]।

अखेलत(पु)--वि० [सं० अ + खेल = खेलना = बिना खेलते हुए] १. अचंचल। अलोल। भारी। २ आलस्य भरा। उनींदा। उ०--भारी रस भीजे भाग भायनि भुजन भरे, भावते सुभाइ उपभोग रस मोइगे। खेलत हीं खेलत अखेलत हीं आँखिन सों खिनखिन खीन ह्वै खरे ही खिन खोइगे।--देव (शब्द०)।

अखै(पु)--वि० [सं० अक्षय, पा०, प्रा० अक्खय] अक्षय। अविनाशी। उ०--मन मस्त हस्ती मिलाइ अवधू तब लूटि लै अषै भंडारं। --गोरख०, पृ० २७।

यौ०--अखैपद = निर्वाण। अखैपुरष = ईश्वर। अखैवट, अखैवर = अक्षयवट।

अखै तीज(पु)†--संज्ञा स्त्री० [सं० अक्षय तृतीया] अखती की तीज। अक्षय तृतीया। उ०--अखै तीज तिथि के दिना गुरु होवै संजूत। तौ भाखै यों भड्डरी निपजै नाज बहूत।--घ घ०, पृ० १४५।

अखैनी--संज्ञा स्त्री० [सं० अखान] चार पाँच हाथ लंबी बाँस की लग्गी जिसके एक छोर पर एक टेढ़ी छोटी लकड़ी चोंच की तरह बँधी होती है। खलिहान में जब अनाज कटकर आता है तब इसी से उलट फेरकर उसे सुखाते हैं। अखानी।

अखैबट(पु)--संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अक्षयवट' उ०--सु अखैबट बीज लौं फैलि परयो बनमाली कहाँ धौं समोय चले।--घनानंद, पृ० ११४।

अखैबर†--संज्ञा पुं० [सं० अक्षयवट, प्रा० अखयवड] अक्षयवट।

अखैवड़(पु)†--संज्ञा पुं० [हिं०] दे० अखैवट'। उ०--कवण अखैवड़ विगर, प्रलै सागर सिर सोभै।--रा० रू०, पृ० ५३।

अखोट--वि० [सं० अ + क्षि√क्षोट, प्रा० खोट] दोषरहित। शुद्ध। निश्छल। उ०--चढ़ी अटारी बाम वह कियो प्रनाम अखोट। तरनि किरन तें दृगन कौं कर सरोज की ओट।--मति० ग्रं०, पृ० २८८।

अखोर¹(पु)--वि० [हिं० अ = नहीं + फा० ख्वार] १. अच्छा। भद्र। सज्जन। २. सुंदर। स्वरूपवान। ३. बुराई से बचा हुआ। निर्दोष। बेऐब।

अखोर²--वि० [फा० अखोर] निकम्मा। तुच्छ। बुरा। सड़ा गला। आखोर।

अखोर³--संज्ञा पुं० १. कूड़ा करकट। निकम्मी चीज; जैसे--'कहाँ का अखोर बाजार से उठा लाए'।--(शब्द०)। २. खराब घास। मुरझाई घास। बुरा चारा। बिचाली। उ०--खाय अखोर भूख नित टारी, आठ गाठ की लगी पिछारी।--लल्लू० (शब्द०)।

अखोल(पु)--वि० [हिं० अ = नहीं + खोलना] जिसे खोला न जा सके। कसा हुआ। दृढ़। उ०--रसना जुगल रसनिधि बोल। कनक बेलि तमाल अरुझी सुभुजबंध अखोल।--सूर०, १०।२१३२।

अखोला--संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अकोला'

अखोह--संज्ञा पुं० [सं० क्षोभ = असमानता] ऊँची नीची भूमि। ऊबड़ खाबड़ पृथ्वी। असम भूमि।

अखौट--संज्ञा पुं० [सं० अक्ष, पा० प्रा० अक्ख = धुरा + हिं० ओट (प्रत्य०)] १. जाँता या चक्की के बीच की खूँटी जिसपर ऊपर का पाट घूमता है। जाँते की किल्ली। २. लकड़ी या लोहे का डंडा जिसपर गड़ारी घूमती है।

अखौटा--संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अखौट'।

अक्खना(पु) --क्रि० स० [हिं०] दे० 'अखना'।

अक्खर--संज्ञा० पुं० [सं० अक्षर; प्रा० अक्खर] अक्षर। हरफ। वर्ण। उ०--एकै अक्खर पीव का सोई सत करि जाणि। राम नाम सतगुरु कह्या दादू सो परवाणि।--दादू०, भा० १, पृ० ३२।

अक्खाह--अव्य० [अ० अखअख < अक्खाह] उद्वेग या आश्चर्यसूचक शब्द। उ०--'अक्खाह। आइए बैठिए। अक्खाह! आप भी इसमें लगे हुए हैं।'--(शब्द०)।

विशेष--जब एक व्यक्ति किसी से सहसा मिलता है अथवा उसे स्वभावविरुद्ध काम करते देखता है तब इस शब्द का प्रयोग करता है। वास्तव में यह फारसीवालों का किया हुआ 'अहा' शब्द का रूपांतर है।

अक्खिर(पु)--संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अक्खर'। उ०--जे वेधे गुर अक्खिरां तिनि संसा चुणि चुणि खद्ध।--कबीर ग्रं०, पृ० २२।

अक्खै(पु)--संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अक्खर'। उ०--दौरि राज पृथिराज सु आयो। खमा खमा अक्खै उच्चार्यो।--पृ० रा०, ४।६।

अख्ज--संज्ञा पुं० [अ० अख्ज] लेना। ग्रहण।

क्रि० प्र०--करना = १. लेना। ग्रहण करना। २. निष्कर्म निकालना। सारांश निकालना।

अख्तयार--संज्ञा पुं० [अ० इख्तियार] दे० 'इख्तियार'। उ०--मिलने को तुझसे दिल तो मेरा बेकरार है। तू आके मिल न मिल ये तेरा अख्तयार है।--शेर०, भा० १, पृ० ३६३।

अख्तर--संज्ञा पुं० [फा० अख्तर] नक्षत्र। तारा। सितारा। उ०--सीन-ए-चर्ख में हर अख्तर अगर दिल है तो क्या। एक दिल होता मगर दर्द के काबिल होता।--कविता कौ०, भा० ४, पृ० ४२२। २. भाग्य। प्रारब्ध। किस्मत (को०)।

मुहा०--अख्तर चमकना = भाग्योदय होना। नसीब खुलना। अच्छे दिन आना।

अख्तरशुमार--संज्ञा पुं० [फा० अख्तरशुमार] नक्षत्रों की विद्या का जानकार। ज्योतिषी [को०]।

अख्तरशुमारी--संज्ञा स्त्री० [फा० अख्तरशुमारी] १. नक्षत्रगणना की विद्या। भाग्य जानने की विद्या। २. आसमान से तारों को गिन गिनकर रात काटना। बेचैनी से रात काटना। उ०--शब उसने तोड़कर मोती के सुमरन मुझसे गिनवाए। दिखाया वस्ल में आलम नया अख्तरशुमारी का।--शेर०, भा० १, पृ० २१७।

अख्तावर--संज्ञा पुं० [फा० आख्ता + वर (प्रत्य०)] वह घोड़ा जिसे जन्म से ही अंडकोश की कौड़ी न हो या कृत्रिम उपाय से नष्ट कर दी गई हो।

विशेष--जन्म से नपुंसक घोड़ा ऐबी समझा जाता है।

अख्तियार--संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'इख्तियार'। उ०--कुछ हाथ उठा के माँग न कुछ हाथ उठा के देख। फिर अख्तियार खातिरे बेमुद्दआ के देख।--शेर०, भा० ४, पृ० ५८।

अख्त्यार(पु)--संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'इख्तियार'। उ०--कीजे क्या हाली न कीजे सादगी गर अख्त्यार। बोलना आए न जब रंगीं बयानों की तरह।--कविता कौ०, भा० ४, पृ० ५६६।

अख्यात--वि० [सं०] १. अप्रसिद्ध। अज्ञात। २. जिसे कोई जानता न हो। अविदित। ३. अख्यातियुक्त। अप्रतिष्ठित [को०]।

अख्याति--संज्ञा स्त्री० [सं०] अप्रसिद्धि। प्रसिद्धि का अभाव [को०]।

अख्यातिकर--वि० [सं०] १. अपमानकर। अप्रसिद्धि करनेवाला। अकीर्तिकर। बदनामी फैलानेवाला।

अख्यान(पु)--संज्ञा पुं० [सं० आख्यान; प्रा० अक्खाण] दे० 'आख्यान'। उ०--अब अख्यान बखानहूँ भुवन सिंह चौहान।--रामरसिक०, पृ० ६६६।

अख्यायिका(पु)--संज्ञा स्त्री० [सं० आख्यायिका] दे० 'आख्यायिका'।

अगंज(पु)--वि० [सं० अ = नहीं + √गञ्ज] न जीता जानेवाला। अपराजेय। उ०--पंचह सहस पसवान साहि। अंगन अगंज को सकै गाहि।--पृ० रा०, १३।१६।

अगंड--संज्ञा पुं० [सं० अगण्ड] बिना हाथ पैर का कबंध। धड़ जिसके हाथ पैर कट गए हों।

अगंत(पु)†--क्रि० वि० [सं० अग्रतः प्रा० अग्गत > अगंत] सामने। आगे। उ०--मेल्हन उजोर पहुँच्यौ तुरंत रनथंभ कोट देख्यौ अगंत।--हम्मीर०, पृ० १७।

अगंता¹--वि० [सं० अगन्ता] चलने या गमन न करनेवाला [को०]।

अगंता²‡--वि० [सं० अग्र + गंता] १. आगे बढ़ा हुआ। अगाड़ी। २. पेशगी। अगता। अग्रिम।

अगंध--वि० [सं० अगन्ध] गंधरहित। गंधहीन [को०]।

अग¹--वि० [सं०] १. न चलनेवाला। अचर। स्थावर। उ०--तव विषम माया बस सुरासुर नाग नर अग जग हरे।--मानस, ७।१३। २ टेढ़ा चलनेवाला। ३. पहुँच के बाहर। [को०]।

अग²--संज्ञा पुं० १. पेड़। वृक्ष। २. पर्वत। पहाड़। उ०--गए पूरि सर धूरि भूरि भय अग थल जलधि समान।--तुलसी ग्रं०, पृ० ३८१। ३. पत्थर (को०)। ४. वृक्ष। पादप (को०)। ५. सूर्य (को०)। ६. जलपात्र (को०)। ७. सात की संख्या का वाचक शब्द (को०)।

अग³(पु)--वि० [सं० अज्ञ] अनजान अनाड़ी। मूढ़।

अग⁴(पु)--संज्ञा पुं० [सं० अङ्ग] शरीर। अंग (डिं०)।

अग⁵†--संज्ञा पुं० [सं० अग्र; प्रा० अग्ग] ऊख के सिरे पर का पतला भाग जिसमें गाँठ बहुत पास पास होती हैं और जिसका रस फीका होता है। अगौरा।

अग⁶(पु)†--क्रि० वि० [हिं०] दे० 'आगे'। उ०--संवत नव सत अद्ध बरष दस तीय सत्त अग। पुर प्रविष्ट वीसल नरिंद राजंत सयल जग।--पृ० रा०, १।४७२।

अगइं(पु)†--वि० [सं० अग्रिम] अगला। आगे का। अग्रिम। उ०--राजा पाइचो लीयो हो बोलाई। अगइं बात कहीं समझाय।--बी० रासो, पृ० ८६।

अगई--संज्ञा पुं० [देश०] चलता जाति का एक पेड़।

विशेष--यह अवध, बंगाल, मध्यप्रदेश और मद्रास में बहुतायत से होता है। इसकी लकड़ी भीतर सफेदी लिए हुए लाल रंग की होती है और जहाजों तथा मकानों में लगती है। इसका कोयला भी बहुत अच्छा होता है। इसके पत्ते दो दो फुट लंबे होते हैं और पत्तल का भी काम देते हैं। इसकी कली और कच्चे फलों की तरकारी भी बनती है।

अगच्छ¹--वि० [सं०] जा न चले। अगमनशील [को०]।

अगच्छ²--संज्ञा पुं० वृक्ष। पेड़ [को०]।

अगज¹--वि० [सं०] पर्वत से उत्पन्न होनेवाला। २. वृक्ष से उत्पन्न (को०)। ३. पर्वतों पर घूमनेवाला। गिरिचर (को०)।

अगज²--संज्ञा पुं० १. शिलाजीत। २. हाथी।

अगज³(पु)--संज्ञा पुं० [अ० अगश] श्वेत रंग के सिरवाला अश्व। उ०--अबलक अबसर अगज सिराजी। चौधर चाल समुँद सब ताजी।--पदमावत, पृ० ५१६।

अगजग--संज्ञा पुं० [सं० अग + जग] चराचर। जड़ चेतन। उ०--अगजग उनका कण कण उनका पल भर वे निर्मम हों। झरते नित लोचन मेरे हों।--यामा, पृ० १८१।

अगजा--संज्ञा स्त्री० [सं० अग = पर्वत + जा = पुत्री] हिमालय की पुत्री, पार्वती [को०]।

अगट¹--संज्ञा पुं० [देश०] चिक या मांस बेचनेवाले की दूकान।

अगट²(पु)--क्रि० अ० [सं० एकत्र, एकस्थ, प्रा० एकट्ठ] इकट्ठा होना। एकत्र होना। जमा होना।

अगड(पु)--संज्ञा पुं० [सं० अर्गल, प्रा० अग्गल] सिक्कड़ जिसमें हाथी बाँधे जाते हैं। उ०--चिहूँ ओर हरषी छुटें, परें अगड सुमार। गोला लगें गिलोल गुरु छुटें न तो इसरार।--पृ० रा०, ६।३२५।

अगड़(पु)--संज्ञा पुं० [हिं० अकड़ या अ० मा० अगड] अकड़। ऐंठ। दर्प। उ०--सोभमान जग पर किए सरजा सिवा खुमान। साहिन सों बिनु डर अगड़ बिनु गुमान को दान।--भूषण (शब्द०)।

अगड़धत्त--वि० [हिं०] दे० 'अगड़धत्ता'।

अगड़धत्ता--वि० [देशी] १. लंबा तड़ंगा। ऊँचा। २. श्रेष्ठ। बढ़ा-चढ़ा। उ०--एक पेड़ अगड़धत्ता। जिसमें जड़ न पत्ता।--पहेली [उत्तर--अमरबेल।]

अगड़बगड़[1]--वि० [सं० अकृत+विकृत, प्रा० अकड+विकड, अगड़ विकड़] अंड बंड। बे सिर पैर का। ऊलजलूल। क्रमविहीन।

अगड़बगड़[2]--संज्ञा पुं० १ अंडबंड बात। बे सिर पैर की बात। प्रलाप। २. अंडबंड काम। व्यर्थ का कार्य। अनुपयोगी कार्य। उ०--'वह दूकान पर नहीं बैठता, दिन रात अगड़बगड़ किया करता है (शब्द०)।

अगड़म बगड़म[1]†--वि० [हिं०] दे० 'अगड़बगड़'।

अगड़म बगड़म[2]--संज्ञा पुं० [सं० अकृतम्+विकृतम् अथवा अनु०] १. दे० 'अगड़बगड़'। २. टूटे फूटे सामान और काठकबाड़ का ढेर।

अगड़ा[1]†--संज्ञा पुं० [सं० अकरण अथवा देश०] ज्वार बाजरा आदि अनाजों की बाल जिसमें से दाना झाड़ लिया गया हो। खुखड़ी। अखरा।

अगड़ा[2]--वि० [सं० अग्र; प्रा० अग्गला] दे० 'अगरा', 'अगला'।

अगड़ी†--संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अगरी २'।

अगण--संज्ञा पुं० [सं०] अशुभ गण। बुरा गण।

विशेष--पिंगल या छंदशास्त्र में तीन तीन अक्षरों के जो आठ गण माने गए हैं, उनमें से चार अर्थात्--जगण, रगण, सगण और तगण अशुभ माने गए हैं और अगण कहलाते हैं। इनको कविता के आदि में रखना बुरा समझा जाता। पर यह गणागण का दोष मात्रिक छंदों में ही माना जाता है, वर्ण वृत्तों में नहीं। उ०--इहाँ प्रयोजन गण, अगण और द्विगण को काहि।--छंदा०, पृ० ११२।

अगणत(पु)†--वि० [हिं०] दे० 'अगणित'। उ०--हेक बिदर पैदा हुवै अगणत मिलिया अंस।--बाँकी० ग्रं०, भा० २, पृ० ८५।

अगणन--वि० [सं०] असंख्य। अनगिनत। उ०--प्रलय के समय में जब ज्ञान-ज्ञेय-ज्ञाता-लय होता है अगणन ब्रह्मांड ग्रास करके। --अनामिका, पृ० १०१।

अगणनीय--वि० [सं०] १. गिनने योग्य। सामान्य। २. अनगिनती। असंख्य। बेशुमार।

अगणित--वि० [सं०] १. जिसकी गणना न हो। अनगिनत। असंख्य। बेशुमार। बहुत। बेहिसाब। अनेक। उ०--ऐसे हीं अगणित रत्नों से तुम्हें जगत ने पाया है।--साकेत, पृ० ३७०। २. जो गिना न गया हो। जो गिनती में न आया हो (को०)। ३. उपेक्षित। तुच्छ (को०)।

अगणित प्रतियात--वि० [सं०] सूचना न प्राप्त होने के कारण या ध्यान आकृष्ट न होने के कारण वापस [को०]।

अगणितलज्ज--वि० [सं०] लज्जा का ध्यान न रखनेवाला। निर्लज्ज [को०]।

अगण्य--वि० [सं०] १. न गिनने योग्य। सामान्य। तुच्छ। २. असंख्य। बेशुमार। उ०--गूँजे गगनांगण में ये अगण्य गान। --गीतिका, पृ० ८७।

अगत[1](पु)--वि० [सं० अगति] जहाँ गति न हो। अगम्य। उ०--(क) उनकी मेहर से वे मिले सब जो अगत गाई जिनन।--संत तुरसी०, पृ० ४३।

अगत[2]--अव्य० [सं० अग्रतः, प्रा० अग्गत] आगे चलो। हाथियों को आगे बढ़ाने के लिये महावतों द्वारा प्रयुक्त शब्द। महावत लोग हाथी को आगे बढ़ाने के लिये 'अगत', 'अगत' कहते हैं।

अगत[3](पु)†--स्त्री० [सं० अगति] बुरी गति। दुर्दशा। दुर्गति। उ०--मन प्रकार सुख शक्र लख जन रामा हरि बिन अगत।--राम० धर्म, पृ० २४५।

अगता[1]--वि० [सं० अग्रतः] १. आगे स्थित। अगाड़ी। उ०--बाएँ सो दहिने पीछे सोइ अगता अर्ध उर्ध सम घटत न बढ़ता।--भीखा श०, भा० ३, पृ० ४२। २. अग्रिम। पेशगी।

अगता[2]--संज्ञा पुं० [फा० आख्तः] बधिया किया हुआ घोड़ा [को०]।

अगति[1]--संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बुरी गति। दुर्गति। दुर्दशा। दुरवस्था। उ०--ऋधि सिधि बिधि चारि सुगति जा बिनु गति अगति। --तुलसी ग्रं० पृ० ३६०।

क्रि० प्र०--करना।--होना।

२. गति का उलटा। मरने के पीछे शव की दाह आदि क्रिया का यथाविधि न होना। मृत्यु के पीछे की बुरी दशा। मोक्ष की अप्राप्ति। बंधन। नरक। उ०--काल कर्म गति अगति जीव की सब हरि हाथ तुम्हारे।--तुलसी (शब्द०)।

क्रि० प्र०--करना उ०--कहौं तो मारि संहारि निशाचर रावण करौ अगति को।--सूर० (शब्द०)।

३. स्थिर या अचल पदार्थ। केशव के अनुसार २८ वर्ण्य विषय हैं। इनमें से जो स्थिर या अचल हों उनकी अगति संज्ञा दी है; यथा--अगति सिंधु गिरि ताल तरु वापी कूप बखानि।--केशव (शब्द०)। उ०--कौलौं राखौं थिर वपु, वापी कूप सर सम, हरि बिनु कीन्हें बहु बासर व्यतीत मैं।--केशव (शब्द०)। ४. गति का अभाव। स्थिरता। उ०--न तो अगति ही है न गति आज किसी भी ओर, इस जीवन के झाड में रही एक झकझोर।--साकेत, पृ० २८६। ५ पहुँच या सहायता की कमी (को०)। ६. पूर्णता का अभाव या कमी (को०)।

अगति[2]--वि० १ जिसकी गति न हो। निरुपाय। अगतिक। उ०--इस पिता ही की चिंता के पास, मुझ अगति को भी मिले विश्वास।--साकेत, पृ० २००। २. बिना सहायता का। असहाय (को०)।

अगतिक--वि० [सं०] १. जिसकी कहीं गति या पैठ न हो। जिसे कहीं ठिकाना न हो। बेठिकाना। अशरण। अनाथ। निराश्रय। उ०--अगतिक की गति दीनदयाल।--कोई कवि (शब्द०)। २. मरने पर जिसकी अंत्येष्टि क्रिया आदि न हुई हो।

अगतिकगति--वि० [सं०] गतिहीन या निरुपायों का आश्रय। अशरण शरण (भगवान्) [को०]।

अगतिमय--[वि० सं० अगति+मय] गतिहीन। जड़। उ०--अरे पुरातन अमृत अगतिमय मोह मुग्ध जर्जर अवसाद।--कामायनी, पृ० १८।

अगती[1](पु)--वि० [सं० अगति] १. जो गति या मोक्ष का अधिकारी न हो। बुरी गतिवाला। २. पापी। कुमार्गी। दुराचारी। कुकर्मी। ३. दे० 'अगति'।

अगती[2]--संज्ञा पुं० पापी मनुष्य। कुकर्मी या कुमार्गी व्यक्ति। पातकी मनुष्य। उ० (क) जय जय जय जय माधव बेनी। जगहित प्रगट करी करुनामय अगतिन को गति देनी।--सूर०, ९।११। (ख) देखि गति गोपिका की भूलि जाति निज गति अगतिन कैसे धौं परम गति देत हैं।--केशव (शब्द०)।

अगती[3]--संज्ञा स्त्री० चकवँड़। दादमर्दन। दद्रुघ्न। चक्रमर्द।

अगती[4]†--वि० स्त्री० [सं० अग्रतः] अगाऊ। पेशगी।

अगती[5]--क्रि० वि० आगे से। पहले से।

अगतीक--वि० [सं०] १. जिसपर चलना। अनुचित हो कुपथ। कुमार्ग। २. दे० 'अगतिक' [को०]।

अगत्तर†--वि० [सं० अग्रतर] आनेवाला।

अगत्ती†--संज्ञा पुं० [सं० अत्तीक] शरारती। नटखट।

अगत्या--क्रि० वि० [सं०] १. आगे से। भविष्य में। २. आगे चलकर। पीछे से। अंत में। अकस्मात्। सहसा।

अगदकार--संज्ञा पुं० [सं० अगदङ्कार] वैद्य। चिकित्सक [को०]।

अगद[1]--वि० [सं०] १. नारोग। चंगा। स्वस्थ। २. न बोलने या कहनेवाला (को०)। ३. न्याय द्वारा मुक्त। अभियोगमुक्त। (को०)। ४. व्याधिरहित। निष्कंटक। निर्दोष। उ०--रीझि दियौ गुरु जाहि अगद वृंदाबन पद कौं।--ब्रजमाधुरी०, पृ० २५२।

अगद[2]--संज्ञा पुं० १. औषधि। दवा। २. स्वास्थ्य। रोग का अभाव (को०)। ३. अष्टांग आयुर्वेद का एक अंग। अगद तंत्र (को०)।

अगदतंत्र--संज्ञा पुं० [सं० अगदतंत्र] आयुर्वेद के आठ अंगों में से एक जिसमें सर्प, बिच्छू आदि के विष से पीड़ित मनुष्यों की चिकित्सा का विधान है।

अगदराज--संज्ञा पुं० [सं०] १. औषधियों का राजा। चंद्रमा। उ०--एकादश अध्याय यह अगदराज की धार। पान करहु नर चित्त दै मिटै रोग संसार।--नंद० ग्रं०, पृ० २५९। २. उत्तम या अव्यर्थ औषधि (को०)।

अगदवेद--संज्ञा पुं० [सं०] आयुर्वेद [को०]।

अगदित--वि० [सं०] न कहा हुआ। अकथित [को०]।

अगन[1](पु)--संज्ञा स्त्री० [सं० अग्नि] १. दे० 'अग्नि'। उ०--इम लगन ऊपर आविया मझ अगन लागो मेह।--रघु० रू०, पृ० ३७। २. अगिन नाम की एक चिड़िया। उ०--अगन से मेरे पुलकित प्राण, सहस्रों सरस स्वरों में कूक तुम्हारा करते हैं आह्वान।--पल्लव, पृ० १९।

अगन[2](पु)--संज्ञा पुं० [सं० अगण] दे० 'अगण'। उ०--मन यम भ भ चारि हैं र स ज त अगनौ चारि।--भिखारी० ग्रं०, भा० १, पृ० १७०।

अगन[3](पु)†--संज्ञा पुं० [सं० अङ्गण] दे० 'आँगन'।

अगन (पु)--वि० [सं० अगण्य; प्रा० अगन्न] असंख्य। बेशुमार। उ०--(क) साँब कौं लक्ष्मना सहित ल्याए बहुरि दियौ दाइज अगन गनि न जाई।--सूर०, १०।४२०९। (ख) ससि अखंड मंडल जु गगन मैं। राजत भयौ नक्षत्र अगन मैं।--नंद० ग्रं०, पृ० २९२।

अगनइता(पु)--संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अगनैत'।

अगनत(पु)--वि० [हिं०] दे० 'अगणित'।

अगनि(पु)--संज्ञा स्त्री० [सं० अग्नि] दे० 'अग्नि'। उ०--अगनि तें दीपक अनगन बरैं। बहुरि अगनि सब तिन मैं ररैं।--नंद० ग्रं०, पृ० १४४।

अगनिउ(पु)--संज्ञा पुं० [सं० आग्नेय] आग्नेय कोण। दक्षिण पूर्व का कोना। उ०--तीज एकादसि अगनिउ मोर। चौथ दुआदसि नैऋत बौर।--जायसी (शब्द०)।

अगनित(पु)--वि० [हिं०] दे० 'अगणित'। उ०--उमा महेस विवाह बराती। ते जलचर अगनित बहु भाँती।--मानस, पृ० २६।

अगनिया(पु)†--वि० [अगणित, प्रा० अगणिय] दे० 'अगणित'। उ०--बरी, बरा, बेसन बहु भाँतिनि, व्यंजन बिबिध अगनिया।--सूर०, १०।२३८।

अगनी[1](पु)†--संज्ञा स्त्री० [सं० अग्नि] दे० 'अग्नि'। उ०--स्रवननि बचन सुनत भइ उनकैं ज्यौं घृत नाए अगनी।--सूर०, १०।४१२५।

अगनी[2]--संज्ञा स्त्री० [सं० अग्र] घोड़े के माथे पर की भौंरी या घूमे हुए बाल।

अगनी[3](पु)--वि० [सं० अगणित] अनगिनत। असंख्य।

अगनू(पु)--संज्ञा स्त्री० [सं० आग्नेय] अग्निकोण। उ०--तीज एकादसि अगनू मारी। चौथ दुआदश नैऋत बारी।--जायसी (शब्द०)।

अगनेउ(पु)--संज्ञा पुं० [सं० आग्नेय; अप० अगनेउ] आग्नेय दिशा। अग्निकोण। उ०--छठएँ नैऋत दच्छिन सतें। बसे जाय अगनेउ सो अठें।--जायसी (शब्द०)।

अगनेत(पु)--संज्ञा पुं० [सं० आग्नेय] आग्नेय दिशा। अग्निकोण। उ०--भौम काल पच्छिम बुध नैरिता। दच्छिन गुरु शुक्र अगनेता।--जायसी (शब्द०)।

अगनेव(पु)-- वि० [सं० आग्नेय] अग्नि संबंधी। उ०--सीत भीत आदीत बास अगनेव कोण किय।--पृ० रा०, ६३। १९९०।

अगबान(पु)--संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अग्निबाण'। उ०--बज्जि गहर नीसांन अग्नि अगबान बिछुट्टिय।--पृ० रा०, १।६२९।

अगम[1]--वि० [सं० अगम्य] १. जहाँ कोई जा न सके। न जाने योग्य। पहुँच के बाहर। दुर्गम। अवघट। गहन। उ०--(क) अब अपने यदुकुल समेत लै दूरि सिधारे जीति जवन। अगम सु पंथ दूरि दक्षिण दिसि तहँ सुनियत सखि सिंधु लवन।--सूर (शब्द०)। (ख) है आगे परबत की पाटी। बिषम पहार अगम सुठि घाटी --जायसी (शब्द०)। २. विकट। कठिन। मुशकिल। उ०--एक लालसा बड़ि उर माहीं। सुगम अगम कहि जात सो नाहीं।--तुलसी (शब्द०)। ३. न मिलने योग्य। दुर्लभ। अलभ्य। उ०--सुनु मुनीस्बर दरसन तोरे। अगम न कछु प्रतीति मन मोरे।--तुलसी (शब्द०)। ४. अपार। अत्यंत। बहुत। उ०--समुझि अब निरखि जानकी मोहिं। बड़ो भाग गुनि अगम दसानन सिव बर दीनौं तोहिं।--सूर०, ९।७७।५. न जानने योग्य। बुद्धि के परे। दुर्बोध। उ०--अविगत गति कछु कहत न आवै। सब विधि अगम बिचारहिं ताते सूर सगुन लीला पद गावै।--सूर०, १।२। ६. बहुत गहरा। अथाह। उ०--'यहाँ पर नदी में अगम जल है' (शब्द०)। उ०--तिन कहुँ मानस अगम अति जिन्हहि न प्रिय रघुनाथ।--

मानस, १।३८।७. विशाल। बड़ा। उ०—कैसे बचै अगम तरु कैं तर मुख चूमति यह कहि पछितावति।—सूर०, १०।३६०। ८. जिसे वश में न किया जा सके। सुदृढ़। उ०—लंका बसत दैत्य अरु दानव उनके अगम सरीर।—सूर०, ६।८६।

अगम²(पु)—संज्ञा पुं० [सं० आगम] १. शास्त्र। आगम। उ०—तुलसी महेस को प्रभाव भाव ही सुगम, निगम अगम हू को जानिबो गहनु है।—तुलसी ग्रं०, पृ० २३७।

यौ०—अगम निगम = आगम निगम। उ०—चितयौ चित्त दुजराज तब अगम निगम करि कढ्ढयौ।—पृ० रा०, ३।२०।

२. आगम। अवाई। उ०—देखौ माई स्याम सुरति अब आवै। दादुर मोर कोकिला बोलैं पावस अगम जनावै।—सूर०, १०।३३१२।

अगम³—संज्ञा पुं० [सं०] १. वृक्ष। २. पर्वत [को०]।

अगम⁴—वि० १. न चलनेवाला। चलने के अयोग्य। अगंता। २. अजंगम। स्थावर (को०)।

अगमति(पु)—वि० [सं० अगम + अति] बहुत विशाल। अत्यंत अगम। उ०—मोहन, मुर्छन, बसीकरन पढ़ि अगमति देह बढ़ाउँ।—सूर०, १०।४६।

अगमन¹—संज्ञा पुं० [सं०] गति या गमन का अभाव। न चलना [को०]।

अगमन²—क्रि० वि० [सं० अग्रवान्] १. आगे। पहले। प्रथम। उ०—(क) नाम न जानै गाँव का भूला मारग जाय। काल्ह गड़ैगा काँटवा अगमन कस न कराय।—कबीर सा०, पृ० ७३। (ख) तब अगमन ह्वै गोरा मिला। तुइ राजा लै चल बादला।—जायसी (शब्द०)। (ग) पग पग मग अगमन परत चरन अरुनदुति झूलि। ठौर ठौर लखियत उठे दुपहरिया से फूलि।—बिहारी र०, दो० ४१०। २. आगे से। पहले से। उ०—पिय आगम तें अगमनहिं करि बैठी तिय मान।—पद्माकर (शब्द०)।

अगमना(पु)—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'आगमना'।

अगमनीया—वि० स्त्री० [सं०] न गमन करने योग्य (स्त्री)। जिस स्त्री के साथ संभोग करने का निषेध हो। अगम्या।

अगमने(पु)—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'अगमन'। उ०—पौढ़े हुत पर्यंक परम रुचि रुक्मिणि चमर डुलावति तीर। उठि अकुलाइ अगमने लीने मिलत नैन भरि आए नीर।—सूर० (शब्द०)।

अगमनो(पु)—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'अगमन'। उ०—निसिचर सलभ कृसानु राम-सर उड़ि उड़ि परत जरत खल जैहैं। रावन करि परिवार अगमनो जमपुर जात बहुत सकुचैहैं।—तुलसी ग्रं०, पृ० ३६३।

अगमानी¹(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अग्र + मानी] अगुआ। नायक। सरदार। उ०—(क) है यह तेरे पुत्र को रन अगमानी भूप। नाम जासु दुष्यंत है कीरति जासु अनूप।—शकुंतला, पृ० १४८। (ख) जीत्यो गयो न इंद्र पै बल सों जो रिपु बंस। रन अगमानी तुम किए करन ताहि विध्वंस।—शकुंतला, पृ० १२६।

अगमानी²(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अगवानी'। उ०—जबती करने आइया हम भी यह जानी, बीबी साहब संग लै हूवे अगमानी।—सुजान०, पृ० ६६।

अगमासी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अगवाँसी'।

अगमी†—वि० [हिं०] दे० 'आगमी'। उ०—ना मैं पंडित पढ़ि गुणि जानौं ना कुछ ज्ञान विचारा। ना मैं अगमी जोतिग जानौं ना मुझ रूप सिंगारा।—दादू०, पृ० ५६६।

अगमैया(पु)†—वि० [सं० अगम्य] बुद्धि से परे। न जानने योग्य। अज्ञेय। दुर्बोध। उ०—ब्रज में को उपज्यो यह भैया। संग सखा सब कहत परसपर इनके गुन अगमैया।—सूर०, १०।४२८।

अगम्य—वि० [सं०] १. न जाने योग्य। २. जहाँ कोई जा न सके। पहुँच के बाहर। अवघट। गहन। ३. विकट। कठिन। मुशकिल। ४. अपार। बहुत। अत्यंत। ५. जिसमें बुद्धि न पहुँचे। बुद्धि के बाहर। अज्ञेय। दुर्बोध। उ०—गम्य अगम्य अंश दो रहई। तीन देव वहाँ लगि कहई।—कबीर सा०, पृ० ६०६। ६. अथाह। बहुत गहरा। ७. जिससे विषय भोग अनुचित हो [को०]।

अगम्यगा—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जिसने वर्जित या अपात्र पुरुष से संप्रयोग किया हो [को०]।

अगम्यरूप—वि० [सं०] जिसकी स्थिति या रूप बोध से परे हो [को०]।

अगम्या¹—वि० स्त्री० [सं०] न गमन करने योग्य। मैथुन के अयोग्य।

अगम्या²—संज्ञा स्त्री० १. न गमन करने योग्य स्त्री। वह स्त्री जिसके साथ संभोग करना निषिद्ध है; जैसे—गुरुपत्नी, राजपत्नी, सौतेली माँ, माँ, कन्या, पतोहू, सास, गर्भवती स्त्री, बहिन, सत्ती, सगे भाई की स्त्री, भांजी, भतीजी, चेली, शिष्य की स्त्री, भांजे की स्त्री, भतीजे की स्त्री, इत्यादि। २. अंत्यज स्त्री। अंत्यजा (को०)।

अगम्यागमन—संज्ञा पुं० [सं०] अगम्या स्त्री से सहवास। उस स्त्री के साथ मैथुन जिसके साथ संभोग का निषेध है।

अगम्यागमनीय—वि० [सं०] अगम्यागमन से संबंधित [को०]।

अगम्यागामी—वि० अगम्या स्त्री के साथ सहवास करनेवाला [को०]।

अगयार—वि० [अ० गैर का बहु० व०] पराया। गैर। उ०—हो यार वही उसका जो इस जग में सबसे अगयार बने।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ५६५।

अगर¹—संज्ञा पुं० [सं० अगरु] एक पेड़ जिसकी लकड़ी सुगंधित होती है। ऊद। उ०—चंदन अगर सुगंध और घृत विधि करि चिता बनायो।—सूर०, ६।५०।

विशेष—यह पेड़ भूटान, आसाम, पूर्वी बंगाल, खासिया और मर्तबान की पहाड़ियों में होता है। इसकी ऊँचाई ६० से १०० फुट और घेरा ५ से ८ फुट तक होता है। जब यह २० वर्ष का होता है तब इसकी लकड़ी अगर के लिये काटी जाती है। पर कोई कोई कहते हैं कि इसकी लकड़ी ५०-६० वर्ष के पहले नहीं पकती। पहले तो इसकी लकड़ी बहुत साधारण पीले रंग की और गंधरहित होती है, पर कुछ दिनों में धड़ और शाखाओं में जगह जगह एक प्रकार का रस आ जाता है जिसके कारण उन स्थानों की लकड़ियाँ भारी हो जाती हैं। इन स्थानों से लकड़ियाँ काट ली जाती हैं और अगर के नाम

से बिकती हैं। यह रस जितना अधिक होता है उतनी ही लकड़ी उत्तम और भारी होती है। पर ऊपर से देखने से यह नहीं जाना जा सकता कि किस पेड़ में लकड़ी अच्छी निकलेगी। बिना सारा पेड़ काटे इसका पता नहीं लग सकता। एक अच्छे पेड़ में ३००) तक का अगर निकल सकता है। पेड़ का हल्का भाग जिसमें यह रस या गोंद कम होता है, 'दूम' कहलाता है और सस्ता अर्थात् १). २) सेर बिकता है, पर असली काली काली लकड़ी, जो गोंद अधिक होने के कारण भारी होती है, 'गरकी' कहलाती है और १६) या २०) सेर बिकती है। यह पानी में डूब जाता है। लकड़ी का बुरादा धूप, दसांग आदि में पड़ता है। बंबई में जलाने के लिये इसकी अगरबत्ती बहुत बनती है। सिलहट में अगर का इत्र बहुत बनता है। चोवा नाम का सुगंधित लेप इसी से बनता है।

अगर[२]—संज्ञा पुं० [सं० अक्षर] अक्षर। वर्ण। हर्फ (डिं)। उ०—उठारे सहज जोधार असुंसरा लड़े हरि चापड़े मार लीधा उचार दध अगर रो।—रघु० रू०, पृ० १३१।

अगर[३]—संज्ञा पुं० [सं० आगार डिं० अग्गर] आगार। गृह। उ०—जे सँसार अँधियार अगर में भए मगनबर।—का० कौमुदी १;।

अगर[४]—अव्य [फ़ा०] यदि। जो। उ०—उसे हमने बहुत ढूँढ़ा न पाया। अगर पाया तो खोज अपना न पाया।—शेर०, भा० १, पृ० ४१२।

मुहा०—**अगर मगर करना** = (१) हुज्जत करना। तर्क करना। (२) आगा पीछा करना।

अगर[५]Ⓟ—क्रि० वि० [सं० अग्र, प्रा० अग्गर] आगे। जैसे 'अगरज' में 'अगर'।

अगरई—वि० [हिं० अगर + ई (प्रत्य०)] श्यामता लिए हुए सुनहले संदली रंग का। अगर के रंग का।

अगरचे—अव्य० [फा०] गो कि। यद्यपि। हरचंद। बावजूद कि। उ०—काबा अगरचे टूटा क्या जाय गम है शेख।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ६८।

अगरजⓅ—संज्ञा पुं० [सं० अग्रज] दे० 'अग्रज'। उ०—ताही ते अगरज भयउ सब विधि तेहि परचार।—स० सप्तक, पृ० ४३।

अगरजानी‡—वि० [सं० अग्र + ज्ञानी] पहले से ही किसी बात को समझने या जाननेवाला। आगमजानी। उ०—ऐसे अगरजानी आदमी की बात काटने का नतीजा सारा गाँव भोग रहा है।—मैला० पृ० ३७४।

अगरनाⓅ†—क्रि० अ० [सं० अग्र] आगे होना। आगे जाना। अगाड़ी बढ़ना। आगे आगे भागना। उ०—प्यारी अगरि चली हरि धाए। पकरि न पावत पैर थकाए।—गिरधरदास (शब्द०)।

अगरपारⓅ—संज्ञा पुं० [सं० अग्र ?] क्षत्रियों की एक जाति। उ०—क्षत्री औ बचवान बघेली। अगरपार चौहान चँदेली।—जायसी (शब्द०)।

अगर बगरⓅ†—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'अगल बगल'।

अगरबत्ती—संज्ञा स्त्री० [सं० अगरुवर्तिका] सुगंध के निमित्त जलाने को पतली सींक या बत्ती।

विशेष—इसमें अगर तथा कुछ और सुगंधित वस्तु पीसकर लपेटते हैं। इसका व्यापार मद्रास और बंबई में बहुत होता है।

अगरवाला—संज्ञा पुं० [हिं० अगरोहावाला, आगरेवाला] [स्त्री० अगरवालिन] वैश्यों की एक जाति जिसका आदि निवास दिल्ली से पश्चिम अगरोहा नाम का स्थान कहा जाता है। अग्रवाल।

अगरसार—संज्ञा पुं० [सं० अगरु + सार] अगर। ऊद।

अगरा[१]Ⓟ†—वि० [सं० अग्र] [स्त्री० अगरी] १. अगला। प्रथम। अगुआ। उ०—सूर स्याम तेरों अति गुननि माहिं अगरौ।—सूर० १०।३३६। २. बढ़ा चढ़ा। बढ़कर। श्रेष्ठ। उत्तम। उ०—हम तुम सब एक बैस काते कौन अगरौ। लियौ दियौ सोई कछु डारि देहु झगरौ।—सूर०, १० ३३६। ३. अधिक। ज्यादा। बड़ा। भारी। ४. उग्र। ५. अग्रिम। पेशगी। अगाऊ। उ०—बैल लीजे कजरा, दाम दीजे अगरा।—घाघ०, पृ० १०७।

अगरा[२]Ⓟ—संज्ञा पुं० [सं० आकर] खान। आकर। उ०—सूरदास प्रभु सब गुननि अगरौ।—सूर० (राधा०), १।५६।

अगरा[३]—संज्ञा पुं० [हिं० अँगरा] रगरा। अंडबंड बात। अनुचित व्यवहार। उ०—दल्ल कहा अगरा कह कीजै। साहब बचन मानि के लीजे।—संत दरिया, पृ० ५।

अगराई—संज्ञा स्त्री० [हिं० अगरना] आगे होने का भाव। अग्रता। श्रेष्ठत्व। उ०—गोबिंद गुसाईं यौं ही माँगत हौं गोद गेह गिरा अगराई गुन गरिमा गगन कौं।—घनानंद पृ० १६४।

अगरान—संज्ञा पुं० [हिं०] पीला लिए हुए लाल रंग का घोड़ा जिसमें सफेदी विशेष न झलकती हो। उ०—खुरमुज नोकिरा जरदा भले। औ अगरान बोलसिर चले।—पदमावत, पृ० ५१६।

अगराना[१]Ⓟ—क्रि० स० [देशी] १. अधिक स्नेह या दुलार के कारण किसी को धृष्ट बनाना।

अगराना[२]Ⓟ—क्रि० अ० स्नेहाधिक्य से ढिठाई करना।

अगराना[३]‡Ⓟ—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'अँगड़ाना'।

अगरासन†—संज्ञा पुं० [सं० अग्र + अशन] दे० 'अग्राशन'। उ०—'सास को दिखाने के लिये बिल्लेसुर रोज अगरासन निकालते थे।—बिल्ले० पृ० ८४।

अगरी[१]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. एक प्रकार की घास या पौधा जो चूहे आदि के विष को दूर करता है। देवताड़। २. विष हरनेवाला कोई भी द्रव्य [को०]।

अगरी[२]—संज्ञा स्त्री० [सं० अर्गला, अर्गलिका] लकड़ी या लोहे का छोटा डंडा जो किवाड़ के पल्ले में कोढ़ा लगाकर डाला रहता है। इसके इधर उधर खींचने से किवाड़ खुलते और बंद होते हैं। किल्ली। ब्योंड़ा।

अगरी[३]—संज्ञा स्त्री० [सं० अग्र] फूस की छाजन का एक ढंग जिसमें जड़ ढाल या उतार की ओर रखते हैं।

अगरी[४]Ⓟ—संज्ञा स्त्री० [सं० अगीर्य = अवाच्य] १. अंड बंड बात। बुरी बात। अनुचित बात। २. ढिठाई। धृष्टता।

अगरी[५]Ⓟ—संज्ञा स्त्री० [हिं० अगरना] अगराई हुई बात। स्नेह के कारण धृष्टता से की हुई क्रिया उ०—गेंडुरि दइ फटकारि कै हरि करत है लँगरी। नित प्रति ऐसई ढंग करैं हमसों कहै अगरी।—सूर० (शब्द०)।

अगरु—संज्ञा पुं० [सं० अगुरु] अगर लकड़ी। ऊद। उ०—अगरु चंदन की चिता थी सेज।—साकेत, पृ० १९८।

अगरू—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अगर' [को०]।

अगरे†—क्रि० वि० [सं० अग्रे] सामने। आगे। उ०—चेला पूछै गुरु कहँ तेहि कस अगरे होइ।—जायसी (शब्द०)।

अगरेल†—वि० [हिं० अगर + ऐल (प्रत्य०)] अगर संबंधी। अगर की। उ०—रवि भैरव जावग्री, घणे आणंद चहक्की। संग वेल सूरमा, वास अगरेल महक्की।—रा० रू०, पृ० १७३।

अगरोⓅ—वि० [सं० अग्र] १. अगला। प्रथम। २. बढ़कर। श्रेष्ठ। उत्तम। उ०—सूर सनेह ग्वारि मन अटक्यो छाँड़हु दिये परत नहि पगरो। परम मगन ह्वै रही चितै मुख सब तें भाग यही को अगरो।—सूर (शब्द०)। ३. चतुर। दक्ष। निपुण। ४. अधिक। ज्यादा। उ०—योजन बीस एक अरु अगरो डेरा इहि अनुमान। ब्रजबासी नर नारि अंत नहि मानो सिंधु समान। —सूर (शब्द०)

अगर्चे—अव्य० [फा० अगरचे] दे० 'अगरचे'। उ०—अगर्चे उम्र की दस दिन से लब रहे खामोश। सुखन रहेगा सदा मेरी कम जबानी का।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० १७२।

अगर्दभ—संज्ञा पुं० [सं०] खच्चर [को०]।

अगर्व—वि० [सं०] गर्व या अभिमान से रहित। निरभिमान। सीधा सादा।

अगर्हित—वि० [सं०] १. जो गर्हित या निंदित न हो। २. शुद्ध [को०]।

अगल[1]—क्रि० वि० [सं० अग्रतः, प्रा० अग्गल] १. आगे। उ०—यकायक कहे काफिराँ साथ चला अबू जहल आया नबी के अगल।—दक्खिनी०, पृ० ३४८।

अगल[2]Ⓟ—वि० [प्रा० अग्गल] अधिक। ज्यादा। उ०—सब तीन बरष्ष असी अगलं।—पृ० रा०, ५९।५५।

अगल बगल—क्रि० वि० [फा०] १. दोनों पार्श्व में। दोनों ओर। दोनों किनारे। २. इधर उधर। आसपास।

अगलहिया—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक चिड़िया।

अगला[1]—वि० [सं० अग्र, प्रा० अग्गल] [स्त्री० अगली] १. आगे का। सामने का। अगाड़ी का। पिछला का उलटा। जैसे—घोड़े का अगला पैर सफेद है (शब्द०)। उ०—वह अगला समतल जिसपर है देवदारु का कानन।—कामायनी, पृ० २७९। २. पहले का। पूर्ववर्ती। प्रथम। उ०—आवै औरँगसाह नूं अगली मुहराँ याद।—रा० रू०, पृ० ३५०। ३. विगत समय का। प्राचीन। पुराना। उ०—रेखते के तुम्हीं उस्ताद नहीं हो गालिब। कहते हैं अगले जमाने में कोई मीर भी था।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० १२२।

यौ०—अगले समय। अगले लोग।

४. आगामी। आनेवाला। भविष्य। जैसे—मैं अगले साल वहाँ जाऊँगा (शब्द०)। ५. अपर। दूसरा। एक के बाद का। जैसे—'उससे अगला हमारा घर है' (शब्द०)।

अगला[2]—संज्ञा पुं० १. अगुआ। अग्रगण्य। प्रधान। जैसे—'वे सब बातों में अगले बनते हैं'। (शब्द०)। २. चतुर आदमी। चालाक। चुस्त आदमी। जैसे—'अगला अपना काम कर गया, हम लोग देखते ही रह गए (शब्द०)। ३. पूर्वज। पुरखा (बहु० व० में ही प्रयुक्त)। जैसे—जो अगले करते हैं उसे करना चाहिए (शब्द०)।

मुहा०—अगले पिछलों को रोना = पूर्वजों और औलाद के नाम पर रोना या मातम करना। उ०—'खाक अच्छा गाती है। गाती है या रोती है अपने अगले पिछलों को डायन'।—सैर कु०, पृ० २०।

४. अपने पति को सूचित करने के लिये स्त्रियों द्वारा प्रयुक्त शब्द। ५. करनफूल के आगे लगी हुई जंजीर। ६. गाँव और उसकी हद के बीच में पड़नेवाले खेतों का समूह।

अगलूँणीⓅ†—वि० [सं० अग्र, प्रा० अग्ग; (राज० आगलो + ऊणी (प्रत्य०) = वाली)] आगेवाली। पूर्व की। उ०—जिण दिन ढोलउ आवियउ तिण अगलूँणी रात। मारू सुहिणउ लहि कह्यउ, सखियाँ सूँ परभात।—ढोला०, ५०१।

अगवड़†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अगौढ़'।

अगवढ़†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अगौढ़'।

अगवनⓅ—संज्ञा पुं० [सं० आगमन] दे० 'आगमन'।

अगवना†—क्रि० अ० [हिं० आगे + ना] कोई काम करने के लिये उद्यत होना। आगे बढ़ना।

अगवनिहरवा—वि० [हिं० अगवना] किसी को बुलाने के लिये आया हुआ। उ०—सतगुरु पठवा अगवनि हरवा।—कबीर श०, भा० ३, पृ० ४६।

अगवाँई[1]—संज्ञा पुं० [हिं० अगुआ] उ०—इसमाइल राजेंद्र गुसांई। सफदरजंग भये अगवाई।—सुजान०, पृ० १४१।

अगवाँई[2]†—संज्ञा स्त्री० [हिं० अगवानी] दे० 'अगवाई'।

अगवाँसी—संज्ञा स्त्री० [सं० अग्रवासी] १. हल की वह लकड़ी जिसमें फाल लगा रहता है। २. हलवाहे को पैदावार में से अंशरूप में मिलनेवाली मजदूरी।

अगवा—क्रि० वि० [सं० अग्र] आगे। अगाड़ी। उ०—हरि जू की गैल यह मेरी पौर अगवा सौं, ह्याँ ह्वै कढ़ै चाहौं मोहि काम घनो घर को।—ठाकुर०, पृ० २।

अगवाई[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० अग्र = आगे + हिं० अवाई] अगवानी। अभ्यर्थना। आगे से जाकर लेना। उ०—अगवाई के हेतु कुँवर के सब नर नारी।—बुद्ध च०, पृ० १८०।

अगवाई[2]—संज्ञा पुं० [सं० अग्रगामी] आगे चलनेवाला व्यक्ति। अगुवा। अग्रसर।

अगवाड़ा—संज्ञा पुं० [सं० अग्रवाट् अथवा अग्रवर्त्त (प्रत्य०)] घर के आगे का भाग। द्वार के सामने की भूमि। पिछवाड़ा शब्द का उलटा।

अगवान[1]Ⓟ—संज्ञा पुं० [सं० अग्र + हिं० वान (आवना आदि के मूल में स्थित द्विधातु का अंश)] १. अगवानी या अभ्यर्थना करनेवाला व्यक्ति। आगे से जाकर लेनेवाला व्यक्ति। २. विवाह में कन्यापक्ष के वे लोग जो बरात का आगे बढ़कर स्वागत करते हैं। उ०—(क) अगवानन्ह जब दीखि बराता। उर आनंद पुलक भर गाता।—मानस, १।३०५। (ख) सहित बरात राउ सनमाना। आयेसु माँगि फिरे अगवाना।—मानस, १।३०६।

अगवान[2]--संज्ञा स्त्री० [सं० अग्र + हिं० वान] १. आगे से जाकर लेना। अगवानी। अभ्यर्थना। उ०--महाराज जयसिंह जय में सिंह के समान, निरयान समय जासु गंग लीनी अगवान।--रघुराज (शब्द०)। २. विवाह में कन्यापक्ष के लोगों का बरात की अभ्यर्थना के लिये जाना। उ०--लै अगवान बरातहिं आए। दिए सबहिं जनवास सुहाए।--मानस, १।६६।

क्रि० प्र०--करना।--लेना।--होना।

अगवानी[1]--संज्ञा स्त्री० [सं० अग्र + हिं० वान] १. अपने यहाँ आते हुए किसी अतिथि से निकट पहुँचने पर सादर मिलना। आगे बढ़कर लेना। अभ्यर्थना। पेशवाई। २. विवाह में जब बारात लड़कीवाले के घर के पास आती है, तब कन्यापक्ष के लोग सज धजकर बाजे गाजे के साथ आगे जाकर उससे मिलते हैं। इसी को अगवानी कहते हैं। उ०--नियरानि नगर बरात हरषी लेन अगवानी गए।--तुलसी ग्रं०, पृ० १३५।

अगवानी[2]Ⓟ--संज्ञा पुं० [सं० अग्रगामी] आगे पहुँचनेवाला व्यक्ति। दूत। उ०--(क) सखी री पुरनता हम जानी। याही तैं अनुमान करति हैं षट्पद से अगवानी।--सूर०, १०।४०३६। (ख) अगवानी तो आइया ज्ञान विचार विवेक। पीछे हरि भी आयँगे भारी सौंज सभेक।--कबीर (शब्द०)।

अगवानी[3]--संज्ञा पुं० आगे रहनेवाला। अगुवा। पेशवा। उ०--बिरह अथाह होत निसि हम कौं बिनु हरि समुद समानी। क्यों करि पावहि बिरहिनि पारहि बिनु केवट अगवानी।--सूर०, १०।३२७१।

अगवार[1]†--संज्ञा पुं० [सं० अग्र + हिं० वार (प्रत्य०)] १ खलिहान में अन्न का वह भाग जो राशि से निकालकर हलवाहे आदि के लिये अलग कर दिया जाता है। २. वह हल्का अन्न जो ओसाने में भूसे के साथ चला जाता है। ३. गाँव का चमार।

अगवार[2]†--संज्ञा पुं० दे० 'अगवाड़ा'। उ०--वेऊ आये द्वारे हौं हूँ हुती अगवारें और, द्वारें अगवारें कोऊ तौ न तिहि काल मैं।--पद्माकर ग्रं०, पृ० २००।

यौ०--अगवार पछवार।

अगवाह--वि० [सं० अग्र + वाह] आगे पहुँचानेवाला। पहले पहुँचनेवाला। उ०--'कंपित स्वर लहरी आत्मनिवेदन की सहज स्निग्ध कमनीयता के अगवाह रास्ते को अनायास ही पकड़ लेती'।--नई पौध, पृ० १११।

अगवैया†--वि० [सं० अग्र + हिं० वैया (प्रत्य०)] आगे आगे चलनेवाला। किसी के आगमन की पूर्वसूचना देनेवाला। उ०--अभी माघ भी चुका नहीं पर मधु का गरवीला अगवैया कर उन्नत शिर।--इत्यलम्, पृ० २०६।

अगव्यूति--वि० [सं०] जहाँ पशुओं का चरागाह न हो। बंजर [को०]।

अगसतⓅ--संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अगस्त्य'। उ०--आकिल गुरु अगसत है, सिख समुंद मन लीन।--रज्जब०, पृ० ६।

अगसरⓅ--क्रि वि० [सं० अग्रसर] आगे। पहले। उ०--अगसर खेती अगसर मार। कहै घाघ ते कबहुँ न हार।--घाघ०, पृ० ४१।

अगसरनाⓅ--क्रि० अ० [हिं०] दे० 'अगुसरना'।

अगसारⓅ--क्रि० वि० [हिं०] दे० 'अगसारी'।

अगसारीⓅ--क्रि० वि० [सं० अग्रसर] आगे। सामने। उ०--हस्ति क जूह आय अगसारी। हनुवँत तबै लँगूर पसारी।--जायसी ग्रं०, पृ० ११६।

अगस्त[1]--संज्ञा पुं० [अं० औगुस्ट,] रोम के सम्राट् औगुस्टस् के नाम पर चलाया गया अंग्रेजी का आठवाँ महीना जो भादों में पड़ता है।

अगस्त[2]--संज्ञा पुं० [सं० अगस्त्य] १. अगस्त्य ऋषि। उ०--मधवानल वहि अगिन समानी। अगिन अगस्त सोखावत पानी।--हिंदी प्रेमा०, पृ० २७५। २. अगस्त्य तारा। उ०--उदित अगस्त पंथ जल सोषा। जिमि लोभहिं सोखै संतोषा।--तुलसी (शब्द०)। ३. अगस्त्य वृक्ष। उ०--फूल करील कली पाकर नम। फरी अगस्त करी अमृत सम।--सूर०, १०।१२१३।

अगस्तिⓅ--संज्ञा पुं० [सं०] १. अगस्त्य तारा। उ०--उए अगस्ति हस्ति घन गाजा। तुरै पलानि चढ़े रन राजा।--जायसी ग्रं०, पृ० ३५६। २. अगस्त्य ऋषि। उ०--हुत जो अपार बिरह दुख दोखा। जनहुँ अगस्ति उदधि जल सोखा।--जायसी ग्रं०, पृ० ३४०। ३. अगस्त्य या बक वृक्ष [को०]।

अगस्तिद्रु--संज्ञा पुं० [सं०] अगस्ति या बक वृक्ष [को०]।

अगस्तिया†--संज्ञा पुं० [सं० अगस्ति] दे० 'अगस्त्य ३'। उ०--द्वैज सुधा दीधिति कला वह लखि दीठि लखाई। मनौ अकास अगस्तिया एकै कली लखाइ।--बिहारी र०, दो० ६२।

अगस्त्य--संज्ञा पुं० [सं०] १. एक ऋषि का नाम जिनके पिता मित्रावरुण थे।

विशेष--ऋग्वेद में लिखा है कि मित्रावरुण ने उर्वशी को देखकर कामपीड़ित हो वीर्यपात किया जिससे अगस्त्य उत्पन्न हुए। सायणाचार्य ने अपने भाष्य में लिखा है कि इनकी उत्पत्ति एक घड़े में हुई। इसी से इन्हें मैत्रावरुणि, और्वशेय, कुंभज घटोद्भव और कुंभसंभव कहते हैं। पुराणों में इनके अगस्त्य नाम पड़ने की कथा यह लिखी है कि इन्होंने बढ़ते हुए विंध्य पर्वत को लिटा दिया। अतः इनका एक नाम विंध्यकूट भी है। पुराणों के अनुसार इन्होंने समुद्र को चुल्लू में भरकर पी लिया था जिससे ये समुद्रचुलुक और पीताब्धि भी कहलाते हैं। कहीं कहीं पुराणों में इन्हें पुलस्त्य का पुत्र भी लिखा है। ऋग्वेद में इनकी अनेक ऋचाएँ हैं।

२. एक तारे या नक्षत्र का नाम।

विशेष--यह भादों में सिंह के सूर्य के १७ अंश पर उदय होता है। इसका रंग कुछ पीलापन लिए हुए सफेद होता है। इसका उदय दक्षिण की ओर होता है इससे बहुत उत्तर के निवासियों को यह नहीं दिखाई देता। आकाश के स्थिर तारों में लुब्धक को छोड़कर दूसरा कोई तारा इसकी तरह नहीं चमचमाता। यह लुब्धक से ३५° दक्षिण है।

३. एक प्रसिद्ध पेड़।

विशेष--यह पेड़ ऊँचा और घेरेदार होता है। इसकी पत्तियाँ सिरिस के समान होती हैं। इसके टेढ़े मेढ़े फूल अर्धचंद्राकार, लाल और सफेद होते हैं। इसके छिलके का काढ़ा शीतला और

ज्वर में दिया जाता है। पत्तियाँ इसकी रेचक हैं। पत्ती और फूल के रस की नास लेने से बिनास फूटना, सिर दर्द और ज्वर अच्छा होता है। आँखों में फूल का रस डालने से ज्योति बढ़ती है। इसके फूलों की तरकारी और अचार भी बनता है।

४. शिव का एक नाम [को०]।

अगस्त्यकूट—संज्ञा पुं० [सं०] दक्षिण मद्रास प्रांत में एक पर्वत जिससे ताम्रपर्णी नदी निकली है।

अगस्त्यगीता—संज्ञा स्त्री० [सं०] महाभारत के शांति पर्व में अगस्त्य ऋषि द्वारा कथित विद्या [को०]।

अगस्त्यचार—संज्ञा पुं० [सं०] अगस्त्य तारे का मार्ग [को०]।

अगस्त्यतीर्थ—संज्ञा पुं० [सं०] दक्षिण भारत का एक प्रसिद्ध तीर्थ-स्थान [को०]।

अगस्त्यमार्ग—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अगस्त्यचार' [को०]।

अगस्त्यवट—संज्ञा पुं० [सं०] हिमालय पर स्थित एक पवित्र स्थान का नाम [को०]।

अगस्त्यसंहिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] अगस्त्य द्वारा प्रणीत धर्म विषयक एक ग्रंथ [को०]।

अगस्त्यहर्र—संज्ञा पुं० [सं० **अगस्त्य हरीतकी**] कई द्रव्यों के संयोग से जिनमें हर्र मुख्य है, बनी हुई एक आयुर्वेदिक औषधि जो खाँसी, हिचकी, संग्रहणी आदि रोगों में दी जाती है।

अगस्त्योदय—संज्ञा पुं० [सं०] १. भाद्रपद के शुक्ल पक्ष में अगस्त्य नामक तारे का उदय। २. भाद्रपद मास के कृष्ण पक्ष की सप्तमी [को०]।

अगस्थⓅ†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अगस्त्य' १.। उ०—मुगता तठै कर सनमान, आया अगस्थ रे असथांन।—रघु० रू०, पृ० १२४।

अगहⓅ—वि० [सं० **अग्राह्य**] १. न पकड़ने योग्य। हाथ में न आने लायक। उ०—अलह को लहना, अगह को गहना।—दरिया० बानी, पृ० ६७। २. चंचल। उ०—माधव जू नेकु हटको गाय। निसि वासर यह भरमति इत उत अगह गही नहिं जाय।—सूर (शब्द०)। ३. जो वर्णन और चिंतन के बाहर हो। उ०—कहैं गाधिनंदन मुदित रघुनंदन सों नृपगति अगह गिरा न जाति गही है।—तुलसी (शब्द०)। ४. न धारण करने योग्य। कठिन। मुश्किल। उ०—ऊधो जो तुम हमहिं बतायो। सो हम निपट कठिनई करि करि या मन को समुझायो। योग याचना जबहिं अगह गहि तबहीं सो है ल्यायो। सूर (शब्द०)।

अगहन—संज्ञा पुं० [सं० **अग्रहायण**] प्राचीन वैदिक क्रम के अनुसार वर्ष का अगला वा पहला महीना। मार्गशीर्ष। मगसिर। उ०—अगहन अम्मर देखेउ जुग जुग जीवै सोइ।—जग० श०, भा० २, पृ० ६५।

विशेष—गुजरात आदि में यह क्रम अभी तक है, पर उत्तरी भारत में गणना चैत्र मास से आरंभ होती है। इस कारण यहाँ नवाँ मास पड़ता है।

अगहनिया—वि० [सं० **आग्रहायणीक**] अगहन में होनेवाला।

अगहनी[1]—वि० [सं० **अग्रहायणीय**] अगहन में तैयार होनेवाला।

अगहनी[2]—संज्ञा स्त्री० वह फसल जो अगहन में काटी जाती है। जैसे जड़हन धान, उरद इत्यादि। उ०—जब लों पृथिवी है तब लों बोना और लोना, शादी और गमी, अगहनी और वैशाखी, दिन और रात बंद न होंगे।—कबीर मं०, पृ० १९५।

अगहरⓅ†—क्रि० वि० [सं० **अग्र**; प्रा० **अग्ग**+हिं० **हर** (प्रत्य०)] १. आगे। २. पहले। प्रथम। उ०—राजत दौवा रायमनि, बाईं तरफ़ अडोल। उमगत अगहर जूझ को, ताकत प्रति भट गोल।—लाल (शब्द०)।

अगहाट—संज्ञा पुं० [सं० **अग्राह्य** अथवा सं० **अग्रहार**] वह भूमि जो किसी के अधिकार में चिरकाल के लिये हो और जिसे वह अलग न कर सके।

अगहार†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अग्रहार'।

अगहुँड़[1]—वि० [सं० **अग्र** प्रा० **अग्ग**+हिं० **हुँड़** (प्रत्य०)] अगुआ। आगे चलनेवाला। उ०—बिलोके दूरि तें दोउ बीर।......मन अगहुँड़ तन पुलकि सिथिल भयो नलिन नयन भरे नीर।—तुलसी ग्रं०, पृ० ३४६।

अगहुँड़[2]—क्रि० वि० आगे। आगे की ओर। 'पिछहुँड़' का उलटा। उ०—कोप भवन सुनि सकुचेउ राऊ। भय बस अगहुँड़ परै न पाऊ।—तुलसी (शब्द०)।

अगा[1]—वि० [सं०] न चलनेवाला [को०]।

अगा[2]—क्रि० वि० [सं० **अग्र**] आगे। पहले। उ०—सोवत कहा चेत रे रावन अब क्यों खात दगा। कहत मँदोदरि सुनु पिय रावन मेरी बात अगा।—सूर०, ९।१४४।

अगाई†—वि० [सं० **अग्र**, हिं० **आई** (प्रत्य०)] आगे। पहले। उ०—अगाई सो सवाई।—घाघ० पृ० ७४।

अगाउनी[1]Ⓟ—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'अगौनी-१'। उ०—मुरली मृदंगन अगाउनी भरत स्वर भावती सुजागरे भरी है गुन आगरे।—देव (शब्द०)।

अगाउनी[2]—संज्ञा स्त्री० दे० 'अगौनी-२'।

अगाऊँ—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'अगाऊ'। उ०—न्हान समै जब मेरो लखै तब साज लै बैठत आनि अगाऊँ।—भिखारी० ग्रं०, भा० १, पृ० १२३।

अगाऊ[1]—वि० [सं० **अग्र**; प्रा० **अग्ग**+हिं० **आऊ** (प्रत्य०)] †१. अग्रिम। पेशगी। जैसे; 'उसे कुछ अगाऊ दाम दे दो' (शब्द०)। २ Ⓟअगला। आगे का। उ०—धरि वाराह रूप रिपु मार्‌यो लै छिति दंत अगाउ।—सूर० (शब्द०)।

अगाऊ[2]Ⓟ—क्रि० वि० १. आगे। पहले। प्रथम। उ०—(क) कबिरा करनी आपनी, कबहुँ न निष्फल जाय। सात समुद्र आड़ा परै मिलै अगाऊ आय।—कबीर (शब्द०)। (ख) 'उग्रसेन भी सब यदुवंशियों समेत गाजे बाजे से अगाऊ जाय मिले'।—लल्लू० (शब्द०)। २. अगाड़ी से। आगे से। उ०—(क) साखि सखा सब सुबल सुदामा देखि धौं बूझि बोलि बलदाऊ। यह तो मोहिं खिझाइ कोटि बिधि उलटि बिबादन आइ अगाऊ।—तुलसी ग्रं०, पृ० ४३४। (ख) कौन कौन को उत्तर दीजै तातें भग्यो अगाऊ।—सूर० (शब्द०)।

अगाड़—संज्ञा पुं० [सं० **अग्र**, प्रा० **अग्ग**+हिं० **आड़** (प्रत्य०)] १. हुक्के की टोंटी या कुहनी में लगाने की सीधी नली जिसे मुँह में

रखकर धुआँ खींचते हैं। निगाली। २. खेत सींचने की ढेंकली की छोर पर लगी हुई पतली लकड़ी। ३ किसी वस्तु के आगे का भाग। अगाडी।

अगाड़ा¹--संज्ञा पुं० [हिं० अगाड़; तुल० कुमा० गाड़ा = खेत] कछार। तरी।

अगाड़ा²--संज्ञा पुं० [अग्र + हिं० आड़ा (प्रत्य०)] १ यात्री का वह सामान जो पहले से आगे के पड़ाव पर भेज दिया जाता है। पेशखेमा। २. आगे का भाग या हिस्सा।

अगाड़ा³†--वि० आगे का। आगेवाला।

अगाड़ी¹--क्रि० वि० [सं० अग्र प्रा० अग्ग + हिं० आड़ी (प्रत्य०)] १. आगे; जैसे-इस घर के अगाड़ी एक चौराहा मिलेगा (शब्द०)। २. भविष्य में; जैसे--अभी से इसका ध्यान रखो नहीं तो अगाड़ी मुश्किल पड़ेगी (शब्द०)। ३ पूर्व। पहले; जैसे-अगाडी के लोग बड़े सीधे सादे होते थे (शब्द०)। ४. सामने। समक्ष; जैसे--उनके अगाड़ी यह बात न कहना (शब्द०)।

अगाड़ी²--संज्ञा पुं० १. किसी वस्तु के आगे का भाग। २. अँगरखे या कुरते के सामने का भाग। ३. घोड़े के गँराव में बंधी हुई दो रस्सियाँ जो इधर उधर दो खूँटों से बंधी रहती हैं। ४. सेना का पहला धावा। हल्ला; जैसे--फौज की अगाड़ी आँधी की पिछाड़ी (शब्द०)।

यौ०--अगाडी पिछाड़ी = आगे और पीछे का भाग।

अगाड़ू--क्रि० वि० [सं० अग्र, प्रा० अग्ग, अग + हिं० आड़ू (प्रत्य०)] दे० 'अगाड़ी'।

अगाता--वि० [सं०] अच्छा न गानेवाला [को०]।

अगात्मजा--संज्ञा स्त्री० [सं०] शैलपुत्री। पार्वती [को०]।

अगाद⑤--वि० दे० 'अगाध'। उ०--आवसनि बत अगाद भय तं निबलह द्रिग छिनक कर।--पृ० रा० ६१।१२६५।

अगाध¹--वि० [सं०] १. अथाह। बहुत गहरा। अतल स्पर्श। उ०--जलधि अगाध मौलि बह फेनू। संतत धरनि धरत सिर रेनू।--मानस, १।१६७। २. अपार। असीम। अत्यंत। बहुत। अधिक उ०--देखि मिटै अपराध अगाध निमज्जत साधु समाज भलो रे।--तुलसी (शब्द०)। ३. जिसका कोई पार न पा सके। समझ में न आने योग्य। दुर्बोध। उ०--अगुन सगुन दुई ब्रह्म सरूपा। अकथ अगाध अनादि अरूपा।--मानस, १।२३।

अगाध²--संज्ञा पुं० १. छेद। २. गड्ढा। ३. स्वाहाकार की पाँच अग्नियों में से एक का नाम [को०]।

अगाधजल--संज्ञा पुं० [सं०] गहरा तालाब या झील। ह्रद [को०]।

अगाधरुधिर--संज्ञा पुं० [सं०] रुधिर का आधिक्य। अत्यधिक रक्त [को०]।

अगाधसत्व--वि० [सं०] अत्यधिक शक्तिसंपन्न [को०]।

अगाधा--वि० स्त्री० [सं०] अत्यंत। बहुत। अधिक। उ०--लाल गुलाल घलाघल मैं दृग ठोकर दै गई रूप अगाधा।--पद्माकर (शब्द०)

अगाधित्व--संज्ञा पुं० [पुं०] गांभीर्य। गहराई [को०]

अगान¹⑤†--वि० [सं० अज्ञान] अनजान। अज्ञान। नासमझ। उ०--बालक अगाने हठी और की न माने बात, बिना दिए मातु हाथ भोजन न पाइए।--हनुमन्नाटक (शब्द०)।

अगान²⑤--संज्ञा पुं० ज्ञान का अभाव। अज्ञान।

अगामें⑤--क्रि० वि० [सं० अग्रिम, प्रा० अग्गम्मि] आगे।

अगार¹--संज्ञा पुं० [सं० आगार] १. निवासस्थान। धाम। गृह। उ०--दुख आवत कछु अटक न मानत, सूनो देखि अगार।--सूर०, १०।३३८६। २. ढेर। राशि। समूह। अटाला। उ०--मींजि मींजि हाथ धुनै माथ दसमाथ तिय, तुलसी तिलौ न भयो बाहिर अगार को।--तुलसी ग्रं०, पृ० १७३।

अगार²--संज्ञा पुं० [सं० अग्र] आगे का स्थान। अगला हिस्सा। अग्रभाग। उ०--अरु जो तुमरे मन में यह बात तो काहे को मोहि अगार दयो।--सुजान०, पृ० ७१।

अगार³--क्रि० वि० आगे। अगाड़ी। पहले। प्रथम। उ०--प्रीतम को अरु प्रानन को हठ देखनो है अब होत सकारो। कैधौं चलैंगे अगार सखी यहि देह ते प्रान कि गेह ते प्यारो।--कोई कवि (शब्द०)।

अगार⁴--वि० [सं० अग्रच ?] अगुआ। नेता। मुखिया। उ०--तब सिरसिनवार देअवारिया अगार और खुंटैला जुझार बीर चाहर अपार।--सुजान०, पृ० ६७।

अगारदाही--संज्ञा पुं० [सं० अगारदाहिन्] मकान को जालानेवाला व्यक्ति [को०]।

अगारि--वि० [सं० अ = नहीं + अ० गार = गड्ढा] अगंभीर। कम गहरा। उ०--दिन दिन सरोवर होइ अगारि, अबहु नई वरिषइ मही भरि बारि।--विद्यापति, पृ० ५२६।

अगारी¹--क्रि० वि० [हिं०] दे० 'अगाड़ी¹'। उ०--देखी दीठि, उठाय कुँवर पुनि भार अगारी। रावति पीटति जाति नदी की ओर सिधारी।--बुद्ध च०, पृ० ७०।

अगारी²--वि० [सं० अगारिन्] मकान मालिक। मकानवाला [को०]।

अगारू--क्रि० वि० [हिं० अगार] आगे। पहले प्रथम। उ०--जौ लौं चक्रधारी चक्र चाहत चलाइबो को, तौ, लौं ग्राह ग्रीवा पै अगारू चक्र चलि गो।--गंग ग्रं०, पृ० १।

अगाव†--संज्ञा पुं० [सं० अग्र] ऊख के उपर का पतला और नीरस भाग जिसमें गाँठे बहुत पास पास होती हैं। अगौरा। अघोरी। अँगोरी।

अगास¹⑤--संज्ञा पुं० [सं० अग्र; प्रा० अग्ग + आस (प्रत्य०)] द्वार के आगे का चबूतरा।

अगास²⑤--संज्ञा पुं० [सं० आकाश] आकाश। उ०--हौं सँग साँवरे के जैहौं। का यह सूर अजिर अवनी तनु तजि अगास पिय भवन समैहौं। का यह व्रज वापी क्रीड़ा जल भजि नँदनंद सबै सुख लैहौं।--सूर० (शब्द०)।

अगासी†--संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अकासी'। उ०--दौड़े बंदर बने मुछंदर कूदे चढ़े अगासी।--भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ३३३।

अगाह¹⑤--वि० [सं० अगाध, प्रा० अगाह] १. अथाह। बहुत गहरा। उ०--अब लेइ गए देइ ओहि सूरी। तेहि सौं अगाह बिथा तुम्ह पूरी।--पद्मावत, पृ० २९२। २. अत्यंत। बहुत। उ०--जो जो सुनै धुनै सिर राजहिं प्रीति अगाह।--जायसी (शब्द०)। ३. गंभीर। चिंतित। उदास। उ०--जबहि सुरुज कहूँ लागा राहू। तबहि कमल मन भयो अगाहू।--जायसी (शब्द०)।

अगाह[2]ⓟ—क्रि० वि० [हिं० आगे] आगे से। पहले से। उ०—चाँद क गहन अगाह जनावा।—जायसी (शब्द०)।

अगाह[3]ⓟ—वि० [फा० आगाह] विदित। प्रकट। ज्ञात। मालूम। उ०—जस तुम काया कीन्हेंउ दाहू। सो सब गुरु कहँ भयउ अगाहू।—जायसी (शब्द०)।

अगाही†—संज्ञा स्त्री० [फा० आगाह] किसी बात की पहले से सूचना या संकेत।

अगिⓟ—संज्ञा स्त्री० [सं० अग्नि, प्रा० अग्गि] अग्नि। उ०—चहुआना रे सेन समुद बिच बड़वागोरं। अगि सुखग्ग खग्गयौ सुत मरन धन धन कोरं।—पृ०, १२।५१६।

विशेष—पुरानी हिंदी तथा बोलचाल में यह समस्त रूप में मिलता है। जैसे अगिदधा, अगिदाह आदि।

अगिआँ†—संज्ञा स्त्री० [सं० आज्ञा] आदेश। हुक्म।

अगिआनाⓟ—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'अगियाना'। उ०—और कवन अबलन ब्रत धारयौ जोग समाधि लगाई। इहि उर आनि रूप देखे की आगि उठै अगिआई।—सूर (शब्द०)।

अगिदधा†—वि० [सं० अग्नि + दग्ध] आग से जला हुआ। दग्ध। उ०—तेहिं सौंपा राजा अगिदधा।—जायसी (शब्द०)।

अगिदाहⓟ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अग्निदाह'। उ०—तन मन सेज करे अगिदाहू। सब कहँ चंद, खएउ मोहिं राहू।—जायसी ग्रं०, पृ० १५३।

अगिनंतⓟ—वि० [सं० अगणित] अनगिनत। बेशुमार। उ०—जलचरा थलचरा नभचरा जंत जो। च्यारि हू षानि के जीव अगिनंत जी।—सुंदर० ग्रं०, भा० १, पृ० २६०।

अगिन[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० अग्नि] [क्रि० अगियाना] ⓟ १ आग। उ०—तुरी बीस ऐराक तेज जस अगिन पवन मन।—पृ० रा०, १४।२४। २. गौरैया या बया के आकार की छोटी चिड़िया।

विशेष—इसका रंग मटमैला होता है। इसकी बोली बहुत प्यारी होती है। लोग इसे कपड़े से ढँके हुए पिंजरे में रखते हैं।

३. एक प्रकार की घास जिसमें नीबू की सी मीठी महँक रहती है। अगिया घास।

अगिन[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० अंगारिका] ईख के ऊपर का पतला नीरस भाग। अगौरी।

अगिन[3]—वि० [सं० अ = नहीं + हिं० गिनना] अगणित। बेशुमार। उ०—साँब को लक्ष्मणा सहित लाए बहुरि, दियो दायज अगिन गिनी न जाई।—सूर (शब्द०)।

अगिनगोला—संज्ञा पुं० [हिं० अगिन + गोला] वह बम जो फटने पर आग लगा दे।

अगिनझाल†—संज्ञा स्त्री० [हिं० अगिन + झाल] दे० 'अग्निज्वाल'।

अगिनबाव—संज्ञा पुं० [हिं० अगिन + बाव = वायु] एक रोग का नाम जो चौपायों में, विशेषत: घोड़ों को, होता है।

अगिनबोट—संज्ञा स्त्री० [हिं० अगिन + अं० बोट] एक प्रकार की बड़ी नाव या जहाज जो भाप के इंजिन के जोर से चलती है। स्टीमर। धुआँकश।

अगिनहोतⓟ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अग्निहोत्र'। उ०—गरगहिं अरग गए लै नंद। अगिनहोत करि मंदहि मंद।—नंद० ग्रं०, पृ० २४४।

अगिनिⓟ—संज्ञा स्त्री० [सं० अग्नि; प्रा० अग्गिणि] आग। उ०—जल नहिं बूड़त अगिनि न दाहत है ऐसो हरिनाम।—सूर०, १।६२।

अगिनिकोनⓟ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अग्निकोण'। उ०—पूस दिनन में ह्वै रहै अगिनिकोन में भानु।—भिखारी० ग्रं०, भा० १, पृ० ८८।

अगिनितⓟ—वि० [हिं०] दे० 'अगणित'। उ०—कटक अगिनित जुरयौ, लंक खरभर परयौ, सूर कौ तेज धर धूरि ढाँप्यौ।—सूर०, ९।१०६।

अगिनिबानⓟ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अग्निबाण'। उ०—अगिनिबाण दुइ जानौ साधे। जग बेधहिं जौ होहि न बांधे।—जायसी ग्रं०, पृ० ४६।

अगिनिबासⓟ—संज्ञा पुं० [सं० अग्नि + हिं० बास] १. बाज की जाति का एक पक्षी। उ०—इनको तौ हाँसो वाके अंग में अगिनिबासो। लोलहीं जु सारो सुख सिंधु बिसरायेरी।—भिखारी० ग्रं०, भा० २, पृ० १६०। २. अग्नि का निवास।

अगिनीⓟ—संज्ञा स्त्री० [सं० अग्नि, प्रा० अग्गिणि] दे० 'अगिनि'। उ०—लगन बुझाऊँ मैं मन की कैसे, लगी ये अगिनी इकंत की है।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ८८८।

अगिनेवⓟ—संज्ञा पुं० [सं० आग्नेय] पूर्व दक्षिण का कोण। अग्निकोण। उ०— अगिनेव दिशा बर्नसिंह अचाइ। जिनके मुख मंडिय निड्डुर राइ।—पृ० रा० २५।५०८।

अगिया[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० अग्नि, प्रा० अग्गि, अगि + या] १. एक प्रकार का घास या खर।

विशेष—इसमें पीले रंग के फूल लगते हैं और यह घास खेतों में उत्पन्न होकर कोदो और ज्वार के पौधों को जला देती है।

२. अगिन नामक घास। यज्ञकुश। नीली चाय।

विशेष—इसमें से नीबू की सी मीठी सुगंधि निकलती है। इससे तेल बनता है और यह दवाओं में भी प्रयुक्त होती है।

३. †अग्नि। आग।

अगिया[2]—संज्ञा पुं० १. एक ६ से १० फुट लंबा दृढ़ पौधा।

विशेष—यह हिमालय आसाम और ब्रह्मा (बर्मा) से मिलता है। इसके पत्ते और डंठलों में जहरीले रोएँ होते हैं जिनके शरीर में धँसने से पीड़ा होती है। इसीसे चौपाए इसे नहीं छूते। नैपाल आदि देशों में पहाड़ी लोग इसकी छाल से रेशे निकालकर भँगरा नामक मोटा कपड़ा बनाते हैं।

२. एक प्रकार का छोटा रोएँदार कीड़ा जिसके शरीर में लगने से पीले पीले छाले पड़ जाते हैं। ३. एक रोग जिसमें पैर में पीले पीले छाले पड़ जाते हैं। ४ घोड़ों और बैलों का एक रोग। ५. विक्रमादित्य के दो बैतालों में से एक का नाम।

अगिया कोइलिया—संज्ञा पुं० [हिं० अगिया + कोयला] दो बैताल जिन्हें विक्रमादित्य ने सिद्ध किया था और जो स्मरण करते ही उनकी सेवा में उपस्थित हो जाते थे। कथासरित्सागर और बैतालपचीसी में इनकी कहानी है।

अगियाना—क्रि० अ० [हिं० अगिया से नाम०] जल उठना। गरमाना। जलन या दाह से युक्त होना; जैसे—चलते चलते उसका पैर अगिया गया (शब्द०)।

अगिया बैताल—संज्ञा पुं० [सं० अग्नि हिं० अगिया + सं० बैताल] १. विक्रमादित्य के दो बैतालों में से एक। २. एक कल्पित बैताल जिसके संबंध में अनेक प्रकार की कथाएँ प्रचलित हैं। कहते हैं यह बड़ा दुष्ट था और बड़े आश्चर्यजनक कृत्य करता था। ३ मुहँ से लुक या लपट निकालनेवाला भूत। उल्कामुख प्रेत। ४. दलदल या तराई में इधर उधर घूमते हुए फासफरस के अंश जो दूर से जलते हुए लूक के समान जान पड़ते हैं। ये कभी कभी कबरिस्तानों में भी अँधेरी रात में दिखाई देते हैं। ५. वह जिसका स्वभाव बहुत क्रोधी और चिड़चिड़ा हो। क्रोधी व्यक्ति।

अगियार[1]†—वि० [हिं० आग + इयार (प्रत्य०)] (लकड़ी, कोयला, कंडा आदि) जिसकी आग बहुत देर तक ठहरे या तेज हो।

अगियार[2]—संज्ञा पुं० दे० 'अगियारी'।

अगियारी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० आग + इयारी (प्रत्य०)] वह पदार्थ या वस्तु जो अग्नि में वायु को सुगंधित करने के लिये डाली जाय। धूप देने की वस्तु।

अगियासन—संज्ञा पुं० [हिं० अगिया + सन] १. एक प्रकार का सन की जाति का पौधा। २. एक कीड़ा जिसके छू जाने से शरीर में जलन होती है। ३. एक चर्म रोग जिसमें झलकते हुए फफोले निकलते हैं।

अगिर—संज्ञा पुं० [सं०] १. सूर्य। २. अग्नि। ३. स्वर्ग। ४. एक राक्षस [को०]।

अगिरीं—संज्ञा स्त्री० [सं० अग्र = आगे] मकान के आगे का भाग। द्वार। उ०—तुलसी सेव जाति चबि छाए। बरसाने मनमोहन आए। चारि दुआरे उन्नत भारे। करिवर बहु झूमत मतवारे। इमि देखत अगिरी छबि छाए। अंतःपुर महँ माधव आए।—गोपाल० (शब्द०)।

अगिरौकस्—वि० [सं०] १. स्वर्ग में निवास करनेवाला (देवादि)। २. शोरगुल करने पर भी न रुकनेवाला [को०]।

अगिला†—वि० [हिं०] दे० 'अगला'।

अगिलाई(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० अग्नि + हिं० लाय = लपट] अग्नि की ज्वाला। आग की लपट। उ०—जारति अंग अनंग की आँचनि जोन्ह नहीं सु नई अगिलाई।—घनानंद, पृ० ६४।

अगिवाँण(पु)†—वि० [सं० अग्र + वान्] प्रधान। मुख्य। अगुआ उ०—तोहि लंबोदर वीनमूँ। चउसठि जोगिनि का अनिवाँण।—बी० रासो, पृ० ३।

अगिवान(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अगवान'-२। उ०—आदर संयुत बोल मुक्कि मंत्री अगिवानं।—पृ० रा०, १२।६७।

अगिहर†—संज्ञा स्त्री० [सं० अग्नि + गृह; प्रा० अग्नि + हर] अग्नि का निवास। चिता। उ०—विनति करओं सहिलोलिनिरे मोहि देहे अगिहर साजि।—विद्यापति, पृ० १५८।

अगिहाना†—संज्ञा पुं० [सं० अग्निधान, अग्न्याधान] वह स्थान जहाँ आग जलाई जाती हो। आग रखने का स्थान।

अगीठा[1]—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पौधा।

विशेष—इसके पत्ते पान के आकार के पर उससे कुछ बड़े होते है। इसमें कैथ की तरह का एक प्रकार का कुछ चिपटा फल लगता है जिसकी सतह पर छोटे छोटे दाने रहते हैं।

अगीठा[2](पु)—संज्ञा पुं० [सं० अग्र + इष्ट] आगे का भाग।

अगिठि—संज्ञा पुं० [हिं० अगीत = आगे अथवा सं० अग्र, प्रा० अग्ग + हिं० इट्ठ] आगे का भाग। अगवाड़ा। आगे। उ०—मंगल मूरति कंचन पत्र कै मैन रच्यो मन आवत नीठि है। काटि किधौं कदली दल गोंफ कौ दीन्हों जमाय निहारि अगीठि है।—भिखारी० ग्रं० भा० १ पृ० ९८।

अगीठी(पु)—संज्ञा स्त्री० दे० 'अँगीठी'। उ०—कामिनि जलै, अगीठी तापै बिचि बैसंदर थरहर काँपै।—गोरख०, पृ० १४२।

अगीत[1]—वि० [सं० अग्रतः?] आगे का आगामी। उ०—आइ अगीत पछीत गई, नित रेटत मोहिं सनेह के कूकन।—ठाकुर०, पृ० १।

अगीत[2]—वि० [सं० अ० + गीत] गीतरहित। न गाया हुआ। उ०—एक अस्फुट अस्पष्ट अगीत सुप्ति की ये स्वप्निल मुसुकान।—पल्लव पृ० २।

अगीतपछीत[1]—क्रि० वि० [सं० अग्रतः पश्चात्] आगे और पीछे की ओर। आगे पीछे। उ०—चौहट कौ मिलिबौ तो रह्यो, मिलिबी रह्यो औचक साँझ सवेरो। और इतो बिनती तुम सौं हरि आइ अगीत पछीत न घेरो।—ठाकुर०, पृ० ७।

अगीतपछीत[2]—संज्ञा पुं० आगे का भाग और पीछे का भाग। अगवाड़ा पिछवाड़ा।

अगीह(पु)—वि० [सं० अगृह] गृहहीन। अगेह। उ०—जल प्रलय लोयत लीह। धर बिथरि होत अगीह।—पृ० रा०, ६१।१०७१।

अगुंठित—वि०—[सं० अ + गुंठित = आवृत्त] अनावृत्त। खुला हुआ। उ०—भारत की नारी उषा सी आज अगुंठित, भारत की मानवता नव आभा से मंडित।—युगपथ, पृ० ७६।

अगु—[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. राहु ग्रह। २. प्रकाश का अभाव। अंधकार (को०)।

अगु[2]—वि० १. जिसके पास गाय न हो। गोहीन। २. गरीब। ३. दुष्ट। बदमाश [को०]।

अगुआ—संज्ञा पुं० [सं० अग्र + हिं० उआ (प्रत्य०)] [क्रि० अगुआना। संज्ञा अगुआई, अगुआनी] १. अग्रसर। आगे चलनेवाला व्यक्ति। अग्रणी। २. मुखिया। प्रधान। नायक। सरदार। नेता। ३. पथप्रदर्शक। मार्ग बतानेवाला। रहनुमा। उ०—ततखन बोला सुआ सरेखा। अगुआ सोइ पंथ जेइ देखा।—जायसी ग्रं०, पृ० ५७। ४. विवाह की बातचीत चलानेवाला। विवाह ठीक करनेवाला। घटक। कौतुकी। ५. आगा। आगे का भाग।

अगुआई—संज्ञा स्त्री० [सं० अग्र, प्रा० अग्ग + आई (प्रत्य०)] १. अग्रणी होने की क्रिया। अग्रसरता। २. प्रधानता। सरदारी। ३. मार्ग प्रदर्शन। रहनुमाई। उ०—कियेउ निषादनाथु अगुआई। मातु पालकी सकल चलाई।—मानस, २।२१२।

अगुआना[1]—क्रि० स० [हिं० 'अगुआ' से नाम०] [संज्ञा अगुआनी] आगे करना। अगुआ बनाना। सरदार नियत करना।

अगुआना²†--क्रि० अ० आगे होना या बढ़ना ।

अगुआनी(पु)--संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अगवानी'। उ०--यह महीप मेरी अगुआनी के लिये महासागर तक आया ।--श्यामा०, पृ० ७६।

अगुण¹--वि० [सं०] १. सत्व, रज, तम आदि गुणों से रहित। धर्म या व्यापारशून्य। गुणरहित। निर्गुण। २. निर्गुणी। अनाड़ी। मूर्ख। बेहुनर।

अगुण²--संज्ञा पुं० अवगुण। बुरा गुण। दूषण। दोष।

अगुणज्ञ--वि० [सं०] जो गुणज्ञ न हो। जिसे गुण की परख न हो। अनाड़ी। गँवार। नाकदरदान।

अगुणता--संज्ञा स्त्री० [सं०] गुणहीनता। गुणों का अभाव। उ०--संद्रिया में, अगुणता से नित्य उकताही रही थी; सजन में भ्रा ही रही थी।--क्वासि, पृ० ८५।

अगुणत्त्व--संज्ञा पुं० [सं०] अगुणता। गुणराहित्य [को०]।

अगुणवादी--वि० [सं०] अवगुण कहनेवाला। दोष निकालने या कहनेवाला। छिद्रान्वेषी [को०]।

अगुणवान्--वि० [सं०] गुणरहित [को०]।

अगुणशील--वि० [सं०] विशेषतारहित। अयोग्य। अगुणी [को०]।

अगुणी--वि० [सं०] १. निर्गुणी। गुणरहित। २. अनाड़ी। मूर्ख।

अगुताना(पु)†--क्रि० अ० [हिं०] दे० 'उकताना'। उ०--तू जानि मोहिं अगुतावहु नरक जनि नावहु हो।--पलटू० बानी, भा० ३, पृ० ७४।

अगुन¹(पु)--वि० [सं० अगुण] १. सत्व रज तम आदि गुणों से रहित। निर्गुण। उ०--अगुन सगुन दुइ ब्रह्म सरूपा।--मानस, १।२३। २. अनाड़ी। बेहुनर। निर्गुणी। उ०--अगुन अमान जानि तेहिं दीन्ह पिता बनवास।--मानस, ६।३०।

अगुन²(पु)--संज्ञा पुं० [सं० अगुण] दे० 'अगुण' २। उ०--खल अघ अगुन साधु गुनगाहा।--मानस, १।६।

अगुनी(पु)--वि० [सं० अ+हिं० गुनना] जिसे गुना या विचारा न जा सके। जिसका वर्णन न किया जा सके। उ०--ऐसी अनूप कहैं तुलसी रघुनायक कीं अगुनी गुन गाहैं। आरत दीन अनाथन को रघुनाथ करैं निज हाथ की छाहैं।--तुलसी ग्रं०, पृ० २००।

अगुमन(पु)--क्रि० वि० [हिं०] दे० 'अगमन¹'। उ०--मन हित अगुमन दिहल चलाई।--धरनी०, पृ० २।

अगुरु¹--वि० [सं०] १. जो भारी न हो। हलका। सुबुक। २. जिसने गुरु से उपदेश न पाया हो। बिना गुरु का। निगुरा। ३ लघु या ह्रस्व (वर्ण)।

अगुरु²--संज्ञा पुं० १. अगर वृक्ष। ऊद। २ शीशम का पेड़।

अगुवा(पु)†--संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अगुआ'। उ०--अगुवा भयउ सेख बुरहानू। पंथ लाइ मोहि दीन गियानू।--जायसी ग्रं०, पृ० ८।

अगुवानी†--संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अगवानी'।

अगुसरना(पु)†--क्रि० अ० [सं० अग्रसरण] अग्रसर होना। आगे बढ़ना। उ०--एकौ परग न सो अगुसरई।--जायसी (शब्द०)।

अगुसारना(पु)†--[सं० अग्रसारण] आगे बढ़ना। आगे रखना। उ०--रँग कै राजैं दुख अगुसारा। जियत जीव नहिं करौं निनारा।--पदमावत, पृ० ७०३।

अगुठना(पु)--क्रि० स० [सं० अवगुण्ठन] चारों ओर से घेर लेना।

अगूठा(पु)†--संज्ञा पुं० [सं० अवगुण्ठक] घेरा। मुहासिरा।

अगूठी (पु)--वि० [सं० अवगुण्ठित अथवा हिं० अगूठ] घेरायुक्त। उ०--जेहि कारन गढ़ कीन्ह अगूठी।--जायसी (शब्द०)।

अगूठी²(पु)--संज्ञा स्त्री० [हिं० अगूठा] कारागार। बंधन।

अगूढ़¹--वि० [सं० अगूढ] जो छिपा न हो। स्पष्ट। प्रकट। सहज। आसान।

अगूढ़²--संज्ञा पुं० अलंकार में गुणीभूत व्यंग्य के आठ भेदों में से एक।

विशेष--यह वाच्य के समान ही स्पष्ट होता है। जैसे--'उदयाचल चुंबत रवी, अस्ताचल को चंद।' यहाँ प्रभात का होना व्यंग्य होने पर भी स्पष्ट है।

अगूढ़गंध--संज्ञा पुं० [सं० अगूढगन्ध] हींग [को०]।

अगूढ़गधा--संज्ञा स्त्री० [सं० अगूढगन्धा] हींग। गाँधी।

अगूढ़भाव--वि० [सं० अगूढभाव] जिसका भाव या विचार छिपा हुआ न रह सके।

अगूता(पु)--क्रि० वि० [सं० अग्र+हिं० ऊता (प्रत्य०)] आगे। सामने। उ०--बाजन बाजहिं होइ अगूता। दुवौ कंत लेइ चाहहिं सूता।--जायसी ग्रं०, पृ० २९९।

अगृभीत--वि० [सं०] १. अगृहीत। जो पकड़ा या गिरफ्तार न किया गया हो २. अपराजित। अपराभूत [को०]।

अगृह¹--वि० [सं०] गृहविहीन। बिना घर का। उ०--क्या पूछो हो पता हमारा? हम हैं अगृह, अकाम।--अपलक, पृ० ७३।

अगृह²--संज्ञा पुं० गृहस्थाश्रम के बाद का आश्रम। वानप्रस्थ [को०]।

अगृहता--संज्ञा स्त्री० [सं०] बिना घर का होने की स्थिति या दशा। बेघरबारपन [को०]।

अगेंथ--संज्ञा पुं० [सं० अग्निमन्थ] अरनी का पेड़। गनियारी।

अगेद्र--संज्ञा पुं० [सं० अगेन्द्र] पर्वतों का राजा। हिमालय।

अगेज¹--वि० [फा० अंगेज] मिला हुआ।

अगेज²--संज्ञा स्त्री० सहन। अँगेज।

अगेय--वि० [सं०] जो गेय न हो या जिसका गान न किया जा सके [को०]।

अगेयान(पु)†--वि० [सं० अज्ञान] अज्ञ। अजान। अनजान। उ०--ए सखि पिआ मोर बड़ अगेयान, बोलथि बदन तोर चाँद समान।--विद्यापति, पृ० २८।

अगेला--संज्ञा पुं० [सं० अग्र+हिं० एला (प्रत्य०)] १. आगेवाली मठिया जिन्हें नीच जाति की स्त्रियाँ कलाई में पहनती हैं। इसका उलटा 'पछेला' है। २. हलका अन्न जो ओसाते समय भूसे के साथ आगे जा पड़ता है और जिसे हलवाहे आदि ले जाते हैं।

अगेह--वि० [सं०] जिसे घर द्वार न हो। गृहरहित। बेठिकाने का। उ०--अकुल अगेह दिगंबर व्याली।--मानस, १।७२।

अगैरा†—संज्ञा पुं० [सं० अग्र + हिं० औरा (प्रत्य०)] नई फसल की पहली आँटी जो प्रायः जमींदार को भेंट की जाती है।

अगोई¹(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अग्रवर्ती] अगुआ। सरदार। नायक। उ०—उदैकरन रन भयौ अगोई।—छत्र०, पृ० २१७।

अगोई²(पु)—वि० स्त्री० [सं० अगोपित, प्रा० अगोइअ, हिं० अगोइ] जो छिपी न हो। प्रकट। जाहिर। व्यक्त। उ०—संतन की गति अगत अगोई।—घट०, पृ० ७२।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

अगोच(पु)—वि० [सं० अगोचर] दे० 'अगोचर'। उ०—देहुरे मंझे देव पायो, बस्त अगोच लखायो।—दादू० पृ० ५३०।

अगोचर¹—वि० [सं०] १. जिसका अनुभव इंद्रियों को न हो। जिसका बोध न हो सके। इंद्रियातीत। उ०—मन बुद्धि बर बानी अगोचर प्रगट कवि कैसे करै।—मानस, १।३२३। २. अप्रगट। अप्रत्यक्ष। अव्यक्त। उ०—'अगोचर बातों या भावनाओं को भी, जहाँ तक हो सकता है, कविता स्थूल गोचर रूप में रखने का प्रयास करती है।—रस०, पृ० ४१।

अगोचर²—संज्ञा पुं० १. ब्रह्म। २. वह वस्तु जो इंद्रियों का विषय न हो। ३. वह वस्तु जिसे देखा, समझा या जाना न जा सके [को०]।

अगोचरी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० गोचर] हठयोगियों की पाँच मुद्राओं में से 'गोचरी' नाम की एक मुद्रा। उ०—चाचरी, भूचरी, षेचरी, अगोचरी, उन्मुनी पांच मुद्रा साधते सिद्ध राजा।—रामानंद०, पृ० ५।

अगोट¹—संज्ञा पुं० [सं० अग्र = आगे + हिं० ओट = आड़] [क्रि० अगोटना] १. रोक। ओट। आड़। उ०—रही दै घूघट पट की ओट। नहसुत कील, कपाट सुलच्छन, दै दृग द्वार अगोट।—सूर०, १०।२७६६।

अगोट²—संज्ञा स्त्री० [सं० अग्र + हिं० ओट = सहारा] आश्रय। आधार। उ०—रहिहैं चंचल प्रान ए, कहि कौन की अगोट।—बिहारी र०, पृ० ३६५।

अगोट³—वि० [सं० अ = नहीं + हिं० गोट = जोट, साथी] एकाकी। अकेला।

अगोटना¹(पु)†—क्रि० स० [हिं० अगोट से नाम० अथवा सं० अग्र, प्रा० अग्ग + हिं० ओट + ना (प्रत्य०)] १. रोकना। छेंकना। उ०—सत् कोट जो पाय अगोटी। मीठी खाँड़ जेंवाए रोटी।—जायसी (शब्द०)। २. बंद कर रखना। रोक रखना। पहरे में रखना। कैद रखना। उ०—जौ गुनही, तौ राखियै आँखिनु माँझ अगोटि।—बिहारी र०, दो० २५०। ३. छिपाना। ढाँकना। उ०—कीजै किन ब्योंत अगोटन को। है चोर यही मनमोहन को।—भिखारी० ग्रं०, भा० १, पृ० २४२।

अगोटना(पु)²—क्रि० स० [सं० आक्रोड, प्रा० अक्कोड, हिं० 'अगोट' से नाम०] १. अंगीकार करना। स्वीकार करना। २. पसंद करना। चुनना। उ०—लगत कलर शतकोटि एक एक के गुन गनत। मन में लेहि अगोटि जो सुंदर नीको लगै।—गुमान (शब्द०)।

अगोटना(पु)³—क्रि० अ० [हिं० अगोट (= रोक) से नाम०] रुकना ठहरना। अड़ना। फँसना। उलझना। उ०—सुनत भावती बात सुतनि की झूठहिं धाम के काम अगोटी।—सूर०, १०।१६५।

अगोणी†—वि० [हिं० अगौनी] आगेवाली। आगे की। उ०—एता कमाम लै अगोणी भूमि आया।—शिखर० पृ० ६।

अगोता¹(पु)—क्रि० वि० [सं० अग्रतः] दे० 'अगूता'।

अगोता²(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] अगवानी। पेशवाई।

अगोत्र—वि० [सं०] कारण हित। अकारण [को०]।

अगोपा—वि० [सं०] जिसके पास गाय न हो। गोधन से रहित [को०]।

अगोपि(पु)—वि० [सं० अगोप्य] प्रकट। जाहिर। व्यक्त उ०—गोपि कहूँ तौ अगोपि कहा यह गोपि अगोपि न ऊभो न बैस।—सुंदर० ग्रं०, भा० २, पृ० ६१७।

अगोरई‡—संज्ञा स्त्री० [हिं० अगोरना] १. खेत आदि की देखभाल करने की मजदूरी। २. अगोरने की क्रिया या स्थिति।

अगोरदार—संज्ञा पुं० [हिं० अगोरना + फा० दार] रखवाली करनेवाला। पहरा देनेवाला। चौकसी करनेवाला। रखवाला।

अगोरना¹—क्रि० स० [सं० आघूर्णन = देखना या सं० अग्र + रक्ष या देशी] १. राह देखना। बाट जोहना। इंतजार करना। प्रतीक्षा करना। उ०—तेरी बाट अगोरते आँखें हुईं चकोर की।—हरि० घास०, । २. रखवाली करना। पहरा देना। चौकसी करना। उ०—कुँवार लाख दुइ बार अगोरे। दुहुँ दिसि पँवर ठाढ़ कर जोरे।—जायसी (शब्द०)।

अगोरना—क्रि० स० [हिं०] रोकना। अगोरना। छेंकना। उ०—जउ मैं कोटि जतन करि राखति, घूघट ओट अगोरि। तउ उड़ि मिले बधिक के खग ज्यों, पलक पींजरा तोरि।—सूर०, १०।२३५७।

अगोरा†—संज्ञा पुं० [हिं० अगोर + आ (प्रत्य०) १. अगोरने या रखवाली करने की क्रिया। चौकसी। निगरानी २. खेत की कटाई या फसल की दँवाई के समय की वह निगरानी जो जमींदार लोग काश्तकार से उपज का भाग लेने के लिये अपनी ओर से कराते हैं।

अगोराई(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं० अगोर + आई (प्रत्य०)] दे० 'अगोरई'।

अगोरिया†—संज्ञा पुं० [हिं० अगोर + इया (प्रत्य०)] खेत की रखवाली करनेवाला फसल रखनेवाला। रखवाला।

अगोही†—संज्ञा पुं० [सं० अग्रवर्ती या अग्रवाही] वह बैल जिसके सींग आगे की ओर निकले हों।

अगोह्य—वि० [सं०] जो गोपनीय या ढँका न हो। प्रकट [को०]।

अगौंड़ी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० अग + औड़ी (प्रत्य०)] ईख के ऊपर का पतला भाग। अघोरी। अगाव। अगौरा।

अगौका¹—वि० [सं०] पर्वत पर रहनेवाला [को०]।

अगौका²—१. शरभ। २. सिंह। ३. पक्षी [को०]।

अगौढ़†—संज्ञा पुं० [सं० अग्र, प्रा० अग्ग + वढ़ (प्रत्य०)] रुपया जो असामी जमींदार को नजर या पेशगी की तरह देता है। पेशगी। अगाऊ।

अगौनी¹(पु)— क्रि० वि० [हिं०] दे० 'अगाउनी'। उ० —देव दिखावत कंचन सो तन औरन को मन लावै अगौनी —देव (शब्द०)।

अगौनी†²—संज्ञा स्त्री० [हिं० अगवानी] १. अगवानी। पेशवाई। २. वह आतिशबाजी जो बरात आने पर द्वारपूजा के समय छोड़ी जाती है।

अगौरा†—संज्ञा पुं० [सं० अग्र + हिं० औरा (प्रत्य०)] ऊख के ऊपर का पतला नीरस भाग जिसमें गाँठें नजदीक होती हैं। अगाव। अगौड़ी। कौंचा।

अगौरी†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अगौरा'। २. दे० 'अगौली'।

अगौली—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. ईख की एक छोटी और कड़ी जाति।

अगौवा(पु)—क्रि० वि० [हिं० अग + औआ (प्रत्य०)] आगे। उ०—बिरच्यौ बिकट रायमनि दौवा। घाई खाइ अरि हनै अगौवा।—छत्र०, पृ० २१५।

अगौहैं(पु)†—क्रि० वि० [सं० अग्रमुख] आगे की ओर। आगे। अगाड़ी। उ०—(क) भीतर भौन ते प्रान प्रिया सो चितौ चहै पैग पड़ै न अगौहैं।—बेनी प्रवीन (शब्द०)।

अग्ग(पु)—क्रि० वि० [सं० अग्र; प्रा० अग्ग] अगाड़ी। आगे। उ०—अग्ग गयौ गिरि निकट बिकट उद्यान भयंकर—पृ० रा०, ६।६४।

अग्गई—संज्ञा स्त्री० [देश०] अवध में अधिकता से होनेवाला एक प्रकार का मझोले आकार का वृक्ष।

विशेष—इसकी पत्तियाँ प्रायः हाथ भर लंबी होती हैं। यह नेपाल भूटान, बरमा और जावा में भी पाया जाता है। इसमें पीले रंग के २-३ इंच चौड़े फूल और छोटे अमरूद के आकार के फल लगते हैं।

अग्गम†—[सं० अगम्या] दे० 'अगम'। उ०—अग्गम बदरिया आई रसिया, पच्छम बरस गये मेंह।—शुक्ल अभि० ग्रं०, पृ० १५६।

अग्गय(पु)—क्रि० वि० [सं० अग्र] दे० 'अग्र' या 'आगे'। उ०—तहाँ अप्प अग्गय धरं तंत रथ्थं।—पृ० रा०, ६४।१००।

अग्गर¹(पु)—वि० [देश० अग्गल] [वि० स्त्री० अग्गरी] अगुआ। अग्रणी। उ०—गय सलषानी राव बीर अग्गर गढ़ रख्खे।—पृ० रा०, १२।५८।

अग्गर(पु)²—संज्ञा पुं० [सं० आगार] निवास। धाम। प्रासाद। उ०—अग्गर जेहा झूँपड़ा तउ आसंगे मोइ।—ढोला० दू० ३१४।

अग्गाल(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अकाल] असमय। अनवसर। उ०—कंइ तूं सींची सज्जणे, कंइ बूठउ अग्गाल।—ढोला० दू०, ३८१

अग्गि(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अग्नि, प्रा० अग्गि] दे० 'अग्नि'। उ०—पवन अग्गि जलधर अकाश। सरिता समुद्द तिथि गिरि निवास।—पृ० रा०, १।१६।

अग्गियां(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० आज्ञा] दे० 'आज्ञा'। उ०—अग्गिया दीन जद्दवह जाम।—पृ० रा०, ६१।१६०७।

अग्गै(पु)—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'आगे'। उ०—बहुराइ देव कवियन प्रबल मिलन पिथ्थ अग्गै चलिय।—पृ० रा०, ६।६३।

अग्नायी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. अग्नि की स्त्री स्वाहा। २. त्रेतायुग (को०)।

अग्नि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. आग। तेज का गोचर रूप। उष्णता। पृथ्वी, जल, वायु, आकाश आदि पंचभूतों या पंचतत्वों में से एक। २. वैद्यक के मत से तीन प्रकार की अग्नि।

विशेष—आयुर्वेद में अग्नि के तीन प्रकार माने गए हैं। यथा—(क) भौम, जो तृण, काष्ठ आदि के जलने से उत्पन्न होती है। (ख) दिव्य, जो आकाश में बिजली से उत्पन्न होती है। (ग) उदर या जठर, जो पित्त रूप से नाभि के ऊपर और हृदय के नीचे रहकर भोजन भस्म करती है। इसी प्रकार कर्मकांड में भी अग्नि तीन प्रकार की मानी गई है। यथा—गार्हपत्य, आहवनीय, दक्षिणाग्नि। सभ्याग्नि, आवसथ्य और औपासनाग्नि—इन तीन को मिलाकर उनके छह भेद हैं जिनमें प्रथम तीन प्रधान हैं।

३. वेद के प्रधान देवताओं में से एक।

विशेष—ऋग्वेद का प्रादुर्भाव इसी से माना जाता है। वेद में अग्नि के मंत्र बहुत अधिक हैं। अग्नि की सात जिह्वाएँ मानी गई हैं जिनके अलग अलग नाम हैं, जैसे—काली, कराली, मनोजवा, सुलोहिता, धूम्रवर्णा, उग्रा और प्रदीप्ता। भिन्न भिन्न ग्रंथों में ये नाम भिन्न भिन्न दिए हैं। यह देवता दक्षिण पूर्व कोण का स्वामी है और आठ लोकपालों में से एक है। पुराणों में इसे वसु से उत्पन्न धर्म का पुत्र कहा है। इसकी स्त्री स्वाहा थी जिससे पावक, पवमान और शुचि ये तीन पुत्र उत्पन्न हुए। इन तीनों पुत्रों के भी पैंतालीस पुत्र हुए। इस प्रकार सब मिलाकर ४६ अग्नि माने गए हैं जिनका विवरण वायुपुराण में विस्तार के साथ दिया है।

क्रि० प्र०—जलना। जलाना।—डालना।—फूँकना।—बालना।—बुझना।—बझाना।—भड़कना।—भड़काना।—लगना।—लगाना।—सुलगाना।

४. जठराग्नि। पाचन शक्ति। जैसे—'अग्नि तो मंद हो गई है। भूख कहाँ से लगे (शब्द०)। ५. पित्त। ६. तीन की संख्या क्योंकि कर्मकांड के अनुसार तीन अग्नि मुख्य हैं। ७. सोना। ८. चित्रक। चीता। ९. भिलावा। १०. नीबू। ११. अग्निकर्म (को०)। १२. 'र्' का गूढ़ प्रतीक (को०)। १३. प्रकाश (को०)।

अग्निक—संज्ञा पुं० [सं०] १. बीरबहूटी नाम का कीड़ा। २. एक प्रकार का पौधा (को०)। सर्पों की एक किस्म (को०)।

अग्निकण—संज्ञा पुं० [सं०] चिनगारी। स्फुलिंग [को०]।

अग्निकर्म—संज्ञा पुं० [सं०] १. अग्निहोत्र। हवन। २. अग्निसंस्कार। शवदाह। ३. गरम लोहे से दागने का कार्य (को०)।

अग्निकला—संज्ञा स्त्री० [सं०] अग्नि की दस कलाओं में कोई एक [को०]।

अग्निकल्प—वि० [सं०] अग्नि की प्रकृति या स्वभाववाला [को०]।

अग्निकांड—संज्ञा पुं० [सं० अग्नि + कांड] आग लगाना।

अग्निकारिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. ऋग्वेदोक्त अग्निसूक्त जो 'अग्नि दूतं पुरोदधे' से प्रारंभ होता है। २. अग्निकार्य [को०]।

अग्निकार्य—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'प्रतिसारण' २।

अग्निकाष्ठ—संज्ञा पुं० [सं०] अगर का पेड़।

अग्निकीट--संज्ञा पुं० [सं०] समंदर नाम का कीड़ा जिसका निवास अग्नि में माना जाता है।

अग्निकुंड--संज्ञा पुं० [सं० अग्निकुण्ड] अग्निहोत्र के लिये निर्मित कुंड [को०]।

अग्निकुक्कुट--संज्ञा पुं० [सं०] जलता हुआ तृण या पयाल का पूला। लुकारी। लूक।

अग्निकुमार--संज्ञा पुं० [सं०] १. कार्तिकेय। षडानन। २. आयुर्वेद के अनुसार एक रस जो विभिन्न अनुपानों के साथ देने से अरुचि, मंदाग्नि, श्वास, कास, कफ, प्रमेह आदि रोगों को दूर करता है।

अग्निकुल--संज्ञा पुं० [सं०] क्षत्रियों का एक कुल या वंशविशेष।

विशेष--ऐसी कथा है कि ऋषियों के तप में जब दैत्य विघ्न डालने लगे तब उन्होंने वशिष्ठ की अध्यक्षता में आबू पर्वत पर एक यज्ञ किया। उस यज्ञकुंड से एक एक करके चार पुरुष उत्पन्न हुए जिनसे चार वंश चले अर्थात् प्रमार, परिहार, चालुक्य या सोलंकी और चौहान। इन चार क्षत्रियों का कुल अग्निकुल कहलाता है।

अग्निकेतु--संज्ञा पुं० [सं०] १. शिव का एक नाम। २. रावण की सेना का एक राक्षस। ३. धूम्र। धुआँ [को०]।

अग्निकोण--संज्ञा पुं० [सं०] पूर्व और दक्षिण का कोना।

अग्निक्रिया--संज्ञा स्त्री० [सं०] १. शव का अग्नि में दाह। मुर्दा जलाना। २. अग्निहोत्र या अग्निकर्म [को०]।

अग्निक्रीड़ा--संज्ञा स्त्री० [सं०] आतशबाजी।

अग्निगर्भ[१]--संज्ञा पुं० [सं०] १. सूर्यकांत मणि। २. सूर्यमुखी शीशा। आतशी शीशा। ३. शमी वृक्ष। ४. अग्निजार या गजपिप्पली का पौधा [को०]।

अग्निगर्भ[२]--वि० जिसके भीतर अग्नि हो। जो अग्नि उत्पन्न करे, जैसे अग्निगर्भ पर्वत।

अग्निगर्भ पर्वत--संज्ञा पुं० [सं०] ज्वालामुखी पहाड़।

अग्निगर्भा--संज्ञा स्त्री० [सं०] १. शमी वृक्ष। २. पृथिवी। धरा। ३. महाज्योतिष्मती नाम की लता [को०]।

अग्निगृह--संज्ञा पुं० [सं०] वह गृह जहाँ हवन की अग्नि रखी रहती हो [को०]।

अग्निघृत--संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि उद्दीपन करने के लिये निर्मित एक प्रकार का घृत [को०]।

अग्निचक्र--संज्ञा पुं० [सं०] १. योग में शरीर के भीतर माने हुए छः चक्रों में से एक।

विशेष--इसका स्थान भौंहों का मध्य, रंग बिजली का सा और देवता परमात्मा माने गए हैं। इस चक्र में जिस कमल की भावना की गई है उसके दलों (पंखुड़ियों) की संख्या दो और उनके अक्षर 'ह' और 'क्ष' हैं।

२. अग्नि का चक्र या गोला। उ०--विमल व्योम में देव दिवाकर अग्निचक्र से फिरते हैं।--कानन०, पृ० २४।

अग्निचय--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अग्निचयन' [को०]।

अग्निचयन--संज्ञा पुं० [सं०] १. यज्ञार्थ अग्नि को रखना। अग्न्याध्यान। २. अग्न्याध्यान कार्य में प्रयुक्त होनेवाले मंत्र [को०]।

अग्निचित्--संज्ञा पुं० [सं०] अग्निहोत्री।

अग्निचूड--संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि के समान लाल शिखावाला पक्षी। कुक्कुट। अरुणचूड़ [को०]।

अग्निज[१]--वि० [सं०] १. अग्नि से उत्पन्न। २. अग्नि को उत्पन्न करनेवाला। ३. अग्निसंदीपक। पाचक।

अग्निज[२]--संज्ञा पुं० १. अग्निजार वृक्ष। समुद्रफल का पेड़। २. कार्तिकेय का नाम (को०)। ४. सोना। स्वर्ण (को०)।

अग्निजन्मा--संज्ञा पुं०; वि० [सं०] दे० 'अग्निज' [को०]।

अग्निजात--संज्ञा पुं०, वि० [सं०] दे० 'अग्निज' [को०]।

अग्निजार--संज्ञा पुं०, वि० [सं०] समुद्र फल का पेड़।

अग्निजाल--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अग्निज्वाल' [को०]।

अग्निजित्--संज्ञा पुं० [सं०] ईश्वर [को०]।

अग्निजिह्व[१]--संज्ञा पुं० [सं०] १. देवता। अमर। २ विष्णु [को०]।

अग्निजिह्व[२]--वि० अग्नि के समान जीभवाला [को०]।

अग्निजिह्वा--संज्ञा स्त्री० [सं०] १. आग की लपट। २. अग्नि देवता की सात जिह्वाएँ।

विशेष--मुंडकोपनिषद् में इनके नाम ये दिए हैं--काली, कराली, मनोजवा, लोहिता, धूम्रवर्णा, स्फलिंगिनी और विश्वरूपी। बृहत्संहिता में अंतिम दो नामों के स्थान में उग्रा और प्रदीप्ता ३. कलियारी विष। लांगली। नाम दिए हैं।

अग्निजीवी--संज्ञा पुं० [सं०] आग के सहारे काम करनेवाले जैसे--लुहार, सुनार आदि।

अग्निज्वाल--संज्ञा पुं० [सं०] शिव। शंकर [को०]।

अग्निज्वाला--संज्ञा स्त्री० [सं०] १. आग की लपट। उ०--इडा अग्निज्वाला सी आगे जलती है उल्लास भरी।--कामायनी, पृ० १८१। २. धव का पेड़ जिसमें लाल फूल लगते हैं। ३. जलपिप्पली का पेड़।

अग्निझाल--संज्ञा पुं० [सं० अग्नि + ज्वाल प्रा० झाल] जलपिप्पली का पेड़।

अग्नितुंडावटी--संज्ञा स्त्री० [सं० अग्नितुण्डावटी] वैद्यक के अनुसार अजीर्ण दूर करनेवाली गोली।

अग्नितेजा--वि० [सं०] अग्नितुल्य तेजवाला [को०]।

अग्नित्रय--संज्ञा पुं० [सं०] विधिपूर्वक स्थापित गार्हपत्य, आह्वनीय और दक्षिण नामक अग्नि [को०]।

अग्नित्रेता--संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अग्नित्रय' [को०]।

अग्निदंड--संज्ञा पुं० [सं० अग्निदण्ड] आग में जलाने का दंड।

अग्निद--संज्ञा पुं० [सं०] आग लगानेवाला।

अग्निदग्ध[१]--वि० [सं०] चिताग्नि में सविधि जलाया हुआ [को०]।

अग्निदग्ध[२]--संज्ञा पुं० पितृगणों का एक वर्ग [को०]।

अग्निदमनी--संज्ञा स्त्री० [सं०] गनियारी क्षुप। एक प्रकार का क्षुप जिसे दमनी कहते हैं।

अग्निदाता--संज्ञा पुं० [सं०] चिता पर शव को अग्नि देनेवाला या दाहकृत्य करनेवाला व्यक्ति [को०]।

अग्निदान--संज्ञा पुं० [सं०] चिता में अग्नि लगाने का कार्य [को०]।

अग्निदाह--संज्ञा पुं० [सं०] १. आग में जलाने का कार्य। भस्म करने का कार्य। जलाना। भस्मीकरण। २. शवदाह। मुर्दा जलाना।

अग्निदिव्य- संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि के प्रयोग द्वारा सत्यासत्य का निर्णय। अग्निपरीक्षा [को०]।

अग्निदीपक--वि० [सं०] जठराग्नि को उत्तेजित करनेवाला। पाचन शक्ति बढ़ानेवाला।

अग्निदीपन--संज्ञा पुं० [सं०] १. अग्निवर्धन। जठराग्नि की वृद्धि। पाचनशक्ति की बढ़ती। २. अग्निवर्धक औषध। पाचनशक्ति को बढ़ानेवाली दवा। वह दवा जिसके खाने से भूख लगे।

अग्निदीप्ता--संज्ञा स्त्री० [सं०] महाज्योतिष्मती। अग्निगर्भा [को०]।

अग्निदूत--संज्ञा पुं० [सं०] १. यज्ञ में आवाहित देवगण। २. यज्ञकार्य। यजन [को०]।

अग्निदूषित--वि० [सं०] दग्ध। जला हुआ [को०]।

अग्निदेव--संज्ञा पुं० [सं०] १. देवरूप में अग्नि को प्रधान माननेवाले, अग्निपूजक। २. अग्नि [को०]।

अग्निदेवा--संज्ञा स्त्री० [सं०] कृत्तिका नक्षत्र [को०]।

अग्निद्वार--संज्ञा पुं० [सं०] पूर्वदक्षिण कोण में स्थित मकान का दरवाजा [को०]।

अग्निधान--संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि रखने का पवित्र स्थान [को०]।

अग्निनक्षत्र--संज्ञा पुं० [सं०] कृत्तिका नाम का तृतीय नक्षत्र [को०]।

अग्निनयन--संज्ञा पुं० [सं०] हवन की अग्नि का विधिपूर्वक संस्कार करना [को०]।

अग्निनिर्यास--संज्ञा पुं० [सं०] अग्निजार वृक्ष [को०]।

अग्निनेत्र--संज्ञा पुं० [सं०] देवगण [को०]।

अग्निपक्व--वि० [सं०] अग्नि पर पकाया हुआ [को०]।

अग्निपरिक्रिया--संज्ञा स्त्री० [सं०] अग्नि में हवन और उसकी सुरक्षा करना [को०]।

अग्निपरिग्रह--संज्ञा पुं० [सं०] अग्निहोत्र लेना [को०]।

अग्निपरिधान--संज्ञा पुं० [सं०] यज्ञ की अग्नि को परदे से आवृत्त करना या घेरना [को०]।

अग्निपरीक्षा--संज्ञा स्त्री० [सं०] १. जलती हुई आग द्वारा परीक्षा या जाँच। जलती हुई आग पर चलाकर अथवा जलता हुआ पानी, तेल या लोहा छुलाकर किसी व्यक्ति के दोषी या निर्दोष होने की जाँच।

विशेष--प्राचीन काल में जब किसी व्यक्ति पर किसी अपराध का संदेह होता था तब यह देखने के लिये कि वह यथार्थ में दोषी है या नहीं, लोग उसे आग पर चलने को कहते थे, अथवा उसके ऊपर जलता हुआ तेल या जल डालते थे। उनका विश्वास था कि यदि वह निरपराध होगा तो उसे कुछ आँच न आवेगी।

२. भयप्रदायक एवं कठिन परीक्षा। ३. सोने, चाँदी आदि धातुओं की आग में तपा कर परख।

अग्निपर्वत--संज्ञा पुं० [सं०] ज्वालामुखी पर्वत [को०]।

अग्निपुराण--संज्ञा पुं० [सं०] १८ पुराणों में से एक।

विशेष--इसका नाम अग्निपुराण इस कारण है कि इसे अग्नि ने वशिष्ठ जी को पहले पहल सुनाया था। इसके श्लोकों की संख्या कोई १४,०००, कोई १५,००० और कोई १६,००० मानते हैं। इसमें यद्यपि शिव का माहात्म्यवर्णन प्रधान है पर कर्मकांड, राजनीति, धर्मशास्त्र, आयुर्वेद, अलंकार, छंदःशास्त्र, व्याकरण, तंत्र आदि अनेक फुटकर विषय भी इसमें संमिलित हैं।

अग्निपूजक--संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि की पूजा करनेवाला व्यक्ति, जाति या धर्म।

अग्निप्रणयन--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अग्निनयन' [को०]।

अग्निप्रतिष्ठा--संज्ञा स्त्री० [सं०] यज्ञ, विवाहादि धार्मिक अवसरों पर कुंड या वेदी पर अग्नि को रखने की क्रिया [को०]।

अग्निप्रवेश--संज्ञा पुं० [सं०] १. शरीर त्याग की इच्छा से अग्नि में प्रवेश करना। २. किसी स्त्री का पति के शव आदि के साथ चिता में प्रवेश करना [को०]।

अग्निप्रस्तर--संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि उत्पन्न करनेवाला पत्थर। वह पत्थर जिससे आग निकले। चकमक पत्थर।

अग्निबाण--संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का अस्त्र। वह बाण जिसमें से अग्नि की ज्वाला प्रकट हो। वह तीर जिससे आग की लपट निकले। भस्म करनेवाला बाण।

विशेष--ऐसा कहा कहा जाता है यह बाण मंत्र द्वारा चलाया जाता था और इससे अग्नि की वर्षा होने लगती थी।

अग्निबाव--संज्ञा पुं० [सं० अग्नि + वायु, प्रा० बाव] १. घोड़ों और चौपायों का एक रोग जिसमें उनके शरीर पर छोटे आबले निकलते हैं और फूट फूटकर फैलते हैं। यह रोग अधिकतर घोड़ों को ही होता है। २. मनुष्यों का एक चर्मरोग जिसमें शरीर पर बड़े बड़े लाल चकत्ते या ददोरे निकल आते हैं। पित्ती। जुड़पित्ती। ददरा। ३. अग्नि की ज्वाला या लपट। उ०--पुंडीर चंद जनु अग्निबाव।--पृ० रा०, ८।१४।

अग्निबाहु--संज्ञा पुं० [सं०] १. धूम्र। धुआँ। २. प्रथम मनु के पुत्र [को०]।

अग्निबीज--संज्ञा पुं० [सं०] १. सोना।

विशेष--मनु आदि प्राचीन ग्रंथों में सोने की उत्पत्ति अग्नि के संयोग से लिखी है।

२. अग्नि का बीजाक्षर 'र' [को०]।

अग्निभ[1]--संज्ञा पुं० [सं०] १. अग्निसंबंधी नक्षत्र। कृत्तिका। २. सोना। स्वर्ण [को०]।

अग्निभ[2]--वि० अग्नि की तरह दीप्त [को०]।

अग्निभू--संज्ञा पुं० [सं०] कार्तिकेय।

अग्निभूति--संज्ञा पुं० [सं०] अंतिम जैन तीर्थंकर के शिष्य [को०]।

अग्निमंथ--संज्ञा पुं० [सं० अग्निमंथ] १. अरणी वृक्ष जिसकी लकड़ी को परस्पर घिसने से आग बहुत जल्द निकलती है। २. अरणी नामक यंत्र जिससे यज्ञ के लिये आग निकाली जाती है।

अग्निमंथन--संज्ञा पुं० [सं० अग्निमन्थन] दे० 'अग्निमंथ' [को०]।

अग्निमणि--संज्ञा पुं [सं०] १. सूर्यकांत मणि। एक बहुमूल्य पत्थर। २. सूर्यमुखी शीशा। आतशी शीशा।

अग्निमथ--संज्ञा पुं० [सं०] १. यज्ञ में अरणि का मंथन करनेवाला याज्ञिक ब्राह्मण। २. अरणिमंथन के अवसर पर प्रयुक्त होने वाले मंत्र। ३. अरणि का कांड [को०]।

अग्निमांद्य--संज्ञा पुं० [सं० अग्निमान्द्य] मंदाग्नि। जठराग्नि की कमी। पाचनशक्ति की कमी। भूख न लगने का रोग।

अग्निमान्[1]--संज्ञा पुं० [सं०] विधिपूर्वक अग्नि रखनेवाला द्विज। अग्निहोत्री [को०]।

अग्निमान्[2]--वि० अच्छी पाचनशक्तिवाला [को०]।

अग्निमारुति--संज्ञा पुं० [सं०] अगस्त्यमुनि का नाम।

अग्निमित्र--संज्ञा पुं० [सं०] शुंग वंशीय पुष्यमित्र का पुत्र। मालविकाग्निमित्र नाटक में इसकी कथा है [को०]।

अग्निमुख--संज्ञा पुं० [सं०] १. देवता। २. अग्निहोत्री (को०)। ३. प्रेत। ४. ब्राह्मण। ५. चीते का पेड़। ६. भिलावे का पेड़। ७. वैद्यक में अजीर्ण नाशक चूर्ण का नाम जो जवाखार, सज्जी, चित्रक, लवण आदि कई वस्तुओं के मेल से बनता है। ८. एक रस औषधि का नाम जिससे वातशूल दूर होता है। ९. खटमल (को०)।

अग्निमुखी--संज्ञा स्त्री० [सं०] १. भल्लातक। भिलावाँ। २. गायत्री का मंत्र। ३. ब्राह्मण। ४. अग्नि आदि देवगण। ५. पाकशाला [को०]।

अग्नियंत्र--संज्ञा पुं० [सं० अग्नियन्त्र] आग उगलनेवाला यंत्र। बंदूक [को०]।

अग्नियान--संज्ञा पुं० [सं०] विमान। व्योमयान। वायुयान [को०]।

अग्नियुग--संज्ञा पुं० [स०] ज्योतिष में पाँच पाँच वर्ष के जो बारह युग माने गए हैं। उनमें से एक। इस युग के वर्षों के नाम क्रम से चित्रभानु, सुभानु, तारण, पार्थिव और व्यय हैं।

अग्नियोजन--संज्ञा पुं० [स०] यज्ञार्थ अग्नि प्रकट करने का कार्य [को०]।

अग्निरक्षण--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अग्न्याधान' [को०]।

अग्निरजा--संज्ञा पुं० [सं०] १. बीरबहूटी कीड़ा। २. स्वर्ण [को०]

अग्निरहस्य--संज्ञा पुं० [सं०] १. अकल्प की उपासना को बतानेवाला शास्त्र या ग्रंथ। २. शतपथ ब्राह्मण का दशम कांड [को०]।

अग्निरुहा--संज्ञा स्त्री० [सं०] मांसरोहिणी नामक लता [को०]।

अग्निरूप--वि० [पुं०] अग्नितुल्य तेजोमय स्वरूपवाला [को०]।

अग्निरेता--संज्ञा पुं० [सं० अग्निरेतस्] अग्नि का रेतस् या तेज। सोना [को०]।

अग्निरोहिणी--संज्ञा स्त्री० [सं०] वैद्यक मतानुसार एक रोग जिसमें अग्नि के समान झलकते हुए फफोले पड़ते हैं और रोगी को दाह और ज्वर होता है।

अग्निलिंग--संज्ञा पुं० [सं० अग्निलिङ्ग] आग की लपट की रंगत और झुकाव देखकर शुभाशुभ फल बतलाने की विद्या।

अग्निलोक--संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि द्वारा अधिष्ठित मेरु पर्वत के शृंग के नीचे का लोक [को०]।

अग्निवंश--संज्ञा पुं० [सं०] अग्निकुल।

अग्निवधू--संज्ञा स्त्री० [सं०] अग्नि की स्त्री स्वाहा [को०]।

अग्निवर्च[1]--संज्ञा पुं० [अग्निवर्चस्] अग्नि का तेज [को०]।

अग्निवर्च[2]--वि० अग्नि की तरह दीप्त [को०]।

अग्निवर्ण[1] -संज्ञा पुं० [सं०] इक्ष्वाकुवंशीय एक राजा जो रघु के प्रपौत्र तथा सुदर्शन के पुत्र थे।

अग्निवर्ण[2]--वि० आग के रंग का। अंगारे के समान। रक्तवर्ण। लाल।

अग्निवर्णा--संज्ञा स्त्री० [सं०] तीखी मदिरा। तेज शराब [को०]।

अग्निवर्तक--संज्ञा पुं० [सं०] पुराणों के अनुसार एक प्रकार का मेघ [को०]।

अग्निवर्धक--वि० [सं०] जठराग्नि को बढ़ानेवाला। पाचन शक्ति को बढ़ानेवाला [को०]।

अग्निवर्षा--संज्ञा स्त्री० [सं०] १. युद्ध में आग्नेयास्त्रों की वर्षा या प्रयोग। २. भयंकर धूप पड़ना।

अग्निवल्लभ--संज्ञा पुं० [सं०] १. साल का वृक्ष। साखू का पेड़। २. साल से निकली हुई गोंद। राल। धूप।

अग्निवासा--वि० [सं० अग्निवासस्] अग्नि की तरह शुद्ध या लाल वस्त्रवाला [को०]।

अग्निवाह[1]--संज्ञा पुं० [सं०] १. बकरा। छाग। २. धूम्र [को०]।

अग्निवाह[2]--वि० ज्वलनशील (पदार्थ) [को०]।

अग्निवाहन--संज्ञा पुं० [सं०] बकरा। छाग [को०]।

अग्निविंदु--संज्ञा पुं० [सं०] चिनगारी। स्फुलिंग [को०]।

अग्निविद्--संज्ञा पुं० [सं० अग्निवित्] अग्निहोत्री।

अग्निविद्--वि० अग्निहोत्र आदि की क्रियाओं का ज्ञाता [को०]।

अग्निविद्या--संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रातःकाल और सायंकाल मंत्रों द्वारा अग्नि की उपासना की विधि। अग्निहोत्र।

यौ०--पंचाग्निविद्या = छांदोग्य उपनिषद् में सूर्य, बादल; पृथ्वी पुरुष और स्त्री संबंधी विज्ञान को 'पंचाग्निविद्या' कहा है।

अग्निविश्वरूप--संज्ञा पुं० [सं०] वृहत्संहिता के अनुसार केतु ताराओं का एक भेद। ये ज्वाला की माला से युक्त और संख्या में १२० कहे गए हैं।

अग्निविसर्प--संज्ञा पुं० [सं०] शोथ या फोड़े के कारण होनेवाली जलन या दर्द (को०)।

अग्निवीर्य[1]--संज्ञा पुं० [सं०] १. अग्नितुल्य पराक्रम। २. स्वर्ण [को०]।

अग्निवीर्य[2]--वि० अग्नि के सदृश तेजस्वी [को०]।

अग्निवेश--संज्ञा पुं० [सं०] आयुर्वेद के आचार्य एक प्राचीन ऋषि का नाम जो अग्नि के पुत्र कहे जाते हैं।

अग्निव्रत--संज्ञा पु० [सं०] वेद की एक ऋचा का नाम।

अग्निशरण--संज्ञा पुं० [सं०] अग्निशाला [को०]।

अग्निशर्मा[1]--वि० [सं०] बहुत शीघ्र उत्तेजित होनेवाला [को०]।

अग्निशर्मा[2]--संज्ञा पुं० एक ऋषि [को०]।

अग्निशाल--संज्ञा पुं० [सं०] अग्निशाला [को०]।

अग्निशाला--संज्ञा स्त्री० [सं०] वह घर जिसमें अग्निहोत्र या हवन करने की अग्नि स्थापित हो। उ०--देखते थे अग्निशाला से कुतूहलयुक्त।--कामायनी, पृ० ८३।

अग्निशिख--संज्ञा पुं० [सं०] १. कुसुम या बर्रे का पेड़। २. कुंकुम। केसर। ३. सोना। ४. दीपक। ५. बाण। तीर। ६. अग्निबाण [को०]।

अग्निशिखा--संज्ञा स्त्री० [सं०] १ अग्नि की ज्वाला। आग की लपट। उ०--अग्निशिखा बुझ गई जागने पर जैसे सुख सपने।--कामायनी, पृ० १३६। २. कलियारी या करियारी नामक पौधा जिसकी जड़ में विष होता है।

अग्निशुद्धि--संज्ञा स्त्री० [सं०] १ अग्नि से पवित्र करने की क्रिया। आग छुलाकर किसी वस्तु को शुद्ध करना। २. अग्निपरीक्षा।

अग्निशेखर--संज्ञा पुं० [सं०] १ कुसुम या बर्रे का पेड़। २. केसर। ३. जांगली वृक्ष। ४. सोना। स्वर्ण [को०]।

अग्निश्री--वि० [सं०] अग्नि की तरह दीप्त या शोभ वाला [को०]।

अग्निष्टुत्--संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का यज्ञ जो एक दिन में पूरा होता है। यह अग्निष्टोम का ही संक्षेप है।

अग्निष्टोम--संज्ञा पुं० [सं०] एक यज्ञ जो ज्योतिष्टोम नामक यज्ञ का रूपांतर है।

विशेष--इसका काल वसंत है। इसके करने का अधिकार अग्निहोत्री ब्राह्मण को है। द्रव्य इसका सोम है। देवता इसके इंद्र और वायु आदि हैं और इसमें ऋत्विजों की संख्या १६ है। यह यज्ञ पाँच दिन में समाप्त होता है।

अग्निष्ठ--संज्ञा पुं० [सं०] १. रसोईघर। २. अँगीठी [को०]।

अग्निष्वात्ता--संज्ञा पुं० [सं०] १. पितरों का एक भेद। २ अग्नि, विद्युत् आदि विद्याओं का जाननेवाला।

अग्निसंकाश--वि० [सं०] अग्नितुल्य वर्ण या दीप्तिवाला [को०]।

अग्निसंदीपन--वि० [सं०] दे० 'अग्निवर्धक' [को०]।

अग्निसंभव¹--वि० [सं०] अग्नि द्वारा उत्पन्न [को०]।

अग्निसंभव²--संज्ञा पुं० १ स्वर्ण। २. अरण्य कुसुम। ३. कार्तिकेय। ४. भोज्यपदार्थ या भोजन का रस [को०]।

अग्निसंस्कार--संज्ञा पुं० [सं०] १ आग का व्यवहार। आग जलाना। २. तपाना। तप्त करना। ३. शुद्धि के लिये अग्नि स्पर्श कराने का विधान। ४ मृतक के शव को भस्म करने के लिये उसपर अग्नि रखने की क्रिया। दाहकर्म। ५. श्राद्ध में पिंड रखने की वेदी पर आग की चिनगारी घुमाने की रीति या क्रिया।

अग्निसंहिता--संज्ञा स्त्री० [सं०] अग्निवेश ऋषि द्वारा प्रणीत चिकित्सा संबंधी एक ग्रंथ [को०]।

अग्निसखा--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अग्निसहाय'।

अग्निसहाय--संज्ञा पुं० [सं०] १. जंगली कबूतर (क्योंकि उसके मांस से जठराग्नि तीव्र होती है)। २ वायु। हवा। ३ धुआँ [को०]।

अग्निसाक्षिक--वि० [सं०] १. जिसका साक्षी अग्नि हो। २ जिसकी प्रतिज्ञा अग्नि को साक्षी देकर की गई हो। जो अग्नि देवता के सामने संपादित हो।

विशेष--जो बात अग्नि के सामने उसको साक्षी मानकर कही जाती है वह बहुत पक्की समझी जाती है और उसका पालन धर्मविचार से अत्यंत आवश्यक होता है। विवाह में वर कन्या की जो प्रतिज्ञाएँ होती हैं वे अग्नि को साक्षी देकर की जाती हैं।

अग्निसात्--वि० [सं०] आग में जलाया हुआ। भस्म किया हुआ। क्रि० प्र०--करना।--होना।

अग्निसार--संज्ञा पुं० [सं०] नेत्रों के लिये आयुर्वेदकथित एक औषध। रसांजन (को०)।

अग्निसुत--संज्ञा पुं० [सं०] कार्तिकेय [को०]।

अग्निसूनु--संज्ञा पुं० [सं०] कार्तिकेय [को०]।

अग्निसेवन--संज्ञा पुं० [सं०] आग तापना।

अग्निस्तंभ--संज्ञा पुं० [सं० अग्निस्तंभ] १. अग्नि के प्रभाव को रोकने का कार्य। २ अग्निप्रभाव रोकनेवाले मंत्र। ३. अग्नि-प्रभाव-निरोधक चूर्ण या लेप [को०]।

अग्निस्तंभन--संज्ञा पुं० [सं० अग्निस्तम्भ] दे० 'अग्निस्तंभ' [को०]।

अग्निस्ताक--संज्ञा पुं० [सं०] स्फुलिंग। चिनगारी [को०]।

अग्निहोत्र--संज्ञा पुं० [सं०] वेदोक्त मंत्रों से अग्नि में आहुति देने की क्रिया। एक यज्ञ। उ०--जलने लगा निरंतर उनका अग्निहोत्र सागर के तीर।--कामायनी, पृ० ३१।

अग्निहोत्री¹--वि० संज्ञा पुं० [सं० अग्निहोत्रिन्] अग्निहोत्र करनेवाला। सबेरे संध्या अग्नि में वेदोक्त विधि से हवन करनेवाला। आहिताग्नि।

अग्निहोत्री²--संज्ञा स्त्री० यज्ञप्रयुक्त गाय [को०]।

अग्नीध्र--संज्ञा पुं० [सं०] १. यज्ञ में ऋत्विकविशेष जिसका काम अग्नि की रक्षा करना है। २ स्वायंभुव मनु के पुत्र एक राजा का नाम। ३ मनु के पुत्र राजा प्रियव्रत का बेटा। उ०--प्रियव्रत के अग्नीध्र सु भयौ।--सूर०, ५।२।४। दे० 'आग्नीध्र'।

अग्नीय --वि० [सं०] १. अग्नि का समीपवर्ती। २ अग्निसंबंधी। अग्नि का [को०]।

अग्न्यगार--संज्ञा पुं० [सं०] यज्ञाग्नि को रखने का स्थान। अग्निहोत्र का गृह [को०]

अग्न्यस्त्र--संज्ञा पुं० [सं० अग्नि + अस्त्र] १ मंत्र द्वारा फेंका जानेवाला अस्त्र जिससे आग निकले। अग्निघटित अस्त्र। आग्नेयास्त्र। २. वह अस्त्र जो आग से चलाया जाय, जैसे बंदूक।

अग्न्यागार--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अग्न्यगार' [को०]।

अग्न्याधान--संज्ञा पुं० [सं०] १. अग्नि की विधानपूर्वक स्थापना। २. अग्निहोत्र।

अग्न्यालय--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अग्न्यागार' [को०]।

अग्न्याशय--संज्ञा पुं० [सं०] जठराग्नि का स्थान। पक्वाशय।

अग्न्याहित--संज्ञा पुं० [सं०] अहिताग्नि। अग्निहोत्री [को०]।

अग्न्युत्पात--संज्ञा पुं० [सं०] १. आकाशीय अग्नि द्वारा उपद्रव।

विशेष--नक्षत्र, उल्का, वज्र या पत्थर, बिजली और तारा के रूप में यह पाँच प्रकार का होता है।

२. अग्निकांड। आग लगना [को०]।

अग्न्युत्सादी--वि० [सं०] जो अग्निहोत्र या यज्ञ की अग्नि को बुझ जाने देता है [को०]।

अग्न्युद्धार--संज्ञा पुं० [सं०] अरणिमंथन द्वारा आग उत्पन्न करने का कार्य [को०]।

अग्न्युपस्थान--संज्ञा पुं० [सं०] १. अग्नि की पूजा या प्रार्थना। २. अग्निपूजा में प्रयुक्त होनेवाले मंत्र [को०]।

अग्य(पु)†--वि० [सं० अज्ञ; पु० हिं० अग्य] राम बिरोधा बिजय चह सठ हठ बस अति अग्य ।--मानस, ६।८३ ।

अग्याँ(पु)†--संज्ञा स्त्री० [सं० आज्ञा; (पु)अग्याँ] दे० 'आज्ञा'। उ०--अग्याँ भई रिसान नरेसू ।--पदमावत, पृ० ४६३ ।

अग्याँन(पु)†--संज्ञा पुं० [सं० अज्ञान,(पु) अग्याँन, अगेयान] दे० 'अज्ञान'। उ०--जोबन गुन गर्वित सुनि सजनी तज्यो नाहि अग्याँन ।--पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० १४८ ।

अग्या(पु)--संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अग्याँ'। उ०--जो अग्या सामंत स्वामि दीनी सु मानि लिय ।--पृ० रा०, ३१।४८ ।

अग्याकारिनि(पु)--वि० स्त्री० [सं० आज्ञाकारिणी] आदेश माननेवाली। सेविका। उ०--हूँ तौ तिहारी अग्याकारिनि साँचि बात मोसौं कहा करौ महराज ।--नंद० ग्रं०, पृ० ३६८ ।

अग्यात(पु)--क्रि० वि० [सं० अज्ञात,(पु)अग्यात] दे० 'अज्ञात'।

अग्यान(पु)--वि० दे० [हिं०] 'अग्यांन'। उ०--मैं अग्यान अकुलाइ, अधिक लैं, जरत माँझ घृत नायौ ।--सूर०, १।१५४।

अग्यारी†--संज्ञा स्त्री० [सं० अग्नि + कारिका, प्रा० अग्गिआरिया = होमकर्म] १. अग्नि में धूप, गुड़ आदि सुगंध द्रव्य देने की क्रिया। धूपदान। २. अग्निकुंड ।

अग्यौन(पु)--संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अगवान' २। उ०--सुनि आवत चहुआँन, करिय अग्यौन सलष बर ।--पृ० रा०, १४।२२ ।

अग्र[1]--संज्ञा पुं० [सं०] १ आगे का भाग। अगला हिस्सा। आगा। उ०--बहुरि करि कोप हल अग्र पर वक्र धरि कटक को सकल चाहत डुबायो ।--सूर० (शब्द०)। २. सिरा। नोक उ०--जैसे जब के अग्र ओस कन प्राण रहत ऐसे अवधिहि के तट ।--सूर (शब्द०)। ३. स्मृति के अनुसार अन्न की भिक्षा का एक परिमाण जो मोर के ४८ अंडों के बराबर होता है। ४. शृंग। शिखर (को०)। ५. श्रेष्ठता। उत्कर्ष (को०)। ६. आलंबन। अवलंबन (को०)। ७. प्रारंभ। शुरुआत (को०)। ८. समूह। भड़ (को०)। ९. पल नाम की एक तौल (को०)। १०. अपने वर्ग या जाति का सर्वोत्तम पदार्थ (को०)। ११. सूर्य का घेरा या मंडल (को०)।

अग्र[2]--क्रि० वि० आगे। उ०--चली अग्र करि प्रिय सखि सोई। प्रीत पुरातन लखइ न कोई ।--तुलसी० (शब्द०)।

अग्र[3]--वि० १. अगला। प्रथम। २. श्रेष्ठ। उत्तम। ३. प्रधान। मुख्य। ४. अधिक। ज्यादा। [को०]।

अग्रकर--संज्ञा पुं० [सं०] १. हाथ का अगला भाग। २. हाथ की उँगलियाँ। ३. सूर्य की प्रथम किरण। प्रकाश [को०]।

अग्रकाय--संज्ञा पुं० [सं०] शरीर का अगला भाग [को०]।

अग्रग--संज्ञा पुं० [सं०] अगुआ। नेता [को०]।

अग्रगण्य--वि० [सं०] जिसकी गिनती पहले हो। प्रधान। मुखिया। श्रेष्ठ। बड़ा।

अग्रगामी[1]--संज्ञा पुं० [सं० अग्रगामिन्] वह जो आगे चले। प्रधान व्यक्ति। अग्रसर। अगुआ। नेता।

अग्रगामी[2]--वि० [स्त्री० अग्रगामिनी] आगे चलनेवाला। अगुआ। उ०--रहे सदा तुम तो अनुगामी, आज अग्रगामी न बनो।--साकेत, पृ० ३६६ ।

अग्रगामी दल--संज्ञा पुं० [सं०] [अँ० फारवर्ड ब्लाक] वह संस्था वा संघटन जिसकी स्थापना सुभाषचंद्र वसु ने कांग्रेस से संबंध-विच्छेद करने के बाद की।

अग्रजंघा--संज्ञा स्त्री० [सं० अग्रजङ्घा] जाँघ का अगला भाग [को०]।

अग्रज[1]--संज्ञा पुं० [सं०] १. जो भाई पहले जन्मा हो। बड़ा भाई। ज्येष्ठ भ्राता। अनुज का उलटा। उ०--अग्रज परतिग्या करी तुव उरु तोड़न हेत ।--भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ११४। २ (पु) नायक। नेता। अगुआ। उ०--सेना अग्रज हत्यो पंच भट अक्ष कुमारहि घाता।--रामस्वयंवर (शब्द०)। ३. ब्राह्मण।

अग्रज[2](पु)--वि० १. श्रेष्ठ। उत्तम। उ०--बैठे विशुद्ध गृह अग्रज अग्र जाई। देखी बसंत ऋतु सुंदर मोददाई।--केशव (शब्द०)। २ आगे पैदा होनेवाला। उ०--रोवत तें बरजे सबै मोहन अग्रज भाइ ।--सूर०, १०।५८६ ।

अग्रजन्मा--संज्ञा पुं० [सं०] १. बड़ा भाई। २. ब्राह्मण। ३. ब्रह्मा।

अग्रजा--संज्ञा स्त्री० [सं०] बड़ी बहन। उ०--प्रभु कहाँ, कहाँ किंतु अग्रजा, कि जिनके लिये था मुझे तजा ।--साकेत, पृ० ३१२।

अग्रजात--संज्ञा पुं० [सं०] १. ब्राह्मण। २. बड़ा भाई (को०)।

अग्रजातक--संज्ञा पुं० [सं०] ब्राह्मण [को०]।

अग्रजाति--संज्ञा पुं० [सं०] अग्रजातक। ब्राह्मण [को०]।

अग्रजिह्वा--संज्ञा स्त्री० [सं०] जीभ का अगला भाग [को०]।

अग्रणी--वि० [सं०] अगुआ। श्रेष्ठ। प्रधान। मुखिया।

अग्रणी[2]--संज्ञा पुं० १. प्रधान पुरुष। मुखिया। अगुआ। २. वह्नि। अग्नि [को०]।

अग्रतः--क्रि० वि० [सं०] आगे से। पहले से।

अग्रदानी--संज्ञा पुं० [सं०] वह पतित ब्राह्मण जो प्रेत या मृतक के निमित्त दिए हुए तिल आदि के दान को ग्रहण करे।

अग्रदूत--संज्ञा पुं० [सं०] वह दूत जो किसी के आने की सूचना आनेवाले व्यक्ति के पूर्व ही पहुँचकर दे। उ०--मैं ही वसंत का अग्रदूत ।--अपरा, पृ० २६।

अग्रनख--संज्ञा पुं० [सं०] नख का अगला भाग [को०]।

अग्रनिरूपण--संज्ञा पुं० [सं०] भविष्य या भावी का कथन [को०]।

अग्रनी(पु)--वि० [हिं०] दे० 'अग्रणी'। उ०--बीटन को नायक सहायक बरूथिनी को अनुज बिराग वर अग्रनी बनायो है ।--दीन० ग्रं०, पृ० १३४

अग्रपर्णी--संज्ञा स्त्री० [सं०] अजलोमा। केवाँच [को०]।

अग्रपा--वि० [सं०] सबसे प्रथम पानेवाला [को०]।

अग्रपाद--संज्ञा पुं० [सं०] पैर का अगला हिस्सा। अँगूठा [को०]।

अग्रपूजा--संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सबसे पहले पूजन। सर्वप्रथम अर्चना। २. सबसे अधिक पूज्यता या मान्यता [को०]।

अग्रबीज[1]--संज्ञा पुं० [सं०] १. वह वृक्ष जिसकी डाल काटकर लगाने से लग जाय। पेड़ जिसकी कलम लगे। २. कलम।

अग्रबीज[2]--वि० कलम से होनेवाला [को०]।

अग्रभाग--संज्ञा पुं० [सं०] १. आगे का भाग। अगला हिस्सा। २. सिरा। नोक। छोर। ३. श्राद्ध आदि में पहले दिया जानेवाला द्रव्य [को०]। ४. शेष अंश या भाग [को०]।

अग्रभागी--वि० [सं०] सर्वप्रथम हिस्सा या भाग पानेवाला [को०]।

अग्रभुक्--वि० [सं०] १ देवपितर को अर्पण किए बिना पहले स्वयम् खानेवाला। २. पेटू। औदरिक। ३. सबसे पहले भोजन करने वाला [को०]।

अग्रभू--संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अग्रभूमि' [को०]।

अग्रभूमि--संज्ञा स्त्री० [सं०] १. घर की छत। पाटन। २. लक्ष्य या प्राप्य स्थान [को०]।

अग्रमहिषी--संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रधान रानी। पटरानी [को०]।

अग्रमांस--संज्ञा पुं० [सं०] १. उदर के भीतर मांसवृद्धि का एक रोग। २. हृदय [को०]।

अग्रमुख--संज्ञा पुं० [सं०] मुख का अग्रभाग। मुखाग्र [को०]।

अग्रयान¹--संज्ञा पुं० [सं०] १. सेना का आगे बढ़ना। सेना का पहला धावा। २. आगे बढ़ती हुई सेना। धावा करती हुई फौज।

अग्रयान²--वि० अग्रगामी। अगुआ [को०]।

अग्रयायी--संज्ञा पुं० [सं० अग्रयायिन्] १. अगुआ। अग्रसर। २. प्रधान। श्रेष्ठ [को०]।

अग्रयोधी--संज्ञा पुं० [सं०] १. आगे बढ़कर युद्ध करनेवाला वीर। २. प्रधान योद्धा। प्रमुख वीर [को०]।

अग्रलेख--संज्ञा पुं० [सं० अग्र + लेख] दैनिक और साप्ताहिक समाचार पत्रों में संपादकीय स्तंभ के अंतर्गत संपादक द्वारा लिखित प्रमुख लेख। उ०--'जीवन चरित लिख अग्रलेख अथवा छापते विशाल चित्र'।--अपरा, पृ० ६३।

विशेष--यह शब्द अंग्रेजी के 'लीडिंग आर्टिकल' का अनुवाद है।

अग्रलोहिता--संज्ञा स्त्री० [सं०] चिल्ली या बथुआ नामक शाक [को०]।

अग्रवक्त्र--संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत में वर्णित चीरफाड़ का एक यंत्र।

अग्रवर(पु)--क्रि० वि० [सं० अग्र + पर, प्रा० वर] आगे। पहले। उ०--उमड़ि अग्रवर पैयर दिन्हुउ, जिय हठि प्रथम जुद्ध व्रत लिन्हुउ।--हिम्मत०, पृ० ६५७।

अग्रवर्ती--वि० [सं० अग्रवर्तिन्] आगे रहनेवाला। अगुआ।

अग्रवात--संज्ञा पुं० [सं०] स्वच्छ एवं ताजा वायु [को०]।

अग्रवान्--वि० [सं०] सबसे आगे या श्रेष्ठ [को०]।

अग्रवाल--संज्ञा पुं० [हिं०] अगरवाला।

अग्रशः--क्रि० वि० [सं०] आगे से ही। पहले से ही। शुरू से ही [को०]।

अग्रशाला--संज्ञा स्त्री० [सं०] निवास का अगला भाग। ओसारी [को०]।

अग्रशोची--संज्ञा पुं० [सं०] आगे से विचार करनेवाला। दूरदर्शी। दूरंदेश, जैसे--'अग्रशोची सदा सुखी' (शब्द०)।

अग्रशोभा--संज्ञा स्त्री० [सं०] उत्कृष्ट सौंदर्य। अपूर्व शोभा [को०]।

अग्रसख्या--संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रथम स्थान या श्रेणी [को०]।

अग्रसंधानी--संज्ञा स्त्री० [सं०] यमराज की एक पुस्तिका या पंजिका जिसमें प्राणिवर्ग का शुभाशुभ लिखा रहता है [को०]।

अग्रसंध्या--संज्ञा स्त्री० [सं०] १. प्रातःकाल। प्रभात। ऊषाकाल। २. सायंकाल का पूर्ववर्ती समय [को०]।

अग्रसर¹--संज्ञा पुं० [सं०] १. आगे जानेवाला व्यक्ति। अग्रगामी। अगुआ। २. आरंभ करनेवाला। पहले पहले करनेवाला व्यक्ति। ३. मुखिया। प्रधान व्यक्ति।

क्रि० प्र०--होना = आगे बढ़ना। उ०--हुए अग्रसर उसी मार्ग से छुटे तीर से फिर वे।--कामायनी, पृ० १०६।

अग्रसर²--वि० १. जो आगे जाय। अगुआ। २. जो आरंभ करे। ३. प्रधान। मुख्य। उ०--अग्रसर हो रही यहाँ फूट, बाधाएँ कृत्रिम रहीं टूट।--कामायनी, पृ० २३६।

अग्रसारण--संज्ञा पुं० [सं० अग्रसर] १. आगे बढ़ाना। किसी का आवेदनपत्र आदि आगेवाले अधिकारी के पास भेजने का कार्य।

अग्रसारा--संज्ञा स्त्री० [सं०] १ बिना फल या पत्ते की टहनी। २. अनंत संख्याओं की गिनती करने का एक सरल तरीका [को०]।

अग्रसारित--वि० [सं० अग्रसर] आगे बढ़ाया हुआ।

अग्रसूची--संज्ञा स्त्री० [सं०] सूई का अगला भाग या हिस्सा। सूच्यग्र [को०]।

अग्रसोची--संज्ञा पुं० [सं० अग्र + हिं० सोचना] आगे से विचार करनेवाली प्राणी। दूरंदेश। दूरदर्शी। उ०--पहले कुछ आटे की कमी मालूम हुई किंतु अग्रसोची सदा सुखी।--किन्नर०, पृ० ७७।

अग्रस्थान--संज्ञा पुं० [सं०] शीर्षस्थान। प्रथम स्थान या मूर्धन्य स्थान [को०]।

अग्रह--संज्ञा पुं० [सं०] १. गार्हस्थ को न धारण करनेवाला पुरुष। २. वानप्रस्थ। ३. ज्ञानशून्य (को०)। ४. गृहशून्य या गृहहीन व्यक्ति (को०)।

अग्रहर--वि० [सं०] (वस्तु या पदार्थ) जो पहले दिया जाय। सर्वप्रथम दी जाने योग्य [को०]।

अग्रहस्त--संज्ञा पुं० [सं०] १. दे० 'अग्रकर'। २. हाथी के सूँड़ का अगला सिरा या नोक [को०]।

अग्रहायण--संज्ञा पुं० [सं०] वर्ष का अगला या पहला महीना। अगहन। मार्गशीर्ष।

विशेष--प्राचीन वैदिक क्रम के अनुसार वर्ष का आरंभ अगहन से माना जाता था। यह प्रथा अब तक भी गुजरात आदि देशों में है। पर उत्तरीय भारत में वर्ष का आरंभ चैत्र मास से लेने के कारण यह नवाँ पड़ता है।

अग्रहार--संज्ञा पुं० [सं०] १. राजा की ओर से ब्राह्मण को योगक्षेम के लिये किया हुआ भूमि का दान। २. वह गाँव या भूमि जो किसी ब्राह्मण को माफी दी जाय। ३. ब्राह्मण को देने के लिये कृषि की पैदावार से निकाला या अलग किया हुआ अन्न (को०)।

अग्रहारिक--संज्ञा पुं० [सं०] अग्रहार का निरीक्षक अधिकारी [को०]।

अग्रांश--संज्ञा पुं० [सं० अग्र + अंश] १. आगे का भाग। २. चंद्रमा का वह भाग जो पृथ्वी पर से सदैव नहीं दिखाई पड़ता वरन् कभी कभी चंद्रमा की अनियमित गति या कंप से दिखाई पड़ जाता है।

विशेष--चंद्रमा में यह विलक्षणता है कि उसका प्रायः एक नियत भाग ही सदैव पृथ्वी की ओर रहता है। केवल कभी कभी वह कुछ काल के लिये हिल जाता है जिससे उसका कुछ और भाग भी दिखाई पड़ जाता है।

अग्रांशु--संज्ञा पुं० [सं०] किरण का संघात केंद्र [को०]।

अग्राक्षण--संज्ञा पुं० [सं०] अपांगवीक्षण [को०]।

अग्राक्षि--संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अग्राक्षण' [को०]।

अग्राज--संज्ञा स्त्री० [सं० आ + गर्जन्] गर्जना। उ०--अंबर की अग्राज सूं, केहर खीज करंत।--बाँकी० ग्रं०, भा० १, पृ० १०।

अग्राणीक--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अग्रानीक' [को०]।

अग्रान‡--संज्ञा पुं० [देश०] ऊबने की स्थिति या भाव। हैरान। उ०--जिन्हें सुनते सुनते मैं इतना अग्रान हो गया कि वहाँ बैठना कठिन प्रतीत होने लगा।--प्रेमघन०, भा० २, पृ० १४६।

क्रि० प्र०--करना।--होना।

अग्रानीक--संज्ञा पुं० [सं०] सेना का आगे जानेवाला भाग [को०]।

अग्राम्य--वि० [सं०] १. जो गाँव का न हो। नगर का। शहरी। २. सुसंस्कृत। सभ्य ३. जो पाला पोसा न हो। जंगली [को०]।

अग्राशन--संज्ञा पुं० [सं०] भोजन का वह अंश जो देवता के लिये पहले निकाल दिया जाता है। यह अग्राशन पशुओं और सन्यासियों को दिया जाता है।

अग्रासन--संज्ञा पुं० [सं०] प्रधान आसन। मुख्य स्थान। सबसे आगे का या मानपूर्ण आसन।

अग्राह्य--वि० [सं०] १. न ग्रहण करने योग्य। अग्रहणीय। धारण करने के अयोग्य। २. न लेने लायक। ३. त्याज्य। छोड़ने लायक। ४ न मानने योग्य। अविचारणीय (को०)। ५. विश्वास के अयोग्य। अविश्वसनीय (को०)।

अग्राह्या--संज्ञा स्त्री० [सं०] शौचादि के कार्य में प्रयुक्त न होनेवाली मृत्तिका [को०]।

अग्रिम१--वि० [सं०] १ अगाऊ। पेशगी। २. आगे आनेवाला। आगामी। उ०--यही बात अग्रिम सूत्रों से सिद्ध करेंगे।--हरिश्चंद्र (शब्द०)। ३. प्रधान। श्रेष्ठ। उत्तम। ४ सर्वश्रेष्ठ। सबसे बड़ा (को०)। ५. अगला। आगे का (को०)।

अग्रिम२--संज्ञा पुं० बड़ा भाई। अग्रज।

अग्रिमा--संज्ञा स्त्री० [सं०] ग्रीष्मजा। लोषा या रामफल [को०]।

अग्रिय१--वि० [सं०] १. पहले उत्पन्न। पहले होनेवाला। २. श्रेष्ठ। उत्तम [को०]।

अग्रिय२--संज्ञा पुं० १. बड़ा भाई। २. पहला फल। ३. सर्वोत्तम भाग [को०]।

अग्रीय१--वि० [सं०] दे० 'अग्रिय१' [को०]।

अग्रीय२--संज्ञा पुं० दे० 'अग्रिय२' [को०]।

अग्रु--संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० अग्रू] वह व्यक्ति जिसका विवाह न हुआ हो। कुँवारा आदमी [को०]।

अग्रे--क्रि० वि० [सं०] १. आगे। पहले। २. पहले से। आगे से [को०]।

अग्रेणी--संज्ञा पुं० [सं०] नेता। अगुआ। [को०]।

अग्रेदिधिषु१--संज्ञा पुं० [सं०] ऐसी स्त्री से विवाह करनेवाला पुरुष जो पहले किसी और को ब्याही रही हो।

अग्रेदिधिषु२--संज्ञा स्त्री० वह कन्या जिसका विवाह उसकी बड़ी बहिन के पहले हो जाय।

अग्रेसर--वि० [सं०] दे० 'अग्रसर' [को०]।

अग्रेसरिक--संज्ञा पुं० [सं०] १. नेता। अगुआ। २. अपने मालिक के आगे आगे जानेवाला सेवक [को०]।

अग्रेसुर--संज्ञा पुं० [सं० अग्र + ईश्वर] देवताओं में अग्रणी या प्रथम पूज्य गणेश। उ०--संभरि तिण पाछै अग्रेसुर दया कृपा कर श्री लंबोदर।--राज०, पृ० ४।

अग्र्य१--वि० [सं०] १ प्रधान। श्रेष्ठ। २ अगला। ३. कुशल [को०]।

अग्र्य२--संज्ञा पुं० १. बड़ा भाई। २ सबसे बड़ा भाई (को०)। ३. सब वेदों को अनन्यमन होकर एकरस पढ़ने में समर्थ ब्राह्मण, जो श्रद्धा के साधकों में गिना गया हो। ४. छत। पाटन (को०)।

अघंनिका--वि० [सं० अघ] पापयुक्ता। पापिनी। उ०--प्रसिद्ध हों अघंनिका --भिखारी० ग्रं० भा० १, पृ० १८।

अघ१--वि० [सं०] १. पापात्मा। २. बुरा। बदमाश। ३ दोषी। दुष्कर्मी [को०]।

अघ२--संज्ञा पुं० १ पाप। पातक। अधर्म। उ०--सुनि अघ नरकहु नाक सिकोरी।--मानस, १।२६। २. दोष। गुनाह दुष्कर्म। उ०--जेहिं अघ बधेउ व्याध जिमि बाली।--मानस, १।२६। ३. दुःख विपत्ति। उ०--बरखि बिस्व हरषित करत हरत ताप अघ प्यास।--तुलसी ग्रं०, पृ० १३४। ४ व्यसन। ५ अशौच (को०)। ६. मथुरा के राजा कंस का सेनापति अघासुर जिसे कृष्ण ने मारा था।

अघओघ--संज्ञा पुं० [सं० अघौघ] पातकसमूह। पापराशि। उ०--सिय निंदक अघओघ नसाए। लोक बिसोक बनाइ बसाए।--मानस १।१६।

अघकृच्छ्र--संज्ञा पुं० [सं०] एक व्रत जो प्रायश्चित्त के रूप में किया जाता है। अघमर्षण कृच्छ्र [को०]।

अघकृत्--वि० [सं०] पातकी। पाप करनेवाला [को०]।

अघघ्न१--वि० [सं०] अघ या पाप का विनाशक [को०]।

अघघ्न२--संज्ञा पुं० विष्णु [को०]।

अघट१--वि० [सं० अ = नहीं + घट् = होना] १. जो कार्य में परिणत न हो सके। जो घटित न हो। न होने योग्य। उ०--अघट घटना सुघट, सुघट विघटन बिकट, भूमि, पाताल, जल, गगन गंता।--तुलसी ग्रं०, पृ० ४६७। २. दुर्घट। कठिन। ३. (पु) जो ठीक न घटे। जो ठीक न उतरे। अनुपयुक्त। बेमेल। अयोग्य। उ०--भूषण पट पहिरे विपरीता। कोउ अँग अघट कोउ अँग रीता।--विश्रामसागर (शब्द०)।

अघट२--वि० [सं० अ = नहीं + घट् = हिंसा] १. जो न घटे। जो कम न हो। न चुकने योग्य। अक्षय। उ०--माटी मिलै न गगन बिलाई। अघट एकरस रहा न जाई।--दादू०, पृ० ५७३। २. जो समभाव रहे। एकरस स्थिर। उ०--(क) कबिरा यह

गति अटपटी, चटपट लखी न जाय। जो मन की खटपट मिटै, अघट भए ठहराय।—कबीर (शब्द०)। (ख) जहँ तहँ मुनिवर निज मर्यादा थापी अघट अपार।—सूर० (शब्द०)। ३. पूरा। पूर्ण। उ०—सूर स्याम सुजान सुकिया अघट उपमा दाव।—सा० लहरी, पृ० १।

अघटन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अ + हिं० घटना] कम न होना। न घटना। कम न होने का भाव।

अघटित[1]—वि० [सं०] १. जो घटित न हुआ हो। जो हुआ न हो। उ०—पाकर पुत्रों में प्रेम अटल अघटित सा।—साकेत, पृ० २२६। २. जिसके होने की संभावना न हो। न होने योग्य। असंभव। कठिन। उ०—हरि माया बस जगत भ्रमाहीं। तिन्हहिं कहत कछु अघटित नाहीं।—तुलसी (शब्द०)। ३ (पु) अयोग्य। अनुचित। अनुपयुक्त। नामुनासिब। उ०—रसना स्वाद सिथिल लंपट ह्वै अघटित भोजन करतो।—सूर०, १।२०३।

अघटित[2](पु)—वि० [सं० अ + घटित] अवश्य होनेवाला। अमिट। अनिवार्य। उ०—जनि मानहु हिय हानि गलानी। काल करम गति अघटित जानी।—तुलसी (शब्द०)।

अघटित[3](पु)—वि० [हिं० अघट] न घटने योग्य। बहुत अधिक। उ०—अघटित सोभा यदपि तदपि मनि घटित बिराजत।—गि० दा० (शब्द०)।

अघटितघटनापटीयसी—वि० [सं०] जो कभी न हुआ हो उसे भी करने में पटु या चतुर। माया का विशेषण [को०]।

अघट्ट(पु)—वि० [सं० अघट्य] जो न घटे या न चुके। अक्षय। उ०—दीपक दीन्हा तेल भरि बाती दई अघट्ट। कबीर सा० सं०, भा० १, पृ० ६।

अघड़(पु)—वि० [सं० अ = नहीं + घट, प्रा० घड़, हिं० घड़] जो गढ़ा न जा सके। निर्माण के अयोग्य। उ०—अघड़ घड़ावै उलटे चाकि।—प्राण०, पृ० १७०।

अघन—वि० [सं०] १. जो घना या ठोस न हो। तरल। २. जो अशिथिल और अविरल न हो [को०]।

अघनाशक—संज्ञा पुं० वि० [सं०] दे० 'अघघ्न' [को०]।

अघनाशन[1]—संज्ञा पुं० [सं०] वह जो अघ का नाश करे। विष्णु [को०]।

अघनाशन[2]—वि० पापों का नाश करनेवाला [को०]।

अघनासी(पु)—वि० स्त्री० [सं० अघ + नाशिन्] पाप का नाश करनेवाली। पापनाशिनी। उ०—बासी, अबिनासी अघनासी ऐसी कासी है।—भारतेंदु ग्रं० भा० १, पृ० २८२।

अघभोजी—वि० [सं० अघभोजिन्] १. देवपितर आदि के लिये न बनाकर अपने ही लिये बनाने और खानेवाला। २. पाप की कमाई खानेवाला [को०]।

अघमरषण(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अघमर्षण] दे० 'अघमर्षण'। उ०—बाढ़ै पुन्य ओघ अघमरषण आखरनि, मतिराम करत जगत जप नाम को।—मतिराम ग्रं०, पृ० ४१२।

अघमर्षण[1]—वि० [सं०] पापनाशक।

अघमर्षण[2]—संज्ञा पुं० १. ऋग्वेद का एक सूक्त जिसका उच्चारण संध्यावंदन के समय द्विज पाप की निवृत्ति के लिये करते हैं। २. मंत्र द्वारा हाथ में जल लेकर नासिका से छुलाकर विसर्जन करने की पापनाशिनी क्रिया।

अघमर्षणकृच्छ्र—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का कठिन व्रत जो प्रायश्चित्त रूप में किया जाता था।

विशेष—इसमें तीन दिन तक कुछ न खाने, त्रिकाल स्नान करने और पानी में डूबकर अघमर्षण मंत्र जपने का विधान है :—(स्मृति)।

अघमार—वि० [सं०] पापों का नाश करनेवाला [को०]।

अघरूप—संज्ञा पुं० [सं० अघ + रूप] पापरूप। महापातकी। उ०—तदपि महीसुर स्राप बस भए सकल अघरूप।—मानस, १।१७६।

अघर्म—वि० [सं०] उष्णतारहित। शीतल [को०]।

अघर्मांशु—संज्ञा पुं० [सं०] हिमांशु। चंद्रमा [को०]।

अघल—वि० [सं०] पाप का नाश करनेवाला [को०]।

अघवान्—वि० [सं०] पापी। अघी।

अघवाना—क्रि० स० [हिं० अघाना का प्रे०] १. भरपेट खिलाना। भोजन से तृप्त करना। छकाना। २. संतुष्ट करना। मन भरना। उ०—कीनो घमसान समसान फर मंडल मैं घाइनु अघाइ अघवाए वीर वास मैं।—सुजान०, पृ० १३।

अघविष—संज्ञा पुं० [सं०] बहुत तीव्र विषवाला साँप [को०]।

अघशंस—संज्ञा पुं० [सं०] १. दुष्कर्म या पाप कहनेवाला व्यक्ति। २ दुष्कर्म की इच्छा करनेवाला व्यक्ति, जैसे चोर। ३. बुरा व्यक्ति [को०]।

अघशंसी—वि० [सं०] बुराई या पाप की वार्ता करनेवाला [को०]।

अघहर—वि० [सं० अघ + हर] पापों को हरण करनेवाला। पाप को नष्ट करनेवाला। उ०—सत्यासक्त दयाल द्विज प्रिय अघहर सुखकंद।—भारतेंदु ग्रं०, पृ० २५०।

अघहरन(पु)—वि० [सं०] अघहरण दे० 'अघहर'। उ०—अति प्रताप महिमा समाज जस, सोक, ताप, अघहरन।—नंद० ग्रं०, पृ० ३२६।

अघहार—संज्ञा पुं० सं० १. कुख्यात डाकू या लुटेरा। २. अपराध विषयक अपवाद या अफवाह [को०]।

अघाँवरी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० अघाना] तृप्त होना। संतुष्ट होना। उ०—कवि ठाकुर नैन सो नैन लगे अब प्रेम सों क्यों न अघाँवरी री।—ठाकुर श०, पृ० १८।

अघा(पु)—संज्ञा पुं० हिं० दे० 'अघासुर'। उ०—बीतैं वर्ष कहत सब ग्वाला। आज अघा मारयो नँदलाला।—ब्रज०, पृ० १३३।

अघा—संज्ञा स्त्री० सं० पाप की देवी। पाप की अधिष्ठात्री देवी को०।

अघाउ(पु)†—संज्ञा पुं० [प्रा० अग्घव = पूरा करना] संतुष्ट या तृप्त होने का भाव। संतोष। तृप्ति। उ०—भरत सभा सनमानि सराहत होत न हृदय अघाउ।—तुलसी ग्रं०, पृ० ५०६।

अघाट—संज्ञा पुं० [देश०] वह भूमि जिसे बेचने या अलग करने का अधिकार उसके स्वामी को न हो। अगहाट।

अघात[1]—संज्ञा पुं० [सं०] क्षति या घात का अभाव को०।

अघात[2] ⓟ—संज्ञा पुं० [सं० आघात] चोट। मार। प्रहार। उ०—बूँद अघात सहहिं गिरि कैसे।—मानस, ४।१४।

अघात[3]—वि० [हिं० अघाना] पेट भर। खूब। ज्यादा। अधिक। बहुत। उ०—तब उन माँगी इन नहिं दीन्हीं बाढ़चो बैर अघात।—सूर० (शब्द०)।

अघाती—वि० [सं०] घात या क्षति न करनेवाला [को०]।

अघाना[1]—क्रि० अ० [सं० आघ्राण] १. भोजन या पान से तृप्त होना। पेट भर खाना या पीना। छकना। अफरना। उ०—पुरुष को भोग लगाय सखा मिलि पाइए। जुग जुग छुधा बुझाइ तो पाइ अघाइए।—कबीर (शब्द०)।

विशेष—सं० आ + घ्रा' का अर्थ अच्छी तरह सूँघना है। यहाँ 'सुगंधि सूँघकर तृप्त होना' लाक्षणिक अर्थ धीरे धीरे अर्थ-विस्तारण प्रक्रिया से 'अघाना' का अर्थ देने लगा।

२. संतुष्ट होना। तृप्त होना। मन का भरना। इच्छा का पूर्ण होना। उ०—नखसिख रुचिर बिंदु माधव छबि निरखहि नयन अघाई।—तुलसी ग्रं०, पृ० ४६१। ३. प्रसन्न होना। हर्ष से परिपूर्ण होना। उ०—ख्याल दली ताड़का देखि ऋषि देत असीस अघाई।—तुलसी ग्रं०, पृ० २६६। ४. ⓟ थकना। ऊबना। उ०—प्रभु बचनामृत सुनि न अघाऊँ। मानस, ७।८८। ५. ⓟ पूर्णता को पहुँचना। उ०—सो पछिताइ अघाइ उर अवसि होइ हित हानि।—मानस २।६३।

अघाना[2]—क्रि० सं० संतुष्ट करना। तृप्त करना। उ०—परै भहराइ भभकंत रिपु घाइ सौं करि कदन रुधिर भैरों अघाऊ।—सूर०, १।१२६।

अघायु—वि० सं० १. हिंसानिरत। २. दूसरे की अहितकामना करने वाला। पापमय जीवन व्यतीत करनेवाला। ३. सभी अवस्थाओं में पापकर्म करनेवाला [को०]।

अघारी[1]—वि० [सं० अघारिन्] व्यसन या दुःख से युक्त [को०]।

अघारी[2]—संज्ञा पुं० [सं० अघ + अरि] १. पाप का शत्रु। पापनाशक। पाप दूर करनेवाला। उ०—तुम्हरेइ भजन प्रभाव अघारी।—मानस, ३।७। २. अघ नामक दैत्य को मारनेवाले श्रीकृष्ण या विष्णु।

अघालⓟ—वि० [सं० अघालु] पापी। दुष्कर्मी। उ०—साखी कंध कुल्हाड़ अघाल मतक दुनियाँ भार। गरीबदास शाह यों कहे बखशो अबकी बार।—कबीर मं०, पृ० १२७।

अघाव†—संज्ञा पुं० हिं० अघाना] अघाने की स्थिति या भाव।

अघावर†—संज्ञा पुं० [हिं० अघा + वर (प्रत्य०)] १. अघाने या पूर्ण तृप्त होने की स्थिति या भाव। २. ऊब।

अघासुर—संज्ञा पुं० [सं०] कंस का सेनापति अघ नामक दैत्य जिसे श्रीकृष्ण ने मारा था।

अघी—वि० [सं०] पापी। पातकी। कुकर्मी। उ०—कूर, कुजाति, कपूत, अघी सबकी सुधरै जो करै नर पूजो।—तुलसी (शब्द०)।

अघेरन‡—संज्ञा पुं० [देश०] जौ का मोटा आटा।

अघोर[1]—वि० [सं०] १. जो भीषण या भयंकर न हो (को०)। २. सौम्य। प्रियदर्शन। सुहावना।—उ०—'तब श्रीकृष्ण ने अघोर बंसी बजाई'।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ४८३।

अघोर[2]—वि० [सं० घोर] १. घोर। कठिन। कठोर। उ०—खैंचो राम धनुष चढ़ो जबहीं। महा अघोर शब्द भयो तबहीं।—कबीर सा०, पृ० ३७। २. भयंकर। भयानक। उ०—दर्ब हरहिं पर सोक न हरहीं। सो गुरु नर्क अघोरहि परहीं।—सं० दरिया, पृ० ७।

अघोर[3]—संज्ञा पुं० [सं०] १. शिव का नाम या एक रूप। २. एक पंथ या संप्रदाय।

विशेष—इसके अनुयायी न केवल मद्य मांस का व्यवहार अत्यधिक करते हैं, वरन् वे नरमांस, मल मूत्र आदि तक से घिन नहीं करते। कीनाराम इस संप्रदाय के बड़े प्रसिद्ध पुरुष हुए हैं।

३. अघोर पंथ का उपासक। अघोरी। उ०—मति के कठोर मानि धरम को तौर करैं, करम अघोर डरैं परम अघोर को।—भिखारी ग्रं०, भा० २, पृ० ३४।

अघोरघोररूप—संज्ञा पुं० [सं०] शिव का एक नाम [को०]।

अघोरनाथ—संज्ञा पुं० [सं०] भूतनाथ। शिव।

अघोरपंथ—संज्ञा पुं० [सं० अघोर + पंथ] अघोरियों का पंथ या संप्रदाय वि० दे० 'अघोरमार्ग'।

अघोरपंथी—संज्ञा पुं० [सं० अघोरपंथी] अघोर मत का अनुयायी। अघोरी। औघड़।

अघोरपथ—संज्ञा पुं० [सं०] शिव का उपासक एक संप्रदाय [को०]।

अघोरप्रमाण—संज्ञा पुं० [सं०] भयंकर परीक्षा या शपथ [को०]।

अघोरमार्ग—संज्ञा पुं० [सं०] अघोर मतावलंबियों की साधना का ढंग। अघोरियों का साधन मार्ग। उ०—सारूप्य मुक्ति सो तब पावै, अघोरमार्ग को जो कोई ध्यावै।—कबीर सा०, पृ० ९०५।

विशेष—अघोरमार्ग में शिव की अघोरीश्वर रूप में उपासना होती है। श्मशानसाधन, शवसाधन, मंत्रसाधन, पंचमकार सेवन, चितभस्म और रुद्राक्षधारण आदि इस मार्ग में विहित हैं। तांत्रिक वीराचारियों से इनके आचार विचार मिलते हैं।

अघोरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] भाद्र कृष्ण चतुर्दशी। भादों बदी चौदस।

विशेष—इस तिथि को शिवपूजन का विशेष महत्व है।

अघोरी[1]—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० अघोरिन्] १. अघोर मत का अनुयायी। अघोर पंथ पर चलनेवाला साधक जो मद्य मांस के सिवाय मल, मूत्र, शव आदि घिनौनी वस्तुओं को भी खा जाता है और अपना वेश भी भयंकर और घिनौना बनाए रहता है। औघड़। कीनारामी। २. घिनौनी वस्तुओं का व्यवहार करनेवाला व्यक्ति। भक्ष्याभक्ष्य का विचार न करनेवाला। सर्वभक्षी। घृणित व्यक्ति।

अघोरी[2]—वि० जो घिनौनी वस्तुओं का व्यवहार करे। घृणित। घिनौना। उ०—बन्यौ धर्म आपहिं तुम हित चंडाल अघोरी।—रत्नाकर, भा० १, पृ० ९२।

अघोष[1]—वि० [सं०] १. शब्दरहित। नीरव। २. अल्पध्वनि युक्त। ३. ग्वाल या अहीरों से रहित।

अघोष[2]—संज्ञा पुं० १. व्याकरण में एक वर्णसमूह का नाम।

विशेष—इसमें प्रत्येक वर्ग का पहला और दूसरा अक्षर तथा श, ष, स भी हैं, यथा—क, ख, च, छ, ट, ठ, त, थ, प, फ, श, ष, स।

२. तेरह की संख्या का सूचक शब्द क्योंकि अघोष वर्ण १३ होते हैं [को०]।

अघोषित—वि० [सं०] बिना कहा या घोषणा किया हुआ।

अघोषितयुद्ध--संज्ञा पुं॰ [सं॰] दो राज्यों का वह सशस्त्र संघर्ष या युद्ध जिसमें कोई भी राज्य संघर्ष की पूर्वसूचना अथवा नियमित घोषणा नहीं करते।

अघौघ--संज्ञा पुं॰ [सं॰] पापों का समूह। पाप का ढेर। उ॰--पावस समय कछु अवध बरनत सुनि अघौघ नसावहीं।--तुलसी ग्रं॰, पृ॰ ४१६।

अघ्न्य¹--संज्ञा पुं॰ [सं॰] १. ब्रह्मा। २. बलीबर्द। साँड [को॰]।

अघ्न्य²--वि॰ न हनने या मारने के योग्य।

अघ्न्या--संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] गौ। गाय [को॰]।

अघ्रान(पु)--संज्ञा पुं॰ [सं॰ आघ्राण] १. गंध लेने की क्रिया या भाव। सूँघने का कार्य। गंधग्रहण। २. गंध। महक। अरघान। उ॰--नर अघ्रान तहाँ तिन्ह लागी। संत सुकृत बोले अनुरागी।--कबीर सा॰, पृ॰ ६७।

अघ्रानना(पु)--क्रि॰ स॰ [सं॰ आघ्राण] आघ्राण करना। महँक लेना। सूँघना। उ॰--असंख रवि जहाँ, कोटि दामिनि, पुहुप सेज अघ्रानियाँ।--कबीर (शब्द॰)।

अघ्रेय¹--वि॰ [सं॰] न सूँघने योग्य।

अघ्रेय²--संज्ञा पुं॰ मद्य। शराब [को॰]।

अचंचल--वि॰ [सं॰ अचञ्चल] [स्त्री॰ अचंचला, संज्ञा अचंचलता] १ जो चंचल न हो। चंचलतारहित। स्थिर। ठहरा हुआ। उ॰--भए विलोचन चारु अचंचल।--तुलसी (शब्द॰)। २. धीर। गंभीर।

अचंचलता--संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ अचञ्चलता] १. स्थिरता। ठहराव। २. धीरता। गंभीरता।

अचंड--वि॰ [सं॰ अचण्ड] [स्त्री॰ अचंडी] जो चंड न हो। उग्रता रहित। शांत। सुशील। सौम्य।

अचंडी--संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ अचण्डी] १. सीधी गाय। शांत गौ। २. अकोपना स्त्री [को॰]।

अचंती(पु)--वि॰ [सं॰ अचिन्तित, प्रा॰ अचिंतिय, अचिंतिइ] अतर्कित। आकस्मिक। उ॰--का, प्री, रांगा, प्राँण करि, काँइ अचंती हांण।--ढोला दू॰ ६२७।

अचंद्र--वि॰ [सं॰ अचन्द्र] चंद्रमा से रहित। बिना चाँद का [को॰]।

अचंभम(पु)†--संज्ञा पुं॰ [हिं॰] दे॰ 'अचंभव'। उ॰--हुअ धरा नरां नर हैमरां, उरध अचंभम अम्मरां।--रा॰ रू॰, पृ॰ २५।

अचंभव(पु)--संज्ञा पुं॰ [सं॰ अत्यद्भुत, प्रा॰ अच्चब्भुअ, अचंभव] अचंभा। आश्चर्य। विस्मय। तअज्जुब। उ॰--अगम अगोचर समुझि परै नहिं भयो अचंभव भारी।--कबीर (शब्द॰)।

अचंभा--संज्ञा पुं॰ [सं॰ अत्यद्भुत, प्रा॰ अच्चब्भुअ] १. आश्चर्य। अचरज। विस्मय। तअज्जुब। २. विस्मय उत्पन्न करनेवाली बात। उ॰--एक अचंभा देखा रे भाई, ठाढ़ा सिंघ चरावै गाई।--कबीर ग्रं॰, पृ॰ ९१।

अचंभित(पु)--वि॰ [हिं॰ अचंभा] आश्चर्यित। चकित। विस्मित।

अचंभो--संज्ञा पुं॰ [सं॰ असंभव अथवा हिं॰ अचंभव] दे॰ 'अचंभा'। उ॰--(क) देखत रहे अचंभो, योगी हस्ति न आय। योगिहि कर अस जूझब भूमि न लागत पाय।--जायसी (शब्द॰)। (ख) अचंभो इन लोगनि को आवै। छाँड़े स्वान अमीरस फलको माया विष फल भावै।--सूर (शब्द॰)।

अचंभौ(पु)--संज्ञा पुं॰ [हिं॰] दे॰ 'अचंभव'। उ॰--नसै धर्म मन बचन काय करि सिंधु अचंभौ करई।--सूर॰, ९।७८।

अच्--संज्ञा पुं॰ [सं॰] संस्कृत व्याकरण में स्वरों के लिये प्रयुक्त पारिभाषिक शब्द जिसे प्रत्याहार भी कहते हैं [को॰]।

अचक¹--वि॰ [सं॰ चक, प्रा॰ चक्क = समूह, ढेर] भरपूर। पूर्ण। ज्यादा। जैसे--'जिनके घर अचक माया धरी है'।--हिं॰प्र॰ (शब्द॰)।

अचक²†--क्रि॰ वि॰ [सं॰ अ = नहीं चक् + भ्रांत होना] बिना भ्रांत हुए। बिना हिले डुले। उ॰--घोड़ी लै चलु अचक बैठारि, सजंन के खेत में।--पोद्दार अभि॰ ग्रं॰, पृ॰ ९३५।

अचक³--संज्ञा पुं॰ [सं॰ √चक् = भ्रांत होना] घबराहट। भौचक्कापन। विस्मय। उ॰--तोम तन छाए, सुलतान दल आए, सो तो समर भजाए उन्हे छाई है अचक सी।--सूदन (शब्द॰)।

अचकचाना--क्रि॰ अ॰ [हिं॰ अचक³ से नाम॰] घबराना। विस्मित होना।

अचकचाहट--वे [हिं॰ अचक] घबराहट। भौचकापन। उ॰--'अपनी अचकचाहट का मुसकराहट से ढकने का प्रयत्न कर ही रहा था'।--दहकते॰ पृ॰ २७।

अचकन--संज्ञा पुं॰ [अ॰ 'चिकन' का 'परिधान' से] एक प्रकार का लंबा अंगा।

विशेष--इसमें पाँच कलियाँ और एक बालाबर होता है। जहाँ बालाबर मिलता है वहाँ दो बंद बाँधे जाते हैं। अब बंदों के स्थान पर बटन भी लगाने लगे हैं।

अचकना पचकना--क्रि॰ वि॰ [हिं अचक + अनु॰ पचक] हिचकिचाना। घबराना। उ॰--अचक पचक यो धर धीरे पग सुधि भी लगी उतरने।--मिट्टी॰, पृ॰ ३५।

अचकाँ(पु)--क्रि॰ वि॰ [हिं॰ अचानक, अचक्का] अचानक। अचक्के में। एकाएक। सहसा। उ॰--जानत हौं तुम हौ बल पूरे। पै अचकाँ आए नहिं सूरे।--सदन (शब्द॰)।

अचकित--वि॰ [सं॰] जो चकित या विस्मित न हो [को॰]।

अचक्का--संज्ञा पुं॰ [सं॰ आ = भले प्रकार + चक् = भ्रांति] ऐसी दशा जिसमें चित्त दूसरी ओर हो। असावधानी की अवस्था। अनजान।

यौ॰--अचक्के में = अचानक। सहसा। एकाएक।

अचक्र--वि॰ [सं॰] १. बिना चक्का या पहिए का। चक्रहीन। २. स्थिर। अचल। निष्कंप [को॰]।

अचक्षु¹--वि॰ [सं॰] १. बिना आँख का। नेत्ररहित। अंधा। २. अतींद्रिय। इंद्रियरहित।

अचक्षु²--संज्ञा पुं॰ असौम्य नेत्र [को॰]।

अचक्षुदर्शन--संज्ञा पुं॰ [सं॰] आँख को छोड़ अन्य आभ्यंतरिक इंद्रियों द्वारा प्राप्त ज्ञान।

अचक्षुर्दर्शनावरण--संज्ञा पुं॰ [सं॰] वह कर्म जिससे अचक्षुदर्शन नामक ज्ञान न प्राप्त हो। अचक्षुदर्शन का निरोधकारक कर्म।

अचक्षुदर्शनावरणीय--वि॰ [सं॰] जैन शास्त्रकारों ने जीव के जो आठ मूल कर्म माने हैं उनमें से दर्शनावरणीय कर्म के नौ भेदों में से एक। अचक्षुदर्शन नामक ज्ञान का बाधक।

अचक्षुविषय--वि० [सं०] जो नेत्र का विषय न हो। दृष्टि से परे [को०]।

अचक्षुष्क--वि० [सं०] चक्षुविहीन। नेत्रहीन [को०]।

अचख(पु)--वि० [सं० अचक्षु; प्रा० अचक्खु] नेत्रहीन। दृष्टिरहित। उ०--भय युत बालक प्रिय अचख सुनत अनाथ सजीव।--राम० धर्म०, पृ० ५६।

अचगरा--वि० [सं० अत्यर्गल, प्रा० अच्चग्गल; देश०] छेड़खानी करनेवाला। नटखट। शोख। चंचल। उ०--ऐसी नाहिं अचगरौ मेरौ कहा बनावति बात।--सूर०, १०।२६०।

अचगरी--संज्ञा स्त्री० [हिं० अचगरा] ज्यादती। नटखटी। शरारत। छेड़छाड़। उ०--(क) जौं लरिका कछु अचगरि करहीं।--मानस, १।२७७। (ख) माखन दधि मेरो सब खायो बहुत अचगरी कीन्हीं।--सूर०, १०।२६७।

अचतुर--वि० [सं०] १. जो चतुर न हो। २. अनाड़ी। अकुशल। ३. चार से रहित [को०]।

अचना(पु)--क्रि० स० [सं० आचमन अथवा हिं० अचवना] १. आचमन करना। पीना। उ०--(क) पैठि बिवर मिलि तापसिहि अचई पानि, फल खाई --तुलसी ग्रं०, पृ० ८०। २. छोड़ देना। खो बैठना। बाकी न रखना; जैसे--'तुम तो लाज शरम अचै गए (शब्द०) उ०--लाज कों अचै कै कुलधरम पचै कै बिथा वृंदनि सचै कै भई मगन गुपाल मैं।--भिखारी ग्रं०, भा० २, पृ० ६।

अचपल¹--वि० [सं०] अचंचल। धीर। गंभीर। उ०--मेरे श्रमसिंचित देखोगे अचपल, पलकहीन नयनों से तुमको प्रतिपल हेरेंगे अज्ञात।--गीतिका।

अचपल²†--वि० [सं० आ + चपल] [स्त्री० अचपली] चंचल। शोख। उ०--क्या काम उन्हें जो हँस बोले या शोखी में अचपल निकले।--नजीर (शब्द०)।

अचलपता--संज्ञा स्त्री० [सं०] अचंचलता। स्थिरता। धीरता। गंभीरता।

अचपलाहट--संज्ञा स्त्री० [हिं०] १. चपलता का अभाव। अचापल्य। २† शोखपन। चुलबुलाहट।

अचपली¹†--संज्ञा स्त्री० [हिं० अचपल] अठखेली। किलोल। क्रीड़ा। उ०--गुलाल अबीर से गुलजार हैं सभी गलियाँ। कोई किसी के साथ कर रहा है अचपलियाँ।--नजीर (शब्द०)।

अचपली²†--वि० स्त्री० [हिं०] दे० 'अचपल²'। उ०--जाकी छोटी नँनद बड़ी अचपली।--पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ६२१।

अचभौन(पु)--संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अचंभा'। उ०--कहा कहत तू नंद ढुटौना। सखी सुनहु री बातें जैसी करत अतिहि अचभौना।--सूर (शब्द०)।

अचमन(पु)--संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आचमन'। उ०--भोजन करि नँद अचमन लीन्हौ माँगत सूर जुठनिया।--सूर०, १०।३४१।

अचर¹--वि० [सं०] न चलनेवाला। स्थावर। जड़।

अचर²--संज्ञा पुं० १. न चलनेवाला पदार्थ। जड़ पदार्थ। स्थावर द्रव्य। उ०--जे सजीव जग चर अचर, नारि पुरुष अस नाम।--मानस १।८४। २. ज्योतिष के अनुसार वृष, सिंह वृश्चिक और कुंभ राशियाँ जो स्थिर हैं (को०)।

अचरचे¹--क्रि० वि० [सं० अ = नहीं + हिं० चरचना] बिना पूजा के। अपूजित। उ०--और तौ अचरचे पाइँ धरौं सो तौ कहौ कौन के पेड भरि।--पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० २६०।

अचरज¹--संज्ञा पुं० [सं० आश्चर्य, प्रा० अच्चरिअ] आश्चर्य। अचंभा। विस्मय। उ०--अचरज कहा पार्थ जो बेधै तीनि लोक इक बान।--सूर०, १।२६८।

अचरज²--वि० आश्चर्ययुक्त अनोखा।

क्रि० प्र०--करना। उ०--बहुरि कहहु करुनायतन कीन्ह जो अचरज राम।--मानस १।११०।--मानना।--में आना।--में पड़ना।--होना। उ०--वह अगाध यह क्यौं कहै भारी अचरज होय।--कबीर (शब्द०)।

अचरम--वि० [सं०] जो चरम या अंतिम न हो [को०]।

अचरा (पु)--वि० [सं० अचला] दे० 'अचला'। उ०--अचरा न चरै धेन कटरा न षाई।--गोरख०, पृ० १४८।

अचरा²--संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अँचरा'। उ०--अचरा डारयौ वदन पै मधुर मधुर मुसिकाई।--नंद० ग्रं०, पृ० १६६।

अचरिज(पु)--संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अचरज'। उ०--मित्र कहत अचरिज मो हिए।--नंद० ग्रं०, पृ० ३०८।

अचरित¹(पु)--वि० [सं०] १. जिसपर कोई चला न हो। २. जो खाया न गया हो। ३. अछूता। नया।

अचरित²--संज्ञा पुं० कामकाज छोड़ अड़कर बैठना। धरना देना। गतिनिरोध।

अचर्ज(पु)†--संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अचरज'। उ०--बेनु के बंस भई बंसुरी जो अनर्थ करै तो अचर्ज कहा है।--भारतेंदु ग्रं०; भा० २, पृ० ८२१।

अचल¹--वि० [सं०] १. जो न चले। स्थिर। जो न हिले। ठहरा हुआ। निश्चल। उ०--जिहिं गोविंद अचल ध्रुव राख्यौ, रबि-ससि किए प्रदच्छिनकारी।--सूर०, १।३४। २. सब दिन रहनेवाला। चिरस्थायी। उ०--लंका अचल राज तुम्ह करहू।--मानस ६।२३।

यौ०--अचल कीर्ति। अचल राज्य। अचल समाधि।

३. न डिगनेवाला। न बदलनेवाला। अटल। ध्रुव। दृढ़। पक्का। उ०--(क) रघुपति पद परम प्रेम तुलसी चह अचल नेम।--तुलसी ग्रं० पृ० ४६२। (ख) 'उसकी यह अचल प्रतिज्ञा है' (शब्द०)। ४. जो नष्ट न हो। मजबूत। पुख्ता। अटूट। अजेय। उ०--(क) गरम भाजि गढ़वै भई तिय कुच अचल मवास।--बिहारी र०, दो० ३४४। (ख) 'अब इसकी नींव अचल हो गई (शब्द०)।

अचल²--संज्ञा पुं० १. पर्वत। पहाड़। उ०--जितना चह्यौ उरजनि अचल कटि कटि केहर बेस।--भिखारी० ग्रं०, भा० १, पृ०६। २. शिव। स्थाणु (को०)। ३. ब्रह्मा (को०)। ४. आत्मा (को०)। ५. शंकु। खूँटा। कील (को०)। ६. सात की संख्या का वाचक शब्द (को०)।

अचलकन्यका--संज्ञा स्त्री० [सं०] हिमवान् की पुत्री। पार्वती [को०]।

अचल कन्या--संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अचलकन्यका' [को०]।

अचलकीला--संज्ञा स्त्री० [सं०] पृथिवी। धरित्री।

विशेष--पृथिवी का यह नाम प्राचीन विद्वानों के इस विचार पर आधारित है कि पृथिवी को स्थिर रखने के लिये उसमें जहाँ तहाँ पहाड़ कीलों के समान जड़े हुए हैं।

अचलज--वि० [सं०] पर्वतोत्पन्न [को०]।

अचलजा--संज्ञा स्त्री० [सं०] पार्वती [को०]।

अचलजात--वि० [सं०] दे० 'अचलज' [को०]।

अचलतनया--संज्ञा स्त्री० [सं०] उमा [को०]।

अचलत्विट्[1]--संज्ञा पुं० [सं०] कोकिल [को०]।

अचलत्विट्[2]--वि० सदा समान शोभावाला। स्थिर कांतिवाला [को०]

अचलदुहिता--संज्ञा स्त्री० [सं०] पार्वती [को०]।

अचलद्विट्--संज्ञा पुं० [सं०] पर्वतों के शत्रु इंद्र [को०]।

अचलधृति--संज्ञा स्त्री० [सं०] एक वर्णवृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में ५ नगण और १ लघु इस प्रकार १६ लघु मात्राएँ रहती हैं, यथा--'षट दस लघु'हि अचलधृति मन गुनि'।--भिखारी० ग्रं०, भा० १ पृ० १९८। उ०--लखि भव भयद छवि पुर बटु बहत। सुघनि बर लखि जिन वपु जिउ रहत (शब्द०)।

अचलन--संज्ञा स्त्री० [सं० अ = बुरा + हिं० चलन] कुचाल। बुरा आचरण। उ०--तिन्ह की नारि रमहिं पचीस संग अचलनि बहुत करहिं री।-- जग० बानी, पृ० ८२।

अचलपति--संज्ञा पुं० [सं०] पर्वतों का स्वामी हिमालय [को०]।

अचलराज--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अचलपति' [को०]।

अचलव्यूह--संज्ञा पुं० [सं०] असंहत व्यूह का एक भेद जिसमें हाथी, घोड़े और रथ एक दूसरे के आगे पीछे रखे जाते थे।

अचलसंपत्ति--संज्ञा स्त्री० [सं०] वह संपत्ति जो चल न हो। स्थिर संपत्ति। जिसे हटाया न जा सके वह संपत्ति। गैरमनकूला जायदाद; जैसे--मकान, खेत, वृक्षादि।

अचलसुता--संज्ञा स्त्री० [सं०] पार्वती [को०]।

अचला[1]--वि० स्त्री० [सं०] जो न चले। स्थिर। ठहरी हुई।

अचला[2]--संज्ञा स्त्री० पृथिवी। धरती।

विशेष--प्राचीन लोग पृथिवी को स्थिर मानते थे। आर्यभट्ट ने पृथिवी को चल कहा पर उनकी बात को उस समय लोगों ने दबा दिया। अचला नाम का कारण आर्यभट्ट ने पृथिवी पर अचल अर्थात् पर्वतों का होना अथवा उसका अपनी कक्षा के बाहर न जाना बतलाया है।

अचलाधिप--संज्ञा पुं० [सं०] पर्वतों के राजा हिमालय [को०]।

अचलासप्तमी--संज्ञा स्त्री० [सं०] माघ शुक्ला सप्तमी। इस तिथि को स्नान दान आदि करते हैं।

अचवन(पु)†--संज्ञा पुं० [सं० आचमन, अप० अचवन] [क्रि० अचवना] १. आचमन। पानी। पीने की क्रिया। उ०--अचवन करि पुनि जल अचवायो तब नृप बीरा लीन्हों।--सूर (शब्द०)। २. भोजन के पीछे हाथ मुँह धोकर कुल्ली करने की क्रिया।

क्रि० प्र०--करना।--होना।

अचवना(पु)†--क्रि० स० [सं० आचमन] १. आचमन करना। पान करना। पीना। उ०--सुनु रे तुलसीदास, प्यास पपीहहि प्रेम की। परिहरि चारिउ मास जो अचवै जल स्वाति को। --तुलसी (शब्द०)। २ भोजन के पीछे हाथ मुँह धोकर कुल्ली करना। ३. छोड़ देना। खो बैठना। बाकी न रखना।

अचवाई(पु)--वि० [हिं० अचवना] धोई हुई। साफ। स्वच्छ। उ०--रूप सरूप सिंगार सवाई। अप्सर कैसी रहि अचवाई।--जायसी (शब्द०)।

अचवाना(पु)--क्रि० स० [हिं० अचवना का प्रेर०] १. आचमन कराना। पान कराना। पिलाना। २. भोजन पर से उठे हुए मनुष्य के हाथ पर मुँह हाथ धोने और कुल्ली कराने के लिये पानी डालना। भोजन करके उठे हुए मनुष्य का हाथ मुँह धुलाना और कुल्ली कराना। उ०--अचवन करि पुनि जल अचवायो तब नृप बीरा लीनो।--सूर (शब्द०)।

अचांक(पु)--क्रि० वि० [हिं०] दे० 'अचानक'। उ०--जौं अचांक मग भेटती विहँगति करि बहुरंग।--श्यामा पृ० १६७।

अचांचक(पु)--क्रि० वि० [हिं० अचान + सं० √चक् = भ्रांति] बिना पूर्वसूचना के। अचानक। एकबारगी। सहसा। एकाएक। अकस्मात्। हठात्। उ०--कोई गनीमत का मौका हाथ आया देख अचांचक अपने यार वफादार को पाकर ······।--प्रेमघन०, भा० २, पृ० ११४।

अचांनचक(पु)--क्रि० वि० [हिं०] दे० 'अचांचक'। उ०--परिहै वज्राग्रि ताके ऊपर अचांनचक धूरि उड़ि जाइ कहूँ ठौहर न पाइहै।--सुंदर० ग्रं०, भा० २, पृ० ५००।

अचाक(पु)--क्रि० वि० [हिं०] दे० 'अचाका।

अचाका(पु)†--क्रि० वि० [सं० आ + चक् = भ्रांति] अचानक। अकस्मात्। सहसा। दैवात्। उ०--(क) दिनहिं राति अस परी अचाका। भा रवि अस्तु, चंद्र रथ हाँका।--जायसी (शब्द०)। (ख) कहै पद्माकर नहीं तो ये झकोरैं लगैं औरे लौं अचाका बिन घोरे घुरि जायगी।--पद्माकर (शब्द०)।

अचाक्षुष--वि० [सं०] चक्षु के विषय से परे। अदृश्य [को०]।

अचाख(पु)--वि० [सं० अ = नहीं + हिं० चाखना] न चखा जा सकनेवाला। खाने के अयोग्य। उ०--तीखा तेज महा अचाख।--प्राण०, पृ० ४०।

अचातुर्य--संज्ञा पुं० [सं०] चतुराई का अभाव। मूर्खपन। अनाड़ीपन [को०]।

अचान(पु)--क्रि० वि० [हिं० अचानक] अचानक। सहसा। अकस्मात्। उ०--देव अचान भई पहिचान चितौत ही श्याम सुजान के सौहैं।--देव (शब्द०)।

अचानक--क्रि० वि० [सं० आ = अच्छी तरह + चक् = भ्रांत अथवा सं० अज्ञानात्] बिना पूर्वसूचना के। एकबारगी। सहसा। अकस्मात्। दैवात्। हठात्। औचट में। अनचित्ते में। उ०--(क)

हरि जू इते दिन कहाँ लगाए। तबहिं अवधि मैं कहत न समुझी गनत अचानक आए।--सूर०, १०।४२८८। (ख) नाचि अचानक हीं उठे बिनु पावस बन मोर।--बिहारी र०, दो० ४६६।

अचानिक(पु)--क्रि० वि० [हिं०] दे० 'अचानक'। उ०--आइ अचानिक राज पाइ लग्गो करि प्रनपति।--पृ० रा० १।३८६।

अचापल[1]--वि० [सं०] चपलतारहित। अचंचल [को०]।

अचापल[2]--संज्ञा पुं० चपलता का अभाव। स्थिरता। अचपलता [को०]।

अचापल्य--वि०, संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अचापल' [को०]।

अचार[1]--संज्ञा पुं० [पोर्तु० आचार] मिर्च, राई, लहसुन आदि मसालों के साथ तेल, नमक, सिरका या अर्कनाना में कुछ दिन रस कर खट्टा किया हुआ फ़ल या तरकारी। कचूमर। अथाना।

अचार[2](पु)†--संज्ञा पुं० [सं० आचार] आचरण। आचार। उ०--दंभ सहित कलि धरम सब, छल समेत ब्यवहार। स्वारथ सहित सनेह सब, रुचि अनुहरत अचार।--तुलसी ग्रं०, पृ० १५०।

अचार[3]--संज्ञा पुं० [सं० चार] चिरौंजी का पेड़। पियाल द्रुम।

अचारज(पु)--संज्ञा पुं० [सं० आचार्य प्रा० आयारज] दे० 'आचार्य'। उ०--ईश्वरपुरी प्रकाश भट्ट रघुनाथ अचारज। त्रिपुर गंग श्री जीव प्रबाधानंद सु आरज।--भारतेंदु ग्रं० भा० २, पृ० २३०।

अचार विचार(पु)†--संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आचार विचार'। उ०--जे मद मार बिकार भरे ते अचार विचार समीप न जाहीं।--तुलसी ग्रं०, पृ० २२०।

अचारी[1](पु)--वि० [सं० आचारी] अचार करनेवाला।

अचारी[2](पु)--संज्ञा पुं० आचार बिचार से रहनेवाले आदमी। वह व्यक्ति जो अपना नित्यकर्म विधि और शुद्धतापूर्वक करता है।

अचारी[3](पु)--संज्ञा पुं० [सं० आचार्य] १. यज्ञ के समय कर्मोपदेशक। वेदज्ञ। उ०--पांडव जज्ञ सुफल ना होई कोटिन जुरे अचारी।--धरनी०, पृ० ५। २. रामानुज संप्रदाय का वैष्णव जिसका काम हरिपूजन में विशेष विधानों का संपादन करना है।

अचारी[4]--संज्ञा स्त्री० [हिं० अचार का अल्पा०] छिले हुए कच्चे आम की फाँक जो नमक और मसालों के साथ धूप में सिझाकर तैयार की जाती हैं। यह मीठी भी बनाई जाती है।

अचारु--वि० [सं०] असुंदर। अशोभन [को०]।

अचालू[1]--संज्ञा पुं० [सं० अ = नहीं + चालन] अनचालू जहाज। कम चलनेवाला भारी जहाज।

अचालू[2]--वि० अप्रचलित। प्रचलनरहित।

अचाह[1](पु)--संज्ञा स्त्री० [सं० अ = नहीं + प्रा० चाह] अनिच्छा। अप्रीति। अरुचि। उ०--नहिं अचाह नहिं चाहना चरनन लौ लीना रे।--कबीर श०, भा० १, पृ० ६८।

अचाह[2]--वि० जिसको कुछ अभिलाषा न हो। बिना चाह का। इच्छा रहित। निष्काम।

अचाहा[1](पु)--वि० [हिं०] [स्त्री० अचाही] १. चाहा हुआ। अवांछित। अनिच्छित। २. जिसपर रुचि या प्रीति न हो। जो प्रेमपात्र न हो।

अचाहा[2]--संज्ञा पुं० १. वह व्यक्ति जिसकी चाह न हो। वह व्यक्ति जो प्रेमपात्र न हो। २. न चाहने या प्रीति न करनेवाला व्यक्ति। निर्मोही। उ०--रावलि कहाँ हौ किन, कहत हौ काते अरी रोष तज, रोष कै कियो मैं का अचाहे को।--पद्माकर (शब्द०)।

अचाही[1](पु)--वि० [हिं० अचाह] किसी बात की चाह न रखनेवाला। निरीह। निस्पृह। निष्काम।

अचाही[2]--संज्ञा स्त्री० न चाही गई या अवांछित बात। उ०--कवि ठाकुर लाल अचाहि करी तिहि तैं सहिए जसहीं नहियाँ।--ठाकुर०, पृ० २५।

अचिंत--वि० [सं० अचिन्त] चितारहित। निश्चित। बेफिक्र। उ०--चिंता न करु अचिंत रहु, देनहार समरत्थ।--कबीर (शब्द०)।

अचिंतनशील--वि० [सं० अचिन्तन + शील] चितारहित। विचारशक्तिहीन। उ०--वह भी अन्य प्राणियों की भाँति जड़ या अचिंतनशील ही रह जाता।--शैली, पृ० ५।

अचिंतनीय--वि० [सं० अचिन्तनीय] १. जिसका चिंतन न हो सके। जो ध्यान में न आ सके। अज्ञेय। दुर्बोध। २. आकस्मिक। अतर्कित (को०)।

अचिंता--संज्ञा स्त्री० [सं० अचिन्ता] चिंता का अभाव। लापरवाही [को०]।

अचिंतित--वि० [सं० अचिन्तित] १. जिसका चिंतन न किया गया हो। जिसका बिचार न हुआ हो। बिना सोचा बिचारा। २. असंभावित। आकस्मिक। ३. निश्चिंत। बेफिक्र। ४. उपेक्षित (को०)।

अचिंत्य[1]--वि० [सं० अचिन्त्य] १. जिसका चिंतन न हो सके। जो ध्यान में न आ सके। बोधागम्य। अज्ञेय। कल्पनातीत। २. जिसका अंदाजा न हो सके। अकूत। अतुल। ३. आशा से अधिक। ४. बिना सोचा बिचारा। आकस्मिक।

अचिंत्य[2]--संज्ञा पुं० १. एक अलंकार।

विशेष--इसमें अविलक्षण या साधारण कारण से विलक्षण कार्य की उत्पत्ति कही जाती है; जैसे--'कोकिल को वाचालता बिरहिनि मौन अतंत। देनहार यह देखिए आयो समय बसंत (शब्द०)। इस दोहे में साधारण वसंत के आगमन रूप कारण से मौन और वाचालता रूप विलक्षण कार्यों की उत्पत्ति है।

२. वह जो चिंतन से परे हो। ईश्वर। उ०--छठों कमल अचिंत्य को बासा।--कबीर सा०, पृ० ११। ३. शिव (को०)। ४. पारद। पारा (को०)।

अचिंत्यकर्म--संज्ञा पुं० [सं० अचिन्त्यकर्म] वह कर्म या कार्य जो चिंतन से परे हो [को०]।

अचिंत्यकर्मा--वि० [सं० अचिन्त्यकर्मा] अचिंत कार्य करनेवाला [को०]।

अचिंत्यरूप--वि० [सं० अचिन्त्यरूप] जिसका चिंतन या ध्यान न हो सके ऐसे रूप तथा आकारवाला [को०]।

अचिंत्यात्मा--संज्ञा पुं० [सं० अचिन्त्य + आत्मा] वह जिसका स्वरूप ठीक ठीक ध्यान में न आ सके। परमात्मा। ईश्वर।

अचिकित्स्य—वि० [सं०] चिकित्सा के अयोग्य। जिसकी दवा न हो सके। असाध्य।

अचिकीर्षु—वि० [सं०] न करने की इच्छावाला। काम न करने की इच्छावाला। कार्य में अनिच्छुक [को०]।

अचिज्ज(पु)—संज्ञा पुं० [सं० आश्चर्य] अचरज। अचंभा। उ०—सतंपत्त पुत्तं अचिज्जं सुहित्तं नियं तप्प लग्गं हरे बच्छ भग्गं।—पृ० रा०, २।६१।

अचित्[१]—संज्ञा पुं० [सं०] १. जड़प्रकृति। अचेतन। 'चित्' का उलटा। २. रामानुजाचार्य के अनुसार तीन पदार्थों में से एक।
विशेष—यह भोग्य, दृश्य, अचेतन स्वरूप, जड़ात्मक और भोग्यत्व विकार से युक्त माना जाता है। इसके भोग्य, भोगोपकरण और भोगायन ये तीन प्रकार माने गए हैं।

अचित्[२]—वि० अचेतन। चेतनारहित। जड़ [को०]।

अचित—वि० [सं०] १. गया हुआ। २. जो सोचा न गया हो। ३. जो एकत्र न किया गया हो [को०]।

अचितवन—वि० [सं० अ = नहीं + हिं० चितवन] चितवन रहित। निर्निमेष। अपलक।

अचित्त—वि० [सं०] १. विचार या ध्यान में न आने योग्य। २. बुद्धिरहित। अज्ञ। ३. अविचारित। जिसपर विचार न किया गया हो। ४. चेतनारहित। अचेत [को०]।

अचित्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] ज्ञान का अभाव [को०]।

अचित्र—वि० [सं०] १. जिसमें अलगाव या भेद न किया जा सके। २. जो चित्र न हो। जो बहुरंगा न हो [को०]।

अचिर[१]—क्रि० वि० [सं०] १. शीघ्र। जल्दी। २. थोड़ा ही समय पूर्व। कुछ काल पहले (को०)।

अचिर[२]—वि० १. थोड़े समय का। क्षणस्थायी। २. हाल का। ताजा। ३. नया [को०]।

अचिरज(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अचरज'। उ०—ऐ परि याकी नेम सुनहि जो। लाडिलि अचिरज लाड़ रहै तो।—नंद० ग्रं०, पृ० १३३।

अचिरता—संज्ञा स्त्री० [सं०] अचिर का भाव। क्षणिकता।

अचिरद्युति—संज्ञा स्त्री० [सं०] क्षणप्रभा। बिजली।

अचिरप्रभा—संज्ञा स्त्री० [सं०] बिजली।

अचिरप्रसूता—संज्ञा स्त्री० [सं०] सद्यःप्रसूता गौ। हाल की ब्याई गाय [को०]।

अचिरभा—संज्ञा स्त्री० [सं०] विद्युत् [को०]।

अचिरम्—क्रि० वि० [सं०] दे० 'अचिरात्' [को०]।

अचिरमृत—वि० [सं०] कुछ समय पूर्व मृत [को०]।

अचिररोचि—संज्ञा स्त्री० [सं०] सौदामिनी। बिजली [को०]।

अचिरांश—संज्ञा पुं० [सं०] विद्युत्। बिजली [को०]।

अचिरात्—क्रि० वि० [सं०] शीघ्र। जल्दी। तुरंत। २. कुछ समय पूर्व। कुछ पहले (को०)।

अचिराभा—संज्ञा स्त्री० [सं०] क्षणप्रभा। बिजली [को०]।

अचिरेण—क्रि० वि० [सं०] दे० 'अचिरात्' [को०]।

अचींतिया(पु)†—वि० [सं० अचिंतित; प्रा० अचिंतिय] आकस्मिक। असंभावित। उ०—आवी खबर अचींतियाँ विसमैं जैसी बत्त।—रा० रू०, पृ० ६२।

अचीता[१]—वि० [सं० अचिंतित] [स्त्री० अचीती] १. बिना सोचा विचारा। असंभावित। आकस्मिक। जिसका पहले से अनुमान न हो। २. अचिंत्य। जिसका अंदाजा न हो। बहुत। अधिक। उ०—लिखी खबर जैसी इत बीती। परी मुलक पर धार अचीती।—लाल (शब्द०)।

अचीता[२](पु)—वि० [सं० अचिन्त] निश्चित। बेफिक्र। उ०—सुनो मेरे मीता सुख सोइए अचीता कहो सीता सोधि लाउँ कहो सी मिलाऊँ राम को।—हृदयराम (शब्द०)।

अचीर—वि० [सं०] चीरविहीन। वस्त्ररहित [को०]।

अचुवाना(पु)—क्रि० स० [हिं०] दे० 'अचवाना'। उ०—पुनि जल शीतल अचुवावै। ता माँहि सुगंध मिलावै।—सुंदर० ग्रं० भा० १, पृ० १३५।

अचूक[१]—वि० [सं० अच्युत अथवा सं० अ = नहीं + प्रा० √चुक्क=चूकना] १. जो न चूके। जो खाली न जाय। जो ठीक बैठे। जो अवश्य फल दिखावे। जो अपना निर्दिष्ट कार्य अवश्य करे। उ०—बाँकी तेग कबीर की, अनी परै द्वै टूक। मारे बीर महाबली, ऐसी मूठि अचूक।—कबीर (शब्द०)। २. निर्भ्रांत। जिसमें भूल न हो। ठीक। भ्रमरहित। निश्चित पक्का। उ०—'वह समझता है कि जिस बात को सब लोग निर्भ्रांत कहते हैं वह अवश्य ही अचूक होगी।'—(शब्द०)।

अचूक[२]—क्रि० वि० १ सफाई से। पटुता से। कौशल से। उ०—मूँदे तहाँ एक अलबेली के अनोखे दृग सुदृग मिचावनी के ख्यालन हितै हितै। नैसुक नवाइ ग्रीवा धन्य धनि दूसरी कों औचका अचूक मुख चूमत चितै चितै।—पद्माकर ग्रं०, पृ० ६५। २. निश्चय। अवश्य। जरूर। उ०—जहाँ मुख मुक, राम राम ही की कूक जहाँ सवै सुखधूप तहाँ है अचूक जानकी।—हृदयराम (शब्द०)।

अचेत[१]—वि० [सं०] १. चेतनारहित। संज्ञाशून्य। बेसुध। बेहोश। मूर्च्छित। २. व्याकुल। विह्वल। विकल। उ०—भौ यह ऐसोई समौ, जहाँ सुखद दुखु देत। चैत चाँद की चाँदनी डारति किए अचेत।—बिहारी र०, दो० ५१६। ३. असावधान बेपरवाह। उ०—यह तन हरियर खेत, तरुनी हरिनी चर गई। अजहूँ चेत अचेत, यह अधचरा बचाइ ले।—सम्मन (शब्द०)। ४. अनजान। बेखबर। उ०—वृंदावन की वीथिन तकि तकि रहत गुमान समेत। इन बातन पति पावत मोहन जानत होहु अचेत।—सूर (शब्द०)। ५. नासमझ। मूढ़। उ०—मैं पुनि निज गुरु सन सुनी, कथा सु सूकरखेत। समुझी नहिं तसु बालपन तब अति रहेउँ अचेत।—तुलसी (शब्द०)। (पु) ६. जड़। उ०—(क) असम अचेत पखान प्रगट लै बनचर जल महँ डारत।—सूर (शब्द०)। (ख) कामातुर होत हैं सदा हीं मतिहीन तिन्हैं चेत औ अचेत माँहि भेद कहाँ पावैगो।—लक्ष्मणसिंह (शब्द०)।

अचेत[२](पु)—संज्ञा पुं० [सं० अचित्] १. जड़ प्रकृति। जड़त्व। २. माया। अज्ञान। उ०—कह लौं कहौं अचेतै गयऊ। चेत अचेत झगर यक भयऊ।—कबीर (शब्द०)।

अचेतन[1]—वि० [सं०] १. चेतनारहित। जिसमें चेतना का अभाव हो। जिसमें सुख दुःख आदि किसी प्रकार के अनुभव की शक्ति न हो। जड़। 'चेतन' का उलटा। उ०—सब में एक अचेतन गति थी जिससे पिछड़ा रहे समीर।—कामायनी, पृ० ११। २. अज्ञान (को०)। ३. जीवरहित। निर्जीव (को०)। ४. संज्ञाशून्य। मूर्च्छित। जैसे—'वह अचेतन अवस्था में पाया गया।' (शब्द०)।

अचेतन[2]—संज्ञा पुं० अचैतन्य पदार्थ। जड़ द्रव्य।

अचेता—वि० [सं० अचेतस्] १. चेतनाविहीन। अचेत। २ चित्तरहित। चित्तविहीन। ३. जीवरहित। निर्जीव [को०]।

अचेतान—वि० [सं०] १. ज्ञानविहीन। न जाननेवाला। २. मूर्ख। अज्ञ [को०]।

अचेती†—संज्ञा स्त्री० [सं० अ = नहीं + हिं० चेत + ई (प्रत्य०)] असावधानी। बेखबरी। गफलत।

अचेलक—संज्ञा पुं० [सं० अचेलक] वस्त्र न रखनेवाला या स्वल्प श्वेत वस्त्र रखनेवाले भिक्षु। भिक्षुओं का एक भेद। उ०—भिक्षुओं! कुछ अचेलक, आजीविक, निगंठ आदि भिक्षु हैं।—हिंदु० सभ्यता, पृ० २३१।

अचेलपरीसह—संज्ञा पुं० [सं० अचैलपरिसह] आगम में कहे हुए वस्त्रादि धारण करने और उनके फटे और पुराने होने पर भी चित्त में ग्लानि न लाने का नियम।

अचेष्ट—वि० [सं०] १. चेष्टारहित। २. बिना प्रयास का। ३. गतिरहित [को०]।

अचेष्टित—वि० [सं०] प्रयत्न या चेष्टारहित। २. बिना प्रयास का [को०]।

अचैतन्य[1]—वि० [सं०] चेतनारहित। आत्माविहीन। जड़।

अचैतन्य[2]—संज्ञा पुं० १. निश्चेतनता। चेतना का अभाव। २. अज्ञान। ३. चेतनाविहीन द्रव्य या वस्तु। जड़ पदार्थ (को०)। ४. होश हवास न रहना। बेहोशी (को०)।

अचैन[1]—संज्ञा पुं० [सं० अ = नहीं + देश० चैन] बेचैनी। व्याकुलता। विकलता। दुःख। कष्ट। उ०—खिचैं मान अपराध हूँ चलियै, बढ़ैं अचैन। जूरत डीठि तजि रिस खिसी, हँसे दुहुनु के नैन।—बिहारी र०, दो० ६४६।

अचैन[2]—वि० [हिं० अ = नहीं + चैन = आराम] [स्त्री० अचैनी] बेचैन। व्याकुल। विकल। उ०—चौंकि चिकै चितवै चहूँ ओर चलाचल चंचल चित्त अचैनी।—देव (शब्द०)।

अचैना—संज्ञा पुं० [सं० छिन्न = कटा हुआ] १. लकड़ी का मोटा कुंदा जो जमीन में गड़ा रहता है और जिसपर रखकर गँड़ासे से चारा काटा जाता है। घासा। निहठा। ठीहा। हँसुआ। २. लकड़ी का कुंदा जिसपर रखकर बढ़ई दूसरी लकड़ी को काटते और छीलते या गढ़ते। निसुहा। ठीहा।

अचोनाⓅ—संज्ञा पुं० [सं० आचमनक प्रा० *आचवँनअ < अचउनअ < अचौना] आचमन करने का पात्र। पीने का बरतन। कटोरा। उ०—ना खिन टरत टारे, आँखि न लगत पल, आँखि न लगे री श्याम सुंदर सलोने से। देखि देखि गातन अघात न अनूप रस भरि भरि रूप लेत लोचन अचोने से।—देव (शब्द०)।

अचौकी—वि० [सं० अ = नहीं + हिं० चौंकना = चकित होना] अचकित। स्थिर। उ०—रहतै अचौंकी चित्त नित ही ध्यान सु रावरो।—ब्रज० ग्रं०, पृ० ३८।

अचौन—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अचवन[1]'। उ०—चातक उमाहै घन आनँद अचौन को।—घनानंद, पृ० १५८।

अचौनि—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अचवन'।

अच्चड़†—वि० [सं० आश्चर्य; प्रा० अच्चर] अचंभा। अचरज। उ०—भाण तणी हरनाथ महाभड आयां परब उबारण अच्चड़।—रा० रू०, पृ० १३४।

अच्छंद—वि० [सं० अच्छन्दस्] १. वेदाध्ययन न करनेवाला २. वेदाध्ययन के अधिकार से विहीन। ३ छंद या पद्य से रहित। छंदविहीन। ४ छलविहीन। छद्मरहित [को०]।

अच्छ[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. स्फटिक। २ भालू। ३ स्वच्छ जल (डिं०)। ४ आभिमुख्य। संमुख होना (को०)। ५. एक प्रकार का पौधा (को०)।

अच्छ[2]— वि० स्वच्छ। निर्मल। पवित्र। अच्छा। उ०—(क) उदधि नाकपति शत्रु को, उदित जानि बलवंत। अंतरिक्ष ही लक्षि पर अच्छ छुयो हनुमंत।—केशव (शब्द०)। (ख) मानहु विधि तन अच्छ छवि स्वच्छ राखिबै काज। दृग-पग-पोंछन कौं करे भूषन पायदाज।—बिहारी र० दो० ४१३।

अच्छ[3]Ⓟ—संज्ञा पुं० [सं० अक्ष प्रा० अच्छ] १ आँख। नेत्र उ०—(क) कहै पदमाकर न च्छन प्रतच्छ होत अच्छन के आगे हू अधिच्छ गाइयतु है।—पद्माकर (शब्द०)। (ख) जो तव अच्छ समच्छ सकत कर पकरि कृपानी।—रत्नाकर, भा० १, पृ० १०१। २ रुद्राक्ष। उ०—मौंजी औ उपवीत अच्छ कंठा कल धारे।—रत्नाकर, भा० १, पृ० १०१। ३ अक्षकुमार नामक रावण का बेटा। उ०— रखवारे हति विपिन उजारा। देखत तोहि अच्छ तेहि मारा।—तुलसी (शब्द०)।

अच्छत[1]†—संज्ञा पुं० [सं० अक्षत; प्रा० अच्छत] बिना टूटा हुआ चावल जो मंगल द्रव्यों में गिना जाता है और देवताओं को चढ़ाया जाता है। उ०—अच्छत अंकुर रोचन लाजा। मंजुल मंगल तुलसि बिराजा।—मानस, १।१४६।

अच्छत[2]—वि० अखंडित। लगातार। उ०—राधौ हेरत जों गयो, अच्छत हिये समाधि। वह तन राघव घाघ भा, सकै न कै अपराध।—जायसी (शब्द०)।

अच्छत[3]Ⓟ—क्रि० वि० [हिं० अछत] रहते हुए। उपस्थिति में। विद्यमानता में। उ०—जुद्धौं कौं करत छाजत नहीं है तुम्हैं सुनि महाराज अच्छत हमारे।—सूर०, १०।४१६४।

अच्छभल्ल—संज्ञा पुं० [सं०] भालू। भल्लूक [को०]।

अच्छमⓅ—वि० [सं० अक्षम] असमर्थ। अशक्त। लाचार। उ०—सबहि समरथहिं सुखद प्रिय अच्छम प्रिय हितकारि।—तुलसी ग्रं०, पृ० ९२।

अच्छयⓅ—वि० [हिं०] दे० 'अक्षय'। उ०—पै रच्छक रन दच्छ देखि अच्छय बल साली।—रत्नाकर, भा० १, पृ० १६४।

अच्छयतृतियाⓅ—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अक्षय तृतीया'। उ०—अच्छय तृतिया, अच्छय सुखनिधि पिय कों प्यारी चढ़ावै चंदन।—नंद० ग्रं०, पृ० ३७१।

अच्छर¹(पु)‡—संज्ञा पुं० [सं० अक्षर; पा० अक्खर; प्रा० अच्छर] अक्षर। वर्ण। हरफ। उ०—द्वादस अच्छर महामंत्र के अबिकल जापी।—रत्नाकर, भा० १, पृ० २१६।

अच्छर²(पु)—वि० दे० 'अक्षर¹'। उ०—अच्छर ब्रह्म सुन्न दरबारा।—कबीर श०, पृ० ५८।

अच्छर³(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० अप्सर] अप्सरा। उ०—रूप सरूप सिंगार सवाई। अच्छर जैसी रहि अछवाई।—जायसी (शब्द०)।

अच्छरा(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० अप्सरस्, पा० प्रा० अच्छरा] अप्सरा। उ०—तोरि कै छरा सों अच्छरा सी यों निचोरि कहैं 'तुमनै कहे तै कंत मुकता में पानी हैं'।—भूषण ग्रं०, पृ० २२४।

अच्छरि(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अच्छरी'। उ०—घन अच्छरि अच्छ कुलच्छ करै।—पृ० रा०, २४।१६४।

अच्छरी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० अप्सरस्, पा० प्रा० अच्छरा] अप्सरा। स्वर्ग की वारवनिता। उ०—बनि नाचतीं सुर अच्छरी जिन भाव मोहत सिद्ध हैं।—गुमान (शब्द०)।

अच्छा¹—वि० [सं० अच्छक, प्रा० अच्छअ=स्वच्छ, निर्मल] १. उत्तम। भला। बढ़िया। उमदा। खरा। चोखा।

मुहा०—**अच्छा आना**=(१) ठीक या उपयुक्त अवसर पर आना। जैसे—तुम अच्छे आए, अब सब ठीक हो जायगा (शब्द०)। (२) ठीक उतरना। सुंदर बनना; जैसे—इस कागज पर चित्र अच्छा नहीं आता (शब्द०)। **अच्छा करना**=अच्छा काम करना। जैसे,—तुमने अच्छा नहीं किया जो चले आए (शब्द०)। **अच्छा कहना**=प्रशंसा करना; जैसे—कोई तुम्हें अच्छा नहीं कहता (शब्द०)। **अच्छा घर**=संपन्न घर। प्रतिष्ठित कुल। **अच्छा दिन**=सुख संपत्ति का दिन. जैसे—उसने अच्छे दिन देखे हैं (शब्द०)। **अच्छी कटना, गुजरना या बीतना**=अच्छी तरह बीतना। आनंद से दिन कटना; जैसे—यहाँ से वहाँ अच्छी बीतेगी (शब्द०)। **अच्छा रहना**=अच्छी दशा में रहना। लाभ वा आगम में रहना; जैसे—तुम से तो हमीं अच्छे रहे जो कहीं नहीं गए (शब्द०)। **अच्छा लगना**=(१) भला जान पड़ना। सजना। सोहना; जैसे—तुम्हारे सिर पर यह टोपी नहीं अच्छी लगती (शब्द०) (२) रुचिकर होना। पसंद आना; जैसे—हमें यह फल नहीं अच्छा लगता। हमें तुम्हारी यह चाल नहीं अच्छी लगती (शब्द०)। **अच्छे वक्त**=ठीक समय से। आवश्यकता के समय। जरूरत के वक्त। **अच्छे से पाला पड़ना**=बेढंगे व्यक्ति से काम पड़ना। **अच्छे हालों गुजरना**=साधारणतः सुख से दिन बीतना।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग व्यंग्य रूप से बहुत होता है। जैसे—'आप भी अच्छे कहनेवाले आए वा मिले'। जब कोई बात किसी को नहीं जँचती तब वह उसके कहने वा करनेवाले के प्रति प्रायः कहता है कि 'अच्छे आए' वा 'अच्छे मिले'।

२. स्वस्थ। चंगा। तंदुरुस्त। नीरोग। आरोग्य; जैसे—'तुम किसकी दवा से अच्छे हुए' (शब्द०)?

क्रि० प्र०—करना।—होना।

अच्छा²—संज्ञा पुं० १ बड़ा आदमी। श्रेष्ठ पुरुष। जैसे—मैंने अच्छे अच्छों को निकाले जाते देखा है, तुम क्या हो (शब्द०)। २. गुरुजन। बापदादा। बड़ा बूढ़ा; जैसे—दोगे क्यों नहीं? मैं तो तुम्हारे अच्छे अच्छों से लूँगा (शब्द०)।

अच्छा³—क्रि० वि० अच्छी तरह। खूब। बहुत। जैसे—तुमने यहाँ बुलाकर हमें अच्छा तंग किया (शब्द०)।

अच्छा—अव्य० १. प्रार्थना या आदेश के उत्तर में (प्रश्न के नहीं) स्वीकृतिसूचक शब्द। जैसे—'(आदेश)—तुम कल आना (उत्तर)—अच्छा' (शब्द०)। उ०—फिर बोले—'अच्छा याही कै कर बेचत तन।—रत्नाकर, भा० १, पृ० ७३। २. इच्छा के विरुद्ध कोई बात हो जाने पर अथवा उसे होती हुई या होनेवाली सुन या देखकर भी यह शब्द कहा जाता है। खैर। जैसे—(क) अच्छा जो हुआ सो हुआ अब आगे से सावधान रहना चाहिए। (ख) अच्छा हम देख लेंगे (शब्द०)।

अच्छाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० अच्छा+ई (प्रत्य०)] अच्छापन। उत्तमता। श्रेष्ठता। सुंदरता। सुघराई।

अच्छाखासा—वि० [हिं० अच्छा+खासा] पूर्णतः स्वस्थ। तंदुरुस्त। काफी अच्छा। पूरा। बढ़ा चढ़ा।

अच्छापन—संज्ञा पुं० [हिं० अच्छा+पन] (प्रत्य०)] अच्छे होने का भाव। उत्तमता। सुघराई।

अच्छाबुरा—वि० [हिं०] सुंदर या खराब। भला बुरा।

अच्छावाक—संज्ञा पुं० [सं० अच्छावाक्] १. आह्वान करनेवाला। यज्ञ करानेवाले होता, अध्वर्यु आदि सोलह ऋत्विजों में से एक। २. दे० ऋत्विज'।

अच्छाबिच्छा—वि० [हिं० अच्छा+बीछना=चुनना] १. दुरुस्त। खासा। चुना हुआ। २ भला चंगा। नीरोग।

अच्छि(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० अक्षि; प्रा० अच्छि] नेत्र। आँख। उ०—जष्षिराज की अच्छि पिंग इक भई सर्प खत।—पृ० रा०, ६३।१४६।

अच्छित(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अच्छत'। उ०—कंचन थार में कुंकुम अच्छित तिलकु करति नंदलाल के।—छीत०, पृ० ३०।

अच्छिद्र¹—[सं०] १. छिद्ररहित। रंध्रविहीन। २. अखंडित। अक्षत। ३. फूट प्रमाद आदि से रहित। ४. सच्चा। ५. त्रुटिरहित [को०]।

अच्छिद्र²—संज्ञा पुं० १. अक्षुण्ण स्थिति या अवस्था। २. दोषरहित कार्य [को०]।

अच्छिन्न—वि० [सं०] १. छिद्ररहित। २. जो कटा न हो। अखंडित। साबित। ३. जो टूटा या विभक्त न हो। अविभक्त (को०)। ४. लगातार गतिशील (को०)।

अच्छिन्नपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. शाखोटक वृक्ष जिसमें पत्तियाँ बराबर रहती हैं। २. बिना कटे टूटे पंखवाला पक्षी [को०]।

अच्छिन्नपर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अच्छिन्नपत्र' [को०]।

अच्छिय(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अक्षर'। उ०—देइ द्रव्य लै अच्छी अच्छिय।—पृ० रा०, १।४०२।

अच्छिर(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अक्षर'। उ०—वंचि विचारिय दाहिमा निम्रित अच्छिर नूत।—पृ० रा० (उ०), भा० १, पृ० २१२।

अच्छुप्ता—संज्ञा स्त्री० [सं०] जैनों की १६ देवियों में से एक।

अच्छूरिका--संज्ञा स्त्री० [सं०] १. मंडल या घेरा। २. चक्र या रथांग [को०]।

अच्छेदिक--वि० [सं०] काटने या छेदने के अयोग्य [को०]।

अच्छेद्य--वि० [सं०] अविभाज्य। विभाग न करने लायक [को०]।

अच्छैदिक--वि० [सं०] दे० 'अच्छेदिक' [को०]।

अच्छै बिरिछ(पु)--संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अक्षय वृक्ष'। उ०--सत्त पुरुष अच्छै बिरिछ निरंजन डारा।--संतवाणी०, भा० २, पृ० १८।

अच्छोटन--संज्ञा पुं० [सं०] आखेट। मृगया। शिकार [को०]।

अच्छोत(पु)--वि० [सं० अक्षत, प्रा० अच्छत ?] १. पूरा। २. अधिक। बहुत। उ०--वृषभ धर्म पृथ्वी सो गाइ। वृषभ कह्यो तासों या भाइ। मेरे हेतु दुखी तू होत। कै अधर्म तुम पर अच्छोत।--सूर (शब्द०)।

अच्छोद[1]--संज्ञा पुं० [सं०] बाणभट्ट द्वारा कादंबरी में उल्लिखित हिमालयस्थ एक सरोवर।

अच्छोद[2]--वि० स्वच्छ या निर्मल जलवाला [को०]।

अच्छोदा--संज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणों में वर्णित एक नदी [को०]।

अच्छोहिन(पु)--संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अक्षौहिणी'।

अच्छोहिनी(पु)--संज्ञा स्त्री० [हिं०] अक्षौहिणी सेना।

अच्यंत(पु)--वि० [हिं०] दे० 'अचिंत्य[1]'। उ०--अच्यंत च्यंत ए माधौ सो सब माहि समाना।--कबीर ग्रं०, पृ० १००।

अच्यंता(पु)--क्रि० वि० [सं० अचिन्तित] अकस्मात्। आकस्मिक रूप से। उ०--काल अच्यंता झड़पसी ज्यूँ तीतर को बाज।--कबीर ग्रं०, पृ० ७२।

अच्युत[1]--वि० [सं०] १. जो गिरा न हो। २. दृढ़। अटल। स्थिर। ३. नित्य। अमर। अविनाशी। ४. जो न चूके। जो त्रुटि न करे। जो विचलित न हो। ५. न चूने या टपकने वाला (को०)।

अच्युत[2]--संज्ञा पुं० १. विष्णु और उनके अवतारों का नाम। २. वासुदेव। कृष्ण (को०)। ३. जैनियों के चार श्रेणी के देवताओं में चौथी अर्थात् वैमानिक श्रेणी के कल्पभव नामक देवताओं का एक भेद। ४. एक पौधे का नाम। ५. एक प्रकार की पद्य रचना जिसमें १२ बंध होते हैं (को०)।

अच्युतकुल--संज्ञा पुं० [सं० अच्युत+कुल] वैष्णवों का समाज और उनकी शिष्यपरंपरा। विशेषकर रामानंदी संप्रदाय के वैष्णव लोग अपने को अच्युतकुल या अच्युतगोत्र कहते हैं।

अच्युतगोत्र--संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अच्युतकुल'।

अच्युतज--संज्ञा पुं० [सं०] जैनियों का एक देववर्ग जो विष्णु से उत्पन्न कहा गया है [को०]।

अच्युतपुत्र--संज्ञा पुं० [सं०] १. कामदेव। अनंग। २. कृष्ण और रुक्मिणी के पुत्र प्रद्युम्न [को०]।

अच्युतमध्यम--संज्ञा पुं० [सं०] संगीत में एक विकृत स्वर जो मार्जनी नामक श्रुति से आरंभ होता है और जिसमें दो श्रुतियाँ होती हैं।

अच्युतमूर्ति--संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु [को०]।

अच्युतवास--संज्ञा पुं० [सं०] वह वृक्ष जिसमें अच्युत अर्थात् विष्णु का निवास हो। पीपल का वृक्ष [को०]।

अच्युतषड्ज--संज्ञा पुं० [सं०] संगीत में एक विकृत स्वर जो छंदवंती नामक श्रुति से आरंभ होता है और जिसमें दो श्रुतियाँ होती हैं।

अच्युतांगज--संज्ञा पुं० [सं० अच्युताङ्गज] १. कामदेव। २. कृष्णपुत्र प्रद्युम्न [को०]।

अच्युताग्रज--संज्ञा पुं० [सं०] १. विष्णु के बड़े भाई इंद्र। २. श्रीकृष्ण के बड़े भाई बलराम।

अच्युतात्मज--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अच्युतपुत्र' [को०]।

अच्युतानंद[1]--वि० [सं० अच्युतानन्द] जिसका आनंद नित्य हो।

अच्युतानंद[2]--संज्ञा पुं० आनंदस्वरूप परमात्मा। ईश्वर।

अच्युतावास--संज्ञा पुं० [सं०] पीपल वृक्ष [को०]।

अछभो(पु)--संज्ञा पुं० [सं० असम्भव या अत्यद्भुत, प्रा० अच्चभुअ > अचंभव] दे० 'अचंभो' (डिं०)।

अछक(पु)--वि० [सं० अ=नहीं+चष, प्रा० चख, चक, छक,] बिना छका हुआ। अतृप्त। भूखा। उ०--तेग या तिहारी सतवारी है अछक तौलौं जौं लौं गजराजन की गजक करै नहीं।--भूषण (शब्द०)।

अछकना(पु)--क्रि० वि० [हिं० अछक से नाम०] अतृप्त होना। तृप्त न होना। न अघाना। उ०--चंपक बेलि चमेलिन में मधु छाक छक्यो अछक्यो अनुकूलै। मालती मंजु गुलाब समीर धरयौ नहिं धीर मनोज की हूलै।--(शब्द०)।

अछग्ग(पु)--वि० [हिं०] दे० 'अछक'। उ०--परै के अछग्गं। न बैरीन मग्गं।--पृ० रा०, ८।५२।

अछत[1](पु)--क्रि० वि० [सं० *√आक्षि, प्रा० √अच्छ] [क्रि० अ० 'अछना' का कृदंत रूप जिसका प्रयोग क्रि० वि० की तरह होता है।] १. रहते हुए। उपस्थिति में। विद्यमानता में। संमुख। सामने। उ०--(क) खसम अछत बहु पीपर जाय।--कबीर (शब्द०)। (ख) आपु अछत जुबराज पद रामहि देउ नरेसु।--मानस, २।१। (ग) तिनहि अछत तुम अपने आलस काहैं कंत रहत कृस गात।--सूर०, १०।४२१५। २. सिवाय। अतिरिक्त।--लखन कहेउ मुनि सुजसु तुम्हारा। तुम्हहि अछत को बरनै पारा।--मानस १।२७४।

अछत[2](पु)--क्रि० वि० [सं० अ=नहीं+अस्ति, प्रा० अच्छइ=है] न रहते हुए। अनुपस्थित। उ०--गनती गनिबे तैं रहे छतहूँ अछत समान।--बिहारी र०, दो० २७५।

अछताना पछताना--क्रि० अ० [सं० पश्चात्ताप, प्रा० पच्छाताव से विषम द्विरुक्त नाम०] बार बार किसी भूल या किसी बीती हुई बात पर खेद करना। पछताना। उ०--ऐसे सोच समझ अछताय पछताय मेघों सहित इंद्र अपने स्थान को गया।--लल्लूलाल (शब्द०)।

अछन[1](पु)--संज्ञा पुं० [सं० अ+क्षण] क्षण मात्र नहीं। बहुत दिन। दीर्घकाल। चिरकाल। उ०--दैन कहहि फिर देत न जो है। अजस अछन को भाजन सो है।--पद्माकर (शब्द०)।

अछन[2](पु)--क्रि० वि० [अ० (उच्चा०)+सं० क्षण; प्रा०, अप० छन] धीरे धीरे। ठहर ठहरकर। उ०--प्यारे इन घन गलियन आव। नैनन जल सो धोइ सँवारी अछन अछन धरि पाव।--रसिकबिहारी (शब्द०)।

अछना(पु)--क्रि० अ० [सं० अस् का समानार्थक √सं० आक्षे, √प्रा० अच्छ, अप० अछ = होना] होना रहना। विद्यमान रहना। उ०--(क) आतम तुझ पासइ अछइ ओलग रूडा रक्ख।--ढोला०, ११४। (ख) अछहि बेहंस तंबूल सों राती। जनु गुलाल देखै बिहँसाती।--जायसी (शब्द०)।

अछप(पु)--वि० [सं० अ + *छप = छिपना] न छिपने योग्य प्रकट। प्रकाशमान। जाहिर। उ०--खोइ ख्याल समरत्थ कर, रहे सो अछप छपाइ। सोइ संधि लै आयउ सोवत जगहि जगाइ।--कबीर (शब्द०)।

अछय(पु)--वि० [सं० अक्षय] दे० 'अछय'। उ०- करषत सभा द्रुपद-तनया कौं अंबर अक्षय कियौ --सूर०, १।१३१।

अछयकुमार(पु)--संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अक्षकुमार'।

अछयबृच्छ(पु)--संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अक्षयवृक्ष'। उ०--तिरबेनी से नीर मँगावो अछय बृच्छ के डार हो।--धरम०, पृ० ५७।

अछर¹(पु)--वि० [सं० अक्षर] दे० 'अक्षर¹'। उ०--अछर अच्युत अविकार है निराकार है जोइ।--सूर०, १०।१७७५।

अछर¹(पु)--संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अप्सर'। उ०--मधुकर माधवि मदन मत्त मन मैंन अछर से डोलैं।-- श्यामा०, पृ० ११८।

अछरना(पु)--क्रि० अ० [सं० उच्छलन, पु० हिं० उछरना] उपटना। स्पष्ट होना। प्रकट होना। अंकित देख पड़ना। उ०--बैठि भँवर कुच नारँग लारी। लागी मुख अछरैं रँगराती।--जायसी (शब्द०)।

अछरा(पु)--संज्ञा स्त्री० [सं० अप्सरा, प्रा० अच्छरा] अप्सरा। स्वर्ग की वारवनिता। उ०--ओहि भउँहहिं सरि कोउ न जीता। अछरइं छपीं, छपीं गोपीता।--जायसी (शब्द०)।

अछरी(पु)--संज्ञा स्त्री० [सं० अप्सर, प्रा० अच्छर + ई (प्रत्य०)] अप्सरा। स्वर्ग की वारवनिता। उ०--(क) मानउँ मयन मूरती, अछरी बरन अनूप।--जायसी (शब्द०)। (ख) सुता एक अछरी कै नाईं।--हिंदी० प्रेमा०, पृ० २५१।

अछरौटी(पु)†--संज्ञा स्त्री० [सं० अक्षर, प्रा० अच्छर + हिं० औटी (प्रत्य०)] वर्णमाला। उ०--रसिक पपीहा साछी आछो अछरौटी के।--घनानंद, पृ० २०५।

मुहा०--अछरौटी बर्तनी = किसी शब्द के प्रत्येक वर्ण को अलग अलग कहना। हिज्जे करना।

अछल--वि० [सं०] छलरहित। निष्कपट। सीधासादा। भोलाभाला।

अछवाई--संज्ञा स्त्री० [हिं० अच्छा < अच्छ + वाई (प्रत्य०)] अच्छाई। सुंदरता। उ०--रति साँचें ढरी अछवाई भरी पिंडुरीन गुराइये पेखि पगै।--घनानंद, पृ० १५।

अछवाना(पु)--क्रि० स० [हिं० अछ से नाम०] साफ करना। सँवारना। उ०--रूप सरूप सिंगार सवाई। अच्छर जैसी रहि अछवाई।--जायसी (शब्द०)।

अछवानी--संज्ञा स्त्री० [सं० यवानिका वा यमानी हिं० अजवाइन] अजवाइन, सोंठ तथा मेवों को पीसकर घृत में पकाया हुआ मसाला जो प्रसूता स्त्रियों को पिलाया जाता है।

अछाम(पु)--वि० [सं० अक्षाम] १. जो पतला न हो। मोटा। बड़ा। भारी। २. जो क्षीण या दुबला न हो। हृष्ट पुष्ट। मोटा ताजा। बलवान्

अछित(पु)--क्रि० वि० [हिं० अछत] दे० 'अछत'। उ०--जीव अछित जोबन गया, कछू किया न नीका।--कबीर ग्रं०, पृ० १४८।

अछिद्र--वि० [सं०] १. छिद्र या रंध्ररहित। २. बेऐब। निर्दोष [को०]।

अछियार--संज्ञा पुं० [हिं० छोर = किनारा ?] एक प्रकार की गजी की साड़ी जिसमें लाल किनारे होते हैं।

अछी--संज्ञा स्त्री० [देश०] आल का पेड़।

अछूत¹--वि० [सं० अ = नहीं + छुप्त = छुआ हुआ; प्रा० छुत्त] १. बिना छुआ हुआ। जो छुआ न गया हो। अस्पृष्ट। उ०--भीजे हार चीर हिय चोली। रही अछूत कंत नहिं खोली।--जायसी (शब्द०)। २. जो काम में न लाया गया हो। जो बर्ता न गया हो। नया। ताजा। कोरा। पवित्र। उ०--रस के अधर अमी भरि राखे। अबहिं अछूत, न काहू चाखे।--जायसी ग्रं०, पृ० ४४। ३. न छूने योग्य। नीच जाति का। अंत्यज जाति का। अस्पृश्य। जैसे--'मेहतर, डोम, चमार, आदि अछूत जातियाँ भी अपना संगठन कर रही हैं।'--(शब्द०)।

अछूत²--संज्ञा पुं० वह जो छूने योग्य न हो। अछूत या अस्पृश्य जाति का मनुष्य। जैसे--'आर्य समाज ने तीन सौ अछूतों को शुद्ध कर अपने में मिला लिया।'--(शब्द०)।

अछूतपन--संज्ञा पुं० [हिं० अछूत + पन] अछूत या अस्पृश्य होने का भाव। जैसे--'समाज उनके साथ अछूतपन का व्यवहार करता है'।--आ० अ० रा०, पृ० ८७।

अछूता--वि० [हिं० अछूत] [स्त्री० अछूती] १. बिना छुआ हुआ। जो छुआ न गया हो। अस्पृष्ट। २. जो काम में न लाया गया हो। जो बर्ता न गया हो। नया। कोरा। ताजा। पवित्र उ०--दधि माखन द्वै; माट अछूते तोहि सौंपति हौं सहियौ।--सूर०, १०।३१३।

अछूतोद्धार--संज्ञा पुं० [हिं० अछूत + उद्धार] १. अस्पृश्य जातियों के सुधार का कार्य। अछूतों से अन्य जातिवत् व्यवहार कार्य। २. अछूतों के उद्धार का आंदोलन।

अछेद¹(पु)--वि० [सं० अच्छेद्य] जिसका छेदन न हो सके। जो कट न सके। अभेद। अखंड्य। उ०--अभित अछेद रूप मम जान। जो सब घट है एक समान।--सूर०, ३।१३।

अछेद²--संज्ञा पुं० अभेद। अभिन्नता। छल छिद्र का अभाव। उ०--चेला सिद्धि सो पावै, गुरु सौं करै अछेद।--जायसी ग्रं०, पृ० १०६।

अछेदन(पु)--संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आच्छादन'। उ०--पाँच बासन श्वेत बस्तर कदलिपत्र अछेदना।--कबीर सा०, पृ० ५६।

अछेद्य--वि० [सं०] १. जिसका छेदन न हो सके। जो कट न सके। अभेद्य। अखंड्य। २. अविनाशी। अविनश्वर।

अछेरा(पु)--संज्ञा पुं० [सं० आश्चर्य; प्रा० अच्छेर] विस्मयजनक। अपूर्व। उ०--जावै पिण जावै नहीं, एह अछेरा गल्ल।--बाँकी० ग्रं०, भा० ३, पृ० ६।

अछेव(पु)--वि० [सं० अ+छेद या अछिद्र] छिद्र या दूषणरहित, निर्दोष। बेदाग। उ०--बसन सपेद स्वच्छ पैन्हे आभूषण सब हीरन को मोतिन को रसमि अछेव को।--रघुनाथ (शब्द०)।

अछेह(पु)--वि० [सं० अच्छेद्य] १ अखंडच। निरंतर। लगातार। उ०--यौं बिजुरी मनु मेह, आनि इहाँ बिरहा धरे। आठौं जाम अछेह, दृग जु बरत बरसत रहत।--बिहारी र०, दो० ४४५। २. अनंत। बहुत अधिक। अत्यंत। ज्यादा। उ०--(क) धरे रूप गुन कौ गरबु फिरै अछेह उछाह।--बिहारी र०, दो० ६००। (ख) दरस दौरि पिय पग परसि, आदर कियो अछेह।--पद्माकर ग्रं०, पृ० ६३।

अछै(पु)--वि० [हिं०] दे० 'अक्षय'। उ०--डर मेटे तब बिषम काल का, अछै अमर पद लहिए।--कबीर श०, पृ० २६।

अछोप(पु)--वि० [सं० अ+छुप] आच्छादनरहित। नंगा। नीच। तुच्छ। दीन। उ०--सेवा संजम कर जप पूजा, सबद न तिनको सुनावै। मैं अछोप हीन मति मेरी, दादू को दिखलावै।--दादू (शब्द०)।

अछोभ(पु)--वि० [सं० अक्षोभ] १. क्षोभरहित। चंचलतारहित। उद्वेगशून्य। उ०--बीर ब्रती तुम धीर अछोभा। गारी देत न पावहु शोभा।--तुलसी (शब्द०)। २. स्थिर। गंभीर। शांत। ३. मोहरहित। मायारहित। खेदरहित। उ०--जबते ब्राह्मण जनमिया, तब तें परधन लोभ। दे अक्षर कबहूँ नहीं इन्ह तें कौन अछोभ। कबीर--(शब्द०)। ४. निडर। निर्भय। ५. जिसे बुरा कर्म करते हुए क्षोभ या ग्लानि न हो। नीच।

अछोर(पु)--वि० [सं० अ = नहीं + हिं० छोर = किनारा] अपार। अकूल। बिना ओर छोर का।

अछोह[1](पु)†--संज्ञा पुं० [सं० अक्षोभ, प्रा० अच्छोह] १. क्षोभ का अभाव। २. शांति स्थिरता। ३. मोह का अभाव। दयाहीनता। करुणाशून्यता। निर्दयता।

अछोह[2](पु)--वि० १. क्षोभरहित। २. स्थिर। शांत। ३. मोहशून्य। ४. करुणारहित। निर्दय।

अछोही(पु)--वि० [हिं०] दे० 'अछोह'।

अजंगम--संज्ञा पुं० [सं० अजङ्गम] छप्पय नामक मात्रिक छंद के ७१ भेदों में से एक।

विशेष--इसमें कुल ११४ वर्ण होते हैं जिनमें ३८ गुरु और ७६ लघु होते हैं। मात्राओं की संख्या १५२ है।

अजंट--संज्ञा पुं० [अं० एजेंट] १. प्रतिनिधि। किसी दूसरे की ओर से कार्य करनेवाला। २. किसी राजा या सरकार की ओर से किसी दूसरे राजा या सरकार के यहाँ नियुक्त किया हुआ व्यक्ति, जिसका कर्तव्य आवश्यकतानुसार अपने राजा या सरकार की इच्छाओं को प्रकट करना और उनके अनुसार कार्य करना है। ३. किसी सौदागर की ओर से कमीशन या कुछ द्रव्य लेकर उसका सौदा बेचनेवाला। गुमाश्ता। अढ़तिया।

अजंटी--संज्ञा स्त्री० [हिं० अजंट + ई (प्रत्य०)] १. अजंट का कार्यालय। अजंट का दफ्तर या उसकी कचहरी। २. अजंट का पद या काम।

अजंत--वि० पुं० [सं० अच् + अन्त = अजंत] वह शब्द जिसके अंत में अच् प्रत्याहार हो। वह शब्द जिसके अंत में स्वर हो। स्वरांत (व्या०)।

अजंता--संज्ञा पुं० [देश०] दक्षिण भारत में सह्याद्रि पर्वत की गोद में बहनेवाली वागुरा नदी की घाटी में स्थित एक स्थान जो अपने १९ कलात्मक गुफामंदिरों के लिये जगद्विख्यात है।

विशेष--मध्य रेलवे की इटारसी बंबई शाखा पर स्थित जलगाँव स्टेशन से उतरकर फरदापुर होते हुए अजंता जाने का मार्ग है। गुफाएँ प्राकृतिक नहीं हैं, बल्कि पत्थर के ठोस पहाड़ों को काट-काटकर भारतीय कारीगरों द्वारा निर्मित हैं। वास्तु, शिल्प और चित्र इन तीनों कलाओं का चरमोत्कर्ष इन गुफाओं में दृष्टिगोचर होता है जिनका निर्माणकाल ई० पू० दूसरी शती (गुहा संख्या १०, १२, १३) से लेकर ७वीं शती तक (बिहार गुहा १, २) है। आरंभिक गुहाओं में बौद्धों की हीनयान शाखा के प्रभाव दृष्टिगोचर होते हैं। शिल्प और चित्रों में भगवान् बुद्ध की प्रधानता है। १९वीं गुहा सर्वोत्कृष्ट है। इसके भित्तिचित्रों में भगवान् बुद्ध और उनके जीवन की विविध घटनाएँ एवं विभिन्न जातक कथाओं के चित्र अत्यंत सधे हाथों से अंकित हैं। रंग ऐसे पक्के और चटकीले हैं, मानों कारीगर ने उन्हें अभी अभी समाप्त किया है। ५० फुट से अधिक प्रशस्त मंडप के ऊपर की छत तक अलंकृत है। अन्यान्य गुफाओं की चित्रसमृद्धि भी अत्यंत उच्च कोटि की है। ये गुफाएँ भारतीय स्वर्णयुग के सांस्कृतिक, कलात्मक और आध्यात्मिक उपलब्धियों की प्रत्यक्ष साक्षी हैं।

अजंतुक--वि० [सं० अजन्तुक] जंतुविहीन। प्राणीरहित। उ०--अजंतुक; जब पृथ्वी पर किसी प्रकार का जीवन न था।--हिंदु० सभ्यता, पृ० ८।

अजंभ[1]--वि० [सं० अजम्भ] बिना दाँत का। दंतरहित।

अजंभ[2]--संज्ञा पुं० १ मेढक। २. सूर्य (को०)। ३. बालक की वह अवस्था, जब उसके दाँत न निकले हों (को०)।

अजंमत्त(पु)†--संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अजमत'। उ०--अजंमत्त भारी हमीरं सु जानी।--ह० रासो, पृ० ८५।

अजंसी--संज्ञा स्त्री० [अं० एजेंसी] १. अजंट के रहने का स्थान। अजंट का दफ्तर या उसकी कचहरी। २. आढ़त। आढ़त की दूकान। वह दूकान जिसमें किसी दूसरे सौदागर या कारखाने की चीज बेचने के लिये रखी जाय।

अज[1]--वि० [सं०] जिसका जन्म न हो। जन्म के बंधन से रहित। अजन्मा। स्वयंभू। उ०--ब्रह्म जो व्यापक बिरज अज अकल अनीह अभेद।--मानस, १।५०।

अज[2]--संज्ञा पुं० १. ब्रह्मा। उ०--लगन बाचि अज सबहि सुनाई।--मानस, १।९१। २ विष्णु। ३. शिव। ४. ईश्वर (को०)। ५. कामदेव। ६. चंद्रमा (को०)। ७. एक सूर्यवंशी राजा जो दशरथ के पिता थे।

विशेष--वाल्मीकि रामायण में इन्हें नाभाग का पुत्र लिखा है पर रघुवंश आदि के अनुसार ये रघु के पुत्र थे।

८. बकरा। उ०--तदपि न तजत स्वान, अज, खर ज्यों फिरत विषय अनुरागे।--तुलसी ग्रं०, पृ० ५१६। ९. भेंड़ा। १०.

माया शक्ति। ११ जीव (को०)। १२. ज्योतिष में शुक्र की गति के अनुसार तीन तीन नक्षत्रों की जो एक एक वीथी मानी गई है, उनमें से एक, जो हस्त, विशाखा और चित्रा नक्षत्र में होती है। १३. एक ऋषि (को०)। १४. मेषराशि (को०) १५. अग्नि (को०)। १६. एक प्रकार का धान्य (को०)। १७. माक्षिक धातु (को०)। १८ सूर्य का रथ (को०)।

अज[3]पु—क्रि० वि० [सं० **अद्य**; प्रा० **अज्ज**] अब। अभी तक।

विशेष—इस शब्द को 'हूँ' के साथ देखा जाता है, स्वतंत्र रूप में नहीं; जैसे—(क) उठी कबीरा बिरहिनी अजहूँ ढूँढै खेह।—कबीर (शब्द०)। (ख) अजहूँ जागु अजाना होत आउ निसि भोर।—जायसी (शब्द०)। (ग) रे मन, अजहूँ क्यों न सम्हारै।—सूर०, १।६३। (घ) अजहूँ मानहूँ कहा हमारा।—मानस, १।८०।

अज[4]—प्रत्य० [फ़ा० **अज**] से। उ०—लिये खाँदे ऊपर अज जान हौर दिल।—दक्खिनी०, पृ० ११४।

अजक[1]—वि० वि० [सं० **अ = नहीं + फा० जक = पराजय**] अपराजेय। उद्धत। उ०—अजक अपीधा अनल ज्यूँ विरा कीधा रसातल।—राज०, पृ० ७४।

अजंक‡—संज्ञा स्त्री० रोग। पीड़ा। उ०—एक जड़ी तोइ ऐसी री दूंगौ, मिटि जाइ अजक तिहारी।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ६६५।

अजक[3]—संज्ञा पुं० [सं०] पुरुरवा के वंश का एक राजा [को०]।

अजंकजा—संज्ञा पुं० [फ़ा० **अज** + अ० **कजा**] संयोगवश। उ०—अजकजा जब शेख गए बस्ती भीतर।—दक्खिनी०, पृ० २०१।

अजकर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अजकर्णक' [को०]।

अजकर्णक—संज्ञा पुं० [सं०] १. साल का पेड़। सालवृक्ष २. असन का वृक्ष [को०]।

अजकव—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अजगव'।

अजका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कम उम्रवाली बकरी। २. बकरी के गले से लटकनेवाली माँस की ग्रंथि। अजागलस्तन। ३. नेत्रों का एक रोग। अजकाजात [को०]।

अजकाजात—संज्ञा पुं० [सं०] आँख में होनेवाली लाल फूली जो पुतली को ढँक लेती है। टेटड़ वा ढेंढड। नाखुना।

अजकाव—संज्ञा पुं० [सं०] १ शिव का धनुष। अजगव। २. बबूल का वृक्ष। ३. काष्ठनिर्मित एक यज्ञ पात्र जो मित्र और वरुण से संबद्ध है (को०)। ४. एक नेत्ररोग। अजकाजात [को०]। ५. अजका रोग का विष [को०]।

अजखुद—क्रि० वि० [फ़ा०]। स्वयं। आप से आप। उ०—'गुया अजखुद गाली न देकर।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० १०१।

अजगंधा—संज्ञा स्त्री० [सं० **अजगन्धा**] अजमोदा।

अजगंधिका—संज्ञा स्त्री० [सं० **अजगन्धिका**] १. बनतुलसी का पौधा। बर्बरी।

अजगंधिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० **अजगन्धिनी**] १. काकड़ासींगी। २. बनतुलसी का पौधा [को०]।

अजग—संज्ञा पुं० [सं०] १. शिव का धनुष। २. विष्णु का नाम। ३. अग्नि [को०]।

अजगर[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ बकरी निगलने वाला साँप। बहुत मोटी जाति का एक सर्प। उ०—(क) बैठि रहेसि अजगर इव पापी।—मानस, ७।१०७। (ख) बिन आशा बिन उद्यम कीने अजगर उदर भरै।—सूर०, १।१०५। अजगर करै न चाकरी पंछी करै न काम। दास मलूका कहि गए सब के दाता राम —मलूक (शब्द०)।

विशेष—यह अपने शरीर के भारीपन के कारण फुर्ती से इधर उधर डोल नहीं सकता और बकरी, हिरन ऐसे बड़े पशुओं को निगल जाता है। और सर्पों के समान इसके दाँतों में विष नहीं होता। यह जंतु अपनी स्थूलता और निरुद्यमता के लिये प्रसिद्ध है। २. एक दानव (को०)।

अजगरी[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० **अजगरीय**] अजगर की सी निरुद्यम वृत्ति। बिना परिश्रम की जीविका। उ०—उत्तम भीख जो अजगरी, सुनि लीजो निज बैन। कहै कबीर ताके गहे महा परम सुख चैन।—कबीर (शब्द०)।

अजगरी[2]—वि० १. अजगर की सी। २. बिना परिश्रम की।

अजगरी[3]—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक पौधे का नाम [को०]।

अजगरीवृत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] बिना श्रम की जीविका। अजगरी।

अजगलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] मूँग के दाने के बराबर छोटी पीड़ारहित फुंसी जो कफ और वात के प्रकोप से शरीर पर निकलती है।

अजगल्लिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अजगलिका' [को०]।

अजगव—संज्ञा पुं० [सं०] १. शिव जी का धनुष। पिनाक। उ०—नहीं इसी से चढ़ी शिंजिनी अजगव पर प्रतिशोध भरी।—कामायनी, पृ० १०५। २ अजवीथी (को०)।

अजगाव—संज्ञा पुं० [सं०] १ शिव का धनुष। २ नागों के एक गुरु। ३ एक प्रकार यज्ञपात्र। ४. अजवीथी [को०]।

अजगुत[1]—संज्ञा पुं० [सं० **अयुक्त** हिं० **अजुगुति**] १. युक्ति-विरुद्ध बात। अचंभे की बात। आश्चर्यजनक भेद। असाधारण बात। अस्वाभाविक व्यापार। अप्राकृतिक घटना उ०—आई करगी भो अजगूता। जनम जनम जम पहिरे बूता।—कबीर (शब्द०)। २. अयुक्त बात। अनुचित बात। बेजोड़ बात। उ०—सरबस लूटि हमारो लीनो राज कूबरी पावै। तापर एक सुनो री अजगुत लिख लिख जोग पठावै।—सूर (शब्द०)।

अजगुत[2]पु †—वि० १. आश्चर्यजनक। अद्भुत। विलक्षण। २. अनुचित। अयुक्त। बेजोड़। उ०—पापी जाउ जीभ गलि तेरी अजगुत बात बिचारी। सिंह को भक्ष्य शृगाल न पावै हौं समरथ की नारी।—सूर (शब्द०)।

अजगुथ्थापु ‡—वि० [हिं०] दे० 'अजगुत'। उ०—विभीषण भेद कहो अजगुथ्था।—कबीर सा०, पृ० ४१।

अजगैब[1]—क्रि० वि० [फ़ा०] अलक्षित स्थान से। गैब से। अदृष्ट से [को०]।

अजगैब[2]पु—संज्ञा पुं० [फ़ा० **अज** + अ० **गैब**] अलक्षित स्थान। अदृष्ट स्थान। उ०—दादू डरिए लोक तें, कैसी धरहिं उठाइ। अनदेखी अजगैब, कैसी कहइ बनाइ।—दादू (शब्द०)।

अजगैबी(पु)--वि० [फा० अज+अ० गैबी+ई (प्रत्य०)] रहस्यपूर्णता। अलौकिकता। उ०--कहै पदमाकर त्यों तारन बिवारन की बिगर गुनाह अजगैबी गैर आब की।--पद्माकर ग्रं०, पृ० ३२४।

यौ०--**अजगैबी गोला**, **अजगैबी तमाचा**=दैवी विपत्ति आकस्मिक कष्ट। **अजगैबी तमाशा**=आश्चर्य करनेवाला खेल। **अजगैबी मार**=दे० 'अजगैबी गोला'।

अजघन्य--वि० [सं०] जो जघन्य अर्थात् जो निम्नतम, तुच्छ और अंतिम या उपेक्ष्य न हो [को०]।

अजघोष--संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का सन्निपात जिसमें रोगी के शरीर से बकरे की गंध आती है।--(माधव०)।

अजजीव--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अजजीविक' [को०]।

अजजीविक--संज्ञा पुं० [सं०] बकरे पालकर उनके विक्रयादि के द्वारा अपनी जीविका चलानेवाला व्यक्ति [को०]।

अजटा--संज्ञा स्त्री० [सं०] भूम्यामलकी। कपिकच्छू [को०]।

अजड¹--वि० [सं०] जो जड़ न हो। चेतन।

अजड²--संज्ञा पुं० चेतन पदार्थ।

अजड़³--वि०, संज्ञा पुं० [सं० अजड] दे० 'अजड'

अजण--संज्ञा पुं० [सं० अर्जुन] राजा सहस्रार्जुन।--(डिं०)।

अजथ्या--संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पीले रंग की जूही का पेड़ और फूल। २. पीली चमेली। जर्द चमेली। ३. बकरों का समूह (को०)।

अजदंडी--संज्ञा स्त्री० [सं० अजदण्डी] एक प्रकार का पौधा। ब्रह्मदंडी [को०]।

अजदर--संज्ञा पुं० [फा० अजदर] दे० 'अजदहा'। उ०--अजदर है भभूका है जहन्नुम है बला है --भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ५२२।

अजदहा--संज्ञा पुं० [फा०] बड़ा मोटा और भारी साँप। अजगर।

अजदाह--संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अजदहा'। उ०--संत की प्रीति अजदाह की चाहिए, चले बिन फिरे आहार आवै।--पलटू०, पृ० २६।

अजदेवता--संज्ञा पुं० [सं०] १. अग्नि। २. पूर्वाभाद्रपदा नक्षत्र का एक नाम [को०]।

अजधाम--संज्ञा पुं० [सं० अज+धाम] ब्रह्मलोक। उ०--(क) पद पाताल सीस अजधामा।--मानस ६।१५। (ख) पद है पताल दिग श्रुति अजधाम भाल बाल घन माल काल भृकुटी बिलास है।--दीन० ग्रं०, पृ० १५५।

अजनंदन--संज्ञा पुं० [सं० अज+नन्दन] रघुवंश के राजा अज के पुत्र दशरथ। उ०--त्याग दिया आज अजनंदन ने एक साथ पुत्र हेतु प्राण सत्य कारण अपत्य है।--साकेत, पृ० २०१।

अजन¹--वि० [सं०] १. जन्म के बंधन से मुक्त। जन्मरहित। अजन्मा। अनादि। स्वयंभू। उ०--सकललोक नायक, सुखदायक, अजन, जन्म धरि आयौ।--सूर०, १०।४। २. निर्जन। सुनसान। उ०--मो उर अजन अजिर मैं निज तोतिहि जमाय जागौगे।--घनानंद, पृ० १६२।

अजन²--संज्ञा पुं० [सं०] १. अयोग्य व्यक्ति। अप्रिय व्यक्ति। तुच्छ जन। उ०--हँसे खुलकर हाल बाहर अजन जन के बने मंगल। --अर्चना, पृ० २७। २. पितामह। ब्रह्मा (को०)। ३. गति गमन (को०)।

अजनक--वि० [सं०] उत्पादन न करनेवाला। अनुत्पादक [को०]।

अजननि--संज्ञा स्त्री० [सं०] उत्पन्न या पैदा न होने की स्थिति। उत्पन्न न होना [को०]।

अजननीय--वि० [सं०] जनन के अयोग्य। जो उत्पादनीय न हो।

अजननी--वि० [अ०] १. अज्ञात। अपरिचित। जिसे कोई जानता न हो। बिना जान पहिचान का। नया। परदेशी। २. अनजान। नावाकिफ।

अजनबीपन--संज्ञा पुं० [अ० अजनबी+हिं० पन (प्रत्य०)] अजनबी होने का भाव। उ०--उस पर दो भाषाओं के अजनबीपन की छाप दिखाई पड़ी।--चिंतामणि, भा० २, पृ० १४२।

अजनयोनिज--संज्ञा पुं० [सं०] दक्ष प्रजापति [को०]।

अजनाभ--संज्ञा पुं० [सं०] भारतवर्ष का एक प्राचीन नाम [को०]।

अजनामक--संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का खनिज द्रव्य [को०]।

अजनाशक--संज्ञा पुं० [सं०] भेड़िया [को०]।

अजन्म¹--वि० [सं० अजन्मा] दे० 'अजन्मा'। उ०--आतम अजन्म सदा अबिनासी। ताकौं देह मोह बड़ फाँसी।--सूर० ५।४।

अजन्म²--संज्ञा पुं० [सं०] जन्म का अभाव। जन्म न होना [को०]।

अजन्मा--वि० [सं०] जन्मरहित। जिसका जन्म न हुआ हो। जो जन्म के बंधन में न आवे। अनादि। नित्य। अविनाशी।

अजन्य¹--संज्ञा पुं० [सं०] शुभाशुभ सूचक सृष्टिव्यापार जैसे--भूकंप आदि।

अजन्य²--वि० १. जन्य या मनुष्य के लिये अनुपयुक्त। २. उत्पादन के अयोग्य। अजननीय [को०]।

अजप--संज्ञा पुं० [सं०] १. कुपाठक। बुरा पढ़नेवाला ब्राह्मण। २. बकरी, भेंड़ पालनेवाला। गड़ेरिया।

अजपति--संज्ञा पुं० [सं०] १. उत्तम एवं श्रेष्ठ बकरा। २. भौम। मंगल [को०]।

अजपथ--संज्ञा पुं० [सं०] १. छायापथ। अजवीथी (को०) २. वह पथ जिसपर केवल बकरी ही चल सके। अत्यंत सँकरा मार्ग।

विशेष--अजपथ के विषय में बृहत्कथा श्लोकसंग्रह में लिखा है कि यह रास्ता इतना कम चौड़ा होता था कि आमने सामने से आनेवाले दो व्यक्ति एक साथ उसपर से निकल नहीं सकते थे।

अजपथ्य--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अजपथ' [को०]।

अजपद--संज्ञा पुं० [सं०] अजैकपाद नामक रुद्र [को०]।

अजपा¹--वि० [सं०] १. जिसका उच्चारण न किया जाय। उ०--जपते सभक्ति अजपा विभक्त हो राम नाम।--अपारा, पृ० ४१। २. जो न जपे या भजे।

अजपा²--संज्ञा पुं० १. उच्चारण न किया जानेवाला तांत्रिकों का मंत्र। वह जप जिसके मूल मंत्र 'हंसः' का उच्चारण श्वासप्रश्वास के गमनागमन मात्र से होता जाय। हंस मंत्र। उ०--अजपा जपत सुंनि अभिअंतरि, यहु तत जानै सोई।--कबीर ग्रं०, पृ० १५६।

विशेष--इसका देवता अर्धनारीश्वर अर्थात् शिव और शक्ति का संयुक्त रूप है। इस जप की संख्या एक दिन और रात में २१,६०० मानी गई है।

यौ०--**अजपाजप, अजपाजाप**=हंसः मंत्र का जप। उ०--अजपाजाप उनमनी तारी।--कबीर ग्रं०, पृ० १५८। **अजपामाला**=अजपा जपने की माला या प्रक्रिया। उ०--तिलक उनमनी भल जपत है अजपा माला।--पलटू०, भा० १, पृ० १००।

२. बकरियों का पालक। गड़ेरिया।

अजपाद--संज्ञा पुं० [सं०] एक रुद्र [को०]।

अजपाल--संज्ञा पुं० [सं०] बकरी पालने का व्यवसाय करनेवाला व्यक्ति। उ०--'कृषक, अजपाल और व्यापारी लोगों के लिये शुभाशीर्वाद सूचक मंत्र है'।--हिंदु० सभ्यता, पृ० ६२।

अजबंधु--संज्ञा पुं० [सं० अजबन्धु] मूर्ख। अज के समान मंद बुद्धिवाला व्यक्ति [को०]।

अजब¹--वि० [अ०] विलक्षण। अद्भुत। आश्चर्यजनक। विचित्र। अनोखा। अनूठा। उ०--कारी निशि कारी घटा, कच रति कारे नाग। कारे कन्हर पै चली, अजब लगन की लाग।--पद्माकर (शब्द०)।

अजब²--संज्ञा पुं० अचंभा। अचरज [को०]।

अजबस--क्रि० वि० [फा०] एकाएक। उ०--लगे गुलशन पे अजबस गम के होल्याँ।--दक्खिनी०, पृ० १६१।

अजभक्ष--संज्ञा पुं० [सं०] बबूल का पेड़ जिसकी पत्ती बकरियाँ अधिक चाव से खाती हैं।

अजम--संज्ञा पुं० [अ०] अरब के अलावा ईरान, तूरान आदि देश अथवा वहाँ के निवासी। उ०--अरब और अजम तुर्कों ताजिक व रूम।--दक्खिनी, पृ० ९१३।

अजमत--संज्ञा पुं० [अ० अजमत] १. प्रभुत्व। प्रताप। शान। महत्व। उ०--आपकी उल्फत ईसा की सब अजमत आज मिटाएगी।--भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ८५६। २. चमत्कार।

अजमाइश†--संज्ञा स्त्री० [फा० आजमाइश] दे० 'आजमाइश'।

अजमाना†--क्रि० स० [हिं०] दे० 'आजमाना'।

अजमायु--वि० [सं०] बकरे की तरह मिमियानेवाला [को०]।

अजमार--संज्ञा पुं० [सं०] १. कसाई। २. अजमेर का एक नाम। ३. एक जाति [को०]।

अजमी¹--वि० [अ०] अजम संबंधी। अजम का [को०]।

अजमी²--संज्ञा पुं० अजम का निवासी व्यक्ति। ईरानी तूरानी [को०]।

अजमीढ़--संज्ञा पुं० [सं० अजमीढ] १. अजमेर का पुराना नाम। २. पुरुवंशीय हरिता के ज्येष्ठ पुत्र का नाम। ३. सुहोत्र के पुत्र का नाम। ४. युधिष्ठिर की उपाधि [को०]।

अजमुख¹--संज्ञा पुं० [सं०] दक्ष प्रजापति का एक नाम [को०]।

विशेष--यज्ञ में शिव का अपमान करने पर सती के देहत्याग के बाद वीरभद्र ने दक्ष के यज्ञ का ध्वंस किया और उसे मार डाला। बाद में शिव की आज्ञा से उसे जीवित करने के लिये बकरे का सिर लगा दिया था। 'काशीखंड' में इसका विस्तृत विवरण है।

अजमुख²--वि० बकरी की तरह मुखवाला। बकरमुहाँ [को०]।

अजमुखी--संज्ञा स्त्री० [सं०] एक राक्षसी जो अशोकवाटिका में सीता की देखरेख के लिये नियुक्त थी [को०]।

अजमूदा--वि० [फा० आजमूदा] दे० 'आजमूदा'।

अजमोद--संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० अजमोदिका] अजवाइन की तरह का एक पेड़ और उसका फल। बड़ी अजवाइन।

विशेष--यह सारे भारत में लगाया जाता है। इसके बीज या दाने मसाले और औषधि के काम आते हैं। यह अजीर्ण, संग्रहणी तथा शरीर की पीड़ा दूर करने के लिये प्रसिद्ध है।

पर्या०--**उग्रगंधा। गंधदला। शिखिमोदा। वह्निदीपिका। मर्कटी। मायूरी। वनयमानी। हस्तिकारवी।**

अजमोदा--संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अजमोद' [को०]।

अजमोदिका--संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अजमोद [को०]।

अजय¹--संज्ञा पुं० [सं०] १. पराजय। हार। जय का अभाव। २. अग्नि (को०)। ३. विष्णु (को०)। ४. एक कोशकार का नाम (को०)। ५. छप्पय छंद के ७१ भेदों में से पहला जिसमें ७० गुरु और १२ लघु मिलाकर ८२ वर्ण और १५२ मात्राएँ हैं।

अजय²--वि० न जीतने योग्य। जो जीता न जा सके। अजेय। उ०--जीति को सकै अजय रघुराई। माया तें असि रची न जाई।--मानस ६।१३।

अजयपाल--संज्ञा पुं० [सं०] १. संगीत में भैरव राग का पुत्र।

विशेष--यह संपूर्ण जाति का राग है। इसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं। २. एक राजा का नाम। ३. जमालगोटा।

अजया¹--संज्ञा स्त्री० [सं०] १. विजया। भाँग। २. दुर्गा की एक सखी का नाम (को०)। ३. माया (को०)।

अजया²--संज्ञा स्त्री० [सं० अजा] बकरी। उ०--खोज पकरि विश्वास गहु, धनी मिलैंगे आय। अजया गज मस्तक चढ़ी, निर्भय कोंपल खाय।--कबीर (शब्द०)।

अजय्य--वि० [सं०] १. अजेय। जो जीता न जा सके। २. क्रीड़ा में अजेय (को०)।

अजर¹--संज्ञा पुं० [सं०] १. निर्जर। देवता (को०)। २. परब्रह्म। ईश्वर का एक नाम। ३. वृद्धदारक या जीर्णफंजी नामक पौधा (को०)।

अजर²--वि० १. जरारहित। जो बूढ़ा न हो। उ०--अजर अमर सो जीति न जाई। हारे सुर करि विविध लराई।--मानस, १।८१। २. नाशरहित। क्षयरहित।

अजर³--वि० [सं० अ=नहीं+जृ (जर)=पचना] अपाच्य। गरिष्ठ। उ०--अजर अंस अतीथ का गृही करै जो अहार। निश्चय होय दरिद्री कहै कबीर विचार।--कबीर (शब्द०)।

अजर⁴--संज्ञा पुं० [अ०] इनाम। पुरस्कार। फल। उ०--जे मुकर्रर है सबूरे को अजर।--दक्खिनी०, पृ० १७३।

अजर⁵(पु)--संज्ञा पुं० [सं० अजिर] दे० 'अजिर'। उ०--नागर जू मेरे भौन छाए हैं उछाह युत, और सोभा ह्वै गई है कालिह ते अजर की।--नट०, पृ० ६६।

अजरक--संज्ञा पुं० [सं०] अग्निमांद्य। मंदाग्नि [को०]।

अजरद्रुम--संज्ञा पुं० [सं०] कल्पवृक्ष [को०]।

अजरा--संज्ञा स्त्री० [सं०] १. घृतकुमारी। घीकुआर। २. विधारा। ३. गृहगोधा। छिपकली (को०)।

अजरायल[1]--वि० [सं० अजर + हिं० आयल (प्रत्य०)] जो जीर्ण न हो। जो पुराना न हो। जो सदा एक सा रहे। अमिट। पक्का। चिरस्थायी। उ०--दिना चारि में सब मिटि जैहैं। श्याम रंग अजरायल रैहैं।--सूर० (शब्द०)।

अजरायल[2]†--वि० [सं० अ = नहीं + डर = भय] १. निर्भय। बेडर। निःशंक। उ०--तस कुठार व्रग तायल राह बरात ईख अजरायल।--रघु० रू० पृ० ८९। २ बलवान्। शक्तिशाली। उ०--रीठ बागो उभय ओड़ अजरायलां।--रघु० रू०, पृ० १८३।

अजराल--वि० [सं० अ = नहीं + जृ पुराना पड़ना] बलवान्। जोरावर।--डिं०।

अजरावन--वि० [सं० अजर + आवन (प्रत्य०)] दे० 'अजर'। उ०--भलैं सु दिन भयौ पूत अमर अजरावन रे।--सूर०, १०।२८।

अजरावर(पु)--वि० [सं० अजरामर] जरा मरण से रहित। उ०--आत्मा माहि दीदार दरसता रहै यूँ अजरावर होय आपु जीया।--रामानंद०, पृ० ५।

अजर्य[1]--वि० [सं०] १ जराविहीन। २. पचाने के अयोग्य। अपाच्य। ३. चिरकाल तक रहनेवाला। चिरस्थायी [को०]।

अजर्य[2]--संज्ञा पुं० मैत्री। दोस्ती [को०]।

अजलंबन--संज्ञा पुं० [सं० अजलम्बन] सुरमा [को०]।

अजल--संज्ञा स्त्री० [अ० अजल] मृत्यु। मौत। उ०--ऐ सनम तू ही मेरी शक्ल से रहता है रुसा, है अजल भी तो खफा।--श्यामा०, पृ० १०२।

अजलचर--वि० [सं० अ = नहीं + जलचर] जो जलचर न हो। जो जल में न रहता हो। स्थलचर। थलचर उ०--अरु तहँ बहुत जुगनि कौ कह्यौ। सर्प अजलचर क्यों जल रह्यौ।--नंद० ग्रं०, पृ० २७९।

अजलोमा--संज्ञा स्त्री० [सं०] केवाँच का पेड़।

अजलोमी--संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अजलोमा' [को०]।

अजव--वि० [सं०] वेगरहित। गतिहीन [को०]।

अजवल्ली--संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अजशृंगी' [को०]।

अजवाइन--संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अजवायन'। उ०--रोटी रुचिर कनक बेसन करि। अजवाइनि सैंधो मिलाइ धरि।--सूर०, १०।१२१३।

अजवायन--संज्ञा स्त्री० [सं० यवानिका] यवानी। एक पौधा। जवाइन।

विशेष--यह पौधा सारे भारत में, विशेषकर बंगाल में लगाया जाता है। यह पौधा अफगानिस्तान, फारस और मिस्र आदि देशों में भी होता है। भारतवर्ष में इसकी बोआई कार्तिक, अगहन में होती है। इसके बीज जिनमें एक विशेष प्रकार की महक होती है और जो स्वाद में तीक्ष्ण होते हैं, मसाले और दवा के काम आते हैं। भभके पर उतारने से बीज में से अर्क (अमूम का पानी) और तेल निकलता है। भभके से उतारते समय तेल के ऊपर एक सफेद चमकीली चीज अलग होकर जमै जाती है जो बाजार में 'अजवायन के फूल' के नाम से बिकती है। अजवायन का प्रयोग हैजा, पेट का दर्द, वात की पीड़ा आदि में किया जाता है।

अजवाह[1]--संज्ञा पुं० [सं०] कच्छ, कठियावाड़ का एक प्राचीन नाम [को०]।

अजवाह[2]--वि० अजवाह देश का [को०]।

अजवीथि--संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अजवीथी' [को०]।

अजवीथी--संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सूर्यादि के गमन के तीन दक्षिणी मार्गों में से एक। छायापथ। गगनसेतु। २. बकरे के चलने की राह या मार्ग [को०]।

अजशृंगी--संज्ञा स्त्री० [सं० अजशृङ्गी] एक वृक्ष। मेढ़ासिंगी।

विशेष--यह भारतवर्ष में प्रायः समुद्र के किनारे होता है। इसकी छाल 'संकोचक' है और ग्रहणी आदि रोगों में दी जाती हैं। इसका लेप घाव और नासूर को भी भरता है।

अजस(पु)--संज्ञा पुं० [सं० अयश प्रा० अजस] अयश। अपयश। अपकीर्ति। बुरी ख्याति। बदनामी। उ०--सिय बरनिय तेइ उपमा देई। कुकवि कहाइ अजस को लेई।--मानस, १।२४७।

यौ०--अजस पेटारी = अयश की भागिनी। उ०--अजस पेटरी ताहि करि गई गिरा मति फेरि।--मानस २ १२।

अज सरे नौ--क्रि० वि० [फा० अज सरे नौ] नए सिरे से। नए ढंग से [को०]।

अजसी(पु)--वि० [सं० अयशिन्] जिसकी बुरी कीर्ति हो। बदनाम। निंद्य। अपयशी। उ०--कौल कामबस कृपन बिमूढ़ा। अति दरिद्र अजसी अति बूढ़ा।--मानस, ६।३१।

अजस्र--क्रि० वि० [सं०] सदा। निरंतर। हमेशा। लगातार। उ०--'आहुतियाँ विश्व की अजस्र लुटाता रहा।'--लहर, पृ० ५६।

अजस्रता--संज्ञा स्त्री० [सं० अजस्र + ता (प्रत्य०)] अजस्र होने का भाव या क्रिया। नैरंतर्य। उ०--'तुममें या मुझमें या हमारे प्रेम में ही अजस्रता नहीं है'--चिंता०, पृ० ९४।

अजहत्--वि० [सं०] त्याग न करनेवाला। न छोड़नेवाला [को०]।

अजहति--संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अजहत्स्वार्था'।

अजहल्लक्षणा--संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अजहत्स्वार्था' [को०]।

अजहल्लिंग--संज्ञा पुं० [सं० अजहल्लिङ्ग] संस्कृत व्याकरण में वह शब्द या संज्ञा जो अन्य लिंग के शब्द के विशेषण के रूप में प्रयुक्त होने पर भी अपने लिंग का त्याग न करे [को०]।

अजहत्स्वार्था--संज्ञा स्त्री० [सं०] अलंकार शास्त्र में लक्षणा के दो भेदों में से एक।

विशेष--इसमें लक्षक शब्द अपने वाच्यार्थ को न छोड़कर उससे संपृक्त या कुछ भिन्न या अतिरिक्त अर्थ प्रकट करे। जैसे--'भालों के आते ही शत्रु भाग गए'। यहाँ भालों से तात्पर्य भाला लिए सिपाहियों से है। इसे उपादान लक्षणा भी कहते हैं।

अजहद--क्रि० वि० [फा० अज + अ० हद्द] हद से ज्यादा। बहुत अधिक। उ०--सब पंखियों में मैं हूँ अजहद पाक तन।--दक्खिनी०, पृ० १७९।

अजहुँ(पु)--क्रि० वि० [हिं०] दे० 'अजहूँ'। उ०--तुलसी अजहुँ सुमिरि रघुनाथहिं तारा गयंद जाके अर्धनायँ। --तुलसी ग्रं०, पृ० ५०२।

अजहूँ(पु)--क्रि० वि० [सं० अद्य, प्रा० अज्ज + हिं० हूँ (प्रत्य०)] अब भी अद्यपि। आज भी। उ०--किती बार मोहि दूध पियत भई, यह अजहूँ है छोटी।--सूर०, १०।१७५।

अजांत्री--संज्ञा स्त्री० [सं० अजान्त्री] नीलपुष्पी नामक पौधा [को०]।

अजांबिका--संज्ञा स्त्री० [सं० अजाम्बिका] भाद्र कृष्ण एकादशी का नाम जो एक व्रत का दिन है।

अजाँ-- संज्ञा स्त्री० [अ० अजाँ] दे० 'अजान[3]'। उ०--तुझे ही शेख ने प्यारे अजाँ देकर पुकारा है।--भारतेंदु ग्रं०, भाग २, पृ० ८५१।

अजा[1]--वि० स्त्री० [सं०] जिसका जन्म न हुआ हो। जो उत्पन्न न की गई हो। जन्मरहित। उ०--अजा अनादि सक्ति अबिनासिनि।--मानस, १।९७।

अजा[2]--संज्ञा स्त्री० १ बकरी। २ सांख्य मतानुसार प्रकृति या माया जो किसी के द्वारा उत्पन्न नहीं की गई और अनादि है। ३ शक्ति। दुर्गा। ४ भादो बदी एकादशी जो एक व्रत का दिन है।

अजा[3]--संज्ञा पुं० [अ० अजा] १ मृत्युशोक। मातम। २ मातमपुर्सी [को०]।

अजाइब(पु)--संज्ञा पुं० [अ० अजायब] दे० 'अजायब'। उ०--अजब अजाइब नूर दीदम दादू है हैरान।--दादू, पृ० ५७७।

अजाखाना--संज्ञा पुं० [अ० अजाखानह्] वह स्थानविशेष जहाँ मातम किया जाय, ताजिया रखा जाय या मर्सिया पढ़ा जाय [को०]।

अजागर[1]--वि० [सं०] न जागनेवाला [को०]।

अजागर[2]--संज्ञा पुं० भृंगराज। भँगरैया [को०]।

अजागलस्तन--संज्ञा पुं० [सं०] १. बकरी के गले में लटकने वाली मांस की स्तनकार छीमी। २. देखने में उपयोगी किंतु निरर्थक वस्तु (लाक्ष०) [को०]।

अजाच(पु)--वि० [हिं०] दे० 'अयाच्य'। उ०--जाचक भए अजाच प्रजा परिजन मुद छाए।--रत्नाकर, भा० १, पृ० २५४।

अजाचक(पु)[1]-- संज्ञा पुं० [सं० अयाचक] न माँगनेवाला। वह जिसे कुछ माँगने की आवश्यकता न हो। संपन्न व्यक्ति।

अजाचक(पु)[2]--वि० जो न माँगे। जिसे माँगने की आवश्यकता न हो। संपन्न। भरापूरा। उ०--बिप्रन्ह दान बिबिध बिधि दीन्हे। जाचक सकल अजाचक कीन्हे।--मानस, ७।१३।

अजाची(पु)[1]†--संज्ञा पुं० [सं० अयाचिन्] न माँगनेवाला। संपन्न पुरुष।

अजाची(पु)[2]--वि० जो न माँगे। जिसे माँगने की आवश्यकता न हो। धन धान्य से पूर्ण। संपन्न। भरापूरा। उ०--(क) कपि सबरी सुग्रीव विभीषन को जो कियो अजाची।--तुलसी (शब्द०)। (ख) गुरुसुत आनि दिए जमपुर तैं बिप्र सुदामा कियौ अजाची।--सूर०, १।१८।

अजाजि--संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अजाजी' [को०]।

अजाजी--संज्ञा स्त्री० [सं०] सफेद और काला जीरा। जीरा।

अजाजील--संज्ञा पुं० [अ० अजाजील] शैतान [को०]।

अजाजीव--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अजजीवक' [को०]।

अजात--वि० [सं०] १. जो पैदा न हुआ हो। अनुत्पन्न। २. जन्मरहित। अजन्मा।

अजातककुत्--संज्ञा पुं० [सं०] वह बछड़ा जिसकी पीठ पर डिल न निकला हो। छोटा बछड़ा। बछवा। उ०--जब तक बछड़ा बड़ा नहीं हो जाता था अर्थात् उसकी पीठ पर डिल नहीं निकल आता था तब तक वह अजातककुत् और युवा होने पर पूर्णककुत् कहलाता था।--संपू० अभि० ग्रं०, पृ० २४८।

अजातदंत--वि० [सं० अजातदन्त] जिसे दाँत पैदा न हुए हों। बिना दाँत का। दंतविहीन [को०]।

अजातपक्ष--वि० [सं०] बिना पंखवाला। जिसे पंख उत्पन्न न हुए हों [को०]।

अजातरिपु--वि० [सं०] दे० 'अजातशत्रु' [को०]।

अजातव्यंजन--वि० [सं० अजातव्यञ्जन] अस्पष्ट आकृति या चिह्नवाला। जिसकी आकृति सुस्पष्ट न हो, (पक्षी) [को०]।

अजातव्यवहार--वि० [सं०] जिसको व्यवहारिक ज्ञान न हो या जो बालिग न हो [को०]।

अजातशत्रु[1]--वि० [सं०] जिसका कोई शत्रु उत्पन्न न हुआ हो। बिना बैरी का। शत्रुविहीन।

अजातशत्रु[2]--संज्ञा पुं० १. राजा युधिष्ठिर। २. शिव। ३. बृहदारण्यक उपनिषद् में वर्णित काशी का एक क्षत्रिय राजा जो बड़ा ज्ञानी था और जिसने गार्ग्य बालाकि ऋषि को बहुत से उपदेश दिए थे। ४. राजगृह (मगध) के राजा बिंबिसार का पुत्र जो गौतमबुद्ध का समकालीन था।

अजातश्मश्रु--वि० [सं०] जिसे दाढ़ी मूछ न निकली हो। छोटी उम्रवाला। अल्पवय [को०]।

अजातारि--संज्ञा पुं०, वि० [सं०] दे० 'अजातशत्रु' [को०]।

अजाति[1]--वि० [सं०] १. जाति से निकला हुआ। जाति से बाहर। जातिरहित। पतित। पंक्तिच्युत। उ०--कहहु काह सुनि रीझिहु बर अकुलीनहिं। अगुन अमान अजाति मातुपितु हीनहिं --तुलसी ग्रं०, पृ० ३३। २. जो जात या उत्पन्न न हो [को०]।

अजाति[2]--संज्ञा स्त्री० उत्पत्ति का अभाव। अनुत्पत्ति [को०]।

अजाती[1]--वि० [सं० अजाति] दे० 'अजाति'। उ०--चंद न सूर दिवस नहिं राती। बरन भेद नहिं जाति अजाती।--कबीर सा०, पृ० २।

क्रि० प्र०--करना। जैसे--'उसको बिरादरी ने अजाती कर दिया है।'--(शब्द०)।--होना।

अजाती[2]--संज्ञा पुं० जाति से अलग किया हुआ आदमी। जातिच्युत व्यक्ति।

अजाद(पु)--वि० [फा० आजाद] दे० 'आजाद'। उ०--हमैं नँदनंदन मोल लिए। जम के फंद काटि मुकराए, अभय अजाद किए।--सूर०, १।१७१।

अजादनी--संज्ञा स्त्री० [सं०] जवास या जवासा का एक भेद [को०]।

अजादार--वि० [अ० अज़ा + फा० दार] मृत्युशोक करनेवाला। मातम मनानेवाला [को०]।

अजादारी--संज्ञा स्त्री० [अ० अज़ा + फा० दार + ई (प्रत्य०)] शोक। मातम [को०]।

अजान[1]--वि० [सं० अज्ञान, प्रा० अजाण] [स्त्री० अजानी] १. जो न जाने। अनजान। अबोध। अनभिज्ञ। अबूझ। नासमझ। उ०--(क) तुम प्रभु अजित, अनादि लोकपति, हौं अजान मतिहीन।--सूर०, १।१८१। (ख) भक्त अरु भगवत एक है बूझत नहीं अजान।--कबीर (शब्द०)। २. न जाना हुआ। अपरिचित। अज्ञात। उ०--उसे दिखाती जगती का सुख, हँसी और उल्लास अजान।--कामायनी, पृ० ३०।

अजान[2]--संज्ञा पुं० १. अज्ञानता। अनभिज्ञता। उ०--(क) 'मुझसे यह काम अजान में हो गया।'--(शब्द०)। (ख) धीरे धीरे आती है जैसे मादकता आँखों के अजान में ललाई में ही छिपती।--लहर, पृ० ७४।

विशेष--इसका प्रयोग इस अर्थ में 'में' के साथ ही होता है और दोनों मिलकर क्रियाविशेषणवत् हो जाते हैं। कहीं कहीं इसका स्वतंत्र प्रयोग भी प्राप्त होता है; जैसे--'जान अजान नाम जो लेइ। हरि बैकुंठ बास तिहिं देइ।--सूर०, ६।४।

२. एक पेड़ जिसके नीचे जाने से लोग समझते हैं कि बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है। उ०--कोइ चंदन फूलहिं जनु फूली। कोइ अजान बीरउ तर भूली।--जायसी (शब्द०)।

विशेष--यह पीपल के बराबर ऊँचा होता है और इसके पत्ते महुए के से होते हैं। इसमें लंबे लंबे मौर लगते हैं।

अजान[3]--संज्ञा स्त्री० [अ० अज़ान] वह पुकार जो प्रायः मसजिद की मीनारों पर मुसलमानों को नमाज के समय की सूचना देने और उन्हें मसजिदों में बुलाने के लिये की जाती है। बाँग।

मुहा०--अजान देना = (१) किसी ऊँचे स्थान या मसजिद का मीनार से उच्चस्वर में नमाज करने के समय की सूचना देना। (२) प्रातःकाल मुर्गे का बोलना। मुर्गे का बाँग देना।

अजानता--संज्ञा स्त्री० [सं०] अज्ञता। अजानपन। नासमझी। उ०--मोहि मेरे जिय की जनायबो अजानता है, जानराय जानत ही सकल कला प्रबीन।--घनानंद, पृ० ३९।

अजानपन--संज्ञा पुं० [हिं० अजान + पन] (प्रत्य०)] अनजानपन। अज्ञानता। नासमझी। उ०--जो लोग औरों की निंदा सुनकर काँपते हैं वह आप भी अपने अजानपने में औरों की निंदा करते हैं'।--श्रीनिवास ग्रं०, पृ० ३२९।

अजानि--संज्ञा पुं० [सं०] १. बिना पत्नी का व्यक्ति। वह व्यक्ति जिसे पत्नी न हो। २. विधुर [को०]।

अजानिक--संज्ञा पुं० [सं०] १. गड़ेरिया। छागपालक। २. दे० 'अजानि'। [को०]।

अजानी--वि० [हिं०] दे० 'अज्ञानी'। उ०--रानी मैं जानी अजानी महा पबि पाहन हू ते कठोर हियो है।--तुलसी ग्रं०, पृ० १६६।

अजानीय--वि० [सं०] दे० 'अजानेय'। उ०--गांधार के दश नागरिकों का शिष्टदल दश अजानीय असाधारण अश्व और बहुत सी उपायन सामग्री देकर भेजा था।--वैशाली०, पृ० १२३।

अजानेय[1]--संज्ञा पुं० [सं०] अच्छी नस्ल का घोड़ा [को०]।

अजानेय[2]--वि० अच्छी जाति का। ताकतवर। निर्भय (घोड़ा)।

अजापक्व--संज्ञा पुं० [सं०] औषधि के लिये निर्मित एक प्रकार का घी [को०]।

अजापालक--संज्ञा पुं० [सं०] गड़ेरिया। मेषपालक [को०]।

अजापुत्र--संज्ञा पुं० [सं०] बकरी का बच्चा। बकरा। उ०--नित्य एक अजापुत्र के भक्षण की सामर्थ्य आप में बढ़ती जाय।--भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ७३।

अजाब--संज्ञा पुं० [अ० अज़ाब] १. सजा। पीड़ा। यातना। उ०--कर अब तो रहम अजाब के बदले।--भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० २०३। २. पाप। कष्ट। प्रायश्चित्त। उ०--पलटू खुदा हक राह यही। और खाना अजाब है जी॥--पलटू०, पृ० १०।

मुहा०--मोल लेना = व्यर्थ झंझट में पड़ना।

यौ०--अजाब के फरिश्ते = पापियों को दंड देने के लिये नियुक्त यमदूत।

अजामिल--संज्ञा पुं० [सं०] पुराण के अनुसार एक पापी ब्राह्मण का नाम जो मरते समय अपने पुत्र 'नारायण' का नाम लेकर तर गया।

अजाय[1] (पु)--वि० [सं० अ = कुत्सित + फा० जाय = जगह] बेजा। अनुचित। बुरा। उ०--द्वै सुत निर्धन देखि कै मातु कह्यो अनखाय। भए पुत्र द्वै रंक मम, कीन्हों कंत अजाय।--रघुराज (शब्द०)।

अजाय[2]--वि० [सं०] जायारहित। पत्नीविहीन [को०]।

अजायब[1]--संज्ञा पुं० [अ० 'अजब' का बहुवचन] अद्भुत वस्तु। विलक्षण पदार्थ या व्यापार। विचित्र वस्तु या कार्य।

अजायब (पु)[2]--वि० अजीब। विचित्र। विलक्षण। उ०--अबिगत रूप अजायब बानी। ता छबि का कहि जाई।--भीखा श०, पृ० ३७।

अजायबखाना--संज्ञा पुं० [अ० अजायब + फा० खाना] वह भवन या घेरा जिसमें अनेक प्रकार के अद्भुत पदार्थ रखे जाते हैं। अद्भुत-वस्तु-संग्रहालय। म्यूज़ियम।

अजायबघर--संज्ञा पुं० [अ० अजायब + हिं० घर] दे० 'अजायबखाना।

अजायबी (पु)--वि० [हिं०] दे० 'अजायब[2]'। उ०--अंग सुखमूल, रंग रुचिर गुलाब फूल कोमल दुकुल तूलपूरित अजायबी।--घनानंद, पृ० २०६।

अजाया (पु)--वि० [सं० अजातक] गतप्राण। मृत। मरा हुआ।

अजार (पु)--संज्ञा पुं० [फा० आज़ार] १. रोग। बीमारी। उ०--कबकी अजब अजार में, परी बाम तन छाम। तित कोऊ मति लीजियो चंद्रोदय को नाम।--पद्माकर (शब्द०)। २. कष्ट। दुःख (को०)। ३. दुर्व्यसन। लत (को०)।

अजारा†--संज्ञा पुं० [अ० इजारा] दे० 'इजारा'। उ०--कृपण संतोष करैं नहीं लालच अंक। सुपण बभीषण सूँ मिलै लिए अजारे लंक।--बाँकीदास ग्रं०, भा० २, पृ० ३१।

अजावन (पु)--वि० [सं० अजायमान] न जनमनेवाला। उत्पन्न न होनेवाला। अजन्मा। उ०--(क) निरमल अभी क्रांति अद्भुत छबि अकह अजावन सोई।--कबीर श०, भा० ४, पृ० २६। (ख) पुरुष अजावन रहा जो देहा।--कबीर सा०, पृ० १५३३।

अजि¹—वि० [सं०] चलनेवाला। गमन करनेवाला; जैसे—पदाजि = पैर से चलनेवाला [को०]।

अजि²—संज्ञा स्त्री० १. चलना की क्रिया या स्थिति। गति। २. फेंकने की क्रिया। फेंकना [को०]।

अजिआउर†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अजिऔरा'।

अजिऔरा(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० आर्यिका + पुर, प्रा० अज्जिया + औरा (प्रत्य०)] आजी या दादी के पिता का घर।

अजित¹—वि० [सं०] १. अपराजित। जो जीता न गया हो। उ०—इंद्री अजित बुद्धि विषयारत मन की दिन दिन उलटी चाल।—सूर०, १।१२८। २. जो जीता न जा सके। अजेय (को०)।

अजित²—संज्ञा पुं० १. विष्णु। २. शिव। ३. बुद्ध। ४. विषघ्न ओषधि (को०)। ५. जहरीला मूसा (को०)। ६. प्रथम मन्वंतर के देवों की एक श्रेणी या वर्ग (को०)।

अजितनाथ—संज्ञा पुं० [सं०] जैनियों के दूसरे तीर्थंकर का नाम।

अजितबला—संज्ञा स्त्री० [सं०] जैन संप्रदाय की एक देवी [को०]।

अजितविक्रम¹—वि० [सं०] अपराजित विक्रमवाला [को०]।

अजितविक्रम²—संज्ञा पुं० चंद्रगुप्त द्वितीय का एक नाम या विरद [को०]।

अजिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] भादों बदी एकादशी का नाम जो व्रत का दिन है।

अजितात्मा—वि० [सं०] दे० 'अजितेंद्रिय' [को०]।

अजितापीड़—वि० [सं० अजितापीड] अजेय मुकुटवाला। बेजोड़ मुकुट का [को०]।

अजितेंद्रि(पु)—वि० [सं० अजितेन्द्रिय] दे० 'अजितेंद्रिय'। उ०—असुर अजितेंद्रि जिहिं देखि मोहित भए, रूप सो मोहिं दीजै दिखाई। सूर०, १।४३७।

अजितेंद्रिय—वि० [सं० अजितेन्द्रिय] जिसने इंद्रियों को जीता न हो। जो इंद्रियों के वश में हो। इंद्रियलोलुप। विषयासक्त। उ०—कृपन दरिद्र कुटुंबी जैसैं। अजितेंद्रिय दुख भरत हैं तैसैं।—नंद० ग्रं०, पृ० २६१।

अजिन—संज्ञा पुं० [सं०] १. चर्म। चमड़ा। खाल। उ०—गज अजिन दिव्य दुकूल जोरत सखी हँसि मुख मोरि कै।—तुलसी ग्रं०, पृ० ३४। २. ब्रह्मचारी आदि के धारण करने के लिये कृष्णमृग और व्याघ्र आदि का चर्म। उ०—अजिन बसन फल असन महि सयन डासि कुस पात।—मानस, २।२११। ३. चमड़े का एक प्रकार का थैला (को०)। ४. भाथी। धौंकनी (को०)। ५. छाल।

अजिनपत्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] जिसके पंख अजिन की तरह सुश्लिष्ट हों। चमगादड़ [को०]।

अजिनपत्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अजिनपत्री' [को०]।

अजिनपत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] चमगादड़। गादुर [को०]।

अजिनफला—संज्ञा स्त्री० [सं०] भाथी की तरह फलवाला एक प्रकार का वृक्ष [को०]।

अजिनयोनि—संज्ञा पुं० [सं०] मृग। हिरन।

अजिनवासी—वि० [सं०] कृष्ण मृग का चर्म धारण करनेवाला [को०]।

अजिनसंध—संज्ञा पुं० [सं० अजिनसन्ध] मृगचर्म का व्यापारी। अजिन का व्यवसायी [को०]।

अजिर¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. आँगन। सहन। उ०—घुटुरुनि चलत, अजिर महँ बिहरत, मुख मंडित नवनीत।—सूर०, १०।६७। २. वायु। हवा। ३. शरीर। ४. मेंढक। ५. इंद्रियों का विषय। ६. छछूँदर (को०)।

अजिर²—वि० शीघ्रगामी [को०]।

अजिरा—संज्ञा वि० [सं०] १. दुर्गा का एक नाम। २. वेगवती नदी [को०]।

अजिरीय—वि० [सं०] आँगन से संबंधित। सहन या आँगन का [को०]।

अजिह्म¹—वि० [सं०] १. जो जिह्म या टेढ़ा न हो। सीधा। सरल। २. ईमानदार। सच्चा। खरा [को०]।

अजिह्म²—संज्ञा पुं० १. एक मछली। २. मेढक। दादुर [को०]।

अजिह्मग¹—वि० [सं०] सीधा चलनेवाला। टेढ़े मेढ़े न चलनेवाला [को०]।

अजिह्मग²—संज्ञा पुं० वाण। इषु [को०]।

अजिह्व¹—संज्ञा पुं० [सं०] मेढक। दादुर [को०]।

अजिह्व²—वि० जीभरहित। जिह्वाविहीन [को०]।

अजी—अव्य० [सं० अयि!] संबोधन शब्द। जी! जैसे—'अजी, जाने दो' (शब्द०)।

अजीकव—संज्ञा पुं० [सं०] शिव का धनुष [को०]।

अजीगर्त—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक ऋषि जो शुनःशेप के पिता थे। २. वह जो छिद्र में प्रविष्ट होता हो। साँप। सर्प [को०]।

अजीज¹—वि० [अ० अजीज] प्यारा। प्रिय।

अजीज²—संज्ञा पुं० १. संबंधी। २. मित्र। सुहृद्।

क्रि० प्र०—करना = प्रिय समझना।—जानना या रखना = संमान करना। प्रिय समझना।—होना = (१) प्रिय होना (२) कोई वस्तु देने में संकोच होना।

अजीजदार—संज्ञा पुं० [अ० अजीज + फा० दार] दे० 'अजीज' [को०]।

अजीजदारी—संज्ञा० स्त्री० [अ० अजीज + फा० दारी] १. मित्रता। दोस्ती। २. संबंध। रिश्तेदारी [को०]।

अजीटन—संज्ञा पुं० [अं० अडजुटेंट] सेना का एक सहायक कर्मचारी जो कर्नल या सेनापति को सहायता देता है।

अजीत¹—वि० [सं०] जो कुम्हलाया हुआ या मंद न हो [को०]।

अजीत²(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अजित'। उ०—जीति उठि जायगी अजीत पांडूपूतनि की, भूप दुरजोधन की भीति उठि जायगी।—रत्नाकर, भा० १, पृ० १४२।

अजीति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. समृद्धि। अभ्युदय। २. क्षय का अभाव [को०]।

अजीब—वि० [अ०] विलक्षण। विचित्र। अनोखा। अनूठा। आश्चर्यजनक। विस्मयकारक।

अजीब वो गरीब—वि० [अ० अजीब + फा० ओ + अ० गरीब] १. अनूठा। आश्चर्यजनक। २. दुष्प्राप्य [को०]।

अजीमुश्शान—वि० [अ० अजीम + उल् + शान] बहुत ही शानदार। उ०—'एक बड़ी अजीमुश्शान सुर्ख पत्थर की मस्जिद थी'।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० १५८।

अजीयत—संज्ञा स्त्री० [अ०] कष्ट। पीड़ा। उ०—जो मुझे देवेगा अजीयत गम।—दक्खिनी०, पृ० २१८।

अजीरन¹—वि० [सं० अजीर्ण, प्रा० अजीरण] दे० अजीर्ण । उ०—होइ न कहूँ अनंद अजीरन। तासों धरु धीरज चंचल मन।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ६०७।

अजीरन²—संज्ञा पुं० दे० 'अजीर्ण'।

मुहा०—**अजीरन होना** = दुर्वह होना। कठिन होना।

अजीर्ण¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ अपच। अध्यसन। बदहजमी।

विशेष—प्रायः पेट में पित्त के बिगड़ने से यह रोग होता है जिससे भोजन नहीं पचता और वमन, दस्त शूल आदि उपद्रव होते हैं। आयुर्वेद में इसके छह भेद बतलाए हैं:—(१) आमाजीर्ण = जिसमें खाया हुआ अन्न कच्चा गिरे (२) विदग्धाजीर्ण = जिसमें अन्न जल जाता है। (३) **विष्टब्धाजीर्ण** = जिसमें अन्न के गोटे या कंडे बँधकर पेट में पीड़ा उत्पन्न करते हैं। (४) **रसशेषाजीर्ण** = जिसमें अन्न पानी की तरह पतला होकर गिरता है। (५) **दिनपाकी अजीर्ण** = जिसमें खाया हुआ अन्न दिन भर पेट में बना रहता है और भूख नहीं लगती। (६) प्रकृत्याजीर्ण या सामान्य अजीर्ण।

२. अत्यंत अधिकता। बहुतायत (व्यंग्य)। जैसे—'उसे बुद्धि का अजीर्ण हो गया है।'—(शब्द०)। ३. शक्ति। ताकत (को०)। ४, जीर्ण न होने का भाव। क्षयाभाव (को०)।

अजीर्ण²—वि० जो पुराना न हो। नया।

अजीर्णि—संज्ञा स्त्री० [सं०] बदहजमी [को०]।

अजीर्णी—वि० [सं०] अपच या अजीर्ण रोगवाला [को०]।

अजीर्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अजीर्ण' [को०]।

अजीव¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. अचेतन। जीव तत्व से भिन्न जड़ पदार्थ। २. मृत्यु। मौत (को०)। ३. जैन मतानुसार जड़ जगत् (को०)। ४. अस्तित्वविहीनता (को०)।

अजीव²—वि० १. बिना प्राण का। मृत। २. जड़ (को०)।

अजीवकल्प—संज्ञा पुं० [सं० अजीव + कल्प] वह युग या काल जिस समय पृथिवी पर जीव नहीं रहते थे। उ०—बहुत समय तक वह इतनी गर्म थी कि उसपर कोई जीव पैदा न हो सकता था, उस काल को अजीव कल्प (एजोइक एज) कहते हैं।—भारत० नि०, पृ० १८।

अजीवन¹—वि० [सं०] जीविकाहीन। योगक्षेम की व्यवस्था से रहित [को०]।

अजीवन²—संज्ञा पुं० जीवन का अभाव। मृत्यु [को०]।

अजीवनि—संज्ञा स्त्री० [सं०] अस्तित्व का अभाव। मृत्यु [को०]।

अजीवित¹—वि० [सं०] मृत। जीवनहीन [को०]।

अजीवित²—संज्ञा पुं० मृत्यु। अजीवन [को०]।

अजुⓅ—अव्य० [हिं०] दे० 'और'। उ०—अति अंब मौर तोरण अजु अंबुज। कली सुमंगल कलस करि।—बेलि०, दू० २३३।

अजुगत—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अजगुत।'

अजुगति†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अजगुत'।

अजुगुत¹Ⓟ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अजगुत'। उ०—देखि देखि लोग हीय सब कूटा। भा अजुगुत दलगंजन छूटा।—चित्रा०, पृ० १८६।

अजुगुत²Ⓟ†—वि० [सं० अयुक्त] दे० 'अयुक्त'। उ०—तोर नयन एँ पथहु न संचर अजुगुत कह न जाइ।—विद्यापति०, पृ० ३८७।

अजुगुप्सित—वि० [सं०] जो निंदित, घृणित या बुरा न हो। जो नापसंद न हो [को०]।

अजुष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. आनंद या प्रसन्नता का अभाव। २. असंतुष्टि। निराशा [को०]।

अजूँⓅ†—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'अजौं', 'अजहूँ'। उ०—समुझै क्यों न अजूँ समझाऊँ भूल मती हिव भाया।—रघु० रू०, पृ० १६।

अजूⓅ†—अव्य० [सं० अयि] संबोधन शब्द। 'अजी!' का ब्रज रूपांतर। उ०—जीतौ जौ चहै अजू तौ रीतौ घरो लै चलु नहीं तौ महीं तो सिर अजस वै परे मरै।—भिखारी० ग्रं०, भा० १, पृ० ११०।

अजूजाⓅ—संज्ञा पुं० [देश०] बिज्जू की तरह का एक जानवर जो मुर्दा खाता है। उ०—कहँ कवि दूलह समुद्र बढ़े सोनित के जुगिनि परेतैं फिरैं जंबुक अजूबा से।—दूलह (शब्द०)।

अजूनीⓅ—वि० [सं० अयोनि] उत्पन्न न होनेवाला। अजन्मा। उ०—अमर अजूनी थिर धनी काल कर्म सिरि नाहि।—प्राण०, पृ० १०६।

अजूबⓅ—वि० [अ० अजूबह्] दे० 'अजूबा'। उ०—वाकिफ हो सो गमि लहै वाजिब सखुन अजूब।—कबीर श०, पृ० ३०।

अजूबा¹—वि० [अ० अजूबह्] अद्भुत। अनोखा। अनूठा।

अजूबा²—संज्ञा पुं० अनूठी वस्तु। अद्भुत चीज [को०]।

अजूराⓅ¹—वि० [सं० अ + जुट = जोड़ना] १. बिना जुटा हुआ। पृथक्। अलग। जुदा। उ०—रहा जो राजा रतन अजूरा। केह क सिंहासन केह क पटूरा।—जायसी (शब्द०)। २. अप्राप्त। अनुपस्थित।

अजूराⓅ²—संज्ञा पुं० [अ० अजूरह् = पारिश्रमिक] मजदूरी। भाड़ा। उ०—आठ पहर रहै ढाढ़ सोई है चाकर पूरा। का जानी केहि घरी हरी दै देइ अजूरा।—पलटू० बानी, भा० १, पृ० ४५।

यौ०—**अजूरादार** = भाड़े या मजदूरी पर काम करनेवाला।

अजूहⓅ—संज्ञा पुं० [सं० युद्ध, प्रा० जुज्झ, जूझ, जूह] युद्ध। लड़ाई। उ०—ताको जु हिमाऊँ साहि हूअ। तासों पठान सों भयो अजूह।—सूदन (शब्द०)।

अजेⓅ¹—क्रि० वि० [सं० अद्यापि; प्रा० अज्जवि] आज भी। अभी भी। उ० —तेणि न राखी सासरइ अजे स मारू बाल।—ढोला०, दू० ११।

अजेⓅ²—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अजय'।

अजेⓅ³—वि० [हिं०] दे० 'अजेय'। उ०—मुनि मानस पंकज भृंग भजे, रघुबीर महा रन धीर अजे।—मानस, ७।१४।

अजेइⓅ—वि० [हिं०] दे० 'अजेय'। उ०—कियौ सबै जगु कामबस जीते जिते अजेइ। कुसुमसरहिं सर धनुष कर अगहनु गहन न देइ।—बिहारी र०, दो० ४६५।

अजेतव्य—वि० [सं०] अजेय। जो जीता न जा सके [को०]।

अजेय¹—वि० [सं०] न जीते जाने योग्य। जिसे कोई जीत न सके। उ०—द्विस्वभाव अश्लेष में ब्राह्मण जाति अजेय।—राम चं०, पृ० २६०।

अजय[2]—संज्ञा पुं० सुश्रुत में कथित एक विषघ्न घृत [को०]।

अजै[1]—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अजय'।

अजै(पु)[2]—वि० [हिं०] दे० 'अजेय'। उ०—हौं हार्‌यो करि जतन बिबिध बिधि अतिसै प्रबल अजै।—तुलसी ग्रं०, पृ० ५०४।

अजैकपाद—संज्ञा पुं० [सं०] १. एकादश रुद्र में से एक। २. उक्त रुद्र द्वारा अधिष्ठित पूर्वाभाद्रपदा नाम का नक्षत्र। ३. विष्णु [को०]।

अजैव—वि० [सं०] जीव से असंबंधित। जो जीव संबंधी न हो [को०]।

अजोख(पु)—वि० [सं० अ = नहीं + हिं० जोखना] जो जोखा न जा सके। अमाप। उ०—लीन्ही जिन मोल भाय चोखै। दीन्ही तुमको बिथा अजोखे।—भिखारी० ग्रं०, भा० १, पृ० २१५।

अजोग(पु)—वि० [सं० अयोग्य; प्रा० अजोग] १. जो योग्य न हो। अनुचित। नामुनासिब। बे ठीक। उ०—सुनि यह बात अजोग जोग की ह्वै है सनद नदी वै।—भिखारी० ग्रं०, भा० १, पृ० २१०। २. अयुक्त। बेजोड़। बेमेल। उ०—जोगहि जोग मिलाइऐ हम या जाग अजोग।—सूर०, १०।३५२२। ३. नालायक। निकम्मा। उ०—पती नारी का देवता है, वह कैसा ही क्यों न हों, पर तिरिया उसको अजोग और बुरा नहीं कह सकती।—ठेठ०, पृ० ४३।

अजोगी(पु)—वि० [सं० अयोगी] जोग को न जाननेवाला। जोग से रहित। उ०—मूरख कायर और अजोगी सो ये नेक न पावै। चरण० बानी, भा० २, पृ० १२६।

अजोड़(पु)—वि० [सं० अ = नहीं + जोड़ना] जिसे जोड़ा न जा सके। उ०—निःभर भरै अजोड़ को जोड़े।—प्राण०, पृ० ६४।

अजोत†—संज्ञा स्त्री० [सं० अ = नहीं + हिं० जोत] वह भूमि जो जोतने के उपयुक्त न हो। परती भूमि।

अजोतर—वि० [हिं० अजोता] स्वच्छंद। निरर्गल। उ०—आनँद घन पिय नई घमँड सों दन दरबारचो डोलत अजौं अजोतर।—घनानंद, पृ० २६०।

अजोता[1]—संज्ञा पुं० [सं० अयुक्त, प्रा० अजुत्त] चैत की पूर्णिमा का दिन। इस दिन बैल नहीं नाधे जाते।

अजोता[2]†—वि० बिना जोता या नाधा हुआ। स्वच्छंद।

अजोनि(पु)—वि० [सं० अयोनि] जो योनि से उत्पन्न न हो। स्वयंभू। उ०—जम जस पुरुष प्रगटे अजोनि। कर खग्ग धनुष कटि लसै तोनि।—हम्मीर रा०, पृ० ११।

अजोन्य(पु)—वि० [सं० अयोनि] अयोनिज। स्वतःसंभूत। उ०—अजोन्यं अनायास पाए अनादू। नमो देव दादू नमो देव दादू। —सुंदर ग्रं०, भा० १, पृ० २५६।

अजोरना(पु)—क्रि० स० [हिं० हिं० अँजोर से नाम०] दे० 'अँजोरना'।

अजोष—वि० [सं०] अपरितोष। अतृप्ति [को०]।

अजौं(पु)†—क्रि० वि० [हिं० अजहूँ] अब भी। अद्यापि। अब तक। उ०—सघन कुंज छाया सुखद, सीतल सुरभि समीर। मन ह्वै जातु अजौं वहै उहि जमुना के तीर।—बिहारी र०, दो० ६०१।

अज्ज(पु)[1]—संज्ञा पुं० [सं० आर्य या अज] ब्रह्म। उ०—हूँ बंदौ जाकूँ सदा सबकी सुणै पुकार। अज्ज कीट पर्यंत लौं भय भंजन भरतार।—राम० धर्म०, पृ० २५६।

अज्ज[2](पु)—क्रि० वि० [सं० अद्य, प्रा० अज्ज] आज। उ०—जेहा सज्जण काल्ह था तेहा नाँही अज्ज।—ढोला०, दू० २१६।

अज्ज[3]—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अज्झल' [को०]।

अज्जाण(पु)—वि० [सं० अज्ञान] दे० 'अजान'। उ०—गाफिल समझ रे अज्जाण। माथै राख पति कूँ जाण।—राम० धर्म०, पृ० १६६।

अज्जान(पु)—वि० [सं० आजान] घुटने तक लंबा। जानु पर्यंत लंबा। उ०—राजीव नयन विशाल। अज्जानबाहु रसाल।—प० रा०, पृ० ७६।

अज्जुका—संज्ञा स्त्री० [सं० 'आर्यिका' का प्राकृत रूप संस्कृत में गृहीत] वेश्या। वारवधू [को०]।

विशेष—इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग केवल रूपकों में प्राप्त होता है।

अज्जूका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अज्जुका' [को०]।

अज्झटा—संज्ञा स्त्री० [सं०] भूम्यामल की [को०]।

अज्झल—संज्ञा पुं० [सं०] १. जलता हुआ कोयला। अंगारा। २. ढाल [को०]।

अज्ञ[1]—वि० [सं०] १. अज्ञानी। ज्ञान रहित। २. जड़। अचेतन। मूर्ख ३. अनजान। नासमझ। नादान। उ०—तैसेइ अपु तैसेइ लरिका, अज्ञ सबनि मति थोरी।—सूर०, १।८७१।

अज्ञ[2]—संज्ञा पुं० मूर्ख मनुष्य। जड़ व्यक्ति। अनजान मनुष्य। नादान आदमी। उ० अज्ञ जानि रिस उर जनि धरहू। जेहि विधि मोह मिटै सोइ करहू।—(शब्द०)।

अज्ञका—संज्ञा स्त्री० [सं०] मूर्ख औरत। नादान या अनजान स्त्री [को०]।

अज्ञता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. मूर्खता। नादानी। नासमझी। अजानपन। अनाड़ीपन। २. जड़ता। अचेतनता।

अज्ञताई(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० अज्ञता + हिं० आई (प्रत्य०)] दे० 'अज्ञता'। उ०—अहो! अज्ञताई नीति मन मैं न आइए।—भक्तमाल (श्री०) पृ० ६६।

अज्ञत्व—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अज्ञता' [को०]।

अज्ञा(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'आज्ञा'।—उ० (क) होइ अज्ञा बनवास तौ जाऊँ।—जायसी (शब्द०)। (ख) गुरु को सिर पर राखिए चलिए अज्ञा माँही।—कबीर सा० सं०, भा० १, पृ० २।

अज्ञाकारी(पु)—वि० [हिं०] दे० 'आज्ञाकारी'। उ०—तेऊ चाहत कृपा तुम्हरी। जिनकें बस अनिमिष अनेक गन अनुचर अज्ञाकारी। सूर०, १।१६३।

अज्ञात[1]—वि० [सं०] १ बिना जाना हुआ। अविदित। अप्रकट। नामालूम। अपरिचित। उ०—किसी अज्ञात विश्व की विकल वेदना दूती सी तुम कौन।—झरना, पृ० २८। २ जिसे ज्ञात न हो। उ०—सो अज्ञात जोबन वर बाला।—नंद० ग्रं०, पृ० १२२। ३. अप्रत्याशित। आकस्मिक (को०)।

अज्ञात(पु)[2]—क्रि० वि० बिना जाने। अनजान में। उ०—अनुचित बहुत कहेउँ अज्ञाता। छमहु छमा मंदिर दोउ भ्राता॥—मानस, १।२८५।

अज्ञातक--वि० [सं०] अविदित । अप्रसिद्ध । अज्ञात [को०] ।

अज्ञातकुल--वि० [सं०] जिसके वंश कुल आदि का पता न हो [को०] ।

अज्ञातचर्या--संज्ञा स्त्री० [सं०] अज्ञातवास [को०] ।

अज्ञातजौवना(पु)--संज्ञा स्त्री० [सं० अज्ञातयौवना] दे० 'अज्ञातयौवना'। उ०--इहि परकार तिया जो लहिए । सो अज्ञातजौवना कहिए ।।--नंद ग्रं०, पृ० १४६ ।

अज्ञातनामा--वि० [सं०] १. जिसके नाम का पता न हो । जिसका नाम विदित न हो । २. जिसे कोई न जानता हो । अविख्यात । तुच्छ ।

अज्ञातपितृक--वि० [सं०] जिसके पिता का पता न हो । नामालूम बापवाला [को०] ।

अज्ञातपूर्व--वि० [सं०] जो पहले से जानकारी में न हो । जिसका पहले से ज्ञान न हो [को०] ।

अज्ञातयौवना--संज्ञा स्त्री० [सं०] मुग्धा नायिका के दो भेदों में से एक। जिसे अपने यौवन के आगमन का ज्ञान न हो ।

अज्ञातवास--संज्ञा पुं० [सं०] छिपकर रहना । ऐसे स्थान का निवास जहाँ कोई पता न पा सके; जैसे--'विराट के यहाँ पांडवों ने एक वर्ष अज्ञातवास किया था' (शब्द०) ।

अज्ञातस्वामिक (धन)--संज्ञा पुं० [सं०] वह धन जिसके मालिक का पता न हो । जैसे, मार्ग में पड़ा हुआ या जमीन में गड़ा धन ।

अज्ञाता--वि० स्त्री० [सं० अज्ञात] जिसे ज्ञात न हो । मुग्धा । उ०--अज्ञाता--की केशराशि में इन्हें न कस कस बँधवाओ । वीणा, पृ० १ ।

अज्ञाति--संज्ञा पुं० [सं०] वह व्यक्ति जो अपनी जाति या संबंध का न हो । अन्य जातीय व्यक्ति । परजात [को०] ।

अज्ञान[1]--संज्ञा पुं० [सं०] १. बोध का अभाव । जड़ता । मूर्खता । अविद्या । मोह । अजानपन । उ०--अज्ञान भला जिसमें सोहं तो क्या, स्वयं अहं भी कब है ।--साकेत, पृ० ३१६ । २. जीवात्मा को गुण और उनके कार्यों से पृथक् न समझने का अविवेक । ३. न्याय में एक निग्रहस्थान । यह उस समय होता है जब प्रतिवादी के तीन बार कहने पर भी वादी किसी ऐसे विषय को समझने में असमर्थ हो जिसे सब लोग जानते हों ।

अज्ञान[2]--वि० ज्ञानशून्य । मूर्ख । जड़ । नासमझ । अनजान । उ०--मैं अज्ञान कछू नहिं समुझ्यौं, परि दुख पुंज सह्यौ ।--सूर० १।१६ ।

अज्ञानकृत--वि० [सं०] १ अज्ञान में किया हुआ । अनजाने में किया हुआ । २ अज्ञान या मूर्खतावश किया हुआ [को०] ।

अज्ञानत:--क्रि० वि० [सं०] अज्ञान या मूर्खता के कारण । मोहवश । २. अनजान में । नासमझी के कारण [को०] ।

अज्ञानता--संज्ञा स्त्री० [सं०] निर्बोधता । जड़ता । मूर्खता । अविद्या । नासमझी । नादानी । उ०--'इन सब बातों में बहुत सी स्वर्थपरता और बहुत सी अज्ञानता मिली हुई है' ।--श्रीनिवास० ग्रं०, पृ० २०० ।

अज्ञानतिमिर--संज्ञा पुं० [सं०] अज्ञानरूपी अंधकार । मोहरूपी अँधेरा [को०] ।

अज्ञानपन--संज्ञा पुं० [सं० अज्ञान + हिं० पन (प्रत्य०)] मूर्खता । जड़ता । नादानी । नासमझी । अजानपन ।

अज्ञानी--वि० [सं०] ज्ञानशून्य । मूर्ख । जड़ । अविद्याग्रस्त । अनाड़ी । नादान । नासमझ । अबोध ।

अज्ञेय--वि० [सं०] न जानने योग्य । जो समझ में न आ सके । बुद्धि की पहुँच के बाहर का । ज्ञानातीत । बोधागम्य ।

अज्ञेयवाद--संज्ञा पुं० [सं०] परमतत्व की ज्ञानातीत स्थिति या अज्ञेयता का प्रतिपादक मत [को०] ।

अज्ञेयवादी--वि० [सं०] अज्ञेयवाद को माननेवाला । अज्ञेयवाद का अनुयायी [को०] ।

अज्म--संज्ञा पुं० [अ०] संकल्प । दृढ़ निश्चय । उ०--यों अज्म किया था वह शैतान ता कर देवे कावा बीरान ।--दक्खिनी०, पृ० २२० ।

अज्यास(पु)--संज्ञा पुं० [सं० अध्यास = मिथ्याज्ञान, भ्रांति] अविश्वास । धूर्तपन । ठगहाई । उ०--जग आसवास अज्यास दिस विदिस प्राण उदास ।--रा० रू०, पृ० ६८ ।

अज्यासुत(पु)--संज्ञा पुं० [सं० अजासुत] बकरा । उ०--बड़े ब्रह्म औ कांध जनेऊ अज्यासुत कह मारी ।--सं० दरिया पृ० ११६ ।

अज्येष्ठ--वि० [सं०] १ जो सबसे जेठा न हो । २. जिसे बड़ा भाई न हो (को०) । ३. जो सर्वश्रेष्ठ न हो (को०) ।

अज्येष्ठवृत्ति--वि० [सं०] १ बड़े भाई का कार्य या व्यवहार न करनेवाला । २ उस व्यक्ति की तरह कार्य या व्यवहार करनेवाला । जिसे बड़ा भाई न हो [को०] ।

अज्यौं(पु)--क्रि० वि० [हिं०] दे० 'अजौं' ।

अज्र--संज्ञा पुं० [सं०] भलाई का बदला । प्रत्युपकार [को०] ।

अज्वाल--वि० [अ + ज्वाल] ज्वालाविहीन । लपटरहित । ज्वालारहित । लपटविहीन । उ०--ज्वाल उपजावन अज्वाल दरसावन सुभाल यह पावक न जावक दिढ़ाए हौ ।--भिखारी० ग्रं०, भा० १, पृ० १२८ ।

अझर(पु)--वि० [सं० अ = नहीं + झरना = गिरना] जो न झरे । जो न गिरे । जो न बरसे । उ०--चलि सुकेलि घर घन अझर कारी निसी सुखदानि । कामिनि सोभावानि तूँ, दामिनि दीपति वानि ।--स० सप्तक, पृ० २४३ ।

अझुरना(पु)†--क्रि० अ० [हिं०] दे० 'अरुझना' । उ०--कामिनि कनक तला लपटाना । अझुरत सझुरत संत सुजान ।--सं० दरिया, पृ० १२ ।

अझना(पु)[1]--संज्ञा पुं० [सं० अधूम = जलती हुई अग्नि] आग । अग्नि । उ०--बिलखत छाडी यौंस चारिक चिन्हारी करि, बारि दियौ हिए में उदेग को अझनो है ।--घनानंद पृ० १३८ ।

अझूना(पु)[2]--वि० [सं० अजीर्ण, प्रा० अजण्ण = अजुन्न] जो जीर्ण न हो । जो सदा एक सा बना रहे । हमेशा एक सा रहनेवाला । उ०--तुम्हैं बिन साँवरे ये नैन सूनें, हिये मैं लै दिए बिरहा अझूनै ।--घनानंद, पृ० १६७ ।

अझोरी(पु)--संज्ञा स्त्री० [सं० दोल = झूलना] झोली । कपड़े की लंबी थैली जो कंधे पर लटकाई जाती है । उ०--बोझरी अझोरी काँधे आँतिन्ह की सेली बाँधे, मूँड़ के कमंडल खपर किए कोरि कै ।--तुलसी (शब्द०) ।

अटंबर--संज्ञा पुं० [सं० अट्ट = अधिक, फा० अंबार = ढेर] अटाला । ढेर । राशि । उ० लागि गए अंबर लौं अखिल अटंबर पै, द्रुपदसुता कौ अजौं न अखूट्यौ है ।--रत्नाकर, भा० २, पृ० १११ ।

अट—संज्ञा स्त्री० [हिं० अटक] शर्त । कैद । प्रतिबंध । रुकावट । उ०—तुम तो हर बात में एक अट लगा देते हो ।—(शब्द०) ।

अटक[1]—संज्ञा पुं० [सं० अ = नहीं + टिक = चलना अथवा सं० आ + टक = बंधन, अथवा सं० हठ + क (प्रत्य०), प्रा० *अटक] [क्रि० अटकना, वि० अटकाऊ] १. रोक । रुकावट । अड़चन । विघ्न । बाधा । उलझन । उ०—करि हियाव, यह सौंज लादि कै, हरि कैं, पुर लै जाहि । घाट बाट कहुँ अटक होइ नहिं सब कोउ देहि निबाहि ।—सूर० (शब्द०) । २. संकोच । हिचक । उ०—तुमको जो मुझसे कहने में कोई अटक न हो तो मैं तुमसे कुछ पूछना चाहता हूँ ।—ठेठ० (शब्द०) । ३. सिंध नदी । ४. सिंध नदी पर एक छोटा नगर जहाँ प्राचीन तक्षशिला का होना अनुमान किया जाता है । ५. अकाज । हर्ज । बड़ी आवश्यकता ।

क्रि० प्र०—पड़ना । उ०—ह्याँ ऊधो काहे को आए कौन सी अटक परी ।—सूर (शब्द०) ।

अटक[2]—वि० [सं० अट] घूमनेवाला । चंक्रमणशील [को०] ।

अटकन(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अटक' ।

अटकन बटकन—संज्ञा पुं० [देश०] छोटे लड़कों का एक खेल । विशेष—इसमें कई लड़के अपने दोनों हाथों की उँगलियों को जमीन पर टेककर बैठ जाते हैं । एक लड़का सबके पंजों पर एक एक करके उँगली रखता हुआ यह कहता जाता है— 'अटकन बटकन दही चटाकन, अगला झूले बगला झूले, सावन मास करेला फूले, फूल फूल की बलियाँ, बाबा गए गंगा, लाए सात पिअलियाँ, एक पियाली फूट गई, नेवुले की टाँग टूट गई, खंडा मारूँ या छुरी ।' पूरब में इसको इस प्रकार कहते हैं—'उक्का बुक्का तीन तलुक्का, लौवा लाठी चंदन काठी, चंदन लावै दूली दूला, भादों मास करेला फूला, इजइल बिजइल पान फूल पचक्का जा ।' जिस लड़के पर अंतिम शब्द पड़ता है वह छूटता जाता है । जो सबसे पीछे रह जाता है उसे चोर समझकर खेल खेला जाता है ।

अटकना—कि० अ० [सं० अ = नहीं + टिक् = चलना] १. रुकना । ठहरना । अड़ना । उ०—(क) तुम चलते चलते अटक क्यों जाते हो ?—(शब्द०) । २. फँसना । उलझना । लगा रहना । उ०—इहीं आस अटक्यों रहतु अलि गुलाब कैं मूल ।—बिहारी र०, दो० ४३७ । प्रेम में फँसना । प्रीति करना । उ०—फिरत जु अटकत कटनि बिनु, रसिक सुरस न खियाल । अनत अनत नित नित हितनु, चित सकुचत कत लाल ।—बिहारी र०, दो० ५२८ । ४. विवाद करना । झगड़ना । उलझना । उ०—जब गजराज ग्राह सौं अटक्यौं, बली बहुत दुख पायो । नाम लेत ताही छिन हरि जू गरुड़हिं छाँड़ि छुड़ायौ ।—सूर०, १।३२ ।

अटकर†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अटकल' । उ०—(क) जैसें तैसें ब्रज पहिचानत । अटकरहीं अटकर करि पानत ।—सूर०, १०५० (राधा०) । (ख) अपनी अपनी सब कहै अटकर परै न कोई । —सुंदर० ग्रं०, भा० २, पृ० ७६० ।

अटकरना(पु)—क्रि० स० [हिं० 'अटकर' से नाम०] दे० 'अटकलना' । उ०—बार बार राधा पछितानी । निकसे श्याम सदन तैं मेरे इनि अटकरि पहिचानी ।—सूर (शब्द०) ।

अटकल—संज्ञा स्त्री० [सं० अट = घूमना + कल् = गिनना] १. अनुमान । कल्पना । २. अंदाज । तखमीना । कूत । उ०—वह करोड़ों रुपए के अटकल अकेले दान विषय में व्यय करता है ।—प्रेमघन० भा० २, पृ० २२८ ।

क्रि० प्र०—करना ।—बैठना ।—लगाना ।

अटकलना†—क्रि० स० [हिं० 'अटकल' से नाम०] अटकल लगाना । अंदाज करना । अनुमान करना ।

अटकलपच्चू[1]—संज्ञा पुं० [हिं० अटकल + देश० पच्चू = पकाना] मोटा अंदाज । कपोल कल्पना । अनुमान । जैसे—इस अटकलपच्चू से काम न चलेगा ।—(शब्द०) ।

अटकलपच्चू[2]—वि० अंदाजी । खयाली । ऊटपटाँग; जैसे—ये अटकलपच्चू बातें रहने दीजिए ।—(शब्द०) ।

अटकलपच्चू[3]—क्रि० वि० अंदाज से । अनुमान से । जैसे,—रास्ता नहीं देखा है, अटकलपच्चू चल रहे हैं ।—(शब्द०) ।

अटकलबाज—वि० [हिं० अटकल + फा० बाज (प्रत्य०)] अंदाज लगानेवाला । निराधार बात करने में निपुण ।

अटकलबाजी—संज्ञा स्त्री० [हिं० अटकल + बाजी] अंदाज लगाना । कल्पना करना ।

अटका[1]—संज्ञा पुं० [सं० अट = खाना; उड़ि० आटिका] जगन्नाथ जी को चढ़ाया हुआ भात जो दूर देशों में भी सुखाकर प्रसाद की भाँति भेजा जाता है । जगन्नाथ जी के भोग के निमित्त दिया हुआ धन । उ०—अटका द्विशत रुपैया केरो । तुमहिं चढ़ैहौं अस प्रण मेरो ।—रामरसिक०, पृ० ८५४ ।

अटका†[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० अटक] दे० 'अटक' ।

अटकाना—क्रि० स० [हिं० 'अटकना' का प्रे० रूप] [संज्ञा अटकाव] १. रोकना । ठहराना । अड़ाना । लगाना । उ०—गए तबहिं तैं फेरि न आए । सूर स्याम वै गहि अटकाए ।—सूर०, १०।२२७८ । २. फँसाना । उलझाना । उ०—तबहिं स्याम इक बुद्धि उपाई । जुवती गईं घरनि सब अपनैं गृह कारज जननी अटकाई ।—सूर०, १०।३८३ । ३. डाल रखना । पूरा करने में विलंब करना । जैसे,—उस काम को अटका मत रखना ।—(शब्द०) ।

अटकाव—संज्ञा पुं० [हिं० अटक + आव] (प्रत्य०)] १. रोक । रुकावट । प्रतिबंध । अड़चन । बाधा । विघ्न । उ०—था समर्पण में ग्रहण का एक सुनिहित भाव; थी प्रगति, पर अड़ा रहता था सतत अटकाव ।—कामायनी, पृ० ८१ । २. मासिक धर्म । उ०—ता पाछे कछूक दिन में सास को अटकाव भयो ।—दो सौ बावन०, पृ० २९८ ।

अटखट(पु)—वि० [अनुध्व०] अट्टसट्ट । अंडबंड । टूटा फूटा । उ०—बाँस पुरान साज सब अटखट सरल तिकोन खटोला रे ।—तुलसी ग्रं०, पृ० ५५३ ।

अटखेली—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अठखेली' ।

अटट(पु)†—वि० [हिं० अटूट] निपट । नितांत ।

अटन--संज्ञा पुं० [सं०] घूमना। चलना फिरना। डोलना। यात्रा। भ्रमण। उ०--चले राम बन अटन पयादे।--मानस, २।३१०।

अटना(पु)¹--क्रि० अ० [सं० अट् = चलना अथवा अटन] १. घूमना। चलना। फिरना। उ०--जीव जलथल जिते वेष धरि धरि तिते अटत दुरगम अचल भारे।--सूर०, १।१२०। २. यात्रा करना। सफर करना। उ०--जोग जाग जप बिराग तप सुतीरथ अटत।--तुलसी ग्रं०, पृ० ५२०। ३. पूरा पड़ना। काफी होना। अँटना।

अटना²--क्रि० अ० [सं० उट = घास फूस अथवा हिं० ओट] पड़ना। आड़ करना। ओट करना। छेकना। उ०--(क) फाटी जो घूँघट ओट अटै, सोइ दीठि फुरौ अधिको जु धँसाई --केशव (शब्द०)। (ख) नेकु अटे पट फूटत आँखि सु देखत हैं कबको ब्रज सोनो।--केशव (शब्द०)।

अटनि--संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दे० 'अटन'। २. दे० 'अटनी'।

अटनी¹--संज्ञा स्त्री० [सं०] १. धनुष के सिरे का वह भाग या खाँचा जहाँ प्रत्यंचा या डोरी बाँधी जाती है [को०]।

अटनी(पु)²--संज्ञा स्त्री० [सं० अटन = घूमना] अटन की क्रिया। कलाबाजी। उ०--जैसे बरत बाँस चढ़ि नटनी। बारंबार करे तहाँ अटनी।--सुंदर० ग्रं०, भा० १, पृ० ९८।

अटपट--वि० [सं० अट = चलना + पत् = गिरना अथवा अनुध्व०] [स्त्री० अटपटी। क्रि० अटपटाना] १. टेढ़ा। विकट। कठिन। मुश्किल। दुरुस्त। २. गूढ़। जटिल। गहरा। अनोखा। उ०--सुनि केवट के बैन प्रेम लपेटे अटपटे।-- तुलसी (शब्द०)। ३. ऊटपटाँग। अंड बंड। उलटा सीधा। बेठिकाने। उ०--अटपट आसन बैठि कै, गोधन कर लीन्हौं। धार अनत ही के देखि कै ब्रजपति हँसि दीन्हौं।--सूर० १०।४०६। ४. गिरता पड़ता। लड़खड़ाता। उ०--चाही की चित्त चटपटी धरत अटपटे पाइ।--बिहारी र०, दो० ३३।

अटपटा†--वि० [हिं०] दे० 'अटपट'।

अटपटाना--क्रि० अ० [हिं० अटपट से नाम०] १. अटकना। अंडबंड होना। लड़खड़ाना। घबड़ाना। उ०--आलस हैं भरे नैन, बैन अटपटात जात, ऐंड़ात जम्हात गात अंग मोरि बहियाँ भेलि।--सूर (शब्द०)। २. हिचकना। संकोच करना। आगा पीछा करना। जैसे--आप कहने में अटपटाते क्यों हैं?--(शब्द०)।

अटपटी(पु)¹--संज्ञा स्त्री० [हिं० अटपट + ई (प्रत्य०)] नटखटी। अनरीति। उ०--सूधै दान न काहे लेत। और अटपटी छाँड़ि नंदसुत रहहु कँपावत बेत।--सूर०, १०।१४६८।

अटपटी²--वि० [हिं० अटपट] बेढंगी। उलटी सीधी। उ०--मधुकर छाँड़ि अटपटी बातैं।--सूर०, १०।३५४७।

अटब्बर(पु)¹--संज्ञा पुं० [सं० आडम्बर] आडंबर। दर्प। उ०--बाँधत पाग अटब्बर की।--श्रीपति (शब्द०)।

अटब्बर(पु)²--संज्ञा पुं० [पं० टब्बर = परिवार] खानदान। परिवार। कुटुंब। उ०--बब्बर के बंश के अटब्बर के रच्छक हैं तच्छक अलच्छन सुलच्छन के स्वच्छ घर।--सूदन (शब्द०)।

अटम--संज्ञा पुं० [सं० अट्ट] ढेर। अंबार।

अटरनी--संज्ञा पुं० [अं० एटर्नी] १. एक प्रकार का मुख्तार जो कलकत्ता और बंबई हाइकोर्टों में मुअक्किलों से मुकदमे लेकर उन्हें ठीक करता है और उनकी पैरवी के लिये बैरिस्टर नियुक्त करता है। २. उच्च न्यायालयों में सरकारी मुकदमों की पैरवी करनेवाला वकील।

अटरिया‡(पु)--संज्ञा स्त्री० [हिं० अटारी + इया (प्रत्य०)] दे० 'अटारी'। उ०--पिया ऊँची रे अटरिया तोरी देखन चली।--कबीर श०, पृ० ५५।

अटरुष--संज्ञा पुं० [सं०] अड़ूसा नाम का क्षुप वासक [को०]।

अटरूष--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अटरुष' [को०]।

अटरूषक--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अटरुष' [को०]।

अटल--वि० [सं०] १. जो न टले। जो न डिगे। स्थिर। निश्चल। उ०--तुलसीस पवन नंदन अटल क्रुद्ध युद्ध कौतुक करै --तुलसी (शब्द०)। २. जो न मिटे। जो सदा बना रहे। नित्य। चिरस्थायी। उ०--करि किरपा दीन्हे करुनानिधि अटल भक्ति, थिर राज। --सूर (शब्द०)। ३. जो अवश्य हो। जिसका होना निश्चित हो। अवश्यंभावी। जैसे--यह बात अटल है, अवश्य होगी।--(शब्द०)। ४. ध्रुव। पक्का। जैसे--उसका इस बात में अटल विश्वास है।--(शब्द०)।

अटलस--संज्ञा पुं० [अं० ऐटलस] वह पुस्तक जिसमें पृथ्वी के भिन्न भिन्न भागों के मानचित्र हों।

अटवाटी खटवाटी--संज्ञा [अनुध्व० + हिं० खाट + पाटी] खाट खटोला। बोरिया बँधना। साज सामान।

मुहा०--अटवाटी खटवाटी लेकर पड़ना या लेना = खिन्न और उदासीन होकर अलग पड़ रहना। रूठकर अलग बैठना।

अटवि--संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अटवी' [को०]।

अटविक--संज्ञा पुं० [सं०] जंगली। आटविक [को०]।

अटवी--संज्ञा स्त्री० [सं०] १. जंगल। बन। उ०--अटवी हिलडोलने लगी, सरसी सौरभ घोलने लगी।--साकेत, पृ० ३४८। २. लंबा चौड़ा साफ मैदान।

अटवीबल--संज्ञा पुं० [सं०] बनवासियों की सेना।

अटसट(पु)†--वि० [अनु०] दे० 'अट्टसट्ट'।

अटहर(पु)¹--संज्ञा पुं० [सं० अट्ट = ऊंचा ढेर, अटाला] १. अटाला। ढेर। २. फेंटा। लपेट। पगड़ी। उ०--आप चढ़ी शीश मोहिं दीन्ही बकसीस औ हजार शीश बारे की लगाई अटहर है।--(शब्द०)।

अटहर²--संज्ञा पुं० [हिं० अटक] कठिनाई। अड़चन अटकाव। दिक्कत।

अटा¹--संज्ञा स्त्री० [सं० अट्टा] घर के ऊपर की कोठरी या छत। अटारी। कोठा। उ०--छिनकु चलति, ठठुकति छिनकु, भुज प्रीतम गल डारि। चढ़ी अटा देखति घटा बिज्जु छटा सी नारि।--बिहारी र०, दो० ३८४।

अटा²--संज्ञा पुं० [सं० अट्ट = अतिशय] अटाला। ढेर। राशि। समूह। उ०--ए री! बलबीर के अहीरन के भीरन में सिमिटि समीरन अबीर को अटा भयो।--पद्माकर (शब्द०)।

अटा³--संज्ञा स्त्री० [सं०] भ्रमणशीलता (संन्यासियों की भाँति)। भ्रमण की क्रिया। घूमना [को०]।

अटाउ (पु)--संज्ञा पुं० [सं० अट्ट = अतिक्रमण करना + हिं० आउ (प्रत्य०)] १. बिगाड़। बुराई। २ नटखटी। शरारत। उ०--आप ही अटाउ कै य लेत नाम मेरो, वे तो बापुरे मिलाप के सँताप कर दाने हैं (शब्द०)।

अटागर--संज्ञा पुं० [सं० अट्ट + आगार] समूह। अटाला। ढेर। उ०--हुआै साँमेतौ जूहार जुहार। पान अटागर काथ श्री कार।--बीसल०, पृ० १८।

अटाटूट--वि० [सं० अट्ट = ढेर + हिं० अटूट अथवा सं० अट्ट + हिं० अटूट] नितांत। बिल्कुल।

अटाना¹--क्रि० स० [हिं० अटक = रोक, बाधा] रोक या बाधा आ पड़ना। उ०--आगे आइ सिंधु नियराना। पार जाइ कह गाढ़ अटाना।--इंद्रा०, २९।

अटाना²--क्रि० स० [हिं० अटना का प्र० रूप] किसी वस्तु को किसी वस्तु में समा देना। रखना अँटा देना।

अटारी--संज्ञा स्त्री० [सं० अट्टालिका] कोठा। दीवारों पर छत पाटकर बनाई हुई कोठरी। सबके ऊपर की कोठरी या छत। चौबारा। उ०--निबुकि चढ़ेउ कपि कनक अटारी। भई सभीत निसाचर नारी।--मानस ५।२५।

अटाल--संज्ञा पुं० [सं० अट्टाल] बुर्ज। धरहरा (डिं०)।

अटाला--संज्ञा पुं० [सं० अट्टाल] १. ढेर। कूरा। राशि। अंबार। २. समान। असबाब। सामग्री। ३. कसाइयों की बस्ती या मुहल्ला।

अटाव--संज्ञा पुं० [सं० अट्ट + हिं० आव (प्रत्य०)] १. बैर। वैमनस्य। द्वेष। २. शरारत। पाजीपन। दुष्टता। ३. अँटना। समाना। पूरा पड़ने का भाव।

अटित¹--वि० [सं० अटा] जिसमें अटा या अटारी हो। अटारीवाला।

अटित²--वि० [सं० अटन] घुमावदार। घूमा हुआ।

अटिहार(पु)--वि० [हिं० अटना + हार (प्रत्य०)] अँटनेवाला। पूरा पड़नेवाला। उ०--अटिहार कोई पूज्जै नहीं बल अभूत आतम करयो।--पृ० रा०, २४।१९७।

अटी--संज्ञा स्त्री० [सं० अटी] एक चिड़िया जो पानी के किनारे रहती है। चहा।

अटूट--वि० [सं० अ = नहीं + त्रुट = टूटना] १. न टूटने योग्य। अखंडनीय। अछेद्य। दृढ़। पुष्ट। मजबूत। २. जिसका पतन न हो। अजेय। ३. अखंड। लगातार। उ०--छूटै जटाजूट सौं अटूट गंगधार धौल मौलि सुधागार कौ अधार दरसत है।--रत्नाकर, भा० २, पृ० २१०।

अटेरन--संज्ञा पुं० [सं० अहिण्डन, प्रा० * अहिण्डन * अइडरन * अटइरन = अटेरन; अथवा सं० अट = घूमना एकत्र करना] [क्रि० अटेरना] १. सूत की आँटी बनाने का लकड़ी का यंत्र। ओयना।

विशेष--६ इंच की एक लकड़ी के दोनों सिरों पर सूत लपेटने के लिये दो आड़ी लकड़ियाँ लगाई जाती हैं जो दोनों ओर प्रायः तीन तीन इंच बढ़ी रहती हैं। इन लकड़ियों में से नीचे की लकड़ी कुछ बड़ी और ऊपर की लकड़ी पृष्ठ के बल रखे हुए धनुष के आकार की होती हैं।

मुहा०--अटेरन होना = हड्डी हड्डी निकलना। अत्यंत दुर्बल होना।

२ घोड़े को कावा या चक्कर देने का एक ढंग या तरीका। क्रि० प्र०--फेरना।

३ कुश्ती का एक पेंच।

मुहा०--अटेरन कर देना = दाँव में डालकर चकरा देना। दम न लेने देना।

अटेरना--क्रि० स० [हिं० अटरन से नाम०] १. अटेरन से सूत की आँटी बनाना। २. मात्रा से अधिक मद्य या नशा पीना। जैसे,--क्या कहना है लाला जी खूब अटेरे हैं।--(शब्द०)।

अटोक(पु)--वि० [सं० अ + तर्क, पा० तक्क = टोकना] बिना रोक टोक का। उ०--(क) अरु अटोक ड्योढ़ी करी, रैठत बखत तमाम।--मतिराम (शब्द०)। (ख) मोद भरी ननदी अटोक टोना टारै लगी।--कविता कौ०, २।१०२।

अटोट(पु)--वि० [हिं०] दे० 'अटूट'। उ०--चोली चारु छीट की छाजति उपमा देत अटूट।--सूर०, परि० १, पृ० ८५।

अटोप(पु)--संज्ञा पुं० [सं० अटोप] दे० 'आटोप'। उ०--अलोप टोप कै अटोप चाइ चोप सों धरै।--पद्माकर ग्रं०, पृ० २८४।

अट्ट (पु)--संज्ञा पुं० [सं० हट्ट = बाजार] १. हाट। बाजार। उ०--देव दंपति अट्ट देख सराहते।--साकेत, पृ० ३।

अट्ट²--संज्ञा पुं० [सं०] १. बुर्ज। उ०--अट्टों पर चढ़ चढ़कर सब ओर पथों में बढ़कर बढ़कर।--साकेत, पृ० १५२। अटारी। कोठा। ३. एक यक्ष का नाम। ४. प्राधान्य। अधिकता। अतिशयता। ५ पका हुआ चावल। भात। ६. भोज्य पदार्थ। ७. पहरा देने का उँचा स्थान या मीनार। ८. महल। प्रासाद। ९. रेशमी वस्त्र। १०. दुर्ग में सेना के रहने का स्थान या भाग (कौ०)।

अट्ट³--वि० १. ऊँचा। २. शुष्क। सूखा। सुखाया हुआ। ३. उच्च स्वर से युक्त [को०]।

अट्टक--संज्ञा पुं० [सं०] १. छत के ऊपरवाला कमरा। बँगला। २. प्रासाद। महल [को०]।

अट्टट्ट--वि० [सं०] १. बहुत ऊँचा। २. बहुत जोर का [को०]।

अट्टट्ट हास--संज्ञा पुं० [सं०] बड़े जोर की हँसी। ठठाकर हँसना। क्रि० प्र०--करना।--होना।

अट्टन--संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार का चक्र की आकृति का अस्त्र। २. अपमान। अवमानना। उपेक्षा। तिरस्कार [को०]

अट्टसट्ट--वि० [अनुध्व०] १. ऊटपटांग। अंडबंड। जैसे--तुम तो सदा यों ही अट्टसट्ट बका करते हो।--(शब्द०)। २. बहुत ही साधारण या निम्न कोटि का। इधर उधर का। जैसे,--उस कोठरी में बहुत सा अट्टसट्ट सामान पड़ा है।--(शब्द०)।

अट्टहसित--संज्ञा पुं० [सं०] 'अट्टहास' [को०]।

अट्टहास--संज्ञा पुं० [सं०] ठहाका। जोर की हंसी। खिलखिलाना उ०--अस कहि अट्टहास सठ कीन्हा।--मानस, ६।३९। क्रि० प्र०--करना--होना।

अट्टहासक¹--संज्ञा पुं० [सं०] १. खिलखिलाकर हँसना। ठहाका। २. कुंद का फूल और पेड़।

अट्टहासक²--वि० जोर से हँसनेवाला। ठहाका मारकर हँसनेवाला।

अट्टहासी¹--संज्ञा पुं० [सं० अट्टहासिन्] शिव [को०]।

अट्टहासी[२]—वि० अट्टहास करनेवाला [को०]।

अट्टहास्य—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अट्टहास' [को०]।

अट्टा—संज्ञा पुं० [सं० अट्ट = बुर्ज] मचान।

अट्टाट्ट हास—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अट्टहास'

अट्टाल—संज्ञा पुं० [सं०] १. ऊपरी मंजिल का कोठा। २ बुर्ज। उच्च स्थान। ३. प्रासाद। महल [को०]।

अट्टालक—संज्ञा पुं० [सं०] किले का बुर्ज।

अट्टालिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] अटारी। कोठा।

अट्टी—संज्ञा स्त्री० [सं० अट्ट = घूमना, बढ़ाना] १. अटेरन पर लपेटा हुआ सूत या ऊन। लच्छा। पोला। किरची। २. आंटा। उ०—जमंदढ्ढ दट्टी। मनौं नोन अट्टी।—पृ० रा०, १०।२१।

अट्ठ—वि० [सं० अष्ट] आठ की संख्या। ८। उ०—घन सिकार राजन करिय हनि बराहु अनि अट्ठ।—पृ० रा०, २४।३५१।

अट्ठा—संज्ञा पुं० [सं० अष्टक, प्रा० अट्ठय] तास का एक पत्ता जिसपर किसी भी रंग की आठ बूटियाँ होती हैं।

अट्ठाइस—वि० [अप०] दे० 'अट्ठाईस'।

अट्ठाइसवाँ—वि० [सं० अष्टाविंशतिम्, हिं० अट्ठाइस] जिसका स्थान सत्ताइसवें के उपरांत हो। क्रम या गिनती में जिसका स्थान अट्ठाइसवाँ हो।

अट्ठाईस—वि० [सं० अष्टाविंशति; पा० अट्ठावीस; प्रा० अट्ठाईस, अप० अट्ठाइस] एक संख्या। बीस और आठ। २८।

अट्ठानबे—वि० [सं० अष्टानवति, पा० अट्ठानवति, प्रा० अट्ठाणवइ] एक संख्या। नब्बे और आठ। ९८।

अट्ठानबेवाँ—वि० [सं० अष्टानवतितम; देश० अट्ठानबे] जिसका स्थान सत्तानबे के उपरांत हो। क्रम या संख्या में जिसका स्थान अट्ठानबेवाँ हो।

अट्ठारह—वि० [सं० अष्टादश, प्रा० अट्ठारस, अट्ठारह] दे० 'अठारह'।

अट्ठावन—वि० [सं० अष्टपञ्चाशत्, प्रा० अट्ठावण्ण, अट्ठावन्न] एक संख्या। पचास और आठ। ५८।

अट्ठावनवाँ—वि० [सं० अष्टपञ्चाशतम्, देश० अट्ठावन] जिसका स्थान सत्तावन के उपरांत हो। क्रम या संख्या में जिसका स्थान अट्ठावनवाँ हो।

अट्ठासिवाँ—वि० [सं० अष्टाशीति, अप० अट्ठासि > हिं० अट्ठासी + वाँ (प्रत्य०)] जिसका स्थान सत्तासिवें के उपरांत हो। क्रम या संख्या में जिसका स्थान अट्ठासिवाँ हो।

अट्ठासी—वि० [सं० अष्टाशीति, अप० अट्ठासि, अट्ठासीइ] दे० 'अठासी'।

अट्ठे—वि० [हिं० आठसे] आठगुना। जैसे, पाँच अट्ठे चालीस, सात अट्ठे छप्पन।

अठंग(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अष्टांग] अष्टांग योगी। उ०—उठत उरोजन उठाए उर ऐंठ भुज औठन अमेठै अंग आठ हू अठंग सी।—देव (शब्द०)।

अठ—वि० [सं० अष्ट, प्रा० अट्ठ] आठ। (हिंदी समास में प्रयुक्त)। जैसे—अठपतियाँ, अठपहला, अठकोना आदि।

अठएँ—वि० [हिं०] दे० 'आठवाँ'। उ०—अठएँ आठ अष्ट कँवल में, उरध निरखै सोई।—धरम०, पृ० ७७।

अठइसी—संज्ञा स्त्री० [हिं० अट्ठाइस] २८ गाहियों अर्थात् १४० फलों की संख्या जिसे फलों के लेनदेन में सैकड़ा मानते हैं।

अठई(पु)+—संज्ञा स्त्री० [सं० अष्टमी] अष्टमी तिथि। उ०—सतमी पूनिउँ वा सब आछी। अठई अमावस ईसन लाछी।—जायसी (शब्द०)।

अठकठ(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अटखट'। उ०—अठकठ साज बरनि नहिं जाई। संगी सो इक एक सोहाई।—भीखा श०, पृ० ७४।

अठकपाली—वि० [सं० अष्ट + कपाल] अठगुनी बुद्धिवाला। चतुर। धूर्त। चालाक। उ०—बड़े बड़े अठकपाली हमारे सामने अपना अठकपालीपन भूल गए।—चुभते चौ० (भू०), पृ० २।

अठकरी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अठवाली'[२]।

अठकोन—वि० [हिं०] दे० 'अष्टकोण'[२]। उ०—अंकुस अरध रेख अब्ज अठकोन अमलतर।—भारतेंदु ग्रं०, भा० ३, पृ० ६६०।

अठकौशल—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अठकौसल'।

अठकौसल—संज्ञा पुं० [हिं० आठ + अ० कौंसिल] १. गोष्ठी। पंचायत। २. सलाह। मंत्रणा। उ०—हेरत फिरत वारि बृच्छ कहलाने सबै होति अठकौसल कुरंगी औ अलाका मैं।—रत्नाकर, भा० २ पृ० ११८।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

अठखेलपन—संज्ञा पुं० [सं० अष्टक्रीड़, या *अष्टखेल, प्रा० अठ्ठखेल, अट्ठखेल्ल] चंचलता। चपलता। चुलबुलापन।

अठखेली—संज्ञा स्त्री० [सं० अष्टक्रीड़ा या *अष्टखेल, प्रा० अट्ठखेल, अट्ठखेल्ल] १. विनोद। क्रीड़ा। चपलता। कल्लोल। चंचलता। चुलबुलापन। २. मतवाली चाल। मस्तानी चाल।

क्रि० प्र०—करना।

मुहा०—अठखेलियाँ सूझना = चुलबुलापन करना। उ०—तुझे अठखेलियाँ सूझी हैं हम बेजार बैठे हैं।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० २६३।

अठताल(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अष्टताल] १. एक प्रकार का गीत। उ०—यो अठतालो गीत उचारैं, कहँ मंछ प्रभु गुण इक धारैं।—रघु० रू०, पृ० २०६।

विशेष—इसमें आठ चरण होते हैं। प्रथम तीन चरण चौदह चौदह मात्राओं के होते हैं और चौथा चरण दस मात्राओं का रहता है जिसके तुकांत में लघु गुरु रहता है। इसी प्रकार चार चरणों का दूसरा द्वाला बनाया जाता है। इसमें चौथे और आठवें चरण का तुकांत प्रथम, द्वितीय, तृतीय, पंचम और सप्तम के साथ मिलता है। प्रथम द्वाले के प्रथम पद में अठारह मात्राएँ होती हैं।

२. दे० 'अष्ठताल'। वाद्य। उ०—बाजत बेनु बिषान बाँसुरी डफ मृदंग अठताल।—नंद० ग्रं०, पृ० २९६।

अठत्तर—वि० [हिं०] दे० 'अठहत्तर'।

अठन्नी—संज्ञा स्त्री० [हिं० अठ + अन्नी = आनावाली] १. सन् १९५९ तक भारत में प्रचलित आठ आने के मूल्य का सिक्का। २. पचास पैसे का सिक्का।

अठपतिया—संज्ञा स्त्री० [सं० अष्टपत्रिका, पा० अट्ठपत्तिका, प्रा० अट्ठपत्तिया, अठपत्तिया] एक प्रकार की पत्थर की नक्काशी जिसमें आठ दलों के फूल बनाए जाते हैं।

अठपहरा(पु)--वि० [सं० अष्टप्रहर] रात दिन का। आठो पहर का। लगातार। उ०--सबर तखत पर बैठ तूर अठपहरा बाजै। पलटू०, पृ० ७५।

अठपहला--वि० [सं० अष्टपटल, पा० अट्ठपहल अथवा सं० अष्ट + फा० पहल] आठ कोनेवाला। जिसमें आठ पार्श्व हों।

अठपाव(पु)--संज्ञा पुं० [सं० अष्टपाद, पा० अट्ठपाद; प्रा० अट्ठपाव] उपद्रव। ऊधम। शरारत। उ०--भूषन क्यों अफजल्ल बचै अठपाव कै सिंह को पाँव उमैठो।--भूषण ग्रं०, पृ० २५३।

अठबन्ना--संज्ञा पुं० [सं० अट = घूमना + बन्धन] वह बाँस जिसपर जुलाहे करघे की लंबाई से बढ़ा हुआ ताने का सूत लपेट रखते हैं और ज्यों ज्यों बुनते जाते हैं, उसपर से सूत खींचते जाते हैं।

अठमासा¹--संज्ञा पुं० [सं० अष्टमासिक, प्रा० अट्ठ + मासअ] १ वह खेत जो आषाढ़ से माघ तक समय समय पर जोता जाता रहे और जिसमें ईख बोई जाय। अठवाँसा। २. गर्भ के आठवें मास में होनेवाला सीमंत संस्कार। ३. आठ मास पर होनेवाला प्रसव।

अठमासा²--वि० दे० 'अठवाँसा'।

अठमासी--संज्ञा स्त्री० [सं० अष्टमाश] आठ माशे का सोने का सिक्का। सावरेन। गिनी।

अठयौ(पु)--वि० [हिं०] दे० 'आठवाँ'। उ०--अठयौ गर्भ सु तेरौ हंता। --नंद० ग्रं०, पृ० २२१।

अठलाना(पु)--क्रि० अ० [हिं० ऐंठ + लाना] १. ऐंठ दिखाना। इतराना। गर्व जताना। ठसक दिखाना। उ०--काहे को अठिलात कान्ह, छाँड़ौ लरिकाई।--सूर (शब्द०)। २. चोंचला करना। नखरा करना। उ०--जैये चले अठिलैये उतै इत कान्ह! खरी वृषभानुकुमारि है।--संभु (शब्द०)। ३. मदोन्मत्त होना। मस्ती दिखाना। उ०--देखौ जाय और काहू को हरि पै सबै हरित मँडरानी। सूरदास प्रभु मेरो नान्हो तुम तरुणी डोलति अठिलानी।--सूर (शब्द०)। ४. छेड़ने के लिये जान बूझकर अनजान बनना।

अठवना(पु)--क्रि० अ० [सं० आस्थापन, पा० ठान = ठहराव अथवा सं० आस्थान] जमना। ठनना। उ०--मैं आवत या थान दुग्ग की होय तयारी। करो मोरचा सबै तोपखानो सब जारी। सब जारी करि देहु सत्रु आवत है अठयो सिंह बहादुर पास साँड़िया को लिख पठयो।--सूदन (शब्द०)।

अठवाँस¹--संज्ञा पुं० [सं० अष्टपार्श्व] अठपहली वस्तु। अठपहले पत्थर का टुकड़ा।

अठवाँस²--वि० अठपहला। अठकोना।

अठवाँसा¹--वि० [सं० अष्टमास, पा० अट्ठमास] वह गर्भ जो आठ ही महीने में उत्पन्न हो जाय।

अठवाँसा²--संज्ञा पुं० १. सीमंत संस्कार। २. वह खेत जो आषाढ़ से माघ तक समय समय पर जोता जाता रहे और जिसमें ईख बोई जाय। अठमासा।

अठवारा--संज्ञा पुं० [सं० अष्ट, प्रा० अट्ठ>अठ + सं० वार] १. आठ दिन का समय। पक्ष का आधा भाग। सप्ताह। हफ्ता। २. अनिश्चित दिनों तक। उ०--नहिं घन अठवारन लौं वैसी झरी लगावै।--प्रेमघन०, पृ० ५५१।

अठवारी--संज्ञा स्त्री० [सं० अष्ट, प्रा० अट्ठ, अठ + सं० वार + हिं० ई (प्रत्य०)] वह रीति जिसके अनुसार असामी जोताई के समय प्रति आठवें दिन अपना हल बैल जमींदार को खेत जोतने के लिये देता है।

अठवाली--संज्ञा स्त्री० [हिं० अठ + वाली] १. वह लकड़ी का टुकड़ा जो किसी भारी चीज में बाँधा जाता है और जिसमें सेंगरे लगाकर पेशराज लोग उस भारी चीज को उठाते हैं। २. वह पालकी जिसे आठ कहार उठाते हैं। अठकरी।

अठसठ-- वि० [हिं०] दे० 'अठसठ'। उ०--अड़सठ तीरथ सब के बरनन कोट गया और कासी।--कबीर श०, पृ० ७८।

अठसिल्या(पु)--संज्ञा पुं० [सं० अष्टशिला, पा० अट्ठसिला] सिंहासन। उ०--देखि सखिन हँसि पाँव पखारे। मणिमय अठसिल्या बैठारे।--विश्राम (शब्द०)।

अठहत्तर--वि० [सं० अष्टसप्तति, प्रा० अठहत्तरि] एक संख्या। सत्तर और आठ। ७८।

अठहत्तरवाँ--वि० [हिं० अठहत्तर + वाँ (प्रत्य०)] जिसका स्थान सतहत्तरवें के उपरांत हो। क्रम या संख्या में जिसका स्थान अठहत्तरवाँ हो।

अठाई(पु)--वि० [सं० अस्थायी अथवा सं० अ + स्थानिक] उपद्रवी। उत्पाती। शरीर। उ०--हैं हरि आठहु गाँठ अठाई।--केशव (शब्द०)।

अठान(पु)--संज्ञा पुं० [सं० अ = नहीं + हिं० ठानना] १. न ठानने योग्य कार्य। अकरणीय कर्म। अयोग्य या अनुचित कर्म। उ०--(क) तजतु अठान न, हठ परयौ सठमति, आठौ जाम।--बिहारी र०, पृ० १७०। (ख) हनुमान परोसिन हू हित की कहती तो अठान न ठानतीं मैं।--हनुमान (शब्द०)। २. बैर। शत्रुता। विरोध। झगड़ा। उ०--खाँ संगै करत उमंगै ठानि अठान पठान चढ़े।--सूदन (शब्द०)।

अठाना(पु)¹--क्रि० स० [सं० अर्ति = पीड़ा, प्रा० अट्टि + अट्ट से नाम०] १ सताना। पीड़ित करना। उ०--आजु सुन्यो अपने पिय प्यारे को काम महा रघुनाथ अठाए।--रघुनाथ (शब्द०)।

अठाना(पु)²--क्रि० स० [सं० स्थान = स्थिति, ठहराव, ठानना, प्रा० ठान] मचाना। ठानना। जमाना। छेड़ना। उ०--(क) जानि जुद्ध अमनैक अठायो। तहवर खाँ इहि देस पठायो।--लाल (शब्द०)। (ख) घासहरैं था कुँवर जी रन रंग अठाया। तिस कागज के बाँचते सूरज मुसकाया।--सूदन (शब्द०)।

अठानी(पु)--वि० [हिं० अठान + ई (प्रत्य०)] अयोग्य या अनुचित कार्य करनेवाला। उ०--द्रोन के प्रबोध दुरबोध दुरजोधन के आयु औधि दिवस जयद्रथ अठानी के।--रत्नाकर, भा० २, पृ० १४५।

अठार(पु)--वि० [सं० अष्टादश, हिं० अठारह, अट्ठार] अठारह की संख्या। दस और आठ। १८। उ०--अव्व अठार सवालष लष्षैं, तौ भारथ गुर तत्त विसष्षैं।--पृ० रा०, १।८७।

अठारह¹--वि० [सं० अष्टादश, पा० अट्ठादस, प्रा० अट्ठारस, अट्ठारह] एक संख्या। दस और आठ। १८। उ०--पदुम अठारह जूथप बंदर।--मानस, ५।५५।

अठारह²--संज्ञा पुं० १ काव्य में पुराणसूचक संकेत या शब्द। २. चौसर का एक दाँव। पासे की एक संख्या। उ०--हारि

पासा साधु संगति केरि रसना सारि। दाँव अबके परयो पूरो कुमति पिछली हारि। राखि सतह सुनि अठारह चोर पाँचों मान।--सूर० (शब्द०)।

अठारहवाँ--वि० [सं० अष्टादशम, प्रा० अट्ठारसवँ, अप० अट्ठारहवँ, अट्ठारहवाँ] जिसका स्थान सत्रहवें के उपरांत हो। क्रम या गिनती में जिसका स्थान अठारह पर हो।

अठासिवाँ--वि० [सं० अष्टाशीति + हिं वाँ (प्रत्य०)] जिसका स्थान सत्तासिवें के उपरांत हो। क्रम या संख्या में जिसका स्थान अठासिवाँ हो।

अठासी--संज्ञा स्त्री० [सं० अष्टाशीति, प्रा० अट्टासीइ, अप० अट्ठासि] एक संख्या। अस्सी और आठ। ८८।

अठिलाना(पु)--क्रि० अ० [हिं०] दे० अठलाना। उ०--रहिमन निज मन की व्यथा मनहीं राखौ गोय। सुनि अठिलैहैं लोग सब बाँटि न लैहैं कोय।--कविता कौ०, भा० १, पृ० १६५।

अठिल्ला--संज्ञा पुं० [सं०] प्राकृत का एक छंद। दे० 'अरिल्ल' [को०]।

अठेल(पु)--वि० [सं० अ = नहीं + हिं० ठेलना] बलवान्। मजबूत। जोरावर (डिं०)।

अठेसा(पु)--वि० [हिं०] दे० 'अट्ठाइस'। उ०--विनसत सबै मया बिस चारि अठसा। सो सब पलटू देखिया हम जैसे क तैसा।--पलटू०, भा० ३, पृ० ९९।

अठोठ(पु)--संज्ञा पुं० [देश०] ठाट। आडंबर। पाखंड। उ०--लाज के अठोठ कै कै, बैठती न ओट दै दै, घूँघट कै काहे को कपट पट तानती। डारि देती डर कर ऐंचती न कोप करि डीठै चोरि पीठि मोरि हौं न हठ ठानती।--देव (शब्द०)।

अठोतरसो--वि० [सं० अष्टोत्तरशत, प्रा० अट्ठुत्तरसत] आठ के ऊपर सौ। एक सौ आठ।

अठोतरी--संज्ञा स्त्री० [सं० अष्टोत्तरी] एक सौ आठ दानों की जपमाला।

अठोर--वि० [सं० अ = नहीं + हिं० ठोर] जिसमें धार न हो। कुंद। भौतरा। उ०--अठोर धार बनस्पति। मालनी छिन में करोड़ा मेघमाला पानी हरिया।--दक्खिनी०, पृ० ३०।

अठौड़ी--संज्ञा पुं० [सं० अष्टपदी] एक प्रकार का आठ पैरोंवाला कीड़ा जो पशुओं के शरीर में लगता है।

अठौरा--संज्ञा पुं० [सं० अष्ट, प्रा० अट्ठ, अठ + हिं० औरा (प्रत्य०)] लगे हुए पान के आठ बीड़ों की खोंगी।

अडंग(पु)--वि० [हिं०] दे० 'अडिग'। उ०--तपसी रो रूप धरो अतताई अडंग कुटी गई सीत उठाई।--रघु० रू०, पृ० १३५।

अड़ंग(पु)--संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अड़ंगा'। उ०--धक्कों की धड़ाधड़ अड़ंग की अड़ाअड़ में ह्वै रहै कड़ाकड़ सुदंतों की कड़ाकड़ी।--पद्माकर ग्रं०, पृ० ३०७।

अड़ँगबड़ँग+--वि० [हिं० अड़ंग + बेढंग] टेढ़ा मेढ़ा। अंडबंड। अव्यवस्थित। उ०--अड़ँग बड़ँग कर आत्मा मेटै साँची सूध।--दरिया० बानी, पृ० ३४।

अड़ंगा--संज्ञा पुं० [हिं० अड़ + अंग = (अंगवाला) रुकावट डालने वाला] टाँग अड़ाना। अटकाव। रुकावट। अड़चन। हस्तक्षेप। उ०--क्रुद्ध ह्वै मलेच्छनि की सुद्धि के विरुद्ध बने जाल जे कुबुद्धि तनैं उद्धत अड़ंगा को।--रत्नाकर, भा० २, पृ० १९५।

अडंड(पु)--वि० [सं० अड्य + दं न दंड देने योग्य] १. अदंडनीय। जिसको दंड न दे सकें। २. निर्भय। निर्द्वंद्व।

अडंबर(पु)--संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आडंबर'। उ०--(क) मुंडन की माल दीबो भाल पर ज्वाल कीबो छीन लीबो अंबर अडंबर जहाँ जैसो।--पद्माकर ग्रं०, पृ० २०१। (ख) धारि कै हिमंत कै सजीले स्वच्छ अंबर कौं, आपने प्रभाव को अडंबर बढ़ाए लेति।--रत्नाकर, भा० २, पृ० १२८।

अडंमर(पु)--संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आडंबर'। उ०--धूप अडंमर धुंधरिय झलमल जल सम ढार।--पृ० रा०, १४।६५।

अड़--संज्ञा पुं स्त्री० [सं० हठ = जिद अथवा अड्ड = समाधान = अभियोग] [क्रि० अड़ना, अडाना; वि० अड़दार, अड़ियल] हठ। टेक। जिद। अड़न। अड़ने की स्थिति।

अड़काना†--क्रि० स० [हिं०] दे० 'अड़ाना'।

अडग(पु)--वि० [हिं० अडिग + अंग] अडिग। न डिगनेवाला। अटल। अचल।--(डिं०)। उ०--अजोध्यानाथ दशमाथ रावण अडग महाबे ओर भाराथ मातो।--रघु० रू०, पृ० २०।

अड़गड़ा--संज्ञा पुं० [अनुध्व०] १. बैलगाड़ियों और सगड़ों आदि के ठहरने का स्थान। २. वह जहाँ बिक्री के लिये घोड़े, बैल आदि रहते हों।

अडगरिध(पु)--वि० [हिं०] दे० 'अडगरिधू'।

अडगरिधू(पु)--वि० [हिं० अडिग + पु० रिधू] स्थिर (डिं०)।

अड़गोड़ा--संज्ञा पुं० [हिं० अड़ = रोक + हिं० गोड़ = पाँव] एक लकड़ी का टुकड़ा जिसे एक सिरे पर छेदकर नटखट चौपायों के गले में बाँधते हैं जो दौड़ते समय उनके अगले पैरों में लगता है जिससे वे बहुत तेज भाग नहीं सकते। ठंगुर। ठेकुर। डेंगना।

अड़चन--संज्ञा पुं० [देश०] १. रुकावट। अंडस। बाधा। आपत्ति। कठिनाई। दिक्कत। उ०--आगे चलकर इस काम में बड़ी बड़ी अड़चनें पड़ेंगी।--(शब्द०)।

अड़चल†--संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अड़चन'। उ०--क्रोध, भय, जुगुप्सा और करुणा के संबंध में साहित्यप्रेमियों को शायद कुछ अड़चल दिखाई पड़।--रस०, पृ० २७३।

अडट(पु)--वि० [हिं० अ = नहीं + डाँट] डाँट में न रहनेवाला। न दबनेवाला। उ०--अडटनि डटत सुदंड थप्पि थिर करत अप्पवर।--पृ० रा०, ३।५५।

अड़डंडा--संज्ञा पुं० [हिं० अड़ = टिकाव + डंडा] वह लकड़ी या बाँस का डंडा जिसके दोनों छोरों पर लट्टू बने रहते हैं। यह डंडा मस्तूल पर चिड़ियों के अड्डे की तरह बँधा रहता है और इसी पर पाल चढ़ाई जाती हैं।

अड़ड़पोपो--संज्ञा पुं० [देश०] १. सामुद्रिक विद्या जाननेवाला। हाथ देखकर जीवन की घटनाओं को बतलानेवाला। २. पाखंडी। धर्मध्वजी। झूठमूठ आडंबर करनेवाला। ३. वृथालापी। बकवादी। गप्पी।

अड़तल--संज्ञा पुं० [हिं० आड़ + सं० तल] १. ओट। ओझल। आड़ २. छाया। शरण। ३. बहाना। हीला। उज्र।

मुहा०—अड़तल पकड़ना या अड़तल लेना = (१) पनाह लेना। शरण में जाना। (२) बहाना करना।

अड़तालिस—वि० [हिं०] दे० 'अड़तालीस'।

अड़तालिसवाँ—वि० [सं० अष्टचत्वारिंशत्, प्रा० अट्ठ = अत्तालिस < हिं० अड़तालिस + वाँ (प्रत्य०)] जिसका स्थान सैंतालीस के उपरांत हो। क्रम या संख्या में जिसका स्थान अड़तालिसवाँ हो।

अड़तालीस—वि० [सं० अष्टचत्वारिंशत्; प्रा० अट्ठचत्तालीस, अट्ठतालीस] एक संख्या। चालीस और आठ। ४८।

अड़तीस—वि० [अष्टत्रिंशत् प्रा० अट्ठतीस, अठतीस] एक संख्या। तीस और आठ। ३८।

अड़तीसवाँ—वि० [हिं० अड़तीस + वाँ (प्रत्य०)] जिसका स्थान सैंतीसवें के उपरांत हो। क्रम या संख्या में जिसका स्थान अड़तीसवाँ हो।

अड़दार—वि० [हिं० अड़ + फा० दार (प्रत्य०)] १. अड़ियल। रुकनेवाला। उ०—अली चली नवलाहि लै पिय पै साजि सिंगार। ज्यों मतंग अड़दार को लिए जात गड़दार।—मतिराम (शब्द०)। २. ऐंडदार। मस्त। मतवाला। उ०—दाबदार निरखि रिसानौं दीह दलराय, जैसे गड़दार अड़दार गजराज को।—भूषण ग्रं०, पृ० ६।

अड़न—संज्ञा स्त्री० [हिं० अड़ना] अड़ने का भाव या क्रिया। अड़ने की स्थिति। उ०—साधु को ऐसा चाहिए ज्यों सिसु अड़न अड़ै।—पलटू०, पृ० ५४।

अड़ना—क्रि० अ० [देश० अथवा सं० हठ, प्रा० ० अठ > हिं० अड़ से नाम०] १. रुकना। अटकना। ठहरना। उ०—इहि उर माखन चोर गड़े। अब कैसे निकसत सुनि ऊधौ तिरछे ह्वै जु अड़े।—सूर०, १०।३७३१। २ हठ करना। टेक बाँधना। ठानना। उ०—बिरहा सेती मति अड़ै, रे मन मोर सुजान।—कबीर (शब्द०)।

अड़पायल—वि० [हिं० अड़ + पाँव × ल (प्रत्य०)] जोरावर। बलवान् (डिं०)।

अड़बंग(५)†—वि० पुं० [हिं० अड़ना + सं० वक्र, प्रा० बंक = टेढ़ा] १. टेढ़ा मेढ़ा। ऊँचा नीचा। अड़बड़। अटपट। उ०—बेद कौं न मानै ना पुरान भेद जानै कछू ठानै ठान आपने लबेद अड़बंगा की।—रत्नाकर, भा० २, पृ० १९६। २. विकट। कठिन। दुर्गम। जैसे रास्ता अड़बंग है।—(शब्द०)। ३ विलक्षण। अनोखा। अद्भुत। उ०—नहिं जागत उपाय कछु लागत कुंभकरण अड़बंगा।—रघुराज (शब्द०)।

अड़बंद—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० आड़बंद। उ०—दया प्रेम का अड़बंद बाँधो आतम खोल लगाई।—कबीर श०, भा० ३, पृ० ४९१।

अड़बड़†—वि० [हिं० अटपट अथवा अंडबंड] टेढ़ा। बिकट। कठिन। मुश्किल। दुस्तर। उ०—आगमपुरी की है सँकरी गलियाँ अड़बड़ है चढ़ना।—कबीर श०, भा० १, पृ० ६७।

अड़बल—वि० [हिं०] अड़नेवाला। अड़ियल। हठी।

अड़भंग—वि० [हिं०] दे० 'अड़बंग'। उ०—मुल्कां पो चड़के दुश्मन धाँतल मँचाया देखो अड़भंगे पन से पड़को मुर्दार आया देखो।—दक्खिनी०, पृ० २९६।

अड़भंगी—वि० [हिं०] १. टेढ़ा मेढ़ा। अड़बड़। २. बिकट। कठिन। दुर्गम। ३. विलक्षण।

अडर(५)¹—वि० [सं० अ = नहीं + दर = भय] निडर। निर्भय। बेडर। बेखौफ। उ०—अडर भेष धरि चढ़त जो अंगा।—कबीर सा०, पृ० ३०९।

अडर‡²—संज्ञा पुं० [अं० आर्डर] राजकीय आदेश। राजाज्ञा। सरकारी आदेश।

अड़व—संज्ञा पुं० [सं० औडव, ओडव] वह राग जिसमें षडज, गांधार मध्यम, धैवत और निषाद ये पाँचों स्वर आवें।

अड़वा—संज्ञा पुं० [सं० अड्ड = रोक, बाधा] मनुष्य का आकार जो जानवरों को डराने के लिये खेत में खड़ा किया जाता है। उ०—दरिया ऐसा भेष है जैसा अड़वा खेत। बाहर चेतन की रहन, भीतर जड्ड अचेत।—दरिया० बानी, पृ० ३६।

अडवोकेट—संज्ञा पुं० [अं० ऐडवोकेट] वह वकील जिसे वकालतनामा दाखिल करने की जरूरत नहीं होती। निचले न्यायालयों से उच्च न्यायालय तक वादी या प्रतिवादी के पक्ष में बहस करने का कानूनी अधिकार रखनेवाला व्यक्ति। वकील। अब सब वकील ऐडवोकेट होते हैं।

अड़सठ—वि० [सं० अष्टषष्ठि; प्रा० अट्ठसट्ठि] एक संख्या। साठ और आठ की संख्या। ६८।

अड़सठवाँ—वि० [हिं० अड़सठ + वाँ (प्रत्य०)] जिसका स्थान सड़सठवें के उपरांत हो। क्रम या संख्या में जिसका स्थान अड़सठवाँ हो।

अड़हुल—संज्ञा पुं० [सं० ओण + फुल्ल, हिं० ओणहुल्ल] जपा या जवा पुष्प। देवी फूल। गुड़हर।

विशेष—इसका पेड़ ६-७ फुट तक ऊँचा होता है और पत्तियाँ हरसिंगार से मिलती जुलती होती हैं। फूल इसका बहुत बड़ा और खूब लाल होता है। इसके फूल में महक (गंध) नहीं होती।

अड़ाअड़—संज्ञा पुं० [हिं०] अड़ने की क्रिया या भाव। उ०—धक्कों की धडाधड़ अड़ंग की अड़ाअड़ में ह्वै रहैं कड़ाकड़ सु दंतों की कड़ाकड़ी।—पद्माकर ग्रं०, पृ० ३०७।

अड़ाक—वि० [हिं०] अड़नेवाला। अड़ियल। उ०—साहब सूम, अड़ाक तुरंग, किसान कठोर, दिवान नकारो।—इतिहास, पृ० २०३।

अड़ाकी(५)—वि० [हिं० अड़ाक] अड़नेवाला। उ०—आखेटा मजबूत अड़ाकी जीत किया खल जेर।—रघु० रू०, पृ० ६३।

अड़ाड़¹—संज्ञा पुं० [हिं० आड़] चौपायों के रहने का हाता जो प्रायः बस्ती के बाहर होता है। लकड़ियों का घेरा जिसमें रात को चौपाए हाँक दिए जाते हैं। खरिक।

अड़ाड़²—संज्ञा पुं० [हिं० दे० 'अड़ार'³]।

अड़ाड़³—संज्ञा पुं० [अनु०] टूटने या गिरने की आवाज। उ०—एक ऊँचा टीले का टीला अड़ाड़ करके फट पड़ा।—सैर कु०, पृ० ३८।

अड़ान—संज्ञा पुं० [हिं० अड़ + आन (प्रत्य०)] १. रुकने की जगह। २. पड़ाव। वह स्थान जहाँ पथिक लोग विश्राम लें।

अड़ाना¹—संज्ञा पुं० [हिं० अड़ान] खड़ी या तिरछी लकड़ी जो गिरती हुई छत, दीवार या पेड़ आदि को गिरने से बचाने के लिये लगाई जाती है। डाट। चाँड़। थूनी। ठेवा टेका।

अड़ाना²--संज्ञा पुं० एक राग जो कान्हड़ा का भेद है।

अड़ाना³--क्रि० स० [हिं० अड़ना] १. टिकाना। ठहराना। फँसाना। उलझाना। २. टेकना। डाट लगाना। ३. कोई वस्तु बीच में देकर गति रोकना। जैसे,--पहिए में रोड़ा अड़ा दे।--(शब्द०)। ४. ठूँसना। भरना। जैसे,--'इस बिल में रोड़ा अड़ा दे--(शब्द०। ५. गिरना। ढरकाना।

अड़ानी¹--संज्ञा पुं० [देश०] १. बड़ा पंखा। उ०--बहु छत्र अड़ानी कलम धुज, रालत राजत कनक के।--गिरिधरदास (शब्द०)।

अड़ानी²--संज्ञा स्त्री० [हिं० अड़ाना] १. कुश्ती का एक पेंच। अड़ंगा। दूसरे की टाँग में अपनी टाँग अड़ाकर पटकने का दाँव। २. लकड़ी की रोक जो खिड़की या दरवाजे के पल्लों को रोकने के लिये लगाई जाती है।

अड़ायती--वि० [हिं० आड़ या अड़+आयती (प्रत्य०)] [स्त्री० अड़ायती (ब्रज०)] जो आड़ करे। ओट करनेवाला। अड़ैतो। उ०--क्यों न गड़ि जाहु गाड़ गहिरी गड़ति जिन्हें गोरी गुरुजन लाज निगड़ गड़ायती। ओड़ी न परति री निगोड़िन की ओड़ी दीठि लागे उठि आगे उठि होत है अड़ायती।--देव (शब्द०)।

अड़ार¹--वि० [सं० अराल] १. अड़नेवाला। स्थिर रहनेवाला। उ०--जग डोलै डोला नैनाहाँ। उलटि अड़ार जाहिं पल माहाँ।--जायसी ग्रं० पृ० ४२। २. टेढ़ा। तिरछा।

अड़ार²--संज्ञा पुं० [सं० अट्टाल=बुर्ज, ऊँचा स्थान] १. समूह। राशि। ढेर। उ०--रस रितु अन्न अड़ार जुहायो। क्रम क्रम ते सब जनन बटायो।--विश्राम (शब्द०)। २ ईंधन का ढेर जो बेचने के लिये रखा हो। ३. लकड़ी या ईंधन की दूकान। ४. गायों भैसों के रहने का घेरा या बाड़ा।

अड़ारना(पु)--क्रि० स० [हिं० डालना] डालना। देना। उ०--पीउ सुनत धनि आपु बिसारे। चित्त लखै तनु खाइ अड़ारे।--जायसी (शब्द०)।

अड़ाल--संज्ञा पुं० [सं०] नृत्य का एक भेद। चिड़ियों के पंख की तरह हाथ फटफटाकर एक ही स्थान पर चक्कर काटना। मयूरनृत्य।

अड़ाव--संज्ञा पुं० [हिं० अड़] १. स्तंभ। आधार। २. ऊँचाई। उ०--राजमहलूँ के अड़ाव अरस सेती अड़े।--रघु० रू०, पृ० २३८।

अडिग(पु)--वि० [सं० अ=नहीं+हिं० डिगना] जो हिले डुले नहीं। निश्चल। स्थिर।

अडिग्ग--वि० [हिं०] दे० 'अडिग'। उ०--धीरजवंत अडिग्ग जितेंद्रिय निर्मल ज्ञान गह्यौ दृढ़ आदू।--सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ३८४।

अड़ियल--वि० [हिं० अड़ना+इयल (प्रत्य०)] १. रुकनेवाला। अड़ अड़कर चलनेवाला। चलते चलते रुक जानेवाला। उ०--मधुबन अड़ियल टट्टू की तरह रुक गया।--तितली, पृ० २२९। २. सुस्त। काम में देर लगानेवाला। मट्ठर। ३. जिद्दी। हठी।

अड़िया--संज्ञा स्त्री० [हिं० अड़ना] अड्डे के आकार की एक लकड़ी जिसे टेककर साधु लोग बैठते हैं। साधुओं की कुबड़ी या तकिया।

मुहा०--अड़िया करना=जहाज के लंगर की रस्सी खींचना।

अड़िल्ल--संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अरिल्ल'।

अड़ी¹--संज्ञा स्त्री० [हिं० अड़ना] १. अड़ान। जिद। हठ। आग्रह। २ रोक।

क्रि० प्र०--करना=हिरन की तरह छलाँग मारना।

३. ऐसा अवसर जब कोई काम रुका हो। जरूरत का वक्त। मौका। ४. पासा या चौपड़ के खेल में एक ही घर में दो गोटियों के पहुँचने पर अन्य खेलाड़ियों की चालों का रुकना। उ०--चौरासी घर फिरै अड़ी पौ बारह नावौं।--पलटू०, पृ० ३४।

अड़ी²--वि० अड़नेवाला। टेकी। जिद्दी।

अड़ीखंभ(पु)--वि० [हिं० अड़ी+खंभ] जोरावर। बली।--डिं०।

अडिठ--वि० [सं० अदृष्ट, पा० अदृष्ट, प्रा० अडिट्ठ] १. जो दिखाई न पड़े। लुप्त। २. छिपा हुआ। अंतर्हित। गुपचुप।

अड़ुक--संज्ञा पुं० [सं०] हिरन। मृग (को०)।

अड्डुचल--संज्ञा पुं० [सं०] हलचल का एक भाग (को०)।

अड़ूलना(पु)--क्रि० सं० [देश० अथवा हिं० उँड़ेलना] ढालना। उड़ेलना। डालना। गिराना। उ०--जहाँ आठहू भाँति के कंज फूलैं। मनो नीर आकास तारे अड़ूलैं।--सूदन (शब्द०)।

अड़ूसा--संज्ञा पुं० [सं० अटरूष, प्रा० अठरूस] एक औषधि विशेष।

विशेष--इसका पेड़ ३-४ फुट तक ऊँचा होता है। इसका पत्ता हलके हरे रंग का आम के पत्ते से मिलता जुलता होता है। इसकी प्रत्येक गाँठ पर दो दो पत्ते होते हैं। इसके सफेद रंग के फूल जटा में गुथे हुए निकलते हैं जिनमें थोड़ा सा मीठा रस होता है जो कास, श्वास, क्षय आदि रोगों में दिया जाता है।

अड़ैच--संज्ञा स्त्री० [देश०] शत्रुता। द्वेष। मनमुटाव।

अड़ैता(पु)--वि० [हिं०] दे० 'अड़ायती'।

अड़ैल(पु)--वि० [हिं०] दे० 'अड़ियल'। उ०--ऐल परी गैल मैं मतंग मतवारनि की, भीड़ अड़त अड़ैलनि तुरंगा तरजत हैं।--हम्मीर०, पृ० २४।

अडोर--संज्ञा पुं० [सं० आन्दोल=हलचल] तुमुल शब्द। शोर। गुल। दे० 'अंदोर'। उ०--बाजन बाजे होय अडोरा। आवहिं बहल हस्ति औ घोरा।--जायसी (शब्द०)।

अडोल--वि० [सं० अ=नहीं+हिं० डोलना] १. अटल। जो हिले नहीं। निश्चल। उ०--प्रेम अडोलु डुलै नहीं, मुँह बोलैं अनखाई। चित उनकी मूरति बसी, चितवन माँहि लखाई।--बिहारी र० दो० ६३१। २ स्तब्ध। ठकमारा। उ०--त्यों पदमाकर खालि रही दृग बोलै न बोल अडोल दशा है।--पद्माकर ग्रं०, पृ० १५१। ३ स्थिर। ध्रुव। उ०--मुख बोल कहत अडोल है गज बाजि देत अमोल है।--पद्माकर ग्रं०, पृ० ६।

अड़ोस पड़ोस--संज्ञा पुं० [सं० प्रतिवेस (=पड़ोस) से वि० द्वि० मू०] आसपास। क़रीब।

अड़ोसी पड़ोसी--संज्ञा पुं० [हिं० अड़ोस पड़ोस] आसपास का रहनेवाला। हमसाया।

अड्ड(पु)--वि० [देश० अड्ड=आड़े आनेवाला] बाधा। रोक। आड़। उ०--काल पहुँच्यों सीस पर नाहिन कोऊ अड्ड।--भिखारी ग्रं०, भा० १, पृ० २३३।

अड्डन--संज्ञा पुं० [सं० **अड्डनम्**] ढाल। एक प्रकार का शस्त्र। अट्टन [को०]।

अड्डा--संज्ञा पुं० [सं० **अट्टाल = ऊँची जगह**] १. टिकने की जगह। ठहरने का स्थान। २. मिलने या इकट्ठा होने की जगह। ३. बदमाशों के मिलने या बैठने की जगह। ४ वह स्थान जहाँ सवारी या पालकी उठानेवाले कहार भाड़े पर मिलें। ५. रंडियों के इकट्ठा होने का स्थान या कुटनियों का डेरा जहाँ व्यभिचारिणी स्त्रियाँ इकट्ठी होती हैं। ६. केंद्र। प्रधान स्थान। जैसे--वही तो इन सब बुराइयों का **अड्डा है** (शब्द०)। ७ लकड़ी या लाहे की छड़ जो चिड़ियों के बैठने के लिये पिंजड़े के भीतर आड़ी लगाई जाती है। ८. बुलबुल, तोता आदि चिड़ियों के बैठने के लिये लोहे की एक छड़ जिसका एक सिरा जमीन में गाड़ने के लिये नुकीला होता है और दूसरे सिरे पर एक छोटी आड़ी छड़ लगी रहती है। ९. पचास आठ तह के कपड़े का गद्दा जिसको छीपी चौकी पर बिछाकर उसी के ऊपर कपड़ा रखकर छापते हैं। १०. चौखूटा लकड़ी का ढाँचा जिसपर इजारबंद वगैरह बुने जाते हैं और कारचोबी का काम भी होता है। चौकठा। ११. चार हाथ लंबी, चार अंगुल चौड़ी और चार अंगुल मोटी लकड़ी जिसके किनारे पर बहुत सी खूँटियाँ, जिनपर बादले का ताना ताना जाता है लगी रहती हैं। १२. ऊँचे बाँस पर बँधी हुई एक टट्टी जो कबूतरों के बैठने के लिये होती है। कबूतरों की छतरी। १३. एक लंबा बाँस जो दो बाँसों को गाड़कर उनके सिरों पर आड़ा बाँध दिया जाता है। १४. लाहे या काठ की एक पटरी जो बीचोबीच लगी हुई एक लकड़ी के सहारे पर खड़ी की जाती है। इसी पर रुखानी को टिकाकर खरादनेवाले खरादते हैं। १५ खँड़साल में काम आनेवाली बाँस की टट्टी। १६ एक लकड़ी जो रँहट में इसी अभिप्राय से लगाई जाती है कि वह उलटा न घूम सके। १७. जुलाहे का करघा। उन लकड़ियों का समूह जिनपर जुलाहे सूत चढ़ाकर कपड़ा बुनते हैं। १८. एक लकड़ी जिसपर नेवार बुनकर लपेटी जाती है।

अड्डी--संज्ञा स्त्री० [हिं० **अड्डा**] १. एक बरमा जिससे गड़गड़ा आदि लंबी चीजों में छेद करते हैं। २. जूते का किनारा।

अड्रेस--संज्ञा पुं० [अं० **एड्रेस**] १. अभिनंदनपत्र। वह लेख या प्रार्थनापत्र जो किसी महापुरुष के आगमन के समय उसे संबोधन करके सुनाया जाय। २. पता। ठिकाना। ३. भाषण। वक्तृता।

अढउल--संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अड़हुल'।

अढ़तिया--संज्ञा पुं० [हिं० **आढ़त + इया** (प्रत्य०)] १. वह दुकानदार जो ग्राहकों या दूसरे महाजनों को माल खरीदकर भेजता है और उनका माल मँगाकर बेचता है। इसके बदले में वह कुछ कमीशन या आढ़त पाता है। आढ़त करनेवाला। आढ़त का व्यवसाय करनेवाला। २. दलाल। एजेंट।

अढ़न(पु)--संज्ञा पुं० [देश०] धाक। मर्यादा। उ०--चारिउ बरन चारि आश्रम हूँ मानत श्रुति की अढ़न --देवस्वामी (शब्द०)।

अढर(पु)--वि० [सं० **अ = नहीं + हिं० ढरना**] न ढलनेवाला। उ०--अढर ढुरहि गढ़ रुरहि मेर षरभर सुपर्रहि भर।--पृ० रा०, ५५।८।

अढ़वना(पु)--क्रि० स० [सं० **आ + √ज्ञा = बोध कराना, आज्ञापन**; प्रा० **आणपनं**] आज्ञा देना। कार्य में नियुक्त करना। काम में लगाना। उ०--कैसे बरजों करन को समरनीति की बात। अति साहस के काम को अढ़वत हियो सकात।--उत्तरचरित (शब्द०)।

अढ़वायक(पु)--संज्ञा पुं० [हिं० **अढ़वना**] वह जो दूसरों को काम में लगाता हो। दूसरों से काम लेनेवाला। उ०--पहिलेइ रचे चारि अढ़वायक। भए सब अढ़वैयन के नायक।--जायसी ग्रं०, पृ० ३०६।

अढ़वैया(पु)-- संज्ञा पुं० [हिं० **गढ़ + वा + ऐया** (प्रत्य०)] दे० 'अढ़वायक'। उ०--भे सब अड़वैयन के नायक।--जायसी ग्रं०, पृ० ३०६।

अढ़ाई--वि० [सं० **अर्धतृतीय**; प्रा० **अड्ढाइय**] दो और आधा। ढाई। उ०--मुनि कह उचित कहत रघुराई। गएउ बीति दिन पहर अढ़ाई।--मानस, २।२७७।

अढ़ार(पु †-- वि० [सं० **अ० = नहीं + हिं० ढरना = ढलना**] १. किसी की ओर न ढलने या अनुरक्त होनेवाला। २. कठोर। निर्मोही निर्दय।

अढारटंकी(पु--संज्ञा पुं० [?] धनुष (डिं०)।

अढ़िया--संज्ञा स्त्री० [सं० **आधानिका**, प्रा० **आढाइया > अढ़इया**] १. काठ, पत्थर आदि का बना हुआ छोटा बरतन। २ काठ या लोहे का पात्र जिसमें मजदूरों के लड़के गारा या कपसा उठाकर ले जाते हैं।

अढ़ी(पु--वि० [प्रा० **अड्ढाई**] ढाई। दो और आधे की संख्या। उ०--तिन भूभत निरभै गयौ अढ़ी कोस चहुआन।--पृ० रा०, ६१।२२१६।

अढ़ुक--संज्ञा पुं० [देश०] ठोकर। चोट। उ०--फोरहिं सिल लोढ़ा सदन लागे अढ़ुक पहार। कायर कूर कपूत कलि घर घर सहस डहार।--तुलसी ग्रं०, पृ० १५१।

अढ़ुकना--क्रि० अ० [सं० **आ = अच्छी तरह + टक् = बंधन या रोक** अथवा हिं० **अढुक से नाम०**] १. ठोकर खाना। उ०--अढ़ुकि परहिं फिरि हेरहिं पीछे। राम बियोग बिकल दुख तीछे। --मानस, २।१४३। २. सहारा लेना। टेकना।

अढ़ैया[1]--संज्ञा पुं० [हिं० **अढ़ाई, ढाई**] १. एक तौल जो ढाई सेर की होती है। पंसेरी का आधा। २. ढाई गुने का पहाड़ा।

अढ़ैया[2]--संज्ञा पुं० [हिं० **अढ़वना**] काम करानेवाला। अढ़वैया।

अढ़ौना--संज्ञा पुं० [हिं० **अढ़वना**] करने के लिये कहा गया या दिया हुआ काम। उ०--छोटा सा अढ़ौना भी करेगी तो भुनभुना कर।--गोदान, पृ० ३०।

अणक[1](पु--वि० [सं०] कुत्सित। निंदित। अधम। नीच (डिं०)।

अणक[2]--संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का पक्षी [को०]।

अणकरता[+]--वि० [सं० **अन्**; प्रा० **अण + हिं० करता**] अकर्ता। निष्क्रिय। न करनेवाला। उ०--करता है सो करेगा दादू साखी भूत। कौतिगहारा ह्वै रह्या अणकरता औधूत।--दादू०, पृ० ४५७।

अणकीय--वि० [सं०] कुत्सित, निंदित, नगण्य, अधम आदि से संबंधित [को०]।

अणद(पु) संज्ञा पुं० [सं० आनन्द] आनंद। उल्लास। चित्त की प्रसन्नता (डिं०)।

अणमण(पु)--वि० [अन्यमनस्, प्रा० अण्ण+मण] १. अप्रसन्न। दुःखित। नाराज। २. बीमार। रोगी (डिं०)।

अणरता(पु)--वि० [प्रा० अण+रत्त] जो अनुरक्त न हो। अनासक्त। उ०--अणरता सुख सोवणां रातै नींद न आइ।--कबीर ग्रं०, पृ० ५१।

अणरस(पु)--वि० [प्रा० अण+रस] दे० 'अनरस¹'। उ०--रस कौ अणरस अणरस कौ रस मीठा खारा होइ।--दादू०, पृ० ५५४।

अणव्य--संज्ञा पुं० [सं०] चीना, साँवाँ आदि धान्य उगाने का क्षेत्र [को०]।

अणसंक(पु)--वि० [सं० अन् = नहीं+शंका = डर, प्रा० अण+संक] जो डरे नहीं। निर्भय। निःशंक। निडर (डिं०)।

अणास(पु)--संज्ञा पुं० [हिं० अंडस] अंडस। कठिनाई (डिं०)।

अणि--संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कोर। नोक। नुकीई। २. धार। बाढ़। ३. वह कील जिसे धुरे के दोनों छोरों पर चक्के की नाभि में इसलिये ठोकते हैं जिसमें चक्का धुरी के छोरों पर से बाहर न निकल जाय। धुरकीली। धुरी की कील। ४. सीमा। हद। सिवान। मेंड। ५. किनारा। ६. अत्यंत छोटा। ७. गाड़ी के बम के अगले सिरे पर लगी कीली या बाल्टू।

अणिमांडव्य--संज्ञा पुं० [सं० अणिमाण्डव्य] एक ऋषि का नाम जो एक कील या नोकीला डंडा चुभाए रहते थे जिसके कारण उनका यह नाम लोक में प्रसिद्ध हुआ [को०]।

अणिमा--संज्ञा स्त्री० [सं०] अष्ट सिद्धियों में पहली सिद्धि।

विशेष--इस सिद्धि के द्वारा योगी अणुवत् सूक्ष्म रूप धारण कर लेते हैं और किसी को दिखाई नहीं पड़ते। इसी सिद्धि के द्वारा योगी तथा देवता लोग अगोचर रहते हैं और समीप होने पर भी दिखाई नहीं देते तथा कठिन से कठिन अभेद्य पदार्थ में भी प्रवेश कर जाते हैं।

२. सूक्ष्मता। ३ अणुता या अणु का भाव।

अणिमादिक--संज्ञा स्त्री० [सं०] अष्टसिद्धियाँ--अर्थात् १. अणिमा, २ महिमा, ३. लघिमा, ४. गरिमा, ५. प्राप्ति, ६. प्राकाम्य ७. ईशित्व और ८. वशित्व।

अणियाली(पु)--संज्ञा स्त्री० [सं० अणि = धार+हिं० याली = वाली (प्रत्य०)] कटारी (डिं०)।

अणी¹(पु)--संबो० [देश०] अरी। अनी। ए री। हे री। उ०--डोलती डरानी खतरानी बतरानी बेबे, कुंडियन पेखी अणी माँ गरून पावा हाँ।--सूदन (शब्द०)।

अणी²--संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अणि'।

अणीय--वि० [सं० अणु+ईयस् = अणीयस्] अतिसूक्ष्म। बारीक। झीना।

अणु¹--१ संज्ञा पुं० [सं०] द्वयणुक से सूक्ष्म, परमाणु से बड़ा कण जिसका बिना किसी विशेष यंत्र के खंड नहीं किया जा सकता। २. ६० परमाणुओं का संघात या बना हुआ कण। ३. छोटा टुकड़ा। कण। ४. परमाणु। ५. सूक्ष्म कण। ६. रज। रजकण। ७. संगीत में तीन ताल के काल का चतुर्थांश काल। ८. अत्यंत सूक्ष्म मात्रा। ९. एक मुहूर्त का ५,४६,७५,००० वाँ भाग।

अणु²--वि० १. अतिसूक्ष्म। क्षुद्र। २. अत्यंत छोटा। ३. जो दिखाई न दे या कठिनाई से दिखाई पड़े।

अणुक--वि० [सं०] अणु संबंधी। अतिसूक्ष्म। उ०--अणुक द्वयणुक जड़ जीव आदि जितने हैं, देखा।--अनामिका, पृ० ३८। २. एक प्रकार का छोटे दानोंवाला अन्न (को०)। ३. चतुर (को०)।

अणुतर--वि० [सं०] बहुत बारीक या सूक्ष्म। कोमल [को०]।

अणुता--वि० [सं०] दे० 'अणुक' [को०]।

अणुतैल--संज्ञा पुं० [सं०] एक औषध का तेल [को०]।

अणुत्व--वि० [सं०] अतिसूक्ष्मता। अणु जैसी सूक्ष्मता [को०]।

अणुबम--संज्ञा पुं० [सं० अणु+अं० बॉम्ब] एक विनाशक अस्त्र। दे० 'परमाणु बम'।

अणुभा--संज्ञा स्त्री० [सं०] बिजली। विद्युत्।

अणुभाष्य--संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्मसूत्र पर वल्लभाचार्य द्वारा कृत पुष्टिमार्गीय भाष्य [को०]।

अणुमध्यबीज--संज्ञा पुं० [सं०] एक मंत्र का नाम [को०]।

अणुमात्र--वि० [सं०] अणु के समान छोटे आकारवाला [को०]।

अणुमात्रिक--वि० [सं०] १ दे० 'अणुमात्र'। २. अणु के अंश या मात्रा से युक्त [को०]।

अणुरेणु--संज्ञा पुं० [सं०] आणविक या अणु संबंधी धूल जैसी सूर्य की किरणों में दिखाई पड़ती है [को०]।

अणुरेणुजाल--संज्ञा पुं० [सं०] आणविक धूलिकणों समूह [को०]।

अणुरेवती--संज्ञा स्त्री० [सं०] दंती नामक क्षुप। करोटन का वृक्ष [को०]।

विशेष--इसकी अनेक जातियाँ होती हैं और उनके पत्ते भी भिन्न भिन्न आकार तथा रंग के होते हैं।

अणुवंत--संज्ञा पुं० [सं० अणुवन्त] बाल की भी खाल निकालनेवाला प्रश्न [को०]।

अणुवाद--संज्ञा पुं० [सं०] १. वह दर्शन या सिद्धांत जिसमें जीव या आत्मा अणु माना गया हो। वल्लभाचार्य का मत। २. वह शास्त्र जिसमें पदार्थों के अणु नित्य माने गए हों। वैशेषिक दर्शन।

अणुवादी--संज्ञा पुं० [सं० अणुवादिन्] १ नैयायिक। वैशेषिक शास्त्र का माननेवाला। २. वल्लभाचार्य का अनुयायी वैष्णव।

अणुवीक्षण--संज्ञा पुं० [सं०] जिसके द्वारा सूक्ष्म पदार्थ देखे जाते हैं। सूक्ष्मदर्शक यंत्र। खुर्दबीन। माइक्रोस्कोप। उ०--बिखर गया मानव का मन अणुवीक्षण पथ से।--युगपथ, पृ० १२०। २. बाल की खाल निकालना। छिद्रान्वेषण।

अणुवेदांत--संज्ञा पुं० [सं०] एक ग्रंथ का नाम [को०]।

अणुव्रत--संज्ञा पुं० [सं०] जैन शास्त्रानुसार गृहस्थ धर्म का एक अंग।

विशेष--इसके ५ भेद हैं-(१) प्राणातिपात विरमण, (२) मृषावाद विरमण, (३) अदत्तदान विरमण, (४) मैथुन विरमण और (५) परिग्रह विरमण। पातंजलि योगशास्त्र में इनको 'यम' कहते हैं।

अणुव्रीहि--संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार धान जिसका चावल बहुत बारीक होता है और पकाने से बढ़ जाता है। वह खाने में स्वादिष्ट होता है और महँगा बिकता है मोतीचूर।

अणुह--संज्ञा पुं० [सं०] विभ्राज के एक पुत्र का नाम [को०]।

अणोरणीयान्¹--संज्ञा पुं० [सं०] एक उपनिषद् के उस मंत्र का नाम जिसके आदि में ये शब्द आते हैं। वह मंत्र यह है--अणोरणीयान्महतो महीयानात्मास्य जन्तोर्निहितं गुहायाम्। तमक्रतुः पश्यति वीतशोको धातुः प्रसादान्महिमानमात्मनः।

अणोरणीयान्²--वि० १ सूक्ष्म से सूक्ष्म। अत्यंत सूक्ष्म २. छोटे से छोटा।

अतंक(पु)--संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आतंक'। उ०--संक सौं सिमिटि चित्त अंक से भए हैं सबै, बंक अरि उर पै अतंक इमि छायो है।--रत्नाकर, भा० २, पृ० १४१।

अतंका¹(पु)--वि० [आतङ्कित, प्रा० आतंकिअ] आतंकित। भयभीत। उ०--बाढ़ी सीत संका काँपै कर ह्वै अतंका।--गंग ग्रं०, पृ० २३६।

अतंका²(पु)--संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आतंक'। उ०--सोहै अज ओड़े जे न छोड़े सीम संगर की लंगर लँगूर उच्च ओज के अतंका में।--पद्माकर ग्रं०, पृ० २२४।

अतंत(पु)--वि० [हिं०] दे० 'अत्यंत'। उ०--मन पंछी सो एक है पारब्रह्म को अतंत।--केशव० अमी०, पृ० १३।

अतंत्र--वि० [सं० अ + तन्त्र] १. अनियंत्रित। २. सिद्धांतरहित। ३ तंत्र या तंतु से रहित [को०]।

अतंत्रत्व--संज्ञा भा [सं० अतन्त्रत्व] अर्थराहित्य। अर्थशून्यता।

अतंद्र--वि० [सं० अतन्द्र] १. तंद्रारहित। सजग। २. सतर्क [को०]।

अतंद्रमा(पु)--वि० [सं० अतन्द्रिम] तंद्रारहित। निरालस्य। सजग। उ०--देत छवि को है कोकनद में नदी में कहो नखत बिराजै कौन निसि में अतंद्रमा।--पद्माकर ग्रं०, पृ० ८०।

अतंद्रिक--वि० [सं० अतन्द्रिक] १. आलस्यरहित। निरालस्य। चुस्त। चंचल। उ०--बिखरि जात पखुरी गरूर जनि करि अतंद्रिका। सुकवि दसा सब ह्वै है हरि सिर मोरचंद्रिका।--व्यास (शब्द०)। २. व्याकुल। बिकल। बेचैन।

अतंद्रित--वि० [सं० अतन्द्रित] आलस्यरहित। चपल। निद्रारहित चंचल। उ०--पहुँच नहीं पाया जनमन का नीरव रोदन, हृदय संगीत रहा उच्छ्वसित अतंद्रित।--रजत शि०, पृ० ११४।

अतंद्रिल--वि० [सं० अतन्द्रिल] तंद्राविहीन। अतंद्र [को०]।

अतः--क्रि० वि० [सं०] इस कारण से। इस वजह से। इसलिये। इस वास्ते। इस हेतु। उ०--शुचिते, पहनाकर चीनांशुक, कर सका न तुझे अतः दधिमुख।--अनामिका, पृ० ११०।

अत(पु)--वि० [हिं०] दे० 'अति'। 'सहचरि सरँन' मयंक बदन को मदनमोहिनी अत है।--पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ३९४।

अतऊर्ध्वम्--अव्य० [सं०] इसके आगे या बाद में [को०]।

अतएव--क्रि० वि० [सं०] इसलिये। इस हेतु से। इस वजह से। इसी कारण।

अतक--संज्ञा पुं० [सं०] यात्रा करनेवाला यात्री [को०]।

अतट¹--संज्ञा पुं० [सं०] १. पर्वत का शिखर। चोटी। टीला। २. जमीन का निचला भाग। प्रवल (को०)।

अतट²--वि० तटहीन। खड़ी ढालवाला [को०]।

अतटप्रपात--संज्ञा पुं० [सं०] सीधा गिरनेवाला झरना [को०]।

अतत¹(पु)--वि० [सं० अतथ्य, अथवा अतत्त्व, प्रा० अतत्त] दे० 'अतथ्य'। उ०--चिवंग राव रावर कहै अतत मंत मंत्री कहै।--पृ० रा०, ५६।५०।

अतत²(पु)--वि० [सं० अतत्त्व, प्रा० अतत्त] दे० 'अतत्व'। उ०--अतत निरसन कीजिए तौ द्वैत नहिं ठहराई।--सुंदर० ग्रं०, भा० २, पृ० ८४०।

अतताई(पु)--संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आततायी'। उ०--तपसी रो रूप धरे अतताई अडग कुटो गइ सीत उठाई।--रघु० रू०, पृ० १३५।

अतत्व¹--संज्ञा पुं० [सं० अ + तत्त्व] असार वस्तु [को०]।

अतत्व²--वि० सारहीन। तत्वरहित [को०]।

अतथ्य--वि० [सं०] १. अन्यथा। झूठ। असत्य। अयथार्थ। २. अतद्वत्। असमान।

अतद्गुण--संज्ञा पुं० [सं०] एक अलंकार जिसमें एक वस्तु का किसी ऐसी दूसरी वस्तु के विशिष्ट गुणों को न ग्रहण करना दिखलाया जाय जिसके कि वह अत्यंत निकट हो। जैसे--गंगाजल सित अरु असित जमुना जलहु अन्हात। हंस रहत तब शुभ्रता तैसिय बढ़ि न घटात (शब्द०)।

अतद्वत्--वि० [सं०] जो उसके समान न हो [को०]।

अतद्वान्--वि० [सं०] अतद्वत्। असमान। जो (उसके) सदृश न हो।

अतन(पु)--संज्ञा पुं० [सं० अतनु] कामदेव। अनंग। उ०--धूम धमारिन की मची अंगन अतन उमंग। अरी आज बरसत घनो ब्रजबीथिन रसरंग।--स० सप्तक, पृ० ३६१।

अतनु¹--वि० [सं०] १. शरीररहित। बिना देह का। बिना अंस का। उ०--रति अति दुखित अतनु पति जानी।--मानस १।२४६। २. मोटा। स्थूल।

अतनु²--संज्ञा पुं० अनंग। कामदेव।

अतप--वि० [सं०] १. जो तप्त न हो। ठंढा। शांत। २. दिखावा न करनेवाला। आडंबररहित। बेकार। निठल्ला [को०]।

अतप्त--वि० [सं०] १. जो तपा न हो। ठंढा। २. जो पका न हो।

अतप्ततनु¹--वि० [सं०] रामानुज संप्रदाय के अनुसार जिसने तप्तमुद्रा न धारण की हो। जिसने विष्णु के चार आयुधों के चिह्न अपने शरीर पर गरम धातु से न छपवाए हों। बिना छाप या चिह्न का।

अतप्ततनु²--संज्ञा पुं० बिना छाप का मनुष्य।

अतमा--वि० [सं० अतमस्] अंधकार रहित [को०]।

अतमाविष्ट--वि० [सं० अ + तम + आविष्ट (असाधु प्रयोग)] जो अंधकाराच्छन्न न हो या अंधकार से ढका न हो [को०]।

अतमिस्र--वि० [सं०] जो अंधकार से आच्छन्न न हो [को०]।

अतरंग--संज्ञा पुं० [देश०] लंगर को जमीन से उखाड़कर उठाए रखने की क्रिया।

क्रि० प्र०--करना।

अतर[1]--संज्ञा पुं० [अ० इत्र] निर्यास। पुष्पसार। भभके द्वारा खिंचा हुआ फूलों की सुगंध का सार। उ०--करि फुलेल कौ आचमन मीठौ कहत सराहि। रे गंधी, मतिअंध तूँ अतर दिखावत काहि।--बिहारी र० दो० ८२।

विशेष--ताजे फूलों को पानी के साथ एक बंद देग में आग पर रखते हैं जो नल के द्वारा उस भभके से मिला रहता है जिसमें पहले से चंदन का तेल, जिसे जमीन या मावा कहते हैं, रखा रहता है। फूलों से सुगंधित भाप उठकर उस चंदन के तेल पर टपककर इकट्ठा होती जाती है और तेल (जमीन) ऊपर आ जाता है। इसी तेल को काछकर रख लेते हैं और अतर या इतर कहते हैं। जिस फूल के भाप से यह बनता है उसी का अतर कहलाता है। जैसे--गुलाब का अतर, मोतिया का अतर इत्यादि।

अतर[2]Ⓟ--संज्ञा पुं० [सं० अस्त्र, प्रा० अत्र] दे० 'अस्त्र'। उ०--कनक पाट जनु बइठेउ राजा। सबइ सिंगार अतर लेइ साजा।--पदुमा०, पृ० ४६।

अतरकⓅ--वि० [हिं०] दे० 'अतर्क्य'। उ०--अगम अगोचर अच्छर अतरक निरगुन अंत अनंदा।--रै० बा०, पृ० ४५।

अतरजⓅ†--संज्ञा पुं० [सं० आश्चर्य] दे० 'अचरज'। उ०--आजु की बात कहा कहूँ राजा, अतरज मेरे गात, परसराँम की बानु कुँमरि नें धरचौ एकई हात।--पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ९७१।

अतरदान--संज्ञा पुं० [अ० इत्र+फा० दान (तुल० वै० 'धान')] सोने, चाँदी या गिलट का फूलदान के आकार का एक पात्र जिसमें इतर से तर किया हुआ रुई का फाहा रखा होता है और महफिलों में सत्कारार्थ सबके सामने उपस्थित किया जाता है। उ०--सब राजा बराबर बराबर कुर्सियों पर बैठे हैं, सरोजनी नाचती है, मंत्री ने अतरदान ले रक्खा है।--श्रीनिवास ग्रं०, पृ० १६२।

अतरल--वि० [सं०] जो तरल या पतला न हो। गाढ़ा।

अतरवन--संज्ञा पुं० [सं० अन्तर] १. पत्थर की पटिया जिसे ब्रोड़िए के ऊपर बैठाकर छज्जा पाटते हैं। २. वह खर या मूँज जिसे ठाट पर फैलाकर ऊपर से खपड़ा या फूस छाते हैं।

अतरसों--क्रि० वि० [सं० *इतर+श्वः] १. परसों के आगे का दिन। वर्तमान दिन से आनेवाला तीसरा दिन। उ०--खेलत में होरी रावरे के कर परसों जो भीजी हैं अतर सों सो आइहै अतरसों।--रघुनाथ (शब्द०)। २. गत परसों से पहिले का दिन। वर्तमान से तीसरा व्यतीत दिन।

अतराफ--संज्ञा स्त्री० [अ०] तरफ का बहुवचन। उ०--उस अतराफ में था जिसे तख्तो ताज इताअत करे मलिक देवे खिराज।--दक्खिनी०, पृ० १५६।

अतरिख--संज्ञा पुं० [सं० अंतरिक्ष, प्रा० अंतरिख] दे० 'अंतरिक्ष'।

अतरौटाⓅ†--संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अँतरौटा'। उ०--'दास' उलटीयै बेंनी उलटीयै आँगी उलटोई अतरौटा पहिरे हौ उतलाई में।--भिखारी ग्रं०, पृ० २७३।

अतर्क[1]--वि० [सं०] तर्कहीन। असंगत [को०]।

अतर्क[2]--संज्ञा पुं० तर्कहीन बात करनेवाला [को०]।

अतर्कित--वि० [सं०] १. जिसका पहले से अनुमान न हो। २. आकस्मिक। ३. बे सोचा समझा। जो विचार में न आया हो। जिसपर विचार न किया गया हो।

अतर्क्य--वि० [सं०] जिसपर तर्क वितर्क न हो सके। जिसके विषय में किसी प्रकार की विवेचना न हो सके। अनिर्वचनीय। अचिंत्य। उ०--राम अतर्क्य बुद्धि मन बानी। मत हमार अस सुनहि सयानी।--मानस, १।१२०।

अतर्सⓅ--वि० [सं० अ+त्रास; अथवा हिं० अ+फा० तर्स] निर्भय। निष्ठुर। उ०--यह जम तीन लोक का राजा बाँधे अतर्स होई।--कबीर श०, पृ० १४।

अतल[1]--संज्ञा पुं० [सं०] १. सात पातालों में दूसरा पाताल। २. शिव [को०]।

अतल[2]--वि० तलविहीन। अथाह [को०]।

अतलता[1]--वि० तलरहित। अथाह। उ०--अतल सिंधु में लगा लगा कर जीवन की बेड़ी बाजी।--झरना, पृ० ५१।

अतलता[2]--संज्ञा स्त्री० [सं०] गहराई। उ०--ये किन स्वच्छ अतलताओं की मौन नीलिमाओं में बहते।--अतिमा, पृ० १२।

अतलस--संज्ञा स्त्री० [अ०] एक प्रकार का रेशमी कपड़ा जो बहुत नरम होता है। उ०--अतलस लहँगा जरद रँग सारी। चोलिअन्हि बंद सँवारी री।--सं० दरिया, पृ० १७०।

अतलस्पर्शी--वि० [सं०] अतल को छूनेवाला। अत्यंत गहरा। अथाह। अतलस्पृक्।

अतलस्पृक्--वि० [सं०] अत्यंत गहरा।

अतलांत--वि० [सं० अतल+अंत] जिसके तल का अंत न हो। अत्यंत गहरा। उ०--अतलांत महागंभीर जलधि तजकर अपनी वह नियत अवधि।--लहर, पृ० १२।

अतवानⓅ--वि० [सं० अतिवान्] अधिक। अत्यंत। उ०--सावन बरस मेह अतवानी। भरन परी हौं बिरह झुरानी।--जायसी (शब्द०)।

अतवार--संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अत्तवार'। उ०--दरबार के दिन जो अतवार और मंगल को था, वे नदी के उस पार जाते थे।--हुँमयूँ०, पृ० ५७।

अतस[1]--संज्ञा पुं० [सं०] १ वायु। पवन। २. आत्मा। ३. अतसी के रेशों से बना हुआ वस्त्र। ४. एक प्रकार का अस्त्र। ५. एक क्षुप [को०]।

अतस[2]Ⓟ--वि० [सं० 'अतिशय' का संक्षिप्त रूप] बहुत अधिक। अतिशय। उ०--तौ पण प्रताप मेछा तणो अतस दाप बाधे अकस।--राज० रू०, पृ० २१।

अतसबाजीⓅ--संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'आतिसबाजी'। उ०--छुटत अतसबाजी रंगरंगी।--भारतेंदु ग्रं०, भाग २, पृ० ७०५।

अतसी--संज्ञा स्त्री० [सं०] अलसी। तीसी।

अतहार[1] संज्ञा पुं० [अ० तुह्र का बहुव०] पवित्रता। उ०--मुज कू दर बाबे इज्जत अतहार।--दक्खिनी०, पृ० २१८।

अतहार[2]--वि० [अ० ताहिर का बहुव०] पवित्र [को०]।

अता-- स्त्री० [अ० अता=अनुग्रह] अनुग्रह। दान।

क्रि० प्र०--करना, फरमाना=देना।--होना=दिया जाना। मिलना।

अताबख्श--वि० [अ० अता + फ़ा० बख्श] दान देनेवाले। दाता। उदार [को०]।

अताई¹--वि० [अ०] १. दक्ष। कुशल। प्रवीण। २. धूर्त। चालाक। ३. अर्धशिक्षित अशिक्षित। जो किसी काम को बिना सीखे हुए करे। पंडितंमन्य।

अताई²--संज्ञा पुं० वह गवैया जो बिना नियमपूर्वक सीखे हुए गावे बजावे। उ०--और स्वतंत्र व्यसनशील वा अताई उनसे भी बढ़ जाते हैं।--प्रेमघन०, भाग २, पृ० ३५३।

अताई³--वि० [हिं०] दे० 'आततायी'।

अतान(पु)--संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अथान'। उ०--कुंज गई न विथा गई कुसुमित ताकि अतान। बहुरि दई दूनी भई लगे अतन के बान।--स० सप्तक, पृ० २६४।

अताना--संज्ञा पुं० [?] मालकोस राग की एक रागिनी।

अतानामा--संज्ञा पुं० [अ० अता + फा० नामह] दानपत्र [को०]।

अतापता--संज्ञा पुं० [हिं० पता का अनु० वि० द्वि०] हालचाल। ठौर ठिकाना। उ०--दूसरे दिन खोज करते करते एक स्थान पर अतापता मिला।--सुनीता पृ० ४४।

अतापी(पु)--वि० [सं०] तापरहित। दुःखरहित। शांत।

अताब--संज्ञा पुं० [अ० इताब] गुस्सा। क्रोध। उ०--लाखों लगाव एक चुराना निगाह का। लाखों बनाव एक बिगड़ना अताब का। --शेर०, भा० १, पृ० १२।

अतार--संज्ञा पुं० [अ० अत्तार] दे० 'अत्तार'।

अतालीक--संज्ञा पुं० [अ०] शिक्षक। गुरु। उस्ताद। अध्यापक।

अतित(पु)--वि० [सं० अत्यंत] दे० 'अत्यंत'। उ०--ज्यौं कोउ रूप की रासि अतित कुरूप कहै भ्रम भँचक आन्यो--सुंदर० ग्रं०, भा० २, पृ० ५८१।

अति¹--वि० [सं०] बहुत। अधिक। ज्यादा। उ०--अति डर तें अति लाज तें जो न चहै रति बाम।--पद्माकर ग्रं०, पृ० ८६।

अति²--संज्ञा स्त्री० अधिकता। ज्यादती। सीमा का उल्लंघन या अतिक्रमण। उ०--(क) गंगा जू तिहारो गुनगान करैं अजगैब आनि होति बरखा सु आनँद की अति है।--पद्माकर ग्रं०, पृ० २५८। (ख) उनके ग्रंथ में कल्पना की अति है।--व्यास (शब्द०)।

अतिअंत(पु)--वि० [हिं०] दे० 'अत्यंत'। उ०--लाभ होत अतिअंत किसोरी कृष्न चरन को।--ब्रजनिधि ग्रं०, पृ० ११।

अतिउकुति(पु)--संज्ञा स्त्री० [सं० अति + उक्ति, हिं० उकति] दे० 'अत्युक्ति'। उ०--सुनि अतिउकुति पवनसुत केरी। --मानस, ६।१।

अतिउक्ति--संज्ञा स्त्री० [सं० अति + उक्ति] अत्युक्ति।

अतिकंदक--संज्ञा पुं० [सं०] हस्तिकंद नाम का पौधा [को०]।

अतिकथ--वि० [सं०] १. अविश्वनीय। अतिरंजित। २. अश्रद्धेय। ३. सामाजिक नियमों का उल्लंघन करनेवाला। ४. मृत। नष्ट [को०]।

अतिकथा--संज्ञा स्त्री० [सं०] अतिरंजित कथा। निरर्थक बात [को०]।

अतिकर्षण--संज्ञा वि० [सं०] अत्यधिक परिश्रम [को०]।

अतिकल्प--संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार उतना काल जितने में एक ब्रह्मा की आयु पूरी होती है; अर्थात् ३१ नील, १० खरब, ४० अरब वर्ष। ब्रह्मकल्प। उ०--सत्य संकल्प, अतिकल्प, कल्पांतकृत।--तुलसी ग्रं०, पृ० ४८५।

अतिकांत--वि० [सं० अतिकान्त] अत्यधिक प्रिय [को०]।

अतिकाय¹--[सं०] वि० दीर्घकाय। बहुत लंबा चौड़ा। बड़े डीलडौल का। स्थूल। मोटा।

अतिकाय²--संज्ञा पुं० रावण का एक पुत्र जिसे लक्ष्मण ने मारा था। उ०--भट अतिकाय अकंपन भारी।--मानस, ६।६१।

अतिकाल--संज्ञा पुं० [सं०] १. विलंब। देर। २. कुसमय। ३. काल का अतिक्रमण करनेवाला महाकाल। काल के भी काल। शिव। उ०--काल अतिकाल, कलिकाल, व्यालाद खग, त्रिपुरमर्दन भीम कर्म भारी।--तुलसी ग्रं०, पृ० ४६०।

अतिकिरिट--वि० [सं०] बहुत छोटे दाँतोंवाला [को०]।

अतिकिरीट--वि० [सं०] दे० 'अतिकिरिट' [को०]।

अतिकृच्छ्--संज्ञा पुं० [सं०] १ बहुत कष्ट। २. छह दिन का एक व्रत। विशेष--इस व्रत में पहले दिन एक ग्रास प्रातःकाल, दूसरे दिन एक ग्रास सायंकाल और तीसरे दिन यदि बिना माँगे मिल जाय तो एक ग्रास किसी समय खाकर शेष तीन दिन निराहार रहते हैं।

अतिकृति¹--संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पचीस वर्ण के वृत्तों की संज्ञा। जैसे--सुंदरी सवैया और क्रौंच। २. मर्यादा का अतिक्रम (को०)।

अतिकृति²--वि० जिसे करने में अति या मर्यादा का अतिक्रमण किया गया हो [को०]।

अतिकेशर--संज्ञा पुं० [सं०] कुब्जक नाम का पौधा [को०]।

अतिकोप--वि० [सं०] क्रोधरहित। शांत [को०]।

अतिक्रम--संज्ञा पुं० [सं०] नियम या मर्यादा का उल्लंघन। विपरीत व्यवहार। उ०--देवपाल का क्रोध सीमा का अतिक्रम कर चुका था, उसने खड्ग चला दिया।--आकाश०, पृ० ३६।

अतिक्रमण--संज्ञा पुं० [सं०] १. उल्लंघन। पार करना। हद के बाहर जाना। उ०--बाधाओं का अतिक्रमण कर जो अबाध हो दौड़ चले।--कामायनी, पृ० २०८। २. प्रबल आक्रमण (को०)। ३. जीतना। अधिकार करना (को०)।

क्रि० प्र०--करना।--होना।

अतिक्रांत¹--वि० [सं० अतिक्रांत] १. सीमा का उल्लंघन किए हुए। हद के बाहर गया हुआ। बढ़ा हुआ। २. बीता हुआ। व्यतीत। गया हुआ।

अतिक्रांत²--संज्ञा पुं० बीती हुई बातों या कथन [को०]।

अतिक्रांतनिषेध--वि० [सं० अतिक्रान्तनिषेध] निषेधाज्ञा का उल्लंघन करनेवाला [को०]।

अतिक्रांतभावनीय--संज्ञा पुं० [सं० अतिक्रान्तभावनीय] योग दर्शन के अनुसार चार प्रकार के योगियों में से एक। वैराग्यसंपन्न योगी।

अतिक्रामक--संज्ञा पुं० [सं०] क्रम या नियम का उल्लंघन करनेवाला। उ०--कृतियों में इस कमी के रहते हुए भी अनेक अतिक्रामक गुण हैं।--शुक्ल० अभि० ग्रं०, पृ० १०।

अतिक्रुद्ध¹--वि० [सं०] अत्यंत रुष्ट। अधिक नाराज [को०]।
अतिक्रुद्ध²--संज्ञा पुं० तंत्रोक्त एक मंत्र [को०]।
अतिक्रूर¹--वि० [सं०] अत्यधिक निष्ठुर [को०]।
अतिक्रूर²--संज्ञा पुं० १. एक तंत्रोक्त मंत्र। २. शनि आदि क्रूर ग्रह [को०]।
अतिक्षिप्त¹--वि० [सं०] सीमा के पार या बहुत दूर फेंका हुआ [को०]
अतिक्षिप्त²--संज्ञा पुं० मोच। मुरकन [को०]।
अतिखट्व--वि० [सं०] चारपाई से रहित। बिना खाट के काम चलानेवाला।
अतिगंड¹--वि० [सं० अतिगण्ड] बड़े या फूले गालोंवाला [को०]।
अतिगंड²--संज्ञा पुं० १ बड़ा कपोल या गाल। २ बड़े कपोलवाला व्यक्ति। ३ एक नक्षत्र या तारा। ४. एक योग [को०]।
अतिगंध¹--संज्ञा पुं० [सं० अतिगन्ध] १. चंपा का पेड़ या फूल। २. भूततृण। मुद्गर, बटगोरा आदि (को०)।
अतिगंध²--वि० तीक्ष्ण गंधवाला [को०]।
अतिगंधालु--संज्ञा पुं० [सं० अतिगन्धालु] एक लता का नाम। पुत्रदात्री [को०]।
अतिगंधिका--संज्ञा स्त्री० [सं० अतिगन्धिका] दे० 'अतिगंधालु' [को०]।
अतिगत--वि० [सं०] बहुतायत को पहुँचा हुआ। बहुत। अधिक। ज्यादा। अत्यंत। उ०--अतिगत आतुर मिलन को जैसे जल बिनु मीन।--दादू (शब्द०)।
अतिगति--संज्ञा स्त्री० [सं०] उत्तम गति। मोक्ष। मुक्ति। उ०--जनक कहत सुनि प्रतिगति पाई। तृणावर्त को हौ मुनिराई।--गि० दा० (शब्द०)।
अतिगव--वि० [सं०] १. अत्यंत मूर्ख। २. वर्णन के परे। वर्णनातीत [को०]।
अतिगहन--वि० [सं०] अधिक गहरा। प्रवेश करने में दुष्कर [को०]।
अतिगह्वर--वि० दे० 'अतिगहन' [को०]।
अतिगुण¹--वि० [सं०] १. सद्गुणी। बहुत अच्छे गुणवाला। २. अयोग्य। निकम्मा [को०]।
अतिगुण²--संज्ञा पुं० सद्गुण। बहुत अच्छा गुण [को०]।
अतिगुरु¹--वि० [सं०] अत्यंत भारी। बहुत वजनी [को०]।
अतिगुरु²--संज्ञा पुं० अत्यंत आदरणीय व्यक्ति। पिता माता आदि [को०]।
अतिगुहा--संज्ञा स्त्री० [सं०] पृश्निपर्णी नाम की लता [को०]।
अतिग्रह¹--वि० [सं०] बाधागम्य। दुर्बोध [को०]।
अतिग्रह²--संज्ञा पुं० १. ज्ञानेंद्रियों का विषय। २. उपयुक्त या सही ज्ञान। ३. आगे बढ़ जाना। ४. अधिक ग्रहण करनेवाला व्यक्ति [को०]।
अतिग्राह--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अतिग्रह' [को०]।
अतिग्राह्य¹--वि० [सं०] नियंत्रण में रखने योग्य [को०]।
अतिग्राह्य²--संज्ञा पुं० ज्योतिष्टोम यज्ञ में लगातार तीन बार किया जानेवाला तर्पण [को०]।
अतिघ--संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार का आयुध। २. क्रोध [को०]।
अतिघ्न--वि० [सं०] अधिक विनाश करनेवाला [को०]।
अतिघ्नी--संज्ञा स्त्री० [सं०] ऐसी सुखद निद्रा या विस्मृति जिसमें अतीत की अप्रिय बातें भूल जाएँ [को०]।
अतिचमू--वि० [सं०] सेनाओं का विजेता [को०]।
अतिचर--वि० [सं०] अधिक परिवर्तनशील [को०]।
अतिचरण--संज्ञा पुं० [सं०] अधिक करने का अभ्यास। जितना करना हो उससे अधिक करना [को०]।
अतिचरणा--संज्ञा स्त्री० [सं०] १. स्त्रियों का एक रोग जिसमें कई बार मैथुन करने पर तृप्ति होती है। २. वैद्यक मतानुसार वह योनि जो अत्यंत मैथुन से तृप्त न हो।
अतिचरा--संज्ञा स्त्री० [सं०] स्थलपद्मिनी नाम की लता [को०]।
अतिचार--संज्ञा पुं० [सं०] १. सीमा से आगे बढ जाना। अतिक्रमण करना। उ०--मेरा अतिचार न बंद हुआ उन्मत्त रहा सबको घेरे।--कामायनी, पृ० ७१। २. ग्रहों की शीघ्र चाल।

विशेष--जब कोई ग्रह किसी राशि के भोगकाल को समाप्त किए बिना ही दूसरी राशि में चला जाता है तब उसकी गति को अतिचार कहते हैं।

३. जैनमतानुसार एक विघात; व्यतिक्रम। ४. तमाशबीनी और मर्यादा भंग करने का जुर्म। नाचरंग के समाजों में अधिक संमिलित होने का अपराध।

विशेष--चंद्रगुप्त के समय में जो रसिक और रँगीले बार बार निषेध करने पर भी नाचरंग के समाजों में संमिलित होते थे, उनपर तीन पण जुर्माना होता था। ब्राह्मण को जूठी या अपवित्र वस्तु खिला देने या दूसरे के घर में घुसने पर भी अतिचार दंड होता था।

अतिचारी--वि० [सं० अतिचारिन्] [स्त्री० अतिचारिणी] अतिक्रमण करनेवाला। अतिचार करनेवाला। उ०--अतिचारी मिथ्या मान इसे परलोक वंचना से भर जा।--कामायनी, पृ० १६६।
अतिच्छत्र--संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० अतिच्छत्रा] भूतृण। छत्रक [को०]।
अतिच्छत्रक--संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० अतिच्छत्रिका] दे० 'अतिच्छत्र' [को०]।
अतिच्छादन--संज्ञा पुं० [सं०] सीमा से इस पार आगे बढ़ा हुआ होना कि आसपास की मिलती जुलती चीजें भी उसके क्षेत्र में आ जायँ [को०]।
अतिजगती--संज्ञा स्त्री० [सं०] तेरह वर्णों के वृत्तों की संज्ञा। जैसे--तारक, मंजुभाषिणी, माया आदि।
अतिजन--वि० [सं०] जो आबाद न हो। जनावासरहित [को०]।
अतिजव¹--वि० [सं०] बहुत तेज चलनेवाला। अत्यंत वेगवान्।
अतिजव²--संज्ञा पुं० असाधारण गति। अतिशय वेग [को०]।
अतिजागर¹--संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का बगला। नील बक।
अतिजागर²--वि० १. निरंतर जागते रहनेवाला। २. जागरूक [को०]।
अतिजात--वि० [सं०] पिता से आगे बढ़ा हुआ [को०]।
अतिडीन--संज्ञा पुं० [सं०] (पक्षियों की) असाधारण उड़ान [को०]।

अतितत—वि० १. [सं०] १. अत्यंत दूर फेंकनेवाला। २. अपने को अधिक बड़ा दिखानेवाला। ३. आडंबरी [को०]।

अतितरण—संज्ञा पुं० [सं०] १. पार करना। २. पराभूत या पराजित करना [को०]।

अतितारी—वि० [सं० अतितारिन्] पार कर जानेवाला। विजयी [को०]।

अतितीक्ष्ण¹—वि० [सं०] अत्यंत तेज [को०]।

अतितीक्ष्ण²—संज्ञा पुं० शोभांजन नाम का वृक्ष [को०]।

अतितीव्र¹ संज्ञा पुं० [सं०] संगीत में वह स्वर जो तीव्र से भी कुछ अधिक ऊँचा हो।

अतितीव्र²—वि० अत्यंत तेज [को०]।

अतितीव्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की दूब [को०]।

अतितृण्ण—वि० [सं०] अत्यधिक चोटवाला। जिसे अत्यधिक चोट पहुँची हो [को०]।

अतितृष्ण¹—वि० [सं०] १ अधिक प्यासा। २. अत्यंत लोभी [को०]

अतितृष्णा²—संज्ञा स्त्री० १. तेज प्यास। अत्यधिक लोभ [को०]।

अतित्रस्नु—वि० [सं०] अत्यधिक डरनेवाला [को०]।

अतिथि—संज्ञा पुं० [सं०] १. घर में आया हुआ अज्ञातपूर्व व्यक्ति। वह जिसके आने का समय निश्चित न हो। अभ्यागत। मेहमान। पाहुन। उ०—उस अनोखे अतिथि को आतिथ्य में चुपचाप।—शकुं०, पृ० ८। २. वह संन्यासी जो किसी स्थान पर एक रात से अधिक न ठहरे। व्रात्य। ३. मुनि (जैनसाधु)। ४. अग्नि का एक नाम। ५. अयोध्या के राजा सुहोत्र जो कुश के पुत्र और रामचंद्र के पौत्र थे। ६. यज्ञ में सोमलता को लानेवाला व्यक्ति।

अतिथिक्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] आतिथ्य। अतिथि की आवभगत [को०]।

अतिथिगृह—संज्ञा पुं० [सं०] वह भवन जो केवल अतिथियों के ठहरने के लिये बना हो। अतिथिशाला [को०]।

अतिथिग्व—संज्ञा पुं० [सं०] १. आतिथेय। २. राजा दिवोदास की उपाधि। उ०—राजा दिवोदास अतिथियों का ऐसा स्वागत करता था कि उसे अतिथिग्व की उपाधि दी गई थी।—हिंदु० सभ्यता, पृ० ५६।

अतिथिदेव—वि० [सं०] अतिथि को देवता के समान जानने और माननेवाला [को०]।

अतिथिद्वेष—संज्ञा पुं० [सं०] अतिथि के प्रति घृणा का भाव [को०]।

अतिथिधर्म—संज्ञा पुं० [सं०] आतिथ्य प्राप्त करने का अधिकार [को०]।

अतिथिधर्मी—वि० [सं० अतिथिधर्मिन्] आतिथ्य का अधिकारी [को०]।

अतिथिपति—संज्ञा पुं० [सं०] आतिथेय। मेजबान [को०]।

अतिथिपूजन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अतिथिपूजा'। उ०—अतिथिपूजन भली भाँति हुई (आ) और चलते समय मधुकर के हाथ गरम कर दिए।—श्यामा०, पृ० ७६

अतिथिपूजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] अतिथि का आदर सत्कार। मेहमानदारी। अतिथिसत्कार।

विशेष—यह पंचमहायज्ञों में से एक है और गृहस्थ के किये नित्य कर्तव्य कहा गया है।

अतिथिभवन—संज्ञा पुं० [सं० अतिथि + भवन] दे० 'अतिथिगृह'।

अतिथियज्ञ—संज्ञा पुं० [सं०] अतिथि का आदर सत्कार जो पंचमहायज्ञों में पाँचवाँ है। नृयज्ञ। अतिथिपूजा। मेहमानदारी।

अतिथिशाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अतिथिगृह' [को०]।

अतिथिसंविभाग—संज्ञा पुं० [सं०] जैन शास्त्र के अनुसार चार शिक्षाव्रतों में से एक जिसमें बिना अतिथि को दिए भोजन नहीं करते।

विशेष—इसमें पाँच अतिचार हैं—(१) सचित निक्षेप (२) सचित पीहण (३) कालातिचार (४) परव्यपदेश मत्सर और (५) अन्योपदेश।

अतिथिसत्कार—संज्ञा पुं० [सं०] अभ्यागत अतिथि की आवभगत। मेहमान की खातिरदारी [को०]।

अतिथिसत्क्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अतिथिसत्कार'।

अतिथिसेवा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अतिथिसत्कार'।

अतिदंतुर—वि० [सं०] जिसके दाँत अधिक बड़े हों या मुँह से बाहर निकले हों [को०]।

अतिदर्प¹—वि० [सं०] अतिशय अभिमानी [को०]।

अतिदर्प²—संज्ञा पुं० १ अत्यधिक गर्व या अभिमान। २. एक सर्प [को०]।

अतिदर्शी—वि० [सं० अतिदर्शिन्] अधिक दूरंदेश। अत्यंत दूरदर्शी [को०]।

अतिदाता—संज्ञा पुं० [सं० अतिदातृ] अत्यधिक दान देनेवाला व्यक्ति [को०]।

अतिदान—संज्ञा पुं० [सं०] १. अत्यधिक दान। २. अति उदारता [को०]।

अतिदाह—संज्ञा पुं० [सं०] बहुत अधिक ताप या जलन [को०]।

अतिदिष्ट—वि० [सं०] १. जिसमें या जिसका अतिदेशन हुआ हो। २. जो अवधि, क्षेत्र, सीमा आदि से आगे बढ़ा हुआ हो। ३. प्रभावयुक्त। प्रभावित। ४. आकृष्ट। खिंचा हुआ। ५. किसी अन्य की जगह पर रखा हुआ [को०]।

अतिदीप्य¹—वि० अतिशय प्रकाशमान [को०]।

अतिदीप्य²—संज्ञा पुं० लाल चित्रक का वृक्ष [को०]।

अतिदुःसह—वि० [सं०] जिसको सहना अत्यंत कठिन हो। असह्य [को०]।

अतिदुर्गत—वि० [सं०] जिसकी बहुत बुरी गति हो। अत्यंत दुर्दशाग्रस्त [को०]।

अतिदुर्धर्ष—वि० [सं०] १. जिसका दमन करना बहुत कठिन हो। २. अतिप्रबल। प्रचंड। बहुत उग्र। अत्यधिक उद्दंड [को०]।

अतिदूर—वि० [सं०] देश, काल या संबंध आदि के विचार से बहुत दूरी या अंतर पर [को०]

अतिदेव—संज्ञा पुं० [सं०] श्रेष्ठ या देवता अर्थात् विष्णु, शिव।

अतिदेश—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक स्थान के धर्म या नियम का दूसरे स्थान पर आरोपण। २. वह नियम जो साधारण नियम से

कुछ विशेष स्थानों में काम आवे। वह नियम जो अपने निर्दिष्ट विषय के अतिरिक्त दूसरे विषयों में भी काम आए। ३. विस्तारण (को०)। ४. भिन्न तथा विरोधी विषयों या वस्तुओं में कुछ विशेष तत्वों की होनेवाली समानता या सादृश्य। (को०)

विशेष—यह अतिदेश शास्त्र, कार्य, निमित्त, व्यपदेश और रूपभेद से पाँच प्रकार का कहा गया है। जैमिनि मीमांसासूत्र के सातवें और आठवें अध्याय में इसका विस्तृत विवेचन है।

अतिदेशन—संज्ञा पुं० [सं०] अतिदेश करने की क्रिया या भाव [को०]।

अतिदोष—संज्ञा पुं० [सं०] बहुत बड़ा अवगुण या अपराध [को०]।

अतिद्वय—वि० [सं०] १. दोनों से आगे बढ़ा हुआ। २. अद्वितीय। अतुलनीय [को०]।

अतिधन्वा—संज्ञा पुं० [सं० अतिधन्वन्] १. अद्वितीय धनुर्धर या योद्धा। २. वह व्यक्ति जो मरुस्थल का अतिक्रमण कर गया हो। ३. एक वैदिक आचार्य का नाम [को०]।

अतिधर्म—संज्ञा पुं० [सं०] उत्कृष्ट धर्म [को०]।

अतिधृति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. उन्नीस वर्ण के वृत्तों की संज्ञा। जैसे—शार्दूलविक्रीड़ित। २. उन्नीस की संख्या (को०)।

अतिधेनु—वि० [सं०] अपनी गायों के कारण अत्यंत प्रसिद्ध [को०]।

अतिनाठ—संज्ञा पुं० [सं०] संकीर्ण नामक मिश्रित राग का एक भेद।

अतिनाभ—संज्ञा पुं० [सं०] हिरण्याक्ष दैत्य के नौ पुत्रों में से एक।

अतिनाष्ट्र—वि० [सं०] भय से परे खतरे बाहर से बाहर [को०]।

अतिनिद्र—वि० [सं०] १. अत्यंत निद्रालु। २. बिना निंद का। निद्राहीन [को०]।

अतिनिर्हारी—वि० [सं०] बहुत ही आकर्षक (गंध) [को०]।

अतिनु—वि० [सं०] नौका से पृथ्वी पर उतरा हुआ [को०]।

अतिनौ—वि० [सं०] दे० 'अतिनु' [को०]।

अतिपंचा—संज्ञा स्त्री० [सं० अति + पञ्चा पाँच] वर्ष की वय पूरी करनेवाली लड़की [को०]।

अतिपंथ—संज्ञा पुं० [सं० अतिपन्थ] सन्मार्ग। अच्छी राह। सुपंथ।

अतिपटीक्षेप—संज्ञा पुं० [सं०] नाटक के अंतर्गत पर्दे के उठाने या न उठाने का परित्याग [को०]।

अतिपतन—संज्ञा पुं० [सं०] १. दे० 'अतिपात'। २. सीमा से बाहर उड़ना (को०)। २. गिरना (को०)। ३. अतिक्रमण (को०)। ४. भूल [को०]।

अतिपतित—वि० [सं०] १. अतिक्रांत। २. मर्यादा से च्युत। ३. भूला हुआ [को०]।

अतिपत्ति—संज्ञा पुं० [सं०] १. अतिक्रमण। २. समय का बीत जाना। ३. कार्य को पूर्ण न करना [को०]।

अतिपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] हस्तिकंद वृक्ष [को०]।

अतिपथी—संज्ञा पुं० [सं० अति + पथिन्] सामान्य मार्ग से उत्तम मार्ग। सन्मार्ग [को०]।

अतिपद—वि० [सं०] १. पदरहित। जिसके पैर न हों। २. वर्णवृत के अनुसार अधिक पदवाली। जैसे, अतिपदा गायत्री या जगती [को०]।

अतिपन्न[1]—वि० [सं०] १. अतिक्रांत। २. विस्मृत। ३. बीता हुआ [को०]।

अतिपर[1]—वि० [सं०] शत्रुओं को जीतनेवाला। जिसने अपने शत्रुओं को परास्त किया हो। शत्रुजित।

अतिपर[2]—संज्ञा पुं० भारी शत्रु। बढ़ा चढ़ा प्रतिद्वंद्वी।

अतिपरोक्ष—वि० [सं०] १. दृष्टि से बहुत दूर। अदृश्य। २. जो गुप्त न हो प्रकट [को०]।

अतिपांडुकंबला—संज्ञा स्त्री० [सं० अतिपाण्डुकम्बला] जैन मतानुसार सिद्धशिला के दक्षिण के सिंहासन का नाम जिसपर तीर्थंकर बैठते हैं।

अतिपात—संज्ञा पुं० [सं०] १. अतिक्रम। अव्यवस्था। गड़बड़ी। २. बाधा। विघ्न। हानि। ३. बीतना। व्यतीत होना (काल या समय)। उ०—विद्यार्जन के लिये प्राणपण से अतिपात-अर्ध आयु का किया।—अनामिका, पृ० १६६। ४. उपेक्षा। दुर्व्यवहार। (को०)। ५. विरोध (को०)। ६. लगातार होना या गिरना (को०)। ७. विध्वंस। नाश (को०)।

अतिपातक—संज्ञा पुं० [सं०] धर्मशास्त्र में कहे हुए नौ पातकों में सबसे बड़ा पातक।

विशेष—पुरुष के लिये माता, बेटी और पतोहू के साथ गमन और स्त्री के लिये पुत्र, पिता और दामाद के साथ गमन अतिपातक है।

अतिपातित[1]—वि० [सं०] १. स्थगित। रोका हुआ। २. पूरी तरह से तोड़ा हुआ [को०]।

अतिपातित[2]—संज्ञा पुं० हड्डी का पूरी तरह टूट जाना [को०]।

अतिपाती—वि० [सं० + अतिपातिन्] १. अतिपात करनेवाला। २. गति में आगे बढ़ जानेवाला [को०]।

अतिपात्य—वि० [सं०] कुछ विलंब से करने योग्य। स्थगित कर देने योग्य [को०]।

अतिपाप—वि० [सं० अति + पाप] महापापी। उ०—कौन हैं मुझ सा पतित अतिपाप।—साकेत, पृ० १८१।

अतिपुरुष—संज्ञा पुं० [सं०] महापुरुष। वीर पुरुष [को०]।

अतिपूरुष—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अतिपुरुष' [को०]।

अतिप्रकाश—वि० [सं०] १. प्रसिद्ध प्राप्त। अत्यंत प्रसिद्ध। २. बुरे कार्यों के लिये मशहूर। कुख्यात [को०]।

अतिप्रकृत—वि० [सं०] प्रकृत या सामान्य रूप से अधिक बढ़ा हुआ [को०]।

अतिप्रबंध—संज्ञा पुं० [सं० अतिप्रबन्ध] अविच्छिन्नता। निरंतरता [को०]।

अतिप्रभंजनवात—संज्ञा पुं० [सं० अतिप्रभञ्जनवात] अत्यंत प्रचंड और तीव्र वायु जिसकी गति एक घंटे में ४० या ५० कोस होती है।

अतिप्रमाण—वि० [सं०] १. प्रमाण से परे। जो प्रमाण का अतिक्रमण कर गया हो। २. बहुत अधिक प्रमाणयुक्त [को०]।

अतिप्रवृद्ध—वि० [सं०] अत्यधिक अहंकारी। २. बहुत अधिक बढ़ा हुआ [को०]।

अतिप्रश्न--[पुं० सं०] अमर्यादित प्रश्न। उपर्युक्त उत्तर प्राप्त होने पर भी किया गया प्रश्न। अनावश्यक प्रश्न [को०]।

अतिप्रसंग--संज्ञा पुं० [सं० अतिप्रसङ्ग] १. अत्यधिक आसक्ति २. बहुत ही घनिष्ठ संबंध। ३. धृष्टता। ढिठाई। अशिष्टता। ४. किसी नियम की अतिव्याप्ति। ५. प्रचुरता। आधिक्य। विस्तार [को०]।

अतिप्रसक्ति--संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अतिप्रसंग' [को०]।

अतिप्राण--संज्ञा पुं० [सं०] असामान्य जीवन। असाधारण व्यक्तित्व [को०]।

अतिप्रौढ़ा--संज्ञा स्त्री० [सं०] विवाह करने योग्य लड़की। युवावस्था प्राप्त कन्या [को०]।

अतिबरवै--संज्ञा पुं० [सं० अति + हिं० बरवै] बरवै छंद का एक भेद।

विशेष--इसके पहले और तीसरे चरणों में बारह तथा दूसरे और चौथे चरणों में नौ मात्राएँ होती हैं। इसके विषम पदों के आदि में जगण न आना चाहिए और सम पदों के अंत का वर्ण लघु होना चाहिए।

अतिबरसण(पु)--संज्ञा पुं० [सं० अतिवर्षण] मेघमाला। घटा (डिं०)।

अतिबल¹--वि० [सं०] प्रबल। प्रचंड। बली। उ०--नारी अतिबल होत है, अपने कुल को नास।--गिरधर (शब्द०)।

अतिबल²--संज्ञा पुं० [सं०] १. अत्यधिक शक्ति। २. शक्तिसंपन्न सेना [को०]।

अतिबला--संज्ञा स्त्री० [सं०] १. प्राचीन युद्धविद्या।

विशेष--इस विद्या के सीखने से श्रम और ज्वर की बाधा का भय नहीं रहता था और पराक्रम बढ़ता था। विश्वामित्र ने इसे रामचंद्र को सिखाया था।

२. एक ओषधि। कँगही या ककही नामक पौधा।

अतिबात--संज्ञा पुं० [सं० अतिवात] तेज हवा। तूफान। उ०--अतिमा रुदहिं पविपात नभ अतिबात वह डोलति मही।--मानस ६।१००।

अतिबालक¹--वि० [सं०] बालकों जैसा। बच्चों जैसा। बाल्य [को०]।

अतिबालक²--संज्ञा पुं० छोटी वय का बालक। शिशु [को०]।

अतिबाला--संज्ञा स्त्री० [सं०] दो वर्ष की गाय (को०)।

अतिबाहु¹--वि० [सं०] १. असाधारण बाहोंवाला। आजानुबाहु [को०]।

अतिबाहु²--संज्ञा + पुं० १. चौदहवें मन्वंतर के एक ऋषि का नाम। २. एक गंधर्व का नाम [को०]।

अतिब्रह्मचर्य¹--वि० [सं०] ब्रह्मचर्य व्रत का अतिक्रमण करनेवाला। ब्रह्मचर्य व्रत को तोड़नेवाला [को०]।

अतिब्रह्मचर्य²--संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्मचर्य व्रत का अत्यधिक पालन [को०]।

अतिभर--संज्ञा पुं० [सं०] १. बहुत अधिक बोझ। उ०--मति डिग परै दवै सब ब्रज जन भयो है हाथ पै अतिभर।--नंद० ग्रं०, पृ० ३६२। २. दे० 'अतिभार' [को०]।

अतिभव--संज्ञा पुं० [सं०] आगे बढ़ जाना। पराजित करना। विजय करना [को०]।

अतिभार--संज्ञा पुं० [सं०] १. अत्यधिक बोझ। २. गति। चाल। ३. वाक्य की अस्पष्टता [को०]।

अतिभारग¹--वि० [सं०] अधिक मात्रा में बोझ ढोनेवाल [को०]।

अतिभारग²--[सं०] खच्चर [को०]।

अतिभारारोपण--संज्ञा पुं० [सं०] जैन शास्त्र के अनुसार पशुओं पर अधिक बोझ लादने का अत्याचार।

अतिभारिक--वि० [सं०] बहुत भारी [को०]।

अतिभी--संज्ञा स्त्री० [सं०] इंद्र के वज्र की ज्वाला। विद्युत की चमक [को०]।

अतिभू¹--वि० [सं०] सबको पार कर जानेवाला [को०]।

अतिभू²--संज्ञा पुं० [सं०] १. विष्णु का एक नाम। २. दे० 'अतिभव' [को०]।

अतिभूमि--संज्ञा स्त्री० [सं०] १. अधिकता। २. श्रेष्ठता। ३. मर्यादा का अतिक्रमण। ४. अधिक विस्तृत भूमि [को०]।

अतिभोग--संज्ञा स्त्री० [सं०] १. उपयुक्त या नियत समय के अतिरिक्त भी किसी वस्तु अथवा विषय का उपभोग। २. स्वत्व की भाँति किसी संपत्ति का बहुत दिनों तक उपयोग [को०]।

अतिभोजन--संज्ञा पुं० [सं०] आवश्यकता से अधिक खाना। पेटूपन [को०]।

अतिमंगल्य¹--वि० [सं० अतिमङ्गल्य] अत्यधिक शुभ [को०]।

अतिमंगल्य²--संज्ञा पुं० विल्व वृक्ष [को०]।

अतिमत--संज्ञा पुं० [सं०] सर्वमान्य समझा जानेवाला विचार या सिद्धांत [को०]।

अतिमति¹--वि० [सं०] अत्यधिक घमंडी। अहंकारी। उ०--जौ अतिमति चाहसि सुगति तौ तुलसी करु प्रेम।--स० सप्तक, पृ० २०।

अतिमति²--संज्ञा स्त्री० १. अहंकार। अत्यधिक गर्व। २. हठ [को०]।

अतिमध्यंदिन--संज्ञा पुं० [सं० अतिमध्यन्दिन] प्रखर मध्याह्न। खड़ी दुपहरी [को०]।

अतिमर्त्य--वि० [सं०] १. इस लोक से परे। अलौकिक। २. मानवीय शक्ति से परे। अमानुषिक [को०]।

अतिमर्श--संज्ञा पुं० [सं०] अत्यधिक संपर्क। अत्यंत निकट का संबंध [को०]।

अतिमांस--वि० [सं०] अत्यधिक मांसवाला। [को०]।

अतिमा--संज्ञा स्त्री० [सं० अतिमान] अपरिमेय वह मनःस्थिति जो आज के भौतिक, मानसिक, सांस्कृति परिवेश को अतिक्रम कर चेतना की नवीन क्षमता से अनुप्राणित हो। उ०--यह अतिमा, तन से जा बाहर, जगजीवन की रज लिपटाकर।--अतिमा, पृ० ४४।

अतिमात्र--वि० [सं०] अतिशय। बहुत। ज्यादा। मात्रा से अधिक।

अतिमान¹--वि० [सं०] अपरिमेय। अति विस्तृत [को०]।

अतिमान²--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अतिमति' [को०]।

अतिमानव—संज्ञा पुं० [सं०] अलौकिक शक्ति तथा गुणों से संपन्न मनुष्य [को०] ।

अतिमानवी—वि० [सं० अतिमानव+ई (प्रत्य०)] मानव से संबंध न रखनेवाली । अलौकिक । देवी । उ०—उनकी अत्यंत हार्दिक नम्रता अतिमानवी थी ।—हिंदु० सभ्यता, पृ० २५६ ।

अतिमानुष[1]—वि० [सं०] मनुष्य की शक्ति से बाहर । अमानुषी । दैवी ।

अतिमानुष[2]—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अतिमानव' [को०] ।

अतिमाय—वि० [सं०] जो मायावी न हो । माया से रहित । वीतराग मायातिक्रांत [को०] ।

अतिमित[1]—वि० [सं०] अपरिमित । अतुल । बेअंदाज । बहुत अधिक । बेहिसाब । बेठिकाना ।

अतिमित[2]—वि० [सं०] जो तिमित या गीला न हो [को०] ।

अतिमित्र—संज्ञा पुं० [सं०] अत्यंत घनिष्ठ मित्र । २. अत्यधिक शुभ ग्रह [को०] ।

अतिर्भिमिर—वि० [सं०] तेजी से पलकें गिरानेवाला [को०] ।

अतिमुक्त[1]—वि० [सं०] १. जिसकी मुक्ति हो गई हो । निर्वाणप्राप्त । २. निःसंग । विषयवासनारहित । वीतराग ।

अतिमुक्त[2]—संज्ञा पुं० १. माधवी लता । २. तिनुना । तिरिच्छ । ३. मरुग्रा का पौधा ।

अतिमुक्तक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अतिमुक्त[2]' [को०] ।

अतिमुक्ति—संज्ञा पुं० [सं०] परम निर्वाण । मोक्ष [को०] ।

अतिमुशल—संज्ञा पुं० [सं०] किसी नक्षत्र में मंगल अस्त हो और उसके सत्रहवें या अठारहवें नक्षत्र से अनुवक्र हो तो उस वक्र को अतिमुशल कहते हैं ।

विशेष—फलित ज्योतिष के अनुसार इससे चोर और शस्त्र का भय तथा अनावृष्टि होती है ।

अतिमूत्र—संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में आत्रेय मत के अनुसार छह प्रकार के प्रमेहों में से एक । बहुमूत्र ।

विशेष—इसमें अधिक मूत्र उतरता है और रोगी क्षीण होता जाता है । इसे बहुमूत्र भी कहते हैं ।

अतिमैथुन—संज्ञा पुं० [सं०] अत्यधिक संभोग [को०] ।

अतिमृत्यु—संज्ञा पुं० [सं०] मोक्ष । मुक्ति ।

अतिमोदा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सुगंध की बहुत अधिक मात्रा । २. नवमल्लिका । नेवारी । मोगरी ।

अतियव—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का जौ [को०] ।

अतियात—वि० [सं०] बहुत तेज चलनेवाला । तीव्र गतिवाला [को०] ।

अतियोग—संज्ञा पुं० [सं०] १. अधिकता । अतिशयता । २. किसी मिश्रित औषधि में किसी द्रव्य की नियत मात्रा से अधिक मिलावट ।

अतिरंजन—संज्ञा पुं० [सं० अतिरंजन] दे० 'अतिरंजना' ।

अतिरंजना—संज्ञा स्त्री० [सं० अतिरंजना] अत्युक्ति । बढ़ा चढ़ाकर कहने की रीति ।

अतिरंजित—वि० [सं० अतिरञ्जित] १. अतिरंजना से युक्त । अत्युक्तिपूर्ण । उ०—वह अतिरंजित सी तूलिका चितेरी सी फिर भी कुछ कम थी ।—लहर, पृ० ७१ । २. अत्यंत रागमय । उ०—देखा मनु ने वह अतिरंजित विजन विश्व का नव एकांत ।—कामायनी, पृ० १४ ।

अतिरक्त—वि० [सं०] १. बहुत अधिक लाल । २. अत्यधिक अनुरक्त [को०] ।

अतिरक्ता—संज्ञा स्त्री० [सं०] अग्नि की एक जीभ का नाम । अग्नि की सात जीभों में से एक । [को०] ।

अतिरथ—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अतिरथी' [को०] ।

अतिरथि(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अतिरथिन्] दे० 'अतिरथी' । उ०—अमरन करि जु न जीते जाहीं । भीषमादि अतिरथि जिनि माहीं ।—नंद ग्रं०, पृ० २१६ ।

अतिरथी—संज्ञा पुं० [सं० अतिरथिन्] रथ पर चढ़कर लड़नेवाला योद्धा । वह जो अकेले रथियों से लड़ सके । उ०—अतिरथी महारथी सरब कालानल चारा ।—राम० धर्म० पृ० १४७ ।

अतिरभस—संज्ञा पुं० [सं०] असामान्य गति । अत्यधिक शीघ्रता [को०] ।

अतिरसा—संज्ञा स्त्री० [सं०] विभिन्न प्रकार के पौधों के नाम जैसे, मूर्क, रास्ना और क्लीतनक [को०] ।

अतिराग—संज्ञा पुं० [सं०] प्रबल उत्सुकता [को०] ।

अतिरात्र—संज्ञा पुं० [पुं०] १. ज्योतिष्टोम नामक यज्ञ का एक गौण अंग । २. वह मंत्र जो अतिरात्र यज्ञ के अंत में गाया जाय ३. चाक्षुष मनु के एक पुत्र का नाम । ४. मध्य रात्रि ।

अतिराष्ट्र—संज्ञा पुं० [सं०] पुराण के अनुसार एक नाग या सर्प ।

अतिरिक्त[1]—क्रि० वि० [सं०] सिवाय । अलावा । जैसे—इसे हमारे अतिरिक्त कोई नहीं जानता (शब्द०) ।

अतिरिक्त[2]—वि० १. अधिक । ज्यादा । बढ़ती । शेष । बचा हुआ । जैसे खाने पहनने से अतिरिक्त धन को अच्छे काम में लगाओ (शब्द०) । २. न्यारा । अलग । जुदा । भिन्न । जैसे,—जो सब में पूर्णपुरुष और जीव से अतिरिक्त है वही जगत् का बनानेवाला है (शब्द०) ।

अतिरिक्तकंबला—संज्ञा स्त्री० [सं०] जैन मत के अनुसार सिद्धशिला के उत्तर का सिंहासन जिसपर तीर्थंकर बैठते हैं ।

अतिरिक्तपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] वह विज्ञपान, समाचार या सूचना आदि जो अलग से छापकर किसी समाचार पत्र के साथ बाँटा जाय । विशेष पत्र । क्रोड़पत्र ।

अतिरिक्तलाभ—संज्ञा पुं० [सं० अतिरिक्त+लाभ] वह लाभ जो नियत या उचित मात्रा से अधिक हो ।

अतिरुचिर—वि० [सं०] अत्यधिक प्रिय [को०] ।

अतिरुचिरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] अतिजगती और चूड़िलिका नामक दो वृत्त [को०] ।

अतिरूक्ष[1]—वि० [सं०] १. बहुत रूखा । २. क्रूर । ३. प्रेमहीन । ४. अत्यधिक स्नेही [को०] ।

अतिरूक्ष[2]—संज्ञा पुं० एक प्रकार का अन्न [को०] ।

अतिरूप१—वि० [सं०] १. आकृतिहीन, जैसे वायु। २. परम रूपवान। अत्यंत सुंदर। ३. रूप से परे, जैसे ईश्वर [को०]।

अतिरूप२—संज्ञा पुं० अद्वितीय सौंदर्य [को०]।

अतिरेक—संज्ञा पुं० [सं०] १. आवश्यकता से अधिक होने का भाव, गुण या स्थिति। २. आधिक्य। अतिशयता। उ०—प्राणों में विस्मृति है उर में सुख श्री का अतिरेक। ३. भेद। अंतर (को०)।

अतिरोग—संज्ञा पुं० [सं०] राजयक्ष्मा। क्षयी रोग।

अतिरोमश१—वि० [सं०] बहुत अधिक बालोंवाला [को०]।

अतिरोमश२—वि० १. एक प्रकार का जंगली बकरा। २. एक तरह का बड़ा बंदर [को०]।

अतिरोहण—संज्ञा पुं० [सं०] जीवन। जिंदगी।

अतिलंघन—संज्ञा पुं० [सं० अतिलङ्घन] १. दीर्घ काल तक का उपवास। २. अतिक्रमण। उल्लंघन [को०]।

अतिलंघी—वि० [सं० अतिलङ्घिन्] भूल करनेवाला (को०)।

अतिलोमश—वि०, संज्ञा पुं० [संज्ञा] दे० 'अतिरोमश' [को०]।

अतिलोमशा—संज्ञा स्त्री० [सं०] नीलबुहना, शंखवेल नाम का पौधा [को०]।

अतिलौल्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. उत्कट इच्छा। अतिलोभ। अतिचांचल्य। २. जैन सिद्धांत के अनुसार भोग के समय अधिक आसक्ति। उ०—भोगोपभोग व्रत के भी पाँच अतिचार हैं—अनुप्रेक्षा, अनुस्मृति, अतिलौल्य, अतितृष्णा और अनुभव। —हिंदु० सभ्यता, पृ० २३१।

अतिवंत(पु)—वि० [सं० अत्यंत, प्रा० अतिअंत, अतिवंत] दे० 'अत्यंत'। उ०—फिरि वेषिय रवन्न मुषं। अतिवंत दुषी दुष मानी सुषं।—पृ० रा०, ६१।२०६५।

अतिवक्ता—वि० [सं० अतिवक्तृ] बहुत अधिक बोलनेवाला। बकवादी [को०]।

अतिवक्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] देवल के मत से बुध ग्रह की चार गतियों में से एक।

विशेष—इसका एक राशि पर वर्तमान काल २४ दिन का होता है और यह धन का नाश करनेवाली मानी जाती है।

अतिवय—वि० [सं० अतिवयस्] १. अतिशय वृद्ध २. पुरानी वय का। ३. कई वर्षों आगे का [को०]।

अतिवर्तन—संज्ञा पुं० [सं०] १. क्षमा करने योग्य अपराध। २. दंड से छुटकारा। ३. अधिक आगे बढ़ जाने की क्रिया या भाव। ४. किसी वस्तु का बहुत अधिक मात्रा में होनेवाला उपयोग या व्यवहार [को०]।

अतिवर्ती—वि० [सं० अतिवर्तिन्] १. अतिक्रमण करनेवाला। २. सबसे आगे बढ़ जानेवाला। ३. क्षम्य अपराध के दोषवाला [को०]।

अतिवर्तुल१—वि० [सं०] अत्यधिक गोल [को०]।

अतिवर्तुल२—संज्ञा पुं० एक प्रकार का अन्न। कलाय [को०]।

अतिवात—संज्ञा पुं० [सं०] अधिक वेगपूर्ण वायु। प्रचंड आँधी [को०]।

अतिवाद—संज्ञा पुं० [सं०] १. खरी बात। सच्ची बात। २. परुष वचन ३. बढ़ी चढ़ी बात। डींग। ४. औचित्य या मर्यादा का अतिक्रमण कर जाने का सिद्धांत। उ०—छोड़कर जीवन के अतिवाद मध्य पथ से लो सुगति सुधार।—लहर, पृ० १३।

अतिवादिक—वि० [सं०] अतिवाद संबंधी [को०]।

अतिवादी—वि० [सं० अतिवादिन्] १. सत्यवक्ता। खरी बात कहनेवाला। २. कटुवादी। ३. बढ़ बढ़कर बात करनेवाला। डींग मारनेवाला। ४. पर पक्ष का खंडन कर अपने मत को स्थापित करनेवाला (को०)।

अतिवास—संज्ञा पुं० [सं०] श्राद्ध के एक दिन पूर्व किया जानेवाला उपवास [को०]।

अतिवाह—संज्ञा पुं० [सं०] १. सूक्ष्म शरीर का अन्य शरीर में प्रवेश करना। २. परलोकवास। ३. आवश्यकता से अधिक पानी को बाहर निकालनेवाली नाली [को०]।

अतिवाहक—संज्ञा पुं० [सं०] सूक्ष्म शरीर को अन्य देह के अंतर्गत प्रवेश कराने में सहायक देवता। [को०]।

अतिवाहन—संज्ञा पुं० [सं०] १. बिताना। गुजारना। २. बहुत अधिक बोझ ढोना। ३. भेजना। [को०]।

अतिवाहिक—संज्ञा पुं० [सं०] १. लिंग शरीर। २. पाताल निवासी।

अतिवाहित१—वि० बिताया हुआ [को०]।

अतिवाहित२—संज्ञा पुं० दे० 'अतिवाहिक' [को०]।

अतिविकट१—वि० [सं०] अतिशय भीषण [को०]।

अतिविकट२—संज्ञा पुं० दुष्ट हाथी [को०]।

अतिविपिन—वि० [सं०] १. घने जंगलोंवाला। २. प्रवेश में कठिन या दुर्गम [को०]।

अतिविश्रब्ध नवोढा—संज्ञा स्त्री० [सं०] रसमंजरी के अनुसार वह मध्या नायिका जिसे पति पर अतिशय प्रेम हो।

विशेष—यह नायिका धैर्ययुक्त, अपराधी नायक के प्रति व्यंग्य और अधीर अपराधी नायक के प्रति कटु वचन का व्यवहार करती है।

अतिविष१—वि० [सं०] अत्यधिक विषवाला। बहुत अधिक जहरीला। विषैला (साँप) (को०)।

अतिविष२—संज्ञा स्त्री० दे० 'अतिविषा'।

अतिविषा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक जहरीली औषधि। अतीस।

अतिविस्तार—संज्ञा पुं० [सं०] बहुत अधिक विस्तार। व्याप्ति [को०]।

अतिविवृंत—वि० [सं०] दृढ़। पुष्ट। मजबूत।

अतिवृत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. आगे बढ़ जाना। २. अतिक्रमण। ३. अतिरंजना। ४. वेग से निकलना (रक्त)

अतिवृद्ध१—वि० [सं०] [वि० स्त्री० अतिवृद्धा] १. बहुत अधिक बूढ़ा २. अधिक वय का [को०]।

अतिवृद्ध२—संज्ञा पुं० तंत्र में प्रयुक्त एक मंत्र [को०]।

अतिवृद्धा—संज्ञा स्त्री० [सं०] घास चबाने तक में असमर्थ अत्यधिक बूढ़ी गाय [को०]।

अतिवृष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] ६ ईतियों में से एक। पानी का बहुत बरसना जिससे खेती को हानि पहुँचे। अत्यंत वर्षा। उ०—अनावृष्टि अतिवृष्टि होति नहिं यह जानत सब कोई।—सू०, १०।४१६१।

अतिवेगित—वि० [सं०] १. तेजी से चलाया हुआ। २. तीव्र गति से चलनेवाला [को०]।

अतिवेध—संज्ञा पुं० [सं०] १. अधिक निकट का संबंध। २. दशमी और एकादशी का योग [को०]

अतिवेल—वि० [सं०] १. अत्यंत। असीम। बेहद। २. मर्यादा का उल्लंघन करनेवाला (को०)। ३. उद्वेलित (को०)।

अतिवेला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. विलंब। देर। २. अनुपयुक्त समय [को०]।

अतिव्यथन—संज्ञा पुं० [सं०] तीव्र यातना अत्यधिक पीड़ा [को०]।

अतिव्यथा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अतिव्यथन'।

अतिव्यय कर्म—संज्ञा पुं० [सं०] फजूलखर्ची का काम।

अतिव्याप्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] न्याय में एक लक्षण का एक दोष। किसी लक्षण या कथन के अंतर्गत लक्ष्य के अतिरिक्त अन्य वस्तु के आ जाने का दोष।

विशेष—जहाँ लक्षण या लिंग लक्ष्य या लिंगी के सिवाय अन्य पदार्थों पर भी घट सके वहाँ 'अतिव्याप्ति' दोष होता है। जैसे—'चौपाए सब पिंडज हैं', इस कथन में मगर और घड़ियाल आदि चार पैरवाले अंडज भी आ जाते है। अतः इसमें अतिव्याप्ति दोष है।

अतिशक्करी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १५ वर्ण के वृत्तों की संज्ञा। इसके संपूर्ण भेद ३२७६८ हो सकते हैं। उ०—पंद्रह अतिशक्करी सहस बत्तीस सात सै अठसठि कीय।—भिखारी० ग्रं० भा०१, पृ० २३६।

अतिशय[१]—वि० [सं०] बहुत। ज्यादा। अत्यंत।

अतिशय[२]—संज्ञा पुं० प्राचीन शास्त्रकारों के अनुसार। एक अलंकार।

विशेष—इसमें किसी वस्तु की उत्तरोत्तर संभावना या असंभावना दिखलाई जाती है जैसे—'ह्वै न, होय तो थिर नहीं; थिर तो बिन फलवान। सत्पुरुषन को कोप है, खल की प्रीति सभान; (शब्द०)। कोई कोई इस अलंकार को अधिक अलंकार के अंतर्भुक्त मानते हैं।

अतिशयता—संज्ञा स्त्री० [सं० अतिशयता] आधिक्य। प्राचुर्य। बहुतायत। उ०—स्वर्गिक सुख की सी आभास अतिशयता में अचिर महान्।—पल्लव, पृ० ३२।

अतिशयन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अतिशयता'।

अतिशयनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] चित्रलेखा नामक एक छंद [को०]

अतिशयालु—वि० [सं०] अति की ओर वा आगे बढ़ जाने की चेष्टा करनेवाला [को०]।

अतिशयित—वि० [सं०] १. अत्यधिक। २. आगे बढ़ा हुआ [को०]।

अतिशय—वि० [सं० अतिशयिन्] १. प्रधान। श्रेष्ठ। २. बहुत अधिक [को०]।

अतिशयोक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. किसी बात को बढ़ा चढ़ाकर कहना। २, एक अलंकार।

विशेष—इसमें उपमान से उपमेय का निगरण लोकसीमा का उल्लंघन प्रधान रूप दिखाया जाता है। जैसे—'गोपिन के अँसुवान के नीर पनारे भए पुनि ह्वै गए नारे। नारे भए नदियाँ बढ़िकै, नदियाँ नद ह्वै गईं काटि किनारे। बेगि चलो तो चलो ब्रज में कवि तोख कहै ब्रजराज हमारे। वे नद चाहत सिंधु भए अरु सिंधु ते ह्वै हैं हलाहल सारे' (शब्द०)। इसके पाँच मुख्य भेद माने गए हैं; यथा—(१) रूपकातिशयोक्ति (२) भेदकातिशयोक्ति, (३) संबंधातिशयोक्ति (४) असंबंधातिशयोक्ति और (५) पंचम भेद के अंतर्गत अक्रमातिशयोक्ति, चपलातिशयोक्ति तथा अत्यतातिशयोक्ति हैं।

अतिशयोपमा—संज्ञा स्त्री० [सं०] उपमा अलंकार का भेद।

विशेष—इसमें यह दिखाया जाता है कि कोई वस्तु सदा अपने विषय में एक है, दूसरी वस्तु से उसकी उपमा नहीं दी जा सकती। जैसे—'केसोदास प्रगट प्रकास सों अकास पुनि, ईस हू के सीस रजनीस अवरेखिऐ। थल थल जल जल अचल अमल अति, कोमल कमल बहु बरन बिसेखिऐ। मुकुर कठोर बहु नाहिनै अचल जस बसुधा सुधा हू तिय अधरन लेखिऐ। एकरस एकरूप जाकी गीता सीता सुनि, तेरो सो बदन तैसो तोही बिषै देखिऐ।—केशव ग्रं०, भा० १, पृ० १६२।

अतिशस्त्र—वि० [सं०] शस्त्र से भी तेज या बढ़ा हुआ [को०]।

अतिशायन—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रधानता। श्रेष्ठता। २. आधिक्य। ३. आगे बढ़ जाना [को०]।

अतिशायी—वि० [सं० अतिशायिन्] १. प्रधान। श्रेष्ठ। २. अत्यधिक। आगे बढ़ जानेवाला [को०]।

अतिशायनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का वृत्त [को०]।

अतिशीत—संज्ञा पुं० [सं०] ठंढ का अतिक्रमण। भयंकर जाड़ा [को०]।

अतिशीलन—संज्ञा पुं० [सं०] अभ्यास। मश्क। बारंबार मनन या संपादन।

अतिशूद्र—संज्ञा पुं० [सं०] वह शूद्र जिसके हाथ का जल उच्चवर्ण के लोग न ग्रहण करें। अंत्यज।

अतिशेष—संज्ञा पुं० [सं०] बहुत थोड़ा बचा हुआ अंश [को०]।

अतिश्रुत—वि० [सं० अति + श्रुत] अतिप्रसिद्ध। विख्यात। उ०—माधव ब्रह्मचारी ने ज्योंही वह अतिश्रुत नाम सुना वह अचकचाकर अंबपाली की ओर ताकता रह गया।—वैं० न०, पृ० २५५।

अतिश्रेष्ठ—वि० [सं०] सर्वोत्कृष्ट। सबसे उत्तम [को०]।

अतिश्व—वि० [सं० अतिश्वन्] कुत्तों से तेज दौड़नेवाला सूअर। उ०—जो सूकर अपनी द्रुतगति से कुत्तों को बहुत पीछे छोड़ देते थे वे अतिश्व पदवी के अधिकारी होते थे।—सपू० अभि० ग्रं०, पृ० २४८।

अतिसंध—संज्ञा पुं० [सं०] प्रतिज्ञा या आज्ञा का भंग करना। विधि या आदेशविरुद्ध आचरण।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

अतिसंधान—संज्ञा पुं० [स० अतिसन्धान] १. अतिक्रमण। २. विश्वासघात। धोखा।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

अतिसंधि—संज्ञा स्त्री० [सं० अतिसन्धि] १. सामर्थ्य से अधिक सहायता देने की शर्त। २. एक मित्र की सहायता से दूसरे मित्र या सहायक की प्राप्ति [को०]।

अतिसंधित—वि०[सं० **अतिसन्धित**] १. अतिक्रांत। २. धोखा खाया हुआ। जिसके साथ विश्वासघात किया गया हो [को०]।

अतिसंध्या—संज्ञा स्त्री० [सं० **अतिसन्ध्या**] सूर्योदय के कुछ पूर्व और सूर्यास्त के कुछ बाद का समय [को०]।

अतिस(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अतसी'। उ०—साँवरी स्याम मूरति सुबर अतिस पुहुप समान बर।—पृ० रा०, २।३४७।

अतिसक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] अत्यधिक अनुरक्ति। विशेष आशक्ति [को०]

अतिसय(पु)—वि० [सं० **अतिशय**] दे० 'अतिशय'। उ०—रहे मोलवी साहब जहाँ के अतिशय सज्जन।—प्रेमघन, पृ० २०।

अतिसर[1]—वि० [सं०] अतिक्रमण करनेवाला। सबसे आगे बढ़ जानेवाला। नेता [को०]।

अतिसर[2]—संज्ञा पुं० प्रयास। चेष्टा। प्रयत्न [को०]।

अतिसर्ग[1]—संज्ञा पुं० [सं०] अभिलाषा पूर्ण करना। देना। २. इच्छानुसार काम करने की आज्ञा देना। ३. पृथक् करना [को०]।

अतिसर्ग[2]—वि० १. स्थायी। नित्य। २. मुक्त [को०]।

अतिसर्जन—संज्ञा पुं० [सं०] १. अधिक दान। दान। २. उदारता। त्याग (को०)। ३. धोखा। वंचना (को०)। ४. पार्थक्य। बिलगाव (को०)। ५. बध (को०)।

अतिसर्पण—संज्ञा पुं० [सं०] १. तीव्र गति। बहुत तेज चलना। २. गर्भाशय में बच्चे का इधर उधर हिलना डुलना [को०]।

अतिसर्व[1]—वि० [सं०] दे० 'अतिश्रेष्ठ' [को०]।

अतिसर्व[2]—संज्ञा पुं० ईश्वर [को०]।

अतिसांतपन कृच्छ्र—संज्ञा पुं० [सं० **अतिसान्तपनकृच्छ्र**] प्रायश्चित के निमित्त एक व्रत।

विशेष—इसमें दो दिन गोमूत्र, दो दिन गोबर, दो दिन दूध, दो दिन दही, दो दिन घी और दो दिन कुशा का जल पीकर तीन दिन तक उपवास करने का विधान है।

अतिसांवत्सर—वि० [सं०] एक वर्ष से अधिक का [को०]।

अतिसामान्य[1]—संज्ञा पुं० [सं०] जो बात वक्ता के अभिप्रेत अर्थ का अतिक्रमण या उल्लंघन करे।

विशेष—न्याय के अनुसार यह ऐसे स्थलों पर प्रयुक्त होता है, जैसे—किसी ने कहा कि 'ब्राह्मणत्व विद्याचरण संपत्'। पर विद्याचरण संपत्ति कहीं ब्राह्मण में मिलती है और कहीं नहीं। इस प्रकार यह वाक्य वक्ता के अभिप्रेत अर्थ का उल्लंघन करनेवाला है; अतः अतिसामान्य।

अतिसामान्य[2]—वि० अत्यंत साधारण। मामूली। सहज।

अतिसाम्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] मधुयष्टि नामक पौधा [को०]।

अतिसार—संज्ञा पुं० [सं०] अधिक दस्त होने का एक रोग।

विशेष—इसमें मल बढ़कर उदराग्नि को मंद करके शरीर के रसों को लेता हुआ बार बार निकलता है। इसमें आमाशय की भीतरी झिल्लियों में शोथ हो जाने के कारण लाया हुआ पदार्थ नहीं ठहरता और अँतड़ियों में से पतले दस्त के रूप में निकल जाता है। यह भारी, चिकनी, रूखी, गर्म पतली चीजों के खाने से, एक भोजन के पचे बिना फिर भोजन करने से, **बिष से, भय और शोक से, अत्यंत मद्यपान से तथा कृमिदोष** से उत्पन्न होता है। वैद्यक के अनुसार इसके छह भेद हैं—(१) वायुजन्य, (२) पित्तजन्य (३) कफजन्य (४) संनिपातजन्य, (५) शोकजन्य और (६) आमजन्य।

मुहा०—**अतिसार होकर निकलना**=दस्त के रास्ते निकलना। किसी न किसी प्रकार नष्ट होना। जैसे—'हमारा जो कुछ तुमने खाया है वह अतिसार होकर निकलेगा' (शब्द०)।

अतिसारकी—वि० [सं० **अतिसारकिन्**] अतिसार से पीड़ित। अतिसार का रोगी [को०]।

अतिसारी—वि० [सं० **अतिसारिन्**] दे० 'अतिसारकी' [को०]।

अतिसी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० **अतसी**] तीसी। अलसी। उ०—अतिसी कुसुम तन, दीरघ चंचल नैन, मानौ रिस भरि के लरति जुग भखियाँ।—सूर०, १०।१३८५।

अतिसृष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] उत्कृष्ट रचना [को०]।

अतिसै(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अतिशय'। उ०—कह्यौ हरि कैं भय रवि ससि फिरैं। वायु वेग अतिसै नहिं करैं।—सूर० ३।१३।

अतिसौरभ[1]—वि० [सं०] अत्यधिक सुगंधित [को०]।

अतिसौरभ[2]—संज्ञा पुं० १. अत्यधिक सुगंध। २. आम [को०]।

अतिसौहित्य—संज्ञा पुं० [सं०] अधिक मात्रा में भोजन करना [को०]।

अतिस्थूल[1]—वि० [सं०] १. बहुत मोटा। २. मोटीबुद्धिवाला। मूर्ख।

अतिस्थूल[2]—संज्ञा पुं० मेद रोग का एक भेद जिसमें चरबी के बढ़ने से शरीर अत्यंत मोटा हो जाता है।

अतिस्पर्श[1]—वि० [सं०] १. कंजूस। २. नीच प्रवृत्ति का अनुदार [को०]।

अतिस्पर्श[2]—संज्ञा पुं० [सं०] व्याकरण में उच्चारण करते समय जीभ और तालु का अत्यल्प स्पर्श [को०]।

अतिस्वप्न—संज्ञा पुं० [सं०] १. बहुत अधिक स्वप्न देखना। २. अत्यधिक निद्रा [को०]।

अतिहत—वि० [सं०] १. पूर्णतया नष्ट किया हुआ। २. अचल। स्थिर [को०]।

अतिहसित—संज्ञा पुं० [सं०] हास के छह भेदों में से एक जिसमें हँसनेवाला ताली पीटे, बीच बीच में अस्पष्ट वचन बोले, उसका शरीर काँपे और उसकी आँखों से आँसू निकल पड़े।

अतींद्रिय[1]—वि० [सं० **अतीन्द्रिय**] जो इंद्रियज्ञान के बाहर हो। जिसका अनुभव इंद्रियों द्वारा न हो। अगोचर। अप्रत्यक्ष। अव्यक्त। उ०—एक अतींद्रिय स्वप्नलोक का मधुर रहस्य उलझता था।—कामायनी, पृ० ३५।

अतींद्रिय[2]—संज्ञा पुं० १. आत्मा। २. प्रकृति। ३. मन [को०]।

अती—वि० [सं०] दे० 'अति'। [को०]।

अतीचार—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अतिचार' [को०]।

अतीत[1]—वि० [सं०] १. गत। व्यतीत। बीता हुआ। गुजरा हुआ। भूत। उ०—चिंता करत हूँ मैं जितनी उस अतीत की, उस सुख की।—कामायनी, पृ० ६। २. निर्लेप। असंग। विरक्त। पृथक्। जुदा। अलग। न्यारा। उ०—धनि धनि साँई तू बड़ा, तेरी अनुपम रीत। सकल भुवनपति साइयाँ ह्वै केर है अतीत। —कबीर (शब्द०)। ३. मृत। मरा हुआ।

अतिवेगित—वि० [सं०] १. तेजी से चलाया हुआ। २. तीव्र गति से चलनेवाला [को०]।

अतिवेध—संज्ञा पुं० [सं०] १. अधिक निकट का संबंध। २. दशमी और एकादशी का योग [को०]

अतिवेल—वि० [सं०] १. अत्यंत। असीम। बेहद। २. मर्यादा का उल्लंघन करनेवाला (को०)। ३. उद्वेलित (को०)।

अतिवेला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. विलंब। देर। २. अनुपयुक्त समय [को०]।

अतिव्यथन—संज्ञा पुं० [सं०] तीव्र यातना अत्यधिक पीड़ा [को०]।

अतिव्यथा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अतिव्यथन'।

अतिव्यय कर्म—संज्ञा पुं० [सं०] फजूलखर्ची का काम।

अतिव्याप्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] न्याय में एक लक्षण का एक दोष। किसी लक्षण या कथन के अंतर्गत लक्ष्य के अतिरिक्त अन्य वस्तु के आ जाने का दोष।

विशेष—जहाँ लक्षण या लिंग लक्ष्य या लिंगी के सिवाय अन्य पदार्थों पर भी घट सके वहाँ 'अतिव्याप्ति' दोष होता है। जैसे—'चौपाए सब पिंडज हैं', इस कथन में मगर और घड़ियाल आदि चार पैरवाले अंडज भी आ जाते है। अतः इसमें अतिव्याप्ति दोष है।

अतिशक्करी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १५ वर्ण के वृत्तों की संज्ञा। इसके संपूर्ण भेद ३२७६८ हो सकते हैं। उ०—पंद्रह अतिशक्करी सहस बत्तीस सात सैं अठसठि कीय।—भिखारी० ग्रं० भा०१, पृ० २३६।

अतिशय[1]—वि० [सं०] बहुत। ज्यादा। अत्यंत।

अतिशय[2]—संज्ञा पुं० प्राचीन शास्त्रकारों के अनुसार। एक अलंकार।

विशेष—इसमें किसी वस्तु की उत्तरोत्तर संभावना या असंभावना दिखलाई जाती है जैसे—'ह्वै न, होय तो थिर नहीं, थिर तो विन फलवान। सत्पुरुषन को कोप है, खल की प्रीति समान; (शब्द०)। कोई कोई इस अलंकार को अधिक अलंकार के अंतर्भुक्त मानते हैं।

अतिशयता—संज्ञा स्त्री० [सं० अतिशयता] आधिक्य। प्राचुर्य। बहुतायत। उ०—स्वर्गिक सुख की सी आभास अतिशयता में अचिर महान्।—पल्लव, पृ० ३२।

अतिशयन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अतिशयता'।

अतिशयनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] चित्रलेखा नामक एक छंद [को०]

अतिशयालु—वि० [सं०] अति की ओर वा आगे बढ़ जाने की चेष्टा करनेवाला [को०]।

अतिशयित—वि० [सं०] १. अत्यधिक। २. आगे बढ़ा हुआ [को०]।

अतिशय—वि० [सं० अतिशयिन्] १. प्रधान। श्रेष्ठ। २. बहुत अधिक [को०]।

अतिशयोक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. किसी बात को बढ़ा चढ़ाकर कहना। २, एक अलंकार।

विशेष—इसमें उपमान से उपमेय का निगरण लोकसीमा का उल्लंघन प्रधान रूप दिखाया जाता है। जैसे—'गोपिन के अँसुवान के नीर पनारे भए पुनि ह्वै गए नारे। नारे भए नदियाँ बढ़िकै, नदियाँ नद ह्वै गईं काटि किनारे। बेगि चलो तो चलो ब्रज में कवि तोख कहै ब्रजराज हमारे। वे नद चाहत सिंधु भए अरु सिंधु ते ह्वै हैं हलाहल सारे' (शब्द०)। इसके पाँच मुख्य भेद माने गए हैं; यथा—(१) रूपकातिशयोक्ति (२) भेदकातिशयोक्ति, (३) संबंधातिशयोक्ति (४) असंबंधातिशयोक्ति और (५) पंचम भेद के अंतर्गत अक्रमातिशयोक्ति, चपलातिशयोक्ति तथा अत्यंतातिशयोक्ति हैं।

अतिशयोपमा—संज्ञा स्त्री० [सं०] उपमा अलंकार का भेद।

विशेष—इसमें यह दिखाया जाता है कि कोई वस्तु सदा अपने विषय में एक है, दूसरी वस्तु से उसकी उपमा नहीं दी जा सकती। जैसे—'केसोदास प्रगट प्रकास सों अकास पुनि, ईस हू के सीस रजनीस अवरेखिऐ। थल थल जल जल अचल अमल अति, कोमल कमल बहु बरन बिसेखिऐ। मुकुर कठोर बहु नाहिनै अचल जस बसुधा सुधा हू तिय अधरन लेखिऐ। एकरस एकरूप जाकी गीता सीता सुनि, तेरो सो वदन तैंवो तोही विषै देखिऐ।—केशव ग्रं०, भा० १, पृ० १६२।

अतिशस्त्र—वि० [सं०] शस्त्र से भी तेज या बढ़ा हुआ [को०]।

अतिशायन—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रधानता। श्रेष्ठता। २. आधिक्य। ३. आगे बढ़ जाना [को०]।

अतिशायी—वि० [सं० अतिशायिन्] १. प्रधान। श्रेष्ठ। २. अत्यधिक। आगे बढ़ जानेवाला [को०]।

अतिशायनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का वृत्त [को०]।

अतिशीत—संज्ञा पुं० [सं०] ठंढ का अतिक्रमण। भयंकर जाड़ा [को०]।

अतिशीलन—संज्ञा पुं० [सं०] अभ्यास। मश्क। बारंबार मनन या संपादन।

अतिशूद्र—संज्ञा पुं० [सं०] वह शूद्र जिसके हाथ का जल उच्चवर्ण के लोग न ग्रहण करें। अंत्यज।

अतिशेष—संज्ञा पुं० [सं०] बहुत थोड़ा बचा हुआ अंश [को०]।

अतिश्रुत—वि० [सं० अति+श्रुत] अतिप्रसिद्ध। विख्यात। उ०—माधव ब्रह्मचारी ने ज्योंही वह अतिश्रुत नाम सुना वह अचकचाकर अंबपाली की ओर ताकता रह गया।—वैं० न०, पृ० २५५।

अतिश्रेष्ठ—वि० [सं०] सर्वोत्कृष्ट। सबसे उत्तम [को०]।

अतिश्व—वि० [सं० अतिश्वन्] कुत्तों से तेज दौड़नेवाला सूअर। उ०—जो सूकर अपनी द्रुतगति से कुत्तों को बहुत पीछे छोड़ देते थे वे अतिश्व पदवी के अधिकारी होते थे।—सपू० अभि० ग्रं०, पृ० २४८।

अतिसंध—संज्ञा पुं० [सं०] प्रतिज्ञा या आज्ञा का भंग करना। विधि या आदेशविरुद्ध आचरण।

क्रि० प्र०—**करना।—होना।**

अतिसंधान—संज्ञा पुं० [सं० अतिसन्धान] १. अतिक्रमण। २. विश्वासघात। धोखा।

क्रि० प्र०—**करना।—होना।**

अतिसंधि—संज्ञा स्त्री० [सं० अतिसन्धि] १. सामर्थ्य से अधिक सहायता देने की शर्त। २. एक मित्र की सहायता से दूसरे मित्र या सहायक की प्राप्ति [को०]।

अतिसंधित—वि० [सं० अतिसन्धित] १. अतिक्रांत। २. धोखा खाया हुआ। जिसके साथ विश्वासघात किया गया हो [को०]।

अतिसंध्या—संज्ञा स्त्री० [सं० अतिसन्ध्या] सूर्योदय के कुछ पूर्व और सूर्यास्त के कुछ बाद का समय [को०]।

अतिस(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अतसी'। उ०—साँवरी स्याम मूरति सुबर अतिस पुहुप संमान बर।—पृ० रा०, २।३४७।

अतिसक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] अत्यधिक अनुरक्ति। विशेष आशक्ति [को०]

अतिसय(पु)—वि० [सं० अतिशय] दे० 'अतिशय'। उ०—रहे मोलवी साहब जहाँ के अतिशय सज्जन।—प्रेमघन, पृ० २०३।

अतिसर१—वि० [सं०] अतिक्रमण करनेवाला। सबसे आगे बढ़ जानेवाला। नेता [को०]।

अतिसर२—संज्ञा पुं० प्रयास। चेष्टा। प्रयत्न [को०]।

अतिसर्ग१—संज्ञा पुं० [सं०] अभिलाषा पूर्ण करना। देना। २. इच्छानुसार काम करने की आज्ञा देना। ३. पृथक् करना [को०]।

अतिसर्ग२—वि० १. स्थायी। नित्य। २. मुक्त [को०]।

अतिसर्जन—संज्ञा पुं० [सं०] १. अधिक दान। दान। २. उदारता। त्याग (को०)। ३. धोखा। वंचना (को०)। ४. पार्थक्य। बिलगाव (को०)। ५. बध (को०)।

अतिसर्पण—संज्ञा पुं० [सं०] १. तीव्र गति। बहुत तेज चलना। २. गर्भाशय में बच्चे का इधर उधर हिलना डुलना [को०]।

अतिसर्व१—वि० [सं०] दे० 'अतिश्रेष्ठ' [को०]।

अतिसर्व२—संज्ञा पुं० ईश्वर [को०]।

अतिसांतपन कृच्छ्र—संज्ञा पुं० [सं० अतिसान्तपनकृच्छ्र] प्रायश्चित के निमित्त एक व्रत।

विशेष—इसमें दो दिन गोमूत्र, दो दिन गोबर, दो दिन दूध, दो दिन दही, दो दिन घी और दो दिन कुशा का जल पीकर तीन दिन तक उपवास करने का विधान है।

अतिसांवत्सर—वि० [सं०] एक वर्ष से अधिक का [को०]।

अतिसामान्य१—संज्ञा पुं० [सं०] जो वात वक्ता के अभिप्रेत अर्थ का अतिक्रमण या उल्लंघन करे।

विशेष—न्याय के अनुसार यह ऐसे स्थलों पर प्रयुक्त होता है, जैसे—किसी ने कहा कि 'ब्राह्मणत्व विद्याचरण संपत्'। पर विद्याचरण संपत्ति कहीं ब्राह्मण में मिलती है और कहीं नहीं। इस प्रकार यह वाक्य वक्ता के अभिप्रेत अर्थ का उल्लंघन करनेवाला है; अतः अतिसामान्य।

अतिसामान्य२—वि० अत्यंत साधारण। मामूली। सहज।

अतिसाम्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] मधुयष्टि नामक पौधा [को०]।

अतिसार—संज्ञा पुं० [सं०] अधिक दस्त होने का एक रोग।

विशेष—इसमें मल बढ़कर उदराग्नि को मंद करके शरीर के रसों को लेता हुआ बार बार निकलता है। इसमें आमाशय की भीतरी झिल्लियों में शोथ हो जाने के कारण लाया हुआ पदार्थ नहीं ठहरता और अँतड़ियों में से पतले दस्त के रूप में निकल जाता है। यह भारी, चिकनी, रूखी, गर्म पतली चीजों के खाने से, एक भोजन के पचे बिना फिर भोजन करने से, बिष से, भय और शोक से, अत्यंत मद्यपान से तथा कृमिदोष से उत्पन्न होता है। वैद्यक के अनुसार इसके छह भेद हैं—(१) वायुजन्य, (२) पित्तजन्य (३) कफजन्य (४) संनिपातजन्य, (५) शोकजन्य और (६) आमजन्य।

मुहा०—**अतिसार होकर निकलना** = दस्त के रास्ते निकलना। किसी न किसी प्रकार नष्ट होना। जैसे—'हमारा जो कुछ तुमने खाया है वह अतिसार होकर निकलेगा' (शब्द०)।

अतिसारकी—वि० [सं० अतिसारकिन्] अतिसार से पीड़ित। अतिसार का रोगी [को०]।

अतिसारी—वि० [सं० अतिसारिन्] दे० 'अतिसारकी' [को०]।

अतिसी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० अतसी] तीसी। अलसी। उ०—अतिसी कुसुम तन, दीरघ चंचल नैन, मानौ रिस भरि के लरति जुग झखियाँ।—सूर०, १०।१३८५।

अतिसृष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] उत्कृष्ट रचना [को०]।

अतिसै(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अतिशय'। उ०—कह्यौ हरि कैं भय रबि ससि फिरैं। वायु बेग अतिसै नहिं करै।—सूर० ३।१३।

अतिसौरभ१—वि० [सं०] अत्यधिक सुगंधित [को०]।

अतिसौरभ२—संज्ञा पुं० १. अत्यधिक सुगंध। २. आम [को०]।

अतिसौहित्य—संज्ञा पुं० [सं०] अधिक मात्रा में भोजन करना [को०]।

अतिस्थूल१—वि० [सं०] १. बहुत मोटा। २. मोटीबुद्धिवाला। मूर्ख।

अतिस्थूल२—संज्ञा पुं० मेद रोग का एक भेद जिसमें चरबी के बढ़ने से शरीर अत्यंत मोटा हो जाता है।

अतिस्पर्श१—वि० [सं०] १. कंजूस। २. नीच प्रवृत्ति का अनुदार [को०]।

अतिस्पर्श२—संज्ञा पुं० [सं०] व्याकरण में उच्चारण करते समय जीभ और तालु का अत्यल्प स्पर्श [को०]।

अतिस्वप्न—संज्ञा पुं० [सं०] १. बहुत अधिक स्वप्न देखना। २. अत्यधिक निद्रा [को०]।

अतिहत—वि० [सं०] १. पूर्णतया नष्ट किया हुआ। २. अचल। स्थिर [को०]।

अतिहसित—संज्ञा पुं० [सं०] हास के छह भेदों में से एक जिसमें हँसनेवाला ताली पीटे, बीच बीच में अस्पष्ट वचन बोले, उसका शरीर काँपे और उसकी आँखों से आँसू निकल पड़े।

अतींद्रिय१—वि० [सं० अतीन्द्रिय] जो इंद्रियज्ञान के बाहर हो। जिसका अनुभव इंद्रियों द्वारा न हो। अगोचर। अप्रत्यक्ष। अव्यक्त। उ०—एक अतींद्रिय स्वप्नलोक का मधुर रहस्य उलझता था।—कामायनी, पृ० ३५।

अतींद्रिय२—संज्ञा पुं० १. आत्मा। २. प्रकृति। ३. मन [को०]।

अती—वि० [सं०] दे० 'अति'। [को०]।

अतीचार—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अतिचार' [को०]।

अतीत१—वि० [सं०] १. गत। व्यतीत। बीता हुआ। गुजरा हुआ। भूत। उ०—चिंता करत हूँ मैं जितनी उस अतीत की, उस सुख की।—कामायनी, पृ० ६। २. निर्लेप। असंग। विरक्त। पृथक्। जुदा। अलग। न्यारा। उ०—धनि धनि साँई तू बड़ा, तेरी अनुपम रीत। सकल भुवनपति साइयाँ ह्वै केर है अतीत। —कबीर (शब्द०)। ३. मृत। मरा हुआ।

अतीत[2]—क्रि० वि० परे। बाहर। उ०—गुन अतीत अविगत अविनासी सो ब्रज में खेलत सुखरासी।—सूर (शब्द०)।

अतीत(पु)[3]—संज्ञा पुं० वीतराग संन्यासी। यति। विरक्त साधु। उ०—(क) अजर धान्य अतीत का, गृही करै जु अहार। निश्चय होय दरिद्री, कहै कबीर विचार। कबीर (शब्द०)। (ख अति सीतल अति ही अमल, सकल कामना हीन, तुलसी ताहि अतीत गनि, वृत्ति सांति लयलीन।—तुलसी ग्रं० पृ० १४।

अतीत(पु)[4]—संज्ञा पुं० [सं० अतिथि] १. अभ्यागत। अतिथि पाहुन। मेहमान। उ०—आरत दुखी सीत भयभीता। आयो ऐसो गेह अतीता।—सबल (शब्द०)। २. संगीत में वह स्थान जो सम से दो मात्राओं के उपरांत आता है। यह स्थान कभी कभी सम का काम देता है। उ०—सुर स्नुति तान बँधान अमित अति सप्त अतीत अनागत आवत।—सूर०,१।१२६६। ३. तबले के किसी बोल या टुकड़े की सम से आधी या एक मात्रा के पहले समाप्ति।

अतीतना[1](पु)—क्रि० अ० [सं० अतीत] बीतना। गुजरना। गत होना। उ०—रोग-वियोग-सोक-सम-संकुल बड़ि बय बृथहि अतीति।—तुलसी ग्रं०, पृ० ५७४।

अतीतना[2](पु)—क्रि० स० बिताना। व्यतीत करना। विगत करना। छोड़ना। त्यागना। उ०—कृच्छ्र उपवास सब इंद्रियन जीतहीं। पुत्र सिख लीन, तन जौ लगि अतीतहीं।—केशव (शब्द०)।

अतीति—संज्ञा स्त्री० [सं० अतीत] आधिक्य। प्राचुर्य। उ०—राजन की नीति गई पंच प्रतीति गई, अब तौ अतीति सों अनीत होन लागी है।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ४३२।

अतीथ[1](पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अतिथि'। उ०—बंधु कुबुद्धि पुरोहित लंपट चाकर चोर अतीथ धुतारो।—इतिहास, पृ० ३०१।

अतीथ[2](पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अतीत'। उ०—कहै गुलाल अतीथ राम गुन गाइया।—गुलाल०, पृ० ६०।

अतीम(पु)—वि० [हिं०] दे० 'यतीम'। उ०—रहै गरीब अतीम होई तिनकाँ कही फकीर। संत वाणी०, पृ० १३५७।

अतीव—वि० [सं०] अधिक। ज्यादा। बहुत। अतिशय। अत्यंत। उ०—हो के रुष्ट अतः अतीव मन में पाके वृथा ताप वे।—शकुं० पृ० २१।

अतीस—संज्ञा पुं० [सं०] एक पौधा।

विशेष—यह हिमालय के किनारे सिंध नदी से लेकर कुमाऊँ तक पाया जाता है। इसकी जड़ कई प्रकार की दवाओं में काम आती है और खाने में कुछ कड़वी तथा चरपरी होती है। यह पाचक, अग्निसंदीपक और विषघ्न है तथा कफ, पित्त, आम, अतिसार, खाँसी, ज्वर, यकृत और कृमि आदि रोगों को दूर करती है। बालरोगों के लिये यह बहुत उपकारी है। यह तीन प्रकार की होती है—(१) सफेद, (२) काली और (३) लाल। इनमें सफेद अधिक गुणकारी समझी जाती है।

पर्याय—विषा, अतिविषा, काश्मीरा, श्वेता, अरुणा, प्रविषा, उपविषा, घुणवल्लभा, श्रृंगी महौषध, भृंगी, श्वेतकंदा, भंगुरा, मृद्वी, शिशुभैषज्य, शोकापहा, श्यामकंदा, विश्वा।

अतीसार—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अतिसार'।

अतुंग—वि० [सं०] जो ऊँचा न हो। ठिगना [को०]।

अतुंद—वि० [सं०] जो हृष्ट पुष्ट न हो, क्षीणकाय [को०]।

अतुकांत[1]—[हिं० अ+तुक+अंत] तुकरहित। जिसके अंतिम चरणों का तुक या अनुप्रास न मिलता हो। उ०—प्रसाद जी हिंदी में छायावाद के विधाता तो हैं ही, अतुकांत कविता के आरंभकर्ता भी वे ही हैं।—करुणा० (प्रका०)।

अतुकांत[2]—संज्ञा पुं० [हिं० अ+तुक+अंत] छंदोबद्ध कविता जिसमें तुक या अनुप्रास न हों।

अतुर[1]—वि० [सं०] १. जो धनवान न हो। २. अनुदार [को०]।

अतुर[2](पु)—वि० [हिं०] दे० 'आतुर'। उ०—पांण जोड़े हुकुम पावै अतुर। वारै भरथ आवै।—रू०, पृ० ११६।

अतुर[3](पु)—वि० [हिं०] दे० 'अतुल'।—उ०—तब सुनि भान नरिंद सबद उम्मार अतुर वर।—पृ० रा०, ३५।१०४५।

अतुराई(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० आतुर+हिं० आई (प्रत्य०)] १. आतुरता। जल्दी। शीघ्रता। उ०—कीरति महरि लिवावन आई। जाहु न स्याम, करहु अतुराई।—सूर०। १।१३७५। २. घबराहट। हड़बड़ी। ३. चंचलता। चपलता। उ०—नैनन की अतुराई, बैनन की चतुराई गात की गोराई ना दुरति दुति चाल की।—केशव (शब्द०)।

अतुराना(पु)—क्रि० अ० [सं० आतुर, हिं० अतुर से नाम०] आतुर होना। घबड़ाना। हड़बड़ाना। जल्दी मचाना। अकुलाना। उ०—(क) तुरत जाइ लै आउ, उहाँ तें, बिलंब न करि मो भाई। सूरदास प्रभु बचन सुनतहीं हनुमत चल्यौ अतुराई।—सूर०, ९।१४९। (ख) आए अतुराने, बाँधे बाने, जे मरदाने समुहाने।—सूदन (शब्द०)।

अतुरी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'आतुरता'।

अतुल[1]—वि० [सं०] १. जो तोला या कूता न जा सके। जिसकी तौल या अंदाज न हो सके। २. अमित। असीम। अपार। बहुत अधिक। बेअंदाज। उ०—आवत देखि अतुल बलसीवा।—तुलसी (शब्द०)। ३. जिसकी तुलना या समता न हो सके। अनुपम। बेजोड़। अद्वितीय। उ०—मुनि रघुपति छबि अतुल बिलोकी। भए मगन मन सके न रोकी।—मानस ७।३२।

अतुल[2]—संज्ञा पुं० १. केशव के अनुसार अनुकूल नायक का दूसरा नाम। उ०—ये गुण केशव जाहि में, सोई नायक जान। अतुल, दक्ष, शठ, धृष्ट, पुनि, चौविध ताहि बखान।—केशव (शब्द०)। २. तिल का पेड़। ३. तिलक। तिलपुष्पी। ४. कफ। श्लेष्मा। बलगम।

अतुलनीय—वि० [सं०] १. जिसका अंदाजा न हो सके। अपरिमित। अपार। बेअंदाज। बहुत अधिक। २. अनुपम बेजोड़। बेजोड़। अद्वितीय।

अतुलित—वि० [सं०] १. बिना तौला हुआ। २. बे अंदाज। अपरिमित। अपार। बहुत अधिक। उ०—बनचर देह धरी छिति माहीं। अतुलित बल प्रताप तिन पाहीं।—मानस, १।१८७।३. —असंख्य। उ०—जो पै अलि अंत इहै कन्बिे हो। तौ अतुलित अहीर अबलनि को हठि न हिये हरिबे हो।—तुलसी ग्रं०, पृ० ४४४।

४. अनुपम । बेजोड़ । अद्वितीय । उ०—कहहिं परस्पर सिधि समुदाई । अतुलित अतिथि राम लघुभाई ।—मानस, २।२१३।

अतुल्य—वि० [सं०] १. असमान । असदृश । २. अनुपम । बेजोड़ । अद्वितीय । निराला ।

अतुल्ययोगिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] जहाँ कई वस्तुओं का समान धर्म कथन होने के कारण तुल्ययोगिता की संभावना दिखाई पड़ने पर भी किसी एक अभीष्ट वस्तु का विरुद्ध गुण बतलाकर उसकी विलक्षणता दिखलाई जाय वहाँ इस अलंकार की कल्पना कविराजा मुरारिदान ने की है। उ०—हय चले हाथी चले संग छोड़ि साथी चले, ऐसी चलाचली में अचल हाड़ा ह्वै रह्यो ।—भूषण ग्रं०, पृ० १३३ ।

अतुष—वि० [सं०] भूसी रहित । बिना भूसी का [को०] ।

अतुषार—वि० [सं०] जो ठंडा न हो । गर्म [को०] ।

अतुषारकर—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य [को०] ।

अतुष्टि—संज्ञा स्त्री० [को०] अतृप्ति । असंतोष [को०]।

अतुष्टिकर—वि० [सं०] असंतोषजनक [को०] ।

अतुहिन—वि० [सं०] जो ठंडा न हो । तृप्त [को०] ।

अतुहिनकर—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य [को०] ।

अतुहिनधाम—संज्ञा पुं० [सं० अतुहिनधामन] दे० 'अतुहिनकर' [को०]।

अतुहिनरश्मि—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अतुहिनकर' ।

अतुहिनरुचि—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अतुहिनरश्मि' [को०]।

अतूथ(पु)—वि० [सं० **अति = अधिक** + उत्थ = **उठा हुआ**] अपूर्व । उ०—देखौ सखि अकथ रूप अतूथ । एक अंबुज मध्य देखियत बीस दधिसुत जूथ ।—सूर० परि०, १।६ ।

अतूल[१]—वि० [हिं०] दे० 'अतुल' । उ०—नेह उपजावन अतूल तिल फूल कैधौं, पानिय सरोवरी की उरमि उतंग है।—भिखारी ग्रं० भा० १, पृ० १०१ ।

अतूल[२]—वि० [हिं०] दे० 'अतुल्य' । उ०—हित हरषत करषत बसन परषत उरज अतूल ।—पद्माकर ग्रं०, पृ० १६५ ।

अतूणाद—संज्ञा पुं० [सं०] तुरत का जन्मा बछड़ा [को०] ।

अतृपत(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अतृप्त'। उ०—अतृपत सुत जु छुभित तव भयौ । भाजत भाँजि भवन दुरि गयौ ।—नंद० ग्रं०, पृ० २४६।

अतृप्त—वि० [सं०] १. जो तृप्त या संतुष्ट न हो । असंतुष्ट । जिसका मन न भरा हो। उ०—होकर अतृप्त तुम्हें देखने को नित्य नया रूप दिए देता हूँ पुराना छोड़ने के लिये ।—झरना, पृ० ६४। २. भूखा । बुभुक्षित ।

अतृप्ति—संज्ञा स्त्री० (सं०) असंतोष । मन न भरने की अवस्था । उ०—यह अतृप्ति अधीर मन की क्षोभयुत उन्माद ।—कामायनी पृ० ६१ ।

अतृष्ण—वि० [सं०] तृष्णारहित । निस्पृह । कामनाहीन । निर्लोभ।

अतें(पु)—वि०[सं० अत्यंत] परम । अत्यधिक । उ०—अतेंरूपम् रति परगटी पुनिउँ ससि सो खीन होइ घटी।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० ५१ ।

अतेज—वि० [सं० अतेजस्] १. तेजरहित । अंधकारयुक्त । मंद । धुँधला । २. हतश्री । प्रतापरहित ।

अतेव—वि० [हिं०] दे० 'अतीव' । उ०—या विथा फिरै निकुंज कुंज पुंज भामरो । कामधेनु पाय रो रहै अतेव चामरो ।—भिखारी ग्रं०, भाग १, पृ० १३६ ।

अतोर—वि० [सं० **अ = नहीं + हिं० तोड़ = टूटना**] जो न टूटे । अभंग दृढ़ । उ०—जनु माया के बंधन अतोर ।—गुमान (शब्द०) ।

अतोल—वि० [हिं० **अ + तोल**] [स्त्री० **अतोली**] १. बिना तौला हुआ । बिना अंदाज किया हुआ । जो कूता न हो । उ०—साज सहित एक घुड़िला लैयो गैया दूध अतोली जू ।—नंद ग्रं०, पृ० ३३७ । २. जिसकी तौल या अंदाज न हो सके । बे अंदाज । बहुत अधिक । उ०—चलै गोल गोली अतोली सनंकै, मनो भौर भीरैं उड़ातीं भनंकै ।—पद्माकर ग्रं०, पृ० १० । ३. अतुल्य । अनुपम । बेजोड़ । उ०—पगति धरत मग धरनि धुजावैं धूरि, लावैं निज ऊपर अतोल बल धारे ते।—हम्मीर०, पृ० २३ ।

अतोषणीय—वि० [सं०] जो तोषणीय न हो [को०] ।

अतौल—वि० [हिं०] दे० 'अतोल' ।

अत्क—संज्ञा पुं० [सं०] १. पथिक । २. अवयव । अंग । ३. जल । ४. बिजली । ५. परिधान । पहनावा । ६. कवच । ७. घर का कोना [को०] ।

अत्त[१](पु)—वि० [सं० **आप्त**] प्राप्त । उपलब्ध ।

अत्त[२](पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० **अति**] अति । अधिकता । ज्यादती । उ०—यह कन्या फली नहीं, मुद्राराक्षस की विषकन्या हो गई । अत्त भी तो बड़ी भई ।—भारतेंदु ग्रंथ, भाग १, पृ० ३६७।

अत्तवार‡—संज्ञा पुं० [सं० **आदित्यवार प्रा० आइच्चवार,* आइत्तवार <इत्तवार <अतवार**] रविवार । सप्ताह का पहला दिन ।

अत्तव्य—वि० [सं०] खाने योग्य [को०] ।

अत्ता[१]—संज्ञा पुं० [सं०] चराचर का ग्रहण करनेवाला । ईश्वर का एक नाम ।

अत्ता[२]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. जेठी बहिन । २. सास । माता । ३. मौसी । मातृष्वसा ।

अत्तार—संज्ञा पुं० [**अ०**] १. गंधी । सुगंध या इत्र बेचनेवाला । २. यूनानी दवा बनाने और बेचनेवाला । उ०—परम पिता हमही वैद्यन के अत्तारन के प्रान ।—भारतेंदु ग्रं०, भाग १. पृ० ४७६ ।

अत्ति[१]—वि० [हिं० दे० 'अति[१]' । उ०—ठिले अत्ति हैं मद्द मातंग माते । उमंगत तैयार तुरंग ताते ।—पद्माकर ग्रं० पृ० २८० ।

अत्ति(पु)[२]—संज्ञा स्त्री० [हिं० दे० 'अत्त[२]' ।

अत्ति[३]—संज्ञा स्त्री० [सं०] बड़ी बहन [को०] ।

अत्तिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अत्ति[३]' ।

अत्तिवारे(पु)—वि० [हिं **अति + वाले**] अत्यंत साहस का काम करनेवाले । उ०—चढ़े हैं लिन्हौं पै महा बथ्थ भारे लसै यों किलाएँ मनौ अत्तिवारे । पद्माकार ग्रं०, पृ० २८० ।

अत्थ(पु)—संज्ञा [सं० **अर्थ** प्रा० **अत्थ**] प्रयोजन । हेतु । उ०—एकै रिपुन के जुत्थ जुत्थ करे उलथि बिन अत्थ के ।—पद्माकर ग्रं०, पृ० २० ।

अतथड़ी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० **अर्थ**, प्रा० **अत्थ+ड़ी**० (प्रत्य०)]धन। संपत्ति। उ०—उधम हत्थां अतथड़ी कांणां सुण निण क्रीत।—बाँकी० ग्रं० भाग १, पृ० ५१।

अतथवना(पु)—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'अथवना'। उ०—जो ऊगै सो अतथवै फूलै सो कुम्हिलाय।—कबीर सा० सं०, पृ० ७८।

अतथि(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० **अस्ति**] अस्तित्व में आने की स्थिति सत्ता [को०]।

अत्न—संज्ञा पुं० [सं०] १. वायु। २. सूर्य। ३. पथिक [को०]।

अत्नु—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अत्न'

अत्यंकुश—वि० [सं० **अत्यङ्कुश**] अंकुश को न माननेवाला। नियंत्रण में न रहनेवाला [को०]।

अत्यंत—वि० [सं० **अत्यन्त**]बहुत अधिक। बेहद। अतिशय। हद से ज्यादा।

अत्यंतग—वि०[सं० **अत्यन्तग**] बहुत तेज चलनेवाला। तीव्रगामी[को०]।

अत्यंतगत–वि० [सं० **अत्यन्तगत**] जो सदा के लिये चला गया हो या पृथक हो गया हो [को०]।

अत्यंतगति—संज्ञा स्त्री० [सं०**अत्यन्तगति**] पूर्णता [को०]।

अत्यंतगामी—वि० [सं० **अत्यन्तगामिन्**] १. अत्यधिक तेज चलने वाला। २. बहुत अधिक [को०]।

अत्यंतता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. आधिक्य। २. उग्रता। ३. प्रचंडता [को०]।

अत्यंततिरस्कृत अर्थ—संज्ञा पुं० [सं० **अत्यन्ततिरस्कृत अर्थ**] दे० 'अत्यंत तिरस्कृत वाच्यध्वनि'। उ०—अत्यंत तिरस्कृत अर्थ सदृश ध्वनि कंपित करना बार बार।—लहर, पृ० ३४।

अत्यंततिरस्कृत वाच्यध्वनि—संज्ञा स्त्री० [सं० **अत्यन्ततिरस्कृतवाच्य ध्वनि**] एक ध्वनि जिसमें वाच्यार्थ का पूर्णतया त्याग होता है। [को०]।

अत्यंतनिवृत्ति—संज्ञा स्त्री० सं० [**अत्यन्तनिवृत्ति**] पूर्णतया मुक्त हो जाना। पूर्ण रूप से पृथक् हो जाना [को०]।

अत्यंतनिवृत्ति—संज्ञा पुं० [सं० **अत्यन्तभाव**] किसी अवस्था में अभाव को न प्राप्त होनेवाला भाव। सदा बनी रहनेवाली सत्ता। अपरिमित अस्तित्व।

अत्यंतवासी—संज्ञा पुं० [सं० **अत्यन्तवासिन्**] आचार्य के समीप हमेशा रहनेवाला छात्र [को०]।

अत्यंतसंपर्क—संज्ञा पुं० [सं० **अत्यन्त सम्पर्क**] अत्यधिक संभोग [को०]।

अत्यंतसुकुमार१—वि० [सं० **अत्यन्तसुकुमार**] अतिशय कोमल [को०]

अत्यंतसुकुमार२—संज्ञा पुं० एक प्रकार का धान्य [को०]।

अत्यंतातिशयोक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं० **अत्यतिशयक्ति**] दे० अतिशयोक्ति'। उ०—अत्यंनातिसयोकति चीतौ। जहँ पूरब पर क्रम विपरीतौ।—पद्माकर ग्रं०, पृ० ४०।

अत्यंताभाव—संज्ञा पुं० [सं० **अत्यन्ताभाव**] १. किसी वस्तु का बिलकुल न होना। सत्ता की नितांत शून्यता। प्रत्येक दशा में अनस्तित्व २. वैशेषिक के अनुसार पाँच प्रकार के अभावों में से चौथा जो प्राग्भाव, प्रध्वंसाभाव और अन्योन्याभाव से भिन्न अर्थात् जो तीनों कालों में संभव न हो। जैसे—आकाशकुसुम, वंध्यापुत्र, शशविषाण में आदि। ३. बिल्कुल कमी।

अत्यंतिक—वि० [सं० **अत्यन्तिक**] १. समीपी। नजदीकी। २. जो बहुत घूमे। घुमक्कड़। ३. बहुत चलनेवाला [को०]।

अत्यंतिन—वि० [सं० **अत्यन्तीक**] १. बहुत अधिक चलनेवाला। २. अत्यधिक तीव्र गति से चलनेवाला। ३. चिरकालव्यापी। चिरस्थायी [को०]।

अत्य(पु)१—संज्ञा स्त्री० [सं० **अति**] दे० 'अति'। उ०—कमलपत्र दृग मत्त हैं रैन रति के अत्य। प्रीतम लखि थकि नित रहैं यहै कहति हौं सत्य।—ब्रज ग्रं०, पृ० ६३।

अत्यग्नि१—वि० [सं०] अग्नि से भी अधिक तापवाला [को०]।

अत्यग्नि२—संज्ञा स्त्री० [सं०] अत्यधिक तेज पाचन शक्ति [को०]।

अत्यधिक—वि० [सं० **अति+अधिक**] बहुत ज्यादा। सीमा से आगे [को०]।

अत्यम्ल१—संज्ञा पुं० [सं० **अति+अम्ल**] १. इमली का पेड़। २. विषाधिल। ३. बिजौरा नीबू।

अत्यम्ल२—वि० बहुत खट्टा [को०]।

अत्यम्लपर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] रामचना या खटुआ नाम की बेल।

अत्यम्ला—संज्ञा स्त्री० [सं०] जंगली बिजौरा नीबू।

अत्यय—संज्ञा पुं० [सं०] १. मृत्यु। ध्वंस। नाश। २. अतिक्रमण। हद से बाहर जाना। ३. दंड। सजा। ४. कृच्छ्र। कष्ट। ५. दोष। ६. प्राचीन काल का एक प्रकार का अर्थदंड या जुर्माना।

अत्ययिक—वि० [सं०] दे० 'आत्ययिक'।

अत्ययी—वि० [सं० **अत्ययिन्**] १. अतिक्रमण करनेवाला। २. सबसे आगे बढ़ जानेवाला [को०]।

अत्यर्थ—वि० [सं०] उचित परिणाम से अधिक। अत्यधिक [को०]।

अत्यष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १७ वर्ण के वृत्तों की संज्ञा। शिखरिणी, पृथ्वी, हरिणी, मंदाक्रांता भाराक्रांता और मालाधार, आदि छंद इसके अंतर्गत हैं।

अत्यह्न—वि० [सं० **अति+अह्न**] एक दिन से अधिक समय का [को०]।

अत्याकार१—वि०[सं० **अति=बड़ा+ आकार**] विशाल आकार का। भारी डीलडौलवाला [को०]।

अत्याकार२—संज्ञा पुं० १. अवज्ञा। २. घृणा। ३. निंदा। ४. विशाल डीलडौल [को०]।

अत्याग—संज्ञा पुं० [सं०] ग्रहण। स्वीकार। उ०—स्रवन-सुखद भव-भय-हरन त्यागिन को अत्याग।—भारतेंदु ग्रं०, भाग १, पृ० ४१४।

अत्यागी—वि० [सं० **अत्यागिन्**] दुर्गुणों को न छोड़नेवाला। विषयासक्त। दुर्व्यसनी।

अत्याचार—संज्ञा पुं० [सं०] १. आचार का अतिक्रमण। विरुद्धाचरण। अन्याय। निठुराई। ज्यादती। जुल्म। २. बुराचार। पाप।३. आचार की अधिकता। पाखंड। ढोंग। ढकोसला। आडंबर।

अत्याचारी१—वि० [सं० **अत्याचारिन्**] १. अत्याचार करनेवाला। दुराचारी। अन्यायी। निठुर। जालिम। २. पाखंडी। ढोंगी। ढकोसलेबाज। धर्मध्वजी।

अत्याचारी१—संज्ञा पुं० वह जो अत्याचार करे। अन्यायी व्यक्ति।

अत्याज्य--वि० [सं०] १. न छोड़ने योग्य। जिसका त्याग उचित न हो। २. जो कभी छोड़ा न जा सके।

अत्यादित्य--वि० [सं०] सूर्य के पार जानेवाला [को०]।

अत्याधान--संज्ञा पुं० [सं०] १. रखने की क्रिया। २. अतिक्रमण। ३. होम की अग्नि को रक्षित न रखना [को०]।

अत्यानंद--संज्ञा पुं० [अत्यानन्द] आनंद का परम उत्कृष्ट आध्यात्मिक रूप। परमानंद [को०]।

अत्यानंदा--संज्ञा स्त्री० [सं० अत्यानन्दा] वैद्यक के अनुसार योनियों का एक भेद।

विशेष--वह योनि जो अत्यंत मैथुन से भी संतुष्ट न हो। यह एक रोग है जिससे स्त्रियाँ वंध्या हो जाती हैं। इसका दूसरा नाम 'रतिप्रीता' भी है।

अत्याय--संज्ञा पुं० [सं०] १. सीमा का उल्लंघन। मर्यादा का अतिक्रमण। अधिक आमदनी या लाभ [को०]।

अत्यायु--संज्ञा पुं० [सं०] यज्ञ का पात्रविशेष [को०]।

अत्यारूढ़--वि० [सं०] बहुत ऊँचे पद पर पहुँचा हुआ। अत्यंत प्रसिद्ध [को०]।

अत्यारूढ़ि--संज्ञा स्त्री० [सं०] १. अत्यंत ऊँचा पद। २. अतिप्रसिद्धि [को०]।

अत्याल--संज्ञा पुं० [सं०] रक्तचित्रक नामक वृक्ष [को०]।

अत्यावाय--संज्ञा पुं० [सं०] राजद्रोहियों की अधिकता [को०]।

अत्याहित[1]--वि० [सं०] असहमति के योग्य। अस्वीकार्य [को०]।

अत्याहित[2]--संज्ञा पुं० १. अरुचि। अप्रियता। २. संकट। ३. भय। ४. दुःसाहस [को०]।

अत्याहितकर्मा--वि० [सं० अत्याहित+कर्मन्] दुष्ट। नीच। दुराचारी [को०]।

अत्युक्त--वि० [सं०] बहुत बढ़ा चढ़ाकर कहा हुआ। अत्युक्तिपूर्ण।

अत्युक्ता--संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अत्युक्था' [को०]।

अत्युक्ति--संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बढ़ा चढ़ाकर वर्णन करने की शैली। मुबालिगा। बढ़ावा। २. एक अलंकार जिसमें शूरता, उदारता आदि गुणों का अद्‌भुत और अतथ्य वर्णन होता है। जैसे--जाचक तेरे दान तें भए कल्पतरु भूप (शब्द०)।

अत्युक्था--संज्ञा स्त्री० [सं०] दो वर्णों के वृत्तों की संज्ञा।

विशेष--इसके चार भेद कहे गए हैं। कामा, मही, सार और मधु।

अत्युग्र[1]--वि० [सं०] अति प्रचंड। अतिशय भयानक [को०]।

अत्युग्र[2]--संज्ञा पुं० हींग [को०]।

अत्युग्रगंधा--संज्ञा स्त्री० [सं०] अजमोदा।

अत्युत्तम--वि० [सं०] सबसे श्रेष्ठ। अधिक उत्कृष्ट [को०]।

अत्युपध--वि० [सं०] १. परीक्षित। अंदाजा हुआ। २. विश्वस्त [को०]।

अत्यूर्मि--वि० [सं०] सीमा का अतिक्रमण कर बहनेवाला [को०]।

अत्यूह--संज्ञा पुं० [सं०] १. बहुत अधिक ऊहापोह। तर्क वितर्क २. अधिक जोर से बोलनेवाला पक्षी। मोर [को०]।

अत्यूहा--संज्ञा स्त्री० [सं०] नीलिका या निर्गुंडी नामक पौधा [को०]।

अत्र[1]--क्रि० वि० [सं०] यहाँ। इस स्थान पर।

अत्र[2](पु)--संज्ञा पुं० [सं० अस्त्र, अप० अत्र] दे० 'अस्त्र'। उ०--सोहैं अत्र जोड़े जे न छोड़े सीम संगर की लंगर लँगूर उच्च ओज की अतंका में।--पद्माकर ग्रं० पृ० २२४।

अत्र[3](पु)--संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अतर'।

अत्र[4](पु)--संज्ञा स्त्री० [सं० अन्त्र] अँतड़ी।

अत्र[5]--संज्ञा पुं० [सं०] १. राक्षस। २. भोजन [को०]।

अत्रक--वि० [सं०] १. यहाँ का। २. इस लोक का। लौकिक। ऐहिक।

अत्रत्य--वि० [सं०] यहाँ का। यहाँवाला।

अत्रप--वि० [सं० अ=नहीं+त्रपा] निर्लज्ज। उदंड [को०]।

अत्रभवान्--वि० [सं०] [स्त्री० अत्रभवती] माननीय। पूज्य। श्रेष्ठ।

अत्रय(पु)†--संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अत्रि'। उ०--पिरभू किता बासर पाय। अत्रय तणो आश्रम आय।--रघु० रू०, पृ० १२२।

अत्रस्त--वि० [सं०] निर्भीक। भयरहित। निडर [को०]।

अत्रस्थ--वि० [सं०] यहाँ रहनेवाला। इस स्थान का। यहाँवाला। यहाँ उपस्थित रहनेवाला। यहाँ का।

अत्रस्नु--वि० [सं०] दे० 'अत्रस्त' [को०]।

अत्रास--वि० [सं०] दे० 'अत्रस्नु' [को०]।

अत्रि--संज्ञा पुं० [सं०] १. सप्तर्षियों में से एक।

विशेष--ये ब्रह्मा के पुत्र माने जाते हैं। इनकी स्त्री अनुसूया थीं। दत्तात्रेय, दुर्वासा और सोम इनके पुत्र थे। इनका नाम दस प्रजापतियों में भी है।

२. एक तारा जो सप्तर्षिमंडल में है। ३. सात की संख्या (को०)।

अत्रिगुण--वि० [सं० अ+त्रिगुण] त्रिगुणातीत। सत्व, रज, तम नामक तीनों गुणों से पृथक्।

अत्रिज--संज्ञा पुं० [सं०] अत्रि के पुत्र--१. चंद्रमा २. दत्तात्रेय। ३ दुर्वासा।

अत्रिजात--संज्ञा पुं० [सं०] १. दे० 'अत्रिज'। २. प्रथम तीन वर्णों में से किसी एक से संबंधित मनुष्य। द्विज [को०]।

अत्रिदृग्ज--संज्ञा पुं० [सं०] १. अत्रि के नेत्र से उत्पन्न चंद्रमा ऋषि। २. गणित में एक की संख्या [को०]।

अत्रिनेत्रज--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अत्रिदृग्ज'।

अत्रिनेत्रप्रभव--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अत्रिनेत्रज [को०]।

अत्रिनेत्रभू--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अत्रिनेत्रप्रभाव' को।

अत्रिनेत्रसूत--संज्ञा पुं० [सं०] दे०' अत्रिनेत्रभू' [को०]।

अत्रिप्रिया--संज्ञा स्त्री० [सं०] कर्दम मुनि की कन्या अनसूया जो अत्रि ऋषि को ब्याही थीं। उ०--अत्रिप्रिया निज तपबल आनी।--मानस, २।१३२।

अत्रिसंहिता--संज्ञा स्त्री० [सं०] अत्रि ऋषि द्वारा प्रणीत धर्मशास्त्र [को०]।

अत्रिस्मृति--संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अत्रिसंहिता' [को०]।

अत्री[1]--संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अत्रिप्रिया' [को०]:

अत्री[2]--संज्ञा पुं० [सं० अत्रिन्] राक्षस [को०]।

अत्रेय(पु)---संज्ञा पुं० [सं० आत्रेय] दे० 'आत्रेय'।

अत्रैगुण्य---संज्ञा पुं० [सं०] सत्व, रज, तम, इन तीनों गुणों का अभाव।

विशेष---सांख्य मतानुसार इस अवस्था का परिणाम मोक्ष या कैवल्य है।

अत्वक्क---वि० [सं०] चर्मरहित [को०]।

अत्वरा---संज्ञा स्त्री० [सं०] शीघ्रता की कमी। मंदता [को०]।

अथ---अव्य [सं०] १. एक मंगलसूचक शब्द जिससे प्राचीन काल में लोग किसी ग्रंथ या लेख का आरंभ करते थे। जैसे---(क) 'अथातो धर्मं व्याख्यास्यामः'।---वैशेषिक। [ख] 'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा'।---ब्रह्मसूत्र। पीछे से यह ग्रंथ के आरंभ में उसके नाम के पहले लिखा जाने लगा। जैसे---'अथ विनयपत्रिका लिख्यते'। २. अब। ३. अनंतर। तदनंतर।

अथऊं---संज्ञा पुं० [सं० अस्त; प्रा० अत्थ] वह भोजन जो जैन लोग सूर्यास्त के पहले करते हैं।

अथक---वि० [सं० अ = नहीं + हिं० थकना] जो न थके। अश्रांत। उ०---शासन कुमारिका से हिमालय शृंग तक अथक अबाध और तीव्र मेघ ज्योति सा चलता था।---लहर, पृ० ७६।

अथकिम्---अव्य० [सं०] और क्या! हाँ [को०]।

अथग---वि० [सं० अस्तग प्रा० अत्थग] अगाध। गंभीर। अथाह। उ०---अखंड सरोवर अथग जल हंसा सरवर न्हाहिं।---दादू पृ० ६७।

अथच---अव्य० [सं०] और। और भी। इसके अतिरिक्त।

अथना(पु)---क्रि० अ० [सं० अस्त प्रा० अत्थ से नाम०] १. अस्त होना। डूबना। उ०---सूरुज उवै विहानहि आई। पुनि सों अथै कहा कह जाई।---जायसी [शब्द०]। २. कम होना। घट जाना। समाप्त हो जाना (को०)।

अथमना---संज्ञा पुं० [सं० अस्तमन; प्रा० अत्थमण] पश्चिम दिशा। उगमना का उलटा।

अथरवन(पु)---संज्ञा पुं० [सं० अथर्वन्] चौथा वेद। अथर्ववेद। उ०---[क] यहु परमारथ कहौ हो पंडित, रुग जुग स्याम अथरबन पठिया।---गोरख०, पृ० १०६। [ख] रिग, जजु, साम, अथरवन माहाँ।---जायसी ग्रं०, पृ० ४४।

अथरा---संज्ञा पुं० [सं० आस्तर] मिट्टी का एक बरतन या नाँद।

विशेष---इसमें रँगरेज कपड़ा रँगते हैं, सोनार मानिक रेत रखते हैं और जुलाहे सूत भिगोते और ताने में लेई लगाते हैं।

अथरी---संज्ञा स्त्री० [हिं० 'अथरा का अल्पा०] १. छोटा अथरा। २. मिट्टी का वह बरतन जिसमें कुम्हार हाँड़ी या घड़े को रखकर थापी से पीटते हैं। ३. मिट्टी का वह बरतन जिसमें दही जमाते हैं।

अथर्व---संज्ञा पुं० [सं० अथर्वन्] चौथा वेद।

विशेष---इसके मंत्रद्रष्टा या ऋषि भृगु या अंगिरा गोत्रवाले थे जिस कारण इसको 'भृग्वंगिरस' और 'अथर्वांगिरस' भी कहते हैं। इसमें ब्रह्मा के कार्य का प्रधान प्रतिपादन होने से इसे 'ब्रह्मवेद' भी कहते हैं। इस वेद में यज्ञकर्मों का विधान बहुत कम है। शांति, पौष्टिक अभिचार आदि प्रतिपादन विशेष है। प्रायश्चित, तंत्र, मंत्र आदि इसमें मिलते हैं। इसकी नौ शाखाएँ थीं---पैप्पला, दांता, प्रदांता, स्नौता, ब्रह्मदावला, शौनकी, देविदर्शती और चरण विद्या। कहीं कहीं इन नौ शाखाओं के नाम इस प्रकार हैं---पिप्पलादा, शौनकीया, दामोदा, तोतायना, जाजला, ब्रह्मपलाशा, कौनखिना, देवदर्शिना और चारण विद्या। इन शाखाओं में से आजकल केवल शौनकीय मिलती है जिसमें २० कांड, १११ अनुवाक, ७३१ सूक्त और ४७९३ मंत्र हैं। पिप्पलाद शाखा की संहिता प्रोफेसर बूलर को काश्मीर में भोजपत्र पर लिखी मिलि थी पर वह छपी नहीं। इसका उपवेद धनुर्वेद है। इसके प्रधान उपनिषद् प्रश्न, मुंडक और मांडूक्य हैं। इसका गोपथ ब्राह्मण आजकल प्राप्त है। कर्मकांडियों को इस वेद का जानना आवश्यक है।

२. अथर्ववेद का मंत्र।

अथर्वण---संज्ञा पुं० [सं०] १. शिव। २. दे० 'अथर्व' [को०]।

अथर्वणि---संज्ञा पुं० [सं०] १. अथर्ववेद के अनुसार कर्मकांड करनेवाला ब्राह्मण। २. यज्ञ करानेवाला पुरोहित। यज्ञ का ब्रह्मा [को०]।

अथर्वन्---संज्ञा पुं० [सं०] १. एक मुनि जो ब्रह्मा के पुत्र और अग्नि को स्वर्ग से लानेवाले समझे जाते हैं। २. दे० 'अथर्व' [को०]।

अथर्वन(पु)---संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अथर्व'। उ०---नातर वेद अथर्वन हारु।---कबीर सा०, पृ० ७७

अथर्वनिधि---संज्ञा पुं० [सं०] अथर्ववेद' का मर्मज्ञ [को०]।

अथर्वनी(पु)---संज्ञा पुं० [सं० आथर्वणि] दे० 'अथर्वणि'। उ०---आपु वसिष्ठ अथर्वनी महिमा जग जानी।---तुलसी ग्रं०, पृ० २७०।

अथर्वविद्---संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अथर्वनिधि' [को०]।

अथर्वशिखा---संज्ञा स्त्री० [सं०] एक उपनिषद् [को०]।

अथर्वशिर---संज्ञा पुं० [सं० अथर्वशिरस्] १. एक प्रकार की ईंट जो तैत्तिरीय शाखा के समय में यज्ञ की वेदी बनाने के काम आती थी। २. एक उपनिषद् [को०]।

अथर्वशिरा---संज्ञा स्त्री० [सं० अथर्वशिरस्] १. वेद की एक ऋचा का नाम। २. एक उपनिषद् [को०]।

अथर्वांगिरस---संज्ञा पुं० [सं० अथर्वाङ्गिरस] दे० 'अथर्व'

अथर्वाणि---संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अथर्वणि' [को०]।

अथल---संज्ञा पुं० [अ (उच्चा०) + सं० स्थल; प्रा० थल] वह भूमि जो लगान पर जोतने के लिये दी जाय।

अथवना(पु)---क्रि० अ० [सं० अस्तमन = डूबना प्रा० अत्थमण अत्थवण] १. अस्त होना। डूबना। उ०---[क]---जो आगै सो अथवै फूलै सो कुम्हिलाय। जो चुनिए सो ढहि परै, जामै सो मरि जाय।---कबीर [शब्द]। [ख] केइ यह बसत बसंत उजारा। गा सों चाँद अथवा लेइ तारा।---जायसी [शब्द०]। २. लुप्त होना। तिरोहित होना। नष्ट होना। गायब होना। चला जाना। उ०---कहत ससोक बिलोकि बंधु मुख बचन प्रीति गथए हैं। सेवक सखा भगति, भायप गुन चाहत अब अथए हैं---तुलसी [शब्द०]।

अथवा---अव्य० [सं०] एक वियोजक अव्यय जिसका प्रयोग उस स्थान पर होता है जहाँ दो या कई शब्दों या पदों में से किसी एक का ग्रहण अभीष्ट हो। या। वा। किंवा। उ०---निज कवित्त केहि लाग न नीका। सरस होइ अथवा अति फीका।---मानस, १।८।

अथाई—संज्ञा स्त्री० [सं० *आस्थायिका अथवा *आस्थायी, प्रा० अत्थाई] बैठने की जगह। घर का वह बाहरी चौपाल जहाँ लोग इष्ट मित्रों से मिलते वा उनके साथ बातचीत करते हैं। बैठक। चौबारा। उ०—हाट बाट घर गली अथाई। कहहिं परसपर लोग लुगाई।—मानस, २।१०। २. वह स्थान जहाँ किसी गाँव या बस्ती के लोग इकट्ठे होकर बातचीत और पंचायत करते हैं। उ०—कहै पदमाकर अथाइन को तजि तजि, गोपगन निज निज गेह को पथै गयो।—पद्माकर ग्रं०, पृ० २३७। ३. घर के सामने का चबूतरा जिसपर लोग उठते बैठते हैं। ४. गोष्ठी। मंडली। सभा। जमावड़ा। दरबार। उ०—गजमनि माल बीच भ्राजत कहि जात न पदिक निकाई। जनु उडुगण मंडल बारिद पर नव ग्रह रची अथाई।—तुलसी ग्रं०, पृ० ६२१।

अथाग(पु)—वि० [सं० अस्ताघ, प्रा० अत्थग्घ] दे० 'अथाह'। उ०—हूँकल दल गज हैवराँ अमरख नराँ अथाग।—रा० रू०, पृ० ५५३।

अथान—संज्ञा पुं० [सं० अस्थाणु = स्थिर] अचार। कचूमर। उ०—विधि पाच अथान बनाइ कियो। पुनि द्वै विधि क्षीर सो माँगि लियो।—केशव (शब्द)।

अथाना[1]—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अथान'। उ०—निबुआ, सूरन आम अथानो और करौंदनि की रुचि न्यारी।—सूर० १०।२४१।

अथाना[2](पु)—क्रि० अ० [सं० अस्तार्य, प्रा० अत्था, अत्थाअ] डूबना। अस्त होना। दे० 'अथवना'।

अथाना[3]—क्रि० स० [सं० आ + स्थापन] १. थहाना। थाह लेना। गहराई नापना। २. ढूँढ़ना। छानना। उ०—फिरत फिरत बन सकल अथायो। कोऊ जीव हाथ नहिं आयो।—सबल (शब्द)।

अथाय(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अथाह'। उ०—अद्वै अचल अखंड है, अगम अपार अथाय। ब्रज माधुरी०, पृ० २८६।

अथार(पु)—वि० [सं० आ (उप०) + स्तार < स्तृ] फैला या बिखरा हुआ।

अथावत(पु)—वि० [सं० अस्तमित = डूबा हुआ] अस्त। डूबा हुआ। उ०—बेर लगी रघुनाथ रहे कित हे मन याको मैं भेद न पायो। चंदहु आयो अथावतो होत अजहूँ मनभावतो क्यों नहिं आयो।—रघुनाथ (शब्द)।

अथाह[1]—वि० [सं० अस्ताघ, प्रा० अत्थाह अथवा सं० अ = नहीं + √स्था = ठहरना] १. जिसकी थाह न हो। जिसकी गहराई का अंत न हो। बहुत गहरा। अगाध जैसे—यहाँ अथाह जल है (शब्द)। २. जिसका कोई पार या अंत न पा सके। जिसका अंदाज न हो सके। अपरिमित। अपार। बहुत अधिक। ३. गंभीर। गूढ़। समझ में न आने योग्य। कठिन। उ०—(क) करै नित्य जप होम औ जानत वेद अथाह (शब्द)। (ख) रमणी हृदय अथाह जो न दिखलाई पड़ता।—कानन०, पृ० ७१।

अथाह[2]—संज्ञा पुं० १. गहराई। गड्ढा। जलाशय। २. समुद्र। उ०—वा मुख के फिर मिलन की, आस रही कछु नाहिं। परे मनोरथ जाय मम अब अथाह के माहिं।—शकुंतला, पृ० ११४।

मुहा०—**अथाह में पड़ना** = मुश्किल में पड़ना। जैसे—हम अथाह में पड़े हैं, कुछ नहीं सूझता [शब्द]।

अथिर(पु)—वि० [सं० अस्थिर, प्रा० अत्थिर, अथिर] १. जो स्थिर न हो चलायमान। चंचल। उ०—काची काया मन अस्थिर थिर थिर काम करत।—कबीर ग्रं०, पृ० ७६। २. क्षणस्थायी। टिकनेवाला।

अथीर(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अथिर'। उ०—नहिं तर्क वितर्क अधीर धीर। नहि शून्य अशून्य अथीर थीर।—सुंदर ग्रं०, भा० १, पृ० ७८।

अथैव(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अथाई'। उ०—नाजी हमारे बुलबुल की अथैवा इन देखिबे आइए।—पोद्दार अभि० ग्रं० पृ० ६२७।

अथोर(पु)—वि० [सं० अ + स्तोक = थोड़ा प्रा० थोक, अप० थोक + ड़ [प्रत्य०] [स्त्री० अथोरी] कम नहीं। अधिक। ज्यादा। बहुत। पूरा। उ०—भरति नेह नव नीर नित बरसत सुरस अथोर।—भारतेंदु ग्रं० २।५७७।

अदंक(पु)—संज्ञा पुं० [सं० आतङ्क, हिं० अतंक] डर। भय। त्रास। उ०—जसुमति बूझति फिरति गोपालहिं। जब ते तृणावर्त्त ब्रज आयो तब ते मोहिं जिय संक। नैननि ओट होत पल एकौ मैं मन भरति अदंक।—सूर [शब्द]।

अदंड[1]—वि० [सं० अदण्ड्य] १. जो दंड के योग्य न हो। जिसे दंड देने की व्यवस्था न हो। सजा से बरी। २. जिसपर कर या महसूल न लगे। कररहित। ३ निर्द्वंद्व। निर्भय। स्वेच्छाचारी। उ०—उदधि अपार उतरत हूँ न लागी बार, केसरीकुमार सो अदंड ऐसो डाँड़िगो।—तुलसी [शब्द०]।

अदंड[2]—संज्ञा पुं० वह भूमि जिसकी मालगुजारी न लगे। मुआफी।

अदंडनीय—वि० [सं० अदण्डनीय] जो दंड पाने के योग्य न हो। जिसके दंड का विधान न हो। अदंड्य।

अदंडमान—वि० [सं० अदण्डमान] दंड के अयोग्य। दंड से मुक्त। सजा से बरी। उ०—अदंडमान दीन गर्व दंडमान भेद वै। अपठ्ठमान पाप ग्रंथ, पठ्ठमान वेद वै।—केशव [शब्द]।

अदंड्य—वि० [सं० अदण्ड्य] दंड न पाने योग्य। जिसे दंड न दिया जा सके। दंडमुक्त। सजा से बरी।

अदंत[1]—वि० [सं० अदन्त] १. वेदाँत का। जिसे दाँत न हो। २. जिसे दाँत न निकला हो। बहुत थोड़ी अवस्था का। दुधमुहाँ। ३. जिसने दाँत न तोड़ा हो (चौपाया)।

अदंत[2]—वि० १. बारह आदित्यों में एक। २. जोंक [को०]।

अदंत्य—वि० [सं० अदन्त्य] जो दाँत संबंधी न हो। २. जो दाँतों के अनुकूल न हो। ३. दाँतों के लिये अहितकर [को०]।

अदंब(पु)—वि० [सं० अदम्भ] पवित्र। शुद्ध। उ०—यौं पद्माकर मंत्र मनोहर जै जगदब अदंब अए री।—पद्माकर ग्रं० पृ० ३२५।

अदंभ[1]—वि० [सं० अदम्भ] १. दंभरहित। पाखंडविहीन। सच्चा। बिना आडंबर का। २. निश्छल। निष्कपट। ३. प्राकृतिक। स्वाभाविक। अकृत्रिम। स्वच्छ। शुद्ध। उ०—भीति नग हीर, नग हीरन की कांति सों रतन खंभ पातिन अदंभ छबि छाई सी।—देव [शब्द]।

अदंभ२—संज्ञा पुं० १. शिव । २. दंभ का अभाव (को०) । ३. शुद्धता (को०) ।

अदंभित्व—संज्ञा पुं० [सं० अदम्भित्व] दंभशून्यता । दंभ का अभाव । पाखंड या आडंबर का न होना । सात्विक जनों का एक गुण ।

अदंष्ट्र१—वि० [सं०] दंतहीन । बिना दाँत का [को०] ।

अदंष्ट्र२—संज्ञा पुं० १. बिना विषैले दाँत का सर्प । विषदंतहीन सर्प [को०] ।

अदक्ष—वि० [सं०] १. अकुशल । जो निपुण न हो । २. भद्दा । कुरूप [को०] ।

अदक्षिण—वि० [सं०] १. बायाँ । जो दाहिना न हो । २. प्रतिकूल । विरुद्ध । ३. बिना दक्षिणा का । दक्षिणारहित [यज्ञ इत्यादि] । ४. अकुशल अनाड़ी । अनुदार ।

अदक्षिणीय—वि० [सं०] जो दक्षिणा देने का पात्र या अधिकारी न हो [को०] ।

अदक्षिण्य—वि० [सं०] दे० 'अदक्षिणीय' [को०] ।

अदग—वि० [सं० अदग्ध प्रा० अदग्घ] १. बेदाग । निष्कलंक । शुद्ध । २. निरपराध । निर्दोष । जिसे पाप न छू गया हो । ३. अछूता । अस्पृष्ट । साफ । बचा हुआ । उ०—जेते थे तेते लियो, घूँघट माहँ समोय । कज्जल वाके रेख है, अदग गया नहिं कोय ।—कबीर [शब्द] ।

अदग्ध—वि० [सं०] १. न जला हुआ । २. जिसका दाह संस्कार न किया गया हो [को०] ।

अदत्त१—संज्ञा पुं० [सं०] वह वस्तु जिसके दिए जाने पर भी लेनेवाले को उसके रखने का अधिकार न हो ।

विशेष—नारद ने अदत्त के सोलह भेद किए हैं—[१] **भय** जो वस्तु डर के मारे दी गई हो । [२] **क्रोध**—लड़के आदि पर क्रोध निकालने के लिये । [३] **शोकावेग** में । [४] **रुक्**—असाध्य रोग से घबराकर [५] **उत्कोच**—घूस के रूप में । [६] **परिहास**—हँसी हँसी में । [७] **व्यत्यास**—बढ़ावे में आकर अथवा देखादेखी । [८] **छल**—जो धोखे में उचित से अधिक दे दिया गया हो । [९] **बाल**—देनेवाला यदि बालक या नाबालिग हो । [१०] **मूढ़**—जो धोखे में आकर बेवकूफी से दिया गया हो । [११] **अस्वतंत्र**—जो दास के द्वारा या ऐसे व्यक्ति के द्वारा दिया गया हो जिसे देने का अधिकार न हो । [१२] **आर्त**—जो बेचैनी या दुःख से घबड़ाकर दिया गया हो । [१३] **मत**—जो नशे की झोंक में दिया गया हो । [१४] **उन्मत्त**—जो पागल होने पर दिया गया हो । [१५] **कार्य**—जो लाभ की झूठी आशा दिखाकर प्राप्त किया गया हो और [१६] **अधर्म काम्य**—धर्म के नाम पर जो अधर्म के लिये लिया गया हो ।

अदत्त२—वि० [सं० अदाता अथवा सं० अदत्त] जिसने दिया न हो । न देनेवाला । कृपण । उ०—कहूँ चोर कहुँ साह कहावत, कहुँ अदत्त, कहुँ दानी ।—जग० बानी, पृ० ५३ ।

अदत्तदान—संज्ञा पुं० [सं०] जैन शास्त्र के अनुसार बिना दी हुई **वस्तु का ग्रहण । अपहरण । चोरी । डकैती ।**

विशेष—कोई कोई आचार्य इसके तीन भेद—[१] द्रव्यादत्तदान [२] भावादत्तदान, [३] द्रव्य भावादत्तदान और कोई चार भेद—(१) स्वामी अदत्तदान, (२) जीव अदत्तदान, [३] तीर्थंकर अदत्तदान और [४] गुरु अदत्तदान मानते हैं । इससे बचने का नाम अदत्तदान विरमणव्रत है ।

अदत्तपूर्वा—संज्ञा स्त्री० [सं०] कुँवारी कन्या । वह लड़की जिसकी मँगनी न हुई हो [को०] ।

अदत्ता१—वि० स्त्री० [सं०] न दी हुई ।

अदत्ता२—संज्ञा स्त्री० अविवाहिता कन्या ।

अदद—संज्ञा पुं० [अ०] १. संख्या । अंक । गिनती । २. संख्या का चिह्न या संकेत ।

अदन१—संज्ञा पुं० [अ०] १. यहूदी, ईसाई और मुसलमान मत के अनुसार स्वर्ग का वह उपवन जहाँ ईश्वर ने आदम को बनाकर रखा था । उ०—अंजन की रेखा राजै कुच बिच चित्र साजै, एहैं बेली, रेली, ही, उचित अदन मैं ।—छीत०, पृ० ३९ । २. अरब सागर का एक बंदरगाह ।

अदन२—संज्ञा पुं० [सं०] खाना । भक्षण उ०—[क] भारती बदन विष अदन सिव, ससि पतंग पावक नयन ।—तुलसी ग्रं० पृ० २३६ । [ख] बहुरि बीरा सुखद सौरभ अदन रदन रसाल ।—घनानंद, पृ० ३०१ ।

अदना—वि० [अ०] [स्त्री० अदनी] १. तुच्छ । छोटा । क्षुद्र । नीच । उ०—हलाकू चंगेजो तैमूर, हमारे अदना, अदना सूर ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ४७४ । २. सामान्य । मामूली उ०—करना किसी पै रहम, इक अदना सी बात पर ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० २०९ ।

अदनीय—वि० [सं०] खाने योग्य । भक्ष्य ।

अदफर(५)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अधफर' । उ०—नाउ जाजरी धार मैं अदफर भीर भुलान ।—स० सप्तक, पृ० ३४४ ।

अदब—संज्ञा पुं० [अ०] १. शिष्टाचार । कायदा । बड़ों का आदर, संमान । उ०—दौलते दीवार जाए पर अदब जाने न पाए ।—शेर०, पृ० ३०९ ।

मु०—**अदब की जगह**—वह व्यक्ति, स्थान या वस्तु जिसका लिहाज करना जरूरी होता है ।

क्रि० प्र०—करना ।

अदबकायदा—संज्ञा पुं० [अ०] शिष्ट व्यवहार [को०] ।

अदब लिहाज—संज्ञा पुं० [अ०] आदर संमान [को०] ।

अदबदकर—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'अदबदाकर' । उ०—मैं यों तो ये काच लेता या न लेता पर अब उनकी जिद से अदबदाकर लूँगा ।—श्रीनिवास० ग्रं०, पृ० १६३ ।

अदबदाकर—क्रि० वि० [सं० **अधि + वद = वचन देना, कहना** अथवा **अनुध्व०**] १. हठ करके । टेक बाँधकर अवश्य । जरूर । जैसे—यों तो हम न जाते, अब अदबदाकर जाएँगे (शब्द०) । विशेष—यह शब्द केवल इसी रूप में क्रि० वि० के समान **आता है परंतु वास्तव में यह क्रि० अ० है ।**

अदबुद[1]Ⓤ—वि० [हिं०] दे० 'अद्भुत'। उ०—अदबुद रूप जाति की बानी। कबीर बी०, पृ० २५।

अदबुद[2]Ⓤ—वि [हिं०] दे० 'अधबुध'। उ०—वाके बदन करू सब कोई। बुद अदबुद अचरज बड़ होई।—कबीर बी०, पृ०२५८।

अदब्ब[1]Ⓤ—संज्ञा पुं० [अ० **अदब**] दे० 'अदब'।—आदर अदब्ब सथ्थीन देत।—पृ० रा०, ११।२१।

अदब्ब[2]—वि० [सं० **अ = नहीं + हिं० दबना**] न दबनेवाला।—अदब्ब गब्बियान के सरब्ब गब्ब को हरे।—पद्माकर ग्रं० पृ० २८३।

अद्भुतⓊ—वि० [हिं०] दे० 'अद्भुत'। उ०—अद्भुत सलिल सुनत गुनकारी। आस पिआस मनोमल हारी।—मानस ११४३।

अदभूⓊ—[सं० **अद्भुत**] दे० 'अद्भुत'। उ०—रज्जब निरजहिं इंदर गुरु अदभू आदर ऐन। पहुप पत्र फल पूजिये सुर नर पावहिं चैन।—रज्जब० बानी०, पृ० ८।

अदभ्र—वि० [सं०] १. बहुत। अधिक। ज्यादा। उ०—सुनु अदभ्र करदा, वारिज लोचन मोचन भय भारी।—तुलसी ग्रं०, पृ० ५१५। २. अपार। अनंत। उ०—अगुन अदभ्र गिरा गोतीता। सबदरसी अनवद्य अजीता।—मानस ७।१२।

अदम—संज्ञा पुं० [**अ०**] १. अनस्तित्व। अभाव। लोप। २. अनुपस्थिति। ३. देवलोक। परलोक। जन्नत। उ०—अदम की राह सीधी है, बुलंदी है, न पस्ती है।—शेर० भा १, पृ० २८६।

मुहा०—**अदम की राह लेना, अदम को पधारना या अदम को सिधारना = मर जाना।**

अदमआबाद—संज्ञा पुं० [**अ०**] वह स्थान जहाँ लोग मरने के बाद जाते हैं। परलोक [को०]।

अदमखाना—संज्ञा पुं० [**अ० अदम + फा० खानह**] दे० 'अदमआबाद' [को०]।

अदमगाह—संज्ञा पुं० [**अ० अदम + फा० गाह**] दे० 'अदमआबाद'। [को०]।

अदमतामील—संज्ञा स्त्री० [**अ०**] समन आदि का अमल में न आना [को०]।

अदमपैरवी—संज्ञा स्त्री० [**फा०**] किसी मुकदमे में जरूरी कार्रवाई न करना। अभियोग में पक्षप्रतिपादन का अभाव। जैसे—वह मुकदमा तो अदमपैरवी में खारिज हो गया।

अदमफुरसत—संज्ञा स्त्री० [**फा०**] अवकाश न होना। अनवकाश [को०]।

अदममौजूदगी—संज्ञा स्त्री० [**अ०**] अनुपस्थिति। गैरहाजिरी [को०]।

अदमवसूली—संज्ञा स्त्री० [**अ०**] मालगुजारी आदि का वसूल न होना।

अदमवाकफीयत—संज्ञा स्त्री० [**अ०**] अनुभवहीनता [को०]।

अदमसबूत—संज्ञा पुं० [**फा०**] किसी मुकदमे में सबूत का न होना। प्रमाण का अभाव।

अदमहाजिरी—संज्ञा स्त्री० [**अ०**] गैरहाजिरी। अनुपस्थिति।

अदम्य—वि० [सं०] जिसका दमन न हो सके। न दबने योग्य **प्रचंड। प्रबल। अजेय।**

अदय—वि० [सं०] १. दयारहित। करुणाशून्य (व्यापार)। २. निर्दयी। निष्ठुर। कठोरहृदय (व्यक्ति) उ०—अनजानी भूलों पर भी वह अदय दंड तो देती है।—पंचवटी, पृ० ७।

अदया—संज्ञा स्त्री० [सं० **अ + दया**] कोप। नाराजी दया का अभाव। उ०—अदया अलह राम की, कुरलै ऊँणी कूब।—कबीर ग्रं०, पृ० २५।

अदरक—संज्ञा पुं० [सं० **आर्द्रक, फा० अदरक**] तीन फुट ऊँचा एक पौधा जिसकी पत्तियाँ लंबी और जड़ या गाँठ तीक्ष्ण और चरपरी होती।

विशेष—यह भारतवर्ष के प्रत्येक गर्म भाग में तथा हिमालय पर ४००० से ५०००फुट तक की ऊँचाई पर होता है। इसकी गाँठ मसाला, चटनी, अचार और दवाओं में काम आती है। यह गर्म और कटु होता है तथा कफ, वात, पित्त और शूल का नाश करती है। अग्निदीपक इसका प्रधान गुण है। गाँठ को जब उबालकर सुखा लेते हैं तब उसे सोंठ कहते हैं।

पर्याय—शृंगवेर, कटुभद्र, कटूत्कट, गुल्ममूल, मूलज, कंदर, वर, महीज, सैकतेष्ट, अनूपज, अपाकशाक, चद्राख्य, राहुच्छत्र, सुशाकक, शार्ङ्ग, आर्द्रशाक, सच्छाक।

अदरकी—संज्ञा स्त्री० [सं० **आर्द्र की**] सोंठ और गुड़ मिलाकर बनाई हुई टिकिया। सोंठौरा।

अदरखⓊ—सं० पुं० [**हि**] दे० 'अदरक'। उ०—हींग हरद मिरिच छौंके तेले। अदरख और आँवले मेले।—सूर०, १०।१०१४।

अदरस[1]Ⓤ—संज्ञा पुं० [**हिं०**] दे० 'अदर्शन'। उ०—भरत हरत दरसत सबहि, पुनि अदरस काहु। तुलसी सुगुरु प्रसाद बल होत परमपद लाहु।—स० सप्तक, पृ० ३४।

अदरस[2]Ⓤ—वि० [**हिं०**] दे० 'अदृश्य'।

अदरा संज्ञा पुं० [**हिं०**] दे० 'आर्द्रा'। उ०—(क) बरसै अदरा के बुँदवा, ठाढ़ि भीजै गुजरी।—प्रेमघन०, भाग २. पृ० ३४०। (ख) अदरा माहि जो बोवउ साठी। दुख के मार निकालउ लाठी।—घाघ०, पृ० १२२।

अदराना[1]—क्रि० अ० [सं० **आदर**] बहुत आदर पाने से शेखी पर चढ़ना। फूलना। इतराना। आदर या मान चाहना। जैसे—वे आजकल अदराए हुए हैं, कहने से कोई काम जल्दी नहीं करते (शब्द)।

अदराना[2]—क्रि० स० आदर देकर शेखी पर चढ़ाना। फुलाना। घमंडी बनाना।

अदरु—संज्ञा पुं० [सं० **आदर**] दे० 'आदर'। उ०—राजे बिना बुलाई गति जाऊँ, अदरु नहि होई।—पोद्दार अभि० ग्रं० पृ० ६१७।

अदर्श—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह दिन जिसकी संध्या को चंद्रमा दिखाई न पड़े। २. आदर्श। दर्पण [को०]।

अदर्शन[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. अविद्यमानता। असाक्षात्। २. लोप। विनाश। ३. उपेक्षा [को०]।

क्रि प्र०—करना।—होना।

अदर्शन[2]—वि० अदृश्य। लुप्त [को०]।

अदर्शनीय—वि० [सं०] दर्शन के अयोग्य। जो देखने लायक न हो। **बुरा। कुरूप। भद्दा।**

अदल[1]—संज्ञा पुं० [अ० अदल] न्याय। इंसाफ। उ०—अदल कहौं पुहुमी जस होई। चाटा चलत न दुखवै कोई।—जायसी (शब्द)।

अदल[2]—संज्ञा पुं० [सं०] हिज्जल नाम का एक पौधा [को०]।

अदल[3]—वि० १. बिना दल या पत्ते का। पत्रविहीन। २. बिना फौज का। सेनारहित। ३. भागरहित (को०)।

अदल[4]—वि० [हिं० अ+दल] जो किसी दल में न हो। तटस्थ।

अदल[5](पु)—संज्ञा स्त्री० [सं०अदल=अपर्णा] पार्वती। उ०—अदल-पति-रिपु पिता-पतिनी अब न जैहैं फेर।—सा० लहरी, पृ० ११६।

अदलखाना—संज्ञा पुं० [अ० अदल+फा० खानह्] न्यायालय। कचहरी। उ०—मेरे ही अकेले गुन औगुन बिचारे बिना बदल न जैहै बड़े अदलखाने में।—भिखारी ग्रं०, भाग १, पृ० ७६।

अदलतिहा+—वि० [अ० अदालत+हिं० हा (प्रत्य०)] मुकदमेबाज। मुकदमा लड़नेवाला।

अदल बदल—संज्ञा पुं० [अ० बदल का अनुध्व० अदल] उलट पुलट। हेर फेर। परिवर्तन। उ०—अदल बदल भूषण प्रिया यातैं परत लखाइ नूपुर कटि ढीलो भयो सकसि किंकिनी पाइ।—भिखारी ग्रं०, भा० १, पृ० ४५।

अदला—संज्ञा स्त्री० [सं०] घृतकुमारी नामक पौधा [को०]।

अदलाबदली—संज्ञा स्त्री० [हिं० अदल बदल] १. एक वस्तु लेने के लिये उसके बदले दूसरी वस्तु देना। २. एक चीज के स्थान पर दूसरी चीज रखना।

क्रि प्र०—करना।—होना।

अदली[1](पु)—संज्ञा पुं० [अ० अदल+हिं० ई (प्रत्य०)] न्यायी। इंसाफवर। उ०—कंप कदली में बारि बुंद बदली, सिवराज अदली के राज में यों राजनीति है।—भूषण (शब्द)।

अदली[2](पु)—वि० [सं० अदल] बिना पत्ते का।

अदलीय—वि० [सं० अ+दल+ईय (प्रत्य०)] जो किसी दल का सदस्य न हो। किसी दल से संबंध न रखनेवाला।

अदवान—संज्ञा स्त्री० [सं० अधः=नीचे+दाम=रस्सी अथवा देशी] चारपाई के पैताने की वह रस्सी, जिसे बिनावट को कसी रखने के लिये करधनी के छेदों में से ले जाकर सीरो में तानकर लपेटते हैं। ओनचन।

अदस—संज्ञा पुं० [अ०] मसूर [को०]।

अदह(पु)—वि० [अदाह्य] न जलनेवाला।

अदहन—संज्ञा पुं० [सं० आदहन] खौलता हुआ पानी। आग पर चढ़ा हुआ वह पानी जिसमें दाल, चावल आदि पकाते हैं।

अदह्य—वि० [सं०] न जलने योग्य। जो जल न सके।

अदात—वि० [सं० अदान्त] १. जो इंद्रियों का दमन न कर सके। अजितेंद्रिय। विषयासक्त। २. जो वश में न किया जा सके। दुर्दांत (को०)।

अदाँत(पु)—वि० [सं० अदन्त] बिना दाँत का। जिसे दाँत न आए हों (प्रायः पशुओं के लिये)। उ०—अदाँत बरदै, दो दाँत ब्याय। आप जाय खसमै खाय।—कहावत (शब्द)।

अदा[1]—वि [अ०] चुकता। बेबाक। दिया हुआ। उ०—जान दी, दी हुई उसी की थी। हक तो यह है कि हक अदा न हुआ।—शेर०, भा० १, ४६३।

क्रि० प्र०—करना। जैसे—उसने तुम्हारा सब रुपया अदा कर दिया (शब्द)।—होना। जैसे—तुम्हारा कर्ज अदा हो गया (शब्द)।

मुहा०—अदा करना=पालन करना या पूरा करना। जैसे—सबको अपना फर्ज अदा करना चाहिए। (शब्द)।

यौ०—अदाए जर डिगरी=डिगरी के देने या रुपए को देना। अदाबंदी=किसी रुपए के बेबाक करने या देने के लिये किस्त या समय का नियत करना। किस्तबंदी। अदा या बेबाक करना=सब चुकता कर देना। कौड़ी कौड़ी दे डालना। अदाएमालगुजारी=मालगुजारी का देना। अदाए शहादत=गवाही देना।

अदा[2]—संज्ञा स्त्री० १. भाव। हाव भाव। नखरा। मोहित करने की चेष्टा। उ०—सगरब गरब खिचैं सदा चतुर चितेरे आय। पर बाकी बाँकी अदा नेकु न खींची जाय।—स० सप्तक०, पृ० २६५। २. ढंग। तर्ज। आन। अंदाज। उ०—इस अदा से मुझे सलाम किया। एक ही आन में गुलाम किया।—शेर०, भाग १, पृ० ३६२।

अदाइगी—संज्ञा स्त्री० [को०] दे० 'अदायगी' [को०]।

अदाई[1](पु)—वि० [अ० अदा+हिं ई (प्रत्य०)] १. ढंगी। चालबाज। चतुर। उ०—ऊधौ नैकु निहारो। हम सालोक्य, सरूप, सायुज्यौ रहति समीप सदाई। सो तजि कहत और की औरै, तुम अलि बड़े अदाई।—सूर० १०।३६००।

अदाई[2](पु)—वि० [हिं०अ+दाया] वाम। प्रतिकूल। प्रेमवंचित। उ०—कहहु मोहिं अब बाल सुहाई। केहि अवगुन मोहि कीह्न अदाई।—चित्रा०, पृ० ३०६।

अदाकार—संज्ञा पुं० [हिं० अद+फा० कार] अभिनेता। कलाकार [को०]।

अदाग(पु)—वि० [हिं० अ=नहीं+अ० दाग=धब्बा] १. बेदाग। निर्मल। स्वच्छ। साफ। उ०—ज्ञान को भूषन ध्यान है, ध्यान को भूषन त्याग। त्याग को भूषन शांतिपद तुलसी अमल अदाग।—तुलसी (शब्द)। २. निष्कलंक। निर्दोष। ३. पवित्र। शुद्ध।

अदागी(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अदाग'।

अदाता[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. न देनेवाला व्यक्ति। कृपण। कंजूस। २. विवाह में (कन्या) न देनेवाला व्यक्ति को (को०)। ३. वह व्यक्ति जिसे किसी का कुछ देय न हो (को०)।

अदाता[2]—वि० न देनेवाला। कंजूस।

अदान[1](पु)—संज्ञा पुं०[सं० अ+दान] १. अदाता। न देनेवाला व्यक्ति। कंजूस। कृपण। उ०—हरि को मिलन सुदामा आयो। पूरब जन्म अदान जानिकै ताते कछू मँगायो। मूठिक तंदुल बाँधि कृष्ण को बनिता बिनय पठायो।—सूर (शब्द)। २. वह हाथी जिसका दान अर्थात् मद स्रवित न होता हो (को०)।

अदान[2]—वि० [सं० अ=नहीं+फा० दानह=जानकार] अजान। नादान। नासमझ। उ०—ये अदान जानती नहीं, कछु पालेहु भूल बिसारी।—रघुराज (शब्द०)।

अदानियाँ(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अदानी'। उ०—(क) ठाकुर कहत ये अदानियाँ अबूझ भोंदू भाजन अजस के वृथा ही उपजाए तैं। —ठाकुर श०, पृ० २७। (ख) ठाकुर कहत हम बैरी बेवकूफन के जालिम दमाद हैं,अदानियाँ ससुर के।—इतिहास,पृ०३८२।

अदानी(पु)—वि० [सं० अ+दानिन्] जो दान न दे। कंजूस। सूम। कृपण। उ०—श्रवण नैन कोनहीं लौं आँसु को निवास होत जैसे सोन भौन कोन राखत अदानी है।—रघुराज (शब्द०)।

अदाब(पु)—संज्ञा पुं० [अ० आदाब] दे० 'आदाब'। उ०—अदब आदाब सलाम जो करई।—दरिया बानी०, पृ० ४०।

अदाय—वि० [सं०] दाय या हिस्सा पाने का अनधिकारी [को०]।

अदायगी—संज्ञा स्त्री० [फा० अदाइगी] १. चुकता करना। भुगतान करना। २. पद्धति। तर्ज। प्रणाली। उ०—सिर्फ अदायगी अँगरेजी है।—गीतिका (भू०) पृ० ५।

अदायाँ(पु)—वि० [हिं० अ+दायाँ=दक्षिण, दाहिना] वाम। प्रतिकूल। बुरा। उ०—परिया नवमी पूर्व न भाए। दूइज दसमी उतर अदाएँ।—जायसी (शब्द०)।

अदाया(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० अ+दया] दया का अभाव। निष्ठुरता। अकृपा। उ०—साहस, अनृत चपलता माया। भय अबिबेक असौच अदाया।—मानस, ६।१६।

अदायाद—वि० [सं०] १. जो सपिंड न हो। २. उत्तराधिकार रहित [को०]।

अदायिक—वि० [सं०] १. दाय या उत्तराधिकार से संबंध न रखनेवाला। २ जिसका कोई उत्तराधिकारी न हो। लावारिस [को०]।

अदार—वि० [सं०] पत्नीरहित। विधुर। रँडुआ [को०]।

अदारिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का पौधा [को०]।

अदालत—संज्ञा स्त्री० [अ०] न्यायालय। वह स्थान जहाँ बैठकर न्यायाधीश स्वत्व संबंधी झगड़ों पर विचार करता है।

विशेष—आजकल इसके दो प्रधान विभाग हैं—(१) फौजदारी और (२) दीवानी। माल विभाग को दीवानी के अंतर्गत ही समझना चाहिए।

यौ०—**अदालत अपील**=वह अदालत जहाँ किसी मातहत अदालत के फैसले की अपील हो। **अदालत खफीफा**=एक प्रकार की दीवानी अदालत जिसमें छोटे छोटे मुकदमे लिए जाते हैं। **अदालत दीवानी**=वह अदालत जिसमें संपत्ति या स्वत्व संबंधी बातों का निर्णय होता है। **अदालत मराफाऊला**=वह अदालत जिसमें पहले पहल दीवानी मुकदमा दायर किया जाय। **अदालत मराफासानी**=वहअदालत जिसमें अदालत मराफाऊल की अपील हो। **अदालत मातहत**=जिसके फैसले की अपील उसके ऊपर की अदालत में हुई हो। **अदालत माल**=वह अदालत, जिसमें मालगुजारी वा लगान संबंधी मुकदमे दायर किए जाते हैं।

मुहा०—**अदालत करना**=मुकदमा लड़ना। **अदालत होना**=अभियोग चलना।

अदालती—वि० [अ० अदालत+हिं० ई० (प्रत्य०)] १. अदालत विषयक। न्यायालय संबंधी। २. जो अदालत करे। मुकदमा लड़नेवाला।

अदावँ(पु)—संज्ञा पुं०—[सं० अ० बुरा+हिं० दावँ] बुरा दाँवपेंच। असमंजस। कठिनाई। उ०—वह ऐसा अदावँ परचो या घरी घरहाइन के परि पुंजन में। मिस कोउ न आनि चढ़े चितवैं इनकी बतियाँन की गुंजन में।—राम (शब्द०)।

अदावत—संज्ञा स्त्री० [अ०] शत्रुता। दुश्मनी। लाग। बैर। विरोध। उ०—कीजे हमारे साथ अदावत ही क्यों न हो। —शेर० भाग १, पृ० ५२१।

क्रि० प्र०—करना।—रखना।—निकालना।—होना।

अदावती—वि० [अ० अदावत+हिं० ई (प्रत्य०)] जो अदावत रखे। कसरी। जो लाग रखे। २. विरोधजन्य। द्वेषमूलक।

अदास—वि० [सं०] जो दास या परतंत्र न हो। स्वाधीन [को०]।

अदाह[1](पु)—संज्ञा स्त्री० [अ० अदा] हाव भाव। नखरा। आन। मोहित करने की चेष्टा। उ०—एतो सरूप दियो तो दियो पर एती अदाह तैं आनि धरी क्यों। एती अदाह धरी तो धरी पर ये अखियाँ रिझवारि करी क्यों।—(शब्द०)।

अदाह[2](पु)—वि० [सं० अदाह] दाहरहित। जिसमें ताप या जलन न हो। उ०—कहा होइ ज्यो त्री दुख तापा। सूखे जी अदाह औ झापा।—इंद्रा०, पृ० १५१।

अदाहक—वि० [सं०] न जलानेवाला। जिसमें जलाने या भस्म करने का गुण न हो जैसे—जल।

अदाह्य—[सं०] १. जो जलने योग्य न हो। २. जो चिता पर जलाने योग्य न हो। ३. आत्मा और परमात्मा का विशेषण [को०]।

अदिक्—वि० [सं०] दिशाओं से परे। दिशारहित। उ०—तुम ही घर आए हो यह जग जंजाल रूप। पर तुम हो चिर अकाल, नित्य अदिक्, हे अनूप।—क्वासि, पृ० ९१।

अदिढ़(पु)—वि० दे० 'अदृढ़'। उ०—कछु मन दिढ़ कछु अदिढ़ लहीये, प्रौढ़ा धीराधीरा कहिये।—नंद० ग्रं०, पृ० १४८।

अदित(पु)—संज्ञा पुं० [सं० आदित्य] दे० 'आदित्य'।

अदिति[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. प्रकृति। २. पृथ्वी। ३. दक्ष प्रजापति की कन्या और कश्यप ऋषि की पत्नी।

विशेष—इनसे सूर्य आदि तैंतीस देवता उत्पन्न हुए थे। ये देवताओं की माता कहलाती हैं।

४. असीमता। ५. निर्धनता। ६. स्वतंत्रता। ७. सुरक्षा। ८. पूर्णता। ९. पुनर्वसु नक्षत्र। १०. गाय। ११. वाणी। १२. उत्पन्न करने की शक्ति। १३. दूध। १४. माता। १५. द्युलोक। १६. अंतरिक्ष।

अदिति[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १. ईश्वर का एक विशेषण। २. प्रजापति। ३. देवताओं का विश्वदेवा नामक गण। ४. काल। ५. मृत्यु [को०]।

अदितिज—संज्ञा पुं० [सं०] १. देवता। २. आदित्य। सूर्य [को०]।

अदितिनंदन—संज्ञा पुं० [सं० अदितिनन्दन] दे० 'अदितिज' [को०]।

अदितिसुत—संज्ञा पुं० [सं०] १. देवता। २. सूर्य।

अदिन—संज्ञा पुं० [सं०] बुरा दिन। कुदिन। कुसमय। संकट या दुख का समय। अभाग्य। उ०—यों कही बार बार पाँयनि परि पाँवरि पुलकि लई है। अपनो अदिन देखि हों डरपत जेहि विष बेलि बई है।—तुलसी ग्रं०, पृ० ३५९।

अदिव्य¹—वि० [सं०] १. लौकिक। साधारण। सामान्य। २. स्थूल जिसका ज्ञान इंद्रियों द्वारा हो।

अदिव्य²—संज्ञा पुं० तीन प्रकार के नायकों में से एक। वह नायक जो लौकिक हो। मनुष्य नायक। जैसे—मालती माधव नाटक में माधव।

अदिव्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] तीन प्रकार की नायिकाओं में से एक। वह नायिका जो लौकिक हो। जैसे—मालती माधव में मालती।

अदिष्ट¹(पु)—संज्ञा पुं० [सं० **अ + दिष्ट = भाग्य**] अभाग्य। उ०—कन्या एक जु पाछैं भई। सु पुनि अदिष्ट लई उड़ि गई।—नंद० ग्रं०, २३६।

अदिष्ट²(पु)—वि० [सं० **अदृष्ट**] दे० 'अदृष्ट'।

अदिष्टी(पु)—वि० [सं० **अ = नहीं + दिष्ट = भाग्य**] १. अभागा। बदकिस्मत। २. अदूरदर्शी। मूर्ख। अविचारी। दुष्ट।

अदिस्ट(पु)—वि० दे० 'अदृष्ट¹'। उ०—पेम अदिस्ट गगन तें ऊँचा। ज्ञान दिस्टि सौं जाइ पहूँचा।—जायसी ग्रं०, पृ० १२२।

अदिस्स(पु)—वि० [सं० **अदृश्य**, प्रा० **अदिस्स**] लुप्त। गायब। ओझल। उ०—भूरततिप्रताप रिपु रन अदिस्स।—पद्माकर ग्रं०, पृ० २७८।

अदीक्षित—वि० [सं०] जिसने दीक्षा न ली हो। जो दीक्षित न हो [को०]।

अदीठ(पु)—वि० [सं० **अदृष्ट** प्रा० **अदिट्ठ**] बिना देखा हुआ। अप्रत्यक्ष। अनदेख। गुप्त। छिपा हुआ। उ०—इस मन कौं बिसमल करौं दीठा करौं अदीठ।—कबीर ग्रं०, पृ०, २८।

अदीत(पु)—पु० [सं० **आदित्य**] दे० 'आदित्य'। उ०—मोह महातम रहतु है, जो लौं ज्ञान न होत। कहा महातम रहि सकै भए अदीत उदोत।—स० सप्तक, पृ० ३५६।

अदीदा(पु)—वि० [सं० **अ + फा० दीदह**] बिना आँख का। नेत्ररहित। उ०—दादू देखा अदीदा। सब कोई कहत सुनीदा।—घट०, पृ० १६८।

अदीठा—(पु)वि० [सं० **अदृष्ट**] जिसे देखा न गया हो। उ०—मारवणी कह कारणइ देस अदीठा दिट्ठ।—ढोला०, पृ० १२५।

अदीन—वि [सं०] [स्त्री० **अदीना**] १. दीनतारहित। अनम्र। उग्र। अविनीत प्रचंड। निडर। २. उच्चाशय। ऊँची तबीयत का। उदार। उ०—निठुर, ठुकराओ न मेरी इस अदीना याचना को।—क्वासि, पृ० ५०।

यौ०—अदीनात्मा = जो प्रकृत्या अदीन हो।

अदीनवृत्ति—वि० [सं०] जो प्रकृया दीन न हो। तेजस्वी [को०]।

अदीनसत्व—वि० [सं० **अदीनसत्त्व**] दे० 'अदीनवृत्ति' [को०]।

अदीनात्मा—वि० [सं०] दे० 'अदीनवृत्ति' [को०]।

अदीपित—वि० [सं०] अप्रकाशित [को०]।

अदीब¹—वि० [अ०] १. अदब सिखानेवाला। २. सुशील [को०]।

अदीब²—संज्ञा पुं० साहित्य और विद्या का ज्ञाता [को०]।

अदीयमान—वि० [सं०] जो न दिया जाय। उ०—अदीयमान दुःख सुख दीयमान जानिए।—केशव (शब्द०)।

अदीर्घ—वि० [सं०] जो बड़ा न हो। छोटा। सूक्ष्म [को०]।

अदीर्घसूत्री—वि० [सं०] १. काम करने में विलंब न करनेवाला। २. आलस्य न करनेवाला ३. स्फूर्तिवाला [को०]।

अदीर्घसूत्री—वि० [सं०] दे० 'अदीर्घसूत्री' [को०]।

अदीह(पु)—वि० [सं० **अ = नहीं + दीर्घ**; पा० **दीर्घ**; प्रा० **दीह**] दे० 'अदीर्घ'। उ०—राधिका रूप विधान के पानिन आनि सबै छिति की छबि छाई। दीह अदीहन सूछम थूल गहै दृग गोरी की दौरि गोराई।—केशव (को०)।

अदुंद(पु)—वि० [सं० **अद्वंद्व**, प्रा० **अदुंद**] १. द्वंद्वरहित। निर्द्वंद्व। बिना झंझट का। बाधारहित। २. शांत। निश्चित। ३. बेजोड़। अद्वितीय। उ०—यौवन बनक प्रै कनक बसुधाधर सुधाधर बदन मधुराधर अदुंद री। (शब्द०)।

अदुःख—वि० [सं०] जो दुःखी न हो। दुःख से रहित [को०]।

अदुःखनवमी—संज्ञा स्त्री० [सं०] भाद्रपद के शुक्ल पक्ष की नवमी तिथि [को०]।

विशेष—इस दिन दुःख निवारण के लिये स्त्रियाँ देवी की पूजा करती हैं।

अदुइत(पु)—वि० [सं० **अद्वैत**] दे० 'अद्वैत'। उ०—अदुइत ब्रह्म बिराग मत ब्रह्मज्ञान निर्लेप।—सं० दरिया, पृ० ४०।

अदुग्ध—वि० [सं०] १. दुग्धरहित। २. न दुही हुई [को०]।

अदुर्ग—वि० [सं०] १. दुर्गरहित। २. दुर्गम न हो [को०]।

अदुर्गविषय—संज्ञा पुं० [सं०] वह देश जिसमें किले का अभाव हो [को०]।

अदुष्ट—वि० [सं०] १. दूषणरहित। निर्दोष। शुद्ध। ठीक। यथार्थ। वास्तविक। उ०—सो स्लेष मुद्रालंकार करिकै बारह, लरचत को नाम आन्यो चाहो तातें सब अदुष्ट हैं।—भिखारीग्रं० भा० २, पृ० २४०। २. सज्जन। भला।

अदू—संज्ञा पुं० [सं०] शत्रु। बैरी। दुश्मन। उ०—दोस्तों के लिये शादी हो अदू के लिये गम हो।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २. पृ० ७४७।

अदूजा—वि० दे० 'अद्वितीय' [को०]।

अदूर¹—क्रि० वि० [सं०] समीप। निकट। पास।

अदूर²—वि० पास का। समीपी [को०]।

अदूर³—संज्ञा पुं० सामीप्य [को०]।

अदूरदर्शी—वि० [सं०] जो दूर तक न सोचे। अनग्रसोची। जो दूर के परिणाम का विचार न करे। अविचारी। स्थूलबुद्धि। नासमझ।

अदूरदरसी(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अदूरदर्शी'। उ०—हेरत हिरायेसे परसपर सचित्य चूर, पारथ औ सारथी अदूरदरसीनि लौं।—रत्नाकर, भा० २, पृ० १४३।

अदूषण—वि० [सं०] दूषणरहित। निर्दोष। बेऐब। शुद्ध। स्वच्छ। अच्छा।

अदूषन(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अदूषण'। उ०—मनहु मारि मनसिज पुरारि दिय ससिहि चापसर मकर अदूषन।—तुलसी ग्रं०, पृ० ४१४।

अदूषित—वि० [सं०] जिसपर दोष न लगा हो। निर्दोष। शुद्ध। उ० वह पूर्णतया अदूषित और निर्विकार है।—कबीर ग्रं० पृ०३।

अदूषितधी—वि०[सं०] जिसकी बुद्धि भ्रष्ट न हुई हो। शुद्ध बुद्धिवाला पवित्रात्मा। [कौ०]।

अदृढ़—वि० [सं० अ + दृढ] १. जो दृढ़ न हो। कमजोर। अस्थिर। चंचल।

यौ०—अदृढ़चित्त।

अदृप्त—वि० [सं०] दर्प या अभिमानशून्य। निरभिमान। सीधा सादा। सौम्य।

अदृश्य—वि० [सं०] १. जो दिखाई न दे। अलख। २. जिसका ज्ञान पाँच इंद्रियों को न हो। अगोचर। परोक्ष। लुप्त। गायब। अंतर्धान।

क्रि० प्र०—करना। —होना। उ०—लक्ष्मण तुरत अदृश्य उसी में हो गए।—कानन०, पृ० १०१।

अदृष्ट[1]—वि० [सं०] १—न देखा हुआ। अलक्षित। अनदेखा। २—लुप्त। अंतर्धान। तिरोहित। गायब। ओझल। उ०—यह कहिकै भागीरथी केशव भई अदृष्ट।—राम चं०, पृ० ६३।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

अदृष्ट[2]—संज्ञा पुं० १ भाग्य। प्रारब्ध। किसमत। भावी। जन्मांतर का संस्कार। उ०—(क) केशव अदृष्ट साथ जीव जोति जैसी, तैसी लंकनाथ हाथ परी छाया जाया राम की।—रामचं०, पृ० ७५। (ख) लिखता अदृष्ट था विधाता वाम कर से।—लहर, पृ० ५३। २. अग्नि और जल आदि से उत्पन्न आपत्ति। जैसे—आग लगना, बाढ़ आना, तूफान आना।

अदृष्टकर्मा—वि० [सं० अदृष्टकर्मन्] जिसे काम करने का अभ्यास न हो। कार्य संबंधी अनुभव से रहित [कौ०]।

अदृष्टगति—वि० [सं०] १. जिसकी चाल लखी न जाय। जो चुपचाप कार्य करे। उ०—सहज सुवास सरीर की आकरषन विधि जानु। अति अदृष्टगति दूतिका, इष्ट देवता मानु।—केशव ग्रं०, भा० १, पृ० २६२। २. चालबाज। कूटनीतिपरायण।

अदृष्टनर—संज्ञा पुं० [सं०] वह संधि जिसे मध्यस्थ के बिना ही दोनों पक्ष स्वीकार कर लें [कौ०]।

अदृष्टनरसंधि—संज्ञा स्त्री० [सं० अदृष्टनरसन्धि] वह संधि जो दूसरे के साथ इस आशय से किया जाय कि वह किसी तीसरे से कोई काम सिद्ध करा देगा।

अदृष्टपुरुष—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अदृष्टनर' [कौ०]।

अदृष्टपूर्व—वि० [सं०] १. जो पहले न देखा गया हो। २. अद्भुत। विलक्षण।

अदृष्टफल[1]—वि० [सं०] अज्ञात फलवाला। जिसका फल न ज्ञात हो [कौ०]।

अदृष्टफल[2]—संज्ञा पुं० पुण्य अथवा पाप का भविष्य में उपलब्ध होनेवाला फल [कौ०]।

अदृष्टरूप[1]—वि० [सं०] अदृश्य आकारवाला। [कौ०]।

अदृष्टरूप[2]—संज्ञा पुं० वह रूप जो दृष्टिगोचर न हो [कौ०]।

अदृष्टलिपि—संज्ञा स्त्री० [सं० अदृष्ट + लिपि] भाग्यलिपि। भाग्य की रेखा। उ०—लोगों की अदृष्ट लिपि लिखी-पढ़ी जाती थी।—लहर, पृ० ७६।

अदृष्टवाद—वह सिद्धांत जिसके अनुसार परलोक आदि परोक्ष बातों पर किसी प्रकार का तर्क वितर्क किए बिना केवल शास्त्रलेख के आधार पर विश्वास किया जाय। प्रारब्धवाद। नियतिवाद।

अदृष्टवादी—वि० [सं०] अदृष्टवाद को माननेवाला। भाग्यवादी। उ०—आप बड़े अदृष्टवादी हैं।—आँधी, पृ० १८।

अदृष्टाकाश—संज्ञा पुं० [सं० अदृष्ट + आकाश] भाग्यरूपी आकाश। उ०—मुगल अदृष्टाकाश मध्य अति तेज से धूमकेतु से सूर्यमल्ल समुदित हुए।—कानन०, पृ० १०८।

अदृष्टाक्षर—संज्ञा पुं० [सं०] ऐसी युक्ति से लिखे अक्षर जो बिना किसी विशिष्ट क्रिया के न पढ़े जाएँ।

विशेष—ऐसे अक्षर प्रायः प्याज, नीबू आदि के रस से लिखे जाते हैं और सूखने पर दिखाई नहीं पड़ते। विशेषतः आँच पर रखने से उभड़ आते और पढ़े जाते हैं।

अदृष्टार्थ[1]—संज्ञा पुं० [सं०] न्यायदर्शन के अनुसार वह शब्दप्रमाण जिसके वाच्य या अर्थ का साक्षात् इस संसार में न हो। जैसे—स्वर्ग, मोक्ष, परमात्मा, आदि।

अदृष्टार्थ[2]—वि० आध्यात्मिक या गूढ़ अर्थ का द्योतक। जिसका विषय इंद्रियों के ज्ञान से परे हो [कौ०]।

अदृष्टि[1]—वि० [सं०] दृष्टिहीन। अंधा [कौ०]।

अदृष्टि[2]—संज्ञा स्त्री० १. दिखाई न पड़ने की स्थिति। २. क्रोध दुर्भाव आदि से युक्त दृष्टि। कुदृष्टि [कौ०]।

अदृष्टि[3]—संज्ञा पुं० शिष्यों के तीन भेदों में से एक। मध्यम अधिकारी शिष्य।

अदृष्टिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अदृष्ट' [कौ०]।

अदेख(पु)—वि० [सं० अ = नहीं + हिं० < देख] १. जो न देखा जाय। अदृश्य। गुप्त। २. न देखा हुआ। अदृष्ट। उ०—(क) ऊहै अदेख केहू नहिं देखा, कवन फल दहुँ पाय।—जग० बानी, पृ० १०६। (ख) देखेउ करइ अदेख इव अनदेखेउ बिसुआस।—स० सप्तक, पृ० २८।

अदेखी[1]—वि० [अ = नहीं + देखी] जो न देख सके। डाही। द्वेषी। ईर्षालु। उ०—ए दई, ऐसो कछू करु ज्यौं जु देखें अदेखिन के दृग दागै। जामें निसंक ह्वै मोहन को भरिए निज अंक कलंक न लागै।—पद्माकर ग्रं०, पृ० ६७।

अदेखी[2]—वि० स्त्री० बिना देखी हुई।

अदेखे—क्रि० वि० [हिं०] बिना देखे। अनदेखे। उ०—अदेखे अकेले किते दिन ह्वै गए चाह गई चित सों कढ़ि सोऊ।—ठाकुर०, पृ० ७।

अदेय—वि० [सं०] १. न देने योग्य। जिसे न दे सकें। उ०—सकुच बिहाइ माँगु नृप मोही। मोरे नहिं अदेय कछु तोही।—मानस, १।१४६। २. (वह पदार्थ) जिसे देने को कोई बाध्य न किया जा सके।

विशेष—नारद के अनुसार अन्वाहित, याचितक, रोग में प्रतिजात, सामान्य पदार्थ, स्त्री, पुत्र, परिवार होने पर सवस्व तथा निक्षेप, ये आठ पदार्थ नहीं देने चाहिए। इनको प्रतिज्ञा कर चुकने पर भी न दे। ऐसा करने पर वह राज्यापराधी समझा जाएगा। (नारद स्मृ० ४।४–५)। दक्ष के मत से स्त्री की संपत्ति को भी अदेय समझना चाहिए। मनु ने लिखा है कि जो लोग अदेय को ग्रहण करते हैं, या दूसरे व्यक्ति को देते हैं, उनको चोर के सदृश ही समझना चाहिए। यही बात नारद ने भी पुष्ट की है (ना० स्मृ० ४–१२)। याज्ञवल्क्य ने कहा है कि स्त्री पुत्र को छोड़कर अन्य पदार्थों को परिवार की आज्ञा से दे सकता है। या० स्मृति २–१७५। इसी के सदृश वशिष्ट का मत है कि इकलौते पुत्र को न कोई दे सकता है न ले सकता है (व० स्मृ० १५,३-४)। वशिष्ठ को ही कात्यायन भी पुष्ट करता है। वह लिखता है कि स्त्री पुत्र पर मिलकियत शासन के मामले में है, न कि दान के मामले में।

अदेयदान—संज्ञा पुं० [सं०] न देने योग्य दान। अवैध दान। अविहित दान [को०]।

अदेव[1]—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० अदेवी] १. वह जो देवता न हो। २. राक्षस। दैत्य। असुर। ३. जैनियों के अनुसार तीर्थंकरों या जैनियों के देवताओं के अतिरिक्त अन्य देवता।

अदेव[2]—वि० १. जो देव संबंधी न हो। २. अनीश्वरवादी। ३. अधार्मिक। ४. अपवित्र अशुद्ध [को०]।

अदेवक—वि० [सं०] जो देवता के लिये न हो [को०]।

अदेवता—संज्ञा पुं० [सं० अ+देवता] राक्षस। दैत्य। अदेव। उ०—देवता अदेवता नृदेवता जिते जहान।—राम चं०, पृ० ७५।

अदेवमातृक—वि० [सं०] १. जहाँ मेघ वृष्टि न करे। २. वर्षा के अभाव में अन्य साधनों से सींचा हुआ [को०]।

अदेश—संज्ञा पुं० [सं०] १. अनुपयुक्त स्थान या देश। २ बुरा देश [को०]।

विशेष—स्मृतियों में म्लेच्छ,आनर्तक,अंग,मगध,सुराष्ट्र, दक्षिणापथ, बंग, कलिंग, आदि निंदित देश कहे गए हैं।

अदेश्य—वि० [सं०] १. जो उपयुक्त स्थल या अवसर से संबद्ध न हो। २. जिसका निर्देश करना उचित न हो [को०]।

अदेस[1]Ⓟ—संज्ञा पुं० [सं० आदेश] १. आज्ञा। शिक्षा। उ०—(क) सिंघल द्वीप जाब हम माता देहु अदेश।—जायसी ग्रं०, पृ० ११। २. प्रणाम। दंडवत। उ०—(ख) औ महेस कहँ करौं अदेसू। जेइ यह पंथ दीन्ह उपदेसू।—जायसी ग्रं०, पृ० ११२।

अदेस[2]Ⓟ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अंदेशा'। उ०—मिलतहु महँ जनु अहौ निनारे। तुम्ह सौं अहै अदेस पियारे।—जायसी ग्रं०, पृ० ३७।

अदेह[1]—वि० [सं०] बिना शरीर का। उ०—आप अदेह पुरुष रह जहवाँ, नर को रूप प्रगट भए तहवाँ।—कबीर सा०, पृ० ७१।

अदेह[2]—संज्ञा पुं० कामदेव। उ०—द्वार लागि जाती फेरि ईठि ठहराती बोलै औरनि रिसाती माती आसव अदेह की।—भिखारी ग्रं०, भा० १, पृ० १४०।

अद्रेश्य—वि० [सं०] अदृश्य [को०]

अदैन्य[1]—वि० [सं०] दैन्यरहित। जिसमें दीनता न हो [को०]।

अदैन्य[2]—संज्ञा पुं० दीनता का अभाव [को०]।

अदैव—वि० [सं०] १. जो देवता अथवा देवकार्य से संबंद्ध न हो। २. जो भाग्य या दैव द्वारा पूर्वनिर्धारित न हो। ३. अभागा। बुरे भाग्यवाला [को०]।

अदैवी—वि० [सं०] दे० 'अदैव' [को०]।

अदोखⓅ—वि० [हिं०] दे० 'अदोष'।

अदोखिलⓅ—वि० [हिं० अदोख+इल (प्रत्य०)] निर्दोष। बेऐब। अकलंक। उ०—टुनहाई सब टोल मैं, रही जु सौति कहाइ। सु तैं ऐचि प्यौ आपु त्यौं फरी अदोखिल आइ।—बिहारी ३४८ र०, दो०।

अदोग्धा—वि० [सं० अदोग्धृ] शोषण न करनेवाला। विचारवान्[को०]।

अदोष—वि० [सं०] १. निर्दोष। दूषणहीन। निष्कलंक। बेऐब। उ०—छंद बस तें चरनांतर गत पद औ लोकोक्ति बस तें अपुष्टार्थ अदोष है।—भिखारी ग्रं० भा २ पृ० २३६।२. निरपराध। पापरहित। उ०—अदोष तेरो सुत मातु सोहै। सो कौन माया इनको न मोहै।—राम चं० पृ० ६३।

अदोसⓅ—वि० [हिं०] दे० 'अदोष'।

अदोह—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह समय जो दुहने के लिए उपयुक्त न हो। २. न दुहना (को०)।

अदौरी—संज्ञा स्त्री० [सं० ऋद्ध, प्रा० हिं० उद्द, उद, अद+सं० बटी, हिं० बरी] केवल उर्द की सुखाई हुई बरी।

अद्ध—संज्ञा पुं० [सं०] पुरोडास [को०]।

अद्धⓅ—वि० [स० अर्द्ध, प्रा० अद्ध] दे० 'अर्द्ध'।

अद्धरज—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अध्वर्यु'।

अद्धा[1]—संज्ञा पुं० [सं० अर्द्धक, प्रा० अद्धअ, हिं० अद्धा] १. किसीवस्तु का आधा भाग या मान। २. वह बोतल जो पूरी बोतल की आधी हो। ३. आधी बोतल शराब। ४. किसी भी रसीद, टिकट या वस्तु का आधा भाग। ५. आधी ईंट का टुकड़ा। ६. प्रत्येक घंटे के मध्य में बजनेवाला घंटा। ७. चार मात्राओं का एक ताल।

विशेष—यह कौआली का आधा होता है। इसमें तीन आघात और एक खाली होता है। यथा—

\+ \+ \+

धिन धिन ता, ता धिन ताना, तिरता ता धिन ता। धा। ८. एक छोटी सी नाव।

यौ०—अद्धाखलासी=जहाज पर का साधारण मल्लाह।

अद्धा[2]—क्रि० वि० [स०] साक्षात्। तत्वतः। प्रत्यक्ष। वस्तुतः।

अद्धामिश्रितवचन—संज्ञा पुं० [सं०] जैन मत के अनुसार काल संबंधी मिथ्या भाषण। जैसे, सूर्योदय के पहले कहे कि दो घड़ी दिन चढ़ आया।

अद्धी—संज्ञा स्त्री० [सं० अर्द्ध] १. दमड़ी का आधा। एक पैसे का सोलहवाँ भाग। इसका हिसाब कौड़ियों से होता था। २. एक कपड़ा। बहुत बारीक और चिकनी तंजेब या नैनसुख

जिसके थान की लंबाई साधारण तंजेब या नैनसुख के थान की आधी होती है।

अद्भुत[1]—वि० [सं०] [संज्ञा अद्भुतता, अद्भुतत्व] आश्चर्यजनक। विस्मयकारक। विलक्षण। विचित्र। अनोखा। अजीब। अपूर्व। अलौकिक।

अद्भुत[2]—संज्ञा पुं० १. आश्चर्य। विस्मय (को०)। २. विस्मयपूर्ण घटना, पदार्थ या वस्तु (को०)। ३. किसी ऊँचाई की माप के ५ समभागों में से एक, जिसमें ऊँचाई चौड़ाई की अपेक्षा दूनी होती है (को०)। ४. काव्य के नौ रसों में से एक।

विशेष—इसमें अनिवार्यतः विस्मय की परिपुष्टता दिखलाई जाती है। इसका वर्ण पीत, देवता ब्रह्मा, आलंबन असंभावित वस्तु, उद्दीपन उसके गुणों की महिमा तथा अनुभाव संभ्रमादिक हैं। ५. केशव के अनुसार रूपक के तीन भेदों में एक।

विशेष—इसमें किसी वस्तु का अलौकिक रूप से एक रस होना दिखलाया जाता है। जैसे—सोभा सरवर माहिं फूलोई सखि, राजैं राजहंसिनी समीप सुखदानिऐ। केसोदास आस पास सौरभ के लोभ घने, आननि के देव और भ्रमत बखानिऐ। होति ज्योति दिन दूनी निसी में सहस गुनी, सूरज सुहृद चारु चंद मन मानिऐ। रति को सदन छूइ सके न मदन ऐसो कोमलबदन जग जानकी को जानिऐ।—केशव ग्रं०, भा० १, पृ० १८४।

अद्भुतकर्मा—वि० [सं० अद्भुतकर्मन्] आश्चर्यजनक काम करनेवाला उ०—और सब लोग इनको अद्भुतकर्मा कहते हैं।—रसक०, पृ० ४२।

अद्भुतता—संज्ञा स्त्री० [सं०] विचित्रता। विलक्षणता। अनोखापन।

अद्भुतत्व—संज्ञा पुं० [सं०] विचित्रता। अनोखापन। उ०—चमत्कार से हमारा अभिप्राय यहाँ प्रस्तुत वस्तु के अद्भुतत्व या वैलक्षण्य से नहीं।—रस० पृ० ३३।

अद्भुतदर्शन—वि० [सं०] जो देखने में अद्भुत या विचित्र लगे। विलक्षण।

अद्भुतधर्म—संज्ञा पुं० [सं०] बौद्धों के नव अंगों में से एक [को०]।

अद्भुतब्राह्मण—संज्ञा पुं० [सं०] सामवेद के एक ब्राह्मण का अंश [को०]।

अद्भुतरस—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अद्भुत'। उ०—जाको थाई आचरज सो अद्भुतरस गाव।—पद्माकर ग्रं० पृ० २३०।

अद्भुतरामायण—संज्ञा पुं० [सं०] एक रामायण जिसकी रचना का श्रेय वाल्मीकि को दिया जाता है [को०]।

अद्भुतसार—सं० पुं० [सं०] खदिर वृक्ष का फल [को०]।

अद्भुतस्वन[1]—वि० [सं०] विचित्र स्वरवाला [को०]।

अद्भुतस्वन[2]—संज्ञा पुं० शिव का एक नाम [को०]।

अद्भुतालय—संज्ञा पुं० [सं०] वह स्थान जहाँ संसार के अद्भुत पदार्थ दिखलाने के लिये रखे जाते हैं। अजायबघर।

अद्भुतोपमा—संज्ञा स्त्री० [सं०] उपमा अलंकार का एक भेद।

विशेष—इसमें उपमा के ऐसे गुणों का उल्लेख किया जाता है, जिनका होना उपमेय में त्रिकाल में भी संभव न हो। जैसे—प्रीतम को अपमाननि गान सयाननि रीझि रिझावै। बंक बिलोकनि बोलि अमोलनि बोलि के केशव मोद बढ़ावै। हावइ भाव विभाव प्रभाव सुभाव के भाइनि चित्त चुरावै। ऐसे बिलास जु होहिं सरोज मैं तो उपमा मुख तेरे की पावै।—केशव ग्रं०, भा० १, पृ० १८६।

अद्मनि[1]—संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि [को०]।

अद्मर—वि० [सं०] अत्यधिक खानेवाला। पेटू [को०]।

अद्य[1]—क्रि० वि० [सं०] अब। अभी। आज।

अद्य[2]—संज्ञा पुं० खाद्य पदार्थ। आहार [को०]।

अद्य[3]—वि० खाने योग्य। भोज्य [को०]।

अद्यतन—वि [सं०] [वि० अद्यतनीय] आज के दिन का। वर्तमान।

अद्यतन[1]—संज्ञा पुं० बीती हुई आधी रात से लेकर आनेवाली आधी रात तक का समय। कोई कोई बीती हुई रात के शेष प्रहर से लेकर आनेवाली रात के पहले प्रहर तक के समय को अद्यतन कहते हैं।

अद्यतनीय—वि० [सं०] आज का। आधुनिक युग का [को०]।

अद्यदिन—अव्य० [सं०] आज का दिन [को०]।

अद्यदिवस—अव्य० [पुं०] दे० 'अद्यदिन' [को०]।

अद्यपूर्व—अव्य० [सं० अद्यपूर्वम्] अब अथवा आज से पहले [को०]।

अद्यप्रभृति—क्रि० वि० [सं०] आज से। अब से।

अद्यश्वीन—वि० [सं०] आज या कल के अंतर्गत घटित होनेवाला [को०]।

अद्यश्वीना—संज्ञा स्त्री० [सं०] जिसका प्रसवकाल संनिकट हो। आसन्नप्रसवा [को०]।

अद्यापि—क्रि० वि० [सं०] आज भी। अब भी। इस समय भी। अब तक। आज तक। उ०—देवयानी और ययाति के पावन चरित अद्यापि भूमंडल को पवित्र करते हैं।—श्यामा०, पृ० ६१।

अद्यावधि—क्रि० वि० [सं०] आज तक। अब तक। इस समय पर्यंत। उ०—वह मंत्र जो इसने सिद्ध किया था, अद्यावधि इसी भीत पर गहरा खुदा है।—श्यामा०, पृ० १४।

अद्यावधिक—वि० [सं०] आजकल का। आधुनिक [को०]।

अद्याश्व—संज्ञा पुं० [सं०] आज और कल का दिन [को०]।

अद्यूत्य—वि० [सं०] जो जुए से प्राप्त न किया गया हो। ईमानदारी से उपार्जित [को०]।

अद्यैव—क्रि० वि० [सं०] आज ही। इसी समय [को०]।

अद्रव[1]—वि० [सं०] जो द्रव या पतला न हो। गाढ़ा। घना। ठोस।

अद्रव[2]—संज्ञा पुं० ठोस पदार्थ [को०]।

अद्रव्य[1]—संज्ञा पुं० [सं०] सत्ताहीन पदार्थ। अवस्तु। असत्। शून्य। अभाव।

अद्रव्य[2]—वि० द्रव्य या धनरहित। दरिद्र।

अद्रा(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० आर्द्रा, हिं अर्द्रा] दे० 'आर्द्रा'। उ०—(क) तपनि मृगसिरा जे सहैं वे अद्रा पलुहंत।—जायसी ग्रं०, पृ० १५६। (ख) अद्रा धान पुनर्बसु पैया, गया किसान जो बोवै चिरैया।—घाघ०, पृ० ७३।

अद्रि—संज्ञा पुं० [सं०] १. पर्वत। पहाड़। २. पत्थर (को०)। ३. पेड़। वृक्ष (को०)। ४. विद्युत्। बिजली (को०)। ५. मेघों का समूह (को०)। ६. मेघ। बादल (को०)। ७. सूर्य (को०)। ८. एक प्रकार की माप (को०)। ९. सात की संख्या [को०]। १०. पृथु का एक पौत्र (को०)।

अद्रिकन्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] पार्वती [को०]।

अद्रिकर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] अपराजिता पौधा (को०)।

अद्रिकील—संज्ञा पुं० [सं०] विष्कुंभ पर्वत [को०]।

अद्रिकीला—संज्ञा स्त्री० [सं०] पृथ्वी। धरती।

अद्रिकुक्षि—संज्ञा स्त्री० [सं०] गुफा। कंदरा [को०]।

अद्रिछिद्—संज्ञा पुं० [सं०] वज्र। बिजली।

अद्रिज¹—वि० [सं०] पर्वत से उत्पन्न [को०]।

अद्रिज²—संज्ञा पुं० १. शिलाजीत। २. गेरू [को०]।

अद्रिजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पार्वती। २. गंगा नदी। ३. सिंहपिप्पली। सिंहली पीपल [को०]।

अद्रितनया—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पार्वती। गंगा। ३. २३ वर्णों के एक वृत्त का नाम। इसे अश्वललित भी कहते हैं। जैसे—न पति करें सनेह तिनसों कदापि मनसों न दुःख भरतीं (शब्द०)।

अद्रिद्रोणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पहाड़ी घाटी। २. नदी का उद्गम [को०]।

अद्रिद्विष—संज्ञा पुं० [सं०] पर्वतों का शत्रु। इंद्र [को०]।

अद्रिनंद्रिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० अद्रिनन्दिनी] दे० 'अद्रिकन्या' [को०]।

अद्रिपति—संज्ञा पुं० [सं०] पर्वतों में श्रेष्ठ। पर्वतों का राजा। हिमालय।

अद्रिभिद्—संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र का एक नाम [को०]।

अद्रिभ—संज्ञा पुं० [सं०] अपराजिता या आखुकर्णी नामक पौधा [को०]।

अद्रिमंडल—संज्ञा पुं० [सं०] पर्वत समूह। उ०—हिम सैनिन सों घिरयौ अद्रिमंडल यह रूरो।—का० सुषमा, पृ० ५।

अद्रिराज—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अद्रिपति' [को०]।

अद्रिवह्नि—संज्ञा पुं० [सं०] दावाग्नि [को०]।

अद्रिशय्य—संज्ञा पुं० [सं०] शिव [को०]।

अद्रिशिखर—पुं० पुं० [सं०] पर्वत की चोटी। उ०—वे डूब गए सब डूब गए दुर्दम उदग्रशिर अद्रिशिखर।—युगांत, पृ० १२।

अद्रिशृंग—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अद्रिशिखर' [को०]।

अद्रिसानु—संज्ञा पुं० [सं०] अद्रिशृंग' [को०]।

अद्रिसार¹ वि० [सं०] पर्वत जैसा दृढ़ [को०]।

अद्रिसार²—संज्ञा पुं० १. लोहा। २. शिलाजीत।

अद्रिसुता—संज्ञा स्त्री० [सं०] पावती [को०]।

अद्रींद्र—संज्ञा पुं० [सं० अन्द्रीन्द्र] हिमालय पर्वत [को०]।

अद्रीश—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अद्रींद्र' [को०]।

अद्रोघ—वि० [सं०] १. सत्य। २. द्वेषविहीन। द्वेषरहित [को०]।

अद्रोह—संज्ञा पुं० [सं०] द्रोह या द्वेष का अभाव। उदारता [को०]।

अद्रोहवृत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं० द्रोह या द्वेषरहित आचरण [को०]।

अद्रोही—वि० [सं० अद्रोहिन्] किसी से द्रोह या द्वेष न करनेवाला [को०]।

अद्ल—संज्ञा पुं० [अ०] न्याय [को०]।

अद्लपरवर—वि० [अ०] न्याय करनेवाला। न्यायी। न्यायमूर्ति [को०]।

अद्वंद्व¹—वि० [सं० अद्वन्द्व] शत्रुता से रहित [को०]।

अद्वंद्व²—संज्ञा पुं० विरोध का अभाव [को०]।

अद्वय¹—वि० [सं०] १. द्वितीयरहित। एकाकी। अकेला। एक। २. अनुपम। अद्वितीय (को०)।

अद्वय²—संज्ञा पुं० १. द्वैत का अभाव। ऐक्य। अद्वैत। २. परम सत्य। ३. बुद्ध का एक नाम [को०]।

अद्वयवादी—वि० [सं० अद्वयवादिन्] अद्वैतवाद का अनुयायी। अद्वैतवादी [को०]।

अद्वयानंद—संज्ञा पुं० [सं० अद्वयानन्द] अद्वैतानंद। परम आनंद [को०]।

अद्वार—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह प्रवेशमार्ग जो नियमित रूप से द्वार के रूप में व्यवहृत न होता हो। २. द्वारविहीन स्थान। वह स्थान जहाँ द्वार न हो [को०]।

अद्वितीय¹—वि० [सं०] १. द्वितीयरहित। अकेला। एकाकी। एक। २. जिसके ऐसा दूसरा न हो। जिसके टक्कर का दूसरा न हो। बेजोड़। अनुपम। ३. प्रधान। मुख्य। ४. विलक्षण। अद्भुत। अजीब। विचित्र।

अद्वितीय²(प)—संज्ञा पुं० आत्मा। ब्रह्म [को०]।

अद्वीत(प)—वि० [सं० अद्वैत] दे० अद्वैत'।—उ०—द्वीत भाव करि दूरि अद्वीतहि गायो।—सुंदर ग्रं०, भा० १. पृ० १०६।

अद्वेष¹—वि० [सं०] १. द्वेषरहित। जो वैर न रखे। २. शांत।

अद्वेष²—संज्ञा पुं० द्वेष का अभाव। वैर का राहित्य [को०]।

अद्वेषी—वि० [सं० अद्वेषिन्] द्वेषरहित। किसी से दोष न रखनेवाला [को०]।

अद्वेष्टा—संज्ञा पुं० [सं० अद्वेष्टृ] दे० 'अद्वेषी' [को०]।

अद्वैत¹—वि० [सं०] १. द्वितीयरहित। एकाकी। अकेला। एक। २. अनुपम। बेजोड़।

अद्वैत²—संज्ञा पुं० १. ब्रह्म। ईश्वर। २. द्वैत या भेद का अभाव। जीव ब्रह्म का ऐक्य (को०)।

अद्वैतवाद—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह सिद्धांत जिसमें ब्रह्म ही को जगत् का उपादन कारण मानकर संपूर्ण प्रत्यक्षादि सिद्ध विश्व को ब्रह्म में आरोपित करते हैं। २. वह दार्शनिक सिद्धांत या मत जिसमें किसी एक तत्व या ब्रह्म अथवा शिव शक्ति आदि को सर्वमूल तत्व मानते हैं, तदतिरिक्त समस्त प्रमेयों पदर्थों को उसका परिणाम, विवर्त, प्रकाश, रूपांतर या नूतन भूमिका स्वीकार करते हैं। शंकराचार्य द्वारा प्रतिपादित 'अद्वैतवेदांत' इसमें सर्वाधिक प्रसिद्ध है। ब्रह्माद्वैतवाद (शांकर) वेदांत मत) शब्दाद्वयवाद (शब्दब्रह्माद्वैतवाद) के अतिरिक्त 'शिवाद्वैतवाद' शक्ति अद्वैतवाद आदि हैं। इसी के रूपांतरित प्रकार हैं—शुद्धाद्वैत, केवलाद्वैत

आदि भी। ३. शंकराचार्य द्वारा प्रतिपादित वेदांत दर्शन। इस मत में 'ब्रह्म' के अतिरिक्त सभी पदार्थ असत्य हैं अर्थात् 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या' के अनुसार 'एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म' अर्थात् 'ब्रह्म' ही एक और केवल अद्वैत तत्व सत्य माना गया है और 'ब्रह्म' सत्-चित्-आनंदस्वरूप। मायावाद, अध्यासवाद, विवर्तवाद, उत्तरमीमांसा, शंकरवेदांत आदि पदों से प्रायः इसी दर्शन का बोध होता है।

विशेष—इस सिद्धांत के अनुयायी कहते हैं कि जैसे रस्सी के स्वरूप को न जानने से सर्प का बोध होता है, वैसे ही ब्रह्म के रूप को न जानने के कारण अध्यासवश ब्रह्म ही संसार रूप में वस्तुतः दिखाई देता है। अंत में अज्ञान दूर हो जाने पर सब पदार्थ ब्रह्ममय प्रतीत होता है।

अद्वैतवादी[1]—वि० [सं०] अद्वैत मत को माननेवाला। ब्रह्म और जीव को एक माननेवाला। शांकरवेदांत का अनुयायी।

अद्वैतवादी[2]—संज्ञा पुं० अद्वैतवाद का सिद्धांत माननेवाला व्यक्ति।

अद्वैतसिद्धि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. ब्रह्म और जीव के अभेद की सिद्धि। २. शांकर वेदांत का प्रकरणविशेष [को०]।

अद्वैती—संज्ञा पुं० [सं० **अद्वैतिन्**] दे० 'अद्वैतवादी' [को०]।

अद्वैध—वि० [सं०] १. जो दो भागों में विभक्त न हो। अवियुक्त। २. असद् भावना से रहित। ३. खरा। उत्तम [को०]।

अद्वैध्यमित्र—संज्ञा पुं० [सं०] वह व्यक्ति, मित्र या राष्ट्र जिसकी मित्रता में किसी प्रकार का संदेह न हो।

विशेष—वह जिसकी मैत्री स्वार्थपूर्ण न हो, जो स्थिरचित्त, सुशील, और उपकारी हो तथा विपत्ति में जिसके साथ छोड़ने की आशंका न हो, वह अद्वैध्यमित्र है।

अधंगⓅ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अर्धांग'। उ०—सीस गंग गिरिजा अधंग भूषण भुजंगबर।—तुलसी ग्रं०, पृ० २३५।

अधंतरी—संज्ञा स्त्री० [सं० **अधः+अंतरी**] मालखम की एक कसरत।

अधः[1]—अव्य० [सं०] नीचे। तले।

अधः[2]—संज्ञा स्त्री० दश दिशाओं में से एक। पैर के ठीक नीचे की दिशा।

अधःकाय—संज्ञा पुं० [सं० **अधः=नीचे+काय=शरीर**] कमर केचे के अंग। नाभि के नीचे के अवयव।

अधःक्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] अपमानित करना। नीचा दिखाना [को०]।

अधःपतन—संज्ञा पुं० [सं०] १. नीचे गिरना। २. अवनति। अधःपात तनज्जुली। ३. दुर्दशा। दुर्गति। ४. विनाश। क्षय।

अधःपतित—वि० [सं०] १. जिसका पतन हो गया हो। २. दुर्दशाग्रस्त [को०]।

अधःपात—संज्ञा पुं० [सं०] १. नीचे गिरना। पतन। २. अवनति। तनज्जुलि। ३. दुर्गति। दुर्दशा।

अधःपुष्पी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. अनंतमूल नामक औषधि। २. नीले फूल की एक बूटी जिसे अंधाहुली भी कहते हैं।

अधःप्रस्तर—संज्ञा पुं० [सं०] अशौचवालों के बैठने के लिये तृणों का बना हुआ आसन। कुशासन।

अधोवेद—संज्ञा पुं० [सं०] प्रथम पत्नी के जीवित रहते दूसरा विवाह करना [को०]।

अधःशयन—संज्ञा पुं० [सं०] पृथ्वी पर सोना। ब्रह्मचर्य का एक नियम

अधःशय्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अधःशयन' [को०]।

अधःशिरा[1]—वि० [सं० **अधःशिरस्**] सिर नीचे रखनेवाला [को०]।

अधःशिरा[2]—संज्ञा पुं० एक नरक का नाम [को०]।

अधःस्वस्तिक—संज्ञा पुं० [सं०] अधोबिंदु। देखनेवालों के पैरों के नीचे माना जानेवाला एक कल्पित बिंदु [को०]।

अध[1]Ⓟ—अव्य० [हिं०] दे० 'अधः'। उ०—अध अर्द्ध बानर बिदिस दिसि बानर है।—तुलसी ग्रं०, पृ० १७४।

अध[2]—वि० [सं० **अर्ध**; प्रा० **अद्ध, अध**] 'आधा' शब्द का संकुचित रूप। आधा। उ०—हौं जानत जो नाह तुम बोलत अध अखरान।—पद्माकर ग्रं०, पृ० १६६।

विशेष—प्रायः यौगिक शब्द बनाने में इस शब्द का प्रयोग होता है। जैसे—**अधकचरा, अधजल, अधबावरा, अधमरा**।

अधकचरा[1]—वि० [हिं० **अध+कच्चा**] १. अपरिपक्व। अधूरा। अपूर्ण। २. अकुशल। अदक्ष। जिसने पूरी तरह कोई चीज न सीखी हो। जैसे—उसने अच्छी तरह पढ़ा नहीं अधकचरा रह गया (शब्द०)।

अधकचरा[2]—वि० [हिं० **अध+कचरना**] आधा कूटा या पीसा हुआ। दरदरा। अधपिसा। अधकूटा। अरदावा किया हुआ।

अधकच्चा—वि० [हिं०] दे० 'अधकचरा'। उ०—बहुधा इस तरह की बनावट और चालाकी सुखवासी लाल सरीखे अधकच्चे मनुष्यों से होती है।—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० ६४।

अधकच्छा—संज्ञा पुं० [सं० **अधिकच्छा**] नदी के किनारे की वह ऊँची भूमि जो ढालुई होते होते नदी की सतह में मिल गई हो!

अधकछार—संज्ञा पुं० [सं० **अर्ध+कच्छ**] पहाड़ के अंचल की वह ढालुई भूमि जो प्रायः बहुत उपजाऊ और हरी भरी होती है।

अधकट—वि० [हिं० **अध+कटना**] १. आधा कटा हुआ। २. नियत दूरी या परिमाण का आधा।

अधकपारी—संज्ञा स्त्री० [सं० **अर्ध+कपाल** हिं० **अध+कपारी**] आधे सिर का दर्द जो सूर्योदय से प्रारंभ होकर दोपहर तक बढ़ता जाता है। फिर दोपहर के बाद से घटने लगता है और सूर्यास्त होते ही बंद हो जाता है। आधासीसी। सूर्यावर्त।

अधकरी—संज्ञा स्त्री० [सं० **अर्ध+कर**] १. अठन्नियाँ। किस्त। मालगुजारी या महसूल या किराए की आधी रकम जो किसी नियत समय पर दी जाय।

अधकहा—वि० [हिं० **अध+कहना**] आधा कहा हुआ। अस्पष्ट रूप से या आधा उच्चारण किया हुआ। उ०—गहकि गाँसु औरै गहे रहे अधकहे बैन। देखि खिसौंहैं पिय नयन किए रिसौंहैं नैन।—बिहारी र०, दो० ६५।

अधकीⓅ—वि० [सं० **अधिक**] दे० 'अधिक'। उ०—ज्यों ज्यों चूल्हे झोंकिया, त्यों त्यों अधकी बास।—कबीर सा० सं०, पृ०६३।

अधखिला—वि० [हिं० **अध+खिलना**] [स्त्री० **अधखिली**] आधा खिला हुआ। अर्धविकसित।

अधखुला--वि० पुं० [हिं० अध + खुलना] [स्त्री० अधखुली] आधा खुला हुआ। उ०--सुभग सिंगार साजे सबै, दै सखीन कों पीठि। चलै अधखिले द्वार लौं, खुली अधखुली दीठि।--पद्माकर ग्रं०, पृ० १२५।

अधगति(पु)--संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अधोगति'। उ०--महा विपट कोटर महु जाई। रहु अधमाधम अधगति पाई।--मानस, ७।१०७।

अधगो--संज्ञा पुं० [सं० अधः = नीचे + गो = इंद्रिय] नीचे की इंद्रियाँ। शिश्न या गुदा। उ०--उदर उदधि अधगो जातना। जगमय प्रभु की बहु कलपना।--मानस, ६।१५।

अधगोरा--संज्ञा पुं० [हिं० अध + गोरा] [स्त्री० अधगोरी] यूरोपीय और एशियाई माता पिता से उत्पन्न संतान। यूरेशियन।

अधगोहुआँ--संज्ञा पुं० [सं० अर्ध + गोधूम + क] जौ मिला हुआ गेहूँ। गोजई।

अधघट(पु)--वि० [हिं० अध + घट] जो ठीक या पूरा न उतरे। जिससे ठीक अर्थ न निकले। अटपट। कठिन। उ०--कहै कबीर अधघट बोलै। पूरा होइ विचार लै बोलै।--कबीर (शब्द०)।

अधचना†--संज्ञा पुं० [हिं० अधा + चना] गेहूँ और चने का मिश्रण जिसमें आधा चना और आधा गेहूँ हो।

अधचरा--वि० [हिं० अध + चरना] आधा चरा हुआ। अर्धभक्षित। आधा खाया हुआ। उ०--यह तन हरियर खेत, तरुनी हरिनी चर गई। अजहूँ चेत अचेत यह अधचरा बचाइ ले।--सम्मन (शब्द०)।

अधजर(पु)--वि० [हिं० अध + जरना] दे० 'अधजला'। उ०--कोई परा भौंर होइ बास लीन्ह जनु चोंप। कोई पतंग भा दीपक कोइ अधजर तन काँप।--जायसी ग्रं०, पृ० २४६।

अधजल†--वि० [सं० अर्ध + जल] पानी से आधा ही भरा हुआ। जैसे--अधजल गगरी छलकत जाय (कों०)।

अधजला--वि० [हिं० आधा + जलना] आधा जला हुआ। जो पूर्ण रूप से भस्म न हुआ हो।

अधड़ी(पु)--वि० स्त्री० [सं० अधर] १. न ऊपर न नीचे। अधर का। आधाररहित। निराधार। २. ऊटपटाँग। बेसिर पैर का। असंबद्ध। जिसका कोई सिलसिला न हो। न इधर की न उधर की। उ०--अधड़ी चाल कबीर की असा धरी नहिं जाइ। दादू डाँकहिं मिरिग ज्यों उलटि पड़इ भू आइ।--दादू (शब्द०)।

अधधर--संज्ञा पुं० [सं० अर्ध + धार] मध्यधार। बीचोबीच। उ०--पढ़े गुने उपजै अहँकारा। अधधर डूबे वार न पारा।--कबीर ग्रं०, पृ० १३०।

अधन(पु)--वि० [सं०] १. धनरहित। निर्धन। कंगाल। गरीब। अकिंचन। धनहीन। उ०--तुम सम अधन भिखारि अगेहा। होत बिरंचि सिवहि संदेहा।--मानस, १।१६१। २. स्वतंत्र संपत्ति रखने का अनधिकारी (कों०)।

विशेष--मनु के अनुसार भार्या, पुत्र और दास स्वतंत्र संपत्ति रखने के अनधिकारी हैं।

अधनियाँ--वि० [हिं० आधा + आना + इया (प्रत्य०)] आध आने का। आध आनेवाला। जैसे--अधनियाँ टिकट।

अधन्ना--संज्ञा पुं० [सं० अर्ध + आणक = आना] [स्त्री० अधन्नी] एक आने का आधा। आध आने का सिक्का। डबल पैसा।

अधन्नी--संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अधन्ना'।

अधन्य--वि० [सं०] [स्त्री० अधन्या] १. जो धन्य न हो। भाग्यहीन। अभागा। २. गर्हित। निंद्य। बुरा।

अधप--संज्ञा पुं० [सं०] भूखा सिंह। अर्धतृप्त केहरी।

अधपई--संज्ञा स्त्री० [सं० अर्ध + पाद = चौपाई] तौलने का एक बाट। एक सेर के आठवें हिस्से की तौल। आधा पाव तौलने का बाट या मान। दो छटंकी। दसभरी। अधपैया। अधपौवा।

अधपका--वि० [सं० अर्धपक्व] आधा पका हुआ। जो पूरी तरह पका न हो। अपरिपक्व।

अधपति(पु)†--संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अधिपति'। उ०--खैंची कमर सौं बाँध्या पटका। अधिपति हुवा बैठि करि पटका।--सुंदर ग्रं०, भा० १, पृ० ३५१।

अधफड़(पु)--संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अधफर'। उ०--टूटे पंख बाज मँडराने अधफड़ प्रान गँवैहौं।--कबीर श०, पृ० २२।

अधफर(पु)--संज्ञा पुं० [सं० अर्ध + फलक = तख्ता] अंतरिक्ष। न नीचे न ऊपर का स्थान। बीच का भाग। अधर। उ०--अब अधफर ऊपर अकाश। चलत दीप देखियत प्रकाश। चौकी दै मनु अपने भेव। बहुरे देवलोक को देव।--केशव (शब्द०)।

अधबर(पु)--संज्ञा पुं० [हिं० अध + देश० बर (प्रत्यय०)] अथवा हिं० अध + बाट = मार्ग] १. आधा मार्ग। आधा रास्ता। उ०--जे अनिरुध पर परें हथ्यार। अधबर कटें शिखा की धार।--लल्लू (शब्द०)। २. बीच। मध्य। अधर। उ०--उत कुल की करनी तजी इत न भजे भगवान। तुलसी अधबर के भए ज्यों बबूर के पान।--स० सप्तक, पृ० ३१।

अधबाँच--संज्ञा पुं० [हिं० अध + सं०*√वञ्च्]१. चमरावत। चमारों का जौरा। २. वह उजरत जो चमारों को चमड़े का मोट बनाने के लिये वर्ष भर में या फसल के समय दी जाती है।

अधबिच--संज्ञा पुं० [हिं० अध + बीच] मध्य। बीच। उ०--तरु तमाल अधबीच जनु त्रिविध कीर पाँति रुचिर, हेमजाल अंतर परि तातें न उड़ाई।--तुलसी ग्रं०, पृ० ४०५।

अधबुध(पु)--वि० [सं० अर्ध + बुध = बुद्धिमान] अर्धशिक्षित। अधचरा। जिसकी शिक्षा पूरी न हुई हो। उ०--बिना सात लौं वाकी सही। बुध अधबुध अचरज एक कही।--कबीर (शब्द०)।

अधबैसू(पु)--वि० [सं० अर्ध + वयस् + हिं० ऊ (प्रत्य०)] [स्त्री० अधबैसी] अधेड़। मध्यम अवस्था का। ढलती उम्र का। उतरती जवानी का।

अधम¹--वि० [सं०] [स्त्री० अधमा] [संज्ञा अधमाई, अधमता] १. नीच। निकृष्ट। बुरा। खोटा। २. पापी। दुष्ट। उ०--कहहिं सुनहिं अस अधम नर ग्रसे जे मोह पिसाच।--मानस १।११४।

अधम[२]—संज्ञा पुं० १. एक पेड़ का नाम। २. कवि के तीन भेदों में से एक। वह कवि जो दूसरों की निंदा करे। ३. ग्रहों का एक अनिष्ट योग (को०)। ४. कर्तव्याकर्तव्य के विचार से रहित कामी (को०)।

अधमई(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० **अधम+हिं** ई (प्रत्य०)] नीचता। अधमता। खोटापन।—मुनि मेरी अपराध अधमई कोई निकट न आवैं।—सूर०, १।१९७।

अधमता—संज्ञा स्त्री० [सं०] अधमपना। नीचता। खोटाई।

अधमभृत—संज्ञा पुं० [सं०] निम्न श्रेणी का सेवक। तीन प्रकार के सेवकों में एक [को०]।

अधमभृतक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अधमभृत' [को०]।

अधमरति—संज्ञा स्त्री० [सं०] कार्यवश प्रीति को अधमरति कहते हैं। जैसे, वेश्या की प्रीति।

अधमरा—वि० पुं० [सं० **अर्ध, हिं अध+मरा**] [स्त्री० **अधमरी**] आधा मरा हुआ। अर्धमृत। मृतप्राय। अधमुआ।

अधमर्ण—संज्ञा पुं० [सं० **अधम+ऋण**] ऋण लेनेवाला आदमी। कर्जदार। धरता। ऋणी।

अधमांग—संज्ञा पुं० [सं० **अधमाङ्ग**] शरीर का निचला भाग। चरण। पाँव। पैर।

अधमा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दे० 'अधमा नायिका'। २. नीच प्रकृति की स्त्री [को०]।

अधमाई(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० **अधम+हिं० आई** (प्रत्य०)] अधमता। नीचता। खोटाई। उ०—परहित सरिस धर्म नहिं भाई। पर पीड़ा सम नहिं अधमाई।—मानस ७।४१।

अधमादूती—संज्ञा स्त्री० [सं०] अधम कुटनी। वह दूती जो उत्तम रूप से अपना कार्य न करे वरन् कटु बातें कहकर नायक या नायिका का संदेश एक दूसरे को पहुँचाए।

अधमाधम—वि० [सं **अधम+अधम**] नीच से नीच। महानीच। उ०—महा विटप कोटर महु जाई। रहु अधमाधम अधगति पाई। मानस ७।१०७।

अधमानायिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रकृति के अनुसार नायिका के भेदों से एक। वह स्त्री जो प्रिय या नायक के हितकारी होने पर भी उसके प्रति अहित या कुव्यवहार करे।

अधमार(पु)—वि० [हिं०] आधे मारे हुए। अधमरा। उ०—गए पुकारत कछु अधमारे।—मानस ५।८।

अधमार्ध—संज्ञा पुं० [सं०] नाभि के नीचे का भाग [को०]।

अधमुआ—वि० [हिं०] दे० 'अधमरा'।

अधामुख(पु)—वि० [सं० **अधोमुख**] मुँह के बल। सिर के बल। औंधा। उलटा। उ०—(क) स्याम भुजनि की सुंदरताई। बड़े बिसाल जानु लौं परसत इक उपमा मन आई। मनौ भुजंग गगन तें उतरत अधमुख रह्यो झुलाई।—सूर (शब्द०)। (ख) स्याम बिंदु नहिं चिबुक मैं, मो मन यौं ठहराइ। अधमुख ठोढ़ी गाड़ की, अँधियारी दरसाई।—स० सप्तक, पृ० २५५।

अधमोद्धारक—वि० [सं०] पापियों का उद्धार करनेवाला [को०]।

अधरंगा—संज्ञा पुं० [**हिं० आधा+रंग**] एक प्रकार का फूल।

अधर[१]—संज्ञा पुं० [सं०] १. नीचे का ओठ। २. ओठ।

यौ०—**बिंबाधर। दयिताधर।**

मुहा०—**अधर चबाना**=क्रोध के कारण दाँतों से ओठ बार बार दबाना। उ०—तदपि क्रोध नहिं रोक्यो जाई। भए अरुन चख अधर चबाई।—पन्नालाल (शब्द०)।

३. भग या योनि के दोनों पार्श्व। ४. शरीर का निचला हिस्सा (को०)। ५. दक्षिण दिशा (को०)।

अधर[२]—संज्ञा पुं० [सं० **अ=नहीं+धृ=धरना**] १. बिना आधार का स्थान। अंतरिक्ष। आकाश। शून्यस्थान। जैसे—वह अधर में लटका रहा। (शब्द०)।

मुहा०—**अधर में झूलना, अधर में पड़ना, अधर में लटकना**=(१) अधूरा रहना। पूरा न होना। जैसे—यह काम अधर में पड़ा हुआ है (शब्द०)। (२) पशोपेश में पड़ना। दुविधा में पड़ना।

अधर[३]—वि० १. जो पकड़ में न आए। चंचल। २. नीच। बुरा। तुच्छ। उ०—गूढ़ कपट प्रिय बचन सुनि तीय अधरबुधि रानि। सुरमाया बस बैरिनिहि सुहृद जानि पतिआनि।—मानस २।१६। ३. विवाद या मुकदमे में जो हार गया हो। ४. नीचा। नीचे का।

अधरकाय—संज्ञा पुं० [सं०] शरीर का निचला भाग [को०]।

अधरछत(पु)—संज्ञा पुं० [सं० **अधरक्षत**] ओठ का व्रण। उ०—पु है अपन्हुति अधरछत करत न पिय हिय बाइ।—भिखारी ग्रं०, भा० २, पृ० १६।

अधरज—संज्ञा पुं० [सं० **अधर+रज**] ओठों की ललाई। ओठों की सुर्खी। ओठों की धड़ी। पान या मिस्सी के रंग की लकीर जो ओठों पर दिखाई देती है।

अधरपान—संज्ञा पुं० [सं० **अधर=ओठ+पान=पीना, चूसना**] सात प्रकार की बाह्चर तियों में से एक रति। ओठों का चुंबन।

अधरबिंब—संज्ञा पुं० [सं०] कुँदरू के पके फल जैसे लाल ओठ।

अधरबुद्धि—वि० [सं०] क्षुद्र बुद्धिवाला [को०]।

अधरम(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० **'अधर्म'**। उ०—जब जब होई धरम कै हानी। बढ़हिं असुर अधरम अभिमानी।—मानस १।१२१।

अधरमकाय(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अधर्मास्तिकाय'।

अधरमधु—संज्ञा पुं० [सं०] अधरों का रस। अधरामृत [को०]।

अधररस—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अधरमधु' [को०]।

अधरस्वस्तिक—संज्ञा पुं० [सं०] अधोबिंदु [को०]।

अधरांगा—संज्ञा पुं० [सं०] शरीर के नीचे के अंग या भाग [को०]।

अधरा(पु)—स्त्री० पुं० [सं० **अधर**] दे० 'अधर'। उ०—सूरज बिंब में ईंगुर बोरे बँधूक से हैं अधरा अरुकारे।—भिखारी ग्रं०, भा० १, पृ० ११।

अधरात(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० **अर्धरात्रि**] आधीरात। उ०—अधरात उठत करि हाय हाय।—भिखारी० ग्रं०, भा० १, पृ० २२२।

अधराधर—संज्ञा पुं० [सं० **अधर+अधर**] नीचे का ओठ। उ०—बरं दंत की पंगति कुंद कली अधराधर पल्लव खोलनि की।—तुलसी,ग्रं० पृ० १५५।

अधरामृत--संज्ञा पुं० [सं०] ओठों का रस जो अमृत के समान मीठा माना जाता है [को०]।

अधरावलोप--संज्ञा पुं० [सं०] ओष्ठचर्वण। ओठ चबाना [को०]।

अधरासव--संज्ञा पुं० [**अधर+आसव**] ओठ का मादक रस।--- उ०-- अधरासव अधरन चह्यौ उरहु चह्यौ उर लागि।----श्यामा०, पृ० १७६।

अधरीण----वि० [सं०] १. नीच। तिरस्कृत। २. निंदित [को०]।

अधरेद्यु---संज्ञा पुं० [सं०] गत दिन के पहले का दिन। परसों।

अधरोंथा(पु)--वि० [सं० **अर्ध+रोमन्थ=जुगाली**] [स्त्री० **अधरोंथी**] आधा जुगाली किया हुआ। आधा पागुर किया हुआ। आधा चबाया हुआ। उ०—अधरोंथी कग दाभ गिरावत। थकित खुले मुख ते बिखरावत। शकुंतला०, पृ० ८।

अधरोत्तर—वि० [सं **अधर+उत्तर**[ऊँचा नीचा। खड़बीहड़। ऊबड़ खाबड़। २. अच्छा बुरा। ३. न्यूनाधिक। कमोबेश।

अधरोत्तर—क्रि० वि० ऊँचे नीचे।

अधरोष्ठ—संज्ञा पुं० [सं०] १. नीचे का होंठ। २. नीचे और ऊपर के दोनों ओठ [को०]।

अधरौष्ठ—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अधरोष्ठ' [को०]।

अधर्म—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० **अधर्मा, अर्धामिष्ठ, अधर्मी**] पाप। पातक। असद्व्यवहार। अकर्तव्य कर्म। अन्याय। धर्म के विरुद्ध कार्य। कुकर्म दुराचार। बुरा काम।

विशेष—शरीर द्वारा हिंसा चोरी आदि कर्म, वचन द्वारा अनृत भाषण आदि और मन द्वारा परद्रोहादि। यह गौतम का मत है। कणाद के अनुसार वह कर्म जो अभ्युदय (लौकिक सुख) और नैश्रेयस (पारलौकिक सुख) की सिद्धि का विरोधी हो। जैमिनी के मतानुसार वेदविरुद्ध कर्म। बौद्धशास्त्रानुसार वह दुष्ट स्वभाव जो निर्वाण का विरोधी हो।

२. एक प्रजापति अथवा सूर्य का अनुचर [को०]।

अधर्ममंत्रयुद्ध—संज्ञा पुं० [सं०] वह युद्ध जो दोनों ओर के लोगों को नष्ट करने के लिये छेड़ा गया हो।

अधर्मात्मा---वि० [सं०] अधर्मी पापी। दुराचारी। कुकर्मी। बुरा।

अधर्मास्तिकाय—संज्ञा पुं० [सं०] अधर्म पाप। जैनशास्त्रानुसार द्रव्य के छह भेदों में से एक।

विशेष—यह एक नित्य और अरूपी पदार्थ है जो जीव और पुद्गल की स्थिति का सहायक है। इसके तीन भेद हैं स्कंध, देश और प्रदेश।

अधर्मी—संज्ञा पुं० [सं० **अर्धामिन्**] [स्त्री० **अर्धामिणी**] पापी दुराचारी

अधर्म्य—वि० [सं०] १. धर्मविरुद्ध। जो धर्म की दृष्टि में उपयुक्त न हो। २. अवैध। अन्यायपूर्ण [को०]।

अधर्षणी—वि० पुं० [सं०] जिसको कोई दबा या डरा न सके। जिसको कोई पराजित न कर सके। प्रचंड। प्रबल। निर्भय।

अधवा—संज्ञा स्त्री० [सं० **अ+धव=पति**] जिसका पति जीवित न हो। विधवा। पतिहीना। बिना पति की स्त्री। सधवा का उलटा।

अधवाना† संज्ञा पुं० [हिं० **हिंदवाना**] तरबूज।

अधवारी--संज्ञा स्त्री० [देश०] एक पेड़ का नाम जिसकी लकड़ी मकान और असबाब बनाने के काम आती है।

अधश्चर१—वि० [सं०] जो नीचे नीचे चले।

अधश्चर२—संज्ञा पुं० सेंध लगाकर चोरी करनेवाला पुरुष। सेंधिया चोर।

अधसेरा—संज्ञा पुं० [सं० **अर्ध+सेटक=सेर**] एक बाट या तौल जो एक सेर की आधी होती है। दो पाव का मान।

अधस्तन—वि० [सं०] १. नीचा। नीचे अवस्थित। २. पूर्ववर्ती। पहले का [को०]।

अधस्तल—संज्ञा पुं० [सं०] १. नीचे का कमरा। नीचे की कोठरी। २. नीचे की तह। तहखाना।

अधस्स्वस्तिक—संज्ञा पुं० [सं०] नीचे की ओर का वह स्थान या बिंदु जो पृथ्वी पर के किसी स्थान या बिंदु के ठीक नीचे हो। शीर्षबिंदु से ठीक विपरीत दिशा का बिंदु जो क्षितिज का दक्षिणी ध्रुव है।

अधाँगा—संज्ञा पुं० [सं० **अर्द्धाङ्ग**] एक खाकी रंग की चिड़िया जिसकी गरदन से ऊपर का सारा भाग लाल होता है और डैने तथा पैर सुनहले होते हैं।

अधाधुंध--क्रि० वि० [हिं०] दे० 'अंधाधुंध'।

अधाना—संज्ञा पुं० [सं० **अर्ध**] ख्याल (अस्थायी) का एक भेद। यह तिलवाड़ा ताल पर बजाया जाता है।

अधान्यवाय—संज्ञा पुं० [सं०] वह स्थान या उपनिवेश जिसमें धान न पैदा होता हो।

विशेष—चाणक्य के अनुसार जलयुक्त उपनिवेश में भी वही उपनिवेश या प्रदेश उत्तम है जिसमें धान पैदा होता हो। परंतु यदि धान पैदा करनेवाला उपनिवेश छोटा हो और धान न पैदा करनेवाला उपनिवेश बहुत बड़ा हो, तो दूसरा ही ठीक है।

अधामार्गव—संज्ञा पुं० [सं०] अपामार्ग [को०]।

अधार(पु)—संज्ञा पुं० [सं० **आधार**] दे० 'आधार'। उ०—तप अधार सब सृष्टि भवानी।—मानस, १।७३।

अधारणक—वि० [सं०] जो लाभप्रद न हो। [को०]

अधारिया—संज्ञा पुं० [सं० **आधार**] बैलगाड़ी में गाड़ीवान के बैठने का वह स्थान जिसे मोढ़ा भी कहते हैं।

अधारी१—(पु)संज्ञा स्त्री० [सं० **आधार** या **आधारिका**] १. आश्रय। सहारा। आधार की चीज। २. काठ के डंडे में लगा काठ का पीढ़ा जिसे साधु लोग सहारे के लिये रखते हैं। उ०—ऊंधोयोग सिखावन आए। शृंगी भस्म अधारी मुद्रा दै यदुनाथ पठाए।--- सूर (शब्द०)। ३. यात्रा का सामान रखने का झोला या थैला जिसे मुसाफिर लोग कंधे पर रखकर चलते हैं। उ०---- मेखल, सिंधी, चक्र धंधारा। जोगवाट, रुदराक्ष अधारी।---- जायसी ग्रं०, पृ० ५३।

अधारी२----वि० स्त्री० सहारा देनेवाली। प्रिय। सुख देनेवाली। भली। उ०----की मोहिं लै पिय कंठ लगावै। परम अधारी बात सुनावै।----जायसी (शब्द०)।

अधारी[3]—संज्ञा पुं० [हिं० आधा+आरियसम्थ] बेनिकाला हुआ बैल।
अधार्मिक—वि० [सं०] १. अधर्मी। धर्मशून्य। २. पापी। दुराचारी।
अधावट(५)—वि० पुं० [सं० अर्ध = आधा + आवृत्त, प्रा० अध+आयट्ट, आउट्ट] आधा औटा हुआ। जो औटाते या गरम करते करते गाढ़ा होकर नाप में आधा हो गया हो। उ०—कछु बलदाऊ को दीजै, अरु दूध अधावट पीजै।—सूर० १०।१८३।
अधि—उप० [सं०] एक संस्कृत उपसर्ग।
विशेष—यह शब्दों के पहले लगाया जाता है और इसके ये अर्थ होते हैं:—(१) ऊपर। ऊँचा। पर। जैसे—अधिराज। अधिकरण। अधिवास। (२) प्रधान। मुख्य। जैसे, अधिपति। (३) अधिक। ज्यादा। जैसे, अधिमास। (४) संबंध में। जैसे, आध्यात्मिक। अधिदैविक। आधिभौतिक।
अधिक[1]—वि० [सं०] [संज्ञा अधिकता, अधिकाई, क्रि० अधिकाना] १. बहुत। ज्यादा। विशेष। २. अतिरिक्त। सिवा। फालतू। बचा हुआ। शेष। जैसे—जो खाने पीने से अधिक हो उसे अच्छे काम में लगाओ (शब्द०)।
अधिक[2]—संज्ञा पुं० १. वह अलंकार जिसमें आधेय को आधार से अधिक वर्णन करते हैं। जैसे—तुम पूछत कहि मुद्रिके मौन होति यह नाम। कंकन की पदवी दई तुम बिनु या कहँ राम।—राम चं०, पृ० १००। २. न्याय के अनुसार एक प्रकार का निग्रह स्थान जहाँ आवश्यकता से अधिक हेतु और उदाहरण का प्रयोग होता है।
अधिकई(५)—संज्ञा स्त्री० [सं० अधिक+हिं० ई (प्रत्य०)] दे० 'अधिकाई'। उ०—हितनी के लाह की, उछाह की, बिनोद मोद सोभा की अवधि नहिं। अब अधिकई है।—तुलसी ग्रं०, पृ० ३२०।
अधिककोण—संज्ञा पुं० [सं० अधिक+कोण] वह कोण जो समकोण से बड़ा हो (ज्यामिति)।
अधिकतः—क्रि० वि० [सं०] अधिकतर। विशेषकर। उ०—अधिकतः बँधता यह ध्यान था, व्रजविभूषण हैं शतशः बने। प्रिय०, पृ० १६३।
अधिकतम—वि० [सं०] परिमाण, माप, संख्या आदि में सबसे अधिक [को०]।
अधिकतर[1]—वि० [सं०] किसी की तुलना में आगे बढ़ा हुआ। और ज्यादे [को०]।
अधिकतर[2]—क्रि० वि० ज्यादातर। बहुत करके [को०]।
अधिकता—संज्ञा स्त्री० [सं०] अधिकता। ज्यादती। बढ़ती। वृद्धि।
अधिक तिथि—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह तिथि जो अपने समय के पश्चात् दूसरे दिन भी मानी जाय [को०]।
अधिक दिन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अधिक तिथि' [को०]।
अधिक दिवस—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अधिक तिथि'।
अधिक मास—संज्ञा पुं० [सं०] अधिक महीना। मलमास। लौंद का महीना। पुरुषोत्तम मास। असंक्रांतमास। शुक्ल प्रतिपदा से लेकर अमावस्या पर्यंत काल जिसमें संक्रांति न पड़े।
विशेष—यह प्रति तीसरे वर्ष आता है तथा चांद्र वर्ष और सौर वर्ष को बराबर करने के लिये चांद्र वर्ष में जोड़ लिया जाता है।
अधिकरण—संज्ञा पुं० [सं०] १. आधार। आसरा। सहारा। २. व्याकरण में कर्ता और कर्म द्वारा क्रिया का आधार। सातवाँ कारक। इसकी विभक्तियाँ 'में' और 'पर' हैं। ३. प्रकरण। शीर्षक। ४. दर्शन में आधार विषय। अधिष्ठान। जैसे—ज्ञान का अधिकरण आत्मा है (शब्द०)। ५. मीमांसा और वेदांत के अनुसार वह प्रकरण जिसमें किसी सिद्धांत पर विवेचना की जाय और जिसमें ये पाँच अवयव हों—विषय संशय, पूर्वपक्ष, उत्तरपक्ष और निर्णय। ६. सामान। पदार्थ। ७. न्यायालय। ८. प्रधानता। प्राधान्य। ९. अधिकारप्रदान।
अधिकरणभोजक—संज्ञा पुं० [सं०] न्यायाधीश [को०]।
अधिकरणमंडप—संज्ञा पुं० [सं० अधिकरण मण्डप] न्यायालय। अदालत [को०]।
अधिकरणविचाल—संज्ञा पुं० [सं०] व्यतिक्रम करते जाना। किसी वस्तु के गुण में ह्रास अथवा वृद्धि करते जाना [को०]।
अधिकरण सिद्धांत—संज्ञा पुं० [सं० अधिकरणसिद्धान्त] न्याय दर्शन में वह सिद्धांत जिसके सिद्ध होने से कुछ अन्य सिद्धांत या अर्थ भी स्वयं सिद्ध हो जायँ।
विशेष—जैसे, आत्मा देह और इंद्रियों से भिन्न है; इस सिद्धांत के सिद्ध होने से इंद्रियों का अनेक होना, उनके विषयों का नियत होना, उनका ज्ञाता के ज्ञान का साधक होना, इत्यादि विषयों की सिद्धि स्वयं हो जाती है।
अधिकरणिक—संज्ञा पुं० [सं० अधिकरणिक या अधिकारणिक] मुंसिफ। जज। फैसला करनेवाला। न्यायकर्ता।
अधिकरणी—वि० [सं० अधिकरणिन्] १. अध्यक्ष। २. निरीक्षण करनेवाला [को०]।
अधिकरण्य—संज्ञा पुं० [सं०] अधिकार [को०]।
अधिकर्द्धि—वि० [सं० अधिक+ऋद्धि] ऐश्वर्यशाली [को०]।
अधिकर्म—संज्ञा पुं० [सं०] १. देखरेख। निरीक्षण। २. श्रेष्ठ कर्म ३. निरीक्षक [को०]।
अधिकर्मकर—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अधिकर्मकृत' [को०]।
अधिकर्मकृत—संज्ञा पुं० [सं० अधिकर्मकृत] काम करनेवालों का जमादार।
अधिकर्मिक—संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल में व्यापारियों से चुंगी उगाहनेवाला अधिकारी [को०]।
अधिकर्मी—संज्ञा पुं० [सं० अधिकर्मिन्] मजदूरों आदि के कार्यों का निरीक्षण करनेवाला अधिकारी [को०]।
अधिकवाक्योक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] बढ़ा चढ़ाकर कहना। अतिरंजना [को०]।
अधिकसंवत्सर—संज्ञा पुं० [सं०] अधिक मास। मलमास [को०]।
अधिकांग[1]—संज्ञा पुं० [सं० अधिकाङ्ग] अधिक अंग। नियत संख्या से विशेष अवयव।
अधिकांग[2]—वि० जिसे कोई अवयव अधिक हो। जैसे—छांगुर।
अधिकांश[1]—संज्ञा पुं० [सं०] अधिक भाग। ज्यादा हिस्सा। जैसे—लूट का अधिकांश सरदार ने लिया (को०)।

अधिकांश[2]—वि० बहुत ।

अधिकांश[3]—क्रि० वि० १. ज्यादातर । विशेषकर । बहुधा । २. अकसर । प्रायः । जैसे—अधिकांश ऐसा ही होता है (शब्द०) ।

अधिकाई(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० **अधिक**+हिं० **आई** (**प्रत्य०**)] १. ज्यादती । अधिकता । विपुलता । विशेषता । बहुतायत । बढ़ती । उ०—लहहिं सकल सोभा अधिकाई ।—मानस, १। ११ । २. बड़ाई । महिमा महत्व । उ०—उमा न कछु कपिकै अधिकाई । प्रभु प्रताप जो कालहि खाई ।—मानस, ५।३ ।

अधिकाधिक—वि० [सं०] ज्यादा से ज्यादा । अधिक से अधिक ।

अधिकाना(पु)—क्रि० अ० [सं० **अधिक से नाम०**] अधिक होना । ज्यादा होना । बढ़ना । विशेष होना । वृद्धि पाना । उ०—सुक से मुनि सारद से बकता चिरजीवन लोमस ते अधिकाने ।—तुलसी ग्रं०, पृ० २०७ ।

अधिकाभेदरूपक—संज्ञा पुं० [सं०] 'चंद्रालोक' के अनुसार रूपक अलंकार के तीन भेदों में से एक ।

विशेष—इसमें उपमान और उपमेय के बीच बहुत सी बातों में अभेद या समानता दिखलाकर पीछे से उपमेय में कुछ विशेषता या अधिकता बतलाई जाती है । जैसे—'रहै सदा विकसित विमल, धरै बास मृदु मंजु । उपज्यो नहिं पुनि पंक ते प्यारी को मुख कंज ।' यहाँ मुख उपमेय और कमल उपमान के बीच सुवास आदि गुणों में समानता दिखाकर मुख के सर्वदा विकसित रहने और पंक से न उत्पन्न होने की विशेषता दिखाई गई है ।

अधिकार[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. कार्यभार : प्रभुत्व । आधिपत्य । प्रधानता । जैसे—'इस कार्य का अधिकार उन्हीं के हाथ में सौंपा गया हैं' (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—चलाना ।—जताना ।—देना ।—सौंपना ।

२. स्वत्व । हक । अख्तियार । जैसे—'यह पूछने का अधिकार तुम्हें नहीं है' (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—देना ।—रखना ।

३. दावा कब्जा । प्राप्ति । जैसे—'सेना ने नगर पर अधिकार कर लिया' (शब्द०) ।

क्रि०प्र०—करना ।—जमाना ।

४. क्षमता : सामर्थ्य । शक्ति । ५. योग्यता । परिचय । जानकारी । ज्ञान । लियाकत । जैसे—(क) 'इस विषय में उसे कुछ अधिकार नहीं है' (शब्द०) । ६. प्रकरण । शीर्षक । जैसे—वातरोगाधिकार । ७. नाटचशास्त्र के अनुसार रूपक के प्रधान फल का स्वामित्व या उसकी प्राप्ति की योग्यता । ८. कर्तव्य (को०) । ९. निरीक्षण (को०) । १०. स्थान (को०) । ११. व्याकरण में एक मुख्य या प्रधान नियम जिससे उसके क्षेत्र में । आनेवाले अन्य नियम भी शासित होते हैं ।

विशेष—यह अधिकार तीन प्रकार का होता है—(१) सिंहावलोकित, (२) मंडूकप्लुत और (३) गंगाप्रवाह के सदश ।

अधिकार[2](पु)—वि० पुं० [सं० **अधिक**] अधिक । बहुत ।

अधिकारपात्र—वि० [सं०] अधिकार की पात्रता या योग्यता रखनेवाला [को०] ।

अधिकारविधि—संज्ञा स्त्री० [सं०] मीमांसा में वह विधि या आज्ञा जिससे यह बोध हो कि किस फल की कामनावाले को कौन सा यज्ञ या कर्म करना चाहिए अर्थात् कौन किस कर्म का अधिकारी है । जैसे,—स्वर्ग की कामना करनेवाला अग्निहोत्र यज्ञ करे, राजा राजसूय यज्ञ करे, इत्यादि ।

अधिकारस्थ—वि० [सं०] अधिकार संपन्न जिसमें अधिकार निहित हो [को०] ।

अधिकारा(पु)—वि० [सं० **अधिक**+**आरा** (प्रत्य०)] अत्यधिक । उ०— चढ़े त्रिपुर मारन कूँ सारे, हरिहर सहित देव अधिकारे ।—निश्चल (शब्द०) ।

अधिकारी[1]—संज्ञा पुं० [सं० **अधिकारिन्**] [स्त्री० **अधिकारिणी**] १. प्रभु । स्वामी । मालिक । २. स्वत्वधारी । हकदार । ३. योग्यता या क्षमता रखनेवाला । उपयुक्त पात्र । जैसे—'सब मनुष्य वेदांत के अधिकारी नहीं हैं (शब्द०) । ४. नाटचशास्त्र के अनुसार नाटक का वह पात्र जिससे रूपक का प्रधान फल प्राप्त होता है । ५. एक जातीय उपाधि (को०) ।

अधिकारी[2]—वि०— स्वत्व या क्षमता रखनेवाला [को०] ।

अधिकारी[3]—वि० स्त्री० [हिं० **अधिकार**] अधिकता । बाहुल्य । उ०—(क) जेहिं कौं आपन हितकर जान्यो दीन्ह्यौं मुख अधिकारी ।—जग० बानी, भा० १, पृ० ३४ । (ख) तरकारी, यामें पानी की अधिकारी ।—घाघ० पृ० ८५ ।

अधिकारी[4](पु)—संज्ञा स्त्री० [**हिं०**] जबर्दस्ती । उ०—त्यों पदमाकर मेलि मुठी इत पाइ अकेली करी अधिकारी ।—पद्माकर ग्रं०, पृ० ३१९ ।

अधिकार्थ—संज्ञा पुं० [सं०] कोई वाक्य या शब्द जिससे किसी पद के अर्थ में विशेषता आ जाय ।

अधिकार्थवचन—संज्ञा पुं० [सं०] अत्युक्ति । अतिरंजना [को०] ।

अधिकी(पु)—वि० [सं० **अधिक**+**हिं० ई (प्रत्य०)**] दे० 'अधिक' । उ०—अधिकी हमकों नाही चाहियत है ।—दो सौ बावन, भाग २, पृ० १०५ ।

अधिकृत[1]—वि० [सं०] १. अधिकार में आया हुआ । हाथ में आया हुआ । उपलब्ध । २. जिस पर अधिकार किया गया हो । उ०—हृदय हुआ अधिकृत तुमसे, तुम जीते हम हारे ।—झरना, पृ० ९३ ।

अधिकृत[2]—संज्ञा पुं० अधिकारी । अध्यक्ष । जैसे—महाबलाधिकृत में 'अधिकृत' ।

अधिकृति—संज्ञा स्त्री० [सं०] अधिकार । स्वत्व [को०] ।

अधिकौहाँ(पु)—वि० [सं० **अधिक**+**हिं० औहाँ** (प्रत्य०)] अधिकतम । अत्यधिक । उ०—जनु कलिंदनदिनि मनि-इंद्रनील-सिखर परसि धँसति लसति हंससेनि संकुल अधिकौहैं ।—तुलसी ग्रं०, पृ० ४०६ ।

अधिक्रम—संज्ञा पुं० [सं०] आरोहण । चढ़ाव । चढ़ाई ।

अधिक्रमण—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अधिक्रम' [को०] ।

अधिक्षिप्त—वि० [पुं०] १. फेंका हुआ । २. निंदित । तिरस्कृत । अपमानित । बुरा ठहराया हुआ ।

अधिक्षेप—संज्ञा पुं० [सं०] १. फेंकना । २. तिरस्कार । निंदा । अपमान । ३. तानाजनी । व्यंग्य ।

अधिगंतव्य—वि० [सं० अधिगन्तव्य] १. प्रापणीय । प्राप्तव्य । २. समझने योग्य । ज्ञेय [को०] ।

अधिगंता—वि० [सं० अधिगन्तृ] १. प्रापक । पानेवाला । २. समझनेवाला । अध्ययन करनेवाला [को०] ।

अधिगणन—संज्ञा पुं० [सं०] १. अधिक गिनना । २. किसी चीज का अधिक दाम लगाना ।

अधिगत—वि० [सं०] १. प्राप्त । पाया हुआ । २. जाना हुआ । ज्ञात । अवगत । समझा बूझा । पढ़ा हुआ ।

अधिगम—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्राप्ति । पहुँच । ज्ञान । गति । २. जैन दर्शन के अनुसार व्याख्यान आदि परोपकार द्वारा प्राप्त ज्ञान ३. ऐश्वर्य । बड़प्पन ।

अधिगमनीय—वि० [सं०] दे० 'अधिगंतव्य' [को०] ।

अधिगम्य—वि० [सं०] दे० 'अधिगमनीय' [को०] ।

अधिगव—वि० [सं०] गाय में अथवा गाय से प्राप्त [को०] ।

अधिगुण[1]—वि० [सं०] विशिष्ट गुण से भूषित । सुयोग्य [को०] ।

अधिगुण[2]—संज्ञा पुं० [सं०] विशिष्ट गुण [को०] ।

अधिगुप्त—वि० [सं०] रक्षित । रखा हुआ । छिपाया हुआ । दबा हुआ ।

अधिचरण—संज्ञा पुं० [सं०] किसी के ऊपर चलना । अतिक्रमण करना [को०] ।

अधिच्छ(पु)—वि० [सं० अदृक्ष] दे० 'अदृश्य' । उ०—अच्छन के आगे ही अधिच्छ गाइयतु है ।—पद्माकर ग्रं०, पृ० २६६ ।

अधिज—वि० [सं०] १. जनमा हुआ । २. उच्च कुल में उत्पन्न [को०] ।

अधिजनन—संज्ञा पुं० [सं०] जन्म [को०] ।

अधिजिह्व—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक से अधिक जीभवाला जीव । साँप आदि । २. जीभ में होनेवाली एक प्रकार की बीमारी [को०] ।

अधिजिह्वा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. एक बीमारी जिसमें रक्त मिले हुए कफ के कारण जीभ के ऊपर सूजन हो जाती है । यह सूजन पक जाने पर असाध्य हो जाती है । २. गले का कौआ ।

अधिजिह्विका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अधिजिह्वा' [को०] ।

अधिज्य—वि० [सं०] जिसकी डोरी खिंची हो । धनुष, जिसकी प्रत्यंचा या जिसका चिल्ला चढ़ा हो ।

अधिज्यकार्मुक—वि० [सं०] जिसके धनुष की प्रत्यंचा चढ़ी हुई हो [को०] ।

अधिज्यधन्वा—वि० [सं०] दे० 'अधिज्यकार्मुक' [को०] ।

अधित्यका—संज्ञा स्त्री० [सं०] पहाड़ के ऊपर की समतल भूमि । ऊँचा पथरीला मैदान । टेबुल लैंड । 'उपत्यका' का उलटा । उ०—(क) हरी भरी घासन सों अधित्यका छबि छाई ।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० १३ । (ख) इसकी कैसी रम्य विशाल अधित्यका है जिसके समीप आश्रम ऋषिवर्य का ।—कानन०, पृ० १०५ ।

अधिदंडनेता—संज्ञा पुं० [सं० अधिदण्डनेतृ] यमराज [को०] ।

अधिदंत—संज्ञा पुं० [सं० अधिदन्त] एक दाँत के ऊपर निकलनेवाला दाँत [को०] ।

अधिदार्व—वि० [सं०] काष्ठ का । काठ से बना [को०] ।

अधिदिन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अधिक तिथि' [को०] ।

अधिदीधित—वि० [सं०] अत्यधिक प्रभा या कांतिवाला [को०] ।

अधिदेव[1]—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० अधिदेवी] इष्टदेव । कुलदेव ।

अधिदेव[2]—वि० देव संबंधी [को०] ।

अधिदैव—वि० [सं०] दैविक । दैवयोग से होनेवाला । आकस्मिक ।

अधिदैवत[1]—संज्ञा पुं० [सं०] वह प्रकरण या मंत्र जिसमें अग्नि, वायु, सूर्य, इत्यादि देवताओं के नामकीर्तन से इष्टदेव का अर्थप्रतिपादन होकर ब्रह्मविभूति अर्थात् सृष्टि के पदार्थों के गुण आदि की शिक्षा मिले । पदार्थविज्ञान संबंधी विषय या प्रकरण ।

अधिदैवत[2]—वि० देवता संबंधी ।

अधिदैविक—वि० [सं०] १. अधिदेव संबद्ध । आधिदैविक । २. आध्यात्मिक [को०] ।

अधिनाथ—संज्ञा पुं० [सं०] १. सबका मालिक । सबका स्वामी । २. सरदार । अफसर । प्रधान अधिकारी ।

अधिनायक—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० अधिनायिका] १. अफसर । सरदार मुखिया । २. मालिक । स्वामी । ३. किसी प्रदेश, देश, जाति या राष्ट्र का सर्वाधिकार संपन्न शासक । तानाशाह । डिक्टेटर ।

अधिनायकतंत्र—संज्ञा पुं० [सं० अधिनायक + तन्त्र] वह शासन व्यवस्था जिसके अनुसार किसी एक शासक को सारी शक्ति प्रदान कर दी जाय । तानाशाही । डिक्टेटरशिप ।

अधिनायकी[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० अधिनायक + हिं० ई (प्रत्य०)]अधिनायक का पद या कार्य [को०] ।

अधिनायकी[2]—वि० अधिनायक संबंधी [को०] ।

अधिनियम—संज्ञा पुं० [सं० अधि + नियम] लोकसभा या सर्वोच्च शासक द्वारा पारित अथवा स्वीकृत विधि, नियम, कानून । ऐक्ट । जैसे, भारतीय शासक संबंधी सन् १६३५ ई० का अधियम ।—भारतीय०, पृ० १ ।

अधिनियमन—संज्ञा पुं० [सं० अधि + नियमन] अधिनियम या विधान बनाने का कार्य [को०] ।

अधिप—संज्ञा पुं० [सं०] मालिक । २. अफसर । सरदार । मुखिया । नायक । ३. राजा ।

अधिपति[1]—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० अधिपत्नी] १. सरदार । मालिक । अधीश । नायक । अफसर । स्वामी । मुखिया । हाकिम । २. राजा । ३. मस्तक का वह भाग जहाँ की चोट प्राणघातक होती है ।

अधिपति[2]—वि० बौद्ध दर्शन के अनुसार अधिपति चार प्रकार के होते हैं—(१) यज्ञाधिपति, (२) विताधिपति, (३) वीर्याधिपति और (४) न्यायाधिपति ।

अधिपतिप्रत्यय—संज्ञा पुं० [सं०] जैन दर्शन के अनुसार वह प्रत्यय या संयम जिसके अनुसार विषय को ग्रहण करने का नियम होता है ।

अधिपत्नी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. स्वामिनी । २. शासिका [को०] ।

अधिपांशुल—वि० [सं०] धूलिधूसरित । धूल से भरा [को०]

अधिपुरुष—संज्ञा पुं० [सं०] परमपुरुष । परमात्मा । ईश्वर [को०] ।

अधिप्रज—वि० [सं०] बहुत अधिक संतान उत्पन्न करनेवाला [को०] ।

अधिबल—संज्ञा पुं० [सं०] गर्भसंधि के तेरह अंगों में से एक । वह धोखा जो किसी को वेश बदले हुए देखकर होता है (नाट्यशास्त्र) ।

अधिबिन्ना—संज्ञा स्त्री० [सं० **अधिविन्ना**] १. अध्यूढ़ा । पहली पत्नी । प्रथम विवाह की स्त्री । वह स्त्री जिसके रहते उसका पति दूसरा विवाह कर ले ।

अधिभू—संज्ञा पुं० [सं०] स्वामी । प्रधान व्यक्ति [को०] ।

अधिभूत[1]—वि० [सं०] भूत संबंधी [को०] ।

अधिभूत[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १. ब्रह्म । २. सृष्टि के समस्त पदार्थ [को०] ।

अधिभोजन—संज्ञा पुं० [सं०] अति भोजन । बहुत अधिक खाना [को०] ।

अधिभौतिक(पु)—वि० हिं० दे० 'आधिभौतिक' । उ०—अधिभौतिक बाधा भई ते किंकर तोरे, बेगि बोलि बलि बरजिए करतूति कठोरे ।—तुलसी ग्रं०, पृ० ४५७ ।

अधिमंथ—संज्ञा पुं० [सं० **अधिमन्थ**] अभिष्यंद रोग का एक अंश ।

अधिमंथन[1]—संज्ञा पुं० [सं० **अधिमन्थन**] अग्नि उत्पन्न करने के लिये अरणी की लकड़ियों को परस्पर रगड़ना [को०] ।

अधिमंथन[2]—वि० रगड़ से अग्नि उत्पन्न करने योग्य (लकड़ी) [को०]

अधिमंथित—वि० [सं० **अधिमन्थित**] अधिमंथ रोग से पीड़ित (को०) ।

अधिमांस—संज्ञा पुं० [सं०] आँख के सफेद भाग में या मसूड़ों के पिछले भाग में होने वाला रोग विशेष [को०] ।

अधिमांसक—संज्ञा पुं० [सं०] एक रोग ।

विशेष—कफ के विकार से नीचे की दाढ़ में विशेष पीड़ा और सूजन होकर मुँह से लार गिरती है ।

अधिमात्र—वि० [सं०] परिणाम से अधिक । बहुत ज्यादा [को०] ।

अधिमास—संज्ञा पुं० [सं०] दे 'अधिक मास' ।

अधिमित्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. परस्पर मित्र । २. ज्योतिष में परस्पर मित्र ग्रहों के योग का नाम ।

अधिमुक्त—वि० [सं०] विश्वासयुक्त [को०] ।

अधिमुक्तक—संज्ञा पुं० [सं०] मधुमाधवी नाम का पौधा [को०] ।

अधिमुक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] विश्वास [को०] ।

अधिमुक्तिक—संज्ञा पुं० [सं०] बौद्धों के अनुसार महाकाल [को०] ।

अधिमुक्तिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] मुक्ता । सीप । मोती का सीप [को०] ।

अधिमुह्य—संज्ञा [सं०] चौंतीस पूर्वजन्मों में बुद्ध का एक नाम [को०] ।

अधियज्ञ[1]—वि० [सं०] यज्ञ संबंधी । यज्ञ से संबंध रखनेवाला ।

अधियज्ञ[2]—संज्ञा पुं० प्रधान यज्ञ [को०] ।

अधिया[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० **अधिक**] १. आधा हिस्सा । गाँव में आधी पट्टी की हिस्सेदारी । २. एक रीति जिसके अनुसार उपज का आधा मालिक को और आधा उसके संबंध में परिश्रम करने वाले को मिलता है । उ०—खेती करै अधिया, न बैल न बधिया ।—घाघ, पृ० ८६ ।

अधिया[2]—संज्ञा पुं० [सं० **अधिक**] आधा हिस्सेदार । गाँव में आधी पट्टी का मालिक । अधियार ।

अधियान(पु)—संज्ञा पुं० [सं०] जपनी । गोमुखी । एक थैली जिसमें हाथ डालकर माला जपते हैं २. छोटी माला । सुमिरनी ।

अधियाना—क्रि० स० [**हिं० आधा से नाम०**] आधा करना । दो बराबर हिस्सों में बाँटना ।

अधियार†—संज्ञा पुं० [हिं० **अधिया+आर**] (प्रत्य०)] १. किसी जायदाद में आधा हिस्सा । २. आधे का मालिक । वह जमींदार या असामी जो किसी गाँव के हिस्से या जोत में आधे का हिस्सेदार हो । ३. वह जमींदार या असामी जिसका आधा संबंध एक गाँव से और आधा दूसरे गाँव से हो और जो अपना समय दोनों गाँवों के काम में लगावे ।

अधियारिन(पु)—संज्ञा स्त्री० [**हिं० अधियार+इन** (प्र०)] १. सौत । सपत्नी । २. बराबर का दावा रखने और आधे हिस्से की हिस्सेदार स्त्री ।

अधियारी(पु)—संज्ञा स्त्री० [**हिं० अधियार+ई** (**प्र०**)] किसी जायदाद में आधी हिस्सेदारी । २. किसी जमींदार या असामी की जमींदारी या जोत का दो भिन्न भिन्न गाँवों में होना ।

अधियोग—संज्ञा पुं० [सं०] यात्रा के लिये शुभ माना जानेवाला ग्रहों का एक योग [को०] ।

अधिरथ[1]—संज्ञा सं० [सं०] सारथी । जो रथ को हाँकनेवाला हो । गाड़ीवान ।

अधिरथ[2]—वि० १. रथारूढ़ । रथ पर चढ़ा हुआ । २. कर्ण को पालनेवाले सूत का नाम ३. बड़ा रथ । उत्तम रथ ।

अधिराज—संज्ञा पुं० [सं०] राजा । बादशाह । महाराज । प्रधान राजा । चक्रवर्ती । सम्राट् ।

अधिराज्य—संज्ञा पुं० [सं०] साम्राज्य । चक्रवर्ती राज्य ।

अधिरात(पु)—संज्ञा स्त्री० [**हिं०**] आधीरात । उ०—पिउ पिउ अधिरात पुकारत ।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० १७० ।

अधिरूढ़—वि० [सं०] १. आरूढ़ । चढ़ा हुआ । २. बढ़ा हुआ [को०] ।

अधिरोपण—संज्ञा पुं० [सं०] ऊपर उठाने या चढ़ाने का कार्य [को०] ।

अधिरोह—संज्ञा पुं० [सं०] १. हाथी पर चढ़ना । २. ऊपर चढ़ना । ३. सीढ़ी [को०] ।

अधिरोहण—संज्ञा पुं० [सं०] चढ़ना । सवार होना । ऊपर उठना ।

अधिरोहिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] सीढ़ी । निसेनी । जीना ।

अधिरोही—वि० [सं०] अधिरोहण करनेवाला । ऊपर चढ़नेवाला [को०] ।

अधिलोक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] संसार । ब्रह्मांड ।

अधिलोक[2]—वि० ब्रह्मांड संबंधी ।

अधिवक्ता—संज्ञा पुं० [सं० **अधिवक्तृ**] १. न्यायालय में किसी पक्ष का समर्थन करनेवाला । वकील । २. वक्ता [को०] ।

अधिवचन—संज्ञा पुं० [सं०] १. बढ़ाकर कही हुई बात २. नाम । संज्ञा ३. पक्ष का समर्थन ।

अधिवसित—वि० [सं० **अधिवस+इत** (**प्रत्य०**)] बसा हुआ । आबाद [को०] ।

अधिवाचन—संज्ञा पुं० [सं०] नामजदगी । निर्वाचन । चुनाव ।

अधिवास—संज्ञा पुं० [सं०] १. निवासस्थान । स्थान । रहने की जगह । २. महासुगंध । खुशबू । ३. विवाह से पहले तेल हलदी चढ़ाने की रीति । ४. उबटन । ५. अधिक ठहरना । अधिक देर तक रहना । ६. दूसरे के घर जाकर रहना ।

विशेष—मनु के अनुसार स्त्रियों के ६ दोषों में से एक ।

७. यज्ञारंभ के पूर्व देवता का आवाहन (को०)। ८. हठ (को०)। ९. लबादा (को०)। १०. निवासी (को०)। ११. पड़ोसी [को०]। १२. ऊपर रहनेवाला [को०]।

अधिवासन--संज्ञा पुं० [सं०] [वि०--**अधिवासित**] १. सुगंधित करने कि क्रिया। २. देवता की मूर्ति को प्राणप्रतिष्ठा से पहले सुगंधित जल चंदन आदि से लिप्त कर रात भर किसी स्थान में वस्त्र से ढाँककर और जल में डुबोकर रख छोड़ने की रीति।

अधिवासभूमि--संज्ञा स्त्री० [सं०] बस्ती। वासस्थान [को०]।

अधिवासित--वि० [सं०] १. सुगंधित। वासयुक्त। २. सुसज्जित [को०]

अधिवासी--संज्ञा पुं० [सं०] १. निवासी। रहनेवाला। २. उत्तरप्रदेश का वह कृषक जिसका नाम सरकारी कागजपत्रों में सन् १३५६ फसली और १३५९ फसली में चढ़ गया हो।

अधिविन्ना--संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जिसका पति उसके रहते दूसरा विवाह कर ले [को०]।

अधिवीत--वि० [सं०] लपेटा हुआ। ढका हुआ [को०]।

अधिवेत्तव्या--संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जिसके विद्यमान रहते दूसरा विवाह कर लेना उचित हो [को०]।

अधिवेत्ता--संज्ञा पुं० [सं०] पहली स्त्री के रहते दूसरा विवाह करनेवाला व्यक्ति।

अधिवेद[1]--संज्ञा पुं० [सं०] एक स्त्री के रहते दूसरा विवाह करनेवाला।

अधिवेद[2]--वि० [सं०] वेद से संबंधित [को०]।

अधिवेदन--संज्ञा पुं० दे० 'अधिवेद[1]' [को०]।

अधिवेदनीया--संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अधिवेत्तव्या' [को०]।

अधिवेदवेद्या--संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अधिवेदनीया' [को०]।

अधिवेशन--संज्ञा पुं० [सं०] बैठक। संघ। सभा। जलसा।

अधिशय--संज्ञा पुं० [सं०] योग। जोड़। मिलाई गई या दी हुई वस्तु [को०]।

अधिशयन--संज्ञा पुं० [सं०] किसी चीज पर लेटना। सोना [को०]।

अधिशयित--वि० [सं०] १. लेटा या सोया हुआ। २. लेटने या सोने के उपयोग में आनेवाला [को०]।

अधिशस्त--वि० [सं०] कुख्यातिप्राप्त। बदनाम [को०]।

अधिश्रय--संज्ञा पुं० [सं०] १. आधार। पात्र। २. उबालना। गरम करना [को०]।

अधिश्रयण--संज्ञा पुं० [सं०] १. आग पर चढ़ाना। आग पर रखना २. तंदूर। भाड़। अँगीठी। चूल्हा।

अधिश्रयणी--संज्ञा स्त्री० [सं०] सीढ़ी। निसेनी। निःश्रेणी। जीना।

अधिश्रित--वि० [सं०] १. आग पर रखा हुआ। २. आबाद [को०]।

अधिषवण--संज्ञा पुं० [सं०] १. सोमरस निचोड़ने की क्रिया। २. सोमरस निचोड़ने का साधन [को०]।

अधिष्ठाता--संज्ञा पुं० [सं० **अधिष्ठातृ**] [स्त्री० अधिष्ठात्री] १. अध्यक्ष। मुखिया। प्रधान नियंता। उ०--इस भूमि का एकमात्र अधिष्ठाता देवता 'प्रेम' है।--रस०, पृ० ८०। २. किसी कार्य की देखभाल करनेवाला। वह जिसके हाथ में किसी कार्य का भार हो। ३. प्रकृति को जड़ से चेतन अवस्था में लानेवाला पुरुष। ईश्वर।

अधिष्ठात्री--संज्ञा स्त्री० [सं०] अधिष्ठाता का स्त्रीलिंग रूप --उ०--प्रकृति अधिष्ठात्री है इसकी, कहीं विकृति का नाम नहीं।--पंचवटी, पृ० १०।

अधिष्ठान--संज्ञा पुं० [सं०] १. वासस्थान। रहने का स्थान। २. नगर। शहर। जनपद। बस्ती। ३. स्थिति। कयाम। पड़ाव। मुकाम। टिकान। ४. आधार। सहारा। उ०--मंगलशक्ति के अधिष्ठान राम और कृष्ण जैसे पराक्रमशाली और धीर हैं वैसा ही उनका रूपमाधुर्य और उनका शील भी लोकोत्तर है।--रस, पृ० ६१। ५. वह वस्तु जिसमें भ्रम का आरोप हो।

विशेष--जैसे रज्जु में सर्प और शुक्ति में रजत। यहाँ रज्जु और शुक्ति दोनों अधिष्ठान हैं क्योंकि इन्हीं में सर्प और रजत का भ्रम होता है।

६. सांख्य में भोक्ता और भोग का संयोग।

विशेष--जैसे, आत्मा का शरीर के साथ और इंद्रियों का विषय के साथ।

७. अधिकार। शासन। राजसत्ता। ८. गच जिसपर खंभा या पाया आदि बनाया जाय (वास्तु)।

अधिष्ठानदेह--संज्ञा पुं० [सं०] वह सूक्ष्म शरीर जिसमें मरण के उपरांत पितृलोक में आत्मा का निवास रहता है।

अधिष्ठानशरीर--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अधिष्ठानदेह'।

अधिष्ठित--वि० [सं०] १. ठहरा हुआ। बसा हुआ। स्थापित। २. निर्वाचित। नियुक्त।

अधिस्त्री--संज्ञा स्त्री० [सं०] उच्च श्रेणी की स्त्री [को०]।

अधीकार--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अधिकार' [को०]।

अधीक्षक--संज्ञा पुं० [सं० **अधि + ईक्षक**] अधीनस्थ कर्मचारियों के कार्यों का निरीक्षण करनेवाला अधिकारी (को०)।

अधीत--वि० पुं० [सं०] पढ़ा हुआ। बाँचा हुआ। उ०--प्रथमहि ध्यान पदस्थ है, दुतिये चिंतु अधीत। त्रितिय ध्यान रूपस्थ पुनि, चतुर्थ रूपातीत।--सुंदर ग्रं०, भा १, पृ० ५३।

अधीतविद्य--वि० [सं०] जिसने वेदों का अध्ययन कर लिया हो या जिसका अध्ययन समाप्त हो गया हो [को०]।

अधीति--संज्ञा स्त्री० [सं०] १. अध्ययन। २. स्मृति। ३. संग्रह [को०]।

अधीती--वि० [सं० **अधीतिन्**] जिसने भली भाँति अध्ययन किया हो [को०]।

अधीन[1]--वि० [सं०] १. आश्रित। मातहत। वशीभूत। आज्ञाकारी। दबैल। बस का। काबू का। उ०--दम दुर्गम, दान दया मख कर्म सुधर्म अधीन सबै जन (धन) को।--तुलसी ग्रं०, पृ० २१९। २. विवश। लाचार। दीन। उ०--हिंसा मद ममता रस भूल्यौ आसाहीं लपटानौ। याही करत अधीन भयो है, निद्रा अति न अघानौ।--सूर०, १। ४७।

अधीन[2]--संज्ञा पुं० दास। सेवक।

अधीनता--संज्ञा स्त्री० [सं०] १. परवशता। परतंत्रता। आज्ञाकारिता। मातहती। २. लाचारी। बेबसी। दीनता। गरीबी।

अधीनना(५)--क्रि० अ० [सं० **अधीन से नाम०**] अधीन होना। वश में होना उ०--यह सुनि कंस खड्ग लै धायो तब देवै आधीनी हो। यह कन्या जो बकसु बंधु मोहिं दासी जनिकर दीन्हो हो।--सूर (शब्द०)।

अधीनस्थ--वि [सं० **अधीन + स्थ**] किसी के अधीन रहनेवाला [को०]

अधीमंथ—संज्ञा पुं० [सं० अधीमन्थ] दे० 'अधिमंथ' [को०]।

अधीयान¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. विद्यार्थी। अध्ययन करनेवाला व्यक्ति। २. विद्यार्थी या अध्यापक रूप में वेदों का अध्ययन पूरा करनेवाला व्यक्ति [को०]।

अधीयान²—वि० पढ़नेवाला [को०]।

अधीर—वि० पुं० [सं०] १. धैर्यरहित। घबराया हुआ। उद्विग्न। व्यग्र। बेचैन। व्याकुल। विह्वल। २. चंचल। अस्थिर। बेसब्र। उतावला। तेज। आतुर। ३. असंतोषी।

यौ०—अधीराक्षी। अधीर विप्रेक्षित।

अधीरा¹—वि० स्त्री० [सं०] जो धीर न धरे।

अधीरा²—संज्ञा स्त्री० १. मध्या और प्रौढ़ा नायिकाओं के तीन भेदों में से एक। वह नायिका जो नायक में नारीविलाससूचक चिह्न देखने से अधीर होकर प्रत्यक्ष कोप करे। २. विद्युत्। बिजली।

अधीवास—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का पहनावा जिससे सारा शरीर ढक जाय। लवादा [को०]।

अधीश—संज्ञा पुं० [सं०] १. स्वामी। मालिक। सरदार। २. राजा।

अधीश्वर—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० अधीश्वरी] १. मालिक। स्वामी। पति। अध्यक्ष। २. अधिपति। भूपति। राजा।

अधीष्ट¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. किसी को सत्कारपूर्वक किसी कार्य में लगाना। नियोग।

अधीष्ट²—वि० सत्कारपूर्वक नियोजित। आदर के साथ बुलाकर किसी काम में लगाया हुआ।

अधीस(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अधीश'। उ०—परम अधीस बस भूमि थल देखिये।—भिखारी० ग्रं०, भा० २, पृ० १६६।

अधीसारक—संज्ञा पुं० [सं०] वेश्याओं के पास बार बार जानेवाला व्यक्ति। चंद्रगुप्त के समय में इन्हें कठोर दंड दिया जाता था।

अधुना—क्रि० वि० [सं०] इस समय। संप्रति। आजकल। अब। इन दिनों।

अधुनातन—वि० [सं०] सांप्रतिक। वर्तमान समय का। अब का। हाल का। 'सनातन' का उलटा।

अधुर—वि० [सं०] भाररहित। २. चिंतामुक्त [को०]।

अधूत—वि० [सं०] १. अकंपित। २. निर्भय। निडर। ढीठ। उचक्का। उ०—शंखचूड़ धनपति का दूता। लै भागा एक सखी अधूता (शब्द०)।

अधूमक¹—वि० [सं०] धूमरहित [को०]।

अधूमक²—संज्ञा पुं० [सं०] जलती हुई आग जिसमें धुआँ न हो [को०]।

अधूरा—वि० पुं० [सं० अर्ध, हिं० अध+पूरा या ऊरा (प्रत्य०)] [स्त्री० अधूरी] अपूर्ण। जो पूरा न हो। अधा। असमाप्त अधकचरा।

मुहा०—अधूरा जाना=असमय गर्भपात होना। कच्चा बच्चा होना। जैसे—उस स्त्री को अधूरा गया (शब्द०)।

अधृत¹—वि० [सं०] १. धारण न किया हुआ। २. अनियंत्रित [को०]।

अधृत²—संज्ञा पुं० [पुं०] विष्णु के सहस्र नामों में से एक [को०]।

अधृति¹—संज्ञा स्त्री० [सं०[१. धृति की विपरीतता। अधीरता। उद्वेग। दृढ़ता का अभाव। घबराहट। २. आतुरता। असंयम। ४. दुःख।

अधृति²—वि० [सं०] अस्थिर [को०]।

अधृष्ट—वि० [सं०] १. जो ढीठ न हो। २. विनम्र। लज्जाशील। ३. अजेय। ४. क्षतिरहित [को०]।

अधृष्य—वि० [सं०] १. अजेय। २. सलज्ज। गर्वयुक्त [को०]।

अधेंगा†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अधाँग'।

अधेड़—वि०] सं० अर्ध; हिं० अध+ऐड़ (प्रत्य०)] वि० आधी उम्र का। उतरती अवस्था का। ढलती जवानी का। बुढ़ापे और जवानी के बीच का।

अधेनु—संज्ञा स्त्री० [सं०] दूध न देनेवाली गाय। ठाँठ गाय [को०]।

अधेला—संज्ञा पुं० [हिं० आधा+एला (प्रत्य०)] आधा पैसा। एक छोटा ताँबे का सिक्का जो सन् १९५९ तक चलता था। जो पैसे का आधा होता है।

अधेलिका†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अँधियार'।

अधेली—संज्ञा स्त्री० [हिं० आधा+एली (प्र०)] आधा रुपया। आठ आने का सिक्का। अठन्नी।

विशेष—चाँदी या निकल का सिक्का जो आधे रुपए के बराबर था और सन् १९५९ तक चलता था।

अधैर्य¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. धैर्य का अभाव। घबड़ाहट। व्याकुलता। उद्विग्नता। चंचलता। उतावलापन।

अधैर्य²—वि० १. धैर्यररहित। व्याकुल। उद्विग्न। चंचल। २. उतावला। आतुर।

अधैर्यवान—वि० [सं० अधैर्यवान्] १. धैर्यरहित। व्यग्र। उद्विग्न। घबड़ानेवाला। २. आतुर। उतावला।

अधोंशुक—संज्ञा पुं० [सं० अधस्=अंशुक] १. नीचे पहनने का वस्त्र। जैसे पायजामा, धोती इत्यादि। २. अस्तर।

अधो—अव्य० [सं० अधस् का समासरूप] दे० 'अधः'। जैसे, अधोमुख अधोगति आदि में 'अधो'।

अधोक्षज—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु का एक नाम। कृष्ण का एक नाम।

अधोगति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पतन। गिराव। उतार। उ०—मूलन ही की जहाँ अधोगति गाइया।—रामचं०, पृ० ८। २. अवनति। दुर्गति। दुर्दशा।

अधोगमन—संज्ञा पुं० [सं०] १. नीचे जाना। २. अवनति। पतन। दुर्दशा।

अधोगामी—वि० [सं० अधोगामिन्] [स्त्री० अधोगामिनी] १. नीचे जानेवाला। २. अवनति की ओर जानेवाला। बुरी दशा को पहुँचनेवाला।

अधोघंटा—संज्ञा स्त्री० [सं० अधोघण्टा] चिचड़ा। अपामार्ग।

अधोछज(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अधोक्षज] दे० 'अधोक्षज'। उ०—इंद्री दृष्टि विकार तें रहित अधोछज जोति।—नंद० ग्रं० पृ० १७८।

अधोजिह्विका—संज्ञा स्त्री० [सं०] गले का कौआ [को०]।

अधोटी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का बाजा। उ०—बाजत ताल दंग अधौटी बिच मुरली धुनि थोरी।—छीत०,पृ० २६।

अधौतर—संज्ञा पुं० [देश०] एक देशी कपड़ा जो गज्जी गाढ़े से भी मोटा होता है। उ०—सिरी साफ बाफता अधोतर मेख कहिये।—सुंदर ग्रं०, भा० १, पृ० ७५।

अधोदिशि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दक्षिण दिशा। २. अधोविंदु [को०]।

अधोदृष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] नीची दृष्टि। केवल नीचे की ओर देखना। उ०—सबै अंग लै अंग ही में दुरायो। अधोदृष्टि कै अश्रुधारा बहायो।—रामचं०, पृ० ९६।

अधोदेश—संज्ञा पुं० [सं०] १. नीचे का स्थान। नीचे की जगह। २. शरीर के नीचे का भाग या हिस्सा।

अधोद्वार—संज्ञा पुं० [सं०] गुदा [को०]।

अधोनिलय—संज्ञा पुं० [सं०] नरक [को०]।

अधोभुवन—संज्ञा पुं० [सं०] पाताल। नीचे का लोक।

अधोभूमि—संज्ञा स्त्री० [सं०] पर्वत के नीचे की जमीन। नीची भूमि। [को०]।

अधोमंडल—संज्ञा पुं० [सं० **अधोमण्डल**] भूमि से साढ़े सात मील तक का ऊँचा वायुमंडल [को०]।

अधोमर्म—संज्ञा पुं० [सं०] गुह्यद्वार [को०]।

अधोमार्ग—संज्ञा पुं० [सं०] १. नीचे का रास्ता। सुरंग का मार्ग। २ गुदा।

अधोमुख[1]—वि० [सं०] नीचे मुख किए हुए। मुँह लटकाए हुए। २. औंधा। उलटा।

अधोमुख[2]—क्रि० वि० औंधा। उलटा। मुँह के बल। जैसे—वह अधोमुख गिरा (शब्द०)। उ०—गरभ बास दस मास अधोमुख, तहँ न भयो बिस्राम।—सूर०, १।४७।

अधोमुखा—संज्ञा स्त्री० [सं०] गोजिह्वा [को०]।

अधोमूल—वि० [सं०] जिसकी जड़ नीचे हो [को०]।

अधोयंत्र—संज्ञा पुं० [सं० **अधोयन्त्र**] भभका [को०]।

अधोरध(पु)—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'अधोर्ध'। उ०—दिशि पूरब पच्छिम दाहिने बाएँ अधोरध संकन मेनी फिरै।—सेवक (शब्द०)।

अधोर्ध—क्रि० वि० [सं० **अधः+ऊर्ध्व**] नीचे ऊपर। तले ऊपर।

अधोलंब—संज्ञा पुं० [सं० **अधोलम्ब**] १. वह खड़ी रेखा जो किसी दूसरी सीधी आड़ी रेखा पर इस प्रकार आकर गिरे कि पार्श्व के दोनों कोण समकोण हों। लंब। २. साहुल। सूत में बँधा हुआ लोहे या पत्थर का वह गोला या घंटे के आकार का लट्टू जिसे मकान बनानेवाले कारीगर पर्दे की सीध लेने के लिये काम में लाते हैं।

विशेष—इस लट्टू को दीवार के सिरे से नीचे की ओर लटकाते हैं और इस सूत और दीवाल के अंतर का मिलान करते हैं। यह यंत्र जल की गहराई नापने के भी काम आता है।

अधोलिखित—वि० [सं० **अधस्+लिखित**] नीचे लिखा हुआ। उ०—अधोलिखित काव्य महाकाव्य की कोटि में पूर्ण नहीं ठहरते।—बीसल० रास०, पृ० ४५।

अधोलोक—संज्ञा पुं० [सं०] नीचे का लोक। पाताल।

अधोवदन—वि० [सं०] दे० 'अधोमुख' [को०]।

अधोवस्त्र—संज्ञा पुं० [सं०] शरीर के नीचेवाले भाग में पहना जानेवाला वस्त्र [को०]।

अधोवस्था—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अधोगति'। उ०—यह दो सूत्र हमारी संस्कृति के मूल तत्व हैं और इस अधोवस्था में भी हम उन्हें अपनाए हुए हैं।—प्रेम० और गोर्की पृ० १५१।

अधोवातावरोधोदावर्त—संज्ञा पुं० [सं०] रोगविशेष। अधोवायु के वेग को रोकने से उत्पन्न उदावर्त रोग।

विशेष—इस रोग के ये लक्षण हैं—मल मूत्र का रुक जाना, अफरा चढ़ना, गुदा, मूत्राशय, लिंगेंद्रिय में पीड़ा तथा बादी से पेट में अन्य रोगों का होना।

अधोवायु—संज्ञा पुं० [सं०] अपना वायु। गुदा की वायु। पाद। गोज। नीचे की हवा।

अधोविंदु—संज्ञा पुं० [सं० **अधोबिन्दु**] पैर के ठीक नीचे माना जानेवाला विंदु [को०]।

अधोही†—संज्ञा स्त्री० [**हिं० आधा+ओही (प्रत्य०)**] जानवरों की खाल का वह आधा भाग जो जानवर की लाश ढोनेवालों को मिलता है [को०]।

अधौड़ी—संज्ञा स्त्री० [**हिं० अध+औड़ी (प्र०)**] १. आधा चरसा। चरसे या पूरे चमड़े का सिझाया हुआ आधा टुकड़ा।

विशेष—सिझाने के लिये चमड़े के दो टुकड़े करने की आवश्यकता होती है इसी से एक एक टुकड़ा अधौड़ी कहलाता है।

२. मोटा चमड़ा। 'नरी' का उलटा जो प्रायः बकरी आदि के पतले चमड़े का होता है।

यौ०—**अधौड़ी अस्तर**=(१) जूते के तले के ऊपर का मोटा चमड़ा जिसपर नरी न हो। (२) वह जूता जिसपर केवल अधौड़ी का मोटा स्तर हो। ऊपर से नरी का लाल चमड़ा न हो। ३. आमाशय। पक्वाशय। उ०—भरी अधौड़ी भावठी, बैठा पेट फुलाइ। दादू सूकर स्वान ज्यों ज्यों आवै त्यों खाइ।—दादू०, पृ० २६।

मुहा०—**अधौड़ी तनना**=अघाना। खूब पेट भर जाना। जैसे—आज तो निमंत्रण था खूब अधौड़ी तनी होगी। **अधौड़ी तानना**=खूब पेट भरकर खाना।

अधौन(पु)—वि० [**हिं० आधा+ऊन**] आधा भाग या अंश [को०]।

अधौरी[1]—संज्ञा स्त्री० [**देश०**] एक प्रकार का बड़ा वृक्ष। बकली। धौरा। शेन।

विशेष—हिमालय की तराई में जम्मू से आसाम तक और दक्षिण भारत तथा बर्मा के जंगलों में पाया जाता है। इसकी छाल चिकनी तथा खाकी रंग की होती है। छाल और पत्तियाँ चमड़ा सिझाने के काम आती हैं। लकड़ी से हल तथा नावें बनती हैं। इसकी लकड़ी का कोयला भी अच्छा होता है। यह चैत से जेठ तक फूलता और वर्षा ऋतु में फलता है। फल बहुत समय तक वृक्ष पर रहते हैं। इसकी छाल से एक प्रकार का मीठा और खाने योग्य गोंद निकलता है।

अधौरी[2]—संज्ञा स्त्री० दे० 'अधौरी'। उ०—बाजत ताल मृदंग अधौरी, कूजत बेनु रसाल।—नंद० ग्रं०, पृ० १९६।

अध्मान—संज्ञा पुं० [सं०] रोगविशेष। पेट का अफरा।

विशेष—इस रोग में पेट अधिक फूल जाता है, दर्द होती है, अधोवायु का छूटना बंद हो जाता है।

अध्यंडा—संज्ञा स्त्री० [सं० **अध्यण्डा**] अजशृंगी और भूमि आमलकी नामक पौधे (को०)।

अध्यांडा—संज्ञा स्त्री० [सं० **अध्याण्डा**] दे० 'अध्यंडा' [को०]।

अध्यक्ष[1]--संज्ञा पुं० [सं०] १. स्वामी। मालिक । २. अफसर । नायक। सरदार। प्रधान। मुखिया । ३. मुख्य अधिकारी। अधिष्ठाता। ४. सफेद मदार । श्वेतार्क। ५. क्षीरिका। खिरनी।

अध्यक्ष[2]--वि० १. गोचर। दृश्य। २. निरीक्षण करनेवाला [को०]।

अध्यक्षर[1]-- क्रि० वि० [सं०] अक्षरशः। अक्षर अक्षर। जैसे--यह बात अध्यक्षर सत्य है (शब्द०)।

अध्यक्षर[2]--संज्ञा पुं० [सं०] ओम् मंत्र या शब्द [को०]।

अध्यक्षीय--वि० [सं०] अध्यक्ष से संबंधित। अध्यक्ष का [को०]।

अध्यग्नि--संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का स्त्रीधन । यौतुक या दायज।

विशेष--यह अग्नि को साक्षी कर कन्या को विवाह के समय मायकेवालों की ओर से दिया जाता है ।

अध्यच्छ(पु)--संज्ञा पुं० [सं० अध्यक्ष] दे० 'अध्यक्ष'।

अध्ययन--संज्ञा पुं० [सं०] १. पठन पाठन। पढ़ाई । २. ब्राह्मणों के षट्कर्मों में से एक कर्म।

अध्ययनीय--वि० [सं०] अध्ययन के योग्य। पठनीय [को०]।

अध्यर्ध[1]--संज्ञा पुं० [सं०] वायु जो सबको धारण करनेवाली और बढ़ानेवाली है और सारे संसार में व्याप्त है।

अध्यर्ध[2]--वि० [सं०] एक और उसका आधा। डेढ़।

अध्यर्बुद--संज्ञा पुं० [सं०] रोगविशेष ।

विशेष--जिस स्थान पर एक बार अर्बुद रोग हुआ हो उसी स्थान पर यदि फिर अर्बुद हो तो उसे अध्यर्बुद कहते है।

अध्यवसान--संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रयत्न। २. दृढ़ता। ३. अध्यवसाय। ४. प्रकृति अप्रकृति की ऐसी अभिन्नता जिसमें एक दूसरे में पूर्णतया समाहित हो [को०]।

अध्यवसाय--संज्ञा पुं० [सं०] १ लगातार उद्योग। अविश्रांत परिश्रम। निःसीम उद्यम । दृढ़ता पूर्वक किसी काम में लगा रहना। २. उत्साह। ३. निश्चय। प्रतीति ।

अध्यवसायित--वि० [सं०] जिसके लिये प्रयास किया गया हो [को०]।

अध्यवसायी--वि० [सं० अध्यवसायिन्] १. लगातार उद्योग करनेवाला। परिश्रमी। उद्योगी। उद्यमी । २. उत्साही।

अध्यवसायित--जिसने संकल्पपूर्वक किसी कार्य के लिये प्रयत्न किया हो [को०] ।

अध्यवसिति--संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अध्यवसाय' [को०]।

अध्यशन--संज्ञा पुं० [सं०] अधिक मात्रा में भोजन करना। अजीर्ण। अनपच ।

अध्यस्त--वि० [सं०] जिसका भ्रम किसी अधिष्ठान में हो ।

विशेष--जैसे--रज्जु में सर्प, शुक्ति में रजत और स्थाणु में पुरुष का भ्रम। यहाँ सर्प, रजत और पुरुष अध्यस्त हैं और रज्जु आदि अधिष्ठानों में इनका भ्रम होता है ।

अध्यस्थ--संज्ञा पुं० [सं०] अस्थि के ऊपर का भाग [को०]।

अध्यस्थि--संज्ञा स्त्री० [सं०] एक अस्थि के ऊपर निकलनेवाली दूसरी अस्थि। हड्डी के ऊपर की हड्डी [को०] ।

अध्याइ(पु)--संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अध्याय'। उ०--अब मुनि लै द्वितीय अध्याइ। जामैं ब्रह्मादिक सब आइ।--नंद० ग्रं०, पृ० २२३।

अध्यातम(पु)--संज्ञा पुं० दे० 'अध्यात्म'। उ०--अरु अध्यातम दीप जु कोई। बुध्यादिक परकासक सोई।--नंद० ग्रं०, २२६।

अध्यात्म[1]--संज्ञा पुं० [सं०] १. ब्रह्मविचार। ज्ञान तत्व। आत्मज्ञान। २. परमात्मा। ३. आत्मा।

अध्यात्म[2]--वि० आत्मा से संबद्ध [को०]।

अध्यात्मज्ञान--संज्ञा पुं० [सं०] आत्मा तथा परमात्मा से संबंध रखनेवाला ज्ञान [को०]।

अध्यात्मदर्शी--वि० [सं० अध्यात्मदर्शिन्] आत्मा और परमात्मा का ज्ञान रखनेवाला [को०]।

अध्यात्मयोग--संज्ञा पुं० [सं०] मन को अन्य विषयों की ओर से हटाकर परमात्मा की ओर केंद्रित करना [को०]

अध्यात्मरति--वि० [सं०] परमात्मा के प्रति अनुरक्त रहनेवाला [को०]।

अध्यात्मा--संज्ञा पुं० [सं० अध्यात्मन्] परमात्मा। ईश्वर।

अध्यात्मिक(पु)--वि० [हिं०] दे० 'आध्यात्मिक'।

अध्यापक--संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० अध्यापिका] शिक्षक। गुरु। पढ़ानेवाला। उस्ताद।

अध्यापकी--संज्ञा स्त्री० [सं० अध्यापक+हिं० ई (प्रत्य०)] पढ़ाई। पढ़ाने का काम। मुदर्रिसी।

अध्यापन--संज्ञा पुं० [सं०] शिक्षण। पढ़ाने का कार्य।

अध्यापयिता--संज्ञा पुं० [सं० अध्यापयितृ] शिक्षक। अध्यापक [को०]।

अध्यापिका--संज्ञा स्त्री० [सं०] पढ़ानेवाली। शिक्षिका [को०]।

अध्याय--संज्ञा पुं० [सं०] १. ग्रंथविभाग। २. पाठ। सर्ग। परिच्छेद।

अध्यायी[1]--वि० [सं० अध्यायिन्] अध्ययन में लगा हुआ [को०]।

अध्यायी[2]--संज्ञा पुं० विद्यार्थी [को०]।

अध्यारूढ़--वि० [सं० अध्यारूढ] १. आरूढ़। चढ़ा हुआ। सवार। २. आक्रांत। ३. अत्यधिक। ४. किसी की तुलना में उससे श्रेष्ठ। ५. नीचे या निम्नतर [को०]।

अध्यारोप--संज्ञा पुं० [सं०] १. एक के व्यापार का दूसरे में लगाना। अपवाद। दोष। अध्यास। २. झूठी कल्पना। वेदांत के अनुसार अन्य में अन्य वस्तु का अभाव या भ्रम; जैसे ब्रह्म में जो सच्चिदानद अनंत अद्वितीय है, अज्ञानादि सकल जड़ समूह का आरोपण। ३. सांख्य के अनुसार एक के व्यापार को अन्य में लगाना। जैसे, प्रकृति के व्यापार को ब्रह्म में आरोपित कर उसको जगत् का कर्ता मानना, या इंद्रियों की क्रियाओं को आत्मा में लगाना और उसको उनका कर्ता मानना।

अध्यारोपण--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अध्यारोप' [को०]।

अध्यारोपित--वि० [सं०] अध्यारोपण किया हुआ। भ्रमवश आरोपित [को०]।

अध्यावाहनिक--संज्ञा पुं० [सं०] वह द्रव्य जो कन्या को पिता के घर से पति के घर जाते समय मिलता है। यह स्त्रीधन समझा जाता है।

अध्यास--संज्ञा पुं० [सं०] १. अध्यारोप। भ्रांत ज्ञान। मिथ्या ज्ञान। कल्पना। और वस्तु में और वस्तु की धारणा।

अध्यासन—संज्ञा पुं० [सं०] १. उपवेशन। बैठना। २. आरोपण। ३. स्थान।

अध्याहरण—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अध्याहार' [को०]।

अध्याहार—संज्ञा पुं० [सं०] १. तर्क वितर्क। ऊहापोह। विचिकित्सा। विचार। बहस। २. वाक्य को पूरा करने के लिये उसमें और कुछ शब्द ऊपर से जोड़ना। उ०—प्रसंगानुकूल आक्षेप अथवा अध्याहार करके ही अर्थबोध होता है।—शैली०, पृ० ७३। ३. अस्पष्ट वाक्य को दूसरे शब्दों में स्पष्ट करने की क्रिया।

अध्याहृत—वि० [सं०] अध्याहार किया हुआ [को०]।

अध्युषित—वि० [सं०] बसा हुआ। आबाद [को०]।

अध्युष्ट—वि० पुं० [सं०] १. बसा हुआ। आबाद। २. साढ़े तीन। तीन और आधा (को०)। ३. साढ़े तीन वलय की सर्प की कुंडली [को०]।

अध्युष्ट्र—संज्ञा पुं० [सं०] ऊँटगाड़ी [को०]।

अध्यूढ़[1]—वि० [सं० अध्यूढ] १. उच्च। उन्नत। २. समृद्ध। ३. अत्यधिक [को०]।

अध्यूढ़[2]—संज्ञा पुं० १. शिव। २. किसी स्त्री का वह पुत्र जो विवाह के पूर्व उत्पन्न हुआ हो। [को०]।

अध्यूढ़ा—संज्ञा स्त्री० [सं० अध्यूढा] प्रथम विवाहित स्त्री। वह स्त्री जिसके रहते पति दूसरा विवाह कर ले। ज्येष्ठा पत्नी।

अध्यूहन—संज्ञा पुं० [सं०] परत डालना (राख आदि की) [को०]।

अध्येंन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अध्ययन] दे० 'अध्ययन'। उ०—दस पंच दिन्न अध्येंन कीन्ह। दस च्यारि सार सब सीख लीन।—पृ० रा०, १।७३१।

अध्येतव्य—वि० पुं० [सं०] पढ़ने योग्य। अध्ययन करने योग्य।

अध्येता—संज्ञा पुं० [सं० अध्येतृ] पढ़नेवाला। विद्यार्थी।

अध्येय—वि० [सं०] पढ़ने योग्य। अध्ययन करने योग्य।

अध्येषण—संज्ञा पुं० [सं०] आदर के साथ किसी कार्य में प्रवृत करना [को०]।

अध्येषणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] याचना। माँगना। मंगनपन। निवेदन।

अध्रि—वि० [सं०] किसी का नियंत्रण न माननेवाला। जिसे वश में न किया जा सके [को०]।

अध्रियमाण—वि० [सं०] १. जो पकड़ा न जा सके। २ मृत [को०]।

अध्रिगामणी(पु)—संज्ञा स्त्री० [डिं०] कटार। कटारी।

अध्रुव[1]—वि० पुं० [सं०] १. चल। चंचल। चलायमान। डावाँडोल। अस्थिर। २. अनित्य। अनिश्चित। बेठौर ठिकाने का।

अध्रुव[2]—संज्ञा पुं० अनिश्चय [को०]।

अध्रुव[3]—संज्ञा पुं० [सं०] गले का रोगविशेष [को०]।

अध्व—संज्ञा पुं० [सं० अध्वन्] रास्ता। मार्ग। पथ। २. यात्रा। ३. दूरी। ४. काल। ५. साधन। ६. वेद की शाखा। ७. आक्रमण। ८. स्थान। ९. आकाश। १०.। वायु। [को०]।

अध्वग—संज्ञा पुं० [सं०] १. बटोही। पथिक। यात्री। मुसाफिर। २. ऊँट। ३. खच्चर। ४. सूर्य। [को०]।

अध्वगा—संज्ञा स्त्री० [सं०] गंगा [को०]।

अध्वगामी—वि० [सं० अध्वगामिन्] यात्रा करनेवाला [को०]।

अध्वनिवेश—संज्ञा पुं० [सं०] पड़ाव।

अध्वनीन[1]—संज्ञा पुं० [सं०] यात्री। मुसाफिर [को०]।

अध्वनीन[2]—वि० यात्रा करने योग्य। २. यात्रा में तेज चलनेवाला [को०]।

अध्वन्य—संज्ञा पुं० वि० [सं०] दे० 'अध्वनीन'।

अध्वपति—संज्ञा पुं० [सं०] १. सूर्य। २. मार्ग का निरीक्षण करनेवाला अधिकारी [को०]।

अध्वर[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. यज्ञ। सोमयज्ञ। २. आकाश। ३. वायु [को०]।

अध्वर[2]—वि० १. सरल। २. सावधान। ३. अबाध। ४. पुष्ट [को०]।

अध्वरकल्पा—संज्ञा स्त्री० [सं०] काम्येष्टि यज्ञ [को०]।

अध्वरकांड—संज्ञा पुं० [सं० अध्वरकाण्ड] शतपथ ब्राह्मण का एक भाग [को०]।

अध्वरग—वि० [सं०] यज्ञ के उपयोग में आनेवाला [को०]।

अध्वरथ—संज्ञा पुं० [सं०] १. यात्रा के उपयुक्त गाड़ी। २. यात्रा में कुशल दूत [को०]।

अध्वर्यु—संज्ञा पुं० [सं०] चार ऋत्विजों या यज्ञ करानेवालों में से एक। यज्ञ में यजुर्वेद का मंत्र पढ़नेवाला ब्राह्मण। उ०—करोड़ों बलोन्मत्त नृशंसों के मरण यज्ञ में वे हँसनेवाले अध्वर्यु थे।—कंकाल, पृ० १५९।

अध्वर्युवेद—संज्ञा पुं० [सं०] यजुर्वेद [को०]।

अध्वशल्य—संज्ञा पुं० [सं०] अपामार्ग। चिचड़ा।

अध्वशोषि—संज्ञा पुं० [सं०] रोगविशेष। रास्ता चलने से उत्पन्न यक्ष्मा रोग।

अध्वांत[1]—संज्ञा पुं० [सं० अध्वान्त] १. हलका अँधेरा। २. छाया [को०]।

अध्वांत[2]—संज्ञा पुं० [सं० अध्व+अन्त] यात्रा या मार्ग का अंत [को०]।

अध्वाति—संज्ञा पुं० [सं०] १. पथिक। यात्री। २. कुशल व्यक्ति [को०]।

अध्वाधिप—संज्ञा पुं० [सं०] मार्ग का निरीक्षक [को०]।

अध्वायन—संज्ञा पुं० [सं०] यात्रा। सफर [को०]।

अध्वेश—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अध्वाधिप' [को०]।

अन्—अव्य० [सं०] संस्कृत व्याकरण में यह निषेधार्थक 'नञ्' अव्यय का स्थानादेश है और अभाव या निषेध सूचित करने के लिये स्वर से आरंभ होनेवाले शब्दों के पहले लगाया जाता है। जैसे—अनंकुश, अनंत, अनधिकार, अनीश्वर आदि। हिंदी में यह अव्यय या उपसर्ग सस्वर होता है और व्यंजन तथा स्वर से आरंभ होनेवाले शब्दों के पहले भी लगाया जाता है। जैसे, अनबन, अनरीति, अनहोनी, अनअहिवात, अनऋतु आदि।

अनंकुश—वि० [सं० अनङ्कुश] १. अंकुश या नियंत्रण से बाहर। अशासित। जो वश में न हो। २. अंकुश न माननेवाला। छूट लेनेवाला (जैसे, कवि) [को०]।

अनंग¹—वि० [सं० अनङ्ग] १. बिना शरीर का। देहरहित। उ०—(क) अंगी अनंग कि मूढ़ अमूढ़ उदास अमीत कि मीत सही को। सो अथवैं कबहूँ जनि केशव जाके उदोत उदै सबही को।—केशव (शब्द०)। (ख) मुझको प्यारी के पास पहुँचने के लिये अनंग, अर्थात् शरीरविहीन क्यों नहीं बना देते।—प्रेमघन०, भाग २, पृ० ४३२।

अनंग²—संज्ञा पुं० १. कामदेव। उ०—आगे सोहैं साँवरो कुँवर गोरो पाछे पाछे, आछे मुनिवेष धरे लाजत अनंग है।—तुलसी ग्रं०, पृ० १६५। २, आकाश (को०)। ३. मन (को०)। ४. वह जो अंग न हो (को०)।

अनंग अराति—संज्ञा पुं० [सं० अनङ्ग+अराति] अनंग का शत्रु। महादेव। शिव। उ०—तुम्ह पुनि राम राम दिन राती। सादर जपहु अनंग अराती। मानस—१।१०८।

अनंगक—संज्ञा पुं० [सं० अनङ्गक] मन [को०]।

अनंगक्रीड़ा—संज्ञा स्त्री० [सं० अनङ्गक्रीडा] १. रति। २. छंदःशास्त्र में मुक्तक नामक विषम वृत्त के दो भेदों में से एक जिसके पूर्व दल में १६ गुरु वर्ण और उत्तर दल में ३२ लघु वर्ण हों। जैसे—आठौ जामा शंभू गाओ। भौ फंदा ते मुक्ति पाओ। सिख मम धरि हिय भ्रम सब तजि कर। भज नर हर हर हर हर हर हर (को०)।

अनंगद—वि० [सं० अनङ्गद] काम या प्रणय का जनक [को०]।

अनंगना—क्रि० अ० [सं० अनङ्ग] विदेह होना। शरीर की सुधि छोड़ना। बेसुध होना। सुध बुध भुलाना। उ०—गागरि नागरि जल भरि घर लीन्हें आवै। भृकुटी धनुष कटाक्ष बाण मनो पुनि पुनि हरिहिं लगावै। जाको निरखि अनंग अनंगत ताहि अनंग बढ़ावै।—सूर (शब्द०)।

अनंगरंग—संज्ञा पुं० [सं० अनङ्गरङ्ग] कामशास्त्र संबंधी ग्रंथ जिसमें मैथुन संबंधी आसनों का विवरण है [को०]।

अनंगलेख—संज्ञा पुं० [सं० अनङ्गलेख] मदनलेख या प्रेमपत्र [को०]।

अनंगलेखा—संज्ञा स्त्री० [सं० अनङ्गलेखा] प्रेमपत्र [को०]।

अनंगवती—वि० स्त्री० [सं० अनङ्गवती] कामिनी [को०]।

अनंगशत्रु—संज्ञा पुं० [सं० अनङ्गशत्रु] शिव [को०]।

अनंगशेखर—संज्ञा पुं० [सं० अनङ्गशेखर] दंडक नामक वर्णवृत्त का एक भेद जिसमें ३२ वर्ण होते हैं और लघु गुरु का कोई क्रम नहीं होता। जैसे—गरज्जि सिंहनाद लो निनाद मेघनाद वीर कुद्ध ...न सान सों कृसानु बाण छंडियं (शब्द०)।

अनंगारि—संज्ञा पुं० [सं० अनङ्गारि] कामदेव के अरि या शिव।

अनंगिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० अनङ्गिनी] अनंग की स्त्री। रति। उ०—लीला रसरंगिनि श्रीराधा, अनुराग अनंगिनि श्रीराधा।—घनानंद,—पृ० २४५।

अनंगी¹—वि० [सं० अनङ्गिन्] [स्त्री० अनंगिनी] १. अंगरहित। बिना देह का। अशरीर। २. अंगविहीन। लूला लँगड़ा। अपाहिज। उ०—कहा कहौं हरि केतिक तारे पावन पद परतंगी, सूरदास यह बिरद स्रवन सुनि गरजत अधम अनंगी—सूर०, ९।२१।

अनंगी²—संज्ञा पुं० १. परमेश्वर। २. कामदेव।

अनंगुरि—वि० [सं० अनङ्गुरि] बिना उँगलियों का। उँगलियों से हीन या रहित [को०]।

अनंगुलि—वि० [सं० अनङ्गुलि] अंगुलिहीन [को०]।

अनंजन—वि० [सं० अनञ्जन] अंजनरहित। अंजनशून्य [को०]।

अनंझ—वि० [देश०] अनधीन। जो अधीन न हो। निर्बाध। उ०—चहुआन जोग छत्री अनंझ, अन्यंन कोस सितए मंझ।—पृ० रा०, ५५।४२।

अनंछित्त—वि० [सं० अन्+छित्त] जो छेदा हुआ या कटा हुआ न हो। अच्छिन्न। उ०—अनंच्छित्त अंग बरं अत्तताई, भई जीत चहुआन प्रथिराज राई।—पृ० रा०, २५।७७३।

अनंत¹—वि० [सं० अनन्त] १. जिसका अंत न हो। जिसका पार न हो। असीम। बेहद। अपार। २. बहुत अधिक। असंख्य। अनेक। ३. अविनाशी। नित्य।

अनंत²—संज्ञा पुं० १. विष्णु। २. शेषनाग। ३. लक्ष्मण। ४. बलराम। ५. आकाश। ६. जैनों के एक तीर्थंकर का नाम। ७ अभ्रक। ८. एक गहना जो बाहु में पहना जाता है। ९. एक सूत का गंडा जो चौदह सूत एकत्र कर उसमें चौदह गांठ देकर बनाया जाता है। इसे भादों सुदी चतुर्दशी या अनंतव्रत के दिन पूजित कर बाहु में पहनते हैं। १०. अनंतचतुर्दशी का व्रत। ११. रामानुजाचार्य के एक शिष्य का नाम। १२. विष्णु का शंख (को०)। १३. कृष्ण (को०)। १४. शिव (को०)। १५. रुद्र (को०)। १६ सीमाहीनता। अंतहीनता (को०)। १७. नियत्व (को०)। १८. मोक्ष (को०)। १९. वासुकि (को०)। २० बादल (को०)। २१. सिंदुवार (को०)। २२. अभ्रक। अबरक (को०)। २३ श्रवण नक्षत्र (को०)। २४ ब्रह्म (को०)।

अनंतकर—वि० [सं० अनन्तकर] बढ़ाकर सीमाहीन कर देनेवाला। अधिक कटनेवाला (को०)।

अनंतकाय—संज्ञा पुं० [सं० अनन्तकाय] जैनियों के अनुसार उन वनस्पतियों का समुदाय विशेष जिनके खाने का निषेध है।

विशेष—इसके अंतर्गत वे पेड़ या पौधे माने जाते हैं जिनके पत्तों, औ फूलों की नसें इतनी सूक्ष्म हों कि देख न पड़ें, जिनकी संधियाँ गुप्त हों, जो तोड़ने से एकबारगी टूट जायँ, जो जड़ से काटने पर फिर हरे हो जायँ, जिनके पत्ते मोटे, दलदार और चिकने हों अथवा जिनके पत्ते फूल और फल कोमल हों। ये संख्या में बत्तीस हैं।

अनंतग—वि० [सं० अनन्तग] नित्य या अंतहीन जानेवाला। नित्य गतिशील रहनेवाला [को०]।

अनंतगुण—वि० [सं० अनन्तगुण] बहुत अधिक गुणों से युक्त [को०]।

अनंतचतुर्दशी—संज्ञा स्त्री० [सं० अनन्तचतुर्दशी] भाद्र शुक्ल चतुर्दशी।

विशेष—इस दिन हिंदू अलोना व्रत करते हैं और चौदह तागों के अनंतसूत्र को, जिसमें चौदह गाँठे दी होती हैं, पूजन कर बाँधते हैं और तत्पश्चात् भोजन करते हैं। यह व्रत मध्याह्न पर्यंत का है।

अनंतचरित्र—संज्ञा पुं० [सं० अनन्तचरित्र] एक बोधिसत्व [को०]।

अनंतजित्—संज्ञा पुं० [सं० अनन्तजित्] १. वासुदेव। २. वर्तमान अवसर्पिणी के १४ वें तीर्थंकर [को०]।

अनंततटंक—संज्ञा पुं० [सं० अनन्तटङ्क] एक रागविशेष जो मेघ राग का पुत्र माना जाता है।

अनंतता—संज्ञा स्त्री० [सं० अनन्तता] असीमत्व। अमितत्व। अत्यंत अधिकता।

अनंततान—वि० [सं० अनन्ततान] असीम। अपार [को०]।

अनंततीर्थकृत—संज्ञा पुं० [सं० अनन्ततीर्थकृत्] दे० 'अनंतजित्' [को०]।

अनंततृतीया—संज्ञा स्त्री० [सं० अनन्ततृतीया] भाद्र मास का तीसरा दिन [को०]।

अनंतत्व—संज्ञा पुं० [सं० अनन्तत्व] अनंतता [को०]।

अनंतदर्शन—संज्ञा पुं० [सं० अनन्तदर्शन] जैन मत के अनुसार केवल दर्शन या सम्यक् दर्शन। सब बातों का पूरा ज्ञान। ऐसा ज्ञान जो दिशा, काल आदि से बद्ध न हो।

अनंतदृष्टि—संज्ञा पुं० [सं० अनन्तदृष्टि] इंद्र का एक नाम।

अनंतदेव—संज्ञा पुं० [सं० अनन्तदेव] १. शेषनाग। २. शेषशय्या पर रहनेवाले नारायण [को०]।

अनंतनाथ—संज्ञा पुं० [सं० अनन्तनाथ] जैन लोगों के चौदहवें तीर्थंकर।

अनंतपार—वि० [सं० अनन्तपार] जिसका पार या सीमा न हो। असीम विस्तारवाला [को०]।

अनंतमति—संज्ञा पुं० [सं० अनन्तमति] एक बोधिसत्व [को०]।

अनंतमायी—वि० [सं० अनन्तमायिन्] अनंत या अपार छल या माया से युक्त [को०]।

अनंतमूल—संज्ञा पुं० [सं० अनन्तमूल] एक पौधा या बेल जो सारे भारतवर्ष में होती है और ओषधि के काम आती है।

विशेष—इसके पत्ते गोल और सिरे पर नुकीले होते हैं। यह दो प्रकार की होती है—काली और सफेद। यह स्वादिष्ट, स्निग्ध, शुक्रजनक तथा मंदाग्नि, अरुचि, श्वास, खाँसी, विष, त्रिदोष आदि को हरनेवाली होती है। रक्त शुद्ध करने का भी गुण इसमें बहुत है। इसी से इसे हिंदी में सालसा या उशबा भी कहते हैं।

पर्याय—सारिवा। अनंता। गोपी। भद्रवल्ली। नागजिह्वा। कराला। गोपवल्ली। सुगंधा। भद्रा। श्यामा। शारदा। प्रहानिका। आस्फोता।

अनंतर[1]—क्रि० वि० [सं० अनन्तर] १. पीछे। ठीक बाद। उपरांत। बाद। २. निरंतर। लगातार।

अनंतर[2]—वि० १. अंतररहित। निकटस्थ। पट्टीदार। २. अखंडित। ३. अपने वर्ण से ठीक बादवाले वर्ण का (को०)।

यौ०—अनन्तरज। अनन्तरजात।

अनंतर[3]—संज्ञा पुं० १. समीपता। निकटता। अंतर का अभाव। २. ब्रह्म। परमात्मा [को०]।

अनंतरज—संज्ञा पुं० [सं० अनन्तरज] वह व्यक्ति जिसके पिता का वर्ण माता से एक वर्ण ऊँचा हो।

विशेष—जैसे,—माता शूद्रा हो और पिता वैश्य अथवा माता वैश्य हो और पिता क्षत्रिय अथवा माता क्षत्राणी और पिता ब्राह्मण हो।

अनंतरजात—संज्ञा पुं० [सं० अनन्तरजात] दे० 'अनंतरज'।

अनंतरय—संज्ञा पुं० [सं० अनन्तरय] अंतर का अभाव [को०]।

अनंतराय—संज्ञा पुं० [सं० अनन्तराय] निर्विघ्न [को०]।

अनंतरित—वि० [सं० अनन्तरित] १. जिसमें बीच न पड़ा हो। निकटस्थ। २. अखंडित। अटूट।

अनंतरिति—संज्ञा स्त्री० [सं० अनन्तरिति] न त्यागना या अलगाना [को०]।

अनंतरीय—वि० [सं० अनन्तरीय] वंशानुक्रम में ठीक बादवाला [को०]।

अनंतर्हित—वि [सं० अनन्तर्हित] १. जो अलग न किया गया हो। मिला हुआ। निकटस्थ। पास का। २. शृंखलाबद्ध। अखंडित। ३. जो छिपा न हो। प्रकट (को०)।

अनंतवान्[1]—वि० [सं० अनन्तवान्] नित्य। जिसकी सीमा न हो [को०]।

अनंतवान्[2]—संज्ञा पुं० ब्रह्मा के चार चरणों में से एक [को०]।

विशेष—पृथ्वी, अंतरिक्ष, अनंत और समुद्र नामक ब्रह्मा के चार चरण हैं।

अनंतविजय—संज्ञा पुं० [सं० अनन्तविजय] युधिष्ठिर के शंख का नाम।

अनंतवीर्य[1]—वि० [सं० अनन्तवीर्य] अपार पौरुषवाला।

अनंतवीर्य[2]—संज्ञा पुं० जैनों के तेइसवें तीर्थंकर का नाम।

अनंता[1]—वि० स्त्री० [सं० अनन्ता] जिसका अंत या पारावार न हो।

अनंता[2]—संज्ञा संज्ञा १. पृथ्वी। २. पार्वती। ३. करियारी का पौधा। ४. अनंतमूल। ५. दूब। ६. पीपर। ७. जवासा। ८. अरणीवृक्ष। ९. अनंतसूत्र।

अनंतानुबंधी—संज्ञा पुं० [सं० अनन्तानुबन्धिन्] जैन मतानुसार वह दोष या दुःस्वभाव जो कभी न जाय; जैसे अनंतानुबंधी क्रोध,—लोभ,—माया, मान।

अनंताभिधेय—संज्ञा पुं० [सं० अनन्ताभिधेय] वह जिसके नामों का अंत न हो। ईश्वर।

अनंती—संज्ञा स्त्री० [सं०] स्त्रियों का गंडा जिसे वे बाएँ बाजू पर बाँधती हैं [को०]।

अनंत्य[1]—वि० [सं० अनन्त्य] जिसका अंत या सीमा न हो [को०]।

अनंत्य[2]—संज्ञा पुं० १. नित्यत्व। नित्यता। २. हिरण्यगर्भ का चरण [को०]।

अनंद[1]—संज्ञा पुं० [सं० अनन्द] १४ वर्णों का एक वृत्त जिसका क्रम इस प्रकार है—जगण, रगण, जगण, रगण, लघु, गुरु।

अनंद[2]ⓟ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आनंद'। उ०—मुनि पुर भयउ अनंद बधाव बजावहिं।—तुलसी ग्रं०, पृ० ५६।

अनंदनाⓟ—क्रि० अ० [सं० आनन्द] आनंदित होना। उ०—पुनि मुनिगन दुहँ भाइन्ह बंदे। अभिमत आसिष पाइ अनंदे।—तुलसी (शब्द०)।

अनंदी[1]—संज्ञा पुं० [सं० अनन्दिन्] एक प्रकार का धान।

अनंदी[2]ⓟ—वि० [हिं०] दे० 'आनंदी'।

अनंबर[1]—वि० [सं० अनम्बर] वस्त्रहीन। नग्न। नंगा (को०)।

अनंबर[2]—संज्ञा पुं० एक जैन साधु संप्रदाय। दिगंबर [को०]।

अनंभ[1]—वि० [सं० अन = नहीं + अम्भस् = जल] बिना पानी का।

अनंभ[2]ⓟ—वि० [सं० **अन् = नहीं + अंह = पाप, विघ्न, बाधा**] निर्विघ्न। बाधारहित। बे आँच। उ०—मोहन बाण हमार है, देखत मोहत शंभु। मोहन बाण तुम्हार जो हमको करत अनंभु।—सबल (शब्द०)।

अनंश—वि० [सं०] १. जो पैत्रिक संपत्ति पाने का अधिकारी न हो। २. जिसका अंशभाग या खंड न हो (आकाश या ब्रह्म का विशेषण) [को०]।

अनंशुमत्फला—संज्ञा स्त्री० [सं०] केला। कदली [को०]।

अन[1]ⓟ—क्रि० वि० [सं० **अन्**] बिना। बगैर। उ०—हँसि हँसि मिले दोऊ, अन ही मनाए मान छूटि गयो एही छोर राधिका रमन को।—केशव (शब्द०)।

अन[2]ⓟ—वि० [सं० **अन्य = दूसरा**] अन्य। और। दूसरा। उ०—अनजल सींचे रूख की छाया तें बरु घाम। तुलसी चातक बहुत हैं यह प्रबीन को काम।—तुलसी ग्रं० पृ० १२८।

अन[3]ⓟ—संज्ञा पुं० [सं० **अन्न**] अनाज। अन्न। उ०—जैसे हैं गिरिराज जू तैसौ अन को कोट। मगन भये पूजा करैं, नर नारी बड़ छोट।—सूर०, १०।८४१।

यौ०—**अनधन** = अन्न और संपति। उ०—कहत कबीर सुनहु रे संतहु अनधन कछू अैसे न गयो।—कबीर ग्रं०, पृ० ३१०।

अनअहिवातⓟ—संज्ञा पुं० [सं० **अन = नहीं + हिं० अहिवात**] अहिवात का अभाव। वैधव्य। विधवापन। रँड़ापा। उ०—कुमतिहि कसि कुवेषता फावी। अनअहिवात सूच जनु भावी।—मानस, २।२५।

अनइच्छितⓟ—वि० [हिं०] दे० 'अनिच्छित'। उ०—राम भजत सोइ मुकुति गुसाईं। अनइच्छित आवै बरिआईं।—मानस,७।११९।

अनइसⓟ—संज्ञा पुं० [हिं०] **अनिष्ट**। अनैस। उ०—ग्राह दइअ मैं काह नसावा। करत नीक फल अनइस पावा।—मानस। २।१६३।

अनइसाⓟ **अनइसी**ⓟ—वि० स्त्री० [हिं०] दे० 'अनैसा'।

अनऋतु—संज्ञा पुं० [सं० **अन् + ऋतु**] १. विरुद्ध ऋतु। अनुपयुक्त ऋतु। बेमौसिम। अकाल। असमय। उ०—(क) चातक की रट नेह सदा, वह ऋतु अनऋतु नहिं हारत।—सूर(शब्द०)। (ख) सब तरु फरे राम हित लागी। ऋतु अनऋतुहिं काल गति त्यागी।—तुलसी० (शब्द०)। २. ऋतु विपर्यय। ऋतु के विरुद्ध कार्य।

अनकंपⓟ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अकंप'।

अनक[1]—वि० [सं०] दे० 'अणक' [को०]।

अनक[2]—संज्ञा पुं० दे० 'अणक'।

अनक[3]ⓟ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आनक'।

अनकदुंदुभ—संज्ञा पुं० [सं० **अनकदुन्दुभ**] कृष्ण के पितामह और वसुदेव के पिता का नाम [को०]।

अनकदुंदुभिⓟ—संज्ञा पुं० [सं० **आनकदुन्दुभि**] अनकदुंदुभ के पुत्र वसुदेव।

अनकना—क्रि० सं० [सं० **आकर्णन**, प्रा० **आकण्णण, हिं० अकनना** > (वर्णव्य०) **अनकना**] १. सुनना। २. चुपचाप सुनना। छिपकर सुनना।

अनकरीब—क्रि० वि० [अ० **अनक़रीब**] करीब करीब। लगभग। प्रायः।

अनकस्मात्—क्रि० वि० [सं०] जो आकस्मिक, अचानक या अकारण न हो [को०]।

अनकहनी—वि०, स्त्री० [हिं० **अन + कहनी**] न कहने योग्य। उ०—(क) सबके चरित्र लिखने में कुछ अनकहनी कहनी भी कह गए।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० १०३। (ख) यहीं बैठ कहती थी तुमने सब कहनी अनकहनी।—ठंठा०, पृ० २०।

अनकहा—वि० [हिं० **अन + कहा**] [स्त्री० **अनकही**] बिना कहा हुआ। अकथित। अनुक्त। उ०—सिर्फ अनकहा रहने से तो असत्य हो नहीं जाता।—सुखदा, पृ० १०७।

मुहा०—**अनकही देना** = अवाक् रहना। चुपचाप होना। उ०—समुझि परी षटमास बीतीतै कहाँ हुतौ हो आयौ। सूर अनकही दै गोपिनि सौं स्रवन मूँदि उठि धायौ।—सूर०, १०।४१४६।

अनका—संज्ञा पुं० [अ० **अन्क़ा**] दे० 'उनका' [को०]।

अनकाढ़ा—[हिं० **अन + काढ़ना**] बिना निकाला हुआ। उ०—साकहिं मरै चहै अनकाढ़े।—जायसी (शब्द०)।

अनकामयमार—वि० [सं०] जो बिना इच्छा के न मरता हो। बिना इच्छा के न मरनेवाला [को०]।

अनकीय—वि० [सं०] अणकीय [को०]।

अनकुस—संज्ञा पुं० [सं० **अङ्कुश** अथवा हिं० **अन** + फा० **खुश**] बुरा। खराब। उ०—बँगले में शीशे लगी खिड़कियों के बाहर घनी जाली लगी देखकर कुछ अनकुस मालूम होता था।—किन्नर०, पृ० १।

अनक्ष—वि० [सं०] १. बिना आँख का। अंधा। २. जहाँ बहेड़ा या रुद्राक्ष का वृक्ष न हो [को०]।

अनक्षर[1]—वि० [सं०] १. अक्षरज्ञान से रहित। निरक्षर। २. न जाननेवाला। अज्ञ। ३. मूक। गूँगा। ४. न कहने योग्य [को०]।

अनक्षर[2]—संज्ञा पुं० दुर्वचन या गाली [को०]।

अनक्षर[3]—क्रि० वि० बिना शब्दप्रयोग किए। बिना शब्द उच्चारण किए। बिना बोले [को०]।

अनक्षि—वि० [सं०] बुरी आँख [को०]।

अनक्षिक—वि० [सं०] बिना आँख का। अंधा [को०]।

अनख[1]—संज्ञा पुं० [सं० **अन् = बुरा + अक्ष = आँख**, प्रा० **अनक्ख** अथवा सं० **अनाकाङ्क्ष** प्रा० **अनाकंख अनअक्ख, अनक्ख** हिं० **अनख**] १. झुँझलाहट। रिस। क्रोध। नाराजगी। अनिच्छा। असंतोष। उ०—(क) धनि धनि अनख उरहनो धनि धनि धनि माखन धनि मोहन खाए।—सूर (शब्द०)। (ख) भायँ कुभायँ अनख आलसहूँ। नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ।—मानस १।२८।२. दुःख। ग्लानि। खिन्नता। उ०—जो पै हिरदय माँझ हरी। कर कंकन दरपन लै देखौ इहि अति अनख परी। क्यों अब जियहिं जोग सुनि सूरज, बिरहिन बिरह भरी।—सू०, १०।३७६०। ३. ईर्षा। द्वेष। डाह। उ०—किमि सहि जात अनख तोहिं पाहीं। प्रिया बेगि प्रगटसि कस नाहीं।—मानस ३।२४। ४. झट। अनरीति। उ०—बाबू ऐसो है संसार तिहारो ये कलि है ब्यवहारा। को अब अनख सहै प्रति दिन को नाहिन

रहनि हमारा।—कबीर (शब्द०)। ५. डिठौना। काजल की बिंदी जिसे डीठ (नजर) से बचाने के लिये बच्चों के माथे में लगाते हैं। उ०—अनधन देखि लिलरवा, अनख न धार। समलहु दिय दुति मनसिज, भल करतार।—खानखाना (शब्द०)।

अनख²—वि० [सं० अ=नहीं+नख=नाखून] १. बिना नाखून का। उ०—मिहिर नजर सों भावते, राख याद भरि मोद। अनखन खनि अनखन अरे, मत मो मनहिं करोद।—रसनिधि (शब्द०)।

अनखना(पु)—क्रि० अ० [हिं० अनख से नाम०] क्रोध करना। रिसाना। रुष्ठ होना। उ०—हम अनखीं या बात सों लेत दान को नावँ। सहज भाव रहो लाड़िले बसत एक ही गाँव।—सूर (शब्द०)।

अनखाना¹(पु)—क्रि० अ० [हिं० अनख] क्रोध करना। रुष्ठ होना। रिसाना। उ०—(क) कापर नैन चढ़ाए डोलति, ब्रज में तिनुका तोर। सूरदास यशुदा अनखानी यह जीवन धन मोर।—सूर०, १०।३१०। (ख) गई करुणा भी इक दिन ऊब। कहा अनखाकर उसने खूब।—झरना, पृ० ५६।

अनखाना²(पु)—क्रि स० अप्रसन्न करना। नराज करना। खिझाना। उ०—उठत सभा दिन मधि सैनापति भीर देखि फिरि आऊँ। न्हात खात सुख करत साहिबी कैसे करि अनखाऊँ।—सूर० ९। १७२।

अनखावना(पु)—क्रि० स० [हिं०] दे० 'अनखाना'। उ०—वा देखत हमकौं तुम मिलिहौं, काहे कौ ताकौं अनखावत।—सूर०, १०।२४१९।

अनखाहट(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० अनख+आहट (प्रत्य०)] अनखने या क्रोध दिखलाने की क्रिया या भाव। उ०—मारयौ मनुहारिनु भरी गारयौ खरी मिठाहिं। वाकौ अति अनखाहटौ मुसुकाहट बिनु नाहिं।—बिहारी र०, दो० ४६८।

अनखी†—वि० [हिं० अनख+ई (प्रत्य०)] क्रोधी। गुस्सावर। जो जल्दी नाराज हो।

अनखीली(पु)†—वि० स्त्री० [हिं० अनख+ईली (प्रत्य०)] अनखवाली। बुरा माननेवाली। अनखी। उ०—कहै पदमाकर अगार अनखीलिन की भीरी भीर भारन कों भाँज दै री भाँज दै।—पद्माकर ग्रं०, पृ० ३२२।

अनखुला—वि० [हिं० अन+खुलना] [अनखुली] १. जो खुला न हो। बंद। २. जिसका कारण प्रगट न हो। गुप्त। उ०—केसर केसरि कुसुम के रहे अंग लपटाइ। लगे जानि नख अनखुली कत बोलति अनखाइ।—बिहारी र०, दो० १९९।

अनखौहा(पु)†—वि० [हिं० अनख+औहा (प्रत्य०)] [स्त्री० अनखौही] १. क्रोध से भरा हुआ। कुपित। रुष्ट। उ०—रवि बंदौं कर जोरिकै, सुनत स्याम के बैन। भए हँसौहैं सबनु के, अति अनखौहैं नैन।—बिहारी र०, दो० २२४। २. चिड़चिड़ा। जल्दी क्रोध करनेवाला। छोटी सी बात पर चिढ़ जानेवाला। ३. क्रोधजनक। क्रोध दिलानेवाला। उ०—निपट निदरि बोले बचन कुठारिपानि, मानि त्रास औनिपन मानौ मौनता गही। रोखे माखे लखन अकनि अनखौहीं बातें तुलसी बिनीत बानी बिहँसि ऐसी कही।—तुलसी ग्रं०, पृ० १६०। ४. अनुचित। खोटा। बुरा। उ०—(क) कबहूँ मो को कछू लगावति कबहूँ कहति जनु जाहु कहीं। सूरदास बातैं अनखौहीं नाहिन मो पै जाति सही।—सूर (शब्द०)। (ख) राम सदा सरनागत की अनखौहीं अनैसी सुभाय सही है।—तुलसी ग्रं०, पृ० १९९।

अनगढ़—वि० [हिं० अन+गढ़ना] १. बिना गढ़ा हुआ। उ०—थे चमक रहे दो खुले नयन ज्यों शिलालग्न अनगढ़े रतन।—कामायनी, पृ० २४७। २. जिसे किसी ने बनाया न हो। स्वयंभू। उ०—ऊधौ राखिए यह बात। कहत हौ अनगढ़ व अनहद सुनत ही चपि जात।—सूर(शब्द०)। ३. बेडौल। भद्दा। बेढंगा। ४. असंस्कृत। अपरिष्कृत। ५. उजड्ड। अक्खड़। पोंगा। अनाड़ी। जैसे, अनगढ़ मूर्ख। ६. बेतुका। अंडबंड। बे सिर पैर का। जैसे, अनगढ़ बात।

अनगन(पु)—वि० सं० [अन्+गणन] [स्त्री० अनगनी] अगणित। बहुत। उ०—निज काज सजत सँवारि पुर नर नारि रचना अनगनी।—तुलसी (शब्द०)।

अनगना¹†—क्रि० स० [सं० अवगत=ढका हुआ] खपड़ा फेरना। छाजन में टूटे हुए खपड़ों के स्थान पर नए लगाना। टपकते हुए खपड़ैल की मरंमत करना।

अनगना²—वि० [हिं० अन्+गनना] १. जो गिना न गया हो। न गिना हुआ। २. अगणित। बहुत।

अनगना³†—संज्ञा पुं० गर्भ का आठवाँ महीना। जैसे—इस स्त्री का अब अनगना लगा है (शब्द०)।

अनगवना(पु)—क्रि० अ० [सं० अन्+हिं० अगवना अथवा हिं० अन+गवन=गमन] जान बूझकर देर करना। विलंब करना। उ०—मुहुँ धोवति, एडी घसति, हसति, अनगवति तीर। धसति न इंदीबर नयनि कालिंदी कें नीर।—बिहारी र०, दो० ६६७।

अनगाना¹(पु)—क्रि० अ० [सं० अन्+हिं० अगवाना] १. विलंब करना। देर करना। २. टालमटोल करना।

अनगाना²—क्रि० स० [हिं०] सँवरना। सुलझाना (केश आदि)

अनगाना³—क्रि० स० [हिं० अनगना] अनगने या खपड़ा फेरने का काम कराना।

अनगार¹—वि० [सं०] बिना अगार या घर का। गृहहीन [को०]।

अनगार²—संज्ञा पुं० घूमने फिरनेवाला। संन्यासी [को०]।

अनगारिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] परिव्राजक या संन्यासी का जीवन या स्थिति [को०]।

अनगिन(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अनगिनत'। उ०—फूलि रहे तारे मानो मोती अनगन हैं।—कबित्त०, पृ० ६६।

अनगिनत—वि० [सं० अन्=नहीं+गणित=गिना हुआ] जिसकी गिनती न हो। अगणित। असंख्य। बेशुमार। बेहिसाब। बहुत। उ०—शून्यता मम डगर में अनगिनत कंटक बो गई है।—अपलक, पृ० ८९।

अनगिना—वि० पुं० [हिं० अन+गिनना] [स्त्री० अनगिनी] १. बिना गिना हुआ। जो गिना न गया हो। २. अगणित। असंख्य। बहुत। उ०—मुक्ति मुक्ता अनगिने फल तहाँ चुनि चुनि खाहिं।—सूर १।३३८।

अनगैरी(पु)--वि० [हिं० अन+अ० गैर+हिं० ई (प्रत्य०)] गैर। पराया। अपरिचित। बेजान। उ०—कह गिरिधर कविराय घरे आवै अनगैरी। हित की कहै बनाय चित्त में पूरे बैरी।--गिरिधर (शब्द०)। (ख) मूरख करै सबल ते बैरू। मूरख घर राखै अनगैरू।---विश्राम (शब्द०)।

अनग्नि—वि० [सं०] १. अग्निहोत्ररहित। श्रौत और स्मार्त कर्म से विमुख या हीन। २. जिसे अग्नि की आवश्यकता न हो (को०)। ३. मंदाग्नि का रोगी (को०)। ४. अविवाहिता (को०)।

अनग्नित्र—वि० पुं० [सं०] [स्त्री० अग्नित्रा] जो पवित्र अग्नि का संरक्षण न करता हो [को०]।

अनग्निदग्ध—वि० [सं०] १. जो आग से न जला हो। २. चिता पर न जला या जलाया हुआ। ३. गाड़ा हुआ [को०]।

अनग्निष्वात्त--वि० [सं०] १. जो अग्निदग्ध न हो। २. गाड़ा हुआ। दफनाया हुआ [को०]।

अनघ[१]—वि० [सं०] १. निष्पाप। पातकरहित। निर्दोष। बेगुनाह। २. पवित्र। शुद्ध।

अनघ[२]—संज्ञा पुं० वह जो पाप न हो। पुण्य। उ०—तुलसिदास जगदघ जवास ज्यों अनघ आगि लागे डाढ़न।—तुलसी (शब्द०)।

अनघरी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० अन्=विरुद्ध+घरी=घड़ी] असमय। कुसमय। अनवसर। बेवक्त। बेमौका।

अनघैरी(पु)—वि० [सं० अन्+हिं० घेर अथवा सं० अनागीरित] बिना बुलाया हुआ। अनिमंत्रित। अनाहूत।

अनघोर(पु)—संज्ञा पुं० [सं० घोर] अंधेर। अत्याचार। ज्यादती। उ०—यह अनित्य तनु हेतु तुम, करहु जगत अनघोर।—रघुराज० (शब्द०)।

अनघोरी(पु)—क्रि० वि० [हिं० अनघरी] अचानक। चुपके से। उ०—जीति पाइ अनघोरी आए।—छत्र०।

अनचहा(पु)—वि० [सं० अन+हिं० चाह] नहीं चाहा हुआ। अनिच्छित। अप्रिय। उ०—अनत चह्यो न भलो सुपथ सुचाल चल्यौ, नीके जिय जानि इहाँ भलो अनचह्यो हौं।—तुलसी ग्रं०, पृ० ५८८।

अनचाखा(पु)—वि० [हिं० अन+चाखना] बिना चखा या खाया हुआ। अनास्वादित। उ०—दारिउँ दाख फरे अनचाखे।—जायसी ग्रं०, पृ० ४६।

अनचाहत[१](पु)—वि० [हिं० अन+चाहत] जो न चाहे।

अनचाहत[२]—संज्ञा पुं० न चाहनेवाला आदमी। प्रेम न करनेवाला पुरुष। उ०—हाय दई कैसी भई अनचाहत को संग। दीपक को भावै नहीं, जल जल मरत पतंग (शब्द०)।

अनचाहा—वि० [हिं० अन+चाहना] जिसकी चाह या इच्छा न की गई हो। अचाहा। अवांछित। अप्रिय।

अनचिन्हा(पु)†—वि० [हिं० अन+चीन्ह=परिचित] अपरिचित। अजनबी। अनजाना।

अनचीत—वि० [हिं० अन+चीत] मन या चित के विरुद्ध। बेमन। उ०—गैया चरै अनचीत, मुरली मन मोहि रे रहे।—ब्रजमा० भा० २, पृ० ३५०।

अनचीता[१]—वि० [हिं० अन+चीतना=सोचना] १. न सोचा हुआ। अपरिचित। अनचाहा। अचाहा।

अनचीता[२]—क्रि० वि० [हिं० अन+चीतना] अचानक या अकस्मात् होनेवाला।

अनचीन्ह(पु)†—[हिं० अन+चिन्ह] १. अपरिचित। बे पहिचान का। २. चीन्ह या लक्षण से रहित।

अनचीन्हा(पु)†—वि० [हिं० अन+चीन्ह] बिना पहचाना हुआ। अपरिचित। अज्ञात।

अनचेता—वि० [हिं० अन+चेतना] न सोचा हुआ। अचिंतित।

अनचेती--वि० स्त्री० [हिं० अन+चेतना] न सोची हुई (बात, विषय आदि)।

अनचैन(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं० अन+चैन] बेचैनी। व्याकुलता। विकलता।

अनचैनी†—[हिं० अनचैन+ई] (प्रत्य०)] चैन रहित। व्याकुलता से भरी। विकलतायुक्त।

अनच्छ—वि० [सं०] जो स्वच्छ, निर्मल या साफ न हो [को०]।

अनजका—संज्ञा स्त्री० [सं०] छोटी बकरी [को०]।

अनजाद†—संज्ञा पुं० [फा० अँदाजह] अनुमान। अटकल।

अनजिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] छोटी बकरी [को०]।

अनजान[१]—वि० [हिं० अन+जानना] १. अज्ञानी। अनभिज्ञ। अज्ञ। नासमझ। नादान। सीधा। भोला भाला। २. बिना जाना हुआ। अपरिचित। अज्ञात।

अनजान[२]—संज्ञा पुं० १. एक प्रकार की लंबी घास जिसे प्रायः भैंसें ही खाती हैं और जिससे उनके दूध में कुछ नशा आ जाता है। २. थजना नाम का पेड़।

अनजानत(पु)—क्रि० वि० [हिं० अन+जानना] न जानते या समझते हुए। उ०—(क) श्रीमद नृपअभिमान मोहबस जानत अनजानत हरि लायो।—तुलसी ग्रं०, पृ० ३९५। (ख) व्याकुल भयो डरयो जिय भारी। अनजानत कीन्ही अधिकारी।—सूर० १०।९४७।

अनजाया(पु)—वि० [हिं० अन+जाया=उत्पन्न] जन्म से परे। अजन्मा। उ०—बाबुल मेरा ब्याह करा दो अनजाया बर लाय।—कबीर श०, पृ० १०१।

अनजोखा—वि० बिना जोखा हुआ। बिना तौला हुआ।

अनट(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अनृत=अत्याचार अथवा सं० अन्+ऋत=अनृत, प्रा० अणट्ट=उपद्रव] उपद्रव। अनीति। अन्याय। अत्याचार। उ०—(क) खेलत संग अनुज बालक नित जोगवत अनट उपाय।—तुलसी ग्रं०, पृ० ५०९। (ख) सहि कुबोल, साँसति सकल, अँगइ अनट अपमान। तुलसी धरम न परिहरिय, कहि करि गए सुजान।—तुलसी ग्रं०, पृ० १४२।

अनडीठ(पु)—वि० [सं० अन्+दृष्ट प्रा० डिट्ठ, दिट्ठ, हिं० डीठ] बिना देखा।

अनडुज्जिह्वा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. गोजिह्वा। २. अनंतमूल [को०]।

अनड्डुह्—संज्ञा पुं० [सं०] १. बैल। २. वृषभराशि (को०)। ३. गोत्र प्रवर्तक एक ऋषि का नाम (को०)।

अनडुही--संज्ञा स्त्री० [सं०] गाय।

अनडवान्--संज्ञा पुं० [सं०] १. बैल। साँड़। २. सूर्य (उपनि०)। ३. वृष राशि [को०]।

अनड्वाही--संज्ञा स्त्री० [सं०] गौ। गाय [को०]।

अनणु[1]--वि० [सं०] जो सूक्ष्म न हो [को०]।

अनणु[2]--संज्ञा पुं० मोटा अन्न [को०]।

अनत[1]--वि० [सं०] न झुका हुआ। सीधा।

अनत[2]ⓟ--क्रि वि० [सं०] **अन्यत्र,** प्रा० **अएणत, अन्नत**] और कहीं। दूसरी जगह में। पराए स्थान। उ०--राम लषन सिय सुनी मम नाऊँ। उठि जनि अनत जाहि तजि ठाऊँ।--मानस, २।२३२।

अनति[1]--वि० [सं०] बहुत नहीं, थोड़ा।

अनति[2]--संज्ञा स्त्री० नम्रता का अभाव। विनीत भाव का न होना। अहंकार।

अनदेखा--वि० [**हिं० अन+देखना**] [**स्त्री० अनदेखी**] बिना देखा हुआ। उ०-- देखौ अनदेखौ कियै अँगु अँगु सबै दिखाइ। पैठति सी तन मैं सकुचि बैठी चितै लजाइ।--बिहारी र०, दो० ६१८।

अनदोष--वि० [**हिं० अन+सं० दोष**] दोषरहित। अदोष। निर्दोष। उ०--अनदोषे कौं दोष लगावति, दई देइगौ टारि।--सूर०, १०।२६२।

अनद्धा--क्रि० वि० [सं०] असत्यतः, अवस्तुतः या अप्रतीकतः [को०]।

अनद्धामिश्रित वचन--संज्ञा पुं० [सं०] जैन मत के अनुसार समय के संबंध में झूठ बोलना। जैसे कुछ रात रहते ही कह देना कि सूर्योदय हो गया।

अनद्य[1]--संज्ञा पुं० [सं०] सफेद सरसों [को०]।

अनद्य[1]--वि० जो खाने योग्य न हो। अखाद्य [को०]।

अनद्यतन[1]--वि० [सं०] [**स्त्री० अनद्यतनी**] आज या अद्यतन के पहले या पीछे का।

अनद्यतन[2]--संज्ञा पुं० पिछली रात के पिछले दो पहर और आनेवाली रात के अगले दो पहर और इनके बीच के सारे दिन को छोड़कर बाकी रात या भविष्य का समय। पिछली १२ बजे रात से आनेवाली १२ बजे रात तक का ससय जो बीत रहा हो।

विशेष--पिछली आधी रात के पहले के समय को भूत अनद्यतन और आनेवाली रात के बाद के समय को भविष्य अनद्यतन कहते हैं।

अनद्यतन भविष्य--संज्ञा पुं० [सं०]१. आनेवाली आधी रात के बाद का समय। २. संस्कृत व्याकरण में भविष्य काल का एक भेद जिसका अब प्रायः प्रयोग नहीं होता।

अनद्यतन भूत--संज्ञा पुं० [सं०] १. बीती हुई आधी रात के पहले का समय। संस्कृत व्याकरण में भूतकाल का एक भेद जिसका अब प्रायः प्रयोग नहीं होता।

अनधिक--वि० [सं०]१. जो अधिक न हो। २. सीमाहीन। असीम। ३. पूर्ण। पूरा। ४. जिससे कोई बढ़कर न हो। ५. जिसे बढ़ाया न जा सके [को०]।

अनधिकार[1]--संज्ञा पुं० [सं०] १. अधिकार का अभाव। इख्तियार का न होना। प्रभुत्व का अभाव। २. बेबसी लाचारी। ३. अयोग्यता। अक्षमता।

अनधिकार[2]--वि० १. अधिकाररहित। बिना इख्तियार का। २. अयोग्य। योग्यता के बाहर।

अनधिकारचर्चा--संज्ञा स्त्री० [सं०] योग्यता के बाहर बातचीत। जिस विषय में गति न हो उसमें टाँग अड़ाना।

अनकधिकार चेष्टा--संज्ञा स्त्री० [सं०] बिना अधिकार के कोई कार्य या प्रयत्न करना [को०]।

अनधिकारिता--संज्ञा स्त्री० [सं०] १. अधिकारशून्यता। अधिकार का न होना। २. अक्षमता।

अनधिकारी--वि० [सं० **अनधिकारिन्**] [**स्त्री० अनधिकारिणी** १. जिसे अधिकार न हो। जिसके हाथ में इख्तियार न हो। २. अयोग्य। अपात्र। कुपात्र। जैसे--पंडित लोग अनधिकारी को वेद नहीं पढ़ाते (शब्द०)।

अनधिकृत--वि० [सं०]१. जो अधिकारी के पद पर नियुक्त न किया गया हो। २. अधिकार से बाहर। जिसपर अधिकार न हो [को०]।

अनधिगत--वि० [सं०] बिना समझा हुआ। अनवगत। अज्ञात। बे जाना बूझा।

अनधिगत मनोरथ--वि० [सं०] जिसकी इच्छा पूर्ण न हुई हो। हताश [को०]।

अनधिगत शास्त्र--वि० [सं०] जिसका शास्त्र पर अधिकार न हो [को०]।

अनधिगम्य--वि० [सं०] जो पहुँच के बाहर हो। अप्राप्य। दुष्प्राप्य।

अनधिष्ठान--संज्ञा पुं० [सं०] निरीक्षण का न होना [को०]।

अनधिष्ठित--वि० [सं०] १. जो अधिकारी के पद पर नियुक्त न हुआ। २. जो उपस्थि न हो [को०]।

अनधिष्ठित--वि० [सं०] १. अधिकारी के पद पर नियुक्त न हुआ हो। २. उपस्थित न हो [को०]।

अनधीन[1]--वि० [सं०] जो अधीन न हो। स्वतंत्र [को०]।

अनधीन[2]--संज्ञा पुं० स्वेच्छा पूर्वक स्वतंत्र रूप में काम करनेवाला बढ़ई [को०]।

अनधीनक--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अनधीन' [को०]।

अनध्यक्ष--वि० [सं०] १. जो देख न पड़े। अप्रत्यक्ष। नजर के बाहर। २. अध्यक्षरहित। बिना मालिक का।

अनध्ययन--संज्ञा पुं० [सं०] १. अध्ययन न होना। अध्ययन का अभाव। २. अध्यायनकाल में बीच में पड़नेवाला विराम [को०]।

अनध्यवसाय--संज्ञा पुं० [सं०]१. अध्यवसाय का अभाव। अतत्परता। ढिलाई। २. एक काव्यालंकार।

विशेष--इसमें कई समान गुणवाली वस्तुओं के बीच नहीं बल्कि किसी एक वस्तु के संबंध में साधारण अनिश्चय का वर्णन किया जाता है। जैसे--'स्वेदशालि जो कर मम तन कह। हे आली बनमाली को यह'। यह अलंकार वास्तव में 'संदेह' के अंतर्गत ही आता है और इससे कुछ अलंकारता भी नहीं प्रतीत होती है।

अनध्याय--संज्ञा पुं० [सं०] १. वह दिन जिसमें शास्त्रानुसार पढ़ने पढ़ाने का निषेध हो।

विशेष—मनु के अनुसार अमावस्या, अष्टमी, चतुर्दशी और पूर्णिमा ये चार दिन 'अनध्याय' के हैं। इनके अतिरिक्त प्रतिपदा को भी अनध्याय माना जाता है।

२. छुट्टी का दिन।

अनध्यास—वि० [सं०] भूला हुआ। विस्मृत।

अनन१—संज्ञा पुं० [सं०] श्वासग्रहण की क्रिया। जीना [को०]।

अनन२(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे 'अन्न'। उ०—पिय बिन तन पन अनन धन, भूषन बसन नरत।—पृ० रा०, ६६।२७६।

अनन३(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अनन्य'। उ०—बाजय अनहद ताल पखावज उमग्यो प्रेम अनन खोरी।—भीख० श०, पृ० ५१।

अननि(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अनन्य'। उ०—राह भगति की अननि है बिरला पावै कोइ।—रामानंद, पृ० ५४।

अननुकूल—वि० [सं०] १. जो अनुकूल न हो। २. प्रतिकूल। विपरीत। उलटा। उ० जहाँ सामाजिक अनुभूति के विपरीत या अननुकूल वैयक्तिक अनुभूति काव्य में आ जाती है वहाँ रसाभास हो जाता है। साहित्य०, पृ० २१९।

अननख्याति—संज्ञा स्त्री० [सं०] ख्याति, ज्ञान या बोध का अभाव [को०]।

अननुज्ञात—वि० [सं०] १ जो स्वीकृत न हो। अस्वीकृत। २. जिसको अनुज्ञा या अनुमति न दी गई हो [को०]।

अननुभावक—संज्ञा [सं०] जो समझने में असमर्थ हो [को०]।

अननुभावकता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बोध या ज्ञान का अभाव। २. अबोध। अज्ञान। अज्ञात [को०]।

अननुभाषण—संज्ञा पुं० [सं०] न्याय में एक प्रकार का निग्रह स्थान।

विशेष—जब वादी किसी विषय को तीन बार कह चुके और सब लोग समझ जायँ, और फिर प्रतिवादी उसका कुछ उत्तर न दे तब वहाँ अननुभाषण होता है और प्रतिवादी की हार मानी जाती है।

अननुभूत—वि० [सं०] जिसका अनुभव न हो। अनुभव से परे। उ०—अननुभूति पदार्थों का साहित्यकार सर्जन करता रहता है।—शैली, पृ० २१।

अननुमत—वि० [सं०] १ जिसकी अनुमति या आज्ञा न हो। २. नापसंद। अप्रिय। ३. असंगत। अयुक्त [को०]।

अननुषंगी—वि० [सं० अननुषङ्गिन्] जो अनुषंगी न हो [को०]।

अननुष्ठान—संज्ञा पुं० [सं०] अनुष्ठान का अभाव [को०]।

अननुक्त—वि० [सं०] १. जिसका पाठ न किया गया हो। २ अनुत्तरित। जिसका उत्तर न दिया गया हो [को०]।

अननृत—वि० [सं०] जो अनृत या असत्य न हो। सत्य [को०]।

अनन्न—वि० [सं०] चावल या खाद्य जो हीन कोटि का हो [को०]।

अनन्नास—संज्ञा पुं० [अँगे० (अमे०) नानस, पुर्त० अनानाज] रामबाँस की तरह का एक पौधा और उसका फल।

विशेष—यह पौधा दो फुट तक ऊँचा होता है। जड़ से दो तीन इंच ऊपर डंठल में अंकुरों की एक गाँठ बँधने लगती है जो क्रमशः मोटी और लंबी होती जाती है और रस से भरी होती है। इस मोटे अंकुरपिंड का स्वाद खटमीठा होता है।

अनन्य१—वि० [सं०] [स्त्री० अनन्या] अन्य से संबंध न रखनेवाला। एकनिष्ठ। एक ही में लीन। जैसे—(क) 'वह ईश्वर का अनन्य उपासक है।' 'इसपर हमारा अनन्य अधिकार है, (शब्द०)। (ख) सो अनन्य जाके असि मति न टरइ हनुमंत।—मानस ४।३।

यौ०—अनन्यभक्त = जो किसी एक की ही भक्ति करे। एकनिष्ठ भक्त। २. अद्वितीय। जिसके समान दूसरा न हो। जैसे—अंगरेजी के अनन्य महाकवि शेक्सपीयर की कविता।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २०।

अनन्य२—संज्ञा पुं० विष्णु का एक नाम।

अनन्यगति—वि० [सं०] जिसको दूसरा सहारा या उपाय न हो। जिसको और ठिकाना न हो। उ०—भेजहिं भगति मन बचन करम अनन्य गति हर चरन की।—तुलसी ग्रं०, पृ० ३१।

अनन्यगतिक—वि० [सं०] जिसे दूसरा सहारा या उपाय न हो[को०]।

अनन्यगामी—वि० [सं० अनन्यगामिन्] किसी अन्य के पास न जानेवाला [को०]।

अनन्यगुरु—संज्ञा पुं० [सं०] कृष्ण [को०]।

अनन्यचित्त—वि० [सं०] जिसका चित्त और जगह न हो। एकाग्रचित्त।

अनन्यचेता—वि० [सं० अनन्यचेतस्] अनन्यचित्त। एकाग्रचित्त [को०]

अनन्यचोदित—वि० [सं०] जो अन्य किसी से प्रेरित न हो। स्वतःप्रेरित (को०)।

अनन्यज—संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव।

अनन्यजन्मा—संज्ञा पुं० [सं० अनन्यजन्मन्] अनंग। कामदेव [को०]।

अनन्यता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. अन्य के संबंध का अभाव। २. एकनिष्ठता। एकाश्रयता। एक ही में लीन रहना। उ०—इस अनन्यता सहित धन्य अपने प्यारे को आराधा।—एकांत०, पृ० १३।

अनन्यत्व—संज्ञा पुं० [सं०] अनन्यता [को०]।

अनन्यदृष्टि१—संज्ञा स्त्री० [सं०] एकाग्र दृष्टि। एकटक देखते रहना[को०]।

अनन्यदृष्टि२—वि० एकटक देखनेवाला [को०]।

अनन्यदेव१—वि० [सं०] जिसका अन्य कोई देव न हो [को०]।

अनन्यदेव२—संज्ञा पुं० परमात्मा [को०]।

अनन्यनिष्पाद्य—वि० [सं०] किसी अन्य से निष्पन्न या संपादित न होने योग्य [को०]।

अनन्यपरता—संज्ञा स्त्री० [सं०] अन्यपरता का अभाव। एकनिष्ठता [को०]।

अनन्यपरायण—वि० [सं०] जो अन्य (स्त्री०) में लीन या आसक्त न हो [को०]।

अनन्यपूर्व—वि० [सं०] वह पुरुष जिसके अन्य स्त्री न हो [को०]।

अनन्यपूर्वा—वि० स्त्री० [सं०] १. जो पहले किसी की न रही हो। २. कुमारी। क्वारी। बिनब्याही।

अनन्यभव—वि० [सं०] जिसके अन्य संतान उत्पन्न न हो [को०]।

अनन्यभाव१—वि० [सं०] अन्य के प्रति भाव या आस्था न रखनेवाला [को०]।

अनन्यभाव२—संज्ञा पुं० [सं०] १. एकनिष्ठ भक्ति या भाव। २. परमात्मा के प्रति भक्ति या निष्ठा [को०]।

अनन्यमनस्क--वि० [सं०] जो अन्यमनस्क या अन्यनिष्ठ न हो [को०]।

अनन्यमना--वि० [सं० **अनन्यमनस्**] १. एकाग्रचित्त। २. एकनिष्ठ [को०]।

अनन्यमानस--वि० [सं०] १. एकाग्रचित्त। २. एकनिष्ठ [को०]।

अनन्ययोग[1]--वि० [सं०] जिसका किसी अन्य का योग या साथ न हो [को०]।

अनन्ययोग[2]--क्रि० वि० किसी अन्य के साथ या बाद में न आनेवाला [को०]।

अनन्यविषय--वि० [सं०] एकमात्र विषय या संदर्भ से संबंध रखनेवाला [को०]।

अनन्यविषयात्मा--वि० [सं० **अनन्यविषयात्मन्**] एक विषय पर स्थिर रहनेवाला [को०]।

अनन्यवृत्ति--वि० [सं०] १. अन्यवृत्ति न रखनेवाला। एकाग्र। दत्तचित्त। २. जिसकी दूसरी वृत्ति या जीविका न हो। ३. समान वृत्ति या स्वभाववाला [को०]।

अनन्यसाधारण--वि० [सं०] अन्य से न मिलनेवाला। असाधारण [को०]।

अनन्यसामान्य--वि० [सं०] जो अन्य सामान्य या साधारण जनों से अलग हो। असाधारण [को०]।

अनन्यहृत--वि० [सं०] जो अन्य द्वारा हरण न किया गया हो। सुरक्षित [को०]।

अनन्याधिकार--संज्ञा पुं० [सं०] वह पदार्थ जिसके देखने या बनानेका किसी एक व्यक्ति या कंपनी को ही अधिकार हो। पेटेंट। इजारा।

अनन्यार्थ--वि० [सं०] जो अन्य अर्थ या विषय के अंतर्गत न हो। जो गौण न हो। मुख्य या आधिकारिक [को०]।

अनन्याश्रित[1]--वि० [सं०] १. जो अन्य का आश्रित या अधीन न हो। २. स्वाधीन। स्वतंत्र [को०]।

अनन्याश्रित[2]--संज्ञा पुं० वह संपत्ति जिसपर ऋण न हो [को०]।

अनन्वय--संज्ञा पुं० [सं०] १. अन्वय या संबंध का अभाव। २. काव्य में वह अलंकार जिसमें एक ही वस्तु उपमान और उपमेय रूप से कही जाय। जैसे--तेरे मुख की जोड़ को तेरो ही मुख आहि (शब्द०)।

विशेष--केशवदास ने इसी को अतिशयोपमा लिखा है।

अनन्वित--वि० [सं०] १. असंबद्ध। पृथक्। बिलग। २. अंडबंड। अयुक्त।

अनन्वै(पु)--संज्ञा पुं० [सं० **अनन्वय**] दे० 'अनन्वय[2]'। उ०--कहाँ करत उपमेय को उपमेयै उपमान, तहाँ अनन्वै कहत है भूषन सकल सुजान।--भूषन ग्रं०, पृ० १३।

अनप--वि० [सं०] जलहीन। बिना जल का [को०]।

अनपकरण--संज्ञा पुं० [सं०] १. हानि करना। २. रुपया न लौटाना [को०]।

अनपकर्म--संज्ञा पुं० [सं० **अनपकर्मन्**] दे० 'अनपकरण' [को०]।

अनपकार--संज्ञा पुं० [सं०] अपकार या हानि का अभाव [को०]।

अनपकारक--वि० [सं०] १. जो हानिकारक न हो। २. निर्दोष [को०]।

अनपकारी--वि० [सं० **अनपकारिन्**] [स्त्री० **अनपकारिणी**] अपकार या हानि न करनेवाला [को०]।

अनपकृत[1]--वि० [सं०] जिसका अहित न हुआ हो [को०]।

अनपकृत[2]--संज्ञा पुं० दोष का अभाव [को०]।

अनपक्रम--संज्ञा पुं० [सं०] न जाना या न हटना [को०]।

अनपक्राम--संज्ञा पुं० [सं०] १. पीछे न हटना। २. पराङ्मुख न होना [को०]।

अनपक्रामक--वि० [सं०] पीछे न हटनेवाला [को०]।

अनपक्रिया--संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अनपकरण' [को०]।

अनपच--संज्ञा पुं० [हिं० अन (प्रत्य०) + **पच**] अजीर्ण। बदहजमी।

अनपच्युत--वि० [सं०] १. विचलित न होनेवाला। डावाँडोल न होनेवाला। २. विश्वासपात्र। विश्वसनीय [को०]।

अनपढ़--वि० [हिं० **अन = नहीं + √पढ़**] बेपढ़ा। अपठित। मूर्ख। निरक्षर।

अनपत्य--वि० [सं०] [स्त्री० **अनपत्या**] निःसंतान। नावल्द।

अनपत्यक--वि० [सं०] दे० 'अनपत्य'।

अनपत्यता--संज्ञा स्त्री० [सं०] निस्संतान होना [को०]।

अनपत्रप--वि० [सं०] निर्लज्ज। बेशर्म [को०]।

अनपदेश--संज्ञा पुं० [सं०] वह तर्क जो ग्राह्य न हो। अग्राह्य तर्क [को०]।

अनपधृष्य--वि० [सं०] पराजित या विजित न करने योग्य [को०]।

अनपभ्रंश--संज्ञा पुं० [सं०] १. जो अपभ्रंश न हो। २. शुद्ध शब्द [को०]।

अनपर[1]--वि० [सं०] १. अपर या अन्य से रहित। २. जिसका कोई अनुयायी न हो। ३. अकेला। एकमात्र [को०]।

अनपर[2]--संज्ञा पुं० ब्रह्म [को०]।

अनपराद्ध--वि० [सं०] अपराधशून्य [को०]।

अनपराध--वि० [सं०] अपराधरहित। निर्दोष। बेकसूर।

अनपराधी--वि० [सं० **अनपराधिन्**] [स्त्री० **अनपराधिनी**] निरपराध। निर्दोष। बेकसूर।

अनपसर--वि० [सं०] १. जिसमें निकलने का मार्ग न हो। २. जो न्याय न हो [को०]।

अनपसरण--संज्ञा पुं० [सं०] निकलने के मार्ग का अभाव [को०]।

अनपाकरण--संज्ञा पुं० [सं०] १. वचन या इकरार पूरा न करना। २. ऋण या मजदूरी न चुकता करना [को०]।

अनपाकरणविवाद--संज्ञा पुं० [सं०] १. इकरार पूरा न करने का मुकदमा या अभियोग। २. ऋण या मजदूरी न देने का अभियोग [को०]।

अनपाकर्म--संज्ञा पुं० [सं०] प्रतिज्ञा के काम न करना। इकरार के मुताबिक तनखाह या मजदूरी न देना। जैसे--मजदूरी न देना, दी हुई वस्तु लौटा लेना।

विशेष--स्मृतियों तथा कौटिलीय अर्थशास्त्र में इसका प्रयोग इसी अर्थ में है। अनपाकर्म संबंधी झगड़ा दो प्रकार का है। एक

तो वेतन संबंधी और दूसरा दान संबंधी : पराशर ने लिखा है कि श्रमी या भृत्य को उसके काम के बदले वेतन न देना या वेतन देकर लौटा लेने का काम 'वेतनस्यानपाकर्म' है। इसी प्रकार दिए हुए माल को लौटाना और ग्रहण किए हुए माल को देना 'दत्तस्यानपाकर्म' है।

अनपाकर्मविवाद--संज्ञा पुं० [सं०] मजदूरों और काम करानेवाले पूँजीपतियों के बीच वेतन संबंधी झगड़ा।

विशेष--नारद ने लिखा है कि कर्मस्वामी अर्थात् पूँजीपति भृत्यों को निश्चित की हुई भृति दे (ना० स्मृ० ६०२)।

अनपाय१--वि० [सं०] अपाय का क्षय से रहित [को०]।

अनपाय२--संज्ञा पुं० अनश्वरता। २. नित्यता। ३. शिव [को०]।

अनपायनी--वि० स्त्री० [सं० अनपायिनी] विश्लेषरहित। स्थिर। दृढ़। उ०--प्रेम भगति अनपायनी देहु हमहिं श्रीराम।--मानस, ७।३४।

अनपायिपद--संज्ञा पुं० [सं०] स्थिर पद। अनश्वर पद। परम पद। मोक्ष।

अनपायी--वि० [सं० अनपायिन्] [स्त्री० अनपायिनी] निश्चल। स्थिर। अचल। दृढ़। अनश्वर।

अनपाश्रय--वि० [सं०] १. जो किसी का आश्रित न हो। २. स्वतंत्र [को०]।

अनपेक्ष--वि० [सं०] १. अपेक्षा या चाह न रखनेवाला। २. तटस्थ। ३. निष्पक्ष। ४. संबंधहीन। ५. स्वतंत्र [को०]।

अनपेक्षा१--वि० [सं०] अपेक्षारहित। निरपेक्ष। बेपरवाह।

अनपेक्षा२--संज्ञा स्त्री० अपेक्षा या चाह का अभाव [को०]।

अनपेक्षित--वि० [सं०] जो अपेक्षित न हो। जिसकी परवाह न हो। जिसकी चाह न हो।

अनपेक्षी--वि० [सं० अनपेक्षिन] दे० 'अनपेक्ष' [को०]।

अनपेक्ष्य--वि० [सं०] जो अन्य की अपेक्षा न रखे। जिसे किसी के सहारे की आवश्यता न हो। जिसे किसी की परवा न हो। उ०--साक्षी हो अनपेक्ष्य मेरे अर्थ, सत्य कर दे सर्व-सहन-समर्थ।--साकेत, पृ० १७८।

अनपेत--वि० [सं०] १. जो गत न हो। २. अव्यतीत। जो बीता न हो। ३. जो पृथक् या अलग न हो। ४. विश्वासपात्र। विश्वसनीय। ५. निकट। समीप [को०]।

अनप्त--वि० [सं०] जो जलयुक्त न हो [को०]।

अनप्रापत(पु)--वि० [हिं० अन+सं० प्राप्त, हिं० प्रापत, परापत] अप्राप्त। उ०--अनप्रापत को कहा तजे, प्रापत तजे सो त्यागी है।--कबीर रे०, पृ० ४६।

अनप्रासन(पु)--संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अन्नप्राशन'। उ०--आजु कान्ह करिहैं अनप्रासन।--सूर० १०।७०७।

अनफाँस(पु)--संज्ञा पुं० [हिं० अन+फाँस=पाश] मोक्ष। मुक्ति। उ०--जेकर पास अनफाँस, कहु जिय फिकिर सँभारि कै।--जायसी (शब्द०)।

अनफा--संज्ञा पुं० [यूनानी; श्री० अनफे] ज्योतिष के सोलह योगों में से एक।

विशेष--कुंडली में जिस स्थान पर चंद्रमा बैठा हो उससे बारहवें स्थान में यदि कोई ग्रह हो तो इस योग को अनफा कहते हैं।

अनबंछी(पु)--वि० [हिं० अन+वांछित, प्रा० बंछिय] अवांछित। अनचाही। उ०--और सकल यह बरतनि कहिए अनबंछी ही आवै जू।--सुंदर० ग्रं०, भा० १, पृ० ३११।

अनबन१--संज्ञा पुं० [हिं० अन=नहीं+√बन=बनना] बिगाड़। विरोध। फूट। खटपट।

अनबन२(पु)--वि० भिन्न भिन्न। नाना (प्रकार)। विविध। अनेक। उ०--(क) अनबन बानी तेहि के माहिं। बिन जाने नर भटका खाहिं।--कबीर (शब्द०)। (ख) पुनि अभरन बहु काढ़ा अनबन भाँति जराव।--जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० ३४४।

अनबनता(पु)--वि० [हिं० अन+√बन] जिससे बनत या बनाव या मेल न हो। उ०--कबीर कहते क्यों बनै अनबनता के संग, दीपक को भावै नहिं जरि जरि मरें पतंग।--कबीर सा० सं०, पृ० ५८।

अनबना(पु)--वि० [हिं० अनबन] [वि० स्त्री० अनबनी] बुरा। खराब। बिगड़ा। उ०--बन्यो अनबन्यो समुझि कै, सोधि लेहिंगे साधु।--भिखारी ग्रं०, भा० २, पृ० ४।

अनबनियत(पु)--संज्ञा स्त्री० [हिं० अनबन] वह जो बननेवाली न हो। उ०--गुरु बिन मिटइ न दुगदुगी अनबनियत न नसाइ।--कबीर (शब्द०)।

अनबलई(पु)--वि० [हिं० अन+√बल] बिना जलाया। जो प्रज्वलित न किया गया हो। उ०--अनबलई दव परजलई।--बीसल० रास०, पृ० ६६।

अनबाद(पु)--संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अनवाद'। उ०--आनंदघन सुजान सुनौ बिनती जिन अनबाद करौ तिहारी।--घनानंद, पृ० ५५५।

अनबिछा--वि० [हिं० अन+√बिछ] बिना बिछाया हुआ। नंगा उ०--अपनी कोठरी में एक अनबिछे तखत पर लेटी थी।--त्याग; पृ० २१।

अनबिधा--वि० [हिं० अन+सं० विद्ध] दे० 'अनबिधा'।

अनबिधा--वि० [सं० अन्+विद्ध] बिना बेधा हुआ। बिना छेद किया हुआ।

अनबीह(पु)--वि० [हिं० अन+सं० भीत, प्रा० भीअ√बीह] निर्भय। निडर। उ०--लोहाना अनबीह लीय आरत्त समथ्थं।--पृ० रा० ४।२०।

अनबूझ--वि० [हिं० अन+√बूझ] अनजान। नासमझ। मूर्ख। उ०--अंधेर नगरी अनबूझ राजा, टका सेर भाजी टका सेर खाजा।--भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ६७०।

अनबूझा(पु)--वि० [हिं०] बेसमझाबूझा। अबूझा।

अनबूड़ा(पु)--वि० [हिं० अन+√बूड़] न डूबा हुआ। जो गहरे न पैठा हो। उ०--अनबूड़े बूड़े, तरै जे बूड़े सब अंग।--बिहारी र०, दो० ६४।

अनबेधा--वि० [हिं०] दे० 'अनबिधा'।

अनबोल--वि० [हिं० अन=नहीं+√बोल] १. अनबोला। न बोलनेवाला। २. चुप्पा। मौन। ३. गूँगा। बेजबान। ४. जो अपने सुख दुःख को न कह सके।

विशेष—पशुओं के लिये इस विशेषण का बहुत प्रयोग प्राप्त होता है ।

अनबोलता—वि० [हिं०] [स्त्री० **अनबोलती**] दे० 'अनबोल' ।

अनबोला१‡—वि० [हिं०] दे० 'अनबोलता' ।

अनबोला२†—संज्ञा पुं० [हिं० **अन + बोल**] बोलचाल या बातचीत का अभाव । अनबन । अनमेल ।

अनबोले(पु)—क्रि० वि० [हिं०] बिना बोले हुए । उ०—मैं तौ तुम्हैं हँसऽरु खेलतहिं छाँड़ि गई, आई अब न्यारे अनबोले रहे दोऊ ।—सूर०, १०।२७६१ ।

अनब्बर(पु)—वि० [सं० **अन् + अब्बर = अबल**] बली । बलवान । उ०—चढ़यौ चहुआन अनब्बर ।—पृ० रा, ५८ । ७ ।

अनब्याहा—वि० [हिं० **अन + ब्याहा**] [स्त्री० **अनब्याही**] अविवाहित । बिन ब्याहा । क्वाँरा । उ०—अनब्याही कह पुरुष सों अनुरागी जो होइ । ताहि अनूढ़ा कहत हैं कबि कोबिद सब कोइ ।—रसराज, पृ० १५ ।

अनभंग(पु)—वि० [हिं० **अन + भंग = टूटना**] अखंडित । अभंग । परिपूर्ण । उ०—थरहरात उर कर कँपत फरकत अधर सुरंग । परखि पीउ पलकनि प्रगट पीक लीक अनभंग । पद्माकर ग्रं०, पृ० १६६ ।

अनभजता(पु)—वि० [हिं० **अन + भजना**] न भजनेवाला । न चाहनेवाला । उ०—इक भजते की भजै एक अनभजतन भजहीं ।—नंद० ग्रं०, पृ० २० ।

अनभया(पु)—वि० [हिं० **अन + भया**] बिना हुए । बिना सत्ता या स्थिति हुए । उ०—जागेउ नृप अनभएँ बिहाना ।—मानस, १।१७२ ।

अनभल(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं० **अन = नहीं + भल**] बुराई । हानि । अहित । उ०—जारइ जोगु सुभाउ हमारा । अनभल देखि न जाइ तुम्हारा ।—मानस, २।१६ ।

मु०—**अनभल ताकना** = बुराई चाहना । उ०—जेहिं राउर अति अनभल ताका । सोइ पाइहि येहु फल परिपाका ।—मानस, २।२१ ।

अनभला(पु)—वि० पुं० [हिं० **अन + भला**] [स्त्री० **अनभली**] बुरा । निंदित । हेय । खराब । उ०—कटु कहिए गाढ़े परे सुनि समुझि सुसाई । करहिं अनभले को भलो आपनी भलाई ।—तुलसी ग्रं०, पृ० ४७२ ।

अनभाउता(पु)—वि० [हिं०] दे० **'अनभावता'** । उ०—त्यौं पदमाकर सौति सँजोगनि रोग भयो अनभाउतो जी को ।—पद्माकर ग्रं०, पृ० १७० ।

अनभाया—वि० [[हिं० **अन + भावना = अच्छा लगना**] [स्त्री० अनभाई] जो न भावे । जिसकी चाह न हो । अप्रिय । अरुचिकर । नापसंद । उ०—अवध सकल नर नारि विकल अति, अँकनि बचन अनभाये । तुलसी रामबियोग सोग बस समुझत नहिं समुझाए ।—तुलसी ग्रं०, पृ० ३६२ ।

अनभायौ(पु)—वि० [हिं०] अप्रिय । अनिष्ट । उ०—गरुड़ को कहा कियौ अनभावौ । जातैं यह व्रहि दह मैं आयौ ।—नंद ग्रं०, पृ० २८२ ।

अनभाव†—संज्ञा पुं० [[हिं० **अन + भाव**] भाव या प्रेम का अभाव ।

अनभावत(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अनभावता' ।

अनभावता(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अनभाया' । उ०—तेरैं लाल माखन खायौ । ऊखल चढ़ि, सीके कौ लीन्हौं अनभावत भुइँ मैं ढरकायौ ।—सूर० १०।३३१ ।

अभावरी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० **अन + भावरी**] नापसंद होने की भाव या स्थिति । उ०—भावरि अनभावरि भरे करौ कोरि बकवादु । अपनी अपनी भाँति कौ छुटै न सहजु सवादु ।—बिहारी र०, दो० ६३७ ।

अनभिगम्य—वि० [सं०] जो अभिगम्य या समझने योग्य न हो । अबोध । उ०—सदैव के लिये यह उन्हें अनभिगम्य हुआ ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २७५ ।

अनभिग्रह१—वि० [सं०] भेदशून्य । समभावविशिष्ट ।

अनभिग्रह२—संज्ञा पुं० १. भेदशून्यता । एकरूपता । समकक्षता । २. जैन मतानुसार सब मतों को अच्छा और सब में मोक्ष मानने का मिथ्यात्व ।

अनभिज्ञ—वि० [सं०] [वि० स्त्री० **अनभिज्ञा**, संज्ञा **अनभिज्ञता**] अज्ञ । जनजान । अनाड़ी । मूर्ख । उ०—(क) मैं तब कितनी अनभिज्ञा थी प्रतिबिंबित शशि को पाकर । वीणा, पृ० ३६ । २. अपरिचित । नावाकिफ । उ०—(ख) निपट अनभिज्ञा अभी तुम हो बहिन, प्रेमिका का गर्व रखती हो वृथा ।—ग्रंथि, पृ० ७८ ।

अनभिज्ञता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. अज्ञता । अनाड़ीपन । अनजानपन । मूर्खता । २. परिचय का अभाव । नावाकफियत ।

अनभिप्रेत—वि० [सं०] १. अभिप्रायविरुद्ध । अनभिमत । तात्पर्य से भिन्न । और का और । जैसे—आपने इस बात का अनभिप्रेत अर्थ लगाया है (शब्द०) । २. अनिष्ट । इच्छा के प्रतिकूल । नापसंद । जैसे—ऐसी ऐसी कार्रवाइयाँ हमें अनभिप्रेत हैं—(शब्द०) ।

अनभिभूत—वि० [सं०] १. जो पराजित न हो । २. अबाधित [को०] ।

अनभिमत—वि० [सं०] १. मत के विरुद्ध । राय के खिलाफ । २. तात्पर्यविरुद्ध । और का और । ३. अनभीष्ट । नापसंद ।

अनभिमान—संज्ञा पुं० [सं० **अन् + अभिमान**] अभिमान का अभाव । उ०—संपत्ति में अनभिमान और युद्ध में जिसकी स्थिरता है वह ईश्वर की सृष्टि का रत्न है ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० २६४ ।

अनभिमानुक—वि० [सं०] किसी के प्रति दुर्भाव न रखनेवाला [को०] ।

अनभिम्लात—वि० [सं०] जो मुरझाया या कुम्हलाया न हो [को०] ।

अनभिम्लातवर्ण—वि० [सं०] जिसका वर्ण या रंग फीका या मंद न हुआ हो [को०] ।

अनभिरूप—वि० [सं०] जो सदृश या समान न हो । २. जो सुंदर न हो [को०] ।

अनभिलाष१—वि० [सं०] इच्छाशून्य [को०] ।

अनभिलाष२—संज्ञा पुं० १. भूख या इच्छा का अभाव । २. रस या स्वाद का अभाव [को०] ।

अनभिवद्य—वि० [सं०] जो अभिवदन या निर्वचन के योग्य न हो। अनिर्वचनीय। उ०—है अभिन्न, निष्कंप, अनिर्वच, अनभिवद्य है युगातीत।—इत्यलम्, पृ० १९६।

अनभिवाद्य—वि० [सं०] जो वंद्य न हो। जो अभिवादन के योग्य न हो [को०]।

अभिव्यक्त—वि० [सं०] १. जो व्यक्त न हो। अपरिस्फुट। अप्रकाशित। अप्रकट। २. गुप्त। गूढ़। अस्पष्ट।

अनभिशस्त—वि० [सं०] अनिंद्य। निष्कलुष [को०]।

अनभिषंग—वि० [सं० अनभिषङ्ग] संबंध या संग का अभाव [को०]।

अनभिसंधान—संज्ञा पुं० [सं० अनभिसन्धान] १. इच्छा या रुचि का अभाव। २. निस्स्वार्थता [को०]।

अनभिसंधिकृत—वि० [सं० अनभिसन्धिकृत] बिना इच्छा या प्रवृत्ति के किया हुआ [को०]।

अनभिसंबंध[1]—वि० [सं० अनभिसम्बन्ध] संबंधरहित [को०]।

अनभिसंध[2]—संज्ञा पुं० संबंध का अभाव [को०]।

अनभिस्नेह—वि० [सं०] स्नेहशून्य [को०]।

अनभिहित—वि० [सं०] १. अकथित। न कहा हुआ। २. बंधनहीन। अबद्ध [को०]।

अनभीप्सित—वि० [सं०] जो अभीप्सित या इष्ट या प्रिय न हो। उ०—अपने प्रति सदभिलाषा अनिमंत्रित और अनभीप्सित लगती है।—सुनीता, पृ० ७०।

अनभीशु—वि० [सं०] बिना लगाम का। वल्गा रहित [को०]।

अनभोष्ट—वि० [सं०] १. जो अभीष्ट न हो। इच्छाविरुद्ध नापसंद। २. तात्पर्यविरुद्ध। और का और।

अनभुत्त(पु)—वि० [हिं० अन + भूत] अस्तित्वहीन। प्राणरहित। उ०—जुरत जुद्ध दिन बीय, भए अनभुत्त उभै भट।—पृ० रा० ६१।२१०३।

अनभुवना(पु)†—क्रि० अ० [सं० अनुभव] अनुभव करना। उ०—बाघनी डाकरै जौरियौ पाषरैं अनभुई गोरष राया।—गोरख०, पृ० १४४।

अनभेदी(पु)—वि० [हिं० अन + सं० भेदिन्] भेद ज्ञान से रहित। भेद न जाननेवाला। उ०—भेदी होय सो भर भर पीवैं अनभेदी भरम फिरि।—कबीर श०, भा० ३, पृ० २३।

अनभै(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अनुभव'। उ०—(क) सकल बिघ्न खंड खंड तस्मै श्रीराम रक्षा निराकार वीणा अनभै तन्त निर्भै मुक्ति जानी।—रामानंद०, पृ० ३। (ख) जीव सृष्टि को कीन्ह पसारा, अनभै ज्ञान कीन्ह बिस्तारा।—कबीर सा०, पृ० ९५२।

अनभो[1](पु)—संज्ञा पुं० [सं० अन् = नहीं + भव = होना] अचंभा। अचरज। अनहोनी बात।

अनभो[2](पु)—वि० अपूर्व। अलौकिक। लोकोत्तर। अप्राकृतिक। अद्भुत। उ०—तुम घट ही मो श्याम बताए।...हम मतिहीन अजान अल्पमति तुम अनभो पद ल्याए।—सूर (शब्द०)।

अनभोरी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० अन + भोर] भुलावा। बहाली। चकमा।

क्रि० प्र०—देना। उ०—मानै न जाय गोपाल के गेह घरी घरी धाय कितकेऊ दापति। दै अनभोरी गिराय कै अंचल गोकुल हेरि हँसोंरी ह्वै भापति (शब्द०)।

अनभ्यनुज्ञा—संज्ञा स्त्री० [सं०] अनुज्ञा या अनुमति का अभाव [को०]।

अनभ्यसित—वि० [सं० अन् + अभ्यसित] दे० 'अनभ्यस्त'।

अनभ्यस्त—वि० [सं०] जिसका अभ्यास न किया गया हो। जिसका मश्क न किया गया हो। जो बार बार न किया गया हो। जैसे—यह विषय उनका अनभ्यस्त है (शब्द०)। २. जिसने अभ्यास न किया हो। जिसने साधा न हो। अपरिपक्व। जैसे—हम इस कार्य में बिलकुल अनभ्यस्त हैं (शब्द०)।

अनभ्यारूढ़—वि [सं० अनभ्यारूढ] १. जिसपर सवारी न की गई हो। २. जो अधिगत या प्राप्त न हो [को०]।

अनभ्यारोह—संज्ञा पुं० [सं०] १. सवारी न करना। २. अधिकार में न करना। प्राप्त न करना [को०]।

अनभ्यारोह्य—वि० [सं०] १.सवारी न करने योग्य। २ अप्राप्य [को०]।

अनभ्याश—वि० [सं०] जो समीप न हो। दूर [को०]।

अनभ्यास—संज्ञा पुं० [सं०] अभ्यास का अभाव। साधना की त्रुटि। मश्क न होना।

अनभ्यासी—वि० [सं० अनभ्यासिन्] [स्त्री० अनभ्यासिनी] जो अभ्यास न करे। साधनाशून्य। अभ्यासरहित। बार बार प्रयत्न न करनेवाला।

अनभ्र—वि० [सं०] मेघ रहित। बिना बादल का। उ०—अहे अनभ्र गगन के जलकण।—पल्लव, पृ० ८२।

अनभ्रवज्रपात—संज्ञा पुं० [सं०] १. बिना बादल के बिजली गिरना। २. आकस्मिक संकट या विपत्ति [को०]।

अनभ्रवृष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बिना मेघ की वर्षा। २. आकस्मिक या सहसा होनेवाला लाभ [को०]।

अनम[1](पु)—वि० [सं० अनम्र] उद्धत। बली (डिं०)।

अनम[2]—संज्ञा पुं० [सं०] वह जो किसी को नमस्कार नहीं करता (ब्राह्मण) [को०]।

अनमद(पु)—वि० [हिं० अन + मद] मदरहित। अहंकारहीन। गर्वशून्य। बिना घमंड का। उ०—होय अनमद जूझ सो करिए। जो न वेद आँकुस सिर धरिए।—जायसी (शब्द०)।

अनमन(पु)—वि० [हिं०] दे० अनमना। उ०—भरे हुए उपधन में अनमन मानव रहा अमान, भरा मद।—आराधना, पृ० ८२।

अनमना—वि० [सं० अन्यमनस] [स्त्री० अनमनी] १. उदास। खिन्न। सुस्त। उचटे हुए चित्त का। उ०—(को०) लाल अनमने कत होत हौ तुम। देखो धौं देखो कैसे करि ल्याइ हौं।—सूर (शब्द०)। (ख) कत सजनी है अनमनी अँसुवा भरति सशंक।—मतिराम ग्रं०, पृ० ४४४। २. बीमार। अवस्था। जैसे—वे आजकल कुछ अनमने हैं (शब्द०)।

क्रि० प्र०—होना।

अनमनापन—संज्ञा पुं० [हिं० अनमना + पन] १. उदासी। खिन्नता। चित्त का उचाट। उ०—अनमनापन क्यों आजकल उनकी तबियत में रहता है।—त्याग०, पृ० १५। २. उदासीनता। बेदिली। रुखाई। जैसे—वे अनमनेपन से बोले (शब्द०)।

अनमनीय—वि० [सं० **अ+नमनीय**] जो नमनीय न हो। दृढ़। कठोर।

अनमन्न(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अनमना'। उ०—अढर डरहिं अनमन्न महि ढरहि अठार प्रकार।—पृ० रा०, ५५।१२८।

अनमस्यु—वि० [सं०] नमस्कार न करनेवाला [को०]।

अनमाँगा—वि० [हिं० **अन+माँगना**] जो माँगा हुआ न हो। अयाचित।

अनमाप(पु)—वि० [हिं० **अन+माप**] जिसकी माप न की जा सके। अमेय। अपरिमाण। उ०—नमो निरंजन देव किन पार न पायो, अमित अथाह अतोल नमो अनमाप अजायो।—राम० धर्म०, पृ० २२२।

अनमापा(पु)—वि० [हिं० **अन+मापना**] [स्त्री० **अनमापी**] जिसकी माप न हो सके। जो मापा न जा सके। उ०—वह दर्द कि जिसकी अनमापी गहराई में।—ठंढा लोहा, पृ० ६६।

अनमाया—वि० [हिं० **अन+मायना**] जो अँट न सके। जो समा न सके। उ०—भेंटी भालु भरत भरतानुज क्यों कहौं प्रेम अमित अनमायो।—तुलसी (शब्द०)।

अनमारग(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० **अन=बुरा+मारग**] १. कुमार्ग। बुरी राह। २. दुराचार। अन्याय। अधर्म। पाप। उ०—अकरम, अविधि, अज्ञान, अवज्ञा, अनमारग, अनरीति। जाकौ नाम लेत अघ उपजै सोई करत अनीति।—सूर०, १।१२६।

अनमिख[1](पु)—वि० [हिं०] दे० 'अनिमिष'। उ०—अनमिख लोचन बाल के यातें नंदकुमार।—मतिराम ग्रं०, पृ० ४५२।

अनमिख[2](पु)—क्रि० वि० दे० 'अनिमिष'। उ०—मंद मृदु मुसकानि अनमिख पेखिहौं।—मतिराम ग्रं०, पृ० ३३०।

अनमिख[3](पु)—संज्ञा पुं० दे० 'अनिमिष'।

अनमितंपच—वि० [सं० **अनमितम्पच**] १. बिना नाप जोख किए न पकानेवाला। २. कृपण। कंजूस [को०]।

अनमित(पु)—वि० [हिं० **अन+मित**] अमित। अपार। उ०—आरंभ कान गज आरुहें अनमित सेन उलट्टियौ।—रा० रू० पृ० १५४।

अनमित्त(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अनमित'। उ०—अनमित्त मत्ति बल अप्रमाइ।—पृ० रा०, ६।१३५।

अनमित्ती(पु)—वि० [हिं० **अन+मिति**] दे० 'अनमित'। उ०—आवी फौज लखाँ अनमित्ती, जोवंतो मारग जगपत्ती।—रा० रू०, पृ० २२५।

अनमित्र[1]—वि० [सं०] १. जो अमित्र या शत्रु न हो। २ जिसका कोई अमित्र या शत्रु न हो [को०]।

अनमित्र[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १. अमित्र या शत्रु का अभाव। २ अयोध्या का एक राजा [को०]।

अनमियाँ(पु)—वि० [सं० **अ+नमित**] न झुकनेवाला। अनम्र। उ०—पिच्छम घर सोहै वर पाँमे, नर बस किया अनमियाँ नाँमे।—रा० रू०, पृ० १२।

अनमिल(पु)—वि० [हिं० **अन+$\sqrt{}$मिल**] १. बेमेल। बेजोड़। असंबद्ध। बेतुका। बे सिर पैर का। उ०—(क) अनमिल आखर अरथ न जापू।—मानस, १।१५। (ख) मिल्यौ यवन मदमत्त बकत कछू अनमिल बातें।—मतिराम (शब्द०)। २. पृथक्। भिन्न। अलग। निर्लिप्त। उ०—रहे अदंड दंड नहिं जुग जुग पार न पावै काला। अनमिल रहे मिले नहिं जग में तिरछी उनकी चाल। कबीर (शब्द०)।

अनमिलत(पु)—वि० [हिं०] [स्त्री० **अनमिलती**] दे० 'अनमिल'।

अनमिलता—वि० [हिं० **अनमिल+ता** (प्रत्य०)] [स्त्री० **अनमिलती**] अप्राप्य। अलभ्य। अदृश्य। उ०—कहै पदमाकर सु जादा कहौं कौन अब जाती मरजादा है मही की अनमिलती।—पद्माकर ग्रं०, पृ० २५६।

अनमिला—वि० [हिं० **अन+मिलना**] जो मिला न हो। बेमेल। उ०—इसी से इन अनमेल परदेशियों से विशेष मेल उत्पन्न करते।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ८७१।

अनमिष[1](पु)—संज्ञा पुं० [सं० **अनिमिष**] मछली। अनेकार्थ०, पृ० ८०।

अनमिष[2](पु)—वि० [हिं०] दे० 'अनमिष'। उ०—अनमिष नैन सुनै न ये निरखत अनिमिष नैन।—मतिराम ग्रं० पृ० ४४७।

अनमिषनैनता(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० **अनमिष+नयन+ता** (प्र०)] पलकों के न गिरने की स्थिति या दशा। बिना पलक गिराए नेत्रों से लगातार देखने की स्थिति। उ०—तो मैं अनमिष-नैनता, मोहन मूरति नैन। अनमिष नैन सुनैन ये निरषत अन मिष नैन।—मतिराम ग्रं०, पृ० ३४३।

अनमी(पु)—वि० [सं० **अ+नमित** प्रा० **अ+णमित्र**] जो अधीन या झुका हुआ न हो। अपराजित। उ०—बारमै सूर सो करन रंग, अनमी नमाइ तिन करै भंग।—पृ० रा०, १।७०६।

अनमीच(पु)—क्रि० वि० [हिं० **अन+मिच**] मृत्यु के बिना। बिना मौत के उ०—है घनआनंद सोच महा मरिबो अनमीच बिना जिय जीवौ।—घनानंद, पृ० ४८।

अनमीलना(पु)—क्रि० स० [हिं० **अन+मीलना=मींचना**] (आँख) खोलना। उ०—नयनन मिलि कछू अनमीलति नैंसुक नींद को भाव सुभोयो।—(शब्द०)।

अनमुख(पु)—क्रि० वि० [**अन्य+मुख**] अन्य मुख से। दूसरे के मुँह से। उ०—जीकारो अनमुख जुड़ै, आ जगतूँ अभिलाख।—बाँकीदास ग्रं०, भा० ३, पृ० ७८।

अनमूरति(पु)—वि० [हिं० **अन+मूरति**] अमूर्त। निराकार। मूर्ति-हीन। उ०—अछय अभय अनुभव अनमूरति संत सजीवन नाथ।—गुलाब बानी, पृ० ५२।

अनमेष(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अनिमेष'। उ०—अनमेष जपत इच्छा सघन, आनंद डर भूषन तजै।—पृ० रा०, २५। १०८।

अनमेल—वि० [हिं० **अन+मेल**] १. बेमेल। बेजोड़। असंबद्ध। २. बिना मिलावट का। विशुद्ध। खालिस।

अनमोल—वि० [हिं० **अन+मोल**] १. अमूल्य। मोलरहित। बेमोल। जिसका कोई मूल्य न हो। बहुमूल्य। २. सुंदर। उत्तम। उ०—बिकटी भ्रुकुटी बड़री अँखिया, अनमोल कपोलन की छबि है।—तुलसी ग्रं, पृ० १६४।

अनम्र—वि० [सं०] अविनीत। नम्रतारहित। उद्धत। उद्दंड। अकड़-वाला। ऐंठवाला।

अनय—संज्ञा पुं० [सं०] १. अमंगल। दुर्भाग्य। विपद। उ०—सब कुरुगन को अनय बीज अनुचित अभिमानी।—भारतेंदु ग्रं०,

भा० १, पृ० ११७। २. अनीति। अन्याय। दुष्ट कर्म। उ०—काल तोपची तुपक महि, दारू अनय कराल। पाप पलीता कठिन गुरु गोला पुहुमी पाल।—तुलसी ग्रं०, पृ० १४७। ३. दुर्नीति। ४. व्यसन। ५. दुर्भाग्य (को०)। जुए का एक प्रकार का खेल (को०)।

अनयन—वि० [सं०] नेत्रहीन। दृष्टिहीन। अंधा। उ०—स्याम गौर किमि कहौं बखानि। गिरा अनयन नयन बिनु बानी।—मानस, १। २२९।

अनयस(पु)—संज्ञा [हिं०] पुं० 'अनैस'

अनयाई(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अन्यायी' उ०—सुन रे काल दुष्ट अनयाई, शब्द संग हँसा घर जाई।—कबीर सा०, पृ० ८०४।

अनयाश(पु)—दे० [हिं०] दे० 'अनायास'। उ०—पुनि बर आकाशं मध्य निवासं किया वास अनयाशं।—सुंदर ग्रं०, भा०, पृ० २४३।

अनयास(पु)—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'अनायास'। उ०—(क) बासर निसि दोउ करैं प्रकासित महा कुमग अनयास।—सूर०, १।६०। (ख) आनंदघन मुरलि धुनि घमँडनिताननि झर अनयास।—घनानंद, पृ० ४८२।

अनरंग(पु)—वि० [हिं० अन+रंग] रंगविहीन। रंगरहित। उ०—कारौ अपनौ रंग न छांड़ै, अनरँग कबहुँ न होइ।—सूर०, १।६३।

अनरथ(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अनर्थ'। उ०—(क) लखन लखेउ भा अनरथ आजू।—मानस, २।७३।

अनरना(पु)—क्रि० स० [सं० अनादर से नाम०] अनादर करना। अपमान करना। उ०—(क) मधुकर मन सुनि जोग डरै। औरै सुमन जो अमित सुगंधित शीतल रुचि जो करै। क्यों तुम कोकहि बनै सरै औ और सबै अनरै।—सूर (शब्द०)। (ख) कोमल विमल दल सेवत चरनतल नूपुर बिमल ये मराल अनरत हैं।—चरण (शब्द०)।

अनरस[१]—संज्ञा पुं० [हिं० अन+रस] १. रसहीनता। बिनरसता। शुष्कता। उ०—जो मोहीं राम लागते मीठे। तौ नवरस, षटरस रस अनरस ह्वै जाते सब सीठे।—तुलसी ग्रं०, पृ० ५४३। २. रुखाई। कोप। मान। उ०—अनरस हूँ रसु पाइयतु रसिक रसीली पास। जैसो साँठे की कठिन, गाँठचौ भरी मिठास।—बिहारी र०, दो० ३३०। ३. मनोमालिन्य। मनमोटाव। अनबन। बिगाड़। बुराई। विरोध।

क्रि० प्र०—पड़ना।

४. निरानंद। दुःख। खेद। रंज। उदासी। उ०—(क) रोवनि धोवनि अनखानि अनरसनि डिठि मुठि निठुर नसाइहौं।—तुलसी ग्रं०, पृ० २७७। (ख) जो रसु अनरसु रिस रली, रीझ खीझ इक बार।—बिहारी र०, दो० १८९। ५. रसविहीन काव्य।

विशेष—केशव के अनुसार इसके पाँच भेद हैं:—(क) प्रत्यनीक रस; (ख) नीरस; (ग) विरस; (घ) दुःसंधान और (ङ) पात्र दुष्ट।

अनरसना(पु)—क्रि० अ० [हिं० अनरस से नाम०] उदास होना। खिन्न होना। नाराज होना। उ०—हँसे हँसत, अनरसे अनरसत, प्रतिबिंबनि ज्यों झाँई।—तुलसी ग्रं० पृ० २७७।

अनरसा[१](पु)—[सं० अन्+रस] अनमना। माँदा। बीमार। उ०—अगु अनरसेहि भोर के पय पियत न नीके। रहत न बैठ ठाढ़े; पालने झुलावत हू रोवत राम मेरो सो सोच सबही के।—तुलसी ग्रं०, पृ० २७४।

अनरसा[२]—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अँदरसा'।

अनरसों†—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'अतरसों'।

अनराता—वि० [सं० अन्+रक्त] [स्त्री० अनराती] अरक्त। अरंजित। बिना रँगा हुआ। सादा। उ०—अनराते सुख सोवना राते नींद न आय। ज्यों जल टूटे माछरी तलफत रैन बिहाय।—कबीर सा० सं०, भा० १, पृ० २२।

अनरित(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अनऋतु'। उ०—अनरिति फल काहू करन, किहि कर अनरित फूल। दिव्य वस्त्र काहू करन नाना बरन अमूल।—पृ० रा०, ६।५१।

अनरिति(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अनऋतु'। किहि कर अनरित फूल।—पृ० रा०, ६।५१।

अनरिया(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अनारी'। उ०—साध संत मिल सौदा करिहैं भीखैं मुरख अनरिया।—कबीर श०, भा० १, पृ० ५५।

अनरीति—संज्ञा स्त्री० [सं० अन्+रीति] १. कुरीति। कुचाल। कुप्रथा। बुरी रस्म। बुरा रेवाज। २. अन्यथाचार। अनुचित व्यवहार। उ०—इतनी सुनत विभिषन बोले बंधू पाइ परौं। यह अनरीति सुनी नहिं स्रवननि अब नई कहा करौ।—सूर०, ९।९७।

अनरुच(पु)—वि० [हिं० अनरुचि] जो पसंद न हो। नापसंद। अरुचिकर। उ०—दसन गए कै पचा कपोला। नैन गए अनरुच देइ बोला।—जायसी (शब्द०)।

अनरुण—वि० [सं०] जो अरुण या लाल न हो। उ०—रच गए जो अधर अनरुण, बच गए जो विरह सकरुण।—अर्चना, पृ० ६३।

अनरुचि(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० अन्+रुचि] १. अरुचि। घृणा। अनिच्छा। उ०—मोहन काहें न उगिलौ माटी। बार बार अनरुचि उपजावति, महरि हाथ लिए साँटी।—सूर०, १०।२५४।

अनरूअ(पु)—वि० [सं० अनुरूप; प्रा० अणुरुअ] समान। तुल्य। सदृश। उ०—मूरति मनोहर चारि बिरचि बिरंचि परमारथ मई। अनरूअ भूपति जानि पूरन जोग विधि संकर दई।—तुलसी ग्रं०; पृ० २६९

अनरूप(पु)—वि० [सं० अन्=बुरा+रूप] १. कुरूप। बदसूरत। २. असमान। अतुल्य। असदृश। उ०—केशव लजात जलजात जातवेद ओप; जातरूप बापुरे बिरूप सों निहारिए। मदन निरूपम निरूपन निरूप भयो, चंद बहुरूप अनरूप कै बिचारिए।—केशव (शब्द०)। ३. रूपरहित। बिना रूप का। उ०—रूप कहौ अनरूप पवन अनरेख ते।—पलटू बा०, पृ० ७४।

अनरेख(पु)—वि० [हिं० अन+रेख] बिना रेखा या पहचानवाला। उ०—रूप कहौ अनरूप पवन अनरेख ते।—पलटू बा०, पृ० ७४।

अनरोम(पु)—वि० [हिं० अन+सं० रोम] रोमरहित। बिना रोएँ का। उ०—अनरोम के बहु रोम, इक मात तात न खोम।—पृ० रा० ६३।५६।

अनर्गल—वि० [सं०] १. प्रतिबंधशून्य। बेरोक। बेरुकावट। बेधड़क। २. विचारशून्य। व्यर्थ। अंडबंड। ३. लगातार। उ०—बहै अनर्गल अश्रुधार यह ज्यों पावस का मेह।—एकांत, पृ० ४।

अनर्गलप्रलाप—संज्ञा पुं० [सं० अनर्गल+प्रलाप] अंडबंड बोलना या बकना [को०]।

अनर्घ—वि० [सं०] १. अमूल्य। कीमती। बहुमूल्य। २. अल्प मूल्य का। कम कीमत। सस्ता।

यौ०—अनर्घराघव।

अनर्घक्रय—संज्ञा पुं० [सं०] बाजार की कीमत से अधिक या कम कीमत पर खरीदना।

अनर्घराघव—संज्ञा पुं० [सं०] मुरारि कृत का संस्कृत नाटक [को०]।

अनर्घविक्रय—संज्ञा पुं० [सं०] बाजार भाव से अधिक या कम दाम पर बेचना।

विशेष—चाणक्य ने इस अपराध में १००० पण दंड लिखा है।

अनर्घ्य—वि० [सं०] १. अपूज्य। पूजा के अयोग्य। २. जिसका मूल्य न लगा सके। बहुमूल्य। अमूल्य। ३. कम मूल्य का (को०)।

अनर्जित—वि० [सं०] १. अर्जित या प्राप्त न किया हुआ। न कमाया हुआ। २. अप्राप्त (को०)।

अनर्जित आय—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह आय या लाभ जो वस्तु के एकाएक महँगे हो जाने पर उसको उत्पन्न करनेवाले या बेचनेवाले को हो जाय अर्थात् जिसकी संभावना पहले न रही हो।

अनर्थ[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. विरुद्ध अर्थ। अयुक्त अर्थ। उलटा मतलब उ०—उसने अर्थ का अनर्थ किया है (शब्द०)। २. कार्य की हानि। बिगाड़। नुकसान। उपद्रव। उत्पात। खराबी। बुराई। आपद्। विपद्। अनिष्ट। गजब। उ०—(क) अनरथ अवध अरंभेउ जब ते।—तुलसी (शब्द०)। (ख) मैं सठ सब अनरथ कर हेतु—तुलसी (शब्द०)। ३. वह धन जो अधर्म से प्राप्त किया जाय। ४. भय की प्राप्ति।

अनर्थ[2]—वि० १. व्यर्थ। निकम्मा। २. अभागा। भाग्यविहीन। ३. खराब। त्रुटिपूर्ण। ४. तुच्छ। गरीब। ५. भिन्न या विपरीत अर्थवाला। अर्थविहीन। निरर्थक [को०]।

अनर्थअनर्थानुबंध—संज्ञा पुं० [सं० अनर्थअनर्थानुबन्ध] किसी शक्तिशाली राजा को लड़ने के लिये उभाड़कर आप अलग हो जाना। यह अर्थ के भेदों में से है।

अनर्थअर्थानुबंध—संज्ञा पुं० [सं० अनर्थअर्थानुबंध] अपने लाभ के लिये शत्रु या पड़ोसी को धन तथा सैन्य (कोशदंड) द्वारा सहायता पहुँचाना।

अनर्थक—वि० [सं०] १. निरर्थक। अर्थरहित। जिसका कुछ अभिप्राय या अर्थ न हो। २. व्यर्थ। बेमतलब। बेफायदा। निष्प्रयोजन।

अनर्थकर—वि० [सं०] [वि० स्त्री० अनर्थकारी] १. बेकार काम करनेवाला। २. अर्थकर या लाभदायक न हो [को०]।

अनर्थकारी—वि० [सं० अनर्थकारिन्] [स्त्री० अनर्थकारिणी] १. विरुद्ध अर्थ करनेवाला। उलटा मतलब निकालनेवाला। २. अनिष्टकारी। हानिकारी। उपद्रवी। उत्पाती। नुकसान पहुँचानेवाला। ३. व्यर्थ काम करनेवाला।

अनर्थत्व—संज्ञा पुं० [सं०] १. व्यर्थता। २. अर्थशून्यता [को०]।

अनर्थदर्शी—वि० [सं० अनर्थदर्शिन्] [स्त्री० अनर्थदर्शिनी] अनर्थ की ओर दृष्टि रखनेवाला। बुराई सोचने या चाहनेवाला। हित पर ध्यान न रखनेवाला।

अनर्थनाशी—संज्ञा पुं० [सं० अनर्थनाशिन्] शिव [को०]।

अनर्थनिरनुबंध—संज्ञा पुं० [सं० अनर्थनिरनबन्ध] अर्थ के भेदों में से एक। किसी हीन शक्तिवाले राजा को उभाड़कर तथा लड़ने के लिये प्रोत्साहित कर स्वयं पृथक् हो जाना।

अनर्थबुद्धि—वि० [सं०] जिसकी बुद्धि व्यर्थ या गई बीती हो [को०]।

अनर्थभाव—वि० [सं०] दुष्ट प्रकृति। बुरे स्वभाववाला [को०]।

अनर्थलुप्त—वि० [सं०] निस्सार विषयों से सुरक्षित या मुक्त [को०]।

अनर्थसंशय—संज्ञा पुं० [सं०] १. ऐसा कार्य जिसमें भारी अनिष्ट की शंका हो। २. संपत्ति जो संकट या संदेह से मुक्त हो [को०]।

अनर्थसंशयापद—संज्ञा पुं० [सं०] शत्रुओं के साथ मित्रों की लड़ाई का अवसर।

अनर्थसिद्धि—संज्ञा स्त्री० [सं०] चल मित्र या आक्रंद (वह मित्र जो शत्रु या विजिगीषु के आश्रय में हो) का मेल या संधि।

अनर्थानर्थानुबंध—संज्ञा पुं० [सं० अनर्थानर्थानुबन्ध] किसी बलशाली राजा को युद्ध के लिये उभाड़कर स्वयं अलग हो जाना [को०]।

अनर्थानुबंध—संज्ञा पुं० [सं० अनर्थानुबन्ध] शत्रु का इस प्रकार नाश न होना कि अनर्थ की आशंका मिट जाय।

अनर्थापद—संज्ञा पुं० [सं०] चारों ओर से शत्रुओं का भय।

अनर्थार्थसंशय—संज्ञा पुं० [सं०] ऐसी स्थिति जिसमें एक ओर तो अर्थ प्राप्ति की संभावना हो और दूसरी ओर अनर्थ की आशंका।

अनर्थार्थानुबंध—संज्ञा पुं० [सं० अनर्थार्थानुबन्ध] अपने लाभ के लिये शत्रु या पड़ोसी राजा को धन और सेना द्वारा सहायता पहुँचाना [को०]।

अनर्थ्य—वि० [सं०] अनर्थक [को०]।

अनर्ह—वि० [सं०] अयोग्य। अनधिकारी। अपात्र।

अनलंकृत—वि० [सं० अन्+अलङ्कृत] अलंकारविहीन। उ०—आकर्षित कर रहा विश्व को अनलंकृत भी अमल कमल है, सुंदरता का रूप सरल है।—सागरिका, पृ० ७९।

अनलंकरिष्णु—वि० [सं० अन्+अलङ्करिष्णु] १. जो अलंकृत न हो। २. अलंकार की इच्छा न रखनेवाला [को०]।

अनल—संज्ञा पुं० [सं०] १. अग्नि। आग। २. अग्नि के अधिष्ठाता देव (को०)। ३. पाचनशक्ति (को०)। ४. पित्त (को०)। ५. वायु (को०)। ६. अष्टवसुओं में से पंचम वसु (को०)। ७ एक पितृदेव (को०)। ८. परमेश्वर (को०)। ९. जीव (को०)। १०. विष्णु (को०)। ११. वासुदेव (को०)। १२. एक वानर (को०)। १३. एक मुनि (को०)। १४. कृत्तिका नक्षत्र (को०)। १५. पचासवाँ संवत्सर (को०)। १६. र वर्ण या अक्षर (को०)। १७. तीन की संज्ञा। १८. माली नामक राक्षस का पुत्र और विभीषण का मंत्री। १९. चीता। चित्रक। २०. भिलावाँ।

अनलगी—वि० [हिं० अन+लगी] जो लगी हुई या संयुक्त न हो। अविद्यमान। उ०— लगी अनलगी सी जु बिधि करी खरी कटि खीन। किए मनौ वैं ही कसर कुच नितंब अति पीन।—बिहारी दो० ६६४।

अनलचूर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] बारूद। दारू।

अनलद—वि० [सं०] अग्नि को शांत करनेवाला (जल) [को०]।

अनलदीपन—वि० [सं०] पाचनशक्ति बढ़ानेवाला [को०]।

अनलपंख ⓤ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अनलपक्ष'। उ०—गौन किया सत लोक से, अनलपंख की चाल।—कबीर ग्रं०, पृ० ४१५।

अनलपंखी ⓤ—संज्ञा पुं० [सं० अनल+पक्षी] दे० 'अनलपक्ष' उ०— अनलपंखी आकाश मैं उड़ै बहुत करि जोर।—सुंदर ग्रं० भा० २, पृ० ७६८।

अनलपंखचार ⓤ—संज्ञा पुं० [सं० अनलपक्ष+चर] हाथी (डिं०)।

अनलपक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] एक चिड़िया।

विशेष—इसके विषय में कहा जाता है कि यह सदा आकाश में उड़ा करती है और वहीं अंडा देती है। इसका अंडा पृथ्वी पर गिरने से पहले पककर फूट जाता है और बच्चा अंडे से निकल कर उड़ता हुआ अपने माँ, बाप से जा मिलता है।

अनलप्रभा—संज्ञा स्त्री० [सं०] ज्योतिष्मती नाम की लता [को०]।

अनलप्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] अग्निपत्नी। आग्नेयी। स्वाहा [को०]।

अनलमुख[1]—वि० [सं०] जिसका मुख अग्नि हो। जो अग्नि द्वारा पदार्थों को ग्रहण करे।

अनलमुख[2]—संज्ञा पुं० १. देवता। २. ब्राह्मण। ३. चीता। चित्रक। ४. भिलावाँ।

अनलशिखा—संज्ञा स्त्री० [सं०] आग की लपट। उ०—मेरे स्वर की अनलशिखा से जला सकल जग जीर्ण दिशा से।—गीतिका पृ० १३।

अनलस—वि० [सं० अन्+अलस] आलस्यरहित। बिना आलस्य का। फुर्तीला। चैतन्य।

अनलसाद—संज्ञा पुं० [सं०] अग्निमांद्य रोग। मंदाग्नि [को०]।

अनलसित—वि० [सं०] आलस्यहीन। उ०—मेरा चितारहित अनलसित वारि बिंब सा विमल हृदय।—पल्लव, पृ० १०४।

अनलहक—संज्ञा पुं० [अ० अनलहक़] मैं सत्य हूँ। मैं ब्रह्म हूँ। उ०— दुई खुदी हस्ती जब मेटे निरंकार कहलैहौं। गगन भूमि में राज हमारो, अनलहक धूम मचैहौं।—पलटू० बानी, भा० ३,पृ०३।

अनलहता ⓤ— वि० [हिं० अन+लहता] अलब्ध। अप्राप्त। अनुचित। उ०—दिन प्रति सबै उरहने कैं मिस, आवति है उठि प्रात। अनलहते अपराध लगावति विकट बनावति बात।—सूर०, १०।३२६।

अनलहना ⓤ—संज्ञा पुं० [हिं० अन+लहना] लाभ न होना। प्राप्ति न होना। कुछ न मिलना। उ०—मकर बीच सूरज को गहना, उपजैं चोर होइ अनलहना।—इंद्रा०, पृ० १३२।

अनला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दक्ष प्रजापति की एक कन्या।

विशेष—यह कश्यप ऋषि की पत्नियों में से थी। यह फलवाले संपूर्ण वृक्षों की माता कही जाती है।

२. माल्यवान् नामक राक्षस की एक कन्या।

अनलायक ⓤ—वि० [हिं० अन+अ० लायक] नालायक। अयोग्य। उ०—अनलायक हम हैं कि तुम हौ कहौ न बात उघारि।—सूर० (शब्द०)।

अनलि—संज्ञा पुं० [सं०] बक वृक्ष [को०]।

अनलेख ⓤ—वि० [सं० अन=नहीं+लक्ष्य=देखने योग्य] अलख। अदृश्य। अगोचर। उ०—आदि पुरुष अनलेख है सहजै रहा समाय।—दादू (शब्द०)।

अनल्प—वि० [सं०] थोड़ा नहीं। बहुत। अधिक। ज्यादा।

अनल्पघोष—संज्ञा पुं० [सं०] कोलाहल [को०]।

अनल्पमन्यु—वि० [सं०] बहुत अधिक क्रुद्ध [को०]।

अनल्ल ⓤ—संज्ञा पुं० [सं० अनल] अग्नि। उ०—मिले कमलासन और वसिष्ठ, कियौ सुचि कुंड अनल्ल सुइष्ट।—हम्मीर रा०, पृ० ६६।

अनवकांक्षा—संज्ञा स्त्री० [सं० अनवकाङ्क्षा] १. अनिच्छा। निरपेक्षता। निस्पृहता। २. जैनशास्त्रानुसार किसी परिणाम के लिए आतुर न होना।

विशेष—जो जैन साधु मृत्यु की कामना से अनशन व्रत करते हैं और घबराते नहीं उनको अनवकांक्षमाण कहते हैं।

अनवकाश[1]—संज्ञा पुं० [सं०] अवकाश का अभाव। फुरसत न होना।

अनवकाश[2]—वि० अवकाशहीन। बिना फुरसत का [को०]।

अनवकाशिक ⓤ—संज्ञा पुं० [सं०] एक पैर से खड़े होकर तप करनेवाला ऋषि।

अनवगत—वि० [सं०] जो अवगत या जाना हुआ न हो। अज्ञात। उ०—सरल उर की सी मृदु आलाप अनवगत जिसका गान।—पल्लव, पृ० ७५।

अनवगम्य—वि० [सं०] समझ में न आने योग्य। जो जाना न जा सके [को०]।

अनवगाह—वि० [सं०] अथाह। गंभीर। बहुत गहरा।

अनवगाहिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] गंभीरता। गहराई।

अनवगाही—वि० [सं० अनवगाहिन्] १. गोता या डुबकी लगानेवाला २. अध्ययन न करनेवाल [को०]।

अनवगाह्य—वि० [सं०] दे० 'अनवगाह'।

अनवगोत—वि० [सं०] अनिंद्य। अनिंदित [को०]।

अनवग्रह—संज्ञा पुं० [सं०] प्रतिबंधशून्य। स्वच्छंद। जो पकड में न आए। जिसे कोई रोक न सके।

अनवच्छ ⓤ—वि० [सं० अनवच्छिन्न] अखंडित। अटूट। उ०— उच्छलत सुजस विलच्छ अनवच्छ दिच्छ दिच्छनहूँ छीरधि लौं स्वच्छ छाइयतु है।—पद्माकर ग्रं०, पृ० ३०५।

अनवच्छिन्न—वि० [सं०] १. अखंडित। अटूट। २. पृथक् न किया हुआ। जुड़ा हुआ। संयुक्त।

यौ०—अनवच्छिन्न संख्या=गणित में वह संख्या जिसका किसी वस्तु से संबंध हो। जैसे; चार घोड़े, पाँच मनुष्य।

अनवट[1]—संज्ञा पुं० [देश०] पैर के अँगूठे में पहनने का एक प्रकार का छल्ला। उ०—अनवट बिछिया नखत तराई। पहुँचि सकै को पायँन ताईं।—जायसी ग्रं०, पृ० ४०।

अनवट²—संज्ञा पुं० [सं० नयन, हिं० अयन+ओट या सं० अंध+पट या देशी] कोल्हू के बैल की आँखों की पट्टी या ढक्कन। ढोका।

अनवद्य—वि० [सं०] अनिंद्य। निर्दोष। बेऐब। उ०—हमरें जान सदासिव जोगी। अज अनवद्य अकाम अभोगी।—मानस, १।९० ।

अनवद्यता—संज्ञा स्त्री० [सं०] निर्दोषिता। दोष का अभाव। उ०—सत्य की अनवद्यता से आ गए विस्तार में।—बेला, पृ० ७४।

अनवद्यत्व—संज्ञा पुं० [सं०] अनवद्यता [को०]।

अनवद्यरूप¹—संज्ञा पुं० [सं०] दोषरहित रूप। वह रूप जिसमें कोई दोष न हो [को०]।

अनवद्यरूप²—वि० [सं०] निर्दोष रूपवाला [को०]।

अनवद्यांग—वि० [सं० अनवद्याङ्ग] [स्त्री० अनवद्याङ्गी] सुंदर अंगोंवाली। सुडौल। खूबसूरत।

अनवद्राण—वि० [सं०] न सोनेवाला। अनिद्रित [को०]।

अनवधर्ष्य—वि० [सं०] जिसको धर्षित न किया जासके [को०]।

अनवधान—संज्ञा पुं० [सं०] असावधानी। अमनोयोग। चित्तविक्षेप। प्रमाद। गफलत। बेपरवाही।

अनवधानता—संज्ञा स्त्री० [सं०] ध्यानहीनता। लापरवाही। असावधानी। गफलत। उ०—उसने अनवधानता से उस प्रश्न को टाल दिया।—कंकाल, पृ० १४३।

अनवधि¹—वि० [सं०] असीम। बेहद। बहुत ज्यादा।

अनवधि²—क्रि० वि० निरंतर। सदैव। हमेशा।

अनवन¹—वि० [सं०] अरक्षाकर। विपत्तिकारक [को०]।

अनवन²—संज्ञा पुं० अरक्षा [को०]।

अनवनामितवैजयंत—संज्ञा पुं० [सं० अनवनामितवैजयन्त] भावी विश्व जिसमें विजयध्वजा बराबर ऊँची रहेगी (बौद्ध)।

अनवपूरण—वि० [सं०] असंयुक्त पर चारों ओर फैलनेवाला [को०]।

अनवबुध्यमान—वि० [सं०] जो बुद्धिहीन या विकृत बुद्धिवाला न हो [को०]।

अनवभ्र—वि० [सं०] १. जो अक्षुण्ण हो। २. जो नश्वर न हो। ३. स्थायी [को०]।

अनवम—वि० [सं०] १. जो तुच्छ या क्षुद्र न हो। २. उदात्त। श्रेष्ठ [को०]।

अनवय(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अन्वय] वंश। कुल। खानदान।

अनवर—वि० [सं०] १. जो कनिष्ठ न हो। २. श्रेष्ठ। बड़ा। ३. जो न्यून न हो [को०]।

अनवरत—क्रि० वि० [सं०] निरंतर। सतत। अजस्र। अहर्निश। सदैव। लगातार। हमेशा। उ०—अनवरत उठे कितनी उमंग।—कामायनी, पृ० १६४।

अनवरार्ध्य—वि० [सं०] १. मुख्य। प्रधान। २. सर्वोत्तम [को०]।

अनवरोध¹—वि० [सं०] बिना रोक या बाधा का। निरंतर। अबाध। उ०—सरस ज्ञान अनवरोध करता नर रुधिरपान।—गीतिका, पृ० ७०।

अनवरोध²—संज्ञा पुं० अवरोध का अभाव [को०]।

अनवलंब¹—वि० [सं० अनवलम्ब] बिना अवलंब का। बेसहारा [को०]।

अनवलंब²—संज्ञा पुं० स्वतंत्रता। अवलंब का अभाव [को०]।

अनवलंबन¹—वि० [सं० अनवलम्बन] जिसे अवलंब या सहारा न हो [को०]।

अनवलंबन²—संज्ञा पुं० स्वतंत्रता [को०]।

अनवलंबित—वि० [सं० अनवलम्बित] आश्रयहीन। निराधार। बेसहारा।

अनवलाप—वि० [सं०] वचनशून्य। मौन। उ०—हुए शीर्ण खो खोकर, अनवलाप रो रोकर।—अर्चना, पृ० १४।

अनवलेप—वि० [सं०] १. अभिमानशून्य। २. अवलेप या लेप से रहित [को०]।

अनवलोभन—संज्ञा पुं० [सं०] एक संस्कार जो गर्भ के तृतीय मास में किया जाता है [को०]।

अनवसर—संज्ञा पुं० [सं०] १. निरवकाश। फुरसत का न होना। २. कुसमय। बेमौका। उ०—सोइ लंका लखि अतिथि अनवसर राम तृनासर (सन) ज्यों दई।—तुलसी ग्रं०, पृ० ३८८। ३. जसवंत जसोभूषण के अनुसार वह काव्यालंकार जिसमें किसी कार्य का अनवसर होना या करना वर्णन किया जाय।

अनवसादन—वि० [सं०] अवसाद या विषाद न करनेवाला। उ०—सहज रिमझिम बाद रिन रिन अनवसादन।—गीतगुंज, पृ० ५८।

अनवसान—वि० [सं०] १. अंत से रहित। २. मृत्युहीन [को०]।

अनवसित—वि० [सं०] १. असमाप्त। उ०—वह चली सलिला अनवसित, ऊर्मिजा जैसे उतारी।—अर्चना, पृ० १०४। २. जो अस्त न हुआ हो (को०)।

अनवसितसंधि—संज्ञा स्त्री० [सं० अनवसित सन्धि] जंगल या ऊसर जमीन बसाने के संबंध में दो पुरुषों या राष्ट्रों की संधि। औपनिवेशिक संधि।

विशेष—औपनिवेशिक संधि के विषय में चाणक्य ने लिखा है कि यह प्रायः विवादग्रस्त विषय है कि स्थलीय या जलप्राय भूमि में उपनिवेश की दृष्टि से कौन सी भूमि उत्तम है। साधारणतः जलप्राय भूमि ही उत्तम मानी जाती है।

अनवसिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक छंद या वृत्त [को०]।

अनवस्थ—वि० [सं०] १. अस्थिर। चंचल। उतावला। अधीर। २. अव्यवस्थित। डावाँडोल।

अनवस्था—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. स्थितिहीनता। अव्यवस्था। अनियमितता। उ०—यह अनवस्था युगल मिले से विकल व्यवस्था सदा बिखरती।—कामायनी, पृ० २७१। २. व्याकुलता। आतुरता। अधीरता। ३. न्याय में एक प्रकार का दोष।

विशेष—इस प्रकार का तर्क और अन्वेषण जिसका कुछ ओर छोर न हो। यह उस समय होता है जब तर्क करते करते कुछ परिणाम न निकले और तर्क भी समाप्त न हो। जैसे कारण का कारण, उसका भी कारण, फिर उसका कारण।

अनवस्थान—संज्ञा पुं० [सं०] १. अस्थिरता। २. अनिश्चितता। ३. आचरणभ्रष्टता। ४. वायु [को०]

अनवस्थायी—वि० [सं० **अनवस्थायिन्**] क्षणस्थायी [को०]।

अनवस्थित—वि० [सं०] १. अस्थिर। अधीर। चंचल। अशांत। क्षुब्ध। २. बेठिकाना। बेसहारा। निराधार। निरवलंब।

अनवस्थितचित्त—संज्ञा पुं० [सं०] अस्थिर चित्त या बुद्धिवाला [को०]।

अनवस्थिति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. अस्थिरता। चंचलता। अधीरता। अनिश्चितता। २. अवलंबशून्यता। आधारहीनता। ३. योगशास्त्र के अनुसार समाधि प्राप्त हो जाने पर भी चित्त का स्थिर न होना।

अनवहित—वि० [सं०] असावधान। बेखबर। बेपरवाह।

अनवह्वर—वि० [सं०] जो टेढ़ा न हो। सीधा। ऋजु [को०]।

अनवाँसना ⓟ—क्रि० स० [सं० **नव** + हिं० **बासन**] नए बरतन को पहले पहल काम में लाना।

अनवाँसा—संज्ञा पुं० [सं० * **अन्नकांडांश** > प्रा० * **अन्न आ अंश** > **अनवा अंस** अथवा सं० **अण्वंश**] १. कटी हुई फसल का एक बड़ा मुट्ठा या पूला। अँौसा। २. एक अनवाँसी भूमि में उत्पन्न अन्न।

अनवाँसी—संज्ञा स्त्री० [सं० **अणु = छोटा + वंश > बाँसा = नाप**] एक बिस्वे का ३२००वाँ भाग। बिस्वांसी का बीसवाँ हिस्सा।

अनवाद ⓟ—संज्ञा पुं० [सं० **अन् = बुरा + वाद = वचन**] बुरा वचन। कटु भाषण। कुबोल। उ०—कूँजरी ऊजरी बाल बहेवा सों मेवा के मोल बढ़ावति झूठे। रूप की साठि के तौलति घाटि बदै अनवाद ददै फल जूठे।—देव (शब्द०)।

अनवाप्त—वि० [सं०] न पाया हुआ। अप्राप्त। अलब्ध।

अनवाप्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] अप्राप्ति। अनुपलब्धि। न पाना।

अनवाय—वि० [सं०] अबाध। निर्विघ्न [को०]।

अनवेक्ष—वि० [सं०] १. लापरवाह। २. उदासीन [को०]।

अनवेक्षक—वि० [सं०] दे० 'अनवेक्ष' [को०]।

अनवेक्षण—संज्ञा पुं० [सं०] १. असावधानता। २. निरखने या निरीक्षण का अभाव। ३. उदासीनता [को०]।

अनवेक्षा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अनवेक्षण' [को०]।

अनशन—संज्ञा पुं० [सं०] १. उपवास। अन्नत्याग। निराहार व्रत। २. जैन शास्त्रानुसार मोक्षप्राप्ति के लिये मरने के कुछ दिन पहले ही अन्न जल का सर्वथा त्याग। ३. राजनीतिक दबाव डालने के लिये अन्न जल का त्याग करना।

अनश्वर—वि० [सं०] नष्ट न होनेवाला। अमिट। अटल। स्थिर। कायम रहनेवाला।

अनसखड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अनसखरी'। उ०—बालभोग कौ महाप्रसाद अनसखड़ी तथा दूध की (सामग्री) आगे धरी।—दो सौ बावन०, भा० १. पृ० ८।

अनसखरी—संज्ञा स्त्री० [**हिं० अन = अन्न + सखरी = संस्कृत**] निखरी। पक्की रसोई। घी में पका हुआ भोजन।

अनसत्त—वि० [**हिं० अन + सत्त**] असत्य। झूठ। उ०—घर जाऊँ तु सोवत हैं, फिर जाउँ तौ नंद पै खात बरा दधि प्यारे। सपने अनसत्त किधौं सजनी घर बाहिर होत बड़े घरवारे। केशव शब्द०)।

अनसन—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अनशन'। उ०—उसके लिये हमको अनसन करना होगा।—मैला०, पृ० १६।

अनसनमाना ⓟ—वि० [**हिं० अन + सनमान**] असंमानित। उ०—कैइक रहे ताहि अरमाने, अक्रूरादिक अनसनमाने।—नंद०, ग्रं०, पृ० २२४।

अनसमझ—वि० [**हिं० अन + समझ**] नासमझ। उ०—तू इतना अनसमझ क्यों है प्रमोद।—त्याग०, पृ० २०।

अनसमझा ⓟ—वि० [**हिं० अन + समझ**] १. जिससे न समझा हो। नासमझ। उ०—समुझे का घर और है अनसमझे का और।—कबीर (शब्द०)। २. अज्ञात। बिना समझा हुआ।

अनसमुझा ⓟ—वि० [हिं०] दे० 'अनसमझा'। उ०—अनसमुझें अनुसोचनो अवसि समुझिये आपु।—स० सप्तक, पृ० ५२।

अनसहत ⓟ—वि० [**हिं० अन + सहना**] असह्य। असहनीय। जो सहा न जाय। उ०—गाज सो परति अनसहत विपच्छिन पै मत्त गजराजन के घंटा गरजत ही।—चरण (शब्द०)।

अनसाना ⓟ—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'अनखाना'।

अनसुनी—वि० [**हिं० अन + सुनना**] अश्रुत। बेसुनी। बिना सुनी हुई।

मु०—**अनसुनी करना** = जानबूझ कर सुनी हुई बात को बेसुनी करना या टालना। आनाकानी करना। बहटियाना।

अनसूय—वि० [सं०] असूया रहित। पराए गुण में दोष न देखनेवाला। अछिद्रान्वेषी।

अनसूयक—वि० [सं०] दे० 'अनसूय' [को०]।

अनसूया—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पराए गुण में दोष न देखना। नुक्ताचीनी न करना। २. अत्रि मुनि की स्त्री।

अनसूयु—वि० [सं०] दे० 'अनसूय' [को०]।

अनसूरि—संज्ञा पुं० [सं०] बुद्धिमान् व्यक्ति। विद्वान् व्यक्ति [को०]।

अनसोची—वि० [**हिं० अन + सोची**] बिना सोची हुई। उ०—प्रियतम अनसोची ध्यान में भी न आई।—प्रिय प्र०, पृ० ७७।

अनस्त—वि० [सं०] जो अस्त न हो। अस्त न होनेवाला। उ०—अनस्त अस्त ह्वै गम दुरुस्त रस्त छोड़हीं।—पद्माकर ग्रं०, पृ० २०६।

अनस्तमित—वि० [सं०] १. जो अस्त न हुआ हो। २. जिसका पतन न हो [को०]।

अनस्तित्व—वि० पुं० [सं०] अविद्यमानता। सत्ता का अभाव। उ०—घू घू करता नाच रहा था अनस्तित्व का तांडव नृत्य।—कामायनी, पृ० २०।

अनस्थ—वि० [सं०] दे० 'अनस्थि' [को०]।

अनस्थक—वि० [सं०] दे० 'अनस्थि' [को०]।

अनस्थि—वि० [सं०] अस्थिहीन। बिना हड्डी का [को०]।

अनस्थिक—वि० [सं०] दे० 'अनस्थि' [को०]।

अनह—संज्ञा पुं० [सं० **अनहन्**] १. दिन का अभाव। २. अदिन। बुरा दिन [को०]।

अनहक्क ⓟ—वि० [**हिं० अन + अ० हक**] बिना हक या सत्य या ईश्वर का। उ०—हरिया एकै हक्क बिन सब दिन जाहि अनहक्क।—राम० धर्म०, पृ०, ६६।

अनहड़ ⓟ—वि० **हिं० अन + सं० घट**] १. विचित्र। २. विकट। कठिन। उ०—भीखा ब्रह्मसरूप प्रगट पर अनहड़ बड़ा तासु मिलना।—भीखा० बानी, पृ० ७०।

अनहद१—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अनहदनाद'। उ०—द्वार न धरूँ पवन न रोकै नहिं अनहद उरझावै।—कबीर श०, पृ० ४६।

अनहद२—वि० [हिं० अन = अभाव + अ० हद = सीमा] सीमारहित। असीम। उ०—ऊधो राखियै वह बात। कहन हौ अनगढ़ी अनहद, सुनत ही चपि जात।—सूर०, १०।३६०२।

अनहद नाद—संज्ञा पुं० [सं० अनाहत + नाद] योग का एक साधन। वह नाद या शब्द जो दोनों हाथों के अँगूठों से दोनों कानों की लवें बंद करके ध्यान करने से अपने ही भीतर सुनाई देता है। उ०—हृदय कलम तें जोति बिराजै। अनहदनाद निरंतर बाजै।—सूर०, १०।४०६४।

अनहद्द१(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अनहद'। उ०—(क) क्रुत व्यक्त रक्त स्त्रोतस्विनी जत्र तत्र अनहद्द भुम्र।—भिखारी ग्रं०, भा० २, पृ० १८२।

अनहद्द२(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अनहदनाद' उ०—सहस और द्वादहो रूह हैं संग में करत किलोल अनहद्द बजाई।—कबीर मं०, पृ० ५७६।

अनहार(पु)†—वि० [हिं० √आन + हार (प्रत्य०)] आननेवाला। ले आनेवाला। उ०—खेलत रहलौं बाबा चौबरिया आइ गए अनहार हो—धरम०, ३४।

अनहित(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० अन + हित] १. अहित। अपकार। बुराई। हानि। अमंगल। उ०—अनहित तोर प्रिया केहि कीन्हा। केहि दुइ सिर केहि जम चह लीन्हा।—तुलसी (शब्द०)। २. अहितचिंतक। अपकारी। शत्रु। उ०—बंदउँ संत समान चित, हित अनहित नहिं कोउ।—तुलसी (शब्द०)।

अनहितू—वि० [हिं अन + हितू 'मित्र'] अहितचिंतक। अमित्र। अबंधु। शत्रु। अपकारी। बुराई सोचने या करनेवाला।

अनहुआ—वि० [हिं० + हुआ] अघटित। जो न हुआ हो। उ०—अनहुआ उसे नहीं किया जा सकता।—सुखदा, पृ० ११३।

अनहूबा(पु)—वि० [हिं० अन + भूत प्रा० हूब, हुअ] अनहोनी। अलौकिक। उ०—अनहूबे की बात कछू प्रकट भई सी जान।—भूषण ग्र०, पृ० ५८।

अनहोता—वि० हिं० अन + होना] [स्त्री० अनहोती] १. जिसे कुछ न हो। दरिद्र। गरीब। निर्धन। उ०—'हे सखी तेरे इस अंग न को अच्छे गहने कपड़े चाहिए थे, ये आश्रम के फूल पत्ते तो अनहोती को हैं।—शकुंतला, पृ० ६६। २. अनहोना। अलौकिक। अचंभे का। उ०—पलुही मैं होती अनहोती करतु है।—सुंदर० ग्रं०, भा० २, पृ० ४४३।

अनहोनी१—वि० स्त्री० [हिं० अन + होन,] न होनेवाली। अलौकिक। असंभव। अनहोती। अचंभे की।

अनहोनी२—संज्ञा स्त्री० असंभव बात। अलौकिक घटना। उ०—अनहोनी कहुँ भई कन्हैया देखी सुनी न बात। या तौ आहि खिलौना सब कौ खान कहत तिहि तात।—सूर०, १०।१८६

अनाई पठाई—संज्ञा स्त्री० [सं० √आनय + हिं० ई (प्रत्य०) + सं० √प्रस्था > पट्ठा हिं० ई (प्रत्य०)] विवाह हो जाने पर दुलहिन के तीन बार ससुराल से बाप के घर आने जाने के पीछे बराबर आने जाने को अनाई पठाई कहते हैं।

अनाकनी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० दे० 'अनाकानी'। उ०—(क) नीकी दई अनाकनी, फीकी परी गुहार। तज्यौ मनौ तारन बिरद, बारक बारनु तारि।—बिहारी र०, दो० ११। (ख) कीनी अनाकनी औ मुख मोरि सुजोरि भुजा, भटू भेटत ही बन्यौ।—देव (शब्द०)।

अनाकानी—संज्ञा स्त्री० [सं० अनाकर्णन] सुनी अनुसुनी करना। जान बूझकर बहलाना। टालमटोल। बहटियाना। उ०—केती अनाकानी कै जँभानी अँगिरानी पै न अंतर की पीर बहराए बहरानी है।—भिखरी० ग्रं०, भा० १. पृ०, १४६।

अनाकार—वि० [सं०] १. निराकार। आकाररहित। २. परमात्मा का एक विशेषण (को०)।

अनाकाल—संज्ञा पुं० [सं०] अकाल। दुर्भिक्ष [को०]।

अनाकालभृत संज्ञा पुं० [सं०] अकाल पड़ने पर दास कर्म करनेवाला व्यक्ति [को०]।

अनाक्रांत—वि० [सं० अनाक्रान्त [स्त्री० अनाक्रान्तता] जो आक्रांत न हो। अपीड़ित। अरक्षित।

अनाक्रांतता—संज्ञा पुं० [सं० अनाक्रान्तता] रक्षा। अपीड़ा। आक्रांतता का अभाव।

अनाखर—वि० [सं० अनक्षर] जो छील छालकर दुरुस्त न किया गयो हो। बेडौल। बेढंगा।

अनागत१—वि० [सं०] १. न आया हुआ। अनुपस्थित। अविद्यमान। अप्राप्त। २. आगे आनेवाला। भावी। होनहार। ३. अपरिचित। अज्ञात। बेजाना हुआ। ४. अकस्मात्। अचानक। सहसा। एकाएक। उ०—(क)) सुने हैं श्याम मधुपुरी जात। सकुचनि कहि न सकति काहूं सों गुप्त हृदय की बात। संकित बचन अनागत कोऊ कहि जो गई अधरात।—सूर० (शब्द०)। ५. अनादि। अजन्मा। उ०—नित्य अखंड अनूप अनागत अविगत अनघ अनंत। जाको आदि कोऊ नाहिं जानत कोउ न पावत अंत।—सूर० (शब्द०)।

यौ०—अनागत विधाता।

६. अपूर्व। अद्भुत। उ०—इत रुचि दृष्टि मनोज महासुख, उत सोभागुन अमित अनागत।—सूर०, १०।२१२३।

अनागत२—संज्ञा पुं० संगीत के अंतर्गत ताल का एक भेद। उ०—सूर सति तान बंधान अमित अति सप्त अतीत अनागत आवत।—सूर०, १०।६४८।

अनागतविधाता—संज्ञा पुं० [सं०] आनेवाली आपत्ति के लक्षण को जानकर उसके निवारण का पहले ही से उपाय करनेवाला व्यक्ति। अग्रसोची या दूरंदेश आदमी।

अनागतार्तवा—संज्ञा स्त्री० [सं०] कुमारी। गोरी। बालिका। जो कन्या रजोधर्मिणी न हुई हो। अजातरजस्का।

अनागम—संज्ञा पुं० [सं०] आगमन का अभाव। न आना। उ०—सोचै अनागम कारन कंत को मोचै उसासनि आँसहू मोचै।—पद्माकर ग्रं०, पृ० १२१।

अनागस—वि० [सं० अनागस्] पापरहित। निर्दोष। निर्मल। उ०—सुराभक्त वह मुक्त अनागस।—मधुज्वाल, पृ० १२।

अनाघात--संज्ञा पुं० [सं०] संगीत के अंतर्गत तालविशेष। वह विराम जो गायन में चार मात्राओं के बाद आता है और कभी कभी सम का काम देता है।

अनाचार[1]--संज्ञा पुं० [सं०] १. कदाचार। भ्रष्टता। दुराचार। निंदित आचरण। कुव्यवहार। २. कुरीति। कुचाल। कुप्रथा।

अनाचार[2]--वि० १. जो विशिष्ट न हो। २. जो भद्र न हो। अभद्र। ३. विचित्र [को०]।

अनाचारिता--संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दुष्टता। दुराचारिता। निंदित आचरण। २. कुरीति। कुचाल।

अनाचारी--वि० [सं० **अनाचारिन्**] [स्त्री० **अनाचारिणी**] आचारहीन। भ्रष्ट। पतित। कुचाली। दुराचारी। बुरे आचरणवाला।

अनाज--संज्ञा पुं० [सं० **अन्नाद्य**, प्रा० **अन्नज्ज > अनाज**] अन्न। धान्य। नाज। दाना। गल्ला।

अनाज्ञप्त--वि० [सं०] जिसकी आज्ञा न दी गई हो [को०]।

अनाज्ञप्तकारी--वि० [सं० **अनाज्ञप्तकारिन्**] जिस कार्य की आज्ञा न हो उसे करनेवाला [को०]।

अनाज्ञाकारिता--संज्ञा स्त्री० [सं०] आज्ञा न मानना। आदेश पर न चलना।

अनाज्ञाकारी--वि० [सं० **अनाज्ञाकारिन्**] [**अनाज्ञाकारिणी**] जो आज्ञा न माने। जो आदेश पर न चले। बेकहा।

अनाज्ञात--वि० [सं०] १. अज्ञात। २. पूर्व ज्ञात से बढ़ा हुआ [को०]।

अनाड़ी--वि० पुं० [सं० **अनार्य = अपठित, अशिक्षित प्रा० अनारिय** अथवा सं० **अज्ञानी प्रा० अण्णाणी**] १. नासमझ। नादान। गँवार। अनजान। उ०--अनाड़ी के हाथ पड़ा मोती की सी कपूरमंजरी की दशा है।--भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ३९८। २. जो निपुण न हो। अकुशल। अदक्ष। जैसे--यह किसी अनाड़ी कारीगर को मत देना (शब्द०)।

अनाढ्य--वि० [वि० स्त्री० **अनाढ्या**] असंपन्न। द्रव्यहीन। दरिद्र। कगाल। गरीब।

अनातत--वि० [सं०] १. जो फैला हुआ न हो। २. जो खींचा या ताना हुआ न हो [को०]।

अनातप[1]--संज्ञा पुं० धूप का अभाव। छाया।

अनातप[2]--वि० १. आतपरहित। जहाँ धूप न हो। २. ठंढा। शीतल।

अनातम(पु)--वि० [सं० **अनात्म**] दे० 'अनात्म'। उ०--सुनि शिष्य यहै मत सांखहि कौ जु अनातम आतम भिन्न करै।--सुंदर० ग्र०, भा० १। पृ० ५०।

अनातुर--वि० [सं०] [स्त्री० **अनातुरा**] १. जो आतुर या उत्कंठित न हो। २. उदासीन। ३. अक्लांत। ४. अविचलित। धीर। ५. स्वस्थ। रोगरहित। निरोग।

अनात्म[1]--वि० [सं० **अनात्मन्**] आत्मारहित। जड़।

अनात्म--संज्ञा पुं० आत्मा को विरोधी पदार्थ। अचित। पंचभूत।

अनात्मक--वि० [सं०] १. जो यथार्थ न हो २. क्षणिक। ३. बौद्ध मत से जगत् या संसार का विशेषण [को०]।

अनात्मकदुःख--संज्ञा पुं० [सं०] १. अज्ञानजनित दुःख। सांसारिक आधिव्याधि। भय। बाधा। २. जैन शास्त्रानुसार इस लोक और परलोक दोनों के दुःख।

अनात्मज्ञ--वि० [सं०] आत्मज्ञान से रहित। अज्ञ [को०]।

अनात्मधर्म--संज्ञा पुं० [सं०] शारीरिक धर्म। देह का धर्म।

अनात्मनीन--वि० [सं०] १. जो अपना न हो। २. जो काम या लाभ के लिये न हो। ३. निरस्वार्थ। स्वार्थरहित [को०]।

अनात्मप्रत्यवेक्षा--संज्ञा स्त्री० [सं०] बौद्ध दर्शन के अनुसार यह विचार कि आत्मा नहीं है [को०]।

अनात्मवाद--संज्ञा पुं० [सं०] आत्मा की स्थिति को न माननेवाला सिद्धांत। जड़वाद। उ०--मैंने भी तीर्थंकरों के मुख से आत्मवाद-अनात्मवाद के व्याख्यान सुने हैं।--इंद्र०, पृ० १२५।

अनात्मवान--वि० [सं०] असंयमी [को०]।

अनात्मवेदी--वि० [सं० **अनात्मवेदिन्**] जो आत्मविद् न हो। आत्मज्ञान से रहित [को०]।

अनात्मसंपन्न--वि० [सं० **अनात्मसम्पन्न**] मूर्ख। गुणशून्य [को०]।

अनात्म्य[1]--वि० [सं०] अशरीरी। अशारीरिक [को०]।

अनात्म्य[2]--संज्ञा पुं० १. अपनों या परिवारवालों के लिये स्नेहरहित व्यक्ति। २. शरीर संबंधी गर्व या मद [को०]।

अनात्यंतिक--वि० [सं०] जो नित्य न हो। २. जो अंतिम न हो। ३. पुनः आवर्तनशील [को०]।

अनाथ--वि० [सं० [[स्त्री० **अनाथा**] १. नाथहीन। प्रभुहीन। विना मालिक का। उ०--नाथ तू अनाथ को अनाथ कौन मो सो।--तुलसी, ग्रं० पृ० ५००। २. जिसका कोई पालन पोषण करनेवाला न हो। बिना माँ बाप का। लावारिस। जैसे--'अनाथ बालकों की रक्षा के लिये उन्होंने दान दिया (शब्द)। ३. असहाय। अशरण। जिसे कोई सहारा न हो। ४. दीन। दुःखी। मुहताज।

यौ०--**अनाथालय**।

अनाथसभा--संज्ञा स्त्री० [सं०] निर्धनगृह [को०]।

अनाथानुसारी--वि० [सं० **अनाथानुसारिन्**] [स्त्री० **अनाथानुसारिणी**] सहायतार्थ अनाथों का अनुसरण या पीछा करनेवाला। दीनपालक। गरीब को पालनेवाला। उ०--अनाथै सुन्यौ मैं अनाथानुसारी। बसै चित्त दंडी जटी मुंडधारी।--केशव (शब्द०)।

अनाथालय--संज्ञा पुं० [सं०] वह स्थान जहाँ दीन दुःखियों और असहायों का पालन हो। मुहताजखाना। लंगरखाना। २. लावारिस बच्चों की रक्षा का स्थान। यतीमखाना। अनाथाश्रम।

अनाथाश्रम--संज्ञा पुं० [सं० **अनाथ + आश्रम**] वह स्थान जहाँ अनाथ रखे जायँ।

अनाद--संज्ञा पुं० [सं०] १. ध्वनियों में नाद अंश का अभाव। २. वे अघोष ध्वनियाँ जिनमें नादांश नहीं पाया जाता [को०]।

अनाददान--वि० [सं०] न लेनेवाला [को०]।

अनादर--संज्ञा पुं० [सं०] १. आदर का अभाव। निरादर। अवज्ञा। २. तिरस्कार। अपमान। अप्रतिष्ठा। बेइज्जती। ३. एक काव्यालंकार।

विशेष--इसमें प्राप्त वस्तु के तुल्य दूसरी अप्राप्त वस्तु की इच्छा के **द्वारा प्राप्त वस्तु का अनादर सूचित किया जाय। जैसे--सर**

के तट लखि कामिनी अलि पंकजहि विहाय। ताके अधरन दिसि चल्यो, रसमय गूँज सुनाय (शब्द०)।

अनादरण—संज्ञा पुं० [सं०] असंमानपूर्ण व्यवहार [को०]।

अनादरणीय—वि० [सं०] [वि० स्त्री० अनादरणीया] १. आदर के अयोग्य। अमाननीय। २. तिरस्कार योग्य। निंद्य। बुरा।

अनादरित—वि० [सं०] वह जिसका अपमान हुआ हो। अपमानित।

अनादरी—वि० [सं० अनादरिन्] जो आदरयुक्त न हो [को०]।

अनादि—वि० [सं०] जिसका आदि न हो। जो सब दिन से हो। जिसके आरंभ का कोई काल या स्थान न हो। स्थान और काल से अबद्ध।

विशेष—शास्त्रकारों ने 'ईश्वर' जीव और प्रकृति' इन तीन वस्तुओं को अनादि माना है।

अनादित्व—संज्ञा पुं० [सं०] अनादि होने का भाव। नित्यता।

अनादिनिधन—वि० [सं०] जिसका आदि और अंत न हो [को०]।

अनादिमान्—वि० [सं० अनादिमत्] जिसका आदि न हो [को०]।

अनादिमध्यांत—वि० [सं० अनादिमध्यान्त] जिसका आदि, मध्य और अंत न हो [को०]।

अनादिष्ट—वि० [स०] बिना आदेश का।

अनादृत—वि० पुं० [सं०] जिसका अनादर हुआ हो। अपमानित।

अनादेय—वि० [सं०] जो आदेय या ग्राह्य न हो [को०]।

अनादेश—संज्ञा पुं० [सं०] आदेश का अभाव। आदेश न होना [को०]।

अनादेशकर—वि० [सं०] जिसकी अनुमति या आदेश न हो वह करनेवाला [को०]।

अनाद्यंत[1]—वि०[सं० अनाद्यन्त]जिसका आदि तथा अंत न हो। उ०—अमरों के उस अनाद्यंत आनंदलोक में।—युगपथ, पृ० ११५।

अनाद्यंत[2]—संज्ञा पुं० शिव [को०]।

अनाद्य[1]—वि० [सं० अनादि] दे० 'अनादि' [को०]।

अनाद्य[2]—वि० [सं० अन्+√अद् > आद्य] जो खाने योग्य न हो। अखाद्य [को०]।

अनाद्यनंत[1]—वि० [सं० अनाद्यनन्त] जिसका आदि और अंत न हो [को०]।

अनाद्यनंत[2]—संज्ञा पुं० [सं०] शिव [को०]।

अनाधार—वि० पुं० [सं०] आधाररहित। निरवलंब। बेसहारा।

अनाधि—वि० [सं०] चिंता से रहित [को०]।

अनाधृष्ट—वि० [सं०] १. जो जीतने योग्य न हो। अजेय। २. जो नियंत्रित या अधीन न हो। अनियंत्रित। ३. अक्षुण्ण [को०]।

अनाधृष्य—वि० [सं०] दे० 'अनाधृष्ट' [को०]।

अनाना—क्रि० स० [सं० आनयन] १. लाना। बुलाना। उ०—(क) जौ कबहूँ हठि नींद अनैये, साँवरे पिय सपने में पैये।—नंद० ग्रं०, पृ० १७१। (ख) केलि रसम से मिथुन कौं सुखनींद अनाऊँ।—घनानंद, पृ० ३१४। २. मँगाना। उ०—लंक दीप के सिला अनाई। बाँधा सरवर घाट बनाई।—जायसी ग्रं०, पृ० १२।

अनानुपूर्व्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. अनुक्रम में न आना। अनुक्रम का अभाव। किसी समस्त पद के विभिन्न अवयवों को विग्रहपूर्वक अलग करना [को०]।

अनापद—संज्ञा स्त्री० [सं०] विपत्ति या विपद का अभाव [को०]।

अनापशनाप—संज्ञा पुं० [देश०] १. ऊटपटाँग। अटसट। आयँबायँ। अंडबंड। २. असंबद्ध प्रलाप। निरर्थक बकवाद।

अनापा(पु)—वि० [सं० अ = नहीं + हिं० √नाप] १. बिना नापा हुआ २. असीम। अतुल।

अनापि[1]—वि० [सं०] बिना मित्र का [को०]।

अभापि[2]—संज्ञा पुं० इंद्र [को०]।

अनाप्त—वि०[सं०] १. अप्राप्त। अलब्ध। २. अविश्वस्त। ३.असत्य। ४. अकुशल। ५. अनिपुण। अनाड़ी। ६. अनात्मीय। अबंधु।

अनाप्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] आप्ति अर्थात् प्राप्ति न होना [को०]।

अनाप्त्य—वि० [सं०] अप्राप्य [को०]।

अनाप्लुत—वि० [सं०] जो स्नात या धुला न हो [को०]।

अनाप्लुतांग—वि० [सं० अनाप्लुताङ्ग] जिसका शरीर स्नानसे शुद्ध न हो [को०]।

अनाबाध—वि० [सं०] बाधा या विघ्न से मुक्त [को०]।

अनाबिद्ध—वि०[सं० अनाविद्ध] १. अनविधा। अनछेदा। बिना छेद का। २. चोट न खाया हुआ।

अनाभ्युदयिक—वि० [सं०] दुर्भाग्यपूर्ण। जो मंगलमय न हो [को०]।

अनाम—वि० [सं० अनामन्][वि० स्त्री० अनामा] १. बिना नाम का। उ०—आदि अनाम ब्रह्म है न्यारा।—कबीर सा०, पृ० ८१२। अप्रसिद्ध। २. अप्रख्यात।

अनामय—वि० [सं०] निरामय। रोगरहित। नीरोग। चंगा। स्वस्थ। तंदुरुस्त। २. दोषरहित। निर्दोष। बेऐब। उ०—जय भगवंत अनंत अनामय।—मानस ७।३४।

अनामय[2]—संज्ञा पुं० नीरोगता। तंदुरुस्ती। २. कुशल क्षेम। उ०—गुरु जी ने आपका अनामय पूछकर यह कहा है।—शकुंतला, पृ० ८६।

अनामा[1]—वि० स्त्री० [सं०] १. बिना नाम की। २. अप्रसिद्ध।

अनामा[2]—संज्ञा स्त्री० कनिष्ठा और मध्यमा के बीच की उँगली। अनामिका।

अनामिका[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] कनिष्ठा और मध्यमा के बीच की उँगली। सबसे छोटी उँगली की बगल की उँगली। अनामा।

अनामिका[2]—वि०स्त्री० [सं०] बिना नाम की। अप्रसिद्ध। उ०—जो प्रिया, प्रिया वह रही सदा ही अनामिका।—अनामिका, पृ० २१।

अनामिल—वि० [सं० अनाविल] स्वच्छ। निर्मल उ०—ओस के धोए अनामिल पुष्प ज्यों खिल किरण चूमे।—गीतिका,पृ०६४।

अनामिष—वि० [सं०] निरामिष। मांसरहित।

अनामी[1]—वि० [सं० अनाम + हिं० ई (प्रत्य०)] अनाम संबंधी। उ०—शुद्ध ब्रह्म पद तहँ ठहराई, तो नाम अनामी धारा है।—कबीर श०, पृ० ६०।

अनामी[2]—संज्ञा पुं० परमात्मा। परब्रह्म। उ०—परे ताके रहत अनामी, स्वामी निरताइ कै।—घट०, पृ० ३७४।

अनामृत—वि० [सं०] को मृत्युवश न हो [को०]।

अनामल—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'एनामेल'।

अनायक—वि० [सं०] १. नायकरहित । २. जो व्यवस्थित न हो [को०] ।

अनायत—संज्ञा वि० [सं०] १. जो नियंत्रित न हो। २. अनिवारित। ३. अनाश्रित । बेसहारा । ४. जो विच्छिन्न न हो। अविच्छिन्न । ५. संलग्न । ६. बिना लंबाई का [को०]।

अनायतन¹—संज्ञा पुं० [सं०] वह स्थान जो विश्रामस्थल या वेदी न हो [को०] ।

अनायतन²—वि० विश्रामस्थान या वेदी से रहित [को०] ।

अनायत्त—वि० [सं०] [स्त्री० अनायत्ता] १. अनधीन। अवशीभूत। २. स्वतंत्र । खुद मुख्तार ।

अनायास—क्रि० वि० [सं०] १. बिना प्रयास। बिना परिश्रम। बिना उद्योग। बैठे बिठाए । उ०—जोई तनु धरौं तजौं पुनि अनायास हरि जान ।—मानस ७।१०६ । २. अकस्मात् । अचानक । सहसा । एकाएक। उ०—भरत बिबेक बराह बिसाला। अनायास उधरी तेहि काला ।—मानस, २।२६६ ।

अनायुष्य—वि० [सं०] आयुष्य या दीर्घजीवन के लिये हानिकर [को०]।

अनारंभ—वि० [सं० अन्+आरम्भ] आरंभरहित। उ०—अनारंभ अनिकेत अमानी ।—मानस, ७।४६ ।

अनार¹—संज्ञा पुं० [फा०] १. एक पेड़ और उसके फल का नाम। दाड़िम ।

विशेष—यह पेड़ १५-२० फुट ऊँचा और कुछ छतनार होता है। इसकी पतली पतली टहनियों में कुछ कुछ काँटे रहते हैं। इसके फूल लाल होते हैं। फल के ऊपर के कड़े छिलके को तोड़ने से रस से भरे लाल सफेद दाने निकलते हैं जो खाए जाते हैं। फल खट्टा मीठा दो प्रकार का होता है। गर्मी के दिनों में पीने के लिये इसका शरबत भी बनाते हैं। फूल रंग बनाने और दवा के काम में आता है। फल का छिलका अतिसार, संग्रहणी आदि रोगों में दिया जाता है। पेड़ की छाल में चमड़ा सिझाते हैं। पश्चिम हिमालय और सुलेमान की पहाड़ियों पर यह वृक्ष आप से आप उगता है। इसका कलम भी लगता है। प्रति वर्ष खाद देने से फल भी अच्छे आते हैं। काबुल और कंधार के अनार प्रसिद्ध हैं ।

२. एक आतशबाजी ।

विशेष—अनार फल के समान मिट्टी का एक गोल पात्र जिसमें लोहचून और बारूद भरा रहता है और जिसके मुँह पर आग लगाने से चिनगारियों का एक पेड़ सा बन जाता है ।

यौ०—अनारदाना ।

विशेष—दाँतों की उपमा कवि लोग अनार से देते आए हैं ।

३. वह रस्सी जिसमें दो छप्पर एक साथ मिलाकर बाँधे जाते हैं ।

अनार(पु)²—संज्ञा पुं० [सं० अन्याय] अनीति । अन्याय ।

अनारकिस्ट—संज्ञा पुं० [अँ० एनार्किस्ट] वह जो राज्य में विद्रोह को उत्तेजन दे या अशांति उत्पन्न करे। वह जो राज्य या राज्य व्यवस्था अथवा सामाजिक व्यवस्था को उलट देना चाहता हो। अराजक । विप्लवपंथी ।

अनारज(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अनार्य'। उ०—भावै देह छूटौ देश आरज अनारज मैं भावै देह छूटि जाहु बन मैं नगर मैं।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ६४२ ।

अनारत¹—वि० [सं०] १. निरंतर । अनवरत । २. नित्य । स्थायी [को०] ।

अनारत²—संज्ञा पुं० अविच्छिन्नता । निरंतरता [को०] ।

अनारदाना—संज्ञा पुं० [फा० अनारदानह्] १. खट्टे अनार का सुखया हुआ दाना । २. रामदाना ।

अनारपन(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० अनारी+पन (प्रत्य०)] गँवारपन। नासमझी। अनाड़ीपन। उ०—को कब लौं सिख देय जू सैन नारंगी बाल। नवल कुचहि दलि जात हो यह अनारपन लाल ।—स० सप्तक, पृ० २३० ।

अनारभ्य—वि० [सं०] जो आरंभ करने योग्य न हो [को०] ।

अनारी¹(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अनाड़ी'। उ०—न्यारी न्यारी दिसि चारी चपला चमतकारी, बरनैं अनारी ये कटारी तरवारी है ।—भिखारी० ग्रं०, भा० २, पृ० १०२ ।

अनारी²(पु)—वि० [हिं० अनार+ई (प्र०)] अनार के रंग का। लाल।

अनारी³—संज्ञा पुं० १. लाल रंग की आँखवाला कबूतर ।२. एक प्रकार का पकवान। भीतर मीठा या नमकीन पूर से भरा एक प्रकार का समोसा ।

अनारोग्य—वि० [सं०] १. जो स्वस्थ न हो। २. स्वास्थ्य के लिये हानिकर [को०] ।

अनारोग्यकर—वि० [सं०] जो स्वास्थ्यकर न हो [को०] ।

अनार्की—संज्ञा स्त्री० [अँ० एनार्की] १. राज्य या राजा न रहने की अवस्था। शासन या राज्यव्यवस्था का अभाव। राजनीतिक उथल पुथल। अराजकता। विप्लव। २. एक मतवाद जिसके अनुसार समाज तभी पूर्णता को प्राप्त होगा जब राज्य या शासनव्यवस्था न रहेगी और पूर्ण व्यक्तिस्वातंत्र्य हो जायगा। अराजकवाद।

अनार्जव—संज्ञा पुं० [सं०] १. सिधाई का अभाव। टेढ़ापन। २. सरलता का अभाव। अऋजुता। कुटिलता। कपट।

अनार्तव¹—वि० [सं०] बिना ऋतु का। बेमौसम। अनवसर।

अनार्तव²—संज्ञा पुं० स्त्रियों के ऋतुधर्म का अवरोध। रजोधर्म की रुकावट ।

अनार्तवा—वि० स्त्री० [सं०] जो ऋतुमती न हो ।

अनार्य—वि० [सं०] १. आर्य जाति से रहित। २. अश्रेष्ठ [को०]।

अनार्य—संज्ञा पुं० [स्त्री० अनार्या] १. वह जो आर्य न हो। २. म्लेच्छ ।

अनार्यक—संज्ञा पुं० [सं०] अगुरु की लकड़ी [को०] ।

अनार्यकर्मी—वि० [सं० अनार्यकर्मिन्] आर्योचित कर्म न करनेवाला [को०] ।

अनार्यज¹—संज्ञा पुं० [सं०] अगुरु का पेड़ [को०] ।

अनार्यज²—वि० [वि० स्त्री० अनार्यजा] १. जो आर्य से उत्पन्न न हो। २. अनार्य देश में उत्पन्न [को०] ।

अनार्यजुष्ट—वि० [सं०] जो अनार्य द्वारा आचरित या व्यवहृत हो [को०] ।

अनार्यता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. आर्य धर्म का अभाव। २. अश्रेष्ठता। ३. लघुता। नीचता। ४. म्लेच्छता।

अनार्यतिक्त—संज्ञा पुं० [सं०] चिरायता [को०] ।

अनार्यत्व--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अनार्यता'।

अनार्ष--वि० [सं०] जो ऋषिप्रणीत न हो। जो ऋषिकाल का बना हुआ न हो।

अनार्षेय--वि० [सं०] जो आर्ष या वैदिक न हो [को०]।

अनालंब[1]--[सं० अनलाम्ब] अवलंबहीन [को०]।

अनालंब[2]--संज्ञा पुं० अवलंब का अभाव [को०]।

अनालंबन--वि० [सं० अनालम्बन] १. निरवलंब। २. निराश [को०]।

अनालंबी--संज्ञा स्त्री० [सं० अनालम्बिन] शिव का एक वाद्य [को०]।

अनालंबुका--संज्ञा स्त्री० [सं० अनालम्बुका] दे० 'अनालंभुका' [को०]।

अनालंभुका--संज्ञा स्त्री० [सं० अनालम्भुका] रजस्वला स्त्री० [को०]।

अनालस्य--संज्ञा पुं० [सं०] आलस्य का अभाव।

अनालाप[1]--वि० [सं०] १. मितभाषी। कम बोलनेवाला [को०]।

अनालाप[2]--संज्ञा पुं० १. मितभाषण। २. अलाप या बातचीत का अभाव [को०]।

अनालोचित--वि० [सं०] १ न देखा हुआ। २. जो विचारित या विवेचित न हो। ३. जिसकी आलोचना न की गई हो [को०]।

अनालोच्य--वि० [सं०] जो आलोचना के योग्य न हो [को०]।

अनावरण--संज्ञा पुं० [सं०] आवरण का अभाव।

अनावर्ती--संज्ञा स्त्री० [सं०] १. न लौटना। २. पुनर्जन्म का अभाव। ३. मोक्ष [को०]।

अनावर्षण--संज्ञा पुं० [सं०] अनावृष्टि। अवर्षा। मेघ के जल का अभाव। सूखा

अनावश्यक--वि० [सं०] जिसकी आवश्यकता न हो। अप्रयोजनीय। गैरजरूरी।

अनावश्यकता--संज्ञा स्त्री० [सं०] आवश्यकता का न होना। अप्रयोजनीय। गैरजरूरत।

अनाविद्ध--वि० [सं०] १. जो विद्ध या विधा न हो [को०]।

अनाविल--वि० [सं०] १. स्वच्छ। निर्मल। साफ। २. स्वास्थ्यकर (देश०)। ३. निष्पंक। पंकरहित। [को०]।

अनावृत--वि० [सं०] [स्त्री० अनावृत] १. जो ढँका न हो। आवरण रहित। खुला। २. जो घिरा न हो।

अनावृत्त--वि० [सं०] १. न लौटा हुआ। २. पीछे न हटा हुआ। ३. जिसकी आवृत्ति न की गई हो। ४. न चुना हुआ [को०]।

अनावृत्ति--संज्ञा स्त्री० [सं०] शरीर धारण न करना। मोक्ष [को०]।

अनावृष्टि--संज्ञा स्त्री० [सं०] वर्षा का अभाव। अनावर्षण। अवर्षा। सूखा। उ०--सब जादौ मिलि हरि सौं यह कह्यौ सुफलक सुत जहँ होई। अनावृष्टि अतिवृष्टि होति नहीं यह जानत सब कोई।--सूर०, १०।४१६१।

अनावेदित--वि० [सं०] जो ज्ञापित न हो। जिसकी विज्ञप्ति न की गई हो [को०]।

अनाश--वि० [सं०] १. निराश। २. जिसका नाश न हो। ३. जो नष्ट न किया गया हो। ४. जीवित [को०]।

अनाशक[1]--वि० [सं०] १. अनश्वर। २. नशा या हानि न करनेवाला। २. उपवास करनेवाला। २. भोजन का त्याग करनेवाला (आमरण भी) [को०]।

अनाशक[2]--संज्ञा पुं० उपवास [को०]।

अनाशकायन--संज्ञा पुं० [सं०] उपवास का व्रत [को०]।

अनाशस्त--वि० [सं०] जो प्रशंसित न हो [को०]।

अनाशा--संज्ञा स्त्री० [सं०] आशा का अनाव। नैराश्य [को०]।

अनाशी--वि० [सं० अनाशिन्] १. जो नष्ट न हो। २. न खानेवाला [को०]।

अनाशु--वि० [सं०] मंद। सुस्त। जो तेज न हो। २. अनश्वर [को०]।

अनाश्य--वि० [सं०] अनश्वर [को०]।

अनाश्रमी--वि० [सं० अनाश्रमिन्] १. आश्रमभ्रष्ट। आश्रम धर्म से च्युत। गार्हस्थ्य आदि चारों आश्रमों से रहित। २. पतित। भ्रष्ट।

अनाश्रय--वि० [सं०] निराश्रय। बेसहारा। निरवलंब अनाथ। दीन।

अनाश्रित--वि० [सं०] १. आश्रयरहित। निरवलंब। बेसहारा। उ०--संभालेगा हमें अब कौन ? यों अनाश्रित रह सका कब कौन।--साकेत, पृ० १७७। २. जो अधिकार रहते भी ब्रह्मचर्य आदि आश्रमों को ग्रहण न करे।

अनास--वि० [सं०] बिना नाक का। चपटी नाकवाला।--हिंदु० सभ्यता, पृ० ३५।

अनासक्त--वि० [सं०] जो किसी विषय में आसक्त न हो। उ०--त्यागी भी हैं शरण जिनके, जो अनासक्त गेह, राजा योगी जय जनक वे पुण्यदेही, विदेह।--साकेत, पृ० २५०।

अनासक्ति--संज्ञा पुं० [सं०] मोहराहित्य। आसक्ति या अनुरक्ति का अभाव। उ०--मैं कोमल वर्ग की मोहिनी शक्ति से निर्लिप्त हूँ, और अनासक्ति का पद प्राप्त कर चुका हूँ।--मान०, भा०१, पृ० २८१।

अनासती(पु)--संज्ञा स्त्री० [हिं०] कुसमय। कुअवसर (डिं०)।

अनासादित--वि० [सं०] १. अप्राप्त। २. जो आक्रांत न हो। ३. जो घटित न हो। ४. अस्तित्वरहित [को०]।

अनासादितविग्रह--वि० [सं०] जिसे विग्रह या युद्ध का अनुभव न हो [को०]।

अनासाद्य--वि० [सं०] अप्राप्य [को०]।

अनासिक--वि० [सं०] बिना नाक का। नकटा।

अनास्थ--वि० [सं०] १. आस्थारहित। २. उदासीन [को०]।

अनास्था--संज्ञा स्त्री० [सं०] १. अश्रद्धा। आस्था का अभाव। २. अनादर। अप्रतिष्ठा। ३. अवज्ञा। ४. उदासीनता।

अनास्राव--वि० [सं०] बिना क्लेश का। क्लेशरहित [को०]।

अनास्वाद[1]--वि० [सं०] स्वादहीन। विरस [को०]।

अनास्वाद[2]--संज्ञा पुं० स्वाद का अभाव। विरसता। नीरसता। [को०]

अनास्वादित--वि० [सं०] जिसका स्वाद न लिया गया हो [को०]।

अनास्वाद्य--वि० [सं०] जो स्वाद या आस्वाद के योग्य न हो [को०]।

अनाह--संज्ञा पुं० [सं०] रोगविशेष। अफरा। पेट फूलना।

अनाहक(पु)--क्रि० वि० [हिं०] दे० 'नाहक'। उ०--चंद्रमुखी सुनि मंद महातम राहु भयो यह आनि अनाहक।--घनानंद, पृ० १०५।

अनाहक्क(पु)—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'अनाहक'। उ०—अनाहक चंदेल नृप, क्यों मंडित महि रार।—पृ० रा०, पृ० ४०।

अनाहत¹—वि० [सं०] १. जिसपर आघात न हुआ हो। अक्षुब्ध। २. अगणित। जिसका गुणन न किया गया हो।

अनाहत²—संज्ञा पुं० १. शब्दयोग में वह शब्द या नाद जो दोनों हाथों के अँगूठों से दोनों कानों की लवें बंद करके ध्यान करने से सुनाई देता है। २. हठयोग के अनुसार शरीर के भीतर के छह चक्रों में से एक। इसका स्थान हृदय; रंग लाल पीला मिश्रित और देवता रुद्र माने गए हैं। इसके दलों की संख्या १२ और अक्षर 'क' से 'ठ' तक हैं। ३. नया वस्त्र। ४. द्वितीय बार किसी वस्तु को उपनिधि या धरोहर में देना। दोबारा किसी चीज का अमानत में दिया जाना।

अनाहतनाद—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अनाहत'। उ०—गूँजता तुम्हारा अनाहत नाद जो वहाँ, सुनता है दास यह भक्तिपूर्वक नतमस्तक।—अनामिका, पृ० १००।

अनाहदवाणी—संज्ञा स्त्री० [सं० अनाहत+वाणी] आकाशवाणी। देववाणी।

अनाहत शब्द—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक भीतरी शब्द जिसे योगी सुनते हैं। २. ओउम की ध्वनि [को०]।

अनाहार¹—संज्ञा पुं० [सं०] भोजन का अभाव या त्याग।

अनाहार²—वि० १. निराहार। जिसने कुछ न खाया हो। जैसे—आज हम अनाहार रह गए (शब्द०)। २. जिसमें कुछ खाया न जाय। जैसे, अनाहार व्रत।

अनाहारमार्गणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] जैनशास्त्रानुसार एक व्रत।

अनाहारी—वि० [सं० अनाहारिन्] १. आहार न लेनेवाला। २. उपवास या अनशन करनेवाला [को०]।

अनाहार्य—वि० [सं०] १. जो लेने या ग्रहण करने योग्य न हो। २. जो खाने योग्य न हो [को०]।

अनाहिताग्नि—वि० [सं०] जिसने विधिपूर्वक अग्न्याधान न किया हो। जो अग्निहोत्री न हो। निरग्नि।

अनाहुति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. यज्ञ का अभाव। २. अविहित यज्ञ [को०]।

अनाहूत—वि० [सं०] बिना बुलाया हुआ। अनामंत्रित। अनिमंत्रित उ०—धिक्! आए तुम यों अनाहूत।—अपरा, पृ० २०२।

अनाह्लाद¹—संज्ञा पुं० [सं०] आह्लाद या आनंद का अभाव [को०]।

अनाह्लाद²—वि० आह्लादरहित। संजीदा [को०]।

अनाह्लादित—वि० [सं०] जो हर्षित या आनंदित न हो [को०]।

अनिंगित—वि० [सं० अन्+इङ्गित=हिलाना, काँपना] १. अकंपित। निश्चल। उ०—काँप रही है ज्योति; अब तो तुम इसे कर दो अनिंगित; तब निवासस्थान में अब लौ लगे इसकी अशंकित।—क्वासि, पृ० २। २. अनिर्दिष्ट। इंगित न किया हुआ। जिसकी ओर इशारा न हो (को०)।

अनिंद(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अनिंद्य'। उ०—बैठी फिरि पूतनी अनूतरी फिरंग कैसी पीठी दै प्रवीनी दृग दृगनि मिलै अनिंद।—पद्माकर ग्रं०, पृ० १०१।

अनिंदित—वि० पुं० [सं० अनिन्दित] [स्त्री० अनिन्दिता] १. अकलंकित बदनामी से बचा हुआ। २. निर्दोष। उत्तम।

अनिंदनीय—वि० पुं० [सं० अनिन्दनीय] [स्त्री० अनिंदनीया] जो निंदा के योग्य न हो। निर्दोष। निष्कलंक।

अनिंद्य—वि० पुं० [सं० अनिन्द्य] [वि० स्त्री० अनिंद्या] १. जो निंदा के योग्य न हो। निर्दोष। २. उत्तम। प्रशंसनीय। अच्छा।

अनिंद्र—वि० [सं० अनिन्द्र] इंद्र की पूजा या उपासना न करनेवाला [को०]।

अनि(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अन्य'। उ०—दै द्रव्य कह्यौ माता सिधाव। इह शहर छंडि अनि सहर जाव।—पृ० रा०, १।३७६।

अनि अनी(पु)—वि० [सं० अन्य+अन्य] अन्यान्य। और और। उ०— अनि अनी सुभट बैठे सु आइ।—पृ० रा०, ६।१३५।

अनिआई(पु)—वि० [हिं०] दे० अन्यायी'।

अनिक(पु)—वि० [सं० अनेक; प्रा० अणिक्क] दे० 'अनेक'। असंख्य। उ०—निर्मल बूँद अकाश की लीनी भूमि मिलाइ। अनिक सियाने पच गए ना निरवारी जाय।—कबीर ग्रं०, पृ० २५५।

अनिकेत—वि० [सं०] १. स्थानरहित। बिना घर का। उ०—अनारंभ अनिकेत अमानी।—मानस, ७।४६। २. संन्यासी। परिव्राजक। ३. खानाबदोश। घूम फिरकर अनियत स्थानों में गुजारा करनेवाला।

अनिकेतन—वि० [सं० अ+निकेतन] दे० 'अनिकेत'। उ०—गृही लोग हम अनिकेतन की क्या जानें सुख पीर।—अपलक, पृ० ७२।

अनिक्षिप्तधूर—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक बोधिसत्व का नाम। २. निकाला हुआ बौद्ध भिक्षु [को०]।

अनिक्षिप्त सैन्य—संज्ञा पुं० [सं०] तोड़ी या सेवा से अलग की हुई सेना। अपसृत सैन्य।

अनिक्षु—संज्ञा पुं० [सं०] जो ईख न हो। ईख जैसी लंबी घास या नरकुल [को०]।

अनिगीर्ण—वि० [सं०] १. जो निगला न गया हो। २. जो छिपा न हो। प्रकट। व्यक्त [को०]।

अनिग्रह¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. अनवरोध। बंधन का अभाव। २. दंड या पीड़ा का न होना। ३. वाद या तर्क में हार का अस्वीकरण [को०]।

अनिग्रह²—वि० १. बंधनरहित। बेरोक। २. असीम। बेहद। ३. पीड़ारहित। नीरोग। ४. जिसने दंड न पाया हो। अदंडित। ५. जो दंड के योग्य न हो। अदंड्य।

अनिच्छ—वि० [सं०] आकांक्षारहित। अनिच्छुक [को०]।

अनिच्छक—वि० [सं०] दे० 'अनिच्छुक' [को०]।

अनिच्छा—संज्ञा स्त्री० [सं०] वि० अनिच्छित, अनिच्छुक] १. इच्छा का अभाव। चाह का न होना। अरुचि। २. अतृप्ति।

अनिच्छित—वि० [सं०] जिसकी इच्छा न हो। अनिप्सित। अनचाहा उ०—अभिलषित वस्तु तो दूर रहे, हाँ मिले अनिच्छित दुःखद खेद।—कामायनी, पृ० १६४। २. अरुचिकर।

अनिच्छु—वि० [सं०] दे० 'अनिच्छुक' [को०]।

अनिच्छुक—वि० [सं०] इच्छा न रखनेवाला। जिसे चाह न हो। अनभिलाषी। निराकांक्षी।

अनिजक—वि० [सं०] जो अपना न हो। पराया। दूसरे का [को०]।

अनित[1]ⓟ—वि० [हिं०] १. दे० 'अनित्य'। उ०—दारा सुत बिरत अहें सबहि अनित तासों। पोद्दार० अभि० ग्रं०, पृ० ४६३। २. अनंत। जिसका अंत न हो। उ०—महिमा अनित साधु गुरु समुझहु संत सुजान।—कबीर सा०, भा० ४, पृ० ४२०।

अनित[2]—वि० [सं०] बिना किसी के साथ। अकेला। वंचित [को०]।

अनितभा[1]—वि० [सं०] कांतिहीन। तेजहीन [को०]।

अनितभा[2]—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक नदी का नाम [को०]।

अनित्रⓟ—वि० [हिं०] दे० 'अन्यत्र'। उ०—काहे कौं भ्रमत है तू बावरे अनित्र जाइ।—सुंदर० ग्रं०, भा० २, पृ० ८६४।

अनित्य—वि० [सं०] [स्त्री० अनित्या] [संज्ञा अनित्यत्व, अनित्यता] १. जो सब दिन न रहे। अध्रुव। अस्थायी। चंदरोजा। क्षणभंगुर। २. नश्वर। नाशवान्। ३. जो स्वयं कार्यरूप हो और जिसका कोई कारण हो, अतः जो एक सा न रहे। जैसे, 'संसार अनित्य है' (शब्द०)। ४. असत्य। झूठा। ५. अनिश्चित। संदेहास्पद (को०)। ६. व्याकरण में एक नियम जो परीक्षण, प्रयोग के योग्य या अनिवार्य नहीं होता। वैकल्पित [को०]।

अनित्यकर्म—संज्ञा पुं० [सं०] यदा कदा समय समय पर किया जानेवाला कार्य, जैसे—विशेष उद्देश्य से किए जानेवाले यज्ञ आदि [को०]।

अनित्यक्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अनित्यकर्म' [को०]।

अनित्यता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. अनित्य अवस्था। नापायदारी। अस्थिरता। अध्रुवता। २. क्षणभंगुरता। नश्वरता।

अनित्यत्व—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अनित्यता'।

अनित्यदत्त—संज्ञा पुं० [सं०] गोद लेने के पहले माता पिता के द्वारा दूसरे को कुछ काल के लिये दिया हुआ पुत्र। वह लड़का जो गोद लिए जाने के पहले कुछ काल के लिये अपने माता पिता द्वारा गोद लेनेवालों को दिया जाय [को०]।

अनित्यदत्तक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अनित्यदत्त' [को०]।

अनित्यदत्रिम—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अनित्यदत्त' [को०]।

अनित्यभाव—संज्ञा पुं० [सं०] परिवर्तनशीलता। क्षणभंगुरता।

अनित्यसम—संज्ञा पुं० [सं०] न्याय में जाति या असत् उत्तर के २४ भेदों में से एक।

विशेष—यदि कोई कहे कि घट का सादृश्य शब्द में है, इससे घट की भाँति शब्द भी अनित्य हो गया; तो इसपर यह कहना कि किसी न किसी बात में घट का सादृश्य सभी वस्तुओं में होगा; तो क्या फिर सभी वस्तुएँ अनित्य होंगी ? इसी प्रकार का उत्तर अनित्यसम कहलाता है।

अनिद—वि० [सं०] जो देखा न जा सके [को०]।

अनिदान—वि० [सं०] जिसका कारण ज्ञात न हो। कारणरहित [को०]।

अनिद्र[1]—वि० [सं०] निद्रारहित। बिना नींद का। जिसे नींद न आए। २. जागरूक। जागा हुआ।

अनिद्र[2]—संज्ञा पुं० १. नींद न आने का रोग। प्रजागर। २. निद्रारहित। जाग्रत। जागा हुआ [को०]। ३. जागरूक। तत्पर [को०]।

अनिद्रा—संज्ञा पुं० [सं०] १. जागरूकता। तत्परता। २. दे० 'अनिद्र' [को०]।

अनिद्रित—वि० [सं०] जो सोया हुआ न हो। जागा हुआ [को०]।

अनिधृष्ट—वि० [सं०] जो रोका न जा सके। प्रतिबंधरहित। अबाध। अपराभूत [को०]।

अनिनⓟ—वि० [हिं०] दे० 'अनन्य'। उ०—(क) अनिन कथा तनि आचरी हिरदै त्रिभुवन राइ।—कबीर ग्रं०, पृ० २६। (ख) संतो अनिन भगति यह नाहीं।—रे० बानी०, पृ० १४।

अनिन्नताⓟ—संज्ञा स्त्री० [हिं० अनिन्न+ता (प्रत्य०)] दे० 'अनन्यता'। उ०—सेवहि इक्क अनिन्नता, कंत मुक्त कब दानि।—पृ० रा०, पृ० ६३।

अनिपⓟ—संज्ञा पुं० [सं० अनिक] [हिं० अनी=सेना+प=स्वामी] सेनापति। सेनाध्यक्ष। फौजी अफसर। उ०—मनो मधुमाधव दोउ अनिप धीर। बर बिपुल बिटप बानैत बीर।—तुलसी ग्रं० पृ० ३४६।

अनिपात—संज्ञा पुं० [सं०] पतन का न होना। अपतन। जीवन। का लगातार बने रहना [को०]।

अनिपुण—वि० [सं०] अकुशल। अपटु। जो प्रवीण न हो।

अनिबद्ध—वि० [सं०] १. जो बाँधा न हो। अबद्ध। २. असंबद्ध। अनर्गल। बेसिलसिला [को०]।

अनिबद्धप्रलाप—संज्ञा पुं० [सं०] असंबद्ध वा बेसिर पैर की बात [को०]।

अनिबद्धप्रलापी—वि० [सं० अनिबद्धप्रलापिन्] बेसिर पैर की बात करनेवाला। ऊलजलूल बात करनेवाला [को०]।

अनिबाध[1]—वि० [सं०] बाधारहित। जिसे कोई बाधा न हो। स्वच्छंद [को०]।

अनिबाध[2]—संज्ञा पुं० स्वच्छंदता। मुक्तता [को०]।

अनिभृत—वि० [सं०] १. जो छिपा न हो। जो एकांत में न हो। २. अगुप्त। प्रकट। जाहिर। ३. धृष्ट। असंकोची। बेतकल्लुफ। ४. ढुलमुल। अस्थिर। [को०]।

अनिभृत संधि—संज्ञा स्त्री० [सं० अनिभृत सन्धि] यदि कोई राजा किसी दूसरे राजा की बहुत ही अधिक उपजाऊ भूमि को खरीदना चाहता हो और दूसरा राजा उस भूमि को देकर उससे संधि कर ले तो ऐसी संधि को अनिभृत संधि कहते हैं।

अनिभृष्ट—वि० [सं०] अबाधित। बेरोक। जिसपर कोई प्रतिबंध न हो [को०]।

अनिभ्य—वि० [सं०] धनहीन। निर्धन। कंगाल।

अनिमंत्रित—वि० [सं० अनिमन्त्रित] बिना न्यौता हुआ। बिना बुलाया हुआ। अनामंत्रित। अनाहूत।

अनिमक—संज्ञा पुं० [सं०] १. मेंढक । २. कोयल । ३. मधुमक्खी । ४. भौंरा । ५. कमल की केशर । पद्मकेशर । ६. महुए का वृक्ष । [को०] ।

अनिमा¹(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अणिमा' ।

अनिमा²—संज्ञा पुं० [अं० एनिमा] दे० 'एनिमा' ।

अनिमान—वि [सं०] असीम । अथाह । अत्यधिक । अपरिच्छिन्न [को०] ।

अनिमित्त¹—वि० [सं०] निमित्तरहित । बिना हेतु का । आकस्मिक ।

अनिमित्त²—क्रि० वि० १. बिना कारण । २. बिना गरज । बिना किसी प्रयोजन के ।

अनिमित्त³—संज्ञा पुं० [सं०] अपशकुन । अनिष्ट [को०] ।

अनिमित्तक—वि० [सं०] १. बिना कारण का । बिना हेतु का । २. व्यर्थ । प्रयोजनरहित । बेमतलब ।

अनिमित्तनिराक्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] अपशकुन या अनिष्ट का निवारण [को०] ।

अनिमित्तलिंगनाश—संज्ञा पुं० [सं० अनिमित्तलिङ्गनाश] एक प्रकार का नेत्ररोग जिसमें मनुष्य अंधा हो जाता है [को०] ।

अनिमिष¹—वि० [सं०] १. निमेषरहित । स्थिरदृष्टि । टकटकी बाँधकर देखनेवाला । २. जागरूक (को०) । ३. विकसित । खुला हुआ । जैसे आँख या पुष्प [को०] ।

अनिमिष²—क्रि० वि० १. बिना पलक गिराए । एकटक । उ०—सुंदरता से अनिमिष चितवन छू कोमल मर्मस्थल ।—युगवाणी, पृ० ६२ । १. निरंतर ।

अनिमिष³—संज्ञा पुं० १. देवता । २. मछली । ३. विष्णु (को०) । ४. महाकाल का नाम (को०) । ५. एक रतिबंध (को०) ।

अनिमिषदृष्टि—वि०[सं०] टकटकी बाँधकर देखना । आँख गड़ाकर देखना । जानबूझ कर या साभिप्राय घूरना [को०] ।

अनिमिषनयन—वि० [सं०] दे० 'अनिमिषदृष्टि' [को०] ।

अनिमिषलोचन—वि० [सं०] दे० 'अनिमिषदृष्टि' [को०] ।

अनिमिषाचार्य—संज्ञा पुं० [सं०] देवगुरु । बृहस्पति ।

अनिमिषीय—वि० [सं०] देवसंबंधी [को०] ।

अनिमेष¹—वि० [सं०] दे० 'अनिमिष' ।

अनिमेष²—क्रि०वि० १. बिना पलक गिराए । एकटक । २. निरंतर ।

अनिमेष³—संज्ञा पुं० दे० 'अनिमिष' ।

अनिमेषदृष्टि—वि० [सं०] दे० 'अनिमिषदृष्टि' [को०] ।

अनिमेषनयन—वि० [सं०] दे० 'अनिमिषदृष्टि' [को०] ।

अनिमेषलोचन—वि० [सं०] दे० 'अनिमेषदृष्टि' [को०] ।

अनियंत्रित—वि० [सं० अनियन्त्रित] १. जो जकड़ा या बाँधा न हो । अबद्ध । प्रतिबंधरहित । बिना रोक टोक का । २. मनमाना । स्वच्छंद । निरंकुश ।

अनियंत्रित शासन—संज्ञा पुं० [सं० अनियन्त्रित शासन] निरंकुश राज्य । स्वेच्छाचारी राज्य । एकतंत्र [को०] ।

अनियत—वि० [सं०] १. जो नियत न हो । अनिश्चित । अनिर्दिष्ट । अनिर्धारित । २. अस्थिर । अदृढ़ । जिसका ठीक ठिकाना न हो । ३. अपरिमित । असीम । ४. असाधारण । गैर मामूली । ५. अबाधित । जो रोका न जा सके [को०] । ६. अनियमित (को०) । ७. अकारण । कारणविहीन [को०] । ८. आकस्मिक [को०] ।

अनियतपुंस्का—संज्ञा स्त्री० [सं०] असती । पुंश्चली । शिथिल आचरणवाली स्त्री । व्यभिचारिणी [को०] ।

अनियतवृत्ति—वि०[सं०]१.अनियमित काम न करनेवाला । जो किसी बँधे काम पर न लगा हो । २. अनिश्चित आयवाला । जिसकी कोई बँधी आमदनी न हो [को०] ।

अनियतांक—संज्ञा पुं० [सं० अनियताङ्क] गणित में आनेवाला अनिश्चित या अज्ञात अंक । वह संख्या जिसका मूल्य निश्चित न हो [को०] ।

अनियतात्मा—वि० [सं० अनियतात्मन्] १. चंचल बुद्धि का । डावाँडोल चित्त का । २. जिसका मन वश में न हो । अजितेंद्रिय ।

अनियम¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. नियम का अभाव । नियम का न होना । व्यतिक्रम । २. अव्यवस्था । बेकायदगी । ३. अनियमितता । अनिश्चितता । अस्पष्टता (को०) । ४. अविहित कर्म या अनुचित आचरण (को०) ।

अनियम²—वि० नियमरहित । व्यवस्थारहित । अव्यवस्थित [को०] ।

अनियमित—वि० [सं०] १. नियमरहित । विधिहीन । अव्यवस्थित बेकायदा । २. अनिश्चित । अनियत । अनिर्दिष्ट ।

अनियाउ(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अन्याय' । उ०—सत्य कहहु तुम मोसौं दहुँ काकर अनियाउ ।—जायसी ग्रं०, पृ० ३८ ।

अनियारा(पु)—वि० [स० अणि = नोक + हिं० आरा (प्रत्य०)] [स्त्री० अनियारी] नुकीला । कटीला । पैना । धारदार । कोरदार । तीक्ष्ण । तीखा । उ०—अनियारे दीरघ दृगन, किती न तरुनि समान । वह चितवनि औरे कछू, जिहि बस होत सुजान ।—बिहारी र०, दो० ५८८ ।

अनियारी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० अनियारा] अनीदार कटारी । उ०—गहि रोस नंखि नर भूमि पर । हनि अनियारिय उभय कसि । —पृ० रा० ७।१५८ ।

अनियुक्त—वि० [सं०] जो नियुक्त न किया गया हो । अनधिकारी । २. न्यायाधीश के साथ बैठनेवाला व्यक्ति (असेसर) जिसकी नियुक्ति अनौपचारिक होती है और जिसे मत देने का अधिकार नहीं होना [को०] ।

अनियोग—संज्ञा पुं० [सं०] १. संबंध का अभाव । २. अनुपयुक्त पद या आयोग [को०] ।

अनिर¹—वि० [सं०] जो प्रेरित न किया जा सके । जो ठेला न जा सके । अशक्त । शक्ति की कमी [को०] ।

अनिर²—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अनिरवा' ।

अनिरवसित—वि० [सं०] ऐसे शूद्र जो इतने नीचे नहीं माने जाते कि उनके भोजन कर लेने पर पात्र सदा के लिये त्याग दिया जाय, अर्थात् जिस पात्र में उन्होंने भोजन किया हो उसे स्वच्छ करके फिर ग्रहण किया जा सकता है [को०] ।

अनिरवा†—संज्ञा पुं० [सं० अ = नहीं + नकिट; प्रा० णिअड, णिअट, णिअड़] [स्त्री० अनिरिया] बहका हुआ पशु । आवारा चौपाया जो खूँटे पर न रहे । बहेतू ।

अनिरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. भोजन का अभाव। अति दरिद्रता। अन्नरहित दरिद्रता। २. दैवी विपत्ति, जैसे, अतिवृष्टि, अनावृष्टि [को०]।

अनिराकरण—संज्ञा पुं० [सं०] निराकरण न करना। दूर न करना [को०]।

अनिराकृत—वि० [सं०] जिसका निराकरण न किया गया हो। जो दूर न किया गया हो [को०]।

अनिरुक्त—वि० [सं०] १. जो स्पष्ट रूप से कहा न गया हो। अस्पष्ट (कथन)। २. जिसका निर्वचन (व्याख्या) स्पष्ट रूप से न हुआ हो [को०]।

अनिरुक्तगान—स्त्री० पुं० [सं०] १. अस्पष्ट गाना या गुनगुनाना। २. सामगान का एक प्रकार [को०]।

अनिरुद्ध[1]—वि० [सं०] जो रोका हुआ न हो। अबाध। बेरोक।

अनिरुद्ध[2]—संज्ञा पुं० श्रीकृष्ण के पौत्र, प्रद्युम्न के पुत्र जिनको ऊषा ब्याही थी।

अनिरुध(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अनिरुद्ध] दे० 'अनिरुद्ध[2]'। उ०—अनिरुध कहँ जो लिखी जैंमारा।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ०३०६।

अनिर्णय—संज्ञा पुं० [सं०] निर्णय का न होना। अनिश्चय [को०]।

अनिर्दश—वि० [सं०] जनन या मरण के अशौच के दस दिन बीतने के पूर्व का (समय) [को०]।

अनिर्दशा—वि० स्त्री० [सं०] जिसको बच्चा दिए दस दिन न बीते हों। विशेष—इस शब्द का व्यवहार प्रायः गाय के संबंध में देखा जाता है। ऐसी गाय का दूध पीना निषिद्ध है।

अनिर्दशाह—वि० [सं०] दे० 'अनिर्दश' [को०]।

अनिर्दिश्य—वि० [सं०] दे० 'अनिर्देश्य' [को०]।

अनिर्दिष्ट—वि० [सं०] १. जो बताया न गया हो। अनिरूपित। अनिर्धारित। अनिर्वाचित। उ०—क्या उनकी कल्पना में किसी अनिर्दिष्ट अत्याचारी या क्रूरकर्मा का सामान्य रूप ही था?—रस० क०, पृ० २६८। २ अनियत। अनिश्चित। ३. असीम। अपरिमित। ४. निश्चित लक्ष्य से रहित [को०]।

अनिर्दिष्टभोग—संज्ञा पुं० [सं०] दूसरे के पशु, भूमि या और पदार्थों को मालिक की आज्ञा के बिना काम में लाना। विशेष—इस प्रकार दूसरे की वस्तु का व्यवहार करनेवाला चोर के तुल्य ही कहा गया है। स्मृतियों में इस दोष के करनेवाले के लिये भिन्न भिन्न अर्थदंड हैं।

अनिर्देश—संज्ञा पुं० [सं०] निश्चित नियम या निर्देश का अभाव [को०]।

अनिर्देश्य[1]—वि० [सं०] जिसके गुण, स्वभाव, जाति आदि का निर्धारण न हो सके। जिसके विषय में कुछ ठीक बतलाया न जा सके। अनिर्वचनीय। अनिर्धार्य। २. जिसकी परिभाषा न हो सके। जिसकी तुलना न हो सके (को०)।

अनिर्देश्य[2]—संज्ञा पुं० परब्रह्म की एक उपाधि [को०]।

अनिर्धारित—वि० [सं०] अनिरूपित। अनिश्चित [को०]।

अनिर्धार्य—वि० [सं०] जिसका निरूपण न हो सके। जिसका लक्ष्य स्थिर न किया जा सके। जिसके विषय में कोई बात ठहराई न जा सके। अनिर्वेश्य।

अनिर्बंध—वि० [सं० अनिर्बन्ध] १. बिना बंधन का। अबाध। अनियंत्रित। बेरोकटोक। २. स्वतंत्र। स्वच्छंद। स्वाधीन। खुदमुख्तार।

अनिर्भर—वि० [सं०] भाररहित। कम वजन का। हलका। कम [को०]।

अनिर्भेद—संज्ञा पुं० [सं०] भेद न खोलना।

अनिर्मल—वि० [सं०] गंदा। मैला। अशुद्ध। गँदला [को०]।

अनिर्माल्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक पौधा जो औषध के काम आता है। पिंडिका [को०]।

अनिर्लोचित—संज्ञा स्त्री०[सं०]जिसपर सावधानी से विचार न हुआ हो। अविचारित [को०]।

अनिर्लोडित—वि० [सं०] जिसकी पूर्णतः परीक्षा न हुई हो। अपरीक्षित [को०]।

अनिर्वच—वि० [सं० अनिर्वचनीय] दे० 'अनिर्वचनीय'। उ०—वह है, वह नहीं, अनिर्वच जग उसमें वह जग में लय।—गुंजन, पृ० ८३।

अनिर्वचन—संज्ञा पुं० [सं०] मौन। खामोशी। जोर से न बोलना। [को०]।

अनिर्वचनीय[1]—[सं०] १. जिसका वर्णन न हो सके। अकथनीय। अवर्णनीय। उ०—अहो अनिर्वचनीय भावसागर। सुनो मेरी भी स्वरलहरी क्या है कह रही।—कानन०, पृ० ८१। २. जो कहने योग्य न हो। अकथ्य।

अनिर्वचनीय[2]—संज्ञा पुं० १. माया। भ्रम। अज्ञान। २. जगत्। संसार [को०]।

अनिवर्त्यमान—वि० [सं०] जो पास न आ रहा हो। न लौटनेवाला [को०]।

अनिर्वाच्य—वि० [सं०] १. निर्वचन के अयोग्य। जिसका निरूपण न हो सके। जो बतलाया न जा सके। जिसके विषय में कुछ स्थिर न हो सके। उ०—पावा अनिर्वाच्य विश्राम।—मानस, ५।८। २. जो चुनाव के योग्य न हो। निर्वाचन के अयोग्य।

अनिर्वात—वि० [सं०] वायुरहित। शांत। उ०—वह श्रुति धारता, ज्ञान की शिखा वह अनिर्वात निष्कंप।—अणिमा, पृ० ३९।

अनिर्वाण—वि० [सं०] १. न बुझा हुआ। २. न नहाया हुआ। अस्नात। अप्रक्षालित [को०]।

अनिर्वाह—संज्ञा पुं० [सं०] १. पूरा न होना। अपूर्णता। २. अनिष्पत्ति। असंगति। ३. आय की कमी या टोटा। साधन की अल्पता [को०]।

अनिर्वाह्य—वि० [सं०] जो निर्वाह के योग्य न हो। जिसकी व्यवस्था कठिन हो [को०]।

अनिर्वाह्य पण्य—संज्ञा पुं० [सं०] वह पदार्थ या माल जिसका राज्य या नगर के भीतर लाया जाना बंद किया गया हो।

अनिर्विण—वि० [सं०] अलज्जित। जिसने लज्जित होने योग्य कुछ न किया हो [को०]।

अनिर्विण्ण—वि० [सं०] १. जो थका न हो। निर्वेदरहित। दुःख—रहित। २. विष्णु की एक उपाधि।—[को०]।

अनिर्विद—वि० [सं०] अश्रांत। अक्लांत। तरोताजा [को०]।

अनिर्वृति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दे० 'अनिर्वृति'। २. दरिद्रता। शरणहीन [को०]।

अनिवृ'त्त¹—वि० [सं०] [संज्ञा **अनिवृ'ति**] बुरी स्थिति का । दुःखी ।

अनिवृ'त्त²—वि० [सं०] दे० 'अनिवृ'त्ति [को०] ।

अनिवृ'त्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] बुरी स्थिति । दुःख ।

अनिर्वेद—संज्ञा पुं० [सं०] १. क्लांति का अभाव । निराशा का अभाव । २. स्वावलंबन । साहस [को०] ।

अनिर्वेश—वि० [सं०] बेरोजगार । दुःखी [को०] ।

अनिल—संज्ञा पुं० [सं०] १. हवा । पवन । वायु । २. पवन देवता । ३. वायु के ४९ भेदों में से एक । ४. अष्ट वसुओं में एक । पंचम वसु । ५. शरीर का एक तत्व । ६. पक्षाघात । लकवा । बातरोग । ७. अक्षर य् । ४९ की संख्या का द्योतक शब्द । ८. स्वाति नक्षत्र । ९. विष्णु का नाम । १० सागौन का वृक्ष । ११. वायु रोग (को०) ।

अनिलकुमार—संज्ञा पुं० [सं०] १. पवन के पुत्र हनुमान । २. जैन शास्त्रों के अनुसार भुवनपति देवताओं का एक भेद ।

अनिलघ्न—वि० [सं०] वातविकारों को दूर करनेवाला [को०] ।

अनिलघ्नक—संज्ञा पुं० [सं०] बिभीतक वृक्ष । बहेड़ा [को०] ।

अनिलपर्यय—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अनिलपर्याय' [को०] ।

अनिलपर्याय—संज्ञा पुं० [सं०] आँख की पलकों तथा बाहरी भाग की सूजन [को०] ।

अनिलप्रकृति¹—वि० [सं०] वातप्रकृतिवाला [को०] ।

अनिलप्रकृति²—संज्ञा पुं० शनि का नाम [को०] ।

अनिलभद्रक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का रथ ।

विशेष—मानसार में बनावट या आकार के अनुसार रथ का सात भेद माने गए हैं-(१) नभस्वद्भद्रक, (२) प्रभंजनभद्रक, (३) निवातभद्रक, (४) पवनभद्रक, (५) परिषद्भद्रक, (६) इंद्रभद्रक और (७) अनिलभद्रक ।

अनिलय—वि० [सं०] निवासरहित । आश्रयरहित [को०] ।

अनिलवाह—संज्ञा पुं० [सं० **अनिल+वाह=प्रवाह**] वायु का प्रवाह । वायुमंडल । उ०—इस अनिलवाह के पार प्रखर किरणों का वह ज्योतिर्मय घर ।—तुलसी०, पृ० १९ ।

अनिलव्याधि—संज्ञा स्त्री० [सं०] वायु कुपित होने से उत्पन्न रोग [को०] ।

अनिलसख—संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि । वायु का सहायक [को०] ।

अनिलसारथि—संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि [को०] ।

अनिलात्मज—संज्ञा पुं० [सं०] वायु का पुत्र—१. हनुमान् । २. भीम [को०] ।

अनिलांतक—संज्ञा पुं० [सं० **अनिलान्तक**] इंगुदी का पौधा । अंगारपुष्प [को०] ।

अनिलापह—वि० [सं०] दे० 'अनिलघ्न' [को०] ।

अनिलामय—संज्ञा पुं० [सं०] वातरोग । लकवा । गठिया [को०] ।

अनिलायन—संज्ञा पुं० [सं०] वायु का मार्ग । हवा की दिशा [को०] ।

अनिलहा—वि० [सं० **अनीलहन्**] वातरोग नष्ट करनेवाला [को०] ।

अनिलाशन—वि० [सं०] दे० 'अनिलाशी' [को०] ।

अनिलाशी¹—वि० [**अनिलाशिन्** [वि० स्त्री० **अनिलाशिनी**] हवा पीकर रहनेवाला ।

अनिलाशी²—संज्ञा पुं० साँप । सर्प ।

अनिलोडित¹—वि० [सं०] अनुभवरहित [को०] ।

अनिलोडित²—वि० [सं०] जिसपर भलीभाँति विचार न हुआ हो । अपूर्णतः परीक्षित [को०] ।

अनिवर्तन—वि० [सं०] १. दृढ़ । स्थिर । २. उचित । अत्याज्य [को०] ।

अनिवर्ती—वि० [सं० **अनिर्वातन्**] [स्त्री० **अनिर्वातनी**] १. वापस न न लौटनेवाला । २. तत्पर । अध्यवसायी । मुस्तैद । ३. वीर । पीठ न दिखानेवाला । ४. विष्णु और ईश्वर का विशेषण (को०) ।

अनिवार(पु)—वि० [सं० **अनिवार्य**] दे० 'अनिवार्य' । उ०—प्रति सूधो टेढ़ो बहुरि, प्रेमपंथ अनिवार ।—रसखान०, पृ० ९ ।

अनिवारित—वि० [सं०] जिसे रोका नहीं गया । अबाधित । जिसका विरोध न हो । निर्विरोध [को०] ।

अनिवार्य—वि० [सं०] १. जो निवारण के योग्य न हो । जो हटे नहीं । अटल । २. अवश्यभावी । जो होकर रहे । जो अवश्य हो । ३. जिसके बिना काम न चले । परम आवश्यक । जैसे—उन्नति के लिये शिक्षा का होना अनिवार्य है (शब्द०) ।

अनिविशमान—वि० [सं०] न बैठनेवाला । विश्राम न करनेवाला । गतिशील [को०] ।

अनिवेशन—वि० [सं०] जिसके पास विश्राम का स्थान न हो [को०] ।

अनिवृत्तिवादर—संज्ञा पुं० [सं०] जैन शास्त्रानुसार वह कर्म जिसका परिणाम निवृत्त या दूर हो जाय पर कषाय या वासना रह जाय ।

अनिविष्ट—वि० [सं०] अविवाहित [को०] ।

अनिश—क्रि० वि० [सं०] निरंतर । अनवरत । लगातार । अविश्रांत ।

अनिश्चय—संज्ञा पुं० [सं०] सदेह । निश्चय का अभाव [को०] ।

अनिश्चत—वि० [सं०] जिसका निश्चय न हुआ हो । अनियत । अनिर्दिष्ट । जिसका कुछ ठीक ठाक न हो । जिसके विषय में कुछ स्थिर न हुआ हो ।

अनिषिद्ध—वि० [सं०] जो अवैध या वर्जित न हो । प्रशस्त [को०] ।

अनिष्कासिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] पर्दानशीन औरत ।

विशेष—चंद्रगुप्त के समय यह नियम था कि पर्दानशीन औरतों से घरों के भीतर ही काम लिया जाता था और उनको वहीं पर वेतन पहुँचा दिया जाता था ।

अनिष्ट¹—[सं०] १. जो इष्ट न हो । इच्छा के प्रतिकूल । अनभिलषित । अवांछित । २. बुरा । निषिद्ध (को०) । ३. यज्ञ के लिये वर्जित । जो यज्ञ के लिये प्रशस्त न हो (को०) ।

अनिष्ट²—संज्ञा पुं० अमंगल । अहित । बुराई । इच्छाविरुद्ध कार्य । खराबी । हानि ।

अनिष्टकर—वि० [सं०] अनिष्ट करनेवाला । अहितकारी । हानिकारक । अशुभकारक ।

अनिष्टकारी—वि० [सं० अनिष्टकारिन्] [स्त्री० अनिष्टकारिणी] दे० 'अनिष्टकर'।

अनिष्टग्रह—संज्ञा पुं० [सं०] हानि करनेवाला ग्रह। अशुभ ग्रह [को०]।

अनिष्टप्रवृत्तिक—वि०[सं०]राष्ट्र या राज्य के अनिष्टसाधन में तत्पर। बागी। राष्ट्रद्रोही।

विशेष—चाणक्य के समय में ऐसे लोगों को अग्नि में जलाने का दंड दिया जाता था।

अनिष्टप्रसंग—संज्ञा पुं० [सं० अनिष्टप्रसङ्ग] १. अवांछित या अनिच्छित घटना। २. गलत वस्तु, तर्क, अथवा नियम का संबंध [को०]।

अनिष्टफल—संज्ञा पुं० [सं०] अवांछित परिणाम। बुरा नतीजा[को०]।

अनिष्टशंका—संज्ञा स्त्री० [सं० अनिष्टशङ्का] दुर्भाग्य या अवांछित को आशंका। अहित होने का डर [को०]।

अनिष्टसूचक—वि० [सं०] अनिष्ट या अहित की सूचना देनेवाला [को०]।

अनिष्ट हेतु—संज्ञा पुं० [सं०] बुरा लक्षण। अपशकुन।

अनिष्टानुबंधी—वि० [सं० अनिष्टानुबन्धिन्] एक के बाद एक विपत्ति का आना। लगातार। विपत्तियों का आगमन [को०]।

अनिष्टापत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०]अनिष्ट या अशुभ की प्राप्ति। अवांछित घटना [को०]।

अनिष्टापादन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अनिष्टापत्ति' [को०]।

अनिष्टाप्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] अनिष्ट की आप्ति अर्थात् प्राप्ति। अनिष्टापत्ति [को०]।

अनिष्टाशंसी—वि० [सं० अनिष्टाशंसिन्] अनिष्ट की सूचना देने वाला। अनिष्टसूचक।

अनिष्टी—वि०[सं० अनिष्टिन्] जिसने यज्ञ आदि न किया हो (को०)। २. अभागा। भाग्यहीन।

अनिष्टोत्प्रेक्षण—संज्ञा पुं०[सं०]अनिष्ट की कल्पना। अनिष्ट होने की संभावना [को०]।

अनिष्ठा—संज्ञा पुं० [सं०] अदृढ़ता। निष्ठा का अभाव [को०]।

अनिष्ठुर—वि० [सं०] जो कठोर न हो। जो निर्दय न हो। दयावान। कोमलचित्त [को०]।

अनिष्ण—वि० [सं०] जो प्रवीण न हो। अदक्ष। अकुशल [को०]।

अनिष्पत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] अपूर्णता। अधूरापन। असिद्धि।

अनिष्पन्न—वि० [सं०] १. अधूरा। अपूर्ण। २. असंपन्न। असिद्ध।

अनिस(पु)—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'अनिश'।

अनिसर्ग—वि० [सं०] अस्वाभाविक। अप्राकृतिक [को०]।

अनिसृष्ट—वि०[सं०] १. जिसने अधिकार या आज्ञा न प्राप्त की हो। २. जिसके व्यवहार या उपयोग की आज्ञा न ले ली गई हो।

अनिसृष्टोपभोक्ता—संज्ञा पुं० [सं०अनिसृष्टोपभोक्तृ] वह जो मालिक की आज्ञा के बिना धरोहर रखी हुई वस्तु काम में लाए।

अनिस्तीर्ण—वि०[सं०]१. जो पार न किया गया हो। जो अस्वीकृत न किया गया हो। जिससे छुटकारा न मिला हो। २. अभियोग जिसका उत्तर न दिया गया हो। जिसका खंडन न किया गया हो [को०]।

अनिस्तीर्णाभियोग—संज्ञा पुं० [सं०] वह अभियुक्त जिसने अभियोग का खंडन कर उससे मुक्ति न पा ली हो [को०]।

अनी[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० अणि = अग्रभाग; नोक] १. नोक। सिरा। कोर। उ०—सतगुरु मारी प्रेम की रही कटारी टूटि। वैसी अनी न सालई जैसी सालै मूठि।—कबीर (शब्द०)। २. नाव या जहाज का अगला सिरा। माँगा। माथा। गलही। ३. जूते की नोक। ४. पानी में निकली हुई जमीन की नोक।

अनी[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० अनीक = समूह, सेना] १. समूह। झुंड। दल। उ०—नारदादि सनकादि प्रजापति, सुर नर असुर अनी।—सूर०, १।३७१। २. सेना। फौज। उ०—बेषु न सो सखि सीय न संगा। आगे अनी चली चतुरंगा।—तुलसी (शब्द०)।

अनी[3]—संज्ञा स्त्री० [हिं० आन = मर्यादा] ग्लानि। खेद। लाग। जैसे—उसने अनी के बस कनी खा ली (शब्द०)।

अनी[4]†—संबो स्त्री० [सं० अयि पं० अनी] री। अरी। अो।

अनीक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. सेना। फौज। २. समूह। झुंड। ३. युद्ध। संग्राम। लड़ाई।

अनीक[2](पु)—वि० [सं० अ = नहीं + फा० नेक, हिं० नीक] जो अच्छा न हो। बुरा। खराब।

अनीकिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. अक्षौहिणी या पूरी सेना का दसवाँ भाग जिसमें २१८७ हाथी, ५६६१ घोड़े और १०९३५ पैदल होते हैं। २. कमलिनी। पद्मिनी। नलिनी।

अनीक्षण—संज्ञा पुं० [सं०] न देखना। दृष्टिनिक्षेप न करना [को०]।

अनीच—वि० [सं०] १. जो नीचा न हो। उत्तम। आदर के योग्य। २. जिसका उच्चारण अनुदात्त स्वर में न हुआ हो। उदात्त स्वर में उच्चारित [को०]।

अनीचदर्शी—संज्ञा पुं० [सं० अनीचदर्शिन्] एक बुद्ध का नाम [को०]।

अनीचानुवर्ती—वि० [सं० अनिचानुवर्तिन्] १. नीच अथवा अशिष्ट जनों से संपर्क न रखनेवाला। २. निष्ठावान् या विश्वसनीय पति या प्रणयी [को०]

अनीठ(पु)—वि०[सं०अनिष्ट; प्रा० अणिट्ठ] १. जो इष्ट न हो। अनिश्चित। अप्रिय। २. बुरा। खराब। उ०—(क) जाउ जू जैए अनीठ बड़े अरु ईठ बड़े पर दीठ बड़े हौ।—देव (शब्द०)। (ख) हा हा बजाइ त्यों पीठ दै बैठुरी काहू अनीठ की दीठि परैगी।—देव (शब्द०)।

अनीठि(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० अन + इष्टि] १. अनिच्छा। २. बुराई। ३. क्रोध।

अनीड[1]—वि० [सं०] बिना घोंसले का। २. आश्रयहीन। जिसका निश्चित आवास न हो। ३. अशरीरी।

अनीड[2]—संज्ञा पुं० अग्नि का एक नाम [को०]।

अनीत(पु)संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अनीति'। उ०—ऐसौ और न जानिबी जग अनीत करनार। जामैं उपज्यौ सरन सौ ताकौ बेधत मार।—स० सप्तक, पृ० ३६५।

अनीति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. नीति का विरोध। अन्याय। बेइंसाफी। २. शरारत। ३. अंधेर। अत्याचार। ४. ईति अर्थात् विपत्ति या कष्ट का अभाव (को०)।

अनीतिज्ञ—वि० [सं०] दुराचार में प्रवीण। अनुचित कार्य में पटु। जिसे सदाचार या नीति का ज्ञान न हो। धृष्ट [को०]।

अनीतिविद्—वि० [सं०] दे० 'अनीतिज्ञ' [को०]।

अनीतिमान्—वि० [सं० **अनीतिमत्**] [स्त्री० **अनीतिमती**] अन्यायी अन्यथाचारी।

अनीदृश—संज्ञा पुं० [सं०] भिन्न। जो एक से न हों। जिनमें समानता न हो [को०]।

अनीप्सित—वि० [सं०] अनिच्छित। अनभिलषित। अनचाहा। चाहा हुआ।

अनीर्षु—वि० [सं०] जिसमें ईर्ष्या न हो। द्वेषरहित [को०]।

अनील—वि० [सं०] जो नीला न हो। श्वेत [को०]।

अनीलवाजी—संज्ञा पुं० [सं० **अनीलवाजिन्**] १. सफेद घोड़ेवाला पुरुष। २. अर्जुन।

अनीश[1]—वि० [सं०] १. ईशरहित। बिना अभिभावक या मालिक का। २. जो स्वामी या मालिक न हो। ३. शक्तिरहित। असमर्थ। ४. जिसके ऊपर कोई न हो। सबसे श्रेष्ठ। ५. जो स्वतंत्र या खुदमुख्तार न हो [को०]।

अनीश[2]—संज्ञा पुं० १. विष्णु। २. ईश्वर से भिन्न वस्तु। जीव। माया।

अनीश[3]—संज्ञा स्त्री० [सं०] असहायावस्था। असमर्थता। दीन अवस्था [को०]।

अनीश्वर[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. दे० 'अनीश'। २. ईश्वर का अस्तित्व या सत्ता न मानना [को०]।

अनीश्वर[2]—वि० १. ईश्वर को न माननेवाला। २. दे० 'अनीश'।

अनीश्वरवाद—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० **अनीश्वरवादी**] १. ईश्वर के अस्तित्व पर अविश्वास। नास्तिकता। २. पूर्व मीमांसा। मीमांसा दर्शन।

अनीश्वरवादी—वि० [सं० **अनीश्वरवादिन्**] १. ईश्वर को न मानने वाला। नास्तिक। २. मीमांसक।

अनीस(पु)—वि० [हिं०] १. दे० 'अनीश'[1]। २. जिसका कोई रक्षक न हो। अनाथ। उ०—बाल दसा जेते दुख पाए। अति अनीस नहिं जाय गनाए।—तुलसी (शब्द०)।

अनीसून—संज्ञा पुं० [यू०] एक प्रकार की सौंफ जो उत्तर भारत में बहुत होती है।

अनीह[1]—वि० [सं०] १. इच्छारहित। निस्पृह। उ०—एक अनीह अरूप अनामा।—मानस, १।१३। २. निश्चेष्ट। बेपरवाह। उदासीन।

अनीह[2]—संज्ञा पुं० अयोध्या के एक नरेश का नाम [को०]।

अनीहा[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. अनिच्छा। निष्कामता। निस्पृहता। २. निश्चेष्टता। बेपरवाही। उदासीनता।

अनीहा[2]—वि० अप्रिय। जो प्रिय न लगे [को०]।

अनु[1]—उप० [सं०] जिस शब्द के पहले यह उपसर्ग लगता है उसमें इन अर्थों का संयोग करता है—१. पीछे। जैसे, अनुगामी, अनुसरण। २. सदृश। जैसे, अनुकाल, अनुकूल, अनुरूप, अनुगुण। ३. साथ। जैसे, अनुकंपा, अनुग्रह, अनुपात। ४. प्रत्येक। जैसे, अनुक्षण, अनुदिन,। ५. बारंबार। जैसे, अनुगणन अनुशीलन। गणरत्न महोदधि में इसके निम्नांकित अर्थ निर्दिष्ट किए गए हैं—वेदाध्ययन, अनुष्ठान, सामीप्य, पश्चाद्भाव, अनुबंधन, साम्य, अभिमुख, हीन, विसर्ग और लक्षण।

अनु[2]—संज्ञा पुं० १. राजा ययाति का एक पुत्र। २. प्राचीन भारत की एक जाति [को०]।

अनु[3](पु)—संज्ञा पुं० [सं० **अणु**] दे० 'अणु'। उ०—मिल्यो चंद्र कनि चंपिकनि अनु अनु ह्वै मनु जाइ।—भिखारी ग्रं०, भा० २, पृ० १४१।

अनु[4](पु)—अव्य० [हिं०] हाँ। ठीक है। उ०—अनु तुम कही नीक यह सोभा। पै कुल सोइ भँवर जेहि लोभा।—जायसी (शब्द०)।

अनुकंपन[1]—संज्ञा पुं० [सं० **अनुकम्पन**] १. अनुग्रह। दया। २. सहानुभूति [को०]।

अनुकंपन[2]—वि० दया करनेवाला। कोमलहृदय। सहृदय [को०]।

अनुकंपनीय—वि० [सं० **अनुकम्पनीय**] दे० 'अनुकंप्य' [को०]।

अनुकंपा—संज्ञा स्त्री० [सं० **अनुकम्पा**] [वि० **अनुकम्पित**] १. दया। कृपा। अनुग्रह। २. सहानुभूति। हमदर्दी।

अनुकंपित—वि० [सं० **अनुकम्पित**] जिस पर कृपा की गई हो। अनुगृहीत।

अनुकंप्य[1]—वि० [सं० **अनुकम्प्य**] दया के योग्य। सहानुभूति का पात्र [को०]।

अनुकंप्य[2]—संज्ञा पुं० १. शीघ्रगामी दूत या समाचारवाहक। २. तपस्वी [को०]।

अनुक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] कामी। कामुक। विषयी। कामी पुरुष।

अनुक[2]—वि० लालची। इच्छुक। २. कामवासनाग्रस्त। ३. ढालुआँ। ४. अधीन। आश्रित [को०]।

अनुकथन—संज्ञा पुं० [सं०] क्रमबद्ध वचन। कथोपकथन। वार्तालाप बातचीत। उ०—मुनि अनुकथन परसपर होइ।—मानस, १।४१।

अनुकनीय—वि० [सं० **अनुकनीयस्**] सबसे छोटे से बड़ा। कनिष्ठतम से प्रथम [को०]।

अनुकर—संज्ञा पुं० [सं०] सहायक [को०]।

अनुकरण—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० **अनुकरणीय**, **अनुकृत**] १. देखा देखी काम। नकल। समान आचरण। उ०—आज सोचतो हूँ जैसे पद्मिनी थी कहती—'अनुकरण कर मेरा'।—लहर पृ० ६७। २. पीछे आनेवाला। वह जो पीछे उत्पन्न हो। उ०—आलंबन उद्दीपन के जे अनुकरण बखान। ते कहिए अनुभाव सब, दंपति प्रीति विधान।—केशव (शब्द०)।

अनुकरणीय—वि० [सं०] [स्त्री० **अनुकरणीया**] अनुकरण करने लायक। नकल करने योग्य।

अनुकर्ता—संज्ञा पुं० [सं०] १. अनुकरण करनेवाला। आदर्श पर चलने वाला। २. नकल करनेवाला। ३. आज्ञाकारी। हुक्म माननेवाला।

अनुकर्म—संज्ञा पुं० [सं०] अनुकरण। नकल [को०]।

अनुकर्ष—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक गाड़ी या रथ का तला। २. खिंचाव। आकर्षण। ३. देवता का आवाहन। ४. विलंब से किसी कर्तव्य का पालन।

अनुकर्षण--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अनुकर्ष' ।

अनुकलन--संज्ञा पुं० [सं०] अंकन । लेखन । सज्जा करना । उ०--हिंदी लिखने के लिये फारसी लिपि का इस प्रकार अनुकलन करने के कारण ।--संपू० अभि० ग्रं०, पृ० १३१ ।

अनुकल्प--संज्ञा पुं० [सं०] आवश्यकतानुसार निर्दिष्ट के अभाव में अन्य विकल्प का व्यवहार । जैसे यव के अभाव में गेहूँ या चावल के व्यवहार का विकल्प । २. कल्प (छह वेदांगों में से एक) से संबंधित ग्रंथ [को०] ।

अनुकांक्षा--संज्ञा स्त्री० [सं० **अनुकाङ्क्षा**] [वि० **अनुकांक्षित, अनुकांक्षी**] इच्छा । अभिलाषा । आकांक्षा ।

अनुकांक्षित--वि० [सं० **अनुकाङ्क्षित**] इच्छित । अभिलषित । आकांक्षित ।

अनुकांक्षी--वि० [सं० **अनुकाङ्क्षिन्**] [वि० स्त्री० **अनुकांक्षिणी**] इच्छा रखनेवाला । चाहनेवाला । आकांक्षी ।

अनुकाम--वि० [सं०] १. प्रिय । इच्छानुकूल । २. इच्छुक । विलासी [को०] ।

अनुकामी--वि० [सं० **अनुकामिन्**] इच्छानुसार कार्य करनेवाला । स्वेच्छाचारी [को०] ।

अनुकामीन--वि० [सं०] दे० 'अनुकामी' [को०] ।

अनुकार--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अनुकरण' ।

अनुकारी--वि० [सं० **अनुकारिन्**] [स्त्री० **अनुकारिणी**] १. अनुकर्ता । अनुकरण करनेवाला । देखादेखी करनेवाला । नकल करनेवाला । २. आज्ञाकारी । हुक्म पर चलनेवाला ।

अनुकार्य[1]--वि० [सं०] जिसकी नकल की जा सके । नकल किए जाने योग्य ।

अनुकार्य[2]--संज्ञा पुं० अभिनेता द्वारा अनुकृत व्यक्ति । वह जिसकी नकल की जाय । उ०--उन अभिनेताओं को ही दर्शक लोग अनुकार्य समझ लेते हैं ।--स० शास्त्र, पृ० ४७ ।

अनुकाल--वि० [सं०] सामयिक । समयानुकूल [को०] ।

अनुकीरतन(पु)--संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अनुकीर्तन' । उ०--जहाँ प्रसिद्ध निषेध को अनुकीरतन प्रकाश ।--मतिराम ग्रं०, पृ० ४३९ ।

अनुकीर्तन--संज्ञा पुं० [सं०] १. वर्णन । कथन । २. घोषणा । उद्घोष । प्रचार [को०] ।

अनुकुंचित--वि० [सं० **अनुकुञ्चित**] १. झुका हुआ । २. झुकाया हुआ । टेढ़ा किया हुआ [को०] ।

अनुकूल[1]--वि० [सं०] [स्त्री० **अनुकूला**] १. मुआफिक । २. पक्ष में रहनेवाला । सहायक । हितकर । ३. प्रसन्न । उ०--होउ महेस मोहि पर अनुकूला ।--मानस, १ । १५ ।

अनुकूल[2]--संज्ञा पुं० १. वह नायक जो एक ही विवाहित स्त्री में अनुरक्त हो । २. एक काव्यालंकार जिसमें प्रतिकूल से अनुकूल वस्तु की सिद्धि दिखाई जाय । जैसे--आगि लागि घर जरिगा, बड़ सुख कीन्ह । पिय के हाथ घयिलवा भरि भरि दीन्ह । (शब्द०) । ३. राम के दल का एक बंदर । ४. सबके प्रिय विष्णु ।

अनुकूल[3](पु)--क्रि० वि० [हिं०] ओर । तरफ । उ०--ढाहति भूप रूप तरु मूला । चली बिपति बारिध अनुकूला ।--मानस २।३४ ।

अनुकूलता--संज्ञा स्त्री० [सं०] १. अप्रतिकूलता । अविरुद्धता । २. पक्षपात । हितकारिता । सहायता । ३. प्रसन्नता ।

अनुकूलन--संज्ञा पुं० [सं०] अनुकूल होने का प्रभाव । उ०--अर्वाचीन काल में भी हिंदू सभ्यता ने बड़ी स्थिरता दिखाई है और अनुकूलन की शक्ति का भी परिचय दिया है ।--हिंदू सभ्यता, पृ० ५८४ ।

अनुकूलना(पु)--क्रि० स० [सं० **अनुकूलन से नाम०**] १. अप्रतिकूल होना । मुआफिक होना । २. पक्ष में होना । हितकर होना । ३. प्रसन्न होना । उ०--फगुआ देन कह्यो मन भायो सबै गोपिका फूलीं । कंठ लगाय चलीं प्रियतम कौं अपने गृह अनुकूलीं ।--सूर (शब्द०) ।

अनुकूला--संज्ञा स्त्री० [सं०] १. एक वर्णवृत्त जिसके प्रत्येक चरण में भगण, तगण, नगण और दो गुरु (ऽ।।+ऽऽ।+।।।+ऽऽ) होते हैं । मौक्तिक माला । जैसे--पावक पूज्यौ समिध सुधारी । आहुति दीन्हीं सब सुखकारी ।--केशव (शब्द०) । २. दंती वृक्ष ।

अनुकूलित--वि० [सं०] संमानित । जिसका भव्य स्वागत हुआ हो [को०] ।

अनुकृत--वि० [सं०] अनुकरण किया हुआ । नकल किया हुआ ।

अनुकृति--संज्ञा स्त्री० [सं०] १. समान आचरण । देखा देखी कार्य । नकल । अनुकरण । उ०--हृदय की अनुकृति बाह्य उदार ।--कामायनी, पृ० ४६ । २. वह काव्यालंकार जिसमें एक वस्तु का कारणांतर से दूसरी वस्तु के अनुसार हो जाना वर्णन किया जाय । यह वास्तव में सम अलंकार के अंतर्गत ही आता है ।

अनुकृष्ट--वि० [सं०] १. आकृष्ण । खिंचा हुआ । २. समाहृत । संमिलित । ३. आरोपित । गर्भित [को०] ।

अनुक्त--वि० [सं०] अकथित । बिना कहा हुआ । अनभिहित ।

अनुक्ति--संज्ञा स्त्री० [सं०] १. न बोलना । न कहना । अकथना । २. वह बात जो उचित न हो । अनुचित बात [को०] ।

अनुक्रंदन--संज्ञा पुं० [सं० **अनुक्रन्दन**] उत्तर में चिल्लाना । प्रतिक्रंदन [को०] ।

अनुक्रकच--वि० [सं०] जिसमें लकड़ी चीरने की आरी जैसे दाँत बने हों । दँतैदार [को०] ।

अनुक्रम[1]--वि० [सं०] क्रमबद्ध । सिलसिलेवार । तरतीबवार । उ०--प्रकृति पुरुष, श्रीपति सीतापति, अनुक्रम कथा सुनाई ।--सूर, १०।२८१६ ।

अनुक्रम[2]--संज्ञा पुं० १. क्रम । सिलसिला । तरतीब । २. एक के बाद एक होने की स्थिति या क्रिया (को०) । ३. दे० 'अनुक्रमणिका' [को०] ।

अनुक्रमण--संज्ञा पुं० [सं०] १. क्रमबद्ध रूप से आगे बढ़ना । २. पीछे पीछे चलना । अनुगमन [को०] ।

अनुक्रमणिका--संज्ञा स्त्री० [सं०] १. क्रम । तरतीब । सिलसिला २. सूची । तालिका । फिहरिस्त । ३. कात्यायन का एक ग्रंथ जिसमें मंत्रों के ऋषि, छंद, देवता और विनियोग बताए गए

हैं। ४. अक्षरों और मात्राओं के क्रमानुसार तैयार की हुई शब्द, ग्रंथ, नाम या विषय आदि की सूची ।

अनुक्रमणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अनुक्रमणिका' [को०]।

अनुक्रांत—वि० [सं० **अनुक्रांत**] १. पारायण किया हुआ। पढ़ा हुआ। २. विधिपूर्वक संपन्न। ३. अनुक्रमणी आदि में समाविष्ट। परिगणित [को०]।

अनुक्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दे० 'अनुक्रम'। २. 'अनुकर्म' (को०)।

अनुक्रोश—संज्ञा पुं० [सं०] अनुकंपा। दया। उ०—दयित, क्या मुझे आर्त जान के, अधिप ने अनुक्रोश मान के, घर दिया तुम्हें भेज आपही।—साकेत, पृ० ३१२।

अनुक्षण—क्रि० वि० [सं०] १. प्रतिक्षण। २. लगातार। निरंतर।

अनुक्षत्ता—संज्ञा पुं० [सं० **अनुक्षत्तृ**] द्वाररक्षक अथवा सारथी का अनुचर [को०]।

अनुक्षपा—संज्ञा संज्ञा [सं० **अनुक्षपम्**] एक रात के बाद दूसरी रात का अनवरत क्रम [को०]।

अनुक्षेत्र—संज्ञा पुं० [सं०] उड़ीसा के मंदिरों से पुजारियों को देवोत्तर सपत्ति में से दी जानेवाली वृत्ति [को०]।

अनुख्याता—संज्ञा पुं० [सं० **अनुख्यातृ**] अनुसंधान करनेवाला। पता लगानेवाला [को०]।

अनुख्याति—संज्ञा स्त्री० [सं०] अनुसंधान। पता लगाना [को०]।

अनुगंतव्य—संज्ञा पुं० [सं० **अनुगन्तव्य**] १. अनुगमन किए जाने के योग्य। जैसे—मृत पति के साथ पत्नी का सहमरण। २. अनुकरण किए जाने योग्य। ३. अनुसंधान करने योग्य। जिसे खोजा जाय [को०]।

अनुग[1]—वि०[सं०] पीछे चलनेवाला। अनुगामी। अनुयायी। पैरोकार उ०—वन में अग्रज अनुग, अनुज ही अग्रणी।—साकेत, पृ० १३४।

अनुग[2]—संज्ञा पुं० सेवक। नौकर। चाकर। अनुचर। उ०—उतरि अनुज अनुगनि समेत प्रभु गुरु द्विजगन चरननि सिर नायो।—तुलसी ग्रं०, पृ० ४०२।

अनुगत[1]—वि० [सं०] १. पीछे पीछे चलनेवाला। अनुगामी। अनुयायी उ०—चिर अनुगत सौंदर्य के समादर में।—लहर, पृ० ६५। २. अनुकूल। मुआफिक। जैसे;—नियमानुगत कार्य होना उत्तम है (शब्द०)।

अनुगत[2]—संज्ञा पुं० १. सेवक। अनुचर। नौकर। २. संगीत में मध्यम लय या समय (को०)।

अनुगतार्थ—वि० [सं०] प्रायः समान अर्थवाला। करीब करीब मिलते जुलते अर्थ का।

अनुगत—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. अनुगमन। अनुसरण। पीछे पीछे चलना। २. अनुकरण। नकल। ३. अंतिम दशा। मरण।

अनुगतिक—वि०[सं०]अनुसरण करनेवाला। नकल करनेवाला [को०]।

अनुगम—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अनुगमन' [को०]।

अनुगमन—संज्ञा पुं० [सं०] १. पीछे चलना। अनुसरण। २. समान आचरण। ३. विधवा का मृत पति के शव के साथ जल मरना। ४. सहवास। संभोग। ५. स्वीकरण। स्वीकार। मानना [को०]।

अनुगम्य—संज्ञा पुं०[सं०] वह व्यक्ति जिसका अनुसरण अथवा अनुकरण किया जाय [को०]।

अनुगर्जित[1]—वि० [सं०] गर्जन किया हुआ [को०]।

अनुगर्जित[2]—संज्ञा पुं० गरजने जैसी प्रतिध्वनि [को०]।

अनुगवीन—संज्ञा पुं० [सं०] ग्वाला। गोपालक [को०]।

अनुगांग—वि० [सं० **अनुगाङ्ग**] गंगा के किनारे का (देश०)।

अनुगादी—वि० [सं० **अनुगादिन्**] पुनरावृत्ति करनेवाला। दूसरे के शब्दों को दोहरानेवाला। प्रतिध्वनि करनेवाला [को०]।

अनुगामी—वि०[सं० **अनुगामिन्**][वि० स्त्री० **अनुगामिनी**]१. पश्चाद्वर्ती पीछे चलनेवाला। उ०—नहीं आप होते अनुगामी निरय के।—करुणा०, पृ० २२। २. समान आचरण करनेवाला। ३. आज्ञाकारी। हुक्म माननेवाला। उ०—मोहि जानिय आपन अनुगामी।—मानस, १।२८१। ४. सहवास या संभोग करनेवाला। ५. जैन सिद्धांत के अनुसार क्षयोपशमनिमित्त अवधिज्ञान के छह भेदों में प्रथम। यहाँ अनुगामी उसे कहा गया है जो दूसरे क्षेत्र या जन्म में भी जीव के साथ जाता है। उ०—'अनुगामी जो दूसरे क्षेत्र या जन्म में भी जीव के साथ जाता है'। हिंदू०स०, पृ० २४१।

अनुगामुक—वि० [सं०] पीछे चलने का अभ्यासी। सदा पीछे चलने वाला [को०]।

अनुगीत—संज्ञा पुं० [सं०] एक छंद का नाम। दे० 'गीता'। २. गीत के बाद गाया हुआ गीत। उत्तरगीत [को०]।

अनुगीता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. महाभारत के अश्वमेध पर्व के १६ से ९२ अध्याय तक का नाम [को०]।

अनुगीति—संज्ञा स्त्री० [सं०] आर्या छंद का एक भेद [को०]।

विशेष—इसके प्रथम चरण में २७ और द्वितीय चरण में ३२ मात्राएँ होती हैं।

अनुगुण[1]—संज्ञा पुं० [सं०] एक काव्यालंकार जिसमें किसी वस्तु के पूर्वगुण का दूसरी वस्तु के संसर्ग से बढ़ना दिखाया जाय। जैसे—मुक्तमाल तिय हास ते अधिक स्वेत ह्वै जाय।—(शब्द०)। २. स्वाभाविक विशेषता [को०]।

अनुगुण[2]—वि० १. समान गुणोंवाला। समान प्रकृतिवाला। २. अनुकूल। मनपसंद। ३. आज्ञाकारी [को०]।

अनुगुप्त—वि० [सं०] ढका हुआ। रक्षित। आवरण किया हुआ[को०]।

अनुगृह—संज्ञा पुं० [सं० **अनुगृहम्**] मकान के ऊपर की छत [को०]।

अनुगृहीत—वि० [सं०]१. जिसपर अनुग्रह किया गया हो। उपकृत। उ०—मैं अनुगृहीत हूँ और कहूँ क्या देवी।—साकेत,पृ०२४३। २. कृतज्ञ।

अनुगौन(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अनुगमन'। उ०—देखा देखी प्रजहु सब कीनो ता अनुगौन।—भारतेंदु ग्रं० भा० १, पृ० २२०।

अनुग्रह—संज्ञा पुं० [सं०] १. दूसरे का दुःख दूर करने की इच्छा। उ०—कृपा अनुग्रह अंगु अघाई।—मानस, २।२९९। २. कृपा। दया। अनुकंपा। उ०—करौ अनुग्रह सोइ बुद्धिरासि सुभ गुन सदन।—मानस, १।१। ३. अनिष्ट निवारण। उ०—संकर दीन दयाल अब, येहि पर होहु कृपाल। साप अनुग्रह होइ जेहि, नाथ थोरेही काल। मानस—७।१०८। ४. राज्य या

राजा की कृपा से प्राप्त सहायता। सरकारी रिआयत। ५. पृष्ठ भाग का रक्षक [को०]।

अनुग्रही—वि० [सं० **अनुग्रहिन्**] जादूगरी में पटु। बाजीगरी में निपुण [को०]।

अनुग्रासक—संज्ञा पुं० [सं०] ग्रास। कौर। नेवाला [को०]।

अनुग्राहक—वि० [सं०] [वि० स्त्री० **अनुग्राहिका**] अनुग्रह करनेवाला। कृपालु। सहायक। उपकारी।

अनुग्राही—वि० [सं० **अनुग्राहिन्**] दे० 'अनुग्राहक'।

अनुग्राह्य—वि० [सं०] कृपा का पात्र। अनुग्रह के योग्य [को०]।

अनुघटन—संज्ञा पुं० [सं०] आपस में जोड़ना। मिलाना। संबंध स्थापित करना [को०]।

अनुघात—संज्ञा पुं० [सं०] नाश। संहार।

अनुघातन—वि० [सं०] मार डालने या नाश करनेवाला। उ०—अघ अरिष्ट धेनुक अनुघातन।—सूर, १०।६८१।

अनुच(५)—वि० [सं० **अनुच्च**] जो ऊँचा या श्रेष्ठ न हो। अश्रेष्ठ। निम्न। नीच। उ०—इहि बिधि उच्च अनुच तन धरि धरि देस बिदेस बिचरतौ।—सूर०, १।२०३।

अनुचर—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० स्त्री० **अनुचरा, अनुचरी**] १. पीछे चलनेवाला दास। नौकर। उ०—अपनी आवश्यकता का अनुचर बन गया।—करुणा०, पृ० २६। २. सहचर। साथी। उ०—सामने था शैशव से अनुचर मानिक युवक अब।—लहर, पृ०७२।

अनुचारक—संज्ञा पुं० [सं०] सेवक। परिचारक। अनुगामी [को०]।

अनुचारिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] सेविका। दासी [को०]।

अनुचारी—वि० [सं०] दे० 'अनुचर'। उ०—तात, भरत, शत्रुघ्न, मांडवी हम सब उनके अनुचारी।—साकेत, पृ० ३८१।

अनुचिंतन—संज्ञा पुं० [सं **अनुचिन्तन**] १. विचार। गौर। २. भूली हुई बात को मन में लाना। ३. लगातार चिंतन। चिंता (को०)।

अनुचित—वि० [सं०] १. अयोग्य। अयुक्त। अकर्तव्य। नामुनासिब। बुरा। खराब। उ०—जेहि बस जन अनुचित करहिं चरहिं विश्व प्रतिकूल।—मानस, १।२७७। २. पंक्तिबद्ध किया हुआ (को०)।

अनुचिष्ट(५)—वि० [सं०**अनुच्छिष्ट**] दे० 'अनुच्छिष्ट'। उ०—करुणामृत सुकवित्त युक्ति अनुचिष्ट उचारी।—भक्तमाल (श्री०), पृ० ५३१६।

अनुच्छित्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पूर्णतः पृथक् न होना। २. पूर्णतः नष्ट न होना। ३. अनश्वरता [को०]।

अनुच्छिष्ट—वि० [सं०] जो जूठा या व्यवहृत न हो। शुद्ध। निर्दोष। ग्रहण करने योग्य [को०]।

अनुच्छेद—संज्ञा पुं० [स०] १. दे० 'अनुच्छित्ति'। २. नियम, अधिनियम आदि का वह अंश जिनमें एक बात का विशद विवरण हो। जैसे राष्ट्रसंघ के घोषणापत्र की ७ वीं धारा का दूसरा अनुच्छेद। ३. किसी रचना या ग्रंथ के एक प्रकरण के वे छोटे छोटे अंश जिनमें संबद्ध विषय के एक एक अंग का विवेचन होता है। पैराग्राफ।

अनुछिन(५)—वि० [सं० **अनुक्षण**] क्षण क्षण। प्रत्येक क्षण। लगातार। उ०—'हरीचंद' ते महामूढ़ जे इनहिं न अनुछिन ध्यावैं।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ८०।

अनुज[1]—वि० [सं०] जो पीछे उत्पन्न हुआ हो। उ०—वन में अग्रज अनुज, अनुज ही अग्रणी।—साकेत, पृ० १३४।

अनुज[2]—संज्ञा पुं० १. छोटा भाई। उ०—राम देखावहिं अनुजहि रचना।—मानस, १।२२५। २. एक पौधा। स्थलपद्म।

अनुजन्मा—संज्ञा पुं० [सं० **अनुजन्मन**] दे० 'अनुज' [को०]।

अनुजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] छोटी बहन। उ०—कलिकाल बिहाल किए मनुजा। नहिं मानत क्वौ, अनुजा तनुजा।—मानस,७।१०२।

अनुजात—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० **अनुजाता**] दे० 'अनुज' [को०]।

अनुजीवी[1]—वि० [सं० **अनुजीविन्**] [वि० स्त्री० **अनुजीविनी**] सहारे पर जीनेवाला। आश्रित।

अनुजीवी[2]—संज्ञा पुं० सेवक। दास।

अनुजीव्य—वि० [सं०] सेवा का पात्र। सेव्य। जैसे,—गुरु, स्वामी, माता पिता आदि। २. रहन सहन या आचार व्यवहार में अनुकरणीय। जैसे,—गुरुजन, आचार्य, वयोवृद्ध आदि [को०]।

अनुज्ञप्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अनुज्ञापन' [को०]।

अनुज्ञा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. आज्ञा। हुक्म। अनुमति। इजाजत। उ०—माँग अनुज्ञा उनसे मैंने उस उपवन के फल खाए।—साकेत, पृ० ३८६। २. एक काव्यालंकार जिसमें दूषित वस्तु में कोई गुण देखकर उसके पीने की इच्छा का वर्णन किया जाय। जैसे,—चाहति हैं हम और कहा सखि, क्यों हूँ कहूँ पिय देखन पावैं। चेरियै सों जु गुपाल रचे तौ चलौ री सबै मिलि चेरि कहावैं।—रसखान (शब्द०)। ३. विवाह के प्रसंग में वाग्दान (को०)। ४. अनुताप। पश्चात्ताप (को०)। ५. अनुरोध (को०)। ६. सद्व्यवहार। अनुग्रह (को०)।

अनुज्ञात—वि० [सं०] जिसे अनुमति प्राप्त हो। आदेशप्राप्त। २. स्वीकृत। संमानित। अनुगहीत। ३. अधिकृत। जिसे कोई अधिकार मिला हो। ४. पृथक् किया हुआ। ५. पढ़ाया हुआ। निष्णात [को०]।

अनुज्ञातक्रय—संज्ञा पुं० [सं०] सरकार की ओर से दिया हुआ कुछ वस्तुओं को बेचने का ठेका [को०]।

अनुज्ञान—संज्ञा पुं० [सं०] १. दे० 'अनुज्ञा'। २. प्रस्थान के लिये स्वीकृति। ३. क्षमा। त्रुटि के लिये अनुग्रह (को०)।

अनुज्ञापक—वि० [सं०] आज्ञा या आदेश देनेवाला [को०]।

अनुज्ञापन—संज्ञा पुं० [सं०] १. आज्ञा देना। हुक्म देना। २. जताना। बतलाना।

अनुज्येष्ठ—वि० [सं०] १. ज्येष्ठतम से कनिष्ठ। सबसे बड़े से छोटा। द्वितीय। २. वरीयता के क्रम में दूसरा [को०]।

अनुतप्त—वि० [सं०] १. तपा हुआ। गरम। २. दुखी। खेदयुक्त। रंजीदा।

अनुतर—संज्ञा पुं० [सं०] १. पार जाना। दूसरे छोर पर जाना। २. लंबाई में तानना। ३. नदी पार करने का किराया [को०]।

अनुतर्ष—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्यास। पीने की इच्छा। २. अभिलाषा। आकांक्षा। ३. मदिरापान। ४. पीने का पात्र। चषक। ५. मदिरा [को०]।

अनुतर्षण—संज्ञा पुं० [सं०] १. मदिरापान। २. मदिरा पीने का पात्र [को०]।

अनुताप—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अनुतप्त] १. तपन। दाह। जलन। २. दुःख। खेद। रंज। ३. पछतावा। अफसोस।

अनुतापन—वि० [सं०] दुःख देनेवाला। पश्चात्ताप उत्पन्न करनेवाला। शोकप्रद [को०]।

अनुतापी—वि० [सं० अनुतापिन्] पश्चात्ताप करनेवाला। खेदयुक्त [को०]।

अनुत्क—वि० [सं०] [स्त्री० अनुत्का] उत्कंठारहित। अनुत्सुक। अभिलाषारहित। बिना लालसा का।

अनुत्कट—वि० [सं०] छोटा। सूक्ष्म [को०]।

अनुत्त—वि० [सं०] १. जो तर या भीगा न हो। सूखा २. अप्रेरित [को०]।

अनुत्तम[1]—वि० [सं०] १. जिससे उत्तम दूसरा न हो। सर्वोत्तम। २. जो सबसे अच्छा न हो। सर्वोत्तम नहीं। घटिया [को०]।

अनुत्तम[2]—संज्ञा पुं० १. शिव। २. विष्णु [को०]।

अनुत्तमता—संज्ञा स्त्री० [सं०] घटियापन। बुराई। उ०—सुख से मन को है जो ममता, है उसमें छिपी अनुत्तमता।—सागरिका, पृ० ७२।

अनुत्तर[1]—वि० [सं०] १. निरुत्तर। लाजवाब। कायल। उ०—यहाँ से एक जिज्ञासा अनुत्तर जगेगी अनिमेष।—हरी घास०, पृ० ५०। २. प्रधान। मुख्य (को०)। ३. सर्वोत्तम (को०)। ४. दृढ़। संलग्न (को०)। ५. जो उत्तरदिशा में न हो। दक्षिणी (को०)। ६. क्षुद्र। नीच (को०)।

अनुत्तर[2]—संज्ञा पुं० १. जैन देवताओं का एक वर्ग। २. उत्तर का अभाव (को०)।

अनुत्तरदायी—वि० [सं० अनुत्तरदायिन्] कर्तव्य और जिम्मेदारी न रखनेवाला। अपना उत्तरदायित्व न समझनेवाला।

अनुत्तरित—वि० [सं०] उत्तरविहीन। उत्तररहित। उ०—पूछा तुम कहाँ छिपे? प्रश्न रहा अनुत्तरित।—अपलक, पृ० ४८।

अनुत्तान—वि० [सं०] जो उत्तान न हो। पीठ के बल नहीं। छाती के बल लेटा हुआ। चित्त नहीं। पट [को०]।

अनुत्ताप—संज्ञा पुं० [सं०] बौद्धों के अनुसार दस क्लेशों में से एक।

अनुत्थान—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अनुत्थित] उत्थान का अभाव। चेष्टा या श्रम का न होना [को०]।

अनुत्पत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. उत्पत्ति का अभाव। २. विफलता। असफलता [को०]।

अनुत्पत्तिक—वि० [सं०] जो अब तक उत्पन्न न हुआ हो [को०]।

अनुत्पत्तिसम—संज्ञा पुं० [सं०] न्याय में जाति या असत् उत्तर के चौबीस भेदों में से एक।

विशेष—यदि किसी वस्तु के प्रसंग में कोई हेतु कहा जाय और उत्तर में उसी के प्रसंग में यह कहा जाय कि जब तक उस वस्तु की उत्पत्ति ही नहीं हुई, तब तक वह कहा हुआ हेतु कहाँ रहेगा? तो ऐसे उत्तर को अनुत्पत्तिसम कहेंगे। जैसे,-यदि वादी कहे—'शब्द अनित्य है, क्योंकि प्रयत्न से उत्पन्न होता है।' इसपर प्रतिवादी कहे—'यदि शब्द प्रयत्न से उत्पन्न होता है तो प्रयत्न से पहले इसकी उत्पत्ति नहीं होगी। और जब शब्द उत्पन्न ही नहीं हुआ, तब प्रयत्न से उत्पन्न होने का गुण कहाँ पर रहेगा? जब इस गुण का आधार ही नहीं रहा, तब वह अनित्यत्व का साधन कैसे कर सकता है?

अनुत्पन्न—वि० [सं०] जो उत्पन्न न हुआ हो। जो जन्मा न हो। जो उत्पन्न न किया गया हो [को०]।

अनुत्पाद—संज्ञा पुं० [सं०] उत्पत्ति का न होना। अस्तित्व में न आना [को०]।

अनुत्पादक—वि० [सं०] उत्पन्न करने में असमर्थ। जिससे उत्पन्न न हो [को०]।

अनुत्पादन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अनुत्पाद' [को०]।

अनुत्साह[1]—संज्ञा पुं० [सं०] संकल्प और प्रयत्न का अभाव। उ०—है शीतलता भी और दाह, उत्साह तथा है अनुत्साह।—सागरिका, पृ० ७७।

अनुत्साह[2]—वि० १. दृढ़ता या क्षमता से रहित। २. उदासीन। उत्साहहीन [को०]।

अनुत्सुक—वि० [सं०] जो उत्सुक न हो। सामान्य। शांत। उत्कंठा न दिखानेवाला [को०]।

अनुत्सूत्र—वि० [सं०] १. सूत्रों का अनुगामी। २. नियमों या नीति के अनुसार चलनेवाला [को०]।

अनुत्सेक—संज्ञा पुं० [सं०] १. गर्व का न होना। घमंड न होना। २. शालीनता [को०]।

अनुत्सेकी—वि० [सं० अनुत्सेकिन्] जो उत्तेजित न हो। घमंडरहित [को०]।

अनुदक—वि० [सं०] १. जलशून्य। जल के अभाववाला (जैसे, मरुस्थल)। २. थोड़े जलवाला। अल्प जलवाला। ३. जिसे कोई पानी देनेवाला न हो [को०]।

अनुदग्र—वि० [सं०] १. जो ऊँचा न हो। नीचा। २. मुलायम। ३. कोमल। दुर्बल। ४. जिसमें तेजी या धार न हो (को०)।

अनुदत्त—वि० [सं०] १. लौटाया हुआ। वापस किया हुआ। २. स्वीकार किया हुआ। ३. क्षमा किया हुआ [को०]।

अनुदर—वि० [सं०][वि० स्त्री० अनुदरा] कृशोदर। दुबला। पतला।

अनुदर्शन—संज्ञा पुं० [सं०] १. निरीक्षण। पर्यवेक्षण। २. स्वीकार आदर [को०]।

अनुदात्त—वि० [सं०] १. छोटा। तुच्छ। जो उच्चाशय न हो। २. नीचा (स्वर)। लघु (उच्चारण)। स्वर के तीन भेदों में से एक। वह स्वर जिसपर बलाघात न हो।

अनुदान—संज्ञा पुं० [सं० अनुदान] १. किसी कार्य के लिये कुछ प्रतिबंधों के साथ दी जानेवाली सरकारी सहायता। सरकारी विभागों द्वारा व्यय होने के लिये स्वीकृत धनराशि। २. लौटाना। प्रत्यावर्तन [को०]।

अनुदार—वि॰ [सं॰] १. सूम। कंजूस। २. संकुचित हृदयवाला। संकीर्ण विचारवाला। ३. अत्यंत उदार। महान्। ४. जिसकी दारा या पत्नी भली और अनुगमन करनेवाली हो [को॰]।

अनुदित—वि॰ [सं॰] अकथित। जो कहा न गया हो। २. जो उदित न हुआ हो। जो सामने न आया हो। ३. न कहने योग्य। निंदनीय [को॰]।

अनुदिन—क्रि॰ वि॰ [सं॰] नित्यप्रति। प्रतिदिन। रोजमर्रा। उ॰—तुलसी सकल कल्यान ते नर नारि अनुदिन पावहीं।—तुलसी ग्रं॰, पृ॰ ६३।

अनुदिवस—क्रि॰ वि॰ [सं॰] दे॰ 'अनुदिन' [को॰]।

अनुदृष्टि[1]—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] कृपादृष्टि। अनुकूल दृष्टि। [को॰]।

अनुदृष्टि[2]—वि॰ कृपादृष्टि रखनेवाला। अनुकूल दृष्टि रखनेवाला [को॰]।

अनुद्धत—वि॰ [सं॰] १. जो उद्धत न हो। अनुग्र। २. सौम्य। शांत। ३. विनीत।

अनुद्धरण—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १. न हटाना। २. स्थापना न करना। प्रमाणित न करना [को॰]।

अनुद्धर्ष—संज्ञा पुं॰ [सं॰] उद्वेग का अभाव। शांति।

अनुद्धार—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १. बँटवारा न करना या अपना भाग न लेना। २. दे॰ 'अनुद्धरण' [को॰]।

अनुद्धृत—वि॰ [सं॰] १. बिना बँटा। अविभक्त। २. न हटाया हुआ। ३. अनष्ट। अक्षत। दुरुस्त। ४. अप्रमाणित। जिसकी स्थापना न की गई हो [को॰]।

अनुद्भट—वि॰ [सं॰] मृदु स्वभाववाला। अधृष्ट। २. सौम्य। अहंकार-शून्य। निरभिमानी [को॰]।

अनुद्यत—वि॰ [सं॰] अतत्पर। सुस्त। काहिल। अकर्मण्य [को॰]।

अनुद्यम[1]—संज्ञा पुं॰ [सं॰] उद्योग या उद्यम का अभाव [को॰]।

अनुद्यम[2]—वि॰ उद्योग या श्रम न करनेवाला। अनुद्यमी [को॰]।

अनुद्यमी—वि॰ [सं॰ अनुद्यमिन्] उद्यमरहित। आलसी। सुस्त। अलहदी।

अनुद्यूत—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १. लगातार जुआ खेलना। २. महाभारत के सभापर्व के अध्याय ७० से ७९ तक का नाम [को॰]।

अनुद्योग[1]—संज्ञा पुं॰ [सं॰] आलस्य। सुस्ती। अकर्मण्यता [को॰]।

अनुद्योग[2]—वि॰ अनुद्योगी। अकर्मण्य [को॰]।

अनुद्योगी—वि॰ [सं॰ अनुद्योगिन्] आलसी। निष्क्रिय। अकर्मण्य। सुस्त [को॰]।

अनुद्रुत[1]—संज्ञा पुं॰ [सं॰] संगीत में ताल का एक भेद। द्रुत का आधा और मात्रा का एक चौथाई समय।

अनुद्रुत[2]—वि॰ जिसका पीछा किया गया हो। अनुगमित। अनुधावित [को॰]।

अनुद्वाह—संज्ञा पुं॰ [सं॰] अविवाह ब्रह्मचर्य। अविवाहित रहना [को॰]।

अनुद्विग्न—वि॰ [सं॰] निश्चिंत। शांत। चिंतामुक्त। आशंकारहित [को॰]।

अनुद्वेग[1]—संज्ञा पुं॰ [सं॰] आशंका का अभाव। भय से मुक्ति या सुरक्षा [को॰]।

अनुद्वेग[2]—वि॰ उद्वेगरहित। अनुद्विग्न [को॰]।

अनुधावन—संज्ञा पुं॰ [सं॰] [वि॰ अनुधावक, अनुधावित, अनुधावी] १. पीछे चलना। अनुसरण। २. अनुकरण। नकल। ३. अनुसंधान। खोज। ४. बार बार बुद्धि दौड़ाना। विचार। चिंतन। ५. शुद्ध करना। सफाई (को॰)।

अनुधूपित—वि॰ [सं॰] फूला हुआ। गर्वित। अभिमानी [को॰]।

अनुध्यान—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १. किसी विषय का चिंतन। ध्यान। २. स्मरण। विचारणा। ३. शुभचिंतन [को॰]।

अनुध्यायी—वि॰ [सं॰ अनुध्यायिन्] १. चिंतन करनेवाला। ध्यान में स्थित होनेवाला। २. खोया हुआ। अन्यमनस्क [को॰]।

अनुध्येय—वि॰ [सं॰] जिसका शुभ चिंतन किया जाय। जिसके प्रति अनुराग हो [को॰]।

अनुध्वनि—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] प्रतिध्वनि। गूँज। उ॰—अंबर से टकरा-कर अनुध्वनि आ गई त्वरित।—अपलक, पृ॰ ४७।

अनुनत—वि॰ [सं॰ अनु+नत] विनीत। अनुशासित। शीलयुक्त। उ॰—चिर अनुनत सौंदर्य के समादर में गुर्जरेश मेरी उन इंगितों में नाच उठे।—लहर, पृ॰ ७१।

अनुनय—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १. विनय। विनती। प्रार्थना। उ॰—अनुनय भरी वाणी गूँज उठी कान में।—लहर, पृ॰ ७१। २. मानना।

अननयमान—वि॰ [सं॰] विनयशील। शिष्ट। संराधन करनेवाला। (को॰)।

अनुनयी—वि॰ [अनुनयिन्] विनीत। नम्र। विनयी [को॰]।

अनुनाद—संज्ञा पुं॰ [सं॰] [वि॰ अनुनादित्] प्रतिध्वनि। गूँज। गुंजार।

अनुनादित—वि॰ [सं॰] प्रतिध्वनित। जिसका अनुनाद या गूँज हुई हो।

अनुनादी—वि॰ [सं॰ अनुनादिन्] प्रतिध्वनि करनेवाला। आवाज करनेवाला। गुंजायमान [को॰]।

अनुनायक—वि॰ [सं॰] संकोची। विनम्र [को॰]।

अनुनायिका—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] मुख्य नायिका की सहचरी। जैसे,—सखी, दासी, परिचारिका आदि।

अनुनासिक[1]—वि॰ [सं॰] जो (अक्षर) मुँह और नाक से बोला जाय।

अनुनासिक[2]—संज्ञा पुं॰ १. मुख और नासिका के योग से उच्चरित वर्ण जैसे,—ङ, ञ, ण, न, म और अनुस्वार। २. नाक से बोली जानेवाली ध्वनि।

अनुनीत—वि॰ [सं॰] १. मर्यादित। अनुशासित। [को॰]। २. गृहीत (को॰)। ३. प्रतिष्ठित। पूजित (को॰)। ४. संतुष्ट। संराधित (को॰)। ५. विनयपूर्वक सत्कृत। उ॰—किंचित् अनुनीत स्वर में हरिप्रसन्न ने कहा।—सुनीता, पृ॰ ३२४।

अनुनीति—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] दे॰ 'अनुनय' [को॰]।

अनुनीय—वि॰ [सं॰] १. अनुनययोग्य। संराधन के योग्य [को॰]।

अनुनेय—वि॰ [सं॰] दे॰ 'अनुनीय' [को॰]।

अनुन्नत—वि॰ [सं॰] जो ऊँचा न हो। जो उभरा न हो (नीवा)। जो ऊपर उठा न गया हो। जिनकी उन्नति न हुई हो [को॰]।

अनुन्नतगात्र—वि॰ [सं॰] अविकसित या अल्प विकसित अंगोंवाला। अपुष्ट अंगोंवाला [को॰]।

अनुन्नतानत—वि० [सं०] समतल [को०]।

अनुन्मत्त—वि० [सं०] जो मतवाला या पागल न हो [को०]।

अनुन्मदित—वि० [सं०] दे० 'अनुन्मत्त' [को०]।

अनुन्माद[1]—संज्ञा पुं० [सं०] पागलपन का न होना। उन्माद का अभाव [को०]।

अनुन्माद[2]—वि० दे० 'अनुन्मत्त' [को०]।

अनुप(पु)†—वि० [सं० अनुपम] बेजोड़। उपमारहित। उ०—सकल सत्त दासी अनुप। नृप इंद्रावति अप्पि।—पृ० रा०, ३३।७८।

अनुपकार—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अनुपकारक, अनुपकारी] १. उपकार का अभाव। २. अपकार। हानि।

अनुपकारी—वि० [सं०] १. उपकार न करनेवाला। अकृतज्ञ। अपकार करनेवाला। हानि पहुँचानेवाला। २. फजूल। निकम्मा।

अनुपकारीमित्र—संज्ञा पुं० [सं०] शत्रु राजा का मित्र।

अनुपक्षित—वि० [सं०] न छीजनेवाला। क्षीण न होनेवाला [को०]।

अनुपगत—वि० [सं०] दूर का।

अनुपगीत—वि० [सं०] जिसकी प्रशंसा न की गई हो। अप्रशंसित [को०]।

अनुपजीवनीय—वि० [सं०] जिससे जीवननिर्वाह के लिये पर्याप्त प्राप्ति न हो सके। २. जिसके पास जीवननिर्वाह का साधन न हो। साधनहीन [को०]।

अनुपतन—संज्ञा पुं० [सं०] १. गिरना। क्रमशः गिरना। एक के बाद दूसरे का पतन। २. पीछा करना। अनुसरण। ३. निश्चित क्रम में आगे बढ़ना। ४. अनुपात। ५. गणित का त्रैराशिक नियम [को०]।

अनुपद[1]—क्रि० वि० [सं०] १. पीछे पीछे। कदम ब कदम। उ०—वधू उर्मिला अनुपद थी, देख गिरा भी गद्गद् थी।—साकेत, पृ० ८४। २. अनंतर। बाद ही।

अनुपद[2]—वि० पीछे पीछे चलनेवाला। कदम ब कदम पीछे चलनेवाला। पदानुसरण करनेवाला [को०]।

अनुपद[3]—संज्ञा १. गीत में बार बार दोहराया जानेवाला पद। टेक। २. शब्दशः व्याख्या [को०]।

अनुपदवी—संज्ञा स्त्री० [सं०] पथ। मार्ग। सड़क [को०]।

अनुपदिक—वि० [सं०] १. पीछे चलनेवाला। पदानुसरण करनेवाला पीछे गया हुआ [को०]।

अनुपदी—वि० [पुं० अनुपदिन्] पीछा करनेवाला। खोज करनेवाला। अन्वेषक। पता लगानेवाला [को०]।

अनुपदीना—संज्ञा स्त्री० [सं०] जूता। मोजरी। पूरे पैर की लंबाई का जूता।

अनुपधा—संज्ञा स्त्री० [सं०] वंचकता।

अनुपधि—वि० [सं०] निश्छल। निष्कपट। धोखा धड़ी से रहित [को०]।

अनुपनीत—वि० [सं०] १. अप्राप्त। न लाया हुआ। २. जिसका उपनयन संस्कार न हुआ हो।

अनुपन्यस्त—वि० [सं०] यज्ञ जिसका न्यास या स्थापन विधिपूर्वक न हुआ हो [को०]।

अनुपन्यास—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अनुपन्यस्त] १. प्रमाण या निश्चय का अभाव। असमाधान। २. संदेह। अनिश्चय [को०]।

अनुपपत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. उपपत्ति का अभाव। २. असमाधान। असंगति। ३. असिद्धि। ४. अप्राप्ति। ५. असंपन्नता। असमर्थता।

अनुपपन्न—वि० [सं०] १. अप्रतिपादित। २. जो साबित न हुआ हो। ३. अयुक्त। ४. असंभव (को०)। ५. जो सही ढंग से समर्थित न हो (को०)।

अनुपम—वि० [सं०] उपमारहित। बेजोड़। जिसकी टक्कर का दूसरा न हो। बेमिसाल। बेनजीर। उ०—अनुपम शोभाधाम आभूषण थे तारका।—कानन०, पृ० ९७।

अनुपमता—संज्ञा स्त्री० [सं०] अनुपम होना। उपमा का अभाव। बेजोड़पन।

अनुपमर्दन—संज्ञा पुं० [सं०] अभियोग या आरोप का खंडन न किया जाना [को०]।

अनुपमा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दक्षिण-पश्चिम दिशा के गज। कुमुद की पत्नी [को०]।

अनुपमित—वि० [सं०] दे० 'अनुपम' [को०]।

अनुपमेय—वि० [सं०] दे० 'अनुपमा'।

अनुपयुक्त—वि० [सं] अयोग्य। बेठीक। बेढब।

अनुपयुक्तता—संज्ञा स्त्री० [सं०] अयोग्यता। बेढबपन।

अनुपयोग—संज्ञा पुं० [सं०] १. व्यवहार का अभाव। काम में न लाना। २. दुर्व्यवहार।

अपनुपयोगिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] उपयोगिता का अभाव। निरर्थकता।

अनुपयोगी—वि० [सं० अनुपयोगिन्] [संज्ञा अनुपयोगिता] बेकाम। व्यर्थ का। बेमतलब का। बेमसरफ।

अनुपरत—वि० [सं०] १. जो मृत न हो। २. बेरोक। अबाधित [को०]।

अनुपलंभ—संज्ञा पुं० [अनुपलम्भ] ज्ञान का अभाव। जानकारी न होना [को०]।

अनुपल—वि० [सं०] प्रतिक्षण। हर समय। हर घड़ी। उ०—वह प्रजा से अनुपल मिलने को सन्नद्ध रहता था।—आदि० भारत, पृ० २५७।

अनुपलब्ध—वि० [सं०] १. अप्राप्त। न मिला हुआ। २. अनदेखा। अकल्पित। अज्ञात (को०)।

अनुपलब्धि—संज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० अनुपलब्ध] १. अप्राप्ति। न मिलना। २ कल्पना या ज्ञान का अभाव (को०)।

अनुपलब्धिसम—संज्ञा पुं० [सं०] न्याय में जाति के चौबीस भेदों में से एक।

विशेष—यदि वादी किसी बात के न पाए जाने के आधार पर कोई बात सिद्ध करना चाहता है, और उसके उत्तर में प्रतिवादी किसी और बात के न पाए जाने के आधार पर उसके विपरीत बात सिद्ध करने का प्रयत्न करता है, तो ऐसे उत्तर को अनुपलब्धिसम कहते हैं।

अनुपवीती—वि० [सं० अनुपवीतिन्] यज्ञोपवीत धारण न करनेवाला [को०]।

अनुपशय—संज्ञा पुं० [सं०] रोगज्ञान के पाँच विधानों में से एक। विशेष—इसमें आहार विहार के बुरे फल को देखकर यह निश्चय किया जाता है कि रोगी को अमुक रोग है। वि० दे० 'उपशय'।

अनुपस्कृत—वि० [सं०] १. अपरिष्कृत। जिसपर पालिस न की गई हो। २. शुद्ध। निष्कलुष। ३. जो पकाया न गया हो। ४. जिसके संबंध में मन में कोई भ्रम न हो [को०]।

अनुपस्थान—संज्ञा पुं० [सं०] अनुपस्थिति [को०]।

अनुपस्थित—वि० [सं०] जो सामने न हो। जो मौजूद न हो। अविद्यमान। गैरहाजिर।

अनुपस्थिति—संज्ञा स्त्री० [सं०] अविद्यमानता। गैरमौजूदगी। गैरहाजिरी। उ०—प्रत्युत्तर की अनुपस्थिति में ह्रास भी पादपूर्ति सा होता है दुष्काव्य में।—महाराणा०, पृ० १४।

अनुपहत—वि० [सं०] १. अव्यवहृत। कोरा। नया (वस्त्र)। २. जो टूटा न हो। अक्षत [को०]।

अनुपाख्य—वि० [सं०] जो साफ देखा या जाना न जाय। जिसका केवल अनुमान किया जाय। अनुमेय [को०]।

अनुपात—संज्ञा पुं० [सं०] १. गणित की त्रैराशिक क्रिया। २. दी हुई तीन संख्याओं से चौथी को जानना। २. अनुसरण। पीछा करना (को०)। ३. एक के बाद दूसरे का पतन। लगातार गिरना (को०)।

अनुपातक—संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्महत्या के समान पाप जैसे, चोरी, झूठ बोलना, परस्त्रीगमन इत्यादि।

अनुपादक—संज्ञा पुं० [सं०] तंत्र के अनुसार आकाश से भी सूक्ष्म एक तत्व।

अनुपान—संज्ञा पुं० [सं०] वह वस्तु जो औषध के साथ या उसके ऊपर से खाई जाय।

अनुपानत्क—वि० [सं०] पदत्राण से रहित। नंगे पैर [को०]।

अनुपानीय[1]—वि० [सं०] औषधि के साथ लिया जानेवाला पेय [को०]।

अनुपानीय[2]—संज्ञा पुं० बाद में पी जानेवाली वस्तु [को०]।

अनुपाय—वि० [सं०] निरुपाय। उ०—राज्य संग तुम्हें कहाँ से हाय। दे सकूँगा आर्य को अनुपाय।—साकेत, पृ० १९९।

अनुपायी—वि० [सं० अनुपायिन्] साधन का उपयोग न करनेवाला। उपाय न करनेवाला [को०]।

अनुपार्श्व—वि० [सं०] पार्श्ववर्ती। बगलगीर [को०]।

अनुपाल—संज्ञा पुं० [सं०] १. अश्वादि पशुओं का रक्षक। रखवाला [को०]।

अनुपालक—वि० [सं०] १. रक्षा करनेवाला। २. माननेवाला [को०]।

अनुपालन—संज्ञा पुं० [सं०] १. रक्षण। २. पालन [को०]।

अनुपाश्रयाभूमि—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह भूमि जो बसनेवालों के अतिरिक्त और दूसरों को आश्रय देने में असमर्थ हो अर्थात् जिसमें और लोगों के बसने की गुंजाइश न हो।

अनुपासन—संज्ञा पुं० [सं०] ध्यान का अभाव। उपेक्षा [को०]।

अनुपासित—वि० [सं०] उपेक्षित। जिसपर ध्यान न दिया जाय [को०]।

अनुपुरुष—संज्ञा पुं० [सं०] १. पूर्वकथित व्यक्ति। २. अनुगामी। अनुयायी [को०]।

अनुपुष्प—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की नरकुल [को०]।

अनुपूर्व—वि० [सं०] यथाक्रम। अनुक्रमिक। सिलसिलेवार।

अनुपूर्वकेश—वि० [सं०] सुव्यवस्थित केशोंवाला [को०]।

अनुपूर्वगात्र—वि० [सं०] सुडौल अंगोंवाला [को०]।

अनुपूर्वदंष्ट्र—वि० [सं०] सुंदर दंतपंक्तियोंवाला [को०]।

अनुपूर्वनाभि—वि० [सं०] सुंदर नाभिवाला [को०]।

अनुपूर्वपाणिलेख—वि० [सं०] जिसके हाथ की रेखाएँ सुस्पष्ट तथा व्यवस्थित हों [को०]।

अनुपूर्ववत्सा—संज्ञा स्त्री० [सं०] नियमित समय पर बच्चा देनेवाली गाय [को०]।

अनुपूर्व्य—वि० [सं०] व्यवस्थित। क्रमबद्ध [को०]।

अनपेत—वि० [सं०] १. जो शिक्षा या दीक्षा के लिये गुरु के यहाँ भरती न हुआ हो। अदीक्षित। २. जिसका यज्ञोपवीत न हुआ हो। अनुपनीत (को०)।

अनुप्त—वि० [सं०] जो बोया न गया हो। बिना बोया हुआ।

अनुप्रशस्य—वि० [सं०] बिना बोया। परती [को०]।

अनुप्रज्ञान—संज्ञा पुं० [सं०] अन्वेषण करना। पता लगाना। खोज करना [को०]।

अनुप्रदान—संज्ञा पुं० [सं०] १. भेंट। उपहार। दान। २. वृद्धि। बढ़ोतरी [को०]।

अनुप्रवण—वि० [सं०] अनुकूल। भानेवाला। मनपसंद [को०]।

अनुप्रवाद—संज्ञा पुं० [सं०] किंवदंती। अफवाह [को०]।

अनुप्रवेश—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रवेश करना। भीतर जाना। २. अपने अवसर के अनुकूल बनाना। ३. अनुकरण [को०]।

अनुप्रश्न—संज्ञा पुं० [सं०] संबंधित प्रश्न। प्रसंगानुकूल जिज्ञासा [को०]।

अनुप्रसक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रगाढ़ प्रेम। गहरी आसक्ति। २. तर्कशास्त्र के अनुसार शब्दों का निकट संबंध [को०]।

अनुप्रस्थ—वि० [सं०] चौड़ाई के अनुसार [को०]।

अनुप्राणन—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्राण संचारण। २. प्रेरणा। स्फुरण [को०]।

अनुप्राणित—वि० [सं०] प्राणवान्। सजीव। प्रेरित। उ०—"भगवद्गीता भी जायसवाल जी के कथनानुसार मनुस्मृतिवाले आदर्शों से ही अनुप्राणित है"।—भा० इ० रू०, पृ० ७२६।

अनुप्राशन—संज्ञा पुं० [सं०] खाना। भक्षण। उ०—कछु दिन पवन कियो अनुप्राशन रोक्यो श्वास यह जानी।—सूर (शब्द०)।

क्रि० प्र०—करना।—देना।—होना।

अनुप्रास—संज्ञा पुं० [सं०] वह शब्दालंकार जिसमें किसी पद में एक ही अक्षर बार बार आकर उस पद की अधिक शोभा का कारण होता है। वर्णवृत्ति। वर्णसाम्य। वर्णमैत्री। जैसे—काक कहहिं कलकंठ कठोरा।—तुलसी (शब्द०)।

विशेष—इसके पाँच भेद हैं—छेकानुप्रास, वृत्यनुप्रास, श्रुत्यनुप्रास, अंत्यानुप्रास और लाटानुप्रास।

अनुप्रेक्षा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. नेत्र गड़ाकर देखना। ध्यान से देखना। २. ग्रंथ के अर्थ का मनन अर्थात् मन से अभ्यास। पठित विषय का एकाग्र चित्त से चिंतन।

अनुबंध—संज्ञा पुं० [सं० **अनुबन्ध**] १. बंधन। लगाव। २. अविच्छिन्न क्रम। आगापीछा। सिलसिला। जैसे—किसी कार्य को करने के पहले उसका आगापीछा सोच लेना चाहिए (शब्द०)। ३. वंशज। अनुवंश (को०)। ४. होनेवाला शुभ या अशुभ परिणाम। फल। ५. उद्देश्य। इरादा। कारण (को०)। ६. गौण वस्तु। पूरक। अप्रधान वस्तु (को०)। ७. बात पित्त और कफ में से जो अप्रधान हो। ८. वादविवाद या विषयवस्तु को जोड़नेवाली कड़ी। वेदांत का एक अनिवार्य तत्व या अधिकरण। ९. अपराध। त्रुटि (को०)। १०. पारिवारिक बाधा, भार या स्नेह (को०)। ११. पिता या गुरु के पथ का अनुसरण करनेवाला बालक (को०)। १२. आरंभ। श्रीगणेश। १३. मार्ग। उपाय (को०)। १४. तुच्छ या नगण्य वस्तु (को०)। १५. मुख्य रोग के साथ उत्पन्न अन्य विकार (को०)। प्यास। तृषा (को०)। १६. अनुसरण। १७. करार। इकरारनामा। १८. पाणिनीय व्याकरण में धातु, प्रत्यय आदि का लोप होनेवाला वह इत्संज्ञक सांकेतिक वर्ण जो गुण, वृद्धि प्रत्याहार आदि के लिये उपयोगी हो।

अनुबंधक—वि० [सं० **अनुबन्धक**] संबद्ध। संबंधित। २. अनुबंधकरनेवाला [को०]।

अनुबंधन—संज्ञा पुं० [सं० **अनुबन्धन**] संबंध। अनुक्रम। सिलसिला। उ०—पूर्वापर प्रसंगों के अनुबंधन में ब्रजविलास की कला द्रुत-विलंबित गति से प्रवाहित होती है।—पोद्दार० अभि०, ग्रं०, पृ० ३४९।

अनुबंधिका—संज्ञा स्त्री० [सं० **अनुबन्धिका**] जोड़ का दर्द [को०]।

अनुबंधी[1]—वि० [सं० **अनुबन्धिन्**] [वि० स्त्री० **अनुबन्धिनी**] १. संबंधी। लगाव रखनेवाला। २. फलस्वरूप। परिणामस्वरूप।

अनुबंधी[2]—संज्ञा स्त्री० १. हिचकी। २. प्यास।

अनुबद्ध—वि० [सं०] १. संबद्ध। लगाव रखनेवाला [को०]।

अनुबर्तन(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अनुवर्त्तन'। उ०—प्रगटित पूरब दिसिहि को जहँ अनुबर्तन होत।—मतिराम ग्रं०, पृ० ४२८।

अनुबल—संज्ञा पुं० [सं०] पीछे रहकर रक्षा करनेवाली सेना [को०]।

अनुबाद(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अनुवाद'। उ०—सुनत फिरौं हरि गुन अनुबादा।—मानस, ७।११०। २. जनश्रुति। अफवाह। उ०—ताहि तू बताई जोई बाँह दै उसीसैं सोई ऐसे अनुबादन के अनुवा घनेरे हैं।—गंग०, पृ० २६४।

अनुबोध—संज्ञा पुं० [सं०] १. स्मरण या बोध जो पीछे हो। २. किसी वस्तु की हल्की हो गई सुगंध को पुनः तीव्र करना। गंधोद्दीपन।

क्रि० प्र०—करना—होना।

अनुबोधन—संज्ञा पुं० [सं०] स्मरण करना या कराना (को०)।

अनुब्राह्मण—संज्ञा पुं० [सं०] १. ब्राह्मण के समान ग्रंथ। जैसे, ऐतरेय ब्राह्मण से मिलता जुलता ग्रंथ। २. ब्राह्मण जैसा कार्य [को०]।

अनुभव—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अनुभवी] १. प्रत्यक्ष ज्ञान। वह ज्ञान जो साक्षात् करने से प्राप्त हो। स्मृतिभिन्न ज्ञान। जैसे—सब जीव पीड़ा का अनुभव करते हैं (शब्द०)। २. परीक्षा द्वारा पाया हुआ ज्ञान। उपार्जित ज्ञान। तजरबा। जैसे,—उसे इस कार्य का अनुभव नहीं है (शब्द०)। ३. समझ। मन से प्राप्त ज्ञान (को०)। ४. परिणाम। फल (को०)।

अनभवना(पु)—क्रि० स० [सं० **अनुभव से नाम०**] अनुभव करना। बोध करना। उ०—पुन्य फल अनुभवत सुतहिं बिलोकि कै नँद घरनि।—सूर०, १०।१०९।

अनुभवी—वि० [सं० **अनुभविन्**] अनुभव रखनेवाला। जिसने देख सुनकर जानकारी प्राप्त की हो। तजरबेकार। जानकार।

अनुभाऊ(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अनुभाव'। उ०—बरनि सप्रेम भरत अनुभाऊ।—मानस, २।२८८।

अनुभाव—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रभाव। महिमा। बड़ाई। २. काव्य में रस के चार अंगों में से एक। वे गुण और क्रियाएँ जिनसे रस का बोध हो। चित्त का भावप्रकाश करनेवाला कटाक्ष, रोमांच आदि चेष्टाएँ।

विशेष—अनुभाव के चार भेद हैं—सात्विक, कायिक, मानसिक और आहार्य। हाव भी इसी के अंतर्गत माना जाता है।

अनुभावक—वि० [सं०] प्रतीति या अनुभूति करानेवाला [को०]।

अनुभावन—संज्ञा पुं० [सं०] चेष्टा या भंगिमा द्वारा मन के भावों को प्रकट करना [को०]।

अनुभावित—वि० [सं०] १. अत्यधिक शक्तिसंपन्न। २. रक्षित। ३. अनुभवसंपन्न। अनुभवी [को०]।

अनुभावी—वि० [सं० **अनुभाविन्**] [वि० स्त्री० **अनुभाविनी**] १. जिसे अनुभव या संवेदना हो। साक्षात्कार कारक। २. वह साक्ष्य जिसने सब बातें खुद देखी सुनी हों। चश्मदीद गवाह। ३. मृतक के वे संबंधी जिन्हें उसके मरने का अशौच लगे या जो आयु आदि में उसके छोटे हों। ४. बाद में आनेवाला। बाद में होनेवाला (को०)। ५. भाव दिखानेवाला (को०)।

अनुभाषक—वि० [सं०] उत्तर में बोलनेवाला [को०]।

अनुभाषण—संज्ञा पुं० [सं०] १. खंडन करने के लिये किसी स्थापना का पुनः कथन। २. कथित वस्तु का पुनः कथन। पुनराख्यान। आवृत्ति। ३. वार्तालाप। कथोपकथन [को०]।

अनुभास—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का कौआ [को०]।

अनुभूत—वि० [सं०] १. जिसका अनुभव हुआ हो। जिसका साक्षात् ज्ञान हुआ हो। २. परीक्षित। तजरबा किया हुआ। आजमूदा।

यौ०—अनुभूतार्थ।

अनुभूति—संज्ञा स्त्री० [सं०] अनुभव। परिज्ञान। आधुनिक न्याय के अनुसार प्रत्यक्ष, अनुमिति उपमिति और शब्दबोध द्वारा प्राप्त ज्ञान। २. इंद्रियज ज्ञान या बोध। प्रत्यक्ष ज्ञान [को०]।

अनुभेद—संज्ञा पुं० [सं०] उपभेद। उ०—कौन बड़ो को छोट भेद अनुभेद न जानै।—सूर०, १०।५८९।

अनुभोग—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह जमीन जो किसी काम के बदले में माफी दी जाय। माफी। खिदमती। २. उपभोग।

अनुभौ(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अनुभव'। उ०—अनुभौ चँवर रैन दिन ढरिया।—केशव० अमी०, पृ० ५०।

अनुभ्राता—संज्ञा पुं० [सं० अनुभ्रातृ] कनिष्ठ भ्राता । छोटा भाई । अनुज [को०] ।

अनुमंता—वि० [सं० अनुमन्तृ] अनुमति देनेवाला । स्वीकृति देनेवाला । चलते कार्य को होने देनेवाला [को०] ।

अनुमत—वि० [सं०] १. अनुज्ञप्त । संमत । स्वीकृत । २. प्रिय । मनपसंद । ३. एकमत । एकराय । ४. प्रेमी [को०] ।

अनुमति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. आज्ञा । अनुज्ञा । हुक्म । २. संमति । इजाजत । ३. वह पूर्णिमा जिसमें चंद्रमा की कला पूरी न हो । चतुर्दशी से युक्त पूर्णिमा ।

अनुमतिपत्र—संज्ञा पुं० [सं० अनुमति + पत्र] किसी प्रतिबंधित कार्य के करने के लिये सरकारी आज्ञापत्र । जैसे, एक देश से दूसरे देश में जाने के लिये सरकारी आज्ञापत्र, पासपोर्ट या विसा [को०] ।

अनुमत्त—वि० [सं०] आनंद के अतिरेक से उन्मत्त । खुशी के मारे पागल [को०] ।

अनुमनन—संज्ञा पुं० [सं०] १. स्वीकृति देना । २. स्वतंत्रता [को०] ।

अनुमरण—संज्ञा पुं० [सं०] पश्चात् मरण । पति के साथ विधवा स्त्री का चितारोहण । सती होना [को०] ।

अनुमरु—संज्ञा पुं० [सं०] मरुभूमि के बाद का देश [को०] ।

अनुमा—संज्ञा स्त्री० [सं०] अनुमान । अनुमिति [को०] ।

अनुमाता—वि० [सं० अनुमातृ] अनुमान लगानेवाला । निष्कर्ष निकालनेवाला [को०] ।

अनुमात्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दृढ़ निश्चय । संकल्प [को०] ।

अनुमान—संज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० अनुमानित, अनुमित] १. अटकल अंदाजा २. विचार । भावना । कयास । ३. न्याय के अनुसार प्रमाण के चार भेदों में से एक ।

विशेष—इससे प्रत्यक्ष साधन के द्वारा अप्रत्यक्ष साध्य की भावना होती है । इसके तीन भेद हैं—(क) पूर्ववत् या केवलान्वयी जिसमें कारण द्वारा कार्य का ज्ञान हो । जैसे, बादल देखकर यह भावना करना कि पानी बरसेगा । (ख) शेषवत् या व्यतिरेकी, जिसमें कार्य को प्रत्यक्ष देखकर कारण का अनुमान किया जाय । जैसे, नदी की बाढ़ देखकर अनुमान करना कि उसके चढ़ाव की ओर पानी बरसा है । और (ग) सामान्यतोदृष्ट या अन्वयव्यतिरेकी, जिसमें नित्यप्रति के सामान्य व्यापार को देखकर विशेष व्यापार का अनुमान किया जाता है । जैसे, किसी वस्तु को स्थानांतर में देखकर उसके वहाँ लाए जाने का अनुमान ।

अनुमानतः—क्रि० वि० [सं०] अटकल या अनुमान से [को०] ।

अनुमानना(पु)—क्रि० स० [सं० अनमान से नाम०] अनुमान करना । सोचना । अंदाजा करना । उ०—समय प्रतापभानु कर जानी । आपन अति असमय अनुमानी ।—मानस १।१५८ ।

अनुमानाश्रित—वि० [सं० अनुमान + आश्रित] जो अनुमान पर आधारित हो । जिसका कोई ठोस आधार न हो ।

अनुमानोक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. तर्क । तर्कना । २. तर्कानुमोदित निष्कर्ष [को०] ।

अनुमापक—वि० [सं०] [स्त्री० अनुमापिका] अनुमान में सहायक [को०] ।

अनुमास—संज्ञा पुं० [सं०] १. आनेवाला महीना । २. मास प्रति मास [को०] ।

अनुमित—वि० [सं०] अनुमान किया हुआ । अंदाजा हुआ ।

अनुमिति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. अनुमान । २. नव्य न्याय के अनुसार अनुभूति के चार भेदों में से एक जिसमें किसी वस्तु के व्याप्त गुणों के कारण अन्य वस्तु का अनुमान किया जाय ।

अनुमित्सा—संज्ञा स्त्री० [सं०] निष्कर्ष या अनुमान निकालने की आकांक्षा [को०] ।

अनुमृता—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जो पति के साथ सती हो गई हो [को०] ।

अनुमेय—वि० [सं०] अनुमान के योग्य ।

अनुमोद—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अनुमोदन' [को०] ।

अनमोदक—वि० [सं०] अनुमोदन करनेवाला । समर्थन करनेवाला । उ०—अनुमोदक तो नहीं किंतु निज अग्रज का अनुगत हूँ मैं । —साकेत, पृ० ३६५ ।

अनुमोदन—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रसन्नता का प्रकाशन । खुश होना । २. समर्थन । ताईद । उ०—कहहिं सुनहिं अनुमोदन करहीं । ते गोपद इव भवनिधि तरहीं ।—मानस, ७।१२९ ।

अनुयाता—संज्ञा पुं० [सं० अनुयातृ] अनुगामी । साथी [को०] ।

अनयात्र—संज्ञा पुं० [सं०] अनुचरों का दल । २. अर्दली में रहना । ३. अनुगमन [को०] ।

अनुयात्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अनुयात्र' [को०] ।

अनुयात्रिक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अनुयात्रा' [को०] ।

अनुयान—संज्ञा पुं० [सं०] अनुगमन । पीछे चलना [को०] ।

अनुयायी[१]—वि० [सं० अनुयायिन्] [वि० स्त्री० अनुयायिनी] १. अनुगामी । पीछे चलनेवाला । २. अनुकरण करनेवाला । शिक्षा या आदर्श पर चलनेवाला । ३. समान । तुल्य (को०) ।

अनुयायी[२]—संज्ञा पुं० अनुचर । सेवक । दास । पैरोकार ।

अनुयुक्त—वि० [सं०] १. जिसके संबंध में अनुयोग किया गया हो । जिसके विषय में कुछ प्रश्न किया गया हो । जिज्ञासित । २. निंदित ।

अनुयोक्ता[१]—वि० [सं० अनुयोक्तृ] [वि० स्त्री० अनुयोक्त्री] जिज्ञासा करनेवाला । पूछताछ करनेवाला ।

अनुयोक्ता[२]—संज्ञा पुं० १. परीक्षक । २. भृतकाध्यापक । शुल्क लेकर पढ़ानेवाला अध्यापक [को०] ।

अनुयोग—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रश्न । जिज्ञासा । पूछताछ । रोक । बाधा (को०) । ३. उद्यम । श्रम । चेष्टा (को०) । ४. आलोचना । टीका (को०) ५. आध्यात्मिक या यौगिक मनन चिंतन [को०] ।

अनुयोजन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अनुयोजित, अनुयोज्य] पूछने की क्रिया । प्रश्न करना । पूछना ।

अनुयोजित—वि० [सं०] जिसके विषय में पूछताछ की गई हो ।

अनुयोज्य[१]—वि० [सं] १. प्रष्टव्य । जिसके विषय में पूछताछ की आवश्यकता हो । २. निंदनीय । बुरा ।

अनुयोज्य[२]—संज्ञा पुं० विश्वस्त सेवक । भृत्य [को०] ।

अनुरंजक—वि० [सं० अनुरञ्जक] मन बहलानेवाला। प्रसन्न करनेवाला [को०]।

अनुरंजन—संज्ञा पुं० [सं० अनुरञ्जन] १. अनुराग। आसक्ति। प्रीति। २. दिलबहलाव

अनुरंजित—वि० [सं० अनुरञ्जित] आनंदित। अनुरागयुक्त। उ०—मन को अनुरंजित करना ही यदि कविता का अंतिम लक्ष्य माना जाय तो।—रस०, पृ० २८।

अनुरक्त—वि० [सं०] अनुरागयुक्त। प्रेमयुक्त।—सरिता बनी माया उसे कहती कि तुम अनुरक्त हो।—कानन, पृ० २६। २. आसक्त। लीन। उ०—रहै सदा हरि पद अनुरक्त।—सूर०, ६।५। ३. प्रसन्न। खुश। संतुष्ट (को०)। ४. लालिमायुक्त। रंगीन (को०)। ५. हर प्रकार से अनुकूल। भक्त। निष्ठावान् (को०)।

अनुरक्तप्रकृति—वि० [सं०] (राजा) जिसकी प्रजा उसमें अनुरक्त हो। प्रजाप्रिय।

अनुरक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] आसक्ति। अनुराग। प्रीति। भक्ति। उ०—उर में जाने पर भी वन की स्मृति अनुरक्ति रहेगी यह।—पंचवटी, पृ० ११।

अनुरणन—संज्ञा पुं० [सं०] १. नूपुर, घंटा आदि की ध्वनि। २. प्रतिध्वनि। गूँज। ३. शब्दव्यंजना [को०]।

अनुरणित—वि० [सं०] झंकृत। ध्वनित [को०]।

अनुरत—वि० [सं०] १. लीन। आसक्त। उ०—चरननि चित्त निरंतर अनुरत, रसना चरित रसाल।—सूर०, १।१८६। २. अनुरागी। प्रिय।

अनुरति—संज्ञा स्त्री० [सं०] लीनता। आसक्ति। अनुराग। प्रीति।

अनुरत्तⓅ—वि० [सं० अनुरक्त, प्रा० अनुरत्त] दे० 'अनुरक्त' उ०—सजे सूर सावंत सब, सुमुख समर अनुरत्त।—हम्मीर, पृ० २३।

अनुरथ्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] सड़क के दोनों ओर पैदल चलने का मार्ग। सड़क का किनारा। पटरी। [को०]।

अनुरधⓅ—संज्ञा पुं० [सं० अनिरुद्ध] दे० 'अनिरुद्ध'। उ०—कृष्ण गेह कै काम। काम अंगज जनु अनुरध।—पृ० रा०, १।७२७।

अनुरस—संज्ञा पुं० [सं०] १. गौण रस। अप्रधान रस। २. वह स्वाद जो किसी वस्तु में पूर्ण रूप से न हो। ३. दे० 'अनुरसित[१]' [को०]।

अनुरसित[१]—संज्ञा पुं० [सं०] प्रतिध्वनि। गूँज [को०]।

अनुरसित[२]—वि० प्रतिध्वनियुक्त [को०]।

अनुरहस[१]—वि० [सं०] एकांत। गुप्त। गोपनीय [को०]।

अनुरहस[२]—क्रि० वि० गुप्त रूप से। ऐकांतिक [को०]।

अनुराग[१]—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अनुरागी] प्रीति। प्रेम। आसक्ति। प्यार। मुहब्बत। २. भक्ति भाव (को०)। ३. लाल रंग। (को०)।

अनुराग[२]—वि० लालिमायुक्त। लाल किया हुआ [को०]।

अनुरागना[१]Ⓟ—क्रि० स० [सं० अनुराग से हिं० नाम०] प्रीति करना। प्रेम करना। आसक्त होना। उ०—अस कहि भले भूप अनुरागे। रूप अनूप बिलोकन लागे।—मानस, १।२४६।

अनुरागना[२]Ⓟ—क्रि० अ० प्रेमयुक्त होना। आसक्तियुक्त होना। उ०—मुनि प्रभुवचन अधिक अनुरागेउँ।—मानस, ७।८४।

अनुरागी—वि० [सं० अनुरागिन्] [वि० स्त्री० अनुरागिनी] अनुराग रखनेवाला। प्रेमी। उ०—या अनुरागी चित्त की गति समुझै नहिं कोय।—बिहारी र०, दो० १२१।

अनुरात्र—क्रि० वि० [सं०] प्रतिरात्रि। रात्रि में। एक के बाद दूसरी रात [को०]।

अनुराध[१]—वि० [सं०] १. कल्याण करनेवाला। हितकारक। २. अनुराधा नक्षत्र में उत्पन्न [को०]।

अनुराध[२]Ⓟ—संज्ञा पुं० [हिं०] विनती। विनय। आराधन। प्रार्थना। याचना। उ०—सूर स्याम मन देहिं न मेरौ पुनि करिहौं अनुराध।—सूर०, १०।१८८६।

अनराधनाⓅ—क्रि० स० [सं०] अनुराध से हिं० नाम०] विनय करना। विनती करना। मनाना। प्रार्थना करना। उ०—मैं आजु तुम्हैं गहि बाँधौं, हा हा करि करि अनुराधौं।—सूर, १०।१८३।

अनुराधग्राम—संज्ञा पुं० [सं०] अनुराध द्वारा स्थापित लंका की प्राचीन राजधानी जिसका एक नाम अनुराधपुर भी है [को०]।

अनुराधा—संज्ञा स्त्री० [सं०] २७ नक्षत्रों में १७ वाँ नक्षत्र। उ०—भादों सुकला छट्ठ को, जो अनुराधा होय। ताता संवत यों जुड़े, भूखा रहै न कोय (शब्द०)।

विशेष—यह सात तारों के मिलने से सर्पाकार दिखाई देता है। यह नक्षत्र बड़ा शुभ और मांगलिक माना जाता है।

अनुरुद्ध—वि० [सं०] १. रोका हुआ। बाधित। जिसका प्रतिवाद किया गया हो। २. तोषित। संराधित [को०]।

अनुरुहा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की घास [को०]।

अनुरूप—वि० [सं०] [संज्ञा अनुरूपता] १. तुल्य रूप का। सदृश। समान। सरीखा। २. योग्य। अनुकूल। उपयुक्त। उ०—निज अनुरूप सुभग बरु माँगा।—मानस, १।२४८।

अनुरूपकⓅ—संज्ञा पुं० [सं० अनु + रूपक] प्रतिमा। प्रतिमूर्ति। उ०—सोभियत दंत रुचि सुभ्र उर आनिए। सत्य जनरूप अनरूपक बखानिए।—केशव (शब्द०)।

अनुरूपता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. समानता। सादृश्य। २. अनुकूलता। उपयुक्तता।

अनुरूपनाⓅ—क्रि० स० [सं० अनुरूप से हिं० नाम०] समान या सदृश बनाना।

अनुरूपासिद्धि—संज्ञा स्त्री० [सं०] पुत्रों, भाई, बंधुओं आदि को साम, दाम आदि द्वारा अपने पक्ष में करना।

अनुरेवती—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक पौधा [को०]।

अनुरोदन—संज्ञा पुं० [सं०] शोक की अभिव्यक्ति। सहानुभूति [को०]।

अनुरोध—संज्ञा पुं० [सं०] १. रुकावट। बाधा। उ०—सोधु बिनु, अनुरोध ऋतु के बोध बिहित उपाउ। करत हैं सोइ समय साधन फलति बनत बनाउ।—तुलसी ग्रं०, पृ० ३७३। २. प्रेरणा। उत्तेजना। जैसे,—सत्य के अनुरोध से मुझे यह कहना ही पड़ता है (शब्द०)। ३. आग्रह। दबाव। विनयपूर्वक किसी बात के लिये हठ। जैसे,—उसका अनुरोध है कि मैं अँगरेजी भी पढ़ूँ (शब्द०)। ४. इच्छापूर्ति करना (को०)। ५. संमान [को०]। ६. विचार [को०]।

अनुरोधक--वि० [सं०] अनुरोध करनेवाला [को०]।

अनुरोधन--संज्ञा पुं० [सं०] १. अनुसरण। परिपालन। आज्ञाकारिता। आदर। इच्छापूर्ति। २. किसी का प्रेम प्राप्त करने का साधन [को०]।

अनुरोधी--वि० [सं० **अनुरोधिन्**] दे० 'अनुरोधक' [को०]।

अनुर्वर--वि० [सं०][वि० स्त्री० **अनुर्वरा**] १. जिसमें उपज न हो। जो जरखेज न हो। उ०--इस विकराल, अनुर्वर, ऊसर अरस काल प्रांतर में।--क्वासि, पृ० १४। २. निष्फल। उ०--अपने में सिमटी हुई मलिन विद्या अनुर्वरा की झाँकी।--सामधेनी, पृ० १७।

अनुलग्न--वि० [सं०]संलग्न। पीछे लगा हुआ। जान बूझकर चिपका हुआ [को०]।

अनुलाप--संज्ञा पुं० [सं०] १. बातचीत। वार्तालाप। उ०--आलियों के बीच में होने लगा अनुलाप।--शकुं०, पृ० ६। २. पुनरुक्ति। किसी बात को प्रकारांतर से बार बार कहना (को०)।

अनुलालित--वि० [सं०] अनुरंजित। जिसका मनोरंजन किया गया हो [को०]।

अनुलास--संज्ञा पुं० [सं०] मयूर। मोर [को०]।

अनुलास्य--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अनुलास' [को०]।

अनुलिपि--संज्ञा पुं० [सं० **अनु + लिपि**] प्रतिलिपि। नकल। उ०--अनुलिपि आदि का कुछ कुछ अभ्यास करना प्रारंभ कर देने से लाभ ही होता है। भाषा शि०, पृ० ६८।

अनुलेख--संज्ञा पुं० [सं० **अनु + लेख**] अनुलिपि। प्रतिलिपि।

अनुलेप--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अनुलेपन'[1]। उ०--संसृति के विक्षत पग रे, यह चलती है डगमग रे, अनुलेप सदृश तू लग रे।--लहर, पृ० ५०।

अनुलेपक--वि० [सं०] [स्त्री० **अनुलेपिका**] जो शरीर पर लेप, उबटन आदि लगाता है [को०]।

अनुलेपन--संज्ञा पुं० [सं०] १. किसी तरल वस्तु की तह चढ़ाना। लेपन। उ०--अनुलेपन सा मधुर स्पर्श था।--कामायनी, पृ० २१५। २. सुगंधित द्रव्यों या औषधों का मर्दन। उबटन करना। बटना लगाना। ३. लीपना। पोतना।

अनुलेपी--वि० [सं० **अनुलेपिन्**] दे० 'अनुलेपक' [को०]।

अनुलोम--संज्ञा पुं० [सं०] १. ऊँचे से नीचे की ओर आने का क्रम। उतार का सिलसिला। २. उत्तम से अधम की ओर आता हुआ श्रेणीक्रम। ३. संगीत में सुरों का उतार। अवरोही। ४. प्रतिलोम का उलटा या विलोम [को०]।

यौ०--**अनुलोम विवाह**।

अनुलोमज--वि० [सं०] [वि० स्त्री० **अनुलोमजा**] वह (संतान) जो अनुलोम विवाह से उत्पन्न हो। अनुलोम संकर।

अनुलोमजन्मा--वि० [सं० **अनुलोमजन्मन्**] दे० 'अनुलोमज' [को०]।

अनुलोमन--संज्ञा पुं० [सं०] १. वह औषध जो पेट में पड़े हुए गोटों को ढीला करके गिरा दे। कोष्ठबद्धता को दूर करनेवाली रेचक या भेदक औषध। २. स्वाभाविक क्रम। अनुलोम [को०]।

अनुलोम विवाह--संज्ञा पुं० [सं०] उच्च वर्ण के पुरुष का अपने से किसी नीच वर्ण की स्त्री के साथ विवाह।

जैसे--ब्राह्मण का क्षत्रिया, वैश्या या शूद्रा से क्षत्रिय का वैश्या या शूद्रा से और वैश्या का शूद्रा से विवाह। इस प्रकार के संबंध से जो संतति होती है वह अनुलोम संकर कहलाती है।

अनुलोमा--संज्ञा स्त्री० [सं०] पति से नीचे वर्ण की स्त्री [को०]।

अनुलोमा सिद्धि--संज्ञा स्त्री० [सं०] पौर, जानपद तथा सेनापतियों को दान तथा भेद से अपने अनुकूल करना।

अनुल्बण, अनुल्वण--वि० [सं०] १. जो अधिक न हो। न अधिक न अल्प। २. अस्पष्ट [को०]।

अनुवंश--संज्ञा पुं० [सं०] १. वंशवृक्ष। वंशावली। कुरसीनामा। २. आधुनिक या नई पीढ़ी [को०]।

अनुवंश्य--वि० [सं०] वंशवृक्ष या वंशावली से संबंधित। जो कुरसीनामे में हो [को०]।

अनुवक्ता--संज्ञा पुं० [सं० **अनुवक्तृ**]उत्तर देनेवाला। प्रतिवक्ता। बाद में बोलनेवाला। पुनः पाठ करनेवाला। दोहराने वाला [को०]।

अनुवक्र--वि० [सं०] १. अत्यंत कुटिल या टेढ़ा। २. कुछ टेढ़ा या तिरछा [को०]।

अनुवचन--संज्ञा पुं० [सं०] १. आवृत्ति। दोहराना। पठन। २. अध्यापन। शिक्षण। व्याख्यान। भाषण। ३. अध्याय। पाठ। प्रकरण। ४. भिन्न ऋषियों द्वारा निर्दिष्ट नियमों के अनुसार मंत्रपाठ [को०]।

अनुवत्सर[1]--संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष के अनुसार जो पाँच वर्ष का युग होता है उसका चौथा वर्ष।

अनुवत्सर[2]--क्रि० वि० प्रतिवर्ष। सालाना।

अनुवदनाⓅ‡--क्रि० सं० [सं० **अनु + वद्**] बात दुहराना। उत्तर प्रत्युत्तर करना। कठहुज्जती करना। उ०--भल नहिं अनुवद सुपहु समाज।--विद्यापति, पृ० ३१४।

अनुवर्तन--संज्ञा पुं० [सं०] १. अनुसरण। अनुगमन। २. अनुकरण। समान आचरण। ३. किसी नियम का कई स्थानों पर बार बार लगना। ४. परिणाम। फल(को०)। ५. कृतज्ञताज्ञापन(को०)।

अनुवर्तिनी[1]--वि० [सं०] अनुगामिनी। अनुसरण करनेवाली।

अनुवर्तिनी[2]--संज्ञा स्त्री० भार्या। पत्नी [को०]।

अनुवर्ती--वि० [सं० **अनुवर्तिन**] [स्त्री० **अनुवर्तिनी** अनुसरण] करनेवाला। अनुसार बरताव करनेवाला। अनुयायी। अनुगामी। पैरवी करनेवाला।

अनुवश[1]--वि० [सं०] अनुगत। दूसरे के कहने पर चलनेवाला। वशवर्ती। आज्ञाकारी [को०]।

अनुवश[2]--संज्ञा पुं० आज्ञाकारिता। वशवर्तित्व [को०]।

अनुवसित--वि० [सं०] १. कपड़े से ढँका हुआ। वस्त्र द्वारा आच्छादित। २. बाँधा हुआ। संबद्ध। संलग्न [को०]।

अनुवह--संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि की सात जिह्वाओं में से एक का नाम [को०]।

अनुवा¹†—संज्ञा पुं० [सं० **अनूप = जलयुक्त, प्रा० अणूव**] १. कुएँ के जगत का वह भाग जहाँ खड़े होकर पानी खींचते हैं। २. पानी निकालने के लिये खोदा हुआ गड्ढा। चौड़ा। चोआ। ३. ताल के पास का वह स्थान जहाँ से टोकरी या दौरी के द्वारा खेत सींचने के लिये पानी ऊपर फेंकते हैं। चौना।

अनुवा²—संज्ञा पुं० [देश०] व्यभिचार दोष।

अनुवा³(पु)—[हिं० **आनना**] आननेवाला। लानेवाला। उ०—ताहि तू बताइ जोई बाँह दै उसीसें सोई ऐसे अनुबादन के अनुवा घनेरे हैं।—गंग०, ग्रं० पृ० ७६।

अनुवाक—संज्ञा पुं० [सं०] १. ग्रंथविभाग। ग्रंथावयव। ग्रंथखंड। अध्याय या प्रकरण का एक भाग। २. वेद के अध्याय का एक अंश। ३. दुहराना। पुनः पढ़ना (को०)।

अनुवाचन—संज्ञा पुं० [सं०] १. यज्ञों में विधि के अनुसार मंत्रों का पाठ। २. पढ़ाना। अध्ययन कराना (को०)। ३. स्वयं पढ़ना (को०)।

अनुवाद—संज्ञा पुं० [सं०] १. पुनरुक्ति। पुनःकथन। दोहराना। २. भाषांतर। उल्था। तर्जुमा। ३. न्याय के अनुसार वाक्य का वह भेद जिसमें कही हुई बात का फिर फिर स्मरण और कथन हो। जैसे—'अन्न पकाओ, पकाओ, पकाओ, शीघ्र पकाओ, हे प्रिय ! पकाओ'।

विशेष—इसके दो भेद हैं—जहाँ विधि का अनुवाद हो वहाँ शब्दानुवाद और जहाँ विहित का हो वहाँ अर्थानुवाद होता है।

४. मीमांसा के अनुसार वाक्य के विधिप्राप्त आशय का दूसरे शब्दों में समर्थन के लिये कथन।

विशेष—यह तीन प्रकार का है—(क) भूतार्थानुवाद, जिसमें आशय की पुष्टि के लिये भूतकाल का उल्लेख किया जाय। जैसे, पहले सत् ही था। (ख) स्तुत्यर्थानुवाद, जैसे, वायु ही सबसे बड़कर फेंकनेवाला देवता है। (ग) गुणानुवाद, जैसे, दही से हवन करे।

५. खबर। जनश्रुति (को०)। ६. व्याख्यान का आरंभ (को०)। ७. विज्ञापन। सूचना (को०)।

अनुवादक—संज्ञा पुं० [सं०] १. अनुवाद करनेवाला। भाषांतर करनेवाला। उल्था करनेवाला। २. सदृश। समान (को०)। ३. समर्थन करनेवाला (को०)।

अनुवादित—वि० [सं०] अनुवाद किया हुआ। अनूदित।

अनुवादी¹—संज्ञा पुं० [सं० **अनुवादिन्**] संगीत में स्वर का एक भेद जिसकी किसी राग में आवश्यकता न हो और जिसके लगाने से राग अशुद्ध हो जाय।

अनुवादी²—वि० दे० 'अनुवादक' (को०)।

अनुवाद्य—वि० [सं०] अनुवाद के योग्य। व्याख्या के योग्य (को०)।

अनुवास—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अनुवासन' (को०)।

अनुवासन—संज्ञा पुं० [सं०] १. वस्त्रादि को सुगंधित करना। महकाना। २. सुश्रुत के अनुसार पिचकारी के द्वारा तरल औषध शरीर के भीतर पहुँचाना। वस्ति क्रिया। एनिमा।

अनुवासनवस्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सुगंधित करने का यंत्र। पिचकारी। २. शरीर के भीतर तरल औषध पहुँचाने की पिचकारी।

अनुवासित—वि० [सं०] १. गंध से बसाया हुआ। गंधद्रव्य से सुवासित। २. वस्ति क्रिया द्वारा चिकित्सा किया हुआ। एनिमा दिया हुआ (को०)।

अनुवासी—वि० [सं० **अनुवासिन्**] पड़ोस में रहनेवाला। साथ रहनेवाला (को०)।

अनुवित्त—वि० [सं०] प्राप्त। उपलब्ध (को०)।

अनुवित्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्राप्ति। उपलब्धि (को०)।

अनुविद्ध—वि० [सं०] १. छेदा हुआ। जिसमें आर पार छेद किया हो। २. खचित। संलग्न। ३. भरा हुआ। परिपूर्ण। ४ मिला हुआ। युक्त। संयुक्त (को०)।

अनुविधान—संज्ञा पुं० [सं०] १. आज्ञापालन। आज्ञाकारिता। २. आदेश या नियम के अनुसार कार्य करना।

अनुविधायी—वि० [सं० **अनुविधायिन्**] [वि० स्त्री० **अनुविधायिनी**] १. आज्ञाकारी। विनीत। आदेशानुसारी। २. मिलता जुलता। तद्रूप (को०)।

अनुविनाश—संज्ञा पुं० [सं०] किसी के साथ लुप्त या नष्ट हो जाना (को०)।

अनुविहित—वि० [सं०] आज्ञाकारी (को०)।

अनुवृत्त¹—वि० [सं०] १. अनुसरण करनेवाला। २. आज्ञापालन करनेवाला। ३. लगातार। अविच्छिन्न। ४. उतार चढ़ाव के साथ वर्तुलाकार। सुराहीदार। ५. शीलानुगत। ६. जिसकी आवृत्ति की गई हो (को०)।

अनुवृत्त²—संज्ञा पुं० [सं०] वृतांत। वर्णन। विवरण।

अनुवृत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. किसी पद के पहले अंश से कुछ वाक्य उसके पिछले अंश में अर्थ को स्पष्ट करने के लिये लाना जैसे—'राम घर गए हैं और गोविंद भी (घर गए हैं)'। २. स्वीकृति। संपुष्टि (को०)। ३. आज्ञाकारिता (को०)। ४. आवृत्ति (को०)। ५. अनुसरण। अनुकरण (को०)।

अनुवेध—संज्ञा पुं० [सं०] १. छेदन करना। बेधना। २. संपर्क। मिलन। ३. मिश्रण। ४. बाधा (को०)।

अनुवेल्लित¹—वि० [सं०] नीचे झुका हुआ (को०)।

अनुवेल्लित²—संज्ञा पुं० १. घाव पर पट्टी बाँधना। २. सुश्रुत के अनुसार घाव बाँधने के लिये १४ प्रकार की पट्टियों में से एक(को०)।

अनुवेश—संज्ञा पुं० [सं०] १. अनुसरण। बाद में प्रवेश करना। पीछे पीछे प्रविष्ट होना। २. बड़े भाई से पहले छोटे का विवाह (को०)।

अनुवेशन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अनुवेश' (को०)।

अनुवेश्य¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह ब्राह्मण जो मंगल या शांति कर्म करनेवाले से एक घर के अंतर पर रहता हो।

विशेष—मनु ने किसी मंगल या शांति कर्म में ऐसे ब्राह्मण को भोजन कराने का निषेध किया है।

अनुवेश्य²—वि० प्रतिवेशी। पड़ोसी। सटे हुए मकान में रहनेवाला।

अनुव्याख्यान—संज्ञा पुं० [सं०] १. मंत्रों तथा सूत्रों की व्याख्या। मंत्रविवरण। २. ब्राह्मण ग्रंथों का वह भाग जिसमें कठिन सूत्रों तथा मंत्रों की व्याख्या हो। मंत्रों आदि का अनुरूप अर्थप्रकाशक व्याख्यान (को०)।

अनुव्याध—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अनुवेध' [को०]

अनुव्याहरण—संज्ञा पुं० [सं०] १. बार बार दोहराना। पुनरुक्ति। २. किसी प्रसंग का प्रसंगांतर सहित उल्लेख। ३. शाप। अनिष्ट-चिंतन [को०]।

अनुव्याहार—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अनुव्याहरण' [को०]।

अनुव्रजन—संज्ञा पुं० [सं०] विदा होते हुए विशिष्ट अतिथि के साथ कुछ दूर पहुँचाने जाना [को०]।

अनुव्रज्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अनुव्रजन' [को०]।

अनुव्रत[1]—वि० [सं०] १. विश्वासपात्र। कर्तव्यपरायण २. निर्दिष्ट कार्यों को दत्तचित होकर उचित रूप से करनेवाला [को०]।

अनुव्रत[2]—संज्ञा पुं० जैन मुनियों का एक वर्ग [को०]।

अनुव्रता—संज्ञा स्त्री० [सं०] सदा पति में अनुरक्त रहनेवाली स्त्री। पतिव्रता [को०]।

अनुशतिक—संज्ञा पुं० [सं०] सौ से अधिक सैनिकों का नायक या अफसर।

विशेष—इसका स्थान शतानीकों के ऊपर होता था जिन्हें यह सैनिक शिक्षा देता था।

अनुशप—संज्ञा पुं० [सं०] काम से ली हुई छुट्टी। रुखसत।

विशेष—चाणक्य ने अपने अर्थशास्त्र में इसके संबंध में बहुत से नियम दिए हैं।

अनुशय—संज्ञा पुं० [सं०] १. पूर्वद्वेष। पुराना वैर। अदावत। २. पश्चात्ताप। अनुताप। उ०—लघुता मत देखो वक्ष चीर, जिसमें अनुशय बन घुसा तीर।—कामायनी, पृ० २५०। ३. झगड़ा। वादविवाद। कहासुनी। गर्मागर्मी।४. दान संबंधी झगड़ों का निर्णय, फल या फैसला (अर्थ०)। ५. घृणा (को०)। ६. लगाव। आसक्ति (को०)। ७. बुरे कर्मों का फल या परिणाम। कर्मविपाक (को०)।

यौ०—क्रीतानुशय = वे नियम जो क्रय विक्रय के झगड़े से संबंध रखें। नारद स्मृति में ये बड़े विस्तार के साथ कहे गए हैं।

अनुशयान—वि० [सं०] पश्चात्ताप करनेवाला। पछतानेवाला [को०]।

अनुशयाना—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. परकीया नायिका का एक भेद। वह नायिका जो अपने प्रिय का मिलने स्थान नष्ट हो जाने से दुखी हो।

विशेष— यह तीन प्रकार की होती है। (क) संकेतविघट्टना = वर्तमान संकेत नष्ट होने से दुखी। (ख) भाविसंकेतनष्टा = भावी संकेत के नष्ट होने की संभावना से संतापित और (ग) रमणगमना = मिलने के स्थान पर प्रिय गया होगा और मैं नहीं पहुँच सकी, यह सोचकर जो दुखी हो।

अनुशयी[1]—वि०[सं० अनुशयिन्] १. बैरी। द्वेषी। २. झगड़ालू। ३. पश्चात्तापयुक्त। पछतानेवाला। ४. चरणों पर पड़कर प्रणाम करनेवाला। ५. अनुरक्त। लीन। आसक्त। ६. कर्मफल का भोक्ता (को०)।

अनुशयी[2]—संज्ञा पुं० वह राजकर्मचारी जो दान संबंधी झगड़ों का निर्णय करता था (अर्थ०)।

अनुशयी[3]—संज्ञा स्त्री० [सं० अनुशय + ई] रोगविशेष। एक प्रकार की फुंसी जो पैर में होती है।

अनुशर—संज्ञा पुं० [सं०] दुष्टात्मा राक्षस।

अनुशासक—संज्ञा पुं० [सं०] १. आज्ञा देनेवाला। आदेश देनेवाला। हुक्म देनेवाला। २ उपदेष्टा। शिक्षक। ३. देश या राज्य का प्रबंध करनेवाला। हुकूमत करनेवाला।

अनुशासन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अनुशासक, अनुशासनीय, अनुशासित] १. आदेश। आज्ञा। हुक्म। उ०—अनुशासन ही था मुझे अभी तक आता।—साकेत, पृ० २३५। २. उपदेश। शिक्षा। ३. व्याख्यान। विवरण। ४. महाभारत का एक पर्व। ५. नियम। व्यवस्था।

अनुशासनपर—वि० [सं०] आज्ञाकारी [को०]।

अनुशासनपर्व—संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत का १३वाँ पर्व।

अनुशासनीय—वि० [सं०] १. आज्ञा देने के योग्य। आदेश देने के योग्य। हुक्म देने के लायक। २. उपदेश देने के योग्य। शिक्षा देने के योग्य। ३. प्रबंध करने के योग्य। हुकूमत करने के लायक।

अनुशासित—वि० [सं०] १. जिसको आज्ञा दी गई हो। जिसे आदेश दिया गया हो। २. उपदिष्ट। शिक्षित। ३. जिसका प्रबंध किया गया हो। जिसपर हुकूमत की गई हो।

अनुशासी—संज्ञा पुं० [सं० अनुशासिन्] दे० 'अनुशासक' [को०]।

अनुशास्ता—संज्ञा पुं० [सं० अनुशास्तृ] दे० 'अनुशासक' [को०]।

अनुशिष्ट—वि० [सं०] १. शिक्षित। २. आदिष्ट। निदेशित। ३. पूछा हुआ।

अनुशिष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] आदेश। शिक्षा। शासन [को०]।

अनुशीलन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अनुशीलनीय, अनुशीलित] १. चिंतन। मनन। आलोचन। उ०—देवों की सृष्टि विलीन हुई अनुशीलन में अनुदिन मेरे।—कामायनी, पृ० ७१। २. पुनः पुनः अभ्यास या अध्ययन। आवृत्ति।

अनुशीलनीय—वि० [सं०] १. चिंतन करने के योग्य। मनन करने के योग्य। विचार या आलोचना करने के योग्य। २. अभ्यास करने के योग्य।

अनुशीलित—वि० [सं०] बार बार अभ्यस्त। सावधानी से अथवा ध्यानपूर्वक पठित [को०]।

अनुशोक—संज्ञा पुं० [सं] शोक। पश्चात्ताप। खेद [को०]।

अनुशोचक—वि० [सं०] १. पश्चात्तापकर। खेदजनक। पछतानेवाला [को०]।

अनुशोचन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अनुशोक' [को०]।

अनुशोचना—संज्ञा स्त्री० [सं० अनुशोचन] दुःख। शोक। खेद। चिंता। उ०—(क) 'क्यों हृदय को दुर्बल बनाकर अनुशोचना बढ़ा रहे हो'।—राज्यश्री, पृ० ६।

अनुशोची—वि० [सं० अनुशोचिन्] दे० 'अनुशोचक' [को०]।

अनुश्रव—संज्ञा पुं० [सं०] वैदिक या धार्मिक परंपरा [को०]।

अनुश्रविक—वि० [सं०] परंपरा से श्रुति द्वारा परलोक विषयक (ज्ञान), जैसे, स्वर्ग, देवता, अमृत इत्यादि का।

अनुश्रुत—वि०[सं०] परंपरा से सुना गया अथवा प्राप्त (ज्ञान आदि) [को०]।

अनुश्रुति—संज्ञा स्त्री० [सं०] परंपरया सुनी या प्राप्त कथा, ज्ञान अथवा बात। उ०—अनुश्रुति है कि उनका निर्वाण विक्रम के जन्म से ४७० वर्ष पूर्व हुआ।—हिंदु० सभ्यता, पृ० २२३।

अनुषंग—संज्ञा पुं० [सं० **अनुषङ्ग**] [वि० **अनुषंगी, अनुषंगिक**] १. करुणा। दया। २. संबंध। लगाव। साथ। ३. प्रसंग से एक वाक्य के आगे और वाक्य लगा देना। जैसे—'राम वन को गए और लक्ष्मण भी'। इस पद में "भी" के आगे 'वन को गए' वाक्य अनुषंग से समझ लिया जाता है। ४. न्याय में उपनय के अर्थ को निगमन में ले जाकर घटाना। किसी वस्तु में किसी और के तुल्य धर्म का स्थापन करके उसके विषय में कुछ निश्चय करना। जैसे,—घट आदि उत्पत्ति धर्मवाले हैं (उदाहरण), वैसे ही शब्द उत्पत्ति धर्मवाला है (उपनय), इसलिये शब्द अनित्य है (निगमन)। ५. उत्कट लालसा। तीव्र इच्छा। ६. अर्थपूर्ति के लिये एक या अनेक शब्दों की आवृत्ति (को०)। ७. घालमेल। मिश्रण (को०)। ८. अवश्य होनेवाला फल (को०)। ९. एक शब्द का दूसरे से संबंध (को०)।

अनुषंगिक—वि० [सं० **अनुषङ्गिक**] १. अनिवार्य फलरूप। २. संबंध या प्रसंगवश प्राप्त। संबद्ध (को०)।

अनुषंगी—वि० [सं० **अनुषङ्गिन्**] १. संबंधी। २. दे० 'अनुषंगिक' [को०]।

अनुषक्त—वि० [सं०] १. घनिष्ठ संबंध या लगाववाला। २. संलग्न। संपृक्त [को०]।

अनुषक्ति—वि० [सं०] १. संबद्धता। संलग्नता। २. आसक्ति [को०]।

अनुषिक्त—वि० [सं०] बार बार सिंचित। [को०]।

अनुषेक—संज्ञा पुं० [सं०] बार बार सींचना। फिर फिर पानी डालना या छिड़कना [को०]।

अनुषेचन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अनुषेक' [को०]।

अनुष्टुप्—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. अष्टाक्षरपदी छंद। बत्तीस अक्षरों का एक वर्णवृत्त।

विशेष—इसमें आठ आठ वर्ण के चार पद या चरण होते हैं, प्रत्येक चरण का पाँचवाँ अक्षर सदा लघु और छठा सदा गुरु होता है तथा दूसरे और चौथे चरणों का सातवाँ अक्षर भी लघु ही होता है। शेष वर्णों के लिये कोई नियम नहीं है। "छंदः प्रभाकर" के अनुसार माणवक्रीडा, प्रमाणिका, लक्ष्मी, विपुला, गजगति, विद्युन्माला, मल्लिका, तुंग, पद्म, वितान, रामा, नराचिका, चित्रपदा और श्लोक अनुष्टुप् छंद हैं। इनके लक्षण और भेद अलग अलग हैं।

२. सरस्वती (को०)। ३. वाणी। वाक् (को०)। ४. आठ की संज्ञा।

अनुष्ठातव्य—वि० [सं०] अनुष्ठान किए जाने योग्य। अनुष्ठेय।

अनुष्ठाता—वि० [सं० **अनुष्ठातृ**] कार्य करने या कार्यारंभ करनेवाला। अनुष्ठानकर्ता (को०)।

अनुष्ठान—संज्ञा पुं० [सं०] १. कार्य का आरंभ। किसी काम का शुरू। २. नियमपूर्वक कोई काम करना। ३. शास्त्रविहित कर्म करना। ४. किसी फल के निमित्त किसी देवता की आराधना। प्रयोग। पुरश्चरण।

अनुष्ठानक्रम—संज्ञा पुं० [सं०] धर्मकृत्यों का क्रम [को०]।

अनुष्ठानशरीर—संज्ञा पुं० [सं०] सांख्य के अनुसार सूक्ष्म और स्थूल शरीर के मध्य की स्थिति जिसे अधिष्ठानशरीर भी कहते हैं [को०]।

अनुष्ठापन—संज्ञा पुं० [सं०] कार्य में प्रवृत्त करना अथवा कार्य कराना [को०]।

अनुष्ठायी—वि० [सं० **अनुष्ठायिन्**] अनुष्ठान या कार्य करनेवाला [को०]।

अनुष्ठित—वि० [सं०] सविधि पूरा किया हुआ। संपन्न। पूर्ण। उ०—सुप्रभात किया अनुष्ठित राजसूय सुरीति से।—कानन०, पृ० ११३।

अनुष्ठेय—वि० [सं०] कर्तव्य। करने योग्य अनुष्ठान योग्य [को०]।

अनुष्ण[1]—वि० [सं०] १. जो गर्म न हो। ठंढा। २. आलसी। सुस्त (को०)।

अनुष्ण[2]—संज्ञा पुं० नील कमल [को०]।

अनुष्णक—वि० [सं०] 'अनुष्ण' [को०]।

अनुष्णगु—संज्ञा पुं० [सं०] शीतल किरणोंवाला। चंद्रमा [को०]।

अनुष्णवल्लिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] नीली दूब। नील दूर्वा [को०]।

अनुष्यंद—संज्ञा पुं० [सं०] गाड़ी का पिछला चक्का [को०]।

अनुसंधान—संज्ञा पुं० [सं० **अनुसन्धान**] [क्रि० **अनुसंधानना**] पश्चाद्गमन। पीछे लगना। २. अन्वेषण। खोज। ढूँढ़। जाँच पड़ताल। तलाश। तहकीकात। ३. चेष्टा। प्रयत्न। कोशिश। ४. योजना। पूर्वरूप या प्रारूप। खाका (को०)।

अनुसंधानकर्ता—वि० [सं० **अनुसन्धान + कर्तृ**] शोध या खोज का कार्य करनेवाला। उ०—यह संक्षिप्त वर्णन अनुसधानकर्ताओं के सामने एक नए क्षेत्र का जन्मदाता होगा।—प्रा० भा० प०, पृ० १२१।

अनुसंधानना(पु)—क्रि० स० [सं० **अनुसन्धान से हिं० नाम०**] १. खोजना। ढूँढना। २. सोचना। विचारना। उ०—हृदय न कछु फल अनुसंधाना। भूप बिबेकी परम सुजाना।—मानस, १।१५६।

अनुसंधानी—वि० [सं० **अनुसन्धानिन्**] १. शोध करनेवाला। तलाश में रहनेवाला। २. योजनापटु। किसी योजना के कार्यान्वियन में दक्ष [को०]।

अनुसंधायक—वि० [सं० **अनु + सन्धायक**] दे० 'अनुसंधायी'। उ०—यहाँ तक कि कुछ अनुसंधायक परवर्ती अथवा उत्तरार्ध शृंगार काल को इसी करण पद्माकर युग तक कहना चाहते हैं।—पद्माकर ग्रं० (भू०), पृ० ८।

अनुसंधायी—वि० [सं० **अनुसन्धायिन्**] दे० 'अनुसंधानी' [को०]।

अनुसंधि—संज्ञा स्त्री० [सं० **अनुसन्धि**] १. परामर्श। २. अनुसंधान। ३. गुप्त परामर्श। अंतरंग मंत्रणा। भीतरी बातचीत। षड्चक्र। उ०—जिनको कि यह सब गुप्त अनुसंधि न मालूम थी, इस बात का निश्चय भी करा दिया।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० १३४।

अनुसंधेय—वि० [सं० **अनुसन्धेय**] शोध योग्य। खोज के योग्य।

अनुसंधान—संज्ञा पुं० [सं० [**अनु + संधान**] १. साथ चलना। साथ साथ यात्रा करना। २. गमन। यात्रा। दौरा। ३. बदली या परिवर्तन। उ०—अनुसंधान का अर्थ विवादग्रस्त है।—भा० इ० रू०, पृ० ५७८।

अनुसंहित—वि० [सं०] १. जिसकी छानबीन या जाँच की गई हो । २. किसी के अनुरूप या अनुकूल [को०] ।

अनुसमापन—संज्ञा पुं० [सं०] कार्य की नियमित परिपूर्ति या समाप्ति [को०] ।

अनुसयनाⓅ—संज्ञा स्त्री० [सं० **अनुशयाना**] दे० 'अनुशयाना' । उ०—सु तीसरी अनुसयना पहिचान ।—पद्माकर ग्रं०, पृ० १०५ ।

अनुसयानाⓅ—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अनुशयाना' । उ०—कही अनुसयाना त्रिविध प्रथम भेद यह जानि ।—पद्माकर ग्रं०, पृ० १०४ ।

अनुसर[1]Ⓟ—वि० [हिं०] दे० 'अनुसार' ।

अनुसर—वि० [सं०] अनुगामी । सहयोगी । अनुचर [को०] ।

अनुसरण—संज्ञा पुं० [सं०] [क्रि० **अनुसरना, अनुसारना**] १. पीछे चलना । साथ साथ चलना । २. अनुकरण । नकल । ३. अनुकूल आचरण ।

अनुसरनाⓅ—क्रि० स० [सं० **अनुसरण से हिं० नाम०**] १. पीछे चलना । साथ साथ चलना । उ०—जिमि पुरुषहि अनुसर परिछाहीं ।—मानस, २।१४१ । २. अनुकरण करना । नकल करना । उ०—कहहु सो प्रेम प्रकट को करई । केहि छाया कवि मति अनुसरई ।—तुलसी (शब्द०) ।

अनुसर्प—संज्ञा पुं० [सं०] १. सर्प जैसा जीव । २. रेंगनेवाला जीव । सरीसृप [को०] ।

अनुसर्पिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०[सुख दुःख की स्थिति के तारतम्यानुसार जैन लोग छः काल की जो दो शृंखलाएँ मानते हैं उनमें से एक का नाम । उ०—जैन लोग छह छह कालों की दो महान् शृंखलाएँ मानते हैं—अनुसर्पिणी और अवसर्पिणी ।

अनुसाम—वि० [सं०] १. परितोषित । संतुष्ट किया हुआ । अनुकूल । मुताबिक [को०] ।

अनुसार[1]—क्रि० वि० [सं०] १. अनुकूल । मुआफिक । उ०—कहउँ नामु बड़ रात तें निज बिचार अनुसार ।—मानस, १।२३ । २. सदृश । समान । मुताबिक । जैसे—मैंने आपकी आज्ञा के अनुसार ही काम किया है (शब्द०) ।

विशेष—संस्कृत में यह शब्द संज्ञा है पर हिंदी में इसका प्रयोग क्रियाविशेषणवत् होता है ।

अनुसार[2]—संज्ञा पुं० [सं०] २. पीछे पीछे चलना । अनुसरण । २. अनुकूल आचरण । ३. किसी वस्तु की स्वाभाविक प्रकृति या स्थिति । ४. प्रथा । परंपरा । ५. अभ्यास । अनुकूल [को०] ।

अनुसार[3]—संज्ञा पुं० [सं० **अनुस्वार**] दे० 'अनुस्वार' । उ०—अनुसार से उतपती नीरजन, नीरंजन से उतपती जीव ।—रामानंद०, पृ० ३० ।

अनुसारक—वि० [सं०] अनुसरणकारी । पीछे चलनेवाला । अनुयायी । २. तुल्य । अनुरूप । ३. शोध करनेवाला । खोजनेवाला [को०] ।

अनुसारणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] पीछा करना । अनुगमन करना [को०] ।

अनुसारनाⓅ—क्रि० स० [सं० **अनुसरण**] १, अनुसरण करना । अनुकूल आचरण करना । २. आचरण करना । उ०—ऐसे जनम करम के ओछे ओछे ही अनुसारत ।—सूर० (शब्द०) । ३. कोई कार्य करना ।

विशेष—हिंदी के कविगण यौगिक क्रिया बनाने में प्रायः किसी भी संज्ञा शब्द के साथ इस क्रिया को जोड़ देते हैं । जैसे,—(क) तब ब्रह्मा बिनती अनुसारी ।—सूर० (शब्द०) । (ख) ता तें कछुक बात अनुसारी ।—मानस, २।१६ । (ग) तिलक सारि अस्तुति अनुसारी ।—मानस, ६।१०५ । (घ) नींद भूख प्यास ताहि आधी हू रही न तन आधे हू न आखर सकत अनुसारि कै । देव (शब्द०) । (च) कहै पद्माकर कहौं जौ बरदान तौ लौं कैयो बरदानन के गान अनुसारती ।—पद्माकर ग्रं०, पृ० २६० ।

अनुसारिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अनुवर्तिता' ।

अनुसारीⓅ—वि० [सं० **अनुसारिन्**] १. अनुसरण करनेवाला । अनुकरण करनेवाला । उ०—सूरदास सम, रूप नाम गुन अंतर अनुचर अनुसारी ।—सूर०, १०।१७१ । २. दे० 'अनुसारक' ।

अनुसार्यक—संज्ञा पुं० [सं०] सुगंधद्रव्य चंदन, अगुरु आदि [को०] ।

अनुसालⓅ—संज्ञा पुं० [सं० **अनु** + हिं० **√साल**] वेदना । पीड़ा । उ०—मधुकैटभ मथन, मुर भौम केशीभिदन; कंसकुल काल अनुसाल हारो ।—सूर (शब्द०) ।

अनुसासनⓅ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अनुशासन' । उ०—चली दुलहिनिहिं ल्याइ पाइ अनुसासन । तुलसी ग्रं०, पृ० ५८ ।

अनुसुइयाⓅ—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अनसूया' । उ०—इंद्रादिक सब देव बखानहु, अनुसुइया धर मृष्टित जानहु ।—प० रा०, पृ० ३७ ।

अनुसूचक—वि० [सं०] सूचना करने या देनेवाला [को०] ।

अनुसूचन—संज्ञा पुं० [सं०] सूचना देने का कार्य । सूचना देना [को०] ।

अनुसूचित—वि० [हिं० **अनुसूची**] परिगणित । जिसका नाम सूची में दर्ज हो ।

अनुसूची—संज्ञा स्त्री० [सं० **अनु** + **सूची**] संलग्न तालिका या सूची ।

अनुसृत—वि० [सं०] १. अनुसरण किया हुआ । अनुगमित । २. प्रवाहित होना । बहना । लुढ़कना । ३. आश्रयी । शरणागत [को०] ।

अनुसृति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. अनुसरण । पीछे जाना । २. नकल । पैरवी । ३. पुंश्चली । कुलटा [को०] ।

अनुसृष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. क्रमबद्ध रचना । २. प्रत्युत्पन्नमति या हाजिर जवाब । महिला [को०] ।

अनुसेवी—वि० [सं० **अनुसेविन्**] किसी वस्तु के सेवन का अभ्यासी । आदि । लत में पड़ा हुआ [को०] ।

अनुसोचनाⓅ—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अनुशोचना' । उ०—अनसमुझे अनुसोचनो अवधि समुझिए आपु ।—तुलसी ग्रं०, पृ० १४४ ।

अनुस्तरण—संज्ञा पुं० [सं०] बिखराना । विकीर्ण करना [को०] ।

अनुस्तरणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. आच्छादन । २. गौ । वह गौ जिसका अंतिम संस्कार के समय वैतरणी पार होने के लिये उत्सर्ग किया जाता है [को०] ।

अनुस्नान—संज्ञा पुं० [सं०] पाशुपत दर्शन के अनुसार शिव पर चढ़े निर्माल्य को धारण करना ।

अनुस्मरण—संज्ञा पुं० [सं०] बार बार स्मरण करना। स्मृति में लाना। उ०—इतिहास में भूतकाल की घटनाओं का उल्लेख और अनुस्मरण रहता है।—हिंदु० सभ्यता, पृ० १। सोचना [को०]।

अनुस्मारक—संज्ञा पुं० [सं० **अनु+स्मारक**] स्मृति या याद दिलाने-वाली वस्तु।

अनुस्मृति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ संजोई हुई स्मृति। प्रिय स्मृति। २. अन्य का त्याग करके किसी एक के प्रति किया हुआ चिंतन या स्मरण। एकांत चिंतन [को०]।

अनुस्यूत—वि० [सं०] १. सीया हुआ। २. पिरोया हुआ। ३. ग्रथित। गूँथा हुआ। उ०—तीनि अवस्था माहिं है सुंदर साक्षीभूत। सदा एकरस आतमा व्यापक है अनुस्यूत।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ७८२। ४. संबद्ध। श्रेणीबद्ध। सिलसिलेवार।

अनुस्वान—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रतिध्वनि। गूँज। २. समध्वनि। समर्थक स्वर। अनुरणन [को०]।

अनुस्वार—संज्ञा पुं० [सं०] १. स्वर के बाद उच्चरित होनेवाला एक अनुनासिक वर्ण जिसका चिह्न (ं) है। निगृहीत इसे आश्रय स्थानभागी भी कहते हैं क्योंकि जिस स्वर के बाद यह लगेगा उसी का सा उच्चारण इसका होगा। २. स्वर के ऊपर की बिंदी।

अनुहरण—संज्ञा पुं० [सं०] १. नकल। अनुकरण। २. सादृश्य। समता [को०]।

अनुहरत—वि० हिं० √**अनुहार का कृदंत रूप**] १. अनुसार। अनुरूप। समान। उ०—दंभ सहित कलि धरम सब छल समेत व्यवहार। स्वारथ सहित सनेह सब, रुचि अनुहरत अचार।—तुलसी ग्रं०, पृ० १५०। २. उपयुक्त। योग्य। अनुकूल। उ०—अब तुम्ह विनय मोरि सुन लेहू। मोहि अनुहरत सिखावनु देहू।—मानस, २।१७७।

अनुहरनाⓅ—क्रि० स० [सं० **अनुहरण**] अनुकरण करना। आदर्श पर चलना। नकल करना। समानता करना। उ०—सहज टेढ़ अनुहरै न तोही। नीचु मीचु सम देख न मोही।—मानस १।२७।

अनुहरिया¹Ⓟ†—वि० [सं० **अनुहार+हिं० इया (प्रत्य०)**] समान। तुल्य।

अनुहरिया²Ⓟ‡—संज्ञा स्त्री० आकृति। मुखानी। उ०—लाल तिलक सर सोहत भौंह कमान। मुख अनुहरिया केवल चंद समान।—तुलसी ग्रं० पृ० १९।

अनुहार¹—वि० [सं०] सदृश। तुल्य। समान। एकरूप। उ०—खंजन नैन बीच नासा पुट राजत यह अनुहार। खंजन युग मनो लरत लराई कीर बुझावत रार।—सूर (शब्द०)।

अनुहार²—संज्ञा स्त्री० १. रूप भेद। प्रकार। उ०—मुग्धा मध्या प्रौढ़ गनि, तिनके तीनि बिचार। एक एक की जानिए चार चार अनुहार।—केशव (शब्द०)। २. मुखानी। आकृति।

अनुहार³—संज्ञा पुं० दे० 'अनुहरण'।

अनुहारक—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० **अनुहारिका**] अनुकरण करनेवाला। नकल करनेवाला। सदृश कर्म करनेवाला।

अनुहारनाⓅ—क्रि० स० [सं० **अनुहार से नाम०**] तुल्य करना। सदृश करना। समान करना। उ०—देखि री हरि के चंचल तारे। कमल मीन कौं कहाँ इती छबि, खंजन हूँ न जात अनुहारे।—सूर (शब्द०)।

अनुहारि¹—वि० स्त्री० [सं० **अनुहारिन्**] १. समान। सदृश। तुल्य। बराबर। उ०—(क) गिरि समान तन अगम अति, पन्नग की अनुहारि।—सूर० १०।४३१। (ख) चुनरी स्याम सतार नभ, मुख ससि की अनुहारि। नेह दबावत नींद लौं, निरखि निसा सी नारि।—बिहारी (शब्द०)। २. योग्य। उपयुक्त। उ०—बर अनुहारि बरात न भाई। हँसी करैहहु पर पुर जाई।—मानस, १।९२। ३. अनुसार। अनुकूल। मुताबिक। उ०—कहि मृदु बचन विनीत तिन्ह, बैठारे नर नारि। उत्तम मध्यम नीच लघु, निज निज थल अनुहारि।—तुलसी (शब्द०)।

विशेष—इस विशेषण का लिंग भी 'नाईं' के समान है अर्थात् यह शब्द संज्ञा पुं० और संज्ञा स्त्री० दोनों का विशेषण होता है।

अनुहारि²Ⓟ—संज्ञा स्त्री० आकृति। चेहरा। उ०—ज्यों मुख मुकुर बिलोकिए, चित न रहै अनुहारि। त्यों सेवतहु निरापने मातु पिता सुत नारि।—तुलसी (शब्द०)।

अनुहारी¹—वि० [सं० **अनुहारिन्**] [स्त्री० **अनुहारिणी**] अनुकरण करनेवाला। नकल करनेवाला।

अनुहारी²Ⓟ—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अनुहारि'²। उ०—(क) देखी सासु आन अनुहारी।—तुलसी (शब्द०)। (ख) भरतु रामहीं की अनुहारी।—मानस, १।३११।

अनुहार्य—वि० [सं०] अनुकरण या नकल करने योग्य [को०]।

अनुहोड—संज्ञा पुं० [सं०] बैलगाड़ी [को०]।

अनूअरⓅ—क्रि० वि० [सं० **अनवरत**] सतत। निरंतर। लगातार।

अनूक—संज्ञा पुं० [सं०] १. गत जन्म। पूर्व जन्म। २. कुल। वंश। खानदान। ३. शील। स्वभाव। ४. पीठ की हड्डी। रीढ़। ५. मेहराब के बीच की ईंट। कीली। ६. यज्ञ की वेदी बनाने के लिये ईंट उठाने की खँचिया या पात्र। ७. जाति या वंशगत विशिष्टता [को०]। ८. यज्ञ की वेदी का पृष्ठभाग (को०)।

अनूकाश—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रकाश की कौंध या झलक। २. उदाहरण। संदर्भ। हवाला [को०]।

अनूक्त—वि० [सं०] १. बाद में कथित। दोहराया गया। २. जिसने वेदाध्ययन किया हो। अधीत [को०]।

अनूक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. विवरणपूर्वक कही या दोहराई हुई बात। २. वेदाध्ययन [को०]।

अनूचान—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह जो वेद वेदांग में पारंगत होकर गुरुकुल से आया हो। स्नातक। २. विद्यारसिक व्यक्ति। ३. चरित्रवान् पुरुष।

अनूजराⓅ—वि० [**हिं० अन+ऊजरा**] [स्त्री० **अनूजरी**] जो उजला या साफ न हो। मैला। उ०—साछय साछी पूतरी अनूजरीऽसह ऊजरी ह्वै देखि रागी त्यागी ललचात जनजात है।—निश्चल (शब्द०)।

अनूठा—वि० [सं० **अनुत्थ; पा० अनुट्ठ, प्रा० अणुट्ठ=स्थित अथवा देश०**] [**स्त्री० अनूठी**] १. अपूर्व। अनोखा। विचित्र। विलक्षण। अद्भुत। २. सुंदर। अच्छा। बढ़िया।

अनूठापन—संज्ञा पुं० [हिं० **अनूठा** + **पन** (प्रत्य०)] १. विचित्रता। विलक्षणता। विशेषता। २. सुंदरता। अच्छापन।

अनूढ़—वि० [सं० **अनूढ**] १. अजात। अनुत्पन्न। २. जो ले जाया न गया हो। ३. अविवाहित [को०]।

अनूढ़ा—संज्ञा स्त्री० [सं० **अनूढा**] १. अविवाहिता कन्या। २. बिना ब्याही स्त्री जो किसी पुरुष से प्रेम रखती हो। उ०—ताहि अनूढ़ा कहत हैं कवि पंडित परबीन।—पद्माकर ग्रं०, पृ० ९७।

अनूढ़ागमन—संज्ञा पुं० [सं० **अनूढागमन**] अविवाहिता स्त्री से प्रेम या संसर्ग [को०]।

अनूढ़ाभ्राता—संज्ञा पुं० [सं० **अनूढाभ्रातृ**] १. अविवाहिता स्त्री का भाई। २. राजा की रखेली या उपपत्नी का भाई [को०]।

अनूतर(पु)—वि० [सं० **अनुत्तर**] [वि० स्त्री० **अनूतरी**] १. निरुत्तर। कायल २. चुपचाप बैठनेवाला। मौन धारण करनेवाला। उ०—बैठी फिरि पूतरी अनूतरी फिरंग कैसी, पीठि दै प्रबीनी दृग दृगनि मिलै अनिंद।—पद्माकर ग्रं०, पृ० १०१।

अनूदक—संज्ञा पुं० [सं०] १. जलहीन स्थान। २. सूखा [को०]।

अनूदर्वा—संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल की एक प्रकार की नाव।
विशेष—यह ४८ हाथ लंबी, २४ हाथ चौड़ी और २४ ही हाथ ऊँची होती थी।

अनूदित—वि० [सं०] १. कहा हुआ। वर्णन किया हुआ। २. अनुवादित। तर्जुमा किया हुआ। भाषांतरित।

अनूद्य—वि० [सं०] १. पीछे चर्चा करने योग्य। १. अनुवाद योग्य [को०]।

अनून—वि० [सं०] १. अखंड। पूर्ण। पूरा। समग्र। २. जिसमें कोई कमी न हो। २. अन्यून। अधिक। ज्यादा। बहुत। ३. पूर्ण अधिकारयुक्त [को०]।

अनूप[1]—वि० [सं०] १. जलप्राय। जहाँ जल अधिक हो। २. दलदली [को०]।

अनूप[2]—संज्ञा पुं० १. जलप्राय देश। वह स्थान जहाँ जल अधिक हो। २. भैंस। ३. ताल या तालाब। ४. दलदल। ५. कछार। ६. मेढक। ७. हाथी। ७. तीतर या चकोर [को०]। उ०—अनूप (जलसमीप) के रहनेवाले जीव हंस चकवा आदि।—माधव, पृ० १८१।

अनूप[3]—[सं० **अनुपम**] १. जिसकी उपमा न हो। अद्वितीय। बेजोड़। उ०—(क) कबीर रामानंद को सतगुरु भए सहाय। जग में जुगुत अनूप है सो सब दई बताय। कबीर (शब्द०)। (ख) जिन्ह वह पाई छाँह अनूपा। फिर नहिं आइ सहै यह धूपा।—जायसी (शब्द०)। (ग) अरथ अनूप सुभाव सुभासा। सोइ पराग मकरंद सुबासा।—मानस, १।३७। २. सुंदर। अच्छा। उ०—जौ घरु बर कुलु होइ अनूपा। करिअ विवाह सुता अनुरूपा।—मानस, १।७१।

अनूपग्राम—संज्ञा पुं० [सं०] नदी के किनारे का गाँव।
विशेष—चंद्रगुप्त कालीन एक राजनियम के अनुसार बरसात के दिनों में ऐसे गाँव के लोगों को नदी का किनारा छोड़कर किसी दूसरे दूरवर्ती स्थान पर बसना पड़ता था।

अनूपनाराच—संज्ञा पुं० [सं० **अनूप** + **नाराच**] छंद का एक भेद जो पंचचामर के अंतर्गत है और जिसके प्रत्येक चरण में ज, र, ज, र, ज और गुरु होता है।

अनूपम(पु)—वि० दे० 'अनुपम'। उ०—(क) अदभुत एक अनूपम बाग।—सूर०, १०।२११०। (ख) ध्रुव सगलानि जपेउ हरि नाऊँ। पायेउ अचल अनूपम ठाऊँ।—मानस, १।२६।

अनूपान(पु)—संज्ञा पुं० दे० 'अनुपान'। उ०—रघुपति भगति सजीवनि मूरी। अनूपान श्रद्धा मति रूरी।—मानस, ७।१२२।

अनूपी(पु)—वि० स्त्री० दे० अनूप'। उ०—धन्य अनुराग धनि भाग धनि सौभाग्य धन्य जोबन रूप अति अनूपी।—सूर०, १०।१७८८।

अनूमान(पु)—संज्ञा पुं० दे० 'अनुमान'। उ०—अनूमान साछी रहित होत नहीं परमान।—स० सप्तक, पृ० ४०।

अनूरत्त(पु)—वि० दे० अनुरक्त'। उ०—दिपंती सुहागं। अनूरत्त रागं।—पृ० रा०, ६२।४१।

अनूरु[1]—वि० [सं० **अनूरु**] उरुहीन। बिना जाँघवाला।

अनूरु[2]—संज्ञा पुं० १. सूर्य का सारथी। अरुण। २. अरुणोदय [को०]।

अनूरुसारथी—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य [को०]।

अनूर्जित—वि० [सं०] १. शक्तिहीन। अशक्त। कमजोर। २. अभिमानशून्य [को०]।

अनूर्ध्व—वि० [सं०] ऊँचा नहीं। नीचा [को०]।

अनूर्मि—वि० [सं०] १. तरंगशून्य। अचंचल। २. अनतिक्रम्य [को०]।

अनूषर—वि० [सं०] १. क्षारीय। रेहवाला। २. क्षारहीन। रेहशून्य [को०]।

अनूह—वि० [सं०] १. जिसपर विचार न हो सके। अतर्क्य। २. विचारहीन। लापरवाह (को०)।

अनृजु—वि० [सं०] जो ऋजु अर्थात् सीधा न हो। कुटिल। वक्र। २. दुष्ट। अविश्वस्त। वेईमान [को०]।

अनृण—वि० [सं०] जो ऋणी न हो। जिसे कर्ज न हो। ऋणमुक्त।

अनृणता—संज्ञा पुं० [सं०] कर्ज से छुटकारा। ऋणमुक्ति [को०]।

अनृणी—वि० [सं० **अनृणिन्**] दे० 'अनृण' [को०]।

अनृत[1]—वि० [सं०] १. मिथ्या। झूठा। २. अन्यथा। विपरीत। उ०—तोहिं स्याम हम कहा दिखावैं। अमृत कहा अनृत गुण प्रगटै सो हम कहा बतावैं।—सूर०, १०।२०६६।

अनृत[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १. मिथ्या। असत्य। झूठ। २. कृषि। खेती [को०]।

अनृतक—वि० [सं०] मिथ्यावादी। झूठ बोलनेवाला [को०]।

अनृतभाषण—संज्ञा पुं० [सं०] झूठ बोलना। मिथ्या कथन [को०]।

अनृतवादन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अनृतभाषण' [को०]।

अनृतवादी—वि० [सं० **अनृतवादिन्**] [वि० स्त्री० **अनृतवादिनी**] झूठा। मिथ्यावादी [को०]।

अनृतव्रत—वि० [सं०] अपने वचन या प्रतिज्ञा का पालन कभी न करनेवाला [को०]।

अनृती—वि० [सं० **अनृतिन्**] दे० 'अनृतक' [को०]।

अनृतु—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बेमौसम। असमय। २. रजोदर्शन से पूर्व की अवस्था या स्थिति [को०]।

अनृतुकन्या--संज्ञा स्त्री० [सं०] कन्या जिसे रजोधर्म न हुआ हो[को०]।

अनृतुप्राप्त सैन्य--संज्ञा पुं० [सं०] वह सेना जिसके अनुकूल ऋतु न पड़ती हो।

विशेष—कौटिल्य के अनुसार ऐसी सेना ऋतु के अनुकूल वस्त्र, अस्त्र, कवच आदि का प्रबंध हो जाने पर युद्ध कर सकती है, पर अभूमिप्राप्त (अनुपयुक्त भूमि में फँसी) सेना कुछ करने में असमर्थ हो जाती है।

अनृशंस—वि० [सं०] क्रूरतारहित। अकठोर। मृदुल [को०]।

अनृशंसता--संज्ञा स्त्री० [सं०] क्रूरता का अभाव। दयालुता [को०]।

अनेऊ🄟†--वि० [सं० अन्याय, प्रा० > अन्नाअ > अन्याअ > अनाव > अनेव > अनेऊ] बुरा। खराब।

अनेक—वि० [सं०] एक से अधिक। बहुत। ज्यादा। असंख्य। अनगिनत।

यौ०—अनेकानेक।

अनेककाम—वि० [सं०] एक से अधिक इच्छाओंवाला [को०]।

अनेककालावधि—क्रि० वि० [सं०] बहुत काल से या चिरकाल तक [को०]।

अनेककृत—संज्ञा पुं० [सं०] शिव [को०]।

अनेकचर--वि० [सं०] समूह या झुंड में रहनेवाला [को०]।

अनेकचित्त—वि०[सं०]१. अनेक वस्तुओं की कामना या ध्यान रखनेवाला। २. चंचल मनवाला। चपलचित्त [को०]।

अनेकज१—वि० [सं०] जिसका जन्म एक बार से अधिक हो [को०]।

अनेकज२— संज्ञा पुं० पक्षी [को०]।

अनेकजन्मा--वि० [सं०] दे० 'अनेकज' [को०]।

अनेकता--संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अनेकत्व'।

अनेकत्व—संज्ञा पुं० [सं०] एक से अधिक होने की स्थिति या भाव। बहुत्व। अनेकता [को०]।

अनेकत्र--क्रि० वि० [सं०] कई जगह। कई स्थान [को०]।

अनेकधा—क्रि० वि० [सं०] कई प्रकार से। कई तरह से [को०]।

अनेकप--संज्ञा पुं० [सं०] द्विप। हाथी [को०]।

अनेकभार्य—वि० [सं०] कई पत्नियोंवाला (को०)।

अनेकमुख—वि० [सं०] [स्त्री० अनेकमुखी] १. अनेक चेहरेवाला। अनेक मुखवाला। २. कई दिशाओं में जानेवाला [को०]।

अनेकमूर्ति—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु का एक नाम [को०]।

अनेकरूप१—वि० [सं०] [स्त्री० अनेकरूपा] १. कई रूपोंवाला। २. परिवर्तनशील [को०]।

अनेकरूप२--संज्ञा पुं० परमेश्वर [को०]।

अनेकलोचन--संज्ञा पुं० [सं०] १. इंद्र। २. शिव। ३. विराट्पुरुष। सहस्राक्ष [को०]।

अनेकवचन--संज्ञा पुं० [सं०] १. बहुवचन। २. द्विवचन।

अनेकवर्ण१--वि० [सं०] कई रंगोंवाला [को०]।

अनेकवर्ण२--संज्ञा पुं० बीजगणित में प्रयुक्त अज्ञात राशियाँ [को०]।

अनेकविध—वि० [सं०] अनेक प्रकार का। विभिन्न कोटि का।

अनेकश—क्रि० वि० [सं०] अनेकबार। बार बार। उ०--मेरी कामना है कि इस दिवस की अनेकशः पुनरावृत्ति हो।--शुक्ल० अभि० ग्रं०, पृ० १५।

अनेकशफ--वि० [सं०] फटे खुरोंवाला [को०]।

अनेकशब्द--वि० [सं०] पर्यायवाची [को०]।

अनेकसाधारण—वि० [सं०] अनेक में पाया जानेवाला। बहुतों में पाया जानेवाला [को०]।

अनेकांगी१--संज्ञा पुं० [सं० अनेकाङ्गिन्] वह जिसे कई अंग हों। जिसके बहुत हिस्से या भाग हों।

अनेकांगी२--वि० अनेक अंग, भाग या हिस्सोंवाला [को०]।

अनेकांत—वि० [सं० अनेकान्त] १. जो एकांत न हो। २. जो स्थिर न हो। चंचल।

अनेकांतवाद--संज्ञा पुं० [सं० अनेकान्तवाद] [वि० अनेकांतवादी] जैन दर्शन। आर्हत दर्शन। स्याद्वाद।

अनेकांतवादी--वि० [सं० अनेकान्तवादिन्] अनेकांतवाद को माननेवाला [को०]।

अनेकाकार—वि० [सं० अनेक + आकार] अनेक आकारवाला। अनेक आकृतियोंवाला [को०]।

अनेकाकी--वि० [सं० अनेकाकिन्] [वि० स्त्री० अनेकाकिनी] अकेला नहीं। कई लोगों के साथ [को०]।

अनेकाक्षर--वि० [सं०] अनेक अक्षरों से युक्त [को०]।

अनेकाग्र—वि० [सं०] १. जो किसी एक विषय पर ध्यानस्थ न हो। कई कामों में लगा हुआ। २. उलझा हुआ। अव्यवस्थित [को०]।

अनेकाच्--वि० [सं०] जिसमें बहुत से 'अच्' या स्वर हों। बहुत से स्वरों से युक्त। (शब्द या वाक्य) जिसमें बहुत से स्वर हों।

अनेकार्थ--वि० [सं०] जिसके बहुत से अर्थ हों। बहुत अर्थोंवाला।

अनेकार्थक--वि [सं०] दे० 'अनेकार्थ' [को०]।

अनेकाल--वि० [सं०] जिसमें एक से अधिक 'अल्' (स्वर और व्यंजन) वाला।

अनेकाश्रय--वि० [सं०] अनेक या कई पर निर्भर रहनेवाला [को०]।

अनेकाश्रित--वि० [सं०] दे० 'अनेकाश्रय' [को०]।

अनेग🄟—वि० [सं० अनेक] बहुत अधिक। ज्यादा। उ०--रोकि रहे द्वार नेग माँगन अनेग नेगी, बोलन न खाल व्याल खोलत खहिनि के।--देव (शब्द०)।

अनेड१--वि० [सं०] १. मूर्ख। २ बुरा। खराब [को०]।

अनेड२🄟†--वि० [सं० अनृत] दे० 'अनेरा'।

अनेडमूक--वि० [सं०] १. गूँगा बहरा। २. अंधा। ३. बेईमान। कपटी। दुष्ट। बदमाश [को०]।

अनेड़ा🄟†--वि० [सं० अ + निकट, प्रा० नियर, नियड] दूर। असमीप। उ०—जागु सबेरा बाट अनेड़ा फिर नहिं लागै जोर, बटोही का रे सोवै।--संतवाणी० भा० २ पृ० ३०।

अनेता‡--संज्ञा पुं० [देश०] मालती लता (देहरादून)।

अनेम🄟—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अनियम'। उ०--अनियम थल नेमहि गहै नियम ठौर जु अनेम।—भिखारी० ग्रं०, भा० २, पृ० २३४।

अनेय🄟—वि० [सं० अनीति, प्रा० अ + णीइ] अन्याय से होनेवाली। अनीतिजन्य। उ०—तुम सुधरम राजन अनेय लज्जा अधिकारिय।—पृ० रा० ६६।४६६।

अनेरा¹(पु)—वि० [सं० अनृत, प्रा० * अनिर] [वि० स्त्री० अनेरी] १. झूठ। व्यर्थ। निष्प्रयोजन। उ०—अरी ग्वारि मैं मंत! वचन बोलत जो अनेरो। कब हरि बालक भए, गर्भ कब लियो बसेरो।—सूर०(शब्द०)। २. झूठा। अन्यायी। दुष्ट। निकम्मा। उ०—तोहि स्याम की सपद जसोदा आइ देखु गृह मेरो। जैसी हाल करी यहि ढोटो छोटो निपट अनेरो।—तुलसी (शब्द०)। ३. स्वच्छंद। निरंकुश।

अनेरा²—क्रि० वि० व्यर्थ। झूठमूठ। निष्प्रयोजन। उ०—सुनहु स्याम रघुबीर गोसाईं मन अनीति रत मेरो। चरनसरोज बिसारि तुम्हारो निसदिन फिरत अनेरो।—तुलसी (शब्द०)।

अनेला—वि० [सं० अ + निकट, प्रा० नियड; हिं० नेर] अपरिचित। अनपहचाना। उ०—आपके झाँसे में कोई अनेला आए तो आए हमपर चकमा न चलेगा।—फिसाना०, भा० १, पृ० ५।

अनेलापन—संज्ञा पुं० [हिं० अनेला + पन अथवा हिं० अनेरा] १. न पहचानने की स्थिति। अपरिचित होने का भाव। अजानपना। २. स्वच्छंदता। स्वतंत्रता। उ०—अनेलापन उसका मुझे भा गया। करूँ क्या दिल उसपर मेरा आ गया।—शौक (फैलन)।

अनेव¹—क्रि० वि० [सं०] अन्यथा। नहीं तो [को०]।

अनेव²(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अनेक'। उ०—बाजित्र बज्जि मंगल अनेव। मानति उवारि सागुत्र गेव।—पृ० रा०, ६१।२५२४।

अनेस¹(पु)—वि० [सं० अनिष्ट] बुरा। खराब। अनइस।

अनेस²—संज्ञा पुं० आशंका। डर। चिंता।

अनेह(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अस्नेह] अप्रेम। अप्रीति। विरक्ति।

अनेहा—संज्ञा पुं० [सं० अनेहस्] समय। काल। वक्त।

अनै(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अनय'। उ०—नाम प्रताप पतित पावन किए जे न अघाने अघ अनै।—तुलसी ग्रं०, पृ० ३८९।

अनैकांत—वि० [सं० अनैकान्त] दे० 'अनेकांत' [को०]।

अनैकांतिक—वि० [सं० अनैकान्तिक] दे० 'अनेकांत' [को०]।

अनैकांतिक हेतु—संज्ञा पुं० [सं० अनैकान्तिकहेतु] न्याय के पाँच हेत्वाभासों में से एक। वह हेतु जो साध्य का एकमात्र साधनभूत न हो। वह बात जिससे किसी वस्तु की एकांतिक सिद्धि न हो। सव्यभिचार हेत्वाभास। जैसे,—कोई कहे कि शब्द नित्य है क्योंकि वह स्पर्शवाला नहीं है। यहाँ घर आदि स्पर्शवाले पदार्थों को अनित्य देखकर अस्पृश्यता को नित्यता का एक हेतु मान लिया गया है। पर परमाणु, जो स्पर्शवाले हैं, नित्य हैं। अतः इस हेतु में व्यभिचार आ गया।

अनैक्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. ऐक्य या एकता का अभाव। एका न होना। २. मतभेद। नाइत्तफाकी। फूट।

अनैच्छिक—वि० [सं०] १. अवांछित। न चाहा हुआ। २. इच्छा के बिना होनेवाला। स्वतः उत्पन्न। शरीर की चेष्टाएँ, विकार आदि।

अनैठा—संज्ञा पुं० [सं० अन् = नहीं + पण्यस्थ; प्रा० पण्णट्ठ, हिं० पैंठ अथवा देश०] वह दिन जिसमें बाजार बंद रहे। 'पैंठ' का उलटा।

अनैतिक—वि० [सं०] जो नीति के विपरीत हो। अविहित [को०]।

अनैतिहासिक—वि० [सं०] १. जो इतिहाससंमत न हो। २. जैसा भूत में न हुआ हो। अभूतपूर्व [को०]।

अनैपुण—संज्ञा पुं० [सं०] अनिपुणता। अदक्षता। अकुशलता [को०]।

अनैश्वर्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. ऐश्वर्य का अभाव। अप्रभुत्व। बड़ाई या संपदा का न होना। २. अनीश्वरता। सिद्धियों की अप्राप्ति।

अनैस¹(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अन् + एष = एषण] [क्रि० अनैसना] बुराई। अहित।

अनैस²—वि० बुरा। उ०—मोह को यह गर्व सागर भरो आइ अनैस।—सा० लहरी, पृ० १९।

क्रि० प्र०—मानना = बुरा मानना। रूठना।

अनैसना(पु)—क्रि० अ० [हिं० अनैस से नाम०] बुरा मानना। रूठना। उ०—श्यामरूप बन माँझ समाने मोपे रहे अनैसे।—सूर० (शब्द०)।

अनैसर्गिक—वि० [सं०] १. जो प्रकृति के विरुद्ध हो। अप्राकृतिक। २. जो स्वभाव के प्रतिकूल हो। अस्वाभाविक [को०]।

अनैसा(पु)—वि० [हिं० अनैस] [वि० स्त्री० अनैसी] जो इष्ट न हो। अप्रिय। बुरा। खराब। उ०—(क) नाम लिए अपनाइ लियो तुलसी सों कहाँ जग कौन अनैसो।—तुलसी ग्रं०, पृ० १९८। (ख) पापिन परम ताड़का ऐसी। मायाविनि अति अदय अनैसी।—पद्माकर (शब्द०)।

अनैसे—क्रि० वि० [हिं० अनैस] अनिच्छापूर्वक। बुरे भाव से। बुरी तरह से। उ०—(क) कह मुनि राम जाइ रिस कैसे। अजहुँ अनुज तव चितव अनैसे।—तुलसी (शब्द०)। (ख) छोरि छोरि बाँधौं पाग आरस सों आरसी लै अनत ही आन भाति देखत अनैसे हो।—केशव० ग्रं०, भा० १, पृ० १२५।

अनैहा(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० अनैस] उत्पात। उपद्रव। उ०—जा कारण सुन सुत सुंदर वर कीन्हों इतो अनैहो। सोइ सुधाकर देखि दमोदर या भाजन में है, हो।—सूर (शब्द०)।

अनोअन्न(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अन्योन्य'। उ०—छत्र ज्यों विछूटै भुजे सेत छूटै। खगे अंग तूटै अनोअन्न खूटै।—रा० रू० पृ० ४९०।

अनोकशायी—संज्ञा पुं० [सं० अनोकशायिन्] जो घर में न सोता हो [को०]।

अनोकह—संज्ञा पुं० [सं०] १. जो अपना स्थान न छोड़े। २. पेड़। वृक्ष।

अनोख(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अनोखा'। उ०—औ उकतैं मुकतैं उलही कवि रोष अनोख धरी चतुराई।—इतिहास, पृ० २८२।

अनोखा—वि० [अ० (उच्चा०) सं० नवक; अप० णवख] [वि० स्त्री० अनोखी], [संज्ञा अनोखापन] १. अनूठा। निराला। विलक्षण। विचित्र। अद्भुत। २. नूतन। नया। ३. सुंदर। खूबसूरत। उ०—उस अनोखे अतिथि को आतिथ्य में चुपचाप। दे दिया उसने हृदय भी शीघ्र अपने आप।—शकुं०, पृ० ८।

अनोखापन—संज्ञा पुं० [हिं० अनोखा + पन (प्रत्य०)] १. अनूठापन। निरालापन विलक्षणता। २. नूतनत्व। नयापन। ३. सुंदरता। खूबसूरती।

अनोटⓅ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अनवट'। उ०—देखि करोट सु ऐंचि अनोट जगाइ लै ओट गए गिरिधारी।—भिखारी० ग्रं०, भा० १, पृ० १०५।

अनोदन—वि० [सं०] बिना भोजन के। निराहार [को०]।

अनोदयनाम—संज्ञा पुं० [सं०] जैन मत के अनुसार वह पाप कर्म जिसके उदय से मनुष्य की बात कोई नहीं मानता।

अनोपमⓅ—वि० [हिं०] दे० 'अनुपम'। उ०—सुंदर भाल विसाल अलक सम माल अनोपम। हित प्रकाश मृदुहास अरुण वारिज मुख ओपम।—रा० रू०, पृ० २।

अनोसरⓅ†—संज्ञा पुं० [हिं० अन+सं० अवसर] १. वह समय जब वैष्णव धर्मावलंबी मूर्तियों का शयन कराते हैं। २. एकांत स्थान। सूना स्थान। उ०—अनोसर करि आम कछूक आरोगे।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० २१।

अनौचित्य—संज्ञा पुं० [सं०] उचित बात का अभाव। अनुपयुक्तता।

अनौजस्य—संज्ञा पुं० [सं०] पराक्रम या शक्ति का अभाव [को०]।

अनौटⓅ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अनवट'। उ०—छिछिरा अनौट बाँक घूघरी जराइ जरी, जेहरी छबीली छुद्रघंटिका की जालिका।—केशव० ग्रं०,।

अनौद्धत्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. उच्छृंखलता या दर्प का न होना। २. नम्रता। ३. शांति। (नदी के जल का) ऊँचा न होना। ऊपर न उठना [को०]।

अनौधिⓅ—अव्य० [सं० अनवधि] शीघ्र। जल्दी। तुरत।

अनौपम्य—वि० [सं०] जिसकी उपमा न दी जा सके। बेजोड़ [को०]।

अनौरस—वि० [सं०] १. जो विवाहिता पत्नी से उत्पन्न न हो। जो औरस संतान न हो, अवैध। २. गोद लिया हुआ (पुत्र) [को०]।

अन्नंभट्ट—संज्ञा पुं० [सं०] तर्कसंग्रह के रचयिता।

अन्न[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. खाद्य पदार्थ। २. अनाज। नाज। धान्य। दाना। गल्ला। ३. पकाया हुआ अन्न। भात।

यौ०—अन्नकूट। अन्नजल। पक्वान्न। अन्नराशि।

४. वह जो सबका भक्षण या ग्रहण करे। ५. सूर्य। ६. विष्णु। ७. पृथ्वी। ८. प्राण। ९. जल।

मु०—**अन्न मिट्टी होना**—खाना पीना हराम होना। उ०—जेहि दिन वह छेकै गढ़ घाटी। होइ अन्न ओही दिन माटी।—जायसी (शब्द०)।

अन्न[2]Ⓟ—वि० [सं० अन्य प्रा० अण्ण] दूसरा। विरुद्ध। पर। उ०—जो विधि लिखा अन्न नहिं होई। कित धावै कित रोवै कोई।—जायसी (शब्द०)।

अन्नकाल—संज्ञा पुं० [सं०] भोजन करने का समय। अन्न ग्रहण करने का समय [को०]।

अन्नकिट्ट—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अन्नमल' [को०]।

अन्नकूट—संज्ञा पुं० [सं०] १. अन्न का पहाड़ या ढेर। उ०—गोबर्धन सिर तिलक चढ़ायौ, मेटि इंद्र ठकुराइ। अन्नकूट ऐसो रचि राख्यौ, गिरि की उपमा पाइ।—सूर०, १०।८३२। २. एक उत्सव जो कार्तिक शुक्ल प्रतिपदा से पूर्णिमा पर्यंत यथारुचि किसी दिन (विशेषतः प्रतिपदा को वैष्णवों के यहाँ) होता है। उस दिन नाना प्रकार के भोजनों की ढेरी लगाकर भगवान को भोग लगाते हैं।

अन्नकोष्ठ—संज्ञा पुं० [सं०] १. अन्न रखने का स्थान या कोठरी। २. गंज। गोला। बखार।

अन्नकोष्ठक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अन्नकोष्ठ' [को०]।

अन्नगंधि—संज्ञा स्त्री० [सं० अन्नगन्धि] अतिसार की व्याधि [को०]।

अन्नगति—संज्ञा स्त्री० [सं०] अन्न की प्रणाली या गति [को०]।

अन्नछेत्र†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अन्नसत्र'।

अन्नजल—संज्ञा पुं० [सं०] १. दाना पानी। खाना पीना। खानपान। जैसे,—तुम्हारे यहाँ हम अन्नजल नहीं ग्रहण करेंगे (शब्द०)।

क्रि० प्र०—त्यागना या छोड़ना = उपवास करना।

२. आबदाना। जीविका।

क्रि० प्र०—**उठना** = जीविका छूटना। जैसे,—'अब यहाँ से हमारा अन्न जल उठ गया' (शब्द०)।

३. संयोग। इत्तफाक। जैसे,—जहाँ का अन्न जल होगा वहाँ चले ही जायँगे (शब्द०)।

अन्नजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की हिचकी।

विशेष—'माधवनिदान' के अनुसार अन्न और पानी का बहुत अधिक सेवन करने से वायु अकस्मात् कुपित होकर ऊर्ध्वगामी हो जाती है जिससे यह हिचकी होती है।

अन्नजीवी—संज्ञा पुं० [सं० अन्नजीविन्] वह जो केवल अन्न खाकर जीवनयापन करता है। केवल अन्न पर पलनेवाला जीव [को०]।

अन्नथाⓅ—वि० [सं० अन्यथा] दे० 'अन्यथा'। उ०—कृत करण अन्नथा करण। सगले ही थोके समरत्थ।—वेलि०, दू०, पृ० १३७।

अन्नद—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० अन्नदा] अन्नदाता। प्रतिपालक। रक्षक। पोषक।

अन्नदा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दुर्गा। २. अन्नपूर्णा [को०]।

अन्नदाता—संज्ञा पुं० [सं० अन्नदातृ] [स्त्री० अन्नदात्री] १. अन्न दान करनेवाला। २. पोषक। प्रतिपालक।

अन्नदास—संज्ञा पुं० [सं०] वह नौकर जो केवल भोजन पर कार्य करता है [को०]।

अन्नदोष—संज्ञा पुं० [सं०] १. अन्न से उत्पन्न विकार। जैसे, दूषित अन्न खाने से रोग इत्यादि का होना। २. निषिद्ध स्थान या व्यक्ति का अन्न खाने से उत्पन्न दोष या पाप।

अन्नद्रवशूल—संज्ञा पुं० [सं०] पेट का वह दर्द जो सदा बना रहे, चाहे अन्न पचे या न पचे और जो पथ्य करने पर भी शांत न हो। लगातार बनी रहनेवाली पेट की पीड़ा।

अन्नद्वेष—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अन्नद्वेषी] अन्न में रुचि न होना। भोजन में अरुचि। भूख न लगना।

अन्नपति—संज्ञा पुं० [सं०] १. अन्न का स्वामी। २. शिव। ३. अग्नि। ४. सूर्य [को०]।

अन्नपाक—संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि पर या पेट में अन्न का पाचन [को०]।

अन्नपाकस्थान—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'पाकस्थली'।

अन्नपूरना(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अन्नपूर्णा'। उ०—जौलों देवी द्रवै न भवानी अन्नपूरना।—तुलसी ग्रं०, पृ० २३५।

अन्नपूर्णा—संज्ञा स्त्री० [सं०] अन्न की अधिष्ठात्री देवी। दुर्गा का एक रूप। ये काशी की प्रधान देवी हैं।

अन्नपूर्णेश्वरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. अन्नपूर्णा। २. तंत्रोक्त एक भैरवी का एक नाम [कौ०]।

अन्नप्रलय—वि० [सं०] मरणोपरांत शरीर का अन्न रूप में परिवर्तित होना [कौ०]।

अन्नप्राशन—संज्ञा पुं० [सं०] बच्चों को पहले पहल अन्न चटाने का संस्कार। चटावन। पेहनी। पसनी।

विशेष—स्मृति के अनुसार छठे या आठवें महीने बालक को और पाँचवें सातवें महीने बालिका को पहले पहल अन्न चटाना चाहिए।

अन्नप्रासन(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अन्नप्राशन'। उ०—नामकरण सु अन्नप्रासन वेद बाँधी नीति।—तुलसी ग्रं०, पृ० ४२६।

अन्नमयकोश—संज्ञा पुं० [सं०] वेदांत के अनुसार पंचकोशों में से प्रथम। अन्न से बना हुआ त्वचा से लेकर वीर्य तक का समुदाय। स्थूल शरीर। बौद्धशास्त्रानुसार रूपस्कंद। उ०—अन्नमयकोश सुतौ पिंड है प्रकट यह प्रानमय कोश पंचवायु हू बषानिये।—सुंदर ग्रं०, पृ० ५९८।

अन्नमल—संज्ञा पुं० [सं०] १. यव आदि अन्नों से बनी शराब। २. मल। विष्टा।

अन्नराशि—संज्ञा स्त्री० [सं०] अन्न की ढेरी। गंज।

अन्नविकार—संज्ञा पुं० [सं०] अन्न का परिवर्तित रूप। अन्न पचने से क्रमशः बने हुए रस, रक्त, मांस, मज्जा, चरबी, हड्डी और शुक्र आदि।

अन्नव्यवहार—संज्ञा पुं० [सं०] पारस्परिक भोजन या खानपान का व्यवहार [कौ०]।

अन्नशेष—संज्ञा पुं० [सं०] बचा हुआ भोजन। उच्छिष्ट [कौ०]।

अन्नसंस्कार—संज्ञा पुं० [सं०] देवतादि के कार्यों में अन्न का प्रयोग। देवकार्य में अन्नोत्सर्ग [कौ०]।

अन्नसत्र—संज्ञा पुं० [सं०] वह स्थान जहाँ भूखों को भोजन दिया जाता है। अन्नक्षेत्र। लंगर।

अन्ना[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० *अग्निक, प्रा० *अग्गिअ > अन्ना] १. वह छोटी अँगीठी या बोरसी जिसमें सुनार सोना आदि रखकर भाथी के द्वारा तपाते या गलाते हैं।

अन्ना[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० अम्बा या अल्ला = माँ अथवा देश० दाई] धात्री। दूध पिलानेवाली स्त्री।

अन्नाकाल—संज्ञा पुं० [सं०] अनाकाल। दुर्भिक्ष [कौ०]।

अन्नाद[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह जो सब को ग्रहण करे। ईश्वर। २. विष्णु के सहस्र नामों में से एक।

अन्नाद[2]—वि० अन्न खानेवाला। अन्नाहारी।

अन्नाम(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अनाम'। उ०—इह सु नाम अन्नाम। जेन नामह घर जाइय।—पृ० रा०, ३३।१९।

अन्नि(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अन्य'। उ०—अहंत अन्नि एक पंति, उर्द्ध जात तथ्ययं।—पृ० रा०, ६८।२४१।

अन्नित(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अनीति'। उ०—हूँ नीति जानि अन्नित न करि।—पृ० रा०, ३५।३।

अन्य—वि० [सं०] दूसरा। और कोई। भिन्न। गैर। पराया। उ०—असुर सुर नाग नर यक्ष गंधर्व खग रजनिचर सिद्ध ये चापि अन्ये।—तुलसी ग्रं०, पृ० ४८७।

यौ०—अन्यजात। अन्यमनस्क। अन्यान्य। अन्योन्य।

अन्यक—वि० [सं०] दे० 'अन्य' [कौ०]।

अन्यकारुका—संज्ञा स्त्री० [सं०] मल का कीड़ा [कौ०]।

अन्यक्रीत—वि० [सं०] दूसरे का खरीदा हुआ।

अन्यग—वि० [सं०] दूसरे की स्त्री के साथ गमन करनेवाला। व्यभिचारी [कौ०]।

अन्यगामी—वि० [सं० अन्यगामिन्] दे० 'अन्यग' [कौ०]।

अन्यचित्त—वि० [सं०] जिसका मन अन्यत्र लगा हो। अन्यमनस्क [कौ०]।

अन्यच्च—क्रि० वि० [सं०] और भी।

अन्यजात—वि० [सं०] खोई हुई या नष्ट (वस्तु)।

अन्यत्—वि० [सं०] दे० 'अन्य'।

अन्यतः—क्रि० वि० [सं० अन्यतस्] १. किसी और से। २. किसी और स्थान से। कहीं और से।

अन्यतम—वि० [सं०] जिसकी तुलना में और कोई न हो। सर्वश्रेष्ठ। सबसे बड़ा [कौ०]।

अन्यतर—वि० [सं०] दूसरा। भिन्न। दो में से एक।

अन्यतस्त्य—संज्ञा पुं० [सं०] शत्रु। दुश्मन। प्रतिपक्षी [कौ०]।

अन्यतोपाक—संज्ञा पुं० [सं०] दाढ़ी, कान, भौं इत्यादि में वायु का प्रवेश होने के कारण आँखों की पीड़ा।

अन्यत्र—वि० [सं०] और जगह। दूसरी जगह। उ०—ता नृप कौ परमातम मित्र। इक छिन रहत न सो अन्यत्र।—सूर० ४।१२।

अन्यत्व—संज्ञा पुं० [सं०] परायापन। भिन्नता।

अन्यत्वभावना—संज्ञा स्त्री० [सं०] जैनशास्त्रानुसार जीवात्मा को शरीर से भिन्न समझना।

अन्यथा[2]—वि० [सं०] १. विपरीत। उलटा। विरुद्ध। और का और। २. असत्य। झूठा। उ०—किएँ अन्यथा होइ नहिं बिप्र श्राप अति घोर।—मानस, १।१७४।

अन्यथा[1]—अव्य० नहीं तो। जैसे,—आप समय पर आइए अन्यथा हमसे भेंट न होगी (शब्द०)।

अन्यथाकारिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] विपरीत या विरुद्ध करने की प्रवृत्ति। उ०—हा! होती है प्रकृति रुचि में अन्यथाकारिता भी।—प्रिय० प्र०, पृ० २१९।

अन्यथाचार—संज्ञा पुं० [सं०] अनुचित या विपरीत कार्य। विरुद्ध आचरण। उ०—तब उसका परिणाम अन्यथाचार के अतिरिक्त क्या होना है।—प्रेमघन०, भा०२, पृ० ३१६।

अन्यथानुपपत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] किसी वस्तु के अभाव में किसी दूसरी वस्तु की उपपत्ति या अस्तित्व की असंभावना।

विशेष—जैसे, मोटा देवदत्त दिन को नहीं खाता; इस कथन से इस बात का अनुमान होता है या प्रमाण मिलता है कि देवदत्त

रात को खाता है क्योंकि बिना खाए मोटा होना असंभव है। न्याय में यह अनुमान के अंतर्गत और मीमांसा में अर्थापत्ति प्रमाण के अंतर्गत है।

अन्यथाभाव—संज्ञा पुं० [सं०] विरोधात्मक भाव या विचार। भिन्न रूप में होना [को०]।

अन्यथावाही—संज्ञा पुं० [सं० अन्यथावाहिन्] अर्थशास्त्रानुसार बिना चुंगी या महसूल दिए ही माल ले जानेवाला।

अन्यथासिद्धि—संज्ञा स्त्री० [सं०] न्याय में एक दोष जिसमें यथार्थ नहीं किंतु और कोई कारण दिखाकर किसी बात की सिद्धि की जाय। असंबद्ध कारण से सिद्धि। जैसे,—कहीं कुम्हार, दंड या गधे को देखकर यह सिद्ध करना कि वहाँ घट है।'

अन्यदा—अव्य० [सं०] १. दूसरे समय। दूसरे अवसर पर। २. एक दिन। एकबार। एक समय। ३. किसी समय। कभी [को०]।

अन्यदीय—वि० [सं०] अन्य का। दूसरे से संबंधित। उ०—अन्यदीय इच्छा के द्वारा उसका संचालन नहीं होता।—संपूर्णा० अभि० ग्रं०, पृ० ११८।

अन्यदुर्वह—वि० [सं०] जो दूसरे के वहन करने योग्य न हो। दूसरे के लिये कठिन [को०]।

अन्यदेशीय—वि० [सं०] [वि० स्त्री० अन्यदेशीया] विदेशी। दूसरे देश का परदेशी।

अन्यधी—वि० [सं०] जिसका विचार ईश्वर के पक्ष में न हो। ईश्वर को न माननेवाला [को०]।

अन्यनाभि—वि० [सं०] दूसरे वंशवाला [को०]।

अन्यपर—वि० [सं०] अन्य विषयक। दूसरे के बारे में [को०]।

अन्यपुरुष—संज्ञा पुं० [सं०] १. दूसरा आदमी। गैर। २. व्याकरण में पुरुषवाची सर्वनाम का तीसरा भेद। वह पुरुष जिसके संबंध में कुछ कहा जाय। यह दो प्रकार का है—निश्चयात्मक जैसे 'यह', 'वह' और अनिश्चयात्मक जैसे 'कोई'।

अन्यपुष्ट—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० अन्यपुष्टा] वह जिसका पोषण अन्य के द्वारा हो। कोकिल। कोयल। काकपाली।

विशेष—ऐसा कहा जाता है कि कोयल अपने अंडों को सेने के लिये कौवों के घोसलों में रख आती है।

अन्यपूर्वा—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह कन्या जो एक को ब्याही जाकर या वाग्दत्ता होकर फिर दूसरे से ब्याही जाय। इसके दो भेद हैं—पुनर्भू और स्वैरिणी।

अन्यबीजज—संज्ञा पुं० [सं०] दत्तक पुत्र [को०]।

अन्यबीजसमुद्भव—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अन्यबीजज' [को०]।

अन्यबीजोत्पन्न—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अन्यबीजज' [को०]।

अन्यभृत्[1]—वि० [सं०] दूसरे का पालन करनेवाला [को०]।

अन्यभृत्[2]—संज्ञा पुं० काक। कौआ [को०]।

अन्यभृता—संज्ञा स्त्री० [सं०] कोयल [को०]।

अन्यमन—वि० [सं० अन्यमनस्] अनमना। उदास। चिंतित।

अन्यमनस्क—वि० [सं०] जिसका जी कहीं न लगता हो। उदास। चिंतित। अनमना। उ०—किंतु अन्यमनस्क होकर वह टहलने ही लगी।—कानन०, पृ० १८।

अन्यमानस—वि० [सं०] दे० 'अन्यमनस्क' [को०]।

अन्यमातृज—संज्ञा पुं० [सं०] दूसरी या सौतेली माता से उत्पन्न। सौतेला भाई [को०]।

अन्यमार्गी—वि० [सं० अन्यमार्गिन्] दूसरा मत या धर्म माननेवाला। उ०—अन्यमार्गी कौ अहसान मोल लियो।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० ३१८।

अन्यर्हि—अव्य० [सं०] किसी अन्य समय (को०)।

अन्यवादी—वि० [सं० अन्यवादिन्] १. झूठी गवाही देनेवाला। २. प्रतिवादी [को०]।

अन्यवाप—संज्ञा पुं० [सं०] कोयल [को०]।

अन्यविवर्धित—वि० [सं०] जिसका पालन दूसरे द्वारा किया गया हो [को०]।

अन्यव्रत—वि० [सं०] अन्यधर्मानुगामी। अनार्य।

विशेष—अनार्यों की अपनी भाषाएँ थीं जो आर्यों को अजीब सी मालूम होती थीं। आर्यों ने उनको अन्यव्रत इत्यादि कहा है जिससे जाहिर होता है कि उनके धर्म, देवता, नियम इत्यादि पृथक् थे।

अन्यशाख—संज्ञा पुं० [सं०] वह ब्राह्मण जिसने अपना धर्म त्याग दिया हो [को०]।

अन्यशाखक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अन्यशाख' [को०]।

अन्यसंक्रांत—वि० [सं० अन्यसङ्क्रान्त] दूसरी स्त्री से सबंध कर लेनेवाला [को०]।

अन्यसंगम—संज्ञा पुं० [सं० अन्यसङ्गम] अवैध यौनसंबंध [को०]।

अन्यसंभूयक्रय—संज्ञा पुं० [सं० अन्यसम्भूयक्रय] थोक का दूसरा दाम जो पहले दाम पर न बिकने पर लगाया जाय।

विशेष—चंद्रगुप्त के समय बहुत से पदार्थ ऐसे थे जिन्हें राज्य ही बेचता था।

अन्यसंभोगदुःखिता—संज्ञा स्त्री० [सं० अन्यसम्भोगदुःखिता] वह नायिका जो अन्य स्त्री में संभोग के चिह्न देखकर और यह जानकर कि इसने हमारे पति के साथ रमण किया है, दुःखित हो।

अन्यसाधारण—वि० [सं०] बहुतों में पाया जानेवाला [को०]।

अन्यसुरतिदुःखिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अन्यसंभोगदुःखिता'। उ०—अन्यसुरतिदुखिता कहौं, करे पेच-रिस-नेह।—मतिराम ग्रं०, पृ० २९२।

अन्याइ(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अन्याय'। उ०—सुनि पावै नीजन कौ राइ। तौ यह होइ बड़ो अन्याइ।—नंद० ग्रं०, पृ० २४४।

अन्याई[1](पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अन्याय'। उ०—सेए नाहिं चरन गिरिधर के बहुत करी अन्याई।—सूर० १।१४७।

अन्याई[2](पु)—वि० [हिं०] दे० 'अन्यायी'। उ०—या ब्रज में लरिका घने हौंही अन्याई।—तुलसी ग्रं०, पृ० ४३०।

अन्याउ(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अन्याय'। उ०—जे अन्याउ करहिं काहू को ते सिसु मोहिं न भावहिं।—तुलसी ग्रं०, पृ० ४३२।

अन्यादृश—वि० [सं०] १. दूसरे प्रकार का। २. परिवर्तित [को०]।

अन्यापदेश—संज्ञा पुं० [सं०] वह कथन जिसका अर्थ साधर्म्य के विचार से कथित वस्तुओं के अतिरिक्त दूसरी वस्तुओं पर घटाया जाय।

अन्योक्ति। जैसे,—हे पिक पंचम नाद को नहि भीलन को ज्ञान। यहै रीझिबो मान तू जो न हनै हिय बान। यहाँ कोकिल और भील की बात कहकर मूर्ख दुर्जनों और गुणियों का स्वभाव दिखाया गया है।

अन्यापेक्षी—वि० [सं० **अन्यापेक्षिन्**] दूसरे का आसरा रखनेवाला। दूसरे का अवलंब लेनेवाला। उ०—वह मूलतः एक उन्मुख भाव है, अन्यापेक्षी भाव जो दूसरे की उपस्थिति से ही रसावस्था तक पहुँचता है।—नदी०, पृ० २५६।

अन्याय—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० **अन्यायी**] १. न्याय के विरुद्ध आचरण। अनीति। बेइंसाफी। २. अंधेर। अन्यथाचार। ३. जुल्म।

अन्यायी[1]—वि० [सं० **अन्यायिन्**] अन्यथाचारी। अनुचित कार्य करनेवाला दुराचारी। जालिम।

अन्यायी[2]—वि० [सं०] न्याय के प्रतिकूल। अनुचित।

अन्याराⓅ—वि० [सं० **अ = नहीं + हिं० न्यारा**] १. जो पृथक् या जुदा न हो। २. अनोखा। निराला। ३. खूब। बहुत। बढ़ै बस जग माह अन्यारा। छत्र धर्म धुर को रखवारा।—लाल० (शब्द०)।

अन्यारीⓅ—वि० स्त्री० [हिं०] दे० 'अनियारा'। उ०—काम झूलै उर में उरोजन में दाम झूलै, स्याम झूलै प्यारी की अन्यारी अँखियान में।—पद्माकर ग्रं०, पृ० ३२१।

अन्यार्थ—वि० [सं०] प्रस्तुत अर्थ से भिन्न अर्थ प्रकट करनेवाला [को०]

अन्यावⓅ†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अन्याय'। उ०—देवनि हूँ देव परिहरचो अन्याव न तिनको, हौं अपराधी सब केरो।—तुलसी ग्रं०, पृ० ५६३।

अन्याश्रित—वि० [सं०] दूसरे पर निर्भर या अवलंबित [को०]।

अन्यासⓅ—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'अनायास'। उ०—दास भनि काहे को अन्यास दरसावती भयावनी भुअंगिनी सी बेनी लौटि लौटि है।—भिखारी० ग्रं०, पृ० १७४।

अन्यासाधारण—वि० [सं०] असाधारण। असामान्य। विचित्र [को०]

अन्यून—वि० [सं०] जो न्यून न हो। जो कम न हो। काफी। बहुत।

अन्येद्युः—क्रि० वि० [सं०] [वि० **अन्येद्युष्क**] दूसरे दिन।

अन्येद्युःज्वर—संज्ञा पुं० [सं०] वह ज्वर जो बीच में एक एक दिन का अंतर देकर चढ़े। एकतरा ज्वर। अँतरिया बुखार।

अन्येद्युष्क[1]—वि० [सं०] दूसरे दिन होनेवाला।

अन्येद्युष्क[2]—संज्ञा पुं० दे० 'अन्येद्युज्वर'।

अन्योका—वि० [सं० **अन्योकस्**] अपने घर में न रहनेवाला [को०]।

अन्योक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह कथन जिसका अर्थ साधर्म्य के विचार से कथित वस्तु के अतिरिक्त अन्य वस्तु पर घटाया जाय। अन्यापदेश। जैसे,—केती सोम कला करो, करो सुधा को दान। नहीं चंद्रमणि जो द्रवै, यह तेलिया पखान। यहाँ चंद्रमा और तेलिया पत्थर के बहाने गुणी और अगुणग्राही अथवा सज्जन और दुर्जन की बात कही गई है। रुद्रट आदि दो एक आचार्यों ने इसको अलंकार माना है।

अन्योदर्य—वि० [सं०] [वि० स्त्री० **अन्योदर्या**] दूसरे के पेट से पैदा। सहोदर का उलटा।

अन्योन्य[1]—सर्व० [सं०] परस्पर। आपस में।

अन्योन्य[2]—संज्ञा पुं० वह काव्यालंकार जिसमें दो वस्तुओं की किसी क्रिया या गुण का एक दूसरे के कारण उत्पन्न होना वर्णन किया जाय। जैसे—सर की शोभा हंस है, राजहंस की ताल! करत परस्पर हैं सदा गुरुता प्रकट विशाल।

अन्योन्यभेद—संज्ञा पुं० [सं०] आपसी बैर। शत्रुता [को०]।

अन्योन्यविभाग—संज्ञा पुं० [सं०] पैतृक संपत्ति का पारस्परिक बँटवारा [को०]।

अन्योन्यवृत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] पारस्परिक या आपसी प्रभाव [को०]।

अन्योन्यव्यतिकर—संज्ञा पुं० [सं०] कार्य और कारण का पारस्परिक संबंध [को०]।

अन्योन्यसंश्रय—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अन्योन्यव्यतिकर' [को०]।

अन्योन्याभाव—संज्ञा पुं० [सं०] किसी एक वस्तु का दूसरी वस्तु न होना। जैसे—घट पट नहीं हो सकता और पट घट नहीं हो सकता।

अन्योन्याश्रय—संज्ञा पुं० [सं०] १. परस्पर का सहारा। एक दूसरे की अपेक्षा। २. न्याय में एक वस्तु के ज्ञान के लिये दूसरी वस्तु के ज्ञान की अपेक्षा। सापेक्ष ज्ञान। जैसे—सर्दी के ज्ञान के लिये गर्मी के ज्ञान की, और गर्मी के ज्ञान के लिये सर्दी के ज्ञान की आवश्यकता है।

अन्वक्—क्रि० वि० [सं०] १. बाद में। पीछे से। २. मैत्री से। अनुकूलता से [को०]।

अन्वक्ष[1]—वि० [सं०] १. प्रत्यक्ष। साक्षात्। २. पीछे या बाद का (को०)।

अन्वक्ष[2]—क्रि० वि० १. सामने। २. पीछे। बाद। उपरांत।

अन्वय—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० **अन्वयी**] १. परस्पर। तारतम्य। २. संयोग। मेल। ३. पद के शब्दों को वाक्यरचना के नियमानुसार यथास्थान रखने का कार्य। जैसे—पहले कर्ता फिर कर्म और फिर क्रिया। ४. अवकाश। खाली स्थान। ५. वंश। कुल। घराना। खानदान। ६. भिन्न भिन्न वस्तुओं को साधर्म्य के अनुसार एक कोटि में लाना। जैसे,—चलने फिरनेवाले मनुष्य, बैल, कुत्ता आदि को जंगम के अंतर्गत मानना। ७. कार्य कारण का संबंध। ८. अनुगमन (को०)। ९. आशय (को०)।

अन्वयज्ञ—वि० [सं०] वंशपरंपरा का ज्ञाता [को०]।

अन्वयव्यतिरेक—संज्ञा पुं० [सं०] १. सहमति और असहमति। संगति और असंगति। २. नियम और अपवाद [को०]।

अन्वयव्यतिरेकसंबंध—संज्ञा पुं० [सं० **अन्वयव्यतिरेकसम्बन्ध**] दो वस्तुओं का वह संबंध जिसमें एक के होने पर दूसरी का होना तथा दूसरी के न होनेपर पहली का न होना निर्भर करता है। जैसे, दंड और चक्र तथा घड़े का संबंध। 'दंड और चक्र के रहने पर ही घड़े का बनना', यहाँ दंड और चक्र का घड़े के बनने से अन्वय संबंध है। साथ ही दंड और चक्र के अभाव में घड़े का न बनना यहाँ दंड और चक्र के अभाव का घड़े के न बनने से व्यतिरेक संबंध है।

अन्वयव्याप्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] निश्चय या स्वीकारात्मक तर्क [को०]

अन्वयागत—वि० [सं०] जो वंशपरंपरा से चला आ रहा हो। वंशानुगत [को०]।

अन्वयार्थ—संज्ञा पुं० [सं०] अन्वय से व्यक्त होनेवाला अर्थ [को०]।

अन्वयी—वि० [सं० अन्वयिन्] १. अन्वययुक्त। २. संबद्ध। ३. एक ही वंश का।

अन्वर्थ—वि० [सं०] अर्थ के अनुसार। २. सार्थक। अर्थयुक्त।

अन्ववकिरण—संज्ञा पुं० [सं०] यथा क्रम उचित ढंग से चारो ओर बिखेरना [को०]।

अन्ववचार—संज्ञा पुं० [सं०] पीछे की ओर जाना तथा अनुकरण करना [को०]।

अन्ववसर्ग—संज्ञा पुं० [सं०] १. ढीला करना। २. इच्छानुकूल व्यवहार या कामचार की आज्ञा [को०]।

अन्ववसायी—वि० [सं० अन्ववसायिन्] १. संश्रय रखनेवाला। २. निर्भर। आश्रित [को०]।

अन्ववसित— वि० [सं०] संलग्न। संबद्ध [को०]।

अन्ववाय—संज्ञा पुं० [सं०] जाति। वंश। कुल [को०]।

अन्ववेक्षा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. लिहाज। खयाल। विचार [को०]।

अन्वष्टका—संज्ञा स्त्री० [सं०] साग्नियों के लिये एक मासिक श्राद्ध जो अष्टका के अनंतर पूस, माघ, फागुन और क्वार की कृष्ण पक्ष की नवमी को होता है।

अन्वाख्यान—संज्ञा पुं० [सं०] १. पूर्वकथन की व्याख्या। २. खंड। अध्याय। पर्व [को०]।

अन्वाचय—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रधान या मुख्य काम करने के साथ साथ किसी अप्रधान काम को भी करने की आज्ञा। जैसे,—भिक्षा के लिये जाओ और यदि रास्ते में गाय मिले तो उसे भी हाँकते लाना। २. उक्त प्रकार का कार्य या विषय (को०)।

अन्वादेश—संज्ञा पुं० [सं०] किसी को एक कार्य के किए जाने पर पुनः दूसरा कार्य करने का आदेश या उपदेश। जैसे,—इसने व्याकरण पढ़ा है अब इसको साहित्य पढ़ाओ।

अन्वाधान—संज्ञा पुं० [सं०] अग्न्याधान के उपरांत अग्नि को बनाए रखने के लिये उसमें ईंधन छोड़ने की क्रिया।

अन्वाधि—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह आधि या प्रतिभू धन जो किसी के हाथ में इसलिये दिया जाय कि वह इसे अमुक (तीसरे) व्यक्ति को दे दे। २. पश्चात्ताप। ग्लानि। व्यथा।

अन्वाधेय—संज्ञा पुं० [सं०] विवाह के पीछे जो धन स्त्री को उसके पिता या पति के घर से मिले।

अन्वाधेयक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अन्वाधेय' (को०)।

अन्वाध्य—संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं का एक वर्ग [को०]।

अन्वाय—संज्ञा पुं० [सं०] अर्थशास्त्र के अनुसार सेना के किसी एक अंग की अधिकता।

अन्वायन—संज्ञा पुं० [सं०] वह सामान जो वधू अपने पिता के घर से लाई हो।

अन्वारंभ—संज्ञा पुं० [सं० अन्वारम्भ] आशीर्वाद देने के लिये यजमान की पीठ का स्पर्श [को०]।

अन्वारंभण—संज्ञा पुं० [सं० अन्वारम्भण] दे० 'अन्वारंभ'।

अन्वारूढ़—वि० [सं० अन्वारूढ] पीछे चलनेवाला।

अन्वारोहण—संज्ञा पुं० [सं०] पति के शव के साथ या उसके बाद चिता पर चढ़ना [को०]।

अन्वालंभन—संज्ञा पुं० [सं० अन्वालम्भन] मुठिया। मूठ [को०]।

अन्वालभन—संज्ञा पुं० [सं०] 'दे० अन्वालंभन' [को०]।

अन्वासन—संज्ञा पुं० [सं०] १. अर्चन। सेवा। आराधन। २. दूसरे के बाद आसन ग्रहण करना। ३. दुःख। पश्चात्ताप। ४. उद्योग का स्थान। कारखाना। ५. तेल का या ठंढा एनिमा स्नेहवस्ति [को०]।

अन्वाहार्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. पुरोहित को यज्ञ में दी जानेवाली दक्षिणा या भोजन। २. दे० 'अन्वाहार्यश्राद्ध' [को०]।

अन्वाहार्यक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अन्वाहार्य' [को०]।

अन्वाहार्य श्राद्ध—संज्ञा पुं० [सं०] मासिक श्राद्ध। वह सपिंड श्राद्ध जो अमावस्या के समीप किया जाता है। दर्शश्राद्ध।

अन्वाह्निक— वि० [सं०] [वि० स्त्री० अन्वाह्निकी] दैनिक। रोजमर्रा [को०]।

अन्वाहित[१]—वि० [सं०] स्मृति के अनुसार (द्रव्य) जो एक के यहाँ अमानत रखा हो और वह उसे किसी और के यहाँ रख दे।

अन्वाहित[२]—संज्ञा पुं० निक्षेप या न्यास के धन को एक महाजन के यहाँ से उठाकर दूसरे के यहाँ रखने का विधान।

अन्वित—वि० [सं०] १. युक्त। सहित। शामिल। मिला हुआ। २. समझा या विचारा हुआ। (को०)। ३. उचित। योग्य। उपयुक्त (को०)। ४. संबद्ध [को०]।

अन्वितार्थ[१]—संज्ञा पुं० [सं०] अन्वय से निकलनेवाला अर्थ।

अन्वितार्थ[२]— वि० अन्वय से युक्त या पूर्ण अर्थ रखनेवाला [को०]।

अन्विति—संज्ञा स्त्री० [सं०] विभिन्न अंगों की परस्पर संबद्धता। परस्पर सामंजस्य। उ०—यही कारण है कि उनकी रचनाओं में उस अन्विति (Unity) का सर्वथा अभाव रहता है जिसके बिना कला की कोई कृति खड़ी ही नहीं हो सकती।—चिंतामणि, भा० २, पृ० ९९।

अन्विष्ट—वि० [सं०] अन्वेषित। इच्छित। आकांक्षित [को०]।

अन्वीक्षण—संज्ञा पुं० [सं०] १. ध्यान से देखना। गौर। विचार। २. खोज। तलाश। अनुसंधान।

अन्वीक्षा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अन्वीक्षण'।

अन्वीत—वि० [सं०] दे० 'अन्वित' [को०]।

अन्वीय—वि० [सं०] १. पानी के समीप का। पानी के पास स्थित। २. मैत्रीपूर्ण [को०]।

अन्वेष—संज्ञा पुं० दे० 'अन्वेषण' (को०)।

अन्वेषक—वि० [सं०] [स्त्री० अन्वेषिका] खोजनेवाला। तलाश करनेवाला। अनुसंधान करनेवाला [को०]।

अन्वेषण—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० अन्वेषणा, वि० अन्वेषित, अन्वेषी, अन्वेष्टा] अनुसंधान। खोज। ढूँढ़। तलाश।

अन्वेषित—वि० [सं०] खोजा हुआ। ढूँढ़ा हुआ।

अन्वेषी—वि० [सं० अन्वेषिन्] [स्त्री० अन्वेषिणी] खोजनेवाला। तलाश करनेवाला।

अन्वेष्टव्य—वि० [सं०] दे० 'अन्वेष्य'। [को०]।

अन्वेष्टा—वि० [सं० अन्वेष्टृ] [स्त्री० अन्वेष्ट्री] खोजनेवाला । तलाश करनेवाला ।

अन्वेष्य—वि० [सं०] अन्वेषण के योग्य [को०] ।

अन्हरा(पु)†—वि० [सं० अंध; प्रा० अंधल] अंधा । नेत्रहीन । सूर । उ०—जो कुछ रहा से अन्हरे भाखा, कठवै कहेसि अनूठी । बचा रहा सो जोलहा कहिगा, अब जो कहैं सो झूठी ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ३६६ ।

अन्हवाना(पु)—क्रि० सं० [हिं० अन्हाना का प्रे० रूप] स्नान कराना । नहलाना । उ०—(क) बंद करत पूजा हरि देखत । घंट बजाइ देव अन्हवायौ, दल चंदन लै भेटत ।—सूर०, १०।२६१। (ख) रामचरित सर बिन अन्हवाएँ ।—मानस, १।११ ।

अन्हवैया(पु)—वि० [हिं० अन्हाना + वैया (प्रत्य०)] स्नान करानेवाला । नहानेवाला । उ०—भरत, राम, रिपुदवन, लखन के चरित सरित अन्हवैया ।—तुलसी ग्रं०, पृ० २७६ ।

अन्हान(पु)—संज्ञा पुं० [सं० स्नान; प्रा० ण्हाण, अण्हान, नहान] दे० 'स्नान' । उ०—कै मज्जन तब किएउ अन्हानू । पहिरे चीर गएउ छपि भानू ।—जायसी ग्रं० ।

अन्हाना(पु)—क्रि० अ० [हिं० अन्हान से नाम०] स्नान करना । नहाना । उ०—हम लंकेश दूत प्रतिहारी समुद तीर कौं जात अन्हाए ।—सूर०, ६।१२० ।

अपंकिल—वि० [सं० अपङ्किल] १. पंकरहित । सूखा । बिना कीचड़ का । २. शुद्ध । निर्मल ।

अपंग—वि० [सं० अपाङ्ग = हीनाङ्ग] १. अंगहीन । न्यूनांग । २. लँगड़ा । लूला । ३. काम करने में अशक्त । बेबस । असमर्थ । उ०—आपुन लोभ अस्त्र लै धावत, पलक कवच नहि अग-हाव भाव सर लरत कटाच्छनि, भृकुटी धनुष अपंग ।—सूर०, १०।२८८ ।

अपंचीकृत—वि० [सं० अपञ्चीकृत] पंच महाभूतों का अभिन्न सूक्ष्म रूप जिसका पंचीकरण न हुआ हो ।

अपंजीकृत—वि० [सं० अ = नहीं + पञ्जीकृत] जो सूची, बही, रजिस्टर या खाते में दर्ज न हो ।

अपंडित—वि० [सं० अपण्डित] मूर्ख । निरक्षर । ज्ञानहीन ।

अपंडी—वि० [सं० अ + पिण्डित] पिंड या शरीर से रहित (ईश्वर) । उ०—बसै अपंडी पंड में ता गति लषै न कोइ ।—कबीर ग्रं०, पृ० १८ ।

अपंथ—संज्ञा पुं० [सं० अ = बुरा + हिं = पंथ] दे० 'अपथ' । उ०—कहै कबीर यह अचरज बाता । उलटी रीति अपंथ जग जाता । —कबीर सा०, पृ० ४३१ ।

अपंपर(पु)†—वि० [हिं०] दे० 'अपरंपार' । उ०—(क) प्रथम सुमर इण विध परमेस्वर । पूरण ब्रह्म प्रताप अपंपर ।—रा० रू०, पृ० ३ । (ख) नमो अविगत नमो आपू नमो पार अपंपरम् ।—राम० धर्म०, पृ० ५१ ।

अप:प्रवेशन—संज्ञा पुं० [सं०] कौटिल्य के अनुसार पानी में डुबाकर मारने का दंड जो राजविद्रोही ब्राह्मणों को दिया जाता था ।

अप्—संज्ञा पुं० [सं०] १. जल । पानी । २. वायु । हवा (को०) । ३. चित्रा नक्षत्र [को०] ।

अप¹—उप० [सं०] उलटा । विरुद्ध । बुरा । हीन । अधिक ।

विशेष—यह उपसर्ग जिस शब्द के पहले आता है, उसके अर्थ में निम्नलिखित विशेषता उत्पन्न करता है ।—१. निषेध । जैसे-अपकार । अपमान । २. अपकृष्ट (दूषण) । जैसे—अपकर्म । अपकीर्ति । ३. विकृति । जैसे—अपकुक्षि । अपांग ४. विशेषता । जैसे—अपकलंक । अपहरण ।

अप²—सर्व० [हिं०] 'आप' का संक्षिप्त रूप जो यौगिक शब्दों में आता है । जैसे—अपस्वार्थी । अपकाजी । उ०—दृगनि के मग लै मोहन कहियाँ । धरि के अप अपने हिय महियाँ ।—नंद० ग्रं०, पृ० २६५ ।

यौ०—अपआप = अपने आप । खुद ब खुद । उ०—नाला अपआप सागर हुआ । काहे के कारण रोता है कुवा ।—दक्खिनी, पृ० ३१ ।

अप³(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अप्] जल । पानी । उ०—रज अप अनल अनिल नभ जड़ जानत सब कोइ ।—स० सप्तक, पृ० १६ ।

अपक—संज्ञा पुं० [सं० अप् + क] पानी । जल । (डिं०) ।

अपकरण—संज्ञा पुं० [सं०] १. अनिष्ट कार्य । २. दुष्टाचार । दुराचार । ३. बुरा बर्ताव ।

अपकरुण—वि० [सं०] निठुर । निर्दयी । बेरहम । कठोरहृदय ।

अपकर्ता—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० अपकर्त्री] १. हानि पहुँचानेवाला । हानिकारी । २. बुरा काम करनेवाला । पापी । ३ शत्रु [को०] ।

अपकर्म—संज्ञा पुं० [सं०] बुरा काम । खोटा काम । कुकर्म । पाप । उ०—पति को धर्म इहै प्रतिपालै, युवती सेवा ही को धर्म । युवती सेवा तऊ न त्यागै जो पति कोटि करै अपकर्म ।—सूर (शब्द०) ।

अपकर्मा—वि० [सं० अपकर्मन्] दुष्कर्मी : भ्रष्टाचारी ।

अपकर्ष—संज्ञा पुं० [सं०] १. उत्कर्ष का विलोम । नीचे की ओर खिंचाव । गिराव । २. घटाव । उतार । कमी । ३. किसी वस्तु या व्यक्ति के मूल्य वा गुण को कम समझना या बतलाना । बेकदरी । निरादर । अपमान ।

अपकर्षक—वि० [सं०] अपकर्ष करनेवाला । निरादर करनेवाला । जिससे अपमान होता हो ।

अपकर्षण—संज्ञा पुं० [सं०] १. अपमान । तिरस्कार । बेकदरी । उ०—धन्य वन्य जन भी न सह सके यह अपकर्षण ।—साकेत, पृ० ४१६ । दे० 'अपकर्ष' ।

अपकर्षसम—संज्ञा पुं० [सं०] न्याय में जाति के चौबीस भेदों में से एक । दृष्टांत में जो न्यूनताएँ हों उनका साध्य में आरोप करना जैसे यह कहना—'यदि घट का सादृश्य शब्द में है तो जिस प्रकार घट का प्रत्यक्ष श्रवणेंद्रिय से नहीं होता, उसी प्रकार शब्द का भी श्रवणेंद्रिय से प्रत्यक्ष नहीं होता ।'

अपकर्षित—वि० [सं०] अपमानित । अपकृष्ट । हटाया गया [को०]

अपकलंक—संज्ञा पुं० [सं० अपकलङ्क] अमिट कलंक । न मिटनेवाला कलंक [को०] ।

अपकल्मष—वि [सं०] १. निष्पाप । २. निष्कलंक [को०] ।

अपकषाय—वि० [सं०] दे० 'अपकल्मष' [को०] ।

अपकाजीⓅ—वि० [हिं० **अप + काज**] अपस्वार्थी। मतलबी। उ०—श्याम विरह बन माँझ हेरानी। अहंकारि लंपट अपकाजी संग न रह्यो निदानी।—सूर (शब्द०)।

अपकार—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० **अपकारक अपकारी**] १. अनिष्टसाधन। द्वेष। द्रोह। बुराई। अनुपकार। हानि। नुकसान। अनभल। अहित। उपकार का विलोम। उ०—मम अपकार कीन्ह तुम भारी। नारि बिरह तुम होब दुखारी।—तुलसी (शब्द०)।२. अनादर। अपमान। ३. अत्याचार। असद्व्यवहार।

अपकारक—वि० [सं०] १. अपकार करनेवाला। क्षति पहुँचानेवाला। हानिकारी। २. विरोधी। द्वेषी।

अपकारी—वि० [सं० **अपकारिन्**] [स्त्री० **अपकारिणी**] १. हानिकारक। बुराई करनेवाला। अनिष्टसाधक। उ०—खल बिनु स्वारथ पर अपकारी।—मानस, ७।१२१। २. विरोधी। द्वेषी।

अपकारीचारⓅ—वि०[सं० **अपकार + आचार**]हानि पहुँचानेवाला। हानिकारी। विघ्नकारी। उ०—जे अपकारीचार, तिन्ह कहँ गौरव मान्य बहु। मन क्रम बचन लबार, ते बकता कलिकाल महँ।—तुलसी (शब्द०)।

अपकिरण—संज्ञा पुं० [सं०] बिखराना। छितराना [को०]।

अपकीरतिⓅ—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अपकीर्ति'। उ०—मैं अपनी अपकीरति को डर बात सहौं सब दैव सहावै।—हम्मीर०,पृ०२०।

अपकीर्ण—वि० [सं०] बिखेरा या छितराया हुआ।

अपकीर्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] अपयश। अयश। बदनामी। निंदा।

अपकृत[१]—वि० [सं०] १. जिसका अपकार किया गया हो। जिसे हानि पहुँची हो। जिसकी बुराई की गई हो। २. अपमानित। बदनाम। ३. जिसका विरोध किया गया हो। उपकृत का उलटा।

अपकृत[२]—संज्ञा पुं० बुराई। हानि। क्षति [को०]।

अपकृति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. अपकार। हानि। बुराई। २. अपमान। निंदा। बदनामी।

अपकृष्ट—वि० [सं०] १. गिरा हुआ। पतित। भ्रष्ट। २. अधम। नीच। निंद्य। ३. घृणित। बुरा। खराब।

यौ०—अपकृष्टचेतन = बुरे विचारोंवाला।

अपकृष्टता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. अधमता। नीचता। २. बुराई। खराबी।

अपकौशली—संज्ञा स्त्री० [सं०] समाचार। संवाद। सूचना [को०]।

अपक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कच्चापन। अपरिपक्व। २. अजीर्ण [को०]।

अपक्रम[१]—संज्ञा पुं० [सं०] १. व्यतिक्रम। क्रमभंग। अनियम। गड़बड़। उलट पलट। २. दौड़ना। पीछे हटना [को०]। ३. पीछे हटने का स्थान या सीमा (को०)। ४. (समय) बीतना। व्यतीत होना (को०)।

अपक्रम[२]—वि० अव्यवस्थित। क्रमविहीन [को०]।

अपक्रमण—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अपक्रम' [को०]।

अपक्रमी—वि० [सं० **अपक्रमिन्**] १. जानेवाला। हटनेवाला। २. तीव्रता से न जानेवाला [को०]।

अपक्राम—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अपक्रम' [को०]।

अपक्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. क्षति। दुष्कर्म। अहित। २. ऋण-परिशोध [को०]।

अपक्रोश—संज्ञा पुं० [सं०] गाली देना। निंदा करना। कुवाच्य कहना [को०]।

अपक्व—वि० [सं०] १. बिना पका हुआ। कच्चा। उ०—फल अपक्व जो वृक्ष ते तोर लेत नर कोय। फल को रस पावै नहीं, नास बीज को होय।—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० २०१। २. अनभ्यस्त। असिद्ध। अनुभवहीन।

यौ०—**अपक्वबुद्धि**।

अपक्वकलुष—संज्ञा पुं० [सं०] शैव दर्शन के अनुसार सकल के दो भेदों में से एक। बद्धजीव, जो संसार में बार बार जन्म ग्रहण करता है।

अपक्वज्वर—संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में ज्वर की वह दशा जिसमें लार गिरना, उबकाई आना, अरुचि,आलस्य, देह का जकड़ना आदि उपद्रव होते हैं।

अपक्वता—संज्ञा स्त्री० [सं०] पका हुआ न होना। कच्चापन। २. अनभ्यस्तता। असिद्धता।

अपक्ष[१]—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह जो राज्य के पक्ष में न हो। २. जिससे राज्य को कोई लाभ न हो। ३. वह, जिसका किसी से हेलमेल न हो। वह, जो किसी के साथ मिल जुलकर न रह सकता हो। निष्पक्ष। उ०—लक्ष अलक्ष अदक्ष न दक्ष, न पक्ष अपक्ष, न तूल न भारौ।—सुंदर ग्रं०, पृ० ६४४।

विशेष—चाणक्य ने ऐसे मनुष्यों के लिये लिखा है कि उन्हें कहीं अलग अपना उपनिवेश बसाने के लिये भेज देना चाहिए।

अपक्ष[२]—वि० [सं०] १. पंखहीन। पंखरहित। २. निष्पक्ष (को०)।

अपक्षपात[१]—संज्ञा पुं० [सं०] पक्षपात का अभाव। न्याय। खरापन।

अपक्षपात[२]—पक्षपातविहीन। निष्पक्ष। खरा। उ०—परंतु नौशेरवाँ खजांची के इस अपक्षपात काम से ऐसा प्रसन्न हुआ कि उसे निहाल कर दिया।—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० २२४।

अपक्षपाती—वि० [सं० **अपक्षपातिन्**] [स्त्री० **अपक्षपातिनी**] पक्षपात-रहित। न्यायी। खरा।

अपक्षय—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० **अपक्षीण**] १. छीजना। ह्रास। नाश। २. कृष्णपक्ष [को०]।

अपक्षिप्त—वि०[सं०] १. अपक्षेपण की क्रिया द्वारा पलटाया या फेंका हुआ। २. फेंका हुआ। गिराया हुआ। पतित।

अपक्षीण—वि० [सं०] नष्ट। छीजा हुआ। विनष्ट [को०]।

अपक्षेप—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अपक्षेपण' [को०]।

अपक्षेपण—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० **अपक्षिप्त**] १. फेंकना। पलटाना। २. गिराना। च्युत करना। ३. पदार्थविज्ञान के अनुसार प्रकाश, तेज और शब्द की गति में किसी पदार्थ से टक्कर खाने से व्यावर्तन होना। प्रकाशादि का किसी पदार्थ से टकराकर पलटना। ४. वैशेषिक शास्त्रानुसार आकुंचन, प्रसारण आदि पाँच प्रकार के कर्मों में से एक।

अपखोरा†—संज्ञा पुं० [फा० **आबखोरा**, हिं० **अबखोरा**] जल पीने का पात्र या बरतन।

अपगंड—वि० [सं० **अपगण्ड**] दे० 'अपोगंड' [को०]।

अपग[1]—वि० [सं०] १. जानेवाला। दूर हटनेवाला [को०]।

अपग[2](५)—संज्ञा स्त्री० [सं० **अपगा**] सरिता। नदी।—अनेकार्थ० पृ० ४४।

अपगत—वि० [सं०] १. पलायित। भागा हुआ। पलटा हुआ। २. दूरीभूत। हटा हुआ। गत। उ०—अपगत खे सोई अवनि सो पुनि प्रगट पताल।—स० सप्तक, पृ० १५। ३. मरा हुआ। मृत [को०]।

यौ०—**अपगतव्याधि** = रोगमुक्त।

अपगति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दुर्गति। अधोगति। दुर्भाग्य [को०]।

अपगम—संज्ञा पुं० [सं०] १. वियोग। अलग होना। २. दूर होना। भागना। ३. मृत्यु। मरण [को०]।

अपगमन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अपगम' [को०]।

अपगर—संज्ञा [सं०] पुं० १. निंदा। २. वह जो निंदा करे। निंदक [को०]।

अपगर्जित—वि० [सं०] गर्जनशून्य (बादल)। गर्जनारहित [को०]।

अपगल्भ—वि० [सं०] १. भीत। भीरु। घबड़ाया हुआ (को०)। २. पार्श्वीय। बगल का [को०]।

अपगा(५)—संज्ञा स्त्री० [सं० **आपगा**] नदी।

अपगीत—वि० [सं० **अप + गीत**] बुरा कहा जानेवाला। निंदनीय (को०)। उ०—मैं ही हूँ वह महानिंद्य, अविनीत हा ! होगा मुझ सा और कौन अपगीत हा !—शकुं०, पृ० ५२।

अपगुण—संज्ञा पुं० [सं०] १. दोष। ऐब [को०]। २. निर्गुण। गुण अवगुण से रहित [को०]।

अपगोपुर—वि० [सं०] द्वारविहीन। द्वाररहित (नगर) [को०]।

अपघन[1]—वि० [सं०] मेघरहित। निरभ्र [को०]।

अपघन[2]—संज्ञा पुं० [सं०] शरीर का अंग (हाथ पैर आदि) [को०]।

अपघात[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. हत्या। हिंसा। २. वंचना। विश्वासघात। धोखा। उ०—जीर्ण तुमको जान सहसा तात। कर गया क्या काल यह अपघात।—साकेत, पृ० १७७।।

अपघात[2]—संज्ञा पुं० [**हिं० अप + सं० घात**] आत्महत्या। आत्मघात। उ०—(क) कहुरे कुँअर मोंसे सत बाता। काहे लागि करसि अपघाता।—जायसी (शब्द०)। (ख)—लाजन को मारो राजा चाहैं अपघात कियो जियो नहिं जात भक्ति लेशहूँ न आयो है।—प्रिया (शब्द०)।

अपघातक—वि० [सं०] १. विनाश करनेवाला। घातक। २. विश्वासघाती। वंचक। धोखा देनेवाला।

अपघाती—वि० [सं० **अपघातिन्**] [वि० स्त्री० **अपघातिनी**] १. घातक। विनाशक। २. विश्वासघाती। वंचक।

अपच[1]—संज्ञा पुं० [**हिं० अ + पच**] न पचने का रोग। अजीर्ण। बदहजमी।

अपच[2]—संज्ञा पुं० [सं] १. पाककार्य में असमर्थ व्यक्ति। वह जिसे अपने लिये पकाना न आता हो। २. बुरा पाचक [को०]।

अपचय—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० **अपचयी**] १. क्षति। हानि। २. व्यय। कमी। नाश। ४. पूजा। संमान।

अपचरित[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. दोषयुक्त आचरण। दुराचार। बुरा कर्म।

अपचरित[2]—वि० १. गया हुआ। प्रस्थित। २. मृत [को०]।

अपचरितप्रकृति—संज्ञा पुं० [सं०] वह राजा जिसकी प्रजा अत्याचार से पीड़ित हो [को०]।

अपचायित—संज्ञा पुं० [सं०] १. रोबीला। जिससे लोग डरें। २. पूजित। संमानित। आदृत [को०]।

अपचायी—वि० [सं० **अपचायिन्**] बड़ों का आदर संमान न करनेवाला [को०]।

अपचार—संज्ञा पुं० [सं] [वि० **अपचारी**] १. अनुचित बर्ताव। बुरा आचरण। कुव्यवहार। उ०—बिबुध बिमल बानी गगन हेतु प्रजा अपचारु। रामराज परिनाम भल कीजिय बेगि बिचारु।—तुलसी ग्रं०, पृ० ६२।२. अनिष्ट। अहित। बुराई। ३. अनादर। निंदा। अपयश। ४. कुपथ्य। स्वास्थ्यनाशक व्यवहार। ५. अभाव। ६. भूल। भ्रम। दोष। ७. मृत्यु। विनाश(को०)।

अपचारक—वि० [सं०] अपचार करनेवाला [को०]।

अपचारी—वि० [सं० **अपचारिन्**] [वि० स्त्री० **अपचारिणी**] विरुद्ध आचरण करनेवाला। दुराचारी। दुष्ट।

अपचाल(५)—संज्ञा स्त्री० [सं० **अप + हिं० चाल**] कुचाल। खोटाई। नटखटी। उ०—वारि कै दार सँवार करौ अपने अपचाल कुचाल ललू पर।—रसखान (शब्द०)।

अपचित—वि० [सं०] १. पूजित। संमानित। आदृत। २. क्षीण। दुर्बल। कमजोर [को०]।

अपचिति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. हानि। क्षय। ह्रास। नाश। २. व्यय। ३. दंड देना। ४. पृथक्करण। ५. मरीचि की कन्या का नाम। ६. संमान करना ७. पूजा [को०]।

अपची—संज्ञा स्त्री० [सं०] गंडमाला रोग का एक भेद। गंडमाला की वह अवस्था जब गाँठें पुरानी होकर पक जाती हैं और जगह जगह पर फोड़े निकलते और बहने लगते हैं।

अपचेता—वि० [सं० **अपचेतस्**] कंजूस। सूम। जो धन न स्वयं खर्च करे न करने दे [को०]।

अपच्छत्र—वि० [सं०] छत्रविहीन। छत्ररहित [को०]।

अपच्छाय[1]—वि० [सं०] १. छायाविहीन। २. दूषित या बुरी छायावाला। जो चमकदार न हो। धुँधला। कांतिहीन [को०]।

अपच्छाय[2]—संज्ञा पुं० देवता।

अपच्छाया—संज्ञा स्त्री० [सं०] बुरी छाया। भूत प्रेत की छाया [को०]।

अपच्छी[1](५)—संज्ञा पुं० [सं० **अ = नहीं + पक्षी = पक्षवाला**] विपक्षी। विरोधी। शत्रु। गैर।

अपच्छी[2](५)—बिना पंख का। पंखरहित।

अपच्छेद—संज्ञा पुं० [सं०] १. काट देना। अलग विलग कर देना। २. हानि। ३. बाधा। ४. वह जो टूट गया हो। भंग [को०]।

अपच्छेदन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अपच्छेद' [को०]।

अपच्युत—वि० [सं०] निपतित। गिरा हुआ। २. बहा हुआ। द्रवित। ३. विनष्ट [को०]।

अपछरा(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अप्सरा, प्रा० अच्छरा] १. अप्सरा। उ०—कल हंस पिक सुक सरस रव करि गान नाचहिं अपछरा।—तुलसी (शब्द०)। २. हिंदुस्तान में रंडियों की एक जाति।

अपजय—संज्ञा स्त्री० [सं०] पराजय। हार।

अपजस(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अपयश'। उ०—चिंता यह मोहिं अपारा। अपजस नहिं होय तुम्हारा।—तुलसी ग्रं०, पृ० ४१६।

अपजात—संज्ञा पुं० [सं०] माता पिता की अपेक्षा हीनगुण पुत्र। कपूत [को०]।

अपजोग(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अप+योग] बुरा योग। बुरा संबंध। बुराई। उ०— सब खोटे मधुबन के लोग। जिनके संग स्यामसुंदर सखि सीखे हैं अपजोग।—सूर०, स० १०।३५६०।

अपज्ञान—संज्ञा पुं० [सं०] १. अस्वीकार। इनकार। नटना। नहीं करना। २. संगोपन। छिपाव। दुराव।

अपज्य—वि० [सं० अप+ज्या] शिंजिनीहीन। प्रत्यंचारहित [को०]।

अपट(पु)—वि० [सं० अपटु] जो चतुर न हो। अपटु। उ०—मेरे हेरत बेस कपट कौ। रहिहै नहिं पूतना अपट कौ।—नंद० ग्रं०, पृ० २३८।

अपटन(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'उबटन'।

अपटांतर—वि० [सं० अपटान्तर] १. जो पाट या पर्दे द्वारा विभक्त न हो। २. अलग विलग नहीं। संयुक्त। मिलाजुला [को०]।

अपटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. परदा। कांडपट। २. कपड़े की दीवार। कतना ३. आवरण। आच्छादन।

अपटीक—वि० [सं०] १. व्याख्या करने के ज्ञान से रहित। वस्त्ररहित [को०]।

अपटीक्षेप—संज्ञा पुं० [सं०] नाटक में परदा हटाकर पात्रों का रंगभूमि में सहसा प्रवेश।

अपटु—वि० [सं०] १. जो पटु न हो। कार्य करने में असमर्थ। २. गावदी। सुस्त। आलसी। ३. रोगी। ४. ज्योतिष के अनुसार (ग्रह) जिसका प्रकाश मंद हो जाय।

अपटुता—संज्ञा स्त्री० [सं०] पटुता का अभाव। अकुशलता। अनाड़ीपन।

अपट्ठमान(पु)—वि० [सं० अपठ्यमान] १. जो पढ़ा न जाय। न पढ़ने योग्य। उ०—अपट्ठमान पापग्रंथ, पट्ठमान वेद हैं।—केशव (शब्द०)।

अपटूडेट—वि० [अं० अप-टु-डेट] रहन सहन या विचार में समय के अत्यंत अनुकूल। उ०—फैशन के संबंध में अपटूडेट खबर रखते थे।—संन्यासी, पृ० ६२।

अपठ—वि० [सं०] १. अपढ़। जो पढ़ा न हो २. मूर्ख। ३. बुरा। पढ़नेवाला। कुपाठक (को०)।

अपठित—वि० [सं०] १. अपढ़ [को०]। २. जो पढ़ा नहीं गया [को०]।

अपठ्यमान—वि० [सं०] १. जो पढ़ा न जाय [को०] २. न पढ़ने योग्य [को०]।

अपडर(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अप+हिं० डर] भय। शंका। उ०—समुझि सहम मोहि अपडर अपने। सो सुधि कीन्ह राम नहिं सपने।—तुलसी (शब्द०)।

अपडरना(पु)—क्रि० अ० [हिं० अपडर से नाम] भयभीत होना। डरना। शंकित होना। उ०—(क) भागे मदमाद चोर भोर जानि जातुधान काम क्रोध लोभ छोभ निकर अपडरे।—तुलसी (शब्द०)। (ख) बहु राम लछिमन देखि मर्कट भालु मन अति अपडरे।—तुलसी (शब्द०)।

अपड़ना(पु)—क्रि० अ० [सं० अ+पत्] पहुँचना। उ०—छोठी वीख न आपडाँ, लाँबी लाज मरेहि। सयण बटाऊ बालरे, लंबउ साद करेहि॥—ढोला०, दू० ३८४।

अपड़ाना(पु)—क्रि० अ० [सं० अपर से नाम०] खींचातानी करना। उ०—मन जो कहो करैं री माई। निलज भई तन सुधि बिसराई गुरुजन करत लराई। इत कुलकानि उतै हरि को रस मन जो अति अपढ़ाई।—सूर (शब्द०)।

अपड़ाव(पु)—संज्ञा पुं० [स० अपर, हिं० पराश्र=पराया] [क्रि० अपड़ाना] झगड़ा। रार। तकरार। उ०—(क) हँसत कहत की धौं सतिभाव। यह कहती औरे जो कोऊ तासो मैं करती अपड़ाव। सूरदास यह मोहिं लगावत सपनेहुँ जासों नहिं दरसाव।—सूर (शब्द०)। (ख) गोपी इहै करत चबाउ। सूर कालिहि प्रगट कैहै करन दे अपड़ाउ।—सूर (शब्द०)।

अपढार—वि० [सं० अप+हिं० ढार=ढलना] १. बेढंगे तौर से ढलनेवाला। उ०—अरु जौ अपढार ढरै न ढरै, गुन त्यौं तकि लागत दोष महा।—घनानंद, पृ० १२६। २. सरलता से ढलनेवाला। उ०—यह रावरीयै रसरीति अजू अपढार ढरौ इत यासों कहौं।—घनानंद, पृ० १४०। ३. आपसे आप ढलनेवाला। उ०—जमुना जस जैसे मन भायो। जमुना ही अपढार कहायो।—घनानंद, पृ० १८५।

अपढ़—वि० [सं० अपठ] बिना पढ़ा। मूर्ख। अनपढ़।

अपण्य—वि० [सं०] न बेचने योग्य। जिसके बेचने का धर्मशास्त्र में निषेध है।

अपतंत्र—संज्ञा पुं० [सं० अपतन्त्र] वायु के प्रकोप से होनेवाला एक रोग। विशेष—इस रोग में शरीर टेढ़ा हो जाता है, सिर और कनपटी में पीड़ा होती है, साँस कठिनाई से ली जाती है, गले में घरघराहट का शब्द होता है और आँखे फटी पड़ती हैं।

अपतंत्रक—संज्ञा पुं० [सं० अपतन्त्रक] दे० 'अपतंत्र [को०]।

अपत¹(पु)—वि० [सं० अ+पत्र प्रा० पत्त, हिं पत्ता] १. पत्रहीन। बिना पत्तों का। उ०—जिन दिन देखे वे कुसुम गई सो बीति बहार। अब अलि रही गुलाब की अपत कँटीली डार।—बिहारी (शब्द०)। २. आच्छादनरहित। नग्न।

अपत²(पु)—वि० [अ सं०=नहीं+हिं० पत=लज्जा] लज्जारहित। निर्लज्ज। उ०—लूटे सीखिन अपत करि सिसिर सुसेज बसंत। दै दल सुमन सुफल किए सो भल सुजस लसंत।—दीनदयाल (शब्द०)।

अपत³(पु)—वि० [सं० अपात्र, प्रा० अपत्त] अधम। पातकी। नीच। उ०—(क) राम राम राम राम राम जपत। पावन किये रावन रिपु तुलसी हू से अपत।—तुलसी (शब्द०)। (ख) प्रभु जू हौं तो महा अधर्मी। अपत, उतार, अभागौ, कामी, विषयी, निपट, कुकर्मी।—सूर०, १।१८६।

अपत[4](पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० अ = नहीं + पति = प्रतिष्ठा, हिं० पत] अप्रतिष्ठा। बेइज्जती। दुर्दशा। उ०—जौ मेरे दीनदयाल न होते। तौ मेरी अपत करत कौरवसुत होत पंडवनि ओते। —सूर० १।१५६।

अपत[5](पु)—संज्ञा पुं० [सं० आपत्] विपत्ति। आपत्ति।

अपतई(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० अपात्र, पा० अपत्त + हिं० ई (प्रत्य०)] १. निर्लज्जता। बेहयाई। ढिठाई। उत्पात। उ०—नयना लुब्धे रूप के अपने सुख माई। अतिहि करी उन अपतई हरि सों समताई।—सूर (शब्द०)। २. चंचलता। उ०—कान्ह तुम्हारी माय महाबल सब जग अपजस कीन्हों (हो)। सुनि ताकी सब अपतई सुक सनकादिक मोहे (हो)। नेक दृष्टि पथ पड़ि गए शंकर सिर टोना लागे (हो)।—सूर (शब्द०)।

अपतर्पण—संज्ञा पुं० [सं०] १. बीमारी के समय का उपवास। लंघन। २. तृप्ति का अभाव [को०]।

अपतह(पु)—सर्व० [सं० आत्मतः, प्रा० अप्पतह] अपने आप। खुद ब खुद। स्वयं। अपने तईं (को०)। उ०—हम अपतह अपनी पति खोई, हमरै खोज परहु मति कोई।—कबीर ग्रं०, पृ० २८७।

अपतानक—संज्ञा पुं० [सं०] एक रोग जो स्त्रियों को गर्भपात तथा पुरुषों को विशेष रुधिर निकलने अथवा भारी चोट लगने से होता है। इसमें बार बार मूर्छा आती है, नेत्र फटते हैं तथा कंठ में कफ एकत्रित होकर घरघराहट का शब्द करता है।

अपताना(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० अप = अपना + ताना] जंजाल। प्रपंच। उ०—दारागार पुत्र अपताना। ततधन मोह मानि कल्याना।—विश्राम (शब्द०)।

अपति[1](पु)—वि० स्त्री० [< सं० अ = नहीं + पति] १. बिना पति या स्वामी की। विधवा। २. अविवाहित। कुमारी (को०)।

अपति[2]—वि०[सं० अ = बुरा + पत्ति = गति] पापी। दुष्ट। दुराचारी। उ०—कहा करौं सखि काम को हिय निर्दयपन आज। तनु जारत पारत निपत अपति उजारत लाज।—पद्माकर(शब्द०)।

अपति(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० अ = नहीं + पत = प्रतिष्ठा] अप्रतिष्ठा। दुर्गति। दुर्दशा। उ०—(क) पति बिनु पतिनी पतित न मग में। पति बिनु अपति नारि की जग में।—सबल (शब्द०)। (ख) पैये निसि बासर कलंकित न अंक सम, बरनै मयंक कविताई की अपति होइ।—भिखारी ग्रं०, पृ० ९६।

अपतिक—वि० [सं०] १. पतिहीन। २. अविवाहित। कुमारी। ३. मालिक या स्वामीहीन [को०]।

अपती—संज्ञा स्त्री० [देश०] प्रायः एक बालिश्त चौड़ा एक तख्ता जो नाव की लंबाई में मरिया के दोनों सिरों पर लगाया जाता है। (मल्लाह)।

अपतोस(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अफसोस'।

अपत्त†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अपत ४'।

अपत्नी—वि [सं०] अविवाहिता। कुमारी। जो पत्नी न हो। जिसका पति न हो [को०]।

अपत्नीक—वि० [सं०] जिसकी पत्नी न हो। पत्नीविहीन। स्त्रीरहित [को०]।

अपत्य—संज्ञा पुं० [सं०] संतान (पुत्र या कन्या)। उ०—मार्ग है शत्रुघ्न दुर्गम सत्य, तुम रहो उनके यथार्थ अपत्य।—साकेत, पृ० १७५।

यौ०—अपत्यकाम। अपत्यजीव। अपत्यदा। अपत्यपथ। अपत्यविक्रयी।

अपत्यकाम—वि० [सं०] [वि० स्त्री० अपत्यकामा] संतानेच्छुक। पुत्र की इच्छा रखनेवाला [को०]।

अपत्यजीव—संज्ञा पुं० [सं०] एक पौधा जिसे पुत्रजीवी भी कहते हैं [को०]।

अपत्यता—संज्ञा स्त्री० [सं०] बाल्यावस्था। शैशव [को०]।

अपत्यद—वि० [सं०] पुत्र देनेवाला (मंत्र) [को०]।

अपत्यदा—संज्ञा स्त्री० [सं०] गर्भदात्री नाम का पौधा [को०]।

अपत्यपथ—संज्ञा पुं० [सं०] योनि [को०]।

अपत्यविक्रयी—वि० [सं० अपत्यविक्रयिन्] १. संतान बेचनेवाला। २. रुपए लेकर कन्या को विवाह के लिये बेचनेवाला। बेटी-बेचवा [को०]।

अपत्यशत्रु—संज्ञा पुं० [सं०] १. अपत्य वा संतान जिसका शत्रु हो। केकड़ा।

विशेष—अंडा देने के उपरांत केकड़ी का पेट फट जाता है और वह मर जाती है।

२. अपत्य का शत्रु। वह जो अपने अंडे बच्चे को खा जाय। साँप।

अपत्र[1]—वि० [सं०] पत्रविहीन। पत्तों से रहित। उ०—बारि बेलि सी फैल अमूल, छा अपत्र सरिता के कूल, विकसा औ सकुचा नवजात बिना नाल के फेनिल फूल।—पल्लव, पृ० ३२। २. पंखरहित। पक्षहीन (को०)।

अपत्र[2]—संज्ञा पुं० १. बाँस का कल्ला या पूती। २. वृक्ष जिसके पत्ते गिर गए हों। ३. चिड़िया जिसे पंख न हों [को०]।

अपत्रप—वि० [सं०] निर्लज्ज। ढीठ। धृष्ट [को०]।

अपत्रपण—संज्ञा पुं० [सं०] १. लज्जा। संकोच। २. व्याकुलता। आकुलता [को०]।

अपत्रपा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अपत्रपण' [को०]।

अपत्रस्त—वि० [सं०] अत्यंत भयग्रस्त। भय से घबराया हुआ [को०]।

अपत्रिका—वि० [सं०] पत्तों से हीन। पत्रविरहित (को०)। उ०—हे विमुख, सदा मैं मुखर पीन। आओ अपत्रिका के मर्मर।—गीतिका (भू०), पृ० १३।

अपथ[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह मार्ग जो चलने योग्य न हो। बीहड़ राह। विकट मार्ग। उ०—माधौ नैकु हटकौ गाइ। भ्रमत निसि बासर अपथ पथ अगह, गहि नहिं जाइ।—सूर १।८४। २. कुपथ। कुमार्ग। उ०—(क) हरि हैं राजनीति पढ़ि आए। ते क्यों नीति करैं आपुन जिन और न अपथ छुड़ाए।—सूर (शब्द०)। (ख) गनत न मन पथ अपथ लखि बिथुरे सुथरे बार।—बिहारी (शब्द०)। ३. मार्ग या पथ का अभाव (को०)। ४. योनि। अपत्यपथ (को०)। ५. किसी प्रचलित मत वा सिद्धांत का दृढ़तापूर्वक विरोध (को०)।

अपथ[2]—वि० मार्गहीन। पथविहीन (को०)।

अपथगामी—वि० [सं० **अपथगामिन्**] १.कुमार्गगामी। बुरे रास्ते पर जानेवाला। २. चरित्रहीन [को०]।

अपथप्रपन्न—वि० [सं०] १.अनुचित मार्ग पर जानेवाला (व्यक्ति)। २.दुरुपयोग या दुष्कार्य में लगा हुआ (धन) [को०]।

अपथ्य[१]—संज्ञा पुं० [सं०]व्यवहार जो स्वास्थ्य का हानिकारक हो। रोग बढ़ानेवाला आहार विहार।

अपथ्य[२]—वि० १. जो पथ्य न हो। स्वास्थ्यनाशक। २.अहितकर। ३.बुरा। खराब। अयुक्त (को०)।

अपथ्यनिमित्त—वि० [सं०] अनुचित खानपान से उत्पन्न [को०]।

अपद[१]—संज्ञा पुं० [सं०] १.बिना पैर के रेंगनेवाले जंतु। जैसे—साँप, केंचुआ, जोंक आदि। उ०—राजा इक पंडित पौरि तुम्हारी। अपद दुपद पसु भाषा बूझत अबिगत अल्प अहारी।—सूर० ८।१४। २.गलत या बुरा स्थान (को०)। ३. आकाश। नभोमंडल (को०)। ४. व्याकरण में शब्द जो पदसंज्ञक नहीं है (को०)।

अपद[२]—वि० १. बिना पैर का।पादविहीन। बिना किसी पद या ओहदे का।

अपद[३](पु)—क्रि० वि० बिना पद या अधिकार के।

अपदम—वि० [सं०]१. आत्मनियंत्रणहीन। २. जिसकी स्थिति अस्थिर या परिवर्तनशील हो [को०]।

अपदरुहा—संज्ञा स्त्री० [सं०] अन्य वृक्ष के आश्रय में पनपनेवाला पौदा [को०]।

अपदरोहिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अपदरहा' [को०]।

अपदव—वि० [सं०] जंगल की आग मुक्त। दावाग्निमुक्त [को०]।

अपदस्थ—वि० [सं०] स्थान वा पद से हटाया हुआ। पदच्युत। उ०—इधर मौर्य कारागार में, वररुचि अपदस्थ; नागरिक लोग नंद की उच्छृंखलताओं से असंतुष्ट हैं।—चंद्र०, पृ० १५७।

अपदांतर[१]—वि०[सं० **अपदान्तर**]१.मिलाजुला। संयुक्त। अव्यवहित। २.समीप। संनिकट। ३. समान। बराबर।

अपदांतर[२]—क्रि० वि० शीघ्र। जल्द। तत्क्षण।

अपदाँव(पु)—संज्ञा पुं० [सं० **अप = बुरा + हिं० दाँव**] बुरा दाँव। चालबाजी। कुघात (को०)। उ०—दूसरें आइ कै इंद्रियनि लै गयौ, ऐसौ अपदाँव सब इनहिं कीन्हे। मैं कह्यौ नैन मोकौं सँग देहिंगे, इनहु लै जाइ हरि हाथ दीन्हें।—सूर०, १०।२२४०।

अपदान—संज्ञा पुं० [सं०] १.परिशुद्ध आचरण। सदाचारी जीवन। २. उत्कृष्ट कार्य। ३. पूर्णतः संपन्न कार्य [को०]।

अपदार्थ[१]—वि०[सं०]तुच्छ। नाचीज। उ०—अवकाश शून्य फैला है, है शक्ति न और सहारा। अपदार्थ तिरूँगा मैं क्या, हो भी कुछ कूल किनारा।—आँसू, पृ० ४१।

अपदार्थ[२]—संज्ञा पुं० १.अस्तित्व का अभाव। २.तुच्छता। ३. वाक्य में प्रयुक्त शब्द के ठीक अर्थ का अभाव या न होना [को०]।

अपदिष्ट—वि० [सं०]तर्कना या बहाने से कथित या प्रयुक्त [को०]।

अपदेखा(पु)—वि० [हिं० **अप = अपने को + देखा = देखनेवाला**] १. अपने को बड़ा माननेवाला। आत्मश्लाघी। घमंडी। २.स्वार्थी उ०—अपदेखा जे अहहि तिनहिं हित गुनि मुँह जोहहिं(शब्द०)।

अपदेवता—संज्ञा पुं० [सं०] १.दुष्ट देव। २.दैत्य। राक्षस। असुर। उ०—अरे कोई अपदेवता न हो।—चंद्र०, पृ० १७४।

अपदेश—संज्ञा पुं० [सं०] १.व्याज। मिस। बहाना। २. लक्ष्य। उद्देश्य। ३.अपने स्वरूप को छिपाना। भेष बदलना। ४. छल। धोखा (को०)। ५. अस्वीकार। इनकार (को०)। ६. प्रसिद्धि। ख्याति (को०)। ७. खतरा [को०]। ८.बुरा स्थान। खराब जगह(को०)। ९.निर्देश (को०)। १०. वैशेषिक न्याय के अनुसार पाँच अनुमान वाक्यों में दूसरा। हेतु [को०]।

अपद्रव्य—संज्ञा पुं० [सं०]१. निकृष्ट वस्तु। बुरी चीज। कुद्रव्य। कुवस्तु। २. बुरा धन।

अपद्वार—संज्ञा पुं० [सं०] छिपा हुआ दरवाजा। चोर दरवाजा। बगली खिड़की।

अपधावन—संज्ञा पुं० [सं०] वाक्छल। सत्य का अपलाप [को०]।

अपधूम—वि० [सं०] धुआँ रहित। धूमविहीन [को०]।

अपध्यान—संज्ञा पुं०[सं०] निकृष्ट चिंतन। बुरा विचार। अनिष्ट चिंतन। जैन शास्त्रानुसार बुरा ध्यान। यह दो प्रकार का होता है, आर्त और रौद्र।

अपध्वंस—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० **अपध्वंसी, अपध्वस्त**] १.अधःपतन। गिराव। २. बेइज्जती। निरादर। अवज्ञा। अपमान। हार। नाश। क्षय।

अपध्वंसज—संज्ञा पुं० [सं०] वह जिसकी माता का वर्ण या जाति पिता से ऊँची हो। वर्णसंकर [को०]।

अपध्वंसी—वि० [सं० **अपध्वंसिन्**][वि०स्त्री०**अपध्वंसिनी**] १.गिरानेवाला। अपमान करनेवाला। निरादरकारी। अपमानकारी। २. नाश करनेवाला। क्षयकारी। ३. पराजित करनेवाला। विजयी।

अपध्वस्त—संज्ञा पुं० [सं०] १ पराजित। हारा हुआ। परास्त। २. निंदित। अपमानित। बेइज्जत किया हुआ। ३.नष्ट।

अपध्वांत[१]—वि० [सं०**अपध्वान्त**] सदोष स्वर छोड़नेवाला। कर्कश स्वरवाला [को०]।

अपध्वांत[२]—संज्ञा पुं० कर्कश स्वर। गलत स्वर [को०]।

अपन(पु)—सर्व० [सं०**आत्मनः** प्रा० **अप्पणो = अपना**]१.दे० 'अपना'। उ०—मंद मंद हँसि नंद महर तब। अपन तात सौं बात कही सब।—नंद ग्रं०, पृ० १९०। २. हम। (मध्यप्रदेश)।

अपनपो(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अपनपौ'। उ०—हितहि परायो आपनो अहित अपनपो जाय। बन की औषधि प्रिय लगत तन को दुख न सुहाय।—श्रीनिवास ग्रं० पृ. २०७।

अपनपौ(पु)—संज्ञा पुं० [**हिं० अपना + पौ वा पा (प्रत्य०)**] १. अपनायत। आत्मीयता। संबंध। उ०—भरतहिं बिसरेउ पितु मरन, सुनत राम बन गौन। हेतु अपनपौ जानि जिय थकित भए धरि मौन।—तुलसी (शब्द०)। २. आत्मभाव। आत्मस्वरूप। निज स्वरूप। उ०—(क) अपनपौ आपुही बिसरी।—कबीर (शब्द०)। (ख) सब हित तजै अपनपो चेते।—तुलसी (शब्द०)। ३. संज्ञा। सुध। ज्ञान। उ०—(क) अद्भुत इक चितयो रे सजनी नंद महरि के आँगन री। सो में निरखि अपनपौ खोयों गई मँथनियाँ माँगन री।—सूर (शब्द०)।

(ख) हरि के ललित वदन निहारु। सुभग उर दधि बुंद सुंदर लखि अपनपौ वारु। तुलसी (शब्द०)। ४. अहंकार। गर्व। ममता। अभिमान। उ०—सदा अपनपौ रहहिं दुराए। सब बिधि कुशल कुवेष बनाए।—तुलसी (शब्द०)। ५. आत्मगौरव। मर्यादा। मान। उ०—तिनके हाथ दास तुलसी प्रभु कहा अपनपौ हारे।—तुलसी (शब्द०)।

अपनय—संज्ञा पुं० [सं०] १. दूर करना या हटाना। २. अपकार। ३. अनीति। अन्याय। ४. अर्थशास्त्र के अनुसार संधि आदि उचित रीति पर न करने का व्यवहार जिससे विपत्ति की संभावना हो जाती है [कौ०]।

अपनयन—संज्ञा पुं० [सं०] १. दूर करना। हटाना। २. स्थानांतरित करना। एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाना। ३. पक्षांतर करना। गणित के समीकरण में किसी राशि के एक पक्ष से दूसरे पक्ष में ले जाना।

विशेष—जैसे— क + ५ = क + २५
= २क – क = २५ – ५
= क = २०

इस क्रिया में पहले पक्ष के पाँच को दूसरे पक्ष में ले गए और दूसरे पक्ष के क को पहले पक्ष में ले आए।

४. खंडन। ५. (रोग आदि) अच्छा करना या दूर करना (कौ०)। ६. कर्ज अदायगी। ऋणपरिशोधन (कौ०)। ७. अन्याय।

अपनर्मक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का हार।

अपना¹—सर्व० [सं० आत्मनः, प्रा० अप्पणो] [स्त्री० अपनी] [क्रि० अपनाना] १. निज का। उ०—सबन्हौं बोल सुनाएसि सपना। सीतहि सेइ करौ हित अपना।—मानस, ५।१०।

विशेष—इसका प्रयोग तीनों पुरुषों में होता है। जैसे—तुम अपना काम करो। मैं अपना काम करूँ। वह अपना काम करे।

मुहा०—**अपना उल्लू सीधा करना** = किसी को मूर्ख बनाकर अपना कार्य निकालना। स्वार्थ सिद्ध करना। **अपना करके छोड़ना** = अपना बना लेना। उ०—हरीचंद अपनो करि छाँड़ू तब घर जाऊँ रे।—भारतेंदु ग्र०, भा० २, पृ० ३६८। **अपना करना** = अपना बनाना। अपने अनुकूल कर लेना। जैसे,—मनुष्य अपने व्यवहार से हर एक को अपना कर सकता है (शब्द०)। **अपना कहा करना** = (१) अपनी बात पर दृढ़ रहना। वचन के अनुसार आचरण करना। (२) अपनी जिद पूरी करना। **अपना कान देखे बिना कौआ के पीछे दौड़ना** = (१) मूल को भूलकर भटकना। (२) गप पर विश्वास करके बैठना। **अपना काम करना** = प्रयोजन निकालना। **अपना किया पाना** = किए को भुगतना। कर्म का फल पाना। **अपनापन स्थापित करना** = भाईचारा उत्पन्न करना। आत्मीयता बढ़ाना। **अपना पराया** = शत्रु मित्र। जैसे—तुम्हें अपने पराए की परख नहीं (शब्द०)। **अपना पाँव आग में डालना** = अपने पैरों आप कुल्हाड़ी मारना। **अपना पूत पराया धींगड़** = एक ही गलती पर अपने पुत्र को प्यार करना और दूसरे के बच्चे को डाँटना। **अपना बना लेना** = (१) दोस्त बनाना। मित्र बनाना। (२) वश में कर लेना। (३) प्रेमी बना लेना। (४) छीन लेना। **अपना बेगाना** = दे० 'अपना पराया'। **अपना रोना रोना** = अपना ही दुखड़ा बयान करना, दूसरे की न सुनना। **अपना सा करना** = अपने सामर्थ्य वा विचार के अनुसार करना। भरसक प्रयत्न करना। उ०—(क) दो बल कहा देति मोहिं सजनी तू तौ बड़ी सुजान। अपनी सी मैं बहुतहि कीन्हीं रहति न तेरी आन।—सूर० (शब्द०)। (ख) तुलसिदास मघवा अपनो सो करि गयो गर्व गँवाई।—तुलसी (शब्द०)। **अपना सा पचना** = अपनी सी कर चुकना। उ०—छुटई न सिसु अपनौ सो पची। कनक सों जनु कि नीलमनि खची।—नंद० ग्रं०, पृ० २३८। **अपना सा मुँह लेकर रह जाना** = किसी बात में अकृतकार्य होने पर लज्जित होना। उ०—और अपना सा मुँह लेकर अपनी कुर्सी पर आनकर डट गए।—फिसाना०, भा० ३, पृ० २२। **अपनी अकल अपने पास रखना** = दूसरे की सलाह की अनावश्यकता। **अपनी अपनी कहना** = अपना अपना भिन्न विचार प्रकट करना। उ०—अपनी अपनी कहत हैं, का को धरिए ध्यान।—कबीर सा० सं०, पृ० ८६। **अपनी अलग खिचड़ी पकाना** = सबसे पृथक् कार्य या विचार रखना **अपनी अपनी आ पड़ना** = अपनी अपनी चिंता में व्यग्र होना। अपना अपना ख्याल होना। उ०—पद्माकर कछु निज कथा, कासो कहौं बखान। जाहि लखो, ता है परी अपनी अपनी आन।—पद्माकर (शब्द०)। **अपनी आग में आप जलना** = किसी के प्रति ईर्ष्या, द्वेष वा क्रोध से प्रभावित होना। **अपनी उँगलियों से अपनी आँखें कुचलना** = अपने पाँव आप कुल्हाड़ी मारना। अपने हाथों अपनी हानि कर लेना।—अपनी उँगलियों से अपनी आँखों को कौन कुचालेगा।—चुभते, पृ० ८। **अपनी गाना** = अपनी-ही बात कहना और किसी की न सुनना। **अपनी गुड़िया सँवार देना** = अपने सामर्थ्य के अनुसार बेटी का ब्याह कर देना। **अपनी नींद सोना** = अपने इच्छानुसार कार्य करना। **अपनी बात का एक** = वादे का पक्का। दृढ़प्रतिज्ञ। **अपनी बात पर आना** = हठ पकड़ना। जिद्द पकड़ना। जैसे—अब वह अपनी बात पर आ गया है, नहीं मानेगा (शब्द०)। **अपनी जाँघ का सहारा होना** = स्वावलंबी होना। अपने बल या पौरुष का भरोसा होना। उ०—वह कमाई कर कभी हारा नहीं। जाँघ का अपनी सहारा है जिसे।—चुभते०, पृ० ४८। **अपनी जान हरदम सूली पर होना** = संकट की सदा आशंका होना। हरदम खतरा होना। **अपनी बीती या पर बीती कहना** = अपने या दूसरे पर घटित बात कहना। उ०—अपनी बीती कहूँ कि पर बीती, यह वही मसल हुई।—सैर कु०, पृ० ३३। **अपनी मुट्ठी में करना** = अपने कब्जे या वश में करना। उ०—उसके मन को अपनी मुट्ठी में कर, मनमानी करा लेना।—रस० क० भू०, पृ० ६। **अपनी सी करना** = मनमानी करना। उ०—वह अपनी सी करता ही चला जा रहा है।—प्रेमघन० भा० २, पृ० ३१८। **अपने घर का रास्ता लेना** = चलते बनना। अपने घर जाना। धता होना। **अपने तक रखना** = किसी से न कहना। किसी को पता न देना। भेद छिपाना। जैसे,—फकीर लोग दवा अपने तक रखते हैं। (शब्द०)। **अपने धंधे से लगना** = अपने काम में लगना। उ०—दिन को अपने अपने धंधे से लोग लगते हैं मगर साढ़े पाँच बजे से फिर किसी इंसान की सूरत न देखने में आएगी।—

सैर कु०, पृ० ३४। **अपनेपन पर आना** = अपने दुस्वभाव के अनुसार कार्य करना। **अपने पाँव पर खड़ा होना** = स्वावलंबी होना। उ०— क्यों न हों पाँव पर खड़े अपने। और का पाँव किसलिये पकड़े।—चुभते०, पृ० १०। **अपने भावें** = अपने अनुसार। अपनी जान में। जैसे,—अपने भावें तो मैंने कोई बात उठा नहीं रखी (शब्द०)। **अपने मन की करना** = दूसरों की सलाह न मानकर अपनी सोची बात करना। **अपने मुँह मियाँ मिट्ठू बनना** = अपनी प्रशंसा आप करना। **अपने लिये बला बनना** = अपनी विपत्ति का स्वयं कारण बनना। जान बूझकर संकट बुलाना। उ०—आप अपने लिये बला न बनें। जो न सिर पर पड़ी बला टाले।—चुभते०, पृ० ५५। **अपने रंग में मस्त रहना** = दूसरे की चिंता न कर अपने ही कामकाज या आनंद में पड़े रहना। **अपने सिर बला मोल लेना** = अपने लिये झंझट, बाधा या बखेड़ा खड़ा करना। स्वयं को झगड़े में डालना। **अपने सिर पड़ना** = अपने पर बीतना। उ०—जौ पहिले अपुने सिर परई। सो का काहु कै धरिहरि करई।—जायसी ग्र० (गुप्त) पृ० २५७। **अपने से बाहर होना** = रुष्ट या क्रोधित होना। बेकाबू होना। अपने **हलुए माँड़े से काम होना**—अपने मतलब से सरोकार रखना। **अपने हाँथ पाग सँवारना** = अपने हाथों अपना काम पूरा करना। **अपने हिसाब से** = अपने विचार से। अपने विवेक से।

यौ०—अपने आप = (१) स्वतः। खुद। उ०—अब कुछ दिन धक्के खाने से उसकी अकल अपने आप ठिकाने हो जाएगी।—श्रीनिवास ग्रं० पृ० २४६। (२) आप। निज। जैसे—अपने को। अपने में। अपने पर।

अपना२—संज्ञा पुं० आत्मीय। स्वजन। जैसे—आप लोग तो अपने ही हैं, आपसे छिपाव क्या ?—(शब्द०)। उ०—जब लौं न सुनौं अपने जन को। अति आरत शब्द हते तन को।—रामचं०, पृ० १७।

अपनाइत(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अपनायत'। उ०—अपनाइत हूँ सों नहीं अब परतीत बिचारि। मो नैननि मनु मेरेई राख्यौ हरि में डारि।—भिखारी ग्रं०, भा० १, पृ० १७।

अपनाइयत†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अपनायत'।

अपनाना—क्रि० स० [**अपना से नाम०**] १. अपने अनुकूल करना। अपने वश में करना। अपनी ओर करना। उ०—(क) रचि प्रपंच भूपहि अपनाई। राम तिलक हित लगन धराई।—मानस, २।१८। (ख) सूर स्याम बिन देखे सजनी कैसे मन अपनाऊँ।—सूर० (शब्द०)। २. अपना बनाना। अंगीकार करना। ग्रहण करना। अपनी शरण में लेना। उ०—(क) सब बिधि नाथ मोहि अपनाइय। पुनि मोहि सहित अवधपुर जाइय।—मानस, ६।११६। (ख) ना हमको कछु सुंदरताई। भक्त जानि के सब अपनाई।—सूर० (शब्द०)।

अपनापन—संज्ञा पुं० [हिं० **अपना + पन** (प्रत्य०)] १. अपनायत। आत्मीयता। उ०—अपनापन चेतन का सुखमय, खो गया नहीं आलोक उदय।—कामायनी, पृ० २४१। २. आत्माभिमान। उ०—भूल न जावे कभी न अपनापन, जान दे, पर न मान को दे दो।—चोखे०, पृ० १५।

अपनापा—संज्ञा पुं० [हिं० **अपना + पा** (प्रत्य०)] अपनापन। अपनत्व।

अपनाम—संज्ञा पुं० [सं०] बदनामी। निंदा। शिकायत।

अपनामा—वि० [सं० **अपनामन्**] निंदित। बदनाम [को०]।

अपनायत—संज्ञा स्त्री० [हिं० **अपना + यत** (प्रत्य०)] १. अपना होने का भाव। अपनापन। आत्मीयता। उ०—(क) देखी सुनी न आजु लौं अपनायत ऐसी। करहिं सबै, सिर मेरे ही गिरि परै अनैसी।—तुलसी ग्रं०, पृ० ५३३। (ख) जो लोग अपनायत की रीति सें कहते हैं।—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० ३६६। २. आपसदारी का संबंध। बहुत पास या नजदीकी रिश्ता।

अपनाव—संज्ञा पुं० [हिं० **अपना + आव** (प्रत्य०)] अपना बना लेने की क्रिया। ऐक्य का भाव।

अपनाश(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अपनास'।

अपनास(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० **अप + नास**] अपना नाश। उ०—हाथ चढ़ौं मैं तेहि के प्रथम करौं अपनास।—जायसी ग्रं० पृ० १००।

अपनाहट—संज्ञा स्त्री० [हिं० **अपना + आहट** (प्रत्य०)] अपनापन निजत्व। उ०—खादी की वह मोटी चादर नहीं चित्त को भाती थी। अनमिल जन की अपनाहट सी रुचि से मेल न खाती थी।—आर्द्रा, पृ० ६६।

अपनि(पु)—सर्व० [हिं०] दे० 'अपना'। उ०—अपनि प्रतिज्ञा तन किन चहौ। वेद पुराननि मैं जो कहौ।—नंद० ग्रं०, पृ० ३०३।

अपनिधि—वि० [सं०] गरीब।

अपनीत१—वि० [सं०] १. दूर किया हुआ। हटाया हुआ। २. निकाला हुआ। ३. खंडित (को०)। ४. जिसका अपनयन किया गया हो।

अपनीत२—संज्ञा पुं० १. धोखा। फरेब। २. बुरा आचरण [को०]।

अपनुक‡(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अपना'। उ०—ए सखि कहब अपनुक दंद, सपनहु जनु हो कुपुरुस संग।—विद्यापति, पृ० ४२३।

अपनुत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अपनोदन' [को०]।

अपनोद—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अपनोदन' [को०]।

अपनोदन—संज्ञा पुं० [सं०] १. दूर करना। हटाना। २. खंडन। प्रतिवाद। ३. प्रायश्चित्त (को०)। ४. नष्ट करना। खराब करना [को०]।

अपह्नव(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अपह्नव'।

अपह्नुति(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अपह्नुति'। उ०—मिसु करि और कथन छविधि, होत अपन्हुति भाइ।—भिखारी ग्रं०, भा० २, पृ० ६०।

अपपाठ—संज्ञा पुं० [सं०] भ्रष्ट या गलत पाठ। अशुद्ध पाठ [को०]।

अपपात्र—वि० [सं०] १. जिसे सब लोगों के व्यवहार का सामान, बतन या पात्र न दिया जाय। किसी दोष के कारण जातिच्युत। २. हीन जाति का [को०]।

अपपात्रित—वि० [सं०] दे० 'अपपात्र' [को०]।

अपपाद—वि० [सं०] खराब या बुरे पैरोंवाला। जिसके पैर विकृत हों [को०]।

अपपादत्र—वि० [सं०] उपानहविहीन। पादत्राणरहित। नंगे पैरोंवाला [को०]।

अपपूत—वि० [सं०] १. जिसके नितंबों की रचना विकृत हो [को०]।

अपप्रजाता—संज्ञा स्त्री० [सं०] ऐसी स्त्री जिसका गर्भपात हो गया हो [को०]।

अपप्रदान—संज्ञा पुं० [सं०] १. घूस। रिश्वत। उत्कोच। २. अनुचित रूप से दिया धन [को०]।

अपबरग(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अपवर्ग'। उ०—सोहत साथ सुभग सुत चारी। जनु अपबरग सकल तनु धारी।—मानस०,१।३१५।

अपबर्ग(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अपवर्ग'। उ०—सात स्वर्ग अपबर्ग ऊपर ताहि चित्त लगावनं—पलटू०, पृ० ६३।

अपबल(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० अप + बल] आत्मबल। अपनी शक्ति। उ०—इंद्र कहा रिसाइ कीन्हौ गयो अपबल गाहि। आइ तिनहूँ पाँइ पकरे समुझि कै मन माहि।—सूर०, (प० १।४७)।

अपबस(पु)—वि० [हिं० अप + बस] अपने वश में। स्ववश। उ०—(क) जौ बिधना अपबस करि पाऊँ तौ सखि कह्यो, होइ कछु तेरौ अपनी साध्र पुराऊँ।—सूर०, १०।१०४७।

अपबाहुक—संज्ञा पुं० [सं०] बाहु संबंधी एक बातरोग जिसमें कंधे में वायु के प्रविष्ट हो जाने से नसें तन जाती हैं। २. सदोष वायु [को०]।

अपभय[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. भय का नाश। निर्भयता। २. व्यर्थ भय। अकारण भय। ३. डर। भय। उ०—(क) कबहुँ कृपा करि रघुनाथ मोहूँ चितैहौ। विनय करौं अपभय हुते तुम परम हितैहो। तुलसी (शब्द०)। (ख) अपभय कुटिल महीप डराने।—तुलसी (शब्द०)।

अपभय[2]—वि० [सं०] निर्भय। निडर। जो न डरे।

अपभायो(पु)—वि० [हिं० अप + √भाना = अच्छा लगना] अपने को भाने या अच्छा लगनेवाला। आत्मभावित। अपने भाव का। स्वानुकूल। उ०—काम क्रोध मोह लोभ गर्व ने मन बौराय कियो अपभायो।—चरण० बानी, पृ० ६५।

अपभाषण—संज्ञा पुं०[सं०] १. अशिष्ट भाषण। २. अपमानकर कथन। ३. गाली देना। दुर्वचन कहता [को०]।

अपभुक्त—वि० [सं० अप + भुक्त] अनुचित रूप से व्यवहार में लाया हुआ (धन या पदार्थ) [को०]।

अपभ्रंश[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. पतन। गिराव। २. बिगाड़। विकृति ३. बिगड़ा हुआ शब्द। ४. प्राकृत बोलियों (भाषा) का विकृत। स्वरूप [को०]। ५. प्राकृत भाषा के बाद की भाषा [को०]।

अपभ्रंश[2]—वि० [सं०] विकृत। बिगड़ा हुआ।

अपभ्रशित—वि० १. गिरा हुआ। २. बिगड़ा हुआ।

अपभ्रष्ट—वि०[सं०] १. विकृत। बिगड़ा हुआ। २. गिरा हुआ[को०]।

अपमंगल—संज्ञा पुं० [सं० अप + मङ्गल] अशुभ अकल्याण। अनिष्ट। उ०—अपमंगल जिय जानि सु नेन मुषं बही।—पृ० रा० २५।३७५।

अपमर्द—संज्ञा पुं० [सं०] धूल। गर्द [को०]।

अपमर्दन—संज्ञा पुं०[सं० अप + मर्दन]बुरी तरह रौंदना या कुचलना।

अपमर्श- संज्ञा पुं० [सं०] १. स्पर्श। २. चरना। ३. घर्षण [को०]।

अपमान—संज्ञा पुं० [सं०] १. अनादर। अवहेलना। बिडंबना। अवज्ञा। २. तिरस्कार। दुतकार। बेइज्जती।

क्रि० प्र०—करना। होना।

अपमानता(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० अप + मान्यता] अपमान या तिरस्कार की स्थिति या क्रिया। उ०—प्रतिग्रध गुरु अपमानता सहि नहिं सके महेस।—मानस, ७।२०६।

अपमानना(पु)—क्रि० स० [सं० अपमान से नाम०] अपमान करना। विडंबना करना। निंदा करना। तिरस्कार करना। उ०—(क) सुनि मुनि बचन लषन मुसुकाने। बोले परसु धरहि अपमाने।—तुलसी (शब्द०)। (ख)हारि जीत नैना नहिं मानत। धाए जात तहीं को फिरि फिरि वै कितनो अपमानत।—सूर (शब्द०)।

अपमानित—वि० [सं०] १. निंदित। अवमानित। २. बेइज्जत।

अपमानी—वि० [सं० अपमानिन्] [वि०स्त्री० अपमानिनी] निरादर करनेवाला। तिरस्कार करनेवाला। उ०—सोचिय सूद्र विप्र अपमानी।—तुलसी (शब्द०)।

अपमान्य—वि० [सं०] अपमान के योग्य। निंद्य।

अपमारग(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अपमार्ग'। उ०—महामोहिनी मोहि आतमा अपमारगहिं लगावै।—सूर० १।४२।

अपमारगी(पु)—वि०[हिं०] दे० 'अपमार्गी'।—उ०—नैना लोनहरामी ये। चोर, ढुंढ बटपार कहावत अपमारगी, अन्यायी वे।—सूर०, १०।२२८५।

अपमार्ग—संज्ञा पुं० [सं०] १. कुमार्ग। असन्मार्ग। कुपथ। २. देह मलना या धोना। अंग का परिमार्जन [को०]।

अपमार्गी—वि० [सं० अपमार्गिन]१.कुमार्गी। कुपंथी। अन्यथाचारी। २. दुष्ट। नीच। पापी।

अपमार्जन—संज्ञा पुं० [सं०] १. शुद्धि। सफाई। संस्कार। संशोधन। २. हजामत। क्षौर (को०)। ३. खंड। टकड़ा [को०]।

अपमुख—[सं०] [स्त्री०अपमुखी] जिसका मुँह टेढ़ा हो। विकृतानन टेढ़मुहाँ [को०]।

अपमृत्यु—संज्ञा पुं० [सं०] १. कुमृत्यु कुसमय मृत्यु जैसे, बिजली के गिरने, विष खाने, साँप आदि के काटने से मरना। २. बहुत बड़ा रोग या खतरा जिससे व्यक्ति बच गया हो [को०]।

अपमृषित—वि० [सं०] १. समझ में न आने योग्य। अस्पष्ट। २. असह्य [को०]।

अपयश—संज्ञा पुं० [सं० अपयस्] १. अपकीर्ति। बदनामी। बुराई। उ०—मैं जगत के अपयश को मौत से बढ़कर मानता हूँ।—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० १११। २. कलंक। लांछन।

अपयशस्क—वि० [सं०] अपकीर्तिकारी। अपयशकारी [को०]।

अपयशस्कर—वि० [सं०] दे० 'अपयशस्क'।

अपयशी—वि० [सं० अप + यश + हिं० ई (प्रत्य०)] कलंकित। निंदित [को०]।

अपयसी(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अपयशी'। उ०—सूम सर्वभच्छी दववादी जो कुबादी जड़, अपयसी ऐसो भूमि भूपति न सोहिए—रामचं० पृ० १२५।

अपयान—संज्ञा पुं० [सं०] १. उपेक्षा। उदासीनता। २. पलायन। भागना। हट जाना। निकल जाना [को०]।

अपयोग—संज्ञा पुं० [सं०] १. कुयोग। बुरा योग। २. कुसमय। कुबेला। ३. कुशकुन। असगुन। ४. नियमित मात्रा से अधिक वा न्यून औषध पदार्थों का योग।

अपरंच—अव्य० [सं० **अपरञ्च**] १. और भी। २. फिर भी। पुनरपि। पुनः। ३. दूसरा भी [को०]।

अपरंपार(पु)—वि० [सं० **अपर = दूसरा + हिं० पार = छोर**] जिसका पारावार या ओर छोर न हो। असीम। बेहद। अनत। उ०—खग खोज पाछै नहीं, तू तत अपरंपार। बिन परचै का जानिऐं सब झूठे अहंकार।—कबीर ग्रं०, पृ० २३०।

अपर[1]—वि० [सं०] १. जो पर न हो। पहला। पूर्व का। २. पिछला। जिससे कोई पर न हो ३. अन्य। दूसरा। भिन्न। और। उ०—अपर नाम उडुगण बिमल, बसैं भक्त उर व्योम।—भक्तमाल (श्री०) पृ० ४६८। ४. जिससे बढ़कर या बराबर का अन्य न हो (को०)। ५. जो दूसरा या पराया न हो। स्वपक्षीय। अपना। उ०—को गिनै अपर पर को गिनै। लोह छोह छक्के बरन।—पृ० रा०, ३३।२६। ६. अश्रेष्ठ। जो पर अर्थात् श्रेष्ठ न हो। निकृष्ट। साधारण (को०)। ७. पश्चिमी। पश्चिम दिशा का (को०)। ८. दूर का। दूरवर्ती। जो पास न हो (को०)।

अपर[2]—संज्ञा पुं० १. हाथी का पिछला भाग, जंघा, पैर आदि। २. रिपु। शत्रु। ३. न्यायशास्त्र में सामान्य के दो भेदों में से एक। ४. भविष्यत् काल या उस काल में किया जानेवाला कार्य [को०]।

अपरकाय—संज्ञा पुं० [सं०] शरीर का पिछला भाग।

अपरकाल—संज्ञा पुं० [सं०] बाद का समय [को०]।

अपरक्त—वि० [सं०] १. बदले हुए रंग का। रंगहीन। ३. रक्तहीन। पीला। ४. असंतुष्ट [को०]।

अपरक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] अपरक्त या असंतुष्ट होना।

अपरचै(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अपरिचय'। उ०—देखा देखी पाकड़ै जाइ अपरचै छूटि। बिरला कोई ठाहरै सतगुर सांमीं मूठि।—कबीर ग्रं०, पृ० ५१।

अपरछन[1](पु)—वि० [सं० **अप्रच्छन्न वा अपरिछन्न**] आवरणरहित। जो ढका न हो। बिना वस्त्र का।

अपरछन[2](पु)—[सं० **अप्रच्छन्न**] आवृत। छिपा। गुप्त। उ०—बाजी विहर रचाइ के रहा अपरछन होइ। मायापट परदा दिया, ताते लखइ न कोइ।—दादू (शब्द०)।

अपरज[1]—वि० [सं०] बाद में उत्पन्न [को०]।

अपरज[2]—संज्ञा पुं० विध्वंसक अग्नि। प्रलयाग्नि [को०]।

अपरतंत्र—वि० [सं० **अपरतन्त्र**] जो परतंत्र या परवश न हो। स्वतंत्र। स्वाधीन। आजाद।

अपरत—वि० [सं०] विरक्त। उदासीन। (को०)।

अपरता[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] परायापन।

अपरता[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० **अ = नहीं + परता = परायापन**] भेदभाव की शून्यता। अपनापन।

अपरता[3]†—वि० [**हिं० अप = आप + रत = लगा हुआ**] स्वार्थी। मतलबी।

अपरता[4]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दूरी। २. पृथकता। ३. निकटता। समीपता। ४. न्याय में २४ गुणों में एक [को०]।

अपरति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बिलगाव। विच्छेद। २. असंतोष [को०]।

अपरती(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० **अप = आप + सं० रति = लीनता**] स्वार्थ। बेईमानी।

अपरतीत(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० **अप्रतीति**] विश्वास का अभाव। अविश्वास। उ०—क्यों अपरतीत के घने बादल। चाँद परतीत को घुमड़ घेरें।—चोखे०, पृ० १६७।

अपरत्र—क्रि० वि० [सं०] १. दूसरे समय में। और कभी। २. अन्यत्र [को०]।

अपरत्व—संज्ञा पुं० [सं०] १. पिछलापन। अर्वाचीनता। २. परायापन। बेगानगी। ३. न्यायशास्त्रानुसार चौबीस गुणों में से एक। यह दो प्रकार का है—एक कालभेद से दूसरा देशभेद से। दे० 'अपरता'।

अपरदक्षिण—संज्ञा पुं० [सं०] दक्षिण और पश्चिम का कोना। नैर्ऋत्य कोण।

अपरदिशा—संज्ञा स्त्री० [सं०] पश्चिम।

अपरना(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० **अपर्णा**] पार्वती का नाम। वि० दे० 'अपर्णा'। उ०—पुनि परिहरेउ सुखानेउ परना। उमा नाम तब भयउ अपरना।—तुलसी (शब्द०)।

अपरनाल—संज्ञा पुं० [सं०] बृहत्संहिता के अनुसार एक देश का नाम।

अपरपक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] १. कृष्ण पक्ष। २. प्रतिवादी। मुद्दालेह। फरीकसानी।

अपरपर—वि० [सं०] एक एवं अन्य अनेक। विभिन्न [को०]।

अपरपुरुष—संज्ञा पुं० [सं०] वंशज। वंशगत लोग [को०]।

अपरप्रणेय—वि० [सं०] अन्य से जल्दी प्रभावित होनेवाला [को०]।

अपरबल†—वि० [<सं० **प्रबल**] बलवान्। बली। उद्धत। बेकहा। उ०—चली अपरबल बात अबात। उड़े जात कहि बनत न बात।—नंद० ग्रं०, पृ० ३०७।

अपरभाव—संज्ञा पुं० [सं०] १. अन्य या भिन्न होने का भाव। अंतर। भेद। २. अविरल [को०]।

अपरमित—वि० [सं० **अपरिमित**] इयत्ताशून्य। असीम। उ०—ऐसी ऐसी बातों से उसकी अपरमित शक्ति का पूरा प्रमाण मिलता है।—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० १९८।

अपररात्र—संज्ञा पुं० [सं०] रात्रि का अंतिम भाग या प्रहर [को०]।

अपरलोक—संज्ञा पुं० [सं०] दूसरा लोक। परलोक। स्वर्ग।

अपरव—संज्ञा पुं० [सं०] १ (संगीत संबंधी) झगड़ा या विवाद। २. कुख्याति [को०]।

अपरवक्त्र—संज्ञा पुं० [सं०] वह वृत्त जिसके विषम चरण में दो नगण, एक रगण और लघु गुरु हों तथा समचरण में एक नगण, दो जगण और रगण हों। यथा—सब तज रसना गहो हरी। दुख सब भागहिं पापहू जरी। हरि विमुख संग ना करी। जप दिन रैन हरी हरी (शब्द०)।

अपरवक्त्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अपरवक्त्र' [को०]।

अपरवश—वि० [सं०] पराए वश का। परतंत्र।

अपरस¹—वि०[सं० अ = नहीं + स्पर्श, हिं० परस] १. जो छुआ न जाय। जिसे किसी ने छुआ न हो। उ०—ऊधौ तुम हौ अति बड़भागी। अपरस रहत सनेह तगा ते नाहिन मन अनुरागी।—सूर०, १०।३९५८। २. न छूने योग्य। अस्पृश्य। उ०—अपरस ठौर तहाँ सपरस जाइ कैसें, बासना न धोवैं तौ लौं तन के पखारे कहाँ।—घनानंद, पृ० १९८।

अपरस²—संज्ञा पुं० एक चर्मरोग जो हथेली और तलवे में होता है। इसमें खुजलाहट होती हैं और चमड़ा सूख सूखकर गिरा करता है।

अपरस³(पु)—संज्ञा पुं० [सं० आत्म + रस] आत्मानंद। आत्मरस। उ०—पाछे श्री गुसाईं जी स्नान करि धोती उपरेना पहरि अपरस की गादी पर विराजि कै संख चक्र धरत हते।—दो सौ बावन०, पृ० ६।

अपरस⁴(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अप = बुरा + रस] बुरा रस। विकृत रस। उ०—जनम जनम तें अपावन असाधु महा, अपरस पूति सो न छाड़ैं अजौं छूति कौं।—घनानंद, पृ० १९८।

अपरस्पर—वि० [सं०] १. निरंतर। लगातार। २. अन्योन्य। ३. जो आपस का न हो। जिसमें आपसदारी न हो [को०]।

अपरांग—संज्ञा पुं० [सं० अपराङ्ग] गुणीभूत व्यंग्य के ८ भेदों में से एक जिसमें व्यंग्यार्थ अन्य शब्द के अधीन हो।

अपरांत—संज्ञा पुं० [सं० अपरान्त] पश्चिम का देश।

अपरांतक—संज्ञा पु० [सं० अपरान्तक] बृहत्संहिता के अनुसार पश्चिम दिशा में एक पर्वत।

अपरांतिका—संज्ञा स्त्री० [सं० अपरान्तिका] बैताली छंद का एक भेद जिसमें बैताली छंद के सम चरणों के समान चारों पद हों और चौथी और पाँचवीं मात्रा मिलकर एक दीर्घाक्षर हो जाय। जैसे—शंभु को भजहु रे सबै घरी। तज सबै काम रे हिये धरी (शब्द०)।

अपरा¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. अध्यात्म वा ब्रह्मविद्या के अतिरिक्त अन्य विद्या। लौकिक विद्या। पदार्थ विद्या। २. पश्चिम दिशा। ३. एकादशी जो ज्येष्ठ के कृष्ण पक्ष में होती है।

अपरा²—वि० स्त्री० दूसरी।

अपराग—संज्ञा पुं० [सं०] १. असंतोष। २. शत्रुता। ३. अरुचि [को०]।

अपराग्नि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दक्षिण एवं गार्हपत्य अग्नि। २. चिता की अग्नि [को०]।

अपराजित¹—वि० [सं०] [वि० स्त्री० अपराजिता] जो पराजित न हुआ हो। अविजित।

अपराजित²—संज्ञा पुं० १. विष्णु। २ शिव। ३. कृष्ण का एक पुत्र (को०)। ४. एक विषैला कीट (को०)। ५. एकादश रुद्रों में से एक।

अपराजिता¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. विष्णुक्रांता लता। कोयल लता। २. दुर्गा। उ०—सरन सरन है सदा सुख साजिता। द्रवहि द्रवहि दास कों अपराजिता।—भिखारी ग्रं०, भा० १, पृ० २५४। ३. अयोध्या का एक नाम। ४. चौदह अक्षर का एक वृत्त जिसके प्रत्येक चरण में दो नगण, एक रगण, एक सगण तथा एक लघु और एक गुरु होता है। न न र स ल ग—।। ।।। ऽ।ऽ ।।ऽ । ऽ जैसे—न विरस लग राम की जन को कथा। सुनत बढ़त प्रेम सिंधु शशी यथा। रघुकुल करि पावनो सुख साजिता। जिन किय थित कीरती अपराजिता (शब्द०)। ५. एक प्रकार का धूप।

अपराजिता²—वि० जिसमें पर को जीता न जा सके। अनिर्णीत।

अपराजेय—वि० [सं०] १. जो जीता न जा सके। उ०—रह गया राम रावण का अपराजेय युद्ध।—अपरा, पृ० ३७।

अपराझी(पु)—वि० [सं० अपराद्ध; प्रा० अवरज्झ + ई (प्रत्य०)] दे० 'अपराधी'। उ०—मानुस जन्म चुकेहु अपराझी। यह तन केर बहुत है साझी।—कबीर बी०।

अपराद्ध¹—वि०[सं०] १.जिसने अपराध किया हो। दोषी। अपराधी। २. चूकनेवाला। ३. अतिक्रांत। अतिक्रमित [को०]।

अपराद्ध²—संज्ञा पुं० १. दोष। अपराध [को०]।

अपराद्धि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. गलती। दोष। अपराध। २. पाप [को०]।

अपराध—संज्ञा पुं० [सं०] १. दोष। पाप। २. कसूर। जुर्म। ३. भूल। चूक।

अपराधभंजन—संज्ञा पुं०[सं० अपराधभञ्जन]अपराध का नाश करनेवाले शिव [को०]।

अपराधविज्ञान—संज्ञा पुं०[सं०] अपराध के कारण और उसे निवारण करनेवाला विज्ञान [को०]।

अपराधी—वि० पुं० [सं० अपराधिन्] [स्त्री० अपराधिनी] दोषी। पापी। मुलाजिम।

अपराधीसाक्षी—संज्ञा पुं० [सं० अपराधीसाक्षिन्] किसी अपराध के मामले का वह अभियुक्त जो अपना अपराध स्वीकार कर लेता है और अपने साथी या साथियों के विरुद्ध गवाही देता है। वह अभियुक्त या अपराधी जो सरकारी गवाह हो जाता है। इकबाली गवाह। मुजरिम इकरारी। सरकारी गवाह।

अपरापत(पु)—संज्ञा पुं०[सं० अप्राप्त] भाग्य। किस्मत। विधि। उ०—काहू सौं नाहीं मिटै, अपरापत कै अंक। ईस के सीस तउ, भयो न पूर्न मयंक।—स० सप्तक, पृ० ७१०।

अपरापति(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० अप्राप्ति] प्राप्ति का अभाव। अलाभ। अभाग्य। उ०—अपरापति के दिनन में खरच होत अबिचार। घर आवतु है पाहुनो, बिन जन लाभ लगार।—स० सप्तक, पृ० ३३१।

अपरापरण—वि० [सं०] संतानहीन। निस्संतति [को०]।

अपरामृष्ट—वि०[सं०]१. अछूता। अस्पष्ट। जिसको किसी ने न छुआ हो। २. अव्यवहृत। कोरा। जिसे व्यवहार में न लाया गया हो।

अपरार्क¹—वि० [सं०] द्वितीय सूर्य जैसा। सूर्य तुल्य तेजस्वी [को०]।

अपरार्क²—संज्ञा पुं० [सं०] याज्ञवल्क्य स्मृति के प्रसिद्ध प्राचीनतम टीकाकार जिनकी अपरार्कचंद्रिका टीका विख्यात है।

अपरार्ध—संज्ञा पुं० [सं०] द्वितीय आधा भाग। उत्तरार्ध [को०]।

अपरावर्ती—वि० [सं० अपरावर्तिन्] [वि० स्त्री० अपरावर्तिनी] १. जो बिना काम पूरा किए न लौटे। काम करके पलटनेवाला। २. जो पीछे न हटे। जो किसी काम से मुँह न मोड़े। मुस्तैद।

अपरावृत—वि० [सं०] अनिवर्तित । न लौटा हुआ । अपनी जगह न आया हुआ । उ०—जब तक मनस् अपरावृत है तब तक मनस् का आलय विज्ञान ही एकमात्र आलंबन होता है।—संपूर्णा० अभि० ग्रं०, पृ० ३६९ ।

अपराह्ण—संज्ञा पुं० [सं०] १. दिन का पिछला भाग । दो पहर के पीछे का काल । तीसरा पहर ।

अपराह्णतन—वि० [सं०] १. दिन के पिछले भाग से संबद्ध । २. दिन के अंतिम काल में उत्पन्न [कौ०] ।

अपराह्णेतन—वि० [सं०] दे० 'अपराह्णतन' ।

अपराह्न—संज्ञा पुं० दे० 'अपराह्ण' ।

अपरिकलित—वि० [सं०] अज्ञात । अदृष्ट । अश्रुत । बे देखा सुना ।

अपरिक्रम—वि० [सं०] १. चल फिर पाने में असमर्थ । २. परिश्रम करने के अयोग्य [कौ०] ।

अपरिक्लिन्न—वि० [सं०] सूखा । शुष्क ।

अपरिगण्य—वि० [सं०] अनगिनत । बेशुमार [कौ०] ।

अपरिगत—वि० [सं०] १. अज्ञात । अपरिचित । न पहिचाना हुआ । २. अप्राप्त ।

अपरिगृहीत—वि० [सं०] अस्वीकृत । त्यक्त । छोड़ा हुआ ।

अपरिगृहीतागमन—संज्ञा पुं० [सं०] जैनशास्त्रानुसार एक प्रकार का अतिचार । कुमारी या विधवा के साथ गमन करना पुरुष के लिये और कुमार या रँडुआ के साथ गमन करना स्त्री के लिये अपरिगृहीतागमन है ।

अपरिग्रह—संज्ञा पुं० [सं०] १. अस्वीकार । दान का न लेना । दानत्याग । २. देहयात्रा के लिये आवश्यक धन से अधिक का त्याग । विराग । ३. योगशास्त्र में पाँचवाँ यम । संगत्याग । ४. जैन शास्त्रानुसार मोह का त्याग ।

अपरिग्राह्य—वि० [सं०] जो ग्रहण करने या अंगीकार करने योग्य न हो [कौ०] ।

अपरिचय—संज्ञा पुं० [सं० वि० **अपरिचित**] परिचय का अभाव । जान-पहिचान का न होना ।

अपरिचयिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] परिचयशून्यता की स्थिति या भाव । [कौ०] ।

अपरिचयी—वि०[सं० **अपरिचयिन्**] १. जिसका परिचय न हो । २. जो मिलनसार न हो । असामाजिक [कौ०] ।

अपरिचित—वि० [सं०] १. जिसे परिचय न हो । जो जानता न हो । अनजान । जैसे—वह इस बात से बिलकुल अपरिचित है (शब्द०) । २. जो जानाबूझा न हो । अज्ञात । जैसे—किसी अपरिचित व्यक्ति का सहसा विश्वास न करना चाहिए(शब्द०)।

अपरिच्छद—वि० [सं०] १. आच्छादनरहित । आवरणशून्य । जो ढका न हो । नंगा । खुला हुआ । २. दरिद्र ।

अपरिच्छन्न—वि० [सं०] १. जो ढका न हो । खुला । नंगा । २. आवरणरहित । ३. सर्वथा व्यापक ।

अपरिच्छादित—वि० [सं०] दे० 'अपरिच्छन्न' [कौ०] ।

अपरिच्छिन्न—वि० [सं०] १. जिसका विभाग न हो सके । अभेद्य । २. जो अलग न हुआ हो । मिला हुआ । ३. इयत्तारहित । असीम । सीमारहित ।

अपरिच्छेद—संज्ञा पुं० [सं०] १. विभाग, विभाजन या विलगाव का अभाव । २. न्याय या निर्णय का अभाव । ३. अविच्छिन्नता । नैरंतर्य [कौ०] ।

अपरिछिन्न(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अपरिच्छिन्न' । उ०—जौ कहहु कि हम यों करि पाए । अपरिछिन्न नित निगमन गाए ।—नंद० ग्रं०, पृ० २७१ ।

अपरिणत—वि० [सं०] १. अपरिपक्व । जो पका न हो । कच्चा । २. जिसमें विकार या परिवर्तन न हुआ हो । ज्यों का त्यों । विकारशून्य ।

अपरिणय—संज्ञा पुं० [सं०] विवाहशून्य अवस्था । अपरिणीत स्थिति । कौमार्य । ब्रह्मचर्य ।

अपरिणयन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अपरिणय' [कौ०] ।

अपरिणाम—संज्ञा पुं० [सं०] परिणाम या परिवर्तन का अभाव । अपरिवर्तनशीलता [कौ०] ।

अपरिणामदर्शी—वि० [सं० **अपरिणामदर्शिन्**] अदूरदर्शी [कौ०] ।

अपरिणामी—वि० [सं० **अपरिणामिन्**][वि० स्त्री० **अपरिणामिनी**] १. जिसकी दशा में परिवर्तन न हो । परिणामरहित । विकार-शून्य । २. जिसका कुछ परिणाम न हो । निष्फल ।

अपरिणीत—वि० [सं०][वि०स्त्री०**अपरिणीता**] अविवाहित । क्वाँरा ।

अपरिपक्व—वि० [सं०] १. जो परिपक्व न हो । कच्चा । २. जो भली भाँति पका न हो । अधकच्चा । अधकचरा । अप्रौढ़ । अधूरा । अव्युत्पन्न । ४. जिसने तपश्चर्यादि द्वारा द्वंद्व अर्थात् सर्दी, गर्मी, भूख, प्यास आदि सहन न की हो ।

यौ०—अपरिपक्व कषाय । अपरिपक्वधी । अपरिपक्वबुद्धि ।

अपरिपणितसंधि—संज्ञा स्त्री० [सं० **अपरिपणित सन्धि**] एक प्रकार की कपट संधि जो केवल धोखे में रखने के लिये की जाय ।

विशेष—कौटिल्य के अनुसार इसका ढंग यह है कि किसी अभिमानी मूर्ख आलसी या दुर्व्यसनी राजा को नीचा दिखाना हो तो उससे यों ही कहता रहे कि हम तुम तो एक हैं, पर किसी प्रयोजन की बात न करे । इस प्रकार उसे संधि के विश्वास में रखकर उसकी कमजोरियों का पता लगाता रहे और मौका पड़ते ही उसपर आक्रमण कर दे । इस कपटसंधि का उपयोग दो सामंत राजाओं को लड़ाकर उनके राज्य को हरण करने के लिये भी हो सकता है ।

अपरिबाधा—संज्ञा स्त्री० [सं० **अ+परिबाधा**] कपट बाधा या आयाम का निवारण ।

अपरिम—वि० [सं० **अ+परिमा=परिमाण**] जिसका परिमाण न हो । अमित । उ०—इस रहस्य अपरिम के आगे आदर से नतमस्तक है कवि ।—इत्य म्, पृ० ९७ ।

अपरिमाण—वि० [सं०] १. परिमाणरहित । बेअंदाज । अकूत ।

अपरिमित—वि०[सं०] १. इयत्ताशून्य । असीम । बेहद । उ०—मानव था साथ उसी के मुख पर था तेज अपरिमित ।—कामायनी, पृ० २७७ । २. असंख्य । अनंत । अगणित । उ०—अपनैं जान मैं बहुत करी । कृपासिंधु, अपराध अपरिमित छमौ सूर तैं सब बिगरी ।—सूर०, १।११५ ।

अपरिमेय—वि० [सं०] १. जिसका परिमाण न पाया जाय। जिसकी नाप न हो सके। बेअंदाज। अकूत। असंख्य। अनगिनत।

अपरिम्लान¹—वि० [सं०] न मुरझानेवाला। जिसका अपक्षय न हो [कौ०]।

अपरिम्लान²—संज्ञा पुं० [सं०] महासहा नाम का एक वृक्ष [कौ०]।

अपरिवर्त्तनीय—वि० [सं०] १. जो परिवर्तन के योग्य न हो। जो बदल न सके। २. जिसमें फेरफार न हो सके। ३. जो बदले में न दिया जा सके। ४. सदा एकरस रहने वाला। नित्य।

अपरिवर्त्य—वि० [सं०] दे० 'अपरिवर्त्तनीय'। उ०—जो इस परिवर्तनशील विश्व में अपरिवर्त्य है।—संपूर्णा० अभि० ग्रं०, पृ० २२४।

अपरिवर्तित—वि० [सं०] जिसमें कोई हेरफेर या तबदीली न हुई हो। अविकल। ज्यों का त्यों।

अपरिवाद्य—वि० [सं०] जो निंदायोग्य न हो। अनिंद्य [कौ०]।

अपरिवृत—वि० [सं०] जो ढका या घिरा न हो। अपरिच्छन्न।

अपरिशेष¹—वि० [सं०] जिसका परिशेष या नाश न हो। पूर्ण। अनंत। अविनाशी। नित्य।

अपरिशेष²—संज्ञा पुं० सीमा का अभाव [कौ०]।

अपरिष्कार—संज्ञा पुं० [सं०] १. संस्कार का अभाव। असंशोधन। सफाई या काट छाँट का न होना। २. मैलापन। ३. भद्दापन।

अपरिष्कृत—वि० [सं०] १. जिसका परिष्कार न हुआ हो। जो साफ न किया गया हो। जो काट छाँटकर दुरुस्त न किया गया हो। २. मैलाकुचैला। ३. भद्दा। बेडौल। ४. असंस्कृत।

अपरिसर—वि० [सं०] १. समीप का नहीं। दूर का। २. अविस्तीर्ण। अप्रशस्त [कौ०]।

अपरिसर²—संज्ञा पुं० विस्तार का अभाव [कौ०]।

अपरिसीम—वि० [सं० **अ + परिसीम**] १. असीम। २. विस्तीर्ण। उ०—भगवान बादरायण हर हर करती गंगा की अपरिसीम धारा को देखते रहे—वै० न०, पृ० २४८।

अपरिस्कंद—वि० [सं० **अपरिस्कन्द**] गतिशून्य। जो कूद फाँद न सके [कौ०]।

अपरिहरणीय—वि० [सं०] १. अनिवार्य। अवश्यंभावी। २. अपरित्याज्य। जिसका परिहार न हो सके। ३. अनादर के अयोग्य [कौ०]।

अपरिहार—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० **अपरिहारित, अपरिहार्य**] १. अवर्जन। अनिवारण। २. दूर करने के उपाय का अभाव।

अपरिहारित—वि० [सं०] अपरिवर्जित। अनिवारित। जो दूर न किया गया हो।

अपरिहार्य—वि० [सं०] १. जिसका परिहार न हो सके। अवर्जनीय। अबाध्य। अनिवार्य। जो किसी उपाय से दूर न किया जा सके। २. अत्याज्य। न छोड़ने योग्य। ३. अनादर के अयोग्य। आदरणीय। ४. न छीनने योग्य।

अपरीक्षणीय—वि० [सं० **अ + परीक्षणीय**] १. जाँच या परीक्षा के अयोग्य।

अपरीक्षित—वि० [सं०][वि० **स्त्री० अपरीक्षिता**] जिसकी परीक्षा न हुई हो। जो परखा न गया हो। जिसकी जाँच न हुई हो। जिसके रूप, गुण, परिमाण और वर्ग आदि का अनुसंधान न किया गया हो।

अपरुष—संज्ञा पुं० [सं०][**वि० स्त्री० अपरुषा**] क्रोधविहीन। रोषरहित। कठोरताशून्य [कौ०]।

अपरूप¹—वि० [सं०] १. कुरूप। बदशकल। भद्दा। बेडौल। २. अद्भुत। अपूर्व। उ०—पर कैसी अपरूप छटा लेकर आए तुम प्यारे।—झरना, पृ० ६३।

अपरूप²—संज्ञा पुं० बेडौलपन। भद्दापन। कुरूपता [कौ०]।

अपरेटस—संज्ञा पुं० [अ० **एपरेटस**] वह यंत्र जो किसी विशेष कार्य या परीक्षा कार्य के लिये बना हो। यंत्र। औजार। परीक्षायंत्र।

अपरेशन—संज्ञा पुं० [अँ० **ऑपरेशन**] शल्यचिकित्सा। चीरफाड़। शल्यक्रिया।

अपरोक्ष—वि० [सं०] १. जो परोक्ष में न हो। प्रत्यक्ष। जो देखासुना जा सके। इंद्रिय गोचर। २. जो दूर हो [कौ०]।

अपरोक्षानुभूति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. प्रत्यक्ष ज्ञान। २. वेदांत में निरूपित एक प्रकरण [कौ०]।

अपरोध—संज्ञा पुं० [सं०] रुकावट। निषेध। वर्जन। मनाही [कौ०]।

अपरोप—संज्ञा पुं० [सं०] १. निष्कासन। २. राज्यच्युति [कौ०]।

अपर्ण—वि० [सं०] पत्तों से रहित [कौ०]।

अपर्णा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पार्वती का एक नाम।

विशेष—पुराणों के अनुसार पार्वती ने शिव को पति के रूप में प्राप्त करने के लिये तपस्या में पत्तों तक को खाना छोड़ दिया था। अतः पार्वती का एक नाम अपर्णा प्रसिद्ध हुआ।

२. दुर्गा।

अपर्तु—वि० [सं०] १. बेमौसमी। असामयिक। २. जिसका मासिक धर्म का समय गुजर गया हो। निवृत्तरजस्का [कौ०]।

अपर्बल(पु)†—वि० [हिं०] दे० 'अपरबल'। उ०—माया बहुत अपर्बल अलख तुम्हार बनाव।—जग० श०, पृ० ६६।

अपर्यंत—वि० [सं० **अपर्यन्त**] असीम। अपरिमित [कौ०]।

अपर्याप्त—वि० [सं०] १. अपूर्ण। २. अयथेष्ट। जो काफी न हो। ३. सीमारहित। असीम (कौ०)। ४. असमर्थ (कौ०)।

यौ०—**अपर्याप्तकर्म** = जैनशास्त्रानुसार वह पाप कर्म जिसके उदय से जीव की पर्याप्ति न हो।

अपर्याप्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. अपूर्णता। कमी। त्रुटि। २. असामर्थ्य। अयोग्यता। अक्षमता।

अपर्याय¹—वि० [सं०] क्रमविहीन। अव्यवस्थित [कौ०]।

अपर्याय²—संज्ञा पुं० [सं०] क्रमहीनता [कौ०]।

अपर्व¹—संज्ञा पुं० [सं० **अपर्वन्**] वह दिन जो पर्वकाल न हो। अविशिष्ट दिन अर्थात् अमावस्या, पूर्णिमा, अष्टमी और चतुर्दशी से व्यतिरिक्त कोई दिन। २. संधिराहित्य। जोड़ का अभाव [कौ०]।

अपर्व²—वि० पर्व या संधि से रहित [कौ०]।

अपर्वक—वि० [सं०] जिसमें जोड़ न हो। संधिविहीन [कौ०]।

अपर्वदंड—संज्ञा पुं० [सं० **अपर्वदण्ड**] ईख की एक किस्म [कौ०]।

अपर्वा—वि० [सं०] दे० 'अपर्व' [कौ०]।

अपल¹—वि० [सं०] पलशून्य । मांसहीन ।

अपल²—वि० [हिं० **अपलक**] निमेषहीन । अपलक । एकटक ।

यौ०—अपलनयन = बिना पलक गिराए या अनिमिष दृष्टि । उ०—अपल नयन सुवास यौवन नव, देख रही तरुणी कोमलतन ।—गीतिका, पृ० ३५ ।

अपल³—संज्ञा पुं० १. पिन । २. अर्गला या कुंडी [को०] ।

अपलक¹—वि० [सं० **अ** + हिं० **पलक**] जिसकी पलकें न गिरें । निर्निमेष । उ०—द्विधारहित अपलक नयनों की भूखभरी दर्शन की प्यास ।—कामायनी, पृ० १२ ।

अपलक²—क्रि० वि० बिना पलक गिराये । एकटक । उ०—मैं अपलक इन नयनों से निरखा करता उस छवि को ।—आंसू, पृ० १८ ।

अपलक्षण—संज्ञा पुं० [सं०] १. कुलक्षण । बुरा चिह्न । दोष । २. दुष्ट लक्षण । वह लक्षण जिसमें अतिव्याप्ति और अव्याप्ति दोष हो ।

अपलट(पु)—वि० [सं० **अ** + **हिं० पलट**] १. न मुड़नेवाला । न बदलनेवाला । एकरस रहनेवाला । उ०—अविहड़ अंग बिहड़ै नहीं, अपलट पलटि न जाइ ।—दादू०, पृ० ४६४ ।

अपलाप—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० **अपलापित**] १. मिथ्यावाद । बकवाद । बात का बतक्कड़ । वाग्जाल । **२**. बात बनाना । प्रसंग टालने के लिये इधर उधर की बातें कहना । ३. सत्य को छिपाना (को०) । ४. प्यार । आदर (को०) । ५. कंधे और पसलियों का मध्य भाग [को०] ।

अपलापी—वि० [सं० **अपलापिन्**] अपलाप करनेवाला [को०] ।

अपलाभ—संज्ञा पुं० [सं० **अप** + **लाभ**] अनुचित ढंग से किया गया लाभ । बेजा मुनाफा ।

अपलाषिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. अतिशय लालसा । २. प्रबल तृष्णा या पिपासा [को०] ।

अपलाषी—वि० [सं० **अपलाषिन्**] १. तृषित । प्यासा । २. जिसे प्यास या लालसा न हो [को०] ।

अपलाषुक—वि० [सं०] दे० 'अपलाषी' [को०] ।

अपलोक¹(पु)—संज्ञा पुं० [सं० **अप** + **श्लोक** = **कीर्ति**] १. अपयश । अपकीर्ति । बदनामी । उ०—हाय अपलोक ओक पंथहि गह्यो मैं बिरहागिनि दह्यों मैं सोक सिंधुनि बह्योई मैं ।—भिखारी ग्रं०, भा० २, पृ० ३२ । **२**. अपवाद । मिथ्या दोष । उ०—(क) अब अपलोक सोक सुत तोरा । सहहि निठुर कठोर उर मोरा ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) भल अनभल निज निज करतूती । लहत सुजस अपलोक बिभूती ।—तुलसी (शब्द०) ।

अपलोक²(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० **अप** = **अपना** + **लोक**] अपना लोक । उ०—भयो जग्य पूरन जब देव गए अपलोक । चंद ब्रह्म राजा भए, रैयत बसी असोक ।—प० रा० सो०, पृ० २२४ ।

अपल्ल(पु)†—वि० [सं० **अ** + **पल** = **पलक**] बिना रोक । निर्बाध । उ०—भाराँणी बाथाँ भरे, आथा दिए अपल्ल ।—बाँकी ग्रं०, भा० ३, पृ० २ ।

अपवचन—संज्ञा पुं० [सं०] १. दुर्वचन । अपशब्द । गाली । २. निंदा [को०] ।

अपवन¹—संज्ञा पुं० [सं०] कृत्रिम वन । उपवन । बाग ।

अपवन²—वि० वायुरहित या वायु से सुरक्षित [को०] ।

अपवरक—संज्ञा पुं० [सं०] स्त्री० **अपवरका**] १. शयनकक्ष । अंतःपुर । २. गवाक्ष । झरोखा [को०] ।

अपवरग(पु)—संज्ञा पुं० [हिं] दे० 'अपवर्ग' । उ०—अरथ धरम अपवरग दियण जग च्यार पदारथ ।—रा० रू०, पृ० ३ ।

अपवरण—संज्ञा पुं० [सं०] १. आच्छादन । आवरण । २. पहनावा । पोशाक [को०] ।

अपवर्ग—संज्ञा पुं० [सं०] १. मोक्ष । निर्वाण । मुक्ति । जन्म मरण के बंधन से छुटकारा पाना । उ०-तात स्वर्ग अपवर्ग सुख धरिअ तुला एक अंग ।—मानस, ५-४ । २. त्याग । ३. दान । ४, क्षेपण । (बाण) छोड़नी (को०) । ५. विशेष नियम । अपवाद (को०) । ६. क्रियाप्राप्ति या समाप्ति [को०] ।

अपवर्गी(पु)—वि० [सं० **अपवर्ग**] अपवर्ग संबंधी । मोक्ष संबंधी ।

अपवर्जन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० **अपवर्जित**] १. त्याग । छोड़ना । २. दान । ३. मोक्ष । मुक्ति । निर्वाण । ४. (ऋण आदि) बेबाक करना । चुकता करना । ५. वादा पूरा करना । वचन पालन [को०] ।

अपवर्जित—संज्ञा पुं० [सं०] १. छोड़ा हुआ । त्यागा हुआ । त्यक्त । २. छुटकारा पाया हुआ । मुक्त ।

अपवर्त—संज्ञा पुं० [सं०] १. हटाना । पृथक् करना । २. सामान्य विभाजक [को०] ।

अपवर्तक—संज्ञा पुं० [सं०] १. सामान्य माप । २. हार जिसमें यथाक्रम मोती और सोने की गुरिया पिरोई हो [को०] ।

अपवर्तन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० **अपवर्तित**] १. परिवर्तन । पलटाव । उलटफेर । २. स्थानांतरण (को०) । ३. विभाजक । ४. शेष भाग जो विभक्त न हो [को०] ।

अपवर्तित—वि० [सं०] १. बदला हुआ । पलटाया हुआ । लौटाया हुआ । २. स्थानांतरित (को०) । ३. निःशेष । विभक्त [को०] ।

अपवर्त्य—वि० [सं०] जिसका अपवर्तन हो सके । सामान्य विभाजन से जो पूर्णतः विभक्त हो जाय [को०] ।

अपवश(पु)—वि० [हिं० **अप** = **अपना** + सं० **वश**] अपने अधीन । अपने वश का । परवश का उलटा । उ०—भली करी उन स्याम बँधाए । सूर गए हरि रूप चुरावन उन अपवश करि पाए ।—सूर (शब्द०) ।

अपवहित—वि० [सं० **अपवाहित**] दे० 'अपवाहित' ।

अपवाड़(पु)—संज्ञा पुं० [सं० **अप** + **वाट**, प्रा० **वाड**] पीछे का द्वार या रास्ता । उ०—दे प्रदक्षणा चढ़े अपवाड़ । रस संग्रै तजि बंकी नाड़ि ।—प्राण०, पृ० २६६ ।

अपवाद—संज्ञा पुं० [सं०] १. विरोध । प्रतिवाद । खंडन । उ०—करके जय जयकार राम का धर्म का, करती थी अपवाद केकयी कर्म का ।—साकेत, पृ० ११० । २. निंदा । अपकीर्ति । बुराई । प्रवाद । उ०—केकयी चिल्ला उठी सोन्माद, सब करें मेरा महा अपवाद ।—साकेत, पृ० ७६ । ३. दोष । पाप । कलंक । उ०—राजपद के अपवाद नंद । आज तुम्हारा विचार होगा ।—चंद्र०, पृ० १७१ । ४. बाधक शास्त्रविशेष । उत्सर्ग का विरोधी । वह नियमविशेष जो व्यापक नियम से विरुद्ध

हो। मुस्तसना। जैसे, यह नियम है कि सकर्मक सामान्य भूत क्रिया के कर्ता के साथ 'ने' लगता है पर यह नियम 'लाना' क्रिया में नहीं लगता। ५. अनुमति। संमति। राय। विचार। ६. आदेश। आज्ञा। ७. वेदांत शास्त्र के अनुसार अध्यारोप का निराकरण। जैसे--रज्जु में सर्प का ज्ञान, यह अध्यारोप है और रज्जु के वास्तविक ज्ञान से उसका जो निराकरण हुआ यह अपवाद है। ८. विश्वास (को०)। ९. प्रीति। प्रेम (को०)। १० पारिवारिकता। परिवार जैसा संबंध (को०)। ११. मृग को धोखा देकर फँसाने या शिकार करने के लिये शिकारियों द्वारा प्रयुक्त वाद्य [को०]।

अपवादक--वि० [सं०] १. निंदक। अपवाद करनेवाला। २. विरोधी। बाधक।

अपवादित--वि० [सं०] १. निंदित। २. जिसका विरोध किया गया हो।

अपवादी--वि० [सं० **अपवादिन्**] [वि० स्त्री० **अपवादिनी**] १. निंदा करनेवाला। बुराई करनेवाला। २. बाधक। विरोधी।

अपवारक--संज्ञा पुं० [सं०] १. पर्दा। आड़ या ओट का साधन। २. व्यवधान। घिरा स्थान (को०)।

अपवारण--संज्ञा पुं० [सं०] १. व्यवधान। रोक। बीच में प कर आघात से बचानेवाली वस्तु। २. हटाने वा दूर करने का कार्य। ३. आच्छादन। ओट। छिपाव। ४. अंतर्द्धान।

अपवारित--वि० [सं०] १. अंतर्हित। तिरोहित। २. दूर किया हुआ। हटाया हुआ। ३. ढका हुआ। छिपा हुआ।

अपवाह--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अपवाहन' [को०]।

अपवाहक[1]--वि० [सं०] स्थानांतरित करनेवाला। एक स्थान से किसी पदार्थ को दूसरे स्थान में ले जानेवाला।

अपवाहक[2]--संज्ञा पुं० एक यंत्र जो भारी चीजों को उठाकर दूसरे स्थान पर रख देता है। गृध्र यंत्र।

अपवाहन--संज्ञा पुं० [सं०] [वि० **अपवाहित, अपवाह्य**] १. स्थानांतरित करना। एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाना। २. भिन्न में घटाना। बाकी (को०)। ३. एक छंद (को०)।

अपवाहित--वि० [सं०] एक स्थान से दूसरे स्थान पर लाया हुआ। स्थानांतरित।

अपवाहुक--संज्ञा पुं० [सं०] एक रोग जिसमें बाहु की नसें मारी जाती हैं और बाहु बेकाम हो जाता है। यह रोग वायु के प्रकोप से होता है। भुजस्तंभ रोग।

अपविघ्न--वि० [सं०] १. निर्बाध। निर्विघ्न। अबाधित। [को०]।

अपवित्र--वि० [सं०] जो पवित्र न हो। अशुद्ध। नापाक। दूषित। मैला। मलिन।

अपवित्रता--संज्ञा स्त्री० [सं०] अशुद्धि। अशौच। मैलापन। नापाकी।

अपविद्ध--वि० [सं०] १. त्यागा हुआ। त्यक्त। छोड़ा हुआ। २. बेधा हुआ। विद्ध। ३. निकृष्ट। निम्न (को०)।

अपविद्ध पुत्र--संज्ञा पुं० [सं०] धर्मशास्त्रानुसार बारह प्रकार के पुत्रों में वह पुत्र जिसको उसके माता पिता ने त्याग दिया हो और किसी अन्य ने पुत्रवत् पाला हो।

अपविद्धलोक--वि० [सं०] जो इस लोक को छोड़ चुका हो। परलोकगत [को०]।

अपविद्या--संज्ञा स्त्री० [सं०] १. निकृष्ट विद्या। निषिद्ध विद्या। २. अविद्या [को०]।

अपविष--वि० [सं०] निर्विष। विषहीन। जिसमें विष न हो [को०]।

अपविषा--संज्ञा स्त्री० [सं०] १. विषमुक्त। २. निर्विष नामक पौधा [को०]।

अपवीण--वि० [सं०] १. वीणारहित। २. निकृष्ट या खराब वीणावाला [को०]।

अपवृक्त--वि० [सं०] १. समाप्त हुआ। २. पूर्ण हुआ [को०]।

अपवृति--संज्ञा स्त्री० [सं०] छेद। सूराख। रंध्र [को०]।

अपवृत्त--संज्ञा स्त्री० [सं०] १. व्यतिक्रमित। २. उलटा पलटा। ३. औंधा। ४. क्षोभित। ५. समाप्त हुआ [को०]।

अपवृत्ति--संज्ञा स्त्री० [सं०] १ दूषित वृत्ति। २. अंत। समाप्ति।

अपवेध--संज्ञा पुं० [सं०] रत्न या मोती का त्रुटिपूर्ण छेदन [को०]।

अपवोढ़ा--वि० [सं० **अपवोढ़**] ढोने या हटानेवाला [को०]।

अपव्यय--संज्ञा पुं० [सं०] १. अधिक व्यय। अधिक खर्च। निरर्थक व्यय। फजूलखर्ची। २. बुरे काम में खर्च। उ०--राजन्, सत्ता का अपव्यय मत करो।--विशाख०, पृ० ४०।

अपव्ययी--वि० [सं० **अपव्ययिन्**] १. अधिक खर्च करनेवाला। फजूलखर्च। २. बुरे कामों में व्यय करनेवाला।

अपव्रत[1]--संज्ञा पुं० [सं०] १. अविहित व्रत। हीन व्रत।

अपव्रत[2]--वि० [सं०] १. विहित व्रत या कर्म न करनेवाला। अधार्मिक। अपवित्र। २. अविश्वस्त। आज्ञापालन न करनेवाला। ३. पतित। विकृत आचरणवाला।

अपशंक--वि० [सं० **अपशङ्क**] भय, शंका या हिचक से रहित। निर्भीक। निडर [को०]।

अपशकुन--संज्ञा पुं० [सं०] कुसगुन। असगुन।

अपशद--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अपसद' [को०]।

अपशब्द--संज्ञा पुं० [सं०] १. अशुद्ध शब्द। दूषित शब्द। २. असंबद्ध प्रलाप। बिना अर्थ का शब्द। ३. गाली। कुवाच्य। ४. पाद। अपान वायु का छूटना। गोज। ५. बिगड़ा हुआ शब्द। संस्कृत भाषा से भिन्न भाषा। ग्राम्य भाषा [को०]।

अपशम--संज्ञा पुं० [सं०] विराम। अंत। समाप्ति [को०]।

अपशु[1]--संज्ञा पुं० [सं०] १. जो पशु न हो। अर्थात् बलिप्रदान के अयोग्य पशु। २. दुष्ट पशु। कुत्सित पशु। ३. गाय और घोड़े से भिन्न पशु [को०]।

अपशु[2]--वि० १. पशुविहीन। २. गरीब (को०)।

अपशुक[1]--संज्ञा पुं० [सं० **अपशुव्**] आत्मा [को०]।

अपशुक[2]--वि० शोकविहीन [को०]।

अपशोक[1]--वि० [सं०] शोक या विषादविहीन [को०]।

अपशोक[2]--संज्ञा पुं० अशोक का वृक्ष [को०]।

अपश्चिम--वि० [सं०] १. जिसके पीछे कोई न हो। अंतिम। २. प्रथम। अंतिम नहीं। ३. चरम या पराकाष्ठा [को०]।

अपश्रय--संज्ञा पुं० [सं०] तकिया [को०]।

अपश्री--वि० [सं०] शोभाविहीन। श्रीरहित [को०]।

अपश्रुति--संज्ञा स्त्री० [सं० अप + श्रुति] एक ही धातु या शब्द में अथवा एक ही प्रत्यय या विभक्ति के योग में निष्पन्न धातु, शब्द, प्रत्यय या विभक्ति में निर्दिष्ट क्रमानुसार स्वरध्वनि में हुए परिवर्तन को अपश्रुति कहते हैं।--जैसे--गान, गीत, गेय आदि।

अपश्वास--संज्ञा पुं० [सं०] अपानवायु [को०]।

अपष्ठ--संज्ञा पुं० [सं०] अंकुश का अग्रभाग या नोक [को०]।

अपष्ठु[1]--वि० [सं०] १. विपरीत। उलटा। २. प्रतिकूल। वाम [को०]।

अपष्ठु[2]--क्रि० वि० १. विपरीत रूप में। २. गलत ढंग से। निर्दोषिता पूर्वक [को०]।

अपष्ठु[3]--संज्ञा पुं० [सं०] समय [को०]।

अपष्ठुर--वि० [सं०] विपरीत। उलटा [को०]।

अपष्ठुल--वि० [सं०] दे० 'अपष्ठुर' [को०]।

अपसंचय--संज्ञा पुं० [सं० अपसञ्चय] अनियमित रूप से वस्तु का संग्रह या छिपाकर रखना।

अपस[1]⑤--संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अपशु'। उ०--ऊकरड़ी डोका चुगइ अपस डँमायड आँगण।--ढोला०, दू०, ३३६।

अपस[2]⑤--संज्ञा पुं० [सं० अपस्मार] १. मृगी रोग। २. राजस्थानी कविता में मान्य एक प्रकार का दोष जिसमें शब्दयोजना निरर्थक हो और अर्थ साफ न हो। उ०--अपस अमूझ्यो अरथ सबद पिण विण हित साजै।--रघु० रू०, पृ० १४।

अपसगुन⑤--संज्ञा पुं० [सं० अपशकुन] असगुन। बुरा सगुन। उ०--अर्जुन दुखित बहुत तब भए। इहाँ अपसगुन होत नित नए।--सूर० १।२८६।

अपसद--संज्ञा पुं० [सं०] वह पुत्र जो अनुलोम विवाह द्वारा द्विजों से उत्पन्न हो। ब्राह्मण पुरुष और क्षत्रिया, वैश्या वा शूद्रा स्त्री, अथवा वैश्य पुरुष और शूद्रा स्त्री से उत्पन्न संतान।

अपसमार⑤--संज्ञा पुं० [सं० अपस्मार] तैंतीस व्यभिचारी या संचारी भावों में से एक। उ०--अपसमार सो कवि उर धरई।--भिखारी ग्रं०, भा० १, पृ० ७२।

अपसना⑤--क्रि० अ० [सं० अपसरण = खिसकना] १. खिसकना। सरकना। भागना। उ०--राते कवँल करहिं अलि भवाँ। धूमहिं माति चहहिं अपसवाँ।--जायसी ग्रं०, पृ० ४२। २. चल देना। चंपत होना। उ०--(क) जीव काढ़ि लै तुम अपसई। (ख) लै अपसवा जलंधर जोगी।--जायसी (शब्द०)।

अपसवना⑤†--क्रि० अ० [हिं०] दे० 'अपसना'।

अपसर⑤--वि० [हिं० अप = अपना + सर (प्रत्य०)।] आप ही आप। मनमाना। अपने मन का। उ०--लोटत पीत पराग कीच महँ नीच न अंग सम्हारे। बारंबार सरक मदिरा की अपसर रहत उघारे।--सूर (शब्द०)।

अपसर[2]--संज्ञा पुं० [सं०] १. अपसरण। पीछे हटना। २. भागना। ३. दूरी (को०)। ४. उचित कारण। संगत तर्क [को०]।

अपसर[3]⑤--वि० [फ़ा० अफ़सर] मुखिया। प्रधान। उ०--अपसर गज दलगंजन गाऊ। छति मकुनाइ देहिं तेहि ठाऊ।--चित्रा०, पृ० १८८।

अपसरण--संज्ञा पुं० [सं०] १. भाग जाना। खिसक जाना। निकल जाना। २. निर्गम। निकास [को०]।

अपसर्जक--वि० [सं०] अपसर्जन करनेवाला [को०]।

अपसर्जन--संज्ञा पुं० [सं०] १. विसर्जन। त्याग। २. दान। ३. मोक्ष [को०]।

अपसर्प--संज्ञा पुं० [सं०] गुप्तचर। जासूस। खुफिया। भेदिया।--अनेकार्थ०।

अपसर्पक--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अपसर्प' [को०]।

अपसर्पण--संज्ञा पुं० [सं०] वि० १. पीछे सरकना। पीछे हटना। २. जासूसी करना [को०]।

अपसर्पित--वि० [सं०] पीछे हटा हुआ। पीछे खिसका हुआ। पीछे सरका हुआ।

अपसवना⑤--क्रि० अ० [हिं०] दे० 'अपसना'।

अपसव्य--वि० [सं०] १. सव्य का उलटा। दाहिना। दक्षिण। २. उलटा। विरुद्ध। ३. जनेऊ दाहिने कंधे पर रखे हुए।

यौ०--**अपसव्य ग्रहण** = जब राहु सूर्य वा चंद्र के दाहिने होकर चलता है। अर्थात् ग्रहण दाहिनी ओर से लगता है तब उसे अपसव्य ग्रहण कहते हैं। **अपसव्य ग्रहयुद्ध** = बृहत्संहिता के अनुसार ग्रहयुद्ध के चार भेदों में से एक। **अपसव्यतीर्थ** = पितृतीर्थ।

क्रि० प्र०--**होना** = बाएँ काँधे से जनेऊ और अँगोछा दाहिने काँधे पर रखना वा बदलना।--**करना** = किसी के किनारे चारो ओर ऐसी परिक्रमा करना कि वह दाहिनी ओर पड़े। दक्षिणावर्त परिक्रमा करना।

अपसाधारण--वि० [सं० अप + साधारण] साधारण से भिन्न (अच्छे या बुरे भाव में)।--यदि जयंती एक साधारण स्त्री थी तो मैं भी एक अप साधारण पुरुष था।--संन्यासी, पृ० ३६८।

अपसार[1]--संज्ञा पुं० [सं० अप = जल + सार] १. अंबुकण। पानी का छींटा। उ०--लेत अवनि रवि अंसु कहँ, देत अमिय अपसार। तुलसी सूछम को सदा रवि रजनीस अधार।--स० सप्तक, पृ० ३६। २. पानी की भाप।

अपसार[2]--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अपसरण' [को०]।

अपसारक--वि० [सं०] दूर करनेवाला। हटानेवाला।

अपसारण--संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० अपसारणा] निकाल बाहर करना। हटा देना। दूरी करण। निवारण [को०]।

अपसारित--वि० [सं०] निष्कासित। निकाला हुआ। दूरीकृत। उ०--बाधाएँ अपसारित कर, कहता वर यों वरना।--गीतिका, पृ० १०५।

अपसिद्धांत--संज्ञा पुं० [सं० अपसिद्धान्त] १. अयुक्त सिद्धांत। वह विचार जो सिद्धांत के विरुद्ध हो। २. न्याय में एक प्रकार का निग्रह स्थान। जहाँ किसी सिद्धांत को मानकर उसी के विरुद्ध बात कही जाय वहाँ यह निग्रह स्थान होता है। ३. जैन शास्त्रानुसार उनके विरुद्ध सिद्धांत।

अपसूकन⑤†--संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अपशकुन'। उ०--महा अपसुकन होज्यो ए भुवाल।--बी० रासो, पृ० ४६।

अपसृत—वि० [सं०] १. युद्ध से भागा हुआ। भगोड़ा। २. हटाया गया (को०)। ३. नीचे फेंका हुआ या च्युत [को०]।

विशेष—कौटिल्य के अनुसार अपसृत और अनिक्षिप्त (सेवा से अलग किए हुए या देश से निकाले हुए) सैनिकों में अपसृत अच्छे हैं। उनसे युद्ध में फिर काम लिया जा सकता है।

अपसृति—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अपसरण' [को०]।

अपसोच†—संज्ञा पुं० [सं० अप+शोच] बुरी चिंता। दुश्चिता। उ०—सुचिता मर गया तो सहुआइन रोई तो काफी मगर भीतर भीतर उसे उतना अपसोच नहीं हुआ।—नई०, पृ० ८०।

अपसोस^१(पु)—संज्ञा पुं० [फ़ा० अफ़सोस] चिंता। सोच। दुःख। उ०—(क) ताते अब मरियत अपसोसनि। मथुरा हूँ ते गए सखी री। अब हरि कारे कोसनि।—सूर (शब्द०)। (ख) काहे कौं अपसोस मरति हौ नैन तुम्हारे नाहीं।—सूर०, १०।२२३५।

अपसोसना(पु)—क्रि० अ० [हिं० अपसोस से नाम०] सोच करना। चिंता करना। अफ़सोस करना। उ०—कहा कहूँ सुंदर घन तोसों। राधा कान्ह एक सँग बिलसत मन ही मन अपसोसों।—सूर (शब्द०)।

अपसौन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अपशकुन] असगुन। बुरा सगुन।

अपसौना(पु)†—क्रि० अ० दे० 'अपसवना'।

अपस्कर—संज्ञा पुं० [सं०] १. पहिए के अलावा गाड़ी का कोई भी हिस्सा। ढाँचा। २ विष्ठा। मल। ३. योनि। ४. गुदा [को०]।

अपस्कार—संज्ञा पुं० [सं०] घुटने के नीचे का भाग [को०]।

अपस्खल—संज्ञा पुं० [सं०] कूदना। फाँदना [को०]।

अपस्तंब—संज्ञा पुं० [सं० अपस्तम्भ] छाती के भीतर एक ओर स्थित कोश जिसमें प्राणवायु रहता है [को०]।

अपस्तंभ—संज्ञा पुं० [सं० अपस्तम्भ] दे० 'अपस्तंब' [को०]।

अपस्तुति—संज्ञा स्त्री० [सं० अप+स्तुति] दोषवर्णन। निंदा।

अपस्नात—वि० [सं०] प्राणी के मरने पर उदक क्रिया के समय का स्नान किया हुआ।

अपस्नान—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अपस्नात] १, मृतकस्नान। वह स्नान जो प्राणी के कुटुंबी उसके मरने पर उदक क्रिया के समय करते हैं। २. किसी के नहाने के बाद बचे हुए जल में नहाना [को०]।

अपस्पर्श—वि० [सं०] संज्ञाहीन। चेतनाशून्य [को०]।

अपस्मार—संज्ञा पुं० [सं०] एक रोगविशेष। मृगी।

विशेष—इसमें हृदय काँपने लगता है और आँखों के सामने अँधेरा छा जाता है। रोगी काँपकर पृथ्वी पर मूर्च्छित हो गिर पड़ता है। वैद्यक शास्त्रानुसार इसकी उत्पत्ति चिंता, शोक और भय के कारण कुपित त्रिदोष से मानी गई है। यह चार प्रकार का होता है—(१) वातज, (२) पित्तज, (३) कफज और (४) सन्निपातज। यह रोग नैमित्तिक है। वातज का दौरा बारहवें दिन, पित्तज का पंद्रहवें दिन और कफज का तीसवें दिन होता है।

पर्या०—अंगविकृति। लालाध। भूतविक्रिया। मृगी रोग।

२. अपस्मृति। भुलक्कड़पन। स्मृतिभ्रंश [को०]।

अपस्मारी—वि० [सं० अपस्मारिन्] जिसे अपस्मार रोग हो। उ०—नेत्र टेढ़े बाँके करनेवाला ऐसा अपस्मारी रोगी जीवे नहीं।—माधव०, पृ० १३१।

अपस्मृत—वि० [सं०] भुलक्कड़। खब्तुलहवास [को०]।

अपस्मृति^१—वि० [सं०] १. भुलक्कड़। भूल जानेवाला। २. विभ्रमित। घबड़ाया हुआ [को०]।

अपस्मृति—संज्ञा स्त्री० दे० 'अपस्मार^१' [को०]।

अपस्वर—संज्ञा पुं० [सं०] कटु स्वर या ध्वनि [को०]।

अपस्वारथ(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० अप+सं० स्वार्थ] स्वार्थ। अपना मतलब। उ०—(क) ये नैना अपस्वारथ के। और इनहिं पटतर क्यों दीजै जे हैं बस परमारथ के।—सूर०,१०।२२८३। (ख) अपस्वारथ सो बहु बिधि लीन्हा। परमारथ काहू नहिं चीन्हा।—कबीर सा०, पृ० ५८१।

अपस्वारथी—वि० [हिं०] दे० 'अपस्वार्थी'। उ०—नैना लुब्धे रूप कौं अपनें सुख माई। अपराधी अपस्वारथी मोको बिसराई।—सूर०, १०।२२५३।

अपस्वार्थी—वि० [हिं० अप = अपना + सं० स्वार्थी] स्वार्थ साधनेवाला। मतलबी। काम निकालनेवाला। खुदगरज।

अपह—वि० [सं०] नाश करनेवाला। विनाशक। उ०—मनोज, वैरि वंदितं, अजादि देव सेवितं। विशुद्ध बोध विग्रहं, समस्त दूषणापहं।—तुलसी (शब्द०)।

विशेष—यह शब्द समासांत पद के अंत में प्रायः आता है। जैसे—क्लेशापह। तमोपह। दूषणापह।

अपहड़(पु)‡—वि० [सं० अ+प्रहत या सं० अपहत] दे० 'अप्रतिहत'। उ०—बड़ दाता पाता पड़ा, अपहड़ पूरै आस।—बाँकीदास ग्रं०, भा० १, पृ० ४८।

अपहत—वि० [सं०] १. नष्ट किया हुआ। मारा हुआ। २. दूर किया हुआ। हटाया हुआ।

अपहतपाप्टमा—वि० [सं०] सब पापों से विमुक्त। जिसके सब पाप नष्ट हो गए हों। पापशून्य। विधूतपाप।

अपहरण—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अपहरणीय, अपहरित, अपहृत, अपहर्ता] १. छीनना। ले लेना। हर लेना। उ०—इसका सर्वस्व अपहरण करके इसे केवल राज्य से बाहर कर दो।—विशाख० पृ० ८३। २. चोरी। लूट। ३. छिपाव। संगोपन। ४. महसूल वाले माल को दूसरी वस्तुओं में छिपाकर महसूल से बचाना [को०]।

अपहरणीय—वि० [सं०] १. न छीनने योग्य। हर लेने योग्य। २. चुराने योग्य। लूटने योग्य। ३. छिपाने योग्य। संगोपन करने योग्य।

अपहरना(पु)—क्रि० स० [सं० अपहरण से नाम०] १. छीनना। ले लेना। २. लूटना। चुराना। उ०—जो ज्ञानिन कर चित अपहरई। बरियाई बिमोह बस करई।—तुलसी (शब्द०)। ३. कम करना। घटाना। क्षय करना। नाश करना। उ०—शरदातप निशि शशि अपहरई। संत दरस जिमि पातक टरई।—तुलसी (शब्द०)।

अपहर्ता—संज्ञा पुं० [सं० **अपहर्तृ**] १. छीननेवाला। हर लेनेवाला। ले लेनेवाला। २. चोर। लूटनेवाला। ३. छिपानेवाला।

अपहसित—संज्ञा पुं० [सं०] बेमतलब की हँसी। निरर्थक हँसी। २. हास का एक भेद या प्रकार (को०)।

अपहस्त—संज्ञा पुं० [सं०] १. गर्दनिया देकर बाहर निकालना। गर्दन पकड़कर बाहर करना। गलहस्त। गलहस्त देकर निकाला हुआ व्यक्ति। २. फेंकना। ले जाना। ३. चोरी करना। लूटना [को०]।

अपहस्तित—वि० [सं०] १. गलहस्त देकर निष्कासित। २. परित्यक्त। फेंका हुआ [को०]।

अपहान—संज्ञा पुं० [सं०] छोड़ना। त्यागना [को०]।

अपहानि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दे० 'अपहान'। २. गायब होना। ३. कम होना [को०]।

अपहार—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० **अपहारक, अपहारी, अपहारित, अपहार्य**] १. चोरी। लूट। २. छिपाव। संगोपन। ३. ले जाना (को०)। ४. दूसरे की संपत्ति खर्च करना। पराया माल उड़ाना (को०)। ५. हानि। क्षति (को०)। ६. प्राप्त करना। लाना [को०] प्राप्ति [को०]।

अपहारक[1]—वि० [सं०] [वि० स्त्री० **अपहारिका**] छीननेवाला। बलात् हरनेवाला।

अपहारक[2]—संज्ञा पुं० डाकू। चोर। लुटेरा।

अपहारित—वि० [सं०] १ छीना हुआ। अपहृत। २. लूटा हुआ। चोरी द्वारा प्राप्त। ३. छिपाया हुआ। संगोपित।

अपहारी[1]—वि० [सं० **अपहारिन्**] [वि० स्त्री० **अपहारिणी**] १. हरण करनेवाला। २. नाश करनेवाला।

अपहारी[2]—संज्ञा पुं० चोर। लुटेरा। डाकू।

अपहार्य—वि० [सं०] छीनने योग्य। चोरी करने योग्य।

अपहास—संज्ञा पुं० [सं०] १. उपहास। उ०—अब कायर अपहास री, रचना रचूँ अमंद।—बाँकीदास ग्रं०, भा० १. पृ० १६। २. अकारण हँसी।

अपहृत—वि० [सं०] छीना हुआ। चुराया हुआ। लूटा हुआ। उ०—हृदय का राजस्व अपहृत, कर अधम अपराध, दस्यु मुझसे चाहते हैं सुख सदा निर्बाध।—कामायनी, पृ० ८४।

यौ०—**अपहृतज्ञान**=सुधबुध हीन। बेखबर।

अपहृतश्री—कांतिहीन। छविहीन। उ०—अपहृतश्री सुख स्नेह का सद्म।—तुलसी०, पृ० ३८।

अपहेला—संज्ञा स्त्री० [सं०] तिरस्कार। फटकार। झिड़की।

अपह्नव—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० **अपह्नुत**] १. छिपाव। दुराव। २. मिस। बहाना। टालमटूल। हीला। वाग्जाल से असली बात को छिपाना। ३. प्रेम। प्यार (को०)। ४. तोषण [को०]।

अपह्नुत—वि० [सं०] छिपा हुआ। उ०—विविध द्रव्य हैं छिपे गर्भ में इसके विश्रुत, जो बांधव के अलंकार हैं मंजु अपह्नुत।—प्रेमांजलि, पृ० ४३।

अपह्नुति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दुराव। छिपाव। २. बहाना। टालमटूल। हीला हवाला। ३. एक काव्यालंकार जिसमें उपमेय का निषेध करके उपमान का स्थापन किया जाय। जैसे,—धुरवा होइ न अलि यहै धुवाँ धरनि चहुँ कोद। जारत आवत जगत को पावस प्रथम पयोद।

विशेष—इसके दो प्रधान भेद हैं—शब्दापह्नुति और अर्थापह्नुति इसके अतिरिक्त हेत्वपह्नुति, पर्यस्तापह्नुति, भ्रांतापह्नुति, छेकापह्नुति, व्यग्यापह्नुति भी इसके भेद हैं।

अपह्नवान—वि० [सं०] १. छिपाता हुआ। छिपानेवाला। २. नटनेवाला। इनकार करनेवाला।

अपह्नोता—वि० [सं० **अपह्नोतृ**] १. अस्वीकार करनेवाला। १. संगोप्ता। छिपानेवाला [को०]।

अपांक्त—वि० [**अपाङ्क्त**] भोजनकाल में साथ पंक्ति में बैठाने के अयोग्य। पंक्ति या जाति से बहिष्कृत। जातिच्युत [को०]।

अपांक्तेय—वि० [सं० **अपाङ्क्तेय**] दे० 'अपांक्त' [को०]।

अपांक्त्य—वि० [सं० **अपाङ्क्त्य**] दे० 'अपांक्त' [को०]।

अपांग[1]—संज्ञा पुं० [सं० **अपाङ्ग**] आँख का कोना। आँख की कोर। कटाक्ष। उ०—(क) नेत्रों को अपांग से शृंगारित किया।—वै० न०, पृ० ४४२। (ख) और फिर अरुण अपांगों से देखा कुछ हँस पड़ी।—झरना, पृ० २५।

यौ० **अपांग दर्शन**=तिरछी चितवन। **अपांग दृष्टि**=कनखियों से देखना। **अपांगधारा**=कटाक्षगति। कटाक्षप्रवाह। उ०—(क) किंतु हलाहल भरी उसकी अपांगधारा!...आज भी न जाने क्यों भूलने में असमर्थ हूँ।—इंद्र०, पृ० ४१। कामदेव (१) संप्रदायसूचक तिलक। (२) अत। समाप्ति। (३) अपामार्ग।

अपांग[2]—वि० अंगहीन। अंगभंग। पंगु।

अपांगक—संज्ञा पुं०, वि० [सं० **अपाङ्गक**] दे० 'अपांग' [को०]।

अपांनाथ—संज्ञा पुं० [सं०] १. सागर। समुद्र। २. वरुण [को०]।

अपांनिधि—संज्ञा पुं० [सं० **अपाम्निधि**] १. समुद्र। २. विष्णु [को०]।

अपांपति—संज्ञा पुं० [सं० **अपाम्पति**] दे० अपांनाथ' [को०]।

अपांपित्त—संज्ञा पुं० [सं० **अपाम्पित्त**] १. अग्नि। २. चित्रक वृक्ष [को०]।

अपांवत्स—संज्ञा पुं० [सं०] एक बड़ा तारा जो चित्रा नक्षत्र से पाँच अंश ऊत्तर विक्षेप में दिखाई पड़ता है।

अपांशुला—वि० स्त्री० [सं०] पतिव्रता।

अपा[1](पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० **आपा**] आत्मभाव। अहंकार। गर्व। घमंड। उ०—आधो छोड़ि ऊरध को जावे। अपा मेटि कै प्रेम बढ़ावे।—कबीर (शब्द०)। दे० 'आपा'।

अपा[2](पु)—सर्व [हिं०] दे० 'अपना'।

यौ०—**अपापर**=अपना पराया। उ०—अपापर नाहीं चिन्हीला। —दक्खिनी०, पृ० ३४।

अपाइ(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० **अवाय**] दे० 'अपाय'।

अपाउ(पु)—संज्ञा पुं० [सं० **अपाय**, प्रा० **अवाय**] अनरीति। **अन्यथाचार**। उपद्रव। उ०—खेलत संग अनुज बालक नित जोगवत अनट अपाउ। जीति हारि चुचुकारि दुलारत देत दिवावत दाउ।—तुलसी ग्रं०, पृ० ५०६।

अपाक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. अजीर्ण । अपच । २. कच्चापन ।

अपाक[2]—वि० [सं०] अपक्व । अनपका [को०] ।

अपाक[3]Ⓟ—वि० [सं० **अ + फा० पाक**] अपवित्र । नापाक ।

अपाकज—वि० [सं०] १. जो पका या पकाया न हो । २. जो प्रकृत या मूल रूप में हो । प्राकृतिक ।

अपाकरण—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० **अपाकृत**] १. पृथक्करण । अलग करना । २. हटाना । दूर करना । निराकरण । निरसन । ३. चुकता करना । अदा या बेबाक करना ।

अपाकर्म—संज्ञा पुं० [सं० **अपाकर्मन्**] भुगतान । अदायगी [को०] ।

अपाकशाक—संज्ञा पुं० [सं०] अदरक । आदी ।

अपाकृति—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अपाकरण' [को०] ।

अपाक्ष—वि० [सं०] १. आखों के सामने । प्रत्यक्ष । उपस्थित । २. दूषित नेत्रवाला । ३. नेत्रहीन [को०] ।

अपाची—संज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० **अपाचीन, अपाच्य**] दक्षिण या पश्चिम [को०] ।

अपाचीन—वि० [सं०] १. पिछवाड़े । पीछे की ओर । २. जो दिखाई न दे । ३. दक्षिणी । ४. पश्चिमी । विरुद्ध । विपरीत [को०] ।

अपाच्य—वि० [सं०] १. जो पक न सके । २. जिसका पाचन न हो सके । ३. दक्षिणी या पश्चिमी [को०] ।

अपाटव[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. पटुता का अभाव । अकुशलता । अनाड़ीपन । २. अचंचलता । सुस्ती । मंदता । ३. कुरूपता । बदसूरती । ४. रोग । बीमारी । ५. मद्य । शराब ।

अपाटव[2]—वि० १. अपटु । अनाड़ी । २. अचंचल । सुस्त । ३. कुरूप । बदसूरत । ४. रोगी । बीमार ।

अपाठ—संज्ञा पुं० [सं० **अ + पाठ**] अपढ़ । मूर्ख । उ०—पंडित पूत अपाठ असत ह्वै जग में आदर । इय गति होय हठील मोल के समैं बेआदर ।—राम० धर्म०, पृ० १९५ ।

अपाठ्य—वि० [सं०] जो पढ़ा न जा सके । जो पढ़ने के योग्य न हो ।

अपाढ़—वि० [सं० **अपार या अपवाह्य**] मुश्किल । कठिन । अपार । उ०—उसकी बिना मरजी चला जाऊँ तो घर में रहना अपाढ़ कर दे ।—गोदान, पृ० २३८ ।

अपाणⓅ‡—संज्ञा पुं० [सं० **आत्मन्**, प्रा० **अप्पण, अप्पाण**] गर्व । घमंड । उ०—विदेही तणेदिवाण,ईस चाप धरे आण । तोड़वा अनेक ताण, ऊठिया करे अपाण ।—रघु० रू०, पृ० ७६ ।

अपाणि—वि० [सं०] पाणिरहित । हस्तविहीन । बिना हाथ का ।

अपाणिनीय—वि० [सं०] १. पाणिनी व्याकरण के नियमानुसार असाधु प्रयोग या उसमें अनुल्लिखित । २. पाणिनीय व्याकरण का अध्ययन न करनेवाला [को०] ।

अपातⓅ—वि० [सं० **अ + पात**] जो च्युत न हो । अच्युत । उ०—सूखमना सुर की सरिता अघ ओघहिं दीन दयाल हरे । ता तट साखी अपात है ब्रह्म सुचेतन मैं दल सुद्ध सरै ।—दीन० ग्रं०, पृ० ७४ ।

अपात्र[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. बेकार या अनुपयुक्त बर्तन । २. अयोग्य व्यक्ति । ३. दान, भोज आदि के अयोग्य ब्राह्मण [को०] ।

अपात्र[2]—वि० [सं०] १. अयोग्य । कुपात्र । उ०—नियम पालती एक मात्र तू, सब अपात्र हैं और पात्र तू ।—साकेत, पृ० ३१४ । २. मूर्ख । ३. श्राद्धादि निमंत्रण के अयोग्य (ब्राह्मण) ।

अपात्रकृत्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] व्यक्ति या ब्राह्मण को पतित बना देनेवाला कार्य [को०] ।

अपात्रदायी—वि० [सं० **अपात्रदायिन्**] [वि० स्त्री० **अपात्रदायिनी**] कुपात्र को दान देनेवाला ।

अपात्रभृत्—वि० [सं०] अयोग्य वा खोटे व्यक्तियों का समर्थक [को०] ।

अपात्रीकरण—संज्ञा पुं० [सं०] वह कर्म जिसके करने से ब्राह्मण अपात्र हो जाता है, जैसे—झूठ बोलना, निंदित का दान लेना व्यापार करना, शूद्रों का संपर्क करना आदि ।

अपाद—वि० [सं०] पादरहित । बिना । पैरोंवाला । पंगु [को०] ।

अपादक—वि० [सं०] दे० 'अपाद' [को०] ।

अपादान—संज्ञा पुं० [सं०] १. हटाना । अलगाव । विभाग । २. व्याकरण में पाँचवाँ कारक जिससे एक वस्तु का दूसरी वस्तु से विश्लेषण वा अलगाव सूचित हो । इसका चिह्न 'से' है । जैसे—वह घर से आता है । वृक्ष से फल गिरता है ।

अपादान कारक—संज्ञा पुं० [सं० **अपादान + कारक**] व्याकरण के छह कारकों में से पाँचवाँ कारक ।

अपान[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. दस वा पाँच प्राणों में से एक ।

विशेष—निम्नलिखित तीनों वायुओं में से कोई किसी को और कोई किसी को अपान कहते हैं—१. वह वायु जो नासिका द्वारा बाहर से भीतर की ओर खींची जाती है । २. गुदास्थ वायु जो मल मूत्र को बाहर निकालती है । ३. वह वायु जो तालु से पीठ तक और गुदा से उपस्थ तक व्याप्त है ।

२. वायु जो गुदा से निकले । अधोवायु । गुदस्थ वायु । ३. गुदा ।

अपान[2]—वि० १. सब दुखों को दूर करनेवाला । २. ईश्वर का एक विशेषण ।

अपान[3]Ⓟ—संज्ञा पुं०[प्रा० **अप्पाण** हिं० **अपना**] १. आत्मभाव । आत्मतत्व । आत्मज्ञान । उ०—(क)तुलसी भेड़ो की धँसनि जड़ जनता सनमान । उपजत हिय अपमान भा, खोवत मूढ़ अपान ।—तुलसी ग्रं०, पृ० १४५ । (ख) ऋषिराज राजा आज जनक समान को । गाँठि बिनु गुन की कठिन जड़ चेतन की, छोरी अनायास साधु सोधक अपान को ।—तुलसी ग्रं०, पृ० ३१५ । २. आपा । आत्मगौरव । भ्रम । उ०—काहे को अनेक देव सेवत, जागै मसान खोवत अपान, सठ होत हठि प्रेत रे ।—तुलसी ग्रं०, पृ० २३८ । ३. सुध । होश हवास । उ०—(क) भए मगन सब देखनहारे । जनक समान अपान बिसारे ।—मानस, १।३२५ । (ख) बरबस लिए उठाइ उर, लाए कृपानिधान । भरत राम की मिलन लखि, बिसरा सबहि अपान ।—मानस, पृ० २८५ । ४. अहं । अभिमान ।

अपान[4]Ⓟ—सर्व० [**हिं० अपना**] निज का । अपना । उ०—पहिचान को केहि जान, सबहि अपान सुधि भोरी भई ।—मानस, पृ० १।३२१ ।

अपान[४] (पु)—वि० [सं० अ+पान] जो पीने के योग्य न हो। अपेय। उ०—माधौ जू मोतें और न पापी। भच्छि अभच्छ अपान पान करि कबहुँ न मनसा धापी।—सूर० १।१४०।

अपानद्वार—संज्ञा पुं० [सं०] गुदा [को०]।

अपानन—संज्ञा पुं० [सं०] १. श्वसनक्रिया। साँस लेना। २. मलमूत्र का निकलना या बहिर्गमन [को०]।

अपानपवन—संज्ञा पुं० [सं०] १. शरीरस्थ अपान नामक वायु। २. गुदा से निकलनेवाली वायु। पाद [को०]।

अपानवायु—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अपानपवन'।

अपाना†—सर्व० [हिं०] [स्त्री० अपानी] दे० 'अपना'। उ०—(क) साहब लेई चलो देस अपाना।—धरम०, पृ० २८। (ख) लोग सब गेह के, प्रवीन हैं अपानी घाई देह जुवताई नयो नयो नेह जोरिहै।—दीन ग्रं०, पृ० १४०।

अपानृत—वि० [सं०] झूठ से रहित। सत्य [को०]।

अपाप[१]—संज्ञा पुं० [सं०] जो पाप न हो। पुण्य। सुकृत। उ०—संग नसै जिहि भाँति ज्यों उपजै पाप अपाप। तिनसों लिप्त न होंहि ते ज्यों उपलनि को आप।—केशव (शब्द०)।

अपाप[२]—वि० [स्त्री० अपापा] निष्पाप। पापरहित। उ०—वह पुण्यकृती अपाप थे, पहले ही अवतीर्ण आप थे।—साकेत, पृ० ३३६।

अपामार्ग—संज्ञा पुं० [सं०] चिचड़ा। चिचड़ी। ऊँगा। ऊँगी। अंझाझारा। लटजीरा।

अपापी—वि० [सं० अपापिन्] [वि० स्त्री० अपापिनी] निष्पाप। अपाप [को०]।

अपामार्जन—संज्ञा पुं० [सं०] १. शुद्धि। सफाई। २. (व्याधि या दोष का) निरोध या निवारण [को०]।

अपामृत्यु—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अपमृत्यु' [को०]।

अपाय[१]—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० अपायी] १. विश्लेष। अलगाव। २. अपगमन। पीछे हटना। ३. नाश। उ०—सब अपाय भय खोय सदा सुभ करत जाय है।—बुद्ध च०, पृ० २१९। ४. (पु) अन्यथाचार। अनरीति। उपद्रव। उ०—करिय संभार कोसल राय। अकनि जाके कठिन करतब अमित अनय अपाय।—तुलसी [को०]। ५. खतरा। विघ्न [को०]। ६. हानि। क्षति (को०)। ७. शब्दांत। शब्द की समाप्ति। ८. गायब होना। लुप्त होना [को०]।

अपाय[२] (पु)—वि० [सं० अ=नहीं+पाद प्रा० पाय=पैर] १. बिना पैर का। लँगड़ा। अपाहिज। २. निरुपाय। असमर्थ। उ०—राम नाम के जपे पै जाय जिय की जरनि। कलिकाल अपर उपाय ते अपाय भए जैसे तम जारिबे को चित्र को तरनि।—तुलसी (शब्द०)।

अपायी—वि० [सं० अपायिन्] [वि० स्त्री० अपायिनी] १. नष्ट होनेवाला। नश्वर। अस्थिर। अनित्य। २. अलग होनेवाला। ३. गायब या लुप्त होनेवाला [को०]।

अपार[१]—वि० [सं०] १. जिसका पार न हो। सीमारहित। असीम। अनंत। बेहद। उ०—एक दिन सहसा सिंधु अपार। लगा टकराने नगतल क्षुब्ध।—कामायनी, पृ० ५२। २. असंख्य। अधिक। अतिशय। अगणित। बहुत। ३. तटहीन।

अपार[२]—संज्ञा पुं० [सं०] १. सांख्य में वह तुष्टि जो धनोपार्जन के परिश्रम और अपमान से छुटकारा पाने पर होती है। २. समुद्र। सागर। [को०]। ३. नदी का दूसरा किनारा [को०]।

अपारक—वि० [सं०] असमर्थ। अशक्त। अयोग्य। अदक्ष [को०]।

अपारदर्शक—वि० [सं० अ+पारदर्शक] जो पारदर्शक न हो। जिसके पार प्रकाश न जा सके।

विशेष—लोहा, ताँबा, सोना, लकड़ी, ईंट, पत्थर आदि प्रकाश को रोक लेते हैं। इनमें होकर प्रकाश नहीं निकल सकता अतः इन्हें अपारदर्शक कहते हैं।

अपारदर्शिता—संज्ञा स्त्री० [सं० अ+पारदर्शिता] वह स्थिति जिसमें प्रकाश पार न जा सके।

अपारदर्शी—वि० [सं० अ+पारदर्शिन्] दे० 'अपारदर्शक'।

अपारा—संज्ञा स्त्री० [सं०] धरित्री। पृथ्वी [को०]।

अपार्ण—वि० [सं०] १. दूरस्थ। २. निकटस्थ [को०]।

अपार्थ[१]—वि० [सं०] १. अर्थहीन। निरर्थक। २. निष्प्रयोजन। व्यर्थ। ३. नष्ट। प्रभावशून्य।

अपार्थ[२]—संज्ञा पुं० १. कविता में वाक्यार्थ स्पष्ट न होने का दोष। २. दे० 'अपार्थक' [को०]।

अपार्थक—संज्ञा पुं० [सं०] न्याय में एक निग्रह स्थान जो ऐसे वाक्यों के प्रयोग से होता है जो पूर्वापर असंबद्ध हों।

अपार्थकरण—संज्ञा पुं० [सं०] मुकदमे में झूठा बयान, दलील या तर्क उपस्थित करना [को०]।

अपार्थिव—वि० [सं०] अभौतिक। जो पृथ्वी या मिट्टी से संबद्ध अथवा उत्पन्न न हो [को०]।

अपालंक—संज्ञा पुं० [सं० अपालङ्क] आरग्वध। अमलतास [को०]।

अपाल—वि० [सं०] रक्षाहीन। रक्षकविहीन [को०]।

अपाव—संज्ञा पुं० [सं० अपाय=नाश] अन्यथाचार। अन्याय। उपद्रव

अपावन—वि० पुं० [सं०] [वि० स्त्री० अपावनी] अपवित्र। अशुद्ध। मलिन। उ०—तन खीन कोउ अति पीन पावन कोउ अपावन गति धरें।—मानस, पृ० ५२।

अपावरण—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० अपावृति] १. उघारना। खोलना। २. ढाकना। छिपाना। ३. आवृत करना [को०]।

अपावर्त्तन—संज्ञा पुं० [सं०] १. पलटाव। वापसी। २. भागना। पीछे हटना। ३. लौटना।

अपावृत—वि० [सं०] १. जो ढका या बंद न हो। २. जो ढका, बंद या आवृत हो। ३. स्वतंत्र। अनियंत्रित [को०]।

अपावृति—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अपावरण' [को०]।

अपावृत्त[१]—संज्ञा पुं० [सं०] १. लौटना (घोड़े का)। २. (युद्ध में) बगली काटना [को०]।

अपावृत्त[२]—वि० [सं०] १. पछाड़ा हुआ। भागा या भगाया हुआ। हराया हुआ। २. तिरस्कारपूर्वक अस्वीकार करनेवाला [को०]

अपाश्रय[१]—वि० [सं०] बेसहारा। निराधार। आश्रयहीन। निरवलंब असहाय। दीन [को०]।

अपाश्रय[२]—संज्ञा पुं० [सं०] १. सिरहाना। बिस्तर का वह भाग जहाँ सिर को आश्रय दिया जाय। २. चँदोवा या शामियाना। ३. आश्रयस्थल [को०]।

अपाश्रित—वि० [सं०] १. एकांतसेवी। क्षेत्रसंन्यस्त। २. जिसने संसार के सब कामों से छुटकारा पा लिया हो। विरक्त। त्यागी। ३. अधिवसित [को०]। ४. आबद्ध [को०]। ५. अवलंबित [को०]।

अपासंग—संज्ञा पुं० [सं० अपासङ्ग] तरकश। तूणीर [को०]।

अपासन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अपासित, अपास्त] १. क्षेपण। फेंकना। २. छोड़ना। त्यागना। ३.मारना। वध करना [को०]।

अपासरण—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अपासृत] प्रस्थान। निर्गमन। अपसरण [को०]।

अपासु—वि० [सं०] प्राणहीन। मृत [को०]।

अपासृत—वि० [सं०] प्रस्थित। निर्गमित। [को०]।

अपाहज(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अपाहिज'। उ०—और दरिद्री, दुखिया, अपाहजों की सहायता करने में अभिरुचि रखता था। —श्रीनिवास ग्रं०, पृ० ३०८।

अपाहिज—वि० [सं० अपभञ्ज, प्रा० अपहंज] १. अंग भंग। खंज। लूला लँगड़ा। २. काम करने के अयोग्य। जो काम न कर सके। ३. आलसी।

अपिंडी—वि० [सं० अपिण्डिन्] पिंडरहित। बिना शरीर का। अशरीरी।

अपि[1]—अव्य [सं०] १. भी। ही। २. निश्चय। ठीक। उ०—रामचंद्र के भजन बिनु जो चह पद निर्बान। ज्ञानवंत अपि सोइ नर, पसु बिनु पूँछ, बिखान।—तुलसी ग्रं०, पृ० ११४।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग समीप, संबंध आदि अर्थों में भी मिलता है, जैसे, अपिकक्ष, अपिकक्ष्य, अपिकर्ण आदि। संभावना, प्रश्न, गर्हा, शंका, समुच्चय, अयुक्त पदार्थ, कामचार क्रिया, विरोध, वितर्क अर्थ में भी इसका प्रयोग विहित है।

अपिगीर्ण—वि० [सं०] १. स्तुत। प्रशंसित। २.कथित। वर्णित[को०]।

अपिच—अव्य० [सं०] १. और भी। पुनश्च। २ बल्कि।

अपिच्छिल—वि० [सं०] १. निर्मल। पंकहीन। स्वच्छ। २. गंभीर। गहरा [को०]।

अपिज[1]—वि० [सं०] पुनर्जन्मा। फिर से उत्पन्न [को०]।

अपिज[2]—संज्ञा पुं० [सं०] ज्येष्ठ मास [को०]।

अपितु—अव्य० [सं०] १. किंतु। २. बल्कि। ३. और [को०]। उ०—त्रिविध भाँति को सबद बर विघट न लट परमान। कारन अबिरल अल अपितु तुलसी अबिद भुलान।—स० सप्तक,पृ०२६।

अपितृक—वि० [सं०] १. पिताविहीन। २. अपैतृक।

अपित्र्य—वि० [सं०] अपैतृक [को०]।

अपित्व—संज्ञा पुं० [सं०] विभाग। अंश। हिस्सा [को०]।

अपित्वी—वि० [सं० अपित्विन्] हिस्सेवाला। अंश या भाग रखनेवाला [को०]।

अपिधान—संज्ञा पुं० [सं०] १. आच्छादन। आवरण। ढक्कन। पिहान। २. ढकना। आच्छादन करना [को०]। ३. आच्छादन वस्त्र [को०]।

यौ०—अमृतापिधान = भोजन के पीछे का आचमन। भोजन के उपरांत 'अमृतापिधानमसि' कहकर आचमन करते हैं।

अपिनद्ध—वि० [सं०] [वि० स्त्री० अपिनद्धा] बँधा हुआ। जकड़ा हुआ। ढँका हुआ।

अपिव्रत—वि० [सं०] १.अविभक्त धार्मिक कृत्योंवाला। जिनके धार्मिक व्रत, कर्म और कृत्य समान हों। २.रक्त द्वारा संबंधित। एक रक्त का [को०]।

अपिहित—वि० [सं०][वि० स्त्री० अपिहिता]१. आच्छादित। ढँका हुआ। आवृत। २.जो आवृत न हो। खुला हुआ। स्पष्ट [को०]।

अपी[1]†(पु)—सर्व० [हिं० आप] स्वयं। खुद। उ०—अपी बैठी सुंदर परदे के अंदर, बुला मुल्ला कूँ, अपने घर के भीतर।—दक्खिनी०, पृ० २४६।

अपी[2](पु)—अव्य [हिं०[दे० 'अपि'[1]। उ०—धनवंत कुलीन मलीन अपी। द्विज चीन्ह जनेउ उघार तपी।—मानस,७।१०१।

अपीच(पु)—वि० [सं० अपीच्य] सुंदर। अच्छा। उ०—(क) विमल बिछाइत गिलम गलीचा। तखत सिंहासन फरस अपीचा। बाँधहु ध्वज थल थलन अपीचौ। नृप मारग चंदन जल सींचौ।—पद्माकर (शब्द०)। (ख) फहर गई धौं कबै रंग के फुहारन में, केधौं तराबोर भई अतर अपीच में।—पद्माकर ग्रं०, पृ० ३१६।

अपीच्य—वि० [सं०] १.अति सुंदर। अच्छा। खूबसूरत।

यौ०—अपीच्य वेश। अपीच्य दर्शन।

२.गोप्य। छिपा हुआ। अंतर्हित।

अपीत[1]—वि० [सं०] १.जिसने मद्य न पी हो। २. जिसे पिया न गया हो। ३.जो पीला न हो [को०]।

अपीत[2]—संज्ञा पुं० पीत से पृथक् वर्ण। पीतेतर वर्ण [को०]।

अपीति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १.प्रवेश। २.विलय। मृत्यु। ३. प्रलय। ४. विनाश [को०]।

अपीध(पु)†—वि० [हिं०] दे० 'अपीत'[1]। उ०—माच कमंधां मुग्गलां यां जुद्धा खग आल। अजक अपीधां अमल ज्यूं विण कीधा रणताल।—रा० रू०. पृ० ७४।

अपीनस—संज्ञा पुं० [सं०] १.नासाशोष। नाक की शुष्कता। सर्दी जुकाम [को०]।

अपील[1](पु)†—वि० [हिं० अपेल] अटल। अडिग। उ०—गुरू धाम कंजा, मनी मैल मंजा। धनू तोड़ भंजा, सो लीलं अपीलं।—घट०, पृ० ३८५।

अपील[2]—संज्ञा स्त्री० [अं० एपील] १.निवेदन। विचारार्थ प्रार्थना। २. पुनर्विचारार्थ। प्रार्थना। मातहत अदालत के फैसले के विरुद्ध ऊँची अदालत में फिर विचार करने के लिये अभियोग उपस्थित करना। ३.वह प्रार्थनापत्र जो किसी अदालत के फैसले को बदलवाने वा रद्द कराने के लिये उससे ऊँची अदालत में दिया जाय।

क्रि० प्र०—करना। होना।

यौ०—अपीलअदालत = जहाँ मुकदमों की निगरानी या पुनर्विचार हो।

अपीलांट—संज्ञा पुं० [अं० एपेलैंट] अपील करनेवाला व्यक्ति।

अपीली—वि० [अं० एपील + हिं० ई (प्रत्य०)] अपीलसंबंधी।

अपीव(पु)—वि० [सं० अपेय] १. पेय जो दुर्लभ हो। अमृत। उ०—उलटंत पवनं अलटंत बांणी अपीव पीवंत जे ब्रह्मज्ञानी।—गोरख०, पृ० ३२। २. न पीने योग्य। अपेय। उ०—ह्वै है अधिक अपीव जीव कोउ नीर न छ्वैहैं।—दीन० ग्रं०, पृ० २०२।

अपु(पु)—सर्व० [हिं० आप] १. आप। स्वयं। २. आपस में। उ०—रचि महाभारत कहूँ लरावत अपु में भैया भैया।—ब्रजमाधुरी०, पृ० ३६६।

अपुच्छ—वि० [सं०] पुच्छरहित। बिना पूँछ का [को०]।

अपुच्छा—संज्ञा स्त्री० [सं०] शिशपा वृक्ष। शीशम का पेड़ [को०]।

अपुट्ठना(पु)†—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'अपूठना'।

अपुण्य¹—संज्ञा पुं० [सं०] पुण्य का अभाव। पाप [को०]।

अपुण्य²—वि० जो पुण्य या पावन न हो। कलुषित [को०]।

अपुत्र—वि० [सं०] जिसके पुत्र न हो। निःसंतान। पुत्रहीन। निपूता।

अपुत्रक—वि० [सं०] दे० 'अपुत्र' [को०]।

अपुत्रिक—संज्ञा पुं० [सं०] ऐसी पुत्रहीना कन्या का पिता जो स्वयं पुत्रहीन होते हुए भी कन्या को उत्तराधिकारी नहीं बना सकता [को०]।

अपुत्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] पुत्रहीन पिता की वह कन्या जो स्वयं भी पुत्रहीना हो [को०]।

अपुत्रीय—वि० [सं०] दे० 'अपुत्रक' [को०]।

अपुन(पु)†—सर्व० [हिं०] दे० 'अपना'। उ०—जौ हरि व्रत निज उर न धरैंगो। तौ को अस त्राता जो अपुन करि, कर कुठाँव पकरैंगो।—सूर०, १।७५।

अपुनपो(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अपनपौ'।

अपुनपौ(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अपनपौ'। उ०—बाकौ मारि अपुनपौ राखै, सूर ब्रजहिं सो जाइ। सूर०, १०।६०।

अपुनरादान—संज्ञा पुं० [सं०] वह जो पुनः ग्रहण न किया जाय [को०]।

अपुनरावर्तन—संज्ञा पुं० [सं०] पुनरावर्तन का अभाव। मुक्ति। मोक्ष।

अपुनरावृत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पुनरावृत्ति का अभाव। मोक्ष। निर्वाण। २. मृत्यु [को०]।

अपुनर्भव—संज्ञा पुं० [सं०] १. फिर जन्म न ग्रहण करना। मोक्ष। निर्वाण। उ०—अच्छा होता, यदि यों होता। पर, वह गत तो है अपुनर्भव।—अपलक, पृ० ८। २. (रोगादि का) फिर न होना।

अपुनीत—वि० [सं०] १. जो पुनीत न हो। अपवित्र। अशुद्ध। उ०—सुरसरि कोउ अपुनीत न कहई।—मानस, १।६६। २. दूषित। दोषयुक्त।

अपुब्ब(पु)—वि० [सं० अपूर्व] अद्भुत। बेजोड़। उ०—सुनि सुंदरबर बज्जने अई अपुब्ब कोइ दिट्ट।—पृ० रा०, ६१।११४७।

अपुराण—वि० [सं०] १. पुराना नहीं। आधुनिक। नया [को०]।

अपुरुब(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अपूर्व' उ०—बहुरि कुँवर जो पाछे देखा, अपुरुब रूप चित्र एक पेखा।—चित्रा०, पृ० ३३।

अपुरुष¹—वि० [सं०] अमानवीय। अमानुषिक (को०)।

अपुरुष²—संज्ञा पुं० नपुंसक। हिजड़ा [को०]।

अपुष्कल—वि० [सं०] १. बहुत नहीं। थोड़ा। २. तुच्छ। निम्न। क्षुद्र [को०]।

अपुष्ट—वि० [सं०] १. जिसका ठीक ढंग से पोषण न हुआ हो। जो हट्टा कट्टा न हो। दुबला पतला। २. दुर्बल। मंद। क्षीण। ३. असमर्थ। कमजोर। ४. एक अर्थदोष जिसमें व्यंग्य या अर्थ स्पष्ट न हो [को०]।

अपुष्टान्न—संज्ञा पुं० [सं० अपुष्ट + अन्न] १. वह अन्न या खाद्य जो बलवर्धक न हो।

अपुष्प¹—वि० [सं०] पुष्पहीन। न फूलनेवाला [को०]।

अपुष्प²—संज्ञा पुं० गूलर का वृक्ष [को०]।

अपुष्पफल¹—वि० [सं०] बिना पुष्पित हुए फल देनेवाला। बिना फूल फल का [को०]।

अपुष्पफल²—संज्ञा पुं० १. कटहल। २. गूलर [को०]।

अपुष्पफलद—वि० संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अपुष्पफल' [को०]।

अपूजक—वि०[सं०]पूजन न करनेवाला। भक्तिहीन। अधार्मिक[को०]।

अपूजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. अधार्मिकता। २. असंमान। अनादर।

अपूजित—वि० [सं०] जिसकी पूजा अर्चना न की जाती हो [को०]।

अपूज्य—वि०[सं०]पूजा या संमान के अयोग्य। उ०—ब्रह्महि शाप दियो तब जानी। होहि अपूज्य कहि आदि भवानी।—कबीर सा० पृ० २२।

अपूठना(पु)—क्रि० स० [सं० अ = नहीं + पृष्ठ, पा० पुट्ठ = पीठ अथवा देश०] १. विदारण करना। विध्वंस करना। नाश करना। २. उलटना पलटना।—जननी हौं रघुनाथ पठायौ। रामचंद्र आए की तुमको देन बधाई आयौ। रावन हति लै चलौं साथ ही लंका धरौं अपूठी। यातें जिय सकुचात नाथ की होइ प्रतिज्ञा झूठी।—सूर०, ६।८७।

अपूठा¹(पु)—वि०[सं० अपुष्ट प्रा० अपुट्ठ] [स्त्री० अपूठी]अपरिपक्व। अजानकार। अनभिज्ञ। उ०—तुम तो अपने ही मुख झूठे। निर्गुण छबि हरि बिनु को पावै ज्यौं आँगुरी अँगूठे। निकट रहत पुनि दूर बतावत हौ रस माहिं अपूठे।—सूर (शब्द०)।

अपूठा²(पु)—[सं० अस्फुट, प्रा० अफुट] अविकसित। बेखिला। बँधा। उ०—परमारथ पाको रतन, कबहुँ न दीजै पीठ। स्वारथ सेमल फूल है, कली अपूठी पीठ।—कबीर (शब्द०)।

अपूठा³(पु)—क्रि० वि० [सं० आ + पृष्ठ, प्रा० आपुट्ठ, आपिट्ठ] १. पीछे। पीठ की ओर। उलटे। उ०—गंग अपूठी क्युं बहई।—बी० रासो, पृ० ६०। २. वापस राजि अपूठा बाहुड़उ, मालवणी मूई।—ढोला०, दू० ४०४।

अपूठी(पु)—वि० [सं० अपृष्ट. प्रा० अपुट्ठि] बिना पूछे। बिना बात के। बिना सवाल किए। उ०—जेठी धी कै गलै छुरी है, बहू अपूठी चाली।—सुंदर ग्रं०, पृ० ८२६।

अपूत¹—वि० [सं०] अपवित्र। अशुद्ध।

अपूत²(पु)—वि०[सं० अ = नहीं + पुत्र, प्रा० पुत्त] पुत्रहीन। निपूत।

अपूत³(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अ = बुरा + पुत्र, प्रा० पुत्त] कुपूत। बुरा लड़का। उ०—तोसें सपूतहि जाइकै बालि अपूतन की पदवी पगु धारे।—राम चं०, पृ० ११४।

अपूता—वि० [हिं०] निपूता। पुत्रहीन।

अपूप—संज्ञा पुं० [सं०] गेहूँ के आटे की लिट्टी जिसे मिट्टी के कपाल या कसोरे में पका कर यज्ञ में देवताओं के निमित्त हवन करते थे। २. लिट्टी [को०]। ३. अनरसा [को०]। ४. मालपुआ [को०]। ५. गेहूँ [को०]। ६. शहद का छत्ता [को०]।

अपूप्य[1]—वि० [सं०] अपूप संबंधी या उसके काम की [को०]।

अपूप्य[2]—संज्ञा पुं० आटा। पिसान [को०]।

अपूर[1]Ⓟ—वि० [सं० **आपूर,** हिं० **पूरा, पूरा**] पूरा। भरपूर। उ०—(क) लवंग सुफारी जायफर, सब फर फरे अपूर। (ख) जनथल भरे अपूर सब, धरति गगन मिल एक।—जायसी (शब्द०)।

अपूर[2]Ⓟ†—वि० [हिं०] १. दे० 'अपूर्ण'। २. पूररहित। प्रवाहरहित बिना बाढ़ का।

अपूरणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] शाल्मली या सेमर का वृक्ष [को०]।

अपूरनाⓅ†—क्रि० स० [सं० **आपूर्णन्**] १. भरना। २. फूँकना। बजाना। उ०—सुना संख जो विष्णु अपूरा। आगे हनुमत करे लँगूरा।—जायसी (शब्द०)।

अपूरबⓅ—वि० [हिं०] दे० 'अपूर्व'। उ०—भरित नेह नव नीर नित बरसत सुर अथोर। जयति अपूरब घन कोऊ लखि नाचत मन मोर।—भारतेंदु ग्रं०, पृ० ५७७।

अपूरबता—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अपूर्वता'।

अपूरबताईⓅ†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अपूर्वता'। उ०—दई यह कैसी अपूरबताई।—प्रेमघन ग्रं०, पृ० २१२।

अपूरा[1]Ⓟ—संज्ञा पुं० [सं० **आ+पूर**] [**स्त्री० अपूरी**] भरा हुआ। फैला हुआ। व्याप्त। उ०—चला कटक अस चढ़ा अपूरी। अगलहि पानी पिछलहि धूरी।—जायसी (शब्द०)।

अपूरा[2]Ⓟ—[सं० **अ+पूर**] जो पूरा न हो।

अपूर्ण—वि० [सं०] १. जो पूर्ण न हो। जो भरा न हो। २. अधूरा। असमाप्त। ३. कम। अल्प।

अपूर्णता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. अधूरापन। उ०—प्राणहीन वह कला नहीं जिसमें अपूर्णता शोभन।—युगवाणी, पृ० ३०। २. न्यूनता। कमी। उ०—तुम अति अबोध अपनी अपूर्णता को न स्वयं तुम समझ सके।—कामायनी पृ० १६३।

अपूर्णभूत—संज्ञा पुं० [सं०] व्याकरण में वह क्रिया का भूतकाल जिसमें क्रिया की समाप्ति न पाई जाय। जैसे—वह खाता था। (शब्द०)।

अपूर्व[1]—वि० [सं०] १. जो पहिले न रहा हो। उ०—और शुचिता का अपूर्व सुहाग।—साकेत, पृ० १६३। २. अद्भुत। अनोखा। अलौकिक। विचित्र। ३. अनुपम। उत्तम। श्रेष्ठ।

अपूर्व[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १. परमात्मा। परब्रह्म। २. मीमांसा के अनुसार अदृष्ट फल। ३. पाप पुण्य [को०]।

अपूर्वता—संज्ञा स्त्री० [सं०] विलक्षणता। अनोखापन। श्रेष्ठता।

अपूर्वत्व—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अपूर्वता' [को०]।

अपूर्वपति—संज्ञा स्त्री० [सं०] कुमारी। कन्या जिसका विवाह न हुआ हो [को०]।

अपूर्वरूप—संज्ञा पुं० [सं०] वह काव्यालंकार जिसमें पूर्वगुण की प्राप्ति का निषेध हो। यह पूर्वरूप का विपरीत अलंकार है। जैसे—'क्षय हो हो करहू शशी, बढ़त जु बारहि बार। त्यों पुनि यौवन प्राप्ति नहिं, न कर मान निति नार।' यहाँ पर दिखाया गया है कि जिस प्रकार चंद्रमा क्षय के पश्चात् पुनःपूर्णता प्राप्त करता है, उस प्रकार यौवन एक बार जाकर फिर नहीं आता।

अपूर्ववाद—संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्म संबंधी वादविवाद या परिचर्चा [को०]।

अपूर्वविधि—संज्ञा स्त्री० [सं०] उस वस्तु को प्राप्त करने की विधि जिसका बोध प्रत्यक्ष, अनुमान आदि प्रमाणों द्वारा न हो सके। जैसे, स्वर्ग की कामना हो तो यज्ञ करे। यहाँ पर स्वर्ग, जिसकी प्राप्ति की विधि बताई गई है प्रत्यक्ष और अनुमान आदि द्वारा सिद्ध नहीं होता।

विशेष—यह विधि चार प्रकार की है—(क) कर्मविधि—जैसे, अग्निहोत्र करे तो स्वर्ग होगा। (ख) गुणविधि—जिसमें यज्ञ या कर्म के अनुष्ठान की सामग्री और देवता आदि का निर्देश हो। (ग) विनियोग विधि—जैसे, गार्हपत्य में इंद्र की ऋचा का विनियोग करे। (घ) प्रयोग विधि—अर्थात् अमुक कर्म के हो जाने पर अमुक कर्म करने का आदेश, जैसे—गुरुकुल से विद्या पढ़कर समावर्तन करे।

अपृक्त[1]—वि० [सं०] १. बेमेल। बेजोड़। बिना मिलावट का। २. बिना लगाव का। असंबद्ध। ३. खालिस अकेला।

अपृक्त[2]—संज्ञा पुं० पाणिनी के मतानुसार एक अक्षर का प्रत्यय।

अपेक्षण—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अपेक्षा' [को०]।

अपेक्षणीय—वि० [सं०] अपेक्षा करने योग्य। वांछनीय।

अपेक्षया—क्रि० वि० [सं० **अपेक्षया**] किसी की तुलना में अपेक्षाकृत।

अपेक्षा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. आकांक्षा। इच्छा। अभिलाषा। चाह। जैसे,—कौन पुरुष है, जिसे धन की अपेक्षा न हो। २. आवश्यकता। जरूरत। जैसे—संन्यासियों को धन की अपेक्षा नहीं है। ३. आश्रय। भरोसा। आशा। जैसे—पुरुषार्थी पुरुष किसी की अपेक्षा नहीं करते। ४. कार्य कारण का अन्योन्य संबंध। ५. निस्बत। तुलना। मुकाबिला। जैसे—बँगला की अपेक्षा हिंदी सरल है। उ०—बात बनाने में पुरुषों की अपेक्षा स्त्री स्वभाव से चतुर होती हैं।—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० ९३।

विशेष—इस अर्थ में यह मात्राभेद दिखाने के लिये व्यवहृत होता है और इसके आगे में लुप्त रहता है।

६. प्रतीक्षा। इंतजार।

अपेक्षाकृत—अव्य० [सं०] मुकाबले में। तुलना में। निस्बतन्।

अपेक्षाबुद्धि—संज्ञा स्त्री० [सं०] ऊहापोह की क्षमता या बुद्धि। कार्य-कारण संबंध थाहने की प्रतिभा। भेद बुद्धि [को०]।

अपेक्षित—वि० [सं०] १. जिसकी अपेक्षा हो। जिसकी आवश्यकता हो। आवश्यक। उ०—प्रेम के लिये व्यक्ति की कोई विशेषता अपेक्षित होती है।—रस०, पृ० ७८। इच्छित। वांछित। उ०—वास्तव में कला की दृष्टि दोनों ही प्रकार के काव्यों में अपेक्षित है।—रस०, पृ० ५७।

अपेक्षी—वि० [सं० **अपेक्षिन्**] १. आशा लगा रखनेवाला। २. प्रतीक्षा करनेवाला। ३. आकांक्षी।

विशेष—इसका प्रयोग समासांत में मुख्यतः प्राप्त होता है, जैसे,—**परबलापेक्षी, विधिबलापेक्षी, परमुखापेक्षी** आदि।

अपेक्ष्य—वि० [सं०] दे० 'अपेक्षणीय' [को०] ।

अपेख†– वि० [हिं० **अ + पेखना**] १. अनदेखा । जो देखने में न आया हो । २. जो दिखाई दे ।

अपेखा†—संज्ञा स्त्री० [सं० **अपेक्षा**] इच्छा । आकांक्षा । चाह । उ०—श्यामसुंदर सँग मिलि खेलन की आवति हिये अपेखें ।—ब्रज-माधुरी०, पृ० १४५ ।

अपेच्छाⓅ—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अपेक्षा' ।

अपेत—वि० [सं०] १. विगत । दूर गया हुआ । २. मुक्त [को०] । ३. रहित [को०] ।

अपेतराक्षसी—संज्ञा स्त्री० [सं०] तुलसी का पौधा [को०] ।

अपेय—वि० [सं०] न पीने योग्य ।

अपेलⓅ—वि० [सं० **अ = नहीं + प्रा० पेल्ल हिं० पेल**] जो हटे नहीं । जो टले नहीं । अटल । उ०—(क) बारि मथे घृत होइ बरु, सिकता तें बरु तेल, बिनु हरिभजन न भव तरिय यह सिद्धांत अपेल ।—मानस, ७।१२२ ।

अपेलेट साइड—संज्ञा पुं० [अं० **एपैलैट**] प्रेसिडेंसी हाईकोर्ट का वह विभाग जो अपनी निर्धारित सीमा के अंतर्गत सब दीवानी और फौजदारी अदालतों का नियंत्रण करता है और अपीलें सुनता है । इसे अपेलेट जुरिसडिक्शन भी कहते हैं ।

अपैठⓅ—वि० [सं० **अप्रविष्ट**, पा० **अपविट्ठ** प्रा० **अपइट्ठ**] जहाँ पैठ वा पहुँच न हो सके । दुर्गम । अगम ।

अपैतृक—वि० [सं० **अ + पैतृक**] जो पूर्वजों से संबद्ध न हो । जो पैतृक न हो [को०] ।

अपोगंड—वि० [सं०] १. सोलह वर्ष के ऊपर की अवस्थावाला ।२. बालिग । ३. किशोर । शिशु [को०] । ४. अधिक या न्यून अंग-वाला । विकलांग [को०] । ५. भयालु । भयभीत [को०] ।

अपोच—वि० [हिं० **अ + पोच**] श्रेष्ठ । उत्तम । उ०—ताहि विषाद बखानहीं जे कवि सदा अपोच ।—पद्माकर ग्रं०, १८० ।

अपोढ़¹Ⓟ-वि० [सं० **अ + पुष्ट**, प्रा० **पुट्ठ, पुद्ढ, पोढ्ढ**, हिं० **अ + पोढ़**] अपुष्ट । अप्रौढ़ । जो प्रौढ़ न हो । उ०—ढीठचौ दै बोलति, हँसति पोढ़ विलास अपोढ़ । त्यों त्यों चलत न पिय नयन छकए छकी नवोढ़ ।—बिहारी र०, दो० ३८७ ।

अपोढ़²—वि० [सं०] दे० 'अपवहित' [को०] ।

अपोदिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] पूति का शाक । पोई या पोय का शाक [को०] ।

अपोर—वि० [हिं० **अपोर**] जिसमें गाँठ या जोड़ न हो । बिना जोड़ का । ग्रंथिहीन । उ०—धरि गगन डोरि अपोर परखै, पकरि पट पिउ पिउ करे ।—घट०, पृ० १२० ।

अपोह—संज्ञा पुं० [सं०] १. निकालना । हटाना । निवारण । दूर करना । २. तर्क शक्ति । एक तर्क के खंडन के लिये प्रस्तुत किया गया अन्य तर्क । ३. युक्ति या तर्क से शंका का निवारण [को०] ।

अपोहन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अपोह' [को०] ।

अपौगंड—वि० [सं० **अपौगण्ड**] दे० 'अपोगंड' [को०] ।

अपौतिक—वि० [सं०] जिसमें सड़न या दुर्गंध न आई हो [को०] ।

अपौरुष¹—वि० [सं०] १. पुंसत्वहीन । पुरुषत्वहीन । २. अपुरुषोचित । कायरतापूर्ण । भीरु । ३. मानवीय या मानवकृत नहीं । दैवी । ईश्वरीय [को०] ।

अपौरुष—संज्ञा पुं० [सं०] १. पौरुष का अभाव । २. दैवीशक्ति [को०] ।

अपौरुषेय—वि० संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अपौरुष' ।

अप्च्चर—संज्ञा पुं० [सं०] जलजंतु [को०] ।

अप्च्छरⓅ†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अप्सर' उ०—ताहि देखि अप्छरा गन मोहत ।—प० रासो, पृ० २६ ।

अप्छराⓅ†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] 'अप्सरा' । उ०—बिबस भए मुनि अप्छरा, भुल्लियत तप व्रत नेम ।—हंमीर रा०, पृ० २८ ।

अप्तु—संज्ञा पुं० [सं०] १ शरीर । गात्र । अंग । २. सोम ।३. यज्ञीय पशु । बलि पशु [को०] ।

अप्तोर्याम—संज्ञा पुं० [सं०] अग्निष्टोम यज्ञ का एक अंग ।

अप्पⓅ—सर्व० [**आत्म, प्रा० अप्प**] अपना । उ०—भयौ अंधकार महाघोर ऐनं । गई सुद्धि सुज्झै नहीं अप्प नैनं ।—हंमीर रा० पृ० ३७ ।

अप्पटिⓅ†—वि० [हिं०] दे० 'अटपटी'² । उ०—पर प्रपंच परदर्व पर स्त्री निसु दिन फिरत रहत निजु नत्त । अप्पटि पाग लप्पटि बात निप्पटि अवसि करत निज नत्त ।—अकबरी, पृ० ३२६ ।

अप्पति—संज्ञा पुं० [सं०] १. सागर । समुद्र । २. वरुण [को०] ।

अप्पनाⓅ†—क्रि० स० [सं० **अर्पण**] अर्पित करना । देना । उ०—(क) केलि कर बाँधि धरि चरण तल अप्पिआ ।—कीर्ति०, पृ० ६६ । (ख) इसी विधि अप्पिय आयसु देव ।—राम० धर्म० पृ० ३४७ ।

अप्परमाणⓅ†—वि० [हिं०] दे० 'अप्रमाण' । उ०—आया अपुराणं अप्परमाणं किंकर जाणं जमराणं ।—रा० रू०, पृ० २१६

अप्पित्त—संज्ञा पुं० [सं०] १. अग्नि । २. एक प्रकार का पौधा [को०] ।

अप्यय—संज्ञा पुं० [सं०] १. बहना (नदी आदि का) । २. लय । नाश । ३. जोड़ । मिलन । संधि [को०] ।

अप्ययन—संज्ञा पुं० [सं०] १.मेल । योग । संयोग । २. मैथुन [को०] ।

अप्रंपरⓅ—वि० [हिं०] दे० 'अपरंपार' । उ०—पग अविधां गुण बदन अप्रंपर अंबुज अचल सार अभिराम ।—रघु० रू०, पृ० २४८ ।

अप्रकंप—वि० [सं० **अप्रकम्प**] १. कंपहीन । स्थिर । २. जिसका उत्तर न दिया जा सके । जिसका खंडन न हो सके [को०] ।

अप्रकट—वि० [सं०] जो सामने प्रकट या व्यक्त न हो । अव्यक्त ।

अप्रकटित—वि० [सं०] दे० 'अप्रकट' । उ०—अप्रत्याशित अप्रकटित कल्याण विश्व का करता है ।—प्रेम०, पृ० २६ ।

अप्रकर—वि० [सं०] अच्छी तरह से कार्य न करने वाला [को०] ।

अप्रकरण—संज्ञा पुं० [सं०] जो मुख्य विषय से संबद्ध न हो । आकस्मिक । अप्रासंगिक विषय [को०] ।

अप्रकल्पक—वि० [सं०] अनिर्दिष्ट । अनिर्धारित । [को०] ।

अप्रकांड¹—वि० [सं० **अप्रकांड**] १. शाखाविहीन । २. लघु [को०] ।

अप्रकांड²—वि० झाड़ी । क्षुप [को०] ।

अप्रकाश[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रकाश का अभाव। अंधकार। २. गुप्त बात। रहस्य (को०)।

अप्रकाश[2]—वि० १. प्रकाशहीन। अंधकारपूर्ण। २. अप्रकट। गुह्य। ३. स्वतः प्रकाशित [को०]।

अप्रकाशित—वि० [सं०] १. जिसमें उजाला न किया गया हो। अँधेरा। २. जो प्रकट न हुआ हो। गुप्त। छिपा। ३. जो सर्वसाधारण के सामने न रखा गया हो। जो छापकर प्रचलित न किया गया हो।

अप्रकाश्य—वि [सं०] जो प्रकाश या प्रकट करने योग्य न हो। गोप्य।

अप्रकृत[1]—वि० [सं०] १. अस्वाभाविक। २. बनावटी। कृत्रिम। गढ़ा हुआ। ३. झूठा। ४. गौण। अप्रासंगिक [को०]। ५. आकस्मिक [को०]।

अप्रकृत[2]—संज्ञा पुं० १. उपमान। २. पागल व्यक्ति [को०]।

अप्रकृताश्रितश्लेष—संज्ञा पुं० [सं०] श्लेष नामक शब्दालंकार का एक भेद जिसमें प्रस्तुत और अप्रस्तुत का श्लेष हो। जैसे—तिय तौ ऐसी चँचलता, जीवन सुखद समच्छ। बसति हृदय घनश्याम के बर सारंग सुअच्छ।

विशेष—यह दोहा शब्दों को भंग अर्थात् अक्षरों को कुछ इधर उधर कर देने से,स्त्री और बिजली दोनों पर घटता है। स्त्रीपक्ष में अर्थ करने से सखी नायिका से कहती है कि तेरे समान दूसरी स्त्री जीवनसुखदायिनी और कमलनयनी घनश्याम के हृदय में बसती है। बिजली पक्ष लेने से यह अर्थ होता है कि हे, स्त्री ! तेरे समान बिजली है जो जीवन अर्थात् जल देनेवाली है, इत्यादि। इन दोनों पक्षों में दूसरी स्त्री और बिजली दोनों अप्रस्तुत हैं।

अप्रकृति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. प्राकृतिक या स्वाभाविक स्थिति का अभाव। विकृति। २. सांख्य के अनुसार कार्यकारण से भिन्न आत्मा। पुरुष [को०]।

अप्रकृतिस्थ—वि० [सं०] १. अस्वस्थ। बीमार। रोगादि या अन्य भय से ग्रस्त [को०]।

अप्रकृष्ट[1]—वि० [सं०] क्षुद्र। नीच। बुरा [को०]।

अप्रकृष्ट[2]—संज्ञा पुं० [सं०] कौआ। वायस [को०]।

अप्रकेत—वि० [सं०] जिसे जाना न जा सके। अविज्ञेय। अप्रतर्क्य। उ०—आदि में तम से घिरा हुआ तम था, वह अप्रकेत (अप्रज्ञायमान) था; और सलिल (जल) था।—आर्यो०,पृ०१८३।

अप्रखर—वि० [सं०]१. मृदु। कोमल। २. जो तेज न हो। अतीक्ष्ण [को०]। ३. सुस्त [को०]।

अप्रगल्भ—वि० [सं०] १. अप्रौढ़। अपरिपक्व। अपरिपुष्ट। २. निरुत्साह। निरुद्यम। ढीला। सुस्त [को०]।

अप्रगुण—वि० [सं०] परेशान। घबड़ाया हुआ [को०]।

अप्रग्राह—वि० [सं०] अनियंत्रित। बेलगाम [को०]।

अप्रचरित—वि० [सं०] जिसका प्रचार न हो। अप्रचलित।

अप्रचलित—वि० [सं०] जो प्रचलित न हो। जिसका चलन न हो। अव्यवहृत। अप्रयुक्त।

अप्रचारित—वि० [सं० अ + प्रचारित] जिसका प्रचार या प्रसार न

अप्रचोदित—वि० [सं०] अनिर्दिष्ट। अवांछित। अप्रेरित [को०]।

अप्रच्छन्न—वि० [सं०] १. जो प्रच्छन्न न हो। खुला हुआ। अनावृत। २. स्पष्ट। प्रकट।

अप्रच्छिन्न—वि० [सं०] जो पृथक् न हुआ हो। अविभक्त [को०]।

अप्रछन्न(५)—वि० [हिं०] दे० 'अप्रच्छन्न'। उ०—इम कहत देवि अप्रच्छन्न हो।—पृ० रा०, ६४।७२।

अप्रज—वि० [सं०][वि० स्त्री० अप्रजा] १. संततिहीन। निस्संतान।२. अजन्मा। ३. जनहीन [को०]।

अप्रजै(५)—वि० [हिं०]दे० 'अपराजेय'। उ०—भांण मांण भुजै ऊठियौ अप्रजै।—रा० रू०, पृ० २७०।

अप्रज्ञ[1]—वि० [सं०] मंदबुद्धि। बुद्धिहीन मतिहीन। प्रज्ञाशून्य [को०]।

अप्रज्ञ[2]—संज्ञा पुं० मूर्ख या पुरुष [को०]।

अप्रतर्क्य—वि० [सं०] जिसके विषय में तर्क वितर्क न हो सके। जो तर्क द्वारा निश्चित न हो सके।

अप्रति—वि० [सं०] १. अप्रतिम। बेजोड़। अद्वितीय। २. जिसका कोई विरोधी, शत्रु या प्रतिद्वंद्वी न हो [को०]।

अप्रतिकर—वि० [सं०] विश्वसनीय। विश्वासपात्र। विश्वस्त [को०]।

अप्रतिकार[1]—संज्ञा पुं० [सं][वि० अप्रतिकारी] १. उपाय का अभाव। तदबीर का न होना। २. बदले का न होना।

अप्रतिकार[2]—वि० १. जिसका उपाय या तदबीर न हो सके। लाइलाज। २. जिसका बदला न दिया जा सके।

अप्रतिकारी—वि० [सं० अप्रतिकारिन्] [वि० स्त्री० अप्रतिकारिणी] १. —उपाय या तदबीर न करनेवाला। २ बदला न लेनेवाला। बदला न देनेवाला।

अप्रतिगृह्य—वि० [सं०] जिसका दान या उपहार ग्रहण न किया जा सके [को०]।

अप्रतिगृहीत—वि० [सं०] जिसका प्रतिग्रह न किया गया हो। जो लिया न गया हो।

अप्रतिग्रहण—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अप्रतिग्राह्य, अप्रतिगृहीत] १. दान न लेना। किसी वस्तु का ग्रहण न करना। २. विवाह न करना। कन्यादान का ग्रहण न करना।

अप्रतिग्राह्य—वि० [सं०] जो प्रतिग्रहण करने योग्य न हो। जो लेने योग्य न हो।

अप्रतिघ—वि० [सं०] १. अदम्य। अजेय। २. जिसे रोका न जा सके। अनिवार्य। ३. क्रोधविहीन। अक्रुद्ध [को०]।

अप्रतिघात—वि० [सं०] १. बिना प्रतिघात का। जिसका कोई प्रतिघात या विरोधी न हो। बेरोक। २. बेठोकर। बेचोट। धक्के से बचा हुआ।

अप्रतिद्वंद्व—वि० [सं० अप्रतिद्वन्द्व] जिसके मुकाबले का कोई न हो। बेजोड़ [को०]।

अप्रतिपक्ष—वि० [सं०] १. जिसका कोई विरोधी या स्पर्धी न हो। विरोधीविहीन। २. बेजोड़। असमान [को०]।

अप्रतिपण्य—वि०[सं०]जिसका विक्रयण या विनिमय न हो सके [को०]।

अप्रतिपत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० अप्रतिपन्न] १. प्रकृत अर्थ समझने की अयोग्यता। २. कर्तव्यनिश्चय का अभाव। क्या

करना चाहिए, इसका बोध न होना । ३. निश्चय का अभाव । ४. स्फूर्ति का अभाव [को०] । ५. असफलता [को०] । ६. जड़ता [को०] ।

अप्रतिपन्न—वि० [सं०] १. कर्तव्यज्ञानशून्य । २. अनिश्चित । अज्ञात । ३. जो संपन्न न हुआ हो । असंपन्न [को०] ।

अप्रतिबंध[1]—संज्ञा पुं० [सं० **अप्रतिबन्ध**][वि० **अप्रतिबद्ध**] रुकावट का न होना । स्वच्छंदता ।

अप्रतिबंध[2]—वि० १. प्रतिबंधरहित । निर्बाध । २. निर्विवाद प्राप्त । बिना किसी विवाद के सीधे प्राप्त, उत्तराधिकार [को०] ।

अप्रतिबद्ध—वि० [सं०] १. बेरोक । स्वतंत्र । स्वच्छंद । २. मनमाना ।

अप्रतिबल—वि० [सं०] बल या शक्ति में जिसके जोड़ का दूसरा न हो । बेजोड़ ताकतवाला [को०] ।

अप्रतिभ—वि० [सं०] १. प्रतिभाशून्य । चेष्टाहीन । उदास अप्रगल्भ । २. स्फूर्तिशून्य । सुस्त । मंद । उ०—हँसे सुलतान, और अप्रतिभ होती मैं जकड़ी हुई थी अपनी ही लाजशृंखला में ।—लहर, पृ० ८० । ३. मतिहीन । निर्बुद्धि । ४. लजालू । लजीला ।

अप्रतिभट[1]—वि० [सं०] वीरता में जिसका जोड़ न हो । अप्रतिम । उ०—अप्रतिभट वही एक अर्बुद सम महावीर ।—अपरा, पृ० ४५ ।

अप्रतिभट[2]—संज्ञा पुं० [सं०] बेजोड़ वीर या योद्धा [को०] ।

अप्रतिभा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. प्रतिभा का अभाव । २. न्याय में वह निग्रह स्थान जहाँ उत्तर पक्षवाला परपक्ष का खंडन न कर सके । ३. दब्बूपन ।

अप्रतिम—वि० [सं०] जिसके समान कोई दूसरा न हो । असदृश । अद्वितीय । अनुपम । बेजोड़ । उ०—यह ग्रंथरत्न वस्तुतः अपने रंग ढंग का अप्रतिम ठहरता है ।—रस क०, पृ० १३ ।

अप्रतिमान—वि० [सं०] अद्वितीय । बेजोड़ ।

अप्रतियोगी—वि० [सं० **अप्रतियोगिन्**] १. जिसका कोई सामना करनेवाला न हो । जिसका कोई प्रतिस्पर्धी या विरोधी न हो । २. जिसके समान दूसरा हिस्सा या भाग न हो [को०] ।

अप्रतिरथ[1]—वि० [सं०] जिसका मुकाबला करनेवाला कोई वीर योद्धा न हो [को०] ।

अप्रतिरथ[2]—संज्ञा पुं० अप्रतिम योद्धा या वीर [को०] ।

अप्रतिरव—वि० [सं०] निर्विरोध । निर्विवाद [को०] ।

अप्रतिरूप—वि० [सं०] १. जिसका कोई प्रतिरूप न हो । अद्वितीय अनुपम । २. जो अनुकूल रूप का या ठीक न हो [को०] ।

अप्रतिरोध—संज्ञा पुं० [सं] प्रतिरोधरहित । बेरोक । निर्बाध ।

अप्रतिरोध्य—वि० [सं०] जिसे रोका न जा सके । जिसका प्रतिरोध संभव न हो । उ०—वह अप्रतिरोध्य है, पर अंधी है, यह तो मैं नहीं मानूँगा ।—त्याग०, पृ० ४८ ।

अप्रतिवार्य—वि० [सं०] अनिवार्य । निश्चित । उ०—अंत में कैलास की प्राप्ति अप्रतिवार्य है ।—मृग०, पृ० ४४२ ।

अप्रतिवीर्य—वि० [सं०] अप्रतिम या बेजोड़ शक्तिवाला [को०] ।

अप्रतिशासन—वि० [सं०] १. एकतंत्र शासन । २. जिसका कोई विरोधी या प्रतिद्वंद्वी शासक न हो [को०] ।

अप्रतिषिद्ध[1]—वि० [सं०] अनिषिद्ध । संमत ।

अप्रतिषिद्ध[2]—संज्ञा पुं० [सं०] वास्तु विद्या में ६ भागों में विभक्त स्तंभपरिमाण के उस भाग का नाम जो ऊपर से गिनने पर दूसरा पड़े ।

अप्रतिष्ठ[1]—वि० [सं०] १. प्रतिष्ठाहीन । बेइज्जत । २. बेसहारा । तिरस्कृत । फेंका हुआ । ३. अस्थिर । ढुलमुल [को०] । ४. अप्रसिद्ध [को०] ।

अप्रतिष्ठ[2]—संज्ञा पुं० एक नरक का नाम [को०] ।

अप्रतिष्ठा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. प्रतिष्ठा का उलटा । अनादर । अपमान । २. अयश । अपकीर्ति । ३. अस्थिरता [को०] ।

अप्रतिष्ठित—वि० [सं०] १. जो प्रतिष्ठित न हो । तिरस्कृत । उ०—लाला ब्रजकिशोर कुछ ऐसे अप्रतिष्ठित नहीं हैं ।—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० ३४२ । २. जो स्थिर या सुव्यवस्थित न हो [को०] ।

अप्रतिसंख्य—वि० [सं० **अप्रतिसङ्ख्य**] जो ध्यान, दृष्टि या गणना में न आया हो [को०] ।

अप्रतिसंबद्धाभूमि—संज्ञा स्त्री० [सं० **अप्रतिसम्बद्धाभूमि**] कौटिल्य के अनुसार वह भूमि जो एक दूसरी से पृथक् हो ।

अप्रतिहत[1]—वि० [सं०] १. जो प्रतिहत न हो । जिसका विघात न हुआ हो । अटूट । उ०—आज भी यह विचारपरंपरा अप्रतिहत है ।—रस क०, पृ० ४५ । २. अपराजित । ३. बिना रोकटोक का । ४. संपूर्ण । समग्र । अनुसरण (को०) ।

अप्रतिहत[2]—संज्ञा पुं० अंकुश ।

अप्रतिहतगति—वि० [सं०] जिसकी गति रोकी न जा सके । निर्बाध गतिवाला । उ०—अप्रतिहतगति संस्थानों से रहता था जो सदा बढ़ा ।—कामायनी, पृ० २०६ ।

अप्रतिहतनेत्र[1]—संज्ञा पुं० [सं०] एक बौद्ध देवता [को०] ।

अप्रतिहतनेत्र[2]—वि० निर्बाध दृष्टिवाला [को०] ।

अप्रतिहतव्यूह—संज्ञा पुं० [सं०] कौटिल्य के अनुसार वह असंहत व्यूह जिसमें हाथी, घोड़े, रथ तथा प्यादे एक दूसरे के पीछे हों ।

अप्रतिहार्य—वि० [सं०] जिसे रोका न जा सके [को०] ।

अप्रतीक—वि० [सं०] १. अंग या शरीर से रहित । २. ब्रह्म का विशेषण [को०] ।

अप्रतीकार—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अप्रतिकार' ।

अप्रतीकारी—वि० [सं० **अप्रतीकारिन्**] दे० 'अप्रतिकारी' ।

अप्रतीघात—वि० [सं०] दे० 'अप्रतिघात' ।

अप्रतीत—वि० [सं०] १. अप्रसन्न । २. अगम्य । ३. निर्विरोध । ४. दुर्बोध्य । एक शब्ददोष [को०] ।

अप्रतीतत्व—संज्ञा पुं० [सं०] दुरूह पारिभाषिक शब्दों का काव्यगत प्रयोग । एक काव्यदोष । उ०—आचार्यों ने पारिभाषिक शब्दों के प्रयोग को अप्रतीतत्व दोष माना है ।—रस०, पृ० ४८ ।

अप्रतीति—संज्ञा स्त्री० [सं०] अर्थ या रूप आदि का समझ में न आना या स्पष्ट न होना । २. विश्वास का अभाव । अविश्वास । अनिश्चय । उ०—होई कि नहीं सोच मति प्राँनहि अप्रीति हृदये तें टारि । करि बिस्वास प्रतीति आनि उर यह आस्तिक्य बुद्धि निरधारि ।—सुंदर ग्रं० पृ० ३८ ।

अप्रतीयमान—वि० [सं०] जो प्रतीयमान वा निश्चित न हो। अनिश्चित।

अप्रतुल[1]—वि० [सं०] १. जिसकी तुलना वा मान न हो सके। बेहद। २. अनुपम। बेजोड़।

अप्रतुल[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १. वजन या भार का अभाव। २. अभाव। आवश्यकता [को०]।

अप्रत्त—वि० [सं०] जो प्रदान न किया गया हो। न लौटाया हुआ [को०]।

अप्रत्ता—संज्ञा स्त्री० [सं०] कुमारी। कन्या जिसका विवाह न हुआ हो [को०]।

अप्रत्यक्ष—वि० [सं०] १. जो प्रत्यक्ष न हो। परोक्ष। २. छिपा। गुप्त। ३. अज्ञात [को०]। ४. अनुपस्थित [को०]।

अप्रत्यनीक—संज्ञा पुं० [सं०] वह काव्यालंकार जिसमें शत्रु के जीतने के सामर्थ्य के कारण उससे संबंध रहनेवाली वस्तुओं का तिरस्कार न किया जाय। जैसे—नृप यह पीड़त है परहि, नहि पर प्रजा मुरार। राहु शशी को ग्रसत है, नहिं तारन जु निहार (शब्द०)।

अप्रत्यय[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. अविश्वस्त। भरोसे का अभाव। २. (व्याकरण में) वह जो प्रत्यय न हो [को०]।

अप्रत्यय[2]—वि० १. विश्वासरहित। अविश्वास। २. ज्ञानहीन। बोधरहित। ३. (व्याकरण) प्रत्ययशून्य [को०]।

अप्रत्याशित—वि० [सं०] जिसकी आशा न रही हो। असंभावित। अचानक। आकस्मिक। उ०—उसमें क्षिप्रगति के साथ अप्रत्याशित विकास होना चाहिए।—स० शास्त्र, पृ० १८२।

अप्रदुग्ध—वि० पूरी तरह दुही हुई। दुग्धरहित [को०]।

अप्रधान[1]—वि० [सं०] जो प्रधान वा मुख्य न हो। गौण। साधारण। सामान्य।

अप्रधान[2]—संज्ञा पुं० गौण कार्य [को०]।

अप्रधृष्य—वि० [सं०] जिसे दबाया या हटाया न जा सके। अजेय[को०]।

अप्रबंध—संज्ञा पुं० [सं० अप्रबन्ध] प्रबंध का अभाव। अव्यवस्था। कुप्रबंध। उ०—ऐसे अप्रबंध, फूट और स्वेच्छाचार की हवा चली कि लोग आपस में कट मरे।—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० ३३३

अप्रबल[1]—वि० [हिं०] दे० 'अपरबल'। उ०—पाणी माहै प्रजली भई अप्रबल आगि। बहति सलिता रहि गई मंछ रहे जल त्यागी। कबीर ग्रं०, पृ० १२।

अप्रबल[2]—वि० [सं० अ + प्रबल] जो प्रबल न हो। दुर्बल। कमजोर।

अप्रभ—वि० [सं०] १. कांति या तेजस्विताहीन। हतप्रभ। २. तुच्छ। नीच [को०]।

अप्रभु—वि० [सं०] १. अधिकार या प्रभावहीन। २. असमर्थ। अयोग्य [को०]।

अप्रभूति—संज्ञा स्त्री० [सं०] स्वल्प प्रयास [को०]।

अप्रमत्त—वि० [सं०] प्रमाद या लापरवाही से रहित। सावधान। सतर्क [को०]। उ०—आप समझी जाती है अटूट, अप्रमत्त और अनिवार्य।—सुखदा, पृ० ४१।

अप्रमद—वि० [सं०] आनंदहीन। उत्साहरहित। खिन्न। उदास [को०]।

अप्रमय—वि० [सं०] १. अनिश्वर। असीम। अप्रमेय [को०]।

अप्रमा—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रमा का न होना। भ्रांत ज्ञान [को०]।

अप्रमाण[1]—वि० [सं०] १. जो प्रमाणरूप न हो। अप्रामाणित। २. बिना सबूत का। साक्षीरहित। ३. अनधिकृत। अविश्वस्त। ४. असीम। अपरिमित [को०]।

अप्रमाण[2]—संज्ञा पुं० १. जो प्रमाण न बन सके। २. अप्रासंगिकता।

अप्रमाद[1]—वि० [सं०] प्रमादरहित। अनवरत। उ०—बहती थी श्यामल घाटी में निर्लिप्त भाव से अप्रमाद।—कामायनी, पृ० १६७।

अप्रमाद[2]—संज्ञा पुं० सावधानता। सतर्कता। जागरूकता [को०]।

अप्रमित—वि० [सं०] १. बेनाप। असीमित। २. अधिकारी द्वारा जो प्रमाणित न हो [को०]।

अप्रमेय—वि० [सं०] जो नापा न जा सके। अपरिमित। अपार। अनंत। उ०—तू न अच्छय बाण स्वच्छ अभेद लै तनत्रान को। आइयो रणभूमि मैं करि अप्रमेय प्रमान को।—राम चं०, पृ० १३३।

अप्रमोद—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रसन्नता का अभाव। २. कष्टनिवारण की अक्षमता [को०]।

अप्रयत्न[1]—वि० [सं०] प्रयत्नहीन। उत्साहहीन। उदासीन। [को०]।

अप्रयत्न[2]—संज्ञा पुं० [सं०] प्रयत्न का अभाव। काहिलपन। औदासीन्य [को०]।

अप्रयुक्त—वि० [सं०] जिसका प्रयोग न हुआ हो। जो काम में न लाया गया हो। अव्यवहृत। उ०—हिंदी में अप्रयुक्त संस्कृत शब्दों का प्रयोग भी उनकी भाषा की रुखाई को बढ़ाने में ही मदद करता है।—रामचं० (भू०), पृ० ३४। २. अप्रचलित। ३. शब्दादि का अन्यथा या गलत प्रयोग। ४. दुर्लभ या विरल प्रयोग [को०]।

अप्रयुक्तत्व—संज्ञा पुं० [सं०] वह शब्द जो कोशगत और शुद्ध होते हुए भी व्यवहृत न हो।

विशेष—इस प्रकार के शब्दों का प्रयोग साहित्यशास्त्र में दोष माना गया है।

अप्रयोग—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रयोग का अभाव। २. दुष्प्रयोग। ३. अव्यवहार [को०]।

अप्रलंब—वि० [सं० अप्रलम्ब] फुर्तीला। संनद्ध। तत्पर [को०]।

अप्रवर्तक—वि० [सं०] १. कार्य के लिये प्रेरणा न देनेवाला। निष्क्रिय। २. अटूट। अविच्छिन्न [को०]।

अप्रवर्ती—वि० [सं० अप्रवर्तिन्] दे० 'अप्रवर्तक'।

अप्रवानी(पु)—वि० [सं० अ + प्रमाण, प्रा० प्रमाण, अप० पवाण + ई (प्रत्य०)] अप्रमेय। अज्ञेय। उ०—जड़ चेतन द्वै भेद हैं, ऐसे समुझानी। जड़ उपजै बिनसै सदा चेतन अप्रवानी।—सुंदर ग्रं०, पृ० २०७।

अप्रवीन(पु)—वि० [सं० अप्रवीण] जो प्रवीन न हो। अदक्ष। उ०—ऊधो! प्रीति करि निरमोहियन सों को न भयो दुखदीन। सुनत समुझत कहत हम सब भई अति अप्रवीन।—तुलसी ग्रं० पृ० ४४९।

अप्रवृत्त—वि० [सं०] १. जो क्रियारत न हो। निष्क्रिय। २. असंनद्ध [को०]।

अप्रवृत्तवध—वि० [सं०] कौटिल्य के अनुसार जिसकी ओर से आक्रमण न हुआ हो।

अप्रवृत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. प्रवृत्ति का अभाव। चित्त का झुकाव न होना। २. किसी सिद्धांत वा सूत्र का न लगना। किसी विचार का प्रयुक्त स्थान पर न खपना। ३. अप्रचार। ४. कोष्ठबद्धता [को०]।

अप्रवेश्य—वि०[सं०] प्रवेश न करने योग्य। जिसमें प्रवेश न हो सके। उ०—विदा हाय ! मेरे सुंदर, अप्रवेश्य सा अंधकारमय हुआ आज यह मेरा घर।—कुणाल, पृ० १४।

अप्रशंसनीय—वि० [सं०] निंदनीय। निंदा के योग्य।

अप्रशस्त—वि०[सं०] १. जो प्रशस्त न हो। नीच। कुत्सित। बुरा। २. क्षीण (को०)। ३. अविहित। निषिद्ध [को०]।

अप्रशिक्षित—वि० [सं०] जिसे किसी कार्य की विशेष शिक्षा न मिली हो। जो प्रशिक्षित न हो।

अप्रसंग[1]—संज्ञा पुं० [सं० **अप्रसङ्ग**] १. आसक्ति, प्रयोजन या संबंध का अभाव। २. बेमौका [को०]।

अप्रसंग[2]—वि० १. संबंधरहित। २. प्रसंगहीन। बेमौका।

अप्रसक्त—वि० [सं०] १. जो आशक्त न हो। बेलगाव। २. असंबद्ध। ३. निर्बाध। बिना रोक टोक [को०]।

अप्रसक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] अनुराग या प्रवृत्ति का अभाव। आसक्तिहीनता [को०]।

अप्रसन्न[1]—वि० [सं०] जो प्रसन्न न हो। असंतुष्ट। नाराज। २. खिन्न। दुःखी। उदास। विरक्त। ३. पंकिल। कीचड़ से युक्त।

अप्रसन्न[2]—संज्ञा पुं० ब्याई हुई गाय का सात दिन के बाद दूध।

अप्रसन्नता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. नाराजगी। असंतोष। २. रोष। कोप। ३. खिन्नता। उदासी।

अप्रसाद—संज्ञा पुं० [सं०] प्रसन्नता, कृपा या अनुकूलता का अभाव। [को०]।

अप्रसिद्ध—वि० [सं०] १. जो प्रसिद्ध न हो। अविख्यात। जिसको लोग न जानते हों। २. गुप्त। छिपा हुआ। तिरोहित।

अप्रसिद्धि—संज्ञा स्त्री० [सं०] ख्याति वा प्रसिद्धि का अभाव। उ०—अप्रसिद्धि मात्र उपमा का कोई दोष नहीं।—रस०, पृ० ३४६।

अप्रसूत—वि० संततिविहीन। संतानरहित [को०]।

अप्रसूता—संज्ञा स्त्री०[सं०] स्त्री, जिसे बच्चा न हुआ हो। बंध्या नारी। बाँझ।

अप्रस्ताविक—वि० [सं०] [वि० **स्त्री० अप्रस्ताविकी**] जो मूल विषया का या उससे संबद्ध न हो। अप्रास्ताविक [को०]।

अप्रस्तुत—वि० [सं०] १. जो प्रस्तुत वा मौजूद न हो। अनुपस्थित। २. जो प्रसंगप्राप्त न हो। अप्रासंगिक। जिसकी चर्चा न आई हो। ३. जो तैयार न हो। जो उद्यत न हो। ४. गौण। अप्रधान। उ०—इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि अप्रस्तुत (उपमान) भी उसी प्रकार के भाव का उत्तेजक हो।—रस०, पृ० ३४६।

अप्रस्तुतप्रशंसा—संज्ञा [सं०] वह अर्थालंकार जिसमें अप्रस्तुत के कथन द्वारा प्रस्तुत का बोध कराया जाय।

विशेष—इसके पाँच भेद हैं—(क) कारणनिबंधना—जहाँ प्रस्तुत वा इष्ट कार्य का बोध कराने के लिये अप्रस्तुत कारण का कथन किया जाय। जैसे—लीनो राधा मुख रचन, विधि ने सार तमाम। तिहि मग होय अकाश यह शशि में दीखत श्याम।—मतिराम (शब्द०)। (ख) कार्यनिबंधना—जहाँ कारण इष्ट हो और कार्य का कथन किया जाय। जैसे—तू पद नख की दुति कछुक, गइ धोवन जल साथ। तिहि कन मिलि दधि मथन में चंद्र भयो है नाथ।—मतिराम (शब्द०)। (ग) विशेषनिबंधना—जहाँ सामान्य इष्ट हो और विशेष का कथन किया जाय। जैसे—लालन सुरतरु धनद हू, अनहितकारी होय। तिनहूँ को आदर न ह्वै, यों मानत बुध लोय।—मतिराम (शब्द०)। (घ) सामान्यनिबंधना—जहाँ बिशेष कहना इष्ट हो पर सामान्य का कथन किया जाय। जैसे—सीख न मानै गुरन की, अहितहि हित मन मानि। सो पछतावै तासु फल, ललन भए हित हानि।—मतिराम (शब्द०)। (च) सारूप्यनिबंधना—जहाँ अभीष्ट वस्तु का बोध उसके तुल्य वस्तु के कथन द्वारा कराया जाय। जैसे—बक धरि धीरज कपट तजि, जो बनि रहै मराल। उघरै अंत गुलाब कवि, अपनी बोलनि चाल।—गुलाब (शब्द०)।

अप्रहत—वि० [सं०] १. कोरा (कपड़ा)। जो (वस्त्र) पहना न गया हो। २. जो (भूमि) जोती न गई हो। बंजर। ३. ३. अक्षत। अछूता (को०)। ४. जो मारा या नष्ट न किया गया हो। यथावत्।

अप्राकरणिक—वि० [सं०] [वि० स्त्री० **अप्राकरणिका, अप्राकरणिकी**] विषय या प्रकरण जिसका लगाव न हो। असंगत [को०]।

अप्राकृत—वि० [सं०] १. जो प्राकृत न हो। संस्कृत। २. अस्वाभाविक। ३. असामान्य। असाधारण। ४. जो प्राकृत भाषा का या उससे संबद्ध न हो [को०]।

अप्राकृतिक—वि० [सं०] स्वभाव या प्रकृति के विरुद्ध। अस्वाभाविक। अलौकिक [को०]।

अप्राख्य—वि० [सं०] मुख्य नहीं। गौण। साधारण [को०]।

अप्राचीन—वि० [सं०] १. जो प्राचीन न हो। आधुनिक। २. पौर्वात्य नहीं। पाश्चात्य [को०]।

अप्राज्ञ—वि० [सं०] अज्ञानी। अशिक्षित। प्रज्ञाहीन [को०]।

अप्राण[1]—वि० [सं०] १. बिना प्राण का। निर्जीव। मृत। २. ईश्वर का एक विशेषण।

अप्राण[2]—संज्ञा पुं० ईश्वर।

अप्राप्त—वि० [सं०] १. जो प्राप्त न हो। जो मिला न हो। अलब्ध। दुर्लभ। अलभ्य। २. जिसे प्राप्त न हुआ हो। जैसे—अप्राप्तवयस्क, अप्राप्तयौवना, अप्राप्तव्यवहार। ३. अप्रत्यक्ष। परोक्ष। अप्रस्तुत। ४. अनागत जो आया न हो। ५. जिसकी उम्र विवाह के योग्य न हो (को०)।

अप्राप्तकाल—संज्ञा पुं० [सं०] १. आनेवाला समय। भविष्य। २. अनवसर। उपयुक्त समय के पहले का समय। ३. न्याय में

तर्क के समय क्षोभ के कारण प्रतिज्ञा, हेतु और उदाहरण आदि को यथाक्रम न कहकर अंडबंड कह जाने का दोष। ४.कमसिन [को०]।

अप्राप्तयौवन—वि० [सं०] [वि० स्त्री० **अप्राप्तयौवना**] जिसकी युवास्था अभी न आई हो। जो जवान न हो। किशोर [को०]।

अप्राप्तवय—वि०[सं० **अप्राप्तवयस्**]१. नाबालिग। १. कानून की दृष्टि ने सामाजिक जिम्मेदारी के अयोग्य। १६ वर्ष के पूर्व का।

विशेष—अब उम्र की यह अवधि पुरुषों के लिए १८ और स्त्रियों के लिए १६ वर्ष मानी जाती है केवल मतदान के लिये २१ वर्ष है।

अप्राप्तव्यहार—वि० [सं०] १६ वर्ष के भीतर का बालक जिसे धर्मशास्त्र के अनुसार जायदाद पर स्वत्व न प्राप्त हुआ हो। नाबालिग।

अप्राप्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. उपलब्धि या लाभ का अभाव। २. नियम कानून से असिद्ध। ३. अनहोनी। ४.जो लागू न हो। अनुपपत्ति [को०]।

अप्राप्तिसम—संज्ञा पुं० [सं०] न्याय में जाति या असत् उत्तर के चौबीस भेदों में से एक।

विशेष—यदि किसी के उत्तर में कहा जाय—'तुम्हारा हेतु और साध्य दोनों एक आधार में वर्तमान हैं या नहीं? यदि वर्तमान हैं तो दोनों बराबर हैं। फिर तुम किसे हेतु कहोगे और किसे साध्य?' तो इसे प्राप्तिसम कहेंगे। और यदि साथ ही इतना और कहा जाय —'यदि दोनों एक आधार में नहीं रहते तो तुम्हारा हेतु साध्य का साधन कैसे कर सकता है?' तो इसे अप्राप्तिसम कहेंगे।

अप्राप्य—वि० [सं०] जो प्राप्त न हो सके। जो मिले न। अलभ्य। उ०—जो यों निज प्राप्य छोड़ देंगे। अप्राप्य अनुग उनके लेंगे।—साकेत, पृ० १४७।

अप्रामाणिक—वि० [सं०][वि० स्त्री० **अप्रामाणिकी**] १. जो प्रमाणसिद्ध न हो। ऊटपटाँग। २.जिसपर विश्वास न किया जा सके।

अप्रामाण्य—संज्ञा पुं० [सं०] प्रमाण या सबूत का अभाव [को०]।

अप्रावृत—वि० [सं०] जो ढँका या परिच्छिन्न न हो। अनावृत। खुला हुआ [को०]।

अप्राशन—संज्ञा पुं० [सं०] आहार ग्रहण न करना। अनशन [को०]।

अप्रासंगिक—वि० [सं० **अप्रासङ्गिक**] जो प्रसंगप्राप्त न हो। प्रसंगविरुद्ध। जिसकी कोई चर्चा न हो।

अप्रास्तविक—वि० [सं०] दे० 'अप्रस्ताविक' [को०]।

अप्रियंवद—वि० [सं०] कटुभाषी। कठोर शब्द कहनेवाला [को०]।

अप्रिय¹—वि० [सं०] [वि० स्त्री० **अप्रिया**] १. जो प्रिय न हो। अरुचिकर। जो न रुचे। जो पसंद न हो। उ०—सत्य कहहु अरु प्रिय कहहु अप्रिय सत्य न भाखा।—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० १८७। २. जो प्यारा न हो। जिसकी चाह न हो। उ०—सुनि राजा अति अप्रिय बानी।—मानस १।२०८। ३.शत्रुतापूर्ण। अमित्र या शत्रुवत् [को०]।

अप्रिय²—संज्ञा पुं० [सं०] १.वैरी। शत्रु। २.बेंत। वेतस। निचुल।

यौ०—**अप्रियंवद। अप्रियकर। अप्रियकारी। अप्रियवादी।**

अप्रियकर—वि०[सं०]जो रुचिकर न हो। अहितकर। अमैत्रीपूर्ण [को०]।

अप्रियकारक—वि० [सं०] दे० 'अप्रियकर'।

अप्रियकारी—वि० [सं० **अप्रियकारिन्**][वि० स्त्री० **अप्रियकारिणी**] दे० 'अप्रियकर' [को०]।

अप्रियता—संज्ञा स्त्री० [सं० **अप्रिय+ता (प्रत्य०)**] बुराई। उ०—हां आर्ये प्रिय की अप्रियता करने को कहती हो तुम।—साकेत, पृ० ३८४।

अप्रियभागी—वि० [सं० **अप्रियभागिन्**] [वि० स्त्री० **अप्रियभागिनी**] दुर्भाग्यग्रसित। अभागा।

अप्रियवादी—वि०[सं० **अप्रियवादिन्**][वि० स्त्री० **अप्रियवादिनी**] कड़वी बात कहनेवाला। कटुवादी। कठोरवक्ता [को०]।

अप्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] शृंगी मत्स्य [को०]।

अप्रीति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. स्नेह वा प्रेम का अभाव। चाह का न होना। २.अरुचि। ३.विरोध। वैर।

अप्रीतिकर—वि० [सं०] वि० स्त्री० **अप्रीतिकारी**] १. अप्रिय। नापसंद। २. कटु। कठोर अननुकूल [को०]।

अप्रेंटिस—संज्ञा पुं० [अं० **ऐप्रेंटिस**] वह पुरुष जो किसी कार्य में कुशलता प्राप्त करने के लिये किसी कार्यालय में बिना वेतन लिये वा अल्प वेतन पर काम करे। उम्मेदवार।

अप्रेत—वि० [सं०] न गया हुआ। अगत। मृत नहीं [को०]।

अप्रेतराक्षसी—संज्ञा स्त्री० [सं०] तुलसी का पौधा [को०]।

अप्रैल—संज्ञा पुं० [अं० **एप्रिल**] एक अंगरेजी महीना जो प्रायः चैत में पड़ता है। यह महीना ३० दिन का होता है।

अप्रैलफूल—संज्ञा पुं० [अं० **एप्रिलफूल**] जो अप्रैल महीने के पहले दिन हँसी में बेवकूफ बनाया जाय।

विशेष—इस दिन योरपवाले हँसी दिल्लगी करना उचित मानते हैं।

अप्रोक्ष(पु)—वि०[सं० **अपरोक्ष**] जो परोक्ष न हो। प्रत्यक्ष। दूर न हो। उ०—देहई कौं बंध मोक्ष देहई अप्रोक्ष प्रोक्ष।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ५६२।

अप्रोषित—वि० [सं०] जो चला न गया हो। जो अनुपस्थित न हो। जो उपस्थित हो [को०]।

अप्रौढ़—वि० [सं० **अप्रौढ**] १. जो पुष्ट न हो। कमजोर २. कच्ची उम्र का। नाबालिग। ३.अप्रगल्भ। अनुद्धत [को०]।

अप्रौढ़ा—संज्ञा स्त्री० [सं० **अप्रौढा**] १.कन्या। कुमारी। २.विवाहिता किंतु अरजस्वला कन्या।

अप्लव—वि० [सं०] १.जलयानहीन। २. जो तैरता न हो। न तैरनेवाला [को०]।

अप्सरःपति—संज्ञा पुं० [सं०] अप्सराओं के नाथ। इंद्र [को०]।

अप्सर¹—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अप्सरा'।

अप्सर²—स्त्री० पुं० [सं०] जलजंतु। जलचर [को०]।

अप्सरा—संज्ञा स्त्री० [सं० **अप्सरस्**] १. अंबुकण। वाष्पकण। २. वेश्याओं की एक जाति ३. स्वर्ग की वेश्या। इंद्र की सभा में नाचनेवाली देवांगना। परी।

विशेष—इसलिये अप्सरा कहलाती हैं कि समुद्र मंथन के समय उसमें से निकली थीं।

अप्सरातीर्थ—संज्ञा पुं० [सं०] अप्सराओं के स्नान का पवित्र तालाब या स्थल [को०]।

अप्सरि—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अप्सरा'। उ०—कभी स्वर्ग की थी तुम अप्सरि, अब वसुधा की बाल।—गुंजन, पृ० ८७।

अप्सरीⓅ—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अप्सरा'।

अप्सु—वि० [सं०] १. आकार या विग्रहहीन। अरूप। २. कुरूप। असुंदर [को०]।

अप्सुक्षित—संज्ञा पुं० [सं०] स्वर्ग एवं पृथ्वी के बीच अंतरिक्षनिवासी देवता [को०]।

अप्सुचर—वि० [सं०] पानी का जंतु। जलचर।

अप्सुप्रवेशन—संज्ञा पुं० [सं०] कौटिल्य के अनुसार एक प्रकार का दंड जिसमें अपराधी जल में डुबाकर मारा जाता था।

अप्सुयोनि[१]—वि० [सं०] जल से उत्पन्न [को०]।

अप्सुयोनि[२]—संज्ञा पुं० [सं०] १. अश्व। घोड़ा। २. बेंत या नरकुल [को०]।

अफंड—संज्ञा पुं० [सं० अ + स्पन्द; अप० फंड] १. बखेड़ा। फरफंद। अड़ंगा। उ०—(क) महाजनों ने चैनसुखदास को मिलाकर यह भारी अफंड खड़ा कर दिया।—सुंदर ग्रं०, पृ० १८६।

अफगन—वि० [फा० अफ़गन] गिरनेवाला। जैसे शेर अफगन।

अफगान—संज्ञा पुं० [फा० अफ़गान] अफगानिस्तान का रहनेवाला व्यक्ति। काबुली। पठान।

अफगानिस्तान—सं० [फा० अफ़गानिस्तान] भारत के पश्चिमोत्तर-स्थित एक प्रदेश जिसकी राजधानी काबुल है।

अफगानी—वि० [फा० अफ़गान + ई (प्रत्य०)] अफगानिस्तान का। अफगानिस्तान से संबद्ध।

अफगार—वि० [फा० अफगार] घायल। जख्मी। उ०—दिल किसके हाथ दीजे, दिल अफगार कहाँ है?—कबीर ग्रं०, पृ० ३२३।

अफजल—वि० [अ० अफ़ज़ल] १. बहुत बढ़िया। उत्तमतर। २ बहुत अधिक। बहुत ज्यादा [को०]।

अफजूँ[१]—संज्ञा पुं० [फा० अफ़जूँ] वृद्धि। अधिकता।

अफजूँ[२]—वि० अवशेष। फाजिल। जो आवश्यकता से अधिक हो। उबरा हुआ। खर्च से बचा हुआ।

अफताब†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आफ़ताब'। उ०—(क) भरत जहँ नूर जहूर असमान लौं रूह अफताब गुरु कीन्ह दया।—भीखा ग्रं०, पृ० ६३।

अफताबा†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आफ़ताब'।

अफताबी†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'आफ़ताबी'।

अफतार—संज्ञा पुं० [अ० इफ्तार, फा० अफ्तार] रोजा खोलना। रोजा खोलने के लिये कुछ खाना पीना [को०]।

अफतालोⓅ—संज्ञा पुं० [फा० अफ़ताल] अगले पड़ाव पर पहुँचकर ठहरने की व्यवस्था करनेवाले कर्मचारी या सेवक।

अफनाना—क्रि० अ० [सं० उत् + स्फार, स्फाल, हिं० उफनाना] उबाल खाना। उत्तेजित होना। घबराना। उ०—द्रौपदी कहति अफनाइ रजपूती सबै, उतरी हमारी सारी माहिं कफनाइगी।—रत्नाकर, भा० २, पृ० ८।

अफयूँⓅ—संज्ञा स्त्री० [अ० अफ़यून] अफीम। अफयून। उ०—अफ्यूँ मदक चरस के व चंडू के बदौलत। प्यारों के सदा रहते हैं रुखसार बसंती।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ७६२।

अफयून—संज्ञा स्त्री० [अ० अफ़यून] दे० 'अफीम'।

अफयूनी—वि० [अ० अफ़यून] दे० 'अफीमची'।

अफरन†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] अफरना। पेट का फूलना।

अफरना—क्रि० अ० [सं० आ + स्फार = प्रचुर] १. पेट भरकर खाना। भोजन से तृप्त होना। अघाना। उ०—प्रगट मिले बिनु भावतें कैसे नैन अघात। भूखे अफरत कहुँ सुने, सुरति मिठाई खात।—रसनिधि (शब्द०)। २. पेट का फूलना। उ० (क) लेइ विचार लागा रहे दादू जरता जाय। कबहूँ पेट न अफरई भावइ तेता खाय।—दादू (शब्द०)। (ख) अफरी बीबी दै मारी (रोटी)। ३. ऊबना। उ०—हम उनकी यह लीला देखते देखते अफर गए (शब्द०)।

अफरा—संज्ञा पुं० [सं० आ + स्फार = प्रचुर] १. फूलना। पेट फूलना। २. अजीर्ण या वायु से पेट फूलने का रोग।

अफरा तफरी—संज्ञा स्त्री० [अ० अफ़रा तफ़री] १. उलटफेर। गड़-बड़। लुटपोट। २. जल्दी। हड़बड़ी। बदहवासी।

अफरानाⓅ—क्रि० अ० [हिं० अफरना या सं० स्फार] पेट भरने से संतुष्ट होना। अघाना। उ०—गदहा थोरे दिन में खूँद खाई इतरात। अफरान्यो मारन करयो एराकी को लात।—गिरिधर (शब्द०)।

अफराव†—संज्ञा पुं० [हिं० अफरना] पेट फूलने की स्थिति, क्रिया या भाव।

अफरीदी—संज्ञा पुं० [फा० अफ़रीद] पठानों की एक जाति जो पेशावर के उत्तर की पहाड़ियों में रहती है।

अफल[१]—वि० [सं०] १. जिसमें फल न हो। बिना फल का। फलहीन। निष्फल। २. व्यर्थ। निष्प्रयोजन। उ०—परमारथ स्वारथ साधन भय अफल सकल, नाहिं सिद्धि सई है।—तुलसी ग्रं०, पृ० ५२८। ३. बांझ। बंध्या।

अफल[२]—संज्ञा पुं० १. झाऊ का वृक्ष। २. बकरा।

अफला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. भूम्यामलकी। भुँइ आँवला। २. घृतकुमारी। घीक्कार।

अफलातून—संज्ञा पुं० [फा० अफ़लातून] १. यूनान का एक प्रसिद्ध विद्वान् और दार्शनिक जो अरस्तू का गुरु और सुकरात का शिष्य था। २. बड़प्पन की शेखी करनेवाला व्यक्ति।

मु०—**अफलातून के नाती** = दोखी करनेवाला। तीसमार बनने वाला। डींग मारनेवाला।

अफलित—वि० [सं०] १. जिसमें फल न लगे। फलहीन। २. निष्फल। परिणामरहित।

अफल्गु—वि० [सं०] उत्पादक। लाभदायक। जो फल्गु या सारहीन न हो [को०]।

अफवा—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अफवाह'। उ०'''इसी तरह यह सब बातें अफवा की जहरी हवा में मिलकर चारो ओर उड़ने लगीं।—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० ३६१।

अफवाज—संज्ञा स्त्री० [अ० फ़ौज, का बहुव० अफ़वाज] सेना। फौज। उ०—तूँ जूनो परणे नवी, असुरारी अफवाज।—बाँकीदास ग्रं०, भा २, पृ० १००।

अफवाह—संज्ञा पुं० [अ० अफ़वाह] १. उड़ती खबर। बाजारू खबर। किंवदंती। २. मिथ्या समाचार। गप्प।

मु०—**अफवाह उड़ना** = निराधार समाचार फैलाना, अफवाह उड़ाना या फैलाना = १. झूठी बात प्रचारित करना। २, बदनाम करना।

अफशाँ—संज्ञा स्त्री० [फा० अफ़शाँ] १, बादले के छोटे छोटे टुकड़े अथवा सुनहला या रूपहला चूर्ण जो स्त्रियों के मुख पर शोभा के लिये छिड़के जाते हैं। उ०—कलानिधि के अमर ललाट पर अफशाँ।—प्रेमधन, भा० २, पृ० १७।

अफशा—संज्ञा पुं० [फा० अफ़शा] प्रकाश। प्रकट। जाहिर।

यौ०—**अफशायराज** = गुप्त मंत्रणा का प्रकाश। छिपी बात को खोल देना।

अफसंतीन—संज्ञा पुं० [यू०] औषध के कार्य में प्रयुक्त एक कड़ुआ और नशीला पौधा।

विशेष—यह पौधा काश्मीर में ५००० से ७००० फुट की ऊँचाई पर होता है। इससे हरे या पीले रंग का तेल निकाला जाता है जो झारदार तथा कड़ुआ होता है। विशेष मात्रा में प्रयोग करने से यह तेल विषैला हो जाता है। इसकी पत्ती विशेषकर यूनानी दवाओं के काम आती है।

अफसर—संज्ञा पुं० [अं० आफिसर] [संज्ञा अफसरी] १. प्रधान। मुखिया। अधिकारी। २, हाकिम। प्रधान कर्मचारी।

यौ०—**अफसरे आला** = प्रधान अधिकारी। सर्वोच्च अधिकारी।

अफसरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० अफसर + ई (प्रत्य०)] १. अधिकार। प्रधानता। २. हुकूमत। शासन।

क्रि० प०—करना।—जताना।

अफसाना—संज्ञा पुं० [फा० अफ़सानह्] किस्सा। कहानी। कथा। आख्यायिका।

क्रि० प्र०—छिड़ना।—छेड़ना।—रह जाना।—सुनना —सुनाना

यौ०—अफसानागो = कहानी कहनेवाला।

अफसानानवीस, अफसानानिगार—१. कहानीकार। कथालेखक। २. उपन्यासलेखक।

अफसूँ—संज्ञा पुं० [फा० + अफ्सूँ] जादू टोना। अभिचार। मायाकर्म। इंद्रजाल [को०]।

अफसोस—संज्ञा स्त्री० [फा० अफ़सोस] १. शोक। रंज। २. पश्चात्ताप। खेद। पछतावा। दुःख।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

अफीडेविट—संज्ञा स्त्री० [अ० ऐफीडेविट] १. हलफ। शपथ। २. हलफनामा।

अफीम—संज्ञा स्त्री० [यू० ओपियम, अ० अफयून, फा० अफ्यून] औषध और नशे के रूप में प्रयुक्त होनेवाली पोस्ते की ढेंढ़ की गोंद।

विशेष—यह काछकर इकट्ठी की जाती है। यह कड़वी, मादक और स्तंभक होती है। इसके खाने से कोष्ठबद्ध होता है और नींद आती है। विशेष मात्रा में यह विषैली और प्राणघातक हो जाती है। इसके लेप से पीड़ा दूर होती है और सूजन उतर जाती है। इसका प्रयोग संग्रहणी, अतिसारादि में होता है। वीर्यस्तंभन की औषधियों में भी इसका प्रयोग होता है। इसके खानेवाले झपकी लेते हैं और दूध, मिठाई आदि पर बड़ी रुचि रखते हैं। यह नजले को दूर करती है। और वृद्धावस्था में फुर्ती लाती है।

अफीमची—संज्ञा पुं० [हिं० अफीम + तु० ची (प्रत्य०)] अफीम खानेवाला। वह पुरुष जिसे अफीम खाने की लत हो।

अफीमी—संज्ञा पुं० [हिं० अफीम + इ (प्रत्य०)] अफीम खानेवाला। अफीमची।

अफीर—संज्ञा पुं० [अ० अफ़ीर] प्रतिवेशी। पड़ोसी। उ०—चले साथ ले मर्दु माने अफीर।—कबीर ग्रं०, पृ० १३१।

अफुल्ल—वि० [सं०] अविकसित। जो खिला न हो। बेखिला।

अफू—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अफीम'।

अफेन[१]—वि० [सं०] जिसमें फेन न हो। फेनरहित। बिना झाग का।

अफेन[२](पु)—संज्ञा पुं० [सं० अहिफेन] अफीम।

अफोट—वि० [सं० आ + स्फोट] विदारित। खंडित। उ०—रम्य अरम्य करी सु धरन्निय। रहे मठ कोट अफोट करन्निय।—पृ० रा०, १।३६०।

अपफना(पु)—क्रि० स० [सं० अर्पण पा० अप्पण] दे देना, सौंपना। अर्पित करना। उ०—पुन्नीम पुत्र अफ्फउँ पहुमि, इमि च्यंतनु मन मह करिय।—पृ० पृ० रा० (उद०), पृ० २११।

अफ्शा—वि० [फा० अफ़शा] दे० 'अफशा'। उ०—अब जिद करने से राज अफ्शा होता है। मगर क्या करें।—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० ३६।

अबंछी(पु)—वि० [सं० अवांछित] अनचाहा। अनिच्छित। उ०—सुंदर तृष्णा कारनै जाइ समुद्रही बीच। फटै जहाज अचानक होइ अबंछी मीच।—सुंदर ग्रं०, पृ० ७१३।

अबंड—वि० [सं० अबण्ड] जो अंगहीन या पंगु न हो।

अबंध—वि० [सं०] १. जो किसी बंधन में न हो। अबद्ध बंधनहीन। निरंकुश। उ०—विधानों में अबंध विधान बिचरते हो सुर माया कर।—गीतिका, पृ० ६०।

अबंधन—वि० [सं० अबंधन] अबंध। मुक्त [को०]।

अबंधु[१]—संज्ञा पुं० [सं० अबंधु] अमित्र। शत्रु। उ०—बंधु अबंधु हिये मँह जानै। ताकर लोग विचार बखानै।—राम चं०, पृ० १५१।

अबंधु[२]—वि० १. मित्रविहीन। एकाकी। अकेला। २. अनाथ। जिसके कोई न हो [को०]। २. बंध या सीमाहीन। असीम। अपार। उ०—जिन युवकों के मणिबंधों में अबंध बल इतना भरा था जो उलटता शतघ्नियों को।—लहर, पृ० ६७।

अबंध्य—वि० [सं० अवन्ध्य] [स्त्री० अबंध्या] १. दे० 'अबंध'। २. सफल,। अव्यर्थ।

अबंध्या—संज्ञा स्त्री० [सं० अबन्ध्या] वह जो बाँझ न हो। संतानवाली स्त्री।

अब[१]—क्रि० वि० [सं० अथ, प्रा० अह, अथवा सं० अद्य] इस समय। इस क्षण। इस घड़ी।

मुहा०—**अब का** = इस समय का। आधुनिक। **अबकी** = इस बार **अब की बात अब के हाथ** = समय के अनुसार कार्य करना। जो बात बिगड़ी नहीं है उसे संपन्न करना। **अब के लोग** = आधुनिक जन। **अब जाकर** = इतनी देर पीछे। उ०—महीनों से इस काम में लगे हैं, अब जाकर खतम हुआ है। **अब तब करना** = हीला हवाली करना। **अब तब लगना या होना** = मरने का समय निकट होना। उ०—जब वैद्य आया तब उसका अब तब लगा था। **अब न तब** = न इस समय न फिर कभी। **अब भी** = (क) इस समय भी। (ख) इतने पर भी। उ०—इतनी हानि उठाई अब भी नहीं चेतते। **अब से** = इस समय से। आगे। भविष्य में। उ०—अब से मैं ऐसा कार्य भूलकर भी न करूँगा।

अब²—संज्ञा पुं० [अ०] बाप। पिता [को०]।

अबक(पु)—संज्ञा पुं० [**अ + हिं० वक**] अनुचित बात। अकथ्य। उ०—राखो आगै रसरारै, राघव नाम रसाल। मुख माँझल आँणो मती, गिरँग अबक ज्यूँ गाल।—बाँकीदास ग्रं०, भा० ३, पृ० ७९।

अबका—संज्ञा पुं० [**फ़िलि० अबुका, सं० अवका = सेवार**] एक पौधा जिसकी डंठल की छाल रेशेदार होती है।

विशेष—यह पौधा फिलिपाइन देश का है। अब इसकी खेती अंडमान टापू और आराकान की पहाड़ियों में भी होती है। खेती इस प्रकार की जाती है—इसकी जड़ से पेड़ के चारों ओर पौधे भूफोड़ निकलते हैं। जब वे तीन तीन फुट के हो जाते हैं तब उन्हें उखाड़कर खेतों में ८-९ फुट की दूरी पर लगाते हैं। इसकी फसल तैयार होती है तब इसे एक एक फुट ऊपर से काट लेते हैं। डंठलों से इसकी छाल निकाल ली जाती है और साफ करके रस्सी आदि बनाने के काम आती है। इसकी खूँदड़ का मैनिला पेपर बनता है।

अबक्र—वि० [सं० **अ + वक्र**] टेढ़ा नहीं। सीधा। उ०—पुनि स्वाधिष्ठान सु द्वितीय चक्र। नहीं षट्दल षट् अक्षर अबक्र।—सुंदर ग्रं०, पृ० ४६।

अबखरा—संज्ञा पुं० [**अ० अब्खरः (बुखार का बहुव०)**] भाप। वाष्प।

क्रि० प्र०—उठना। चढ़ना।

अबखोरा†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आबखोरा'।

अबगत(पु)—वि० [सं० **अविगत**] १. जो जाना न जाय। अज्ञात। २. अनिर्वचनीय। ३. नित्य (ईश्वरबोधक)। उ०—नहीं बाप ना माता भाए। अबगत से ही हम चल आए—कबीर सा०, पृ० ८२५।

अबगति(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अवगत'।

अबचन(पु)—वि० [सं० **अ + वचन**] दुर्वचन। अपशब्द। उ०—वचन अबचन रहित सोई जानिये।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ६२५।

अबजरवेटरी—संज्ञा स्त्री० [अं० **आबजरवेटरी**] वह स्थान जहाँ ग्रहों की गति, ग्रहण, ग्रहयुद्ध, आदि खगोल संबंधी घटनाओं का निरीक्षण किया जाता है। वेधायल। वेधशाला। वेधमंदिर। मानमंदिर।

अबट(पु)—संज्ञा पुं० [सं० **अ + वाट**] दुर्गम रास्ता। हीन मार्ग। विपथ। उ०—नर तेथ निमाणा, निलजो नारी, अकबर गाहक बट अबट। बेलि० (भू०), पृ० ३१।

अबटन†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'उबटन'।

अबड़ धबड़—वि० [अनु०] बेतरतीब। असंगत। जल्दबाजी।

अबतर—वि० [अ० **अब्तर**] [संज्ञा **अबतरी**] १. बुरा। रद। खराब। २. गिरा हुआ। बिगड़ा हुआ। उ०—अफसोस ऐ सनम तुम ऐसे हुए हो अबतर। मिलते हो गैर से जा हमसे रुखाइयाँ हैं।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ६९।

अबतरी—संज्ञा स्त्री० [अ० **अब्तरी**] १. घटाव। बिगाड़। क्षय। अवनति। २. बुराई। खराबी।

अबदार(पु)—वि० [फा० **आबदार**] दे० 'आबदार' उ०—पति ची प्रीत धारिया पूरी, हेमराज अबदार हजूरी।—रा० सू०, पृ० ३१६।

अबद्ध¹—वि० [सं०] १. जो बँधा न हो। मुक्त। २. स्वच्छंद। निरंकुश। ३. असंबद्ध। निरर्थक।

यौ०—अबद्धवाक्य = वह असंबद्ध वाक्य जिसमें अन्वयबोध की योग्यता न हो अर्थात् जिससे कोई अभिप्राय न निकले। जैसे—'कोई कहे कि मैं आजन्म मौन हूँ, मेरा बाप ब्रह्मचारी, माता बंध्या और पितामह अपुत्र था। अबद्धमुख = जिसके मुख में लगाम न हो। अंडबंड बोलनेवाला। अबद्धमूल = जिसकी जड़ पुष्ट न हो।

अबद्ध²—संज्ञा पुं० असंभव या असामान्य वस्तु [को०]।

अबद्धक—वि० [सं०] दे० 'अबद्ध' [को०]।

अबध¹(पु)—वि० [सं० **अबाध्य**] जो रोका न जा सके। अबाध्य। निर्बाध। उ०—भरे भाग अनुराग लोग कहैं राम अबध चितवन चितई है।—तुलसी (शब्द०)।

अबध²(पु)—वि० [सं० **अबध्य**] जिसे मारना उचित न हो। उ०—तौकौं अबध कहत सब कोऊ तातें सहियत बात। बिना प्रयास मारिहौं ताकौं, आजु रैनि कै प्रात।—सूर (शब्द०)।

अबधू¹(पु)—वि० [सं० **अबोध**, पुं० हिं० **अबोधु**] अज्ञानी। अबोध। मूर्ख। उ०—(क) अबधू छोड़ों मन विस्तारा।—कबीर (शब्द०)। (ख) अबधू कुदरत की गति न्यारी—कबीर (शब्द०)।

अबधू²(पु)—संज्ञा पुं० [सं० **अवधूत**] त्यागी। संन्यासी। विरागी। अवधूत। संत। साधु। उ०—जिन अबधू गुरु ज्ञान लखाया। ताकर मन तहईं लै धाया।—कबीर (शब्द०)।

अबधूत(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अवधूत'।

अबध्य—वि० [सं०] [वि० स्त्री० **अबध्या**] १. न मारने योग्य। जिसे मारना उचित न हो। २. जिसे मारने का विधान न हो। जिसे शास्त्रानुसार प्राणदंड न दिया जा सके। जैसे—स्त्री, ब्राह्मण बालक आदि। ३. जो किसी से न मरे। जिसे कोई मार न सके।

अबनी†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अवनि'। उ०—इहाँ आनि अबनी कौं भोजन करायौ।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ४८३।

अबर¹(पु)—वि० [सं० **अ + बल**] अबल। निबल। उ०—ये अबर कीं पीर जबर सबर बिन मरूँ।—तुलसी० श०, पृ० ५१।

अबर[2](पु)—वि० [सं० अपर, प्रा० अवर] अन्य । और । दूसरा । उ०—सरिता सिंधु अनेक अबर सखी बिलसत पति सहज सनेह ।—सूर० (राधा०) २७६७ ।

अबर[3](पु)—वि० [सं० अवर] अश्रेष्ठ । अव्यंग्य । अधम । उ०—इहाँ उछाह वाक्य तें अबर काव्य होता है ।—भिखारी ग्रं० भा० भा० २, पृ० २४४ ।

अबर[4](पु)—संज्ञा पुं० [फा० अब्र, सं० अभ्र] बादल । उ०—अगर यों जान जिंदगानी । अबर ओला घुले पानी ।—तुलसी० श०, पृ० ३१ ।

अबरक—संज्ञा पुं० [सं० अभ्रक] १. एक धातु । अभ्रक । भोडल । भोडर । भुखल ।

विशेष—यह खानों से निकलती है और बड़े बड़े ढोकों में तह पर तह जमी हुई पहाड़ों पर मिलती है । साफ करके निकालने पर इसकी तह काँच की तरह निकलती है । अबरक के पत्तर कंदील आदि में लगते हैं तथा विलायत में भी भेजे जाते हैं । वहाँ ये काँच की टट्टी की जगह किवाड़ के पल्लों में लगाने के काम आते हैं । यह धातु आग से नहीं जलती और लचीली होती है । वैज्ञानिक यंत्रों में भी इसका प्रयोग होता है । यह दो रंग की होती है—सफेद और काली । भारतवर्ष में बंगाल, राजस्थान, मद्रास आदि की पहाड़ियों में मिलती है । वैद्य लोग इसके भस्म को वृष्य मानते हैं और औषधियों में इसका प्रयोग करते हैं । भस्म बनाने में काले रंग का अबरक अच्छा समझा जाता है । निश्चंद्र अर्थात् अभारहित हो जाने पर भस्म बनता है ।

२. एक प्रकार का पत्थर जो खान से निकलता है ।

विशेष—यह पत्थर बर्तन बनाने के काम आता है । यह बहुत चिकना होता है । इसकी बुकनी चीजों को चमकाने के लिये पालिश या रौगन बनाने के काम में आता है ।

अबरख—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अबरक' ।

अबरखी[1]†—वि० [हिं० अबरक] १. अबरक के रंग का । २ अभ्रक का ।

अबरखी[2]†—संज्ञा स्त्री० अभ्रक की बुकनी ।

अबरन[1](पु)—[सं० अवर्ण्य] जिसका वर्णन न हो सके । अकथनीय । उ०—(क) अबरन कौ का बरनिए मोंपे लख्या न जाइ । अपना बाना बाहिया कहि कहि थाके माइ । कबीर० ग्रं०, पृ० ६१ । (ख) भजि मन नंद नंदन चरन । सनक संकर ध्यान ध्यावत निगम अबरन बरन ।—सूर० (शब्द०) ।

अबरन[2](पु)—वि० [सं० अवर्ण] १. बिना रंग का । वर्णशून्य । उ०—अलख अरूप अबरन सो करता । वह सब सों, सब वहि सौं बरता ।—जायसी (शब्द०) । २. एक रंग का नहीं । भिन्न । उ०—हद छोड़ बेहद भया अबरन किया मिलान । दास कबीरा मिल रहा सो कहिए रहमान ।—कबीर (शब्द०) ।

अबरन[3](पु)—संज्ञा पुं० [सं० आवरण] दे० 'आवरण' ।

अबरन्य—संज्ञा पुं० [सं० अवर्ण्य] दे० 'अवर्ण्य' । उ०—कहूँ अबरन्यन को कहत भूषन बरनि बिबेक ।—भूषण ग्रं०, पृ० ६१ ।

अबरस[1]—संज्ञा पुं० [अ० अबरश] १. घोड़े का एक रंग जो सब्जे से कुछ खुलता हुआ सफेद होता है । २. घोड़ा जिसका सब्जे से कुछ खुलता हुआ सफेद रंग हो । उ०—अबलक अबरस लखी सिराजी । चौधर चाल समुद सब ताजी ।—जायसी (शब्द०) ।

अबरस[2]—वि० सब्जे से कुछ खुलता हुआ सफेद रंग का ।

अबरा[1]—संज्ञा पुं० [फा० अबरह्] १. अस्तर का उलटा । दोहरे वस्त्र के ऊपर का पल्ला । उपल्ला । उपल्ली ।

क्रि०—प्र० ।—चढ़ाना ।—देना ।—लगाना ।

२. खुलनेवाली गाँठ । उलझन ।

अबरा[2]†—वि० [सं० अबल] बलहीन । कमजोर । निर्बल ।

यौ०—अबरा दुबरा = शक्तिहीन । कमजोर । दुबला पतला ।

अबरी[1]—संज्ञा स्त्री० [फा० अब्र + ई (प्रत्य०)] १. एक प्रकार का चिकना कागज जिसपर बादल की सी धारियाँ होती हैं । यह पुस्तकों की दफ्ती पर लगाया जाता है और कई रंग का होता हैं । २ पीले रंग का एक पत्थर, जो पच्चीकारी के काम आता है । यह जैसलमेर में निकलता है । इसलिये इसको जैसलमेरी भी कहते हैं । ३. एक प्रकार की लाह की रंगाई जो रंगबिरंगे बादलों के छीटों की तरह होती है ।

अबरी[2]†—संज्ञा स्त्री० [सं० अवार] गड्ढे या नदी के पानी से मिला हुआ किनारा ।

अबरू—संज्ञा पुं० [फा०] भौंह । भ्रू । उ०—आगे बढ़ी चढ़े थे अबरू खमदार ।—कुकुर०, पृ० ३९ ।

मु०—अबरू में बल पड़ना = नाराज होना । अबरू पर मैल न आना = विकार न आना ।

अबर्ज(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अवर + ज] अनुज । छोटा भाई ।—अनेकार्थ०, पृ० ८७ ।

अबर्त†—संज्ञा पुं० [सं० आवर्त] पानी का भँवर । चक्कर ।

अबर्न(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अवर्ण' । उ०—सुंदर ब्रह्म अबर्न है ब्यापक अगिन अबर्न ।—सुंदर ग्रं०, पृ० ७८१ ।

अबर्न्य(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अवर्ण्य] दे० 'अवर्ण्य[2]' । उ०—आदर घटत अबर्न्य को, जहाँ बर्न्य के जोर ।—भूषण ग्रं० पृ० २९ ।

अबल[1]—वि० [सं०] निर्बल । कमजोर । उ०—कैसे निबहै अबल जन करि सबलन सों बैर ।—सभाविं० (शब्द०) ।

अबल[2]—संज्ञा पुं० १. बलहीनता । २. वरुण नामक वृक्ष ।

अबल[3](पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० अवलि] १. पंक्ति । समूह । कतार । उ०—अंतर नीलंबर अबल आभरण अंगि अंगि, नग नग उदित ।—बेलि०, दू० १५६ ।

अबलक[1]—वि० [अ० अबलक] दे० 'अबलख[1]' । उ०—जो अबलक घोड़ा अमुके रंग कौ होंइ तो तो घोड़ा उपर चढ़ि कै श्रीनाथजी द्वार जाइए ।—दो सौ बावन पृ० १९३ ।

अबलक[2]—संज्ञा पुं० एक प्रकार के वर्ण का अश्व । अबलख ।

अबलख[1]—वि० [अ० अबलक] १. कबरा । दो रंगा । सफेद और काला अथवा सफेद और लाल रंग का ।

अबलख[2]—संज्ञा पुं० १. वह घोड़ा जिसका रंग सफेद और काला हो । उ०—अबलख अबरस लखी सिराजी । चौधर लाल समुद सब ताजी । —जायसी (शब्द०) । २. वह बैल जिसका रंग सफेद और काला हो । कबरा बैल ।

अबलख²—वि० [सं० **अवलक्ष**] सफेद। श्वेत।

अबलखा—संज्ञा स्त्री० [**अ० अबलक**] एक पक्षी।

विशेष—इसका शरीर काला होता है, केवल पेट सफेद होता है। इसके पैर सफेदी लिए हुए होते हैं और चोंच का रंग नारंगी होता है। यह उत्तर प्रदेश बंगाल तथा बिहार में होता है और पत्तियों तथा परों का घोसला बनाता है। यह एक बार में चार पाँच अंडे देता है। इसकी लंबाई लगभग नौ इंच होती है।

अबला—संज्ञा स्त्री० [सं०] स्त्री। नारी। उ०—पावस कठिन जु पीर अबला क्यों करि सहि सकै। तेऊ धरत न धीर रक्तबीज सम ऊपजै।—बिहारी (शब्द०)।

यौ—**अबलासेन**=कामदेव।

अबलाबल—संज्ञा पुं० [सं०] महादेव शिव। [को०]।

अबलिⓅ—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अवली'। उ०—नीति प्रीति छबि अबलि ए सब सरि की भाँति।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ५३३।

अबलीⓅ—संज्ञा स्त्री० [सं० **अवली**] १. पंक्ति। २. समूह। उ०—बर विहंग अबली जहँ भाँति भाँति की आवति।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० २।

अबल्य¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. दुर्बलता। कमजोरी। २. बीमारी। रुग्णावस्था [को०]।

अबल्य²—वि० जो बलकारक न हो।

अबवाब—संज्ञा पुं० [अ०] १. वह अधिक कर जो सरकार मालगुजारी पर लगती है। २. वह अधिक कर जो लगान पर जमींदार को असामी से मिलता है। भेजा। अधिक कर। लगता। ३. वह कर जो गाँव के व्यापारियों तथा लोहार सोनार आदि पेशेवालों से जमींदार को मिलता है। घरद्वारी। बसौरी। भिटौरी।

अबस¹—वि० [सं० **अवश**] दे० 'अवश'। उ०—चंदन में नाग मद भरचो इंद्रनाग, विष भरो शेषनाग, कहै उपमा अबस को।—भूषण ग्रं०, पृ० ३०।

अबस²—वि० [अ०] व्यर्थ। निरर्थक। फजूल। बेकार [को०]।

अबहिⓅ—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'अभी'। उ०—अबहि उगत ससि तिमिरे तेजब निसि उसरत मदन पासरे।—विद्यापति०, ६८।

अबाँहⓅ—वि० [हिं० अ+बाँह] १. बिना बाँह का। जिसे बाँह न हो। अबाहु। असहाय। अनाथ। बेसहारा।

अबा—संज्ञा पुं० [अ०] अंगे से मिलता जुलता एक प्रकार का पहिनावा।

विशेष—यह अंगे के बराबर या उससे कुछ अधिक लंबा होता है। यह ढीलाढाला होता है और सामने खुला होता है इसमें छह कलियाँ होती हैं और सामने केवल दो घुंडियाँ या तुमके लगते हैं। कोई कोई इसमें गरेबान भी लगाते हैं। यह पहनावा मुसलमानों के समय से चला आता है।

अबाकⓅ—वि० [हिं] दे० 'अवाक'। उ०—रतन अमोलक परखर रहा जौहरी थाक। दरिया तहाँ कीमत नहीं, उनमन भया अबाक।—दरिया० बानी, पृ० २०।

अबाट—संज्ञा पुं० [हिं०] खराब रास्ता। कुपथ। उ०—मन कर्म मर्म अबाट परिहरि बाट घर को देत हैं—कबीर सा०, पृ० ४०१।

यौ०—**अबाट सबाट**=अंडबंड। गलत सलत।

अबातⓅ—वि०—[सं०**अवात**] [स्त्री० **अबाती**] १. बिना वायु का। २. जिसे वायु न हिलाती हो। ३. भीतर भीतर सुलगनेवाला। उ०—आई तजि हौं तो ताहि तरनितनूजा तीर, ताकि ताकि तारापति तरफति ताती सी। कहै पद्माकर घरीक ही में घनश्याम काम तौ कतलबाज कुंज ह्वै है काती सी। याही छिन वाही सों न मोहन मिलौगे जौ पै लगनि लगाई एती अगिनि अबाती सी। राउरी दुहाई तौ बुझाई न बुझैगी फेरि, नेह भरी नागरी की देह दिया बाती सी।—पद्माकर (शब्द०)।

अबादⓅ—वि० [सं० **अवाद**] वादशून्य। निर्विवाद। उ०—ब्रह्म विचारे ब्रह्म को पारख गुरु परसाद। रहित रहै पद राखिके जिव से होय अबाद।—कबीर (शब्द०)।

अबादान—वि० [फा० **आबादान**] बसा हुआ। पूर्ण। भरा पूरा। उ०—यह गाँव अबादान रहे।—(फकीरों की बोली)।

अबादानी—संज्ञा स्त्री० [फा० **आबादानी**] १. पूर्णता। बस्ती। उ०—भूखे को अन्न पियासे को पानी। जंगल जंगल अबादानी (शब्द०)। २. शुभचिंतकता। उ०—जिसका खाए अन्न पानी, उसकी करै अबादानी (शब्द०)। ३. चहल पहल। मनोरंजकता। उ०—जहाँ रहैं मियाँ रमजानी, वहीं होय अबादानी (शब्द०)।

अबाध—वि [सं०] १. बाधारहित। बेरोक। उ०—हँसी का मदविह्वल प्रतिबिंब मधुरिमा खेला सदृश अबाध।—कामायनी पृ० ४८। २. निर्विघ्न। उ०—राम भगति निरुपम निरुपाधी बसै जासु उर सदा अबाधी।—तुलसी (शब्द०)। ३. असीम। अपरिमित। अपार। बेहद। उ०—अकल अनीह अबाध अभेद नेति नेति कहि गावहिं वेद।—सूर० (शब्द०)।

अबाधगति—वि० [सं० **अबाध+गति**] जिसकी गति अबाध या बेरोक हो।

अबाधाⓅ—वि० [हिं०] दे० 'अबाध'। उ०—रघुपति महिमा अगुन अबाधा।—तुलसी (शब्द०)।

अबाधित—वि० [सं०] १. बाधा रहित। बेरोक। २. स्वच्छंद। स्वतंत्र। ३. अनिषिद्ध।

अबाध्य—वि० [सं०] १. बेरोक। जो रोका न जा सके। २. अनिवार्य ३. जो वश में न किया जा सके।

अबानⓅ—वि० [सं० **अ=नहीं+हिं० बाना=चिह्न**] शस्त्ररहित। हथियार छोड़े हुए। निहत्था। उ०—चढ़े पिट्ठ दस कोस लों सब ब्रजवीर अबान। फते पाय सूरज बली ठाढौ ता मैदान।—सूदन (शब्द०)।

अबाबील—संज्ञा स्त्री० [अ०] एक काले रंग की चिड़िया। कृष्णा। कन्हैया। देवबिलाई।

विशेष—इसकी छाती का रंग खुलता होता है। इसके पैर बहुत छोटे छोटे होते हैं, जिसके कारण यह बैठ नहीं सकती और दिन भर बहुत ऊपर आकाश में झुंड के साथ उड़ती रहती है। यह पृथ्वी के सभी देशों मे होती है। इसके घोसले पुरानी दीवारों पर मिलते हैं।

अबार—संज्ञा स्त्री० [सं० **अ+वार, प्रा० बार=समय**] असमय। अधिक देर। विलंब। बेर। कुबेला। उ०—परसुराम जमदग्नि के गेह ली नग्रवतार। माता ताकी जमुनजल लेन गई एक बार। लागी तहाँ अबार सिद्धि ऋषि करि क्रोध अपार। परसुराम को यों कही माँ को बेगि संहार।—सूर (शब्द०)।

क्रि०प्र०—लगना।—होना। उ०—बहुत अबार कतहुँ खेलत भई कहाँ रहे मेरे सारंगपानी।—सूर (शब्द०)।

अबारजा—संज्ञा पुं० [फा० **अवारिजह=बही; अवार्चा, अवारिजइ (फ़०)**] १. रोजनामचा। २. जमाखर्च की बही। उ०—करि अबारजा प्रेम प्रीति कौ असल तहाँ खतियावै। दूजे करज दूरि करि दैयत, नैकु न तापै आवै।—सूर०, १।१४३।

अबाल[1]—वि० [सं०] १. जो बालक न हो। जवान। २. अबालकोचित। ३. पूर्ण। पूरा। जैसे, अबालेंदु=पूर्ण चंद्रमा।

अबाल[2]†—संज्ञा पुं० [**देश०**] वह रस्सी जो चरखे की पँखुड़ियों को बाँध कर तानी जाती है और जिस पर से होकर माला चलती है।

अबाली—संज्ञा स्त्री० [**देश०**] एक पक्षी जो उत्तरी भारत और बंबई प्रांत तथा आसाम, चीन और स्याम में मिलता है। इसका रंग भूरा और गर्दन कुछ पीली होती है। यह झुंड में रहता है और अपना घोंसला घास और पर का बनाता है। बेंगनकुटी।

अबास(पु)—संज्ञा पुं० [सं० **आवास**] रहने का स्थान। घर। मकान। उ०—(क) ऊँचे अबास बहु ध्वज प्रकास। सोभा विलास, सोभै प्रकास।—केशव (शब्द०)। (ख) कबिरा गर्व न कीजिए, ऊँचा देखि अवास।—कबीर ग्रं०, पृ० ६४।

अबाह्य—वि० [सं०] १. बाहरी नहीं। भीतरी। २. पूर्णतः परिचित। ३. जिसमें बाहरी स्थिति न हो [को०]।

अबिंगि(पु)—वि० [सं० **अव्यङ्ग्य**] व्यंग्यरहित। उ०—बचन अबिंगि कहै रस भोय।—नंद० ग्रं०, पृ० १४७।

अबिंधन—संज्ञा पुं० [सं० **अविन्धन**] १. समुद्र। २. बड़वानल।

अबिंध्य—संज्ञा पुं० [सं० **अविन्ध्य**] रावण का एक मंत्री। यह बड़ा विद्वान् शीलवान् और वृद्ध मंत्री था। इसने रावण से सीता को लौटाने के लिये कहा था।

अबिकारी—वि० [सं० **अविकारी**] दे० 'अविकारी'। उ०—अस प्रभु हृदय अछत अबिकारी।—मानस, १।२३।

अबिगत(पु)—वि० [सं० **अविगत**] १. जो विगत न हो। जो जाना न जाय। उ०—अबिगत गति कछु कहत न आवै। ज्यौं गूँगें मीठे फल को रस अंतरगत ही भावै।—सूर० १।२।

अबिगति[1](पु)—वि० [हिं०] दे० 'अविगत'। उ०—निरगुण राम निरगुण राम जपहु रे भाई, अबिगति की गति लखी न जाई।—कबीर ग्रं०, पृ० १०४।

अबिगति[2](पु)—संज्ञा स्त्री० अविगत अवस्था या दशा। उ०—तुलसी राम प्रसाद बिन, अबिगति जानि न जात।—स० सप्तक, पृ० ४५।

अबिचल(पु)—वि० [सं० **अविचल**] दे० 'अविचल'। उ०—रघुबीर रुचिर पयान प्रस्थिति जानि परम सुहावनी। जनु कमठ खर्पर सर्पराज सो लिखत अबिचल पावनी।—मानस, ५।३५।

अबिछीन(पु)—वि० [सं० **अविच्छिन्न**] जो विच्छिन्न या टूटा न हो। उ०—औरौ ज्ञान भगति कर, भेद सुनहु सुप्रबीन। जो सुनि होइ राम पद, प्रीति सदा अबिछीन।—मानस, ७।११६।

अबिताली(पु)—संज्ञा पुं० [**फा० अफ़ताल, हिं० अफताली**] सेना का वह दल जो आगे जाकर पड़ाव आदि की व्यवस्था करता है। उ०—काको अयान निकारन कौं उर आए हैं जोबन के अबिताली।—केशव ग्रं०, पृ० १०।

अबिद(पु)—वि० [सं० **अवित्=अज्ञ**] ज्ञानशून्य। अविद्वान्। मूर्ख। उ०—त्रिबिध भाँति को सबद बर, बिघट न लट परमान। कारन अबिरल अल अपितु, तुलसी अबिद भुलान।—स० सप्तक, पृ० २६।

अबिद्ध—वि० [सं० **अबिद्ध**] अनबेधा। बिना छिदा हुआ। दे० 'अविद्ध'।

अबिद्धकर्णी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अविद्धकर्णी'।

अबिद्या(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अविद्या'।

अबिधि†—वि० [सं० **अविधि**] जो विधि या नियम के अनुकूल न हो। अव्यवस्थित।

अबिनय(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अविनय'। उ०—स्वामिनि अबिनय छमिबि हमारी।—मानस, २।११६।

अबिनासी(पु)—वि० [हिं०] 'अविनाशी'। उ०—अबिनासी मोंहि ते चल्या, पुरई मेरी आस।—कबीर ग्रं०, पृ० ७०।

अबिबेक(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अविवेक'। उ०—प्रभु अपने अबिबेक तें, बूझौं स्वामी तोहि।—मानस, ७।९३।

अबिबेकी(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अविवेकी'। उ०—जिमि अबिबेकी पुरुष सरीरहि।—मानस, २।१४२।

अबिरल(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अविरल'।

अबिरुद्ध(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अविरुद्ध'। उ०—नाम सुद्ध, अबिरुद्ध, अमर, अनवद्य, अदूषन।—तुलसी ग्रं०, पृ० ३५।

अबिरोध—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अविरोध'। उ०—समय समाज धरम अबिरोधा। बोले तब रघुबंस पुरोधा।—मानस, २।२९५।

अबिरोधी(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अविरोधी'। उ०—धर्म बिचारे प्रथम पुनि, अर्थ धर्म अबिरोधि। धर्म अर्थ बाधा रहित सेवै काम सुसोधि।—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० १६१।

अबिर्था(पु)†—वि०[सं० **आ=पूरी तरह+व्यर्थ बिरथा, बिर्था**] बिरथा, दे० 'वृथा'। उ०—माया कारन बिद्या बेचहु जन्म अबिर्था जाई।—कबीर ग्रं०, पृ० ३०३।

अबिलंब—क्रि० वि० [सं० **अविलम्ब**] दे० 'अविलंब'। उ०—जय, जय, जय बलभद्र बीर धीर गंभीर अबिलंब अलंबहारी।—घनानंद, पृ० ५५०।

अबिसेक(पु)—वि० [हिं०] दे० अभिषेक। उ०—प्रेमहित करि छीरसागर भई मनसा एक। स्याम मति से अंग चंदन अमी के अबिसेक।—सा० लहरी, पृ० १४५।

अबिहड़(पु)—वि०[हिं०] दे० 'अविहड़'। उ०—आदि मध्य अरु अंत लौं अबिहड़ सदा अभंग। कबीर उस करतार की सेवग तजै न संग।—कबीर ग्रं०, पृ० ८६।

अबिहित—Ⓟ वि० [सं० **अविहित**] दे० 'अविहित'। उ०—राम सो परमातमा भवानी। तहँ भ्रम अति अबिहित तव बानी।—मानस, १।११६।

अबी Ⓟ†—क्रि० वि० [**हिं०**] दे० 'अभी'। उ०—जो तूँ कह्या हमारा मानै नाहीं अबी करों तुम छाई।—प्राण, पृ० १२२।

अबीज[1]—वि [सं०] १. बीजविहीन। २. उत्पादन-क्षमता-रहित। नपुंसक। ३. कारणरहित [को०]।

अबीज[2]—संज्ञा पुं० वह बीज जिसकी उत्पादनशक्ति नष्ट हो चुकी हो [को०]।

यौ०—**अबीजविक्रयी**।

अबीजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] अंगूर की एक किस्म। बेदाना अंगूर। किशमिश।

अबीर—संज्ञा पुं० [**अ० अबीर**] १. एक रंगीन बुकनी जिसे लोग होली के दिनों में अपने इष्ट मित्रों पर डालते हैं। यह प्रायः लाल रंग की होती है और सिंघाड़े के आटे में हलदी, और चूना मिला कर बनती है। अब अरारोट और अंगरेजी बुकनियों से अधिक तैयार की जाती है। गुलाल। उ०—अगर धूप बहु जनु अँधियारी उड़ै अबीर मनहुँ अरुनारी।—मानस। २. अभ्रक का चूर्ण जिसे होली में लोग अपने इष्ट मित्रों के मुख पर मलते हैं, कहीं कहीं इसे भी अबीर कहते हैं। **बुक्का**। ३. श्वेत रंग की सुगंध मिली बुकनी जो वल्लभ कुल के मंदिरों में होली में उड़ाई जाती है।

अबीरी[1]—वि० [**अ० अबीरी**] अबीर के समान या अबीर से बनी। अबीर के रंग का। कुछ कुछ स्याही लिए लाल रंग का।

अबीरी[2]—संज्ञा पुं० अबीरी रंग।

अबीह Ⓟ—वि० [**सं० अ = नहीं + भीति या भी, प्रा० वीह**] भयरहित। निर्भय। निडर। उ०—साँसा सोग सँताप तज, आपा होय अबीह। शून्य सेज में पाइया हरिथा अबिनाशीह।—राम० धर्म०, पृ० ७५।

अबुझ Ⓟ—वि० [हिं०] १. दे० **'अबूझ'**। २ न बुझनेवाला।

अबुध—वि० [सं०] १. अबोध। नासमझ। अज्ञानी। मूर्ख। उ०—भानु बंस राकेस कलंकू। निपट निरंकुस अबुध असंकू।—तुलसी (शब्द०) २. अनजान। उ०—रह जाता नर लोक अबुध ही ऐसे उन्नत भावों से।—साकेत, पृ० ३७१। ३. बेहोश। मूर्च्छित। बेसुध। उ०—एक पहर यों अबुध ह्वै रही।—नंद ग्रं०, पृ० १३८।

अबुद्ध— वि० [सं०] दे० 'अबुध' [को०]।

अबुद्धि[1]— संज्ञा स्त्री० [सं०] १. विचार या ज्ञान का अभाव। अज्ञान। अविद्या। २. मूर्खता। बदमाशी [को०]।

अबुद्धि[2]— वि० बुद्धिविहीन। मूर्ख। नादान।

अबुहाना†—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'अभुआना'।

अबू—संज्ञा पुं० [अ०] वालिद। पिता। बाप [को०]।

अबूझ—वि० [**सं० अबुद्ध, प्रा० अबुज्झ**] अबोध। नासमझ। नादान। उ—(क) कोने परा न छूटिहै सुन रे जीव अबूझ। कबीर माँड मैदान में करि इंद्रिन सों जूझ।—कबीर (शब्द०)। (ख) अजगव खंडेउ ऊख जिमि अजहुँ न बूझ अबूझ।—तुलसी (शब्द०)।

अबे—अव्य० [सं० **अयि**; पु० हिं **अबे**] अरे। हे। इस संबोधन का प्रयोग बड़े लोग अपने बहुत छोटे वा नीच के लिये करते हैं। जैसे—अबे, सुनता नहीं है, इतनी देर से पुकार रहे हैं। (शब्द०)

मुहा०—**अबे तबे करना** = निरादर करना। निरादरसूचक वाक्य बोलना। कच्ची पक्की बोलना।

अबेध Ⓟ—वि० [सं० **अबिद्**] जो छिदा न हो। बिना बेधा। अनबिधा। उ०—लौकै रतन अबेध अलौकिक नहिं गाहक नहिं साँई। चिमिकि चिमिकि चमकै दृग दुहुँ दिसि अरब रहा छरि आई।—कबीर (शब्द०)।

अबेर Ⓟ†—संज्ञा स्त्री० [सं० **अबेला**] बिलंब। देर। अतिकाल। उ०—आवत पिय नहिं दीखती भइली बहुत अबेर।—संत वाणी, भा० १. पृ० ११३।

अबेव Ⓟ—वि० [सं० **अभेद**, प्रा०, **अभेव**] भेदरहित। समभाव युक्त। उ०—दोऊ मिले अबेव साहिब सेवक एक से।—अर्ध०, पृ० २२।

अबेश Ⓟ—वि० [सं० **अ = अति + फा० बेश = अधिक**] अधिक। बहुत। उ०—कीर कदंब मंजुका पूरण सौरभ उड़त अबेश। अगर धूप सौरभ नासा सुख बरषत परम सुदेश।—सूर (शब्द०)।

अबै Ⓟ—क्रि० वि० [**हिं० अब ही**] अभी। तत्काल। इसी समय।

अबैन Ⓟ—वि० [हिं० **अ + बैन**] १. वाणीविहीन। मौन। चुप। २. दूषित वचन। अवाच्य। कुवचन।

अबैर—संज्ञा पुं० [सं० **अवैर**] अविरोध। अद्वेष। वैर का अभाव। उ०—बैर से नहीं अबैर से हृदय जीतने की विचारपरंपरा के माननेवाले। किन्नर०। पृ० १०।

अबोध[1]—संज्ञा पुं० [सं०] अज्ञान। मूर्खता।

अबोध[2]—वि० अनजान। नादान। अज्ञानी। मूर्ख। उ०—तुम अति अबोध, अपनी अपूर्णता **को न स्वयं** तुम समझ सके।—कामायानी, पृ० १६३।

यौ०—**अबोधगम्य** = जो समझ में न आ सके।

अबोध्य—वि० [सं०] जो समझ में न आ सके। समझ में न आने योग्य [को०]।

अबोल[1] Ⓟ—वि० [सं० **अ** + हिं० **बोल**] १. मौन। अवाक्। उ०—(क) बोलहिं सुअन ढेंक बक लेदी। रही अबोल मीन जलभेदी।—जायसी (शब्द०)। (ख) पीरी पाती पावते पीरी चढ़ी कपोल। कोरे बदन बिलोकि के मुदिता भई अबोल (शब्द०)। २. जिसके विषय में बोल न सकें। उ० जहाँ बोल अक्षर नहिं आया। जहाँ अक्षर तहँ मनहिं दृढ़ाया। बोल अबोल एक है सोई। जिन या लखा सो बिरला कोई।—कबीर (शब्द०)।

अबोल[2]—संज्ञा पुं० कुबोल। बुरी बोली।

अबोलना—संज्ञा पुं० [सं० **अ** + हिं० **बोलना**] न बोलने की स्थिति। असंभाषण। उ०—पाट न खोल्या मुखाँ न बोल्या साँज लग परभात। अबोलना में अवध बीती, काहे की कुसलात।—संत वाणी०, भा० २, पृ० ७०।

अबोला—संज्ञा पुं० [सं० **अ+हिं बोलना**] रंज से बोलचाल का न होना। उ०—मिलि खेलिय जा सँग बालक तें कहु तासों अबोलो क्यों जात कियो।—केशव (शब्द०)।

अब्ज—संज्ञा पुं० [सं०] १. जल से उत्पन्न वस्तु। २. कमल। पद्म। उ०—अंकुस ऊरध रेख अब्ज अठकोन अभलतर।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ७। ३. शंख ४. निचुल। इज्जल। हिज्जल। ईजड़ का पेड़। ५. चंद्रमा। ६. धन्वंतरि। ७. कपूर। ८. एक सख्या। सौ करोड़। अरब। ९. अरब के स्थान पर आनेवाली संख्या १,००,००,००,०००।

यौ०—**अब्जकर्णिका**—कमल का छाता। अब्जज=(१) ब्रह्मा। (२) यात्रा में एक योग।

विशेष—यह तब होता है जब बुध अपनी राशि और अपने अंश का हो और लग्न में शुक्र या बृहस्पति हो।

अब्जदृक्, अब्जनयन, अब्जनेत्र=कमलनयन। कमल जैसे नेत्रोंवाला। **अब्जबांधव**=सूर्य। **अब्जभव**=ब्रह्मा। **अब्जभू**=ब्रह्मा। **अब्जभोग**=(१) कमल की जड़। भँसीड़। (२) कौड़ी। बराटक। **अब्जयोनि**=ब्रह्मा। **अब्जवाहन**=शिव। **अब्जवाहना**=लक्ष्मी। **अब्जस्थित**=ब्रह्मा। **अब्जहस्त**=सूर्य। **अब्जासन**=ब्रह्मा।

अब्जद—संज्ञा पुं० [अ०] १. अरबी फारसी वर्णमाला के अक्षर। २. अरबी अक्षरों का वह क्रम जिसमें प्रति अक्षर का मूल्य संख्या में निर्धारित है।

विशेष—इससे लोगों के मरने या पैदा होने का साल निकाला जाता है। कुछ लोग बच्चों के नाम उसी आधार पर रखते हैं जिससे जन्मवर्ष ज्ञात हो।

अब्जदख्वा—संज्ञा पुं० [अ० **अब्जद**+फ़ा० **ख्वाँ**] अरबी फारसी वर्णमाला पढ़नेवाला विद्यार्थी। नवसिखिया।

अब्जा—संज्ञा स्त्री० [सं०] लक्ष्मी।

अब्जाद—संज्ञा पुं० [सं०] हंस [को०]।

अब्जिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कमलवन। पद्मसमूह। २. पद्मलता। पौनार। ३. कमलिनी (को०)। ४. कमल से आपूर्ण स्थान या जलाशय (को०)।

यौ०—**अब्जिनीपति**=सूर्य।

अब्द[1]—संज्ञा पुं० [अ०] दास। सेवक। गुलाम। अनुचर। भक्त [को०]।

अब्द[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १. वर्ष। साल। २. मेघ। बादल। उ०—मर्कट जुद्धविरुद्ध क्रुद्ध अरि ठट्ट दपट्टहिं। अब्द शब्द करि गर्जि तर्जि झुकि झर्पि झपट्टहिं।—भिखारी ग्रं०, भा० २, पृ० १८२। ३. एक पर्वत। ४. नागरमोथा। ५. कपूर। ६. आकाश। उ०—जय जय शब्द अब्द अति होई। वर्षत कुसुम पुरंदर सोई।—गोपाल (शब्द०)।

यौ०—**अब्दप**=वर्षाधिप। इंद्र। **अब्दज्ञ**=ज्योतिषी। **अब्दवाहन** इंद्र। **अब्दसार**=कपूर।

अब्दकोश—संज्ञा पुं० [सं० **अब्द+कोश**, अं० **इयरबुक**] १. वह वार्षिक संग्रहग्रंथ जिसमें वर्ष के मुख्य व्यक्तियों, घटनाओं, जानकारियों आदि का विवरण मिले। २. वर्ष वर्ष का विवरणसंग्रह।

अब्दाली—वि०, संज्ञा पुं० [फ़ा०] अब्दाल का निवासी (व्यक्ति)।

विशेष—अब्दाल वासी होने से अहमदशाह के नाम के आगे यह शब्द जुड़ता है इसने नादिरशाह के बाद भारत पर १७६१ ई० में आक्रमण किया था। इसका युद्ध मराठों से हुआ था जिसमें मराठों की हार हुई थी। इसकी उपाधि दुर्रए दुर्रानी भी थी।

अब्दि—संज्ञा पुं० [सं०] बादल। मेघ [को०]।

अब्दुर्ग—संज्ञा पुं० [सं०] वह दुर्ग या किला जो चारो ओर से जल से घिरा हो। वह किला जिसके चारो ओर खाई हो।

अब्धि—संज्ञा पुं० [सं०] १. समुद्र। सागर। २. सरोवर। ताल। ३. सात की संख्या। ४. चार की संख्या का द्योतक (को०)।

अब्धिकफ—संज्ञा पुं० [सं०] समुद्रफेन।

अब्धिज—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० **अब्धिजा**] १. समुद्र से पैदा हुई वस्तु। २. शख। ३. चंद्रमा। ४. अश्विनीकुमार। ५. नमक (को०)।

अब्धिजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. लक्ष्मी। २. वारुणी। मदिरा [को०]।

अब्धिद्वीपा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पृथ्वी। २. समुद्र से घिरा भूखंड। टापू [को०]।

अब्धिनगरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] द्वारकापुरी।

अब्धिनवनीतक—संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा [को०]।

अब्धिफेन—संज्ञा पुं० [सं०] समुद्री झाग। समुद्रफेन [को०]।

अब्धिमंडूकी—संज्ञा स्त्री० [सं० **अब्धिमण्डूकी**] वह सीप जिसमें मोती रहता है।

अब्धिशय—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

अब्धिशयन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अब्धिशय' [को०]।

अब्धिसार—संज्ञा पुं० [सं०] रत्न [को०]।

अब्ध्यग्नि—संज्ञा स्त्री० [सं०] समुद्र की अग्नि। बड़वानल।

अब्बर(पु)†—वि० [हिं०] दे० 'अबल'। उ०—बब्बर की धाक औ अकब्बर की साक सब्बै, अब्बर की छाक लौं सनैहीं मिसि जायगी।—रत्नाकर, भा० २, पृ० १६८।

अब्बा—संज्ञा पुं० [**अ० अब=पिता का संबोधन आबा**] पिता। बाप।

अब्बाजान—संज्ञा पुं० [अ० **आबा**+फ़ा० **जान**] पिता के लिये आदरसूचक संबोधन।

अब्बास—संज्ञा पुं० [अ०] [वि० **अब्बासी**] १. एक पौधा जो दो तीन फुट तक ऊँचा होता है। गुल अब्बास।

विशेष—इसकी पत्तियाँ कुत्ते के कान की तरह नोकीली और लंबी होती हैं। कुछ लोग भूल से इसकी मोटी जड़ को चोबचीनी कहते हैं। इसके फूल प्रायः लाल होते हैं, पर पीले और सफेद भी मिलते हैं। फूलों के झड़ जाने पर उनके स्थान पर काले काले मिर्च के ऐसे बीज पड़ते हैं।

२. हजरत मुहम्मद साहब के चाचा जो अब्बासी खलीफाओं के पूर्वज थे।

अब्बासी[1]—संज्ञा स्त्री० [अ०] मिस्र देश की एक प्रकार की कपास।

अब्बासी[2]—वि० [अ०] १. गुलबासी के फूल के रंग का। २. हजरत अब्बास के वंशज या संबंधी।

अब्बिंदु—संज्ञा पुं० [सं० **अब्बिन्दु**] १. जलबिंदु। २. आँसू। अश्रुबिंदु [को०]।

अब्बीह(पु)—वि० [सं० **अप**, प्रा० **अब+बीह**] निर्भय। निडर। उ०—दिनं सीह अब्बीह आखेद खिल्लै।—पृ० रा०, १।११२।

अब्बू(पु)—संज्ञा पुं० [सं० **अर्बुद**] आबू। अरवली पर्वतश्रृंखला में स्थित एक स्थान। उ०—अबू वै द्रुग भाग, अब्बु बंध्यौं जिहि पायन।—पृ० रा०, १२।३०।

अब्भ(पु)—संज्ञा पुं० [सं० **अभ्र**, प्रा० **अब्भ**] दे० 'अभ्र'। उ०—बज्जंत सार गज्जंत अब्भ।—हम्मीर०, पृ० ८२।

अब्भक्ष[1]—वि० [सं०] केवल जल पीकर जीनेवाला [को०]।

अब्भक्ष[2]—संज्ञा पुं० [सं०] पानी में रहनेवाला साँप। डेड़हा साँप।

अब्भक्षरण—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का व्रत जिसमें केवल जल पीते हैं। जल पीकर रहना [को०]।

अब्भ्र—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अभ्र' [को०]।

अब्यंगि(पु)—वि० दे० 'अव्यंग्य'। उ०—प्रीतम कौं जब सागस लहै। व्यंगि अब्यंगि बवन कछु कहै।—नंद० ग्रं०, पृ० १४७।

अब्बाई(पु)†—वि० [सं० **अ**+हिं० **ब्याई**] जिसने बच्चा न जना हो। जिसे प्रसव न हुआ हो। उ०—जंगल में चरैंछी सो अब्याई झोटी आई।—शिखर०, पृ० ३।

अब्याहत(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अव्याहत'। उ०—अब्याहत गति संभु प्रसादा।—मानस, ७।११०।

अब्र—संज्ञा पुं० [फा० **तुल** सं० **आभ्र**] बादल। उ०—बिना आब जहँ बहु गुल फूले, अब्र बिना जहँ बरसै।—मलूक०, पृ० ४।

अब्रन(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अवर्ण'। उ०—अब्रन बरण सो भेद निनारा। घट घट बसे लिप्त तन धारा।—कबीर सा०, पृ० ८७३।

अब्राह्मण्य[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह कर्म जो ब्राह्मणोचित न हो। २. हिंसादि कर्म। ३. नाटकादि में दिखाए जानेवाले अनुचित कर्म के बोध या ज्ञान के लिये नेपथ्य में उद्घोषित शब्द। कहीं कहीं ब्राह्मण रक्षा या सहायता की दृष्टि से भी अब्रह्मण्यम् शब्द का उच्चारण करता है।

अब्रह्मण्य[2]—वि० [सं०] १. ब्राह्मण के अयोग्य। २. जिसकी श्रद्धा ब्राह्मण में न हो। जो ब्राह्मणनिष्ठ न हो। ब्राह्मणविरोधी।

अब्राह्मण[1]—संज्ञा पुं० [सं०] वह व्यक्ति जो ब्राह्मण न हो। ब्राह्मणेतर व्यक्ति। उ०—एक अब्राह्मण इतना विवेकवान नहीं हो सकता।—सं० दरिया, पृ० ६०।

अब्राह्मण्य[2]—वि० [सं०] ब्राह्मणविरहित। ब्राह्मणविहीन।

अब्राह्मण्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. ब्राह्मणोचित कर्तव्यों की अवज्ञा या उल्लंघन। २. दे० 'अब्रह्मण्य'।

अब्रू—संज्ञा स्त्री० [फा०] भौंह। भ्रू। दे० 'अबरू'।

अब्रेअंबर—संज्ञा पुं० [फा०] दे० 'अंबर'।

अभंग[1]—वि० [सं० **अभङ्ग**] १. अखंड। अटूट। पूर्ण। उ०—जनता की सेवा का व्रत मैं लेता अभंग।—अपरा, पृ० ६४। २. अनाशवान्। न मिटनेवाला। उ०—आदि, मध्य अरु अंत लौं, अबिहड़ सदा अभंग। कबीर उस करता की सेवग तजै न संग।—कबीर ग्रं०, पृ० ८६। ३. जिसका क्रम न टूटे। लगातार। उ०—प्रिये, प्रिये उत्तर दो मैं ही करता नहीं पुकार अभंग।—साकेत, पृ० ३८५। ४. जो भंग या नष्ट न किया जा सके। सुदृढ़। मजबूत। उ०—निपट अभंग गड़ कोट सब हारे तैं।—भूषण ग्रं० पृ० ८२।

अभंग[2]—संज्ञा पुं० १. संगीत में एक प्रकार का ताल जिसमें एक लघु, एक गुरु और दो प्लुत मात्राएँ होती हैं। २. एक प्रकार का पद या भजन जिनका व्यवहार मराठी में होता है। जैसे—तुकाराम के अभंग। ३. एक श्लेष जिसमें शब्द को विभक्त किए बिना ही दूसरा अर्थ प्रकट हो। अर्थश्लेष (को०)। ४. भंग या पराजय का अभाव (को०)।

अभंगपद—संज्ञा पुं० [सं० **अभङ्गपद**] श्लेष अलंकार का एक भेद। वह श्लेष जिसमें अक्षरों को इधर उधर न करना पड़े और शब्दों से भिन्न भिन्न अर्थ निकल आवें। उ०—(क) अति अकुलाय शिलीमुखन, वन में रहत सदाय। तिन कमलन की हरत छबि तेरे नैन सुभाय (शब्द०)। यहाँ 'शिलीमुख', 'वन' और 'कमल' शब्द के दो दो अर्थ बिना शब्दों को तोड़े हुए हो जाते हैं। (ख) रावन सिर सरोज बनचारी। चलि रघुबीर सिली मुख धारी।—मानस, ६।९१।

अभंगिनी—वि० स्त्री० [सं० **अभङ्ग**+**इनी** (प्रत्य०)] जो विच्छिन्न न हो। उ०—तन से न सही, अभंगिनी, मन से हैं हम किंतु संगिनी।—साकेत, पृ० ३६४।

अभंगी(पु)—वि० [सं० **अभङ्गिनी**] १. अभंग। पूर्ण। अखंड। २. जिसके किसी अंश का हरण न हो सके। जिसका कोई कुछ न ले सके। उ०—आए माई दुरँग स्याम के संगी।...सूधी कहि सबहिनि समुझावत, ते साँचे सरबंगी। औरनि कौ सरबस लै मारत आपुन भए अभंगी।—सूर०, १०।३५११।

अभंगुर—वि० [सं० **अभङ्गुर**] १. जो टूटनेवाला न हो। दृढ़। मजबूत। २. अनाशवान्। न मिटनेवाला।

अभंजन[1]—वि० [सं० **अभञ्जन**] जिसका भंजन न हो सके। अटूट। अखंड।

अभंजन[2]—संज्ञा पुं० द्रव या तरल पदार्थ जिनके टुकड़े नहीं हो सकते, जैसे—जल, तेल आदि।

अभ(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अभ्र'। उ०—जिण दिन स्वामी अभ न गभ। ये तो जुग सूना गया।—बी० रासो, पृ० ८२।

अभक्त—वि० [सं०] १. जो भक्त न हो। भक्तिशून्य। श्रद्धाहीन। २. भगवद्विमुख। उ०—भक्त अभक्त सबै पुनि खाई। सबको भक्षै निरंजन राई।—कबीर सा०, पृ० ५७। जो बाँटा न गया हो। जो अलग न किया गया हो। जिसके टुकड़े न हुए हों। समूचा।

अभक्ष[1]—संज्ञा पुं० [सं०] भोजन न करना। उपवास [को०]।

अभक्ष[2]—वि० दे० 'अभक्ष्य'।

अभक्षरण—संज्ञा पुं० दे० 'अभक्ष'।

अभक्ष्य[1]—वि० [सं०] १. अखाद्य। अभोज्य। जो खाने के योग्य न हो। २. जिसके खाने का धर्मशास्त्र में निषेध हो।

अभक्ष्य[2]—संज्ञा पुं० भोजन के लिये निषिद्ध खाद्य पदार्थ [को०]।

अभख(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अभक्ष्य'। उ०—केचित अभख भखत न सकाहीं। मदिरा पान मांस पुनि खाहीं।—सुंदर ग्रं०, पृ० ८२।

अभग—वि० [सं०] अभागा। भाग्यहीन [को०]।

अभगत(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अभक्त'। उ०—तदपि करहिं सम बिषम बिहारा। भगत अभगत हृदय अनुसारा।—मानस, २।२१८।

अभग्ग(पु)—वि॰ [सं॰ अभग्न] जो विभक्त या अलग विलग न हो। जो टूटा या भग्न न हो। उ॰—तहँ सु विजय सुरराजपति, जादू कुलह अभग्ग।—पृ॰ रा॰, २०। १।

अभग्न—वि॰ [सं॰] अखंड। जो खंडित न हुआ हो। समूचा। उ॰—जगत्तत्व की खोज में लग्न जहाँ ऋषियों ने अभग्न किया श्रम था।—इतिहास, पृ॰ ६०६।

अभद्र¹—वि॰ [सं॰] १. अमांगलिक। अशुभ। अकल्याणकारी। २. अश्रेष्ठ। असाधु। अशिष्ट। बेहूदा। कमीना।

अभद्र²—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १. बुराई। पाप। दुष्टता। २. शोक [को॰]।

अभद्रता—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] १. अमांगलिकता। अशुभ। २. अशिष्टता। असाधुता। बुराई। खोटाई। बेहूदगी।

अभपद(पु)—संज्ञा पुं॰ [हिं॰] दे॰ 'अभयपद'। उ॰—अभपद भुजदंड मूल, पीन अंस सानुकूल, कनक मेखला दुकूल दामिनी धरखी री।—सूर॰, १०।१३८४।

अभयंकर—वि॰ [सं॰ अभयङ्कर] १. जो भयंकर न हो। सौम्य। २. अभय करनेवाला [को॰]।

अभय¹—वि॰ [सं॰] [स्त्री॰ अभया] निर्भय। निडर। बेखौफ। उ॰—जिन्ह कर भुज बल पाइ दसानन। अभय भए बिचरत मुनि कानन।—मानस, ३।१६।

मुहा॰—**अभय देना वा अभय बाँह देना** = भय से बचाने का वचन देना। शरण देना। निर्भय करना। उ॰—(क) ब्रह्मा रुद्रलोकहूँ गयो। उनहूँ ताहि अभय नहिं दयो।—सूर॰ (शब्द॰)। (ख) लछिमन अभयबाँह तेहि दीन्ही।—मानस ४।२०।

यौ॰—**अभयदान। अभयवचन। अभयबाँह।**

अभय²—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १. उशीर। खस। वीरणमूल। २. निर्भयता। ३. परमात्मा। ४. परमात्मविषयक ज्ञान। ५. भौतिक संपत्ति अभाव। सांसारिक संपदाविहीनता। ६. अभयसूचक एक मुद्रा। ७. शिव। ८. भय से प्राप्त त्राण। ९. यात्रा संबंधी एक योग [को॰]।

अभयचारी—संज्ञा पुं॰ [सं॰ अभयचारिन्] वे जंगली पशु जिनके मारने की आज्ञा न हो।

अभयडिंडिम—संज्ञा पुं॰ [सं॰ अभयडिण्डिम] १. सुरक्षात्मक भरोसे की घोषणा। एक युद्ध वाद्य [को॰]।

अभयद¹—वि॰ [सं॰] दे॰ 'अभयदाता' [को॰]।

अभयद²—संज्ञा पुं॰ १. विष्णु का एक नाम। २. जैनों के एक अर्हत [को॰]।

अभयदक्षिणा—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] सुरक्षा का वचन, आश्वासन या भरोसा देना। भयभीत को शरण देना। (को॰)।

अभयदाता—वि॰ [सं॰ अभय+दातृ] अभय देनेवाला। उ॰—मांडवी चित्त चातक नवांबुदवरण सरन तुलसीदास अभयदाता।—तुलसी ग्रं॰, पृ॰ ४७४।

अभयदान—संज्ञा पुं॰ [सं॰] भय से बचाने का वचन देना। निर्भय करना। शरण देना। रक्षा करना। उ॰—नरहरि देखि हर्ष मन कीन्हौ। अभयदान प्रहलादहि दीन्हौं।—सूर॰ ७।२।

क्रि॰ प्र॰—**देना।**

अभयदानी—वि॰ [सं॰ अभयदानिन्] अभय देनेवाला। उ॰—गाइ द्विजराज तियकाज न पुकार लाजै, भोगवै नरक घोर चोर को अभयदानि।—राम चं॰, पृ॰ ९२।

अभयपत्र—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १. सुरक्षा के आश्वासन का लिखित पत्र या अभिलेख [को॰]।

अभयपद—संज्ञा पुं॰ [सं॰ अभयपद] निर्भय पद। मोक्ष। मुक्ति। उ॰—पिता बचन खंडै सो पापी, सोइ प्रहलादहिं कीन्हौ। निकसे खंभ बीच तैं नरहरि, ताहि अभयपद दीन्हौ।—सूर॰ १।१०४।

अभयप्रद—वि॰ [सं॰] भय से विमुक्ति का आश्वासन देनेवाला। अभय देनेवाला (को॰)।

अभयमुद्रा—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] १. एक तांत्रिक मुद्रा। २. भय से विमुक्ति का भाव व्यक्त करनेवाला हाथ का एक संकेत [को॰]।

अभययाचना—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] भय से रक्षा करने की प्रार्थना। अभय की भीख [को॰]।

अभयवचन—संज्ञा पुं॰ [सं॰] भय से बचाने की प्रतिज्ञा। रक्षा का वचन।

क्रि॰ प्र॰—**देना।**

अभयवन—संज्ञा पुं॰ [सं॰] वह वन जिसे काटने की आज्ञा न हो। रक्षित वन।

अभयवनपरिग्रह—संज्ञा पुं॰ [सं॰] रक्षित वन संबंधी राजनियम का भंग या विघात। जैसे, उसमें घुसना, पेड़ काटना, लकड़ी तोड़ना आदि।

अभया¹—वि॰ [सं॰] निर्भया। बेडर की। निडर।

अभया²—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] एक प्रकार की हरीतकी या हड़ जिसमें पाँच रेखाएँ होती हैं। उ॰—अभया सोंठ चिरायत कना। सोचर मिर्चहिं चूरन बना।—इंद्रा॰, पृ॰ १५१। २. दुर्गा का एक स्वरूप (को॰)।

अभर(पु)—वि॰ [सं॰ अ = अति + भर = भार] दुर्वह। न ढोने योग्य। उ॰—भाई रे गैया एक बिरंचि दियो है भार अभर भो भाई। नौ नारी को पानि पियति है तृषा तऊ न बुताई।—कबीर (शब्द॰)।

अभरन¹(पु)—संज्ञा पुं॰ [सं॰ आभरण] दे॰ 'आभरण'। उ॰—इतनौ सुनत मगन ह्वै रानी बोलि लए नँदराई। सूरदास कंचन के अभरन लै भगरिनि पहिराई।—सूर॰ १०।१६।

अभरन²(पु)—वि॰ [सं॰ अ + हिं॰ भरम = मान प्रतिष्ठा] अपमानित। दुर्दशाग्रस्त। उ॰—उस बात की कसक हमारे मन से नहीं जाती जो बलराम ने तुम्हें अभरन किया था।—लल्लू॰ (शब्द॰)।

अभरम¹(पु)—वि॰ [सं॰ अ + भ्रम, हिं॰ भरम] १. भ्रम न करनेवाला। अभ्रांत। अचूक। २. निःशंक। निडर। उ॰—कृतवर्मा भट चल्यौ अभरमा कंचन वरमा।—गोपाल॰ (शब्द॰)।

अभरम²—क्रि॰ वि॰ निःसंदेह। बिना संशय। निश्चय।

अभरी(पु)†—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ अ + हिं॰ भरी] परिपूर्णता। उ॰—अभरी थावै आथ सु चित सरसावै चाव।—बाँकीदास ग्रं॰, भा॰ १, पृ॰ ५०।

अभर्तृका—वि० स्त्री० [सं०] १. अविवाहिता कुमारी। २. पतिविहीन। विधवा [को०]।

अभर्म⑪—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'अभरम'। उ०—राम कह्यो जो तुम चह्यो यह दुर्लभ वर पर्म। पै मेरे सतसंग ते होइहि सत्य अभर्म।—गोपाल० (शब्द०)।

अभल⑪—वि० [सं० **अ+हिं० भल=भला**] अश्रेष्ठ। बुरा। खराब।

अभव¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. न होना अनस्तित्व। २. नाश। प्रलय। ३. निर्वाण। मोक्ष (को०)।

अभव²—वि० जो उत्पन्न न हो। अजन्मा [को०]।

अभव्य¹—वि० [सं०] १. न होने योग्य। २. विलक्षण। अद्भुत। अनहोना। ३. अमांगलिक। अशुभ। बुरा। अभागा। ४. अशिष्ट। बेहूदा। भद्दा। भोंड़ा।

अभव्य²—संज्ञा पुं० जैन शास्त्रानुसार जीव, जो कभी मोक्ष नहीं प्राप्त कर सकते।

अभाऊ⑪—वि० [सं० **अ+भाव**] १. जो न भावे। जो अच्छा न लगे। उ०—भइ अज्ञा को भाँट अभाऊ। बाएँ हाथ देइ बरम्हाऊ।—जायसी ग्रं०, पृ० ११४। २. जो न सोहे। अशोभित। उ०—काढ़हु मुद्रा फटिक अभाऊ। पहिरहु कुंडल कनक जड़ाऊ।—जायसी (शब्द०)।

अभाग¹—वि० [सं०] १. बिना भाग का। बिना हिस्से का। २. अविभक्त।

अभाग²⑪—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अभाग्य'। उ०—सपनेहु दोस कलेसु न काहू। मोर अभाग उदधि अवगाहू।—मानस, २।२६०।

अभागा—वि० [सं० **अभाग्य**] [स्त्री० **अभागिन्, अभागिनी**] मंदभाग्य। भाग्यहीन। प्रारब्धहीन। बदकिस्मत। उ०—(क) अति खल जे विषई बक कागा। एहि सर निकट न जाइ अभागा।—मानस, १।३८। (ख) कैसे तू अभागा यहाँ पहुँचा है मरने ?—लहर, पृ० ७२।

अभागी—वि० [सं० **अभागिन्**] [वि० स्त्री० **अभागिनी**] १. जिसे कुछ भाग न मिले। जिसे हिस्सा न मिले। २. भाग्यहीन। बदकिस्मत। उ०—करतु राजु लंका सठ त्यागी। होइहि जब कर कीट अभागी।—मानस, ५।५३।

अभाग्य¹—वि० [सं०] अभागवाला। भाग्यहीन। अभागा [को०]।

अभाग्य²—सं० पुं० [सं०] प्रारब्धहीनता। दुर्दैव। बुरा दिन। बदकिस्मती। उ०—मोर अभाग्य जिआवत ओही। जेहि हौं हरि पद कमल बिछोही।—मानस, ६।८८।

अभाजन—संज्ञा पुं० [सं०] अपात्र। कुपात्र। बुरा आदमी।

अभाजै⑪—वि० [सं० **अविभाजित**] जो विभक्त न हो। अखंडित। समूचा पूर्ण। उ०—अभाजै सी रोटली कागा ले जाइला। पूछौ म्हारा गुरू नैं कहाँ बैसि खाइला।—गोरख०, पृ० १२८।

अभाय⑪—संज्ञा पुं० [सं० **अभाव**] भावशून्यता। अनस्तित्व। असत्ता। उ०—त्यों ही कछु घूमि झूमि बेसुध गए कै हाय, पाय परे उखरि अभाय मुख छायौ है।—रत्नाकर, भा० १, पृ० ११६।

अभार⑪—वि० [हिं०] दे० 'अभर'। उ०—दैव दीन्ह सबु मोहि अभारू। मोरे नीति न धरम बिचारू।—मानस, २।२६८।

अभाव¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. असत्ता। अनस्तित्व। नेस्ती। अविद्यमानता। न होना। २. आधुनिक नैयायिकों के मत के अनुसार वैशेषिक शास्त्र में सातवाँ पदार्थ।

विशेष—कणादकृत सूत्रग्रंथ में द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष और समवाय, ये छ पदार्थ ही अभाव' माने गए हैं। अभाव पाँच प्रकार का है, यथा (क) **प्रागभाव**=जो किसी क्रिया और गुण के पहले न हो; जैसे, घड़ा बनने के पहले न था। (ख) **प्रध्वंसाभाव**=जो एक बार होकर फिर न रहे; जैसे 'घड़ा बन कर टूट गया। (ग) **अन्योन्याभाव**=एक पदार्थ का दूसरा पदार्थ न होना; जैसे, घोड़ा बैल नहीं है और बैल घोड़ा नहीं है। (घ) **अत्यंताभाव**=जो न कभी था, न है और न होगा; जैसे, आकाशकुसुम, बंध्या का पुत्र। और (च) संसर्गाभाव=एक वस्तु के संबंध में दूसरे का अभाव; जैसे, घर में घोड़ा नहीं है।

२. त्रुटि। टोटा। कमी। घाटा। जैसे, राजा के घर में द्रव्य का कौन अभाव है। उ०—अपने अभाव की जड़ता में वह रह न सकेगा कभी मग्न।—कामायनी, पृ० १५१। ३. नाश। मृत्यु [को०]। लोप। अंतरिक्ष। अंतर्धान [को०]।

अभाव²—वि० भावरहित। स्नेहरहित। लोप। अंतरिक्ष। अंतर्धान (को०)।

अभाव³⑪—संज्ञा पुं० [सं० **अ=बुरा+भाव**] कुभाव। दुर्भाव। विरोध। उ०—हम तिनकौ बहु भाँति खिझावा। उनके कबहुँ अभाव न आवा।—विश्राम (शब्द०)।

अभावन¹⑪—वि० [सं० **आ+भावन**] सुंदर। रुचिर। रुचिकर।

अभावन²⑪—वि० [सं० **अ=नहीं+भावन**] असुंदर। अरुचिकर। अप्रिय।

अभावना—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. विवेक या निर्णय का अभाव। २. धार्मिक धारणाओं का अभाव (को०)।

अभावनीय—वि० [सं०] १. जो भावना में न आ सके। अचिंतनीय। २. अशोभनीय। उ०—इसी असामंजस्य के कारण वह ऐसे ऐसे अभावनीय कार्य कर बैठता है।—मृग० पृ० ५५।

अभावपदार्थ—संज्ञा पुं० [सं०] भावशून्य पदार्थ। सत्ताहीन पदार्थ। असत् पदार्थ।

अभावप्रमाण—संज्ञा पुं० [सं०] न्याय में किसी किसी आचार्य के मत से एक प्रमाण जिसमें कारण के न होने से कार्य के न होने का ज्ञान हो। गौतम ने इसको प्रमाण में नहीं लिया है।

अभावित—वि० [सं०] जिसकी भावना न की गई हो।

क्रि० प्र०—रहना।

अभावी—वि० [सं० **अभाविन्**] [वि० स्त्री० **अभाविनी**] १. जिसकी स्थिति की भावना न हो सके। २. न होनेवाला।

अभाव्य—वि० [सं०] दे० 'अभावी' [को०]।

अभाषण—संज्ञा पुं० [सं०] भाषण का अभाव। न बोलना। मौन। उ०—मैं नहीं हूँ यों अभाषण योग्य।—साकेत, पृ० १८६।

अभाषित—वि० [सं०] न कहा हुआ। अकथित [को०]।

अभाष्य—वि० [सं०] न बोलने योग्य बात या व्यक्ति। उ०—लोग उन्हें अस्पृश्य और अभाष्य मान उनसे उपेक्षा ही करते रहे।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २४२।

यौ०—अभाष्यभाषण = न कहने योग्य बातें कहना या अभाष्य व्यक्ति से बातें करना।

अभासⓅ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आभास'। उ०—कह हनुमंत सुनहु प्रभु, ससि तुम्हार प्रिय दास। तव मूरति बिधु उर बसति, सोइ स्यामता अभास।—मानस, ६।१२।

अभासनाⓅ—क्रि० अ० [सं० **आभास, हिं० अभास से नाम०**] भासना। दिखाई देना। जान पड़ना। उ०—कंकन, किंकिनि भूषन जिते। मोहिं श्रीकृष्ण अभासत तिते।—नंद ग्रं० पृ० २६६।

अभितरⓅ—क्रि० वि० [सं० **अभ्यन्तर, प्रा० अब्भितर**] दे० 'अभ्यंतर'। उ०—उत्तम पुरुष की दशा जौं किसमिस दाख। बाहिज अभितर बिरागी मृदु अंग है।—सुंदर ग्रं०, पृ० १००।

अभि—उप० [सं०] एक उपसर्ग जो शब्दों में लगकर उनमें इन अर्थों की विशेषता उत्पन्न करता है—१. सामने। जैसे; अभ्युत्थान। अभ्यागत। २. बुरा। जैसे; अभियुक्त। ३. अधिक। जैसे; अभिलाषा। ४. समीप। जैसे; अभिसारिका। ५. बारंबार, अच्छी तरह। जैसे; अभ्यास। ६. दूर। जैसे; अभिहरण। ७. ऊपर। जैसे; अभ्युदय।

अभिअंतरⓅ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अभ्यंतर'। उ०—प्रेम भगति जल बिनु रघुराई। अभिअंतर मल कबहुँ न जाई।—मानस, ७।४६।

अभिकंपन—संज्ञा पुं० [सं० **अभिकम्पन**] तीव्र कंपन। बुरी तरह काँपना [को०]।

अभिक[1]—वि० [सं०] कामुक। कामी। विषयी।

अभिक[2]—संज्ञा पुं० कामुक व्यक्ति वा प्रेमी जन [को०]।

अभिकरण—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रभाव। २. आकर्षण। खिंचाव [को०]

अभिकर्षण—संज्ञा पुं० [सं०] कृषि का एक उपकरण। खेती का एक औजार [को०]।

अभिकांक्षा—संज्ञा स्त्री० [सं० **अभिकाङ्क्षा**] चाह। इच्छा। अभिलाषा [को०]।

अभिकांक्षी—वि० [सं० **अभिकाङ्क्षिन्**] इच्छुक। अभिलाषी। मनोरथवाला [को०]।

अभिकाम[1]—वि० [सं०] १. इच्छुक। अभिलाषी। २. प्रेमी। ३. कामुक [को०]।

अभिकाम[2]—संज्ञा पुं० १. प्रेम। प्यार। २. इच्छा। अभिलाषा [को०]।

अभिकृति—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का छंद जिसमें १०० वर्ण या मात्राएँ होती हैं [को०]।

अभिक्रंद—संज्ञा पुं० [सं० **अभिक्रन्द**] चिल्लाहट। गर्जन। शोर [को०]

अभिक्रम—संज्ञा पुं० [सं०] १. सुविचारित आक्रमण। धावा। उ०—देखि देखि बिक्रम अभिक्रम अकालिनि के कालिनि के बाद साधुवाद बहु दीन्हे हैं।—रत्नाकर, भा० २. पृ० १६२। २. आरोहण (को०)। ३. प्रारंभ। शुरुआत (को०)। प्रयत्न। चेष्टा (को०)।

अभिक्रमण—संज्ञा पुं० [सं०] १. सेना का शत्रु के संमुख जाना। चढ़ाई। धावा। २. दे० **'अभिक्रम'**।

अभिक्रांति—संज्ञा स्त्री० [सं० **अभिक्रान्ति**] दे० 'अभिक्रमण' [को०]।

अभिक्रांती—वि० [सं० **अभिक्रान्तिन्**] १. जो पहुँच गया हो। २. जिसने आरंभ कर दिया हो। आरंभक [को०]।

अभिक्रोश—संज्ञा पुं० [सं०] १. निंदा करना। कुवाच्य बोलना। २. चिल्लाना।

अभिक्रोशक—संज्ञा पुं० [सं०] १. जोर से चिल्लाने या अपशब्द कहनेवाला व्यक्ति। २. आगे आगे जोर से घोषणा करनेवाला व्यक्ति [को०]।

अभिक्षिप्त—वि० [सं०] फेंका हुआ। तिरस्कृत [को०]।

अभिख्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. नाम। यश। कीर्ति। २ शोभा। ३. कुख्याति (को०)। ४. महात्म्य। महिमा (को०)। बुद्धि। धी (को०)। ५. नाम (को०)। ६. पुकारना। संबोधन। ७. बताना। कहना (को०)। ८. शब्द। पर्याय (को०)।

अभिख्यात—वि० [सं०] १. कीर्तिशाली। २. विख्यात। मशहूर [को०]।

अभिख्यान—संज्ञा पुं० [सं०] नाम। प्रसिद्धि। यश। कीर्ति [को०]।

अभिगम—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अभिगमन' [को०]।

अभिगमन—संज्ञा पुं० [सं०] १. पास जाना। पहुँचना। २. सहवास। संभोग ३. देवताओं के स्थान को झाड़ू देकर और लीप पोत कर साफ करना। ४. समझना।

अभिगम्य—वि० [सं०] १. अभिगमन के योग्य। २. बोधगम्य [को०]।

अभिगामी—वि० [सं० **अभिगामिन्**] [स्त्री० **अभिगामिनी**] १. पास जानेवाला। २. सहवास या संभोग करनेवाला। जैसे—ऋतुकालाभिगामी।

अभिगुंजन—संज्ञा पुं० [सं० **अभि + गुञ्जन**] मधुर ध्वनि। रसीला स्वर।

अभिगुंजीⓅ—वि० [हिं०] अभिगुंजन करनेवाली। उ०—मधुर अधर अभिगुंजी धरै। कान्ह मुरलिया सुर संग ररै।—घनानंद० प० १८६।

अभिगुप्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. छिपाकर रखना। सँभालकर रखना। २. आत्मसंयमन [को०]।

अभिगूँज—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अभिगुंजन'।

अभिगोप्ता—वि० [सं० **अभिगोप्तृ**] छिपा रखनेवाला। बचा रखनेवाला। संरक्षणकर्ता [को०]।

अभिग्रस्त—वि० [सं०] शत्रु द्वारा दबाया हुआ। आक्रांत [को०]।

अभिग्रह—संज्ञा पुं० [सं०] १. लेना। आदान। ग्रहण। स्वीकार। २. झगड़ा। प्रहार। कलह। ३. लूट। डाका। ४. चढ़ाई। धावा। ५ चुनौती (को०)। ६. शिकायत (को०)। ७. अधिकार। शक्ति [को०]।

अभिग्रहण—संज्ञा पुं० [सं०] स्वामी की उपस्थिति में उसकी वस्तु का अपहरण। राहजनी। लूट (को०)।

अभिघट—संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक बाजा जो घड़े के आकार का होता था और जिसके मुँह पर चमड़ा मढ़ा रहता था।

अभिघात—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० **अभिघातक, अभिघाती**] १. चोट पहुँचना। प्रहार। मार। ताड़ना। पुरुष की बाईं ओर और स्त्री की दाईं ओर का मसा।

अभिघातक—वि० [सं०] चोट पहुँचानेवाला [को०]।

अभिघातकी—वि० [सं० अभिघातकिन्] दे० 'अभिघातक'।

अभिघाती—वि० [सं० अभिघातिन्] [वि० स्त्री० अभिघातिनी] दे० 'अभिघातक'।

अभिघार—संज्ञा पुं० [सं०] १. सींचना। छिड़काव। २. घी की आहुति। ३. घी से छौंकना या बघारना। ४. घी।

अभिचर—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० अभिचारी] दास। नौकर। सेवक।

अभिचरण—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अभिचार'।

अभिचरणीय—वि० [सं०] 'अभिचरण या अभिचार के योग्य [को०]।

अभिचार—संज्ञा पुं० [सं०] अथर्ववेदोक्त मंत्र यंत्र द्वारा मारण और उच्चाटन आदि हिंसा कर्म। पुरश्चरण। २. तंत्र के प्रयोग, जो छः प्रकार के होते हैं—मारण, मोहन, स्तंभन विद्वेषण, उच्चाटन और वशीकरण। स्मृति में इन कर्मों का उपपातकों में माना गया है। उ०—उसकी आँखों में अभिचार का संकेत है; मुस्कुराहट में विनाश की सूचना है।—स्कंद०, पृ० २६।

अभिचारक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] यंत्र मंत्र आदि द्वारा मारण, उच्चाटन आदि कर्म।

अभिचारक[2]—वि० यंत्र मंत्र द्वारा उच्चाटन आदि करनेवाला।

अभिचारी—वि० [सं० अभिचारिन्] [वि० स्त्री० अभिचारिणी] दे० 'अभिचारक'।

अभिज—वि० [सं०] चारो ओर होनेवाला [को०]।

अभिजन—संज्ञा पुं० [सं०] १. कुल। वंश। २. परिवार। ३. जन्मभूमि। वह स्थान जहाँ अपना तथा पिता, पितामह आदि का जन्म हुआ हो। ४. वह जो घर में सबसे बड़ा हो। घर का अगुआ। कुल में श्रेष्ठ व्यक्ति। ५. ख्याति। कीर्ति। ६. परिजन।

अभिजनन—संज्ञा पुं० [सं० अभि + जनन] प्रादुर्भाव। उत्पत्ति। उ०—विश्व के अधिपति ने......अविच्छेद्य समन्वय का अभिजनन किया।—संपूर्णा० अभि ग्रं०, पृ० १११।

अभिजय—संज्ञा स्त्री० [सं०] पूर्ण रूप से बिजय। पूरी जीत [को०]।

अभिजात[1]—वि० [सं०] १. अच्छे कुल में उत्पन्न। कुलीन। उ०—अत्याचारियों की नृशंसता से यदुकुल के अभिजात वर्ग ने ब्रज को सूना कर दिया।—कंकाल, पृ० १४८। २. बुद्धिमान्। पंडित। ३. योग्य। उपयुक्त। ४. मान्य। पूज्य। ५. सुंदर। मनोहर।

अभिजात[2]—संज्ञा पुं० १. उच्चवंश। कुलीनता। २ जातकर्म [को०]।

अभिजाति—संज्ञा स्त्री० [सं०] ऊँचे कुल में जन्म। कुलीनता [को०]।

अभिजित[1]—वि० [सं० अभिजित्] १. विजयी। २. अभिजित् नक्षत्र में उत्पन्न (को०)।

अभिजित[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १. दिन का आठवाँ मुहूर्त। दोपहर के पौने बारह बजे से लेकर साढ़े बारह बजे तक का श्राद्ध के लिये उपयुक्त समय। २. एक नक्षत्र जिसमें तीन तारे मिलकर सिंघाड़े के आकार के होते हैं। ३. उत्तराषाढ़ नक्षत्र के अंतिम १५ दंड तथा श्रवण नक्षत्र के प्रथम चार दंड। उ०—नौमी तिथि मधुमास पुनीता। सुकल पच्छ अभिजित हरि प्रीता।—मानस, १।१९१। ४. विष्णु (को०)। ५. एक यज्ञ (को०)। ६. एक लग्न का नाम (को०)।

अभिज्ञ—वि० [सं०] जानकार। परिचित। विज्ञ। २. निपुण कुशल।

अभिज्ञता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. जानकारी। विज्ञता। २. निपुणता। कुशलता।

अभिज्ञा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पहचानना। जानना। २. याद करना। स्मरण आना। ३. अलौकिक क्षमता या शक्ति। इसके पाँच भेद हैं—कोई भी रूप धारण करना; दूर की बात सुनना; दूर-दर्शन; अन्य के विचार और स्थिति को जान लेना [को०]।

अभिज्ञात—संज्ञा पुं० [सं०] १. पुराण के अनुसार शाल्मली द्वीप के सात वर्षों वा खंडों में से एक। २. जाना समझा।

अभिज्ञातार्थ—संज्ञा पुं० [सं०] न्याय में एक प्रकार का निग्रह स्थान। विवाद या तर्क में वह अवस्था जब वादी अप्रसिद्ध या शिष्ट अर्थों के शब्दों द्वारा कोई बात प्रकट करने लगे अथवा इतनी जल्दी जल्दी बोलने लगे कि कोई समझ न सके और इस कारण तर्क रुक जाय।

अभिज्ञान—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अभिज्ञात] १. स्मृति। खयाल। २. वह चिह्न जिससे कोई वस्तु पहचानी जाय। लक्षण। पहिचान। ३. वह वस्तु जो किसी बात का स्मरण या विश्वास दिलाने के लिये उपस्थित की जाय। निशानी। सहिदानी। परिचायक चिह्न। उ०—सीता को अभिज्ञान रूप से देने के लिये राम ने हनूमान को अपनी अँगूठी दी (शब्द०)। ४. मुद्रा की छाप मुहर।

अभिज्ञानपत्र—संज्ञा पुं० सं० परिचयपत्र। सिफारिशी चिट्ठी [को०]।

अभिज्ञान शाकुंतल—संज्ञा पुं० [सं० अभिज्ञानशाकुन्तल] महाकवि कालिदास कृत सात अंकों का प्रसिद्ध नाटक।

अभिज्ञापक—वि० [सं०] जानकारी या सूचना देनेवाला [को०]।

अभितः—अ० [सं०] १. संनिकट। २. चारो ओर से। सर्वतः। ३. पूर्णतः। ४. शीघ्रता से। ५. दोनों ओर से। ६. पहले और बाद में। ७. आमने सामने से [को०]।

अभितप्त—वि० [सं०] १. गर्म। जला हुआ। प्रज्वलित। २. पश्चात्तापयुक्त।। अनुतप्त [को०]।

अभिताप—संज्ञा पुं० [सं०] १. मानसिक या शारीरिक उग्र ताप या दाह। २. प्रबल व्यग्रता, क्षोभ या वेदना [को०]।

अभिद(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अभेद्य'। उ०—अभिद अछेद रूप मम जान। जो सब घट है एक समान।—सूर० ३।१३।

अभिदर्शन—संज्ञा पुं० [सं०] १. देखना। २. दिखाई देना। ३. व्यक्त या प्रकट होना [को०]।

अभिद्रव—संज्ञा पुं० [सं०] आक्रमण। हमला। चढ़ाई [को०]।

अभिद्रवण—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अभिद्रव' [को०]।

अभिद्रुत—वि० [सं०] आक्रांत। पददलित [को०]।

अभिद्रोह—संज्ञा पुं० [सं०] १. हानिकारक विरोध। २. उत्पीड़न। ३. निंदा। कुत्सा। ४. क्रूरता। ५. दुःख [को०]।

अभिधर्म—संज्ञा पुं० [सं०] बौद्धों के अनुसार परम सत्य। सर्वोच्च धर्म।

अभिधर्मपिटक—संज्ञा पुं० [सं०] 'त्रिपिटक'।

अभिधर्षण—संज्ञा पुं० [सं०] १. भूत प्रेतों का आवेश। २. उत्पीड़न। ३. किसी के विरुद्ध आघात करना [को०]।

अभिधा—संज्ञा स्त्री० [सं०] शब्द की तीन शक्तियों में से एक। शब्द के वाच्यार्थ को व्यक्त करने की शक्ति। शब्दों के उस अभिप्राय को प्रकट करने की शक्ति जिससे यौगिक या व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ सीधे निकलता हो। मुख्यार्थ। २. शब्द या ध्वनि। ३. नाम (को०)।

अभिधान—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० **अभिधायक, अभिधेय**] १. नाम। लकब। २. कथन। ३. शब्दकोश। ४. गीत। गान (को०)।

अभिधानक—संज्ञा पुं० [सं०] आवाज। शब्द। ध्वनि (को०)।

अभिधानमाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] शब्दकोश [को०]।

अभिधायक—वि० [स्त्री० **अभिधायिका**] १. अभिधेय अर्थ का वाचक (शब्द)। २. नाम रखनेवाला। ३. कहनेवाला। ४. सूचक। परिचायक।

अभिधावक—वि० [सं०] हमला करनेवाला। आक्रमणकारी। आक्रामक [को०]।

अभिधावन—संज्ञा पुं० [सं०] चढ़ाई। आक्रमण [को०]।

अभिधेय[1]—वि० [सं०] १. अभिधा शक्ति से बोध्य (अर्थ)। प्रतिपाद्य। वाच्य। २. जिसका बोध नाम लेने से ही हो जाय। ३. नाम देने योग्य।

अभिधेय[2]—संज्ञा पुं० १. नाम। अभिधा। १. विषयवस्तु (को०)। ३. भावार्थ [को०]।

अभिध्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दूसरे की वस्तु या संपत्ति की इच्छा। पराई वस्तु की चाह। २. अभिलाषा। इच्छा। लोभ।

अभिध्यान—संज्ञा पुं० [सं०] १. अभिलाषा। इच्छा। २. प्राप्तिकामना। लोभ। ३. निंदा। ४. ध्यानमग्नता।

अभिनंतु(पु)—वि० [सं० **अभिनन्द्य**] अभिनंदन योग्य। उ०—को अभिनंतु रहै रन षग्गं।—पृ० रा०।

अभिनंद[1]—वि० [सं० **अभिनन्द**] प्रसन्न या आनंदित करनेवाला [को०]।

अभिनंद[2]—संज्ञा पुं० १. आनंद। २. स्तुति। प्रशंसा। ३. बधाई। ४. अभिलाषा। ५. स्वल्प सुख। ६. प्रोत्साहन। बढ़ावा। ७. परमात्मा का नाम [को०]।

अभिनंदन—संज्ञा पुं० [सं० **अभिनन्दन**][वि० **अभिनंदनीय, अभिनंदित**] १. आनंद। २. संतोष ३. उत्तेजना। प्रोत्साहन। ४. आकांक्षा। इच्छा। ५. विनीत प्रार्थना। उ०—गुरु के वचन सचिव अभिनंदन। सुने भरत हिय हित जनु चंदन।—मानस, २।१७६। ६. प्रशंसा। प्रतिष्ठा। आदर। उ०—यह अवसर हमने उनके अभिनंदन के लिये उपयुक्त समझा।—संपूर्णा० अभि० ग्रं०, पृ० (ग)।

यौ०—**अभिनंदन ग्रंथ**=वह ग्रंथ जो किसी व्यक्ति के महत्वपूर्ण कार्यों के प्रति आदर प्रकट करने के लिये उसके जीवन की पचासवीं या साठवीं या किसी भी जन्मतिथि पर दिया जाता है। **अभिनंदनपत्र**—वह आदर या प्रतिष्ठासूचक पत्र जो किसी महान् पुरुष के आगमन पर हर्ष और संतोष प्रकट करने के लिये सुनाया और अर्पण किया जाता है। (अं०) ऐड्रेस। ७. जैन लोगों के चौथे तीर्थंकर का नाम। ८. आम।

अभिनंदना(पु)—क्रि० [सं० **अभिनन्दन से हिं० नाम०**] सत्कृत करना। मान देना। संमानित करना।

अभिनंदनीय—वि० [सं० **अभिनन्दनीय**] वंदनीय। प्रशंसा के योग्य। उ०—मेरे हित है हित यही स्पृश्य, अभिनंदनीय।—अपरा, पृ० १८१।

अभिनंदित—वि० [सं० **अभिनन्दित**] वंदित। प्रशंसित। उ०—लोगों ने साधु साधु कहकर उसे अभिनंदित किया।—इंद्र०, पृ० १२८।

अभिनंदी—वि० [सं० **अभिनन्दिन्**] संमान करनेवाला। अभिनंदनकर्ता [को०]।

अभिनंद्य—वि० [सं० **अभिनन्द्य**] अभिनंदन के योग्य। अभिनंदनीय [को०]।

अभिन(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अभिन्न'। उ०—भिन भिन अभिन वाणि मुख भाखि।—बेलि०, दू० १९८।

अभिनय—संज्ञा पुं० [सं० वि० **अभिनीति, अभिनेय**] दूसरे व्यक्तियों के भाषण तथा चेष्टा को कुछ काल के लिये धारण करना। नाट्यमुद्रा। कालकृत अवस्थाविशेष का अनुकरण। स्वाँग। नकल। नाटक का खेल।

विशेष—इसके चार विभाग हैं—(क) आंगिक, जिसमें केवल अंगभंगी वा शरीर की चेष्टा दिखाई जाय। (ख) वाचिक, जिसमें केवल वाक्यों द्वारा कार्य किया जाय। (ग) आहार्य, जिसमें केवल वेश या भूषण आदि के धारण की ही आवश्यकता हो, बोलने चालने का प्रयोजन न हो। जैसे, राजा के आस पास पगड़ी आदि बाँधकर चोबदार और मुसाहिबों का चुपचाप खड़ा रहना। (ग) सात्विक, जिसमें, स्त्री, स्वेद, रोमांच और कंप आदि अवस्थाओं का अनुकरण हो।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

मुहा०—**अभिनय करना**=नाचना कूदना।

यौ०—**अभिनयाचार्य**=नृत्यकला का शिक्षक। नृत्यकलाविद्। **अभिनयविद्या**=नृत्यकला। नाट्य कला।

अभिनव—वि० [सं०] १. नया। नवीन। उ०—केहरि किशोर से अभिनव अवयव प्रस्फुटित हुए थे।—कामायनी, पृ० २७७। २. ताजा। ३. अनुभवहीन। अतिनूतन [को०]।

अभिनवगुप्त—संज्ञा पुं० [सं०] ध्वनिशास्त्र के एक प्रथित व्याख्याकार। ध्वन्यालोक की टीका लोचन के लेखक।

अभिनहन—संज्ञा पुं० [सं०] एक पट्टी जो आँखों पर बाँधी जाती है। २. अँधौटी। अनवट। ३. अंधा। दृष्टिहीन व्यक्ति [को०]।

अभिनासी(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अविनाशी'। उ०—हंस तो अभिनासी, काल तो हलाहल, सुन्य तो परम सुन्य।—रामानंद०, पृ० २९।

अभिनिधन[1]—वि० [सं०] मरणासन्न। जिसका अंत निकट हो [को०]।

अभिनिधन[2]—संज्ञा पुं० सामवेद की वे ऋचाएँ जिनका मरणासन्न के निकट गान होता है।

अभिनियोग—संज्ञा पुं० [सं०] कार्य में मनोयोगपूर्वक संलग्नता। दत्तचित्तता [को०]।

अभिनिर्माण—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रस्थान। कूच। २. आक्रमण। शत्रु के विरुद्ध बढ़ाव या चढ़ाई [को०]।

अभिनिर्वृति—संज्ञा स्त्री० [सं०] कार्यपूर्ति। कार्यसंपन्नता।

अभिनिविष्ट—वि० [सं०] १. धँसा हुआ। पैठा हुआ। गड़ा हुआ। २. बैठा हुआ। उपविष्ट। ३. एक ही ओर लगा हुआ। अनन्य मन से अनुरक्त। लिप्त। मग्न।

अभिनिवेश—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० **अभिनिविष्ट, अभिनिवेशित**] १. प्रवेश। पैठ। गति। २. मनोयोग। किसी विषय में गति। लीनता। अनुरक्ति। एकाग्रचिंतन। ३. दृढ़ संकल्प। तत्परता। ४. योगशास्त्र के पाँच क्लेशों में से अंतिम। मरणभय से। उत्पन्न क्लेश। मृत्युशंका। ५. दर्प। घमंड। शान। नाक। [कौ०]। ६. उत्कट लालसा। तीव्र आकांक्षा [कौ०]।

अभिनिवेशित—वि० [सं०] प्रविष्ट।

अभिनिष्क्रमण—संज्ञा पुं० [सं०] १. बाहर जाना। बहिर्गमन। २. बौद्धों के अनुसार प्रव्रज्या ग्रहणार्थ गृह का परित्याग।

अभिनिष्पत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] पूर्णता। समाप्ति। अंत। परिपूर्णता निष्पन्नता [कौ०]।

अभिनिष्पन्न—वि० [सं०] पूर्ण। समाप्त। सिद्ध [कौ०]।

अभिनीत—वि०[सं०] १. निकट लाया हुआ। २. पूर्णता को पहुँचाया हुआ। सुसज्जित। अलंकृत। ३. युक्त। उचित। न्याय्य। ४. अभिनय किया हुआ। खेला हुआ (नाटक)। नकल करके दिखलाया हुआ। ५. विज्ञ। धीर। ६. क्रुद्ध (कौ०)। ७. दयालु (कौ०)। ८. स्वीकृत (कौ०)।

अभिनेतव्य—वि० [सं०] नाटक द्वारा प्रस्तुत करने योग्य। अभिनय के योग्य [कौ०]।

अभिनेता—वि० [सं० **अभिनेतृ**] अभिनय करनेवाला। स्वांग दिखानेवाला। नाटक का पात्र। (अं०) ऐक्टर।

अभिनेत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] नाटक में अभिनय करनेवाली स्त्री। नटी। (अं०) ऐक्ट्रेस।

अभिनेय—वि० [सं०] अभिनय करने योग्य। खेलने योग्य (नाटक)।

अभिनै(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अभिनय'। उ०—नटवा निपट निपुन रासमंडल मैं अभिनै भेद बतावै, गीत रीति परवान सों। —घनानंद, पृ० ३६८।

अभिन्न—वि० [सं०][संज्ञा **अभिन्नता**] १. जो भिन्न न हो। अपृथक्। एकमय। २. अप्रभावित (कौ०)। ३. जो बदला न हो। अपरिवर्तित (कौ०)। ४. अविभक्त। पूर्ण, जैसे, संख्या (कौ०)। ५. मिला हुआ। सटा हुआ। लगा हुआ। संबद्ध।

यौ०—**अभिन्नपुट** = नया पत्ता। **अभिन्नहृदय** = घनिष्ठ।

अभिन्नता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. भिन्नता का अभाव। अपृथक्त्व। २. लगावट। संबंध। ३. मेल।

अभिन्नपद—संज्ञा पुं० [सं०] श्लेष अलंकार का एक भेद। अभंगपद श्लेष।

अभिन्यास—संज्ञा पुं० [सं०] संनिपात का एक भेद जिसमें नींद नहीं आती, देह काँपती है, चेष्टा बिगड़ जाती है और इंद्रियाँ शिथिल हो जाती हैं और सिर के बाल बीच से अलग अलग हो जाते हैं।

अभिपतन—संज्ञा पुं०[सं०] १. समीप आना। २. आक्रमण। प्रहार। ३. प्रस्थान [कौ०]।

अभिप्रत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. समीप आना। २. पूर्ति। ३. रक्षण करना। ४. दे० उपपत्ति [कौ०]।

अभिपन्न—वि० [सं०] १. निकट गया या पहुँचा हुआ। २. भगोड़ा। ३. पराभूत या त्रासित। ४. विपत्तिग्रस्त। अभागा। ५. दोषी। ६. स्वीकृत। ७. मृत। ८. रक्षित। ९. दूर किया हुआ [कौ०]।

अभिपुष्प[१]—वि० [सं०] पुष्प से आवृत। फूलों से ढका; जैसे, वृक्ष।

अभिपुष्प[२]—संज्ञा पुं० [सं०] सुंदर पुष्प। नायाब फूल [कौ०]।

अभिप्रणय—संज्ञा पुं० [सं०] प्रेम। कृपा। अनुग्रह [कौ०]।

अभिप्रणयन—संज्ञा पुं० [सं०] संस्कार। वेदविधि से अग्नि आदि का संस्कार।

अभिप्रपन्न—वि० [सं०] संप्राप्त। उपलब्ध [कौ०]।

अभिप्राणन—संज्ञा पुं०[सं०] साँस बाहर छोड़ना। फूँक मारना [कौ०]।

अभिप्राय—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० **अभिप्रेत**] १. आशय। मतलब। अर्थ। तात्पर्य। गरज। प्रयोजन। उ०—उसने सशंक हँसकर कुछ अभिप्राय से पूछा।—इंद्र०, पृ० १००। २. अर्थ। माने। मतलब। जैसे, शब्द या वाक्य का (कौ०)। ३. राय। विचार। सलाह (कौ०)। ४. संबंध। लगाव (कौ०)। ५. विष्णु का एक नाम (कौ०)।

अभिप्रेत—वि०[सं०] १. इष्ट। अभिलषित। चाहा हुआ। २. प्रिय। ३. स्वीकृत।

अभिप्रोक्षण—संज्ञा पुं० [सं०] यज्ञादि में प्रयुक्त विभिन्न पात्रों और सामानों का जलादि द्वारा सिंचन [कौ०]।

अभिप्लव—संज्ञा पुं० [सं०] १. उपद्रव। उत्पात। फसाद। २. गवामयन यज्ञ में प्रति मास का पंचमांश जो छः छः दिनों का होता था और जिनमें से प्रत्येक का अलग अलग नाम होता था। ३. स्तोम आदि का पाठ जो एक अभिप्लव में होता था। ४. उमड़कर बहना। बाढ़। ५. प्राजापत्य आदित्य।

अभिप्लुत—वि० [सं०] १. आवृत। आच्छादित। २. युक्त [कौ०]।

अभिभव—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० **अभिभावुक, अभिभावी, अभिभूत**] १. पराजय। २. तिरस्कार। अनादर। ३. अनहोनी बात। विलक्षण घटना। ४. प्राबल्य। अधिकता [कौ०]।

अभिभाव—वि० [सं०] दे० 'अभिभावक'।

अभिभावक—वि० [सं०] १. अभिभूत वा पराजित करनेवाला। तिरस्कार करनेवाला। २. जड़ अर्थात् स्तंभित कर देनेवाला। ३. वशीभूत करनेवाला। दबाव में लानेवाला। ४. रक्षक। सरपरस्त। उ०—अभिभावक अब वही हमारे रखते स्नेह सहित मुझको।—प्रेम०, पृ० १६। ५. आक्रमण करनेवाला (कौ०)।

अभिभावन—वि० [सं०] वशीभूत करनेवाला। मानेवाला। रुचिकर। उ०—चले चतुर्दिक् हल अभिभावन।—आराधना, पृ० २६।

अभिभावी—वि० [सं० **अभिभाविन्**] दे० 'अभिभावक'।

अभिभावुक—वि० [सं०] दे० 'अभिभावक'।

अभिभाषण—संज्ञा पुं० [सं०] १ प्रवचन। भाषण। २. बोलना। भाषण देना। ३. आयोजन आदि में सर्वमुख्य भाषण। ४. लिखित भाषण [कौ०]।

अभिभूत—वि० [सं०] १. पराजित। हराया हुआ। २. पीड़ित। उ०—जब चले थे तुम यहाँ से दूत। तब पिता क्या थे अधिक

अभिभूत।--साकेत, पृ० १७१। ३. जिस पर प्रभाव डाला गया हो। जो वश में किया गया हो। वशीभूत। ४. विचलित। व्याकुल। किंकर्तव्यविमूढ़।

अभिभूति—संज्ञा स्त्री० [सं०] अभिभव। पराजय। हार।

अभिमंडन—संज्ञा पुं० [सं० अभिमण्डन] [वि० अभिमंडित] १. भूषित करना। सजाना। सँवारना। २. पक्ष का प्रतिपादन या समर्थन।

अभिमंता -वि० [सं० अभिमन्तृ] १. डींग हाँकनेवाला आत्मवंचक। २. अहंमन्य। सर्वज्ञता का दंभी (को०)।

अभिमंत्रण—संज्ञा पुं० [सं० अभिमन्त्रण] [स्त्री० अभिमंत्रणा] १. मंत्र-द्वारा संस्कार। २. आवाहन।

अभिमंत्रित—वि० [सं० अभिमन्त्रित] १. मंत्र द्वारा शुद्ध किया हुआ। २. जिसका आवाहन हुआ हो।

अभिमंथ--संज्ञा पुं० [सं० अभिमन्थ] एक नेत्ररोग। अभिमंथ [को०]।

अभिमत¹—वि० [सं०] १. इष्ट। मनोनीत। वांछित। पसंद का। उ०—जो न होहिं मंगलमग सुरबिधि बाधक। तौ अभिमत फल पावहिं करि स्रमु साधक।—तुलसी ग्रं०, पृ० ३२। २. संमत। राय के मुताबिक।

अभिमत²--संज्ञा पुं० १, मत। सम्मति। राय। २. विचार। ३. अभिलषित वस्तु। मनचाही बात। उ०--अभिमत दानि देवतरुवर से। सेवत सुलभ सुखद हरिहर से :—तुलसी (शब्द०)। ४. इच्छा। आकांक्षा (को०)।

अभिमति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. अभिमान। गर्व। अहंकार। २. वेदांत के अनुसार इस प्रकार की मिथ्या अहंकार भावना कि अमुक वस्तु मेरी है। ३. अभिलाषा। इच्छा। चाह।४. मति। राय। विचार। ५. आदर। संमान (को०)।

अभिमन्यु—संज्ञा पुं० [सं०] अर्जुन के पुत्र का नाम।

विशेष--कृष्ण और बलराम की बहन सुभद्रा इसकी माता थी। महाभारत युद्ध में द्रोणाचार्य के सेनापतित्व में निर्मित चक्रव्यूह का भेदन करते समय सात महारथियों ने इसे मारा था। छोटी अवस्था से ही अत्यंत बली और क्रोधी होने से इसका नाम अभिमन्यु पड़ा। महाभारत के द्रोण पर्व में इसके जन्म और निधन का सविस्तार वर्णन है।

अभिमर--संज्ञा पुं० [सं०] १. संहार। विनाश। हनन। २. युद्ध। ३. स्वपक्ष के व्यक्ति द्वारा कृत विश्वासघात। ४. केद। ५. शेर हाथी आदि से भी भिड़ने के लिये संनद्ध व्यक्ति।

अभिमर्दन—संज्ञा पुं० [सं०] १. पीसना। चूर चूर करना। २. घस्सा। रगड़। ३. युद्ध।

अभिमर्श—संज्ञा पुं० [सं०] १. स्पर्श। संपर्क। २. प्रहार। ३. आक्रमण। ४. संभोग। ५. बलात्कार [को०]।

अभिमर्शक—वि० [सं०] अभिमर्शन करनेवाला [को०]।

अभिमर्शन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अभिमर्श'।

अभिमर्शी--वि० [सं० अभिमर्शिन्] दे० 'अभिमर्शक'।

अभिमर्ष—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अभिमर्श'।

अभिमर्षक—[सं०] दे० 'अभिमर्शक'।

अभिमर्षण—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अभिमर्शन'।

अभिमर्षी—वि० [सं० अभिमर्षिन्] दे० 'अभिमर्शी'।

अभिमाद—संज्ञा पुं० [सं०] नशा। मद [को०]।

यौ०—अभिमान।

अभिमान--संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अभिमानी] १. अहंकार। गर्व। दर्प। घमंड। २. स्वाभिमान ३. बुद्धि। ज्ञान(को०)। ४. प्रेम। स्नेह (को०)। ५. कामना। इच्छा (को०)। ६. प्रमाण (को०)।

अभिमानित¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह जिसमें अभिमान हो। २. प्रेम। स्नेह। ३. संभोग। मैथुन [को०]।

अभिमानित²--वि० [सं०] गर्वित। अभिमानयुक्त।

अभिमानी—वि० [सं० अभिमानिन्] [स्त्री० अभिमानिनी] १. अहंकारी। घमंडी। दर्पी। अपने को कुछ लगानेवाला। २. स्वात्माभिमानी।

अभिमुख¹—क्रि० वि० [सं०] सामने। संमुख। समक्ष।

अभिमुख²—वि० [सं०] १. प्रवृत्त। तत्पर। उद्यत। संनद्ध। २. ओर। तरफ। ३. निकट होना। पहुँचने के करीब होना। ४. अनुकूल [को०]।

अभिमृष्ट--वि० [सं०] १. स्पष्ट। छुआ हुआ। थपकाया गया। २. मर्दित। ३. मिश्रित। ४. स्नात। ५. संसृष्ट। आक्रांत [को०]।

अभिम्लात--वि० [सं०] मुरझाया या कुम्हलाया हुआ [को०]।

यौ०--अभिम्लातवर्ण--फीके रंगवाला।

अभियांचा--संज्ञा स्त्री० [सं० अभियाच्चा] दे० 'अभियाचन'।

अभियाचन--संज्ञा पुं० [सं०]१. माँगना। याचना। २. प्रार्थना करना [को०]।

अभियाचित--वि० [सं०] जिसकी याचना की गई हो।

अभियाता--वि० [सं० अभियातृ] १. निकट जाने या पहुँचनेवाला। २. आक्रामक। अभियान करनेवाला [को०]।

अभियान--संज्ञा पुं० [सं०] १. सामने जाना। २ आक्रमण। चढ़ाई [को०]।

अभियायी--वि० [सं० अभियायिन्] दे० 'अभियाता' [को०]।

अभियुक्त—वि०[सं०] [स्त्री० अभयुक्ता] १. जिसपर अभियोग चलाया गया हो। जो किसी मुकदमे में फँसा हो। प्रतिवादी। मुलजिम। अभियोक्ता का उलटा। २. लिप्त। संलग्न। उ०—कहाँ आज वह चितवन चेतन, श्याम मोह कज्जल अभियुक्त।—अपरा, पृ० १२०। ३. विद्वान्। विशेषज्ञ। दक्ष (को०)। ४. नियुक्त (को०)। ५. कथित (को०)। ६. उपयुक्त। ठीक (को०)। ७. अध्यवसायी (को०)। ८. आक्रांत (को०)।

अभियुक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] अभियोग [को०]।

अभियोक्ता¹—वि० [सं० अभियोक्तृ][स्त्री० अभियोक्त्री] १. अभियोग उपस्थित करनेवाला। वादी। मुद्दई। फरियादी। अभियुक्त का उलटा। आरोपी। २. आक्रामक। आक्रमणकारी (को०)।

अभियोक्ता²—संज्ञा पुं० शत्रु। आक्रामक व्यक्ति [को०]।

अभियोग--संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अभियोगी, अभियुक्त, अभियोक्ता] १. अपराध की योजना। दोषारोप। उ०--काश्यप मुझपर अभियोग लगाते हैं कि मैंने जान बूझकर यह ब्रह्महत्या की।—

जनमेजय०, पृ० ५५ । २.किसी के द्वारा किए गए दोष या हानि के विरुद्ध न्यायालय में निवेदन । नालिश । मुकदमा । ३. चढ़ाई । आक्रमण । ४. उद्योग । ५. मनोनिवेश । लगन ।

अभियोगी[1]—वि० [सं० **अभियोगिन्**] १. अभियोग चलानेवाला । नालिश करनेवाला । फरियादी । २. आक्रमणकारी (को०) । ३. लगनवाला ।

अभियोगी[2]—संज्ञा पुं० वादी । मुकदमा खड़ा करनेवाला व्यक्ति [को०]।

अभियोज्य—वि० [सं०] जिसपर दोष या आरोप लग सके [को०] ।

यौ०—**अभियोज्यदोष**=अभियोग चलने योग्य दोष या आरोप ।

अभिरंजन—संज्ञा पुं० [सं० **अभिरञ्जन**] रँगना [को०] ।

अभिरंजित—वि० [सं० **अभिरञ्जित**] रँगा हुआ ।

अभिरक्त—वि० [सं०] १. लगा हुआ । संबद्ध । अनुरक्त । २. मधुर । प्रिय [को०] ।

अभिरक्षण—संज्ञा पुं० [सं०] पूरी तरह से रक्षा या बचाव [को०] ।

अभिरक्षा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अभिरक्षण' ।

अभिरक्षित—वि० [सं०] पूरी तरह से रक्षित या शासित [को०]।

अभिरक्ष्य—वि० [सं०] पूर्णतः रक्षा या बचाव के योग्य [को०]।

अभिरत—वि० [सं०] १. लीन । अनुरक्त । २. लगा हुआ । ३. युक्त । सहित । उ०—किधौं यह राजपुत्री, बरहीं बरचो है, किधौं उपदि बरचो है यहि सोभा अभिरत हौं ।—राम चं०, पृ० ५१ । ३. प्रसन्न । प्रमुदित (को०) ।

अभिरति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. अनुराग । प्रीति । २. लगन । लगाव । लीनता । ३. संतोष । हर्ष । आनंद । ४. कार्य का अभ्यास या पेशा [को०] ।

अभिरनाⓅ—क्रि० स० [सं० **अभि=संमुख+रण** अथवा प्रा० **अब्भिड़इ=भिड़ना, मिलना**] १. भिड़ना । लड़ना उलझना । उ०—चटकत चटकी डाँड़ कहूँ कोउ भरत पैंतरे । लरत लराई कोऊ एक एकन सों अभिरे ।—प्रेमघन०, भा० १. पृ० ११ । २. टेकना । सहारा लेना । उ०—मुसकाति खरी खँभिमा अभिरी, बिरी खाति लजाति महा मन में ।—बेनी (शब्द०) ।

अभिरमण—संज्ञा पुं० [सं०] सम्यक् आनंद लेना या रमण करना [को०] ।

अभिराजⓅ—वि० [सं० **अभिराज**] अत्यंत शोभित । उ०—चौका बना चौगान, जगमग अभिराज हो ।—धरम०, पृ० ६ ।

अभिराद्ध—वि० [सं०] भली भाँति समाराधित, प्रसन्न या पुष्ट किया हुआ [को०] ।

अभिराम[1]—वि० [सं०] [स्त्री० **अभिरामा**] आनंददायक । मनोहर । सुखद । सुंदर । प्रिय । रम्य । उ०—और देखा वह सुंदर दृश्य । नयन का इंद्रजाल अभिराम ।—कामायनी, पृ० ४६ ।

अभिराम[2]—संज्ञा पुं० आनंद । सुख । उ०—(क) तुलसी अद्भुत देवता आसा देवी नाम । सेए सोक समर्पई, विमुख भए अभिराम ।—तुलसी ग्रं०, पृ० १२४ । (ख) तुलसिदास चाँचरि मिसहि, कहे राम गुन ग्राम । गावहिं सुनहिं नारि नर, पावहिं सब अभिराम ।—तुलसी (शब्द०) । २. शिव का एक नाम (को०) ।

अभिरामिनी—वि० स्त्री० [सं०] मनोहारिणी । सुंदर । उ०—हरित गंभीर बानीर दुहुँ तीर वर, मध्य धारा विशद विश्व अभिरामिनी ।—तुलसी ग्रं०, पृ० ४६३ ।

अभिरामी—वि० [सं० **अभिरामिन्**] [वि० स्त्री० **अभिरामिनी**] रमण करनेवाला । संचरण करनेवाला । व्याप्त होनेवाला । उ०—अखिल भुवनभर्ता, ब्रह्मरुद्रादि कर्ता, थिरचर अभिरामी, कीय जामातु नामी ।—केशव (शब्द०) ।

अभिरुचि—संज्ञा स्त्री० [सं०] अत्यंत रुचि । चाह । पसंद । प्रवृत्ति । उ०—संतान स्नेह और आत्मसुख की अभिरुचि संमति देती है कि इस काम से हमको भी सहायता मिलेगी ।—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० १६३ । २. प्रसिद्धि की चाह । महत्वाकांक्षा (को०) ।

अभिरुत—वि० [सं०] १. ध्वनित । शब्दायमान । २. कूजित । गुंजित [को०] ।

अभिरुता—संज्ञा स्त्री० [सं०] संगीत में मूर्च्छनाविशेष । इसका सरगम यों है—रे, ग, म, प, ध, नि, स । म, प, ध, नि, स, रे, ग, म, प, ध, नि, स ।

अभिरूप[1]—वि० [सं०] [स्त्री० **अभिरूपा**] १.प्रिय । रमणीय । मनोहर । सुंदर । सुगठित । २. मिलता जुलता । अनुरूप (को०) । ३. चतुर । विद्वान् । प्रबुद्ध (को०) ।

अभिरूप[2]—संज्ञा पुं० १. शिव । २. विष्णु । ३. कामदेव । ४. चंद्रमा । ५. पंडित ।

अभिरोग—संज्ञा पुं० [सं०] चौपायों का एक रोग जिसमें जीभ में कीड़े पड़ जाते हैं ।

अभिलंघन—संज्ञा पुं० [सं० **अभिलङ्घन**] १. उछलकर अथवा कूदकर पार करना । २. सीमा, अधिकार या क्षेत्र का अतिक्रमण [को०]।

अभिलक्षित—वि० [सं०] १. चिह्नांकित । चिह्नित । २. चुना हुआ । संकेतित (को०) ।

अभिलक्ष्य—वि० [सं०] विशेष लक्ष्य योग्य । ध्यान में लेने योग्य[को०]।

अभिलषण—संज्ञा पुं० [सं०] अभिलाषा करना । चाहना । लालायित होना [को०] ।

अभिलषिक रोग—संज्ञा पुं० [सं०] वात व्याधि के चौरासी भेदों में से एक ।

अभिलषित[1]—वि० [सं०] वांछित । ईप्सित । इष्ट । चाहा हुआ । उ०—अभिलषित वस्तु तो दूर रहे, हाँ मिले अनिच्छित दुखद खेद ।—कामायनी, पृ० १६४ ।

अभिलषित[2]—संज्ञा पुं० इच्छा । आकांक्षा । मनोरथ । उ०—अभिलषित अधूरी रह न जाय ।—गीतिका ।

अभिलाखⓅ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अभिलाषा' । उ०—अभिलाख यह जिय पूर्ववत, धन धन्य मोहि संबही कहै ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ५१४ ।

अभिलाखनाⓅ—क्रि० स० [सं० **अभिलषण**] इच्छा करना । चाहना । उ०—तब सिय देखि भूप अभिलाखे । कूर कपूत मूढ़ मन माखे ।—तुलसी (शब्द०) ।

अभिलाखाⓅ—संज्ञा स्त्री० [सं० **अभिलाषा** का प्रा० हिं० **रूप**] दे० 'अभिलाषा' । उ०—सबके हृदय मदन अभिलाखा । लता निहारि नवहिं तरुसाखा ।—मानस, १।८५ ।

अभिलाखी⑤—वि० [हिं०] दे० 'अभिलाषी'।

अभिलाप—संज्ञा पुं० [सं०] १. शब्द। कथन। वाक्य। २. मन के संकल्प का कथन वा उच्चारण। ३. वर्णन। भाषण (को०)।

अभिलाव—संज्ञा पुं० [सं०] सफल काटना। लवना [को०]।

अभिलाष—संज्ञा पुं० [सं०][वि० **अभिलाषक, अभिलाषी, अभिलाषुक, अभिलषित**] १. इच्छा। मनोरथ। कामना। चाह। उ०—भाग छोट अभिलाष बड़ करौं एक विश्वास। पैहैं सुख सुनि सुजन जन खल करिहैं उपहास।—मानस १।८। २. लोभ। ३. वियोग। शृंगार के अंतर्गत दस दशाओं में से एक। प्रिय से मिलने की इच्छा।

अभिलाषक—वि० [सं०] इच्छा करनेवाला। आकांक्षा करनेवाला।

अभिलाषना—क्रि० स० [सं० **अभिलक्षण**] इच्छा करना। चाहना। उ०—जब हिरनाच्छ जुद्ध अभिलाष्यौ, मन मैं अति गरवाऊ।—सूर० १०।२२१।

अभिलाषा—संज्ञा स्त्री० [सं०] इच्छा। कामना। आकांक्षा। दे० 'अभिलाष'। उ०—भूलता ही जाता दिन रात सजल अभिलाषा कलित अतीत।—कामायनी, पृ० ४६।

अभिलाषी—वि० [सं० **अभिलाषिन्**] [स्त्री० **अभिलाषिनी**] इच्छा करनेवाला। आकांक्षी। इच्छुक।

अभिलाषुक—वि० [सं०] दे० 'अभिलाषक'।

अभिलास⑤—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अभिलाष'।

अभिलासा⑤—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अभिलाषा'।

अभिलासी⑤—वि० [सं० **अभिलाषिन्**] दे० 'अभिलाषी'। उ०—को है जनक, कौन है जननी, कौन नारि, को दासी? कैसे बरन, भेष है कैसो, किहिं रस मैं अभिलासी।—सूर०, १०।४२४६।

अभिलिखित[1]—वि० [सं०] लिखा हुआ। खोदा हुआ [को०]।

अभिलिखित[2]—संज्ञा पुं० १. लिखना। लेखन। २. हस्ताक्षर। ३. लिखित मसविदा [को०]।

अभिलीन—वि० [सं०] १. भली भाँति लीन। २. अनुरक्त। आसक्त। ३. आवेष्टित [को०]।

अभिलुलित—वि० [सं०] १. क्षोभित। चंचल। अस्थिर। २. विक्रीड़ित। क्रीडायुक्त [को०]।

अभिलूता—संज्ञा स्त्री० [सं०] मकड़ी का एक भेद [को०]।

अभिलेख—संज्ञा पुं० [सं०] लेख। प्रामाणिक लेख। शिला या धातु-पटल पर खोदा लेख।

अभिलेखन—संज्ञा पुं० [सं०] १. लिखना, खोदना या उत्कीर्ण करना [को०]।

अभिलेखित[1]—संज्ञा पुं० [सं०] प्रामाणिक रूप से लिखित पटल या पत्र आदि [को०]।

अभिलेखित[2]—वि० लिखित। लिपिबद्ध [को०]।

अभिवंचन—संज्ञा [सं० **अभिवञ्चन**] ठगना।

अभिवंचित—वि० [सं० **अभिवञ्चित**] ठगा गया। छला गया। धोखा खाया हुआ [को०]।

अभिवंदन—संज्ञा पुं० [सं० **अभिवन्दन**] [वि० **अभिवंदनीय**, अभिवंदित, अभिवंद्य १. प्रणाम। नमस्कार। सलाम। बंदगी। २. स्तुति।

अभिवंदना—संज्ञा स्त्री० [सं० **अभिवन्दना**] १. नमस्कार। प्रणाम। २. स्तुति। प्रशंसा।

अभिवंदनीय—वि० [सं० **अभिवन्दनीय**] १. प्रणाम करने योग्य। नमस्कार करने योग्य। २. प्रशंसा करने योग्य। स्तुति करने योग्य।

अभिवंदित—वि० [सं० **अभिवन्दित**] प्रणाम किया हुआ। नमस्कार किया हुआ। २. प्रशंसित। स्तुत्य।

अभिवंद्य—वि० [सं० **अभिवन्द्य**] दे० 'अभिवंदनीय'।

अभिवचन—संज्ञा पुं० [सं०] वादा। इकरार। प्रतिज्ञा।

अभिवदन—संज्ञा पुं० [सं०] १. भाषण। कथन। २. नमन। प्रणाम। नमस्कार [को०]।

अभिवद्य—वि० [सं०] कथन या निर्वचन योग्य [को०]।

अभिवर्तन—संज्ञा पुं० [सं०] १. बढ़ना (किसी ओर)। २. हमला करना। आक्रमण। [को०]।

अभिवांछा—संज्ञा स्त्री० [सं० **अभिवाञ्छा**] अभिलाषा। लालसा। इच्छा [को०]।

अभिवांछित—वि० [सं० **अभिवाञ्छित**] अभिलषित। चाहा हुआ।

अभिवाद—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अभिवादन' [को०]।

अभिवादक—वि० [सं०] [स्त्री० **अभिवादिका**] १. नमस्कार करनेवाला। २. विनीत। आदरान्वित। विनम्र [को०]।

अभिवादन—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रणाम नमस्कार। वंदना। २. स्तुति। ३. अतिरंजना। अतिवाद। डींग [को०]।

अभिवादयिता—वि० [सं० **अभिवादयितृ**] दे० 'अभिवादन'।

अभिवादित—वि० [सं०] वंदित। नमस्कृत।

अभिवादी—वि० [सं० **अभिवादिन्**] [वि० स्त्री० **अभिवादिनी**] दे० 'अभिवादक'।

अभिवाद्य—वि० [सं०] नमस्कार योग्य। अभिवादनीय [को०]।

अभिवास—संज्ञा पुं० [सं०] चादर। आवरण। वस्त्राच्छादन [को०]।

अभिवासन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अभिवास'।

अभिविनीत—वि० [सं०] १. सुशिक्षित। २. व्यवहारकुशल। शिष्ट। सुशील। ३. शुद्ध। पवित्र [को०]।

अभिविमान—वि० [सं०] दिक्कालातीत। निस्सीम आकार का (परमात्मा की एक उपाधि)।

अभिविश्रुत—वि० [सं०] बड़ी ख्याति या प्रसिद्धिवाला (को०)।

अभिवृद्धि—संज्ञा स्त्री० [सं०] सफलता, उन्नति या समृद्धि [को०]। उ०—ज्ञान विज्ञान से मनुष्य की अभिवृद्धि हो सकती है, विकास नहीं हो सकता।—हिं० आ० प्र०, पृ० २०६।

अभिव्यंजक—वि० [सं० **अभिव्यञ्जक**] प्रकट करनेवाला। प्रकाशक। सूचक। बोधक।

अभिव्यंजन—संज्ञा पुं० [सं० **अभिव्यञ्जन**] [स्त्री० **अभिव्यंजना**] प्राकट्य। अभिव्यक्ति। प्रकाश। विकास।

अभिव्यंजना—संज्ञा स्त्री० [सं० **अभिव्यञ्जना**] मन के भावों का शब्दों में चित्रण या रूपविधान। दे० 'अभिव्यंजन'।

अभिव्यंजनावाद—संज्ञा पुं० [सं० **अभिव्यञ्जना + वाद;** (अं० **एक्स-प्रेशनिज्म**)] योरप में प्रचलित चित्रकला, साहित्य आदि का वह सिद्धांत जिसमें बाह्य वस्तु या विषय को कला का गौण और अपनी या पात्रों की आंतरिक अनुभूतियों के प्रतीकात्मक चित्रण को प्रधान अंग माना जाता है।

विशेष—इसमें अभिव्यंजना ही सब कुछ है; जिसकी अभिव्यंजना की जाती है वह कुछ नहीं। इस मत का प्रधान प्रवर्तक इटली का क्रोचे है। अभिव्यंजनावादियों के अनुसार जिस रूप में अभिव्यंजना होती है उससे भिन्न अर्थ आदि का विचार कला में अनावश्यक है। जैसे—वाल्मीकि रामायण की इस उक्ति में 'न स संकुचितः पंथाः येन बाली हतो गतः', कवि का कथन यही वाक्य है, न कि यह कि जिस प्रकार बाली मारा गया उसी प्रकार तुम भी मारे जा सकते हो। इसी तरह 'भारत के फूटे भाग्य के टुकड़ों! जुड़ते क्यों नहीं?' में इतना ही कहना है कि 'हे फूट से अलग हुए भारतवासियों! एकता क्यों नहीं रखते? यदि तुम एक हो जाओ तो भारत का भाग्योदय हो जाय। सारांश यह कि इस मत में ध्वनि या व्यंजना की गुंजाइश नहीं है।—चिंतामणि, भाग २, पृ० ६६।

अभिव्यंजनावदी—वि० [सं० **अभिव्यञ्जना + वादिन्** (अं० **एक्सप्रेशनिस्ट**)] अभिव्यंजनावाद का अनुयायी या समर्थक।

अभिव्यंजित—वि० [सं० **अभिव्यञ्जित**] सुस्पष्ट प्रकटित। व्यक्त। अभिव्यक्त।

अभिव्यक्त—वि० [सं०] प्रकट किया हुआ। स्पष्ट किया हुआ। जाहिर किया हुआ।

अभिव्यक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. प्रकाशन। स्पष्टीकरण। साक्षात्कार। प्रकट होना। २. उस वस्तु का प्रत्यक्ष होना जो पहले किसी कारण से अप्रत्यक्ष हो, जैसे—अँधेरे में रखी चीज का उजाले में साफ साफ दीख पड़ना। ३. न्याय के अनुसार सूक्ष्म और अप्रत्यक्ष कारण का प्रत्यक्ष कार्य में आविर्भाव, जैसे, बीज से अंकुर का निकलना।

अभिव्यक्तिवाद—संज्ञा पुं० [सं० **अभिव्यक्ति + वाद**] जगत् को ब्रह्म की अभिव्यक्ति मानने का सिद्धांत।

अभिव्यक्तिवादी—वि० [सं० **अभिव्यक्तिवादिन्**] अभिव्यक्तिवाद का अनुयायी या समर्थक।

अभिव्यक्तीकरण—संज्ञा पुं० [सं० **अभि + व्यक्तीकरण**] प्राकट्य। सामने आ जाना। अभिव्यंजना।

अभिव्यापक[1]—वि० [सं०] [स्त्री० **अभिव्यापिका**] पूर्ण रूप से फैलनेवाला। अच्छी तरह प्रचलित होनेवाला। पूर्ण रूप से व्याप्त रहनेवाला।

अभिव्यापक[2]—संज्ञा पुं० [सं०] ईश्वर।

यौ०—**अभिव्यापक आधार** = व्याकरण में वह आधार जिसके हर एक अंश में आधेय हो, जैसे 'तिल में तेल'।

अभिव्यापी—वि०, संज्ञा पुं० [सं० **अभिव्यापिन्**] दे० 'अभिव्यापक'।

अभिव्याप्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सन्निवेश। समावेश। २. सर्वव्यापकता [को०]।

अभिशंका—संज्ञा स्त्री० [सं० **अभिशङ्का**] [वि० **अभिशंकित**] १. आशंका। संदेह। चिंता। २. भय। व्यग्रता [को०]।

अभिशंसन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० **अभिशस्त**] सत्य या झूठ आरोप अथवा दोष लगाना। २. व्यभिचार का मिथ्या दोष लगाना। ३. गाली देना। अपमान करना।

अभिशंसा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अभिशंसन'।

अभिशपन—संज्ञा पुं० [सं०] १. शाप। २. गंभीर आरोप। ३. मिथ्यारोप [को०]।

यौ०—**अभिशपन ज्वर** = शापजन्य ज्वर।

अभिशप्त—वि० [सं०] १. शापित। जिसे शाप दिया गया हो। उ०—जो जनपद परस तिरस्कृत अभिशप्त कही जाती है।—आँसू, पृ० ७८। २. जिसपर मिथ्या दोष लगा हो।

अभिशस्त—वि० [सं०] [वि० स्त्री० **अभिशस्ता**] १. जिसपर व्यभिचार का मिथ्या दोष लगा हो। २. व्यर्थ कलंकित। लांछित।

अभिशस्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. अभिशाप। २. निंदा। ३. हिंसा। ४. विपत्ति। ५. प्रार्थना [को०]।

अभिशाप—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० **अभिशापित, अभिशप्त**] १. शाप। बद दुआ। उ०—अभिशाप ताप की ज्वाला से जल रहा आज मन और अंग।—कामायनी, पृ० १६२। २. मिथ्या दोषारोपण। झूठमूठ का अपवाद। ३. बुराई। अहित [को०]।

अभिशापन—संज्ञा पुं० [सं०] शाप देना। बद दुआ देना। कोसना [को०]।

अभिशापित—वि० [सं०] दे० 'अभिशप्त'।

अभिश्लेषण—संज्ञा पुं० [सं०] पट्टी [को०]।

अभिषंग—संज्ञा पुं० [सं० **अभिषङ्ग**] १. पूर्ण संबंध या मिलन (को०)। २. दृढ़ मिलाप। आलिंगन। ३. संभोग। ४. पराजय। हार। ५. निंदा। आक्रोश। कोसना। ६. शपथ। कसम। ७. मिथ्यापवाद। झूठा दोषारोपण। ८. भूत प्रेत का आवेश। ९. शोक। दुःख।

यौ०—**अभिषंगज्वर** = भूत प्रेत आदि के आवेश या प्रभाव से उत्पन्न ज्वर।

अभिषंगा—संज्ञा स्त्री० [सं० **अभिषङ्गा**] वेद की एक ऋचा।

अभिषंगी—वि० [सं० **अभिषङ्गिन्**] अभिषंग से युक्त। अभिषंगवाला।

अभिषंजन—संज्ञा पुं० [सं० **अभिषञ्जन**] दे० 'अभिषंग' [को०]।

अभिषव—संज्ञा पुं० [सं०] १. यज्ञ में स्नान। २. मद्य खींचना। शराब चुवाना। ३. सोमलता को कुचलकर गारना या निचोड़ना। ४. सोमरस पान ५. यज्ञ। ६. काँजी। ७. स्नान। नहाना [को०]। ८. राज्यारोहण। ९. अधिकारप्राप्ति [को०]।

अभिषवण—संज्ञा पुं० [सं०] १. स्नान। २. सोमरस निकालने या निचोड़ने का साधन [को०]।

अभिषवणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] सोमरस निकालने का साधन या यंत्र [को०]।

अभिषावक—संज्ञा पुं० [सं०] सोमरस निचोड़नेवाला पुरोहित [को०]।

अभिषिंचन—संज्ञा पुं० [सं० **अभिषिञ्चन**] जल छिड़कना। उ०—अभिषिंचन ब्राह्मण (अध्वर्यु), क्षत्रिय और वैश्य मिलकर करते थे जो कि राष्ट्र की तीन इकाइयाँ थीं।—हिंदु० सभ्यता, पृ० १०३।

अभिषिक्त—वि० [सं०][वि० स्त्री० अभिषिक्ता] १ जिसका अभिषेक हुआ हो। जिसके ऊपर जल आदि छिड़का गया हो। जो जल आदि से नहलाया गया हो। २. बाधाशांति के लिये जिसपर मंत्र पढ़कर दूर्वा और कुश से पानी छिड़का गया हो। ३. जिसपर विधिपूर्वक जल छिड़ककर किसी अधिकार का भार दिया गया हो। राजपद पर निर्वाचित।

अभिषुत—वि० [सं०] १. निचोड़ा हुआ। उ०—यह अतीव मधुर सोम, तुम्हारे लिये अभिषुत हुआ है।—प्रा० भा० प०, पृ० १३३। २. स्नात। जो स्नान कर चुका हो। (को०)।

अभिषेक—संज्ञा पुं० [सं०] १. जल से सिंचन। छिड़काव। २. ऊपर से जल डालकर स्नान। ३. बाधाशांति या मंगल के लिये मंत्र पढ़कर कुश और दूब से जल छिड़कना। मार्जन। ४. विधिपूर्वक मंत्र से जल छिड़ककर अधिकारप्रदान। राजपद पर निर्वाचन। ५. यज्ञादि के पीछे शांति के लिये स्नान। ६. शिवलिंग के ऊपर तिपाई के सहारे जल से भरकर एक ऐसा घड़ा रखना जिसके पेंदे में बारीक छेद, धीरे धीरे पानी टपकने के लिये हो। रुद्राभिषेक।

यौ०—अभिषेकपात्र = अभिषेक का पात्र। अभिषेकाह = अभिषेक का दिन। राज्यारोहण का दिन।

अभिषेकना(पु)—क्रि० स० [सं० अभिषेक] अभिषेक करना। उ०—आजु अभिषेकत पिय को प्यारी। धरि दृग ध्यान नवल आँसुन के भरि भरि उमगे बारी।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ०६१८।

अभिषेकशाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्थान या मंडप जहाँ अभिषेक हो। राज्याभिषेक मंडप [को०]।

अभिषेक्ता—संज्ञा पुं० [सं०] वह व्यक्ति जो अभिषेक करे। अभिषेक करनेवाला व्यक्ति [को०]।

अभिषेक्य—वि० [सं०] दे० 'अभिषेचनीय' [को०]।

अभिषेचन—संज्ञा पुं० [सं०] विधिपूर्वक मंत्र से जल छिड़ककर अधिकारप्रदान। राजपद पर निर्वाचन। उ०—इसके बाद शक्ति, प्रभुता और प्रार्थना के मंत्र पढ़ते पढ़ते पुरोहित जलों से अभिषेचन करते थे।—हिंदु० सभ्यता, पृ० ११४।

अभिषेचनीय—वि० [सं०] १. अभिषेक योग्य। २. राज्यारोहण योग्य। ३. अभिषेक संबंधी [को०]।

अभिषेच्य—वि० [सं०] दे० 'अभिषेचनीय' [को०]।

अभिषेणन—संज्ञा पुं० [सं०] शत्रु के विरुद्ध बढ़ाव या चढ़ाई [को०]।

अभिषोता—संज्ञा पुं० [सं० अभिषोतृ] दे० 'अभिषावक' [को०]।

अभिष्यंद—संज्ञा पुं० [सं० अभिष्यन्द] १. बहाव। स्राव। २. आँख का एक रोग जिसमें सुई के छेदने के समान पीड़ा और किरकिराहट होती है, आँखें लाल हो जाती हैं और उनसे पानी और कीचड़ निकलता है। आँख आना।

अभिष्यंदिरमण—संज्ञा पुं० [सं० अभिष्यन्दिरमण] उपनगर। बड़े नगर से लगा हुआ छोटा नगर। शाखा नगर [को०]।

अभिष्यंदी—वि० [सं० अभिष्यंदिन्] १. रसने, बहने या चूनेवाला। २. रेचक। दस्तावर। ३. जलापसारक (को०)।

अभिष्वंग—संज्ञा पुं० [सं० अभिष्वङ्ग] घनिष्ठ संबंध। प्रेम। अनुराग। उ०—आत्मस्नेह यह आत्मप्रेम है जो आत्मा में अभिष्वंग उत्पन्न करता है।—संपूर्णा० अभि० ग्रं०, पृ० ३६६।

अभिसंग—संज्ञा पुं० [सं० अभिसङ्ग] दे० 'अभिसंग' [को०]।

अभिसंताप—संज्ञा पुं० [सं० अभिसन्ताप] १. युद्ध। संघर्ष। स्पर्धा। २. पीड़ा [को०]।

अभिसंदेह—संज्ञा पुं० [सं० अभिसन्देह] १. अदला बदली। विनिमय। २. जननेंद्रिय [को०]।

अभिसंदोह—संज्ञा पुं० [सं० अभिसंदोह] दे० 'अभिसंदेह' [को०]।

अभिसंध—संज्ञा पुं० [सं० अभिसन्ध] १. ठग। धोखा देनेवाला। वंचक। २. निंदक [को०]।

अभिसंधक—संज्ञा पुं० [सं० अभिसन्धक] दे० 'अभिसंध' [को०]।

अभिसंधा—संज्ञा स्त्री० [सं० अभिसन्धा] १. कहना। बतलाना। २. वादा। वचन। ३. बात का पक्का व्यक्ति। ४. धोखा। छल [को०]।

अभिसंधान—संज्ञा पुं० [सं० अभिसन्धान] १. वंचना। प्रतारणा। धोखा। जाल। २. फलोद्देश्य। लक्ष्य। उ०—इस कार्य को करने में उसका अभिसंधान क्या है यह देखना चाहिए (शब्द०)। ३. इच्छा या रुचि (को०)। ४. स्वार्थ (को०)।

अभिसंधि—संज्ञा स्त्री० [सं० अभिसन्धि] १. प्रतारणा। वंचना। धोखा। उ०—भरत में अभिसंधि का हो गंध, तो मुझे निज राम की सौगंध।—साकेत, पृ० १८७। २. चुपचाप कोई काम करने की कई आदमियों की सलाह। कुचक्र। षड्यंत्र। उ०—तक्षशिलाधीश की भी उसमें अभिसंधि है।—चंद्र०, पृ० ७५। ३. विशेष समझौता या संधि। ४. लक्ष्य। उद्देश्य। ५. अंतर्गमित या सन्निहित अर्थ। अभिप्राय। राय। ६. जोड़। योग। ७. घोषणा। वादा।

अभिसंधिकृत—क्रि० वि० [सं० अभिसन्धिकृत] जानबूझ कर किया हुआ [को०]।

अभिसंधिता—संज्ञा स्त्री० [सं० अभिसन्धिता] कलहांतरिता नायिका। स्वयंप्रिय का अपमान कर पश्चात्ताप करनेवाली स्त्री।

अभिसंपात—संज्ञा पुं० [सं० अभिसम्पात] १. सम्मिलन। संगम। २. युद्ध। संघर्ष। ३. बददुआ। शाप। ४. पतन [को०]।

अभिसंबंध—संज्ञा पुं० [सं० अभिसम्बन्ध] १. घनिष्ठ संबंध। २. समागम। संभोग [को०]।

अभिसंयोग—संज्ञा पुं० [सं०] घनिष्ठ संबंध। बहुत नजदीक का संबंध [को०]।

अभिसंश्रय—संज्ञा पुं० [सं०] शरण। आश्रय। त्राण। पनाह [को०]।

अभिसंस्कार—संज्ञा पुं० [सं०] १. सूझ। विचार। कल्पना। २. व्यर्थ या निष्फल कार्य। ३. विकास। परिष्कार। उ०—चेतना का स्वभाव चित्त का अभिसंस्कार करना है।—संपूर्णा० अभि० ग्रं०, पृ० ३४६।

अभिसंमत—वि० [सं० अभिसम्मत] माननीय। आदरणीय। संमान्य [को०]।

अभिसर—संज्ञा पुं० [सं०] १. संगी। साथी। २. सहायक। मददगार। ३. सेवक। अनुचर [को०]।

अभिसरण—संज्ञा पुं० [सं०] १. आगे जाना। २. समीप गमन। ३. प्रिय से मिलने के लिये जाना।

अभिसरनⓊ—संज्ञा पुं० [सं० **अभिशरण**] १. शरण। सहाय। सहारा। उ०=संतन को लै अभिसरन, समुझहिं सुगति प्रवीन। करम बिपरजय कबहुँ नहिं, सदा राम रस लीन।—तुलसी (शब्द०)। २ दे० 'अभिसरण'।

अभिसरनाⓊ—क्रि० अ० [सं० **अभिसरण**] १ संचरण करना। जाना। २. किसी वांछित स्थान को जाना। ३. नायक या नायिका का अपने प्रिय से मिलने के लिये संकेतस्थल को जाना। उ०—चकित चित्त साहस सहित, नील बसन युत गात। कुलटा संध्या अभिसरै, उत्सव तम अधिरात।—केशव शब्द०)।

अभिसार—संज्ञा पुं० [सं०][वि० **अभिसारिका, अभिसारी**] १. साधन। सहाय। सहारा। बल। २. युद्ध। ३. प्रिय से मिलने के लिये नायिका या नायक का संकेतस्थल में जाना। ४. संकेतस्थल। सहेट [को०]। ५. आक्रमण [को०]। ६. शक्ति। ताकत (को०)। ७ सहयोगी। साथी। अनुगत (को०)। ८ औजार। उपकरण। साधन (को०)। ९. शुद्ध करने का एक संस्कार (को०)।

अभिसारनाⓊ—क्रि० अ० [सं० **अभिसार से नाम०**] १. गमन करना। जाना। घूमना। २. प्रिय से मिलने के लिये नायिका या नायक का संकेत स्थल में जाना। उ०—समय जोग पट भूषन धारैं। पिय अभिसारि आप अभिसारैं।—नंद० ग्रं०, पृ० १५६।

अभिसारकⓊ—वि० [सं०] अभिसार करनेवाला।

अभिसारिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] अवस्थानुसार नायिका के दस भेदों में एक। वह स्त्री जो संकेत स्थल में प्रिय से मिलने के लिये स्वयं जाय या प्रिय को बुलाए।

विशेष—यह दो प्रकार की है, शुक्लाभिसारिका (जो चाँदनी रात में गमन करे) और कृष्णाभिसारिका (जो अँधेरी रात में मिलने जाय) कोई कोई एक तीसरा भेद दिवाभिसारिका (दिन में जानेवाली) भी मानते हैं। साहित्य शास्त्र में अभिसार के आठ स्थान कहे गए हैं—(१) खेत, (२) उपवन या बगीचा (३) भग्नमंदिर, (४) दूती या सहेली का निवासस्थान, (५) जंगल, (६) तीर्थस्थान, (७) श्मशान। (८) नदीतट या परिसर।

अभिसारिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. अभिसारिका। २. त्रिष्टुभ् छंद का भेद जो ११ की जगह १२ वर्णों की स्थिति से जगती छंद के सन्निकट जान पड़ता है [को०]।

अभिसारी—वि० [सं० **अभिसारिन्**] [संज्ञा स्त्री० **अभिसारिका**] १. साधक। सहायक। २. प्रिया से मिलने के लिये संकेतस्थल में जानेवाला। उ०—धनि गोपी धनि ग्वाल धन्य सुरभी बनचारी। धनि यह पावन भूमि जहाँ गोबिंद अभिसारी।—सूर (शब्द०)। ३. आक्रामक। हमला करनेवाला (को०)। ४. आगे जानेवाला। सामने जानेवाला (को०)।

अभिसेख(ष)Ⓤ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अभिषेक'। उ०—मुनिदेव मिले अभिसेख कीन्ह।—हम्मरी रा०, पृ० १२।

अभिसेचनाⓊ—क्रि० स० [सं० **अभिषेचन**] सींचना। अभिषिक्त करना। उ०—आजु कछु मंगल घन उनए। बरसत बूँदन मनु अभिसेचत मंगल कलस लए। चमकि मंगलामुखी दामिनी मंगल करत नए।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ११४।

अभिस्कंद—संज्ञा पुं० [सं० **अभिस्कन्द**] १. आक्रमण। धावा। २. शत्रु [को०]।

अभिस्नेह—वि० [सं०] घनिष्ठ स्नेह। चाह [को०]।

अभिस्मरण—संज्ञा पुं० [सं० **अभि+स्मरण**] विशेष रूप से की गई याद। ध्यान। स्मृति। उ०—'स्मृति' संस्कृत वस्तु का अभिस्मरण है।—संपूर्णा० अभि० ग्रं०, पृ० ३४७।

अभिस्यंद—संज्ञा पुं० [सं० **अभिस्यन्द**] दे० 'अभिष्यंद' (को०)।

अभिहत—वि० [सं०] १. पीटा हुआ। ताड़ित। आहत। आक्रांत। २ गुणा किया हुआ। गुणित। ३. पराजित। पराभूत। ४. बाधित। निरुद्ध [को०]।

अभिहति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. निशाना लगाना। चोट करना। पीटना। २. गुणन क्रिया [को०]।

अभिहर१—संज्ञा पुं० [सं०] उठा ले जाना। ले भागना। हटा देना [को०]।

अभिहर२—वि० [सं०] उठाईगीर। ले भागनेवाला। [को०]।

अभिहरण—संज्ञा पुं० [सं०] छीन ले जाना। लूटना [को०]।

अभिहर्ता—संज्ञा पुं० [सं० **अभिहर्तृ**] १. डाकू। २. अपहरणकर्ता। ले भागनेवाला [को०]।

अभिहार—संज्ञा पुं० [सं०] १. आक्रमण। हमला। उ०—कैधों पांडुपूतनि कौ कछुक पखंड यामैं, कोऊ अभिहार कै सभा कौ ज्ञान लूट्यौ है।—रत्नाकर, भा—२, पृ० १११। २. मिश्रण। मिलावट (को०)। ३. लूटपाट। चोरी। डाका (को०)। ४. प्रयत्न। चेष्टा (को०)। ५. शस्त्रसज्ज होना (को०)। ६. समीप लाना (को०)। ७. मद्यप शराबी (को०)।

अभिहारिनिⓊ—वि० स्त्री० [सं० **अभिहारिणी**] सामने से हरण करनेवाली। उ०—देखी सुनी ग्वारिनि कितेक ब्रजबारिनि पै राधा सी न और अभिहारिनि लखाई है। हेरत हीं हेरत हरयौ तौ है हमारौ कछू काहु धौं हिरानौ पै न परत जनाई है।—रत्नाकर, भा० २, पृ० २२१।

अभिहास—संज्ञा पुं० [सं०] विनोद। हँसी। मजाक। दिल्लगी [को०]।

अभिहित—वि० [सं०] १. उक्त। कथित। कहा हुआ। २. संबद्ध। युक्त। बद्ध [को०]।

अभिहितसंधि—संज्ञा स्त्री० [सं० **अभिहितसन्धि**] कौटिल्य के अनुसार वह संधि जिसकी लिखापढ़ी न हुई हो।

अभिहितान्वयवाद—संज्ञा पुं० [सं०] कुमारिल भट्ट प्रभृति पुराने नैयायिकों, मीमांसकों और आलंकारियों या साहित्यिकों का मत कि वाक्य का प्रत्येक पद अलग स्वतंत्र और अनन्वित अर्थ रखता है। बाद में सब अर्थों का समन्वय करने पर समूचे वाक्य का अर्थ निकलता है। अन्विताभिधानवाद का उलटा।

अभिहितान्वयवादी—संज्ञा पुं० [सं० **अभिहितान्वयवादिन्**] अभिहितान्वयवाद का अनुयायी या समर्थक।

अभिहूति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. आवाहन। २ समाराधन। पूजन [को०]।

अभिहोम—संज्ञा पुं० [सं०] घृत की आहुति देना। घी से होम करना [को०]।

अभी१—क्रि वि० [हिं० **अब+ही**] १. इसी क्षण। इसी समय। इसी वक्त। तुरंत। तत्काल। २. अब तक। ३. अभी भी। ४. आजकल। इन दिनों। इस समय।

यौ०—अभी अभी = इसी समय । तुरत । तत्काल ।

अभी²—वि० [सं०] निर्भय । निडर [को०] ।

अभीक¹—वि० [सं०] १. निर्भय । निडर । २. निष्ठुर । कठोरहृदय । ३. उत्सुक । इच्छुक । ४. भयानक (को०) । ५. कामुक । लंपट । ६. अधिगत । प्राप्त (को०) ।

अभीक²—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रेमी । पति । २. स्वामी । मालिक । ३. कवि ।

अभीक्ष्ण—वि० [सं०] १. निरंतर । लगातार । २. अधिक । ३. जो बार बार दुहराया जाय । आवर्तित [को०] ।

अभीघात—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अभिघात' ।

अभीत—वि० [सं०] निडर । निर्भय । उ०—सूत, मागध बंदि आदि अभीत, गा उठे जीवन विजय के गीत ।—साकेत, पृ० १९६ ।

अभीता(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अभीत' । उ०—अहं सु अज अव्ययं अभीता ।—सुंदर ग्रं०, भा० १, पृ० ११३ ।

अभीति¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. निर्भयता । निडरता । २. आक्रमण । ३. निकटता [को०] ।

अभीति²—वि० [सं०] अभीत । निर्भीक [को०] ।

अभीप्सा—संज्ञा पुं० [सं०] चाहना । इच्छा । अभिलाषा । उ०—करती सहज प्रवेश हृदय में जगा अभीप्सा ।—रजत०, पृ० १० ।

अभीप्सित¹—वि० [सं०] अभिलषित । चाहा हुआ । वांछित । इच्छित । उ०—हे भरतभद्र, अब कहो अभीप्सित अपना ।—साकेत, पृ० २२७ ।

अभीप्सित²—संज्ञा पुं० इच्छा । कामना । चाह [को०] ।

अभीप्सी—वि० [सं० अभिप्सिन्] दे० 'अभीप्सु' [को०] ।

अभीप्सु—वि० [सं०] अभीप्सा करनेवाला । चाहनेवाला । इच्छुक [को०] ।

अभीम¹—वि० [सं०] जो भय उत्पन्न करनेवाला न हो [को०] ।

अभीम²—संज्ञा पुं० विष्णु का एक नाम [को०] ।

अभीमान—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अभिमान' [को०] ।

अभीमुद—वि० [सं०] अत्यधिक प्रसन्न या आनंदयुक्त [को०] ।

अभीमोद—संज्ञा पुं० [सं०] प्रसन्नता । खुशी [को०] ।

अभीर—संज्ञा पुं० [सं०] १. गोप । अहीर । २. काव्य में एक छंद जिसके प्रत्येक चरण में ११ मात्राएँ और अंत में जगण (ISI) होता है । उ०—यहि विधि श्री रघुनाथ, गहे भरत कर हाथ । पूजत लोक अपार, गए राज दरबार (शब्द०) ।

अभीरणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का साँप [को०] ।

अभीराजी—संज्ञा पुं० [सं०] एक विषैला कीड़ा [को०] ।

अभीरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] अभीरों या अहीरों की बोली ।

अभीरु¹—वि० [सं०] १. निर्भय । निडर । २. जो भयकारक न हो ।

अभीरु²—संज्ञा पुं० १. शिव । २. भैरव ।

अभीरुण—वि० [सं०] १. निर्भय । २. निर्दोष [को०] ।

अभीरुपत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] शतमूली [को०] ।

अभील—संज्ञा पुं० [सं०] १. कठिनाई । परेशानी । २. भयंकर दृश्य [को०] ।

अभीशाप—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अभिशाप' [को०] ।

अभीशु—संज्ञा पुं० [सं०] १. वल्गा । लगाम । २. रश्मि । किरण । ३. बाहु । भुजा । ४. उँगली [को०] ।

अभीषया—क्रि० वि० [सं०] निर्भयतापूर्वक [को०] ।

अभीषु—वि०, संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अभीशु' [को०] ।

अभीष्ट¹—वि० [सं०] १. वांछित । चाहा हुआ । अभिलषित । उ०—जो स्पर्श कर लेता कभी था पुण्य प्रेम अभीष्ट को ।—कानन०, पृ० २६ । २. मनोनीत । पसंद का । ३. अभिप्रेत । आशय के अनुकूल । ४. प्रिय (को०) । ५. वैकल्पिक [को०] ।

अभीष्ट²—संज्ञा पुं० १. मनोरथ । मनचाही बात । उ०—'आपका अभीष्ट सिद्ध हो जायगा' (शब्द०) । २. प्रिय व्यक्ति या प्रेमी । ३. प्राचीन आचार्यों के मत से एक अलंकार जिसमें अपने इष्ट की सिद्धि दूसरे के कार्य द्वारा दिखाई जाय । यह यथार्थ में प्रहर्षण अलंकार के अंतर्गत आ जाता है ।

यौ०—**अभीष्टलाभ** = इच्छित वस्तु की प्राप्ति । **अभीष्टसिद्धि** = अभिलषित इच्छा का पूर्ण होना ।

अभीष्टा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. गृहस्वामिनी । २. प्रेमिका । ३. पान [को०] ।

अभीष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] अभीष्ट वस्तु, इच्छा या बात (को०) ।

अभुआना(पु)†—क्रि० अ० [सं० **आ + भावन**] हाथ पैर पटकना और जोर जोर से सिर हिलाना जिससे सिर पर भूत का आना समझा जाता है ।

अभुक्त—वि० [सं०] १. न खाया हुआ । २. न भोग किया हुआ । बिना बर्ता हुआ । अव्यवहृत । अछूता । उ०—नर अभुक्त उपयुक्त थान ताकै हित हित हेरत ।—रत्नाकर, भाग १, पृ० १६४ । ३. जिसने भोजन न किया हो (को०) । ४. जिसने भोग न किया हो (को०) ।

अभुक्तपूर्व—वि० [सं०] जिसका पहले कभी भोग या व्यवहार न किया गया हो ।

अभुक्तमूल—संज्ञा स्त्री० [सं०] ज्येष्ठा नक्षत्र के अंत की दो घड़ी तथा मूल नक्षत्र के आदि की दो घड़ी । गंडांत ।

अभुग्न—वि० [सं०] १. न झुका हुआ । सीधा । २. स्वस्थ । निरोग (को०) ।

अभुज—वि० [सं०] बाहुविहीन । बिना भुजा का [को०] ।

अभुल(पु)—वि० [हिं० **अमूल, अनभूल**] जो न भूले । बिना भूले । अचूक । उ०—बेधंत आनि बानह अभुल । भ्रगुक सीस कामंग इव ।—पृ० रा०, ६१।११९२ ।

अभुवाना(पु)†—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'अभुआना' । उ०—माया भूत भुताना साधो, आलम सब अभुवाता है ।—पलटू०, पृ० ९० ।

अभू¹(पु)—क्रि० वि० [**हिं० अब + हूँ = भी**] अब भी ।

अभू²—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु [को०] ।

अभूखन(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आभूषण' । उ०—तोरि तनी तन छोरि अभूखन भूलि गई गर देन को फाँसी ।—इतिहास, पृ० ३०४ ।

अभूत—वि॰ [सं॰] १. जो हुआ न हो। २. वर्तमान। ३. असत्य। मिथ्या (को॰)। ४. अपूर्व। विलक्षण। अनोखा। उ॰—आँगन खेलत घुटुरुनि धाए। उपमा एक अभूत भई तब जब जननी पट पीत उठाए। नील जलद पर उडुगन निरखत तजि सुभाव मनु तड़ित छपाए।—सूर (शब्द॰)।

अभूतदोष—वि॰ [सं॰] दोषरहित। निर्दोष [को॰]।

अभूतपूर्व—वि॰ [सं॰] १. जो पहले न हुआ हो। २. अपूर्व। अनोखा। विलक्षण।

अभूतशत्रु—वि॰ [सं॰] जिसका कोई शत्रु न हो। अजातशत्रु [को॰]।

अभूताहरण—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १. नाटयशास्त्र के अनुसार किसी प्रकार का कपटयुक्त या व्यंग्यपूर्ण वचन कहना। गर्भसंधि के तेरह अंगों में से एक। २. अयथार्थ बात कहना। छलपूर्ण बात कहना। (को॰)।

अभूति—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] १. अस्तित्वहीनता। अविद्यमानता। २. अशक्तता। ३. निर्धनता। ४. विपत्ति। बर्बादी। विनाश[को॰]।

अभूतोपमा—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] उपमा के दस भेदों में से एक जिसमें उत्कर्ष के कारण उपमान का कथन न हो सके। उ॰—जौ पटतरिअ तीय सम सीया। जग असि जुवति कहाँ कमनीया।—मानस, १।२४७।

अभूमि—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] १. वह जो भूमि न हो। भूमि के अतिरिक्त अन्य पदार्थ। २. अनुपयुक्त स्थान। ३. स्थानाभाव। ४. पहुँच से परे का स्थान [को॰]।

अभूमिज—वि॰ [सं॰] १. निकृष्ट अथवा अनुपयुक्त स्थान में उत्पन्न। २. जो भूमि में उत्पन्न न हो [को॰]।

अभूमिप्राप्तसैन्य—संज्ञा पुं॰ [सं॰] कौटिल्य के अनुसार वह सेना जो अनुपयुक्त भूमि में पड़ गई हो। ऐसी जगह पड़ी हुई फौज जहाँ से लड़ना असंभव हो।

अभूरि—वि॰ [सं॰] स्वल्प। कुछ। थोड़ा। कतिपय [को॰]।

अभूष—वि॰ [सं॰] अभूषित [को॰]।

अभूषन—संज्ञा पुं॰ [सं॰ आभूषण] दे॰ 'आभूषन'। उ॰—हीरन के अभूषन पै वारों जग ऐन।—नंद॰ ग्रं॰, पृ॰ ३६५।

अभूषित—वि॰ [सं॰] बिना आभूषण के। अनलंकृत। बिना सजाया हुआ [को॰]।

अभृत—वि॰ [सं॰] जिसे पारिश्रमिक न दिया जाता हो [को॰]।

अभृतक—वि॰ [सं॰] दे॰ 'अभृत' (को॰)।

अभृतसैन्य—संज्ञा पुं॰ [सं॰] वह सेना जिसे वेतन या भत्ता न मिला हो।

विशेष—कौटिल्य के अनुसार यह व्याधिज (बीमार) सैन्य से उपयोगी है, क्योंकि वेतन पा जाने पर जी लगाकर लड़ सकती है।

अभृश—वि॰ [सं॰] थोड़ा। कुछ। चंद [को॰]।

अभेड़ा(पु)—संज्ञा पुं॰ [हिं॰] दे॰ 'अभेरा'।

अभेद[1]—संज्ञा पुं॰ [सं॰] [वि॰ अभेदनीय, अभेद्य] १. भेद का अभाव। अभिन्नता। एकत्व। २. एकरूपता। समानता। ३. रूपक अलंकार के दो भेदों में से एक जिसमें उपमेय और उपमान का अभेद बिना निषेध के कथन किया जाय, जैसे—मुखचंद, चरणकमल। उ॰—रंभन मंजरि पुच्छ फिरावत मुच्छ उसीरनि की फहरी है। चंदन, कुंद, गुलाबन, आमन सीत सुगंधन की लहरी है। ताल बड़े फणि चक्र प्रवीन जू मित बियोगिनि की कहरी है। आनन ज्वाल गुलाल उड़ावत ब्याल बसंत बड़ो जहरी है।—बेनी (शब्द॰)। इसको कोई कोई पृथक् अलंकार भी मानते हैं।

अभेद[2]—वि॰ १. भेदशून्य। एकरूप। समान। उ॰—ब्रह्म जो व्यापक बिरज अज अकल अनीह अभेद।—मानस, १।५०।

अभेद[3](पु)—वि॰ [सं॰ अभेद्य] जिसका भेदन या छेदन न हो सके। जिसके भीतर कोई वस्तु न घुस सके। जिसका विभाग न हो सके। उ॰—कवच अभेद बिप्र गुरु पूजा। एहि सम विजय उपाय न दूजा।—मानस, ६।७६।

अभेदनीय—वि॰ [सं॰] दे॰ 'अभेद्य'।

अभेदबुद्धि—संज्ञा स्त्री॰[सं॰]भेदरहित बुद्धि। एकतापरक बुद्धि। बुद्धि या विचार की वह स्थिति जिसमें भेदभाव नहीं होता।

अभेदवादी—वि॰ [सं॰ अभेदवादिन्] [वि॰ स्त्री॰ अभेदवादिनी] जीवात्मा और परमात्मा में भेद न माननेवाला। अद्वैतवादी। उ॰—तेइ अभेदवादी ज्ञानी नर। देखा मैं चरित्र कलिजुग कर।—मानस, ७।१००।

अभेदाभेद—वि॰ [सं॰] एक। एकाकार। उ॰—कहीं नरायण नाभि है कहीं ब्रह्म कहिं वेद। कहिं शंकर गिरजा कहीं,कहीं अभेदाभेद।—भक्ति॰, पृ॰ २८५।

अभेद्य[1]—वि॰ [सं॰] १. जिसका भेदन या छेदन न हो सके। जिसके भीतर कोई चीज घुस न सके। जिसका विभाग न हो सके। २. जो टूट न सके। अखंडनीय। अविभाज्य।

अभेद्य[2]—संज्ञा पुं॰ [सं॰] हीरा। हीरक। वज्र [को॰]।

अभेय(पु)—संज्ञा पुं॰ [हिं॰] दे॰ 'अभेव'।

अभेरना(पु)—क्रि॰ स॰ [सं॰ अभिद, प्रा॰ अब्भिड] मिलाना। मिश्रित करना। एक में करना। उ॰—जपहु बुद्धि कै दुई सन फेरहु। दही चूर अस हिया अभेरहु।—जायसी (शब्द॰)।

अभेरा—संज्ञा पुं॰ [सं॰ अभि=सामने+रण=लड़ाई अथवा प्रा॰ अब्भिड] रगड़ा। झगड़ा। मुठभेड़। टक्कर। मुकाबिला उ॰—(क) उठै आगि दोउ डार अभेरा। कौन साथ तोहिं बैरी केरा।—जायसी (शब्द॰)। (ख) बिषम कहार मार मदमाते चलहिं न पाउँ बटोरा रे। मंद बिलंद अभेरा दलकन पाइय दुख झकझोरा रे।—तुलसी ग्रं॰, पृ॰ ५५३।

अभेव[1](पु)—संज्ञा पुं॰ [सं॰ अभेद] अभेद। अभिन्नता। एकता।

अभेव[2](पु)—वि॰ भेदरहित। अभिन्न। एक। उ॰—सिष सुमिरन साँचा करै हो जाय अलख अभेव।—दरिया॰बानी, पृ॰ ५।

अभै(पु)—संज्ञा पुं॰ [हिं॰] दे॰ 'अभय'। उ॰—सदा सुभाव सुलभ सुमिरन बस, भक्तन अभै दियौ।—सूर॰ १।४०।

अभैदिक(पु)—वि॰ [सं॰] दे॰ 'अभेद्य' [को॰]।

अभैन(पु)—वि॰ [सं॰] दे॰ 'अभय'। उ॰—भएं भै अभैनं सुयं सब्ब दृष्षै।—पृ॰ रा॰, १।३१२।

अभैपद(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अभयपद'। उ०—ध्रुवहिं अभैपद दियौ मुरारी।—सूर०, ।१।६०।

अभैमंत्र(पु)—संज्ञा पुं० [सं० **अभयमन्त्र**] निर्भयता प्रदान करनेवाला मंत्र।

अभैर—संज्ञा पुं० [सं० ?] धरन या लकड़ी जिसमें डोरी बाँधकर करघे की कंघियाँ लटकाई जाती हैं। कलवाँसा। दढ़ेरी।

अभोक्तव्य—वि० [सं०] जो भोगने योग्य न हो। जिसका उपयोग न किया जाय। अनुपयुक्त [को०]।

अभोक्ता—वि० [सं० **अभोक्तृ**] [वि० स्त्री० **अभोक्त्री**] १. भोग न करनेवाला। व्यवहार न करनेवाला। २. विरक्त (को०)।

अभोखण(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आभूषण'। उ०—अंगि अभोखण अच्छियड, तन सोवन सगराइ। मारू अंबा-मउर जिम, कर लग्गइ कुँमलाइ।—ढोला०, दू० ४७१।

अभोग[१](पु)—वि० [सं०] जिसका भोग न किया गया हो। अछूत। उ०—बरनि सिंगार न जानेउँ नख सिख जैस अभोग। तस जग किछू न पायउँ उपम देउँ ओहि जोग।—जायसी (शब्द०)।

अभोग[२]—संज्ञा पुं० भोग का अभाव [को०]।

अभोगी—वि० [सं० **अभोगिन्**] [स्त्री० **अभोगिनी**] भोग न करनेवाला। इंद्रियों के सुख से उदासीन। विरक्त। उ०—हमरें जान सदाशिव जोगी। अज अनवद्य अकाम अभोगी।—मानस, १।९०।

अभोग्य—वि० [सं०] जो भोग योग्य न हो [को०]।

अभोज(पु)—वि० [सं० **अभोज्य**] न खाने योग्य। अभक्ष्य। उ०—भोज अभोज न रति विरति, नीरस सरस समान। भोग होइ अभिलाष बिनु, महाभोग ता मान। राम चं०, पृ० १५२।

अभोजन—संज्ञा पुं० [सं०] १. भोजन न करना। २. भोजन से परहेज। ३. उपवास। व्रत [को०]।

अभोज्य—वि० [सं०] १. न खाने योग्य। अभक्ष्य। अभोज। २. जिसका खाना वर्जित हो [को०]।

अभोटी(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] शूद्र श्रेणी के नौकर। उ०—मंदिर में शूद्र श्रेणी के नौकर अभोटी कहलाते रहे।—पू० म० भा०, पृ० ३२३।

अभोल(पु)—वि० [**हिं० भूलना**] जो भूला न हो। जो भूलनेवाला न हो। उ०—अमोल अभोल अतोल अभंग। अकंज अगंज अलुंज अभंग।—पृ० रा, ६.४। ३१७।

अभौ(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अभय'। उ०—नृपति बहुत जाचिय अभौ।—पृ० रा०, ५७।२६७।

अभौतिक—वि० [सं०] १. जो पंचभूत का न बना हो। जो पृथ्वी, जल, अग्नि आदि से उत्पन्न न हो। अपार्थिव। २. अगोचर।

अभौम—वि० [सं०] १. जो भूमि से उत्पन्न न हो। अभूमिज। २. जो खराब या गलत जगह में पैदा हो [को०]।

अभ्भि(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अभ्र'। उ०—उड़ै सार सारं असी बक भारं। मनों अभ्भि सम बाल बज्ज्यो सवारं।—पृ० रा०, ६१।२०२०।

अभ्यंग—संज्ञा पुं० [संज्ञा **अभ्यङ्ग**] [वि० **अभ्यक्त, अभ्यंजनीय**] १. लेपन। चारों ओर पोतना। मल मलकर लगाना। २. नवनीत। नैनू (को०)। ३. तैलमर्दन। स्नेहन।
यौ०—**तैलाभ्यंग**।

अभ्यंजन—संज्ञा पुं० [सं० **अभ्यञ्जन**] १. तैल आदि की मालिश। २. आँखों में सुरमा या अंजन लगाना ३. अंगराग। तैल आदि। ४. मक्खन। नवनीत [को०]।

अभ्यंजनीय—वि० [सं० **अभ्यञ्जनीय**] १. पोतने योग्य। लगाने योग्य। २. तेल या उबटन लगाने योग्य।

अभ्यंत(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अभ्यंतर'। उ०—अगम अगोचर रहचा अभ्यंत।—कबीर ग्रं०, पृ० २६६।

अभ्यंतज—वि० [सं० **अभ्यन्तज**] भीतरी। अंत तक। अभ्यंतर। उ०—रहै कौन अभ्यंतजं बल प्रकारं।—पृ० रा०, ५५।६६।

अभ्यंतर[१]—संज्ञा पुं० [सं० **अभ्यन्तर**] १. मध्य। बीच। उ०—निसि लौं रमत कोष अभ्यंतर, जो हित कहौ सो थोरी।—सूर०, १०।३८४८। २. हृदय। अंतःकरण।

अभ्यंतर[२]—क्रि० वि० भीतर। अंदर।

अभ्यंतर[३]—वि० १. सुपरिचित। अंतरंग। निकटतम। २. घनिष्ठता के साथ संबद्ध। ३. कुशल। ४. भीतर का। अंदर का। भीतरी। उ०—बाहिर कोटि उपाय करिय, अभ्यंतर ग्रंथि न छूटै।—तुलसी ग्रं०, पृ० ५९५।

अभ्यंतरक—संज्ञा पुं० [सं० **अभ्यन्तरक**] अंतरंग मित्र। घनिष्ठ मित्र [को०]।

अभ्यक्त—वि० [सं०] १. पोते हुए। लगाए हुए। २. तेल या उबटन लगाए हुए। ३. सुसज्ज। सजा हुआ (को०)।

अभ्यग्र—वि० [सं०] १. नजदीक। समीप। नवीन। ताजा [को०]।

अभ्यधीन—वि० [सं०] १. अधीन। जो किसी के अधिकार या नियंत्रण में हो। २. जो किसी नियम से बँधा हुआ हो [को०]।

अभ्यनुज्ञा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. स्वीकृति। अनुमति। संमति। २. आदेश। ३. पदच्युति या अनुपस्थिति की माफी [को०]।

अभ्यनुज्ञात—वि० १. स्वीकृत। २. समर्थित [को०]।

अभ्यमन—संज्ञा पुं० [सं०] १. आक्रमण। धावा। २. आघात। ३. रोग [को०]।

अभ्यमित—वि० [सं०] १. रोगी। २. आहत। चोट खाए हुए [को०]।

अभ्यर्चन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अभ्यर्चना'।

अभ्यर्चना—संज्ञा स्त्री० [सं०] संमान। पूजा। आराधना [को०]।

अभ्यर्ण[१]—वि० १. समीप। नजदीक। पास। २. समीप पहुँचा हुआ या आनेवाला [को०]।

अभ्यर्ण[२]—संज्ञा पुं० सामीप्य। निकटता [को०]।

अभ्यर्थन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अभ्यर्थना'।

अभ्यर्थना—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. संमुख प्रार्थना। विनय। दरख्वास्त। २. संमान के लिये आगे बढ़कर लेना। अगवानी। उ०—लोग स्टेशन पर उनकी अभ्यर्थना के लिये खड़े थे (शब्द०)।

अभ्यर्थनीय—वि० [सं०] १. प्रार्थना करने योग्य। विनय करने योग्य। २. आगे बढ़कर लेने योग्य।

अभ्यर्थित--वि० [सं०] १. जिससे प्रार्थना की गई हो। जिससे विनय की गई हो। २. जो आगे बढ़कर लिया गया हो [को०]।

अभ्यर्थी--वि० [सं० **अभ्यर्थिन्**] [वि० स्त्री० **अभ्यर्थिनी**] अभ्यर्थना करने वाला। निवेदन करनेवाला [को०]।

अभ्यर्थ्य--वि० [सं०] दे० 'अभ्यर्थनीय'।

अभ्यर्दन--संज्ञा पुं० [सं०] कष्ट पहुँचाना भाव। उत्पीड़न। [को०]।

अभ्यर्दित--वि० [सं०] जिसे पीड़ा पहुँचाई गई हो। पीड़ित [को०]।

अभ्यलंकार--संज्ञा पुं० [सं० **अभ्यलङ्कार**] आभूषण। मंडन [को०]।

अभ्यलंकृत--वि० [सं०**अभ्यलङ्कृत**]आभूषित। मंडित। सज्जित [को०]।

अभ्यर्हणा--संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पूजा। २. आदर। समान। श्रद्धा [को०]।

अभ्यवकर्षण--संज्ञा पुं० [सं०] बहि:निष्कासन। बाहर निकालना या खींचना [को०]।

अभ्यवस्कंद--संज्ञा पुं०[सं० **अभ्यवस्कन्द**] १. डटकर शत्रु का प्रतिरोध करना। शत्रु के खिलाफ बलपूर्वक आक्रमण करना। २. जा पहुँचना। पकड़ लेना। ३. शत्रु को परास्त करने के लिये तीव्रता पूर्वक आक्रमण करना। ४. आघात। ५. पतन [को०]।

अभ्यवस्कंदन--संज्ञा पुं० [सं० **अभ्यवस्कन्दन**] दे० 'अभ्यवस्कंद'।

अभ्यवहरण--संज्ञा पुं० [सं०] १. नीचे फेंकना। २. भोजन करना। खाना। ३. गले के नीचे उतारना [को०]।

अभ्यवहार[१]--वि० [सं०] भोजनोपयुक्त। खाने योग्य [को०]।

अभ्यवहार[२]--संज्ञा पुं० १. भोजन करना। २. भोजन [को०]।

यौ०--**अभ्यवहार मंडप** = भोजन का स्थान। खाने का मंडप।

अभ्यसन--संज्ञा पुं० [सं०] अनुशीलन। अभ्यास [को०]।

अभ्यसनीय--वि० [सं०] अभ्यास करने योग्य। जिसपर अभ्यास किया जाय [को०]।

अभ्यसित-- वि० [सं०] अभ्यास किया हुआ। अभ्यस्त।

अभ्यसूय--वि० [सं०] १. क्रोधी। गुस्सैल। २. डाही। ईर्ष्यालु। द्वेषी [को०]।

अभ्यसूया--संज्ञा स्त्री० [सं०] १. क्रोध। गुस्सा। २. डाह। जलन। ईर्ष्या [को०]।

अभ्यस्त--वि० [सं०] १. जिसका अभ्यास किया गया हो। बार बार किया हुआ। मश्क किया हुआ। जैसे--यह तो मेरा अभ्यस्त विषय है (शब्द०)। २. जिसने अभ्यास किया हो। जिसने अनुशीलन किया हो। दक्ष। निपुण। जैसे--वह इस कार्य में अभ्यस्त है (शब्द०) ३. पठित। अधीत [को०]। ४. आदत। स्वभाव [को०]। ५. पक्का। आदी [को०]।

अभ्यस्त--वि० [सं०] दे० 'अभ्यसनीय' [को०]।

अभ्यांत--वि० [सं० **अभ्यान्त**] १. रोगी। आतुर। २. घायल। आहत [को०]।

अभ्याकर्ष--संज्ञा पुं०[सं०] पहलवानों का एक दूसरे को ललकारने के लिये सीना ठोंकना [को०]।

अभ्याकांक्षित[१]--वि० [सं०**अभ्याकाङ्क्षित**] चाहा हुआ। अभिलषित [को०]।

अभ्याकांक्षित[२]--संज्ञा पुं० १. मिथ्या अभियोग। झूठी नालिश। झूठा दावा। २. इच्छा। अभिलाषा [को०]।

अभ्याख्यान--संज्ञा पुं० [सं०] मिथ्या अभियोग। झूठा दावा। झूठी नालिश।

अभ्यागत[१]--वि०[सं०] १. सामने या समीप आया हुआ। २. अतिथि रूप में घर आया हुआ।

अभ्यागत[२]-- संज्ञा पुं० अतिथि। मेहमान। पहुना, जैसे--अभ्यागत की सेवा गृहस्थों का धर्म है (शब्द०)।

अभ्यागम--संज्ञा पुं० [सं०] १. सामने आना। उपस्थिति। २. समीपता। पड़ोस। ३. सामना। ४. मुकाबिला। मुठभेड़। युद्ध। ५. विरोध। ६. अभ्युत्थान। अगवानी। ७. किसी निर्णय पर पहुँचना। ८. आघात। ९. वध (को०)। १०--शत्रुता (को०)।

अभ्यागारिक--वि० [सं०] १. कुटुंब के पालने में तत्पर। लड़के बालों में फँसा हुआ। घरबारी। २. कुटुंब पालने में व्यग्र। गृहस्थी की झंझट से हैरान।

अभ्याघात--संज्ञा पुं०[सं०] १. आघात। आक्रमण। २. बाधा। रुकावट। (को०)।

अभ्यात्त--वि० [सं०] १. प्राप्त। मिला हुआ। २. ब्रह्म का विशेषण। परिव्याप्त [को०]।

अभ्याधान--संज्ञा पुं० [सं०] प्रारंभ। स्थापन [को०]।

अभ्यापात--संज्ञा पुं० [सं०] विपत्ति। दुर्भाग्य [को०]।

अभ्यामर्द--संज्ञा पुं० [सं] युद्ध। संघर्ष [को०]।

अभ्याश[१]--वि० [सं०] समीपवर्ती। निकट [को०]।

अभ्याश[२]--संज्ञा पुं० १. सामीप्य। निकटता। पड़ोस २. परिणाम। नतीजा। ३. प्राप्ताशा। अभ्युदय [को०]।

अभ्यास[१]--संज्ञा पुं०[सं०] १. बार बार किसी काम को करना। पूर्णता प्राप्त करने के लिये फिर फिर एक ही क्रिया का अवलंबन। अनुशीलन। साधन। आवृत्ति। मश्क। उ०--(क) करत करत अभ्यास के जड़मति होत सुजान। रसरी आवत जात ते सिल पर परत निसान। सभा वि० (शब्द०)।

क्रि० प्र०--करना। होना। २. आदत। रब्त। बान। टेव। जैसे--उन्हें तो गाली देने का अभ्यास पड़ गया है (शब्द०)।

क्रि० प्र०--पड़ना।

३. प्राचीनों के अनुसार एक काव्यालंकार जिसमें किसी दुष्कर बात को सिद्ध करनेवाले का कथन हो। उ०--हरि सुमिरन प्रह्लाद किय, जरचो न अगिन मँझार। गयो गिरायो गिरिहु ते, भयो न बाँको बार (शब्द०)। कुछ लोग ऐसे कथन में चमत्कार न मान उसे अलंकार नहीं मानते। ४. अनुशासन (को०)। ५. पड़ोस (को०)। ६. गुणन (को०)। ७. संगीत में एक ही पद की बार बार आवृत्ति। टेक [को०]।

अभ्यास[२](पु)--वि० [सं०**अभ्याश**] समीप। निकट।--अनेकार्थ०।

अभ्यासकला--संज्ञा पुं० [सं०] योग की उन चार कलाओं में से एक जो विविध योगांगों के मेल से बनती है। आसन और प्राणायाम का मेल।

अभ्यासयोग--संज्ञा पुं० [सं०] १. बार बार अनुशीलन करने की

क्रिया । २. लगातार एक ही विषय का बार बार चिंतन करने से मन या मस्तिष्क की एकाग्रता ।

अभ्यासादन—संज्ञा पुं० [सं०] शत्रु पर आक्रमण या सामना करना[को०]।

अभ्यासित(पु)—वि० [सं० **अभ्यास**] दे० 'अभ्यसित' । उ०—रात दिना के सुनै किए जे अति अभ्यासित भाव, तिन सों कैसे बचौं कहो मन कोटिक करौं उपाव ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ५३९ ।

अभ्यासी—वि० [सं० **अभ्यासिन्**] [स्त्री० **अभ्यासिनी**] अभ्यास करनेवाला । साधक ।

अभ्याहत—वि० [सं०] १. पीड़ित । ताड़ित । २. बाधित । ३. दोषयुक्त [को०] ।

अभ्याहार—संज्ञा पुं० [सं०] १. निकट लाना । २. अपहरण । चौर्य [को०] ।

अभ्युक्त—वि० [सं०] किसी संदर्भ में कहा हुआ [को०] ।

अभ्युक्षण—संज्ञा पुं० [सं०] १. सेचन । छिड़काव । सिंचन । २. मार्जन [को०] ।

अभ्युक्षित—वि० [सं०] १. छिड़का हुआ । सिंचित । २. जिसपर छिड़का गया हो । जिसका सिंचन हुआ हो ।

अभ्युक्ष्य—वि० [सं०] छिड़कने योग्य ।

अभ्युचित—वि० [सं०] परंपरित । प्रचलित । नियमित [को०] ।

अभ्युच्चय—संज्ञा पुं० [सं०] १. वृद्धि । उत्थान । संपन्नता । उत्कर्ष । २. एकत्रीकरण [को०] ।

अभ्युच्छ्रय—संज्ञा पुं० [सं०] १. चढ़ाव । उठान । २. संगीत में स्वरसाधन की एक प्रणाली जो इस प्रकार है—सा ग, रे म, ग प, म ध, प नि, ध सा । अवरोही—सा ध, नि प, ध सा, प ग, म रे ग स ।

अभ्युच्छ्रित—वि० [सं०] उन्नत । उठा हुआ । उच्च [को०] ।

अभ्युत्थान—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० **अभ्युत्थायी, अभ्युत्थित, अभ्युत्थेय**] १. उठना । २. किसी बड़े के आने पर उसके आदर के लिये उठकर खड़ा हो जाना । प्रत्युद्गमन । ३. बढ़ती । समृद्धि । उन्नति । गौरव । ४. उठान । आरंभ । उदय । उत्पत्ति ।

अभ्युत्थायी—वि० [सं० **अभ्युत्थायिन्**] [स्त्री० **अभ्युत्थायिनी**] १. उठकर खड़ा होनेवाला । २. आदर के लिये उठकर खड़ा होने वाला । ३. उन्नति करनेवाला । ४ बढ़नेवाला ।

अभ्युत्थित—वि० [सं०] १. उठा हुआ । २. आदर के लिये उठकर खड़ा हुआ । ३. उन्नत । बढ़ा हुआ ।

अभ्युत्थेय—वि० [सं०] १. उठने योग्य । २. जो अभ्युत्थान के योग्य हो । जिसे उठकर आदर देना उचित हो । ३. उन्नति के योग्य ।

अभ्युदय—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० **अभ्युदित, आभ्युदयिक**] १. सूर्य आदि ग्रहों का उदय । २. प्रादुर्भाव । उत्पत्ति । ३. इष्टलाभ । मनोरथ की सिद्धि । ४. विवाह आदि शुभ अवसर । ५. वृद्धि । बढ़ती । उन्नति । तरक्की । ६. अस्तित्व में आना । आविर्भूत होना [को०] । ७. घर में संतान के जन्म लेने पर किया जानेवाला नांदीमुख श्राद्ध । [को०] ।

अभ्युदाहरण—संज्ञा पुं० [सं०] कौटिल्य के अनुसार किसी तथ्य को प्रमाणित करने के लिये विपरीत तथ्य द्वारा दिया गया उदाहरण ।

अभ्युदित—वि० [सं०] १. उगा हुआ । निकला हुआ । उत्पन्न । प्रादुर्भूत । २. दिन चढ़े तक सोनेवाला । ३ सूर्योदय के समय उठकर नित्यकर्म न करनेवाला । ४. समृद्ध । उन्नत । ५. उत्सव रूप में मनाया हुआ [को०] ।

अभ्युपगत—वि० [सं०] १. पास गया हुआ । सामने आया हुआ । प्राप्त । २. स्वीकृत । अंगीकृत । मंजूर किया हुआ । ३. समान । तुल्य [को०] ।

अभ्युपगम—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० **अभ्युपगत**] १. पास जाना । सामने आना या जाना । प्राप्ति । २. स्वीकार । अंगीकार । मंजूरी । ३ वादा करना (को०) । ४. न्याय के अनुसार सिद्धांत के चार भेदों में से एक ।

विशेष—बिना परीक्षा किए किसी ऐसी बात को मानकर जिसका खंडन करना है, फिर उसकी विशेष परीक्षा करने को अभ्युपगम सिद्धांत कहते हैं । जैसे, एक पक्ष का आदमी कहे कि शब्द द्रव्य है । इसपर उसका विपक्षी कहे कि अच्छा हम थोड़ी देर के लिये मान भी लेते हैं कि शब्द द्रव्य है पर यह तो बतलाओ कि वह नित्य है या अनित्य । इस प्रकार मानना अभ्युपगम सिद्धांत हुआ ।

अभ्युपपत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सहायता के लिये पहुँचना । २. दया । अनुग्रह । ३. अनुमोदन । स्वीकृति । मंजूरी । ४. सीखना । ढाढ़स । ५. रक्षा । बचाव । ६. वादा [को०] ।

अभ्युपाय—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वादा । २. स्वीकृत । ३. उपाय साधन [को०] ।

अभ्युपायन—संज्ञा पुं० [सं०] १. भेंट । उपहार । २. रिश्वत [को०] ।

अभ्युपेत—वि० [सं०] १. पहुँचा हुआ । आया हुआ । २. वादा किया हुआ । स्वीकृत [को०] ।

अभ्युषित[1]—वि० [सं०] साथ या निकट रहनेवाला ।

अभ्युषित[2]—संज्ञा पुं० साथ रहनेवाला [को०] ।

अभ्यूढ—वि० [सं०] समीप लाया हुआ [को०] ।

अभ्यूष—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार की रोटी । २. आधा पका हुआ भोजन [को०] ।

अभ्यूह—संज्ञा पुं० [सं०] १. तर्क । बहस । २. निष्कर्ष । ३. अनुमान । ४. विचार [को०] ।

अभ्रंकष[1]—वि० [सं० **अभ्रङ्कष**] गगनचुंबी । बहुत ऊँचा [को०] ।

अभ्रंकष[2]—संज्ञा पुं० १. वायु । हवा । २. पर्वत [को०] ।

अभ्रंलिह[1]—वि० [सं०] गगनचुंबी [को०] ।

अभ्रंलिह[2]—संज्ञा पुं० [सं०] हवा [को०] ।

अभ्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. मेघ । बादल । २. आकाश । ३. अभ्रक धातु । ४. स्वर्ण । सोना । ५. नागरमोथा । ६. गणित में शून्य । ७ कपूर (को०) । ८. बेत वेत्र (को०) ।

अभ्रक—संज्ञा पुं० [सं०] अबरक । भोडर । दे० 'अबरक' ।

अभ्रकसत्व—संज्ञा पुं० [सं०] इस्पात [को०] ।

अभ्रकूट—संज्ञा पुं० [सं०] पर्वताकार बादल की चोटी [को०] ।

अभ्रगंगा—संज्ञा स्त्री० [सं० **अभ्रगङ्गा**] आकाशगंगा [को०] ।

अभ्रनाग—संज्ञा पुं० [सं०] ऐरावत [को०] ।

अभ्रपथ--संज्ञा पुं० [सं०] १. वायुमंडल । २. गुब्बारा [को०] ।
अभ्रपिशाच--संज्ञा पुं० [सं०] राहु [को०] ।
अभ्रपुष्प--संज्ञा पुं० [सं०] १. बेंत । २. आकाशकुसुम । असंभव बात । पानी [को०] ।
अभ्रभेदी--वि० [सं० अभ्रभेदिन्] आकाश को भेदनेवाला । गगनचुंबी [को०] ।
अभ्रम¹--वि० [सं०] जिसे भ्रम न हो । भ्रमरहित [को०] ।
अभ्रम²--संज्ञा पुं० भ्रम का अभाव । स्थिरता । दृढ़ता [को०] ।
अभ्रमांसी--संज्ञा स्त्री० [सं०] जटामासी [को०] ।
अभ्रमातंग--संज्ञा पुं० [सं० अभ्रमातङ्ग] ऐरावत [को०] ।
अभ्रमु--संज्ञा स्त्री० [सं०] पूर्व के दिग्गज की पत्नी । ऐरावत की पत्नी [को०] ।
अभ्रमुप्रिय--संज्ञा पुं० [सं०] ऐरावत [को०] ।
अभ्ररोह--संज्ञा पुं० [सं०] वैदूर्य मणि । लाजवर्त [को०] ।
अभ्रमुवल्लभ--संज्ञा पुं० [सं०] ऐरावत [को०] ।
अभ्रवाटिक--संज्ञा पुं० [सं०] आम्रातक वृक्ष (को०) ।
अभ्रवाटिका--संज्ञा स्त्री० [सं०] आमड़े का वृक्ष [को०] ।
अभ्रांत--वि० [सं० अभ्रान्त] १. भ्रांतिशून्य । भ्रमरहित । २. भ्रमशून्य । स्थिर । व्यवस्थित ।
यौ०--अभ्रांतबुद्धि = जिसकी बुद्धि थिर हो ।
अभ्रांति--संज्ञा स्त्री० [सं० अभ्रान्ति] १. भ्रांति का न होना । स्थिरता । अचंचलता । २. भ्रम का अभाव । भूल चूक का न होना ।
अभ्रित¹(पु)--वि० [सं० अ + भृत] जो भरा न जा सके । अपूरणीय उ०--दुजबर बज्ज पैठ जेहा धर । बिज अभ्रित तिह थांन पंडि थिर ।--पृ० रा०, ११४७ ।
अभ्रित²--वि० [सं०] बादलों से ढँका हुआ [को०] ।
अभ्रिय¹--वि० [सं०] १. बादलों से संबधित या बादलों से उत्पन्न [को०] ।
अभ्रिय--संज्ञा पुं० बिजली [को०] ।
अभ्री--संज्ञा स्त्री० [सं०] १ फावड़ा । कुदाल । २. नाव साफ करने के लिये लकड़ी का एक नुकीला औजार [को०] ।
अभ्रेष--संज्ञा पुं० [सं०] उपयुक्तता । औचित्य [को०] ।
अभ्रोत्थ--संज्ञा पुं० [सं०] वज्र [को०] ।
अभ्य--संज्ञा पुं० [सं०] नंगा रहनेवाला साधु । दिगंबर साधु [को०] ।
अभ्व¹--वि० [सं०] १. महत् । विशाल । २. शक्तिशाली ३. भयंकर [को०] ।
अभ्व²--संज्ञा पुं० १. विशालता । २. भयंकरता । ३. अत्यधिक शक्ति [को०] ।
अमंख(पु)--संज्ञा पुं० [सं० आमिष] दे० 'आमिष' । उ०--बहरी अमंख हित पंखबल, गहै कुलंक असंक गत । रा० रू०, १५३ ।
अमंग--वि० [हिं० मंगन] १. न मांगनेवाला । अयाचक ।
अमंगल¹--वि० [सं० अमङ्गल] १. मंगलशून्य । अशुभ । २. भाग्यहीन । अभागा [को०] ।
अमंगल²--संज्ञा पुं० १. अकल्याण । अहित । अशुभ । दुःख । २. दुर्भाग्य (को०) । ३. रेंड़ का पेड़ । रेंड़ । एरंड ।
अमंगलचार†(पु)--संज्ञा पुं० [सं० अ + हिं० मंगलचार] रुदन । विलाप उ०--करहिं अमंगलचार, कहाँ गए राजा हो--पलटू०, भा० ३, पृ० ७४ ।
अमंगल्य--वि० संज्ञा पुं० [सं० अमङ्गल्य] दे० 'अमंगल' [को०] ।
अमंड¹--वि० [सं० अमण्ड] १. मंडनरहित । सज्जाविहीन । अनलंकृत । २. माँड़ रहित (चावल) ।
अमंड²--स्त्री० पुं० रेंड का वृक्ष । एरंड द्रुम [को०] ।
अमंडित--वि० [सं० अमण्डित] अनलंकृत । दे० 'अमंड' [को०] ।
अमंत(पु)¹--संज्ञा पुं० [सं० अमंत्र प्रा० अमंत] अमान्य मत । कुमत । अनुचित विचार । उ०--इन आकर्षे कज्ज बिन, किनौ अप्प अमंत--पृ० रा०, ६।१४३ ।
अमंत²--वि० [सं० अमित] अत्यधिक । उ०--राजन रक्खिय सब्ब इह, बाढ़िय प्रीत अमंत ।--पृ० रा० (उ०), पृ० २५० ।
अमंत्र--वि० [सं० अमन्त्र] १. जो वेदमंत्रों का अधिकारी न हो । जैसे, स्त्री, शूद्र आदि । २. जिसमें वैदिक मंत्रों की आवश्यकता न हो (कर्म) । ३. वेदमंत्रों को न जाननेवाला । अवेदज्ञ । ४. मंत्रविहीन [को०] ।
अमंत्रक--वि० [सं० अमन्त्रक] पुं० 'अमंत्र' [को०] ।
अमंत्रज्ञ--वि० [सं० अमन्त्रज्ञ] वैदिक मंत्रों को न जाननेवाला [को०] ।
अमंद¹--वि० [सं० अमन्द] १. जो धीमा न हो । तेज । २. उत्तम । श्रेष्ठ । स्वच्छ । सुंदर । भला । उ०--सूर० १० । २०३ । ३. उद्योगी । कार्यकुशल । चलता पुरजा । चतुर । ४. कम नहीं । बहुत । अधिक [को०] ।
अमंद²--संज्ञा पुं० एक प्रकार का वृक्ष [को०] ।
अम¹--वि० [सं०] अपक्व । कच्चा [को०] ।
अम²--संज्ञा पुं० १. बीमारी का कारण । २. बीमारी । रोग । ३. दाब । भार (को०) । ४. शक्ति । बल (को०) । ५. भय । डर (को०) । ६. सेवक । नौकर । ७. प्राणवायु (को०) । ८. वह स्थिति या अवस्था जो अमित हो (को०) ।
अम³(पु)‡--सर्व [सं० अस्मत्, प्रा० अम्ह] दे० 'हम' । उ०--महारांणी जसराज री यां बोली तिणवार । प्रथम अमां पत्राहिए खग धाराजल धार । रा० रू०, पृ० ३३ ।
अम(पु)--संज्ञा पुं० [सं० आम्र, प्रा० अब, अंब, (पु)अंभ] आम ।
विशेष--समस्त पदों में यह प्रायः पहले आता है; जैसे, अमचूर, अमरस, अमरसी ।
अमका†--सर्व [सं० अमुक] ऐसा ऐसा । अमुक । फलाना ।
अमग्ग(पु)--संज्ञा पुं० [सं० अमार्ग प्रा० अमग्ग] कुपथ । कुराह । कुमार्ग ।
अमचुर--संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अमचूर' ।
अमचूर--संज्ञा पुं० [हिं० अम = 'आम' + चूर] सुखाए हुए कच्चे आम का चूर्ण । पिसी हुई अमहर ।
मुहा०--सूखकर अमचूर होना = बहुत दुबला होना । शरीर में हाड़ चाम भर रह जाना ।
अमज्जक--वि० [सं०] जिसमें मज्जा न हो । मज्जाविहीन [को०] ।
अमड़ा--संज्ञा पुं० [सं० आम्रातक, प्रा० अंबाडय] एक पेड़ जिसकी पत्तियाँ शरीफे की पत्तियों से छोटी और सीकों में लगती हैं । इसमें भी आम की तरह मौर आता है और छोटे छोटे खट्टे फल

लगते हैं जो अचार, चटनी आदि के काम में आते हैं। उक्त पेड़ का फल। अमारी।

अमरिणव—वि० [सं०] रत्नविहीन [को०]।

अमत¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. मत का अभाव। असंमति। २. रोग। ३. मृत्यु। ४. काल। समय (को०)। रेणु। धूलि (को०)।

अमत²—वि० १. जिसका अनुभव न हुआ हो या न हो सके। २. अज्ञात ३. अस्वीकृत [को०]।

अमति¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. समय। २. चंद्रमा। ३. आकार। ढाँचा। ४. अभाव। ५. बुरा या निकृष्ट व्यक्ति [को०]।

अमति²—संज्ञा स्त्री० १. अज्ञान। अचेतना। २. ज्ञान, लक्ष्य या दूरदर्शिता का अभाव [को०]।

अमति³—वि० १. गरीब। दरिद्र। २. दुष्ट। बदमाश [को०]।

अमतपदार्थता—संज्ञा स्त्री० [सं०] साहित्य में एक प्रकार का शब्ददोष जहाँ दूसरा अर्थ प्रकृत के विरुद्ध हो।

अमत्त—वि० [सं०] १. मदरहित। २. बिना घमंड का। ३. शांत। जिसका मस्तिष्क ठीक हो।

अमत्ति(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० अ + मति] अमति। दुर्मति। कुमति। हीनमति। उ०—अंत मत्ति सो गत्ति। अंतजा मत्ति अमत्तिय।—पृ० रा०, ३१।१०१।

अमत्सर¹—संज्ञा पुं० [सं०] मत्सर का न होना। मात्सर्य का अभाव[को०]।

अमत्सर—वि० शत्रुता न रखनेवाला। मात्सर्यहीन [को०]।

अमद¹—वि० [सं०] १. जिसे मद न हो। मदरहित। अभिमान रहित। २. दुःखी। ३. गंभीर [को०]।

अमद²—संज्ञा पुं० [अ०] विचार। संकल्प [को०]।

अमदन्—क्रि० वि० [अ०] जानबूझकर। इच्छापूर्वक।

अमदान—संज्ञा पुं० [सं०]

अमधुर¹—वि० [सं०] १. जो मधुर न हो कटु। अरुचिकर।

अमधुर²—संज्ञा पुं० संगीतशास्त्र के अनुसार बाँसुरी के सुर के छहः दोषों में से एक।

अमन¹—संज्ञा पुं० [अ० अम्न] १. शांति। चैन। आराम। इतमीनान। २. रक्षा। बचाव।

यौ०—अमनअमान = शांति। सुरक्षा। सुव्यवस्था। अमन चैन = सुख। आराम। शांति। अमनपसंद = आरामपसंद। शांतिप्रिय।

अमन²—संज्ञा पुं० [सं० अमनस्] १. अनुभूति का न होना। अनुभूति का अभाव। २. ज्ञानाभाव [को०]।

अमनस्क—वि० [सं०] १. मन या इच्छा से रहित। उदासीन। २. उदास। अनमना। अन्यमनस्क। दे० 'अमना'।

अमना—वि० [सं० अमनस्] १. मन या इच्छारहित। उदासीन। अन्यमनस्क। २. उदास। ३. स्नेहरहित। ४. बेफिक्र। ५. अनमना। ६. मन पर नियंत्रण न रखनेवाला। ७. नासमझ मूर्ख। (को०)।

अमना²—संज्ञा पुं० परब्रह्म [को०]।

अमनाक्—अव्य० थोड़ा नहीं। बहुत। अधिक [को०]।

अमनिया¹—वि० [सं० अ + मल अथवा कमनीय ?] शुद्ध। पवित्र। अछूता। उ०—कबहिं अमनिया हलुवा खावै।—पलटू०, पृ० ११०।

अमनिया¹—संज्ञा स्त्री० [हिं०] भोजन बनाने की क्रिया। रसोई पकाना। (साधु की परि०)।

अमनुष्य¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. जो मनुष्य न हो। अमानव। २. राक्षस। दैत्य [को०]।

अमनुष्य²—संज्ञा पुं० १. अमानवीय। २. जहाँ मनुष्य अधिक आता जाता न हो [को०]।

अमनैत(पु)—वि० [अ० अमल + हिं० ऐत (प्रत्य०)] अमन करनेवाला। शासन करनेवाला। उ०—अर्षैसिंह अमनैत इक खल खंडन बलवंड। सुजान०, पृ० ५।

अमने(पु)†—सर्व० [पुं० अस्म, प्रा० हम्म, (पु)अम, गुज० अमने = मुझे] १. हमको। मुझको। २. हमने। मैंने। उ०—आप अप्रछन अमने देखे, आपणपो न दिखाड़े रे।—दादू०, पृ० ५३४।

अमनैक¹—संज्ञा पुं० [सं० आम्नायिक = वंश का अथवा सं० आत्मन्, प्रा० अप्पण, गुज० अमे, अमे, अमो, हिं० अपना, अपनैक] १. अवध में एक प्रकार के काश्तकार जिन्हें कुलपरंपरा के कारण लगान के संबंध में कुछ विशेष अधिकार प्राप्त रहते हैं। २. सरदार। हकदार। दावेदार। अधिकारी व्यक्ति। उ०—जेठे पुत्र सुभट छबि छाए। नाम सार वाहन जे गाए। जानि जुद्ध अमनैक अढ़ाए। खेलहार ता समय पठाए।—लाल० (शब्द०)।

अमनैक²—वि० अधिकार जतानेवाला। ढीठ। साहसी। उ०—(क) दौरि दधिदान काज ऐसो अमनैक तहाँ आली बनमाली आइ बहियाँ गहत है।—पद्माकर, (शब्द०)। (ख) जाति हौं गोरस बेंचन को ब्रज बीथिन धूम मची चहुँधा तें। बाल गोपाल सबै अमनैक हैं फागुन में बचिहौं री कहाँ तें।—बेनी (शब्द०)।

अमनैकी—संज्ञा स्त्री० [हिं० अमनैक] मनमाना आचरण। ढीठ व्यवहार। अमनैकपन। उ०—चंचल चोखे चपल अति नहीं देत पल चैन। कमनैती सीखी नई अमनैकी इन नैन।—स० सप्तक, पृ० ३५८।

अमनोज्ञ—वि० [सं०] १. असुंदर। जो सुंदर न हो। २. अप्रिय। अरुचिकर [को०]।

अमनोनिवेश—संज्ञा पुं० [सं० अ + मनस् + निवेश] मनोनिवेश का न होना। असावधानी। उ०—किंतु ऐसा उनके अमनोनिवेश ...से हुआ है।—ठेठ० उपो). पृ० ६।

अमनोरथ—वि० [सं०] मनोरथशून्य। इच्छारहित। उ०—अब तक मैं उक्त कार्य की पूर्ति से अमनोरथ रहा हूँ।—ठेठ० (उपो०), पृ० १।

अमम¹—वि० [सं०] १. ममतारहित। अहंकारशून्य। २. स्वार्थविहीन। अलिप्त। मोहरहित [को०]।

अमम²—संज्ञा पुं० बारहवें भावी जैन तीर्थंकर [को०]।

अमर¹—वि० [सं०] १. जो मरे नहीं। चिरजीवी। २. शाश्वत। अविनाशी।

अमर²—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० अमरा, अमरी] १. देवता। २. पारा। ३. हड़जोड़ का पेड़। ४. अमरकोश। ५. लिंगानुशासन नामक प्रसिद्ध कोश के कर्ता अमरसिंह जो विक्रमादित्य के नवरत्नों में से एक थे। ६. मरुद्गणों में से एक। उनचास पवनों में से

एक। ७. विवाह के पहले वर कन्या के राशिवर्ग के मिलान के लिये नक्षत्रों का एक गण जिसमें ये नक्षत्र होते हैं--अश्विनी, रेवती, पुष्य, स्वाती, हस्त पुनर्वसु, अनुराधा, मृगशिरा और श्रवण। ८. सोना (को०)। ९. तैंतीस (३३) की संख्या (को०)। १०. एक प्रकार का देवदार वृक्ष (को०)। ११. अस्थिसमूह (को०)। १२. एक पर्वत (को०)। १३. स्नुही वृक्ष। सेंहुड़(को०)।

अमर³Ⓟ--संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अंबर'। उ०--उड्डि रेन डंबर अमर दिष्यौ सेन चहुआन।--पृ० रा० ६।१३१।

अमरकंटक--संज्ञा पुं० [सं० अमरकण्टक] विंध्याचल पर्वत पर एक ऊँचा स्थान जहाँ से सोन और नर्मदा नदियाँ निकलती हैं। यह हिंदुओं के तीर्थों में से है। यहाँ प्रतिवर्ष शिवदर्शन के निमित्त धूमधाम से मेला होता है।

अमरकोट--संज्ञा पुं०[सं०] राजपूताने का एक प्रसिद्ध स्थान [को०]।

अमरकोश--संज्ञा पुं०[सं०] अमरसिंह द्वारा निर्मित संस्कृत का प्रसिद्ध कोश।

अमरखⓅ--संज्ञा पुं० [सं० अमर्ष] १. क्रोध। कोप। गुस्सा। रिस। उ०--बरवस खोज पिता के गयऊ। खोज न पाय अमरख तब भयऊ।--कबीर सा०, पृ० ५६। २. रस के अंतर्गत ३३ संचारी भावों में से एक। दूसरे का अहंकार न सहकर उसके नष्ट करने की इच्छा।

अमरखीⓅ--वि० [स० अमर्षिन्] क्रोधी। बुरा माननेवाला। दुःखी होनेवाला।

अमरगुरु--संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं के गुरु। बृहस्पति [को०]।

अमरज--संज्ञा पुं० [सं] एक प्रकार का खैर का पेड़ [को०]।

अमरण¹--संज्ञा पुं० [सं०] अमरता। मृत्यु का अभाव।

अमरण²--वि० मरणरहित। अमर। चिरजीवी।

अमरतटिनी--संज्ञा स्त्री० [सं०] गंगा। देवनदी [को०]।

अमरतरु--संज्ञा पुं० [सं०]देवतरु। कल्पवृक्ष [को०]।

अमरता--संज्ञा स्त्री०[सं०] १. मृत्यु का अभाव। चिरजीवन। उ० --सुधा सराहिअ अमरता गरल सराहिअ मीचु।--मानस, १।१५। २. देवत्व। उ०--अरे अमरता के चमकीले पुतलो! तेरे वे जयनाद।--कामायनी, पृ० ७।

अमरत्व--संज्ञा पुं० [सं०] १. अमरता। २ देवत्व।

अमरदारु--संज्ञा पुं० [सं०] देवदारु का पेड़।

अमरद्विज--संज्ञा पुं०[सं०]मंदिर का प्रबंधक या पुजारी ब्राह्मण[को०]।

अमरधाम--संज्ञा पुं० [स० अमरधामन्] स्वर्ग। देवलोक। [को०]।

अमरनाथ--संज्ञा पुं०[सं०] १. इंद्र। २. काश्मीर की राजधानी श्रीनगर से सात दिन के मार्ग पर हिंदुओं का एक तीर्थ। यहाँ श्रावण की पूर्णिमा को बर्फ के बने हुए शिवलिंग का दर्शन होता है। ३. जैन लोगों के १८वें तीर्थंकर।

अमरपखⓅ--संज्ञा पुं० [सं० अमरपक्ष] पितृपक्ष। उ०--समय पाइ कै लगत है, नीचहु करन गुमान। पाय अमरपख द्विजन लौं काग चहै सनमान।--रसनिधि (शब्द०)।

अमरपति--संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र। उ०--खेलत हरचौ अमरपति मान।--घनानंद, पृ० २४८।

अमरपद--संज्ञा पुं० [सं०] देवपद। मोक्ष। मुक्ति। उ०--अछै अमरपद लहिए।--कबीर श०, पृ० २६।

अमरपनⓅ--संज्ञा पुं०[सं० अमर+हिं० पन] १. अमरता। चिरजीवन। २. देवत्व।

अमरपुर--संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० अमरपुरी] अमरावती। देवताओं का नगर।

अमरपुष्प--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अमरपुष्पक' [को०]।

अमरपुष्पक--संज्ञा पुं० [सं०] १. कल्पवृक्ष। २. वृक्षविशेष। काँस। ३. तालमखाना। ४. गोखरू। ५. केतक(को०)। ६. चूत(को०)

अमरपुष्पिका--संज्ञा स्त्री० [सं०] अधःपुष्पी का क्षुप [को०]।

अमरबेल--संज्ञा पुं० [सं० अंबर+वेल्लि, अम्बरवल्ली]एक पीली लता या बौर जिसमें जड़ और पत्तियाँ नहीं होतीं। आकाशबेल। आकाशवल्ली।

विशेष--यह लता जिस पेड़ पर चढ़ती है उसके रस से अपना परिपोषण करती है और उस वृक्ष को निर्बल कर देती है। इसमें सफेद फूल लगते हैं। वैद्य इसे मधुर, पित्तनाशक और वीर्यवर्धक मानते हैं।

अमरबौंर--संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अमरबेल'। उ०--अमरबौंर अर्थात् आकाशबौर ने तो ऐसे बहुतेरे वृक्षों को जकड़ लिया--प्रेमघन०, पृ० १६।

अमरभनितⓅ--संज्ञा स्त्री० [सं० अमर+भणिति] अमरवाणी। संस्कृत। उ०--चित चकोर भाषा भनी अमरभनित अवगाहि।--घनानंद, पृ० ६०७।

अमरमूरि--संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अमियमूरि'।

अमररत्न--संज्ञा पुं० [सं०] स्फटिक। बिल्लौर।

अमरराज--संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र। उ०--घनन घनन घंटागन बजैं। अमरराज गज की छबि लजैं।--नंद० ग्रं०, पृ० २८७।

अमरलोक--संज्ञा पुं० [स०] इंद्रपुरी। देवलोक। स्वर्ग।

अमरवर--संज्ञा पुं० [सं०[देवताओं में श्रेष्ठ। इंद्र। उ०--खिलति मिलति तिनको नरपति सों। जिमि वर देत अमरवर रति सों।--गोपाल (शब्द०)।

अमरवल्लरी--संज्ञा स्त्री० [सं०] आकाशबौर। अमरबेल [को०]।

अमरवल्ली--संज्ञा स्त्री० [सं०] अमरबेल।

अमरस¹--संज्ञा पुं० [हिं० अम=आम+रस] निचोड़कर और जमाकर सुखाया हुआ आम का रस। अमावट।

अमरस²Ⓟ†--संज्ञा पुं० [सं० अमर्ष]दे० 'अमरख'। उ०--अमरस बे इतबार, निरदयता मन नासतिक। नर सम सार असार, पैलाँ घर वांछै पिसण।--बाँकीदास ग्रं०, भा० १, पृ० ६२।

अमरसरⓅ--संज्ञा पुं० [हिं०] अमृतसर। पंजाब का एक नगर जो सिक्खों का तीर्थस्थान है। उ०--जो पंजाब अमरसर गाया। सो बाबे ने नहीं बताया।--घट०, पृ० ३२८।

अमरसरी†--वि०[हिं०अमरसर] अमृतसर से संबद्ध। अमरसर का।

अमरसहरी†--वि० [हिं०] दे० 'अमरसरी।

अमरसी--वि० [हिं० आमरस+ई (प्रत्य०)] आम के रस की तरह पीला। सुनहला। यह रंग एक छटाँक हलदी और आठ माशे चूना मिलाकर बनता है।

अमरा¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दूब। २. गुर्च। गिलोय। ३. सेंहुड़। थूहर। ४. नीली कोयल। बड़ा नील का पेड़। ५. चमड़े की झिल्ली जिसमें गर्भ का बच्चा लिपटा रहता है। आँवर। जटायु। ६. नाभि का नाल जो नवजात बच्चे को लगा रहता है। ७. इंद्रायण। ८. बरियारा। बरगद की एक छोटी जंगली जाति। ६. घीकुआर। १०. इंद्रपुरी।

अमरा(पु)²—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अमड़ा'।

अमराई—संज्ञा स्त्री० [सं० आम्रराजि] आम का बाग। आम की बारी। २. उपवन। उद्यान। उ०—वह हरी लताओं की सुंदर अमराई।—कानन०, पृ० ३६।

अमराऊ(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अमराव'। उ०—देखा सब राउन अमराऊ।—जायसी ग्रं०, पृ० ११।

अमराचार्य—संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं के आचार्य या गुरु। बृहस्पति [को०]।

अमराद्रि—संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं का पर्वत। सुमेरु [को०]।

अमराधिप—संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र [को०]।

अमरापगा—संज्ञा स्त्री० [सं०] देवनदी। गंगा [को०]।

अमरापति(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अमरपति] इंद्र। उ०—अमरापति चरननि तर लोटत।—सूर०, १०।६५०।

अमराय(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] अमराई। उद्यान। उ०—आस पास अमराय बरारी। जहँ लग फूल तिती फुलवारी।—नंद० ग्रं०, पृ० ११६।

अमरारि—संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं के शत्रु। राक्षस (को०)।

यौ०—अमरारिगुरु, अमरारिपूज्य = दैत्यगुरु। शुक्र।

अमरालय—संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं का स्थान। स्वर्ग। इंद्रलोक।

अमराव(पु)‡—संज्ञा पुं० [सं० आम्रराजि] दे० 'अमराई'।

अमरावती—संज्ञा स्त्री० [सं०] देवताओं की पुरी। इंद्रपुरी। सुरपुरी।

अमरित(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अमृत'। उ०—प्रमरित पय नित स्त्रवहिं बच्छ महि थंभन जावहिं।—अकबरी०, पृ० ७२।

अमरी¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. देवता की स्त्री। देवकन्या। देवपत्नी। २. एक पेड़ जिससे एक प्रकार का चमकीला गोंद निकलता है। सज। सग। आसन। पियासाल।

विशेष—इस गोंद को सुगंध के लिये जलाते हैं। संथाल लोग इसे खाते भी हैं। इसकी छाल से रंग बनता है चमड़ा सिझाया जाता है। लकड़ी मकान, छकड़े और नाव बनाने तथा जलाने के काम में आती है। इसकी डालियों से लाही भी निकलती है और पत्तियों पर सिंहभूम आदि स्थानों में टसर रेशम का कीड़ा भी पाला जाता है।

अमरी²—संज्ञा स्त्री० हठयोगियों की एक क्रिया। उ०—बजरी करंतां अमरी राषै अमरी करंतां बाई। भोग करंता जे व्यंद राषै ते गोरष का गुरभाई।—गोरख०, पृ० ४६।

अमरीकन—वि० [हिं०] दे० 'अमेरिकन'।

अमरीका—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अमेरिका'।

अमरीकी—वि० [हिं०] दे० 'अमेरिकन'।

अमरीष(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अंबरीष'। उ०—दुरवासा अमरीष सतायौ।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० २४०।

अमरु—संज्ञा पुं० [सं०] एक राजा जिसने 'अमरुशतक' नामक शृंगार का ग्रंथ बनाया था।

अमरू—संज्ञा पुं० [अ० अहमर = लाल?] एक प्रकार का रेशमी कपड़ा जो काशी में बुना जाता है।

अमरूत—संज्ञा पुं० [फा० अमरूद, तु० मुरूद] एक पेड़ जिसका धड़ और टहनियाँ पतली और पत्तियाँ पाँच या छः अंगुल लंबी होती हैं।

विशेष—इसका फल कच्चा रहने पर कसैला और पकने पर मीठा होता है और उसके भीतर छोटे छोटे बीज होते हैं। यह फल रेचक होता है। पत्ती और छाल रँगने तथा चमड़ा सिझाने के काम आती है। मदक पीनेवाले इसकी पत्ती को अफीम में मिलाकर मदक बनाते हैं। किसी किसी का मत है कि यह पेड़ अमरीका से आया है। पर भारतवर्ष में कई स्थानों पर यह जंगली होता है। इलाहाबाद और काशी का यह फल प्रसिद्ध है।

पर्या०—(मध्यभारत; मध्यप्रदेश तथा पश्चिमी उत्तर प्रदेश) जाम। बिही। सफड़ी। (राजस्थान) जायफल। (बंगाल) प्यारा। (दक्षिण) पेरूफल। पेरुक। (नेपाल तराई) रुन्नी। (अवध) सफरी। अमरूद। (तिरहुत) लताम।

अमरूद—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अमरूत'।

अमरेश—संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं का राजा। इंद्र।

अमरेश्वर—संज्ञा पुं० [सं०] अमरेश। इंद्र।

अमरैया‡—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अमराई'।

अमरौती†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] अमरता। अमरत्व। उ०—जनम हुआ है कायर घर तो घर बैठे अमरौती खाय।—काले०, पृ० २४।

अमर्त्य—वि० [सं०] जो मर्त्य न हो। अविनश्वर। अमर [को०]।

यौ०—अमर्त्यभुवन = देवलोक। अमर्त्यापगा = गंगा।

अमर्दित—वि० [सं०] १. जिसका मर्दन न हुआ हो। जो मला न गया हो। बिना मला दला। जो मिजा मिजा न हो। २. जो दबाया या हराया न गया हो। अपराभूत। अपराजित।

अमर्याद—वि० [सं०] १. मर्यादाविरुद्ध। अव्यवस्थित। बेकायदा। २. बिना मर्यादा का। अप्रतिष्ठित। ३. सीमारहित। असंगत आचरण करनेवाला (को०)।

अमर्यादा—संज्ञा स्त्री० [सं०] अप्रतिष्ठा। बेइज्जती। मर्यादा या सीमा का न होना। असंगत आचरण।

अमर्ष—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अमर्षित, अमर्षी] १. क्रोध। रिस। २. वह द्वेष या दुःख जो ऐसे मनुष्य का कोई अपकार न कर सकने के कारण उत्पन्न होता है जिसने अपने गुणों का तिरस्कार किया हो। ३. असहिष्णुता। अक्षमा। ४. तैंतीस संचारी भावों में से एक (को०)।

अमर्षण¹—संज्ञा पुं० [सं०] क्रोध। रिस। असहिष्णुता।

अमर्षण²—वि० क्रोधी। असहिष्णु [को०]।

अमर्षित—वि० [सं०] **अमर्षी**। क्रोधी [को०]।

अमर्षी—वि० [सं० **अमर्षिन्**] [वि० स्त्री० **अमर्षिणी**] क्रोधी। असहनशील। जल्दी बुरा माननेवाला।

अमल१—वि० [सं०] १. निर्मल। स्वच्छ। २. निर्दोष। पापशून्य। ३. उज्वल। प्रकाशित। चमकीला (को०)।

अमल२—संज्ञा पुं० १. अबरक। अभ्रक। २. स्वच्छता। निर्मलता (को०)। ३. परब्रह्म (को०)।

अमल३—संज्ञा पुं० [अ०] १. व्यवहार। कार्य। आचरण। साधन।
क्रि० प्र० करना।—होना।
यौ०—**अमलदरामद** = कार्रवाई।
२. अधिकार। शासन। हुकूमत। उ०—हम चौधरी डोम सरदार। अमल हमारा दोनों पार।—भारतेंदु ग्रं०, प्र० भा०, पृ० २९२।
यौ०—**अमलदखल**। **अमलदरामद** = जाब्ते की काररवाई। **अमलदारी** = राज्य। हुकूमत। अधिकार। **अमलप** = अधिकारपत्र।
३. नशा। उ०—किईं ठाकुर अलगा वहुउ, आवउ अमल कराँह।—ढोला०, दू०, ६२८।
यौ०—**अमलपानी** = नशा वगैरह।
४. आदत। बान। टेव। व्यसन। लत। उ०—आनंद कंद चंद मुख निसि दिन अवलोकत यह अमल परचो।—सूर० (शब्द०)।
क्रि० प्र०—पड़ना। उ०—हरिदरसन अमल परचो लाजन लजानी।—सूर० (शब्द०)।
५. प्रभाव। असर। उ०—अभी दवा का अमल नहीं हुआ है (शब्द०)। ६. भोगकाल। समय। वक्त। उ०—अब चार का अमल है (शब्द०)।

अमलकोची—संज्ञा स्त्री० [देश०] कंजे की जाति का एक प्रकार का वृक्ष जिसकी फलियों से चमड़ा सिझाया जाता है। वि० दे० 'कुंती'।

अमलगुच्छ—संज्ञा पुं० [सं०] पद्मकाष्ठ या पद्म नामक वृक्ष। वि० दे० 'पदम'।

अमलता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. निर्मलता। स्वच्छता। २. निर्दोषता।

अमलतास—संज्ञा पुं० [सं० **अम्ल**] एक पेड़ जिसमें डेढ़ दो फुट लंबी गोल गोल फलियाँ लगती हैं।
पर्या०—**आरग्वध। घनबहेड़ा। किरवरा।**
विशेष—इसकी पत्तियाँ सिरिस के समान और फूल सन के समान पीले रंग के होते हैं। फलियों के ऊपर का छिलका कड़ा और भीतर का गूदा अफीम की तरह चिपचिपा, खाने में कुछ मिठास लिए हुए खट्टा और कड़ुआ और बहुत दस्तावर होता है। इसके फूलों का गुलकंद बनता है जो गुलाब के गुलकंद से अधिक रेचक होता है। इसके बीजों से कै कराई जाती है।

अमलतासिया—वि० [हिं० **अमलतास + इया** (प्रत्य०)] अमलतास के फूल के समान हल्के पीले रंग का। हलका पीला। गंधकी।

अमलदार—संज्ञा पुं० [अ० **अमल + फा० दार**] अधिकारी। शासक। हुकूमत करनेवाला।

अमलदारी—संज्ञा स्त्री० [अ० **अमल + फा० दारी**] १. अधिकार। दखल। शासन। २. रुहेलखंड में एक प्रकार की काश्तकारी जिसमें असामी को पैदावार के अनुसार लगान देना पड़ता है। कनकूत।

अमलपट्टा—संज्ञा पुं० [अ० **अमल + हिं० पट्टा**] वह दस्तावेज या अधिकारपत्र जो किसी प्रतिनिधि या कारिंदे को किसी कार्य में नियुक्त करने के लिये दिया जाय।

अमलपतत्री—संज्ञा पुं० [सं० **अमलपतत्रिन्**] जंगली हंस [को०]।

अमलबेत—संज्ञा पुं० [सं० **अम्लवेतस्**] १. एक प्रकार की लता जो पश्चिम के पहाड़ों में होती है और जिसकी सूखी हुई टहनियाँ बाजार में बिकती हैं और दवा में पड़ती हैं। २. एक मध्यम आकार का पेड़ जो बागों लगाया जाता है।
विशेष—इसके फूल सफेद और फल गोल, खरबूजे के समान, पकने पर पीले और चिकने होते हैं। इस फल की खटाई बड़ी तीक्ष्ण होती है। इसमें सूई गल जाती है। यह अग्निसंदीपक और पाचक होता है, इस कारण चूरण में पड़ता है। यह एक प्रकार का नीबू है।

अमलबेद—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अमलबेत'। उ०—चूरन अमलबेद का भारी। जिसको खाते कृष्णमुरारी।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ६६२।

अमलबेल—संज्ञा स्त्री० [**अमल? + हिं० बेल**] एक प्रकार की लता।
विशेष—यह भारत के प्रायः सभी गरम प्रदेशों में पाई जाती है। वर्षा ऋतु में इसमें नीलापन लिए हुए सफेद रंग के सुंदर फूल लगते हैं। इसकी पत्तियाँ फोड़ों पर उन्हें पकाने के लिये बाँधी जाती हैं।

अमलमणि—संज्ञा पुं० [सं०] स्फटिक। बिल्लौर।

अमलरत्न—संज्ञा पुं० [सं०] स्फटिक [को०]।

अमला१—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. लक्ष्मी। २. सातला वृक्ष। ३. पताल आँवला।

अमला२—संज्ञा पुं० [सं० **आमलक**] आँवला।

अमला३—संज्ञा पुं० [अ० **अमलह्**] कर्मचारी। कचहरी या दफ्तर में काम करनेवाला। कार्याधिकारी। उ०—फूलि न जौ तू ह्वै गयो राजा बाबू अमला जज्ज।—भारतेंदु ग्रं०, १।५५१।
यौ०—**अमलाफैला (अमला फैलह)** = कचहरी का कर्मचारी। **अमलासाजी** = कर्मचारियों को घूस देकर वशीभूत करने की क्रिया।

अमला४(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अमल'। उ०—आठ पहर अमला रा माँता हेलो देता डोलौ।—घनानंद, पृ० ४४५।

अमलातक—संज्ञा पुं० [सं०] अमलबेत [को०]।

अमलानक—संज्ञा पुं० [सं०] अमलबेत [को०]।

अमलिन—वि० [सं०] १. स्वच्छ। निर्मल। निर्दोष।

अमली१—वि० [अ० **अमल + फा० ई** (प्रत्य०)] १. अमल में आनेवाला व्यावहारिक। २. अमल करनेवाला। कर्मण्य। ३. नशेबाज।

अमली२—संज्ञा स्त्री० [सं० **अम्लिका**] १. इमली। २. एक झाड़ोदार

पेड़ जो हिमालय के दक्षिण गढ़वाल से आसाम तक होता है। करमई। गौरबटी।

अमलीसमली(ु)—वि० [हिं०] उलटी सीधी। उ०—अमली समली आरती। जाई बघेरइ दियो मिलाण।—बी० रासो०, पृ० १२।

अमलुनियाँ†—संज्ञा पुं० [देश०] खर पतवार। एक तरह की घास जो खेतों में अपने आप उग जाती है।

अमलूक—संज्ञा पुं० [सं० अम्ल] एक प्रकार का मेवा और उसका पेड़।

विशेष—यह अफगानिस्तान, बिलूचिस्तान, हजारा, कशमीर और पंजाब के उत्तर हिमालय की पहाड़ियों पर होता है। इसमें से बहुत सा रस बहता है जो जमकर गोंद की तरह हो जाता है। इसका फल ताजा और सूखा दोनों खाया जाता है। सूखा फल काबुली लोग लाते हैं। इसे मलूक भी कहते हैं।

अमलोनी—संज्ञा स्त्री० [सं० अम्ललोणी] नोनियाँ घास। नोनी।

विशेष—इसकी पत्तियाँ बहुत छोटी छोटी, मोटे दल की और खाने में खट्टी होती हैं। लोग इसका साग बनाकर खाते हैं जो अग्नि वर्धक होता है। कहते हैं कि इसके रस से धतूरे का विष उतर जाता है। यह बड़ी पत्तियों का भी होता है जिसे 'कुलफा' कहते हैं।

अमल्लक—वि० [अ० मुतलक] बिलकुल। पूरा पूरा। समूचा। ज्यों का त्यों।

अमवा(ु)‡—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'आम'। उ०—चढ़ि अमवा की डारि, अकेली धन का रै खड़ी।—धरम० पृ० ४३।

अमस¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. काल। समय। २. रोग। ३. मुर्खता [को०]।

अमस²—वि० निर्बोध। अज्ञानी।

अमसूल—संज्ञा पुं० [देश०] एक पतला पेड़ जो नीलगिरि पर बहुतायत से होता है।

विशेष—इस वृक्ष की डालियाँ नीचे की ओर झुकी होती हैं। दक्षिण में कोंकण, कनारा और कुर्ग के जंगलों में भी यह होता है। इसका फल खाया जाता है और गोवा में बिंदाव के नाम से बिकता है। पर यह वृक्ष उस तेल के कारण अधिक प्रसिद्ध है जो उसके बीज से निकाला जाता है और तेल कोकम का मक्खन कहलाता है। बाजारों में यह तेल जमी हुई सफेद लंबी बत्तियों या टिकियों के रूप में मिलता है जो साधारण गर्मी से पिघल जाती हैं। यह वर्धक और संकोचक समझा जाता है तथा सूजन आदि में इसकी मालिश होती है। इससे मरहम भी बनाया जाता है।

अमसृण—वि० [सं०] जो मसृण न हो। कठोर। कड़ा [को०]।

अमहर—संज्ञा स्त्री० [हिं० आम=अम+हर (प्रत्य०)] छिले हुए कच्चे आम की सुखाई हुई फाँक। यह दाल और तरकारी में पड़ती है। इसे कूटकर अमचूर भी बनाते हैं।

अमहल(ु)—संज्ञा पुं० [सं० अ=नहीं+अ० महल] १. बिना घर का। अनिकेत। २. जिसके रहने का कोई एक स्थान न हो। व्यापक। उ०—अंबरीख और याग जनक जड़ शेष सहस मुख पाना। कहँ लौं गनौं अनंत कोटि लै अमहल महल दिवाना।—कबीर (शब्द०)।

अमांस¹—वि० [सं०] १. मांसहीन। २. दुर्बल। निर्बल।

अमांस²—संज्ञा पुं० वह जो मांस न हो। मांस से इतर पदार्थ [को०]।

अमांसक—वि० [सं०] अमांश [को०]।

अमाँ—अव्य० [हिं० ए+फा० मियाँ] मुसलमानों में बातचीत में प्रचलित एक संबोधन। ऐ मियाँ। अरे यार।

अमा¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. अमावस्या। २. अमावस्या की कला। स्कंदपुराण के अनुसार चंद्रमा की सोलहवीं कला जिसका क्षय और उदय नहीं होता। ३. घर। ४. मर्त्यलोक। इहलोक। ५. चौपायों की आँख पर की बतौरी जो अशुभ समझी जाती है।

अमा²—वि० मापरहित। अमाप [को०]।

अमघौता—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का धान जो अगहन में तैयार होता है।

अमाजुर—संज्ञा स्त्री० [सं०] अपने पिता के घर पर ही बड़ी और बूढ़ी हो जानेवाली अविवाहिता स्त्री [को०]।

अमातना(ु)—क्रि० स० [सं० आमन्त्रण, प्रा० आमंत्रण] आमंत्रित करना। निमंत्रण देना। न्योता देना। आह्वान करना। बुलाना। उ०—कह्यो महरि सों करौ चँड़ाई हम अपने घर जात। तुमहूँ करौ भोग सामग्री कुलदेवता अमाति।—सूर० (शब्द०)।

अमातृ—वि० [सं०] माताविहीन। बिना माँ का [को०]।

अमात्य—संज्ञा पुं० [सं०] मंत्री। वजीर।

अमात्र¹—वि० [सं०] १. मात्रारहित। बेहद। अपरिमित। २. अपूर्ण। असमग्र [को०]। ३. आरंभिक [को०]।

अमात्र²—संज्ञा पुं० १. माप या इयत्ता का अभाव। वह जो माप नहीं है। २. परब्रह्म [को०]।

अमान¹—वि० [सं०] १. जिसका मान या अंदाज न हो। अपरिमित। परिमाणरहित। इयत्ताशून्य। उ०—मायागुन ज्ञानातीत अमाना वेद पुरान भनंता।—मानस, १।१९२। २. बेहद। बहुत। उ०—आकाश विमान अमान छये। हा हा सब ही यह शब्द रये।—केशव (शब्द०)। ३. गर्वरहित। निरभिमान। सीधासादा। उ०—सदा रामप्रिय होब तुम्ह सुभ गुन भवन अमान। कामरूप इच्छामरन ज्ञान बिराग निधान।—मानस, ७।११३। ४. मानशून्य। अप्रतिष्ठित। अनादृत। आत्माभिमानरहित। उ०—(क) अगुन अमान जानि तेहि दीन्ह पिता बनबास।—मानस, ६।३० (क)। (ख) अगुन अमान मातु पितु होना। उदासीन सब संसय छीना।—मानस, १।६७।

अमान²—संज्ञा पुं० [अ०] १. रक्षा। बचाव। २. शरण। पनाह। ३. शांति। उ०—माँगने से अगर मिले हमको क्यों न जी की अमान तो माँगूँ।—चुभते०, पृ० ५४।

अमानत—संज्ञा स्त्री० [अ०] १. अपनी वस्तु को किसी दूसरे के पास एक नियत काल तक के लिये रखना २. वह वस्तु जो दूसरे के पास किसी नियत या अनियत काल तक के लिये रख दी जाय। थाती। धरोहर। उपनिधि। ३. अमीन का काम या पद (को०)। ४. शांति। अमन।

यौ०—अमानतखाता=कोठी, बैंक आदि का वह खाता जिसमें अमानत की रकम जमा की जाती है। अमानतखाना=वह

स्थान जहाँ अमानत में वस्तुएँ रखी जाती हैं। **अमानतनामा** = अमानत रखते समय प्रमाणस्वरूप लिखा जानेवाला पत्र। **अमानत में खयानत करना या होना** = अमानत में रखी हुई रकम को खा जाना।

अमानतदार—संज्ञा पुं० [अ० **अमानत** + फा० **दार**] १. जिसके पास कोई चीज अमानत रखी जाय। धरोहर रखनेवाला। २. अमीन (को०)।

अमानन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अमानना' (को०)।

अमानना—संज्ञा स्त्री० [सं०] अनादर। अवज्ञा। तिरस्कार। अपमान [को०]।

अमानव—वि० [सं०] मानवेतर [को०]।

अमानस्य[१]—संज्ञा पुं० [सं०] पीड़ा। दुःख [को०]।

अमानस्य[२]—वि० पीड़ित। व्यथित। दुखित [को०]।

अमाना[१]—क्रि० अ० [सं० **आ = पूरा पूरा + मान = माप**] १. पूरा पूरा भरना। समाना। अँटना। जैसे—इस बरतन में इतना पानी नहीं अमा सकता (शब्द०)। उ०—मुनि सुनि मन हनुमान के प्रेम उमँग न अमाइ।—तुलसी ग्रं०, पृ० ८३। २. फूलना। उमड़ना। इतराना। उ०—करि कछु ज्ञान अभिमान जान दै है कैसी मति ठानी। तन, धन जानि जाम जुग छाया भूलति कहा अमानी।—सूर (शब्द०)।

अमाना[२]†—संज्ञा पुं० [सं० **अयन**] बखार का मुँह। अन्न की कोठरी का द्वार। आना।

अमानित—वि० [सं०] १. जिसे माना न गया हो। २. जिसका मान न हुआ हो। असंमानित।

अमानितसेना—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह सेना जिसकी वीरता के उपलक्ष्य में उचित आदर मान न किया गया हो और जो इस कारण असंतुष्ट हो।

विशेष—कौटिल्य ने ऐसी सेना को विमानित (जिसकी बेइज्जती की गई हो) सेना से उपयोगी कहा है, क्योंकि उचित मान पाकर यह जी लगाकर लड़ सकती है।

अमानिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] नम्रता। मान का न होना [को०]।

अमानित्व—संज्ञा पुं० [सं०] गर्वराहित्य। अमानिता। [को०]।

अमानिया—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पटसन।

अमानिशा—संज्ञा स्त्री० [सं०] अमावस्या की रात्रि। अंधकारयुक्त रात [को०]।

अमानी[१]—वि० [सं०] निरभिमान। घमंडरहित। अहंकारशून्य। उ०—मोरे प्रौढ़ तनय सम ग्यानी। बालक सुत सम दास अमानी।—मानस, ३।३७।

अमानी[२]—संज्ञा स्त्री० [सं० **आत्मन्**] १. वह भूमि जिसकी जमींदार सरकार हो और जिसका प्रबंध उसकी ओर से जिले का कलक्टर करे। खास। २. जमीन या कोई कार्य जिसका प्रबंध अपने ही हाथ में हो, ठीके पर न दिया गया हो। ३. लगान की वसूली जिसमें बिगड़ी हुई फसल का विचार करके कुछ कमी की जाय।

अमानी[३]—संज्ञा स्त्री० [सं० **अ** + हिं० **मानना**] मनमानी अवस्था। अपने मन की कारवाई। अंधेर।

अमानुष[१]—वि० [सं०] १. मनुष्य की सामर्थ्य के बाहर। अलौकिक। उ०—सकल अमानुष करम तुम्हारे। केवल कौसिक कृपा सुधारे।—मानस, १।३५१। २. मनुष्यस्वभाव के विरुद्ध। पाशव। पैशाचिक।

अमानुष[२]—संज्ञा पुं० १. मनुष्य से भिन्न प्राणी। २. देव देवता। ३. राक्षस।

अमानुषिक—वि० [सं०] १. अलौकिक। अमानुषी। पैशाचिक [को०]।

अमानुषी—वि० [सं०] १. मनुष्य स्वभाव के विरुद्ध। पाशव। पैशाचिक। २. मानवी शक्ति के बाहर। अलौकिक।

अमानुषीय—वि० [सं०] दे० 'अमानुषी'।

अमान्य—वि० [सं०] अमाननीय। अस्वीकृत [को०]।

अमान्यता—संज्ञा स्त्री० [सं०] न मानना। अस्वीकृति।

अमाप—वि० [सं०] १. जिसके परिमाण का अंदाजा न हो सके। अपरिमित। उ०—अगर के धूप धूम उठत जहाँ ई तहाँ, उठत बगूरे अब अति ही अमाप हैं।—भूषण ग्रं०, पृ० २४४। २. बेहद। बहुत। उ०—मारचौ चूहौ आप दई बधाई सबनि हीं। या सूरता अमाप दृगनि देखि बाढ़ी हँसी।—हम्मीर०, पृ० १५।

अमापनीय—वि० [सं०] जिसकी माप न की जा सके। अमाप [को०]।

अमापित—वि० [सं०] जो मापा न गया हो जिसकी माप न हुई हो [को०]।

अमाप्य—वि० [सं०] अमापनीय [को०]।

अमाम(पु)†—वि० [हिं० **अमाप**] बहुत। उ०—दैराइ करै प्रणाम उमंगे मना अमाम।—रा० रू०, पृ० ७६।

अमामसी—संज्ञा स्त्री० [सं०] 'अमावस्या' [को०]।

अमामा—संज्ञा पुं० [अ० **इमामत**] पगड़ी। वह पगड़ी जिसके अंदर टोपी रहती है। उ०—कोई टोपी टोप बनाता है कोइ बाँधे फिरै अमामा है।—राम० धर्म०, पृ० ६२।

अमामसी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अमावस्या' (को०)।

अमाय[१](पु)—वि० [सं०] १. दे० 'अमाया'। २. अपरिसीम [को०]।

अमाय[२]—संज्ञा पुं० परब्रह्म [को०]।

अमाया[१]—वि० [सं०] १. मायारहित। निर्लिप्त। २. निःस्वार्थ। निष्कपट। निश्छल। उ०—जौ मोरे मन बच अरु काया। प्रीति राम पद कमल अमाया।—मानस, ६।५८।

अमाया[२]—संज्ञा स्त्री० [सं०] निष्कपटता। निश्छलता। ईमानदारी [को०]।

अमायिक—वि० [सं०] १. दोषरहित। २. मायारहित। ३. निश्छल। निष्कपट। ४. सच्चा।

अमायी—[सं० **अमायिन्**] दे० 'अमायिक' [को०]।

अमार[१]†—संज्ञा पुं० [फा० **अंबार**] १. अन्न रखने का घेरा। अरहर के सूखे डंठलों या सरकंडों की टट्टी गाड़कर बनाया हुआ घेरा जिसे ऊपर से छा देते हैं, और जिसमें ऊपर नीचे भुस देकर बीच में अनाज रखते हैं। २. राशि। बहुतायत। ढेर। उ०—जर जेबर का अमार लगा रहता होगा उसके यहाँ।—नई०, पृ० ३६।

अमार[२]—संज्ञा पुं० [अं०] अमरण [को०]।

अमार[३](पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अमरी'।

अमार[4]ⓟ†—सर्व० [हिं०; तुल० बें० प्रामार, ने० हाम्रा; हाम्रो,] हमारा। मेरा। उ०—कइबा देवल पुतली। ईसीय छइ प्रभु जी अमारड़ी नार।—बी० रासो, पृ० ६०।

अमारगⓟ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अमार्ग'।

अमारी[1]—संज्ञा स्त्री० [अ०] हाथी का छायादार या मंडपयुक्त हौदा।

अमारी[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० आमड़ा या अमड़ा] अमड़ा नामक वृक्ष या उसका फल।

अमार्ग[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. कुमार्ग। कुराह। २. बदचलनी। बुरी चाल। दुराचरण।

अमार्ग[2]— मार्गरहित। मार्गविहीन। [को०]।

अमार्जित—वि० [सं०] १. जो धोकर शुद्ध न किया गया हो। अस्वच्छ। २. जिसका संस्कार न हुआ हो। बिना शोधा हुआ।

अमार्ज्य—वि० [सं०] १. जिसको स्वच्छ न किया जा सके। २. जिसका संस्कार या शोधन करना संभव न हो।

अमालⓟ—संज्ञा पुं० [अ० अमल] अमल रखनेवाला। हाकिम। शासक। उ०—पैज प्रतिपाल, भूमिभार को हमाल, चहुँ चक्क को अमाल, भयो दंडक जहान को।—भूषण (शब्द०)।

अमालनामा—संज्ञा पुं० [अ० अमाल + फा० नामह] १. वह पुस्तक या रजिस्टर जिसमें कर्मचारियों की भली या बुरी कारवाइयाँ दर्ज की जाती हैं। २. कर्मपुस्तक। कर्मपत्र। मुसलमानी मत के अनुसार वह पुस्तक जिसमें प्राणियों के शुभ और अशुभ कर्म कयामत में पेश करने के लिये नित्य दर्ज किए जाते हैं।

अमालीⓟ—संज्ञा स्त्री० [अ० अमल] १. जाँच। २. लेखाजोखा। उ०—धरनी साल ब साल अमाली, जमा खरच यहि पाई।—धरनी०, पृ० ३।

अमावट[1]—संज्ञा पुं० [सं० आम्र, हिं० आम + सं० आवर्त; प्रा० आवट्ट] आम के सुखाए हुए रस के पर्त या तह।

विशेष—इसे बनाने के लिये पके आम को निचोड़कर उसका रस कपड़े या किसी और चीज पर फैलाकर सुखाते हैं। जब रस की तह सूख जाती है तब उसे लपेटकर रख लेते हैं।

अमावट[2]—संज्ञा स्त्री० [देश०] पहिना जाति की एक मछली।

अमावड़†—वि० [सं० अ + प्रा० माव (माप्) + डिं० ड़ (प्रत्य०)] शक्तिशाली। जोरावर।

अमावना†—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'अमाना'।

अमावस—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अमावस्या'। उ०—मौन अमावस मूल बिन रोहिनि बिन अखतीज।—घाघ०, १८१।

अमावसी—संज्ञा स्त्री० [सं०] अमावस्या [को०]।

अमावस्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कृष्णपक्ष की अंतिम तिथि। वह तिथि जिसमें सूर्य और चंद्रमा एक ही राशि के हों। २. हठयोग की एक क्रिया।

अमावास्य—वि० [सं०] १. जो अमावस्या के दिन हुआ हो।

अमावास्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अमावस्या'।

अमाह—संज्ञा पुं० [सं० अमांस] [वि० अमाही] नेत्ररोग विशेष। आँख के डेले से निकला हुआ लाल मांस। नाखूना।

अमाही—वि० [हिं० अमाह] अमाह रोग संबंधी। अमाह रोगवाला।

अमिअⓟ—संज्ञा पुं० [सं० अमृत, प्रा० अमिअ, अप० अमिअँ, मै०, ⓟ अमिय] दे० 'अमिय'। उ०—अमिअ मूरि मय चूरन चारू। समन सकल भव रुज परिवारू।—मानस १।१।

अमिञⓟ†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अमृत'। उ०—करण समाइअ अमिञ रस बुज्झ कहंते कंत।—कीर्ति०, पृ० ५६।

अमिखⓟ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आमिष'।

अमिट—वि० [सं० अ + हिं० मिटना; अथवा अ = नहीं + मर्त्य = मरनेवाला] १. जो न मिटे। जो नष्ट न हो। नाशहीन। स्थायी। २. जो न टले। अटल। जो निश्चय हो। अवश्यंभावी।

अमित—वि० [सं०] १. जिसका परिमाण न हो। अपरिमित। बेहद। असीम। २. बहुत। अधिक। ३. तिरस्कृत। उपेक्षित (को०)। ४. अज्ञात। अनजाना (को०)। ५. असंस्कृत। संस्कारहीन (को०)। ६. केशव के अनुसार वह अर्थालंकार जिसमें साधन ही साधक की सिद्धि का फल भोगे। जैसे—'दूती नायक के पास नायिका का सँदेसा लेकर जाय, परंतु स्वयं उससे प्रीति कर ले।' उ०—आनन सीकर सीक कहा ? हिय तौ हित ते अति आतुर आई। फीको भयो मुख ही मुख राग क्यों? तेरे पिया बहु बार बकाई। प्रीतम को पट क्यों पलटचो ? अलि केवल तेरी प्रतीति को ल्याई। केशव नीके ही नायक सों रमि नायिका बातन ही बहराई।—केशव (शब्द०)।

यौ०—अमितक्रतु। **अमिताशन**। **अमिततेजा**। **अमितौजा**। **अमितद्युति**। **अमितविक्रम**।

अमितक्रतु—वि० [सं०] असीम बुद्धि या साहसवाला [को०]।

अमितता—संज्ञा स्त्री० [सं०] अमित होना। आधिक्य।

अमिततेजा—वि० [सं० अमिततेजस्] असीम कांतिमान् [को०]।

अमितद्युति—वि० [सं०] अत्यधिक प्रकाशवाला [को०]।

अमितविक्रम—वि० [सं०] १. अत्यंत बलवान्। २. विष्णु का विशेषण [को०]।

अमितवीर्य—वि० [सं०] अत्यंत शक्तिशाली [को०]।

अमिताईⓟ—संज्ञा स्त्री० [हिं०] अधिकता। असीमता [को०]।

अमिताभ[1]—वि० [सं०] अत्यंत तेजस्वी [को०]।

अमिताभ[2]—संज्ञा पुं० महात्मा बुद्ध का एक नाम।

अमिताशन[1]—वि० [सं०] १. जो सब कुछ खाय। सर्वभक्षी। २. जिसके खाने का ठिकाना न हो।

अमिताशन[2]—संज्ञा पुं० १. अग्नि। आग। २. परमेश्वर विष्णु (को०)।

अमिति—संज्ञा स्त्री० [सं०] अनंतता। असीमता [को०]।

अमितौजा—वि० [सं० अमितौजस्] अत्यधिक शक्तिशाली। सर्वशक्तिमान [को०]।

अमित्र—वि० [सं०] १. जो मित्र न हो। शत्रु। बैरी। २. बिना मित्र का जिसका कोई दोस्त न हो। अमित्रक। ३. अतुकांत [बंग०]। उ०—अपनी अमित्र कविता की तरह अपने गीतों के लिये भी मैं इधर उधर सुन चुका था।—गीतिका (भू०), पृ० १२।

अमित्रक—वि० [सं०] दे० 'अमित्र'।

अमित्रखाद—संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र [को०]।

अमित्रघात--संज्ञा पुं०[सं०]शत्रुओं का नाश करना। शत्रुओं का हनन।
अमित्रघाती---वि० [सं० अमित्रघातिन्] शत्रुओं का नाश करनेवाला।
अमित्रता- --संज्ञा स्त्री० [सं०] शत्रुता। विरोध।
अमित्रविषयातिगानौका---संज्ञा स्त्री० [सं०] वह जहाज जो शत्रु के राष्ट्र में जानेवाला हो।
अमित्रसह----वि० [सं०] शत्रुओं को वशीभूत करनेवाला इंद्र।
अमित्राक्षर—वि० [सं० अमिताक्षर] जिसमें अक्षरों की कोई निश्चित संख्या न हो। जिसमें तुक न हो। गद्यमय। उ०—बहुत पहिले भी अमित्राक्षर कविता लिखी गई है।—करुणा, (प्र०)।
अमित्री —वि० [सं० अमित्रिन्] बैरी। शत्रु [को०]।
अमिथ्या(पु)†—वि० [अ = उन्चा० + मिथ्या] व्यर्थ। बेकार।उ०—सतगुरु भक्तिभेद नहिं पाए, जीव अमिथ्या दीन्हा।—घट०, पृ० २६४।
अमिय(पु)--संज्ञा पुं० [सं० अमृत; प्रा० अमिअ, अमिय] अमृत। उ०—देखि अमिय रस अन्हधरह भएउ नासिका कीर। पौन बास पहुँचावै, अस रम छाँड़ न तीर।—जायसी ग्रं०, पृ०४३।
अमियमूरि—संज्ञा स्त्री० [अमृत+मूरि] अमरमूर। अमृतबूटी। संजीवनी जड़ी। जिलानेवाली बूटी। उ०—अमिय मूरि मय चूरन चारू। शमन सकल भवरुज परिवारू।—तुलसी (शब्द०)।
अमिया--संज्ञा स्त्री० [सं० अम्रिका, प्रा० अम्मिआ] कच्चे आम। उ०—बैठी होगी; जामुन अमिया लदी रौस के पेड़ों पर।—मिट्टी०, पृ० ६५।
अमिरती†--संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'इमरती'।
अमिरथा†—वि० [हिं०] दे० 'अविरथा'। उ०—गया सब जनम अमिरथा मोरा।—चित्रा०, पृ० १३०।
अमिरस(पु)--संज्ञा पुं० [हिं०] १. अमृतरस। २. हठयोग के अनुसार चंद्रमा से द्रवित होनेवाला रस। उ०—पछिम दिसा धुन अंनहद गरज अमिरस करै उपजै ब्रह्मग्यांन।—रामानंद०, पृ०१२।
अमिरित(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अमृत'। उ०—औ जो यह अमिरित सों पागे। सोऊअ मर जग भए सभागे।—चित्रा०, पृ० १२।
अमिल(पु)—वि० [सं० अ + हिं० मिलना] १. न मिलने योग्य। अप्राप्य। उ०---निपट अमिल वह, तुम्हें मिलिबे की ज़क, कैसे कै मिलाऊँ गति मो पै न बिहंग की।—केशव (शब्द०)। २. बेमेल। बेजोड़। अनमिल। असंबद्ध। ३. भिन्नवर्गीय। जो हिला मिला न हो। जो हिले मिले नहीं। जिससे मेल जोल न हो। उ०—हरषि न बोली लखि ललन, निरखि अमिल सँग साथ। आँखिन ही में हँसि धरचो, सीस हिए पर हाथ।—बिहारी (शब्द०)। ४. ऊबड़ खाबड़। ऊँचा नीचा। उ०---अमिल सुमिल सीढ़ी मदन सदन की कि जगमगै पग जुग जेहरि जराय की।—केशव (शब्द०)।
अमिलताई(पु)—संज्ञा स्त्री०[हिं० अमिल + ताई (प्रत्य०)] न मिलने का भाव। कपट। दूर दूर रहना। उ०—मिलन न कहुँ भरे रावरे अमिलताई हिए मै किए बिमाल जे बिनोद छर्ते हैं।---रसखान०, पृ० ६३।
अमिलतास†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अमलतास'।
अमिलपट्टी—संज्ञा स्त्री०[हिं० अमिल + पट्टी = जोड़]सिलाई या तुरपन का एक भेद। चौड़ी तुरपन।
अमिलातक—संज्ञा पुं० [सं०]अम्लातक। अमलवेत [को०]।
अमिलित—वि० [सं०] न मिला हुआ। पृथक्। जुदा।
अमिलियापाट—संज्ञा पुं० [हिं० अमिली = इमली + पाट = रेशम] एक प्रकार का सन या पटसन।
अमिली¹(पु)†--संज्ञा स्त्री० [सं० अम्लिका] दे० 'इमली'। उ०-आलूचा अमिली अँवहलदी। आल आँवला साल अफलदी।—सुजान०, पृ० १६१।
अमीली²(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० अ = नहीं + मिलना] मेल या अनुकूलता का अभाव। खटाई। कपट। विरोध। मनमुटाव। उ०—जहँ अमिली पाकै हिय माँहाँ। तहँ न भाव नौरँग कै छाहाँ।----जायसी (शब्द०)।
अमिश्र—वि [सं०] जो मिश्रित न हो। मिलावटरहित। शुद्ध। खालिस [को०]।
अमिश्रण—संज्ञा पुं० [सं०] मिलावट का अभाव।
अमिश्रराशि—संज्ञा स्त्री० [सं०] गणित में वह राशि जो एक ही इकाई द्वारा प्रकट की जाती है। इकाई।१ से ९ तक की संख्या।
अमिश्रित—वि० [सं०]१. न मिला हुआ। जो मिलाया न गया हो। २. जिसमें कोई वस्तु मिलाई न गई हो। बे मिलावट। खालिस। शुद्ध। पृथग्भूत।
अमिष¹--संज्ञा पुं० [सं०] १. छल का अभाव। बहाने के न होने का भाव या स्थिति। २. दे० 'आमिष'। ३. सांसारिक सुख। ऐश आराम (को०)।
अमिष²—वि० निश्छल। जो हीलेबाज न हो।
अमी¹(पु)--संज्ञा पुं०[हिं०]दे० 'अमिय'। उ०—'दास' मनभावती न भावती चलन तेरी अधर अमी के अवलोके मोहि रहिए।----भिखारी ग्रं०, भा० १, पृ० १३८।
यौ०—अमीकर। अमीरस।
अमी²—वि० [सं० अमिन्] रोगी [को०]।
अमीक—वि० [अ०] गहरा। उ०--था पानी का वाँ इक चश्मा अमीक।----दक्खिनी०, पृ० ३४५।
अमीकर(पु)--संज्ञा पुं० [सं० अमृतकर; अमिय + कर] अमृतांशु। चंद्रमा।
अमीकला—संज्ञा पुं० [प्रा० अमी + कला] चंद्रमा। उ०---अद्भुत अमीकला आनँदघन सुजस----जोन्ह रसवृष्टि सुहाई।----घनानंद, पृ० ५५८।
अमीच(पु)----क्रि० वि० [सं० अ + मृत्यु, प्रा० मिच्चु] मृत्युविहीन। बिना मृत्यु के।
अमीढ़---संज्ञा पुं० [हिं०]दे० 'अधौरी'।
अमीत¹(पु)----संज्ञा पुं०[सं० अमित्र, प्रा० अमित्त] १. जो मित्र न हो। शत्रु। बैरी। उ०----पावक तुल्य अमीत न को भयो, मीतन को भयो धाम सुधा को।----भूषण (शब्द०)। २. अलग। विच्छिन्न। उ०----आन देव की पूजा कीन्हीं, गुरु से रहा अमीता रे।----कबीर श०, पृ० ८।
अमीत²---वि० [सं०] जिसे क्षति न पहुँची हो। अक्षत [को०]।

अमीन[1]—संज्ञा पुं० [अ०] १. वह व्यक्ति जो अमानत रखता है। २. विश्वसनीय।३. वह अदालती कर्मचारी जिसके सुपुर्द बाहर का काम हो, जैसे मौके की तहकीकात करना, जमीन नापना, बँटवारा करना, डिगरी का अमलदरामद कराना इत्यादि।

अमीन[2]ⓟ—संज्ञा पुं० [पं०] दे० 'अमी'। उ०—आनँदघन हित पोखि कै पाले प्रान अमीन।—घनानंद. पृ० १८०।

अमीपत्रⓟ—संज्ञा पुं० [हिं० **अमी + पत्र = पात्र**] अमृतपात्र। अमृतघट।

अमीबा—संज्ञा पुं० [अं०] एक अति सूक्ष्म जीव जिसे सूक्ष्मनिरीक्षक यंत्र से देखा जा सकता है।

अमीमांसा—संज्ञा स्त्री० [सं०] मीमांसा या विवेचना का अभाव [को०]।

अमीर—संज्ञा पुं० [अ०] १. कार्याधिकार रखनेवाला। सरदार। २. धनाढ्य। संपन्न। दौलतमंद। ३. उदार। ४. अफगानिस्तान के राजा की उपाधि।

अमीरजादा—संज्ञा पुं० [अ० **अमीर** + फा० **जादह**] [संज्ञा स्त्री० **अमीरजादी**] अमीर या धनवान् का पुत्र। शाहजादा। राजकुमार।

अमीरसⓟ—संज्ञा पुं० [हिं०] अमृत। उ०—आदि नाम जो अमीरस चाखे।—कबीर सा०, पृ० ८७०।

अमीराना—वि० [अ० **अमीर** + फा० **आनह** (प्रत्य०)] अमीरों के ढंग का। जिससे अमीरी प्रकट हो। धनिकोचित।

अमीरी[1]—संज्ञा स्त्री० [अ० **अमीर + ई** (प्रत्य०)] १. धनाढ्यता। दौलतमंदी। उ०—जो सुख पावा नाम भजन में सो सुख नाहिं अमीरी में।—कबीर० श०, पृ० ७०। २. उदारता।

अमीरी[2]—वि० अमीर का सा। अमीरों के योग्य। जैसे, अमीरी ठाठ।

अमीरुलबहर—वि० [अ०] नौबलाध्यक्ष। नौसेनापति [को०]।

अमीव—संज्ञा पुं० [सं०] १. पाप। २. दुःख। ३. रोग। ४. दुश्मन (को०)। ५. हानि। क्षति (को०)।

अमुंद्धⓟ—वि० [सं० **अ + मुग्ध**] मुग्ध। मूर्ख। मूढ़। उ०—कौन भुजाबल जुध करै। सुनि कमधज्ज अमुंद्ध।—पृ० रा०२५।७७४

अमुक—वि० [सं०] फलाँ। ऐसा ऐसा।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग किसी नाम के स्थान पर करते हैं। जब किसी वर्ग के किसी एक भी व्यक्ति या वस्तु को निर्दिष्ट किए विना काम नहीं चल सकता, तब किसी का नाम न लेकर इस शब्द को लाते हैं। जैसे, 'यह नहीं कहना चाहिए कि अमुक व्यक्ति ने ऐसा किया तो हम भी ऐसा करें'।

अमुक्त—वि० [सं०] १ जो मुक्त या बंधनरहित न हो। बद्ध। २. जिसे छुटकारा न मिला हो। जो फँसा हो। ३. जिसका मोक्ष न हुआ हो। ४. शस्त्र (छुरा, कटारी आदि) जो हाथ में पकड़कर चलाया जाय [को०]।

अमुक्तहस्त—वि० [सं०] १. देने में जिसके हाथ दबे हों। कंजूस। कृपण। २. कमखर्च। अल्प व्यय करनेवाला [को०]।

अमुख—वि० [सं०] मुखविहीन। वक्त्रहीन [को०]।

अमुख्य—वि० [सं०] जो मुख्य न हो। अप्रधान। गौण। निम्न।

अमुग्ध—वि० [सं०] १. जो मुग्ध या मोहित न हो। २. जितेंद्रिय। विरक्त। अनासक्त। ३. चतुर।

अमुत्र—संज्ञा पुं० [सं०] वह लोक। परलोक। जन्मांतर।

यौ०—इहामुत्रलोक परलोक।

अमुत्रत्य—वि० [सं०] भविष्य जीवन या परलोक संबंधी [को०]।

अमुद्र—वि० [सं०] १. जिसके पास कहीं जाने का परवाना या मुहर न हो। जिसके पास मुद्रा या निशानी न हो (को०)।

अमुना—क्रि०वि० [सं०] ऐसे। इस प्रकार। उ०—अमुना बिधि जमुनातट आवति।—नंद० ग्रं०, पृ० २९८।

अमुलाⓟ—वि० [हिं०] दे० 'अमूल्य'। उ०—नाम तेरो अमुला नाम तेरो चंदन घसि जयै नाम उचारै।—संत र०, पृ० १२९।

अमुष्य—वि० [सं०] प्रसिद्ध। विख्यात। मशहूर।

यौ०—**अमुष्यपुत्र** = प्रसिद्ध वंश में उत्पन्न। कुलीन।

अमूकⓟ—वि० [सं०] १. जो गूँगा न हो। २. बोलनेवाला। वक्ता। ३. चतुर। प्रवीण।

अमकीⓟ†(अमूकेⓟ†)अमूकौⓟ†—वि० [सं० **अमुख**] दे० 'अमुक'। जैसे, अमूकी ठौर, अमूके वैष्णव; अमूकौ कुम्हार आदि।

अमूझनाⓟ†—क्रि० अ० [स० **अवरुद्ध**, प्रा० **अवरुज्झ**, ***अवउज्झ**, ***अमउज्झ**] १. उलझना। फँसना। उ०—कठिन करम की परत भाषसी मनहिं अमूझत है रे।—सुंदर० ग्रं०, पृ० ८४२।

अमूझाⓟ†—वि० [हिं० **अमूझना** वा **उलझना**] अस्पष्ट। जो खुलासा न हो। उ०—प्रपस अमूझयो अरथ सबदपिए विए हित साजै।—रघु० रू०, पृ० १४। २. गर्मी से संतप्त होना।

अमूढ़[1]—वि० [सं० **अमूढ़**] १. जो मूर्ख न हो। चतुर। २. विद्वान्। पंडित।

अमूढ़[2]—संज्ञा पुं० पंचतन्मात्र में से एक। इनके नाम ये हैं—अविशेष, महाभूत, अशांत, अधीर और अमूढ़।

अमूमन्—अव्य० [सं०] अनुमानतः। सामान्यतया। प्रायः।

अमूर—संज्ञा पुं० [अ०] बात। चर्चा। उ०—मेरे खत के दीगर अमूर का जवाब आपने कुछ न दिया।—प्रेम० और गोर्की, पृ० ६१।

अमूरतⓟ—वि० [हिं०] दे० 'अमूर्त'। उ०—अलख अमूरत सिर्जन हारा।—इंद्रा०, पृ० १६७।

अमूरतिⓟ—वि० [हिं०] दे० 'अमूर्ति'। उ०—चमकत सो निरवान अमूरति छकित भयो मन बेधि उमंग।—जग० श०, भा० २, पृ० ८१।

अमूर्त[1]—वि० [सं०] मूर्तिरहित। निराकार। अवयवशून्य। निरवयव। उ०—कुछ भावों के विषय तो 'अमूर्त' तक होने लगे, जैसे कीर्ति की लालसा।—रस०, पृ० १६५।

अमूर्त[2]—संज्ञा पुं० १. परमेश्वर। २. आत्मा। ३. जीव। ४. काल। ५. दिशा। ६. आकाश। ७. वायु। ८. शिव (को०)।

यौ०—**अमूर्तगुण**—धर्म अधर्म आदि गुण जो अमूर्त माने जाते हैं।

अमूर्ति[1]—वि० [सं०] मूर्तिरहित। निराकार।

अमूर्ति[2]—संज्ञा पुं० विष्णु [को०]।

अमूर्ति[3]—संज्ञा स्त्री० आकारहीनता। निराकारता [को०]।

अमूर्तिमान्[1]—वि० [सं० **अमूर्तिमत्**] १. निराकार। मूर्तिरहित। २. अप्रत्यक्ष। अगोचर।

अमूर्तिमान्[2]—संज्ञा पुं० विष्णु [को०]।

अमूर्तीक--वि० [सं०] अमूर्त । निराकार निरवयव । उ०--दूसरा द्रव्य है धर्म जो अमूर्तीक सर्वव्यापी है ।--हिंदु० सभ्यता, पृ० २२७।

अमूल[1]--वि० [सं०] १. जिसका मूल न हो । बे जड़ का । २. निराधार । प्रमाणरहित (को०)। ३. अभौतिक (को०)। ४. चल (को०)।

अमूल[2]--संज्ञा पुं० सांख्य के अनुसार प्रकृति ।

अमूल[3]Ⓟ--वि० [सं० अमूल्य] अनमोल । उ०--(क) जउ भरि बूठउ भाद्रवउ मारू देस अमूल ।--ढोला० दू० २५०। (ख) दिव्य वस्त्र काहू करन, नाना बरन अमूल ।--पृ० रा० ६।५१।

अमूल[4]Ⓟ--क्रि० वि० [हिं०] दे० 'आमूल' । उ०--नैन चोट आसी लगी गासी ज्यौं भरपूर । मचत चलत क्योंहूँ नहीं खैंचत काम अमूर ।--स० सप्तक, पृ० ३५३ ।

अमूलक--वि० [सं०] १. जिसकी कोई जड़ न हो । निर्मूल । २. असत्य । मिथ्या । दे० 'अमूल[1]' ।

अमूला--संज्ञा स्त्री० [सं०] अग्निशिखा नाम का पौधा ।

अमूल्य--वि० [सं०] १. जिसका मूल्य निर्धारित न हो सके । अनमोल । २. बहुमूल्य । बेशकीमती । ३. जिसके लिये कोई मूल्य न दिया जाय । मुफ्त का ।

अमृत[1]--संज्ञा पुं० [सं०] १. वह वस्तु जिसके पीने से जीव अमर हो जाता है। पुराणानुसार समुद्रमंथन से निकले हुए १४ रत्नों में से एक । सुधा । पीयूष । निर्जर । २. जल । ३. घी । ४. यज्ञ के पीछे की बची हुई सामग्री । ५. अन्न । ६. मुक्ति । ७. दूध । ८. औषधि । ९. विष । १०. बछनाग । ११. पारा । १२. धन । १३. सोना । १४. हृद्य पदार्थ । १५. वह वस्तु जो बिना माँगे मिले । १६. सुस्वादु द्रव्य । मीठी या मधुर वस्तु । १७. अमर । देवता (को०) । उ०--राजकुमार, ब्राह्मण... स्वराज्य में बिचरता है और अमृत होकर जीता है।--चंद्र० पृ० ५६। १८. धन्वंतरी (को०)। १९. इंद्र (को०)। २०. सूर्य (को०) । २१. शिव (को०) । २२. विष्णु (को०) । २३. सोमरस (को०) । २४. पानी (को०) । २५. चार की संख्या (को०) । २६. निर्गुण मतानुसार वह रस जो तालुमूलस्थित चन्द्रमा से स्रवित होता है और जिसे योगी साधना द्वारा जीभ को उलटा करके पीता है । २७. बाराही कंद (को०)। २८. परब्रह्म (को०) । २९. भात (को०) ।

अमृत[2]--वि० [सं०] १. जो मरा न हो । २. जो मरणशील न हो । ३. अमरत्व प्रदान करनेवाला । ४. अविनश्वर । शाश्वत । ५. प्रिय । अभीष्ट । सुंदर [को०] ।

अमृतकर--संज्ञा पुं० [सं०] जिसकी किरणों में अमृत रहता है । चंद्रमा ।

अमृतकुंडली--संज्ञा स्त्री० [सं० अमृतकुण्डली] १. एक छंद जो प्लवंगम या चांद्रायण के अंत में हरिगीतिका के दो पद मिलाने से बन जाता है । २. एक प्रकार का बाजा । उ०--बाजत बीन रबाब किन्नरी अमृतकुंडली यंत्र ।--सूर (शब्द०) ।

अमृतक्षार--संज्ञा पुं० [सं०] नौसादर [को०] ।

अमृतगति--संज्ञा स्त्री० [सं०] एक छंद ।

विशेष--इसके प्रत्येक चरण में एक नगण एक जगण फिर एक नगण और अंत में गुरु होता है । (।।। ।S। ।।। S) इसको त्वरितगति तथा अमृततिलका भी कहते हैं । उ०--निज नग खोजत हरजू । पय सित लक्षमि बरजू (शब्द०) ।

अमृतगर्भ--संज्ञा पुं० [सं०] १. ब्रह्म । ईश्वर । २. जीवात्मा (को०) ।

अमृतजटा--संज्ञा स्त्री० [सं०] जटामासी ।

अमृततरंगिणी--संज्ञा स्त्री० [सं० अमृततरङ्गिणी] चंद्रिका । चाँदनी ।

अमृतत्व--संज्ञा पुं० [सं०] १. मरण का अभाव । न मरना । २. मोक्ष । मुक्ति ।

अमृतदान--संज्ञा पुं० [सं० अमृत+फा० दान; अथवा सं० मुद्भाण्ड] भोजन की चीज रखने का ढकनेदार बर्तन । एक प्रकार का डब्बा ।

अमृतदीधिति--संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा ।

अमृतद्युति--संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा ।

अमृतद्रव--संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा की किरण ।

अमृतधारा--संज्ञा स्त्री० [सं०] एक वर्णवृत्त जिसके चार चरणों में से प्रथम चरण में २०, दूसरे में १२, तीसरे में १६ और चौथे में ८ अक्षर होते हैं । उ०--सरबस तज मन भज नित प्रभु भवदुखहर्ता । साँची अर्हहि प्रभु जगतभर्त्ता । दनुज-कुल-अरि जगहित धरमधर्ता । रामा असुर सुहर्ता (शब्द०) ।

अमृतधुनिⓅ--संज्ञा स्त्री० [हिं० दे० 'अमृतध्वनि' ।

अमृतध्वनि--संज्ञा स्त्री० [सं० अमृत+ध्वनि] २४ मात्राओं का एक यौगिक छंद ।

विशेष--इसके आरंभ में एक दोहा रहता है। इसमें दोहे को मिलाकर छह चरण होते हैं और प्रत्येक चरण में झटके के साथ अर्थात् द्वित्व वर्णों से युक्त तीन यमक रहते हैं । यह छंद प्रायः वीररस के लिये व्यवहृत होता है । उ०--प्रतिभट उदभट विकट जहँ लरत लच्छ पर लच्छ । श्री जगदेश नरेश तहँ, अच्छच्छबि परतच्छ । अच्छच्छबि परतच्छच्छटनि विपच्छच्छय करि । स्वच्छच्छिति अति कित्तित्थिर, सुअम्मितिभय हरि । उज्झिज्झहरि समुज्झिज्झहरि विरुज्झिज्झटपट । कुप्पप्प्रगट सुरुप्पप्पगनि विलुप्पप्प्रतिभट ।--सूदन (शब्द०) ।

अमृतप[1]--वि० [सं०] १. अमृत पान करनेवाला । २. मद्यप । शराबी (को०) ।

अमृतप[2]--संज्ञा पुं० १. देवता । २. विष्णु ।

अमृतफल--संज्ञा पुं० [सं०] १. नाशपाती । २. परवल ।

अमृतफला--संज्ञा स्त्री० [सं०] १. आँवला । २. अंगूर । दाख । ३. मुनक्का ।

अमृतबंधु--संज्ञा पुं० [सं० अमृतबन्धु] १. देवता । २. चंद्रमा ।

अमृतबान--संज्ञा पुं० [सं० मृद्भाण्ड वा मृद्भाण्] रोगनी हाँडी । मिट्टी का रोगनी पात्र । लाह का रोगन किया हुआ मिट्टी का बरतन जिसमें अचार, मुरब्बा, घी आदि रखते हैं । मर्तबान ।

अमृतबिंदु--संज्ञा पुं० [सं० अमृतबिन्दु] एक उपनिषत् जो अथर्ववेदीय माना जाता है

अमृतभुक्--संज्ञा पुं० [सं०] १. देवता । २. वह जो अमृत का पान करे [को०] ।

अमृतमंथन— संज्ञा पुं० [सं० अमृतमन्थन] अमृत के लिये समुद्र का मंथन। समुद्रमंथन [को०]।

अमृतमती—संज्ञा स्त्री० [सं०] अमृतगति छंद [को०]।

अमृतमालिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा [को०]।

अमृतमूरि—संज्ञा स्त्री० [सं० अमृत + हिं० मूरि] संजीवनी जड़ी। अमरमूर।

अमृतमूर्ति—संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा [को०]।

अमृतयोग—संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष में एक शुभफलदायक योग। विशेष—रविवार को हस्त, गुरुवार को पुष्य, बुध को अनुराधा, शनि को रोहिणी, सोमवार को श्रवण, मंगल को रेवती, शुक्र को अश्विनी—ये सब नक्षत्र अमृतयोग में कहे जाते हैं। रवि और मंगलवार को नंदा तिथि अर्थात् परिवा, षष्ठ और एकादशी हो, शुक्र और सोमवार को भद्रा अर्थात् द्वितीया, सप्तमी और द्वादशी हो, बुधवार को जया अर्थात् तृतीया, अष्टमी और त्रयोदशी, गुरुवार को रिक्ता अर्थात् चतुर्थी, नवमी और चतुर्दशी हो, शनिवार को पूर्णा अर्थात् पंचमी, दशमी और पूर्णिमा हो तो भी अमृतयोग होता है। इस योग के होने से भद्रा और व्यतीपात आदि का अशुभ प्रभाव मिट जाता है।

अमृतरश्मि—संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा।

अमृतरस—संज्ञा पुं० [सं०] १. सुधा। अमृत। २. परब्रह्म [को०]।

अमृतरसा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. काले रंग का अंगूर। २. एक मिठाई। अनरसा [को०]।

अमृतलता—संज्ञा स्त्री० [सं०] गुर्च। गिलोय।

अमृतलतिका—संज्ञा स्त्री० [स०] दे० 'अमृतलता'।

अमृतलोक—संज्ञा पुं० [सं०] स्वर्ग। अमरलोक।

अमृतवपु—संज्ञा पुं० [सं०] १. चंद्रमा। २. विष्णु [को०]। शिव [को०]।

अमृतवृत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] यज्ञशेष सामग्री का उपयोग करना। उ०—वे तपस्वी ऋत और अमृतवृत्ति से जीवननिर्वाह करते हुए...प्रार्थना करते थे।—स्कंद०, पृ० १३२।

अमृतसंजीवनी—वि० [सं० अमृतसञ्जीवनी] दे० 'मृतसंजीवनी'।

अमृतसंभवा—संज्ञा स्त्री० [सं० अमृतसम्भवा] गुर्च। गिलोय।

अमृतसहोदर—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अमृतसोदर'।

अमृतसार—संज्ञा पुं० [सं०] १. नवनीत। मक्खन। २. घी।

अमृतसारज—संज्ञा पुं० [सं०] गुड़ [को०]।

अमृतसू—संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा [को०]।

अमृतसोदर—संज्ञा पुं० [सं०] १. उच्चैःश्रवा नाम का अश्व। २. अश्व। तुरग [को०]।

अमृतस्रवा—संज्ञा स्त्री० [सं०] रुदंती या रुद्रवंती नाम का पौधा [को०]।

अमृतांधस्—संज्ञा पुं० [सं० अमृतान्धस्] देवता।

अमृतांशु—संज्ञा पुं० [सं०] वह जिसकी किरणों में अमृत हो। चंद्रमा।

अमृता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. गुर्च। उ०—धूप बीच यह समय न जाहू। सेंधा साथ अमृता खाहू।—इंद्रा०, पृ० १५४। २. इंद्रायण। ३. मालकँगनी। ४. अतीस ५. हड़। ६. लाल निसोथ। ७. आँवला। ८. दूब। ९. तुलसी। १०. पीपल। पिप्पली। ११. मदिरा। १२. फिटकरी [को०]। खरबूजा [को०]। १४. शरीर की एक नाड़ी (को०)। १५. सूर्य की एक किरण का नाम [को०]।

अमृताक्षर—वि० [सं०] १. अजर। अमर। अविनश्वर [को०]। उ०—फूटीं तर अमृताक्षर निर्भर।—अपरा, पृ० २३०।

अमृताफल—संज्ञा पुं० [सं०] परवर। परोरा। पटोल [को०]।

अमृतासंग—संज्ञा पुं० [सं० अमृतासङ्ग] तूतिया [को०]।

अमृताशी—संज्ञा पुं० [सं०] १. विष्णु। २. देवता [को०]।

अमृताशन—संज्ञा पुं० [सं०] देवता [को०]।

अमृताशी—संज्ञा पुं० [सं० अमृताशिन्] देवता [को०]।

अमृताहरण—संज्ञा पुं० [सं०] गरुड़।

अमृताह्व—संज्ञा पुं० [सं०] एक फल। नाशपाती [को०]।

अमृतेश—संज्ञा पुं० [सं०] १. देवता २. शिव [को०]।

अमृतेशय—संज्ञा सं० [सं०] जलशायी विष्णु [को०]।

अमृतेश्वर—संज्ञा पुं० [सं०] अमृतेश [को०]।

अमृतेष्टका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की ईंट [को०]।

अमृतोत्पन्न—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अमृतोद्भव'।

अमृतोत्पन्ना—संज्ञा स्त्री० [सं०] मक्षिका। मक्खी [को०]।

अमृतोद्भव—संज्ञा पुं० [सं०] खर्परी तुत्थ। खपरिया तूतिया [को०]।

अमृत्यु[1]—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु का एक नाम [को०]।

अमृत्यु[2]—संज्ञा स्त्री० मृत्यु का अभाव। अमरता [को०]।

अमृत्यु[3]—वि० १. अमर। अमृत बनानेवाला [को०]।

अमृष्ट—वि० [सं०] अमार्जित। जो साफ न हो। गंदा। जो शुद्ध न किया गया हो।

यौ०—अमृष्टभोजी = अपवित्र वा अशुद्ध भोजन करनेवाला। अमृष्टमृज = जिसकी शुद्धता अक्षुण्ण हो।

अमेंट†—वि० [हिं०] दे० 'अमिट'। उ—काह कहौं मैं ओहि कहँ जेइ दुख कीन्ह अमेंट।—जायसी ग्रं०, पृ० २४२।

अमेजना(पु)—क्रि० अ० [फा० आमेज] मिलावट होना। मिलना। उ०—(क) कहै पदमाकर पगी यों रस रंग जामें, खुलिगे सुअंग सब रंगनि अमेजे ते।—पद्माकर ग्रं०, पृ० ४८। (ख) मोतिन की माल मलमलवारी सारी सजे, झलमल जोति होति चाँदनी अमेजे मैं।—बेनी (शब्द०)।

अमेजना[2](पु)— क्रि० स० मिलाना। मिलावट करना।

अमेठ(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० अ + मृष्ट, प्रा० पिट्ठ, (पु) पेठ (पु) अपेठ] पिय। निपट निलज इह जेठ, धाय धाय बधुवनि गहै।—दे० 'ऐंठ'। उ०—रही न ननक अमेठ तुम बिन नंदकुमार नंद० ग्रं०, पृ० १६६।

अमेठना(पु)—क्रि० स० [हिं० अमेठ से नाम०] दे० 'उमेठना'। उ०—पुनि जब भौंह अमेठन लागै। तब ये ग्वाल बाल डरि भागै।—नंद० ग्रं०, पृ० ३०१।

अमेठी—संज्ञा स्त्री० [हिं० अमेठ+ई] ऐंठ। अकड़। अभिमान। गर्व। उ०—एक आँख शिक्षा की हेठी से देखने लगी उसे अमेठी से।—बेला, पृ० ५३।

अमेत Ⓟ—वि० [सं० अमित] अगणित। अनेक। अमित। उ०—सुक समीप मन कुँवरि कौ, लग्यौ वचन कै हेत। अति विचित्र पंडित सुआ, कथत जु कथा अमेत।—पृ० रा० २०।१३।

अमेदस्क—वि० [सं०] मेदा रहित। दुबला पतला [को०]।

अमेधा—वि० [सं० अमेधस्] जिसमें मेधा न हो। मूर्ख। बुद्धिहीन [को०]।

अमेध्य[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. अपवित्र वस्तु। विष्ठा, मूत्र आदि। विशेष—स्मृति के अनुसार ये चीजें अमेध्य हैं—मनुष्य की हड्डी, शव, विष्ठा, मूत्र, चरबी, पसीना, आँसू, पीब, कफ, मद्य, वीर्य और रज।

२. एक प्रकार का प्रेत। ३. अपशकुन [को०]।

अमेध्य[2]—वि० १. जो वस्तु यज्ञ में काम न आ सके। जैसे, पशुओं में कुत्ता और अन्नों में मसूर, उर्द आदि। २. जो यज्ञ कराने योग्य न हो। ३. अपवित्र।

अमेय—वि० [सं०] १. अपरिमाण। असीम। इयत्ताशून्य। बेहद। २. जो जाना न जा सके। अज्ञेय। उ०—कथं सुंदरं सुंदरं नामधेयं। नमस्ते नमस्ते नमस्ते अमेयं।—सुंदर० ग्रं०, भा० १, पृ० २७९।

अमेयात्मा[1]—संज्ञा पुं० [सं० अमेयात्मन्] विष्णु [को०]।

अमेयात्मा[2]—वि० महान् आत्मावाला। उदारमना। [को०]।

अमेरिकन—वि० [अं०] १. अमेरिका का। २. संयुक्त राष्ट्र अमेरिका का निवासी। ३. अमेरिका संबंधी।

अमेरिका—संज्ञा पुं० [अं०] पश्चिमी गोलार्ध का एक महादेश। यह दो भागों में बँटा हुआ है—उत्तरी अमेरिका और दक्षिणी अमेरिका। उ०—तुम नहीं मिले, तुमसे हैं मिले हुए नव योरप अमेरिका।—अनामिका, पृ० २१।

अमेरिकी—वि० [हिं०] दे० 'अमेरिकन'।

अमेल—वि० [सं० अ+मेल] जिसका किसी से मेल न बैठता हो। जो किसी से मेल न खाय। अनमेल। असंबद्ध।

अमेली Ⓟ—वि० [हिं० अमेल] अनमिल। असंबद्ध। अंड बंड। उ०—खेलैं फाग अति अनुराग सों उमंग तें, वे गावैं मन भावैं, तहाँ वचन अमेली के (शब्द०)।

अमेव Ⓟ—वि० [हिं०] दे० 'अमेय'।

अमेह—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का रोग जिसमें पेशाब नहीं उतरती या रुक रुककर उतरती है।

अमैंड़ Ⓟ—वि० दे० 'अमैंड़ा'।

अमैंड़ा Ⓟ—वि० [हिं० अ+मेंड़=सीमा] मर्यादा या सीमा न माननेवाला। उ०—कोऊ न देखैं न काहू दिखावत आपनो आनन जान अमैंड़े।—घनानद, पृ० ४६।

अमैठना Ⓟ—क्रि० सं० [हिं०] दे० 'अमेठना'।

अमोक्ष[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. मोक्ष न मिलना। २. बंधन [को०]।

अमोक्ष[2]—वि० १. जिसका मोक्ष न हुआ हो। अमुक्त। २. जिसका मोक्ष न हो सके। ३. बँधा हुआ [को०]।

अमोगा†—वि० [सं० अमोघ] अत्यधिक। बहुत (बोल०)।

अमोघ[1]—वि० [सं०] १. निष्फल न होनेवाला। वृथा या अन्यथा न होनेवाला। अव्यर्थ। अचूक। लक्ष्य पर पहुँचनेवाला। खाली न जानेवाला। २. अनिंद्य। अद्वितीय। उ०—सब सामंत समंध चढ़ि। विच सुंदरी अमोघ।—पृ० रा०, २५।७८०।

अमोघ[2]—संज्ञा पुं० १. व्यर्थ न होने का भाव। अव्यर्थ। २. शिव। ३. विष्णु [को०]।

अमोघकिरण—संज्ञा स्त्री० [सं०] सूर्योदय और सूर्यास्त के समय की किरण [को०]।

अमोघदंड—संज्ञा पुं० [सं० अमोघदण्ड] वह जो दंड देने में न चूके। शिव [को०]।

अमोदर्शी—वि० [सं० अमोघदर्शिन्] अचूक दृष्टिवाला [को०]।

अमोघदृष्टि—वि० [सं०] दे० 'अमोघदर्शी'।

अमोघवाक्—वि० [सं०] जिसकी वाणी कभी व्यर्थ न होती हो [को०]।

अमोघविक्रम[1]—वि० [सं०] जिसका पराक्रम कभी विफल न होता हो [को०]।

अमोघविक्रम[2]—संज्ञा पुं० शिव [को०]

अमोघा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कश्यप की एक स्त्री जिनसे पक्षी उत्पन्न हुए थे। २. हड़। ३. वायविडंग। ४. पाढ़र का पेड़ और फूल। ५. शिव की पत्नी [को०]। ६. एक शस्त्र। शक्ति [को०]।

अमोचन[1]—संज्ञा पुं० [सं०] छुटकारा न होना। न छूटना।

अमोचन[2] Ⓟ—वि० न छूटनेवाला। दृढ़। उ०—मूँदि रहे पिय प्यारी लोचन। अति हित बेनी उर परसाए वेष्टित भुजा अमोचन।—सूर०—(शब्द०)।

अमोचनीय—वि० [सं०] न छूटने योग्य [को०]।

अमोद[1]—वि० [सं०] मोद रहित। आनंदशून्य [को०]।

अमोद[2] Ⓟ—संज्ञा पुं० [सं० अमोद] सुगंध। आमोद। उ०—जैसे कमल अमोदहिं पाइ। ठाँ ठाँ उठत मधुप अकुलाइ।—नंद० ग्रं०, पृ० २५९।

अमोनिया—संज्ञा पुं० [अं० एमोनिया] नौसादर।

अमोर[1] Ⓟ—वि० [हिं०] न मुड़नेवाला। अडिग। स्थिर। उ०—रजं पुत्त पंचास भुभभे अमोरं। बजै जीत के नद्द नीसानं घोरं।—पृ० रा०, २०।६६।

अमोर[2]—वि० [हिं०] दे० 'अमोल'। उ०—रत्यनीक तासों कहैं, भूषन बुद्धि अमोर।—भूषण ग्रं०, पृ० २५८।

अमोरी Ⓟ—संज्ञा स्त्री० [हिं० अम+औरी (प्रत्य०)] १. आम का बहुत छोटा कच्चा फल। अँबिया। २. आमड़ा। अम्मारी। उ०—फल को नाम बुझावन लागे हरि कहि दियो अमोरि।—सूर (शब्द०)।

अमोल Ⓟ—वि० [सं० अमूल्य] [वि० स्त्री० अमोली] १. अमूल्य। अत्यधिक मूल्य का। मूल्यवान्। उ०—रस सिंगार पार के पाओल अमोल मनोभव सिआ।—विद्यापति, पृ० ३५। २. जिसका मूल्य न लगाया जा सके। तुव नाम अमोल समरथ करहु दाया निर्धनं।—कबीर सा०, पृ० ५२२।

अमोलक Ⓟ—वि० [हिं० अमोल+क (प्रत्य०)] दे० 'अमूल्य'। उ०—छाँड़ि कनक मनि रतन अमोलक काँच की किरच गही।—सूर० (शब्द०)।

अमोला--संज्ञा पुं० [सं० आम्र] आम का नया निकलता हुआ पौधा।

अमोलिक(पु)--वि० [हिं०] दे० 'अमूल्य'। उ०--पाटंबर पहिराय कै अधिक अमोलिक। नंदराय देत फूले नंददास बोलिकैं।--नंद० ग्रं० पृ० ३३६।

अमोही(पु)--वि० [सं० अमोह + ई (प्रत्य०)] १. विरक्त। २. निर्मोही। निष्ठुर। उ०--मीत सुजान अनीति करौ जिन हा हा न हूजिऐ मोहि अमोही।--घनानंद०, पृ०।

अमौआ[1]--संज्ञा पुं० [सं० आम्र + औआ (प्रत्य०)] १. आम के फल का रंग। यह कई प्रकार का होता है, जैसे, पीला, सुनहरा, माशी, किशमिशी, तूँतिया इत्यादि। २. अमौआ रंग का कपड़ा।

अमौआ[2]--वि० आम के रस के रंग का।

अमौन--संज्ञा पुं० [सं०] १. मौन का अभाव। बोलना। २. आत्मज्ञान। ३. मुनि के कर्तव्यों का अपालन। मुनि न होना [को०]।

अमौलिक--वि० [सं०] १. बिना जड़ का। निर्मूल। २. बे सिर पैर का। बिना आधार का। जिसका संबंध मूल से न हो। ३. अयथार्थ। मिथ्या। ४. अन्य रचना के आधार पर या अनुवाद के रूप में रचित [को०]।

अम्म--संज्ञा पुं० [अ०] चाचा। उ०--कहे ऐ अम्मे बुजुर्गवार व मेरे दुनिया होर दीन के आधार मेरे।--दक्खिनी, पृ० २३७।

अम्मय--वि० [सं०] जलमय। जलयुक्त या जलनिर्मित [को०]।

अम्मर(पु)--वि [हिं०] दे० 'अमर'। उ०--भला है अस्थान अम्मर जोति है परगास।--जग० बानी, भा० १, पृ० ४।

अम्मरसरा--संज्ञा पुं० [हिं० अमरसर + आ (प्रत्य०)] अमृतसर का कबूतर। एक कबूतर जिसका सारा शरीर सफेद और कंठ काला होता है।

अम्मल--संज्ञा पुं० [अ०] दे० 'अमल'। उ०--बाजीगिरी रंग दिखावे ऐसा अम्मल मुझे नहिं भावे।--दक्खिनी०, पृ० १२५।

अम्माँ--संज्ञा स्त्री० [सं० अम्बा] माता। माँ।

अम्मामा--संज्ञा पुं० [अ० अम्मामह] एक प्रकार का साफा जिसे मुसलमान बाँधते हैं।

यौ०--अम्मामेबाज--(१) साफ बाँध हुए। (२) साफा बाँधनेवाला।

अम्मारी--संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अंबारी'।

अम्याँ--अव्य० [हिं०] दे० 'अमाँ'। जैसे; अम्याँ क्या कहते हो।

अम्र[1]--संज्ञा पुं० [सं०] आम्र [को०]।

अम्र[2]--संज्ञा पुं० [अ०] १ बात। विषय। कार्य। मुआमिला। उ०--अम्र खुदा का लिया बजा तूँ नहीं ते मुनकिर होना।--दक्खिनी पृ० ५५। २. हुक्म। आदेश।

अम्रत(पु)†--पुं० [हिं०] दे० 'अमृत'। उ०--चउरास्या सहू वर्णव्या। अम्रत रसायण नरतति व्यास--बी० रासो, पृ० १००

अम्रात--संज्ञा पुं० [सं०] १. अमड़ा का पेड़। २. अमड़ा फल [को०]।

अम्रातक--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अम्रात'।

अम्रत्या(पु)--संज्ञा पुं० [सं० ब० व० अमर्त्याः] देवता। (अनेकार्थ०)।

अम्रित(पु)--संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अमृत'। उ०--सत्त नाम रस अम्रित पीवहु, चरन तें लौ लाइ।--जग० बानी, भा० १, पृ० २५।

अम्रियमाण--वि० [सं०] जो मरणशील न हो। अमर। उ०--मैं गाता था गाने भूले अम्रियमाण।--अनामिका, पृ० ४५।

अम्ल[1]--संज्ञा पुं० [सं०] १. जिह्वा से अनुभूत होनेवाला छः रसों में से एक। खटाई। २. तेजाब। ३. सिरका [को०]। ४. मट्ठा जिसमें एक चतुर्थांश जल हो [को०]। ५ वमन [को०]।

अम्ल[2]--वि० खट्टा। तुर्श।

यौ०--अम्लपंचक--पाँच प्रकार के प्रमुख खट्टे फल--जंबीरी नीबू, खट्टा अनार, इमली, नारंगी और अमलबेत।

अम्लक--संज्ञा पुं० [सं०] लकुच वृक्ष। बड़हार।

अम्लकांड--संज्ञा पुं० [सं० अम्लकाण्ड] एक पौधा। लवणतृण [को०]।

अम्लकेशर--संज्ञा पुं० [सं०] बिजौरा नीबू [को०]।

अम्लगोरस--संज्ञा पुं० [सं०] खट्टा दूध [को०]।

अम्लजन--संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आक्सिजन'।

अम्लतरु--संज्ञा पुं० [सं०] इमली का वृक्ष [को०]।

अम्लता--संज्ञा स्त्री० [सं०] खट्टापन। खटाई।

अम्लनिशा--संज्ञा पुं० [सं०] शठी नाम का पौधा [को०]।

अम्लपत्र--संज्ञा पुं० [सं०] अश्मंतक नाम का पौधा [को०]।

अम्लपत्री--संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पलाशी लता। २. क्षुद्राम्लिका [को०]।

अम्लपनस--संज्ञा पुं० [सं०] बड़हार [को०]।

अम्लपाद--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अम्लतरु।'

अम्लपित्त--संज्ञा पुं० [सं०] रोगविशेष जिसमें जो कुछ भोजन किया जाता है सब पित्त के दोष से खट्टा हो जाता है।

विशेष--यह रोग रूखी, खटी, कड़वी और गर्म वस्तुओं के खाने से उत्पन्न होता है। इसके लक्षण ये हैं--रंगबिरंग का मल उतरना, दाह, वमन, मूर्च्छा, हृदय में पीड़ा, ज्वर, भोजन में अरुचि, खट्टे डकार आना इत्यादि।

अम्लफल--संज्ञा पुं० [सं०] इमली [को०]।

अम्लबीजक--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अम्लफल'।

अम्लभेदन--संज्ञा पुं० [सं०] अम्लवेत [को०]।

अम्लमेह--संज्ञा पुं० [सं०] मूत्रविषयक रोग। एक प्रकार का प्रमेह [को०]।

अम्लरुहा--संज्ञा पुं० [सं०] मालवा में पाया जानेवाला एक प्रकार का पान [को०]।

अम्ललोणिका--संज्ञा पुं० [सं०] अमलोनी। नोनियाँ साग।

अम्ललोणी--संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अम्लोणिका' [को०]।

अम्ललोलिका--संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अमलोनी' [को०]।

अम्लवर्ग--संज्ञा पुं० [सं०] खट्टे फलों या पत्तों का वर्ग जिसमें नीबू, नारंगी अनार, इमली आदि आते हैं [को०]।

अम्लवल्ली--संज्ञा स्त्री० [सं०] एक कंद। त्रिपर्णिका [को०]।

अम्लवाकट--संज्ञा पुं० [सं०] आमड़ा फल और वृक्ष [को०]।

अम्लवाटिका--संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का पान [को०]।

अम्लवास्तूक--संज्ञा पुं० [सं०] चूक्रक [को०]।

अम्लवृक्ष--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अम्लतरु' [को०]।

अम्लवेत--संज्ञा पुं० [सं० अम्लवेतस] दे० 'अमलबेत'।

अम्लसार----संज्ञा पुं० [सं०] १. काँजी। २. चूक। ३. अमलबेत। ४. हिताल। ५. अमलसार गंधक। ६. नीबू का फल और वृक्ष [को०]।

अम्लहरिद्रा----संज्ञा स्त्री० [सं०] आँबहलदी। कपूर कचरी।

अम्लांकुश----संज्ञा पुं० [सं० **अम्लाकुड्श**] एक खट्टा साग [को०]।

अम्लाध्युषित (रोग)----संज्ञा पुं० [सं०] आँख का रोग जो अधिक खटाई खाने से होता है।

विशेष—इस रोग में आँखें लाल हो जाती हैं कभी कभी पक भी जाती हैं, उनमें पीड़ा होती है, और पानी बहा करता है।

अम्लान१—वि० [सं०] १. जो उदास न हो। मलिन न हो। बिना मुरझाया हुआ। २. जो प्रफुल्लित हो। हृष्ट। प्रसन्न। ३. निर्मल। स्वच्छ। साफ।

अम्लान२—संज्ञा पुं०[सं०] १.बाणपुष्प नामक वृक्ष। २.दुपहरिया। कटसरैया।

अम्लानि१—वि० [सं०] जो मुरझाए नहीं [को०]।

अम्लानि२—संज्ञा स्त्री० १. शक्ति। २. ताजगी। नवता [को०]।

अम्लानी—वि० [सं० **अम्लानिन्**] साफ। स्वच्छ [को०]।

अम्लिका—संज्ञा स्त्री०[सं०] १. इमली। २. खट्टी डकार। ३.पलाश आदि पौधे [को०]।

अम्लिकावटक—संज्ञा पुं० [सं०] खटाई से युक्त एक प्रकार का बड़ा [को०]।

अम्लिमा—संज्ञा स्त्री० [सं०] खट्टापन [को०]।

अम्लीकरण—संज्ञा पुं० [सं०] वह क्रिया जिससे कोई वस्तु खट्टी की जाय।

अम्लीका—संज्ञा स्त्री० [सं०] अम्लिका। इमली [को०]।

अम्लीय----वि० [सं०] अम्ल विषयक। अम्ल से संबंधित [को०]।

अम्लोटक—संज्ञा पुं० [सं०] अश्मंतक पौधा [को०]।

अम्लोद्गार—संज्ञा पुं० [सं०] खट्टी डकार।

अम्ह(पु)—सर्व० [सं० **अस्मद्; प्रा० अम्ह**] दे० 'हम'। उ०—अम्हाँमन अचरिज भएउ, सखियाँ आखड़ एम।—ढोला० दू०, ६।

अम्हौरी—संज्ञा स्त्री० [सं० **अंभ—जल + हिं० और (प्रत्य०) अथवा सं० ऊष्मा, प्रा० उम्हा, उम्ह, प्रा०*अम्ह + औरी प्रत्य०**] बहुत छोटी छोटी फुंसियाँ जो गरमी के दिनों में पसीने के कारण लोगों के शरीर में निकल आती हैं। अंधौरी।

अयं—सर्व० [सं० **अयम्**] यह। उ०—दुइ दंड भरि ब्रह्मांड भीतर काम कृत कौतुक अयं।—मानस। १।८५।

अयंत्र१—संज्ञा पुं० [सं० **अयन्त्र**] १. वह जो वश या नियंत्रण में न हो। १. यंत्र का अभाव। ३.अनियंत्रण। नियंत्रण का अभाव [को०]।

अयंत्र२—वि० अनियंत्रित। अवशीकृत [को०]।

अयंत्रित—वि० [सं० **अयन्त्रित**] १. जो यंत्रित या वशीकृत न हो। स्वेच्छाचारी।

अयः—संज्ञा पुं० [सं०] अयस् (लोहा) का समासगत रूप।

अयःपान—संज्ञा पुं० [सं०] भागवत के अनुसार एक नरक का नाम।

अयःपिंड—संज्ञा पुं० [सं० **अयःपिण्ड**] लोहे का गोला। लौहपिंड

अयःशंकु----संज्ञा पुं० [सं० **अयःशङ्कु**] १. नेजा। भला। २. लोहे की कील। खूँटी [को०]।

अयःशय----वि० [सं०] लोहे में रहनेवाला (अग्नि) [को०]।

अयःशूल----संज्ञा पुं० [सं०] १. एक अस्त्र। तीव्र उपपात। तीक्ष्ण उपाय।

अयःशोभी-----वि० [**अयःशोभिन्**] सौभाग्य से दीप्त [को०]।

अय१----संज्ञा पुं० [सं०] १. गमन। जाना। गति। २. अच्छा भाग्य। शुभविवाह विधि। अभ्युदय। ३. पासा। अक्ष। ४. शुभ कार्य। मंगल कृत्य [को०]।

यौ०----**अयवान् अयान्वित** = भाग्यवान्।

अय२----संज्ञा पुं० [सं० **अयस्**] १. लोहा। उ०----सुभग सकल सुठि चंचल करनी। अय इव जरत धरत पग धरनी।—मानस, १।२९८। २.इस्पात। शुद्ध लोहा [को०]। ३.अस्त्र शस्त्र। हथियार। ४. अग्नि। ५. कोई धातु [को०]। ६ स्वर्ण [को०]।

अय३----अव्य [सं० **अयि**] संबोधन का शब्द। हे।

विशेष----यह अधिकतर 'ऐ' लिखा जाता है।

अयक्ष्म—वि० [सं० **अयक्ष्मन्**] १. नीरोग। रोगरहित। २. निरुपद्रव। बाधाशून्य।

अयजनीय----वि० [सं०] जो यज्ञ में पूजा या आदर के अयोग्य हो। अपूज्य। २. निंदित।

अयज्ञ—वि० [वि०] १. यज्ञ न करनेवाला। २. यज्ञ न हो [को०]

अयज्ञक----वि० [सं०] जो यज्ञ के लिये अनुपयुक्त हो [को०]।

अयज्ञिय----वि०[सं०] १. जो यज्ञ के काम में न लाया जाता हो। २. जो यज्ञ में न दिया जाता हो। ३ अपवित्र। अशुद्ध। ४. यज्ञ करने के अयोग्य। जो शास्त्र के अनुसार यज्ञ करने का अधिकारी न हो।

अयज्ञीय----वि० [सं०] दे० 'अयज्ञिय' [को०]।

अयत—वि०[सं०] उच्छृंखल। स्वेच्छाचारी। जो संयत न हो [को०]।

अयति----वि० [सं०] उद्योगहीन। यत्न न करनेवाला [को०]।

अयती—वि० [सं० **अ + यतिन्**] जो यती या जितेंद्रिय न हो। इंद्रियों के वश में रहनेवाला [को०]।

अयतेंद्रिय—वि०[सं० **अयतेन्द्रिय**]१. जो इंद्रियों का संयम न कर सके। इंद्रियनिग्रह न करनेवाला। २.ब्रह्मचर्यभ्रष्ट। ३.चंचलेंद्रिय। इंद्रिय लोलुप।

अयत्न१—संज्ञा पुं० [सं०] यत्न का अभाव। उद्योगशून्यता।

अयत्न२—वि० यत्नशून्य। उद्योगहीन।

यौ०—**अयत्नसिद्ध** = अयत्नसाध्य। जो बिना प्रयास हो जाय।

अयत्नकृत्—वि० [सं०] बिना प्रयास के होनेवाला। सरलता से पूर्ण होनेवाला [को०]।

अयत्नज—वि० [सं०] स्वतः हो जानेवाला। आसानी से होनेवाला [को०]।

अयत्नलभ्य—वि० [सं०] बिना प्रयास के प्राप्त होने योग्य [को०]।

अयथा१—वि० [सं०] १.मिथ्याभूत। झूठ। अतथ्य। २.अयोग्य।

अयथा२—अव्य० गलत ढंग से। अनुचित रूप से [को०]।

अयथा३—संज्ञा पुं० १. किसी काम को विधि के अनुसार न करना। विधिविरुद्ध कर्म। अनुचित काम।

अयथातथ[1]—वि० [सं०] अयथार्थ। विरुद्ध। विपरीत। यथायोग्य नहीं।

अयथातथ[2]—संज्ञा पुं० विपरीत या अयोग्य कार्य [को०]।

अयथातथ्य—संज्ञा पुं० [सं०] अयोग्यता। अनुपयुक्तता। व्यर्थता अयथार्थता [को०]।

अयथाद्योतन—संज्ञा पुं० [सं०] अप्रत्याशित घटना घटित होना [को०]।

अयथापूर्व—वि० [सं०] जो पूर्ववत् न हो। जो पहले जैसा न हो।

अयथामुखीन—वि० [सं०] जिसका व्यवहार पहले जैसा न हो। जिसने मुँह फेर लिया हो [को०]।

अयथावृत्त—वि० [सं०] अनुचित या गलत ढंग से काम करनेवाला।

अयथास्थित—वि० [सं०] जो बेढंगेपन से रखा गया। अव्यवस्थित [को०]।

अयथार्थ—वि० [सं०] १. जो यथार्थ न हो। मिथ्या। असत्य। २. जो ठीक न हो। अनुचित। अनुपयुक्त।

यौ०—अयथार्थज्ञान = मिथ्या ज्ञान। झूठा ज्ञान। भ्रम।

अयथावत्—वि० [सं०] अनुचित ढंग या गलत तरीके से [को०]।

अयथेष्ट—वि० [सं०] १. जो यथेष्ट या संतोषजनक न हो। २. इच्छा के विपरीत हो [को०]।

अयथोचित—वि० [सं०] १. जो समुचित या मुनासिब न हो। २. अयोग्य [को०]।

अयन—संज्ञा पुं० [सं०] १. गति। चाल। २. सूर्य या चंद्रमा की दक्षिण से उत्तर या उत्तर से दक्षिण की गति या प्रवृत्ति जिसको उत्तरायण और दक्षिणायन कहते हैं। बारह राशिचक्र का आधा।

विशेष—मकर से मिथुन तक छह राशियों को उत्तरायण कहते हैं। क्योंकि इनमें स्थित सूर्य या चंद्र पूर्व से पश्चिम को जाते हुए भी क्रम से कुछ कुछ उत्तर को झुकते जाते हैं। ऐसे ही कर्क से धनु की संक्रांति तक जब सूर्य या चंद्र की गति दक्षिण की ओर झुकी हुई दिखाई देती है तब दक्षिणायन होता है। ३. राशिचक्र की गति।

विशेष—ज्योतिषशास्त्र के अनुसार यह राशिचक्र प्रतिवर्ष ५४ विकला, प्रतिमास ४ विकला, ३८ अनुकला और प्रतिदिन ९. अनुकला खिसकता है। ६३ वर्ष ८ महीने में राशिचक्र विषुवत् रेखा पर पूरा एक फेरा लगाता है। यह दो भागों में विभक्त है—प्रागयन और पश्चादयन।

४. ग्रह तारादि की गति का ज्ञान जिस शास्त्र में हो। ज्योतिष शास्त्र। ५. सेना की गति। एक प्रकार का सेनानिवेश (कवायद) जिसके अनुसार व्यूह में प्रवेश करते हैं। ६. मार्ग। राह। ७. आश्रम। ८. स्थान। ९. घर। १०. काल। समय। ११. अंश। १२. एक प्रकार का यज्ञ जो अयन के प्रारंभ में होता था। १३. गाय या भैंस के थन के ऊपर का वह भाग जिसमें दूध भरा रहता है। उ०—अंतर अयन अयन भल, थन फल, बच्छ वेद बिस्वासी।—तुलसी ग्रं०, पृ० ४६४।

अयनकाल—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह काल जो एक अयन में लगे। २. छह महीने का काल।

अयनभाग—संज्ञा पुं० [सं०] अयन अंश वा हिस्सा।

अयनवृत्त—संज्ञा पुं० [सं०] १. सूर्य के गमन से बननेवाला वृत्त। २. ग्रहण की रेखा [को०]।

अयनसंक्रम—संज्ञा स्त्री० [सं० अयनसङ्क्रम] १. मकर और कर्क की संक्रांति। अयन संक्रांति। २. प्रत्येक संक्रांति से २० दिन पहले का काल।

अयनसंक्रांति—संज्ञा स्त्री० [सं० अयनसङ्क्रान्ति] मकर और कर्क की संक्रांति। अयनसंक्रम।

अयनसंपात—संज्ञा पुं० [सं० अयनसम्पात] अयनांशों का योग।

अयनसमांत—संज्ञा पुं० [सं० अयनसमान्त] १. रात और दिन दोनों का बराबर होना। विषुवत् रेखा पर उन दो बिंदुओं में से एक, जिनपर से होकर सूर्य का क्रांतिवृत्त (सूर्य का मार्ग) विषुवत् रेखा को वर्ष में दो बार (छह छह महीने पर) काटता है। जब किसी एक बिंदु पर सूर्य आता है, तब रात और दिन दोनों बराबर होते हैं। इसी को अयनसमांत कहते हैं। २. उक्त दोनों बिंदु।

अयनांत—संज्ञा पुं० [पुं० अयनान्त] अयन की समाप्ति। वह संधिकाल जहाँ एक अयन समाप्त हो और दूसरा अयन आरंभ।

अयनांश—संज्ञा पुं० [सं०] १. सूर्य की गतिविशेष के काल का भाग। २. विषुवत् रेखा पर के वे दो बिंदु जिनपर से होकर सूर्य का क्रांतिवृत्त (गमन का मार्ग) वर्ष में दो बार (छह छह महीने पर) काटता है और जिनपर सूर्य के आने पर रात और दिन दोनों बराबर होते हैं।

अयमदिन—संज्ञा पुं० [सं०] ६० घड़ी का वह एक ही रात दिन जिसमें दो तिथियों का अवसान हो जाय।

विशेष—कहा गया है कि ऐसे दिन में स्नान और दानादि के अतिरिक्त और कोई शुभ कर्म नहीं करना चाहिए।

अयमित—वि० [सं०] १. जिसे नियंत्रित न किया जाय। २. जो काट छाँटकर दुरुस्त न किया गया हो। असज्जित [को०]।

अयम्—सर्व० [सं०] यह।

अयव[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. पुरीष का एक कीड़ा जो यव से छोटा होता है। कद्दूदाना। २. पितृकर्म, क्योंकि इस कर्म में यव नहीं काम आता। ३. शत्रु। ४. कृष्ण पक्ष।

अयव[2]—वि० १. जिसमें यव का प्रयोग न हो। २. अभावयुक्त। अपूर्ण [को०]।

अयश—संज्ञा पुं० [सं० अयशस्] १. अपयश। अपकीर्ति। २. निंदा।

अयशस्कर—वि० [सं०] अपयश का कारण। जिसके करने से बदनामी हो।

अयशस्य—वि० [सं०] जिनसे बदनामी हो। बदनाम करानेवाला।

अयशस्वी—वि० [सं० अयशस्विन्] १. जिसे यश न मिले। अकीर्तिमान्। बदनाम।

अयशी—वि० [सं० अयशस्वी; हिं० अयशी, अजसी] बदनाम।

अयश्चूर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] लोहे का चूरा [को०]।

अयस—संज्ञा पुं० [सं० अयस्] लोहा।

विशेष—समासांत में प्रयुक्त, जैसे कृष्णायस, कालायस आदि।

अयस्कंस—संज्ञा पुं० [सं] लोहे का प्यालानुमा पात्र [को०]।

अयस्कांड—संज्ञा पुं० [सं० अयस्काण्ड] १. लोहे का तीर। २. लोहे की अधिकता। ३. उत्तम लोहा [को०]।

अग्रयस्कांत—संज्ञा पुं० [सं० अयस्कान्त] चुंबक।

अयस्कांतमणि—संज्ञा पुं० [सं० अयस्कान्त मणि] चुंबक [को०]।

अयस्कार—संज्ञा पुं० [सं०] १. लोहार। २. जाँघ का ऊपरी भाग (को०)।

अयस्कीट—संज्ञा पुं० [सं०] मोरचा। जंग (को०)।

अयस्कुंभ—संज्ञा पुं० [सं० अयस्कुम्भ] [स्त्री० अयस्कुंभी] लोहे का गगरा [को०]।

अयस्कुशा—संज्ञा स्त्री० [सं०] लोहे की बनी रस्सी। लोहे के मेल से बनी रस्सी [को०]।

अयस्ताप—वि० [सं०] लोहे को तपानेवाला [को०]।

अयस्थूण¹—संज्ञा पुं० [सं०] एक वैदिक ऋषि [को०]।

अयस्थूण²—वि० [सं०] लोहे के स्तंभ से युक्त। जिसमें लोहे के खंभे लगे हों [को०]।

अयाँ—वि० [अ०] १. प्रकट। जाहिर। २. स्पष्ट।

अयाचक—वि० [सं०] १. नहीं माँगनेवाला। जो माँगे नहीं। २. संतुष्ट। पूर्णकाम।

अयाचित—वि० [सं०] बिना माँगा हुआ। उ०—सदा अयाचित देते हैं फल प्रेम से।—कानन०, पृ० १०५।

यौ०—**अयाचितोपस्थित**=बिना माँगे प्राप्त। **अयाचितवृत्ति, अयाचित व्रत**=बिना माँगे प्राप्त वस्तु से जीविकानिर्वाह करने का नियम।

अयाची—वि० [सं० अयाचिन्] १. अयाचक। न माँगनेवाला। २. अयाच्च। पूर्णकाम। संपन्न। ३. समृद्ध। धनी।

अयाच्य—वि० [सं०] १. जिसे माँगने की आवश्यकता न हो। पूर्णकाम। भरापुरा। उ०—कुछ को अयाच्य करने से देश की दशा सुधर नहीं सकती।—प्रेमघन०, पृ० २७९। २. संतुष्ट। तृप्त। ३. जो माँगे जाने योग्य न हो।

अयाज्य¹—वि० [सं०] १. जो यज्ञ कराने योग्य न हो। जिसको यज्ञ कराने का अधिकार न हो। २. पतित। ३. यज्ञ के अयोग्य [को०]।

अयाज्य²—संज्ञा पुं० [सं०] चांडाल। अंत्यज [को०]।

अयाज्ययाजक—संज्ञा पुं० [सं०] वह याजक जो ऐसे पुरुष को यज्ञ करावे जिसको यज्ञ कराना शास्त्रों में वर्जित है।

अयाज्ययाजन—संज्ञा पुं० [सं०] अनधिकारी व्यक्ति से यज्ञ कराना [को०]।

विशेष—यह उपपातकों में है। इसे अयाज्यसंयाज्य भी कहते हैं।

अयात—वि० [सं०] जो न गया हो [को०]।

अयातपूर्व—वि० [सं०] १. अनुगत। अनुयायी। २. उत्तराधिकारी। ३. स्थानापन्न [को०]।

अयातयाम—वि० [सं०] १. जिसको एक पहर न बीता हो। २. जो बासी न हो। ताजा। ३. विगतदोष। शुद्ध। ४. जो अतिक्रांत काल का न हो। ठीक समय का ५. जो व्यवहृत होने से नष्ट न हुआ हो [को०]।

अयाथार्थिक—वि० [सं० स्त्री० अयाथार्थिकी] १. जो सत्य न हो। गलत। झूठा। २. अवास्तविक। ३. अनुचित। अन्याय [को०]।

अयान¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. स्वभाव। निसर्ग। २. अचंचलता। स्थिरता।

अयान²—वि० [सं०] बिना सवारी का। पैदल।

अयान³(पु)—वि० [सं० अज्ञान, प्रा० अयाण] १. अज्ञ। मूर्ख। उ०—कहइ सो अधम अयान असाधू।—मानस, २।२०६। २. ज्ञानरहित। नादान। उ०—मुनि हैं कुसल गेह में तेरे। जे अयान अरु वृद्ध घनेरे।—हम्मीर०, पृ० १७।

अयानत—संज्ञा स्त्री० [अ० इआनत] सहायता। मदद।

अयानता(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० अयान + ता (प्रत्य०)] ज्ञानहीनता। अज्ञता। मूर्खता।

अयानप—संज्ञा पुं० [हिं० अयान + प (प्रत्य०)] १. अज्ञानता। अनजानापन। उ०—यहाँ को सयानप अयानप सहस सम, सूधौ सन भाय कहें मिटति मलीनता।—तुलसी ग्रं०, पृ० ५८९। २ भोलापन। सीधापन।

अयानपन(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० अयान + पन] १. अज्ञानता। २. भोलापन। सीधापन। उ०—तुव अयानपन लखि भटू नटू भए नँदलाल, जब सयानपन पेखिहैं तब धौं कहा हवाल।—पद्माकर ग्रं०, पृ० १२८।

अयानय(पु)—संज्ञा पुं० [सं०] १. अच्छी या बुरी तकदीर। सौभाग्य या दुर्भाग्य २. शतरंज की एक ऐसी जगह जिसे विरोधी खिलाड़ी के मुहरे नहीं अपना सकते [को०]।

अयाना—वि० पुं० [सं० अज्ञान, प्रा० अयाणय] [वि० स्त्री० अयानी] अजान। बुद्धिहीन। अज्ञानी। उ०—(क) जौ पै प्रभु प्रभाउ कछु जाना। तौ कि बराबरि करै अयाना।—मानस, १।२८९।

अयाम—संज्ञा पुं० [सं०] १. समयाभाव। समय की कमी। २. दिन का कोई भाग। ३. जो मार्ग या पथ न हो [को०]।

अयाल¹—संज्ञा पुं० [तु० याल फा० अयाल] घोड़े और सिंह आदि की गर्दन के बाल। केसर।

अयाल²—संज्ञा पुं० [अ० इयाल] लड़के बाले। बाल बच्चे।

अयालदार—संज्ञा पुं० [फा०] १. कंधे पर बालवाला पशु, जैसे घोड़ा, शेर। २. बालबच्चोंवाला गृहस्थ [को०]।

अयावक—वि० [सं०] स्वाभाविक या प्रकृतया लाल [को०]।

अयावन—संज्ञा पुं० [सं०] सम्मिलित न होने देना [को०]।

अयास—क्रि० वि० [सं० अ = नहीं + यास = यत्न] बिना प्रयास। बिना उद्योग के। सहज ही। उ०—वृक्षों से ही बढ़ो अयास।—युग०, पृ० ७३।

अयास्य¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. शत्रु। विरोधी। २. प्राणवायु। ३. अंगिरा ऋषि।

अयास्य²—वि० निश्चल। अटल।

अयि—अव्य [सं०] हे। अरे। अरी। यह संबोधन के लिये प्रयुक्त होता है।

अयुक—वि० [सं० अयुज्] अयुक्त [को०]।

अयुक्छद—संज्ञा पुं० [सं०] १. सप्तपर्ण वृक्ष। छतिवन। सतौना। २. वह वृक्ष या पौधा जिसकी अयुग्म पत्तियाँ हों, जैसे बेल, अरहर आदि।

अयुक्तनेत्र—संज्ञा पुं० [सं०] शिव [को०]।
अयुक्पलाश—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अयुक्छद'।
अयुक्शक्ति—संज्ञा पुं० [सं०] शिव।
अयुक्शर—संज्ञा पुं० [सं०] पंचशर। कामदेव [को०]।
अयुक्त—वि० [सं०] १. अयोग्य। अनुचित। बेठीक। २. अमिश्रित। असयुक्त। अलग। ३. आपद्ग्रस्त। ४. जो दूसरे विषय पर आसक्त हो। अनमना। ६. असंबद्ध। युक्तिशून्य। ७. अविवाहित (को०)।
यौ०—अयुक्तकृत् = बुरा या गलत काम करनेवाला। अयुक्तचार = जिसने दूतों या जासूसों की नियुक्ति न की हो।
अयुक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ युक्ति का अभाव। असंबद्धता। गड़बड़ी। २ अयुक्तता [को०]। योग न देना। अप्रवृत्ति ३. वंशी बजाने में उँगली से उसके छेद को बंद करने की क्रिया।
अयुग—वि० [सं०] १. विषम। ताक। २. अकेला। ३. जो शिष्ट या मिला न हो।
अयुगक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] शिव। त्रिनयन [को०]।
अयुगपद—अव्य० [सं०] एक साथ नहीं। क्रमशः [को०]।
अयुगल—वि० [सं०] दे० 'अयुग' [को०]।
अयुगिषु—संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव। अयुग्बाण [को०]।
अयुगू[1]—वि० [सं०] १. जिसका कोई मित्र या संगी न हो। २. वाह लड़की जिसकी कोई बहन न हो [को०]।
अयुगू[2]—संज्ञा स्त्री० वह स्त्री जिसे जीवन में एक ही संतान उत्पन्न होकर फिर कोई संतान न हो। काकवंध्या [को०]।
अयुग्बाण—संज्ञा पुं० [सं०] विषमबाण। कामदेव [को०]।
अयुग्म—वि० [सं०] १. विषम। ताक। २. अकेला। एकाकी।
यौ०—अयुग्मच्छद। अयुग्मनेत्र। अयुग्मवाह। अयुग्मशर।
अयुग्मच्छद—संज्ञा पुं० [सं०] १. सप्तपर्ण वृक्ष। छतिवन। सतवन। २. वह वृक्ष या पौधा जिसकी अयुग्म पत्तियाँ हों, जैसे बेल, अरहर इत्यादि।
अयुग्मनयन—संज्ञा पुं० [पुं०] दे० 'अयुग्मनेत्र' [को०]।
अयुग्मनेत्र—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० अयुग्मनेत्री] शिव। महादेव।
विशेष—शिव की शक्तियों को भी अयुग्मनेत्रा कहते हैं।
अयुग्मबाण—संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव।
अयुग्मवाद—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य।
अयुग्मशर—संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव। अयुग्मबाण [को०]।
अयुग्मसप्ति—संज्ञा पुं० [सं०] वह जिसके रथ में सात घोड़े जुते हों। सूर्य [को०]।
अयुज—वि० [सं०] १. जो जोड़ा न हो। ताक। २. अकेला। संगी-विहीन। ३. अश्लिष्ट [को०]।
अयुत[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. दस हजार संख्या का स्थान। २. उस स्थान की संख्या।
अयुत[2]—वि० १. असंबद्ध। युक्त न हो। २. अक्षुब्ध [को०]।
अयुतसिद्ध—वि० [सं०] जो पृथक् करने योग्य न हो। परंपरा से युक्त। अविच्छेद्य [को०]।

अयुध[1]—संज्ञा पुं० [सं०] वह व्यक्ति जो युद्ध न करता हो।
अयुध[2]—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आयुध'।
अयुध्य—वि० [सं०] जिससे युद्ध न किया जा सके। दुर्धर्ष [को०]।
अयुव—वि० [सं०] १. असंबद्ध। २. शांत [को०]।
अयुष—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'आयुष्'।
अये[1]—संज्ञा पुं० [अनु०] स्लोथ की जाति का एक जंतु। यह जंतु अये, अये शब्द करता है। इसीलिये इसको 'अये' कहते हैं।
अये[2]—अव्य [सं०] १. क्रोध, विषाद, भयादि द्योतक अव्यय। २. संबोधन।
अयोग[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. योग का अभाव। २. अप्रशस्त योगयुक्त काल। वह काल जिसमें फलित ज्योतिष के अनुसार दुष्ट ग्रह नक्षत्रादि का मेल हो। ३. कुसमय। कुकाल। ४. कठिनाई। संकट। ५. वह वाक्य जिसका अर्थ सुगमता से न लगे। कूट। ६. अप्राप्ति। ७. असंभव। ८. अलगाव [को०]। ९. अनुपयुक्तता [को०]। १०. तीव्र प्रयत्न। जोरदार कोशिश [को०]। ११. विधुर। १२ हथौड़ा [को०]। १३. किसी वस्तु को न चाहना। नापसंदगी [को०]।
अयोग[2]—वि० [सं०] १. अप्रशस्त। बुरा। २. असंबद्ध [को०]। ३. जोरदार कोशिश करनेवाला [को०]।
अयोग[3]—वि० [सं० अयोग्य] अयोग्य। अनुचित।
अयोगव—संज्ञा पुं० [सं०] वैश्य जाति की स्त्री और शूद्र पुरुष से उत्पन्न एक वर्णसंकर जाति।
अयोगवाह—संज्ञा पुं० [सं०] वह वर्ण जिनका पाठ अक्षरसमाम्नाय सूत्र में नहीं है।
विशेष—ये किसी किसी के मत से अनुस्वार, विसर्ग, ⁀क और ⁀प चार हैं, और किसी किसी के मत से अनुस्वार, विसर्ग ⁀क ⁀ख ⁀प और ⁀फ छह हैं। अनुस्वार विसर्ग के अतिरिक्त जिह्वामूलीय तथा उपध्मानीय भी अयोगवाह है।
अयोगी[1]—वि० [सं० अयोगिन्] योगशास्त्रानुसार जिसने योगांगों का अनुष्ठान न किया हो। योगांगों के अनुष्ठान में असमर्थ। जो योगी न हो।
अयोगी[2](पु)—वि० [सं० अयोग्य] अयोग्य।
अयोगुड—संज्ञा पुं० [सं०] १. लोहे की गोली। लोहे की बनी गेंद। लौह कंदुक। २. एक प्रकार का शस्त्र जिसमें लोहे के गेंद लगे रहते हैं [को०]।
अयोग्य—वि० [सं०] १. जो योग्य न हो। अनुपयुक्त २ अकुशल। नालायक। बेकाम। निकम्मा। अपात्र। ३. अनुचित। नामुनासिब। बेजा।
अयोघन—संज्ञा पुं० [सं०] लोहे का घन या हथौड़ा [को०]।
अयोच्छिष्ट—संज्ञा पुं० [सं०] मोरचा। जंग [को०]।
अयोजाल—संज्ञा पुं० [सं०] लोहे का बना हुआ जाल [को०]।
अयोद्धा—संज्ञा पुं० [सं०] १. निम्न कोटि का सैनिक। २. वह व्यक्ति जो योद्धा या सैनिक नहीं है [को०]।
अयोध्य—वि० [सं०] १. जिससे युद्ध न किया जा सके। अजेय। २. जो युद्ध के लिये असमर्थ हो [को०]।
अयोध्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सूर्यवंशी राजाओं की राजधानी।

विशेष--वाल्मीकीय रामायण के अनुसार इसे सरयू नदी के किनारे वैवस्त मनु ने बसाया था जो ४८ मील लंबा और १२ मील चौड़ा बड़ा नगर था। इसका एक नाम साकेत भी है। रामचंद्र जी का जन्म यहीं हुआ था। पुराणानुसार यह हिंदुओं की सप्तपुरियों में से है।

अयोध्याकांड—संज्ञा पुं० [सं० **अयोध्याकाण्ड**] रामायण का द्वितीय कांड।

अयोनि¹—वि०[सं०]१.जो उत्पन्न न हुआ हो। अजन्मा।२. नित्य। ३.अवैध रूप से पैदा [को०]। ४. अज्ञात कुलवाला [को०]।

अयोनि²—संज्ञा पुं० १. योनि से भिन्न। २.ब्रह्मा। ३. शिव। ४. मूसल या लोढ़ा [को०]।

अयोनिज¹--वि०[सं०]१.जो योनि से उत्पन्न न हो। जो प्रजनन की साधारण प्रक्रिया से उत्पन्न न हो। २. स्वयंभू। ३. अदेह।

अयोनिज²--संज्ञा पुं० १. विष्णु। २. ब्रह्मा। ३. शिव। ४. अगस्त्य या कुंभज ऋषि।

अयोनिजा--संज्ञा स्त्री० [सं०] सीता [को०]।

अयोनिसंभवा--संज्ञा स्त्री० [सं० **अयोनिसम्भवा**] दे० 'अयोनिजा' [को०]।

अयोमय--वि० [सं०] लोहे से रचित। लोहे का [को०]।

अयोमल--संज्ञा पुं० [सं०] मोरचा। जंग [को०]।

अयोमुख—वि० [सं०] जिसका मुख लोहे का हो।

अयोहृदय—वि० [सं०] लोहे जैसा कठोर हृदयवाला। संगदिल। निष्ठुर [को०]।

अयौक्तिक—वि० [सं०] युक्तिहीन। असंगत [को०]।

अयौगिक--वि० [सं०] [वि०स्त्री० **अयौगिकी**] १. रूढ़। जो (शब्द) व्याकरणविरुद्ध हो। २.जिसका योग या जोड़ से संबंध न हो [को०]।

अरंग--संज्ञा पुं० [सं० **अर्घ्य = पूजाद्रव्य अथवा** सं० **आघ्राण**, तुल० **'अरघान'**] सुगंध। महक। उ०--रूप के तरगन के अंगन ते सोंधे के अरंग लै लै तरल तरंग उठै पौन की।--देव (शब्द०)

अरंगम—संज्ञा पुं०[सं० **अरङ्गम**]१.समीप आगमन या दिखाई पड़ना। २. सहायतार्थ उपस्थित होना [को०]।

अरंगर--वि०[सं०] १. तुरंत स्तुति करनेवाला। २. जहर का बना हुआ [को०]।

अरंगी—वि० [सं० **अरङ्गिन्**] रागरहित। रागविहीन [को०]।

अरंड⑤--संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'एरंड, रेंड'।

अरंधन—संज्ञा पुं० [सं० **अरन्धन**] एक प्रकार का व्रत जो सिंहसंक्रांति और कन्यासंक्रांति के दिन पड़ता है। इस दिन 'आचारमार्तंड' के अनुसार भोजन नहीं पकाया जाता।

अरंब्यंद⑤—संज्ञा पुं० दे० अरविंद'। उ०--रवी पंग दरसं अरंब्यंद मानं।--पृ० रा० ६१।६३६।

अरंभ⑤—संज्ञा पुं० दे० 'आरंभ'। उ०--कथा अरंभ करइ सोइ चाहा। तेही समय गएउ खगनाहा।—मानस, ७।६३।

अरंभना¹⑤--क्रि० स० [सं० **आ + रम्भ = शब्द करना**] बोलना। नाद करना। उ०--रोवत पंखि बिमोहे जस कोकिला अरंभ। जाकरि कनक लता सो बिछुरा पीतम खंभ।--जायसी ग्रं०, पृ० १३८।

अरंभना²⑤--क्रि० स० [सं० **आरम्भण**] आरंभ करना। शुरू करना उ०--सकुचहिं बसन विभूषन परसत जो बपु। तेहि सरीर हर हेतु अरंभेउ बड़ तपु।--तुलसी (शब्द०)।

अरंभना⑤—क्रि० अ० आरंभ होना। शुरू होना। उ०—अनरथु अवध अरंभेउ जब ते। कुसगुन होंहि भरत कहुँ तब तें।--मानस २।१५७।

अर¹—संज्ञा पुं० [सं०]१. पहिए की नाभि और नेमि के बीच की आड़ी लकड़ी। आरागज। २. आरी। ३.कोण। कोना। ४.सेवार। ५. पित्तपापड़ा। पर्पट [को०]।

अर²--वि० १.शीघ्र। जल्दी। २.छोटा [को०]।

अर³⑤--संज्ञा पुं० [हिं० **अड़**] १.हठ। अड़। जिद। उ०-(क)परि पाकरि बिनती धनी नीमरजा ही कीन। अब न नारि अर करि सकै जदुवर परम प्रबीन।—बिहारी (शब्द०)।

अरइल¹⑤—वि वि० [हिं० **अरना, अड़ना**] जो चलते चलते रुक जाय और आगे न बढ़े। अड़ियल।

अरइल²⑤—संज्ञा पुं० [देश०] १.एक वृक्ष का नाम। २. प्रयाग में वह स्थान जहाँ गंगा में यमुना मिलती है। अरैल। उ०—की कालिंदी बिरह सताई। चलि पयाग अरइल बिच आई। --जायसी ग्रं०, पृ० ४६।

अरई¹--संज्ञा स्त्री० [सं० **ऋ = जाना**] बैल हाँकने की छड़ी या पैने के सिरे पर की लोहे की नुकीली कील जिससे बैल को गोदकर हाँकते हैं। प्रतोद।

मुहा०--अरई लगाना = ताकीद करना। प्रेरणा करना।

अरई²--संज्ञा स्त्री० दे० 'अरवी'।

अरक¹—संज्ञा पुं० [सं०] १.सेवार। २. पहिए का आरा। आरागज [को०]। ३. पित्तपापड़ा [को०]।

अरक²--संज्ञा पुं० [**अरक**] १.किसी पदार्थ का रस जो भभके से खींचने से निकले। आसव। अर्क।

क्रि० प्र०--**उतरना। खींचना। निकालना।**

२. रस।

क्रि० प्र०--**निचोड़ना।**

३. पसीना।

क्रि० प्र०--**आना**—निकलना।

मुहा०--**अरक अरक होना** = पसीने में भींग जाना।

अरक³⑤—संज्ञा पुं० [सं० **अर्क**] १.मदार। आक। उ०—छबि छपि अरकन में खपि खरकन में भपि भरकन में जाइ छपैं।—रत्नाकर ग्रं०, पृ० २८९। २. सूर्य।

अरकगीर—संज्ञा पुं० [फा०] नमदे का बना हुआ वह टुकड़ा जिसको घोड़े की पीठ पर रखकर जीन या चारजामा खींचते हैं।

अरकटी—संज्ञा पुं० [हिं० **आड़ + काटना**] वह माँझी जो नाव की पतवार पर रहता और उसे घुमाता है।

अरकना¹⑤--क्रि० अ० [**अनु०**] अरराकर गिरना। टकराना। उ०—कढ़ैं दंत बिनु अंत लुथ्थि पर लुथ्थि अरक्किय।—सूदन (शब्द०)।

अरकना[२]—क्रि० अ० [हिं० दरकना] फटना । दरकना ।
यौ०—अरकना दरकना ।

अरकनाना—संज्ञा पुं० [अ०] एक अरक जो पुदीना और सिरका मिलाकर खींचने से निकाला जाता है ।

अरकना बकरना(पु)—क्रि० अ० [अनु०] इधर उधर करना। ऐंचातानी करना। उ०—अर कै डरि कै अरकैबरकै फरकै न रुकै भजिबोई चहै ।—केशव (शब्द०) ।

अरक बादियान(पु)—संज्ञा पुं० [अ०] सौंफ का अरक।

अरकला(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अर्गला=अगरी या बड़ा] रोक। मर्यादा । उ०—भाँट अहै ईश्वर की कला । राजा सब राखहिं अरकला ।—जायसी (शब्द०) ।

अरकसी†—संज्ञा स्त्री० [सं० आलस्य] । सुस्ती । प्रमाद ।

अरकाट—संज्ञा पुं० दक्षिण भारत का एक स्थान ।

अरकाटी—संज्ञा पुं० [हिं० अरकाट] वह व्यक्ति जो कुलियों आदि को चाय के बगीचों में या मारिशस, गिआना आदि टापुओं में काम करने के लिये भरती करके भेजता हो ।

अरकान—संज्ञा पुं०[अ० 'रुक्न' का बहुव०]राज्य के प्रधान संचालक। प्रधान राजकर्मचारी । मंत्रिवर्ग । उ०—जावत अहहिं सकल । अरकाना । सांभरि लेहु दूर है जाना ।—जायसी (शब्द०) ।

अरकासर—संज्ञा पुं० [सं० कासार] तालाब । बावली ।—डिं० ।

अरकोल—संज्ञा पुं० [सं० कौलीरा] एक वृक्ष जो हिमालय पर्वत पर होता है। इसका पेड़ झेलम से आसाम तक २००० से ८००० फुट की ऊँचाई पर मिलता है। इसकी गोंद ककरासिंगी या काकड़सिंगी कहलाती है। लाखर।

अरक्षित—वि० [सं०] १.जिसकी रक्षा न की गई हो। रक्षाहीन। २. जिसका रक्षक न हो ।

अरखट(पु)—संज्ञा पुं० [(पु)अखरावट, (पु)अखरोटी, (पु)अखरोट] १. अक्षर २. लिखावट । उ०—लिखें लिलाट पट्ट बिधि अरखट मिटही न कोटि जतन धीरे धँए ।—अकबरी०, पृ० ३२४ ।

अरग[१]—संज्ञा पुं० [सं०अगरु=एक चंदन] अरगजा। पीले रंग का एक मिश्रित द्रव्य जो सुगंधित होता है। इसे देवताओं को चढ़ाते हैं और माथे में लगाते हैं।

अरग[२]—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अर्क'। उ०—अरुन बरुन उट्ठायौ। अरग उद्दिग उद्दिग जुज ।—पृ० रा०, ६१।१६६५ ।

अरगजा—संज्ञा पुं० [हिं०] एक सुगंधित द्रव्य जो शरीर में लगाया जाता है। यह केशर, चंदन, कपूर, आदि को मिलाने से बनता है। उ०—मैं लै दयौ, लयौ सुकर छुवत छिनकि गौ नीरु। लाल तिहारो अरगजा, उर ह्वै लग्यौ अबीरु ।—बिहारी र०, दो० ५३५ ।

अरगजी[१]—संज्ञा पुं० [हिं० अरगजा] एक रंग जो अरगजे का सा होता है।

अरगजी[२]—वि० १. अरगजी रंग का । २. अरगजा की सुगंध का । उ०—उरधारी लटें छूटी आनन पर भीजी फुलेलन सों आली हरि संग केलि । सोंधे अरगजी अरु मरगजी सारी केसरि खोरि बिराजित कहुँ कहुँ कुचनि पर दरकी अँगिया धन बेलि ।—(शब्द०) ।

अरगट(पु)—वि० [हिं० अलगंट] पृथक् । अलग । निराला । भिन्न उ०—बाल छबीली तियनु में बैठी आपु छिपाई। अरगट हीं फानूस सी परगट होति लखाइ ।—बिहारी र०, दो० ६०३ ।

अरगड़ा†—संज्ञा पुं० दे० 'अर्गला' ।

अरगन—संज्ञा पुं० [अं० आर्गन] एक अँगरेजी बाजा ।
विशेष—यह धौंकनी से बजता है। इसमें स्वर निकलने के लिये नलियाँ लगी रहती हैं। यह बाजा प्रायः गिरजाघरों में रहता है और एक आदमी के बजाने से बजता है।

अरगनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० अलगनी] बाँस, लकड़ी या रस्सी जो किसी घर में कपड़े आदि रखने के लिये बाँधी या लटकाई जाय। अलगनी ।

अरगल—संज्ञा पुं० [सं० अर्गल] १. वह लकड़ी जो किवाड़ बंद करने पर इसलिये आड़ी लगाई जाती है कि किवाड़ बाहर से खुले नहीं। ब्योंड़ा। गज । उ०—अरि दुर्ग लूटि अरगल अखंड । जनु धरी बड़ाई बाहु दंड । गोपुर कपाट बिस्तार झारि । गहि धर्यो बच्छ थल में सँवारि ।—गुमान (शब्द०) ।

अरगवान—संज्ञा पुं० [फा०] गहरे लाल रंग का एक फूल तथा उक्त फूल का वृक्ष [को०] ।

अरगवानी[१]—संज्ञा पुं० [फा०] रक्तवर्ण । लाल रंग ।

अरगवानी[२]—वि० १. गहरे लाल रंग का । लाल । बैंगनी।

अरगा†—संज्ञा [फा० इर्क़ाल] घोड़े की एक प्रकार की चाल । कदम चाल जिसमें चारों पैर अलग अलग पड़ते है ।
विशेष—इस चाल को चलते समय घोड़ा देह को साधकर चलता है। चारों टाँग अलग अलग पड़ती हैं। इस चाल में सवार घो॰ की लगाम खिंची हुई रखता है और घोड़े का कल्ला (गर्दन) उठा हुआ और स्थिर रहता है।

अरगाना[१](पु)—क्रि० अ० [हिं० अलगाना] १. अलग होना। पृथक् होना । उ०—(क) लोग भरोसे कौन के जग बैठे अरगाय ।—कबीर (शब्द०) । २. सन्नाटा खींचना । चुप्पी साधना । मौन होना । (ख) सुनि लिहचौ उनहीं की कहचौ । अपनी चाल समुझि मन ही मन गुनि अरगाई रहचौ ।—सूर०, १०।४१२३ ।
मुहा०—प्राण अरगाना=प्राण सूखना। अकचका जाना। विस्मित होना । उ०—जासौं जैसी भाँति चाहियै ताहि मिलै त्यौं धाइ। देस देस के नृपति देखि यह प्रीति रहे अरगाइ ।—सूर०, १०।४२८२ ।

अरगाना[२](पु)—क्रि० स० अलग करना । छाँटना । उ०—बरनि न जाइ भक्त की महिमा बारंबार बखानौं। ध्रुव गजपूत विदुर दासी सुत कौन कौन अरगानौं ।—सूर०, १।११ ।

अरघ(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अर्घ] १. सोलह उपचारों में से एक। वह जल जिसे फूल, अक्षत, दूब आदि के साथ किसी देवता के सामने गिराते हैं। उ०—करि आरती अरघ तिन्ह दीन्हा। राम गमनु मंडप तब कीन्हा ।—मानस, १।३१९ । २. वह जल

जो हाथ धोने के लिये किसी महापुरुष को उसके आने पर दिया जाय। उ०—आदर अरघ देइ घर आने। सोरह भाँति पूजि सनमाने।—तुलसी (शब्द०)। ३. वह जल जो बरात के आने पर वहाँ भेजा जाता है। उ०—गिरिबर पठए बोलि लगन बेरा भई। मंगल अरघ पावड़े देत चले लई।—तुलसी ग्रं० पृ० ३६। ४. वह जल जो किसी के आने पर दरवाजे पर उसके सामने आनंदप्रकाशनार्थ ढरकाया जाता है। ढरकावन। उ०—गजमुकुता हीरामनि चौक पुराइय हो। देह सु अरघ राम कहु लेइ बैठाइय हो।—तुलसी ग्रं०, पृ० ३। ५. जल का छिड़काव। उ०—नाइ सीस पगनि असीस पाइ प्रमुदित पावड़े अरघ देत आदर से आने हैं।—तुलसी (शब्द०)।

क्रि० प्र०—करना। उ०—हरि को मिलन सुदामा आयो। विधि करि अरघ पावड़े दीदे अंतर प्रेम बढ़ायो।—सूर (शब्द०)। देना। उ०—हृदय ते नहिं टरत उनके श्याम नाम सुहेत। अश्रु सलिल प्रवाह उर मनो अरघ नैनन देत।—सूर (शब्द०)।

अरघटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वह बाल्टी जो रहट में लगी रहती है। २. गहरा कूप [को०]।

अरघट्ट—संज्ञा पुं० [सं०] रहट। अरहट।

अरघट्टक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अरघट्ट'।

अरघनी†—संज्ञा स्त्री० [सं० अर्घणिक] आम का वह पत्ता जिसका प्रयोग देवविशेष को जल देने में किया जाता है।

विशेष—कभी कभी पंडित अपने यजमान के हाथ में एक आम का पता देते हैं और देवविशेष के लिये जल छुड़वाते हैं, तब वह पत्ता अरघनी कहलाता है।

अरघा¹—संज्ञा पुं० [सं० अर्घ] १. एक पात्र जिसमें अरघ का जल रखकर दिया जाता है। यह ताँबे का थूहर के पत्ते के आकार का गावदुम होता है। २. एक पात्र जिसमें शिवलिंग स्थापित किया जाता है। जलधरी। ३. वह पात्र जिसमें अर्घ रखकर दिया जाता।

अरघा²—संज्ञा पुं० [सं० अरघट्ट] कुएँ की जगत पर पानी निकलने के लिये बनाया गया रास्ता। चँवना।

अरघान(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० आघ्राण] गंध। महक। आघ्राण। उ०—(क) भौंर केस वह मालति रानी। बिसहर लुरे लेहिं अरघानी।—जायसी ग्रं०, पृ० ४१। (ख) अरघान की फैन, मैली हुई मालिनी की मृदुल शैल।—आराधना पृ० ७।

अरघानि(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अरघान'।

अरचन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अर्चन] पूजा। नव प्रकार की भक्ति में से एक। उ०—श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादरत, अरचन, वंदन दास। सख्य और आत्ममिवेदन, प्रेम लक्षणा जास।—सूर (शब्द०)।

अरचना(पु)—क्रि० स० [सं० अर्चन] पूजा करना। उ०—(क) दुख में आरत अधम जन पाप करैं डर डारि। बलि दै भूतन मारि पशु अरचैं नहीं मुरारि।—दीनदयाल (शब्द०)।

अरचल†—संज्ञा स्त्री० [हिं० अड़चन] अंडस। रुकावट। अड़चन। उ०—मैं कैसे चलौं सजनी चलौ न जाय।...उरझी हैं सारी रे बेरिया की झारी रे अरचन और परी।—प्रताप (शब्द०)।

अरचा(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अर्चा¹'। उ०—त्यों पदमाकर सालिगराम को कै अरचा चरनोदक चाखै।—पद्माकर ग्रं०, पृ० २४४।

अरचि(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० अर्चि] ज्योति। दीप्ति। आभा। प्रकाश। तेज। उ०—भे चलत अकरि करि समरपन रचि मुखमंडल अरचिकर।—गोपाल (शब्द०)।

अरचित(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अर्चित'।

अरज¹—संज्ञा स्त्री० [अ० अर्ज़] विनय। निवेदन। विनती। उ०—होत रंग संगीत गृह प्रतिध्वनि उड़त अपार। अरज करत निकरत हुकुम मनो काम दरबार।—गुमान (शब्द०)।

क्रि० प्र०—करना।—कहना।

यौ०—अरज गरज।

अरज²—संज्ञा पुं० [अ० अर्ज़] चौड़ाई।

अरज³—वि० [सं०] १. जिसमें धूल न लगी हो। स्वच्छ। २. राग आदि से रहित। ३. जिसे मासिक धर्म न हो [को०]।

अरजन(पु)—क्रि० स० [हिं०] दे० 'अर्जन'। उ०—करन लगे जब सों अन्याय सहित धन अरजन।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० ५३।

अरजना(पु)—क्रि० अ० [हिं० अरज से नाम०] निवेदन या प्रार्थना करना।

अरजम—संज्ञा पुं० [देश०] कुंबी नाम का एक बड़ा वृक्ष जिसकी लकड़ी से खेती के औजार और गाड़ी के धुरे आदि बनाए जाते हैं। वि० दे० 'कुंबी'।

अरजल¹—संज्ञा पुं० [अ० अर्जल] १. वह घोड़ा जिसके दोनों पिछले पैर और अगला दाहिना पैर सफेद या एक रंग का हो। (ऐसा घोड़ा ऐबी माना जाता है)। उ०—तीन पाँव एक रंग हो एक पाँव एक रंग। ताको अरजल कहत हैं करत राज में भंग। २. नीच जाति का पुरुष। ३. वर्णसंकर।

अरजल²—वि० नीच, जैसे अरजल कौम।

अरजस्क—वि० [सं०] दे० 'अरज'³।

अरजाँ—वि० [फा०] सस्ता। कमकीमत [को०]।

अरजा¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. भार्गव ऋषि की पुत्री। २. घीकुआर। घृतकुमारी। ३. वह कन्या जिसे रजोधर्म न हुआ हो [को०]।

अरजा²—वि० [सं०] अरजस्वला [को०]।

अरजी¹†—संज्ञा स्त्री० [अ० अर्जी] १ आवेदनपत्र। निवेदनपत्र। प्रार्थनापत्र। उ०—गरजी ह्वै दियो उन पान हमैं पढ़ि साँवरे रावरे की अरजी।—तोष (शब्द०)। २. दे० 'अर्जी'।

अरजी²(पु)†—[अ० अर्ज + हिं० ई (प्रत्य०)] प्रार्थी। उ०—अरजी पिव पिव रटन परखि तब प्रगटत मरजी।—सुधाकर (शब्द०)।

अरजुन(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अर्जुन'।

अरज्जु¹—वि० [सं०] बिना रस्सीवाला [को०]।

अरज्जु²—संज्ञा पुं० कारागृह। जेल [को०]।

अरझना(पु)—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'अरुझना'।

अरझा¹†—संज्ञा पुं० [दे०] छोटी जाति का सन। सनई।

अरझा²†—संज्ञा पुं० [हिं० अरुझाना] १. उलझन। झमेला। २. बखेड़ा। टंटा। झगड़ा।

अरडु—संज्ञा पुं० [सं०] अरल नाम का वृक्ष [को०] ।

अरडींग†—वि० [देश०] बलिष्ठ । जोरावर ।—डिं० ।

अरण†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अरण्य' । उ०—अरण आज्ञाकारी मूझ नायक अवध अवध वितानै वेग आवाँ ।—रघु० रू०, पृ० १०४ ।

अरणव(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अर्णव' । उ०—अरणव साते उदर विरछ रोमांच विचालें ।—रघु० रू०, पृ० ४४ ।

अरणि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. प्रकार का वृक्ष । गनियार । अँगेयू । २. सूर्य । ३. काठ का बना हुआ एक यंत्र जो यज्ञों में आग निकालने के काम आता है । अग्निमंथ ।

विशेष—इसके दो भाग होते हैं—अरणि या अधरारणि और उत्तरारणि । यह शमीगर्भ अश्वत्थ से बनाया जाता है । अधरारणि नीचे होती है और इसमें एक छेद होता है । इस छेद पर उत्तरारणि खड़ी करके रस्सों से मथानी के समान मथी जाती है । छेद के नीचे कुश या कपास रख देते हैं जिसमें आग लग जाती है । इसके मथने के समय वैदिक मंत्र पढ़ते हैं और ऋत्विक् लोग ही इसके मथने आदि का काम करते हैं । यज्ञ में प्रायः अरणि से निकली हुई आग ही काम में लाई जाती हैं । ४. चीता नामक वृक्ष या उसकी लकड़ी । ५. श्योनाक । सोना पाढ़ा । ६. अग्नि । ७. चकमक पत्थर ।

अरणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अरणि' ।

अरणिकेतु—संज्ञा पुं० [सं०] अग्निमंथ नामक वृक्ष (को०) ।

अरणीसुत—संज्ञा पुं० [सं०] शुकदेव ।

विशेष—लिखा है कि व्यास जी का वीर्यपात अरणी पर होने से शुकदेव की उत्पत्ति हुई थी ।

अरण्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. वन । जंगल । २. कटफल । कायफल । ३. संन्यासियों के दस भेदों में से एक । ४. रामायण का एक कांड ।

यौ० —अरण्यगान अरण्यरोदन ।

अरण्यक—संज्ञा पुं० [सं०] १. जंगल । २. जंगली सभा । ३. एक पौधा [को०] ।

अरण्यकणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] जंगली जीरा [को०] ।

अरण्यगान—संज्ञा पुं० [सं०] सामवेद के अंतर्गत एक गान जो जंगल में गाया जाता था ।

अरण्यचंद्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं० अरण्यचन्द्रिका] जंगल की चाँदनी (ला०) । वह श्रृंगार जिसका देखनेवाला या प्रशंसा करनेवाला न हो [को०] ।

अरण्यदमन—संज्ञा पुं० [सं०] दोन नामक एक पौधा । दोना [को०] ।

अरण्यनृपति—संज्ञा पुं० [सं०] शेर । सिंह [को०] ।

अरण्यपंडित—संज्ञा पुं० [सं० अरण्यपण्डित] मूर्ख व्यक्ति । बुद्धिहीन मनुष्य [को०] ।

अरण्यमक्षिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] डाँस । जंगली मक्खी [को०] ।

अरण्ययान—संज्ञा स्त्री० [सं०] वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश करना [को०] ।

अरण्यरोदन—संज्ञा पुं० [सं०] १. निष्फल रोना । ऐसी पुकार जिसका सुननेवाला कोई न हो । २. ऐसी बात जिसपर कोई ध्यान न दे । वह बात जिसका कोई ग्राहक न हो । जैसे—इस भीड़भाड़ में कोई बात कहना अरण्यरोदन है ।—(शब्द०) ।

अरण्यवास्तुक—संज्ञा पुं० [सं०] जंगली बेंत [को०] ।

अरण्यवास्तूक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अरण्यवास्तुक' [को०] ।

अरण्यविलाप— संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अरण्यरोदन' [को०] ।

अरण्यव्रत—संज्ञा पुं० [सं०] एक व्रत जो मृगशिरा नक्षत्र के बारहवें दिन पड़ता है [को०] ।

अरण्यश्वान—संज्ञा पुं० [सं०] १. भेड़िया । २. गीदड़ [को०] ।

अरण्यषष्टी—संज्ञा पुं० [सं०] एक व्रत जो जेठ महीने के शुक्ल पक्ष में पड़ता है ।

विशेष—इस दिन स्त्रियाँ फलाहार करती हैं और देवी की पूजा करती हैं यह व्रत संतानवर्धक माना जाता है । शास्त्रानुसार स्त्रियों को बेना लेकर जंगल में घूमना चाहिए ।

अरण्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक ओषधि ।

अरण्यानी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बीहड़ जंगल या वीरान जंगल । २. न की देवी [को०] ।

अरण्यायन—संज्ञा पुं० [सं०] वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश करना [को०] ।

अरण्यीय—वि० [सं०] १. जंगल का । २. जंगल के समीप [को०] ।

अरत—वि० [सं०] १. जो अनुरक्त न हो । जो किसी पदार्थ में आसक्त न हो । २. विरत । विरक्त । उ०—मन गोरख गोविंद मन, मन ही ओषधि सोय । जो मन राखै यतन करि, आपै अरता होय ।—कबीर (शब्द०) । ३. सुस्त । आलसी । ४. असंतुष्ट ।

अरति[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. विराग । चित्त का न लगना । उ०—सुर स्वारथी मलीन मन कीन्ह कुमंत्र कुठाटु । रचि प्रपंच माया प्रबल भय भ्रम अरति उचाटु ।—मानस, २।२९४ । २. जैन शास्त्रानुसार एक प्रकार का कर्म जिसके उदय से चित्त किसी काम में नहीं लगता । यह एक प्रकार का मोहनीय कर्म है । अनिष्ठ में खेद उत्पन्न होने को भी अरति कहते है ३. असंतोष [को०] । ४. क्रोध [को०] । ५. चिंता [को०] । ६. उच्चाटन [को०] । ७. उद्वेग [को०] । ८. सुस्ती । प्रमाद [को०] । ९. व्यथा । पीड़ा [को०] । १०. एक प्रकार पित्तरोग [को०] ।

अरति[2]—वि० १. असंतुष्ट । २. शांतिरहित । अशांत । ३. सुस्त । प्रमादी [को०] ।

अरत्त(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अरत' । उ०—आलिंगन दे हथ्थ धरि, अरु पुच्छिय इह बत्त । जा जीवन रत्तौ जगत, तू क्यों राज अरत ।—पृ० रा०, १।५४८ ।

अरत्नि—संज्ञा पुं० [सं०] १. बाहु । हाथ । २. कुहनी । ३. मुट्ठी बँधा हाथ । ४. मीमांसा शास्त्र के अनुसार एक माप ।

विशेष—इससे प्राचीन काल में यज्ञ की वेदी आदि मापी जाती थी । यह माप कुहनी से कनिष्ठा के सिरे तक होती है ।

अरथ(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अर्थ' । उ०—भनइ विद्यापति, कहओ बुझाए अरथ असंभव के पतिआए ।—विद्यापति, पृ० ३३६ ।

अरथाना(पु)†—क्रि० स० [सं० अर्थ+हिं० आना (प्रत्य०)] १. समझाना । विवरण करना । उ०—पठवौ दूत भरत कौ

ल्यावन बंचन कह्यौ बिलखाई। दशरथ बचन राम बन गवने यह कहियो अरथाइ।—सूर०, ६।४७। २. व्याख्या करना। बताना। उ०—भा बिहान पंडित सब आए। काढ़ि पुरान जनम अरथाए। जायसी ग्रं०, पृ० १६।

अरथी¹—संज्ञा स्त्री० [सं० रथ] १. लकड़ी की बनी हुई सीढ़ी के आकर का एक ढाँचा जिसपर मुर्दे को रखकर श्मशान ले जाते हैं। टिखटी। विमान।

अरथी²—वि० [सं० अ + रथी] १. जो रथी न हो। पैदल। २ जो रथ पर से युद्ध न करे [को०]।

अरथी³—वि० [हिं०] दे० 'अर्थी'। उ०—उत्तम मनुहारिन करे मानै मानिनि संक। मध्यम समयी अधम निजु अरथी निलजु निसंक।—भिखारी ग्रं० भा० १, पृ० २७।

अरदंड†—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का करील जो गंगा के किनारे होता है।

अरद¹—वि० [सं०] १. बिना दाँतवाला। २ जिसके सभी दाँत गिर गए हों [को०]।

अरद²—संज्ञा पुं० १. दुःख पहुँचाना। २. विनाश [को०]।

अरदन¹—वि० [सं० अ + रदन] १. बे दाँत का। बे दाँतवाला।

अरदन²(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अर्दन'।

अरदना(पु)†—क्रि० स० [सं० अर्दन] १. रौंदना। कुचलना। उ०—जदपि अरदरिपु बधत तदपि रद कांति प्रकासत।—गोपाल (शब्द०)। २. वध करना। मार डालना। उ०—जिमि नकुल नाग को मद हरत तिमि अरि अरदत प्रण किए।—गोपाल (शब्द०)।

अरदल—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का वृक्ष जो पश्चिमी घाट और लंक द्वीप में होता है।

विशेष—इससे पीले रंग की गोंद निकलती है जो पानी में नहीं घुलती, शराब में घुलती है। इससे अच्छा पीले रंग का वारनिश बनता है। इसका फल खट्टा होता है और खटाई के काम आता है। इसके बीज से तेल निकलता है जो ओषधि के काम आता है। इसकी लकड़ी भूरे रंग की होती है जिसमें नीली धारियाँ होती हैं। गोरका। ओट। भव्य।

अरदली—संज्ञा पुं० [अं० ऑर्डरली] वह चपरासी या भृत्य जो किसी कर्मचारी या राजपुरुष के साथ कार्यालय में उसके आज्ञापालन के लिये नियुक्त रहता है और लोगों के आने इत्यादि की इत्तला करता है।

अरदावा(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० अर्दद्; फा० आरद] १. दला हुआ अन्न। कुचला हुआ अन्न। २. भरता। उ०—घीव टाँक महि सौंध सिरावा। पंख बघार कीन्ह अरदावा।—जायसी (शब्द०)।

अरदास(पु)†—संज्ञा स्त्री० [फा० अर्जदाश्त] १. निवेदन के साथ भेंट। नजर। उ० एहि बिधि ढील दीन्ह तब ताई। देहली की अरदासें आई।—जायसी (शब्द०)। २. शुभ कार्य या यात्रारंभ में किसी देवता की प्रार्थना करके उसके निमित्त कुछ भेंट निकाल रखना। ३. वह ईश्वरप्रार्थना जो नानकपंथी प्रत्येक शुभ कार्य, चढ़ावे आदि के आरंभ में करते हैं। ४. प्रार्थना। विनती।

अरधंग¹(पु)—संज्ञा [सं० अर्द्धाङ्ग] १. आधा अंग। उ०—सिव साहेब अचरज भरो सकल रावरो अंग। क्यों कामहिं जारयो, कियो क्यों कामिनि अरधंग।—भिखारी ग्रं०, भा० २, पृ० १२५। २. शिव। उ०—तजै गौरि अरधंग अचल ध्रुव आसन चल्लै।—हम्मीर०, पृ० १३।

अरधंग²—वि० दे० 'अर्धांग'।

अरधंगी¹(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अर्धांगी'।

अरधांगी²(पु)—संज्ञा स्त्री० [अरधंग + ई (प्र०)] स्त्री। पत्नी। उ०—आपु भए पति वह अरधंगी। गोपनि नाँउ धरयौ नवरंगी। सूर०, १०।३१४४।

अरधांगी(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अर्द्धांग'।

अरध¹(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अर्ध'। उ०—फूटयौ पहार सतखंड ह्वै अरध खंड गढ़ भरहरयो।—हम्मीर०, पृ० ४३।

अरध²(पु)—क्रि० वि० [सं० अधः] अंदर। भीतर। उ०—अरध उरध अस है दुइ हीया। परगट गुपुत बरै जस दीया।—जायसी (शब्द०)।

अरधभाषरी(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं०] अर्ध भाषरी। एक प्रकार का राजस्थानी गीत जो भाषरी का आधा होता है।

अरधसावझड(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं०] एक प्रकार का राजस्थानी गीत।

अरधाई(पु)—वि० [हिं० अरध + आई प्रत्य०] आधा। उ०—तीनि हाथ एक अरधाई।—कबीर ग्रं०, पृ० १३३।

अरध्र—वि० [सं०] १. जो पराजित न हो। अपराजेय। २ समृद्ध [को०]।

अरन¹—संज्ञा पुं० [हिं० अड़न] एक प्रकार की निहाइ जिसके एक या दोनों ओर नोंक निकली होती है।

अरन²—संज्ञा पुं० [सं० अरण्य, प्रा० अरण्ण] दे० 'अरण्य'।

अरना¹—संज्ञा पुं० [सं० आरण्यक] जंगली भैंसा।

विशेष—जंगलों में इसके झुंड के झुंड मिलते हैं। यह साधारण भैंसे से बड़ा और मजबूत होता है। इसके सुडौल और दृढ़ अंगों पर बड़े बड़े बाल होते हैं। इसका सींग लंबा, मोटा और पैना होता है और शेर तक का सामना करता है।

अरना²(पु)—क्रि० अ० [हिं०] शीघ्रता करना। उ०—करौ दया मौ सीस दया कर आयौ सार चार गुण अरकर।—रा० रू०, पृ० ६। २. दे० 'अड़ना'।

अरनि(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अड़न'। उ०—बरषि निझरे मेघ पाइक बहुत कीनीं अरनि। सूर सुरपति हारि मानी तब परयौ दुहुँ चरनि।—सूर०, १०।६५६।

अरनी—संज्ञा स्त्री० [सं० अरणी] १. एक छोटा वृक्ष जो हिमालय पर होता है।

विशेष—इसका फल लोग खाते हैं। इसकी गुड़नी भी काम आती है। काश्मीरी और काबुली अरनी बहुत अच्छी होती है। इसकी लकड़ी से चरखे की चरख और डोई आदि बनती है। यह माघ, फाल्गुन में फूलता है और बरसात में पकता है।

२—यज्ञ का अग्निमंथन काष्ठ जो शमी के पेड़ में लगे हुए पीपल से लिया जाता है। वि० दे० 'अरणि'। उ०—बारंबार

विवार तें उरजै ज्ञान प्रकास। ज्यौं अरनी संवरन तें प्रगटै गुपुर हुतास।—दीन० ग्रं०, पृ० १९६। ३. जलन। दाह।

अरन्य — संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अरण्य'। उ०—'दास' कहै मृगहू कों उदास कै बास दियो है अरन्य गँभीरनि।—भिखारी० ग्रं०, भा० १, पृ० ५०१।

अरपन — संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अर्पण'। उ०—बरनै दीनदयाल न देखत रूप कुरूपहिं। जो घट अरपन करै ताहि ते ममता कूपहिं।—दीन० ग्रं०, पृ० २५६।

अरपना — क्रि० स० [सं० अर्पण] अर्पण करना। भेंट करना। उ०—(क) पहिले दाता सिख भया तन मन अरपा सीस।—कबीर (शब्द०)। (ख) तोहि आम की मंजरी अरपित हो सिर माथ। महाराज कंदर्प के धनुष लियो जिन हाथ।—शकुंतला, पृ० १०६।

अरपा — संज्ञा पुं० [देश०] एक मसाला।

अरपित — वि० [हिं०] दे० 'अर्पित'।

अरब[1] — संज्ञा पुं० [सं० अर्बुद] १. सौ करोड़। संख्या में दसवाँ स्थान। २. इस स्थान की संख्या।

अरब[2] — संज्ञा पुं० [सं० अर्वन्] १. घोड़ा। २. इंद्र। उ०—सरब गरबंत अरब अरब ऐसे अरब के अरब चरब जहराय के।—गोपाल (शब्द०)।

अरब[3] — संज्ञा पुं० [अ०] १. एक मरु देश जो एशिया खंड के पश्चिम-दक्षिण भाग में और भारतवर्ष से पश्चिम है। यहाँ इस्लाम धर्म के प्रवर्तक मुहम्मद साहब उत्पन्न हुए थे। यहाँ घोड़े, ऊँट और छुहारे बहुत होते हैं। २. अरब देश का उत्पन्न घोड़ा। ३. अरब का निवासी।

अरबर — वि० [अनुध्व०] [स्त्री० अरबरी] १. ऊटपटाँग। असंबद्ध। उ०—भक्तनि की सुधि करी खरी अरबरी मति, भावन करत भोग सुखद लगाए हैं —प्रिया (शब्द०)। २. कठिन। मुश्किल।

अरबराना — क्रि० अ० [हिं० अरबर से नाम०] १. घबराना। व्याकुल होना। विचलित होना। (क) ब्याही ही विमुख घर आयो लेन कहै पर खरी अरबरी कोई चित्त चिंता लागी है।—प्रिया (शब्द०)। (ख) सुनि सोच परेउ हियो खरो अरबरेउ मन गाढ़ो लै कै करेउ बोल्यो हाँ जू सरसाई है।—प्रिया (शब्द०)। २. लटपटाना। अड़बड़ाना। उ०—सिखवति चलन जसोदा मैया। अरबराइ कर पानि गहावत डगमगाइ धरनी धरै पैया।—सूर०, १०।११५।

अरबरी — संज्ञा स्त्री० [हिं० अरबर] घबराहट। हड़बड़ी। उ०—(क) सभा की चाह अवगाह हनूमान की गरे डारि दई सुधि भई अति अरबरी है।—प्रिया (शब्द०)।

अरबिंद — संज्ञा पुं० [सं० अरविन्द] दे० 'अरविंद'। उ०—देखत क्यों न अपूरब इंदु में द्वै अरबिंद रहे गहि लाली।—पद्माकर ग्रं०, पृ० २०६।

अरबिस्तान — संज्ञा पुं० [अ० अरब + फा० स्तान] अरब देश।

अरबी[1] — वि० [अ० अरब + फा० ई (प्रत्य०)] अरब देश का।

अरबी[2] — संज्ञा पुं० १. अरबी घोड़ा। अरब देश का उत्पन्न या अरबी नस्ल का घोड़ा। ताजी। ऐराकी।

विशेष — यह सब घोड़ों से अधिक बलवान, मेहनती, सहिष्णु और आज्ञानुवर्ती होता है। इसके नथुने चौड़े, गाल और जबड़े मोटे, माथा चौड़ा, आँखें बड़ी बड़ी, थुथुने छोटे, पुट्ठा ऊँचा और दुम जरा ऊपर चढ़कर शुरू होती है। इसके कान छोटे, तथा दुम और अयाल के बाल चमकीले होते हैं।

२. अरबी ऊँट। अरब देश का ऊँट।

विशेष — यह बहुत दृढ़ और सहिष्णु होता है और बिना दाने पानी के मरुभूमि में चलता रहता है।

३. अरबी बाजा। ताशा।

अरबी[3] — संज्ञा स्त्री० अरब देश की भाषा।

अरबीला — वि० [हिं० अरबर] १. भोलाभाला। अंडबंड। उ०—देखति आरसी मैं मुसुक्याति है छाँडि दईं बतियाँ अरबीली।—लाल (शब्द०)। २. लड़ाका। युद्ध से न भागनेवाला। अड़नेवाला।

अरबुद — संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अर्बुद'। उ०—बुरे ऋषि बृंद सुअरबुद आय। जहाँ ऋषि चाय बसैं सत भाय।—हम्मीर रा०, पृ० ८।

अरब्बी[1] — वि० [हिं०] दे० 'अरबी'।

अरब्बी[2] — संज्ञा पुं० [फा० अरबी] १. अरबी बाजा। ताशा।—बाजै अरब्बी उमड़िकै गज्जै मनो घन घुमड़ि कै—पद्माकर ग्रं०, पृ० ८। २. अरबी घोड़ा। उ०—अरब्बी फिरैं बेस उब्बीन पै जे। नटों की कला सीकला जान लै जे।—पद्माकर ग्रं०, पृ० २८०।

अरभक — वि० [हिं०] दे० 'अर्भक'।

अरम — वि० [सं०] क्षुद्र। नीच [को०]।

अरमण — वि० [सं०] १. अरुचिकर। २. खराब। ३. असंतोषदायक। ४. विरामरहित। निरंतर।

अरममाण — वि० [सं०] दे० 'अरमण' [को०]।

अरमनी — संज्ञा पुं० [फा०] आरमेनिया देश का निवासी।

विशेष — आरमेनिया काकेशश पहाड़ से दक्षिण में है यहाँ के लोग विशेष सुंदर होते हैं।

अरमाँ — संज्ञा पुं० [तु० अर्मान] दे० 'अरमान'। उ०—ऐ फलक क्या क्या हमारे दिल में अरमाँ रह गया।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ८४६।

अरमान — संज्ञा पुं० [तु० अर्मान] इच्छा। लालसा। चाह।

मुहा० — **अरमान निकालना** = इच्छा पूरी करना। उ०—बहुत निकले मेरे अरमान लेकिन फिर भी कम निकले।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ४७६। **अरमान भरा** = उत्सुक। **अरमान रहना या रह जाना** = इच्छा का पूरा न होना। मन की बात मन ही में रहना।

अररर[1] — अव्य० [सं० अररे] एक शब्द जो अत्यंत व्यग्रता तथा अचंभे की दशा में मुँह से निकलता है, जैसे—अररर! यह क्या हुआ (शब्द०)।

अररर[2] — संज्ञा पुं० [सं० अरर] १. किवाड़ कपाट। २. पिधान। ढक्कन। ३. उलूक [को०]। ४. युद्ध [को०]।

अररर[3] — संज्ञा पुं० [सं० अरर, अरल] मैनफल [को०]।

अररनादररना — क्रि० स० [अनु०] दलना। पीसना। उ०—चित करु गोहुआँ प्रेम की दउरिया समुझि समुझि झिकवा

नावहु रे का अररिदररि जो पीसँ लागी सजनी ह्वै वह पिया की सोहागिनि रे की।—कबीर (शब्द०)।

अरर्राना(पु)—क्रि० अ० [अनुध्व] अरर शब्द करना। अरराना। उ०—अररात दोउ बृच्छ गिरे घर। अति आघात भयौ ब्रज भीतर।—सूर०, १०।३८१।

अरराना—क्रि० स० [अनुध्व०] अररर शब्द करना। टूटने या गिरने का शब्द करना। उ०—तरु दोउ धरनि गिरे भहराइ। जर सहित अरराई कै आघात शब्द सुनाइ।—सूर०, १०।३६१। २. अररर शब्द करके गिरना। तुमुल शब्द करके गिरना। उ०—बरत बनपात भहरात भहरात अररात तरु महा धरनी गिरायौ।—सूर० १०।५९६। ३. भहरा पड़ना। सहसा गिरना। उ०—(क) खाय दरार परी छतियाँ अब पानी परे अरराय परैगी (शब्द०)। (ख) सिंहद्वार अरराया जनता भीतर आई।—कामायनी, पृ० १६८।

अरराहट—संज्ञा संज्ञा [हिं० अरर+आहट (प्रत्य०)] अरराने की ध्वनि या आवाज। उ०—यों हो अरराहट अरावन को छायों है।—पद्माकर ग्रं०, पृ० ३२०।

अररि—संज्ञा पुं० [सं०] १. द्वार। २. किवाड़ [को०]।

अररी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १.द्वार। २. किवाड़ [को०]।

अररु—संज्ञा पुं० [सं०] १. दुश्मन। २. एक हथियार। ३.एक असुर का नाम [को०]।

अरलु—संज्ञा पुं० [सं०] १. श्योनाक। टेंटु। सोनापाड़ा। सोनागाछ। २.अलाबु। अलाबू। कड़ुई लौकी।

अरव—वि० [सं०] शोरगुल रहित। रवरहित। शांत [को०]।

अरवन—संज्ञा पुं० [सं० अ=नहीं+हिं लवना=खेत की कटाई] १. फसल जो कच्ची काटी जाय। २. वह फसल जो पहले पहल काटी जाय और खलिहान में न ले जाकर घर पर लाई जाय। इसके अन्न से प्रायः देवताओं की पूजा होती है और ब्राह्मण आदि खिलाए जाते हैं। अवई। अवती। अवरी। अवाँसी। कवल। कवारी।

अरवा[1]—संज्ञा पुं० [देश०] वह भौंरी जो घोड़े के कान की जड़ में गर्दन की ओर होती है। यह यदि दोनों ओर हो तो शुभ और एक ओर ही तो अशुभ समझी जाती है।

अरवा[2] संज्ञा पुं० [सं० अ=नहीं+हिं० लावना=जलाना, भूनना] वह चावल जो कच्चे अर्थात् बिना उबाले या भूने धान से निकाला जाय।

अरवा[3]—संज्ञा पुं० [सं०आलय=स्थान] आला। ताखा।

अरवाती(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं० ओरवती] छाजन का वह किनारा जहाँ से पानी बरसने पर नीचे गिरता है। ओलती। ओरौनी। उ०—सजनी नैना गए भगाइ। अरवाती कौ नीर बड़ेरी कैसें फिरिहैं धाइ।—सूर० (शब्द०)।

अरवाह(पु)—संज्ञा पुं० [अ०रूह का बहुव० अर्वाह] जीवात्मा। उ०—दादू इश्क अल्लाह का, जे कबहूँ प्रगटै आइ। तौ तन मन अरवाह का सब पड़दा जलि जाइ।—दादू बा०, पृ० ६७।

अरविंद—संज्ञा पुं० [सं० अरविन्द] १.कमल

यौ०—अरविंदनयन। अरविंदनाभ। अरविंदबंधु। अरविंदलोचन अरविंदाक्ष।

२. सारस। ३. नील या रक्तकमल [को०]। ४. कामदेव के पाँच बाणों में से एक [को०]। ५. ताँबा [को०]।

अरविंददलप्रभ—संज्ञा पुं० [सं० अरविन्ददलप्रभ] ताँबा [को०]।

अरविंदनयन—संज्ञा पुं० [सं० अरविन्दनयन] कमलनयन। विष्णु।

अरविंदनाभ—संज्ञा पुं० [सं० अरविन्दनाभ] कमलनाभ। विष्णु।

अरविंदनाभि—संज्ञा पुं० [सं० अरविन्दनाभि] विष्णु [को०]।

अरविंदबंधु—संज्ञा पुं० [सं० अरविन्दबन्धु] कमलबंधु। सूर्य।

अरविंदयोनि—संज्ञा पुं० [सं० अरविन्दयोनि] कमलयोनि। ब्रह्मा।

अरविंदलोचन—संज्ञा पुं० [सं० अरविन्दलोचन] कमलनयन। विष्णु।

अरविंदसद्—संज्ञा पुं० [सं० अरविन्दसद्] ब्रह्मा [को०]।

अरविंदाक्ष—संज्ञा पुं० [सं० अरविन्दाक्ष] विष्णु।

अरविंदिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० अरविन्दिनी] १. कमलिनी। २. कमल लता। ३. कमलसमूह। ४. कमल से भरा स्थान [को०]।

अरवी—संज्ञा पुं० [स० आलू] एक प्रकार का कंद।

विशेष—इसके पत्ते पान के पत्तों के आकार के बड़े बड़े होते हैं। यह दो प्रकार की होती है, एक सफेद डंठी की, दूसरी काली डठी की। जड़ या कंद से बराबर पत्तों के लंबे लंबे डंठल निकलते रहते हैं। नीचे नई पत्तियाँ बँधती जाती हैं। यह छूने में लसदार और खाने में कुछ कनकनाहट लिए हुए स्वादिष्ट होती है। लोग इसके पत्ते का साग इत्यादि बनाकर भी खाते हैं। यह अधिकतर बैसाख जेठ में बोई जाती है और सावन में तैयार हो जाती है। उ०—चूक लाय कै रीधे भाँटा। अरवी कहँ भल अरहन बाँटा।—जायसी (शब्द०)।

अरस[1]—वि० [सं०] नीरस। फीका। २ गँवार। अनाड़ी। ३. कमजोर। निर्बल [को०]।

अरस[2]—संज्ञा पुं० [सं० अ० अर्श] आलस्य। उ०—नहिंन दुरत हरि प्रिय को परस। उपजत है मन को अति आनँद, अधरनि रँग, नैननि कौ अरस।—सूर०, १०।२६५६।

अरस(पु)—संज्ञा पुं० [अ अर्श] १. छत। पाटन। २. धरहरा। महल। उ०—(क) मारु मारु कहि गारि दे, धिक गाइ चरैया। कंस पास ह्वै आइए कामरी ओढ़ैया। बहुरि अरस तें आइ कै, तब अंबर लीजौ।—सूर०, १०।३०३८। (ख) अरस नाम है महल कौ, जहँ राजा बैठे। गारी दै दै सब उठे, भुज निज कर ऐठे।—सूर० (शब्द०)। ३. आकाश। उ०—चलकर महल निकट गिर पहुँचिय चढ़ रज अरस फरक धुज चाहि।—रघु० रू०. पृ० ११६। ४. मुसलमानों के मतानुसार सबसे ऊपरवाला स्वर्ग जहाँ खुदा रहता है।

अरसठ(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अड़सठ'।

अरसथ—संज्ञा पुं०[देश०] मासिक आयव्यय का लेखा। बही जिसमें प्रति मास के आयव्यय की खतियौनी जाती है।

अरसनपरसन(पु)—संज्ञा [हिं०] दे० 'अरसपरस'।

अरसना(पु)—क्रि० अ० [सं० अलस] शिथिल पड़ना। ढीला पड़ना। मंद होना। उ०—आवती हों उत ही सो, उनकी बिलोकि दसा, बिरह तिहारे अंग अंग अरसे।—रघुनाथ (शब्द०)।

अरसनापरसना—क्रि० स० [सं० स्पर्शन] १. छूना। उ०—अरस परस चुटिया गहैं, बरजति है माई।—सूर०, १०।१६२। २. आलिंगन करना। मिलना। भेंटना। उ०—काहू कै मन कछु दुख नाहीं। अरसि परसि हँसि हँसि लपटाहीं।—सूर०, १०।६२०।

अरसपरस[1]—संज्ञा पुं० [सं० स्पर्श] लड़कों का एक खेल। आँखमिचौनी। छुआछुई। अँखमुनाल। उ०—गुरू बतावै साध को साधु कहैं गुरु पूज। अरस परस के खेल में भई अगम की सूझ—कबीर (शब्द०)।

विशेष—इस खेल में एक लड़के को अलग कर देते हैं। वह लड़का आँख मूँदता है और सब लड़के दूर भाग जाते हैं। जब उससे आँख खोलने को कहते हैं तो वह औरों को छूने के लिये दौड़ता है। जिसे वह छू लेता है वह भी अलग किया जाता है और फिर उसे भी आँख मूँदनी पड़ती है।

अरसपरस[2]—संज्ञा पुं० [सं० दर्शन स्पर्शन] देखना। उ०—बिनु देखे बिनु अरस परस बिनु नाम लिए का होई। धन के कहे धनिक जो हो तो निर्धन रहत न कोई।—कबीर (शब्द०)।

अरसा—संज्ञा पुं० [अ० अर्सह] १. समय। काल। २. देर। अतिकाल ३. अंतर। दूरी। फासिला [को०]। ४. क्षेत्र। मैदान [को०]।

अरसाना(पु)—क्रिया अ० [सं० अलस] अलसाना। निद्राग्रस्त होना। उ०—ऐंवति सी चितवन चितै, भई ओट अरसाय। फिर उझकन कौ मृगनयनि, दृगनि लगनियाँ लाय।—बिहारी (शब्द०)।

अरसात—संज्ञा पुं० [सं० अलस आलस्य] २४ अक्षरों का एक वृत्त जिसमें सात 'भगण' और एक 'रगण' होता है। यह एक प्रकार का सवैया है। यथा—भासत रुद्र जु ध्यानिन में पुनि सारसुती जस वानिन मानिए। नारद ज्ञानिन पानिन गंग सु रानिन में विकटोरिया मानिए। दानिन में जस कर्ण बड़े तस भारत अंब खरी उर आनिए। बेटन के दुख छूटन में कबहूँ अरसात नहीं फुर जानिए। (शब्द०)।

अरसाव(पु)—वि० [सं० आश्रव] बाधा। पाप। उ०—बोलौ गंगा साँचही महादेव कर भाव। जोगिन्ह आनि जेवावहू, जाइ कौंल अरसाव।—चित्रा०, पृ० १२५।

अरसाश—संज्ञा पुं० [सं०] रूखा सूखा भोजन। बिना स्वाद का। स्वादरहित [को०]।

अरसिक—वि० [सं०] १. जो रसिक न हो। अरसज्ञ। रूखा। २. कविता के मर्म को न समझनेवाला। ३. बेस्वाद या बिना जायका का [को०]।

अरसी[1](पु)—संज्ञा पुं० [सं० अतसी, प्रा० *अडसी] अलसी। तीसी। उ०—जनहु मात निसयानी बरसी। अति बिसभर फूले जनु अरसी।—जायसी (शब्द०)।

अरसी[2](पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'आरसी'। उ०—तन झुरसी तरसी हियैं परसी बिरह जरूर। दृगनि वारि झर सी लगी दरसी अरसी नूर।—स० सप्तक, पृ० ३८६।

अरसीला(पु)—वि० [सं० अलस] [स्त्री० अरसीली] आलस्यपूर्ण। आलस्य से भरा। उ०—आजु कहाँ तजु बैठी है भूषण ऐसे ही अंग कछू अरसीलो।—मतिराम (शब्द०)।

अरसौंहाँ(पु)—वि० [सं० आलस्य, हिं० अरस + औहाँ (प्रत्य०)] आलस्यपूर्ण। आलस्यभरा। उ०—(क) नखरेखा सौंहैं नई, अरसौंहै सब गात, सौंहैं होत न नैन ये तुम सौंहैं कत खात—बिहारी (शब्द०)। (ख) सोहै चितै अरसौंहैं तिया तिरछौहैं हसौहैं सरावति मालहिं।—देव (शब्द०)।

अरहंत(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अर्हत्, प्रा० अरहंत] दे० 'अर्हंत'। उ०—पियारे दूजो को अरहंत पूजा जोग मानि कै जग मैं जाको पूजैं संत।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० १३३।

अरहट—संज्ञा पुं० [सं० अरघट्ट, प्रा० अरहट्ट] एक यंत्र जिसमें तीन चक्कर या पहिए होते हैं। इन पहियों पर घड़ों की माला लगी होती है जिनसे कुएँ से पानी निकाला जाता है। रहँट। उ०—कबीर माला मन की और संसारी भेष। माला पहरयाँ हरि मिलै, तो अरहट कै गलि देख।—कबीर ग्रं०, पृ० ४५।

अरहन—संज्ञा पुं० [सं० रन्धन] वह आटा या बेसन जो तरकारी, साग आदि पकाते समय उसमें मिला दिया जाता है। रेहन। उ०—बूक लाइकै रींधे भाँटा। अरबी कहँ भल अरहन बांटा।—जायसी (शब्द०)।

अरहना[1](पु)-संज्ञा स्त्री० [सं० अर्हण; प्रा० अरहणा] पूजा आराधना।

अरहना[2](पु)—क्रि० स० पूजा करना। आराधना करना।

अरहर—संज्ञा स्त्री० [सं० आढकी प्रा० अड्ढकी] १, एक अनाज जो दो दल के दाने का होता है। रहर। उ०—सन सूखयो बीत्यौ बनौ, ऊखौ लई उखारि। हरी हरी अरहर अजौं, धर धरहर हिय नारि।—बिहारी (शब्द०)। २. अरहर का बीज। तुवरी। तूअर। पर्या०—तुवरी। वीर्य्या०। करवीरभुजा। वृत्तवीजा। पीतपुष्पा। काशीगृत्स्ना। मृतालका। सुराष्ट्रजंभा।

विशेष—इसका पौधा चार पाँच हाथ ऊँचा होता है। इसकी एक एक सींके में तीन तीन पत्तियाँ होती हैं जो एक ओर हरी और दूसरी ओर भूरी होती है। इसका स्वाद कसैला होता है। मुँह आने पर लोग इसे चबाते हैं और फोड़े फुंसियों पर भी पीसकर लगाते हैं। अरहर की लकड़ियां जलाने और छप्पर छाने के काम आती हैं। इसकी टहनियों और पतले डंठलों से खाँचे और दौरियां बनाई जाती हैं। अरहर बरसातमें बोई जाती है और अगहन पूसमें फूलती है। इसका फूल पीले रंगका होता है और फूल झड़ जाने पर इसमें डेढ़ दो इंच की फलियाँ लगती हैं जिनमें चार पांच दाने होते हैं। दानों में दो दालें होती हैं। इसके दो भेद हैं। एक छोटी दूसरी बड़ी। बड़ी को 'अरहरा' कहते हैं और छोटी को 'रयिमुनिया' कहते हैं। छोटी दाल अच्छी होती है। अरहर फागुन में पकती है और चैत में काटी जाती है। पानी पाने से इसका पेड़ कई वर्ष तक हरा रह सकता है। भिन्न भिन्न देशों में इसकी कई जातियां होती हैं, जैसे रायपुर में 'हरोना' और 'मिही', बंगाल में 'मघवा' और 'चैती' तथा आसाम में 'पलवा', 'देव' या 'नली'।

अरहेड़(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० हेड] चौपायों का झुंड। लेहड़ी।—डिं०।

अरा[1](पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आरा'। भौंहें अरा लै अरेरति है उरकोर कटाक्षन ओर अराए।—दे० (शब्द०)। २. संघर्ष। झगड़ा।

अरा[2]†—संज्ञा स्त्री० [सं० आर] पहिए की गड़ारी और उसके मध्य भाग को मिलाने वाली पतली सलाई। तीली।

अराअरी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० **अड़ना**] अड़ाअड़ी। होड़ स्पर्धा। उ०—प्यारी तेरी पूतरी काजर हू ते कारी। मानो द्वै भँवर उड़े बराबरी। चंपे की डारि बैठे कुंद अलि लागी है जेब अराअरी—हरिदास (शब्द०)।

अराक[1]—संज्ञा पुं० [**अ०**] १. एक देश जो अरब में है। एराक। इराक। २. वहाँ का घोड़ा। उ०—हरतौ हरीफ मान तरतौ समुद्र युद्ध क्रुद्ध ज्वाल जरतौ अराकनि सों अरतौ।—भूषण (शब्द०)।

अराक[2](पु)—संज्ञा पुं० दे० 'अड़ाक'।

अराकन—संज्ञा पुं० [सं० **अरि = राक्षस + ग्राम, बरमी, कान = देश**] बरमा देश के एक प्रांत का नाम। यह बंगाल की खाड़ी के किनारे पर है।

अराकी(पु)—वि० [हिं०] दे० 'इराकी'।

अराग[1]—संज्ञा पुं० [सं०] रागाभाव। राग का अभाव। रति का अभाव [को०]।

अराग[2]—वि० वासनाविहीन। रागविहीन। रतिविहीन [को०]।

अरागी—वि० [सं० **अरागिन्**] [स्त्री० **अरागिनी**] रागरहित। वासनाविहीन [को०]।

अराचना(पु)—क्रि० सं० [सं० **अर्चन**] अर्चन करना। आदर देना। उ०—तिय तजि लाज कहत रति जाचन। को नहि धर्म जो पुरुष अराचन्।—हम्मीर रा०, पृ० ४०।

अराज[1] वि० [सं० **अ + राजन्** [बिना राजा का। उ०—जग अराज ह्वै गयौ रिषिन तब अति दुख पायौ। लै पृथ्वी कौ दान ताहि फिरि बनहिं पठायौ।—सूर०, ६।१४।

अराज[2]—संज्ञा पुं० अराजकता। शासन विप्लव। हलचल।

अराजक—वि०[सं०]१. जहाँ राजा न हो। राजहीन। बिना राजा का। २. अराजकता फैलानेवाला। विद्रोह या विप्लव करनेवाला।

अराजकता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. राजा का न होना। २. शासन का अभाव। ३. अशांति। हलचल। अँधेर।

यौ०—अराजकतावाद = व्यक्तिस्वातंत्र्य का समर्थ नकरनेवाला तथा शासन की अनावश्यकता मनानेवाला सिद्धांत या वाद।

अराजन्य—वि० [सं०] क्षत्रियविहीन [को०]।

अराजबीजी—वि० [सं० **अराजबीजिन्**] अराजकता फैलानेवाला। राजविद्रोह का प्रचार करनेवाला।

विशेष—कौटिल्य ने ऐसे मनुष्यों को वहाँ भेजने का विधान बताया है जहाँ उपनिवेश बसाने में बहुत कठिनता या खर्च हो।

अराजव्यसन—संज्ञा पुं० [सं०] अराजकता संबंधी संकट।

अराजी—संज्ञा स्त्री० [**अ० अर्ज का बहुव०**] १. भूमि। धरती। जमीन। २. वह जमीन जो खेती बारी के काम आती है [को०]।

अराड़—संज्ञा पुं० [सं० **अट्टाल**] १. राशि। ढेर। अंबार। २. टूटी फूटी तथा रद्दी वस्तुओं का अंबार। ३. जलावन की दूकान।

अराड़ना—क्रि० अ० [१] गर्भपात हो जाना। गर्भ का गिर जाना। बच्चा फेंकना।

विशेष—इस शब्द का व्यवहार प्रायः पशुओं ही के लिये होता है।

अरात(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अराति' [को०]।

अराति—संज्ञा पुं० [सं०] १. शत्रु। उ०—कर लिया निश्चित अरिंदम ने निपात अराति का।—कानन०, पृ० ११२। २. फलित ज्योतिष में कुंडली का छठा स्थान। ३. काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्य जो मनुष्य के आंतरिक शत्रु हैं। ४. छह की संख्या।

अराद्धि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वैमनस्य। २. दुर्भाग्य। ३. दोष। पातक [को०]।

अराधन(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आराधन'।

अराधना(पु)—क्रि०स० [सं० **आराधन**]१. आराधना करना। उपासना करना। उ०—हम अलि गोकुलनाथ अराध्यौ। सूर० १०।३५३०। २. पूजा करना। अर्चना करना। ३. जपना। ४. ध्यान करना।

अराधी(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आराधी'।

अराना(पु)—क्रि० स० [हिं०] दे० 'अड़ाना'। उ०—भौहैं अरा लै अरेरति है उर कोर कटाक्षन ओर अरारे।—देव (शब्द०)।

अराबा—संज्ञा पुं० [अ०] १. गाड़ी। रथ। उ०—(क) चामिल पार भए सब आछे। तबै अडोल अराबे पाछे।—लाल (शब्द०)। (ख) जितौ अराबौ नार है सो सब लीनो संग। उतरि पार डेरा दए ठठि पठान सौं जंग।—सुजान०, पृ० ५१। २. वह गाड़ी जिसपर तोप लादी जाय। चरख। उ०—लावदार रक्खो किए सबै अराबौ एहु। ज्यों हरीफ आवै नजरि तबै धड़ाधड़ देहु।—सुजान०, पृ० १५। (ख) दाराघाट धीरपुर बाँध्यौ। रोपि अराबै कलहै काँध्यो। लाल (शब्द०)। ३. जहाज पर तोपों को एक बार एक ओर दागना। सलख।

अराम[1](पु)†—संज्ञा पुं० [सं० **आराम**] बाग। उपवन।—ये नहिं फूल गुलाब के दाहत हिय जु हमार। बिन घनश्याम अराम में लागी दुसह दवार।

अराम[2]—संज्ञा पुं० [फा० **आराम**] दे० 'आराम'[1]।

अरारूट—संज्ञापुं० [अं० एरोरूट]एक पौधा जो अमेरिका से हिंदुस्तान में आया है।

विशेष—गरमी के दिनों में दो दो फुट की दूरी पर इसके कंद गाड़े जाते हैं। इसके लिये अच्छी दोमट और बलुई जमीन चाहिए। यह अगस्त से फूलने लगता है और जनवरी फरवरी में तैयार हो जाता है। जब इसके पत्ते झड़ने लगते हैं तब यह पक्का समझा जाता है और इसकी जड़ खोद ली जाती है। खोदने पर भी इसकी जड़ रह ही जाती है। इससे, जहाँ यह एक बार लगाया गया वहाँ इसका उच्छिन्न करना कठिन होता है। इसकी जड़ को पानी में खूब धोकर कूटते हैं और फिर उसका सत निकालते हैं जो स्वच्छ मैदे की तरह होता है। यह अमेरिका की तीखुर है। इसका रंग देसी तीखुर के रंग से सफेद होता है तथा इसमें गंध और स्वाद नहीं होता।

२. अरारूट का आटा।

अरारोट—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अरारूट'।

अराल१—वि० [सं०] कुटिल। टेढ़ा। उ०—भाल पर भाग, लाल बेंदी पै सुहाग, देव भृकुटी अराल अनुराग हुलस्यो परै।—देव (शब्द०)।

यौ०—**अरालकेशी** = कुटिल केश या अलकवाली। घुँघराले बालोंवाली।

अराल२—संज्ञा पुं० १.सर्ज रस। राल। २.मत्त हाथी। ३.टेढ़ा या टूटा हाथ (को०)। ४. एक समुद्र [को०]।

अराला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १.अपवित्र नारी। सतीत्वहीन नारी २. अधृष्टा स्त्री० [को०]।

अरावल(पु)—संज्ञा पुं० [हिं] दे० 'हरावल'।

अरावली—संज्ञा पुं० राजस्थान का एक पहाड़।

अराष्ट्र—संज्ञा पुं० [सं०] राज्यसत्ता का नाश या अभाव [को०]।

अरिंज—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बबूल। सफेद बबूल।

विशेष—यह पंजाब, राजपूताना, मध्य और दक्षिण भारत तथा बरमा में पाया जाता है। इसका छिलका रेशेदार होता हैऔर इससे मछली पकड़ने का जाल बनाया जाता है। इससे एक प्रकार की गोंद भी निकलती है जो पानी में घोली जाने पर पीला रंग पैदा करती है। यह अमृतसरी गोंद कहलाती है। इसे बबूल की गोंद के साथ भी मिलाकर बेचते हैं। पेड़ की छाल को पीसकर गरीब लोग अकाल में बाजरे के आटे के साथ खाने के लिये मिलाते हैं। इसमें एक प्रकार का नशा भी होता है और यह मद्य में भी मिलाई जाती है। इसीलिये अरिंज को ''शराब का कीकर'' भी कहते है।

अरिंद(पु)—संज्ञा पुं० [सं० **अरि + इन्द्र**] शत्रु। उ०—तहँ मारि मारि अरिंद बरछी सों गिराए गगन तें।—पद्माकर ग्रं०, पृ० २०।

अरिंदम—वि० [सं० **अरिन्दम**] १. शत्रुनाशक। बैरी का दमन करनेवाला। उ०—कर लिया निश्चित अरिंदम ने निपात अराति का।—कानन०, पृ० ११२। २. विजयी।

अरि—संज्ञा पुं० [सं०] १. शत्रु। बैरी। २. चक्र। ३. काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्य। ४. छह की संख्या। ५. ज्योतिष में लग्न से छठा स्थान। ६. विट् खदिर। दुर्गंध खैर। अरिमेद। ७. स्वामी [को०]। ८. रथ का कोई हिस्सा [को०]। ९. वायु [को०]। १०. धार्मिक व्यक्ति [को०]।

अरिकर्षक—संज्ञा पुं० [सं०] शत्रुओं का कर्षण या पराभव करनेवाला [को०]।

अरिकुल—संज्ञा पुं० [सं०] १. शत्रुसमूह। २. शत्रु [को०]।

अरिकेलि—संज्ञा स्त्री०[सं०]१. शत्रुक्रीड़ा।२. वासनात्मक आनंद[को०]।

अरिकेशी—संज्ञा पुं० [सं० **अरी + केशी**] केशी के शत्रु, कृष्ण।

अरिक्थभाग—वि० [सं०] जिसे पिता के धन का भाग न मिल सके। पिता का हिस्सा पाने के अयोग्य। अनंश।

अरिघ्न—वि० [सं०] शत्रुहंता [को०]।

अरिचिंता—संज्ञा स्त्री० [सं०**अरिचिन्ता**] शत्र के विघटन या विनाश के लिए सोचना [को०]।

अरित्र१—संज्ञा पुं० [सं०] १. बल्ला जिससे नाव खेते हैं। डाँड़। २. क्षेपणी। निपातक। ३. जल की थाह लेने की डोरी। ४. लंगर।

अरित्र२—वि० [सं०] १. शत्रु से रक्षा करनेवाला। २. आगे बढ़ानेवाला [को०]।

यौ०—अरित्रगाध = छिछला।

अरिदमन१—वि० [सं० **अरि + दमन = नाश**] शत्रु का नाश करनेवाला।

अरिदमन२—संज्ञा पुं० शत्रुघ्न। लक्ष्मण के छोटे भाई का नाम। रिपुदमन।

अरिनिपात—संज्ञा पुं० [सं०] दुश्मन का हमला [को०]।

अरिनुत—वि० [सं०] शत्रु भी जिसकी प्रशंसा करें [को०]।

अरिप्रकृति—संज्ञा स्त्री० [सं०] युद्ध में प्रवृत्त राजा के चारों ओर के शत्रुओं की स्थिति।

अरिभद्र—संज्ञा पुं० [सं०] अति शक्तिशाली शत्रु [को०]।

अरिमर्द—संज्ञा पुं० [सं०] काममर्द नाम का पौधा [को०]।

अरिमर्दन१—वि० [सं०] शत्रुओं का नाश करनेवाला। शत्रुसूदन।

अरिमर्दन२—संज्ञा पुं० १. केकयनरेश राजा भानुप्रताप का भाई जो शापवश कुंभकर्ण हुआ था। २. अक्रूर का भाई।

अरिमेद—संज्ञा पुं० [सं०] १. विट् खदिर। २. एक बदबूदार कीड़ा। गंधिया। ३. एक वृक्ष।

अरिमेदक—संज्ञा पुं० [सं०] मल में उत्पन्न होनेवाला एक प्रकार का कीड़ा [को०]।

अरिया१—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की छोटी चिड़िया जो प्रायः पानी के किनारे रहती है। इसे ताक या लेदी भी कहते हैं।

अरियाना(पु)—क्रि० स० [सं० **अरे**] अरे कहकर बुलाना। तिरस्कार करना। उ०—अलकलौ धरैं तजैं, बरत अनेक भरैं, जनपद गहत लहत मंत्र मत हैं। ऐसे बल तपैं परलोकन तें अरियाते कोसनि अचल तैते केबरो लगत है। —गुमान (शब्द०)।

अरिल्ल—संज्ञा पुं० [सं० **अरिला**] सोलह मात्राओं का एक छंद जिसके अंत में दो लघु अथवा एक यगण होता है, परंतु इसमें जगण का निषेध है। भिखारीदास ने इसके अंत में भगण माना है। जैसे,—ले हरिनाम मुकुंद मुरारी। नारायण भगवंत खरारी (शब्द०)।

अरिवन—संज्ञा पुं० [देश०] रस्सी का फंदा जिसमें फँसाकर घड़ा या गगरा कुएँ में ढीलते हैं। उबका। उबक। छोर। फँसरी।

अरिष—संज्ञा पुं० [सं०] १. लगातार बरसत। २. गुदा का एक रोग [को०]।

अरिष्ट१—संज्ञा पुं० [सं०] १. क्लेश। पीड़ा। २. आपत्ति। विपत्ति। ३. दुर्भाग्य। अमंगल। ४. अपशकुन। अशुभ लक्षण ५. दुष्ट ग्रहों का योग जिसका फल ज्योतिष शास्त्र के अनुसार अनिष्ट होता है। मरणकारी योग। ६. लहसुन। ७. नीम। निंब। ८. लंका के पास एक पर्वत। ९. कौवा। काक। १०. कंक। गिद्ध। ११. रीठे का पेड़। फेनिल। निर्मली। १२. वह अरक जो बहुत सी दवाओं को मीठे में सड़ाकर बनाया जाय। एक प्रकार का मद्य जो धूप में ओषधियों का खमीर उठाकर बनता है। १३. काढ़ा। १४. एक ऋषि। १५. एक राक्षस

का नाम जिसे श्रीकृष्णचंद्र ने मारा था। वृषभासुर। १६. अनिष्टसूचक उत्पात; जैसे भूकंप आदि। १७. बलि का पुत्र, एक दैत्य। १८. मट्ठा। तक। १९. सौरी। सूतिकागृह। २०. कौटिल्य के अनुसार एक प्रकार का असंहत व्यूह जिसमें रथ बीच में, हाथी कक्ष में और घोड़े पृष्ठ भाग में रहते थे।

अरिष्ट[2]—वि० १. दृढ़। अविनाशी। २. शुभ। ३. बुरा। अशुभ।

अरिष्टक—संज्ञा पुं० [सं०] १. रीठा। निर्मली। २. रीठे का वृक्ष।

अरिष्टगृह—संज्ञा पुं० [सं०] सौरगृह [को०]।

अरिष्टनेमि—संज्ञा पुं० [सं०] १. कश्यप प्रजापति का एक नाम। २. हरिवंश के अनुसार कश्यप का एक पुत्र जो विनता से उत्पन्न हुआ था। ३. राजा सगर के श्वशुर का नाम। ४. सोलहवें प्रजापति। ५. जैनियों के बाईसवें तीर्थंकर। ६. हरिवंश के अनुसार वृष्णि का एक प्रपौत्र जो चित्रक का पुत्र था।

अरिष्टमथन—संज्ञा पुं० [सं०] १. विष्णु। २. शिव [को०]।

अरिष्टसूदन—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु का एक नाम।

अरिष्टा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कश्यप ऋषि की स्त्री और दक्ष प्रजापति की पुत्री जिससे गंधर्व उत्पन्न हुए थे। २. कुटकी। ३. पट्टी [को०]।

अरिष्टिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. रीठी। २. कुटकी।

अरिहंतⓅ—संज्ञा पुं० [हिं] दे० 'अर्हंत'। उ०—कै पूजै श्रीकंत नूं, कै पूजै अरिहंत।—बाँकीदास ग्रं०, भा० २, पृ० ६०।

अरिहन[1]—संज्ञा पुं० [सं० अरिघ्न] शत्रुघ्न।

अरिहन[2]—संज्ञा पुं० [सं० अर्हत्] वीतराग। जिन।

अरिहन[3]—संज्ञा पुं० [सं० रन्धन] रेहन। अरहन।

अरिहा[1] वि० [सं० अरिहन्] शत्रुघ्न। शत्रु का नाश करनेवाला।

अरिहा[2]—संज्ञा पुं० लक्ष्मण के छोटे भाई शत्रुघ्न। उ०—(क) बोरौं सबै रघुवंश कुठार की धार में बारन बाजि सरत्थहिं। बान की वायु उड़ाय कै लच्छन लच्छ करौं अरिहा समरत्थहिं।—राम चं०, पृ० ३५। (ख) जूझि गिरे जबहीं अरिहा रन। भाजि गए तबहीं भट के गन।—राम चं०, पृ० १७५।

अरी—अव्य० [सं० अयि] संबोधनार्थक अव्यय जिसका प्रयोग स्त्रियों के ही लिये होता है। उ०—अरी, खरी सटपट परी, बिधु आधैं मग हेरि। संग लगैं मधुपनु लई भागनु गली अँधेरि।—बिहारी र०, दो० ४५६।

अरीझनाⓅ—क्रि०अ० [हिं०] बझ जाना। रीझना। दे० 'अरुझना'।

अरीठा— संज्ञा पुं० [सं० अरिष्टक, प्रा० अरिट्ठा] रीठा।

अरुंतुद[1]—वि० [सं अरुन्तुद] १. मर्मस्थान को तोड़नेवाला। मर्मस्पृक्। उ०—अरुंतुद वाक्य कहतेहो अहो तुम।—साकेत, पृ० ६२। २. दुःखदायी। ३. कठोर बात कहकर चित्त को दुखानेवाले परुषभाषी।

यौ०—अरुंतुदवचन।

अरुंतुद[2]—संज्ञा पुं० शत्रु। वैरी।

अरुंधती—संज्ञा स्त्री० [सं० अरुन्धती] १. वशिष्ठ मुनि की स्त्री। २. दक्ष की एक कन्या जो धर्म से ब्याही गई थी। ३. एक बहुत छोटा तारा जो सप्तर्षि मंडलस्थ वशिष्ठ के पास उगता है। विवाह में इसे वधू को दिखाने का विधान है। सुश्रुत के अनुसार जिसकी मृत्यु समीप होती है वह इस तारे को देख नहीं सकता। ४. तंत्र के अनुसार जिह्वा।

यौ०—**अरुंधतीजानि, अरुंधतीनाथ, अरुंधतीपति** = वशिष्ठ ऋषि। **अरुंधती दर्शन न्याय** = स्थूल से सूक्ष्म की ओर गमन। वि० दे० 'न्याय'।

अरुंषिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक क्षुद्र रोग जिसमें कफ और रक्त के विकार या कृमि के प्रकोप से माथे पर अनेक मुँहवाले फोड़े हो जाते हैं।

अरु[1]—संज्ञा पुं० [सं अरुस्] १. सूर्य। २ रस्म खदिर। ३. मंदार वृक्ष। ४. मर्मस्थान। ५. घाव। जखम। ६. नेत्र। आँख [को०]।

अरु[2]Ⓟ—संयो० [हिं०] दे० 'और'। उ०—सनमुख आयउ दधि अरु मीना। कर पुस्तक दुइ बिप्र प्रबीना।—मानस, १।३०३।

अरुआ—संज्ञा पुं० [सं० आलु] एक प्रकार का बहुत बड़ा जंगली वृक्ष। विशेष—यह बंगाल, मध्यभारत तथा दक्षिण भारत में प्रायः जंगली दशा में पाया जाता है। तथा उत्तरप्रदेश में लगाया जाता है। इसमें चैत वैशाख में पीले फूल लगते हैं। इसकी छाल और पत्तियाँ औषधि के रूप में काम में आती हैं तथा इसकी लकड़ी से ढोल और तलवार की म्यान या इसी प्रकार की अन्य हलकी चीजें बनाई जाती हैं।

अरुई[†]—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अरवी'। उ०—अरुइहिं इमली दई खटाई जेंवत षटरस जात लजाई।—सूर०, १०।१२१३।

अरुकटि—संज्ञा स्त्री०[देश०] एक नगर जो कर्नाटक की राजधानी है। आर्काट। आरकाट।

अरुग्ण—वि० [सं०] नीरोग। रोगरहित।

अरुचि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. रुचि का अभाव। अनिच्छा। २. अग्निमांद्य रोग जिसमें भोजन की इच्छा नहीं होती। ३. घृणा। नफरत। ४. संतोष देनेवाली व्याख्या का अभाव [को०]।

अरुचिकर—वि० [सं०] जिससे अरुचि हो जाय। जो रुचिकर न हो। जो भला न लगे।

अरुचिर—वि० [सं०] १. असुंदर। जो अच्छा न लगे। २. अरुचिकर [को०]।

अरुज्—वि० [सं] रोग से मुक्त। नीरोग [को०]।

अरुज[1]—वि० [सं] नीरोग। रोगरहित। स्वस्थ।

अरुज[2]—संज्ञा पुं० १. अमलतास। २. केसर। ३. सिंदूर।

अरुझनाⓅ—क्रि० अ० [सं अवरुन्धन, प्रा० ओरुज्झ] १. उलझना। फँसना। उ०—(क) पाखन फिरि फिर परा सों फाँदू। उड़ि न सकइ अरुझइ भइ बाँदू।—जायसी (शब्द०)। २. अटकना। ठहरना। अड़ना। उ०—दुख न रहै रघपतिहि बिलोकत तनु न रहै बिनु देखे। करत न प्रान पयान सुनहु सखि अरुझि परी यहि लेखे।—तुलसी ग्रं०, पृ० ३५१। ३. लड़ना भिड़ना। संघर्षरत होना।

अरुझानाⓅ[†]—क्रि० स० [हिं० अरुझना का प्रे० रू०] उलझाना। फँसाना। उ०—नागरि मन गई अरुझाइ। अति विरह तनु भई व्याकुल घरन नैकु सहाइ।—सूर०, १०।६७८।

अरुझाना[२]—क्रि० अ० लिपटना। उलझना। उ०—बिटप बिसाल लता अरुझानी।—तुलसी (शब्द०)। (ख) मेरो मन हरि चितवनि अरुझानो।—सूर०, १०।१६६७।

अरुटु(पु)—वि० [सं० रुष्ट]। नाराज।

अरुट्टना(पु)—क्रि० अ० [सं० रुष्ट] रुष्ट होना। क्रुद्ध होना। उ०—तिन पर तुट्टै बीज जौं, जिन पर राज अरुट्ट। राजकाज संमुह फिरन, दई न कबहू पुट्ठ।—पृ० रा०, ५।५।

अरुण[१]—वि० पुं० [सं०] [वि० स्त्री० अरुणा] लाल। रक्त।

अरुण[२]—संज्ञा पुं० १. सूर्य। २. सूर्य का सारथी। ३. गुड़। ४. ललाई जो संध्या के समय पश्चिम में दिखलाई पड़ती है। ५. एक दानव का नाम। ६. एक प्रकार का कुष्ठ रोग। ७. पुन्नाग वृक्ष। ८. गहरा लाल रंग। ९. कुमकुम। १०. सिंदूर। ११. एक देश। १२. बारह सूर्यों में से एक सूर्य। माघ महीने का सूर्य। १३. एक आचार्य का नाम जो उद्दालक ऋषि के पिता थे १४. एक जहरीला क्षुद्र जंतु [को०]। १५. एक झील जो हिमालय के इस पार है। १६. सोना। स्वर्ण [को०]। १७. एक प्रकार का पुच्छल तारा।

विशेष—इनकी चोटियाँ चँवर की सी होती हैं। ये कृष्ण अरुण वर्ण के होते हैं। इनका फल अनिष्ट है। ये संख्या में ७७ हैं और वायुपुत्र भी कहलाते हैं।

यौ०—**अरुणलोचन। अरुणात्मज। अरुणोदय। अरुणोपल।**

अरुणकर—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य [को०]।

अरुणकिरण—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य [को०]।

अरुणचूड़—संज्ञा पुं० [सं०] कुक्कुट। मुर्गा। अरुणशिखा।

अरुणज्योति—संज्ञा पुं० [सं०] शिव [को०]।

अरुणनेत्र—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अरुणलोचन' [को०]।

अरुणप्रिय—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य [को०]।

अरुणप्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. अप्सरा। २. छाया और संज्ञा, सूर्य की स्त्रियाँ।

अरुणमल्लार—संज्ञा पुं० [सं०] मलार राग का एक भेद। इसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं।

अरुणलोचन—संज्ञा पुं० [सं०] जिसकी आँखें लाल हों। कबूतर [को०]।

अरुणशिखा—संज्ञा पुं० [सं०] कुक्कुट। मुर्गा।

अरुणसारथि—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य [को०]।

अरुणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. मजीठ। २. कोदो। ३. अतिविषा। ४. एक नदी का नाम। ५. मुंडी। ६. निसोथ। त्रिवृता। ७. इंद्रायन। ८. घुँघची। ९. लाल रंग की गाय। १०. उषा। ११. काला अनंतमूल।

अरुणाई—संज्ञा स्त्री० [सं० अरुण + हिं० आई (प्रत्य०)] ललाई। रक्तता। लालिमा।

अरुणाग्रज—संज्ञा पुं० [सं०] गरुड़ [को०]।

अरुणाचल—संज्ञा स्त्री० [सं०] पूरब दिशा।

अरुणात्मज—संज्ञा पुं० [सं०] १. जटायु। २. यम ३. शनि। ४. सुग्रीव। ५. कर्ण [को०]।

अरुणात्मजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. यमुना। २. ताप्ती [को०]।

अरुणानुज—संज्ञा पुं० [सं०] अरुण के लघु भ्राता। गरुड़ [को०]।

अरुणाभ—वि० [सं०] लालिमायुक्त। रक्ताभ [को०]।

अरुणार(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अरुनार'।

अरुणार्चि—संज्ञा पुं० [सं० अरुणार्चिस] सूर्य [को०]।

अरुणावरज—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अरुणानुज'।

अरुणाश्व—संज्ञा पुं० [सं०] मरुत [को०]।

अरुणित—वि० [सं०] लाल किया हुआ।

अरुणिमा—संज्ञा स्त्री० [सं०] ललाई। लालिमा। सुर्खी।

अरुणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. अरुण वर्ण की गाय। २. उषा [को०]।

अरुणोद[१]—संज्ञा पुं० [सं०] १ जैन मतानुसार एक समुद्र जो पृथ्वी को आवेष्टित किए है। २ लाल समुद्र। अरुणोदधि। ३ एक झील [को०]।

अरुणोद[२](पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अरुणोदय'। उ०—पहिलौ मुखराग प्रगट भ्यो प्राची, अरुण कि अरुणोद अंबर।—बेलि०, पृ० १६।

अरुणोदधि—संज्ञा पुं० [सं०] एक सागर जो मिश्र और अरब के मध्य में है। पहले यह स्वेज स्थलडमरूमध्य के द्वारा रूम के समुद्र से पृथक् था पर अब डमरू भंग कर देने से यह रूम के समुद्र से मिल गया है। इंगलिस्तान को भारत से जहाज इसी मार्ग से होकर जाते हैं। लाल सागर।

अरुणोदय—संज्ञा पुं० [सं०] वह काल जब पूर्व दिशा में निकलते हुए सूर्य की लाली दिखाई पड़ती है। यह काल सूर्योदय से दो मुहूर्त या चार दंड पहले होता है। उषाकाल। ब्राह्ममुहूर्त। तड़का। भोर। उ०—देखा तो सुंदर प्राची में अरुणोदय का रसरंग हुआ।—कामायनी, पृ० ७७।

अरुणोदयसप्तमी—संज्ञा स्त्री० [सं०] माघ शुक्ला सप्तमी। इस दिन अरुणोदय में स्नान करना पुण्य माना गया है।

अरुणोपल—संज्ञा पुं० [सं०] पद्मराग मणि। लाल। उ०—जिमि अरुणोपल निकर निहारी।—मानस।

अरुन(पु)—वि०, संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अरुण'। उ०—अरुन अधरनि दसन झांई कहौं उपमा थोरि।—सूर०, १०।२२५।

अरुनई(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अरुणाई'।

अरुनचूड़(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अरुणचूड़'। उ०—प्रात पुनीत काल प्रभु जागे। अरुनचूड़ बर बोलन लागे।—मानस, १।११७।

अरुनता(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अरुणाई'। उ०—लसी मानहु चरनकमलनि अरुनता तजि तरनि।—तुलसी ग्रं०, पृ० २८२।

अरुनशिखा(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अरुणशिखा'। उ०—उठे लखन निसि बिगत सुनि अरुनशिखा धुनि कान।—मानस, १।११५।

अरुनाई—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अरुणाई'। उ०—लसत चरन अंगुली मनोहर, नख दुतिवंत कछुक अरुनाई।—तुलसी ग्रं०, पृ० ३२५।

अरुनाना[१](पु)—क्रि० अ० [सं० अरुण, हिं० 'अरुन' से नाम०] लाल होना। उ०—अँग अँग भूषन और से माँगे कहुँ पाए।

देखि थकित रहिं रूप कौं लोचन अरुनाए ।—सूर०, १०। २५२२ ।

अरुनाना(पु)—क्रि० स० लाल करना । उ०—बल लेन चाहे प्राण अति रिसाइ दृग अरुनाइ कै ।—गोपाल (शब्द०) ।

अरुनारा[२](पु)—वि० [हिं० **अरुन+आरा (प्रत्य०)**] [वि०, स्त्री० **अरुनारी**] लाल रंग का। लाल। उ०—दुइ दुइ दसन अधर अरुनारे । नासा तिलक को बरनै पारे ।—मानस, १।१९६ ।

अरुनोदय(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अरुणोदय' । उ०—अरुनोदय सकुचे कुमुद उडगन जोति मलीन ।—मानस, १।२३८ ।

अरुनोपल(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अरुणोपल' ।

अरुरना[१](पु)—क्रि० अ० [सं० **अरुस=घाव**] दुःखित होना। पीड़ित होना । उ०—लै भुजवल्लरी पल्लव हाथन बल्लव मल्लव मोद बिहारैं। प्यारी के अंगनि रंग चढ़ैं त्यों अनंग कला करुरी नहिं हारैं। ओठन दंत उरोज नखक्षत हू सहि जीतैं तिया पिय हारैं। उरू मरोरनि ज्यों मरुरैं उरही अरुरैं अरुरैंनि निहारे।—देव (शब्द०) ।

अरुरना[१](पु)—क्रि० अ० [सं० **मरोड़**] मुड़ना। सिकुड़ना। संकुचित होना। उ०—नीको दीठ तूख सी, पतूख सी अरुरि अंग ऊख सी मसरि मुख लागति महूख सी ।—देव (शब्द०) ।

अरुराना(पु)—क्रि० स० [हिं० **अरुरना का स० रूप**] १. मरोड़ना। २. सिकोड़ना।

अरुलित(पु)†—वि० [सं० **अरुणित प्रा० अरुलित**] ललाई युक्त। अरुणिमा लिए हुए। उ०—पूर्व दीश अरुलित भेल।—वर्ण०, पृ० १५ ।

अरुवा[१]—संज्ञा पुं० [सं० **अरु**] १. एक लता जिसके पत्ते पान के पत्ते के सदृश होते हैं ।

विशेष—इसकी जड़ में कंद पड़ता है और लता की गाँठों से भी एक सूत निकलता है जो चार पाँच अंगुल बढ़कर मोटा होने लगता है और कंद बन जाता है । इसके कंद की तरकारी बनती है। यह खाने पर कनकनाहट पैदा करता है। बरई लोग इसे पान के भीट पर बोते हैं ।

अरुवा[२]—संज्ञा पुं० [हिं० **रुरुआ**] उल्लू पक्षी ।

अरुष[१]—वि० [सं०] १. अक्रोधी। २. चमकदार। ३. बिना हानि का। अक्षत। ४. चक्कर काटनेवाला, जैसे घोड़ा ।

अरुष[२]—संज्ञा पुं० १. अग्नि का लाल रंग का घोड़ा। २. सूर्य। ३. ज्वाला। ४. रक्त वर्ण के तूफानी बादल [को०] ।

अरुषी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. उषा। २. ज्वाला। ३. और्व की माता जो भृगु की पत्नी थी [को०] ।

अरुष्क—संज्ञा पुं० [सं०] १. भिलावाँ। २. अडूसा ।

अरुष्कर[१]—वि० [सं०] घाव या चोट करनेवाला। क्षतकारक [को०] ।

अरुष्कर[२]—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अरुष्क' [को०] ।

अरुहा—संज्ञा पुं० [सं०] भूधात्री। भुईं आँवला ।

अरू(पु)—संयो० [हिं०] दे० 'अरु'। उ०—और अब दोनों गई तपस्या तो खंडित भई, अरू, उर्बसी हू जात रही ।—हम्मीर रा०, पृ० ३९ ।

अरूक्ष—वि० [सं०] मुलायम। सुकुमार। नाजुक [को०] ।

अरूझना(पु)—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'अरुझना' । उ०—(क) कहूँ लरत गजराज बाघ हरना कहुँ जूझत। मल्लयुद्ध कहुँ होत मेष, वृष, महिष अरूझत ।—गुमान (शब्द०) ।

अरूट(पु)—वि० [सं० **आ+रुष्ठ, प्रा० अरुट्ठ हिं० अरूट**] अत्यंत क्रुद्ध। उ०—भए कइकाल कराल अरूट। लगै जनु क्रोध सुकज्जल कूट। पृ० रा०, ६।१५७ ।

अरूढ़[१](पु)—वि० [सं० **आरूढ़**] दे० 'आरूढ़'

अरूढ़[२]—वि० [सं० **अरुढ़**] जो रुढ़ या प्रचलित न हो। अप्रचलित [को०]।

अरूप[१]—वि० [सं०] रूपरहित। निराकार। उ०—कोइ अरूप ईश्वर मन दीन ।—कबीर (शब्द०)। (ख) अगुन अरूप अलख अज जोइ ।—तुलसी (शब्द०) । बदशकल। भद्दा [को०]। असदृश। बेमेल [को०] ।

अरूप[२]—संज्ञा पुं० १. बदसूरत वस्तु। २. सांख्य में प्रधान और वेदांत में ब्रह्म [को०] ।

अरूपक[१]—संज्ञा पुं० [सं०] बौद्ध दर्शन के अनुसार योगियों की एक भूमि या अवस्था। निर्बीज समाधि ।

विशेष—यह चार प्रकार की होती है—(१) आकाशायतन (२) विज्ञानायतन, (३) अकिंचनायतन, और (४) नैवसंज्ञा संज्ञायतन ।

अरूपक[२]—वि० १. अलंकारविहीन। अभिधात्मक। २. आकृति वा आकार से विहीन [को०] ।

अरूपहार्य—वि० [सं०] जो सौंदर्य द्वारा आकर्षित या परास्त न हो सके ।

अरूपावचर—संज्ञा पुं० [सं०] बौद्ध दर्शन के अनुसार चित्त की वृत्ति का वह भेद जिससे अरूप लोक का ज्ञान प्राप्त होता है ।

विशेष—यह बारह प्रकार की होती है—चार प्रकार की कुशल वृत्ति चार प्रकार की विपाक वृत्ति और चार प्रकार की क्रिया वृत्ति ।

अरूपी—वि० [सं० **अरूपिन्**] बिना रूपवाला। रूप या आकार विहीन [को०] ।

अरूरना(पु)—क्रि० अ० [सं० **अरुस्=घाव**] दुःखित होना। पीड़ित होना ।

अरूलना(पु)—क्रि० अ० [**अरुत=क्षत, घाव**] छिदना। छिदना। चुभना। उ०—छत आजुको देखि कहौगी कहा छतिया नित ऐसे अरूलति है ।—देव (शब्द०) ।

अरूष—संज्ञा पुं० [सं०] १. सूर्य। २. एक प्रकार का साँप [को०] ।

अरूस†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अडूसा' ।

अरे—अव्य० [सं०] १. एक संबोधनार्थक अव्यय। ए। ओ। जैसे—अरे मिठाईवाले! इधर आ। २. एक आश्चर्यसूचक अव्यय। जैसे—अरे! देखते ही देखते इसे क्या हो गया ।

अरेणु[१]—वि० [सं०] १. धूलविहीन। धूलरहित। २. अपार्थिव [को०]।

अरेणु[२]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. जो धूल न हो। अधूलि। २. देवी देवता [को०] ।

अरेप—वि० [सं० **अपरेस**] १. पाप या कलंकरहित। २ शुद्ध। स्वच्छ। कांतिमान् [को०]।

अरेरना(पु)—क्रि० अ० [सं० ऋ = जाना] रगड़ना। उ०—भौंहैं अरा लै अरेरति है। उरकोर कटाक्षन ओर अराए।—देव (शब्द०)।

अरेरे—अव्य० [सं०] क्रोधोद्‌गार तथा निम्नता सूचक संबोधन। २. या दुःखसूचक उद्‌गार। जैसे—अरेरे! उनका निधन हो गया।

अरेस(पु)†—[हिं०] दे० 'अरेह'। उ०—पिड़ जुड़वा भड़ पाँच सौ, गहिया अडिग अरेस।—रा० रू०, पृ० ३१।

अरेह(पु)—वि [सं० अरेख = दाग रहित] हार न माननेवाला। उ०—ग्राद नाथ लख धीर अरेहा। अै मछरीक ढाल दत एहा।—रा० रू०, पृ० ३१४।

अरैल—वि० [हिं० अरना] हठी। जिद्दी। उ०—कोऊ नाहिंनै जो बरजै निडर छैल अररानो हौं परत डरत नहिं रोकत रहत मग बनि अरैल।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २. पृ० ३६५।

अरैली—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की झाड़ी जिसके डठलों आदि से नेपाली कागज बनता है। वि दे० 'कघुती'।

अरोक¹—वि० [सं० अ + हिं० रोक] न रुकनेवाला। अबाध्य। उ०—तीन लोक माहिं देव मुनि थोक माहिं जाय विकम अरोक सोक ओक करि दियो है।—गोपाल (शब्द०)।

अरोक²—वि० [सं०] १. प्रभाहीन। बिना कांतिवाला। २. जिसमें छिद्र न हो। अच्छिद्र।

यौ०—अरोकदंत, अरोकदंत् = (१) जिसके दाँत काले या बदरंग हों। (२) घने या निविड़ दाँतोंवाला।

अरोग—वि० [सं०] रोगरहित। नीरोग।

अरोगना(पु)—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'अरोगना'। उ०—नंद भमन मैं कान्ह अरोगैं। जसुदा ल्यावैं षटरस भोगैं।—सूर०, १०। ३९६।

अरोगी—वि० [सं०] जो रोगी न हो। नीरोग। चंगा।

अरोच(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अरुचि] रुचि का अभाव। अनिच्छा। त्याग। उ०—मोचु पंच बान को अरोचु अभिमान को ये सोचु पति प्राण को सकोच सखियान को।—देव (शब्द०)।

अरोचक¹—संज्ञा पुं० [सं०] एक रोग जिसमें अन्न आदि का स्वाद मुँह में नहीं मिलता।

विशेष—यह दुर्गंधयुक्त और घिनौनी चीजें खाने और घिनौना रूप देखने तथा त्रिदोष के प्रकोप से उत्पन्न होता है। इसके प्रधान पाँच भेद हैं—(१) वातज, (२) पित्तज, (३) कफज (४) सन्निपातज और (५) शोकादि से उत्पन्न। २. अरुचि।

अरोचक²—वि० जो रुचे नहीं। अरुचिकर। उ०—सुनि अघाई बतलाइ उत सुआसने तिय बैन। हठि कत लाल बोलाइअत मोहि अरोचक ऐन।—भिखारी ग्रं०, भा० १, पृ० ५४।

अरोचकी—वि० [सं० अरोचकिन्] १. मंदाग्नि से पीड़ित। २. सुरुचिसंपन्न। परिमार्जित रुचिवाला [को०]।

अरोड़—वि० [अरुढ] शूर वीर। वीर।—डिं०।

अरोड़ा—संज्ञा पुं० [सं० आरूढ] [स्त्री० अरोड़ी अरोड़िन] पंजाब की एक जाति जो अपने को खत्रियों के अंतर्गत मानती है।

अरोध्य—वि० [सं०] जिसकी चाल रोकी न जा सके। अबाध गति वाला [को०]।

अरोप—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आरोप'। उ०—सदृस वाक्यजुग अरथ को करिए एक अरोप।—भूषण ग्रं०, पृ० ३०।

अरोर(पु)—वि० [हिं०] रोर रहित। शांत [को०]।

अरोष—वि [सं०] रोषरहित। क्रोधविहीन। उ०—अड़ भरे आदरु करै धरै अरोष विधान।—भिखारी ग्रं०, भा १, पृ० १०।

अरोहण—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आरोहण'।—रिषि कस्यप अरोहण कमठ श्रृंगार रस।— रघु० रू, पृ० ५३।

अरोहन(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आरोहण'।

अरोहना(पु)—क्रि० अ० [सं० आरोहण] चढ़ना। सवार होना।

अरोही¹(पु)—वि० [सं० आरोही] सवार होनेवाला।

अरोही²(पु)—संज्ञा पुं० आरोही। सवार।

अरौसपरौस(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं] दे० 'अड़ोस पड़ोस'। उ०—गंग नहावन को नर नारि, चले हैं अरौस परौस के सोऊ।—पोद्दार० अभि०, ग्रं० पृ० ५७४।

अर्क¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. सूर्य। २. इंद्र। ३. ताँबा। ४. स्फटिक। ५. विष्णु। ६. पंडित। ७. आक। मदार। उ०—अर्क जवास पात बिनु भएउ।—मानस, ४।१५। ८. ज्येष्ठ भाई। ९. आदित्यवारा। १०, उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र। ११. बारह की संख्या। १२. प्रकाशकिरण [को०]। १३. अग्नि [को०]। १४. एक धार्मिक कृत्य [को०]। १५. स्तुति। स्तोत्र [को०]। १६. भोजन। खाद्य पदार्थ [को०]। १७. सूर्यकांतमणि [को०]।

अर्क²—वि० पूजनीय। अर्चनीय।

अर्क³—संज्ञा पुं० [अ० अरक] किसी चीज का निचोड़ा हुआ रस। रॉग। वि० दे० 'अरक'।

यौ०—अर्क बादियान = सौंफ का अर्क।

अर्ककांत—संज्ञा पुं० [सं० अर्ककान्त] ११ मंजिलों का भवन [को०]।

अर्ककांता—संज्ञा स्त्री० [सं० अर्ककान्ता] हुरहुर का क्षुप [को०]।

अर्कक्षेत्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. सिंह राशि। २. उड़ीसा स्थित एक पवित्र स्थान [को०]।

अर्कगीर—संज्ञा पुं० [अ० अरक + फा० गीर] वह जो इत्र चुआने का काम करता है।

अर्कग्रह—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्यग्रहण [को०]।

अर्कचंदन—संज्ञा पुं० [सं० अर्कचन्दन] रक्त चंदन। लाल चंदन।

अर्कज—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य के पुत्र—१. यम। १. शनि। ३. अश्विनीकुमार। ४. सुग्रीव। ५. कर्ण।

अर्कजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] सूर्य की कन्या—१. यमुना। ताप्ती।

अर्कतनय—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य का पुत्र। कर्ण, यम, शनि, वैवस्वत और सावर्णि मनु आदि [को०]।

अर्कदिन—संज्ञा पुं० [सं०] रविवार [को०]।

अर्कनंदन—संज्ञा पुं० [सं० अर्कनन्दन] दे० 'अर्कतनय' [को०]।

अर्कनयन—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य चंद्रमा जिसके नेत्र हैं वह—विराट् पुरुष।

अर्कननी—संज्ञा पुं० [अ० अरकनाना] सिरके के साथ भभके में उतारा हुआ पुदीने का अर्क।

अर्कपत्रा--संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सुनंदा। २. एक लता जो विष की ओषधि है। अर्कमूल।

अर्कपर्ण--संज्ञा पुं० [सं०] १. मदार का वृक्ष। २. मदार का पत्ता।

अर्कपुष्पी--संज्ञा पुं० [सं०] सूर्यमुखी।

अर्कप्रिया--संज्ञा स्त्री० [सं०] जवा। जपा। अड़हुल। गुड़हर।

अर्कबंधु--संज्ञा पुं० [सं०] १. गौतम बुद्ध। २. पद्म।

अर्कभ--संज्ञा पुं० [सं०] १. वह नक्षत्र जो सूर्य द्वारा आक्रांत हो। जिस नक्षत्र में सूर्य हो वह नक्षत्र। २ सिंह राशि। ३. उत्तरा फाल्गुनी।

अर्कभक्ता--संज्ञा स्त्री० [सं०] हुरहुर का पौधा। हुड़हुड़।

अर्कमूल--संज्ञा पुं० [सं०] इसरमूल लता। रुहिमूल। अहिगंध।

विशेष--इसकी जड़ साँप के काटने में दी जाती है। बिच्छू के डंक मारने में भी उपयोगी होती है। यह पिलाई और ऊपर लगाई जाती है। स्त्रियों के मासिक धर्म को खोलने के लिये भी यह दी जाती है। कालीमिर्च के साथ हैजा अतीसार आदि पेट के रोगों में पिलाई जाती है। पत्ते का रस कुछ मादक होता है। छिलका पेट की बीमारियों में दिया जाता है। रस की मात्रा ३० से १०० बूँद तक है।

अर्कवर्ष--संज्ञा पुं० [सं०] सौर वर्ष [को०]।

अर्कवल्लभ--संज्ञा पुं० [सं०] १. बंधुजीव। दुपहरिया। २. कमल [को०]।

अर्कवल्लभा--संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बंधुजीव। दुपहरिया। २. कमल [को०]।

अर्कविवाह--संज्ञा पुं० [सं०] मदार के वृक्ष से किया जानेवाला विवाह।

विशेष--तीसरे विवाह के पूर्व मदार के साथ विवाह करने का विधान है। तीसरी पत्नी या तीसरा विवाह शुभ नहीं माना गया है। अतः मदार के साथ विवाह कर के उस विवाह को चौथा मान लिया जाता है।

अर्कवेध--संज्ञा पुं० [सं०] तालीशपत्र।

अर्कव्रत--संज्ञा स्त्री० [सं०] १. एक व्रत जो माघ शुक्ला सप्तमी को पड़ता है। २. राजा का प्रजा की वृद्धि के लिये उनसे कर लेना। जैसे सूर्य बारह महीने अपनी किरणों से जल खींचता है और चार महीने उसे प्रजा की वृद्धि के लिये बरसाता है, उसी प्रकार राजा का प्रजा से कर लेकर उनकी वृद्धि में उसे लगाना।

अर्कसुत--संज्ञा पुं० [सं०] यम। उ०--अर्कसुत की त्रास माहीं कृष्न रामहिं काम।--ब्रजनिधि ग्रं०, पृ० १६०।

अर्कसोदर--संज्ञा पुं० सूर्य का भाई। ऐरावत [को०]।

अर्काश्मा--संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार का छोटा नगीना। अरुणोपल। चुन्नी। २. सूर्यकांतमणि।

अर्कोपल--संज्ञा पुं० [सं०] सूर्यकांतमणि। लाल पद्मराग।

अर्गजा(पु)--संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अरगजा'।

अर्गल--संज्ञा पुं० [सं०] वह लकड़ी जिसे किवाड़ बंद करके पीछे से आड़ी लगा देते हैं जिससे किवाड़ बाहर से न खुले। अरगल। अगरी। ब्योंड़ा। २. किवाड़। ३. अवरोध। ४. कल्लोल। लहर। ५. वे रंगबिरंगे बादल जो सूर्योदय या सूर्यास्त के समय पूर्व या पश्चिम दिशा में दिखाई पड़ते हैं और जिनमें होकर सूर्य का उदय या अस्त होता है। ६. मांस। ७. एक नरक [को०]।

अर्गला--संज्ञा स्त्री० [सं०] १. अरगल। अगरी। २. ब्योंड़ा। ३. बिल्ली। किल्ली। सिटकिनी। ४. जंजीर जिसमें हाथी बाँधा जाता है। सिक्कड़। ५. एक स्तोत्र जिसका दुर्गासप्तशती आदि में पाठ करते हैं। मत्स्य सूक्त। ६. अवरोध। ७. बाधक। अवरोधक। रुकावट डालनेवाला।

अर्गलिका--संज्ञा स्त्री० [सं०] अर्गला का छोटा रूप। छोटी अगरी [को०]।

अर्गलित--वि० [सं०] सिटकिनी या अर्गला से बंद किया हुआ। [को०]।

अर्गली[1]--संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अर्गला' [को०]।

अर्गली[2]--संज्ञा स्त्री० [देश०] भेड़िए की एक जाति जो मिस्र, शाम आदि देशों में होती है।

अर्गवनी--वि० [हिं०] दे० 'अर्गवान'। उ०--उस गहरे अर्गवनी रंग के पर्दे पर ऊँची काली चोटियाँ निश्चल, शांत और गंभीर खड़ी थीं।--पिंजरे०, पृ० ६।

अर्गवानी--वि० [फा०] अर्गवान नामक फूल के रंग का। सुर्ख [को०]।

अर्घ--संज्ञा पुं० [सं०] १. षोडशोपचार में से एक। जल, दूध, कुशाग्र, दही, सरसों, तंडुल और जव को मिलाकर देवता को अर्पण करना। २. अर्घ देने का पदार्थ। ३. जलदान। सामने जल गिराना। ४. हाथ धोने के लिये जो जल दिया जाय। ५. हाथ धोने के लिये जल देना। ६. मूल्य। दाम। ७. वह मोती जो एक धरण तौल में २५ चढ़े। ८. भेंट। ९. जल से संमानार्थ सींचना। १०. मधु। शहद। ११. घोड़ा। अश्व।

क्रि० प्र०--देना। करना।

यौ०--अर्घपाद्य = हाथ पैर धोने के निमित्त दिया जानेवाला जल।

अर्घट--संज्ञा पुं० [संज्ञा] भस्म। राख।

अर्घपतन--संज्ञा पुं० [सं०] भाव का गिरना। माल की कीमत बाजार में कम होना।

अर्घपात्र--संज्ञा पुं० [सं०] ताँबे का एक बर्तन जो शंख के आकार का होता है और जिससे सूर्य आदि देवताओं को अर्घ दिया जाता है या पितरों का तर्पण किया जाता है। अर्घा।

अर्घबलाबल--संज्ञा पुं० [सं०] १. उचित मूल्य। २. सस्ता या महँगा दाम। कीमतों का चढ़ाव उतार [को०]।

अर्घवर्णांतर--संज्ञा पुं० [सं० अर्घवर्णान्तर] अच्छे माल में घटिया माल मिलाकर अच्छे लाल के दाम पर बेंचना।

विशेष--ऐसा करनेवाले को चंद्रगुप्त के समय में २०० पण तक जुर्माना होता था।

अर्घवर्धन--संज्ञा पुं० [सं०] कीमत बढ़ाना।

विशेष--कौटिल्य ने इसे अपराध माना है और इस प्रकार दाम बढ़ानेवाले व्यापारी पर २०० पण तक जुर्माना लिखा है।

अर्घवृद्धि--संज्ञा स्त्री० [सं०] माल की दर बढ़ना। बाजार में किसी माल की कीमत चढ़ना।

अर्घसंस्थापन--संज्ञा पुं० [सं०] वस्तुओं का मूल्य निश्चित करना। मूल्यनियंत्रण [को०]।

अर्घा[1]—संज्ञा पुं० [सं० अर्घ] १. ताँबे या अन्य धातु का बना हुआ थूहर के पत्ते या शंख के आकार का एक पात्र जिससे अर्घ देते हैं। पितरों का तर्पण भी इससे किया जाता है। २. जलधरी।

अर्घा[2]—संज्ञा स्त्री० [सं०] २० मोतियों का लच्छा जिसकी तौल ३२ रत्ती हो।

विशेष—वाराहमिहिर के समय में एक अर्घा १७० कार्षापण में बिकता था।

अर्घापचय—संज्ञा पुं० [सं०] मूल्य गिरना [को०]।

अर्घीश—संज्ञा पुं० [सं०] शिव [को०]।

अर्घेश्वर—संज्ञा पुं० [सं०] शिव। महादेव [को०]।

अर्घ्य[1]—वि० [सं०] १. पूजनीय। २. बहुमूल्य। ३. पूजा में देने योग्य (जल, फूल, मूल आदि)। ४. भेंट देने योग्य।

अर्घ्य[2]—संज्ञा पुं० [सं०] जिस वन में जरत्कारु मुनि व्रत करते थे वहाँ का मधु।

अर्चक—वि० [सं०] पूजा करनेवाला। पूजक।

अर्चन[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. पूजा। पूजन। २. आदर। सत्कार।

अर्चन[2]—संज्ञा पुं० [देश०] घुंडी जिसपर दूर दूर कलाबत्तू लपेटा हो।

अर्चना[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] पूजा। पूजन।

अर्चना[2]Ⓟ—क्रि स० [हिं०] दे० 'अरचना'।

अर्चनीय—वि० [सं०] १. पूजनीय। पूजा करने योग्य। २. आदरणीय।

अर्चमान—वि० [सं०] पूजनीय। अर्चनीय। उ०—विचारमान ब्रह्म, देव अर्चमान मानिए।—राम चं०, पृ० ,३।

अर्चा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पूजा। २. प्रतिमा।

अर्चि—संज्ञा स्त्री० [सं० अर्चिस्] १. अग्नि आदि की शिखा। उ०—शुष्क डालियों से वृक्षों की अग्नि अर्चियाँ हुई समिद्ध—कामायनी, पृ०''। २. दीप्ति। तेज। ३. किरण।

अर्चित[1]—वि० [सं०] १. पूजित। २. आदृत। आदरप्राप्त।

अर्चित[2]—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

अर्चिती—वि० [सं० अर्चितिन्] आराधना करनेवाला [को०]।

अर्चिमान—वि० [सं०] प्रकाशमान। चमकता हुआ।

अर्चिमाल्य—संज्ञा पुं० [सं०] वामीकि के अनुसार एक बंदर जो महर्षि मरीचि का पुत्र था।

अर्चिरादिमार्ग—संज्ञा पुं० [सं०] देवयान। उत्तर मार्ग।

अर्चिष्मती—संज्ञा स्त्री० [सं०] अग्निपुरी। अग्निलोक।

अर्चिष्मान[1]—संज्ञा पुं० [सं० अर्चिष्मत्] [स्त्री० अर्चिष्मती] १. सूर्य। २. अग्नि। ३. देवताओं का एक भेद ४. वाल्मीकि के अनुसार एक बंदर जो महर्षि मरीचि का पुत्र था।

अर्चिष्मान[2]—वि० दीप्त। प्रकाशमान।

अर्ज—संज्ञा पुं० [अ० अर्ज] १. विनती। विनय।

क्रि० प्र०—करना=प्रार्थना करना। कहना। निवेदन करना।

२. चौड़ाई। आयत।

अर्जइरसाल—संज्ञा पुं० [फा०] वह पत्र जिसके द्वारा रुपया खजाने में दाखिल किया जाता है। चलान।

अर्जक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] बनतुलसी। बंबई।

अर्जक[2]—वि० उपार्जन करनेवाला। पैदा करनेवाला [को०]।

अर्जदाश्त—संज्ञा स्त्री० [फा०] निवेदनपत्र। प्रार्थनापत्र।

क्रि० प्र०—करना।—देना।—भेजना।

अर्जन—संज्ञापुं० [सं०] १. उपार्जन। पैदा करना। कमाना। २.संग्रह करना। संग्रह।

क्रि० प्र०—करना।

अर्जनीय—वि० [सं०] १. संग्रह करने योग्य। २. ग्रहण करने योग्य। प्राप्त करने योग्य।

अर्जमाⓅ—संज्ञा पुं० [सं० अर्यमा] दे० 'अर्यमा'।

अर्जस्तⓅ—संज्ञा स्त्री० [फा० अर्जदाश्त] दे० 'अर्जदाश्त'। उ०—पंग काज अर्जस्त चलावहु।—प० रासो, पृ० ६७।

अर्जित—वि० [सं०] १. संग्रह किया हुआ। संग्रहीत। २. प्राप्त किया हुआ। कमाया हुआ। प्राप्त।

अर्जी—संज्ञा स्त्री० [फा० अर्जी] प्रार्थनापत्र। निवेदनपत्र।

अर्जीदावा—संज्ञा स्त्री० [फा० अर्जीदावा] वह निवेदनपत्र को अदालत दीवानी या माल में किसी दादरसी के लिए दिया जाय।

अर्जीनवीस—वि० [फा० अर्जीनवीस] प्रार्थनापत्र या निवेदनपत्र लिखनेवाला [को०]।

अर्जीनालिश—संज्ञा पुं० [फा० अर्जी नालिश] दे० 'अर्जीदावा' [को०]।

अर्जीमरंमत—संज्ञा स्त्री० [फा० अर्जी मरम्मत] वह आवेदनपत्र जो किसी पूर्व आवेदनपत्र में छूटी हुई बातों को बढ़ाने या अशुद्धि को शोधने आदि के लिये दिया जाय।

अर्जुन[1]—संज्ञा पुं०[सं०] १. वह वृक्ष जो दक्खिन से अवध तक नदियों के किनारे होता है।

विशेष—यह बरमा और लंका में भी होता है। इसके पत्ते टसर के कीड़ों को खिलाए जाते हैं। छाल, चमड़ा सिझाने, रंग बनाने तथा दवा के काम में आती है। इससे एक स्वच्छ गोंद निकलती है जो दवा के काम में आती है। लकड़ी से खेती के औजार तथा नाव और गाड़ी आदि बनती है। इसको जलाने से राख में चूने का भाग अधिक निकलता है।

पर्या०—शिवमल्ल। शंबर। ककुभ। काहू।

२. पाँच पांडवों में से मँझले का नाम। ये बड़े वीर और धनुर्विद्या में निपुण थे।

पर्या०—फाल्गुन। जिष्णु। किरीटी। श्वेतवाहन। वृहन्नल। घनंजय। पार्थ। कपिध्वज। सव्यसाची। गांडीवधन्वा। गांडीवी। वीभत्सु। पांडुनंदन। गुडाकेश। मध्यम पांडव। विजय। राधाभेदी ऐंद्रि।

३. हैहयवंशी एक राजा। सहस्रार्जुन। ४. सफेद कनैल। ५. मोर। ६. आँख का एक रोग जिसमें आँख में सफेद छीटे पड़ जाते हैं। फूली। ७. एकलौता बेटा। ८. अर्जुन (वैदिक)। ९. इंद्र [को०]। १०. चाँदी [को०]। ११. सोना [को०]। १२. दूब [को०]। १३. सफेद रंग [को०]।

अर्जुन[2]—वि० १. उज्वल। सफेद। २. शुभ्र। स्वच्छ।

अर्जुनक—वि० [सं०] १. अर्जुन संबंधी। १. अर्जुन की पूजा करनेवाला [को०]।

अर्जुनच्छवि—वि० [सं०] सफेद। सफेद रंगवाला [को०]।
अर्जुनध्वज—संज्ञा पुं० [सं०] सफेद ध्वजवाला। हनूमान [को०]।
अर्जुनपाकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक पौधा तथा उसका फल [को०]।
अर्जुन बदर—संज्ञा पुं० [सं०] अर्जुन नामक पौधे का रेशा [को०]।
अर्जुनसखा—संज्ञा पुं० [सं०] अर्जुन के मित्र श्रीकृष्ण [को०]।
अर्जुनायन—संज्ञा पुं० [सं०] वराहमिहिर के अनुसार उत्तर का एक देश।
अर्जुनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बाहुदा या करतोया नदी जो हिमालय से निकलकर गंगा में मिलती है। २. सफेद रंग की गाय। ३. कुटनी। ४. अनिरुद्ध की पत्नी। उषा का नाम। ५. एक सर्प जाति [को०]।
अर्जुनोपम—संज्ञा पुं० [सं०] सागौन या टीक नामक वृक्ष [को०]।
अर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] १. वर्ण। अक्षर। जैसे, पंचार्ण=पंचाक्षर। २. जल। पानी।
यौ०—**दशार्ण**=एक देश। **दशार्णा**=मालवा की एक नदी।
३. एक दंडक वृत्त जिसके प्रत्येक चरण में दो नगण और आठ रगण होते हैं। यह प्रचित का एक भेद है। ४. सागौन। शाल वृक्ष। ५. रंग [को०]। ६. शोरगुल। युद्धघोष [को०]। ७. जलप्रवाह (को०)।
अर्णव—संज्ञा पुं० [सं०] १ समुद्र। २. सूर्य। ३. इंद्र। ४. अंतरिक्ष। ५. दंडक वृत्त का एक भेद जिसके प्रत्येक चरण में २. नगण और ६ रगण होते हैं। यह प्रचित का एक भेद है। ६. चार की संख्या। ७. रत्न। मणि। जवाहिर। ८. प्रवाह। धारा [को०]।
अर्णवज—संज्ञा पुं० [सं०] समुद्रफेन [को०]।
अर्णवनेमि—संज्ञा स्त्री० [सं०] पृथ्वी [को०]।
अर्णवपति—संज्ञा पुं० [सं०] सागर। समुद्र [को०]।
अर्णवपोत—संज्ञा पुं० [सं०] जलयान। पानी का जहाज [को०]।
अर्णवमंदिर—संज्ञा पुं० [सं० **अर्णवमन्दिर**] १. वरुण। २. विष्णु [को०]
अर्णवमल—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अर्णवज' [को०]।
अर्णवयान—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अर्णवपोत' [को०]।
अर्णवोद्भव—संज्ञा पुं० [सं०] १. अग्निजार नाम का पौधा। चंद्रमा। ३. अमृत [को०]।
अर्णवोद्भवा—संज्ञा स्त्री० [सं०] अर्णव से उत्पन्न—लक्ष्मी [को०]।
अर्णस—वि० [सं०] १. तरंगपूर्ण। २. फेनिल [को०]।
अर्णस्वान्[1]—संज्ञा पुं० [सं० **अर्णस्वत्**] सागर [को०]।
अर्णस्वान्[2]—वि० अतिशय जलवाला [को०]।
अर्णा—संज्ञा स्त्री० [सं०] नदी।
अर्णोद—संज्ञा पुं० [सं०] १. बादल। मुस्तक नाम का पौधा। मोथा [को०]।
अर्णोनिधि—संज्ञा पुं० [सं०] सागर। समुद्र [को०]।
अर्णोरुह—संज्ञा पुं० [सं०] कमल [को०]।
अर्तगल—संज्ञा पुं० [सं०] नीलझिंटी। नीली कटसरैया [को०]।
अर्तन[1]—संज्ञा पुं० [सं०] निंदा [को०]।
अर्तन[2]—वि० १. निंदा करनेवाला। २. दुःखी। खिन्न [को०]।
अर्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० **अर्तित**] १. पीड़ा। व्यथा। २. धनुष की कोटि। धनुष के दोनों छोर।
अर्तिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] (नाटक में) बड़ी बहन [को०]।
अर्थ—संज्ञा पुं० [सं०] १. शब्द का अभिप्राय। मनुष्य के हृदय का आशय जो शब्द से प्रकट हो। शब्द की शक्ति।
विशेष—साहित्यशास्त्र में अर्थ तीन प्रकार का माना गया है—(क) अभिधा से वाच्यार्थ, (ख) लक्षणा से लक्ष्यार्थ और (ग) व्यंजना से व्यंग्यार्थ।
क्रि० प्र०—**करना**।—**लगाना**।—**बैठाना**।
२. अभिप्राय। प्रयोजन। मतलब। जैसे—'वह किस अर्थ से यहाँ आया है' (शब्द०)। ३. काम। इष्ट। उ०—'यहाँ बैठने से तुम्हारा कुछ अर्थ न निकलेगा'। (शब्द०)।
क्रि० प्र०—**निकलना**।—**निकालना**।—**सधना**। **साधना**।
४. हेतु। निमित्त। जैसे—'विद्या के अर्थ प्रयत्न करना चाहिए' (शब्द०)। ५. इंद्रियों के विषय। ये पाँच हैं—शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध। ६. चतुर्वर्ग में से एक। धन। संपत्ति। ७. अर्थशास्त्र के अनुसार मित्र, पशु, भूमि, धन, धान्य आदि की प्राप्ति और वृद्धि। ८. कुंडली में लग्न से दुसरा घर। ९. कारण [को०]। १०. वस्तु। पदार्थ [को०]। ११. लाभ। प्राप्ति [को०]। १२. याचना। प्रार्थना [को०]। १३. वास्तविक स्थिति [को०]। १४. तौर तरीका। ढंग [को०]। १५. रोक। रुकावट [को०]। १६. मूल्य [को०] १७. परिणाम। नतीजा [को०]। १८. धर्म का एक पुत्र [को०]। १९. विष्णु २०. [को०] पूर्वमीमांसा के अनुसार एक श्रेणी अपूर्व [को०]। २१. शक्ति [को०]। २२. दावा [को०]।
यौ०—अनर्थ। अभ्यर्थना। समर्थ। समर्थन। सार्थक। निरर्थक। अर्थपति। अर्थगौरव। अर्थकृच्छ्र। अर्थकरी। अर्थापत्ति। अर्थांतर। अर्थवान्।
अर्थकर—वि० पुं० [सं०] [स्त्री० **अर्थकरी**] १. जिससे धन उपार्जन किया जाय। लाभकारी, जैसे—अर्थकरी विद्या।
अर्थकर्म—संज्ञा पुं० [सं०] १. मुख्य या प्रधान काम। २. फलदायक कार्य [को०]।
अर्थकाम—वि० [सं०] धन की इच्छा रखनेवाला [को०]।
अर्थकिल्विषी—वि० [सं० **अर्थकिल्विषिन्**] जो लेनदेन में शुद्ध व्यवहार न रखे। बेईमान।
अर्थकृच्छ्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. धन की कमी। दरिद्रता। २. राज्य की आर्थिक तंगी। राज्यकर से व्यय का बढ़ना।
विशेष—कौटिल्य के अनुसार ऐसी तंगी में चंद्रगुप्त के समय में राज्य जनता से संपूर्ण राज्यकर एक दम से माँग लेता था।
अर्थकोविद—वि० [सं०] अनुभवी। विशेषज्ञ [को०]।
अर्थगत—वि० [सं०] शब्द के अर्थ पर आश्रित [को०]।
अर्थगर्भ—वि० [सं०] जिसमें अर्थ भरा हो। अर्थयुक्त [को०]।
अर्थगृह—संज्ञा पुं० [सं०] कोष। खजाना। जहाँ रुपया पैसा रखा जाता हो [को०]।

अर्थगौरव—संज्ञा पुं० [सं०] किसी शब्द या वाक्य में अर्थ की गंभीरता ।

अर्थघ्न—वि० [सं०] अपव्ययी । फजूलखर्च [को०] ।

अर्थचर—संज्ञा पुं० [सं०] सरकारी नौकर ।

अर्थचिंतक—संज्ञा पुं० [सं० **अर्थचिन्तक**] वह मंत्री जो राज्य के आयव्यय पर ध्यान रखे । अर्थसचिव । मशीरमाल ।

अर्थचिंतन—संज्ञा पुं० [सं० **अर्थचिन्तन**] १. अर्थ (माने) के लिये चिंतन । २. धन के लिये सोचना [को०] ।

अर्थचिंता—संज्ञा स्त्री० [सं० **अर्थचिन्ता**] अर्थ या धन संबंधी चिंता[को०]।

अर्थजात—वि० [सं०] १. अर्थ से भरा हुआ । २. धनी [को०] ।

अर्थज्ञ—वि० [सं०] उद्देश्य या मतलब समझनेवाला [को०] ।

अर्थतः—अव्य [सं०] १. वास्तव में । सचमुच । वस्तुतः । २. अर्थ की दृष्टि से [को०] ।

अर्थदंड—संज्ञा पुं० [सं० **अर्थदण्ड**] वह धन जो किसी अपराध के दंड में अपराधी से लिया जाय । जुर्माना ।

अर्थद[1]—वि० [सं०] [स्त्री० **अर्थदा**] धन देनेवाला ।

अर्थद[2]—संज्ञा पुं० १. कुबेर । २. दस प्रकार के शिष्यों में से एक । वह जो धन देकर विद्या पढ़े ।

अर्थदर्शक—संज्ञा पुं० [सं०] वह जो अर्थसंबंधी मुकदमों पर विचार करता है [को०] ।

अर्थदूषण—संज्ञा पुं० [सं०] १. फिजूलखर्च । अपव्यय । २. अन्याय या धोखे से दूसरे की संपत्ति लेना । ३. अर्थ (माने) में गलती पाना । ४. दूसरे की संपत्ति को नष्ट भ्रष्ट करना [को०]।

अर्थदोष—संज्ञा पुं० [सं०] १. अर्थसंबंधी दोष । २. साहित्य में चार दोषों में एक [को०] ।

अर्थना[1]ⓟ—क्रि० स० [सं० **अर्थ**] माँगना । याचना करना ।

अर्थना[2]—संज्ञा स्त्री० [सं०] याचना । निवेदन । प्रार्थना । २. अर्जी-दावा [को०] ।

अर्थन्यायालय—संज्ञा पुं० [सं०] वह न्यायालय जहाँ अर्थसंबंधी मुकदमों का निर्णय होता है ।

अर्थपति—संज्ञा पुं० [सं०] १. कुबेर । २. राजा ।

अर्थपिशाच[1]—वि० [सं०] जो द्रव्य का संग्रह करने में कर्तव्याकर्तव्य पर विचार न करे । धनलोलुप ।

अर्थपिशाच[2]—संज्ञापुं०[सं०] वह जो धन का अत्यंत लोभ करता है।

अर्थप्रकृति—संज्ञा स्त्री० [सं०] नाटकों में आनेवाली पाँच महत्वपूर्ण स्थितियाँ—१. बीज, २. बिंदु, ३. पताका, ४. प्रकरी और ५. कार्य ।

अर्थबंध—संज्ञा पुं० [सं० **अर्थबन्ध**] छंद में शब्द आदि का उचित प्रयोग । पद्यरचना ।

अर्थबुद्धि—वि० [सं०] स्वार्थपरायण [को०] ।

अर्थबोध—संज्ञा पुं० [सं०] वास्तविक अर्थ का ज्ञान [को०] ।

अर्थभाक्—संज्ञा पुं० [सं० **अर्थभाज्**] जायदाद में हिस्सा पानेवाला । हकदार [को०] ।

अर्थभृत—संज्ञा पुं०[सं०] अधिक तनखाह में नकद रुपया लेकर काम करनेवाला व्यक्ति ।

अर्थभ्रंश—संज्ञा पुं०[सं०] १ धन संपत्ति का विनाश । २. उद्देश्य पूर्ण न होना [को०] ।

अर्थमंत्री—संज्ञा पुं०[सं० **अर्थमन्त्रिण**]अर्थ के मामलों से संबद्ध मंत्री ।

अर्थयुक्त—वि० [सं०] अर्थगर्भित । अर्थपूर्ण [को०] ।

अर्थयुक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्राप्ति । लाभ [को०] ।

अर्थराशि—संज्ञा पुं० [सं०] प्रचुर धन [को०] ।

अर्थलाभ—संज्ञा पुं० [सं०] धन या द्रव्य की प्राप्ति [को०] ।

अर्थलोभ—संज्ञा पुं० [सं०] धन की तृष्णा या लोभ [को०] ।

अर्थवाद—संज्ञा पुं०[सं०] न्याय के अनुसार तीन प्रकार के वाक्यों में से एक । वह वाक्य जिससे किसी विधि के करने की उत्तेजना पाई जाय । यह चार प्रकार का है—स्तुति, निंदा, परकृति और पुराकल्प ।

अर्थवादी—वि० [सं० **अर्थवादिन्**] अर्थवाद को माननेवाला [को०] ।

अर्थवान्—वि०[सं०]१. अर्थ (मतलब) वाला । एक विशेष अर्थ रखनेवाला । २. धनवान । पैसेवाला [को०] ।

अर्थविकरण—संज्ञा पुं० [सं०] तात्पर्य परिवर्तन [को०] ।

अर्थविज्ञान—संज्ञापुं० [सं०] १. दे०'अर्थशास्त्र' । २. अर्थ को समझने की ६ प्रक्रियाओं में से एक । धी गुण । [को०] ।

अर्थविद्—वि० [सं०] अर्थ का ज्ञाता । समझदार [को०] ।

अर्थविद्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] व्यावहारिक जीवन का ज्ञान या विद्या [को०] ।

अर्थवेद—संज्ञा पुं० [सं०] शिल्पशास्त्र ।

अर्थव्यवस्था—संज्ञा स्त्री० [सं०] सार्वजनिक राजस्व और उसके आय-व्यय की पद्धति । फाइनांस ।

अर्थशास्त्र—संज्ञा पुं०[सं०] वह शास्त्र जिसमें अर्थ की प्राप्ति, रक्षा और वृद्धि का विधान हो । प्राचीन काल में इस विषय पर बहुत से आचार्यों के रचे ग्रंथ थे, पर अब केवल कौटिल्य (चाणक्य) का रचा हुआ ग्रंथ मिलता है । अर्थविज्ञान ।

अर्थशौच—संज्ञा पुं० [सं०] लेन देन में शुद्ध व्यवहार । अर्थव्यवहार की पवित्रता रखना [को०] ।

अर्थसंशयापद—संज्ञा पुं० [सं०] कौटिल्य के अनुसार ऐसे समानतोऽर्थापद की प्राप्ति जिसमें पार्ष्णिग्राह बाधक हों ।

अर्थसचिव—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अर्थमंत्री' ।

अर्थसिद्धि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कौटिल्य के अनुसार पार्ष्णिग्राह को मित्र तथा आक्रंद (शत्रु के शत्रु) का सहारा मिलना । २. अभिलषित की प्राप्ति । सफलता [को०] ।

अर्थहर—वि० [सं०] उत्तराधिकार में धन पानेवाला [को०] ।

अर्थहीन—वि० [सं०] १. निर्धन । २. जिसमें अर्थ न हो । निरर्थक । ३. असफल [को०] ।

अर्थांतर—संज्ञा पुं० [सं० **अर्थान्तर**] १. भिन्न अर्थ । २. भिन्न कारण । ३. नई परिस्थिति । ४. अर्थ का अंतर [को०] ।

अर्थांतरन्यास—संज्ञा पुं० [**अर्थान्तरन्यास**] १. वह काव्यालंकार जिसमें सामान्य से विशेष का या विशेष से सामान्य का,साधर्म्य या वैधर्म्य द्वारा, समर्थन किया जाय; जैसे–(क) 'लागत निज मति दोष ते सुंदरहू विपरीत। पित्तरोगवश लखहि नर शशि सित शंखहु पीत।'यहाँ पूर्वार्ध के सामान्य कथन का समर्थन उत्तरार्ध के विशेष कथन से साधर्म्य द्वारा किया गया है। (ख) 'हरि प्रताप गोकुल बच्चों का नहिं करहिं महान। यहाँ 'हरि प्रताप गोकुल बच्यो' इस विशेष वाक्य का समर्थन 'का नहिं करहिं महान' इस सामान्य वाक्य से साधर्म्य द्वारा किय गया है।इसी प्रकार वैधर्म्य का भी उदाहरण समझना चाहिए २. न्याय में एक प्रकार का निग्रह स्थान। जब वादी ऐसी बात कहे जो प्रकृत (असल) विषय या अर्थ से कुछ संबंध न रखती हो, तब वहाँ यह होता है।

अर्थागम—संज्ञा पुं० [स०] धनलाभ। आमदनी।

अर्थात्—अव्य० [सं०] यानी। तात्पर्य यह कि।

विशेष—इसका प्रयोग विवरण करने में आता है; जैसे—ऐसा कौन होगा जो भले की प्रशंसा नहीं करता अर्थात् सब करते हैं।

अर्थातिक्रम—संज्ञा पुं० [सं०] कौटिल्य के अनुसार हाथ में आई या मिली हुई अच्छी वस्तु को छोड़ देना।

अर्थानर्थसंशय—संज्ञा पुं० [सं०] एक ओर से अर्थ तथा दूसरी ओर से अनर्थ की संभावना।

अर्थानर्थापद—संज्ञापुं० [सं०] एक ओर से प्राप्ति और दूसरी ओर से राज्य जाने का भय।

अर्थानुबंध—संज्ञा पुं० [सं० **अर्थानुबन्ध**] शत्रु को नष्ट कर पार्ष्णिग्राह को अपने वश में करना।

अर्थाधिकारी—संज्ञा पुं० [सं० **अर्थाधिकारिन्**] कोषाधिकारी। खजांची [को०]।

अर्थाना(पु)—क्रि० स० [सं० **अर्थ+हिं० आना** (प्रत्य०)] अर्थ लगाना। ब्योरे के साथ समझाकर कहना। अरथाना।

अर्थानुवाद—संज्ञापुं०[सं०] न्यायशास्त्रानुसार अनुवाद का एक भेद। विधि से जिसका विधान किया गया हो, उसका अनुवचन या फिर फिर कहना।

अर्थान्वित—वि० [सं०] १. अर्थयुक्त। अर्थगर्भ। २. महत्वपूर्ण। ३. धनवान् [को०]।

अर्थापत्ति—संज्ञा पुं० [सं०] १. मीमांसा के अनुसार एक प्रकार का प्रमाण जिसमें एक बात कहने से दूसरी बात की सिद्धि आपसे आप हो जाय। नतीजा। निगमन; जैसे—'बादलों के होने से वृष्टि होती है।' इससे यह सिद्ध हुआ कि बिना बादल के वृष्टि नहीं होती। न्यायशास्त्र में इसे पृथक् प्रमाण न मानकर अनुमान के अंतर्गत माना है। २. एक अर्थालंकार जिसमें एक बात के कथन से दूसरी बात की सिद्धि दिखलाई जाय। इसअलंकार में वास्तव में यह दिखाया जाता है कि जब इतनी बड़ी बात हो गई, तब यह छोटी बात होने में क्या संदेह है; जैसे—(क) मुख जीत्यो वा चंद को कहा कमल की बात। (ख) जिसने शालिग्राम को भूना, उसे बैंगन भूनते क्या लगता है।

अर्थापत्तिसम—संज्ञा पुं० [सं०] न्याय में जाती के चौबीस भेदों में से एक। वादी के उत्तर में यह कहना कि यदि तुम मेरा प्रतिपादित अमुक सिद्धांत न मानोगे तो बड़ा दोष पड़ेगा, अर्थापत्ति सम कहलाता है।

अर्थाप्रतिकार—संज्ञा पुं० [सं०]वह प्रबंधकर्ता जो कारखाने नौकरों तथा अन्य मनुष्यों को, जिन्होंने कच्चा माल आदि दिया हो, धन देता है।

अर्थार्थी—वि० [सं० **अर्थार्थिन्**] १. धन की कामनावाला। २. धनप्राप्ति के लिये प्रयास करनेवाला। ३. अपना मतलब चाहनेवाला [को०]।

अर्थालंकार—संज्ञा पुं० [सं० **अर्थालङ्कार**] वह अलंकार जिसमें अर्थ का चमत्कार दिखाया जाय। शब्दालंकार के विरुद्ध अलंकार।

अर्थिक—संज्ञा पुं० [सं०] वे वंदीगण जो राजा को शयन से जगाते हैं। वैतालिक। स्तुतिपाठक। २. पहरुआ। प्रहरी [को०]।

अर्थित¹—वि० [सं०] माँगा हुआ। इच्छित [को०]।

अर्थित²—संज्ञा पुं० कामना। इच्छा [को०]।

अर्थी¹—वि० [सं० **अर्थिन्**] [वि०स्त्री० **अर्थिनी**] १. इच्छा रखनेवाला चाह रखनेवाला। २. कार्यार्थी। प्रयोजनवाला। गर्जी। याचक ३. वादी। मुद्दई। ४. सेवक। ५. धनी। ६. दे० 'अरथी'।

अर्थी²—संज्ञा पुं० वह जिसने किसी पर रुपयों का दावा किया हो (स्मृति)।

अर्थ्य¹—वि० [सं०]१. माँगने योग्य। २. उचित। उपयुक्त। अच्छा। ३. धनी। ४. बुद्धिमान्। ५. सत्य। ६. अर्थोपार्जन करने में कुशल [को०]।

अर्थ्य²—संज्ञा पुं० लाल खड़िया या चाक [को०]।

अर्दन¹—संज्ञा पुं० [सं०][स्त्री० **अर्दना**] १. पीड़न। दलन। हिंसा। २. जाना। गमन। ३. याचना। माँगना। ४. शिव का एक नाम [को०]।

अर्दन²—वि० १. पीड़क। हिंसक। २. बेचैन या क्षुब्ध होकर घूमनेवाला [को०]।

अर्दना(पु)—क्रि० स० [सं० **अर्दन=पीड़न**] पीड़ित करना। उ०—गहि वैष्णव को दंड कर मेघ समान नर्नदि। मर्दि सुरन रन अर्दि अति जैसे कुपित कपर्दि।—गोपाल (शब्द०)।

अर्दनि—संज्ञा पुं०[सं०]१. प्रार्थना। २. माँगना। भिक्षा। ३.बीमारी रोग। ४. आग [को०]।

अर्दली—संज्ञा पु० [हिं०] दे० 'अरदली'।

अर्दित¹—वि० [सं०] १. पीड़ित। दलित। २. गत। ३ याचित।

अर्दित²—संज्ञा पुं० [सं०] एक वातरोग।

विशेष—इसमें वायु के प्रकोप से मुँह और गर्दन टेढ़ी हो जाती है, सिर हिलता है, नेत्र आदि विकृत हो जाते हैं, बोला नहीं जाता और गर्दन तथा दाढ़ी में दर्द होता है।

अर्द्धंग(पु)—संज्ञा पुं०[सं० **अर्द्धाङ्ग**] १ शिव। उ०—भंग होत अर्द्धंग धनु जानि लखन तिहि काल। कह्यो लोकपालन मनहि सजग होहु यहि काल।—रघुराज (शब्द०)। २. एक रोग। दे० 'अर्द्धांग'।

अर्द्ध¹—वि० [सं०] किसी वस्तु के दो सम भागों में से एक। आधा

अर्द्ध²—संज्ञा पुं० १. स्थान। क्षेत्र। २. भाग। हिस्सा। ३. आधा हिस्सा। ४. वायु। हवा। ५. वृद्धि। ६.समीप। लगभग [को०]।

विशेष—यह शब्द अर्द्ध और अर्ध इन दोनों रूपों में संस्कृत है। इससे बननेवाले शब्द भी दोनों रूपों में प्राप्त होते हैं। उनमें और कोई अंतर नहीं होता।

अर्द्धक¹—संज्ञा पुं० [सं०] चंडातक। घुटने तक का लहँगा या पेटीकोट [को०]।

अर्द्धक²—वि० आधा [को०]।

अर्द्धकर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] अर्धव्यास त्रिज्या [को०]।

अर्द्धकाल—संज्ञा पुं० [सं०] शिव का एक नाम [को०]।

अर्द्धकूट—संज्ञा पुं० [सं०] शिव [को०]।

अर्द्धकेतु—संज्ञा पुं० [सं०] रुद्र [को०]।

अर्द्धगंगा—संज्ञा स्त्री० [सं० अर्द्धगङ्गा] कावेरी।

अर्द्धगुच्छ—संज्ञा पुं० [सं० अर्धगुच्छ] वह मोती की माला जिसमें चौबीस लड़ियाँ हों। वाराहमिहिर के अनुसार इसमें बीस लड़ियाँ होनी चाहिए।

अर्द्धगोल—संज्ञा पुं० [सं०] गोलार्ध [को०]।

अर्द्धचंद्र—संज्ञा पुं० [सं० अर्द्धचन्द्र] १. आधा चाँद। अष्टमी का चंद्रमा। २. चंद्रिका। मोरपंख पर की आँख। ३. नखक्षत का एक भेद। ४. एक प्रकार का बाण जिसके अग्रभाग पर अर्धचंद्राकार नोक होती है। ५. सानुनासिक का एक चिह्न। चंद्रबिंदु—। ६. एक प्रकार का त्रिपुंड। ७. निकाल बाहर करने के लिये गले में हाथ लगाने की मुद्रा। गरदनिया।

अर्द्धचंद्रा—संज्ञा स्त्री० [सं० अर्द्धचन्द्रा] तिधारा या कर्णस्फोट नाम का पौधा।

अर्द्धचंद्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं० अर्द्धचंद्रिका] कनफोड़ा नाम की लता।

अर्द्धजल—संज्ञा पुं० [सं०] श्मशान में शव को स्नान करा के आधा जल में और आधा बाहर डाल देने की क्रिया।

अर्द्धज्योतिका—संज्ञा संज्ञा [सं०] ताल का एक भेद।

अर्द्धतिक्त—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की नीम जो नेपाल में होती है।

अर्द्धतूर—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का वाद्य [को०]।

अर्द्धधार—संज्ञा पुं० [सं०] एक ओर धारवाला चाकू। सुश्रुत में वर्णित २० शल्योपकरणों में से एक [को०]।

अर्द्धनटेश्वर—संज्ञा पुं० [सं०] शिव का एक रूप [को०]।

अर्द्धनयन—संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं की तीसरी आँख जो ललाट में होती है।

अर्द्धनाराच—संज्ञा पुं० [सं०] १. जैन शास्त्रानुसार वह हड्डी जो मर्कटबंध और कीलक पार्शों में बँधी होती है। २. एक प्रकार का बाण।

अर्द्धनारी—संज्ञा पुं० [सं०] अर्धनारीश्वर। शिव [को०]।

अर्द्धनारीश—संज्ञा पुं० [सं०] शिव [को०]।

अर्द्धनारीश्वर—संज्ञा पुं० [सं०] १. तंत्र में शिव और पार्वती का संमिलित रूप। २. आयुर्वेद में रसांजन जिसे आँख में लगाने से ज्वर उतर जाता है।

अर्द्धपारावत—संज्ञा पुं० [सं०] तीतर।

अर्द्धपोहल—संज्ञा पुं० [देश०] एक पौधा जिसकी पत्तियाँ मोटी होती हैं।

अर्द्धप्रादेश—संज्ञा पुं० [सं०] वास्तुशास्त्र में प्रलंबित सेतु के मध्य से आलंबन बिंदु तक का अंतर जहाँ शृंखला बँधे रहते हैं। सेतु के मध्य से उसके उस स्थान तक का अंतर जहाँ वह खंभे या दीवार पर टिका रहता है।

अर्द्धभागिक—वि० [सं०] आधे का हिस्सेदार [को०]।

अर्द्धभास्कर—संज्ञा पुं० [सं० अर्धभास्कर] दुपहरी। दुपहरिया। मध्याह्न [को०]।

अर्द्धमागधी—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्राकृत का एक भेद। पटना और मथुरा के बीच के देश की पुरानी भाषा।

अर्द्धमाणव—संज्ञा पुं० [सं०] १. कौटिल्य के अनुसार वह शीर्षकहार जिसके बीच में मणि हो। २. दस मोतियों की माला। ३. बारह लड़ियोंवाला एक हार [को०]।

अर्द्धमाणवक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अर्द्धमाणव'।

अर्द्धमात्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. आधी मात्रा। २. व्यंजन। ३. संगीत शास्त्रानुसार चतुर्दश मात्राओं का एक भेद।

अर्द्धमासभृत—संज्ञा पुं० [सं०] वह मजदूर या नौकर जिसे अर्धमासिक (१५ दिन पर) वेतन मिलता हो।

अर्द्धरथ—संज्ञा पुं० [सं० अर्धरथ] वह रथी जो दूसरे से साथ होकर लड़े [को०]।

अर्द्धविसर्ग—संज्ञा पुं० [सं०] क, ख, प, फ, के पहले होनेवाले आधे विसर्ग का उच्चारण। विसर्ग का आधा उच्चारण [को०]।

अर्द्धविसर्जनीय—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अर्द्धविसर्ग' [को०]।

अर्द्धवीक्षण—संज्ञा पुं० [सं०] कनखी से देखना। तिरछी चितवन।

अर्द्धवृत्त—संज्ञा पुं० [सं०] वृत्त का आधा भाग। वृत्त का वह भाग जो व्यास और परिधि के आधे भाग से घिरा हो। २. पूरे वृत्त की परिधि का आधा भाग।

अर्द्धवृद्ध—संज्ञा पुं० [सं०] प्रौढ़। मध्य आयु का व्यक्ति [को०]।

अर्द्धवृद्धि—संज्ञा स्त्री० [सं०] किराए या सूद का आधा [को०]।

अर्द्धवैनाशिक—संज्ञा पुं० [सं०] कौटिल्य के अनुसार अर्धनाश के पक्षपाती कणाद के अनुयायी जन [को०]।

अर्द्धव्यास—संज्ञा पुं० [सं०] केंद्र से परिधि तक का अंतर। त्रिज्या। रेडियस [को०]।

अर्द्धशफर—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की मछली [को०]।

अर्द्धशब्द—वि० [सं०] धीमी आवाजवाला [को०]।

अर्द्धसम—वि० [सं०] आधे के बराबरवाला। आधा [को०]।

अर्द्धसमवृत्त—संज्ञा पुं० [सं०] वह वृत्त जिसका पहला चरण तीसरे चरण के बराबर हो; जैसे, दोहा और सोरठा।

अर्द्धसीरी—संज्ञा पुं० [सं० अर्धसीरिन्] अपने पारिश्रमिक के बदले में आधी फसल लेनेवाला। अधिया पर खेत जोतनेवाला कृषक [को०]।

अर्द्धहार—संज्ञा पुं० [सं०] ६४ मोतियों की माला अथवा ४० लड़ियोंवाला हार (को०)।

अर्द्धह्रस्व—संज्ञा पुं० [सं०] ह्रस्व स्वर का आधा [को०]।

अर्द्धांग—संज्ञा पुं० [सं० अर्धाङ्ग] १. आधा अंग। उ०—मरम सर्वांग अर्धांग शैलात्मजा, व्याल नृकपाल माला बिराजै।—तुलसी

ग्रं० पृ० ४५८। २. एक रोग जिसमें आधा अंग चेष्टाहीन और बेकाम हो जाता है। लकवा। फालिज। पक्षाघात। ३. शिव।

अर्द्धांगिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० **अर्द्धाङ्गिनी**] पत्नी। भार्या।

अर्द्धांगी[1]—संज्ञा पुं० [सं० **अर्धाङ्गिन्**] शिव।

अर्द्धांगी[2]—वि० अर्द्धांगरोगग्रस्त।

अर्द्धांशी—वि० [सं० **अर्धांशिन्**] अर्द्धभाग का अधिकारी [को०]।

अर्द्धा—संज्ञा स्त्री० [सं०] ऐसे २५ मोतियों का गुच्छा जिसकी तौल ३२ रत्ती हो।

विशेष—वाराहमिहिर के समय एक अर्धा का दाम १३० कर्षापण था। उस समय कर्षापण में दस मासे चाँदी होती थी और वह सोलह मोटे (गोरखपुरी) पैसों के बराबर होता था।

अर्द्धाली—संज्ञा स्त्री० [सं० **अर्धालि**] वह चौपाई जिसमें दो ही चरण हों। आधी चौपाई; जैसे—राम भजन बिनु सुनहु खगेसा। मिटै न जीवन केर कलेसा।

अर्द्धावभेदक—संज्ञा पुं० [सं०] १. अधकपारी। आधासीसी। २. अर्धांग [को०]।

अर्द्धाशन—संज्ञा [सं०] १. आधा भोजन [को०]।

अर्द्धासन—संज्ञा पुं० [सं०] १. आधा आसन। २. अतिशय सम्मान का स्थान। ३. बराबरी की जगह [को०]।

अर्द्धिक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. अर्धसीरी। २. वैश्य स्त्री और ब्राह्मण पिता से उत्पन्न संतान जिसका संस्कार हुआ हो।

अर्धिक[2]—वि० अधिया पर काम करनेवाला [को०]।

अर्द्धीकरण—संज्ञा पुं० [सं०] १. आधा करना। २. मंजूषा काढ़ना बैठाना। जब एक कड़ी दूसरी कड़ी पर (होकर) रखी जाती है तब धरातल समान करके ठीक ठीक बैठाने के लिये प्रत्येक संधिस्थल को आधा आधा छील देते हैं। वास्तुशास्त्र में यह अर्धीकरण कहलाता है

अर्द्धुक—वि० [सं०] उत्कर्षशील। उन्नतिशील [को०]।

अर्द्धेंदु—संज्ञा पुं० [सं० **अर्द्धेन्दु**] १. अर्धचन्द्र। २. अर्धचंद्राकार नखक्षत। दे० 'अर्द्धचंद्र' [को०]।

अर्द्धेंदुमौलि—संज्ञा पुं० [सं० **अर्द्धेन्दुमौलि**] शिव।

अर्द्धोदक—सं० पुं० [सं०] आधे शरीर तक भिगोता हुआ पानी। २. मृत शरीर को नहलाकर आधा जल में और आधा बाहर रखने की क्रिया [को०]।

अर्द्धोदय—संज्ञा पुं० [सं०] एक पर्व जो उस दिन होता है जिस दिन माघ की अमावस्या रविवार को होती है तथा उसी दिन श्रवण नक्षत्र और व्यतीपात योग पड़ता है। इस दिन स्नान करने से सूर्यग्रहण में स्नान करने का फल होता है।

अर्धंग(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अर्द्धांग'।

अर्धंगी[1](पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अर्द्धांगी'।

अर्धंगी[2](पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] आधे अंगवाली स्त्री। अर्धांगिनी उ०—अर्धंगी पूछति मोहन सौं, कैसे हितू तुम्हारे।—सूर०, १०।४२३०।

अर्ध—वि० [सं०] दे० 'अर्द्ध'।

अर्न(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अर्ण] जल। पानी। उ०—थंभ स्नेह रोमांच स्वरभंग कंप बैबर्न। सबही के अनुभाव ये सात्विक औरो अर्न। भिखारी ग्रं०, भा० २, पृ० २७।

अर्पण—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० **अर्पित**] किसी वस्तु पर से अपना स्वत्व हटाकर दूसरे का स्थापित करना। देना। दान। २. नजर। भेंट।

यौ०—**कृष्णार्पण। ब्रह्मार्पण।**

३. स्थापन। रखना जैसे, पदार्पण करना। ४. वापस करना। लौटाना [को०]। ५. छेदन [को०]।

अर्पणप्रतिभू—संज्ञा पुं० [सं०] वह प्रतिभू (जामिन) जो किसी की इस प्रकार जमानत करे कि यदि यह ऋण का धन देगा, तो मैं दूँगा।

अर्पतर्प(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'उरप तरप'। उ०—गाइन अति भाइत भरति अर्प तर्प की तान। अर्प दर्प कंदर्प जनु कीनो सर संधान।—स० सप्तक, पृ० ३८३।

अर्पना(पु)—संज्ञा पुं० [सं० **अर्पण**] दे० 'अर्पण'। उ०—सिव सर हमको फल दीन्हौ। पुहुप, पान, नाना फल, मेवा, षटरस अर्पन कीन्हौं।—सूर०, १०।७६८।

अर्पना(पु)—क्रि० स० [हिं०] दे० 'अरपाना'। उ०—पांडे नहिं भोग लगावन पावै। करि करि पाक जबै अर्पत हैं, तबहीं तब छ्वै आवै।—सूर०, १०।२४६।

अर्पित—वि० [सं०] अर्पण किया हुआ। उ०—देवों को अर्पित मधु-मिश्रित सोम अधर से छू लो।—कामायनी, पृ० १२८। २. उत्कीर्ण [को०]। ३. चित्रित [को०]।

अर्पिस—संज्ञा पुं० [सं०] हृदय। हृदय का मांस [को०]।

अर्बदर्ब(पु)—संज्ञा पुं० [सं० **अर्बुद + द्रव्य**] धन। संपत्ति। धनदौलत। उ०—अर्बदर्ब सब देई बहाई। कै सब जाव न जाय पियाई।—जायसी (शब्द०)।

अर्बुद—संज्ञा पुं० [सं०] १. गणित में नवें स्थान की संख्या। दस कोटि। दस करोड़। २. एक पर्वत जो राजपूताने की मरुभूमि में है। अरावली। आबू जो जैनों पवित्र स्थान है। ३. एक असुर का नाम। ४. कद्रू का पुत्र एक सर्प विशेष एक नरक का नाम [को०]। ५. मेघ। बादल। ६. दो मास का गर्भ। एक रोग जिसमें शरीर में एक प्रकार की गाँठ पड़ जाती है। बतौरी।

विशेष—इसमें पीड़ा तो नहीं होती पर कभी कभी यह पक भी जाती है। इसके कई भेद हैं जिनमें से मुख्य रक्तार्बुद और मांसार्बुद हैं।

अर्बुदी—वि० [सं० **अर्बुदिन्**] अर्बुद नामक रोग से ग्रसित [को०]।

अर्भ[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. बालक। २. शिशि ऋतु। ३. शिष्य। छात्र। ४. सागपात। ५. नेत्रबाला। ६. कुशा।

अर्भ[2]—वि० १. मलिन। धुँधला। २. लघु। छोटा [को०]।

अर्भक[1]—वि० पुं० [सं०] १. छोटा। अल्प २. मूर्ख। ३. दुबला। पतला। ४. तुल्य। समान [को०]।

अर्भक[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १. बालक। लड़का। उ०—गर्भन्ह के अर्भक दलन परसु मोर अति घोर।—मानस, १।२७२। २. किसी भी

जानवर का बच्चा [को०]। मूर्ख या जड़ व्यक्ति [को०]। ३. नेत्र- बाला। कुश।

अर्म—संज्ञा पुं० १. आँख का एक रोग। टेंटर। ढेंढ़र। २. पुराना आधा उजड़ा नगर या गाँव। ३. गंतव्य देश वा स्थान [को०]।

अर्मनी—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अरमानी'।

अर्य[1]—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० **अर्या, अर्याणी, अर्यी,**] १. स्वामी। २. ईश्वर। ३. वैश्य।

अर्य[2]—वि० १. श्रेष्ठ। उत्तम। २. दयालु। अनुकूल [को०]।

अर्यमा—संज्ञा पुं० [सं० **अर्यमन्**] १. सूर्य। २. बारह अदित्यों में से एक। ३. पितर के गणों में से एक जो सबसे श्रेष्ठ कहे जाते हैं। ४. उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र। ५. मदार। ६. अंतरंग मित्र लँगोटिया यार [को०]।

अर्रबर्रा—संज्ञा पुं० [हिं०] अंडबंड बात। बेकार बात। फिजूल चर्चा।

अर्रा—संज्ञा पुं०[देश०] १. जंगली पेड़ जो अर्जुन वृक्ष से मिलता जुलता होता है। इसकी लकड़ी बड़ी मजबूत होती है और छत पाटने के काम आती है। २. अरहर।

अर्ल—संज्ञा पुं० [अं०] [**स्त्री० कौंटेस**] इंगलैंड के सामंतो और बड़े भूम्यधिकारियों को वंशपरंपरा के लिये दी जानेवाली एक प्रतिष्ठासूचक उपाधि इसका दर्जा मार्क्विस के नीचे और वाइकौंट के ऊपर है। **वि० दे०** 'ड्यूक'।

अर्वट—संज्ञा पुं० [सं०] भस्म। राख [को०]।

अर्वती—संज्ञा **स्त्री०** [सं०] १. घोड़ी। २. दूती। कुटनी। ३. परी। विद्याधरी [को०]।

अर्वा—संज्ञा पुं० [सं० **अर्वन्**] १. घोड़ा। २. घोड़े का सवार। असवार सवार। ३. चंद्रमा के दस घोड़ों में से एक। ४. इंद्र। ५. एक प्रकार की दूरी। ६. जाना। दौड़ना। घूमना [को०]।

अर्वाक—अव्य० [सं० **अर्वाक्**] १. पीछे। इधर। २. निकट। समीप। ३. नीचे।

यो०—**अर्वाक् कालिक**=आधुनिक। अर्वाकस्रोता=जिसका वीर्यपात हुआ हो। उर्द्धरेता का उलटा।

अर्वाग्विल—वि० [सं०] १. अधोमुख। नीचे की तरफ मुँह या छिद्र वाला [को०]।

अर्वाग्वसु[1]—वि० [सं०] धनदाता [को०]।

अर्वाग्वसु[2]—संज्ञा पुं० १. वर्षा। २. बादल [को०]।

अर्वाचीन—वि० [सं०] १. पीछे का। आधुनिक। २. नवीन। नया। ३. उलटा। विपरीत [को०]। ४. नम्र। कृपालु [को०]।

अर्वावसु—संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं का होता [को०]।

अर्वुक—संज्ञा पुं० [सं०] १. महाभारत में कथित दक्षिण की एक जंगली जाति जिसे सहदेव ने विजित किया था।

अर्श[1]—वि० [सं०] १. पापयुक्त। दुर्भाग्य लानेवाला।

अर्श[2]—संज्ञा पुं० [सं० **अर्शस्**] १. बवासीर। २. क्षति। हानि [को०]।

अर्श[3]—संज्ञा पुं० [अ०] १. आकाश। उ०—**अर्श तक जाती थी अब लब तक भी आ सकती नहीं। रहम आता है 'बयाँ' अब मुझको अपनी आह पर।—शेर०, भा० १. पृ० १७५। २. स्वर्ग।** ३. चरखी जिसपर ऊन काता जाता है। ४. छत। पाटन [को०]। ५. सिंहासन। तखत [को०]। ६. लड़ाई। झगड़ा [को०]।

अर्शवर्त्म—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की बवासीर जिसमें गुदा के किनारे ककड़ी के बीज के समान चिकनी और किंचित् पीड़ा- युक्त फुंसियाँ होती हैं।

अर्शस—वि० [सं०] बवासीर का रोगी [को०]।

अर्शसान—संज्ञा पुं० [सं०] १. आग। २. एक राक्षस [को०]।

अर्शहर—संज्ञा पुं० [सं०] सूरन। ओल। जमींकद।

अर्शी—वि० [सं० **अर्शिन्**] अर्शरोगी [को०]।

अर्शोघोर—वि० [सं०] अर्श नामक रोग का नाशक [को०]।

अर्शोघ्न—संज्ञा पुं० [सं०] १. सूरन। ओल। जमींकंद। २. भिलावाँ। ३. सज्जीखार। ४. तेजबल। ५. सफेद सरसों।

अर्शोघ्नी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. तालमूली। २. भल्लातक [को०]।

अर्शोहर—संज्ञा पुं० दे० '**अर्शोघ्न**' [को०]।

अर्शोहित[1]—संज्ञा पुं० [सं०] भल्लातक [को०]।

अर्शोहित[2]—वि० अर्शरोग को ठीक करनेवाला [को०]।

अर्हंत—संज्ञा पुं० [सं० **अर्हन्त**] १. जैनियों के पूज्यदेव। जिन। २. बुद्ध।

अर्ह[1]—वि० [सं०] १. पूज्य। २. योग्य। उपयुक्त। ३. मूल्य के योग्य मूल्यवान् [को०]।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग अधिकतर यौगिक शब्द बनाने में होता है; जैसे—पूजार्ह। मानार्ह। दंडार्ह।

अर्ह[2]—संज्ञा पुं० १. ईश्वर। २. इंद्र। विष्णु [को०]। ४. मूल्य। दाम [को०]। ५. गति [को०]। ६. उपयुक्तता [को०]।

अर्हण—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अर्हणा'।

अर्हणा—संज्ञा **स्त्री०** [सं०] [वि० **अर्हणीय**] पूजा। संमान।

अर्हणीय—वि० [सं०] पूजनीय। संमाननीय [को०]।

अर्हत[1]—वि० [सं०] पूजा।

अर्हत[2]—संज्ञा पुं० जिनदेव।

अर्हता—संज्ञा स्त्री० [सं०] योग्यता। उपयुक्तता [को०]।

अर्हन—वि०, संज्ञा पुं० [सं०] **दे०** 'अर्हंत'।

अर्हित—वि० [सं०] पूजित। संमानित। आदृत।

अर्ह्य—वि० [सं०] १. पूज्य। मान्य। २. पूजनीय। माननीय। आदर णीय। ३. योग्य। उपयुक्त। अधिकारी [को०]।

अलं—**अव्य०** [सं० **अलम्**] दे० **'अलम्'**।

अलंकटंकटा—संज्ञा स्त्री० [सं० **अलङ्कटङ्कटा**] विद्युत्केश नामक राक्षस की पत्नी। सुकेश की माता।

विशेष—वाल्मीकि रामायण के उत्तरकांड में इस राक्षसवंश का सृष्टि के आदिकाल में उत्पन्न होना लिखा है।

अलंकरण—संज्ञा पुं० [सं० **अलङ्करण**] १. सजावट। २. शृंगार ३. आभूषण [को०]।

अलंकर्ता—वि० [सं० **अलङ्कर्तृ**] सजावट करनेवाला। **अलंकृत करनेवाला [को०]।**

अलंकार—संज्ञा पुं० [सं० **अलङ्कार**] [वि० **अलंकृत**] १. आभूषण। गहना। जेवर। २. अर्थ और शब्द की वह युक्ति जिससे काव्य की शोभा हो। वर्णन करने की वह रीति उसमें प्रभाव और रोचकता आ जाय।

विशेष—इसके तीन भेद हैं—(क) शब्दालंकार, अर्थात् वह अलंकार जिसमें शब्दों का सौंदर्य हो, जैसे अनुप्रास; (ख) अर्थालिकार, जिसके अर्थ में चमत्कार हो, जैसे उपमा और रूपक और किसी किसी आचार्य के मत से (ग) उभयालंकार जिसमें शब्द और अर्थ दोनों का चमत्कार हो। आदि में भरत मुनि ने चार ही अलंकार माने हैं—उपमा, दीपक, रूपक और यमक। उन्होंने अलंकारों के धर्म को इन्हीं के अंतर्गत माना है। अलंकार यथार्थ में वर्णन करने की शैली है, वर्णन का विषय नहीं। पर पीछे वर्णनीय विषयों को भी अलंकार मान लेने से अलंकारों की संख्या और भी बढ़ गई। स्वभावोक्ति और उदात्त आदि अलंकार इसी प्रकार के हैं।

३. वह हाव, भाव या क्रिया आदि जिससे स्त्रियों का सौंदर्य बढ़े। ४. सजावट। मंडप [को०]। ५. अलंकार संबंधी शास्त्र [को०]।

अलंकारक—संज्ञा पुं० [सं० **अलङ्कारक**] आभूषण। अलंकार [को०]।

अलंकारमंडप—संज्ञा पुं० [सं० **अलङ्कारमण्डप**] सजावट का स्थान। प्रसाधनकक्ष। ड्रेसिंग रूम।

अलंकारशास्त्र—संज्ञा पुं० [सं० **अलङ्कारशास्त्र**] वह शास्त्र जिसमें अलंकारों का वर्णन और विवेचन हो।

अलंकित(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अलंकृत'।

अलंकिय(पु)—वि० [सं० **अलङ्कृत**, प्रा० **अलंकिय**] दे० 'अलंकृत'। उ०—नील बरन बसुमतिय। पहिर आभ्रन अलंकिय।—पृ० रा०, २५। ३५।

अलंकृत—वि० [सं० **अलङ्कृत**] १. विभूषित। गहना पहनाया हुआ। २. सजाया हुआ। सँवरा हुआ। ३. काव्यालंकारयुक्त।

अलंकृति—संज्ञा स्त्री० [सं० **अलङ्कृति**] १. अलंकार। आभूषण। २. सजावट। ३. उपमा, रूपक आदि अलंकार। उ०—आखर अरथ अलंकृति नाना। छंद प्रबंध अनेक बिधाना।—मानस, पृ० ८।

अलंग(पु)—संज्ञा पुं० [सं० **अल=पूर्ण, बड़ा+अंग=प्रदेश**] [हिं० **अलंग**†] ओर। तरफ। दिशा। उ०—(क) उमर अमीर रहे जहँ ताईं, सब ही बाँट अलंगै पाई।—जायसी (शब्द०)। (ख) लेन आयो कान्ह कोऊ मथुरा अलंग तें।—भिखारी ग्रं०, भा० २. पृ० १०७।

मुहा०—**अलंग पर आना या होना=घोड़ी** का मस्ताना।

अलंघनीय—वि० [सं० **अलङ्घनीय**] १. जो लाँघने योग्य न हो। जिसे फाँद न सके। जिसे पार न कर सके। अलंघ्य। १. अटल।

अलंघ्य—वि० [सं० **अलङ्घ्य**] १. जो बाँधने योग्य न हो। जिसे फाँद न सकें। २. जिसे टाल न सकें। जिसे मानना ही पड़े; जैसे—राजा की आज्ञा अलंघ्य होती है।

यौ०—अलंघ्य शासन।

अलंजर—संज्ञा पुं० [सं० अलञ्जर] मिट्टी का घड़ा। झँझर [को०]।

अलंपट[1]—वि० [सं० अलम्पट] जो लंपट या विषयी न हो। सच्चरित्र।

अलंपट[2]—संज्ञा पुं० स्त्रियों का कक्ष। अंतःपुर [को०]।

अलंब(पु)—संज्ञा पुं० [सं० **आलम्ब**] दे० 'आलंब'।

अलंबुष—संज्ञा पुं० [सं० **अलम्बुषा**] १. वमन। उल्टी। कै। २. कौरवों का सहायक एक राक्षस जिसे भीम के पुत्र घटोत्कच ने मारा था। ३. प्रहस्त नाम का रावण का एक मंत्री [को०]। ४. हथेली जिसकी ऊँगलियाँ फैलाई गई हों (को०)।

अलंबुषा—संज्ञा स्त्री० [सं० **अलम्बुषा**] १. मुंडी। गोरखमुंडी २. स्वर्ग की एक अप्सरा। ३. दूसरे का प्रवेश रोकने के लिये खींची हुई रेखा। गड़ारी। मंडल।

विशेष—इसका व्यवहार अधिकतर भोजन को छुआछूत से बचाने के लिये होता है।

४. लज्जावंती। छुई मुई। लजालू पौधा। उ०—नव अलंबुषा की व्रीड़ा सी खुल जाती फिर जा मुँदती।—कामायनी, पृ० २६३।

अलंभ(पु)—वि० [सं० **अलभ्य**] दे० 'अलभ्य'। उ०—सरग का देवता अलंभ चितोड़।—बी० रासो, पृ० २४।

अल[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. बिच्छू का डंक। २. हरताल। ३ विष। जहर। उ०—अति बल करि करि काली हान्यो। लपटि गयो सब अंग अंग प्रति निर्विष कियो सकल अल झार्‌यो।—सूर (शब्द०)।

अल[2]—वि० [सं०] समर्थ। शक्त। उ०—कारन अबिरल अल अपितु तुलसी अबिद भुलान।—स० सप्तक, पृ० २६।

अलई—संज्ञा स्त्री० [देश०] ऐल नाम की कँटीली लता जिसकी बाढ़ प्रायः खेतों में लगाई जाती है। ऊरू।

अलक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. मस्तक के इधर उधर लटकते हुए मरोड़दार बाल। २. बाल। केश। लट। ३. छल्लेदार बाल। उ०—मुकुट कुंडल तिलक, अलक अलिब्रात इव, भृकुटि द्विज अधर बर चारु नासा।—तुलसी ग्रं०, पृ० ४६१। २. हरताल। ३. सफेद आक। श्वेत मदार। ४. शरीर पर लगाया हुआ केसर। अंग पर लिप्त केसर [को०]। ५. पागल कुत्ता। अलर्क [को०]।

अलक(पु)[2]—संज्ञा पुं० [सं० **अलक्तक**] महावर। आलता।

अलक(पु)[3]—संज्ञा पुं० [सं० **अलका**] अलकापुरी। उ०—अलक लोक बज्जत विषम।—पृ० रा० २।१०१।

अलकत—संज्ञा पुं० [अ०] १. अवहेलना। २. नष्ट करना। रद्द करना। ३. काट देना [को०]।

अलकतरा—संज्ञा पुं० [अ०] पत्थर के कोयले को आग पर गलाकर निकाला हुआ एक गाढ़ा पदार्थ। उ०—छत छतरी बर बंद खंभ गेरू रँग राखे। अलकतरे रँग कल किवार सित सोहत पाखे।—रत्नाकर १।१०२।

विशेष—कोयले को बिना पानी दिए भभके पर चढ़ाकर जब गैस निकाल लेते हैं, तब उसमें दो प्रकार के पदार्थ रह जाते हैं—एक पानी की तरह पतला, दूसरा गाढ़ा। यही गाढ़ा काला पदार्थ अलकतरा है जो रँगने के काम में आता है। यह कृमिनाशक है अतः इसमें रँगी हुई लकड़ी घुन और दीमक से बहुत दिनों तक बची रहती है। इससे कृमिनाशक औषधियाँ जैसे—नेप्थलीन कारबोलिक एसिड, फिनाइल आदि—तैयार होती हैं। इससे कई प्रकार के रंग भी बनते हैं।

अलकनंदा—संज्ञा स्त्री० [सं० **अकलनन्दा**] १. हिमालय (गढ़वाल) की एक नदी जो गंगोत्री के आगे भागीरथी (गगा) की धारा से मिल जाती है। २. आठ से दस वर्ष उम्र तक की कन्या [को०]।

अलकप्रभा—संज्ञा स्त्री० [सं०] अलकापुरी। कुबेरपुरी।

अलकप्रिय—संज्ञा पुं० [सं०] पीतसाल नाम का एक पेड़ [को०]।

अलकलड़ैता⑤—वि० [सं० **अचक = बाल + लाड़ = दुलार** या **अ० अलक = प्यार** + हिं० **लाड़** + **ऐता** (प्रत्य०)] [वि० स्त्री० **अलकलड़ैती**] दुलारा। लाड़ला। उ०—सूर पथिक सुनि मोहिं रैनि दिन, बढ्यौ रहत उर सोच। मेरौ अलकलड़ैतो मोहन ह्वै है करत सँकोच।—सूर०, १०।३७६३।

अलकसंहति—संज्ञा स्त्री० [सं०] घुंघराले बालों की कतार [को०]।

अलकसलोरा⑤—वि० [सं० = **अलक = बाल** या अ० **अलक = प्यार** + हिं० **सलोना = अच्छा**] [स्त्री० **अलकसलोरी**] लाड़ला। दुलारा। उ०—हम तुम्हरें नितहीं प्रति आवति सुनहु राधिका गोरी। ऐसौ आदर कबहुँ न कीन्हौ मेरी अलकसलोरी।—सूर०, १०।२८२८।

अलका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कुबेर की पुरी। यक्षों की पुरी। उ०—हनका छुटत सोर अलका परत हैं।—गंग०, पृ० १०५। २. आठ से दस वर्ष उम्र तक की लड़की [को०]।

अलकाउरि⑤—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अलकावलि'। उ०—प्रंधर अधर सों भीज तबोरी। अलकाउरि मुरि मुरि गा मोरी।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० ३४२।

अलकाधिप—संज्ञा पुं० [सं०] अलकापुरी के स्वामी। कुबेर [को०]।

अलकापति—संज्ञा पुं० [सं०] कुबेर।

अलकाब—संज्ञा पुं० [अ० लकब का बहुव०] १. प्रशस्ति। २. उपाधि या खिताब [को०]।

अलकावती⑤—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अलका'।

अलकावलि—संज्ञा स्त्री० [सं०] केशों का समूह। बालों की लटें। उ०—कोमल नील कुटिल अलकावलि, रेखा राजति भाल।—सूर०, १०।२६५६।

अलकेस⑤—संज्ञा० पुं० [सं० **अलकेश**] कुबेर। उ०—अकबकात अलकेस अखंडल।—पद्माकर ग्रं०, पृ० १०।

अलक्त—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अलक्तक'।

अलक्तक—संज्ञा पुं० [सं०] १. लाही जो पेड़ों में लगती है। लाख। चपड़ा। २. लाह का बना हुआ रंग जिसे स्त्रियाँ पैर में लगाती हैं। महावर।

यौ०—**अलक्तकरस** = महावर। **अलक्तक राग** = महावर की लाली।

अलक्षण¹—संज्ञा पुं० [सं०] १ चिह्न या संकेत का न होना। २. ठीक ठीक गुण धर्म का अनिर्वाचन। ३. बुरा लक्षण। कुलक्षण। अशुभ चिह्न।

अलक्षण²—वि० जो लक्षणहीन हो। बुरे लक्षणवाला [को०]।

अलक्षित—वि० [सं०] १. अप्रकट। अज्ञात। २. अदृश्य। गायब। ३. अचिह्नित।

अलक्ष्मी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. धनाभाव। निर्धनता। दरिद्रता। २. बुरा भाग्य। विपरीत भाग्य। ३. अशुभ लक्षणोंवाली स्त्री ४. भाग्य की देवी। दरिद्रता देवी [को०]।

अलक्ष्य—वि० [सं०] १. अदृश्य। जो न देख पड़े। गायब। २. जिसका लक्षण न कहा जा सके। ३. छलविहीन। छलरहित [को०]। ४. अचिह्नित [को०]।

अलक्ष्यगति—वि० अदृश्य रूप से गमन करनेवाला [को०]।

अलक्ष्यजन्मता—संज्ञा स्त्री० [सं०] अज्ञात जन्म या उत्पत्ति [को०]।

अलक्ष्यलिंग—वि० [सं० **अलक्ष्यलिंग**] अपने को छिपाए रखनेवाला [को०]।

अलख¹—वि० [सं० **अलक्ष्य**] १. जो दिखाई न पड़े। जो नजर न आए। अदृश्य। अप्रत्यक्ष। उ०—बुधि, अनुमान, प्रमान स्त्रुति किऐं नीठि ठहराय। सूछम कटि परब्रह्म की, अलख, लखी नहि जाय।—बिहारी र०, दो० ६४८। २. अगोचर। इंद्रियातीत। उ०—जे उपमा पटतर लै दीजै ते सब उनहिं न लायक। जौ पै अलख रह्यौ चाहत तौ बादि भए ब्रजनायक।—सूर०, २।४६४५। ३. ईश्वर का एक विशेषण। उ०—अलख अरूप अबरन सो करता। वह सबसों सब वहि सों बरता।—जायसी (शब्द०)।

मुहा०—**अलख जगाना** = (१) पुकारकर परमात्मा का स्मरण करना या कराना। (२) परमात्माके नाम पर भिक्षा माँगना।

यौ०—**अलखधारी**। **अलखनामी**। **अलखनिरंजन**। **अलखपुरुष** = ईश्वर। **अलखमंत्र** = निर्गुण संत संप्रदाय में ईश्वरमंत्र।

अलख²—संज्ञा पुं० ब्रह्म। ईश्वर [को०]।

अलखधारी—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अलखनामी।

अलखनामी—संज्ञा पुं० [सं० **अलक्ष्यसंनाम** + हिं० ई (प्रत्य०)] एक प्रकार के साधु जो गोरखनाथ के अनुयायियों में से हैं।

विशेष—अलखिया। ये लोग सिर पर जटा रखते हैं, गेरुआवस्त्र धारण करते हैं, भस्म लगाते हैं और कमर में ऊन की सेली बाँधते हैं जिसमें कभी कभी घुंघरू या घंटी भी बाँध लेते हैं। ये लोग भिक्षा के लिये प्रायः दरियाई नारियल का खप्पर लेकर जोर जोर से 'अलख अलख' पुकारते हैं जिससे उनका अभिप्राय अलक्ष्य परमात्मा का स्मरण करना वा कराना होता है। इन लोगों में एक विशेषता यह है कि ये कहीं भिक्षाके लिये अधिक अड़ते नहीं।

अलखित⑤—वि० [हिं०] दे० 'अलक्षित'। उ०—कवि अलखित गति बेषु बिरागी।—मानस २। ११०।

अलखिया⑤—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अलखनामी'।

अलग—वि० [सं० **अलग्न** प्रा० **अलग्ग**] १. जुदा। पृथक्। न्यारा। भिन्न। अलहदा। उ०—संपति सकल जगत्र की स्वासा सम नहिं होइ। सो स्वासा तजि राम पद तुलसी अलग न खोइ।—स० सप्तक, पृ० ४।

क्रि० प्र०—**करना**। **रखना**।—होना।

मुहा०—**अलग करना** = (१) जुदा करना। दूर करना। हटाना। खसकाना। जैसे—इसे हमारे सामने से अलग करो। (२) छुड़ाना। बरखास्त करना; जैसे—मैंने उस नौकर को अलग कर दिया। (३) चुनना। छाँटना। (४) बेच डालना; जैसे—उसने उस घोड़े को अलग कर दिया। (५) निपटाना। समाप्त करना; जैसे—थोड़ा सा बचा है, खा पीकर अलग करो।

२. बेलाग। बचा हुआ। रक्षित; जैसे—घबराओ मत, तुम्हारा बच्चा अलग है।

यौ०—**अलग अलग** = दूर दूर। जुदा जुदा।

अलगगीर—संज्ञा पुं० [**अ० अरक़ फ़ा० गीर**] कंबल या नमदा जिसे घोड़े की पीठ पर रखकर ऊपर से जीन या चारजामा कसते हैं।

अलगनी—संज्ञा स्त्री० [सं० **आलग्न**] आड़ी रस्सी या बाँस जो कपड़े लटकाने या फैलाने के लिये घर में बाँधा जाता है। डारा।

अलगरजा—वि० [**अ० अल्+ग़रज**] दे० 'अलगरजी'।

अलगरजी†—वि० [**अ०**] बेगरज। बेपरवाह।

अलगरजी²(पु)संज्ञा स्त्री० बेपरवाही। बेगरजी। उ०—आसिक अरु महबूब बिच आप तमासा कीन। ह्याँ ह्वै अलगरजी करै ह्वाँ ह्वै होइ अधीन।—सं० सप्तक, पृ० १७६।

अलगर्द—संज्ञा पुं० [सं०] एक तरह का जल में रहनेवाला साँप [को०]।

अलगर्दा—संज्ञा पुं० [सं०] एक तरह की लंबी जहरीली जोंक [को०]।

अलगाऊ—वि० [हिं० **अलगाना**] अलग करनेवाला। अलग रखनेवाला।

अलगाना¹—क्रि० स० [हिं० **अलग+आना** (प्रत्य०)] १. अलग करना। छाँटना। बिलगाना। पृथक् करना। जुदा करना। २. दूर करना। हटाना।

अलगाना²—क्रि० अ० अलग होना। पृथक् होना। उ०—बदरिकासरम दोउ मिलि आइ। तीरथ करत दोउ अलगाइ।—सूर०, ३।४।

यौ०—**अलगागुजारी** = अलगाव।

अलगार(पु)—वि० [**हिं०**] दे० 'अलग'। उ०—चामंडराय दिल्ली धरह गढ़पति करि गढ़भार दिय। अलगार राज प्रथिराज तब पूरब दिसि तब गमन किय।—पृ० रा०, २०।३६।

अलगाव—संज्ञा पुं० [**हिं० अलग+आव (प्रत्य०)**] पृथक्करण। अलग रहने का भाव। बिलगाव। उ०—होली, सावन, झूले वा झेलुए की गीत आदि का अलगाव या ठहराव हुआ होगा।—प्रेमघन०, भा०, २, पृ० ३५१।

अलगोजा—संज्ञा पुं० [**अ० अलगोजह**] एक प्रकार की बाँसुरी। उ०—अलगोजे बज्जत छिति पर छज्जत सुनि धुनि लज्जत कोइ रहैं—पद्माकर ग्रं, पृ० २८५।

विशेष—इसका मुँह कलम की तरह कटा होता है और जिसकी दूसरी छोर पर स्वर निकालने के लिये सात समानांतर छेद होते हैं। इसको मुँह में सीधा रखकर उँगलियों को छेदों पर रखते और उठाते हुए बजाते हैं।

अलगौझा†—संज्ञा पुं० [**हिं० अलग+औझा** (प्रत्य०)] [स्त्री० **अलगौझी**] पृथक्करण। अलगाव। बिलगाव।

अलग्ग(पु)—वि० [सं० **अलग्न**] समीप नहीं। दूर। उ०—ढोलइ चित्त विमासियउ, मारू देस अलग्ग।—ढोला०, दू० ३०७।

अलघु—वि० [सं०] [वि० स्त्री० **अलघ्वी**] १. जो लघु न हो। बड़ा। वजनी। २. गंभीर। ३. जो छोटा न हो। लंबा। ४. उग्र। भयंकर [को०]।

अलच्छ(पु)—वि० [हिं] दे० 'अलक्ष'। उ०—नग मग धरत अलच्छ जात अधरहिं जनु पच्छी।—रत्नाकर, भा० १, पृ० ११२।

अलच्छि(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० **अलक्ष्मी**] दरिद्रता। गरीबी। उ०—माया ब्रह्म जीव जगदीसा। लच्छि अलच्छि रंक अवनीसा।—मानस, १।६।

अलज¹—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का पक्षी [को०]।

अलज²(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अलज्ज'।

अलजी—संज्ञा स्त्री० [सं०] आँखों में होनेवाली एक प्रकार की लाल या काली फुंसी जो बहुत पीड़ा देती है।

अलज्ज—वि [सं०] निर्लज्ज। बेहया। उ०—तुम अलज्ज से क्यों यहाँ अड़े।—साकेत, पृ० ३१३।

अलटबिलट—संज्ञा पुं० [देश०] उलट पुलट। हेर फेर। गड़बड़ी। उ०—बात व्यौहार में कहीं कुछ अलटबिलट हो तो अपने नौगछिया की जगहँसाई होगी।—नई०, पृ० ३१।

अलटा—संज्ञा पुं० [स० **अलक्तक, प्रा० अलत्तय**, राज० **अलत्ता**] १. वह लाल रंग जो स्त्रियाँ पैरों में लगाती हैं। २. खसी की मूत्रेंद्रिय; जैसे—अलते की बोटी।

अलत्ता(पु)—संज्ञा पु० [सं० **अलक्तक, प्रा० अलत्तय**] दे० 'अलता'। उ०—सुंदरि, सोबन वर्ण तसु अहर अलत्ता रंगि। केसरिलंकी खीण कटि, कोमल नेत्र कुरंगि।—ढोला०, दू० ८७।

अलप(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अल्प'। उ०—तातें अनुमानों अब जीवन अलप है।—भिखारी० ग्रं०, भा० १, पृ० १५८।

अलपाका—संज्ञा पुं० [स्पे० **एलपका**] १. ऊँट की तरह का एक जानवर जो दक्षिण अमेरिका के पेरू नामक प्रांत में होता है। इसके बाल लंबे और ऊन की तरह मुलायम होते हैं। २. अलपाका का ऊन। ३. एक पतला कपड़ा जो रेशम या सूत के साथ अलपाका जंतु के ऊनी बालों को मिलाकर बनाया जाता है। यह कई रंगों का बनता है, पर विशेषकर काला होता है।

अलफ—संज्ञा पुं० [अ० **अलिफ**] १. घोड़े का आगे के दोनों पाँव उठाकर पिछले टाँगों के बल खड़ा होना।

विशेष—अरबी वर्णमाला का पहला अक्षर अलिफ खड़ा होता है। इसी से यह शब्द इस अर्थ में व्यवहृत होने लगा।

२. हरा चारा। हरी घास [को०]।

अलफा—संज्ञा पुं० [अ० **अलफा**] [स्त्री० अलफी] एक प्रकार का ढीला ढाला बिना बाँह का बहुत लंबा कुरता जिसे अधिकतर मुसलमान फकीर गले में डाले रहते हैं। उ०—अद्धी की टोपी लगाए सुकेशधारी अलफी पहने लँगड़ाता हुआ चिल्लाने लगा।—श्यामा०, पृ० १५०।

अलफाज—संज्ञा पुं० [**अ० लफ्ज़ का बहुव० अलफ़ाज़**] शब्दसमूह। उ०—बिना अरबी के अलफाज मिलाए।—प्राण०, २।५६।

अलबत—अव्य० [हिं०] दे० 'अलबत्ता'। उ०—तथ्यों का आरोप या संभावना अलबत वे कभी कभी किया करते हैं।—रस० क०, पृ० १४।

अलबत्ता—अव्य० [**अ० अलबत्तह्**] १ निस्संदेह। निःसंशय। बेशक; जैसे—'अब अलबत्ता यह काम होगा'। २. हाँ। बहुत ठीक। दुरुस्त। जैसे—अलबत्ता, बहादुरी इसका नाम है (शब्द०)। ३. लेकिन। परंतु; जैसे—हम रोज नहीं आ सकते, अलबत्ता कहो तो कभी कभी आ जाया करें (शब्द०)।

अलबम—संज्ञा पुं० [अं०, एलबम] तस्वीरें रखने की किताब।

अलबल—वि० [अनु०] अटपट। जल्दी जल्दी। उ०—अपने अपराधन कबहूँ बैठि विचारै हुव मिलन मनोरथ अल बल बैन उचारै।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० २६३।

अलबीतलबी—[अ०] अरबी, फारसी आदि विदेशी भाषाएँ अथवा बहुत कठिन उर्दू; जैसे—'आप अपनी अलबी तलबी छोड़कर सीधी तरह से हिंदी में बातें कीजिए'।

अलबेला¹—वि० [सं० अलभ्य+हिं० ला (प्रत्य०)] [स्त्री० अलबेली] १. बाँका। बना ठना। छैला। २. अनोखा। अनूठा। सुंदर; जैसे—'तुमने तो यह बड़ी अलबेली चीज निकाली।' ३. अल्हड़। बेपरवाह। मनमौजी। जैसे—यह बड़ा अलबेला है।

अलबेला²—संज्ञा पुं० [सं० अलभ्य] नारियल का बना हुआ हुक्का। उ०—खायकै पान बिदोरत होंठ हैं बैठि सभा में पिएँ अलबेला।—वंशगोपाल (शब्द०)।

अलबेलापन—संज्ञा पुं० [हिं० अलबेला+पन (प्रत्य०)] १. बाँकापन। सजधज। छैलापन। २. अनोखापन। अनूठापन। सुंदरता। ३. अल्हड़पन बेपरवाही।

अलब्ध—वि० [सं०] जिसकी प्राप्ति न हो सकी हो। जो हस्तगत न हुआ हो [को०]।

यौ०—अलब्धनाथ=बिना संरक्षक। स्वामीविहीन। अलब्धनिद्र=जिसे नींद न आई हो।

अलब्धभूमिकत्व—संज्ञा पुं० [सं०] समाधि का न जुड़ना। समाधि की अप्राप्ति।

अलब्धव्यायामाभूमि—संज्ञा स्त्री० [सं०] कौटिल्य के अनुसार ऐसी भूमि जिसमें सैन्यसंग्रह न हो सके।

अलभ(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अलभ्य'।

अलभ्य—वि० [सं०] १. न मिलने योग्य। अप्राप्त। उ०—रस पिया सखि नित्य जहाँ नया अब अलभ्य वहाँ विष हो गया।—साकेत, पृ० ३०७। २. जो कठिनता से मिल सके। दुर्लभ। उ०—मुनिहुँ मनोरथ को अगम अलभ्य लाभ सुगम सो राम लघु लोगनि को करिगे।—तुलसी ग्रं०, पृ० ३३६। ३. अमूल्य अनमोल। उ०—जीवन सौभाग्य है जीवन अलभ्य है।—लहर, पृ० ७०।

अलम्—अव्य० [सं०] यथेष्ट। पर्याप्त। पूर्ण। काफी। उ०—कृपा कटाक्ष अलम् है केवल, कोरदार या कोमल हो।—झरना, पृ० ८१।

अलम—संज्ञा पुं० [अ०] १. रंज। दुःख। उ०—अलम है दर्दे हसरत है फना है आहोजारी है।—शेर०, पृ० ३७७। २. झंडा।

अलमनक—संज्ञा पुं० [अं०] अँगरेजी ढंग की जंत्री या पत्रा।

अलमनाक—वि० [अ०] १. दुःखपूर्ण। २. अतिदुःखदाई [को०]।

अलमबरदार—संज्ञा पुं० [अ०] १. वह जो झंडा उठाता है। २. वह जो आंदोलन आदि में आगे रहता है [को०]।

अलमर—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पौधा।

अलमस्त—वि० [फ़ा०] १. मतवाला। बदहोश। बेहोश। २. बेगम। बेफिक्र। निर्द्वंद्व।

अलमारी—संज्ञा स्त्री० [पुर्त० अलमारियो] वह खड़ा संदूक जिसमें चीजें रखने के लिये खाने या दर बने रहते हैं और बंद करने के लिये पल्ले होते हैं। कभी कभी दीवार खोदकर और नीचे ऊपर तख्ते जोड़कर भी अलमारी बना दी जाती है। बड़ी भंडरिया।

अलमास—संज्ञा पुं० [फ़ा०] हीरा।

अलय¹—वि० [सं०] बिना घरवाला। चलता फिरता। जिसका नाश न हो [को०]।

अलय²—संज्ञा पुं० १. लय न होने का भाव। अनित्यता। २. जन्म। उत्पत्ति [को०]।

अलर्क—संज्ञा पुं० [सं०] १. पागल कुत्ता। २. सफेद आक या मदार। ३. एक प्राचीन राजा जिसने एक अंधे ब्राह्मण के माँगने पर अपनी दोनों आँखें निकालकर दे दी थीं। ४. शूकर जैसा एक आठ पैरोंवाला जंतु [को०]। ५. एक तरह का कीड़ा [को०]।

अलल(पु)†—क्रि० वि० [अ० आलाआला] इधर उधर। उ०—सँभलत धवलसर साहुलि संभलि। आलूदा ठाकुर अलल।—वेलि०, दू० ११३।

अललटप्पू—वि० [देश०] अटकलपच्चू। बेठिकाने का। अंडबंड।

अललबछेड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० अल्हड़+बछेड़ा] १. घोड़े का जवान बच्चा। २. अल्हड़ आदमी। वह व्यक्ति जिसे कुछ अनुभव न हो।

अललहिसाब—क्रि० वि० [अ०] बिना हिसाब किए हुए [को०]।

क्रि० प्र०—देना।

अललाना—क्रि० अ० [सं० अर्=बोलना] तेज चिल्लाना। गला फाड़कर बोलना।

अलल्ल(पु)—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'अलल्ल'।

अलल्ल(पु)—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'अलल्लाँ'।

अलल्लाँ—संज्ञा पुं० [देश०] घोड़ा (डिं०)।

अलवाँत—वि० स्त्री० [हिं०] दे० 'अलवाँती'।

अलवाँती—वि० स्त्री० [सं० बालवती] (स्त्री) जिसके बच्चा हुआ हो। प्रसूता। जच्चा।

अलवाई—वि० स्त्री० [सं० बालवती, हिं० अलवाँती] (गाय या भैंस) जिसको बच्चा जने एक दो महीने हुए हों। 'बाखरी' का उलटा।

अलवान—संज्ञा पुं० [अ०] पश्मीने की चादर। ऊनी चादर।

अलवाल—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आलवाल'।

अलविदा¹—अव्य० [अ० अल+विदाअ] विदा होते समय कहा जानेवाला शब्द।

अलविदा²—संज्ञा स्त्री० रमजान के महीने का अंतिम शुक्रवार।

अलस¹(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आलस्य'। उ०—वारि जाम जु निशि उनींदे, अलस बसहि जम्हात।—सूर०, १०।२६७६।

अलस²—वि० [सं०] आलस्ययुक्त। आलसी। सुस्त। मंद। निरुद्योगी। उ०—चंदन मिटाए तन अतिहीं अलस मन नागरी की पीक लीक लागी है कपोलौ।—सूर०, १०।२५०७।

अलस³—संज्ञा पुं० [सं०] १. पाँव का एक रोग जिसमें पानी से भींगे रहने या गंदे कीचड़ में पड़े रहने के कारण उँगलियों के बीच का चमड़ा सड़कर सफेद हो जाता है और उसमें खाज और पीड़ा होती है। खरवात। कंदरी। २. एक जहरीला छोटा जंतु [को०]। ३. एक तरह का पौधा [को०]।

अलसई(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० **आलस्य**] अलसता। उ०—कुंभकरन को रन हुयो गह्यो अलसई आइ। सिर चढ़ि श्रुति नासा हसत जु न रोक्यो हरिराइ।—भिखारी० ग्रं०, भा० १, पृ० ७५।

अलसक—संज्ञा पुं० [सं०] अजीर्ण रोग का एक भेद।

अलसा—संज्ञा स्त्री० [सं०] हंसपदी लता। लज्जालू। लाल फूल की लज्जावंती।

अलसाई(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० **अलस**] अलसता। सुस्ती। उ०—लटपटी पाग, अलक जो बिथुरीं, बात कहत आवत अलसाई।—सूर०, १०।२६४०।

अलसान(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अलसानि'।

अलसाना—क्रि० अ० [सं० **अलस**] आलस्य में पड़ना। क्लांत होना। शिथिलता अनुभव करना। उ०—(क) बल मोहन दोऊ अलसाने।—सूर०, १०।२३०। (ख) कबहुँ नैन अलसात जानि कै, जल लै पुनि पुनि धोवति।—सूर०, १०।२४६८।

अलसानि(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० **आलस्य**] आलस। सुस्ती। उ०—(क) आँखिन में अलसानि, चितौन में मंजु बिलासन की सरसाई।—मतिराम (शब्द०)। उ०—(ख) चिंता जृंभ उनींदता बिह्वलता अलसानि। लह्यो अभागिनि हौं अली, तैंहूँ गहै सु बानि।—भिखारी० ग्रं०, भा० २, पृ० १४।

अलसि(पु)—वि० [हिं०] दे० 'आलस्य'। उ०—बढ़ै अलसि जिय माँहि बैर मैं कहा जु पावो।—हम्मीर रा०, पृ० ५६।

अलसी¹—संज्ञा स्त्री० [सं० **अतसी**] एक पौधा और उसका फल या बीज। तीसी।

विशेष—यह पौधा प्रायः दो ढाई फुट ऊँचा होता है। इसमें डालियाँ बहुत कम होती हैं, केवल दो या तीन लंबी, कोमल और सीधी टहनियाँ छोटी छोटी पत्तियों से गुछी हुई निकलती हैं। इसमें नीले और बहुत सुंदर फूल निकलते हैं जिनके झड़ने पर छोटी घुंडियाँ बँधती हैं। इन्हीं घुंडियों में बीज रहते हैं जिनसे तेल निकलता है। यह तेल प्रायः जलाने और रंगसाजी तथा लीथो के छापे की स्याही बनाने के काम में आता है। बहुत से स्थानों पर साग,सब्जी आदि में भी इसका प्रयोग होता है। छापने की स्याही भी इसकी मिलावट से बनती है। इसको पकाकर गाढ़ा करके एक प्रकार का वारनिश भी बनता है। तेल निकालने के बाद अलसी की जो सीठी बचती है उसे खरी, खली कहते हैं। यह खली गाय को बहुत प्रिय है। अलसी या अलसी की खली को पीसकर उसकी पुलटिस बाँधने से सूजन बैठ जाती है, कच्चा फोड़ा शीघ्र पककर बह जाता है तथा उसकी पीड़ा शांत हो जाती है।

अलसी²(पु)—वि० [हिं०] दे० 'आलसी'। उ०—राम सुभाव सुने तुलसी हुलसे अलसी हम से गलगाजे।—तुलसी ग्रं०, पृ० १९८।

अलसेट(पु)—संज्ञा पुं० [सं० **अलस**+हिं० **एट** (प्रत्य०)] [वि० **अलसेटिया**] १. ढिलाई। व्यर्थ की देर। २. टालमटूल। भुलावा। चकमा। उ०—महरि गोद लैबे लगी करि बातन अलसेट।—व्यास (शब्द०)। ३. बाधा। अड़चन।

क्रि० प्र०—करना।—लगाना।

अलसेटिया(पु)—वि० [हिं० **अलसेट**+**इया** (प्रत्य०)] १. ढिलाई करनेवाला। व्यर्थ की देर करनेवाला। २. अड़चन डालनेवाला। बाधा उपस्थित करनेवाला। टालमटूल करनेवाला।

अलसौंहा(पु)†—वि० [सं० **अलस**+हिं० **औहाँ** (प्रत्य०)] [स्त्री० अलसौंही] आलस्ययुक्त। क्लांत। शिथिल। उ०—सही रँगीले रति जगैं, जगी पगी सुख चैन। अलसौहैं सौंहैं किऐं, कहैं हँसौंहैं नैन।—बिहारी र०, दो० ५११।

अलह(पु)—संज्ञा पुं० [अ० **अल्लाह**] अल्लाह। ईश्वर। खुदा। उ०—सुलतान जलाल सिकंदर जाया। सुलतान। साहबदीन अलह उपाया। पृ० रा०, ६६।१४०।

अलह(पु)²—वि० [सं० **अ**+**लभ्**] व्यर्थ। वृथा। अलभ्य। उ०—गाजै जलहर गयण में जाय अलह तै जोह।—बाँकीदास ग्रं०, भा० १, पृ० ३०।

अलहदगी—संज्ञा स्त्री० [अ० **अलाहदह्**+फ़ा० **गी** (प्रत्य०)] अलग होने का भाव। अलगाव। बिलगाव।

अलहदा—वि० [अ० **अलाहदह्**] जुदा। अलग। पृथक्।

अलहदी†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अहदी'। उ०—'कर्तव्यशून्य स्वभाव अलहदी बन गया'। प्रेमघन०, भा० २, पृ० ४१।

अलहन—संज्ञा स्त्री० [सं० **अलभन**] अभाग्य का उदय। विपत्ति। उ०—एकहि रितु सौं अंत दुहुनि की अलहन आई।—रत्नाकर भा० २, पृ० ४८।

अलहना(पु)†—वि० [सं० **अ**+**लभन**] न पानेवाला। उ०—जे गुणमंता अलहणा गौरव जहइ भूजन।—कीर्ति०, पृ० ३४।

अलहनियाँ—संज्ञा पुं० [हिं० **अलहन**] जो कोई काम न कर सकता हो। अकर्मण्य। अहदी।

मु०—अपने अलहनियाँ आन के गंडा पूरे=अपना काम न सँभालकर दूसरे का काम करनेवाला।

अलहा—वि० [सं० अलभ्य] अलभ्य। जो प्राप्त न हो। उ०—अगहा गहणा, अकहा कहणा, अलहा लहणा तहँ मिलि रहणा।—दादू०, पृ० ५१६।

अलहिया—संज्ञा स्त्री० [हिं० आल्हा] एक रागिनी जिसमें सब कोमल स्वर लगते हैं। हिंडोल राग की स्त्री और दीपक की पुत्रवधू। इसका व्यवहार करुण रस प्रकट करने में अधिक होता है।

अलहैरी—संज्ञा पुं० [अ०] एक जाति का अरबी ऊँट जिसके एक ही कूबड़ होता है और जो चलने में बहुत तेज होता है।

अलाई¹—वि० [सं० अलस] [वि० स्त्री० अलाइन] आलसी। काहिल।

अलाई²—वि० [हिं०] अलाउद्दीन संबंधी। अलाउद्दीन का; जैसे—अलाई दरवाजा, अलाई मोहर (शब्द०)।

अलाई³—संज्ञा पुं० [देश० अलल्ल] घोड़े की एक जाति।

अलागलाग—संज्ञा पुं० [हिं० लाग=लगाव] नृत्य या नाचने का एक ढंग।

अलात—संज्ञा पुं० [सं०] १. अंगार। २. जलती हुई लकड़ी। लुआठी।

अलातचक्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. जलती हुई लकड़ी या लुक को जल्दी जल्दी घुमाने से बना हुआ मंडल। उ०—मनु फिर रहे अलातचक्र से उस घन तम में।—कामायनी, पृ० २००। २. बनेठी। ३. गतिभेदानुसार एक प्रकार का नृत्य या नाच।

अलान—संज्ञा पुं० [सं० आलान] [स्त्री० अलानी] १. हाथी बाँधने का खूँटा। २. हाथी बाँधने का सिक्कड़। उ०—नवगयंदु रघुबीर मनु राजु अलान समान।—मानस, २।५१। ३. बंधन। बेड़ी। ४. लता या बेल चढ़ाने के लिये गाड़ी हुई लकड़ी।

अलाना†—क्रि० अ० [सं० √अर् = बोलना] चिल्लाना। गला फाड़कर बोलना। अललाना।

अलानाहक†—अव्य [फा० नाहक] बिना मतलब। बेसबब।

अलानिया—क्रि० वि० [अ० अलानियह्] उन्मुक्त रूप से। प्रकट रूप से। खुल्लम खुल्ला। सबके सामने [को०]।

अलाप(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आलाप[1]'। उ०—आदर अलाप छाँड़ि आगे तें अनखि उठी, मेरे मुहें एक बोल आकरो सो आइगो। गंग ग्रं०, पृ० ७८।

अलापना—क्रि० अ० [सं० आलापन] १. बोलना। बातचीत करना। २. सुर खींचना। तान लगाना। उ०—अधर अनूप मुरलि सुर पूरत गौरी राग अलापि बजावत।—सूर०, १०।१३६८। ३. गाना।

अलापी(पु)—वि० [सं० आलापिन्] बोलनेवाला। शब्द निकालनेवाला। उ०—नृत्यत कलापी झिल्ली पिक हैं अलापी बिरहीजन बिलापी हैं मिलापी रसरास मैं।—भिखारी० ग्रं०, भा० २, पृ० २८।

अलाबू—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. लौकी। कद्दू। २. तूँबा।

अलाभ—संज्ञा पुं० [सं०] लाभ का अभाव। नुकसान। उ०—दुख सुख, लाभ अलाभ समुझि तुम, कतहिं मरत हौ रोइ।—सूर०, १।२६२।

अलाम(पु)—वि० [अ० अल्लामह् = चतुर] जिसकी बात का कोई ठिकाना न हो। बात बनानेवाला। मिथ्यावादी।

अलामत—संज्ञा पुं० [अ०] १. लक्षण। निशान। चिह्न। उ०—बहुत रोने रुसवा कर दिखाया। न चाहत की छुपी हमसे अलामत।—शेर०, भा० १, पृ० ११६। २. पहचान।

अलामत मलामत—संज्ञा स्त्री० [अ० मलामत] डाँट डपट। भर्त्सना। क्रि० प्र०—करना।

अलायक(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अ = नहीं + अ० लायक] नालायक। अयोग्य। उ०—(क) अगुन अलायकु आलसी जन अधन अनेरो।—तुलसी (शब्द०)। (ख) सुर स्वारथी अतीस अलायक निठुर दया चित नाहीं।—तुलसी ग्रं० पृ० ५२३।

अलार[1]—संज्ञा पुं० [सं०] कपाट। किवाड़।

अलार[2](पु)—[सं० अलात] अलाव। आग का ढेर। अँवाँ। भट्ठी। उ०—तान आनि परी कान वृषभानु नंदिनी के तच्यो उर प्रान पच्यो विरह अलार है।—रघुनाथ० (शब्द०)।

अलार्म—संज्ञा पुं० [अं० एलार्म] खतरे की सूचना। खतरे का बिगुल [को०]।

मुहा०—अलार्म बजना = खतरे की घंटी या बिगुल बजना।

अलार्म घड़ी—संज्ञा स्त्री० [अं० एलार्म + सं० घंटी] जागरन घड़ी। जगानेवाली घड़ी।

अलाल(पु)—वि० [सं० अलस] १. आलसी। सुस्त। काहिल। २. अकर्मण्य। निकम्मा। उ०—ऐसे अधम अलाल को कीन्हों आप निहाल।—रघुराज (शब्द०)।

अलाव(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अलात = अंगार] आग का ढेर। जाड़े के दिनों में घास, फूस, सूखी पत्तियों और कंडों से जलाई हुई आग जिसके चारों ओर बैठकर गाँव के लोग तापते हैं। कौड़ा।

अलावज—संज्ञा पुं० [सं० आलाप + वाद्य] १. एक प्रकार का पुराना बाजा जो चमड़ा मढ़कर बनाया जाता था।

अलावनी—संज्ञा स्त्री० [सं० आलापिनी] एक पुराना बाजा जो तार से बनाया जाता था।

अलावलसाही—वि० [हिं० अलावल = अलाउद्दीन + साही] अलाद्दीन शाह संबंधी।

अलावा—क्रि० वि० [अ० अलावह्] सिवाय। अतिरिक्त।

अलास—संज्ञा पुं० [सं०] एक रोग जिसमें जीभ के नीचे का भाग सूज कर पक जाता है और दाढ़ तन जाती है।

अलास्य—वि० [सं०] नृत्य न करनेवाला। सुस्त [को०]।

अलाहदी—वि० स्त्री० [हिं०] दे० 'अलहदा'। उ०—कवि ठाकुर देखौ विचार हिये, कुछ ऐसी अलाहदी राह सी है।—ठाकुर०, पृ० १०।

अलिंग[1]—वि० [सं० अलिङ्ग] १. लिंगरहित। बिना चिह्न का। जिसका कोई लक्षण न हो। २. जिसका ठीक ठीक लक्षण निर्धारित न हो सके। जिसकी कोई पहचान बतलाई न जा सके। ३. बुरे लक्षण या चिह्नवाला [को०]।

अलिंग[2]—संज्ञा पुं० १. व्याकरण में वह शब्द जो दोनों लिंगों में व्यवहृत हो; जैसे हम, तुम, मैं, वह, मित्र। २. वेदांत। ईश्वर। ब्रह्म। ३. चिह्न या लक्षण का अभाव [को०]।

अलिंगन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० आलिङ्गन] दे० 'आलिंगन'। उ०—कंठ लगाइ लेत पुनि ताहीं। देत अलिंगन रीझत जाहीं।—सूर०, १०।११६४।

अलिंगी[1]—संज्ञा पुं० [अलिङ्गिन्] लिंग या परिचायक चिह्नों से रहित साधु [को०]।

अलिंगी[2]—वि० बिना लिंग या पहचान का।

अलिंजर—संज्ञा पुं० [सं० अलिञ्जर] पानी रखने के लिये मिट्टी का बरतन। झंझर। घड़ा।

अलिंद[1]—संज्ञा पुं० [सं० अलिन्द] १. मकान के बाहरी द्वार के आगे का चबूतरा या छज्जा। २. एक पुराना जनपद [को०]।

अलिंद(पु)[2]—संज्ञा पुं० [सं० अलीन्द] भौंरा। उ०—कौन जानै कहा भयो सुंदर सबल स्याम टूटें गुन धनुष तुनीर तीर झरिगो। ...नीलकंज मुद्रित निहारि विद्यमान भानु सिंधु मकरंदहि अलिंद पान करिगो (शब्द०)।

अलिपक—संज्ञा पुं० [सं० अलिम्पक] १. मेढक। २. कोकिल। ३. भौंरा। ४. मधुमक्खी। ५. महुवे का पेड़ [को०]।

अलि[1]—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० अलिनी] १. भौंरा। भ्रमर। उ०—रे अलि बाज, मोद रस लंपट करहिं बकत बेकाज।—सूर०

१०।३७४२। २. कोयल। ३. कौवा। ४. बिच्छू। ५. वृश्चिक राशि। ६. कुत्ता। ७. मदिरा।

अलि(पु)[२]—संज्ञा स्त्री० [सं० **आलि, आली**] दे० 'अली'। उ०—कुँवर सो कुसल छेम अलि तेहि पल कुलगुरु कहँ पहुँचाई।—तुलसी ग्रं०, पृ० ३६२।

अलिक—संज्ञा पुं० [सं०] १. ललाट। कपाल। २. दे० 'अलि'। उ०—सुनि लोल लोचनी नवल निधि नेही की अलका की अलिक अलक लटकति है।—केशव ग्रं०, भा० १, पृ० २१०।

अलिखित—वि० [सं०] १. जो लिखा न हो। २. मौखिक रूप से परंपराप्राप्त।

अलिगर्द—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अलिगर्द्ध' [को०]।

अलिगर्द्ध—संज्ञा पुं० [सं०] पानी में रहनेवाला एक प्रकार का साँप [को०]।

अलिजिह्वा—संज्ञा स्त्री० [सं०] गले की घाँटी। गले के भीतर का कौवा

अलित्त(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अलिप्त'। उ०—मराल बाल आसनं। अलित्त साय सासनं।पृ० रा०, ५७।११६।

अलिदूर्वा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक पौधा। मालादूर्वा [को०]।

अलिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] भ्रमरी। उ०—गिरा अलिनि मुखपंकज रोकी। प्रगट न लाज निसा अवलोकी।—मानस १।२५६।

अलिपक—संज्ञा पुं० [सं०] १. भौंरा। २. कोयल। ३. कुत्ता।

अलिपत्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] बिछुआ घास।

अलिपर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] अलिपत्रिका। बिछुआ घास [को०]।

अलिप्त—वि० [सं०] जो लिप्त न हो। निर्लिप्त। उ०—रहकर भी जल जाल में तू अलिप्त अरविंद।—साकेत, पृ० २९४।

अलिप्रिय—संज्ञा पुं० [सं०] अरुणकमल। लाल कमल [को०]।

अलिमक—संज्ञा पुं० [सं०] १. कोयल। २. मेढ़क। ३. कमल का केसर [को०]।

अलिमोदा—संज्ञा स्त्री० [सं०] गनियारी नामक पौधा [को०]।

अलियल(पु)—संज्ञा पुं० [सं० **अलिकुल**; प्रा० **अलिउल**] (अलिसमूह) भ्रमरगण। उ०—अलियल आज करत नह, गयँद कपोलाँ गान।—बाँकीदास ग्रं०, भा० १, पृ० ३१।

अलिया†—संज्ञा स्त्री० [सं० **आलय**] १. एक प्रकार की खारी। २. वह गड्ढा जिसमें कोई वस्तु रखकर ढँक दी जाय।

अलिवल्लभ—संज्ञा पुं० [सं०] लाल कमल [को०]।

अलिविरुत—संज्ञा पुं० [सं०] भौंरों की गूँज [को०]।

अली(पु)[१]—संज्ञा स्त्री० [सं० **आली**] १. सखी। सहचरी। सहेली। उ०—येहिं भाँति गौरि असीस सुनि सिय सहित हिय हरषी अली।—मानस, १।२३६। २. श्रेणी। पंक्ति। कतार।

अली[२]—संज्ञा पुं० [सं० **अलिन्**] [स्त्री० **अलिनी**] १. भौंरा। उ०—अली कली ही सौं बँध्यो, आगे कौन हवाल।—बिहारी र०, दो० ३८। २. बिच्छू [को०]।

अलीक[१]—वि० [सं०] १. बेसिर पैर का। मिथ्या। झूठा। उ०—(क) सोई रावनु जग विदित प्रतापी। सुनेहि न स्रवनअलीक प्रलापी।—मानस ६।२५। (ख) अनख भरी धुनि अजिन की वचन अलीक अमान।—भिखारी० ग्रं०, भा० १, पृ०४८। २. अमान्य। अप्रिय [को०]। ३. अल्प। थोड़ा [को०]।

अलीक[२]—संज्ञा पुं० १. नापसंद या असत्य चीज। २. ललाट। ३. स्वर्ग। आकाश। ४. दुःख [को०]।

अलीक[३]—संज्ञा पुं० [सं० **अ = नहीं + हिं० लीग**] अप्रतिष्ठा।

अलीक[४]—वि० मर्यादारहित। अप्रतिष्ठित।

अलीकी—वि० [सं० **अलीकिन्**] १. नापसंद। अप्रिय। २. असत्य [को०]।

अलीगर्द—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अलिगर्द्ध' [को०]।

अलीगर्द्ध—संज्ञा पुं० दे० 'अलिगर्द' [को०]।

अलीजा(पु)—वि० [अ० **आलीजाह**] बहुत सा। अधिक। बुलंद। उ०—मोम महावर मूली बीजा। अकरकरा अजमोद अलीजा।—सूदन (शब्द०)। २. दे० 'आलीजाह'।

अलीन[१]—संज्ञा पुं० [सं० **आलीन = मिला हुआ**] १. द्वार के चौखट की खड़ी लंबी लकड़ी जिसमें पल्ला या किवाड़ जड़ा जाता है। साह। बाजू। २. दालान या बरामदे के किनारे का खंभा जो दीवार से सटा होता है। इसका घेरा प्रायः आधा होता है।

अलीन[२]—वि० [सं० **अ = नहीं + लीन = रत**] १. अग्राह्य। अनुपयुक्त। उ०—'हे सखा ! पुरुवंशियों का मन अलीन वस्तु कभी नहीं जाता'।—शकुंतला०, पृ० ३४। २ अनुचित। बेजा। उ०—अरि दलयुक्त आप दलहीना। करि बैठे कछु कर्म अलीना।—सबल (शब्द०)।

अलीपित(पु)—वि०] हिं०] दे०' अलिप्त'।

अलीबंद—संज्ञा पुं० [**अ० अली + फा० बंद**] एक प्रकार का आभूषण। एक प्रकार का बाजूबंद।

अलील—वि० [अ०] बीमार। रुग्ण।

अलीह(पु)—वि० [सं० **अलीक**] मिथ्या। असत्य। उ०—कान मूदि कर रद गहि जीहा। एक कहहिं अेह बात अलीहा।—मानस २।४८।

अलु—संज्ञा पुं० [सं०] एक छोटा जलपात्र [को०]।

अलुक्—संज्ञा पुं० [सं०] व्याकरण में समास का एक भेद जिसमें बीच की विभक्ति का लोप नहीं होता। जैसे—सरसिज, मनसिज, युधिष्ठिर, कर्णेजय, अगदंकर, असूर्यपंश्या, विश्वंभर।

अलुक्क(पु)—वि० [सं० **अ = नहीं + प्रा० लुक्क = छिपना**] न छिपनेवाला। उ०—अलुक्क लुक्क मान की कला अचुक्क धारहीं।—पद्माकर ग्रं०, पृ० २८३।

अलुज्झना(पु)—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'अलुझना'। उ०—खप्परिन्ह खग्ग अलुज्झि जुज्झहि सुभट भटन ढहावहीं।—मानस, ६।७८।

अलुझना(पु)—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'अरुझना' और 'उलझना'।

अलुटना(पु)—क्रि० अ० [सं० √**लुठ् = लोटना, लड़खड़ाना**] लड़खड़ाना। गिरना पड़ना। उ०—चले जात अलह मग, लागे बाग दीठि पर्यो, करि अनुराग हरि सेवा बिस्तारिये। पकि रहे आम माँगे माली पास भोग लिए, कह्यो लीजै, कही झुकि आई सब डारिये। चल्यौ दौरि राजा जहाँ, जाइकै सुनाई बात,गात भई प्रीति, अलुटत पाँव धारिये।—प्रिया (शब्द०)।

अलुमीनम—संज्ञा पुं० [अं० **एलुमीनियन**] एक धातु जो कुछ कुछ नीलापन लिए सफेद होती है और अपने हल्केपन के लिये

प्रसिद्ध है। इसके बरतन बनते हैं। इसमें रखने से खट्टी चीजें नहीं बिगड़ती।

अलूक(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'उलूक'। उ०—सारस्स चिल्ह चात्रिग अलूक।—पृ० रा०, ६१।१६७।

अलूप(पु)—वि० [सं० लुप = अभाव] लुप्त। गायब। उ०—ससि औ सूर जो नर्मल तेहि लनाट की रूप। निसि दिन चलहिं न सरवरि पावैं तपि तपि होंहिं अलूप।—जायसी (शब्द०)।

अलूफा(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अलोप'। उ०—सुखमन के घर तारी लाओ अमी अलूफा पाओगा।—गुलाल०, पृ० ५५।

अलूला(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० बुलबुला बलूला ?] बुलबुला। भभूका। लपट। उद्गार। उ०—बानर बदन रुधिर लपटाने छबि के उठत अलूले। रघुपति रन प्रताप रन सरवर, मनहुँ कमलकुल फूले।—हनुमान (शब्द०)।

अलेख¹—वि० [सं०] १. जिसके विषय में कोई भावना न हो सके। दुर्बोध। अज्ञेय। उ०—अगुन अलेख अमान एक रस। राम सगुन भए भक्त प्रेम बस।—तुलसी (शब्द०)। २. जिसका लेखा न हो सके। बेहिसाब। बेअंदाज। अनगिनत। बहुत अधिक। उ०—योग यज्ञ जप ध्यान अलेख। तीरथ फिरे धरे बहु भेख।—कबीर (शब्द०)।

अलेख²(पु)—वि० [सं० अलक्ष्य] अदृश्य। उ०—सितासित अरुनारे पानिप के राखिबे कों, तीरथ के पति हैं अलेख लखि हारे हैं।—भिखारी० ग्रं०, भा० २, पृ० ३६।

अलेख³(पु)—संज्ञा पुं० [सं० लेख = देवता] देवता। देव। उ०—सजि तिय नरभेषनि सहित अलेखनि करहिं असेषनि गानन कों।—भिखारी० ग्रं०, भा० १, पृ० २२६।

अलेखा(पु)—वि० [सं० अलेख] १. जो गिना न जा सके। बेहिसाब। २. व्यर्थ। निष्फल। उ०—सूरदास यह मति आए बिन सब दिन गए अलेखे। का जानै दिनकर की महिमा अंध नैन बिन देखे।—सूर०, २।२५।

अलेखी(पु)¹—वि० [सं० अलेख] गड़बड़ मचानेवाला। अंधेर करनेवाला। अन्यायी। उ०—बड़े अलेखी लखि परे परिहरे न जाहीं। असमंजस मों मगन हौं लीजै गहि बाहीं।—तुलसी (शब्द०)।

अलेखी²—वि० [सं० अ + लेख्य] जो लिखी न गई हो या जिसका लेखा न हो। उ०—लेखी मैं अलेखी मैं नहीं है छबि ऐसी औ, असमसरी समसरी दीबे कों परै लियैं।—भिखारी० ग्रं० भा० २, पृ० १८६।

अलेपक¹—वि० [सं०] किसी भी चीज में लीप्त न होनेवाला। निर्लिप्त निष्कलुष। बेदाग [को०]।

अलेपक²—संज्ञा पुं० परमात्मा। ब्रह्म।

अलेपा(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अलेपक'। उ०—सर्ब निवासी सदा अलेपा तोही संग समाई।—संतवाणी०, भा० २, पृ० ४६।

अलेल(पु)—वि० [प्रा० अलिल्लह = अप्रयोज्य अर्थात् प्रयोजन से अधिक] बहुत। अधिक। ज्यादा। उ०—घनआनंद खेल अलेल दसै बिलसै, सुलसै लद भूमि झूलि।—घनआनंद, पृ० १५६।

अलेलहा—वि० [हिं०] दे० 'अलेल'।

अलेव(पु)—वि० [हिं०] अलेप। अलिप्त। उ०—सुने अचंभो सो लगै सहजो ब्रह्म अलेव।—सहजो०, पृ० ४६।

अलैया‡—संज्ञा स्त्री० [हिं० अलहिया] एक रागिनी। वि० दे० 'अलहिया'।

अलोइ(पु)—वि० [सं० अलौकिक] अलौकिक। इस लोक से भिन्न। उ०—जंपि राज दुजराज सम। तुम मति रूप अलोइ।—पृ० रा०, २५।१५३।

अलोक¹—वि० [सं०] १. जो देखने में न आए। अदृश्य। २. लोकशून्य। निर्जन। एकांत। ३. पुण्यहीन।

अलोक²—संज्ञा पुं० १. पातालादि लोक। परलोक। २. जैन शास्त्रानुसार वह स्थान जहाँ आकाश के अतिरिक्त धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय आदि कोई द्रव्य न हो और जिसमें मोक्षगामी के सिवा और किसी की गति न हो। (पु) ३. बिना देखी बात। मिथ्यादोष। कलंक। निंदा। उ०—(क) लक्ष्मण सीय तजी जब ते बन। लोक अलोकन पूरि रहे तन।—रामचं०, पृ० १८१। (ख) पुत्र होइ कि पुत्रिका यह बात जानि न जाइ। लोक लोकन मैं अलोक न लीजिये रघुराइ।—रामचं०, पृ० १६४। ४. संसार का विनाश [को०]।

यौ०—अलोक सामान्य = अद्वितीय। असामान्य।

अलोक³(पु)—संज्ञा पुं० [सं० आलोक] दे० 'आलोक'।

अलोकन—संज्ञा पुं० [सं०] अदृश्यता। न दिखाई पड़ना [को०]।

अलोकना(पु)—क्रि० स० [सं० आलोकन] देखना। ताकना। उ०—रंचक दीठि को भार लहै बहु बार बिलोकनि ईठि अनैसी। टूटिहै लागिहै लोक अलोकत वै हठ छूटिहै जूटिहै कैसी।—केशव (शब्द०)।

अलोकनीय—वि० [सं०] जो दीख न पड़े। अदृश्य [को०]।

अलोकित—वि० [सं०] अदेखा। बिना देखा हुआ [को०]।

अलोकी(पु)—वि० [हिं० अलोक = निंदा + ई (प्रत्य०)] निंदित। कलंकी। बदनाम। उ०—भ्रमै सभ्रमी, यत्र शोके सशोकी अधर्मै अधर्मी अलोकै अलोकी।—रामचं०, पृ० १५८।

अलोक्य—वि० [सं०] १. जो स्वर्ग दिलानेवाला न हो। अस्वर्ग्य। २. बुरे स्वभाववाला। क्रूर प्रकृति का [को०]।

अलोचन—वि० [सं०] १. जिसे आँख न हो। २. बिना खिड़की या झरोखावाला [को०]।

अलोना—वि० [सं० अलवण] [वि० स्त्री० अलोनी] १. बिना नमक का। जिसमें नमक न पड़ा हो। उ०—कीरति कुल करतूति भूति भलि सील सरूप सलोने। तुलसी प्रभु अनुराग रहित जस सालन साग अलोने।—तुलसी ग्रं०, पृ० ५४६। २. जिसमें नमक न खाया जाय; जैसे—'रविवार को बहुत लोग अलोना व्रत रखते हैं'। ३. फीका। स्वादरहित। बेमजा। उ०—केसोदास बोले बिन, बोल के सुने बिना हू हिलन मिलन बिना मोह क्यों सरतु है। कौ लग अलोनो रूप प्याय प्याय राखौं नैन, नीर बिना मीन कैसे धीरज धरतु है।—केशव (शब्द०)।

अलोप(पु)—वि० [सं० लोप] दे० 'लोप'। उ०—अलोप टोर कै अटोर चाह चोर सों धरै।—पद्माकर ग्रं०, पृ० २८४।

अलोपना¹ (पु)—क्रि० स० [सं० आलोपन] लुप्त करना । उ०—लेइगा कुस्नहि गरुड़ अलोपी । —जायसी ग्रं०, पृ० १५१ ।

अलोपना² (पु)—क्रि० अ० लुप्त हो जाना । उ०—छत्रहि सरग छाइगा सूरुज गयउ अलोपि ।—जायसी ग्रं० पृ० १०४ ।

अलोप—संज्ञा पुं० [सं० अलोप] एक पेड़ जो सदा हरा रहता है ।

विशेष—इसके हीर की लाल और चिकनी लकड़ी बहुत मजबूत होती है । यह नाव और गाड़ी बनाने के काम में आती है तथा घरों में लगती है । इसकी लकड़ी पानी में खराब नहीं होती ।

अलोभ—संज्ञा पुं० [सं०] १. लालच से मुक्ति । २. उलझन का अभाव [को०] ।

अलोभी—वि० [सं० अलोभिन्] इच्छारहित । अनिच्छुक [को०] ।

अलोल¹—संज्ञा पुं० [सं०] १४ मात्राओं का एक छंद जिसके चार चरण होते हैं [को०] ।

अलोल²—वि० [सं०] १. जो चंचल न हो । स्थिर । टिका हुआ । उ०—नना री करे अलोल, धरे री पानी कपोल, भुव नख लिखैं तिलहू न कछु भटकी री ।—सूर०, १०।२७६७ । २. जो लोभी न हो । अनिच्छुक [को०] ।

अलोलिक (पु)—संज्ञा पुं० [सं० अलोल + इक (प्रत्य०)] अचंचलता । धीरता । स्थिरता उ०—लोल अमोल कटाक्ष कलोल अलोलिक सों पट ओलि कै फेरै ।—केशव (शब्द०) ।

अलोलु—वि० [सं०] विषय वासनाओं में रुचि न लेनेवाला । उदासीन [को०] ।

अलोलुप—वि० [सं०] १. इच्छाओं से मुक्त । २. अलोभी । लोभ से दूर रहनेवाला [को०] ।

अलोलुपता—संज्ञा स्त्री० [सं०] लोलुपता या लालच का अभाव [को०] ।

अलोहित—संज्ञा पुं० [सं०] लाल कमल ।

अलोही (पु)—वि० [सं० अ = नहीं + लहित = रक्त] रक्त से अछूता । उ०—इहि बिधि सु बीरनि संग लै पैठो अलोहो अनी में ।—पद्माकर ग्रं०, पृ० १८ ।

अलौकिक—वि० [सं०] १. जो इस लोक में न दिखाई दे । लोकोत्तर । लोकबाह्य । २. असाधारण । अद्भुत । अपूर्व । उ०—हिय हरषे रघुबंस मनि प्रीति अलौकिक जानि ।—मानस, १।२६५ । ३. अमानुषी ।

अलौकिक—वि० [सं० अ + लोल] अल्हड़पन । उ०—लाल अलौलिक लरिकई लखि लखि सखी सिहाँति ।—बिहारी र०, दो०१६५ ।

अलौही—वि० [सं० अलौह + हिं० ई (प्रत्य०)] जिसका लोहा कोई न ले सके । जिसका कोई टक्कर न ले सके । उ०—इहि बिधि सुबीरन संग लै पैठो अलौही अनी में ।—हिम्मत०,पृ० २५ ।

अल्क—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार का वृक्ष । २. अवयव । अंग [को०] ।

अल्टिमेटम—संज्ञा पुं० [अं०] (किसी देश या राज्य का दूसरे देश या राज्य से) अंतिम प्रस्ताव, सूचना, पत्र या शर्तें, जिनके अस्वीकृत होने पर युद्ध के सिवा उपायांतर नहीं रहता । अंतिम पत्र । अंतिम सूचना; जैसे—'जापान ने चीन को अल्टिमेटम दिया है कि २४ घंटे के अंदर टिनसिन खाली कर दो ।'—(शब्द०) ।

विशेष—द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान में इसकी जगह हिंदी समाचार पत्रों में 'अंतिमेत्थम' शब्द प्रचलित किया गया है ।

अल्प¹—वि० [सं०] १. थोड़ा । कम । न्यून । कुछ । २. छोटा । ३. तुच्छ । ४. मरणशील । ५. विरल । ६. थोड़ी अवस्थावाला ।

अल्प—संज्ञा पुं० एक काव्यालंकार ।

विशेष—आधेय की अपेक्षा आधार की अल्पता या छोटाई का वर्णन होता है, जैसे—'सुनहु श्याम ब्रज में जगी, दसम दसा की जोति । जेंह मुँदरी अँगुरीन की, कर ढीली होति' । यहाँ आधेय मुँदरी की अपेक्षा आधार हाथ पतला या सूक्ष्म बतलाया गया है (शब्द०) ।

अल्पक¹—वि० [सं०] [स्त्री० अल्पिका] थोड़ा । कम ।

अल्पक²—संज्ञा पुं० जवास का पौधा ।

अल्पकालिक—वि० [सं०] क्षणस्थायी । थोड़े काल का । उ०—'पर यह उच्छृंखलता और ध्वंस अल्पकालिक होता है' ।—रस०, पृ० १९ ।

अल्पकालीन—वि० [सं० अल्प + कालीन] दे० 'अल्पकालिक' ।

अल्पकेशी—संज्ञा स्त्री० [सं०] जटामासी । भूतकेशी । निर्गुंडी [को०] ।

अल्पगंध—संज्ञा पुं० [सं० अल्पगन्ध] रक्त कुमुदिनी । लाल कूँई ।

अल्पजीवी—वि० [सं० अल्पजीविन्] थोड़ा जीनेवाला । जिसकी आयु कम हो । अल्पायु ।

अल्पज्ञ—वि० [सं०] १. थोड़ा ज्ञान रखनेवाला । कम बातों को जाननेवाला । २. छोटी बुद्धि का । नासमझ ।

अल्पज्ञता—संज्ञा स्त्री० [सं०] थोड़ी जानकारी । ज्ञान की अपूर्णता । २. नासमझी ।

अल्पतनु—वि० [सं०] १. छोटे शरीरवाला । २. दुबला पतला । कमजोर । ३. छोटी हड्डियोंवाला [को०] ।

अल्पता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कमी । न्यूनता । २. छोटा ।

अल्पत्व—संज्ञा पुं० [सं०] १. कमी । न्यूनता । २. छोटापन ।

अल्पदक्षिण—वि० [सं०] उपहार या दान देने में कंजूसी करने वाला [को०] ।

अल्पदर्शन—वि० [सं०] अधिकतर दूर तक न सोचनेवाला । अदूरदर्शी । संकुचित विचार वाला [को०] ।

अल्पदृष्टि—वि० [सं०] संकुचित दृष्टि या विचारवाला [को०] ।

अल्पधन—वि० [सं०] कम पैसेवाला । निर्धन । गरीब [को०] ।

अल्पधी—वि० [सं०] कम बुद्धिवाल । मुर्ख [को०] ।

अल्पपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार की तुलसी । २. कम पत्तोंवाला वृक्ष । मुसली [को०] ।

अल्पपद्म—संज्ञा पुं० [सं०] अरुण कमल [को०] ।

अल्पप्रमाणक¹—वि० १. थोड़े वजन या नापवाला । २. स्वल्प अधिकार या समीक्षावाला [को०] ।

अल्पप्रमाणक²—संज्ञा पुं० [सं०] १. खरबूजा । २. तरबूजा ।

अल्पप्रसार—संज्ञा पुं० [सं०] कौटिल्य के अनुसार छोटी सी जांगलिक सेना या जांगलिक सहायता ।

अल्पप्राण¹—संज्ञा पुं० [सं०] वह वर्ण जिसके उच्चारण में प्राणवायु का अल्प व्यवहार हो । व्यंजनों के प्रत्येक वर्ग का पहला,

तीसरा और पाँचवाँ अक्षर तथा य, र, ल और व। अल्पप्राण ये हैं—क, ग, ङ, च, ज, ञ, ट, ड, ण, त, द, न, प, ब, म, य, र, ल और व।

अल्पप्राण[2]—वि० १. कमजोर। २. अल्पश्वासवाला। श्वासरोगग्रस्त [को०]।

अल्पबल—वि० [सं०] कम शक्तिवाला। कमजोर [को०]।

अल्पबुद्धि—वि० [सं०] थोड़ी बुद्धिवाला। मूर्ख [को०]।

अल्पभाग्य—वि० [सं०] अभागा। मंदभाग्य [को०]।

अल्पभाषी—वि० [सं० **अल्पभाषिन्**] [वि० स्त्री० **अल्पभाषिणी**] कम बोलनेवाला। [को०]।

अल्पभृत—संज्ञा पुं० [संज्ञा] वार्षिक भृति (भत्ता या वेतन) पानेवाला कर्मचारी।

अल्पमत—संज्ञा पुं० [सं०] १. वे लोग जिनकी संख्या या मत औरों की अपेक्षा कम हो। अल्पसंख्यक। २. थोड़े से लोगों का मत। बहुमत का। उलटा।

अल्पमध्यम—वि० [सं०] पतली कमरवाला। जिसकी कटि क्षीण हो [को०]।

अल्पमारिष—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का मरसा का साग [को०]।

अल्पमेधा—वि० [सं० **अल्पमेधस्**] अल्पबुद्धि। मूर्ख [को०]।

अल्पवयस्क—वि० [सं०] [वि० स्त्री० **अल्पवयस्का**] छोटी अवस्था का। थोड़ी उम्र का। कमसिन।

अल्पवया—वि० [सं० **अल्पवयस्**] कमसिन। अल्पवयस्क [को०]।

अल्पविराम—संज्ञा पुं० [सं०] वाक्य में अर्थबोध की दृष्टि से थोड़े विराम की सूचना देनेवाला चिह्न। इसका रूप यह (;) है। कामा।

अल्पव्यय—संज्ञा पुं० [सं०] वह काम जो केवल कुछ भत्ता (खाने-पीने का खर्च) मात्र देने से हो जाय।

अल्पव्ययारंभ—संज्ञा पुं० [सं० **अल्पव्ययारम्भ**] कौटिल्य के मत से बहुत कम खर्च में बननेवाला काम।

अल्पशः—क्रि० वि० [सं०] थोड़ा थोड़ा करके धीरे धीरे। क्रमशः।

अल्पशमी—संज्ञा पुं० [सं०] शमी की तरह एक छोटा वृक्ष [को०]।

अल्पसंख्यक[1]—वि० [सं० **अल्पसङ्ख्यक**] कम संख्यावाला। गिनती का। थोड़े या कम।

अल्पसंख्यक[2]—संज्ञा पुं० १. वह गुट, दल, पक्ष या समाज जिसके सदस्यों की संख्या औरों की अपेक्षा कम हो। बहुसंख्यक का उलटा। २. उक्त पक्ष दल या समाज का सदस्य।

अल्पसंतोषी—वि० [**अल्पसन्तोषिन्**] थोड़े में संतुष्ट रहनेवाला [को०]।

अल्पसार—वि० [सं०] १. स्वल्प मूल्य का। २. अल्प शक्ति का। कमजोर [को०]।

अल्पसत्व—वि० [सं०] कम शक्ति या साहसवाला [को०]।

अल्पस्वाप—संज्ञा पुं० [सं०] कौटिल्य के अनुसार आराम करने के लिये स्थान या अवसर का बहुत कम मिलना।

अल्पांश—संज्ञा पुं० [सं०] थोड़ा अंश। कुछ भाग।

अल्पायु[1]—वि० [सं०] थोड़ी आयुवाला। जो थोड़े दिन जीए। जो छोटी अवस्था में मरे।

अल्पायु[2]—संज्ञा पुं० बकरा।

अल्पारंभ—संज्ञा पुं० [सं० **अल्पारम्भ**] छोटे तौर पर या धीरे धीरे कार्य शुरू करना [को०]।

अल्पाहार[1]—संज्ञा पुं० [सं०] थोड़ा भोजन। कम भोजन। संयत भोजन [को०]।

अल्पाहार[2]—वि० कम खानेवाला। अल्पाहारी [को०]।

अल्पाहारी—वि० [सं० **अल्पाहारिन्**] थोड़ा खानेवाला। कम खानेवाला। संयत भोजन करनेवाला [को०]।

अल्पित—वि० [सं०] जिसकी उपेक्षा की गई हो। २. घटाया हुआ। अल्प किया हुआ [को०]।

अल्पिष्ट—वि० [सं०] सबसे कम। सबसे छोटा। बहुत छोटा [को०]।

अल्पेतर—वि० [सं०] १. छोटा नहीं। बृहद्। २. थोड़ा नहीं। बहुत। अनेक [को०]।

अल्फाज—संज्ञा पुं० [**अ० लफ्ज का बहुव०**] वाक्य। शब्द समूह।

अल्यंग(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० **आलिङ्गन**] दे० 'आलिंगन'। उ०—रूठी गोरी अल्यंग नू लेहि। पल्यंग बइसइ नवि पान नू लेहि।—बी० रासो, पृ० ६७।

अल्ल—संज्ञा पुं० [अ० आल] वंश का नाम। उपगोत्रज नाम। जैसे—पाँड़े, त्रिपाठी, मिश्र, आदि।

अल्लक(पु)—संज्ञा पुं० [सं० **अलक**] १. दे० 'अलक'। उ०—सुहंत स्यामं अल्लकं, भ्रमत भौंर बल्लकं।—हम्मीर रा०, पृ० २५। २. धनिया या धनिया का पौधा [को०]।

अल्लमगल्लम—संज्ञा पुं० [**अनु०**] अनाप शनाप। अंडबंड। व्यर्थ की बकवाद। प्रलाप।

अल्ला[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. माता। २. पराशक्ति [को०]।

अल्ला[2]—संज्ञा पुं० ईश्वर। परमात्मा [को०]।

अल्लाई—संज्ञा स्त्री० [सं० **अर् = शब्द करना**] चौपायों के गले की एक बीमारी। घँटियार।

अल्लाना(पु)†—क्रि० अ० [सं० **अर = बोलना**] चिल्लाना। जोर से बोलना। उ०—पावस की अधिक अँधेरी अधरात सजै कान्ह हेत कामिनी यों कीन्हीं अभिसार को। 'राम' कहै चकित चुरैलैं चहु अल्लैं, त्यों खबीस करि भल्लैं, चौहै चकित समान को।—राम (शब्द०)।

अल्लामा[1]—वि० स्त्री० [**अ० अल्लामह् = चतुर अथवा हिं० अल्लाना = चिल्लाना**] कर्कशा। लड़ाकी।

अल्लामा[2]—वि० [**अ० अल्लामह**] बहुविज्ञ। श्रेष्ठ विद्वान्। महापंडित [को०]।

अल्लाह—संज्ञा पुं० [अ०] ईश्वर। उ०—अल्लाह की नहीं तुझे ऐ बेखबर तलाश।—शेर०, भा० १, पृ० ६७१।

मुहा०—**अल्लाह मियाँ की गाय** = सीधा सादा। बहुत भोला। निष्कपट। **अल्लाह आमीन से पालना** = मनौती मानकर पालना। देवताओं की विनय करके पालना। **अल्लाह ने अकल ही नहीं दी** = परमात्मा ने बुद्धि पर परदा डाल दिया है।

यौ०—**अल्लाहताला** = ईश्वर। **अल्लाहबेली** = ईश्वर तुम्हारा रक्षक है। **अल्लहो अकबर** = इश्वर महान् है।

अल्लोल(पु)—वि० [सं० **आलोल**] लोल। चंचल। उ०—जलकेलि करत मिलि सजन संग। अल्लोल कलभ जनु सरति रंग।—पृ० रा०, १।७२४।

अल्ह(पु)--संज्ञा पुं० [सं० **अह्न अथवा** प्रा० **अल्ल=दिवस**] दिन। उ०--परत भोमि रोचनिय। सस्त्र पुद्धी अल्ह फुट्टिय।--पृ० रा०, ६४।३५१।

अल्हजा(पु)--संज्ञा पुं० [अ० **अल् हजल**] यह बात और वह बात। गप्प। इधर उधर की बात। उ०--कबिरा जीवन कछु नहीं, खिन खारा खिन मीठ। कालिह अल्हजा मारिया, आज मसाना दीठ।--कबीर (शब्द०)।

क्रि० प्र०--मारना।

अल्हड़[1]--वि० [सं० **अल=बहुत+लल चाह**] १. मनमौजी। निर्द्वंद्व। बेपरवाह। २. छोटी उम्र का। बिना अनुभव का। जिसे व्यवहार ज्ञात न हो। लोकज्ञानशून्य। ३. उद्धत। उजड्ड अनगढ़। अपरिष्कृत। अकुशल। ४. अनारी। गँवार। अपरिपक्व।

अल्हड़[2]--संज्ञा पुं० १. नया बछड़ा। वह बछड़ा। जिसे दाँत न आए हों। २. बैल या बछड़ा जो निकाला न गया हो।

अल्हड़पन--संज्ञा पुं० [हिं० **अल्हड़+पन** (प्रत्य०)] १. मनमौजीपन। बेपरवाही। निर्द्वंद्वता। २. कमसिनी। लड़कपन। व्यवहारज्ञान का अभाव। भोलापन। ३. उजड्डपन। अक्खड़पन। ४. अनाड़ीपन।

अल्हरा--वि० [हिं०] दे० 'अल्हड़'।

अवंड--वि० [सं० **अवण्ड (गौ)** जो पुच्छरहित न हो [कौ०]।

अवंति--संज्ञा स्त्री० [सं० **अवन्ति**] दे० 'अवंती'।

अवंतिका--संज्ञा स्त्री० [दे० **अवन्तिका**] दे० 'अवंती'।

अवंती--संज्ञा **स्त्री०** [सं० **अवन्ती**] १. मध्यदेशांतर्गत मालवा का एक नगर जिसे आजकल उज्जैन कहते हैं। यह सप्तपुरियों में से एक है। २. एक नदी।

अवंश[1]--वि० [सं०] वंशहीन। निपूता। अपुत्र। निःसंतान।

अवंश[2]--संज्ञा पुं० नीचा कुल या वंश।

अव[1]--उप० [सं०] एक उपसर्ग। यह शब्द जिसमें लगता है उसमें निम्नलिखित अर्थों की योजना करता है--१. निश्चय, जैसे अवधारण। २. अनादर; जैसे अवज्ञा। अवमान। ३. ईषत्; न्यूनता या कमी; जैसे अवहनन। अवघात। ४. निचाई वा गहराई; जैसे--अवतार। अवक्षेप। ५. व्याप्ति; जैसे--अवकाश। अवगाहन।

अव[2](पु)--अव्य० [सं० **अपि,** प्रा० **अवि**] और।

अवकर--संज्ञा पुं० [सं०] धूल। कूड़ा [कौ०]।

अवकर्णन--संज्ञा पुं० [सं०] सुनना। कान देना [कौ०]।

अवकर्त--संज्ञा पुं० [सं०] टुकड़ा। भाग। खंड [कौ०]।

अवकर्तन--संज्ञा पुं० [सं०] १. विभाजन। २. युद्धक्षेत्र [कौ०]।

अवकर्षण--संज्ञा पुं० [सं०] बलपूर्वक किसी पदार्थ को एक स्थान से दूसरे स्थान को ले जाना। खींच ले जाना।

अवकलन--संज्ञा पुं० [सं०] [वि० **अवकलित**] १. इकट्ठा करके मिला देना। २. देखना। जानना ३. ज्ञान। ४. ग्रहण।

अवकलना--क्रि० स० [सं० **अवकलन=ज्ञात होना**] ज्ञात होना। समझ पड़ना। विचार में आना। उ०--केहि विधि होइ राम अभिषेकू। मोहि अवकलत उपाउ न एकू।--मानस, २।२५२।

अवकलित--वि० [सं०] १. देखा हुआ। दृष्ट। २. ज्ञात। जाना हुआ। ३. गृहीत। संगृहीत। ४. इकट्ठा करके मिलाया हुआ। ५. दुष्ट। बदमाश [कौ०]।

अवकल्कन--संज्ञा पुं० [सं०] एक साथ मिलाना। गड्डमगड्ड करना [कौ०]।

अवका--संज्ञा स्त्री० [सं०] शैवाल। सेवार।

अवकाश--संज्ञा पुं० [सं०] १. स्थान। जगह। उ०--बिनु विज्ञान कि समता आवै। कोउ अवकाश कि नभ बिनु पावै।--तुलसी (शब्द०)। २. आकाश। अंतरिक्ष। शून्य स्थान। उ०--नभ शत कोटि अमित अवकाशा।--तुलसी (शब्द०)। ३. दूरी। अंतर। फासिला।

क्रि० प्र० पड़ना।

४. अवसर। समय। मौका। उ०--हो जो अवकाश तुम्हें ध्यान कभी आवे मेरा, अहो प्राणप्यारे, तो कठोरता न कीजिए।--झरना, पृ० ४३। ५. खाली वक्त। फुर्सत। छुट्टी। उ०--मरण है अवकाश जीवन कार्य।--साकेत, पृ० १९४। ६. जगह। जमीन।

विशेष--चाणक्य ने अनवसित संधि प्रकरण में अवकाश शब्द का इसी अर्थ में प्रयोग किया है।

अवकास(पु)--संज्ञा पुं० [सं० **अवकाश**] अवसर। समय। मौका। उ०--संपा को प्रकास, बक अबलोको अवकास, बूढनि विकास दास देखिवे कों या समैं।--भिखारी ग्रं०, भा० २, पृ० २८।

अवकिरण--संज्ञा पुं० [सं०] [वि० **अवकीर्ण, अवकृष्ट**] १. बिखेरना। फैलाना। छितराना। २. कूड़ा करकट (कौ०)।

अवकीर्ण[1]--वि० [सं०] १. फैलाया हुआ। छितराया हुआ। बिखेरा हुआ। २. ध्वस्त। नष्ट किया हुआ। नष्ट। ३. चूर चूर किया हुआ।

अवकीर्ण[2]--संज्ञा पुं० ब्रह्मचर्य का नाश। ब्रह्मचारी का स्त्रीसंसर्ग द्वारा व्रतभंग।

यौ०--**अवकीर्ण याग**=एक याग जो उस ब्रह्मचारी के लिये प्रायश्चित्त रूप कर्तव्य कहा गया है जिसने अपना ब्रह्मचर्य नष्ट कर दिया हो। इसमें उस जंगल में जाकर चतुष्पथ में काने गधे को मारकर पाकयज्ञ के विधान से निर्ऋति देवता के लिये यज्ञ करना पड़ता है।

अवकीर्णी--संज्ञा पुं० [सं० **अवकीर्णिन्**] वह ब्रह्मचारी जिसका ब्रह्मचर्य व्रत भंग हो गया हो। नष्टब्रह्मचर्य।

अवकीर्णी--वि० ब्रह्मचर्य व्रत से च्युत या स्खलित (कौ०)।

अवकीलक--संज्ञा पुं० [सं०] खूँटी [कौ०]।

अवकुंचन--संज्ञा पुं० [सं० **अवकुञ्चन**] १. समेटना। बटोरना। २. एक प्रकार का रोग [कौ०]।

अवकुंठन--संज्ञा पुं० [सं० **अवकुण्ठन**] १. घेरना। पाटना। ढँकना। २. आकृष्ट करना। खींचना। ३. दे० अवगुंठन [कौ०]।

अवकुटार[1]--संज्ञा पुं० [सं०] विरूपता। रूप की विकृति [कौ०]।

अवकुटार[2]--वि० बहुत गहरा [कौ०]।

अवकुट्टित[1]--वि० [सं०] छिन्न। कटा हुआ [कौ०]।

अवकुत्सित[1]--संज्ञा पुं० [सं०] निंदा। दोष [कौ०]।

अविकुत्सित[2]--वि० जिसकी निंदा की गई हो। निंदित [कौ०]।

अवकृपा—संज्ञा स्त्री० [सं०] कृपा का अभाव। नाखुशी। उदासीनता।

अवकृष्ट[1]—वि०[सं०]१. दूर किया हुआ। निकाला हुआ। २. निगलित। नीचे उतारा हुआ। ३. नीच। नीच जाति का।

अवकृष्ट[2]—संज्ञा पुं० घर में झाड़ू लगानेवाला। दास।

अवकेश—वि० [सं०] लटकते हुए बालोंवाला [को०]।

अवकेशी[1]—वि० [सं० अवकेशिन्] १. फल न देनेवाला। २ लघ या अल्प बालोंवाला [को०]।

अवकेशी[2]—संज्ञा पुं० फलहीन वृक्ष [को०]।

अवकोकिल—वि० [सं०] कोयल की आवाज से आकर्षित [को०]।

अवक्खन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अवेक्षण] देखना।

अवक्तव्य—वि०[सं०] १. न कहने योग्य। २. निषिद्ध। ३. अश्लील। ४. मिथ्या। झूठ।

अवक्त्र—वि० [सं०] जो खुला न हो। बिना मुँह का—जैसे, बरतन या फोड़ा [को०]।

अवक्रंद—वि० [सं० अवक्रन्द] दे० 'अवक्रंदन'।

अवक्रंदन—संज्ञा पुं० [सं० अवक्रन्दन] ऊँचे स्वर से रोना [को०]।

अवक्रम—संज्ञा पुं० [सं०] १. उतराव। नीचे की ओर उतरना।

अवक्रमण—संज्ञा पुं० [सं०] नीचे की तरफ उतरना। २. बौद्ध और जैन धर्म के मतानुसार गर्भ में आना [को०]।

अवक्रय—संज्ञा पुं० [सं०] १. बदला। २. मूल्य। दाम। ३. भाड़ा। किराया। ४. कर।

अवक्रांति—संज्ञा स्त्री० [सं० अवक्रान्ति] १. अधोगमन। उतार। गिराव। २. झुकाव।

अवक्रीतक[1]—वि० [सं०] माँगकर लिया हुआ। मँगनी लिया हुआ।
विशेष—अवक्रीतक वस्तु न लौटानेवाले के लिये याचितक के समान ही दंडविधान था।

अवक्रीतक[2]—संज्ञा पुं० किराए या भाड़े पर लिया हुआ माल।

अवक्रोश—संज्ञा पुं० [सं०] १. कर्कश स्वर। असह्य कड़ी बोली। २. कोसना। गाली। ३. निंदा।

अवक्लिन्न—वि० [सं०] आर्द्र। गीला। तर। भीगा हुआ।

अवक्लेद—संज्ञा पुं० [सं०] जलस्राव [को०]।

अवक्षय—संज्ञा पुं० [सं०] क्षय। नाश। हानि [को०]।

अवक्षिप्त—वि०[सं०]१. गिरा हुआ। २. जिसकी निंदा की गई हो। जिसपर लांछन लगाया गया हो।

अवक्षुत—वि० [सं०] जिसपर छींक पड़ गई हो।

अवक्षेप—संज्ञा पुं० [सं०] १. आपत्ति। २. आरोप [को०]।

अवक्षेपण—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अवक्षिप्त) १. गिराना। अधःपात करना। नीचे फेंकना।
विशेष—वैशेषिक शास्त्र में यह अपक्षेपण, आकुंचन आदि पाँच कर्मों या क्रियाओं में से एक है।
२. आधुनिक विज्ञान के अनुसार प्रकाश, तेज या शब्द की गति में उसके किसी पदार्थ में होकर जाने से वक्रता का होना। ३. निंदा करना(शब्द०)। ४ पराभूत। करना या पछाड़ना [को०]।

अवक्षेपणी—संज्ञा स्त्री० (सं०) बाग। लगाम [को०]।

अवखंडन—संज्ञा पुं० [सं० अवखण्डन] १. नष्ट करना। तोड़ फोड़ करना। २. खंड खंड या अलग अलग तोड़ना [को०]।

अवखात—संज्ञा पुं० [सं०] गहरा गड्ढा।

अवखाद—संज्ञा पुं० [सं०] अपवित्र या खराब भोजन। २. अनुपयुक्त नैवेद्य [को०]।

अवगंड—संज्ञा पुं० [सं० अवगण्ड] चेहरे या गालों पर होनेवाली फुड़िया या फुंसी। मुँहासा [को०]।

अवगण—वि०[सं०]१. स्वजनों से अलग रहनेवाला। एकांतवासी [को०]

अवगणन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अवगणित] १. निंदा। तिरस्कार। अपमान। २. नीचा देखना। पराभव। पराजय। हार। ३. गिनती।

अवगणना—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अवगणन'।

अवगणित—वि० [सं०] १. निंदित। तिरस्कृत। अपमानित। २. नीचा देखा हुआ। पराजित। ३. गिना हुआ।

अवगत—वि० [सं०] १. विदित। ज्ञात। जाना हुआ। उ०—"वह मुझे भली भाँति अवगत है"।—चंद्र०, पृ० २१५।
क्रि० प्र०—होना=मालूम होना। जान पड़ना।
२. नीचे गया हुआ। गिरा हुआ। ३. वादा किया हुआ [को०]।

अवगतना(पु)—क्रि० स० [सं० अवगत+हिं० ना (प्रत्य०)] [प्रे० रूप, अवगताना] सोचना। समझना। विचारना। उ०—मास मास नहिं करि सकै छठै मास अलबत्ति।—यामैं ढील न कीजिये कबीर अवगति।—कबीर (शब्द०)।

अवगति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बुद्धि। धारणा। समझ २. कुगति। नीच गति। ३. निश्चयात्मक ज्ञान।

अवगथ—वि० [सं०] प्रातःस्नात। तड़के नहाया हुआ [को०]।

अवगनना(पु)†—क्रि० अ० [सं० अवगणन] १. निंदा करना। तिरस्कार करना। २. तुच्छ समझना। कम या घटिया समझना। ३. कम मूल्य या महत्व आँकना या लगाना।

अवगम—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अवगमन' [को०]।

अवगमन—संज्ञा पुं० [सं०] देख सुनकर किसी बात का अभिप्राय जान लेना। जानना समझना। २ दे० 'अवगति'।

अवगर(पु)—वि० [सं० अवग्रह=ज्ञान] [वि० स्त्री० अवगरी] ज्ञान या समझबूझवाला।

अवगलित—वि० [सं०] नीचे गिरा हुआ [को०]।

अवगहना—क्रि० स० [सं० अवगाहन] थहाना। थाह लेना।

अवगाढ़—वि० [सं० अवगाढ़] १. निविड़। छिपा हुआ। २. प्रविष्ट। घसा हुआ। निमग्न। ३ नीचा। गहरा [को०]। ४. जमता या गाढ़ा होता हुआ—जैसे, खून [को०]।

अवगाद—संज्ञा पुं० [सं०] नाव से पानी उलीचने के लिये काठ का एक छोटा पात्र [को०]।

अवगाधना(पु)—क्रि० [हिं०] दे० 'अवगाहना'।

अवगारना(पु)—क्रि० स० [सं० अव+गृ] समझाना। बुझाना। जताना। उ०—कहा कहत रे मधु मतवारे। हम जान्यो यह श्याम सखा है यह तो औरे न्यारे।······सूर कहा याके मुख लागत कौन याहि अवगारे।—सूर० (शब्द०)।

अवगास(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अवकाश, प्रा० ओगास] जगह। स्थान। मैदान। उ०—भए अवगास काँस बन फूले। कंत न फिरे बिदेसहिं भूले।—जायसी ग्रं०, पृ० ३५६।

अवगाह¹(पु)—वि० [सं० अवगाध] १. अथाह। गहरा। अत्यंत गंभीर। उ०—(क) पेम समुद जो अति अवगाहा। जहाँ न वार न पार न थाहा।—जायसी ग्रं०,पृ० ६०। २. अनहोनी। कठिन। उ०—तोरेहु धनुष ब्याहुअ वगाहा। बिनु तोरे को कुँअरि बिआहा।—मानस, १।२४५।

अवगाह²(पु)—संज्ञा पुं० १. गहरा स्थान। २. संकट का स्थान। ३. कठिनाई। उ०—दस्तगीर गाढ़े कई साथी। जँह अवगाह दीन्ह तहँ हाथी।—जायसी (शब्द०)।

अवगाह³—संज्ञा पुं० [सं०] १. भीतर प्रवेश। हलना। २. जल में हलकर स्नान करना। ३. स्नान करने की जगह [कौ०]। ४. डोल या बालटी [कौ०]। ५. भलीभाँति अध्ययन या छानबीन [कौ०]।

अवगाहक—वि० [सं०] अवगाहन करनेवाला। उ०—अवगाहक सा उतर अचेतन के निस्तल में।—रजत०, पृ० १८।

अवगाहन—संज्ञा पुं० [सं०] १. पानी में हलकर स्नान करना। निमज्जन। उ०—शीतल जल में अवगाहन कर शैल शिला पर बैठ गया।—प्रेम०, पृ० ३१। प्रवेश। पैठ। ३. मंथन। विलोड़न। ४. थहाना। खोज। छानबीन। जैसे—नगर भर अवगाहन कर डाला, कहीं लड़के का पता न लगा। ५. चित्त धँसाना। लीन होकर विचार करना। जैसे—खूब अवगाहन करो, तब इस श्लोक का अर्थ खुलेगा। वि० दे० 'अवगाह'।

अवगाहना¹—क्रि० अ० [सं० अवगाहन] १. हलकर नहाना। निमज्जन करना। उ०—जे सर सरित राम अवगाहहिं। तिन्हहिं देव सर सरित सराहहिं।—तुलसी (शब्द०)। २. डूबना। पैठना। धँसना। मग्न होना। उ०—भूप रूप गुन सील सराही। रोवहिं सोक सिंधु अवगाही।—तुलसी (शब्द०)।

अवगाहना²—क्रि० सं० १. थहाना। छानना। छानबीन करना। उ०—अवगाहन, सीतहि चाहन, यूथप यूथ सबै पठाए।—राम चं०, पृ० ६०। (ख) सहज सुगंधि शरीर की, दिसि विदिसन अवगाहि। दूती ज्यों आई लिये, केशव शूर्पनखाहि।—केशव (शब्द०)। २. विचलित करना। हलचल डालना। मथना। उ०—सुनहु सूत तेहि काल, भरत तनय रिपु मृतक लखि। करि उर कोप कराल, अवगाही सेना सकल।—केशव (शब्द०)। ३. चलाना। हिलाना। डुलाना। उ०—नद सोक विषाद कुसाग्र ग्रसें करि धीरहि तें अवगाहनो है। हित दीनदयाल महा मृदु है कठिनो अति अंत निबाहनो हैं।—दीन ग्रं० पृ० २५८। ४. सोचना। विचारना। समझना। उ०—(क) अंगसिंगार स्याम हित कीन्हे, वृथा होन ये चाहत। सूर स्याम आपैं की नाहिं, मन मन यह अवगाहत।—सूर०, १०। २०२८। (ख) पच्छिम में याही में बड़ो है राजहंस एक सदा नीर छीर के विवेक अवगाहे ते।—दूलह (शब्द०)। ५. धारण करना। ग्रहण करना। उ०—जाही समय जौन ऋतु आवै। तबही ताको गुन अवगाहै।—लाल (शब्द०)।

अवगाहित—वि० [सं०] १. नहाया हुआ। २. जिसमें नहाया गया हो। ३. अच्छी तरह मनन किया गया।

अवगाही—वि० [सं० अवगाहिन्] १. खोजनेवाला। अनुसंधान करनेवाला। २. चिंतन करनेवाला। ३. थाह लगानेवाला। गहरे तक पैठनेवाला। ४. स्नान करनेवाला [कौ०]।

अवगाह्य—वि० [सं०] स्नान करने योग्य (प्राणी)। २. स्नान के निमित्त उचित (स्थान)। ३. अध्ययन, मनन करने योग्य [कौ०]।

अवगीत¹—वि० [सं०] १. जिसकी निंदा की गई हो। निंदित। २. बदमाश। दुष्ट। फिर फिर देखा हुआ। सुपरिचित [कौ०]।

अवगीत²—संज्ञा पुं० १. निंदा। २. निंद्य या अभद्र गीत। बेसुरा गीत [कौ०]।

अवगुंठन—संज्ञा पुं० [सं० अवगुण्ठन] [वि० अवगुंठित] १. ढँकना। छिपाना। २ रेखा से घेरना। ३. पर्दा। ४. घूँघट। बुर्का। ५. झाड़ू [कौ०]। ६. धार्मिक अनुष्ठानों में प्रयुक्त अँगुलियों की एक मुद्रा [कौ०]।

अवगुंठनपती—वि० स्त्री० [सं० अवगुण्ठनवती] घूँघटवाली। उ०—किंतु वह अर्ध अवगुंठनवती कौन ?—इरावती, पृ० १०१।

अवगुंठिका—संज्ञा पुं० [सं० अवगुण्ठक] १. घूँघट। २. जवनिका। पर्दा। ३. चिक।

अवगुंठित—वि० [सं० अवगुण्ठित] ढँका हुआ। छिपा हुआ। २. चूर किया हुआ। चूर्णित [कौ०]।

अवगुंडित—वि० [सं० अवगुण्डित] चूर्ण किया हुआ [कौ०]।

अवगुंफन—संज्ञा पुं० [सं० अवगुम्फन] १. गूथना। गुहना। २. ग्रंथन। बुनना।

अवगुंफित—वि० [सं० अवगुम्फित] १. गूँथा हुआ। गुहा हुआ। २. बुना हुआ। ग्रथित।

अवगुण—संज्ञा पुं० [सं०] १. दोष। दूषण। ऐब। २. अपराध। बुराई। खोटाई।

अवगुन(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अवगुण'। उ०—गुन अवगुन जानत सब कोई, जो जेहि भाव नीक तेहि सोई।—मानस, १।५।

अवगुरण—संज्ञा पुं० [सं०] धमकाना। क्षति पहुँचाने की धमकी देना [कौ०]।

अवगूहन—संज्ञा पुं० [सं०] १. छिपाना। २. आलिंगन करना [कौ०]।

अवगोरण—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अवगुरण' [कौ०]।

अवग्गी—वि० [सं०] नियंत्रण में न रहनेवाला [कौ०]।

अवग्या(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अवज्ञा'। उ०—तौ कहि इती अवग्या उन्ह पै, कैसे सही परी।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ३३९।

अवग्रह—संज्ञा पुं० [सं०] १. रुकावट। अटकाव। अड़चन। बाधा। २. वर्षा का अभाव। अनावृष्टि। ३. बाँध। बंद। ४. व्याकरण में संधिविच्छेद। ५. अनुग्रह का उलटा। ६. गजसमूह। ७. हाथी का ललाट। हाथी का माथा। ८. स्वभाव। प्रकृति। ९. शाप। कोसना। १०. लुप्ताकार का चिह्न। खंडाकार(ऽ) [कौ०]। अंकुश [कौ०]।

अवग्रहण--संज्ञा पुं० [सं०] १. अनादर। अवमान। अपमान। २. रोक। बाधा [को०]। ३. ज्ञान [को०]।

अवग्राह--संज्ञा पुं० [सं०] १. संबंधविच्छेद। अलगाव। २. बाधा [को०]। ३. कोसना [को०]। दे० 'अवग्रह'।

अवघट(पु)--वि० [सं० अव+घट्ट=घाट] कुघाट। अटपट। अड़बड़। विकट। दुर्गम। कठिन। दुर्घट। उ०—(क) सरिता बन गिरि अवघट घाटा। पति पहिचानि देहिं बर बाटा।--मानस, ३।७ (१क)। (ख) घाट बाट अवघट यमुना तट बातें कहत बनाय। कोऊ ऐसो दान लेत है कौने सिखै पठाय।- सूर (शब्द०)।

अवघट्ट--संज्ञा पुं० [सं०] १. बिल। गुफा। २. पीसने की चक्की। ३. हिलाना [को०]।

अवघट्टन—संज्ञा पुं० [सं०] १. पीसना। मर्दन। २. दो वस्तुओं का परस्पर संपर्क। मिलन [को०]।

अवघर्षण--संज्ञा पुं० [सं०] घसना। माँजना। रगड़ना [को०]।

अवघाटक--संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का हार [को०]।

अवघात--संज्ञा पुं० [सं०] १. चोट। ताड़न। घन। प्रहार। २. कूटना [को०]। ३. अकाल मृत्यु। अस्वाभाविक मृत्यु [को०]।

अवघाती--वि० [सं० अवघातिन्] अवघात करनेवाला [को०]।

अवघूर्ण[1]--संज्ञा पुं० [सं०] बवंडर [को०]।

अवघूर्ण[2]--वि० क्षुब्ध [को०]।

अवघूर्णन--संज्ञा पुं० [सं०] चक्कर काटना। बवंडर [को०]।

अवघोरित--वि० [सं०] चारों ओर से ढँका या मढ़ा हुआ [को०]।

अवघोषक--संज्ञा पुं० [सं०] झूठी खबरें उड़ानेवाला व्यक्ति।

विशेष--चंद्रगुप्त मौर्य के समय में ऐसे लोगों को फाँसी पर चढ़ाने का दंड दिया जाता था।

अवघोषणा--संज्ञा स्त्री० [सं०] घोषणा [को०]।

अवच--क्रि० वि० [सं०] नीचे [को०]।

अवचट[1](पु)†--संज्ञा पुं० [सं० अव=नहीं+हिं० घट=जल्दी अथवा सं० अव=थोड़ा+हिं० चित] अनजान। अचक्का उ०--पानि सरोज सोह जयमाला। अवचट चितए सकल भुआला।--मानस, १।२४८।

अवचट[2]--संज्ञा पुं० [हिं०] कठिनाई। अवघट। अंडस। चपकुलिस। जैसे--अवचट में पड़कर मनुष्य क्या नहीं करता।

अवचन--संज्ञा पुं० [सं०] १. वचन का अभाव। मौन। २. बुरा वचन। निंदा। दुर्वचन।

अवचनीय--वि [सं०] १. जो कहने योग्य नहीं। २. अश्लील। फूहड़।

अवचय--संज्ञा पुं० [सं०] चुनकर इकट्ठा करना। फूल या फल तोड़कर बटोरना। उ०--नया नया उल्लास कुसुम अवचय का मन में उठता था।--प्रेम०, पृ० १७।

अवचल(पु)†--वि० [सं० अविचल] अचल।--उ०--पुहुमी जोड़ अवचल प्रेम।--रघु० रू० पृ० १२४।

अवचस्कर--वि० [सं०] मौन। चुप [को०]।

अवचाय--संज्ञा पुं० [सं०] फूल फल आदि चुनना [को०]।

अवचार[1]--वि० [सं०] नीचे या ऊपर की ओर जाता जाता हुआ [को०]।

अवचार[2]--संज्ञा पुं० १. रास्ता। सड़क। २. कार्यक्षेत्र [को०]।

अवचित--वि० [सं०] १. चुना हुआ। बटोरा हुआ। २. आबाद [को०]।

अवचूड़--संज्ञा पुं० [सं० अवचूड] ध्वजा के अगले भाग में नीचे झूलता हुआ वस्त्र [को०]।

अवचूड़ा--संज्ञा स्त्री० [सं० अवचूडा] माला [को०]।

अवचूटिका--संज्ञा स्त्री० [सं०] टिप्पणी। लघु व्याख्या [को०]।

अवचूरी--संज्ञा स्त्री० [सं० अवचूरि] टीका। टिप्पणी।

अवचूर्णित--वि० [सं०] १. विचूर्ण किया हुआ। भलीभाँति पीसा हुआ। २. मिश्रित किया हुआ। मिलाया हुआ [को०]।

अवचूल--संज्ञा पुं० [सं०] अवचूड [को०]।

अवचूलक--संज्ञा पुं० [सं] चँवरी गाय की पूँछ के बाल या मोरपंख का बना हुआ चँवर [को०]।

अवचेतन[1]--वि० [सं०] अवचेतना संबंधी। आंशिक चेतनावाला।

अवचेतन[2]--संज्ञा पुं० [सं०] मनोविज्ञान के अनुसार मन का वह भाग जो चेतन मन में न होने पर भी थोड़ा प्रयास करने से चेतना में लाया जा सके। इसका स्थान अहं तथा अचेतन के बीच माना गया है।

अवचेतना--संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अवचेतन'।

अवच्छद--संज्ञा पुं० [सं०] ढकना। सरपोश।

अवच्छाद--संज्ञा पुं० [सं०] ढकना। अवच्छद [को०]।

अवच्छिन्न--वि० [सं०] १. जिसका किसी अवच्छेदक पदार्थ से अवच्छेद किया गया हो। अलग किया हुआ। पृथक्। २. विशेषणयुक्त। ३. सीमित।

अवच्छुरित[1]--संज्ञा पुं० [सं०] कठोर या कर्कश हास्य [को०]।

अवच्छुरित[2]--वि० मिला जुला। मिश्रित [को०]।

अवच्छेद--संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अवच्छेद्य, अवच्छिन्न] १. अलगाव। भेद। २. इयत्ता। हद। सीमा। ३. अवधारण। निश्चय। छानबीन। ४. संगीत में मृदंग के बारह प्रबंधों में से एक। ५. परिच्छेद। विभाग। ६. किसी वस्तु का वह गुण या धर्म जिससे अन्य पदार्थ पृथक् प्रतीत हों [को०]। ७. व्याप्ति [को०]।

अवच्छेदक[1]--वि० [सं०] १. छेदक। भेदकारी। अलग करनेवाला। २. इयत्ताकार। हद बाँधनेवाला। ३. अवधारक। निश्चय करनेवाला।

अवच्छेदक[2]--संज्ञा पुं० १. विशेषण। २. सीमा। इयत्ता [को०]।

अवच्छेदकता--संज्ञा स्त्री० [सं०] १. अवच्छेद करने का भाव। पृथक् करने का धर्म। अलग करने का धर्म। २. हद या सीमा बाँधने का भाव परिमिति।

अवच्छेदन--संज्ञा पुं० [सं०] १. काटना। विभाजन। खंड करना। २. सीमा निर्धारण करना [को०]।

अवच्छेद्य--वि० (सं०) अलगाव के योग्य।

अवच्छेरणी--संज्ञा पुं० (सं० अवक्षेपणी) दहाना। दाँती। लगाम।

अवछंग(पु)--संज्ञा पुं० (सं० उत्संग) दे० 'उछंग'।

अवजय--संज्ञा स्त्री० (सं०) हार। पराजय [को०]।

अवजित—वि० [सं०] हारा हुआ। विजित। तिरस्कृत [को०]।

अवज्जि(पु)—संज्ञा पुं० [फा० **आवाज़**] १. पुकार। आवाज। २. शोर-गुल। उ०—सुनी धाह जसवंत नृप, आयो सेन सुसज्जि। ढलकि ढाल बद्दल मिलिय, पुब्ब भड़ाउ अवज्जि। पृ० रा०, ४।२५।

अवज्ञा—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० **अवज्ञात, अवज्ञेय**] १. अपमान। अनादर। २. आज्ञा का उल्लंघन। आज्ञा न मानना। अवहेला। ३. पराजय। हार। ४. वह काव्यालंकार जिसमें एक वस्तु के गुण या दोष से दूसरी वस्तु का गुण या दोष न प्राप्त करना दिखलाया जाय; जैसे,—करि बेदांत विचार हू शठहि विराग न होय। रंच न मृदु मेनाक भो निशि दिन जल में सोय।—(शब्द०)।

अवज्ञात—वि० [सं०] अपमानित। तिरस्कृत।

अवज्ञान—संज्ञा पुं० [सं०] अनादर। अप्रतिष्ठा [को०]।

अवज्ञेय—वि [सं०] अपमान के योग्य। तिरस्कार के योग्य।

अवझरि(पु)—संज्ञा स्त्री० [प्रा० **ओज्झरी**] दे० 'ओझरी'। उ०—झकझोरी तोरि अवझरि उजरि। गहि हमेन हम्मीर तिय।—पृ० रा०, ६४।३३५।

अवझोरा(पु)—संज्ञा स्त्री० [प्रा० **ओरुज्झन**] उलझन। झंझट। गाँठ। उ०—चित्र बचित्र इहै अवझोरा। तजि चित्रै चितु राखि चितेरा।—कबीर ग्रं०, पृ० ३१०।

अवट—संज्ञा पुं० [सं०] १. गड्ढा। कुंड। २. हाथियों के फँसाने के लिये गड्ढा जिसे तृणादि से आच्छादित कर देते हैं। खाँड़ा। माला। ३. गले के नीचे कंधे और काँख आदि का गड्ढा। ४. एक नरक का नाम। ५. दाँत का गड्ढा। दंतकोटर [को०]। ६. बाजीगर। ऐंद्रजालिक [को०]।

यौ०—**अवटनिरोधन, अवटविरोधन** = नरकविशेष का नाम।

अवटकच्छप—संज्ञा पुं० [सं०] १. गड्ढे के भीतर रहनेवाला कच्छप अर्थात् अज्ञानी मनुष्य [को०]।

अवटना¹(पु)—क्रि० स० [सं० **आवर्त्तन**, प्रा० **आवट्टन, आट्टन**] १. मथना। आलोड़न करना। २. किसी द्रव पदार्थ को आग पर रखकर चलाकर गाढ़ा करना। उ०—(क) परम धर्ममय पय दुहि भाई। अवटै अनल अकाम बनाई।—मानस, ७।११७। (ख) कान्ह माखन खाहु हम सु देखैं। सद्य दधि दूध ल्याई अवटि हम, खाहु तुम सफल करि जनम लेखैं।—सूर०, १०।१५९६।

मुहा०—**अवटि मरना** = भ्रमना। मारे मारे फिरना। चक्कर खाना। दुःख उठाना। उ०—जो आचरन बिचारहु मेरो कलप कोटि लगि अवटि मरौं। तुलसिदास प्रभु-कृपा-बिलोकनि गोपद ज्यों भवसिंधु तरौं।—तुलसी ग्रं०, पृ० ५२९।

अवटना²(पु)—क्रि० अ० [सं० **अटन**] घूमना फिरना।

अवटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. गड्ढा। २. कुआँ। ३. छेद [को०]।

अवटीट—वि० [सं०] चपटी नाकवाला। नकचिपटा।

अवटु—संज्ञा पुं० १. बिल। २. कुआँ। ३. गले का पिछला हिस्सा। ४. शरीर का दबा हुआ भाग। ५. एक प्रकार का वृक्ष।

अवटुज—संज्ञा पुं० [सं०] सिर के पिछले भाग का बाल [को०]।

अवडंग—संज्ञा पुं० [सं० **अवडङ्ग**] हाट। बाजार [को०]।

अवडीन—संज्ञा पुं० [सं०] पक्षी की उड़ान। पक्षियों का ऊपर से नीचे की तरफ आना [को०]।

अवडेर†—संज्ञा पुं० [सं० **अव** + हिं० **रार** या **राड़**] झमेला। झंझट। बखेड़ा।

अवडेरना(पु)¹—क्रि० स० [सं० **उद्वासन या हिं० अवडेर**] १. न बसने देना। न रहने देना। उ०—भोरानाथ भोरे ही सरोष होत थोरे दोष, पोषि-तोषि थापि आपने न अवडेरिये।—तुलसी ग्रं०, पृ० २५६। २. चक्कर में डालना। फेर में डालना। उ०—(क) पंच कहे सिव सती बिबाही। पुनि अवडेरि मराएन्हि ताही।—मानस, १।७९।

अवडेरा(पु)†—वि० [हिं० **अवडेर**] १. घुमाव फिरावाला। चक्करदार। २. बेढब। कुढब। उ०—जननी जनक तज्यो जनमि करम बिनु बिधिहु सृज्यो अवडेरे।—तुलसी ग्रं०, पृ० ५७२।

अवढर(पु)—वि० [सं० **अव** + हिं० **ढरना**] दे० 'औढर'। उ०—(क) आसुतोष तुम्ह अवढर दानी। आरति हरहु दीन जनु जानी।—मानस, २।४४। (ख) लच्छ सौं बहु लच्छ दीन्हौ दान अवढर ढरन।—सूर०, १।२०२।

अवतक्षण—संज्ञा पुं० [सं०] टुकड़े में काटी गई कोई वस्तु [को०]।

अवतत—वि० [स०] १. ढँका हुआ। आवृत। २. फैला हुआ। विस्तृत [को०]।

अवतमस—संज्ञा पुं० [सं०] १. साधारण अंधकार। क्षीण अंधकार। २. अंधकार। ३. अस्पष्टता। गुह्यता [को०]।

अवतरण—संज्ञा पुं० [सं०] १. उतारना। पार होना। २. उतार। ३. शरीर धारण करना। जन्म ग्रहण करना। ३. नकल। प्रतिकृति। ४. किसी पुस्तक या लेख का ज्यों का त्यों उतारा या नकल किया हुआ अंश। उद्धरण। उ०—ऊपर दिए अवतरणों में हम स्पष्ट देखते हैं कि किसी उक्ति की तह में...काव्य की सरसता बराबर पाई जायगी।—रस०, पृ० ३६। ५. प्रादुर्भाव। ६. सीढ़ी जिससे उतरे। घाट की सीढ़ी। ७. घाट। ८. तीर्थ [को०]। ९. परिचय। उपोद्घात। [को०]।

यौ०—**अवतरणचिह्न। अवतरणमंगल।**

अवतरणचिह्न—संज्ञा पुं० [सं०] उलटे लगे हुए विराम चिह्न जिनके बीच किसी का कथन उद्धृत किया गया हो; जैसे—' '।

अवतरणमंगल—संज्ञा पुं० [सं० **अवतरणमङ्गल**] श्रद्धापूर्वक किया गया स्वागत [को०]

अवतरणिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. ग्रंथ की प्रस्तावना। उपोद्घात। अवतरणी। २. परिपाटी। रीति।

अवतरना(पु)—क्रि० अ० (सं० **अवतरण**) प्रकट होना। उपजना। जन्मना। उ०—(क) इच्छा रूप नारि अवतरी। तासु नाम गायत्री धरी।—कबीर (शब्द०)। (ख) बहुरि हिमाचल कैं अवतरी। समय पाइ सिव बहुरौ बरी।—सूर०, ४।५।

अवतरणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. ग्रंथ की प्रस्तावना के लिये भूमिका जो इस अभिप्राय से लिखी जाती है कि विषय की संगति मिल जाय। उपोद्घात। २. रीति। परिपाटी।

अवतरित—वि० [हिं० अवतरना] १. नीचे आया हुआ। उतरा हुआ। उ०—अवतरित हुआ मैं, आप उच्चफल जैसा।—साकेत, पृ० २१८। २. जन्मा हुआ। शरीर ग्रहण किया हुआ। ३. किसी दूसरे स्थल से लिया हुआ। ४. अवतीर्ण।

अवतर्पण—संज्ञा पुं० [सं०] शांति प्रदान करनेवाला साधन। अनुकूल उपचार [को०]।

अवताड़न—संज्ञा पुं० [सं० अवताडन] १. रौंद देना। कुचल देना। २. आघात करना या चोट देना [को०]।

अवतान—संज्ञा पुं० [सं०] १. आच्छादन। आवरण। २. लटका हुआ चेहरा। ३. धनुष की प्रत्यंचा ढीली करना। ४. तानना। फैलाना। ५. लताओं का फैलाव। ६. आतपत्र। चँदवा [को०]।

अवतापी—वि० [सं० अवतापिन्] १. ताप देनेवाला। तपानेवाला। २. (स्थान) जो अधिक तप्त हो [को०]।

अवतार—संज्ञा पुं० [सं०] १. उतरना। नीचे आना। २. जन्म। शरीरग्रहण। उ०—(क) नव अवतार दीन्ह बिधि आजू। रही छार भइ मानुष साजू।—जायसी (शब्द०)। (ख) प्रथम दच्छ गृह तव अवतारा। सती नाम तब रहा तुम्हारा।—तुलसी (शब्द०)। ३. पुराणों के अनुसार किसी देवता का मनुष्यादि संसारी प्राणियों का शरीर धारण करना। ४. विष्णु का संसार में शरीर धारण करना।

विशेष—पुराणानुसार विष्णु भगवान् के २४ अवतार हैं—ब्रह्मा, वाराह, नारद, नरनारायण, कपिल, दत्तात्रेय, यज्ञ, ऋषभ, पृथु, मत्स्य, कूर्म, धन्वंतरि, मोहिनी, नृसिंह, वामन, परशुराम, वेदव्यास, राम, बलराम, कृष्ण, बुद्ध, कल्कि, हंस और हयग्रीव, इनमें से १० अर्थात् मत्स्य, कच्छप, वराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, राम, कृष्ण, बुद्ध और कल्कि प्रधान माने जाते हैं।

५. (पु) सृष्टि। शरीररचना। उ०—कीन्हेसि धरती सरग पतारू। कीन्हेसि बरन बरन अवतारू।—जायसी (शब्द०)। ६. अवतरण भूमि। उतरने का स्थान [को०]। ७. तालाब [को०] ८. अनुवाद [को०]। ९. विषयप्रवेश। आमुख। भूमिका [को०]। १०. तीर्थ [को०]। ११. विशिष्ट व्यक्ति [को०]। १२. उत्पत्ति। विकास [को०]।

मुहा०—**अवतार लेना** = शरीर ग्रहण करना। जन्म लेना। उ०—अंसन्ह सहित मनुज अवतारा। लेइहउँ दिनकर बंस-उदारा।—तुलसी (शब्द०)। **अवतार धरना** = जन्म ग्रहण करना। उ०—भुव की रक्षा करन जु कारण धरि वराह अवतार। पीछे कपिल रूप हरि धारचो कीन्हो सांख बिचार।—सूर (शब्द०) (पु) **अवतार करना** (पु) = शरीर धारण करना। उ०—अरुन असित सित वपु उनहार। करत जगत में तुम अवतार।—सूर (शब्द०)।

यौ०—**अवतारकथा**। अवतारमंत्र = भगवान् से अवतार ग्रहण करने के लिये की गई प्रार्थना। **अवतारवाद**।

अवतरण—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० अवतारणा] १. उतारना। नीचे लाना। उ०—क्रूर कर्मों की अवतारणा से भी एक बार सद्धर्म के उठाने की आकांक्षा थी।—स्कंद०, पृ० ८४। २. उतारना। [को०]। ६. पूजा। अर्चा [को०]। ७. पोशाक का छोर या किनारा [को०]।

अवतारना (पु)—क्रि० स० [सं० अवतारण] १. उत्पन्न करना। रचना। उ०—चाँद जैस सग बिधि अवतारा। दीन्ह कलंक कीन्ह उजियारा।—जायसी (शब्द०)। २. उतारना। जन्म देना। उ०—(क) सिंघलदीप राजघरवारी। महा स्वरूप दई अवतारी।—जायसी (शब्द०)। (ख) धन्य कोख जिहिं तोकौं राख्यौ धनि घरि जिहिं अवतारी। धन्य पिता माता तेरे छबि निरखति हरि महतारी।—सूर०, १०।७०३।

अवतारवाद—संज्ञा पुं० [सं० अवतार + वाद] भगवान् का मनुष्य आदि का शरीर धारण करने का सिद्धांत।

अवतारी[1]—वि० [सं० अवतारिन्] १. उतरनेवाला। अवतार ग्रहण करनेवाला। उ०—धनि यशुमति जिन बस किये अविनाशी अवतारि। धनि गोपी जिनके सदन माखन खात मुरारि।—सूर (शब्द०)। २. देवांशधारी। अलौकिक। उ०—कहत ग्वाल जसुमति धनि मैया। बड़ो पूत तैं जायौ। यह कोउ आहि पुरुष अवतारी भाग हमारें आयौ।—सूर०, १०।२००९।

अवतारी[2]—संज्ञा पुं० २४ मात्राओं का एक छंद जिसके ७५०२५ प्रस्तार हैं। रोला, दिक्पाल, शोभा और लीला आदि इसके भेद हैं।

अवतीर्ण—वि० [सं०] १. उतरा हुआ। अवतरित। २. अनूदित [को०]। ३. व्यतीत, जैसे रात्रि [को०]। ४. पार किया हुआ [को०]। ५. स्नात [को०]। ६. अवतार ग्रहण किया हुआ [को०]। ७. उदाहृत। उद्धृत।

अवतोका—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री या गाय जिसका गर्भपात किसी दुर्घटनावश हो गया हो [को०]।

अवथ्थ (पु)—वि० [सं० अवस्तु] निरर्थक। व्यर्थ। अवस्तु। उ०—तुम चित्त छंडि हम घर चलहि। इह अवथ्य पत्रंग।—पृ० रा०, ६६।३५६।

अवदंश—संज्ञा पुं० [सं०] मद्यपान के समय जो कबाब, बड़े आदि खाए जाते हैं। गजक। चाट।

अवदंस (पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अवदंश'।

अवदग्ध—वि० [सं०] जला हुआ [को०]।

अवदमन—संज्ञा पुं० [सं० अपदमन] अच्छी तरह दबाना। दमन करना।

अवदरण—संज्ञा पुं० [सं०] तोड़ना फोड़ना। अच्छी तरह दरना या पीसना [को०]।

अवदाघ—संज्ञा पुं० [सं०] १. तपन। जलन। २. ग्रीष्म ऋतु [को०]।

अवदात—वि० [सं०] १. शुभ्र। उज्वल। श्वेत। उ०—हँसी रानी सुनकर वह बात, उठी अनुपम आभा अवदात।—साकेत, पृ० २७। २. शुद्ध। स्वच्छ। विमल। निर्मल। उ०—शोच अति पोच उर मोच दुखदानिए मातु यह बात अवदात मम मानिए।—रामचं०, पृ० ७४। ३. शुक्ल वर्ण का। गौर। ४. पीत वर्ण का। पीला। ५. खूबसूरत। सुंदर [को०]। ६. उत्तम। पुण्यशील [को०]।

अवदान—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रशस्त कर्म। २. शुद्ध आचरण। अच्छा काम। ३. खंडन। तोड़ना। ३. पराक्रम। शक्ति बल। ४. अतिक्रम। उल्लंघन। ५. शुद्ध करना। पवित्र करना। साफ करना। ६. वीरणमूल। खस। उशीर। गाँडरे की जड़।

अवदान्य—वि० [सं०] १. पराक्रमी। बली। २. अतिक्रमणकारी। सीमा का अतिक्रमण करनेवाला। ३. व्यय न करके धनसंचय करनेवाला। कंजूस।

अवदारक¹—वि० [सं०] विदारण करनेवाला। विनाश करनेवाला।

अवदारक²—संज्ञा पुं० मिट्टी खोदने के लिये लोहे का एक मोटा डंडा। खंता। रंभा।

अवदारण—संज्ञा पुं० [सं०] १. विदारण करना। विभाग करना। २. तोड़ना। फोड़ना। ३ मिट्टी खोदने का औजार। रंभा। खंता।

अवदारित—वि [सं०]विदारण किया हुआ। विदीर्ण। टूटा फूटा।

अवदाह—संज्ञा पुं०[सं०] १ अत्यधिक गर्मी। भीषण ताप। २.आग लगाना। जलना। ३. कुश की जड़। खस [को०]।

अवदीर्ण—वि० [सं०] १. विभक्त। टूटा हुआ। २.घबराया हुआ। उदास। ३. पिघला या चुआ हुआ [को०]।

अवदोह—संज्ञा पुं० [सं०] १. दूध। दुग्ध। २. दूध दुहना। दोहन।

अवद्य¹—वि० [सं०] १.अधम। पापी। २. गर्हित। निंद्य। ३. त्याज्य। ४. कुत्सित। निकृष्ट।

अवद्य²—संज्ञा पुं० १. दोष। २.पाप। ३.निंदा ४.लज्जा [को०]।

अवध¹—संज्ञा पुं०[सं० **अयोध्या**]१. कोशल। साकेत एक देश जिसकी प्रधान नगरी अयोध्या थी। २.अयोध्या नगरी।

अवध(पु)²—संज्ञा **स्त्री०** [सं० **अवधि**] दे० 'अवधि'।

अवध³—वि० [सं०] अवध्य। न मारने योग्य [को०]।

अवधान¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. मन का योग। चित्त का लगाव। मनोयोग। २.चित की वृत्ति का निरोध करके उसे एक ओर लगाना। समाधि। ३. ध्यान। सावधानी। चौकसी।

अवधान²(पु)—संज्ञा पुं०[सं० **आधान**] गर्भ। गर्भाधान। पेट। उ०—जैस अवधान पूर होइ मासू। दिन दिन हिये होइ परगासू।—जायसी ग्रं०, पृ० १९।

अवधानी—वि० पुं०[सं०**अवधानिन्**]ध्यान रखनेवाला। ध्यानी [को०]।

अवधार—संज्ञा पुं० [सं०] निश्चय। सीमा [को०]।

अवधारक—वि० [सं०] अवधारण करनेवाला। किसी एक विषय पर अपने को केंद्रित करनेवाला [को०]

अवधारण—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० **अवधारित, अवधारणीय**] १. विचारपूर्वक निर्धारण करना। निश्चय। २. शब्दार्थ की इयत्ता स्थिर करना [को०]। ३. शब्द आदि पर बल देना [को०]। ४. केवल विषय पर ध्यानस्थ होना [को०]।

अवधारणीय—वि० [सं०] विचार करने योग्य। निश्चय योग्य।

अवधारना(पु)—क्रि० स०[सं० **अवधारण**] १. धारण करना। ग्रहण करना। उ०—विप्र असीम विनित अवधारा। सुवा जीव नहिं करौ निरारा। जायसी (शब्द०)। २. निश्चय करना। समझना।

अवधारित—वि० [सं०] निश्चित। निर्धारित।

अवधार्य—वि० [सं०] निश्चय करने योग्य। अवधारण करने योग्य।

अवधावन—संज्ञा पुं० [सं०] १. पीछा करना। २.साफ करना। धोना [को०]।

अवधावित—वि० [सं०] १.पीछा किया हुआ। जिसका पीछा किया गया हो। २ साफ किया हुआ [को०]।

अवधि¹—संज्ञा **स्त्री०** [सं०] १.सीमा। हद। पराकाष्ठा। उ०—जिन्हहिं बिरचि बड़ भयेउ बिधाता। महिमा अवधि राम पितु माता।—तुलसी (शब्द०)। २. निर्धारित समय। मीयाद। उ०—रहयौ ऐचि, अंतु न लहै अवधि दुसासनि बीरु। आली बाढ़तु बिरहु ज्यौं पंचाली को चीर।—बिहारी र०, दो० ४००। ३. गड्ढा। गर्त [को०]। ४. प्रमाण [को०]। ५. उपजनपद। पड़ोस [को०]। ६.अंत समय। अंतिम काल। उ०—(क) आजु अवधिसर पहुँचे गए जाउँ मुखरात। बेगि रोहु मोहि मारहु जनि चाहहु यह बात।—जायसी। (शब्द०)। (ख) तेरी अवधि कहत सब कोऊ ताते कहियत बात। बिनु विश्वास मारिहै तो को आजु रैन कै प्रात।—सूर (शब्द०)।

मुहा०—**अवधि देना**=समय निर्धारित करना। **अवधि बदना**=समय नियत करना। उ०—आज बिनु आनँद के मुख तेरो। निसि बसिबे की अवधि बदी मोहिं साँझ गए कहि आवन। सूरश्याम अनतहिं कहुँ लुबधे नैन भए दोउ सावन।—सूर (शब्द०)।

अवधि²—अव्य०[सं०]तक। पर्यंत। उ०—तोसों हौं फिर फिर हित प्रिय पुनीत सत्य बचन कहत। विधि लगि लघु कोटि अवधि सुख सुखी दुख दहत।—तुलसी (शब्द०)।

यौ०—**अद्यावधि**=अब तक। **समुद्रावधि**=समुद्र तक।

अवधिज्ञान—संज्ञा पुं० [सं०] जैन शास्त्रानुसार वह ज्ञान जिसके द्वारा पृथ्वी, जल, अग्नि, पवन, अंधकार और छाया आदि से व्यवहित द्रव्यों का भी प्रत्यक्ष हो और आत्मा का भी ज्ञान हो। अवधिदर्शन।

अवधिदर्शन—संज्ञा पुं० [सं०] जैन शास्त्रानुसार पृथ्वी, जल, पवनादि से व्यवहित पदार्थों को यथावत् देखना। अवधिज्ञान।

अवधिमान(पु)—संज्ञा पुं० [सं०] समुद्र। उ०—प्राची जाय अथवै प्रतीची कै उवित भानु सानुमान सीस चूम लेवै भूमि मित को। लाँघि कै अवधि जो पै उमगै अवधिमान लाँघै यह चाल जो पै कालहू के गत को।—चरण (शब्द०)।

अवधी¹—वि० [हिं० **अवध+ई** (प्रत्य०)] अवध संबंधी। अवध का। जैसे—'अवधी बोली' २।. अवध की भाषा।

अवधी(पु)²—संज्ञा स्त्री० दे० 'अवधि¹'।

अवधीरण—संज्ञा पुं० [सं०] अवमान या तिरस्कार करना [को०]।

अवधीरणा—संज्ञा **स्त्री०** [सं०] तिरस्कार। अवज्ञा।

अवधीरित—वि० [सं०] अपमानित। तिरस्कृत।

अवधू(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अवधूत'। उ०—अवधू ऐसा ज्ञान बिचारी, ज्यूँ बहुरि न ह्वै संसारी।—कबीर ग्रं०, पृ० १५६।

अवधूक—वि० [सं०] बिना पत्नी का [को०]।

अवधूत¹—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० **अवधूतिन्**] १. संन्यासी। साधु। योगी। उ०—(क) धूत कहौ, अवधूत कहौ, रजपूत कहौ, जोलहा कहौ कोऊ।—तुलसी ग्रं०, पृ० २२३। (ख) यह सूरति यह मुद्रा हम न देख अवधूत। जानौं होहिं न योगी कोइ

राजा कर पूत ।--जायसी (शब्द०) । २. साधुओं का एक भेद । उ०--खेवरा खेवरा बान पर, सिध साधक अवधूत । आसन मारे बैठ सब जारि आतमा भूत ।--जायसी (शब्द०) ।

अवधूत²--वि० [सं०] १. कंपित । हिला हुआ । २. विनष्ट । नाश किया हुआ । ३. अपमानित । तिरस्कृत [को०] । ४. अस्वीकृत [को०] । ५. बढ़ा हुआ [को०] । ६. आक्रांत [को०] । ७. विरक्त [को०] ।

अवधूतवेश--वि० [सं०] बिना वस्त्र का । नग्न । विवस्त्र ।

अवधूपित--वि० [सं०] सुगंधित किया हुआ । सुवासित [को०] ।

अवधूलन--संज्ञा पुं० [सं०] घाव के ऊपर चूर्ण छिड़कना [को०] ।

अवधृत--वि० [सं०] दे० 'अवधारित' ।

अवधेय¹--वि० [सं०] १. ध्यान देने योग्य । विचारणीय । २. श्रद्धेय । ३. जानने योग्य । ४. स्थान योग्य । रखने योग्य [को०] ।

अवधेय²--संज्ञा पुं० १. नाम । २. ध्यान [को०] ।

अवध्य--वि० [सं०] वध के अयोग्य । न मारने योग्य । अवध । उ०--यह समझकर की ब्राह्मण अवध्य है, तू मुझे भय दिखलाता है ।--चंद्र०, पृ० ७७ ।

अवध्वंस--संज्ञा पुं० [सं०] [वि० **अवध्वस्त**] १. परित्याग । छोड़ना । निंदा । कलंक । ३. चूर चूर करना । चूर्णन । नाश । ४. धूल । चूर्ण [को०] । ५. छिड़काव । छिड़कना । [को०] । ६. गिर-कर दूर जा पड़ना [को०] ।

अवध्वस्त--वि० [सं०] १. नष्ट । विनिष्ट । २. त्यक्त । ३. निंदित । ४. बिखेरा हुआ । ५. चूर चूर किया हुआ । ६. छिड़का हुआ [को०] ।

अवन¹--संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रीणन । प्रसन्न करना । २. रक्षण । बचाव । उ०--दूत राम राय को, सपूत पूत पौन को तू अंजनी को नंदन प्रताप भूरि भानु सो । सीय सोच समन दुरित दोष दमन, सरन आए अवन लखन प्रिय प्रान सो ।--तुलसी ग्रं०, पृ० २४८ । ३. प्रीति । ४. इच्छा । कामना [को०] । ५. संतोष [को०] । ६. त्वरा । जल्दबाजी । [को०] ।

अवन²(पु)--संज्ञा पुं० [सं० **अवनि**] १. जमीन । भूमि । २. रास्ता । राह । सड़क । उ०--गुरुजन बाहक जदपि पुनि घालक चाबुक सैन । कटै बटे न कढे तऊ रूप अवन ह्वै नैन ।--(शब्द०) ।

अवनक्षत्र--संज्ञा पुं० [सं०] तारों का न दीख पड़ना [को०] ।

अवनत--वि० [सं०] १. नीचा । झुका हुआ । उ०--वह बोती नील गगन अपार जिसमें अवनत घन सजल भार ।--कामायनी, पृ० २३४ । २. गिरा हुआ । पतित । अधोगत । ३. कम । ४. अस्त होता हुआ [को०] । ५. विनीत । नम्र [को०] ।

अवनति--संज्ञा स्त्री० [सं०] १. घटती । कमी । घाटा । न्यूनता । हानि । २. अधोगति । हीन दशा । तनज्जुली । उ०--पूर्ण प्रकृति की पूर्ण नीति है क्या भली, अवनति को जो सहन करे गंभीर हो ।--महा०, पृ० २ । ३. झुकाव । झुकना । ४. नम्रता । ५. अस्त होना । डूबना [को०] ।

अवनद्ध¹--वि० [सं०] बना हुआ । निर्मित । २. निश्चित कया हुआ । बैठा हुआ । ३. आवेष्टित । बँधा हुआ [को०] ।

अवनद्ध²--संज्ञा पुं० एक प्रकार का ढोल [को०] ।

अवनमन--संज्ञा पुं० [सं०] १. झुकने की क्रिया । २. पैर पड़ना । उ०--ज्ञान की खोज में ओज कुल खो दिया, सत्य की नित्य आराधना, अनमन ।--आराधना, पृ० ७१ ।

अवनम्र--वि० [सं०] झुका हुआ । नमित [को०] ।

अवनयन--संज्ञा पुं० [सं०] नीचे की तरफ ले जाना [को०] ।

अवना(पु)--क्रि० अ० [सं० **आगमन**] आना । उ०--(क) तेहि रे हम चाहहिं गवना । होहु सँजूत बहुरि नहिं अवना ।--जायसी ग्रं०, पृ० ६२ । (ख) अब की के गवना बहुरि नहिं अवना करिले भेट अँकवारी ।--कबीर श०, पृ० ।

अवनाट¹--वि० [सं०] १. चपटी नाकवाला । नकचिपटा [को०] ।

अवनाट²--संज्ञा पुं० चपटी नाकवाला व्यक्ति [को०] ।

अवनाम--संज्ञा पुं० दे० 'अवनमन' [को०] ।

अवनामक--वि० [सं०] पतित करनेवाला । नीचे गिरानेवाला [को०] ।

अवनाय--संज्ञा पुं० [सं०] नीचे फेंकना [को०] ।

अवनासिक--वि० [सं०] दे० 'अवनाट' [को०] ।

अवनाह--संज्ञा पुं० [सं०] १. बाँधना । कसकर बाँधन । २ आवेष्टित करना [को०] ।

अवनि--संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पृथ्वी । जमीन । उ०--सुचि अवनि सुहावनि आलबाल, कानन विचित्र बारी बिसाल ।--तुलसी ग्रं०, पृ० ४६५ ।

यौ०--**अवनिध्र**=पर्वत । पहाड़ । **अवनिप**=राजा । उ०--अवनिध्र अकनि राम पगुधारे ।--तुलसी (शब्द०) । **अवनिपति** =राजा । **अवनींद्र**=राजा । **अवनिसुता**=जानकी । **अवनितल** पृथ्वी । **अवनीध**=राजा ।

२. एक प्रकार की लता । ३. उँगली । ४. नदी का पाट [को०] । ५. नदी [को०] । ६. जगह । स्थान (को०) ।

अवनिक्त--वि० [सं०] १. धोया हुआ । धोकर साफ किया हुआ । २. ढूँढ़ा हुआ [को०] ।

अवनिज--संज्ञा पुं० [सं०] मंगल ग्रह [को०] ।

अवनिरुह--संज्ञा पुं० [सं०] वृक्ष [को०] ।

अवनी--संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अवनि' । उ०--(क) कुटिल अलक बदन की छबि, अवनि परि लोलै ।--सूर०, १०।१०१ ।

अवनीच--वि० [सं०] इधर उधर घूमनेवाला । घुमक्कड़ [को०] ।

अवनीतल--संज्ञा पुं० [सं०] धरती की सतह । धरातल [को०] ।

अवनीध्र--संज्ञा पुं० [सं०] पर्वत । पहाड़ [को०] ।

अवनीप--संज्ञा पुं० [सं०] राजा । उ०--दीप दीप हू के अवनीपन के अवनीप, पृथु सम केशोदास द्विज गाय के ।--राम चं०, पृ० २१ ।

अवनीपति--संज्ञा पुं० [सं०] राजा । उ०--सातहु दीपन के अवनीपति हारि रहे जिय में जब जाने ।--राम चं०, पृ० १६ ।

अवनीरुह--संज्ञा पुं० [सं०] पेड़ । वृक्ष [को०] ।

अवनीश्वर--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अवनीश' [को०] ।

अवनीस(पु)--संज्ञा पुं० [सं० **अवनीश**] उ०--बिचरहि अवनि अवनीस चरनसरोज मन मधुकर किए ।--तुलसी ग्रं० पृ० ५२३ ।

अवनीसुत--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अवनिज' [को०] ।

अवनीसुता--संज्ञा स्त्री० [सं०] सीता । पृथ्वीपुत्री जानकी [को०] ।

अवनेजन—संज्ञा पुं० [सं०] १. धोना । प्रक्षालन । २. श्राद्ध में पिंडदान की वेदी पर बिछाए हुए कुशों पर जल सींचने का संस्कार । ३. भोजन के बाद का आचमन ।

अवपाक[1]—वि० [सं०] १. अच्छी तरह न पकाया हुआ । २. बिना जाल का [कौ०] ।

अवपाक[2]—संज्ञा पुं० अच्छी तरह भोजन न बनानेवाला रसोईदार । वह व्यक्ति जिसे अच्छी तरह भोजन बनाने न आता हो [कौ०] ।

अवपाटिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक रोग जो लघुछिद्र योनिवाली और रजस्वलाधर्म रहित स्त्री से मैथुन करने से, हस्तक्रिया से, लिंगेंद्रिय के बंद मुंह को बलात् खोलने से अथवा निकलते हुए वीर्य को रोकने से हो जाता है । इस रोग में लिंग को आच्छादित करनेवाला चमड़ा प्रायः फट जाता है ।

अवपात—संज्ञा पुं० [सं०] १. गिराव । पतन । अधःपतन । २. गड्ढा कुंड । ३. हाथियों को फँसाने के लिये एक गढ़ा जिसे तृणादि से अच्छादित कर देते हैं । ३. खाँड़ा । माला । ४. नाटक में भयादि से भागना, व्याकुल होना आदि दिखलाकर अंक या गर्भांक की समाप्ति । ५. पक्षियों आदि का ऊपर से नीचे की ओर झपटना [कौ०] ।

अवपातन—संज्ञा पुं० [सं०] नीचे उतारना । गिराना ।

अवपात्र—वि० [सं०] (म्लेच्छ) जिसके खाने से पात्र किसी के उपयोग योग्य न हो [कौ०] ।

अवपाद—संज्ञा पुं० [सं०] नीचे गिराना [कौ०] ।

अवबाहुक—संज्ञा पुं० [सं०] एक रोग जिससे हाथ की गति रुक जाती है । भुजस्तंभ ।

अवबुद्ध—वि० [सं०] १. जाना हुआ । २. जाननेवाला [कौ०] ।

अवबोध—संज्ञा पुं० [सं०] १. जगना । जगना । २. ज्ञान । बोध । ३. शिक्षण । सिखाना । [कौ०] ४. न्याय करना । फैसला [कौ०] ।

अवबोधक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० **अवबोधिका**] १. बंदी । चारण । २. रात को पहरा देनेवाला पुरुष । चौकीदार । पाहरू । ३. सूर्य । ४. शिक्षक । सिखानेवाला व्यक्ति [कौ०] । ५. विचार । समझ बूझ [कौ०] ।

अवबोधक[2]—वि० चेतानेवाला । जाननेवाला ।

अवबोधन—संज्ञा पुं० [सं०] १. चेतावनी । ज्ञापन । २. ज्ञान । इंद्रियज्ञान [कौ०] ।

अवभंग—संज्ञा पुं० [सं० **अवभङ्ग**] १. नीचा दिखाना । पराजित करना । २. नथुना फूलना पचकना [कौ०] ।

अवभास—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० **अवभासक, अवभासित**] ज्ञान । प्रकाश । २. मिथ्याज्ञान । ३. चमक [कौ०] । ४. झलक । आभास [कौ०] । ५. अवकाश । स्थान [कौ०] ।

अवभासक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] परब्रह्म [कौ०] ।

अवभासक[2]—वि० [सं०] बोध करानेवाला । प्रतीत करानेवाला ।

अवभासित—वि० [सं०] लक्षित । प्रतीत ।

अवभासिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] ऊपर के चमड़े का काम । चमड़े की पहली पर्त ।

अवभृथ—संज्ञा पुं० [सं०] वह शेष कर्म जिसके करने का विधान मुख्य यज्ञ के समाप्त होने पर है । २. वह स्नान जो यज्ञ के अंत में किया जाय । यज्ञांतस्नान । उ०—पावक सरोवर में अवभृथ स्नान था, आत्मसम्मान यज्ञ की वह पूर्णाहुति ।—लहर, पृ० ६३ ।

अवभ्रट—वि०, पुं० संज्ञा [सं०] दे० 'अवनाट' [कौ०] ।

अवमंता—वि० [सं० **अवमन्तृ**] अनादर करनेवाला । असंमान करनेवाला [कौ०] ।

अवमंथ[1]—संज्ञा पुं० [सं० **अवमन्थ**] एक रोग जिसमें लिंग में बड़ी बड़ी और घनी फुंसियाँ हो जाती हैं । यह रोग रक्तविकार से होता है और इसमें पीड़ा तथा रोमांच होता है ।

अवमंथ[2]—वि० सूजन पैदा करनेवाला [कौ०] ।

अवम[1]—वि० [सं०] १. अधम । अंतिम । २. रक्षक । रखवाला । ३. नीच । निंदित । ४. घनिष्ठ [कौ०] । ५. कनिष्ठ [कौ०] ।

अवम[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १. पितरों का एक गण । २. मलमास । अधिमास । ३. पाप [कौ०] । ४. रक्षक व्यक्ति । त्राता [कौ०] ।

अवमत—वि० [सं०] अवज्ञात । अवमानित । तिरस्कृत । निंदित ।

अवमति[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] अवज्ञा । अपमान । तिरस्कार । निंदा ।

अवमति[2]—संज्ञा पुं० स्वामी । मालिक [कौ०] ।

अवमतिथि—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह तिथि जिसका क्षय हो गया हो ।

अवमर्द—संज्ञा पुं० [सं०] १. ग्रहण का एक भेद । वह ग्रहण जिसमें राहु सूर्यमंडल या चंद्रमंडल को पूर्णता से ढँककर अधिक काल तक ग्रसे रहे । २. रौंदना । कुचलना । ३. शत्रु को क्षत विक्षत करना । ४. एक प्रकार का उल्लू [कौ०] ।

अवमर्दन—संज्ञा पुं० [सं०] १. पीड़ा देना । दुःख देना । दलन । २. मालिश । रगड़ना [कौ०] ।

अवमर्दित—वि० [सं०] १. पीड़ित । दलित । मालिश किया हुआ [कौ०] ।

अवमर्श—संज्ञा पुं० [सं०] स्पर्श । संपर्क [कौ०] ।

अवमर्शसंधि—संज्ञा स्त्री० [सं० **अवमर्शसन्धि**] नाट्यशास्त्र के अनुसार पाँच प्रकार की संधियों में से एक ।

विशेष—जहाँ क्रोध, व्यसन अथवा विलोभन आदि से फलप्राप्ति के संबंध में विचार या आशंका की जाय और जहाँ गर्भसंधि से बीजार्थ अधिक स्पष्ट हो वहाँ अवमर्शसंधि होत है । वि० दे० 'विमर्ष' ।

अवमर्शित—वि० [सं०] नष्ट भ्रष्ट [कौ०] ।

अवमर्ष—संज्ञा पुं० [सं०] १. विचार । खोज बीन । २. दे० 'अवमर्श संधि' । ३. आक्रमण [कौ०] ।

अवमर्षण—संज्ञा पुं० [सं०] १. मिटाना । २. हटाना । ३. बरबाद करना । ४. असहनशीलता [कौ०] ।

अवमान—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० **अवमानित**] तिरस्कार । अपमान । अनादर । उ०—पूरन राम सुपेम पियूषा । गुर अवमान दोष नहिं दूषा । मानस, २।२०८ ।

अवमानन—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० **अवमानना**] दे० 'अवमान' ।

अवमानित—वि० [सं०] तिरस्कृत । उपेक्षित । अपमानित [कौ०] ।

अवमानी—वि० [सं० **अवमानिन्**] [वि० स्त्री० **अवमानिनी**] तिरस्कार करनेवाला । अपमान करनेवाला । उ०—सोचिअ सूद्र बिप्र अवमानी । मुखर मानप्रिय ग्यान गुमानी ।—मानस, २।१७२ ।

अवमूर्धशय—वि०, संज्ञा पुं० [सं०] सिर नीचे करके लेटनेवाला [को०]।

अवमूल्यन—संज्ञा पुं० [सं०] [अं० **डिवैल्युएशन**] किसी देश की सरकार द्वारा दूसरे देशों की अपेक्षा अपने देश की मुद्रा का विनिमय मूल्य गिरा देना।

अवमोचन—संज्ञा पुं० [सं०] निर्बंध करना। बंधनविहीन करना। मुक्त करना [को०]।

अवमोदरिका—संज्ञा स्त्री० [सं० **अवम + उदरिका**] एक वृत्ति जिसमें क्रमशः भोजन से निवृत्ति प्राप्त करते हैं।—हिंदु० सभ्यता, पृ० २३३।

अवय(पु)—संज्ञा पुं० [सं० **अवयव**] दे० 'अवयव'। उ०—देवि कुँवरि अद्भुत अवय। रंजित है अति लाज।—पृ० रा०, २५।१७७।

अवयव—संज्ञा पुं० [सं०] १. अंश। भाग। हिस्सा। २. शरीर का एक देश। अंग। ३. न्यायशास्त्रानुसार वाक्य का एक अंश या भेद।

विशेष—ये पाँच हैं—(१) प्रतिज्ञा, (२) हेतु, (३) उदाहरण, (४) उपनय, और (५) निगमन। किसी किसी के मत से यह दस प्रकार का है—(१) प्रतिज्ञा, (२) हेतु, (३) उदाहरण, (४) उपनय, (५) निगमन, (६) जिज्ञासा, (७) संशय, (८) शक्यप्राप्ति, (९) प्रयोजन और (१०) संशयव्युदास।

४. उपकरण। साधन [को०]। ५. शरीर [को०]।

यौ०—**अवयवभूत** = अंगभूत। अंशभूत। **अवयवधर्म**। **अवयवरूपक** = रूपक का एक भेद।

अवयवार्थ—संज्ञा पुं० [सं०] शब्द की प्रकृति और प्रत्यय से निकलनेवाला अर्थ [को०]।

अवयवी[1]—वि० [सं० **अवयविन्**] १. जिसके और बहुत से अवयव हों। अंगी। २. कुल। संपूर्ण। समष्टि। समूचा।

अवयवी[2]—संज्ञा पुं० १. वह वस्तु जिसके बहुत से अवयव हों। २. देह। शरीर। ३. न्याय में एक तर्क [को०]।

अवयस्क—वि० [सं०] जो वयस्क न हो [को०]।

अवयान—संज्ञा पुं० [सं०] १. विपथगामी होना। पीछे की ओर आना। २. किसी को संतुष्ट करना। ३. प्रायश्चित्त करना [को०]।

अवर[1]—वि० [सं०] (पु) १. अन्य। दूसरा। और। उ०—गम दुर्गम गढ़ देहु छुड़ाई। अवरो बात सुनो कछु भाई।—कबीर (शब्द०)। २. अश्रेष्ठ। अधम। नीच। ३. पिछला (भाग)। ४. अंतिम (को०)। ५ पश्चिमी (को०)। ६. निकटतम। दूसरा [को०]। ७. अत्यंत श्रेष्ठ [को०]।

अवर[2]—वि० [सं० **अ + बल**] निर्बल। बलहीन।

अवर[3]—संज्ञा पुं० १. अतीत काल। २. हाथी का पिछला भाग।

अवरक्षक—वि० [सं०] पालक। रक्षक।

अवरज—संज्ञा पुं० [सं०] [**स्त्री० अवरजा**] १. छोटा भाई। २. नीच कुलोत्पन्न। नीच।

अवरण(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] १. दे० 'अवर्ण'। २. दे० 'आवरण'।

अवरत[1]—वि० [सं०] १. जो रत न हो। विरत। निवृत्त। २. ठहरा हुआ। स्थिर। ३. अलग। पृथक्।

अवरत[2](पु)—संज्ञा पुं० [सं० **आवर्त**] दे० 'आवर्त्त'।

अवरति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. विराम। २. निवृत्ति। छुटकारा।

अवरवर्णाभिनिवेश—संज्ञा पुं० [सं०] छोटी जातियों से बसाया हुआ उपनिवेश।

अवरव्रत[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. सूर्य। २. आक। मंदार।

अवरव्रत[2]—वि० हीनव्रत। अधम।

अवरशैल—संज्ञा पुं० [सं०] पश्चिम का पहाड़ जिसके पीछे सूर्य अस्त होता है [को०]।

अवरहस—वि० [सं०] जनशून्य। निर्जन [को०]।

अवरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दुर्गा। २. दिशा। ३. हाथी का पिछला भाग [को०]।

अवराधक(पु)—वि० [सं० आराधन] आराधना करनेवाला। पूजनेवाला। सेवक। उ०—ए सब रामभगति के बाधक। कहहिं संत तव पद अवराधक।—मानस, ४।७।

अवराधन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० **आराधन**] आराधना। उपासना। पूजा। सेवा। उ०—प्रविसि होइ सिधि, साहस फलै सुसाधन। कोटि कलपतरु सरिस संभु अवराधन।—तुलसी ग्रं०, पृ० ३०।

अवराधना(पु)—क्रि० स० [सं० **आराधना**] उपासना करना। पूजना। सेवा करना। उ०—(क) केहि अवराधहु का तुम चहहु। हम सन सत्य मरमु, सब कहहू।—मानस, १।७८। (ख) हरि हरि हरि हरि सुमिरन करो। हरि चरणारविंद उर धरो। लै चरणोदक निज व्रत साधो। ऐसी विधि हरि को अवराधो।—सूर (शब्द०)।

अवराधी(पु)—वि० [हिं० **अवराधना**] आराधना करनेवाला। उपासक। पूजक। उ०—कहाँ बैठि प्रभु साधि समाधी। आजु होब हम हरि अवराधी।—रघुराज (शब्द०)।

अवरार्ध—संज्ञा पुं० [सं०] १. लघुतम भाग। कम से कम। २. उत्तरार्ध। ३. नीचे या पीछे का आधा भाग [को०]।

अवरापतन—संज्ञा पुं० [सं०] गर्भपतन [को०]।

अवरावर—वि० [सं०] निम्नतम। सबसे निकृष्ट। सबसे बुरा [को०]।

अवरु(पु)—अव्य० [हिं०] दे० 'और'।

अवरुद्ध—वि० [सं०] १. रुँधा हुआ। २. आच्छादित। गुप्त। छिपा।

अवरुद्धा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. अपने वर्ण की वह दासी या स्त्री जिसे कोई अपने घर में डाल ले। रखनी। सुरैतिन। २. वह स्त्री जिसे कोई रख ले। उढ़री। रखुई।

अवरूढ़—वि० [सं० **अवरूढ**] १. ऊपर से नीचे आया हुआ। उतरा हुआ। आरूढ़ का उलटा। २. टूटा हुआ। छिन्नमूल (को०)।

अवरूप—वि० [सं०] १. भद्दी आकृतिवाला। विरूप। २. पतित। जिसका पतन हो गया हो [को०]।

अवरेखना(पु)—क्रि० स० [सं० **अवलेखन, अवरेखन या आलेखन**] १. उरेहना। लिखना। चित्रित करना। उ०—(क) स्याम तन देखि री आपु तन देखिऐ। भीति जौ होइ तौ चित्र अवरेखिऐ।—सूर०, १०।३०७। (ख) सखि रघुबीर मुख छबि देखु। चित्त भीतिं सुप्रीति रंग सुरूपता अवरेखु।—तुलसी (शब्द०)। २. देखना। उ०—(क) ऐसे कहत गए अपने पुर सबहिं बिलक्षण देख्यो।

मणिमय महल फटिक गोपुर लखि कनक भूमि अवरेखगो।—सूर (शब्द०)। (ख) फिरत प्रभु पूछत बन द्रुम बेली। अहो बंधु काहू अवरेखी एहि मग बधू अकेली।—सूर (शब्द०)। ३. अनुमान करना। कल्पना करना। सोचना। उ०—एकै कहै सुखमा लहरैं, मन के चढ़िबे की सिढ़ी एक पेखैं। कान्ह को टोवो कह्यो कछु काम कवीश्वर एक यहै अवरेखैं।—केशव (शब्द०)। ४. मानना। जानना। उ०—पियवा आय दुअरवा उठ किन देखु। दुरलभ पाय बिदेसिया मुद अवरेखु।—रहीम (शब्द०)।

अवरेबⓅ—संज्ञा पुं० [सं० **अव = विरुद्ध + रेब = गति; फा० उरेब = टेढ़ा**] १. वक्र गति। तिरछी चाल। २. कपड़े की तिरछी काट।

यौ०—**अवरेबदार** = तिरछी काट का।

३. पेच। उलझन। उ०—प्रभु प्रसन्न मन सकुच तजि जो जेहि आयसु देब। सो सिर धरि धरि करिहि सबु मिटिहि अनट अवरेब।—मानस, २।२६८। ४. बिगाड़। खराबी। उ०—रामकृपा अवरेब सुधारी। बिबुध धारि भइ गुनद गोहारी।—मानस, २।३१६। ५. झगड़ा। विवाद। खींचातानी। उ०—राक्षस सुत तो यह कही कन्या को हम लेब। बिप्र कहै दे मित्र मोहिं परी दुहुन अवरेब।—(शब्द०)। ६. वक्रोक्ति। काकूक्ति। उ०—धुनि अवरेब कवित गुन जाती। मीन मनोहर ते बहु भाँती।—मानस, १।३७।

अवरोक्त—वि० [सं०] बाद में कहा गया। जिसका उल्लेख बाद में हुआ हो [को०]।

अवरोचक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का रोग जिसमें भूख बहुत कम लगती है या लगती ही नहीं [को०]।

अवरोध—संज्ञा पुं० [सं०] १. रुकावट। अटकाव। अड़चन। रोक। २. छेकना। घेर लेना। मुहासिरा। ३. निरोध। बंद करना। ४. अनुरोध। दबाव। ५. अंतःपुर।—उ० राजकीय अवरोध की ये स्त्रियाँ हैं।—इरा०, पृ० ६६। ६. लेखनी। कलम [को०]। ७. प्रहरी [को०]। ८. खाईं। गड्ढा [को०]। ९. पर्त। तह [को०]।

अवरोधक¹—वि० [सं०] १. रोकनेवाला। २. घेरनेवाला [को०]।

अवरोधक²—संज्ञा पुं० १. पहरेदार। २. रोक। बाड़ [को०]

अवरोधन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० **अवरोधक, अवरोधित, अवरोधी, अवरोध, अवरुद्ध**] १. रोकना। छेकना। २. अंतःपुर। जनानखाना। ३. किसी वस्तु का भीतरी भाग [को०]। ४. निजी या व्यक्तिगत स्थान (को०)। ५. अंतःपुरिका। हरम में रहनेवाली स्त्री (को०)।

अवरोधनाⓅ—क्रि० सं० [सं० **अवरोधन**] रोकना। निषेध करना। उ०—यह बिधि विषय भेद अवरोधा। नहिं कछु श्रुति प्रत्यक्ष विरोधा।—शं० दि० (शब्द०)।

अवरोधिक¹—वि० [सं०] रोकनेवाला। अवरोध उपस्थित करनेवाला [को०]।

अवरोधिक²—संज्ञा पुं० अंतःपुर का प्रहरी [को०]।

अवरोधिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] अंतःपुर की दासी। अंतःपुर की रखवाली करनेवाली स्त्री या दासी [को०]।

अवरोधित—वि० [सं०] रोका हुआ। रुका। घेरा हुआ।

अवरोधी—वि० [सं० **अवरोधिन्**] [वि० स्त्री० **अवरोधिनी**] अवरोध करनेवाला। रोकनेवाला। दे० 'अवरोधक'।

अवरोपण—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० **अवरोपित, अवरोपणीय**] १. उखाड़ना। उत्पादन। २. पेड़ लगाना [को०]।

अवरोपणीय—वि० [सं०] १. उखाड़ने योग्य।

अवरोपित—वि० [सं०] उखाड़ा हुआ। उन्मूलित।

अवरोह—संज्ञा पुं० [सं०] १. उतार। गिराव। अधःपतन। २ अवनति। अवसर्पण। विवर्त्त। ३. एक अलंकार जो वर्धमान अलंकार का उलटा है। इसमें किसी वस्तु के रूप तथा गुण का क्रमशः अधःपतन दिखाया जाता है; जैसे-सिंधू सर पल्लव पुष्करणिय। कुंड वापिका कूप जु वरणिय। चुलुक रूप भौ जिन्ह कर भीतर। पान करत जय जय वह मुनिवर। ४. बररोह। ५. संगीत में स्वरों का उतार [को०]। ६. आरोहण। चढ़ाव (को०)। ७ वृक्ष से लता का लिपटते हुए चढ़ना या घेर लेना [को०]। ८. स्वर्ग [को०]।

यौ०—**अवरोहशाख, अवरोहशाखी अवरोहशायी वट** = वृक्ष।

अवरोहक¹—वि० [सं०] १. गिरनेवाला। २. अवनति करनेवाला।

अवरोहक²—संज्ञा पुं० [**स्त्री० अवरोहिका**] अश्वगंध।

अवरोहण—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० **अवरोहक, अवरोहित, अवरोही**] १ नीचे की ओर जाना। पतन। गिराव। २. चढ़ना [को०]।

अवरोहना¹Ⓟ—क्रि० अ० [सं० **अवरोहण**] १. उतरना। नीचे आना। २. चढ़ना। ऊपर जाना। उ०—(क) कहूँ सिव चाँप लकरवनि बूझत बिहँस चितै तिरछौहैं। तुलसी गलिन भीर दरसन लगि लोग अटनि अवरोहैं।—तुलसी (शब्द०)। (ख) जोबन व्याध नहीं अरु बैननि मोहिनी मंत्र नहीं अवरोह्यो।—देव (शब्द०)।

अवरोहना²Ⓟ—क्रि० स० [**हिं० उरेहना**] खींचना। अंकित करना। चित्रित करना। उ०—गोरे गात, पातरी, न लोचन समात मुख उर उरजातन की बात अवरोहिये।—केशव (शब्द०)।

अवरोहना³Ⓟ—क्रि० स० [सं० **अवरोधन**, प्रा० **अवरोहन**] रोकना। रूँधना। छेंकना। उ०—मत अद्वैत राजपथ सोहा। जहाँ भेद कंटक अवरोहा।—शं० दि० (शब्द०)।

अवरोहिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] अश्वगंधा [को०]।

अवरोहिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] ज्योतिष के अनुसार एक बुरी दशा, जो नक्षत्रों के खास स्थानों में पहुँचने से उत्पन्न होती है [को०]।

अवरोहित—वि० [सं०] १. गिरनेवाला। २. अवनत। हीन। ३. हल्के लाल रंग का।

अवरोही¹—संज्ञा पुं० [सं० **अवरोहिन्**] १. वह स्वर जिसमें पहले षड्ज का उच्चारण हो, फिर निषाद से षड्ज तक क्रमानुसार उतरते हुए स्वर निकलते जायँ। सा, नि, ध, प, म, ग, रि, सा का क्रम। विलोम। आरोही स्वर का उलटा। २. वटवृक्ष।

अवरोही²—वि० ऊपर से नीचे की तरफ आनेवाला [को०]।

अवर्ग¹—वि० [सं०] जिसका कोई वर्ग या श्रेणी न हो [को०]।

अवर्ग²— संज्ञा पुं० स्वरवर्ण [को०]।

अवर्ण¹—वि० [सं०] १. वर्णरहित। बिना रंग का। २. बदरंग। बुरे रंग का। ३. जो ब्राह्मण आदि के धर्म से शून्य हो। वर्ण-धर्म-रहित।

अवर्ण²—संज्ञा पुं० [सं०] १. अकार अक्षर। २. निंदा। ३. अपशब्द।

अवर्ण्य¹—वि० [सं०] जो वर्णन के योग्य न हो।

अवर्ण्य²—संज्ञा पुं० [सं० अ + वर्ण्य] जो वर्ण्य या उपमेय न हो। उपमान। उ०—है उपमेय विश्व अरु वर्ण्य। उपमानतु विषयीरु अवर्ण्य।—मतिराम (शब्द०)।

अवर्त¹—संज्ञा पुं० [सं०] स्फूर्तिशून्य पदार्थ। वह पदार्थ जिसके आरपार प्रकाश या दृष्टि न जा सके।

अवर्त²(पु)—संज्ञा पुं० [सं० आवर्त्त] १. भँवर। नाँद। उ०—कादर भयंकर रुधिर सरिता चली परम अपावनी। दोउ कूल दल रथ रेत चक्र अवर्त्त बहति भयावनी।—मानस, ६।८६। २. (पु) घुमाव। चक्कर। उ०—बिषम बिषाद तोरावति धारा। भय भ्रम भँवर अवर्त अपारा।—मानस, २।२७५।

अवर्तन¹—संज्ञा पुं० [सं०] जीविका का अभाव। जीविका की अनुपलब्धि।

अवर्तन²(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आवर्तन'।

अवर्तमान—वि० [सं०] १ जो वर्तमान न हो। अनुपस्थित। अप्रस्तुत। २. असत्। अभाव। ३. भूत या भविष्य।

अवर्धमान— वि० [सं०] वर्धमान का विपरीत। न बढ़नेवाला [को०]।

अवर्ष—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अवर्षण' [को०]।

अवर्षण—संज्ञा पुं० [सं०] वृष्टि का अभाव। वर्षा का न होना। अवग्रहण। अनावृष्टि।

अवर्षुक—वि० [सं०] न बरसनेवाला [को०]।

अवलंघन—संज्ञा पुं० [सं० अव + लङ्घन] दे० 'उल्लंघन'।

अवलंघना(पु)—क्रि० स० [सं० अव + लङ्घन] लाँघना। फाँदना। उ०—राम प्रताप, सत्य सीता कौ, यहै नाव-कनधार। तिहिं अधार छन मैं अवलंघ्यौ आवत भई न बार।—सूर०, ९।८९।

अवलंब—संज्ञा पुं० [सं० अवलम्ब] आश्रय। आधार। सहारा। उ०—सो अवलंब देउ मोहि देई। अवधि पारु पावउँ जेहि सेई।—मानस, २।३०६।

अवलंबक—संज्ञा पुं० [सं० अवलम्बक] एक प्रकार का वृत्त या छंद [को०]।

अवलंबन—संज्ञा पुं० [सं० अवलम्बन] [वि० अवलम्बित, अवलम्बी] १. आश्रय। आधार। सहारा। उ०—नहिं कलि करम न भगति बिबेकू। राम नाम अवलंबन एकू।—तुलसी (शब्द०)। २. धारण। ग्रहण।

क्रि० प्र०—करना = धारण करना। ग्रहण करना। अनुसरण करना; जैसे,—'यह सुन उसने मौनावलंबन किया' (शब्द०)। ३. छड़ी।

अवलंबना(पु)—क्रि० स० [सं० अवलम्बन] अवलंबन करना। आश्रय लेना। टिकना। उ०—जिन्हें अतन अवलंबई सो आलंबन जानि। निज तें दीपित होति है। ते उद्दीप बखानि।—केशव ग्रं०, भा० १, पृ० ३५।

अवलंबित—वि० [सं० अवलम्बित] १. आश्रित। सहारे पर स्थित। टिका हुआ। उ०—चरणकमल अवलंबित राजित जनमाल। प्रफुलित ह्वै ह्वै लता मनो चढ़ी तंह तमाल—सूर (शब्द०)। २. मुनहसर। निर्भर; जैसे—इसका पूरा होना द्रव्य पर अवलंबित है। (शब्द०)। उ०—ऐसे और पतित अवलंबित ते छिन माहिं तरे। सूर पतित तुम पतित उधारन बिरद कि लाज धरे।—सूर०, १।१६८। ३. लटकाया हुआ [को०]। ४. शीघ्र। सत्वर [को०]।

अवलंबी—वि० पुं० [सं० अवलम्बिन्] [वि० स्त्री० अवलंबिनी] १. अवलंबन करनेवाला। सहारा लेनेवाला। उ०—और भगवान् की करुणा का अवलंबी बन गया था।—इंद्र०, पृ० ४१। २. सहारा देनेवाला। पालनेवाला।

अवल(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अव्वल'। उ०—अवल उकीलनूं जी आदर कुरब दे अवधेस-—रघु० रू०, पृ० ८१।

अवलक्ष¹—वि० [सं०] सफेद वर्ण का [को०]।

अवलक्ष²—संज्ञा पुं० सफेद वर्ण [को०]।

अवलग्न¹—वि० [सं०] लगा हुआ। मिला हुआ। संबंध रखनेवाला।

अवलग्न²—संज्ञा पुं० शरीर का मध्य भाग। धड़। माझा।

अवलच्छना(पु)—क्रि० स० [सं० अव + लक्ष्य] लक्ष्य बनाना। देखना उ०—पच्छ-रहित जीतत उड़ि पच्छिय। अंतरिच्छ गति जिन अवलच्छिय।—पद्माकर ग्रं०, पृ० ६।

अवलि(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० आवलि] दे० 'अवली'। उ०—भाल बिसाल तिलक झलकाहीं। कच बिलोकि अलि अवलि लजाहीं।—मानस, १।२४३।

अवलिप्त—वि० [सं०] १. लगा हुआ। पोता हुआ। २. सना हुआ। आसक्त। ३. घमंडी। गर्वित।

अवलिया—संज्ञा पुं० [हिं० औलिया] दे० 'औलिया'। उ०—जहाँ बसे तीरथ देव अवलिया होना।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ३४६।

अवली(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० आवलि] १. पंक्ति। पाँति। उ०—मानो प्रगट कंज पर मंजुल अलि अवली फिरि आई।—सूर०, १०।१०८। २. समूह। झुंड। उ०—मन रंजन खंजन की अवली नित आँगन आय न डोलती है।—केशव (शब्द०)। ३. वह अन्न की डाँठ जो नवान्न करने के लिये खेत से पहले पहल काटी जाती है। ४. रोआँ या ऊन जो गड़रिया एक बार भेड़ पर से काटता है।

अवलीक—वि० [सं० अव्यलीक] अपराधशून्य। पापशून्य। निष्पाप। निष्कलंक। शुद्ध। उ०—जावो वालमीकि घर बड़ो अवलीक साधु कियो अपराध दियो जो बताइये।—प्रिया (शब्द०)।

अवलीढ—वि० [सं०] १. भक्षित। खाया हुआ। २. चाटा हुआ। ३. स्पृष्ट। संपर्कप्राप्त (को०)।

अवलीन—वि० [सं०] युक्त। भीतर युक्त अंदर की ओर स्थित [को०]।

अवलीला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. क्रीड़ा। खेल। २. अनादर। अवहेलना [को०]।

अवलुंचन—संज्ञा पुं० [सं० अवलुञ्चन] १. छेदना। काटना। २. उखाड़ना। नोचना। ३. दूर करना। हटाना। अपनयन। ४. खोलना।

अवलुंचित—वि० [सं० अवलुञ्चित] १. कटा हुआ। छेदित। २. उखाड़ा हुआ। नोचा हुआ। ३. दूरीकृत। हटाया हुआ। अपनीत। ४. खुला या खोला हुआ। मुक्त।

अवलुंठन--संज्ञा पुं० [सं० **अवलुण्ठन**] १.लोटना। लुढ़कना। २. लूटना (को०)।

अवलुंठित--वि० [सं० **अवलुण्ठित**] १. जो लुढ़क गया हो। लोटा हुआ। २. लूट लिया गया हो (को०)।

अवलुंपन--संज्ञा पुं० [सं० **अवलुम्पन**] अचानक लपक पड़ना। टूट पड़ना। झपट्टा मारना [को०]।

अवलेख--संज्ञा पुं० [सं०] १. कोई खरोंची हुई या चिह्नित वस्तु। २. खुरचना, चिह्नित करना वा तोड़ना [को०]।

अवलेखन--संज्ञा पुं०[सं०]१. बुरुश या कंघी करना। २. चिह्न करना या लकीर खींचना।

अवलेखना(पु)--क्रि० स०[सं० **अवलेखन**] १.खोदना। खरचना। २. चिह्न डालना। लकीर खींचना। उ०--गहौ बिरद की लाज दीन हित करि सुदृष्टि ब्रज देखौ। मोसौं बात कहत किन सन्मुख कहा अवनि अवलेखौ।--सूर०, १०। ४१५४।

अवलेखनी--संज्ञा स्त्री० [सं०] १. लेखनी। २. बाल झाड़ने की कंघी या ब्रश [को०]।

अवलेखा--संज्ञा स्त्री० [सं०] १.रगड़ना। २.चित्रांकन करना। ३. शृंगार करना। सजावट करना (को०)।

अवलेप--संज्ञा पुं० [सं०] १. उबटन। लेप उ०--कुच कुंकुम अवलेप तरुनि किये सोभित स्यामल गात। गत पतंग, राका ससि बिय सँग, घटा सघन सोभात।--सूर०, १०। २७३४। २. घमंड। गर्व। ३. आभूषण (को०)। ४.मलहम (को०)। ५. संग। मिलन (को०)। ६. आक्रमण। हिंसा (को०)। ७. अपमान (को०)।

यौ०--**बलावलेप**=बल का गर्व।

अवलेपन--संज्ञा पुं० [सं०] १. लगाना। पोतना। छोपना। २. वह वस्तु जो लगाई या छोपी जाय। लेप। उबटन। ३.घमंड। अभिमान। अहंकार। ४. दूषण। ५ चंदन का वृक्ष (को०)।

अवलेह--संज्ञा पुं० [सं०] १.लेई जो न अधिक गाढ़ी और न अधिक पतली हो और चाटी जाय। चटनी। माजून (वैद्यक)। २. औषध जो चाटा जाय। ३. निर्यास। सत्त। अरक--जैसे, सोम [को०]।

अवलेहन--संज्ञा पुं० [सं०] १.जीभ की नोक लगाकर खाना। चाटना। २. चटनी।

अवलेह्य--वि० [सं०] चाटने योग्य।

अवलोक--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अवलोकन' [को०]।

अवलोकक--संज्ञा पुं० [सं०] १.देखनेवाला। अवलोकन करनेवाला। १.सोद्देश्य किसी वस्तु को देखनेवाला; जैसे--जासूस [को०]।

अवलोकन--संज्ञा पुं० [सं०] [वि० **अवलोकित, अवलोकनीय**] १. देखना। उ०--देव कहैं अपनी अपनी अवलोकन तीरथराज चलो रे।--तुलसी ग्रं०, पृ० २३४। २.देखभाल। जाँच पड़ताल। निरीक्षण। ३. नेत्र। आँख [को०]।

अवलोकना(पु)--क्रि० स० [सं० **अवलोकन**] १. देखना। उ०--गिरा अलिनि मुख पंकज रोकी। प्रगट न लाज निशा अवलोकी।--मानस, १।२५६। २. जाँचना। अनुसंधान करना। उ०--फिरत वृथा भाजन अवलोकत सूनै सदन अजान।--सूर०, १।१०३।

अवलोकनि(पु)--संज्ञा स्त्री०[सं० **अवलोकन**]आँख। दृष्टि। चितवन। उ०--अवलोकनि बोलनि मिलनि प्रीति परसपर हास। भायप भलि चहुँ बंधु की जलमाधुरी सुबास।-- मानस, १।४२।

अवलोकनीय--वि० [सं०] देखने योग्य। दर्शनीय।

अवलोकित--वि० [सं०] देखा हुआ। दृष्ट।

अवलोकितेश्वर--संज्ञा पुं० [सं०] एक बोधिसत्व का नाम।

अवलोक्य--वि० [सं०] देखने योग्य। अवलोकनीय [को०]।

अवलोचना(पु)--क्रि० स० [सं० **अवलोचन, आलोचन**] दूर करना। उ०--सोचै अनागम कारण कंत को मोचै उसासनि आँसहूँ मोचै। मोची न हेरि हरा हिय को पदमाकर मोचि सकै न सँकोचै। कोत की इह चाँदनी चैते अलि, याहि निबाहि बिया अवलोचै। लोचै परी सी परी परजंक पैं बीती घरी न घरी घरी सोचै।--पद्माकर ग्रं०, पृ० १२१।

अवलोप--संज्ञा पुं० [सं०] १.काटना। काटकर दूर करना। बिगाड़ना। २.अधर को दाँत से क्षत करना। अधर चूमना [को०]।

अवलोभन--संज्ञा पुं० [सं०] विषयवासना [को०]।

अवलोम--वि० [सं०] १. अपनी तरफदारी करनेवाला। अपना पक्ष लेनेवाला। २. उपयुक्त [को०]।

अवल्गुज[1]--संज्ञा पुं० [सं०] सोमराजी नामक पौधा [को०]।

अवल्गुज[2]--वि० जिसका मूल अच्छा न हो [को०]।

अववद--संज्ञा पुं० [सं०] निंदा। अपवाद [को०]।

अववदन--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अववद' [को०]।

अववदित--वि० [सं०] सिखलाया हुआ। समझाया हुआ [को०]।

अववदिता--वि० [सं० **अववदितृ**] निर्णायक ढंग से बोलनेवाला [को०]।

अववरक--संज्ञा पुं० [सं०] १. छेद। २. खिड़की [को०]।

अववाद--संज्ञा पुं० [सं०] १. निंदा। बुराई। २. विश्वास। ३. अनादर। अवज्ञा। ४. सहारा। भरोसा। ५. आदेश। ६. सूचना [को०]।

अवश--वि० [सं०] १. विवश। परवश। लाचार। २. स्वतंत्र। मुक्त [को०]। ३. अनियंत्रित [को०] ४. जरूरी। आवश्यक (को०)।

यौ०--**अवशग**=स्वतंत्र। **अवशीभूत**=अनियंत्रित। अवशेंद्रियचित्त=जिसका मन और मस्तिष्क वश में न किया जा सके।

अवशप्त--वि० [सं०] अभिशप्त [को०]।

अवशा--संज्ञा स्त्री० [सं०] मरकही या बुरी गाय [को०]।

अवशिष्ट--वि० [सं०] बचा हुआ। शेष। बाकी। बचा खुचा। बचा बचाया।

अवशीन--संज्ञा पुं० [सं०] बिच्छू [को०]।

अवशीर्ण--वि० [सं०] टूटा फूटा। नष्ट [को०]।

अवशीर्षक्रिया--संज्ञा स्त्री० [सं०] विरक्त मित्र या राज्यापराध के कारण बहिष्कृत व्यक्ति के साथ फिर संधि करना।

अवशीर्ष[1]--वि० [सं०] जिसका सिर झुका हो।

अवशीर्ष¹—संज्ञा पुं० एक प्रकार का नेत्ररोग [को०] ।

अवशेष²—वि० [सं०] १. बचा हुआ । शेष । बाकी । उ०—चोर चला चोरी करन किये साहु का भेष । गल्ले सब जग मूसिया चोर रहा अवशेष ।—कबीर (शब्द०) । २. समाप्त ।

अवशेष²—संज्ञा पुं० [सं० **अवशिष्ट**] बची हुई वस्तु । २. अंत । समाप्ति ।

अवशेषित—वि० [सं०] बचा हुआ । अवशिष्ट । उ०—रिपु तेजसी अकेल अपि लघु करि गनिय न ताहु । अजहुँ देत दुख रवि ससिहिं सिर अवशेषित राहु ।—तुलसी (शब्द०) ।

अवश्यंभावी—वि० [सं० **अवश्यम्भाविन्**] जो अवश्य हो, टले नहीं । अटल । ध्रुव ।

अवश्य¹—क्रि० वि० [सं०] निश्चय करके । निस्संदेह । जरूर ।

अवश्य²—वि० [स्त्री० **अवश्या**] १. जो वश में न आ सके । दुर्दांत । २. जो वश में न हो । अनायत्त ।

अवश्यक—वि० [सं०] दे० 'आवश्यक' [को०] ।

अवश्यमेव—क्रि० वि० [सं०] अवश्य । निस्संदेह । जरूर ।

अवश्यसैन्य—वि० [सं०] राजा या राष्ट्र जिसकी सेना वश में न हो । विशेष—पुराने नीतिज्ञ इसकी अपेक्षा अव्यवस्थित सैन्य अच्छा समझते थे । पर कौटिल्य के मत में अवश्यसेना साम आदि उपायों से वश में की जा सकती है, अतः वही अच्छी है ।

अवश्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. स्वच्छंद स्त्री । २. कुहरा [को०] ।

अवश्याय—संज्ञा पुं० [सं०] १. हिम । तुषार । पाला । २. झींसी । झड़ी । ३. अभिमान ।

यौ०—**अवश्यायपट**=एक तरह का कपड़ा ।

अवश्रयण—संज्ञा पुं० [सं०] चूल्हे पर से पके हुए खाने को उतारकर नीचे रखना । अधिश्रमण का उलटा ।

अवष्कयणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] बहुत समय बाद बच्चा देनेवाली गाय [को०] ।

अवष्टंभ—संज्ञा पुं० [सं० **अवष्टम्भ**] [वि० **अवष्टब्ध**] १. सहारा । आश्रय । २. खंभा । थाम । ३. सोना । ४. अनम्रता । ५. आरंभ (को०) । ६. खड़ा होना । रुक जाना (को०) । ७. हिम्मत । साहस (को०) । ८. रोक । बाधा (को०) । ९. लकवा । फालिज (को०) । १०. उत्तमता । श्रेष्ठता (को०) ।

अवष्टंभन—संज्ञा पुं० [सं० **अवष्टम्भन**] १. सहारा लेना तथा देना । २. जड़ करना । ३. रुकना । स्थिर न होना । ४. स्तंभ [को०] ।

अवष्टब्ध—वि० [सं०] १. जिसे सहारा मिला हो । आश्रित । २. रोका हुआ । बाधित [को०] । ३. समीपवर्ती (को०) । ४. जड़ीकृत । जो जड़ बना दिया गया हो (को०) । ५. बद्ध । लगा हुआ (को०) । ६. आवृत । आवेष्टित (को०) । ७. पराभूत (को०) ।

अवसंजन—संज्ञा पुं० [सं० **अवसञ्जन**] आलिंगन [को०] ।

अवसंडीन—संज्ञा पुं० [सं०] पक्षियों के नीचे उतरने की गति ।

अवस¹—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'अवश्य' ।

अवस²—संज्ञा पुं० [सं०] १. राजा । २. सूर्य । ३. अर्क । मदार । ४. ५. नाश्ता । ६. रक्षण [को०] ।

अवस³(पु)—वि० [सं० अवश] लाचार । विवश ।

अवसक्त¹—वि० पुं० [सं०] लगा हुआ । संसृष्ट । संलग्न ।

अवसक्त²—संज्ञा पुं० लगाव । संलग्नता । संबद्धता [को०] ।

अवसक्थिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. अरदावन । उंचन । अदवाइन । अदवान । २. एक मुद्रा जिसमें उकड़ूँ बैठकर एक कपड़े को पीठ पर से ले जाकर आगे घुटनों को लेकर बाँधते हैं । प्रौढ़पाद । पर्यकबंध ।

अवसथ—संज्ञा पुं० [सं०] १. वासस्थान । ठौर । गाँव । २. घर । ३. मठ जिसमें विद्यार्थी रहें । बोर्डिंग हाउस ।

अवसथ्य¹—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अवसथ' ।

अवसथ्य²—वि० गृहसंबंधी [को०] ।

अवसन्न—वि० [सं०] १. विषादप्राप्त । विषण्ण । २. विनाशोन्मुख । नष्ट होनेवाला । ३. सुस्त । आलसी । स्वकार्याक्षम । ४. मृत । गत (को०) । ५. समाप्त । निष्कासित (को०) ।

अवसर—संज्ञा पुं० [सं०] १. समय । काल । उ०—एहि अवसर चाहिअ परम सोभा रूप बिसाल । मानस, १।१३१ । अवकाश । फुरसत । ३. इत्तिफाक ।

क्रि० प्र०—**आना । —पड़ना । —पाना । —बीतना । —मिलना ।**

मुहा०—**अवसर चूकना**=मौका हाथ से जाने देना । उ०—अवसर चूकी डोमिनी गावै ताल बेताल ।—(कहा०) । अवसर ताकना=उपयुक्त समय की प्रतीक्षा करना । मौका ढूँढना । **अवसर मारा जाना**=मौका हाथ से निकल जाना । समय बीत जाना । उ०—संसारी समय विचारिया क्या गिरही क्या योग । औसर मारा जात है चेतु बिराने लोग ।—कबीर (शब्द०) । ४. एक काव्यालंकार जिसमें किसी घटना का ठीक अपेक्षित समय पर घटित होना वर्णन किया जाय; जैसे—प्रान जो तजैंगी बिरहाग में मयंकमुखी, प्रानघाती पापी कौन फूली ये जुही जुही । जौ लौं परदेशी मन भावन विचार कीन्हों तौ लौं तूही प्रकट पुकारी है तुही तुही ।—चिंतामणि (शब्द०) । ५. भूमिका । परिचय (को०) । ६. साल । वर्ष (को०) । ७. वर्षा (को०) । ८. एकांत परामर्श [को०] ।

यौ०—**अवसरग्रहण**=अवकाशग्रहण ।

अवसरप्राप्त=अवकाशप्राप्त ।

अवसरप्राप्त—वि० [सं०] जिसने अपने काम से सदा के लिये अवसर ग्रहण कर लिया हो । जिसने पेंशन ले ली हो; जैसे—अवसर प्राप्त मैजिस्ट्रेट ।

अवसरवाद—संज्ञा पुं० [सं०] एक पाश्चात्य दार्शनिक सिद्धांत ।

विशेष—इसके अनुसार ईश्वर ही वास्तव में कर्ता और ज्ञाता है और जीव काल्पनिक कर्ता और ज्ञाता मात्र है । इस सिद्धांत के अनुसार जब जब शरीर पर असर होने से आत्मा को संवेदन या सुख दुःख होते हैं और जब जब आत्मा की कृतिशक्ति से शरीर हिलता चलता है, तब तब आत्मा और शरीर के बीच में पड़कर ईश्वर कार्य करता है । संवेदन का शरीर और शारीरिक गति का आत्मा केवल समय समय पर सहकारी कारण है, वस्तुतः इस संवेदन और दोनों ही का कारण ईश्वर है । यह सिद्धांत मेलब्रांश और ज्यूलोक का है जिससे मेलब्रांश ईश्वर को ज्ञाता और ज्यूलोक कर्ता मात्र मानता है ।

अवसरवादिता--संज्ञा स्त्री० [सं०] मौके से फायदा उठाने की प्रवृत्ति।

अवसरवादी--वि० [सं० अवसरवादिन्] [अं० एपॉरचुनिस्ट] १. समय के अनुकूल अपने सिद्धांतों को परिवर्तित करनेवाला। अवसर से लाभ उठानेवाला। २. अवसरवाद के दार्शनिक सिद्धांत को माननेवाला।

अवसर्ग--संज्ञा पुं० [सं०] १. मुक्ति। छोड़देना। २. शिथिल करना। ३. स्वतंत्र करना [को०]।

अवसर्जन--संज्ञा पुं० [सं०] छोड़ना। बंधन से मुक्त कर देना [को०]।

अवसर्प--संज्ञा पुं० [सं०] खुफिया। जासूस [को०]।

अवसर्पण--संज्ञा पुं० [सं०] अधोगमन। अधःपतन। अवरोहण। विवर्तन।

अवसर्पिणी--संज्ञा स्त्री० [सं०] जैनशास्त्रानुसार गिराव का समय जिसमें रूपादि का क्रमशः ह्रास होता है। इसके छह विभाग हैं जिनको 'आरा' कहते हैं। अवरोह। विवर्त।

अवसर्पी--वि० [सं० अवसर्पिन्] [वि० स्त्री० अवसर्पिणी] नीचे जानेवाला। गिरनेवाला।

अवसवो(पु)†--क्रि० वि० [हिं०] दे० 'अवश्यमेव'। उ०--अवसवो उद्यम लक्षि बस अवसकऱ्यो साहस सिद्धि।--कीर्ति०, पृ० २६।

अवसव्य--वि० [सं०] दाहिना। अपसव्य [को०]।

अवसाद--संज्ञा पुं० [सं०] १. नाश। क्षय। २. विषाद। ३. दीनता। ४. थकावट। ५. कमजोरी। ६. कानून में कारण की सदोषता जिसकी वजह से मुकदमा गिर जाय (को०)।

अवसादक--वि० [सं०] १. अवसाद उत्पन्न करनेवाला। २. सुस्त कर देनेवाला। असफल कर देनेवाला। २. क्षीण करनेवाला। ३. समाप्त करनेवाला [को०]।

अवसादन--संज्ञा पुं० [सं०] १. नाश। क्षय। ध्वंस। २. विनाशन। ३. विरक्त होना। ४. दीन होना। ५. थकना। ६. वैद्यक में व्रणचिकित्सा का एक भेद। मरहम पट्टी। ६. कार्य करने की अक्षमता [को०]।

अवसादी--वि० [सं० अवसादिन्] अवसादयुक्त [को०]।

अवसान¹--संज्ञा पुं० [सं०] १. विराम। ठहराव। समाप्ति। अंत। ३. सीमा। उ०--यही तुम्हारे मान का अवसान है न?'--चंद्र०, पृ० ५६। ४. सायंकाल। ५. मरण। ६. घोड़े से उतरने का स्थान (को०)। ७. छंद की समाप्ति या छंद। ८. रुकने का स्थान। विश्रामस्थान [को०]।

अवसान(पु)²--संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'औसान²'।--(क) फिरकिनारि, दै गारि, आपु अहि जाइ जगायौ। पग सौ चाँपि पूँछ, सबै अवसान भुलायौ।--सूर०, १०। ५८६। (ख) छूटत कमान अररान लग्यौ, आसमान जान लागे अवसान कहौ क्यों न लागहू।--गंग, पृ०, ४६६।

अवसानक--वि० [सं०] नष्ट होता हुआ। समाप्त होता हुआ [को०]।

अवसाफ(पु)--वि० [हिं०] दे० 'औसाफ'। उ०--अवसाफ तुरा गोयद सकल कवि नरहरिगुफ्तम चुनी।--अकबरी०, पृ० ३३३।

अवसाय--संज्ञा पुं० [सं०] १. निष्कर्ष। निचोड़। समाप्ति। २. अवशेष। ३. परिसमाप्ति। ४. निश्चय। ५. अंतिम अवस्था को पहुँचानेवाला व्यक्ति [को०]।

अवसायक--वि० [सं०] नष्ट भ्रष्ट करनेवाला। विघटित करनेवाला [को०]।

अवसायिता(पु)--संज्ञा स्त्री० [सं० अवसित=ऋद्ध] ऋद्धि। (डिं०)।

अवसायी--वि० [सं० अवसायिन्] रहनेवाला [को०]।

अवसारण--संज्ञा पुं० [सं०] हटाना [को०]।

अवसि(पु)--क्रि० वि०, दे० 'अवश्य'। उ०--अवसि चरिअ बन राम जहँ भरत मंत्रु भल कीन्ह।--मानस, २।१८४।

अवसिक्त--वि० [सं०] सींचा हुआ। सिंचित [को०]।

अवसित¹--वि० [सं०] १. समाप्त। २. ऋद्ध। बढ़ा हुआ। ३. परिपक्व। ४. निश्चित। ५ संबद्ध। ६. रहनेवाला। ७. जमा किया हुआ। एकत्र किया हुआ। ८. ज्ञात। जाना हुआ [को०]।

अवसित²--संज्ञा पुं० १. रहने की जगह। २ खलिहान [को०]।

अवसी--संज्ञा स्त्री० [आवसित, प्रा० आवसिअ=पका धान्य] वह धान्य या शस्य जो कच्चा नवान्न आदि के लिये काटा जाय। अवली। अरवन। गद्दर।

अवसुप्त--वि० [सं०] सोया हुआ (को०)।

अवसृष्ट--वि० [सं०] [स्त्री० अवसृष्टा] १. त्यागा हुआ। त्यक्त। २. निकाला हुआ। ३. दिया हुआ। दत्त।

अवसेक--संज्ञा पुं० [सं०] १. सिंचन। २. एक प्रकार का नेत्र रोग [को०]।

अवसेख(पु)--वि० [हिं०] दे० 'अवशेष'। उ०--उहाँ राम रजनी अवसेखा। जागें सीय सपन अस देखा।--मानस, २। २२५।

अवसेचन--संज्ञा पुं० [सं०] सींचना। पानी देना। २. पसीजना। पसीना निकलना। ३. वह क्रिया जिसके द्वारा रोगी के शरीर से पसीना निकाला जाय। ४. जोंक, सींगी, तूँबी या फस्द देकर रक्त निकालना। ५. जल जो छिड़का जाय (को०)।

अवसेर--संज्ञा स्त्री० [सं० अवसेरु=बाधक] १. अटकाव। उलझन। उ०--भयो मो मन माधव को अवसेर। मौन धरे मुख चितवत ठाढ़ी ज्वाब न आवै फेर। तब अकुलाय चली उठि बन को बोले सुनत न टेर।--सूर (शब्द०)। २. देर। विलंब। उ०--महरि पुकारत कुँअर कन्हाई। माखन धरयो तिहारे कारन आजु कहाँ अवसेर लगाई।--सूर (शब्द०)।

क्रि० प्र०--करना।--लगना।--लगाना।--होना।

३. चिंता। व्यग्रता। उचाट। उ०--(क) भए बहुत दिन अति अवसेरी। सगुन प्रतीति भेट प्रिय केरी।--तुलसी (शब्द०)। (ख) आजु कौन बन गाइ चरावत, कहँ धौं भई अबेर। बैठे कहँ सुधि लेउँ कौन विधि ग्वारि करत अवसेर।--सूर०, १०। ४४८।

क्रि० प्र०--करना।--उ०--दूती मन अवसेर करै। श्याम मनावन मोहि पठाई यह कतहूँ चितवै न टरै।--सूर(शब्द०)। --लगना। उ०--अब ते नयन गए मोहि त्यागि। इद्री गई गयो तन ते मन उनहि बिना अवसेरी लागि।--सूर(शब्द०)।

४. हैरानी। बेचैनी। उ०--दिन दस घोष चलहु गोपाल। गाइन के अवसेर मिटावहु लेहु आपने ग्वाल।--सूर (शब्द०)।

क्रि० प्र०--करना=दुःख देना।-मिटाना।-में पड़ना=दुःख

में फँसना ।–में फँसना = दुख में पड़ना । अवसेरन मरना = दुख से तंग आना ।

अवसेरना(पु)—क्रि० स० [हिं० अवसेर] तंग करना । दुःख देना । उ०–पिय पागे परोसिन के रस में बस में न कहूँ बस मेरे रहै । पदमाकर पाहुनी सी ननदी निस नींद तजे अवसेरे रहै ।— पद्माकर (शब्द०) ।

अवसेष(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अवशेष' ।

अवसेषित(पु)— वि० [हिं०] दे० 'अवशेषित' ।

अवसेस(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अवशेष¹' । उ०–करि भोजन अवसेस जज्ञ को त्रिभुवन भूख हरी ।—सूर०, १ । १६ ।

अवस्कंद—संज्ञा पुं० [सं० अवस्कन्द] १. सेना के ठहरने की जगह । शिविर ।—डेरा । २. जनवासा । ३. आक्रमण । हमला (को०) ।

अवस्कंदक—संज्ञा पुं० [सं० अवस्कन्दक] जो रास्ते चलते लोगों को मारे पीटे ।

अवस्कंदित—वि० [सं० अवस्कन्दित] १. जिसपर आक्रमण किया गया हो । २. नीचे गया हुआ । ३. अशुद्ध गलत । ४. नहाया हुआ । स्नात [को०] ।

अवस्कंदितश्रमी—संज्ञा पुं० [सं० अवस्कन्दितश्रमी] मजदूरी या तनखाह लेकर भाग जानेवाला मजदूर ।

अवस्कर—संज्ञा पुं० [सं०] १. मलमूत्र । २. मलमूत्रेंद्रिय । ३. कूड़ा कर्कट । ४. कतवारखाना । जहाँ कूड़ा कर्कट एकत्र रहता है । घूर ।

अवस्करक¹—वि० [सं०] गंदगी से उत्पन्न होनेवाला [को०] ।

अवस्करक²—संज्ञा पुं० १. मेहतर । २. गोबरैला । ३. झाड़ू [को०] ।

अवस्करभ्रम—संज्ञा पुं० [सं०] वह नल जिससे पाखाना बह कर बाहर जाता हो ।

अवस्कार—संज्ञा पुं०[सं०] हाथी के मुख का वह भाग जो दोनों आँखों के ठीक बीच में है [को०] ।

अवस्तार—संज्ञा पुं० [सं०] १. पर्दा । २. खेमे के चारो ओर लगाया गया कपड़ा । कनात । ३. चटाई [को०] ।

अवस्तु—वि० [सं०] १. जो कोई वस्तु न हो । शून्य । २.तुच्छ । हीन।

अवस्था—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दशा । हालत । उ०—सुनता हूँ परम भट्टारक की अवस्था अत्यंत शोचनीय है ।–स्कंद०, पृ० ३२ । २. समय । काल । उ०—मरन अवस्था कौं नृप जानै । तौ हू धरै न मन में ज्ञानै ।–सूर०, ४।१२ । ३. आयु । उम्र । ४. स्थिति । उ०–'भाव के इस प्रकार प्रकृतिस्थ हो जाने की अवस्था को हम शील दशा कहेंगे' ।–रस०, पृ० १८३ । ५. वेदांत दर्शन के अनुसार मनुष्य की चार अवस्थाएँ–जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय । ६. स्मृति के अनुसार मनुष्य जीवन की आठ अवस्थाएँ–कौमार, पौगंड, कैशौर, यौवन, बाल, तरुण, वृद्ध और वर्षीयान् । ७. सांख्य के अनुसार पदार्थों की तीन अवस्थाएँ–अनागतावस्था, व्यक्ताभिव्यक्तावस्था और तिरोभाव । ८. निरुक्त के अनुसार छह प्रकार की अवस्थाएँ–जन्म, स्थिति, वर्धन, विपरिणमन, अपक्षय और नाश । ९. कामशास्त्रानुसार दस अवस्थाएँ–अभिलाष, चिंता, स्मृति, गुणकथन, उद्वेग, संलाप, उन्माद, व्याधि, जड़ता और मरण । १०, जैनशास्त्रानुसार लाभ की प्राप्ति के पूर्व की स्थिति । यह पाँच प्रकार की है—व्यक्त, अव्यक्त, जप, आदान और निष्ठा । ११. योनि । भग (को०) । १२. आकृति । रूप [को०] ।

यौ०—अवस्थांतर = एक अवस्था से दूसरी अवस्था को पहुँचना । हालत का बदलना । दशापरिवर्तन । अवस्थाद्वय = सुख और दुःख जीवन की दो अवस्थाएँ ।

अवस्थान—संज्ञा पुं० [सं०] १. स्थिति । सत्ता । २.स्थान । जगह । वास । ३. निवासस्थान [को०] । ४. रहना । ठहरना [को०] । ५.रुकने या ठहरने का काल [को०] ।

अवस्थापन—संज्ञा पुं०[सं०]१. निवेशन । रखना । स्थापन करना । २.निवास (को०) ।

अवस्थापरिणाम—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'परिणाम' (योग) ।

अवस्थित—वि०[सं०]१. उपस्थित । विद्यमान । मौजूद । २. निश्चेष्ट (को०) । ३. तैयार । तत्पर (को०) । ४.अच्छी तरह संयोजित या लग्न (को०) । ५. टिका हुआ । निर्भर (को०) ।

अवस्थिति—संज्ञा स्त्री० [सं०] वर्तमानता । स्थिति । सत्ता । अवस्थान ।

अवस्नात—वि० [सं०] (जल) जिसमें स्नान किया गया हो [को०] ।

अवस्फूर्ज—संज्ञा पुं० [सं०] बादलों की ध्वनि । गर्जन । गड़गड़ाहट [को०] ।

अवस्यंदन—संज्ञा पुं० [सं० अवस्यन्दन] टपकना । चूना । गिरना ।

अवस्य(पु)—क्रि० वि० [सं० अवश्य] दे० 'अवश्य' । उ०—और श्रीरनछोर जी तो श्रीआचार्य जी के माने हैं, तातें वहाँ अवस्य जानो ।—दो सौ बावन०, पृ० १८ ।

अवस्यक(पु)—वि० [सं० आवश्यक] दे० 'आवश्यक' । उ०—चतुर सेनपहिं नित न अवस्यक बल दिखरावन ।—रत्नाकर, भा० १, पृ० २६ ।

अवह¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह दिशा जिसमें नदी नाले न हों । २. वह वायु जो आकाश के तृतीय स्कंध पर है । ईथर ।

अवह²— वि० १. जो वहन न किया जा सके । जो ढोया न जा सके । २. बिना नदी या सोतेवाला [को०] ।

अवहनन—संज्ञा पुं० [सं०] १. कूटना (जैसे धान) । २. पछोरना । फटकना । ३. धान कूटकर चावल अलग करना । ४.फुफ्फुस । फेफड़ा [को०] ।

अवहरण—संज्ञा पुं०[सं०] १. चुरा लेना । जबरदस्ती ले लेना । २. अन्यत्र जाना या ले जाना । ३. युद्धक्षेत्र से शिविर को वापस होना [को०] ।

अवहस्त—संज्ञा पुं० [सं०] हाथ या गदेली का पृष्ठभाग । उलटा हाथ ।

अवहार—संज्ञा पुं० [सं०] १. जलहस्ति । सूँस । २. चोर । तस्कर (को०) । ३. आमंत्रण । ४. युद्धक्षेत्र से वापस होना (को०) । ५.संधि । शस्त्रविराम । (को०) ६. धर्मत्याग । ७. समीप लाने के योग्य या अनुकूल (को०) । ८. अपहरण (को०) । ९. वापस करना (को०) ।

अवहारक¹—संज्ञा पुं० [सं०] सूँस नामक जलजंतु (को०) ।

अवहारक²—वि० १. युद्ध रोकनेवाला। २. बचाव करनेवाला। ३. एक स्थान से दूसरी जगह ले जानेवाला [को०]।

अवहार्य—वि० [सं०] १. ले जाने योग्य। २. दंड योग्य या अर्थदंड योग्य। ३. जिसे लौटाने के लिये बाध्य हों। ४. पूर्ण होनेवाला [को०]।

अवहालिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दीवार। प्राचीर। घेरा [को०]।

अवहास—संज्ञा पुं० [सं०] १. मुस्कान। मुस्काहट। २. उपहास। हँसी। मजाक उड़ाना [को०]।

अवहित—वि० [सं०] सावधान। एकाग्रचित्त।

अवहित्थ—संज्ञा पुं० [सं०] अवहित्था [को०]।

अवहित्था—संज्ञा स्त्री०[सं०]एक प्रकार का भाव जब कोई भय, गौरव, लज्जादि के कारण हर्षादि को चतुराई से छिपावे। यह संचारी या व्यभिचारी में गिना जाता है। आकारगुप्ति जैसे,—ज्यों ज्यों चवाव चलैं चहुँ ओर, धरैं चित चाव ये त्योंही त्यों चोखे। कोऊ सिखावनहार नहीं बिनु लाज भए बिगरैल अनोखे। गोकुल गाँव को एती अनीति कहाँ ते दई धौं दई अनजोखे। देखती हौ मोहिं माँझ गली में गही इन आइ धौं कौन के धोखे।—(शब्द०)।

अवही—संज्ञा पुं० [सं० अवह = बिना पानी का देश] एक प्रकार का बबूल जो काँगड़ा में होता है।

विशेष—इसकी लपेट आठ फुट की होती है। यह मैदानों में पैदा होता और इसकी लकड़ी खेती के औजार बनाने तथा छतों के तख्तों में काम आती है।

अवहृत—वि० [सं०] १. आगे या पीछे हटाया हुआ। २. चुराया हुआ। ३. दंडित किया गया [को०]।

अवहेलन—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० अवहेलना] [वि० अवहेलित] १. अवज्ञा। अपमान। २. आज्ञा न मानना।

अवहेलना¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. अवज्ञा। अपमान। तिरस्कार। उ०—वे ईश नियमों की कभी अवहेलना करते न थे।—भारत०, पृ० ६। २. ध्यान न देना। बेपरवाही।

अवहेलना(पु)²—क्रि० स०[सं० अवहेलन] तिरस्कार करना। अवज्ञा करना। उ०—इन उतपातन गनिय सुजात न, सब अवहेलिय-रन मद भेलिय।—सुजान०, पृ० २२५।

अवहेला—संज्ञा स्त्री०[सं०]अवज्ञा। तिरस्कार। अवहेलना। उ०—तब मेरी अवहेला की गई; यह उसी का परिणाम है।—स्कंद०, पृ० १४७।

अवहेलित—वि० [सं०] जिसकी अवहेला हुई हो। तिरस्कृत।

अवांछनीय—वि० [सं० अवाञ्छनीय] १. जिसे न चाहा जाय। अप्रिय। २. उपेक्षणीय [को०]।

अवांतर¹—वि०[सं० अवान्तर]१. अंतर्गत। २. मध्यवर्ती। बीज का ३. दूसरा। गौण। अन्य [को०]।

अवांतर²—संज्ञा पुं० मध्य। भीतर। बीच।

यौ०—अवांतर दिशा = बीच की दिशा। विदिशा। अवांतर देश = दो देशों का मध्यवर्ती स्थान। अवांतर भेद = अंतर्गत भेद। भाग का भाग। अवांतर वाक्य = महावाक्य के मध्य में आनेवाला वाक्य या सार्थक शब्दसमूह।

अवाँ(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आवाँ'। उ०—चंदन की चोली और कपूर चवाएँ अंग अंग विरह की आँच त्यों अवाँ ज्यों सिलगाइगो।—गंग०, पृ० २८३।

अवाँग—वि० [सं० अवाङ्] १. झुका हुआ। नत। २. टेढ़े अंगवाला।

अवाँगना(पु)—क्रि० स० [हिं० अवाँग+ना] नीचे की ओर झुकाना। अवनत करना।

अवांच—वि०[सं० अवाञ्च]१. झुका हुआ। दबा हुआ। २. अधोमुख। ३. नीचे की ओर स्थित [को०]।

अवांच²—संज्ञा पुं० १. दक्षिण। २. ब्राह्मण [को०]।

अवाँसना†—क्रि० स० [हिं०] अनवासना। नए बर्तन को पहले पहल काम में लाना।

अवाँसी—संज्ञा स्त्री० [सं० अवासित] वह बोझ जो फसल में से पहले पहले काटा जाय। यह नवान्न के लिये काम में आता है। अखान। ददरी। कवल। अवली।

अवाई—संज्ञा स्त्री० [सं० आयन = आगमन] १ आगमन। उ०—(क) इहाँ राज अस सेन बनाई। उहाँ साह कै भई अवाई।—जायसी ग्रं०, पृ० २३०। (ख) लखि यों अवाई बीर की रिपु भीर में खलबल भई।—पद्माकर ग्रं०, पृ० १७। २. गहरा जोतना। गहरी जोताई।—'सेव' का उलटा।

अवाक्—वि० [सं०] १. चुप। मौन। चुपचाप। २. नीचे मुख किए हुए। अधोमुख। २. स्तब्ध। जड़। स्तंभित। चकित। विस्मित। ३. दक्षिण का। दक्षिणी [को०]।

क्रि० प्र०—रहना।—होना।

यौ०—अवाङ्मनसगोचर = जिसका न वर्णन हो सके और न चिंतन। वाणी और मन के परे, जैसे ईश्वर।

अवाक्पुष्पी—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह पौधा जिसके फूल अधोमुख हों। २. सौंफ। ३. सोया।

अवाक्शाख—संज्ञा पुं० [सं०] पीपल [को०]।

अवाक्श्रुति—वि०[सं०]बोल न सुन सकनेवाला। गूँगा बहरा[को०]।

अवाक् संदेश—संज्ञा पुं० [बंग०] एक प्रकार की बँगला मिठाई।

अवाक्ष—वि० [सं०] रक्षक। अभिभावक। देखभाल करनेवाला[को०]।

अवागी(पु)—वि० [सं० अवाग्मिन् = अपटु] मौन। चुप।

अवाङ्—वि० [सं०] नीचे की तरफ झुका हुआ [को०]।

अवाङ्नरक—संज्ञा पुं० [सं०] जिह्वा छेदन का दुःख। जिह्वा काटने का दंड। जबान काटने की सजा।

अवाङ्निरय—संज्ञा पुं० [सं०] सबसे नीचे का नरक अर्थात् पृथ्वी [को०]।

अवाङ्मुख¹—वि० [सं०] १. अधोमुख। उलटा। नीचे मुँह का २. लज्जित।

अवाङ्मुख²—संज्ञा पुं० एक शस्त्र [को०]।

अवाची—संज्ञा स्त्री० [सं०] दक्षिण दिशा। उ०—प्राची प्रतीची अवाची बिलोकि दसो दिसि होत ही कूच कुकैनी—गंग०, पृ० ३४०।

अवाचीन—वि०[सं०]१. अधोमुख। मुँह लटकाए हुए। २. लज्जित ३. दक्षिण संबंधी। दक्षिणी। दक्षिण का [को०]। ४. नीचे गया हुआ [को०]।

अवाच्य[1]—वि० [सं०] १. जो कहने योग्य न हो। अनिंदित। विशुद्ध। २. जिससे बात करना उचित न हो। नीच। निंदित। ३. स्पष्टतारहित। अस्पष्ट [को०]। ४. दक्षिण संबंधी। दक्षिणी [को०]।

अवाच्य[2]—संज्ञा पुं० कुवाच्य। बुरी बात। गाली।

यौ०—**अवाच्यदेश** = वह स्थान जिसकी बाबत कुछ कहना ठीक न हो—योनि।

अवाजⓅ†—संज्ञा स्त्री० [फा० **आवाज**] ध्वनि। शब्द। आवाज। उ०—कहियत पतित बहुत तुम तारे स्त्रवननि सुनी आवाज। दई न जात खार उतराई चाहत चढ्यौ जहाज।—सूर०, १। १०८।

अवाजीⓅ—वि० [फा० **आवाज**] शब्द करनेवाला। चिल्लानेवाला। उ०—यदपि अवाजी परम तदपि बाजी सो छाजत।—गोपाल (शब्द०)।

अवाडूⓅ—वि० [सं० **अपवृत** अथवा **देशी**] विपरीत। उलटा। उ०—पाँखडिआँ ई किऊँ नहीं, दैव अवाडू ज्याँह। चकवीकइ इह पंखड़ी, रमणि न मेलउ त्याँह।—ढोला० दू० ७१।

अवात—वि० [सं०] वातशून्य। जहाँ वायु न लगे। निर्वात। २. अवाक्रांत [को०]।

अवादादे०—वि० पुं० [हिं० **बादा**] दे० 'वादा'।

अवादी—वि० [सं० **अवादिन्**] १. न बोलनेवाला। अवक्ता। २. जो कोई वाद उपस्थित नहीं करता। शांतिप्रिय [को०]।

अवान—वि० [सं०] सूखा हुआ। शुष्क [को०]।

अवापित—वि० [सं०] १. जो बोया न गया हो। रोपा हुआ। २. (केश) जो काटा हुआ न हो [को०]।

अवाप्त—वि० [सं०] प्राप्त। लब्ध।

अवाप्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. प्राप्ति। २. (गणित में) उद्धरण। [को०]।

अवाप्य—वि० [सं०] १. प्राप्त करने योग्य। २. (केश) न काटने योग्य [को०]।

अवाम—संज्ञा पुं० [**अ० 'आम' का बहुव०**] साधारणजन। सर्वसाधारण। आम लोग। उ०—करें तृप्त किमि तुमहि अवाम।—प्रेमघ०, पृ० १४१।

अवाय[1]Ⓟ—वि० [सं० **अवर्य**] अनिवार्य। उच्छृंखल। उद्धत। उ०—दीनदयाल पतित पावन प्रभु बिरद भुलावत कैसे। कहा भयो गज गनिका तारीं जो जन तारौ ऐसे। अकरम अबुध अज्ञान अवाया अनमारग अनरीति। जाको नाम लेत अघ उपजै सो मैं करी अनीति।—सूर (शब्द०)।

अवाय[2]—संज्ञा पुं० [सं०] हाथ में पहनने का भूषण। कड़ा।—डिं०।

अवार—संज्ञा पुं० [सं०] नदी के इस पार का किनारा। सामने का किनारा। 'पार' का उलटा। उ०—उठ अवार न पार जाकर भी गई। उर्मि हूँ मैं इस भवार्णव की नई।—साकेत, पृ० ३०३।

अवारजा—संज्ञा पुं० [**फा०**] १. वह बही जिसमें प्रत्येक असामी की जोत आदि लिखी जाती है। २. जमाखर्च की बही। ३. वह बही जिसमें याददाश्त के लिये नोट किया जाय। ४. संक्षिप्त वृत्तांत। गोशवारा। खतियौनी। संक्षिप्त लेखा। उ०—साँचो सो लिखधार कहावै। काया ग्राम मसाहत करिकै जमाबंधि ठहरावै। करि अवारजा प्रेम प्रीति को असल तहाँ खतियावै। दूजी करे दूरि करि दाई तनक न तामें आवै।—सूर (शब्द०)।

अवारण—वि० [सं०] १. जिसका निषेध न हो सके। सुनिश्चित। २. जिसकी रोक न हो सके। बेरोक। अनिवार्य।

अवारणीय[1]—वि० [सं०] १. जो रोका न जा सके। बेरोक। अनिवार्य। २. जिसका अवरोध न हो सके। दूर न हो सके। ३. जो आराम न हो। असाध्य।

अवारणीय[2]—संज्ञा पुं० सुश्रुत के अनुसार रोग का वह भेद जो अच्छा न हो। असाध्य रोग।

विशेष—यह आठ प्रकार का है—वात, प्रमेह, कुष्ठ, अर्श, भगंदर, अश्मरी, मूढ़गर्भ और उदररोग।

अवारनाⓅ—क्रि० स० [सं० **अ + वारण**] १. रोकना। मना करना २. वारना। न्यौछावर करना।

अवारपार—संज्ञा पुं० [सं०] समुद्र।

अवारा†—वि० [हिं०] दे० 'आवारा'

अवारा[2]Ⓟ—वि० [हिं० **आना + वार** (प्रत्य०)] आनेवाले। आगंतुक। परदेशी। उ०—सिसिर सिरान्यो आस आवनि अवारे की।—प्रेमघन०, पृ० २२६।

अवारिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] धनिया।

अवारिजा—संज्ञा पुं० [**हिं०**] दे० 'अवारजा'।

अवारित—वि० [सं०] जिसपर रोक न हो। रोक या प्रतिबंधमुक्त [को०]।

यौ०—**अवारित द्वार** = जिसका द्वार बंद न हो खुला हो।

अवारी[1]†—संज्ञा स्त्री० [सं० **वारण**] बाग। लगाम।

अवारी[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० **अवार**] १. किनारा। मोड़।

क्रि०प्र०—**देना** = नाव फेरना।

२. मुखविवर। मुँह का छेद।

अवारीण—वि० [सं०] नदी पार गया हुआ [को०]।

अवारोⓅ†—संज्ञा पुं० [सं० **अ = दूषित + प्रा० वार = बे**] अबेर। देर। बिलंब। अतिकाल। उ०—तब अवारो सो ये सेवा सों पहोंचता।—दो सौ बावन०, पृ० २१०।

अवार्य—वि० [सं०] दे० 'अवारणीय'। उ०—उस पहले के ही मलबे से जिसका जलना गिरना अवार्य।—दैनिकी, पृ० ३१।

अवावट—संज्ञा पुं० [सं०] दूसरे सवर्ण पति से उत्पन्न पुत्र, जैसे कुंड और गोलक।

अवासⓅ—संज्ञा पुं० [**सं० आवास**] निवासस्थान। घर। उ०—कबिरा कहा गरबियो ऊँचा देखि अवास। काल्हि परे भुई लोटना ऊपर जमिहै घास।—कबीर (शब्द०)। (ख) बाजति नंद अवास बधाई। बैठे खेलत द्वार आपनें, सात बरस के कुँवर कन्हाई।—सूर०, १०। ८१८।

अवासा--संज्ञा पुं० [सं० अवासस्] एक प्रकार के दिगंबर जैन जो 'नग्न' के अंतर्गत है।

अवास्तव--वि० [सं०] मिथ्या। निराधार जो। वास्तव न हो।

अवाह[1]ⓟ--वि० [सं० अ+वह] जो वाहन न किया जा सके। दुर्वह। उ०--इसौ आवाह अश्व दाह एक राह दष्षयं।--पृ० रा०, १४८।

अवाह[2]ⓟ--वि० [सं० अबाध, प्रा० अवाह] दे० 'अबाध'।

अवाहन--वि० [सं०] १. जिसके पास वाहन न हो। २. जो सवारी पर न बैठा हो (को०)।

अविंध--वि०[सं० अविद्ध]दे० 'अबिद्ध'। उ०--नदी निवासउ उत्तरइ, आणूँ एक अविंध।--ढोला, दू० २३०।

अवि[1]--संज्ञा पुं० [सं०] १. सूर्य। २. मदार। आक। ३. पर्वत। ४. हवा। वायु। ५. मेष। भेड़ा। ६. ऊन। ७. शिक्षक। ८. दीवाल। ९. समूर। मूषिक कंबल। १०. बकरा। छाग ११. चूहा (को०)।

अवि[2]--संज्ञा स्त्री० १. लज्जा। २. ऋतुमती स्त्री। ३ भेड़। मेष (को०)।

अविक--संज्ञा पुं० [सं०] १. भेड़। उ०--अविक अजा मृगिनी मृग ते जालहू। रक्खहु बहु दुर्ग विसालहू।--प० रा०, पृ० १७। २. हीरा।

अविकच--वि० [सं०] अस्फुट। अविकसित। मुद्रित। बंद।

अविकचित--वि० [सं०] दे० 'अविकच' (को०)।

अविकट--संज्ञा पुं० [सं०] भेड़ों का झुंड (को०)।

अविकत्थ--वि० [सं०] जो आत्मप्रशंसक न हो। जो अपनी बड़ाई न करता हो (को०)।

अविकत्थन--वि० [सं०] दे० 'अविकत्थ' (को०)।

अविकल--वि०[सं०]१. जो विकल न हो। ज्यों का त्यों। २. बिना उलट फेर का। ३. पूर्ण। पूरा। उ०--वह दब सकता नहीं, न उनसे मिल सके जिसमें तेरी अविकल छवि हो छा रही।--कानन०, पृ० ८३। ३. निश्चल। अव्याकुल। शांत।

अविकल्प[1]--वि०[सं०]१. जो विकल्प न हो। निश्चित। २ निःसंदेह। असंदिग्ध। ३. जो परिवर्तनशील न हो। अपरिवर्त्य (को०)।

अविकल्प[2]--संज्ञा पुं० १. संदेह या विकल्प का अभाव। २. निश्चयात्मक स्थिति या कार्य (को०)।

अविका--संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अविक' (को०)।

अविकाजⓟ--संज्ञा पुं० [हिं० अ+बेकाज] दे० 'अकाज'। उ०--विसग सथ्य दिष्षौ सकल। उर मन्यो अविकाज।--पृ० रा०, ५७।६६।

अविकार[1]--वि०[सं०]जिसमें विकार न हो। विकाररहित। निर्दोष।

अविकार[2]--संज्ञा पुं० विकार का अभाव।

अविकारी--वि० [सं० अविकारिन्] [स्त्री० अविकारिणी] १.जिसमें विकार न हो। विकारशून्य। निर्विकार। उ०--व्यापक पास सब भयउ खरारी। स्वबस अनंत एक अविकारी।--तुलसी (शब्द०)। २. जो किसी का विकार न हो। उ०--साँचो जो जीव सदा अविकारी। क्यों वह होत पुमान ते न्यारी।--केशव (शब्द०)।

अविकार्य--वि० [सं०] जिसमें विकार न उत्पन्न हो। जिसमें परिवर्तन न हो (को०)।

अविकाश--संज्ञा पुं० [सं० अ+विकाश]विकास या चमक का अभाव।

अविकाशी--वि० [सं० अविकाशिन्] दे० 'अविकासी' (को०)।

अविकास--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अविकाश' (को०)।

अविकासी--वि० [सं० अविकासिन्][वि० स्त्री० अविकासिनी] १. जो विकासी न हो। निकम्मा। निष्क्रिय। २. जो न खिले (को०)। ३. जो चमकनेवाला न हो (को०)।

अविकृत--वि० पुं० [सं०] जो विकृत न हो। जो विकार को प्राप्त न हो। जो बिगड़ा न हो।

अविकृति--संज्ञा स्त्री० [सं०] १. विकार का अभाव। २. मूल प्रकृति (सांख्य०)।

अविक्रम[1]--वि० [सं०] शक्तिहीन। दुर्बल। कमजोर (को०)।

अविक्रम[2]--संज्ञा पुं० भीरुता। दौर्बल्य। कमजोरी (को०)।

अविक्रांत--वि० [सं० अविक्रान्त] १. अतुलनीय। अनुपम २. दुर्बल। कमजोर।

अविक्रिय[1]--वि० [सं०] [वि० स्त्री० अविक्रिया] जिसमें विकार न हो। जिसमें बिगाड न हो। जो बिगड़ा न हो।

अविक्रिय[2]--संज्ञा पुं० ब्रह्म (को०)।

अविक्रेय--वि० [सं०] १. जो बेचने योग्य न हो (को०)।

अविक्लम--संज्ञा पुं० [सं०] थकान का अभाव। ताजगी (को०)।

अविक्षत--वि० [सं०] १. जिसकी किसी प्रकार की हानि या क्षति न हो। २. पूरा। पूर्ण (को०)।

अविक्षिप्त--वि० [सं०] १. जो फेंका हुआ न हो। जो विक्षिप्त न हो। समझदार (को०)।

अविगंधा--संज्ञा स्त्री० [सं० अविगन्धा] अजगंधा नामक एक पौधा (को०)।

अविगत--वि० [सं०] १. जो विगत न हो। जो जाना न जाय। उ०--दूजे घट इच्छा भई चित्त मन सातो कीन्ह। सात रूप निरमाइया अविगत काहु न चीन्ह।--कबीर (शब्द०)। २. अज्ञात। अनिर्वचनीय। उ०--(क) अविगत गोतीता चरित पुनीता मायारहित मुकुंदा।--तुलसी (शब्द०)। (ख) राम सरूप तुम्हार, वचन अगोचर बुद्धि पर। अविगत अकथ अपार नेति नेति नित निगम कह।--तुलसी (शब्द०)। ३. जो नष्ट न हो। नित्य।

अविगान--वि० [सं०] १. जो निंदित न हो। २. जिसमें असामंजस्य न हो (को०)।

अविगीत--वि० [सं०] दे० 'अविगान' (को०)।

अविग्न--संज्ञा पुं० [सं०] करमर्दक नामक वृक्ष तथा उसका फल। करौंदा (को०)।

अविग्रह--वि० [सं०] १. जो स्पष्ट रूप से न जाना गया हो। अविज्ञात। २. जिसके शरीर न हो। निरवयव। निराकार। ३. वह समास जिसका विग्रह न हो। नित्यसमास (व्या०)।

अविघात[1]--संज्ञा पुं०[सं०]विघात का अभाव। विघ्न का न होना।

अविघात[2]--वि० विघात या बाधा से रहित (को०)।

अविघ्न--संज्ञा पुं०, वि० [सं०] दे० 'अविघात' (को०)।

यौ०—अविघ्नकरणव्रत = एक विशेष प्रकार का व्रत जो फाल्गुन के चौथे दिन पड़ता है।

अविचक्षण—वि० [सं०] अज्ञानी। अनाड़ी। मूर्ख [को०]।

अविचल—वि० [सं०] जो विचलित न हो। अचल। स्थिर। अटल। उ०—देति असीस सकल ब्रज जुवती जुग जुग अविचल जोरी। —सूर०, १०।२८५८।

अविचलित—वि० [सं०] दे० 'अविचल'।

अविचार[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. विचार का अभाव। २. अज्ञान। अविवेक। उ०—सबसे अधिक अविचार का विस्तार है संप्रति वहाँ।—भारत०, पृ० १२७। ३. अत्याचार। अन्याय। ४. भेड़ चराने योग्य स्थान [को०]।

अविचार—वि० बिना विचारा हुआ। २. संशय या विवेक से रहित। ३. चर या जासूसवाला [को०]।

अविचारित—वि० [सं०] बिना विचारा हुआ। जिसके विषय में विचारा न गया हो।

अविचारी—वि० [सं० अविचारिन्] [वि० स्त्री० अविचारिणी] १. विचारहीन। अविवेकी। बेसमझ। उ०—सूरन के मिलिबे कहँ आप, मिल्यौ दसकंठ सदा अविचारी।—राम चं०, पृ० १७। २. अत्याचारी। अन्यायी।

अविचालित—वि० [सं०] १. अडिग। अटल। २. विजेता। विजयी [को०]।

अविच्छिन्न—वि० [सं०] अविच्छेद। अटूट। लगातार।

अविच्छेद[1]—वि० [सं०] जिसका विच्छेद न हो। अटूट। लगातार। विच्छेदरहित।

अविच्छेद[2]—संज्ञा पुं० विच्छेद का अभाव।

अविच्छेदी—वि० [सं० अविच्छेदिन्] काव्यमीमांसा में कथित कवियों के दस भेदों में से एक जो बिना विच्छेद या बाधा के कविता करे।

अविच्युत—वि० [सं०] १. जो अपने स्थान से च्युत न हुआ हो। अच्युत। २. शाश्वत। नित्य [को०]।

अविछिन्न(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अविछिन्न'। उ०—चंद्रशेखर सूलपानि हर अनद्य अज अमित अविछिन्न वृषभेशगामी।—तुलसी ग्रं० पृ० ४८०।

अविजन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अभिजन] अभिजन। कुल। वंश। उ०—दंडवत गोविंद गुरू वंदों अविजन सोय। पहिले भये प्रणाम तिन नमो जो आगे होय।—कबीर (शब्द०)।

अविजेय—वि० [सं० अ + विजेय] जो विजित न किया जा सके। उ०—जय हे, जय राष्ट्रपिता जय जय हे देव विनय, अविजेय आत्मबल।—युगपथ, पृ० ८६।

अविज्ञ—वि० [सं०] अनभिज्ञ। अशिक्षित। अप्रवीण। अनजान। उ०—यद्यपि अविज्ञों से हुआ वह निंद्य और निषिद्ध है।—भारत०, पृ० ३८।

अविज्ञता—संज्ञा स्त्री० [सं०] अज्ञानता। अनजानपन। अनभिज्ञता।

अविज्ञात—वि० [सं०] १. जो अच्छी तरह जाना न हो। अनजाना। अज्ञात। उ०—सघन हो रहा अविज्ञात यह देश मलिन है धूमधार सा।—कामायनी, पृ० २६६। २. बेसमझ। अर्थनिश्चयशून्य।

यौ०—अविज्ञात कुलशील = जिसका कुल मालूम न हो। अविज्ञातगति = जिसकी गति न जानी जाय। अविज्ञातगद = मूर्खतापूर्ण ढंग से बोलनेवाला।

अविज्ञातक्रय—संज्ञा पुं० [सं०] १. गुप्त स्थान से या मालिक के अनजान में कोई पदार्थ मोल लेना। २. व्यवहार में आधा माल नष्ट हो जाना।

अविज्ञाता—संज्ञा पुं० [सं० अविज्ञातृ] १. विष्णु। २. परमेश्व [को०]।

अविज्ञेय[1]—वि० पुं० [सं०] १. जो जाना न जा सके। जिसे जान न सकें। २. न जानने योग्य।

अविज्ञेय[2]—संज्ञा पुं० परमात्मा [को०]।

अविडीन—संज्ञा पुं० [सं०] पक्षियों की सीधी उड़ान [को०]।

अवितत्—वि० [सं०] विरुद्ध। उलटा।

यौ०—अवितत्करण। अवितद्भाहरण।

अवितत्करण—संज्ञा पुं० [सं०] १. पाशुपत दर्शन के अनुसार वह कर्म करना जो अन्य मतवालों के विचार में गर्हित है पर पाशुपत में करणीय है। २. जैनशास्त्रानुसार कार्याकार्य के विवेक में व्याकुल पुरुष की नाई लोकनिंदित कर्म करना। ३. विरूद्धाचरण।

अवितथ[1]—वि० [सं०] १. सत्य। अमिथ्या। २. सफल। फलयुक्त।

अवितथ[2]—संज्ञा पुं० सचाई। सत्यता।

अवितभ्दाषण—संज्ञा पुं० [सं०] व्याहत और अपार्थक शब्दों का उच्चारण करना। उलटा कहना। अंडबंड कहना।

अवितर्कित—वि० [सं०] १. जिस पर तर्क न किया गया हो। २. बिना किसी तर्क का। निःसंदेह।

अवित्त—वि० [सं०] १. धनहीन। निर्धन। २. अविख्यात। गुमनाम।

अवित्ता[1]—वि० [सं० अवृति] रक्षक [को०]।

अवित्ता[2]—संज्ञा स्त्री० [सं०] भेड़ [को०]।

अवित्ति[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. अप्राप्ति। २. बुद्धिहीनता। मूर्खता। ३. निर्धनता [को०]।

अवित्ति[2]—वि० १. न प्राप्त होनेवाला। २. मूर्ख [को०]।

अवित्यज—संज्ञा पुं० [सं०] पारद। पारा।

अविथ्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ एक पौधा। अजथ्या। पोलीजूही।

अविद—वि० [सं०] अनजान। मूर्ख।

अविदग्ध—वि० [सं०] १. जो जला या पका न हो। कच्चा। २ खट्टा [को०]। ३. गँवार। अशिक्षित। लंठ [को०]।

अविदित[1]—वि० [सं०] १. जो विदित न हो। अज्ञात। २. अप्रकट। गुप्त। अप्रसिद्ध।

अविदित[2]—संज्ञा पुं० परमेश्वर [को०]।

अविदुग्ध—संज्ञा पुं० मेंड़ी का दूध।

अविदुषी—वि० स्त्री० [सं०] जो विदुषी न हो। मूर्खा। अनपढ़ी।

अविद्ध[1]—वि० [सं०] जो छेदा न गया हो। अनाविद्ध [को०]।

अविद्ध[2]—संज्ञा पुं० यवन (कान न छेदवाने के कारण यवन अविद्ध कहे जाते हैं)।

अविद्धकर्णी— संज्ञा स्त्री० [सं०] पाढ़ा नाम की लता ।

अविद्य१(पु)—वि० [सं० **अविद्यमान्**] नष्ट । नेस्त नाबूद । उ०—विद्या धरनि अविद्य करौं बिन सिद्ध सिद्धि सब ।—रामचं०, पृ० १२१ ।

अविद्य२—वि० [सं०] १. अशिक्षित । विद्याविहीन । अपढ़ । बेवकूफ २. जो शिक्षा संबंधी न हो [को०] ।

अविद्यमान—वि० [सं०] १. जो विद्यमान या उपस्थित न हो । अनुपस्थिति । २. जो न हो । असत् । उ०—प्रर्थ अविद्यमान जानिय संसृति नहि जाइ गोसाईं । बिनु बाँधे निज हठ सठ परबस परयो कीर की नाईं ।—तुलसी ग्रं०, पृ० ५१७।३. मिथ्या । असत्य । झूठा ।

अविद्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. विरुद्ध ज्ञान । मिथ्या ज्ञान । अज्ञान । मोह । उ०—(क) जिन्हहिं सोक ते कहौं बखानी । प्रथम अविद्या निसा नसानी ।—मानस, ७ । ३१ (ख) विषम भई संकल्प जब तदाकार सो रूप । महाँ अँधेरो काल सो परे अविद्या कूप ।—कबीर (शब्द०) । २. माया । उ०—हरि सेवकहि न व्याप अविद्या । प्रभु प्रेरित व्यापै तेहि विद्या ।—तुलसी (शब्द०) । ३. माया का भेद । उ०—तेहि कर भेद सुनहु तुम सोऊ । विद्या अपर अविद्या दोऊ ।—तुलसी (शब्द० । ४ कर्मकांड । ५. सांख्यशास्त्रानुसार प्रकृति । अव्यक्त । अचित् । जड़ । ६. योगशास्त्रानुसार पाँच क्लेशों में पहला । विपरीत ज्ञान । अनित्य में नित्य, अशुचि में शुचि, दुःख में सुख और अनात्मा (जड़) में आत्मा (चेतन) का भाव करना । ७. वैशेषिकशास्त्रानुसार इंद्रियों के दोष तथा संस्कार के दोष से उत्पन्न दुष्ट ज्ञान । ८. वेदांतशास्त्रानुसार माया ।

यौ०—**अविद्याकृत**=अविद्या से उत्पन्न । **अविद्याजन्य**=अविद्या से उत्पन्न । **अविद्याच्छन्न**=अविद्या या अज्ञान से आवृत्त । **अविद्यामार्ग**=प्रेम । वह मार्ग जो संसार में मनुष्यों को अनुरक्त करता है । **अविद्याश्रव**=अज्ञान (बौद्ध) ।

अविद्वत्ता— संज्ञा स्त्री० [सं०] मूर्खता । अज्ञानता ।

अविद्वान्—वि० [सं०] [वि० स्त्री० **अविदुषी**] जो विद्वान् न हो । शास्त्रानभिज्ञ । मूर्ख ।

अविद्वेष—संज्ञा पुं० [सं०] विद्वेष का अभाव । अनुराग । प्रेम ।

अविधवा—वि० [सं०] सधवा । सौभाग्यवती । सुहागिन ।

अविधान(पु)—संज्ञा पुं० [सं० **अभिधान**] दे० 'अभिधान' । उ०—व्याकन्न कथा नाटक्क छंद । अभिधांन दास अलंकार बंध ।—पृ० रा०, १ । ७३६ ।

अविधान१—संज्ञा पुं० [सं०] १. विधि के विरुद्ध कार्य करना । २. विधान का अभाव ।

अविधान२—वि० विधिविरुद्ध । २. उलटा ।

अविधि१—वि० [सं०] विधिविरुद्ध । नियम के विपरीत ।

अविधि२—संज्ञा पुं० १. विधान के विरुद्ध कार्य । अविधान । अनियमितता । उ०—वे हैं अविद्या के पुरोहित अविधि के आचार्य हैं ।—भारत०, पृ० १२७ । २. अपरिभाषेय । जिसकी परिभाषा न की जा सके [को०] ।

अविनय१—संज्ञा पुं० [सं०] १. विनय का अभाव । ढिठाई । उद्दंडता । उ०—अविनय विनय जथारुचि बानी । छमहि देव अति आरति जानी ।—तुलसी (शब्द०) । २. घमंड । अभिमान [को०] । ३. अपराध । दोष [को०] ।

अविनय२—वि० उद्दंड । धृष्ट । अशिष्ट । घमंडी [को०] ।

अविनयी—वि० [सं० **अविनयिन्**] विनय रहित । उद्दंड [को०] ।

अविनश्वर-वि० [सं०] जो नष्ट न हो । जो बिगड़े नहीं । चिरस्थायी । शाश्वत । उ०—दर्शन से जीवन पर बरसे अविनश्वर स्वर ।—अपरा, पृ० १८६ ।

अविनाभाव—संज्ञा पुं० [सं०] १. संबंध । २. व्याप्यव्यापक संबंध, जैसे अग्नि और धूम का ।

अविनाश—संज्ञा पुं० [सं०] विनाश का अभाव । अक्षय ।

अविनाशी—वि० पुं० [सं० **अविनाशिन्**] [वि० स्त्री० **अविनाशिनी**] १. जिसका विनाश न हो । अक्षय । अक्षर । २. नित्य । शाश्वत ।

अविनासी१(पु)—वि० [सं० **अविनाशी**] दे० 'अविनाशी' । उ०—दादू अविहड़ आप हैं अमर उपजावनहार । अविनासी आपइ रहइ बिनसइ सब संसार ।—दादू (शब्द०) ।

अविनासी२—संज्ञा पुं० [सं० **अविनाशिन्**] ईश्वर । ब्रह्म । उ०—(क) राम नाम छाँड़ौं नहीं सतगुरु सीख दई । अविनासी सों परसि के आतमा अमर भई ।—कबीर (शब्द०) । (ख) दादू आनंद आतमा अविनासी के साथ । प्राननाथ हिरदै बसइ सकल पदारथ हाथ ।—दादू (शब्द०) ।

अविनीत—वि० [सं०] [वि० स्त्री० **अविनीता**] १ जो विनीत न हो । उद्धत । उ०—जो मेरी है सृष्टि उसी से भीत रहूँ मैं, क्या अधिकार नहीं कि कभी अविनीत रहूँ मैं ।—कामायनी, पृ० १९० ।

अविनीता—संज्ञा स्त्री० [सं०] कुलटा नारी । असती स्त्री । दुराचारिणी या बदचलन स्त्री ।

अविनेय—वि० [सं०] अनियंत्रणशील । अबाध्य । बेकहा [को०] ।

अविपक्व—वि० [सं०] १. न पका हुआ । अपक्व । २. जिसका ज्ञान प्रौढ़ न हो [को०] ।

अविपट—संज्ञा पुं० [सं०] भेड़ के ऊन का वस्त्र । ऊनी बस्त्र [को०] ।

अविपद्—संज्ञा स्त्री० [सं०] कष्ट, दुःख आदि का अभाव । सुख । समृद्धि [को०] ।

अविपन्न—वि० [सं०] १. स्वस्थ । नीरोग । २. जो क्षत न हुआ हो । जिसे आघात या चोट न लगी हो । ३. शुद्ध । पवित्र ।

अविपर्यय—संज्ञा पुं० [सं०] विपर्यय या विकार का न होना । क्रम के विरुद्ध न होना ।

अविपाक१—संज्ञा पुं० [सं०] अजीर्ण रोग [को०] ।

अविपाक२—वि० अजीर्ण रोग से ग्रस्त । अजीर्ण [को०] ।

अविपाल—संज्ञा पुं० [सं०] गड़ेरिया । उ०—पशुओं की रक्षा करने के कारण उसे गोपालक, अजापाल वा अविपाल कहते थे ।—हिंदु० सभ्यता, पृ० २९२ ।

अविपित्तक—संज्ञा पुं० [सं०] एक चूर्ण जो अम्लपित्त रोग में दिया जाता है ।

अविबुध१ वि० [सं०] १. अज्ञानी । नादान । २. बुद्धिहीन । बेअक्ल ।

अविबुध[2]—संज्ञा पुं० असुर। दैत्य। राक्षस।

अविभक्त–वि० [सं०] १. जो अलग न किया गया हो। मिला हुआ। २. जो बाँटा न गया हो। विभागरहित। शामिलाती। ३. अभिन्न। एक। उ०–सुत तुम्हारे भाव ये अविभक्त, मैं स्वयं उन पर करूँगी व्यक्त।–साकेत, पृ० १८९।

अविभाग–वि० [सं०] जिसके टुकड़े न हों। जो अलग अलग न हो। जो एक ही [को०]।

अविभाज्य[1]—संज्ञा पुं० [सं०] गणित में वह राशि जिसका किसी गुणक के द्वारा भाग न किया जा सके। निश्छेद।

अविभाज्य[2]–वि० जिसका बँटवारा न किया जा सके। जिसके भाग या खंड न हो सकें।

अविभावन–संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० **अविभावना**] [वि० **अविभावनीय, अविभाव्य**] १. पहचान का अभाव। २. अदर्शन। लोप [को०]।

अविमान—संज्ञा पुं० [सं०] १. आदर। संमान। २. अपमान का अभाव [को०]।

अविमुक्त[1]—वि० [सं०] जो विमुक्त न हो। बद्ध।

अविमुक्त[2]–संज्ञा पुं० १. कनपटी। जाबाल उपनिषद् के अनुसार ब्रह्म का स्थान। २. काशी।

अविमुक्तेश्वर–संज्ञा पुं० [सं०] काशी में स्थापित एक शिवलिंग [को०]।

अवियुक्त–वि० जो वियुक्त न हो। जो अलग अलग न हो। मिला हुआ [को०]।

अवियोग[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. वियोग का अभाव। उपस्थित। २. संयोग। मिलाप।

अवियोग[2]–वि० १. वियोगशून्य। जिसका वियोग न हो। २. संयुक्त संमिलित। एकीभूत।

यौ०–**अवियोगव्रत**=कल्कि पुराण के अनुसार एक व्रत जो अगहन शुक्ल तृतीया को पड़ता है। इस दिन स्त्रियाँ स्नान कर चंद्र दर्शन करके रात को दूध पीती हैं। यह व्रत सौभाग्यप्रद माना जाता है।

अविरत[1]—वि० [सं०] १. विरामशून्य। निरंतर। २. अनिवृत्त। लगा हुआ।

अविरत[2]—क्रि० वि० १. निरंतर। लगातार। २. सतत। नित्य। हमेशा।

अविरत[3]—संज्ञा पुं० विराम का अभाव। नैरंतर्य।

अविरति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. निवृत्ति का अभाव। लीनता। २. विषयादि में तृष्णा का होना। विषयाशक्ति। ३. विराम का अभाव। अशांति। ४. जैनशास्त्रानुसार धर्मशास्त्र की मर्यादा से रहित बर्ताव करना।

विशेष—यह बंधन के चार हेतुओं में से है और बारह प्रकार का है। पाँच प्रकार की इंद्रियाविरत, एक मनोविरति और छह प्रकार की कायाविरति।

अविरथाⓅ—क्रि० वि० [सं० **वृथा,** हिं० **बिरथा**] दे० 'वृथा'।

अविरल—वि० [सं०] १. जो विरल या भिन्न न हो। मिला हुआ। २. घना। अव्यवच्छिन्न। सघन। उ०–अचल अनिकेत अविरल अनामय अनारंभ अंबोदनादघ्न बंदौं।–तुलसी ग्रं० पृ० ४८३।

यौ०—**अविरलधारासार**=अनवरत होनेवाली मूसलाधार वृष्टि।

अविरहित–वि० [सं०] वियोग न होना। अवियुक्त। अलग न होना [को०]।

अविराम[1]—वि० [सं०] १. बिना विश्राम लिए हुए। अविश्रांत। उ०–चलना है अविराम तुम्हें उद्वेग।–कानन०, पृ० १३।

अविराम[2]—क्रि० वि० लगातार। निरंतर।

अविराम[3]—संज्ञा पुं० विरामाभाव। निरंतरता। नैरंतर्य [को०]।

अविरुद्ध—वि० [सं०] १. जो विरुद्ध न हो। अप्रतिकूल। उ०—स्थायी दशा को विरुद्ध या अविरुद्ध कोई भाव संचारी रूप में आकर तिरोहित नहीं कर सकता।–रस०, पृ० १८२। २. अनुकूल। मुवाफिक। उ०–प्रजा आज कुछ और सोचती जो अब तक अविरुद्ध रही।–कामायानी, पृ० १७५।

अविरेचन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० **अविरेचनीय, अविरेच्य**] विरेचन क्रिया में बाधा उत्पन्न करनेवाली वस्तु। कब्ज करनेवाली वस्तु। [को०]।

अविरोध—संज्ञा पुं० [सं०] १. साधर्म्य। समानता। २. विरोध का अभाव। अनुकूलता। ३. मेल। संगति। मुवाफिकत। उ०–समय समाज धर्म अविरोधा। बोले तब रघुवंशपुरोधा।—तुलसी (शब्द०)।

अविरोधी–वि० [सं० **अविरोधिन्**] [वि० स्त्री० **अविरोधिनी**] १. जो विरोधी न हो। अनुकूल। २. मित्र। हित।

अविलंघन—संज्ञा पुं० [सं० **अविलङ्घन**] [वि० **अविलंघनीय**] न लाँघना। मर्यादा को न पार करना [को०]।

अविलंब[1]—क्रि० वि० [सं० **अविलम्ब**] बिना विलंब। तुरंत। उ०–रथ रुका, उतरे उभय अविलंब।–साकेत, पृ० ५७४।

अविलंब[2]—संज्ञा पुं० विलंब का अभाव। शीघ्रता [को०]।

अविलक्ष्य—वि० [सं०] १. बिना लक्ष्यवाला। २. ईमानदार। निर्भीक। ३. असाध्य (रोग या रोगी) जिसकी चिकित्सा कठिन हो। ४. जिसका विरोध कठिन हो [को०]।

अविला—संज्ञा स्त्री० [सं०] भेड़ [को०]।

अविलास[1]—वि० [सं०] विलास से मुक्त रहनेवाला। विश्वसनीय। स्थिर [को०]।

अविलास[2]—संज्ञा पुं० विलास का अभाव [को०]।

अविलिख—वि० [सं०] १. न लिखनेवाला अथवा लिखना न जानने वाला। २. बुरा लिखनेवाला। ३. लिखनेवाले से भिन्न या व्यतिरिक्त [को०]।

अविलोकनⓅ—संज्ञा पुं० [सं० **अवलोकन**] दे० 'अवलोकन'।

अविलोकनाⓅ—क्रि० स० [हिं०] दे० 'अवलोकना'।

अविलोडित—वि० [सं० **अ=नहीं+विलोडित=मथा हुआ**] न मथा हुआ। अमंथित। उ०–अविलोडित था जमा दही।—साकेत, पृ० ३४८।

अविवक्षा—संज्ञा स्त्री० [सं०] विवक्षा अर्थात् कहने, बोलने आदि की अनिच्छा।

अविवक्षित—वि० [सं०] १. बिना उद्देश्य या अभिप्राय का। २. जिसके विषय में कहना या बोलना न हो [को०]।

अविवाद[1]—वि० [सं०] विवादरहित। निर्विवाद। उ०—सामूहिक जीवन विकास की साम्य योजना है अविवाद।–युग०, पृ० ६१

अविवाद²—संज्ञा पुं० सहमति। विवाद का न होना [को०]।

अविवादी—वि० [सं० अविवादिन्] विवाद न करनेवाला। शांत [को०]।

अविवाहित—वि० [सं०] [वि० स्त्री० अविवाहिता] जिसका ब्याह न हुआ हो। बिना ब्याहा। क्वाँरा। उ०—तब मैं इस कुटुंब की कमनीय कल्पना को दूर ही से नमस्कार करता और आजीवन अविवाहित रहता'।—स्कंद०, पृ० ७०।

अविविक्त— वि० [सं०] १. जिसकी विवेचना न हो। अविवेचित। २. विवेकरहित। अविवेकी। ३. कोई भेद न रखनेवाला। भेदरहित। ४. सर्वसाधारण से संबंध रखनेवाला। सार्वजनिक [को०]।

अविवेक—संज्ञा पुं० [सं०] १. विवेक का अभाव। अविचार। २. अज्ञान। नादानी। ३. अन्याय। ४. न्यायदर्शन के अनुसार विशेष ज्ञान का अभाव। ५. सांख्यशास्त्रानुसार मिथ्याज्ञान।

अविवेकता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. विचार का अभाव। अज्ञानता। २. विवेक का न होना।

अविवेकी—वि० [सं० अविवेकिन्] १. अज्ञानी। विवेकरहित। जिसे तत्वज्ञान न हो। २. अविचारी। ३. मूढ़। मूर्ख। ४. अन्यायी

अविवेचक—वि० [सं०] विवेचना वा स्पष्टीकरण न करनेवाला [को०]।

अविवेचना—संज्ञा स्त्री० [सं०] विवेचना वा व्याख्यान करने की शक्ति का न होना [को०]।

अविशंक—वि० [सं० अविशङ्क] १. शंका या संदेह न करनेवाला। अशंक। २. न डरनेवाला। निर्भय [को०]।

अविशंका—संज्ञा स्त्री० [सं० अविशङ्का] संदेह या भय का अभाव [को०]।

अविशुद्ध—वि० [सं] १. जो विशुद्ध न हो। मेलमाल का। २. अशुद्ध। मलिन। ३. अपवित्र। नापाक।

अविशुद्धि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. अशुद्धि। मेलमाल। २. मलिनता। अपवित्रता। नापाकी। ३. विकार।

अविशेष¹—[सं०] भेदक धर्मरहित। जिसमें किसी दूसरी वस्तु से कोई विशेषता न हो। तुल्य। समान।

अविशेष²—संज्ञा पुं० १. भेदक धर्म का अभाव। तुल्यत्व। २. एकता [को०]। ३. सांख्य में सांतत्व, धीरत्व और मूढ़त्व आदि विशेषताओं से रहित सूक्ष्म भूत।

यौ०अविशेषज्ञ।

अविशेषसम—संज्ञा पुं० [सं०] न्याय में जाति के चौबीस भेदों में से एक। यदि वादी किसी वस्तु के सादृश्य के आधार पर कोई बात सिद्ध करे—उदाहरणार्थ घट के सादृश्य से शब्द को अनित्य सिद्ध करे और उसके उत्तर में प्रतिवादी कहे कि यदि प्रयत्न के उत्पन्न होने के कारण ही घट के समान शब्द भी अनित्य हो; तो इतना अल्पसादृश्य तो सभी वस्तुओं में होता है; और ऐसे सादृश्य के कारण सभी चीजों के धर्म एक मानने पड़ेंगे; तो ऐसा उत्तर अविशेषसम कहा जायगा।

अविश्रंभ—संज्ञा पुं० [सं० अविश्रम्भ] विश्वास का अभाव। अविश्वास [को०]।

अविश्रांत¹—वि० [सं० अविश्रान्त] १. विरामरहित। जो रुके नहीं। २. जो थके नहीं। ३. जो क्षतियुक्त न हो। अक्षत [को०]।

अविश्रांत²—क्रि० वि० अनवरत। लगातार [को०]।

अविश्वसनीय—वि० [सं०] जो विश्वासयोग्य न हो। जिस पर विश्वास न किया जा सके।

अविश्वस्त—वि०[सं०] संदेहास्पद। अविश्वसनीय।

अविश्वास—संज्ञा पुं० [सं०] १. विश्वास का अभाव। बेएतबारी। उ०—परंतु उस पर प्रकट रूप से अविश्वास का भी समय नहीं रहा।—स्कंद०, पृ; १०८। २. अप्रत्यय। अनिश्चय।

यौ०—अविश्वासपात्र = जिस पर विश्वास न किया जाय। बेएतबारी। झूठा।

अविश्वासी—वि० [सं० अविश्वासिन्] १. जो किसी पर विश्वास न करे। विश्वासहीन। श्रद्धारहित। उ०—सो कैसे होगा अविश्वासी क्षत्रिय। तभी तो म्लेच्छ लोग साम्राज्य बना रहे हैं।—चंद्र०, पृ० १६२। २. जिस पर विश्वास न किया जाय। अविश्वासपात्र।

अविष¹—वि० [सं०] १. जो विषैला न हो। विषहीन। २. विष के अभाव को समाप्त करनेवाला [को०]।

अविष²—संज्ञा पुं० १. समुद्र। २. आकाश। ३. राजा [को०]

अविषय¹—वि० [सं०] १. जो विषय न हो। अगोचर। २. अप्रतिपाद्य। अनिर्वचनीय। ३. जिसमें कोई विषय न हो। विषयशून्य।

अविषय²—संज्ञा पुं० [सं०] १. अभाव। २. लोप। अदर्शन। ३. इंद्रियों के विषय की उपेक्षा [को०]।

अविषा—संज्ञा स्त्री० [सं०] निर्विषी तृण। एक जड़ी। जद्‌वार।

विशेष—यह मोथे के समान होती है और प्रायः हिमालय के पहाड़ों पर मिलती है। इसका कंद अतीस के समान होता है और साँप, बिच्छू आदि के विष को दूर करता है।

अविषी— संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सरिता। नदी। २. पृथ्वी। धरती। ३. स्वर्ग [को०]।

अविसर्गी—वि० [सं० अविसर्गिन्] न हटनेवाला। हमेशा बना रहनेवाला [को०]।

यौ०—अविसर्गी ज्वर = लगातार बना रहनेवाला ज्वर।

अविसह्य—वि०[सं०] रोग उत्पन्न करनेवाला या गुणरहित (पदार्थ)।

विशेष—कौटिल्यके अनुसार ऐसे पदार्थ बेचनेवाला दंड का भागी होता था।

अविसह्यदुर्ग—संज्ञा पुं० [सं०] कौटिल्य के मतानुसार वह दुर्ग जिसमें शत्रु प्रवेश न कर सकता हो।

अविस्तर—वि०[सं०] कम विस्तार या लंबाईवाला। संक्षिप्त [को०]।

अविस्तार—वि० [सं०] विस्तार का अभाव। संक्षिप्तता [को०]।

अविस्तीर्ण—वि० [सं०] जो विस्तीर्ण न हो। कम फैलाववाला [को०]।

अविस्तृत—वि० [सं०] ठसा हुआ। कम स्थान में फैला हुआ। अविरल। घना [को०]।

अविस्पष्ट—वि० [सं०] जो साफ या स्पष्ट न हो। स्पष्ट रहित। अस्पष्ट [को०]।

अविहड़(पु)–वि० [सं० अ + विघटच]१. जो विहड़े नहीं । जो खंडित न हो । अखंड । अनश्वर । उ०––(क) अविहड़ अखंडित पीव है ताको निर्भय दास । तीनौ गुन के पेलि के चौथे कियो निवास ।–कबीर (शब्द०) । (ख) अविहड़ अँग विहड़े नहीं अपलट पलट न जाय । दादू अनवट एक रस सब में रहा समाय ।––दादू (शब्द०) । २. दे० 'बीहड़' ।

अविहर(पु)—वि० [हिं० अ + बिहर = विखरनेवाला] दे० अविहड़ । उ०—ढंढोरज्जहिं ढाल मुरें गौरीदल अविहर ।—प्रि० रा० १३।६५ ।

अविहित––वि० [सं०] १. जो विहित न हो । विरुद्ध । २. अनुचित । अयोग्य । ३. निकृष्ट । नीच ।

अवी– संज्ञा स्त्री० [सं०] १. ऋतुमती स्त्री । बनकुलथी ।

अवीचि—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक नरक ।

अवीचि––वि० लहरविहीन । जिममें लहर न हो [को०] ।

अवीज[१]–वि० [सं०] १. बीजरहित । २. नपुंसक । ३. मुख्य हेतु का अभाव [को०] ।

अवीज[२]—संज्ञा पुं० १. मानसिक उत्तेजना पर नियंत्रण । २. बीज का अभाव या न होना । ३. बुरा बीज ।

अवीजक—वि०, संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अबीज' [को०] ।

अवीजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] किशमिश ।

अवीरा–– वि० स्त्री० [सं०[१. जिस स्त्री के पुत्र और पति न हों । पुत्र और पतिरहित (स्त्री) । २. स्वतंत्र (स्त्री) ।

अवोह(पु)—वि० [सं० अवीड?] जो डरे नहीं । अभय । निडर ।—(डिं०) ।

अवृक्ष––वि० [सं०] वृक्षविहीन । पेड़ पौधों से रहीत [को०] ।

अवृत—वि० [सं०] १. जो रोका न गया हो । २. अनिर्वाचित । ३. आवरणरहित । रक्षाविहीन । ४. जो किसी के वश में या पराभूत न हो ।

अवृत्ति[१]—संज्ञा संज्ञा [सं०] १. जीविका का अभाव । २. स्थिति का अभाव । बेठिकानापन ।

अवृत्ति[२]––वि० १. अस्तित्व या स्थितिरहित । २. जीविकाहीन [को०]

अवृथा—अव्य० [सं०] सफलतासहित । अव्यर्थ [को०] ।

अवृद्धिक[१]—संज्ञा पुं० [सं०] बिना वृद्धि या ब्याज का रुपया । मूल धन । असल ।

अवृद्धिक[२]––वि० जिसपर ब्याज न लगता हो । जो बढ़ता न हो ।

अवृष्टि— संज्ञा स्त्री० [सं०] वर्षा का अभाव । अवर्षण । सूखा [को०] ।

अवेक्षक— वि० [सं०] १. देखनेवला । अवलोकन करनेवाला । २. जाँच पड़ताल करनेवाला । निरीक्षक [को०] ।

अवेक्षण––संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अवेक्षित अवेक्षणीय]१. अवलोकन । देखना । २. जाँच पड़ताल । देखभाल । निरीक्षण ।

अवेक्षणीय––वि० [सं०] १. देखने योग्य । निरीक्षण योग्य ।२. जाँच के लायक । परीक्षा के योग्य ।

अवेक्षा––संज्ञा स्त्री०[सं०] १. अवेक्षण । देखना । २. परवाह । ध्यान । ख्याल ।

अवेज(पु)—संज्ञा पुं० [अ० एवज] बदला । प्रतीकार । उ०—मारग में गज में चढ़ो जात चलो अँगेरेज । कालीदह बोरचो सगज लिय कपि चना अवेज ।—रघुराज (शब्द०) ।

अवेणि—वि० [सं०] १. वेणी न किया हुआ । २. जिसके बालों की वेणी न बनी हो । ३. जो एक साथ मिलकर न प्रवाहित हो, —जैसे नदी का जल [को०] ।

अवेत––वि० [सं०] १. बीता हुआ । २. पाया हुआ । प्राप्त किया हुआ । ३. संयुक्त [को०] ।

अवेद––संज्ञा पुं० [सं०] वेद से भिन्न । जो वेद न हो [को०] ।

यौ०—**अवेदविद् अवेदविहित** ।

अवेदि—संज्ञा स्त्री० [सं०] मूर्खता । अज्ञान [को०] ।

अवेद्य[१]––वि० पुं० [सं०] १. जो जाना न जा सके । अज्ञय । २. अलभ्य ।

अवेद्य[२]––संज्ञा पुं० १. बछड़ा । २. नादान बच्चा ।

अवेद्या––वि० स्त्री० [सं०] वह स्त्री जिससे विवाह नहीं कर सकते । अविवाह्य स्त्री ।

अवेल[१]—वि० [सं०] १. जिसकी सीमा न हो । असीमित । २. असामयिक [को०] ।

अवेल[२]––संज्ञा पुं० गोपन छिपाव । दुराव [को०] ।

अवेला––संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बुरा समय । कुसमय । अनुचित समय । प्रतिकूल समय । २. चबाया हुआ पान [को०] ।

अवेव(पु)––वि० [सं० अ = नहीं + वेग] निर्बल । उ०––सबलौ भूखे सीह ज्यूँ असुरा लखे अवेव ।—रा० रू०, पृ० २८८ ।

अवेश[१](पु)––संज्ञा पुं० [सं० आवेश] १. किसी विचार में इस प्रकार तन्मय हो जाना कि अपनी स्थिति भूल जाय । आवेश । जोश । मनोवेग । उ०––मारि मारि करि, कर खड्ग निकासि लियो दियो घोर सागर में सो अवेश आयो है ।––नाभा (शब्द०) । २. आसंग । चेतनता अनुप्रवेश । उ०—शिष्यन सों कह्यो कभू देह में अवेश जानो तब ही बखानो आनि सुनि कीजै न्यारी है ।––प्रिया (शब्द०) । ३. भूतावेश । भूत चढ़ना । किसी भूत का सिर अना । भूत लगना । उ०—कोऊ कहै दोष, कोऊ कहत अवेश तावैं करौ दशरथ कियो भाव पूरो परचो है ।––नाभा (शब्द०) ।

अवेश[२]––वि० [सं०] बिना वेशवाला । वेशरहित [को०] ।

अवेस्ता––संज्ञा स्त्री० [पह्नल०] १. ईरान के पूर्वी जनसमूह की एक पुरानी भाषा जो संस्कृत के अति निकट है । २. पारसियों की एक धर्मपुस्तक ।

अवैज्ञानिक––वि० [सं०] १. जिसका विज्ञान से कोई संबंध न हो । २. जो तर्कसंमत न हो [को०] ।

अवैतनिक–वि० [सं०] जो वैतनिक न हो । जो किसी काम को करने के लिये वेतन न पाए । बिना वेतन के काम करनेवाला । आनरेरी ।

अवैदिक––वि० [सं०] वेदविरुद्ध ।

अवैद्य––वि० [सं०] १. जो वैद्य न हो । जो वैद्यकशास्त्र को न जानता हो । २. अज्ञ । अनजान ।

अवैध--वि० [सं०] [वि० स्त्री० **अवैधी**] १. नियम के विपरीत। गैर कानूनी। अविहित। उ०--यदि वे हमीं से अवैध सेवा लेना चाहें......।--स्कंद०, पृ० १२१। २. जो शास्त्रानुमोदित न हो।

अवैधानिक--वि० [सं०] जो विधान या नियम के विपरीत हो।

अवैमत्य¹--संज्ञा पुं० [सं०] मतभेद का अभाव। ऐकमत्य।

अवैमत्य²--वि० जिसमें मतभेद न हो। सर्वसंमत।

अवोक्षण--संज्ञा पुं० [सं०] तिरछा हाथ करके जल गिराना। तिरछा हाथ करके जल छिड़कना।

अवोद¹--वि० [सं०] गीला। आर्द्र। नम [को०]।

अवोद²--संज्ञा पुं० आर्द्र करना। गीला करना [को०]।

अवोष--संज्ञा पुं० [सं०] ताजा या गरमागरम भोजन [को०]।

अव्यंग--वि० [सं० **अव्यङ्ग**] जो व्यंग या टेढ़ा न हो। सीधा।

अव्यंगाँग--वि० [वि० **अव्यङ्गाङ्ग**] [स्त्री० **अव्यगांगी**] जिसका कोई अंग टेढ़ा न हो। सुडौल।

अव्यंगा--संज्ञा स्त्री० [सं० **अव्यङ्गा**] केवाँच। करेंच। कौंच।

अव्यंग्य--वि०[सं० **अव्यङ्ग्य**] १. निर्दोष। २. व्यंग्यरहित। व्यंजनविहीन [को०]।

विशेष--साहित्य में अव्यंग्य काव्य को अवर अर्थात् अधम कोटि में माना गया है।

अव्यंजन¹--वि० [सं० **अव्यञ्जन**] [वि० स्त्री० **अव्यंजना**] १. बिना सींग का (पशु)। डूँड़ा। २. जो सुलक्षण न हो। कुलक्षण। ३. जिसमें (जवानी का) कोई चिह्न न हो। चिह्नशून्य। ४. जो पृथक् या व्यक्त न हो [को०]।

अव्यंजन²--संज्ञा पुं० १. शृंगहीन पशु। डूँड़ा पशु। २. जो व्यंजन न हो अर्थात् स्वर [को०]।

अव्यंडा--संज्ञा स्त्री० [सं० **अव्यण्डा**] १. केवाँच। करेंच। कौंच।

अव्यक्त¹--वि० [सं०] १. जो स्पष्ट न हो। अप्रत्यक्ष। अगोचर। उ०--(क) अटल शक्ति अविनाश अधिक बल एक अनादि अनूप। आदि अव्यक्त अंबिकापूरण अखिल लोक तव रूप।--सूर (शब्द०)। (ख) सिर्फ एक अव्यक्त शब्द सा 'चुप, चुप, चुप'।--अपरा, पृ० १३। २. अज्ञात। अनिर्वचनीय। उ०--प्रथम शब्द है शून्याकार। परा अव्यक्त सो कहै विचार।--कबीर (शब्द०)।

अव्यक्त²--संज्ञा पुं० [सं०] १. विष्णु। २. कामदेव। ३. शिव। ४. प्रधान। प्रकृति (सांख्य)। उ०--अव्यक्त मूलमनादि तरुत्वच चारि निगमागम भने।--मानस, ७।१३ ५. वेदांत शास्त्रानुसार अज्ञान। सूक्ष्म शरीर और सुषुप्ति अवस्था। ६. ब्रह्म। ईश्वर। ७. बीजगणित के अनुसार वह राशि जिसका मान अनिश्चित हो। अनवगत राशि। ८. मायोपाधिक ब्रह्म (शंकर)। ९. जीव।

क्रि० प्र०--**होना** (१) प्रकृति दशा को प्राप्त होना। कारण से लय होना। (२) अप्रकट होना। लुप्त होना। निर्वचनीय से अनिर्वचनीय अवस्था को प्राप्त होना।

अव्यक्तक्रिया--संज्ञा स्त्री० [सं०] बीजगणित की एक क्रिया।

अव्यक्तिगणित--संज्ञा पुं० [सं०] बीजगणित।

अव्यक्तगति--वि०[सं०] जिसकी गति प्रकट न हो। अप्रत्यक्ष गमन करनेवाला [को०]।

अव्यक्तपद--संज्ञा पुं०[सं०] वह पद जिसका तालु आदि स्थानों द्वारा स्पष्ट उच्चारण न हो सके; जैसे चिड़ियों की बोली।

अव्यक्तमलप्रभव--संज्ञा पुं० [सं०] संसार। जगत्।

अव्यक्तराग--संज्ञा पुं०[सं०] १. हल्का लाल। अरुण। २. गौर। श्वेत।

अव्यक्तराशि--संज्ञा स्त्री० [सं०] (बीजगणित में) वह राशि जिसका मान अनिश्चित हो [को०]।

अव्यक्तलक्षण--संज्ञा पुं० [सं०] शिव [को०]।

अव्यक्तलिंग--संज्ञा पुं०[सं० **अव्यक्तलिङ्ग**] १. सांख्यशास्त्रानुसार महत्तत्वादि। २. संन्यासी। ३. वह रोग जो पहचाना न जाय।

अव्यक्तसाम्य--संज्ञा पुं०[सं०] बीजगणित के अनुसार अव्यक्त राशि या वर्ण का समीकरण।

अव्यक्तानुकरण--संज्ञा पुं० [सं०] अस्फुट शब्द का अनुकरण। जैसे, मनुष्य मुर्गे की बोली पर उसकी नकल करके 'कुक्डूँकूँ' बोलता है।

अव्यक्तिक--वि० [सं०] दे० 'अव्यक्त' [को०]।

अव्यग्र--वि० [सं०] १. जो व्यग्र न हो। धीर। २. ध्यानवाला। सतर्क [को०]।

अव्यथ¹--वि० [सं०] १. किसी को दुःख न देनेवाला। दयालु। २. वेदना से रहित। दुःख से दूर [को०]।

अव्यथ²--संज्ञा पुं० साँप [को०]।

अव्यथय--संज्ञा पुं० [सं०] अश्व। घोड़ा [को०]।

अव्यथा--संज्ञा पुं० [सं०] १. हरीतकी। हड़। २. सोंठ। ३. स्थलकमल। स्थलाब्ज। ४. गोरखमुंडी। ५. आँवला। ६. स्थिरता। दृढ़ता [को०]।

अव्यथिष--संज्ञा पुं० [सं०] १. सूर्य। २. समुद्र [को०]।

अव्यथिषी--संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पृथ्वी। २. रात्रि। अर्धरात्रि। निशीथ [को०]।

अव्यथी--वि० [सं० **अव्यथिन्**] १. दुःख से छुटा। २. भय से छुटा। निर्भय। ३. दुःख न देनेवाल [को०]।

अव्यथ्य--वि० [सं०] दे० १. जिसे किसी प्रकार दुःख न दिया जा सके। २. दे० 'अव्यथी' [को०]।

अव्यपदेश्य¹--वि० [सं०] १. जो कहा न जा सके। अनिर्वचनीय। २. न्यायानुसार निर्विकल्प। जिसमें विकल्प या उलट फेर न हो। निश्चित। ३. अनिर्देश्य।

अव्यपदेश्य²--संज्ञा पुं० १. निर्विकल्प ज्ञान। २. ब्रह्म।

अव्यभिचार--संज्ञा पुं० [सं०] १. अविच्छिन्नता। सातता। २. वफादारी। ३. नित्यसंग या साहचर्य [को०]।

अव्यभिचारी--वि०[सं० **अव्यभिचारिन्**] जो किसी प्रतिकूल कारण से हटे नहीं। अनुकूल। २. जो किसी प्रकार व्यभिचारित न हो। ३. धर्मशील। सच्चरित्र। नैतिक [को०]। ४. नित्य। जो हमेशा बना रहे। एकरस [को०]।

अव्यभिचारी²—संज्ञा पुं० न्याय के मत से साध्य-साधक-व्याप्ति-विशिष्ट हेतु ।

अव्यय¹—वि० [सं०] १. जो विकार को प्राप्त न हो । सदा एकरस रहनेवाला । अक्षय । २. नित्य । आदि-अंत-रहित । ३. परिणाम-रहित । विकार-रहित । ४. प्रवाहरूप से सदा रहनेवाला ।

अव्यय²—संज्ञा पुं० १. व्याकरण में वह शब्द जिसका सब लिंगों, सब विभक्तियों और सब वचनों में समान रूप से प्रयोग हो । २. परब्रह्म । ३. शिव । ४. विष्णु । ५. कुशल क्षेम [को०] । ६. समृद्धि [को०] ।

अव्ययीभाव—संज्ञा पुं० [सं०] समास का एक भेद जिसमें अव्यय के साथ उत्तरपद समस्त होता है । जैसे, अतिकाल, अनुरूप, प्रतिरूप । यह समास प्रायः पूर्वपदप्रधान होता है और या तो विशेषण या क्रियाविशेषण होता है ।

अव्ययेत—संज्ञा पुं० [सं०] यमकानुप्रास के दो भेदों में से एक जिसमें यमकात्मक अक्षरों के बीच कोई और अक्षर या पद न पड़े; जैसे—अलिनी अलि नीरज बसे प्रति तरुवरनि वहंग । त्यों मनमथ मन मथन हरि बसै राधिका संग ।' यहाँ 'अलिनी, अलि नी' और 'मनमथ मन मथ के बीच कोई और पद नहीं है ।

अव्यर्थ—वि० [सं०] १. जो व्यर्थ न हो । सफल । २. सार्थक । ३. अमोघ ।

अव्यलीक—वि० [सं०] १. झूठ नहीं । सत्य । २. सहमत होने योग्य । प्रिय [को०] ।

अव्यवधान¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. व्यवधान या अंतर का अभाव । २. निकटता । लगाव । रोक का न होना । रुकावट का अभाव । ३. लापरवाही [को०] ।

अव्यवधान²—वि० १. बिना व्यवधान या रुकावट का । २. प्रकट । खुला हुआ । ३. नग्न । आवरणहीन, जैसे भूमि । ४. लापरवाह [को०] ।

अव्यवसाय¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. व्यवसाय का अभाव । उद्यम का अभाव । २. निश्चयाभाव । निश्चय का न होना ।

अव्यवसाय²—वि० उद्यमशून्य । व्यवसायशून्य । आलसी । निकम्मा ।

अव्यवसायी—वि० [सं० **अव्यवसायिन्**] १. उद्यमहीन । निरुद्यमी । २. आलसी । पुरुषार्थहीन ।

अव्यवस्था—संज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० **अव्यवस्थित**] १. नियम का न होना । नियमाभाव । बेकायदगी । २. स्थिति का अभाव । मर्यादा का न होना । ३. शास्त्रादिविरुद्ध व्यवस्था । अविधि । ४. बेइंतजामी । गड़बड़ ।

अव्यवस्थित—वि० [सं०] १. शास्त्रादि-मर्यादा-रहित । बेमर्याद । उ०—'गुप्तकुल का अव्यवस्थित उत्तराधिकार नियम' ।—स्कंद०, पृ० १२ । २. अनियत रूप । बेठिकाने का । उ०—'सम्राट् की मति एक सी नहीं रहती, वे अव्यवस्थित और चंचल हैं ।'—स्कंद०, पृ० २८ । ३. चंचल । अस्थिर । उ०—मैं इन बातों को नहीं सुनना चाहती, क्योंकि समय ने मुझे अव्यवस्थित बना दिया है ।—चंद्र०, पृ० १३३ ।

यौ०—**अव्यवस्थितचित्त** = जिसका चित्त ठिकाने न हो । चंचलचित्त । उ०—वह अव्यवस्थितचित्त का मनुष्य है ।—(शब्द०) ।

अव्यवहार्य—वि० [सं०] १. जो व्यवहार या काम में लाने योग्य न हो । जो व्यवहार में न लाया जा सके । २ पतित । पंक्तिच्युत ।

अव्यवहित—वि० [सं०] बिना व्यवधान या रुकावट का [को०] ।

अव्ययवहृत—वि० [सं०] जो व्यवहार में न आया हो [को०] ।

अव्यसन¹—वि० [सं०] व्यसन से मुक्त । व्यसन से हीन । दुर्गुण से दूर [को०] ।

अव्यसन²—संज्ञा पुं० व्यसन या दुर्गुण का अभाव [को०] ।

अव्याकृत¹—वि० [सं०] १. जो व्याकृत न हो । अविश्लिष्ट जो विकार प्राप्त न हो । २. अप्रकट । गुप्त । ३. कारण रूप । कारणस्थ ।

अव्याकृत²—संज्ञा पुं० १. वेदांतशास्त्रानुसार अप्रकट बीजरूप जगत्कारण अज्ञान । २. सांख्यशास्त्रानुसार प्रधान प्रकृति ।

यौ०—**अव्याकृतधर्म** ।

अव्याकृतधर्म—संज्ञा पुं० [सं०] बौद्धशास्त्रानुसार वह स्वभाव जिससे शुभ और अशुभ दोनों प्रकार के कर्म किए जा सकें ।

अव्याख्या—संज्ञा पुं० [सं०] स्पष्टीकरण या व्याख्या का अभाव [को०]

अव्याख्यात—वि० [सं०] जिसे स्पष्ट न किया गया हो । व्याख्याहीन [को०] ।

अव्याख्येय—वि० [सं०] १. व्याख्या के अयोग्य । २. जिसे व्याख्या की जरूरत न हो । सरल [को०] ।

अव्याघात—वि० [सं०] १. व्याघातशून्य । जो रोका न जा सके । बेरोक । २. अटूट । लगातार ।

अव्याज¹—वि० [सं०] १. छलछद्म से रहित । निष्कपट । २. अकृत्रिम । स्वाभाविक । नैसर्गिक (विशेषतः समास में, जैसे अव्याजमनोहर, अव्याजरमणीय [को०] ।

अव्याज²—संज्ञा पुं० छलछद्म का अभाव । निष्कपटता । ईमानदारी [को०] ।

अव्यापन्न—वि० [सं०] जो मरा न हो । जीवित । जिंदा ।

अव्यापार¹—सं० [सं०] व्यापारशून्य । बेकाम ।

अव्यापार²—संज्ञा पुं० १. उद्यम का अभाव । निठाला । २. वह काम जो अपने से संबंधित न हो । बिना काम का काम [को०] ।

अव्यापारी—वि० [सं० **अव्यापारिन्**] १. व्यापारशून्य । निरुद्यमी । निठल्लु । २. सांख्यशास्त्रानुसार क्रियाशून्य, जिसमें व्यापार अर्थात् क्रिया करने की शक्ति न हो । जो स्वभाव से अकर्ता हो ।

अव्यापी—संज्ञा पुं० [सं० **अव्यापिन्**] [स्त्री० **अव्यापिनी**] १. जो व्यापी न हो । जो सब जगह न पाया जाय । २. एक प्रकार का उत्तराभास जिसमें कहे हुए देश, स्थान का पता न चले; जैसे—'कोई कहे कि काशी के पूर्व मध्य देश में मेरा खेत अमुक ने लिया । यहाँ काशी के पूर्व मध्य देश नहीं, किंतु मगध देश है; अतः यह अव्यापी है ।

अव्याप्त—वि० [सं०] जो व्याप्त न हो । जो हर जगह न हो । सीमित [को०] ।

अव्याप्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०][वि० **अव्याप्त**] १. व्याप्ति का अभाव। २. नव्य न्यायशास्त्रानुसार लक्ष्य पर लक्षण के न घटने का दोष; जैसे–'सब फटे खुरवाले पशुओं के सींग होती है। इस कथन में अव्याप्ति दोष है, क्योंकि सूअर के खुर फटे होते हैं, पर उसके सींग नहीं होती।

अव्याप्य—वि० [सं०] व्याप्तिरहित। जो समग्र पर न लागू हो [को०]।

यौ०—**अव्याप्यवृत्ति**=सुख दुःख आदि की क्षणिक वृत्ति।

अव्यावृत—वि० [सं०] १. निरंतर। सतत। लगातार। २. अटूट। ३. बिना लोट पोट का। ज्यों का त्यों।

अव्याहत[1]—वि० [सं०] १. अप्रतिरुद्ध। बेरोक। उ०–सुनत फिरउँ हरि गुन अनुवादा। अव्याहत गति शंभु प्रसादा।–तुलसी (शब्द०)। २. सत्य।

अव्याहत[2]—संज्ञा पुं० सत्य या अखंडनीय वक्तव्य।

अव्युच्छिन्न—वि० [सं०] बेरोक। अव्याहत।

अव्युत्पन्न—वि० [सं०] १. अनभिज्ञ। अनुभवशून्य। अनाड़ी। अकुशल। २. व्याकरणशास्त्रानुसार वह शब्द जिसकी व्युत्पत्ति या सिद्धि न हो सके। ३. व्याकरणज्ञानशून्य।

अव्युष्ट—वि० [सं०] न चमकता हुआ। प्रकाशहीन। उ०–उषा के अव्युष्ट होने का अर्थ है कि अभी अँधेरा है।–आर्यो०, पृ० ११८।

अव्र—संज्ञा पुं० [अ० **अब्र**, तुल० सं० **अभ्र**] बादल। मेघ।

अव्रण[1]—वि० [सं०] जो क्षत न हो। बिना घाव का। जो घाव से खराब न हुआ हो [को०]।

अव्रण[2]—संज्ञा पुं० दे० 'अव्रणशुक्र' [को०]।

अव्रणशुक्र—संज्ञा पुं० [सं०] आँख का एक रोग जिसमें आँख की पुतली पर सफेद रंग की एक फूली सी पड़ जाती है और उसमें सूई चुभने के समान पीड़ा होती है।

अव्रत[1]—वि० [सं०] १. व्रतहीन। जिसका व्रत नष्ट हो गया हो। २. जिसने व्रतधारण न किया हो। व्रतरहित। ३. नियमरहित। नियमशून्य।

अव्रत[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १. जैनशास्त्रानुसार व्रत का त्याग।

विशेष—यह पाँच प्रकार का है–प्राणवध, मृषावाद, अदत्तदान, मैथुन या अब्रह्म और परिग्रह।

२. व्रत का अभाव। ३. नियम का न होना।

अव्रत्य—संज्ञा पुं० [सं०] धर्मानुष्ठान का अभाव [को०]।

अव्वल[1]—वि० [अ०] १. पहला। आदि का। प्रथम। २. उत्तम। श्रेष्ठ।

अव्वल[2]—संज्ञा पुं० आदि। प्रारंभ, जैसे–'अव्वल से आखिर तक'। –(शब्द०)।

मुहा०—**अव्वल आना या रहना**=प्रथम स्थान प्राप्त करना।

अव्वलन्—क्रि० वि० [अ०] प्रथमतः। पहले।

अव्वास(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आवास'। उ०–ऊँचा महल ही अव्वास। करता नारि नर विलास।–राम० धर्म०, पृ० १६८।

अशंक—वि० [सं० **अशङ्क**] १. निःशंक। बेडर। निर्भय। उ०–देखा भविष्य के प्रति अशंक।–अपरा, पृ० १७४। २. संदेहरहित। निश्चित [को०]।

अशंकित—वि० [सं० **अशङ्कित**] दे० 'अशंक' [को०]।

अशंभु(पु)—संज्ञा पुं० [सं० **अ**=नहीं+**शम्भु**=कल्याण] अकल्याण। अमंगल। अशुभ। अहित। उ०–सुनो क्यों न कनकपुरी के राइ। डोलै गगन सहित सुरपति अरु पुहुमि पलट जग जाइ। नसै धर्म मन वचन काय करि शंभु अशंभु कराइ। अबला चलै, चलत पुनि थाकै, चिरंजीव सो मरई। श्री रघुनाथ प्रताप पतिव्रत सीता सत नहिं टरई।–सूर (शब्द०)।

अशकुंभी—संज्ञा स्त्री० [सं० **अशकुम्भी**] जल में होनेवाला एक पौधा। आकाशमूली [को०]।

अशकुन—संज्ञा पुं० [सं०] कोई वस्तु या व्यापार जिससे अमंगल की सूचना समझी जाय। बुरा शकुन। बुरा लक्षण।

विशेष—इस देश में लोग दिन को गीदड़ का बोलना, कार्यारंभ में छींक होना आदि अशकुन समझते हैं।

अशक्त—वि० [सं०][संज्ञा **अशक्ति**] १. निर्बल। कमजोर। २. अक्षम। असमर्थ। नाकाबिल। उ०–होकर अशक्त अकाल में ही काल-कवलित हो रहे।–भारत०, पृ० १०१।

अशक्तता—संज्ञा स्त्री० [सं०] शक्तिहीनता। अयोग्यता [को०]।

अशक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. निर्बलता। कमजोरी। २. सांख्य में बुद्धि और इंद्रियों का वध या विपर्यय। हाथ पैर आदि इंद्रियों और बुद्धि का बेकाम होना।

विशेष—ये अशक्तियाँ अट्ठाईस हैं। इंद्रियाँ ग्यारह हैं, अतः ग्यारह अशक्तियाँ तो उनकी हुईं। इसी प्रकार बुद्धि की दो शक्तियाँ हैं तुष्टि और सिद्धि। तुष्टि नौ हैं और सिद्धि आठ। इन सबके विपर्यय को अशक्ति कहते हैं।

अशक्य—वि० [सं०] १. असाध्य। शक्ति के बाहर। न होने योग्य। २. एक काव्यालंकार जिसमें किसी रुकावट या अड़चन के कारण किसी कार्य के होने की असाध्यता का वर्णन हो, जैसे–काक कला कहूँ कहूँ कपि कलकल। कहूँ भिल्ली रव कंक कहूँ थल। बसी भाग्य बस सों बन ऐसे। करहिं तहाँ ध्वनि कोकिल कैसे।

अशत्रु[1]—वि० [सं०] बिना शत्रुवाला। २. जिससे शत्रु शत्रुता का व्यवहार नहीं रखते [को०]।

अशत्रु[2]—संज्ञा पुं० १. चंद्रमा। २. शत्रु का अभाव [को०]।

अशन—संज्ञा पुं० [सं०][वि० **अशित**, **अशनीय**] १. भोजन। आहार। अन्न। २. भोजन की क्रिया। भक्षण। खाना। ३. चीता। चित्रक लकड़ी। ४. भिलावाँ। ५. अशन वृक्ष।

अशनपति—संज्ञा पुं० [सं०] अन्न के स्वामी या देवता [को०]।

अशनपर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] पटसन [को०]।

अशना—संज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० **अशनायित**] भोजन की इच्छा। भूख [को०]।

अशनाया—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. भोजन की इच्छा। भूख। उ०–इस प्रवृत्ति का हेतु जो बल होता है उसे श्रुति में अशनाया बल कहा गया है।–पोद्दार अभि०, पृ० ६१७।

अशनि—संज्ञा पुं० [सं०] १.वज्र। बिजली। २. बिजली की चमक [को०]। ३. महास्त्र [को०]। ४. स्वामी। मालिक [को०]। ५. इंद्र [को०]। ६. अग्नि [को०]।

यौ०—**अशनिदंड**=वज्र। बिजली। **अशनिपात**=वज्रपात।

अशनीय—वि० [सं०] खाने योग्य।

अशब्द[1]—वि० [सं०] १.जो शब्दों में प्रकट न किया जाय। २. अव्यक्त। ३. शब्दविहीन। ४.जो वैदिक न हो। अवैदिक [को०]।

अशब्द[2]—संज्ञा पुं० १. शब्द का अभाव। २.ब्रह्म [को०]।

अशरण—वि० [सं०] जिसे कहीं शरण न हो। अनाथ। निराश्रय। बेपनाह।

अशरणशरण[1]—वि० [सं०] अनाथ या निराश्रय को आश्रय देनेवाला [को०]।

अशरणशरण[2]—संज्ञा पुं० ईश्वर। भगवान् [को०]।

अशरफ—वि० [अ० अश्रफ] बहुत अधिक शरीफ [को०]।

अशरफी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १.सोने का एक पुराना सिक्का जो सोलह रुपए से लेकर पचीस रुपए तक का होता था। मोहर। २.एक प्रकार का पीले रंग का फूल। गुल अशरफी।

अशरा—संज्ञा पुं० [अ० अशरह्] १ महीने का दसवाँ दिन। २. मुहर्रम का दसवाँ दिन [को०]।

अशराफ—वि० [अ० शरीफ का बहु०] भद्र। शरीफ। भलामानुष। उ०—फिरते हैं अशराफ गली में मारे मारे।—कविता कौ०, भा० २, पृ० २५५।

अशराफत—संज्ञा स्त्री० [अ० अशराफ+त (प्रत्य०)] सज्जनता। शराफत। भद्रता। उ०—'सादगी' और सीधेपन से रहने में मनुष्य की सच्ची अशराफत मालूम होती है'।—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० २७७।

अशरीर[1]—वि० [सं०] शरीररहित। आकारविहीन [को०]।

अशरीर[2]—संज्ञा पुं०[सं०] १ परमात्मा। ब्रह्म। २. मीमांसा के अनुसार कोई भी देवता।३. काम के देवता। कामदेव। ४. विरक्त। संन्यासी [को०]।

अशरीरी[1]—वि० [सं० अशरीरिन्] शरीररहित। देहविहीन। उ०—ये अशरीरी रूप, सुमन से केवल वर्ण गंध में फूले।—कामायानी, पृ० २६४।

अशरीरी[2]—संज्ञा पुं० १.ब्रह्म। २. देवता [को०]।

अशर्फी—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अशरफी'।

अशर्म[1]—संज्ञा पुं० [सं०] कष्ट। दुःख। अकल्याण।

अशर्म[2]—वि० १. दुःखी। बेचैन। २.जिसे घरबार न हो। गृहरहित।

अशस्त—वि० [सं०] १. अनिर्वचनीय। अकथनीय। २. अप्रतिष्ठित। भाग्यहीन [को०]।

अशस्त्र[1]—वि० [सं०] बिना शस्त्र का। शस्त्रहीन [को०]।

अशस्त्र[2]—संज्ञा पुं० जो शस्त्र न हो [को०]।

अशांत—वि० [सं० अशान्त] जो शांत न हो। अस्थिर। चंचल। डाँवाँडोल। उ०—यही तो, मैं ज्वलित वाड़व वह्नि नित्य अशांत।—कामायनी, पृ० ८५। २.अपवित्र। अधार्मिक [को०]। ३. पाँचों तन्मात्राओं में से एक।

अशांति—संज्ञा स्त्री० [अशान्ति] [वि० अशांत] १. अस्थिरता। चंचलता। हलचल। खलबली। उ०—जाकर कहाँ हमने जलाई आग युद्ध अशांति की।—भारत०, पृ० ५१। २. क्षोभ। असंतोष। उ०—जीवन अशांति अपूर्ण सबके दीन हो अथवा धनी।—भारत०, पृ० १४६।

अशाखा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की घास जिसे शूलीतृण भी कहते हैं [को०]।

अशाम्य—वि० [सं०] जिसको शांत न किया जा सके। जिसका शमन असंभव हो [को०]।

अशालीन—वि० [सं०] धृष्ट। ढीठ। शालीनतारहित।

अशालीनता—संज्ञा स्त्री० [सं०] धृष्टता। ढिठाई।

अशासन[1]—संज्ञा पुं० [सं०] शासनाभाव। अव्यवस्थित शासन। अराजकता [को०]।

अशासन[2]—वि० शासन में न रहनेवाला। शासनहीन [को०]।

अशासावेदनीय—संज्ञा पुं० [सं०] जैनशास्त्रानुसार वह कर्म जिसके उदय से दुःख का अनुभव होता है।

अशास्त्रीय—वि०[सं०]जो शास्त्रसंमत न हो। जो विहित न हो [को०]।

अशिक्षा—संज्ञा स्त्री० [सं०] शिक्षा का अभाव। ज्ञानभाव। उ०—ये सब अशिक्षा के कुफल हैं वास है जिनका यहाँ।—भारत०, पृ० ११५।

अशिक्षित—वि० [सं०] जिसने शिक्षा न पाई हो। बेपढ़ा लिखा। अनपढ़। उजड्ड। अनाड़ी। गँवार। उ०—यदि हम अशिक्षित थे, कहें तो, सभ्य वे कैसे हुए।—भारत०, पृ० ६६।

अशित—वि० [सं०] खाया हुआ। भुक्त।

अशित्र—संज्ञा पुं० [सं०] चोर।

अशिथिल—वि० [सं०] १. जो ढीला न हो। कसा हुआ। गाढ़। २. प्रभावकर। विश्वस्त [को०]।

अशिर—संज्ञा पुं० [सं०] १. हीरा। २. अग्नि। ३. राक्षस। ४.सूर्य ५. वायु [को०]।

अशिव[1]—संज्ञा पुं० [सं०] अमंगल। अकल्याण। अशुभ।

अशिव[2]—वि० १. दुष्ट। बदमाश। २. भाग्यहीन। ३.जो कृपालु न हो। अमित्र। ४. खतरनाक [को०]।

अशिशु[1]—वि० [सं०] निःसंतान। बिना बालबच्चेवाला [को०]।

अशिशु[2]—संज्ञा पुं० १.तरुण। युवा। २. शिशुता का अभाव [को०]।

अशिश्विका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १.बिना बच्चे की स्त्री। संतानहीन स्त्री। २.बिना बछड़े की गाय [को०]।

अशिश्वी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अशिश्विका'।

अशिष्ट—वि० [सं०] असाधु। दुःशील। अविनीत। उजड्ड। बेहूदा। अभद्र। अनैतिक अमान्य।

अशिष्टता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. असाधुता। दुःशीलता। बेहूदगी। उजड्डपन। अभद्रता। २.ढिठाई।

अशीत—वि० [सं०] जो ठंढा न हो। गरम [को०]।

अशीतकर—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य [को०]।

अशीतल—वि० [सं०] गरम [को०]।

अशीति—संज्ञा स्त्री० [सं०] ८० की संख्या [को०]।

अशीतिक—वि० [सं०] १. अस्सी सालवाला। २. अस्सी का मापक। ३. अस्सी का जिससे संकेत मिले [को०]।

अशील[1]—वि० [सं०] १. अभद्र। अशिष्ट। उद्दंड। २. उदास [को०]।

अशील[2]—संज्ञा पुं० अभद्र व्यवहार। अशिष्टता। उद्दंडता [को०]।

अशीष(पु)—संज्ञा पुं० [सं० आशिष्] आशीर्वाद। असीस। दुआ। उ०—कछू जनि जी दुख पायहु माइ। सो देहु अशीष मिलौं फिरि आइ।—रामचं०, पृ० ४८।

अशुच—वि० [सं० अशुचि] दे० 'अशुचि'। उ०—अति विलक्षण है तव दुष्क्रिया अशुच मृत्यु अरे अधमाधम।—कविता कौ०, भा० २, पृ० २४७।

अशुचि[1]—वि० [सं०] [संज्ञा अशौच] १ अपवित्र। २ गंदा। मैला। ३. काला [को०]।

अशुचि[2]—संज्ञा स्त्री० १. काला रंग। २. अपवित्रता। ३. अपकर्ष। अधोगमन [को०]।

अशुचिता—वि० [सं०] १. अपवित्रता। २. ग्रीष्माभाव। ज्येष्ठ और आषाढ़ का महीना [को०]।

अशुद्ध[1]—वि० [सं० संज्ञा अशुद्धता, अशुद्ध] १. अपवित्र। अशौचयुक्त। नापाक। २. बिना साफ किया हुआ। बिना शोधा हुआ। असंस्कृत जैसे, अशुद्ध पारा। ३. बेठीक। गलत।

यौ०—**अशुद्ध वासक** = संदिग्ध व्यक्ति।

अशुद्ध[2]—संज्ञा पुं० रक्त। खून [को०]।

अशुद्धता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. अपवित्रता। मैलापन। गंदगी। २. गलती।

अशुद्धि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. अपवित्रता। अशौच। गंदगी। २. गलती।

अशुन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अश्विनी] अश्विनी नक्षत्र। उ०—अशुन, भरनि, रेवती भली। मृगसर मोल पुनरबसु बली।—जायसी (शब्द०)।

अशुभ[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. अमंगल। अकल्याण। अहित। २. पाप। अपराध। ३. दुर्भाग्य [को०]।

अशुभ[2]—वि० जो शुभ न हो। अमंगलकारी। बुरा।

यौ०—**अशुभदर्शन** = भद्दा। कुरूप। अप्रियदर्शन। **अशुभसूचक** = अमंगल की सूचना देनेवाला।

अशुश्रूषा—संज्ञा स्त्री० [सं०] जिसकी आज्ञा में रहना चाहिए, उसकी आज्ञा में न रहने का अपराध।

विशेष—स्मृति के अनुसार पारिवारिक व्यवस्था की दृष्टि से इस अपराध का राज्य की ओर से दंड होता था, जैसे—यदि पुत्र पिता की आज्ञा न माने तो वह दंडनीय माना गया है।

अशून्य—वि० [सं०] शून्यरहित। प्रमाणित। अरिक्त। पूर्ण। पूरा। उ०—(क) 'हमने भी लेख अशून्य करने को कुछ भेजा है सो लेना।' भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० २०७। (ख) 'यही लेख अशून्य करने को होगी'।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० २९६।

अशून्यशयन—संज्ञा पुं० [सं०] वह तिथि जिस दिन विश्वकर्मा शयन करते हैं [को०]।

यौ०—**अशून्यशयन द्वितीया** = दे० 'अशून्यशयनव्रत'।

अशून्यशयनव्रत—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु का एक व्रत जो श्रावण कृष्ण द्वितीया को होता है।

अशृत—वि० [सं०] बिना पका हुआ। कच्चा। अपरिपक्व [को०]।

अशेव—वि० [सं०] सुखदायक। हर्षदायक [को०]।

अशेष—वि० [सं०] १. शेषरहित। पूरा। समूचा। सब। तमाम। उ०—विषमय यह गोदावरी अमृतन को फल देति। केशव जीवनहार को, दुःख अशेष हरि लेति।—रामचं०, पृ० ६६।

क्रि० प्र०—**करना। होना**।

२. समाप्त। खतम। ३. अनंत। अपार। बहुत। अधिक। अगणित। अनेक। उ०—सानंद आशिष अशेष ऋषीश दीन्हो।—रामचं०, पृ० ६६। (ख) मिस रोम राजि रेखा सुवेष। विधि गनत मनो गुनगन अशेष।—गुमान (शब्द०)।

अशेषता—संज्ञा स्त्री० [सं०] पूर्णता। समग्रता [को०]।

अशेषसाम्राज्य—संज्ञा पुं० [सं०] शिव [को०]।

अशैक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] अर्हत। उ०—'प्रथम आचार्यों के अनुसार 'अर्हत' से तीन यानों के उन आर्यों से आशय है जिन्होंने अशैक्ष फल का लाभ किया है'।—संपू० अभि० ग्रं०, पृ० ३४६।

अशैव—वि० [सं०] अशुभ [को०]।

अशोक[1]—वि० [सं०] शोकरहित। दुःखशून्य। उ०—देव अदेव नृदेव अरु, जितने जीव त्रिलोक। मन भायौ पायौ सबन कीन्हें सबन अशोक।—रामचं०, पृ० १६२।

अशोक[2]—संज्ञा पुं० १. एक प्रसिद्ध पेड़।

विशेष—इसकी पत्तियाँ आम की तरह लंबी लंबी और किनारों पर लहरदार होती है। इसमें सफेद मंजरी (मौर) लगती है जिसके झड़ जाने पर छोटे छोटे गोल फल लगते हैं जो पकने पर लाल होते हैं, पर खाए नहीं जाते। यह पेड़ बड़ा सुंदर और हरा भरा होता है, इससे इसे बगीचों में लगाते हैं। शुभ अवसरों पर इसकी पत्तियों की बंदनवारें बाँधी जाती हैं। यह शीतल, कसैला, कडुआ, मल को रोकनेवाला, रक्तदोष को दूर करनेवाला और कृमिनाशक समझा जाता है। इसकी छाल विशेषकर स्त्री रोगों में दी जाती है। इसके दो भेद होते हैं—एक के पत्ते रामफल के समान और फूल कुछ नारंगी रंग के होते हैं। यह फागुन में फूलता है। दूसरे के पत्ते लंबे लंबे और आम के पत्तों के समान होते हैं और इसमें सफेद फूल वसंत ऋतु में लगते हैं।

पर्या०—विशोक। मधुपुष्प। कंकेलि। वेलिक। रक्तपल्लव। रागपल्लव। हेमपुष्प। वंजुल। कर्णपूर। ताम्रपल्लव। वामांघ्रिघातन। राम। रामा। नट। पिंडी। पुष्प। पल्लवद्रुम। दोहलीक। सुभग। रोगितरु।

२. पारा। ३. भारतवर्ष का एक प्राचीन मौर्यवंशीय सम्राट्। ४. विष्णु का एक नाम [को०]। ५. बकुल वृक्ष [को०]। ६. प्रसन्नता। आह्लाद [को०]।

अशोकपुष्पमंजरी—संज्ञा स्त्री० [सं० **अशोकपुष्पमञ्जरी**] दंडक वृत्त का एक भेद जिसमें २८ अक्षर होते हैं और लघु गुरु का कोई नियम नहीं होता, जैसे—सत्यधर्म नित्य धारि व्यर्थ काम सर्व डारि भूरि कै करो कदा न निंद्य काम।

अशोकपूर्णिमा—संज्ञा स्त्री० [सं०] फाल्गुन की पूर्णिमा [को०]।

अशोकवनिकान्याय—संज्ञा पुं० [सं०] किसी कार्य को करने का कारण न बताया जानेवाला व्यवहार, जैसे—रावण ने सीता जी को अशोक के ही नीचे रहने का क्यों आदेश दिया ? इसका कारण नहीं बताया गया [को०]।

अशोकवाटिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वह बगीचा जिसमें अशोक के पेड़ लगे हों। २. शोक को दूर करने वाला रम्य उद्यान। ३. रावण का वह प्रसिद्ध बगीचा जिसमें उसने सीता जी को ले जाकर रखा।

अशोकषष्ठी—संज्ञा स्त्री० [सं०] चैत्र शुक्ला षष्ठी। इस दिन कामाख्या तंत्र के अनुसार पुत्रलाभार्थ षष्ठी देवी की पूजा की जाती है।

अशोका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कुटकी। २. अशोक की कली। ३. दे० 'अशोकषष्ठी'।

अशोकारि—संज्ञा स्त्री० [सं०] कदंब [को०]।

अशोकाष्टमी—संज्ञा स्त्री० [सं०] चैत्र शुक्ला अष्टमी।

विशेष—इस दिन पानी में अशोक के आठ पल्लव डालकर उसे पीने का विधान है तथा अशोक के फूल विष्णु को चढ़ाते हैं।

अशोच—संज्ञा पुं० [सं०] १. चिंता या परवाह का अभाव। २. शांति। ३. विनम्रता [को०]।

अशोच्य—वि० [सं०] शोक न करने योग्य। उ०—वे हैं अशोच्य, हाँ स्मरण योग्य हैं सबके।—साकेत, पृ० २२३।

अशोधित—वि० [सं०] बिना शोधन किया हुआ। बिना साफ किया हुआ। संस्काररहित [को०]।

अशोभक—वि० [सं०] माणिक्य का एक दोष [को०]।

अशोभन—वि० [सं०] असुंदर। अभद्र। सुंदर न लगनेवाला।

अशौच—संज्ञा पुं० [सं०] १. अपवित्रता। अशुद्धता। २. हिंदू शास्त्रानुसार अशौच की अवस्था।

विशेष—इन अवस्थाओं में अशौच माना जाता है-(क) मृतक-संस्कार के पश्चात् मृत के परिवार या सपिंडवालों में वर्णक्रमानुसार १०, १२, १५ और ३० दिन तक। (ख) संतान होने पर भी ऊपर के नियमानुसार। शोक के अशौच को सूतक और संतानोत्पत्ति के अशौच को वृद्धि कहते हैं। (ग) रजस्वला स्त्री को तीन दिन। (घ) मल, मूत्र, चांडाल या मुर्दे आदि का स्पर्श होने पर स्नानपर्यंत। अशौचावस्था में संध्या तर्पण आदि वैदिक कर्म नहीं किए जाते।

अशौचसंकर—संज्ञा पुं० [सं० **अशौचसङ्कर**] दो या दो से अधिक अशौचों का साथ होना, जैसे किसी परिवार में मृत्यु का अशौच लगा हो परंतु अशौच काल में ही बालक का जन्म हो जाय तो जन्म अशौच के कारण वहीं अशौचसंकर की स्थिति होगी [को०]।

अश्मंत[1]—संज्ञा पुं० [सं० **अश्मन्त**] १. चूल्हा। २. अमंगल। ३. मरण। ४. खेत। ५. एक मरुत् [को०]।

अश्मंत[2]—वि० १. अशुभ। अभागा। २. असीमित [को०]।

अश्मंतक—संज्ञा पुं० [सं० **अश्मन्तक**] १. मूँज की तरह एक घास जिससे प्राचीन काल में ब्राह्मण लोग मेखला अर्थात् करधनी बनाते थे। २. आच्छादन। छाजन। ढकना। ३. दीपाधार। दीवट। ४. पाषाणभेद। ५. लिसोढ़ा। ६. कचनार। ७. चूल्हा। भट्ठी [को०]।

अश्क—संज्ञा पुं० [फा०] अश्रु। आँसू। उ०—कल जो टुक रोया किसी की याद में वह गुलबदन। अश्क थे आँखों में या मोती कुचलकर भर दिए।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ३३२।

अश्म—संज्ञा पुं० [सं० **अश्मन्**] १. पर्वत। पहाड़। २. मेघ। बादल। ३. पत्थर। ४. सोनामक्खी। ५. लोहा।

अश्मक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन देश का नाम जो आजकल ट्रावंकोर (त्रिवांकुर) कहलाता है।

अश्मकदली—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का केला जो कड़ा तथा कम स्वादवाला होता है। काष्ठकदली। कठकेला [को०]।

अश्मकुट्ट—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार के वानप्रस्थ जो सिल, बट्टा या उखली आदि नहीं रखते थे, केवल पत्थर से अन्न कूटकर पकाते थे।

अश्मगर्भ—संज्ञा पुं० [सं०] पन्ना। मरकत।

अश्मगर्भज—संज्ञा पुं० [सं०] १. शिलाजीत। २. गेरू। ३. लोहा [को०]।

अश्मज—संज्ञा पुं० [सं०] शिलाजतु। शिलाजीत। २. मोमियाई। ३. लोहा।

अश्मभेद—संज्ञा पुं० [सं०] पखानभेद नाम की जड़ी जो मूत्रकृच्छ्र आदि रोगों में दी जाती है।

अश्मयोनि—संज्ञा पुं० [सं०] पन्ना [को०]।

अश्मर—वि० [सं०] पथरीला।

अश्मरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] मूत्ररोगविशेष। पथरी।

यौ०—अश्मरीघ्न = वरुण वृक्ष। बरना का पेड़।

अश्मसार—संज्ञा पुं० [सं०] लोहा।

अश्मा—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अश्म' [को०]।

अश्मीर—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अश्मरी' [को०]।

अश्मोत्थ—संज्ञा पुं० [सं०] शिलाजीत [को०]।

अश्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. आँसू। २. रक्त [को०]।

अश्रद्ध—वि० [सं०] श्रद्धा न रखनेवाला। विश्वास न रखनेवाला [को०]।

अश्रद्धा—संज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० **अश्रद्धेय**] श्रद्धा का अभाव।

अश्रद्धेय—वि० [सं०] अश्रद्धा के योग्य। घृणा के योग्य। बुरा।

अश्रप[1]—संज्ञा पुं० [सं०] राक्षस।

अश्रप[2]—वि० रक्त पीनेवाला। दुष्ट। अत्याचारी [को०]।

अश्रवण[1]—वि० [सं०] १. जो सुनता न हो। बहरा। २. कर्णहीन [को०]।

अश्रवण[2]—संज्ञा पुं० १. साँप। २. श्रवण शक्ति का अभाव। बहरापन [को०]।

अश्रांत—वि० [सं० **अश्रान्त**] १. श्रमरहित। स्वस्थ। जो थकामाँदा न हो। २. विरामरहित। लगातार। निरंतर। उ०—

चंद्रमा नभ में हँसता था बाज रही थी वीणा अश्रांत।—झरना, पृ० ७१।

अश्रांति—संज्ञा स्त्री० [सं० अश्रान्ति] श्रांति या थकावट का अभाव। उ०—संसारयात्रा में स्वपति की वे अटल अश्रांति हैं।—भारत०, पृ० ५६।

अश्राव्य—वि० [सं०] १.न सुनने योग्य। २.न कहने योग्य [को०]।

अश्रि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. (कोठरी, घर आदि का) कोना। २ अस्त्र शस्त्र की नोक। ३. धार।

अश्री—संज्ञा स्त्री०[सं०]१. अलक्ष्मी। दरिद्रा। २. दे० 'अश्रि' [को०]।

अश्रीक—वि० [सं०] १.शोभाहीन। जिसमें श्री न हो। २.भाग्यहीन। अभागा [को०]।

अश्रु—संज्ञा पुं०[सं०]मन के किसी प्रकार के आवेग के कारण आँखों में आनेवाला जल। आँसू। २. काव्य में अनुभाव के अंतर्गत सात्विक के नौ भेदों में से एक।

अश्रुकला—संज्ञा स्त्री० [सं०] अश्रुबिंदु [को०]।

अश्रुगैस—संज्ञा स्त्री० [सं० अश्रु+अं० गैस] एक प्रकार की गैस जिसका प्रयोग अनियमित भीड़ को तितर बितर करने के लिये शासन द्वारा किया जाता है।

अश्रुत—वि०[सं०]१. जो न सुना गया हो। अज्ञात। २.जिसने कुछ देखा सुना न हो। नातजर्बेकार। ३. अशिक्षित। अशास्त्रज्ञ मूर्ख [को०]।

अश्रुतपूर्व—वि० [सं०] १. जो पहले न सुना गया हो। २. अद्भुत। विलक्षण। अनोखा।

अश्रुति[1]—वि० [सं०] १. बिना कानवाला। श्रुति या श्रवणरहित।

अश्रुति[2]—संज्ञा स्त्री० १. न सुनना। अश्रवण। २.विस्मृति [को०]।

अश्रुतिधर—वि० [सं०] १.वेदों को न जाननेवाला। ध्यान से सुननेवाला। ध्यान न देनेवाला [को०]।

अश्रुपात—संज्ञा पुं० [सं०] आँसू गिराना। रुदन। रोना।

अश्रुमुख[1]—वि० [सं०] १. आँसुओं से भरा हुआ। रोता हुआ। २. रोनी सूरत का। रुआँसा।

अश्रुमुख[2]—संज्ञा पुं० ज्योतिष के अनुसार जिस नक्षत्रपर मंगल का उदय होता है, उसके १० वें, ११ वें, या १२ वें नक्षत्रपर यदि उसकी गति वक्र हो तो वह (वक्रगति) अश्रुमुख कहलाती है।

अश्रेय[1]—वि० [सं० अश्रेयस्] १. बुरा। खराब। २. कल्याणकर व्यर्थ। निकम्मा [को०]।

अश्रेय[2]—संज्ञा पुं० १. बुराई। खराबी। २. अकल्याण। ३. दुःख [को०]।

अश्रेष्ठ—वि० [सं०] १. जो श्रेष्ठ या उत्तम न हो। २.बुरा निकृष्ट [को०]।

अश्रौत—वि [सं०] जो श्रुति या वेदसंमत न हो [को०]।

अश्लाघ्य—वि०[सं०]१.जो श्लाघ्य न हो। अप्रशंसनीय। जो सराहने योग्य न हो। निम्न। निंद्य।

अश्लिष्ट—वि० [सं०] १. श्लेषशून्य। श्लेषरहित। २. असंबद्ध। असंगत।

अश्लील[1]—वि० [सं०] १.फूहड़। भद्दा। २. लज्जाजनक।

अश्लील[2]—संज्ञा पुं० १. साहित्यशास्त्र के अनुसार काव्यादि में ऐसे शब्दों का प्रयोग जिनसे व्रीडा, जुगुप्सा और अमंगल की अभिव्यक्ति होती हो। २. गँवारू भाषा।

अश्लीलता—संज्ञा स्त्री०[सं०]फूहड़पन। भद्दापन। गंदापन। लज्जा का उल्लंघन। निर्लज्जता। उ०—यो भक्ति रस भी सन गया अश्लीलता की नीड़ में।—भारत०, पृ० १२३।

विशेष—काव्य में यह दोष माना जाता है।

अश्लेष—वि०[सं०] श्लेषरहित। एकनिष्ठ। उ०—द्विस्वभाव अश्लेष में ब्राह्मण जाति अजेय।—रामचं०, पृ० १६०।

अश्लेषा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. राशिचक्र के २७ नक्षत्रों में से नवाँ नक्षत्र।

विशेष—यह नक्षत्र चक्राकार छः नक्षत्रों से मिलकर बना है। इसका देवता सर्प है और यह केतु ग्रह का जन्म नक्षत्र है। २.अलगाव। विच्छेद। विश्लेष [को०]।

अश्लेषाभव—संज्ञा पुं० [सं०] केतु ग्रह।

अश्वंत—वि० संज्ञा पुं० [सं अश्वन्त] दे० 'अश्मंत' [को०]।

अश्व—संज्ञा पुं० [सं०] १. घोड़ा। तुरंग। २. सात की संख्या [को०]। ३. पुरुष की एक जाति [को०]।

अश्वकंदा—संज्ञा स्त्री० [सं०अश्वकन्दा] अश्वगंधा [को०]।

अश्वक—संज्ञा पुं० [सं०] १. छोटा घोड़ा। २. लावारिस घोड़ा। ३. घोड़ा। ४. खराब जाति का घोड़ा।

अश्वकर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] १.एक प्रकार का शाल वृक्ष। २. लता शाल। ३. घोड़े का कान [को०]। ४. चिकित्सा शास्त्र में वर्णित एक प्रकार का अस्थिभंग [को०]।

अश्वकिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] अश्विनी नक्षत्र [को०]।

अश्वकुटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] घुड़साल [को०]।

अश्वकुशल—वि०[सं०] घोड़ा फेरनेवाला सवार। अश्वशिक्षक[को०]।

अश्वकोविद—वि० [सं०] दे० 'अश्वकुशल'।

अश्वक्रंद—संज्ञा पुं० [सं० अश्वक्रन्द] १. एक प्रकार का पक्षी। २. देवसेना का नायक [को०]।

अश्वक्रांता—संज्ञा स्त्री० [सं० अश्वक्रान्ता] संगीत में एक मूर्च्छना। इसका स्वरग्राम यों है—ग म प ध नि स रे ग म प ध नि।

अश्वखरज—संज्ञा पुं० [सं०] खच्चर [को०]।

अश्वखुर—संज्ञा पुं० [सं०] १. नख नामक सुगंधित द्रव्य। २.घोड़े का सुम [को०]।

अश्वखुरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] अपराजिता पौधे का नाम [को०]।

अश्वगंधा—संज्ञा स्त्री० [सं० अश्वगन्धा] असगंध।

अश्वगति—संज्ञा पुं० [सं०] १. छंदःशास्त्र में नील वृत्त का दूसरा नाम। यह पाँच भगण और एक गुरु का होता है, जैसे—भा शिव आनन गौरि जबै मन लाय लखी। लै गई ज्यों सुठि भूषण धारि वितान सखी। २, चित्र काव्य का एक चक्र जिसमें ६४ खाने होते हैं। ३. घोड़े की चाल [को०]।

अश्वगोयुग--संज्ञा पुं० [सं०] घोड़े की जोड़ी [को०]।

अश्वगोष्ठ--संज्ञा पुं० [सं०] घुड़साल। अस्तबल [को०]।

अश्वग्रीव--संज्ञा पुं० [सं०] कश्यप ऋषि की दनु नाम्नी स्त्री से उत्पन्न पुत्र। हयग्रीव।

अश्वघ्न--संज्ञा पुं० [सं०] कनेर का फूल तथा उसका पेड़ [को०]।

अश्वचक्र--संज्ञा पुं० [सं०] १. घोड़े के चिह्नों से शुभाशुभ का विचार। २. घोड़ों का समूह।

अश्वचिकित्सा--संज्ञा स्त्री० [सं०] वह शास्त्र जिसमें पशुओं के रोगों तथा उनकी चिकित्सा का विवरण होता है [को०]।

अश्वतर--संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० **अश्वतरी**] १. एक प्रकार का सर्प। नागराज। २. खच्चर। ३. बछड़ा [को०]। ४. गंधर्वों की एक जाति [को०]।

अश्वत्थ--संज्ञा पुं० [सं०] १. पीपल। २. पीपल का गोदा [को०]। ३. सूर्य का एक नाम [को०]। ४. पीपल में फल आने का काल [को०]। ५. अश्विनी नक्षत्र [को०]।

अश्वत्थक--संज्ञा पुं० [सं०] १. पीपल में फल लगने के समय अदा किया जानेवाला ऋण। २. पीपल वृक्ष।

अश्वत्था--संज्ञा स्त्री० [सं०] आश्विन की पूर्णिमा [को०]।

अश्वत्थाम--वि० [सं०] घोड़े के समान शक्तिवाला [को०]।

अश्वत्थामा--संज्ञा पुं० [सं० **अश्वत्थामन्**] १. द्रोणाचार्य के पुत्र। २. मालवा के राजा इंद्रवर्मा के एक हाथी का नाम जो महाभारत के युद्ध में मारा गया था।

अश्वत्थी--संज्ञा स्त्री० [सं०] १. छोटा पीपल। २. पीपल की तरह लगनेवाला एक छोटा वृक्ष [को०]।

अश्वदंष्ट्र--संज्ञा स्त्री० [सं०] गोखरू।

अश्वदूत--संज्ञा पुं० [सं०] घुड़सवार दूत [को०]।

अश्वनाय--संज्ञा पुं० [सं०] घोड़े का चरवाहा [को०]।

अश्वनिबंधिक--संज्ञा पुं० [सं० **अश्वनिबन्धिक**] अश्वपाल। साईस [को०]।

अश्वपति--संज्ञा पुं० [सं०] घुड़सवार। २. रिसालदार। ३. घोड़ों का मालिक। ४. भरत जी के मामा। ५. केकय देश के राजकुमारों की उपाधि।

अश्वपाल--संज्ञा पुं० [सं०] साईस।

अश्वपुच्छी--संज्ञा स्त्री० [सं०] माषपर्णी नामक पौधा [को०]।

अश्वबंध--संज्ञा पुं० [सं० **अश्वबन्ध**] चित्रकाव्य में वह पद्य जो घोड़े के चित्र में इस रीति से लिखा हो कि उसके अक्षरों से अंग प्रत्यंग तथा साजों और आभूषणों के रूप निकल आएँ।

अश्वबला--संज्ञा स्त्री० [सं०] मेथी [को०]।

अश्वबाल--संज्ञा पुं० [सं०] कास का पौधा।

अश्वभा--संज्ञा स्त्री० [सं०] बिजली [को०]।

अश्वमार--संज्ञा पुं० [सं०] कनेर का पेड़।

अश्वमारक--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अश्वमार' [को०]।

अश्वमाल--संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का साँप [को०]।

अश्वमुख--संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० **अश्वमुखी**] किन्नर।

विशेष--कहते हैं, किन्नरों का मुँह घोड़ों के समान होता है।

अश्वमेद(पु)--संज्ञा पुं० [सं० **अश्वमेध**] दे० 'अश्वमेध'। उ०--अश्वमेद राजसू। लंब गोषंग मेद बर।--पृ० रा०, ५५।४०।

अश्वमेध--संज्ञा पुं० [सं०] १. एक बड़ा यज्ञ।

विशेष--इसमें घोड़े के मस्तक पर जयपत्र बाँधकर उसे भूमंडल में घूमने के लिये छोड़ देते थे। उसकी रक्षा के निमित्त किसी वीर पुरुष को नियुक्त कर देते थे जो सेना लेकर उसके पीछे पीछे चलता था। जिस किसी राजा को अश्वमेध करनेवाले का आधिपत्य स्वीकृत नहीं होता था, वह उस घोड़े को बाँध लेता और सेना से युद्ध करता था। अश्व बाँधनेवाले को पराजित कर तथा घोड़े को छुड़ाकर सेना आगे बढ़ती थी। इस प्रकार वह घोड़ा संपूर्ण भूमंडल में घूमकर लौटता था, तब उसको मारकर उसकी चर्बी से हवन किया जाता था। यह यज्ञ केवल बड़े प्रतापी राजा करते थे। यह यज्ञ साल भर में होता था।

२. एक प्रकार की तान जिसमें षडज स्वर को छोड़कर शेष छह स्वर लगते हैं।

अश्वमेधिक[1]--वि० [सं०] अश्वमेध संबंधी [को०]।

अश्वमेधिक[2]--संज्ञा पुं० १. अश्वमेध के योग्य घोड़ा। २. महाभारत का चौदहवाँ पर्व [को०]।

अश्वमेधीय--वि० [सं०] दे० 'अश्वमेधिक' [को०]।

अश्वयुज[1]--वि० [सं०] १. जिसमें घोड़ा जुता हो। २. जो अश्विनी नक्षत्र में उत्पन्न हो [को०]।

अश्वयुज्[2]--संज्ञा स्त्री० १. अश्विनी नक्षत्र। २. आश्विन महीना। ३. रथ जिसमें घोड़े जुते हों [को०]।

अश्वयूप--संज्ञा पुं० [सं०] अश्वमेध के घोड़े को बाँधने का खूँटा [को०]।

अश्वयोग--वि० [सं०] घोड़े की तरह तेजी से पहुँचनेवाला [को०]।

अश्वरक्ष--संज्ञा पुं० [सं०] अश्वपाल [को०]।

अश्वरिपु--संज्ञा पुं० [सं०] भैंस [को०]।

अश्वरोधक--संज्ञा पुं० [सं०] कनेर।

अश्वल--संज्ञा पुं० [सं०] एक गोत्रकार ऋषि का नाम।

अश्वलक्षण--संज्ञा पुं० [सं०] घोड़े के शुभाशुभ लक्षणों का विचार [को०]।

अश्वललित--संज्ञा पुं० [सं०] अद्रितनया नामक वर्णवृत्त।

अश्वलाला--संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का साँप [को०]।

अश्ववक्त्र--संज्ञा पुं० [सं०] किन्नर [को०]।

अश्ववदन--संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन देश का नाम।

अश्ववह--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अश्ववाह' [को०]।

अश्ववार, अश्ववारक--संज्ञा पुं० [सं०] घुड़सवार [को०]।

अश्ववाह, अश्ववाहक--संज्ञा पुं० [सं०] घुड़सवार [को०]।

अश्वविद्[1]--वि० [सं०] १. घोड़ों का शिक्षक। २. घोड़े के लक्षणों को जाननेवाला [को०]।

अश्वविद्[2]--संज्ञा पुं० १. घुड़सवार। २. राजा नल [को०]।

अश्ववैद्य—संज्ञा पुं० [सं०] घोड़ों का वैद्य [को०]।

अश्वव्यूह—संज्ञा पुं० [सं०] वह व्यूह जिसमें कवचधारी (लोहे की पाखरवाले) घोड़े सामने और साधारण घोड़े पक्ष और कक्ष में हों।

अश्वशंकु—संज्ञा पुं० [सं० अश्वशङ्कु] घोड़ा बाँधने का खूँटा [को०]।

अश्वशक—संज्ञा पुं० [सं०] घोड़े की लीद [को०]।

अश्वशाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्थान जहाँ घोड़े रहें। घुड़साल। अस्तबल। तबेला।

अश्वशास्त्र—संज्ञा पुं० [सं०] वह शास्त्र जिसमें घोड़ों के शुभाशुभ लक्षणों एवं उनके रोगादि का वर्णन रहता है। शालिहोत्र [को०]।

अश्वसाद—संज्ञा पुं० [सं०] घुड़सवार [को०]।

अश्वसादी—संज्ञा पुं० [सं० अश्वसादिन्] दे० 'अश्वसाद' [को०]।

अश्वसूक्त—संज्ञा पुं० [सं०] वेद का एक सूक्त जिसमें घोड़ों का वर्णन है।

अश्वस्तन[1]—वि० [पुं०] वर्तमान दिवस संबंधी। केवल आज के दिन से संबंध रखनेवाला।

अश्वस्तन[2]—संज्ञा पुं० [वि० अश्वस्तनिक] वह गृहस्थ जिसे केवल एक दिन के खाने का ठिकाना हो। कल के लिये कुछ न रखनेवाला गृहस्थ।

अश्वस्तनिक—वि० [सं०] १. कल के लिये कुछ न रखनेवाला। २. आगे के लिये संचय न करनेवाला।

विशेष—यह एक प्रकार की ऋषिवृत्ति है।

अश्वस्तर—संज्ञा पुं० [सं०] घोड़े की पीठ पर रखा जानेवाला कपड़ा [को०]।

अश्वहृदय—संज्ञा पुं० [सं०] १. घोड़े का चिकित्साशास्त्र। शालिहोत्र। घुड़सवार [को०]।

अश्वांतक—संज्ञा पुं० [सं० अश्वान्तक] कनेर [को०]।

अश्वाक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] १. देवसर्षप नामक पौधा। २. घोड़े की आँख [को०]।

अश्वाजनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] चाबुक। कशा [को०]।

अश्वाध्यक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] घुड़सवार सेना का अध्यक्ष या नायक [को०]।

अश्वानीक—संज्ञा स्त्री० [सं०] घुड़सवार सेना। रिसाला [को०]।

अश्वायुर्वेद—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अश्वशास्त्र' [को०]।

अश्वारि—संज्ञा पुं० [सं०] १. भैंसा। महिष। २. करवीर। कनेर।

अश्वारूढ़—वि० [सं० अश्वारूढ़] जो घोड़े पर सवार हो [को०]।

अश्वारोह[1]—वि० [सं०] अश्वारूढ़ [को०]।

अश्वारोह[2]—संज्ञा पुं० १. घुड़सवार। २. घुड़सवारी [को०]।

अश्वारोहक—संज्ञा पुं० [सं०] असगंध नामक पौधा [को०]।

अश्वारोहण—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० अश्वारोही] घोड़े की सवारी।

अश्वारोही[1]—वि० [सं० अश्वारोहिन्] घोड़े की सवारी करनेवाला।

अश्वारोही[2]—संज्ञा पुं० घुड़सवार।

अश्वावतारी—संज्ञा पुं० [सं० अश्वावतारिन्] ३१ मात्राओं के छंदों की संज्ञा। वीर छंद इसी के अंतर्गत है।

अश्विनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. घोड़ी। २. २७ नक्षत्रों में से पहला नक्षत्र अश्वयुक्। दाक्षायणी। ३. जटामासी। बालछड़।

विशेष—तीन नक्षत्रों के मिलने से इसका रूप घोड़े के मुख के सदृश होता है।

अश्विनीकुमार—संज्ञा पुं० [सं०] त्वष्टा की पुत्री प्रभा नाम की स्त्री से उत्पन्न सूर्य के दो पुत्र।

विशेष—एक बार सूर्य के तेज को सहन करने में असमर्थ होकर प्रभा अपनी दो संतति यम और यमुना तथा अपनी छाया छोड़कर चुपके से भाग गई और घोड़ी बनकर तप करने लगी। इस छाया से भी सूर्य को दो संतति हुई। शनि और ताप्ती। जब छाया ने प्रभा की संतति का अनादर आरंभ किया, तब यह बात खुल गई कि प्रभा तो भाग गई है। इसके उपरांत सूर्य घोड़ा बनकर प्रभा के पास, जो अश्विनी के रूप में थी, गए। इस संयोग से दोनों अश्विनीकुमारों की उत्पत्ति हुई जो देवताओं के वैद्य हैं।

पर्या०—स्ववैद्य। दस्र। नासत्य। आश्विनेय। नासिक्य। गदागद। पुष्करस्रज। अश्विनीपुत्र। अश्विनीसुत।

अश्वियुगल—संज्ञा पुं० [सं०] दो कल्पित देवता जो प्रभात के समय घोड़ों या पक्षियों से जुते हुए सोने के रथ पर चढ़कर आकाश में निकलते हैं।

विशेष—कहते हैं कि यह लोगों को सुख सौभाग्य प्रदान करते हैं और उनके दुख तथा दरिद्रता आदि हरते हैं।—कहीं कहीं यही अश्विनीकुमार भी माने गए हैं। कहते हैं कि दधीचि से मधुविद्या सीखने के लिये इन्होंने उनका सिर काटकर अलग रख दिया था, और उनके धड़पर घोड़े का सिर रख दिया था; और तब उनसे मधुविद्या सीखी थी। वि० दे० 'दधीचि'।

अश्वियुज—संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष् में एक युग अर्थात् पाँच वर्ष का काल जिसमें क्रम से पिंगल, कालयुक्त, सिद्धार्थ, रौद्र और दुर्मति सवत्सर होते हैं।

अश्वीय[1]—वि० [सं०] अश्वसंबंधी [को०]।

अश्वीय[2]—संज्ञा पुं० घोड़ों का समूह [को०]।

अषडक्षीण[1]—वि० [सं०] जिसे छह आँखों ने न देखा हो अर्थात् दो ही व्यक्तियों को ज्ञात अथवा दृष्ट [को०]।

अषडक्षीण[2]—संज्ञा पुं० रहस्य। राज। [को०]।

अषाढ़ (पु)—संज्ञा पुं० [सं० अषाढ़] वह महीना जिसमें पूर्णिमा पूर्वाषाढ़ में तेढ़े। असाढ़। अषाढ़।

अषाढ़क—संज्ञा पुं० [सं० अषाढ़क] अषाढ़ का महीना [को०]।

अष्टंग (पु)—वि० [सं० अष्टङ्ग] दे० 'अष्टांग'। उ०—कहिय नृपति अष्टंग सुधि। रंजि राज फल गान।—पृ० रा०, २५।१३।

अष्टंगी (पु)—वि० [सं० अष्टाङ्गी] दे० 'अष्टांगी'।

अष्ट[1]—वि० [सं० अष्टन्] आठ।

अष्ट[2]—संज्ञा पुं० आठ की संख्या।

अष्टक—संज्ञा पुं० [सं०] १. आठ वस्तुओं का संग्रह, जैसे—हिंग्वष्टक। २. वह स्तोत्र या काव्य जिसमें आठ श्लोक हों, जैसे—रुद्राष्टक, गंगाष्टक। ३. वह ग्रंथावयव जिसमें आठ अध्याय आदि हों। ४. मनु के अनुसार एक गण जिसमें पैशुन्य, साहस, द्रोह, ईर्ष्या, असूया, अर्थदूषण, वाग्दंड और पारुष्य ये आठ अवगुण हैं। ५. पाणिनिकृत व्याकरण। अष्टाध्यायी। ६. आठ ऋषियों का एक गण।

अष्टकमल—संज्ञा पुं० [सं०] हठयोग के अनुसार मूलाधार से ललाट तक के आठ कमल जो भिन्न भिन्न स्थानों में माने गए हैं—मूलाधार, विशुद्ध, मणिपूरक, स्वाधिष्ठान, अनाहत (अनहद) आज्ञाचक्र, सहस्रारचक्र और सुरति कमल।

अष्टकर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्मा [को०]।

विशेष—चार मुख होने के कारण ब्रह्मा के आठ कान हैं, अतः इन्हें अष्टकर्ण कहा जाता है।

अष्टकर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह गाय जिसके कान पर आठ की संख्या (८) का चिह्न अंकित हो। उ०—ऋग्वेद में ऋषि नाभाने दिष्ठ हजार अष्टकर्णी गौएँ दान करने के कारण राजा सावर्णि की स्तुति करता है।—भा० प्रा० लि०, पृ० ११।

अष्टका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. अष्टमी। २. अगहन, पूस, माघ और फागुन महीने की कृष्ण अष्टमी। इस दिन श्राद्ध करने से पितरों की तृप्ति होती है। ३. अष्टमी के दिन का कृत्य। अष्टका याम। ४. अष्टका में कृत्य श्राद्ध।

अष्टकुल—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार सर्पों के आठ कुल; यथा—शेष, वासुकि, कंबल कर्कोटिक, पद्म, महापद्म, शंख और कुलिक। किसी किसी के मत से—तक्षक, महापद्म, शंख, कुलिक, कंबल, अश्वतर, धृतराष्ट्र और बलाहक हैं।

अष्टकुलाचल—संज्ञा पुं० [सं०] आठ प्रमुख पर्वत—नील, निषध, विंध्याचल, माल्यवान्, मलय, गंधमादन, हेमकूट और हिमालय [को०]।

अष्टकुली—वि० [सं०] साँपों के आठ कुलों में से किसी में उत्पन्न।

अष्टकृष्ण—संज्ञा पुं० [सं०] वल्लभ कुल के मतानुसार आठ कृष्ण, यथा—श्रीनाथ, नवनीतप्रिय, मथुरानाथ, बिट्ठलनाथ, द्वारकानाथ, गोकुलनाथ, गोकुलचंद्रमा और मदनमोहन।

अष्टकोण[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह क्षेत्र जिसमें आठ कोण हों। २. तंत्र के अनुसार एक यंत्र। ३. एक प्रकार का कुंडल जिसमें आठ कोण होते हैं।

अष्टकोण[2]—वि० आठ कोनेवाला। जिसमें आठ कोने हों।

अष्टगंध—संज्ञा पुं० [सं० **अष्टगन्ध**] आठ सुगंधित द्रव्यों का समाहार। दे० 'गंधाष्टक'।

अष्टछाप—संज्ञा पुं० [सं० **अष्ट**+हिं० **छाप**] वल्लभ संप्रदाय के प्रसिद्ध अष्ठ कवियों का वर्ग; जिनके नाम हैं—सूरदास, कुंभनदास, परमानंददास, कृष्णदास, छीतस्वामी, गोविंदस्वामी, चतुर्भुजदास और नंददास।

अष्टताल—संज्ञा पुं० [सं०] ताल के आठ प्रकार—आड़, दोज, ज्योति, चंद्रशेखर गंजन, पंचताल, रूपल और समताल।

अष्टदल[1]—संज्ञा पुं० [सं०] आठ पत्तों का कमल।

अष्टदल[2]—वि० १. आठ दल का। २. आठ कानों का। आठ पहल का।

अष्टद्रव्य—संज्ञा पुं० [सं०] आठ द्रव्य जो हवन के काम आते हैं—अश्वत्थ, गूलर, पाकर, वट, तिल, सरसों, पायस और घी।

अष्टधाती—वि० [सं० **अष्ट**+**धातु**] १. अष्टधातुओं से बना हुआ। २. दृढ़। मजबूत। ३. उत्पाती। उपद्रवी। ४. जिसके मातापिता का ठीक ठिकाना न हो। वर्णसंकर।

अष्टधातु—संज्ञा स्त्री० [सं०] आठ धातुएँ—सोना, चाँदी, ताँबा, राँगा, जस्ता, सीसा, लोहा और पारा।

अष्टनायिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] आठ नायिकाएँ।

विशेष—पुराणानुसार आठ प्रधान शक्तियाँ—उग्रचंड, प्रचंडा, चंडोग्रा, चंडनायिका, चामुंडा, चंडा, अतिचंडा और चंडवती। कृष्ण की आठ पटरानियाँ—रुक्मिणी, सत्यभामा, जांबवती, कालिंदी, मित्रवृंदा, नाग्नजिती, भद्रा और लक्ष्मणा। इंद्र की आठ नायिकाएँ—उर्वशी, मेनका, रंभा, पूर्वचित्ती, स्वयंप्रभा, मिश्रकेशी, जनवल्लभा और घृताची (तिलोत्तमा)। साहित्य में वर्णित आठ नायिकाएँ—वासकसज्जा, विरहोत्कंठिता, स्वाधीनभर्तृका, कलहांतरिता, खंडिता, विप्रलब्धा, प्रोषितभर्तृका और अभिसारिका कही गई हैं।

अष्टपद—संज्ञा पुं०, वि० [सं०] दे० 'अष्टपाद'।

अष्टपदी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. आठ पदों का एक समूह। एक प्रकार का गीत जिसमें आठ पद होते हैं। २. बेला नाम का फूल या उसका पौधा।

अष्टपाद[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. शरभ। शार्दूल। २. लूता। मकड़ी। ३. आठ अंगोंवाला एक जंतु। ४. अर्गला। सिटकिनी [को०]। ५. कैलास पर्वत [को०]। ६. सोना। स्वर्ण। ७. कपड़े की बनी बिसात [को०]। ८. एक कीट [को०]। ९. जंगली चमेली [को०]।

अष्टपाद[2]—वि० आठ पैरोंवाला [को०]।

अष्टप्रकृति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. शुक्रनीति के अनुसार राज्य के ये आठ प्रधान कर्मचारी—सुमंत्र, पंडित, मंत्री, प्रधान अमात्य, प्राड्विवाक और प्रतिनिधि।

विशेष—महाभारत, मनुस्मृति आदि में पहले सात ही अंग कहे गए हैं।

२. राज्य के आठ अंग—राजा, राष्ट्र, अमात्य, दुर्ग, सेना, कोष, सामंत तथा प्रजा। ३. शरीर की आठ प्रकृति—क्षिति, जल, पावक, गगन, समीर, मन, बुद्धि, और अहंकार।

अष्टप्रधान—संज्ञा पुं० [सं०] राज्य के आठ प्रकार के प्रधान जैसे—वैद्य, उपाध्याय, सचिव, मंत्री, प्रतिनिधि, राजाध्यक्ष, प्रधान और अमात्य। शिवाजी के अष्टप्रधान ये थे—प्रधान, अमात्य, सचिव, मंत्री, लिपिक या लेखक, न्यायाधीश, सेनापति, और न्यायशास्त्री [को०]।

अष्टभुजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा।

अष्टभुजी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अष्टभुजा'।

अष्टभैरव—संज्ञा पुं० [सं०] शिव के आठ गण जिनके नाम हैं; असितांग, संहार, रुरु, काल, क्रोध, ताम्रचूड़, चंद्रचूड़ तथा महाभैरव [को०]।

अष्टमंगल—संज्ञा पुं० [सं० **अष्टमङ्गल**] १. आठ मंगलद्रव्य या पदार्थ—सिंह, वृष, नाग, कलश, पंखा, वैजयंती, भेरी और दीपक। किसी किसी के मत से—ब्राह्मण, गो, अग्नि, सुवर्ण, घी, सूर्य, जल और राजा हैं। २. एक घृत जो वच, कुट, ब्राह्मी, सरसों, पीपल, सारिवा, सेंधा नमक और घी इन आठ औषधियों से बनाया जाता है।

अष्टम—वि० पुं० [सं०] आठवाँ । उ०—सप्तम चेतनता लहै सोइ । अष्टम मास सँपूरन होइ ।—सूर० १।३१४ ।

अष्टमान—संज्ञा पुं० [सं०] आठ मुट्ठी का एक परिमाण अर्थात् एक कुडव ।

अष्टमिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. आधे पल या दो कर्ष का परिमाण। २. चार तोले का एक परिमाण ।

अष्टमी[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. शुक्ल और कृष्ण पक्ष के भेद से आठवीं तिथि । आठैं । २. क्षीरकाकोली । पयस्वा ।

अष्टमी[2]—वि० स्त्री० [सं०] आठवीं ।

अष्टमुष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक माप । कुंचि [को०] ।

अष्टमूर्ति—संज्ञा पुं० [सं०] १. शिव । उ०—गनिये जु जीव आधार पुनि अष्ट (म) मूर्ति इनतें कहत ।—शकुंतला, पृ० ३ । २. शिव की आठ मूर्तियाँ क्षिति. जल, तेज वायु. आकाश, जयमान, अर्क और चंद्र, अथवा सर्व, भव, रुद्र, उग्र, भीम, पशुपति, ईशान और महादेव ।

अष्टलोह—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अष्टधातु' [को०] ।

अष्टवर्ग—संज्ञा पुं० [सं०] जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, ऋद्धि और वृद्धि, इन आठ ओषधियों का समाहार । २. ज्योतिष का गोचरविशेष । ३. नीतिशास्त्र के अनुसार किसी राज्य के ऋषि, बस्ती (बाजार आदि), दुर्ग, सेतु, हस्तिबंधन, खान, करग्रहण और सैन्यसंस्थापन का समूह ।

अष्टश्रवण—संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्मा [को०] ।

अष्टश्रवा—संज्ञा पुं० [सं० **अष्टश्रवस्**] दे० 'अष्टश्रवण' [को०] ।

अष्टसिद्धि—संज्ञा स्त्री० [सं०] योग द्वारा प्राप्त होनेवाली आठ अलौकिक शक्तियाँ जिनके नाम हैं अणिमा, महिमा, लघिमा, गरिमा, प्राप्ति, प्रकाम्य, ईशित्व तथा वशित्व [को०] ।

अष्टांग[1]—संज्ञा पुं० [सं० **अष्टाङ्ग**][वि० स्त्री० **अष्टांगी**] १. योग की क्रिया के आठ भेद—यम, नियम, आसन प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि । उ०—भक्ति पंथ कौं जो अनुसरै । सो अष्टांग जोग कौं करै ।—सूर० १।३६४ । २. आयुर्वेद के आठ विभाग शल्य, शालाक्य, कायचिकित्सा, भूतविद्या कौमारभृत्य, अगदतंत्र, रसायनतंत्र और वाजीकरण । ३. शरीर के आठ अंग-जानु, पद, हाथ, उर, शिर, वचन, दृष्टि, बुद्धि, जिनसे प्रणाम करने का विधान है । ४. अर्घविशेष जो सूर्य को दिया जाता है । इसमें जल, क्षीर, कुशाग्र, घी, मधु, दही, रक्त चंदन और करवीर होते हैं ।

अष्टांग[2]—वि० १. आठ अवयववाला । २. अठपहल ।

अष्टांगमार्ग—संज्ञा पुं० [सं० **अष्टाङ्गमार्ग**] बुद्ध द्वारा प्रतिपादित दुःख से त्राण दिलानेवाला आठ सूत्रों का मार्गः—सम्यग्दृष्टि सम्यग्संकल्प, सम्यग्वाक्, सम्यक्कर्म, सम्यगाजीव, सम्यग्व्यायाम, सम्यक्स्मृति, सम्यक्समाधि [को०] ।

अष्टांगयोग—संज्ञा पुं० [सं० **अष्टांगयोग**] दे० 'अष्टांग[1]' [को०] ।

अष्टांगायुर्वेद—संज्ञा पुं० [सं० **अष्टाङ्गायुर्वेद**] दे० 'अष्टांग[2]' [को०] ।

अष्टांगी—वि० [सं० **अष्टाङ्गिन्**] आठ अंगवाला ।

अष्टाकपाल—संज्ञा पुं० [सं०] मिट्टी के आठ बरतनों या खप्परों में पकाया हुआ पुरोडाश । २. वह यज्ञ जिसमें अष्टाकपाल पुरोडाश काम में लाया जाय ।

अष्टाकुल—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अष्टकुल' । उ०—पारथ-सीस सोधि अष्टाकुल, तब जदुनंदन ल्याये ।—सूर० १।२६ ।

अष्टाक्षर[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. आठ अक्षरों का मंत्र । २. विष्णु भगवान् का मंत्र—'ॐ नमो नारायण' । ३. वल्लभ कुल के मतवालों के मत से 'श्रीकृष्णः शरणं मम' ।

अष्टाक्षर[2]—वि० आठ अक्षरों का । आठ अक्षरवाला ।

अष्टादस(पु)—वि० [सं० **अष्टादश**] अठारह । उ०-रोमराजि अष्टादस भारा । अस्थि सैल सरिता नस जारा ।—मानस, ६।१५।

अष्टाध्यायी—संज्ञा स्त्री० [सं०] पाणिनीय व्याकरण का प्रधान ग्रंथ जिसमें आठ अध्याय हैं ।

अष्टापद—संज्ञा पुं० [सं०] १. सोना । २. शरभ । उ० -बर विद्या सी आनंद दानि । युत अष्टापद मनु शिवा मानि ।-राम च० पृ०, १०० । ३. लूता । मकड़ी । ४. कृमि । ५. कैलास । ६. धतूरा ।

अष्टावक्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक ऋषि । २. वह मनुष्य जिसके हाथ पैर आदि कई अंग टेढ़े मेढ़े हों ।

अष्टाश्रि[1]—वि० [सं०] आठ कोनेवाला । अठकोना ।

अष्टाश्रि[2]—संज्ञा पुं० वह घर जिसमें आठ कोन हों ।

अष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सोलह अक्षर की एक वृत्ति जिसके चंचला, चकिता, पंचचामर आदि बहुत भेद हैं । २. सोलह की संख्या । ३. खेलने की बिसात [को०] । ४. बीज [को०] । ५. फल का गूदा । गिरी [को०] ।

अष्टी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दीपक राग की एक रागिनी ।

अष्ठि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. गुठली । २. बीज [को०] ।

अष्ठीला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. एक रोग जिसमें मूत्राशय में अफरा होने से पेशाब नहीं होता और गाँठ पड़ जाती है जिससे मलावरोध होता है और वस्ति में पीड़ा होती है । २. पत्थर की गोली । ३. गूदा । गिरी [को०] । ४. बीजान्न [को०] ।

अष्ठीलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. एक प्रकार का घाव । २ पत्थर का टुकड़ा [को०] ।

असंक(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अशंक' । उ०—डहकि डहकि परिचेहु सब काहू । अति असंक मन सदा उछाहू ।—मानस, १।१३७ ।

असंका(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० **आशङ्का**] संदेह । शुबहा । शक । उ०—अस बिचारि सब तजहु असंका । सबहि भाँति संकरु अकलंका । —मानस १।७२ ।

असंकुल[1]—वि० [सं० **असङ्कुल**] जहाँ जनसमूह न हो । खुला हुआ । प्रशस्त । चौड़ा [को०] ।

असंकुल[2]—संज्ञा पुं० १. राजमार्ग । चौड़ी सड़क [को०] ।

असंक्रांत[1]—वि० [सं० **असङ्क्रान्त**] जो स्थानांतरित न हुआ हो । जिसका स्थान बदला न हो [को०] ।

असंक्रांत[2]—संज्ञा पुं० अधिक मास । मलमास [को०] ।

असंक्रांतिमास—संज्ञा पुं० [सं० **असङ्क्रान्तिमास**] बिना संक्रांति का महीना । अधिकमास । मलमास ।

असंख(पु)--वि० [हिं०] दे० 'असंख्य'। उ०—मधुर उठती हैं तान असंख।--झरना, पृ० ४४।

असंख्य--वि० [सं० असङ्ख्य] जिसकी गिनती न हो सके। अनगिनत। बेशुमार। बहुत अधिक। उ०—लहरें व्योम चूमती उठतीं, चपलाएँ असंख्य नचतीं।--कामायनी, पृ० १६।

असंख्यक--वि० [सं० असङ्ख्यक] दे० 'असंख्य'। उ०—बल से असंख्यक आर्य यों इसलाम में लाये गये।--भारत०, पृ० ७६।

असंख्यात--वि० [सं० असङ्ख्यात] संख्यातीत। जो गिना न जा सके [को०]।

असंख्येय१--वि० [सं० असङ्ख्येय] संख्यातीत। अनगिनत [को०]।

असंख्येय२--संज्ञा पुं० १. अत्यंत बड़ी संख्या। २. शिव का एक नाम। ३. विष्णु [को०]।

असंग१--वि० [सं० असङ्ग] १ बिना साथ का। अकेला। एकाकी। २. किसी से वास्ता न रखनेवाला। न्यारा। निर्लिप्त। मायारहित। उ०—(क) मन मैं यहै बात ठहराई। होइ असंग भजौं जदुराई।—सूर० (शब्द०)। (ख) भस्म अंग मर्दन अनंग, संतत असंग हर। सीस गंग, गिरिजा अधंग, भूषन भुअंगवर।--तुलसी (शब्द०)। ३. जुदा। अलग। पृथक्। उ०--चंद्रकला च्वै परी, असंग गंग ह्वै परी, भुजंगी भाजि औ परी, बरंगी के बरत ही।--देव (शब्द०)।

असंग२--संज्ञा १.पुं० पुरुष। आत्मा। २.सपर्काभाव। निर्लिप्तता [को०]।

असंगचारी--वि० [सं० असङ्गचारिन्] आजादी से घूमनेवाला [को०]।

असंगत--वि० पुं०[सं० असङ्गत] १. अयुक्त। बेठीक। २.अनुचित। उ०--भ्रम भोयौ मन भयौ पखावज चलत असंगत चाल।--सूर० १। १५३। ३. असमान। बेमेल [को०]। ४. जो प्रसंगविरुद्ध हो। अप्रासंगिक [को०]। ५.असंस्कृत। गँवार। उजड्ड [को०]।

असंगति--संज्ञा स्त्री० [सं० असङ्गति] १. असंबंध। बेसिलसिलापन। २. अनुपयुक्तता। नामुनासिबत। ३.एक काव्यालंकार जिसमें कार्यकारण के बीच देश-काल-संबंधी अन्यथात्व दिखाया जाय, अर्थात् सृष्टिनियम के विरुद्ध कारण कहीं बताया जाय और कार्य कहीं; किसी नियत समय में होनेवाले कार्य का किसी दूसरे समय में होना दिखाया जाय। उ०—'हरत कुसुम छबि कामिनी, निज अंगन सुकुमार। मार करत यह कुसुमसर, युवकन कहा विचार।' यहाँ फूलों की शोभा हरण करने का दोष स्त्रियों ने किया; उसका दंड उनको न देकर कामदेव ने युवा पुरुषों को दिया।

विशेष—कुवलयानंद में और दो प्रकार से असंगति का होना माना गया है। एक तो एक स्थान पर होनेवाले कार्य के दूसरे स्थान पर होने से, जैसे—'तेरे अँग की अंगना, तिलक लगायो पानि'। दूसरे, किसी के उस कार्य के विरुद्ध कार्य करने से जिसके लिये वह उद्यत हुआ हो; जैसे—'मोह मिटावन हेतु प्रभु, लीन्हो तुम अवतार। उलटो मोहन रूप धरि, मोह्यो सब ब्रजनार।'

असंगतिप्रदर्शन--संज्ञा पुं० [सं० असङ्गतिप्रदर्शन] १. तर्क के क्रम में अंत में ऐसी बात कह देना या ऐसे निष्कर्ष पर पहुँचना जो मूल प्रतिपाद्य का विरोधी हो। २.दोष दिखाना।

असंगम१—संज्ञा पुं० [सं० असङ्गम] १.संग का अभाव। २. अनासक्ति। ३.बेमेलपन [को०]।

असंगम२--वि० १. अलग। २. बेमेल [को०]।

असंगी—वि० [सं० असङ्गिन्] १. बिना लगाव का। असंबद्ध। २. संसार से विरक्त [को०]।

असंचय१—संज्ञा पुं० [सं० असञ्चय] एकत्र करने की कमी। संचय का अभाव [को०]।

यौ०—असंचयशील = संचय करने की जिसकी आदत न हो या जो संचय न करता हो।

असंचय२—वि० आवश्यक वस्तुओं से हीन। संभाररहित [को०]।

असंचयिक—वि० [सं० असञ्चयिक] जो संचय न करे [को०]।

असंचयी--वि० [सं० असञ्चयिन्] संचय न करनेवाला [को०]।

असंचर—संज्ञा पुं० [असञ्चर] वह मार्ग जिसपर सब लोग नहीं चलते। सर्वसाधारण के लिये निषिद्ध पथ अथवा स्थान [को०]।

असंजोग(पु)--संज्ञा पुं० [सं० असंयोग] संबंध या संपर्क का अभाव। असंबंध। उ०--असंजोग ते कहुँ कहुँ एक अर्थ कविराई भिखारी ग्रं०, भा० २, पृ० ७।

असंज्ञ--वि० [सं०] संज्ञारहित। चेतनारहित [को०]।

असंज्ञा--संज्ञा स्त्री० [सं०] १. संज्ञाहीनता। २. सामंजस्य का अभाव [को०]।

असंज्वर—वि० [सं०] क्रोध, शोक, द्वेष, रोग, आदि विकारों से रहित [को०]।

असंत—वि०[सं० असन्त] बुरा। खल। दुष्ट। उ०—संत—असंत भेद बिलगाई। प्रनतपाल मोहि कहहु बुझाई।—मानस, ७।३७।

असंतति--वि० [सं० असन्तति] जिसे संतति या बाल बच्चे न हों। निःसंतान।

असंतान—वि० [सं० असन्तान] संतानविहीन। जिसे पुत्र या पुत्री न हो [को०]।

असंतुष्ट—वि [सं० असन्तुष्ट] १. जो संतुष्ट न हो। २. अतृप्त। जिसका मन न भरा हो। जो अघाया न हो। ३. अप्रसन्न।

असंतुष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं० असन्तुष्टि] १.संतोष का अभाव। २. अतृप्ति। ३. अप्रसन्नता।

असंतोष—संज्ञा पुं० [सं० असन्तोष] [वि० असंतोषी] १. संतोष का अभाव। अधैर्य। २.अतृप्ति। ३. अप्रसन्नता।

असंतोषी—वि० [सं० असन्तोषिन्] [वि० स्त्री० असन्तोषिणी] जिसे संतोष न हो। जिसका मन न भरे। जो तृप्त न हो।

असंदिग्ध—वि० [सं० असन्दिग्ध] १. संदेह से परे। जिसके विषय में संदेह या आशंका की गुंजाइश न हो। २. निश्चित [को०]।

असंध—वि० [सं० असन्ध] १.जिसमें जोड़ न हो। २.अमीलित। ३. जिसके खंड या टुकड़े न हुए हों।

असंधि१—वि० [सं० असन्धि] १.जिनमें आपस में संधि न हुई हो। संधिहीन (शब्द०)। २. अनमिल। स्वतंत्र [को०]।

असंधि२—संज्ञा स्त्री० १. संधि का अभाव। २. मेल या संबंध का अभाव [को०]।

असंपत्ति¹--संज्ञा स्त्री० [सं० **असम्पत्ति**] १. दुर्भाग्य । २.सफलता या संपत्ति का अभाव [कौ०] ।

असंपत्ति²--वि० अभागा । दरिद्र [कौ०] ।

असंपर्क-संज्ञा पुं०[सं० **असम्पर्क**]संबंध न होना । संबंध का अभाव [कौ०]।

असंपर्की--वि० [सं० **अ + सम्पर्किन्**] संपर्क या संबंध न रखनेवाला ।

असंपूर्ण--वि० [सं० **असम्पूर्ण**] अधूरा । जो पूरा न हो । अपूर्ण [कौ०]।

असंपृक्त--वि० [सं० **असम्पृक्त**] जो किसी के संपर्क में न हो। तटस्थ।

असंप्रज्ञात--वि० [सं० **असम्प्रज्ञात**] जो पूर्ण रूप से ज्ञात न हो। अधूरे रूप में जाना हुआ ।

असंप्रज्ञातसमाधि--संज्ञा स्त्री० [सं० **असम्प्रज्ञातसमाधि**] योग की दो समाधियों में से एक जिसमें न केवल बाहरी विषयों की बल्कि ज्ञाता और ज्ञेय की भावना भी लुप्त हो जाय। निर्विकल्प समाधि ।

असंबंध¹--संज्ञा पुं०[सं० **असम्बन्ध**]संबंधहीनता । संबंध का न होना [कौ०] ।

असंबध²--वि० असंबद्ध [कौ०] ।

असंबद्ध--वि० [सं० **असम्बद्ध**] १.जो मिला न हो। जो मेल में न हो। २. बिलगाव । पृथक् । अलग । ३.अनमिल । बेमेल । बिना सिर पैर का । अंडबंड ।

यौ०--असंबद्धप्रलाप ।

असंबंधातिशयोक्ति--संज्ञा स्त्री० [सं० **असम्बन्धातिशयोक्ति**] अतिशयोक्ति अलंकार का एक भेद जिसमें प्रस्तुत या वर्णनीय की तुलना में अप्रस्तुत या अवर्णनीय को हीन और अयोग्य सिद्ध किया जाता है। जैसे--अति सुंदर मुख लखि तिय तेरो। आदर हम न करत ससि केरो। पद्माकर ग्रं०, पृ० ४० ।

असंबाध--वि० [सं० **असम्बाध**] १.बिना बाधा का । अभाव । २. मुक्त । ३. जो सँकरा न हो । चौड़ा । विस्तृत । ४. सन्नाटा । ५. जिसमें कोई दुःख या कष्ट न हो । कष्टहीन [कौ०]।

असंबाधा--संज्ञा स्त्री० [सं० **असम्बाध**] एक वर्णवृत जिसके प्रत्येक चरण में मगण, तगण, नगण, सगण और दो गुरु होते हैं। SSS, SS I, III, IIS, SS जैसे--माता नासो गंग कठिन भव की पीरा । जाते ह्वै निःसंक भवति तुमरे तीरा। गावौं तेरी ही गुण निस दिन बेबाधा । पावों जाते बेगि सुभगति असबाधा ।

असंभⓊ--वि० [हिं०] दे० 'असंभव' । उ०--मुनि आनंदचौ चंद चित, कीन मंत आरंभ, जप्य जाप हृवि होम सब, लग्यौ कज्ज असंभ ।--पृ० रा०, ६ । १४६ ।

असंभव¹--वि० [सं० **असम्भव**] जो संभव न हो । जो हो न सके । अनहोना । नामुमकिन । उ०--जायँ वे इस गेह ही से रूठ, यह असंभव, भूठ, निश्चय भूठ ।--साकेत पृ० १७८ ।

असंभव²--संज्ञा पुं० १. एक काव्यालंकार जिसमें यह दिखाया जाय कि जो बात हो गई है उसका होना असंभव था । उ०--किहि जानी जलनिधि अति दुस्तर । पीवहिं घटज, उलंघहिं बंदर । (शब्द०) । २. अनस्तित्व । न होना [कौ०] । ३. अनहोनी । असंभवता [कौ०] ।

असंभव्य--वि० [सं० **असम्भव्य**] १. जिसका होना संभव न हो। २.समझ में न आने योग्य [कौ०]।

असंभारⓊ--वि० [सं० **अ = नहीं + सम्भार**] १ जो सँभालने योग्य न हो। जिसका प्रबंध न हो सके । २.अपार । बहुत बड़ा । उ०--बिरहा समुद भरा असँभारा । भौंर मेलि जिउ लहरिन्ह मारा ।--जायसी ग्रं०, पृ० ७४ ।

असंभावⓊ--वि० [सं० **असम्भाव्य, प्रा० असंभव्व**] जो संभव न हो । अनहोना । उ०--असंभाव बोलत आई है ढीठ ग्वालिनी प्रात । ऐसो नाहिं अचगरौ मेरो कहा बनावति बात ।--सूर०, १०।२६० ।

असंभावना--संज्ञा स्त्री० [सं० **असम्भावना**] [वि० **असंभावित, असंभाव्य**] संभावना का अभाव । अनहोनापन । अप्रतिरूपता । उ०--भइ रघुपति पद प्रीति प्रतीती दारुन असंभावना बीती ।--मानस, १ । ११६ ।

असंभावनीय--वि० [सं० **असम्भावनीय**] दे० 'असंभाव्य' ।

असंभावित--वि० [सं० **असम्भावित**] जिसकी संभावना न रही हो । जिसके होने का अनुमान न किया गया हो । अनुमान-विरुद्ध ।

असंभावी--वि० [सं० **असम्भाविन्**] जिसका होना असंभव हो । भविष्य में जिसका होना नामुमकिन हो [कौ०] ।

असंभाव्य--वि० [सं० **असम्भाव्य**] १. जिसकी संभावना न हो। अनहोना । उ०--क्या असंभाव्य हो यह राघव के लिये धार्य ।--अपरा, पृ० ४४ । २. जो समय में आने योग्य न हो। दुर्बोध [कौ०]।

असंभाष्य¹--वि०[सं० **असम्भाष्य**]१. न कहे जाने योग्य । न उच्चारण करने योग्य । २. जिससे बातचीत करना उचित न हो । बुरा ।

असंभाष्य²--संज्ञा पुं० बुरा वचन । खराब बात ।

असंभूति--संज्ञा स्त्री० [सं० **असम्भूति**] १. अस्तित्वहीनता । संभूति का अभाव । २. पुनर्जन्म न होना । ३. असंभवता । ४. अनहोनी घटना । ५. अव्याकृति प्रकृति [कौ०] ।

असंभृत--वि० [सं० **असम्भृत**] १. अयत्नसिद्ध । सहज । २. जिसका पोषण सम्यक् रीति से न हुआ हो [कौ०] ।

असंभोज्य--वि० [सं० **असम्भोज्य**] जिसके साथ बैठकर खाना वर्जित हो [कौ०] ।

असंभ्रम¹--संज्ञा पुं०[सं० **असम्भ्रम**]हड़बड़ी या अधीरता का अभाव । धीरता [कौ०] ।

असंभ्रम²--वि० धीर । स्वस्थचित्त । अनुद्विग्न [कौ०] ।

असंयत--वि०[सं०]संयमरहित । जो नियमबद्ध न हो । क्रमशून्य ।

असंयम--संज्ञा पुं० [सं०] संयम का अभाव । इंद्रियों को वश में न रखना ।

असंयमी--वि० [सं० **असंयमिन्**] जो संयमी न हो ।

असंयुक्त--वि० [सं०] न मिला हुआ । विभक्त । अलग [कौ०] ।

असंयुत¹--वि० [सं०] दे० 'असंयुक्त' ।

असंयुत²--संज्ञा पुं० विष्णु का एक नाम [कौ०] ।

असंयोग--संज्ञा पुं० [सं०] १.अवसर या योग का अभाव । २. संमिलन का अभाव [कौ०] ।

असंरोध—संज्ञा पुं० [सं०] हानि का न होना । अक्षति [को०] ।

असंलक्ष्य—वि० [सं०] जिसे लक्षित न किया जा सके । दुर्बोध्य [को०] ।

असंलक्ष्यक्रमव्यंग्य—संज्ञा पुं० [सं० **असंलक्ष्यक्रमव्यंग्य**] विवक्षिता-न्यपरवाच्य ध्वनि का एक भेद जिसमें रसरूप लक्ष्य तक पहुँचने के क्रम का पता नहीं चलता, यद्यपि क्रम का निर्वाह वहाँ भी होता है; इसे रसध्वनि भी कहते हैं ।

असंवर—वि० [सं०] छिपाने के अयोग्य । अनाच्छादित [को०] ।

असंवृत[1]—वि० [सं०] अनाच्छादित । अरक्षित । खुला हुआ [को०] ।

असंवृत[2]—संज्ञा पुं० [सं०] नरकविशेष [को०] ।

असंवैधानिक—वि० [सं०] संविधान के प्रतिकूल ।

असंव्यवहित—वि० [सं०] (देशकाल के) व्यवधान से रहित [को०] ।

असंशय[1]—वि० [सं०] १. संशयरहित । निर्विवाद । निश्चित । २. यथार्थ । ठीक ।

असंशय[2]—क्रि० वि० निःसंदेह । बेशक ।

असंश्रव—वि० [सं०] जहाँ साफ साफ सुनाई न दे [को०] ।

असंश्लिष्ट[1]—वि० [सं०] जो मिला हुआ न हो । पृथक् । अलग [को०] ।

असंश्लिष्ट[2]—संज्ञा पुं० [सं०] शिव [को०] ।

असंषित्त(पु)—वि० [सं० **असंक्षिप्त** प्रा० **असंषित्त**] विस्तृत । प्रचुर । विपुल । उ०—गजं बाज लूटे असंषित्त मालं । लियौ संग्रहे अस्सपत्ती भुआलं ।—पृ० रा०, ५७।२०६ ।

असंसक्त—वि० [सं०] १. जो संसक्त न हो । आसक्तिरहित । अनासक्त । २. विभक्त [को०] ।

असंसक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. लगाव का न होना । निर्लिप्तता । २. विरक्ति । सांसारिक विषयवासनाओं का त्याग ।

असंसारी—वि० [सं० **असंसारिन्**] १. संसार से अलग रहनेवाला । विरक्त । २. संसार से परे । अलौकिक ।

असंसृति—संज्ञा स्त्री० [सं०] संसृति का अभाव । मुक्ति [को०] ।

असंसृष्ट—वि० [सं०] संसृष्टि से रहित । संबंधहीन । बेमेल [को०] ।

असंसै(पु)—वि० [सं० **असंशय**] दे० 'असंशय' । उ०—सकै दिखाय मित्र कौं जो तेहि दोष असंसै, औ सहर्ष सत्रुहुँ के गुन कौं भाषि प्रसंसै ।—रत्नाकर, भा० १-पृ० ४७ ।

असंस्कृत—वि० [सं०] १. बिना सुधारा हुआ । अपरिमार्जित । २. जिसका संस्कार न हुआ हो । व्रात्य । ३. असभ्य [को०] ।

यौ०—**असंस्कृतालकी** = अस्तव्यस्त केशोंवाला ।

असंस्तुत—वि० [सं०] १. जो प्रसिद्ध न हो । अज्ञात । २. अपरिचित । ३. अद्भुत । ४. बिना लगाव का । बेमेल [को०] ।

असंस्थान—संज्ञा पुं० [सं०] १. व्यवस्था का अभाव । अक्रम । २. संबंधहीनता । ३. अस्थिरता । त्रुटि या अभाव [को०] ।

असंस्थित—वि० [सं०] १. अनवस्थित । २. चल । ३. व्यवस्थारहित । ४. असंकलित । असंगृहीत [को०] ।

असंस्थिति—संज्ञा स्त्री० [सं०] क्रमहीनता । अव्यवस्था [को०] ।

असंहत[1]—वि० [सं०] जो संहत या मिला हुआ न हो । बिखरा हुआ । [को०] ।

असंहत[2]—संज्ञा पुं० १. पुरुष । आत्मा (सांख्य) । २. असंहतव्यूह [को०] ।

असंहतव्यूह—संज्ञा पुं० [सं०] सेना को छोटे छोटे समूहों में अलग-अलग खड़ा करना ।

अस(पु)—वि० [सं० **ईदृश अथवा एष = यह**] १. इस प्रकार का । ऐसा । उ०—अस विवेक जब देइ बिधाता । तब तजि दोष गुनहि मनु राता ।—मानस १।६।२. तुल्य । समान । उ०—जो सुनि सरु अस लाग तुम्हारे । काहे न बोलहु बचनु सँभारे ।—मानस २ । ३० ।

असक(पु)—वि० [सं० **अशक्त**, प्रा० **असक्क** हिं० **असक**] शक्तिहीन । दुर्बल । असमर्थ उ०—कसि असक घोर कसि द्रव्य दंड ।—पृ० रा०, ५७ । २६५ ।

असकत(पु)—वि० [सं० **अशक्त**] दुर्बल । कमजोर । उ०—उर भरम छेह लैणौं अगम असकत उद्यम उक्कती । कर भाव पार गुण सर करण साची नाम सरस्वती ।—रा० रू०, पृ० ६ ।

असकताना†—क्रि० अ० [हिं० **आसकत**] आलस्य में पड़ना । आलस्य अनुभव करना, जैसे—'असकताओ मत अभी उठो और जाओ ।' (शब्द०) ।

असकति—वि० [सं० **अशक्ति**] शक्तिरहित । अशक्त । उ०-हौं असकति, ज्यों त्यों इतहि सुमन चुनौगी चाहि । मानि विनै मेरी अली, और ठौर तूँ जाहि ।—भिखारी ग्रं०, भा० २, पृ० १६ ।

असकन्ना—संज्ञा पुं० [सं० **असि = तलवार + करण = करना**] दो अंगुल चौड़ा और जौ भर मोटा लोहे का एक औजार जो रेती के समान खुरदुरा या दानेदार होता है और जिससे म्यान के भीतर की लकड़ी साफ की जाती है ।

असकल—वि० [सं०] जो पूर्ण या समग्र न हो । असमग्र [को०] ।

असक्त[1]—वि० [सं० **अशक्त**] शक्तिहीन । उ०—हा आर्यसंतति आज कैसी अंध और अशक्त है ।—भारत०, पृ० १५१ ।

असक्त[2](पु)—वि० [सं० **अशक्त**] लिप्त । चिपका या सटा हुआ । उ०—विषय असक्त, अमित अब व्याकुल तबहूँ कछु न सँभारयो ।—सूर० १ । १०२ ।

असक्त[3]—वि० [सं०] १. जो आसक्त न हो । तटस्थ । उदासीन । २. असंलग्न । ३. असंयुक्त । ४. सांसारिक विषयों से विरक्त [को०] ।

असक्तारंभ—संज्ञा पुं० [सं० **असक्तारम्भ**] १. वह भूमि जिसमें बहुत थोड़े श्रम से अन्न पैदा हो । २. कम मेहनत और थोड़ी वर्षा से हो जानेवाली फसल ।

असक्थ—वि० [सं०] सक्थिहीन । बिना जाँघवाला । [को०] ।

असगंध—संज्ञा पुं० [सं० **अश्वगंधा**] एक सीधी झाड़ी जो गर्म प्रदेशों में होती है और जिसमें छोटे छोटे गोल फल लगते हैं ।

पर्या०—अश्वगंधा । हयगंधा । वाजिगंधा । तुरंगगंधा । तुरगा । वाजिना । हया । बलदा । वातघ्नी । श्यामला । कामरूपिणी । काला । गंधपत्री । वाराहपत्री । वाराहकर्णी । वनजा । हयप्रिया । पीवरा । पलाशपर्णी । कंबुका । कंबुकाष्ठा । प्रियकारी । अवरोहा । अश्वारोहिका । कुष्ठगन्धिनी । रमायनी । तिक्ता ।

विशेष—इसकी मोटी मोटी जड़ दवा के काम आती है और बाजारों में बिकती है । असगंध बलकारक तथा वात और कफ

का नाश करनेवाला है। इसके बीज से दूध जम जाता है। इससे कई प्रसिद्ध आयुर्वेदीय औषध बनते हैं, जैसे—अश्वगंधाघृत, अश्वगंधारिष्ट आदि।

असगर—वि० [प्र० असगर] बहुत छोटा।

असगुन॥† संज्ञा पुं० [सं० अशकुन] दे० 'अशकुन'। उ०—अति गर्व गनइ न सगुन असगुन स्रवहिं आयुध हाथ ते—मानस,६।७७।

असगुनियाँ†—संज्ञा पुं० [हिं० असगुन+इया (प्रत्य०)] वह मनुष्य जिसका मुँह देखना लोग अशुभ समझते हों। मनहूस।

असगोत्र—वि० [सं०] [वि० स्त्री० असगोत्रा] जो सगोत्री न हो। भिन्नगोत्रीय [को०]।

असज्जन१—वि० [सं०] बुरा। खल। दुष्ट। अशिष्ट। नीच। उ०—बंदौं संत असज्जन चरना। दुखप्रद उभय बीच कछु बरना।—मानस, १।५।

असज्जन२—संज्ञा पुं० बुरा आदमी।

असड़िहा†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'असड़िया'। उ०—कहीं डोड़हे आते कहीं असड़िहे जाते।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० १३।

असढ़िया†—संज्ञा पुं० [सं० आषाढ़, असाढ़+इया (प्रत्य०)] एक प्रकार का लंबा साँप जिसकी पीठ पर कई प्रकार की चित्तियाँ होती हैं। इसमें विष बहुत कम होता है।

असण॥—संज्ञा पुं० [सं० आसन] गड्ढा। (डिं०)।

असत्१—वि० [सं०] १. मिथ्या। अस्तित्वविहीन। सत्तारहित। २. बुरा। खराब। ३. खोटा। असाधु। असज्जन।

असत२—संज्ञा पुं० १. अनस्तित्व। २. असत्यता। मिथ्यात्व। ३. बुराई। अहितत्व [को०]।

असत—वि० [सं० असत्] १. असाधु। असज्जन। खोटा। उ०—औघड़ असत कुचीलनी सौं मिलि, माया जल मैं तरतौ।—सूर० १।२०३। २. अस्तित्वविहीन। सत्तारहित। मिथ्या। उ०—वह शून्य असत या अंधकार, अवकाश पटल का वार पार।—कामायनी, पृ० २५१।

असतायी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुष्टता, पाजीपन [को०]।

असति॥—वि० [सं० असत्य] दे० 'असत्य'। उ०—जन कौं पर निंद्या भावै नहीं, अरु असति ना भाषै।—कबीर ग्रं०, पृ० २०६।

असती—वि० [सं०] जो सती न हो। कुलटा। पुंश्चली। उ०—असतीन को सिख मानि। तिय क्यों तजै कुलकानि।—भिखारी ग्रं०, भा० १, पृ० १६१।

असतीत्व—संज्ञा पुं० [सं०] सतीत्व का अभाव। कुलटापन। स्वैराचार [को०]।

असतीन॥—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'आस्तीन'। उ०—पावति बंदन हीभ अरु दावन घैरु बिसाल। है न वरी असतीन क्यों चही एकतहि लाल।—भिखारी ग्रं०, भा० १, पृ० ३५।

असतुति॥—संज्ञा स्त्री० [सं० स्तुति] प्रार्थना। स्तुति। उ०—असतुति निंद्या आसा छाँड़ै तजै मान अभिमान।—कबीर ग्रं०,पृ०१५०।

असत्कार—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० असत्कृत] १. अपमान। निरादर।

असत्कृत—वि० [सं०] अनादृत। अपमानित।

असत्कृत्य१—वि० [सं०] १. सम्मान न करने योग्य। २. अनुचित काम करनेवाला [को०]।

असत्कृत्य२—संज्ञा पुं० अनुचित कर्म। दुष्कृत्य [को०]।

असत्ख्याति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ भ्रमात्मक ज्ञान [को०]।

असत्ता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १ सत्ता का अभाव। अविद्यमानता। अनस्तित्व। नेस्ती। २. असाधुता। असज्जनता।

असत्त्व१—वि० [सं०] १. सत्वहीन। कमजोर। २. जिसमें अच्छाई न हो। ३. पशुविहीन। प्राणहीन [को०]।

असत्त्व२—संज्ञा पुं० १. अनस्तित्व। असत्ता। २. असत्यता। ३. बुराई। खोटाई। ४. अंधकार। अँधेरा [को०]।

असत्पथ—संज्ञा पुं० [सं०] १. कुमार्ग। २. कदाचरण। दुराचरण [को०]।

असत्परिग्रह—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'असत्प्रतिग्रह' [को०]।

असत्पुत्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. कुपुत्र। बुरा लड़का। २. पुत्रहीन व्यक्ति [को०]

असत्प्रतिग्रह—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० असत्प्रतिग्रही] वह दान जिसके लेने का शास्त्र में निषेध हो; जैसे—उभयमुखी गो, प्रेतान्न, चांडालादि का अन्न।

असत्प्रतिग्रही—वि० [सं० असत्प्रतिग्रहिन्] निषिद्ध दान लेनेवाला।

असत्य१—वि० [सं०] १. मिथ्या। झूठ। २. अवास्तविक [को०]। २. अनिश्चित फलवाला [को०]।

असत्य२—संज्ञा पुं० १. वह व्यक्ति जो झूठ न बोलता हो। २. झुठाई। असत्यता [को०]।

असत्यता—संज्ञा स्त्री० [सं०] मिथ्यात्व। झुठाई।

असत्यवाद—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० असत्यवादी] मिथ्यावाद। झूठ बोलना।

असत्यवादी—वि० [सं० असत्यवादिन्] झूठ बोलनेवाला। झूठा। मिथ्यावादी।

असत्यशील—वि० [सं०] असत्य बोलने के स्वभाव या प्रवृत्तिवाला [को०]।

असत्यसंध—वि० [सं० असत्यसन्ध] जो वादे का पक्का न हो। झूठा [को०]।

असत्यसंनिभ—वि० [सं० असत्यसन्निभ] झूठ या असंभव तुल्य [को०]।

असथन॥—संज्ञा पुं० [सं० अस्थि?] १. जायफल।—डिं०।

असथि॥—संज्ञा स्त्री० [सं० अस्थि]। हड्डी। हाड़। उ०—चलित सुकर सोनित समुझ मल अरु असथि समेत।—स० सप्तक, पृ० १७।

असथिर॥—वि० [सं० अस्थिर] चंचल। चलायमान। उ०—रबि रजनीस धरा तथा यह असथिर असथूल।—स० सप्तक, पृ० ३५।

असथूल॥—वि० [सं० स्थूल] भौतिक। उ०—रबि रजनीश धरा तथा यह असथिर असथूल।—स० सप्तक, पृ० १७।

असदाचार१—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० असदाचारी] बुरा आचार। नियम या धर्मविरुद्ध आचरण। अधर्म [को०]।

असदाचार२—वि० बुरे आचारवाला [को०]।

असदृश—वि० [सं०] [वि० स्त्री० असदृशी] १. असमान। अयथा। २. अनुचित। अयोग्य [को०]।

असद्बुद्धि—वि० [सं०] दुर्बुद्धि। बुद्धिहीन [को०]।

असद्भाव—संज्ञा पुं० [सं०] १. नव्य न्याय के अनुसार एक दोष जो तर्क के अवयवों के प्रयोग में होता है। २. अस्तित्व का अभाव। अविद्यमानता [को०]। ३. अनुचित विचार या भावना [को०]। ४. दुष्ट स्वभाव [को०]।

असद्वाद—संज्ञा पुं० [सं०] वह सिद्धांत जो सत्ता को कोई वस्तु ही न माने।

असद्वृत्ति१—वि० [सं०] दुर्वृत्त। अनाचारी। दुष्ट [को०]।

असद्वृत्ति२—संज्ञा स्त्री० भ्रष्टचार। दुष्टता [को०]।

असद्व्यय—संज्ञा पुं० [सं०] असत् या बुरे कार्यों में होनेवाला व्यय। खराब कामों में खर्च। उ०—हुतौ आढय तब कियौ असद्व्यय करी न ब्रज-बन-जात्र।—सूर०। १। २१६।

असन१(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अशन] भोजन। अशन। उ०—जहँ न असन नहि बिप्र सुआरा। फिरेउ राउ मन सोच अपारा।—मानस १। १७४।

असन२—संज्ञा पुं० [सं०] १. फेंकना। क्षेपण २. पीतसाल वृक्ष [को०]।

असनपर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] सातल या गोकर्णी नामक वृक्ष [को०]।

असना—संज्ञा पुं० [सं० अशना] पीतशाल वृक्ष।

विशेष—यह वृक्ष शाल की तरह का होता है। इसके हीर की लकड़ी दृढ़ होती और मकान बनाने के काम आती है तथा भूरापन लिए हुए काले रंग की होती है। इस पेड़ की पत्तियाँ माघ फागुन में झड़ जाती हैं।

असनान(पु)—संज्ञा पुं० [सं० स्नान, पु० हिं० अस्नान] नहाना। स्नान। उ०—नृपति सुरसरी कै तट आइ, कियौ असनान मृत्तिका लाइ।—सूर० १। ३४१।

असनि(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अशनि] १. वज्र। हीरा। उ०—बेनी की कसनि रही कसनि सु कारो साँप, दसन की लसनि असनि दोहियत है।—गंग०, पृ० २४। २. विद्युत्। उ०—तूक न असनि केतु नहिं राहू।—मानस ६। ३१।

असनी†—संज्ञा स्त्री० [सं० अश्विनी] नक्षत्र विशेष।

असन्नद्ध—वि० [सं०] १. बिना शस्त्र का। २. जो तैयार या मुस्तैद न हो। अतत्पर। ३. अहंकारी। घमंडी। ३. विद्वत्ता में अपने को लगानेवाला। पंडितमानी।

असन्निकर्ष—संज्ञा पुं० [सं०] निकट या पास न होना। २. दूर होना [को०]।

असन्निधान—संज्ञा पुं० [सं०] १. दूरता। २. अनुपस्थिति। अभाव। [को०]।

असन्निधि—संज्ञा स्त्री० [सं०] . दूरी। असमीपता। २. घनिष्ठता का अभाव [को०]।

असन्निहित—वि० [सं०] १. जो निकट न हो। २. अनुचित रीति से रखा हुआ [को०]।

असपती(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'असपत्ति'। उ०—प्रटक हीए असपती पाय छित अवसर पायौ।—रा० रू०, पृ० १६।

असपत्ति(पु), असपत्ती(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अश्वपति] १. घुड़सवारों का प्रधान। २. नरपति। राजा। उ०—असपत्ती अजमेरगढ़ रहियौ पाँच दिवस्स।—रा० रू०, पृ० ५३।

असपत्न—वि० [सं०] [वि० स्त्री० असपत्नी] १. बिना पत्नी का। २. शत्रुरहित। शत्रुविहीन। ३. जो शत्रु न हो। अशत्रु [को०]।

असपिंड—वि० [सं० असपिण्ड] [असपिंडा] जो अपने कुल का न हो। अपने कुल की सात पीढ़ियों से बाहर का। जिससे परंपरागत रक्तसंबंध न हो [को०]।

असप्पति(पु)†—[हिं० अश्वपति] दे० असपत्ति।—दोउ मयमंत सुजाँण सेज दिसि बाहुड़इ। जाँणे धरती काज, असप्पति आहुड़इ।—ढोला० दू० ५६६।

असफल—वि० [सं०] १. जो सफल न हो। नाकामयाब। उ०—आह स्वर्ग के अग्रदूत! तुम असफल हुए विलीन हुए।—कामायनी, पृ० ७। २. व्यर्थ। निष्फल। उ०—तिरस्कृत कर उसको तुम भूल, बनाते हो असफल भवधाम।—कामायनी, पृ० ५३।

असफलता—संज्ञा स्त्री० [सं०] सफलता का अभाव। नाकामयाबी [को०]।

असबर्ग—संज्ञा पुं० [फा०] खुरासान में होनेवाली एक प्रकार की लंबी घास।

विशेष—इसमें पीले या सुनहले फूल लगते हैं। सुखाए हुए फूलों को अफगान व्यापारी मुलतान में लाते हैं जहाँ वे अकलबेर के साथ रेशम रँगने के काम में आते हैं।

असबाब—संज्ञा पुं० [अ० 'सबब' का बहुव०] चीज। वस्तु। सामान। प्रयोजनीय पदार्थ। उ०—सब असबाब डाढ़ो मैं न काढ़ो तैं न काढ़ौ, जिय की परी सँभार सहन भंडार को।—तुलसी ग्रं०, पृ० १७३। २. कारणसमूह [को०]।

असभई—संज्ञा स्त्री० [सं० असभ्यता] अशिष्टता। बेहूदगी।

असभ्य—वि० [सं०] १. सभा या गोष्ठी में बैठने के नाकाबिल। २. अशिष्ट। गँवार। उजड्ड। उ०—हम मूर्ख और असभ्य थे, उससे विदित होता यही।—भारत०, पृ० ११६।

असभ्यता—संज्ञा स्त्री० [सं०] अशिष्टता। गँवारपन।

असमंजस१—संज्ञा पुं० [सं० असमञ्जस] १. दुविधा। पशोपेश। आगा-पीछा। फेरफार। उ०—बना आइ असमंजस आजू।—मानस १।१६७। २. अड़चन। अंडस। कठिनाई। चपकुल्लिस। उ०—तात तुम्हहि मइँ जानउँ नीके। करउँ काह असमंजसु जीके।—मानस, २।२६३।

क्रि० प्र०—में पड़ना।—होना।

३. सूर्यवंशी राजा सगर का बड़ा पुत्र जो रानी केशी से उत्पन्न था

असमंजस२—वि० १. जो व्यक्त न हो। अस्पष्ट। २. अनुचित। अनुपयुक्त। ३. मूर्खतापूर्ण। बुद्धिविरहित। ४. अयुक्त। असंगत [को०]।

असमंत(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अश्मंत] चूल्हा।

असम१—वि० [सं०] १. जो सम या तुल्य न हो। जो बराबर न हो। असमान। उ०—जो अगम सुगम सुभाव निर्मल असम सम सीतल सदा।—मानस, ३।२६। २. विषम। ताक। उ०—लोचन असम अंग भसम चिता की लाइ।—पद्माकर ग्रं०, पृ० २५६। ३. ऊँचानीचा। ऊबड़खाबड़।

असमर[2]—संज्ञा पुं० एक काव्यालंकार जिसमें उपमान का मिलना असंभव बतलाया जाय; जैसे—प्रति बन बन खोजत मर जैहौ। मालति कुसुम नहीं तुम पैहौ ।

असमग्र—वि० [सं०] अधूरा । अंशमात्र [को०] ।

असमत†—संज्ञा स्त्री० [अ० इस्मत > अस्मत] १. पातिव्रत्य । सतीत्व । पाकदामनी । २. पवित्रता । निष्कलुषता [को०] ।

यौ०—**असमतफरोश** = सतीत्वहीन । कुलटा । **असमतफरोशी** = व्यभिचार ।

असमता—संज्ञा स्त्री० [सं०] असमानता । विषमता । असाम्य [को०] ।

असमद—वि० [सं०] १. गर्वरहित । २. विरोधशून्य [को०] ।

असमन—वि० [सं०] १ विविध रंगोंवाला । २ विभिन्न मतोंवाला ३. विषम । समताहीन [को०] ।

असमनयन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'असमनेत्र' [को०] ।

असमनेत्र[1]—वि० [सं०] जिसके नेत्र सम न हों, विषम (ताक) हों ।

असमनेत्र[2]—संज्ञा पुं० त्रिनेत्र । शिव ।

असमबाण—संज्ञा पुं० [सं०] विषमबाण । कामदेव [को०] ।

असमय[1]—संज्ञा पुं० [सं०] विपत्ति का समय । बुरा समय । उ०—समय प्रतापभानु कर जानी । आपन अति असमय अनुमानी—मानस, १।१५८ ।

असमय[2]—क्रि० वि० कुअवसर । बेमौका । बेवक्त । उ०—मैंने असमय नहीं अचानक तुम्हें जगाया ।— साकेत पृ० ४१५ ।

असमर्थ—वि० [सं०] १. सामर्थ्यहीन । दुर्बल । निर्बल । अशक्त । २. अयोग्य । नाकाबिल । ३. अपेक्षित शक्ति न रखनेवाला [को०] । ४. अभिप्रेतार्थ को व्यक्त करने में अक्षम [को०] ।

असमर्थता—संज्ञा स्त्री० [सं०] अक्षमता । अयोग्यता [को०] ।

असमर्थपद—संज्ञा पुं० [सं०] वह पद जो वांछित अर्थ को प्रकट करने में समर्थ या क्षम न हो [को०] ।

असमर्थसमास—संज्ञा पुं० [सं०] व्याकरण में ऐसा समास जो अन्वय-दोष से दूषित हो; जैसे—अश्राद्धभोजी, असूर्यपश्य:—इस समस्तपद में नञ् समास का यथार्थ संबंध पूर्ववर्ती शब्द श्राद्ध और सूर्य के साथ न होकर भोजी और पश्या के साथ है [को०] ।

असमवायिकारण—संज्ञा दे० [सं०] १. न्यायदर्शन के अनुसार वह कारण जो द्रव्य न हो, गुण या कर्म हो; जैसे—घड़े के बनने में गले और पेंदे का संयोग अर्थात् आकार आदि की भावना जो कुम्हार के मन में थी अथवा जोड़ने की क्रिया जो द्रव्य के आश्रय से उत्पन्न हुई । २. वैशेषिक के अनुसार वह कारण जिसका कार्य से नित्य संबंध न हो, आकस्मिक हो; जैसे—हाथ के लगाव से मूसल का किसी वस्तु पर आघात करना । यहाँ हाथ का लगाव ऐसा नहीं है कि जब हाथ का लगाव हो, तभी मूसल किसी वस्तु पर आघात करे । हवा या और किसी कारण से भी मूसल गिर सकता है ।

असमवायी—वि० [सं० असमवायिन्] जो समवाय या नित्य संबंध रखनेवाला न हो । अनित्य । आनुषंगिक [को०] ।

असमवृत्त—संज्ञा पुं० [सं०] संस्कृत काव्य में प्रयुक्त वे वर्णवृत्त जिनके चारों चरणों में समान गण न हों । विषमवृत्त [को०] ।

असमशर—संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव । उ०—रंभादिक सुरनारि नवीना । सकल असमसर कला प्रवीना ।—तुलसी (शब्द०) ।

असमस्त—वि० [सं०] १. अपूर्ण । अधूरा । २. अंशत: । ३. समासहीन । जो संक्षिप्त न हो । विस्तृत । ४. जो एकत्र न हो । ५. असंबद्ध । अलग [को०] ।

असमान[1]—वि० [सं०] जो समान या तुल्य न हो । उ०—हम लोगों ने साधारण नागरिकों से असमान उत्सव मनाने का निश्चय किया था ।—इंद्र०, पृ० १३० ।

असमान[2]Ⓟ†—संज्ञा पुं० [फा०, आसमान] दे० 'आसमान' । उ०—अचल अवनि असमान दसौ दिसि थर थर करै ।—हम्मीर०, पृ० १३ ।

असमानता—संज्ञा स्त्री० [सं०] समानता का अभाव [को०] ।

असमाप्त—वि० [सं०] [संज्ञा असमाप्ति] अपूर्ण । अधूरा ।

असमाप्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] अपूर्णता । अधूरापन । समाप्ति का अभाव ।

असमावर्तक—वि० [सं०] जिसका समावर्तन संस्कार न हुआ हो [को०] ।

असमावृत्त—वि० [सं०] जिसका समावर्तन संस्कार न हुआ हो । जो बिना समावर्तन संस्कार हुए ही गुरुकुल छोड़ दे ।

असमाहार—वि० संज्ञा पुं० [सं०] १ अलगाव । पृथक्ता । २. अप्राप्ति [को०] ।

असमाहित—वि० [सं०] चित्त की एकाग्रता से रहित । अस्थिर चित्त । चंचल ।

असमीचीन—वि० [सं०] अनुचित । अयुक्त । बेठीक [को०] ।

असमूच—वि० [हिं०] दे० 'असमूचा' । उ०—नासा-नथ-मुक्ता, बिंबाधर प्रतिबिंबित असमूच । बाँधौ कनक पास सुक सुंदर, करकबीज गहि चूँच ।—सूर०, २।३०६३ ।

असमूचाⓅ—वि० [सं० अ + समुच्चय] १. जो पूरा या समूचा न हो । अधूरा । २. कुछ । थोड़ा ।

असमेधⓅ—संज्ञा पुं० [सं० अश्वमेध, प्रा० अस्समेध] दे० 'अश्वमेध' । उ०—दस असमेध जगत जेइ कीन्हा ।—जायसी (शब्द०) ।

असम्मत[1]—वि० [सं०] १. जो राजी न हो । विरुद्ध । २. जिसपर किसी की राय न हो ।

असम्मत[2]—संज्ञा पुं० शत्रु [को०] ।

असम्मति—संज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० असम्मत] १. संमति का अभाव । २ विरुद्ध मत या राय । ३. अनादर [को०] ।

असम्मरⓅ—संज्ञा पुं० [सं० असि] तलवार ।—(डिं०) ।

असम्मित—वि० [सं०] १. असदृश । अतुल्य । २. बिना मापा हुआ । ३ अपरिमेय [को०] ।

असयानाⓅ—वि० [हिं० अ + सयाना] १. भोलाभाला । सीधा सादा । छल या चतुराई से रहित । उ०—बिबुध सनेह सानी बानी असयानी सुनी हँसे राघो जानकी लषन तन हेरि हेरि । तुलसी ग्रं०, १६४ । २. अनाड़ी । मूर्ख ।

असर—संज्ञा पुं० [अ०] १. प्रभाव । दबाव । २. चिह्न । निशान [को०] । ३ गुण । तासीर [को०] । ४. दिन का चौथा पहर ।

यौ०—**असर की नमाज** ।

असरा—संज्ञा पुं० [हिं० असाढ़] आसाम देश के कछारों में उत्पन्न होनेवाला एक प्रकार का चावल ।

असरार¹(पु)—क्रि० वि० [हिं० सरसर] निरंतर । लगातार । बराबर । उ०—कहो नंद कहाँ छाँड़े कुमार । करुणा करे यसोदा माता नैनन नीर बहै असरार ।—सूर० (शब्द०)।

असरार²—संज्ञा पुं० [अ० 'सिर' या 'सिर्र' का बहुव०] भेद । राज । मर्म [को०] ।

असरु—संज्ञा पुं० [सं०] काकड़ासिंगी नामक पौधा ।

असल¹—वि० [अ० अस्ल] १. सच्चा । खरा । २. उच्च । श्रेष्ठ । ३. बिना मिलावट का । शुद्ध । खालिस ।

असल²—संज्ञा पुं० १. जड़ । मूल । बुनियाद । तत्व । २. मूलधन । उ०—साँचो सो लिखवार कहावै । काया ग्राम मसाहत करि कै जमा बाँधि ठहरावै.........करि अवारजा प्रेम प्रीति को असल तहाँ खतियावै ।—सूर० (शब्द०)।

असल³—संज्ञा पुं० [सं०] शहद । मधु [को०] ।

असल⁴—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का लंबा झाड़ जो मध्यप्रदेश, उत्तरप्रदेश, दक्षिणभारत और राजपूताने (राजस्थान) में पाया जाता है ।

विशेष—इसकी पत्तियाँ तीन चार इंच लंबी होती हैं और डालियाँ नीचे की ओर झुकी होती हैं । इसकी छाल से चमड़ा सिझाया जाता है और बीज, छाल तथा पत्तियों का औषध में व्यवहार होता है । अकाल पड़ने पर इसकी पत्तियाँ खाई भी जाती हैं। इसकी टहनियों की दातून बहुत अच्छी होती है । जब जाड़े के दिनों में यह फूलता है तब बहुत सुंदर जान पड़ता है।

असल⁵—संज्ञा पुं० [सं०] १. लोहा नामक धातु । २. अस्त्र छोड़ने से पूर्व उसे अभिमंत्रित करने का एक मंत्र । ३. शस्त्र [को०] ।

असलियत—संज्ञा स्त्री० [अ० अस्लियत] १. तथ्य । वास्तविकता । २. जड़ । मूल । बुनियाद । ३. मूलतत्व । सार ।

असली—वि० [अ० अस्ल फ़ा० ई (प्रत्य०)] १. सच्चा । खरा । २. मूल । प्रधान । ३. बिना मिलावट का । शुद्ध ।

असवर्ण—वि० [सं०] भिन्न वर्ण या जाति का; जैसे—असवर्ण विवाह ।

असवर्णता—संज्ञा स्त्री० [सं०] समान जाति या वर्ण का न होना। उ०—'फिर भी असवर्णता का सामाजिक दोष उसके हृदय को व्यथित किया करता ।—इंद्र०, पृ० ६८ ।

असवर्ण विवाह—संज्ञा पुं० [सं०] वह विवाह जिसमें वर और वधू विभिन्न वर्णों के हों [को०]।

असवार†—संज्ञा पुं० [सं० अश्ववार, प्रा० अस्सवार, असवार] दे० 'सवार' । उ०—कबीर घोड़ा प्रेम का चेतनि चढ़ि असवार कबीर ग्रं०, पृ० ७० ।

असवारी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० असवार+ई (प्रत्य०)] दे० 'सवारी'। उ०—जाने को निज पुण्य भूमि पर लक्ष्मी की असवारी ।—पथिक, पृ० ५ ।

असह¹—वि० [सं०] १. न सहने योग्य। असह्य । उ०—सीत असह विष चित चढ़ै सुख न चढ़ै परजंक । बिन मोहन अगहन हनै बीछू कैसो डंक ।—स० सप्तक, पृ० २४३ । २. अधीर ।

असह²—संज्ञा पुं० छाती का मध्य भाग अर्थात् हृदय ।—(डिं०)।

असहकार—संज्ञा पुं० [सं०] असहयोग । सहकार की भावना का अभाव । मेल से काम न करना ।

असहन¹—वि० [सं०] जो सहन न करे । असहिष्णु । ईर्ष्यालु ।

असहन²—संज्ञा पुं० १. शत्रु । वैरी । २. अधीरता । असहिष्णुता (को०) । ३. ईर्ष्या [को०] ।

असहनशील—वि० [सं०] १. जिसमें सहन करने की शक्ति न हो। असहिष्णु । २. चिड़चिड़ा । तुनकमिजाज ।

असहनशीलता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सहन करने की शक्ति का अभाव । असहिष्णुता । २. तुनकमिजाजी ।

असहनीय—वि० [सं०] न सहने योग्य। जो बरदाश्त न हो सके । असह्य ।

असहयोग—संज्ञा पुं० [सं०] १. साथ मिलकर काम न करने का भाव । २. आधुनिक भारतीय राजनीतिक क्षेत्र में सरकार के साथ मिलकर काम न करने, उसकी संस्थाओं में संमिलित न होने और उसके पद आदि ग्रहण न करने का सिद्धांत । तर्के-मवालात । नान-कोआपरेशन ।

असहयोगवाद—संज्ञा पुं० [सं० असहयोग+वाद] राजनीतिक क्षेत्र में सरकार से असहयोग करने अर्थात् उसके साथ मिलकर काम न करने का सिद्धांत ।

असहयोगवादी—संज्ञा पुं० [सं० असहयोग+वादिन्] राजनीतिक क्षेत्र में सरकार से असहयोग करने अर्थात् उसके साथ मिलकर काम न करने के सिद्धांत को माननेवाला मनुष्य ।

असहाइ(पु) असहाई(पु)—वि० [हिं०] दे० 'असहाय' । उ०—एक किन्ह नहि भरत भलाई । निदरे रामु जानि असहाई ।—मानस, २।२२८

असहाय—वि० [सं०] १. जिसे कोई सहारा न हो । निःसहाय । निरवलंब । निराश्रय । २. अनाथ । लाचार ।

असहिष्णु—वि० [सं०] १. जो सहन न कर सके । असहनशील । २. चिड़चिड़ा । तुनकमिजाज ।

असहिष्णुता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सहन करने की शक्ति का अभाव । असहनशीलता । २. चिड़चिड़ापन । तुनकमिजाजी ।

असही¹—वि० [सं० असह] दूसरे की बढ़ती न सहनेवाला । दूसरे को देखकर जलनेवाला । ईर्ष्यालु । उ०—असही दुसही मरहु मनहि मन, बैरिन बढ़हु विषाद । नृपसुत चारि चारु चिरजीवहु, संकर गौरि प्रसाद ।—तुलसी ग्रं० पृ० २६५ ।

यौ०—असही दुसही ।

असही²—संज्ञा स्त्री० [देश०] ककही या कंघी नाम का पौधा ।

असह्य—वि० [सं०] न सहन करने योग्य । जो बरदाश्त न हो सके । असहनीय ।

असह्यव्यूह—संज्ञा पुं० [सं०] कौटिल्य के अनुसार वह दंडव्यूह जिसके दोनों पक्ष फैला दिए गए हों ।

असाँच(पु)—वि० [सं० असत्य, प्रा० असच्च] असत्य । झूठ । मृषा । उ०—सत्यकेतु कुल कोउ नहिं बाँचा । बिप्र श्राप किमि होइ असाँचा ।—मानस, १।१७५ ।

असांद्र(पु)—वि० [सं० असान्द्र] विरल । जो घनीभूत न हो [को०]।

असांप्रत—वि० [सं० **असाम्प्रत**] १. जो सांप्रत या उचित न हो। अनुचित। अयोग्य। २. जो वर्तमान या आज का न हो[को०]।

असांप्रदायिक—वि० [सं० **असाम्प्रदायिक**] १. जिसमें सांप्रदायिकता की भावना न हो। २. जो प्रथा या परंपरा से अनुमोदित न हो [को०]।

असा—संज्ञा पुं० [अ०]१. सोंटा। डंडा। २. चाँदी या सोने से मढ़ा हुआ सोंटा जिसे राजा महाराजाओं के आगे या बरात इत्यादि के साथ सजावट के लिये आदमी लेकर चलते हैं। दे० 'आसा'।

यौ०—**असाबरदार** = असा लेकर चलनेवाला। असाबरदार।

असाईⓅ—संज्ञा पुं० [सं०**अशास्त्रीय**]वह जिसे कुछ भी ज्ञान न हो। अज्ञानी। उ०—बोला गंध्रबसेन रिसाई। कस जोगी कस भांट असाई।—जायसी ग्रं०, पृ० ११३।

असाक्षात्— वि० [सं०] जो आँखों के आगे न हो। परोक्षतः। दूरतः (संबद्ध) [को०]।

असाक्षात्कार—संज्ञा पुं०[सं०] १. अनुपस्थिति। २. परोक्ष। अप्रत्यक्ष [को०]।

असाक्षिक—वि० [सं०]१. जिसका कोई गवाह न हो। अप्रमाणित २. शासकविहीन। जिसकी कोई देखरेख करनेवाला न हो [को०]।

असाक्षी—संज्ञा पुं० [सं० **असाक्षिन्**] वह जिसकी साक्षी या गवाही धर्मशास्त्र के अनुसार मान्य न हो। साक्षी होने का अनधिकारी।

विशेष—धर्मशास्त्र के अनुसार इन लोगों की साक्षी ग्रहण नहीं करनी चाहिए-चोर, जुआरी, शराबी, पागल, बालक, अति वृद्ध, हत्यारा, चारण, जालसाज, विकलेंद्रिय (बहरे, अंधे लूले, लँगड़े) तथा शत्रु, मित्र इत्यादि।

असाक्ष्य—संज्ञा पुं० [सं०] गवाही या साक्ष्य का अभाव [को०]।

असाढ़—संज्ञा पुं० [सं० आषाढ़] आषाढ़ का महीना। वर्ष का चौथा महीना।

असाढ़ा¹—संज्ञा पुं० [देश०] महीन बटे हुए रेशम का तागा।

असाढ़ा²—संज्ञा पुं०[सं० आषाढ़]एक प्रकार की खाँड़। कच्ची चीनी।

असाढ़ी¹—वि० [सं० आषाढ़] आषाढ़ का।

असाढ़ी²—संज्ञा स्त्री० १. वह फसल जो आषाढ़ में बोई जाय। खरीफ। २. आषाढ़ीय पूर्णिमा।

असाढ़ू—संज्ञा पुं० [देश०] मोटे दल की चट्टान। मोटा पत्थर। भोट। उमवट।

असात्म्य- संज्ञा पुं० [सं०] प्रकृतिविरुद्ध पदार्थ। वह आहार विहार जो दुःखकारक और रोग उत्पन्न करनेवाला हो।

असाध¹Ⓟ†—वि० [हिं०] दे० 'असाध्य'।

असाध²—वि० [हिं०] दे० 'असाधु'। उ०—बाहर दीसै साध गति माँहैं महा असाध।—कबीर ग्रं०, पृ० ४६।

असाधन¹—वि० [सं०] साधन या उपकरण से रहित [को०]।

असाधन²—संज्ञा पुं० सिद्धि या पूर्णता का अभाव [को०]।

असाधारण¹—वि० [सं०] १. जो साधारण न हो। असामान्य। २. न्याय में पक्ष या विपक्ष से पृथक्-जैसे हेतु [को०]। ३. जिसका दूसरा दावेदार न हो। निश्चित रूप से एक का-जैसे संपत्ति [को०]।

असाधारण²—संज्ञा पुं० १. न्याय में हेत्वाभास का एक दोष। २. विशिष्ट संपत्ति [को०]।

असाधिⓅ†—वि [हिं०] दे० असाध्य'। उ०-देखी ब्याधि असाधि नृपु परेउ धरनि धुनि माथ।—मानस, २।३४।

असाधित—वि० [सं०] जो साधा न गया हो। असिद्ध [को०]।

असाधु¹—वि० [सं०][वि० स्त्री० **असाध्वी**]१. दुष्ट। बुरा। खल। दुर्जन। खोटा। २. अविनीत। अशिष्ट। ३. जो ठीक ढंग से सिद्ध न हो। भ्रष्ट। व्याकरणविरुद्ध [को०]।

यौ०—**असाधुवृत्ता** = पुंश्चली। स्वैरिणी।

असाधु²—संज्ञा पुं० १. भ्रष्ट या पतित साधु। २. असज्जन।

असाधुता—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्जनता। अशिष्टता। खलता। खोटाई।

असाध्य—वि० [सं०] १ जिसका साधन न हो सके। न करने योग्य। दुष्कर। कठिन। २ न आरोग्य होने के योग्य। जिसके अच्छे या चंगे होने की संभावना न हो; जैसे-यह रोग असाध्य है (शब्द)।

यौ०—**असाध्यसाधन** = न हो सकनेवाले काम को कर लेना।

असाध्वी—संज्ञा स्त्री० [सं०] व्यभिचारिणी। कुलटा। असती [को०]।

असानी—संज्ञा पुं० [अं० **असाइनी**] वह व्यक्ति जो अदालत की ओर से किसी दिवालिए की संपत्ति, जिसके बहुत से लहनदार हों, तब तक अपनी निगरानी में रखने के लिये नियुक्त हो, जब तक कोई रिसीवर नियत होकर संपत्ति को अपने हाथ में न ले।

असामयिक—वि० [सं०][वि० स्त्री० **असामयिकी**]जो समय पर न हो। जो नियत समय से पहले या पीछे हो। बिना समय का। बेवक्त का।

असामर्थ्य—संज्ञा स्त्री० [सं] १. शक्ति का अभाव। अक्षमता। २. निर्बलता। नाताकती।

असामान्य—वि० [सं०] जो साधारण न हो। असाधारण। गैरमामूली।

असामी¹—संज्ञा पुं० [अ० **आसामी**]१. व्यक्ति। प्राणी; जैसे—वह लाखों का असामी है (शब्द)। २ जिससे किसी प्रकार का लेन देन न हो। जैसे, वह बड़ा खरा असामी है, रुपया तुरंत देगा (शब्द)। ३. वह जिसने लगान पर जोतने के लिये जमींदार से खेत लिया हो। रैयत। काश्तकार। जोता। ४. मुद्दालेह। देनदार। ५. अपराधी। मुलजिम; जैसे,—असामी हवालात से भाग गया (शब्द)। ६. दोस्त। मित्र। सुहृद। जैसे—चलो तो, वहाँ बहुत असामी मिल जाएँगे (शब्द)। ७. ढंग पर चढ़ाया हुआ आदमी। वह जिससे किसी प्रकार का मतलब गाँठना हो।

यौ०—**खरा आदमी** = चटपट दाम देनेवाला आदमी। **डूबा असामी** = गया गुजरा। दिवालिया। **मोटा असामी** = धनी पुरुष। **लीचड़ असामी** = देने में सुस्त। नादिहंद।

मुहा०—**असामी बनाना** = अपने मतलब पर चढ़ाना। अपनी गौं का बनाना।

असामी²—संज्ञा स्त्री० १ परकीया या वेश्या। रखेली; जैसे,—तुम्हारी असामी को कोई उड़ा ले गया (शब्द०)। २. नौकरी। जगह; जैसे,—कोई असामी खाली हो तो बतलाना (शब्द०)।

असार¹—वि० [सं०] १. साररहित। तत्वशून्य। निःसार। २. शून्य। खाली। ३. तुच्छ। ४. जो तत्पर न हो। उत्साहहीन [कौ०]। ५. दरिद्र। निर्धन [कौ०]। ६. कमजोर। निर्बल [कौ०]।

असार²—संज्ञा पुं० १. रेंड़ का पेड़। २. अगरु चंदन। ३. सारहीन या निस्तत्व भाग [कौ०]।

असार³ ⓟ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'असवार'।

असारता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. निःसारता। तत्वशून्यता। २. तुच्छता। ३. मिथ्यात्व।

असारभांड—संज्ञा पुं० [सं० **असारभाण्ड**] कौटिल्य के अनुसार घटिया माल।

असालत—संज्ञा स्त्री० [अ०] १. कुलीनता। २. सचाई। तत्व।

असालतन्—क्रि० वि० [अ०] स्वयं। खुद।

असाला—संज्ञा स्त्री० [सं० **अशालिका**] हालों। चंसुर।

असावधान—वि० [सं०][संज्ञा **असावधानता**] जो सावधान या सतर्क न हो। खबरदार न हो। जो सचेत न हो।

असावधानता—संज्ञा स्त्री० [सं०] बेपरवाही।

असावधानी—संज्ञा स्त्री० [सं०] बेखबरी। बेपरवाही।

असावरी¹—संज्ञा स्त्री० [सं० **आशावरी अथवा अशावरी**] छत्तीस रागिनियों में से एक प्रधान रागिनी। भैरव राग की स्त्री (रागिनी)। यह रागिनी टोड़ी से मिलती जुलती है और सबेरे सात बजे से नौ बजे तक गाई जाती है।

असावरी²—संज्ञा स्त्री० [सं० **अंशुपट्ट** ?] वस्त्रविशेष। उ०—पाँवरी पैन्हि लै प्यारी जराइ की ओढ़ि लै चाँचरि चारु असावरी।—भिखारी ग्रं०, भा० १, पृ० ५४।

असावली—संज्ञा स्त्री०[हिं०]दे० 'असावरी'। उ०—सुंदरि क्यों पहिरति नग भूषन असावली। तन की द्युति तेरी सहज ही मसाल-प्रभावली।—भिखारी ग्रं०, भा० १, पृ० २७०।

असासा—संज्ञा पुं० [अ० **असासह्**] १. माल। असबाब। २. संपत्ति। धन-दौलत।

असासुलबैत—संज्ञा पुं० [अ०] घर का असबाब। घर का अटाला।

असि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. तलवार। खड्ग। वाराणसी के दक्षिण स्थित एक नदी। ३. श्वास [कौ०]।

असिक—संज्ञा पुं० [सं०] १. होंठ और ठुड्डी के बीच का भाग। २. एक देश का नाम।

असिक्निका—संज्ञा स्त्री० [सं०] युवती दासी [कौ०]।

असिक्नी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. अंतःपुर में रहनेवाली वह दासी जो वृद्धा न हो। २ पंजाब की एक नदी। चिनाब। ३. वीरण प्रजापति की कन्या जो दक्ष को ब्याही थी। ४. रात्रि [कौ०]।

असिगंड—संज्ञा पुं० [सं० **असिगण्ड**] गाल के नीचे रखने की छोटी तकिया [कौ०]।

असिचर्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] तलवार चलाने का अभ्यास [कौ०]।

असिजीवी—वि० [सं०**असिजीविन्**] तलवार के द्वारा जीविका उपार्जित करनेवाला। सैनिक।

असित¹—वि० [सं०] १. जो सफेद न हो। काला। उ०—असित कुटिल अलकैं तेरी। उचित हरति मति है मेरी।—भिखारी ग्रं०, भा० १, पृ० १६३। २. दुष्ट। बुरा। ३. टेढ़ा। कुटिल।

असित²—संज्ञा पुं० १. एक ऋषि का नाम। २. भरत राजा का पुत्र। ३. शनि। ४. पिंगला नाम की नाड़ी। ५. धौ का पेड़। ६. काला या नीला रंग [कौ०]। ७. कृष्णपक्ष [कौ०]। ८. कृष्ण सर्प [कौ०]। ९. कृष्ण का एक नाम [कौ०]।

असितगिरि—संज्ञा पुं० [सं०] नीलगिरि नाम का पहाड़ [कौ०]।

असितग्रीव—संज्ञा पुं० [सं०] १. अग्नि। २. मयूर [कौ०]।

असितांग¹—वि० [सं० **असिताङ्ग**] १. काले रंग का। २. काले अंगों वाला।

असितांग²—संज्ञा पुं० १. एक मुनि। २. शिव का एक नाम।

असिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. यमुना नदी। २. नीली या नील नाम का पौधा। ३. चंद्रभागा नदी [कौ०]। ४. दक्षपत्नी का नाम (कौ०)। ५. अंतःपुर की वह दासी जिसके केश श्वेत न हुए हों (कौ०)। ६. रात्रि (कौ०)।

असितोत्पल—संज्ञा पुं० [सं० **असित + उत्पल**] नील कमल [कौ०]।

असितोपल—संज्ञा पुं० [सं० **असित + उपल**] नीलम [कौ०]।

असिदंत—संज्ञा पुं० [सं० **असिदन्त**] मकर नामक जलजीव। घड़ियाल [कौ०]।

पर्या०—असिदंष्ट्र। असिदंष्ट्रक।

असिद्ध¹—वि० [सं०] १. जो सिद्ध न हो। २. बेपका। कच्चा। ३. अपूर्ण। अधूरा। ४. निष्फल। व्यर्थ। ५. अप्रमाणित। जो साबित न हो।

असिद्ध²—संज्ञा पुं० १. एक प्रकार का बड़ा और ऊँचा वृक्ष जिसकी लकड़ी बहुत मजबूत होती है और प्रायः इमारत के काम में आती है। इसकी छाल से चमड़ा भी सिझाया जाता है। २. हेत्वाभास का एक भेद [कौ०]।

असिद्धि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. अप्राप्ति। अनिष्पत्ति। २. कच्चापन। कचाई। ३. अपूर्णता।

असिधाराव्रत—संज्ञा पुं० [सं०] १. असिधारा के समान व्रत। २. पुरानी प्रथा के अनुसार पति और पत्नी का ब्रह्मचर्यव्रत, जिसमें पति और पत्नी सोते समय बीच में एक नंगी तलवार रख लेते थे कि वे एक दूसरे का स्पर्श न कर सकें [कौ०]।

असिधावक—संज्ञा पुं० [सं०] तलवार आदि को साफ करनेवाला। सिकलीगर।

असिधेनु—संज्ञा स्त्री० [सं०] छुरी [कौ०]।

असिपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. ईख। गन्ना। २. कृपाण का कोष [कौ०]।

असिपत्रक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'असिपत्र' [कौ०]।

असिपत्रवन—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणों के अनुसार एक नरक जिसके विषय में लिखा है कि वह सहस्र योजन की जलती भूमि है, जिसके बीच में ऐसे पेड़ों का एक जंगल है जिसके पत्ते तलवार के समान हैं।

असिपथ—संज्ञा पुं० [सं०] साँस लेने की राह। श्वासमार्ग [कौ०]।

असिपाणि—वि० [सं०] जिसके हाथ में तलवार हो। खड्गधारी [कौ०]।

असिपुच्छ—संज्ञा पुं० [सं०] १. मगर। २. नहुवी मछली जो पूँछ से मारती है।

असिपुच्छक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'असिपुच्छ' [को०]।

असिपुत्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. छुरी। कृपाणी [को०]।

असिपुत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'असिपुत्रिका'।

असिभेद—संज्ञा पुं० [सं०] विट्खदिर [को०]।

असियष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] तलवार का फल [को०]।

असिलता—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'असियष्टि' [को०]।

असिव(पु)—वि० [सं० अशिव] दे० 'अशिव'। उ०—गरल कंठ उर नर सिर माला। असिव वेष सिवधाम कृपाला।—मानस, १।९२।

असिस्टंट—वि० [अं० असिस्टेंट] सहायक।

असिहत्य[1]—संज्ञा पुं० [सं०] कृपाणयुद्ध। तलवार की लड़ाई [को०]।

असिहत्य[2]—वि० [सं०] तलवार से वध करने योग्य [को०]।

असिहेति—संज्ञा पुं० [सं०] खड्गधारी सैनिक [को०]।

असी[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० असि] एक नदी जो काशी के दक्षिण गंगा से मिली है। अब यह एक नाले के रूप में रह गई है।

असी[2]—वि० [हिं०] दे० 'अस्सी'। उ०—असी सहस किंकरदल तेहि के दौरे मोहिं निहारि।—सूर०, ९।१०४।

असीन—संज्ञा पुं० [देश०] सज नाम का वृक्ष। वि० दे० 'सज'।

असीम—वि० [सं०] १. सीमारहित। बेहद। २. अपरिमित। अनंत। ३. अपार। अगाध।

असीमित—वि० [सं०] १. जो सीमित न हो। २. जिसकी सीमा निश्चित न की गई हो [को०]।

असीर—संज्ञा पुं० [अ०] १. कैदी। बंदी। २. कठिन। दुष्कर [को०]।

असीरी—संज्ञा स्त्री० [अ०] कैद [को०]।

असील[1]—वि० [हिं०] दे० 'असल'। उ०—हरदी जरदी जो तजै तजै खटाई आम। जो असील गुन को तजै औगुन तजै गुलाम। (शब्द०)।

असील[2]—वि० [अ०] १. कुलीन। शरीफ। २. खरा। उत्तम। ३. अच्छे लोहे का [को०]।

असीस(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० आशिष्] दे० 'आशिष'। उ०—दीन्हि असीस हरषि मन गंगा।—मानस, ६।१२०।

असीसना†—क्रि० स० [हिं० असीस + ना (प्रत्य०)] आशीर्वाद देना। दुआ देना। उ०—पुहुमी सबै असीसइ जोरि जोरि कइ हाथ। गाँग जमुन जल जो लगि अमर रहइ सो साथ।—जायसी (शब्द०)।

असुंदर[1]—संज्ञा पुं० [सं० असुन्दर] वह व्यंग जिसकी अपेक्षा वाच्यार्थ में अधिक चमत्कार हो। यह गुणीभूत व्यंग्य का एक भेद है। उ०—डाल रसाल जु लखत ही पल्लव जुत कर लाल। कुम्हलानी उर सालधर फूल माल ज्यों बाल (शब्द०)।

असुंदर[2]—वि० जो सुंदर न हो। कुरूप। भद्दा। अप्रशस्त।

असु[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १ प्राणवायु। प्राण। उ०—बूझत हौ तो यहै प्रभु कीजै। मो असु दै बरु अश्व न दीजै।—रामचं०, पृ० १७७।२. चित्त। ३. जल [को०]। ४. गरमी। ताप [को०]। ५. एक पल का छठा भाग [को०]। ६. विचार [को०]। ७. हृदय [को०]। ८. दुःख। वेदना [को०]।

असु[2](पु)—संज्ञा पुं० [सं० अश्व] घोड़ा। अश्व। उ०—असु दल गज दल दूनौ साजे। औ घन तबल जुझाऊ बाजे।—जायसी ग्रं०, पृ० २२८।

असुकर—वि० [सं०] जो सुकर न हो। जिसे करना मुश्किल हो [को०]।

असुख[1]—संज्ञा पुं० [सं०] बीमारी कष्ट। पीड़ा [को०]।

असुख[2]—वि० [सं०] १. पीड़ित। असंतुष्ट। २. क्लिष्ट। कठिन [को०]।

यौ०—असुख जीविका = दुःखमय जीवन।

असुखी—वि० [सं० असुखिन्] दुःखी। कष्ट मे पड़ा हुआ। शोकमय [को०]।

असुखयोदय—संज्ञा पुं० [सं०] १. दुःखकर। २ दुःखांत [को०]।

असुखोदर्क—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'असुखोदय' [को०]।

असुग(पु)—वि० [हिं०] दे० 'आशुग'।

असुचि(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अशुचि'। उ०—गोमुख असुचि तबहिं तै भयौ। रिषि सुकदेव नृपति सौं कह्यौ।—सूर०। ६।५।

असुझ(पु)—वि० [हिं०] दे० 'असूझ'। उ०—तेरेहि सुझाए सूझै असुझ सुझाउ सो।—तुलसी ग्रं०, पृ० ५४९।

असुत—वि० [सं०] अपुत्र। जिसे पुत्र न हो [को०]।

असुत्त(पु)—वि० [सं० असुप्त] दे० 'असुप्त'।

असुत्याग—संज्ञा पुं० [सं०] प्राणत्याग। मरण [को०]।

असुध—वि० [सं० अ = नहीं + हिं० सुध] चेतनारहित। उ०—यहाँ तक आते आते तो असुध होकर गिर ही पड़ा।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ७०२।

असुधारण—संज्ञा पुं० [सं०] जीवन। अस्तित्व [को०]।

असुनी(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० अश्विनी] दे० 'अश्विनी'।

असुनीत—संज्ञा पुं० [सं०] यमराज [को०]।

असुपाद—संज्ञा पुं० [सं०] प्राणियों को एक साँस लेकर फिर साँस लेने में जितना काल लगता है, उसका चतुर्थांश काल।

असुप्त—वि० [सं०] न सोता हुआ। जाग्रत [को०]।

असुबिधा—संज्ञा स्त्री० [स० अ = नहीं + सुविधि = अच्छी तरह] १. कठिनाई। अड़चन। २. तकलीफ। दिक्कत।

असुभंग—संज्ञा पुं० [सं० असुभङ्ग] प्राणनाश। प्राणभंग [को०]।

असुभ(पु)—वि० [सं० अशुभ] दे० 'अशुभ'। उ०—असुभ बेष भूषन धरे भक्षाभक्ष जे खाहिं।—मानस, ७।९८।

असुभृत्—वि० [सं०] प्राणवान्। प्राणी [को०]।

असुमान्—वि० [सं० असुमत्] दे० 'असुभृत' [को०]।

असुमेध—संज्ञा पुं० [सं० अश्वमेध] दे० 'अश्वमेध'।

असुर—संज्ञा पुं० [सं०] १. दैत्य। राक्षस। २. रात्रि। ३. नीच वृत्ति का पुरुष। ४. पृथिवी। ५. सूर्य। ६. बादल। ७. राहु। ८. वैद्यक शास्त्र के अनुसार एक प्रकार का उन्माद।

विशेष—इसमें पसीना नहीं होता और रोगी ब्राह्मण, गुरु, देवता आदि पर दोषारोपण किया करता है, उन्हें भला बुरा कहने से नहीं डरता, किसी वस्तु से उसकी तृप्ति नहीं होती और वह कुमार्ग में प्रवृत्त होता है।

९—समुद्री लवण। १०. देवदार। ११. हाथी [को०]। १२. एक लड़ाकू जाति [को०]।

असुरकुमार—संज्ञा पुं० [सं०] जैनशास्त्रानुसार एक त्रिभुवनपति देवता।

असुरगुरु—संज्ञा पुं० [सं०] शुक्राचार्य।

असुरद्रुट्—संज्ञा पुं० [सं० **असुरद्रुह्**] देव। सुर [को०]।

असुरद्विट्—संज्ञा पुं० [सं० **असुरद्विष्** (ट्)] विष्णु [को०]।

असुरराज—संज्ञा पुं० [सं०] राजा बलि। दैत्यराज [को०]।

असुररिपु—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु [को०]।

असुरविजयी—संज्ञा पुं० [सं० **असुरविजयिन्**] वह राजा जो पराजित की भूमि, धन, स्त्री, पुत्र आदि के अतिरिक्त उसकी जाति भी लेना चाहे।

विशेष—कौटिल्य ने लिखा है कि दुर्बल राजा ऐसे शत्रु को भूमि आदि देकर जहाँ तक दूर रख सके, अच्छा है।

असुरसा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का तुलसी का पौधा [को०]।

असुरसूदन—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु [को०]।

असुरसेन—संज्ञा पुं० [सं०] एक राक्षस। कहते हैं कि इसके शरीर पर गया नामक नगर बसा है। उ०—असुरसेन सम नरक निकंदिनि। साधु बिबुध कुलहित गिरिनंदिनि।—मानस, १।३१

असुरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. रात। २. वारांगना। ३. राशि [को०]।

असुराई(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० **असुर**+हिं० **आई** (प्रत्य०)] खोटाई। शरारत। उ०—बात चलत जाकी करैं असुराई नेहीन। है कछु अद्भुत मत भरो तेरे दृगन प्रवीन।—स० सप्तक, पृ० १९८।

असुराचार्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. शुक्र ग्रह। २. शुक्राचार्य। असुर गुरु [को०]।

असुराधिप—संज्ञा पुं० [सं०] १. असुरराज। दैत्यों का अधिपति। २. जलंधर नामक असुरराज। उ०—परम सती असुराधिप नारी। तेहि बल ताहि न जितहिं पुरारी।—मानस, १।१२३। ३. राज बलि [को०]।

असुरारि—संज्ञा पुं० [सं०] देवता।

असुरारी(पु)—संज्ञा पुं० [सं० **असुरारि**] दे० 'असुरारि'। उ०—गो द्विज हितकारी जय असुरारी सिंधुसुता प्रिय कंत।—मानस, १।१८६।

असुराह्व—संज्ञा पुं० [सं०] काँसा नामक धातु [को०]।

असुरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. राक्षसी। २. राई [को०]।

असुविधा—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० असुबिधा'।

असुविलास—संज्ञा पुं० [सं०] १. छंदविशेष [को०]।

असुस्थ—वि० [सं०] अनिश्चित। उद्विग्न। बीमार। रुग्ण [को०]।

असुस्थता—संज्ञा स्त्री० [सं०] उद्विग्नता। बीमारी [को०]।

असूक्षण—संज्ञा पुं० [सं०] अनादर [को०]।

असूझ(पु)†—वि० [सं० **अ**+हिं० **सूझना**] १. अँधेरा। अंधकारमय। उ०—अगम असूझ देखि डर खाई। परै सो सप्त पतालहि जाई।—जायसी (शब्द)। २. जिसका वार पार न दिखाई पड़े। अपार। बहुत विस्तृत। बहुत अधिक। उ०—(क) कटक असूझ देखि कै राजा गरब करेइ। दैउ क दसा न देखै दुहुँ का कहँ जय देइ।—जायसी ग्रं०, पृ० ११२। ३. जिसके करने का उपाय न सूझे। विकट। कठिन। उ०—दोऊ लड़ै होय समुख लोहैं भयो असूझ। शत्रु जूझ तब न्योरे एक दोऊ मँह जूझ।—जायसी (शब्द०)।

असूत(पु)†—वि० [सं० **अस्यूत**] विरुद्ध। असंबद्ध। उ०—पुनि तिन प्रश्न कियो निज पूतहि। शास्त्र परस्पर कहत असूतहि।—निश्चल (शब्द०)।

असूति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वंध्यात्व। बाँझपन। २. निवारण [को०]।

असूतिका—वि० स्त्री० [सं०] १. जिसका बच्चा न पैदा हुआ हो। २. बंध्या [को०]।

असूयक[1]—वि० [सं०] १. ईर्ष्या करनेवाला। छिद्रान्वेषी २. असंतुष्ट। अप्रसन्न [को०]।

असूयक[2]—संज्ञा पुं० निंदा करनेवाला व्यक्ति [को०]।

असूया—संज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० **असूयक**] १. पराए गुण में दोष लगाना। उ०—सदा सत्यमय सत्यव्रत सत्य एक पति इष्ट। बिगत असूया सील सौं ज्यों अनसूया सृष्ट।—स० सप्तक, पृ० ३६९। २. रस के अंतर्गत एक संचारी भाव। ३. क्रोध [को०]।

असूयिता—वि० [सं० **असूयितृ**] दे० 'असूयक' [को०]।

असूयु—वि० [सं०] दे० 'असूयक' [को०]।

असूर्यपश्या[1]—वि० [सं० **असूर्यम्पश्या**] १. सूर्य को भी न देखनेवाली। राजा के अंतःपुर की स्त्रियों या रानियों के लिये प्रयुक्त जो कठोर पर्दे में रहती थीं। २. जिसको सूर्य भी न देखे। परदे में रहनेवाली; जैसे,—'असूर्यपश्या दमयंती को विपत्ति में बन बन फिरना पड़ा।

असूर्यपश्या[2]—संज्ञा स्त्री० पतिव्रता या साध्वी पत्नी [को०]।

असूल[1]—संज्ञा स्त्री० [अ० **उसूल**] दे० 'उसूल'।

असूल—वि० [अ० **वसूल**] दे० 'वसूल'।

असृक्—संज्ञा पुं० [सं०] १. रक्त। रुधिर। २. मंगल ग्रह [को०]। ३. कुंकुम। केसर [को०]। ४. योग के सत्ताईस भेदों में से एक [को०]।

यौ०—**असृक्प**, **असृक्पा**=रक्तपायी। राक्षस। **असृक्पात**, **असृक्स्राव**=रक्तपात। खून बहना।

असृक्कर—संज्ञा पुं० [सं०] (शरीर में) रस से रक्त बनने की प्रक्रिया।

असृग्—संज्ञा पुं० [सं० **असृक्**] दे० 'असृक्' [को०]।

असृग्ग्रह—संज्ञा पुं० [सं०] मंगल ग्रह [को०]।

असृग्दर—संज्ञा पुं० [सं०] मासिकधर्म का अनियमित या अधिक होना [को०]।

असृग्दोह—संज्ञा पुं० [सं०] रक्तस्राव [को०]।

असृग्धरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] चमड़ा। चर्म [को०]।

असृग्धारा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. चमड़ा २. खून की धारा [को०]।

असृग्वहा—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह नाड़ी जिससे रक्तसंचार होता है [को०]।

असृग्विमोक्षण—संज्ञा पुं० [सं०] रक्त निकालना [को०]।

असृष्ट—वि० [सं०] १. जिसकी सृष्टि न हुई हो। अनुत्पन्न। २. जो चल रहा हो। जारी। ३. जो प्रदान न किया गया हो अथवा जिसका वितरण न हुआ हो [को०]

यौ०--असृष्टान्न=जो भोजन को वितरण न करे ।

असैग(ए)--वि० [सं० असह्य] न सहने योग्य । असह्य । कठिन ।

असेचन, असेचनक--वि० [सं०] खूबसूरत । जिसे बार बार देखने को जी चाहे [को०] ।

असेत(ए)--वि० [सं० अ=नहीं+श्वेत, प्रा० सेअ, अप० सेत] अश्वेत । काला । बुरा । उ०--कीन्हीं तुम सेत, मैं असेत कृति कीन्हीं तुम धर्म अनुराग्यो मैं अधर्म अनुराग्यो है ।--पद्माकर ग्रं०, पृ० २४८ ।

असेवन१--[सं०] १. सेवा न करनेवाला । २. अनुगमन न करनेवाला [को०] ।

असेवन२--संज्ञा पुं० अवज्ञा । ध्यान न देना [को०] ।

असेवा--संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'असेवन--२' [को०] ।

असेवित--वि० [सं०] १. परित्यक्त । उपेक्षित । २. अव्यवहृत [को०] ।

असेष(ए)--वि० [हिं०] दे० 'अशेष' । उ०--रावत न लेस अब बिवन असेष को ।--भिखारी ग्रं०, भा० १, पृ० १६५ ।

असेस(ए)--वि० [सं० अशेष, प्रा० असेस] अनंत । बहुत । उ०--जात भो रसातलै असेस कंठमाल भेदि ।--रामचंद्र०, पृ० १३५

असेसमेंट--संज्ञा पुं० [अं० एसेसमेंट] १. मालगुजारी या लगान लगाने के लिये जमीन का मोल ठहराने का काम । बंदोबस्त । २. कर वा टैक्स लगाने के लिये बही खाते की जाँच का काम ।

असेसर--संज्ञा पुं० [अं० एसेसर] १. वह व्यक्ति जो जज को फौजदारी के मुकद्दमे में फैसले के समय राय देने के लिये चुना जाता है । २. वह जो बही खाता जाँच कर महसूल या कर की रकम निश्चित करता है । ३. वह जो जमीन का मोल ठहराकर लगान या मालगुजारी की रकम निश्चित करता है । कर लगानेवाला ।

असैनिक--वि० [सं०] १. जो सैनिक न हो । जो सेना से संबंध न रखता हो ।

असैला(ए)--वि० [सं० अ=नहीं+शैली=रीति] [स्त्री० असैली] १. रीति नीति के विरुद्ध कर्म करनेवाला । कुमार्गी । उ०--सभा-सरवर, लोक-कोकनद-कोकगन प्रमुदित मन देखि दिनमनि भोर हैं । अबुध असैले मनमैले महिपाल भए कछुक उलूक कछु कुमुद चकोर हैं । तुलसी ग्रं०, पृ० ३०७ । २. शैली के विरुद्ध । अनुचित । रीतिविरुद्ध । उ०--मैं सुनी बातें असैली जे कहि निसिचर नीच । क्यों न मारै गाल बैठो काल डाढ़नि बीच ।--तुलसी ग्रं०, पृ० ३७४ ।

असों†--क्रि० वि० [सं० इह=समय या अस्मिन् समय का संक्षिप्त रूप] इस वर्ष । इस साल ।

असोक१(ए)--संज्ञा पुं० [सं० अशोक] दे० 'अशोक' । उ०--तब असोक पादप तर राखिसि जतन कराइ ।--मानस, ३। २३ ।

असोक२(ए)--वि० [सं० अशोक] शोकरहित । उ०-- जहँ असोक तहँ सोक बस है न सियहिं निज बोध ।--पद्माकर ग्रं०, पृ० ४६ ।

असोकी(ए)--वि० [हिं० असोक=ई (प्रत्य०)] शोकरहित । उ०--प्रभुहि तथापि प्रसन्न बिलोकी । माँगि अगम बर होउँ असोकी ।--मानस, १।१६४ ।

असोच(ए)--वि० [सं० अ+शोच] १. शोचरहित । चिंतारहित । उ०--रहहु असोच बनै प्रभु पोसे ।--मानस, ४। ३ । २. निश्चिंत । बेफिक्र । उ०--माधौ जू, मन सबहीं विधि पोच । अति उनमत्त, निरंकुस, मैगल, चिंतारहित असोच ।--सूर०, १। १०२ ।

असोज(ए)†--संज्ञा पुं० [सं० अश्वयुज, प्रा० असोय] आश्विन । क्वार

असोढ--वि० [सं०] १. असह्य । २. जो वश में न किया जा सके । उद्धत [को०] ।

असोस(ए)--वि० [अ+शोष] जो सूखे नहीं । न सूखनेवाला । उ०--(क) कबिरा मन का माँहिरा अबरा वहै असोस । देखत ही दह में परै देय किसी को दोस ।--कबीर (शब्द०) । (ख) गोपिन कै अंसुवनु भरी सदा असोस अपार । डगर डगर नै ह्वै रही बगर बगर के बार ।--बिहारी र०, पृ० २९३ ।

असोसिएशन--संज्ञा पुं० [अं० एसोसिएशन] समिति । समाज । संस्था ।

असौंदर्य--संज्ञा पुं० [सं० असौन्दर्य] असुंदरता । कुरूपता [को०] ।

असौंध(ए)--संज्ञा पुं० [सं० अ=नहीं+हिं० सौंध=सुगंध] दुर्गंध । बदबू । उ०--जहँ आगम पौनहि को सुनिए । नित हानि असौंधहि की गुनिए ।--केशव (शब्द०) ।

असौच(ए)--संज्ञा पुं० [सं० अशौच] दे० 'अशौच' । उ०--हौं असौच, अक्रिय अपराधी, सनमुख होत लजाउँ ।--सूर०, १। १२८ ।

असौधा(ए)--वि० [हिं० असौंध] १. दे० 'असौंध' । २. सुगंधविहीन ।

असौम्य--वि० [सं०] जो सौम्य न हो । असुंदर । कुरूप [को०] ।

असौष्ठव१--संज्ञा पुं० [सं०] १. निकम्मापन । गुणहीनता । २. सुष्ठुता का अभाव । भद्दापन [को०] ।

असौष्ठव२--वि० असुंदर । भद्दा । बिरूप [को०] ।

अस्कंदित--वि० [सं० अस्कन्दित] १. अक्षरित । न बहा हुआ । २. न गया हुआ । ३. अनाक्रांत । ४. अविस्मृत अनुपेक्षित--जैसे समय अथवा प्रतिज्ञा [को०] ।

अस्का†--संज्ञा पुं० [देश०] नैनीताल में बुलाक को कहते हैं । यह एक छोटी सी नथुनी और लटकन जिसे स्त्रियाँ नाक में पहनती हैं ।

अस्कन्न--वि० [सं०] १. न फटा हुआ । २. न खुला हुआ । ३. टिकाऊँ । ४. न उँडेला हुआ [को०] ।

अस्कर--संज्ञा पुं० [अ०] फौज । सेना [को०] ।

अस्करी--संज्ञा पुं० [अ०] सैनिक । योद्धा [को०] ।

अस्खल--संज्ञा पुं० [सं०] आग । अग्नि [को०] ।

अस्खलित--वि० [सं०] १. च्युत न होनेवाला । अच्युत । २. विचलित न होनेवाला । अडिग । ३. विशुद्ध । ४. शुद्ध उच्चारण करनेवाला [को०] ।

अस्तंगत--वि० [सं० अस्तङ्गत] १. अस्त को प्राप्त । नष्ट । २. अवनत । हीन ।

अस्त१--वि० [सं०] १. छिपा हुआ । तिरोहित । २. जो दिखाई न पड़े । अदृश्य । डूबा हुआ, जैसे--'सूर्य अस्त हो गया ।' ३. नष्ट । ध्वस्त, जैसे--'मुगलों का प्रताप औरंगजेब के पीछे अस्त हो गया' (शब्द०) । ४. फेंका हुआ । क्षिप्त [को०] । ५. समाप्त [को०] । ६. भेजा हुआ [को०] ।

अस्त२--संज्ञा पुं० [सं०] १. तिरोधान । लोप । अदर्शन, जैसे-सूर्यास्त के पहले आ जाना (शब्द०) । २. पश्चिम मेरु (जिसके पीछे सूर्य

डूबता है) [को०]। ३. आवास। घर [को०]। ४. समाप्ति। मृत्यु [को०]।

यौ०— **सूर्यास्त। शुक्रास्त। अस्तंगत।**

विशेष—सब ग्रह अपने उदय के लग्न से सातवें लग्न पर अस्त होते हैं। इसी से कुंडली में सातवें घर की संज्ञा 'अस्त' है। बुध को छोड़कर अन्य ग्रह जब सूर्य के साथ होते हैं, तब अस्त कहे जाते हैं।

अस्तक—संज्ञा पुं० [सं०] १. मोक्ष। २. घर [को०]।

अस्तकाल—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अस्तसमय'।

अस्तगमन—संज्ञा पुं० [सं०] १. डूबना। लोप। २. मृत्यु। जीवन का अंत [को०]

अस्तगिरि—संज्ञा पुं० [सं०] अस्ताचल। वह पर्वत जिसके पीछे सूर्य अस्त हो जाता है [को०]।

अस्तनⓅ†—संज्ञा पुं० [सं० स्तन] दे० 'स्तन'। उ०—कपट करि ब्रजहिं पूतना आई। अति सुरूप, बिष अस्तन लाए, राजा कंस पठाई।—सूर०, । १०।५२।

अस्तनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जिसके स्तन बहुत ही छोटे और नहीं के समान हों।

अस्तप्राय—वि० [सं०] लगभग डूबा हुआ।

अस्तबल—संज्ञा पुं० [अ०] घुड़साल। तबेला।

अस्तब्ध—वि० [सं०] १. जो स्तब्ध न हो। अचकित। २. चंचल। ३. विनयी [को०]।

अस्तभवन—संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष के अनुसार उदय के लग्न से सप्तम लग्न [को०]।

अस्तमती—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सरिवन का पेड़। सातिवा। शालपर्णी।

अस्तमन—संज्ञा पुं० [सं०] १. अस्त होना। तिरोधान। २. सूर्यादि ग्रहों का तिरोधान या अस्त होना।

यौ०—**अस्तमनवेला।**

अस्तमननक्षत्र—संज्ञा पुं० [सं०] जिस नक्षत्र पर कोई ग्रह अस्त हो, वह नक्षत्र उस ग्रह का अस्तमन नक्षत्र कहलाता है।

अस्तमनबेला—संज्ञा स्त्री० [सं० **अस्तमनवेला**] सायंकाल। संध्या का समय।

अस्तमित—वि० [सं०] १. तिरोहित। छिपा हुआ २. नष्ट। मृत।

अस्तर—संज्ञा पुं० [फा०, मि० सं० **आ+स्तृ आच्छादन, तह या आस्तर**] १. नीचे की तह या पल्ला। भितल्ला। उपल्ले के नीचे का पल्ला। २ दोहरे कपड़े में नीचे का कपड़ा। ३. नीचे ऊपर रखकर सिले हुए दो चमड़ों में से नीचेवाला चमड़ा। ४. वह चंदन का तेल जिसपर भिन्न भिन्न सुगंधों का आरोप करके अतर बनाया जाता है। जमीन। ५. वह कपड़ा जिसे स्त्रियाँ बारीक साड़ी के नीचे लगाकर पहनती हैं। अँतरौटा। अंतरपट। ६. नीचे का रंग जिसपर दूसरा रंग चढ़ाया जाता है। ७. खच्चर [को०]।

अस्तरकारी—संज्ञा स्त्री० [फा] १. चूने की लिपाई। सफेदी। कलई। २. गचकारी। पलस्तर। पन्ना लगाना।

अस्तरबट्टी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] पत्थर की वह बट्टी जिससे तसवीर की जमीन घोंटी जाती है [को०]।

अस्तरीⓅ—संज्ञा स्त्री० [सं० **स्त्री**] नारी। स्त्री। उ०—माया माता पिता, अति माया अस्तरी सुता।—कबीर ग्रं०, पृ० ११५।

अस्तव्यस्त—वि० [सं०] उलटा पुलटा। छिन्न भिन्न। तितर बितर। उ०—अस्तव्यस्त है। वह भी ढक ले कौन सा अंग, न जिसमें कोई दृष्टि लगे उसे।—झरना, पृ० २२।

अस्ताघ—वि० [सं०] अतिशय गंभीर। बहुत गहरा [को०]।

अस्ताचल—संज्ञा पुं० [सं०] एक कल्पित पर्वत जिसके संबंध में लोगों का यह विश्वास है कि अस्त होने के समय सूर्य इसी की आड़ में छिप जाता है। पश्चिमाचल। उ०—अस्ताचल जाते ही दिनकर के, सब प्रकट हुए कैसे।—प्रेम०, पृ० ११।

अस्ताद्रि—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अस्ताचल'।

अस्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. भाव। सत्ता। २. विद्यमानता। वर्तमानता। ३. जरासंध की एक कन्या जो कंस को ब्याही गई थी।

अस्तिकाय—संज्ञा पुं० [सं०] जैनशास्त्रानुसार वे सिद्ध पदार्थ जो प्रदेशों या स्थानों के अनुसार कहे जाते हैं।

विशेष—ये पाँच हैं—(क) जीवास्तिकाय, (ख) पुद्गलास्तिकाय, (ग) धर्मास्तिकाय, (घ) अधर्मास्तिकाय और (च) आकाशास्तिकाय।

अस्तिकेतुसंज्ञा—संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष में वह केतु जिसका उदय पश्चिम भाग में हो और जो उत्तर भाग में फैला हो। इसकी मूर्ति रुक्ष होती है और इसका फल भयप्रद है।

अस्तित्व—संज्ञा पुं० [सं०] १. सत्ता का भाव। विद्यमानता। मौजूदगी। उ—सिर नीचा कर किसकी सत्ता सब करते स्वीकार यहाँ; सदा मौन हो प्रवचन करते जिसका वह अस्तित्व कहाँ।—कामायनी, पृ० २६। २. सता। भाव। उ०—निज अस्तित्व बना रखने में जीवन आज हुआ था व्यस्त।—कामायनी, पृ० ३३।

अस्तिनास्ति—वि० [सं०] संदेहपूर्ण। हाँ नहीं। कुछ झूठा कुछ सच्चा [को०]।

अस्तिमान्—वि० [सं० **अस्तिमत्**] धनवान्। धनाढ्य [को०]।

अस्तीन—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'आस्तीन'।

अस्तु—अव्य० [सं०] १. जो हो। चाहे जो हो। उ—अस्तु, सुव्रते ! कहो कहाँ फिर तुम रहीं, मेरे जाने बाद।—करुणा०, पृ० ३१। २. खैर। भला। अच्छा। उ०—अस्तु सभी तुम शक्तिहीन हो गए।—करुणा०, पृ० ३२।

अस्तुति[१]Ⓟ—संज्ञा स्त्री० [सं] निंदा। अपकीर्ति।

अस्तुति[२]Ⓟ—संज्ञा स्त्री० [सं **स्तुति**] दे० 'स्तुति'। उ०—निंदा अस्तुति उभय सम ममता मम पद कंज।—मानस, ७। ३८।

अस्तुरा—संज्ञा पुं० [फा० उस्तरा, मि० सं० **अस्त्र**] बाल बनाने का छुरा।

अस्तेय—संज्ञा [सं०] १. चोरी का त्याग। चोरी न करना। २. योग के आठ अंगों में नियम नामक अंग का तीसरा भेद। यह स्तेय अर्थात् बल से या एकांत में पराए धन का अपहरण करने का उलटा या विरोधी। इसका फल योगशास्त्र में सब रत्नों

का उपस्थान या प्राप्ति है। ३. जैनशास्त्रानुसार अदत्तदान का त्याग करना। चोरी न करने का व्रत।

अस्तेयव्रत—संज्ञा पुं० [सं०] अपनी आवश्यकता से अधिक संग्रह का त्याग। वह व्रत जिसमें जरूरत से ज्यादा संपत्ति रखने को चोरी जैसा पाप कर्म समझा जाता है [को०]।

अस्तोदय—संज्ञा पुं० [सं० **अस्त+उदय**] १. डूबना उगना। २. बिगड़ना बनना [को०]।

अस्त्यान—संज्ञा पुं० [सं०] १. परदोषकथन। निंदा। २. झिड़की। भर्त्सना [को०]।

अस्त्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह हथियार जिसे फेंककर शत्रु पर चलावें; जैसे—बाण। शक्ति। २. वह हथियार जिससे कोई चीज फेंकी जाय; जैसे—धनुष, बंदूक। ३. वह हथियार जिससे शत्रु के चलाए हथियारों की रोक हो; जैसे—ढाल। ४. वह हथियार जो मंत्र द्वारा चलाया जाय; जैसे जृंभास्त्र। ५. वह हथियार जिससे चिकित्सक चीर फाड़ करते हैं। ६. शस्त्र। हथियार।

यौ०—**अस्त्रशस्त्र**।

अस्त्रकंटक—संज्ञा पुं० [सं० **अस्त्रकण्टक**] बाण। तीर [को०]।

अस्त्रकार—संज्ञा पुं० [सं०] हथियार बनानेवाला कारीगर।

अस्त्रकारक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अस्त्रकार' [को०]।

अस्त्रकारी—संज्ञा पुं० [सं० **अस्त्रकारिन्**] दे० 'अस्त्रकार' [को०]।

अस्त्रघला(पु)† वि० [सं० **अस्त्र+घातक**] अस्त्र चलानेवाला।

अस्त्रचिकित्सक—संज्ञा पुं० [सं०] चीर फाड़ या जर्राही करनेवाला चिकित्सक। जर्राह [को०]।

अस्त्रचिकित्सा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वैद्यकशास्त्र का वह अंश जिसमें चीरफाड़ का विधान है। २. चीरफाड़ करना। अस्त्रप्रयोग। जर्राही।

विशेष—इसके आठ भेद हैं। (क) छेदन=नश्तर लगाना। (ख) भेदन=फाड़ना। (ग) लेखन=खरोंचना। (घ) वेधन=सुई की नोक से छेद करना। (च) मेषण=धोना। साफ करना। (छ) आहरण=काटकर अलग करना। (ज) विश्रावण=फस्द खोलना। (झ) सीना=सीना या टाँका लगाना।

अस्त्रजीवी—संज्ञा पुं० [सं० **अस्त्रजीविन्**] १. पेशेवर सैनिक। २. सैनिक [को०]।

अस्त्रधारी—संज्ञा पुं० [सं० **अस्त्रधारिन्**] सैनिक [को०]।

अस्त्रबंध—संज्ञा पुं० [सं० **अस्त्रबन्ध**] अनवरत बाणवर्षा। [को०]।

अस्त्रमार्जक—संज्ञा पुं० [सं०] अस्त्रों को माँजकर साफ करनेवाला [को०]।

अस्त्रलाघव—संज्ञा सं० [सं०] अस्त्र कौशल। ठीक ठीक और फुर्ती के साथ लक्ष्यवेध करने की कुशलता [को०]।

अस्त्रविद्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बाण विद्या। २. अस्त्रचालन की विद्या [को०]।

अस्त्रवेद—संज्ञा पुं० [सं०] वह शास्त्र जिसमें अस्त्र बनाने और प्रयोग करने का विधान हो। धनुर्वेद।

अस्त्रशस्त्र—संज्ञा पुं० [सं०] अस्त्र और शस्त्र। हाथ में लिए हुए तथा हाथ से फेंककर प्रहार करने योग्य हथियार [को०]।

अस्त्रशाला—संज्ञा पुं० [सं०] वह स्थान जहाँ अस्त्र शस्त्र रखे जायँ। अस्त्रागार। सिलहखाना।

अस्त्रशास्त्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. अस्त्रचालन की शिक्षा देनेवाला शास्त्र या विद्या। २. धनुर्वेद [को०]।

अस्त्रागार—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अस्त्रशाला'।

अस्त्री—संज्ञा पुं० [सं० **अस्त्रिन्**] [स्त्री० **अस्त्रिणी**] अस्त्रधारी मनुष्य। हथियारबंद आदमी।

अस्त्रीक—वि० [सं०] १. पत्नीहीन। २. बिना स्त्री का [को०]।

अस्त्रैण—वि० [सं०] १. बिना स्त्री का। जिसे स्त्री न हो। २. जो स्त्री संबंधी न हो। ३. जो स्त्री का गुलाम न हो। ४. जो स्त्री द्वारा गौरवान्वित न हो [को०]।

अस्थल(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० **स्थल**] दे० 'स्थल'। उ०—अस्थल लीपि पात्र सब धोए, काज देव के कीन्ह।—सूर० ११। ७८।

अस्थाई(पु)—वि० [सं० **स्थायी**] दे० 'स्थायी'।

अस्थान¹(पु)—संज्ञा पुं० [सं० **आस्थान**] दे० 'स्थान'। उ०—अति ऊँचे भूधरनि पर भुजगन के अस्थान। तुलसी अति नीचे सुखद ऊख, अन्न अरु पान।—तुलसी ग्रं०, पृ० १२।

अस्थान²—संज्ञा पुं० [सं०] १. अनुपयुक्त अथवा बुरा स्थान। २. अनवसर [को०]।

अस्थानीय—वि० [सं०] प्रसंग से भिन्न। अनुपयुक्त। उ०—उसने अपना बहुत सुधार किया है कि जिसका आख्यान यहाँ अस्थानीय है'।—प्रेमघन, भा० २, पृ० २६०।

अस्थायी¹—वि० [सं० **अस्थायिन्**] [वि० स्त्री० **अस्थायिनी**] जो स्थायी या टिकाऊ न हो। नश्वर। क्षणभंगुर [को०]।

अस्थायी²—संज्ञा स्त्री० [सं० **स्थायिन्**] गीत का प्रथम चरण या टेक [को०]।

अस्थावर—संज्ञा पुं० [सं०] १. जो स्थावर या अचल न हो। जंगम। चल। २. कानून में वह संपत्ति जो चल हो—जैसे, मवेशी, जेवर आदि [को०]।

अस्थि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. हड्डी। उ०—औरौ कथा सबै बिसराई लेत तुम्हारो नाम। सूर स्याम ता दिन तें बिछुरे, अस्थि रहै कै चाम।—सूर०, २।३३०९। २. फल की गुठली या गिरी [को०]।

अस्थिकुंड—संज्ञा पुं० [सं० **अस्थिकुण्ड**] पुराणों के अनुसार एक नरक जिसमें हड्डियाँ भरी हुई हैं।

विशेष—ब्रह्मवैवर्त के अनुसार वे पुरुष इस नरक में पड़ते हैं जो गया में विष्णुपद पर पिंडदान नहीं करते।

अस्थिकृत—संज्ञा पुं० [सं०] १. हड्डी के भीतर स्थित स्नेह। मज्जा। २. वज्र [को०]।

अस्थिज—संज्ञा पुं० [सं०] १. मज्जा। २. हड्डी से बना हुआ द्रव्य। ३. वज्र [को०]।

अस्थित¹—वि० [सं०] जो दृढ़ या स्थिर न हो [को०]।

अस्थित²(पु)—वि० [सं० **स्थित**] उपस्थित। वर्तमान। स्थित। उ०—मेरौ बचन सत्य करि मानौ, छाँड़ौ सबकौ मोहु। तब लौं सब पानी की चुपरी जौ लौं अस्थित दोहु।—सूर०, १३५३६

अस्थिति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दृढ़ता या स्थिरता का अभाव। चंचलता। डाँवाडोलपन। २. अच्छे शऊर या सलीके की कमी [को०]।

अस्थितुंड—संज्ञा पुं० [सं० अस्थितुण्ड] १. पक्षी। २. हड्डी की तरह कड़ी चोंचवाला पक्षी [को०]।

अस्थितेज—संज्ञा पुं० [सं० अस्थितेजस्] मज्जा [को०]।

अस्थितैल—संज्ञा पुं० [सं०] हड्डी का तेल [को०]

अस्थिधन्वा—संज्ञा पुं० [सं० अस्थिधन्वन्] शिव [को०]।

अस्थिपंजर—संज्ञा पुं० [सं० अस्थिपञ्जर] शरीर का ढाँचा। हड्डी पसली। कंकाल। उ०—धधक रही सब ओर भूख की ज्वाला है घर घर में। मांस नहीं है, शेष रही बस साँस अस्थिपंजर में।—पथिक, पृ० ४१।

अस्थिप्रक्षेप—संज्ञा पुं० [सं०] गंगा या अन्य किसी पवित्र नदी या सरोवर में मृत व्यक्ति की अस्थि को प्रवाहित करना। अस्थिविसर्जन [को०]।

अस्थिबंधन—संज्ञा पुं० [सं० अस्थिबन्धन] स्नायु [को०]।

अस्थिभंग—संज्ञा पुं० [सं० अस्थिभङ्ग] हड्डी टूटना [को०]।

अस्थिभक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] हड्डी खानेवाला। कुत्ता [को०]।

अस्थिभुक्—संज्ञा पुं० [सं० अस्थिभुज्] दे० 'अस्थिभक्षी' [को०]।

अस्थिभेद—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अस्थिभंग' [को०]।

अस्थिभेदी—वि० [सं० अस्थिभेदिन्] १. हड्डी काटनेवाला। २. अत्यंत तीक्ष्ण [को०]।

अस्थिमाली—संज्ञा पुं० [सं० अस्थिमालिन्] शिव।

अस्थिर[1]—वि० [सं०] १. जो स्थिर न हो। चंचल। चलायमान। डाँवाँडोल। उ०—दावाग्नि-प्रखर लपटों ने कर दिया सघन बन अस्थिर।—कामायनी, पृ० २८१। २—बे ठौरठिकाने का। जिसका कुछ ठीक न हो। उ०—यों ही लगा बीतने उनका जीवन अस्थिर दिन दिन।—कामायनी, पृ० ३३।

अस्थिर[2]ⓟ—[सं० स्थिर] जो चंचल न हो। स्थिर उ०—भक्तनि हाट बैठि अस्थिर ह्वै, हरि नग निर्मल लेहि काम-क्रोध मद-लोभ-मोह तू सकल दलाली देहि।—सूर०, १। ३१०।

अस्थिरता—संज्ञा स्त्री० [सं०] चंचलता, व्यग्रता। व्याकुलता।

अस्थिविग्रह[1]—वि० [सं०] दुबला पतला (व्यक्ति या जीव)। जिसका शरीर सूखकर हड्डी का ढाँचा मात्र रह गया हो [को०]।

अस्थिविग्रह[2]—संज्ञा पुं० [सं०] शिव का भृंगी नामक गण [को०]।

अस्थिशेष—वि० [सं०] कंकालशेष। जिसके शरीर में हड्डियाँ ही रह गई हों [को०]।

अस्थिसंचय—संज्ञा पुं० [सं० अस्थिसञ्चय] भस्मांत या अंत्येष्टि संस्कार के अनंतर की एक क्रिया या संस्कार जिसमें जलने से बची हुई हड्डियाँ एकत्र की जाती हैं।

अस्थिसंधि—संज्ञा स्त्री० [सं० अस्थिसन्धि] हड्डियों का जोड़।

अस्थिसंभव—संज्ञा पुं० [सं० अस्थिसम्भव] १. मज्जा। २. वज्र [को०]।

अस्थिसमर्पण—संज्ञा पुं० [सं०] १. हड्डियों का नदी में प्रवाह। अस्थिविसर्जन [को०]।

अस्थिसार—संज्ञा पुं० [सं०] मज्जा [को०]।

अस्थिस्नेह—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अस्थिसार' [को०]।

अस्थूल[1]—वि० [सं०] जो स्थूल न हो। सूक्ष्म।

अस्थूल[2]ⓟ—वि० [सं० स्थूल] दे० 'स्थूल'।

अस्थैर्य—संज्ञा पुं० [सं०] दृढ़ता का अभाव। अस्थिरता। डाँवाँडोलपन। उ०—दिया नृप को वशिष्ठ ने धैर्य कहा—यह उचित नहीं अस्थैर्य।—साकेत, पृ० ४२।

अस्नानⓟ—संज्ञा पुं० [सं० स्नान] दे० 'स्नान'। करि अस्नान नंद घर आए।—सूर०, १०।२६०।

अस्नाविर—वि० [सं०] जिसे स्नायु न हो। दुबली देह का (व्यक्ति) [को०]।

अस्निग्ध—वि० [सं०] १. जो स्निग्ध या चिकना न हो। २. कठोर। निर्दय। हृदयहीन [को०]।

अस्निग्धदारु—संज्ञा पुं० [सं०] देवदारु वृक्ष की जाति का एक वृक्ष [को०]।

अस्निग्धदारुक—संज्ञा पुं० [सं०] देवदारु की जाति का एक पेड़।

अस्नेहन—संज्ञा पुं० [सं०] शिव [को०]।

अस्पंज—संज्ञा पुं० [यु० इस्फंज] स्पंज। मुर्दा बादल [को०]।

अस्पंद—संज्ञा पुं० [सं० अस्पन्द] जिसमें स्पंदन या कंपन न हो। गतिहीन [को०]।

अस्पताल—संज्ञा पुं० [अं० हॉस्पिटल] औषधालय। चिकित्सालय। दवाखाना।

अस्पर्श—वि० [सं०] १. जिसमें स्पर्श न हो। २. जो छूने योग्य न हो [को०]।

अस्पर्सⓟ—संज्ञा पुं० [सं० स्पर्श] दे० 'स्पर्श'। उ०—भएँ अस्पर्श देवतन धरिहै। मेरी कह्यौ नाहिं यह टरिहै।—सूर० ८।२।

अस्पष्ट—वि० [सं०] जो साफ या स्पष्ट न हो। अप्रकट। अस्फुट। उ०—अस्पष्ट एक लिपि ज्योतिमयी, जीवन की आँखों में भरते।—कामायनी, पृ० ६४।

अस्पृश्य—वि० [सं०] जो छूने योग्य न हो। उ०—गिर जाय कुछ गंगांबु भी अस्पृश्य नाली में कभी, तो फिर उसे अपवित्र ही बतलायँगे निश्चय सभी।—भारत, पृ० १२३। २—नीच जाति का। अंत्यज।

अस्पृश्यता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. अस्पृश्य होने का भाव या दशा। अछूतपन।

अस्पृष्ट—वि० [सं०] जिसपर हाथ न लगाया गया हो। अछूता [को०]।

अस्पृह—वि० [सं०] निःस्पृह। निर्लोभ। जिसमें लालच न हो।

अस्फटिकⓟ—संज्ञा पुं० [सं० स्फटिक] दे० 'स्फटिक'। उ०—जिनकी बनी अवनी अमल अस्फटिक मनि पटरीन सों।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० १२०।

अस्फी—संज्ञा पुं० [फा० अस्प + ई (प्रत्य०)] घुड़सवार। अश्वारोही। उ०—सु अस्फी घने दुंदुभी हैं धुकारे। मनौ वर्षराते सत्रै सिंधु भारे।—पद्माकर ग्रं०, पृ० २७८।

अस्फुट—वि० [सं०] १. जो स्पष्ट न हो। जो साफ न हो। उ०—अस्फुट कोलाहल भरति मर्मरित बन है।—साकेत, पृ० २१७। २. गूढ़। जटिल।

अस्म(पु)—संज्ञा पुं० [सं० **अश्म**] पत्थर। उ०—(क) जहँ जहँ जात तहीं तहीं त्रासत अस्म, लकुट पदत्रान।—सूर० १।१०३। (ख) आपुन तरि तरि औरनि तारत। अस्म अचेत प्रगटपानी मैं बनचर लै लै डारत।—सूर० ६।१२३।

अस्मद्[1]—सर्व० [सं० **अस्मत्**] मैं।

अस्मद्[2]—संज्ञा पुं० [सं० **अस्मत्**] जीव। आत्मा [को०]।

अस्मदादि—सर्व० [सं०] हम सब [को०]।

अस्मदादिक—सर्व० [सं०] दे० 'अस्मदादि'। हम सब।

अस्मदीय—वि० [सं०] मेरा [को०]।

अस्मय—वि० [सं० **अश्ममय**] पत्थर द्वारा निर्मित। उ०—जरासंध बंदी कहैं नृप कुल जस गावै। अस्मय तन गौतम तिया कौ साप नसावै।—सूर० १।४।

अस्मार्त—वि० [सं०] जो स्मृतियों का अनुयायी न हो। स्मृतिविरोधी। २. जो स्मृत न हो। स्मरण से परे। ३. परंपराविरुद्ध। अनुचित। ४. स्मार्त मत के विपरीत [को०]।

अस्मिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. योगशास्त्र के अनुसार पाँच प्रकार के क्लेशों में से एक। द्रक, द्रष्टा और दर्शन शक्ति को एक मानना या पुरुष (आत्मा) और बुद्धि में अभेद मानना। २. अहंकार। सांख्य में इसको मोह और वेदांत में हृदयग्रंथि कहते हैं।

अस्र[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. कोना। २. रुधिर। ३. जल। ४. आँसू। उ०—प्रकृति-रंजन-हीन, दीन अजस्र। प्रकृति विधना थी भरे हिम अस्र।—साकेत, पृ० १६५। ५. केसर। ६. बाल।

अस्र[2]—संज्ञा पुं० [अ०] १. दिन का चतुर्थ प्रहर। २. समय। वक्त। काल [को०]।

अस्रकंठ—संज्ञा पुं० [सं० अस्रकण्ठ] बाण। तीर [को०]।

अस्रखदिर—संज्ञा पुं० [सं०] रक्तखदिर का वृक्ष [को०]।

अस्रज—संज्ञा पुं० [सं०] मांस [को०]।

अस्रय[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. राक्षस। २. मूल नक्षत्र। ३. जोंक जो लहू (अस्त्र) पीती है।

अस्रय[2]—वि० रक्त पीनेवाला।

अस्रपा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. जलौका। जोंक। २. डाइन। टोना करनेवाली।

अस्रपित्त—संज्ञा पुं० [सं०] नासिका मुख आदि से रक्तस्राव होना [को०]।

अस्रफला—संज्ञा स्त्री० [सं०] सलाई का पेड़।

अस्रफली—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० अस्रफला [को०]।

अस्रमातृका—संज्ञा स्त्री० [सं०] देह के भीतर का रस [को०]।

अस्ररोधिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] लज्जालु नामक पौधा। छुईमुई [को०]।

अस्रार्ज्जक—संज्ञा पुं० [सं०] श्वेत तुलसी।

अस्रु(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अश्रु] दे० 'अश्रु'।

अस्ल—वि० [अ०] दे० 'असल'।

अस्ली—[अ०] दे० 'असली'।

अस्वंत—संज्ञा पुं० [सं० **अस्वन्त**] १. मृत्यु। २. खेत। ३. चूल्हा। ४. मरुत् विशेष [को०]।

अस्व(पु)—संज्ञा पुं० [सं० **अश्व**] दे० 'अश्व'। उ०—होइय नाथ अस्व असवारा।—मानस २। २०२।

अस्वच्छंद—वि० [सं० **अस्वच्छन्द**] जो आत्मनिर्भर न हो। दूसरे के भरोसे पर रहनेवाला [को०]।

अस्वच्छ—वि० [सं०] जो स्वच्छ न हो। जो स्पष्ट न हो। गंदा [को०]।

अस्वतंत्र—वि० [सं० **अस्वतन्त्र**] पराधीन। दास। गुलाम [को०]।

अस्वप्न[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. देवता। २. अनिद्रा।

अस्वप्न[2]—वि० [सं०] जिसे नींद न आती हो [को०]।

अस्वभाव[1]—वि० [सं०] भिन्न स्वभाववाला [को०]।

अस्वभाव[2]—संज्ञा पुं० [सं०] अस्वाभाविक लक्षण। भिन्न लक्षण [को०]।

अस्वर[1]—वि० [सं०] अस्पष्ट या मंद (स्वर)। बुरे या मंद स्वरवाला [को०]।

अस्वर[2]—संज्ञा पुं० [सं०] स्वरभिन्न या व्यंजन वर्ण [को०]।

अस्वर्ग्य—वि० [सं०] जो स्वर्ग प्राप्ति में बाधक हो [को०]।

अस्वस्थ—वि० [सं०] १. रोगी। बीमार। २. अनमना।

अस्वादुकंटक—संज्ञा पुं० [सं० **अस्वादुकण्टक**] गोखरू।

अस्वाधीन—वि० [सं०] पराधीन। परतंत्र [को०]।

अस्वाध्याय[1]—वि० [सं०] वेदों की आवृत्ति न करनेवाला। जिसने वेदपाठ न किया हो [को०]।

अस्वाध्याय[2]—संज्ञा पुं० [सं०] वेद के स्वाध्याय के बीच पड़नेवाली बाधा या मिलनेवाला अवकाश [को०]।

अस्वाभाविक—वि० [सं०] १. जो स्वाभाविक न हो। प्रकृतिविरुद्ध। २. कृत्रिम। बनावटी।

अस्वामिक[1]—वि० [सं०] जिसका कोई स्वामी न हो। लावारिस [को०]।

अस्वामिक[2]—संज्ञा पुं० [सं०] वह वस्तु जिसका कोई स्वामी न हो। [को०]।

अस्वामिकद्रव्य—संज्ञा पुं० [सं०] पराशरस्मृति के अनुसार वह धन जो किसी की मिलकियत न हो।

अस्वामिविक्रय—संज्ञा पुं० [सं०] १. दूसरे के पदार्थ को उसकी आज्ञा के बिना बेच लेना। २. दूसरे की चीज जबरदस्ती छीनकर या कहीं पड़ी पाकर उसकी इच्छा के विरुद्ध बेच डालना। निक्षिप्त।

अस्वामिविक्रीत—संज्ञा पुं० [सं०] मालिक की चोरी से बेचा हुआ।

विशेष—नारद ने कहा है कि ऐसी वस्तु का पता लगने पर मालिक उसका हकदार होता है। पर मालिक को इस बात की सूचना राज्य को कर देनी चाहिए।

अस्वामिसंहत—वि० [सं०] (सेना) जिसका सेनानायक न मारा गया हो।

अस्वामी—वि० [सं० **अस्वामिन्**] १. जिसका कोई दावेदार या अधिकारी न हो। २. जिसका कोई स्वत्व वा अधिकार न हो [को०]।

अस्वार्थ—वि० [सं०] १. स्वार्थहीन । निःस्वार्थ । २. विरक्त । उदासीन । ३. निरर्थक । निकम्मा । बेकार [को०] ।

अस्वास्थ्य—संज्ञा पुं० [सं०] बीमारी । रोग ।

अस्विन्न—वि० [सं०] अच्छी तरह न उबाला हुआ । अपक्व [को०] ।

अस्वीकरण—संज्ञा पुं० [सं०] अस्वीकृति । स्वीकार न करना ।

अस्वीकार—संज्ञा पुं० [सं०] स्वीकार का उलटा । इन्कार । नामंजूरी । नाहीं ।

क्रि० प्र०—करना ।

अस्वीकृत—वि० [सं०] अस्वीकार किया हुआ । नामंजूर किया हुआ । नामंजूर ।

अस्वीकृति—संज्ञा स्त्री० [सं०] नामंजूरी । स्वीकार न करने की क्रिया या भाव । अस्वीकार [को०] ।

अस्स(ु)—संज्ञा पुं० [सं० **अश्व**, प्रा० **अस्स**] घोड़ा ।

अस्सी—वि० [सं० **अशीति**, प्रा० **असीति**] सत्तर और दस की संख्या । दस का अठगुना ।

अस्सु(ु)—संज्ञा पुं० [सं० **अश्रु**, प्रा० **अस्सु**] आँसू ।

अहं[1]—सर्व० [सं० **अहम्**] मैं ।

अहं[2]—संज्ञा पुं० १. अहंकार । अभिमान । उ०—(क) तुलसी सुखद शांति को सागर । संतन गायो कौन उजागर । तामें तन मन रहै समोई । अहं अगिनि नहिं दाहै कोई ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) ज्यों महराज या जलधि तें पार कियौ भव जलधि पार त्यौं करौ स्वामी । अहं ममता हमैं सदा लागी रहै मोह मद क्रोध जुत मंद कामी ।—सूर०, (शब्द०) । २. संगीत का एक भेद जिसमें सब शुद्ध स्वरों तथा कोमल गंधार का व्यवहार होता है

अहंकार—संज्ञा पुं० [सं०] १. अभिमान । गर्व । घमंड । २. वेदांत के अनुसार अंतःकरण का एक भेद जिसका विषय गर्व या अहंकार है । "मैं हूँ" या "मैं कहता हूँ" इस प्रकार की भावना । ३. सांख्यशास्त्र के अनुसार महत्तत्व से उत्पन्न एक द्रव्य ।

विशेष—यह महत्तत्व का विकार है और इसकी सात्विक अवस्था से पाँच ज्ञानेंद्रियों, पाँच कर्मेंद्रियों तथा मन की उत्पत्ति होती है और तामस अवस्था से पंचतन्मात्राओं की उत्पत्ति होती है, जिनसे क्रमशः आकाश, वायु, तेज, जल और पृथ्वी की उत्पत्ति होती है । सांख्य में इसको प्रकृतिविकृति कहते हैं । यह अंतःकरणद्रव्य है ।

४. अंतःकरण की एक वृत्ति । इसे योगशास्त्र में अस्मिता कहते हैं । ५. मैं और मेरा का भाव । ममत्व ।

अहंकारी—वि० [सं० **अहङ्कारिन्**] [स्त्री० **अहंकारिणी**] अहंकार करनेवाला । घमंडी । गर्वी ।

अहंकृत्—वि० [सं० **अहंकृत्**] अहंकार करनेवाला । घमंडी [को०] ।

अहंकृति—संज्ञा स्त्री० [सं० **अहङ्कृति**] अहंकार ।

अहंता—संज्ञा स्त्री० [सं० **अहन्ता**] अहंकार । घमंड । गर्व । उ०—था एक पूजता देह दीन, दूसरा अपूर्ण अहंता में अपने को समझ रहा प्रवीण ।—कामायनी, पृ० १६१ ।

अहंधी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अहंकार' ।

अहंपद—संज्ञा पुं० [सं० **अहम्पद**] गर्व । अभिमान [को०] ।

अहंपूर्व—संज्ञा पुं० [सं० **अहम्पूर्व**] लाग डाट में दूसरे से आगे बढ़ जाने की अभिलाषा रखनेवाला [को०] ।

अहंपूर्विका—संज्ञा स्त्री० [सं० **अहम्पूर्विका**] होड़ । प्रतिस्पर्धा [को०] ।

अहंप्रथमिका—संज्ञा स्त्री० [सं० **अहम्प्रथमिका**] दे० 'अहंपूर्विका' [को०] ।

अहंप्रत्यय—संज्ञा पुं० [सं० **अहम्प्रत्यय**] घमंड । गर्व [को०] ।

अहंभद्र—संज्ञा पुं० [सं० **अहम्भद्र**] अपना व्यक्तित्व महान् समझना [को०] ।

अहंमति—संज्ञा स्त्री० [सं० **अहम्मति**] (वेदांत दर्शन में) भ्रमात्मक आध्यात्मिक आत्मज्ञान [को०] ।

अहंवाद—संज्ञा पुं० [सं०] डींग मारना । शेखी हाँकना । उ०—अहंवाद मैं तें नहीं दुष्ट संग नहिं कोइ । दुख ते दुख नहिं ऊपजे सुख से सुख नहिं होइ ।—तुलसी (शब्द०) ।

अहँकार(ु)—संज्ञा पुं० [सं० **अहङ्कार**] दे० 'अहंकार' । उ०—त्रयनयन, मयन मर्दन महेश । अहँकार निहार उदित दिनेस ।—तुलसी ग्रं०, पृ० ४६१ ।

अह[1]—संज्ञा पुं० [सं० **अहन्**] १. दिन । २. विष्णु । ३. सूर्य । ४. दिन का अभिमानी देवता । ५. आकाश [को०] । ६. एक दिन का काम [को०] । ७. रात्रि [को०] । ८. किसी ग्रंथ का वह अंश जो एक दिन के लिये निश्चित हो [को०] ।

यौ०—**अहर्निश**=दिन रात । लगातार । **अहपति**=सूर्य । अहमुर्ख=उषाकाल । अहर्हः=दिन दिन ।

अह[2]—अव्य [सं० **अहह**] एक अव्यय संबोधन । आश्चर्य खेद और क्लेश आदि में इसका प्रयोग होता है; जैसे—अह ! तुमने बड़ी मूर्खता की (शब्द०)

अहक(ु)—संज्ञा पुं० [सं० **ईहा**] अच्छा । आकांक्षा । लालसा । उ०—अहक मोर बरषा ऋतु देखहुँ । गुरु चीन्हि कै योग बिसेषहुँ—जायसी (शब्द०) ।

अहकना—क्रि० अ० [हिं० **अहक**] इच्छा करना । लालसा करना ।

अहकाम—संज्ञा पुं० [अ० **हुक्म का बहु**व०] १. नियम । कायदा । २. हुक्म । आज्ञाएँ ।

अहचरज—संज्ञा पुं० [सं० **आश्चर्य**] दे० 'आश्चर्य' । उ०—समर जीति जौहर कौ होन । जो अहचरज भयौ यह तौन ।—हम्मीर०, पृ० ६५ ।

अहट—संज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'आहट' उ०—आह न अहट अध अरी या अदाई की ।—गंग०, पृ० ८२ ।

अहटाना[1]—क्रि० अ० [हिं० **आहट**] आहट लगाना । पता चलना । उ०—रहत नयन के कोरवा चितवनि छाय । चलत न पग पैंजनियाँ मग अहटाय ।—रहिमन० (शब्द०) ।

अहटाना[2](ु)—क्रि० स० आहट लगाना । टोह लेना । पता चलाना ।

अहटाना[3](ु)—क्रि० अ० [सं० **आहत**] दुखना । दर्द करना । उ०—(क) तनिक किरकिटी के परे पल पल में अहटाय । क्यों सोवैं सुख नींद दृग मीत बसै जब आय ।—रसनिधि० (शब्द०) । (ख) सुनी दूत बानी महामानी खानजदै जवै, हियें अहटाना है रिसानी देह ता समै ।—सूदन० (शब्द०) ।

अहटियाना†--क्रि० स०, क्रि० अ० [हिं०] दे० 'अहटाना'।

अहत[1]--वि० [सं०] १. जो हत न हो। २. अक्षत। ३. अनाहत। ४. जो पीटा या कचारा न गया हो। जैसे--वस्त्र। ५. जो कुंठाग्रस्त या हताश न हो। ६. नया। बिना धोया हुआ। ७. निर्दोष। बेदाग [कौ०]।

अहत[2]--संज्ञा पुं० [सं०] बिना धुला नया वस्त्र [कौ०]।

अहथिरⓅ†--वि० [सं० स्थिर] दे० 'स्थिर'। उ०--सबै नास्ति वह अहथिर ऐस साज जेहि केर।--जायसी (शब्द०)।

अहद[1]--संज्ञा पुं० [अ०] प्रतिज्ञा। वादा। इकरार।

क्रि० प्र०--**करना**=प्रतिज्ञा करना।--**टूटना**=प्रतिज्ञा भंग होना।--**तोड़ना**=प्रतिज्ञा भंग करना। वादा पूरा न करना। २. संकल्प। इरादा। ३. समय। काल। राजत्वकाल; जैसे--'अकबर के अहद में प्रजा बड़ी सुखी थी'।

यौ०--**अहदनामा। अहदशकिन। अहदशिकनी अहद वो पैमान।**

अहद[2]--वि० [सं० अ=नहीं+अ० हद] सीमारहित। असीम। उ०--पलटू दीगर को नेस्त करै, होय खुद अहत इस भाँति जाई।--पलटू०, पृ० ६३।

अहददार-संज्ञा पुं० [फा०] मुसलमानी राज्य के समय का एक अफसर जिसे राज्य की ओर से कर का ठीका दिया जाता था। उसको इस काम के लिये दो या तीन रुपया सैकड़ा बँधेज मिलता था और राज्य में वह सब कर का देनदार ठहरता था। एक प्रकार का ठेकेदार।

अहदनमा--संज्ञा पुं० [फा०] १. एकरारनामा। वह लेख या पत्र जिसके द्वारा दो या दो से अधिक मनुष्य किसी विषय में कुछ इकरार या प्रतिज्ञा करें। प्रतिज्ञापत्र। २. सुलहनामा। संधिपत्र।

अहदी[1]--वि० पुं० [अ०] १. आलसी। अलहदी। आसकती। २. वह जो कुछ काम न करे। अकर्मण्य। निठल्लू। मट्ठर।

अहदी[2]--संज्ञा पुं० अकबर के समय के एक प्रकार के सिपाही जिनसे बड़ी आवश्यकता के समय काम लिया जाता था, शेष दिन वे बैठे खाते थे। उ०--घेर्‌यौ आइ कुटुम लसकर मैं, जम अहदी पठयौ। सूर नगर चौरासी भ्रमि भ्रमि, घर घर कौ जु भयौ।--सूर० १।६४।

विशेष--इसी से 'अहदी' शब्द आलसियों के लिये चल गया। ये लोग कभी कभी उन जमींदारों से मालगुजारी वसूल करने के लिये भी भेजे जाते थे जो देने में आनाकानी करते थे। ये लोग अड़कर बैठ जाते थे और बिना लिए नहीं उठते थे।

अहदीखाना--संज्ञा पुं० [फा० अहदीखानह्] अहदियों के रहने का स्थान।

अहदेहुकूमत--संज्ञा पुं० [फा०] शासनकाल। राज्य।

अहन्--संज्ञा पुं० [सं०] दिन। दिवस।

अहन--संज्ञा पुं० [सं० अहन्] १. दे० 'अहन्'। २. दिन। उ०--पेट को पढ़त गुन गढ़त, चढ़त गिरि, अटत गहन बन अहन अखेटकी।--तुलसी ग्रं०, पृ० २२०।

अहनाⓅ--क्रि० अ० [सं० अस्ति] वर्तमान रहना। होना। उ०--(क) राजा सेति कुँअर सब कहहीं। अस अस मच्छ समुद महँ अहहीं।--जायसी (शब्द०)। (ख) जब लगि गुरु हौं अहा न चीन्हा। कोटि अंतरपट बीचहिं दीन्हा।--जायसी (शब्द०)।

अहनाथ--संज्ञा पुं० [सं० अहन्नाथ] दिन के स्वामी। सूर्य। उ०--महि मयंक अहनाथ को आदिग्यान भव भेद। ता विधि तेई जीव कहँ होत समुझ बिनु खेद।--स० सप्तक, पृ० ३८।

अहनिसिⓅ--क्रि० वि० [हिं०] दे० 'अहर्निश'। उ०--मुयो मुयो अहनिसि चिल्लाई। ओही रोस नागन्ह धै खाई।--जायसी (शब्द०)।

अहन्पुष्प--संज्ञा पुं० [सं०] दुपहरिया का फूल। गुलदुपहरिया।

अहमक--वि० [अ०] जड़। बेवकूफ। मूर्ख। नासमझ। उ०--लहुरें थकें दुहि पीया खीरो, ताका अहमक भकै सरीरो।--कबीर ग्रं०, पृ० २३९।

अहमग्रिका--संज्ञा स्त्री० [सं०] आगे बढ़ने की प्रतिस्पर्धा। होड़ [कौ०]।

अहमहमिका--संज्ञा स्त्री० [सं०] लागत। डाँट। पहले हम तब दूसरा। हमाहमी। चढ़ा ऊपरी।

अहमितिⓅ--संज्ञा स्त्री० [सं० अहम्मति] १. अविद्या। अज्ञान। उ०--निसि दिन फिरत रहत मुँह बाए, अहमिति जनम बिगोइसि। गोड़ पसारि परचौ दोउ नीकै, अब कैसी कह रोइसि।--सूर०, १। ३३३। २. अहंकार। उ०--भंजेउ चापु दापु बड़ बाढ़ा। अहमिति मनहु जीति जगु ठाढ़ा।--मानस, १। २८३।

अहमेव--संज्ञा पुं० [सं०] अहंकार। गर्व। घमंड। उ०--(क) उदित होत शिवराज के, मुदित भए द्विज देव। कलियुग हट्यो मिट्यो सकल, म्लेच्छन को अहमेव।--भूषण (शब्द०)। (ख) संन्यासी माते अहमेव। तपसी माते तप के भेव।--कबीर ग्रं०, पृ० ३०२।

अहर--संज्ञा पुं० [देश०] छीपियों के रंग का मिट्टी का बरतन। नैया।

अहरणीय--वि० [सं०] १. न चुराने योग्य। २. (धूर्तता द्वारा) न अपनाने योग्य। ३. दृढ़। सुस्थिर [कौ०]।

अहरन--संज्ञा स्त्री० [सं० आ+धरण=रखना] निहाई। उ०--कबिरा केवल राम की तू मति छंडै ओट। अन अहरन बिच लोह ज्यों घनी सहै सिर चोट।--कबीर (शब्द०)।

अहरना†--क्रि० स० [सं० आहरण=निकलना] १. लकड़ी को छीलकर सुडौल करना। २. डौलना।

अहरनिⓅ--संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अहरन'।

अहरनिसिⓅ†--क्रि० वि० दे० 'अहर्निश--२'। उ०--अहरनिसि आस लागी रहै सुन्न में, बिना जल पिए क्या प्यास जाई।--कबीर० रे०, पृ० २९।

अहरा--संज्ञा पुं० [सं० आहरण=इकट्ठा करना] १. कंडे का ढेर जो जलाने के लिये इकट्ठा किया जाय। २. वह आग जो इस प्रकार इकट्ठा किए हुए कंडों से तैयार की जाय। ३. वह स्थान जहाँ लोग ठहरें। ४. प्याऊ। पौशाला।

अहराम--सं० पुं० [अ० हरम=पुरानी इमारत का बहुव०] पुराने भवन। २. मिस्र के स्तूप या पिरामिड।

अहरी-संज्ञा स्त्री० [सं० आहरण = इकट्ठा होना] १. वह स्थान जहाँ पर लोग पानी पिएँ। प्याऊ। २. वह गड्ढा या हौज जो कुएँ के किनारे जानवरों के पानी पीने के लिये बना रहता है। चरही। ३. हौज जिसमें किसी काम के लिये पानी भरा जाय।

अहर्गण—संज्ञा पुं० [सं०] १. दिनों का समूह। २. ज्योतिष कल्प के आदि से किसी इष्ट या नियत काल तक का समय।

अहर्दल—संज्ञा पुं० [सं०] दोपहर मध्यदिवस [को०]।

अहर्निश—क्रि० वि० [सं०] १. रातदिन। २. सदा। नित्य।

अहर्मणि—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य।

अहर्मुख—संज्ञा पुं० [सं०] उषःकाल। दिनारंभ। सबेरा।

अहल[1]—वि० [सं०] अकृष्ट। बिना जोता हुआ (खेत) [को०]।

अहल[2]—वि० [अ० अह्ल] लायक। समर्थ। योग्य [को०]।

अहलकार—संज्ञा पुं० [फा०] १. कर्मचारी। २. कारिंदा।

अहलकारी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] अहलकार का काम। कारिंदागिरी।

अहलना (पु)—क्रि० अ० [सं० अलहनम] हिलना। काँपना। दहलना। उ०—पहल पहल तन रुइ ज्यों झाँपै। अहल अहन अधिको हिय काँपै।—जायसी (शब्द०)।

अहलमद—संज्ञा पुं० [फा० अहलमद] अदालत का वह कर्मचारी जो मुकद्दमों की मिसिलों को रजिस्टर में दर्ज करता और रखता है, अदालत के हुक्म के अनुसार हुक्मनामे जारी करता है तथा किसी मुकद्दमे का फैसला होने पर उसकी मिसिल को तर्तीब देकर मुहाफिजखाने में दाखिला करता है।

अहला†—संज्ञा पुं० [हिं०] 'अहिला'।

अहलाद (पु)†—संज्ञा पुं० [सं० आह्लाद] दे० 'आह्लाद'। उ०—(क) ताकौ पुत्र भयौ प्रहलाद। भयौ असुर मन अति अहलाद।—सूर०, १।४२१। (ख) टूँटा पकरि उठावै पर्वत पंगुल करै नृत्य अहलाद। जो कोउ याको अर्थ विचारै सुंदर सोई पावै स्वाद।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ५०८।

अहलादी (पु)‡—वि० [हिं०] 'आह्लादी'।

अहलि—वि० [सं०] दे० 'अहल' [को०]।

अहले गहले†—क्रि० वि० [अनु०] मस्ती के साथ। प्रसन्नतापूर्वक। निश्चिंत मन से [को०]।

अहल्या[1]—वि० [सं०] जो (धरती) जोती न जा सके।

अहल्या[2]—संज्ञा स्त्री० गौतम ऋषि की पत्नी।

अहवान (पु)—संज्ञा पुं० [सं० आह्वान] बुलाना। आवाहन। उ०—कियो आपने अयन पयाना। राति सरस्वति किय अहवाना।—रघुराज० (शब्द०)।

अहवाल—संज्ञा पुं० [अ० 'हाल' का बहु०] १. समाचार। वृत्तांत। उ०—मरजे मुबारक का मरीज तब क्या अहवाल सुनाऊँ।—प्रेमघन०, पृ० १९२। २. दशा। अवस्था। उ०—अजब अहवाल देखा हमने कल इस खाने वीराँ का।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० २३०।

अहश्चर—वि० [सं०] दिन में चलनेवाला। दिनचारी [को०]।

अहसान—संज्ञा पुं० [अ० एहसान] १. किसी के साथ नेकी करना। सलूक। भलाई। उपकार। २. कृपा। अनुग्रह। निहोरा। उ०—बहु धन लै अहसान कै, पारौ देत सराहि। बैद बधू हँसि भेद सौं; रही नाह मुख चाहि।—बिहारी (शब्द०)। ३. कृतज्ञता।

अहसानफरामोश—वि० [अ० एहसान + फा० फरामोश] उपकार को न माननेवाला। कृतघ्न। उ०—'अच्छा, मैं बेवफा, अहसान फरामोश सही, तुम तो बड़े वफादार हो।—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० १२३।

अहसानफरोश—वि० [अ० एहसान + फा० फरोश] उपकार कर सबसे कहता फिरनेवाला [को०]।

अहसानमंद—वि० [अ० एहसान + फा० मंद] कृतज्ञ। किए हुए को माननेवाला [को०]।

अहसानमंदी—संज्ञा स्त्री० [अ० एहसान + फा० मंदी] कृतज्ञता। उ०—'वह मदनमोहन की अहसानमंदी के बहाने से हरवक्त वहाँ बना रहता था।—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० २११।

अहस्कर—संज्ञा पुं० [सं०] १. दिनकर। सूर्य। २. मदार [को०]।

अहस्त—वि० [सं०] बिना हाथवाला। जिसके हाथ कटे हों [को०]

अहस्पति—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अहस्कर'।

अहह—अव्य० [सं०] एक अव्यय जिसका प्रयोग आश्चर्य, खेद, क्लेश और शोक सूचित करने के लिये होता है। उ०—अहह तात दारुन हठ ठानी।—मानस, १।२५८।

अहा—अव्य० [सं० अहह] इसका प्रयोग प्रसन्नता और प्रशंसा की सूचना के लिये होता है; जैसे—अहा! यह कैसा सुंदर फूल है।

अहाता—संज्ञा पुं० [अ०] १. घेरा। हाता। २. प्रकार। चारदीवारी।

अहान—संज्ञा पुं० [सं० आह्वान] पुकार। शोर। चिल्लाहट। उ०—भइ अहान पदुमावति चली। छत्तिस कुलि भइ गोहन चली।—जायसी (शब्द०)।

अहार (पु)—संज्ञा पुं० दे० 'आहार'। उ०—करहिं अहार साक फल कंदा। सुमिरहि ब्रह्म सच्चिदानंदा।—मानस, १।१४४।

अहारना (पु)—क्रि० सं० [सं० आहरण = खाना या हिं० अहार] १. खाना। भक्षण करना। उ०—तो हमरे आश्रम पगु धारो। निज रुचि के फल विपुल अहारो।—रघुराज० (शब्द०)। २. चपकाना। लेई लगाकर लसना। ३. कपड़े में माँड़ी देना। ४. दे० 'अहरना'।

अहारी (पु)—वि० दे० 'आहारी'। उ०—जिमि अरुनोपल निकर निहारी। धावहि सठ खग मांस अहारी।—मानस, ६।३९।

अहार्य—वि० [सं०] १. जो धन या घूस के लोभ में न आ सके। २. जो हरण न किया जा सके। जो चुराया न जा सकता हो।

यौ०—अहार्य शोभा।

अहाहा—अव्य० [सं० अहह] हर्षसूचक अव्यय।

अहिंसक—वि० [सं०] १. जो हिंसा न करे। जो किसी का घात न करे। २. जो किसी को दुःख न दे। जिससे किसी को पीड़ा न पहुँचे।

अहिंसा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. साधारण धर्मों में से एक। किसी को दुःख न देना। २. योगशास्त्रानुसार पाँच प्रकार के यमों में पहला। मन, वाणी और कर्म से किसी प्रकार किसी काल

में किसी प्राणी को दुःख या पीड़ा न पहुँचाना। ३. बौद्ध-शास्त्रानुसार त्रस और स्थावर को दुःख न देना। ४. जैन-शास्त्रानुसार प्रमाद से भी त्रस और स्थावर को किसी काल में किसी प्रकार की हानि न पहुँचाना। धर्मशास्त्रानुसार शास्त्र की विधि के विरुद्ध किसी प्राणी की हिंसा न करना।६. कटकपाली या हैंस नाम की घास। ७. सुरक्षा [को०]।

अहिंसावादी—वि० [सं० **अहिंसावादिन्**] अहिंसा का सिद्धांत माननेवाला [को०]।

अहिंस्र[1]—वि० [सं०] जो हिंसा न करे। अहिंसक।

अहिंस्र[2]—संज्ञा पुं० १. एक प्रकार का पौधा। २. नुकसान न पहुँचानेवाला व्यवहार [को०]।

अहि—संज्ञा पुं० [सं०] १. साँप। २. राहु। ३. वृत्रासुर। ४. खल। वंचक। ५. आश्लेषा नक्षत्र। ६. पृथिवी। ७. सूर्य। ८. पथिक। ९. सीसा। १०. मात्रिक गण में ठगण अर्थात् छह मात्राओं के समूह का छठा भेद जिसमें क्रम से लघु गुरु गुरु लघु '।ऽऽ।' मात्राएँ होती हैं; जैसे—दयासिंधु। ११. इक्कीस अक्षरों के वृत्त का एक भेद जिसमें पहले छह भगण और अंत में मगण होता है; जैसे—भोर समय हरि गेंद जो खेलत संग सखा यमुना तीरा। गेंद गिरो यमुना दह में झटि कूदि परे धरि के धीरा। ग्वाल पुकार करी तब नंद यशोमति रोवति ही धाए। दाऊ रहे समुझाय इतै अहि नाथि उतै दह में आए।—(शब्द०)। १२. नाभि [को०]। १३. बादल [को०]। १४. जल [को०]

अहिक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. अंधा सर्प। २. ध्रुव तारा [को०]।

अहिक[2]—वि० [सं] स्थित रहनेवाला (यह संख्यावाचक शब्द के अंत में लगकर उतने दिनों का बोध कराता है) [को०]।

अहिकांत—संज्ञा पुं० [सं० **अहिकान्त**] पवन। वायु [को०]।

अहिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] सेमल का वृक्ष।

अहिकोष—संज्ञा पुं० [सं०] १. निर्मोक। साँप की केंचुल। २ छंदविशेष [को०]।

अहिक्षेत्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. दक्षिण पांचाल की राजधानी। २. प्राचीन दक्षिण पांचाल। अहिच्छत्र।

विशेष—यह देश कंपिल से चंबल तक था। इसे अर्जुन ने द्रुपद से जीतकर द्रोण को गुरुदक्षिणा में दिया था।

अहिगण—संज्ञा पुं० [सं०] पाँच मात्राओं के गण—ठगण का सातवाँ भेद जिसमें एक गुरु और तीन लघु होते हैं (ऽ।।।); जैसे—पापहर।

अहिचक्र—संज्ञा पुं० [सं०] तांत्रिक चक्रविशेष [को०]।

अहिच्छत्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्राचीन दक्षिण पांचाल। यह देश अर्जुन ने द्रुपद से जीतकर द्रोण को गुरुदक्षिणा में दिया था। २. दक्षिण पांचाल की राजधानी। ३. मेढ़ासींगी।

अहिच्छत्रक—संज्ञा पुं० [सं०] कुकुरमुत्ता [को०]।

अहिच्छत्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. अहिच्छत्र नामक देश की राजधानी। २. शकर। ३. मेषशृंगी। मेढ़ासिंगी [को०]।

अहिजित्—संज्ञा पुं० [सं०] श्रीकृष्ण [को०]।

अहिजिन—संज्ञा पुं० [सं० **अहिजित्**] १. इंद्र। २. कृष्ण।

अहिजिह्वा—संज्ञा स्त्री० [सं०] नागफनी।

अहिटा(पु)†—संज्ञा पुं० [अ० **अहदी**] वह व्यक्ति जो जमींदार की ओर से उस असामी को फसल काटने से रोकने के लिये बैठाया जाय जिसने लगान वा देना न दिया हो। सहना।

अहित[1]—वि० [सं०] १. शत्रु। वैरी। विरोधी। २. हानिकारक। अनुपकारी। उ०—और अहित अभच्छ भच्छति कला बरनि न जाइ।—सूर०. १।५६।

अहित[2]—संज्ञा पुं० बुराई। अकल्याण। उ०—दुरबासा दुरजोधन पठयौ पांडव अहित बिचारी।—सूर०, १।१२२।

अहितकर—वि० [सं०] अहित करनेवाला। हानिकर [को०]।

अहितकारी—वि० [सं० **अहितकारिन्**] दे० 'अहितकर'।

अहितुंडिक—संज्ञा पुं० [सं० **अहितुण्डिक**] १. सँपेरा। साँप को वश में करनेवाला। २. जादूगर [को०]।

अहिदेव—संज्ञा पुं० [सं०] आश्लेषा नक्षत्र [को०]।

अहिदैवत—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अहिदेव'।

अहिद्विट्—संज्ञा पुं० [सं० **अहिद्विष्**] १. इंद्र। २. नकुल। ३. मयूर। ४. गरुड़। ५. कृष्ण [को०]।

अहिनकुलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सर्प और नेवले का स्वाभाविक वैर। २. सहज शत्रुता [को०]।

अहिनाथ—संज्ञा पुं० [सं०] सर्पराज। शेषनाग [को०]।

अहिनामभृत्—संज्ञा पुं० [सं०] बलदेव का एक नाम [को०]।

अहिनाह(पु)—संज्ञा पुं० [सं० **अहिनाथ**, प्रा० **अहिनाह**] शेषनाग। उ०—प्रभु विवाह जस भयेउ उछाहू। सकहिं न बरनि गिरा अहिनाहू।—मानस, १।३६१।

अहिनिर्मोक—संज्ञा पुं० [सं०] साँप की केंचुल [को०]।

अहिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] सर्पिणी। नागिन। उ०—दुष्ट हृदय दारुन जस अहिनी।—मानस, ३।११।

अहिप—संज्ञा पुं० [सं०] शेषनाग। उ०—अहिप महिप जहँ लगि प्रभुताई।—मानस, २।२५३।

अहिपति—संज्ञा पुं० [सं०] १. वासुकि नाग। २. लंबे आकार का सर्प। ३. शेषनाग। उ०—सहि सक न भार उदार अहिपति बार बारहि मोहई।—मानस, ५।३५।

अहिपुत्रक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की सर्पाकृति नौका [को०]

अहिपूतन—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० **अहिपूतना**] बच्चों को होनेवाला एक रोग [को०]।

विशेष—इसमें बच्चों को पानी सा दस्त आता है। गुदा से सदा मल बहा करता है। गुदा लाल बनी रहती है। धोने पोंछने से खुजली उठती और फोड़े निकलते हैं।

अहिफेन—संज्ञा पुं० [सं०] १. सर्प के मुँह की लार या फेन। २. अफीम।

अहिबुध्न—संज्ञा पुं० [सं०] १. एकादश रुद्रों में से एक। २. शिव। ३. उत्तराभाद्रपद नक्षत्र। ४. एक मरुत् का नाम [को०]।

अहिबेल(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० **अहिवल्ली**, प्रा० **अहिवेली**] नागबेलि।

पान। उ०—कनक कलित अहिबेलि बढ़ाई। लखि नहिं परै सपरन सहाई।—तुलसी (शब्द०)।

अहिब्रघ्न—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अहिबुघ्न'।

अहिभय—संज्ञा पुं० [सं०] १. अपने ही पक्ष के विश्वासघात का भय। २. सर्प के काट खाने का भय।

अहिभयदा—संज्ञा स्त्री० [सं०] साँप को भय देनेवाली। भूम्यामलकी। भुँइआँवला [को०]।

अहिभानु—वि० [सं०] सूर्य की गति का जो कारण हो।—जैसे, वायु। २. वायु का विशेषण। ३. साँप सा चमकनेवाला [को०]।

अहिभुक्—संज्ञा पुं० [सं० **अहिभुज्**] १. मोर पक्षी। २. नेवला। ३. गरुड़ पक्षी। ४. गंधनाकुली नामक पौधा [को०]।

अहिभृत्—संज्ञा पुं० [सं०] सर्पधारी शिव [को०]।

अहिम—वि० [सं० **अ+हिम**] जो शीतल न हो। उष्ण [को०]।

यौ०—**अहिमकर, अहिमतेजा, अहिमदीधिति, अहिमद्युति, अहिमयूख, अहिमरश्मि, अहिमरुचि,** अहिमरोचिष्=सूर्य।

अहिमर्दनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] गंधनाकुली नामक पौधा [को०]।

अहिमांशु—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य।

अहिमात—संज्ञा पुं० [सं० **अहि=गति+मत्=युक्त अहिमान्**] चाक में वह गढ़ा जिसके बल चाक को कील पर रखते हैं।

अहिमाली—संज्ञा पुं० [सं० **अहिमालिन्**] सर्प की माला धारण करनेवाले शिव।

अहिमेध—संज्ञा पुं० [सं०] सर्पयज्ञ।

अहिर†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अहीर'। उ०—अहिर जाति गोधन कौं मानैं।—सूर०, १०।१९२५।

अहिराइ—संज्ञा पुं० [सं० **अहिराज; प्रा० अहिराइ**] सर्पराज। उ०—गर्व बचन कहि कहि मुख भाषत, मोकौं नहिं जासत अहिराइ।—सूर०, १०।५५५।

अहिरिनⓊ†—संज्ञा स्त्री० [हिं० **अहिर**] अहिर की स्त्री। उ०—अहिरिनि हाथ दहेड़ि सगुन लेइ आवइ हो।—तुलसी ग्रं०, पृ० ४।

अहिर्बुध्न—संज्ञा पुं० [सं०] १. ११ रुद्रों में से एक। २. उत्तराभाद्रपद नक्षत्र, जिसके देवता अहिर्बुघ्न हैं।

अहिर्बुघ्न्य—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अहिर्बुघ्न'।

अहिलता—संज्ञा स्त्री० [सं०] नागवल्ली। पान।

अहिला†—संज्ञा पुं० [सं० **अभिप्लव, प्रा० अहिल्लो, हिं० होल, चहला=कीचड़**] १. पानी की बाढ़। बूड़ा। २. गड़बड़। ३. दंगा।

अहिलादⓊ—संज्ञा पुं० [सं० **आह्लाद**] दे० 'आह्लाद'। उ०—कामीं लज्या नाँ करै मन माँहैं अहिलाद। नींद न माँगै साँथराँ भूष न माँगै स्वाद।—कबीर ग्रं०, पृ० ४१।

अहिलोलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] भूम्यामलकी [को०]।

अहिलोचन—संज्ञा पुं० [सं०] शिव का एक सर्प [को०]।

अहिल्या—संज्ञा स्त्री० [सं० **अहल्या**] दे० 'अहल्या'।

अहिवर—संज्ञा पुं० [सं०] दोहे का एक भेद जिसमें पाँच गुरु और ३८ लघु होते हैं; जैसे—कनक वरण तन मृदुल अति कुसुम सरिस दरसात। लखि दुरि दूगरस छकि रहे बिसराई सब बात।

अहिवल्ली—संज्ञा पुं० [सं०] पान। तांबूल। नागवल्ली।

अहिवात—संज्ञा पुं० [सं० **अविधवात्व**, प्रा० ***अइहात**, Ⓤ**अहिवात**] [वि० **अहिवातीन, अहिवाती**] सौभाग्य। सोहाग। उ०—(क) राज करो चितउर गढ़ राखौ पिय अहिवात।—जायसी (शब्द०)। (ख) अचल होउ अहिवात तुम्हारा। जब लगि गंग जमुन जलधारा।—तुलसी (शब्द०)।

अहिवातिन—वि० स्त्री० [हिं० **अहिवात**] सौभाग्यवती। सधवा।

अहिवाती—वि० स्त्री० [हिं० **अहिवात**] सौभाग्यवती। सोहागिन।

अहिविषापहा—संज्ञा स्त्री० [सं०] गंधनाकुली पौधा [को०]।

अहिसावⓊ—संज्ञा पुं० [सं० **अहिशावक**] साँप का बच्चा। पोआ। सँपोला।

अही—संज्ञा पुं० [सं०] पृथिवी और आकाश [को०]।

अहीक—संज्ञा पुं० [सं०] बौद्ध शास्त्रानुसार दस क्लेशों में से एक।

अहीन[1]—वि० [सं०] १. जो हीन न हो। भ्रांतिवश जिसे हीन समझ लिया जाय। २. जो औरों से कम न हो। महान्। ३ दोषरहित। ४. पूरा। संपूर्ण। ५. जो जातिच्युत न हो [को०]।

अहीन[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १. कई दिनों में पूर्ण होनेवाला यज्ञविशेष। २. लंबा साँप। ३ वासुकि [को०]।

अहीनगु—संज्ञा पुं० [सं०] एक सूर्यवंशी राजा। देवानीक का पुत्र।

अहीनवादी—वि० [सं० **अहीनवादिन्**] जो निरुत्तर न हुआ हो। जो वाद में न हारा हो।

अहीर—संज्ञा पुं० [सं० **आभीर**] [स्त्री० **अहीरिन**] एक जाति जिसका काम गाय भैंस रखना और दूध बेचना है। ग्वाला। उ०—सोइ निवृत्ति पात्र बिस्वासा। निर्मल मन अहीर निज दासा—मानस, ७।११७।

अहीरणि—संज्ञा पुं० [सं०] दो मुँहवाला साँप [को०]।

अहीरी[1]—संज्ञा पुं० [सं०] एक राग जिसमें सब कोमल स्वर लगते हैं।

अहीरी[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं० **अहीर**] ग्वालिन। अहीरिन।

अहीश—संज्ञा पुं० [सं०] १. साँपों का राजा। शेषनाग २ शेष के अवतार लक्ष्मण और बलराम आदि।

अहीसⓊ—संज्ञा पुं० [सं० **अहीश**] शेषनाग। उ०—दानव देव अहीस महीस महामुनि तापस सिद्ध समाजी।—तुलसी ग्रं०, पृ० २२०।

अहुँठⓊ—वि० [हिं०] साढ़े तीन। तीन और आधा।

अहुजी†—संज्ञा स्त्री० [देश०] घीए के महीन टुकड़ों को मिलाकर पकाया हुआ चावल।

अहुटनाⓊ—क्रि० अ० [सं० **अ+हठ, हिं० हटना**] हटना। दूर होना। अलग होना। उ०—(क) बिरह भयो घर अँगन कोने। हम अबला अति दीन हीन मति तुमही हो विधि योग। सूर बदन देखत हों अहुटै या शरीर को रोग।—सूर (शब्द०)। (ख) दुहुँ देखि दाटत हयन झपटत जाइ लपटत धाइ। फिरि फेरि अहुटत चलत, चुहुटत दुहुँ पुहुटत आइ—सूदन (शब्द०)।

अहुटानाⓊ—क्रि० स० [सं० **अ+हठ हिं० हटाना**] हटाना। दूर करना। अलग करना। भगाना। उ०—उमडि कितेकनु चोट चलाइ। भुसिंडिनि मारि दए अहुटाइ।—सूदन (शब्द०)।

अहुठ(पु)--वि०[सं० अध्युष्ठ या अर्धचतुर्थ प्रा० *अद्धअउत्थ *अद्धउट्ट] अध्युट्ठ अद्धुट्ठ] साढ़े तीन। तीन और आधा। उ०--(क) अहुठ हाथ तन-सरवर हिया कवल तेहि माँह--जायसी ग्रं०, औगाह। पृ० ५०। अहुठ पैर बसुधा सब कीन्हीं धाम अवधि बिरमावत।--सूर (शब्द०)। (ग) कबहुँक अहुठ परग करि बसुधा कबहुँक देहरि उलँघि न जानी।--सूर (शब्द०)।

अहुत[1]--संज्ञा पुं० [सं०] जप। ब्रह्मयज्ञ। वेद-पाठ। यह मनुस्मृति के अनुसार पाँच यज्ञों में से है।

अहुत[2]--वि० १. बिना होम किया हुआ। २. अविहित ढंग से हवन किया हुआ। ३. जिसे होमभाग या आहुति न मिली हो[को०]।

अहुर--संज्ञा पुं० [सं०] जठराग्नि [को०]।

अहुरमज्द--संज्ञा पुं० [पह अहुरमज्द] पारसी धर्मशास्त्र के अनुसार धर्म, ज्ञान और प्रकाश का देवता।

अहुँठा--वि० [हिं०] दे० 'अहुठ'।

अहुरनाबहुरना(पु)--क्रि० अ० [देश०] आना जाना। आने जाने की क्रिया।

अहूठन--संज्ञा पुं० [सं० स्थूण] जमीन में गाडा हुआ काठ का कुंदा जिसपर रखकर किसान गँड़ासे से चारा काटते हैं। ठीहा।

अहृदय--वि० [सं०] १. हृदयहीन। अरसिक। २. खब्तुलहवास। झक्की [को०]।

अहृद्य वि० [सं०] १. जो हृदयहारी न हो। अरुचिकर। २. जो बलकारक न हो; जैसे--औषध [को०]।

अहे[1]--संज्ञा पुं० [देश०] एक पेड़ जिसकी भूरी लकड़ी मकानों में लगती है तथा हल और गाड़ी आदि बनाने के काम में आती है।

अहे[2]--अव्य (सं०) १. दे० 'हे'। २. खेद, अलगाव या निंदा का वाचक [को०]।

अहेडमान--वि० [सं०] जो अनचाहा या अनिच्छित न हो [को०]।

अहेतु[1]--वि०(सं०) १. बिना कारण का। बिना सबब का। निमित्त-रहित। २. व्यर्थ। फजूल।

अहेतु[2]--संज्ञा पुं० एक काव्यालंकार जिसमें कारणों के इकट्ठे रहने पर भी कार्य का न होना दिखलाया जाय; जैसे--है संध्या हूँ रागयुत दिवसहु संमुख नित्त। होत समागम तदपि नहिं बिधि गति अहो बिचित्र।

अहेतुक--वि० [सं०] दे० 'अहेतु'।

अहेतुसम--संज्ञा पुं० [सं०] न्याय में जाति के चौबीस भेदों में से एक। विशेष--यदि वादी कोई हेतु उपस्थित करे और उसके उत्तर में यह कहा जाय कि तुम्हारा यह हेतु भूत, भविष्य या वर्तमान किसी काल में हेतु नहीं हो सकता, तो ऐसा उत्तर अहेतुसम कहलाएगा।

अहेर--संज्ञा पुं० [सं० आखेट, प्रा० अहेड] [वि० अहेरी] १. शिकार। मृगया। २. वह जंतु जिसका शिकार खेला जाय।

अहेरी[1]--संज्ञा पुं० [हिं० अहेर+ई (प्रत्य०)] शिकारी। आखेटक। उ०--चित्रकूट मनु अचल अहेरी। मानस, २।१३३।

अहेरी[2]--वि० शिकार खेलनेवाला। शिकारी। व्याधा।

अहेरु--संज्ञा पुं० [सं०] महाशतावरी या शतमूली नामक पौधा[को०]।

अहै--क्रि० अ० [सं० अस्ति, प्रा० अहइ > अहै] है। उ०--अहै कुमार मोर लघु भ्राता।--मानस, ३।११।

अहो--अव्य०[सं०]एक अव्यय जिसका प्रयोग कभी संबोधन की तरह और कभी करुणा, खेद, प्रशंसा, हर्ष और विस्मय सूचित करने के लिये होता है; जैसे, (संबोधन) जाहु नहीं, अहो जाहु चले हरि जात चले दिनहीं बनि बागे।--केशव (शब्द०)। (करुणा, खेद) अहो! कैसे दुख का समय है। (प्रशंसा) अहो! धन्य तब जनम मुनीसा।--तुलसी (शब्द०)। (हर्ष) अहो भाग्य! आप आए तो। (विस्मय) दूनो दूनो बाढ़त सुपूनो की निसा में, अहो आनँद अनूप रूप काहू ब्रज बाल को। पद्माकर (शब्द०)। कभी कभी केवल पादपूरणार्थक भी प्रयोग होता है। जैसे, भारत कहो तो आज तुम क्या हो वही भारत अहो।--भारत०, पृ० ८५।

अहोई[1]--संज्ञा स्त्री०[हिं०]संतानप्राप्ति के लिये स्त्रियों द्वारा की जाने वाली वह पूजा जो दीपावली से आठ दिन पहले होती है।

अहोई[2]--वि० [सं० अभाविन्, प्रा० *अहोई] न होनेवाली [को०]।

अहोनस(पु)--क्रि० वि० [सं० अहर्निश] रात दिन।

अहोरत्न--संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य [को०]।

अहोरात्र--संज्ञा पुं० [सं०] दिनरात। दिन और रात्रि का नाम।

अहोराबहोरा[1]--संज्ञा पुं० [हिं० अहुरना+बहुरना] विवाह की एक रीति जिसमें दुलहन ससुराल में जाकर उसी दिन अपने पिता के घर लौट जाती है। हेर-फेरी।

अहोराबहोरा[2]--क्रि० वि० बार बार। लौट लौटकर। उ०--शरद चंद महँ खंजन जोरी। फिरि फिरि लरहिं अहोर बहोरी।--जायसी (शब्द०)।

अह्द--संज्ञा पुं० [अ०] दे० 'अहद'।

अह्न--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अह'। (समासांत में) जैसे-मध्याह्न [को०]।

अह्निज--वि० [सं० अह्नि=सप्तमी रूप+ज] दिन में होनेवाला [को०]।

अह्लि--वि० [सं०] १. आरामतलब। स्थूल या मोटा। २. बुद्धिमान्। विद्वान्। कवि [को०]।

अह्रिय--वि० [सं०] धृष्ट। ढीठ। निर्लज्ज। घमंडी [को०]।

अह्री[1]--वि० [सं०] निर्लज्ज [को०]।

अह्री[2]--संज्ञा स्त्री० निर्लज्जता [को०]।

अह्रीक[1]--वि० [सं०] निर्लज्ज। बेशर्म; जैसे--भिक्षुक [को०]।

अह्रीक[2]--संज्ञा पुं० बौद्ध भिक्षु [को०]।

अह्रुत--वि० [सं०] १. जो टेढ़ा न हो। अकुटिल। २. अकंपित [को०]।

अह्ल--वि० [अ०] दे० 'अहल' [को०]।

अह्लखाना--संज्ञा स्त्री० [अ० अह्ल+फा० खानह्] पत्नी। भार्या। गृहस्वामिनी [को०]।

अह्लेकलम--संज्ञा पुं० [अ०] लेखक। मसिजीवी [को०]।

अह्लेवतन--संज्ञा पुं० [अ०] देशवासी। वतनवाले [को०]।

अह्लिया--संज्ञा स्त्री० [अ० अहलियह] पत्नी। भार्या। जोरू [को०]।

अह्लीयत--संज्ञा स्त्री० [अ०] योग्यता। पात्रता। निपुणता [को०]।

अह्ल--संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दृढ़ता। २. भिलावाँ। भल्लातक [को०]।

आ

आ—हिंदी वर्णमाला का दूसरा अक्षर जो 'अ' का दीर्घ रूप है।

आंकिक—संज्ञा पुं० [सं० आङ्किक] संख्याता। गणक। गणना करनेवाला।

आंकुशिक—संज्ञा पुं० [सं० आङ्कुशिक] अंकुश से आघात करनेवाला [को०]।

आंक्षी—संज्ञा स्त्री० [सं० आङ्क्षी] एक प्रकार का वाद्य [को०]।

आंग[1]—वि० [सं० आङ्ग][वि० स्त्री० आंगी]१. अंग या शरीरसंबंधी। २. शब्द के आधार या अंग से संबंध रखनेवाला (व्या०)। ३. अंग या अवयवयुक्त या उससे संबंध रखनेवाला। ४. गौण या निम्न पात्रों से संबंध रखनेवाला (नाट्य०)। ५. वेदों के अंग से संबंध रखनेवाला। ६. अंग देश में पैदा किया हुआ या उत्पन्न [को०]।

आंग[2]—संज्ञा पुं० १. अंग देश का राजकुमार। २. सुकुमार शरीर। ⓟ ३. अंग। शरीर।

आंगक[1]—वि० [सं० आङ्गक][वि० आंगकी]अंग देश में उत्पन्न [को०]

आंगक[2]—संज्ञा पुं० १ अंग देश का निवासी व्यक्ति। २. अंग देश का शासक [को०]।

आंगदी—संज्ञा स्त्री० [सं०आङ्गदी] राजा अंगद की राजधानी [को०]।

आंगविद्य—वि० [सं० आङ्गविद्य] १. अंगविद्या संबंधी। २.अंगविद्या का जानकार या ज्ञानी [को०]।

आंगार—संज्ञा पुं० [सं० आङ्गार] कोयले का ढेर या समूह [को०]।

आंगारिक-वि०[सं० आङ्गारिक]कोयला सुलगाने या जलानेवाला[को०]।

आंगिक[1]—वि० [सं० आङ्गिक] [स्त्री० आंगिकी] १. अंगसंबंधी। अंग का। २. अंग की चेष्टा द्वारा व्यक्त या प्रकट किया हुआ, जैसे आंगिक अभिनय (नाट्य०)।

आंगिक[2]—संज्ञा पुं० १. चित्त के भाव को प्रकट करनेवाली चेष्टा, जैसे भ्रूविक्षेप, हाव आदि। २. रस में कायिक अनुभाव। ३. नाटक में अभिनय के चार भेदों में से एक।

विशेष—चार भेद ये हैं—(क) आंगिक = शरीर की चेष्टा बनाना, हाथ, पैर हिलाना आदि। (ख) वाचिक = बातचीत आदि की नकल। (ग) आहार्य = वेशभूषा आदि बनाना। (घ) सात्विक = स्वरभंग, कंप, वैवर्ण्य आदि की नकल।

यौ०—आंगिकाभिनय।

४. मृदंग या ढोल का वादक [को०]। ५. बाँहदार या बँहोलीदार पुरुषों का परिधान जो घुटनों के नीचे तक पहुँचता था। अंगा [को०]।

आंगिरस[1]-संज्ञा पुं० [सं० आङ्गिरस] [वि०स्त्री० आंगिरसी] १.अंगिरा के पुत्र बृहस्पति, उतथ्य और संवर्त। २. अंगिरा के गोत्र का पुरुष। ३. अथर्ववेद की चार ऋचाओं का सूक्त जिसके द्रष्टा अंगिरा थे।

आंगिरस[2]—वि० [सं० आङ्गिरस] १. अंगिरासंबंधी। अंगिरा का। २. अंगिरा से उत्पन्न [को०]।

आंगिरस सत्र—संज्ञा पुं० [सं० आङ्गिरस + सत्र] यज्ञ विशेष। बृहस्पति-सत्र [को०]।

आंगूष—संज्ञा पुं० [सं० आङ्गूष] स्तुति। ऋचा। स्तोत्र [को०]।

आंग्ल—वि० [अं० ऐंग्लो] अँगरेजों से संबंधित। अँगरेजी।

आंचन—संज्ञा पुं०[सं० आञ्चन] काँटा, बाण या इसी प्रकार की कोई नुकीली चीज शरीर से बाहर निकालना [को०]।

आंचलिक—वि० [सं०अञ्चल] अंचल या स्थानविशेष का।

आंचलिकता-संज्ञा स्त्री० [सं० आञ्चलिक + ता (प्रत्य०)] क्षेत्र विशेष से संबंध रखनेवाली स्थिति।

आंछन-संज्ञा पुं० [सं०आञ्छन] टूटी हुई हड्डी बैठाना। उतरा हुआ पैर या जोड़ ठीक करना [को०]।

आंजन[1]-वि०[सं०आञ्जन]१.अंजनसंबंधी या अंजनयुक्त। २ स्थूल। मोटा [को०]।

आंजन[2]—संज्ञा पुं० १. आँख का अंजन। २.अंजना के पुत्र हनूमान्। मारुति।

आंजनिक्य-संज्ञा पुं०[सं० आञ्जनिक्य]आँख का अंजन बनाने में काम आनेवाली चीज [को०]।

आंजनी-संज्ञा स्त्री० [सं०आञ्जनी] १. आँख का अंजन। २. अंजन की डिबिया [को०]।

आंजनीकारी-संज्ञा स्त्री० [सं०आञ्जनीकारी]अंजन तैयारी करनेवाली या लगानेवाली स्त्री [को०]।

आंजनेय—संज्ञा पुं० [सं०आञ्जनेय] अंजना के पुत्र हनूमान्। उ०—आंजनेय को अधिक कृती उन कार्तिकेय से भी लेखो।—साकेत, पृ० ३८२।

आंजलिक-संज्ञा पुं० [सं० आञ्जलिक] एक प्रकार का अर्धचंद्राकार बाण [को०]।

आंजलिक्य—संज्ञा पुं० [सं० आञ्जलिक्य] नम्रता से अंजलि या हाथ जोड़ना [को०]।

आंजल्यक—संज्ञा पुं० [सं० आञ्जल्यक] करबद्ध होना। हाथ जोड़ना [को०]।

आंजस-वि० [सं० आञ्जस] [वि० स्त्री० आंजसी]सद्यस्क। तात्कालिक। क्रमिक [को०]।

आंजिनेय-संज्ञा पुं० [सं० आञ्जिनेय] १. एक प्रकार की छिपकली [को०]।

आंड[1]—वि० [सं० आण्ड] अंडे से उत्पन्न [को०]।

आंड[2]—संज्ञा पुं० १. ब्रह्मा। हिरण्यगर्भ। २. अंडों का ढेर है। ३. अंडकोश [को०]।

आंडज[1]—वि० [सं० आण्डज] अंडे से उत्पन्न [को०]।

आंडज[2]—संज्ञा पुं० १. पक्षी। २. पक्षी का शरीर। ३. सर्प [को०]।

आंडिक,आंडीक-वि० [सं० आण्डिक,आण्डीकडक] अंडयुक्त [को०]।

आंडी—संज्ञा स्त्री० [सं० आण्डी] अंडकोष [को०]।

आंडीर—वि० [सं० आण्डीर] १. बहुत अंडोंवाला। २. लवान। प्रौढ़ (जैसे, बैल) [को०]।

आंत—वि० [सं० आन्त] [वि० स्त्री० आंती] अंतिम [को०]।

आंतर¹—वि० [सं० आन्तर] छिपा हुआ। भीतरी। गुप्त। उ०—इसके बाह्य और आंतर सौंदर्य के भेद करना मेरे विचार से असंगत है।—जय० प्र०, पृ० ३८।

आंतर²—संज्ञा पुं० १. भीतरी स्वभाव। अंतःप्रकृति। २. जिगरी दोस्त। ३. हृदय [को०]।

आंतःपुरिक¹—वि० [सं० आन्तःपुरिक] अंतःपुरसंबंधी [को०]।

आंतःपुरिक²—संज्ञा पुं० अंतःपुर की वार्ता या कार्य [को०]।

आंतरज्ञ—वि० [सं० आन्तरज्ञ] आंतरिक या गुह्य तत्व को जाननेवाला [को०]।

आंतरतम्य-संज्ञा पुं० [सं० आन्तरतम्य] घनिष्ठ या निकट संबंध, जैसे दो अक्षरों का [को०]।

आंतरप्रपंच—संज्ञा पुं० [सं० आन्तर+प्रपञ्च] भ्रम के कारण उत्पन्न धारणा [को०]।

आंतरागारिक-वि० [सं० आन्तरागारिक] भांडार या भांडागारिक के कर्तव्यों से संबंध रखनेवाला [को०]।

आंतरायिक—वि० [सं० आन्तरायिक] १. अंतर से उपस्थित होनेवाला। २. समय समय पर उद्धृत [को०]।

आंतराल¹—वि० [सं० आन्तराल] अंतर की प्रकृति की जानकारी रखनेवाला [को०]।

आंतराल²—संज्ञा पुं० [सं० आन्तराल] एक दार्शनिक संप्रदाय।

आंतरिक वि० [सं० आन्तर+इक (प्रत्य०)] १. आंतर या हृदय-संबंधी। उ०—जब एक व्यक्ति अपने आंतर सत्य को प्राप्त करने के लिये अपनी सारी शक्तियों को केंद्रीभूत करता है···।—मुंशी अभि० ग्रं०, पृ० ४७। २. घरेलू। भीतरी। उ०-नंद आंतरिक विग्रह के कारण जर्जरित हो गया था।—चंद्र०, पृ० ३२।

आंतरिकता—संज्ञा स्त्री० [सं० आंतरिक+ता (प्रत्य०)] घनिष्ठता। आत्मीयता। उ०—वह कुछ सकुचाया और फिर जैसे उसने मुझे सह लिया और आंतरिकता भी बढ़ गई।—भस्मावृत०, पृ० १०।

आंतरिक्ष¹—वि० [सं० आन्तरिक्ष] [वि० स्त्री० आंतरिक्षी] १ अंतरिक्ष संबंधी। २. अंतरिक्ष में उत्पन्न [को०]।

आंतरिक्ष²—संज्ञा पुं० १. पृथ्वी और आकाश के बीच का स्थान। २. वर्षा का जल [को०]।

आंतरीक्ष—वि०, संज्ञा पुं० [सं० आन्तरीक्ष] दे० 'आंतरिक्ष' [को०]।

आंतरीय—वि० [सं० आन्तर+ईय (प्रत्य०)] आंतरिक। भीतरी। हार्दिक। उ०—···यदि आंतरीय कष्ट न हो तो भी···।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० १६०।

आंतर्गेहिक—वि० [सं० आन्तर्गेहिक] [वि० स्त्री० आंतर्गेहिकी] घर के भीतर का। घर के भीतर उत्पन्न [को०]।

आंतर्वेदिक—वि० [सं० आन्तर्वेदिक] वेदिका या वेदी के भीतर का [को०]।

आंतर्वेशिक—संज्ञा पुं० [सं० आन्तर्वेशिक] दे० 'अंतर्वेशिक'। उ०—आंतर्वेशिक से प्रश्न हुआ, कितनी नई दासियाँ अंतःपुर में आई हैं।—इरा०, पृ० ४७।

आंतर्वेश्मिक—वि० [सं० आन्तर्वेश्मिक] घर के अंदर या भीतरी भाग से संबंध रखनेवाला [को०]।

आंतिका—संज्ञा स्त्री० [सं० आन्तिका] बड़ी बहन [को०]।

आंत्र¹—वि० [सं० आन्त्र] आँत का। आँत संबंधी [को०]।

आंत्र²—संज्ञा पुं० आँत [को०]।

आंत्रिक—वि० [सं० आन्त्रिक] आँत संबंधी [को०]।

आंदोल—संज्ञा पुं० [सं० आन्दोल] १. हिलना डुलना। झूलना। २. काँपना। कंपन [को०]।

आंदोलक—संज्ञा पुं० [सं० आन्दोलक] झूला।

आंदोलन—संज्ञा पुं० [सं० आन्दोलन] १. बार बार हिलना डुलना। इधर से उधर हिलना। काँपना। झूलना। उ०—आलोक रश्मि से बुने उषा अंचल में आंदोलन अमंद।—कामायनी, पृ० १६८। २ उथल पुथल करनेवाला सामूहिक प्रयत्न। हलचल। धूम; जैसे, शिक्षा के प्रचार के लिये वहाँ खूब आंदोलन हो रहा है। उ०—इसके पीछे तो खड़ी बोली के लिये एक आंदोलन ही खड़ा हुआ।—इतिहास०, पृ० ५०६।

आंदोलित—वि० [सं० आन्दोलित] [वि० स्त्री० आंदोलिता] हिलता डुलता हुआ झोके खाता हुआ। उ०—इन कवियों के मन में एक आँधी उठ रही थी जिसमें आंदोलित होते हुए वे उड़े जा रहे थे।—इतिहास०, पृ० ६५०। २. कंपनयुक्त। हलचल से भरा।

आंधस—संज्ञा पुं० [सं० आन्धस] मंड। मांड [को०]।

आंधसिक¹-संज्ञा पुं० [सं० आन्धसिक] पाचक। पाककार। रसोइया [को०]।

आंधसिक²—वि० भोजन या खाना बनानेवाला [को०]।

आंध्य—वि० [सं० आन्ध्य] १. अंधता। अंधापन। २. अंधकार[को०]।

आंध्र¹—संज्ञा पुं० [सं० आन्ध्र] १. ताप्ती नदी के किनारे का देश। २. भारत का तेलुगु भाषी प्रदेश या राज्य।

आंध्र²—वि० आंध्र देश का निवासी।

आंब—संज्ञा पुं० [सं० आम्ब] अन्न का एक प्रकार या भेद [को०]।

आंबष्ठ-संज्ञा पुं० [सं० आम्बष्ठ] अँबष्ठ देश का निवासी व्यक्ति[को०]।

आंबिकेय—संज्ञा पुं० [सं० आम्बिकेय] अंबिका का पुत्र। १ धृतराष्ट्र। २. कार्तिकेय [को०]।

आंबुद—वि० [सं० आम्बुद] अंबुद या बादल संबंधी [को०]।

आंभस—वि० [सं० आम्भस] [वि० स्त्री० आंभसी] १. जल संबंधी। २. द्रव। तरल [को०]।

आंभसिक¹-वि० [सं० आम्भसिक] जल में रहनेवाला। जलचर[को०]।

आंभसिक²—संज्ञा पुं० मछली [को०]।

आंभसी—संज्ञा स्त्री० [सं० आम्भसी] घेरंड संहिता में वर्णित पाँच धारणामुद्राओं में से एक। जलचरी मुद्रा।

आंशिक—वि० [सं०] अंशसंबंधी। अंश विषयक। कुछ। थोड़ा।

आंशुक जल—संज्ञा पुं० [सं०] किरण दिखाया हुआ पानी। वह जल जो एक तांबे के बर्तन में रखकर दिन भर धूप में और रात

भर चाँदनी या ओस में रखकर छान लिया जाय। वैद्यक में इसका बड़ा गुण लिखा है।

आंश्य--वि० [सं०] अंश से संबंध रखनेवाला [को०]।

आँ--अव्य० [अनुध्व०] १. विस्मयसूचक शब्द; जैसे,--आँ, क्या कहा? फिर तो कहो। २. बालक के रोने के शब्द का अनुकरण।

आँक¹--संज्ञा पुं० [सं० अंक] १. अंक। चिह्न। निशान। २. संख्या का चिह्न। अदद। उ०--(क) तुलसी महीस देखे, दिन रजनीस जैसे, सूने पर सून से मनो मिटाए आँक के।--तुलसी ग्रं०, पृ० ३१८। (ख) कहत सबै बेंदी दियें आँक दस गुनौ होत।--बिहारी र०, दो० २२७। ३. अक्षर। हरफ। उ०-(क) बिरह तचैं उघरचौ सु अब सेंहुड़ कैसो आँकु।--बिहारी र०, दो० ४५७। (ख) गुण पै अपार साधु, कहैं आँक चारि ही में अर्थ बिस्तारि कविराज टकसार है।--प्रिया० (शब्द०)। ४. गढ़ी हुई बात। ५. दृढ़ निश्चय। निश्चित सिद्धांत। उ०--जाउँ राम पहिं आएसु देहू। एकहि आँक मोर मत एहू।--मानस, २।१७८। (ख) एकहि आँक इहइ मन माहीं। प्रात काल चलिहौं प्रभु पाहीं।--मानस, २।१८३। ६. अंश। हिस्सा। उ०--काम-संकल्प डर निरखि बहु बासनहिं आस नहिं एकहू आँक निरबान की।--तुलसी ग्रं०, पृ० ५६३। ७. किसी मनुष्य के नाम पर प्रसिद्ध वंश; जैसे, वे बड़े कुलीन हैं, वे अमुक आँक के हैं। ८. अँकवार। गोद। उ०--पीछे ते गहि लाँकरी, गही आँक री फेरि।--स० सप्तक, पृ० २४३।

मुहा०--आँक भरना=आलिंगन करना। उ०--छीतस्वामी गिरिवरधर मगन भए आँकौं भरत, सुख स्वाद इहै, समै को कहत न बनि आवै।--छीत०, पृ० ४१।

९. भाग्य। उ०--एक को आँक बनावत मेटत पोथिय काँख लिए दिन जैहैं।--घनानंद (भू०) पृ० ५३। १०. शान। उ०--कठिन काठियावाड़ चुटीले के परिपोखे, चंचल चपल चलाँक बाँकपन आँक अनोखे।--रत्नाकर, भा० १, पृ० ११२। ११. अँकुर। उ०--जाम्यों आँक अकार नेह दिन दिन बढ़त करम संदेह।--भीखा श०, पृ० ४७। १२. नौ मात्रा के छंदों की संख्या। अंक। १३. छकड़े या बैलगाड़ियों की बल्लियों के नीचे दिया हुआ लकड़ी का मजबूत ढाँचा जिसमें धुरी पहिए में पहनाई जाती है।

आँक²-- संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'आँख'। उ०--जितवा है बिन जिव में सुनता है बिन कान। देखता है बिन आँक से, कादर बिन तन जान।--दक्खिनी०, पृ० ३८५।

आँकड़ा¹--संज्ञा पुं० [सं० अंक, हिं० आँक+ड़ा (प्रत्य०)] १ आँक। अदद। संख्या का चिह्न। उ०--जनसंख्या से संबंधित समस्त आँकड़े जनगणना १९५१ पर आधारित हैं।--शुक्ल अभि० ग्रं०, (विविध) पृ० २।

आँकड़ा²†--संज्ञा पुं० [देश०] चौपायों की एक बीमारी।

आँकड़ा³†--संज्ञा पुं० [सं० अर्क, हिं० आक+ड़ा (प्रत्य०)] मदार। आक।

आँकन†--संज्ञा पुं० [सं० अ+कण=दाना] ज्वार की बाल की खुड़ी जिसमें से दाना निकाल लिया गया हो।

आँकना--क्रि० स० [सं० अंकन] चिह्नित करना। निशान लगाना। दागना। उ०--खिन खिन जीव सँड़ासन आँका। औ नित डोम छुआवहिं बाँका।--जायसी (शब्द०)। २. कूतना। अंदाज करना। तखमीना करना। मूल्य लगाना। उ०--सन् १९५१ की पशुगणना के अनुसार राज्य में पशुधन से प्राप्त होनेवाले पदार्थों का मूल्य २१ करोड़ रुपए आँका गया है।--शुक्ल अभि० ग्रं०, (विविध), पृ० १७। ३. अनुमान करना। ठहराना। निश्चित करना। उ०--आम कों कहत आमली है आमली कों आम आक ही अनारन कों आँकिबो करति है।--पद्माकर, ग्रं० पृ० २१८।

आँकबाँक--संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आकबाक'। उ०--जैसें कछु आँक बाँक बकत हैं। आजु हटि, तैसें जिन नाउँ मुख काहु को निकसि जाइ।--केशव ग्रं०, पृ० ५३१।

आँकम†--संज्ञा पुं० [सं० अंक] आलिंगन। उ०--बाहु वलय आँकम भरे भाग, आपन आइति नहि आवस आँग।--विद्यापति, पृ० २०७।

आँकर¹--वि० [सं० आकर=खान, जो गहरी होती है] १. गहरा। 'स्याह' या 'सेव' का उलटा।

विशेष--जोताई दो तरह की होती है--एक आँकर अर्थात् खूब गहरी (अँवाय) और दूसरी स्याह या सेव।

२. बहुत अधिक। उ०--मोहमद मात्यो रात्यो कुमति कुनारि सों बिसारि बेद लोक लाज आँकरो अचेतु है।--तुलसी (शब्द०)।

आँकर²--वि० [सं० अक्रय्य] महँगा।

आँकल(पु)--संज्ञा पुं० [सं० अंक, हिं० आँक=दाग] दागा हुआ साँड़।--(डिं०)।

आँकुड़ा-- संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आँकड़ा'।

आँकुर(पु)--संज्ञा पुं० [हिं०] पुं० 'अंकुर'। उ०--कुटुक आसा दीप मिक एज, मदन आँकुर भाँगु।--विद्यापति, पृ० ३७।

आँकुस(पु)†--संज्ञा पुं० [सं० अङ्कुश] दे० 'अंकुश'। उ०--जोबन अस मैमंत न कोई, नवै हस्ति जौ आँकुस होई।--जायसी ग्रं०, पृ० ७४।

आँकू--वि० [सं० अंक, हिं० आँक+ऊ (प्रत्य०)] आँकने या कूतनेवाला। तखमीना करनेवाला।

आँख¹--संज्ञा स्त्री० [सं० अक्षि, प्रा० अक्खि, पं० अक्ख] देखने की इंद्रिय। वह इंद्रिय जिससे प्राणियों को रूप अर्थात् वर्ण-विस्तार तथा आकार का ज्ञान होता है।

विशेष--मनुष्य के शरीर में यह एक ऐसी इंद्रिय है, जिसपर आलोक के द्वारा पदार्थों का बिंब खिंच जाता है। जो जीव आरोह नियमानुसार अधिक उन्नत हैं, उनकी इंद्रियों की बनावट अधिक पेचीली और जटिल होती है, पर क्षुद्र जीवों में इनकी बनावट बहुत सादी, कहीं कहीं तो एक बिंदी के रूप में होती है; उनपर रक्षा के लिये पलक और बरौनी इत्यादि का बखेड़ा नहीं होता। बहुत क्षुद्र जीवों में चक्षुरिंद्रिय की जगह या संख्या नियत नहीं होती। शरीर के किसी स्थान में एक, दो, चार, छः बिंदियाँ सी होती हैं जिनसे प्रकाश का बोध होता है।

मकड़ियों की आठ आँखें प्रसिद्ध हैं।। रीढ़वाले जीवों की आँखें खोपड़े के नीचे गड्ढों में बड़ी रक्षा के साथ बैठाई रहती हैं और उनपर पलक और बरौनी आदि का आवरण रहता है। वैज्ञानिकों का कथन है कि सभ्य जातियाँ वर्णभेद अधिक कर सकती हैं और पुराने लोग रंगों में इतने भेद नहीं कर सकते थे। आँख बाहर से लंबाई लिए हुए गोल तथा दोनों किनारों पर नुकीली दिखाई पड़ती है। सामने जो सफेद काँच की सी झिल्ली दिखाई पड़ती है उसके पीछे एक और झिल्ली है जिसके बीचोबीच एक छेद होता है। इसके भीतर उसी से लगा हुआ एक उन्नतोदर काँच के सदृश पदार्थ होता है जो नेत्र द्वारा ज्ञान का मुख्य कारण है, क्योंकि इसी के द्वारा प्रकाश भीतर जाकर रेटिना पर के ज्ञानतंतुओं पर कंप वा प्रभाव डालता है।

पर्या०—लोचन। नयन। नेत्र। ईक्षण। अक्षि। दृक्। दृष्टि। अंबक। विलोचन। वीक्षण। प्रेक्षण। चक्षु।

यौ०—**उनींदी आँख**=नींद से भरी आँख। वह आँख जिसमें नींद आने के लक्षण दिखाई पड़ते हों। **कंजी आँख**=नीली और भूरी आँख। बिल्ली की सी आँख। **कँटीली आँख**=घायल करनेवाली आँख। मोहित करनेवाली आँख। **गिलाफी आँख**=पपोटों से ढकी हुई आँख; जैसे कबूतर की। **चंचल आँख**=यौवन के उमंग के कारण स्थिर न रखनेवाली आँख। **चरबाँक आँख**=चंचल आँख। **चियाँ सी आँख**=बहुत छोटी आँख। **चोर आँख**=(१) वह आँख जिसमें सुरमा या काजल मालूम न हो। (२) वह आँख जो लोगों पर इस तरह पड़े कि मालूम न हो। **धँसी आँख**=भीतर की ओर धँसी हुई आँख। मतवाली आँख=मद से भरी आँख। **मदभरी आँख, रसभरी आँख**=वह आँख जिससे भाव टपकता हो। रसीली आँख, **शरबती आँख**=गुलाबी आँख।

मुहा०—**आँख**=(१) ध्यान। लक्ष्य। जैसे, उनकी आँख बुराई ही पर रहती है। (२) विचार। विवेक परख। शिनाख्त। जैसे—(क) उसके आँख नहीं है; वह क्या सौदा लेगा। (ख) राजा के आँख नहीं कान होता है। (३) कृपादृष्टि। दया भाव; जैसे,—अब तुम्हारी वह आँख नहीं रही। (४) संतति। संतान। लड़का बाला; जैसे—(क) सोगिन मर गई, आँख छोड़ गई। (ख) एक आँख फूटती है तो दूसरी पर हाथ रखते हैं। (अर्थात् जब एक लड़का मर जाता है तब दूसरे को देखकर धीरज धरते हैं और उसकी रक्षा करते हैं।) (ग) मेरे लिये तो दोनों आँखें बराबर हैं। **आँख आना**=आँख में लाली, पीड़ा और सूजन होना। **आँख उठना**=आँख आना। आँख में लाली और पीड़ा होना। **आँख उठाना**=ताकना। देखना। सामने नजर करना। जैसे—आँख उठाई तो चारों ओर मैदान देख पड़ा। (२) बुरी नजर से देखना। बुरा बर्ताव करना। हानि पहुँचाने की चेष्टा करना। जैसे—हमारे रहते तुम्हारी ओर कोई आँख उठा सकता है? **आँख उठाकर न देखना**=(१) ध्यान न देना। तिरस्कार करना; जैसे—(क) मैं उनके पास घंटों बैठा रहा पर उन्होंने आँख उठाकर भी नहीं देखा। (ख) ऐसी चीजों को तो हम आँख उठाकर भी नहीं देखते। (२) सामने न ताकना। लज्जा या संकोच से बराबर दृष्टि न करना; जैसे—वह लड़का तो आँख ही ऊपर नहीं उठाता, हम समझावें क्या। **आँख उलट जाना**=(१) पुतली का ऊपर चढ़ जाना। आँख पथराना (यह मरने के समय होता है); जैसे,—आँखें उलट गईं, अब क्या आशा है। (२) घमंड से नजर बदल जाना। अभिमान होना; जैसे—इतने ही धन में तुम्हारी आँख उलट गई हैं। **आँख ऊँची न होना**=लज्जा से बराबर ताकने का साहस न होना। लज्जा से दृष्टि नीचे रहना; जैसे,—उस दिन से फिर उसकी आँख हमारे सामने ऊँची नहीं हुई। **आँख ऊपर न उठाना**=(१) लज्जा या भय से नजर ऊपर की ओर न करना। दृष्टि नीची रखना। **आँख ओट, पहाड़ ओट**=(१) निःसंकोच होना। (२) जब आँख के सामने नहीं, तब क्या दूर, क्या नजदीक। **आँख कड़ुआना**=अधिक ताकने या जागने से एक प्रकार की पीड़ा होना। **आँख का अंधा, गाँठ का पूरा**=मूर्ख धनवान। अनाड़ी मालदार। वह धनी जिसे कुछ विचार या परख न हो; जैसे—(क) हे भगवान्, भेजो कोई आँख का अंधा गाँठ का पूरा। (ख) जो आँख का अंधा होगा, वही यह सड़ा कपड़ा लेगा। **आँख का काँटा होना**=(१) खटकना। पीड़ा देना। (कंटक होना। बाधक होना। शत्रु होना; जैसे,—उसी के मारे तो हमारी कुछ चलने नहीं पाती; वही तो हमारी आँख का काँटा हो रहा है। **आँख का काजल चुराना**=गहरी चोरी करना। बड़ी सफाई के साथ चोरी करना। **आँख का जाना**=आँख फूटना; जैसे,—उसकी आँख शीतला में जाती रही। **आँख का जाला**=आँख की पुतली पर एक सफेद झिल्ली जिसके कारण धुंध दिखाई देता है। **आँख का डेला**=आँख का बट्टा। आँख का वह उभड़ा हुआ सफेद भाग जिसपर पुतली रहती है। **आँख का तारा**=(१) आँख का तिल। कनीनिका। (२) बहुत प्यारा व्यक्ति। (३) संतति। **आँख का तिल**=आँख की पुतली के बीचोबीच छोटा गोल तिल के बराबर काला धब्बा जिसमें सामने की वस्तु का प्रतिबिंब दिखाई पड़ता है। यह यथार्थ में एक छेद है जिससे आँख के सबसे पिछले परदे का काला रंग दिखाई पड़ता है। आँख का तारा। कनीनिका। **आँख का तेल निकालना**=आँख को कष्ट देना। ऐसा महीन काम करना जिसमें आँखों पर बहुत जोर पड़े, जैसे सीना पिरोना, लिखना, पढ़ना आदि। उ०—क्यों न खो देंगे आँख का तिल वे, आँख का तेल जो निकालेंगे।—चोखे०, पृ० १७। **आँख कान खुला रहना**=सचेत रहना। सावधान होना। होशियार रहना। **आँख का परदा**=आँख के भीतर की झिल्ली जिससे होकर प्रकाश जाता है। **आँख का पर्दा उठना**=ज्ञानचक्षु का खुलना। अज्ञान या भ्रम का दूर होना। चेत होना; जैसे—उसकी आँख का परदा उठ गया है, अब वह ऐसी बातों पर विश्वास न करेगा। **आँख पर पर्दा पड़ना**=कुछ सुझाई न पड़ना। मोहग्रस्त होना। **आँख का पानी ढल जाना**=लज्जा छूट जाना। लाज शर्म का जाता रहना, जैसे,—जिसकी आँख का पानी ढल गया है, वह चाहे जो कर डाले। **आँख का पानी मरना**=दे० 'आँख का पानी ढलना'। **आँख की किरकिरी**=आँख का काँटा।

चक्षुशूल। खटकनेवाली वस्तु या व्यक्ति। **आँखों की ठंडक**=अत्यंत प्यारा व्यक्ति या वस्तु। **आँख की पुतली**=आँख के भीतर कार्निया और लेंस के बीच का रंगीन भूरी झिल्ली का वह भाग जो सफेदी पर की गोल काट से होकर दिखाई पड़ता है। इसी के बीच में वह तिल या कृष्णतारा दिखाई पड़ता है जिसमें सामने की वस्तु का प्रतिबिंब झलकता है। इसमें मनुष्य का प्रतिबिंब एक छोटी पुतली के समान दिखाई पड़ता है, इसी से इसे पुतली कहते हैं। (२) प्रिय व्यक्ति। प्यारा मनुष्य। जैसे,—वह हमारी आँख की पुतली है; उसे हम पास से जाने न देंगे। **आँख की पुतली फिरना**=आँख की पुतली का चढ़ जाना। पुतली का स्थान बदलना। आँख का पथराना (यह मरने का पूर्वलक्षण है)। **आँख की बदी भौं के आगे**=किसी के दोष को उसके इष्ट मित्र या भाई बंधु के सामने ही कहना। **आँख की सूइयाँ निकालना**=किसी काम के कठिन और अधिक भाग के अन्य व्यक्ति द्वारा पूरा हो जाने पर उसके शेष अल्प और सरल भाग को पूरा करके सारा फल लेने का उद्योग करना; जैसे,—इतने दिनों तक तो मर मरकर हमने इसको इतना दुरुस्त किया; अब तुम आए हो आँखों की सूइयाँ निकालने।

विशेष--इस मुहाविरे पर एक कहानी है। एक राजकन्या का विवाह बन में एक मृतक से हुआ जिसके सारे शरीर में सूईयाँ चुभी हुई थीं। राजकन्या नित्य बैठकर उन सूइयों को निकाला करती थी। उसकी एक लौंडी भी साथ थी जो यह देखा करती थी। एक दिन राजकन्या कहीं बाहर गई। लौंडी ने देखा कि मृतक के शरीर की सारी सूइयाँ निकल चुकी हैं, केवल आँखों की बाकी हैं। उसने आँखों की सूइयाँ निकाल डालीं और वह मृतक जी उठा। उस लौंडी ने अपने को उसकी विवाहिता बतलाया; और जब वह राजकन्या आई, तब उसे अपनी लौंडी कहा। बहुत दिनों तक वह लौंडी इस प्रकार रानी बनकर रही। पर पीछे से सब बातें खुल गईं और राजकन्या के दिन फिरे।

आँखों के आगे अँधेरा छाना=मस्तिष्क पर आघात लगने या कमजोरी से नजर के सामने थोड़ी देर के लिये कुछ न दिखाई देना। बेहोशी होना। मूर्च्छा आना। **आँखों के आगे अँधेरा होना**=संसार सूना दिखाई देना। विपत्ति या दुःख के समय घोर नैराश्य होना। जैसे,—लड़के के मरते ही उनकी आँखों के आगे अँधेरा हो गया। **आँखों के आगे उजाला होना**=प्रकाश होना। ज्ञान होना। **आँखों में चमक आना**=**प्रसन्न होना**। **आँखों के आगे चिनगारी छूटना**=आँखों का तिलमिलाना। तिलमिली लगना। मस्तिष्क पर आघात पहुँचने पर चकाचौंध सी लगना। **आँखों के आगे नाचना**=दे० 'आँखों में नाचना'। **आँखों के आगे पलकों की बुराई**=किसी के इष्ट-मित्र के आगे ही उसकी निंदा करना। जैसे--नहीं जानते थे कि आँखों के आगे पलकों की बुराई कर रहे हैं, सब बातें खुल जायँगी? **आँखों के आगे फिरना**=दे० 'आँखों में फिरना'। **आँखों के आगे रखना**=आँखों के सामने रखना। **आँखों के कोए**=आँखों के डेले। **आँखों के डोरे**=आँखों के सफेद डेलों पर लाल रंग की बहुत बारीक नसें। **आँखों के तारे छूटना**=दे० 'आँखों के आगे चिनगारी छूटना'। **आँखों के सामने नाचना**=दे० 'आँखों में नाचना'। आँखों के सामने रखना=निकट रखना। पास से जाने न देना। जैसे,—हम तो लड़कों को आँखों के सामने ही रखना चाहते हैं। **आँखों के सामने होना**=संमुख होना। आगे आना। आँखों को रो **बैठना**=आँखों को खो देना। अंधा होना; जैसे,—यदि यही रोना धोना रहा तो आँखों को रो बैठेगी (स्त्री०)। **आँख खटकना**=(१) आँख टीसना। आँख किरकिराना। उ०—कुमकुम मारो गुलाल, नंद जू के कृष्णलाल, जाय कहूँगी कंसराज से आँख खटक मोरी भई है लाल।—होली (शब्द०)। (२) किसी से मनमुटाव होना। **आँख खुलना**=(१) पलक खुलना। परस्पर मिली या चिपकी हुई पलकों का अलग हो जाना; जैसे,--(क) बच्चे की आँखों धो डालो तो खुल जायँ।—(ख) बिल्ली के बच्चों ने अभी आँखें नहीं खोलीं। (२) नींद टूटना; जैसे,—तुम्हारी आहट पाते ही मेरी आँखें खुल गईं। (३) चेत होना। ज्ञान होना। भ्रम का दूर होना; जैसे,—पश्चिमीय शिक्षा से भारतवासियों की आँखें खुल गईं। (४) चित्त स्वस्थ होना। ताजगी आना। होश-हवास-दुरुस्त होना। तबियत ठिकाने आना। जैसे,--इस शरबत के पीते ही आँखें खुल गईं। **आँख खुलवाना**=(१) आँख बनवाना। (२) मुसलमानों के विवाह की एक रीति जिसमें दुलहिन के सामने एक दर्पण रखा जाता है और वे उसमें एक दूसरे का मुँह देखते हैं। **आँख खोलना**=(१) पलक उठाना। ताकना। (२) आँख बनाना। आँख का जाला या माँड़ा निकालना। आँख को दुरुस्त करना; जैसे,—डाक्टर ने यहाँ बहुत से अंधों की आँखें खोलीं। (३) चेताना। सावधान करना। ज्ञान का संचार करना। वास्तविक बोध करना; जैसे,—उस महात्मा ने सदुपदेश से हमारी आँखें खोल दीं। (४) ज्ञान का अनुभव करना। वाकिफ होना। सावधान होना। उ०—भाई बंधु और कुटुंब कबीला झूठे मित्र गिनावे। आँख खोल जब देख बावरे! सब सपना कर पावे।—कबीर (शब्द०)। (५) सुध होना। स्वस्थ होना; जैसे—चार दिन पर आज बच्चे ने आँख खोली है। **आँख गड़ना**—(१) आँख किरकिराना। आँख दुखना; जैसे—हमारी आँखें कई दिनों से गड़ रही हैं, आवेंगी क्या? (२) आँख धँसना। आँख बैठना; जैसे,—उसकी गड़ी गड़ी आँखें देखकर तुम उसे पहचान लेना। (३) दृष्टि जमना। टकटकी बँधना; जैसे,—(क) किस चीज पर तुम्हारी आँखें इतनी देर से गड़ी हुई हैं। (ख) उसकी आँखें तो लिखने में गड़ी हुई हैं, उसे इधर उधर की क्या खबर। (४) बड़ी चाह होना। प्राप्ति की उत्कट इच्छा होना, जैसे,—जिस वस्तु पर तुम्हारी आँख गड़ती है, उसे तुम लिए बिना नहीं छोड़ते। **आँख गड़ाना**=(१) टकटकी बाँधना। स्तब्ध दृष्टि से ताकना। (२) नजर रखना। चाहना। प्राप्ति की इच्छा करना। जैसे,--अब तुम इसपर आँख गड़ाए हो, काहे को बचेगी। **आँखें घुलना**=चार आँखें होना। खूब घूराघूरी होना। दृष्टि से दृष्टि मिलना; जैसे, घंटों से खूब आँखें घुल रही हैं। आँखें

चढ़ना = नशे, नींद या सिर की पीड़ा से पलकों का तन जाना और नियमित रूप से न गिरना। आँखों का लाल होना; जैसे—देखते नहीं उसकी आँखें चढ़ी हुई हैं और मुँह से सीधी बात नहीं निकलती। **आँख चमकाना** = आँखों से तरह तरह के इशारे करना। आँख की पुतली इधर उधर घुमाना। आँख मटकाना। **आँख चरने जाना** = दृष्टि का जाता रहना, जैसे—तुम्हारी आँख क्या चरने गई थी जो सामने से चीज उठ गई। **आँख चार करना, चार आँखें करना** = देखादेखी करना। सामने आना; जैसे,—जिस दिन से मैंने खरी खरी सुनाई, वे मुझसे चार आँखें नहीं करते। **आँखें चार होना, चार आँखें होना** = (१) देखादेखी करना। सामना होना। एक दूसरे के दर्शन होना, जैसे,—आँखें चार होते ही वे एक दूसरे पर मरने लगे। (२) विद्या का होना, जैसे,—हम तो अपढ़ हैं, पर तुम्हें तो चार आँखें हैं, तुम ऐसी भूल क्यों करते हो। **आँखचीर चीर कर देखना** = दे० 'आँख फाड़ फाड़ कर देखना'। **आँख चुराना** = नजर बचाना। कतराना। सामने न होना। जैसे—उस दिन से रुपया ले गया है, आँख चुराता फिरता है। (२) लज्जा से बराबर न ताकना। दृष्टि नीची करना (३) रुखाई करना। ध्यान न देना, जैसे—अब वे बड़े आदमी हो गए हैं, अपने पुराने मित्रों से आँख चुराते हैं। **आँख चुराकर कुछ करना** = छिपकर कोई काम करना। **आँख चूकना** = नजर चूकना। दृष्टि हट जाना। असावधानी होना, जैसे,—आँख चूकी कि माल यारों का। **आँख छत से लगना** = (१) आँख ऊपर को चढ़ना। आँख टँगना। स्तब्ध होना। आँख का एकदम खुली रहना। (यह मरने के पूर्व की अवस्था है।) (२) टकटकी बँधना। **आँख छिपाना** = (१) नजर बचाना। कतराना। टालमटूल करना। (२) लज्जा से बराबर न ताकना। दृष्टि नीची करना। (३) रुखाई करना। बेमुरौवती करना। ध्यान न देना। **आँख जमना** = नजर ठहरना। दृष्टि का स्थिर रहना; जैसे,—पहिया इतनी जल्दी जल्दी घूमता है कि उसपर आँख नहीं जमती। **आँख झपकना** (१) आँख बंद होना। पलक गिरना। (२) नींद आना। झपकी लगना, जैसे,—आँख झपकी ही थी कि तुमने जगा दिया। **आँख झपकाना** = आँख मारना। इशारा करना। **आँख झेंपना** = दृष्टि नीची होना। लज्जा मालूम होना, जैसे,—सामने आते ही आँख झेंपती है। **आँख टँगना** = (१) आँख ऊपर को चढ़ जाना। आँख की पुतली का स्तब्ध होना। आँख का एकदम खुला रहना (यह मरने का पूर्वलक्षण है)। (२) टकटकी बँधना, जैसे,—तुम्हारे आसरे में हमारी आँखें टँगी रह गईं, पर तुम न आए। **आँख टेढ़ी करना** = (१) भौं टेढ़ी करना। रोष दिखाना। (२) आँखें बदलना। रुखाई करना। बेमुरौवती करना। **आँखें ठंढी होना** = तृप्ति होना। संतोष होना। मन भरना। इच्छी पूरी होना, जैसे,—अब तो उसने मार खाई, तुम्हारी आँखें ठंढी हुईं? **आँखें डबडबाना** = (१) (क्रि० अ०) आँखों में आँसू भर आना। आँखों में आँसू आना, जैसे,—यह सुनते ही उसकी आँखें डबडबा आईं। (२) (क्रि० स०) आँख में आँसू लाना। आँसू भरना, जैसे,—वह आँखें डबडबाकर बोला। **आँख डालना** = दृष्टि डालना। देखना। ध्यान देना। चाह करना। इच्छा करना, जैसे—भले लोग पराई वस्तु पर आँख नहीं डालते। **आँखें ढँकर ढँकर करना** = पलकों की गति ठीक न रहना। आँखों का तिलमिलाना जैसे,—इतने दिनों के उपवास से उसकी आँखें ढकर ढकर कर रही हैं। **आँखें तरसना** = देखने के लिये आकुल होना। दर्शन के लिये दुखी होना; जैसे—तुम्हें देखने के लिये आँखें तरस गईं। **आँखें तरेरना** = क्रोध से आँखें निकाल कर देखना। क्रोध की दृष्टि से देखना। उ०—सुनि लछिमन बिहँसे बहुरि नयन तरेरे राम।—मानस, १।२७८। **आँख तले न आना** = कुछ भी न जँचना। उ०—देव देखि तब बालक दोऊ। अब न आँखि तर आवत कोऊ।—मानस, १।२७८। **आँखों तले न लाना** = कुछ न समझना। तुच्छ समझना; जैसे,—वह किसी को अपनी आँखों तले लाता है जो तुम्हारी बात मानेगा? **आँख दबाना** = पलक सिकोड़ना। आँख भचकाना; जैसे, (क) वह जरा आँख दबाकर ताकता है। तब प्रभु ने आग की ओर आँख दबाय सैन की, वह तुरंत बुझ गई। **आँख दिखाना** = क्रोध से आँखें निकालकर देखना। क्रोध की दृष्टि से देखना। कोप जताना। उ०—(क) जानै ब्रह्म सो विप्रबर आँखि देखावहिं डाटि।—मानस, ७।९९। (ख) सुनि सरोष भृगुनायकु आए। बहुत भाँति तिन्ह आँखि देखाए।—मानस, १।२९३। (ग) बाजराज के बालकहिं लवा दिखावत आँखि।—तुलसी ग्रं०, पृ. ११५। **आँख दीदे से डरना** = दे० 'आँख नाक से डरना'। **आँखें दुखना** = आँख में पीड़ा होना। **आँखों देखते** = (१) आँखों के सामने। देखते हुए। जानबूझकर; जैसे,—(क) आँखों देखते तो हम ऐसा अन्याय नहीं होने देंगे।—(ख) आँखों देखते मक्खी नहीं निगली जाती। (२) देखते देखते। थोड़े ही दिनों में; जैसे—आँखों देखते इतना बड़ा घर बिगड़ गया। **आँखों देखा** = आँखों से देखा हुआ। अपना रखा। उ०—जल में उपजे जल में रहे। आँखों देखा खुसरो कहे।—(पहेली, काजल।); जैसे,—यह तो हमारी आँखों देखी बात है। **आँखें दौड़ाना** = नजर दौड़ाना। डीठ पसारना। चारों ओर दृष्टि फेरना। इधर उधर देखना; जैसे,—मैंने इधर उधर बहुत आँख दौड़ाई पर कहीं कुछ न देख पड़ा। **आँख न उठना** = (१) लज्जा से दृष्टि नीची रहना। (२) एहसान से दबा रहना। (३) दे० 'आँख न आना'। **आँख न उठाना** = (१) नजर न उठाना। सामने न देखना। बराबर न ताकना (२) लज्जा से दृष्टि नीची किए रहना (३) किसी काम में बराबर लगे रहना; जैसे,—वह सबेरे से जो सीने बैठा तो दिन भर आँख न उठाई। **आँख न खोलना** = (१) आँख बंद रखना। (२) सुस्त पड़ा रहना। बेसुध रहना। गाफिल रहना; जैसे,—आज चार दिन हुए बच्चे ने आँख न खोली। बादल का आँख न खोलना = बादल का घिरा रहना। आकाश का बादलों से ढका रहना। **मेंह का आँख न खोलना** = पानी का न थमना। वर्षा का न रुकना। **आँख न ठहरना** = चमक या द्रुत गति के कारण दृष्टि न जमना। जैसे,—(क) वह ऐसा भड़कीला कपड़ा है कि आँख नहीं ठहरती। (ख) पहिया इतनी तेजी से घूमता था कि उसपर आँख नहीं ठहरती थी। **आँख न पसीजना** = आँख में आँसू न आना। (एक) **आँख न भाना** = बिलकुल

अच्छा न लगना; जैसे,—ये बातें हमें एक ग्राँख नहीं भातीं। **ग्राँख नाक से डरना**=ईश्वर से डरना जो पापियों को ग्रंधा ग्रौर नकटा कर देता है। पाप से डरना जिससे ग्राँख नाक जाती रहती है; जैसे—भाई, मुझ दीन से न डर तो ग्रपनी ग्राँख नाक से तो डर। **ग्राँख निकालना**=ग्राँख दिखाना। क्रोध की दृष्टि से देखना; जैसे,—हमपर क्या ग्राँख निकालते हो; जिसने तुम्हें कुछ कहा हो उसके पास जाग्रो।—(२) ग्राँख के डेले को छुरी से काटकर ग्रलग कर देना। ग्राँख फोड़ना;जैसे,–उस दुष्ट सरदार ने शाह ग्रालम की ग्राँख निकाल ली। **ग्राँख नीची करना**=दृष्टि नीची करना। सामने न ताकना जैसे–वहाँ ग्राँख नीची किए चला जा रहा था। (२) लज्जा या संकोच से बराबर नजर न करना। दृष्टि न मिलाना। जैसे,–कब तक ग्राँखे नीची किए रहोगे ? जो पूछते हैं, उसका उत्तर दो। **ग्राँख नीची होना**=सिर नीचा होना। लज्जा उत्पन्न होना। ग्रप्रतिष्ठा होना; जैसे,–कोई ऐसा काम न करना चाहिए जिससे हर ग्रादमी के सामने ग्राँख नीची हो। **ग्राँख नीली पीली करना**=बहुत क्रोध करना। तेवर बदलना। ग्राँख दिखलाना। **ग्राँख पटपटा जाना**=(१) ग्राँख फूट जाना (स्त्रियाँ गाली देने में ग्रधिक बोलती हैं)। (२) ग्रत्यधिक भूख या प्यास से व्याकुल होना। **ग्राँख पट्टम होना**=ग्राँख फूट जाना **ग्राँख पड़ना**=(१) दृष्टि पड़ना। नजर पड़ना; जैसे,–संयोग से हमारी ग्राँख उसपर पड़ गई नहीं तो वह बिल्कुल पास ग्रा जाता। (२) ध्यान जाना। कृपादृष्टि होना; जैसे,—गरीबों पर किसी की ग्राँख नहीं पड़ती। (३) चाह की दृष्टि होना। पाने की इच्छा होना; जैसे,–उसकी इस किताब पर बार बार ग्राँख पड़ रही है। (४) कुदृष्टि पड़ना। ध्यान जाना; जैसे,–जिस वस्तु पर तुम्हारी ग्राँख पड़े, भला वह रह जाय ? **ग्राँख पथराना**=पलक का नियमित गति से न गिरना ग्रौर पुतली की गति का मारा जाना। नेत्र स्तब्ध होना (यह मरने का पूर्वलक्षण है); जैसे,–(क) ग्रब उनकी ग्राँखे पथरा गई हैं, ग्रौर बोली भी बंद हो गई है।—(ख) तुम्हारी राह देखते देखते ग्राँखे पथरा गईं। **ग्राँखों पर ग्राइए या बैठिए**=ग्रादर के साथ ग्राइए। सादर पधारिए। (जब कोई बहुत प्यारा या बड़ा ग्राता है या ग्राने के लिये कहता है, तब लोग उसे ऐसा कहते हैं)। **ग्राँखों पर ठिकरी रख लेना**=(१) जान बूझकर ग्रनजान बनना। (२) रुखाई करना। बेमुरौवती करना। शील न करना। (३) गुण न मानना। उपकार न मानना। कृतघ्नता करना। (४) लज्जा खो देना। निर्लज्ज होना। बेहया होना। **ग्राँखों में पट्टी बाँधना**=(१) दोनों ग्राँखों के ऊपर कपड़ा ले जाकर सिर के पीछे बाँधना जिससे कुछ दिखाई न पड़े। ग्राँखों को ढकना। (२) ग्राँख बंद करना। ध्यान न देना; जैसे—तुमने खूब ग्राँखों पर पट्टी बाँध ली है कि ग्रपना भला बुरा नहीं सूझता। **ग्राँखों पर परदा पड़ना**=ग्रज्ञान का ग्रंधकार छाना। प्रमाद होना। भ्रम होना; जैसे,–तुम्हारी ग्राँखों पर परदा पड़ा है; सच्ची बात क्यों मन में धँसेगी। (२) विचार का जाता रहना। विवेक का दूर होना; जैसे,–क्रोध के समय मनुष्य की ग्राँखों पर परदा पड़ जाता है। (३) कमजोरी से ग्राँखों के सामने ग्रँधेरा छाना; जैसे—भूख प्यास के मारे हमारी ग्राँखों पर परदा पड़ गया है। **ग्राँखों पर पलकों का बोझ नहीं होता**=(१) ग्रपनी चीज का रखना भारी नहीं मालूम होता (२) ग्रपने कुटुंबियों को खिलाना पिलाना नहीं खलता। (३) काम की चीज महँगी नहीं मालूम होती। **ग्राँखों पर बिठाना**=बहुत ग्रादर सत्कार करना। ग्रावभगत। प्रीतिपूर्वक व्यवहार करना; जैसे—वह हमारे घर तो ग्रावें, हम उन्हें ग्राँखों पर बिठावेंगे। **ग्राँखों पर रखना**=बहुत प्रिय करके रखना। बहुत ग्राराम से रखना; जैसे,–ग्राप निश्चिंत रहिए; मैं उन्हें ग्रपनी ग्राँखों पर रखूँगा। **ग्राँख पसारना या फैलाना**=दूर तक दृष्टि बढ़ाकर देखना। नजर दौड़ाना। **ग्राँखें फटना**=चोट या पीड़ा से यह मालूम पड़ना कि ग्राँखे निकली पड़ती हैं; जैसे,–सिर के दर्द से ग्राँखे फटी पड़ती हैं। (२) ग्राँखें बढ़ना। ग्राँखों की फाँक का फैलना। उ०—दौरत थोरे ही में थकिए, थहरैं पग, ग्रावत जाँघ सटी सी। होत घरी घरी छीन खरी कटि, ग्रौर है पात सुबास ग्रटी सी। हे रघुनाथ ? बिलोकिबे को तुम्हें ग्राई न खेलन सोच पटी सी। मैं नहीं जानति हाल कहा यह काहे ते जाति है ग्राँखि फटी सी।—रघुनाथ(शब्द०)। **ग्राँख फड़कना**=ग्राँख की पलक का बार बार हिलना। वायु के संचार से ग्राँख की पलक का बार बार फड़फड़ाना। (दाहिनी या बाईं ग्राँख के फड़कने से लोग भावी शुभ ग्रशुभ का ग्रनुमान करते हैं)। उ० सुनु मंथरा बात फुर तोरी। दहिन ग्राँखि नित फरकइ मोरी।—मानस, २।२०। **ग्राँख फाड़ फाड़ कर देखना**=खूब ग्राँख खोलकर देखना। उत्सुकता से देखना। जैसे उधर क्या है जो ग्राँख फाड़फाड़कर देख रहे हो। **ग्राँखें फिर जाना**=(१) नजर बदल जाना। पहले की सी कृपा या स्नेह दृष्टि न रहना। बेमुरौवती ग्रा जाना; जैसे—जबसे वे हम लोगों के बीच से गए, तबसे तो उनकी ग्राँखें ही फिर गईं।—(२) चित्त में विरोध उत्पन्न हो जाना। मन में बुराई ग्राना। चित्त में प्रतिकूलता ग्राना; जैसे,–उसकी ग्राँखें फिर गई वह बुराई करने से नहीं चूकेगा। **ग्राँख फूटना**=(१) ग्राँख का जाता रहना। ग्राँख की ज्योति का नष्ट होना। (२) ग्राँख रहते कुछ दिखाई न पड़ना; जैसे—तुम्हारी क्या ग्राँखें फूटी हैं, जो सामने की वस्तु नहीं दिखाई देती। (ग्राँख एक बहुत प्यारी वस्तु है इसी से स्त्रियाँ प्रायः इस प्रकार की शपथ खाती हैं कि मेरी ग्राँखें फूट जायँ, यदि मैंने ऐसा कहा हो) (३) बुरा लगना। कुढ़न होना। उ०—(क) उसको देखने से हमारी ग्राँखे फूटती हैं। (ख) किसी को सुखी देखकर तुम्हारी ग्राँखें क्यों फूटती हैं। **ग्राँख फेरना**=(१) निगाह फेरना। नजर बदलना। पहले की सी कृपा या स्नेहदृष्टि न रखना। मित्रता तोड़ना। (२) विरुद्ध होना। प्रतिकूल होना। वाम होना। (३) ग्रनुकूल होना। कृपा करना। उ०— फेर दी ग्राँख जी ग्राया जैसे रसाल बौराया। —गीतगुंज, पृ० ४०। **ग्राँख फैलाना**=ग्राश्चर्य से स्तब्ध होना। ग्राश्चर्यचकित होना। **ग्राँख फैलाना**=दृष्टि फैलाना। दीठ पसारना। दूर तक देखना। नजर दौड़ाना। **ग्राँख फोड़ना**=(१) ग्राँखों को नष्ट करना। ग्राँखों की ज्योति का नाश करना। (२) कोई काम ऐसा करना जिसमें ग्राँखों पर जोर पड़े।

कोई ऐसा काम करना, जिसमें देर तक दृष्टि गड़ानी पड़े; जैसे लिखना पढ़ना, सीना, पिरोना; जैसे—(क) घंटों बैठकर आँखें फोड़ी हैं, तब इतना सीया गया है (ख) घंटों चूल्हे के आगे बैठकर आँखें फोड़ी हैं तब रसोई बनी है। **आँख फोरना** = दे० 'आँख फोड़ना'। उ०—सुरपति सुत जानै बल थोरा। राखा जियत आँखि गहि फोरा।—मानस, ३। ३५। **आँख बंद करके कोई काम करना, आँख मूँद कर कोई काम करना** = (१) बिना पूछे पाछे कोई काम करना। बिना जाँच पड़ताल किए कोई काम करना। बिना कुछ सोचे विचारे कोई काम करना। बिना आगा पीछा किए कोई काम करना; जैसे—(क) आँख मूँदकर दवा पी जाओ। (ख) जितना रुपया वे माँगते गए हम उनको आँख बंद करके देते गए। (२) दूसरी बातों की ओर ध्यान न देकर अपना काम करना। और बातों की परवाह न करके अपना नियत कर्तव्य करना। किसी के कुछ कहने-सुनने की परवाह न करके अपना काम करना; जैसे,—तुम आँख मूँदकर अपना काम किए चलो, लोगों को बकने दो। **आँख बंद होना** = (१) आँख झपकना। पलक गिरना; जैसे—कहो तो वह पाँच मिनट तक ताकता रह जाय, आँख बंद न करे। (२) मृत्यु होना। मरण होना; जैसे,—जिस दिन इसके बाप की आँखें बंद होंगी, यह अन्न को तरसेगा। **आँख बचाकर कोई काम करना** = इस रीति से कोई काम करना कि दूसरे न देख पाएँ। छिपाकर कोई काम करना; जैसे;—बुराई भी करते तो जरा आँख बचाकर। **आँख बचाना** = नजर बचाना। सामना न करना। कतराना; जैसे,—रुपया लेने को ले लिया, अब आँख बचाते फिरते हो। **आँख बचे का चाँटा** = लड़कों का एक खेल जिसमें यह बाजी लगती है कि जिसे असावधान देखें, उसे चाँटा लगावें। **आँख बदल जाना** = पहले की सी कृपादृष्टि या स्नेहदृष्टि न रह जाना। पहले का सा व्यवहार न रह जाना नजर बदल जाना। मिजाज बदल जाना। बर्ताव में रूखापन आ जाना; जैसे,—(क) अब उनकी आँखे बदल गई हैं, क्यों हम लोगों की कोई बात सुनेंगे।—(ख) गौं निकल गई, आँख बदल गई।—(शब्द०)। (२) आकृति पर क्रोध दिखाई देना। क्रोध की दृष्टि होना। रिस चढ़ना; जैसे,—थोड़े ही में उनकी आँखे बदल जाती हैं। **आँख बनवाना** = **आँख का जाला कटवाना** = आँख का माड़ा निकलवाना। आँख की चिकित्सा करना; जैसे,—जरा आँख बनवा आओ तो कपड़ा खरीदना। **आँख बराबर करना** = (१) आँख मिलाना। सामने ताकना; जैसे,—वह चोर लड़का अब मिलने पर आँख बराबर नहीं करता। (२) मुँह पर बातचीत करना। सामने डटकर बातचीत करना। ढिठाई करना; जैसे,—उसकी क्या हिम्मत है कि आँख बराबर कर सके। **आँखबराबर होना** = दृष्टि सामने होना। नजर से नजर मिलाना; जैसे,—जबसे उसने वह खोटा काम किया तबसे मिलने पर कभी उसकी आँख बराबर नहीं होती। **आँख बहना** = (१) आँसू बहाना। (२) आँख की बीनाई या रोशनी जाती रहना। **आँख बहाना** = आँसू बहाना। रोना। **आँख बिगड़ना** = (१) दृष्टि कम होना। नेत्र की ज्योति घटना। आँख में पानी उतरना या जाला इत्यादि पड़ना। (२) आँख उलटना। आँख पथराना; जैसे,—उनकी आँखों बिगड़ गई हैं और बोली भी बंद हो गई है। **आँखें बिछना** = भव्य स्वागत-सत्कार होना। **आँख बिछाना** = प्रेम से स्वागत करना; जैसे,—वे यदि मेरे घर पर उतरें, तो मैं अपनी आँखें बिछाऊँ। (२) प्रेमपूर्वक प्रतीक्षा करना। बाट जोहना। टकटकी बाँधकर राह देखना, जैसे,—हम तो कब से आँख बिछाए बैठे हैं, वे आवें तो। **आँख बैठना** = (१) आँख का भीतर की ओर धँस जाना। चोट या रोग से आँख का डेला गड़ जाना (२) आँख फूटना। **आँख भर आना** = आँख में आँसू आना। **आँख भर देखना** = खूब अच्छी तरह देखना। तृप्त होकर देखना। अघाकर देखना। इच्छा भर देखना। उ०—गाज परै यहि लाज पै री अँखियाँ भरि देखन हू नहिं पाई।—(शब्द०); जैसे,—तनिक वे यहाँ आ जाते, हम उन्हें आँख भर देख तो लेते। **आँख भर लाना** = आँसू भर लाना। आँख डबडबाना। रोवाँसा हो जाना। **आँख भौं टेढ़ी करना** = आँख दिखाना। क्रोध की दृष्टि से देखना। तेवर बदलना; जैसे,—हमपर क्या आँख भौं टेढ़ी करते हो, जिसने तुम्हारी चीज ली हो उसके पास जाओ। **आँख मचकाना** = (१) आँख खोलना और फिर बंद करना। पलकों को सिकोड़कर गिराना। (२) इशारा करना। सैन मारना, जैसे,—तुमने आँख मचका दी, इसी से वह भड़क गया। **आँख मलना** = सोकर उठने पर आँखों को जल्दी खुलने के लिये हाथ से धीरे धीरे रगड़ना, जैसे,—इतना दिन चढ़ गया, तुम अभी चारपाई पर बैठे आँख मलते हो। **आँख मारना** = (१) इशारा करना। सनकारना। पलक मारना। आँख मटकाना (२) आँख से निषेध करना। इशारे से मना करना, जैसे,—वह तो रुपये दे रहा था, पर उन्होंने आँख मार दी। **आँख मिलना** = साक्षात्कार होना। देखा देखी होना। नजर से नजर मिलना। **आँख मिलाना** = (१) आँख सामने करना। बराबर ताकना। नजर मिलाना। (२) सामने आना। संमुख होना। मुँह दिखाना, जैसे,—अब इतनी बेईमानी करके वह हमसे क्या आँख मिलावेगा। **आँख मुँदना** = आँख बंद होना। **आँख मूँदना** = (१) आँख बंद करना। पलक गिराना। (२) मरना, जैसे—सब कुछ उनके दम तक है, जिस दिन वे आँख मूँदेंगे, सब जहाँ का तहाँ हो जायगा। (३) ध्यान न देना, जैसे,—उन्हें जो जी में आवे करने दो, तुम आँख मूँद लो, उ०—मूँदे आँखि कतहूँ कोउ नाहीं।—मानस, १।२८०। **आँखों में** = दृष्टि में। नजर में। परख में। अनुमान में; जैसे,—(क) हमारी आखों में तो इसका दाम अधिक है। (ख) हमारी आँखों में यह जँच गई है। **आँख में आँख डालना** = (१) आँख से आँख मिलाना। बराबर ताकना। (२) ढिठाई से ताकना, जैसे,—ढीठ आँख में आँख डालता है, अपना काम नहीं देखता। **आँख में काजल घुलना** = काजल का आँख में खूब लगना। **आँखों में खटकना** = नजरों में बुरा लगना। अच्छा न लगना, जैसे—उनका रहना हमारी आँखों में खटक रहा। है। **आँखों में खून उतरना** = क्रोध से आँख लाल होना। रिस चढ़ना। **आँख में गड़ना** = (१) आँख में खटकना। बुरा लगना। (२) मन

में बसना। जँचना। पसंद आना। ध्यान पर चढ़ना; जैसे,—वह वस्तु तो तुम्हारी आँख में गड़ी हुई है। उ०—जाहु भले हौ, कान्ह, दान अँग अंग को माँगत। हमरो यौवन रूप आँख इनके गड़ि लागत।—सूर (शब्द०)। **किसी की आँखों में घर करना**=(१) आँख में बसना। हृदय में समाना। ध्यान पर चढ़ना। (२) किसी को मोहना या मोहित करना; जैसे,—पहली ही भेंट में उसने राजा की आँखों में घर कर लिया। **आँखों में चढ़ना**=नजर में जँचना। पसंद आना। **आँखों में चरबी छाना**=(१) घमंड, बेपरवाही या असावधानी से सामने की चीज न दिखाई देना। प्रमाद से किसी वस्तु की ओर ध्यान न जाना; जैसे,—देखते नहीं वह सामने किताब रखी है, आँखों में चरबी छाई है? (२) मदांध होना। गर्व से किसी की ओर ध्यान न देना। अभिमान में चूर होना; जैसे,—आजकल उनकी आँखों में चरबी छाई है; क्यों किसी को पहचानेंगे। **आँख में चुभना**=(१) आँख में धँसना। (२) आँख में खटकना। नजरों में बुरा लगना। (३) दृष्टि में जँचना। ध्यान पर चढ़ना। पसंद आना; जैसे,—तुम्हारी घड़ी हमारी आँखों में चुभी हुई है; हम उसे बिना लिए न छोड़ेंगे। **आँखों में चुभना**=(१) नजर में खटकना। बुरा लगना। (२) आँखों में जँचना। पसंद आना। (३) आँखों पर गहरा प्रभाव डालना; जैसे,—इसके दुपट्टे का रंग तो आँखों में चुभा जाता है। **आँख में चोप आना**=चोट आदि लगने से आँखों में ललाई आना। **आँखों में झाँई पड़ना**=आँखों का थक जाना। उ०—अँखड़ियाँ झाँई परीं, पंथ निहारि निहारि। जीभड़ियाँ छाला परयो, राम पुकारि पुकारि।—कबीर (शब्द०)। **आँखों में टेसू फूलना, आँखों में तीसी फूलना, आँखों में सरसों फूलना**=चारों ओर एक ही रंग दिखाई पड़ना। जो बात जी में समाई हुई है, उसी का चारों ओर दिखाई पड़ना। जो बात ध्यान में चढ़ी है, चारों ओर वही सूझना। (२) नशा होना। तरंग उठना; जैसे—भाँग पीते ही आँखों में सरसों फूलने लगी। (३) घमंड होना। गर्व से किसी को न देखना। **आँखों में तकला या टेकुआ चुभाना**=आँख फोड़ना। (स्त्रियाँ जब किसी पर उसकी दृष्टि की वजह से बहुत कुपित होती हैं, तब कहती हैं कि 'जी चाहता है कि इसकी आँखों में टेकुआ चुभा दूँ')। **आँखों में तरावट आना**=आँखों में ठंढक आना। तबीयत का ताजी होना। **आँखों में धूल देना, आँखों में धूल डालना**=सरासर धोखा देना। भ्रम में डालना, जैसे,—अभी तुम किताब ले गए हो, अब हमारी आँखों में धूल डालते हो। उ०—(क) हरि की माया कोउ न जानै आँखि धूरि सी दीन्हीं। लाल ढिगनि की सारी ताको पीत उढ़नियाँ कीनी।—सूर (शब्द०)। (ख) सोइ अब अमृत पिवति है मुरली, सबहिनि के सिर नाँखि। लियौ छँड़ाइ सकल सुनि सूरज बैनु धूरि दै आँखि।—सूर (शब्द०)। **आँखों में नाचना**=दे० 'आँखों में फिरना'। **आँखों में नून देना**=आँख फोड़ना। **आँखों में नून राई**=आँखें फूटें। (स्त्रियाँ उन लोगों के लिये कहती हैं जो उनके बच्चों को नजर लगाते हैं। किसी बच्चे को नजर लगने का संदेह होने पर वे उसका नाम लेकर और बच्चे के चारों ओर राई नमक घुमाकर आग में छोड़ती हैं)। **आँखों में पालना**=बड़े सुख चैन से पालना। बड़े लाड़ प्यार से पालन पोषण करना, जैसे,—जो लड़के आँखों में पाले गए, उनकी यह दशा हो रही है। **आँखों में फिरना**=ध्यान पर चढ़ना। स्मृति में बना रहना, जैसे,—उसकी सूरत मेरी आँखों के सामने फिर रही है। **आँखों में बसना**=ध्यान पर चढ़ना। हृदय में समाना। किसी वस्तु का इतना प्रिय लगना कि उसका ध्यान हर समय चित्त में बना रहे, जैसे,—उसकी मूर्ति तुम्हारी आँखों में बस गई है। **आँखों में बैठना**=(१) नजर में गड़ना। पसंद आना। (२) आँखों पर गहरा प्रभाव डालना। आँखों में धँसना (चटकीले रंग के विषय में प्रायः कहते हैं कि 'इस कपड़े का रंग तो आँखों में बैठा जाता है।')। **आँखों में भंग घुटना**=आँखों पर भाँग का खूब नशा छाना। गहागड्ड नशा होना। **आँखों में रखना**=(१) लाड़ प्यार से रखना। प्रेम से रखना। सुख से रखना; जैसे,—आप निश्चिंत रहिए मैं इस लड़के को आँखों में रखूँगा। उ०—आँखिन में सखि राखिबे जोग इन्हैं किमि कै बनवास दियो है।—तुलसी ग्रं०, पृ० १६६। (२) सावधानी से रखना। यत्न और रक्षापूर्वक रखना। हिफाजत से रखना। जैसे,—मैं इस चीज को अपनी आँखों में रखूँगा, कहीं इधर उधर न होने पाएगी। **आँखों में रात कटना**=किसी कष्ट, चिंता या व्यग्रता से सारी रात जागते बीतना। सारी रात नींद न पड़ना। वियोग में तड़पना। **आँखों में रात काटना**=किसी कष्ट, चिंता या व्यग्रता के कारण जागकर रात बिताना। किसी कष्ट, चिंता या व्यग्रता के कारण रात भर जागना; जैसे,—बच्चे की बीमारी से कल आँखों में रात काटी। **आँखों में शील होना**=चित्त में कोमलता होना। दिल में मुरौवत होना; जैसे,—उनकी आँखों में शील नहीं है, जैसे होगा, वैसे अपना रुपया लेगा। **आँखों में समाना**=हृदय में बसना। ध्यान पर चढ़ना। चित्त में स्मरण बना रहना; जैसे,—दमयंती की आँखों में तो नल समाए थे; उसने सभा में और किसी राजा की ओर देखा तक नहीं। **आँख मोड़ना**=दे० 'आँख फेरना'। **आँख रखना**=(१) नजर रखना। चौकसी करना; जैसे,—देखना, इस लड़के पर भी आँख रखना कहीं भागने न पावे।—(२) चाह रखना। इच्छा रखना; जैसे,—हम भी उस वस्तु पर आँख रखते हैं। (३) आसरा रखना। भलाई की आशा रखना; जैसे,—उस कठोरहृदय से कोई क्या आँख रखे। **आँख लगना**=नींद लगना। झपकी आना। सोना। उ०—जब जब वै सुधि कीजियै, तब तब सब सुधि जाँहि। आँखनु आँखि लगी रहे, आँखैं लागति नाँहि।—बिहारी र०, दो० ६२; जैसे,—आँख लगती ही थी कि तुमने जगा दिया। (२) प्रीति होना। दिल लगना। उ०—(क) धार लगै तरवार लगै पर काहू से काहू की आँख लगै ना।—(शब्द०)। (ख) ना छिन टरत टारे, आँखि न लगत पल, आँखिन लगैरी श्यामसुंदर सलोने से।—देव (शब्द०)। (३) टकटकी लगना। दृष्टि जमना; जैसे,—तुम्हारी

आँखें उसी ओर तो लगी हैं; पर वे कहीं आते दिखाई नहीं देते। उ०—पलक आँख तेहि मारग, लागी दुनहु रहाहिं। कोउ न संदेशी आवही, तेहिक सँदेस कहाहिं।—जायसी (शब्द०)। **आँखों लगना**=आँखों में लगना। ऊपर पड़ना। ऊपर आना। शरीर पर बीतना। उ०—झारज रज लागे मोरी अँखियनि रोग दोष जंजाल।—सूर०, १०।१३८। **आँख लगाना**=(१) टकटकी बाँधकर देखना। प्रीति लगाना। नेह जोड़ना। **आँख लगी**=(१) जिससे आँख लगी हो। प्रेमिका। (२) सुरैतिन। उढरी। **आँख लड़ना**=(१)देखा देखी होना। आँखा मिलना। घूराघूरी होना। नजरबाजी होना। (२) प्रेम होना। प्रीति होना; जैसे,-अब तो आँखें लड़ गई हैं; जो होना होगा सो होगा। **आँख लड़ाना**=आँख मिलाना। घूरना। नजरबाजी करना। (लड़कों का यह एक खेल भी है जिसमें वे एक दूसरे को टकटकी बाँधकर ताकते हैं। जिसकी पलक गिर जाती है, उसकी हार मानी जाती है)। **आँख ललचाना**=देखने की प्रबल इच्छा होना। **आँख लाल करना**=आँख दिखाना। क्रोध की दृष्टि से देखना। क्रोध करना। **आँख वाला**=(१) जिसे आँख हो। जो देख सकता हो; जैसे,-भाई, हम अंधे सही; तुम तो आँखवाले हो देखकर चलो। (२) परखवाला। पहचाननेवाला। जानकार। चतुर; जैसे,-तुम तो आँखवाले हो तुम्हे कोई क्या ठगेगा। **आँख सामने न करना**=सामने न ताकना। नजर न मिलाना। दृष्टि बराबर न करना (लज्जा और भय से प्रायः ऐसा होता है।); जैसे—जब से उसने मेरी पुस्तक चुराई कभी आँख सामने न की। (२) सामने ताकने या वाद प्रतिवाद करने का साहस न करना। मुँह पर बातचीत करने की हिम्मत न करना; जैसे,—भला उसकी मजाल है कि आँख सामने कर सके। **आँख सामने न होना**=लज्जा से दृष्टि बराबर न होना। शर्म से नजर न मिलना; जैसे,-उस दिन से फिर उसकी आँख सामने न हुई। **आँखों सुख कलेजे ठंढक**=पूरी प्रसन्नता। ऐन खुशी। (जब किसी बात को लोग प्रसन्नतापूर्वक स्वीकृत करते हैं तब यह वाक्य बोलते हैं)। **आँख सेंकना**=(१) दर्शन का सुख उठाना। नेत्रानंद लेना। (२) सुंदर रूप देखना। नज्जारा करना। उ०-जरा आँखें सेक आइए, भैरवी उड़ रही होगी—रसीली नयनोंवालियों ने फंदा मारा।—फिसाना०, भा०, १, पृ० ३। **आँख से आँख मिलाना**=(१) सामने ताकना। दृष्टि बराबर करना। (२) नजर लड़ाना। **आँखों से उतरना**=नजरों से गिरना। दृष्टि में नीचा ठहरना; जैसे—वह अपनी इन्हीं चालों से सबकी आँखों से उतर गया। **आँखों से उतारना या उतार देना**=(१) किसी वस्तु या व्यक्ति को जान बूझकर भुला देना। (२) किसी वस्तु या व्यक्ति का मूल्य कम कर देना। **आँखों से ओझल होना**=नजर से गायब होना। सामने से दूर होना। **आँखों से काम करना**=इशारों से काम निकालना। **आँखों से कोई काम करना**=बहुत प्रेम और भक्ति से कोई काम करना; जैसे,—तुम मुझे कोई काम बतलाओ तो, मैं आँखों से करने के लिये तैयार हूँ। **आँखों से गिरना**=नजरों से गिरना। दृष्टि में तुच्छ ठहरना, जैसे,—अपनी इसी चाल से तुम सबकी आँखों से गिर गए। **आँख से भी न देखना**=ध्यान भी न देना। तुच्छ समझना; जैसे,—उससे बातचीत करने की कौन कहे मैं तो उसे आँखों से भी न देखूँ। **आँखों से लगाकर रखना**=बहुत प्रिय करके रखना। बहुत आदर-सत्कार से रखना। **आँखों से लगाना**=प्यार करना। प्रेम से लेना; जैसे,—उसने अपनी प्रिया के पत्र को आँखों से लगा लिया। **आँख होना**=परख होना। पहचान होना। शिनाख्त होना। जैसे,—तुम्हे कुछ आँख भी है कि चीजों के दाम ही लगाना जानते हो। (२) नजर गड़ाना। इच्छा होना। चाह होना, जैसे,—उस तसवीर पर हमारी बहुत दिनों से आँख है। (३) ज्ञान होना। विवेक होना। उ०—देखों राम कैसो कहि कैद किए. किए हिये, हूजिये कृपाल हनुमान जू दयाल हौ। ताही समै फैलि गए कोटि कोटि कपि नए लौचैं तनु खैंचैं चीर भयो यों बिहाल हौं। भई तब आँखों दुख सागर को चाखौं, अब वही हमैं राखौं भाखौं वारों धन माल हो।—प्रिया० (शब्द०)।

आँख२—संज्ञा पुं० [सं० अक्षि, प्रा० अक्खि पं० अक्ख] आँख के आकार का छेद या चिह्न, जैसे,—(१)आलू के ऊपर के नखक्षत के समान दाग। (२)ईख की गाँठ पर की ठोंठी जिसमें से पत्तियाँ निकलती हैं। (३) अनन्नास के ऊपर के चिह्न या दाग। (४) सूई का छेद।

आँखड़ी†—संज्ञा पुं० [हिं० आँख+ड़ी (प्रत्य०)] आँख। उ०—(क) आँखड़ियाँ झाँई परी पंथ निहारि निहारि, जीभड़ियाँ छाला परचो, राम पुकारि पुकारि।—कबीर (शब्द०)। (ख) मुझे पुकारे ताना मारे, भर आएँ आँखड़ियाँ।—ठंडा०, पृ० ८०।

आँखफोड़टिड्डा१—संज्ञा पुं० [सं० आक=मदार+हिं० फोड़ना] हरे रंग का एक कीड़ा या फतिंगा जो प्रायः मदार के पेड़ पर रहता और उसकी पत्तियाँ खाता है। होता तो है यह उँगली के ही बराबर, पर इसकी मूँछे बड़ी लंबी होती हैं।

आँखफोड़टिड्डा२—वि० [हिं० आँख+फोड़+टिड्डा] कृतघ्न। बेमुरौवत। ईर्ष्यालु।

आँखफोड़तोता—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आँखफोड़ टिड्डा'। उ०—किसलिये आँख यों बचाते हो, मैं नहीं आँखफोड़ तोता हूँ।—चोखे०, पृ० ५०।

आँखफोरवा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आँखफोड़ टिड्डा'। उ०-कठफोरवा आँखफोरवा को आँख मूँद निगल जाता है।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २१।

आँखमिचौनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० आँख+√मीच+औनी(प्रत्य०)] दे० 'आँखमिचौली'। उ०—छाया की आँखमिचौनी मेघों का मतवालापन।—यामा, पृ० १६।

आँखमिचौली—संज्ञा स्त्री० [हिं० आँख+√मीच+औली प्रत्य०] लड़कों का एक खेल। लड़कों द्वारा आँख मूँदकर छिपने और खोजने का एक खेल।

विशेष—इस खेल में एक लड़का किसी दूसरे लड़के की आँख मूँदकर बैठता है। इस बीच और लड़के छिप जाते हैं। तब उस लड़के की आँखें खोल दी जाती हैं और वह लड़कों को छूने के लिये ढूँढ़ता फिरता है। जिस लड़के को वह छू पाता है, वह चोर हो जाता है। यदि वह किसी लड़के को नहीं छू

पाता और सब लड़के एक नियत स्थान को चूम लेते हैं, तो फिर वही लड़का चोर बनाया जाता है। यदि सात बार वही लड़का चोर हुआ तो फिर उसकी टाँगे बाँधी जाती हैं और उसके चारों ओर एक कुंडल या गोंड़ले खींच दिया जाता है। लड़के बारी बारी से उस गोड़ले के भीतर पैर रखते हैं और उस लड़के को 'बुढ़िया' 'बुढ़िया' कहकर चिढ़ाकर भागते हैं। यह चोर या बुढ़िया बना हुआ लड़का मंडल के भीतर जिसको छू पाता है, वह चोर हो जाता है।

आँखमिहीचनी(पु)†—संज्ञा स्त्री० [**हिं० आँख + मिहीचनी = मीचना**] दे० 'आँखमिचौली'। उ०—आँखमिहीचनी खेलत मोंहि दुहू बिधि सोध कहूँ नटि जाइ न।—देव ग्रं०, पृ० ११।

आँखमीचली(पु)†—**संज्ञा स्त्री० [हिं० आँख + √मीच + ली** (प्रत्य०)] दे० 'आँखमिचौली'। उ०—कहुँ खेलत मिलि ग्वाल मंडली आँखमीचली खेल। चढ़ीचढ़ा को खेल सखन में खेलत हैं रस रेल।—सूर (शब्द०)।

आँखमुचाई, आँखमुँदाई—**संज्ञा स्त्री० [हिं० आँख + √मीच + आई** (प्रत्य०) तथा **आँख + √मूद + आई** प्रत्य०] दे० 'आँखमिचौली'।

आँखा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आखा'।

आँखि(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] **दे०** 'आँख'। उ०—सो वह आँखि मींड़ि मीड़ि कै फिर फिरि कै देखन लाग्यो।—दो सौ बावन, भा० २, पृ० ६।

आँखी(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'आँख'। उ०—आँखी मद्धे पाखी चमकै पाँखो मद्धे द्वार।—कबीर श०, भा०, १, पृ० ५५।

आँग(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० **अङ्ग**] १. अंग। उ०-(क) बानिनि चली सेंदुर दिये माँगा। कयथिनि चली समाइ न आँगा।—जायसी ग्रं०, पृ० ८१। (ख) कहि पठई जियभावती, पिय आवन की बात। फूली आँगन मैं फिरै, आँग न आँग समात।—बिहारी र०, दो० २५४। २. कुच। स्तन। उ०—कहै पद्माकर क्यों आँग न समात आँगी लागी काह तोहि जागी उर में उचाई है।—पद्माकर ग्रं०, पृ० ८४। ३. चराई जो प्रति चौपाये पर ली जाती है।

आँगन—संज्ञा पुं० [सं० **अङ्गण**] घर के भीतर का सहन। घर के भीतर का वह चौखूटा स्थान जिसके चारों ओर कोठरियाँ और बरामदे हों। चौक। अजिर। उ०—आँगन खेलैं नंद के नंदा।—सूर०, १०। ११७।

आँगल†—संज्ञा **स्त्री०** [सं० **अर्गल**] अगरी। अर्गला। उ०—तब वा बाई ने किवाड़ दै कै आँगल मारि दई।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० ३४१।

आँगी¹(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० **अङ्गिका, प्रा० अंगिआ**] अँगिया। उ०—उठि आपुही आसन दै रसख्याल सों लाल सो आँगी कढ़ावति है।—भिखारी ग्रं०, भा० २, पृ० १७४।

आँगी²—संज्ञा **स्त्री०** [**हिं०**] दे० 'आँघी'।

आँगुर(पु)-संज्ञा पुं० [हिं०] पुं० 'अंगुल'। उ०—द्वादस आँगुर पवन चलतु है नाहिं सिमटि घर औना।—जग० बानी, भा० २, पृ० ६५।

आँगुरी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० **अङ्गुली**] उँगली। उ०—गयी अचानक **अगुरी छाती छैलु छुवाइ।—बिहारी र०,** दो० ३८६।

मुहा०—**आंगुरी फोरना** = उँगलियाँ चटकाना। उ०—**बिमल** अँगोछी पोंछि भूषन सुधारि सिर आँगुरिन फोरि त्रिन **तोरि** तोरि डारती।—भिखारी० ग्रं०, भा० २ पृ० १५७।

आँच—संज्ञा स्त्री० [सं० **अर्चि** = आग की लपट, पा० **अच्चि**] **१.** गरमी। ताप; जैसे,—(क) आग और दूर हटा दो, **आँच** लगती है। (ख) कोयले की आँच पर भोजन अच्छा पकता है। उ०—धौरी धेनु दुहाइ छानि पय मधुर आँचि में **औटि** सिरायौ।—सूर०, १०। १६००।

क्रि० प्र०—आना।—पहुँचना।—लगना।

२. आग की लपट। लौ; जैसे,—चूल्हे में और आँच कर दो, तवे तक तो आँच पहुँचती ही नहीं।

क्रि० प्र०—करना।—फैलना।—लगना।

३. आग। अग्नि; जैसे—(क) आँच जला दो। (ख) **जाओ** थोड़ी सी आँच लाओ।

मुहा०—**आँच खाना। गरमी पाना। आग पर चढ़ना।** जैसे,—यह बरतन आँच खाते ही फूट जायगा। **आँच दिखाना** = आग के सामने रखकर गरम करना; जैसे,—जरा आँच दिखा दो तो बरतन का सब घी निकल आवे।

४. ताव। जैसे,—अभी इस रस में एक आँच की कसर है। (ख) उसके पास सौ आँच का अभ्रक है।

मुहा०—**आँच खाना** = ताव खाना। आवश्यकता से अधिक पकना। जैसे,—दूध आँच खा गया है, इससे कुछ कड़ुआ मालूम पड़ता है।

५. तेज। प्रताप। जैसे,—तलवार की आँच। ६. आघात। चोट। ७. हानि। अहित। अनिष्ट। जैसे,—(क) तुम निश्चित रहो, तुमपर किसी प्रकार की आँच न आवेगी।—(ख) साँच को आँच क्या। उ०—निहचिंत होइ के हरि भजै मन में राखै साँच। इन पाँचन को बस करै, ताहि न आवै आँच।—कबीर (शब्द०)

क्रि० प्र०—आना।—पहुँचना।

८. विपत्ति। संकट। आफत। संताप। जैसे,—इस आँच से निकल आवें तो कहें। उ०—आए नर चारि पाँव, जानी प्रभु आँच, गड़ि लियो सो दिखायो आँच, चलै भक्त भाइ कै।—प्रिया० (शब्द०)। ९. प्रेम। मुहब्बत। जैसे,—माता की आँच बड़ी होती है। १०. काम। ताप।

आँचका—संज्ञा पुं० [देश०] वह लटकता हुआ रस्सा जिसके छोर पर के छल्ले में से होकर वह रस्सा जाता है जिसपर खड़े होकर खलासी जहाज का पाल खोलते और लपेटते हैं।

आँचना¹(पु)—क्रि० स० [**हिं० आँच**] जलाना। तापना। उ०—कोप कृसानु गुमान अवाँ घट जो जिनके मन आँच न आँचै। तुलसी ग्रं०, पृ० २२६।

आँचना²(पु)—क्रि० स० [सं० **अञ्चन**] प्रवृत्त होना। गतिशील होना। उ०—मुद्रा खोलि गोबिंद चंद जब बाचन आँचे। परम प्रेम रस साँचे अच्छर न परत बाँचे।—नंद० ग्रं०, पृ० २०४।

आँचना³†—क्रि० स० [हिं०] दे० 'अँचवना'। उ०—नाचो हे रुद्रताल, आँचो जग ऋजु अराल।—आराधना, पृ० ५५।

आँचर(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आँचल'। उ०—भौंह ऊँचै, आँचर उलटि, मोरि, मुँह मोरि मोरि, नीठि नीठि भीतर गई, दीठि दीठि सौं जोरि।—बिहारी र०, दो० २४२।

आँचल—संज्ञा पुं० [सं० **अञ्चल**] १. धोती, दुपट्टा आदि बिना सिले हुए वस्त्रों के दोनों छोरों पर का भाग। पल्ला। छोर। उ०—पिअर उपरना काखा सोती। दुहुँ आँचरन्हि लगे मनि मोति।—मानस, १।३२६। २. साधुओं का अँचला। ३. स्त्रियों की साड़ी या ओढ़नी का वह छोर या भाग जो सामने छाती पर रहता है। उ०—वह मग में रुक, मानो कुछ झुक आँचल सँभारती फेर नयन।—ग्राम्या, पृ० १७।

मुहा०—**आँचल डालना**=मुसलमान लोगों में विवाह की एक रीति। (जब दूल्हा दुलहिन के घर जाने लगता है, तब उसकी बहन दरवाजे से उसके सिर पर आँचल डालकर उसे घर में ले जाती है। इसका नेग बहन को मिलता है)। **आँचल दबाना**=दूध पीना। स्तन मुँह में डालना। जैसे,—बच्चे ने आज दिन भर से आँचल मुँह में नहीं दबाया। **आँचल देना**=(१) बच्चे को दूध पिलाना (स्त्रि०)। जैसे, बच्चे को किसी के सामने आँचल मत दिया करो।—(२) विवाह की एक रीति। (जब बारात वर के यहाँ से चलने लगती है, तब दूल्हे की माँ उसके ऊपर आँचल डालती है और उसे काजल लगाती है। इस रीति को आँचल देना कहते हैं।) ३. आँचल से हवा करना (स्त्रि०)। जैसे—(क) दीए को आँचल दे दो; व्यर्थ जल रहा है। (ख) थोड़ा आँचल दे दो तो आग सुलग जाय। **आँचल पड़ना**=आँचल छू जाना। जैसे,—देखो, बच्चे पर आँचल न पड़ जाय। (स्त्रियाँ बच्चे पर आँचल पड़ना बुरा समझती हैं और कहती हैं कि इससे बच्चों की देह फूल जाती है)। **आँचल फाड़ना**=बच्चे के जीने के लिये टोटका करना। (जिस स्त्री के बच्चे नहीं या बाँझ होती है, वह किसी बच्चेवाली स्त्री का आँचल घात पाकर कतर लेती है और उसे जलाकर खा जाती है। स्त्रियों का विश्वास है कि ऐसा करने से जिसका आँचल कतरा जाता है, उसके बच्चे तो मर जाते हैं और जो आँचल कतरती हैं, उसके बच्चे जीने लगते हैं)। **आँचल में बाँधना**=(१) हर समय साथ रखना। प्रतिक्षण पास रखना। जैसे,—वह किताब क्या हम आँचल में बाँधे फिरते हैं; जो इस वक्त माँग रहे हो। (२) कपड़े के छोर में इस अभिप्राय से गाँठ देना कि उसे देखने से वक्त पर कोई बात याद आ जाय। जैसे,—तुम बहुत भूलते हो, आँचल में बाँध रखो। **आँचल में बात बाँधना**=(१) किसी कही हुई बात को अच्छी तरह स्मरण रखना। कभी न भूलना। जैसे,—किसी के झगड़े में पड़ना बुरा है यह बात आँचल में बाँध रखो। (२) दृढ़ निश्चय करना। पूरा विश्वास रखना। जैसे,—इस बात को आँचल में बाँध रखो कि उन लोगों में अवश्य खटपट होगी। **आँचल में सात बातें बाँधना**=टोटका करना। जादू करना। **आँचल लेना**=(१) किसी स्त्री का अपने यहाँ आई हुई दूसरी स्त्री का आँचल छूकर सत्कार या अभिवादन करना। (२) किसी स्त्री का अपने से बड़ी स्त्री का आँचल से पैर छूना। पाँव छूना। पाँव पड़ना। जैसे—जीजी, बूआ आई हैं; उठकर आँचल ले। **आँचल सँभालना**=आँचल ठीक करना। शरीर को अच्छी तरह ढकना। उ०—फुलवा बिनत डार डार गोपिन के संग कुमार चंद्रबदन चमकत वृषभानु की लली। हे हे चंचल कुमारि अपनो आँचल सँभार आवत बृजराज आज बिनन को कली।—(शब्द०)।

आँचलपल्लू—संज्ञा पुं० [हिं० **आँचल+पल्ला**] कपड़े के एक छोर पर टँका हुआ चौड़ा ठप्पेदार पट्टा।

आँचू—संज्ञा पुं० [देश०] एक कँटीली झाड़ी जिसमें शरीफे के आकार के छोटे छोटे फल लगते हैं। इन फलों में मीठे रस से भरे दाने रहते हैं।

आँजन—संज्ञा पुं० [सं० **अञ्जन**] दे० 'अंजन'।

आँजना—क्रि० स० [सं० **अञ्जन**] अंजन लगाना। उ०—(क) ललना गन जब जेहि धरहि धाइ। लोचन आँजहि फगुआ मनाइ।—तुलसी (शब्द०)। (ख) रूप ही अनूप ही जु आँजे माँजे न्हाए झाएँ, भूषन बनाए बीर बीरा खाए जानिबी।—गंग ग्र०, पृ० ३३। २. बिलंब करना। जैसे, आँजो मत, काम चटपट कर डालो।

आँट—संज्ञा पुं० [हिं० **अँटी**] १. हथेली में तर्जनी और अँगूठे के बीच का स्थान।

विशेष—इसमें कभी कभी जुआरी लोग कौड़ी छिपा लेते हैं।

२. दाँव। वश। उ०—न ए बिससियहि लखि नए दुरजन दुसह-सुभाइ। आँटैं परि प्राननु हरत काँटैं लौं लगि पाइ।—बिहारी र०, दो० ३११।

मुहा०—**आँट पर चढ़ना**=दाँव पर चढ़ना। उ०—जहाँ तक हो आँट पर न चढ़ो।—चोटी०, पृ० १४४।

३. बैर। लागडाँट। ४. गिरह। गाँठ। जैसे—धोती की आँट में रुपया रख लो। ५. पूला। गट्ठा। पेंच।

यौ०—**आँट साँट**।

आँटना(पु)—क्रि० अ० [हिं० **अटना**] १. समाना। अँटना। अमाना। २. पूरा पड़ना। काफी होना। उ०—अगलहि कह पानी गहि बाँटा। पिछलहि कहँ नहिं काँदू आँटा।—जायसी (शब्द०)। ३. आना। मिलना। उ०—(कोइ) फूल पाव, कोई पाती, जेहि के हाथ जो आँट।—जायसी ग्रं०, पृ० ८२। ४. पहुँचना। उ०—मच्छ छुवहिं आवहिं गड़ि काँटी। जहाँ कमल तहँ हाथ न आँटी।—जायसी (शब्द०)।

आँटी—संज्ञा स्त्री० [सं० **अण्ड**] १. लंबे तृणों का छोटा गट्ठा। पूला। २. लड़कों के खेलने की गुल्ली। उ०—दियो जनाय बात सो हरी स्वरूप बालके। गोविंद स्वामी संग आँटि दंड खेल हालके।—रघुराज० (शब्द०)। ३. कुश्ती का एक पेंच जिसमें विपक्षी की टाँग में टाँग अड़ाते हैं और उसे कमर पर लादकर गिराते और चित करते हैं।

क्रि० प्र०—**मारना**।

४. सूत का लच्छा। ५. धोती की गिरह। टेंट। मुर्री। उ०—आपकी आँटी निकसी नाहीं तो करज बहुत सिर लीन्हा।—कबीर ग्रं०, पृ० १०।

क्रि० प्र०—**देना**। **लगाना**।

मुहा०—आँटी काटना = गिरह काटना। जेब काटना।

आँटसाँट—संज्ञा स्त्री० [हिं० आँट+सटना] १. गुप्त अभिसंधि। साजिश। २. मेलजोल।

आँठी—संज्ञा स्त्री० [सं० अष्टि, प्रा अट्ठि] १. दही, मलाई आदि वस्तुओं का लच्छा। थक्का। जैसे–उनके मुँह से कफ की सूखी आँठी गिरती है। २. गिरह। गाँठ। ३. गुठली। बीज। ४. नवोढ़ा के उठते हुए स्तन।

आँड़—संज्ञा पुं० [सं० अण्ड] अंडकोश।

आँड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० अण्ड] १. अंटी। गाँठ। कंद। उ०—सेंधा लोन परा सब हाँड़ी। काटी कंद मूर कै आँड़ी।—जायसी ग्रं०, पृ० २४५। २. कोल्हू की जाट का गोला, सिरा वा मूँड। ३. बैलगाड़ी के पहिए के छेद के चारों ओर जड़ी हुई लोहे की सामी। बंद।

आँड़ू—वि० [सं० अण्ड = अण्डकोश] जिस (चौपाए) के अंडकोश न कूचे गए हों। अंडकोशयुक्त।

विशेष—यह शब्द विशेष कर बैल के लिये ही प्रयुक्त होता है।

आँड़ेबाँड़े खाना—क्रि० अ० [हिं० अंडबंड अथवा डाँड = मेंड़+बाँध] इधर उधर फिरना। इधर उधर हवा खाना। चक्कर खाना।

विशेष—फूल बुझौअल के खेल में जब लड़कों के दल बँध जाते हैं और दोनों दलों के महंतों को आपस में किसी फूल को निश्चित करना होता है, तब वे अपने अपने दल के लड़कों को यह कहकर इधर उधर हटा देते हैं कि 'आँड़ेबाँड़े खाओ'। लड़के 'आँड़े बाँड़े' कहते हुए इधर उधर चले जाते हैं और फिर फूल बूझने के लिये आते हैं।

आँत—संज्ञा स्त्री० [सं० अन्त्र] प्राणियों के पेट के भीतर वह लंबी नली जो गुदा मार्ग तक रहती है।

विशेष—खाया हुआ पदार्थ पेट में कुछ पचकर फिर इस नली में जाता है जहाँ से रस तो अंग प्रत्यंग में पहुँचाया जाता है और मल या रद्दी पदार्थ बाहर निकाला जाता है। मनुष्य की आँत उसके डील से पाँच या छः गुनी लंबी होती है। मांसभक्षी जीवों की आँत शाकाहारियों से छोटी होती है। इसका कारण शायद यह है कि माँस जल्दी पचता है।

मुहा०—आँत उतरना—एक रोग जिसमें आँत ढीला होकर नाभि के नीचे उतर आती है और अंडकोश में पीड़ा उत्पन्न होती है। आँत का बल खुलना—पेट भरना। भोजन से तृप्त होना। बहुत देर तक भूखे रहने के उपरांत भोजन मिलना। जैसे,—आज कई दिनों के पीछे आतों का बल खुला है। आँतों का बल खुलवाना—पेट भर खिलाना। आँतें अकुलाना, कुलकुलाना, कुलबुलाना—भूख के मारे बुरी दशा होना। आँतें गले में आना—नाकों दम होना। जंजाल में फँसना। तंग होना। जैसे,—इस काम को अपने ऊपर लेते तो हो, पर आँते गले में आवेंगी। आँते मुँह में आना—दे० 'आँते गले में आना'। आँतों में बल पड़ना—पेट में बल पड़ना। पेट ऐंठना। जैसे,—हँसते हँसते आतों में बल पड़ने लगा। आँतें समेटना—भूख सहना। जैसे,—रात भर आँतें समेटे बैठे रहे। आँतें सूखना = भूख के मारे बुरी दशा होना। जैसे,—कल से कुछ खाया पीया नहीं है; आँतें सूख रही हैं।

आँतकट्टू—संज्ञा पुं० [हिं० आँत+कटना] चौपायों का एक रोग जिसमें उन्हें दस्त होता है।

आँतर¹—संज्ञा पुं० [सं० अन्तर = भीतर] खेत का उतना भाग जितना एक बार जोतने के लिये घेर लिया जाता है।

आँतर²—संज्ञा पुं० [सं० अन्तर = दो वस्तुओं के बीच का स्थान] १. पान के भीटे के भीतर की क्यारियों के बीच का स्थान जो आने जाने के लिये रहता है। पासा। २. ताने में दोनों सिरों की खूँटियों के बीच की दो लकड़ियाँ जो थोड़ी थोड़ी दूर पर साँथी अलग करने के लिये गाड़ी जाती हैं (जुलाहे)। ३. भिन्नता। अंतर। उ०—जीव ब्रह्म आँतर नहिं कोय। एकै रूप सर्वघट होय।—दरिया० बानी, पृ० १६। ४. दूरी। फासला। उ०—आँतर जनु हो तोहार। तेंदुर का उर हार।—विद्यापति, पृ० ३३०।

आँतरा(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० आँतर] दे० 'अंतर'। उ०—साध स्वाँग में आँतरा जैसा दिवस और रात।—दरिया० बानी, पृ० ३५।

आँदू—संज्ञा पुं० [सं० अन्दू = बेड़ी] १. लोहे का कड़ा। बेड़ी। उ०—हूलै इतै पर मैन महावत लाज के आँदू परे जऊ पाइन। त्यों पदमाकर कौन कहाँ गति माते मतंगनि की दुखदाइन।—पद्माकर ग्रं०, पृ० १३०। २. बाँधने का सीकड़। उ०—अँजन आँदू सौं भरे जद्यपि तुव गज नैन। तदपि चलावत रहत हैं झुकि झुकि चोटैं सैन।—स० सप्तक, पृ० १९३।

आँध¹—संज्ञा स्त्री० [सं० अन्ध] १. अँधेरा। धुंध। २. रतौंधी। ३. आफत। कष्ट। जैसे,—तुम्हें वहाँ जाते क्यों आँध आती है।

क्रि० प्र०—आना।

आँध²(पु)¹—वि० १. अंधा। नेत्रहीन। २. कामांध। मोहित। उ०—संकर को मन हरचौ कामिनी, सेज छाड़ि भू सोयौ। चारु मोहिनी आइ आँध कियौ, तब नख तें रोयौ।—सूर०, १।४३।

आँधना(पु)—क्रि० अ० [हिं० आँधी] वेग से धावा करना। टूटना। उ०—भुसुंडिय और फुरंडिय साधि। परे दुहुँ ओरन ते भट आँधि।—(शब्द)।

आँधर—वि० [सं० अन्ध, प्रा० अंधल] [स्त्री० आँधरी] अंधा। उ०—सूर कूर, आँधरौ, मैं द्वार परचौ गाऊँ। सूर०, १।१६६।

यौ०—आँधर अँधुआ = अंधा। उ०—माया के बँधुआ आँधर अँधुआ साधु जाने एह जाने एह बातें।—सं० दरिया, पृ० १४१।

आँधरा(पु)¹—वि० [सं० अन्ध, प्रा० अंधरअ] [स्त्री० आँधरी] अंधा।

आँधारंभ(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० आँधर = अंधा (मूर्ख) जैसा+आरम्भ] अँधेरखाता। बिना समझा बूझा आचरण। उ०—करता दीसै कीरतन, ऊँचा करि करि दंभ। जानै बूझै कछु नहीं, यों ही आँधारंभ।—कबीर (शब्द०)।

आँधी¹—संज्ञा स्त्री० [सं० अन्ध = अँधेरा, अंधा करनेवाली] बड़े वेग की हवा जिससे इतनी धूल उठे कि चारों ओर अँधेरा छा जाय। अंधड़। अंधबाव।

विशेष—भारतवर्ष में आँधी का समय बसंत और ग्रीष्म है।

क्रि० प्र०—आना।—उठना।—चलना।

मुहा०—आँधी उठाना = हलचल मचाना। धूम धाम मचाना।
आँधी के आम = (१) आँधी में आप से आप गिरे हुए आम।
(२) बिना परिश्रम के मिली हुई चीज। बहुत सस्ती चीज।
(३) थोड़े दिन रहनेवाली चीज।

आँधी[२]—वि० आँधी की तरह तेज। किसी चीज को झटपट करनेवाला। चालाक। चुस्त। जैसे,—काम करने में तो वह आँधी है।
मुहा०—आँधी होना = बहुत तेज चलना।

आँबपुं†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आम'। उ०—फले सोहाए मधुर फल, आँब गए झकझोरि।—भिखारी० ग्रं०, पृ० १३६।

आँबा⑤†—संज्ञा पुं० [हिं०] 'आम'। उ०—और यह वैष्णव आँबा लेन कौं बजार में गयो। सो बजार में कहूँ आँबा न मिले।—दो सौ बावन०, भा० २, पृ० ३४।

आँबाहल्दी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'आमाहल्दी'।

आँयबाँय—संज्ञा पुं० [अनु०] अनापसनाप। अंडबंड। व्यर्थ की बात। असंबद्ध प्रलाप।

आँव—संज्ञा पुं० [सं० आम = कच्चा] एक प्रकार का चिकना सफेद लस-दार विकृत द्रव्य या मल जो अन्न न पचने से होता है।
क्रि० प्र०—गिरना।—पड़ना।

आँवठ†—संज्ञा पुं० [सं० ओष्ठ हिं० ओठ] १. किनारा। बारी। २. कपड़े का किनारा। बरतन की बारी।

आँवड़ना—क्रि० अ० [हिं० √उमड़] उमड़ना। उ०—भरे रुचि भार सुकुमार सरसिज सार सोभा रूप सागर अपार रस आँवड़े।—देव (शब्द०)।

आँवड़ा[१]⑤—वि० [हिं० उमड़ना] गहरा। उ०—जेता मेटा बोलवा, तेता साधु न जान। पहिले थाह दिखाइ के, आँवड़े देसी आनि। कबीर (शब्द०)।

आँवड़ा[२]†—संज्ञा पुं० [सं० आम्रातक प्रा० अंबाडय] एक प्रसिद्ध खट्टा फल। अमड़ा।

आँवन—संज्ञा पुं० [सं० आनन = मुँह] १. लोहे की सामी जो पहिए के उस छेद के मुँह पर लगी रहती है जिसमें होकर धुरी का डंड जाता है। मुहँड़ी। २. वह औजार जिससे लोहे के छेद को लोहार लोग बढ़ाते हैं।

आँवरा⑤†—संज्ञा पुं० [सं० आमलक, प्र० आमलय] दे० 'आँवला'। उ०—आलूचा अमिली अँबहलदी, आल आँवरा साल अफलदी।—सुजान०, पृ० १६१।

आँवल—संज्ञा पुं० [सं० उल्वम = जरायु। अथवा, अंबर = आच्छादन] झिल्ली जिससे गर्भ में बच्चे लिपटे रहते हैं। यह झिल्ली प्रायः बच्चा होने के पीछे गिर जाती है। खेंड़ी। जेरी। साम।
यौ०—आँवल नाल।

आँवलगट्टा—संज्ञा पुं० [हिं० आँवला + हिं० गट्टा वा गाँठ] आँवले का सूखा हुआ फल।
विशेष—यह दवा में तथा सिर मलने के काम आता है।

आँवला—संज्ञा पुं० [सं० आमलक, प्रा० आमलओ] १. एक प्रसिद्ध पेड़। २. इस पेड़ का फल।
विशेष—इसकी पत्तियाँ इमली की तरह महीन महीन होती हैं। इसकी लकड़ी कुछ सफेदी लिए होती है और उसके ऊपर का छिलका प्रति वर्ष उतरा करता है कार्तिक से माघ तक इसका फल रहता है जो गोल कागजी नीबू के बराबर होता है। इसके ऊपर का छिलका इतना पतला होता है कि उसकी नसें दिखाई देती हैं। यह स्वाद में कसैलापन लिए हुए होता है। आयुर्वेद में इसे शीतल, हलका तथा दाह पित्त और प्रमेह का नाश करनेवाला बतलाया है। इसके संयोग से त्रिफला, च्यवनप्राश आदि औषध बनते हैं। आवले का मुरब्बा भी बहुत अच्छा होता है। आँवले की पत्तियों से चमड़ा भी सिझाया जाता है। इसकी लकड़ी पानी में नहीं सड़ती। इसी से कूओं के नीमचक आदि इसी से बनते हैं।
३. विपक्षी को नीचे लाने का कुश्ती का एक पेंच।
विशेष—जब विपक्षी का हाथ अपनी गरदन पर रहे, तब अपना भी वही हाथ उसकी गरादन पर चढ़ावे और दूसरे से शत्रु के उस हाथ को जो अपनी गरदन पर है झटका देकर हटाते हुए उसको नीचे लावे। इसका तोड़ विषम पैंतरा करे अथवा शत्रु की गरदन पर का हाथ केहुनी पर से हटाकर पैंतरा बढ़ाते हुए बाहरी टाँग मार गिरावे।

आँवलापती-संज्ञा स्त्री० [हिं० आँवला + पत्ती] एक प्रकार की सिलाई जिसमें पत्ती की तरह दोनों ओर तिरछे टाँके मारे जाते हैं।

आँवलासारगंधक—संज्ञा स्त्री० [हिं० आँवला + सं० सार + गंधक] खूब साफ की हुई गंधक जो पारदर्शक होती है, यह खाने में अधिक खट्टी होती है।

आँवा—संज्ञा पुं० [सं० आपाक—आँवा] वह गड्ढा जिसमें कुम्हार लोग मिट्टी के बरतन पकाते हैं। जैसे,—कुम्हार आँवा लगा रहा है।
क्रि० प्र०—लगाना।
मुहा०—आँवें का आँवा बिगड़ना = सारे परिवार का बिगड़ना। सारे परिवार का कुत्सित विचार होना। आँवाँ बिगड़ना = आवें के बरतनों का ठीक ठीक न पकना।

आँस[१]—संज्ञा स्त्री० [सं० काश—क्षत, हिं० गाँस] संवेदना। दर्द।

आँस[२]⑤—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अंश'। उ०—बिछुरत सुंदर अधर तैं, रहत न जिहि घट साँस। मुरली सम पाई न हम प्रेम प्रीति को आँस।—स० सप्तक, पृ० १८७।

आँस[३]⑤†—संज्ञा पुं० [सं० अस्र] आँसू। उ०—रूप रस पीवत अघात ना हुते जो तब सोई अब आँस ह्वै उबरि गिरिबो करै।—रत्नाकर, भा० १, पृ० १२१।

आँस[४]—संज्ञा स्त्री० [सं० अंशु प्रा० अंसु] १. सुतली। डोरी। २. रेशा।

आँसी—संज्ञा स्त्री० [सं० अंश = भाग] १. भाजी। बैना। मिठाई जो इष्ट-मित्रों के यहाँ बाँटी जाती है।—लल्लन बाल के द्वैही दिना तें परी मन आइ सनेह की फाँसी। काम कलोलनि में मतिराम लगे मनो बाँटन मोद की आँसी।—मतिराम।—(शब्द०) २. भाग। हिस्सा। उ०—नारि कुलीन कुलीननि लै रमैं मैं उनमैं चहौं एक न आँसी।—भिखारी ग्रं०, भा० पृ० १५६।

आँसु⑤†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आँसू'। उ०—माता भरतु गोद बैठारे आँसु पोछि मृदु बचन उचारे।—मानस, २। १६५।

आँसू--संज्ञा पुं० [सं० अश्रु, पा० प्रा० अस्सु, प्रा अंसु] वह जल जो आँख के भीतर उस स्थान पर जमा रहता है, जहाँ से नाक की ओर नली जाती है। उ०--जो घनीभूत पीड़ा थी मस्तक में स्मृति सी छाई, दुर्दिन में आँसू बनकर वह आज बरसने आई।--आँसू, पृ० १४।

विशेष--यह जल आँख की झिल्लियों को तर रखता है और डेले पर गर्द या तिनके को नहीं रहने देता, धोकर साफ कर देता है। आँसू भी थूक की तरह पैदा होता रहता है और बाहरी या मानसिक आघात से बढ़ता है। किसी प्रबल मनोवेग के समय, विशेषकर पीड़ा और शोक में आँसू निकलते हैं। क्रोध और हर्ष में भी आँसू निकलते हैं। अधिक होने पर आँसू गालों पर बहने लगता है और कभी कभी भीतरी नली के द्वारा नाक में भी चला जाता है और नाक से पानी बहने लगता।

क्रि० प्र०--आना।--गिरना।--गिराना।--चलना।--रुकना।--टपकाना।--डालना।--ढालना।--निकालना।--बहना।--बहाना।

यौ०--आँसू की धार। आँसू की लड़ी।

मुहा०--आँसू गिराना=रोना। जैसे,--क्यों झूठ मूठ आँसू गिराते हो। आँसू डबडबाना=आँसू निकलना। रोने की दशा होना। जैसे--यह सुनते ही उसके आँसू डबडबा आए। आँसू ढालना=आँसू गिराना। रोना। जैसे,--नरगट ढारि सकै नहिं आँसू। घुट घुट माँस गुपुत होय नासू।--जायसी (शब्द०)। आँसू तोड़=कुसमय की वर्षा (ठग)। आँसू थमना=आँसू रुकना। रोना बंद होना। जैसे,--जब से उन्होंने यह समाचार सुना है, तब से उनके आँसू नहीं थमते है। उ०--थमते थमते थमेंगे आँसू। रोना है कुछ हँसी नहीं है।--मीर (शब्द०)। आँसू पीकर रह जाना=भीतर ही भीतर रोकर रह जाना। अपनी व्यथा को रोकर प्रकट न करना। मन ही मन मसोसकर रह जाना। जैसे,--(क) मेरे देखते उसने बच्चे पर हाथ चलाया था; और मैं आँसू पीकर रह गया। (ख) इतना दुःख उस पर पड़ा वह आँसू पीकर रह गया। आँसू पुछना=आश्वासन मिलना। ढारस बँधना। जैसे,--उस बेचारे की सारी संपत्ति चली गई पर घर बच जाने से आँसू पुँछ गए।--(शब्द०)। आँसू पोंछना=(१) बहते हुए आँसू को कपड़े से सुखाना। (२) ढारस बँधाना। दिलासा देना। तसल्ली देना। आश्वासन देना। जैसे--(क) उसका घर ऐसा सत्यानाश हुआ कि कोई आँसू पोंछनेवाला भी न रहा। (ख) हमारा सारा रुपया मारा गया, आँसू पोंछने के लिये १००) मिले हैं।--आँसू भर आना=आँसू निकल पड़ना। आँसू भर लाना=रोने लगना। जैसे,--यह सुनते ही वह आँसू भर लाया। आँसू का तार बँधना=बराबर आँसू बहना। आँसुओं से मुँह धोना=बहुत आँसू गिराना। बहुत रोना। अत्यंत विलाप करना।

आँसूढाल--संज्ञा पुं० [हिं० आँसू+ढालना] घोड़ों और चौपायों की एक बीमारी जिसमें उनकी आँखों से आँसू बहा करता है।

आँहड़--संज्ञा पुं० [सं० आ+भाँड़] बरतन।

आँहड़ बीहँड़†--वि० [प्रा० आहंड=खोजना, भटकना+विहड=टूटना, बिखरना] तितरबितर। ऊबड़खाबड़।

आँहाँ--प्रव्य [हिं० ना+हाँ] नहीं।

विशेष--यह शब्द किसी प्रश्न के उत्तर में जीभ हिलाने के श्रम से बचने के लिये बोला जाता है स्वर और ऊष्म, विशेषकर 'ह' के उच्चारण में बहुत कम प्रयत्न करना पड़ता है।

आ१--अव्य० [सं०] एक अव्यय जिसका प्रयोग सीमा, अभिव्यक्ति, ईषत् और अतिक्रमण के अर्थों में होता है। जैसे,--(क) सीमा--आसमुद्र=समुद्र तक। आमरण=मरण तक। आजानुबाहु=जानु तक लंबी बाहुवाला। आजन्म=जन्म से। (ख) अभिव्याप्ति--आपाताल=पाताल के अंतर्भाग तक। आजीवन--जीवन भर। (ग) ईषत् (थोड़ा, कुछ)--आपिंगल=कुछ कुछ पीला। आकृष्ण=कुछ काला। (घ) अतिक्रमण--आकालिक=बेमौसम का।

आ२--उप० [सं०] यह प्रायः गत्यर्थक धातुओं के पहले लगता है और उनके अर्थों में कुछ थोड़ी सी विशेषता कर देता है; जैसे, आपात आघूर्णन, आरोहण, आकंपन, आघ्राण। जब यह 'गम' (जाना) 'या' (जाना), 'दा' (देना) तथा 'नी' (ले जाना) धातुकों के पहले लगता है, तब उनके अर्थों को उलट देता है; जैसे 'गमन' (जाना) से आगमन (आना), 'नयन' (ले जाना) से 'आनयन' (लाना), 'दान' (देना) से 'आदाम' (लेना)।

आ३--संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्मा। पितामह।

आइंदा१--वि० [फा० आइंदह्] आनेवाला। आगंतुक। भविष्य। जैसे,--आइंदा जमाना।

आइंदा२--संज्ञा पुं० भविष्य काल। आनेवाला समय। जैसे--आइंदा के लिये खबरदार हो रहो।

आइंदा३--क्रि वि० आगे। भविष्य में। जैसे,--हमने समझा दिया, आइंदा वह जाने उसका काम जाने।

यौ०--आइंदे। आइंदे को। आइंदे में। आइंदे से। ये सबके सब क्रि० वि० के समान प्रयुक्त होते हैं।

आइ(पु)†--संज्ञा स्त्री० [सं० आयु] १. आयु। जीवन। उ०--जेहि सुभाय चितवहि हितु जानी। सो जानैं जनु आइ खुटानी।--मानस, १।२६६।

आइटम--संज्ञा पुं० [अं०] मद। उ०-बजट बनाने लगता है, तो हर एक आइटम में दो चार लाख जादा लिख देता है।--रंगभूमि, भा० २, पृ० ६०५।

आइडियल--वि० [अं०] श्रेष्ठ। आदर्श।

आइना†--संज्ञा पुं० [फा० आइनह्] दे० 'आईना'। उ०--है निराली प्रभु-कला जिसमें बसी, वह निराला आईना है फूटता।--चोखे०, पृ० २३।

आइस(पु)--संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आयसु'।

आइसु(पु)--संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आयसु'।

आई१--संज्ञा स्त्री० [सं० आयु] १. आयु। जीवन। उ०--सतयुग लाख वर्ष की आई, त्रेता दश सहस्र कह गाई।--सूर (शब्द०)। २. मृत्यु। मौत (ला०) भरा कटोरा दूध का, ठंडा करके पी। तेरी आई मैं मरूँ, किसी तरह तू जी।--(शब्द०)।

आई२--क्रि० अ० 'आना' का भूतकाल स्त्री०:

यौ०--आई गई=आकर गुजरी हुई बात।

मुहा०—**आई गई करना** =(१) बीती को बिसारना। (२) टाल जाना। उपेक्षा करना। **आई गई होना** =(१) घटित होकर गुजर जाना। २. अनुपस्थित होना।

आई³†—संज्ञा **स्त्री०** [सं० **आर्यिका**, प्रा० **अज्जिआ**] १. पितामही। दादी। २. माँ।

आई⁴—प्रत्य० [हिं०] १. एक प्रत्यय जो भाववाचक संज्ञा बनाने के लिये विशेषण शब्दों के अंत में जोड़ा जाता है, जैसे, 'कठिन' से 'कठिनाई', बड़ा' से 'बड़ाई', 'छोटा' से 'छुटाई', 'मीठा' से 'मिठाई' आदि। २. एक प्रत्यय जो धातुओं में लगकर भाववाचक संज्ञाएँ बनाता है। जैसे, 'पढ़' 'पढ़ाई', लिख से ,लिखाई', 'लड़ से' लड़ाई 'भिड़' से 'भिड़ाई' आदि।

आईन—संज्ञा पुं० [फा०][वि० आईनी] १. नियम। विधि। कायदा। जाब्दा। २. कानून। राजनियम।

यौ०—**आईनदाँ**—वकील। कानून जाननेवाला।

आईना—संज्ञा पुं० [फा० **आईनह्**] १. आरसी। दर्पण। शीशा।

यौ०—**आईनादार**। **आईनाबंदी**। **आइनासाज**। **आइनासाजी**।

मुहा०—**आईना होना** = स्पष्ट होना। जैसे,—यह बात तो आप पर आईना हो गई होगी। **आईने में मुँह देखना**—अपनी योग्यता को जाँचना। (यह मुहावरा उस समय बोला जाता है जब कोई व्यक्ति अपनी योग्यता से भी अधिक काम करने की इच्छा प्रकट करता है; जैसे,—पहले आइने में अपनामुँह तो देख लो, फिर बात करना।

२. किवाड़े का दिलहा। वि० दे० 'दिलहा'।

यौ०—**आईनेदार** = वह किवाड़ा जिसमें आईना या दिलहा हो।

आईनादार—संज्ञा पुं० [फा०] वह नौकर जो आईना दिखलाने का काम करे। नाई। हज्जाम।

विशेष—दसहरे, दीवाली आदि त्योहारों पर नाई आईना दिखाता है और उसके बदले में लोगों से कुछ ईनाम पाता है।

आईनाबंदी—संज्ञा स्त्री० [फा०] १. कमरे या बैठक में झाड़ फानूस आदि की सजावट। २. कमरे या घर के फर्श में पत्थर या ईंट की जुड़ाई। ३. रोशनी करने के लिये तरतीब से टट्टियाँ खड़ी करना।

आईनासाज—संज्ञा पुं० [फा० **आईनह्+साज**] आईना बनानेवाला।

आईनासाजी—संज्ञा स्त्री० [फा० **आईनह्साजी**] १. काँच की चद्दर के टुकड़े पर कलई करने का काम। २. आइनासाज का पेशा

आइनी—वि० [फा० **आईन**] कानूनी। राजनियम के अनुकूल।

आउंस—संज्ञा पुं० [अं०] एक अंग्रेजी मान जो दो प्रकार का होता है। एक ठोस वस्तुओं के तौलने में और दूसरा द्रव पदार्थों के नापने में काम आता है। तौलने का आउंस हिंदुस्तानी सवा दो तोले के बराबर होता है। ऐसे बारह आउंसों का एक पाउंड होता है। नापने का आउंस सोलह ड्राम का होता है और एक ड्राम साठ बूँदों का होता है।

आउⓅ†—संज्ञा स्त्री० [सं० **आयु**] जीवन। उम्र। उ०—एहि बन रहत गई हम्ह आऊ। तरिवर चलत न देखा काऊ।—जायसी ग्रं०, पृ० २७। (ख) संकट सुकृत को सोचत जानि जिय रघुराउ। सहस द्वादस पंचसत में कछुक है अब आउ।—तुलसी ग्रं०, पृ० ४२२।

आउजⓅ—संज्ञा पुं० [सं० **आतोद्य**, प्रा० **आप्रोज्ज**, **आवज्ज**] ताशा। उ०-घंटा-घंटि-पखाउज-आउज झाँझ-बेनु-डफ-तार। नूपुर धुनि-मंजीर मनोहर व रकंकन-झनकार।—तुलसी ग्रं०, २६५।

आउझⓅ—संज्ञा पुं० [सं० **आतोद्य**, प्रा० **आवज्ज**] दे० 'आउज'।

आउट—वि० [अं०] खेल में हारा हुआ। बहिर्भूत।

विशेष—यह क्रिकेट आदि खेल में बोला जाता है। जब बल्लेवाले किसी खिलाड़ी के खेलते समय गेंद विकेट में लग जाती है वा बल्ले से मारी हुई गेंद लोक ली जाती है, तब वह आउट समझा जाता है, और बल्ला रख देता है।

आउबाउⓅ†—संज्ञा पुं० [सं० **वायु** > **आउ अनु**ध्व०] अंड बंड बात। अनर्थक शब्द। असंबद्ध प्रलाप।

क्रि० प्र०—**बकना**। उ०—मानस मलीन करतब कलिमल पीन जीह हू न जपेउ नाम बकेउ आउबाउ मैं।—तुलसी ग्रं०, पृ० ५८८।

आउस- संज्ञा पुं० [सं० **आशु**, बँग० **आउस**] धान का एक भेद जो बंगाल में मई जून में बोया जाता है और अगस्त सितंबर में काटा जाता है। यह दो प्रकार का होता है—एक मोटा, दूसरा महीन या सेंधी। भदई। ओसहन।

आऊषाⓅ—संज्ञा स्त्री० [सं० **आयुष्य**] उम्र। अवस्था। उ०—उनासिए पुत्री अवतरी। तिन आऊषा पूरी करी।—अर्ध० पृ० ५७।

आकंप—संज्ञा पुं० [सं० **आकम्प**] दे० 'आकंपन' [को०]।

आकंपन—संज्ञा पुं० [सं० **आकम्पन**] [वि० **आकंपित**] काँपना। कँपकँपी।

आकंपित—वि० [सं० **आकम्पित**] काँपा हुआ। हिला हुआ।

आक¹—संज्ञा पुं० [सं० **अर्क**, प्रा० **अक्क**] मंदार। अकौआ। अकवन। उ०—(क) पुरवा लागि भूमि जल पूरी। आक जवास भई तस झूरी।—जायसी ग्रं०, पृ० १५३। (ख) कबिरा चंदन बीरवैं, बेधा आक पलाश। आप सरीखा कर लिया, जो होते उन पास।—कबीर (शब्द०)। (ग) देत न अघात रीझि जात पात आक ही के भोलानाथ जोगी जब औढर ढरत हैं।—तुलसी ग्रं० पृ० २३७।

मुहा०—**आक की बुढ़िया** =(१) मदार का घूआ। ( ) बहुत बूढ़ी स्त्री।

आक²Ⓟ—वि० [सं० **अक** = **दुख**] दुखी। उ०—आक करम भेषज विदित, लखात नहीं मतिहीन। तुलसी सठ अकरम त्रिदृठि दिन दिन दीन मलीन।—स० सप्तक, पृ० ४७।

आकड़ा—संज्ञा पुं० [सं० **अर्क**, हिं० **आक+ड़ा** (प्रत्य०)] मदार। अकौआ। अर्क।

आकना†—संज्ञा पुं० [सं० **आकर्षण** = **खोदना**] १. घास फूस, जिसे जोते हुए खेत से निकालकर बाहर फेंकते हैं। २. जोते हुए खेत से घास फूस निकालने की क्रिया। चिखुरना।

आकबत—संज्ञा स्त्री० [अ० **आक़बत**] मरने के पीछे अवस्था। परलोक। जैसे,—बाबा, दिया लिया ही आकबत में काम आवेगा।

यौ०—**आकबतअंदेश**। **आकबतअंदेशी**।

क्रि० प्र० **बिगड़ना** =(१) परलोक बिगड़ना। परलोक नष्ट

होना। (२) अंजाम बिगड़ना। बुरा परिणाम होना।—बिगाड़ना।

मुहा०—**आकबत में दिया दिखाना**=परलोक में काम आना।

आकबतअंदेश—वि० [अ० **आकबत**+फ़ा० **अंदेश**] परिणाम सोचनेवाला। अग्रसोची। दूरंदेश। दीर्घदर्शी।

आकबतअंदेशी—संज्ञा स्त्री० [**आकबत**+फ़ा० **अंदेशी**] परिणाम का विचार। परिणामदर्शिता। दीर्घदर्शिता। दूरंदेशी।

क्रि० प्र०—**करना**।

आकबतीलंगर—संज्ञा पुं० [अ० **आकबत**+फ़ा० **ई०** (प्रत्य०)+हिं० **लंगर**] एक प्रकार का लंगर जो जहाज पर अगले मस्तूल की रस्सियों या रिंगिन के पास बीच के टूटक में रहता है और आफत के वक्त डाला जाता है।

आकबाक—संज्ञा पुं० [प्रा० *अक्कइ > √बक से अनुध्व०] अकबक। अंकबंड बात। ऊटपटाँगबात। उ०—(क) आकबाक बकति बिथा मैं बूड़ि बूड़ि जाति पी की सुधि आएँ जी की सुधि बुधि खोइ देत।—देव (शब्द०)। (ख)। आकबाक बकि और की वृथा न छाती छोल।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ७३७।

आकर¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. खानि। उत्पत्तिस्थान। उ०—सदा-सुमन-फल सहित सब, द्रुम नव नाना जाति। प्रगटी सुंदर सैल पर, मनि आकर बहु भाँति।—मानस, १।६५। २. खजाना। भांडार।

यौ०—**गुणाकर। कमलाकर। कुसुमाकर। करुणाकर। रत्नाकर।**

३. भेद। किस्म। जाति। उ०—आकर चारि लाख चौरासी जाति जीव जल थल न भवासी।—मानस, १।८। ४. तलवार के बत्तीस हाथों में से एक। तलवार चलाने का एक भेद।

आकर²—वि० १. श्रेष्ठ। उत्तम। २. अधिक। उ०—चंपा प्रीति जो तेल है, दिन दिन आकर बास। गलि गलि आप हेराय जो, मुए न छांड़ै पास।—जायसी (शब्द०)। ३. गणित। गुणा। जैसे, पाँच आकर, दस आकर। उ०—अस भा सूर पुरुष निरमरा। सूर जाहि दस आकर करा।—जायसी (शब्द०)। ४. दक्ष। कुशल। व्युत्पन्न।

आकरकढ़ा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आकरकरहा'।

आकरकरहा—संज्ञा पुं० [अ०] एक जड़ी जिसे मुँह में रखने से जीभ में चुनचुनाहट होती है और मुँह से पानी निकलता है। यह एक वृक्ष की लकड़ी है। आकरकढ़ा। दे० 'अकरकरा'।

आकरखानाⓅ—क्रि० स० [हिं०] दे० 'आकर्षना'।

आकरिक¹—वि० [सं०] खान खोदनेवाला।

आकरिक²—संज्ञा पुं० वह मनुष्य जो खान को स्वयं खोदे या औरों से खोदावे और उससे धातु निकाले।

आकरी¹—वि० [सं० **आकर**=**खान** (**धातु और पत्थर आदि की**)] कठोर। उ०—नारी बोलै आकरी तब दुख पावै नाह। सुंदर बोलै मधुर मुख तब सुख सीर प्रवाह।—सुंदर० ग्रं०, भा० २, पृ० ७०७।

आकरी²—संज्ञा स्त्री० [सं० **आकर**+**ई०** (प्रत्य०)] खान खोदने का काम। उ०—चाकरी न आकरी न खेती न बनिज भीख जानत न छर कछु कसब कबारु है।—तुलसी ग्रं०, पृ० ११२।

आकरी³—संज्ञा पुं० [सं० **आकरिन्**] दे० 'आकरिक'।

आकर्ण—वि० [सं०] कान तक फैला हुआ।

यौ०—**आकर्णचक्षु। आकर्णकृष्ट।**

आकर्णन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० **आकर्णित**] सुनना। कान करना। अकनना।

आकर्णित—वि० [सं०] सुना हुआ।

आकर्ष—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक जगह के पदार्थ का बल से दूसरी जगह जाना। खिंचाव। कशिश।

क्रि० प्र०—**करना**—खींचना। उ०—तैसे ही भुवभार उतारन हरि हलधर अवतार। कालिंदी आकर्ष कियो हरि मारे दैत्य अपार।—सूर। (शब्द०)।

२. पासे का खेल। ३. बिसात जिसपर पासा खेला जाय। चौपड़। ४. इंद्रिय। ५. धनुष चलाने का अभ्यास। ६. कसौटी। ७. चुंबक।

आकर्षक¹—वि० [सं०] १. वह जो दूसरे को अपनी ओर खींचे। आकर्षण करनेवाला। खींचनेवाला। २. सुंदर।

आकर्षक²—संज्ञा पुं० चुंबक [कौ०]।

आकर्षण—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० **आकर्षित, आकृष्ट**] १. किसी वस्तु का दूसरी वस्तु के पास उसकी शक्ति या प्रेरणा से लाया जाना। २. खिंचाव। ३. तंत्रशास्त्र का एक प्रयोग जिसके द्वारा दूर देशस्थ पुरुष या पदार्थ पास में आ जाता है।

क्रि० प्र०—**करना। होना।**

यौ०—**आकर्षण मंत्र। आकर्षण विद्या। आकर्षण शक्ति।**

आकर्षणशक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] भौतिक पदार्थों की एक शक्ति जिससे वे अन्य पदार्थों को अपनी ओर खींचते हैं।

विशेष—यह शक्ति प्रत्येक परमाणु में रहती है। क्या कारण, क्या कार्य रूप में सब परमाणु या उनसे उत्पन्न सब पदार्थों की ओर आकृष्ट होते हैं। इसी से द्व्यणु, त्रसरेणु तथा समस्त चराचर जगत् का संगठन होता है। इसी से पाषाणादि के परमाणु आपस में जुड़े रहते हैं। पृथ्वी के ऊपर कंकड़, पत्थर तथा जीव आदि सब इसी शक्ति के बल पर ठहरे रहते हैं। जल के चंद्रमा की ओर आकृष्ट होने से समुद्र में ज्वार भाटा उठता है। बड़े बड़े पिंड, ग्रहमंडल, सूर्य, चंद्रादि सब इसी शक्ति से आकाशमंडल में निराधार स्थित हैं और नियम से अपनी अपनी कक्षा पर भ्रमण करते हैं। पृथ्वी भी इसी शक्ति से बृहत् वायुमंडल को धारण किए हुए है। सूर्य से लेकर परमाणु तक में यह शक्ति विद्यमान है। यह शक्ति भिन्न भिन्न रूपों से भिन्न भिन्न पदार्थों और दशाओं में काम करती है। मात्रानुसार इसका प्रभाव दूरस्थ और निकटवर्ती सभी पदार्थों पर पड़ता है। धारण या गुरुत्वाकर्षण, चुंबकाकर्षण, संलग्नाकर्षण, केशाकर्षण, रासायनिकाकर्षण आदि इनके अनेक प्रभेद हैं।

आकर्षणी—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक लग्गी जिससे फल फूल तोड़ते हैं। अँकुसी। लकसी। २. प्राचीन काल का एक सिक्का। ३. शरीर पर धारण की जानेवाली विशेष प्रकार की मुद्रा या चिह्न (कौ०)।

आकर्षनⓅ— संज्ञा पुं० [सं० **आकर्षण**] दे० 'आकर्षण'।

आकर्षनाⓅ—क्रि० स० [सं० **आकर्षण से नाम०**] खींचना। उ०—आकरष्यो धनु करन लगि, छाँड़े शर इकतीस।—तुलसी (शब्द०)। (ख) कालिंदी को निकट बुलायो जलक्रीड़ा के काज। लियो आकरषि एक छन में हलि कति समरथ यदुराज।—सूर (शब्द०)।

आकर्षिक—वि० [सं०] [वि० स्त्री० **आकर्षिकी**] दे० 'आकर्षक' [को०]।

आकर्षित—वि० [सं०] खींचा हुआ।

आकलन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० **आकलनीय, आकलित**] १. ग्रहण। लेना। २. संग्रह। बटोरना। संचय। इकट्ठा करना। ३. गिनती करना। ४. अनुष्ठान। संपादन। ५. अनुसंधान। जाँच। ६. इच्छा। कामना [को०]। ७. वर्णन करना [को०]।

आकलना—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दे० 'आकलन'। २ पूजा। भक्ति[को०]

आकलनीय—वि० [सं०] १. ग्रहण करने योग्य। लेने योग्य। २. संग्रह करने योग्य। ३. गिनती करने योग्य। ४. अनुष्ठान करने योग्य। ५. जाँचने योग्य। पता लगाने योग्य।

आकलित—वि० [सं०] १. लिया हुआ। पकड़ा हुआ। २ ग्रथित। गूँथा हुआ। ३. गिना हुआ। परिगणित। ४. अनुष्ठित। संपादित। कृत। ५. अनुसंधान किया हुआ। जाँचा हुआ। परीक्षित।

आकली[1]†—संज्ञा स्त्री० [सं० **आकुल + ई** (प्रत्य०) **या** सं० **आकल्य = बीमारी**] आकुलता। बेचैनी।

आकली[2]—संज्ञा स्त्री० [देश०] चटक पक्षी। गौरैया।

आकल्प[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. वेश रचना। सिंगार करना; जैसे, रत्नाकल्प। २. पोशाक। पहनावा [को०]। ३. बीमारी (को०)। ४. जोड़ना। बढ़ाना [को०]।

आकल्प[2]—क्रि० वि० कल्प पर्यंत।

आकल्य—संज्ञा पुं० [सं०] बीमारी। अस्वस्थता [को०]।

आकष—संज्ञा पुं० [सं०] कसौटी।

आकसमातⓅ†—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'अकस्मात'। उ०—पंथी माँहि पंथ चलि आयौ आकसमात।—सुंदर० ग्रं०, भा० २, पृ० ७५८।

आकस्मातⓅ†—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'अकस्मात'।

आकस्मिक—वि० [सं०] जो बिना किसी कारण के हो। जो अचानक हो। सहसा होनेवाला। जिसके होने का पहले से अनुमान न हो।

यौ०—**आकस्मिक अवकाश, आकस्मिक छुट्टी** = अचानक काम से ली जानेवाली छुट्टी।

आकांक्षक—वि० [सं० **आकाङ्क्षक**] इच्छा रखनेवाला। अभिलाषा करनेवाला।

आकांक्षा—संज्ञा स्त्री० [सं० **आकाङ्क्षा**] [वि० **आकांक्षक, आकांक्षित, आकांक्षी**] १. इच्छा। अभिलाषा। वांछा। चाह। २. अपेक्षा। ३. अनुसंधान। ४. न्याय के अनुसार वाक्यार्थज्ञान के चार प्रकार के हेतुओं में से एक।

विशेष—वाक्य में पदों का परस्पर संबंध होता है और इसी संबंध से वाक्यार्थ का ज्ञान होता है। जब वाक्य में एक पद का अर्थ दूसरे पद के अर्थज्ञान पर आश्रित रहता है तब यह कहते हैं कि इस पद के ज्ञान की आकांक्षा है; जैसे,—'देवदत्त आया' इस वाक्य में आया पद का ज्ञान देवदत्त के ज्ञान के आश्रित है।

५. जैनियों के अनुसार एक अतिचार। जैनियों के अतिरिक्त अन्य मतवालों की विभूति देख उसके ग्रहण करने की इच्छा।

यौ०—**आकांक्षातिचार**।

आकांक्षित—वि० [सं० **आकाङ्क्षित**] १. इच्छित। अभिलषित। वांछित। २. अपेक्षित।

आकांक्षी—वि० [सं० **आकांक्षिन्**] [वि० स्त्री० **आकांक्षिणी**] १. इच्छा रखनेवाली। इच्छुक। चाहनेवाला। २. खोज करनेवाला।

आका[1]†—संज्ञा पुं० [सं० **आकाय**] १. कौड़ा। अलाव। २. भट्ठी। ३. पजावा। आँवाँ।

आका[2]—संज्ञा पुं० [अ० **आक़ा**] मालिक। स्वामी।

आकाप—संज्ञा पुं० [सं०] १. चिता की अग्नि। २. चिता। ३. आवास। निवास [को०]।

आकार[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. स्वरूप। आकृति। मूर्ति। रूप। सूरत। २. डील डौल। कद ३. बनावट। संघटन। ४. निशान। चिह्न। ५. चेष्टा। ६. 'आ' वर्ण। ७. बुलावा। ८. प्रकार। ढंग। उ०—सुंदर कर आनन समीप, अति राजत इहिं आकार। जलरह मनौ बैर बिधु सौं तजि, मिलत लए उपहार।—सूर०, १०।२८३।

यौ०—**आकारगुप्ति। आकारगोपन** = हृदय या मन के भाव को कल्पित चेष्टा से छिपाना।

आकार[2]—वि० रूपवाला। साकार। उ०—कोई आकार कह कोई निराकार कह तत्व की छोड़ि निःतत्व धाई।—कबीर रे०, पृ० २८।

आकारण—संज्ञा पुं० [सं०] १. आह्वान। बुलावा। २. चुनौती [को०]।

आकारवान—वि० [सं० **आकारवत्**] १. आकार या शरीरवाला। २. सुगठित। सुंदर [को०]।

आकारांत—वि० [सं० **आकारान्त**] जिसके अंत में 'आ' स्वर हो [को०]।

आकारित—वि० [सं०] १. आहूत। २. स्वीकृत। ३. माँगा या चाहा हुआ [को०]।

आकारीⓅ—वि० [सं० **आकरण = आह्वान**] [स्त्री० **आकारिणी**] आह्वान करनेवाला। बुलानेवाला। उ०—गौर मुख हिम किरण की जु किरणावली श्रवत मधुगान हिय पियत रंगी। नागरी सकल संकेत आकारिणी गनत गुन गननि मति होति पंगी।—नागरी० (शब्द०)।

आकारीठⓅ—संज्ञा पुं० [सं० **आकारण = बुलाना**] संग्राम। युद्ध। (डिं०)

आकाश—संज्ञा पुं० [सं०] १. अंतरिक्ष। आसमान। गगन। ऊँचाई पर का वह चारों ओर फैला हुआ अपार स्थान जो नीला और शून्य दिखाई देता है। जैसे,—पक्षी आकाश में उड़ रहे हैं। २. साधारणतः वह स्थान जहाँ वायु के अतिरिक्त और कुछ न हो; जैसे,—वह योगी ऊपर उठा और बड़ी देर तक आकाश में ठहरा रहा। ३. शून्य स्थान। वह अनंत विस्तृत अवकाश

जिसमें विश्व के छोटे बड़े सब पदार्थ, चंद्र, सूर्य, ग्रह, तारा आदि स्थित हैं और जो सब पदार्थों के भीतर व्याप्त है।

विशेष—वैशेषिककार ने आकाश को द्रव्यों में गिना है। उसके अनुयायी भाष्यकार प्रशस्तपाद ने आकाश, काल और दिशा को एक ही माना है। यद्यपि सूत्र के १७ गुणों में शब्द नहीं हैं, तथापि भाष्यकार ने कुछ और पदार्थों के साथ शब्द को भी ले लिया है। न्याय में भी आकाश को पंचभूतों में माना है और उससे श्रोत्रेंद्रिय की उत्पत्ति मानी है। सांख्यकार ने भी आकाश को प्रकृति का एक विकार और शब्दतन्मात्रा से उत्पन्न माना है और उसका गुण शब्द कहा है। पाश्चात्य दार्शनिकों में से अधिकांश ने आकाश के अनुभव और दूसरे पदार्थों के अनुभव के बीच वही भेद माना है जो वर्तमान प्रत्यक्ष अनुभव और व्यतीत पदार्थों या भविष्य संभावनाओं की स्मृति या चिंतन प्रसूत अनुभव में है। कांट आदि ने आकाश की भावना को अंतःकरण से ही प्राप्त अर्थात् उसी का गुण माना है। उनका कथन है कि जैसे रंगों का अनुभव हमें होता है, पर वास्तव में पदार्थों में उनकी स्थिति नहीं है, केवल हमारे अंतःकरण में है, उसी प्रकार आकाश भी है।

यौ०—**आकाशकुसुम। आकाशगंगा। आकाशचारी। आकाशचोटी। आकाशजल। आकाशदीपक। आकाशधुरी। आकाशध्रुव। आकाशनीम। आकाशपुष्प। आकाशभाषित। आकाशफल। आकाशबेल। आकाशमंडल। आकाशमुखी। आकाशमूली। आकाशलोचन। आकाशवल्ली। आकाशवाणी। आकाशवृत्ति। आकाशव्यापी। आकाशास्तिकाय।**

पर्या०—**द्यौः। द्यु। अभ्र। व्योम। पुष्कर। अंबर। नभ। अंतरिक्ष। गगन। अनंत। सुरवर्त्म। खं। वियत्। विष्णुपद। तारापथ। मेघाध्वा। महापिल। विहायस। मरुद्वर्त्म। मेघवेश्म। मेघवर्त्म। कुनाभि अक्षर। विविष्टप। नाक। अनंग।**

मुहा०—**आकाश की कोर**=क्षितिज। **आकाश खुलना**=आसमान का साफ होना। बादल का जाना। बादल हटना। जैसे,—दो दिन की बदली के पीछे आज आकाश खुला है। **आकाश छूना या चूमना**=बहुत ऊँचा होना। जैसे,—काशी के प्रासाद आकाश छूते हैं। **आकाश पाताल एक करना**=(१) भारी उद्योग करना। जैसे,—जब तक उसने इस काम को पूरा नहीं किया, आकाश पाताल एक किए रहा। (२) आंदोलन करना। हलचल करना। धूम मचाना। जैसे,—वे जरा सी बात के लिये आकाश पाताल एक कर देते हैं। **आकाश पाताल का अंतर**=बड़ा अंतर। बहुत फर्क। उ०—तौ भी इनमें उनमें आकाश और पाताल का अंतर है। प्रेमघन०, भा० २, पृ० २०३। **आकाश बाँधना**=अनहोनी बात कहना। असंभव बात कहना। उ०—कहा कहति डरपाइ कछू मेरौ घटि जैहै। तुम बाँधति आकाश बात झूठी को सैहै। —सूर (शब्द०)। **आकाश से बातें करना**=बहुत ऊँचा होना। जैसे,—माधवराव के धरहरे आकाश से बातें करते हैं।

४. अबरक। अभ्रक। ५. छिद्र। विवर [को०]। ६. (गणित में) शून्य [को०]। ७. प्रकाश। स्वच्छता [को०]। ८. ब्रह्म [को०]।

आकाशकक्षा—संज्ञा **स्त्री०** [सं०] आकाश में वह मंडल जहाँ तक सूर्य की किरणों का संचार है। सूर्यसिद्धांत के अनुसार इस मंडल **की परिधि १८७१२०६९२०००००००० योजन है।**

आकाशकल्प—संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्म [को०]।

आकाशकुसुम—संज्ञा पुं० [सं०] १. आकाश का फूल। खपुष्प। अनहोनी बात। असंभव बात।

आकाशगंगा—संज्ञा स्त्री० [सं० **आकाशगङ्गा**] १. बहुत से छोटे छोटे तारों का एक विस्तृत समूह जो आकाश में उत्तर-दक्षिण फैला है।

विशेष—इसमें इतने छोटे छोटे तारे हैं जो दूरबीन के ही सहारे दिखाई पड़ते हैं। खाली आँख से उनका समूह एक सफेद सड़क की तरह बहुत दूर तक दिखाई पड़ता है। इसकी चौड़ाई बराबर नहीं है, कहीं अधिक कहीं बहुत कम है। इसकी कुछ शाखाएँ भी कुछ इधर उधर फैली दिखाई पड़ती हैं। इसी से पुराणों में इसका यह नाम है। देहाती लोग इसे आकाशजनेऊ, हाथी की डहर या केवल डहर अथवा दूधगंगा कहते हैं।

२. पुराणानुसार वह गंगा जो आकाश में है।

पर्या०—**मंदाकिनी। वियद्गंगा। स्वर्गंगा। स्वर्णदी। सुरदीर्घिका।**

आकाशग[1]—वि० [सं०] आकाशचारी [को०]।

आकाशग[2]—संज्ञा पुं० पक्षी [को०]।

आकाशगा—संज्ञा **स्त्री०** [सं०] आकाशगंगा [को०]।

आकाशचमस—संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा [को०]।

आकाशचारी[1]—वि० [सं० **आकाशचारिन्**] [स्त्री० **आकाशचारिणी**] आकाश में फिरनेवाला। आकाशगामी।

आकाशचारी[2]—संज्ञा पुं० १. सूर्यादि ग्रह नक्षत्र। २. वायु। ३. पक्षी। ४. देवता। ५. राक्षस।

आकाशचोटी—संज्ञा पुं० [सं० **आकाश**+हिं० **चोटी**] शीर्षबिंदु। वह कल्पित बिंदु जो ठीक सिर के ऊपर पड़ता है।

आकाशजननी—वि० **आकाशजननिन्**] दुर्ग आदि के प्राचीर में बने झरोखे या छिद्र [को०]।

आकाशजल—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह जल जो ऊपर से बरसे। मेह का पानी।

विशेष—मघा नक्षत्र में लोग बरसे हुए पानी को बरतनों में भर कर रख लेते हैं। यह औषध के काम आता है। २. ओस।

आकाशदीप—संज्ञा पुं० [सं०] आकाशदीया।

आकाशदीया—संज्ञा पुं० [सं० **आकाश**+हिं० **दीया**] वह दीपक जो कार्तिक में हिंदू लोग कंडील में रखकर एक ऊँचे बाँस के सिरे पर बाँधकर जलाते हैं।

विशेष—कार्तिक माहात्म्य के अनुसार २१ हाथ की ऊँचाई पर दिया जलाना उत्तम है, १४ हाथ पर मध्यम और ७ हाथ पर निकृष्ट है।

आकाशधुरी—संज्ञा स्त्री० [सं० **आकाश**+हिं० **धुरी**] खगोल का ध्रुव। आकाशध्रुव।

आकाशध्रुव—संज्ञा पुं० [सं०] आकाशधुरी।

आकाशनदी—संज्ञा **स्त्री०** [सं०] आकाशगंगा।

आकाशनिद्रा—संज्ञा **स्त्री०** [सं०] खुले हुए मैदान में सोना।

आकाशनीम—संज्ञा स्त्री० [सं० **आकाश**+हिं० **नीम**] एक प्रकार का पौधा जो नीम के पेड़ पर होता है। नीम का बाँदा।

आकाशपथिक--संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य [को०] ।

आकाशपुष्प--संज्ञा पुं० [सं०] आकाश का फूल । आकाशकुसुम । खपुष्प ।

विशेष– यह असंभव बातों के उदाहरणों में से हैं ।

आकाशफल--संज्ञा पुं० [सं०] संतान या लड़का लड़की ।

आकाशबेल, आकाशबेलि--संज्ञा स्त्री० [सं० **आकाश** + हिं० **बेल**] अमरबेल ।

आकाशभाषित–संज्ञा पुं० [सं०] नाटक के अभिनय में एक संकेत। बिना किसी प्रश्नकर्ता के आपसे आप वक्ता ऊपर की ओर देखकर किसी प्रश्न को इस तरह करता है, मानो वह उससे किया जा रहा है और फिर वह उसका उत्तर देता है। इस प्रकार के कहे हुए प्रश्न को 'आकाशभाषित' कहते हैं ।

विशेष--भारतेंदु हरिश्चंद्र के 'विषस्य विषमौषधम्' में इसका प्रयोग बहुत है। उ०--हरिश्चंद्र--अरे सुनो भाई, सेठ, साहूकार, महाजन, दूकानदारों, हम किसी कारण से अपने को हजार मोहर पर बेचते हैं। किसी को लेना हो तो लो। (इधर उधर फिरता है। ऊपर देखकर) क्या कहा? 'क्यों तुम ऐसा दुष्कर्म करते हो ?" आर्य, यह मत पूछो, यह सब कर्म की गति है। (ऊपर देखकर) क्या कहा ? "तुम क्या कर सकते हो, क्या समझते हो और किस तरह रहोगे?" इसका क्या पूछना है। स्वामी जो कहेगा वह करेंगे, इत्यादि ।—सत्य हरिश्चंद्र ।

आकाशमडल--संज्ञा पुं० [सं० **आकाशमंडल**] नभमंडल । खगोल ।

आकाशमांसी--संज्ञा स्त्री० [सं०] क्षुद्र जटामाँसी [को०] ।

आकाशमुखी–संज्ञा पुं० [सं० **आकाश** + **हिं० मुखी**] एक प्रकार के साधु जो आकाश की ओर मुँह करके तप करते हैं। ये लोग अधिकांश शैव होते हैं।

आकाशमूली–संज्ञा स्त्री० [सं०] जलकुंभी । पाना ।

आकाशयान– संज्ञा पुं० [सं०]१. वह जो आकाशमार्ग से गमन करे। २. वायुयान । बैलून [को०] ।

आकाशयोधी—संज्ञा पुं० [सं० **आकाशयोधिन्**] वह लोग जो ऊँची जमीन या टीले पर से लड़ाई कर रहे हों। [को०]।

आकाशरक्षी--संज्ञा पुं० [सं० **आकाशरक्षिन्**] वह जो किले की बाहरी दीवार या बुर्ज पर खड़ा होकर पहरा दे [को०] ।

आकाशलोचन--संज्ञा पुं० [सं०] वह स्थान जहाँ से ग्रहों की स्थिति या गति देखी जाती है। मानमंदिर । आबजरवेटरी ।

आकाशवचन--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'आकाशभाषित' [को०] ।

आकाशवर्त्म—संज्ञा पुं० [सं०] १. वायुमंडल ।

आकाशवल्ली--संज्ञा स्त्री० [सं०] अमरबेल ।

आकाशवाणी–संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वह शब्द या वाक्य जो आकाश से देवता लोग बोलें। देववाणी। २. बेतार की युक्ति से प्रसारित वाणी या ध्वनि। रेडियो।

आकाशवृत्ति[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] अनिश्चित जीविका। ऐसी आमदनी जो बँधी न हो ।

आकाशवृत्ति[2]--वि० [सं० **आकाशवृत्तिक**] १. जिसे आकाशवृत्ति का ही सहारा हो। २. (खेत) जिसे आकाश के जल ही का सहारा हो, जो दूसरे प्रकार से न सींचा जा सकता हो ।

आकाशसलिल—संज्ञा पुं० [सं०] १. वृष्टि । २. ओस [को०] ।

आकाशस्फटिक--संज्ञा पुं० [सं०] १. ओला । बनौरी । २. सूर्यकांत या चंद्रकांत मणि [को०] ।

आकाशास्तिकाय—संज्ञा पुं० [सं०] जैनशास्त्रानुसार छह प्रकार के द्रव्यों में से एक। यह एक अरूपी पदार्थ है जो लोक और अलोक दोनों में है और जीव तथा पुद्गल दोनों को स्थान या अवकाश देता है। आकाश।

आकाशी--संज्ञा स्त्री० [सं० **आकाश** + ई० (प्रत्य०)] वह चाँदनी जो धूप आदि से बचने के लिये तानी जाती है ।

आकाशीय–वि० [सं०] १. आकाशसंबंधी। आकाश का । २. आकाश में रहनेवाले। आकाशस्थ। ३. आकाश में होनेवाला। ४. दैवागत। आकस्मिक ।

आकासⓅ—संज्ञा पुं० [सं० **आकाश**] दे० 'आकाश'। उ०–लंका राज विभीषन राजै, ध्रुव आकास विराजैं,। सूर०, १। ३६।

आकासबानीⓅ--संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'आकाशवाणी' उ०--सूर, आकासबानी भई तबै तहँ, यहै बैदेहि है, करु जुहारा।–सूर०, ६। ७६ ।

आकिंचन—संज्ञा पुं० [सं० **आकिञ्चन**]गरीबी । निर्धनता । अकिंचनता [को०] ।

आकिंचन –वि० दे० 'आकिंचन'। उ०–आकिंचन इंद्रियदमन, रमन राम इकतार। तुलसी ऐसे संत जन, बिरले या संसार।—तुलसी ग्रं०, पृ० १२ ।

आकिल—वि० [अ० **आकिल**] बुद्धिमान्। ज्ञानी। अक्लमंद।

आकिलखानी—संज्ञा पुं० [अ० **आकिल** + फा० **खाँ** (नाम)] एक प्रकार का रंग जो कालापन लिए लाल होता है। एक प्रकार का खैरा या काकरेजी रंग।

आकीर्ण[1]—वि० [सं०] १. व्याप्त । पूर्ण । भरा हुआ। २. बिखरा या फैला हुआ। [को०]।

यौ०—**कंटककीर्ण। जनाकीर्ण** ।

आकीर्ण[2]--संज्ञा पुं० भीड़ [को०] ।

आकुंचन—संज्ञा पुं० [सं० **आकुञ्चन**] [वि० **आकुंचनीय आकुंचित**] १. सिकुड़ना। बटुरना। सिमटना। संकोच। २. वैशेषिक शास्त्र के अनुसार पाँच प्रकार के कर्मों में पदार्थों का सिकुड़न। ३. ढेर लगाना [को०]। ४. टेढ़ा करना [को०]। ५. सेना का एक विशेष प्रकार का बढ़ाव [को०] ।

आकुंचनीय–वि० [सं० **आकुञ्चनीय**] सिकुड़ने योग्य । सिमटने योग्य।

आकुंचित—वि० [सं० **आकुञ्चित**] १. सिकुड़ा हुआ। सिमटा हुआ। २. टेढ़ा। कुटिल। वक्र।

आकुंठन--संज्ञा पुं० [सं० **आकुण्ठन**] [वि० **आकुंठित**] १. गुठला होना। कुंद होना। लज्जा। शर्म।

आकुंठित--वि० [सं० **आकुण्ठित**] १. गुठला। कुंद । २. लज्जित। शर्माया हुआ। ३. स्तब्ध। जड़। जैसे,–उनकी बुद्धि आकुंठित हो गई है ।

आकुट्टी हिंसा–संज्ञा स्त्री० [प्रा० **आकुट्टी** + सं० **हिंसा**] उत्साहपूर्वक ऐसा निषिद्ध कर्म करना जिससे किसी प्राणी को दुःख हो ।

आकुल¹--वि० [सं०] [संज्ञा आकुलता] २. व्यग्र। घबराया हुआ। उ०--भारत अब भी आकुल विपत्ति के घेरे में।--दिल्ली०, पृ० २१। २.व्यस्त। बिखरा हुआ। जैसे,--केश। ३. उद्विग्न। क्षुब्ध। ४. विह्वल। कातर। ५. अस्वस्थ। ६. व्याप्त। संकुल। ७. तारतम्यहीन। जिसका कोई ठीक सिलसिला न हो [को०]। ८. जंगली। ऊबड़ खाबड [को०]।

आकुल²--संज्ञा पुं० [सं०] १. खचवर। २. आबाद जगह [को०]।

आकुलता--संज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० आकुलित] १. व्याकुलता। घबराहट। उ०--वह आकुलता अब कहाँ रही जिसमें सब कुछ ही जाय भूल।--कामायनी, पृ० १४५। २. व्याप्ति।

आकुलत्व--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'आकुलता' [को०]।

आकुलित--वि०[सं०]१. व्याकुल। घबराया हुआ। उ०--अब सांध्य मलय आकुलित दुकूल कलित हो, यों छिपते हो क्यों।--चंद्र० पृ० ६३।

आकूणित--वि० [सं०] ईषत् संकुचित [को०]।

आकूत--संज्ञा पुं० [सं०] १. आशय। अभिप्राय २. हार्दिक भावना [को०]। ३. कामना इच्छा [को०]।

आकूति--संज्ञा पुं० [सं०] १.अभिप्राय। आशय। मतलब। २. पुराणानुसार मनु की तीन कन्याओं में से एक जो रुचि प्रजापति को ब्याही थी। ३. उत्साह। अध्यवसाय। ४.सदाचार। आप्तरीति। ५.कर्मेंद्रिय[को०]। ६. वायुपुराण के अनुसार एक कल्प का नाम [को०]।

आकूती--संज्ञा स्त्री० [सं० आकूति] स्वायंभुव मनु की तीन कन्याओं में से एक।

आकृत¹--वि० [सं०] व्यवस्थित। निर्मित। गठित। २. समीप लाया हुआ [को०]।

आकृत²(पु)--संज्ञा स्त्री० [सं० आकृति] मूर्ति। रूप।

आकृति--संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बनावट। गढ़न। ढाँचा। २. अवयव। विभाग। उ०--जानु सुजघन करभकर आकृति, कटि प्रदेस किंकिन राजै।--सूर०, १।६९।

विशेष--इसका प्रयोग हिंदी में चेतन के लिये अधिक और जड़ के लिये कम होता है।

२. मूर्ति। रूप। ३. मुख। चेहरा। जैसे,--उसकी आकृति बड़ी भयावनी है। ४. मुख का भाव। चेष्टा। जैसे,--मरते समय उस मनुष्य की आकृति बिगड़ गई। ५. २२ अक्षरों का एक वर्णवृत्त। मदिरा। हँसी। भद्रक। मंदारमाला इसका भेद है। यह यथार्थ में एक प्रकार का सवैया है। उ०--भासत गौरि गुसाँइन को बर राम धनू दुइ खंड कियो। मालिनि को जयमाल गुहो हरि के हिय जानकि मेलि दियो। रावन की उतरी मदिरा चुपचाप पयान जो लंक कियो। राम बरी सिय मोदभरी नभ में सुर जै जैकार कियो।--(शब्द०)। ६. जातिविशेष [को०]। ७. (गणित में) २२ की संख्या [को०]।

यौ०--आकृतिगण। आकृतिच्छत्रा। आकृतियोग।

आकृष्ट--वि० [सं०] खींचा हुआ। आकर्षित।

आकृष्टि--संज्ञा स्त्री० [सं०] १. खिचाव। २. (ज्योतिष में) गुरुत्वाकर्षण। ३.धनुष की डोरी का खिंचना। ४. तंत्रोक्त आकर्षणक्रिया [को०]।

आकेकर--वि० [सं०] अर्धोन्मीलित (नेत्र) [को०]।

आकोकर--संज्ञा पुं० [सं०] मकर राशि [को०]।

आकोप--संज्ञा पुं० [सं०] ईषत् कोप। जरा सा गुस्सा [को०]।

आकौशल--संज्ञा पुं० [सं०] कुशलता का अभाव [को०]।

आक्रंद--संज्ञा पुं० [सं० आक्रन्द] १.रोदन। रोना। २. चिल्लाना। चीखना। चिल्लाहट। ३. बुलाना। पुकार। ४. मित्र। भाई। बंधु। ५. घोर युद्ध। कड़ी लड़ाई। ६. ध्वनि। आवाज। शब्द। ७.ग्रहयुद्ध में किसी एक ग्रह के दूसरे ग्रह की अपेक्षा बलवान् या विजयी होने की अवस्था। ८. प्रधान शत्रु के पीछे रहकर सहायता करनेवाला शत्रु राजा या राष्ट्र।

आक्रंदन--संज्ञा पुं० [सं० आक्रन्दन] १.रोना। २. चिल्लाना।

आक्रंदिक--वि० [सं० आक्रन्दिक] उस स्थान पर पहुँचनेवाला जहाँ से चिल्लाहट सुनाई दे [को०]।

आक्रंदित¹--वि० [सं० आक्रन्दित] १. जोर जोर से रोने चिल्लानेवाला। २.आहूत (सहायतार्थ) [को०]।

आक्रंदित²--संज्ञा पुं० १. जोर की चिल्लाहट। २. पश्चात्ताप। रोना पीटना [को०]।

आक्रंदी--वि० [सं० आक्रन्दिन्] रोने चिल्लानेवाला [को०]।

आक्रम(पु)--संज्ञा पुं० [सं० आक्रम = परास्त करना] १. पराक्रम। शूरता। (डिं०)। २. दे० 'आक्रमण'।

आक्रमण--संज्ञा पुं० [सं०] [वि० आक्रमणीय, आक्रमित, आक्रांत] १. बलपूर्वक सीमा का उल्लंघन करना। हमला। चढ़ाई। धावा। जैसे,--महमूद ने कई बार भारत पर आक्रमण किया। २. आघात पहुँचाने के लिये किसी पर झपटना। हमला। जैसे,--डाकुओं ने पथिकों पर आक्रमण किया। ३.घेरना। छेंकना। मुहासिरा। ४. आक्षेप करना। निंदा करना। जैसे,--इस लेख में लोगों पर व्यर्थ आक्रमण किया गया है। ५. निकट जा पहुँचना [को०]। ६. भोजन [को०]। ७.शक्ति [को०]।

आक्रमणकारी--वि० [सं० आक्रमणकारिन्] [स्त्री० आक्रमणकारिणी] आक्रमण करनेवाला। आक्रामक।

आक्रमित--वि०[सं० आक्रमिता] जिस पर आक्रमण किया गया हो।

आक्रमितानायिका--संज्ञा स्त्री०[सं०] वह प्रौढ़ा नायिका जो मनसा, वाचा, कर्मणा अपने प्रिय को वश में करे।

आक्रय--संज्ञा पुं० [सं०] १. व्यापारी। २. व्यापार [को०]।

आक्रांत--वि० [सं० आक्रान्त] १. जिसपर आक्रमण किया गया हो। जिसपर हमला हुआ हो। २. घिरा हुआ। आवृत्त। छिका हुआ। ३. वशीभूत। पराजित। विवश। ४. पीड़ित। दलित। दबाया हुआ। ५. व्याप्त। आकीर्ण। ६. प्राप्त [को०]। ७. सज्जित [को०]।

यौ०--आक्रांतनायिका = वह नायिका जिसका प्रेमी या पति जीत लिया गया हो। आक्रांतमति = जिसकी मति मारी गई हो।

आक्रांति--संज्ञा स्त्री० [आक्रान्ति] १. उथल पुथल। उपद्रव। २. अधिकार करना [को०]। ३. दबाना। चाँपना [को०]। ४. ऊपर चढ़ना [को०]। ५. शक्ति। ताकत [को०]।

आक्रामक—वि० [सं०] आक्रमणकारी [को०]।

आक्रीड़—संज्ञा पुं० [सं० आक्रीड] १. क्रीड़ा का स्थान। २. क्रीड़ा। खेल कूद। कुलेल [को०]।

यौ०—**आक्रीड़गिरि, आक्रीड़पर्वत** = क्रीड़ा के लिये निर्मित कृत्रिम पर्वत।

आक्रीड़न—संज्ञा पुं० [सं० आक्रीडन] खेलना कूदना [को०]।

आक्रीड़ी—वि० [सं० आक्रीडिन्] खेलनेवाला [को०]।

आक्रुष्ट[1]—वि०[सं०]शापित। कोसा हुआ। (जिसे)गाली दी गई हो।

आक्रुष्ट[2]—संज्ञा पुं०[सं०] १. डाँट फटकार। २. परुष भाषण [को०]।

आक्रोश—संज्ञा पुं०[सं०][वि० आक्रुष्ट, आक्रोशित]१. कोसना। शाप देना। गाली देना। २. धर्मशास्त्रानुसार कुछ दोष लगाते हुए जाति कुल आदि का नाम लेकर किसी को कोसना।

विशेष—वह नारद के मत से तीन प्रकार का है—निष्ठुर, अश्लील और तीव्र। तू मूर्ख है, तुझे धिक्कार है, इत्यादि कहना निष्ठुर है। माँ बहिन आदि की गाली देना अश्लील और महापातकादि दोषों का आरोप करना तीव्र है।

३. शपथ [को०]।

यौ०—**आक्रोशपरिषह** = जैनशास्त्रानुसार किसी के अनिष्ट वचन को सुनकर कोप न करना।

आक्रोशक—वि० [सं०] १. डाँटने फटकारनेवाला। २. गाली देनेवाला [को०]।

आक्रोशन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'आक्रोश' [को०]।

आक्रोशित—वि० [सं०] दे० 'आक्रुष्ट'।

आक्लांत—वि० [सं० आक्लान्त] सना हुआ। पोता हुआ।

यौ०—**रुधिराक्लांत** = खून से तर बतर।

आक्लिन्न—वि०[सं०] १. आर्द्र। ओदा। तर। २. नरम। कोमल। ३. दयार्द्र [को०]।

आक्लेद—संज्ञा पुं० [सं०] नमी। तरावट। गीलापन [को०]।

आक्ष—वि० [सं०] १. अक्षांश संबंधी। २. अक्षसंबंधी [को०]।

आक्षकी, आक्षिकी—संज्ञा स्त्री०[सं०]बहेड़े के बीज से तैयार होनेवाली मदिरा [को०]।

आक्षद्यूतिक—वि० [सं०] जूए से प्रभावित या संपन्न [को०]।

आक्षपटलिक—संज्ञा पुं० [सं०] १. लेखा जोखा या कागज पत्र रखनेवाला। २. गणनाधिकारी [को०]।

आक्षपाटिक—संज्ञा पुं० [सं०] १. जूए का निर्णायक। २. द्यूतगृह का प्रबंधक या संचालक [को०]।

आक्षपाद[1]—वि० [सं०] अक्षपाद या गौतम का शिष्य।

आक्षपाद[2]—संज्ञा पुं० १. न्यायदर्शन का अनुयायी। नैय्यायिक। २. न्यायदर्शन [को०]।

आक्षारण—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० आक्षारणा] व्यभिचार का दोषारोप [को०]।

आक्षारित—वि० [सं०] १. मैथुनापराधी। जिसने संभोग किया हो। २. संयुक्त [को०]।

आक्षिक[1]—वि० [सं०] [वि० स्त्री० आक्षिकी] १. पासा फेंकनेवाला। २. जूए से उपार्जन करनेवाला। ३. जुए द्वारा जीता हुआ। ४. जूए या पासे से संबंधित [को०]।

आक्षिक[2]—संज्ञा पुं० १. वृक्षविशेष। २. जूए से अर्जित द्रव्य। ३. जूए में हारी हुई रकम।

आक्षिक ऋण—संज्ञा पुं० [पुं०] जूआ खेलने के लिये पाया हुआ ऋण।

आक्षिक पण—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की शराफत [को०]।

आक्षिप्त—वि० [सं०] १. फेंका हुआ। गिराया हुआ। उ०—विषय-सुख-लालसा दंस-मसकादि, खल झिल्लि रूपादि सब सर्प स्वामी। तत्र आक्षिप्त तव विषय माया, नाथ अंध मैं मंद व्यालादगामी।—तुलसी ग्रं०, पृ० ४८६। २. दूषित। अपवादित। ३. निंदित। ४. अभिभूत। बहकाया हुआ (को०)। ५. घबड़ाया हुआ (को०)। ६. प्रक्षिप्त। जोड़ा हुआ (को०)। ७. छीना हुआ (को०)। ८. समकक्ष (को०)।

आक्षीब—वि० [सं०] १. थोड़ी मदिरा पिए हुए। २. मत्त। नशे में बुत [को०]।

आक्षीव—संज्ञा [सं०] सहिजन।

आक्षेप—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० आक्षेपी, आक्षिप्त] १. फेंकना। गिराना। २. आरोप। दोष लगाना। अपवाद या इलजाम लगाना। ३. कटूक्ति। निंदा। ताना। जैसे,—उस लेख में बहुत लोगों पर आक्षेप किया गया है। ४. एक रोग जिसमें रोगी के अंग में कँपकँपी होती है। यह वातरोग का एक भेद है। ५. ध्वनि। व्यंग्य। अग्निपुराण के अनुसार यह ध्वनि का पर्याय है, पर अन्य अलकारियों ने इसमें कुछ विशेषता बतलाई है; अर्थात जिस ध्वनि की सूचना निषेधात्मक वर्णन द्वारा मिले, उसे आक्षेप कहना चाहिए। उ०—दर्शन दे मोहि चंद ना, दर्शन को नहिं काम। निरख्यो तब प्यारी बदन, नवल अमल अभिराम।—(शब्द०)। ६. किसी वर्णन में न दी हुई प्रासंगिक बात को ऊपर से जोड़ना। शब्दों द्वारा न कही हुई बात को अपनी ओर से लगाना। अध्याहार। उ०—मुक्तक में जहाँ नायक नायिका का चित्रण नहीं होता वहाँ उनका ग्रहण आक्षेप द्वारा होता है।—रस०, पृ० १२८। ७. निधि (को०)। ८. आपत्ति। संदेह(को०)। ९. धड़कन (को०)। १०. स्तब्धता (को०)। ११. पोतना। लगाना (को०)। १२. पहुँच (बाण की)।

आक्षेपक[1]—वि० [सं०] [वि० स्त्री० आक्षेपिका] फेंकनेवाला। २. खींचनेवाला। ३. आक्षेप करनेवाला। निंदक।

आक्षेपक[2]—संज्ञा सं० [सं०] १. एक वातरोग जिसमें वायु कुपित होकर धमनियों में प्रवेश कर जाती है और बार बार शरीर को कँपाया करती है। २. शिकारी (को०)।

आक्षेपण[1]—वि० [सं०] [वि० स्त्री० आक्षेपणी] आकर्षण करनेवाला। संमोहित करनेवाला [को०]।

आक्षेपण[2]—संज्ञा पुं० १. फेंकना। पवारना। २. निंदा करना [को०]।

आक्षेपी—वि० [सं० आक्षेपिन्] दे० 'आक्षेपक'।

आक्षोट, आक्षोड—संज्ञा पुं० [सं०] अखरोट।

आक्षोदन—संज्ञा पुं० [सं०] शिकार। आखेट। मृगया [को०]।

आक्साइड—संज्ञा पुं० [अं०] आक्सीजन और किसी तत्व [एलिमेंट) के मेल से बना एक पदार्थ या द्रव्य। अम्लजिद।

विशेष–भिन्न भिन्न तत्वों के संयोग से भिन्न प्रकार के आक्साइड बनते हैं, जैसे पारे से आक्साइड आफ मर्करी, जस्ते से आक्साइड आफ जिंक, लोहे से आक्साइड आफ आइरन इत्यादि।

आक्सीजन–संज्ञा पुं० [अं०] एक गैस या सूक्ष्म वायु। अम्लज। अम्लजन। प्राणद। प्राणप्रद। ओषजन।

विशेष––यह रूप, रस, गंधरहित पदार्थ है और वायुमंडलगत वायु से कुछ भारी होता है तथा पानी में घुल जाता है। यह जल में ८९ फी सदी होता है। धातु में लगकर यह मोरचा उत्पन्न करता है। प्राणियों के जीवन के लिये यह बहुत आवश्यक है। यह बहुत से पदार्थों में संयुक्त रूप में मिलता है।

आखंडल––संज्ञा पुं० [सं० आखण्डल] इंद्र।

आख––संज्ञा पुं० [सं०] खंता। खंती। रंभा।

आखण––वि० [सं०] (खोदने या खनने में) कड़ा। जैसे,–पत्थर [को०]।

आखत(पु)†––संज्ञा पुं० [सं० **अक्षत**, प्रा० **अक्खत**] १. अक्षत। उ०––सेवा सुमिरन पूजिबो पात आखत थोरे।–तुलसी ग्रं०, पृ० ४५७। २. चंदन या केसर में रँगा हुआ चावल जो मूर्ति के मस्तक पर स्थापना के समय और दूल्हा दुलहिन के माथेपर विवाह के समय लगाया जाता है। ३. वह अन्न जो गृहस्थ लोग नेगी परजों को विवाहादि अवसरों पर किसी विशेष कृत्य के उपलक्ष में देते हैं।

आखता––वि० [फा० **आखता**] जिसके अंडकोश चीरकर निकाल लिए गए हों। बधिया।

विशेष––यह शब्द प्राय: घोड़े के लिये प्रयुक्त होता है; पर कोई कोई इस शब्द का कुत्ते और बकरे के लिये भी प्रयोग करते हैं।

आखन[1](पु)––क्रि० वि० [सं० **आ+क्षण**] प्रति क्षण। हर घड़ी।

आखन[2]––संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'आख' [को०]।

आखना[1](पु)–क्रि० स० [सं० **आख्यान**, प्रा० **आक्खान**, पं० √**आखना**] उ०––कहना। बोलना। उ०––(क) बार बार का आखिये, मेरे मन की सोय। कलि तो ऊखल होयगी, साईं और न होय।–कबीर (शब्द०)। (ख) सत्यसंध साँचे सदा, जे आखर आखे। प्रनतपाल पाए सही, जे फल अभिलाखे।––तुलसी (शब्द०)।

आखना[2]––क्रि० स० [सं० **आकांक्षा**] चाहना। इच्छा करना। उ०––तोहि सेवा बिछुरन नहिं आखौं। पींजर हिये घालि कै राखौं।––जायसी ग्रं०, पृ० २२।

आखना[3]––क्रि० स० [सं० **अक्षि**, प्रा० **अक्खि=आँख**] देखना। ताकना। उ०––अलक, भुअंगिन अधरहि आखा। गहै जो नागिन सो रस चाखा।––जायसी।–(शब्द०)। (ख) आत्म और विषै को सुख वाच्य पद आनंद को। विषै सुख त्यागि आत्म सुख लक्ष्य आखिये।––निश्चल (शब्द०)।

आखना[4]––क्रि० स० [हिं० **आखा**] मोटे आटे को आखे में डालकर चालना। छानना।

आखनिक––संज्ञा पुं० [सं०] १. खनक। २. चूहा। ३. शूकर। ४. चोर। ५. कुदाल [को०]।

आखर[1](पु)––संज्ञा पुं० [सं० **अक्षर**, प्रा० **अक्खर**] अक्षर। उ०––(क) तब चंदन आखर हिय लिखे। भीख लेइ तुइ जोग न सिखे।–जायसी ग्रं०, पृ० ८४। (ख) कबिहि अरथ आखर बलु साँचा। अनुहरि ताल गतिहि नटु नाँचा।––मानस, २।२४०।

क्रि० प्र०––**देना**=बात देना। प्रतिज्ञा करना।

आखर[2]––संज्ञा पुं० [सं०] १. फावड़ा। कुदाल। २. खनक। ३. जानवर की माँद। विवर। ४. अग्नि का एक नाम [को०]।

आखा[1]––संज्ञा पुं० [सं० **आक्षरण=छानना**] झीने कपड़े से मढ़ा हुआ एक मेड़रेदार बरतन जिसमें मोटे आटे को रखकर चालने से मैदा निकलता है। एक प्रकार की चलनी। आँघी।

आखा[2]––संज्ञा पुं० [देश०] खुरजी। गठिया।

आखा[3]––वि० [सं० **अक्षय**, प्रा० **अक्खय**] १. कुल। पूरा। समूचा। समस्त। उ०––कहियें जिय न कछू सक राखौ। लाँबी मेलि दई हैं तुमको, बकत रहौ दिन आखौ।––सूर०, १०।३५४०। जैसे,––उसे आज आखा दिन बिना खाए बीता। २. अनगढ़ा। समूचा। जैसे,––आखा लकड़ी (लश्करी)।

आखातीज––संज्ञा स्त्री० [सं० **अक्षयतृतीया**] वैशाख सुदी तीज। अक्षयतृतीया।

विशेष––इस दिन हिंदुओं के यहाँ बट का पूजन होता है और ब्राह्मणों को पंखे,सुराहियाँ, ककड़ी, आदि ठंढक पहुँचानेवाली चीजें दी जाती हैं।

आखानवमी––संज्ञा स्त्री० [सं० **अक्षयनवमी**] कार्तिक शुक्ला नवमी। दे० 'अक्षय नवमी'।

आखिर[1]–वि० [फा० **आखिर**] अंतिम। पीछे का। पिछला।

यौ०––**आखिर जमाना। आखिर दम।**

आखिर[2]–संज्ञा पुं० १. अंत। जैसे,––आखिर को वह ले के टला। २. परिणाम। फल। नतीजा। जैसे,––इस काम का आखिर अच्छा नहीं।

आखिर[3]––वि० समाप्त। खतम। उ०––उपजै औ पालै अनुसरै। बावन अक्षर आखिर करै।––कबीर (शब्द०)।

आखिर[4]––क्रि० वि० १. अंत में। अंत को। जैसे,––(क) आखिर उसे यहाँ से चला ही जाना पड़ा। (ख) वह कितना ही क्यों न बढ़ जाय, आखिर है तो नीच ही। २. हारकर। हार मानकर थककर। लाचार होकर। जैसे,––जब उसने किसी तरह नहीं माना, तब आखिर उसके पैर पड़ना पड़ा। ३. अवश्य। जरूर। जैसे,––आपका काम तो निकल गया, आखिर हमें भी तो कुछ मिलना चाहिए। ४. भला। अच्छा। खैर। तो। जैसे,–अच्छा आज बच गए, जाओ, आखिर कभी तो भेंट होगी।

आखिरकार––क्रि० वि० [फा० **आखिरकार**] अंत में। अंजाम को। अंत को। जैसे,–सुनते सुनते आखिरकार उससे नहीं रहा गया और वह बोल उठा।

आखिरत––संज्ञा स्त्री० [अ० **आखिरत**] १. परलोक। २. अंत। ३. फल। [को०]।

आखिरी–वि० [फा० **आखिरी**] अंतिम। सबसे। पिछला। उ०–फैशन को लगना, स्यात्, आखिरी घाव अभी तक बाकी है।–साम०, पृ० ३१।

आखु––संज्ञा पुं० [सं०] १. मूसा। चूहा।

यौ०––**आखुकर्णपर्णिका, आखुकर्णी, आखुपर्णिका, आखुपर्णी=**

मूसाकानी लता। आखुग, आखुपत्र, आखुभुक् = बिलार। आखुरथ = आखुवाहन = गणेश।

२. देवताल। देवहाड। ३. सूअर। शूकर। ४. कुदाल। फावड़ा [को०]। ५. चोर [को०]। ६. कृपण। कंजूस [को०]।

आखुकरीष—संज्ञा पुं० [सं०] वाल्मीक [को०]।

आखुघात—संज्ञा पुं० [सं०] मूस पकड़ने या मारनेवाला। मुसहर [को०]।

आखुपाषाण—संज्ञा पुं० [सं०] १. चुंबक पत्थर। २. संखिया नामक विष।

आखबाहन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० आखुवाहन] गणेश। उ०—अभिलाष लाख लाहन समुझि राखु आखुवाहन हृदय।—भिखारी० ग्रं०, भा० १, पृ० १।

आखुभुक्—संज्ञा पुं० [सं०] विडाल। बिलार [को०]।

आखुबिषहा—संज्ञा पुं० [सं०] देवताली लता [को०]।

आखेट—संज्ञा पुं० [सं०] अहेर। शिकार। मृगया।

आखेटक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] शिकार। अहेर।

आखेटक[2]—वि० [सं०] शिकार करनेवाला। शिकारी। अहेरी।

आखेटिक[1]—वि० [सं०] १. कुशल शिकार करनेवाला। २. भयानक। डरावना [को०]।

आखेटिक[2]—संज्ञा पुं० १. शिकारी। २. शिकारी कुत्ता [को०]।

आखेटी—वि० [सं० आखेटिन्][वि० स्त्री० आखेटिन] शिकारी। अहेरी।

आखोट—संज्ञा पुं० [सं० आक्षोट] अखरोट।

आखोर[1]—संज्ञा पुं० [तु० आखोर] १. जानवरों के खाने से बची हुई घास या चारा। पखोर। २. चरनी। ३. जानवरों के पानी पीने का हौद। ४. कूड़ा करकट। ५. निकम्मी वस्तु। सड़ी गली चीज।

मुहा०—आखोर की भरती = (१) निकम्मों का समूह। (२) निकम्मी चीजों का अटाला।

आखोर[2]—वि० १. निकम्मा। बेकाम। २. सड़ा गला। रद्दी। ३. मैला कुचैला।

आख्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. नाम। २. कीर्ति। यश। ३. विवरण। व्याख्या। ४. आकृति। चेहरा [को०]। ५. सौंदर्य। गरिमा [को०]।

आख्यात[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. तिङन्त क्रिया। २. राजवंश के लोगों का वृत्तांत। ३. प्रयाणकाल का आनुमानिक सूचन [को०]।

आख्यात[2]—वि० १. प्रसिद्ध। नामवर। विख्यात। २. कहा हुआ। उक्त।

आख्यातव्य—वि० [सं०] वर्णन करने योग्य। कहने योग्य। बयान करने लायक।

आख्याता—वि० [सं० आख्यातृ] कहनेवाला। उपदेशक। शिक्षक [को०]।

आख्याति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. नामवरी। ख्याति। शुहरत। २. कथन।

आख्यान—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० आख्यात, आख्यातव्य, आख्येय] १. वर्णन। वृत्तांत। बयान। २. कथा। कहानी। किस्सा। ३. उपन्यास के नौ भेदों में से एक। वह कथा जिसे कवि ही कहे, पात्रों से न कहलावे।

विशेष—इसका आरंभ कथा के किसी अंश से कर सकते हैं, पर पीछे से पूर्वापर संबंध खुल जाना चाहिए। इसमें पात्रों की बातचीत बहुत लंबी चौड़ी नहीं हुआ करती। चूँकि कथा कहनेवाला कवि ही होता है और वह पूर्वघटना का वर्णन करता है, इससे इसमें अधिकतर भूतकालिक क्रिया का प्रयोग होता है, पर दृश्यों को ठीक ठीक प्रत्यक्ष कराने के लिये कभी कभी वर्तमानकालिक क्रिया का भी प्रयोग होता है। जैसे,—सूर्य डूब रहा है, ठंढी हवा चल रही है, इत्यादि। आजकल के नए ढंग के उपन्यास इसी के अंतर्गत आ सकते हैं।

४. जवाब। उत्तर [को०]। ५. भेदक धर्म [को०]। ६. प्रबंधक काव्य का अध्याय या सर्ग [को०]। ७. पौराणिक कथा [को०]।

आख्यानक—संज्ञा पुं० [सं०] १. वर्णन। वृत्तांत। बयान। १. कथा। किस्सा। कहानी। ३. पूर्ववृत्तांत। कथानक।

आख्यानकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] इंद्रवज्रा तथा उपेंद्रवज्रा के मेल से निर्मित छंदविशेष [को०]।

आख्यानिकी—संज्ञा पुं० [सं०] दंडक वृत्त के भेदों में से एक जिसके विषम चरणों में त, त, ज, ग, ग, और सम में ज, त, ज, ग, ग हो। उ०—गोविंद गोविंद सदा रटौ जू। असार संसार तबै तरौ जू। श्रीकृष्ण राधा भजु नित्य भाई। जु सत्य चाहो अपनी भलाई (शब्द०)।

विशेष—इसके विरुद्ध अर्थात् इसके विषम चरण का लक्षण सम चरण में आवे और सम चरण का लक्षण विषम चरण में आवे, तो उस वृत्त को ख्यानिकी कहेंगे।

आख्यापक[1]—वि० [सं०] [स्त्री० आख्यायिकी] कहनेवाला।

आख्यायक[2]—संज्ञा पुं० दूत।

आख्यापन—संज्ञा पुं० [सं०] प्रकट करना। प्रकाश करना। कहना। कथन।

आख्यायक[1]—वि० [सं०] बतानेवाला। सूचना देनेवाला [को०]।

आख्यायक[2]—संज्ञा पुं० १. दूत। २. नेता। प्रवक्ता [को०]।

आख्यायिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कथा। कहानी। किस्सा। २. कल्पित कथा जिससे कुछ शिक्षा निकले। ३. एक प्रकार का आख्यान जिसमें पात्र भी अपने अपने चरित्र अपने मुँह से कुछ कुछ कहते हैं।

विशेष—प्राचीनों में इसके विषय में मतभेद हैं। अग्निपुराण के अनुसार यह गद्यकाव्य का वह भेद है जिसमें विस्तारपूर्वक कर्ता की वंशप्रशंसा, कन्याहरण, संग्राम वियोग और विपत्ति का वर्णन हो; रीति, आचरण और स्वभाव विशेष रूप से दिखाए गये हों, गद्य सरल हो और कहीं कहीं छंद हो। इसमें परिच्छेद के स्थान पर उच्छवास होना चाहिए। वाग्भट्ट के मत से वह गद्यकाव्य जिसमें नायिका ने अपना वृत्तांत आप कहा हो, भविष्यद्विषयों की पूर्वसूचना हो, कन्या के अपहरण, समागम और अभ्युदय का हाल हो, मित्रादि के मुँह से चरित्र कहलाए गये हों और बीच बीच में कहीं कहीं पद्य भी हों।

आख्येय—वि० [सं०] दे० 'आख्यातव्य'।

आगंता—वि० [सं० आगन्तृ] आने की इच्छावाला [को०]।

आगंतु—वि० [सं० **आगन्तु**] १. आनेवाला। २. बाहर से आनेवाला। ३. पथभ्रष्ट। भटका हुआ। ४. अचानक होनेवाला। दे० 'आगंतुक' [को०]।

आगंतुक¹—वि० [सं० **आगन्तुक**] [स्त्री० **आगंतुका, आगंतुकी**] १. जो आवे। आगमनशील। २. जो इधर उधर से घूमता फिरता आ जाय। उ०—लगा कहने आगंतुक व्यक्ति मिटाता उत्कंठा सविशेष।—कामायनी, पृ० ५०।

आगंतुक²—संज्ञा पुं० १. अतिथि। पहुना। २. वह पशु जिसके स्वामी का पता न हो। ३. अचानक होनेवाला रोग। ३. प्रक्षिप्त पाठ (को०)।

यौ०—**आगंतुक ज्वर**=वह ज्वर जो चोट, भूत, प्रेत के भय या अधिक श्रम करने आदि से अचानक हो जाय। **आगंतुक अनिमित्त लिंगनाश**=एक प्रकार का चक्षुरोग जिसमें आँख की ज्योति मारी जाती है। प्राचीनों के अनुसार यह रोग देवता, ऋषि, गंधर्व, बड़े सर्प और सूर्य के देखने से हो जाता है। **आगंतुकव्रण**=वह घाव जो चोट के पकने से हो। **आगंतुक व्याधि**=किसी बिमारी के बीच में होनेवाली बिमारी।

आग¹—संज्ञा स्त्री० [सं० **अग्नि**, प्रा० **अग्गि**] १. तेज और प्रकाश का पुंज जो उष्णता की पराकाष्ठा पर पहुँची हुई वस्तुओं में देखा जाता है। अग्नि। वैसंदर। २. जलन। ताप। गरमी। जैसे,—वह डाह की आग से झुलसा जाता है। ३. कामाग्नि। काम का वेग। जैसे—तुम्हें ऐसी ही आग है तो उनसे जाकर मिलो न। ४. वात्सल्य प्रेम। जैसे,—जो अपने बच्चे की आग होती है वह दूसरे के बच्चे की नहीं। ५. डाह। ईर्ष्या। जैसे,—जिस दिन से हमें इनाम मिला है, उसी दिन से उसे बड़ी आग है।

आग²—वि० जलता हुआ। बहुत गरम। जैसे,—चिलम तो आग हो रही है। २. जो गुण में उष्ण हो। जो गरमी फूँके। जैसे,—अरहर की दाल तो आजकल के लिये आग है।

मुहा०—**आग उगलना**=कड़ुए वचन सुनाना। जली कटी सुनाना। **आग उठाना**=झगड़ा उठाना। कलह या उपद्रव उत्पन्न करना। **आग कँजियाना** या **कँवाना**=आग का ठंढा होना। दहकते हुए कोयले का ठंढा होकर काला पड़ जाना। **आग करना**=(१) आग जलाना। (२) बहुत गर्म करना। आग की तरह जलता हुआ बनाना। **आग का पतंगा**=चिनगारी। जलता हुआ कोयला। **आग का पुतला**=क्रोधी। चिड़चिड़ा। **आग का बाग**=(१) सुनार का अंगीठा। २. आतिशबाजी। **आग कुरेदना**=(१) गुस्सा भड़काना। क्रुद्ध करना। २. दबे या पुराने गुस्से को उभाड़ना। **आग के मोल**=बहुत मँहगा। जैसे,—यहाँ तो चीजें आग के मोल बिकती हैं। **आग खाना, अंगार हगाना**=जैसा करना, वैसा पाना। जैसे—हमें क्या, जो आग खाएगा, वह अँगार हगेगा। **आग गाड़ना**=कंडे को राख में सुरक्षित रखना। **आग जोड़ना**=आग सुलगाना। आग जलाना। **आग झाड़ना**=पत्थर या चकमक से आग बनाना। **आग दिखाना**=(१) आग लगाना। जलाने के लिये आग छुलाना। (२) तोप में बत्ती देना। **आग देना**=(१) चिता में आग लगाना। दाहकर्म करना। (२) आतिशबाजी में आग लगाना। आग लगाना। फूँकना। उ०—लागी कंठ आगि देइ होरी। छार भई जरि अंग न मोरी।—जायसी ग्रं०, पृ० ३००। (३) बरबाद करना। नष्ट करना। जैसे,—उसके पास है क्या, उसने तो अपने घर में आग दे दी। (४) **तोप में बत्ती देना**=रंजक पर पलीता छुलाना। **आग धोना**=अंगारों के ऊपर से राख दूर करना। जैसे,—आग धोकर चिलम पर रखना। **आग पर आग डालना**=किसी भड़के हुए व्यक्ति को और भड़काना। **आग पर पानी डालना**=झगड़ा शांत करना। **आग पर लोटना**=बेचैन होना। विकल होना। तड़पना। उ०—वह बिरह के मारे आग पर लोट रहा है। २. डाह से जलना। ईर्ष्या करना। जैसे,—यह हमें देखकर आग पर लोट जाता है। **आग पानी का बैर**=स्वाभाविक शत्रुता। जन्म का बैर। **आग फाँकना**=(१) व्यर्थ की बकवाद करना। बात बघारना। झूठी शेखी हाँकना। जैसे,—उनकी क्या बात है, वे तो यों ही आग फाँका करते हैं। (२) असंभव कार्य को संभव करने की चेष्टा। **आग फुँकना**=क्रोध उत्पन्न होना। रिस लगना। जैसे,—यह बात सुनते ही मेरे तन में आग फुँक गई। **आग फूँक देना**=जलन उत्पन्न करना। गरमी पैदा करना। जैसे,—इस दवा ने तो और आग फूँक दी है। **आग फूस का बैर**=स्वाभाविक शत्रुता। जन्म का बैर। **आग बनाना**=आग सुलगाना। **आगबबूला (बगूला) होना या बनाना**=क्रोध के आवेश में होना। अत्यंत कुपित होना। जैसे,—इस बात के सुनते ही वह आगबबूला हो गया। **आग बरसना**=(१) बहुत गरमी पड़ना। (२) लू चलना। २. गोलियों की बौछार होना। **आग बरसाना**=शत्रु पर खूब गोलियाँ चलाना। जैसे,—सिपाहियों ने किले पर खूब आग बरसाई। **आग बुझा लेना**=कसर निकालना। बदला लेना। जैसे,—अच्छा मौका है, तुम भी अपनी आग बुझा लो। **आग बोना**=(१) आग लगाना। उ०—योगी आहि वियोगी कोई। तुम्हरे मँडप आगि जिन बोई।—जायसी, (शब्द०)। २. चुगलखोरी करके झगड़ा उत्पात खड़ा करना। जैसे,—यह सब आग तुम्हारी ही बोई तो है। **आग भड़कना**=(१) आग का धधकना। २. लड़ाई उठना। उत्पात खड़ा होना। जैसे,—दोनों दलों के बीच आजकल खूब आग भड़की है। ३. उद्वेग होना। जोश होना। क्रोध और शोक आदि भावों का तीव्र और उद्दीप्त होना। जैसे,—(क) शत्रु को सामने देखकर उसकी आग और भड़क उठी। (ख) अपने मृत पुत्र की टोपी देखकर माता की आग और भड़क उठी। **आग का भड़कना**=(१) आग धधकना। २. लड़ाई लगाना। ३. क्रोध और शोक आदि भावों को उद्दीप्त करना। जोश बढ़ाना। **आग भभूका होना**=क्रोध से लाल होना। **आग में कूदना**=जान बूझकर विपत्ति मोल लेना। **आग में घी डालना**=(१) क्रोधित व्यक्ति को और क्रुद्ध करना। (२) आहुति डालना। होम करना। **आग में मूतना**=अति करना। जैसे,—सीधे चलो, क्यों आग में मूतते हो। **आग में झोंकना**=(१) आफत में डाल देना। (२) लड़की को ऐसे घर ब्याह देना, जहाँ उसे

हर घड़ी कष्ट हुआ करे। **आग में पानी डालना**=झगड़ा मिटाना। बढ़ते हुए क्रोध को धीमा करना। **आग लगना**=आग से किसी वस्तु का जलना उ०—नयन चुवहिं जस महवट नीरू। तेहि जल आग लाग सिर चीरू।—जायसी (शब्द०)। जैसे—उसके घर में आग लग गई। (२) क्रोध उत्पन्न होना। कुढ़न होना। बुरा लगना। मिर्चा लगना। जैसे,—(क) उसकी कड़वी बातें सुनकर आग लग गई। (ख) तुम तो मनमाना बके, अब हमारे जरा सी कहने पर आग लगती है। (३) ईर्ष्या होना। डाह होना। जैसे,—किसी को सुख चैन से देखा कि बस आग लगी। (४) लाली फैलना। लाल फूलों का चारों ओर फूलना। उ०—बागन बागन आग लगी है (शब्द०)। (५) महँगी फैलाना। गिरानी होना। जैसे,—(क) बाजार में तो आजकल आग लगी है। (ख) सब चीजों पर तो आग लगी है कोई ले क्या। (६) बदनामी फैलना। जैसे,—देखो चारों ओर आग लगी है, सँभलकर काम करो (७) हटना। दूर होना। जाना। उ०—कभी यहाँ से तुम्हें आग भी लगेगी (स्त्री०)। (८) किसी तीव्र भाव का उदय होना। जैसे,—उसे देखते ही हृदय में आग लग गई। ९.सत्यानाश होना। नष्ट होना। जैसे,—आग लगे तुम्हारी इस चाल पर (यह मुहाविरा स्त्रियों में अधिक प्रचलित है। वे इसे अनेक अवसर पर बोला करती हैं, कभी चिढ़कर, कभी हावभाव प्रकट करने के हेतु और कभी यों ही बोल देती हैं) जैसे,—(क) आग लगे मेरी सुध पर, क्या करने आई थी, क्या करने लगी। (ख) आग लगे, यह छोटा सा लड़का कैसा स्वाँग करता है। (ग) आग लगे, कहाँ से मैं इसके पास आई। **आग लगाना**=(१) आग से किसी वस्तु को जलाना। जैसे,—उसने अपने ही घर में आग लगा दी। (२) गरमी करना। जलन पैदा करना। जैसे,—उस दवा ने तो बदन में आग लगा दी। (३) उद्वेग बढ़ाना। जोश बढ़ाना। किसी भाव को उद्दीपित करना। भड़काना। ४. ईर्ष्या उत्पन्न करना। ५.क्रोध उत्पन्न करना। ६. चुगली करना। जैसे,—उसी ने तो मेरे भाई से जाकर आग लगाई है। ७. बिगाड़ना। नष्ट करना। जैसे,—जो चीज उसे बनाने को दी जाती है, उसी में वह आग लगा देती है। (स्त्री०)। ८.फूँकना। उड़ाना। बरबाद करना। जैसे,—वह अपनी सारी संपत्ति में आग लगाकर बैठा है। ९. खूब धूमधाम करना। बड़े बड़े काम करना। (व्यंग्य) जैसे,—तुम्हारे पुरखों ने विवाह में कौन सी आग लगाई थी कि तुम भी लगाओगे। **आग लगाकर पानी को दौड़ाना**=झगड़ा उठाकर फिर सबको दिखाकर उसकी शांति का उद्योग करना। **आग भी न लगाना**=बहुत तुच्छ समझना। जैसे,—उससे बोलने की कौन कहे, मैं तो उसको आग भी न लगाऊँ। (स्त्री०)। **आग लगने पर कुआँ खोदना**=(१) कोई कठिनाई कार्य आ पड़ने पर उसके करने के सीधे उपाय छोड़ बड़ी लंबी चौड़ी युक्ति लगाना। (२) ऐन मौके पर कोई कार्य करने लग जाना। **आग लगाकर तमाशा देखना**=झगड़ा या उपद्रव खड़ा करके अपना मनोरंजन करना। **आग लेने आना**=आकर फिर थोड़ी देर में लौट जाना। उलटे पाँव लौटना। थोड़ी देर के लिये आना। जैसे,—(क) जरा बैठो भाई, क्या आग लेने आए हो? (ख) आग लेने आई, घरवाली बन बैठी। **आग से पानी होना या हो जाना**=क्रुद्ध से शांत होना। रिस का जाता रहना। जैसे,—उसकी बातें ही ऐसी मीठी होती हैं कि आदमी आग से पानी हो जाय। **आग होना**=(१) गर्म होना। लाल अंगार होना। २.क्रुद्ध होना। रोष में भरना। जैसे,—यह बात सुनते ही वे आग हो गए। **किसी की आग में कूदना या पड़ना**=किसी की विपत्ति अपने ऊपर लेना। **तलवों से आग लगाना**—शरीर भर में क्रोध व्याप्त होना। रिस से भर उठना। जैसे,=उसकी झूठी बात से और भी तलवों से आग लग गई। **पानी में आग लगाना**=(१)ऐसी अनहोनी बातें कहना जिनका होना संभव न हो। (२) असंभव कार्य करना। (३) जहाँ लड़ाई की कोई बात न हो वहाँ भी लड़ाई लगा देना। **पेट की आग**=भूख। जैसे,—कोई दाता ऐसा है जो पेट की आग बुझावे। **पेट में आग लगना**=भूख लगना। जैसे—इस लड़के के पेट में सबेरे से ही आग लगती है। **मुँह में आग लगना**=मरना। जैसे,—उसके मुँह में कब आग लगेगी। (शवदाह के समय मुर्दे के मुँह में आग लगाई जाती है।) **आग लगे मेंह मिलना या पाना**=तात्र पर किसी काम का चटपट होना। उ०—याकें तौ आजु ही मिलौं कि अरि जाऊँ ऐसें। आगि लागे मेरी माई मेहु पाइयतु है—केशव ग्रं०, भा० १, पृ० ६६। **आग पर आग मेलना**=जले को जलाना। दुःख पर दुःख देना। उ०—विरह आगि पर मेलै आगी। बिरह घाव पर घाव बजागी।—जायसी ग्रं०, पृ० १०६।

यौ०—**आगजंत्र**=तोप।—(डिं०)। **आगबाण**=अग्निबाण। **आग लगन**=हाथी का एक रोग जिससे उसके सारे शरीर में फफोले पड़ जाते हैं।

आग[3]⑤†—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'आगे'। उ०—चित डोलै नहिं खूँटी टरई पल पल पेखि आग अनुसरई।—जायसी (शब्द०)।

आग[4]⑤—संज्ञा पुं० [सं० अग्र, प्रा० अग्ग] १. दे० 'आग'। उ०—तू रिसभरी न देखेसि आगू। रिस महँ काकर भयउ सोहागू।—जायसी ग्रं०, पृ० ३७। २. ऊख का अगौरा या अगला हिस्सा। उ०—जोरी भली बनी है उनकी, राजहंस अरु काग। सूरदास प्रभु ऊख छाँड़िकै, चतुर चचोरत आग।—सूर०, १०।३६५२। ३. हल के हरसे की नोक के पास के खड्डे जिनमें रस्सी अटकाकर जुआठे से बाँधते हैं।

आगजनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० आग+फा० जन+हिं० ई (प्रत्य०)] अग्निकांड। उपद्रवियों द्वारा लगाई जानेवाली आग।

आगड़ा—संज्ञा पुं० [सं० अ=नहीं+हिं० गाढ़=पुष्ट] ज्वार इत्यादि की वह बाल जिसके दाने मारे गए हों।

आगण—संज्ञा पुं० [सं० अग्रहायण] अगहन। मार्गशीर्ष। (डिं०)।

आगत[1]—वि० [सं०] [स्त्री० आगता] आया हुआ। प्राप्त। उपस्थित।

यौ०—**अभ्यागत। आगतपतिका। क्रमागत। स्वागत। दैवागत। गतागत। तथागत।**

आगत[2]—संज्ञा पुं० मेहमान। पाहुना। अतिथि।

आगत[3]—संज्ञा पुं० दे० 'आघात'। जैसे,—आगत कर।

आगतत्व—संज्ञा पुं० [सं०] उत्स। मूल। उद्गम (को०)।

आगतपतिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] अवस्थानुसार नायिका के दस भेदों में से एक। वह नायिका जिसका पति परदेश से लौटा हो। उ०—आवत बलम बिदेस तें हरषित होइ जु बाम। आगतपतिका ना।इका ताहि कहत रसधाम।—पद्माकर ग्रं०, पृ० १३६।

आगतसाध्वस—वि० [सं०] भयभीत। डरा हुआ [को०]।

आगतस्वागत—संज्ञा पुं० [सं० आगत+स्वागत] आए हुए व्यक्ति का आदर। आदरसत्कार। आवभगत।

आगति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. आगमन। अवाई। २. प्राप्ति [को०]। ३. वापसी [को०]। ४. मूल। उत्स [को०]। मौका [को०]।

आगपीछ(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आगापीछा'।

आगम¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. अवाई। आगमन। आमद। उ०—श्याम कह्यो सब सखन सों लावहु गोधन फेरि। संध्या को आगम भयो ब्रज तँन हाँको हेरि।—सूर (शब्द०)। २. भविष्य काल। आनेवाला समय। ३. होनहार। भवितव्यता। संभावना। उ०—आइ बुझाइ दीन्ह पथ तहाँ। मरन खेल कर आगम जहाँ।—जायसी ग्रं०, पृ० ९८।

यौ०—**आगमजानी। आगमज्ञानी। आगमवक्ता।**

क्रि० प्र०—**करना**=ठिकाना करना। उपक्रम बाँधना। जैसे,—यह नहीं कहते कि चंदा इकट्ठा करके तुम अपना आगम कर रहे हो। उ०—मैं राम के चरनन चित दीनों। मनसा, वाचा और कर्मना बहुरि मिलन को आगम कीनों।—तुलसी (शब्द०)।—**जनाना**=होनहार की सूचना देना। उ०—कबहुँ ऐसा विरह उवावै रे। प्रिय बिनु देखे जिय जावै रे। तौ मन मेरा धीरज धरई। कोइ आगम आनि जनावै रे।—दादू (शब्द०)।—**बाँधना**=आनेवाली बात का निश्चय करना। जैसे,—अभी से क्या आगम बाँधते हो; जब वैसा समय आवेगा तब देखा जायगा। ४. समागम। संगम। उ०—अरुण, श्वेत सित झलक पलक प्रति को बरनै उपमाइ। मनु सरस्वती गंगा जमुना मिलि आगम कीन्हों आइ।—तुलसी (शब्द०)। ५. आमदनी। आय। जैसे,—इस वर्ष उनका आगम कम और व्यय अधिक रहा।

यौ०—**अर्थागम।**

६. व्याकरण में किसी शब्दसाधन में वह वर्ण जो बाहर से लाया जाय। ७. उत्पत्ति। ८. योगशास्त्रानुसार शब्दप्रमाण। ९. वेद। उ०—आगम निगम पुरान अनेका। पढ़े सुने कर फल प्रभु एका।—मानस, ७। ४९। १०. शास्त्र। ११. तंत्र शास्त्र। १२. नीतिशास्त्र। नीति। १३. तंत्रशास्त्र का वह अंग जिसमें सृष्टि, प्रलय, देवताओं की पूजा, उनका साधन, पुरश्चरण और चार प्रकार का ध्यानयोग होता है। १४. प्रवाह। धारा [को०]। १५. ज्ञान [को०]। १६. संपत्ति की वृद्धि [को०]। १७. सिद्धांत [को०]। १८. नदी का मुहाना। १९. (व्याकरण में) प्रकृति और प्रत्यय [को०]। २०. सड़क या मार्ग की यात्रा [को०]। २१. लिखित प्रमाणपत्र [को०]।

आगम²—वि० [सं०] आनेवाला। आगामी। उ०—दरसन दियो कृपा करि मोहन बेग दियो वरदान। आगम कल्प रमण तुव ह्वै है श्रीमुख कही बखान।—सूर (शब्द०)।

आगमजानी—वि० [सं० आगमज्ञानिन् अथवा हिं० आगम=भविष्य+जानो=ज्ञाता] आगमज्ञानी। होनहार का जाननेवाला।

आगमज्ञानी—वि० [सं० आगमज्ञानिन्] भविष्य का जाननेवाला। आगमजानी।

आगमन—संज्ञा पुं० [सं०] १. अवाई। आना। आमद। उ०—मुनि आगमन सुना जब राजा। मिलन गएउ लै बिप्र समाजा।—मानस, १। २०७। २. प्राप्ति। आय। लाभ। ३. उत्पत्ति। उद्गम [को०]। ४. संभोगार्थ नारी के पास आना [को०]।

आगमना—संज्ञा पुं० [सं०] १. आगे चलनेवाली सेना। २. पूर्व दिशा।

आगमनिरपेक्ष—वि० [सं०] साक्षिपत्र आदि से मुक्त। साक्षिपत्र आदि की अपेक्षा न रखनेवाला [को०]।

आगमनी—संज्ञा स्त्री० [सं० आगमन+हिं० ई (प्रत्य०)] स्वागत के अवसर पर किया जानेवाला समारोह या उत्सव। उ०—अपनी आगमनी बना रही मैं आप क्रुद्ध हुंकारों में।—चक्र, पृ० ७१।

आगमनीत—वि० [सं०] पठित। परीक्षित। अधीत [को०]।

आगमपतिका—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'आगतपतिका'।

आगमरहित—वि० [सं०] १. साक्ष्यरहित। २. शास्त्र से परे [को०]।

आगमवक्ता—वि० [सं०] १. भविष्यवक्ता। ज्योतिषी।

आगमवाणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] भविष्यवाणी।

आगमविद्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वेदविद्या। २. तंत्रविद्या। वैदिकेतर विद्या।

आगमवृद्ध—वि० [सं०] ज्ञानवृद्ध। शास्त्रज्ञ [को०]।

आगमवेदी—वि० [सं० आगमवेदिन्] १. वेदज्ञ। २. शास्त्रज्ञ [को०]।

आगमश्रुति—संज्ञा स्त्री० [सं०] परंपरा। प्रथा [को०]।

आगमसोची—वि० [सं० आगम+हिं० सोच+ई (प्रत्य०)] आगे का भला बुरा सोचनेवाला। अग्रसोची। दूरदर्शी।

आगमापायी—वि० [सं० आगमापायिन्] जिसकी उत्पत्ति और विनाश हो। विनाशधर्मी। अनित्य।

आगमित—वि० [सं०] १. पठित। शिक्षित। २. निश्चित। निर्धारित ३. ले आया हुआ। [को०]।

आगमिष्ट—वि० [सं०] शीघ्रता या प्रसन्नतापूर्वक आनेवाला [को०]।

आगमी¹—संज्ञा पुं० [सं० आगम=भविष्य] सामुद्रिक विचारनेवाला। ज्योतिषी। अड्डपोपो। उ०—अवध आजु आगमी एकु आयो। करतल निरखि कहत सब गुनगन बहुतन परिचय पायो।—तुलसी ग्रं०, पृ० २७६।

आगमी²—वि० भविष्यवक्ता। होनहार कहनेवाला।

आगमी³—वि० [सं० आगमिन्] १. भविष्य। २. पहुँचनेवाला। ३. शास्त्रज्ञ।

आगर¹—संज्ञा पुं० [सं० आकर=खान] [स्त्री० आगरी] १. खान। आकर। २. समूह। ढेर।

विशेष—यह शब्द प्रायः समासांत में आता है। जैसे,—गुण-आगर। बल-आगर।

३. कोष। निधि। खजाना। उ०—अस वह फूल बास का आगर भा नासिका समुंद। जेति फूल वह फूलहि ते सब भए सुगंद।—जायसी (शब्द०)। ४. वह गड्ढा जिसमें नमक जाता है। ५. नमक का कारखाना।

आगर²—संज्ञा पुं० [सं० अर्गल=ब्योंड़ा] ब्योंड़ा। अगरी। उ०—आगर इक लोह जटित लीन्हों बरिबंड। दुहुँ करनि असुर हयो भयो मांस पिंड।—सूर० ९। ९६।

आगर[3]—संज्ञा पुं० [सं० **आगार = घर**] १. घर । गृह । २. छाजन का एक भेद जिसमें फूस या खर की जड़ ओलती की ओर करके छवाई होती है । ३. छाजन । छप्पर । उ०—तृण तृण बरि भा भूरी खरी । भा बरषा आगर सिर परी ।—जायसी (शब्द०) ।

आगर[4]—वि० [सं० **आकर = श्रेष्ठ**] [स्त्री० **आगरि, आगरी**] १. श्रेष्ठ । उत्तम । बढ़कर । उ०—(क) दई दीन्ह अस जगत अनूपा । एक एक ते आगर रूपा ।—जायसी (शब्द०) । (ख) जिनको साँई रँग दिया कबहुँ न होय कुरंग । दिन दिन बानी आगरी चढ़ै सवाया रंग ।—कबीर (शब्द०) । २. चतुर । होशियार । दक्ष । कुशल । उ०—जो लाँघै सत योजन सागर । करै सो रामकाज अति आगर ।—तुलसी (शब्द०) ।

आगर[5]—संज्ञा पुं० [सं०] अमावस्या [को०] ।

आगरबध—संज्ञा पुं० [सं० **आ + गल + बद्ध**] कंठमाला (डिं०) ।

आगरी—संज्ञा पुं० [हिं० **आगा**] नमक बनानेवाला पुरुष । लोनिया ।

आगल[1]—संज्ञा पुं० [सं० **अर्गल**] अगरी । ब्योंड़ा । बेंड़ा ।

आगल[2]—क्रि० वि० [हिं० **अगला**] सामने । आगे (लश०) ।

आगल[3]—वि० अगला । उ०—आगल से पाछल भयो, हरि सो कियो न भेंट । अब पछिताने का भया, चिड़िया चुगि गईं खेत ।—(शब्द०) ।

आगलाⓅ—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'अगला' ।

आगवनⓅ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आगमन' । उ०—जिमि तुम्हार आगवन सुनि भए नृपति बलहीन ।—मानस, १।२३८ ।

आगवाहⓅ—संज्ञा पुं० [सं० **अग्निवाह = धूम**] धूआँ (हिं०) ।

आगस्—संज्ञा पुं० [सं०] १. पाप । २. अपराध । दोष । ३. दंड सजा [को०] ।

आगस्ती—संज्ञा स्त्री० [सं०] अगस्त की दिशा । दक्षिण ।

आगस्त्य—वि० [सं०] १. दक्षिण दिशा । २. अगस्त्य संबंधी [को०] ।

आगा[1]—संज्ञा पुं० [सं० **अग्र, प्रा० अग्ग**] १. किसी चीज के आगे का भाग । अनाड़ी । २. शरीर का अगला भाग । जैसे,—ऊँचे आगे का हाथी अच्छा होता है । ३. छाती । वक्षःस्थल । ४. मुख । मुँह । मुहरा । ५. ललाट । माथा । ६. लिंगेंद्रिय । ७. अँगरखे कुरते आदि की काट में आगे का टुकड़ा । ८. पगड़ी का छज्जा । ९. घर के सामने का भाग । मुहरा । १०. सेना या फौज का अगला भाग । सेनामुख । हरावल । ११. नाव का अगला भाग । माँग । गलही । १२. घर के सामने का मैदान । घर के आगे का सहन । १३. पेशखीमा । आगड़ा । १४. पहिनावे का वह भाग जो आगे रहता है । पल्ला । आँचल । १५. आगे आनेवाला समय । भविष्य । परिणाम । जैसे,—(क) उसका आगा मारा गया है । (ख) उसका आगा अँधेरा है ।

मुहा०—**आगा काटना** = यात्रा या कार्य में विघ्न डालना । **आगा तागा लेना** = आवभगत करना आदर सत्कार करना । **आगा भारी होना** = (१) गर्भ रहना । पैर भारी होना । जैसे,—ब्याह होते ही उसका आगा भारी हो गया । (२) कहारों की बोली में राह में ठोकर गड्ढे आदि का होना जिससे गिरने का भय हो । **आगा मारना** = किसी के कार्य में बाधा डालना । किसी की उन्नति में रुकावट डालना । जैसे,—किसी का आगा मारना अच्छा नहीं । **आगा मारा जाना** = भावी उन्नति में विघ्न पड़ना । आगम मारा जाना । जैसे,—परीक्षा में फेल होने से उसका आगा मारा गया । **आगा रुकना** = भावी उन्नति में बाधा पड़ना । **आगा रोकना** = (१) आक्रमण रोकना । (२) कोई बड़ा कार्य आ पड़ने पर उसे सँभालना । मुँहड़ा सँभालना । जैसे,—इतनी बड़ी बारात आवेगी; उसका आगा रोकना भी तो कोई सहज बात नहीं है । (३) किसी के सामने इस तरह खड़े होना कि ओट हो जाय । आड़ करना । जैसे,—आगा मत रोको, जरा किनारे खड़े हो ।(४)किसी की उन्नति में बाधा डालना । **आगा लेना** = शत्रु के आक्रमण को रोकना । भिड़ना । **आगा सँभालना** = (१) मुहड़ा सँभालना । कोई बड़ा कार्य आ पड़ने पर उसका प्रबंध करना । (२) किसी खुले गुप्त अंग को ढकना । (३) वार रोकना । भिड़ना । जैसे,—राजपूताने की लड़ाइयों में पहले भील ही लोग आगा सँभालते थे ।

आगा[2]—संज्ञा पुं० [तु० **आगा**] १. मालिक । सरदार । २. काबुली । अफगान । ३. ज्येष्ठ भाई [को०] ।

आगाज—संज्ञा पुं० [फा० **आगाज**] प्रारंभ । आदि । शुरू ।

आगाता—वि० [सं० **आगातृ**] गाकर पाने या कमानेवाला [को०] ।

आगाध—वि० [सं०] १. अत्यंत गहरा । २. जो कठिनाई से प्राप्त हो [को०] ।

आगान[1]—संज्ञा दे० [सं० **आ + गान = बात**] बात । प्रसंग । आख्यान । वृत्तांत । उ०—और कृष्ण के ब्याह को भूप सुनहु आगान । पापहरण भवनिधि-तरण करन सकल कल्याण ।—गोपाल (शब्द०) ।

आगान[2]—संज्ञा पुं० [सं०] वह व्यक्ति जो गाना गाकर उपार्जन करे । गायक [को०] ।

आगापीछा—संज्ञा पुं० [हिं० **आगा + पीछा**] १. हिचक । सोच विचार । दुबिधा । जैसे,—इस काम के करने में तुम्हें आगा पीछा क्या है ?

क्रि० प्र०—**करना** । जैसे,—अच्छे काम में आगा पीछा करना ठीक नहीं ।—(शब्द०) ।—**होना** ।

२. परिणाम । नतीजा । पूर्वापर संबंध । जैसे,—कोई काम करने के पहले उसका आगा पीछा सोच लेना चाहिए ।

क्रि० प्र०—**देखना** ।—**सोचना** ।

३. शरीर का अगला और पिछला भाग । शरीर के आगे और पीछे के गुप्त अंग । जैसे,—भला इतना कपड़ा तो दो जिसमें आगा पीछा ढँके । ४. आगे और पीछे की दशा । जैसे,—जरा आगा पीछा चला करो ।

आगामि, आगामी—वि० [सं० **आगामिन्**] [स्त्री० **आगामिनी**] भविष्य । होनहार । आनेवाला ।

आगामिक—वि० [सं०] १. भविष्यकालसंबंधी । २. आनेवाला [को०] ।

आगामुक—वि० [सं०] १. आनेवाला । २. भावी [को०] ।

आगार—संज्ञा पुं० [सं०] १. घर । मंदिर । मकान । २. स्थान । जगह । जैसे,—अग्न्यागार । ३. जैन मतानुसार बाधक नियम और व्रतभंग । ४. खजाना । उ०—खान असी अकबर अली

जानत सब रस पंथ। रच्यो देव आगार गुनि यह सुखसागर ग्रंथ।—देव (शब्द०)।

आगारगोधिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] छिपकिली। गृहगोधा [को०]।

आगारदाही—वि० [सं० आगारदाहिन्]। घर जलानेवाला।

आगारधूम—१. गृह से निकलनेवाला धुआँ। २. एक पौधे का नाम [को०]।

आगाह^1—वि० [फा०] जानकार। वाकिफ।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

आगाह^2(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० आग+आह (प्रत्य०)] आगम। होनहार। उ०—चाँद गहन आगाह जनावा। राजमूलि गहि शाह चलावा।—जायसी (शब्द०)।

आगाही—संज्ञा स्त्री० [फा०] जानकारी। वाकफियत। उ०—यही सबब है कि मुझे इन सब बातों से आगाही हो गई।-संतति, भा० २१, पृ० १२।

आगि(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'आग'। उ०—दुरदिन परे रहीम कहि दुरथल जैयत भागि। ठाढ़े हूजा घूर पर जब घर लागत आगि।—कविता कौ०, भा० १, पृ० १६२।

आगिल(पु)—वि० [हिं० आग+इल (प्रत्य०)] १. आगे का। अगला। उ०—नल में परलय बीतिया लोगन लगी तमारि। आगिल सोच निवारि कै पाछे करो गोहारि।—कबीर। (शब्द०)। २. भविष्य का। होनेवाला। उ०—आगिल बात समुझि डरु मोही।—मानस, २। १८।

आगिला(पु)†—वि० [हिं०] दे० 'आगला'। उ०—आगिला अगनि होइबा अबधू, तौ आपण होइबा पांणी।—गोरख०, पृ० २३।

आगिवर्तक(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अग्निवर्त्त] पुराणानुसार मेघ का एक भेद। उ०—सुनत मेघवर्तक सजि सैन लै आए। जलवर्त वारिवर्त पवनवर्त वज्रवर्त आगिवर्तक, जलद सँग लाए।—सूर (शब्द०)।

आगी(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'आग'। उ०—जीवन तें जागी आगी, चपरि चौगुनी लागी, तुलसी भभरि मेघ भागे मुख मोरि कै।—तुलसी ग्रं०, पृ० १७५।

आगुआ—संज्ञा पुं० [हिं० आगे] तलवार इत्यादि की मुठिया के नीचे का गोल भाग।

आगू(पु)†—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'आगे'। उ०—त्रासर चौथे याम सतानंद आगू दिए।—रामचं०, पृ० ३५।

आगे—क्रि० वि० [सं० अग्र, प्रा० अग्ग] १. और दूर पर। और बढ़कर। 'पीछे' का उलटा। जैसे—उनका मकान अभी आगे है। २. समक्ष। संमुख। सामने। जैसे,—उसने मेरे आगे यह काम किया है। ३. जीवनकाल में। जीते जी। जीवन में। उपस्थिति में। जैसे—वह अपने आगे ही इसे मालिक बना गए थे।—४. इसके पीछे। इसके बाद। जैसे,—मैं कह चुका हूँ, आगे तुम जानो तुम्हारा काम जाने।—५. भविष्य में। आगे को। जैसे—अब तक जो किया सो किया, आगे ऐसा मत करना। ६. अंतर। बाद। जैसे,—चैत के आगे बैसाख का महीना आता है। ७. पूर्व। पहले। जैसे,—वह आप के आने से आगे हो गया है। ८. अतिरिक्त। अधिक। जैसे,—इससे आगे एक कौड़ी नहीं मिलने की। ९. गोद में। जैसे,—(क) उसके आगे एक लड़की है।—(ख) गाय के आगे बछवा है या बछिया?

मुहा०—**आगे आगे** = थोड़े दिनों बाद। क्रमशः। जैसे—देखो तो आगे आगे क्या होता है। **आगे आना** = (१) सामने आना। जैसे,—नाई! सिर में कितने बाल? अभी आगे आते हैं। २. सामने पड़ना। मिलना। जैसे,—जो कुछ उसके आगे आता है, वह खा जाता है। ३. संमुख आना। सामना करना। भिड़ना। जैसे,—अगर कुछ हिम्मत हो तो आगे आओ। ४. फल मिलना। बदला मिलना। उ०-(क) जो जैसा करै सो तैसा पावै। पूत भतार के आगे आवै। (ख) मत कर सास बुराई। तेरी धी के आगे आई। (शब्द०)। ५. घटित होना। घटना। प्रकट होना। जैसे,—देखो जो हम कहते थे, वही आगे आया। **आगे करना** = (१) उपस्थित करना। प्रस्तुत करना। जैसे,—जो कुछ घर में था, वह आपके आगे किया। (२) अगुआ बनाना। मुखिया बनाना। जैसे,—इस काम में तो उन्हीं को आगे करना चाहिए। उ०—कमल सहाय सूर सँग लीन्हा। राघव चेतन आगे कीन्हा।—जायसी (शब्द०)। (३) अगुआना। अग्रगंता बनाना। उ०—राजै राकस नियर बोलावा। आगे कीन्ह पंथ जनु पावा।—जायसी ग्रं, पृ० १७४। (४) आगे बढ़ाना। चलाना। उ०—चक्र सुदर्शन आगे कियो। कोटिक सूर्य प्रकाशित भयो।—सूर (शब्द०)। (५) किसी आफत में डालना। जैसे,—जब शेर निकला तो वह मुझे आगे कर आप पेड़ पर चढ़ गया। **आगे का उठा** = खाने से बचा हुआ। जूठा। उच्छिष्ट। जैसे,—नीच जाति के लोग बड़े आदमियों के आगे का उठा खा लेते हैं। **आगे का उठा खानेवाला** = (१) जूठा खानेवाला। टुकड़खोर। (२) दास। (३) नीच। अंत्यज। (४) तुच्छ। नाचीज। **आगे का कदम पीछे पड़ना** = (१) घटती होना। ह्रास होना। तनज्जुली होना। अवनति होना। जैसे,—उनका पहले अच्छा जमाना था, पर अब आगे का कदम पीछे पड़ रहा है। (२) भय से आगे न बढ़ा जाना। दहशत छा जाना। जैसे,—शेर को देखते ही उनका आगे का कदम पीछे पड़ने लगा। **आगे का कपड़ा** = (१) घूँघट। (२) अंचल। **आगे का कपड़ा खींचना** = घूँघट काढ़ना। **आग की उखेड़** = कुश्ती का एक पेंच। खिलाड़ी का प्रतिद्वंद्वी की पीठ पर जाकर उसकी कमर की लपेट को पकड़कर जिधर जोर चले, उधर फेंकना। अग्रोत्तोलन। **आगे को** = आगे। भविष्य में। फिर। पुनः। जैसे,—अब की बार तुम्हें छोड़ दिया, आगे को ऐसा न करना। **आगे चलकर, आगे जाकर** = भविष्य में। इसके बाद। जैसे—तुम्हारे किए का फल आगे चलकर मिलेगा। **आगे डालना** = देना। खाने के लिये सामने रखना। जैसे,—(क) कुत्ते के आगे टुकड़ा डाल दो। (ख) बैल के आगे चारा डालो। (यह अवज्ञासूचक है और प्रायः इसका प्रयोग पशु आदि नीच श्रेणी के प्राणियों के लिये होता है।) **आगे डोलना** = आगे फिरना। सामने खेलना कूदना। लड़कों का होना। जैसे,—बाबा, दो चार आगे डोलते होते तो एक तुम्हें भी दे देती। **आगे डोलता** = बच्चा। लड़का। जैसे,—उसके आगे डोलता कोई नहीं है। **आगे देना** = सामने

रखना। उपस्थित करना। जैसे,—घोड़े तो इसे खाएँगे नहीं, बैलों के आगे रख दो। **आगे दौड़, पीछे चौड़**=(१) किसी काम को जल्दी जल्दी करते जाना और यह न देखना कि किए हुए काम की क्या दशा होती है। (२) आगे बढ़ते जाना और पीछे का भूलते जाना। **आगे धरना**=(१) आदर्श बनाना। जैसे,—किसी सिद्धांत को आगे धरकर काम करना अच्छा होता है। २. प्रस्तुत करना। उपस्थित करना। पेश करना। भेंट करना। भेंट देना। **आगे निकलना**=बढ़ जाना। जैसे,—(क) वह दौड़ में सबसे आगे निकल गया। (ख) केवल तीन ही महीने की पढ़ाई में वह अपने दर्जे के सब लड़कों से आगे निकल गया। **आगे पीछे**=एक के पीछे एक। जैसे,—(क) सिपाही आगे पीछे खड़े होकर कवायद कर रहे हैं। (ख) सब लोग साथ ही आना, आगे पीछे आने से ठीक नहीं होगा। (२) प्रत्यक्ष या परोक्ष। गुप्त या प्रकट। सामने और पीठ पीछे। जैसे,—मैंने किसी की कभी आगे पीछे बुराई नहीं की है। (३) और धीरे। आस पास। जैसे,—देखना सब के सब आगे पीछे रहना, दूर मत पड़ना। (४) पहले या पीछे। जैसे,—आगे पीछे सभी चल बसेंगे, यहाँ कोई बैठा थोड़े ही रहेगा। (५) कुछ काल के अनंतर। यथावकाश। जैसे,—पहले इस काम को तो कर डालो और सब आगे पीछे होता रहेगा। (६) इधर का उधर। अंड बंड। उलट पलट। जैसे,—लड़के ने सारे कागजों को आगे पीछे कर दिया। अनुपस्थिति में। गैरहाजिरी में। जैसे,—मेरे सामने तो किसी ने आपको कुछ नहीं कहा, आगे पीछे की कौन जाने। **किसी के आगे पीछे होना**=किसी के वंश में किसी प्राणी का होना। जैसे,—उनके आगे पीछे कोई नहीं है; व्यर्थ रुपए के पीछे मरे जाते हैं। **आगे रखना**=(१) अर्पण करना। देना। चढ़ाना। (२) उपस्थित करना। पेश करना। भेंट करना। जैसे,—घर में जो कुछ पान फूल था, लाकर आगे रखा। **आगे से**=(१) सामने से। जैसे,—अभी वह हमारे आगे से निकल गया। (२) आइंदा से। भविष्य में जैसे,—जो कुछ किया सो अच्छा किया, आगे ऐसा मत करना। (३) पहले से। पूर्व से। बहुत दिनों से। जैसे,—(क) यह आगे से होता आया है। (ख) हम उसे आगे से जानते थे। **आगे से लेना**=अभ्यर्थना करना। उ०—हरि आगमन जानिकै भीषम आगे लैन सिधाए। सूरदास प्रभु दरसन कारन नगर लोग सब आए।—सूर०, १०।४१७८। **आगे होना**=(१) आगे बढ़ना। अग्रसर होना। जैसे,—सरदार यह कह आगे हुआ और उसके साथी पीछे चले। (२) बढ़ जाना। जैसे,—वह पढ़ने में सबसे आगे हो गया। (३) सामने आना। मुकाबिला करना। जैसे,—इतने आदमियों में वही अकेला शेर के आगे आया। (४) मुखिया बनाना। जैसे,—सब काम में वे आगे होते हैं, पर उनको पूछता कौन है। (५) परदा करना। आड़ करना। जैसे,—बड़े घरों में स्त्रियाँ जेठ के आगे नहीं आतीं। **आगे होकर लेना**=अभ्यर्थना करना। उ०—आगे ह्वै जेहि सुरपति लेई। अर्द्धसिंहासन आसन देई।—तुलसी। (शब्द०)।

आगोश—संज्ञा **स्त्री०** [फा०] गोद। उ०—आगोश में भवाँ की करती हैं कत्ल अखियाँ। कोई पूछता नहीं है मसजिद में कत्ल होये।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० १४।

आगौⓅ—वि० अग्रगण्य। जो सबसे पहले माना जाय।

आगौनⓅ—संज्ञा पुं० [सं० **आगमन**, प्रा० **आगवन**] अवाई। आगमन।

आग्निक-वि० [सं०] [**स्त्री० आग्निकी**] यज्ञ की अग्नि से संबंधित [को०]।

आग्नींद्र, आग्नेंद्र—वि० [सं० **आग्नीन्द्र, आग्नेन्द्र**] अग्नि और इंद्र को समर्पित [को०]।

आग्नीध्र[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. यज्ञ के सोलह ऋत्विजों में से एक। २. वह यजमान जो साग्निक हो या अग्निहोत्र करता हो। ३. यज्ञमंडप। ४. हरिवंश के अनुसार स्वायंभुव मनु के बारह लड़कों में से एक। ५. विष्णुपुराण के अनुसार प्रियव्रत राजा के दस पुत्रों में से एक।

आग्नीध्र[2]—वि० [सं०] आग्नीध्र या यज्ञ में अग्नि प्रज्वलित करनेवाले से संबंध रखनेवाला। [को०]।

आग्नेय[1]—वि० [सं०] [**स्त्री० आग्नेयी**] १. अग्नि संबंधी। अग्नि का। २. जिसका देवता अग्नि हो। जैसे,—आग्नेय मंत्र। ३. अग्नि से उत्पन्न। ४. जिससे आग निकले। जलानेवाला। जैसे—आग्नेय अस्त्र। ५. अग्नि के समान लाल। क्रोध से लाल। उ०—देवयानी आग्नेय नेत्रों से उत्तर देती है, 'जाओ, तुम देवराज इंद्र के पास लौट जाओ'।—मुंशी अभि० ग्रं०, पृ० ७२। ६. दक्षिण पूर्वी। अग्निकोण का। अग्निकोण से संबंधित। ७. आग से शीघ्र ही जल उठनेवाला (जैसे,—लाह, घी, लोबान) [को०]।

आग्नेय[2]—संज्ञा पुं० १. सुवर्ण सोना। सोना। २. रक्त। रुधिर। ३. कृतिका नक्षत्र। ४. अग्नि के पुत्र कार्तिकेय। ५. दीपन औषध। ६. ज्वालामुखी पर्वत। ७. प्रतिपदा। ८. एक प्राचीन देश जो दक्षिण में किष्किंधा के समीप था। इसकी प्रधान नगरी महिष्मती थी। ९. वह पदार्थ जिससे आग भड़क उठे, जैसे—बारूद, लाह इत्यादि। १. ब्राह्मण। ११. अग्निकोण। १२. उन जहरीले कीड़ों की एक जाति जिनके काटने या डंक मारने से जलन होती है।

विशेष—सुश्रुत में कौंडिल्यक (गड़गुलार), लाल चींटा, भिड़, पनबिछिया, भौंरा आदि २४ कीड़े इसके अंतर्गत गिनाए हैं। १३. अग्निपुराण। १४. अगस्त्य का एक नाम। १५. घी।

यौ०—आग्नेयस्नान=भस्मस्नान। भस्म पोतना।

आग्नेय कीट—संज्ञा पुं० [सं०] आग में कूद पड़नेवाला फतिंगा [को०]।

विशेष—प्राचीन काल में चोर अपने साथ पेटारी में ये कीड़े साथ ले जाते थे। मकान में अगर कोई दिया जलता रहता था तो वे इन कीड़ों को खोल देते थे जो उड़कर उस दीए को बुझा देते थे।

आग्नेयगिरि—संज्ञा पुं० [सं०] ज्वालामुखी पर्वत [को०]।

आग्नेयपुराण—संज्ञा पुं० [सं०] अग्निपुराण [को०]।

आग्नेयास्त्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्राचीन काल के अस्त्रों का एक भेद जिनसे आग निकलती थी या जिसके चलाने से आग बरसती

थी। २. अग्निविस्फोट अस्त्र या वह अस्त्र जो अग्नि उत्पन्न होने या विस्फोट होने से चले। जैसे,-बंदूक, पिस्तौल आदि।

आग्नेयी¹—वि० स्त्री०[सं०] १. अग्नि को दीपन करनेवाली (औषध)। २. पूर्व और दक्षिण के बीच की (दिशा)।

आग्नेयी²—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. अग्नि की पत्नी। स्वाहा। २ अग्नि की पुत्री जो उरु की पत्नी थी [को०]। ३ प्रतिपदा तिथि। परिवा [को०]।

आग्याⓅ†—संज्ञा स्त्री० [सं० आज्ञा] दे० 'आज्ञा'—१। उ०—ज्यौं गुरु आग्या सुनि चटसार। चट पढ़ि उठत एक ही बार।—नंद० ग्रं०, पृ० २८६।

आग्यौⓅ†—वि० [सं० अग्र] भविष्य। उ०—तौ तुम कोऊ तारचो नहिं, जौ मोंसौं पतित न दाग्यौ। हौं स्रवननि सुनि कहत न एकौ, सूर सुधारौ आग्यौ।- सूर०, १।७३।

आग्र जाणिक—संज्ञा पुं० [सं० अग्र+ज्ञानीक] आगे की बात जाननेवाला व्यक्ति। ज्योतिषी।—वर्ण०, पृ० ६।

आग्रभोजनिक—संज्ञा पुं० [सं०] वह ब्राह्मण जो भोजन में अग्रस्थान का अधिकारी हो [को०]।

आग्रमास—संज्ञा पुं० [सं०] चित्रक वृक्ष। चीते का पेड़ [को०]।

आग्रयण—संज्ञा पुं० [सं०] १. अहिताग्नियों का नवशस्येष्टि। नवान्न विधान। नए अन्न से यज्ञ या अग्निहोत्र।

विशेष—इसका विधान श्रौतसूत्रानुसार होता है। यह तीन अन्नों में से तीन फसलों में किया जाता है। सावें से वर्षा ऋतु में, ब्रीहि या चावल से हेमंत ऋतु में और जौ से वसंत ऋतु में। गृह्यसूत्रानुसार जब इनका अनुष्ठान होता है, तब इन्हें नवशस्येष्टि कहते हैं।

२. अग्नि का एक भेद [को०]। ३. यज्ञ का समय [को०]।

आग्रस्त-वि० [सं०] १. बिंधा हुआ। २. छिदा हुआ। छेदयुक्त [को०]।

आग्रह—संज्ञा पुं० [सं०] १. अनुरोध। हठ। जिद। जैसे,—वह बार बार मुझसे अपने साथ चलने का आग्रह कर रहा है। २. तत्परता। परायणता। दृढ़ निश्चय। उ०—राक्षस बड़े आग्रह और सावधानी से चंद्रगुप्त और चाणक्य के अनिष्ट साधन में प्रवृत्त हुए।—हरिश्चंद्र (शब्द०)। ३. बल। जोर। आवेश। उ०—और आप अपने मुख से अपने इस वाक्य का आग्रह दिखाते हैं 'सर्व गुह्यतमं भूयः शृणु मे परमं वचः'। —हरिश्चंद्र (शब्द०)। ४. आक्रमण [को०]। ५. हरण। ग्रहण [को०]। ६. अनुग्रह। कृपा [को०]। ७. धैर्य। नैतिक बल [को०]।

आग्रहायण—संज्ञा पुं० [सं०] १. अगहन मास। मार्गशीर्ष मास। २. मृगशिरा नक्षत्र।

आग्रहायणक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'आग्रहायण'।

आग्रहायणिक- संज्ञा पुं० [सं०] १. अगहन की पूर्णमासी। २. मृगशिरा नक्षत्र [को०]।

आग्रहायणी¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. अगहन मास। २. मृगशिरा नक्षत्र। ३. पाक यज्ञविशेष [को०]।

आग्रहायणी²—वि० [सं०] १. अगहन की पूर्णिमा को दिया जानेवाला। २. अगहन की पूर्णिमा से युक्त [को०]।

आग्रहारिक—वि०[सं०]१. दान के रूप में गाँव या भूमि लेनेवाला। उ०—मार्ग में जो अग्रहार गाँव पड़ते थे उनके अनपढ़ आग्रहारिक लोग मंगल के लिये ग्राममहत्तरों के हाथ में जलकुंभ उठाए हुए आ रहे थे।—हर्ष०, पृ० १६२। २. अग्रहार का हरण करनेवाला [को०]। ३. अग्रहार की देखभाल करनेवाला [को०]।

आग्रहिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] सहायता। अनुग्रह [को०]।

आग्रही—वि० [सं० आग्रहिन्] हठी। जिद्दी।

आग्रायण—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'आग्रयण'।

आघⓅ—संज्ञा पुं०[सं० अर्घ, प्रा० अग्घ=मूल्य] १. मूल्य। कीमत। २. आदर। मान। उ०- विदर मूँछ जांणे वृथा इधक पटाँरो आघ।—बाँकी० ग्रं०, भा० २ पृ० ८६।

आघट्टक¹—संज्ञा पुं० [सं०] रक्त अपामार्ग। लाल चिचड़ी।

आघट्टक²-वि० [सं०] घर्षण उत्पन्न करनेवाला। रगड़नेवाला[को०]

आघट्टन—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० आघट्टना] १. रगड़। घर्षण। २. संपर्क [को०]।

आघट्टित—वि० [सं०] रगड़ा हुआ। मर्दित [को०]।

आघणⓅ—संज्ञा पुं० [सं० अग्रहायण] अगहन उ०—आवण कर दिन छोटा होई।—बीसल० रा०, पृ० ६७।

आघर्ष,आघर्षण—संज्ञा पुं०[सं०] रगड़। घर्षण [को०]।

आघर्षणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] घर्षण या रगड़ने में प्रयुक्त होनेवाली कूँची, ब्रश आदि [को०]।

आघाट—संज्ञा पुं०[सं०]१. गाँव की सीमा। गाँव की हद। सिवान।

विशेष—इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग प्राचीन शिलालेखों में मिलता है। 'आघाटक' या 'आघाटन' शब्द भी इसी अर्थ में आया है।

२. अपामार्ग। चिचड़ी [को०]। ३. एक तरह का बाजा [को०]।

आघात—संज्ञा पुं० [सं०] १. धक्का। ठोकर। २. मार। प्रहार। चोट। आक्रमण। जैसे,—निरपराधों पर आघात करना अच्छा नहीं। ३. वधस्थान। बूचड़खाना। ४. प्रतिध्वनि। उ०—लियो तँबोल माथ धरि हनुमत, कियौ चतुरगुन गात। चढ़ि गिरि सिखर शब्द इक उच्चरचौ, गगन उठचौ आघात।—सूर० ९।७४। ५. वध। मारण (को०)। ६. वध करनेवाला व्यक्ति [को०]। ७. विपत्ति। दुर्भाग्य [को०]। ८. मूताघात रोग [को०]।

आघातज्वर—संज्ञा पुं० [सं०] किसी चोट या आघात से होनेवाला ज्वर [को०]।

आघातन—संज्ञा पुं० [सं०] बधस्थान। २. वध। हनन [को०]।

आघार—संज्ञा पुं० [सं०] १. यज्ञ और होम आदि में वे आहुतियाँ जो आदि में प्रजापति और इंद्र देवता को घी की अविच्छिन्न धार से 'प्रजापतये स्वाहा' और 'इंद्राय स्वाहा' कहकर वायव्य कोण से अग्नि कोण तक और फिर नैऋत्य से ईशान तक दी जाती हैं। ऋग्वेदी इसे मौन होकर करते हैं और यजुर्वेदी जोर से मंत्र का उच्चारण करके करते हैं। २. घी [को०]। ३. सिंचन। सींचना [को०]।

आघी†—संज्ञा स्त्री० [सं० अर्घ, प्रा० अग्घ=मूल्य] १. रुपये का वह लेन देन जिसमें उधार लेनेवाला महाजन को आनेवाली फसल की उपज में से फी रुपए की दर से अन्न आदि ब्याज के

स्थान में देता हैं। २. वह अन्न जो इस लेन देन में ब्याज के रूप में दिया जाय।

क्रि० प्र०—**पर लेना**।—**पर देना**।—**देना**।—**लेना**।

आघुⓅ—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'आघ'। उ०—गढ़रचना, बरुनी अलक चितवनि भौंह कमान। आघु बकाई हीं चढ़ै, तरुनि तुरंगम तान।—बिहारी र०, दो० ३१६।

आघूर्ण—वि० [सं०] १. घूमता हुआ। फिरता हुआ। २. हिलता हुआ।

आघूर्णन—संज्ञा पुं० [सं०] १. चक्कर। घुमाव। २. इधर उधर डोलना। दोलन [दे०]।

आघूर्णित—वि० [सं०] इधर उधर फिरता हुआ। भटकता हुआ। चकराया हुआ।

यौ०—आघूर्णित लोचन = जिसकी आँखें चढ़ी हों।

आघृणि—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य [को०]।

आघोष—संज्ञा पुं० [सं०] चारों ओर प्रचार करने के लिये किसी बात को ऊँचे स्वर से कहना [को०]।

आघोषण—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० **आघोषणा**] घोषणा [को०]।

आघोषणापटह—संज्ञा पुं० [सं० **आघोषणा + पटह**] जनसाधारण को सूचित करने के लिये या उनके आवाहन के लिये प्रयुक्त नगाड़ा।

आघोषित—वि० [सं०] घोषित।

आघ्राण—संज्ञा पुं० [सं० वि० **आघ्रात, आघ्रेय**] १. सूँघना। बास लेना। २. अघाना। आसूदगी। तृप्ति।

आघ्रात[1]—वि० [सं०] १. सूँघा हुआ। २. तृप्त। अघाया हुआ। ३. सुगंधित। सुवासित [को०]।

आघ्रात[2]—संज्ञा पुं० [सं०] ग्रहण के दस भेदों में से एक जिसमें चंद्रमंडल या सूर्यमंडल एक ओर मलिन देख पड़ता है। फलित ज्योतिष के अनुसार ऐसे ग्रहण से अच्छी वर्षा होती है।

आघ्रेय—वि० [सं०] सूँघा जाने योग्य [को०]।

आचंचल—वि० [सं० **आ + चञ्चल**] अस्थिर। चंचल। उ०—चंद्रोदय आरंभकाल में आचंचल सागर में।—पार्वती, पृ० १२३।

आचंभ—वि० [हिं०] दे० 'अचंभा'। उ०—आचंभ रूप इच्छिनि सुनी जन जन बत्त बखानियाँ।—पृ० रा०, १२।१०।

आचⓅ—संज्ञा पुं० [सं० **सच = संधान करना**] हाथ। उ०—जिकाँ भलाँ धन जोड़ियौ, ऊधमियौ निज आच।—बाँकी० ग्रं०, भा० १, पृ० ४८। (डिं०)

यौ०—**आचप्रभव** = क्षत्रिय।

आचमन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० **आचमनीय, आचमित**] १. जल पीना। २. शुद्धि के लिये मुँह में जल लेना। ३. किसी धर्म संबंधी कर्म के आरंभ में दाहिने हाथ में थोड़ा सा जल लेकर मंत्रपूर्वक पीना यह पूजा के षोडशोपचार में से एक है। ४. सुगंधबाला। नेत्रबाला।

आचमनक—संज्ञा पुं० [सं०] १. आचमन का पात्र। २. आचमन का जल। ३. पीकदान [को०]।

आचमनी—संज्ञा स्त्री० [सं० **आचमनीय**] एक छोटा चम्मच जो कलछी के आकार का होता है। इसे पंचपात्र में रखते हैं और इससे आचमन करते और चरणामृत आदि देते हैं।

आचमनीय, आचमनीयक—वि० [सं०] १. आचमन के योग्य। पीने योग्य। २. कुल्ला करने योग्य।

आचमित—वि० [सं०] पिया हुआ।

आचय—संज्ञा पुं० [सं०] १. चुनने का कार्य। २. राशि या ढेर [को०]।

आचयक—वि० [सं०] १. चयन या एकत्र करनेवाला। २. चयन करने में कुशल। ३. फूल आदि चयन करनेवाला [को०]।

आचरⓅ†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आँचर'। उ०—ससि नव छंरे अनुरागक आँकुर धएन मोएँ आचरे गोइ।—विद्यापति, पृ०७७।

आचरजⓅ—संज्ञा पुं० [सं० **आश्चर्य**] दे० 'अचरज'। उ०—मुनि मन मोह आचरज भारी।—मानस, १।१२४।

आचरजितⓅ—वि० [सं० **आश्चर्यित**] आश्चर्यित। चकित। विस्मित।

आचरण—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० **आचरणीय, आचरित**] १. अनुष्ठान। २. व्यवहार। बर्ताव। चाल चलन। जैसे,—उनका आचरण अच्छा नहीं है। ३. आचारशुद्धि। सफाई। ४. रथ। छकड़ा। ५. चिह्न। लक्षण। ६. बौद्धों के अनुसार वे १५ आचरण जो सदाचार माने जाते हैं।

विशेष—ये इस प्रकार हैं—(१) शील। (२) इंद्रियसंवर। (३) मात्राशिता। (४) जागरणानुयोग। ५. श्रद्धा। (६) ह्री। (७) बहुश्रुतत्व। (८) उत्ताप, अर्थात् पछतावा। (९) पराक्रम। (१०) स्मृति। (११) मति। (१२) प्रथम ध्यान। (१३) द्वितीय ध्यान। (१४) तृतीय ध्यान। (१५) चतुर्थ ध्यान। ७. करना [को०]। ८. अनुसरण। अनुगमन [को०]।

आचरणीय—वि० [सं०] १. अनुष्ठान करने योग्य। २. व्यवहार करने योग्य। बर्ताव करने योग्य। करने योग्य।

आचरनⓅ—संज्ञा पुं० [सं० **आचरण**] दे० 'आचरण'। उ०—सगुन समय सुमिरत सुखद भरत आचरनु चारु।—तुलसी ग्रं०, पृ०९२।

आचरनाⓅ—क्रि० स० [सं० **आचरण** से नाम०] आचरण करना। व्यवहार करना। उ०—इहै भक्ति वैराग्य ज्ञान यह हरि तोषन यह शुभ व्रत आचरु। तुलसिदास शिवमत मारग यह चलत सदा सपनेहु नाहिन डरु।—तुलसी (शब्द०)।

आचरित[1]—वि० [सं०] १. किया हुआ। अनुष्ठान किया हुआ। २. नित्य का। रोजमर्रा का। नियमित [को०]। ३. व्यवहृत, जैसे—स्थान [को०]।

आचरित[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १. धर्मशास्त्र के अनुसार ऋणी से धन लेने के पाँच प्रकार के उपायों में से एक। ऋणी के स्त्री, पुत्र, पशु आदि को लेकर या उसके द्वार पर धरना देकर ऋण को चुका लेना। २. चरित्र। व्यवहार [को०]।

आचरितदायन—संज्ञा पुं० [सं०] ऋण का वह चुकता जो स्त्री, पुत्र को बाँधने या दरवाजे पर धरना देने से हो।

आचरितव्य—वि० [सं०] आचरण करने योग्य [को०]।

आचर्ज—संज्ञा पुं० [सं० **आश्चर्य**] दे० 'आश्चर्य' उ०—गगन की डोरि एह सुरति छूटे नहीं अजब आचर्ज सम दरस बानी।—सं० दरिया, पृ० ८५।

आचार्य—वि० [सं०] [संज्ञा **आचर्य**] १. आचरण करने योग्य। २. जाने योग्य [को०]।

आचांत—वि० [सं० **आचान्त**] १. आचमन किया हुआ। २. आचमन करने योग्य [को०]।

आचांति—संज्ञा स्त्री० [सं० **आचान्ति**] अचान ।

आचान— क्रि० वि० [हिं०] दे० 'आचमन' ।

आचानक—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'अचानक' ।

आचाम— संज्ञा पुं० [सं०] १. भात । २. माँड़ । ३. आचमन ।

आचामक—संज्ञा पुं० [सं०] आचमन करनेवाला व्यक्ति [को०] ।

आचार—संज्ञा पुं० [सं०] १. व्यवहार । चलन । रहन सहन । २. चरित्र । चाल ढाल । ३. शील । ४. शुद्धि । सफाई । ५. भोजन । आहार [को०] । ६. आचरण का तरीका [को०] । ७. नित्य नैमित्तिक नियम [को०] ।

यौ०—**अनाचार । दुराचार । शिष्टाचार । समाचार । सदाचार । कुलाचार । देशाचार । भ्रष्टाचार** ।

आचारजⓅ—संज्ञा पुं० [सं० **आचार्य**] दे० 'आचार्य' । उ०—आचारज बासिष्ठ भो ऋत्वज बत्स प्रवीन ।—हम्मीर रा०, पृ० ५६ ।

आचारजीⓅ—संज्ञा स्त्री० [सं० **आचार्य**] पुरोहिताई । आचार्य होने का भाव । उ०—उनके घर किसकी आचारजी है ?

आचारतंत्र—संज्ञा पुं० [सं० **आचारतन्त्र**] बौद्धों के चार तंत्रों में से एक [को०] ।

आचारदीप—संज्ञा पुं० [सं०] आरती आदि पूजनविधियों में प्रयुक्त होनेवाला दीप [को०] ।

आचारपतित—वि० [सं०] आचारभ्रष्ट [को०] ।

आचारपूत—वि० [सं०] शुद्ध आचरण करनेवाला [को०] ।

आचारभेद—संज्ञा पुं० [सं०] आचार या आचरण संबंधी नियमों का अंतर [को०] ।

आचारभ्रष्ट—वि० [सं०] आचार या आचरण की मर्यादा से रहित । पतित [को०] ।

आचारलाज—संज्ञा पुं० [सं०] राजा आदि पर डाला जानेवाला लावा [को०] ।

आचारवर्जित—वि० [सं०] १. आचारविरुद्ध या आचारशून्य । २. जाति से बहिष्कृत । जातिच्युत [को०] ।

आचारवान्—वि० [सं० **आचारवत्**] [वि० स्त्री० **आचारवती**] पवित्रता से रहनेवाला । शुद्ध आचार का । उ०—शुचि आचारवती कल्याणी गिरजा जब अभिजाता । सूर्यवंदना अरुणाचल पर करती सद्यःस्नाता ।—पार्वती, पृ० ६१ ।

आचारविचार—संज्ञा पुं० [सं०] आचार और विचार । पवित्र आचरण ।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग अकसर आचार ही के अर्थ में होता है । जैसे,—वह बड़े आचारविचार से रहता है ।

आचारवेदी—संज्ञा स्त्री० [सं०] आचार की वेदी । आर्यावर्त [को०] ।

आचारहीन—वि० [सं०] आचरणभ्रष्ट । जिसमें आचार विचार न हो । पतित [को०] ।

आचारिक—संज्ञा पुं० [सं०] स्वास्थ्य संहिता । स्वास्थ्य संबंधी नियम [को०] ।

आचारी[1]—वि० [सं० **आचारिन्**] [वि० स्त्री० **आचारिणी**] आचारवान् । चरित्रवान् । शुद्ध आचार का । उ०—सोइ सयान जो परधन हारी । जो कर दंभ सो बड़ आचारी ।—मानस, ७ । ९८ ।

आचारी[2]—संज्ञा पुं० [सं०] रामानुज संप्रदाय का वैष्णव । श्रीवैष्णव ।

आचारी[3]—संज्ञा स्त्री० [सं०] हुरहुर । हिलमोचिका ।

आचार्य—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० **आचार्या, आचार्याणी**] [वि० **आचार्यी**] १. उपनयन के समय गायत्री मंत्र का उपदेश करनेवाला । गुरु ।

विशेष—पाणिनि ने चार प्रकार के शिक्षकों का उल्लेख किया है । आचार्य, प्रवक्ता, श्रोत्रिय, अध्यापक । इनमें आचार्य का स्थान सर्वोच्च था । शिष्य का उपनयन कराने का अधिकार तो आचार्य को ही था । स्वयं आचार्य का काम करनेवाली स्त्री आचार्या कहलाती है । आचार्य की पत्नी को आचार्यानी कहते हैं ।

२. वेद पढ़ानेवाला । ३. यज्ञ के समय कर्मोपदेशक ४. पूज्य । पुरोहित । ५. अध्यापक । ६. ब्रह्मसूत्र के चार प्रधान भाष्यकार—(क) शंकर, (ख) रामानुज, (ग) मध्व और (घ) वल्लभाचार्य ७. वेद का भाष्यकार । ८. शास्त्रीय व्याख्या करनेवाला । तात्विक दृष्टि से गुण दोष का विवेचन करनेवाला । ९. किसी महाविद्यालय का प्रधान अधिकारी और अध्यापक । प्रिंसिपल । प्राचार्य [को०] । १. किसी शास्त्र या विषय का धुरंधर पंडित या ज्ञाता [को०] ।

यौ०—**आचार्यकुल** = **गुरुकुल** । **आचार्यवान्** = उपनीत ।

आचार्यक—संज्ञा पुं० [सं०] १. आचार्योपदेश, शिक्षा, पाठ आदि । २. व्याख्या करने की शक्ति या योग्यता । व्याख्यातृत्व । ३. आचार्य का पद [को०]

आचार्यकरण—संज्ञा पुं० [सं०] माणवक या बटु को उपनीत करने का कार्य [को०] ।

आचार्यदेव—वि० [सं०] आचार्य को देव माननेवाला [को०] ।

आचार्यी—वि० स्त्री० [सं०] आचार्य की । आचार्य संबंधिनी । जैसे—आचार्यी दक्षिणा ।

आचितⓅ—वि० [सं० **अचिन्त्य**] (परमेश्वर) जो चिंतन में नहीं आ सकता । उ०—तेज अंड आचित का, दीन्हा सकल पसार । अंड शिखा पर बैठकर, अधर दीप निरधार ।—कबीर (शब्द०)।

आचिंत्य[1]—वि० [सं० **आचिन्त्य**] सब प्रकार से चिंतन करने योग्य।

आचिज्जⓅ—संज्ञा पुं० [सं० **आश्चर्य**, प्रा० **आचिज्ज**] दे० 'आश्चर्य'। उ०—एह बत्त आचिज्ज उपजि मो पित्त तु तब्बह ।—पृ० रा०, ३।२० ।

आचित[1]—संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक मान जो दस भार या २५ मन का होता था । २. गाड़ी भर का बोझ । एक छकड़े का भार ।

आचित[2]—वि० १. व्याप्त । २. एकत्र किया हुआ [को०] । ३. भरा हुआ [को०] । ४. बँधा हुआ [को०] । ५. फैलाया हुआ [को०] ।

आचीर्ण—वि० [सं०] खाया हुआ । आस्वादित [को०] ।

आचूषण—संज्ञा पुं० [सं०] १. चूसना । २. चूसकर बाहर निकालना । रक्त चूसने का यंत्र लगाकर चूसना [को०] ।

आच्छद—संज्ञा पुं० [सं० **आच्छद्**] आवरण । वस्त्र ।

आच्छन्न—वि० [सं०] १. ढका हुआ । आवृत । २. छिपा हुआ । तिरोहित ।

आच्छाक—संज्ञा पुं० [सं०] नील का सा एक पौधा जिससे लाल रंग बनता है। आल।

पर्या०—रंजनद्रुम। पक्षीक। पक्षिक। आच्छुक।

आच्छाद—संज्ञा पुं० [सं०] वस्त्र। परिधान [को०]।

आच्छादक—संज्ञा पुं० [सं०] ढँकनेवाला। जो ढाँके।

आच्छादन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० **आच्छादित, आच्छन्न**] ढकना। आवरण। उ०—धीरे धीरे हिम आच्छादन हटने लगा धरातल से।—कामायनी, पृ० २३। २. वस्त्र। कपड़ा। ३. छाजन। छवाई। ४. छिपाना [को०]। ५. परिधान [को०]। ६. ठाठ। ठाठर [को०]। ७. लोप [को०]।

आच्छादित—वि० [सं०] १. ढँका हुआ। आवृत्त। उ०—फिर देखी भीमा मूर्ति आज रण देखी जो आच्छादित किए हुए संमुख समग्र नभ को।—अनामिका, पृ० १५२। २. छिपा हुआ। तिरोहित।

आच्छादी—वि० [सं० **आच्छादिन्**] आच्छादान करनेवाला [को०]।

आच्छाद्य—वि० [सं०] १. ढकने योग्य (स्तन)। २. गोप्य। गोपनीय [को०]।

आच्छिन्न—वि० [सं०] १. हटाया हुआ। २. नष्ट किया हुआ [को०]।

आच्छुक—संज्ञा पुं० [सं०] अच्छाक। आक्षिक [को०]।

आच्छुरित¹—वि० [सं०] १. मिश्रित। मिला हुआ। २. नख से चिह्नित या खँरोचा हुआ। क्षुब्ध [को०]।

आच्छुरित²—संज्ञा पुं० १. नखवाद्य। नखों को रगड़कर शब्द करना। २. अट्टहास [को०]।

आच्छुरितक—संज्ञा पुं० [सं०] नखक्षत। २. अट्टहास [को०]।

आच्छेत्ता—वि० [सं० **आच्छेतृ**] छेदन करनेवाला। काटनेवाला [को०]।

आच्छेद—संज्ञा पुं० [सं०] १. काटना। काट डालना। २. किंचित् या कुछ काटना। ३. अपहरण। बलपूर्वक हरण करना [को०]।

आच्छेदन—संज्ञा पुं० [सं०] आच्छेद।

आच्छेपⓅ—संज्ञा पुं० [सं० **आक्षेप**] दे० 'आक्षेप'। उ०—पहिले कहिए बात कछु, पुनि ताको प्रतिषेध। ताहि कहत आच्छेप हैं, भूषन सुकवि सुमेध।—भूषण ग्रं०, पृ० ३६।

आच्छोटन—संज्ञा पुं० [सं०] १. चुटकी बजाना। २. उँगली फोड़ना। उँगली चटकाना।

आच्छोदन—संज्ञा पुं० [सं०] अहेर। आखेट। मृगया [को०]।

आछढ़नाⓅ†—क्रि० अ० [देश०] धक्का देना। उ०—उचित बयस भोर मनमथ चोर ठेलि आछढ़ि आकरए अगोर।—विद्यापति, पृ० ५६२।

आछत†Ⓟ—क्रि० अ० [प्रा०√अच्छ, हिं० **आछना का कृदंत रूप, जिसका प्रयोग क्रि० वि० वत् होता है।**] होते हुए। रहते हुए। विद्यमानता में। मौजूदगी में। सामने। जैसे,—हमारे आछत उसे और कौन ले जा सकता है।—(शब्द०)। उ०—आँखिन आछत आँधरो जीव करै बहु भाँति। धीर न बीरज बिनु करै तृष्णा कृष्णा राति।—केशव (शब्द०)।

आछनाⓅ—क्रि० अ० [सं० **अस्=होना** अथवा सं० **आ+√क्षि, प्रा० √अच्छ**] १. होना। २. रहना। विद्यमान होना। उ०—भँवर आइ बनखँड सन, लेइ कमल कै बास। दादुर बास न पावई, भलहि जो आछै पास।—जायसीग्रं०, पृ० ६।

विशेष—इस क्रिया के और सब रूपों का व्यवहार अब बोलचाल से उठ गया है; केवल आछत; आछते (होते हुए) रह गया है।

आछरिⓅ—संज्ञा स्त्री० [सं० **अप्सरा**, प्रा० **अच्छरा**] दे० 'अप्सरा'।

आछाⓅ—वि० [हिं०] दे० 'अच्छा'। उ०—हरि आवत गाइनि के पाछे। मोर मुकुट मकराकृत कुंडल, नैन बिसाल कमल तें आछे।—सूर०, १०। ५०७।

आछादितⓅ—वि० [सं० **आच्छादित**] दे० 'आच्छादित'। उ०—गजं चर्म आछादितं, भ्रंम नासं, रहै बीर भैरों गनं आस पासं।—पृ० रा०, १। ३८६।

आछी¹Ⓟ—वि० स्त्री० [**हिं० अच्छा**] १. अच्छी। भली। उत्तम। उ०—लै पौढ़ी आँगन ही सुत कौं छिटकि रही आछी उजियरिया।—सूर०, १०। २४६। २. स्वस्थ। नीरोग। ठीक। उ०—तब विट्ठल श्री गुसाँई जी सों बिनती करे, जो महाराज! मेरी देह आछी नाहीं।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० १४०।

आछी²Ⓟ—वि० [सं० **अशिन्**] खानेवाला। उ०—पान फूल आछी सब कोई। तुम कारन यह कीन रसोई।—जायसी (शब्द०)।

आछी³†—संज्ञा स्त्री० [सं० **आक्षिक**] सुगंधित फूलवाला एक पेड़ जिसकी लकड़ी हल्के पीले रंग की होती है।

आछेⓅ†—क्रि० वि० [सं० **अच्छ=स्वच्छ, हिं० अच्छा**] अच्छी तरह। उ०—तिनके लच्छन-लच्छ अब आछे कहौं बखानि।—नंद० ग्रं०, पृ० २६४।

आछेⓅ†²—वि० [हिं०] दे० 'अच्छा'। उ०—जे परमेश्वर पै चढ़ें, तेई आछे फूल।—भूषण ग्रं०, पृ० ७१।

आछेपⓅ—संज्ञा पुं० [सं० **आक्षेप**] आक्षेप नामक अलंकार। उ०—तहाँ कहत आछेप हैं कबिजन मत उत्सेध।—मतिराम ग्रं०, पृ० ४००।

आछैⓅ—क्रि० वि० [सं० **अक्षय, प्रा० अच्छै**] दे० 'अक्षय'। उ०—आछै संगै रहै जु वा। ता कारणि अनंत सिधा जोगेश्वर हूवा।—गोरख०, पृ० २।

आछोⓅ—वि० [हिं०] दे० 'अच्छा'। उ०—कल न परत, कमल मुख देखें, भूल्यों काम, धाम आछो बदन निहारि।—नंद० ग्रं०, पृ० ३५२।

आछोटणⓅ—संज्ञा पुं० [सं० **आच्छोदन=मृगया**] शिकार। आखेट। अहेर।—(डिं०)।

आछोपⓅ—वि० [हिं०] दे० 'अछोप'। उ०—जाके भागवतु लेखियै, सतकर्म पेखिबे तास की जाति आछोप छीपा।—संत रवि०, पृ० १३२।

आछौⓅ—वि० [हिं०] दे० 'अच्छा'। उ०—आछौ गात अकारथ गारचौ। करी न प्रीति कमल लोचन सौं जनम जुआ ज्यौं हारचौ।—सूर०, १। १०१। २. मंगल। शुभ। उ०—आछौ दिन सुनि महरि जसोदा, सखिनि बोलि सुभ गान करचौ।—सूर०, १०। ८८।

आज¹—क्रि॰ वि॰ [सं॰ **अद्य, पा॰ अज्ज**] १. वर्तमान दिन में। जो दिन बीत रहा है उसमें। जैसे,—आज किसका मुँह देखा था जो सारा दिन भटकते बीता। २. इन दिनों। वर्तमान समय में। जैसे,—(क) जो आज उनकी चलती है वह दूसरे की नहीं।—(ख) आज करे सो कल पावेगा।

आज²—संज्ञा पुं॰ १. वर्तमान दिन। जो दिन बीत रहा है। जैसे,—आज की रात वह इलाहाबाद जायगा। २. इस वक्त। जैसे,—खबरदार आज से ऐसा मत करना।

मुहा॰—**आज को** = (१) इस समय। जैसे,—आज को यह बात कही, कल को दूसरी बात कहेगा।—(२) इस अवसर पर। ऐसे समय में। ऐसे मौके पर। जैसे,—आज को वह न हुए, नहीं तो बतला देते। **आज तक** = (१) आज के दिन तक। जैसे,—उसे बाहर गए बरसों हुए, पर आज तक उसका कोई खत नहीं आया।—(२) इस समय तक। इस घड़ी तक। जैसे,—कल का गया आज तक न पलटा। **आज दिन** = इस समय। वर्तमान समय में। जैसे,—आज दिन उनकी टक्कर का दूसरा विद्वान् नहीं। **आज बरसकर फिर बरसेगा** = ऐसा ही फिर होगा। **आज लौं** = आज तक। **आज से** = इस समय से। इस वक्त से। अब से। भविष्य में। जैसे,—अब तक किया सो किया आज से न करना। **आज हो कि कल** = थोड़े दिनों में। दो चार दिन के अंदर ही। जैसे,—उनका अब क्या ठिकाना, आज मरें कि कल।

आज³—वि॰ [सं॰] [वि॰ स्त्री॰ **आजी**] १. बकरासंबंधी। २. बकरे से उत्पन्न [को॰]।

आज⁴—संज्ञा पुं॰ १. गृध्र। गिद्ध। २. आज्या घृत। घी। ३. क्षेपण। फेंकना [को॰]।

आजक—संज्ञा पुं॰ [सं॰] बकरों का झुंड [को॰]।

आजकल—क्रि॰ वि॰ [हिं॰ **आज + कल**] इन दिनों। इस समय। वर्तमान दिनों में। जैसे,—आजकल उनका मिजाज नहीं मिलता।

मुहा॰—**आजकल में** = थोड़े दिनों में। शीघ्र। जैसे,—घबराओ मत, आजकल में देता हूँ। **आजकल करना, आजकल बताना** = टालमटोल करना। हीला हवाला करना। जैसे,—(क) व्यर्थ आजकल क्यों करते हो, देना हो तो दो। (ख) जब मैं माँगने जाता हूँ, तब वह मुझको आजकल बता देता है। **आजकल लगाना** = अब तब लगना। मरने में दो ही एक दिन की देर होना। मरणकाल निकट आना। जैसे,—उनका तो आजकल लगा है, जा कर देख आओ। **आजकल होना** = (१) टालमटोल होना। हीला हवाला होना। जैसे,—महीनों से तो आजकल हो रहा है, मिले तब जानें।—(२) दे॰ 'आजकल लगना'। **आज मरे कल दूसरा दिन** = मरने के पीछे जो चाहे सो हो, मरने के बाद कोई चिंता नहीं रहती।

आजकार—संज्ञा पुं॰ [सं॰] शिव का बैल। नंदी [को॰]।

आजगर—वि॰ [सं॰][वि॰ स्त्री॰ **आजगरी**] १. अजगर संबंधी। २. अजगर के समान [को॰]।

आजगव—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १. शिवधनुष। महादेव का धनुष। पिनाक। २. शिव के धनुष जैसा दृढ़ धनुष [को॰]।

आजनन¹—संज्ञा पुं॰ [सं॰] प्रसिद्ध या ज्ञात कुल। सद्वंश [को॰]।

आजनन²—क्रि॰ वि॰ [सं॰] जन्म से ही [को॰]।

आजन्म—क्रि॰ वि॰ [सं॰] १. जन्म से। जन्म से लेकर। उ॰—आजन्म ते परद्रोह रत पापौघमय तव तनु अयं।—**मानस**, ६।१३०। २. जीवन भर। जन्म भर। जिंदगी भर। आजीवन। जब तक जिए तब तक।

आजमाइश—संज्ञा स्त्री॰ [फा॰ **आज़माइश**] १. परीक्षा। इम्तहान। परख। २. खड़ी फसल का सरकारी अधिकारी द्वारा मूल्य लगाना या आँकना।

आजमाना—क्रि॰ स॰ [फा॰ **आजमाइश = परीक्षा**] [वि॰ **आजमूदा**] परीक्षा करना। परखना। जाँच करना। उ॰—हम कहाँ किस्मत आजमाने जायँ।—शेर॰, पृ॰ ४९३।

आजमीढ़¹—वि॰ [सं॰ **आजमीढ़**] अजमीढ़ राजा के वंश का।

आजमीढ़²—संज्ञा पुं॰ अजमीढ़ देश का राजा।

आजमूदा—वि॰ [फा॰ **आजमूदह**] आजमाया हुआ। परीक्षित।

आजर्जरित—वि॰ [सं॰] फटा हुआ। टुकड़े टुकड़े। तार तार [को॰]।

आजयन—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १. विजय। २. युद्ध [को॰]।

आजवन—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १. त्वरा। वेग। २. युद्ध। ३. आक्रमण [को॰]।

आजवह¹—वि॰ [सं॰][वि॰ स्त्री॰ **आजवहा**] जिसे बकरी ले जाय या ढोए।

आजवह²—संज्ञा पुं॰ हिमालय का पर्वतीय प्रदेश जहाँ भोजन आदि की सामग्री बकरियों पर लदकर जाती है।

आजस्रिक—वि॰ [सं॰] अजस्र या प्रतिदिन होनेवाला [को॰]।

आजा—संज्ञा पुं॰ [सं॰ **आर्यक**, प्रा॰ **अज्जअ**][स्त्री॰ **आजी**] पितामह। दादा। बाप का बाप। उ॰—आजा को घर अमर है बेटा के सिर भार। तीन लोक नाती ठगा, पंडित करौं विचार।—कबीर (शब्द॰)।

आजागुरु—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ **आजा + गुरु**] १. गुरु का गुरु। २. गुरु का आजा या दादा।

आजात—वि॰ [सं॰] उच्च या ख्यात कुल में उत्पन्न [को॰]।

आजाति—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] १. जन्म। उत्पत्ति। २. अच्छा वंश [को॰]।

आजाद—वि॰ [फा॰ **आज़ाद**] १. जो बद्ध न हो। छूटा हुआ। बरी। जैसे,—राज्याभिषेक के अवसर पर बहुत से कैदी आजाद किए गए। २. बेफिक्र। बेपरवाह। ३. स्वतंत्र। जो किसी के अधीन न हो। स्वाधीन। उ॰—साहब ने इस गुलाम को आजाद कर दिया। लो बंदगी कि बंदगी से छूट गए हम।—शेर॰, पृ॰ ४५९। ४. निडर। निर्भर। अशंक। बेधड़क। ५. स्पष्टवक्ता। हाजिरजवाब। ६. उद्धत। ७. अकिंचन। निष्परिग्रह। ८. कहीं एक जगह न रहनेवाला। बेपता। बे-निशान। ९. एक प्रकार के मुसलमान फकीर जो दाढ़ी, मूँछ और भौं आदि मुँड़ाए रहते हैं और न रोजा रखते हैं और न नमाज पढ़ते हैं। ये सूफी संप्रदाय के अंतर्गत हैं और अद्वैतवादी हैं।

क्रि॰ प्र॰—**करना**।—**रहना**।—**होना**।

यौ०—आजाद तबीयत, आजाद मिजाज = स्वेच्छाचारी। मनमौजी। आनंदी।

आजादगी—संज्ञा स्त्री० [फा० आज़ादगी] स्वतंत्रता।

आजादाना—क्रि० वि० [फा० आज़ादानह्] आजाद की तरह। स्वतंत्रतापूर्वक। स्वच्छंदतापूर्वक।

आजादी—संज्ञा स्त्री० [फा० आजादी] १. स्वतंत्रता। स्वाधीनता। २. निरंकुशता [कौ०]।

आजान[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. जन्म। जनन। २.उत्पत्ति या जन्म का कारण। ३. जन्मस्थान [कौ०]।

आजान[2]—क्रि० वि० [सं०] सृष्टिकाल से [कौ०]।

आजान[3]ⓟ—वि० [हिं० अजान] अनजान। न जाननेवाला। उ०—करतलह सु कवि कित्तिय सुबर, पथ थक्के आजान जिम।—पृ० रा०, २५। ५६८।

आजानज—वि० [सं०] सृष्टिकाल में उत्पन्न, जैसे देव आदि [कौ०]।

आजानदेव—संज्ञा पुं० [सं०] वे देवता जो सृष्टि के आदि में देवता रूप में ही उत्पन्न हुए थे।

विशेष—देवता दो प्रकार के होते हैं—एक कर्मदेव, जो कर्म से देवता हो जाते हैं और दूसरे आजानदेव जो देवता रूप में ही उत्पन्न होते हैं।

आजानि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. जननी। माता। २. जन्म। उत्पत्ति। ३. अच्छा वंश [कौ०]।

आजानु—वि० [सं०] जाँघ तक लंबा। घुटने तक लंबा।

यौ०—आजानुबाहु। आजानुभुज। आजानुलंबी।

आजानुबाहु—वि० [सं०] जिसकी बाहु जाँघ तक लंबी हो। जिसके हाथ घुटने तक लंबे हों।

आजानुभुज—वि० [सं०] दे० 'आजानुबाहु'। उ०—आजानुभुज सरचाप धर संग्रामजित खरदूषनं।—तुलसी ग्रं०, पृ० ४७८।

आजानुलंबी—वि० [सं० आजानुलम्बिन्] घुटने तक लंबा [कौ०]।

आजानेय[1]—संज्ञा पुं० [सं०] घोड़े की एक जाति जो उत्तम मानी जाती है।

आजानेय[2]—वि० १. अच्छी नस्ल का (घोड़ा)। २. उच्चकुल में उत्पन्न। ३. निर्भय [कौ०]।

आजार—संज्ञा पुं० [फा० आज़ार] १. रोग। बीमारी। व्याधि। उ०—उस मसीहा को दिखा दो तो कुछ आजार नहीं, अभी हो जाय शिफा।—श्यामा०, पृ० १०१।

क्रि० प्र०—देना।

२. दुःख। कष्ट। तकलीफ। उ०—तेरे बीमार सा बीमार न होगा कोई। जिसको जाहिर में जो देखा तो कुछ आजार नहीं।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० २२६।

क्रि० प्र०—देना।—पहुँचना।—पाना।—लगाना।

आजि—संज्ञा पुं० [सं०] १. युद्ध। रण। संग्राम। लड़ाई। उ०—चतुरंग सैन भगाइकै, तब जीतियौ वह आजि।—रामचं०, पृ० १७४। २. दौड़ [कौ०]। ३. युद्धक्षेत्र या दौड़ का स्थान [कौ०]। ४. सीमा। घेरा [कौ०]। ५. पथ। मार्ग [कौ०]। ६. क्षण [कौ०]। ७. निंदा [कौ०]।

आजिक्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] युद्ध [कौ०]।

आजिगमिषु—वि० [सं०] आने की इच्छा रखनेवाला [कौ०]।

आजिगीषु—वि० [सं०] जय का इच्छुक [कौ०]।

आजिग्रह—वि० [सं०] ग्रहण या हरण करनेवाला [कौ०]।

आजिज—वि० [अ० आजिज़] [संज्ञा आजिजी] १. दीन। विनीत। २. हैरान। तंग। उ०—इंद्रिन से आजिज तुम रहते इंद्री मारि गिराओ।—पलटू० बानी, भा० ३, पृ० ५८।

क्रि० प्र०—आना।—होना।

आजिजी—संज्ञा स्त्री० [अ० आजिजी] १. दीनता। विनीत भाव। नम्रता। २. हैरानी। ३. निराशा। ४. कमजोरी।

आजिमुख—संज्ञा पुं० [सं०] युद्ध की अग्रपंक्ति [कौ०]।

आजी—संज्ञा स्त्री० [सं० आर्यिका, प्रा० अज्जिआ अथवा हिं० आजा] दादी। पितामही।

आजीव—संज्ञा पुं० [सं०] १. जीविका। धंधा। २. जीविका का साधन या उपाय। ३. उचित लाभ या आय। वाजिब आमदनी।

विशेष—जो लोग कारीगरों और श्रमिकों की आमदनी को घटाने का यत्न करते थे, उनके ऊपर चाणक्य ने १००० पण जुरमाना लिखा है।

४. राज्यकर। सरकारी टैक्स या महसूल।

विशेष—यह भिन्न भिन्न पदार्थों पर लगता था।

आजीवक—संज्ञा पुं० [सं०] १. गोशाल द्वारा प्रवर्तित धार्मिक संप्रदाय का साधु (जैन)। उ०—इतने में एक आजीवक उसी स्थान पर आकर चंदन से पूछने लगा।—इरा०, पृ० ७२। २. भिखमंगा। भिक्षुक [कौ०]।

आजीवन—क्रि० वि० [सं०] जीवनपर्यंत। जिंदगी भर। जब तक जीए तब तक।

आजीवनिक—वि० [सं०] जीविका के लिये प्रयत्न करनेवाला [कौ०]।

आजीवांत—क्रि० वि० [सं० आजीवान्त] मरने की घड़ी तक। प्राण निकलने के क्षण तक।

आजीविक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'आजीवक' [कौ०]।

आजीविका—संज्ञा स्त्री० [सं०] वृत्ति। रोजी। रोजगार। जीवन का सहारा। जीवननिर्वाह का अवलंब। उ०—तेरी बहुत अच्छी आजीविका है।—शकुंतला, पृ० १०१।

आजीवितांत—क्रि० वि० [सं० आजीवितान्त] जीवनपर्यंत [कौ०]।

आजीवी—वि० [सं० आजीविन्] जीविकायुक्त। २. एक प्रकार के भिक्षुक (एकदंडी) [कौ०]।

आजीव्य[1]—वि० [सं०] १. जीविका योग्य। जीविका बनाने योग्य। ३. निवास योग्य। ४. उपजाऊ [कौ०]।

आजीव्य[2]—संज्ञा पुं० [सं०] जीविका या रोजी का साधन [कौ०]।

आजुⓟ—क्रि० वि०, संज्ञा पुं० [हिं० आजु] दे० 'आज'। उ०—(क) आजु अनरसेहि भोर के, पय पियत न नीके।—तुलसी ग्रं०, पृ० २७४। (ख) बहुत काल मैं कीन्हि मजूरी। आजु दीन्ह बिधि बनि भलि भूरी।—मानस, २। १०२।

आजुर्दगी—संज्ञा स्त्री० [फा० आजुर्दगी] रंज। खेद। दुःख।

आजुर्दा—वि० [फ़ा० **आज़ुर्दह्**] खिन्न। दुःखी। उ०—वे लोग कैसे कुछ आजुर्दा खातिर हैं।—प्रेमघन, भा० २, पृ० १०१।

आजू[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. बेगार। २. बिना वृत्ति लिए काम करनेवाला नौकर (को०)। ३. नरक निवास या वास (को०)।

आजू[2]—संज्ञा पुं० [**अ० वजूअ**] दे० 'वजू'। उ०—ज्ञान का गुसल कर पाक का आजू कर पंक तकबीर परतीत पाई—कबीर० रे०, पृ० २४।

आज्ञप्त—वि० [सं०] १. आदेश दिया हुआ। २. सूचित [को०]।

आज्ञप्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. आज्ञा। आदेश। २. सूचना।

यौ०—**आज्ञप्तिहर**=संदेशवाहक। दूत।

आज्ञा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बड़ों का छोटों को किसी काम के लिये कहना। आदेश। हुक्म। जैसे,—राजा ने चोर को पकड़ने की आज्ञा दी। २. छोटों को उनकी प्रार्थना के अनुसार बड़े का उन्हें कोई काम करने के लिये कहना। स्वीकृति। अनुमति। जैसे,—बहुत कहने सुनने पर हाकिम ने लोगों को जुआ खेलने की आज्ञा दी।

क्रि० प्र०—**करना**।—**देना**।—**मानना**।—**लेना**।—**होना**।

यौ०—**आज्ञाकारी**। **आज्ञावर्ती**। **आज्ञापक**। **आज्ञापालन**। **आज्ञाभंग**।

आज्ञाकर—वि० [सं०] दास। सेवक [को०]।

आज्ञाकारी—वि० [सं० **आज्ञाकारिन्** [स्त्री० **आज्ञाकारिणी**] १. आज्ञा माननेवाला। हुक्म माननेवाला। आज्ञापालक। उ०—लोकपाल, जम, काल, पवन, रवि, ससि सब आज्ञाकारी। तुलसिदास प्रभु उग्रसेन के द्वार बेंत कर धारी।—तुलसी ग्रं०, पृ० ५०८। २. सेवक। दास। टहलुआ।

आज्ञाचक्र—संज्ञा पुं० [सं०] योग और तंत्र में माने हुए शरीर के भीतर के छह चक्रों में से छठा, जो सुषुम्ना नाड़ी के बीचोबीच दोनों भौं के बीच दो दल के कमल के आकार का माना गया है।

आज्ञाता—वि० [सं० **आज्ञातृ**] आज्ञा देने या करनेवाला [को०]।

आज्ञादान—संज्ञा पुं० [सं०] आज्ञा करना या देना [को०]।

आज्ञाधि—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह गिरवी जो राजा की आज्ञा से रखी या रखाई गई हो।

आज्ञान—संज्ञा पुं० [सं०] अवगम। ज्ञान। बोध [को०]।

आज्ञापक—वि० [सं०] [वि० स्त्री० **आज्ञापिका**] १. आज्ञा देनेवाला। आज्ञा करनेवाला। २. प्रभु। स्वामी।

आज्ञापत्र—संज्ञा पुं० [सं०] वह लेख जिसके अनुसार किसी आज्ञा का प्रचार किया जाय। हुक्मनामा।

आज्ञापन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० **आज्ञापित**] सूचना। जताना।

आज्ञापरिग्रह—संज्ञा पुं० [सं०] आज्ञा प्राप्त करना या स्वीकार करना [को०]।

आज्ञापालक—वि० [सं०] [वि० स्त्री० **आज्ञापालिका**] १. आज्ञा पालन करनेवाला। आज्ञाकारी। आज्ञा के अनुसार चलनेवाला। फरमाँबरदार। २. दास। टहलुआ।

आज्ञापालन—संज्ञा पुं० [सं०] आज्ञा के अनुसार काम करना। **फरमाँबरदारी**।

आज्ञापित—वि० [सं०] सूचित। जाना हुआ।

आज्ञाप्य—वि० [सं०] आज्ञा या निर्देश के योग्य [को०]।

आज्ञाप्रतिघात—संज्ञा पुं० [सं०] १. आज्ञा का उल्लंघन। २. विद्रोह [को०]।

आज्ञाभंग—संज्ञा पुं० [सं० **आज्ञाभङ्ग**] आज्ञा न मानना। हुक्म उदूली।

क्रि० प्र०—**करना**।—**होना**।

आज्ञायी—वि० [सं० **आज्ञायिन्**] बोध या ज्ञानवाला। समझनेवाला [को०]।

आज्ञाविधेय—वि० [सं०] आज्ञा माननेवाला। आज्ञाकारी [को०]।

आज्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. घृत। घी। उ०—नौकरशाही दे चुकी, भारत तुझे स्वराज्य। डाल न आशा आग में असहयोग का आज्य।—शंकर०, पृ० २०६। २. (व्यापक भाव में) घृत की जगह तेल, दूध आदि हवनीय पदार्थ [को०]। ३. प्रातःकालिक होत्र के मंत्र [को०]। ४. वह सूक्त जिसमें उक्त मंत्र है [को०]।

यौ०—**आज्यग्रह**, **आज्यधानी**=घृतपात्र। **आज्यदोह**। **आज्यप**=घृत पीनेवाला। आज्यपा। **आज्यभाग**। **आज्यभुक्**। **आज्यस्थाली**।

आज्यदोह—संज्ञा पुं० [सं०] सामवेद की तीन ऋचाओं का एक सूक्त जिसका जप या पाठ पवित्र करनेवाला होता है।

आज्यधन्वा—संज्ञा पुं० [सं० **आज्यधन्वन्**] वह जिसके धनुष में घृत की मालिश की गई हो [को०]।

आज्यपा—संज्ञा पुं० [सं०] सात पितरों में से एक। मनु के अनुसार ये वैश्यों के पितर हैं जो पुलस्त्य ऋषि के लड़के थे।

आज्यभाग—संज्ञा पुं० [सं०] घृत की दो आहुतियाँ जो अग्नि और सोमदेवताओं को उत्तर और दक्षिण भागों में आधार के पीछे दी जाती हैं।

विशेष—इनके अविच्छिन्न होने का नियम नहीं है। ऋग्वेदी लोग 'अग्नये स्वाहा' से उत्तर ओर और 'सोयाम स्वाहा' से दक्षिण ओर आहुति देते हैं, पर यजुर्वेदी लोग उत्तर और दक्षिण दिशाओं में भी पूर्वार्ध और पश्चिमार्ध का विभाग करके उत्तर और दक्षिण दोनों के पूर्वार्द्ध भाग ही में देते हैं। आधार और आज्यभाग आहुति के बिना हवि से आहुति नहीं दी जाती।

आज्यभुक्, आज्यभुज—संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि।

आज्यलेप—संज्ञा पुं० [सं०] घी का मलहम [को०]।

आज्यवारि—संज्ञा पुं० [सं०] घृतसमुद्र। सात पौराणिक समुद्रों में से एक [को०]।

आज्यविलापिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] घृतपात्र [को०]।

आज्यस्थाली—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक यज्ञपात्र जो बटली के आकार का होता है और जिसमें हवन के लिये घी रखा जाता है।

आज्यहोम, आज्याहुति—संज्ञा पुं० [सं०] घी का होम [को०]।

आझा—संज्ञा स्त्री० [सं० **आकांक्षा**] इच्छा। उ०—प्राणहारा जादव खग प्राजा, अमरो खान पूरवण आझा।—रा० रू०, पृ० २६७।

आझाल(पु)†—वि० [सं० आ+ज्वाल] तेजस्वी उ०—प्रखई प्रोहित बंस उजाळौ, आयौ प्रिय दरसण आभौलो।—रा० रू०, पृ० ३००।

आटना—क्रि०अ० [सं० अटन=घूमना से प्रे० रूप आटन=घुमाना, फेरना।] पोतना। दबाना। उ०–(क) घोड़ों ही की लीद में मारौं आटि पठान।—सुजान०, पृ० ७०। (ख) क्यों इस वृद्ध पुरुष को अनुग्रह से आटे देते हो।—तोताराम।–(शब्द०)।

आटरूष—संज्ञा पुं० [सं०] १. पौधा। अडूसा। २. एक वृत्त का नाम। अटरूष [को०]।

आटविक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. वन में निवास करनेवाला व्यक्ति। २. छह प्रकार की सेनाओं में से एक। ३. वन्य जातियों का प्रधान पुरुष या मुखिया [को०]।

आटविक[2]—वि० [सं०] १. वन का। वन्य। जंगली। २. वनवासियों संबंधी [को०]।

आटा[1]—संज्ञा पुं० [सं० आर्द=जोर से दाबना, प्रा० *अट्ट] १. किसी अन्न का चूर्ण। पिसान। चून। २. पिसा हुआ गेहूँ या जौ।
मुहा०—कंगाली या गरीबी में आटा गीला होना=धन की कमी के समय पास से कुछ और जाता रहना। आटा दाल का भाव मालूम होना=संसार के व्यवहार का ज्ञान होना। आटा दाल की फिक्र=जीविका की चिंता। आटे का आपा=भोली स्त्री। अत्यंत सीधी सादी स्त्री। आटा माटी होना=नष्ट भ्रष्ट होना।
३. किसी वस्तु का चूर्ण। बुकनी।

आटा[2]—अटना क्रिया का भूतकालिक रूप। उ०—अगिलहिं कहँ पानी लेई बाँटा। पछिलहिं कहँ नहिं काँदौ आटा।—जायसी ग्रं०, पृ० ६।

आटि—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक चिड़िया का नाम। आडी। आटी। एक प्रकार की मछली [को०]।

आटिक,आटिक्य—वि० [सं०] [वि० स्त्री० आटिकी] यात्रा के लिये प्रस्तुत। यात्रा के योग्य [को०]।

आटिमुख—संज्ञा पुं० [सं०] शल्यक्रिया संबंधी एक शस्त्र जिसका आकार आडी चिड़िया के मुख या चोंच का सा होता है। [को०]।

आटी[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० अटक] डाट। रोक। टेक।

आटी[2]—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक चिड़िया का नाम। आड़ी [को०]।

आटीकन—संज्ञा पुं० [सं०] गाय के बछड़े का उछलना कूदना [को०]।

आटीकर—संज्ञा पुं० [सं०] साँड़। वृषभ [को०]।

आटोक्रैट—संज्ञा पुं० [अं०] १. निरंकुश या स्वेच्छाचारी राजा या सम्राट्। वह राजा या शासक जो दूसरों पर अपनी शक्ति का अबाध प्रयोग या मनमानी करना अपना जन्मसिद्ध अधिकार मानता हो। २. वह जिसे किसी विषय में अमर्यादित अधिकार प्राप्त हो या जो किसी विषय में अपना अमर्यादित अधिकार मानता हो। मनमानी करनेवाला। स्वेच्छाचारी। निरंकुश।

आटोक्रैसी—संज्ञा स्त्री०[अं०] १. दूसरों पर अनियंत्रित या अमर्यादित अधिकार जो किसी एक ही व्यक्ति को हो। दूसरों पर मनमाना करने का अधिकार। स्वेच्छाचारिता। निरंकुशता। २. किसी निरंकुश स्वेच्छाचारी राजा या सम्राट् की शक्ति। एकतंत्रता।

आटोप—संज्ञा पुं० [सं०] १. आच्छादन। फैलाव। २. आडंबर। विभव। ३. पेट की गुड़गुड़ाहट। ४. फूलना। शोथ [को०]। ५. भीड़ [को०]। ६. आधिक्य। प्राचुर्य [को०]। ७. गर्व। घमंड [को०]।
यौ०—घटाटोप। उ०—घटाटोप करि चहुँ दिसि घेरी। मुखहि निसान बजावहिं भेरी।—मानस ६।३८।

आट्टोप—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक रोग जिसमें पेट की नसें तन जाती हैं। २. पेट की नसों का तनाव।

आठ—वि० [सं० अष्ट, प्रा० अट्ठ] एक संख्या। चार का दूना।
मुहा०—आठ आठ आँसू रोना=बहुत अधिक विलाप करना। आठों गाँठ कुम्मैत=(१) सर्वगुणसंपन्न। (२) चतुर। (३) छँटा हुआ। धूर्त। आठों पहर=दिन रात। आठो पहर जामे से बाहर रहना=हर समय क्रुद्ध रहना। बराबर झल्लाए रहना।

आठक(पु)†—वि० [सं० अष्ट, पा० अट्ठ+हिं० एक] आठ।

आठवाँ—वि० [सं० अष्टम, पा० अट्ठवँ, प्रा० अट्ठय, अट्ठवँ] संख्या में आठ के स्थान पर का। अष्टम। जैसे,–इस पुस्तक का आठवाँ प्रकरण अभी पढ़ना है।

आठैं, आठों—संज्ञा स्त्री० [सं० अष्टमी] अष्टमी तिथि। जैसे,—आठों का मेला उ०—संबत सरस बिभावन, भादौं आठैं तिथि, बुधवार।—सूर०, १०।८६।

आठौगाँठ—वि० [हिं० आठों+गाँठ] सर्वांग। उ०—स्यामा सुगति सुबंस की आठौं गाँठि अनूप। छुटी हाथ तैं पातरी प्यारी छरी स्वरूप।—भिखारी० ग्रं०, पृ० २७।

आडंबर[1]—संज्ञा पुं० [सं० आडंबर] १. गंभीर शब्द। २. तुरही का शब्द। ३. हाथी की चिग्घाड़। ४. ऊपरी बनावट। तड़क भड़क। टीमटाम। झूठा आयोजन। ढोंग। कपटवेष जिससे वास्तविक रूप छिप जाय। जैसे,—(क) उसमें विद्या तो ऐसी ही वैसी है, पर वह आडंबर खूब बढ़ाए हुए है।—(ख) आजकल के साधुओं के आडंबर ही आडंबर देख लो।
क्रि० प्र०—करना।—फैलना।—बढ़ाना।—रचना।
५. आच्छादन।
यौ०—मेघाडंबर।
६. तंबू। ७.बड़ा ढोल जो युद्ध में बजाया जाता है। पटह। ८. कोलाहल करना। जोर जोर से या अधिक बोलना [को०]। ९. बादलों का गर्जन। मेघगर्जन [को०]। १०. युद्धघोषणा या आक्रमण की सूचना देने का पटह या नगाड़ा [को०]। ११. प्रसन्नता। आह्लाद [को०]। १२. पलक [को०]। १३. अंगसंवाहन। मालिश [को०]। १४. क्रोध। कोप [को०]।

आडंबर[2]—वि० अधिक। उच्च। अपार [को०]।

आडंबराघात—संज्ञा पुं० [सं० आडम्बराघात] पटह या नगाड़ा बजानेवाला आदमी [को०]।

आडंबरी—वि० [सं० आडम्बरिन्] आडंबर करनेवाला। ऊपरी बनावट करनेवाला २. घमंडी। अभिमानी [को०]।

आड़[1]—संज्ञा स्त्री० [अल=वारण, रोक] १. ओट। परदा। ओझल। जैसे,—(क) वह दीवार की आड़ में छिपा बैठा है। (ख) कपड़े से यहाँ आड़ कर दो।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

मुहा०—आड़ देना(ए)=ओट करना। आड़ के लिये सामने रखना। उ०—आड़े दै आले बसन, जाड़े हूँ की राति। साहसु करै सनेह बस, सखी सबै ढिग जाति।—बिहारी र०, दो० २८३। २. रक्षा। शरण। पनाह। सहारा। आश्रय। जैसे,—(क) अब वे किसकी आड़ पकड़ेंगे? (ख) जब तक उनके पिता जीते थे, तब तक बड़ी भारी आड़ थी।

क्रि० प्र०—धरना।—पकड़ना।—लेना।

३. रोक। अड़ान। ४. ईंट वा पत्थर का टुकड़ा जिसे गाड़ी के पहिए के पीछे इसलिये अड़ाते हैं जिसमें पहिया पीछे न हट सके। रोड़ा। ५. संगीत में अष्टताल का एक भेद। ६. थूनी। टेक। ७. तिल की बोंड़ी जिसमें तिल भरे रहते हैं। ८. एक प्रकार का कलछुला जो चीनी के कारखानों में काम आता है।

आड़[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० अल=डंक, पा० अड, प्रा० आड] बिच्छू या भिड़ आदि का डंक।

आड़[3]—संज्ञा स्त्री० [सं० आलि=रेखा] १. लंबी टिकली जिसे स्त्रियाँ माथे पर लगाती हैं। उ०—गोरी गदकारी परै हँसत कपोलनु गाड़। कैसी लसति गँवारि यह सुनकिरवा की आड़।—बिहारी र०, दो० ७०८। २. स्त्रियों के मस्तक पर का आड़ा तिलक। उ०—केसव, छबीलो छत्र सीसफूल सारथी सो केसर की आड़ि अधि रथिक रची बनाइ।—केशव ग्रं०, भा० १, पृ० ६०। (ख) मंगल बिंदु सुरंगु, ससि मुखु केसरि आड़ गुरु। इक नारी लहि संगु, किय रसमय लोचन जगत।—बिहारी र०, दो० ४२। ३. माथे पर पहनने का स्त्रियों का एक गहना। टीका।

आड़गीर—संज्ञा पुं० [हिं०+आड़ फा० गीर] खेत के किनारे की घास।

आड़ण—संज्ञा स्त्री० [हिं० आड़ना=रोकना] ढाल।—(डिं०)।

आड़ना—क्रि० स० [अल=वारण करना] १. रोकना। छेकना। उ०—अँचवन दियो न आजु अलि हरि छबि-अमीं अघाइ। आड़यो प्यासे दृगनि को लाज निगोड़ी आइ।—भिखारी० ग्रं०, पृ० ४५। २. बाँधना। ३. मना करना। न करने देना। ४. गिरवी रखना। गहने रखना। जैसे,—सौ रुपए की चीज आड़ करके तो २५) लाया हूँ।

आड़बंद—संज्ञा पुं० [हिं० आड़+फा० बंद] १. फकीरों का लँगोट। २. पहलवानों का लँगोट जिसे वे जाँघिए के ऊपर कसते हैं।

आड़बनं—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आड़बंद'।

आड़ा[1]—संज्ञा पुं० [सं० आलि=रेखा प्रा० आल, आड अथवा सं० अराला प्रा० *आल] [स्त्री० आड़ी] १. एक धारीदार कपड़ा। २. जहाज का लट्ठा। शहतीर। ३. नाव या जहाज में लगे हुए बगली तख्ते। ४. जुलाहों का लकड़ी का वह समान जिसपर सूत फैलाया जाता है।

आड़ा[2]—वि० १. आँखों के समानांतर दाहिनी ओर से बाईं ओर को बाईं ओर से दाहिनी ओर को गया हुआ। २. वार से पार तक रखा हुआ।

मुहा०—आड़े आना=(१) रुकावट डालना। बाधक होना। जैसे,—जो काम हम शुरू करते हैं, उसी में तुम बेहतर आड़े आते हो। (२) कठिन समय में काम आना। गाढ़े में काम आना। संकट में खड़ा होना। उ०—कमरी थोड़े दाम की आवै बहुतै काम। खासा मलमल बाफता उनकर राखै मान। उनकर राखै मान बुंद जहँ आड़े आवै। बकुचा बाँधै मोट राति को झारि बिछावै।—गिरधर (शब्द०)। आड़ा तिरछा होना=बिगड़ना। मिजाज बदलना। जैसे,—आड़े तिरछे क्यों होते हो, सीधे सीधे बातें करो। आड़े पड़ना=बीच में पड़ना। रुकावट डालना। उ०—कबिरा करनी आपनी कबहुँ न निष्फल जाय। सात समुद आड़ा परै मिलै अगाऊ आय।—कबीर (शब्द०)। आड़े हाथों लेना=किसी को व्यंग्योक्ति द्वारा लज्जित करना। जैसे,—बात ही बात में उन्होंने बलदेव को ऐसा आड़े हाथों लिया कि वह भी याद करेगा। आड़ा होना=रुकावट डालना। आगे न बढ़ने देना।—मैं पीछे मुनि धीय के, चह्यौ चलन करि चाव। मर्यादा आड़ी भई, आगे दियो न राव।—लक्ष्मण (शब्द०)।

आड़ा[3]—संज्ञा पुं० [हिं० अड्डा] दे० 'अड्डा'। उ०—होइ निचिंत बैठे तेहि आड़ा। तब जाना खोंचा हिय गाड़ा।—जायसी ग्रं०, पृ० २८।

आड़ाखेमटा—संज्ञा पुं० [हिं० आड़ा+खेमटा] मृदंग का साढ़े तेरह मात्राओं का एक ताल।

विशेष—इसमें तीन आघात और एक खाली रहता है। कोई कोई इसमें खाली का व्यवहार नहीं करते। इस ताल के बोल ये हैं—धा तेरे केटे धेने धागे नागे तेन। ताके तेरे केटे धेन धागे नागे तेन।

आड़ाचौताल—संज्ञा पुं० [हिं० आड़ा+चौताल] मृदंग का एक ताल। यह ताल सात मात्राओं का होता है।

विशेष—इसमें चार आघात और तीन खाली होते हैं। इस ताल के बोल यों हैं—धाग् धागे दिंता, केटे धागे दिंता गदि धेने धा। मतांतर से इसके बोल यों हैं—धागे तेटे केटे ताग तागे तेटे, केटे तागे धेत्ता तेटेकता गदि धेने धा।

आड़ाठेका—संज्ञा पुं० [हिं० आड़ा+ठेका] नौ मात्राओं का एक ताल।

विशेष—इसमें चार दीर्घ और चार अणु मात्राएँ होती हैं। चार दीर्घ मात्राओं की आठ दून मात्राएँ और चार अणु मात्राओं की एक मात्रा। इस प्रकार सब मिला कर नौ मात्राएँ होती हैं। किंतु जब ठेके में ४ दीर्घ मात्राएँ दी जाती हैं तो उनमें से प्रत्येक के साथ एक एक मात्रा अणु भी लगा दी जाती है। इसके मृदंग के बोल ये हैं—धाकेटे ताग धी

\+ ० + १ + +

ऐन धा धा धिन धि ऐन ताकेटे तागधि ऐन धा धा तिऐन धा।

आड़ापंचताल—संज्ञा पुं० [हिं० आड़ा+पंच+ताल] पाँच आघात और नौ मात्राओं का एक ताल।

\+ १ १

विशेष—इसके बोल ये हैं—धि तिर किट, धिना धि धि ना ना तु ना, कुत्ता[1] धि धि, ना धि धि ना।

आड़ालोट—संज्ञा पुं० [हिं० आड़ा+लोटना] डावाँडोलपन। कंप। क्षोभ (लश०)।

क्रि० प्र०—**मारना** = जहाज का लहराना। जहाज का डगमगाना।

आडि, आडी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. एक प्रकार की मछली। २. एक जलपक्षी जिसको शरालि भी कहते हैं। यह गिद्ध की तरह होता है।

आडिटर—संज्ञा पुं० [अं०] आय व्यय का चिट्ठा जाँचनेवाला। आय-व्यय परीक्षक।

आडिवी—संज्ञा पुं० [सं० **आडीविन्**] [स्त्री० **आडिविनी**] काक। कौआ [को०]।

आड़ी[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० **आड़ा**] १. तबला, मृदंग आदि बजाने का एक ढंग जिसमें किसी ताल के पूरे समय के तीसरे छठे या बारहवें भाग ही में पूरा ताल बजा लिया जाता है। २.चमारों की छुट्टी।

आड़ी[2]—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'आरी'।

आड़ी[3]—वि० [हिं० **आड़ + ई (प्रत्य०)**] सहायक। अपने पक्ष का।

विशेष—जब किसी खेल में लड़कों के दो दल हो जाते हैं तब एक लड़का अपने दल के लड़के को आड़ी कहता।

आड़ी[4]—वि० स्त्री० पड़ी। बेंड़ी।

मुहा०—**आड़ी करना** = चाँदी सोने के वर्क पीटनेवालों की बोली में लंबे पीटे हुए वर्क को चौड़ा पीटना।

आडू—संज्ञा पुं० [सं०] १. चंद्रमा [को०]।

आड़ू—संज्ञा पुं० [सं० **अंड अथवा आलु**] १. एक प्रकार का फल जिसका स्वाद खटमीठा होता है। देहरादून की ओर यह फल बहुत अच्छा होता है। इसे शफतालू भी कहते हैं। यह फल दो प्रकार का होता है—एक चकैया, दूसरा गोल। २. इस फल का वृक्ष।

आढ़[1]—संज्ञा पुं० [सं० **आढक**] चार प्रस्थ अर्थात् चार सेर की एक तौल।

आढ़[2] (पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० **आड़**] १. ओट। पनाह। २. सहारा। ठिकाना। उ०—ज्यौं ज्यौं जल मलीन त्यौं त्यौं जगमण मुख मलीन लहै आढ़ न।—तुलसी ग्रं०, पृ० ४६४। ३.(पु) अंतर। बीच। जैसे,—(क) एक दिन आढ़ देकर आना। (ख) एक कोस-आढ़-देकर ठहरेंगे।

मुहा०—**आढ़ आढ़ करना** = बीच में अवधि डालना। आजकल करना। टाल मटूल करना। जैसे,—उ०—(क) हरि तेरी माया को न बिगोयो। शंकर को चित हरयो कामिनी सेज छाड़ि भू सोयो। जारि मोहिनी आढ़ आढ़ कियो तब नख सिख तें रोयो।—सूर (शब्द०)। (ख) आढ़ आढ़ करत असाढ़ आयो, एरो आली डर से लगत देखि तम के जमाक ते। श्रीपति ये मैन माते मोरन के बैन सुनि परत न चैन बुँदियान के झमाक ते।—श्रीपति। (शब्द०)।

आढ़[3]—वि० [सं० **आढ्य = संपन्न**] कुशल। दक्ष। उ०—स्वारथ लागि रहे वे आढ़ा। नाम लेत जस पावक डाढ़ा।—कबीर, (शब्द०)।

आढ़[4]—संज्ञा स्त्री० [सं० **आढि**] एक प्रकार की मछली।

आढ़[5]—संज्ञा स्त्री० [हिं० **आड़ = टीका**] माथे पर पहनने का स्त्रियों का एक आभूषण। टीका।

आढक—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक तौल जो चार सेर के बराबर होती है। २. अन्न नापने का काठ का बरतन जिसमें अनुमान से चार सेर अन्न आता है। ३. अरहर।

आढकिक—वि० [सं०] १. आढकवाला आढकयुक्त। २. एक आढक से बोया हुआ (खेत) [को०]।

आढकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. अरहर नाम का अन्न। २. सौराष्ट्र मृत्तिका। गोपीचंदन।

आढ़त—संज्ञा स्त्री० [**हिं० आड़ना = जमानत देना**] १. किसी अन्य व्यापारी का माल रखकर कुछ कमीशन लेकर उसकी बिक्री करा देने का व्यवसाय। २. वह स्थान जहाँ आढ़त का माल रहता हो। ३. वह धन जो बिक्री कराने के बदले मिलता है।

आढ़तदार—संज्ञा पुं० [**हिं० आढ़त + फा दार (प्रत्य०)**] वह जो व्यापारियों का माल अपने यहाँ रखकर दूकानदारों के हाथ बेचता हो। आढ़त का काम करनेवाला। अढ़तिया।

आढ़तिया—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अढ़तिया'।

आढ्यंकर—वि० [सं० **आढ्यङ्कर**] असंपन्न को संपन्न करनेवाला।

आढ्यंभविष्णु—वि० [सं० **आढ्यम्भविष्णु**] धनी होनेवाला [को०]।

आढ्य—वि० [सं०] १. संपूर्ण। पूर्ण। २. युक्त। विशिष्ट। ३. धनी [को०]।

यौ०—**आढ्यकुलीन** = धनी कुल में उत्पन्न। **आढ्यचर, आढ्यपूर्व** = पहले का धनी। **आढ्यरोग** = गठिया। वात रोग। गुणाढ्य। धनाढ्य। पुण्याढ्य। सनाढ्य।

आढ्यता—संज्ञा स्त्री० [सं०] धन [को०]।

आढ्यरोगी—वि० [सं० **आढ्यरोगिन्**] गठिया का रोगी [को०]।

आढ्यवात—संज्ञा पुं० [सं०] वातरोग जनित पक्षाघात या लकवा [को०]।

आणक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक रुपये का सोलहवाँ भाग। आना। २. एक प्रकार का रतिबंध। पार्श्वसंभोग [को०]।

आणक[2]—वि० अधम। कुत्सित।

आणव[1]—वि० [सं०] [स्त्री० **आणवी**] अत्यंत सूक्ष्म। अणु। अत्यंत छोटा [को०]।

आणव[2]—संज्ञा पुं० अणुता। अत्यंत सूक्ष्मता [को०]।

आणविक—वि० [सं०] अणु से संबद्ध। अणु संबंधी।

आणवीन—वि० [सं०] अणुधान्य (सावाँ आदि) बोने योग्य [को०]।

आतं (पु)—संज्ञा पुं० [**सं० आत्म, हिं० आतम**] आत्मा। उ०—प्रागम पंथ वाटा चढ़ी सुर्ति घाटा, गगन गैल फाटा सो आतं निआतं। घट०, पृ० ३८६।

आतंक—संज्ञा० पुं० [सं०] १. रोब। दबदबा। प्रताप। उ०—सहित गुमान गरब आतंक, सुनि राजा के बचन निसंक। हम्मीर० ह०, पृ० १८। २. भय। शंका।

क्रि० प्र०—**छाना**।—**जमना**।—**फैलना**।

३. रोग। बीमारी।

यौ०—आतंक-निग्रह।

४. मुरचंग की ध्वनि। ५. पीड़ा। कष्ट उ०—हो निर्भय निर्जेय शक्ति के मद से यदि, पावस के प्रवाह सा फैला भय, आतंक, विषाद।—पार्वती पृ० ८९। ६. संदेह [को०]। ७. निश्चय का अभाव [को०]।

आतंकवादी--वि० [सं० आतङ्क+वादिन्] जो राजनीतिक लक्ष्य की सिद्धि के लिये बल या अस्त्र शस्त्र में विश्वास रखता हो। जैसे, आतंकवादी संघटन।

आतंकित--वि० [सं० आतङ्कित] भीत। त्रस्त। डरा हुआ। उ०—पशु फिरते सानंद विहगकुल मंगल के स्वर गाते। आतंकित थे असुर, मनुज थे उत्सव पर्व मनाते। पार्वती०, पृ० ५४।

आतंचन—संज्ञा पुं० [सं० आतञ्चन] १. दूध को जमाने के लिये डाला जानेवाला जावन। जामन। २. संकुचित या संकीर्ण करनेवाला पदार्थ या व्यक्ति। ३. दही। ४. जमाने का कारण। ५. जमने में दूध का जलीय अंश। ६. प्रेषक। ७. संतोषकारक या तोषकारक। ८. संकट। विपत्ति। ९. वेग। गति। १०. धातुओं के मिश्रण में संयोजक तत्व। ११. स्थूलकरण। मोटा करना [को०]।

आत—संज्ञा पुं० [सं० आतु] शरीफा। सीताफल। उ०—दिखा रहा था तरु वृंद में खड़ा स्व आततायीपन, पेड़ आत का।—प्रिय० प्र० १०५।

आतत—वि० [सं०] १. चढ़ा या चढ़ाया हुआ। खिंचा हुआ। फैला हुआ (धनुष या उसकी डोरी) [को०]।

आततज्य—वि० [सं०] जिसके ज्या (धनुष की डोरी) आतत (चढ़ी या खिंची) हो [को०]।

आतताई(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आततायी'। उ०—बरनि बताई, छिति व्योम की तताई जेठ आयौ आतताई पुटपाक सौ करत है।—कवित्त०, पृ० ५६।

आततायी--संज्ञा पुं० [सं० आततायिन्] [स्त्री० आततायिनी] १. आग लगानेवाला। २. विष देनेवाला। ३. वधोद्यत शस्त्रधारी। ४. जमीन छीन लेनेवाला। ५. धन हरनेवाला। ४. स्त्री हरनेवाला। ७. क्रूर व्यक्ति। अत्याचारी। लोकपीड़क। संताप देनेवाला व्यक्ति।

आतन--संज्ञा पुं० [सं०] १. तानना। फैलाना। विस्तृत करना। २. दृश्य [को०]

आतप--संज्ञा पुं० [सं०] [वि० आतपी, आतप्त] १. धूप। घाम। उ०—मृदुल मनोहर सुंदर गाता। सहत दुसह बन आतप बाता।—मानस, ४। १। २. गर्मी। उष्णता। ३. सूर्य का प्रकाश। ४. ज्वर। बुखार।

यौ०—आतपक्लांत।

आतपत्र, आतपत्रक–संज्ञा पुं० [सं०] छाता। छतरी। उ०–आतपत्र सा रुचिर शीश पर राजित जिनके व्योम वितान।—पार्वती, पृ० ३०।

आतपन--संज्ञा पुं० [सं०] शिव [को०]।

आतपलंघन--संज्ञा पुं० [सं० आतपलङ्घन] सूर्य के ताप में से गुजरना [को०]।

आतपात्यय--संज्ञा पुं० [सं०] १. ग्रीष्म का बीतना। २. सूर्यास्त [को०]।

आतपाभाव—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य के ताप का अभाव [को०]।

आतपी[1]—संज्ञा पुं० [आतपिन्] सूर्य।

आतपी[2]—वि० धूप का। धूप संबंधी।

आतपीय—वि० [सं०] सूर्यताप संबंधी। धूपवाला [को०]।

आतपोदक—संज्ञा पुं० [सं०] मृगतृष्णा।

आतम[1](पु)—वि० [हिं०] दे० 'आत्म'। उ०—आतम रूप सकल घट दरस्यो, उदय कियो रवि ज्ञान।—सूर०, २।३३।

आतम[2](पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'आत्म'। उ०—एकै आतम हम तुम माँहीं।—सूर० ११। ४।

आतमक(पु)—वि० [सं० आत्मक] दे० 'आत्मक'। उ०—प्रथम मंगलाचरन को तीनि आतमक जानि। नमस्कार अरु ध्यान पुनि, आसिरवाद बखान।—भिखारी. ग्रं०, भा० १, पृ० १।

आतमगामी(पु)—वि० [सं० आत्म+गामिन्] आत्मविद्। उ०—ज्ञान आतमानिष्ठ गुनत यों आतमगामी, कृष्ण अनावृत परम ब्रह्म परमातम स्वामी।—नंद० ग्रं०, पृ० ४१।

आतमज्ञान(पु)—संज्ञा पुं० [सं० आत्मज्ञान] आत्मज्ञता। उ०—ताते आतमज्ञान धन पायो नाहिं अजान।—दीन० ग्रं०, पृ० १५२।

आतमबादी(पु)—वि० [सं० आत्मवादिन्] दे० 'आत्मवादी'। उ०—जे मुनिनायक आतमबादी।—मानस ७। ७०।

आतमहन(पु)--वि० [सं० आत्महन्] दे० 'आत्महन्'। उ०—जो न तरै भवसागर नर समाज अस पाइ। सो कृतनिंदक, मंदमति आतमहन् गति जाइ।—तुलसी (शब्द०)।

आतमा(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० आत्मा] दे० 'आत्मा'। उ०—समयसिंधु नाम—बोहित भजि निज आतमा न तारचो।—तुलसीग्रं०, पृ० ५५६।

आतर--संज्ञा पुं० [सं०] नदी पार जाने का महसूल। नाव का भाड़ा। उतराई।

आतर्द--संज्ञा पुं० [सं०] छिद्र। सूराख [को०]

आतर्दन--संज्ञा पुं० [सं०] १. धक्का देकर खोदने का कार्य। २. छिद्र। छेद। सूराख [को०]।

आतर्पसा--संज्ञा पुं० [सं०] मांगलिक लेपन। ऐपन।

आतश--संज्ञा स्त्री० [फा०] आग। अग्नि। उ०—आदि अंत मन मध्य न होते, आतश पवन न पानी। लख चौरासी जीव जंतु नहिं, साखी शब्द न बानी।—कबीर (शब्द०)।

यौ०—आतशखाना। आतशजनी। आतशदान। आतशपरस्त। आतशबाज। आतशबाजी।

आतशक--संज्ञा स्त्री० [फा०] [वि० आतशकी] फिरंग रोग। उपदंश। गर्मी।

आतशखाना--संज्ञा पुं० [फा० आतशख़ानह्] १. अग्नि रखने का स्थान। वह स्थान जहाँ कमरा गर्म करने के लिये आग रखते हैं। २. वह स्थान जहाँ पारसियों की अग्नि स्थापित हो।

आतशगाह--संज्ञा पुं० [फा०] दे० 'आतशखाना'।

आतशजदगी—संज्ञा स्त्री० [फा० आतशज़दगी] आग लगाने का काम करना [को०]।

आतशजन—वि० [फ़ा० **आतशज़न**] आग लगानेवाला [को०]।

आतशजनी—संज्ञा स्त्री० [**फ़ा० आतशज़नी**] आग लगाने का काम।

आतशदान—संज्ञा पुं० [फ़ा०] अँगीठी। बोरसी।

आतशपरस्त—सं० पुं० [फ़ा०] १. अग्नि की पूजा करनेवाला मनुष्य। २. अग्निपूजक। पारसी।

आतशफ़िशाँ[1]—वि० [**फ़ा आतशफ़िशाँ**] आग उगलनेवाला [को०]।

आतशफिशाँ—संज्ञा पुं० अग्निपर्वत। ज्वालामुखी पहाड़ [को०]।

आतशबाज—संज्ञा पुं० [**फ़ा० आतशबाज़**] आतशबाजी बनानेवाला। हवाईगर।

आतशबाजी—संज्ञा स्त्री० [**फ़ा० आतशबाज़ी**] १.बारूद के बने हुए खिलौनों के जलने का दृश्य। २.बारूद के बने हुए खिलौने। जैसे,—अनार, महताबी, छछूँदर, बान, चकरी, बमगोला, फुलझड़ी, हवाई आदि। ३. अगौनी (बुंदेल०)।

आतशमिजाज—वि० [**फ़ा० आतश+अ०मिज़ाज**] शीघ्र उत्तेजित या क्रुद्ध होनेवाला। बिगड़ैल [को०]।

आतशी—वि० [फ़ा०] १. अग्नि संबंधी। २.अग्नि उत्पादक। जैसे,—आतशी शीशा जो सूर्यकिरणों की उष्णता एकत्र करके आग पैदा करता है। ३. जो आग में तपाने से न फूटे, न तड़के, जैसे,—आतशी शीशा।

यौ०—**आतशी आईना, आतशी शीशा** = वह शीशा जिसके नीचे रखी हुई रुई आदि सूर्यताप से जल जाती है।

आतसⓅ—संज्ञा स्त्री० [**हिं**०] दे० 'आतश'। उ०—ज्यों छिन एक ही में छुटि जाति है आतस के लगे आतसबाजी।—पद्माकर ग्रं०, पृ० २४६।

आतशबाजⓅ—संज्ञा पुं० [**हिं**०] दे० 'आतशबाज'। उ०—आतसबाज अनेक मिले बारूद बनावत।—प्रेमघन० भा० १, पृ० ८२०।

आतशबाजीⓅ—संज्ञा स्त्री० [हिं०] **दे०** 'आतशबाजी'। उ०—ज्यों छिन एक ही में छुटि जाति है आतस के लगे आतसबाजी।—पद्माकर ग्रं, पृ० २४६।

आतापि, आतापी—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक असुर जिसे अगस्त्य मुनि ने अपने पेट में पचा लिया था। २. चील पक्षी।

आतायी—संज्ञा पुं० [सं० **आतायिन्**] चील पक्षी [को०]।

आतार—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'आतर'।

आतासंदेश—संज्ञा पुं० [सं० **आतु+बं० संदेश**] एक प्रकार की बँगला मिठाई। इसमें आत (शरीफा) की सी सुगंध आती है और कभी कभी शरीफे के आकारांश की भी इसमें थोड़ी झलक आती है। यह छेने की बनती है।

आति, आती—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक पक्षी। आडी [को०]।

आतिथेय—संज्ञा पुं० [सं०] [**स्त्री० आतिथेयी**] १. अतिथि के सत्कार की सामग्री। २. अतिथिसेवा में कुशल मनुष्य। ३. मेजबान।

आतिथेयी—वि० [सं० **आतिथेयिन्**] अतिथिसेवा करनेवाला [को०]।

आतिथ्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. अतिथि का सत्कार। पहुनाई। मेहमानदारी। २. अतिथि को देने योग्य वस्तु। ३. मेहमान। अतिथि।

यौ०—**आतिथ्यसत्कार, आतिथ्यसत्क्रिया** = अतिथि का संमान या स्वागत आदि करना।

आतिरश्चीन—वि० [सं०] थोड़ा तिरछा [को०]।

आतिरेक्य, आतिरैक्य—संज्ञा पुं० [सं०] अतिरेक होना। आधिक्य [को०]।

आतिवाहिक—संज्ञा पुं० [सं०] मरने के पीछे का वह लिंगशरीर जिसे धारण करके जीव यमलोकादि में भ्रमण करता है। यह शरीर वायुमय होता है। इसका दूसरा नाम 'भोगशरीर' भी है।

आतिश—संज्ञा स्त्री० [**फ़ा० आतश**] दे० 'आतश'।—इश्क पर जोर नहीं, है यह वो आतिश गालिब। कि लगाए न लगे और बुझाए न बने।—शेर०, पृ० ५३६।

आतिशदान—संज्ञा पुं० [**फ़ा० आतशदान**] दे० 'आतशदान'। उ०—आतिशदान के कार्निश पर धरे हुए बक्स और बोतल चमक उठे।—आकाश०, पृ० ५०।

आतिशयिक—वि० [सं०] अत्यधिक [को०]।

आतिशय्य—संज्ञा पुं० [सं०] अतिशय होने का भाव। आधिक्य। बहुतायत। अधिकाई। ज्यादती।

आतीपाती—संज्ञा स्त्री० [**हिं० पाती = पत्ता**] पहड़वा। पहाड़ी डिंओ। एक खेल।

विशेष—इसमें बहुत से लड़के जमा होकर एक लड़के को चोर बनाकर उसे किसी पेड़ की पत्ती लेने भेजते हैं। उसके चले जाने पर सब लड़के छिप रहते हैं। पत्ती लेकर लौट आने पर वह लड़का जिसको ढूँढ़कर छू लेता है, फिर वही चोर कहलाता है। उस लड़के को भी उसी प्रकार पत्ती लेने जाना पड़ता है। यह खेल बहुधा चाँदनी रातों में खेला जाता है।

आतुर[1]—वि० [सं०] १. व्याकुल। व्यग्र। घबराया हुआ। जैसे,—इतने आतुर क्यों होते हो; तुम्हारा काम सब ठीक कर दिया जायगा। २. अधीर। उद्विग्न। बेचैन।

यौ०—**आतुरसंन्यास। कामातुर। क्रोधातुर।**

३. उत्सुक। दुखी। रोगी।

आतुर[2]—क्रि० वि० शीघ्र। जल्दी। उ०—सर मज्जन करि आतुर आवहु। दिक्ष्या देउँ ज्ञान जिहि पावहु।—मानस, ६।५६।

आतुरता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. घबराहट। बेचैनी। व्याकुलता। व्यग्रता। उ०—तिय की लखि आतुरता पिय की अखियाँ अति चारु चलीं जल च्वै।—तुलसी ग्रं०, पृ० १६४। २. जल्दी। शीघ्रता।

आतुरताईⓅ—संज्ञा स्त्री० [सं० **आतुरता+हिं० आई** (प्रत्य०)] उतावलापन। शीघ्रता। जल्दीबाजी। उ०—उठि कह्यौ भोर भयो झँगुली दै मुदित महरि लखि आतुरताई। बिहँसी ग्वालि जानि तुलसी प्रभु सकुचि चले जननी उर धाई।—तुलसी ग्रं०, पृ० ४३५।

आतुरशाला—संज्ञा पुं० [सं०] चिकित्सालय। अस्पताल [को०]।

आतुरसंन्यास—संज्ञा पुं० [सं०] वह संन्यास जो मरने के कुछ पहले त्वरापूर्वक धारण कराया जाता है।

आतुरालय—संज्ञा पुं० [सं०] अस्पताल। चिकित्सागृह [को०]।

आतुरिया(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० आतुर+हिं० इया (प्रत्य०)] आधिक्य। उ०—दीपक ज्योति मलीन भई मनि भूषन जोति की आतुरिया है।—भिखारी ग्रं०, भा० १, पृ० १२१।

आतुरी[1](पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० आतुर+ई (प्रत्य०)] १. घबराहट। व्याकुलता। २. शीघ्रता। जल्दीबाजी। उतावलापन। बेसब्री।

आतुरी[2](पु)—क्रि० वि० घबराहट से। आतुरतापूर्वक। उ०—नारि गई फिरि भवन आतुरी। नंद घरनि अब भई चातुरी।—सूर०, १०।३६१।

आतुरी[3](पु)—वि० घबराया हुआ। व्याकुल।

आतुर्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. रोग। बीमारी। २. एक प्रकार का ज्वर [को०]।

आतृण्ण[1]—वि० [सं०] १. विद्ध। बिंधा हुआ। २. कटा हुआ। घायल [को०]।

आतृण्ण[2]—संज्ञा पुं० १. छिद्र। छेद। २. खुला हुआ घाव या जख्म [को०]।

आतृप्य—संज्ञा पुं० [सं०] सीताफल। शरीफा [को०]।

आतोदी—वि० [सं० आतोदिन्] आघात द्वारा बजनेवाले बाजों को बजानेवाला [को०]।

आतोद्य, आतोद्यक—संज्ञा पुं० [सं०] आघात से बजनेवाला बाजा [को०]।

आत्त—वि० [सं०] १. लिया हुआ। प्राप्त। गृहीत। २. निकाला हुआ। ३. पकड़ा हुआ। हृत। ४. अनुभव किया हुआ। अनुभूत। ५. आरब्ध। प्रारंभ किया हुआ [को०]।

आत्तगंध—वि० [सं० आत्तगन्ध] १. सूँघा हुआ। २. तिरस्कृत। अपमानित। ३. पराजित। पराभूत [को०]।

आत्तगर्व—वि० [सं०] गलितगर्व। जिसका गर्व हर लिया गया हो।

आत्तदंड—वि० [सं० आत्तदण्ड] दंडित। सजायाफ्ता [को०]।

आत्तप्रतिदान—संज्ञा पुं० [सं०] पाई हुई वस्तु को लौटाना या फेरना (को०)।

आत्तमनस्क—वि० [सं०] हर्षित। तुष्ट [को०]।

आत्तमना—वि० [सं० आत्तमनस्] प्रसन्न। हृष्ट [को०]।

आत्तलक्ष्मी—वि० [सं०] धन से वंचित [को०]।

आत्तवचस्—वि० [सं०] वाक् या वाणी से रहित [को०]।

आत्मंभरि—संज्ञा पुं० [सं० आत्मम्भरि] १. जो अकेले अपने को पाले। २. जो देवता पितर आदि को बिना अर्पित किए ही भोजन करे। उदरंभरि [को०]।

आत्म—वि० [सं० आत्मन्] अपना। स्वकीय। निज का।

आत्मक—वि० [सं०] [स्त्री० आत्मिका] मय। युक्त।

विशेष—यह शब्द अकेले नहीं आता, केवल यौगिक बनाने के काम में किसी शब्द के अंत में आता है। जैसे—गद्यात्मक=गद्यमय। पद्यात्मक=पद्यमय।

आत्मकथा—संज्ञा स्त्री० [सं० आत्म+कथा] अपने ही मुख से कहा हुआ या अपना लिखा हुआ जीवनवृत्तांत। आत्मचरित। आपबीती। उ०—सुनकर क्या तुम भला करोगे ?—मेरी भोली आत्मकथा ?—लहर, पृ० ११।

आत्मकल्याण—संज्ञा पुं० [सं०] अपना भला। अपनी भलाई।

आत्मकाम—वि० [सं०] [वि० स्त्री० आत्मकामा] १. स्वयं से ही प्रेम करनेवाला। गर्विष्ठ। २. आत्मतत्व का प्रेमी [को०]।

आत्मकृत—वि० [सं०] १. अपना किया हुआ। २. अपने विरुद्ध किया हुआ [को०]।

आत्मक्रीड़ा—संज्ञा स्त्री० [सं० आत्मक्रीड़ा] आत्मतत्व के साथ क्रीड़ा [को०]।

आत्मगत[1]—वि० [सं०] १. अंतरात्मा का। आंतरिक। उ०—बढ़ रहा था तेज तप का हुआ कृशतर गात। खिली मुख पर दीप्ति कोई आत्मगत अज्ञात।—पार्वती, पृ० १४५। २. मानसिक [को०]।

आत्मगत[2]—संज्ञा पुं० [सं०] नाटक के पात्र का अपने ही मन में सोचना या विचार करना जिसे श्रोताओं को अवगत कराने के लिये जोर जोर से कहना पड़ता है। स्वगत।

आत्मगति—संज्ञा स्त्री० [सं०] अपनी गति (को०)।

आत्मगतया—क्रि० वि० [सं०] अपनी ही गति से। अपने ही कार्य से [को०]।

आत्मगुप्ता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. केवाँच। २. शतावर।

आत्मगुप्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] किसी जानवर के रहने की छिपी जगह। माँद [को०]।

आत्मगौरव—संज्ञा पुं० [सं०] अपनी बड़ाई या प्रतिष्ठा का ध्यान। उ०—सती के पवित्र आत्मगौरव की पुण्यगाथा गूँज उठी भारत के कोने कोने जिस दिन।—लहर, पृ० ६३।

आत्मग्राही—वि० [सं० आत्मग्राहिन्] स्वार्थी। खुदगर्ज [को०]।

आत्मघात—संज्ञा पुं० [सं०] अपने हाथों अपने को मार डालने का काम। खुदकुशी। आत्महत्या।

आत्मघातक[1]—वि० [सं०] अपने हाथों अपने को मार डालनेवाला।

आत्मघाती—वि० [सं० आत्मघातिन्] [वि० स्त्री० आत्मघातिनी] जो अपने हाथों अपने को मार डाले। उ०—आत्मघाती बन प्रकृति के रमण में खो शक्ति सारी।—पार्वती, पृ० २।

आत्मघोष[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. अपनी भाषा में अपना ही नाम पुकारनेवाला—कौआ। २. मुर्गा। ३. वह व्यक्ति जो अपनी प्रशंसा आप करे (को०)।

आत्मघोष[2]—वि० अपने मुँह से अपनी बड़ाई करनेवाला।

आत्मचिंतन—संज्ञा पुं० [सं० आत्मचिन्तन] आत्म या आत्मा संबंधी चिंतन। उ०—हृदय नहीं है परिचित मन से, मन है विमुख आत्मचिंतन से।—प्रेमांजलि, पृ० ४५।

आत्मचतुर्थ—वि० [सं०] तीन हिस्सेदारों के अतिरिक्त चौथे भाग या हिस्सेवाला। चौथाई का हिस्सेदार [को०]।

आत्मचरित—संज्ञा पुं० [सं०] अपने जीवन का वृत्त या हाल। उ०—पुराने हिंदी साहित्य में यही एक आत्मचरित मिलता है।—इतिहास०, पृ० २२२।

आत्मज[1]—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० आत्मजा] १. पुत्र। लड़का। २. कामदेव। ३. रक्त। खून।

आत्मज[2]—वि० [सं०] स्वयं उत्पन्न [को०]।

आत्मजन्म--संज्ञा पुं० [सं०] पुत्र का जन्म [को०]।

आत्मजन्मा--संज्ञा पुं० [सं० आत्मजन्मन्] दे० 'आत्मज[1]'।

आत्मजय--संज्ञा पुं० [सं०] इंद्रियनिग्रह करने का कार्य [को०]।

आत्मजा--संज्ञा स्त्री० [सं०] पुत्री। दुहिता [को०]।

आत्मजात--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'आत्मज'।

आत्मजिज्ञासा--संज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० आत्मजिज्ञासु] अपने को जानने की इच्छा।

आत्मजिज्ञासु--वि० [सं०] अपने को जानने की इच्छा रखनेवाला।

आत्मज्योति--संज्ञा स्त्री० [सं०] आत्मा की ज्योति। अंतरात्मा का प्रकाश [को०]।

आत्मज्ञ--संज्ञा पुं० [सं०] जो अपने को जान गया हो। जिसे निज स्वरूप का ज्ञान हो।

आत्मज्ञान--संज्ञा पुं० [सं०] निजत्व की जानकारी। जीवत्मा और परमात्मा के विषय में जानकारी। २. ब्रह्म का साक्षात्कार।

आत्मज्ञानी--संज्ञा पुं० [सं० आत्मज्ञानिन्] १. जो आत्मतत्व को जान गया हो। आत्मा और परमात्मा के संबंध में जानकारी रखनेवाला।

आत्मतंत्र[1]--संज्ञा पुं० [सं० आत्मतंत्र] अपना आधार [को०]।

आत्मतंत्र[2]--वि० १. अपने वश या अधिकार में किया हुआ। २. अपने पर अवलंबित। स्वतंत्र [को०]।

आत्मतत्व--संज्ञा पुं० [सं०] आत्मा या परमात्मा का तत्व [को०]।

आत्मतत्वज्ञ--वि० [सं०] आत्मा या परमात्मा के तत्व का जानकार [को०]।

आत्मता--संज्ञा स्त्री० [सं०] सार। प्रकृति [को०]।

आत्मतुष्टि--संज्ञा स्त्री० [सं०] १. आत्मज्ञान से उत्पन्न संतोष या आनंद। २. आत्मसंतोष।

आत्मतृप्त--संज्ञा पुं० [सं०] स्वयं में संतुष्ट [को०]।

आत्मत्याग--संज्ञा पुं० [सं०] १. परोपकार बुद्धि से अपने लाभ की ओर ध्यान न देना। दूसरों के हित के लिये अपना स्वार्थ छोड़ना। २. आत्मघात। खुदकुशी (को०)।

आत्मत्यागी--वि० [सं० आत्मत्यागिन्] १. आत्मघाती। २. अविश्वासी [को०]।

आत्मद्रोही--वि० [सं० आत्मद्रोहिन्] [वि० स्त्री० आत्मद्रोहिणी] अपने को हानि पहुँचानेवाला। अपनी हानि करनेवाला।

आत्मधारणभूमि--संज्ञा स्त्री० [सं०] वह अधीन राज्य या भूमि जिसका शासनप्रबंध वहीं की सेना और संपत्ति से हो जाय, साम्राज्य को उसके शासन का कोई खर्च न उठाना पड़े (को०)।

आत्मन्--संज्ञा पुं० [सं०] निजत्व। अपनापन। अपना स्वरूप।

विशेष--इसका प्रयोग प्रायः यौगिक शब्दों में होता है और यह 'निज' या 'अपना' का अर्थ देता है। जैसे,--आत्मकल्याण। आत्मरक्षा। आत्महत्या। आत्मश्लाघा इत्यादि।

आत्मनिवेदन--संज्ञा पुं० [सं०] १. अपने आपको या अपना सर्वस्व अपने इष्टदेव पर चढ़ा देना। आत्मसमर्पण। २. नवधाभक्ति में से अंतिम भक्ति।

आत्मनिवेदनासक्ति--संज्ञा पुं० [सं०] अपने सर्वस्व और शरीर को अपने इष्ट देव को सौंप देने की प्रबल इच्छा।

आत्मनिष्ठ--वि० [सं०] आत्मज्ञान में रत। ब्रह्मनिष्ठ। मुमुक्षु।

आत्मनिष्ठा--संज्ञा स्त्री० [सं०] १. आत्मज्ञान की रति। २. अपने प्रति निष्ठा। आत्मविश्वास [को०]।

आत्मनीय--संज्ञा पुं० [सं०] १. पुत्र। २. साला। ३. विदूषक।

आत्मनेपद--संज्ञा पुं० [सं०] १. संस्कृत व्याकरण में धातु में लगनेवाले दो प्रकार के प्रत्ययों में से एक। २. वह क्रिया जो आत्मनेपद प्रत्यय लगने से बनी हो।

आत्मप्रशंसा--संज्ञा पुं० [सं०] अपने मुँह से अपनी बड़ाई।

आत्मप्रसार--संज्ञा पुं० [सं०] आत्मविस्तार। अपना फैलाव। उ०--मनुष्य उस कोटि की पहुँची हुई सत्ता है जो उस अल्पक्षण में ही आत्मप्रसार को बद्ध रखकर संतुष्ट नहीं हो सकती।--रस०, पृ० १४८।

आत्मप्रेरणा--संज्ञा स्त्री० [सं०] अपने भीतर से प्राप्त प्रेरणा। आंतरिक प्रेरणा। उ०--आत्मप्रेरणा की पीड़ा से आकुल थे सब प्राणी।--पार्वती, पृ० ५६।

आत्मबोध--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'आत्मज्ञान'। उ०--आत्मबोध और जगद्बोध के बीच ज्ञानियों ने गहरी खाई खोदी पर हृदय ने कभी उसकी परवा न की।--रस०, पृ० ५५।

आत्मभू[1]--वि० [सं०] १. अपने शरीर से उत्पन्न। २. आप ही आप उत्पन्न।

आत्मभू[2]--संज्ञा पुं० १. पुत्र। २. कामदेव। ३. ब्रह्मा। ४. विष्णु। ५. शिव।

आत्मभूत--वि० [सं०] आत्ममय। वह जो अपना अंग बन गया हो। अपनाया हुआ।

आत्मयोनि--संज्ञा पुं० [सं०] १. ब्रह्मा। २. विष्णु। ३. महेश। ४. कामदेव।

आत्मरक्षक--वि० [सं०] [वि० स्त्री० आत्मरक्षिका] अपनी रक्षा करनेवाला।

आत्मरक्षण--संज्ञा पुं० [सं०] अपना बचाव। अपनी हिफाजत।

आत्मरक्षा--संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'आत्मरक्षण'। २. इंद्रवारुणी वृक्ष [को०]।

आत्मरत[1]--वि० [सं० आत्मरति] १ जिसे आत्मज्ञान हुआ हो। ब्रह्मज्ञानप्राप्त। ब्रह्मज्ञानी। २. स्वयं को प्रेम करनेवाला।

आत्मरत[2]--संज्ञा पुं० [सं०] महेंद्रवारुणी। बड़ी इंद्रायन।

आत्मरति--संज्ञा स्त्री० [सं०] १. आत्मज्ञान। ब्रह्मज्ञान। २. स्वयं से प्रेम करना।।

आत्मवंचक--वि० [सं० आत्मवञ्चक] अपने को आप ठगनेवाला। अपनी हानि स्वयं करनेवाला। अज्ञानी।

आत्मवाद--संज्ञा पुं० [सं०] अहंभाव। उ०--प्रथम हम हम करत पहुँच्यौ आत्मवाद कठोर।--बुद्ध०, पृ० १४५।

आत्मविक्रय--संज्ञा पुं० [सं०] [वि० आत्मविक्रयी] अपने को आप ही बेच डालना।

विशेष--मनु के अनुसार यह कर्म एक उपपातक है।

आत्मविक्रयी—वि० [सं० **आत्मविक्रयिन्**] अपने को बेचनेवाला।

आत्मविक्रेता—संज्ञा पुं० [सं० **आत्मविक्रेतृ**] वह दास जो अपने आपको बेचकर दास हुआ हो।

आत्मविचय—संज्ञा पुं० [सं०] अपनी तलाशी या नंगाझोली देना।

आत्मविद्—संज्ञा पुं० [सं०] १. बुद्धिमान व्यक्ति। आत्मज्ञानी। २. अपने तथा अपने कुटुंब परिवार को जाननेवाला व्यक्ति ३. शिव का एक नाम (को०)।

आत्मविद्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वह विद्या जिससे आत्मा और परमात्मा का ज्ञान हो। ब्रह्मविद्या। अध्यात्मविद्या। २. मिस्मेरिज्म।

आत्मविश्वास—संज्ञा पुं० [सं०] अपनी शक्ति पर विश्वास। अपनी योग्यता का भरोसा।

आत्मविस्मृत—वि० [सं०] स्वयं को भूला हुआ।

आत्मविस्मृति—संज्ञा स्त्री० [सं०] अपने को भूल जाना। अपना ध्यान न रखना। आत्मविस्मरण।

आत्मशल्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] सतावरी।

आत्मशासन—संज्ञा पुं० [सं० **आत्म + शासन**] दे० 'स्वराज' (क्व०)।

आत्मश्लाघा—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० **आत्मश्लाघी**] अपनी तारीफ।

आत्मश्लाघी—वि० [सं० **आत्मश्लाघिन्**] अपनी प्रशंसा करनेवाला।

आत्मसंभव[1]—वि० [सं० **आत्मसम्भव**] [वि० स्त्री० **आत्मसंभाव**] अपने शरीर से उत्पन्न।

आत्मसंभव[2]—संज्ञा पुं० पुत्र।

आत्मसंमान—संज्ञा पुं० [सं० **आत्मसम्मान**] आत्मगौरव। अपने गौरव का भाव।

आत्मसंयम—संज्ञा पुं० [सं०] अपने मन को रोकना। इच्छाओं को वश में रखना।

आत्मसंवेदन—संज्ञा पुं० [सं०] अपनी आत्मा का अनुभव। आत्मबोध।

आत्मसंस्कार—संज्ञा पुं० [सं०] अपना सुधार।

आत्मसमुद्भव[1]—वि० [सं०] [वि० स्त्री० **आत्मसमुद्भवा**] १. अपने शरीर से उत्पन्न। २. अपने ही आप उत्पन्न।

आत्मसमुद्भव[2]—संज्ञा पुं० १. ब्रह्मा। २. विष्णु। ३. शिव। ४. कामदेव।

आत्मसमुद्भवा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कन्या। २. बुद्धि।

आत्मसाक्षी—संज्ञा पुं० [सं० **आत्मसाक्षिन्**] जीवों का द्रष्टा।

आत्मसिद्ध—वि० [सं०] अपने आप होनेवाला। बिना प्रयास ही होनेवाला।

आत्मसिद्धि—संज्ञा स्त्री० [सं०] आत्मभाव की प्राप्ति। मुक्ति। मोक्ष।

आत्महत्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. अपने आपको मार डालना। खुदकुशी २. अपने आपको दुःख देना।

आत्महन्—वि० [सं०] १. जो अपने आप को मार डाले। आत्मघाती। २. जो अपनी भलाई के प्रति उदासीन हो या उसकी उपेक्षा करे (को०)। ३. अविश्वासी (को०)। ४. मंदिर आदि में नौकरी करनेवाला (सेवक या पुजारी) (को०)।

आत्महिंसा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'आत्महत्या'।

आत्मा—संज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० **आत्मिक, आत्मीय**] १. जीव। २. चित्त। ३. बुद्धि। ४. अहंकार। ५. मन। ६. ब्रह्म।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग विशेषकर जीव और ब्रह्म के अर्थ में होता है। इसका यौगिक अर्थ 'व्याप्त' है। जीव शरीर के प्रत्येक अंग में व्याप्त है और ब्रह्म संसार के प्रत्येक अणु और अवकाश में। इसीलिये प्राचीनों ने इसका व्यवहार दोनों के लिये किया है। कहीं कहीं 'प्रकृति' को भी शास्त्रों में इस शब्द से निर्दिष्ट किया गया है। साधारणतः जीव, ब्रह्म और प्रकृति तीनों के लिये या यों कहिए, अनिर्वचनीय पदार्थों के लिये इस शब्द का प्रयोग हुआ है। इनमें 'जीव' के अर्थ में इसका प्रयोग मुख्य और 'ब्रह्म' और 'प्रकृति' के अर्थों में क्रमशः गौण है। दार्शनिकों के दो भेद हैं—एक आत्मवादी और दूसरे अनात्मवादी। प्रकृति से पृथक् आत्मा को पदार्थविशेष माननेवाले आत्मवादी कहलाते हैं। आत्मा को प्रकृति-विकार-विशेष माननेवाले अनात्मवादी कहलाते हैं, जिनके मत में प्रकृति के अतिरिक्त आत्मा कुछ है ही नहीं। अनात्मवादी आजकल योरप में बहुत हैं। आत्मा के विषय में इनकी धारणा यह है कि यह प्रकृति के भिन्न भिन्न वैकारिक अंशों के संयोग से उत्पन्न एक विशेष शक्ति है, जो प्राणियों में गर्भावस्था से उत्पन्न होती है और मरणपर्यंत रहती है। पीछे उन तत्वों के विश्लेषण से, जिनसे यह उत्पन्न हुई थी, नष्ट हो जाती है। बहुत दिन हुए भारतवर्ष में यही बात 'बृहस्पति' नामक विद्वान ने कही थी जिसके विचार चार्वाक दर्शन के नाम से प्रख्यात हैं और जिसके मत को चार्वाक मत कहते हैं। इनका कथन है कि 'तच्चैतन्यविशिष्टदेह एव आत्मा देहातिरिक्त आत्मनि प्रमाणाभावात्'। देह के अतिरिक्त अन्यत्र आत्मा के होने का कोई प्रमाण नहीं है, अतः चैतन्यविशिष्ट देह ही आत्मा है। इस मुख्य मत के पीछे कई भेद हो गए थे और वे क्रमशः शरीर की स्थिति और ज्ञान की प्राप्ति में कारणभूत इंद्रिय, प्राण, मन, बुद्धि और अहंकार को ही आत्मा मानने लगे। कोई इसे विज्ञान मात्र अर्थात् क्षणिक मानते हैं। वैशेषिक दर्शन में आत्मा को एक द्रव्य माना है और लिखा है कि प्राण, अपान, निमेष, उन्मेष, जीवन, मन, गति, इंद्रिय, अंतर्विकार जैसे—भूख, प्यास, ज्वर, पीड़ादि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष और प्रयत्न आत्मा के लिंग हैं। अर्थात् जहाँ प्राणादि लिंग वा चिह्न देख पड़े वहाँ आत्मा रहती है। पर न्यायकार गौतम मुनि के मत से 'इच्छा' द्वेष, प्रयत्न, सुख दुःख और ज्ञान (इच्छा-द्वेष-प्रयत्न-सुख-दुःख-ज्ञानान्यात्मनो लिङ्गम्) ही आत्मा के चिह्न हैं। सांख्यशास्त्र के अनुसार आत्मा एक अकर्ता साक्षीभूत प्रसंग और प्रकृति से भिन्न एक अतींद्रिय पदार्थ है। योगशास्त्र के अनुसार यह वह अतींद्रिय पदार्थ है जिसमें क्लेश, कर्मविपाक और आशय हो। ये दोनों (सांख्य और योग) आत्मा के स्थान पर पुरुष शब्द का प्रयोग करते हैं। मीमांसा के अनुसार कर्मों का कर्त्ता और फलों का भोक्ता एक स्वतंत्र अतींद्रिय पदार्थ है। पर मीमांसकों में प्रभाकर के मत से 'अज्ञान' और कुमारिल भट्ट के मत से 'अज्ञानोपहत चैतन्य' ही आत्मा है। वेदांत के मत से नित्य,

शुद्ध, बुद्ध, मुक्त स्वभाव ब्रह्म का अंशविशेष आत्मा है। बुद्धदेव के मत से एक अनिर्वचनीय पदार्थ, जिसकी आदि और अंत अवस्था का ज्ञान नहीं है, आत्मा है। उत्तरीय बौद्धों के मत से यह एक शून्य पदार्थ है। जैनियों के मत से कर्मों का कर्त्ता फलों का भोक्ता और अपने कर्म से मोक्ष और बंधन को प्राप्त होनेवाला एक अरूपी पदार्थ है।

मुहा०—**आत्मा ठंढी होना** = (१) तुष्टि होना। तृप्ति होना। संतोष होना। प्रसन्नता होना। जैसे,–उसको भी दंड मिले तब हमारी आत्मा ठंढी हो। (२) पेट भरना। भूख मिटना। जैसे,–बाबा कुछ खाने को मिले तो आत्मा ठंढी हो। **आत्मा मसोसना** = (१) भूख सहना। भूख दबाना। जैसे,–इतने दिनों तक आत्मा मसोसकर रहो। (२) किसी प्रबल इच्छा को दबाना। किसी आवेग को भीतर ही भीतर सहना।

७. देह। शरीर। ८. सूर्य। ९. अग्नि। १०. वायु। ११. स्वभाव। धर्म। १२. पुत्र [को०]।

आत्माधीन[1]—वि० [सं०] अपने वश में।

आत्माधीन[2]—संज्ञा पुं० १. पुत्र। २. विदूषक। ३. साला (को०)।

आत्मानंद—संज्ञा पुं० [सं० **आत्मानन्द**] आत्मा का ज्ञान। आत्मा में लीन होने का सुख।

आत्मानुभव—संज्ञा पुं० [सं०] १. अपना अनुभव या तजुरबा। स्वानुभूति। २. आत्मा की अनुभूति।

आत्मानुरूप—संज्ञा पुं० [सं०] जो जाति, वृत्ति और गुण आदि में अपने समान हो। स्वानुरूप।

आत्माभिमान—संज्ञा पुं० [सं०] अपनी इज्जत या प्रतिष्ठा का खयाल। मान अपमान का ध्यान। स्वाभिमान।

आत्माभिमानी—संज्ञा पुं० [सं० **आत्माभिमानिन्**] जिसे अपनी इज्जत या प्रतिष्ठा का बड़ा खयाल हो। जिसे मान अपमान का ध्यान हो। स्वाभिमानी।

आत्मामिष संधि—संज्ञा स्त्री० [सं० **आत्मामिषसन्धि**] कामंदकीय नीति के अनुसार वह संधि जो स्वयं सेना के साथ शत्रु के पास जाकर की जाय।

आत्माराम—संज्ञा पुं० [सं०] १. आत्मज्ञान से तृप्त योगी। २. जीव। ३. ब्रह्म। ४. तोता। सुग्गा।

आत्मावलंबी—संज्ञा पुं० [सं० **आत्मावलम्बिन्**] जो सब काम अपने बल पर करे। जो किसी कार्य के लिये दूसरे की सहायता का भरोसा न रखे। स्वावलंबी।

आत्मिक—वि० [सं०] [वि० स्त्री० **आत्मिका**] १. आत्मासंबंधी। २. अपना। ३. मानसिक।

आत्मीकृत—वि० [सं०] अपनाया हुआ। स्वीकृत।

आत्मीय[1]—वि० [सं०] [वि० स्त्री० **आत्मीया**] निज का। अपना। स्वकीय।

आत्मीय[2]—संज्ञा पुं० [सं०] स्वजन। अपना संबंधी। रिश्तेदार। इष्टमित्र। निकट का व्यक्ति।

आत्मीयता—संज्ञा स्त्री० [सं०] अपनायत। स्नेह-संबंध। मैत्री।

आत्मोत्सर्ग—संज्ञा पुं० [सं०] परोपकार के लिये अपने को दुःख या विपत्ति में डालना। दूसरे की भलाई के लिये अपने हिताहित का ध्यान छोड़ना। स्वार्थत्याग।

आत्मोद्धार—संज्ञा पुं० [सं०] अपनी आत्मा को संसार के दुःख से छुड़ाना या ब्रह्म में मिलाना। मोक्ष।

आत्मोद्भव—संज्ञा पुं० [सं०] १. पुत्र। २. कामदेव। ३. दुःख। पीड़ा [को०]।

आत्मोद्भवा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कन्या। २. बुद्धि। ३. माशपर्णी [को०]।

आत्मोन्नति—संज्ञा पुं० [सं०] १. आत्मा की उन्नति। २. अपनी तरक्की। स्वविकास।

आत्मोपजीवी—संज्ञा पुं० [सं० **आत्मोपजीविन्**] १. अपने श्रम से जीविकोपार्जन करनेवाला। २. रोजही या दैनिक मजदूरी पर काम करनेवाला श्रमिक। ३. अभिनेता [को०]।

आत्मोपम—संज्ञा पुं० [सं०] पुत्र [को०]।

आत्यंतिक—वि० [सं० **आत्यन्तिक**] [वि० स्त्री० **आत्यन्तिकी**] १. जो बहुतायत से हो। २. जिसका ओर छोर न हो।

यौ०—**आत्यंतिकदुःखनिवृत्ति** = मोक्ष। **आत्यंतिकप्रलय** = पूर्ण प्रलय।

आत्ययिक—वि० [सं०] [वि० स्त्री० **आत्ययिकी**] १. विनाशक। २. दुभग्यि पूर्ण। ३. आवश्यकीय। ४. देर किया हुआ। विलंबित [को०]।

आत्रेय[1]—वि० [सं० **अत्रि**] १. अत्रि के गोत्रवाला।

आत्रेय[2]—संज्ञा पुं० १. अत्रि के पुत्र—दत्त, दुर्वासा, चंद्रमा। २. आत्रेयी नदी के तट का प्रदेश जो दीनाजपुर जिले के अंतर्गत है। ३. शिव की एक उपाधि [को०]।

आत्रेयी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. उपनिषद् काल की एक विदुषी तपस्विनी जो वेदांत में बड़ी निष्णात थी। २. पश्चिमी बंगाल की एक नदी का नाम। तिस्ता। ३. रजस्वला स्त्री। ४. अत्रि गोत्र की स्त्री।

आथⓅ—संज्ञा पुं० [सं० **अर्थ**] धन। पूँजी। उ०–आथ तेण अभिलाष इम, इण भुजनूँ आवंत।—बाँकीदास ग्रं०, भा० ३. पृ० ६।

आथना[1]Ⓟ—क्रि० अ० [सं० **अस** = होना, सं० **अस्ति**, प्रा० **अत्थि**] होना। उ०–(क) कबिरा पढ़ना दूर कर, आथि पड़ा संसार। पीर न उपजै जीव की, क्यों पावै करतार।—कबीर (शब्द०)। (ख) काया माया संग न आथी। जेहि जिउ सौंपा सोई साथी।—जायसी ग्रं०, पृ० ६०।

आथना[2]Ⓟ—क्रि० अ० [सं० **अस्त**, प्रा० **अत्थ**] अस्त होना। डूबना। समाप्त होना।

आथर्वण—संज्ञा पुं० [सं०] १. अथर्ववेद का जाननेवाला ब्राह्मण। २. अथर्ववेदविहित कर्म। ३. अथर्वा ऋषि का पुत्र। ४. अथर्वा गोत्र में उत्पन्न व्यक्ति।

आथी[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० स्थातृ, हिं० **थाती** अथवा सं० **आथक्री** = **आर्थिक स्थिति** प्रा० ***अत्थिई**, ***आथइ**] पूँजी। धन। उ०—साथी आथि निआथि जो सकै साथ निरबाहि।—जायसी (शब्द०)।

आथी[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० **अर्थ**] अर्थसंपन्नता। अमीरी। खुशहाली।

आदंश—संज्ञा पुं० [सं०] १. दाँत से काटना। २. दाँत काटने से बना हुआ घाव। ३. दाँत [को०]।

आदत—संज्ञा स्त्री० [अ०] १. स्वभाव। प्रकृति। २. अभ्यास। टेव। बान। उ०–तू भी मजबूर है जाती नहीं आदत तेरी।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ५४५।

क्रि० प्र०—डालना।—पड़ना।—लगना।—लगाना।

आदम—संज्ञा पुं० [अ० आदम, तुल० सं० आदिम] १. इबरानी और अरबी लेखकों के अनुसार मनुष्यों का आदि प्रजापति। उ०—आदम आदि सुद्धि नहिं पावा। मामा हौवा कहँते आवा।—कबीर (शब्द०)। २. आदम की संतान। मनुष्य। जैसे,—चलते चलते वह एक ऐसे जंगल में पहुँचा जहाँ न कोई आदम था न आदमजाद।

यौ०—आदमकद। आदमखोर। आदमचश्म। आदमजाद।

आदमकद—वि० [अ० आदम+कद] आदमी के कद के बराबर। उ०—कमरे में बड़े बड़े आदमकद आइने रखे जाते हैं।—गबन, पृ० १०६।

आदमखोर—वि० [अ०आदम+फा० खोर] आदमी को खानेवाला। मानवभक्षी (शब्द०)।

आदमचश्म—संज्ञा पुं० [अ० आदम+फा० चश्म=चक्षु] वह घोड़ा जिसकी आँख की स्याही मनुष्य की आँख की स्याही के समान हो। ऐसा घोड़ा बड़ा नटखट होता है।

आदमजाद—संज्ञा पुं० [अ० आदम+फा० जाद=पैदा] १. आदम की संतान। २. मनु की संतान। मनुष्य।

आदमियत—संज्ञा पुं० [अ०]१. मनुष्यत्व। इंसानियत। २. सभ्यता। क्रि० प्र०—पकड़ना।—सीखना।

आदमी—संज्ञा पुं० [अ०] आदम की संतान। मनुष्य। मानव जाति। मुहा०—आदमी बनना = सभ्यता सीखना। अच्छा व्यवहार सीखना। शिष्टता सीखना। आदमी बनाना=शिष्ट और सभ्य करना।

२. नौकर। सेवक। जैसे,—जरा अपने आदमी से मेरी यह चिट्ठी डाकखाने भिजवा दो।

आदमीयत—संज्ञा स्त्री० [अ०] १. मनुष्यत्व। इंसानियत। उ०—गर फरिश्तावश हुआ कोई तो क्या। आदमीयत चाहिए इंसान में।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ५५१। २. सभ्यता।

आदर—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० आदरणीय आदृत, आदर्य] संमान। सत्कार। प्रतिष्ठा। इज्जत। कदर। जैसे,—(क) वे बड़े आदर के साथ हमें अपने घर ले गए। (ख) तुलसीदास के रामचरितमानस का समाज में बड़ा आदर है।

आदरणीय—वि० [सं०] आदरयोग्य। आदर करने के लायक। संमाननीय।

आदरना(पु)—क्रि०स०[सं० आदर से नाम०] आदर करना। मानना। उ०—जो प्रबंध बुध नहिं आदरहीं। सो श्रम बादि बाल कवि करहीं।—मानस, १।१४।

आदरभाव—संज्ञा पुं० [सं० आदर+भा] सत्कार। संमान। कदर। प्रतिष्ठा। जैसे,—जहाँ अपना आदर भाव नहीं, वहाँ क्यों जायँ? उ०—ऊधौ, चलौ बिदुर कैं जइयै। दुरजोधन कैं कौन काज जहँ आदर भाव न पइयै।—सूर०, १।२३६।

आदरस(पु)—संज्ञा पुं० [सं० आदर्श] दे० 'आदर्श'। उ०—दरसो सारसरस भरे दृग आदरस मँगाय।—स० सप्तक, पृ० २५८। यौ०—आदरसमंदिर=शीशमहल। उ०—आछे अवलोकि रही आदरस मंदिर में इंदीवर सुंदर गुबिंद को मुखारबिंद।—पद्माकर ग्रं०, पृ० १०१।

आदर्य—वि० [सं०] आदर के योग्य। आदरणीय।

आदर्श—संज्ञा पुं० [सं०] १.दर्पण। शीशा। आईना। २.वह जिससे ग्रंथ का अभिप्राय झलक जाय। टीका। व्याख्या। ३. वह जिसके रूप और गुण आदि का अनुकरण किया जाय। नमूना। जैसे,—उसका चरित्र हम लोगों के लिये आदर्श है। यौ०—आदर्शमंडल। आदर्शमंदिर। आदर्शरूप।

आदर्शक—संज्ञा पुं० [सं०] दर्पण। शीशा [को०]।

आदर्शन—संज्ञा पुं० [स०] १. प्रदर्शित करना। दिखलाना। २. शीशा। दर्पण [को०]।

आदर्शबिंब—संज्ञा पुं० [सं० आदर्श बिम्ब] गोला शीशा [को०]।

आदर्शमंडल—संज्ञा पुं० [सं० आदर्श मंडल] १. एक तरह का साँप। २. गोल आईना। ३. दर्पण का तल [को०]।

आदर्शमंदिर—संज्ञा पुं० [स० आदर्श मंदिर] शीशमहल।

आदर्शवाद—संज्ञा पुं० [सं० आदर्श+वाद] [अं० आइडियलिज्म] वस्तुओं के ज्यों के त्यों वर्णन को प्रमुखता या महत्व न देकर न करके उनके आदर्शरूप का वर्णन करना। पश्चिम के दर्शन, शिक्षा दर्शन और साहित्यिक वादों आदि में प्रचलित विशेष विचारधारा।

आदर्शवादी—वि०[सं० आदर्शवादिन्] [अं० आइडियलिस्ट] आदर्शवाद को माननेवाला या उसके अनुसार रचना करनेवाला।

आदर्शात्मक—वि०[सं०] काल्पनिक आदर्श के रूप में विषयों के चित्रण या निरूपण से युक्त। आदर्शवाद से संबंध रखनेवाला। आदर्शपरक।

आदहन—संज्ञा पुं० [सं०]१ ईर्ष्या। जलन। २ श्मशान। चिताभूमि।

आदा†—संज्ञा पुं० [सं० आर्द्रक] अदरक।

आदान—संज्ञा पुं० [सं०] १. लेना। ग्रहण करना। २. अर्जन। ३. रोग का लक्षण। ४. बाँधना। सुनियोजित करना। ५. घोड़े को फँसाना या बंधनग्रस्त करना। जकड़बदी। ६. क्रिया या कार्य। ७. पराभूत करना [को०]।

आदानप्रदान—संज्ञा पुं० [सं०] लेना देना।

आदानसमिति—संज्ञा स्त्री० [सं०] जैनों के अनुसार आचारनियंत्रण के लिये स्थापित पंचसमिति में से एक जिससे यह ध्यान रहता है कि किसी जीव को कष्ट न हो [को०]।

आदापन—संज्ञा पुं० [सं०] कोई वस्तु ग्रहण करने के लिये किसी को बुलाना या अभिप्रेरित करना [को०]।

आदाब—संज्ञा पुं० [अ०] १. नियम। कायदा। २. लिहाज। आन। ३. नमस्कार। प्रणाम। सलाम। जोहार। मुहा०—आदाब अर्ज करना = प्रणाम करना। आदाब बजा लेना=नियमानुसार प्रणाम करना।

आदि१—वि० [सं०] प्रथम। पहला। शुरू का। आरंभ का। जैसे—वाल्मीकि आदिकवि माने जाते हैं। उ०—गाइ गाउँ के वत्सला मेरे आदि सहाई।—सूर०, १।२३८।

आदि२—संज्ञा पुं० [सं०]१. आरंभ। बुनियाद। मूल कारण। जैसे,—(क) इस झगड़े का आदि यही है। (ख) हमने इस पुस्तक को आदि से अंत तक पढ़ डाला। २. परमात्मा। परमेश्वर। उ०—आदि किएउ आदेश सुन्नहि ते अस्थूल भए।—जायसी ग्रं०, पृ० ३०८।

मुहा०—आदि से अंत तक = आद्योपांत। शुरू से आखीर तक। संपूर्ण। समग्र। सब।

आदि[3]—अव्य० वगैरह। आदिक। उ०—सिंहसावक ज्यों तजै गृह, इंद्र आदि डरात।सूर०, १।१०६।

आदिक—अव्य० [सं०] आदि। वगैरह। उ०—कौसिल्या आदिक महतारी, आरति करहिं बनाइ।—सूर० ९।२९।

आदिकर—वि० [सं०] आदि करनेवाला। स्रष्टा [को०]।

आदिकरणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक पौधा [को०]।

आदिकर्ता—वि० [सं०] आदिकर। स्रष्टा [को०]।

आदिकर्म—संज्ञा पुं० [सं०] कर्म का आदि या आरंभ [को०]।

आदिकवि—संज्ञा पुं० [सं०] वाल्मीकि ऋषि। उ०—जान आदिकवि नाम प्रभाऊ। भएउ सुद्ध कहि उलटा नाऊँ।—मानस, १।१९। २. शुक्राचार्य।

आदिकांड—संज्ञा पुं० [सं० आदिकाण्ड] वाल्मीकि रामायण का पहला कांड [को०]।

आदिकारण—संज्ञा पुं० [सं०] पहला कारण जिससे सृष्टि के सब व्यापार उत्पन्न हुए। मूलकारण।

विशेष—सांख्यवाले प्रकृति को आदिकारण मानते हैं। नैयायिक पुरुष या ईश्वर को आदि कारण कहते हैं।

आदिकाल—संज्ञा पुं० [सं०] प्रारंभिक काल या समय [को०]।

आदिकालीन—वि० [सं०] प्रारंभिक या आदिकाल से संबंध रखनेवाला [को०]।

आदिकाव्य—संज्ञा पुं० [सं०] वाल्मीकि रामायण।

विशेष—यह महाकाव्य सबसे पुराना या पहला माना जाता है।

आदिकृत्—वि० [सं०] स्रष्टा [को०]।

आदिकेशव—संज्ञा पुं० [सं०] १. काशी स्थित एक देवविग्रह। २. विष्णु [को०]।

आदिगदाधर—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु [को०]।

आदिजिन—संज्ञा पुं० [सं०] ऋषभदेव (जैन) [को०]।

आदितः—क्रि० वि० [सं०] प्रारंभ से। आदि से [को०]।

आदित(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आदित्य'। उ०—हरि दरसन सत्राजित आयौ। लोगनि जान्यौ आदित आवत हरि सौं जाइ सुनायौ।—सूर०, १०।४८०८।

आदिताल—संज्ञा पुं० [सं०] संगीत में ताल का प्रकारविशेष [को०]।

आदितेय—संज्ञा पुं० [सं०] १. अदिति का पुत्र। २. देव। ३. सूर्य [को०]।

आदित्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. अदिति के पुत्र। २. देवता। ३. सूर्य। ४. इंद्र। ५. वामन। ६. वसु। ७. विश्वेदेवा। ८. बारह मात्राओं के छंदों की संज्ञा; जैसे—तोमर लीला। ९. मदार मदार का पौधा।

यौ०—आदित्यपुराण = एक उपपुराण। आदित्यपर्णिका, आदित्यपर्णिनी, आदित्यपर्णी, आदित्यवल्लभा = एक जलीय लता। आदित्यसूक्त, आदित्यस्तोत्र, आदित्यहृदय = सूर्य संबंधी सूक्त या स्तोत्र।

आदित्यकेतु—संज्ञा पुं० [सं० आदित्य + केतु] १. एक राजा जिसके वंशजों ने नौ पीढ़ी तक ३७५ वर्ष दिल्ली में राज्य किया था। २. धृतराष्ट्र का एक पुत्र [को०]। ३. सूर्य का सारथि [को०]।

आदित्यगति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सूर्य का मार्ग [को०]।

आदित्यगर्भ—संज्ञा पुं० [सं०] एक बोधिसत्व [को०]।

आदित्यज्योति—वि० [सं०] जिसमें सूर्य जैसा तेज या ज्योति हो[को०]।

आदित्यदर्शन—संज्ञा पुं० [सं०] चार मास के बालक को सूर्यदर्शन कराने का एक संस्कार [को०]।

आदित्यपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक पौधा। २. आक का पत्र या पत्ता [को०]।

आदित्यपाक—वि० [सं०] सूर्यताप में पकाया हुआ [को०]।

आदित्यपुष्पिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] लाल फूल का मदार।

आदित्यभक्ता—संज्ञा स्त्री० [सं०] हुरहुर।

आदित्यमंडल—संज्ञा पुं० [सं० आदित्यमण्डल] सूर्य के चतुर्दिक् पड़नेवाला वलय या घेरा [को०]।

आदित्यलोक—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्यलोक [को०]।

आदित्यवार—संज्ञा पुं० [सं०] एतवार। रविवार।

आदित्यव्रत—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० आदित्यव्रतिक] सूर्य का व्रत [को०]

आदित्यशयन—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य की निद्रा या शयन [को०]।

आदित्यसंवत्सर—संज्ञा पुं० [सं०] सौर वर्ष [को०]।

आदित्यसूनु—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य का पुत्र—१. शनैश्चर। २. यम। ३. कर्ण। ४. सुग्रीव। ५. मनु [को०]।

आदित्यानुवर्ती—वि० [सं० आदित्यानुवर्तिन्] सूर्य का अनुवर्तन या अनुगमन करनेवाला [को०]।

आदित्व—संज्ञा पुं० [सं०] पूर्वता। प्राथमिकता [को०]।

आदित्सा—संज्ञा स्त्री० [सं०] लेने की इच्छा [को०]।

आदित्सु—वि० [सं०] ग्रहण करने या लेने का इच्छु [को०]।

आदिदीपक—संज्ञा स्त्री० [सं०] छंद की विशेष व्यवस्था (जिसमें क्रियापद वाक्य के आदि में आता है) [को०]।

आदिदेव—संज्ञा पुं० [सं०] १. ब्रह्मा। २. विष्णु। ३. शिव। ४. गणेश। ५. सूर्य [को०]।

आदिदैत्य—संज्ञा पुं० [सं०] हिरण्यकशिपु [को०]।

आदिनव—संज्ञा पुं० [सं०] १. अभाग्य। २. जूए की हार [को०]।

आदिनाथ—संज्ञा पुं० [सं०] १. आदिबुद्ध। २. एक जैन तीर्थंकर [को०]।

आदिपर्व—संज्ञा पुं० [सं० आदिपर्वन्] महाभारत के पहले पर्व का नाम [को०]।

आदिपर्वत—संज्ञा पुं० [सं०] मुख्य पर्वत [को०]।

आदिपुराण—संज्ञा पुं० [सं०] १. ब्रह्मपुराण। २. एक जैन धर्मग्रंथ [को०]।

आदिपुरुष, आदिपूरुष—संज्ञा पुं० [सं०] १. परमेश्वर। विष्णु। २. हिरण्यकशिपु [को०]।

आदिप्लुत—वि० [सं०] (शब्द०) जिसका आदिस्वर प्लुत हो (व्या०) [को०]।

आदिबल--संज्ञा पुं० [सं०] उत्पादक या जनन शक्ति (सुश्रुत) [कौ०]।

आदिभूत[1]--वि० [सं०] आदि में उत्पन्न [कौ०]।

आदिभूत[2]--संज्ञा पुं० [सं०] १. ब्रह्मा। २. विष्णु [कौ०]।

आदिम--वि० [सं०] पहले का। पहला। प्रथम। उ०--आखेट के लिये उक्त आदिम नरों का झुंड बीच बीच में मिलता।--इंद्र०, पृ० ८८।

आदिमत--वि० [सं०] जिसका आरंभ आदि हो [कौ०]।

आदिमूल--संज्ञा पुं० [सं०] मूल कारण [कौ०]।

आदियोगाचार्य--संज्ञा पुं० [सं०] शिव [कौ०]।

आदिरस--संज्ञा पुं० [सं०] शृंगाररस (साहित्य शा०)।

आदिराज--संज्ञा पुं० [सं०] १. मनु। २. पृथु [कौ०]।

आदिरूप--संज्ञा पुं० [सं०] प्रथम रूप या लक्षण (रोग का) [कौ०]।

आदिल--वि० [अ०] न्यायी। न्यायवान्। उ०--नौसेरवाँ जो आदिल कहा। साहि अदल-सरि सोउ न अहा।--जायसी ग्रं०, पृ० ६।

आदिलुप्त--वि० [सं०] (शब्द) जिसका प्रथम अक्षर लुप्त हो [कौ०]।

आदिवराह--संज्ञा पुं० [सं०] वराहरूप विष्णु। विष्णु [कौ०]।

आदिवाराह--वि० [सं०] आदि वराह संबंधी [कौ०]।

आदिविपुला--संज्ञा पुं० [सं०] छंदविशेष। वह आर्या जिसके प्रथम दल के प्रथम तीन गणों में पाद अपूर्ण हो।

आदिविपुलाजघनचपला--संज्ञा पुं० [सं०] छंदविशेष। वह आर्या जिसके प्रथम पाद के गणत्रय में पाद अपूर्ण हो, दूसरे दल में दूसरा और चौथा गण जगण हो।

आदिशक्ति--संज्ञा स्त्री० [सं०] १. मूल या आदि स्थानीय शक्ति। महामाया। २. दुर्गा [कौ०]।

आदिशरीर--संज्ञा पुं०[सं०] १. मूल शरीर। २.सूक्ष्म शरीर [कौ०]।

आदिश्यमान--वि० [सं०] आदेश पाया हुआ। जिसको आज्ञा दी गई हो।

आदिष्ट--वि० [सं०] आदेश पाया हुआ। जिसको आज्ञा दी गई हो। आज्ञप्त। आदेशप्राप्त।

आदिष्टसंधि--संज्ञा स्त्री० [सं० आदिष्टसन्धि] वह संधि जो प्रबल शत्रु को कोई भूमिखंड देने की प्रतिज्ञा करके की जाय। (कामं द०)।

आदिसर्ग--संज्ञा पुं० [सं०] मूल या आदि की सृष्टि [कौ०]।

आदी[1]--वि० [अ०] अभ्यस्त। उ०--अब उतर आए हैं वो तारीफ पर। हम जो आदी हो गए दुश्नाम के।--कविता कौ०, भा० ४, पृ० ५५३।

आदी†[2]--संज्ञा स्त्री० [सं० आर्द्रक] अदरक।

आदी[3]--क्रि० वि० [सं० आदि] बिलकुल। नितांत। जरा भी। उ०--(क) मातु न जानसि बालक आदी। हौं बादला सिंघ रनवादी। जायसी ग्रं०, पृ० २८२।

आदीचक--संज्ञा पुं०[सं० आर्द्रक+चक्र]एक प्रकार की अदरक जिसकी भाजी बनती है। अदरक की एक प्रकार की खट्टी चटनी।

आदीनव--संज्ञा पुं०[सं०]१. दोष। २.क्लेश। विपत्ति। ३.दुःख। बेचैनी (कौ०)।

आदीपक--वि०[सं०]१. आग लगानेवाला। २.दाहक। ३. उत्तेजक [कौ०]।

आदीपन--संज्ञा पुं० [सं०] [वि० आदीपित, आदीप्त, आदीप्य] १. उत्तेजित करना। २.आग लगाना। ३. उत्सव आदि के अवसर पर दीवार, फर्श आदि की सफाई या पुताई करना [कौ०]।

आदीपित--वि० [सं०] प्रज्वलित। जलता हुआ [कौ०]।

आदीप्य--वि० [सं०] जलने योग्य [कौ०]।

आदीर्घ--वि० [सं०] कुछ लंबाई युक्त अंडाकार [कौ०]।

आदीर्य--वि० [सं०] फटा हुआ। दरका हुआ [कौ०]।

आदृत--वि० [सं०] आदर किया हुआ। संमानित।

आदृत्य--वि० [सं०] आदरणीय [कौ०]।

आदृष्टि--संज्ञा स्त्री० [सं०] दृष्टि। नजर [कौ०]।

यौ०--आदृष्टिगोचर, आदृष्टिप्रसार = दृष्टि की सीमा के भीतर।

आदेय[1]--वि० [सं०] लेने योग्य।

यौ०--उपादेय। अनादेय।

आदेय[2]--संज्ञा पुं०[सं०]वह लाभ जो सुगमता से प्राप्त हो, सुरक्षित रखा जा सके तथा शत्रु द्वारा न लिया जा सके (कौ०)।

आदेयकर्म--संज्ञा पुं० [सं०] जैनशास्त्रानुसार वह कर्म जिससे जीव को वाक्सिद्धि होती है; अर्थात् वह जो कहे वही होता है।

आदेव[1]--संज्ञा पुं० [सं०] देव सहित पूरी सृष्टि [कौ०]।

आदेव[2]--वि० [सं०] देवभक्त। देवपूजक [कौ०]।

आदेवक--वि०[सं०]१. खेल या क्रीड़ा करनेवाला। २. जुआ खेलनेवाला [कौ०]।

आदेवन--संज्ञा पुं० [सं०] १. खेल का स्थान। २. खेल का साधन या सामग्री। ३. खेल (जूए) में होनेवाला लाभ [कौ०]।

आदेश--संज्ञा पुं० [सं०] [वि० आदिष्ट, आदिश्यमान, आदेशक] १. आज्ञा। २. उपदेश। ३. विवरण (कौ०)। ४. प्रणाम। नमस्कार। उ०--शेख बड़ो बड़ सिद्धि बखाना। किय आदेश सिद्धि बड़ माना।--जायसी (शब्द०)। ५. ज्योतिष शास्त्र में ग्रहों का फल। ६. भविष्यकथन (कौ०)। ७. व्याकरण में एक अक्षर के स्थान पर दूसरे अक्षर का आना। अक्षरपरिवर्तन।

आदेशक--वि० [सं०] १. आज्ञा देनेवाला। २. उपदेश देनेवाला।

आदेशकारी-वि०[सं० आदेशकारिन्]आज्ञा पालन करनेवाला [कौ०]।

आदेशन--संज्ञा पुं० [सं०] आज्ञा देना। निर्देशन [कौ०]।

आदेशी--वि [सं० आदेशिन्] १. आदेश देनेवाला। २.भविष्यकथन करनेवाला। ३. (वह वर्ण या अक्षर) जिसके लिये कोई अन्य वर्ण या अक्षर रखा गया हो [कौ०]।

आदेश्य--वि० [सं०] आदेश के योग्य [कौ०]।

आदेष्टा--वि० [सं० आदेष्टृ] आदेश देनेवाला [कौ०]।

आदेस⑤—संज्ञा पुं० [सं०**आदेश**] दे० 'आदेश'।

आद्यंत—क्रि० वि० [सं० **आद्यन्त**] आदि से अंत तक। आद्योपांत। शुरू से आखीर तक।

आद्य¹—वि० [सं०] १.पहला। आरंभ का। २.प्रधान। प्रथम। अद्वितीय (को०)।

आद्य²—वि० [सं०√**अद्**=(खाना) > **आद्य**] खाने योग्य। जिसके खाने से शारीरिक या आत्मिक बल बढ़े।

आद्यकवि—संज्ञा पुं० [सं०] १.ब्रह्मा। २. वाल्मीकि [को०]।

आद्यबीज—संज्ञा पुं०[सं०]जगत् या सृष्टि का मूल कारण। सांख्य के अनुसार प्रधान या प्रकृति [को०]।

आद्यमाषक—संज्ञा पुं० [सं०] एक तोल जो पाँच गुंजा या रत्ती के बराबर होता था [को०]।

आद्यश्राद्ध—संज्ञा पुं० [सं०] मृतक के लिये ग्यारहवें दिन जो सोलह श्राद्ध किए जाते हैं उनमें से पहला।

आद्या—संज्ञा पुं०[सं०] १.दुर्गा। प्रधान शक्ति। २. दश महाविद्याओं में से प्रथम देवी।

आद्युदात्त—वि०[सं०][संज्ञा **आद्युदात्तत्व**] जिसका पहला वर्ण उदात्त हो [को०]।

आद्यून—वि० [सं] १. अध्ययन करनेवाला। पेटू। २. बुभुक्षित। भूखा। ३. लोभी। लालची। ४.आदिरहित [को०]।

आद्योत—संज्ञा पुं० [सं०] प्रकाश। ज्योति। चमक [को०]।

आद्योपांत—क्रि० वि० [सं० **आद्योपान्त**] शुरू से आखीर तक [को०]।

आद्रा—संज्ञा स्त्री० [सं० **आर्द्रा**[१. एक नक्षत्र। २.जब सूर्य इस नक्षत्र का हो। इस नक्षत्र में लोग धान बोना अच्छा मानते हैं। उ०—(क) चित्रा गेहूँ आद्रा धान। न उनके गेरुई न उनके घाम। (ख) आद्रा धाम पुनर्वसु पइया। गा किसान जब बोवा चिरइया। (शब्द०)।

आद्रिसार—वि० [सं०] लौहनिर्मित। लोहे से बना हुआ [को०]।

आध—वि० [सं० **अर्द्ध** प्रा० **अद्ध** हिं० **आधा**] किसी वस्तु के दो बराबर भागों में से एक। आधा। निस्फ। उ०—जै जै कार भयो भुव मापत नीनि पैंड भइ सारी। आधा पैंड बसुधा दै राजा नातरु चलि सत हारी।—सूर०, ८।१४।

विशेष—यह वास्तव में आधा का अल्पार्थक रूप है और यौगिक शब्दों एवं प्रायः तौल और नाप के सूचक शब्दों के साथ व्यवहृत होता है। जैसे,—आध सेर, आध पाव, आध छटाँक, आध गज।

यौ०—एक **आध**=कुछ थोड़े से। चंद। जैसे,—एक आध आदमियों के विरोध करने से क्या होता है। (शब्द)

आधमन— संज्ञा पुं० [सं०] प्रतिज्ञा [को०]।

आधमर्ण्य—संज्ञा पुं० [सं०] ऋणग्रस्त होना [को०]।

आधर्मिक— वि० [सं०] धर्महीन। अधर्मी [को०]।

आधवन—संज्ञा पुं० [सं०]कंपित करना। हिलाना डुलाना [को०]।

आधा—वि० [सं० **अर्द्ध**, वा **अद्धो**, प्रा० **अद्ध**] [स्त्री० आधी] किसी वस्तु के दो बराबर हिस्सों में से एक।

यौ०—**आधा साझा**। **आधा सीसी**।

मुहा०—**आधो आध**=दो बराबर भागों में। जैसे—इन केलों को आधो आध बाँट लो। [यह क्रि० वि० की तरह आता है; जैसे, बीचो बीच] **आधा तीतर आधा बटेर**=कुछ एक तरह का और कुछ दूसरी तरह का। बेजोड़। बेमेल। अंडबंड। क्रमविहीन। **आधा होना**=दुबला होना। जैसे,—वह सोच के मारे आधा हो गया। **आधे आध**=दो बराबर हिस्सों में बँटा हुआ। उ०—लागे जब संग युग सेर भोग धरचो रंग आधे आध पाव चले नूपुर बजाइ के।—प्रिया० (शब्द०)। **आधे कान सुनना**=यों ही या ऊपर से सुन लेना। उ०—फैले बरसाने में न रावरी कहानी यह बानी कहूँ राधे आधे कान सुनि पावे ना।—रत्नाकार, भा० १, पृ० १४७। **आधी बात**=जरा सी भी अपमानसूचक बात। जैसे,—हमने किसी की आधी बात भी नहीं सुनी। **आधे पेट खाना**=भरपेट न खाना। पूरा भोजन न करना। **आधे पेट रहना**=तृप्त होकर न खाना। **आधी बात कहना या मुँह से निकालना**=जरा सी अपमानसूचक बात कहना। जैसे,—मेरे रहते तुम्हें कोई आधी बात नहीं कह सकता। **आधी बात न पूछना**=कुछ ध्यान न देना। कदर न करना। जैसे,—अब वे जहाँ जाते हैं, कोई आधी बात भी नहीं पूछता।

आधाझारा—संज्ञा पुं० [सं० **आघाट**] अपामार्ग। ओंगा। चिचड़ा। चिचड़ी।

आधाता—संज्ञा पुं० [सं० **आधातृ**] गिरवी रखनेवाला। बंधक रखनेवाला।

आधान—संज्ञा पुं० [सं०] १. स्थापन। रखना।

यौ०—**अग्न्याधान**। **गर्भाधान**।

२. गर्भ। ३. गिरवी या बंधक रखना। (को०) ४. अग्न्याधान (को०)। ५. प्रयत्न। चेष्टा (को०)। ६. वह स्थान जहाँ कोई वस्तु रखी जाय (को०)। ७. निश्चयात्मकता। ८. द्रवित करना (को०)। ९. सामीप्य। संनिधि (को०)। १०. मैथुन (को०)।

आधानवती—वि० स्त्री० [सं०] गर्भवती।

आधार—संज्ञा पुं० [सं०] १. आश्रय। सहारा। अवलंब। जैसे,—(क) यह छत चार खंभों के आधार पर है। (ख) वह चार दिन फलों के ही आधार पर रह गया। २. व्याकरण में अधिकरण कारक। ३.थाला। आलबाल। ४. पात्र (नाटक)। ५. नींव। बुनियाद। मूल। ६.योगशास्त्र में एक चक्र का नाम।

विशेष—इसे मूलाधार भी कहते हैं। इसमें चार दल हैं। रंग लाल है। स्थान इसका गुदा है और गणेश इसके देवता हैं।

७. बंधा। बाँध (को०)। ८. नहर। प्रणाली (को०)। ९. संबंध। लगाव (को०) १०. किरण (को०)। ११.बरतन। पात्र (को०)। १२. आश्रय देनेवाला। पालन करनेवाला। जैसे,—इस दशा में ही वे हमारे आधार हो रहे हैं।

यौ०—**आधाराधेय**=आधार और आधेय का संबंध; जैसे,—पात्र और उसमें रखे हुए घी या टेबुल और उसपर रखी हुई किताब का संबंध। **प्राणाधार** जिसके आधार पर प्राण हों। परमप्रिय।

मुहा०—**आधार होना** = कुछ पेट भर जाना। कुछ भूख मिट जाना। जैसे,—इतनी मिठाई से क्या होता है; पर कुछ आधार हो जायगा।

आधारित—वि० [सं० **आधार**] दे० 'आधृत'।

आधारी—वि० [सं० **आधारिन्**] [**स्त्री० आधारिणी**] १. सहारा रखनेवाला। सहारे पर रहनेवाला। जैसे,—दुग्धाधारी। २. साधुओं की टेवकी या अड्डे के आकार की लकड़ी जिसका सहारा लेकर वे बैठते हैं। उ०—(क) मुद्रा श्रवण नहीं थिर जीऊ। तन त्रिसूल आधारी पीऊ।—जायसी (शब्द०)। (ख) परम तत आधारी मेरे, सिव नगरी घर मेरा।—कबीर ग्रं०, पृ० १५४।

आधासीसी—संज्ञा स्त्री० [सं० **अर्द्ध + शीर्ष**] अधकपाली। आधे सिर की पीड़ा।

आधि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. मानसिक व्यथा। चिंता। फिक्र। शोच। सोच। उ०—आधि अगाधा व्याधि हरि, हरि राधा जप सोइ।—स० सप्तक, पृ० ३४३। २. गिरों। गिरवी। बंधक। रेहन। ३. स्थान। आवास [कौ०]। ४. पास पड़ोस (कौ०)। ५. विपत्ति। दुर्भाग्य [कौ०]। ६. धर्म या कर्तव्य की चिंता (कौ०)। ७. परिभाषा। लक्षण [कौ०]। ८. आशा [कौ०]। ९. दंड (कौ०)। १०. परिवार या कुटुंब की चिंता [कौ०]।

आधिक¹ⓤ—वि० [**हिं० आधा + एक**] आधा। आधे के लगभग। उ०—(क) आधिक दूर लौं जाय चितै पुनि आय गरें लपटाय कै रोई।—मुबारक (शब्द०)। (ख) आधिक रात उठे रघुबीर कह्यो सुनु बीर प्रजा सब सोई।—हनुमान० (शब्द०)।

आधिक²—क्रि० वि० आधे के समीप। आधे के लगभग। थोड़ा। उ०—लखि लखि अँखियनु अधखुलिनु, आँगु मोरि अँगराइ। आधिक उठि, लेटति लटकि, आलस भरी जँभाइ।—बिहारी र०, दो० ६३०।

आधिकरणिक—संज्ञा पुं० [सं०] १. न्यायाधीश। २. सरकारी अधिकारी [कौ०]।

आधिकारिक¹—संज्ञा पुं० [सं०] दृश्यकाव्य की वस्तु के दो भेदों में एक। मूल कथावस्तु। वि० दे० **'वस्तु'**।

आधिकारिक²—वि० १. मुख्य या प्रधान। उ०—एक दल······मनुष्य मनुष्य के बीच भ्रातृप्रेम को ही काव्यभूमि का एकमात्र आधिकारिक भाव मानता है।—रस०, पृ० ७७। २. अधिकार या अधिकारी से संबद्ध। अधिकारयुक्त। साधिकार।

आधिक्य—संज्ञा पुं० [सं०] बहुतायत। अधिकता। ज्यादती।

आधिदैविक—वि० [सं०] देवताओं द्वारा प्रेरित। यक्ष, देवता, भूत, प्रेत आदि द्वारा होनेवाला। देवताकृत।

विशेष—सुश्रुत में सात प्रकार के दुःख गिनाए गए हैं, उनमें से तीन अर्थात् कालबलकृत (बर्फ इत्यादि पड़ना, वर्षा अधिक होना इत्यादि), देवबलकृत (बिजली पड़ना, पिशाचादि लगना), स्वभावबलकृत (भूख प्यास का लगना) आधिदैविक कहलाते हैं।

आधिधर्ता—संज्ञा पुं० [सं०] जिसके पास कोई वस्तु गिरवी या रेहन रखी जाय [कौ०]।

आधिपत्य—संज्ञा पुं० [सं०] प्रभुत्व। स्वामित्व। अधिकार।

आधिपाल—संज्ञा पुं० [सं०] वह राजकर्मचारी जो जमा की हुई धरोहर की रक्षा का प्रबंध करता हो।

आधिभोग—संज्ञा पुं० [सं०] धरोहर की वस्तु का उपयोग या उपभोग [कौ०]।

आधिभौतिक—वि०[सं०] व्याघ्र, सर्पादि जीवों द्वारा कृत। जीव या शरीरधारियों द्वारा प्राप्त।

विशेष—सुश्रुत में रक्त और शुक्रदोष तथा मिथ्या आहार विहार से उत्पन्न व्याधियों को आधिभौतिक के अंतर्गत ही माना है।

आधिमन्यु—संज्ञा पुं० [सं०] ज्वर की जलन। बुखार की गर्मी [कौ०]।

आधिमोचन—संज्ञा पुं० [सं०] गिरवी या बंधक छुड़ाना।

आधिवेदनिक—संज्ञा पुं० [सं०] वह धन जो पुरुष दूसरा विवाह करने के पूर्व अपनी पहली स्त्री को उसके संतोष के लिये दे। यह स्त्रीधन समझा जाता है।

आधिस्तेन—संज्ञा पुं० [सं०] वह व्यक्ति जो धनाधिकारी की आज्ञा बिना जमा किए हुए धन का उपभोग करता है [कौ०]।

आधी—वि० स्त्री० [सं० **अर्द्ध**, प्रा० **अद्ध**] आधा का स्त्रीलिंग रूप। उ०—आधी छोड़ सारी को धावै। आधी रहै न सारी पावै।—लोक०।

आधीनⓤ—वि०[सं० **अधीन**] दे० 'अधीन'। उ०—करौं घरी आधीन मैं करौं हरी आधीन।—भिखारी ग्रं०, भा०, १, पृ० १८।

आधीनताⓤ—संज्ञा स्त्री० [सं० **अधीनता**] दे० **'अधीनता'**।

आधीरात—संज्ञा स्त्री० [सं० **अर्धरात्रि**] वह समय जब रात का आधा भाग बीत चुका हो।

आधुनिक—वि०[सं०] वर्तमान समय का। हाल का। आजकल का। वर्तमान काल का। सांप्रतिक। नवीन।

आधुनिकतम—वि० [सं०] अद्यतन। नवीनतम।

आधूत—वि० [सं०] १. कंपित। काँपता हुआ। २. पागल। ३. व्याकुल।

आधूपन—संज्ञा पुं० [सं०] धुँए या कुहरे से आवृत [कौ०]।

आधूम्र—वि० [सं०] धुँए की तरह काले रंगवाला [कौ०]।

आधृत—वि० [सं०] किसी आधार पर टिका हुआ। आधार पाया हुआ [कौ०]।

आधेक—वि०, क्रि० वि० [हिं०] दे० 'आधिक'। उ०—राधिका आधेक नैननि मूँदि हिए ही हिए हरि की छबि हेरति।—भिखारी० ग्रं०, भा० १, पृ० १५८।

आधेय—संज्ञा पुं०[सं०] १. आधार पर स्थित वस्तु। जो वस्तु किसी के आधार पर रहे। किसी सहारे पर टिकी हुई चीज। २. स्थापनीय। ठहराने योग्य। रखने योग्य। ३. गिरो रखने योग्य।

आधोरण—संज्ञा पुं० [सं०] हाथीवान। महावत। पीलवान।

आध्मात¹—वि० [सं०] १. फूला हुआ। २. गर्व से भरा हुआ। ३. जला हुआ। ४. शब्दयुक्त। ध्वनिवाला। ज्वर वायु से ग्रस्त [कौ०]।

आध्मात²—संज्ञा पुं० १. उदर में होनेवाला वायु रोग। २. युद्ध [को०]।

आध्मान—संज्ञा पुं० [सं०] एक वातव्याधि। पेट का फूलना। अफरा

आध्मानी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. नलिका नामक गंधद्रव्य। २. फुँकनी। वह धातु या बाँस की नली जिससे हवा फूँकी जाय [को०]।

आध्यात्मिक—वि० [सं०] [स्त्री० आध्यात्मिकी] १. आत्म संबंधी। २ मन संबंधी। ३. अध्यात्म से संबंध रखनेवाला [को०]।

यौ०—आध्यात्मिक ताप = वह दुःख जो मन आत्मा और देश इत्यादि को पीड़ा दे; जैसे,—शोक, मोह, ज्वर आदि।

आध्यापक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अध्यापक' [को०]।

आध्यायिक—वि० [सं०] [स्त्री० आध्यायिकी] वेदों के अध्ययन में संलग्न रहनेवाला [को०]।

आध्यासिक—वि० [सं०] वेदांतदर्शन में भ्रमात्मक (ज्ञान) [को०]।

आनंतर्य—संज्ञा पुं० [सं० आनन्तर्य] १. अचानक होनेवाली सफलता। २. तात्कालिक अनुमान।

आनंत्य—संज्ञा पुं० [सं० आनन्त्य] १. अंत या समाप्ति का अभाव। अनंतता। २. स्वर्ग। ३. अविनश्वरता।

आनंद¹—संज्ञा पुं० [सं० आनन्द] [वि० आनंदित, आनंदी] १. हर्ष। प्रसन्नता। खुशी। सुख। मोद। आह्लाद।

क्रि० प्र०—आना।—करना।—देना।—पाना।—भोगना। मनाना।—मिलना।—रहना।—लेना। जैसे,—(क) कल हमको सैर में बड़ा आनंद आया। (ख) यहाँ हवा में बैठे खूब आनंद ले रहे हो। (ग) मूर्खों की संगति में कुछ भी आनंद नहीं मिलता।

यौ०—आनंदमंगल।

मुहा०—आनंद के तार या ढोल बजाना = आनंद के गीत गाना। उत्सव मनाना।

२.प्रसन्नता या खुशी की चरम अवस्था जो ब्रह्म की तीन प्रधान विभूतियों में से एक है। उ०—सत्, चित और आनंद, ब्रह्म के इन तीन स्वरूपों में से काव्य और भक्तिमार्ग 'आनंद' स्वरूप को लेकर चले।—रस०, पृ० ५५। ३. मद्य। शराब। ४. शिव (को०)। ५. विष्णु (को०)। ६. बुद्ध के एक प्रधान शिष्य (को०)। ७. दंडक छंद का एक भेद (को०)। ८. ४८ वें संवत्सर का नाम (को०)।

आनंद²—वि० सानंद। आनंदमय। प्रसन्न। जैसे,—आनंद रहो।

विशेष—यह विशेषणवत् प्रयोग ऐसे ही दो एक नियत वाक्यों में होता है। पर ऐसे स्थानों में भी यदि आनंद को विशेषण न मानना चाहें, तो उसके आगे 'से' लुप्त मान सकते हैं।

आनंदक—वि०[सं० आनन्दक] आनंद प्रदान करनेवाला [को०]।

आनंदकर—संज्ञा पुं०[सं० आनन्दकर] चंद्रमा [को०]।

आनंदकला—संज्ञा स्त्री० [सं० आनन्दकला] ब्रह्म की आनंदमयी सत्ता। ईश्वर का आनंदमय स्वरूप। उ०—भगवान् की आनंदकला के विकास की ओर बढ़ती हुई गति है।—रस०, पृ० ६०।

आनंदकानन—संज्ञा पुं० [सं० आनन्दकानन] दे० 'आनंदबन'।

आनंदघन¹—वि० [सं० आनन्द+घन] आनंद से भरा हुआ।

आनंदघन²—संज्ञा पुं० १. श्रीकृष्ण भगवान्। २. हिंदी के एक कवि का नाम।

आनंदज—वि० [सं० आनन्दज] हर्ष के कारण उत्पन्न, जैसे,—अश्रु [को०]।

आनंदना(पु)—क्रि० अ० [सं० आनन्द से नाम०] प्रसन्न होना। आनंदयुक्त होना। उ०—ज्यों चकई प्रतिबिंब देखिकै, आनंदै पिय जानि। सूर पवन मिलि निठुर विधाता, चपल कियौ जल आनि।—सूर०, १०।३२६८।

आनंदपट—संज्ञा पुं० [सं० आनन्दपट] वैवाहिक वस्त्र। जोड़ाजामा [को०]।

आनंदपूर्ण—वि० [सं० आनन्दपूर्ण] अत्यधिक प्रसन्न [को०]।

आनंदप्रभव—संज्ञा पुं० [सं० आनन्दप्रभव] वीर्य। शुक्र [को०]।

आनंदबधाई—संज्ञा स्त्री० [सं० आनन्द+हिं० बधाई] १. मंगल-उत्सव। २. मंगल अवसर। ३. मंगल की बधाई।

आनंदबन—संज्ञा पुं० [सं० आनन्दवन] काशी। वाराणसी। अविमुक्त क्षेत्र। बनारस। सप्तपुरियों में से चौथी।

आनंदभैरव—संज्ञा पुं० [सं० आनन्दभैरव] १. शिव का एक नाम (को०)। २. वैद्यक में एक रस का नाम जो प्रायः ज्वरादि की चिकित्सा में काम आता है।

विशेष—इसके बनाने की यह रीति है—शुद्ध पारा और शुद्ध गंधक की कजली, शुद्ध सिंगी मुहरा, सिंगरफ, सोंठ, काली मिर्च, पीपल, भूना सुहागा, इन सबका चूर्ण कर भँगरैया के रस में तीन दिन खरल कर आध आध रत्ती की गोलियाँ बनावे। एक गोली नित्य दस दिन पर्यंत खिलाने से खाँसी, क्षय, संग्रहणी, संनिपात और मृगी के सब रोग नष्ट हो जाते हैं।

आनंदभैरवी—संज्ञा स्त्री० [सं० आनन्दभैरवी] भैरव राग की रागिनी जिसमें सब कोमल स्वर लगते हैं। इसके गाने का समय प्रातः काल १ दंड से ५ दंड तक है।

आनंदमंगल—संज्ञा पुं० [सं० आनन्द+मङ्गल] सुख चैन।

आनंदमत्ता—संज्ञा स्त्री० [सं० आनन्दमत्ता] प्रौढ़ा नायिका का एक भेद। आनंद से उन्मत्त प्रौढ़ा। दे० 'आनंदसंमोहिता'।

आनंदमय¹—वि० [सं० आनन्दमय] आनंदपूर्ण। प्रसन्नता से युक्त [को०]।

यौ०—आनंदमयकोष = आत्मा के पंचकोषों में से एक (वेदांत)।

आनंदमय²—संज्ञा पुं० ब्रह्म [को०]।

आनंदमया—संज्ञा स्त्री० [सं० आनन्दमया] दुर्गा का एक रूप [को०]।

आनंदलहरी—संज्ञा स्त्री० [सं० आनन्दलहरी] शंकराचार्य विरचित एक ग्रंथ जिसमें पार्वती जी की स्तुति हैं [को०]।

विशेष—इसे सौंदर्यलहरी भी कहते हैं।

आनंदवाद—संज्ञा पुं० [सं० आनन्दवाद] आनंद को ही मानव जीवन का मूल लक्ष्य माननेवाली विचारधारा या सिद्धांत।

आनंदसंमोहिता—संज्ञा स्त्री० [सं० आनन्दसम्मोहिता] वह नायिका जो रति के आनंद में अत्यंत निमग्न होने के कारण मुग्ध हो रही हो। यह प्रौढ़ा नायिका का एक भेद है।

आनंदा—संज्ञा स्त्री० [सं० आनन्दा] भाँग [को०]।

आनंदित—वि० [सं० **आनन्दित**] हर्षित। मुदित। प्रमुदित। सुखी। उ०—आनंदित गोपी ग्वाल, नाचैं कर दै दै ताल, अति अहलाद भयो जसुमति माइ कै।—सूर०, १०।३१।

आनंदी—वि० [सं० **आनन्दिन्**] हर्षित। प्रसन्न। सुखी। खुश।

आन¹—संज्ञा स्त्री० [सं० **आणि=मर्यादा, सीमा**] १. मर्यादा। २. शपथ। सौगंध। कसम। उ०—मोहि राम राउरि आन दसरथ सपथ सब साँची कहौं।—मानस, २।१००। ३. विजय-घोषणा। दुहाई।

क्रि० प्र०—**फिरना**। उ०—बार बार यों कहत सकात न, तोहिं हति लैहैं प्रान। मेरैं जान, कनकपुरी फिरिहै रामचंद्र की आन।—सूर०, ९। १२१।

४. ढंग। तर्ज। अदा। छवि। जैसे,—उस मौके पर बड़ौदा नरेश का इस सादगी से निकल जाना एक नई आन थी। ५. अकड़। ऐंठ। दिखाव। ठसक। जैसे,—आज तो उनकी और ही आन थी। ६. अदब। लिहाज। दबाव। लज्जा। शर्म। हया। शंका। डर। भय। जैसे,—कुछ बड़ों की आन तो माना करो। ७. प्रतिज्ञा। प्रण। हठ। टेक। जैसे,—वह अपनी आन न छोड़ेगा।

आन²—संज्ञा स्त्री० [अ०] क्षण। अल्पकाल। लमहा। जैसे,—एक ही आन में कुछ का कुछ हो गया है।

मुहा०—**आन की आन में**=शीघ्र ही। अत्यल्प काल में। जैसे,—आन की आन में सिपाहियों ने पूरा का पूरा शहर घेर लिया।

आन³Ⓟ—वि० [सं० **अन्य**] दूसरा। और। उ०—मुख कह आन, पेट बस आना। तेहि औगुन दस हाट बिकाना।—जायसी ग्रं०, पृ० ३५।

आन⁴—क्रि० वि० [हिं० **आना**] आकर। उपस्थित होकर। जैसे,—पत्ता पेड़ से आन गिरा।

आनक—संज्ञा पुं० [सं०] १. डंका। दुंदुभी। भेरी। ढक्का। बड़ा ढोल। मृदंग। नगाड़ा। उ०—गोमुख आनक ढोल नफीरी मिलि कै साजै।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ६४३। २. गरजता हुआ बादल।

यौ०—आनकदुंदुभी।

आनकदुंदुभि—संज्ञा पुं० [सं० **आनकदुंदुभि**] १. बड़ा नगाड़ा। २. कृष्ण के पिता वसुदेव।

विशेष—ऐसा प्रसिद्ध है कि जब वसुदेव जी उत्पन्न हुए थे, तब देवताओं ने नगाड़े बजाए थे।

आनडुह—वि० [सं०] बैल या साँड से संबद्ध [को०]।

आनत—वि० [सं०] अत्यंत झुका हुआ। अतिनम्र। उ०—पत्रों के आनत अधरों पर, सो गया निखिल वन का मर्मर।—गुंजन, पृ० ७६। २. कल्पभव के अंतर्गत वैमानिं नामक जैन देवताओं में से एक देवता।

आनतान¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० **आन=दूसरा+तान=गीत**] अंड बंड बात। ऊटपटाँग बात। बेसिर पैर की बात।

आनतान²—संज्ञा स्त्री० [**हिं० आन+खितान=चाव**] १. मर्यादा। ठसक। २. टेक। अड़।

आनति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. नत होना। झुकना। झुकाव। २. प्रणाम करना। प्रणति। ३. सत्कार करना [को०]।

आनतिकर—संज्ञा स्त्री० [सं०] उपहार। पुरस्कार [को०]।

आनद्ध¹—वि० [सं०] १. बँधा हुआ। कसा हुआ। २. मढ़ा हुआ।

आनद्ध²—संज्ञा पुं० १. वह बाजा जो चमड़े से मढ़ा हो; जैसे—ढोल मृदंग आदि। २. सज्जित होना। कपड़े आभूषण आदि पहनना [को०]।

आनद्धवस्तिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] पेशाब या पाखाने का रुकना [को०]।

आनन—संज्ञा पुं० [सं०] १. मुख। मुँह। उ०—आनन रहित सकल रस भोगी।—मानस, १।११८। २. चेहरा। उ०—आनन है अरविंद न फूल्यो आलीगन भूल्यो कहा मँडरात हौ।—भिखारी० ग्रं०, भा० २, पृ० ६१।

यौ०—**चंद्रानन। गजानन। चतुरानन। पंचानन। षड़ानन।**

आननफानन—क्रि० वि० [अ० **आनन फ़ानन**] अतिशीघ्र। फौरन। झटपट। बहुत जल्द।

आननाⓅ—क्रि० स० [सं० **आ+√नी=ले जाना या लाना**] लाना। उ०—आनहु रामहि बेगि बोलाई।—मानस, २।३६।

आनबान—संज्ञा स्त्री० [हिं० **आन+बान**] १. सजधज। ठाट बाट। तड़क भड़क। बनावट। उ०—जुही आनबान भरी; चमेली जवान परी।—आराधना, पृ० २३।

आनमन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'आनति' [को०]।

आनयनⓅ—संज्ञा पुं० [सं०] १. लाना। २. उपनयन संस्कार।

आनर—संज्ञा पुं० [अं०] १. संमान। प्रतिष्ठा। इज्जत। सत्कार। २. संमानचिह्न। उपाधि।

आनरेबुल—वि० [अं०] प्रतिष्ठित। माननीय।

विशेष—अँगरेजी शासन में जो गवर्नर जनरल, गवर्नर, बड़े लाट या छोटे लाट की कौंसिल के सभासद् होते थे, उन्हें तथा हाईकोर्ट के जजों और कुछ चुने अधिकारियों को यह पदवी मिलती थी। अब केवल हाइकोर्ट तथा सुप्रीम कोर्ट के जजों को इस नाम से पुकारा जाता है।

आनरेरी—वि० [अं०] १. अवैतनीक। कुछ वेतन न लेकर प्रतिष्ठा के के हेतु काम करनेवाला।

यौ०—आनरेरी मजिस्ट्रेट। आनरेरी सेक्रेटरी।

२. बिना वेतन लेकर किया जानेवाला। जैसे,—यह काम हमारा आनरेरी है।

आनर्त—संज्ञा पुं० [सं०][वि० **आनर्तक**] १. देशविशेष। द्वारका। २. आनर्त देश का निवासी। ३. राजा शर्याति के तीन पुत्रों में से एक। ४. नृत्यशाला। नाचघर। ५. युद्ध। ६. जल। ७. नृत्य [को०]।

आनर्तक—वि० [सं०] नाचनेवाला।

आनव¹—वि० [सं०] १. मनुष्य की तरह शक्तिवाला। २. मनुष्य पर दया करनेवाला [को०]।

आनव²—संज्ञा पुं० १. मनुष्य। मानव। २. विदेशीजन [को०]।

आना¹—संज्ञा पुं० [सं० **आणक**] १. रुपए का १६वाँ भाग। २. किसी वस्तु का १६वाँ अंश। जैसे,—(क) प्लेग के कारण शहर में

अब चार आने लोग रह गए हैं। (ख) इस गाँव में चार आना उनका है।

आना[2]—क्रि० अ० [सं० **आगमन,** पुं० हिं० **आगवन, आवना; जैसे द्विगुण से दूना। अथवा सं० आयरण हिं० आवना**] १. वक्ता के स्थान की ओर चलना या उसपर प्राप्त होना। जिस स्थान पर कहनेवाला है, था या रहेगा उसकी ओर बराबर बढ़ना या वहाँ पहुँचना। जैसे,—(क) वे कानपुर से हमारे पास आ रहे हैं। (ख) जब हम बनारस में थे, तब आप हमारे पास आए थे। (ग) हमारे साथ साथ तुम भी आओ। २. जाकर वापस आना। जाकर लौटना। जैसे—तुम यहीं खड़े रहो, मैं अभी आता हूँ। ३. प्रारंभ होना। जैसे,—बरसात आते ही मेढ़क बोलने लगते हैं। ४. फलना। फूलना। जैसे,—(क) इस साल आम खूब आए हैं। (ख) पानी देने से इस पेड़ में अच्छे फूल आवेंगे। ५. किसी भाव का उत्पन्न होना। जैसे,—आनंद आना, क्रोध आना, दया आना, करुणा आना, लज्जा आना, शर्म आना।

विशेष— इस अर्थ में 'मैं' के स्थान पर 'को' लगता है। जैसे,—उनको यह बात सुनते ही बड़ा क्रोध आया।

६. आँच पर चढ़े हुए किसी भोज्य पदार्थ का पकना या सिद्ध होना। जैसे,—(क) चावल आ गए, अब उतार लो। (ख) देखो, चाशनी आ गई या नहीं। ७. स्खलित होना। जैसे—जो यह दवा खाता है, वह बड़ी देर से आता है।

मुहा०—**आई**=(१) आई हुई मृत्यु। जैसे,—आई कहीं टलती है। (२) आई हुई विपत्ति। **आए दिन**=प्रतिदिन। रोज रोज। जैसे,—यह आए दिन का झगड़ा अच्छा नहीं। **आए गए होना**=खो जाना। नष्ट होना। फजूल खर्च होना। जैसे,—वे रुपए तो आए गए हो गए। **आओ या आइए**=जिस काम को हम करने जाते हैं, उसमें योग दो। जैसे,—आओ, चलें घूम आवें। (ख) आइए, देखें तो इस किताब में क्या लिखा है। **आ जाना**=पड़ जाना। स्थित होना। जैसे,—उनका पैर पहिए के नीचे आ गया। **आता जाता**=आने जानेवाला। पथिक। बटोही। जैसे,—किसी आते जाते के हाथ रुपया भेज देना। **आना जाना**=(१) आवागमन। जैसे,—उनका बराबर आना जाना लगा रहता है। (२) सहवास करना। संभोग करना। जैसे,—कोई आता जाता न होता तो यह लड़का कहाँ से होता? **आ धमकना**=एकबारगी आ पहुँचना। अचानक आ पहुँचना। जैसे,—बागी इधर उधर भागने की फिक्र कर ही रहे थे कि सरकारी फौज आ धमकी। **आ निकलना**=एकाएक पहुँच जाना। अनायास आ जाना। जैसे,—(क) कभी कभी जब वे आ निकलते हैं, तब मुलाकात हो जाती है। (ख) मालूम नहीं हम लोग कहाँ आ निकले। **आ पड़ना**=(१) सहसा गिरना। एकबारगी गिरना। जैसे,—धरन एकदम नीचे आ पड़ी। (२) आक्रमण करना जैसे,—उसपर एक साथ ही बीस आदमी आ पड़े। (३) अनिष्ट घटना का घटित होना। जैसे,—बेचारे पर बैठे बिठाए यह आफत आ पड़ी। (४) संकट, कठिनाई या दुःख का उपस्थित होना। जैसे,—(क) तुमपर क्या आ पड़ी है जो उनके पीछे दौड़ते फिरो। (ख) जब आ पड़ती है तब कुछ नहीं सूझता। (५) उपस्थित होना। एकबारगी आना। जैसे,—(क) जब काम आ पड़ता है, तब वह खिसक जाता है। (ख) उनपर गृहस्थी का सारा बोझ आ पड़ा। (शब्द०) (ग) कल हमारे यहाँ दस मेहमान आ पड़े। (शब्द०)। (६) डेरा जमाना। टिकना। विश्राम करना। जैसे,—क्यों इधर उधर भटकते हो, चार दिन यहीं आ पड़ो। **आया गया**=अतिथि। अभ्यागत। जैसे,—आए गए का अच्छी तरह सत्कार करना चाहिए। **आ रहना**=गिर पड़ना। जैसे,—(क) पानी बरसते ही दीवार आ रही। (ख) यह चबूतरे पर से नीचे आ रहा। **आ लगना**=(१) किसी ठिकाने पर पहुँचना। जैसे,—(क) बात की बात में किश्ती किनारे आ लगी। (ख) रेलगाड़ी प्लेटफार्म पर आ लगी। (इस क्रियापद का प्रयोग जड़ पदार्थों के लिये होता है, चेतन के लिये नहीं। (२) आरंभ होना। जैसे,—अगहन का महीना आ लगा है। (३) पीछे लगना। साथ होना। जैसे,—बाजार में जाते ही दलाल आ लगते हैं। **आ लेना**=पास पहुँच जाना। पकड़ लेना। जैसे,—डाकू भागे पर सवारों ने आ लिया। (२) आक्रमण करना। टूट पड़ना। जैसे,—हिरन चुपचाप पानी पी रहा था कि बाघ ने आ लिया। **किसी का किसी पर कुछ रुपया आना**=किसी के जिम्मे किसी का कुछ रुपया निकलना। जैसे,—क्या तुम पर उनका कुछ आता है? हाँ, बीस रुपये। **किसी की आ बनना**=किसी को लाभ उठाने का अच्छा अवसर हाथ आना। स्वार्थसाधन का मौका मिलना। जैसे,—कोई देखने भालने वाला है नहीं, नौकरों की खूब आ बनी है। **किसी को कुछ आना**=किसी को कुछ बोध होना। किसी को कुछ ज्ञान होना। जैसे,—(क) उसे तो बोलना ही नहीं आता। (ख) उसे चार महीने में हिंदी आ जायगी। **किसी को कुछ आना जाना**=किसी को कुछ बोध या ज्ञान होना। जैसे,—उनको कुछ आता जाता नहीं। **किसी पर आ बनना**=किसी पर विपत्ति पड़ना। जैसे,—(क) आजकल तो हमपर चारों ओर से आ बनी है। (ख) मेरी जान पर आ बनी है। उ०—आन बनी सिर आपने छोड़ पराई आस (शब्द०) **(किसी वस्तु) में आना**=(१) ऊपर से ठीक बैठना। ऊपर से जमकर बैठना। चपकना। ढीला या तंग न होना। जैसे,—(क) देखो तो तुम्हारे पैर में यह जूता आता है। (ख) यह साभी इस छड़ी में नहीं आवेगी। (२) भीतर अटना। समाना। जैसे,—इस बरतन में दस सेर घी आता है। (३) अंतर्गत होना। अंतर्भूत होना। जैसे,—ये सब विषय विज्ञान ही में आ गए। **किसी वस्तु से (धन या आय) आना**=किसी वस्तु से आमदनी होना। जैसे,—(क) इस गाँव से तुम्हें कितना रुपया आता है? (ख) इस घर से कितना किराया आता है? (जहाँ पर आय के किसी विशेष भेद का प्रयोग होता है, जैसे,—भाड़ा, किराया, लगान, मालगुजारी आदि वहाँ चाहे 'का' का व्यवहार करें चाहे 'से' का। जैसे,—(क) इस घर का कितना किराया आता है। (ख) इस घर से कितना किराया आता है। (पर जहाँ 'रुपया' या 'धन' आदि शब्दों का

प्रयोग होता है, वहाँ केवल 'से' आता है।) **कोई काम करने पर आना** = कोई काम करने के लिये उद्यत होना। कोई काम करने के लिये उतारू होना। जैसे,—जब वह पढ़ने पर आता है तो रात दिन कुछ नहीं समझता। **जूतों या लात घूसों आदि से आना** = जूतों या लात घूसों से आक्रमण करना। जूते या लात घूँसे लगाना। जैसे,—अब तक तो मैं चुप रहा, अब जूतों से आऊँगा। **(पौधे का) आना = (पौधे का)** बढ़ना। जैसे,—खेत में गेहूँ कमर बराबर आए हैं। **(मूल्य) को या में आना** = दामों में मिलना। मूल्य पर मिलना। मोल मिलना। जैसे,—यह किताब कितने को आती है। (ख) यह किताब कितने में आती है। (ग) यह किताब चार रुपए को आती है। (घ) यह किताब चार रुपए में आती है। (इस) मुहाविरे तृतीया के स्थान पर 'की' या 'में' का प्रयोग होता है।)

विशेष—'आना' क्रिया के अपूर्णभूत रूप के साथ अधिकरण में भी 'को' विभक्ति लगती है; जैसे,—'वह घर को आ रहा था'। इस क्रिया को आगे पीछे लगा कर संयुक्त क्रियाएँ भी बनती हैं। नियमानुसार प्रायः संयुक्त क्रियाओं में अर्थ के विचार से पद प्रधान रहता है और गौण क्रिया के अर्थ की हानि हो जाती है; जैसे, दे डालना, गिर पड़ना आदि। पर 'आना' और 'जाना' क्रियाएँ पीछे लगकर अपना अर्थ बनाए रखती है; जैसे,—'इस चीज को उन्हें देते आओ।' इस उदाहरण में देकर फिर आने का भाव बना हुआ है। यहाँ तक कि जहाँ दोनों क्रियाएँ गत्यर्थक होती हैं वहाँ 'आना' का व्यापार प्रधान दिखाई देता है; जैसे,—चले आओ। बढ़े आओ। कहीं कहीं आना का संयोग किसी और क्रिया का चिर काल से निरंतर संपादन सूचित करने के लिये होता है; जैसे,—(क) इस कार्य को हम महीनों से करते आ रहे हैं। (ख) हम आज तक आपके कहे अनुसार काम करते आए हैं। गतिसूचक क्रियाओं में 'आना' क्रिया धातुरूप में पहले लगती है और दूसरी क्रिया के अर्थ में विशेषता करती है; जैसे,—आ खपना, आ गिरना, आ घेरना, आ झपटना, आ टूटना, आ ठहरना, आ धमकना, आ निकलना, आ पड़ना, आ पहुँचना, आ फँसना, आ रहना। पर 'आ जाना' क्रिया में 'जाना' क्रिया का अर्थ कुछ भी नहीं है। इससे संदेह होता है कि कदाचित् यह 'आ' उपसर्ग न हो; जैसे,—आयान, आगमन, आनयन, आपतन।

आनाकानी—संज्ञा स्त्री० [सं० **अनाकर्णन**] १. सुनी अनसुनी करने का कार्य। न ध्यान देने का कार्य। उ०—आनाकानी आरसी निहारिनो करौगे कौ लौं ?—इतिहास, पृ० ३४१। २. टालमटूल। हीला हवाला। जैसे,—माल तो ले आए, अब रुपया देने में आनाकानी क्यों करते हो ?

क्रि० प्र०—**करना**।—देना।

३. कानाफूसी। धीमी बातचीत। इशारों की बात। उ०—आनाकानी कठ हँसी मुहाचाही होन लगी देखि दसा कहत बिदेह बिलखाय कै।—तुलसी (शब्द०)।

आनाथ्य—संज्ञा पुं० [सं०] असहाय या अनाथ होने की अवस्था या भाव [को०]।

आनाय—संज्ञा पुं० [सं०] जाल। फंदा [को०]।

आनाह—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक उदरव्याधि। मलावरोध से पेट का फूलना। मलमूत्र रुकने से पेट फूलना। २. बाँधना [को०]। ३. लंबाई (कपड़े आदि की) [को०]। ५. विस्तार [को०]।

आनि(५)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'आन'।

आनिल[१]—वि० [सं०] [वि० स्त्री० **आनिली**] वायु से संबंधित या उत्पन्न [को०]।

आनिल[२] **आनिलि**—संज्ञा पुं० [सं०] १. हनुमान। २. भीम। ३. स्वाती नक्षत्र [को०]।

आनिला—संज्ञा पुं० [अं०] जहाज के लंगर की कुंडी।

आनीजानी—वि० [हिं० **आना + जाना**] अस्थिर। क्षणभंगुर। उ०—दुनिया भी अजब सराय फानी देखी। हर चीज यहाँ की आनी जानी देखी। जो आके न जाए वह बुढ़ापा देखा। जो जाके न आए वह जवानी देखी।—अनीस (शब्द०)।

आनीत—वि० [सं०] लाया हुआ [को०]।

आनील[१]—वि० [सं०] हरे रंग का। हलका नीला [को०]।

आनील[२]—संज्ञा पुं० काला घोड़ा [को०]।

आनुकूलिक—वि० [सं०] [वि० स्त्री० **आनुकूलिकी**] अनुकूल [को०]।

आनुकूल्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. अनुकूलता की स्थिति या भाव। २. कृपालुता। दयालुता [को०]।

आनुक्रमिक—वि० [सं०] क्रमानुसार [को०]।

आनुगतिक—वि० [सं०] [वि० स्त्री० **आनुगतिकी**] अनुगत या अनुगति से संबंध रखनेवाला [को०]।

आनुगत्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. अनुगत होने की क्रिया। २. अनुकरण। ३. परिचय। घनिष्ठता। उ०—पा लिया है सत्य-शिव-सुंदर-सा पूर्ण लक्ष्य इष्ट हय सबको इसी का आनुगत्य है।—साकेत पृ० २०१।

आनुग्रहिककरनीति—संज्ञा स्त्री० [सं०] राज्य की वह नीति जिसके अनुसार कुछ विशेष मालों पर रियायत की जाती है।

आनुग्रहिक दारो दय शुल्क—संज्ञा पुं० [सं०] वह चुंगी जो कुछ खास खास पदार्थों पर कम ली जाय। (अर्थशास्त्र, पृ० ११३ में यह द्वारादेय शुल्क या आनुग्रहिक कहा गया है।)।

आनुग्रामिक—वि० [सं०] [वि० स्त्री० **आनुग्रामिकी**] ग्रामसंबंधी। ग्रामीण [को०]।

आनुपदिक—वि० [सं०] [स्त्री० **आनुपादिकी**] १. पीछा करनेवाला। २. अनुकरण करनेवाला [को०]।

आनुपातिक—वि० [सं०] अनुपात संबंधी [को०]।

आनुपूर्वी—वि० [सं० **अनुपूर्वीय**] क्रमानुसार। एक के बाद दूसरा।

आनुमानिक—वि० [सं०] अनुमान संबंधी। खयाली।

आनयात्रिक—संज्ञा पुं० [सं०] सेवक। नौकर। अनुचर [को०]।

आनुरक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'अनुरक्ति [को०]।

आनुलोमिक—वि० [सं०] १. नियमित। क्रमित। २. अनुकूल। उपयुक्त [को०]।

आनुवंशिक—वि० [सं०] वंशपरंपरा से आया हुआ। वंशानुक्रमिक [को०]।

आनुवेश्य--संज्ञा पुं० [सं०] १.पड़ोसी। प्रतिवेशी। २. वह पड़ोसी जिसका घर अपने मकान से दाहिने या बाएँ हो। प्रतिवेश्य का उलटा [को०]।

आनुश्राविक[१]--वि० [सं०] जिसको परंपरा से सुनते चले आए हों।

आनुश्राविक[२]--संज्ञा पुं० दो प्रकार के विषयों में से एक, जिसे परंपरा से सुनते आए हों। जैसे,--स्वर्ग, अप्सरा।

आनुषंगिक--वि० [सं०] जिसका साधन किसी दूसरे प्रधान कार्य को करते समय बहुत थोड़े प्रयास में हो जाय। बड़े काम के घलुए में हो जानेवाला। जिसकी बहुत कुछ पूर्ति किसी दूसरे कार्य के संपादन द्वारा हो जाय और शेष अंश के संपादन में बहुत ही थोड़े प्रयास की आवश्यकता रहे। साथ साथ होनेवाला। गौण। अप्रधान। प्रसंगात होनेवाला या हो जानेवाला अथवा किया जानेवाला। प्रासंगिक। जैसे,--भिक्षा माँगने जाओ, उधर से आते समय गाय भी हाँकते लाना। उ०--चलो सखी तहँ जाइए जहाँ बसत ब्रजराज। गोरस बेचत हरि मिलत एक पंथ द्वै काज (शब्द०)।

आनूप--वि० [सं०] १. दलदलवाला। २. दलदली भूमि में उत्पन्न [को०]।

आनृत--वि० [सं०] [स्त्री० **आनृती**] हमेशा झूठ बोलनेवाला [को०]।

आनृशंस[१]--वि०[सं०] कोमल स्वभाववाला। दयालु [को०]।

आनृशंस[२]--संज्ञा पुं० १. कृपालुता। २. दयालुता। ३. मृदुलता। ४. रक्षकता। रक्षक स्वभाव [को०]।

आनृशंस्य--वि० संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'आनृशंस' [को०]।

आनेता--वि० [सं० **आनेतृ**] लानेवाला [को०]।

आनैपुण,आनैपुण्य--संज्ञा पुं० [सं०] अदक्षता। भद्दापन [को०]।

आनैश्वर्य--संज्ञा पुं० [सं०] ऐश्वर्य का अभाव। अनैश्वर्य [को०]।

आन्न--वि०[सं०][स्त्री० **आन्नी**]१. अन्नवाला। २.अन्न से संबंधित [को०]।

आन्वयिक--वि०[सं०]१. कुलीन। २. सुव्यवस्थित। व्यवस्थित [को०]।

आन्वष्टक्य--वि०[सं०]हेमंत और शिशिर के चारों महीनों, अगहन पूस, माघ और फागुन में कृष्ण पक्ष की नवमी तिथि को होनेवाला (श्राद्ध)।

आन्वीक्षिकी--संज्ञा स्त्री० [सं०] १. आत्मविद्या। २. तर्कविद्या। न्याय।

आप[१]--सर्व० [सं० **आत्मन्**, प्रा० **अत्त अप्प, अप्परा,** (पु) **आपनो**] १. स्वयं। खुद।

विशेष--इसका प्रयोग तीनों पुरुषों के लिये होता है। जैसे, उत्तम पुरुष--मैं आप जाता हूँ, तुम्हें जाने की आवश्यकता नहीं। मध्य पुरुष--तुम आप अपना काम क्यों नहीं करते, दूसरों का मुँह क्यों ताका करते हो। अन्य पुरुष--तुम मत हाथ लगाओ, वह आप अपना काम कर लेगा। २. 'तुम' और 'वे' के स्थान पर आदरार्थक प्रयोग। जैसे,--(क) कहिए बहुत दिन पर आप आए हैं, इतने दिन कहाँ थे? (ख) ईश्वरचंद्र विद्यासागर पुराने ढंग के पंडित थे। आपने समाज संशोधन के लिये बहुत कुछ उद्योग किया। (ग) आप बड़ी देर से खड़े हैं; ले जाकर बैठाते क्यों नहीं? ३. ईश्वर। भगवान्। उ०--(क) जहाँ दया तहँ धर्म है, जहाँ लोभ तहँ पाप। जहाँ क्रोध दया तहँ काल है, जहाँ क्षमा तहँ आप--कबीर (शब्द०)।

यौ०--**आपकाज** = अपना काम। जैसे,--आपकाज महाकाज (शब्द०)। उ०--नंददास प्रभु बड़े कहि गए हैं आपकाज महाकाज।--नंद० ग्रं०, पृ० ३६८। **आपकाजी** = स्वार्थी। मतलबी। **आपबीती** = घटना जो अपने ऊपर बीत चुकी हो। **आपरूप** = स्वयं। आप। साक्षात् आप। उ०--चित्र के अनूप बृजभूप के सरूप को जौ क्यों हूँ आपरूप बृजभूप करि मानती।--भिखारी० ग्रं०, भा० १, पृ० १५६। **आपस्वार्थी** = मतलबी।

मुहा०--**आप आप करना** = खुशामद करना। जैसे,--हमारा तो आप आप करते मुँह सूखता है और आपका मिजाज ही नहीं मिलता। **आप आपकी पड़ना** = अपने अपने काम में फँसना। अपनी अपनी अवस्था का ध्यान रखना। जैसे,--दिल्ली दरबार के समय सबको आप आपकी पड़ी थी, कोई किसी की सुनता नहीं था। **आप आपकी** = अलग अलग। न्यारा न्यारा। जैसे,--(क) दो पुरुष आप आपको ठाडे। जब मिलैं जब नित कै गाड़े।--पहेली (केवाड़)। (ख) शेर के निकलते ही लोग आप आपको भाग गए। **आप आपमें** = आपस में परस्पर। जैसे,--यह मिठाई लड़कों को दे दो, वे आप आप में बाँट लेंगे। **आपको भूलना** = (१) अपनी अवस्था का ध्यान न रखना। किसी मनोवेग के कारण बेसुध होना। जैसे,--(क) बाजारू रंडियों के हाव भाव में पड़कर लोग आपको भूल जाते हैं। (ख) जब मनुष्य को क्रोध आता है तब वह आपको भूल जाता है। (२) मदांध होना। घमंड में चूर होना। जैसे,--थोड़ा सा धन मिलते ही लोग आपको भूल जाते हैं। **आप से** = स्वयं। खुद। जैसे,--उसने आपसे ऐसा किया; कोई उससे कहने नहीं गया था। उ०--खेलति ही सतरंज अलिनि सों तहाँ हरि आए आपु ही तें किधों काहू के बुलाए री।--केशव ग्रं०, भा० १, पृ० १८१। **आपसे आप** = स्वयं। खुद ब खुद। जैसे,--(क) आप चलकर बैठिए मैं सब काम आपसे आप कर लूँगा। (ख) घबराओ मत, सब काम आपसे आप हो जायगा। **आप ही** = स्वयं। आपसे आप। जैसे,--हम सब आप ही आप कर लेंगे। उ०--जागहि दया दृष्टि कै आपी। खोल सो नयन दीन विधि झाँपी।--जायसी (शब्द०)। **आप ही आप** = (१) बिना किसी और की प्रेरणा के। आपसे आप जैसे,--उसने आप ही आप यह सब किया है, कोई, कहने नहीं गया था। (२) मन ही मन में। जैसे,--वह आप ही आप कुछ कहता जा रहा था। (३) किसी को संबोधन करके नहीं। **(नाटक में उस 'वाक्य' को सूचित करने का संकेत जिसे अभिनयनकर्ता किसी पात्र को संबोधन करके नहीं कहता, वरन् इस प्रकार मुँह फेर कर कहता है, मानो अपने मन में कह रहा है। पात्रों पर उसके कहने का कोई प्रभाव नहीं दिखाया जाता। इसे 'स्वगत' भी कहते हैं।)**

आप[२]--संज्ञा पुं० [सं० **आपः** = जल] १. जल। पानी। उ०--पिंगल जटा कपाल माथे पै पुनीत आप पावक नयना प्रताप भ्रू पर बरत है।--तुलसी ग्रं०, पृ० २३७।

यौ०—**आपधर**=बादल। उ०—कर लिए चाप परतापधर। तीन लोक में थापधर। नृप गरज्यो जैसे आपधर। साँपधरन सम दापधर।—गोपाल (शब्द०)। आपनिधि=समुद्र। उ०—ज्ञानगिरि फोरि, तोरि लाज तरु जाइ मिलौं, आप ही तें आपगा ज्यों आपनिधि प्रीतमैं।—केशव ग्रं०, पृ० १२७।

२. आठ वसुओं में से एक का नाम(को०)। ३. जलप्लावन। बाढ़ (को०)। ४. जल का सोता या प्रवाह (को०)। ५. आकाश (को०)।

आपक—वि० [सं०] प्रापक। प्राप्त करनेवाला (को०)।

आपकर—वि० [सं०][वि० स्त्री० **आपकरी**] १. बिना मैत्री का। अमैत्रीपूर्ण। २. बुराई या निंदा करनेवाला। ३. अनिष्टकारी(को०)।

आपक्व—वि० [सं०] जो अच्छी तरह न पका हो। कम पका हुआ [को०]।

आपगा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. नदी। २. एक नदी का नाम [को०]।

आपगेय—संज्ञा पुं० [सं०] भीष्म पितामह [को०]।

आपचारⓅ—संज्ञा पुं० [हिं०] मनमानी।

आपचारनाⓅ—क्रि० अ० [हिं० **आपचार+ना (प्रत्य०)**] उ०—बिष लै बिसारचौ तन, कै बिसासी आपचारचौ, जान्यौ हुतौ मन ? तैं सनेह कछु खेल सो।—घनानंद, पृ० ६३।

आपण—संज्ञा पुं० [सं०] १. हाट। बाजार। २. किराया या महसूल जो बाजार से मिले। तहबजारी।

आपत्—संज्ञा स्त्री० [सं०] 'आपद' का समासगत रूप [को०]।

आपतⓅ—संज्ञा स्त्री० [सं० **आपद्**] दे० 'आपद्'।

आपत्कल्प—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'आपद्धर्म' [को०]।

आपत्काल—संज्ञा पुं० [सं०][वि० **आपत्कालिक**] १. विपत्ति। दुर्दिन। २. दुष्काल। कुसमय।

आपत्कृतऋण—संज्ञा पुं० [सं०] वह ऋण जो कोई आपत्ति पड़ने पर लिया जाय।

आपत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दुःख। क्लेश। विघ्न। २. विपत्ति। संकट। आफत। ३. कष्ट का समय। ४. जीविकाकष्ट। ५. दोषारोपण। ६. उज्र। एतराज। जैसे,—हमको आपकी बात मानने में कोई आपत्ति नहीं है। ७. प्राप्ति [को०]।

आपद्—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. विपत्ति। आपत्ति। २. दुःख। कष्ट। विघ्न।

यौ०—**आपद्गत, आपद्ग्रस्त, आपद्प्राप्त**=(१) आफत में पड़ा हुआ। (२) अभागा। **आपद्धर्म**। **आपद्विनीत**=कष्ट या विपत्ति में नम्र होनेवाला।

आपद—संज्ञा स्त्री० [सं० **आपद्**] दे० 'आपद्'।

आपदर्थ—संज्ञा पुं० [सं०] वह धन या संपत्ति जिसके प्राप्त करने पर आगे चलकर अपना अनिष्ट हो।

विशेष—जिस संपत्ति के लेने पर शत्रुओं की संख्या बढ़े, व्यय या क्षय बढ़े अथवा दूसरों को बहुत कुछ देना पड़े, वह आपदर्थ है। कौटिल्य ने आपदर्थ के अनेक दृष्टांत दिए हैं; जैसे,—वह सपत्ति जो कुछ दिनों पीछे मिलनेवाली हो, जिसे पीछे से कुपित होकर पार्ष्णिग्राह छीन ले, जो मित्र के नाश या संधिभंग द्वारा हो, जिसके ग्रहण के विरुद्ध सारा मंडल हो, इत्यादि। [को०]।

आपदा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दुःख। क्लेश। विघ्न। २. विपत्ति। आफत। संकट। ३. संकट का समय। जीविका का कष्ट।

आपद्धर्म—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह धर्म जिसका विधान केवल आपत्काल के लिये हो।

विशेष—जीविका के संकोच की दशा में जीवनरक्षा के लिये शास्त्रों में ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि के लिये बहुत से ऐसे व्यापारों से निर्वाह करने का विधान है, जिनका करना उनके लिये सुकाल में वर्जित है; जैसे,—ब्राह्मण के लिये शस्त्रधारण, खेती और वाणिज्य आदि का करना मना है, पर आपत्काल में इन व्यापारों द्वारा उनके लिये जीविका निर्वाह करने का विधान है।

आपधाप—संज्ञा स्त्री० [**हिं० आप+धाप**] अपनी अपनी चिंता। अपने अपने काम का ध्यान। दे० 'आपाधापी'।

आपनⓅ†, **आपनि**Ⓟ†—सर्व० [**हिं०**] दे० 'अपना'। उ०—(क) आपन मोर नीक जो चहहू।—मानस, २।६१। (ख) आपनि दारुन दीनता कहउँ सबहि सिरु नाइ।—मानस, २।१८२।

आपनपोⓅ—संज्ञा पुं० [**हिं०**] दे० 'अपनपो'।

आपनपौⓅ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अपनपौ'। उ०—तहँ साँच चलैं तजि आपनपौ, झिझकैं कपटी जो निसाँक नहीं।—इतिहास, पृ० ३४३।

आपनाⓅ†—सर्व० [**हिं०**] दे० 'अपना'। उ०—भजि रघुपति करु हित आपना। छाड़हु नाथ मृषा जल्पना।—मानस, ६।५५।

आपनिक—संज्ञा पुं० [सं०] १. बहुमूल्य हरा पत्थर। पन्ना। २. जंगली जाति। किरात (को०)।

आपनिधिⓅ—संज्ञा पुं० [सं० **आपोनिधि**] जलनिधि। समुद्र। उ०—आपहि ते आप गाज्यो आपनिधि प्रीति में।—केशव ग्रं०, भा० १, पृ० १२७।

आपनोⓅ†—सर्व० [**हिं०**] दे० 'अपना'। उ०—केहि अघ अवगुन आपनो कर डारि दिया रे।—तुलसी ग्रं०, पृ० ४७१।

आपन्न—वि० [सं०] १. आपदग्रस्त। दुःखी। २. प्राप्त।

यौ०—**आपन्नसत्व**=गर्भिणी। संकटापन्न।

आपपतिⓅ—संज्ञा पुं० [सं० **आप+पति**]समुद्र। उ०—काँपि उठचो आपपति तपनहिं ताप चढ़ी, सीरी यों सरीर गति भई रजनीस की।—केशव ग्रं०, भा० १, पृ० १२८।

आपमित्यक—वि० [सं०] विनिमय अथवा अदल बदल द्वारा प्राप्त (संपत्ति) [को०]।

आपयाⓅ—संज्ञा स्त्री० [सं० **आपगा**] नदी।

आपराह्णिक—वि०[सं०] अपराह्ण या तीसरे पहर होनेवाला [को०]।

आपरूप[1]—वि०[**हिं० आप+**सं०**रूप**]अपने रूप से युक्त। मूर्तिमान्। साक्षात् (महापुरुषों के लिये)। जैसे,—इतने ही में आपरूप भगवान प्रकट हुए।

आपरूप[2]—सर्व० साक्षात् आप। आप महापुरुष। ये महापुरुष। खुद बदौलत। हजरत (व्यंग्य)। जैसे,—(क) यह सब आपरूप ही की करतूत है। (ख) यह देखिए अब आपरूप आए हैं।

आपरेशन—संज्ञा पुं० [अं० **आँपरेशन**] शल्यचिकित्सा।

आपर्तुक—वि० [सं०] किसी विशेष समय या ऋतु से संबंध रखनेवाला [को०]।

आपवर्ग्य—वि० [सं०] अपवर्ग या मोक्ष से संबंध रखनेवाला [को०]।

आपस—संज्ञा स्त्री० [हिं० **आप**] [वि० **आपसी**] १. संबंध। नाता। भाईचारा। जैसे,—आपसवालों से धोखा न होगा। २. एक दूसरे का साथ। एक दूसरे का संबंध।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग केवल 'षष्ठी' और सप्तमी' में होता है। नियमानुसार षष्ठी में यह विशेषण की तरह आता है। जैसे,—(क) यह तो आपस की बात है। (ख) वे आपस में लड़ रहे हैं।

मुहा०—**आपस का**=(१) एक दूसरे से समान संबंध रखनेवाला। अपने भाई बंधु के बीच का। जैसे,—आपस का मामला। आपस की बात। आपस की फूट। जैसे,—कहो न, यहाँ तो सब आपस ही के लोग बैठे हैं। (२) पारस्परिक। परस्पर का। जैसे,—जरा सी बात पर उन्होंने आपस का आना जाना बंद कर दिया। **आपस में**=परस्पर। एक दूसरे के साथ। एक दूसरे के बीच। उ०—(क) हिंदू यमन शिष्य रहै दोऊ। आपस में राधै सब कोऊ।—कबीर (शब्द०)। (ख) सुख पाइहै कान सुने बतियाँ कल आपुस में कछु पै कहिहैं।—तुलसी ग्रं०, पृ० १६७।

यौ०—**आपसदारी**=परस्पर का व्यवहार। भाईचारा। **आपसरूप**=आत्मस्वरूप।

आपस्तंब—संज्ञा पुं० [सं० **आपस्तम्ब**] [वि० **आपस्तंबीय**] १. एक ऋषि जो कृष्ण यजुर्वेद की एक शाखा के प्रवर्तक थे। यह शाखा उन्हीं के नाम से प्रसिद्ध है। २. आपस्तंब शाखा के कल्प सूत्रकार जिनके बनाए तीन सूत्र ग्रंथ हैं, कल्प, गृह और धर्म। ३. एक स्मृतिकार जिनकी स्मृति उनके नाम से प्रसिद्ध है।

आपस्तंबीय—वि० [सं० **आपस्तम्बीय**] आपस्तंब संबंधी।

आपा[1]—संज्ञा पुं० [हिं० **आप**] १. अपनी सत्ता। अपना अस्तित्व। जैसे,—अपने आपे को समझो, तब ब्रह्मज्ञान होगा। २. अपनी असलियत। जैसे,—अपने आपको देखो तब बढ़ बढ़कर बातें करना। ३. अहंकार। घमंड। गर्व। उ०—(क) जग में बैरी कोइ नहीं जामें शीतल होय। या आपा को डारि दे दया करै सब कोय।—कबीर (शब्द०)।

क्रि० प्र०—**खोना**।—**छोड़ना**।—**जाना**।—**मिटना**।

४. होश हवास। सुध बुध। जैसे,—यह दशा देख लोग अपना आपा भूल गए।

मुहा०—**आपा खोना**=(१) अहंकार त्यागना। नम्र होना। निरभिमान होना। उ०—ऐसी बानी बोलिए मन का आपा खोय। औरन को शीतल करै आपुहि शीतल होय।—कबीर (शब्द०)। (२) अपने को बरबाद करना। अपने को मिटाना। अपनी सत्ता को भूलना। खाक में मिलाना। उ०—रंगहि पान मिले जस होई। आपहि खोय रहा होय सोई।—जायसी (शब्द०)। (३) हस्ती बिगाड़ना। प्राण तजना। मरना। जैसे,—उसने जरा सी बात पर अपना आपा खो दिया। **आपा डालना**=अहंकार का त्याग करना। घमंड छोड़ना। उ०—तन मन ताको दीजिए जाके विषया नाहिं। आपा सबही डारि कै राखै साहिब माहिं।—कबीर (शब्द०)। **आपा तजना**=(१) अपनी सत्ता को भूलना। अपने को मिटाना। आत्मभाव का त्याग। अपने पराए का भेद छोड़ना। उ०—आपा तजो औ हरि भजो नख शिख तजो विकार। सब जिउते निर्वैर रहु साधु मता है सार।—कबीर (शब्द०)। (२) अपने आप को मिटाना। अपने को खराब करना। जैसे,—अपना आपा तजकर हम उनके साथ साथ घूम रहे हैं। (३) अहंकार छोड़ना। निरभिमान होना। उ०—आपा तजै सो हरि का होय (शब्द०)। (४) चोला छोड़ना। प्राण छोड़ना। मरना। आत्मघात करना। जैसे,—यह लड़का क्यों रोते रोते आपा तज रहा है। **आपा दिखलाना**=दर्शन देना। उ०—कै बिरहिनि को मीच दे कै आपा दिखलाय। आठ पहर का दाझना मोपै सहा न जाय।—कबीर (शब्द०)। **आपा बिसरना**=(१) आत्मभाव का छूटना। अपने पराए के ज्ञान का नाश होना। उ०—ब्रह्मज्ञान हिये धरु, बोलते की खोज करु, माया इश न हरु, आपा बिसराउ रे।—कबीर (शब्द०)। (२) सुध बुध भूलना। होश हवास खोना। **आपा बिसराना**=(१) आत्म भाव को भूलना। अपने पराए का भेद भूलना। (२) सुध बुध भूलना। होश हवास खोना। **आपे में आना**=होश हवास में होना। सुध बुध में होना। चेत में होना। जैसे,—जरा आपे में आकर बातचीत करो। **आपे में न रहना**=(१) आपे से बाहर होना। बेकाबू होना। जैसे,—मारे क्रोध के वह इस समय आपे में नहीं है। (२) घबराना। बदहवास होना। जैसे,—विपत्ति में बुद्धिमान भी आपे में नहीं रह जाते। **आपा मिटना**=अहंकार का नाश होना। घमंड का जाता रहना। उ०—या मन फटक पछोरि ले, सब आपा मिट जाय। पिंगला होय पिय पिय करै ताको काल न खाय।—कबीर (शब्द०)। **आपा मेटना**=घमंड छोड़ना। अहंकार त्यागना। उ०—गुरु गोबिंद दोउ एक हैं दूजा सब आकार। आपा मेटै हरि भजै तब पावै करतार।—कबीर (शब्द०)। **आपा सँभालना**=(१) चैतन्य होना। जागना। होशियार होना। चेतना। जैसे,—अब आपा सँभालो, घर का सब बोझ तुम्हारे ऊपर है। (२) शरीर सँभालना। देह की सुध रखना। जैसे,—यह पहले अपना आपा तो सँभाले; फिर औरों की सहायता करेगा। (३) अपनी दशा सुधारना। (४) बालिग होना। होश सँभालना। जवान होना। जैसे,—अपना आपा सँभालते ही वह इन सब बेईमान नौकरों को निकाल बाहर करेगा। **आपे से निकलना**=आपे से बाहर होना। क्रोध और हर्ष के आवेश में सुध बुध खोना। जैसे,—उनकी कौन चलावै, वे तो जरा जरा सी बात पर आपे से निकले पड़ते हैं। (स्त्रि०) **आपे से बाहर होना**=(१) वश में न रहना। बेकाबू होना। क्रोध और हर्ष के आवेश में सुध बुध खोना। आवेश के कारण अधीर होना। क्षुब्ध होना। उ०—(क) एक ऐसी वैसी छोकरी के लिये इतना आपे से बाहर होना।—अयोध्या० (शब्द०) (ख) इतने ही पर वह आपे से बाहर हो गया और नौकर को मारने दौड़ा। (२) घबराना। उद्विग्न होना। जैसे,—धीरज धरो, आपे से बाहर होने से काम नहीं चलता।

आपा२—संज्ञा स्त्री० [हिं० आप] बड़ी बहिन (मुसलमानी)।

आपा३—संज्ञा पुं० बड़ा भाई (महाराष्ट्र)।

आपाक—संज्ञा पुं० [सं०] १. आँवा। २. भट्ठी [को०]।

आपात—संज्ञा पुं० [सं०] १. गिराव। पतन। २. किसी घटना का अचानक हो जाना। ३. आरंभ। ४. अंत। ५. पहली झलक। प्रथम दर्शन (को०)। ६. गिराना। अधःपतित करना (को०)। ७. हाथी पकड़ने के लिये उसे गड्ढे में गिराना (को०)। ८. नरक [को०]।

आपाततः—क्रि०वि० [सं०] १. अकस्मात्। अचानक। २. अंत को। आखिरकार। ३. ऊपर ऊपर से। उ०—सहानुभूति और उदारता आदि—प्रापाततः आभासित होते हैं।—शैली, पृ० ११६।

आपातलिका—संज्ञा पुं० [सं०] एक छंद जो वैताली छंद के विषम चरणों में ६ और सम चरणों में ८ मात्राओं के उपरांत एक भगण और दो गुरु रखने से बनता है। उ०—हर हर भज रात दिना रे, जंजालहि तज या जग माहीं। तन, मन, धन सो जपिहौ जो, हरधाम मिलब संशय नाहीं।

आपाद१—अव्य० [सं०] पैर तक [को०]।

यौ०—आपादमस्तक = सिर से पैर तक।

आपाद२—संज्ञा पुं० १. प्राप्ति। २. पुरस्कार। इनाम। ३. पारिश्रमिक [को०]।

आपाधापी—संज्ञा स्त्री० [हिं० आप + धाप] १. अपनी अपनी चिंता। अपने अपने काम का ध्यान। अपनी अपनी धुन। जैसे,—आज सब लोग आपाधापी में हैं; कोई किसी की सुनता ही नहीं।

क्रि० प्र०—करना।—पड़ना।—होना।

२. खींचतान। लागडाँट। जैसे,—उन लोगों में खूब आपाधापी है।

आपान, आपानक—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह गोष्ठी जिसमें शराब पी जाय। शराबियों की गोष्ठी। उ०—रिक्त चषक सा चंद्र लुढ़ककर है गिरा, रजनी के आपानक का अब अंत है।—झरना, पृ० २५। २. शराब पीने का स्थान।

यो०—आपानोत्सव, आपानकोत्सव = शराब पीने का समारोह।

आपापंथी—वि० [हिं० आप + सं० पन्थिन्] मनमाने मार्ग पर चलनेवाला। कुमार्गी। कुपंथी।

आपायत(पु)—वि० [सं० आप्यायित = वर्धित] प्रबल। जोरावर।—(डिं०)।

आपालि—संज्ञा पुं० [सं०] जूँ। किलनी [को०]।

आपिंजर१—वि० [सं० आपिञ्जर] कुछ लाल रंग का [को०]।

आपिंजर२—संज्ञा पुं० स्वर्ण। सोना [को०]।

आपी(पु)—संज्ञा पुं० [सं० आप्य] वह नक्षत्र जिसका देवता जल है पूर्वाषाढ़ नक्षत्र।

आपीड़१—संज्ञा पुं० [सं० आपीड] १. सिर पर पहनने की चीज; जैसे,—पगड़ी, सिरगह, सिरपेच, बेनी इत्यादि। २. घर के बाहर पाख से निकले हुए बँडेरे का भाग। मँगरोरी। मँगौरी। ३. एक प्रकार का विषम वृत्त जिसके प्रथम चरण में ८, दूसरे में १२, तीसरे में १६ और चौथे में २० अक्षर होते हैं। इसमें समस्त चरणों के समस्त वर्ण लघु होते हैं, केवल अंत के दो वर्ण गुरु होते हैं।

आपीड़२—वि० १. कष्ट देनेवाला। पीड़क। २. दबानेवाला [को०]।

आपीड़न—संज्ञा पुं० [सं० आपीडन] १. दबाना या मलना। २. दुःख देना। कष्ट देना [को०]।

आपीत१—संज्ञा पुं० [सं०] सोनामाखी।

आपीत२—वि० [सं०] सोनामाखी के रंग का। कुछ पीला।

आपीन१—वि० [सं०] १ मोटा। २. मजबूत। बलवान् [को०]।

आपीन२—संज्ञा पुं० १. थन या छीमी। २. कुआँ। कूप [को०]।

आपु(पु)†—सर्व० [हिं०] दे० 'आप'। उ०—आपु गए अरु तिन्हहूँ घालहिं जे कहुँ सन्मारग प्रतिपालहिं।—मानस, ७।१००।

आपुन१—सर्व० [हिं०] दे० 'अपना'।

आपुन२—सर्व० [सं० आत्मन्, प्रा० अप्पण, हिं० आप] खुद। स्वयं। उ०—आपुन चढ़े कदम पर धाई। बदन सकोरि भौंह मोरत हैं, हाँक देत करि मंद दुहाई।—सूर०, १०।१४१८।

आपुनो(पु)†—सर्व० [हिं०] दे० 'अपना'।

आपुस(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आपस'। उ०—देखि हमैं सब आपुस में जो कछू मन भावै सोई कहती हैं।—इतिहास, पृ० २६३।

आपूपिक—वि० [सं०] १. बढ़िया पुआ बनानेवाला। २. पुआ खाने में अभ्यस्त। पुआ खाने का शौकीन। ३. पुआ बेचनेवाला।

आपूप्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. आटा। २. बेसन। ३. मैदा। ४. सत्तू [को०]।

आपूर—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० आपूरित, आपूर्ण] १. बाढ़। बाढ़ का वेग। बहाव। २. जो भरा हो [को०]।

आपूरण—संज्ञा पुं० [सं०] पूर्ण होना। पूरी तरह भर जाना [को०]।

आपूरना(पु)—क्रि० अ० [सं० आपूरण] भरना।

आपूरित, आपूर्ण—वि० [सं०] पूरी तरह भरा हुआ [को०]।

आपूर्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. भरना। भरण। २. संतुष्टि। पूर्ति [को०]।

आपूष—संज्ञा पुं० [सं०] १. राँगा। २ सीसा।

आपृच्छा—संज्ञा स्त्री० [सं०] जिज्ञासा। औत्सुक्य। २. वार्तालाप। बातचीत [को०]।

आपेक्षिक—वि० [सं०] १. सापेक्ष। अपेक्षा रखनेवाला। २. अवलंबन पर रहनेवाला। निर्भर रहनेवाला।

आपोक्लिम—संज्ञा पुं० [सं०] [यू० एपोक्लिमा] जन्मकुंडली का तीसरा छठा, नवाँ और बारहवाँ स्थान।

आपोजीशन—संज्ञा पुं० [अं० अॅपोजीशन] पार्लमेंट (संसद) या व्यवस्थापिका सभाओं (विधानपरिषद्) के सदस्यों का वह समूह या दल जो मंत्रिमंडल या शासन का विरोधी हो। जैसे,—पार्लमेंट की कामंस सभा में आपोजीशन के लीडर ने होम मेंबर पर वोट आफ सेंसर या निंदात्मक प्रस्ताव उपस्थित किया।

आप्त१—वि० [सं०] १. प्राप्त। प्रामाण्य रूप में लब्ध। उ०—इसका आधार 'प्रत्यक्ष' अनुभव नहीं रह गया, 'आप्त' शब्द हुआ।—रस०, पृ० १२६।

विशेष—इसका प्रयोग इस अर्थ में प्रायः समस्त पदों में मिलता है; जैसे,—आप्तकाम। आप्तगर्भा। आप्तकाल।

२. कुशल। दक्ष। ३. विषय को ठीक तौर से जाननेवाला। साक्षात्कृतधर्मा।

आप्त²—संज्ञा पुं० [सं०] १. ऋषि। २. यथार्थ का वक्ता। प्रामाणिक कथन का कहनेवाला। ३. योगशास्त्र के अनुसार शब्दप्रमाण।

विशेष—पतंजलि के अनुसार आप्त वह है जो वस्तुतत्व का समग्रता के साथ जानकार या द्रष्टा या ज्ञाता हो तथा रागादि के वश में पड़कर भी कभी अन्यथा न कहे।

यौ०—**आप्तप्रमाण। आप्तवाक्य। आप्तवचन। आप्तागम। आप्तोक्ति।**

३. भाग का लब्ध।

आप्तकाम—वि० [सं०] जिसकी सब कामनाएँ पूरी हो गई हों। पूर्णकाम।

आप्तकारी¹—वि० [सं० **आप्तकारिन्**] उचित या गुप्त रूप से कार्य करनेवाला [को०]।

आप्तकारी²—संज्ञा पुं० १. विश्वस्त अनुचर। २ गुप्तचर [को०]।

आप्तगर्भा—संज्ञा स्त्री० [सं०] गर्भवती स्त्री० [को०]।

आप्तवर्ग—संज्ञा पुं० [सं०] स्वजन समूह [को०]।

आप्तवाक्य—संज्ञा पुं०[सं०] दे०'आप्तोक्ति'। उ०—तब तो तुम आप्त वाक्य अवश्य मानते होंगे।—स्कंद०, पृ० ४०।

आप्ता—संज्ञा स्त्री० [सं०] जटा [को०]।

आप्तागम—संज्ञा पुं० [सं०] १. विश्वसनीय बात जो परंपरा से चली आती हो। २. वेद, शास्त्र, स्मृतियाँ आदि [को०]।

आप्ताधीन—वि०[सं०] विश्वस्त जनों पर निर्भर। विश्वस्त व्यक्ति के अधीन रहनेवाला [को०]।

आप्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. प्राप्ति। लाभ। २. पूर्णता [को०]। ३. पहुँचना [को०]। ४. संयोग। संबंध [को०]। ५. भविष्यत्काल [को०]।

आप्तोक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह उक्ति जिसे सिद्धांत रूप में ग्रहण किया जाय। परंपरा से प्रामाण्य रूप में मानी जानेवाली बात [को०]।

आप्य¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. पूर्वाषाढ़ नक्षत्र। २. जलोत्पन्न फेन आदि [को०]।

आप्य²—वि० १. प्राप्तियोग्य। प्राप्य। २. जल से संबंधित [को०]।

आप्यायन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० **आप्यायित**] १. वृद्धि। वर्धन। २. तृप्ति। तर्पण। ३. एक अवस्था से दूसरी अवस्था को प्राप्त होना। एक रूप से दूसरे रूप में जाना; जैसे—दूध में खट्टा पदार्थ पड़ने से दही जमना। ४. मृत धातु को शहद, सुहागे, घी आदि के संयोग से जगाना या जीवित करना।

क्रि० प्र०—**करना।—होना।**

आप्यायित—वि०[सं०] १. तृप्त। संतुष्ट। २.आर्द्र। तर। ३. परिवर्धित। बढ़ा हुआ। ४. अवस्थांतरप्राप्त। दूसरे रूप में परिवर्तित।

आप्रच्छन—संज्ञा पुं० [सं०] १. विदा करना या स्वागत करना। २. मिलने के समय का कुशलप्रश्न [को०]।

आप्रच्छन्न—वि० [सं०] रहस्य। गुप्त। छिपा हुआ [को०]।

आप्रपद—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० **आप्रपदीन**] पैरों तक पहुँचनेवाला वस्त्र [को०]।

आप्लव—संज्ञा पुं० [सं०] १.स्नान। २. पानी से तर करना या सींचना [को०]।

आप्लवव्रती—संज्ञा पुं० [सं० **आप्लवव्रतिन्**] ब्रह्मचर्य आश्रम समाप्त कर गृहस्थाश्रम में प्रवेश करनेवाला मनुष्य। स्नातक[को०]।

आप्लाव—संज्ञा पुं० [सं०] १. पानी का बढ़ना। बाढ़। २. नहाना स्नान [को०]।

आप्लावन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० **आप्लावित**] डुबाना। बोरना।

आप्लावित—वि० [सं०] १. डुबाया हुआ। बोरा हुआ। शराबोर। २. स्नात। भिगोया हुआ।

आप्लुत¹—वि० [सं०] १. स्नात। भींगा हुआ। २. लथपथ। तरबतर। शराबोर।

आप्लुत²—संज्ञा पुं० [सं०] स्नातक। गृहस्थ।

आप्व—संज्ञा पुं० [सं० **आप्वन्**] वायु। हवा [को०]।

आप्वा—संज्ञा स्त्री० [सं०] गरदन [को०]।

आफत—संज्ञा स्त्री० [अ० **आफ़त**] १. आपत्ति। विपत्ति। बला। २. कष्ट। दुःख। मुसीबत। ३. दुःख का समय। मुसीबत का दिन।

क्रि० प्र०—**आना।—उतरना।—उठाना।—टूटना।—डालना।—तोड़ना।—पड़ना।—मचाना।—लाना।—सहना।**

मुहा०—**आफत उठाना**=(१) दुःख सहना। विपत्ति भोगना। जैसे,—(क) धर्म के पीछे प्रताप को बड़ी बड़ी आफत उठानी पड़ी। (ख) तुम्हारे ही लिये हमने इतनी आफत उठाई। (२) ऊधम मचाना। हलचल मचाना। जैसे,—डाकुओं ने चारों ओर आफत उठा रखी है। **आफत का टुकड़ा** = दे० 'आफत का परकाला'। **आफत का परकाला** = (१) किसी काम को बड़ी तेजी से करनेवाला। पटु। कुशल। (२) अटूट प्रयत्न करनेवाला। घोर उद्योगी। आकाश पातल एक करनेवाला। (३) हलचल मचानेवाला। ऊधम मचानेवाला। उपद्रवी। **आफत का मारा** = (१) विपत्ति से सताया हुआ। दुर्दैव से प्रेरित। जैसे,—आफत का मारा एक पथिक उस झाड़ी के पास आ पहुँचा जिसमें शेर बैठा था। (२) विपद्ग्रस्त। संकट में पड़ा हुआ। मुसीबतजदा। जैसे,—आफत के मारे हम आपके दरवाजे आ पहुँचे हैं, कुछ दया हो जाय। **आफत ढाना**=(१) आफत उठाना। ऊधम मचाना। उपद्रव मचाना। हलचल मचाना। जैसे,—थोड़ी सी बात के लिये तुम आफत ढा देते हो। (२) तकलीफ देना। दुःख पहुँचाना। जैसे,—वह जहाँ जाता है, आफत ढाता है (३) गजब करना। अनहोनी बात कहना। ऐसी बात कहना जो कभी हुई न हो। जैसे,—क्या आफत ढाते हो? नित्य चक्कर लगाने की कौन कहे मैं तो उधर महीनों से नहीं गया हूँ। **आफत तोड़ना**=आफत मचाना। ऊधम मचाना। उपद्रव मचाना। जैसे,—मूर्ख लड़के दिन रात घर पर आफत तोड़े रहते हैं। **आफत मचाना**=(१) हलचल करना। ऊधम मचाना। दंगा करना। जैसे,—बदमाशों ने सड़क पर आफत मचा रखी है। (२) शोर मचाना। गुल गपाड़ा करना। जैसे,—तुम्हारा बच्चा दिन रात आफत मचाए रहता है। (३) जल्दी मचाना। उतावली करना। जैसे,—क्यों आफत मचाए हो, थोड़ी देर में चलते हैं। **आफत मोल लेना**= दे० 'आफत सिर पर लेना'। **आफत सिर पर लाना या लेना**=(१) झगड़ा मोल लेना। झंझट में पड़ना। जैसे,—

तू इसे व्यर्थ छेड़कर अपने सिर आफत लाया। (२) संकट में पड़ना। दुःख को बुलाना। अपने को झंझट में डालना। जैसे—तुम तो रोज रोज अपने सिर पर एक न इक आफत लाया करते हो।

आफताब—संज्ञा पुं० [फा० **आफ़ताब**] [वि० **आफ़ताबी**] १. सूर्य। उ०—जाहि कै प्रताप सों मलीन आफताब होत, ताप तजि दुजन करत बहु ख्याल को।—भूषण ग्रं०, पृ० १०८। २. धूप। घाम [को०]।

आफताबा—संज्ञा पुं० [फा० **आफ़ताबह्**] एक प्रकार का गड़ुआ जिसके पीछे दस्ती और मुँह पर सरपोश या ढक्कन लगा रहता है। यह हाथ मुँह धुलाने के काम आता है।

आफताबी१—संज्ञा स्त्री० [फा० **आफ़ताबी**] पान के आकार का या गोल जरदोजी का बना पंखा जिसपर सूर्य का चिह्न बना रहता है। यह लकड़ी के डंडे के सिरे पर लगाया जाता है और राजाओं के साथ या बरात और अन्य यात्राओं में झंडे के साथ चलता है। २. एक प्रकार की आतशबाजी जिसके छूटने से दिन की तरह प्रकाश हो जाता है। ३. किसी दरवाजे या खिड़की के सामने का छोटा सायबान या ओसारी जो धूप के बचाव के लिये लगाई जाय।

आफताबी२—वि० १. गोल। २. सूर्यसंबंधी।

यौ०—**आफताबी गुलकंद** = वह गुलकंद जो धूप में तैयार की जाय।

आफर—संज्ञा पुं० [सं० **आफ़र**] प्रदान करना। प्रस्तुत करना। सामने रखना। उ०—पर जब कभी कोई आफर करता तो दो एक दम लगा लेता था।—संन्यासी, पृ० ५१।

आफरी—अव्य० [फा० **आफ़रीं**] शाबाश! वाह वाह! उ०—कीन्हे तैं आफताब खलक आफरीं। कलमा बिन पढ़न कहैं कुफर काफरीं।—घट०, पृ० २०६।

आफरीनिश—संज्ञा स्त्री० [फा० **आफ़रीनिश**] उत्पत्ति। सृष्टि [को०]।

आफियत—संज्ञा स्त्री० [अ० **आफ़ियत**] कुशल। क्षेम।

आफिस—संज्ञा पुं० [अं० **ऑफ़िस**] दफ्तर। कार्यालय।

आफू— संज्ञा स्त्री० [हिं० **अफीम**; तुल० मरा० **अफू**] अफीम। उ०—मीठी कोऊ वस्तु नहिं मीठी जाकी चाह। अमली मिसरी छाँड़ि कै आफू खातु सराहि।—स० सप्तक, पृ० ३२२।

आफूक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'आफू' [को०]।

आबंध—संज्ञा पुं० [सं० **आबन्ध**] १. बंधन। बाँधना। २. गाँठ। ३. प्रेमबंधन। प्रेम। ४. हल के जुए का बंधन (नाधा)। ५. अलंकार की सजावट। अलंकरण [को०]।

आबंधन—संज्ञा पुं० [सं० **आबन्धन**] दे० 'आबंध' [को०]।

आब१—संज्ञा स्त्री० [फा०] १. चमक। तड़क भड़क। आभा। छटा। द्युति। कांति। झलक। पानी। उ०—(क) साधू ऐसा चाहिए ज्यों मोती की आब।—कबीर (शब्द०)। (ख) चहचही चहल चहूँधाँ चारु चंदन की चंद्रक चुनीन चौक चौकन चढ़ी है आब।—पद्माकर ग्रं०, पृ० १२५। २. प्रतिष्ठा। महिमा। गुण। उत्कर्ष। उ०—गँवई गाहक कौन केवरा अरु गुलाब को। हिना पानड़ो बेल कौन बूझिहै आब को।—व्यास (शब्द०)। ३. शोभा। रौनक। छवि। उ०—वे न इहाँ नागर बढ़ी जिन आदर तो आब। फूल्यौ अनफूल्यौ भयौ गवँई गाँव गुलाब।—बिहारी र०, दो० ४३८।

क्रि० प्र०—**उतरना**। —**जाना**। —**बिगड़ना**। —**बढ़ना**। —**चढ़ाना**।—**देना**।

आब२—संज्ञा पुं० १. पानी। जल। २. मदिरा [को०]। ३. किसी वस्तु का अर्क [को०]। ४. प्रस्वेद। पसीना [को०]। ५. अश्रु। आँसू [को०]। ६. मवाद। पीप [को०]। ७. फूल का रस [को०]।

मुहा०—**आब आब करना** = पानी माँगना। उ०—काबुल गए मुगल हो आए, बोलें बोल पठानी। आब आब करि पूता मर गए धरा सिरहाने पानी।—(शब्द०)।

यौ०—**आब व हवा** = जलवायु। सरदी गरमी के विचार से देश की प्राकृतिक स्थिति।

आबकार—संज्ञा पुं० [फा०] मद्य बनाने या बेचनेवाला। कलवार। कलाल।

आबकारी—संज्ञा स्त्री० [फा०] १. वह स्थान जहाँ शराब चुआई जाती हो। हौली। शराबखाना। कलवरिया। भट्टी। २. मादक वस्तुओं से संबंध रखनेवाला सरकारी मुहकमा।

यौ०—**आबकारी कानून**। **आबकारी मुहकमा** = एक सरकारी विभाग विशेष जिसे अंग्रेजी में 'एक्साइज' विभाग कहते हैं।

आबखुर्द—संज्ञा पुं० [फा० **आबखुर्द**] १. भाग्य। किस्मत। २. भाग। हिस्सा। ३. पेय जल का तालाब [को०]।

आबखोरा—संज्ञा पुं० [फा० **आबखोरह्**] १. पानी पीने का बरतन। गिलास। २. प्याला। कटोरा।

आबगीना—संज्ञा पुं० [फा० **आबगीनह**] १. शीशे का गिलास। २. आईना। ३. हीरा।

आबगीर—संज्ञा पुं० [फा०] जुलाहों की कूँची।। कूँचा।

आबजोश—संज्ञा पुं० [फा०] गरम पानी के साथ उबाला हुआ मुनक्का। लाल मुनक्का। दे० 'अंगूर'।

आबड़—संज्ञा स्त्री० [देश०] आवरण। घेरा।

आबताब—संज्ञा स्त्री० [फा०] तड़क भड़क। चमक दमक। द्युति। कांति। शोभा।

आबदस्त—संज्ञा पुं० [फा०] १. मलत्याग के पीछे गुदेंद्रिय को धोना। सौंचना। पानी छूना। २. मलत्याग के अनंतर मल धोने का जल। हाथपानी।

क्रि० प्र०—**लेना**।

आबदाना—संज्ञा पुं० [फा०] १. अन्नपानी। दानापानी। अन्नजल। २. जीविका। जैसे,—आबदाना जहाँ जहाँ ले जायगा, वहाँ वहाँ जायँगे।

मुहा०—**आबदाना उठाना** = जीविका न रहना। रहायश न होना। संयोग टलना। जैसे,—जब यहाँ से हमारा आबदाना उठ जायगा, तब अपना रास्ता लेंगे।

आबदार१—वि० [फा०] चमकीला। कांतिमान्। द्युतिमान्। भड़कीला।

आबदार२—संज्ञा पुं० वह आदमी जो तोप में सुंबा और पानी का पुचारा देता है। उ०—केतेक जालदार आबदार लाबदार हौ।—सूदन (शब्द०)।

विशेष--पुरानी चाल की तोपों में जब एक बार गोला छूट जाता था, तब नल को ठंढा करने के लिये एक छड़ में लपेटे हुए चीथड़ों को भिगोकर उसपर पुचारा दिया जाता था, जिसमें नल के गरम होने के कारण वह गोला ग्राप ही ग्राप न छूट जाय।

ग्राबदारी--संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] चमक। जिला। ग्रोप। कांति। उ०--ग्राबदारी से है हर मिसरए तर ग्राबेहयात।--प्रेमघन०, भा० २, पृ० ६३।

ग्राबदीदा--वि० [फ़ा० **ग्राबदीदह्**] अश्रुयुक्त। रोता हुग्रा [को०]।

ग्राबदोज--संज्ञा पुं० [फ़ा० **ग्राबदोज**] पानी के भीतर चलनेवाली नाव या जहाज [को०]। पनडुब्बी।

ग्राबद्ध[1]--वि० [सं०] १. बँधा हुग्रा। २. कैद।

ग्राबद्ध[2]--संज्ञा पुं० १. ग्रलंकार। २. द्यूत। जुग्रा। ३. दृढ़ या कठोर बंधन [को०]।

ग्राबनजूल--संज्ञा पुं० [फ़ा० **ग्राब + ग्र० नुजूल**] फोते में पानी उतरने का रोग। ग्रंडवृद्धि।

ग्राबनूस--संज्ञा पुं० [फ़ा०] [वि० **ग्राबनूसी**] एक पेड़ जिसे तेंदू कहते हैं ग्रौर जो जंगलों में होता है।

विशेष--यह पेड़ जब बहुत पुराना हो जाता है, तब इसकी लकड़ी का हीर बहुत काला हो जाता है। यही काली लकड़ी ग्राबनूस के नाम से बिकती है ग्रौर बहुत वजनी होती है। ग्राबनूस की बहुत सी नुमाइशी चीजें बनती हैं,--जैसे--छड़ी, कलमदान, रूल, छोटे बक्स इत्यादि। नगीने में ग्राबनूस का काम ग्रच्छा होता है।

यौ०--**ग्राबनूस का कुंदा** = ग्रत्यंत काले रंग का मनुष्य।

ग्राबनूसी--वि० [फ़ा०] ग्राबनूस सा काला। ग्रत्यंत श्याम। गहरा काला। २. ग्राबनूस का। ग्राबनूस का बना हुग्रा।

ग्राबपाशी--संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] सिंचाई।

ग्राबरवाँ--संज्ञा पुं० [फ़ा०] १. एक प्रकार का बारीक कपड़ा। बहुत महीन मलमल। २. बहता हुग्रा पानी।

ग्राबरू--संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] इज्जत। प्रतिष्ठा। बड़प्पन। मान।

क्रि० प्र०--**उतरना**। --**उतारना**। --**खोना**। --**गँवाना**। --**जाना**। --**देना**। --**पर पानी फिरना**। --**बिगड़ना**। --**में बट्टा लगना**। --**रखना**। --**रहना**। --**लेना**। --**होना**। दे० 'इज्जत'।

ग्राबरूह(पु)--संज्ञा स्त्री० [फ़ा० **ग्राबरू + हिं० ह** (प्रत्य०)] दे० 'ग्राबरू'। उ०--हमरे सबद बिबेक लगहिं चूतर में सोंटा। ग्राबरूह लै भागु, पकरि के, फटिहैं झोंटा।--पलटू०, भा० ३, पृ० ८९।

ग्राबला--संज्ञा पुं० [फ़ा०] छाला। फफोला। फुटका।

क्रि० प्र०--**पड़ना**।

ग्राबलोच(पु)--संज्ञा पुं० [फ़ा० **ग्राब + हिं० लोच**] सुंदरता का रस। उ०--हम गुलाब में ग्राबलोच घोल्या है।--दक्खिनी०, पृ० ४०५।

ग्राबल्य--संज्ञा पुं० [सं०] ग्रबलता। निर्बलता। बलहीनता [को०]।

ग्राबशिनास--संज्ञा पुं० [फ़ा० **ग्राबशनास**] जहाज का वह कार्यकर्ता जिसका काम गहराई जाँचकर राह बतलाना होता है।

ग्राबहवा--संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] सरदी गरमी ग्रादि के विचार से किसी देश की प्राकृतिक स्थिति। जलवायु।

ग्राबाद--वि० [फ़ा०] १. बसा हुग्रा। २. प्रसन्न। कुशलपूर्वक। जैसे,--ग्राबाद रहो बाबा ग्राबाद रहो। ३. उपजाऊ। जोतने बोने योग्य (जमीन)। जैसे,--ऊसर जमीन को ग्राबाद करने में बहुत खर्च पड़ता है।

क्रि० प्र०--**करना**।--**होना**।--**रहना**।

यौ०--**ग्राबादकार**।

ग्राबादकार--संज्ञा पुं० [फ़ा०] १. एक प्रकार के काश्तकार जो जंगल काटकर ग्राबाद हुए हैं। २. एक प्रकार के जमींदार जिनकी मालगुजारी उन्हीं से वसूल की जाती है, नंबरदार के द्वारा नहीं।

ग्राबादानी--संज्ञा स्त्री० दे० 'ग्राबादानी'।

ग्राबादी--संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १. बस्ती। २. जनसंख्या। मर्दुमशुमारी। ३. वह भूमि जिसपर खेती होती हो।

ग्राबाधा--संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पीड़ा। मानसिक पीड़ा। चिंता [को०]।

ग्राबाल[1]--ग्रव्य० [सं०] बालकों से लेकर। लड़कों से लेकर। जैसे, ग्राबालवृद्ध।

ग्राबाल(पु)[2]--संज्ञा स्त्री० युवती। नायिका। उ०--लगन दसा ग्राबाल तन उजियारी किमि होति। बिना नेह नहिं बढ़त है तिय-तन दीपति जोति।--स० सप्तक, पृ० ३४९।

ग्राबिल--वि० [सं०] १. पंकिल। गंदा। २. तोड़नेवाला। भंग करनेवाला। ३. साफ करनेवाला [को०]।

ग्राबी[1]--वि० [फ़ा०] १. पानीसंबंधी। पानी का। २. पानी में रहनेवाला। ३. रंग में हलका। फीका। उ०--दृग बने गुलाबी मद भरे लखि ग्ररिमुख ग्राबी करत।--गोपाल (शब्द०)। ४. पानी के रंग का। हलका नीला या ग्रासमानी। ५. जलतटनिवासी।

ग्राबी[2]--संज्ञा पुं० १. खारी नमक जो सूर्य के ताप से पानी उड़ाकर बनता है। लवण। साँभर नमक। २. जल के किनारे रहनेवाली एक चिड़िया जिसकी चोंच ग्रौर पैर हरे होते हैं ग्रौर ऊपर के पर भूरे ग्रौर नीचे के सफेद होते हैं। ३. एक प्रकार का ग्रंगूर।

ग्राबी[3]--संज्ञा स्त्री० वह भूमि जिसमें किसी प्रकार की ग्राबपाशी होती हो। (खाकी के विरुद्ध)।

यौ०--**ग्राबी रोटी** = रोटी जिसका ग्राटा केवल पानी से सना हो। ग्राबी शोरा।

मुहा०--**ग्राबी करना** = दूध, पानी ग्रौर लाजवर्द से बने हुए रंग से किसी कपड़े के थान को तर करके उसपर चमक लाना।

ग्राबू--संज्ञा पुं० [सं० ग्रर्बुद] ग्ररावली पर्वत पर का एक स्थान।

ग्राबेरवाँ--संज्ञा पुं० [फ़ा०] बहता हुग्रा पानी या ग्राँसू। उ०--देख तब सरवर मजलूम बेकस। बहा ग्रँखियाँ सेती ग्राबेरवाँ को ग्रसबस।--दक्खिनी०, पृ० १९१।

आवेस(पु)—संज्ञा पुं० [सं० **आवेश**] दे० 'आवेश'। उ०—आसा के आवेस अगोचर अब कौ लौं भटकैहौ।—घनानंद, पृ० ५२२।

आवेहयात—संज्ञा पुं० [**फा० आब + अ० हयात**] जीवनजल। अमृत। सुधा। उ०—आवेहयात जाके किसू ने पिया तो क्या। मानिंद खिजर जग में अकेला जिया तो क्या।—कविता कौ० भा० ४, पृ० ४१।

आब्द वि० [सं०] बादल से उत्पन्न या संबद्ध [को०]।

आब्दिक—वि० [सं०] वार्षिक। सालाना। सांवत्सरिक।

आब्रत(पु)—संज्ञा पुं० [सं० **आवर्त**] दे० 'आवर्त'। उ०—बिसरै सुधि उनमद गति फिरै। लीलानिधि आब्रत मन घिरै।—घनानंद, पृ० २६१।

आभ१(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० **आभा**] शोभा। कांति। आभा। द्युति।

आभ२(पु)—संज्ञा पुं० [फा० **आब** वा सं० **अम्भ** प्र० **अम्भ**] पानी। जल। उ०—जिन्ह हरि जैसा जाणियाँ तिनकूँ तैसा लाभ। ओसौं प्यास न भाजई जब लग धँसै न आभ।—कबीर ग्रं०, पृ० ६।

आभ३—संज्ञा पुं० [सं० **अभ्र**] आकाश। (डिं०)।

आभय—संज्ञा पुं० [सं०] १. काला अगर। २. कुट नाम की ओषधि।

आभरण—संज्ञा पुं० [सं०] गहना। भूषण। आभूषण। जेवर। अलंकार।

विशेष—इनकी गणना १२ है—(१) नूपुर। (२) किंकिणी। (३) चूड़ी। (४) अँगूठी। (५) कंकण। (६) बिजायठ। (७) हार। (८) कंठश्री। (९) बेसर। (१०) बिरिया। (११) टीका। (१२) सीस फूल। आभरण के चार भेद हैं—(१) आवेध्य अर्थात् जो छिद्र द्वारा पहने जायँ; जैसे,—कर्णफूल, बाली इत्यदि। (२) बंधनीय अर्थात् जो बाँधकर पहनी जायँ; जैसे—बाजूबंद, पहुँची, सीसफूल, पुष्पादि। (३) क्षेप्य अर्थात् जिसमें अंग डालकर पहनें; जैसे—कड़ा, छड़ा, चूड़ी, मुँदरी इत्यादि। (४) आरोप्य अर्थात् जो किसी अंग में लटकाकर पहने जायँ; जैसे—हार, कंटश्री, चंपाकली, सिकरी आदि। २. पोषण। परवरिश।

आभरन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० **आभरण**] दे० 'आभरण'। उ०—जटिल जवाहिर आभरन छबि के उठत तरंग।—स० सप्तक, पृ० ३७३।

आभरित—वि० [सं०] १. सजाया हुआ आभूषित। अलंकृत। २. पोषित।

आभा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. चमक। दमक। कांति। उ०—थी अंग सुरभि के संग तरंगित आभा।—साकेत, पृ० २०४। २. दीप्ति। द्युति। प्रभा। उ०—उस धुँधले गृह में आभा से तामस को छलती थी। कामायनी, पृ० ११८। ३. झलक। प्रतिबिंब। छाया। ४. बबूल का पेड़।

आभाणक—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार के नास्तिक। २. कहावत। मसल। अहाना।

आभात—वि० [सं०] १. चमकता हुआ। २. कांतिपूर्ण। ३. दृश्य [को०]।

आभार—संज्ञा पुं० [सं०] १. बोझ। २. गृहस्थी का बोझ। गृहप्रबंध की देखभाल की जिम्मेदारी। उ०—चलत देत आभारु सुनि, उहीं परोसिहिं नाहु। लसी तमासे की दृगनु हाँसी आँसुनु माँहु।—बिहारी र०, दो० ५५१। ३. एक वर्णवृत्त जो आठ तगण का होता है; जैसे,—बोल्यौ तबै शिष्य आभार तेरो गुरु जी न भूलौं जपौं आठहूँ जाम। हे राम हे राम हे राम हे राम हे राम हे राम हे राम हे राम हे राम। (शब्द०)। ४. एहसान। उपकार। निहोर।

आभारी—वि० [सं० **आभारिन्**] एहसान माननेवाला। उपकार माननेवाला। उपकृत। उ०—कितना आभारी हूँ, इतना संवेदनमय हृदय हुआ।—कामायिनी, पृ० १२६।

आभाष—संज्ञा पुं० [सं०] १. संबोधित करना। २. परिचय। भूमिका। ३. भाषण। कथन [को०]।

आभाषण—संज्ञा पुं० [सं०] संभाषण। बातचीत करना। २. संबोधन [को०]।

आभास—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रतिबिंब। छाया। झलक। जैसे,—हिंदू समाज में वैदिक धर्म का आभास मात्र रह गया है। २. पता। संकेत। जैसे,—उनकी बातों से कुछ आभास मिलेगा कि वे किसको चाहते हैं।

क्रि० प्र० देना।—पाना।—मिलना।

३. मिथ्या ज्ञान। जैसे,—सर्प में रस्सी का आभास।

यौ०—**प्रमाणाभाष। विरोधाभाष। रसाभास। हेत्वाभास।**

आभासन—संज्ञा पुं० [सं०] स्पष्ट करना। आभासित करना। प्रकाशित करना [को०]।

आभास्वर—वि० [सं०] पूर्णरूप से भासित होनेवाला। चमकीला। तेजोमय। उ०—हम आभास्वर देवताओं की तरह प्रीति का भोजन करते हैं। भस्मावृत० पृ० १०५।

आभिचारिक१—वि० [सं०] १. अभिचार संबंधी। टोना या जादू संबंधी [को०]।

आभिचारिक२—संज्ञा पुं० अभिचार संबंधी मंत्र [को०]।

आभिजन—संज्ञा पुं० [सं०] कुलीनता [को०]।

आभिजात्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. उच्च कुल में पैदा होने का भाव। कुलीनता। २. श्रेणी। ३. विद्वत्ता। ४. सौंदर्य [को०]।

आभिजित—वि० [सं०] अभिजित मुहूर्त या नक्षत्र में पैदा होनेवाला [को०]।

आभिधा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. ध्वनि। शब्द। २. नाम। ३. व्याख्या। उल्लेख [को०]।

आभिधानिक१—वि० [सं०] कोश संबंधी या कोश में प्रयुक्त होनेवाला [को०]।

आभिधानिक२—संज्ञा पुं० कोशकार [को०]।

आभिप्रायिक—वि० [सं०] अभिप्राय संबंधी। ऐच्छिक [को०]।

आभिमुख्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. आमने सामने होने की अवस्था या भाव। २. अनुकूल होना [को०]।

आभिरामिक—वि० [सं०] सुंदर। अच्छा [को०]।

आभिरूपक, आभिरूप्य—संज्ञा पुं० [सं०] सुंदरता। सौंदर्य [को०]।

आभिषेचनिक—वि० [सं०] अभिषेचन संबंधी। राजतिलक संबंधी [को०]।

आभिहारिक१—वि० [सं०] १. उपहार में दिया हुआ। २. छल या बलपूर्वक लिया हुआ [को०]।

आभिहारिक२—संज्ञा पुं० १. उपहार। भेंट। २. कमरा [को०]।

आभीर—संज्ञा पुं० [सं०] [**स्त्री० आभीरी**] १. अहीर । ग्वाल । गोप । उ०—आभीर जमन किरात खस स्वपचादि अति अघ रूप जे ।—मानस, ७।१३० ।

विशेष—ऐतिहासिकों के अनुसार भारत की एक वीर और प्रसिद्ध जाति जो कुछ लोगों के मत से बाहर से आई थी । इस जातिवालों का विशेष ऐतिहासिक महत्व माना जाता है । कहा जाता है कि उनकी संस्कृति का प्रभाव भी भारतीय संस्कृति पर पड़ा । वे आगे चलकर आर्यों में घुलमिल गए । इनके नाम पर आभीरी नाम की एक अपभ्रंश (प्राकृत) भाषा भी थी ।

यौ०—**आभीरपल्ली** = अहीरों का गाँव । ग्वालों की बस्ती ।

२. एक देश का नाम । ३. एक छंद जिसमें ११ मात्राएँ होती हैं और अंत में जगण होता है । जैसे,—यहि बिधि श्री रघुनाथ । गहे भरत के हाथ । पूजत लोग अपार । गए राज दरबार । ४. एक राग जो भैरव राग का पुत्र कहा जाता है।

आभीरक[1]—वि० [सं०] आभीर या अहीर संबंधी [को०]।

आभीरक[2]—संज्ञा पुं० १. आभीर या अहीर जाति । २. आभीर या अहीर जीति का कोई सदस्य [को०]।

आभीरनट—संज्ञा पुं०[सं०]एक संकर राग जो नट और आभीर से मिलकर बनता है ।

आभीरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. एक संकर रागिनी जो देशकार, कल्याण, श्याम और गुर्जरी को मिलाकर बनाई गई है । अबीरी । २. भारतवर्ष की एकप्राचीन भाषा जो ईसवी दूसरी या तीसरी शताब्दी में पंजाब में बोली जाती थी । आगे चलकर ईसवी छठी शताब्दी में यह भाषा अपभ्रंश के नाम से प्रसिद्ध हुई थी । उस समय इस भाषा में साहित्य का भी निर्माण होने लगा था ।

आभील—संज्ञा पुं० [सं०] दुःख । कष्ट ।

आभूत—वि० [सं०] उत्पन्न । अस्तित्ववाला [को०]।

आभूषण—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० **आभूषित**] गहना । जेवर । आभरण। अलंकार । उ०—उधर धातु गलते, बनते हैं आभूषण औ अस्त्र नए ।—कामायनी, पृ० १८१ ।

आभूषनⓊ—संज्ञा पुं० [सं० **आभूषण**] दे० 'आभूषण' ।

आभृत—वि० [संज्ञा] १. अच्छी तरह से भरा हुआ । २. बँधा हुआ । ३. उत्पादित [को०]।

आभेरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक रागिनी [को०]।

आभोग—संज्ञा [सं०] १. रूप की पूर्णता । रूप में कोई कसर न रहना । किसी वस्तु को लक्षित करनेवाली सब बातों की विद्यमानता । जैसे—यहाँ आभोग से बस्ती का पास होना जाना जाता है । २. किसी पद्य के बीच में कवि के नाम का उल्लेख। ३. वरुण का छत्र । ४. सुख आदि का पूरा अनुभव ।

आभोजी—वि० [सं० **आभोजिन्**] खानेवाला [को०]।

आभ्यंतर—वि० [सं० **आभ्यंतर**] भीतरी । अंतर का । उ०—काव्य का आभ्यंतर स्वरूप या आत्मा भाव या रस है ।—रस०, पृ० १०५।

यौ०—**आभ्यंतर तप** = भीतरी तपस्या । यह तपस्या छह प्रकार की होती है—(१) प्रायश्चित्त, (२) वैयावृत्ति, (३) स्वाध्याय, (४) विनय, (५) व्युत्सर्ग और (६) शुभ ध्यान ।

आभ्यंतरआतिथ्य—संज्ञा पुं० [सं० **आभ्यन्तर आतिथ्य**] देश के भीतर आया हुआ विदेशी माल ।

आभ्यंतरकोप—संज्ञा पुं०[सं० **आभ्यन्तरकोप**] मंत्री, पुरोहित, सेनापति युवराज आदि का विद्रोह (कौ०) ।

आभ्यंतरिक—वि० [सं० **आभ्यन्तरिक**] अंतरंग । भीतरी ।

आभ्युदयिक[1]—वि०[सं०]अभ्युदय संबंधी । मंगल या कल्याण संबंधी ।

आभ्युदयिक[2]—संज्ञा पुं०[सं०]एक श्राद्ध जिसे नांदीमुख भी कहते हैं ।

विशेष—इस श्राद्ध में दही, बैर और चावल को मिलाकर पिंड देते हैं और इसमें माता, दादी और परदादी को पहले तीन पिंड देकर तब बाप, दादा, परदादा, मातामह और वृद्ध प्रमातामह आदि को पिंड देते हैं । इनके अतिरिक्त तीनों पक्षों के तीस विश्वेदेवा होते हैं । उन्हें भी पिंड दिया जाता है । यह श्राद्ध पुत्रजन्म, जनेऊ और विवाह आदि शुभ अवसरों पर होता है । इसमें यज्ञकरनेवाले को अपसव्य नहीं होना पड़ता ।

आमंजु—वि० [सं० **आमञ्जु**] अच्छा । मनोरम [को०]।

आमंत्रण—संज्ञा पुं० [सं० **आमन्त्रण**] [**आमंत्रित**] १. संबोधन । बुलाना । पुकारना । आह्वान । २. निमंत्रण । न्योता । बुलावा । उ०—खुले मसृण भुजमूलों से वह आमंत्रण था मिलता । —कामायनी, पृ० १२५ ।

आमंत्रयिता—संज्ञा पुं० [सं० **आमन्त्रयितृ**] वह जो निमंत्रण देता है [को०]।

आमंत्रित—वि०[सं०**आमन्त्रित**]१. बुलाया हुआ । पुकारा हुआ । २. निमंत्रित । न्योता हुआ । उ०—विस्तृत वसुधा की विभुता कल्याणसंघ की जन्मभूमि आमंत्रित करती आई थी ।—लहर, पृ० ३३ ।

क्रि० प्र०—करना । -होना ।

आमंद्र[1]—वि० [सं० **आमन्द्र**] थोड़ा गंभीर स्वरवाला [को०] ।

आमंद्र—संज्ञा पुं० थोड़ा गंभीर स्वर [को०] ।

आम्—अव्य०[सं०] अंगीकार, स्वीकृति और निश्चयसूचक शब्द । हाँ । इसका प्रयोग नाटकों की बोलचाल में अधिक है ।

आम[1]—संज्ञा पुं० [सं० **आम्र**] एक बड़ा पेड़ और उसका फल । रसाल ।

विशेष—यह वृक्ष उत्तर पश्चिम प्रांत को छोड़ और सारे भारत वर्ष में होता है । हिमालय पर भूटान से कुमाऊँ तक इसके जंगली पेड़ मिलते हैं । इसकी पत्तियाँ लंबी लंबी गहरे हरे रंग की होती हैं । फागुन के महीने में इसके पेड़ मंजरियों या मौरों से लद जाते हैं, जिनकी मीठी गंध से दिशाएँ भर जाती हैं । चैत के आरंभ में मौर झड़ने लग जाते हैं और 'सरसई' (सरसों के बराबर फल) बैठने लगते हैं । जब कच्चे फल बैर के बराबर हो जाते हैं, तब वे 'टिकोरे' कहलाते हैं । जब वे पूरे बढ़ जाते हैं और उनमें जाली पड़ने लगती है, तब उन्हें 'अँबियाँ' कहते हैं । फल के भीतर एक बहुत कड़ी गुठली होती है जिसके ऊपर कुछ रेशेदार गूदा चढ़ा रहता है । कच्चे फल का गूदा सफेद और कड़ा होता है और पक्के फल का गीला और पीला । किसी किसी में तो बिलकुल पतला रस निकलता है । अच्छी

जाति के कलमी आमों की गुठली बहुत पतली होती है और उनका गूदा बँधा हुआ, गाढ़ा तथा बिना रेशे का होता है। आम का फल खाने में बहुत मीठा होता है। पक्के आम आषाढ़ से भादों तक बहुतायत से मिलते हैं।

केवल बीज से जो आम पैदा किए जाते हैं उन्हें 'बीजू' कहते हैं। ये उतने अच्छे नहीं होते। इसी से अच्छे आम कलम और पैबंद लगाकर उत्पन्न किए जाते हैं, जो 'कलमी' कहलाते हैं। पैबंद लगाने की यह रीति है कि पहले एक गमले में बीज रखकर पौधा उत्पन्न करते हैं। फिर उस पौधे को किसी अच्छे पेड़ के पास ले जाते हैं और उसकी डाल उस अच्छे पेड़ की डाल से बाँध देते हैं। जब दोनों की डाल बिलकुल एक होकर मिल जाती है, तब गमले के पौधे को अलग कर लेते हैं। इस प्रकिया से गमलेवाले पौधे में उस अच्छे पौधे के गुण आ जाते हैं। दूसरी युक्ति यह है कि अच्छे आम की डाल को काटकर किसी बीजू पौधे के ठूँठे में ले जाकर मिट्टी के साथ बाँध देते हैं। आम के लिये हड्डी की खाद बहुत उपकारी होती है।

आम के बहुत भेद हैं; जैसे, मालदह, बंबइया, दशहरी सफेदा, चौसा, अलफांजो लँगड़ा, सफेदा, कृष्णभोग, रामकेला इत्यादि। भारतवर्ष में दो स्थान आमों के लिये बहुत प्रसिद्ध हैं--मालदह (बंगाल में) और मझगाँव (बंबई में)। मालदह आम देखने में बहुत बड़ा होता है, पर स्वाद में फीका होता है। बंबइया आम मालदह से छोटा होता है, पर खाने में बहुत मीठा होता है। लँगड़ा आम देखने में लंबा लंबा होता है और सबसे मीठा होता है। बनारस का लँगड़ा प्रसिद्ध है। लखनऊ का सफेदा भी मिठास में अपने ढंग का एक है। इसका छिलका सफेदी लिए होता है, इसी से इसे सफेदा कहते हैं। जितने कलमी और अच्छे आम हैं, वे सब छुरी से काटकर खाए जाते हैं।

आम के रस को रोटी की तरह जमाकर अवँसठ या अमावट बनाते हैं। कच्चे आम का पन्ना लू लगने की अच्छी दवा है। कच्चे आमों की चटनी बनती है तथा अचार और मुरब्बा भी पड़ता है। आम की फाँकों को खटाई के लिये सुखाकर रखते हैं जो अमहर के नाम से बिकती है। इसी अमहर के चूर को अमचूर कहते हैं।

आम की लकड़ी के तख्ते, किवाड़, चौखट आदि भी बनते हैं, पर उतने मजबूत नहीं होते। इसकी छाल और पत्तियों से एक प्रकार का पीला रंग निकलता है। चौपायों को आम की पत्ती खिलाकर फिर उनके मूत्र को इकट्ठा करके प्योरी रंग बनाते हैं।

पर्या०—**चूत। रसाल। अतिसौरभ। सहकार। माकंद।**

यौ०--**अमचूर। अमहर।**

मुहा०--**आम के आम, गुठली के दाम**=दोहरा लाभ उठाना। **आम खाने से काम या पेड़ गिनने से**=इस वस्तु से अपना काम निकालो, इसके विषय में निरर्थक प्रश्न करने से क्या प्रयोजन। **बारी में बारह आम सट्टी में अट्ठारह आम**=जहाँ चीज महँगी मिलनी चाहिए, वहाँ उस स्थान से भी सस्ती मिलना जहाँ साधारणतः वह चीज सस्ती बिकती है। (यह ऐसे अवसर पर कहा जाता है जब कोई किसी वस्तु का इतना कम दाम लगाता है जितने पर वह वस्तु जहाँ पैदा होती है, वहाँ भी नहीं मिल सकती।)

आम२--वि०[सं०] कच्चा। अपक्व। असिद्ध। उ०-बिगरत मन संन्यास लेत जल नावत आम घरो सो।—तुलसी ग्रं०, पृ० ५४५।

आम३--संज्ञा पुं० [सं०] १. खाए हुए अन्न का कच्चा, न पचा हुआ मल जो सफेद और लसीला होता है।

यो०—आमातिसार।

२. वह रोग जिसमें आँव गिरती है।

यौ०--**आमज्वर। आमवात।**

आम४--वि० [अ०] १. साधारण। सामान्य। मामूली। जैसे,--आम आदमियों को वहाँ जाने की आदत नहीं है। उ०--आम लोग उनकी सोहबत को अच्छा न समझते थे।--प्रताप० ग्रं०, पृ० २७५।

यौ०—**आमखास**=महलों के भीतर का वह भाग जहाँ राजा या बादशाह बैठते हैं। **दरबार आम**=वह राजसभा जिसमें सब लोग जा सकें। **आमफहम**=जो सर्वसाधारण की समझ में आवे। उ०—इबारत वही अच्छी कही जायगी जो आमफहम और खासपसंद हो।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ४०९। २. प्रसिद्ध। विख्यात। जैसे,--यह बात अब आम हो गई है, छिपाने से नहीं छिपती।

विशेष--इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग वस्तु के लिये होता है, व्यक्ति के लिये नहीं।

आमगंधि--संज्ञा स्त्री०[सं० **आमगन्धि**] बिसायँध गंध, जैसे,--चिता के धूँए या कच्चे मांस या मछली की।

आमग(पु)--संज्ञा पुं० [सं० **अमार्ग**] कुमार्ग। कुराह। उ०--वह पंडित औ चतुर परेवा। आमग न चलै जानि पति सेवा।--चित्रा०, पृ० १९२।

आमगर्भ--संज्ञा पुं० [सं०] भ्रूण [को०]।

आमचुर--संज्ञा पुं० [सं० **आम्रचूर्ण, हिं० अमचूर, आमचुर**] दे० 'अमचुर'। उ०--खंडै कीन्ह आमचुर परा। लौंग लायची सौं खँड़बरा।--जायसी ग्रं०, पृ० २४७।

आमज्वर--संज्ञा पुं० [सं०] १. वह ज्वर जो आँव के कारण हो। २. वह ज्वर जिसमें आँव गिरे।

आमड़ा--संज्ञा पुं० [सं० **आम्रात**] एक बड़ा पेड़ जिसके फल आम की तरह खट्टे और बड़े बेर के बराबर होते हैं, फलों का आचार पड़ता है। इसकी पत्तियाँ शरीफे की पत्तियों से मिलती जुलती होती हैं।

आमणदूमण--वि० [सं० **उन्मन+दुर्मन; प्रा० उम्मण दुमन; राज० आमण दूमणो**] उदास। खिन्न। उद्विग्नमन। उ०--साहिब हँसउ न बोलिया, मुझमूँ रीस ज आज। अंतरि आमण दूमणा, किसउज इवडउ काज--ढोला०, दू० २१८।

आमद—संज्ञा स्त्री० [फा०] १. अवाई। आगमन। आना।

यौ०--**आमदरफ्त**=आना जाना। आवागमन।

मुहा०—**आमद आमद होना**=(१) आने के समय अत्यंत निकट होना। (२) आने की खबर फैलना या धूम होना।

२. आय। आमदनी। उ०—इन्ने थोड़ी आमद में अपने घर का प्रबंध बहुत अच्छा बाँध रक्खा है। —श्रीनिवास ग्रं०, पृ० ३०४।

आमदनी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १. आय। प्राप्ति। आनेवाला धन। उ०—इन्की आमदनी मामूली नहीं है, तथापि जितनी आमदनी आती है उससे खर्च कम किया जाता है।—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० ३०४। २. व्यापार की वस्तु जो और देशों से अपने देश में आवे। रफ्तनी का उलटा।

आमन—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. वह भूमि जिसमें साल भर में केवल एक ही फसल उत्पन्न हो। २. बंगाल के धान की जाड़े की फसल।

आमनघूमनाⓅ—वि० [हिं०] दे० 'आमरण दूमरण'। उ०—यहु मन आमनघूमनां, मेरौ तन छीजत नित जाई।—कबीर ग्रं०, पृ० १६०।

आमनस्य—संज्ञा पुं० [सं०] अनमनापन। दुःख। रंज।

आमनाⓅ—क्रि० अ० [हिं० **आवना**] दे० 'आना'।

आमनाय—संज्ञा पुं० [पुं० **आम्नाय**] दे० 'आम्नाय'।

आमनासामना—संज्ञा पुं० [**आमना=सामना का अनु०+हिं० सामना**] मुकाबला। भेंट। जैसे,—इस तरह झगड़ा न मिटेगा। तुम्हारा उनका आमना सामना हो जाय।

आमनी—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. वह भूमि जिसमें जाड़े का धान बोया जाता है। २. जाड़े में बोए जानेवाले धान की खेती।

आमनेसामने—क्रि० वि० [**आमने=सामने का अनु०+हिं० सामने**] एक दूसरे के समक्ष। एक दूसरे के मुकाबिले। इस प्रकार जिसमें एक का प्रमुख या अग्रभाग दूसरे के मुख या अग्रभाग की ओर हो। इस प्रकार जिसमें एक वस्तु के अग्रभाग से खींची हुई सीधी रेखा पहले पहल दूसरी वस्तु के अग्रभाग ही को स्पर्श करे। जैसे,—सभा के बीच वे दोनों प्रतिद्वंदी आमने सामने बैठे। (ख) वे दोनों मकान आमने सामने हैं, सिर्फ एक सड़क बीच में पड़ती है।

आमय—संज्ञा पुं० [सं०] रोग। व्याधि। बीमारी। आरजा।

आमयावी—वि० [सं० **आमयाविन्**] १. रोगी। २. मंदाग्नि रोग से पीड़ित [को०]।

आमरक्तातिसार—संज्ञा पुं० [सं०] आँव और लहू के साथ दस्त होने का रोग।

आमरखⓅ—संज्ञा पुं० [सं० **आमर्ष**] दे० 'आमर्ष'।

आमरखनाⓅ—क्रि० अ० [सं० **आमर्ष=क्रोध, हिं० आमरख+ना (प्रत्य०)**] क्रुद्ध होना। दुःखपूर्वक क्रोध करना। उ०—(क) सुनि आमरखि उठे अवनीपति लगे बचन जनु तीर।—तुलसी (शब्द०)। (ख) तब विदेह पन बंदिन प्रगट सुनायो। उठे भूप आमरखि सगुन नहिं पायो।—तुलसी (शब्द०)।

आमरण—क्रि० वि० [सं०] मरणकाल तक। जीवन की अवधि तक। मृत्यु पर्यंत।

आमरस—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अमरस'।

आमर्दकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. आमलकी। आमला। आँवला। २. फाल्गुन शुक्ला एकादशी का नाम।

आमर्दन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० **आमर्दित**] १. जोर से मलना। २. खूब पीसना या रगड़ना।

आमर्ष—संज्ञा पुं० [सं०] १. क्रोध। कोप। गुस्सा। उ०—आमर्ष को जगानेवाली शिखा नई दे।—साम० पृ० ५७। २. असहनशीलता। ३. रस में एक संचारी भाव। दूसरे का अहंकार न सहकर उसको नष्ट करने की इच्छा।

आमलक—संज्ञा पुं० [सं०] [**स्त्री० अल्पा० आमलकी**] आमला। आँवला। धात्रीफल। उ०—जानहिं तीनि काल निज ज्ञाना। करतलगत आमलक समाना।—मानस, १।३०।

आमलकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. छोटी जाति का आँवला। आँवली। २. फागुन सुदी एकादशी।

आमला†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आँवला'।

आमलेट—संज्ञा पुं० [अं०] अंडे का बना नमकीन पदार्थ। उ०—चाय आमलेट उड़ाने में ही कितने रुपए खर्च कर देते हैं।—संन्यासी, पृ० १७४।

आमवात—संज्ञा पुं० [सं०] एक रोग जिसमें आँव गिरती है और जोड़ों में पीड़ा तथा हाथ पैर में सूजन हो जाती है मुँह भी सूज जाता है और शरीर पीला पड़ जाता है। यह रोग मंदाग्निवाले को अजीर्ण में भोजन करने से होता है।

आमशूल—संज्ञा पुं० [सं०] आँव मुड़ेरे का रोग। आँव के कारण पेट में मरोड़ होने का रोग।

आमश्राद्ध—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का श्राद्ध जिसमें पिंडदान के बदले में ब्राह्मणों को कच्चा अन्न दिया जाता है।

आमाँ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आवाँ'।

आमाजीर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] आँव का अजीर्ण। कच्चा अनपच। तुखमा। इस रोग में खाया हुआ अन्न ज्यों का त्यों गिरता है।

आमातिसार—संज्ञा पुं० [सं०] आँव के कारण अधिक दस्तों का होना। आँव मुरेड़े के दस्त।

आमात्य—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अमात्य'।

आमादगी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] तैयारी। मुस्तैदी। मौजूदगी। तत्परता।

आमादा—वि० [फ़ा० **आमादह्**] उद्यत। तत्पर। उतारू। तैयार। संनद्ध। उ०—आज खुदकुशी करने पर आमादा है आकाश।—ठंडा०, पृ० ६३।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

आमानाह—संज्ञा पुं० [सं०] आँव के कारण पेट का फूलना। आँव का अफरा।

आमान्न—संज्ञा पुं० [सं०] कच्चा अन्न। बिना पका अनाज। कोरा अन्न। सूखा अनाज।

आमाल—संज्ञा पुं० [अ०] कर्म। करनी। करतूत।

यौ०—आमालनामा।

आमालक—संज्ञा पुं० [सं० **आ+माल या देश०**] पहाड़ के पास की भूमि।

आमालनामा—संज्ञा पुं० [**अ० आमाल+फ़ा० नामा**] वह रजिस्टर जिसमें नौकरों की चालचलन और कार्य करने की योग्यता आदि का विवरण रहता है।

आमावास्य—वि० [सं०] अमावस्या से संबंधित [को०]।

आमाशय—संज्ञा पुं० [सं०] पेट के भीतर की वह थैली जिसमें भोजन किए हुए पदार्थ इकट्ठे होते और पचते हैं।

विशेष—सुश्रुत में इसका स्थान नाभि और छाती के बीच में लिखा है; पर वास्तव में इस थैली का चौड़ा हिस्सा छाती के नीचे बाईं ओर होता है और क्रमशः पतला होता हुआ दाहिनी ओर को घुमाव के साथ यकृत के नीचे तक जाता है। यह थैली झिल्ली और मांस की होती है। इसके ऊपर बहुत से छोटे छोटे बारीक गड्ढे $\frac{1}{100}$ इंच से $\frac{2}{200}$ इंच तक के व्यास के होते हैं, जिनमें पाचन रस भरा रहता है। इस थैली में पहुँच कर भोजन बराबर इधर उधर लुढ़का करता है जिससे उसके हर एक अंश में पाचन रस लगता है। इसी पाचन रस और पित्त आदि की क्रिया से खाए हुए पदार्थ का रूपांतर होता है; जैसे पित्त में मिलकर दूध पेट में जाते ही दही की तरह जम जाता है।

आमाहल्दी—संज्ञा स्त्री० [सं० आमहरिद्रा] एक प्रकार का पौधा जिसकी जड़ रंग में हल्दी की तरह और गंध में कचूर की तरह होती है। यह बंगाल के जंगलों में बहुत जगह आपसे आप होती है। यह चोट पर बहुत फायदा करती है।

आमिक्षा—संज्ञा स्त्री० [सं०] फटा हुआ दूध। छेना। पनीर।

आमिख—संज्ञा पुं० [सं० आमिष] दे० 'आमिष'।

आमिन—संज्ञा स्त्री० [हिं० आम] अवध में आम की एक जाति जिसके फल सफेदे की तरह मीठे पर बहुत छोटे होते हैं।

आमिर(पु)—संज्ञा पुं० [अ०] हाकिम। अधिकारी। उ०—नव नागरितन मुलुकु लहि जोबन आमिर जोर। घटि बढ़ि तें बढ़ि घटि रकम करी और की और।—बिहारी र०, दो० २२०।

आमिल¹—संज्ञा पुं० [अ०] १. काम करनेवाला। अनुष्ठान करनेवाला। २. कर्तव्यपरायण। ३. अमला। कर्मचारी। ४. हाकिम। अधिकारी। उ०—लिये सकल सुख छीन, बिरहा आमिल आइके।—नट०, पृ० १०१। ५. ओझा। सयाना। ६. पहुँचा हुआ फकीर। सिद्ध।

आमिल²(पु)—वि० [सं० अम्ल] खट्टा। अम्ल। उ०—अहै सो कड़ुआ अहै सो मीठा। अहै सो आमिल अहै सो सीठा।—जायसी (शब्द०)।

आमिश्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह भूमि या राज्य जिसमें राजभक्त और राजद्रोही समान रूप से हों।

विशेष—कौटिल्य ने कहा है कि राजभक्त जनता के सहारे ही आमिश्रा भूमि पर शासन किया जाय।

आमिष—संज्ञा पुं० [सं०] १. मांस। गोश्त। उ०—उनकी आमिषभोगी रसना आँखों से कुछ कहती।—कामायनी, पृ० १११।

यौ०—आमिषप्रिय। आमिषाशी। आमिषाहारी। निरामिष।

२. भोग्य वस्तु। ३. लोभ। लालच। ४. वह वस्तु जिससे लोभ उत्पन्न हो। ५. जँबीरी नीबू।

आमिषप्रिय¹—वि० [सं०] जिसे मांस प्यारा हो।

आमिषप्रिय²—संज्ञा पुं० गिद्ध, चील और बाज आदि पक्षी जो मांस पर टूटते हैं।

आमिषभोगी—वि० [सं० आमिष+भोगी] मांसभक्षी। उ०—केते न रक्त प्रसूननि देख फिरे खग आमिषभोगी भुलाने।—भिखारी ग्रं०, भा० (?) पृ० ८०।

आमिषाशी—वि० [सं० आमिषाशिन्] [वि० स्त्री० आमिषाशिनी] मांस भक्षक। मांस खानेवाला।

आमिषी—संज्ञा स्त्री० [सं०] जटामाँसी। बालछड़।

आमीं—अव्य० [इब०] एवमस्तु। ऐसा ही हो।

मुहा०—आमीं आमीं करनेवाले = हाँ में हाँ मिलानेवाले। खुशामदी।

आमी¹—संज्ञा स्त्री० [हिं० आम] १. छोटा आम। अँबिया। उ०—आई उघरि प्रीति कलई सी जैसी खाटी आमी। सूर इते पर अनखनि मरियत ऊधो पीवत भामी।—सूर०, १०।४२४७। २. एक पेड़ जो कद में बहुत छोटा होता है। तुंगा। भान।

विशेष—हर साल शिशिर ऋतु में इसके पत्ते झड़ जाते हैं। इसके हीर की लकड़ी स्याही लिए हुए पीली तथा बड़ी मजबूत और कड़ी होती है। इससे सजावट की अनेक चीजें बनाई जाती हैं। हिमालय के पहाड़ी लोग इसकी पतली टहनियों की टोकरियाँ बनाते हैं। शिमला, हजारा तथा कुमाऊँ के पहाड़ों में यह वृक्ष अधिकतर पाया जाता है।

आमी²—संज्ञा स्त्री० [सं० आम = कच्चा] जौ और गेहूँ की भुनी हुई बाल।

यौ०—आमी होरा।

आमीलन—संज्ञा पुं० [सं०] १.आँखें बंद करना। २.बंद करना [को०]।

आमुक्त—वि० [सं०] १. मुक्त किया हुआ। छुटकारा पाया हुआ। २. फेंका हुआ या त्यागा हुआ। ३. स्वीकार किया हुआ। अपनाया हुआ [को०]।

आमुख—संज्ञा पुं० [सं०] नाटक का एक अंग। प्रस्तावना।

आमुखता—संज्ञा पुं० [फा० आमोख्तह्] दे० 'आमोखता'। उ०—(क) कुछ दिन कहीं जाकर आमुखता सुनाइए, तब कहीं आकर बातें बनाइए।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २६६। (ख) कोउ आमुखता पढ़त जोर सों सोर मचावत।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० २०।

आमुचे(पु)†—सर्व० [मरा० आमूचा=हमारा] हमारे। उ०—तुम्हीं आमुचे देव, तुम्हीं आमुचे ध्यान।—दादू० बा०, पृ० १७४।

आमुष्मिक—वि० [सं०] [वि० स्त्री० आमुष्मिकी] पारलौकिक। परलोक संबंधी।

आमूल—क्रि० वि० [सं०] आरंभ से अंत तक। आद्यंत। उ०—देखा विवाह आमूल नवल। तुझ पर शुभ पड़ा कलश का जल।—अनामिका, पृ० ३२।

आमेज—वि० [फा० आमेज] मिला हुआ। मिश्रित।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग प्रायः यौगिक शब्द बनाने के लिये होता है; जैसे,—दर्दआमेज। पनियामेज (दही वा अफीम)।

आमेजना—क्रि० स० [फा० आमेज+हिं० ना (प्रत्य०)] मिलाना। सानना। उ०—भीजी अरगजे में भई ना मरगजे सजी आमेजे सुगंध सेजै तजी शुभ्र शीत रे।—देव (शब्द०)।

आमेजिश--संज्ञा स्त्री० [फा० **आमेजिश**] मिलावट। मिश्रण। मेल

आमेर--संज्ञा पुं० [सं० **अम्बर**] राजपूताने का एक नगर जो जयपुर के पास है और जहाँ पहले राजधानी थी।

आमोख्ता--संज्ञा पुं० [फा० **आमोख्तह्**] पढ़े हुए को अभ्यास के लिये फिर पढ़ना। उद्धरणी।

क्रि० प्र०--**करना**।--**पढ़ना**।--**फेरना**। **सुनाना**।

आमोचन--संज्ञा पुं० [सं०] बंधनहीन करना। मुक्त करना [कौ०]।

आमोद--संज्ञा पुं० [सं०][वि० आमोदित, आमोदी] **१**. आनंद। हर्ष। खुशी। प्रसन्नता। उ०--हाँ झूमता है चित्त के आमोद के आवेग में।--कानन०, पृ० ५३। २. दिलबहलाव। तफरीह। ३. दूर से आनेवाली महक। सुगंध। उ०--कमल तजि तन रुचत नाहीं आक कौं आमोद।--सूर०, १०।४५३५। ४. शतावर।

यौ०--**आमोदप्रमोद**। **आमोदयात्रा** = मन बहलाने की दृष्टि से यात्रा।

आमोदन--संज्ञा पुं० [सं०] १. सुगंधित करना। बासना। **२**. दे० 'आमोद' [कौ०]।

आमोदप्रमोद--संज्ञा पुं० [सं०] भोगविलास। सुख चैन। हँसी खुशी।

आमोदित--वि० [सं०] १. प्रसन्न। खुश। हर्षित। **२** दिल लगा हुआ। जी बहला हुआ। ३. सुगंधित। उ०--और चंदन कर्पूरादि की सुगंध से घ्राणेंद्रिय तथा मस्तिष्क आमोदित हो जाता है।--प्रताप ग्रं०, पृ० ५१५।

आमोदी--वि० [सं० **आमोदिन्**] प्रसन्न रहनेवाला। खुश रहनेवाला।

आमोष--संज्ञा पुं० [सं०] [वि० **आमोषी**] चुराना। अपहरण। छीनना [कौ०]।

आमोषी--संज्ञा पुं० [सं० **आमोषिन्**] तस्कर। चोर [कौ०]।

आम्नात[1]--वि०[सं०] विचारा हुआ। कहा हुआ। **२**.दुहराया हुआ। पढ़ा हुआ। ३. याद किया हुआ। स्मरण किया हुआ। ४. ग्रंथोक्त। शास्त्रोक्त। ५. पवित्र ग्रंथादि के रूप में परंपरागत [कौ०]।

आम्नात[2]--संज्ञा पुं० [सं०] अध्ययन [कौ०]।

आम्नाय--संज्ञा पुं० [सं०] १. अभ्यास।

यौ०--**अक्षराम्नाय** = वर्णमाला। **कुलाम्नाय** = कुलपरंपरा। कुल की रीति।

२. वेद आदि का पाठ और अभ्यास। ३. वेद।

आम्म--संज्ञा पुं० [देश०] नेवले के प्रकार का एक जंतु।

आम्र--संज्ञा पुं० [सं०] १. आम का पेड़। २. आम का फल।

यौ०--**आम्रवन** = आम का वन।

आम्रकूट--संज्ञा पुं० [सं०] एक पर्वत जिसे अमरकंटक कहते हैं।

आम्रगंधक--संज्ञा पुं० [सं० **आम्रगन्धक**] एक पौधा। समष्ठिल [कौ०]।

आम्रात, आम्रातक--संज्ञा पुं० [सं०] आमड़े का पेड़ और फल।

आम्ल[1]--वि० [सं०] अम्लसंबंधी [कौ०]।

आम्ल[2]--संज्ञा पुं० [सं० स्त्री० **आम्ला**] १. खट्टापन। २. इमली [कौ०]।

आम्लवेतस--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अम्लवेतस'।

आम्लिका--संज्ञा स्त्री० [सं०] इमली।

आयँतीपायँती--संज्ञा स्त्री० [फा० **पायताना** अथवा सं० **आदितः + पादतः**] सिरहाना पायताना। उ०--आयँती की छड़ियाँ पायँती और पायँती की आयँती।--(शब्द०)।

आयंदः--वि०, क्रि० वि० दे० 'आइंदा'। उ०--इनके दिल पर पूरा असर न हुआ तो, आयंदः बड़ी खराबी की सूरत पैदा होगी।--श्रीनिवास ग्रं०, पृ० ३१।

आयंदा--वि०, क्रि० वि० दे० 'आइंदा'।

आय[1]--संज्ञा स्त्री० [सं०] १. आमदनी। आमद। लाभ। प्राप्ति। धनागम।

यौ०--**आयव्यय**।

२. जन्मकुंडली में ११ वाँ स्थान। ३. आगमन। आना (कौ०) ४. अंतःपुररक्षक (कौ०)।

आय[2]ⓟ--संज्ञा स्त्री० [सं० **आयु**] दे० 'आयु'। उ०--धन्य ते जे मीन से अवधि अंबु आय है।--तुलसी ग्रं०, पृ० ३३७।

आय[3]--क्रि० अ० [सं० **अस् = होना**] पुरानी हिंदी के 'आसना' या 'आहना' (होना) क्रिया का वर्तमानकालिक रूप। (शुद्ध शब्द 'आहि' है)।

आयत[1]--वि० [सं०] विस्तृत। लंबा चौड़ा। दीर्घ। विशाल। उ०--सोहत ब्याह साज सब साजे। उर आयत उर भूषन राजे।--मानस, १।३२७।

आयत[2]--संज्ञा स्त्री० [अ०] इंजील का वाक्य। कुरान का वाक्य। उ०--पुनि उस्मान मंडित बड़ गुनी। लिखा पुरान जो आयत सुनी।--जायसी ग्रं०, पृ० ५।

आयतच्छदा--संज्ञा स्त्री० [सं०] कदली। केला [कौ०]।

आयतन--संज्ञा पुं० [सं०] १. मकान। घर। मंदिर। २. विश्रामस्थान। ठहरने का जगह। ३. देवताओं की वंदना की जगह।

यौ०--**रामपंचायतन** = जानकी सहित राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न की मूर्ति।

४. ज्ञान के संचार का स्थान। वे स्थान जिनमें किसी काल तक ज्ञान की स्थिति रहती है; जैसे,--इंद्रियाँ और उनके विषय।

विशेष--बौद्धमतानुसार उनके **१२** आयतन हैं-(१) चक्षुरायतन, (२) श्रोत्रायतन, (३) घ्राणायतन, (४) जिह्वायतन, (५) कायायतन, (६) मनसायतन, (७) रूपायतन, (८) शब्दायतन, (९) गंधायतन, (१०) रसनायतन, (११) श्रोतव्यायतन और (१२) धर्मायतन।

आयतनेत्र--वि० [सं०] विशाल नेत्रोंवाला। बड़ी बड़ी आँखोंवाला [कौ०]।

आयतलोचन--वि० [सं०] दे० 'आयतनेत्र' [कौ०]।

आयति--संज्ञा स्त्री० [सं०] भावी आय। आगे होनेवाली आमदनी [कौ०]।

आयत्त--वि० [सं०] [संज्ञा **आयत्ति**] अधीन। वशीभूत।

आयत्ति--संज्ञा स्त्री० [सं०] अधीनता। परवशता।

आयद--वि० [अ०] आरोपित। लगाया हुआ। जैसे,--तुम पर कई जुर्म आयद होते हैं।

क्रि० प्र० —करना ।—होना।

आयमन—संज्ञा पुं० [सं०] १. लंबाई। विस्तार। २. नियमन। ३. तानने या खींचने की क्रिया (जैसे धनुष को)। [कौ०]

आयमा—संज्ञा स्त्री० [अ०] वह भूमि जो इमाम या मुल्ला को बिना लगान या थोड़े लगान पर दी जाय।

आयवस—संज्ञा पुं० [सं०] १. पशुओं के चरने के लिये घास का मैदान। २. पशुओं को खिलाने का स्थान [कौ०]।

आयव्यय—संज्ञा पुं० [सं०] जमाखर्च। आमदनी और खर्च। (कौ०)

आयस[1]—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० **आयसी**] लोहा। १. लोहा २. लोहे का कवच। ३. अगर नाम की लकड़ी। ४. रत्न। मणि।

आयस[2](पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० **आयसु**] १. आदेश। हुक्म। आज्ञा। २. विवाह के अवसर की एक रीति।

आयसी[1]—वि० [सं० **आयसीय**] लोहे का। आहनी। उ०—मंजूषा आयसी कठोरा। बड़ि सृंखला लगी चहुँ ओरा।—रघुराज (शब्द०)।

आयसी[2]—संज्ञा पुं० [सं०] कवच। जिरहबख्तर।

आयसीय—वि० [सं०] लोहे का। लौह का बना हुआ [कौ०]।

आयसु(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं०] आज्ञा। हुक्म। उ०—प्रभु अनुराग माँगि आयसु पुरजन सब काज सँवारे।—तुलसी ग्रं०, पृ० ३५९।

आया[1]—क्रि० अ० [हिं० **आना**] आना क्रिया का भूतकाललिक रूप।

आया[2]—संज्ञा स्त्री० [पुर्त०] अँगरेजों के बच्चों को दूध पिलाने और उनकी रक्षा करनेवाली स्त्री। धाय। धात्री।

आया[3]—अव्य० [फा०] क्या। जैसे— आया तुमने यह काम किया है या नहीं।

आयात—संज्ञा पुं० [सं०] वह वस्तु या माल जो व्यापार के लिये विदेश से अपने देश में लाया या मँगाया गया हो। आगत। जैसे,—आयात व्यापार।

यौ०—**आयातकर**=आयात वस्तुओं पर लगानेवाला महसूल।

आयाति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. आगमन। २. पास आना [कौ०]।

आयान—संज्ञा पुं० [सं०] १. आना। २. प्रकृति। स्वभाव। आदत [कौ०]।

आयाम[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. लंबाई। विस्तार। २. नियमित करने की क्रिया। नियमन।

यौ०—**प्राणायाम**=प्राणवायु को नियमित करने की क्रिया।

आयाम[2]—क्रि० वि० एक पहर तक।

आयास—संज्ञा पुं० [सं०] परिश्रम। मेहनत।

यौ०—**अनायास**।

आयासक—वि० [सं०] १. परिश्रम करानेवाला। थकानेवाला २. कष्टकारक [कौ०]।

आयासी—वि० [सं० **आयासिन्**] १. जिसने परिश्रम किया हो। थका हुआ। २. प्रयास में लगा हुआ। परिश्रमी [कौ०]।

आयुःशेष—संज्ञा पुं० [सं० **आयुस्+शेष**] आयु का शेष भाग [कौ०]।

आयुःष्टोम—संज्ञा पुं० [सं० **आयुस्+ष्टोम**] दीर्घजीवन की प्राप्ति के लिये किया जानेवाला यज्ञविशेष [कौ०]।

आयु—संज्ञा स्त्री० [सं०] वय। उम्र। जिंदगी। जीवनकाल।

क्रि० प्र०—**क्षीण होना।—घटना।—पूरी होना।—बढ़ना।**

मुहा०—**आयु खुटाना**=आयु कम होना। उ०—जेहि सुभाय चितवहिं हित जानी। सो जानै जनु आयु खुटानी।—तुलसी (शब्द०)। **आयु सिराना**=आयु का अंत होना। उ०—जो तैं कही सो सब हम जानी। पुंडरीक की आयु सिरानी।—गोपाल (शब्द०)।

आयुक्त[1]—वि० [सं०] १. नियुक्त। २. अधिकारप्राप्त। ३. संयुक्त। संमिलित। ४. प्राप्त [कौ०]।

आयुक्त[2]—संज्ञा पुं० १. सचिव। मंत्री। २. कारिंदा। ३. कोषाधिकारी। ४. कमिश्नर। [कौ०]।

यौ०—**उच्चायुक्त**=हाई कमिश्नर।

आयुक्तक—संज्ञा पुं० [सं०] अधिकारीविशेष [कौ०]।

आयुत[1]—वि० [सं०] १. मिश्रित। २. द्रवित। पिघला हुआ [कौ०]।

आयुत[2]—संज्ञा पुं० [सं०] आधा पिघला हुआ नवनीत या मक्खन [कौ०]।

आयुतिक—संज्ञा पुं० [सं०] दस हजार सिपाहियों का अध्यक्ष।

आयुध—संज्ञा पुं० [सं०] हथियार। शस्त्र। उ०—तिन्हके आयुध तिल सम करि काटे रघुबीर।—मानस, ३।१३।

यौ०—**आयुधागार**=सिलहखाना। **आयुधन्यास**।

आयुधजीवी[1]—वि० [सं० **आयुधजीविन्**] शस्त्र या हथियार की बदौलत जीविका उपार्जित करनेवाला [कौ०]।

आयुधजीवी[2]—संज्ञा पुं० सैनिक। सिपाही [कौ०]।

आयुधधर्मिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] जयंती वृक्ष [कौ०]।

आयुधन्यास—संज्ञा पुं० [सं०] वैष्णवों में पूजन के पहले बाह्यशुद्धि का विधान। इनमें चक्र, गदा आदि आयुधों का नाम ले लेकर एक एक अंग का स्पर्श करते हैं।

आयुधपाल—संज्ञा पुं० [सं०] शस्त्रागार या सिलहखाने का अधिकारी [कौ०]।

आयुधभृत्—वि० [सं०] शस्त्रधारी। हथियारबंद [कौ०]।

आयुधशाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'आयुधागार' [कौ०]।

आयुधसहाय—वि० [सं०] जिसका सहायक आयुध या हथियार हो। हथियारबंद [कौ०]।

आयुधागार—संज्ञा पुं० [सं०] शस्त्रागार। सिलहखाना [कौ०]।

आयुधिक[1]—वि० [सं०] शस्त्र से संबंध रखनेवाला [कौ०]।

आयुधिक[2]—संज्ञा पुं० सैनिक। सिपाही [कौ०]।

आयुधी—वि० [सं० **आयुधिन्**] दे० 'आयुधीय' [कौ०]।

आयुधीय—संज्ञा पुं० [सं०] १. फौजी सिपाही। २. सैनिक या रँगरूट देनेवाला गाँव [कौ०]।

आयुधीयकाय—संज्ञा पुं० [सं०] वह राष्ट्र जिसमें फौज में काम करनेवाले सिपाहियों की संख्या अधिक हो। (कौ०)।

आयुर्दाय—संज्ञा पुं० [सं०] १. फलित ज्योतिष में ग्रहों के बलाबल के अनुसार आयु का निर्णय। जैसे अष्टम स्थान में बृहस्पति आयु बढ़ाता है और तीसरे, छठे और ११वें स्थान में राहु, मगल और शनि आदि पापग्रह आयु बढ़ाते हैं। लग्न या चंद्रमा को यदि मारकेश वा अष्टमेश देखता हो, तो आयु क्षीण होती है। २. आयु। जीवनकाल।

आयुर्द्रव्य—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १. घृत । घी । २. दवा । ओषधि [को॰] ।

आयुर्बल—संज्ञा पुं॰ [सं॰] आयुष्य । उम्र ।

आयुर्योग—संज्ञा पुं॰ [सं॰] वह ग्रहयोग जिसके अनुसार ज्योतिषी किसी व्यक्ति के विषय में भविष्यकथन करते हैं [को॰] ।

आयुर्वेद—संज्ञा पुं॰ [सं॰] [वि॰ **आयुर्वेदीय**] आयु संबंधी शास्त्र । चिकित्साशास्त्र । वैद्य विद्या ।

विशेष—इस शास्त्र के आदि आचार्य अश्विनीकुमार माने जाते हैं जिन्होंने दक्ष प्रजापति के धड़ में बकरे का सिर जोड़ा था। अश्विनीकुमारों से इंद्र ने यह विद्या प्राप्त की । इंद्र ने धन्वंतरि को सिखाया । काशी के राजा दिवोदास धन्वंतरि के अवतार कहे गए हैं । उनसे जाकर सुश्रुत ने आयुर्वेद पढ़ा । अत्रि और भरद्वाज भी इस शास्त्र के प्रवर्तक माने जाते हैं । चरक की संहिता भी प्रसिद्ध है । आयुर्वेद अथर्ववेद का उपांग माना जाता है । इसके आठ अंग हैं । (१) शल्य (चीरफाड़), (२) शालाक्य (सलाई), (३) कायचिकित्सा (ज्वर, अतिसार आदि की चिकित्सा), (४) भूत विद्या (झाड़-फूँक), (५) कौमारतत्र (बालचिकित्सा), (६) अगदतंत्र (बिच्छू, साँप आदि के काटने की दवा), (७) रसायन और (८) बाजीकरण। आयुर्वेद शरीर में बात, पित्त, कफ मानकर चलता है। इसी से उसका निदानखंड कुछ संकुचित सा हो गया है। आयुर्वेद के आचार्य ये हैं— अश्विनीकुमार, धन्वंतरि, दिवोदास (काशिराज), नकुल, सहदेव, अर्कि, च्यवन, जनक, बुध, जावाल, जाजलि, पैल, करथ, अगस्त, अत्रि तथा उनके छः शिष्य (अग्निवेश, भेड, जातूकर्ण, पराशर, सीरपाणि हारीत), सुश्रुत और चरक।

आयुर्वेदिक—वि॰ [सं॰] १. आयुर्वेद संबंधी । २. आयुर्वेद में होने वाला [को॰] ।

आयुर्वेदी¹—संज्ञा पुं॰ [सं॰ **आयुर्वेदिन्**] वैद्य । आयुर्वेदानुसार चिकित्सा करनेवाला व्यक्ति [को॰] ।

आयुर्वेदी²—वि॰ आयुर्वेद संबधी [को॰] ।

आयुर्वृद्धि—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] आयु की वृद्धि । उम्र बढ़ना [को॰] ।

आयुष(पु)—संज्ञा पुं॰ [सं॰ **आयुष्**] आयु । उ॰—तौ अबु नामदेव आयुष तें होहु तुम्हहि प्रभु दाता ।—भक्तमाला, (श्री॰) । पृ॰ ४८५ ।

आयुषमान(पु)—वि॰ [सं॰**आयुष्मान्**] दे॰ 'आयुष्मान' । उ॰—ताते सरजा बिरद भो सोभित सिंह प्रमान । रन-भूसिला सुभौसिला, आयुषमान खुमान ।—भूषण ग्रं॰, पृ॰ ७ ।

आयुष्कर—वि॰ [सं॰] आयुवर्धक । उम्र बढ़ानेवाला [को॰] ।

आयुष्काम—वि॰[सं॰]लंबी उम्र की कामना रखनेवाला [को॰] ।

आयुष्कौमारभृत्य—संज्ञा पुं॰ [सं॰] बच्चों के रोगों का इलाज । बीमार बच्चों की दवा [को॰] ।

आयुष्टोम—संज्ञा पुं॰ [सं॰] एक प्रकार का यज्ञ जो आयु की वृद्धि के लिये किया जाता है ।

आयुष्मन्—संज्ञा पुं॰ [सं॰] आयुष्मान् का संबोधन रूप । उ॰— कल्याण हो आयुष्मन्, तुम्हारे युवराज अपने अधिकारों से उदासीन हैं ।—स्कंद॰ पृ॰ ६ ।

आयुष्मान—वि॰ [सं॰ **आयुष्मत्**, **आयुष्मान्**] [स्त्री॰ **आयुष्मति**] १. दीर्घजीवी । चिरजीवी । २. नाटकों से सूत रथी को आयुष्मान कह कर संबोधन करते हैं । राजकुमारों को भी इसी शब्द से संबोधन करते हैं । ३. फलित ज्योतिष के विष्कुंभ आदि २७ भेदों में से एक ।

आयुष्य—संज्ञा पुं॰ [सं॰] आयु । उम्र ।

आयुस(पु)—संज्ञा पुं॰ [सं॰ **आयुस्**] आयु । उ॰—आयुस किंकर गण तब पावैं ।—कबीर सा॰, पृ॰ ४६२ ।

आयोग—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १. साहित्य में विप्रलंभ के दो पक्षों में से प्रथम जिसमें अविवाहित अवस्था में प्रेम हो जाने पर मिलन न होने से विरह दुःख उठाना पड़ता है। पूर्वराग की अवस्था । २. हल या बैलगाड़ी का जुआ । ३. पुष्पादि भेंट करने की क्रिया । ४ किनारा । तट । ५. नियुक्ति । ६. कार्यविशेष को पूर्ण करना । ७. ताल्लुक । संबंध । ८. कमीशन [को॰] ।

आयोगव—संज्ञा पुं॰ [सं॰] वैश्य स्त्री और शूद्र पुरुष से उत्पन्न एक वर्णसंकर जाति जिसका काम विशेषकर काठ की कारीगरी है । बढ़ई ।

आयोजक—वि॰ आयोजन या व्यवस्था करनेवाला । तैयारी करने-वाला । प्रबंधक [को॰] ।

आयोजन—संज्ञा पुं॰ [सं॰] [स्त्री॰ **आयोजना** [वि॰ **आयोजित**] १. किसी कार्य में लगाना । नियुक्ति । २. प्रबंध । इंतजाम । सामग्रीसंपादन । ठीक ठाक । तैयारी । उ॰—राका रजनी आयोजनरत लोकोत्तर छविशाली ।—पारिजात, पृ॰ १० । ३. उद्योग । ४. सामग्री । सामान ।

आयोजित—वि॰ [सं॰] ठीक किया हुआ । तैयार ।

आयोधन—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १. युद्ध । लड़ाई । २. रणभूमि । लड़ाई का मैदान ।

आरंजित—वि॰ [सं॰ **आरञ्जित**] सम्यक् रूप से रंजित । अच्छी तरह रँगा हुआ । उ॰—नव नव उषा राग आरंजित मनरंजन वनमाली ।—पारिजात, पृ॰ १० ।

आरंभ—संज्ञा पुं॰ [सं॰ **आरम्भ**] किसी कार्य की प्रथमावस्था का संपादन । अनुष्ठान । उत्थान । शुरू । समाप्ति का उलटा । उ॰—आरंभ और परिणामों के संबंधसूत्र से बुनते हैं ।—कामायनी, पृ॰ ७५ ।

क्रि॰ प्र॰—**करना** । जैसे,—उसने कल से पढ़ना आरंभ किया । —**होना** । जैसे,—अभी काम आरंभ हुए कै दिन हुए हैं ?

२. किसी वस्तु का आदि । उत्थान । शुरू का हिस्सा । जैसे,— हमने यह पुस्तक आरंभ से अंत तक पढ़ी है। ३. उत्पत्ति । आदि । ४. वध (को॰) । ५. गर्व (को॰) ।

आरंभक—वि॰ [सं॰ **आरम्भक**] आरंभ करनेवाला । श्रीगणेश करनेवाला [को॰] ।

आरंभण—संज्ञा पुं॰ [**आरम्भण**] १. आरंभ करने की क्रिया । आरंभ होने की क्रिया या भाव । २. अधिकार में करना । ३. मूठ (हैंडिल) [को॰] ।

आरंभतः—अव्य॰ [सं॰ **आरम्भतस्**] आरंभ से । मूल से । मूलतः । नए सिरे से [को॰] ।

आरंभना¹—क्रि॰ अ॰ [सं॰ **आरम्भण**] शुरू होना ।

आरंभना[2]--क्रि० स० प्रारंभ या शुरू करना।

आरंभनिष्पत्ति--संज्ञा स्त्री० [सं०] १. उपलब्धि। माल की माँग पूरी करना। २. माल पैदा करने या बनाने की लागत। [को०]।

आरंभवाद--संज्ञा पुं०[सं० **आरम्भवाद**] न्यायशास्त्र का वह सिद्धांत जिसके अनुसार विश्वसृष्टि परमाणुओं के योग से परमात्मा के इच्छानुसार हुई [को०]।

आरंभशूर--वि० [सं० **आरम्भशूर**] किसी काम को ठान देने में आगे रहनेवाला। उ०--अपने सहयोगियों में हास्यास्पद बन जाएँगे, आरंभशूर कहवाय लेंगे।--प्रताप ग्रं०, पृ० ७१२।

आरंभिक--वि० [सं० **आरम्भिक**] आरंभ से संबंध रखनेवाला। शुरू का [को०]।

आरंभी--वि० [सं० **आरम्भिन्**] १. आरंभ करनेवाला। २. नए और कठिन काम को करने के लिये सर्वप्रथम बढ़नेवाला।

आर[1]--संज्ञा पुं० [सं०; तुल० अं० **'ओर'**] १. वह लोहा जो खान से निकाला गया हो, पर साफ न किया गया हो। एक प्रकार का निकृष्ट लोहा। २. पीतल। ३. किनारा। ४. कोना।

यौ०--**द्वादशार चक्र**। **षोड़सार चक्र**।

विशेष--इस प्रकार के द्वादश कोण और षोडश कोण के चक्र बनाकर तांत्रिक लोग पूजन करते हैं।

५. पहिए का आरा। ६. हरताल।

आर[2]--संज्ञा स्त्री० [सं० **अल** = डंक] १. लोहे की पतली कील जो साँटे या पैने में लगी रहती है। अनी। पैनी। २. नर मुर्गे के पंजे का काँटा जिससे लड़ते समय वे एक दूसरे को घायल करते हैं। ३. बिच्छू, भिड़ और मधुमक्खी आदि का डंक। उ०--बीछी आर सरिस टेई मूछैं सबही की।--प्रेमघन, भा० १, पृ० ८०।

आर[3]--संज्ञा स्त्री०[सं० **आरा**]चमड़ा छेदने का सूआ या टेकुआ। सुतारी।

आर[4]--संज्ञा पुं० [देश०] १. ईख का रस निकालने का कलछा। पल्ली। ताँबी। २. बर्तन बनाने के साँचे में भीतरी भाग के ऊपर मुँह पर रखा हुआ मिट्टी का लोंदा जिसे इस तरह बढ़ाते हैं कि वह अँवठ के चारों ओर बढ़ आता है।

आर[5]†--संज्ञा पुं० [हिं० **अड़**] अड़। जिद। हठ। उ०--(क) अँखियाँ करत हैं अति आर। सुंदर श्याम पाहुने के मिस मिलि न जाहु दिन चार (शब्द०)।

क्रि० प्र०--करना--जिद करना। उ०--कबहुँक आर करत माखन की कबहुँक मेख दिखाइ बिनानी।--सूर (शब्द०)। --ठानना। उ०--हरीचंद बलिहारी आर नहिं ठानो।--भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ४६८।

आर[6]--संज्ञा स्त्री० [अ०] १. तिरस्कार। घृणा।

क्रि० प्र०--करना। जैसे, भले लोग बदचलनों से आर करते हैं।

२. अदावत। बैर जैसे,--न जाने वे हमसे क्यों आर रखते हैं। ३. शर्म। हया। लज्जा। उ०--कुछ तुम्हीं मिलने से बेजार हो मेरे, वर्ना, दोस्ती नंग नहीं, ऐब नहीं, आर नहीं।--शेर०, भा० १, पृ० ११२।

क्रि० प्र०--**आना**। जैसे,--इतने पर भी उसे आर नहीं आती।

आरक्त[1]--वि० [सं०] १. ललाई लिए हुए। कुछ लाल। २. लाल।

आरक्त[2]--संज्ञा पुं० [सं०] लाल चंदन।

आरक्तिम--वि० [सं०] थोड़ा लाल। हल्की लाली लिए हुए [को०]।

आरक्ष[1]--संज्ञा पुं० [सं०] १. रक्षा। २. सैन्य। फौज। ३. हाथी के कुंभ का संधिस्थल [को०]।

आरक्ष[2]--वि० सुरक्षित। सँभालकर रखा हुआ [को०]।

आरक्षक--संज्ञा पुं० [सं०] १. पहरेदार। रक्षक। २. सिपाही [को०]।

आरक्षण--संज्ञा पुं० [सं०] निर्धारित करना। निश्चित करना। अं० रिजर्वेशन।

आरक्षिक, आरक्षी--संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'आरक्षक' [को०]।

आरग्वध--संज्ञा पुं० [सं०] अमिलतास।

आरचित--वि० [सं०] पूर्ण रूप से सज्जित। अच्छी तरह बनाया हुआ [को०]।

आरचेस्ट्रा--संज्ञा पुं० [अं० **आरकेस्ट्रा**] १ थियेटर आदि में सामने बैठकर बाजा बजानेवालों का दल। २. थियेटर में वह स्थान जहाँ बाजा बजानेवाले एक साथ बैठकर बाजा बजाते हैं। ३. थियेटर में सबसे आगे की सीटें या आसन।

आरजⓅ--वि० [सं० **आर्य**] दे० 'आर्य'। उ०--फूटहि सों जयचंद बुलायो जवनन भारत धाम। जाको फल अब लौं भोगत सब आरज होत गुलाम।--भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० २३६।

आरजपथ--संज्ञा पुं० [सं० **आर्य+पथ**] आर्यमार्ग। सदाचार का मार्ग। उ०--आरजपथ भूलीं भलै बिवस परी हितकंद।--घनानंद, पृ० २३८।

आरजा--संज्ञा पुं० [अ० **आरिजह**] रोग। बीमारी।

आरजू--संज्ञा स्त्री० [फा०] इच्छा। वांछा। जैसे,--(क) मुझे बहुत दिनों से उनके मिलने की आरजू है। (ख) बहुत दिनों के बाद मेरी आरजू पूरी हुई।

यौ०--**आरजूमंद**।

मुहा०--**आरजू बर आना** = इच्छा पूरी होना। आशा पूरना। जैसे,--बहुत दिनों से आशा थी, आज मेरी आरजू बर आई। **आरजू मिटाना** = इच्छा पूरी करना। जैसे,--तुम भी अपनी आरजू मिटा लो।

२. अनुनय। विनय। विनती।

आरजूमंद--वि० [फा०] इच्छुक। अभिलाषी।

आरट[1]--वि० [सं०] बार बार रट लगानेवाला। शोर करनेवाला [को०]।

आरट[2]--संज्ञा पुं० विदूषक [को०]।

आरट्ट--संज्ञा पुं० [सं०] १. पंजाब के उत्तर पूर्व का एक भूभाग। २. आरट्ट के निवासी। ३. आरट्ट जनपद का घोड़ा [को०]।

आरणⓅ--संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'अहरन'। उ०--जिव आरण लोहा पाहीजै तपै भखै भाखाय।--प्राण०, पृ० २११।

आरणि--संज्ञा पुं० [सं०] जलावर्त। भँवर [को०]।

आरणेय[1]--संज्ञा पुं० [सं०] शुकदेव मुनि [को०]।

आरणेय[2]--वि० [सं०] १. अरणि नामक यंत्र से उत्पन्न या संबद्ध [को०]।

आरण्य[1]--वि० [सं०] १. जंगली। बनैला। २. जंगल का। बन का।

यौ०--**आरण्य कुक्कुट**। **आरण्य गान**। **आरण्य पशु**।

आरण्य[2]—संज्ञा पुं० १. दे० 'अरण्य'। २. जंगली पशु। ३. गोमय। गोबर। ४. मेष, वृष सिंह राशियाँ (ज्योतिष)। ५. बिना बोए उत्पन्न होनेवाला एक अन्न [को०]।

यौ०—**आरण्यकांड**=रामायण का तृतीय कांड। **आरण्य कुक्कुट**=बनमुर्गा। **आरण्य गान**=सामवाद के चार गानों में एक **आरण्यपर्व**=महाभारत का एक पर्व। **आरण्यपशु**=जंगली पशु। **आरण्यमुगदा**=एक प्रकार की मूंग [को०]। **आरण्य राशि**=(१) ज्योतिष में सिंह आदि राशियाँ। (२) कर्कराशि का पूर्वार्ध भाग।

आरण्यक[1]—वि० [सं०] [स्त्री० **आरण्यकी**] १. जंगल का। बन का। जंगली। बनैला।

आरण्यक[2]—संज्ञा पुं० वेदों की शाखा का वह भाग जिसमें वानप्रस्थों के कृत्य का विवरण और उनके लिये उपयोगी आदेश हैं।

विशेष—वैदिक वाङ्मय में संहिताओं के अनंतर के ब्राह्मण ग्रंथों का उत्तरवर्ती वाङ्मय भाग जो उपनिषदों का पूर्ववर्ती है।

यौ०—**आरण्यक संवाद**=आरण्यक ग्रंथों में प्रतिपादित सिद्धांत। उ०—सुनाने आरण्यक संवाद तथागत आया तेरे द्वार। —लहर, पृ० १२।

आरतⓅ—वि० [सं० **आर्त**] दे० 'आर्त'। उ०—गीधराज सुनि आरत बानी। रघुकुल तिलक नारि-पहिचानी।—मानस, ३।२३।

आरतहरⓅ—वि० [सं० **आर्तिहर**] दुःख दूर करनेवाला। कष्टहारी। उ०—नाथ तू अनाथ को अनाथ कौन मोसों। मो समान आरत नहि आरतहर तोसों। तुलसी ग्रं०, पृ० ५००।

आरति[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. विरक्ति। विराग। स्थगन। रोक। २. दे० **'आर्ति'**। ३. हठ। जिद। उ०—साँझहिं ते अति ही बिरुझान्यौ चंदहिं देखि करी अति आरति।—सूर०,१०।२००। ४. अनीति। उ०—नंदघरनि ब्रजनारि बिचारति। ब्रजहिं बसत सब जनम सिरानौ ऐसी करि न आरति।—सूर०, १०।४२६।

आरति[2]Ⓟ—संज्ञा स्त्री० [सं० **आर्ति**] मनोरथ। इच्छा। उ०—मोको आत्मनिवेदन करवाइए और मेरी आरति पूरन करिए।—दो सौ बावन०, भा० २, पृ० १६।

आरती—संज्ञा स्त्री० [सं० **आरात्रिक**] १. किसी मूर्ति के ऊपर दीपक को घुमाना। नीराजन। दीप। उ०—चढ़ी अटारिन्ह देखहिं नारी। लिए आरती मंगल थारी।—मानस, १।३०१।

विशेष—इसका विधान यह है कि चार बार चरण, दो बार नाभि, एक बार मुँह के पास तथा सात बार सर्वांग के ऊपर घुमाते हैं। यह दीपक या तो घी से अथवा कपूर रखकर जलाया जाता है। बत्तियों की संख्या एक से कई सौ तक की होती है। विवाह में वर और पूजा में आचार्य आदि की भी आरती की जाती है।

क्रि० प्र०—**उतारना।—करना।**

मुहा०—**आरती लेना**=देवता की आरती हो चुकने पर उपस्थित लोगों का उस दीपक पर हाथ फेरकर माथे लगाना।

२. वह पात्र जिसमें घी की बत्ती रखकर आरती की जाती है। ३. वह स्तोत्र जो आरती के समय गाया या पढ़ा जाता है।

आरत्तिⓅ—संज्ञा स्त्री० [सं० **आर्ति**] दे० 'आर्त्ति'। उ०—श्री कँधाई जी का स्मरन करि कै बोहोत आरत्ति सो बिनती करी।—**दो सौ बावन, भा० २, पृ० १०७।**

आरथ—संज्ञा पुं० [सं०] एक बैल या एक घोड़े से चलनेवाला रथ [को०]।

आरनⓅ—संज्ञा पुं० [सं० **अरण्य**] जंगल। वन। उ०—कीन्हेसि साउज आरन रहई। कीन्हेसि पंखि उड़सि जहँ चहई।—जायसी ग्रं०, पृ० १।

आरनाल, आरनालक—संज्ञा पुं० [सं०] १. कच्चे गेहूँ का खींचा हुआ अर्क। २. काँजी।

आरपार[1]—संज्ञा पुं० [सं० **आर=किनारा+पार=दूसरा किनारा**] यह किनारा और वह किनारा। यह छोर और वह छोर। अधिक। जैसे,—नाव से उसी नदी का आरपार नहीं दिखाई देता।

विशेष—यह शब्द समाहार द्वंद्व समास है, इससे इसके साथ एक वचन क्रिया का ही प्रयोग होता है।

आरपार[2]—क्रि० वि० [सं०] एक छोर से दूसरे छोर तक। एक किनारे से दूसरे किनारे तक। जैसे,—(क) इस दीवार में आरपार छेद हो गया है। (ख) आरपार जाने में कितनी देर लगेगी?

आरफनेज—संज्ञा पुं० [अं०] वह स्थान जहाँ अनाथ बच्चों की रक्षा या पालन होता है। अनाथालय। यतीमखाना। जैसे,—हिंदू आरफनेज।

आरबलⓅ†, **आरबला**Ⓟ†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आयुर्बल'।

आरब्ध—वि० [सं०] आरंभ किया हुआ।

आरब्धि—संज्ञा स्त्री० [सं०] शुरुआत। आरंभ [को०]।

आरभट—संज्ञा पुं० [सं०] १. साहसी व्यक्ति। २. साहस। बहादुरी। ३. विश्वास [को०]।

आरभटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. क्रोधादिक उग्र भावों की चेष्टा। उ०—झूठी मन झूठी सब काया, झूठी आरभटी। अरु झूठन को बदन निहारत मारत फिरत लटी।—सूर (शब्द०)। २. एक प्रकार की नृत्यशैली [को०]। ३. नाटक में एक वृत्ति का नाम

विशेष—इस वृत्ति में यमक का प्रयोग अधिक होता है। इसके द्वारा माया, इंद्रजाल, संग्राम, क्रोध, आघात, प्रतिघात और बंधनादि विविध रौद्र, भयानक और बीभत्स रस दिखाए जाते हैं। इसके चार भेद हैं-वस्तूत्थापन, संफेट, संक्षिप्ति और अवपातन (१) वस्तूत्थापन=ऐसी वस्तुओं का प्रदर्शन या वर्णन जिससे रौद्रादि रसों की सूचना हो। जैसे,-सियारों का बोलना और श्मशान आदि। (२) सफेट=दो आदमियों का झपट आकर भिड़ जाना। (३) संक्षिप्ति=क्रोधादि उग्र भावों की निवृत्ति। जैसे,—रामचंद्र जी की बातों को सुनकर परशुराम के क्रोध की निवृत्ति। (४) अवपातन=प्रवेश से निष्क्रमण तक रौद्रादि भावों का अविच्छिन्न प्रदर्शन।

आरमण—संज्ञा पुं० [सं०] १. हर्ष या आनंद मनाना। २. हर्ष। खुशी। ३. यौनसुख। ४. विश्रामस्थान। विराम [को०]।

आरव—संज्ञा पुं० [सं०] १. शब्द। आवाज। २. आहट। उ०—घुरघुरात हय आरव पाए। चकित बिलोकत कान उठाए।—तुलसी (शब्द०)।

आरषोⓅ—वि० [सं० **आर्ष**] आर्ष। ऋषियों की। उ०—भले भूप कहत भले भदेश भूषन सों लोक लखि बोलिए पुनीत रीति आरषी।—तुलसी (शब्द०)।

आरस१(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० **आलस**] दे० 'आलस्य'। उ०—भोर खरी सारसमुखी आरस भरी जँभाय।—स० सप्तक, पृ० २५३।

आरस२—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'आरसी'।

आरसा—संज्ञा पुं० [हिं० **रस्सा**] १. रस्सा। जैसे,—बोए का आरसा = वह रस्सा जिसमें लंगड़ का बोग्रा बँधा रहता है। २. रस्से की मुद्धी जिसमें कोई चीज बाँधकर लटकाई या उठाई जाय। गाँठ।

आरसी—संज्ञा स्त्री० [सं० **आदर्श**] १. शीशा। आईना। दर्पण। उ०—(क) कहा कुसुम, कह कौमुदी, कितक आरसी जोति। जाकी उजराई लखे, आँखि ऊजरी होति।—बिहारी र०, दो० ५१२। २. एक गहना जिसे स्त्रियाँ दाहिने हाथ के अँगूठे में पहनती हैं। यह एक प्रकार का छल्ला है जिसके ऊपर एक कटोरी होती है जिसमें शीशा जड़ा होता है। उ०—कर मुँदरी की आरसी, प्रतिबिंबित प्यौ पाइ। पीठि दियें निधरक लखै, इकटक डीठि लगाइ।—बिहारी र०, दो० ६११।

आरस्य—संज्ञा पुं० [सं०] रसहीनता। अरसता। शुष्कता [को०]।

आरा१—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० अल्पा० **आरी**] १. एक लोहे की दाँतीदार पटरी जिससे रेत कर लकड़ी चीरी जाती है। इसके दोनों ओर लकड़ी के दस्ते लगे रहते हैं। उ०—यह मन वाको दीजिए जो साँचा सेवक होय। सिर ऊपर आरा सहै, तबहुँ न दूजा सोय।—कबीर (शब्द०)। २. चमड़ा सीने का टेकुआ या सूजा। सुतारी।

यौ०—**आराकश**।

आरा२—संज्ञा पुं० [सं० **आर**] लकड़ी की चौड़ी पटरी जो पहिए की गड़ारी और पुट्ठी के बीच जड़ी रहती है। एक पहिए में ऐसी दो पटरियाँ होती हैं, बाकी और जो पतली पतली चार पटरियाँ जड़ी जाती हैं, उन्हें गज कहते हैं।

आरा३—संज्ञा पुं० [हिं० **आड़ा**] लकी की या पत्थर की पटरी जिसे दीवार पर रखकर उसके ऊपर घोड़िया या टोटा बैठाते हैं। यह इसलिये रखा जाता है कि घोड़िया आदि एक सीध में रहें ऊपर नीचे न हों। दीवारदासा। दासा।

आरा४†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आला'।

आराइश—संज्ञा स्त्री० [फा०] [वि० **आरास्ता**] १. सजावट। २. कागज के फूल पत्ते जो बरात में द्वारपूजा के समय साथ ले जाते हैं। फुलवाड़ी।

आराइशी—वि० [फा०] आराइश या साज सज्जा के काम आनेवाला [को०]।

आराकश—संज्ञा पुं० [हिं० **आरा** + फा० **कश**] आरा चलानेवाला आदमी।

आराज—संज्ञा पुं० [सं०] अराजकता। शासक के अभाव में होनेवाली अशांति [को०]।

आराजी—संज्ञा स्त्री० [अ० **आराजी**] १. भूमि। जमीन। २. खेत।

आराण—संज्ञा पुं० [सं० **रण**] युद्ध। संग्राम।—(डिं०) [को०]।

आरात(पु)—अव्य० [सं०] १. निकट। पास।

आराति—संज्ञा पुं० [सं०] शत्रु। बैरी। उ०—सावधान होइ धाए जानि सकल आराति। लागे बरषन राम पर अस्त्र शस्त्र बहु भाँति।—मानस, ३।१३।

आराती(पु)—संज्ञा पुं० [सं० **आराति**] शत्रु। आराति। उ०—पुनि उठि झपटहिं सुर आराती। टरै न कीस चरन एहि भाँती।—मानस, ६।३३।

आरात्—क्रि० वि० [सं०] १. पास। आसपास। २. दूर। दूरस्थ स्थान पर। ३. तुरंत। चटपट [को०]।

आराधक—वि० [सं०] [स्त्री० **आराधिका**] उपासक। पूजा करनेवाला।

आराधन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० **आराधक, आराधनीय, आराधित**] १. सेवा। पूजा। उपासना। उ०—आराधन का दृढ़ आराधन से दो उत्तर।—अनामिका, पृ० १५६। २. तोषण। तर्पण। प्रसन्न करना। ३. पकाना। राँधना (को०)। ४. अर्जन [को०]।

आराधना१—संज्ञा स्त्री० [सं०] पूजा। उपासना।

आराधना२(पु)—क्रि० स० [सं० **आराध** = **आ** + √**राध्** + हिं० **ना** (प्रत्य०)] १. उपासना करना। पूजना। उ०—केहि आराधहु का तुम चहहू। हम सन सत्य मर्म सब कहहू।—तुलसी (शब्द०)। २. संतुष्ट करना। प्रसन्न करना। उ०—इच्छित फल बिनु शिव आराधें। लहइ न कोटि योग जप साधें।—तुलसी (शब्द०)।

आराधनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] उपासना। सेवा। पूजा। [को०]।

आराधनीय—वि० [सं०] आराधना के योग्य। पूजनीय।

आराधयिता—वि० [सं० **आराधयितृ**] आराधना करनेवाला [को०]

आराधित—वि० [सं०] जिसकी उपासना हुई हो। पूजित।

आराध्य—वि० [सं०] पूज्य। पूजनीय।

आराम१—संज्ञा पुं० [सं०] बाग। उपवन। फुलवारी। उ०—परम रम्य आराम यह जो रामहिं सुख देत।—तुलसी (शब्द०)।

आराम२—संज्ञा पुं० [फा०] १. चैन। सुख। जैसे,—संसार में कौन नहीं आराम चाहता।

क्रि० प्र०—**करना**।—**चाहना**।—**देना**।—**पहुँचना**।—**पाना**।—**लेना**।—**मिलना**।

२. चंगापन। सेहत। स्वास्थ्य। जैसे,—जब से यह दवा दी गई हैं, तब से कुछ आराम है।

क्रि० प्र०—**करना**।—**चाहना**।—**देना**।—**पाना**।—**होना**।

३. विश्राम। थकावट मिटाना। दम लेना। जैसे,—बहुत चले, जरा आराम तो लेने दो।

क्रि० प्र०—**करना**।—**पाना**।—**लेना**।

यौ०—**आरामगाह**। **आरामतलब**। **आरामदान**। **आरामपाई**।

मुहा०—**आराम करना** = सोना। जैसे,—उन्हें आराम करने दो, बहुत जागे हैं। **आराम में होना** = सोना। जैसे,—अभी आराम में हैं, इस वक्त जगाना अच्छा नहीं। **आराम लेना** = विश्राम करना। **आराम से** = फुरसत में। धीरे धीरे। बेखटके। जैसे,—(क) कोई जल्दी पड़ी है, ठहरो आराम से लिखा जायगा। (ख) इस वक्त रखो, घर पर आराम से बैठकर देखेंगे। **आराम से गुजरना** = चैन से दिन कटना।

आराम[३]—वि० [फ़ा०] चंगा। तंदुरुस्त। जैसे,—उस वैद्य ने उसे बात की बात में आराम कर दिया।
क्रि० प्र०—**करना**। **होना**।

आरामकुरसी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] एक प्रकार की लंबी कुरसी जिसमें पीछे की ओर कुछ लंबोतरा ढासना होता है और दोनों ओर हाथ या पैर रखने के लिये लंबी पटरियाँ लगी होती हैं। इस पर आदमी बैठा हुआ आराम से लेट भी सकता है।

आरामगाह—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] सोने की जगह। शयनागार।

आरामतलब—वि० [फ़ा०] [संज्ञा **आरामतलबी**] १. सुख चाहनेवाला। सुकुमार। जैसे,—काम न करने से अमीर लोग आरामतलब हो जाते हैं। २. सुस्त। आलसी। निकम्मा। जैसे,—वह इतना आरामतलब हो गया है कि कहीं जाता आता भी नहीं।

आरामदान—संज्ञा पुं० [फ़ा० **आराम+दान**] १. पानदान। २. सिंगारदान।

आरामपाई—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० **आराम**+हिं० **पाय**] एक प्रकार की जूती जिसे पहलेपहल लखनऊवालों ने बनाया था।

आरामशीतला—संज्ञा स्त्री० [सं०] आनंदी। गंधाढ्या। महानंदा। रामशीतला।
विशेष—यह उपवन में रहने के कारण शीतल होती है। राजनिघंटु में इसे तिक्त, शीतल, पित्तहारिणी, दाह और शोथ को दूर करनेवाली कहा गया है।

आरामाधिपति—संज्ञा पुं० [सं०] बगीचों का अधिकारी।
विशेष—शुक्रनीति के अनुसार आरामाधिपति को फल फूल के पौधे बोने में निपुण, खाद तथा पानी देने का समय जाननेवाला, जड़ी बूटियों को पहचाननेवाला होना चाहिए।

आरामिक—संज्ञा पुं० [सं०] माली [को०]।

आरालिक—वि० [सं०] [वि० स्त्री० **आरालिका**] रसोईदार। पाचक।

आराव—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'आरव' [को०]।

आरास्ता—वि० [फ़ा० **आरस्तह**] सजा हुआ। सुसज्जित। उ०—चमत्कृत चीजों से वह आरास्ता और पैवस्ता है। प्रेमघन, भा० २, पृ० २३४।
क्रि० प्र०—**करना**। **होना**।

आराहीⓅ—वि० [सं० **आराधक**, प्रा० **आराहग**, अप० **आराही**] उपासक। आराधना करनेवाला। उ०—सुर जाको पार न पावैं कोटि मुनी जन ध्याई। दादू रे तन ताको है रे जाको सकल लोक आराही।—दादू० बा०, पृ० ५७३।

आरिⓅ—संज्ञा स्त्री० [हिं० **अड़**] हठ। टेक। जिद। उ०—(क) द्वार हौं भोर ही को आजु। रटत रिरिहा, आरि और न, कौर ही ते काजु।—तुलसी ग्रं०, पृ० ५६८। (ख) तब सकोप भगवान हरि तीछन चक्र प्रहारि। धर ते सीस धरा, धरा, करि लीन्हीं श्रुति आरि।—गोपाल (शब्द०)।

आरिज[१]—संज्ञा पुं० [अ० **आरिज़**] कपोल। गाल। उ०—लगा दे शोलए आरिज़ से गर वह आग गुलशन में।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ४०।

आरिज[२]—वि० [अ०] १. अड़चन डालनेवाला। बाधक। २. होने या लग जानेवाला (रोग आदि); [को०]।

आरिजा[१]—संज्ञा पुं० [अ० **आरिजह्**] १. रोग। बीमारी। २. कष्ट [को०]।

आरिजी—वि० [अ० **आरिज़ी**] १. क्षणस्थायी। नश्वर। २. आकस्मिक। उ०—उसके रुखसार देख जीता हूँ। आरिजी मेरी जिंदगानी है।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० २६।

आरित्रिक—वि० [सं०] अरित्र से संबंधित। नाव के डाँड़ से संबद्ध [को०]।

आरिफ—संज्ञा पुं० [अ० **आरिफ़**] साधु। ज्ञानी। उ०—आरिफ जो हैं उनके हैं बस रंज व राहत एक 'रसा'। जैसे वह गुजरी है यह भी किसी तरह निभ जाएगी।—भारतेंदु ग्रं०, भा० ३, पृ० ८५६।

आरिया—संज्ञा स्त्री० [सं० **आरुक=ककड़ी**] एक फल जो ककड़ी के समान होता है। यह भादों क्वार के महीने में होती है और बहुत ठंढी होती है। यह एक बित्ता लंबी और अँगूठे के बराबर मोटी होती है।

आरी[१]—संज्ञा स्त्री० [हिं० **आरा का** अल्पा०] १. लकड़ी चीरने का बढ़ई का एक औजार।
विशेष—यह लोहे की एक दाँतीदार पटरी होती है जिसमें एक ओर काठ का दस्ता या मूठ लगी रहती है। मूँठ की ओर यह पटरी चौड़ी और आगे की ओर पतली होती जाती है। इससे रेतकर लकड़ी चीरते हैं। हाथीदाँत आदि चीरने के लिये जो आरी होती है वह बहुत छोटी होती है।
२. लोहे की एक कील जो बैल हाँकने के पैने की नोक में लगी रहती है। ३. जूता सीने का सूजा। सुतारी।

आरी[२]Ⓟ—संज्ञा स्त्री० [सं० **आर=किनारा**] ओर। तरफ। उ०—बिछवाए पौरि लों बिछौना जरीबाफन के, खिंचवाए, चाँदनी सुगंध सब आरी में।—रघुनाथ (शब्द०)। २. कोर। अवँठ। बारी।

आरी[३]—वि० [अ०] तंग। हैरान। आजिज। जैसे,—हम तो तुम्हारी चाल से आरी आ गए हैं।
क्रि० प्र०—**आना**।

आरी[४]—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. बबूल की जाति का एक प्रकार का पेड़ जिसे जालबर्बुरक या स्थूलकंटक भी कहते हैं। २. दुर्गंधखैर। बबुरी।

आरु[१]—संज्ञा पुं० [सं०] १. कर्कट। केकड़ा। २. शूकर। ३. वृक्ष विशेष। ४. मेढक [को०]।

आरु[२]—संज्ञा स्त्री० घड़ा। जलपात्र [को०]।

आरुक[१]—संज्ञा पुं० [सं०] औषध के काम आनेवाला एक प्रकार का पौधा जो हिमालय पर होता है। यह शीतलता प्रदान करता है [को०]।

आरुक[२]—वि० हानिकारक [को०]।

आरुण—वि० [सं०] अरुण से संबंध रखनेवाला [को०]।

आरुणि—संज्ञा पुं० [सं०] १. अरुण के पुत्र। २. सूर्य के पुत्र यम, शनैश्चर आदि। ३. उद्दालक ऋषि [को०]।

आरुणेय—संज्ञा पुं० [सं०] आरुणि ऋषि के पुत्र। श्वेतकेतु [को०]

आरुण्य—संज्ञा पुं० [सं०] अरुणता। ललाई [को०]।
आरुष्कर—संज्ञा पुं० [सं०] फलविशेष। भल्लातक [को०]।
आरू¹—संज्ञा पुं० [सं०] पिंगल वर्ण। पीला रंग [को०]।
आरू²—वि० पिंगल वर्णवाला। भूरे और लाल रंग से मिश्रित [को०]।
आरूक-संज्ञा पुं० [सं०] १. एक जड़ी जो हिमालय पर से आती है। आड़। २. आलूबुखारा।
आरूढ़—वि० [सं० आरूढ] १. चढ़ा हुआ। सवार। उ०—खर आरूढ़ नगन दससीसा। मुंडित सिर खंडित भुज बीसा।—मानस, ५।११। २. दृढ़। स्थिर। जैसे,—हम तो अपनी बात पर आरूढ़ हैं।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

यौ०—आरूढ़यौवना। अश्वारूढ़। गजारूढ़। सिंहासनारूढ़।

आरूढ़यौवना—संज्ञा स्त्री० [सं० आरूढयौवना] मध्या नायिका के चार भेदों में से एक। वह स्त्री जिसे पतिप्रसंग अच्छा लगे।
आरूढ़ि—संज्ञा स्त्री० [सं० आरूढि] १. कढ़ाव। चढ़ाई। २. आरूढ़ होने का भाव। ३. तत्परता [को०]।
आरेक—संज्ञा पुं० [सं०] १. घटाना। २. खाली करना। ३. संदेह। ४. आधिक्य [को०]।
आरेचन—संज्ञा पुं०[सं०]१. संकोचन। २. खाली करना या कराना। ३. बहिष्करण। बाहर करना या निकालना [को०]।
आरेचित—वि० [सं०] १. संकुचित। २. रिक्त। ३. घटाया हुआ [को०]।
आरेवत—संज्ञा पुं० [सं०] अमिलतास। आरग्वध।
आरेस(पु)—संज्ञा स्त्री० [देश०] डाह। ईर्ष्या। उ०—कबहुँ न किएउ सवति आरेसू। प्रीति प्रतीति जान सब देसू।—मानस, २।४६।
आरो(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आरव'।
आरोग¹—वि० [सं० आरोग्य] दे० 'आरोग्य'।
आरोगना(पु)—क्रि० स० [सं० आ+रोग (√रुज्=हिंसा)] खाना। उ०—(क) शबरी परम भक्त रघुबर की चरण कमल की दासी। ताके फल आरोगे रघुपति पूरण भक्ति प्रकासी।—सूर (शब्द०)। (ख) आरोगत हैं श्रीगोपाल। षटरस सौंज बनाइ जसोदा, रचिकै कंचन थाल।—सूर०, १०।१०१।
आरोगाना(पु)—क्रि० स०[हिं० आरोगना का प्रे० रूप] भोजन कराना। जिमाना। उ०—तातें आजु जो ए अपने घर भेंसि लैके आवेंगे तो मैं एक दिन कौ माखन आरोगाउँगी।—दो सौ बावन०, भा० २, पृ० ३।
आरोग्य—वि० [सं०] नीरोग। रोगरहित। स्वस्थ। तंदुरुस्त।
आरोग्यता—संज्ञा स्त्री० [सं०] स्वास्थ्य। तंदुरुस्ती।
आरोग्यप्रतिपद्व्रत—संज्ञा पुं० [सं०] स्वास्थ्यलाभ के निमित्त किया जानेवाला एक व्रत [को०]।
आरोग्यशाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] चिकित्सा। अस्पताल [को०]।
आरोग्यस्नान—संज्ञा पुं० [सं०] बीमारी दूर हो जाने के बाद पहले पहल किया जानेवाला स्नान [को०]।
आरोचक—वि० [सं०] चमकीला। प्रकाशवान् [को०]।
आरोचन—वि०[सं०]दे०'आरोचक'। उ०—मोह पटल मोचन आरोचन, जीवन कभी नहीं जनशोचन।—अर्चना, पृ० २।
आरोध—संज्ञा पुं० [सं०] १. अवरोध। बाधा। घेरा। २. कँटीली झाड़ी की बाड़ [को०]।
आरोधना(पु)—क्रि० स० [सं० आरोध] रोकना। छेंकना। आड़ना। उ०—देखन दे पिय मदनगोपालहिं। अति आतुर आरोधि अधिक दुःख तेहि कहँ उरति न औ यम कालहिं। मन तौ पिय पहिले ही पहुँच्यो प्राण तहीं चाहत चित चालहिं।—सूर० (शब्द०)।
आरोप-संज्ञा पुं० [सं०] १. स्थापित करना। लगाना। मढ़ना। उ०—कवियों को उनपर अपने भावों के आरोपण की आवश्यकता नहीं होती।—रस०, पृ० १४। २. एक पेड़ को एक जगह से उखाड़कर दूसरी जगह लगाना। रोपना। बैठाना। ३. मिथ्याध्यास। झूठी कल्पना। ४. एक पदार्थ में दूसरे पदार्थ के धर्म की कल्पना। जैसे,—असंग जीवात्मा में कर्तृत्व धर्म का आरोप। ५. एक पदार्थ में दूसरे पदार्थ के आरोप से उत्पन्न मिथ्या ज्ञान। ६. (साहित्य में) एक वस्तु में दूसरी वस्तु के धर्म की कल्पना।

विशेष—यह आरोप दो प्रकार का माना गया है। एक आहार्य और दूसरा अनाहार्य। आहार्य वह है जहाँ इस बात को जानते हुए भी कि पदार्थों की प्रत्यक्षता से भ्रम की निवृत्ति हो सकती है, कहनेवाला अपनी इच्छा के अनुसार उसका प्रयोग करता है। जैसे 'मुखचंद्र'। यहाँ 'मुख' और 'चंद्र' दोनों के धर्म के साक्षात् द्वारा भ्रम की निवृत्ति हो सकती है। दूसरा 'अनाहार्य' है जिसमें ऐसे दो पदार्थों के बीच आरोप हो जिनमें एक या दोनों परोक्ष हों।

आरोपक—वि० [सं०] दोष या अपराध लगानेवाला।
आरोपण—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० आरोपित, आरोप्य] १. लगाना। स्थापित करना। मढ़ना। २. पौधे को एक जगह से उखाड़कर दूसरी जगह लगाना। रोपना। बैठाना। ३. किसी वस्तु में स्थित गुण को दूसरी वस्तु में मानना। ४. मिथ्याज्ञान। भ्रम।
आरोपना(पु)—क्रि० स० [सं० आरोपण] १. लगाना। उ०—भानु देखि दल चूरन कोप्यौ। तजि अनिलास्त्र अनिल आरोप्यौ।—गोपाल० (शब्द)। २. स्थापित करना। उ०—सो सुनि नंद सबन दै थोपी। शिशुहिं सप्यार अंक आरोपी।—गोपाल (शब्द०)।
आरोपित—वि० [सं०] १. लगाया हुआ। स्थापित किया हुआ। मढ़ा हुआ। उ०—जहाँ तथ्य केवल आरोपित या संभावित रहते हैं वहाँ वे अलंकार रूप में ही रहते हैं।—रस०, पृ० १४। २. रोपा हुआ। बैठाया हुआ।
आरोप्य—वि० [सं०] १. लगाने योग्य। स्थापित करने योग्य। २. रोपने योग्य। बैठाने योग्य।
आरोप्यमाण—संज्ञा पुं० [सं०] १. वस्तु जिसपर किसी अन्य वस्तु का आरोप किया जाय। २. साहित्य में उपमान या अप्रस्तुत [को०]।
आरोह—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० आरोही] १. ऊपर की ओर गमन। चढ़ाव। २. आक्रमण। चढ़ाई। ३. घोड़े, हाथी आदि पर

चढ़ना। सवारी। ४. वेदांत में क्रमानुसार जीवात्मा की ऊर्ध्वगति या क्रमशः उत्तमोत्तम योनियों की प्राप्त होना। ५. कारण से कार्य का प्रादुर्भाव या पदार्थों की एक अवस्था से दूसरी अवस्था की प्राप्ति। जैसे,—बीज से अंकुर, अंकुर से वृक्ष, या अंडे से बच्चे का निकलना। ६. क्षुद्र और अल्प चेतनावाले जीवों से क्रमानुसार उन्नत प्राणियों की उत्पत्ति। आविर्भाव। विकास।

विशेष—आधुनिक सृष्टितत्वविदों की धारणा है कि मनुष्य आदि सब प्राणियों की उत्पत्ति आदि में एक या कई साधारण अवयवियों से हुई है जिनमें चेतना बहुत सूक्ष्म थी। यह सिद्धांत इस सिद्धांत का विरोधी है कि संसार के सब जीव जिस रूप में आजकल हैं उसी रूप में उत्पन्न किए गए। निरवयव जड़ तत्व क्रमशः कई सावयव रूपों में सामने आया, जिनमें, भिन्न भिन्न मात्राओं की चेतनता आती गई। इस प्रकार अत्यंत सामान्य अवयवियों से जटिल अवयववाले उन्नत जीव उत्पन्न हुए। योरप में इस सिद्धांत के बनानेवाले डार्विन साहब है जिनके अनुसार आरोह की निम्नलिखित विधि है—(क) देश काल के अनुसार परिवर्तित होते रहने की इच्छा। (ख) जीवनसंग्राम में उपयोगी अंगों की रक्षा और उनकी परिपूर्णता। (ग) सुदृढ़ांग जीवों की स्थिति और दुर्बलांगों का विनाश। (घ) प्राकृतिक प्रतिग्रह या संवरण जिसमें दंपति-प्रतिग्रह प्रधान समझा जाता है। (च) यह साधारण नियम कि किसी प्राणी का वर्तमान रूप उपर्युक्त शक्तियों का, जो समान आकृति उत्पादन की पैतृक प्रवृत्ति के विरुद्ध कार्य करती है, परिणाम है।

७. संगीत में स्वरों का चढ़ाव या नीचे स्वर से क्रमशः ऊँचा स्वर निकालना। जैसे,—सा, रे, ग, म, प, ध, नि, सा। ८. चूतड़। नितंब। ६. ग्रहण के दस भेदों में से एक।

विशेष—इस ग्रहण में ग्रस्त ग्रह को आवृत करनेवाला ग्रह (राहु) वर्तुलाकार ग्रहमंडल को आवृत करके पुनः दिखाई पड़ता है। फलित ज्योतिष के अनुसार इस प्रकार के ग्रहण के फलस्वरूप राजाओं में परस्पर संदेह और विरोध उत्पन्न होता है।

आरोहक¹—वि० [सं०] १. चढ़नेवाला। आरोही। २. ऊपर उठनेवाला [को०]।

आरोहक²—संज्ञा पुं० [सं०] १. सारथी। २. सवार। ३. वृक्ष [को०]।

आरोहण—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० **आरोहित**] १. चढ़ना। सवार होना। उ०—उन्नति का आरोहण, महिमा शैल शृंग सी श्रांति नहीं।—कामायनी, पृ० १८१। २. अँखुआना। अंकुर निकलना। ३. सीढ़ी। ४. नृत्यमंच [को०]। ५. ऊपर उठना (को०)।

आरोहनⓅ—संज्ञा पुं० [सं० **आरोहण**] दे० 'आरोहण'। उ०—आरोहन अवरोहन के कै कै फल सोहैं।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ४१७।

आरोहनाⓅ—क्रि० अ० [सं० **आरोह**] चढ़ना। तुलसी गलिन भोर दरसन लगि लोग अटनि आरोहैं।—तुलसी ग्रं०, पृ० ३००।

आरोहित—वि० [सं०] १. चढ़ा हुआ। २. निकला हुआ। ३ अँखुआया हुआ।

आरोही¹—वि० [सं० **आरोहिन्**] [स्त्री० **आरोहिणी**] १. चढ़नेवाला। ऊपर जानेवाला। २. उन्नतिशील।

आरोही²—संज्ञा पुं० १. संगीत शास्त्रानुसार वह स्वर जो षड्ज से लेकर निषाद तक उत्तरोत्तर चढ़ता जाय। जैसे,—सा, रे, ग, म, प, ध, नि, सा। २. सवार।

आरौ—संज्ञा पुं० [सं० **आरव**] १. शब्द। ध्वनि। २. आहट। उ०—घरघरात हय आरौ पाएँ। चकित बिलोकत कान उठाएँ।—मानस, १। १५६।

आर्क—वि० [सं०] अर्क अर्थात् (सूर्य या मदार) से संबंध रखनेवाला। [को०]।

आर्कि—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य के पुत्र १. शनि। २. यम। ३. वैवस्वत मनु। ४. कर्ण [को०]।

आर्केस्ट्रा—संज्ञा पुं० [अं०] दे० 'आरचेस्ट्रा'।

आर्गल—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'अर्गल' [को०]।

आर्घा—संज्ञा स्त्री० [सं०] पीले रंग की एक प्रकार की मधुमक्खी जिसका सिर बड़ा होता है। सारंग मक्खी।

आर्घ्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. आर्घा नाम की मक्खियों का मधु। सारंग मधु।

विशेष—यह कफ, पित्त नाशक और आँखों को लाभकारी है। यह पकाने से कुछ कड़ुआ और कसैला हो जाता है।

२. एक प्रकार का महुआ जिसकी सफेद गोंद मालवा देश से आती है।

आर्जⓅ—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आर्य'। उ०—जय मुनि मंडन धरमधर पर उपकारक आर्ज।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ४६१।

आर्जव—संज्ञा पुं० [सं०] १. सीधापन। 'टेढ़ापन' का उलटा। २. सरलता। सुगमता। ३. व्यवहार की सरलता। कुटिलता का अभाव।

आर्जुनि—संज्ञा पुं० [सं०] अर्जुन का पुत्र। अभिमन्यु [को०]।

आर्ट—संज्ञा पुं० [अं०] १. कौशल। कृतित्व। कारीगरी। शिल्प-विद्या। दस्तकारी। २. कला। विद्या। शिल्प। हुनर। जैसे,—चित्रकारी। ३. चित्रकार या भास्कर का काम या व्यवसाय। ४. विश्वविद्यालय का वह विभाग जिसमें चिकित्साविज्ञान और व्यवहारशास्त्र (वकालत) तथा अन्य सब विषयों, विद्याओं और भाषाओं की उच्च शिक्षा दी जाती है। जैसे,—आर्ट्स कालेज।

यौ०—**आर्ट पेपर**=चित्र आदि छापने के लिये एक प्रकार का चमकीला और चिकना कागज। आर्टस्कूल=वह पाठशाला जहाँ शिल्प और कलाकौशल की शिक्षा दी जाती हो।

आर्टिकिल—संज्ञा स्त्री० [अं०] १. लेख। निबंध। २. चीज। वस्तु।

आर्टिकिल्स आँव् एसोसिएशन—संज्ञा पुं० [अं०] किसी संस्था या ज्वाइंट स्टाक कंपनी या संमिलित पूँजी से खुलनेवाली कंपनी की नियमावली।

आर्टिक्यूलेटा—संज्ञा पुं० [अं०] बिना रीढ़वाले ऐसे जंतुओं का एक

भेद जिनके शरीर संकुचित रहते हैं, पर चलने की दशा में फैल जाते हैं, जैसे,— जोंक।

आर्टिलरी—संज्ञा स्त्री० [अं०] तोपखाना।

आर्टिस्ट—संज्ञा पुं० [अं०] वह जो किसी कला में, विशेषकर ललित कला (चित्रकारी, तक्षणकला, संगीत, नृत्य आदि) में कुशल हो।

आर्डर—संज्ञा पुं० (अं० **ऑर्डर**] १. आज्ञा। हुक्म। २. कोई वस्तु भेजने पहुँचाने या मुहैया करने के लिये मौखिक या लिखित आदेश। माँग। जैसे,—(क) वे बादामी कागज की एक गाँठ का आर्डर दे गए हैं।—(ख) आजकल बाहर से बहुत कम आर्डर आते हैं।

क्रि० प्र०— आना।—देना।—मिलना।

यौ०—आर्डरबुक=वह बही जिसमें आदेश या माँग लिखी जाय। **आर्डर सप्लाई। आर्डर सप्लायर।**

३. स्थिरता। शांति। जैसे,—सभा में बड़ा हल्ला मचा, लोग 'आर्डर', 'आर्डर', कहने लगे। ४. क्रम। सिलसिला।

आर्डरी—वि० [अं० **आर्डर**+**हिं० ई (प्रत्य०)**] आर्डरसंबंधी। आर्डर का।

आर्डिनरी—वि० [अं० **ऑर्डिनरी**] १. साधारण। सामान्य। मामूली। जैसे,— आर्डिनरी मेंबर। आर्डिनरी शेयर। २. प्रसिद्ध। प्रधान।

यौ०—आर्डिनरी स्टाक=कंपनी का प्रधान या असली धन।

आर्डिनेंस—संज्ञा पुं० [अं० **ऑर्डिनेन्स**] वह आदेश या हुक्म जो किसी देश के अधिकारी (भारत में वाइसराय, अब राष्ट्रपति) विशेष अवसरों पर जारी करते हैं और कुछ काल के लिये कानून माना जाता है। अस्थायी व्यवस्था या कानून। जैसे,—नए आर्डिनेंस के अनुसार बंगाल में कितने ही युवक गिरफ्तार किए गए।

विशेष—भारत में वाइसराय अपने अधिकार से, बिना कौंसिल की संमति लिए आर्डिनेंस जारी कर सकते थे। ऐसे आर्डिनेंस का काल छह महीने होता है पर आवश्यकता पड़ने पर बढ़ाया भी जा सकता है। स्वतंत्र भारत में यह अधिकार राष्ट्रपति को है।

आर्णव—वि० [सं०] अर्णव या समुद्र संबंधी [को०]।

आर्त, आर्त्त—वि० [सं०] [संज्ञा **आर्ति**] १. पीड़ित। चोट खाया हुआ। २. दुःखित। दुखी। कातर। ३. अस्वस्थ। ४. नश्वर [को०]।

आर्तगल—संज्ञा पुं० [सं०] नीली कटसरैया।

आर्तता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पीड़ा। दर्द। २. दुःख। क्लेश।

आर्तध्यान—संज्ञा पुं० [सं०] जैनियों के मतानुसार वह ध्यान जिससे दुःख हो।

विशेष—यह चार प्रकार का है—(१) अनिष्टार्त संयोगार्त ध्यान। (२) इष्टार्थ वियोगार्त ध्यान। (३) रोग निदानार्त ध्यान और (४) आग्रशोचनमार्त ध्यान।

आर्तध्वनि—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुःखभरी पुकार। दर्दभरी आवाज [को०]

आर्तनाद—संज्ञा पुं० [सं०] वह शब्द जिससे सुननेवाले को यह बोध हो कि उसका उच्चारण करनेवाला दुःख में है। दुःखसूचक शब्द।

आर्तबंधु—संज्ञा पुं० [सं० **आर्तबन्धु**] १. दुखियों का सहायक। दीनबंधु। भगवान्। परमात्मा [को०]।

आर्तव१—वि० [सं०] [स्त्री० **आर्तवी**] ऋतु में उत्पन्न। मौसमी। सामयिक। २. ऋतु संबंधी। ३. मासिक स्राव संबंधी [को०]।

आर्तव२—वह रज जो स्त्रियों की योनि से प्रति मास निकलता है। पुष्प। रज।

यौ०—आर्तव रोग=स्त्रियों के मासिक धर्म का समयानुसार न होना। यह दो प्रकार का होता है—(१) **रजस्राव**=जब रजोधर्म चार से अधिक दिन तक रहे अथवा महीने में एक से अधिक बार हो। (२) **रजस्तंभ**=जब रजोधर्म एक मास से अधिक काल पर हो या कई महीने का अंतर देकर हो।

आर्तवाणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुःखसूचक शब्द। आर्तस्वर। उ०—वृद्धों की आर्तवाणी, क्रंदन रमणियों का भैरव संगीत बना।—लहर, पृ० ६५।

आर्तवेयी—संज्ञा स्त्री० [सं०] रजस्वला स्त्री। ऋतुमति नारी [को०]।

आर्तसाधु—वि० [सं०] दे० 'आर्तबंधु' [को०]।

आर्तस्वर—संज्ञा पुं० [सं०] दुःखसूचक शब्द।

आर्ति१—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पीड़ा। दर्द। २. दुःख। क्लेश। ३. व्याधि। रोग [को०]। ४. विनाश। बर्बादी (को०)। ५. बुराई। निंदा [को०]। ६. धनुष की कोर (को०)।

आर्ति(पु)२†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'आरती'। उ०—फेरि रसोई में जाइ सर्मं भए भोग सराइ श्री ठाकुर जी की मंगला आर्ति करि, सिंगार धरते।—दो सौ० बावन, भा० १, पृ० १०१।

आर्त्विज—वि० [सं०] [स्त्री० **आर्त्विजा**] ऋत्विजासंबंधी।

यौ०—आर्त्विजी दक्षिणा=ऋत्विज की दक्षिणा।

आर्थिक—वि० [सं०] १. धनसंबंधी। द्रव्यसंबंधी। रुपये पैसे का। माली। जैसे,—आर्थिक दशा। आर्थिक सहायता। उ०—लख कर अनर्थ आर्थिक पथ पर, हारता रहा मैं स्वार्थ समर!—अपरा०, पृ० १६६। २. महत्वपूर्ण। महत्व का [को०]। ३. धनयुक्त। धनी [को०]। ४. चतुर। कुशल [को०]। ५. स्वाभाविक। नैसर्गिक [को०]। ६. किसी शब्द के अर्थ से निःसृत [को०]।

आर्थी—संज्ञा स्त्री० दे० 'कैतवापह्नुति'।

आर्थोडाक्स—वि० [अं० **ऑर्थोडॉक्स**] जो अपने धार्मिक मत या सिद्धांत पर अटल हो। अपने धार्मिक मत या सिद्धांत से टस से मस न होनेवाला। कट्टर सनातनी। जैसे,—परिषद के आर्थोडाक्स हिंदू मेंबरों ने शारदा विवाह बिल का घोर विरोध किया।

आर्द्ध—वि० [सं०] आधा। जैसे,—आर्द्धमासिक [को०]।

आर्द्धिक—वि० सं० दे० 'आधिक' [को०]।

आर्द्र—वि० [सं०] [संज्ञा **आर्द्रता**] १. गीला। ओदा। तर। २. सना। लथपथ।

यौ०—आर्द्रवीर। आर्द्राशनि।

आर्द्रक१—संज्ञा पुं० [सं०] अदरक। आदी।

आर्द्रक२—वि० १. आर्द्रा नक्षत्रसंबंधी वा आर्द्रा में उत्पन्न। २. गीला। तर [को०]।

आर्द्रता—संज्ञा स्त्री० [सं०] गीलापन। शीतलता। ठंढक।
आर्द्रपत्रक—संज्ञा पुं० [सं०] वंश। बाँस [को०]।
आर्द्रमाषा—संज्ञा स्त्री० [सं०] माषपर्णी। बनमाष। मसवन।
आर्द्रशाक—संज्ञा पुं० [सं०] हरी अदरक। हरी आदी [को०]।
आर्द्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सत्ताईस नक्षत्रों में छठा नक्षत्र।
विशेष—ज्योतिषियों ने इसे पद्माकार लिखा है, पर कोई कोई इसे मणि के आकार का भी मानते हैं। इस नक्षत्र में केवल एक ही उज्वल तारा है।
२. वह समय जब सूर्य आर्द्रा नक्षत्र का होता है। प्रायः आषाढ़ के आरंभ में यह नक्षत्र उगता है। इसी नक्षत्र से वर्षा का आरंभ होता है। किसान इस नक्षत्र में धान बोते हैं। उनका विश्वास है कि इस नक्षत्र का धान अच्छा होता है। उ०—आर्द्रा धान पुनर्बसु पैया। गा किसान जब बोया चिरैया (शब्द०)। ३. ११ अक्षरों का एक वर्णवृत्त जिसके पहले और चौथे चरण में जगण, तगण, जगण और दो गुरु (ज त ज ग ग) दूसरे और तीसरे चरण में दो तगण, जगण और दो गुरु (त त ज ग ग) होते हैं। वृत्ति उपजाति के अंतर्गत है। उ०—साधो भलो योगन पै बढ़ाओ। खड़े रहो क्यों न रत्चै पचाओ। टीके सु छापे बहुतै लगाओ। वृथा सबै जो हरि को न गाओ (शब्द०)।
यौ०—**आर्द्रालुब्धक** = केतु।
४. अदरक। आदी। ५. अतीस।

आर्द्रावीर—संज्ञा स्त्री० [सं०] वाममार्गी।
आर्द्राशनि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. विद्युत्। बिजली। २. एक अस्त्र।
आर्धिक—संज्ञा पुं० [सं०] १. खेत की आधी उपज लेने की शर्त पर खेत जोतने बोनेवाला। २. पाराशर स्मृति के अनुसार वेश्या माता और ब्राह्मण पिता से उत्पन्न एक संकर जाति।
विशेष—ये लोग ब्राह्मणों की पंक्ति में भोजन कर सकते हैं। मनु के अनुसार यह वर्ण शूद्र माना गया है और भोज्यान्न है।
आर्नव(पु)—वि० [सं० **आर्णव**] आर्णव या समुद्रसंबंधी। उ०—आर्नव नाव विहंग जिमि, फिरि आवै तिहि ठौर।—नंद ग्रं०, पृ० १३२।
आर्म—संज्ञा पुं० [अं०] हथियार। अस्त्र शस्त्र। जैसे,—आर्म्स ऐक्ट।
आर्मपुलिस—संज्ञा स्त्री० [अं० **आर्म्ड पोलिस**] हथियारबंद पुलिस। सशस्त्र पुलिस।
आर्मर्डकार—संज्ञा स्त्री० [अं०] एक प्रकार की गाड़ी जिसपर गोलियों से बचाव के लिये लोहा मढ़ा रहता है। बख्तरदार गाड़ी।
विशेष—ऐसी गाड़ियाँ सेना के साथ रहती हैं।
आर्मी—संज्ञा स्त्री० [अं०] सेना। फौज। जैसे,—इंडियन आर्मी।
विशेष—आर्मी शब्द० देश की समूची स्थल सेना का बोधक है।
आर्य[1]—वि० [सं०] [स्त्री० **आर्या**] १. श्रेष्ठ। उत्तम। २. बड़ा। पूज्य। ३. श्रेष्ठ कुल में उत्पन्न। मान्य। ४. आर्य जाति संबंधी। आर्य जाति का।
आर्य[2]—संज्ञा पुं० [सं०] १. श्रेष्ठ पुरुष। श्रेष्ठ कुल में उत्पन्न।
विशेष—स्वामी, गुरु और सुहृद् आदि को संबोधन करने में इस शब्द का व्यवहार करते हैं। छोटे लोग बड़े को जैसे,—स्त्री पति को, छोटा भाई बड़े भाई को, शिष्य गुरु को आर्य या आर्यपुत्र कहकर संबोधित करते हैं। नाटकों में नटी भी सूत्रधार को आर्य या आर्यपुत्र कहती है।
२. मनुष्यों की एक जाति जिसने संसार में बहुत पहले सभ्यता प्राप्त की थी।
विशेष—ये लोग गोरे, सुविभक्तांग और डील के लंबे होते हैं। इनका माथा ऊँचा, बाल घने, नाक उठी और नुकीली होती है। प्राचीन काल में इनका विस्तार मध्य एशिया तथा कैस्पियन सागर से लेकर गंगा यमुना के किनारों तक था। इनका आदिस्थान कोई मध्य एशिया, कोई स्कडिनेविया और कोई उत्तरीय ध्रुव बतलाते हैं। ये लोग खेती करते थे, पशु पालते थे, धातु के हथियार बनाते थे, कपड़ा बुनते थे और रथ आदि पर चलते थे।
३. सावर्णि मनु का एक पुत्र [को०]। ४. बौद्ध धर्म का पालन करनेवाला व्यक्ति [को०]।
यौ०—**आर्य अष्टांगमार्ग** = बौद्ध दर्शन के अनुसार वह मार्ग जिससे निर्वाण या मोक्ष मिलता है। ये आठ हैं-(१) सम्यग्दृष्टि, (२) सम्यक् संकल्पना, (३) सम्यक् वाचा, (४) सम्यक् कर्मणा, (५) सम्यगाजीव, (६) सम्यग्व्यायाम, (७) सम्यक् स्मृति और (८) सम्यक् समाधि।
यौ०—**आर्यक्षेत्र**। **आर्यपुत्र**। **आर्यभूमि**।
आर्यक—संज्ञा पुं० [सं०] १. आदरणीय जन। पूज्य व्यक्ति। २. पितामह। ३. एक श्राद्ध जो पितरों के संमानार्थ किया जाता है [को०]।
आर्यका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. श्रेष्ठ एवं आदरणीय महिला। २. एक नक्षत्र का नाम [को०]।
आर्यकाव्य—संज्ञा पुं० [सं०] आर्यजातीय काव्य। भारतीय आर्यों का काव्य। उ०—वाल्मीकीय रामायण को मैं आर्यकाव्य का आदर्श मानता हूँ।—रस०, पृ० ११०।
आर्यदेश—संज्ञा पुं० [सं०] वह देश जिसमें आर्यों का निवास है [को०]।
आर्यधर्म—संज्ञा पुं० [सं०] सदाचार। उ०—वह आर्यधर्म, वह शिरोधार्य वैदिक समता।—अणिमा, पृ० ३५।
आर्यपुत्र—संज्ञा पुं० [सं०] आदरसूचक शब्द०। दे० 'आर्य'।
आर्यभट्ट—संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष शास्त्र के एक प्राचीन विद्वान् का नाम, जिन्होंने भारत में सर्व प्रथम बीजगणित का आविष्कार किया था। ये ईसा की पाँचवीं शताब्दी में हुए थे [को०]।
आर्यभाव—संज्ञा पुं० [सं०] सदाचार। शिष्टाचार [को०]।
आर्यमिश्र[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. संस्कृत नाटकों में गौरवान्वित या पूज्य पुरुष के लिये इस शब्द का प्रयोग करते हैं।
आर्यमिश्र[2]—वि० [सं०] पूज्य। गौरवान्वित [को०]।
आर्यरूप—वि० [सं०] ढोंगी। पाखंडी [को०]।
आर्यलिंगी—वि० [सं० **आर्यलिङ्गिन्**] दे० 'आर्यरूप' [को०]।
आर्यव—संज्ञा पुं० [सं०] १. उत्तम आचार। सदाचार। २. न्यायोचित व्यवहार [को०]।

आर्यवाक्--वि० [सं०] आर्यभाषा या संस्कृत बोलनेवाला [को०]।

आर्यवृत्त—वि० [सं०] धार्मिक। सदाचारी [को०]।

आर्यवेश--वि०[सं०] १. आर्यों का सा सभ्य वेश धारण करनेवाला। २. पाखंडी। ढोंगी [को०]।

आर्यशील--वि० [सं०] पुण्यचरित्। धर्मात्मा [को०]।

आर्यश्वेत-- वि० [सं०] संमाननीय। आदरणीय [को०]।

आर्यसत्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. महान् सत्य। २. बौद्धधर्म के चार सिद्धांत जो उसके आधारभूत स्तंभ माने जाते हैं। वे हैं: (१) जीवन दु खमय है, (२) जीवनेच्छा दुःख का कारण है, (३) इच्छा की निवृत्ति दु ख की निवृत्ति है, (४) अष्टमार्ग निर्वाण की ओर ले जाते हैं [को०]।

आर्यसमाज--संज्ञा पुं० [सं०] एक धार्मिक समाज या समिति जिसके संस्थापक स्वामी दयानंद थे।

विशेष--इस समाज के प्रधान दस नियम हैं। इस मत के लोग वेदों के संहिता भाग को अपौरुषेय और स्वतःप्रमाण मानते हैं। मूर्तिपूजा, श्राद्ध, तर्पण नहीं करते। गुण, कर्म और स्वभाव के अनुसार वर्ण मानते हैं।

आर्यसमाजी--संज्ञा पुं० [सं० **आर्यसमाजिन्**] आर्यसमाज का अनुयायी। आर्यसमाज के सिद्धांतों को माननेवाला [को०]।

आर्यसिद्धांत--संज्ञा पुं० [सं० **आर्यसिद्धान्त**] आर्यभट्ट की कृति का नाम [को०]।

आर्यहृद्य—वि० [सं०] सज्जनों को प्रिय लगनेवाला [को०]।

आर्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पार्वती। २. सास। ३. दादी। पितामही।

विशेष—इस शब्द का व्यवहार पद में श्रेष्ठ या बड़ी बूढ़ी स्त्रियों के लिये होता है।

४. अर्धमात्रिक छंद का नाम। इसके पहले और तीसरे चरण में बारह बारह तथा दूसरे और चौथे चरण में १५ मात्राएँ होती हैं।

विशेष—इस छंद में चार मात्राओं के गण को समूह कहते हैं। इसके पहले, तीसरे, पाँचवें और सातवें चरण में जगण का निषेध है। छठे गण में जगण होना चाहिए। जैसे,--रामा, रामा, रामा, आठौ यामा, जपौ यही नामा। त्यागौ सारे कामा, पैहौ बैकुंठ विश्रामा। आर्या के मुख्य पाँच भेद हैं--(१) आर्या या गाहा, (२) गीति या उग्गाहा (३) उपगीति या गाहू, (४) उद्गीति या बिग्गाहा और (५) आर्यागीति या स्कंधक या खंधा।

यौ०—**आर्यासप्तशती**=गोवर्धनाचार्य का आर्या छंद में निबद्ध लगभग ७०० छंदों का संस्कृत मुक्तक काव्य।

आर्यागीत, आर्यागीति--संज्ञा स्त्री० [सं०] आर्या छंद का एक भेद जिसके विषम चरण में १२ और सम चरणों में २० मात्राएँ होती हैं। विषम गणों में जगण नहीं होता तथा अंत में गुरु होता है। जैसे,—रामा, रामा, रामा, आठौयामा। जपौ यही नामा को। त्यागो सारे कामा, पैंहो साँची सुनो हरि धामा को।

आर्यावर्त--संज्ञा पुं० [सं०] उत्तरी भारत जिसके उत्तर में हिमालय, दक्षिण में विंध्याचल, पूर्व में बंगाल की खाड़ी और पश्चिम में अरब सागर है। मनु ने इस देश को पवित्र कहा है।

आर्यावर्तीय—वि० [सं०] १. आर्यावर्त का रहनेवाला। २. आर्यावर्त संबंधी।

आर्यिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कुलीना और सदाचारिणी स्त्री। २. एक नक्षत्र का नाम। ३. भागवत पुराण में वर्णित एक नदी का नाम [को०]।

आरलौ(५)--संज्ञा पुं० [हिं० **अड़**] १. अड़। हठ। २. निवेदन। अनुरोध। उ०--वृषभानु की घरनि जसोमति पुकारचौ। पठै सुत काज क्यों कहति हौं लाज तजि, पाइ परिकै महरि करति आरचौ।—सूर०, १०। १३६९।

आर्ष--वि० [सं०] १. ऋषिसंबंधी। २. ऋषिप्रणीत। ऋषिकृत। ३. वैदिक। ४. ऋषिसेवित।

यौ०--**आर्षक्रम**। **आर्षग्रंथ**। **आर्षपद्धति**। **आर्षप्रयोग**। **आर्षविवाह**।

आर्षक्रम—संज्ञा पुं० [सं०] ऋषियों की प्रथा। ऋषियों की प्राचीन परिपाटी।

आर्षग्रंथ--संज्ञा पुं० [सं० **आर्षग्रन्थ**] ऋषियों द्वारा प्रणीत या रचित धर्मग्रंथ। वेद। शास्त्र। रामायण। पुराण [को०]।

आर्षप्रयोग--संज्ञा पुं० [सं०] १. शब्दों का वह व्यवहार जो व्याकरण के नियम के विरुद्ध हो।

विशेष—प्राचीन संस्कृत ग्रंथों में प्रायः व्याकरणविरुद्ध प्रयोग मिलते हैं। ऐसे प्रयोगों को व्याकरण की रीति से अशुद्ध न कहकर आर्ष कहते हैं।

२ छंद में कवियों का किया हुआ व्याकरणविरुद्ध प्रयोग।

आर्षभ--वि० [सं०] १. साँड़ से उत्पन्न। २. ऋषभवंशीय। ऋषभ गोत्र में उत्पन्न।

आर्षभि--संज्ञा पुं० [सं०] १. ऋषभ का वंशज। २. भारत के प्रथम चक्रवर्ती सम्राट् भरत का एक नाम [को०]।

आर्षभी--संज्ञा स्त्री० [सं०] कपिकच्छु। केवाँच।

आर्षविवाह--संज्ञा पुं० [सं०] आठ प्रकार के विवाहों में तीसरा जिसमें वर से कन्या का पिता दो बैल शुल्क में लेकर कन्या देता था।

आर्षेय--संज्ञा पुं० [सं०]१. ऋषियों का गोत्र और प्रवर। २. मंत्रद्रष्टा ऋषि। ३. पठन पाठन, यजन याजन, अध्ययन अध्यापन आदि ऋषि कर्म।

आर्हंत-दे० [सं०]अर्हंत या जैन सिद्धांत को माननेवाला अथवा उससे संबंध रखनेवाला [को०]।

आलंकारिक--वि० [सं० **आलङ्कारिक**] १. अलंकारसंबंधी। २. अलंकारयुक्त। ३. अलंकार जाननेवाला।

आलंग[१]--वि० [सं० **आलङ्ग**] आलग्न। संलग्न। लगा हुआ [को०]।

आलंग[२]--संज्ञा पुं० [देश०] घोड़ियों की मस्ती।

विशेष— इस शब्द का प्रयोग विशेषकर घोड़ियों के वास्ते ही होता है।

क्रि० प्र०--**पर होना**।—**पर आना**।

आलंब—संज्ञा पुं० [सं० **आलम्ब**] १. अवलंब। आश्रय। सहारा। २.

गति। शरण। ३. अधिष्ठान [को०]। ४. लटकी हुई वस्तु वा पदार्थ [को०]।

आलंबन--संज्ञा पुं० [सं० **आलम्बन**] [वि० **आलंबित**] १. सहारा। आश्रय। अवलंबन। २. रस में एक विभाग जिसके अवलंब से रस की उत्पत्ति होती है। जैसे,– (क) शृंगार रस में नायक और नायिका, (ख) रौद्र रस में शत्रु, (ग) हास्य रस में विलक्षण रूप या शब्द, (घ) करुण रस में शोचनीय वस्तु या व्यक्ति, (च) वीर रस में शत्रु या शत्रु की प्रिय वस्तु, (छ) भयानक रस में भयंकर रूप, (ज) वीभत्स रस में घृणित पदार्थ, पीब, लोहू, मांस आदि (झ) अद्भुत रस में अलौकिक वस्तु, (ट) शांत रस में अनित्य वस्तु, (ठ) वात्सल्य रस में पुत्रादि। ३. बौद्ध मत में किसी वस्तु का ध्यानजनित ज्ञान। यह छह प्रकार का है— रूप, रस गंध, स्पर्श शब्द और धर्म। ४. साधन। कारण। ५. आधार [को०]। ६. योगियों द्वारा कृत मानसिक ध्यान [को०]। ७. सहारा लेना। आश्रय लेना [को०]।

आलंबनता--संज्ञा स्त्री० [सं० **आलंबन+ता (प्रत्य०)**] आलंबन का गुण, स्वभाव या धर्म। उ०—उसकी आलंबनता स्त्री जाति और पुरुष जाति के बीच नैसर्गिक आकर्षण की बड़ी चौड़ी नींव पर ठहरी है।--चिंतामणि, भा० २, पृ० ६०।

आलंबित--वि० [सं० **आलम्बित**] आश्रित। अवलंबित।

आलंबितबिंदु— संज्ञा पुं० [सं० **आलम्बित बिन्दु**] प्रलंबित पुल के आर पार के वे स्थान जहाँ जंजीरों के छोर खंभों से लगे रहते हैं।

आलंबी--वि० [सं० **आलम्बिन्**] झूलने या लटकनेवाला। उ०-- सब पर सोहत गुंजमाल बनमाल सहित आलंबी।--भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ४१२।

आलंभ— संज्ञा पुं० [सं० **आलम्भ**] १. छूना। मिलना। पकड़ना। २. उत्पाटन। उखाड़ना [को०]। मरण। बध। हिंसा।

यौ०—**अश्वालंभ। गवालंभ।**

आलंभन— संज्ञा पुं० [सं० **आलम्भन**] दे० 'आलंभ।'

आलंभी--वि० [सं० **आलम्भिन्**] १. छूनेवाला। २. पकड़ने वाला [को०]।

आल[१]—संज्ञा पुं० [सं०] हरताल।

आल[२]--संज्ञा स्त्री० [सं० **अल=भूषित करना**] १. एक पौधा जिसकी खेती पहले रंग के लिये बहुत होती थी।

विशेष--यह पौधा प्रत्येक दूसरे वर्ष बोया जाता है और दो फुट ऊँचा होता है। इसका मूल रूप ३०-४० फुट का पूरा पेड़ होता है। इसके दो भेद हैं--एक मोटी आल और दूसरी छोटी आल। छोटी आल फसल के बीच से बोई जाती है और मोटी आल बड़े पेड़ों के बीज से आषाढ़ में बोई जाती है। इसकी छाल और जड़ गड़ाँसे से काटकर हौज में सड़ने के लिये डाल दी जाती है और कई दिनों में रंग तैयार होता है। कहते हैं, इससे रँगे हुए कपड़े में दीमक नहीं लगती।

२. इस पौधे से बना हुआ रंग।

आल[३]--संज्ञा स्त्री० [देश०] १. एक कीड़ा जो सरसों की फसल को हानि पहुँचाता है। माहो। २. प्याज का हरा डंठल। ३. कद्दू। लौकी।

आल[४]--संज्ञा पुं० [**अनुध्व०**] झंझट। बखेड़ा। उ०– (क) आठ पहर गया, यों ही माया मोह के आल। राम नाम हिरदय नहीं, जीत लिया जमजाल।--कबीर (शब्द०)।

यौ०—**आल जंजाल, आल जँजाल,**=झंझट। बखेड़ा। उ०-- कंचन केवल हरिभजन, दूजा काय कथीर। झूठा आल जँजाल तजि, पकड़ा साँच कबीर।—कबीर (शब्द०)। आलजाल= (१) बे सिर पैर की बात। इधर उधर की बात (२) अंड बंड या इधर उधर की वस्तु।

आल[५]--संज्ञा पुं० [सं० **ओल या आर्द्र**] १. गीलापन। तरी। जैसे,– ऐसा बरसा कि आल से आल मिल गई। २. आँसू। उ०-- सिसक्यो जल किन लेत दृग, भर पलकन मैं आल। बिचलत खैंचत लाज कौ मचलत लखि नँदलाल।--स० सप्तक, पृ० १६२।

आल[६]—संज्ञा स्त्री० [अ०] १. बेटी की संतति।

यौ०--**आल औलाद**=बाल बच्चे।

२. वंश। कुल। खानदान।

आल[७]--संज्ञा पुं० [देश०] गाँव का एक भाग।

आल[८]--वि० [सं० **ओल या आर्द्र**] गीला। कच्चा। हरा। उ०— आलहि बाँस कटाइन डँडिया फदाइन हो साधो।--पलटू०, भा० ३, पृ० १२।

आल[९]--संज्ञा पुं० [**देश०**] एक प्रकार का कँटीला पौधा। स्याह काँटा किंगरई। वि० **दे०** 'किंगरई'।

आलकस—संज्ञा पुं० [सं० **आलस्य**] [वि० **आलकसी, क्रि० अ० अलकसाना**] आलस्य।

आलक्षण--संज्ञा पुं० [सं०] १. परीक्षण। २. निरीक्षण। देखना। समझना [को०]।

आलक्षण्य— संज्ञा पुं० [सं०] १. दुर्भाग्य। २. अपराध [को०]।

आलक्षि—वि०[सं०]निरीक्षक। लक्षित करने या समझनेवाला[को०]।

आलक्षित—वि० [सं०] १. भली भाँति देखा और समझा हुआ। २. अनुभव किया हुआ [को०]।

आलक्ष्य--वि० [सं०] १. दिखाई पड़ने लायक। प्रकट। २. जो कुछ कुछ दिखाई पड़े। पूरी तौर से न दिखाई पड़नेवाला [को०]।

आलड्वाल—संज्ञा पुं० [**अनु०**] आडंबर। साज सज्जा।

आलगर्द--संज्ञा पुं० [सं०] जल में रहनेवाला एक साँप [को०]।

आलथीपालथी—संज्ञा स्त्री० [**हिं० पालथी**] बैठने का एक आसन जिसमें दाहिनी एँड़ी बाएँ जंघे पर और बाई एड़ी दाहिने जघे पर रखते हैं।

क्रि० प्र०— **मारना।— लगाना।**

आलन—संज्ञा पुं० [देश०] १. घास भूसा आदि जो दीवार पर लगाई जानेवाली मिट्टी में मिलाया जाता है। २. खर पात जो चूल्हा बनाने की मिट्टी या कंडे पाथने के गोबर में मिलाया जाता है। ३. बेसन या आटा जो साग बनाने के समय मिलाया जाता है।

आलना--संज्ञा पुं० [सं० **आलय**, फा० **लाना**] घोंसला।

आलपाका—संज्ञा पुं० [**हिं०**] दे० 'अलपाका'।

आलपीन—संज्ञा स्त्री० [पुर्त० आलफिनेत] एक घुंडीदार छोटी सूई। जिसे अँगरेजी में पिन कहते हैं।

आलबिल(पु)—संज्ञा पुं० [सं० ऐलविल] कुबेर।—नंद ग्रं०, पृ० २१।

आलम[1]—संज्ञा पुं० [अ०] १. दुनिया। संसार। जगत्। जहान। उ०—कई आलम किए हैं कत्ल उनने। करे क्या एकला हातिम बिचारा।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ४०। २. अवस्था। दशा। जैसे,—वे बेहोशी के आलम में हैं। ३. जनसमूह। बड़ी जमात। ४. हिंदी के एक रीतिकालीन कवि का नाम।

आलम[2]—संज्ञा पुं० १. एक प्रकार का नृत्य। उ०—उलथा टेंकी आलम सदिंड। पद पलटि हुरूमयी निशंकचिंड।—केशव (शब्द०)।

आलमन—संज्ञा पुं० [सं०] १. ग्रहण। पकड़ना। २. छूना। स्पर्शन। ३. मारना। हिंसन। वध करना [को०]।

आलमनक—संज्ञा पुं० [पुर्त०] तिथिपत्र। पंचांग। जंत्री।

आलमारी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अलमारी'।

आलय—संज्ञा पुं० [सं०] १. घर। गृह। मकान। २. स्थान।

यौ०—**अनाथालय। देवालय। विद्यालय। शिवालय।**

आलयविज्ञान—संज्ञा पुं० [सं०] अहंकार का आधार (बौद्ध)।

आलर्क—वि० [सं०] १. अलर्क से संबंधित। अलर्क का। २. पागल कुत्ते का (जहर) [को०]।

आलवण्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. लावण्यहीनता। असुंदरता। २. स्वादविहीनता [को०]।

आलवाल—संज्ञा पुं० [सं०] थाल। अवाल।

आलस[1]—वि० [सं०] आलसी। सुस्त। काहिल।

आलस[2](पु)—संज्ञा पुं० [सं० आलस्य] [वि० आलसी] आलस्य। सुस्ती। उ०—तौ कौतुकिअन्ह आलसु नाहीं।—मानस, १।८१।

आलसी—वि० [हिं० आलस+ई (प्रत्य०)] सुस्त। काहिल। धीमा। अकर्मण्य। उ०—आलसी अभागे मोसे तैं कृपालु पाले पोसे राजा मेरे राजाराम, अवध सहरु।—तुलसी ग्रं, पृ० ५८१।

आलस्य—संज्ञा पुं० [सं०] कार्य करने में अनुत्साह। सुस्ती। काहिली।

आला[1]—संज्ञा पुं० [सं० आलय] ताक। ताखा। अखा।

आला[2]—वि० [अ० आलह्] १. औवल दर्जे का। सबसे बढ़िया। श्रेष्ठ। उ०—कूँड़ा आला चाम का, भीतर भरा कपूर। दरिया बासन क्या करै, वस्तु दिखावै नूर।—दरिया० बानी, पृ० ३६। २. सितार के उतरे और मुलायम स्वर।

आला[3]—संज्ञा पु० [अ०] १. औजार। हथियार। २. उपकरण। यंत्र। साधन [को०]।

आला[4]—संज्ञा पुं० [सं० अलात] कुम्हार का आँवा। पजावा।

आला[5](पु)†—वि० [सं० आर्द्र, प्रा० अल्ल] १. गीला। ओदा। नम। भीगा। उ०—आड़े दै आले बसन जाड़े हूँ की राति। साहसु ककै सनेह बस सखी सबै ढिग जाति।—बिहारी र०, दो० २८३। २. हरा। टटका। ताजा।

आलाइश—संज्ञा स्त्री० [फा०] १. गंदी वस्तु। मल। गलीज। २. घाव का गंदा खून, पीब वगैरह। ३. पेट के भीतर की अँतड़ी आदि।

आलाटाली—संज्ञा पुं० [आला=अनु०+हिं० टालना+ई (प्रत्य०)] टालमटोल। उ०—ये इनकी आलाटाली है पर अपनी बात का प्रमाण देने के लिये मैं इनसे कोई चीज ले लूँ......।—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० ३६।

आलात[1]—संज्ञा पुं० [सं०] लकड़ी जिसका एक छोर जलता हुआ हो। जलती लुआठी। लुक।

यौ०—**आलातक्रीड़ा। आलातचक्र।**

आलात[2]—संज्ञा पुं० [अ०] औजार।

यौ०—**आलात काश्तकारी**=खेती में काम आनेवाले हल, पहटा आदि यंत्र।

आलात[3]—संज्ञा पुं० [देश०] जहाज का रस्सा।

यौ०—**आलातखाना**=जहाज में रस्से वगैरह रखने की कोठरी।

आलातचक्र—संज्ञा पुं० [सं०] वह मंडल जो जलते हुए लुक को वेग के साथ घुमाने से दिखाई पड़ता है।

आलान—संज्ञा पुं० [सं०] १. हाथी बाँधने का खंभा या खूँटा। २. हाथी बाँधने का रस्सा या जंजीर। ३. बंधन। रस्सी।

आलाप—संज्ञा पुं० [सं०] १. कथोपकथन। भाषण। बातचीत।

यौ०—**वार्तालाप।**

२. संगीत के सात स्वरों का साधन। तान।

क्रि० प्र०—**करना।—लेना।**

३. प्रश्न। जिज्ञासा [को०]। ४. संगीत में सात स्वर [को०]।

आलापक—वि० [सं०] १. बातचीत करनेवाला। २. गानेवाला।

आलापचारी—संज्ञा स्त्री० [सं० आलाप+चारी] स्वरों को साधने की क्रिया। तान लडाने की क्रिया। जैसे,—वहाँ तो खूब आलापचारी हो रही है।

आलापन—संज्ञा पुं० [सं०] १. स्वस्तिवाचन। स्वस्तिपाठ। २. बातें करना। ३. संगीत में आलाप लेने की क्रिया [को०]।

आलापना—क्रि० स० [सं० आलापन या आलाप+हिं० ना (प्रत्य०)] गाना। सुर खींचना। तान लड़ाना।

आलापित—वि० [सं०] १. कथित। संभाषित। २. गाया हुआ।

आलापिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बाँसुरी। बंसी। २. तुमड़ी।

आलापी—वि० [सं० आलापिन्] [वि० स्त्री० आलापिनी] १. बोलनेवाला। उ०—माधों जू, मो तैं और न पापी। मन क्रम बचन दुसह सबहिन सौं कटुक बचन अबलापी।—सूर० १।१४०। २. आलाप लेनेवाला। तान लगानेवाला। गानेवाला।

आलाबु, आलाबू—संज्ञा पुं० [सं०] अलाबु। लौकी [को०]।

आलारासी—वि० [सं० आलस्य ?] १. बेपरवाह। निर्द्वंद्व। २. जहाँ किसी बात की पूछपाछ न हो। बेपरवाही का।

यौ०—**आलारासी कारखाना**=अंधेरखाता।

आलावर्त—संज्ञा पुं० [सं०] कपड़े का पंखा।

आलास्य—संज्ञा पुं० [सं०] मगर नामक जलजंतु [को०]।

आलिंग—संज्ञा पुं० [सं० **आलिङ्गन**] दे० 'आलिंगन'। उ०—बिन देखे मन होत वाहि कैसे करि देखें। देखे ते चित होत अंग आलिंग बिसेखें।—ब्रज ग्रं०, पृ० ६०।

आलिंगन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० **आलिंगित, आलिंगी, आलिंग्य**] गले से लगाना। हृदय से लगाना। परिरंभण। उ०—अजहूँ न लक्ष्मी चंद्रगुप्तहिं गाढ़ आलिंगन करै।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० १।

विशेष—यह सात प्रकार की बहिर्रतियों में गिना गया है; जैसे—आलिंगन, चुंबन, परस, मर्दन, नख-रद-दान। अधर-पान सो जाहिए, बहिरति सात सुजान।—केशव ग्रं० भा० १, पृ० १४।

आलिंगना(पु)—क्रि० स० [सं० **आलिङ्गन**] अँकवार भरना। भेंटना। लपटाना। हृदय से लगाना। गले लगाना। उ०—पिय चूम्यो मुँह चूमि होत रोमांचित सगबग। आलिंगत मदमाति पीय अंगनि मेले अंग।—व्यास (शब्द०)।

आलिंगित—वि० [सं० **आलिङ्गित**] गले लगाया हुआ। हृदय से लगाया हुआ। परिरंभित। उ०—प्रतिजन प्रतिमन आलिंगित तुमसे हुई सभ्यता यह नूतन।—अनामिका, पृ० २१।

आलिंगी—वि० [सं० **आलिङ्गिन्**] आलिंगन करनेवाला।

आलिंग्य[१]—वि० [सं० **आलिङ्ग्य**] गले लगाने योग्य। हृदय से लगाने योग्य। परिरंभण करने योग्य।

आलिंग्य[२]—संज्ञा पुं० एक प्रकार का मृदंग।

आलिंजर—संज्ञा पुं० [सं०] बड़ा घड़ा या झंझर [को०]।

आलिंद, आलिंदक—संज्ञा पुं० [सं० **आलिन्द, आलिन्दक**] दे० 'अलिंद' [को०]।

आलिंपन—संज्ञा पुं० [सं० **आलिम्पन**] १. दीवार, फर्श आदि की सफेदी या लिपाई पुताई काम। २. लीपना। पोतना [को०]।

आलि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सखी। सहेली। वयस्या। २. बिच्छू। ३. भ्रमरी। ४. पंक्ति। अवली। ५. सेतु। बाँध। ६. रेखा।

आलिखित—वि० [सं०] १. चारों ओर रेखांकित। २. चित्रित। ३. लिखित। लिखा हुआ [को०]।

आलिप्त—वि० [सं० **आलिप्त**] अलेप। निर्लेप। उ०—लिप्त नाहिं आलिप्त रहत है ज्यों रवि जोति समावै।—जग० बानी पृ० ११६।

आलिम—वि० [अ०] विद्वान्। पंडित। जानकार।

आली[१]—वि० [सं०] सखी। सहेली। गोइयाँ। उ०—एक कहइ नृपसुत तेइ आली। सुने जे मुनि सँग आए काली।—मानस, १।२२६।

आली[२]—संज्ञा स्त्री० [देश०] चार बिस्वे के बराबर का एक मान।

विशेष—यह शब्द गढ़वाल और कुमाऊँ में बोला जाता है।

आली[३](पु)—वि० स्त्री० [सं० **आर्द्र**] भीगी हुई। गीली। तर।

आली[४]—वि० [अ०] बड़ा। उच्च। श्रेष्ठ। माननीय।

यौ०—**आलीशान। आलीजाह। जनाब आली।**

विशेष—इस शब्द का प्रयोग प्रायः यौगिक शब्दों के साथ होता है।

आली[५]—[वि० **आल**] आल के रंग का। जैसे,—आली रंग।

आली[६]—संज्ञा स्त्री० [सं० **आलि**] पंक्ति। अवली। उ०—बरनै दीन-दयाल बैठि हंसन की आली, मंद मंद पग देत अहो यह छल की चाली।—दीन० ग्रं०, पृ० २०६।

आलीजा(पु)—वि० [अ० **आलीजाह**] दे० 'आलीजा'। उ०—आलीजा इक बार, हम सबकों लै साथ मैं। जंगल हरनि सिकार, खेलौ ये अरजै करें। हम्मीर०, पृ० २।

आलीजाह—वि० [अ०] ऊँचे दर्जे का। उच्चपदस्थ। श्रीमान्।

आलीढ[१]—संज्ञा पुं० [सं०] दाहिनी जाँघ को फैलाकर और बाईं जाँघ को मोड़कर बाण चलाने की मुद्रा [को०]।

आलीढ़[२]—वि० १. खाया हुआ। भुक्त। २. चाटा हुआ। ३. घायल। चोट खाया हुआ [को०]।

आलीढक—संज्ञा पुं० [सं०] हाल के ब्याए हुए बछड़े की उछल कूद [को०]।

आलीन[१]—वि० [सं०] १. परिरंभित। आलिंगित। २. चिपका हुआ। श्लिष्ट। ३. द्रवित। पिघला हुआ [को०]।

आलीन—संज्ञा पुं० १. टीन। २. सीसा। ३. संपर्क [को०]।

आलीनक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'आलीन' [को०]।

आलीशान—वि० [अ०] भव्य। भड़कीला। शानदार। विशाल।

आलुंचन—संज्ञा पुं० [सं० **आलुञ्चन**] फाड़ना। चीरना। छेदना [को०]।

आलुंठन—संज्ञा पुं० [सं० **आलुण्ठन**] चोरी करना। छीनना। अपहरण करना। लूटना [को०]।

आलु[१]—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार का मूल। २. आबनूस। ३. नाव या बेड़ा। ४. पेचक। उल्लू [को०]।

आलु[२]—संज्ञा स्त्री० पानी रखने की झारी। मटकी [को०]।

आलुक—संज्ञा पुं० [सं०] १. आलूकंद। २. शेषनाग।

आलुल—वि० [सं०] कंपित। हिलता हुआ [को०]।

आलुलायित—वि० [सं० **आलुलित > आलुलायित = हिलता हुआ**। **कंपित**। उ०—बजी निशा के बीच आलुलायित केशों के तम में।—नील०, पृ० १०।

आलुलित—वि० [सं०] १ विचलित। २. क्षुब्ध [को०]।

आलू—संज्ञा पुं० [सं० **आलु**] एक प्रकार प्रसिद्ध कंद।

विशेष—क्वार कार्तिक में क्यारियों के बीच मेंड़ बनाकर आलू बोए जाते हैं जो पूस में तैयार हो जाते हैं। एक पौधे की जड़ में पाव भर के लगभग आलू निकलता है। भारतवर्ष में अब आलू की खेती चारो ओर होने लगी है, पर पटना, नैनीताल और चीरापूँची इसके लिये प्रसिद्ध स्थान हैं। नैनीताल के पहाड़ी आलू बहुत बड़े बड़े होते हैं। आलू दो तरह के होते हैं लाल और सफेद। यह पौधा वास्तव में अमेरिका का है। वहाँ से सन् १५८० ई० में यह यूरोप में गया। भारतवर्ष में इसका उल्लेख सबसे पहले उस भोज के विवरण में आता है जो सन् १६१५ ई० में सर टामस रो को आसफ खाँ की ओर से अजमेर में दिया गया था। जब पहले पहल आलू भारतवर्ष में आया था तब हिंदू लोग उसे नहीं खाते थे;

केवल मुसलमान और अँगरेज ही खाते थे। पर धीरे धीरे इसका खूब प्रचार हुआ और अब हिंदू व्रत के दिनों में भी इसे खाते हैं। 'आलू' शब्द पहले कई प्रकार के कंदों के लिये व्यवहृत होता था, विशेषकर 'अरुआ' के लिये। फारसी में कुछ गोल फलों के लिये भी आलू शब्द का व्यवहार होता है, जैसे,—आलूबुखारा, शफतालू आलूचा।

यौ०—**रतालू। शफतालू।**

आलू२—संज्ञा स्त्री० [सं० **आलु**] छोटा जलपात्र। झारी। लुटिया। घंटी।

आलूचा—संज्ञा पुं० [फा० **आलूचह्**] १. एक पेड़।

विशेष—यह पेड़ पश्चिमी हिमालय पर गढ़वाल से कश्मीर तक होता है। इसका फल गोल गोल होता है और पंजाब इत्यादि में बहुत खाया जाता है। फल पकने पर पीला और स्वाद में खटमीठा होता है। अफगानिस्तान में आलूचे की एक जाति होती है, जिसके सूखे हुए फल आलूबुखारा के नाम से भारतवर्ष में आते हैं। आलूचे के पेड़ से एक प्रकार का पीला गोंद निकलता है। फल की गुठलियों से तेल निकाला जाता है, जो कहीं कहीं जलाने के काम आता है। इसकी लकड़ी बहुत मुलायम होती है। इससे काश्मीर में रंगीन और नक्काशीदार संदूक बनाते हैं।

पर्या०—**भोटिया बदाम। गर्दालू।**

आलूचाप—संज्ञा पुं० [हिं० **आलू + अं० चॉप**] आलू का पकवान जो उबाले हुए आलू को पीसकर और गोल या चिपटी टिकियों की तरह बनाकर घी या तेल में तलकर बनाया जाता है। उ०—अंत में मैंने 'विशुद्ध' आलूचाप का प्रस्ताव कैलास के सामने रखा।—संन्यासी, पृ० ३४०।

आलूदम—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'दमआलू'।

आलूदा- वि० [**फा० आलूदह**] लथपथ। लिथड़ा हुआ। लथापथ। सना हुआ। उ०—अश्क खूँ आलूदा मेरे इस कदर जारी है आज।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ४०।

आलून—वि० [सं०] काटा हुआ। काटकर अलग किया हुआ [को०]।

आलूबालू—संज्ञा पुं० [सं० **आलू + बालू (अनु०)**] आलूचे की तरह का एक पेड़ जो पश्चिमी हिमालय पर होता है। इससे एक प्रकार का गोंद निकलता है। योरप में इसके फलों का आचर और मुरब्बा डालते हैं, बीज से शराब को स्वादिष्ट करते हैं और लकड़ी से बीन और बाँसुरी आदि बाजे बनाते हैं।

पर्या०—**गिलास। ओलची।**

आलूबुखारा-संज्ञा पुं० [फा० **आलू बुखारह्**] आलूचा नामक वृक्ष का सुखाया हुआ फल।

विशेष—यह फल पश्चिमी हिमालय में भी होता है, परंतु बुखारा प्रदेश का उत्तम समझा जाता है। इसी से इसका यह नाम प्रसिद्ध है। यह आँवले के बराबर और आड़ू के आकार का होता है और स्वाद में खटमीठा होता है। हिंदुस्तान में आलू-बुखारा अफगानिस्तान से आता है। यह दस्तावर है और ज्वर को शांत करता है। इसी से रोगियों को इसकी चटनी खिलाते हैं।

आलूशफतालू—संज्ञा पुं० [हिं० **आलू + फा० शफतालू**] (निरर्थक)] लड़कों का एक खेल जो पच्छिम में दिल्ली, मेरठ आदि स्थानों में खेला जाता है।

विशेष—इसमें एक लड़का दूसरे को घोड़ा बनाकर उसकी पीठ पर सवार होता है और उसकी आँखें अपने हाथों से बंद कर लेता है। तब एक तीसरा लड़का उसके पीछे खड़ा होकर उँगलियाँ बुझाता है। यदि घोड़ा बना हुआ लड़का उँगलियों की संख्या ठीक ठीक बतला देता है, तो वह खड़ा हो जाता है और उस उँगली बुझानेवाले लड़के को घोड़ा बनाकर उस पर सवार होता है।

आलेख१—संज्ञा पुं० [सं०] १. लिखावट। लिपि। लिखाई। २. लिखित वस्तु। लिखित सामग्री (प्रमाण आदि के लिये उपयोगी)।

आलेख२Ⓟ—वि० [सं० **अलक्ष्य, प्रा० अलक्ख**] जो लक्ष्य में न आए। अलक्ष्य। उ०—अकह आलेख को देखिया केसो भयो ब्रह्मरागी।—केशव० अमी०, पृ० १०।

आलेखन—संज्ञा पुं० [सं०] १. चित्र। तस्वीर। उ०—चतुर शिल्पी या चितेरे की भाँति अनेक सुंदर रूप या आलेखन उपस्थित किए।—पोद्दार अभि ग्रं०, पृ० ६५३। २. लिखने का कार्य। लिखना। उ०—इस ग्रंथ के आलेखन या संपादन में संपादन समिति के मित्रों के साथ विविध समिति के संयोजकों तथा अन्य मित्रों का सहयोग रहा है।—शुक्ल अभि० ग्रं०, पृ० २।

आलेख्य१—संज्ञा पुं० [सं०] चित्र। तसवीर।

आलेख्य२—वि० लिखने योग्य।

यौ०—**आलेख्य विद्या** = मुसव्वरी। चित्रकारी।

आलेपन—संज्ञा पुं० [सं०] १. लेप। २. उपलेप। पलस्तर।

आलेपन—संज्ञा पुं० [सं०] लेप करने का कार्य।

आलैⓅ—संज्ञा पुं० [सं० **आलय**] घर। निधान। भवन। उ०—जो पै प्रभु करुना के आलै। तौ कत कठिन कठोर होत मन, मोहिं बहुत दुख सालै।—सूर०, १०।४७७२।

आलोक—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० **आलोक्य**] १. प्रकाश। चाँदनी। उजाला। रोशनी। २. चमक।

यौ०—**आलोकदायक। आलोकमाला।**

३. दर्शन। दीदार।

आलोकन—संज्ञा पुं० [सं०] दर्शन। अवलोकन।

आलोकनीय—संज्ञा पुं० [सं०] दर्शनीय। देखने योग्य।

आलोकित—वि० [सं०] १. देखा हुआ। २. प्रकाशित। उद्भासित।

आलोचⓅ—संज्ञा पुं० [सं० **आ + लुञ्चन**] खेतों में गिरा हुआ अन्न बीनना। शीला। (डिं०)।

आलोचक—वि० [सं०] [वि० **स्त्री० आलोचिका**] १. देखनेवाला। २. जो किसी वस्तु के गुण दोष की विवेचना करे। जो आलोचना करे। जाँचनेवाला।

आलोचणⓅ—संज्ञा पुं० [हिं० **आलोच**] दे० 'आलोच'।

आलोचन—संज्ञा पुं० [सं०] १. दर्शन। २. गुण दोष का विचार। विवेचन। जाँच। ३. जैनमतानुसार पाप का प्रकाशन।

आलोचना—संज्ञा स्त्री० [सं०] किसी वस्तु के गुण दोष का विचार। गुण-दोष-निरूपण।

आलोचित--वि० [सं०] जिसके गुण दोष का निरूपण किया गया हो। विचार किया हुआ।

आलोड़न--संज्ञा पुं० [सं० **आलोडन**] १. मथना। हिलोरना। २. विचार। सोच विचार।

अलोड़ना(पु)— क्रि० स० [सं० **आलोडन**] १. मथना। २. हिलोरना। ३. खूब सोचना विचारना। ऊहापोह करना।

आलोड़ित-वि० [सं० **आलोडित**] १. मथा हुआ। २. हिलोरा हुआ। ३. सुचिंतित। सोचा हुआ।

आलोप—संज्ञा पुं० [सं०] १. लुप्त करना। २. पहले का निश्चय रद्द करना [को०]।

आलोल--वि० [सं०] १. कुछ कुछ हिलता हुआ। तनिक चंचल। २. क्षुब्ध। अस्तव्यस्त। जैसे,—केश [को०]।

आलोलित—वि० [सं०] क्षुब्ध किया हुआ। आंदोलित [को०]।

आल्टरनेटिव--संज्ञा पुं० [अं०] १. चारा। दूसरा उपाय। उ०--इनमें से किसी को एप्रूवर बनाना होगा, और कोई आल्टरनेटिव नहीं हैं।--गबन, पृ० २८२।

आल्वार--संज्ञा पुं० [देश०] दक्षिण भारतीय भागवत धर्म के संत उपदेशकों की श्रेणी।

आल्हा--संज्ञा पुं० [देश०] १. ३१ मात्राओं के एक छंद का नाम जिसे बीर छंद भी कहते हैं। इसमें १६ मात्राओं पर विराम होता है। जैसे,--सुमिरि भवानी जगदंबा कौ श्री सारद के चरन मनाय। आदि सरस्वति तुमका ध्यावों माता कंठ बिराजौ आय। २. महोबे के एक पुरुष का नाम जो पृथ्वीराज के समय में था। ३. बहुत लंबा चौड़ा वर्णन।

मुहा०-**आल्हा गाना**=अपना वृत्तांत सुनाना। आपबीती सुनाना।

यौ०-**आल्हा का पँवरा**=व्यर्थ का लंबा चौड़ा वर्णन। वितंडाबाद।

आवंतक--सं० [सं० **आवन्तक**] अवंती से संबंधित [को०]।

आवंतिक--वि० [सं० **आवन्तिक**] दे० 'आवंतक'।

आवंती संज्ञा स्त्री० [सं० **आवन्ती**] अवंति और उसके आस पास बोली जानेवाली प्राचीन भाषा।

आवंत्य—वि० [सं० **आवन्त्य**] १. अवंति देश का। २. आवति देश का निवासी।

आवदन—संज्ञा पुं० [सं० **आवन्दन**] नमस्कार। प्रणाम। [को०]।

आवँ(पु)†--संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आँवा'।

आव(पु)--संज्ञा पुं० [सं० **आयु**] आयु। जिंदगी। उ०-- मोहन दृग इन दृगन से, जा दिन लख्यो न नेक। मति लेखौ वह आव में, विधि लेखनि लै छेंक।--रसनिधि (शब्द०)।

आवआदर†--संज्ञा पुं० [हिं० **आना** + सं० **आदर**] आवभगत। आदर-सत्कार।

आवक- संज्ञा पुं० [हिं० **आवना** + **क** (प्रत्य०)] **आमद**। **पहुँच**।

यौ०— **आवकजावक**=आनाजाना।

आवज(पु)— संज्ञा पुं० [सं० **आतोद्य**, प्रा० **आओज्ज**, **आवज्ज**] एक पुराना बाजा जो ताशे के ढंग का होता है। उ०--उद्धत सुजान सुत बुद्धिबलवान सुनि, दिल्ली के दरनि बाजै आवज उछाही के।--सुजान०, पृ० १०१।

आवझ(पु)— संज्ञा पुं० [हिं० **आवज**] दे० 'आवज'। उ०—पटह पखाउज आवझ सोहैं। मिलि सहनाइन सों मन मोहैं।--रामचं०, पृ० ४४।

आवटना[१](पु)--संज्ञा पुं० [सं० **आवर्त्त**, पा० **आवट्ट**] १. हलचल। उथल पुथल। डावाँडोलपन। अस्थिरता। २ संकल्प विकल्प। ऊहापोह। उ०—जा घट जान बिनान है, तिस घट आवटना घना। बिन खाँड़े संग्राम है नित उठि मन सों जूझना।—कबीर (शब्द०)।

आवटना[२](पु)--क्रि० स० गरम करना। औटाना। खौलाना।

आवटना[३](पु)-क्रि० अ० गरम होना। औटना। खौलना। उबलना। उ०-जिहिं निदाघ दुपहर रहै भई माघ की राति। तिहिं उसीर की रावटी खरी आवटी जाति।--बिहारी र० दो० २४४।

आवट्ट(पु)--संज्ञा पुं० [सं० **आवर्त**, प्रा० **आवट्ट**] दे० 'आवर्त'। उ०—ऐसो जु जुद्ध करिहै न कोउ। अथ लष्ष मान आवट्ट सोउ।—पृ० रा०, ६१। १०००।

आवड़ना(पु)--क्रि० अ० [सं० **आतुष्ट**, प्रा० **आउट्ठ**, गु **आवडनु**] समझना। पसंद आना। उ०—घड़ी एक नहिं आवड़े, तुम दरसन बिन मोय। तुम ही मेरे प्राण जी, का सूँ जीवन होय।--संत बानी०, भा० २, पृ० ७०।

आवध(पु)--संज्ञा पुं० [हिं० **आयुध**] दे० 'आयुध'। उ०—(क) दादू सोधी नहीं सरीर की कहै अगम की बात। जान कहावै बापुड़े, आवधली लिये हाथ।—दादू० बानी, पृ० २२। (ख) मनों आवधं वज्जि जौ वज्र वद्दं।—पृ० रा०, २। १०१।

आवन(पु)--संज्ञा पुं० [सं० **आगमन**, पुं० हिं० **आगवन**] आगमन। आना। उ०—(क) द्वारे ठाढ़े हैं द्विज बावन। चारो बेद पढ़त मुख आगर अति सुकंठ सुर गावन। बानी सुनि बलि पूछन लागे इहाँ विप्र कित आवन।—सूर०, ८।४४०।

आवना[१](पु)--संज्ञा पुं० [हिं० **आवन**] दे० 'आवन'। उ०—बहुर नहिं आवना या देस।--कबीर श०, पृ० ५।

आवना[२](पु)--क्रि० अ० [हिं० **आना**] दे० आना'।

यौ०--**आवना जावना**=आना जाना। उ०— वार पार की हद्द पर हर वक्त में भी, बीच आवना जावना लेखा है—कबीर रे०, पृ० ३५।

आवनि(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० **आवन**] दे० 'आवन'।

आवनेय—संज्ञा पुं० [सं०] अवनि या पृथ्वी का पुत्र, मंगल।

आवपन—संज्ञा पुं० [सं०] १. बोआई। २. पेड़ का लगाना। ३. थाला। ४. सारे सिर का मुंडन।

यौ०—**केशावपन**।

आवभगत—संज्ञा पुं० [हिं० **आवना** + **भक्ति**] आदर सत्कार। खातिर तवाजा।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

आवभाव†—संज्ञा पुं० [सं० **भाव**] आदर सत्कार। खातिर तवाजा। उ०—आवभाव कै डोलिया पालकी सत्त नाम कै बाँस लगायो।—धरम० (शब्द०)।

आवय--संज्ञा पुं० [सं०] १. आगमन । २. आगंतुक । आनेवाला [को०] ।

आवर (पु)--अव्य० [सं० अपर] और । उ०—सखी सिखाइ केंदला गई । आवर मंदिर ठाढ़ी भई ।--माधवा०, पृ० १९७ ।

आवरक[1]--वि० [सं०] छिपानेवाला । आवरण डालनेवाला [को०] ।

आवरक[2]—संज्ञा पुं० [सं०] परदा । चिक [को०] ।

आबरखाबो—संज्ञा पुं० [बँ० आवर = और + बं० खाबो = खाऊँगा] एक प्रकार की बँगला मिठाई ।

आवरण—संज्ञा पुं० [सं०] १. आच्छादन । ढकना । २. वह कपड़ा जो किसी वस्तु के ऊपर लपेटा हो । बेठन । ३. परदा । उ०—सब कहते हैं खोलो खोलो छवि देखूँगा जीवनधन की, आवरण स्वयं बनते जाते हैं भीड़ लग रही दर्शन की ।—कामायनी, पृ० ६८ । ४. ढाल । ५. दीवार इत्यादि का घेरा । ६. अज्ञान । ७. चलाए हुए अस्त्र शस्त्र को निष्फल करनेवाला अस्त्र ।

आवरणपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] वह कागज जो किसी पुस्तक के ऊपर उसकी रक्षा के लिये लगा रहता है और जिसपर पुस्तक और पुस्तककर्ता के नाम इत्यादि भी रहते हैं । कवर ।

आवरणशक्ति--संज्ञा स्त्री० [सं०] वेदांत में आत्मा या चैतन्य की दृष्टि पर परदा डालनेवाली शक्ति ।

आवरिका--संज्ञा स्त्री० [सं०] क्षुद्र आपण । छोटी दुकान [को०] ।

आवरित--वि० [सं०] ढका हुआ आवृत [को०] ।

आवरिता-वि० [सं० आवरितृ] ढकने या आच्छादित करनेवाला [को०]

आवरी— वि० [सं० आवरीतृ > आवरीता] ढकी हुई । आच्छादित । उ०—मोह मैं आवरी ह्वै बुधि बावरी सीख सुनै न दसा दुख छीजै ।—घनानंद, पृ० १४ ।

आवर्जक--वि० [सं०] आकर्षक [को०] ।

आवर्जन--संज्ञा पुं० [सं०] १. आकृष्ट करना । २. संतुष्ट करना । ३. नीचा दिखाना । ४. दान की क्रिया [को०] ।

आवर्जना-संज्ञा स्त्री० [सं०] १. आकर्षण । २. तिरस्कार । अवमानना । उ०—मैं देव सृष्टि की रति रानी निज पंचवाण से वंचित हो, वन आवर्जना मूर्ति दीना अपनी अतृप्ति सी संचित हो । —कामायनी पृ० १०२ ।

आवर्जित[1]—वि० [सं०] १. त्याग किया हुआ । जिसे छोड़ दिया गया हो । छोड़ा हुआ । पराभूत । परास्त ।

आवर्जित[2]--संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा की स्थिति विशेष [को०] ।

आवर्त[1]— वि० [सं०] १. पानी का भँवर । २. चार मेघाधिपों में से एक । ३. वह बादल जिससे पानी न बरसे । ४. एक प्रकार का रत्न । राजवर्त । लाजवर्द । ५. सोनामाखी । ६. रोएँ की भँवरी । ७. सोच विचार । चिंता । ८. संसार ।

आवर्त[2]--वि० घूमा हुआ । मुड़ा हुआ ।

यौ०--दक्षिणावर्त शंख = वह शंख जिसकी भौंरी दाहिनी तरफ गई हो । यह शंख बहुत मंगलप्रद समझा जाता है ।

आवर्तक--संज्ञा पुं० [सं०] योगियों के योग में होनेवाले पाँच प्रकार के विघ्नों में से एक प्रकार का विघ्न या उपसर्ग । मार्कंडेय पुराण के अनुसार इस विघ्न के द्वारा ज्ञान आकुल हो जाता है और उनका चित्त नष्ट हो जाता है ।

आवर्तकी— संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की लता जिसे चर्मण्ण और भगवद्वल्ली भी कहते हैं ।

आवर्तन— संज्ञा पुं० [सं० आवर्त्तन] १. चक्कर देना । घुमाव । फिराव । उ०—बहु अनंग पीड़ा अनुभव-सा अंगभंगियों का नर्तन, मधुकर के मरंद उत्सव सा मदिर भाव से आवर्तन । —कामायनी, पृ० ११ । २. विलोड़न । मथन । हिलाना । उ०—सौर चक्र में आवर्तन था प्रलय निशा का होता प्रात । —कामायनी, पृ० २० । ३. धातु इत्यादि का गलाना । ४. दोपहर के पीछे पदार्थों की छाया का पश्चिम से पूर्व की ओर पड़ना । ५. तीसरा पहर । पराह्ण ।

आवर्तनी--संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वह कुल्हिया या घड़िया जिसमें धातु गलाई जाती है । २. कलछी । चंमच । चमचा [को०] ।

आवर्तनीय--वि० [सं०] १. घुमाने योग्य । २. मथने योग्य ।

आवर्तमणि--संज्ञा पुं० [सं०] राजावर्त मणि । लाजवर्द पत्थर ।

आवर्तित— वि० [सं०] १. घुमाया हुआ । २. मथा हुआ ।

आवर्तिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. भँवर । जलावर्त । भौंरी । २. अजशृंगी नाम का पौधा [को०] ।

आवर्ती--वि० [सं० आवर्तिन्] १. चक्कर काटनेवाला । घूमने या फेरा लगानेवाला । २. पिघलनेवाला । ३. घुलमिल जानेवाला [को०] ।

आवर्दा[1]—वि० [फ़ा०] १. लाया हुआ । २. कृपापात्र ।

आवर्दा[2]‡--संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'आयुर्दाय' ।

आवर्ष--संज्ञा पुं० [सं०] वर्षा । बरसात । वृष्टि [को०] ।

आवलि--संज्ञा स्त्री० [सं०] पंक्ति । पाँत । अनुक्रमिकता । श्रेणी । कतार । उ०-वन उपवन खिल आई कलियाँ, रवि छवि दर्शन की आवलियाँ ।--आराधना, पृ० ३ ।

आवलित--वि० [सं०] बल खाया हुआ । कुछ मुड़ा या झुका [को०] ।

आवली—संज्ञा स्त्री० [सं०] पंक्ति । श्रेणी । कतार । २. वह युक्ति या विधि जिसके द्वारा बिस्वे की उपज का अंदाज होता है । जैसे, बिस्वे की उपज के सेर का आधा करने से बीघे की उपज का मन निकलता है ।

आवल्गित--वि० [सं०] धीरे धीरे हिलता हुआ । ईषत्कंपित [को०] ।

आवल्गी--वि० [सं० आवल्गिन्] नाचनेवाला [को०] ।

आवश्य--संज्ञा पुं० [सं०] १. जरूरत । आवश्यकता । २. अनिवार्य काम या परिणाम [को०] ।

आवश्यक—वि० [सं०] १. जिसे अवश्य होना चाहिए । जरूरी । सापेक्ष्य । जैसे,—(क) आज मुझे एक आवश्यक कार्य है । (ख) तुम्हारा वहाँ जाना आवश्यक नहीं । २. प्रयोजनीय । काम का । जिसके बिना काम न चले । जैसे,–पहले आवश्यक वस्तुओं का इकट्ठा कर लो ।

आवश्यकता--संज्ञा स्त्री० [सं०] १. जरूरत । अपेक्षा । २. प्रयोजन । मतलब । उ०—अपनी आवश्यकता का अनुचर बन गया, रे मनुष्य तू कितना नीचे गिर गया ।—करुणा०, पृ० ३६ ।

आवश्यकीय--वि० [सं०] प्रयोजनीय । जरूरी ।

आवसति--संज्ञा स्त्री० [सं०] १. रात । निशा । २. रात में रहने के लिये विश्रामस्थान [को०] ।

आवसथ—पुं० [सं०] १. रहने की जगह। गृह। २. बस्ती। गाँव। ३. आश्रम। ४. व्रतविशेष।

आवसथ्य¹—वि० [सं०] घर का। खानगी।

आवसथ्य²—संज्ञा स्त्री० पाँच प्रकार की अग्नियों में से एक। वह अग्नि जो भोजन पकाने आदि के काम में आती है। लौकिकाग्नि।

आवसान—वि० [सं०] ग्राम के अवसान या छोर का निवासी (जैसे चांडाल आदि) [को०]।

आवसित—वि० [सं०] १. पूर्ण। पूरा किया हुआ। २. निश्चित किया हुआ। एकत्र किया हुआ (धान्य आदि)। ४. पका हुआ। पूर्ण विकसित।

आवस्थिक—वि० [सं०] अवस्था के अनुकूल [को०]।

आवस्सिक(पु)—वि० [सं० आवश्यक] दे० 'आवश्यक'। उ०—कालि उहाँ भोजन करौ आवस्सिक यहु बात।—अर्ध०, पृ० ३२।

आवह—संज्ञा पुं० [सं०] वायु के सात स्कंधों में पहले स्कंध की वायु। भूर्लोक और स्वर्लोक के बीच की वायु। भूवायु।

विशेष—सिद्धांतशिरोमणि में इस वायु को १२ योजन ऊपर माना है और इसी से बिजली, ओले आदि की उत्पत्ति बतलाई है।

२. अग्नि की सात जिह्वाओं में से एक।

आवहन—संज्ञा पुं० [सं०] ढोकर पास ले जाना। समीप लाना [को०]।

आवाँ¹—संज्ञा पुं० [हिं० आना, आवना] १. लोहा जब खूब लाल हो जाता है तो उसे पीटने के लिये दूसरे लोहार को बुलाते हैं। इस बुलावे को 'आवाँ' कहते हैं।

आवाँ², आवा(पु)—संज्ञा पुं० [सं० आपाक] दे० 'आँवाँ'। उ०—जान प्यारे जोबन कहूँ दीजिए सनेसौ तोब आवा सम कीजिऐ जु कान तिहि काल हैं।—रसखान, पृ० ५०।

आवागमन—संज्ञा पुं० [हिं० आवा=आना+सं० गमन] १. आना जाना। अवाई जवाई। आमदरफ्त। २. बार बार मरना और जन्म लेना। जन्म और मरण।

यौ०—आवागमन (से) रहित=मुक्त। मोक्षपदप्राप्त। जैसे,—पूर्ण ज्ञान के उदय से मनुष्य आवागमन से रहित हो सकता है।

आवागवन(पु)‡—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आवागमन'। उ०—छुटावैं मोह को विपति अति आवागमन सों। शकुंतला, पृ० १५४।

आवागौन(पु)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आवागमन'।

आवाज—संज्ञा पुं० [फ़ा० आवाज, सं० आवाज्, पा० आवाज] १. शब्द। ध्वनि। नाद।

क्रि० प्र०—आना।—करना।—देना।—लगाना।

२. बोली। वाणी। स्वर। जैसे,—वे गाते तो हैं, पर उनकी आवाज अच्छी नहीं है। ३. फकीरों या सौदा बेचनेवालों की पुकार। ४. हल्ला गुल्ला। शोर।

मुहा०—आवाज उठाना=(१) गाने में स्वर ऊँचा करना। (२) किसी बात के समर्थन या विरोध में कहना। आवाज कसना=(१) जोर से खींचकर शब्द निकालना। (२) दे० 'आवाज कसना'। उ०—अभी तो आप हमपर आवाज कस रहे थे।—फिसाना०; भा० १, पृ० ५। आवाज खुलना=(१) बैठी हुई आवाज का साफ निकलना। जैसे,—तुम्हारा गला बैठ गया है; इस दवा से आवाज खुल जायगी। (२) अधोवायु का निकलना। आवाज गिरना=स्वर का मंद पड़ना। आवाज देना=जोर से पुकारना। जैसे,—हमने आवाज दी, पर कोई नहीं बोला। आवाज निकालना=(१) बोलना। (२) चूँ करना। जबान खोलना। जैसे—जो कहते हैं चुपचाप किए चलो, आवाज न निकालना। आवाज पड़ना=आवाज बैठना। आवाज पर लगना=आवाज पहचान कर चलना। आवाज देने पर कोई काम करना। जैसे,—तीतर अपने पालनेवालों की आवाज पर लग जाते हैं। आवाज पर कान रखना=(१) सुनना। ध्यान देना। आवाज फटना=आवाज भर्राना। आवाज लड़ना=(१) एक के सुर का दूसरे के सुर से मेल खाना। (२) एक की आवाज दूसरे तक पहुँचाना। आवाज बैठना=कफ के कारण स्वर का साफ न निकलना। गला बैठना। जैसे,—उनकी आवाज बैठ गई है, वे गावेंगे क्या? आवाज भर्राना=दे० 'आवाज भारी होना।' आवाज भारी होना=कफ के कारण कंठ का स्वर विकृत होना। आवाज मारना=जोर से पुकारना। आवाज मारी जाना=स्वर सुरीला न रहना। स्वर का कर्कश होना। जैसे,—अवस्था बढ़ जाने पर आवाज भी मारी जाती है। आवाज में आवाज मिलाना=(१) स्वर मिलाना। (२) हाँ में हाँ मिलाना। दूसरा जो कह रहा है, वही कहना। आवाज लगाना=दे० 'आवाज देना'।

आवाजा—संज्ञा पुं० [फ़ा० आवाज] बोली ठोली। ताना। व्यंग्य।

क्रि० प्र०—कसना।—फेंकना।—मारना।—सुनाना=व्यंग्य वचन बोलना।

यौ०—आवाजाकशी=किसी दूसरे के माध्यम से की जानेवाली व्यंग्योक्ति। बोली बोलना।

आवाजानी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० आना+जाना] आवागमन। जन्म और मृत्यु का चक्र। उ०—धर्मदास कबीर पिय पाए मिट गइ आवाजानी।—धरम० शब्द०, पृ० ३।

आवाजाही‡—संज्ञा स्त्री० [हिं० आना+जाना] आनाजाना।

आवादानी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा आबादानी] दे० 'अबादानी'।

आवाप—संज्ञा पुं० [सं०] वि० [आवापिक] १ बीज बोना। २. आलवाल। थाला। ३. कंगन या कंकण। ४. फेंकना। छितराना। ५. मिलाना। मिश्रण करना। ६. अन्न पात्र। ७. शत्रुतापूर्ण उद्देश्य। ८. पात्रों को व्यवस्थित ढंग से रखना। ९. असमतल भूमि। १०. एक प्रकार का पेय [को०]।

आवापक—संज्ञा पुं० [सं०] सोने का कंकण। कंगन [को०]।

आवापन—संज्ञा पुं० [सं०] १. करघा। २. धागा लपेटने की गोल लकड़ी। ३. बाल बनाना [को०]।

आवापिक—वि० [सं०] १. बोने या क्षौर कर्म के लिये उत्तम। २. अतिरिक्त। सहायक। पूरक [को०]।

आवाय—संज्ञा पुं० [सं०] १. थाला। २. धान आदि का खेत में रोपना। रोपाई। ३. हाथ का कड़ा। कंकण। ४. वह सेना जो व्यूह बांधने से बची हुई हो।

विशेष—कौटिल्य ने कहा है कि परवा तथा प्रत्यावाय से जो सेना तीन गुनी से आठ गुनी तक हो, उसका आवाय बना देना चाहिए।

आवार—संज्ञा पुं० [सं०] रक्षण। बचाव। शरण [को०]।

आवारगी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] आवारापन। शोहदापन।

आवारजा—संज्ञा पुं० [फ़ा० **आवारजह्**] जमाखर्च की किताब। वि० दे० 'अवारजा'।

आवारा—वि० [फ़ा० **आवारह्**] [संज्ञा **आवारगी**] १. व्यर्थ इधर उधर फिरनेवाला। निकम्मा। २. बेठौर ठिकाने का। उठल्लू।

क्रि० प्र०—घूमना।—फिरना।—होना।

३. बदमाश। लुच्चा। ४. कुमार्गी। शुहदा।

आवारागर्द—वि० [फ़ा०] व्यर्थ इधर उधर घूमनेवाला। उठल्लू। निकम्मा।

आवारागर्दी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १. व्यर्थ इधर उधर घूमना। २. बदमाशी। लुच्चापन। शुहदापन।

आवाल—संज्ञा पुं० [सं०] थाला।

आवास—संज्ञा पुं० [सं०] १. रहने की जगह। निवासस्थान। २. मकान। घर।

आवासी‡—संज्ञा स्त्री० [हिं० **औसना**] अन्न का हरा दाना, विशेषतः जौ का दाना।

आवाह—संज्ञा पुं० [सं०] १. परिणयसंस्कार। विवाह। २ आमंत्रण [को०]।

आवाहन—संज्ञा पुं० [सं०] १. मंत्र द्वारा किसी देवता को बुलाने का कार्य। २. निमंत्रित करना। बुलाना।

क्रि० प्र०—करना।

आवाहना(पु)—क्रि० स० [सं० **आवाहन**] बुलाना। आमंत्रित करना [को०]।

आवाहनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] देवता के आवाहन के अवसर पर की जानेवाली एक मुद्रा [को०]।

आविक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] कंबल या ऊनी कपड़ा। भेड़ के रोएँ का वस्त्र।

आविक[2]—वि० [सं०] १. ऊन का। ऊनी। २. भेड़ से संबंधित [को०]।

यौ०—आविकसौत्रिक=ऊनी तागे से निर्मित [को०]।

आविग्न—वि० [सं०] उद्विग्न। व्याकुल [को०]।

आविद्ध[1]—वि० [सं०] १. छिदा हुआ। भेदा हुआ। २. फेंका हुआ। ३. कुटिल। वक्र। [को०]। ४. मूर्ख। जड़ [को०]। ५. निराश। हताश [को०]। ६. असत्य। झूठा [को०]।

यौ०—आविद्धकर्ण=जिसका कान छिदा हुआ हो। **आविद्धकर्णिका, आविद्धकर्णी**=एकलता पाढ़ा या पाठा।

आविद्ध[2]—संज्ञा पुं० [सं०] तलवार के ३२ हाथों में से एक, जिसमें तलवार को अपने चारो ओर घुमाकर दूसरे के चलाए हुए वार को व्यर्थ या खाली करते हैं।

आविध—संज्ञा पुं० [सं०] बड़इयों का औजार। बरमा [को०]।

आविर्भाव—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० **आविर्भूत**] १. प्रकाश। प्राकट्य। २. उत्पत्ति। जैसे,—रामानुज का आविर्भाव दक्षिण में हुआ था। ३. आवेश। जैसे,—महात्माओं में क्रोध का आविर्भाव नहीं होता।

आविर्भूत—वि० [सं०] १. प्रकाशित। प्रकटित। २. उत्पन्न।

आविर्मुखी—संज्ञा स्त्री० [सं०] चक्षु। आँख [को०]।

आविर्मूल—वि० [सं०] (वृक्ष) जिसकी जड़ या मूल खुदा हो [को०]।

आविर्हित—वि० [सं०] प्रत्यक्षीकृत। देखा हुआ [को०]।

आविर्होत्र—संज्ञा पुं० [सं०] एक ऋषि का नाम।

आविल—वि० [सं०] १. कलुषित। मैला। पंकिल। २. मिला हुआ। मिश्रित। उ०—दुख से आविल सुख से पंकिल।—नीरजा, पृ० १।

आविष्कर्ता[1]—वि० [सं०] आविष्कार करनेवाला। आविष्कारक [को०]

आविष्कर्ता[2]—संज्ञा पुं० आविष्कार करनेवाला व्यक्ति।

आविष्कार—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० **आविष्कर्त्ता, आविष्कृत**] १. प्राकट्य। प्रकाश। २. कोई ऐसी वस्तु तैयार करना जिसके बनाने की युक्ति पहले किसी को न मालूम रही हो। ईजाद। जैसे,—रेल का आविष्कार इंग्लैंड देश में हुआ। ३. किसी तत्व का पहले पहल ज्ञान प्राप्त करना। किसी बात का पहले पहल पता लगाना। साक्षात्करण। जैसे,—उस विद्वान् ने विज्ञान में बहुत से आविष्कार किए।

आविष्कारक—वि० [सं०] दे० 'आविष्कर्ता'।

आविष्कृत—वि० [सं०] प्रकाशित। प्रकटित। २. पता लगाया हुआ। जाना हुआ। ३. ईजाद किया हुआ। निकाला हुआ।

आविष्क्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'आविष्कार'।

आविष्ट—वि० [सं०] १. आवेश में आया हुआ। २. भूतप्रेतादिग्रस्त। ३. तत्पर। संनद्ध। ४. अभिभूत। आक्रांत। ५. प्रवेश किया हुआ। प्रविष्ट [को०]।

आवी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. प्रसवकालीन पीड़ा। २. अंतस्सत्वा। गर्भवती। ३. रजस्वला स्त्री [को०]।

आवीत—वि० [सं०] पहना हुआ। धारित। २. गया हुआ। गत [को०]। ३. उपनीत [को०]।

आवीती—वि० [सं० **आवीतिन्**] दाहिने कंधे पर जनेऊ रखे हुए। जनेऊ उलटा रखे हुए। अपसव्य।

आवुस—संज्ञा पुं० [सं० **आयुष्मन्, पालि-प्रा० आवुस**] हे आयुष्मन्। प्रिय। उ०—पंचवर्गीय साधुओं ने कहा—'आवुस गौतम हम जानते हैं'।—बौ० न०, पृ० ५०।

आवृत—वि० [सं०] १. छिपा हुआ। ढका हुआ। उ०—था प्रेमलता से आवृत वृष धवल धर्म का प्रतिनिधि।—कामायनी, पृ० २७५। २. लपेटा हुआ। आच्छादित। उ०—अपने को आवृत किए रहो, दिखलाओ निज कृत्रिम स्वरूप।—कामायनी, पृ० १६६। ३. घिरा हुआ। छेका हुआ। उ०—उस शक्ति की विफलता की विषादमयी छाया से लोक को फिर आवृत दिखा कर छोड़ दिया।—रस०, पृ० ६१।

आवृति—संज्ञा स्त्री० [सं०] ढक्कन। आवरण [को०]।

आवृत्त—वि० [सं०] १. दुहराया हुआ। आवृत्ति किया हुआ। २. लौटाया या फिराया हुआ। ३. पढ़ा हुआ [को०]।

आवृत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बार बार किसी बात का अभ्यास। एक ही काम को बार बार करना। जैसे,—पाठ की आवृत्ति

कर जाओ। २. पाठ करना। पढ़ना। ३. घूमना। लौटना [को०]। ४. पलायन [को०]। ५. संसृति। संसार [को०]। ६. किसी पुस्तक आदि का पुनर्मुद्रण। संस्करण।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

आवृत्तिदीपक—संज्ञा पुं० [सं०] दीपक अलंकार का एक प्रकार जिसमें क्रियापदों की अनेक बार आवृत्ति होती है [को०]।

आवृष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] वृष्टि। वर्षा [को०]।

आवेग—संज्ञा पुं० [सं०] १. चित्त की प्रबल वृत्ति। मन की झोंक। जोर। जोश। जैसे,—क्रोध के आवेग में हमने तुम्हें वे बातें कही थीं। २. रस के संचारी भावों में से एक। अकस्मात् इष्ट या अनिष्ट के प्राप्त होने से चित्त की आतुरता।

आवेजा—संज्ञा पुं० [फा० **आवेजह्**] १. लटकनेवाली वस्तु। २. किसी गहने में शोभा के लिये लटकती हुई वस्तु। जैसे,—लटकन। झुलनी इत्यादि।

आवेदक—वि० [सं०] निवेदन करनेवाला। प्रार्थी।

आवेदन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० **आवेदक, आवेदनीय, आवेदित, आवेदी, आवेद्य**] अपनी दशा को सूचित करना। निवेदन। अर्जी।

क्रि० प्र०—करना।

यौ०—आवेदनपत्र।

आवेदनपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] वह पत्र या कागज जिसपर सुधार की आशा से कोई अपनी दशा लिखकर सूचित करे।

आवेदनीय—वि० [सं०] निवेदन करने योग्य।

आवेदित—वि० [सं०] निवेदन किया हुआ। सूचित किया हुआ।

आवेदी—वि० [सं० **आवेदिन्**] निवेदन या सूचित करनेवाला।

आवेद्य—वि० [सं०] दे० 'आवेदनीय'।

आवेलतेल—संज्ञा पुं० [देश०] १. नारियल का वह तेल जो ताजी गरी से निकाला गया हो। २. वह तेल जो सूखी गरी से निकाला जाता है। 'मुठेल' का उलटा।

आवेश—संज्ञा पुं० [सं०] १. व्याप्ति। संचार। दौरा। २. प्रवेश। ३. चित्त की प्रेरणा। झोंक। वेग। आतुरता। जोश। उ०—क्रोध के आवेश में मनुष्य क्या नहीं कर डालता।—(शब्द०)। ४. भूत प्रेत की बाधा। ५. अपस्मार। मृगी रोग। ६. संकल्प। अभिनिवेश। आग्रह [को०]। ७. गर्व। मद [को०]।

आवेशन—संज्ञा पुं० [सं०] १. चंद्र या सूर्य की परिधि वा परिवेश। २. प्रवेश। ३. कोप। क्रोध। ४. शिल्पशाला। शिल्पकेंद्र। ५. भूत प्रेतादि का आवेश [को०]।

आवेशनिक—संज्ञा पुं० [सं०] मित्रों को दिया जानेवाला भोज। [को०]।

आवेशिक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. राजशेखर के मतानुसार कवियों की एक श्रेणी। मंत्र आदि के बल से प्राप्त सिद्धि द्वारा आवेश की स्थिति में कविता करनेवाला कवि। २. अतिथि। अभ्यागत [को०]। ३. अतिथिसत्कार। आतिथ्य [को०]। ४. भीतर जाना। **प्रवेश करना। घुसना** [को०]।

आवेशिक[2]—वि० १. असामान्य। असाधारण। २. व्यक्तिगत। स्वगत। निजी। ३. अंतर्निहित [को०]।

आवेष्टक—संज्ञा पुं० [सं०] १. घेरा। २. जाल [को०]।

आवेष्टन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० **आवेष्टित**] १. छिपाने या ढँकने का कार्य। २. छिपाने या ढँकने की वस्तु। ३. वह वस्तु जिसमें कुछ लपेटा हो। बेठन। ४. चहारदीवारी।

आवेष्टित—वि० [सं०] १. छिपा हुआ। ढँका हुआ। २. आवेष्टनयुक्त।

आवेश(पु)—संज्ञा पुं० [सं० **आवेश**, प्रा० **आवेस**] दे० 'आवेश'। उ०—वाको सेवा के आवेस में खाइबे की सुधि हू न रहती।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० २११।

आव्रन्न(पु)—संज्ञा पुं० [सं० **आवरण**] आच्छादन। घेरा। उ०—दहं कोह सा स्वामि आराम छुट्टी। पछे पंग रा सेन आव्रन्न उट्टी।—पृ० रा०, ६।।२२३७।

आशंकनीय—वि० [सं० **आशङ्कनीय**] आशंकायोग्य। संदेहास्पद [को०]।

आशंका—संज्ञा स्त्री० [सं० **आशङ्का**] [वि० **आशंकित, आशंकनीय**] १. डर। भय। खौफ। उ०—उसे अपने गिर जाने की आशंका थी।—कंकाल, पृ० ६४। २. शक। शुबहा। संदेह। ३. अनिष्ट की भावना।

आशंकित[1]—वि० [सं० **आशङ्कित**] १. डरा हुआ। भयभीत। २. संदेहात्मक। संदेहयुक्त।

आशंकित—वि० १. संदेह। शक। २. भय। डर [को०]।

आशंसन—संज्ञा पुं० [सं०] १. आशा करना। इच्छा करना। २. कहना। घोषित करना [को०]।

आशंसा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. इच्छा। २. आशा। ३. संकेत। ४. भाषण। कथन। ५. कल्पना [को०]।

आशंसित—वि० [सं०] १. इच्छित। २. परिकल्पित। ३. कथित। ४. सोचा हुआ [को०]।

आशंसिता—वि० [सं० **आशंसितृ**] १. आशा या इच्छा करनेवाला। २. वक्ता। कथन करनेवाला [को०]।

आशंसी—वि० [सं० **आशंसिन्**] दे० 'आशंसिता' [को०]।

आशंसु—वि० [सं०] दे० 'आशंसिता' [को०]।

आश—संज्ञा पुं० [सं०] आहार। भोजन (समास में प्रयुक्त) [को०]।

आशक—वि० [सं०] खानेवाला। भोजन करनेवाला [को०]।

आशकार—संज्ञा पुं० [सं० **आविष्कार**, फा० **आशकार, आशकारा, आशकारह्**] प्रकट। खुला हुआ। स्पष्ट। उ०—जहाँ देखो वहाँ मौजूद मेरा कृष्ण प्यारा है। उसी का सब है जलवा जो जहाँ में आशकारा है।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ८५१।

आशना—संज्ञा उभ० [फा०] १. जिससे जान पहचान हो। २. चाहनेवाला। प्रेमी। ३. प्रेमपात्र। जैसे,—(क) वह औरत उसकी आशना है। (ख) वह उस औरत का आशना है।

आशनाई—संज्ञा स्त्री० [फा०] १. जान पहचान। २. प्रेम। प्रीति। दोस्ती। ३. अनुचित संबंध।

आशफल—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का वृक्ष जो मद्रास, बिहार और बंगाल में बहुत होता है। इसकी लकड़ी बहुत मजबूत होती है और सजावट के असबाब बनाने के काम में आती है।

आशय—संज्ञा पुं० [सं०] १. अभिप्राय। मतलब। २. वासना। इच्छा। जैसे,—ईश्वर क्लेश, कर्मविपाक और आशय से रहित है।

यौ०—**उच्चाशय**। **नीचाशय**। **महाशय**।

३. स्थान। आधार। जैसे,—आमाशय, गर्भाशय। जलाशय। पक्वाशय। ४. गड्ढा। खात। ५. कटहल। पनश। ६. अभ्युदय। उन्नति [को०]। ७. धन। संपत्ति (को०)। ८. कंजूस। कृपण [को०]। ९. अन्नागार। बखार (को०)। १०. भाग्य। लिखन [को०]। ११. विश्रामस्थान (को०)। १२. घर। गृह। (को०)। १३. जंगली जानवरों को फँसाने का गड्ढा। अवट [को०]।

आशर—संज्ञा पुं० [सं०] १. राक्षस। उ०—काहू कहूँ शर आशर मारिय। आरत शब्द अकाश पुकारिय।—केशव (शब्द०) २. अग्नि।

आशा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. अप्राप्त के पाने की इच्छा और थोड़ा बहुत निश्चय। जैसे,—(क) आशा लगाए बैठे हैं, देखें कब उनकी कृपा होती है। (ख) आशा मरे, निराशा जीए। २. अभिलषित वस्तु की प्राप्ति के थोड़े बहुत निश्चय से संतोष। जैसे,—आशा है, कल रुपया मिल जायगा।

क्रि० प्र०—**करना**।—**तोड़ना**।—**लगाना**।—**रखना**।

मुहा०—**आशा टूटना**=आशा न रहना। आशा भंग होना। जैसे,—तुम्हारे नहीं कर देने से हमारी इतने दिनों की आशा टूट गई। **आशा तोड़ना**=किसी को निराश करना। जैसे,—इस तरह किसी की आशा तोड़ना ठीक नहीं। **आशा देना**=किसी को उम्मेद बँधाना। किसी को उसके अनुकूल कार्य करने का वचन देना। जैसे,—किसी को आशा देकर धोखा देना ठीक नहीं है। **आशा पूजना**=आशा पूरी होना। **आशा पूरी होना**=इच्छा और संभावना के अनुसार किसी कार्य या घटना का होना। जैसे,—बहुत दिनों पर हमारी आशा पूरी हुई। **आशा पूरी करना**=किसी की इच्छा और निश्चय के अनुसार कार्य करना। **आशा बँधना**=आशा उत्पन्न होना। जैसे,—रोग कमी पर है, इसी से कुछ आशा बँधती है। **आशा-बाँधना**=आशा करना।

यौ०—**आशातीत**। **आशापाश**। **आशाबद्ध**। **आशाभंग**। **आशा-रहित**। **आशावान्**। **निराश**। **हताश**।

३. दिशा।

यौ०—**आशागज**=दिग्गज। **आशापाल**=दिक्पाल। **आशावसन**=दिगंबर। उ०—आशावसन व्यसन यह तिनहीं। रघुपति चरित होहिं तहँ सुनहीं।—तुलसी (शब्द०)।

४. दक्ष प्रजापति की एक कन्या। ५. संगीत में एक राग जो भैरव राग का पुत्र कहा जाता है।

आशाढ़—संज्ञा पुं० [सं० **आशाद**] आषाढ़।

आशातीत—वि० [सं०] आशा से बहुत अधिक। आशा से परे [को०]।

आशानिर्वेदिसेना—संज्ञा स्त्री० [सं०] विजय से हताश सेना।

विशेष—कौटिल्य ने लिखा है कि आशानिर्वेदि तथा परिसृप्त (भगोड़े) सेना में आशानिर्वेदि उत्तम है, क्योंकि वह अपना स्वार्थ देखकर युद्ध के लिये तैयार हो जाती है।

आशापाश—संज्ञा पुं० [सं०] आशाओं का फंदा, जाल या बंधन।

आशाबंध—संज्ञा पुं० [सं० **आशाबन्ध**] आशापूर्ति का विश्वास या बंधन [को०]।

आशाबद्ध—वि० [सं०] तरह तरह की आशाओं में पड़ा या लटका हुआ।

आशाभंग—संज्ञा पुं० [सं० **आशाभङ्ग**] आशा टूटना। आशा का न रह जाना [को०]।

आशार—संज्ञा पुं० [सं०] आश्रयस्थान। सुरक्षा की जगह [को०]।

आशालुब्ध(पु)-वि० [सं० **आशालुब्ध**, प्रा० **आसालुद्ध**] आशा के कारण लोभ में पड़ी हुई। आशालुब्ध। उ०—आसालुब्धी हूँ न मुइय सज्जन जंजालेइ। ढोला०, दू० २०६।

आशावसन—संज्ञा पुं० [सं० **आशा+वसन**] दिशाएँ जिनके वस्त्र रूप में हैं अर्थात् १. शिव। २. शुक। ३. सनत्कुमार आदि। ४. दिगंबर साधु।

आशावह—संज्ञा पुं० [सं०] १. आदित्य। सूर्य। २. वृष्णि [को०]।

आशासन—संज्ञा पुं० [सं०] किसी वस्तु की आकांक्षा करना या तदर्थ निवेदन [को०]।

आशासनीय[1]—वि० [सं०] आकांक्षनीय। अभिलषणीय [को०]।

आशासनीय[2]—संज्ञा पुं० १. आशीर्वचन। २. आकांक्षा। स्पृहा [को०]।

आशास्य—वि०, संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'आशासनीय' [को०]।

आशिंजन—संज्ञा पुं० [सं० **आशिञ्जन**] आभूषणों की झंकृति [को०]।

आशिंजित-वि० [सं० **आशिञ्जित**] झंकृत। झंकार करता हुआ [को०]।

आशि—संज्ञा स्त्री० [सं०] भोजन। खाना। भक्षण [को०]।

आशिक[1]—संज्ञा पुं० [अ० **आशिक़**] प्रेम करनेवाला मनुष्य। चित्त से चाहनेवाला मनुष्य। अनुरक्त पुरुष।

आशिक[2]—वि० प्रेमी। आशक्त। चाहनेवाला। मोहित।

क्रि० प्र०—**होना**।

यौ०—**आशिकतन**। **आशिकजार**=अनुरक्त प्रेमी। उ०—बेकरार आशिकजार भाँति भाँति की बोलियाँ बोल रहे हैं।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ११८। **आशिकनवाज**=प्रेमियों पर दयालु। **आशिक माशूक**=प्रेमी और प्रेमिका या प्रेमपात्र। **आशिक-मिजाज**=(१) आशिकाना मिजाज का। प्रेमी हृदय का। (२) दिलफेंक (व्यंग्य)।

आशिकाना-वि० [अ० **आशिक़ानह्**] आशिकों की तरह का। आशिकों का सा। आशिकों के ढंग का।

आशिकी-संज्ञा स्त्री० [अ० **आशिक़+फा० ई (प्रत्य०)**] प्रेम। मुहब्बत।

आशित—वि० [सं०] १. अशित। खाया हुआ। २. खा करके तृप्त। ३. अधिक भोजन करनेवाला [को०]।

आशिता—वि० [सं० **आशितृ**] अधिक भोजन करनेवाला व्यक्ति । पेटू [को०] ।

आशिमा—संज्ञा स्त्री० [सं० **आशिमन्**] त्वरा । तेजी । वेग [को०] ।

आशियाँ—संज्ञा पुं० [फ़ा०] १. चिड़ियों का बसेरा । पक्षियों के रहने का स्थान । घोंसला । उ०—गिरी है जिस पै कल बिजली वोह मेरा आशियाँ क्यों हो ।—शेर०, पृ० ५२४ । २. छोटा सा घर । झोपड़ा । उ०—क्या करें जाके गुलसिताँ में हम, आग रख आए आशियाँ में हम ।—शेर०, पृ० २०३ ।

आशियाना—संज्ञा पुं० [फा० **आशियानह्**] दे० 'आशियाँ' ।

आशिष—संज्ञा स्त्री० [सं० **आशिष्, आशिस्**] १. आशीर्वाद । आसीस । दुआ । उ०—गुरुजन की आशिष सीस धरो,—आराधना०, पृ० ५१ । २. एक अलंकार जिसमें अप्राप्त वस्तु के लिये प्रार्थना होती है । उ०—सीस मुकुट कटि-काछनी, कर मुरली, उर माल । इहि बानक मों मन सदा, बसौ बिहारीलाल ।—बिहारीर०, दो० ३०१ । ३. दे० 'आशी' [को०] ।

आशिषाक्षेप—संज्ञा पुं० [सं०] वह काव्यालंकार जिसमें दूसरों का हित दिखलाते हुए ऐसी बातों को करने की शिक्षा दी जाय जिनसे वास्तव में अपने ही दुःख की निवृत्ति हो । उ०—मंत्री मित्र पुत्र जन केशव कलत्र गन सोदर सुजन जन भट सुख साज सों । एतो सब होतै जात जो पै है कुशल गात, अबही चलौ कै प्रात, सगुन समाज सों । कीन्हों जु पयान बाध छमिऔ सु अपराध, रहिऔ न पल आध, बँधिऔ न लाज सों । हौं न कहौं, कहत निगम सब अब तब, राजन परम हित आपने ही काज सों ।—केशव ग्रं०, भा० १, पृ० १५६ ।

आशी[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सर्प का विषैला दाँत । २. बुद्धि नाम की जड़ी जो दवा के काम में आती है । ३. सर्प का विष (को०) ।

आशी[2]—वि० [सं० **आशिन्**] [वि० स्त्री० **आशिनी**] खानेवाला । भक्षक ।

यौ०—**वाताशी । फलाशी ।**

विशेष—इसका प्रयोग समास के अंत ही में होता है ।

आशीर्वचन—संज्ञा पुं० [सं०] आशीर्वाद । आसीस । दुआ ।

आशीर्वाद—संज्ञा पुं० [सं०] किसी के कल्याण की कामना प्रकट करना । मंगलकामनासूचक वाक्य । आशिष । दुआ ।

क्रि० प्र०—**करना ।—देना ।—मिलना ।—लेना ।**

यौ०—**आशीर्वादात्मक ।**

आशीविष—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह जिसके दाँतों में विष हो (को०) । २. सर्प । साँप ।

आशीष—संज्ञा स्त्री० [सं० **आशिष्**] दे० 'आशिष' । उ०-देते आकर आशीष हमें मुनिवर हैं ।—साकेत, पृ० २०४ ।

आशु[1]—संज्ञा पुं० [सं०] बरसात में होनेवाला एक धान । सावन भादों में होनेवाला । व्रीहि । पाटल । आउस । साठी ।

आशु[2]—वि० तीव्र । तेज । त्वरित [को०] ।

आशु[3]—क्रि० वि० शीघ्र । जल्द । तुरंत ।

विशेष—गद्य में इसका प्रयोग यौगिक शब्दों के साथ ही होता है ।

यौ०—**आशुकवि । आशुतोष । आशुव्रीहि । आशुमत ।**

आशुकवि—संज्ञा पुं० [सं०] वह कवि जो तत्क्षण कविता कर सके ।

आशुकोपी—वि० [सं० **आशुकोपिन्**] शीघ्र ही क्रुद्ध हो जानेवाला । झगड़ालू । चिड़चिड़ा [को०] ।

आशुग[1]—वि० [सं०] जल्दी चलनेवाला । शीघ्रगामी ।

आशुग[2]—संज्ञा पुं० १. वायु । २. बाण । तीर । ३. रवि (को०) ।

आशुगामी[1]—वि० [सं० **आशुगामिन्**] १. तेज चलनेवाला । तीव्रगामी । २. त्वरान्वित [को०] ।

आशुगामी[2]—संज्ञा पुं० सूर्य [को०] ।

आशुतोष[1]—वि० [सं०] शीघ्र संतुष्ट होनेवाला । जल्दी प्रसन्न होनेवाला ।

आशुतोष[2]—संज्ञा पुं० शिव । महादेव ।

आशुशुक्षणि—संज्ञा पुं० [सं०] १. अग्नि । २. वायु ।

आशुव्रीहि—संज्ञा पुं० [सं०] एक धान्य । आउस । साठी [को०] ।

आशोब—संज्ञा पुं० [फ़ा०] १. आँख की पीड़ा । २. भय । डर । खौफ [को०] । ३. झगड़ा फसाद । शोरगुल [को०] ।

क्रि० प्र०—**उठना । होना ।**

आशोषण—संज्ञा पुं० [सं०] पूरी तरह सोख लेने का काम [को०] ।

आशौच—संज्ञा पुं० [सं०] अशुद्धि । अशौच का भाव [को०] ।

आशौची—वि० [सं० **आशौचिन्**] अपवित्र । अशौच । अशुद्ध [को०] ।

आश्चर्य[1]—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० **आश्चर्यित**] १. वह मनोविकार जो किसी नई, अभूतपूर्व, असाधारण, बहुत बड़ी अथवा समझ में न आनेवाली बात के देखने, सुनने या ध्यान में न आने से उत्पन्न होती है । अचंभा । विस्मय । तअज्जुब ।

क्रि प्र०—**करना ।—मानना ।—होना ।**

यौ०—**आश्चर्यकारक । आश्चर्यजनक ।**

२. रस के नौ स्थायी भावों में से एक ।

आश्चर्य[2]—वि० आश्चर्ययुक्त । अद्‌भुत । विस्मयपूर्ण [को०] ।

आश्चर्यित—वि० [सं०] विस्मित । चकित ।

आश्च्योतनकर्म—वि० [सं०] आँख में दिन के समय किसी औषध की आठ बूँद डालना ।

आश्म[1]—वि० [सं०] अश्मरचित । पत्थर का बना हुआ [को०] ।

आश्म[2]—संज्ञा पुं० पत्थर की बनी वस्तु [को०] ।

आश्मन[1]—वि० [सं०] दे० 'आश्म' ।

आश्मन[2]—संज्ञा पुं० [सं०] गरुडाग्रज अरुण जो सूर्य का सारथी है [को०] ।

आश्मरिक—वि० [सं०] अश्मरी-रोग-ग्रस्त । पथरी का रोगी [को०] ।

आश्मिक—वि० [सं०] १. पत्थर ढोनेवाला । २. प्रस्तर निर्मित [को०] ।

आश्यान—वि० [सं०] जमकर कुछ सुखने या ठोस होनेवाला [को०] ।

आश्र—संज्ञा पुं० [सं०] अश्रु । आँसू [को०] ।

आश्रपरा—संज्ञा पुं० [सं०] पाचन क्रिया । पाक क्रिया [को०] ।

आश्रम—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० **आश्रमी**] ऋषियों और मुनियों का निवासस्थान । तपोवन । २. साधु संत के रहने की जगह ।

जैसे,—कुटी या मठ। ३. विश्रामस्थान। ठहरने की जगह। उ०—आश्रय दो आश्रमवासिनि, मेरी हो तुम्हीं सहारा।—गीतिका, पृ० ६३। ४. विष्णु [को०]। ५. गुरुकुल [को०]। ६. स्मृति में कही हुई हिंदुओं के जीवन की भिन्न भिन्न अवस्थाएँ। ये अवस्थाएँ चार हैं ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ और संन्यास। उ०—(क) देहिं असीस भूमिसुर प्रमुदित प्रजा प्रमोद बढ़ाए। आश्रम धर्म विभाग वेद पथ पावन लोग चलाए। (शब्द०)।

यौ०—**आश्रमगुरु**। **आश्रमधर्म**। **आश्रमपद**, **आश्रममंडल**=तपोवन। **आश्रमवास**। **गृहस्थाश्रम**। **वर्णाश्रम**।

आश्रमी—वि० [सं० **आश्रमिन्**] १. आश्रमसंबंधी। २. आश्रम में रहनेवाला। ३. ब्रह्मचर्यादि चार आश्रमों में से किसी को धारण करनेवाला।

आश्रय—संज्ञा पुं० [सं०] [**वि० आश्रयी, आश्रित**] १. आधार। सहारा। अवलंब। जैसे,—छत खभों के आश्रय पर है।

यौ०—**आश्रयाश**।

२. आधार वस्तु। वह वस्तु जिसके सहारे पर कोई वस्तु हो। ३. शरण। पनाह। ठिकाना। जैसे,—(क) वह चारो ओर मारा मारा फिरता है, उसे कहीं आश्रय नहीं मिलता। (ख) राजा ने उसको अपने यहाँ आश्रय दिया।

क्रि० प्र०—**चाहना**।—**ढूँढ़ना**।—**देना**।—**पाना**।—**मिलना**।—**लेना**।

४. जीवन निर्वाह का हेतु। भरोसा। सहारा। जैसे,—हमें तुम्हारा ही आश्रय है कि और किसी का। ५. राजाओं के छह गुणों में से एक। ६. घर। मकान ७. तरकस। भाथी। तूणीर [को०]। ८. अभ्यास [को०]। ९. व्याकरण में उद्देश्य। १०. बौद्ध मत से मन और पंच ज्ञानेंद्रिय (को०)। ११. सामीप्य। सनिकटता। संनिधि [को०]।

आश्रयण—संज्ञा पुं० [सं०] सहारा लेने का कार्य।

आश्रयणीय—वि० [सं०] अवलंबन के योग्य। सहारा लेने योग्य।

आश्रयभुक्—संज्ञा पुं० [सं० **आश्रयभुज्**] १. दे० 'आश्रयाश'। २. कृत्तिका नाम का नक्षत्र [को०]।

आश्रयाश—संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि। आग।

आश्रयासिद्ध—वि० [सं०] १. न्यायशास्त्र के अनुसार वह तर्क जिसका आधार असत्य हो। एक हेत्वाभास। २. असत्य या मिथ्या। ३. अमान्य [को०]।

आश्रयी—वि० [सं० **आश्रयिन्**] आश्रय लेनेवाला। आश्रय पानेवाला। सहारा लेनेवाला। सहारा पानेवाला।

आश्रव—संज्ञा पुं० [सं०] १. किसी के कहे पर चलना। वचन। स्थिति। २. अंगीकार। ३. क्लेश। ४. जैनमत के अनुसार मन, वाणी और शरीर से किए हुए कर्म का संस्कार जिसे जीव ग्रहण करके बद्ध होता है। यह दो प्रकार का है—पुण्याश्रव और पापाश्रव। ५. बौद्ध दर्शन के अनुसार विषय जिसमें प्रवृत्त होकर मनुष्य बंधन में पड़ता है। यह चार प्रकार का है—कामाश्रव, भावाश्रव, दृष्टाश्रव और अविद्याश्रव। ६. अग्नि पर पकते हुए चावल के बुद्बुद या फेन (को०)। ७. सरिता। नदी (को०)। ८. प्रवाह। धारा (को०)।

आश्रि—संज्ञा स्त्री० [सं०] असिधारा। तलवार की धार [को०]।

आश्रित[1]—**वि०** [सं०] १. सहारे पर टिका हुआ। ठहरा हुआ। उ०—यहि विधि जग हरि आश्रित रहई।—तुलसी (शब्द०)। २. भरोसे पर रहनेवाला। दूसरे का सहारा लेनेवाला। अधीन। शरणागत। जैसे,—वह तो आपका आश्रित ही है; जैसे चाहिए, उसको रखिए। ३. सेवक। दास।

आश्रित[2]—संज्ञा पुं० न्याय मत से आकाश और परमाणु नित्य द्रव्यों को छोड़ दूसरे अनित्य द्रव्यों का किसी न किसी अंश में एक दूसरे से साधर्म्य। आश्रितत्व। साधर्म्य।

विशेष—भिन्न भिन्न नित्य द्रव्य परमाणुओं ही से बने हैं अतः रूपांतर होने पर भी उनमें किसी न किसी अंश में समानता रहेगी। पर नित्य द्रव्य पृथक् हैं इससे उनमें एक दूसरे से साधर्म्य नहीं।

आश्रितत्व—संज्ञा पुं० [सं०] आश्रित रहने या होने का भाव।

आश्रुत—वि० [सं०] १. गृहीत। अंगीकृत। स्वीकृत। २. आकर्णित। श्रुत। सुना हुआ [को०]।

आश्रुति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. स्वीकृति। वचनदान। २. आकर्णन। श्रवण [को०]।

आश्लिष्ट—वि० [सं०] १. आलिंगित। हृदय से लगा हुआ। २. लगा हुआ। चिपका हुआ। सटा हुआ। मिला हुआ।

आश्लेष—संज्ञा पुं० [सं०] १. आलिंगन। २. लगाव।

आश्लेषण—संज्ञा पुं० [सं०] मिलावट। मेल।

यौ०—**आश्लेषण विश्लेषण**=कई दवाओं को एक साथ मिलाना और मिली हुई दवाओं को अलग अलग करना।

२. आश्रयण। नवें नक्षत्र का नाम।

आश्लेषा—संज्ञा स्त्री० [सं०] नवें नक्षत्र का नाम।

आश्लेषित—वि० [सं०] लगा हुआ। चिपका हुआ। आलिंगित।

आश्व—संज्ञा पुं० [सं०] १. घोड़ों का झुंड। २. घोड़े की स्थिति या दशा। ३. वह रथ जिसे घोड़े खींचते हैं।

आश्वत्थ[1]—संज्ञा पुं० [सं०] आश्वत्थ या पीपल का फल [को०]।

आश्वत्थ[2]—वि० [सं०] १. अश्वत्थ या पीपल संबंधी। २. पीपल में फल आने के समय से संबद्ध [को०]।

आश्वत्था—संज्ञा स्त्री० [सं०] अश्विनी नक्षत्र की रात्रि [को०]।

आश्वमेधिक—वि० [सं०] अश्वमेध यज्ञ या अश्वमेध संबंधी [को०]।

आश्वयुज—संज्ञा पुं० [सं०] वह महीना जिसकी पूर्णिमा अश्विनी नक्षत्र युक्त हो। आश्विन। क्वार।

आश्वलक्षणिक—संज्ञा पुं० [सं०] घोड़ों के भले बुरे लक्षण पहचाननेवाला। शालिहोत्री [को०]।

आश्वलायन—संज्ञा पुं० [सं०] आश्वलायन गृह्यसूत्रों और श्रौतसूत्रों के रचयिता ऋषि का नाम [को०]।

आश्वस्त— वि० [सं०] १. निर्भय। उ०—आर्य सभ्यता हुई प्रतिष्ठित आर्य धर्म आश्वस्त हुआ।—साकेत, पृ० ३७९। २. उत्साहयुक्त [को०]।

आश्वास— संज्ञा पुं० [सं०][वि० **आश्वासक**] १. सांत्वना। दिलासा। तसल्ली। आशाप्रदान। २. किसी कथा का एक भाग। ३. विराम [को०]। ४. पूरी तरह खुलकर साँस लेना [को०]।

आश्वासक[1]— वि० [सं०] दिलासा देनेवाला। भरोसा देनेवाला।

आश्वासक[2]— संज्ञा पुं० कपड़ा। वस्त्र [को०]।

आश्वासन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० **आश्वासनीय, आश्वासित, आश्वास्य**] दिलासा। तसल्ली। सांत्वना। आशाप्रदान। उ०—व्याकुल को आश्वासन सा देती हुई।—महा०, पृ० ४।

आश्वासनीय—वि० [सं०] दिलासा देने योग्य। तसल्ली देने योग्य। प्रोत्साहन के योग्य।

आश्वासित—वि० [सं०] दिलासा दिया हुआ। दिलासा पाया हुआ।

आश्वासी—वि० [सं० **आश्वासिन्**] १. आश्वासन देनेवाला। दिलासा या ढाढ़स बँधानेवाला। २. आत्मविश्वासी। ३. प्रफुल्लचित्त [को०]।

आश्वास्य—वि० [सं०] दे० 'आश्वासनीय'।

आश्विक[1]—वि० [सं०] १. घोड़ों से संबंध रखनेवाला। अश्वारोही घोड़े से खींचा जानेवाला [को०]।

आश्विक[2]— संज्ञा पुं० घुड़सवार सैनिक [को०]।

आश्विन— संज्ञा पुं० [सं०] १. वह महीना जिसकी पूर्णिमा अश्विनी नक्षत्र में पड़े। क्वार का महीना। २. अश्विनीकुमार। ३. एक यज्ञ [को०]।

आश्विनेय—संज्ञा पुं० [सं०] १. अश्विनीकुमार। २. नकुल और सहदेव।

आष(पु)— स्त्री० पुं० [सं० **आखु**] दे० 'आखु'। उ०— आष इष्षि चष अग्ग। घात मंजार न मंडै।— पृ० रा०, ६३।१६०।

आषाढ़—संज्ञा पुं० [सं० **आषाढ**] वह चांद्रमास जिसकी पूर्णिमा को पूर्वाषाढ़ नक्षत्र हो। जेष्ठ मास के पश्चात् और श्रावण के पूर्व का महीना। असाढ़। २. ब्रह्मचारी का दंड। ३. पलाश। ढाक।

आषाढ़क[1]—वि० [सं० **आषाढक**] आषाढ़ मास में होनेवाला। आषाढ़ संबंधी [को०]।

आषाढ़क[2]—संज्ञा पुं० आषाढ़ मास [को०]।

आषाढ़ा—संज्ञा पुं० [सं० **आषाढ़ा**] पूर्वाषाढ़ा और उत्तराषाढ़ा नक्षत्र।

आषाढ़ाभव, आषाढ़ाभू—संज्ञा पुं० [सं० **आषाढाभव-भू**] मंगल ग्रह।

आषाढ़ी[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० **आषाढी**] १. आषाढ़ मास की पूर्णिमा।

विशेष—इस दिन गुरुपूजा या व्यास पूजा होती है। वृष्टि आदि का आगम निश्चय करने के लिये वायुपरीक्षा भी इसी दिन की जाती है।

२. इस पूर्णिमा के दिन होनेवाले कृत्य।

आषाढ़ी[2]—वि० [सं० **आषाढिन्**] पलाशदंड धारण करनेवाला [को०]।

आषाढ़ीय—वि० [सं० **आषाढीय**] आषाढ़ा नक्षत्र में उत्पन्न [को०]।

आषाढ़ी योग—संज्ञा पुं० [सं० **आषाढी योग**] आषाढ़ शुक्ला पूर्णिमा को अन्न की तौल से सुवृष्टि आदि का निश्चय।

विशेष—इस दिन लोग थोड़ा सा अन्न तौलकर हवा में रख देते हैं। यदि वहाँ की सील से अन्न की तौल कुछ बढ़ गई तो समझते हैं कि वृष्टि होगी और सुकाल रहेगा।

आसंग[1]—संज्ञा पुं० [सं० **आसङ्ग**] १. साथ। संग। २. लगाव। संबंध। ३ आसक्ति। अनुरक्ति। लिप्तता। ४. मुलतानी मिट्टी जिसे सिर में मलकर लोग स्नान करते हैं।

आसंग[2]—क्रि० वि० सतत। निरंतर। लगातार।

आसंगत्य—संज्ञा पुं० [सं० **आसङ्गत्य**] १. असंगति का भाव या अवस्था। पार्थक्य। अलगाव। २ वियोग [को०]।

आसंगिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० **आसङ्गिनी**] बवंडर। वात्याचक्र [को०]।

आसंगी—वि० [सं० **आसङ्गिन्**] १. संपर्की। मेलजोल रखनेवाला। २. आसक्त [को०]।

आसंजन—संज्ञा पुं० [सं० **आसञ्जन**] १. बाँधना या जोड़ना। २. पहनना या धारण करना। ३. अनुराग। ४. भक्ति। ५. मूठ [को०]।

आसंद—संज्ञा पुं० [सं० **आसन्द**] वासुदेव या विष्णु [को०]।

आसंदिका—संज्ञा स्त्री० [**आसन्दिका**] १. मचिया। २. आसनी [को०]।

आसंदी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. मचिया। मोढ़ा। कुरसी। २. खटोला।

आसंबाध— वि० [सं० **आसम्बाध**] १. अवरुद्ध। घेरे में पड़ा हुआ। २. फैला हुआ [को०]।

आसंसार—वि० [सं०] विकारी। प्रगतिशील। परिवर्तनशील [को०]।

आसंसृति—वि० [सं०] दे० 'आसंसार'।

आस[1]—संज्ञा स्त्री० [सं० **आशा**] १. आशा। उम्मेद। उ०—साथि चले सँग बीछुरा, भए बिच समुद पहार। आस निरासा हौं फिरौं, तू विधि देहि अधार।—जायसी ग्रं०, पृ० ३०। २. लालसा। कामना। उ०—तजहु आस निज निज गृह जाहू। लिखा न बिधि बैदेहि बिबाहू।—मानस, १।२५२। ३. सहारा। आधार। भरोसा। जैसे,—हमें किसी दूसरे की आस नहीं।

मुहा०— **आस करना** = (१) आशा करना। (२) आसरा करना। मुँह ताकना। जैसे,—चलते पौरुष किसी की आस करना ठीक नहीं। **आस छोड़ना** = आशा परित्याग करना। उम्मेद न रखना। **आस टूटना** = निराश होना। जैसे,—जब आस टूट जाती है, तब कुछ करते धरते नहीं बनता। **आस तकना** = (१) आसरा देखना। इंतजार करना। जैसे,—तुम्हारी आस तकते तकते दोपहर हो गए। (२) सहायता की अपेक्षा रखना। मुँह जोहना। जैसे,—ईश्वर न करे किसी की आस तकनी पड़े। **आस तजना** = आशा छोड़ना। **आस तोड़ना** = किसी की आशा के विरुद्ध कार्य करना। किसी को निराश करना। जैसे,—किसी की आशा तोड़ना ठीक नहीं। **आस देना** = (१) उम्मेद बँधाना। किसी को उसके इच्छानुकुल कार्य करने का वचन देना। जैसे,—किसी को आस देकर तोड़ना ठीक नहीं। (२) संगीत में किसी बाजे या स्वर से सहायता देना। **आस पुराना** = आशा पूरी करना। **आस पूजना** = आशा पूरी होना।

इच्छानुकूल फल मिलना। उ०—एकहि बार आस सब पूजी। अब कछु कहब जीभ करि दूजी।—मानस, २।१६। **आस पूरना** = दे० 'आस पूजना'। **आस बँधना** = आशा उत्पन्न होना। जैसे,—रोगी की अवस्था कुछ सुधरी है, इसी से आस बँधती है। **आस लगना** = आशा उत्पन्न होना। **आस लगाना** = आशा बाँधना। **आस होना** = (१) आशा होना। (२) सहारा होना। आश्रय होना। (३) गर्भ होना। गर्भ रहना। जैसे,—तुम्हारी बहू को कुछ आस है।

यौ०—आस औलाद।

आस²Ⓟ—संज्ञा स्त्री० [सं० **आशा**] दिशा। उ०—जैसे तैसे बीतिगे कलपत द्वादश मास। आई बहुरि बसंत ऋतु विमल भई दस आस।—रघुराज (शब्द०)।

आस³—संज्ञा पुं० [सं०] १. धनुष। कमान। २. चूतड़। ३. आसन (को०)। ४. उपवेशन। बैठना (को०)। ५. संनिधि। सामीप्य (को०)।

यौ०—**कप्यास**।

आसकत†—संज्ञा पुं० [सं० **अशक्ति**] [वि० **आसकती**, क्रि० **असकताना**] सुस्ती। आलस्य।

आसकती†—वि० [हिं० **आसकत** + **ई** (प्रत्य०)] आलसी।

आसक्त—वि० [सं०] १. अनुरक्त। लीन। लिप्त। जैसे,—इंद्रियों में आसक्त रहना ज्ञानियों का काम नहीं। २. आशिक। मोहित। लुब्ध। मुग्ध। जैसे—वह उस स्त्री पर आसक्त है। ३. विश्वास माननेवाला (को०)।

आसक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. अनुरक्ति। लिप्तता। २. लगन। चाह।

आसतिⓅ—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'आसक्ति'। उ०—आसति कहूँ न देखिहूँ, बिन नाँव तुम्हारे।—कबीर ग्रं०, पृ० १५२।

आसतीन—संज्ञा स्त्री० [फा० **आस्तीन**] दे० 'आस्तीन'।

आसते¹Ⓟ—क्रि० वि० [फा० **आहिस्तह्**] १. धीरे धीरे। उ०—पौन करि आसतें न जाऊँ उठी बास तें, अरी गुलाबपास तें, उठाउ आसपास तें।—पद्माकर ग्रं०, पृ० १२२। २. होते हुए।

आसते²—क्रि० अ० [हिं०] दे० 'आसना'।

आसतोषⓅ—वि०, संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आशुतोष'। उ०—समरथ दूलनदास के आसतोष तुम राम।—संतबानी०, भा० १, पृ० १३७।

आसत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सामीप्य। निकटता। २. अर्थबोध के लिये बिना व्यवधान के एक दूसरे से संबंध रखनेवाले पदों या शब्दों का पास पास रहना। जैसे,—यदि कहा जाय कि 'वह खाता था पुस्तक और पढ़ता था दाल चावल' तो कुछ बोध नहीं होता, क्योंकि आसत्ति नहीं है। पर यदि कहें कि 'वह दाल चावल खाता था और पुस्तक पढ़ता था' तो तात्पर्य खुला जाता है। पदों का अन्वय आसत्ति के अनुसार होता है। ३. प्राप्ति। पाना। लाभ। (को०)। मेल। संगति (को०)।

आसथाⓅ—संज्ञा स्त्री० [सं० **आस्था**] अंगीकार।—(डिं०)।

आसथानⓅ—संज्ञा पुं० [सं० **आस्थान**] दे० 'आस्थान'।

आसदन—संज्ञा पुं० [सं०] १. लाभ। मुनाफा। २. संबंध। संपर्क। ३. निकटता। समीपता। ४. बैठने की क्रिया। बैठना। ५. आसन [को०]।

आसन¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. स्थिति। बैठने की विधि। बैठक। जैसे,—ठीक आसन से बैठो।

विशेष—यह अष्टांग योग का तीसरा अंग है और पाँच प्रकार का होता है-पद्मासन, स्वस्तिकासन, भद्रासन, वज्रासन और वीरासन। कामशास्त्र या कोकशास्त्र में भी रतिप्रसंग के ८४ आसन हैं।

यौ०—**पद्मासन। सिद्धासन। गरुड़ासन। कमलासन। मयूरासन।**

मुहा०—**आसन उखड़ना** = (१) अपनी जगह से हिल जाना। (२) घोड़े की पीठ पर रान न जमना। जैसे,—वह अच्छा सवार नहीं है; उसका आसन उखड़ जाता है। **आसन उठना** = स्थान छूटना। प्रस्थान होना। जानना। जैसे,—तुम्हारा आसन यहाँ से कब उठेगा? **आसन करना** = (१) योग के अनुसार अंगों को तोड़ मरोड़कर बैठना। (२) बैठना। टिकना। ठहरना। जैसे,—उन महात्मा ने वहाँ आसन किया है। **आसन कसना** = अंगों को तोड़ मरोड़कर बैठना। **आसन छोड़ना** = उठ जाना। चला जाना। **आसन जमना** = (१) जिस स्थान पर जिस रीति से बैठे, उसी स्थान पर उसी रीति से स्थिर रहना। जैसे,—अभी घोड़े की पीठ पर उनका आसन नहीं जमता है। (२) बैठने में स्थिर भाव आना। जैसे,—अब तो वहाँ आसन जम गया, अब जल्दी नहीं उठते। **आसन जमाना** = स्थिर भाव से बैठना। जैसे,—वह एक घड़ी भी कहीं आसन जमाकर स्थिर भाव से नहीं बैठता। **आसन जोड़ना** = दे० 'आसन जमाना'। **आसन डिगना** = (१) बैठने में स्थिर भाव न रहना। (२) चित्त चलायमान होना। मन डोलना। इच्छा और प्रवृत्ति होना। (जिससे जिस बात की आशा न हो वह यदि उस बात को करने पर राजी या उतारू हो तो उसके विषय में यह कहा जाता है।) जैसे,—(क) जब रुपया दिखाया गया, तब तो उसका भी आसन डिग गया। (ख) उस सुंदरी कन्या को देख नारद का आसन डिग गया। **आसन डिगाना** = (१) जगह से विचलित करना। (२) चित्त को चलायमान करना। लोभ या इच्छा उत्पन्न करना। **आसन डोलना** = (१) चित्त चलायमान होना। लोगों के विश्वास के विरुद्ध किसी की किसी वस्तु की ओर इच्छा या प्रवृत्ति होना। जैसे—मेनका के रूप को देख विश्वामित्र का भी आसन डोल गया। (ख) रुपए का लालच ऐसा है कि बड़े बड़े महात्माओं का भी आसन डोल जाता है। (२) चित्त क्षुब्ध होना। हृदय पर प्रभाव पड़ना। हृदय में भय और करुणा का संचार होना। जैसे,—(क) विश्वामित्र के घोर तप को देख इंद्र का आसन डोल उठा। (ख) जब प्रजा पर बहुत अत्याचार होता है, तब भगवान् का आसन डोल उठता है। **आसन डोल** = कहारों की बोली। जब पालकी का सवार बीच से खिसककर एक ओर होता है और पालकी उस ओर झुक जाती है तब कहार लोग यह वाक्य बोलते हैं। **आसन तले आना** = वश में आना। अधीन होना। **आसन देना** = सत्कारार्थ बैठने के लिये कोई वस्तु रख देना या

बतला देना। बैठाना। **आसन पहचानना**=बैठने के ढंग से घोड़े का सवार को पहचानना। जैसे,—घोड़ा सवार को पहचानता है, देखो मालिक के चढ़ने से कुछ इधर उधर नहीं करता। **आसन पाटी**=खाट खटोला। ओढ़ने बिछाने की वस्तु। **आसन पाटी लेकर पड़ना**=अटवाटी खटवाटी लेकर पड़ना। दुख और कोप प्रकट करने के लिये ओढ़ना ओढ़कर या बिछौना बिछाकर खूब आडंबर के साथ सोना। **आसन बाँधना**=दोनों रानों के बीच दबाना। जाँघों से जकड़ना। **आसन मारना**=(१) जमकर बैठना। (२) पालथी लगाकर बैठना। उ०—मठ मंडप चहुँ पास सकारे। जपा तपा सब आसन मारे।—जायसी (शब्द०)। **आसन लगाना**=(१) आसन मारना। जम कर बैठना। (२) टिकना। ठहरना। जैसे,—बाबा जी, आज तो यहीं आसन लगाइए। (३) किसी कार्य के साधन के लिये अड़कर बैठना। जैसे,—यदि आज न दोगे तो यहीं आसन लगावेगा। (४) बैठने की वस्तु फैलाना। बिछौना बिछाना। जैसे,—बाबा जी के लिये यहीं आसन लगा दो। **आसन होना**=रतिप्रसंग के लिये उद्यत होना। २. बैठने के लिये कोई वस्तु। वह वस्तु जिसपर बैठें।

विशेष—बाजार में ऊन, मूँज या कुश के बने हुए चौखूँटे आसन मिलते हैं। लोग इनपर बैठकर अधिकतर पूजन या भोजन करते हैं।

३. टिकान या निवास। (साधुओं की बोली)। ४. साधुओं का डेरा या निवास स्थान।

क्रि० प्र०—**करना**=टिकना। डेरा डालना।—**देना**=टिकाना। ठहराना। डेरा देना।

५. चूतड़। ६. हाथी का कंधा जिसपर महावत बैठता है। ७. सेना का शत्रु के सामने डटे रहना। ८. उपेक्षा की नीति से काम करना। यह प्रकट करना कि हमें कुछ परवाह नहीं है।

विशेष—इस नीति के अनुसार शत्रु के चढ़ आने या घेरने पर भी राजा लोग नाचरंग का सामान करते हैं।

९. कौटिल्य के अनुसार उदासीन या तटस्थ रहने की नीति। आक्रमण के रोके रहने की नीति। १०. एक दूसरे की शक्ति नष्ट करने में असमर्थ होकर राजाओं का संधि करके चुपचाप रह जाना।

विशेष—यह पाँच प्रकार का कहा गया है—विगृह्यासन, संधानासन, संभूयासन, प्रसंगासन और उपेक्षासन।

आसन२—संज्ञा पुं० [सं०] १. जीवक नाम का अष्टवर्गीय ओषधि। २. जीरक। जीरा।

आसना१(पु)—क्रि० अ० [सं० **अस्=होना**] होना। उ०—(क) है नाहीं कोइ ताकर रूपा। ना ओहि सन कोइ आहि अनूपा।—जायसी ग्रं०, पृ० ३। (ख) मरी उरी कि टरी बिथा, कहा खरी, चलि चाहि। रही कराहि कराहि अति अब मुँह आहि न आहि।—बिहारी र०, दो० ५६।

विशेष—इस क्रिया का प्रयोग वर्तमान काल में ही मिलता है और इसका रूप 'आहि' या आहि का ही कोई विकारी रूप होता है।

आसना२—संज्ञा पुं० [सं०] १. जीव। २. वृक्ष।

आसनी—संज्ञा स्त्री० [सं० **आसन का हिं० अल्पा०**] छोटा आसन। छोटा बिछौना।

आसन्न—वि० [सं०] निकट आया हुआ। समीपस्थ। प्राप्त।

यौ०—आसन्नकाल=(१) प्राप्तकाल। आया हुआ समय। (२) मृत्युकाल। (३) जिसका समय आ गया हो। (४) जिसका मृत्युकाल निकट हो। **आसन्नप्रसवा**=जिसे शीघ्र बच्चा होनेवाला हो।

आसन्नता—संज्ञा स्त्री० [सं०] नैकट्य। सामीप्य।

आसन्नपरिचारक—संज्ञा पुं० [सं०] १. सदा मालिक के पास रहनेवाला नौकर। निकटवर्ती सेवक। २. अंगरक्षक [को०]।

आसन्नभूत—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वह भूतकाल जो वर्तमान से मिला हुआ हो, अर्थात् जिसे बीते थोड़ा ही काल हुआ हो। २. भूतकालिक क्रिया का वह रूप जिससे क्रिया की पूर्णता और वर्तमान से उसकी समीपता पाई जाय। जैसे,—मैं जा रहा हूँ। मैं आया हूँ। उसने खाया है। मैंने देखा है।

विशेष—सामान्य भूत की अकर्मक क्रिया के आगे कर्ता के वचन और पुरुष के अनुसार हूँ, है, हैं, हो लगाने से आसन्नभूत क्रिया बनती है। पर सकर्मक क्रिया के आगे केवल कर्म के वचन के अनुसार 'है' या 'हैं' तीनों पुरुषों में लगता है।

आसन्नमरण—वि० [सं०] जो कुछ ही देर में मरनेवाला हो [को०]।

आसन्नमृत्यु—वि० [सं०] दे० 'आसन्नमरण'।

आसपास—क्रि० वि० [सं० **आस=सामीप्य अथवा अनुध्व० आस+सं० पार्श्व**] चारों ओर। निकट। करीब। इर्द गिर्द। इधर उधर। अगल बगल। उ०—तब सरस्वती सी फेंक साँस, श्रद्धा ने देखा आसपास।—कामायनी, पृ० २४७।

आसबंद—संज्ञा पुं० [सं० **आश्रय+बंद**] एक तागा, जो पटवों के पैर के अँगूठे में बँधा रहता है। इसी तागे में जेवर को अटकाकर गूँथते हैं।

आसमाँ—संज्ञा पुं० [फा०] दे० 'आसमान'।

आसमान—संज्ञा पुं० [फा०, मि० वै० सं० **अश्मन्=आकाश**] १. आकाश। गगन। २. स्वर्ग। देवलोक। उ०—चहूँ ओर सब नगर के लसत दिवालै चारु। आसमान तजि जनु रह्यो गीरवान परिवारु।—गुमान (शब्द०)।

मुहा०—**आसमान के तारे तोड़ना**=कोई कठिन या असंभव कार्य करना। जैसे,—कहो तो मैं तुम्हारे लिये आसमान के तारे तोड़ लाऊँ। **आसमान जमीन के कुलाबे मिलाना**=(१) खूब लंबी चौड़ी हाँकना। खूब बढ़ चढ़कर बातें करना। (२) गहरा जोड़ तोड़ लगाना। विकट कार्य करना। **आसमान झाँकना या ताकना**=(१) घमंड से सिर ऊपर उठाना। तनना। (२) मुर्गेबाजों की बोली में मुर्ग का मस्त होकर लड़ने के लिये तैयार होना। झड़प चाहना। (जब मुर्ग जोश में भरता है तब आसमान की ओर देखकर नाचता है। इसी से यह मुहाविरा बना है)। जैसे,—अब तो मुर्गा आसमान झाँकने लगा। **आसमान टूट पड़ना**=किसी विपत्ति का अचानक आ पड़ना। वज्रपात होना। **गजब पड़ना। जैसे,—क्यों इतना झूठ बोलते हो,**

आसमान टूट पड़ेगा। **आसमान दिखाना**=(१) कुश्ती में पछाड़कर चित्त करना। (२) पराजित करना। प्रतिपक्षी को हराना। **आसमान पर उड़ना**=(१) इतराना। गरूर करना। (२) बहुत ऊँचे ऊँचे संकल्प बाँधना। ऐसा कार्य करने का विचार प्रकट करना जो सामर्थ्य से बाहर हो। बहुत बढ़ बढ़कर बातें करना। डींग हाँकना। **आसमान पर चढ़ना**=गरूर करना। घमंड दिखाना। शेखी मारना। सिट्टू मारना। जैसे,—(क) कौन सा ऐसा काम कर दिखाया है जो आसमान पर चढ़े जाते हो। (ख) उनका मिजाज आजकल आसमान पर चढ़ा है। **आसमान पर चढ़ाना**=(१) अत्यंत प्रशंसा करना। जैसे,— आप जिसपर कृपा करने लगते हैं उसे आसमान पर चढ़ा देते हैं। (२) अत्यंत प्रशंसा करके किसी को फुला देना। तारीफ करके मिजाज बिगाड़ देना। जैसे,— तुमने तो और उसको आसमान पर चढ़ा रखा है, जिसके कारण वह किसी को कुछ समझता ही नहीं। **आसमान पर थूकना**=किसी महात्मा के ऊपर लांछन लगाने के कारण स्वयं निंदित होना। किसी सज्जन के अपमानित करने के कारण उलटे आप तिरस्कृत होना। **आसमान फट पड़ना**=दे० 'आसमान टूट पड़ना'। उ०—फिक्र यह है कि दुनियाँ क्यों कर कायम है, आसमान फट क्यों नहीं पड़ता।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ६४। **आसमान में थिगली लगाना**=विकट कार्य करना। जहाँ किसी की गति न हो वहाँ पहुँचना। जैसे,—कुटनियाँ आसमान में थिगली लगाती हैं। **आसमान में छेद करना**=दे० 'आसमान में थिगली लगाना'। **आसमान सिर पर उठाना**=(१) ऊधम मचाना। उपद्रव मचाना। (२) हलचल मचाना। खूब आंदोलन करना। धूम मचाना। **आसमान सिर पर टूट पड़ना**=दे० 'आसमान टूट पड़ना'। **आसमान से गिरना**=(१) अकारण प्रकट होना। आप से आप आ जाना। जैसे,—अगर यह पुस्तक तुमने यहाँ नहीं रखी तो क्या आसमान से गिरी है? (२) अनायास प्राप्त होना। बिना परिश्रम मिलना। जैसे,—कुछ काम धाम करते नहीं, रुपया क्या आसमान से गिरेगा? **आसमान से बातें करना**=आसमान छूना। आसमान तक पहुँचना। बहुत ऊँचा होना। जैसे,—माधवराय के दोनों धरहरे आसमान से बातें करते हैं। (हाल ही में एक धरहरा कमजोर होने से गिर गया। अब एक ही है)। **दिमाग आसमान पर होना**=बहुत अभिमान होना।

आसमानखोंचा—संज्ञा पुं० [फा० **आसमान**+हिं० **खोंचा**] १. लंबा लग्गा या धरहरा जो ऊपर तक गया हो। २. बहुत लंबा आदमी। ३. एक तरह का हुक्का जिसकी नैची इतनी लंबी होती है कि हुक्का नीचे रहता है और पीनेवाला कोठे पर।

आसमानी[१]—वि० [फा०] १. आकाश संबंधी। आकाशीय। आसमान का। २. आकाश के रंग का। हलका नीला। ३. दैवी। ईश्वरीय। जैसे,—उनके ऊपर आसमानी गजब पड़ा।

आसमानी[२]—संज्ञा स्त्री० १. ताड़ के पेड़ से निकला हुआ मद्य। ताड़ी। २. किसी प्रकार का नशा; जैसे,—भाँग, शराब। ३. मिस्र देश की एक कपास। ४. पालकी के कहारों की एक बोली। (जब कोई पेड़ की डाल आदि आगे आ जाती है जिसका ऊपर से पालकी में धक्का लगने का डर रहता है, तब आगेवाले कहार पीछेवालों को 'आसमानी, आसमानी' कहकर सचेत करते हैं।

आसमुद्र—क्रि० वि० [सं०] समुद्र पर्यंत। समुद्र के तट तक। उ०—आसमुद्र के छितीस और जाति कौ गनै। राजभौम भोज को सबै जने गए बनै।—केशव (शब्द०)।

आसयⓅ—संज्ञा पुं० [सं० **आशय**] दे० 'आशय'। उ०—वैष्णवन के मत को आसय जानि गए।—दो सौ बावन, भा० १, पृ० ३११।

आसर[१]—संज्ञा पुं० [सं० **आशर**] दे० 'आशर'।

आसर[२]—संज्ञा पुं० [अं० **अशर**] दस रुपए (कसाइयों की बोली)।

आसरनाⓅ—क्रि० स० [सं० **आश्रयण**] आश्रय लेना। सहारा लेना। उ०—नर तनु भक्ति तुम्हारी होय। तन में जीव आसरै सोय (शब्द०)।

आसरमⓅ—संज्ञा पुं० [सं० **आश्रम**] दे० 'आश्रम'। उ०—चार बिचार आसरम धरम।—पलटू०, पृ० ५५।

आसरा—संज्ञा पुं० [सं० **आश्रय** प्रा० ***आसरअ**] १. सहारा। आधार। अवलंब। जैसे—(क) यह छत खंभों के आसरे पर है। (ख) बुड्ढे लोग लाठी के आसरे पर चलते हैं। २. भरण पोषण की आशा। भरोसा। आस। ३. किसी से सहायता पाने का निश्चय। जैसे,—हमें आप ही का आसरा है दूसरा हमारा कौन है।

क्रि० प्र०—करना।—लगाना।—होना।

मुहा०—**आसरा टूटना**=भरोसा न रहना। नैराश्य होना। **आसरा देना**=वचन देना। किसी बात का विश्वास दिलाना।

४. जीवन या कार्य निर्वाह का हेतु। आश्रयदाता। सहायक। जैसे,—हम तो अपना आसरा आपको ही समझते हैं। ५. शरण। पनाह। जैसे,—जिसने तुम्हें आश्रय दिया उसी के साथ ऐसा करते हो।

क्रि० प्र०—ढूँढ़ना।—पकड़ना।—देना।—लेना।

६. प्रतीक्षा। प्रत्याशा। इंतजार।

क्रि० प्र०—तकना।—देखना।—में रहना।

७. आशा। जैसे,—अब उसका क्या आसरा है, चार दिनों का मेहमान है।

आसरैत†—वि० [सं० **आश्रित** या हिं० **आसरा**+**ऐत** (प्रत्य०)।] १. आश्रित। किसी के सहारे रहनेवाला। २. रखैल।

आसव—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह मद्य जो भभके से न चुआई जाय, केवल फलों के खमीर को निचोड़कर बनाई जाय। उ०—इड़ा ढालती थी वह आसव जिसकी बुझती प्यास नहीं।—कामायनी, पृ० १८३। २. औषध का एक भेद। कई द्रव्यों को पानी में मिलाकर भूमि में ३०-४० या ६० दिन तक गाड़ रखते हैं फिर उस खमीर को निकालकर छान लेते हैं। इसी को आसव कहते हैं। ३. अर्क। ४. वह पात्र जिसमें मद्य रखा जाय। ५. उत्तेजन। ६. मकरंद। पुष्परस (को०)। ७. अधर रस (को०)।

आसवद्रु—संज्ञा पुं० [सं०] १. तालवृक्ष। ताड़ का पेड़। २. खजूर [को०]।

आसवन—संज्ञा पुं० [सं०] आसव बनाने की क्रिया [को०]।

आसवी--वि० [सं० आसविन्] शराबी। मद्यप। मद्यपान करनेवाला। उ०—वे नैनन से आसवी मैं न लखेघनस्याम। छकि छकि मतवारे रहैं, तव छबि मद बसु जाम।—स० सप्तक, पृ० २७२।

आसहर(पु)--वि० [सं० आशा+हर] निराश। उ०—सबै आसहर तकर आसा। वह न काहु के आस निरासा।—जायसी ग्रं०, पृ० २।

आसा[1](पु)--संज्ञा पुं० [सं० आशा] दे० 'आशा'।

आसा[2]—संज्ञा पुं० [अ० असा] सोने चाँदी का डंडा जिसे केवल सजावट के लिये राजा महाराजों अथवा बरात और जुलूस के आगे चोबदार लेकर चलते हैं।

यौ०—आसाबल्लम। आसालोंटा। आसाबरदार।

आसाइश--संज्ञा पुं० [फ़ा०] आराम। सुख। चैन।

आसाढ़(पु)--संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आषाढ़'।

आसादन--संज्ञा पुं० [सं०] १. प्राप्त करना। २. रखना। ३. झपटकर पकड़ लेना। ४. आक्रमण करना [को०]।

आसादित--वि० [सं०] १. प्राप्त। उपलब्ध। २. पहुँचा हुआ। ३. बिखेरा हुआ। ४. पूर्ण किया हुआ। ५. आक्रांत [को०]।

आसान--वि० [फ़ा०] सहज। सरल। सीधा। सहल।

आसानी--संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] सरलता। सुगमता। सुबीता।

आसापाल—संज्ञा पुं० [देश०] एक पेड़ का नाम।

आसाम--संज्ञा पुं० [देश०] भारत का एक प्रांत या राज्य जो बंगाल के उत्तर पूर्व में है।

विशेष--इसको प्राचीन काल में 'कामरूप' देश कहते थे। इस देश में हाथी अच्छे होते हैं। यहाँ पहले 'आहम' वंशी क्षत्रियों का राज्य था। इसी से इस देश का नाम 'आहम' या 'आसाम' पड़ गया है। मनीपुर के राजा लोग अपने को इसी वंश का बतलाते हैं।

आसामी[1]--संज्ञा पुं०, स्त्री० [हिं०] दे० 'असामी'।

आसामी[2]–वि० [हिं० आसाम] आसाम देश का। आसाम देश संबंधी।

आसामी[3]--संज्ञा पुं० आसाम देश का निवासी।

आसामी[4]--संज्ञा स्त्री० आसाम देश की भाषा।

आसामुखी(पु)--वि० [सं० आशा+मुख+हिं० ई (प्रत्य०)] किसी के मुख का आसरा देखनेवाला। मुखापेक्षी। उ०—(क) जो जाकर अस आसामुखी। दुख महँ ऐस न मारै दुखी।—जायसी ग्रं०, पृ० ९७। (ख) पाहन कूँ का पूजिए जे जनम म देई जाब। आधा नर आसामुखी, यौं ही खोवै आब।—कबीर ग्रं० पृ० ४४।

आसार[1]--संज्ञा पुं० [अ०] १. चिह्न। लक्षण। निशान। उ०—बारिश के आसार पाए जाते हैं।—श्रीनिवा सग्रं०, पृ०...। २. चौड़ाई। ३. नींव। बुनियाद [को०]। ४. खंडहर [को०]।

आसार[2]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. धारा। संपात। मूसलाधार वृष्टि। २. कौटिल्य के अनुसार लड़ाई में मित्र आदि से मिलनेवाली सहायता। ३. मेघमाला।—(डिं०) ४. हमला। हल्ला आक्रमण (को०)। ५. शत्रु की सेना को घेरने की क्रिया [को०]।

आसारित—संज्ञा पुं० [सं०] एक वैदिक गीत।

आसाव--वि० [सं०] प्रशंसक। स्तुतिकारक [को०]।

आसावरी—संज्ञा पुं० [हिं० ?] १. श्रीराग की एक रागिनी। इसका स्वर ध, नि, स, म, प, ध है और गाने का समय प्रातःकाल १. दंड से ५ दंड तक। दे० 'असावरी'। २. एक प्रकार का कबूतर। ३. एक प्रकार का सूती कपड़ा।

आसिक[1]—वि० [सं०] तलवार चलानेवाला। असिकला में प्रवीण।

आसिक[2](पु)--वि० [अ० आशिक़] प्रेम करनेवाला [को०]।

आसिक्त--वि० [सं०] अभिसिंचित। सींचा हुआ। भींगा हुआ [को०]।

आसिख, आसिखा(पु)--संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'आशिष'।

आसित[1]—वि० [सं०] १. बैठा हुआ। २. सुखासीन [को०]।

आसित[2]--संज्ञा पुं० १. असित मुनि का पुत्र। २. शांडिल्य गोत्र का एक प्रवर विशेष। ३. बैठने का तरीका (को०)। ४. बैठने की वस्तु। आसन (को०)।

आसिद्ध--संज्ञा पुं०[सं०]राजाज्ञा के अनुसार मुद्दई के द्वारा हिरासत में किया हुआ मुद्दालैह् (प्रतिवादी)।

आसिन--संज्ञा पुं० [सं० आश्विन] क्वार का महीना।

आसिया--संज्ञा स्त्री० [फा०] चक्की। जाता। पेषणी [को०]।

आसिरबचन(पु)--संज्ञा पुं० [सं० आशीर्वचन] आशीर्वाद। आसीस उ०—बंदि बंदि पग सिय सबही के। आसिरबचन लहे प्रिय जी के।—मानस, २।२४५।

आसिरबाद(पु)—संज्ञा पुं० [सं० आशीर्वाद] दे० 'आशीर्वाद'।

आसिरा(पु)--संज्ञा पुं० दे० 'आसरा'। उ०—दादू मैं ही मेरे आसिरे, मैं मेरे आधार।—दादू० बानी, पृ०...।

आसिषा(पु)--संज्ञा स्त्री०[हिं०]दे० आशिष। उ०—औरो एक आसिषा मोरी। अप्रतिहत गति होइहि तोरी।—मानस, ७।१०९।

आसिस(पु)—संज्ञा पुं०[हिं०] दे० 'आशिष'। उ०—दछिना देत नंद पग लागत आसिस देत गरग सब द्विज वर।—नंद ग्रं०, पृ० ५७१।

आसी(पु)—वि० [सं० आशी] दे० 'आशी'।

आसीन—वि० [सं०] बैठा हुआ। विराजमान।

आसीनपाठ्य--संज्ञा पुं० [सं०] नाट्यशास्त्र के अनुसार लास्य के दस अंगों में से एक। शोक और चिंता से युक्त किसी आभूषितांगी नायिका का बिना किसी बाजे या साज के यों ही गाना।

आसीर्वाद—संज्ञा पुं० [सं० आशीर्वाद] दे० 'आशीर्वाद'। उ०—कोऊ बैष्णव को आसीर्वाद तो नहिं भयो?—दो सौ बावन०, भा० २, पृ० ४९।

आसीवन--संज्ञा पुं० [सं०] सीने की क्रिया। तागे डालना। टाँके लगाना [को०]।

आसीस[1]--संज्ञा पुं० [सं० आ+शीर्ष] तकिया। उसीसा। उ०—तिसपर फेन से बिछौने फूलों से सँवारे विशाल गड्डवा और आसीसे समेत सुगंध से महक रहे थे।—लल्लू (शब्द०)।

आसीस[2]—संज्ञा पुं० [सं० आशिष] दे० 'आशिष'।

आसु[1](पु)--सर्व [सं० अस्य, प्रा० अस्स, आसु जैसे 'यस्य' से जासु, 'तस्य' से तासु] इसका। उ०—जानि पुछार जो भय बनवासू। रोवँ रोवँ परि फाँद न आसू।—जायसी (शब्द०)।

आसु[2] ⓟ—क्रि० वि० [सं० **आशु**] दे० 'आशु'। उ०—आनि कै पाँ परौ देस लै, कोस लै आसु ही ईस सीता चलैं ओक को। —रामचं०, पृ० ११३।

आसुगⓟ—वि० संज्ञा पुं० [सं० **आशुग**] दे० 'आशुग'।

आसुति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. प्रस्रवण। चुवाना। २. चुआकर बनाई जानेवाली ओषधिविशेष। ३. प्रसव। ४. स्थिरता [को०]।

आसुंतीवल—संज्ञा पुं० [सं०] १. कन्यापालक। बालिक का अभिभावक। २. पुरोहित। ३. शराब चुआनेवाला कलाल। ४. बलि देनेवाला व्यक्ति [को०]।

आसुतोष[1]ⓟ—संज्ञा पुं० वि० [सं० **आशुतोष**] दे० 'आशुतोष'।

आसुर[1]—वि० [सं०] १. असुरसंबंधी।

यौ०—**आसुर विवाह** = वह विवाह जो कन्या के मातापिता को द्रव्य देकर हो। **आसुरावेश** = भूत लगना।

२. दैवी (को०)। ३. यज्ञादि न करनेवाला (को०)।

आसुर[2]—संज्ञा पुं० १. राक्षस। असुर। २. बिरिया। सोंचर नमक। कटीला। विड् लवण। ३. रुधिर (को०)।

आसुरि—संज्ञा पुं० [सं०] एक मुनि जो सांख्य योग के आचार्य कपिल मुनि के शिष्य थे।

आसुरी[1]—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'आसुरि'।

आसुरी[2]—वि० स्त्री० [सं०] असुर संबंधी। असुरों का। राक्षसी।

यौ०—**आसुरी चिकित्सा** = शस्त्रचिकित्सा। चीरफाड़। **आसुरी माया** = चक्कर में डालनेवाली राक्षसों की चाल। **आसुरी संपत्**। **आसुरी सृष्टि**।

आसुरी[3]—संज्ञा स्त्री० १. राक्षस की स्त्री। उ०—कहूँ किन्नरी किन्नरी लै बजावैं। सुरी आसुरी बाँसुरी गीत गावैं।—रामचं०, पृ० ६५। २. वैदिक छंदों का एक भेद। ३. राजिका। राई। ४. सरसों। ५. शस्त्रचिकित्सा। चीरफाड़ (को०)।

आसुरीसंपत्—संज्ञा स्त्री० [सं० **आसुरीसम्पत्**] १. राक्षसी वृत्ति। बुरे कर्मों का संचय। २. कुमार्ग से आई हुई संपत्ति। बुरी कमाई का धन।

आसुरीसृष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] दैवी आपत्ति। जैसे,—आग लगना, पानी की बाढ़, दुर्भिक्ष आदि।

आसूत्रित—वि० [सं०] १. माल बनानेवाला। मालाकार। २. माला पहननेवाला। २. गुँथा हुआ [को०]।

आसूदगी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] तृप्ति। संतोष।

आसूदा—वि० [फ़ा० **आसूदह्**] १. संतुष्ट। तृप्त। २. संपन्न। भरापूरा।

यौ०—**आसूदा हाल** = खाने पीने से खुश।

आसेक—संज्ञा पुं० [सं०] १. भिगोना। अच्छी तरह भिगोना। २. सींचना। आसेचन। जलसिक्त करना। अच्छी तरह सींचना। [को०]।

आसेक्य—वि० [सं०] वैद्यक के अनुसार एक प्रकार का नपुंसक।

आसेचन[1]—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'आसेक'।

आसेचन[2]—वि० [सं०] सुंदर। लुभावना [को०]।

आसेचनी[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] लघु पात्र [को०]।

आसेद्धा—संज्ञा पुं० [सं० **आसेद्धृ**] बंदी बनानेवाला व्यक्ति। हिरासत में लेनेवाला [को०]।

आसेध—संज्ञा पुं० [सं०] राजा की आज्ञा से वादी (मुद्दई) का प्रतिवादी (मुद्दालैह्) को हिरासत में रखना।

आसेधक—वि० [सं०] दे० 'आसेद्धा' [को०]।

आसेब—संज्ञा पुं० [फ़ा०] [वि० **आसेबी**] १. भूत प्रेत की बाधा। **क्रि० प्र०—उतरना।—उतारना।—लगना।—होना।**

२. कष्ट। दुख [को०]। ३. आघात। चोट [को०]। ४. रोक। बाधा [को०]।

आसेवन—संज्ञा पुं० [सं०] १. निरंतर सेवन करना। २. मेलजोल। बराबर होने का भाव [को०]।

आसेवा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'आसेवन' [को०]।

आसेवित—वि० [सं०] सतत किया हुआ। बहुत दिनों तक व्यवहृत [को०]।

आसेवी—वि० [सं० **आसेविन्**] निरंतर सेवन करनेवाला। अभ्यासी [को०]।

आसेव्य—वि० [सं०] १. निरंतर सेवा के योग्य। २. देखने योग्य [को०]।

आसेरⓟ—संज्ञा पुं० [सं० **आश्रय**] किला।—(डिं०)।

आसोज, **आसोजा**—संज्ञा पुं० [सं० **अश्वयुज्**] आश्विन मास। क्वार का महीना। उ०—आस रही आसोज आइहैं पीव री।—सुंदर ग्रं०, भा० १, पृ० ३६४।

आसौंⓟ—क्रि० वि० [सं० **अस्मिन्** प्रा० **अंसिस** = इस + सं० **सम** = वर्ष] इस वर्ष। इस साल।

आस्कंद—संज्ञा पुं० [सं० **आस्कन्द**] १. नाश। २. शोषण। ३. आक्रमण। ४. आरोहण। ५. युद्ध। ६. घोड़े की एक चाल। ७. अपशब्द। तिरस्कार या अपमान ८. आक्रमण करनेवाला व्यक्ति [को०]

आस्कंदन—संज्ञा पुं० [सं० **आस्कन्दन**] दे० 'आस्कंद'।

आस्कंदित[1]—वि० [सं० **आस्कन्दित**] १. भारग्रस्त। २. कुचला गया [को०]।

आस्कंदित[2]—संज्ञा पुं० घोड़े की तेज सरपट चाल [को०]।

आस्कंदी—वि० [सं० **आस्कन्दिन्**] १. आक्रमणकारी। आक्रांता। २. खर्च करनेवाला। ३. अपहर्ता [को०]।

आस्तर—संज्ञा पुं० [सं०] १. बिछौना। बिछावन। २. हाथी की झूल। ३. बिछाना। फैलाना [को०]।

आस्तरण—संज्ञा पुं० [सं०] १. यज्ञवेदी पर बिछाए कुश। २. दरी। बिछौना। ३. झूल। ४. फैलाना। बिछाना [को०]।

आस्तरणिक—वि० [सं०] १. बिस्तरे पर सोनेवाला। २. फैलाया या बिछाया जानेवाला [को०]।

आस्तार—संज्ञा पुं० [सं०] छितराना या बिखेरना [को०]।

आस्तारपंक्ति—संज्ञा पुं० [सं० आस्तार पङ्क्ति] एक वैदिक छंद का नाम जिसके पहले और चौथे चरण में १२ वर्ण और दूसरे तथा तीसरे चरण में आठ वर्ण होते हैं। यह सब मिलाकर ४० वर्णों का छंद है।

आस्तावं—संज्ञा पुं० [सं०] १. स्तुतिपाठ। स्तवन। २. यज्ञ में वह स्थान जहाँ से स्तुतिपाठ किया जाता है [को०]।

आस्तिक[1]—वि० [सं०] १. वेद, ईश्वर और परलोक इत्यादि पर विश्वास करनेवाला। २. ईश्वर के अस्तित्व को माननेवाला।

आस्तिक[2]—संज्ञा पुं० वेद, ईश्वर और परलोक को माननेवाला पुरुष।

आस्तिकता—संज्ञा स्त्री० [सं०] वेद, ईश्वर और परलोक में विश्वास।

आस्तिकत्व—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'आस्तिकता' [को०]।

आस्तिकपन—संज्ञा पुं० [सं० **आस्तिक + हि०पन**] आस्तिकता।

आस्तिक्य—संज्ञा पुं० [सं०] ईश्वर वेद और परलोक पर विश्वास। २. जैन शास्त्रानुसार जिनप्रणीत सब भावों के अस्तित्व पर विश्वास।

आस्तीक—संज्ञा पुं० [सं०] एक ऋषि का नाम जिन्होंने जनमेजय के सर्पसत्र में तक्षक के प्राण बचाए थे। ये जरत्कारु ऋषि और वासुकि नाग की कन्या से उत्पन्न हुए थे।

आस्तीन—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] पहनने के कपड़े का वह भाग जो बाँह को ढँकता है। बाहीं।

मुहा०—**आस्तीन का साँप** = वह व्यक्ति जो मित्र होकर शत्रुता करे। ऐसा संगी जो प्रकट में हिला मिला हो और हृदय से शत्रु हो। **आस्तीन चढ़ाना** = (१) कोई काम करने के लिये मुस्तैद होना। (२) लड़ने के लिये तैयार होना। **आस्तीन में साँप पालना** = शत्रु या अशुभचिंतक को अपने पास रखकर उसका पोषण करना।

आस्ते—अव्य० [अ० **आहिस्तह्**, हिं० **आसते**] धीरे।

आस्त्र—वि० [सं०] हथियार या आयुधसंबंधी [को०]।

आस्था—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पूज्य बुद्धि। श्रद्धा।

क्रि० प्र०—रखना।—होना।

२. सभा। बैठक। ३. आलंबन। अपेक्षा। ३. प्रयत्न। चेष्टा (को०)। ४. निवास का साधन या स्थान (को०)। ५. वादा। प्रतिज्ञा (को०)। ६. आशा (को०)।

आस्थाता—वि० [सं० **आस्थातृ**] १. चढ़नेवाला। आरोही। २. खड़ा होनेवाला [को०]।

आस्थान—संज्ञा पुं० [सं०] १. बैठने की जगह। बैठक। २. सभा। दरबार।

यौ०—**आस्थानगृह, आस्थाननिकेतन, आस्थानमंडप**।

आस्थानिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] बैठने की कोई वस्तु। कुर्सी। मचिया [को०]।

आस्थानी—संज्ञा स्त्री० [सं०] सभाकक्ष। सभागृह [को०]।

आस्थापन—संज्ञा पुं० [सं०] १. स्थापित करना। खड़ा करना। २. एक बलवर्धक औषधि। ३. घी या तेल की वस्ति [को०]।

आस्थापित—वि० [सं०] १. खड़ा किया हुआ। २. संस्थापित। दृढ़ीकृत [को०]।

आस्थायिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. श्रोताओं का समाज। २. दरबार [को०]।

आस्थित—वि० [सं०] १. रहा हुआ। बसा हुआ। २. यत्न करता हुआ। ३. घेरा हुआ। ४. प्राप्त किया हुआ। पहुँचा हुआ। ५. व्याप्त। फैला हुआ [को०]।

आस्थिति—संज्ञा स्त्री० [सं०] अवस्था। दशा [को०]।

आस्थेय—वि० [सं०] १. जिसके पास पास पहुँचा जाय। २. गृहीत। ३. आदृत [को०]।

आस्नान—संज्ञा पुं० [सं०] १. पवित्रता। २. धोने या नहाने का पानी [को०]।

आस्नेय[1]—वि० [सं०] रक्तरंजित [को०]।

आस्नेय[2]—वि० मुख संबंधी [को०]।

आस्पद—संज्ञा पुं० [सं०] १. स्थान। उ०—कोटि बार आश्चर्य का आस्पद है।—श्यामा०, पृ० ७१। २. कार्य। कृत्य। ३. पद। प्रतिष्ठा। ४. अल्ल। वंश। कुल। जाति। जैसे,—आप कौन आस्पद हैं। ५. कुंडली में दसवाँ स्थान।

आस्पर्धा—संज्ञा स्त्री० [सं०] होड़ाहोड़ी। प्रतिस्पर्धा। लागडाट [को०]।

आस्पर्धी—वि० [सं० **आस्पर्धिन्**] होड़ लेनेवाला प्रतिस्पर्धी [को०]।

आस्फाल—संज्ञा पुं० [सं०] १. धक्का देना। २. रगड़ना। ३. धीरे धीरे हिलाना। ४. हाथी का कान फड़फड़ाना [को०]।

आस्फालन—संज्ञा पुं० [सं] झटका। धक्का देना। झाटना। उ०—अपूर्व आस्फालन साथ श्याम ने। अतीव लंबी वह यष्टि छीन ली।—प्रिय० प्र०, पृ० १८४।

आस्फुजित्—संज्ञा पुं० [सं०] शुक्र नामक ग्रह [को०]।

आस्फोट—संज्ञा पुं० [सं०] १. ठोकर या रगड़ से उत्पन्न शब्द। २. ताल ठोंकने का शब्द। ३. मदार।

आस्फोटक[1]—संज्ञा पुं० [सं०] अखरोट।

आस्फोटक[2]—वि० ताल ठोंकनेवाला [को०]।

आस्फोटन—संज्ञा पुं० [सं०] १. ताल ठोंकना। २. फटकना। ३. हिलाना। कँपाना। ४. संकुचन। ५. ताली बजाना। ६. उद्घाटित करना। प्रकट करना। ७. माँड़ना [को०]।

आस्फोटनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] बरमी नामक बढ़ई का औजार जिससे लकड़ी में छेद किया जाता है [को०]।

आस्फोटा—संज्ञा स्त्री० [सं०] नवमल्लिका। चमेली।

आस्फोत—संज्ञा पुं० [सं०] १. मदार। अर्क। २. कोविदार। ३. भूपलाश [को०]।

आस्फोतक—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० **आस्फोतका**] दे० 'आस्फोत', 'आस्फोता' [को०]।

आस्फोता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. मल्लिका। २. अपराजिता। ३. सारिवा [को०]।

आस्यंदन—संज्ञा पुं० [सं० **आस्यन्दन**] प्रस्रवण। बहना। [को०]।

आस्यंधय—संज्ञा पुं० [सं० **आस्यन्धय**] चुंबन करना [को०]।

आस्य—संज्ञा पुं० [सं०] मुख। मुँह। मुँखमंडल। चेहरा। उ०—वेश भाषा भंगियों पर हास्य, कर रहे थे सरस सबके आस्य।—साकेत, पृ० १७०।

आस्यपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] कमल।

आस्यलांगल—संज्ञा पुं० [सं० **आस्यलाङ्गल**] १. कुत्ता। २. सूअर [को०]।

आस्यलोम—संज्ञा पुं० [सं० **आस्यालोमन्**] दाढ़ी [को०]।

आस्या[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. विश्राम की अवस्था। २. बैठना। ३. रहना। ४. वासस्थान [को०]।

आस्या[2]—संज्ञा स्त्री० लार। राल।

आस्यासव—संज्ञा पुं० [सं०] लाला। लार [को०]।

आस्युत—वि० [सं०] एक में सिला हुआ [को०]।

आस्र—संज्ञा पुं० [सं०] रक्त। खून [को०]।

आस्रप[1]--वि० [सं०] रक्तपायी। खून चूसने या पीनेवाला [को०]।

आस्रप[2]--संज्ञा पुं० १. राक्षस। २. मूल नक्षत्र [को०]।

आस्रमⓅ--संज्ञा पुं० [सं० **आश्रम**] दे० 'आश्रम'। उ०--तुम्हरे आस्रम अबहिं ईस तप साधहिं।--तुलसी ग्रं०, पृ० ३१।

आस्रव--संज्ञा पुं० [सं०] १. उबलते हुए चावल का फेन। २. पनाला। ३. इंद्रियद्वार। उ०--आस्रव इंद्रिय द्वार कहावै। जीवहिं विषयन ओर बहावै।--(शब्द०)। ४. क्लेश। कष्ट। ५. जैनमतानुसार औदरिक और कामादि द्वारा आत्मा की गति जो दो प्रकार की है--शुभ और अशुभ।

आस्राव--संज्ञा पुं० [सं०] १. बहाव। २. घाव। ३. पीड़ा। ४. एक रोग। ५. थूक [को०]।

आस्वनित--वि० [सं०] पूर्णतया ध्वनि करता हुआ। आशब्दित [को०]।

आस्वांत--वि० [सं० **आस्वान्त**] दे० 'आस्वनित'।

आस्वाद--संज्ञा पुं० [सं०] रस। स्वाद। जायका। मजा। उ०--संस्कार से मुक्त सहृदय पुरुष रस का आस्वाद लेते हैं।--रस क०, पृ० १८।

आस्वादन--संज्ञा पुं० [सं०] [वि० **आस्वादनीय आस्वादित**] चखना। स्वाद लेना। रस लेना। मजा लेना।

आस्वादनीय--वि० [सं०] चखने योग्य। स्वाद लेने योग्य। रस लेने योग्य। मजा लेने योग्य।

आस्वादित--वि० [सं०] चखा हुआ। स्वाद लिया हुआ। रस लिया हुआ। मजा लिया हुआ।

आस्वाद्य--वि० [सं०] आस्वादन करने योग्य। जायकेदार। खाने में मधुर। मीठा [को०]।

आह[1]--अव्य० [सं० **अहह**] पीड़ा, शोक, दुःख, खेद और ग्लानिसूचक अव्यय। उ०--पीड़ा--आह! बड़ाभारी काँटा पैर में धँसा। दुःख शोक--आह! अन्न के बिना उसकी क्या दशा हो रही है। थोड़ा क्रोध और खेद--आह! तुमने तो हमें हैरान कर डाला।

आह[2]--संज्ञा स्त्री० कराहना। दुःख या क्लेशसूचक शब्द। ठंढी साँस। उसास। उ०--तुलसी आह गरीब की, हरि सों सही न जाय। मुई खाल की फूँक सों, लोह भसम होइ जाय।--तुलसी (शब्द०)।

मुहा०--**आह करना**=हाय करना। कलपना। ठंढी साँस लेना। उ०--(क) आह करों तो जग जले, जंगल भी जल जाय। पापी जियरा ना जले, जिसमें आह समाय। (शब्द०)। (ख) भरथरि बिछुरी पिंगला आह करत जिउ दीन्ह।--जायसी ग्रं०, पृ० २७२। **आह खींचना**=ठंढी साँस भरना। उसास खींचना। जैसे,--उसने तो आह खींचकर कहा कि तेरे जी में जो आवे, सो कर। **आह पड़ना**=शाप पड़ना। किसी को दुःख पहुँचाने का फल मिलना। जैसे,--तुम पर उसी दुःखिया की आह पड़ी है। **आह भरना**=ठंढी साँस खींचना। उ०--चितहिं जो चित्र कीन्ह, धन रों रों अंग समीप। सहा साल दुख आह भर, मुरछ परी कामीप।--जायसी (शब्द०)। **आह मारना**=ठंढी साँस खींचना। उ०--आह जो मारी बिरह की, आग उठि तेहि लाग। हंस जो रहा शरीर महँ पंख जरे तब भाग।--जायसी (शब्द०)। **आह लेना**=सताना। दुःख देकर कलपाना। किसी को सताने का फल अपने ऊपर लेना। जैसे,--नाहक किसी की आह क्यों लेते हो।

आह[3]Ⓟ--संज्ञा पुं० [राज० **आहस**=**बल**] साहस। हियाव। बल। उ०--जड़ के निकट प्रवीन की, नहीं चलै कछु आह। चतुराई ढिग अंध के, करै चितेरी चाह।--दीनदयाल (शब्द०)।

आहक--संज्ञा पुं० [सं०] १. एक रोग जो नाक में होता है। २. गीर्वाण [को०]।

आहचर्जⓅ--संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'आश्चर्य'। उ०--सदा समीपिनि सखिहू लखति अति आहचर्ज सौं।--रत्नाकर, पृ० ६।

आहट--संज्ञा स्त्री० [हिं० **आ**=**आना**+**हट** (प्रत्य०), **जैसे--बुलाहट घबराहट**] १. शब्द जो चलने में पैर तथा और दूसरे अंगों से होता है। आने का शब्द। पाँव की चाप। खड़का। जैसे,--(क) किसी के आने की आहट मिल रही है। उ०--होत न आहट भो पग धारे। बिनु घंटन ज्यों गज मतवारे।--लाल (शब्द०)। (ग) आहट पाय गोपाल की ग्वालि गरी महँ जाय के धाय लियो है। (शब्द०)।

क्रि० प्र०--पाना।--मिलना।--लेना।

२. आवाज जिससे किसी के रहने का अनुमान हो। जैसे,--कोठरी में किसी आदमी की आहट मिल रही है।

क्रि० प्र०--पाना।--मिलना।--लेना।

३. पता। सुराग। टोह। निशान।

क्रि० प्र०--लगना।--लगाना।

आहत[1]--वि० [सं०] [संज्ञा **आहति**] १. जिसपर आघात हुआ हो। चोट खाया हुआ। घायल। जखमी। जैसे,--उस युद्ध में ४०० सिपाही आहत हुए। २. जिस संख्या को गुणित करें। गुण्य। ३. व्याघात दोष से युक्त (वाक्य)। परस्पर विरुद्ध (वाक्य)। असंभव (वाक्य)। ४. तुरंत धोया हुआ (वस्त्र)। (वस्त्र) जो अभी धुलकर आया हो। ५. पुराना। जीर्ण। गला हुआ। ६. चलित। कंपित। थर्राता हुआ। हिलता हुआ। ७. हत। मृत [को०]। ८. आघात किया हुआ। बजाया हुआ [को०]। कुचला या रौंदा हुआ [को०]।

यौ०--हताहत=मारे हुए और जखमी।

आहत[2]--संज्ञा पुं० [सं०] १. ढोल। २. नया अथवा पुराना वस्त्र [को०]।

आहति--संज्ञा स्त्री० [सं०] १. चोट। मार। २. गुणन। गुणना। ३. मार डालना। वध [को०]।

आहन--संज्ञा पुं० [फा०] लोहा।

आहनन--संज्ञा पुं० [सं०] १. यष्टि। डंडा। २. मारना। पीटना [को०]।

आहनी--वि० [फा०] लोहे का।

आहर[1]Ⓟ--संज्ञा पुं० [सं० **अहः**] समय। काल। दिन। उ०--कित तप कीन्ह छाँड़ि कै राजू। आहर गयो न भा सिध काजू। जायसी (शब्द०)।

आहर[2]--संज्ञा पुं० [सं० **आहरण**] युद्ध। लड़ाई।

आहर[3]--संज्ञा पुं० [सं० **आहाव**] [अल्पा० **आहरा**] वह हौज जो पोखरे से छोटा हो, पर तलैया और मारू से बड़ा हो।

आहर[4]--संज्ञा पुं० [सं०] १. स्वीकार। ग्रहण। लेना। २. बलिप्रदान कृत्य। ३. वह वायु जो श्वास के रूप में खींची जाती है [को०]।

आहरण—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० **आहरणीय**; कर्तृ० **आहर्ता**] १. छीनना। हर लेना। २. किसी पदार्थ को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाना। स्थानांतरित करना। ३. ग्रहण। लेना। ४. विवाह के अवसर पर वधू को उपहाररूप में देय धन [कौ०]।

आहरणीय—वि० [सं०] छीनने योग्य। हर लेने योग्य।

आहरन—संज्ञा पुं० [सं० **आहनन** = जिसपर आघात किया जाय, अथवा सं० **आघटन** = जिसपर वस्तु को पीटकर उसकी घटना अर्थात् रचना की जाय, वस्तु को गढ़ा जाय।] लोहारों और सुनारों की निहाई।

आहरी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० **आहर का अल्पा०**] १. छोटा हौज या गड्ढा। अहरी। २. थाला। ३. कुँए के पास का हौज या गड्ढा जो पशुओं के पानी पीने के लिये बनाया जाता है।

आहर्ता—वि० [सं० **आहर्तृ**] [वि० स्त्री० **आहर्त्री**] १. हरण करनेवाला छीननेवाला। लेनेवाला। ले जानेवाला। २. अनुष्ठान करनेवाला। अनुष्ठाता।

आहला†—संज्ञा पुं० [सं० **आ + हला = जल**] जल की बाढ़।

आहव—संज्ञा पुं० [सं०] १. युद्ध। लड़ाई। २. यज्ञ। ३. पुकारना। आह्वान [कौ०]।

आहवन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० **आहवनी**] १. यज्ञ करना। होम करना। २. यज्ञीय हवि (कौ०)।

आहवनी—वि० [सं०] यज्ञ करने योग्य। होम करने योग्य।

आहवनीय (अग्नि)—संज्ञा स्त्री० [सं०] कर्मकांड में तीन प्रकार की अग्नियों में तीसरी। यह गार्हपत्य अग्नि से निकालकर अभिमंत्रित करके यज्ञ के लिये मंडप में पूर्व ओर स्थापित की जाती है।

आहाँ[१]—संज्ञा पुं० [सं० **आह्वान**] १. हाँक। दुहाई। उ०—अदल जो कीन्ह उमर की नाइ। भइ आहाँ सगरी दुनियाई।—जायसी (शब्द०)। २. पुकार। बुलावा। उ०—भइ आहाँ पदुमावति चली। छत्तिस कुरि भइँ गोहन भली।—जायसी (शब्द०)

आहाँ[२]†—अव्य० [**अ = नहीं + हाँ**] अस्वीकार का शब्द। जैसे,—प्रश्न—तुम कुछ और लोगे? उत्तर—आहाँ।

आहा—अव्य० [सं० **अहह**] आश्चर्य और हर्षसूचक अव्यय। जैसे,—**आश्चर्य**—आहा! आप ही थे, जो दीवार की आड़ से बोल रहे थे। हर्ष—आहा! क्या सुंदर चित्र है।

आहार—संज्ञा पुं० [सं०] १. भोजन। खाना।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

यौ०—निराहार। फलाहार।

२. खाने की वस्तु; जैसे,—बहुत दिनों से उसे ठीक आहार नहीं मिला है। ३. ले लेना। ग्रहण। स्वीकार (कौ०)।

आहारक—संज्ञा पुं० [सं०] जैन शास्त्रानुसार एक प्रकार की उपलब्धि जिसके द्वारा चतुर्दश पूर्वाधारी मुनिराज अपनी शंका के समाधान के लिये हस्त मात्र शरीर धारण कर तीर्थंकारों के पास उपस्थित होते हैं।

आहारपाक—संज्ञा पुं० [सं०] १. पेट में खाए हुए पदार्थ का पचना। २. पकाने की क्रिया [कौ०]।

आहारविज्ञान—संज्ञा पुं० [सं०] पाकविद्या। खाद्य वस्तुओं के गुण-दोष आदि को प्रस्तुत करनेवाला विज्ञान [कौ०]।

आहारविहार—संज्ञा पुं० [सं०] खाना, पीना, सोना आदि शारीरिक व्यवहार। रहनसहन।

यौ०—मिथ्या आहारविहार = विरुद्ध शारीरिक व्यवहार। खाने पीने आदि का व्यतिक्रम।

आहारसंभव—संज्ञा पुं० [सं० **आहारसम्भव**] शरीर के भीतर आहार द्वारा बना रस, जिससे रक्त बनता है [कौ०]।

आहारिक—संज्ञा पुं० [सं०] जैन शास्त्रानुसार आत्मा के पाँच शरीरों में से एक [कौ०]।

आहारिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] खानेवाली स्त्री।

आहारी—वि० [सं० **आहारिन्**] [वि० स्त्री० आहारिणी] १. खानेवाला। भक्षक। २. स्वीकार या ग्रहण करनेवाला (कौ०)। ३. इकट्ठा करनेवाला। संचयकर्ता (कौ०)।

आहार्य[१]—वि० [सं०] १. ग्रहण किया हुआ। गृहीत। २. कृत्रिम। बनावटी। ३. खाने योग्य। ४. पूजनीय। पूज्य (कौ०)।

आहार्य[२]—संज्ञा पुं० [सं०] १. चार प्रकार के अनुभावों में चौथा। नायक और नायिका का परस्पर एक दूसरे का वेश धारण करना। उ०—स्याम रँग धारि पुनि बाँसुरी सुधारि कर पीत पट पारि बानी माधुरी सुनावैंगी। जरकसी पाग अनुराग भरे सीस बाँधि कुंडल किरीटहू की छवि दरसावैंगी। याही हेत खरी अरी हेरति हौ बाट वाकी कैयो बहुरूपि हूँ को श्रीधर भुरावैंगी। सकल समाज पहिचानैंगो न केहू भाँति आज वह बाल बृजराज बनि आवैंगी।—श्रीधर (शब्द०) २. अभिनय के चार प्रकारों में से एक। वेश भूषा आदि धारण करके अभिनय करना।

आहार्याभिनय—संज्ञा पुं० [सं] बिना कुछ बोले या चेष्टा किए केवल रूप और वेश द्वारा ही नाटक के अभिनय का संपादन, जैसे चोबदार का चपकन पहने राजा के निकट खड़ा रहना।

आहार्योदकसेतु—संज्ञा पुं० [सं०] वह नहर जिसमें किसी स्थान से खींचकर पानी लाया गया हो। वि० दे० 'सेतुबंध'।

आहाव—संज्ञा पुं० [सं०] १. ललकार। युद्ध के लिये आह्वान। २. अग्नि। ३. युद्ध। ४. कूएँ के पास बनी हुई पानी की वह टंकी जिसमें पशु पक्षी आकर पानी पीते हैं। [कौ०]।

आहिंडिक—संज्ञा पुं० [सं० **आहिण्डिक**] [**स्त्री० आहिंडिकी**] वर्ण-संकर जो निषाद जाति के पुरुष और वैदेह जाति की स्त्री के संयोग से उत्पन्न हो। यह धर्मशास्त्र में महाशूद्र कहा गया है।

आहि—क्रि० अ० [हिं०] 'आसना' का वर्तमानकालिक रूप है।

आहिक—संज्ञा पुं० [सं०] १. केतु। २. पुच्छल तारा। पाणिनि मुनि।

आहित[१]—वि० [सं०] १. रखा हुआ। स्थापित। २. धरोहर रखा हुआ। गिरों रखा हुआ। रेहन रखा हुआ।

आहित[२]—संज्ञा पुं० पंद्रह प्रकार के दासों में से एक, जो अपने स्वामी से इकट्ठा धन लेकर उसकी सेवा में रहकर उसे पटाता हो।

आहितक—संज्ञा पुं० [सं०] गिरवी या बंधक रखा हुआ माल।

आहितक्लम—वि० [सं०] थका हुआ। श्रांत [कौ०]।

आहितदास—संज्ञा पुं० [सं०] ऋण के बदले में अपने को गिरवी रखकर बना हुआ दास। कर्जा पटाने के लिये बना हुआ गुलाम।

आहितलक्षण--वि० [सं०] जो किसी विशेष चिह्न से पहचाना जाय [को०] ।

आहितस्वन--वि० [सं०] शोरगुल मचानेवाला [को०] ।

आहितांक--वि० [सं० आहिताङ्क] चिह्नवाला । चिह्नित [को०] ।

आहिताग्नि--संज्ञा पुं० [सं०] अग्निहोत्री ।

आहिति--संज्ञा स्त्री० [सं०] स्थापन । रखना [को०] ।

आहिस्ता--क्रि० वि० [फा० आहिस्तह] धीरे से । धीरे धीरे । शनैः शनैः । धीमे से ।

यौ०--आहिस्ता आहिस्ता ।

आहु--संज्ञा पुं० [सं० आहव=ललकार, युद्ध, प्रा० आह=बुलाना] ललकार । युद्ध के लिये किसी को प्रचारना । उ०--भाल लाल बेंदी छए छुटे बार छबि देत । गह्यौ राहु अति आहु करि, मनु ससि सूर समेत ।--बिहारी र०, दो० ३५५ ।

आहुक--संज्ञा पुं० [सं०] एक यादव का नाम ।

आहुड़--संज्ञा पुं० [सं० आहव+हिं० (प्रत्य०)] युद्ध । लड़ाई ।

आहुत[1]--संज्ञा पुं० [सं०] १. अतिथियज्ञ । नृयज्ञ । मनुष्ययज्ञ । अतिथिसत्कार । २. भूतयज्ञ । बलिवैश्वदेव ।

आहुत[2]--वि० हवन किया हुआ । हुत [को०] ।

आहुति--संज्ञा स्त्री० [सं०] १. मंत्र पढ़कर देवता के लिये द्रव्य को अग्नि में डालना । होम । हवन । उ०--शिव आहुति बेरा जब आई । विप्रनि दच्छहिं पूछ्यौ जाई ।--सू०, ४।५ । २. हवन में डालने की सामग्री । ३. होमद्रव्य की वह मात्रा जो एक बार में यज्ञकुंड में डाली जाय । उ०--आहुति जज्ञकुंड में डारी । कह्यौ, पुरुष उपज्यौ बल भारी ।--सूर०, ४।३९९ ।

क्रि० प्र०--करना ।--छोड़ना ।--डालना ।--देना ।--होना ।

यौ०--आज्याहुति । पूर्णाहुति ।

आहुती(पु)†--संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'आहुति' ।

आहुल्य--संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का पौधा या क्षुप [को०] ।

आहू--संज्ञा पुं० [फा०] हिरन । मृग ।

आहूत--वि० [सं०] बुलाया हुआ । आह्वान किया हुआ । निमंत्रित ।

यौ०--अनाहूत ।

आहूतसंप्लव--संज्ञा पुं० [सं० आहूतसम्प्लव] प्रलयकाल । प्रलयकालीन जलप्लावन ।

आहूति--संज्ञा स्त्री० [सं०] आह्वान । पुकार [को०] ।

आहृत--वि० [सं०] १. जो हरण किया हो । जो लिया गया हो । २. जो लाया गया हो । आनीत । लाया हुआ ।

आहेय--वि० [सं०] अहि या सर्पसंबंधी [को०] ।

आहै(पु)--क्रि० अ० [हिं०] 'आसना' क्रिया का वर्तमानकालिक रूप ।

आह्न--वि० [सं०] दिनसंबंधी । दैनिक [को०] ।

आह्निक[1]--वि० [सं०] दिन का । दैनिक । रोजाना । जैसे,--आह्निक कर्म । आह्निक कृत्य ।

आह्निक[2]--संज्ञा पुं० १. एक दिन का काम । २. सूत्रात्मक शास्त्र के भाष्य का एक अंश जो एक दिन में पढ़ा जाय । ३. अध्यापक । ४. रोजाना मजदूरी । ५. एक दिन की मजदूरी ।

आह्लाद--संज्ञा पुं० [सं०] [वि० आह्लादित] आनंद । खुशी । हर्ष । उ०--जब उमड़ना चाहिए आह्लाद, हो रहा है क्यों मुझे अवसाद ।--साकेत, पृ० १६७ ।

यौ०--आह्लादप्रद=आनंददायक ।

आह्लादक--वि० [सं०] [स्त्री० आह्लादिका] आनंददायक । खुशी देनेवाला ।

आह्लादन[1]--संज्ञा पुं० [सं०] हर्ष । आह्लाद [को०] ।

आह्लादन[2]--वि० आनंददायी । हर्ष प्रदान करनेवाला [को०] ।

आह्लादित--वि० [सं०] आनंदित । हर्षित । प्रसन्न । खुश ।

आह्लादी--वि० [सं० आह्लादिन्] १. प्रसन्न । हर्षयुक्त । २. हर्षप्रद । आनंद देनेवाला [को०] ।

आह्वय--संज्ञा पुं० [सं०] १. नाम । संज्ञा ।

यौ०--गजाह्वय । नागाह्वय । शताह्वय ।

२. तीतर, बटेर, मेढ़े आदि जीवों की लड़ाई की बाजी । प्राणिद्यूत ।

विशेष--मनु के धर्मशास्त्र में इसका बहुत निषेध है ।

आह्वयन--संज्ञा पुं० [सं०] १. नाम का उच्चारण । २. नाम [को०] ।

आह्वान--संज्ञा पुं० [सं०] १. बुलाना । बुलावा । पुकार । उ०--अंतर का आह्वान वेग से बाहर आया ।--साकेत, पृ० ४१० । २. राजा की ओर से बुलावे का पत्र । समन । तलबनामा । ३. यज्ञ में मंत्र द्वारा देवताओं को बुलाना ।

क्रि० प्र०--करना ।--होना ।

आह्वाय--संज्ञा पुं० [सं०] १. नाम । २. समन । तलबनामा [को०] ।

आह्वायक[1]--वि० [सं०] आह्वान करनेवाला । पुकारनेवाला [को०] ।

आह्वायक[2]--संज्ञा पुं० संदेशहर । संदेश ले जानेवाला । दूत [को०] ।

इ

इ--देवनागरी वर्णमाला में स्वर के अंतर्गत तीसरा वर्ण । इसका उच्चारणस्थान तालु और प्रयत्न विवृत है । ई इसका दीर्घ रूप है ।

इंक--संज्ञा स्त्री० [अं०] स्याही । मसी । रोशनाई ।

विशेष--यह मुख्यतः दो प्रकार की होती है--लिखने की और छापने की । लिखने की स्याही कसीस, हड़, माजू आदि को औटाकर बनती है और छापने की स्याही राल, तेल काजल इत्यादि को घोंटकर बनाई जाती है ।

यौ०--इंक पाट=स्याही रखने का बर्तन । मसीपात्र । दावात । इंक पैड=स्याही लगी एक छोटी सी गद्दी जिससे रबर की मुहर आदि पर स्याही लगाई जाती है ।

इंकटेबल--संज्ञा पुं० [अं०] छापेखाने में स्याही देने की चौकी ।

विशेष--यह दो प्रकार की होती है--(१) सिपुल (सादी)=यह सिर्फ एक चिकनी और साफ लोहे की ढली हुई चौकी होती है। (२) सिलिड्रिकल (बेलनदार)=लोहे की एक साफ और चिकनी चौकी होती है जिसके एक ओर लोहे का एक बेलन लगा होता है। बेलन के पीछे एक प्रकार की नाली सी बनी रहती है जिसमें कुछ पेंच लगे होते हैं और स्याही भरी रहती है। उन पेंचों को कसने और ढीला करने से स्याही आवश्यकतानुसार कम वा अधिक आती है और पिसकर बराबर हो जाती है। बेलनवाली चौकी में स्याही देनेवाले को अधिक मलने का परिश्रम नहीं करना पड़ता।

इंकमैन--संज्ञा पुं० [अं०] छापेखाने में मशीनपर स्याही देनेवाला मनुष्य। स्याहीवान।

इंकरोलर--संज्ञा पुं० [अं०] छापेखाने में स्याही देने का बेलन।

विशेष--यह तीन प्रकार का होता है--(१) लकड़ी का मोटा बेलन जिसपर कंबल, बनात वगैरह लपेटकर ऊपर से चमड़ा मढ़ते हैं। यह बेलन पत्थर के छापे में काम देता है। (२) लकड़ी का बेलन जिसपर रबड़ ढालकर चढ़ाते हैं। यह बहुत कम काम में आता है। (३) तीसरे प्रकार का बेलन गराड़ीदार लकड़ी पर गला हुआ गुड़ और सरेस चढ़ाकर बनाते हैं। यही अधिक काम में आता है।

इंग[1]--संज्ञा पुं० [सं० **इङ्ग=इशारा, चिह्न**] १. चलना। हिलना। डुलना। २. इशारा। ३. निशान। चिह्न। ४. हाथी का दाँत। उ०--बंक लगे कुच बीच नखक्षत देखि भई दृग दूनी लजारी। मानों बियोग बराह हन्यो युग शैल की संधिनि इंगवै डारी।--केशव (शब्द०)। अंग द्वारा भावों की अभिव्यक्ति। भावों की आंगिक अभिव्यक्ति (को०)। ६. ज्ञान (को०)। ७. पृथिवी। भूमि (को०)।

इंग[2]--वि० १. गतिशील। हिलता हुआ। चल। २. विस्मयकारक। आश्चर्यजनक [को०]।

इंगन--संज्ञा पुं० [सं० **इङ्गन**] [वि० **इंगित**] चलना। काँपना। २. हिलना। डोलना। ३. इशारा। संकेत। ४. ज्ञान। जानकारी (को०)। ५. चलाना (को०)। ६. हिलाना डुलाना (को०)।

इंगनी--संज्ञा स्त्री० [अं० **मैंगनीज**] एक प्रकार का मोर्चा जो धातुओं में आक्सीजन के मिलने से पैदा होता है।

विशेष--इंगनी भारतवर्ष में राजस्थान, मैसूर, मध्यप्रांत और मद्रास की खानों से निकलती है। यह काँच के हरेपन को दूर करने और काँच का लुक करने के काम आती है। यह अब एक प्रकार का सफेद लोहा बनाने के काम में भी आती है जिसे अँगरेजी में 'फेरो मैंगनीज' कहते हैं।

इंगल(पु), **इंगला**(पु)--संज्ञा **स्त्री०** [सं० **इडा**] हठयोग के अनुसार इडा नाम की एक नाड़ी। उ०--तीर चलै जो इंगल माँही। उत्तिम संमत जो चलि जाहीं।--सं० दरिया, पृ० २७। (ख) इंगला पिंगला नाता कर ले सुषमन के घर मेला।--रामानंद०, पृ० ३६। (ग) इंगला पिंगला सुखमन नारी। शून्य सहज में बसहिं मुरारी।--सूर (शब्द०)।

विशेष--यह नाड़ी बाईं ओर होती है। इसका काम बाईं नाक के नथने से श्वास निकालना और बाहर करना है। यह शब्द इस नाड़ी के साथ की ही दूसरी नाड़ी 'पिंगला' की समध्वन्यात्मकता पर बना है। इस नाड़ी को 'चंद्र नाड़ी' कहते हैं। हठयोग के स्वरोदय में इसका विवरण है।

इंगलिश[1]--वि० [अं०] १. इंगलैंड देश संबंधी। अँगरेजी। २. पेंशन (सिपाहियों की भाषा)।

इंगलिश[2]--संज्ञा स्त्री० अँगरेजी भाषा।

इंगलिशमैन--संज्ञा पुं० [अं०] इंगलैंड निवासी व्यक्ति। अँगरेज।

इंगलिस्तान--संज्ञा पुं० [अं० **इंगलिश**+फा० **स्तन**=जगह, तुल० सं० **स्थान**] अँगरेजों का देश। इंगलैंड।

इंगलिस्तानी--वि० [अं० **इंगलिश**+फा० **स्तानी**] अँगरेजी। इंगलैंड देश का। उ०--इंगलिस्तानी और दरियाई कच्छी ओलंदेजी। औरहु बिबिध जाति के बाजी नकत पवन की तेजी।--रघुराज० (शब्द०)।

इंगलैंड--संज्ञा पुं० [अं०] अँगरजों का देश। इंगलिस्तान।

इंगार(पु)--संज्ञा पुं० [सं० **इङ्गाल**] दे० 'अंगार'। उ०--देही कण इंगार जू तपै, राजर मांथ भयउ उगतउ भाण।--बी० रासो, पृ० २१।

इंगालकर्म--संज्ञा पुं० [सं० **अङ्गारकर्म**] जैनमतानुसार वह व्यापार जो अग्नि से हो। जैसे,--लोहारी, सोनारी, ईंट बनाना, कोयला बनाना।

इंगित[1]--संज्ञा पुं० [सं० **इङ्गित**] १. हृदय के अभिप्राय को व्यक्त करनेवाली आंगिक चेष्टा। २. संकेतचिह्न। इशारा। उ०--तरुगण अपनी शाखाओं से इंगित करके उसे दिखाते मार्ग।--कानन०, पृ० ५७। ३. अभिप्राय। मन का विचार या भाव (को०)। ४. हिलना डोलना। चलन (को०)।

इंगित[2]--वि० १. हिलता हुआ। २. चलित। कंपित।

इंगितकोविद--वि० [सं० **इङ्गितकोविद**] आंगिक चेष्टा द्वारा आंतरिक भावों को जानने में उनकी अभिव्यक्ति में कुशल [को०]।

इंगितज्ञ--वि० [सं० **इङ्गितज्ञ**] दे० 'इंगित कोबिद' [को०]।

इंगु--संज्ञा पुं० [सं० **इङ्गु**] एक रोग [को०]।

इंगुद--संज्ञा पुं० [सं० **इङ्गुद**] **दे०** 'इंगुदी'।

इंगुदी--संज्ञा स्त्री० [सं० **इङ्गुदी**] १. हिंगोट का पेड़। उ०--बिलसत निंब विशाल इंगुदी अरु आमलकी।--श्यामा, पृ० ३९। २. ज्योतिष्मती वृक्ष। मालकँगनी। ३. हिंगोट की गरी (को०)।

इंगुर(पु)†--संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'ईंगुर'।

इंगुरौटी--संज्ञा **स्त्री०** [हिं० **ईंगुर**+**औटी** (प्रत्य०)] वह डिबिया या पात्र जिसमें सौभाग्यवती स्त्रियाँ ईंगुर रखती हैं। सिंधौरा।

इंगुल--संज्ञा पुं० [सं० **इङ्गुल**] दे० 'इंगुदी' [को०]।

इंच--संज्ञा **स्त्री०** [अं०] १. एक फुट का बारहवाँ हिस्सा। तीन आड़े जव की लंबाई। तस्सू। २. अत्यल्प। बहुत थोड़ा। उ०--इन महात्माओं के ध्यान में यह बात नहीं आती कि ऐसी दलीलों से उनकी अभ्रांतिशीलता एक इंच भी कम नहीं होती।--सरस्वती (शब्द०)।

इंचाक—संज्ञा पुं० [सं० इञ्चाक] एक प्रकार का मत्स्य। जलवृश्चिक [को०]।

इंचार्ज—वि० [अं०] किसी कार्य या विभाग की देखभाल करनेवाला। किसी कार्य या विभाग की जिम्मेदारी वहन करनेवाला [को०]।

इंच्छया(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० इच्छा] दे० 'इच्छा'। उ०—न तहाँ इंच्छ्या ओं अंकार। न तहाँ नाभि न नालि तार। —रामानंद०, पृ० ८।

इंछ(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० इच्छा] आकांक्षा। इच्छा।

इंछना(पु)—क्रि० स० [हिं० इंछ+ना (प्रत्य०)] दे० 'इच्छना'। उ०—पुनि तिनकी पद पंकज रज अज अजहूँ छिछै। उद्धौ बुद्धि विशुद्धनु सौं पुनि सो रह इंछै।—नंद० ग्रं०, पृ० ४१।

इंछा(पु)—संज्ञा स्त्री० दे० 'इच्छा'। उ०—बर सजोग मोहि मेरवहु कलस जाति हौं मानि। जेहि दिन इंछा पूजै बेगि चढ़ावौं आनि। —जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० २५०।

इंजन—संज्ञा पुं० [अं० एंजिन] १. कल पेंच। २. भाप या बिजली से चलनेवाला यंत्र। ३. रेलवे ट्रेन में वह गाड़ी जो सबसे आगे रहती है और सब गाड़ियों को खींचती है। उ०—इच्छा कर्म संयोगी इंजन गारड आप अकेला है।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ४०३।

यौ०—इंजनड्राइवर = इंजन को चलानेवाला व्यक्ति।

इंजर(पु)—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'समुंदरफल'।

इंजीनियर—संज्ञा पुं० [अं० एंजीनियर] १. यंत्र की विद्या जाननेवाला। कलों का बनाने या चलानेवाला। २. शिल्प विद्या में निपुण। विश्वकर्मा। ३. वह अफसर जिसके निरीक्षण में सरकारी सड़कें, इमारतें और पुल इत्यादि बनते हैं।

इंजीनियरिंग—संज्ञा स्त्री० [अं०] १. इंजीनियर का कार्य। यंत्रादि के निर्माण का काम। २. लोहे के कल पुर्जे आदि बनाने का काम [को०]।

इंजील—संज्ञा स्त्री० [यू०] १. सुसमाचार। २. ईसाइयों की धर्मपुस्तक। बाइबिल।

इंजेक्शन—संज्ञा पुं० [अं०] वह द्रव्य औषध जो सूई के द्वारा शरीर में प्रविष्ट कराया जाय। उ०—डाक्टरों ने इंजेक्शन लेने के लिये कहा।—संन्यासी, पृ० १६६।

क्रि० प्र०—चढ़ाना।—देना।—लेना।

इंट्रेंस—संज्ञा पुं० [अं० एंट्रेंस] १. द्वार। दरवाजा। फाटक। २ अंग्रेजी पाठशालाओं की एक श्रेणी।

इंड(पु)—संज्ञा पुं० [सं० अंड] दे० 'अंड'। उ०—ध्यावै इंड करै चौचंदा। आपु देखि ओर सहज अनंदा।—कबीर सा०, पृ० ६०६।

इंडज(पु)—वि० [सं० अंडज] अंडा। अंडे के आकार का। उ०—तिहि रानी पूरब क्रम गत्तिय। इंडज आकृति हड्ड प्रसूतिय।—पृ० रा०, ५७। १६६।

इंडस्ट्रियल—वि० [अं०] उद्योग धंधा संबंधी। शिल्प संबंधी। औद्योगिक। जैसे,—इंडस्ट्रियल कानफरेंस।

इंडस्ट्री—संज्ञा स्त्री० [अं०] उद्योगधंधा। शिल्प।

इंडियन—वि०, पुं० [अं०] हिंदुस्तान निवासी। भारतीय [को०]।

इंडिया—संज्ञा पुं० [यू०. अं०] हिंदुस्तान। भारतवर्ष।

इंडियाआफिस—संज्ञा पुं० [अं० इंडिया ऑफिस] ब्रिटिश शासनकाल में भारत संबंधी कार्य या व्यवस्था के लिये स्थापित लंदन स्थित एक कार्यालय। भारत और पाकिस्तान के स्वतंत्र होने पर इस कार्यालय की सभी महत्वपूर्ण सामग्री यथाप्राप्य दोनों देशों में बाँट दी गई।

इंडीक—संज्ञा पुं० [सं०] कलमतराश चाकू [को०]।

इंडेक्स—संज्ञा पुं० [अं०] (पुस्तक के) विषयों की अक्षरक्रम से बनी हुई सूची। विषयानुक्रमणिका। अनुक्रमणिका।

इंडेंट—संज्ञा पुं० [अं०] माल मँगाने के समय भेजी जानेवाली माल की वही सूची जो किसी व्यापारी के पास माल की माँग के साथ भेजी जाती है।

इंडोर्स—क्रि० स० [अं० एंडोर्स] चेक या हुंडी आदि पर रुपए देने या पाने के संबंध में हस्ताक्षर करना।

इंडोली—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक औषध का नाम।

इंडू—संज्ञा पुं० [सं०] हाथ की सुरक्षा के लिये मूज का दस्ताना [को०]।

इंतकाम—संज्ञा पुं० [अ० इंतकाम] अपकार का बदला। बदला [को०]।

इंतकाल—संज्ञा पुं० [अ० इंतकाल] १. मृत्यु। मौत। परलोकवास। २. एक जगह से दूसरी जगह जाना। ३. किसी जायदाद या संपत्ति का एक के अधिकार से दूसरे के अधिकार में जाना।

यौ०—इंतकाल जायदाद = रेहन, वय आदि के कारण संपत्ति का दूसरे के हाथ जाना।

इंतखाब—संज्ञा पुं० [अ० इंतखाब] १. खसरा या खतौनी आदि के किसी लेख की बाजाब्ते कराई हुई नकल। २. चुनना या छाँटना। ३. चुनाव [को०]।

इंतजाम—संज्ञा पुं० [अ० इंतजाम] प्रबंध। बंदोबस्त। व्यवस्था।

इंतजार—संज्ञा पुं० [अ० इंतजार] प्रतीक्षा। बाट जोहना। रास्ता देखना। अगोरना।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

इंतशार—संज्ञा पुं० [अ०] १. चिंता। परेशानी। उद्विग्नता। २. बिखरने की स्थिति। बिखराव [को०]।

इंतहा—संज्ञा पुं० [अ०] १. समाप्ति। अंत। उ०—इब्तिदा में ही मर गए सब यार। इश्क की कौन इंतहा लाया।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० १३३। २. हद। पराकाष्ठा।

मुहा०—इंतहा करना = हद कर देना। अति कर देना।

यौ०—इंतहापसंद = अति को पसंद करनेवाला। अतिवादी।

इंतहाई—वि० [अ०] अत्यधिक। हद दर्जे का। उ०—इंतहाई इश्तआल पैदा करनेवाले हालत का सिलसिला वे दलील में बाँधने लगे।—भस्मावृत० पृ० ३६।

इंथिहा—संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष का एक पारिभाषिक शब्द। मुथा। मुथहा [को०]।

इंदबर—संज्ञा पुं० [सं०] नीला कमल। इंदीवर [को०]।

इंद१(पु)—संज्ञा पुं० [सं० इंद्र, प्रा० इंद] दे० 'इंद्र'। उ०—बावरो हुतो रहो यह मंद। बलि बलि तुम कहुँ करिहैं इंद। नंद ग्रं०, पृ० ३१३।

इंद[2]—क्रि० वि० [अ०] १ समीप। नजदीक। २. पर। किंतु [को०]।

इंदउँ—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'इंदुर'। उ०—प्रेम खटोलना कसि कसि बाँध्यौ बिरह बान तिहिं लागू हो। तिहि चढ़ि इंदउँ करत गँवसियाँ अंतरि जमवा जागी हो।—कबीर ग्रं०, पृ० ११२।

इंदका—संज्ञा पुं० [सं० इन्दका] मृगशिरा नक्षत्र के ऊपर रहनेवाला नक्षत्रेश [को०]।

इंदर(पु)—संज्ञा दे० [सं० इन्द्र] दे० 'इंद्र'। उ०—मुनि जन इंदर भूलि सब, भूले गौरि गनेस—संतबानी, भा० १, पृ० ११८।

यौ०—इंदर का अखाड़ा = अप्सराओं, परियों का जमावड़ा। उ०—हमको 'नासिख' राजा इंदर का अखाड़ा चाहिए।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ३५४।

इंदराज—संज्ञा पुं० [इंदिराज०] बहीखाता। लेखाजोखा या पंजिका में लिखा जाना [को०]।

इंदव[1]—संज्ञा पुं० [सं० ऐन्दव] १. एक छंद का नाम। इसके प्रत्येक चरण में आठ भगण और दो गुरु होते हैं। इसे मत्तगयंद और मालती भी कहते हैं।

इंदव[2]—संज्ञा पुं० [सं० इन्दु] चंद्रमा।

इंदवभाल(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० इंदव + भाल] चंद्रभाल शिव। उ०—हरि न बनायौ सुरसरी कीजौ इंदवभाल।—रहीम०, पृ० १।

इंदवान(पु)—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्र + वाण = आयुध] शक्र का धनुष। इंद्र धनुष। उ०—बर गजिय ब्योम रजि इंदवान। गहि काम चाप जनु दिय निसान।—पृ० रा०, ५७।६५।

इंदिंदिर—संज्ञा पुं० [सं० इन्दिन्दिर] भ्रमर। भौंरा [को०]।

इंदिअ(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० इन्द्रिय, प्रा० इंदिय] दे० 'इंद्रिय'। उ०—इंदिअ दारुन जतहि हटिय ततहि ततहि धावे।—विद्यापति, पृ० ३७२।

इंदिया—संज्ञा पुं० [अ०] १. संमति। राय। विचार। मंशा। २. आकांक्षा। इच्छा [को०]।

इंदिरा—संज्ञा स्त्री० [सं० इन्दिरा] १. लक्ष्मी। विष्णुपत्नी। उ०—सती विधात्री इंदिरा देखी अमित अनूप।—मानस १।५५। २. कुआर के कृष्ण पक्ष की एकादशी। ३. शोभा। कांति। उ०—शरद इंदिरा के मंदिर की मानो कोई गैल रही।—कामायनी, पृ० ९८।

यौ०—इंदिरामंदिर = (१) विष्णु। (२) इंदीवर। नील कमल। इंदिरारमण = लक्ष्मीरमण। विष्णु [को०]।

इंदिरालय—संज्ञा पुं० [सं० इन्दिरालय] नीलकमल [को०]।

इंदिवर, इंदीवर—संज्ञा पुं० [स० इन्दिवर, इन्दीवर] १. नील कमल। नीलोत्पल। उ०—स्वर्गंगा में इंदीवर की, या एक पंक्ति कर रही हास। कामायनी, पृ० १५२। २. कमल।

इंदीवरिणी—संज्ञा स्त्री० [सं० इन्दीवरिणी] कमलिनी [को०]।

इंदीवरी—संज्ञा स्त्री० [सं० इन्दीवरी] शतमूली [को०]।

इंदीवार—संज्ञा पुं० [सं० इन्दवार] दे० 'इंदीवर' [को०]।

इंदु—संज्ञा पुं० [सं० इन्दु] १. चंद्रमा। २. कपूर। ३. एक प्रकार की संख्या। ४. मृगशिरा नक्षत्र। इस नक्षत्र का देवता चंद्र है।

यौ०—इंदुकमल = श्वेतकमल। इंदुकिरीट, इंदुभूषण = शिव। इंदुनंदन, इंदुपुत्र = चंद्रमा। इंदुलोक = चंद्रलोक। इंदुवासर = सोमवार।

इंदुक—संज्ञा पुं० [सं० इन्दुक] अश्मंतक का वृक्ष [को०]।

इंदुकर—संज्ञा पुं० [सं० इन्दुकर] चंद्रमा की किरण। उ०—जलविहार विचार कर विद्याधरों की बालिका; आ गई हैं क्या, कि ये हैं इंदुकर की जालिका।—कानन०, पृ० ४२।

इंदुकला—संज्ञा स्त्री० [सं० इन्दुकला] १. चंद्रमा की कला। २. चंद्रमा की किरन। उ०—भाल लाल बेंदी ललन, आखत रहे बिराजि। इंदुकला कुज में बसी, मनौ राहु भय भाजि।—बिहारी र०, दो० ६९०। ३. अमृत। पीयूष (को०)। ४. सोमलता। सोम (को०)। ५. गुडूची गुरुच (को०)।

इंदुकलिका—संज्ञा पुं० [सं० इन्दुकलिका] १. चंद्रमा की कला या चंद्रमा की किरण। २. केतकी का पौधा [को०]।

इंदुकांत—संज्ञा पुं० [सं० इन्दुकान्त] चंद्रकांत नामक मणि [को०]।

इंदुकांता—संज्ञा स्त्री० [सं० इन्दुकान्ता] केतकी। इंदुकलिका। २. निशा। रात्रि [को०]।

इंदुक्षय—संज्ञा पुं० [सं० इन्दुक्षय] १. चंद्रमा का क्षीण होना या न दिखाई देना। २. नए चाँद का दिन [को०]।

इंदुज—संज्ञा पुं० [सं० इन्दुज] चंद्रमा का पुत्र। बुध [को०]।

इंदुजनक—संज्ञा पुं० [सं० इन्दुजनक] १. चंद्रमा का पिता समुद्र। अत्रि नामक ऋषि [को०]।

इंदुजा—संज्ञा स्त्री० [सं० इन्दुजा] सोमोद्भवा। नर्मदा नदी।

इंदुपर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं० इन्दुपर्णी] पँजीरी नाम का पौधा [को०]।

इंदुपुष्पिका—संज्ञा स्त्री० [सं० इन्दुपुष्पिका] कलियारी या जांगली नाम का पौधा [को०]।

इंदुबधू(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० इन्द्रवधू] दे० 'इंद्रवधू'। उ०—ज्यों ज्यों परसे लाल तन त्यों त्यों राखति गोइ। नवल बधू लाजन ललित इंदुबधू सी होइ।—मतिराम ग्रं०, पृ० ४४६।

इंदुभ—संज्ञा पुं० [सं० इन्दुभ] १. कर्कराशि। २. मृगशिरा नक्षत्र [को०]।

इंदुभा—संज्ञा स्त्री० [सं० इन्दुभा] जलकमलिनी की एक जाति [को०]।

इंदुभृत्—संज्ञा पुं० [सं० इन्दुभृत्] शिव [को०]।

इंदुमंडल—संज्ञा पुं० [सं० इन्दुमण्डल] चंद्रमा का घेरा या परिधि [को०]।

इंदुमणि—संज्ञा पुं० [सं० इन्दुमणि] १. चंद्रकांत मणि। २. मोती [को०]।

इंदुमती—संज्ञा स्त्री० [सं० इन्दुमती] १. पूर्णिमा। २. राजा अज की पत्नी जो विदर्भ देश के राजा की बहिन थी। ३. राजा चंद्रविजय की पत्नी। उ०—चंद्रविजय नृप रह्यो तहाँ ही। रानी इंदुमती रति छाहीं। (शब्द०)।

इंदुमान्—संज्ञा पुं० [सं० इन्दुमत्] अग्नि [को०]।

इंदुमुखी—संज्ञा स्त्री० [सं० इन्दुमुखी] एक लता [को०]।

इंदुमौलि—संज्ञा पुं० [सं० इन्दुमौलि] शिव। इंदुभूषण [को०]।

इंदुर—संज्ञा पुं० [सं० इन्दुर] चूहा। मूसा।

इंदुरत्न--संज्ञा पुं० [सं० इन्दुरत्न] मुक्ता। मोती।

इंदुरेखा, इंदुलेखा--संज्ञा स्त्री० [सं० इन्दुरेखा,-लेखा] १. चंद्रमा की कला। इंदुकला। २. सोमलता। ३. अमृता। ४. गुडूची[को०]।

इंदुलतलब--क्रि० वि० [अ०] माँगने पर या जरूरत पड़ने पर [को०]।

इंदुलोहक, इंदुलौह--संज्ञा पुं० [सं० इन्दुलोहक,-लौह] चाँदी रजत [को०]।

इंदुवदना--संज्ञा स्त्री० [सं० इन्दुवदना] एक वृत्त जिसके प्रत्येक चरण में भ ज स न ग ग (ऽ।।।ऽ।।।ऽ।।।ऽऽ) होता है। उ०--इंदुबदना बदत जाउँ बलिहारी। जान मोहिं दे घरहिं सत्वर बिहारी।-(शब्द०)। २. इंदुतुल्य मुखवाली स्त्री [को०]।

इंदुवधू--संज्ञा स्त्री० [सं० इन्दुवधू] 'इंद्रवधू'।

इंदुवल्ली--संज्ञा स्त्री० [सं० इन्दुवल्ली] सोमलता [को०]।

इंदुवार-संज्ञा पुं०[सं० इन्दुवार] १.वर्ष कुंडली के सोलह योगों में से एक। जब तीसरे, छठे, नवें और बारहवें घर में क्रूर ग्रह हों, तब यह योग होता है। यह शुभ नहीं है। २. सोमवार का दिन [को०]।

इंदुव्रत--संज्ञा पुं० [सं० इन्दुव्रत] चांद्रायण नाम का एक व्रत।

इंदूर--संज्ञा पुं० [सं० इन्दूर] चूहा। मूसा।

इंद्र[1]--वि० [सं०] १. ऐश्वर्यवान्। विभूतिसंपन्न २. श्रेष्ठ। बड़ा।
यौ०--देवेंद्र। नरेंद्र। यादवेंद्र। योगींद्र। दानवेंद्र। सुरेंद्र।

इंद्र[2]--संज्ञा पुं० १.एक सर्वप्रमुख वैदिक देवता जिसका स्थान अंतरिक्ष है जो और पानी बरसाता है। यह देवताओं का राजा माना गया है। शौर्य, युद्ध और वैभव का वह सर्वश्रेष्ठ वैदिक देव है। ऋग्वेद में सबसे अधिक सूक्तों द्वारा इंद्र के शौर्य, वीर्य, पराक्रम और सोमपान आदि का वर्णन किया गया है। ऋग्वेदयुगीन वैदिक यज्ञों में भी उसका अत्यंत प्रमुख स्थान है।

विशेष--इसका वाहन ऐरावत और अस्त्र वज्र है। इसकी स्त्री का नाम शचि और सभा का नाम सुधर्मा है, जिसमें देव, गंधर्व और अप्सराएँ रहती हैं। इसकी नगरी अमरावती और वन नंदन है। उच्चैःश्रवा इसका घोड़ा और मातलि सारथी है। वृत्र, त्वष्टा, नमुचि, शंवर, पण, वलि और विरोचन इसके शत्रु हैं। जयंत इसका पुत्र है। यह ज्येष्ठा नक्षत्र और पूर्व दिशा का स्वामी है। पुराण के अनुसार एक मन्वंतर में क्रमशः चौदह इंद्र भोग करते हैं जिनके नाम ये है--इंद्र। विश्वभुक्। विपश्चित्। विभु। प्रभु। शिखि। मनोजव। तेजस्वी। बलि। अद्भुत। त्रिदिव। सुशांति। सुकीर्ति। ऋत धाता। दिवस्पति। वर्तमान काल में तेजस्वी इंद्र भोग कर रहे हैं।

पर्या०--मरुत्वान्। मघवा। बिडौजा। पाकशासन। वृद्धश्रवा। शुनासीर। पुरहूत पुरंदर। जिष्णु। लेखर्षभ। शक्र। शतमन्यु। दिवस्पति। सुत्रामा। गोत्रभिद्। वज्री। वासव। वृत्रहा। वृषा। वास्तोष्पति। सुरपति। बलाराति। शचीपति। जम्भभेदी। हरिहय। स्वराट्। नमुचिसूदन। सक्रंदन। दुश्च्यवन। तुराषाह। मेघवाहन। आखंडल। सहस्राक्ष। ऋभुक्ष। महेंद्र। कौशिक। पूतक्रतु। विश्वंभर। हरि। पुरदंशा। शतधृति। पृतनाषाड्। अहिद्विष। वज्रपाणि। देवराज। पर्वतारि। पर्यण्य। देवाधिप। नाकनाथ। पूर्वदिक्पति। पुलोमारि। अर्ह प्रचीन। बर्हि। तपस्तक्ष।

यौ०--इंद्र का अखाड़ा=(१) इंद्र की सभा जिसमें अप्सराएँ नाचती हैं। (२) बहुत सजी हुई सभा जिसमें खूब नाच रंग होता हो। इंद्र की परी=(१) अप्सरा। (२) बहुत सुंदरी स्त्री। इंद्रसभा=इंद्र का अखाड़ा। उ०--इंद्रसभा जनु परिगै डीठी।--जायसी ग्रं०, पृ० १८।

२. बारह आदित्यों में से एक। सूर्य। ३. बिजली। ४. राजा। मालिक। स्वामी। ५. ज्येष्ठा नक्षत्र। ६. चौदह की संख्या। ७. ज्योतिष में विष्कुंभादिक २७ योगों में से २६वाँ। ८. कुटज वृक्ष। ९. रात। १०. छप्पय छंद के भेदों में से एक। ११. दाहिनी आँख की पुतली। १२. व्याकरण आदि के आचार्य का नाम। १३. जीव। प्राण। १४. श्रेष्ठ या प्रधान व्यक्ति [को०]। १५. मेघ। बादल (को०)। १६. भारतवर्ष का एक भाग (को०)। १७. परमेश्वर (को०)। १८. वनस्पतिजन्य एक प्रकार का जहर [को०]।

इंद्रक--संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रक] गोष्ठी का स्थान। सभागृह [को०]।

इंद्रकर्मा--संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रकर्मन्] विष्णु [को०]।

इंद्रकांत--संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रकांत] चौमंजिले भवन की एक मंजिल या मरातिब [को०]।

इंद्रकार्मुक--संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रकार्मुक] इंद्रायुध। इंद्रधनुष [को०]।

इंद्रकील--संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रकील] १. मंदराचल का एक नाम। २. चट्टान [को०]। ३. इंद्र की ध्वजा [को०]। ४. कँटिया। किल्ली [को०]।

इंद्रकुंजर-संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रकुञ्जर] इंद्र का हाथी। ऐरावत[को०]।

इंद्रकूट--संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रकूट] एक पर्वत का नाम [को०]।

इंद्रकृष्ट[1]--वि० [सं० इन्द्रकृष्ट] वर्षा से अपने आप उत्पन्न होनेवाला [को०]।

इंद्रकृष्ट[2]--संज्ञा पुं० वर्षा के जल से अपने आप पैदा होनेवाली फसल [को०]।

इंद्रकेतु--संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रकेतु] इंद्र की ध्वजा [को०]।

इंद्रकोश, इंद्रकोष--संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रकोश,--कोष] १. मचान। २. चारपाई। ३. बालखाना। छज्जा। ४. नागदंत। खूँटी [को०]।

इंद्रकोष्ठ--संज्ञा पुं० दे० 'इंद्रकोश'।

इंद्रगिरि--संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रगिरि] महेंद्र नाम का पर्वत [को०]।

इंद्रगुरु--संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रगुरु] देवगुरु बृहस्पति [को०]।

इंद्रगोप--संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रगोप] बीरबहूटी नाम का कीड़ा।

इंद्रगोपक--संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रगोपक] दे० 'इंद्रगोप'।

इंद्रचंदन--संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रचन्दन] श्वेतचंदन। हरिचंदन [को०]।

इंद्रचाप--संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रचाप] दे० 'इंद्रधनुष'।

इंद्रचिर्भिटी--संज्ञा स्त्री० [सं० इन्द्रचिर्भिटी] इंद्रायण। एक लता-विशेष [को०]।

इंद्रच्छंद--संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रच्छन्द] एक हजार आठ मोतियों की माला जो चार हाथ लंबी होती थी।

विशेष--इसका एक नाम 'इंद्रच्छद' भी है।

इंद्रज—संज्ञा पुं० [सं० **इन्द्रज**] बालि नामक वानर जो इंद्र का पुत्र था [को०]।

इंद्रजतु—संज्ञा पुं० [सं० **इन्द्रजतु**] शिलाजीत [को०]।

इंद्रजव—संज्ञा पुं० [सं० **इन्द्रयव**] कुड़ा। कौरैया का वृक्ष।

विशेष—ये बीज लंबे-लंबे जव के आकार के होते हैं और दवा के काम में आते हैं। एक एक सींके में हाथ हाथ भर की लंबी दो दो फलियाँ लगती हैं, जिनके दोनों छोर आपस में जुड़े रहते हैं। फलियों के अंदर रुई या घूवा होता है जिसमें बीज रहते हैं। इसके पेड़ में काँटे भी होते हैं। यह मलरोधक, पाचक और गरम है तथा संग्रहणी और खूनी बवासीर में फायदा करता है। त्वचा के रोगों पर भी यह चलता है।

इंद्रजाल—संज्ञा पुं० [सं० **इन्द्रजाल**] १. मायाकर्म। जादूगरी। तिलस्म। उ०—सो नर इंद्रजाल नहिं भूला।—मानस, ३। ३३।

विशेष—यह तंत्र का भी अंग है।

२. एक प्रकार का रणचातुर्य। ३. अर्जुन का एक शस्त्र (को०)।

इंद्रजालिक—वि० [सं० **इन्द्रजालिक**] इंद्रजाल करनेवाला। जादूगर।

इंद्रजाली—वि० [सं० इन्द्रजालिन्] [वि० स्त्री० इंद्रजालिनी] इंद्रजाल करनेवाला। मायावी। जादूगर। उ०—यौं न कहौं कटि नाहि तौ कुच हैं किहि आधार। परम इंद्रजाली मदन बिधि को चरित अपार।—भिखारी ग्रं०, भा० २, पृ० १६१।

इंद्रजित्[1]—वि० [सं० **इन्द्रजित्**] इंद्र को जीतनेवाला।

इंद्रजित्[2]—संज्ञा पुं० रावण का पुत्र, मेघनाद।

इंद्रजीत(पु)—संज्ञा पुं० [सं० **इन्द्रजित्**] दे० 'इंद्रजित्'। उ०—इंद्रजीत आदिक बलवाना।—मानस, ६। ३३।

इंद्रजौ(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० **इन्द्रजव**] दे० 'इंद्रजव'।

इंद्रतरु—संज्ञा पुं० [सं० **इन्द्रतरु**] १. अर्जुन नाम का वृक्ष। २. कुटज का पौधा [को०]।

इंद्रतापन—संज्ञा पुं० [सं० **इन्द्रतापन**] १. मेघगर्जन। बादलों का गरजना। २. एक दानव का नाम [को०]।

इंद्रतूल, इंद्रतूलक—संज्ञा पुं० [सं० **इन्द्रतूल, -तूलक**] वह सूत जो वायु में उड़ जाय। २. रुई की ढेरी या समूह [को०]।

इंद्रदमन—संज्ञा पुं० [सं० **इन्द्रदमन**] १. बाढ़ के समय नदी के जल का किसी निश्चित कुंड, ताल अथवा वट या पीपल के वृक्ष तक पहुँचना। यह एक पर्व समझा जाता है। २. बाणासुर का एक पुत्र। ३. मेघनाद का एक नाम।

इंद्रदारु—संज्ञा पुं० [सं० **इन्द्रदारु**] देवदारु।

इंद्रद्युति—संज्ञा पुं० [सं० **इन्द्रद्युति**] श्वेतचंदन [को०]।

इंद्रद्रुम—संज्ञा पुं० [सं० **इन्द्रुम**] १. अर्जुन वृक्ष। २. कुटज [को०]।

इंद्रद्वीप—संज्ञा पुं० [सं० **इन्द्रद्वीप**] भारतवर्ष के नौ खंडों में एक का नाम [को०]।

इंद्रधनु—संज्ञा पुं० [सं० **इन्द्रधनुष, प्रा० इंद्रधणु**] दे० 'इंद्रधनुष'। उ०—भरी धमनियाँ सरिताओं सी, रोष इंद्रधनु उदय हुआ।—नागयज्ञ, पृ० ६५।

इंद्रधनुष—संज्ञा पुं० [सं० **इन्द्रधनुष**] १. सात रंगों का बना हुआ एक अर्धवृत्त जो वर्षाकाल में सूर्य के विरुद्ध दिशा में आकाश में देख पड़ता है। जब सूर्य की किरणें बरसते हुए जल से पार होती हैं, तब उनकी प्रतिच्छाया से इंद्रधनुष बनता है।

इंद्रध्वज—संज्ञा पुं० [सं० **इन्द्रध्वज**] १. इंद्र की पताका। २. भाद्रपद शुक्ला द्वादशी को वर्षा और खेती की वृद्धि के लिये होनेवाला एक पूजन जिसमें राजा लोग इंद्र को ध्वजा चढ़ाते और उत्सव करते हैं। ३. प्राचीन भारत में प्रचलित एक उत्सव जिसमें वैदिक देव इंद्र की आराधना होती थी।

इंद्रनील—संज्ञा पुं० [सं० **इन्द्रनील**] नीलमणि। नीलम। उ०—इंद्रनील मणि महाचषक था सोमरहित उलटा लटका।—कामायनी पृ० २४।

इंद्रनेत्र—संज्ञा पुं० [सं० **इन्द्रनेत्र**] १. १००० की संख्या। २. इंद्र की आँख [को०]।

इंद्रपर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं० **इन्द्रपर्णी**] दे० 'इंद्रपुष्पा' [को०]।

इंद्रपर्वत—संज्ञा पुं० [सं० **इन्द्रपर्वत**] १. महेंद्र पर्वत। २. एक काला पहाड़ (को०)।

इंद्रपुरोहिता—संज्ञा स्त्री० [सं० **इन्द्रपुरोहिता**] पुष्य नक्षत्र।

इंद्रपुष्पा—संज्ञा स्त्री० [सं० इन्द्रपुष्पा] करियारी। कलिहारी।

इंद्रप्रस्थ—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रप्रस्थ] एक नगर जिसे पांडवों ने खांडव वन जलाकर बसाया था। यह आधुनिक दिल्ली के निकट है।

इंद्रप्रहरण—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रप्रहरण] वज्र (को०)।

इंद्रफल—संज्ञा पुं० [सं० **इन्द्रफल**] इद्रजव।

इंद्रभगिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० **इन्द्रभगिनी**] पार्वती [को०]।

इंद्रभाष—संज्ञा पुं० [सं० **इन्द्रभाष**] संगीत में इंद्रताल के छः भेदों में से एक।

इंद्रभेषज—संज्ञा पुं० [सं० **इन्द्रभेषज**] सोंठ [को०]।

इंद्रमंडल—संज्ञा पुं० [सं० **इन्द्रमण्डल**] अभिजित से अनुराधा तक के सात नक्षत्रों का समूह।

इंद्रमख—संज्ञा पुं० [सं० **इन्द्रमख**] इंद्र की प्रसन्नता के निमित्त किया जानेवाला एक यज्ञ [को०]।

इंद्रमद—संज्ञा पुं० [सं० **इन्द्रमद**] पहली वर्षा के जल से उत्पन्न विष जिसके कारण जोंक और मछलियाँ मर जाती हैं।

इंद्रमह—संज्ञा पुं० [सं० **इन्द्रमह**] १. दे० इंद्रमख'। २. वर्षा ऋतु।

यौ०—**इंद्रमहकामुक** = श्वान। कुत्ता।

इंद्रलुप्त—संज्ञा पुं० [सं० **इन्द्रलुप्त**] खल्वाट होने का रोग। गांज रोग।

इंद्रलुप्तक—संज्ञा पुं० [सं० **इन्द्रलुप्तक**] दे० 'इंद्रलुप्त'।

इंद्रलोक—संज्ञा पुं० [सं० **इंद्रलोक**] स्वर्ग। उ०—चढ़े अस्त्र लै कृष्ण मुरारी। इंद्रलोक सब लाग गोहारी।—जायसी ग्रं०, पृ० ११३।

इंद्रवंशा—संज्ञा पुं० [सं० **इन्द्रवंशा**] १२ वर्णों का एक वृत्त जिसमें दो तगण, एक जगण और एक रगण होते हैं। उ०—ताता जरा देखु विचारि कै मनै। को मार को देत सुखै दुखै जनै। संग्राम भारी करु आज बान सों। रे इंद्रवंशा! लर कौरवान सों।—छंद०, पृ० १७२।

इंद्रवज्रा—संज्ञा पुं० [सं० **इन्द्रवज्रा**] एक वर्णवृत्त का नाम जिसमें दो तगण, एक जगण और गुरु होते हैं। उ०—ताता जगो गोकुल

नाथ गावो। भारी सबै पापन को नसावों। साँची प्रभू काटहिं जन्मबेरी। हैं इंद्रवज्रा यह सीख मेरी। छंद०, पृ० १५७।

इंद्रवधू—संज्ञा स्त्री० [सं० इन्द्रवधू] बीरबहूटी नाम का कीड़ा।

इंद्रवल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं० इन्द्रवल्ली] इंद्रायन।

इंद्रवस्ति—संज्ञा स्त्री० [सं० इन्द्रवस्ति] जाँघ की हड्डी।

इंद्रवारु—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रवारुणी] इंद्रायन। इंद्रारुन।

इंद्रवारुणी—संज्ञा स्त्री० [सं० इन्द्रवारुणी] इंद्रायन।

इंद्रवृद्ध—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रवृद्ध] [स्त्री० इन्द्रवृद्धा] एक प्रकार की फुंसी।

इंद्रव्रत—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रव्रत] वह राजा जो अपनी प्रजा को उसी तरह भरा पूरा रखे जैसे इंद्र पानी बरसाकर जीवों को प्रसन्न करता है।

इंद्रशक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं० इन्द्रशक्ति] शची। इंद्राणी [को०]।

इंद्रशत्रु—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रशत्रु] १. वृत्रासुर। २. प्रह्लाद [को०]।

इंद्रसारथि—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रसारथि] १. मातलि। २. वायु। पवन [को०]।

इंद्रसावर्णी—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रसावर्णी] चौदहवें मनु का नाम।

इंद्रसुत—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रसुत] इंद्र के पुत्र (१) जयंत। (२) बालि। (३) अर्जुन वृक्ष (को०)।

इंद्रसुरस—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रसुरस] निगुंडी या सिंदुवार का पौधा [को०]।

इंद्रसेन—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रसेन] राजा बलि का एक नाम।

इंद्रसेनानी—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रसेनानी] कार्तिकेय [को०]।

इंद्रस्तोम—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रास्तोम] १. इंद्र की प्रसन्नता के निमित्त यज्ञ। २. इंद्र की प्रार्थना [को०]।

इंद्रा—संज्ञा स्त्री० [सं० इन्द्रा] तुषार। हिम [को०]।

इंद्राग्निधूम—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्राग्निधूम] तुषार। हिम [को०]।

इंद्राणिका—संज्ञा स्त्री० [सं० इन्द्राणिका] निगुंडी [को०]।

इंद्राणी—संज्ञा स्त्री० [सं० इन्द्राणी] १. इंद्र की पत्नी, शची। २. बड़ी इलायची। ३ इंद्रायन। ४. दुर्गा देवी। ५. बाईं आँख की पुतली। ६. सिंधुवार वृक्ष। संभालू। निगुंडी।

इंद्रानी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० इन्द्राणी] दे० 'इंद्राणी'।

इंद्रानुज—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रानुज] विष्णु, जिन्होंने वामन अवतार लिया था। उपेंद्र।

इंद्रायण—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'इंद्रायन'। उ०—कटु इंद्रायण में सुंदर फल, मधुर ईख में एक नहीं।—कविता कौ०, भा०, २, पृ० १५१।

इंद्रायन—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्राणी] एक लता जो बिलकुल तरबूज की लता की तरह होती है। इनारू। उ०—इंद्रायन दाड़िम विषम जहाँ न नेकु विवेक।—भारतेंदु ग्र०, भा० २, पृ० ६६६।

विशेष—सिंध, डेरा इस्माईलखाँ, मुलतान, बहावलपुर तथा दक्षिण और मध्य भारत में यह आपसे आप उपजती है। इसका फल नारंगी के बराबर होता है जिसमें खरबूजे की तरह फाँके कटी होती हैं। पकने पर इसका रंग पीला हो जाता है। लाल रंग का भी इंद्रायन होता है। यह फल विषैला और रेचक होता है। अँगरेजी और हिंदुस्तानी दोनों दवाओं में इसका सत काम आता है। यह फल देखने में बड़ा सुंदर पर अपने कड़ुएपन के लिये प्रसिद्ध है।

मुहा०—इंद्रायन का फल = देखने में अच्छा पर वास्तव में बुरा। सूरतहराम। खोटा।

इंद्रायुध—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रायुध] १. वज्र। २. इंद्रधनुष। उ०—कादंबरी में वर्णित इंद्रायुध से क्या डीलडौल में कम था?—किन्नर०, पृ० ३४।

इंद्रावरज—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रावरज] विष्णु। उपेंद्र [को०]।

इंद्रावसान—संज्ञा स्त्री० [सं० इन्द्रावसान] रेगिस्तान। मरुभूमि [को०]।

इंद्राशन—संज्ञा स्त्री० [सं० इन्द्राशन] १. भाँग। सिद्धि। विजया। २. गुंजा। घुंघची। चिरमिटी।

इंद्रासन—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रासन] १. इंद्र का सिंहासन। इंद्रपद। २. राजसिंहासन। उ०—माँझ ऊँच इंद्रासन साजा। गंध्रबसेन बैठ तहँ राजा। जायसी ग्रं०, पृ० १८। ३. पिंगल में ठगण के पहले भेद की संज्ञा, जिसमें पाँच मात्राएँ इस क्रम से होती हैं—एक लघु और दो गुरु, जैसे,—'पुजारी'।

इंद्रिजित(पु)—संज्ञा वि० [सं० इन्द्रियजित्] दे० 'इंद्रियजित्'। उ०—देखि कै उमा कौं रुद्र लज्जित भए मैं कौन यह काम कीनौ। इंद्रिजित हौं कहावत हुतौ आपु कौं समुझि मन माहिं ह्वै रह्यौ खीनौ।—सूर० ८।१०।

इंद्रिय—संज्ञा स्त्री० [सं० इन्द्रिय] १. वह शक्ति जिससे बाहरी विषयों का ज्ञान प्राप्त होता है। वह शक्ति जिससे बाहरी वस्तुओं के भिन्न भिन्न रूपों का भिन्न भिन्न रूपों में अनुभव होता है। २. शरीर के वे अवयव जिनके द्वारा यह शक्ति विषयों का ज्ञान प्राप्त करती है।

विशेष—सांख्य ने कर्म करनेवाले अवयवों को इंद्रिय मानकर इंद्रियों के दो विभाग किए हैं—ज्ञानेंद्रिय और कर्मेंद्रिय। ज्ञानेंद्रिय वे हैं जिनसे केवल विषयों के गुणों का अनुभव होता है। ये पाँच हैं चक्षु (जिससे रूप का ज्ञान होता है), श्रोत्र (जिससे शब्द का ज्ञान होता है।), नासिका (जिससे गंध का ज्ञान होता है), रसना (जिससे स्वाद का ज्ञान होता है) और त्वचा (जिससे स्पर्श द्वारा कड़े और नरम आदि का ज्ञान होता है)। इसी प्रकार कर्मेंद्रियाँ भी, जिनके द्वारा विविध कर्म किए जाते हैं, पाँच हैं—वाणी (बोलने के लिये), हाथ (पकड़ने के लिये) पैर (चलने के लिये), गुदा (मलत्याग करने के लिये), उपस्थ (मूत्रत्याग करने के लिये)। इसके अतिरिक्त उभयात्मक अंतरेंद्रिय 'मन' भी माना गया है जिसके मन, बुद्धि, अहंकार और चित्त चार विभाग करके वेदांतियों ने कुल १४ इंद्रियाँ मानी हैं। इनके पृथक् पृथक् देवता कल्पित किए हैं, जैसे, कान के देवता दिशा, त्वचा के वायु, चक्षु के सूर्य, जिह्वा के प्रचेता, नासिका के अश्विनीकुमार, वाणी के अग्नि, पैर के विष्णु, हाथ के इंद्र, गुदा के मित्र, उपस्थ के प्रजापति, मन के चंद्रमा, बुद्धि के ब्रह्मा, चित्त के अच्युत, अहंकार के शंकर। न्याय के मत से पृथ्वी का अनुभव घ्राण से, जल का जिह्वा से, तेज का चक्षु से, वायु का त्वचा से और आकाश का कान से होता है।

यौ०--इंद्रियघात। इंद्रियजन्य। इंद्रियजित्। इंद्रियदमन। इंद्रियनिग्रह। इंद्रियसंयम। इंद्रियार्थ। इंद्रियासक्त।
३. लिंगेंद्रिय। ४. पाँच की संख्या। ५. वीर्य। ६. कुश्ती के एक पेंच का नाम।

इंद्रियगोचर[1]--वि० [सं० **इन्द्रियगोचर**] इंद्रियों के ग्रहण के योग्य या ज्ञेय। इंद्रियों का विषय होने योग्य।

इंद्रियगोचर[2]--संज्ञा पुं० इंद्रियों का विषय [को०]।

इंद्रियग्राम--संज्ञा पुं० [सं० **इन्द्रियग्राम**] इंद्रियों का समूह [को०]।

इंद्रियज--वि० [सं० **इन्द्रियज**] इंद्रियों के संयोग से होनेवाला। इंद्रियजन्य। उ०--आरंभ में मनुष्य की चेतनसत्ता अधिकतर इंद्रियज ज्ञान की समष्टि के रूप में रही।--रस०, पृ० २०।

इंद्रियजित्--वि० [सं० **इन्द्रियजित्**] जिसने इंद्रियों को जीत लिया हो। जो इंद्रियों को वश में किए हो। जो विषयासक्त न हो। उ०--नीतिनिपुण मंत्रणाकुशल थे वे रहस्यरक्षक इंद्रियजित्।--स्वप्न, पृ० ३९।

इंद्रियनिग्रह--संज्ञा पुं० [सं० **इन्द्रियनिग्रह**] इंद्रियों को दबाना। इंद्रियों के वेग को रोकने का नियम।

इंद्रियबोधन--वि० [सं० **इन्द्रियबोधन**] इंद्रिय को जाग्रत या क्रियाशील करनेवाला [को०]।

इंद्रियलोलुप--वि० [सं० **इन्द्रियलोलुप**] इंद्रिय की तुष्टि के लिये व्याकुल [को०]।

इंद्रियवज्री--संज्ञा स्त्री० [सं० **इन्द्रिय + वज्र**] वाजीकरण क्रिया का एक भेद।

इंद्रियवध--संज्ञा पुं० [सं० **इन्द्रियवध**] इंद्रियों का अपने अपने विषय में आसक्त न होना [को०]।

इंद्रियवृत्ति--संज्ञा स्त्री० [सं० **इन्द्रियवृत्ति**] इंद्रियों का कार्य [को०]।

इंद्रियसंनिकर्ष--संज्ञा पुं० [सं० **इन्द्रियसन्निकर्ष**] ज्ञानेंद्रियों का अपने अपने विषयों या मन से संपर्क।

इंद्रियसुख--संज्ञा पुं० [सं० **इन्द्रियसुख**] विषयानंद। विषयसुख [को०]।

इंद्रियस्वाप--संज्ञा पुं० [सं० **इन्द्रियस्वाप**] इंद्रियों को अपने विषयों का ज्ञान न होना। २. जड़ता। ३. प्रलय [को०]।

इंद्रियागोचर--वि० [सं० **इन्द्रियागोचर**] इंद्रियों द्वारा अग्राह्य या इंद्रियों का अविषय। अज्ञेय [को०]।

इंद्रियातीत--वि० [सं० **इन्द्रियातीत**] १. इंद्रियों से परे। इंद्रियागोचर। अज्ञेय [को०]।

इंद्रियायतन--संज्ञा पुं० [सं० **इन्द्रियायतन**] इंद्रियों का आयतन या निवास। शरीर। देह। २. आत्मा [को०]।

इंद्रियाराम--वि० [सं० **इन्द्रियाराम**] इंद्रियलोलुप। विषयासक्त [को०]।

इंद्रियार्थ--संज्ञा पुं० [सं० **इन्द्रियार्थ**] इंद्रियों का विषय। वे विषय जिनका ज्ञान इंद्रियों द्वारा होता है; जैसे--रूप।

इंद्रियार्थवाद--संज्ञा पुं० [सं० **इन्द्रियार्थ + वाद**] वह मत जिसके अनुसार बुद्धि-व्यापार-वर्जित इंद्रियज सुख ही सब कुछ है और उसी की निष्पत्ति काव्य का प्रधान गुण है। उ०--कीट्स की कल्पना बहुत ही तत्पर थी....वे अपने इंद्रियार्थवाद के लिये प्रसिद्ध हैं।--चिंतामणि, भा० २, पृ० १३८।

इंद्रियासंग--संज्ञा पुं० [सं० **इन्द्रियाशङ्ग**] इंद्रियों और उनके विषयों के प्रति आसक्ति का अभाव। अनासक्ति। संन्यास। वैराग्य [को०]।

इंद्रियासक्त--वि० [सं० **इन्द्रियासक्त**] इंद्रियाराम। इंद्रियलोलुप [को०]।

इंद्री(पु)--संज्ञा स्त्री० [सं० **इन्द्रिय**] दे० 'इंद्रिय'। उ०--इंद्री सब न्यारी परीं, सुख लूटति आँखि। सुरदास जे संग रहैं, तेऊ मरैं झाँखि।--सूर०, १०।२४०७।

इंद्रीजीत(पु)--वि० [सं० **इन्द्रियजित्**] दे० 'इंद्रियजित्'। उ०--अति अनन्य गति इंद्रीजीता। जाको हरि बिनु कतहुँ न चीता।--तुलसी ग्रं०, पृ० १०।

इंद्रीजुलाब--संज्ञा पुं० [सं० **इन्द्रिय** + फा० **जुलाब**] वे ओषधियाँ जिनसे पेशाब अधिक आता है। इसके लिये पानी मिला हुआ दूध, शोरा, सिलखड़ी आदि वस्तुएँ दी जाती हैं।

इंद्रया(पु)--संज्ञा स्त्री० [सं० **इन्द्रिय**] दे० 'इंद्रिय'।

इंद्रेज्य--संज्ञा पुं० [सं० **इन्द्रेज्य**] देवगुरु बृहस्पति [को०]।

इंध[1]--वि० [सं० **इन्ध**] प्रकाशक। दीपक।

इंध[2]--संज्ञा पुं० १. जलावन। ईंधन। २. परमात्मा [को०]।

इंधन--संज्ञा पुं० [सं० **इन्धन**] १. जलाने की लकड़ी। जलावन। उ०--पान क सए सोना क टंका, चंदन क मूल इंधन बिका।--कीर्ति०, पृ० ६८। २. वासना (को०)।

इंशा--संज्ञा स्त्री० [अ० **इंशा**] १. इबारत। बयान। २. पत्र लिखने की कला सिखानेवाली पुस्तक। चिट्ठियों की किताब [को०]।

इंसाफ--संज्ञा पुं० [अ० **इन्साफ**] [वि० **मुंसिफ**] १. न्याय। अदल।
यौ०--**इंसाफपसंद**--न्याय चाहनेवाला।
क्रि० प्र०--करना।--होना।
२. फैसला। निर्णय।

इंस्टिट्यूट--संज्ञा स्त्री० [अ० **इन्स्टिटयूट**] संस्था। सभा। समाज।

इंस्ट्रूमेंट--संज्ञा पुं० [अं० **इन्स्ट्रूमेन्ट**] १. औजार। यंत्र। २. साधन।

इंस्पेक्टर--संज्ञा पुं० [अं० **इन्स्पेक्टर**] १. देखभाल करनेवाला। निरीक्षक।

इँगरेज(पु)--संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'अँगरेज'। उ०--प्रायो अँगरेज मुलक रै ऊपर।--बाँकी० ग्रं० भा०, ३, पृ० १०४।

इँगरेजी--संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अँगरेजी'। उ०--फारसी की छार सी उड़ाय इँगरेजी पढ़ मानो देवनागरी का नाम ही मिटावेंगे।--कविता कौ०, भा० २, पृ० १०३।

इँगुरौटी--संज्ञा स्त्री० [हिं० **इंगुर** + **औटा** (प्रत्य०)] वह डिबिया जिसमें सौभाग्यवती स्त्रियाँ ईंगुर या सिंदूर रखती हैं। सिंधोरा।

इँगुवा--संज्ञा पुं० [सं० **इङ्गुद**] हिंगोट का पेड़ और फल। गोंदी।

इँचना(पु)--क्रि० अ० [हिं० **खिंचना**] किसी ओर आकर्षित होना खिंचना। उ०--(क) भौंहनु त्रासति मुँह नटति आँखिनु सौं लपटातु। ऐंचि छुड़ावति कर इँची आगें आवति जाति।--बिहारी र०, दो० ६८३। (ख) आवति आँख इँची खिची भौंह भयो भ्रम आवतु है मति यापै।--रघुनाथ (शब्द०)।

ईंटकोहरा--संज्ञा पुं० [हिं० **ईंट** + **ओहरा** (प्रत्य०)] ईंट का फूटा टुकड़ा। ईंट की गिट्टी।

ईंटाई† —संज्ञा स्त्री० [हिं ईंट] एक प्रकार का पंडुक। पेडुकी।

ईंडहर—संज्ञा पुं० [सं० पिष्ट+हिं० हर (प्रत्य०)] उर्द की दाल से बना हुआ एक सालन। उ०—अमृत ईंडहर है रस सागर। बेसन सालन अधिको नागर।—सूर०, १०।१२१३।

विशेष—यह इस रीति से बनता है: उर्द और चने की दाल एक साथ भिगो देते हैं, फिर दोनों की पीठी पीसते हैं। पीठी में मसाला देकर उसके लंबे लंबे टुकड़े बनाते हैं। इन टुकड़ों को पहले अदहन में पकाते हैं, फिर निकालकर उनके और छोटे छोटे टुकड़े करते हैं। अंत में इन टुकड़ों को घी में तलते हैं और रसा लगाकर पकाते हैं।

ईंडुआ(पु)†—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'ईंडुवा'।

ईंडुरी(पु)†— संज्ञा स्त्री० [सं० कुण्डली] गुँड़री। बिड़ई। बिड़वा। गेंड़ुरी।

ईंडुआ(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० कुण्डल] कपड़े की बनी हुई छोटी गोल गद्दी जिसे बोझ उठाते समय सिर के ऊपर रख लेते हैं। गेंडुरी।

ईंणि(पु) —सर्व० [देश०] दे० 'इन'। उ०—साईं दे दे सज्जना, रातइ ईंणि परि रूँन।—ढोला० दू० ३७७।

ईंदारा† —संज्ञा पुं० [सं० अन्धु, या सं० ईद = जल + धर = धारण करने वाला] कूँआ। कूप।

ईंदारुन—संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रवारुणी] इंद्रायन। माहुर।

ईंदुआ—संज्ञा पुं० [देश०] ईंडुरी। गेंडुरी। बेंड़री।

ईंदोर(पु)— संज्ञा पुं० [सं० इन्द्रवारुणी] दे० 'ईंदाऊन'। उ०—बहुत जतन भेख रचो बनाय बिन हरि भजन ईंदोधन पाय।—गुलाल०, पृ० ५।

ईंधरौड़ा—संज्ञा पुं० [सं० इन्धन+हिं० औड़ा < सं० आलय] ईंधन रखने की कोठरी। इंधनगृह। गोठौला।

ईंनारुन(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'ईंदारुन'। उ०—बिनु हरि भजन ईंनारुन के फल तजत नहीं करुआई।—तुलसी ग्रं०, पृ० ५४६।

इ[1]—संज्ञा पुं० [सं०] १. कामदेव। २. १०० की संख्या [को०]।

इ[2]—अव्यय० क्रोध, तिरस्कार, सहानुभूति, संबोधन, आश्चर्य दुःख आदि का व्यंजक अव्यय [को०]।

इकंक(पु)—क्रि० वि० [सं० एक, प्रा० इक्क+सं० अंक] निश्चय। अवश्य। उ०—राम तिहारे सुजस जग, कीन्हो सेत इकंक।—भिखारी ग्रं०, भा० २, पृ० ५७।

इकंग[1](पु)—वि० [सं० एकाङ्ग] एकतरफा। एक ओर का। उ०—दुखी इकंगी प्रीति सौं, चातक, मीन, पतंग। घन जल दीप न जानहीं, उनके हिय को अंग।—रसनिधि (शब्द०)।

इकंग[2](पु) —संज्ञा पुं० शिव। महादेव। अर्धनारीश्वर।

इकंग[3](पु)—क्रि० वि० मिश्रित। एक में मिला। उ०—गरल अमृत इकंग करि राखै। भिन्न भिन्न कै बिररै चाखै।—नंद ग्रं०, पृ० ११८।

इकंत(पु)—वि० [सं० एकान्त] दे० 'एकांत'।

इक(पु)—वि० [हिं०] दे० 'एक'। उ०—इक करहिं दाप न चाप सज्जन बचन जिमि टारैं टरै।—तुलसी ग्रं०, पृ० ५३।

इकआँक(पु)—क्रि० वि० [सं० एक, प्रा० इक्क+हिं० आँक] निश्चय। निश्चय करके। अवश्य। उ०—जे तब होत दिखादिखी, भई अमी एक आँक। दगैं तिरीछी दीठि अब ह्वै बीछी को डाँक।—बिहारी र०, दो० ६१५। (ख) यदपि लौंग ललितौं तऊ तूं न पहिरि इक आँक। सदा साँक बढ़ियै रहै रहै चढ़ी सी नाँक।—बिहारी र०, दो० ६८५।

इकइस(पु)—वि० [हिं०] दे० 'इक्कीस'।

इकचोबिया†—संज्ञा पुं० [हिं० इक+चोब] एक चोब अर्थात् बल्लीवाला तंबू या डेरा। वह तंबू जिसमें एक ही चोब लगती हो (बोल०)।

इकछत(पु)—वि० [सं० एकच्छत्र] दे० 'एकछत्र' उ०—जो नर इकछत भूप कहावै। सिंहासन ऊपर बैठे जतहीं चँवर ढुरावै।—चरण० बानी०, पृ० ६४।

इकजोर(पु)—क्रि० वि० [सं० एक+हिं० जोरना = जोड़ना] इकट्ठा। एक साथ। उ०—देखु सखि चारु चंद्र इकजोर। निरखति बैठि नितंबिनि पिय सँग सार सुता की ओर।—सूर (शब्द०)।

इकट—संज्ञा पुं० [सं०] सरकंडे का गोफा या कोंपल [को०]।

इकटक—क्रि० वि० [हिं० एकटक] एक दृष्टि से। लगातार। बिना दृष्टि हटाए। उ०—इकटक प्रतिबिंब निरखि पुलकत हरि हरषि हरषि, लै उछंग जननी रसभंग जिय बिचारी।—तुलसी ग्रं०, पृ० २८१।

इकटग(पु) —क्रि० वि० [हिं०] दे० 'इकटक'। उ०—इकटग ध्यान रहै त्यौं लागै छाकि परे हरि रस पीवैं।—दादू० बानी, पृ० ५६६।

इकट्ठा—वि० [सं० एकस्थउ प्रा० इकट्ठा] एकत्र। जमा।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

इकठा(पु)-वि० [हिं०] दे० 'इकट्ठा'। उ०—तौ ये नाना कर्म विचित्र। इकठे रहन न पावैं मित्र।—नंद० ग्रं०, पृ० २३६।

इकठाईं(पु)†—वि० [एक+ठाईं = स्थान] एक स्थान पर या एकत्र। उ०—जब सब गाइ भई इकठाईं।—सूर०, १०।६१४।

इकठैन†—वि० [हिं० इकठा] इकट्ठा। एकत्र। उ०—सुनत हीं सब हाँकि ल्याए गाइ करि इकठैन।—सूर०, १०।४२७।

इकठौर—वि० [हिं० इक+ठौर = स्थान] एक स्थान पर। एकत्र। उ०—(क) जेंवत कान्ह नंद इकठौरे।—सूर०, १०।२२४ (ख) जब पाँड़े इत उत कहुँ गए। बालक सब इकठौरे भए। सूर०, ७।२।

इकडाल(पु)—संज्ञा पुं०, वि० [हिं०] दे० 'एकडाल'।

इकतन(पु)†—क्रि० वि० [हिं० इक+तन = ओर, तरफ] एक तरफ। एक ओर। उ०—इकतन नर एकतन भई नारी। खेल मच्यौ ब्रज कें बिच भारी।—सूर०, १०।२६०१।

इकतर(पु)—वि० [हिं०] दे० 'एकत्र'। उ०—(क) मन औ पवन होत जब इकतर नाहीं बीच बराव।—जग० बानी, पृ० ७५। (ख) दई बड़ाई ताहि पंच यह सिगरे जानी। दे कोल्हू में पेरि, करी हैं इकतर घानी।—गिरिधर (शब्द०)। (ग) प्रथमहि पत्र चमेली आनै। ताको कूटि लेइ रस छानै। कूट सोहागा मनसिल लीजै। मीठे तेल में इकतर कीजै।—(शब्द०)।

इकतरा⑤†--संज्ञा पुं० [सं० एकान्तर] वह ज्वर जो जाड़ा देकर एक दिन छोड़ दूसरे दिन आता है। अँतरिया। उ०--बड़ दुख होइ इकतरौ आवै। तीन उपास न बल तन खावै।--जाल (शब्द०)।

इकता⑤--संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'एकता'। उ०--इकता कारज हेतु की हेतु कहत सु कबिंद। परम पदारथ चारहू श्री राधा गोबिंद।--पद्माकर ग्रं०, पृ० ६६।

इकताई⑤--संज्ञा स्त्री० [सं० एकता या फा० यकता + हिं० ई (प्रत्य०)] १. एक होने का भाव। एकत्व। सिखे आपनै दृगनसैं इकताई की बात। जूरी डीठ इक सँग रहै, जदपि जुदे दिखात।--स० सप्तक, पृ० २१६। २. अकेले रहने की इच्छा, स्वभाव या बान। एकांतसेविता।--अली गई अब गरबई इकताई मुकुताई। भली भई ही अमलई जौं पीदई दिखाइ।--स० सप्तक, पृ० २८४।

इकताना⑤--वि० [सं० एकतान या हिं० एक + तान = खिंचाव] एक रस। एक सा। स्थिर। अनन्य। उ०--ऐसे ही देखत रहौं, जन्म सफल करि मानों। प्यारे की भावती, भावती के प्यारे जुगल किसोर जानों। पलौ न टरौं छिन इत उत न होउँ रहौं इकतानो।--हरिदास (शब्द०)।

इकतार¹⑤†--वि० [हिं० एक + तार] बराबर। एकरस। समान। उ०--हरि के केसन सों सटी लखत खौर इकतार। मानहुँ रबि की किरन कछु छीन लई अँधियार।--व्यास (शब्द०)।

इकतार²--क्रि० वि० लगातार। उ०--आकिंचन इंद्रियदमन रमन राम इकतार। तुलसी ऐसे संत जन बिरले या संसार।--तुलसी ग्रं०, पृ० १२।

इकतारा--संज्ञा पुं० [हिं० एक + तार] १. एक बाजा। एक प्रकार का तानपूरा या तबूरा।

विशेष--इसकी बनावट इस प्रकार होती है : चमड़े से मढ़ा हुआ एक तूंबा बाँस के एक छोर पर लगा रहता है। तुंबे के नीचे जो थोड़ा सा बांस निकला रहता है उससे एक तार तुंबे के चमड़े पर की घोड़ियाँ या ठिकरी पर से होता हुआ बाँस के दूसरे छोर पर एक खूँटी में बँधा रहता है। इस खूँटी को ऐंठकर तार को ढीला करते और कसते हैं। बजानेवाला इस तार को तर्जनी से हिला हिलाकर बजाता है। प्रायः साधु इसे बजा बजाकर भीख माँगते हैं।

२. एक प्रकार का हाथ से बुना जानेवाला कपड़ा।

विशेष--इसके प्रत्येक वर्ग इंच में २४ ताने के और आठ बाने के तागे होते हैं। बुन जाने पर कपड़ा धोया जाता है और उसपर कुंदी की जाती है। इसका थान ६ गज लंबा और ११ इंच चौड़ा होता है।

इकताला¹⑤--[हिं० एकताला] प्रथम ताल अर्थात् प्रथम दिवस। उ०--इकताला रै चैत सुद। आद उदे नवरात।--रा० रू०, पृ० २७६।

इकताला²--संज्ञा पुं० दे० 'एकताला'।

इकतीयार⑤--संज्ञा पुं० [अ० इख्तियार] अधिकार। अख्तियार। उ०--बंदे बंदगी इकतीयार। साहिब रोष धरौ कि पियार।--कबीर ग्रं०, पृ० ३०७।

इकतीस¹--वि० [सं० एकत्रिंशत्; पा० एकतीस] तीस और एक।

इकतीस²--संज्ञा पुं० तीस और एक की संख्या। इकतीस का अंक।

इकतृत⑤†--संज्ञा स्त्री० [सं० एकत्रिति] इकट्ठे रहने की स्थिति। जमाव। उ०--भाँति भाँति के मनुजन की नित रहति इकतृत।--प्रेमघन, भा० १, पृ० ११।

इकत्र⑤--क्रि० वि० [हिं०] दे० 'एकत्र'। उ०--मनहुँ सिंगार इकत्र ह्वै बँध्यौ बार के बेस।--भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ३८८।

इकदाम--संज्ञा पुं० [अ० इक़दाम] १. किसी अपराध के करने की तैयारी या चेष्टा। २. संकल्प। इरादा। ३. कदम बढ़ाना (को०)। ४. आगे बढ़ना (को०)।

यौ०--इक़दाम ए जुर्म = अपराध करने की चेष्टा या कोशिश।

इकन्नी--संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'एकन्नी'।

इकपेचा--संज्ञा पुं० [हिं० एक + फा० पेचह्] एक प्रकार की पगड़ी जिसकी चाल दिल्ली आगरे में बहुत है।

इकबारगी--क्रि० वि० [हिं०] दे० 'एकबारगी'। उ०--बहुत भए इकबारगी, तिनको गुंफ जु होय। ताहि समुच्चय कहत हैं, कबि कोबिद सब कोय।--मतिराम ग्रं०, पृ० ४१८।

इकबाल--संज्ञा पुं० [अ० इक़बाल] दे० 'एकबाल'। उ०--राजाओं की रक्षा उनका इकबाल है।--कायां०, पृ० १८६।

इकबाल दावा--संज्ञा पुं० [अ० इक़बालदावा] मुद्दई के दावे का स्वीकरण। मुद्दई के दावे को अंगीकार करना।

इकबालमंद--वि० [अ० इकबाल + फा० + मन्द] प्रतापशाली। भाग्यवान् (को०)।

इकबाली गवाह--संज्ञा पुं० [अ० इक़बाल + फा० ई (प्रत्य०) + गवाह] किए हुए अपराध को स्वीकार करनेवाला। जुर्म मंजूर करनेवाला।

इकबाली बयान--संज्ञा पुं० [हिं० इकबाली + फा० बयान] वह साक्षी या गवाही जिसमें अपराध स्वीकार किया जाय।

इकबीस†--संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'एकइस'। उ०--इकबीसे बार नछत्रौ अवनी कीन्हीं पोइस धार करूर।--रघु० रू०, पृ० २५८।

इकरंग⑤--वि० [हिं०] दे० 'एकरंग'। उ०--छिरकि छिरकि घनस्याम सब इकरंग कियो है।--नंद ग्रं०, पृ० ३८६।

इकरदन⑤--संज्ञा पुं० [सं० एक, प्रा० इक्क + सं० रदन] दे० 'एकरदन'।

इकरस⑤--वि० [सं० एक + रस] एकरंग। समान। बराबर। उ०--जो कदु अब का प्रीति न हममें। रहत न कोउ इकरस हर दम में।--विश्राम (शब्द०)।

इकराजी⑤--वि० [सं० एक + राजा + हिं० ई (प्रत्य०)] एक शासक वाला। एक राजा से युक्त। उ०--दादू नगरी चैन तब जब इकराजी होइ।--दादू० बानी, पृ० १२४।

इकराम--संज्ञा पुं० [अ० इकराम] १. दान। पारितोषिक। २. इज्जत। माहात्म्य। आदर। प्रतिष्ठा। ३. अनुग्रह। कृपा (को०)।

यौ०--इनाम इकराम। इज्जत इकराम।

इकरार--संज्ञा पुं० [अ० इक़रार] १. प्रतिज्ञा। वादा। २. कोई काम करने की स्वीकृति।

इकरारनामा--संज्ञा पुं० [अ० इक़रार + फा० नामह्] स्वीकृतिपत्र। प्रतिज्ञापत्र।

इकलस(पु)–वि० [हिं०] दे० 'इकरस'। उ०–'खंड खंड निज नां भया, इकलस एकै नूर।—दादू० बानी, पृ० १०३।

इकला(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अकेला'।

इकलाई[1]—संज्ञा स्त्री० [हिं० एक+लाई या लोई=पर्त] एक पाट का महीना दुपट्टा या चद्दर। उ०– क) आसपास आनन के फबन फबी है कैसी कुंचित कुसुंभी कोरदार इकलाई की।—पद्माकर ग्रं०, पृ० ३१४। (ख) दुपट्टा दुलाई चादरें इकलाई कटिबंद बर। कंचुकी कुलहिया ओढ़नी अंगवस्त्र धोती अबर।—सूदन (शब्द०)।

इकलाई[2]—संज्ञा पुं० [हिं० इकला+ई (प्रत्य०)] अकेलापन।

इकलोम—संज्ञा पुं० [अ० इकलीम] १. पृथिवी। भूखंड। २. राज्य। ३. संसार की आबाद भूमि का सातवाँ हिस्सा [को०]।

इकले(पु)—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'अकेले'। उ०—इकले प्रान पियारे पाए। देखि हरष भरे नयन सिराए।—नंद ग्रं०, पृ० १७२।

यौ०—इकले दुकले=अकेले दुकेले।

इकलो†—वि० [हिं०] दे० 'इकला' या 'अकेला'। उ०—तब याको पिता मरयो। तब यह घर में इकलो रहे।—दो सौ बावन, पृ० १६।

इकलोईकड़ाही—संज्ञा स्त्री० [हिं० एक+लोई] वह कड़ाही जो एक ही लोई या तवे की बनी हो, अर्थात् जिसके पेंदे में जोड़न हो।

इकलौता–संज्ञा पुं० [हिं० इकला+सं० पुत्र, प्रा० ऊत] [स्त्री० इकलौती] १. वह लड़का जो अपने माँ बाप का अकेला हो। वह लड़का जिसके और भाई बहिन न हों। २. एकमात्र। अकेला। उ०—तो इन्हें इकलौता बुद्धिमान मान लेना पड़ता है।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ८०।

इकल्ला(पु)†–वि०[सं० एकल=एकाकी, प्रा० एगल्ल, एकल्ल, इक्कल] १. अकेला। एकाकी। उ०—रणधीर इकल्ला है और अपने पास इतनी सेना है।—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० १०७।

इकवाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० एक+बाह] १. एक प्रकार की निहाई जो संदान या अरन के आकार की होती है। भेद इतना ही होता है कि संदान में दोनों ओर हाथे या कोर निकले रहते हैं और इसमें एक ही ओर। भारतवालों की इकवाई की एक कोर लंबी नोक होती है और दूसरी कोर सपाट चौड़ी होती है जिसके किनारे तीखे होते हैं। २. जो संख्या में तीन हो। तीन (दलाल)।

इकस(पु)†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'अकस'।

इकसठ[1]—वि० [सं० एकषष्ठि, पा० एकसट्ठि] साठ और एक।

इकसठ[2]-संज्ञा पुं० वह अंक जिससे साठ और एक काबोध हो। ६१।

इकसर(पु)—वि० [हिं० एक+सर (प्रत्य०)] अकेला। एकाकी।

इकसार†(पु)–वि०[सं० एक, हिं० इक+सं०सदृश, प्रा० सरिस, सारिस] एक सा। समान। बराबर। उ०—उनयौ मेघ घटा चहुँ दिश तें वर्षन लगौ अखंडित धार। बूड़ौ मेरु नदी सब सूकी झर लागौ निसदिन इकसार।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ५३१।

इकसीर—संज्ञा स्त्री० [अ०] दे० 'अकसीर'।

इकसूत(पु)—वि० [सं० एकश्रुत (=लगातार) या एकसूत्रित] १. एक साथ। इकट्ठा। एकत्र। उ०—देखि के निकसे दोऊ और जे सखियाँ हुतीं। ते सबै तुरतै दौरीं बाहरी ह्वै इकसुती।—गुमान (शब्द०)।

इकहरा— वि० [हिं०] [वि० स्त्री० इकहरी] दे० 'एकहरा'।

इकहाइ(पु), इकहाई(पु)–क्रि० वि० [हिं० एक+हाइ (प्रत्य०)] १. एक साथ। फौरन। उ०—(क) यह सुनि रानिन के बदन भे प्रसन्न हरखाइ। ज्यों सूरज के उदय ते खिलत कमल इकहाइ।—(शब्द०)। (क) सीत भीत हरषादि तें उठै रोम इकहाइ। ताहि कहत रोमांच है सुकबिन के समुदाइ।—पद्माकर ग्रं०, पृ० १६८। २. एकदम। अचानक।

इकहाऊ(पु)—क्रि० वि० [हिं० एक+हाऊ (प्रत्य०)] दे० 'इकहाइ'। उ०—त्यों पदमाकर झोरी झमाइ सु दौरीं सबै हरि पै इकहाऊ।—पद्माकर ग्रं०, पृ० १५५।

इकांत(पु)—वि० [सं० एकान्त] दे० 'एकांत'।

इकाई—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'एकाई'।

इकार—संज्ञा पुं० [सं०] स्वर वर्ण 'इ'।

इकारांत—संज्ञा पुं० [सं० इकारान्त] वह शब्द जिसके अंत में इकार हो। वह शब्द जिसका अंत 'इ' से हो।

इकोस(पु)—वि० [हिं०] दे० 'इक्कीस'। उ०—तुलसी तेहि अवसर लावनिता दस, चारि नौ, तीनि, इकीस सबै।—तुलसी ग्रं०, पृ० १५६।

इकेला(पु)—वि० [हिं०] दे० 'अकेला।'। उ०—देहरी बैठी मेहरी रोवै द्वारे लौ संग माइ। मरहट लगि सब लोग कुटुंब मिलि हंस इकेला जाइ।—कबीर ग्रं०, पृ० २८५।

इकेले(पु)—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'अकेले'। उ०—भोजन करि कै इकेले ही गादि तकियान के ऊपर विराजे हते।—दो सौ बावन०, भा० २, पृ० १५।

इकैठ(पु)—वि० [सं० एकस्थ, प्रा० इकट्ठा] इकट्ठा। एकत्र।

इकोतर(पु)—वि० [हिं०] दे० एकोत्तर'। उ०–और इकोतर नामहिं पावै। तुम कहँ जीत हंस घर आवै।—कबीर सा०, पृ० १६।

इकोतरसै(पु)—वि० [हिं०] दे० 'एकोतर सो'। उ०—इकोतर सै पुरिषा नरकहि जाई। सति सति भाषंत श्री गोरखराई।—गोरख० पृ० ५६।

इकौंज—संज्ञा पुं० [सं० एक+वंध्या, प्रा० बज्झा, हिं० बाँझ; या सं० एक+जा; या सं० काकवंध्या > काकवज्झा > ककौंज्झा > इकौंजा] वह स्त्री जिसको एक ही पुत्र या एक ही कन्या उत्पन्न हुई हो। वह स्त्री जो एक बार जनकर बाँझ हो जाय। काकवंध्या।

इकौना†—संज्ञा पुं० [हिं० एक+बना] बिना छाँटा हुआ अन्न। बिना चुना हुआ अनाज।

इकौसी(पु)—वि० स्त्री० [सं० एक+वासी] [वि० पुं० इकौसा] एकांत में रहनेवाली। अकेली। उ०—अलबेली सुजान के कौतुक पै अति रीझि इकौसी ह्वै लाज थकै।—घनानंद, पृ० ३३।

इकौसे(पु)—क्रि० वि० [हिं०] पृथक्। जुदा। अलग।

इकौसो(पु)†--वि० [सं० एक + आवास या अवकाश (= स्थान), अप० ओसास] एकांत। निराला। उ०--मेरो है इकौसो वास जातै हरि दास, लेवो सुखरासि, करो चीठी दीजै जाय कै।--प्रिया (शब्द०)।

इक्क(पु)--वि० [अप०] दे० 'एक'। उ०--इक्क मथ्थो बिना धाइ हत्थौं करैं।--सुजान०, पृ० २०।

इक्कट--संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का सरकंडा जिसकी चटाइयाँ बनती हैं [को०]।

इक्कबाल--संज्ञा पुं० [अ० इक्बाल] १. ताजक ज्योतिष के मत से एक ग्रहयोग।

विशेष--जब किसी के जन्म के समय ग्रह कंटक (१,४,७ १०) या पनकर (२,५,८,११) में हों; अर्थात् ३, ६, ९ और १२ में कोई ग्रह न हो तब यह राज्य और सुख को बढ़ानेवाला योग होता है।

२. अभ्युदय। बढ़ती।

इक्का¹-वि० [सं० एक] १. एकाकी। अकेला। २.अनुपम। बेजोड़।

इक्का²-संज्ञा पुं० १. एक प्रकार की कान की बाली जिसमें एक मोती होता है। २. वह योद्धा जो लड़ाई में अकेला लड़े। उ०--कूदि परे लंका बीच इक्का रघुबर के।--मानकवि (शब्द०)। ३. वह पशु जो अपना झुंड छोड़कर अलग हो जाय। ४. एक प्रकार की दो पहिए की घोड़ा गाड़ी जिसमें एक ही घोड़ा जोता जाता है। ५. तास का वह पत्ता जिसमें किसी रंग की एक ही बूटी हो। यह पत्ता और सब पत्तों को मार देता है। जैसे,--पान का इक्का। ईंट का इक्का।

इक्कादुक्का-वि० [हिं० इक्का + दुक्का] अकेला दुकेला। जैसे,--'कोई इक्का दुक्का आदमी मिले तो बैठा लेना'।

इक्कावन†--वि० [हिं०] दे० 'इक्यावन'।

इक्कावान†--संज्ञा पुं० [हिं०[दे० 'एक्कावान'।

इक्कासी†--वि० [हिं०] दे० 'इक्यासी'।

इक्की†--संज्ञा स्त्री० [सं० एक + ई (प्रत्य०)]ताश का वह पत्ता जिसमें एक बूटी हो। एक्का।

इक्कीस¹--वि० [सं० एकविंश; प्रा० एक्कवीस, अप० इक्कवीस] बीस और एक।

इक्कीस²--संज्ञा पुं० बीस और एक की संख्या या अंक जो इस तरह लिखी जाती है--२१।

इक्यावन¹--वि० [सं० एकपंचाशत्, प्रा० एक्कावन्न]पचास और एक।

इक्यावन²--संज्ञा पुं० पचास और एक की संख्या जो इस तरह से लिखी जाती है---५१।

इक्यासी¹--वि० [सं० एकाशीति, प्रा० एक्कासि] अस्सी और एक।

इक्यासी²--संज्ञा पुं० अस्सी और एक की संख्या या अंक जो इस तरह लिखी जाती है---८१।

इक्षना(पु)---क्रि० स० [हिं० इच्छना] दे० 'इच्छना'। उ०---लष्षन उद्दल, सुभट बर, ते इक्षत घमसान।---प० रा०, पृ० १३४।

इक्ष--संज्ञा पुं० [सं०] १. ईख। गन्ना। दे० 'ईख'। २. कोकिला नाम का एक वृक्ष (को०)। ३. मनोरथ। इच्छा (को०)।

यौ०---इक्षुकांड। इक्षुगंधा। इक्षुतुल्या। इक्षुदंड। इक्षुपत्रा। इक्षुप्रमेह। इक्षुमती। इक्षुमेह। इक्षुरस। इक्षुविहारी। इक्षुविकार।

इक्षुकंद--संज्ञा पुं० [सं० इक्षुकन्द] कूष्मांड। कुम्हड़ा [को०]।

इक्षुक--संज्ञा पुं० [सं०] ईख [को०]।

इक्षुकांड--संज्ञा पुं० [सं० इक्षुकाण्ड] १. ईख का डंठल। २. काँस। ३. मूँज। ४. रामसर।

इक्षुकांत--संज्ञा [सं० इक्षुकांत] छमंजिली इमारत का एक भेद या श्रेणी [को०]।

इक्षुकीय--वि० [सं०] [वि० स्त्री० इक्षुकीया] जहाँ ईख अधिक पैदा होती हो [को०]।

इक्षुकुट्टक--संज्ञा पुं० [सं०] वह व्यक्ति जो इकट्ठा करता हो। गन्ना एकत्र करनेवाला व्यक्ति [को०]।

इक्षुगंध--संज्ञा पुं० [सं० इक्षुगंध] १. छोटा गोखरू। २. काँस।

इक्षुगंधा--संज्ञा स्त्री० [सं० इक्षुगन्धा] १. गोखरू। २. कोकिलाक्ष। तालमखाना। ३. काँस। ४. सफेद बिदारी कंद।

इक्षुगंधिका--संज्ञा स्त्री० [सं० इक्षुगन्धिका] भूमिकूष्मांड [को०]।

इक्षुज¹--संज्ञा पुं० [सं०] वह पदार्थ जो ईख के रस से बने।

विशेष--प्राचीनों के अनुसार इसके छह भेद हैं--फाणित (जूसी या शीरा); मत्स्यंडी (राब); गुड़; खंडक (खाँड); सिता (चीनी) और सितोपल (मिश्री)।

इक्षुज²--वि० ईख के रस से बना हुआ [को०]।

इक्षुतुल्या--संज्ञा स्त्री० [सं०] ज्वार या बाजरे के प्रकार का एक पौधा जिसका रस मीठा होता है। काँस।

इक्षुदंड--संज्ञा पुं० [सं० इक्षुदंड] ईख का डंठल। ईख।

इक्षुदर्भ--संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० इक्षुदर्भा] एक प्रकार का तृण।

इक्षुनेत्र--संज्ञा पुं० [सं०] १. ईख का एक भेद। ईख की गाँठों पर होनेवाला आँख का आकार [को०]।

इक्षुपत्र--संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० इक्षुपत्रा] १.ज्वार। मक्का। २.बाजरा।

इक्षुपाक--संज्ञा पुं० [सं०] गुड़ या राब [को०]।

इक्षुप्र--संज्ञा पुं० [सं०] रामशर। शर।

इक्षुप्रमेह--संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का प्रमेह। इक्षुमेह। मधुमेह।

विशेष--इस रोग में मूत्र के साथ मधु या शक्कर जाती है। इसके रोगी के मूत्र पर चींटियाँ और मक्खियाँ बहुत बैठती हैं। मूत्र के अंशों को रासायनिक क्रिया द्वारा अलग करने पर उसमें चीनी का अंश मिलता है।

इक्षुबालिका--संज्ञा स्त्री० [सं०] कास या मूँज [को०]।

इक्षुभक्षिका--संज्ञा स्त्री० [सं०] ईख पेरने की मशीन, कल या यंत्र [को०]।

इक्षुमती--संज्ञा स्त्री० [सं०] एक नदी जिसका कुरुक्षेत्र में होना लिखा है।

इक्षुमालिनी--संज्ञा स्त्री० [सं०] एक नदी जो इंद्र पर्वत से निकलती है।

इक्षुमूल--संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार की ईख। बाँसी। २. ईख की जड़ या मूल [को०]।

इक्षुमेह--संज्ञा पुं० [सं०] इक्षुप्रमेह। मधुप्रमेह। मधुमेह।

इक्षुमेही--वि० [सं० इक्षुमेहिन्] मधुमेह का रोगी [को०]।

इक्षुयंत्र--संज्ञा पुं० [सं० इक्षुयंत्र] ईख पेरने की मशीन। कोल्हू [को०]।

इक्षुयष्टि—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] ईख [को॰]।

इक्षुर—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १. गोखरू। २. तालमखाना। ३. गन्ना [को॰]।

इक्षुरस—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १. ईख का रस। २. कास। ३. राब [को॰]।

इक्षुरसवल्लरी—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] क्षीरविदारी। दूधविदारी। महाश्वेता।

इक्षुरसोद—संज्ञा पुं॰ [सं॰] पुराणानुसार सात समुद्रों में से एक जो ईख के रस का है।

इक्षुवण—संज्ञा पुं॰ [सं॰] ईख का डंठल [को॰]।

इक्षुवल्लरी—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] १. पीले रंग की ईख। २. क्षीरकंद। क्षीरविदारी [को॰]।

इक्षुवाटिका—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] १. ईख की एक जाति। पुंड्रक। पौंढ़ा। २. ईख का खेत या फारम [को॰]।

इक्षुविकार—संज्ञा पुं॰ [सं॰] गुड़, राब आदि ईख के रस के छह रूप। २. कोई भी मीठा पदार्थ [को॰]।

इक्षुविदारी—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] विदारीकंद।

इक्षुवेष्टन—संज्ञा पुं॰ [सं॰] गन्ने की एक किस्म [को॰]।

इक्षुशर—संज्ञा पुं॰ [सं॰] एक प्रकार का कास और उसका जंगल [को॰]।

इक्षुशाकट—संज्ञा पुं॰ [सं॰] गन्ना बोने लायक खेत [को॰]।

इक्षुसमुद्र—संज्ञा पुं॰ [सं॰] पुराणोक्त सात महासमुद्रों में एक नाम [को॰]।

इक्षुसार—संज्ञा पुं॰ [सं॰] इक्षुविकार। गुड़ आदि [को॰]।

इक्ष्वाकु[1]—संज्ञा पुं॰ [सं॰] १. सूर्यवंश का एक प्रधान राजा। यह पुराणों में वैवस्वत मनु का पुत्र कहा गया है। रामचंद्र इसी के वंश के थे। २. इक्ष्वाकु के वंश का व्यक्ति (को॰)।

यौ॰—**इक्ष्वाकुनंदन, इक्ष्वाकुवंशी**=इक्ष्वाकु के पुत्र।

इक्ष्वाकु[2]—संज्ञा स्त्री॰ कड़वी लौकी। तितलौकी।

इक्ष्वारि—संज्ञा पुं॰ [सं॰] ईख का दुश्मन—कास [को॰]।

इक्ष्वालिका—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] १. नरकट। नरकुल। २. सरपत। मूँज। ३. कास।

इखदⓅ—वि॰ [सं॰ ईषत्] दे॰ 'ईषत्'।

इखफाय—संज्ञा पुं॰ [अ॰ इख्फाय] प्रकट न करना। गोपन। छिपाव [को॰]।

यौ॰—**इखफाये जुर्म, इखफाये वारदात**=कानून में किसी पुरुष का किसी ऐसी घटना को छिपाना जिसका प्रकट करना नियमानुसार उसका कर्तव्य हो।

इखरना†—क्रि॰ अ॰ [हिं॰ **बिखरना का अनु॰**] बिखरना। इधर उधर गिरना।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग 'बिखरना' शब्द के साथ होता है।

यौ॰—**इखरना बिखरना**=इधर उधर हो जाना। किसी भी वस्तु का इतस्ततः हो जाना (बोल॰)।

इखराज—संज्ञा पुं॰ [अ॰] १. निकास। खर्च। २.बहिष्कार [को॰]।

इखलाक—संज्ञा पुं॰ [अ॰ **अख़्लाक़**] व्यवहार। आचरण। उ॰—उनका जितना सदाचार और इखलाक है, सब मर्दों का बनाया हुआ।—ज्ञानदान, पृ॰ ११७।

इखलाकी—वि॰ [**हिं॰ इखलाक**] आचरण या व्यवहार संबंधी। व्यावहारिक। उ॰—'मसायब का इखलाकी पहलू भी होता है।'—गोदान, पृ॰ ३९।

इखलास—संज्ञा पुं॰ [अ॰ **इख़्लास**] १. मेलमिलाप। मित्रता। उ॰—तू जा सुजानहि पास। हमसौं करैं इखलास।—सूदन (शब्द॰)। २. प्रेम। भक्ति। प्रीति। उ॰—कुल आलम इके दीदम अखाहे इखलास। बद अमल बदकार तुई पाक यार पास।—दादू (शब्द॰)। ३. संबंध। साबिका।

क्रि॰ प्र॰—**जोड़ना**।=**बढ़ाना**।

इखुⓅ—संज्ञा पुं॰ [सं॰ **इषु**] 'इषु'। उ॰—अमर अधिप बारन बरन दूसर अंत अगार। तुलसी इखु सह रागधर तारन तरन अधार।—स॰ सप्तक, पृ॰ १९।

इख्तियार—संज्ञा पुं॰ [अ॰ **इख्तियार**] १. अधिकार। २.आधिकारक्षेत्र। ३. सामर्थ्य। काबू। जैसे,—यह बात हमारे इख्तियार के बाहर की है। ४. प्रभुत्व। स्वत्व। जैसे,—इस चीज पर तुम्हारा कुछ इख्तियार नहीं है। ५. स्वीकार। ग्रहण। मंजूर। उ॰—सख्त काफिर था जिसने पहले मीर, मजहबे इश्क इख्तियार किया।—कविता कौ॰, भा॰ ४, पृ॰ १३१।

क्रि॰ प्र॰—**करना**=स्वीकार करना। अपनाना। ग्रहण करना। उ॰—और पेशा भी दूसरे का इख्तियार नहीं कर सकता है।—भारतेंदु ग्रं॰, भा॰ १, पृ॰ २४९।

यौ॰—**इख्तियारे समाअत**=विचार करने का अधिकार।

इख्तिलाफ—संज्ञा पुं॰ [अ॰ **इख्तिलाफ**] १. विरोध। विभेद। विभिन्नता। अंतर। फर्क। २. अनबन। बिगाड़।

यौ॰—**इख्तिलाफे राय**=विचारवैमत्य। मतभेद।

इगारहⓅ—वि॰ [हिं॰] दे॰ 'ग्यारह'। उ॰—सत जो धरै सो खेलन हारा। ठारि इगारह जाइ न मारा।—जायसी ग्रं॰,पृ॰ १३७।

इगारहों—वि॰ [हिं॰ **इगारह**] एकादश की संख्यावाला। दस और एक की संख्यावाला। उ॰—सभा समासद निरखि पद पकरि उठायो हाथ। तुलसी कियो इगारहों बसनवेष जदुनाथ।—तुलसी ग्रं॰, पृ॰ ११७।

इग्यारसⓅ†—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ **एकादश**] दे॰ 'एकादशी'। उ॰—पाहण वरत इग्यारस पारस सामँत कुसुम कंज सामीर।—रघु॰ रू॰, पृ॰ २५५।

इग्यारहⓅ†—वि॰ [हिं॰] दे॰ 'ग्यारह'।

इग्यारीⓅ†—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰] दे॰ 'अग्यारी'।

इचकना†—क्रि॰ अ॰ [देश॰] क्रोध से दाँत या खीस निकालना।

इचनⓅ—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ **इचना**] खिंचाव। तनाव। ऐंचन। उ॰—नीकी नासापुट ही की इचनि अचंभे भरी, मुरिके इचनि सौं न क्यों हूँ मन तें मुरै।—घनानंद, पृ॰ ३२।

इचनाⓅ—क्रि॰ स॰ [हिं॰] दे॰ 'ऐंचना'। उ॰—डीठि मिचि जात

मिचि इचत ना ऐंचि खेंची खिंचत न तसबीर तसबीरगर पै।—पजनेस०, पृ० ७।

इचरज(पु)-संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'आश्चर्य'। उ०—शिवसू उमंग पूछे सगत, इचरज अत आवत यहै।—रघु० रू०, पृ० ४५।

इचिकिल—संज्ञा पुं० [सं०] १. कीचड़। २. तालाब या बावड़ी। ३. दलदल [को०]

इच्छक[1]—वि० [सं०] कामना या इच्छा करनेवाला।

इच्छक[2]—संज्ञा पुं० १. नारंगी का वृक्ष। २. गणित में जोड़ी हुई राशि या संख्या। जोड़ [को०]।

इच्छना(पु)—क्रि०स० [सं० इच्छन] इच्छा करना। चाहना। उ०—इच्छ इच्छ विनती जस जानी। पुनि कर जोरि ठाढ़ भइ रानी।—जायसी (शब्द)।

इच्छा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. एक मनोवृत्ति जो किसी ऐसी वस्तु की प्राप्ति की ओर ध्यान ले जाती है जिससे किसी प्रकार के सुख की संभावना होती है। कामना। लालसा। अभिलाषा। चाह। ख्वाहिश।

विशेष—वेदांत और सांख्य में इच्छा को मन का धर्म माना है। पर न्याय और वैशेषिक में इसे आत्मा (गुण) धर्म या व्यापार माना गया है।

पर्या०—आकांक्षा। वांछा। दोहद। स्पृहा। ईहा। लिप्सा। तृष्णा। रुचि। मनोरथ। कामना। अभिलाषा। इषा। छंद।

यौ०—इच्छाघात। इच्छाचार। इच्छाचारी। इच्छानुकूल। इच्छानुसार। इच्छापूर्वक। इच्छाबोधक। इच्छाभेदी। इच्छाभोजन। इच्छावान्। इच्छाबाधक। इच्छावसु। स्वेच्छा। ईश्वरेच्छा।

२. माल की माँग।

विशेष—आधुनिक अर्थशास्त्र में माँग या 'डिमांड' शब्द का व्यवहार जिस अर्थ में होता है, उसी अर्थ में कौटिल्य ने 'इच्छा' का प्रयोग किया है। उसने 'आयुधागाराध्यक्ष' अधिकरण में लिखा है कि आयुधेश्वर अस्त्रों की इच्छा और बनाने के व्यय को सदा समझता रहे।

३. गणित में त्रैराशिक की दूसरी शक्ति। ४. तितिक्षा या इच्छा शक्ति के प्रकट होने की पूर्वावस्था। उ०—वह एक वृत्ति चक्र है जिसके अंतर्गत प्रत्यय, अनुभूति, इच्छा, गति या प्रवृत्ति, शरीरधर्म सबका योग रहता है।—चिंतामणि, भा०, २, पृ० ८८।

इच्छाकृत—वि० [सं०] अपनी इच्छा के अनुसार किया हुआ [को०]।

इच्छाचारी—वि० [सं० इच्छा+चारिन्] [वि० स्त्री० इच्छाचारिणी] अपनी इच्छा के अनुकूल गति या गमन करनेवाला। उ०—चले गगन महि इच्छाचारी।—मानस, ५।३५।

इच्छादान—संज्ञा पुं० [सं०] किसी याचक की आकांक्षा परिपूर्ण करना [को०]।

इच्छानिवृत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] भोग-तृष्णा से विरक्ति। विराग [को०]।

इच्छानुसारिणीक्रियाशक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] जैनशास्त्रानुसार योग द्वारा प्राप्त एक शक्ति जिससे योगियों के इच्छानुसार कारण के बिना कार्य की सिद्धि हो जाती है। जैसे,—मिट्टी के बिना घट या बीज के बिना वृक्ष इत्यादि का योगियों की इच्छा से उत्पन्न होना।

इच्छान्वित—वि० [सं०] लिप्सायुक्त [को०]।

इच्छाफल—संज्ञा पुं० [सं०] किसी प्रश्न या समस्या का इच्छानुकूल समाधान [को०]।

इच्छाभेदी—वि० [सं०] इच्छानुसार विरेचन करानेवाला (औषध)। प्रक्रिया भेद से जिसके खाने से उतने ही दस्त आएँ जितने की इच्छा हो।

यौ०—इच्छाभेदी वटिका, इच्छाभेदी रस = दे० 'इच्छाभेदी'।

इच्छाभोजन—संज्ञा पुं० [सं०] १. जिन जिन वस्तुओं की इच्छा हो, उनको खाना। रुचि के अनुसार भोजन। जैसे, आज हमें इच्छाभोजन कराओ। १. भोजन की वह सामग्री जिसे खाने की इच्छा हो। रुचि के अनुसार खाद्य पदार्थ जैसे, इतने दिनों पर आज हमें इच्छाभोजन मिला है।

इच्छामय—वि० [सं०] रुचि के अनुकूल। जैसा चाहे वैसा। उ०—इच्छामय नरवेष सँवारे।—मानस, १।१५२।

इच्छामरन—वि० [सं० इच्छा+मरण] अपनी इच्छा के अनुकूल जब चाहे तब मृत्यु प्राप्त करनेवाला। उ०—कामरूप इच्छा मरन ज्ञान बिराग निधान।—मानस, ७।११३।

इच्छारूप—वि०[सं०] अपनी इच्छा के अनुकूल जैसा चाहे रूप धारण करनेवाला। कामरूप। उ०—चेहरे बदलने के कारण ही संभवतः इन्हें इच्छारूप और कामचारी कहा गया है।—प्रा० भा० प०, पृ० ६।

इच्छावसु[1]—संज्ञा पुं० [सं०] कुबेर।

इच्छावसु[2]—वि० अपनी आकांक्षा के अनुकूल जब चाहे जितना धन प्राप्त करनेवाला [को०]।

इच्छित—वि०[सं०] चाहा हुआ। वांछित। अभिप्रेत। अभीष्ट। उ० इच्छित फल की चाह दिलाती बल तुम्हें।—करुणा, पृ० १४।

इच्छु[1](पु)—संज्ञा पुं० [सं० इक्षु] ईख। उ०—इच्छु रसहू ते है सरस चरनामृत औ लवण समुद्र है लोनाई निरवधि कै।—चरण (शब्द०)।

इच्छु[2]—वि० [सं०] चाहनेवाला।

विशेष—इसका प्रयोग यौगिक शब्द बनाने में ही होता है; जैसे-शुभेच्छु, हितेच्छु।

इच्छुक—वि० [सं०] चाहनेवाला। अभिलाषी। आकांक्षायुक्त।

इछना(पु)—क्रि०स० [हिं०] दे० 'इच्छना'। उ०—छैल इछहि छोड़ह मोर भीर।—विद्यापति, पृ० २०३।

इछा(पु)—संज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'इच्छा'। उ०—शीतल जल के इछा भूमि (क) कक्कंशता।—वर्ण०, पृ० १६।

इछु—वि० [सं० इच्छु] दे० 'इच्छुक'। उ०—धर्म तप्पनह पार। न कोऊ दास रहै इछु।—पृ० रा०, २५।१७३।

इजति(पु)—संज्ञा स्त्री० [अ० इज्जत] दे० 'इज्जत'। उ०—रति पातसाह की इजति उमरावन की राखी रैया राव भावसिंह की रहति है।—मतिराम ग्रं०, पृ० ३८६।

इजतिराब--संज्ञा स्त्री० [अ० इज्तिराब] व्यग्रता। व्याकुलता। बेचैनी। उ०-मरना बेहतर इस इजतिराब के बदले।-भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० २०३।

इजमत(५)--संज्ञा स्त्री० [अ० अजमत] दे० 'अजमत'। उ०-पसू ज्ञान इजमत कूँ देखो अनमुस एक ठानै।-चरण० बानी, भा० २, पृ० १४३।

इजमाल--संज्ञा पुं० [अ०] [वि० इजमाली] १. कुल। समष्टि। २. किसी वस्तु पर कुछ लोगों का संयुक्त स्वत्व। इस्तराक। साझा। शिरकत। ३. एकत्र करना। इकट्ठा करना (को०)। ४. संक्षेप कथन [को०]।

इजमाली-वि० [अ०] शिरकत का। मुश्तरका। संयुक्त। साझे का।

इजरा¹†-संज्ञा स्त्री० [सं० नि (= नितरां) + जरा (जीर्ण) अथवा हिं० इ + जरा = जीर्णता] वह भूमि जो बहुत दिनों तक जोतने से कमजोर हो गई हो और फिर उपजाऊ होने के लिये परती छोड़ दी जाय।

इजरा²--संज्ञा पुं० [अ० इजराय] दे० 'इजराय'।

क्रि० प्र०--इजरा कराना = किसी भी निर्णय या आदेश को प्रचलित और कार्यान्वित कराना।

इजराय--संज्ञा पुं० [अ०] १. जारी करना। प्रचार करना। २. काम में लाना। व्यवहार। अमल।

यौ०-इजराय डिगरी = डिगरी का अमलदरामद होना। डिगरी को कार्यान्वित करना।

इजलास--संज्ञा पुं० [अ०] १. बैठक। २. वह जगह जहाँ हाकिम बैठकर मुकदमे का फैसला करता है। कचहरी। विचारालय। न्यायालय। अदालत।

यौ०-इजलासकामिल = न्यायालय की वह बैठक जिसमें सब जज एक साथ बैठ कर फैसला करें।

इजहार--संज्ञा पुं० [अ०] जाहिर करना। प्रकट करना। प्रकाशन। उ०--धर्म का यह इजहार। खुदा है खुदा, न वह तिथि वार।--मधुज्वाल, पृ० ६।

क्रि० प्र०--करना।--होना।

२. अदालत के सामने बयान। गवाही। साक्षी। साखी। उ०--एक दूसरे कैदी के इजहार से स्पष्ट ज्ञात होता है।--भारतेंदु ग्रं०, भा० ३, पृ० १०१।

क्रि० प्र०--देना। = लेना।--होना।

यौ०-इजहारतहरीरी = लिखी हुई गवाही। लिखित बयान [को०]।

इजाजत-संज्ञा स्त्री० [अ० इजाज़त] १. आज्ञा। हुक्म। २. परवानगी। मंजूरी। स्वीकृति।

इजाफत--संज्ञा स्त्री० [अ० इजाफत] संबंध। साबिका। २. फारसी व्याकरण में छठे कारक का चिह्न [को०]।

इजाफा-संज्ञा पुं० [अ० इज़ाफ़ह्] १. बढ़ती। बेशी। वृद्धि। बढ़ोतरी। उ०--अपने अँग के जानि कै, जोबन नृपति प्रबीन। स्तन, मन, नैन, नितंब कौ, बड़ौ इजाफा कीन।-बिहारी र०, दो० २। २. बचा हुआ धन। बचत।

यौ०--इजाफालगान = लगान का अधिक होना। कर या लगान की बढ़ती।

इजाबत--संज्ञा स्त्री० [अ०] १. कबूलियत। स्वीकृति। स्वीकार या मंजूर करना। २. शौच। दस्त। निपटान [को०]।

इजार--स्त्री० [अ०] पायजामा। सूथन। सुथना। उ०--लसत गूजरी ऊजरी बिलसत लाल इजार। हिए हजारनि के हरैं बैठी बाल बजार।--मतिराम ग्रं०, पृ० २९२।

क्रि० प्र०--उतारना = नंगा होना। प्रतिष्ठा खोना। इज्जत उतारना। उ०--और आदमी ही डाले है अपनी इजार उतार।--कविता कौ०, भा० ४, पृ० ३१७।

यौ०--इजारबंद।

इजारदार-वि० [अ० हजारा + फ़ा० दार (प्रत्य)] [वि० स्त्री० इजारदारिन] किसी पदार्थ को इजारे वा ठेके पर लेनेवाला। ठेकेदार। अधिकारी। उ०-कहा तुमही हौ ब्रज के इजारदार।-गीत (शब्द०)

इजारबंद--संज्ञा पुं० [अ० इजार + फ़ा० बंद] सूत या रेशम का बना हुआ जालीदार बँधना जो पायजामे या लहँगे के नेफे में उसे कमर से बाँधने के लिये पड़ा रहता है। नारा। कमरबंद।

इजारा--संज्ञा पुं० [अ० इजारह्] १. किसी पदार्थ को उजरत या किराए पर देना। २. ठेका। ३. अधिकार। इख्तियार। स्वत्व। जैसे,--तुम्हारा कुछ इजारा है ?

क्रि० प्र०--करना = जिम्मेदारी स्वीकारना। जिम्मेदार होना। उ०--कमँधां चालो मत करो, करो इजारो आय।--रा० रू०, पृ० ३१७।--देना।--लेना।

यौ०--इजारदार। इजारेदार।

इजारादारी--संज्ञा स्त्री० [अ० इजारह् + फा० दारी प्रत्य०] ठेकेदारी स्वत्व। कब्जे में होने की स्थिति। उ०--इसे ही इजारादारी, एकाधिपत्य या साम्राज्यवाद कहते हैं।--मान०, भा० ? पृ० २१२।

इजारेदार-वि० [अ० इजारह + फ़ा० दार (प्रत्य०)] दे० 'इजारदार'।

इजाला-संज्ञा पुं० [अ० इजालह] दूर करना। निवारण करना [को०]।

इजाला हैसियत उर्फी-संज्ञा स्त्री० [अ० इजालह हैसियत उर्फ़ी] कोई ऐसा काम करना जिससे दूसरे की इज्जत या आबरू में धब्बा लगे या उसकी बदनामी हो। हतकइज्जती। मानहानि।

इज्जत--संज्ञा स्त्री० [अ० इज्ज़त] मान। मर्यादा। प्रतिष्ठा। आदर। उ०--समझते हैं इज्जत को दौलत से बेहतर।--कविता कौ०, भा० ४, पृ० ५६३।

मुहा०--इज्जत उतारना = मर्यादा नष्ट करना। जैसे,-जरा सी बात के लिये वह इज्जत उतारने पर तैयार हो जाता है।

क्रि० प्र०--करना = प्रतिष्ठा या संमान करना।--खोना = अपनी मर्यादा नष्ट करना। जैसे,--तुमने अपने हाथों अपनी इज्जत खोई है।--गँवाना = दे० 'इज्जत खोना'।--जाना। जैसे,--पैदल चलने से क्या तुम्हारी इज्जत चली जायेगी।--देना = (१) मर्यादा खोना। जैसे,--क्या रुपए के लालच में हम अपनी इज्जत देंगे ? (२) गौरवान्वित करना। महत्व बढ़ाना। जैसे,-बरात में शरीक होकर आपने हमें बड़ी इज्जत दी।--पाना = प्रतिष्ठा प्राप्त करना। जैसे,-उन्होंने इस दर्बार में बड़ी इज्जत पाई।--बिगाड़ना = प्रतिष्ठा नष्ट करना। जैसे,-बदमाश भले आदमियों की राह चलते इज्जत

बिगाड़ देते हैं।—रखना = मर्यादा स्थिर रखना। बेइज्जती न होने देना। जैसे,—इस समय १००) देकर आपने हमारी इज्जत रख ली।—लेना = इज्जत बिगाड़ना।—होना = आदर होना। जैसे,— उनकी चारों तरफ इज्जत होती है।

यौ०—इज्जतदार।

इज्जतदार—वि० [अ० इज़्ज़त + फ़ा० दार (प्रत्य०)] प्रतिष्ठित। माननीय।

इज्जल—संज्ञा पुं० [सं०] हिज्जल नामक वृक्ष जो जलाशय के समीप अधिक होता है [को०]।

इज्तिराब—संज्ञा स्त्री० [अ० इज्तिराब] दे० 'इजतिराब' [को०]।

इज्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. यज्ञ। २. देवपूजा।

इट—संज्ञा पुं० [सं०] १. बेंत। २. तृण। ३. तृण या बेंत का बना आस्तरण। चटाई [को०]।

इटली—संज्ञा पुं० [अं०] यूरोप के दक्षिण का एक देश।

इटसून—संज्ञा पुं० [सं०] चटाई। आस्तरण [को०]।

इटालिक—संज्ञा पुं० [अं०] दे० 'इटैलिक'।

इटालियन—संज्ञा पुं० [अं०] १. एक प्रकार का कपड़ा।

विशेष—यह पहले पहल इटली से आया था। यह किसी वृक्ष की छाल से बनता है और बहुत चमकीला होता है। इसका रंग प्रायः काला होता है।

२. इटली देशवासी व्यक्ति।

इटैलिक—संज्ञा पुं० [अं०] एक प्रकार का छापा या टाइप जिसमें अक्षर तिरछे होते हैं।

इट्चर—संज्ञा पुं० [सं०] निर्द्वंद्व घूमनेवाला साँड़ या बैल [को०]।

इठलाना—क्रि० अ० [देश०] १. इतराना। ठसक दिखाना। गर्वसूचक चेष्टा करना। जैसे,—क्षुद्र मनुष्य थोड़े में ही इठलाने लगते हैं। २. मटकना। नखरा करना। उ०—पाइहैं पकरि तब पाइ है न कैसे हूँ, तू थोर इठलात वे तो अति इठलात हैं।—केशव (शब्द०) ३. छकाने के लिये जान बूझकर अनजान बनना। छकाने के लिये जान बूझकर किसी काम को देर में करना। जैसे,—(क) इठलाओ मत, बताओ किताब कहाँ छिपाई है। (ख) इठलाओ मत जैसा कहते हैं, वैसा करो।

इठलाहट—संज्ञा स्त्री० [हिं० इठलाना] इठलाने का भाव। ठसक।

इठलाहटी—वि० [हिं० इठलाहट + ई (प्रत्य०)] इठलानेवाली। ठसक वाली। उ०—खरै अदब इठलाहटी, उर उपजावति त्रासु। दुसह संक बिस कौ करै जैसे सोठि मिठासु।—बिहारी र०, दो० ३६०।

इठाई(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० इष्ट, पा० इट्ठ + हिं० आई (प्रत्य०)] १. रुचि। चाह। प्रीति। उ०—खारिक खात न दारौ उदाखन माखन हूँ सह मेटि इठाई।—केशव (शब्द०)। २. मित्रता। प्रेम।

इठाना(पु)—क्रि० स० [सं० एषण या इषणि] भेजना। पठाना। उ०—चाह जीयँ मिलन की सो तौ कहा जात रही, ग्यान ही इठावत है लायौ तू धिगानौ रे।—ब्रज० ग्रं०, पृ० १३२।

इठिमिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] यजुर्वेद से संबद्ध काठक का एक विभाग या अंश [को०]।

इठे†—क्रि० वि० [सं० इध, प्रा० *इढ, इत्थ] यहाँ। इस ओर। इधर। उ०—सरधे इठे इठे।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ५५।

इड—संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि [को०]।

इडरहर†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'इंडहर'। उ०—बने अनेक अन्न पकवाना। बरिल इडरहर स्वादु महाना।—रघुराज (शब्द०)।

इडविडा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. एक प्रकार की बकरी। २. बकरी की तरह मेंमियाने की क्रिया [को०]।

इडा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पृथिवी। भूमि। २. गाय। ३. वाणी। ४. अनवरत प्रार्थना। स्तुति। ५. एक यज्ञपात्र। ६. आहुति, जो प्रयाजा और अनुयाजा के बीच दी जाती है। ७. एक प्रकार का अप्रिय देवता जो असोमपा है। ८. अन्न। हवि। ९. नभदेवता। १०. दुर्गा। अंबिका। ११. पार्वती। १२. कश्यप ऋषि की एक पत्नी जो दक्ष की पुत्री थी। १३. वसुदेव की एक स्त्री। १४. मनु या इक्ष्वाकु की पुत्री, जो बुध की स्त्री थी, जिससे पुरुरवा उत्पन्न हुआ था। इसे मैत्रावरुणी भी कहा जाता है। १५. ऋतध्वज रुद्र की स्त्री। १६. स्वर्ग। १७. एक नाड़ी जो बाईं ओर है।

विशेष—यह नाड़ी पीठ की रीढ़ से होकर नाक तक है। बाईं साँस इसी से होकर आती जाती है। स्वरोदय में चंद्रमा इसका प्रधान देवता माना गया है। प्राचीनों के अनुसार यह प्रधान नाड़ी है।

इडाचिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] बर्रे। भिड़ [को०]।

इडाजात—संज्ञा पुं० [सं०] एक सुगंधित द्रव [को०]।

इडावान—संज्ञा पुं० [सं०] १. यज्ञान्न को खाने का अधिकारी। २. उपाहार। जलपान [को०]।

इडिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] पृथिवी। धरती [को०]।

इडिक्क—संज्ञा पुं० [सं०] जंगली बकरा [को०]।

इडुर—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'इट्चर' [को०]।

इड़हर—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'इँडहर'।

इड़ा—संज्ञा स्त्री० [सं० इडा] दे० 'इडा'।

इण(पु)—सर्व० [सं० एनत, प्रा० एण, इण] दे० 'इस'। उ०—(क) इण रुति साहिब ना चलइ, चालइ तिके गिमार।—ढोला०, दू० २४९। (ख) आवै इण भाषा अमल, वयण सगाई बेस।—रघु० रु०, पृ० १२।

इतः—क्रि० वि० [सं०] १. अतः। इसलिये। २. यहाँ। ३. इस स्थान से। यहाँ से। ४. इधर। इस ओर। ५. इस समय से। अब से [को०]।

इतःपर—क्रि० वि० [सं०] १. इसके उपरांत। इसके बाद। २. इतते पर। इस पर।

इत¹(पु)†—क्रि० वि० [सं० इतः] इधर। यहाँ। उ०—इततें उत औ उततें इत रहु यम की साँट सँवारी।—कबीर (शब्द०)।

यौ०—इत उत = इधर उधर। उ०—भोजन करत चपल चित, इत उत अवसर पाइ।—मानस १।२०३। (ख) इत उत चितै धँस्यौ मंदिर मैं हरि कौ दरसन पायौ।—सूर०, १०।४२७।

इत²†(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० ईति] दे० 'ईति'। उ०—सातू इत रो नह सोक लंगर, सुखी सगला लोक।—रघु० रू०, पृ० १२१।

इतकाद—संज्ञा पुं० [अ० एतकाद] दे० 'एतकाद' । उ०—तुम करो तयारी सब इसवारी, मैं दिल यह इतकाद करयौ।—सुजान०, पृ० १४ ।

इतनक(पु)—वि० [हिं० इतना + क (प्रत्य०)] इतना। थोड़ा। उ०—(क) जानै कटा कटाच्छ तिहारे कमलनैन मेरो इतनक सो री। सूर०, १०।३०५। (ख) सुंदर बिरहिन दुखित पीव नहीं पावरी। (परि हाँ) इतनक विष अब बाँटि सखी मुहि पावरी।—सुंदर० ग्रं०, भा० १, पृ० ३४१ ।

इतना —वि० [सं० इयान् इयत्, पा० इयन्त प्रा* इयतन अथवा हिं० ई० यह + तना (प्रत्य०)] [स्त्री० इतनी] इस मात्रा का। इस कदर। उ०-(क) इतनासुख जो न समाता अंतरिक्ष में, जल थल में।—आँसू, पृ० ४६। (ख) जनु इतनी बिरंचि करतूती। —तुलसी (शब्द०) ।

मुहा०—इतने में=इसी बीच में। इसी समय। उ०—इतने में रन ठौर रुधिर नदी प्रगटत भई। गज हय सुभट करारे छिन्न अंग ह्वै ह्वै गिरे।—(शब्द०) ।

इतनो(पु)†—वि० [हिं०] दे० 'इतना'। उ०—सब कौ न कहै, तुलसी के मते इतनो जग जीवन को फलु है।—तुलसी० ग्रं०, पृ० २०६।

इतफाक—संज्ञा पुं० [अ० इत्तफ़ाक] दे० 'इत्तफाक'। उ०—काट जिका कुल ऊबटै, आठवाट इतफाक।—बाँकी० ग्रं०, भा० १, पृ० ६४ ।

इतबार—संज्ञा पुं० [अ० एतबार] विश्वास। प्रतीति। उ०—(क) सार शब्द से बाँचियो मानौ इतबार।—कबीर श०, भा० १, पृ० ५०। (ख) ऐसे घर में जो बसै वाको क्या इतबार।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ३५ ।

इतबारी—वि० [हिं० इतबार + ई (प्रत्य०)] एतबार के योग्य। विश्वासपात्र। उ०—गोरि न रख्यो पोरिया जे इतबारी धाम।—पृ० रा०, ६३। २०४ ।

इतमाम—संज्ञा पुं० [अ० इहतिमाम=प्रबंध] इंतजाम। बंदोबस्त। प्रबंध। उ०—ताहि तखत बैठारि धारि सिर छत्र जटित जर चँवर मोरछल ढारि कियो इतमाम आम घर।—सूदन (शब्द०)।

इतमीनान—संज्ञा पुं० [अ०] विश्वास। दिलजमई। संतोष। उ०—दिल के लेने को जमानत चाहिए, और इतमीनान जामिन के लिये। कविता कौ०, भा० ४ पृ० ५५६।

क्रि० प्र०—करना। जैसे—तुम अपना हर तरह से इतमीनान कर लो, तब मकान खरीदो (शब्द०)।—कराना।—देना।—होना। जैसे—'अब तुम्हारी बातों से हमें इतमीनान हो गया (शब्द०)।

यौ०—इतमीनाने कल्ब=हृदय का विश्वास या संतोष।

इतमीनानी—वि० [अ० इतमीनान फा० ई (प्रत्य०)] विश्वासपात्र। विश्वासनीय।

इतर¹—वि० [सं०] १. दूसरा। ऊपर। और। अन्य। उ०—ब्रेटा इतर पदार्थों की क्या गणना है, मेरे शरीर का अब रक्त भी शेष नहीं। भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ५१०। २. नीच। पामर। साधारण। उ०—महि परत सुमन रस फल पराग। जनु देत इतर नृप कर विभाग।—तुलसी ग्रं०, पृ० ३४६।

इतर²—संज्ञा पुं० [अ० इत्र] दे० 'अतर'।

यौ०—इतरदान=इत्र रखने का पात्र। इतरफरोश=इत्रविक्रेता।

इतरत:, इतरत्र—क्रि० वि० [सं०] १. अन्यथा। व्यतिरिक्त। २. दूसरी जगह पर। अन्य स्थान पर [को०]।

इतरथा—क्रि० वि० [सं०] अन्यथा [को०]।

इतराज(पु)—संज्ञा पुं० [अ० एतराज] दे० 'एतराज'।

इतराजी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० इतराज + ई (प्रत्य०)] विरोध। विगाड़। नाराजी। उ०—बड़ौ मीत तुव मिलन कौ, चित राजी कौ चाव। इतराजी मत कर अरे, इत राजी है आव।—स० सप्तक, पृ० २१६।

इतराना—क्रि० अ० [सं० इतर अथवा सं० उत्तरण, हिं० उतराना या देश०] १. सफलता पर फूल उठना। घमंड करना। मदांध होना। उ०—(क) बड़ो बड़ाई नहिं तजै, छोटो बहु इतराय। ज्यों प्यादा फरजी भयो, टेढ़ो टेढ़ो जाय।—कबीर (शब्द०)। (ख) जस थोरेहु धन खल इतराई।—मानस, ४।१४। २. रूप और यौवन का घमंड दिखाना। ठसक दिखाना। ऐंठ दिखाना। इठलाना। उ०—अब काहू के जाउ कहीं जनि आवति हैं युवती इतरात। सूर—(शब्द०)।

इतराहट(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं० इतराना] इतराने का भाव। दर्प। घमंड। गर्व। उ०—जीवन के इतराहट सौं अठिलाट अछोटटि ऐंठनि ऐंठि।—देव (शब्द०)।

इतरेतर—क्रि० वि० [सं०] परस्पर। आपस में।

इतरेतरयोग—संज्ञा पुं० [सं०] १. परस्पर संबंध। २. एक प्रकार का द्वंद्वसमास जिसमें दो जाति के केवल एक एक व्यक्ति का समावेश होता है। हिंदी में समास का यह भेद नहीं है।

इतरेतराभाव—संज्ञा पुं० [सं०] न्यायशास्त्र में एक के गुणों का दूसरे में न होना। अन्योन्याभाव। जैसे,—गाय घोड़ा नहीं; क्योंकि गाय के धर्म घोड़े में नहीं हैं।

इतरेतराश्रय—संज्ञा पुं० [सं०] तर्क में एक प्रकार का दोष।

विशेष—जब एक वस्तु की सिद्धि दूसरी वस्तु की सिद्धि पर निर्भर हो और दूसरी वस्तु की सिद्धि भी पहली वस्तु की सिद्धि पर निर्भर हो, तब वहाँ पर इतरेतराश्रय दोष होता है। जैसे—परलोक की सिद्धि के लिये शरीर से पृथक् असिद्ध जीवात्मा को प्रमाण में लाना या जीवात्मा को शरीरातिरिक्त सिद्ध करने के लिये असिद्ध परलोक को प्रमाण में लाना।

इतरेद्यु—क्रि० वि० [सं०] दूसरे दिन। अन्येद्यु [को०]।

इतरै(पु)—क्रि० वि० [सं० इत: पर] इतने में। इसके उपरांत। उ०—इतरै एक आली ले आवी आनन आगलि आदरस।—बेलि०, दू० ८३।

इतरौहाँ—वि० [हिं० इतराना + औहाँ] (प्रत्य०)] जिससे इतराने का भाव प्रकट हो। इतराना सूचित करनेवाला। उ०—रहे परम पद साधत बीचै परी चाह चकचौंह। रतन खोइ कै कौड़ी पाई चाल चलै इतरौंह।—देवस्वामी (शब्द०)।

इतलाक—संज्ञा पुं० [अ० इतलाक़] १. जारी करना। इजराय। २. बंधनमुक्त करना। खोलना। ३. बोलना। कथन। ४. वह

दफ्तर या बही जिसमें दस्तक और समन आदि के जारी होने और उनके तलबाने के आयव्यय का लेखा लिखा जाता है।

यौ०—इतलाकनवीस = वह कर्मचारी जो इतलाक में काम करे या इतलाक का हिसाब रखे।

इतवत—क्रि० वि० [सं० इतस्ततः, प्रा० *इतवतः हिं० इतउत] इधर उधर। उ०—उझकत इतवत देखि चलत ठठकत छवि पावत।—ब्रज० ग्रं०, पृ० ६२।

इतवरी- संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'इत्वरी'।

इतवार—संज्ञा पुं० [सं० आदित्यवार, प्रा० आइत्तवार = ऐतवार] शनि और सोमवार के बीच का दिन। रविवार।

इतस्ततः—क्रि० वि० [सं०] इधर उधर। यहाँ वहाँ।

इता(पु)—वि० [सं० इयत् पा० इयन्त, प्रा० *इअतन, हिं० इतन, इतना] इतना। इस मात्रा का। उ०—(क) बड्डा जु बोल मुख नन्हिया, इता बोल सिर पर धरे।—पृ० रा०, ६४।१२१। (ख) साचा मुँह मोड़ै नहीं अर्थ इता ही बूझ।—दादू०, पृ० ३८५।

इताअत—संज्ञा स्त्री० [अ०] आज्ञापालन। ताबेदारी। उ०—'इनकी वैसे ही इज्जत और इताअत करते हैं'। प्रेमघन०, भा० २, पृ० ६२।

क्रि० प्र०—करना।—मानना।

इताति—संज्ञा स्त्री० [अ० इताअत] दे० 'इताअत'। उ०—को है जागजाल जो न मानत इताति है।—तुलसी ग्रं०, पृ० २५५।

क्रि० प्र०—मानना = आज्ञा या हुक्म मानना। उ०—निसि बासर ताकहँ भलो, मानै राम इताति।—ग्रं०, पृ० ५१५।

इताब—संज्ञा पुं० [अ०] क्रोध। कोप। गुस्सा [को०]।

यौ०—इताबनामा = क्रोध, नाराजी या विरोध व्यक्त करनेवाला पत्र।

इति[1]—अव्य [सं०] समाप्तिसूचक अव्यय।

इति[2]—संज्ञा स्त्री० [सं०] समाप्ति। पूर्णता। जैसे,—अब तुम्हारी पढ़ाई की इति हो गई। २. गति। गमन। ३. ज्ञान (को०)।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

यौ०—इतिकर्तव्यता। इतिवृत्त। इतिहास। इतिश्री।

इति[3]—क्रि० वि० इस प्रकार। ऐसा। उ०—(क) अचर-चर-रूप हरि सर्वगत सर्वदा बसत, इति बासना धूप दीजै।—तुलसी ग्रं०, पृ० ४७६। (ख) इति बदत तुलसीदास।—तुलसी ग्रं०, पृ० ४७८।

इतिक[1]—वि० [सं०] चलता हुआ। गतिशील [को०]।

इतिक[2](पु)—वि० [हिं०] दे० 'इतेक'। उ०—पन किती कहहि कप्पन्न होइ। इतिक बिदा सजि चंद कों।—पृ० रा०, ६१। ८८६।

इतिकथ—वि० [सं०] १. अविश्वसनीय। २. नष्ट। अश्रद्धेय [को०]।

इतिकथा—संज्ञा स्त्री० [सं०] अविश्वसनीय एवं निरर्थक बात [को०]।

इतिकरणीय—वि० [सं०] दे० 'इतिकर्तव्य' [को०]।

इतिकर्तव्य—वि० [सं०] जिसका करना आवश्यक और उचित हो। उ०—केवल प्रचलित प्रणाली का निर्वाह करना मात्र अपना इतिकर्तव्य मानते हैं। प्रेमघन०, भा० २, पृ० ५१।

इतिकर्तव्यता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. किसी काम के करने की विधि। परिपाटी। २. कर्म की पराकाष्ठा। कर्तव्य की समाप्ति या पूर्णता। उ०—बस कागजी घुड़दौड़ में है आज इतिकर्तव्यता।—भारत०, पृ० १२५। ३. मीमांसा या कर्मकांड में वह अर्थवाद बोधित वाक्य जिससे किसी कर्म की प्रशंसा और उसके करने के विधान का बोध हो।

इतिमात्र—वि० [सं०] इतना ही। इस प्रकार का ही [को०]।

इतिय(पु)—वि० [देश०] दे० 'इतना'। उ०—यों बज्जि सार आतुर इतिय ज्यों डंडूरिय बूँद धर।—पृ० रा०, १३। ११६।

इतिवत्—क्रि० वि० [सं०] इस प्रकार। इस ढंग से [को०]।

इतिवृत्त—संज्ञा पुं० [सं०] १. पुरावृत्त। पुरानी कथा। २. कहानी। किस्सा।

इतिश्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] समाप्ति। अंत। जैसे,—औरंगजेब से ही मुगलों के राज्य की इतिश्री हुई। उ०—कब से इतिश्री हो चुकी इसके अखिल उत्कर्ष की।—भारत०, पृ० २।

इतिह—क्रि० वि० [सं०] इस प्रकार निश्चय ही [को०]।

इतिहास—संज्ञा पुं० [सं०] १. बीती हुई प्रसिद्ध घटनाओं और उनसे संबंध रखनेवाले पुरुषों का कालक्रम से वर्णन। तवारीख। उ०—यद्यपि हमें इतिहास अपना प्राप्त पूरा है नहीं।—भारत०, पृ० ४। २. वह पुस्तक जिसमें बीती हुई प्रसिद्ध घटनाओं और भूत पुरुषों का वर्णन हो। उ०—अब भी 'लिखित मुनि' का चरित वह लिखित है इतिहास में।—भारत०, पृ० १०। ३. किसी विषय में संबंधित तथ्यों का आदिकाल से वर्तमान समय तक का क्रमबद्ध वर्णन। जैसे—किसी शास्त्र, कला, संस्कृति का इतिहास। ४. कथा। वृत्त। उ०—इस अनंत काले शासन का, वह जब उच्छृंखल इतिहास।—कामायनी, पृ० ३८।

यौ०—इतिहासकार = इतिहास लिखनेवाला। इतिवृत्त लेखक। इतिहासज्ञ = इतिहास का जानकार। इतिहासवेत्ता = इतिहासज्ञ।

इते(पु)—वि० [हिं०] दे० 'इतो'। उ०—इते घटे घटिहै कहा जो न घटै हरि नेह।—तुलसी ग्रं०, पृ० १५१।

इतेक—वि० [हिं० इत+एक] इतना एक। इतना।

इतै—क्रि० वि० [सं० इतः] इधर। इस तरफ। इस ओर। उ०—मोहन मानि मनायौ मेरौ। हौं बलिहारी नंद नंदन की, नैंकु इतै हँसि हेरौ।—सूर०, १०। २१६।

मुहा०—इतै उत्त = दे० 'इतउत'। उ०—उमंडे जबै सुंडदंडे उछालैं। तबै तोरि तारै इतैउत्त घालैं। पद्माकर ग्रं०, पृ० २७६।

इतो(पु), इतौ(पु)—वि० [सं० इयत् = इतना] [स्त्री० इती] इतना। इस मात्रा का। निर्दिष्ट मात्रा का। उ०—(क) कुटिल अलक छुटि परत मुख, बढ़िगौ इतो उदोत। बंक बिकारी देत ज्यों दाम रुपैया होत।—बिहारी (शब्द०)। (ख) मेरे जान इन्हें बोलिबे कारन चतुर जनक ठयो ठाठ इतौ री।—तुलसी ग्रं०, पृ० ३०८। (ग) लै लै मोहन, चंदा लै। सूरदास प्रभु इती बात को कत मेरे लाल हठै।—सूर०, १०। १६५।

इतौत(पु)—क्रि० वि० [हिं० इत+उत] इधर उधर। उ०—चंद उदौत इतौत चितौत चकी सबकी चख चारु चकोरी।—भिखारी० ग्रं०, भा० १, पृ० १५०।

इत्कट—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का वृक्ष या घास [को०]।

इत्किला—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक सुगंध द्रव्य। गोरोचन [को०]।

इत्त(पु)—क्रि०वि० [हिं०] दे० 'इत'। उ०—जा को रहना उत्त घर सो क्यों लोड़ै इत्त। जैसे पर घर पाहुना रहै उठाए चित्त।—कबीर सा० सं०, पृ० ७७।

इत्तन(पु)—वि० [हिं०] दे० 'इतना'। उ०—इत्तन वचन कह्यौ चर आइय।—प० रा०, पृ० १२०।

इत्तफाक—संज्ञा पुं० [अ० इत्तिफ़ाक़] [वि० इत्तफाकिया; क्रि० वि० इत्तफाकन] १. मेल। मिलाप। एका। २. सहमति।

मुहा०—इत्तफाक करना = सहमत होना। जैसे,—मैं आपकी राय से इत्तफाक नहीं करता।

३. संयोग। मौका। अवसर। जैसे,—इत्तफाक की बात है, नहीं तो आप भी कभी यहाँ आते हैं?

मुहा०—इत्तफाक पड़ना = संयोग उपस्थित होना। मौका पड़ना। अवसर आना। जैसे,—मुझे अकेले सफर करने का इत्तफाक कभी नहीं पड़ा। इत्तफाक से = संयोगवश। अचानक। अकस्मात्। जैसे,—'मैं स्टेशन जा रहा था, इत्तफाक से वे भी रास्ते में मिल गए'।

इत्तफाकन्—क्रि०वि०[अ० इत्तिफाकन्]संयोगवश। अचानक। एकाएक।

इत्तफाकिया—वि० [अ० इत्तिफाकियह] आकस्मिक।

इत्तफाकी—वि० [अ० इत्तिफ़ाक़] दे० 'इत्तफाकिया'।

इत्तला—संज्ञा स्त्री० [अ० इत्तलाअ] सूचना। खबर। उ०—बहरे खुदा जनाब दें हमको ये इत्तला। साहब का क्या जवाब था बाबू ने क्या कहा।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ६२६।

क्रि० प्र०—करना।—देना।—होना।

मुहा०—इत्तला लिखना = राजकर्मचारियों का किसी बात की सूचना लिखना।

यौ०—इत्तलानामा।

इत्तलानामा—संज्ञा पुं० [अ० इत्तला अ + फ़ा० नामह] किसी बात की खबर देनेवाला पत्रक। सूचनापत्र।

इत्तहाद—संज्ञा पुं० [अ० इत्तिहाद] मेल मिलाप। एकता। उ०—खुदा गवाह है, मैंने हमेशा इत्तहाद की कोशिश की।—काया०, पृ० ३३४।

इत्ता†—वि० [हिं० इतना] इतना। उ०—कड़ेल जवान न होगा तो भला शेरों से इत्ता ठेंगा मुकाबिला कर सकेगा।—फिसाना०, भा० ३, पृ० १२।

इत्तिफाक—संज्ञा पुं० [अ० इत्तिफ़ाक़] संयोग। मौका। उ०—'यह तो कई बार इत्तिफाक हुआ है कि हम पहाड़ की ऊँची चोटी पर हैं'।—सैर कु०, पृ० ६२।

इत्तिहाम—संज्ञा पुं० [अ०] दोष। तुहमत।

क्रि० प्र०—देना।

इत्तो(पु)—वि० [हिं०] दे० 'इतो'।

इत्थं—क्रि० वि० [सं० इत्थम्] इस प्रकार से। ऐसे। यों।

इत्थंकार—क्रि० वि० [सं० इत्थङ्कारम्] इस प्रकार। इस ढंग से [को०]

इत्थंभूत—वि० [सं० इत्यम्भूत] इस प्रकार का। ऐसा। २. सत्य। विश्वसनीय (कथा)।

इत्थंविध—वि० [सं०] १. इस प्रकार का। ऐसा। २. इस प्रकार की विशेषता या गुणों से युक्त [को०]।

इत्थमेव¹—वि० [सं०] ऐसा ही।

इत्थमेव²—क्रि० वि० इसी प्रकार से।

इत्थशाल—संज्ञा पुं० [सं०; मि०, अ० इत्तिसाल] दे० इत्थसाल' [को०]।

इत्थसाल—संज्ञा पुं० [अ० इत्तिसाल] ताजक ज्योतिष के अनुसार कुंडली में १६ योगों में से तीसरा योग जहाँ वेगगामी ग्रह मंदगामी ग्रह से एक अंश में कम हो और वे परस्पर एक दूसरे को देखते हों या संबंध करते हों वहाँ इत्थसाल योग होता है।

इत्थाँ(पु)†, इत्थू(पु)† इत्थे(पु)†—क्रि० वि० [सं० इतः] यहाँ। इस स्थान पर।

इत्यादि—अव्य० [सं०] इसी प्रकार के अन्य। और। इसी तरह। और दूसरे। वगैरह। उ०—बेटा हमारा धन, आभूषन, बसन इत्यादि सब लुटेरे बलात्कार हर ले गए'।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ५०८।

विशेष—जहाँ किसी प्रसंग से समान संबंध रखनेवाली बहुत सी वस्तुओं को गिनाने की आवश्यकता होती है, वहाँ लाघव के लिये केवल दो तीन वस्तुओं को गिनाकर 'इत्यादि' लिख देते हैं जिससे और वस्तुओं का आभास मिल जाता है।

इत्यादिक—वि० [सं०] इसी प्रकार के अन्य और। ऐसे ही और दूसरे जैसे—राम कृष्ण इत्यादिकों ने भी ऐसा ही किया है।

विशेष—इस शब्द के आगे 'लोग' या इसी प्रकार के और विशेष शब्द प्रायः लुप्त रहते हैं।

इत्र—संज्ञा पुं० [अ०] १. अतर। पुष्पसार। इतर। उ०—न दी बू एक ने ऐ गुलबदन तेरे पसीनों की, हजारों इत्र खिचकर तबल ए अत्तार में आए। कविता कौ०, भा० ४, पृ० ३७७। २. सुगंध। खुशबू। ३. सार। सत्त।

इत्रदान—संज्ञा पुं० [अ० इत्र + फा० दान] दे० 'अतरदान'।

इत्रफरोश—संज्ञा पुं० [अ० इत्र + फा० फरोश] अतर बेचनेवाला। गंधी। अत्तार।

इत्रसाज—संज्ञा पुं० [अ० इत्र + फा० साज़] इत्र बनानेवाला। गंधी[को०]।

इत्रीफल—संज्ञा पुं० [सं० त्रिफला] एक हकीमी दवा। हड़, बहेड़े और आँवले का चूर्ण तिगुने शहद में मिलाकर चालीस दिन तक रखा जाता है और फिर व्यवहार में आता है।

इत्वर¹—वि० [सं०] १. क्रूरकर्मा। क्रूर। २. निम्न। नीच। ३. यात्री। पथिक [को०]। ४. निर्धन। धनहीन [को०]।

इत्वर²—संज्ञा पुं० १. षंढ। नपुंसक। २. उत्सर्ग किया हुआ वृष या छुट्टा पशु। खुला हुआ जानवर [को०]।

इत्वरी—वि०स्त्री०[सं०] १. छिनाल। कुलटा। २. अभिसारिका [को०]।

इथ(पु)—अव्य० [सं० अत्र, प्रा० इत्थ] यहाँ। अत्र। उ०—तैं इथ नै संतारि दै जो चाहहि सो लेहि।—भिखारी० ग्रं०, भा० १, पृ० १६७।

इथ्थह(पु)—अव्य० [हिं०] दे० 'इथ'। उ०—तब लग्ग मेछ इथ्थह प्रवेस।—पृ० रा०, ६१।५६२।

इदंतन—वि० [सं० **इदन्तन**] १. इस समय का। वर्तमान। २. क्षण-स्थायी। क्षणिक [को०]।

इदंता—संज्ञा स्त्री० [सं० **इदन्ता**] सादृश्य। एकरूपता। समरूपता [को०]।

इदंद्र—संज्ञा पुं० [सं **इदन्द्र**] वह जो (इस) इदं (=जगत्) को देखता है। परमात्मा [को०]।

इदंबर—संज्ञा पुं० [सं० **इदम्बर**] नीला कमल। इंदीवर [को०]।

इदम्—सर्व० [सं०] यह।

इदमित्थं—पद० [सं० **इदमित्थम्**] यह ऐसा है। ऐसा ही है। ठीक है। उ०—हरि अवतार हेतु जेहि होई। इदमित्थं कहि जाइ न सोई।—मानस, १।१२१।

इदराक—संज्ञा पुं० [अ० **इद्राक्**] ज्ञान। बोध। समझबूझ। उ०—गफलत कि यह जागे नहीं यहाँ साहिबे इदराक रहे।—राम० धर्म०, पृ० ८६।

इदानींतन—वि० [सं० **इदानीन्तन**] १. इस समय का। आधुनिक। २. नवीन। नया।

इदावत्सर—संज्ञा पुं० [सं०] बृहस्पति की गति के अनुसार प्रत्येक ६० वर्ष में १२ युग होता है और प्रत्येक युग में पाँच पाँच वर्ष होते हैं। प्रत्येक युग के तीसरे वर्ष को इदावत्सर कहते हैं।

विशेष—इनके नाम ये हैं—शुक्ल, भाव, प्रमाथी, तारण, विरोधी, जय, विकारी, क्रोधी, सौम्य, आनंद, सिद्धार्थ और रक्ता इनमें अन्न और वस्त्र के दान का बड़ा माहात्म्य है।

इद्दत—संज्ञा स्त्री० [अ०] पति के मरने के बाद का ४० दिन का अशौच जो मुसलमान विधवाओं को होता है और जिसके बीच वे अन्य पुरुष से विवाह नहीं कर सकतीं।

विशेष—कहते हैं कि यह इसलिये रखा गया है जिससे यदि गर्भ हो तो उसका पता चल जाय। यह अवधि तलाक की स्थिति में तीन महीने, पति की मृत्यु पर चार महीने दस दिन और गर्भवती के लिये संतान होने तक भी है।

इद्ध[1]—वि० [सं०] १. प्रकाशित। ज्योतित। २. प्रकाशमान। चमकीला। ३. आश्चर्यकारक। विस्मयजनक। ४. पालन किया जानेवाला (आदेश)। ५. दीप्त। ६. दग्ध। ७. स्वच्छ। निर्मल [को०]।

इद्ध[2]—संज्ञा पुं० १. आतप। धाम। २. दीप्ति। कांति। ३. आश्चर्य। अचंभा [को०]।

इद्धदीधिति—संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि। आग [को०]।

इद्धमन्यु—वि० [सं०] भयंकर क्रोधी। अत्यधिक क्रोधयुक्त [को०]।

इद्धाग्नि—वि० [सं०] जिसकी अग्नि निरंतर प्रदीप्त रहती हो [को०]।

इद्वत्सर—संज्ञा पुं० [सं०] बृहस्पति की गति के अनुसार ६० वर्ष में १२ युग होते हैं और प्रत्येक युग में पाँच पाँच वत्सर होते हैं। प्रत्येक युग के पाँचवें व अंतिम वर्ष को इद्वत्सर कहते हैं।

विशेष—इनके नाम ये हैं—प्रजाति, धाता, वृष, व्यय, खर, दुर्मुख, प्लव, पराभव, रोधकृत्, अनल, दुर्मति और क्षय।

इधक(पु)†—वि० [सं० **अधिक**] दे० 'अधिक'। उ०—इधक अनुरागकर पुरष निरजुर अही।—रघु० रू०, पृ० ५७।

इधकार(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० **अधिकार**] दे० 'अधिकार'। उ०—प्रसध नाम इधकार जग तारे माटी पर्णों।—रघु० रू०, पृ० २६।

इधर—क्रि० वि० [सं० **इतस् या इतर**] १. इस ओर। यहाँ। इस तरफ। उ०—इधर कोई है अभी सजीव हुआ ऐसा मन में अनुमान।—कामायनी, पृ० ५२।

मुहा०—**इधर उधर** = (१) यहाँ वहाँ। इतस्ततः। अनिश्चित स्थान में। जैसे,—लोग विपत्ति के मारे इधर उधर मारे मारे फिरते थे। (२) आसपास। इनारे किनारे। अड़ोस पड़ोस में। जैसे,—तुम्हारे घर के इधर उधर कोई नाई हो तो भेज देना। (३) चारों ओर। सब ओर। जैसे,—मेज के इधर उधर देखो, पुस्तक वहीं कहीं होगी। **इधर उधर करना** = (१) टालमटूल करना। हीला हवाला करना। जैसे,—जब हम अपना रुपया माँगते हैं, तब तुम इधर उधर करते हो। (२) अस्त-व्यस्त करना। उलट पुलट करना। क्रम भंग करना। जैसे,—बच्चे ने सब कागजपत्र इधर उधर कर दिए। (३) तितर बितर करना। भगाना। जैसे,—अकेले उसने २० चोरों को मारकर इधर उधर कर दिया। (४) हटाना। भिन्न भिन्न स्थानों पर कर देना। जैसे,—महाजनों के डर से उसने घर का माल इधर उधर कर दिया। **इधर उधर की बात** = (१) बाजारू गप। अफवाह। सुनी सुनाई बात। जैसे,—हम ऐसी इधर उधर की बातों पर विश्वास नहीं करते। (२) बेठिकाने की बात। असंगत बात। व्यर्थ की बकवाद। जैसे,—तुम कोई काम नहीं करते; व्यर्थ इधर उधर की बातें किया करते हो। **इधर की उधर करना** या **लगाना** = चुगलखोरी करना। चवाव करना। एक पक्ष के लोगों की बात दूसरे पक्ष के लोगों से कहना। झगड़ा कराना। **इधर की दुनिया उधर होना** = अनहोनी बात का होना। असंभव का संभव होना। जैसे,—चाहे इधर की दुनिया उधर हो जाय, पर हम ऐसा कभी नहीं करेंगे। **इधर उधर की हाँकना** = झूठ मूठ बकना। व्यर्थ समय खोना। जैसे,—तुम इधर उधर में रहा करते हो; कोई काम तो करते नहीं। **इधर उधर से** = (१) अनिर्दिष्ट स्थान से। अनिश्चित जगह से। जैसे,—यह पुस्तक कहीं इधर उधर से झटक लाए हो। (२) औरों से। दूसरों से। जैसे—(क) जब तक इधर उधर से काम चले, तब तक घोड़ा क्यों मोल लें। (ख) उसे इधर उधर से भोजन मिल ही जाता है; वह रसोई क्यों बनावे। **इधर का उधर होना** = (१) उलट पुलट होना। अंड बंड होना। बिगड़ना। जैसे,—हवा से सब कागजपत्र इधर उधर हो गए। (२) टालमटूल होना। हीला-हवाला होना। जैसे,—महीनों से इधर उधर हो रहा है देखें रुपया कब मिलता है। (३) भाग जाना। तितर बितर होना। जैसे,—शेर के आते ही सब लोग इधर उधर हो गए। **इधर का उधर करना** = उलट पलट देना। अस्तव्यस्त करना। क्रम बिगाड़ना। **इधर का उधर होना** = उलट जाना। विपर्यय होना। विपरीत होना। जैसे,—देखते देखते सारा मामला इधर का उधर हो गया। **इधर या उधर होना** = परस्पर विरुद्ध दो संभावित घटनाओं में से (जैसे,—जीना या मरना, हारना या जीतना) किसी एक का होना। जैसे,—जज के यहाँ

मुकदमा हो रहा है; दो चार दिन में इधर या उधर हो जायगा। **इधर से उधर फिरना** = चारों ओर फिरना। जैसे,—तुम व्यर्थ इधर से उधर फिरा करते हो। **न इधर का होना न उधर का** = (१) किसी ओर का न रहना। किसी पक्ष में न रहना। जैसे,—वे हमारी शिकायत उनसे और उनकी शिकायत हमसे किया करते थे; अंत में न इधर के हुए न उधर के। (२) किसी काम का न रहना। जैसे,—वे इतना पढ़ लिखकर भी न इधर के हुए न उधर के। (३) दो परस्पर विरुद्ध उद्देश्यों में से किसी एक का भी पूरा न होना। जैसे,—वे नौकरी के साथ साथ रोजगार भी करना चाहते थे; पर अंत में न इधर के हुए न उधर के।

इध्म—संज्ञा पुं० [सं०] १. काठ। लकड़ी। २. यज्ञ की समिधा जो प्रायः पलाश या आम की होती है।

यौ०—**इध्मजिह्व** = अग्नि। **इध्मवाह** = अगस्त्य ऋषि का एक पुत्र जो लोपामुद्रा से उत्पन्न हुआ था।

इध्मपरिवासन—संज्ञा पुं० [सं०] लकड़ी की चैली या टुकड़ा [को०]।

इध्मप्रवश्चन—संज्ञा पुं० [सं०] कुल्हाड़ी। टाँगी [को०]।

इध्मभृति—वि० [सं०] ईंधन या लकड़ी लानेवाला [को०]।

इन[१]—सर्व० [हिं०] 'इस' का बहुवचन।

इन[२]—संज्ञा पुं० [सं०] १. सूर्य। २. प्रभु। स्वामी। ३. राजा। नरेश (को०)। ४. हस्त नाम का नक्षत्र [को०]।

इन[३]—वि० १. योग्य। शक्त। क्षम। २. बहादुर। ताकतवर। दृढ़। ३. गौरवपूर्ण [को०]।

इनग्राम—संज्ञा पुं० [अ० इन ग्राम] दे० 'इनाम'। उ०—इन लोगों को एक एक जोड़ा दुशाला इनग्राम दो।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ५४२।

इनकम—संज्ञा स्त्री० [अं०] आय। आमदनी। अर्थागम।

यौ०—**इनकम टैक्स**।

इनकमटैक्स—संज्ञा पुं० [अं०] आमदनी पर महसूल। आय पर कर। आयकर।

इनकलाब—संज्ञा पुं० [अ० इनकलाब] परिवर्तन। उलटफेर। उ०—सुना न कानों से था जो हमने वो आँख से इनकलाब देखा।—शेर०, भा० १, पृ० ६६२। २. क्रांति। राज्यपरिवर्तन।

यौ०—**इनकलाब जिंदाबाद** = क्रांति चिरजीवी हो। **इनकलाब हुकूमत** = राज्यक्रांति। राज्य संबंधी परिवर्तन।

इनकलाबी—वि० [अ० इनकलाबी] क्रांति या परिवर्तन लानेवाला।

इनकांत—संज्ञा पुं० [सं० इनकान्त] सूर्यकांत मणि [को०]।

इनकार—संज्ञा पुं० [अ०] अस्वीकार। नकारना। नामंजूरी। नहीं करना। 'इकरार' का उलटा।

क्रि० प्र०—**करना**।—**होना**।

इनकारी[१]—वि० [अ०] इनकार करनेवाला। अस्वीकृतिसूचक [को०]।

इनकारी[२]—संज्ञा स्त्री० इनकार या अस्वीकार की स्थिति।

इनकिशाफ—संज्ञा पुं० [अ० इनकिशाफ़] १. गवेषणा। अनुसंधान। २. व्यक्त होना। प्रकट होना। जाहिर होना [को०]।

इनकिसार—संज्ञा पुं० [अ०] खाकसारी। नम्रता। विनय [को०]।

इनफार्मर—संज्ञा पुं० [अं० इनफ़ार्मर] वह जो गुप्त रूप से किसी बात का भेद लगाकर पुलिस को बताता है। गोइंदा। भेदिया। जैसे,—वह पुलिस का इनफार्मर है।

इनफिकाक—संज्ञा पुं० [अ० इनफ़िकाक] १. रेहन का छुड़ाना। बंधक छुड़ाना। २. मुक्त होना। छूटना (को०)। ३. अलग अलग होना (को०)।

यौ०—**इनफिकाक रेहन**।

इनफिसाल—संज्ञा पुं० [अ० इनफिसाल] १. वाद का निर्णय होना। फैसला होना। २. फैसला। निर्णय [को०]।

इनफ्लुएंजा—संज्ञा पुं० [अं० इनफ्लुएंजा] सरदी का बुखार जिसमें सिर भारी रहता है, नाक बहा करती है और हरारत रहती है।

इनसभ—संज्ञा पुं० [सं०] राजसभा। शाही दरबार [को०]।

इनसान—संज्ञा पुं० [अ०] १. मनुष्य। आदमी। २. सभ्य। सज्जन [को०]।

इनसानियत—संज्ञा स्त्री० [अ०] १. मनुष्यत्व। आदमीयत। २. बुद्धिमानी। बुद्धि। शऊर। ३. भलमनसी। सज्जनता। मुरव्वत।

इनसानी—वि० [अ० इनसान + फा० (प्रत्य०)] १. मानवीय। मानव संबंधी। २. सज्जनोचित [को०]।

इनसानीयत—संज्ञा स्त्री० [अ०] दे० 'इनसानियत' [को०]।

इनसाफ—संज्ञा पुं० [अ० इनसाफ़] दे० 'इंसाफ'। उ०—माँ और भाई मालिक से इनसाफ चाहने के लिये विलायत पहुँचे।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ३४६।

इनसालवंट, इनसालवेंट—वि० [अं०] वह व्यापारी जो व्यापार में घाटा आने के कारण अपना ऋण चुकाने में असमर्थ हो। दिवालिया। उ०—तो क्या इनसालवेंट होने की दरख्वास्त देनी पड़ेगी।—श्री निवास ग्रं०, पृ० ३८१।

इनसिदाद—संज्ञा पुं० [अ०] १. बंद होना। रुक जाना। २. निवारण।

यौ०—**इनसिदादे जुर्म** = अपराधों का रुकना। अपराधों का निवारण। खात्मा [को०]।

इनस्टिटयूशन—संज्ञा पुं० [अं० इन्स्टिटयूशन] संस्था। समाज। मंडल।

इनहिदाम—संज्ञा पुं० [अ०] १. ढहना। गिरना। २. ध्वंस [को०]।

इनहिसार—संज्ञा पुं० [अ०] निर्भरता। दारोमदार [को०]।

इनान—संज्ञा पुं० [अ०] बल्गा। बाग। लगाम [को०]।

यौ०—**इनाने हुकूमत** = शासन की बागडोर। शासनसूत्र।

इनानी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक वृक्ष। वटपत्री [को०]।

इनाम—संज्ञा पुं० [अ० इनग्राम] १. पुरस्कार। बखशिश। उपहार। २. माफी जमीन।

यौ०—**इनाम इकराम** = इनाम जो कृपापूर्वक या सेवा से प्रसन्न होकर दिया जाय। **इनामदार** = इनाम प्राप्त करनेवाला।

इनायत—संज्ञा स्त्री० [अ०] १. कृपा। दया। अनुग्रह। मेहरबानी। उ०—इनायत है तुम पे यह सर्कार की। तुम्हें दूसरी उसने पोशाक दी।—कविता कौ०, भा० २, पृ० २१३। २. एहसान।

क्रि० प्र०—करना।—फरमाना।—रखना।

मुहा०—इनायत करना = (१) कृपा करके देना। जैसे,—जरा कलम तो इनायत कीजिए। २. रहने देना। बाज रखना। वंचित रखना (व्यंग्य)। जैसे,—इनायत कीजिए, मैं आपकी चीज नहीं लेता।

इनारा†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'इँदारा'।

इनारुन†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'इँदारुन'।

इनारू—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'इँदारुन'। उ०—मीठा जिसमें जानते थे वह इनारू का फल था।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० २०५।

इनेगिने— वि० [हिं० इने = गिने की अनुध्व० + गिनना] १. कतिपय। कुछ। चंद। थोड़े से। २. चुने चुनाए। गिने गिनाए। जैसे,—इस विद्या के जाननेवाले अब इने गिने लोग हैं।

इनोदय— संज्ञा पुं० [सं०] सूर्योदय [को०]।

इन्जिन—संज्ञा पुं० [हिं० इंजन] दे० 'इंजन'। उ०—इच्छा कर्म संजोगी इन्जिन गारड आप अकेला है।—श्यामा०, पृ० ११४।

इन्टरनैशनल—वि० [अं०] दे० 'अंतर्राष्ट्रीय'। जैसे,—इन्टरनैशनल एग्जिबिशन।

इंटरमीडिएट—वि० [अं०] बीच का। मध्य का। मध्यम। जैसे,—इन्टरमीडिएट क्लास उच्चतर माध्यमिक कक्षा।

इन्टरव्यू—संज्ञा पुं० [अं०] १. व्यक्तियों का आपस में मिलना। एक दूसरे का मिलाप। भेंट। मुलाकात। साक्षात् वार्तालाप या प्रश्नोत्तर जैसे,—प्रयाग के एक संवाददाता ने उस दिन स्वराज्य पार्टी की स्थिति जानने के लिये उसके नेता पं०मोतीलाल नेहरू का इंटरव्यू किया था। २. परीक्षा अथवा नियुक्ति के लिये किसी समिति के संमुख साक्षात्कार के लिये उपस्थित होना।

क्रि० प्र०—करना।—लेना।

३. आपस में विचारों का आदान प्रदान। वार्तालाप। जैसे,—समाचार पत्रों में एक संवाददाता और मालवीयजी का जो इन्टरव्यू छपा है, उसमें मालवीय जी ने देश की वर्तमान राजनीतिक स्थिति पर अपने विचार प्रकट किए हैं।

इन्नर†—संज्ञा पुं० [सं० अनीर = बिना जल का] पेउस (१० दिन के भीतर ब्याई हुई गाय का दूध) में गुड़, सोंठ, चिरौंजी और कच्चा दूध मिलाकर पकाने से वह जम जाता है। इसी जमे हुए दूध को इन्नर कहते हैं।

इन्यामⓅ†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'इनाम'। उ०—राजमती इन्याम दौ। मढ़ी है थानीक चांपानेर।—बी० रासो, पृ० ९५।

इन्वका—संज्ञा स्त्री० [सं०] इल्वला नाम का पाँच तारों का समूह जो मृगशिरा नक्षत्र के ऊपर रहता है।

इन्वायस—संज्ञा पुं० [अं०] १. व्यापारी द्वारा भेजे हुए माल की सूची जिसमें उस माल के दाम आदि का ब्योरा रहता है। बीजक। रवन्ना। २. चालान का कागज।

इन्श्योरेंस—संज्ञा पुं० [अं० इन्श्योरेंस] दे० 'बीमा'। जैसे—लाइफ इन्श्योरेंस, जीवनबीमा।

इन्स—संज्ञा पुं० [अ०] दे० 'इनसान'। उ०—बजुज खालिक जिन, इन्स व बशर, उनकी होनहारी की नई किस खबर।—दक्खिनी०, पृ० ३७४।

इन्साइक्लोपीडिया—संज्ञा पुं० [अं०] दे० 'विश्वकोश'।

इन्साइक्लोपीडियाब्रिटानिका—संज्ञा पुं० [अं०] अंग्रेजी का एक प्रसिद्ध विश्वकोश। उ०—न एतबार हो तो इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटानिका खोलकर देख लीजिए।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ४१४।

इन्सोलिन—संज्ञा स्त्री० [अं०] मधुमेह रोकने की दवा। उ०—सिर्फ एक बार शिमला में इन्सोलिन की सुई लगाई थी।—किन्नर०, पृ० १५।

इन्हⓅ†—सर्व० [हिं०] दे० 'इन'। उ०—इन्ह कै दसा न कहेउँ बखानी। सदा काम के चेरे जानी।—मानस, १।८५।

इन्हनⓅ—संज्ञा पुं० [सं० इन्धन] दे० 'इंधन'। उ०—ज्ञान अगिन तामे दियो विषय इन्हन जरि जाय।—भीखा श०, पृ० १००।

इफतरा—संज्ञा पुं० [अ० इफ्तिरह्] १. मिथ्या आरोप। तोहमत। २. व्यर्थ की बात। उ०—बेद कितेब इफतरा भाई दिल का फिकिर न जाई।—कबीर ग्रं०, पृ० १९७।

यौ०—इफतरा परवाज = कलंक लगानेवाला। तोहमत लगानेवाला।

इफतार—संज्ञा पुं० [अ० इफ्तार] रोजा खोलना [को०]।

इफतारी—संज्ञा स्त्री० [अ० इफ्तारी] वह वस्तु जिसे खाकर रोजा खोला जाता है [को०]।

इफरात—संज्ञा स्त्री० [अ० इफ्रात] अधिकता। ज्यादती। अधिकाई। कसरत। बहुतायत।

इफलास—संज्ञा पुं० [अ० इफ्लास] मुफलिसी। तंगदस्ती। गरीबी। दरिद्रता। आवश्यकता। उ०—वह इफलास अपना छिपाते हैं गोया। जो दौलत से करते हैं नफरत जियादा।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ६००।

इफलासी— संज्ञा स्त्री० [अ० इफ्लासी] दे० 'इफलास'।

इफाकत—संज्ञा पुं० [अ० इफ़ाकत] १. रोगमुक्ति। २. रोग में सुधार होना। स्वास्थ्यलाभ करना [को०]।

इबⓅ—अव्य [हिं०] दे० 'अब'। उ०—इब तो मोहि लागी बाई उन निहचल चित लियो चुराई।—दादू० पृ० ४७०।

इबतदा—संज्ञा स्त्री० [अ० इब्तिदह्] दे० 'इब्तिदा'। उ०—जो औव्वल में पैदायश इबतदा, परम आतमा से हुई यह सदा।—कबीर मं०, पृ० ३८६।

इबन—संज्ञा पुं० [अ० इब्न] पुत्र। उ०-तेहि के कोख कीन्ह अवतरा। यूसुफ इबन अमीन दुई बारा।-हिंदी प्रेमा०, पृ० २३४।

इबरत-संज्ञा स्त्री० [अ० इब्रत] १. विचित्रता। अद्भुत कार्य। २. चेतावनी। शिक्षा। नसीहत [को०]।

यौ०—इबरतअंगेज = चेतावनी देनेवाला। शिक्षाप्रद। इबरत आमेज = अद्भुत। अद्वितीय। अनोखा।

इबरानी[१]—संज्ञा पुं० [अ० इब्रानी] इब्राहीम नामक पैगंबर के वंशज। यहूदी।

इबरानी[२]—संज्ञा स्त्री० पैलिस्तान देश की प्राचीन भाषा।

इबरानी[३]— वि० यहूद या फिलस्तीन देश का। उस देश से संबंधित।

इबरायनामा—संज्ञा पुं० [फ़ा०] वह पत्र जिसके द्वारा कोई मनुष्य अपने स्वत्व या हक से दस्तबरदार हो। त्यागपत्र।

इबराहीम--संज्ञा पुं० [अ० **इब्राहीम**] यहूदी जाति के आदि पुरुष जो इस्लाम धर्म के अनुसार एक पैगंबर माने जाते हैं।--उ०--नूह की दसवीं पीढ़ी में इबराहीम उत्पन्न हुआ।--कबीर मं०, पृ० ५२।

इबरी(पु)--संज्ञा स्त्री० [अ० **इब्रानी का संक्षिप्त रूप**] दे० 'इबरानी'। उ०--इबरी औ अरबी सुर बानी। पारस औ तुरकी मिसरानी।--हिंदी प्रेमा०, पृ० २३३।

इबलीस--संज्ञा पुं० [अ० **इब्लीस**] शैतान। उ०--खड्ग दीन्ह उन्ह जाइ कहँ देखि डरै इबलीस।--जायसी ग्रं०, पृ० ३२२।

इबा--संज्ञा स्त्री० [अ०] १.एक तरह का कंबल। २. बड़ा चोगा [को०]।

इबादत--संज्ञा स्त्री० [अ०] पूजा। आराधना। उ०--उन्हें शौके इबादत भी है और गाने की आदत भी, निकलती हैं दुआएँ उनके मुँह से ठुमरियाँ होकर।--कविता कौ०, भा० ४, पृ० ६२२।

यौ०--**इबादतखाना**।

इबादतखाना--संज्ञा पुं० [अ० **इबादत** + **फ़ा० खानह्**] पूजा करने का स्थान। पूजा गृह। उपासना गृह।

इबारत--संज्ञा स्त्री० [अ०] १. लेख। मजमून। उ०--उसके आसपास फारसी में बहुत सी इबारत लिखी थी।--श्रीनिवास ग्रं०, पृ० १३०। २. लेखशैली। वाक्यरचना। उ०--बस इबारत हो चुकी मतलब प आया चाहिए।--कविता कौ०,भा० ४,पृ०००० ।

यौ०--**इबारत आराई** = आलंकारिक शैली।

इबारती--वि० [अ० **इबारत फ़ा० ई (प्रत्य०)**] जो इबारत में हो। इबारतसंबंधी।

यौ०--**इबारती सवाल** = वह हिसाब जिसमें राशीकृत अंकों के संबंध में कुछ पूछा जाय।

इब्तदा--संज्ञा स्त्री० [अ० **इब्तिदह्**] आरंभ। शुरूआत। उ०--सच य है इन्सान को यूरुप ने हलका कर दिया। इब्तदा डाढ़ी से की औ इंतहा में मूँछ ली।--कविता कौ०, भा० ४, पृ०६२४।

इब्तदाई--वि० [अ० **इब्तिदह्** + **फ़ा० ई (प्रत्य०)**] आरंभिक।

इब्तिदा--संज्ञा स्त्री० [अ० **इब्तिदह्**] १. आरंभ। आदि। शुरू। उ०--इब्तिदा ही में मर गए सब यार। इश्क की कौन इंतहा लाया।--कविता कौ०, भा० ४, पृ० १३३। २. जन्म। पैदाइस। ३. निकास। उठान।

इब्न--संज्ञा पुं० [अ०] पुत्र। बेटा। लड़का। उ०--थे फरजंद दो उमर इब्न खत्ताब।--दक्खिनी०, पृ० ३५७।

इब्राहीम--संज्ञा पुं० [अ०] दे० 'बराहीम'।

इब्राहीमी--संज्ञा पुं० [अ०] एक सिक्का जो इब्राहीम लोदी के वक्त में जारी हुआ था।

इभ[1]--संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० **अभी या इभ्या**] हाथी। उ०--राधे तेरे रूप की अधिकाइ। इभ टूटत अरु अरुन पंगु भए बिधना आन बनाइ।--सूर०, १०। २७७६।

इभ[2]--क्रि० वि० [सं० **इव**] इस प्रकार। ऐसे (डिं०)।

यौ०--**इभ आनन**, **इभानन** = गणेश। **इभकेशर** = नागकेशर। **इभगंधा** = विषैले फलवाला एक पौधा। **इभदंता** = एक प्रकार का पौधा। **इभपोटा** = अल्पवयस्का हथिनी। **इभपोत** = कम वय का हाथी। **इभभर**--हाथियों का झुंड। **इभयुवति** = मादा हाथी। हथिनी।

इभकणा--संज्ञा स्त्री० [सं०] गजपिप्पली। गजपीपल।

इभकुंभ--संज्ञा पुं० [सं० **इभकुम्भ**] हाथी का मस्तक।

इभानमीलिका--संज्ञा स्त्री० [सं०]१. विदग्धता। चातुर्य। बुद्धिमत्ता। २. भाँग [को०]।

इभपालक--संज्ञा पुं० [सं०] १. महावत। २. हाथी रखनेवाला व्यक्ति [को०]।

इभमाचल--संज्ञा पुं० [सं०] सिंह [को०]।

इभया--संज्ञा पुं० [सं०] स्वर्णक्षीरी का वृक्ष [को०]।

इभाख्य--संज्ञा पुं० [सं०] नागकेशर का पौधा [को०]।

इभी--संज्ञा स्त्री० [सं०] हथिनी [को०]।

इभोषणा--संज्ञा स्त्री० [सं०] गजपिप्पली का पौधा [को०]।

इभ्य[1]--वि० [सं०] १. जिसके पास हाथी हो। २. धनवान्। धनी।

यौ०--**इभ्यपुत्र** = धनीपुत्र। रईसजादा।

इभ्य[2]--संज्ञा पुं० १. राजा। २. हाथीवान। महावत। ३. शत्रु।

इभ्यक--वि० [सं०] संपत्तिशाली। धनी [को०]।

इभ्या--संज्ञा स्त्री० [सं०] १. हथिनी। सलई का पेड़।

इम(पु)--क्रि० वि० [हिं०] दे० 'इमि'। उ०--(क) निधरक भई कहति इम लहिए। सा परिकिया लच्छिता कहिए।--नंददास ग्रं०, पृ० १४६। (ख) करत मंगलाचार इम नाशत विघ्न अनंत।--सुंदर० ग्रं०, भा० १, पृ० ४।

इमकान--संज्ञा पुं० [अ० **इम्कान**] १. संभावना। २. ताकत। मकदूर। बस। काबू। जैसे,--हमने अपने इमकान भर कोशिश कर दी।

इमकानात--संज्ञा पुं० [अ० **इम्कान** का **बहु०** व०] संभावनाएँ। उ०--मेरे दिमाग के उड़ने के ज्यादा इमकानात हैं।--दक्खिनी०, पृ० ४६१। ताकत। शक्ति (को०)।

इमकानी--वि० [अ० **इम्कानी**] संभावित [को०]।

इमकोस--संज्ञा पुं० [सं० **कोश**] तलवार का म्यान।--(डिं०)।

इमचार--संज्ञा पुं० [सं० **चर १**] गुप्तचर। गुप्त दूत।--(डिं०)।

इमदाद--संज्ञा स्त्री० [अ० **मदद का बहु व०**] मदद। सहायता। उ०--दाग कोताही न कर यह वक्त है इमदाद का--शेर०, भा० १, पृ० ६६६।

इमदादी--वि० [अ० **इमदाद**] १. मदद पानेवाला। जैसे,--इमदादी मदरसा = वह मदरसा जिसे सरकार से कुछ द्रव्य की सहायता मिलती हो। २.इमदाद या सहायता के रूप में प्राप्त होनेवाला।

इमन--संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'ईमन'। उ०--मीड़ मधुरतम विधुर इमन की।--गीतगुंज, पृ० ६२।

इमरती--संज्ञा स्त्री० [सं० **अमृत**] एक मिठाई।

विशेष--उर्द की फेटी हुई महीन पीठी और चौरेठे को तीन चार तह कपड़े में, जिसके बीच एक छोटा सा छेद रहता है, रखकर खौलते हुए घी की तई में घुमा घुमाकर टपकाते हैं, जिससे कंगन के आकार की बत्तियाँ बनती जाती हैं। घी में तल लेने पर इनको चीनी के शीरे में डुबाते हैं।

इमरतीदार--वि० [हिं० इमरती + फा० दार (प्रत्य०)] जिसमें इमरती की भाँति गोल गोल घेरे या बल पड़े हों। जैसे,--इमरतीदार कंगन।

इमरितⓅ--संज्ञा पुं० [सं० अमृत दे० 'अमृत']। उ०--लड़िका वाका महा हरामी इमरित में विष घोरै।--पलटू०, भा० ३,पृ०५४।

इमला--संज्ञा पुं० [अ० इमलाह्] १. वर्तनी। शुद्ध लिखावट। २. बताई हुई इबारत को सही लिखना [को०]।

यौ०--**इमलानवीस** = वर्तनी के अनुसार या शुद्ध लिखनेवाला।

इमलाक--संज्ञा स्त्री० [अ० मुल्क का बहु० व०] संपत्ति। जायदाद [को०]।

इमली--संज्ञा स्त्री० [सं० अम्ल + हिं० ई (प्रत्य०)] १. एक बड़ा पेड़ जिसकी पत्तियाँ बहुत छोटी छोटी होती हैं और सदा हरी रहती हैं। इसमें लंबी लंबी फलियाँ लगती हैं जिनके ऊपर पतला पर कड़ा छिलका होता है। छिलके के भीतर खट्टा गूदा होता है जो पकने पर लाल और कुछ मीठा हो जाता है। २. इस पेड़ की फली।

मुहा०--**इमली घोंटना** = विवाह के समय लड़के या लड़की का मामा उसको आम्रपल्लव दाँत से खोंटाता है और यथाशक्ति कुछ दक्षिणा भी बाँटता है। इसी रीति को 'इमली घोंटना' कहते हैं।

इमसाक--संज्ञा पुं० [अ० इम्साक] १. रुकावट। २. आकर्षण। खिंचाव। ३. कंजूसी [को०]।

इमसाल--संज्ञा पुं० [फा० इम्साल] इस वर्ष [को०]।

इमाम--संज्ञा पुं० [अ०] [वि० इमामी] १. अगुआ। २. पुरोहित। मुसलमानों के धार्मिक कृत्य करानेवाला मनुष्य। ३. अली के बेटों की उपाधि। ४. मुसलमानों की तसबीह या माला का सुमेर।

इमामजिस्ता--संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'इमामदस्ता'। उ०--यह तन कीजै इमामजिस्ता खमीर सबै करि डारिया रे।-सं० दरिया०, पृ० ६६।

इमामत--संज्ञा स्त्री० [अ०] इमाम का पद। पेशवाई [को०]।

इमामदस्ता-संज्ञा पुं० [फ़ा० हावन + दस्तह्] एक प्रकार का लोहे या पीतल का खल बट्टा।

इमामा--संज्ञा पुं० [अ० अम्मामह्] एक प्रकार की बड़ी पगड़ी। अमामा।

इमामबाड़ा--संज्ञा पुं० [अ० इमाम + फ़ा० बारह, हिं० बाड़ा] वह हाता जिसमें शीया लोग ताजिया रखते और उसे दफन करते हैं।

इमारत--संज्ञा स्त्री० [अ०] १. बड़ा और पक्का मकान। २. वैभव। शानशौकत। उ०--आप में हिंदोस्तानी इमारत पूरे तौर पर मौजूद है।--प्रेमघन०, भा० २, पृ० ६१।

इमारती--वि० [फ़ा०] मकान का। मकान से संबंधित। जैसे,--इमारती सामान।

इमिⓅ-क्रि० वि० [सं० एवम्] इस प्रकार। इस तरह। ऐसे। उ०--होहिं प्रेम बस लोग इमि राम जहाँ जहँ जाहिं।--मानस, २।१२१।

इमोशन--संज्ञा पुं० [अं०] १. संवेग (मनोवै०)। २. भाव। मनोविकार। उ०--अँगरेजी में भाव को इमोशन और फारसी में जजबा कहते हैं।--रस क०, पृ० ३६।

इम्तहान--संज्ञा पुं० [अ०] परीक्षा। जाँच। 'इम्तिहान'। उ०--साफ कब इम्तहान लेते हैं। वह तो दम दे के जान लेते हैं।--शेर०, भा० १, पृ० ६७२।

इम्तिनाई--वि० [अ०] रोक लगानेवाला [को०]।

इम्तिनाय--संज्ञा पुं० [अ०] निषेध। रोग मनाही [को०]।

इम्तियाज--संज्ञा पुं० [अ० इम्तियाज़] १. भेद। अंतर। २. विवेक। गुण दोष की पहचान। उ०--देख इकबार चश्म अपना करके बाज। गर तुजे किस बात का है इम्तियाज।--दक्खिनी०, पृ० २०४।

इम्तिहान--संज्ञा पुं० [अ०] १. दे० 'इम्तहान'। २. परख (को०)।

इम्पीरियल--वि० [अं०] साम्राज्य या सम्राट् संबंधी। राजकीय। शाही। जैसे,--इम्पीरियल सर्विस = राजकीय नौकरी।

इम्पीरियलगवर्नमेंट--संज्ञा स्त्री० [अ०] साम्राज्य सरकार। बड़ी सरकार। जैसे,--भारत में अंग्रेजी सरकार को भी इंपीरियल गवर्नमेंट अर्थात् बड़ी सरकार कहते थे।

इम्पीरियलप्रेफरेन्स-संज्ञा पुं०[अ० इम्पीरिल प्रेफरेंस] साम्राज्य की वस्तुओं पर उसके अधीनस्थ देश में इस प्रकार आयात निर्यातकर बैठाने की नीति जिससे वह दूसरे देशों के मुकाबले में सस्ता माल बेच सके। साम्राज्य की बनी वस्तुओं को प्रशस्तता देना।

इम्पीरियल सर्विस ट्रूप्स-संज्ञा स्त्री० [अं०] अंग्रेजी शासनकाल में वह सेना जो भारत के देशी रजवाड़े भारत सरकार के सहायतार्थ अपने यहाँ रखते थे और जिसकी देखभाल ब्रिटिश अफसर करते थे। आपत्काल में सरकार इस सेना से काम लेती थी।

इम्पोर्ट--संज्ञा पुं० [अं०] पुं० 'आयात'। जैसे,--इम्पोर्ट ड्यूटी = आयातकर।

इम्रितⓅ--संज्ञा पुं० [सं० अमृत] दे० 'अमृत'।

इयत्--वि० [सं०] इतने विस्तारवाला। इतना बड़ा [को०]।

इयत्ता--संज्ञा स्त्री० [सं०] सीमा। हद। परिमिति। उ०--तूने अपने ज्ञान की इयत्ता का खूब अच्छा प्रमाण दिया।--कालिदास, पृ० ६७।

इयारⓅ†--संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'यार'। उ०--जग में जीवन थोरा थोरा वो इयार जी।--सं० दरिया, पृ० १६८।

इरखाⓅ†--संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'ईर्षा'। उ०--सौतिन्ह कर इरखा नहिं करना। साईं संग सदा जिय डरना।--चित्रा०, पृ० २२४।

इरखानाⓅ--क्रि० अ० [सं० ईर्ष्या] ईर्ष्या करना। डाह करना। उ०--उनीदति अलसाति सोवत सधीर चौंकि चाहि चित अमित सगर्ब इरखाति है।--भिखारी० ग्रं०, भा० १, पृ० १४१।

इरण--संज्ञा पुं० [सं०] मरुभूमि। मरुस्थल [को०]।

इरम्मद[१]--वि० [सं०] १. पीने में रुचि रखनेवाला। २. अग्नि का विशेषण [को०]।

इरम्मद[२]--संज्ञा पुं० १. मेघज्योति। विद्युत। २. वडवाग्नि [को०]।

इरशाद--संज्ञा पुं० [अ० इर्शाद] दे० 'इर्शाद'। उ०--देखते ही मुझे महफिल

में यह इरशाद हुआ, कौन बैठा है उसे लोग उठाते भी नहीं।--शेर०, भा० १, पृ० ६७७ ।

इरषा⑮—संज्ञा स्त्री० [सं० **ईर्ष्या**] दे० 'ईर्ष्या' । उ०—इंद्र देखि इरषा मन लायौ । करि कै क्रोध न जल बरसायौ ।--सूर०,५ २।

इरषित⑮ – वि० [सं० **ईर्षित**] दे० 'ईर्षित' ।

इरसाल—संज्ञा पुं० [**अ० इर्साल**] १. प्रेषण । २. उपहार । भेंट ।

इरसी--संज्ञा स्त्री० [**देश०**] पहिए की धुरी ।

इरा--संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कश्यप की वह स्त्री जिससे बृहस्पति या उद्भिज उत्पन्न हुए । २. भूमि । पृथ्वी । ३. वाणी । वाचा। ४. जल । ५. अन्न । ६. मदिरा । शराब ।

यौ०—**इराक्षीर**=क्षीरसागर । **इराचर**= (१) ओला । करक । (२) जलचर । (३) भूमि से उत्पन्न ।

इराज--संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव [को०]।

इराक--संज्ञा पुं० [अ०] पश्चिम एशिया का एक देश ।

इराकी[1]--वि० [अ०] इराक देश का ।

इराकी[2]—संज्ञा पुं० १. घोड़ों की एक जाति । उ०—सुमंडे घुमडे उमंडे इराकी ।--पद्माकर ग्रं०, पृ० २८० । २. इराक देश का निवासी ।

इरादतन--अ० [अ०] इरादा करके । विचारपूर्वक । जानबूझकर [को०] ।

इरादा--संज्ञा पुं० [**अ० इरादह्**] विचार । संकल्प । उ०-बदली जो उनकी आँखें, इरादा बदल गया ।--बेला, पृ०, ८३ ।

इरावत[1]--संज्ञा पुं० [सं०] १. एक पर्वत का नाम। २. एक सर्प का नाम । ३. अर्जुन का एक पुत्र जो नागकन्या उलूपी से उत्पन्न हुआ था । इसका नाम बभ्रुवाहन था। ४. समुद्र। ५. मेघ।

इरावत्[2]--वि० तृप्तिदायक । सुखद [को०] ।

इरावती—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कश्यप ऋषि की भद्रमदा नाम की पत्नी से उत्पन्न कन्या, जिसका पुत्र ऐरावत नामक महागज हुआ। २. ब्रह्म देश की एक नदी। ३. पटपत्री। पथरचट।

इरिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का पौधा [को०]।

इरिण—संज्ञा **स्त्री०** [सं०]ऊसर। ईरिण [को०] ।

इरिमेद--संज्ञा पुं० [सं०] अरिमेदे । विट्खदिर [को०] ।

इरिविल्ला, इरिवेल्लिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] संनिपात से उत्पन्न सिर की फुंसी ।

इरिषा⑮—संज्ञा स्त्री० [हिं०] **दे०** 'ईर्ष्या' । उ०—जहँ प्रीतम को करत है कपट अनादर बाल। कछु इरिषा कछु मद लिए सो बिब्बोक रसाल ।--भिखारी० ग्रं०, भा० १, पृ० १४८।

इरेश--संज्ञा पुं० [सं०] १. विष्णु। २. गणेश । ३. वरुण । ४. ब्राह्मण । ५. सम्राट् [को०] ।

इर्गइ—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० **इर्गला**] दे० 'अर्गल' ।

इर्तकाब—संज्ञा पुं० [**अ० इर्तिकाब**] १. पाप करना । २. कोई अपराध करना ।

यौ०—**इर्तकाबेजुर्म**=अपराध करना ।

इर्द गिर्द--क्रि० वि० [**अनु० इर्द+फा० गिर्द**] १. चारो ओर । चारो तरफ । २. आसपास । इधर उधर । अगल बगल ।

इर्वारु, इर्वालु[1]—वि० [सं०] हिंसक [को०] ।

इर्वारु, इर्वालु[2]--संज्ञा पुं० एक प्रकार की ककड़ी [को०]।

यौ० —**इर्वारुशक्तिका**=एक प्रकार का खरबूजा ।

इर्वारुक--संज्ञा पुं० [सं०] माँद के अंतर्गत रहनेवाला जानवर [को०] ।

इर्शाद--संज्ञा पुं० [अ०] १. आज्ञा । हुक्म । उ०-यूँ आँख उनकी करके इशारा पलट गई । गोया कि लब से होके कुछ इर्शाद रह गया ।-कविता कौ०, भा० ४, पृ०, ५४८ । २. पथप्रदर्शन ।

इर्षना⑮--संज्ञा स्त्री० [सं० **एषणा**] प्रबल इच्छा । उ०—छूटी त्रिविध इर्षना गाढ़ी । एक लालसा उर अति बाढ़ी ।--तुलसी (शब्द०) ।

इल[1]-संज्ञा पुं०[सं०] कर्दम प्रजापति के एक पुत्र का नाम जो वाह्लीक देश का राजा था ।

इल[2]—संज्ञा स्त्री० [सं० **इला**] पृथिवी । धरती । उ०--राक्षस हनि दाढ़े इल गह काढ़े सो थिर माड़े निज खेतम् ।—राम० धर्म०, पृ० १७६ ।

इलजाम—संज्ञा पुं० [**अ० इल्ज़ाम**] १. दोष । कलंक । अपराध । उ०--मैं इलजाम उनको देता था क़ुसूर अपना निकल आया ।--शेर०, भा० १, पृ० ४७७ । २. अभियोग । दोषारोपण । उ०—चुप रहेंगे हया से वे कब तक, गुस्सा इलजाम से तो आएगा ।-- शेर०, भा० १, पृ० ६६० ।

क्रि० प्र०—**लगाना**।—**देना** ।

इलता—संज्ञा पुं० [**देश०**] मझोले आकार का एक प्रकार का बाँस जो दक्षिण भारत के मैदानों और पहाड़ों में होता है। इसमें बहुत बड़े बड़े फूल और फल लगते हैं । इसके छोटे छोटे कल्लों से बहुत अच्छा कागज बनता है ।

इलम⑮—संज्ञा पुं० [अ० **इल्म**] **दे०** 'इल्म' । उ०—दादू अलिफ एक अल्ला का जे पढ़ि जाणै कोई। कुरान कतेबाँ इलम सब पढ़ि करि पूरा होई ।--दादू०, पृ० ४७ ।

इलमास--संज्ञा पुं० [अ०] १. हीरा । २. शीशा [को०] ।

इलय--वि० [सं०] गतिविहीन [को०] ।

इलव-संज्ञा पुं० [सं०] १. हलवाहा । २. गरीब आदमी । ३. किसान । कर्षक ।

इलविला—संज्ञा **स्त्री०** [सं०] १. विश्रवा की स्त्री, तृणविंदु की कन्या और कुबेर की माता का नाम । २. पुलस्त्य की स्त्री ।

इलहाक--संज्ञा पुं० [**अ० इल्हाक़**] १. संबंध । मिलना। संयोजन । २. किसी वस्तु को किसी दूसरी वस्तु के साथ मिला देने का कार्य ।

इलहाकदार—संज्ञा पुं० [**अ० इल्हाक़+फा० दार**] वह मनुष्य जिसके साथ बंदोबस्त के वक्त मालगुजारी अदा करने का इकरारनामा हो । नंबरदार या लंबरदार ।

इलहाम—संज्ञा पुं० [**अ० इल्हाम**] ईश्वर का शब्द । देववाणी । ईश्वरीय प्रेरणा । आत्मा की आवाज । आत्मिक दृष्टि ।

इलहामी-वि० [**अ० इल्हामी**] जिसको इलहाम हुआ हो । ईश्वर द्वारा प्रेरित । अंतरात्मा में स्फुरित ज्ञान से संबद्ध । [को०] ।

यौ०— **इलहामी किताब**=ईश्वरीय प्रेरणा से रचित पुस्तक । धर्मग्रंथ ।

इला—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] १. पृथ्वी। २. पार्वती। ३. सरस्वती। वाणी। ४. बुद्धिमती स्त्री। ५. गौ। धेनु। ६. वैवस्वत मनु की कन्या जो बुध को ब्याही थी और जिससे पुरूरवा उत्पन्न हुआ था। इड़ा। ७. राजा इक्ष्वाकु की एक कन्या का नाम। ८. कर्दम प्रजापति का एक पुत्र जो पार्वती के शाप से स्त्री हो गया था। ९. एक की संख्या।

इलाका—संज्ञा पुं॰ [अ॰ इलाकह्] १. संबंध। लगाव। उ॰—कैधौं कछू राखै राकापति सों इलाका भारी भूमि की सलाका कै पताका पुन्यगान की।—पद्माकर ग्रं॰, पृ॰ २६२। २. एक से अधिक मौजे की जमींदारी। राज्य। रियासत। उ॰—यह दानपत्र युधिष्ठिर के संवत् १११ का है जो···इलाका मैसूर में मिला है।—भारतेंदु ग्रं॰, भा॰ ३, पृ॰ १३५।

यौ॰—इलाकेदार।

इलाचा—संज्ञा पुं॰ [देश॰] एक कपड़ा जो रेशम और सूत मिलाकर बुना जाता है।

इलाज—संज्ञा पुं॰ [अ॰] १. दवा। औषध। २. चिकित्सा। ३. निवारण का उपाय, युक्ति या तदबीर। उ॰—उदर भरन के कारनै प्रानी करत इलाज।—स॰ सप्तक, पृ॰ ३३०।

इलादा (पु)—वि॰ [हिं॰] दे॰ 'अलहदा'। उ॰—शब्द पढ़ क्या सुनाता है भेद सबसे इलादा है। संत तुलसी॰, पृ॰ ३६।

इलापत्र—संज्ञा पुं॰ [सं॰] एक नाग का नाम।

इलाम (पु)—संज्ञा पुं॰ [अ॰ ऐलान] १. इत्तलानामा। २. हुक्म। आज्ञा। उ॰—ठान्यो न सलाम, मान्यो साहि को इलाम, धूमधाम कै न मान्यो रामसिंह हू को बरजा।—भूषण ग्रं॰, पृ॰ ५८।

इलायची—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ एला+ची, फ़ा॰ 'च' (प्रत्य॰)] एक सदाबहार पेड़ जिसकी शाखाएँ खड़ी और चार से आठ फुट तक ऊँची होती हैं। यह दक्षिण में कनारा, मैसूर, कुर्ग तिरुवांकुर और मदुरा आदि स्थानों के पहाड़ो जंगलों में आप से आप होता है। यह दक्षिण में लगाया भी बहुत जाता है।

विशेष—इलायची के दो भेद होते हैं, सफेद (छोटी) और काली (बड़ी)। सफेद इलायची दक्षिण में होती है और काली इलायची या बड़ी इलायची नेपाल में होती है, जिसे बँगला इलायची भी कहते हैं। बड़ो इलायची तरकारी आदि तथा नमकीन भोजनों के मसालों में दी जाती है। छोटी इलायची मीठी चीजों में पड़ती है और पान के साथ खाई जाती है। सफेद या छोटी इलायची के भी दो भेद होते हैं—मलाबार की छोटी और मैसूर की बड़ी। मलाबारी इलायची की पत्तियाँ मैसूर इलायची से छोटी होती हैं और उनकी दूसरी ओर सफेद सफेद बारीक रोईं होती है। इसका फल गोलाई लिये होता है। मैसूर इलायची की पत्तियाँ मलाबारी से बड़ी होती हैं और उनमें रोईं नहीं होती। इसके लिये तर और छायादार जमीन चाहिए, जहाँ से पानी बहुत दूर न हो। यह कुहरा और समुद्र की ठंढी हवा पाकर खूब बढ़ती है। इसे धूप और पानी दोनों से बचाना पड़ता है। क्वार कार्तिक में यह बोई जाती है, अर्थात् इसकी बेहन डाली जाती है। १७-१८ महीने में जब पौधे चार फुट के हो जाते हैं, तब उन्हें खोदकर सुपारी के पेड़ों के नीचे लगा देते हैं और पत्ती की खाद देते रहते हैं। लगाने के एक ही वर्ष के भीतर यह चैत बैसाख में फूलने लगता है और असाढ़ सावन तक इसमें ढोंढ़ी लगती है। क्वार कातिक में फल तैयार हो जाता है और इसके गुच्छे या घौद तोड़ लिए जाते हैं और दो तीन दिन सुखाकर फलों को मलकर अलग कर लेते हैं। एक पेड़ में पाव भर लगभग इलायची निकलती है। इसका पेड़ १० या १२ वर्ष तक रहता है। कुर्ग से इलायची गुजरात होकर और प्रांतों में जाती थी, इसी से इसे गुजराती इलायची भी कहते हैं।

यौ॰—इलायची डोरा = इलायची की ढोंढ़ी।

इलायचीदाना—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ इलायची+फ़ा॰ दाना] १. इलायची का बीया या दाना। २. एक प्रकार का मिठाई। चीनी पागा हुआ इलायची या पोस्ते का दाना।

इलायचो पंडू†—संज्ञा पुं॰ [देश॰] एक प्रकार का जंगली फल।

इलावर्त (पु)—संज्ञा पुं॰ [सं॰] दे॰ 'इलावृत्त'।

इलावृत, इलावृत्त—संज्ञा पुं॰ [सं॰] जंबू द्वीप के नौ खंडो में से एक

विशेष—भागवत के अनुसार यह सुमेर पर्वत को घेरे हुए है। इसके उत्तर में नील, दक्षिण में निषध, पश्चिम में माल्यवान् और पूर्व में गंधमादन पर्वत है।

इलाही¹—संज्ञा पुं॰ [अ॰] ईश्वर। परमेश्वर। परमात्मा। भगवान् खुदा। उ॰—यह रंग कौन रंगे तेरे सिवा इलाही।—कविता कौ॰, भा॰ ४, पृ॰ ३१३।

इलाही²—वि॰ ईश्वरसंबंधी। ईश्वरीय। जैसे,—फजाए इलाही। उ॰—कौन को कलेऊ धौं करैया भयो काल अरु कापै धौं परैया भयो गजब इलाही है।—पद्माकर ग्रं॰, पृ॰ २२८।

इलाहीखर्च—संज्ञा पुं॰ [अ॰ इलाही+फ़ा॰ खर्च] फजूल खर्च। अधिक खर्च। बेहिसाब खर्च। अपव्यय।

इलाहीगज—संज्ञा पुं॰ [अ॰ इलाही+फ़ा॰ गज] अकबर का चलाया हुआ एक प्रकार का गज जो ४१ अंगुल (३३¾ इंच) का होता है और जो अब तक इमारत आदि नापने के काम में आता है।

इलाहीमुहर¹—वि॰[अ॰ इलाही+फ़ा॰ मुँह] ज्यों का त्यों। अछूता। खालिस।

इलाहीमुहर²—संज्ञा स्त्री॰ अमानत। धरोहर। न्यास।

इलाहीरात—संज्ञा स्त्री॰ [अ॰] रतजगे की रात।

इलाहीसन्—संज्ञा पुं॰ [अ॰ इलाही+हिं॰ रात] अकबर बादशाह का चलाया एक सन् या संवत्।

इलिका—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] पृथ्वी [को॰]।

इली—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] छोटी तलवार। कटार [को॰]।

इलीश, इलीष—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] हिलसा मछली।

इलेक्ट्रिक—वि॰ [अं॰] बिजली संबंधी। बिजली का।

यौ॰—इलेक्ट्रिक पावर = बिजली की शक्ति। इलेक्ट्रिक लाइट = बिजली की रोशनी।

इलेक्ट्रिकल—वि॰ [अं॰] बिजली संबंधी [को॰]।

इलेक्ट्रीसिटी—संज्ञा स्त्री॰ [अं॰] बिजली। विद्युत् [को॰]।

इलेक्ट्रो¹—संज्ञा पुं॰ [अं॰] बिजली द्वारा तैयार किया हुआ। इलेक्ट्रिक का। जैसे,—इलेक्ट्रो टाइप; इलेक्ट्रो प्रेस।

इलेक्ट्रो[२]—संज्ञा पुं० तसवीर आदि का वह ठप्पा या ब्लाक जो बिजली की सहायता से तैयार किया गया हो।

यौ०—**इलेक्ट्रो टाइप** = बिजली द्वारा किया जानेवाला अंकन या खुदाई का कार्य। **इलेक्ट्रोपेथी** = बिजली के तरंगसंचार द्वारा किसी रोग की चिकित्सा करने की प्रक्रिया।

इलेक्ट्रोन—संज्ञा पुं० [अं०] परमाणु (ऐटम) का अवयव जो उसके नाभिक (न्यूक्लियस) का चक्कर लगाता रहता है और जिसमें विद्युत् का ऋणावेश होता है।

इल्जाम—संज्ञा पुं० [अ० **इल्जाम**] आरोप। दोषारोपण। उ०—इल्जाम यह रखा है खिलवत में कहा होता।—शेर०, भा० १, पृ० ६६५।

क्रि० प्र०—देना।—लगाना।

इल्तजा—संज्ञा स्त्री० [अ० **इल्तिजह्**] दे० 'इल्तिजा'। उ०—कहीं वह आके मिटा दें न इन्तजार का लुत्फ। कहीं कबूल न हो जाय इलतजा मेरी।—शेर०, भा० १, पृ० ५४५।

इल्तमास—संज्ञा स्त्री० [अ० **इल्तिमास**] अनुरोध। प्रार्थना। उ०—(क) सुबह तक शमा सर को धुनती रही। क्या पतंगे ने इलतमास किया।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० १७२। (ख) मेरी आप से यही इल्तमास है कि आप उसकी वजारत कबूल करें।—मान०, भा० १, पृ० १८७।

इल्तिजा—संज्ञा स्त्री० [अ० **इल्तिजह्**] १. निवेदन। प्रार्थना। २. मिन्नत। खुशामद।

क्रि० प्र०—करना।

इल्तिफात—संज्ञा स्त्री० [अ० **इल्तिफ़ात**] १. कृपा। दया। २. ध्यान देना [को०]।

इल्तिबास—संज्ञा पुं० [अ०] समानता। सादृश्य [को०]।

इल्तिवा—संज्ञा पुं० [अ०] [वि० **मुल्तवी**] किसी कार्य के लिये स्थिर समय का टल जाना। तारीख टलना।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग अदालती कारंवाइयों में अधिक होता है।

इल्म—संज्ञा पुं० [अ०] [वि० **इल्मी**] विद्या। ज्ञान। जानकारी। उ०—इल्म और दौलत जहाँ से मिले हासिल करनी चाहिए।—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० १२४।

यौ०—**इल्मेअदब** = साहित्यशास्त्र। **इल्मेइलाही** = ब्रह्मविद्या, अध्यात्म। **इल्मेगैब** = परोक्षविज्ञान। **इल्मेनुजूम** = ज्योतिष विज्ञान।

इल्लत—संज्ञा स्त्री० [अ०] १. रोग। बीमारी। २. बाधा। झंझट। जैसे,—बुरी इल्लत पीछे लगी। ३. लत। व्यसन। उ०—पापों के बढ़ते दिल टूटें इल्लत की सहज लतें छूटें।—बेला, पृ० ७६। ४. दोष। अपराध। जैसे,—वह किस इल्लत में गिरफ्तार हुआ था।

मुहा०—**इल्लत पालना** = बुरी आदत डाल लेना।

यौ०—**इल्लत आफताब** = कमल रोग। **इल्लत फाइली** = निमित्त कारण। **इल्लत माही** = उपादान कारण।

इल्लल—संज्ञा पुं० [सं०] एक पक्षी [को०]।

इल्ला[१]—संज्ञा पुं० [सं० **कील**] छोटी कड़ी फुंसी जो चमड़े के ऊपर निकलती है। यह मसे के समान होती है।

इल्ला[२]—अव्य० [अ० **इल्लह्**] किंतु। लेकिन। पर। उ०—इल्ला, अब जब कि हम दोनों एक तीसरे की रिआया हैं...। प्रेमघन०, भा० २, पृ० ८६।

इल्लिश, इल्लिस—संज्ञा पुं० [सं०] इलीश। हिलसा मछली [को०]।

इल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं० **इल्लिका**] चींटी आदि के बच्चों का वह पहला रूप जो अंडे से निकलने के उपरांत तुरंत होता है।

इल्वल—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक दैत्य या असुर का नाम।

विशेष—इसका एक नाम आतापि भी था। यह अपने छोटे भाई वातापि को भेड़ा बनाकर ब्राह्मणों को खिला देता और फिर उसका नाम लेकर बुलाता था। तब वह ब्राह्मण का पेट फाड़कर निकल आता था। इन दोनों को अगस्त्य मुनि खाकर पचा गए थे।

२. ईल या बाम मछली।

इल्वला—संज्ञा पुं० [सं०] मृगशिरा नक्षत्र के सिर पर रहनेवाले पाँच तारों का समूह।

इव—अव्य० [सं०] उपमावाचक शब्द। समान। नाईं। तरह। सदृश। तुल्य। जैसे। उ०—निज अघ समुझि न कछु कहि जाई। तपै अवा इव उर अधिकाई।—मानस, १। ५८।

इवापोरेशन—संज्ञा पुं० [अं० **इवैपोरेशन**] गरमी पाकर किसी पदार्थ का भाप के रूप में परिवर्तित होना। भाप बनकर उड़ना। बाष्पन। बाष्पीभवन। बाष्पीकरण। उच्छोषण।

इशरत—संज्ञा स्त्री० [अ०] सुख। चैन। आराम। भोग विलास। उ०—फिर वह चर्चे हों फिर वही बातें। दिन हों इशरत के, ऐश की रातें।—शेर०, भा० १ पृ० ३७७।

यौ०—**ऐश व इशरत**।

इशरती—वि० [अ० **इशरत** + ई (प्रत्य०)] आरामतलब। बिलासी। उ०—इशरती घर की मुहब्बत का मजा भूल गए।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ६३३।

इशा—संज्ञा स्त्री० [अ०] १. संध्या। २. रात। ३. रात की नमाज [को०]।

इशारत—संज्ञा स्त्री० [अ०] इशारा। संकेत। उ०—न मुझसे बोला न की इशारत न दी तसल्ली न कुछ सँभाला।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ३२५।

इशारा—संज्ञा पुं० [अ० **इशारह्**] १. सैन। संकेत। चेष्टा। उ०—यूँ आँख उनकी करके इशारा पलट गई। गोया कि लब से होके कुछ इर्शाद रह गया।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ५४८। २. संक्षिप्त कथन। उ०—जो इशारे में काम हो सकता तो मुझको इतने बढ़ाकर कहने से क्या लाभ।—श्रीनिवास ग्रं०, पृ० २७२। ३. बारीक सहारा। सूक्ष्म आधार। जैसे,—एक लकड़ी के इशारे पर यह संदूक ऊपर टिका है। ४. गुप्त प्रेरणा। जैसे,—इन्हीं के इशारे से उसने यह काम किया।

यौ०—**इशारेबाजी** = इशारा करना।

इशारात—संज्ञा पुं० इशारा का बहुवचन दे० 'इशारा'। उ०—क्या बात कोई उस बुते ऐयार की समझे। बोले है जो हमसे तो इशारात कहीं और।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० २२३।

इशिका, इशीका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'इषीका'।

इश्क—संज्ञा पुं० [अ० **इश्क़**] [वि० **आशिक, माशूक**] मुहब्बत। चाह।

प्रेम। लगन। अनुराग। आसक्ति। उ०--गम बहुत दुनिया में है पर इश्क का गम और है। है इसी आलम में लेकिन उनका आलम और है।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० २२८।

यौ०— इश्कमजाजी = लौकिक प्रेम। वासनायुक्त प्रेम। इश्कहकीकी = आध्यात्मिक प्रेम। ईश्वर के प्रति प्रेम।

इश्कबाज—वि० [फ़ा० इश्क़बाज़] इश्क करनेवाला। प्रेमी। [कौ०]।

इश्कबाजी--संज्ञा स्त्री० [अ० इश्क़+फ़ा० बाज़ी] प्रेम के चक्कर में पड़ना। उ०--इश्कबाजी बाजिए शतरंज है। चाल नादाँ रह गया दाना चला।--कविता कौ०, भा० ४, पृ० ५१४।

इश्कपेचाँ---संज्ञा पुं० [अ०] एक प्रकार की बेल जिसकी पत्तियाँ सूत की तरह बारीक होती हैं और जिसमें लाल फूल लगते हैं। उ०---(क) दरख्तों को सुखाता है लपटना इश्कपेचाँ का।---कविता कौ०,भा० ४,पृ० ३६४। (ख) अंत में जब वो इश्कपेचे की बेल पर जाकर बैठा तब मुझे उसके पकड़ने का समय मिला।--श्रीनिवास ग्रं०, पृ० ३९२।

इश्किया----वि० [अ० इश्क़ियह्] प्रेमसंबंधी। शृंगारिक।

इश्तहार---संज्ञा पुं० [अ०] विज्ञापन। नोटिश। जाहिरात। एलान। उ०--- शहरों शहरों मुल्कों मुल्कों में उन्हीं का इश्तहार।---कविता कौ०, भा० ४, पृ० १४१।

इश्तहारी---वि० [अ०] विज्ञापित। जिसके लिये नोटिस या सूचना निकाली गई हो [कौ०]।

इश्तियाक---संज्ञा पुं० [अ० इश्तियाक़] १. शौक। २. इच्छा। अभिलाषा [कौ०]।

इश्तियाल---संज्ञा पुं० [अ०] १. दे० 'इश्तियालक'। २. भड़काना। उत्तेजित करना। ३. लौ। लपट [कौ०]।

इश्तियालक---संज्ञा स्त्री० [अ०] १. वह सींक जो बत्ती बढ़ाने के लिये दीपक में पड़ी रहती है। टहलवी। २.बढ़ावा उत्तेजना। क्रि० प्र०---देना।

इश्तिराक---संज्ञा पुं० [अ०] शिकरत। साझेदारी [कौ०]।

इश्तिहा---संज्ञा स्त्री० [अ० इश्तिहह] १. चाह। अभिलाषा। २. बुभुक्षा। भूख [कौ०]।

इष---संज्ञा पुं० [सं०] १.क्वार का महीना। आश्विन। २. बलवान् व्यक्ति।

इषण, इषणा(५)---संज्ञा स्त्री०[सं० एषणा] प्रबल इच्छा। कामना। ख्वाहिश। वासना।

इषणि---संज्ञा स्त्री० [सं०] १. भेजना। २. अभिलाषा [कौ०]।

इषराया---संज्ञा स्त्री० [सं०] उत्कट अभिलाषा। प्रबल इच्छा [कौ०]।

इषना(५)---संज्ञा स्त्री० [सं० इषणा] दे० 'इषणा'।

इषव्य---वि० [सं०] बाणविद्या में निपुण [कौ०]।

इषित---वि० [सं०] १. चलाया हुआ। २. प्रेषित। ३. उत्तेजित। प्रेरित। ४. तीव्र। प्रचंड [कौ०]।

इषीका--संज्ञा स्त्री० [सं०] १. गाँडर या मूँज के बीच की सींक जिसके ऊपर जीरा या भूआ होता है। २.बाण। तीर। ३. हाथी की आँख का डेला।

इषु--संज्ञा पुं० [सं०] १. बाण। तीर। २. क्षेत्रगणित में वृत्त के अंतर्गत जीवा के मध्यबिंदु से परिधि तक खींची हुई सीधी रेखा। दे० 'शर'। ३. पाँच की संख्या।

इषुकार--संज्ञा पुं० [सं०] बाण बनाने का काम करनेवाला हो [कौ०]।

इषुधर--संज्ञा पुं० [सं०] बाण चलानेवाला व्यक्ति। धनुर्धर [कौ०]।

इषुधि--संज्ञा पुं० [सं०] तूण। तूणीर। तरकश।

इषुधी—संज्ञा पुं० [सं० इषुधि] दे० 'इषुधि'। उ०--नेकु जही दुचितो चित कीन्हों। शूर बड़ी इषुधी धनु दीन्हों।--केशव (शब्द०)।

इषध्या--संज्ञा स्त्री० [सं०] गिड़गिड़ाना। निवेदन करना [कौ०]।

इषुपथ--संज्ञा पुं० [सं०] बाण की मार। बाण की पहुँच [कौ०]।

इषुपुष्पा--संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का पौधा [कौ०]।

इषुमात्र-संज्ञा पुं० [सं०] धनुष के बराबर लंबा एक माप जो लगभग तीन फुट का होता है।

इषुमान[1]—वि० [सं० इषुमत < इषुमान्] बाण चलानेवाला। तीरंदाज। उ०—तब इषुमान प्रधान चलेउ इषुमान ज्ञानधर। देवश्रवा संतान समर पर सान मान हर।—गोपाल (शब्द०)।

इषुमान[2]—संज्ञा पुं० वसुदेव का भाई। देवश्रवा का पुत्र।

इषूपल—संज्ञा पुं० [सं०] किले के फाटक पर रखी जानेवाली एक प्रकार की तोप जिसमें कंकड़ पत्थर डालकर छोड़े जाते थे।

इष्ट[1]—वि० [सं०] १. अभिलषित। चाहा हुआ। वांछित। जैसे,--(क) परिश्रम से इष्ट फल की प्राप्ति होती है। (ख) हमें वहाँ जाना इष्ट नहीं है। २.अभिप्रेत। जैसे,—ग्रंथकार का इष्ट यह नहीं है। ३. पूजित। ४. अनुकूल। ५. प्रिय।

यौ०— इष्टदेव।

इष्ट[2]—संज्ञा पुं० १. अग्निहोत्रादि शुभ कर्म। इष्टापूर्त। धर्मकार्य। २. वह देवता जिसकी पूजा से कामना सिद्ध होती है। इष्टदेव। कुलदेव। ३. अधिकार। वश। जैसे,--उसको देवी का इष्ट है। ४. मित्र। दोस्त।

यौ०—इष्टमित्र।

५. पति। ६. रेंड का पेड़। ७. ईंट।

इष्टका--संज्ञा स्त्री० [सं०] १. ईंट। यज्ञकुंड बनाने की ईंट।

इष्टकाचित--वि० [सं०] ईंटों द्वारा निर्मित [कौ०]।

इष्टकाचिति—संज्ञा स्त्री० [सं०] ईंटों की पंक्तिबद्ध जोड़ाई। उ०—इस स्तूप की इष्टकाचिति अपने ढंग की अनूठी है। हिंदु० सभ्यता, पृ० ३०९।

इष्टकान्यास--संज्ञा पुं० [सं०] शिलान्यास। नींव रखना [कौ०]।

इष्टकापथ---संज्ञा पुं० [सं०] १. सुगंधित घास की जड़। २. ईंट द्वारा निर्मित मार्ग [कौ०]।

इष्टकाल---संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष में किसी घटना के घटित होने का ठीक समय।

इष्टगंध---संज्ञा पुं० [सं० इष्टगन्ध] १. सुगंधित वस्तु। २. सिकता। बालू [कौ०]।

इष्टजन---संज्ञा पुं० [सं०] प्रिय व्यक्ति [कौ०]।

इष्टता---संज्ञा स्त्री० [सं०] मित्रता। मिताई। दोस्ती।

इष्टदेव-संज्ञा पुं० [सं०] आराध्यदेव। पूज्यदेवता। वह देवता जिसकी पूजा से कामना सिद्ध होती हो। कुलदेवता। उ०-लहै बड़ाई देवता इष्टदेव जब होइ।—तुलसी ग्रं०, पृ० १२६।

इष्टदेवता—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'इष्टदेव'।

इष्टा—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रिया। प्रेमिका [को०]।

इष्टापत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] वादी के कथन में प्रतिवादी की दिखाई हुई ऐसी आपत्ति जो उक्त कथन में किसी प्रकार का व्याघात या अंतर न डाल सके और जिसे अनुकूल होने से वादी स्वीकार कर ले। जैसे, वादी ने कहा—जीव ब्रह्म है। प्रतिवादी ने कहा—तो ब्रह्म भी जगत की झूठी कल्पना करके झूठा हुआ। वादी—हाँ, इससे क्या हानि।

इष्टापूर्त—संज्ञा पुं० [सं०] अग्निहोत्र करना, कुआँ, तालाब खुदाना, बगीचा लगवाना आदि शुभ कर्म।

विशेष—वेद का पठनपाठन, अतिथिसत्कार और अग्निहोत्र इष्ट कहलाते हैं; और कुआँ, तालाब खुदाना, देवमंदिर बनवाना, बगीचा लगाना आदि कर्म इष्टापूर्त कहलाते हैं। बड़े बड़े यज्ञों के बंद होने पर इष्टापूर्त का प्रचार अधिकता से हुआ है।

इष्टापूर्ति-संज्ञा पुं० [सं०] १. 'इष्टापूर्त'। २. काम्य या वांछित की सिद्धि या उपलब्धि।

इष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. इच्छा। अभिलाषा। २. व्याकरण में भाष्यकार की वह सम्मति जिसके विषय में सूत्रकार ने कुछ न लिखा हो। व्याकरण का वह नियम जो सूत्र और वार्तिक में न हो। ३. यज्ञ। ४ हवि। ५. प्राप्ति तथा सिद्धि के निमित्त होनेवाला प्रयत्न। ६. निवेदन। ७. निमंत्रण (को०)।

इष्टिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'इष्टका' [को०]।

इष्टिपच—संज्ञा पुं० [सं०] १. कृपण। कंजूस। २. असुर [को०]।

इष्टिपशु—संज्ञा पुं० [सं०] यज्ञ में बलि दिया जानेवाला पशु [को०]।

इष्टी(पु)-वि० [सं० इष्टिन्] इष्टसिद्धि करनेवाला। उ०-इष्टी स्वाँगी बहु मिले हिरसी मिले अनंत।—संतबाणी०, भा०१, पृ०१२४।

इष्टु—संज्ञा स्त्री० [सं०] इच्छा। अभिलाषा [को०]।

इष्म[1]—वि० [सं०] इच्छुक [को०]।

इष्म[2]—संज्ञा पुं० १. कामदेव। २. वसंत ऋतु। ३. गमन [को०]।

इष्य—संज्ञा पुं० [सं०] वसंत ऋतु।

इष्व—संज्ञा पुं० [सं०] अध्यात्म की शिक्षा देनेवाला गुरु [को०]।

इष्वनीक—संज्ञा पुं० [सं०] बाण की अनी। तीर की नोंक [को०]।

इष्वसन—संज्ञा पुं० [सं०] धनुष [को०]।

इष्वस्त्र—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'इष्वसन' [को०]।

इष्वास-संज्ञा पुं० [सं०] १. बाण चलाना। २. धनुष। ३. धनुर्धर। ४. योद्धा [को०]।

इस—सर्व० [सं० एष] सर्वनाम 'यह' शब्द का विभक्ति के पहले आदिष्ट रूप जो समय, स्थान आदि के अनुसार समीपस्थ; प्रसंग के अनुसार प्रस्तुत और उल्लेख के अनुसार कुछ ही पहले प्रयुक्त होता है।

विशेष—जब 'यह' शब्द में विभक्ति लगानी होती है, तब उसे 'इस' कर देते हैं। जैसे,—इसने, इसको, इससे, इसमें।

इसकंदर—संज्ञा पुं० [यू० इस्कंदर] सिकंदर बादशाह। अलेक्जेंडर। उ०—नग अमोल अस पाँचो मान समुँद वह दीन्ह। इसकंदर नहिं पाई जोरे समुँद जस लीन।—जायसी (शब्द०)।

इसक(पु)—संज्ञा पुं० [अ० इश्क] दे० 'इश्क'। उ०—याकी करि करि जतन अति अतन तपन अति ताप। गजब हियै समझ्यौ न तब अजब इसक सताप।—स० सप्तक, पृ० ३७७।

इसतरी(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० स्त्री, हिं० इस्त्री] दे० 'स्त्री'। उ०—नारि पुरुष की इसतरी पुरुष नारि का पूत।—संतबाणी०, भा० १, पृ० ५६।

इसनान(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० स्नान, हिं० असनान] दे० 'स्नान'। उ०—बार बार स्वान जेऊ गंगा इसनान करै न कुटेव देव होत न अज्ञान है।—सुंदर ग्रं० (जी०) भा० १, पृ० १०४।

इसपंज—संज्ञा पुं० [अं० स्पंज] समुद्र में एक प्रकार के अत्यंत छोटे कीड़ों के योग से बना हुआ मुलायम रुई की तरह का सजीव पिंड जिसमें बहुत से छेद होते हैं, जिनमें से होकर पानी आता है। मुर्दा बादल। अब्रे मुर्दा।

विशेष—इसपंज भिन्न भिन्न आकार के होते हैं। इनकी सृष्टि दो प्रकार से होती है—एक तो संविभाग द्वारा और दूसरे रजकीट और वीर्यकीट के संयोग से। इसकी बादामी रंग की, रुई के समान मुलायम ठठरी जिसमें बहुत से छेद होते हैं, बाजारों में इसपंज के नाम से बिकती है। इसमें पानी सोखने की बड़ी शक्ति होती है; इसी से लड़के इससे स्लेट पोंछते और डाक्टर लोग घाव पर का खून आदि सुखाते हैं। पानी सोखने पर यह खूब मुलायम होकर फूल जाता है।

इसपात—संज्ञा पुं० [सं० अयस्पत्र अथवा पुर्त० स्पेडा] एक प्रकार का कार्बन मिश्रित कड़ा लोहा। फौलाद।

इसपिरिट—संज्ञा स्त्री० [अं० स्पिरिट] १. किसी प्रकार का सत। २. एक प्रकार का खालिस शराब।

इसपेशल[1]—वि० [अं० स्पेशल] विशेष। खास।

इसपेशल[2]—स्त्री० नियत समयों पर चलनेवाली सवारी गाड़ी (रेल, मोटर आदि) के अतिरिक्त विशेष गाड़ी जो किसी विशेष अवसर पर या किसी विशेष व्यक्ति की यात्रा के लिये छोड़ी जाती है।

इसबगोल—संज्ञा पुं० [फ़ा० इस्पगोल, इस्पगोल] चिकित्सा कार्य में प्रयुक्त एक झाड़ी या पौधा।

विशेष—यह फारस में बहुत होता है। पंजाब और सिंध में भी इसकी झाड़ियाँ लगाई जाती हैं। इसमें तिल के आकार के बीज लगते हैं जो भूरे और गुलाबी होते हैं। यूनानी चिकित्सा में इसका व्यवहार अधिक है। यह शीतल, बद्धकारक और रक्तातिसारनाशक है। यह बवासीर, नकसीर आदि रक्तस्राव की बीमारियों में बहुत फायदा करता है। अतिसार और सूजाक में भी दिया जाता है।

इसम(पु)—संज्ञा पुं० [अ० इस्म] दे० 'इस्म'। उ०—मुअज्जम इसम अँगाली हमेशा।—दक्खिनी०, पृ० ११४।

इसमाईल—संज्ञा पुं० [इब०] १. इब्राहीम का बेटा जो हाजिरा

नाम्नी दासी से उत्पन्न हुआ था। २. साबर तंत्र में एक योगी का नाम जिसकी आन प्रायः मंत्रों में दी जाती है।

इसमाईली—संज्ञा पुं० [इब०] शीया मुसलमानों की एक शाखा [को०]।

इसर(पु)†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'ईश्वर'।

इसराईल—संज्ञा पुं० [इब०] याकूब। पैगंबर का नाम। २. यहूदी। ३. एक देश का नाम।

इसराईली[1]—संज्ञा पुं० [इब०] याकूब के वंशज। यहूदी [को०]।

इसराईली[2]—संज्ञा स्त्री० इसरायल की भाषा।

इसराईली[3]—वि० इसरायल देश संबंधी।

इसराज—संज्ञा पुं० [अ०] एक प्रकार का सारंगी की तरह का बाजा। उ०—इधर परदादी चंपाकली ने इसराज सँभालकर पीलू का रियाज करना आरंभ किया।—शराबी, पृ० १७।

इसराफ—संज्ञा पुं० [अ० इसराफ़] फजूलखर्ची। अपव्यय [को०]।

इसरफील—संज्ञा पुं० [इब० इसराफ़ील] उस फरिश्ते का नाम जो कयामत के दिन दो बार सुर फूँकेगा। पहली बार जीवित प्राणी मृत हो जायँगे और दूसरी बार सभी मृत जीवित हो जायँगे [को०]।

इसरार—संज्ञा पुं० [अ०] १. हठ। जिद। आग्रह। अनुरोध। उ०—तब वह इनकार और इसरार के लिए क्या बाकी छोड़ती हैं।—प्रेमघन, भा० २, पृ० ३६२। २. सारंगी की तरह का एक बाजा।

इसरी(पु)†—वि० [हिं०] दे० 'ईश्वरीय'।

इसलाम—संज्ञा पुं० [अ० इस्लाम] [वि० इसलामिया] मुसलमानी धर्म। मुहम्मद साहब का चलाया हुआ धर्म।

क्रि० प्र०—(कबूल) करना।

इसलामी—वि० [अ०] इसलामसंबंधी।

इसलाह—संज्ञा पुं० [अ० इस्लाह] संशोधन। दुरुस्त करना।

इसवर(पु)—संज्ञा पुं० [सं० ईश्वर] दे० 'ईश्वर'। उ०—इसवर सीय सेस चढ़े रथ ऊपर।—रघु०, पृ० १०६।

इसहाक—संज्ञा पुं० [अ० इस्हाक] इसलाम धर्म के एक पैगंबर।

इसा(पु)—वि० [हिं०] दे० 'ऐसा'। उ०—अडिग इसा है मेरु ज्यों डोलै न डुलाया।—सुंदर ग्रं०, भा० १, पृ० ५१२।

इसाई—वि० [हिं०] दे० 'ईसाई'।

इसान(पु)—संज्ञा पुं० [सं० ईशान] दे० 'ईशान'। उ०—हिमवान कहेउ इसान महिमा अगम निगम न जानई।—तुलसी ग्रं०, पृ० ३३।

इसारत(पु)—संज्ञा स्त्री० [अ० इशारत] संकेत। इशारा। उ०—मुख सों न कह्यों कछू हाथ की इसारत सों गारी दै दै आपसी किवारी दोऊ दै गई।—रघुनाथ (शब्द०)।

इसिम—संज्ञा पुं० [अ० इस्म] दे० 'इस्म'। उ०—संत सिपाहिक पूत इसिम में दाग न लागै।—पलटू०, पृ० ३४।

इसी—सर्व० [हिं० इस + ही वा ई (प्रत्य०)] 'इस' शब्द पर जोर देने के लिये यह रूप बनाता है।

इसीका(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० इषीका] दे० 'इषीका'।

इसे—सर्व० [सं० एषः] 'यह' का कर्मकारक और संप्रदानकारक रूप।

इसै(पु)—वि० [सं० ईदृश] इस प्रकार। ऐसा।

इसौ(पु)—वि० [हिं० ऐसा] ऐसा। इस प्रकार।

इस्क—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'इश्क'। उ०—तब इनकों राग रंग को इस्क लग्यो।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० २८८।

इस्कात—संज्ञा पुं० [अ० इस्क़ात] गिरना। पतन। २. गर्भपात। हमल गिरना।

इस्कूल(पु)†—संज्ञा पुं० [अं० स्कूल] दे० 'स्कूल'। उ०—कथा कहानी सिखन हित इस्कूलन में जाहिं।—प्रेमघन०, भा० १ पृ० १८०।

इस्ट[1](पु)—संज्ञा पुं० [सं० इष्ट] दे० 'इष्ट'। उ०—प्राय घरै घर औरही बपरा इष्ट दे बीच।—बाँकी० ग्रं०, भा० ३, पृ० ५७।

इस्ट[2]—संज्ञा पुं० [अं०] पूर्व दिशा।

इस्टाम†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'स्टांप'। उ०—या मेरे अल्लाह, अब मैं क्यों कर कहूँ। इस्टाम के कागज पर लिख दूँ, मुहर कर दूँ?—सैर०, पृ० ३०।

इस्टेशन†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'स्टेशन' उ०—इस्टेशन से केवल दै ही कोस दूर पर।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० ८।

इस्तंगी—संज्ञा स्त्री० [अं० स्ट्रिंग] जहाजों में वह रस्सी जो घिरनी में लगी होती है और जिससे पाल के किनारे आदि ताने और खींचे जाते हैं।

क्रि० प्र०—चाँपना।

इस्तकबाल—संज्ञा पुं० [अ० इस्तिक़बाल] स्वागत। अगवानी। उ०—चमन में सुन खबर आने की इस्तकबाल को चलियाँ।—कविता० कौ०, भा० ४, पृ० ४३।

इस्तखारा—संज्ञा पुं० [अ० इस्तिखारह्] दैवी सहायता चाहना। ईश्वर से मंगलकामना करना। उ०—यहाँ नालों से मिलता है पियारा। अबस देखै है जाहिद इस्तखारा।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ३६।

इस्तमरारी—वि० [अ० इस्तिमरारी] सब दिन रहनेवाला। जिसमें कुछ अदल बदल न हो। नित्य। अविच्छिन्न।

यौ०—इस्तमरारी बंदोबस्त = जमीन का वह बंदोबस्त जिसमें मालगुजारी सदा के लिये मुकर्रर कर दी जाती है। यह बंदोबस्त लार्ड कार्नवालिस ने उत्तर प्रदेश के कुछ भागों में किया था।

इस्तरी†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'स्त्री'। उ०—देखो हम दो टोगी दिए। मर्द इस्तरी उनसे जिए।—कविता कौ०, भा४, पृ० ६५।

इस्तिजा—संज्ञा पुं० [अ० इस्तिंजह] पेशाब करने के बाद मिट्टी के ढेले से इंद्रिय में लगी हुई पेशाब की बूँदों को सुखाने की क्रिया जो मुसलमानों में प्रचलित है। उ०—खड़े होकर इस्तिजा मत करो।—प्रेमघन० भा० २, पृ० ६१।

मुहा०—**इस्तिजे का ढेला** = अनाहूत व्यक्ति। तुच्छ मनुष्य। **इस्तिजा लड़ना** = अत्यंत मित्रता होना। दाँतकाटी रोटी होना। **इस्तिजा लड़ाना** = अत्यंत मित्रता करना।

इस्तिकलाल—संज्ञा पुं० [अ० इस्तिक़लाल] दृढ़ता। मजबूती। संकल्प की दृढ़ता [को०]।

इस्तिगासा—संज्ञा पुं० [इस्तिगासह्] न्याय के निमित्त किया गया निवेदन। नालिश। फौजदारी का दावा [को०]।

इस्तिरी—संज्ञा स्त्री० [सं० स्तरी (= तह करनेवाली) स्तृ] धोबी का

वह औजार जिससे वह धोने और सुखाने के बाद कपड़े की तह को जमाकर उसकी शिकन मिटाता है। इसके नीचे का भाग जो कपड़े पर रगड़ा जाता है, पीतल या लोहे का होता है। उसके ऊपर एक खोखला (हवादार) स्थान होता है, जिसमें कोयले के अंगारे भरे जाते हैं।

इस्तिलाह—संज्ञा स्त्री० [अ०] १. परस्पर संधि करना। २. परिभाषा सिद्ध अर्थ। पारिभाषिक शब्दावली [को०]।

इस्तिस्नाय—संज्ञा पुं० [अ०] १. पृथक् करना। अलग रखना। २. अपवाद होना [को०]।

इस्तिहकाम—संज्ञा पुं० [अ०] दृढ़ता। स्थिरता। पायदारी [को०]।

इस्तीफा—संज्ञा पुं० [अ० इस्तीफ़ा] नौकरी छोड़ने की दरख्वास्त। काम छोड़ने का प्रार्थनापत्र। त्यागपत्र।

क्रि० प्र०—देना।

इस्तेदाद—संज्ञा स्त्री० [अ०] विद्या की योग्यता। लियाकत। विद्वत्ता।

इस्तेमाल—संज्ञा पुं० [अ०] प्रयोग। उपयोग। व्यवहार।

क्रि० प्र०—करना।—में आना।—में लाना।—होना।

इस्त्रि, इस्त्री⑤—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'स्त्री'। उ०—(क) चार बरग जो लिंग के भाषा में नहीं होइ। स्त्री पुंस नपुंसकहि इस्त्रि नपुंसक जोइ।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ५४४। (ख) बर वृक्ष को इस्त्री भाँवरि देति है।—भिखारी० ग्रं०, भा० २, पृ० १५७।

इस्त्री—संज्ञा स्त्री० [सं० स्तरी, हिं० इस्तिरी] दे० 'इस्तरी'।

इस्त्रीजित⑤—वि० [सं० स्त्रीजित्] स्त्रियों का गुलाम। स्त्रीभक्त। उ०—कोउ कहै ये परम धर्म इस्त्रीजित पूरे। लछ लाघव संधान धरें आयुध के सूरे।—नंद० ग्रं०, पृ० १८१।

इस्थिर⑤—वि० [सं० स्थिर] दे० 'स्थिर'। उ०—(क) कहै कबीर सुनो भाई साधो करो इस्थिर मन ध्यान।—कबीर श०, भा० ३, पृ० २०। (ख) बूढ़ा बारा ज्वान नहीं है कोई इस्थिर।—पलटू०, भा० १, पृ० ५४।

इस्नान⑤—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'स्नान'। उ०—क्या जप क्या तप सयमो क्या व्रत क्या इस्नान।—कबीर ग्रं०, पृ० ३२९।

इस्पंज—संज्ञा पुं० [हिं० इसपंज] दे० 'इसपंज'।

इस्पंद—संज्ञा पुं० [फ़ा०] राई।

मुहा०—इस्पंद करना=बुरी नजर दूर करने के लिये राई जलाना।

इस्पीच—संज्ञा स्त्री० [अं० स्पीच] वक्तृता। भाषण। लेक्चर। उ०—करनी कछु नहिं देत जग सिच्छा की इस्पीच।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० १६१।

इस्म—संज्ञा पुं० [अ०] नाम। संज्ञा।

यौ०—इस्मनवीसी=(१) गवाहों की सूची। (२) किसी गवाही, नौकरी या जगह के लिये नामजद करने का कार्य। ३. पटवारी की जगह के लिये जमींदार का किसी व्यक्ति का नाम चुनना।

इस्लाम—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'इसलाम'। उ०—बुतपरस्ती को तो इस्लाम नहीं कहते हैं।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० १२८।

इस्लोक—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'श्लोक'। उ०—कथा औ कवित इस्लोक रसरी बटै बकै बहु बाय मुख मूढ़ भारी।—कबीर रे०, भा० २, पृ० ५।

इस्सर⑤†—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'ईश्वर'। उ०—(क) आइ परा गुरुनाथ गोसाई। पंथ बीच इस्सर की नाई।—इंद्रा०, पृ० १५५। (ख) इस्सर पैठें दरिद्दर निकसें।—(लोक०)।

इह[1]—क्रि० वि० [सं०] इस जगह। इस लोक में। इस काल में। यहाँ।

इह[2]—संज्ञा पुं० यह संसार। यह लोक। उ०—हृदय के जगते उजाले निवेदित इह के निवासी।—हरी घास०, पृ० १६।

यौ०—इहामुत्र।

इह[3]—सर्व० [हिं०] दे० 'यह'। उ०—ते सर छाँड़त अबलन माँही। पुरुषराव इह पौरुष नाहीं।—नंद ग्रं०, पृ० १३५।

इहइ—सर्व० [हिं० यह+ही] दे० 'यही'।

इहकाल—संज्ञा पुं० [सं०] इस लोक का जीवन। लौकिक जीवन [को०]।

इहतिमाम—संज्ञा पुं० [अ०] दे० 'एहतमाम' [को०]।

इहतिमाल—संज्ञा पुं० [अ०] [वि० इहतिमाली] १. संभावना। २. संदेह [को०]।

इहतियाज—संज्ञा पुं० [अ०] १. अभाव। आवश्यकता। २. अवसर।

इहतियात—संज्ञा स्त्री० [अ०] १. सावधानी। खबरदारी। उ०—दिल के तईं गिरह से कभी खोलती नहीं। है जुल्फ को भी अपने परेशाँ की इहतियात।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० १९१। २. रक्षा। बचाव। उ०—दागों की अपने क्यों न करे 'दर्द' परवरिश। हर बागवाँ करे है गुलिस्ताँ की इहतियात।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० १९१।

यौ०—इहतियाती कार्रवाई=अनिष्ट को रोकने के लिये किया जानेवाला प्रयास।

इहतियातन्—क्रि० वि० [अ०] सावधानीपूर्वक [को०]।

इहतिलाम—संज्ञा पुं० [अ०] स्वप्नदोष [को०]।

इहलीला—संज्ञा स्त्री० [सं०] इस लोक का जीवन तथा उससे संबद्ध समस्त क्रियाकलाप [को०]।

इहलोक—संज्ञा पुं० [सं०] यह संसार। जगत्। दुनिया। उ०—किंतु वह शीघ्र ही इहलोक में आने के लिये विवश हुआ।—रंगभूमि, पृ० ४७३।

इहलौकिक—वि० [सं०] इहलोकसंबंधी। इस लोक का। संसारिक। २. इस लोक में सुख देनेवाला।

इहवाँ‡—क्रि० वि० [सं० इह] इस जगह। यहाँ।

इहवें‡—क्रि० वि० [सं० इह] यहीं। इसी स्थान पर।

इहसान†—संज्ञा पुं० [अ०] दे० 'एहसान'।

इहाँ†—क्रि० वि० [हिं०] दे० 'यहाँ'। उ०—कहइ करहु किन कोटि उपाया। इहाँ न लागिहि राउरि माया।—मानस, २। ३३।

इहामुत्र—संज्ञा पुं० [सं०] यह लोक और परलोक। उ०—स्वर्गादिक की करिय न इच्छा इहामुत्र त्यागै सुख दोइ।—सुंदर० ग्रं०, भा० १, पृ० ४०।

इहामृग—संज्ञा पुं० [सं० ईहामृग] दे० 'ईहामृग'।

इहि⑤—सर्व० [हिं०] दे० 'यह'। उ०—कहन लगे इहि भवन कौन के।—नंद० ग्रं०, पृ० २१४। २. दे० 'इस'। उ०—तिहुँ काल मैं प्रगट प्रभु प्रगट न इहि कलिकाल।—नंद० ग्रं०, पृ० १४३।

इहै⑤—सर्व० [हिं०] दे० 'यही'। उ०—धरनी धन धाम सरीर भलो सुरलोकहु चाहि इहै सुख स्वै।—तुलसी ग्रं०, पृ० २०७।

ई

ई– हिंदी वर्णमाला का चौथा अक्षर। यह यथार्थ में 'इ' का दीर्घ रूप है। इसके उच्चारण का स्थान तालु है। इसको प्रत्यय की भाँति कुछ शब्दों में लगाकर संज्ञा और विशेषण, स्त्रीलिंग, क्रिया स्त्रीलिंग तथा भाववाचक संज्ञा आदि बनाते हैं। जैसे—घोड़ा से घोड़ी, अच्छा से अच्छी, गया से गई, स्याह से स्याही, क्रोध से क्रोधी, आदि।

ईंखन– संज्ञा पुं० [सं० ईङ्खन] झूलना [को०]।

ईंगुर—संज्ञा पुं० [सं० हिङ्गुल, प्रा० इंगुल] एक खनिज पदार्थ जो चीन आदि देशों में निकलता है। इसकी ललाई बहुत चटकीली और सुंदर होती है। लाल वस्तुओं की उपमा ईंगुर से दी जाती है। हिंदू सौभाग्यवती स्त्रियाँ माथे पर शोभा के लिये इसकी बिंदी लगाती हैं। इससे पारा बहुत निकाला जाता है। उ०—जहाँ जहाँ यह अपने चरनों को धरती ऐसा जान पड़ता कि ईंगुर बगर गया है।—श्यामा०, पृ० २८।

विशेष—अब कृत्रिम ईंगुर बहुत बनाया जाता है। यह गीला और सूखा दो प्रकार का बनता है। पारा, गंधक, पोटास और पानी एक साथ मिलाकर एक लंबे बरतन में रखते हैं जिसमें मथने के लिये बेलन लगे रहते हैं। एक घंटा मथने के बाद द्रव्य का रंग काला हो जाता है, फिर ईंट के रंग का होता है अंत में खासा गीला ईंगुर हो जाता है। सूखा ईंगुर इस प्रकार बनता है—८ भाग पारा, १ भाग गंधक एक बंद बरतन में आँच पर चढ़ाते हैं। यह बरतन घूमता रहता है, जिससे दोनों चीजें खूब मिल जाती हैं और ईंगुर तैयार हो जाता है। प्रक्रिया में थोड़ा फेरफार कर देने से यह ईंगुर कई रंगों का हो सकता है—जैसे प्याजी, गुलाबी और नारंगी इत्यादि। यह रंगसाजी और मोहर की लाह बनाने के काम में आता है।

ईंचना(पु)—क्रि० स० [सं० अञ्चन = जाना, ले जाना, सिकोड़ना, खींचना] खींचना। ऐंचना। उ०—न कर्यास उस ईंचने में फटी, न चारो के हाथों से चादर छुटी।—दक्खिनी०, पृ० ३०१।

ईंचमनौती‡—संज्ञा स्त्री० [हिं० ईंचना + मनौती] जमींदार का अपने काश्तकार के महाजन से लगान का रुपया वसूल कर लेना और उस रुपए को उस काश्तकार के नाम महाजन की बही में लिखवा देना।

ईंचातानी—संज्ञा स्त्री० [हिं० ईंचना + तानना] दे० 'ऐंचातानी'।

ईंट—संज्ञा स्त्री० [इष्टका, पा० इट्ठका, प्रा० इट्टआ] १. साँचे में ढाला हुआ मिट्टी का चौखूँटा लंबा टुकड़ा जो पजावे में पकाया जाता है। इसे जोड़कर दीवार उठाई जाती है। उ०—हीरा ईंट कपूर गिलावा। औ नग लाइ सरग लै आवा।—जायसी ग्रं०, पृ० १८।

विशेष—ईंट के कई भेद हैं—(क) लखौरी, जो पुराने ढंग की पतली ईंट है। (ख) नंबरी जो मोटी है और नए ढंग की इमारतों में लगती है। (ग) पुठ्ठी जो यथार्थ में मिट्टी की एक चौड़ी परिधि के बराबर खंड करके बनाई जाती है। ये खंड या ईंटें कूएँ की जोड़ाई में काम आती हैं। इनके सिवा और भी कई प्रकार की ईंटें होती हैं; जैसे ककैया ईंट, नौतेरही ईंट, ननिहारी ईंट, मेज की ईंट, फर्श ईंट और तामड़ा ईंट।

क्रि० प्र०-गढ़ना = ईंट को हथौड़ी से काट छाँटकर जोड़ाई में बैठने योग्य करना।—चुनना = ईंटों की जोड़ाई करना।—जोड़ना = दीवार उठाते समय एक ईंट के ऊपर या बगल में दूसरी ईंट रखना।—पाथना या पारना = गीली मिट्टी को साँचे में ढाल कर ईंट बनाना।

यौ०—ईंटकारी = ईंट का काम। ईंट की जोड़ी। ईंट का परदा = ईंट की एकहरी जोड़ाई की पतली दीवार जो प्रायः विभाग करने के लिये उठाई जाती है।

मुहा०—ईंट का छल्ला देना = कच्ची दीवार से सटाकर ईंट की एकहरी जोड़ाई करना। ईंट से ईंट बजना = (१) किसी नगर या घर का ढह जाना या ध्वंस होना। जैसे,—जहाँ कभी अच्छे अच्छे नगर थे, वहाँ आज ईंट से ईंट बज रही है। (२) तबाह होना। घरबार तक ध्वस्त हो जाना। ईंट से ईंट बजाना = (१) किसी नगर या घर को ढहाना या ध्वस्त करना। (२) तबाह करना। बर्बाद करना। जैसे,—महमूद जहाँ गया वहाँ उसने ईंट से ईंट बजा दी। डेढ़ या ढाई ईंट की मसजिद अलग बनाना = सबसे निराला ढंग रखना। जो सब लोग कहते या करते हों; उसके विरुद्ध कहना या करना। गुड़ दिखाकर ईंट या ढेला मारना = भलाई की आशा देकर बुराई करना। ईंट पत्थर = कुछ नहीं। जैसे,—(क) तुमने इतने दिनों तक क्या पढ़ा, ईंट पत्थर? (ख) उन्हें ईंट पत्थर भी नहीं आता।

२. धातु का चौखूँटा ढला हुआ टुकड़ा। जैसे,—सोने की ईंट। चाँदी की ईंट। जस्ते की ईंट। ३. ताश का एक रंग जिसमें ईंट का लाल चिह्न बना रहता है।

ईंटा—संज्ञा पुं० [सं० इष्टका] दे० 'ईंट'।

ईंडरी†—संज्ञा स्त्री० [सं० कुण्डली ?] कपड़े की बनी हुई कुंडलाकार गद्दी जिसे घड़ा या और कोई बोझ उठाते समय सिर पर रख लेते हैं। उ०—आई संग आलिन के ननद पठाई नीठ सोहत सुहाई सूही ईंडरी सुपट की। कहै पदमाकर गभीर जमुना के तीर लागी घट भरन नवेली नेह अटकी।—पदमाकर (शब्द०)।

ईंडुरी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'ईंडरी'। उ०—काहू को हरत चीर, काहू को गिरावे नीर काहू की ईंडरी दुरावै।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ४५४।

ईंढ—वि० [सं० ईदृश प्रा० *ईडह; * ईढ] बराबर। समान। (डिं०)।

ईंत—संज्ञा पुं० [हिं० ईंट] ईंट जो औजारों पर सान चढ़ाते समय सान के नीचे इसलिये रख दी जाती है जिसमें उसके कण लगकर धार को और तेज करें।

क्रि० प्र०—लगाना।

ईंदर‡—संज्ञा पुं० [देश०] आठ दस दिन की ब्याई हुई गाय के दूध को औटाकर बनाई हुई एक प्रकार की मिठाई। प्योसी। ईन्नर।

ईंधन—संज्ञा पुं० [सं० इन्धन] १. जलाने की लकड़ी, कोयला, कंडा आदि। जलावन। जरवनी। उ०—बिध न इँधन पाइए सायर जुरे न नीर। परे उपास कुबेर घर जो बिपच्छ रघुवीर।—तुलसी (शब्द०)। २. किसी यंत्र को गतिशील करने के लिये उसमें दी जानेवाली सामग्री या पदार्थ, जैसे—तेल, पेट्रोल, कोयला आदि। ३.ऐसी बात जो क्रुद्ध व्यक्ति को और अधिक उत्तेजित करने में सहायक हो।

ई¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] लक्ष्मी।

ई²(पु)—सर्व० [सं० ई = निकट का संकेत] यह। उ०—(क) कहहिं कबीर पुकारि कै ई लेऊ व्यवहार। एक राम नाम जाने बिना भव बूड़ि मुआ संसार।—कबीर (शब्द०)। (ख) विरल रसिक जन ई रस जान।—विद्यापति०, पृ० ३०८।

ई³—अव्य० [सं० हिं०] जोर देने का शब्द। ही। उ०—पत्रा ही तिथि पाइए वा घर के चहुँ पास। नित प्रति पून्यो ई रहै आनन ओप उजास।—बिहारी (शब्द०)।

ई⁴—संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव [को०]।

ईकार—संज्ञा पुं० [सं०] 'ई' स्वर अथवा दीर्घ ई का सूचक वर्ण [को०]।

ईकारांत—वि० [सं० ईकारान्त] (शब्द०) जिसके अंत में 'ई' हो। वह शब्द जिसके अंत में ईकार हो।

ईक्ष(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० इक्षु] दे० 'ईख'। उ०—भयौ सरकरा ईक्ष रस व्यापि मिठाई माहिं। सुंदर ब्रह्म सु जगत है, जगत ब्रह्म द्वै नाहिं।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ८०२।

ईक्षक—संज्ञा पुं० [सं०] १. देखनेवाला। दर्शक। २. विचार या विमर्श करनेवाला [को०]।

ईक्षण—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० ईक्षणीय, ईक्षित, ईक्ष्य] १. दर्शन। देखना। २. आँख। उ०—पंकज के ईक्षण शरद हँसी।—बेला, पृ० २२। ३. दो (२) की संख्या का सूचक शब्द (को०)। ४. विवेचन। विचार। जाँच।

विशेष—इसमें अनु, नि, परि, प्रति, अभि, अप, उप, या सम् उपसर्ग लगाकर अन्वीक्षण, निरीक्षण, परीक्षण, प्रतीक्षण, अभीक्षण, अपेक्षण, उपेक्षण, समीक्षण आदि शब्द बनाए जाते हैं।

ईक्षणिक, ईक्षणीक—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० ईक्षणिका] १. दैवज्ञ। ज्योतिषी। २. सामुद्रिक जाननेवाला।

ईक्षा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दृष्टि। दर्शन। २. विवेचन। ३. आत्मज्ञान [को०]।

विशेष—इसमें परि, अप, सम्, उप, प्र, वि आदि लगाकर परीक्षा, समीक्षा, अपेक्षा, उपेक्षा, वीक्षा आदि शब्द बनाए जाते हैं।

ईक्षिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] देखने की इंद्रिय। आँख। दृष्टि [को०]।

ईक्षित—वि० [सं०] १. दृष्ट। देखा हुआ। २. विवेचित [को०]।

ईक्षिता—वि० [ईक्षितृ] देखनेवाला [को०]।

ईख—संज्ञा स्त्री० [सं० इक्षु, प्रा० इक्खु] शर जाति का एक प्रकार जिसके डंठल में मीठा रस भरा रहता है। इसके रस से गुड़ चीनी और मिश्री आदि बनती है। डंठल में ६-६ या ७-७ अंगुल पर गाँठें होती हैं और सिरे पर बहुत लंबी लंबी पत्तियाँ होती हैं, जिन्हें पेंड़ा कहते हैं।

विशेष—भारतवर्ष में इसकी बुआई चैत बैसाख में होती है। कार्तिक तक यह पक जाती है, अर्थात् इसका रस मीठा हो जाता है और कटने लगती है। डंठलों को कोल्हू में पेरकर रस निकालते हैं। रस को छानकर कड़ाहे में औटाते हैं। जब रस पककर सूख जाता है तब गुड़ कहलाता है। यदि राब बनाना हुआ तो औटाते समय कड़ाहे में रेंड़ी की गूदी का पुट देते हैं जिससे रस फट जाता है और ठंढा होने पर उसमें कलमें वा रवे पड़ जाते हैं। इसी राब से जूसी या चोटा दूर करके खाँड़ बनाते हैं। खाँड़ और गुड़ गला कर चीनी बनाते हैं।

ईख के तीन प्रधान भेद माने गए हैं। ऊख, गन्ना और पौंढ़ा। (क) ऊख—इसका डंठल पतला, छोटा और कड़ा होता है। इसका कड़ा छिलका कुछ हरापन लिये हुए पीला होता है और जल्दी छीला नहीं जा सकता। इसकी पत्तियाँ पतली, छोटी, नरम और गहरे हरे रंग की होती है। इसकी गाँठों में उतनी जटाएँ नहीं होतीं, केवल नीचे दो तीन गाँठों तक होती हैं। इसकी आँखें, जिनसे पत्तियाँ निकलती हैं, दबी हुई होती हैं। इसके प्रधान भेद धौल, मतना, कुसवार, लखड़ा, सरौती आदि हैं। गुड़ चीनी आदि बनाने के लिये अधिकतर इसी की खेती होती है। (ख) गन्ना—यह ऊख से मोटा और लंबा होता है। इसकी पत्तियाँ ऊख से कुछ अधिक लंबी और चौड़ी होती हैं। इसका छिलका कड़ा होता है, पर छीलने से जल्दी उतर जाता है। इसकी गाँठों में जटाएँ अधिक होती हैं। इसके कई भेद हैं; जैसे,—अगौल, दिकचन, पंसाही, काला गन्ना, केतारा, बड़ौखा, तंका, गोड़ारा। इससे जो चीनी बनती है उसका रंग साफ नहीं होता। (ग) पौंढ़ा—यह विदेशी है। चीन, मारिशस (मिरच का टापू), सिंगापुर इत्यादि से इसकी भिन्न भिन्न जातियाँ आई हैं इसका डंठल मोटा और गूदा नरम होता है। छिलका कड़ा होता है और छीलने से बहुत जल्दी उतर जाता है। यह यहाँ अधिकतर रस चूसने के काम में आता है। इसके मुख्य भेद थून, काला गन्ना और पौंढ़ा है। राजनिघंटु में ईख के इतने भेद लिखे हैं—पौंड्रक (पौंढ़ा) भीरुक, वंशक (बड़ौखा), शतपोरक (सरौती), कांतार (केतारा), तापसेक्षु, काष्टेक्षु (लखड़ा), सूचिपत्रक, नैपाल, दीर्घपत्र, नीलपोर (काला गेंड़ा), कोशकृत (कुशवार या कुसियार)।

ईखत(पु)—वि० [सं० ईषत्] दे० 'ईषत्'।—नंद० ग्रं०, पृ० १००।

ईखना(पु)—क्रि० स० [सं० ईक्षण प्रा० इक्खण] देखना। अवलोकना।—(डिं०)।

ईखराज—संज्ञा पुं० [हिं० ईख + राज] ईख बोने का प्रथम दिन।

ईच्छा—संज्ञा स्त्री० [सं० इच्छा] दे० 'इच्छा'। उ०—जो प्रभुन की ईच्छा भई सो सही।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० २२९।

ईछन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० ईक्षण = आँख, प्रा० *ईच्छन] आँख। उ०—दृगनु लगत बेधत हियहिं, बिकल करत अँग आन। ये तेरे सबतें बिषम ईछन तीछन बान।—बिहारी र०, दो० ३४९।

ईछना(पु)—क्रि० स० [सं० इच्छन] इच्छा करना। चाहना। उ०—बाहिर भीतर भीतर बाहिर ज्यौं कोउ जानै त्यौं ही करि ईछो। जैसो ही आपुनो भाव है सुंदर तैंसोहि है दृग खोजि कै बीछो।—सुंदर० ग्रं०, भा० २, पृ० ५७७।

ईछा(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'इच्छा'। उ०—बिसरी सबहि जुद्ध कै ईछा।—मानस, ६।४६।

ईछी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'इच्छा'। उ०—ब्रेष भये विष, भावे न भूषण भोजन को कुछ हूँ नहिं ईछी।—देव (शब्द०)।

ईजति(पु)—संज्ञा स्त्री० [ग्र० इज्जत] दे० 'इज्जत'। उ०—हिंदुवान द्रुपदी की ईजति बचैबे काज झपटि बिराटपुर बाहर प्रमान कै।—भूषण ग्रं०, पृ० ६६।

ईजा—संज्ञा स्त्री० [म० इजह्] दुःख। तकलीफ। पीड़ा। कष्ट। उ०—जस मनसा तस आगे आवै, कहै कबीर ईजा नहि पावै।—कबीर सा०, पृ० ४४४।

क्रि० प्र० —देना।—पहुँचना।—पहुँचाना।

ईजाद—संज्ञा स्त्री० [ग्र०] किसी नई चीज का बनाना। नया निर्माण। आविष्कार।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

ईजान—वि० [सं०] १. यज्ञ करनेवाला। यजमान। २. यज्ञ करानेवाला [को०]।

ईठ(पु)—वि०, संज्ञा पुं० [सं० इष्ट, प्रा० इट्ठ] १. जिसे चाहें। प्रिय। मित्र। सखा। उ०—(क) यार दोस्त बोले जा ईठ।—खुसरो (शब्द०)। (ख) ज्यों क्यों हूँ न मिलै कहूँ केशव दोंऊ ईठ।—केशव (शब्द०)। (ग) करैं निरादर ईठ को निज गुमान गहि बाम।—पद्माकर ग्रं० पृ० १७७। २. चेष्टा। यत्न। उ०—केशव कैसहु ईठन दीठि ह्वै दीठ परे रति ईठ कन्हाई।—केशव ग्रं०, भा० १, पृ० ४६।

ईठना(पु)—क्रि० अ० [सं० इष्ट + हिं० ना (प्रत्य०)] चाह करना। इच्छा करना।

ईठा(पु)—वि० [सं० इष्ट] अभिलषित। उ०—नानक बारवाँ हाटु अनंत सुख ईठा।—प्राण०, पृ० १४५।

ईठि(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० इष्टि, प्रा० इट्ठि] १. मित्रता। दोस्ती, प्रीति। उ०—लहि सूनें घर कर गहत दिठादिठी की ईठि। गड़ी सु चित नाहीं करति करि ललचौंही दीठि।—बिहारी र०, दो० ५८२। २. चेष्टा। यत्न। उ०—सखियाँ कहैं सु साँच है लगत कान्ह की डीठि। कालि जु मो तन तकि रह्यो उमरचो आजु सो ईठि।—भिखारी० ग्रं०, भा० १, पृ० ७। ३. सखी। उ०—लोनें मुहुँ दीठि न लगै, यौं कहि दीनौ ईठि। दूनी ह्वै लागन लगी, दिऐं दिठौना दीठि।—बिहारी र०, दो० २७।

ईठी[1]—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. भाला। बरछा। २. दंड।

ईठी[2]—वि० [सं० इष्ट] प्यारी।

ईठी(पु)[3]—संज्ञा स्त्री० [सं० इष्टि] प्रीति। उ०—लागै न बार मृनाल के तार ज्यों टूटैगी लाल हमैं तुम्हैं ईठी।—केशव ग्रं०, भा० १, पृ० २५।

ईठीदाडू(पु)†—सं० पुं० [हिं० ईठी + दंड] चौगान खेलने का डंडा।

ईडन—संज्ञा पुं० [स०] प्रशंसा करना। प्रशंसना [को०]।

ईड़ा—संज्ञा स्त्री० [सं० ईडा = स्तुति] [वि० ईडित, ईड्यत] स्तुति। प्रशंसा। उ०—(क) कीन्हि बिड़ौजा ईड़ि जिमि बार बार सिर नाय। कहूँ अभय बर दीन्ह हुरि पठयो त्यहि समुझाय।—लल्लू (शब्द०)। (ख) रति माँगी तुमते करि ईड़ा। पारथ करहु संग मम क्रीड़ा।—सबल (शब्द०)।

ईड़ित—वि० [सं० ईडित] जिसकी स्तुति की गई हो। प्रशंसित। उ०—तीखे अस्त्र अनेक हाथ गिरजा, लीन्हे महा ईड़ितै।—भिखारी० ग्रं०, भा० १, पृ० २६२।

ईड़ुरी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'ईडुरी'।

ईड्य—वि० [सं०] पूज्य। स्तुति के योग्य।—प्रशंसित। उ०—अहो ईड्य नव घन तन स्याम। तड़िदिव पीत बसन अभिराम।—नंद० ग्रं०, पृ० २६८।

ईढ़(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० इष्ट. प्रा० इट्ट अथवा सं० हठ > प्रा० *एड़, *अढ़ *ईढ़] [वि० ईढ़ी] जिद। हठ। उ०—बोलिये न झूठ ईढ़ मूढ़ पै न कीजई। दीजयै जो बिताहाथ भूलिहूँ न लीजई।—केशव (शब्द०)।

ईत(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० ईति] दे० 'ईति'। उ०—ईत तणो नह भीत अगंजी मान दुजा मन मेर।—रघु० रू०, पृ० ६२।

ईतर[1](पु)—वि० [हिं० इतराना] इतरानेवाला। ढीठ। शोख। गुस्ताख। उ०—गई नंद घर कौं सबै, जसुमति तहँ भीतर। देखि महरि कौं कहि उठीं सुत कीन्हौ ईतर।—सूर०, १०। १०।२१०४।

ईतर[2]—वि० [सं० इतर] निम्न श्रेणी का। साधारण। नीच। उ०—कोटि बिलास कटाच्छ कलोल बढ़ावैं हुलासन प्रीतम हीतर। यों मनि यामैं अनूपम रूप जो मैनका मैन वधू कही ईतर।—सूर०, १०१।४८६।

ईतरता(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० इतरता] भेदभाव। अन्यत्व। परायापन। भिन्नता। उ०—ईहा और ईरषा भानौं। ईतरता कबहूँ नहिं आनौं।—सुंदर० ग्रं०, भा० १, पृ० २१६।

ईति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. खेती को हानि पहुँचानेवाले उपद्रव। ये छह प्रकार के हैं—(क) अतिवृष्टि। (ख) अनावृष्टि। (ग) टिड्डी पड़ना। (घ) चूहे लगना। (च) पक्षियों की अधिकता। (छ) दूसरे राजा की चढ़ाई। उ०—दसरथ राज न ईति भय नहिं दुख दुरित दुकाल। प्रमुदित प्रजा प्रसन्न सब सब सुख सदा सुकाल।—तुलसी ग्रं०, पृ० ६८। २. बाधा। उ०—अब राधे नाहिंन ब्रजनीति। सखि बिनु मिलै तो ना बनि ऐहै कठिन कुराज राज की ईति।—सूर (शब्द०)। ३. पीड़ा। दुःख। उ०—बारुनी ओर की वायु बहै यह सीत की ईति है बीस बिसा मै। राति बड़ी जुग सी न सिराति रह्यौ हिम पूरि दिशा विदिशा मै।—गोकुल (शब्द०)।

ईतिभय—संज्ञा पुं० [सं० ईति + भय] ईति नामक विपत्ति की आशंका।

ईथर—संज्ञा पुं० [ग्रं०] १. एक प्रकार का अति सूक्ष्म और लचीला द्रव्य या पदार्थ जो समस्त शून्य स्थल में व्याप्त है। यह अत्यंत घन पदार्थों के परमाणु के बीच में भी व्याप्त रहता है। उष्णता और प्रकाश का संचार इसी के द्वारा होता है। २. एक रासायनिक द्रव पदार्थ जो अलकोहल और गंधक के तेजाब से बनता है।

विशेष—बोतल में अलकोहल और गंधक का तेजाब बराबर मात्रा में मिलाकर भरते हैं। फिर आँच द्वारा उसे दूसरी बोतल में

टपका लेते हैं; जो ईथर कहलाता है। यह बहुत शीघ्र जलनेवाला पदार्थ है। खुला रखा रहने से यह बहुत जल्द उड़ जाता है और बहुत शीत पैदा करता है; इसलिये बरफ जमाने में काम आता है। रासायनिक क्रियाओं में इससे बड़े बड़े कार्य होते हैं। सूँघने से यह थोड़ी बेहोशी पैदा करता है तथा क्लोरोफार्म की जगह भी काम में लाया जाता है। यह जरमनी में बहुत ज्यादा बनता है।

ईद[1]—संज्ञा स्त्री० [अ०] मुसलमानों का एक त्योहार। रमजान महीने में तीस दिन रोजा (व्रत) रखने के बाद जिस दिन दूज का चाँद दिखाई पड़ता है, उसके दूसरे दिन यह त्योहार मनाया जाता है। उ० ईद और नौरोज है सब दल के साथ। दिल नहीं हाजिरा तो दुनियाँ है उजाड़।-शेर०, भा० १, पृ०७३१।

मुहा०—**ईद का चाँद** = दुर्लभ। कम दृष्टिगोचर वस्तु या व्यक्ति। **ईद का चाँद होना** = बहुत कम दीख पड़ना। **ईद मनाना** = प्रसन्नता व्यक्त करना।

ईद[2](पु)—संज्ञा पुं० [सं० **ईन्दु**] चंद्रमा। इंदु। उ०—हौं दरोग जो कहौं ईद उग्गमे कुहू निसि।—पृ० रा०, ६४। २०४४।

ईदगा(पु)—संज्ञा स्त्री० [फा० **ईदगाह**] दे० 'ईदगाह'। उ०—बड़ी मसीत ईदगावाली।—रा० रू०, पृ० २८४।

ईदगाह—संज्ञा स्त्री० [अ० **ईद** + फा० **गाह**] वह स्थान जहाँ मुसलमान ईद के दिन इकट्ठे होकर नमाज पढ़ते हैं।

ईदिया—संज्ञा पुं० [अ० **ईदियह्**] दे० 'ईदी' [को०]।

ईदी—संज्ञा स्त्री० [अ०] १. त्योहार के दिन दी हुई सौगात या तोहफा। २. किसी त्योहार की प्रशंसा से बनाई हुई कविता जो मौलवी लोग उस त्योहार के दिन अपने शिष्यों को देते हैं। ३. वह बेलबूटेदार कागज जिसपर यह कविता लिखकर दी जाती है। ४. वह दक्षिणा जो इस कविता के उपलक्ष्य में मौलवियों को शिष्य देते हैं। ५. नौकरों या लड़कों को त्यौहार के खर्च के लिये दिया हुआ रुपया पैसा। (मुसलमान)।

ईदुज्जुहा—संज्ञा स्त्री० [अ० ईदुज्जुहह्] मुसलमानों का एक मुख्य त्योहार जिसमें भेंड, बकरी आदि की कुर्बानी होती है। बकरीद [को०]।

ईदुलफितर—संज्ञा स्त्री० [अ० **ईदुलफित्र**] दे० 'ईद'।

ईदृश[1]—क्रि० वि० [सं०] [स्त्री० **ईदृशी**] इस प्रकार। इस तरह। इस भाँति। ऐसे।

ईदृश[2]—वि० इस प्रकार का। ऐसा।

ईद्रीजीत(पु)—वि० [हिं० **इंद्रीजीत**] दे० 'इंद्रियजित्'। उ०—मुज को आडवे दबजर कोपिन। ईस बिध जोगी ईद्रीजीत।—रामानंद०, पृ० ४६।

ईप्सन—संज्ञा पुं० [सं०] प्राप्त करने की अभिलाषा करना [को०]।

ईप्सा—संज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० **ईप्सित, ईप्सु**] १. इच्छा। वांछा। अभिलाषा। उ०—मान कर भी, सभी ईप्सा, सभी कांक्षा, जगत् की उपलब्धियाँ सब है लुभानी भ्रांति।—हरीघास०, पृ० १३। २. प्राप्ति की इच्छा।

ईप्सित—वि० [सं०] चाहा हुआ। अभिलषित। उ०—(क) अब अपनी नौका ईप्सित घाट पर आई।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ११८। (ख) सारे श्रम उसको फूलों के हार से लगते हैं जो पाता ईप्सित वस्तु को।—करुणा०, पृ० १४।

ईप्सु—वि० [सं०] चाहनेवाला। वांछा करनेवाला।

ईफाय—संज्ञा पुं० [अ० **ईफ़ाय**] वचनपालन। वचन पूरा करना [को०]।

ईफायडिगरी—संज्ञा स्त्री० [अ० **ईफ़ाय** + अं० **डिगरी**] डिगरी का रुपया अदा कर देना। जर डिगरी बेबाक कर देना।

ईफायवादा—संज्ञा पुं० [अ० **ईफ़ाय** + **फा० ए-अ० वादह्**] प्रतिज्ञापालन। वादे को निभाना [को०]।

ईबीसीबी(पु)—संज्ञा स्त्री० [**अनुध्व०**] सिसकारी का शब्द। 'सीसी' शब्द जो संभोग के अत्यंत आनंद के समय मुँह से निकलता है। उ०—गूजरी बजावैं रव रसना सजावैं कर चूरी छमकावैं गरो गहति गहकि कै। मुख मोरि त्योरी तोरि भौंहैं नासिका मरोरि देव ईबीसीबी बोल बोलति बहकि कै।—देव (शब्द०)।

ईमन—संज्ञा पुं० [फा० **यमन**] संपूर्ण जाति की एक रागिनी। ऐमन। उ०—आसा करि लागि पिय सों रटपंचम सुर गावत ईमन।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, २८८।

ईमनकल्यान—संज्ञा पुं० [हिं० **ईमन** + सं० **कल्याण**] एक मिश्रित राग का नाम।

ईमाँ—संज्ञा पुं० [अ० **ईमान**] दे० 'ईमान'। उ०—ईमाँ की कसम दुश्मने जानी है हमारा।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ५२२।

ईमा—संज्ञा पुं० [अ०] १. इशारा। संकेत। आदेश। हुक्म। २. मतलब। तात्पर्य [को०]।

ईमान—संज्ञा पुं० [अ०] १. विश्वास। आस्था। आस्तिक्य बुद्धि। उ०—दादू दिल अरवाह का सो अपना ईमान। सोई साबित राखिए जहँ देखइ रहिमान।—दादू (शब्द०)।

क्रि० प्र०—लाना = विश्वास या आस्था रखना। जैसे—ईसाई कहते हैं कि ईसा पर ईमान लाओ।

२. चित्त की सद्वृत्ति। अच्छी नीयत। धर्म सत्य। जैसे,—(क) ईमान से कहना, झूठ मत बोलना। (ख) ईमान ही सब कुछ है, उसे चार पैसे के लिये मत छोड़ो। (ग) यह तो ईमान की बात नहीं है।

क्रि० प्र०—खोना। —छोड़ना। —डिगना। —डिगाना। —डोलना। —डोलाना।

मुहा०—**ईमान की कहना** = सच कहना। न्याय की बात कहना। **ईमान जाना** = नीयत बिगड़ना। उ०—उधर है जेल की जहमत इधर है कौम की लानत। उधर आराम जाता है इधर ईमान जाता है।—कविता कौ०, भा० ४, पृ० ६५५। **ईमान ठिकाने न होना** = धर्मभाव दृढ़ न रहना। **ईमान देना** = सत्य छोड़ना। धर्म विरुद्ध कार्य करना। **ईमान में फर्क आना** = धर्म भाव में ह्रास होना। नीयत बिगड़ना। **ईमान लाना** = दृढ़ विश्वास करना। **ईमान से कहना** = सच सच कहना।

ईमानदार—वि० [अ० **ईमान** + फा० **दार**] १. विश्वास करनेवाला। २. विश्वासपात्र। जैसे—ईमानदार नौकर। ३. सच्चा। ४. दियानतदार। जो लेनदेन या व्यवहार में सच्चा हो। ५. सत्य का पक्षपाती।

ईमानदारी—संज्ञा स्त्री० [अ० **ईमान** + फा० **दारी**] १. ईमान की स्थिति। ईमानदार होने का भाव। २. सत्यनिष्ठा। दियानतदारी [को०]।

ईर[1]†—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'ईढ़'।

ईर²--संज्ञा पुं० [सं०] वायु [को०]।

ईरखा(५)--संज्ञा स्त्री० [सं० **ईर्षा**] दे० 'ईर्षा'। उ०--करै ईरखा। सों जु तिय मनभावन सों मान।--मतिराम ग्रं०, पृ० २९४।

ईरज--संज्ञा पुं० [सं०] वायुपुत्र हनूमान् [को०]।

ईरण¹--वि० [सं०] विक्षुब्ध करनेवाला। उत्तेजित करनेवाला [को०]।

ईरण²--संज्ञा पुं० १. हवा। पवन। २. जाना। गमन। ३. भेजना। प्रेषित करना। प्रेषण। ४. कष्ट से मल का निकलना। ५. कहना। कथन [को०]।

ईरपाद--संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का सर्प [को०]।

ईरपुत्र--संज्ञा पुं० [सं०] हनूमान् [को०]।

ईरमद(५)--संज्ञा पुं० [सं० **इरम्मद**] दे० 'इरम्मद'।

ईरान--संज्ञा पुं० [फा०] [वि० **ईरानी**] फारस देश।

ईरानी¹--वि० [फा०] ईरान से संबंधित। ईरान का [को०]।

ईरानी²--संज्ञा पुं० ईरान का निवासी [को०]।

ईरानी³--संज्ञा स्त्री० ईरान देश की भाषा [को०]।

ईरिण¹--संज्ञा पुं० [सं०] बलुआ मैदान। ऊसर जमीन।

ईरिण²--वि० [सं०] ऊसर [को०]।

ईरित(५)--वि० [सं०] प्रेषित। प्रेरित। उ०--ऊधौ विधि ईरित भई है भाग कीरति, लही रति जसोदा सुत पायनि परस की।--घनानंद, पृ० २०२। २. कहा हुआ (को०)। ३. काँपता हुआ। हिलता डुलता हुआ [को०]। ४. गया हुआ। गत [को०]।

ईर्म¹--वि० [सं०] १. क्षुब्ध। २. निरंतर गतिशील। ३. उत्तेजित करनेवाला [को०]।

ईर्म²--संज्ञा पुं० १. बाहु। २. व्रण। फोड़ा [को०]।

ईर्या--संज्ञा स्त्री० [सं०] यतियों की भाँति भ्रमण करना [को०]।

ईर्यासमिति--संज्ञा पुं० [सं०] जैनमतानुसार साढ़े तीन हाथ तक आगे देखकर चलने का नियम। यह नियम इस कारण रखा गया है कि जिसमें आगे पड़नेवाले कीड़े फतिंगे दिखाई पड़ें।

ईर्वारु--संज्ञा पुं० [सं०] ककड़ी [को०]।

ईर्षणा(५)--संज्ञा स्त्री० [सं० **ईर्ष्यण**] ईर्ष्या। हसद। डाह। उ०--पर की पुण्य अधिक लखि सोई। तबै ईर्षणा मन में होई।--विश्राम (शब्द०)।

ईर्षा--संज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० **ईर्षालु, ईर्षित, ईर्षु**] दूसरे की बढ़ती देखकर होनेवाली जलन। डाह। हसद। उ०--तजि द्वेष ईर्षा द्रोह निंदा देश उन्नति सब चहैं।--भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ५१४।

ईर्षारति--संज्ञा पुं० [सं०] अर्धनपुंसक व्यक्ति [को०]।

ईर्षालु--वि० [सं०] ईर्षा करनेवाला। दूसरे की बढ़ती देखकर जलनेवाला। दूसरे के उत्कर्ष से दुःखी होनेवाला।

ईर्षाषंड--संज्ञा पुं० [सं० **ईर्षाषण्ड**] एक प्रकार का अर्धनपुंसक व्यक्ति। हिरसी टट्टू।

ईर्षित--वि० [सं०] जिससे ईर्षा की गई हो।

ईर्षु--वि० [सं०] डाह करनेवाला। ईर्षालु।

ईर्ष्य--वि० [सं०] ईर्षालु [को०]।

ईर्ष्यक¹--संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक के अनुसार एक प्रकार के नपुंसक जिन्हें उस समय कामोत्तेजना होती है जिस समय वे किसी दूसरे को मैथुन करते हुए देखते हैं।

ईर्ष्यक--वि० ईर्षालु। डाह करनेवाला [को०]।

ईर्ष्या--संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'ईर्षा'। उ०--ईर्ष्या हमारे चित्त से क्षण मात्र भी हटती नहीं।--भारत०, पृ० १४६।

ईर्ष्यालु--वि० [सं०] दे० 'ईर्षालु' [को०]।

ईर्ष्यं--वि० [सं०] दे० 'ईर्ष्यं' [को०]।

ईल¹--संज्ञा पुं० [देश०] एक बनैला जंतु।

ईल²--संज्ञा स्त्री० [अं०] एक प्रकार की मछली। बाँग।

ईलि--संज्ञा स्त्री० [सं०] १. यष्टि। लाठी। लगुड़। २. एक शस्त्र। छोटी असि या कटार [को०]।

ईली--संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'ईलि' [को०]।

ईश¹--संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० **ईशा, ईशी**] १. स्वामी। मालिक। उ०--जो सबते हित मोकहँ कीजत, ईश दया करिकै वह दीजत।--रामचंद्र०, पृ० १६१। २. राजा। ३. ईश्वर। परमेश्वर। ४. महादेव। शिव। रुद्र। उ०--चंद्रहि बंदत हैं सब केशव ईश ते बंदनता अति पाई।--रामचं०, पृ० १६१

यौ०--**ईशकोण**।

५. ग्यारह की संख्या। ६. आर्द्रा नक्षत्र। ७. एक उपनिषद् जो शुक्ल यजुर्वेद की वाजसनेयि शाखा के अंतर्गत है। इसका पहला मंत्र 'ईश' शब्द से प्रारंभ होता है। ईशावास्य उपनिषद्।

यौ०--**देवेश। नरेश। वागीश। सुरेश।**

८. पारद। पारा।

ईश²--वि० १. ऐश्वर्यशाली। २. सामर्थ्यवान् [को०]।

ईशकोण--संज्ञा पुं० [सं०] उत्तर और पूर्व का कोना [को०]।

ईशता--संज्ञा स्त्री० [सं०] स्वामित्व। प्रभुत्व।

ईशत्व--संज्ञा पुं० [सं०] ईश्वरत्व। स्वामित्व। प्रभुत्व। उ०--उस सृष्टिकर्ता ईश का ईशत्व क्या हममें नहीं।--भारत०, पृ० १५५।

ईशदगरी--संज्ञा स्त्री० [सं०] काशी [को०]।

ईशपुरी--संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'ईशनगरी' [को०]।

ईशबल--संज्ञा पुं० [सं०] पाशुपत नामक अस्त्र [को०]।

ईशसख--संज्ञा पुं० [सं०] कुबेर [को०]।

ईशा--संज्ञा स्त्री० [सं०] १. ऐश्वर्य। २. ऐश्वर्यसंपन्न स्त्री। ३. दुर्गा।

ईशान¹--संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० **ईशानी**] १. स्वामी। अधिपति। प्रभु। २. शिव। महादेव। रुद्र। ३. ग्यारह की संख्या। ४. ग्यारह रुद्रों में से एक। ५. शिव की आठ मूर्तियों में से एक। सूर्य। ६. पूरब और उत्तर के बीच का कोना। ७. आर्द्रा नक्षत्र (को०)। ८. प्रकाश। ज्योति (को०)। ९. शमी वृक्ष (को०)।

ईशान²--वि० १. शास्ता। शासक। २. ऐश्वर्यशाली। ३. संपन्न [को०]।

ईशानी--संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दुर्गा। २. सेमल का वृक्ष [को०]।

ईशिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. आठ प्रकार की सिद्धियों में से एक जिससे साधक सब पर शासन कर सकता है। २. ईश्वरत्व। ३. प्राधान्य।

ईशित्व—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'ईशिता'।

ईशी[1]—वि० [सं० ईशिन्] १. शासन रखनेवाला। २. प्रधानता रखनेवाला [को०]।

ईशी[2]—संज्ञा पुं० १. देवता। २. पति। ३. मालिक। स्वामी [को०]।

ईश्वर[1]—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० ईश्वरी] १. मालिक। स्वामी। प्रभु। २. योगशास्त्र के अनुसार क्लेश, कर्म, विपाक और आशय से पृथक् पुरुषविशेष। परमेश्वर। भगवान्।

यौ०—ईश्वरप्रणिधान। ईश्वराधिष्ठान। ईश्वराधिष्ठित। ईश्वराधीन।

३. महादेव। शिव। ४. रामानुजाचार्य के अनुसार तीन पदार्थों में से एक जो संसार का कर्त्ता, अपादान, अंतर्यामी और ऐश्वर्य तथा वीर्य आदि से संपन्न माना जाता है। (शेष दो पदार्थ चित् और अचित् हैं)। ५. राजा। ६. यति। ७. पारद। पारा। ८. पीतल। ९. कामदेव। पुष्पधन्वा (को०)। १० एक संवत्सर [को०]।

ईश्वर[2]—वि० समर्थ। शक्तिमान्। संपन्न।

ईश्वरता—संज्ञा स्त्री० [सं०] ईश्वर की भावना। ईश्वर भाव। उ०—(क) नाहिं ईश्वरता अटकी बेद में।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० १३४। (ख) यदि जग में है ईश्वरता तो है मनुष्यता में ही।—सागरिका, पृ० ८०।

ईश्वरनिषेध—संज्ञा पुं० [सं०] ईश्वर में अविश्वास। नास्तिकता [को०]।

ईश्वरनिष्ठ—वि०[सं०] ईश्वर में विश्वास या निष्ठा रखनेवाला [को०]।

ईश्वरपूजक—वि० [सं०] १. ईश्वर की उपासना करनेवाला। २. पवित्र [को०]।

ईश्वरप्रणिधान—संज्ञा पुं० [सं०] योगशास्त्र के अनुसार पाँच प्रकार के नियमों में से अंतिम एकाग्रध्यानात्मक। ईश्वर में अत्यंत श्रद्धा और भक्ति रखना तथा अपने सब कर्मों के फलों को उसे अर्पित करना।

ईश्वरप्रसाद—संज्ञा पुं० [सं०] भगवान् की कृपा [को०]।

ईश्वरभाव—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्राधान्य। २. ऐश्वर्य। ३ सामर्थ्य [को०]।

ईश्वरवाद—संज्ञा पुं० [सं० ईश्वर+वाद] ईश्वर को जगत् का कर्ता माननेवाला मत जिसमें भगवान् के दया दाक्षिण्य की झलक जगत् के नाना रूपों और व्यापारों में रहस्य की दृष्टि से देखी जाती है। उ०—ईसाइयों में जो रहस्यभावना प्रचलित थी वह ईश्वरवाद के भीतर थी।—चिंतामणि, भा० २, पृ० १४०।

ईश्वरवादी—वि० [सं० ईश्वर+वादिन्] ईश्वरवाद का अनुयायी।

ईश्वरविभूति—संज्ञा स्त्री० [सं०] परमात्मा के विभिन्न स्वरूप (को०)।

ईश्वरसख—संज्ञा पुं० [सं०] शिवजी के सखा, कुबेर।

ईश्वरसद्म—संज्ञा पुं० [सं०] देवालय। मंदिर [को०]।

ईश्वरसेवा—संज्ञा स्त्री० [सं०] परमात्मा का पूजन अर्चन [को०]।

ईश्वरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दुर्गा। २. लक्ष्मी। ३. शक्ति [को०]।

६७

ईश्वराधीन—वि० [सं०] ईश्वर के इच्छानुसार होनेवाला [को०]।

ईश्वरी[1]—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दे० 'ईश्वरा'। २. नाकुली, क्षुद्रजटा, बंध्या कर्कटी, लिंगिनी आदि पौधे [को०]।

ईश्वरी[2]—वि०, दे० 'ईश्वरीय' [को०]।

ईश्वरीय—वि० [सं०] १.ईश्वर संबंधी। उ०—है भाव सबके आननों पर ईश्वरीय प्रसाद के।—भारत०, पृ० ६५।

ईश्वरोपासना—संज्ञा स्त्री० [सं०] ईश्वरसेवा। ईश्वर की पूजा [को०]

ईष—संज्ञा पुं० [सं०] १. आश्विन मास। कुआर। २. शिव का एक गण। तृतीय मनु के एक पुत्र का नाम [को०]।

ईषण—वि० [सं०] शीघ्रता या जल्दी करनेवाला [को०]।

ईषणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. शीघ्रता। तेजी। २. तेज गति [को०]।

ईषत्[1]—वि० [सं०] थोड़ा। कुछ। कम। अल्प।

यौ०—ईषद् उष्ण। ईषद् हास्य।

ईषत्[2]—क्रि० वि० कुछ कुछ। अल्प रूप में। आंशिक रूप में [को०]।

ईषत्कर—वि० [सं०] १. आंशिक रूप में करनेवाला। कम करनेवाला। २. आसान [को०]।

ईषत्कार्य—वि० [सं०] १. अत्यंत आसान। २. अल्पप्रभावयुक्त [को०]।

ईषत्पुरुष—संज्ञा पुं० [सं०] क्षुद्र व्यक्ति [को०]।

ईषत्स्पृष्ट—संज्ञा पुं० [सं०] वर्ण के उच्चारण में एक प्रकार का आभ्यंतर प्रयत्न जिसमें जिह्वा, तालु, मूर्धा और दंत को तथा दाँत, ओष्ठ को कम स्पर्श करता है। 'य', 'र', 'ल', 'व' ईषत्स्पृष्ट वर्ण हैं।

ईषद्—वि० [सं०] दे० 'ईषत्'।

ईषद—वि० [सं० ईषद्, हिं० ईषद] दे० 'ईषद्'।

ईषदहास(पु)—संज्ञा पुं० [सं० ईषद्हास] हलकी हँसी। मुस्कराहट। उ०—ईषदहास दंत दुति बिगसित मानिक मोती धरे जनु पोई।—सूर०, १०।२१०।

ईषदुष्ण—वि० [सं०] कुनकुना। कुछ कुछ गरम [को०]।

ईषद्दर्शन—संज्ञा पुं० [सं०] १. साधारण दृष्टि। स्वल्प दृक्पात। २. चितवन [को०]।

ईषद्धास संज्ञा पुं० [सं० ईषद्+हास्य] हलकी मुसकान। मुस्कराहट[को०]।

ईषना(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० एषणा] प्रबल इच्छा। उ०—सुत बित लोक ईषना तीनी। केहि कै मति इन्ह कृत न मलीनी।—मानस, ७।७१।

ईषल्लभ—वि० [सं०] अल्प मूल्य में उपलब्ध [को०]।

ईषा—संज्ञा स्त्री० [सं०] गाड़ी या हल में वह लंबी लकड़ी जिसके सिरे पर जुआ बाँध कर बैल को जोतते हैं। हरसा। हरिस।

ईषादंड—संज्ञा पुं० [सं० ईषादण्ड] हल की मूठ [को०]।

ईषादंत[1]—संज्ञा पुं० [सं० ईषादन्त] १. लंबे दाँत का हाथी। २. हल की मूठ। ३. हाथी के दाँत [को०]।

ईषादंत[2]—वि० लंबे दाँतोंवाला [को०]।

ईषिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. हाथी की आँख का खोंड़रा या गोलक। २. चित्रकारी में रंग भरने की कलम। कूँची। ३. बाण। ४. सिरकी। सींक।

ईषिर—संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि। आग [को०]।

ईषीका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'ईषिका' [को०]।

ईष्म—संज्ञा पुं० [सं०] १. वसंत ऋतु। २. कामदेव। मदन [को०]।

ईष्व—संज्ञा पुं० [सं०] अध्यात्म की शिक्षा देनेवाले गुरु [को०]।

ईसⓅ—संज्ञा पुं० [सं० **ईश, प्रा० ईस**] दे० 'ईश'। उ०—तेहि द्विज बटु आज्ञा करत अहह कठिन अति ईस।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ३०७।

ईसनⓅ—संज्ञा पुं० [सं० **ईशान**] ईशान कोण। पूरब और उत्तर के बीच का कोना। उ०—सतमी पूनिउँ पायब आछी। अठइँ अमावस ईसन लाछी।—जायसी (शब्द०)।

ईसबगोल—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'इसबगोल'।

ईसर¹Ⓟ—संज्ञा पुं० [सं० ऐश्वर्य] धनसंपत्ति। ऐश्वर्य। वैभव। उ०—कहेन्हि न रोव बहुत तें रोवा। अब ईसर भा दारिद खोवा।—जायसी (शब्द०)।

ईसर²Ⓟ—संज्ञा पुं० [सं० **ईश्वर प्रा० इस्सर, ईसर**] दे० 'ईश्वर'। उ०—ईसर केर घंट रन बाजा।—जायसी ग्रं०, पृ० ११७।

ईसरगोल—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'इसबगोल'।

ईसरीⓅ—[सं० **ईश्वरीय**] दे० 'ईश्वरीय'।

ईसवी—वि० [अ०] ईसा से संबंध रखनेवाला।

यौ०—**ईसवी सन्** = ईसा मसीह के जन्मकाल से चला हुआ संवत्।

विशेष—यह संवत् पहली जनवरी से आरंभ होता है और इसमें प्रायः ३६५ दिन होते हैं। ठीक ठीक सौ वर्ष का हिसाब पूरा करने के लिये प्रति चौथे वर्ष जब सन् की संख्या चार से पूरी विभक्त हो जाती है, तब फरवरी में एक दिन बढ़ा दिया जाता है और वह वर्ष, ३६६ दिन का हो जाता है। इसमें और विक्रमीय संवत् में ५७ वर्ष का अंतर है।

ईसा—संज्ञा पुं० [अ०] ईसाई धर्म के प्रवर्तक या आचार्य।

यौ०—**ईसामसीह** = ईसा जिनका धर्माभिसिंचन किया गया था।

ईसाई—वि० [फ़ा०] ईसा को माननेवाला। ईसा के बताए धर्म पर चलनेवाला। क्रिश्चियन। उ०—मैं इससे घृणा करता हूँ क्योंकि यह ईसाई है।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ५६४।

ईसानⓅ—संज्ञा पुं० [सं० **ईशान**] दे० 'ईशान'।

ईसानीⓅ—संज्ञा स्त्री० [सं० **ईशानी**] दे० 'ईशानी'।

ईसार—संज्ञा पुं० [अ०] दूसरे के लिये अपने स्वार्थ का त्याग करना [को०]।

ईसारपेशा—वि० [अ० **ईसार** + फा० **पेशह्**] परोपकारी। अपना स्वार्थत्याग करके दूसरों का हित करनेवाला [को०]।

ईसुरⓅ†—संज्ञा पुं० [हिं० **ईश्वर**] दे० 'ईश्वर'। उ०—जौं ईसुर हो तो कहूँ सुनतो करुना बैन।—श्यामा०, पृ० १६६।

ईसुरी¹Ⓟ—संज्ञा स्त्री० [सं० **ईश्वरी**] दुर्गा। पार्वती। उ०—इनके नमक तें ईसुरी हमको करै रन में अदा।—पद्माकर ग्रं०, पृ० १८।

ईसुरी²—वि० [सं० **ईश्वरीय**] दे० 'ईश्वरीय'। उ०—दस औतार ईसुरी माया करता करि जिन्ह पूजा। कहै कबीर सुनो हो साधो उपजै खपै सो दूजा।—घट०, पृ० २६४।

ईस्ट—संज्ञा पुं० [अं०] पूरब। पूर्व दिशा।

ईस्वरⓅ—संज्ञा पुं० [हिं०] 'ईस्वर'। उ०—ऐसें सुजस सुपंथ मैं ईस्वर सबकौं देत।—हम्मीर०, पृ० ४१।

ईस्वरताⓅ—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'ईश्वरता'। उ०—श्री गुसाईं जी वाकों समुझावत में अपनी ईस्वरता जताए।—दो सौ बावन०, भा० १, पृ० १५६।

ईहग—संज्ञा पुं० [सं० **ईहा = इच्छा + ग = गमन करनेवाला**] कवि। चारण।—(डिं०)।

ईहाँⓅ—अव्य० [हिं०] दे० 'यहाँ'। उ०—इह न कहइ अस ईहाँ ऐसे। जैसिन वस्तु प्रकासक तैसे।—नंद० ग्रं०, पृ० ११७।

ईहा—संज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० **ईहित**] १. चेष्टा। उ०—सूछम समुझि परासयहि ईहा साभिप्राय। कर जोरत लखि हरिहि तिय लिय कज्जल दृग लाय।—पदमाकर ग्रं०, पृ० ६३। २. उद्योग। ३. इच्छा। वांछा। ४. लोभ।—(डिं०)

ईहाम—संज्ञा पुं० [अ०] भ्रांति। भ्रम। वहम [को०]।

ईहामृग—संज्ञा पुं० [सं०] १. नाटक का एक भेद जिसमें चार अंक होते हैं। इसका नायक ईश्वर या किसी देवता का अवतार और नायिका दिव्य स्त्री होती है जिसके कारण युद्ध होता है। इसकी कथा प्रसिद्ध और कुछ कल्पित होती है। कुछ लोग इसमें एक ही अंक मानते हैं। मृग के तुल्य अलभ्य कामिनी की नायक इसमें ईहा करता है। अतः इसे ईहामृग कहते हैं। २. भेड़िया।

ईहार्थी—वि० [सं० **ईहार्थिन्**] [वि० स्त्री० **ईहार्थिनी**] धनलाभ या उद्देश्यपूर्ति के लिये यत्नशील [को०]।

ईहावृक—संज्ञा पुं० [सं०] लकड़बग्घा।

ईहित—वि० [सं०] इच्छित। ईप्सित। चाहा हुआ। वांछित।

हिंदी शब्दसागर